ब्रजभाषा सूर-कोश

प्रथम खण्ड

(अक) सै न (निबहना) त

निर्देशक

डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०

प्रधान संपादक

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, एम० ए०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

डॉ० प्रेमनारायण टंडन, एम० ए० पी-एच० डी०

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन
लखनऊ विश्वविद्यालय

मूल्य—३

प्रकाशक—

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन

लखनऊ विश्वविद्यालय

द्वितीय संस्करण

शब्द-सख्या—२७६०१

मूल्य ~~तीस रुपये~~

मुद्रक

अग्रवाल प्रेस, ३१६, मोतीनगर, लखनऊ

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ गूजरमल मोदी, मोदी-नगर, ने ६०००) नकद और ९०००) का वचन देकर हमारे हिंदी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिंदी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग 'ब्रजभाषा सूर-कोश' के निर्माण और प्रकाशन में किया जा रहा है। इसकी वृद्धि से इस प्रकार के और कोश भी प्रकाशित होंगे जिनसे हिंदी-साहित्य का यह अंग समृद्ध होगा। सेठ श्री मोदी जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

केसरी नारायण शुक्ल
अध्यक्ष, हिंदी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

———

निवेदन

सन १९४६ के अंतिम चतुर्थांश में 'सूर-कोश' के निर्माण का कार्य आरंभ हुआ था। चार वर्ष के निरंतर परिश्रम के उपरांत इस कोश का इतना भाग तैयार हो गया है कि उसका प्रकाशन किया जा सके। खंडरूप मे अब यह कोश प्रकाशित हो रहा है और ऐसा प्रबंध किया गया है कि प्रति तीसरे मास एक खंड पाठको की सेवा मे पहुँचता रहे। इस प्रकार लगभग दो वर्ष मे ही यह संपूर्ण कोश प्रकाश मे आ जाने की संभावना है।

आरंभ मे विचार था कि केवल महाकवि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्दो का ही कोश प्रस्तुत किया जाय। लगभग दो वर्ष तक इसी के अनुसार कार्य भी किया गया, परंतु बाद मे अन्य प्रतिष्ठित कवियो के विशिष्ट व्रजभाषा-प्रयोग भी इस उद्देश्य से इसमे सम्मिलित कर लिए गए कि इस प्रकार उस वृहत् व्रजभाषा-कोश की विस्तृत रूप-रेखा तैयार हो जाय जिसका अभाव लगभग पिछली दो शताब्दियो से खटक रहा है और जिसके लिए अनेक प्रयत्न होने पर भी सफलता अभी तक किसी को नही मिली है। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों के प्रयोग अपना लेने से एक लाभ यह भी सोचा गया कि कोश का व्यावहारिक मूल्य बहुत बढ जायगा और हिन्दी-साहित्य के सभी प्रेमियों के लिए यह उपयोगी संदर्भ-ग्रंथ का काम देगा। महँगी के इस युग मे ४०) या ५०) के मूल्य का एकांगी उपयोगी ग्रंथ खरीदने मे सबको असुविधा ही होगी, यह बात भी सामने थी। जायसी और तुलसी के आवश्यक अवधी-प्रयोग भी इसी उद्देश्य से इस कोश मे दिये गये हैं। अंतर केवल इतना है कि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द के साथ, अर्थ की पुष्टि और स्पष्टता के लिए, अपेक्षित उद्धरण भी दिए गए हैं, पर अन्य कवियो के नही। इस प्रकार कोश का नाम भी सार्थक हो जाता है।

प्रस्तुत कोश मे शब्दो के विभिन्न रूपो को प्राय उसी रूप में दिया गया है जिसमे वे सूरदास तथा अन्य कवियो द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। व्रजभाषा की प्रवृत्ति और उसके व्याकरण से जिनका परिचय नही है उन्हे एक शब्द के लिंग, वचन और काल के अनुसार परिवर्तित विभिन्न रूपों को पहचानने मे कठिनाई होती है। दूसरी बात यह कि मूल शब्द, मुख्यत: क्रिया, के अनेक अर्थों में से किसमे उसके रूप-विशेष का प्रयोग किया गया है, यह जानना भी साधारण पाठक के लिए सरल नही होता। तीसरे, हिंदी के राष्ट्रभाषा-रूप मे स्वीकृत हो जाने पर उसके साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की रुचि जिस द्रुत गति से बढ़ रही है उसको उत्साहित करने में सहयोग देने के लिए भी एक शब्द के प्राय: सभी प्रचलित रूपो को कोश मे सम्मिलित करना आवश्यक समझा गया है। इस प्रकार कई सौ शब्द इस कोश मे ऐसे आए हैं जिनका समावेश हिंदी के अन्य प्रामाणिक कोशो मे भी नही है।

व्रजभाषा मे जो शब्द अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं उनके तत्सम रूप भी यथास्थान देने का प्रयत्न किया गया है। मूल तत्सम, अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव शब्द के साथ उसके वे सभी अर्थ दिये गये

हैं जिनमे वह साहित्य मे प्रयुक्त हुआ है, परतु लिग, वचन और काल के अनुसार उसके परिवर्तित रूप के साथ केवल वही अर्थ दिया गया है जिसमे उद्धृत अवतरण मे वह आया है। इसग विशेष अध्ययन करने वालों के साथ-साथ सामान्य जानकारी प्राप्त करने वालो को भी सुविधा होगी।

भाषा के रूप अथवा कवि-विशेष-सम्बन्धी कोश के लिए शब्दार्थ के साथ आवश्यक अवतरण देना स्पष्टता और रोचकता, दोनो की वृद्धि के लिये वांछनीय होता है। प्रस्तुत कोश में भी अपेक्षित उदाहरण यथावसर दिये गये हैं। इनकी सख्या जहाँ एक से अधिक है वहाँ प्रयत्न यह किया गया है कि सभी अवतरण न एक ही स्कध के हो और न एक ही प्रसग के। विस्तार-भय से अधिक लम्बे अश या पूरे पद उदाहरण-रूप में कही नही दिये गये हैं, हाँ, यह प्रयत्न अवश्य रहा है कि सदर्भ की दृष्टि मे ये पूर्ण हो। यत्र-तत्र आयी हुई अतकथाएँ भी प्राय: पूर्ण ही दी गयी हैं। आशा है, इनसे पाठको का पर्याप्त मनोरजन भी होगा।

कोश का निर्माण-कार्य आरभ करने के पूर्व मे ही 'सूरसागर' के एक प्रामाणिक सस्करण का अभाव खटकता रहा है। सभा का जो सस्करण कई वर्ष पूर्व निकला था, वह तो अधूरा है ही, जो नया सस्करण इधर प्रकाशित हुआ है उसका पाठ भी बवई, लखनऊ और कलकत्ते के सस्करणो मे भिन्न है। इडियन प्रेस तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सक्षिप्त सस्करणो और विभिन्न स्थानो से प्रकाशित स्फुट सकलनों के पाठो मे भी बहुत अतर है। इन सबका पाठ मिलाने का प्रयत्न यद्यपि कही कही किया है, तथापि न यही प्रधान लक्ष्य था और न पाठ-शुद्धि ही। सभा की प्रति मे जो पुराने पाठ छूटे हैं, कोश में कही कहीं वे भी कोष्ठक मे दे दिये गये हैं और उनके अर्थ भी देने का प्रयत्न किया गया हैं, यद्यपि सख्या इनके साथ नये पदो की ही दी गयी है। इसमे अनुशीलन की दृष्टि से पाठ का मिलान करने मे विशेष सुविधा होगी। लखनऊ, बवई और कलकत्ते की पुरानी प्रतियो मे जो शब्द तत्सम रूप में आये है, उनके सर्वमान्य व्रजभाषा-रूप ही, सभा-सस्करण के ढग पर, इस कोश मे दिये गये हैं। सूर-साहित्य का सपूर्ण सस्करण सामने न आने तक यही ढग उपयोगी जान पडा है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्रथम सस्करण मे १४३२ पद है। इनके उद्धरण देते समय इसी क्रम सख्या से काम चलाया गया है और शेष के लिये वेंकटेश्वर प्रेस के प्रथम सस्करण की पद-संख्या से। पदो की सख्या इस सस्करण मे भी सर्वत्र ठीक नही हैं, अतएव निश्चित सकेत के लिये कोश मे कही-कही पृष्ठ-सख्या का भी उल्लेख करना पडा है। सभा-सस्करण के प्रथम स्कध में ३४३ पद हैं। दो से नौ तथा ग्यारहवें स्कधो की पद-सख्या इससे कम है, केवल दसवाँ स्कध पहले से बहुत बडा है। इसलिए ३४३ पदो तक तो दसवें स्कध की १० वी सख्या उद्धरणो मे दी गयी है, उसके बाद नही। उद्धृत अवतरणो के पद-सकेत देखते समय पाठक इसका ध्यान रखने की कृपा करें।

शब्दो की व्युत्पत्ति के लिए अन्य कोशो से अधिक सहायता 'हिंदी शब्द-सागर' से ली गयी है। इस वृहत् सदर्भ-ग्रथ में कुछ भूलें भले ही रह गयी हो, तथापि इसमे सदेह नही कि हिंदी-कोश-सबधी कोई भी कार्य इसकी सहायता लिये बिना पूर्ण नही हो सकता। प्रस्तुत कोश मे जो मूल शब्द हैं उनके साथ तो सस्कृत, पाली, प्राकृत,

अपभ्रंश और पुरानी हिंदी के प्राप्त प्राचीन रूप देने का प्रयत्न किया गया है जिससे उनके विकास का क्रम जानने मे सरलता हो, परंतु परिवर्तित रूपो के साथ व्युत्पत्ति बताने के लिए केवल मूल शब्द का उल्लेख है। इससे अनेक स्थलो पर अनावश्यक विस्तार से छुटकारा मिल गया है। शब्द-विशेष का अर्थ 'अन्यत्र' देखने का उल्लेख इस कोश मे कही नही है। इससे उस असुविधा-जन्य झुंझलाहट से मुक्ति मिल जायगी जो कोश के एक भाग मे प्रयुक्त शब्द का अर्थ दूसरे या तीसरे मे देखने पर अथवा कभी-कभी वहाँ भी ऐसा ही उल्लेख पाकर होती है।

कोश के समाप्त हो जाने पर परिशिष्ट रूप मे एक खड और जोडा जायगा। इसमे सूर-साहित्य के समस्त छूटे हुए शब्द और अर्थ दिए जायँगे। यद्यपि इस कोश का निर्माण करते समय प्रयत्न सर्वत्र यह रहा है कि कम से कम सूर-साहित्य का कोई शब्द या शब्द-रूप छूटने न पाये, तथापि प्रामाणिक पाठ के अभाव मे अथवा कही-कही सगत अर्थ न बैठने के कारण कुछ शब्द रोकने पडे हैं। इतने बडे कोश के शब्दो की कुछ स्लिपे भी, सभव है, इधर-उधर हो गयी हो, जिससे कुछ शब्द इसमे सम्मिलित होने से कदाचित् छूट गये हो। इसके लिए अपने साहित्य-प्रेमी विद्वानो और पाठको से हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसे जिन शब्दो का उन्हे पता लगे, अथवा जिन शब्दो की उन्हे इस कोश मे मिलने की आशा हो, पर मिलें नही उनकी सूचना समय-समय पर देते रहने की कृपा करें उनके इस अमूल्य सहयोग से कोश का नया सस्करण पूर्ण करने मे विशेष सहायता मिलेगी।

अत मे हम विभिन्न कोशो और ब्रजभाषा—विशेषतया सूर-साहित्य—के स्फुट सकलनो के उन सपादकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है जिनके ग्रथो का स्वतत्रतापूर्वक उपयोग इस कोश के निर्माण मे किया गया है।

दीनदयालु गुप्त
प्रेमनारायण टंडन

द्वितीय संस्करण

विगत कई वर्षों से सूर-ब्रजभाषा कोश का प्रथम खण्ड अप्राप्य था। इस बीच इसके सम्पादक डा० प्रेमनारायण टडन का भी असामयिक एव दुखद निधन हो गया। कतिपय अपरिहार्य कारणो से इस खण्ड का पुनर्मुद्रण तत्काल सभव न हो सका। प्रसन्नता का विषय है कि अब यह खण्ड मूल रूप मे मुद्रित होकर पाठको के समक्ष आ रहा है। विश्वास है कि सुधी-जन इसका पूर्ववत स्वागत करेंगे।

विजयादशमी,
स० २०३१

केसरी नारायण शुक्ल

—:०—

संकेत-सूची

अ = अरबी भाषा
अनु = अनुकरण शब्द
अप = अपभ्रंश
अर्द्धमा. = अर्द्धमागधी
अल्पा. = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य. = अव्यय
उ. = उदाहरण
उप = उपसर्ग
उभ = उभयलिंग
क्रि. = क्रिया
क्रि अ = क्रिया, अकर्मक
क्रि. प्र. = क्रिया प्रयोग
क्रि वि = क्रिया विशेषण
क्रि. स. = क्रिया, सकर्मक
गु = गुजराती भाषा
तु = तुरकी भाषा
देश = देशज
पं. = पंजाबी भाषा
पर्या = पर्याय
पा. = पाली भाषा
पु पुल्लिंग
पु. हिं. = पुरानी हिंदी
पू. हिं = पूर्वी हिंदी
प्रत्य = प्रत्यय
प्रा = प्राकृत भाषा
प्रे = प्रेरणार्थक क्रिया
फा, = फारसी भाषा
बंग = बँगला भाषा
बहु. = बहुवचन
बुं खं = बुंदेलखंडी बोली
भाव = भाववाचक
मुहा = मुहावरा
यू. = यूनानी भाषा
यौ. = यौगिक या एक से अधिक शब्दों के पद
वा. = वाक्य
वि = विशेषण
सं. = संस्कृत
संयो = संयोजक अव्यय
संयो क्रि = संयोजक क्रिया
स. = सकर्मक
सर्व = सर्वनाम
सवि. = सविभक्ति
सा. = साहित्यलहरी
सारा. = सूरसारावली
सा. उ. = साहित्यलहरी उत्तरार्द्ध
स्त्रि. = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री = स्त्रीलिंग
हिं = हिंदी भाषा

विशेष—(१) उद्धरणों के साथ जहाँ ३४३ से अधिक पद-संख्या है, वहाँ दसवाँ स्कंध समझिए।

(२) जिन उद्धरणों के साथ पद-संख्या नहीं है वे कवि के पदों के विभिन्न संकलनों से दिये गये हैं।

ब्रजभाषा सूर-कोश

प्रथम खंड

अ

अ—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम अक्षर। कठ्य वर्ण। मूल व्यजनों का स्वतत्र उच्चारण इस अक्षर की सहायता से होता है।

निषेधात्मक उपसर्ग; जैसे—अरूप, असुदर।

अंक—सज्ञा पु [स०] (१) चिह्न, छाप। (२) लेख, अक्षर, लिखावट। उ०—अदभुत राम नाम के अक—१-९० (३) लेखा, लेखन। उ०—जोग जुगुति, जप-, तप, तीरथ-व्रत इनमे एको अक न भाल—१-१२७। (४) गोद, अंकवार, क्रोड।

मुहा—अक भरि लीन्हो, लीन्हो अक भरी—हृदय से लगा लिया गोद मे ले लिया। उ०—(क) पुत्र-कबन्ध अक भरि लीन्हो धरति न इक छिन धीर—१-२९। (ख) धन्य-धन्य बडभागिनि जसुमति निगमनि सही परी। ऐसे सूरदास के प्रभु कौं लीन्हौं अक भरी—१०-६९। अक भरि लेत—छाती से लगा लेते हैं, गोद मे लेते हैं। उ०—छिरकत हरद दही हिय हरषत, गिरत अक भरि लेत उठाई—१०-१९। अक भरै—गोद मे लेती है, दुलार करती है। उ०—जैसे जननि जठर-अन्तरगत सुत अपराध करै। तौऊ जतन करै अरु पोषै निकसै अक भरै—१-११७।

(५) बार, मतबा। (६) सख्या का चिह्न।

अंकम—सज्ञा पु० [स० अंक] गोद, अकवार, क्रोड़। उ०—आनदित ग्वाल-बाल, करत विनोद ख्याल, भरि भरि धरि अकम महर के—१०-३०।

मुहा —अकम भरि—छाती से लगाकर। उ०—हँसि हँसि दौरे मिले अकम भरि हम-तुम एकै ज्ञाति—१०-३६। अकम भर्‌यो—[भूत.] (स्नेहवश) छाती से लगाया, गले लगाया। उ०—(क) माता ध्रुव को अकम भर्‌यो—४-९। (ख) कबहुँक मुरछित ह्वै नृप पर्‌यो। कबहुँक सुत को अकम भर्‌यो—६ ५। अकम भरि लेइ—अपने मे लीन करती है। उ०—सत दरस कबहूँ जौ होइ। जग सुख मिथ्या जानै सोइ। पै कुबुद्धि ठहरान न देइ। राजा को अकम भरि लेइ—४-१२। अकम लैहै—[भवि०] गोद में लेगा। उ०—अब उहि मेरे कुँअर कान्ह को छिन-छिन अकम [illegible]-२७०५।

अंकमाल, अंकमाल—सज्ञा पु. [स अक] आलिगन, परिरंभण, गोद, गले लगाना। उ०—सूर स्याम बन तें व्रज आए जननि लिए अँकमाल—२३७१।

मुहा.—दै अकमाल—आलिगन करके, गले लगाकर, गोद लेकर। उ०—जुवति अति भई विहाल, भुज भरि दै अकमाल, सूरदास प्रभु कृपाल, डार्‌यो तन फेरी—१०-२७५।

अँकवार—सज्ञा पु० [स० अकपालि, अकमाल] गोद, छाती।

मुहा —अकवार भरत—आलिगन करते हैं, गले या छाती से लगाते हैं। उ०—(सखा) वनमाला पहिरावत स्यामहिं, बार-बार अँकवार भरत धरि—४२९।

अंकवारि—सज्ञा स्त्री० [हि० अँकवार] गोद, छाती।

मुहा.—भरि धरौ अँकवारि—छाती से लगा लूँ, आलिगन कर लूँ। उ० कोउ कहति, मैं देखि

पाऊँ, भरि धरौं अँकवारि—१०-२७३। भरि दीन्ही (लीन्ही) अँकवारि—छाती से लगा लिया। उ०—(क) झूठेहि मोहि लगावति ग्वारि। खेलत तैं मोहिं बोलि लियौ इहि, दोउ भुज भरि दीन्हीं अँकवारि—१०-३०४। (ख) बाहँ पकरि चोली गहि फारी भरि लीन्ही अँकवारि—१०-३०६। (ग) सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हो तब जननी भरि लए अँकवारि—४३०।

(२) आलिगन। उ०—नैन मूँदति दरस कारन स्रवन सब्द बिचारि। भुजा जोरति अक भरि हरि ध्यान उर अँकवारि—७८१।

अंकित—वि. [स अक] (१) चिह्नित। उ०—कनक कलस मधुपान मनौ कर भुज निज उलटि धसी। ता पर सुदरि अचर झांप्यो अकित दस तसी—सा. उ. २५। (२) लिखित, खिचित। (३) वर्णित।

अंकुर, अँकुर—सज्ञा पु [स] अखुआ, गाभ। उ–(क) ग्वालनि देखि मनहिं रिस कांपै। पुनि मन मैं भय अकुर थापै—५८५। (ख) अदभुत रामनाम के अक। धर्म अंकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-बधू ताटक—१-९०

अँकुरनो, अँकुरानो—क्रि. अ. [स. अकुर] अकुर फोड़ना, उगना, उत्पन्न होना।

अंकुरित—वि [स० अकुर] (१) अंखुवाया हुआ, जिसमे अकुर हो गया हो। (२) उत्पन्न हुए, उगे, प्रकटे। उ–(क) अकुरित तरु पात, उकठि रहे जे गात, बन बेली प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३०। (ख) फूले फिरैं जादौकुल आनँद समूल मूल, अकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४।

अंकुस—सज्ञा पु [स अकुश] (१) हाथी को हाँकने का टेढ़ा काँटा, अकुश। उ०—ग्यारो करि गयद तू अजहूँ, जान देहि का अकुस मारै—२५८९। (२) प्रतिबन्ध, दबाव, रोक। उ.—मन बस होत नाहिनै मेरे। । कहा कहौं, यह चरयो बहुत दिन, अकुस बिना मुकेरै—१-२०६। (३) ईश्वर के अवतार राम, कृष्ण आदि के चरणों का एक चिह्न जो अकुश के आकार का माना जाता है। उ -व्रज जुवती हरि चरन मन वै। । अकुस-कुलिस-वज्र-ध्वज परगट तरुनी-मन भरमाए—६३१।

अंकूर—सज्ञा पु. [स अकुर] अँखुआ, अंकुर।

अँकोर—सज्ञा पु [हि. अँकवार] अंक, गोद, छाती। उ, (क) खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहहि सब मेरी ओर। बोलि लेहि भीतर घर अपने, मुख चूमति, भरि लेति अँकोर—३९८। (ख) झूठे नर कौं लेहि अँकोर। लावहिं साँचे नर को खोर-१२-३। (२) भेंट, घूस, रिश्वत, उत्कोच। उ –(क) सूरदास प्रभु के जो मिलन को कुच श्रीफल सौं करति अकोर। (ख) गए छँडाय तोरि सब बन्धन दै गए हँसनि अँकोर—३१५३।

अँकोरी—सज्ञा स्त्री [हि. अकोर (अल्प प्र) + ई] (१) गोद। (२) आलिगन।

अँकोरे—सज्ञा पु सवि [हि अँकवार, अँकोर] अंक, गोद, छाती। उ.—तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे। फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाए अँकोरे—१०-२२४।

अंक्ति—वि० [स० अकित] चिह्नित, अकित। उ०—तापर सुन्दर अचर झांप्यो अकित दस तसी—२३०३।

अँखड़ी—सज्ञा स्त्री० [प्र० अँख + हि० डी] (१) आँख। (२) चितवन।

अँखियन—सज्ञा पु० बहु० [हि० आँख] आँखो (मे) उ०—कीनो प्रीति प्रगट मिलिवे की अँखियन सर्म गनाए—८३२।

अँखियाँ—सज्ञा स्त्री० बहु० [हि० आँख] आखें, नेत्र। उ०—अँखियाँ हरि दरसन की भूखी—३०२९।

अँखियानि—सज्ञा स्त्री० [हि० आँख] नयनों के (को) उ०—अपने ही अँखियानि दोष तैं रविहिं उलूक न मानत—१-२०१।

अंग, अँग—सज्ञा पु० [स०] (१) शरीर, तन, गात्र। उ० (क) आमिष, रुधिर, अस्थि अँग जौलौं तौलौं कोमल चाम—१-७६। (ख) प्रकृति जो जाके अग परी। स्वान पूछ को कोटिक लागै सूधी कहूँ न करी—३०१०। (२) अवयव, शरीर के भाग। उ०—(क) गर्भवास अति त्रास मैं (रे) जहाँ न एको अग—१-३२५। (ख) अग-अग-प्रति-छबि-तरग गति सूरदास क्यौ कहि आवै—१-६९। (ग) सकल भूषन मनिनि के बने

सकल अँग, वसन बर अरुन सुन्दर मुहायो—८८। (३) भेद, प्रकार, भाँति उ०—दधिसुत-वर-रिपु सहे सिलीमुख सुष सब अग नमायो—सा० ४६। (४) सहायक, स्वपक्ष का। (५) गोद।

मुहा०—अग छुअत हौं—शपथ खाता हूं। उ०—सूर हृदय तें टरत न गोकुल अग छुवत हौ तेरो—१०-उ० १२४। अग करै—अपना ले, अगीकार कर ले। उ०—जाको मनमोहन अग करै। ताको केस खसै नहिं सिरतै जौ जग वैर परै—१-३७। अग भरै—गोद मे लेती है। उ०—मुख के रेनु झारि अचल सौ जसुमति अग भरै - २८०३।

अंगज—वि०[स० अग+ज=उत्पन्न]शरीर से उत्पन्न। सज्ञा पु०—(१) पुत्र। (२) बाल, रोम। (३) कामदेव।

अंगजा, अंगजाई - सज्ञा स्त्री० [स०] कन्या, पुत्री।

अगद—सज्ञा पु० [स०] (१) किष्किधा के राजा बालि का पुत्र जो श्रीराम की सेना मे था। (२) बाहु मे पहनने का एक गहना, बाजूबन्द। उ०—उर पर पदिक कुसुम बनमाला, अगद खरे विराजै। चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचे, हाथ मुरलिया छाजै—४५१।

अंगदान—सज्ञा पु० [स०] (१) युद्ध से भागना, पीठ दिखाना। (२) तन-समर्पण, सुरति। (३) पीठ, पीढा, आसन। उ०—अंगदान बल को दै बैठी। मदिर आजु आपने राधा अतर प्रेम उमेठी—सा० १००।

अंगन—सज्ञा पु० [स० अगण, हिं० आँगन] आंगन, सहन, चौक। उ०—(क) विरह भयो घर अगन कोने। दिन दिन बाढत जात सखी री ज्यों कुरखेत के डारे सोने—२८९६। (ख) एक कहत अगन दधि माड्यौ—१०५१।

सज्ञा पु० बहु० [स० अग] शरीर के अग, इद्रियाँ। उ०—जब व्रजचद चद-मुख लषिहैं। तव यह बात मान वी तेरी अगन आपु न रषिहैं—सा०९७।

अँगना—सज्ञा पु० [हिं० आँगन] आगन सहन, चौक। उ०—ललिता विसाषा अँगना लिप.वो चौक पुरावो तुम रोरी—२३९५।

अंगना—सज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छे अंगवाली स्त्री, कामिनी।

अंगनाइ, अँगनाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० पु० आँगन] आँगन, चौक, अजिर। उ०—(माई) विहरत गोपाल राइ मनिमन रचे अँगनाइ लरकत पररिंगनाइ, घुटरुनि डोलै—१०-१०१।

अंगभंग—सज्ञा पु० [स०]अग का भंग या खडित होना। वि०—अपाहिज, लूला, लूज।

अंगभंगी—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) मोहित करने की स्त्रियो की क्रिया। अगों को मोडना, मरोडना। (२) आकृति।

अंगराग—सज्ञा पु० [सं०] (१) शरीर मे लगाने का सुगन्धित लेप। (२) वस्त्राभूषण। (३) महावर आदि स्त्रियो के लेप।

अँगवाना—क्रि स [स अग] (१) अंगीकार करना। (२) सहना।

अँगवार्‍यो—क्रि. स [स अग] अंग मे लगाया, शरीर मे मला। उ—चदन और अरगजा आन्यो। अपने कर बल के अँगवार्‍यो—२३२१।

अंगहीन—वि [स अग+हीन=रहित] खंडित अंग का, लँगड़ा-लूला।

सज्ञा पु०—कामदेव।

अंगा—वि० [स. अग] अंगोवाली। उ-मनो गिरिवर तै आवति गगा। राजति अति रमनीक राधिका यहि विधि अधिक अनूपम अगा - १०-१९०५।

सज्ञा पु—(१) अँगरखा, चपकन। (२) अंग। उ० नखसिख लौं मीन जाल जड्यो अ ा-अगा-९-९७। (३) मोटी रोटी या रोट (अंगाकरी) बड़ी लीटी।

अँगार, अंगार—सज्ञा पु. [स.] (१) दहकता हुआ कोयला। उ - पद-नख-चन्द-चकोर विमुख मन, खात अँगार मई-१-२९९। (२) चिनगारी। उ-(क) उचटत भरि अगार गगन लौ, सूर निरखि व्रज जन बेहाल—५९४। (ख) अति अगिनि-झार, भभार धुधार करि, उचटि अगार झझार छायौ—५९६।

अँगिया—सज्ञा स्त्री [स अगिका, प्रा अँगिआ] चोली, अघपेटी।

अँगिरा, अंगिरा—सज्ञा पु [स. अगिरस] एक प्राचीन

ऋषि जिनकी गणना दस प्रजापतियों मे है और जो अथर्ववेद के कर्त्ता माने जाते हैं। उनके पिता का नाम उरु और माता का आग्नेयी था। इनकी चार स्त्रिया थीं—स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा। इनकी कन्या का नाम ऋचस् और पुत्र का मनस् था।

अंगीकार—सज्ञा पु [स.] स्वीकार, ग्रहण।

अँगुठा—सज्ञा पु [स अगुष्ठ, प्रा अगुट्ठ, हि अँगूठा] अँगूठा। उ - कर गहे चरन अँगूठा चचोरै-१०-६२।

अँगुर—सज्ञा पु. [स अगुल] (१) एक नाप जो आठ जौ के पेट की लंबाई के बराबर होती है। उ०—अगुर द्वै घटि होति सबनि सौ पुनि पुनि और मँगायौ—१०-३४२। (२) एक अगुली की मोटाई भर की नाप।

अंगुरिनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुरी, हि० उँगली] उंगलियों मे। उ—अग अभुषन अँगुरिनि गोल—१०-९४।

अँगुरियनि—सज्ञा स्त्री बहु. सवि. [हि उँगली] उगलियो से। उ—दुहत अँगुरियनि भाव बतायौ—६६७।

अगुरिया—सज्ञा स्त्री [स अँगुरी-अल्प] छोटी उगली उ०-गहे अँगुरिया ललन की, नँद चलन सिखावत—१०-१२२।

अँगुरी—सज्ञा स्त्री [स अँगुरी] उगली। उ—चौथ मास कर-अँगुरी सोइ—३-१३।

अँगुरीनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुली] उँगली, उँगलियो (को) (से)।

मुहा०—अँगुरीनि दत दै रह्यो—चकित हुआ, अचभे मे आ गया। उ०—मैं तौ जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं ये करे हैं कौनै आन, अँगुरीनि दत दै रह्यौ—१०-४८४।

अँगुसा—सज्ञा पु० [स० अकुश=टेढी नोक] अकुर, अँखुआ, गाभ। (२) अँगुसी।

अँगूठी—सज्ञा स्त्री० [हि० अँगूठा+ई] उँगली मे पहनने का छल्ला, मुँदरी, मुद्रिका।

अँगूर—सज्ञा पु० [स० अकुर] अंकुर, (१) अँखुवा। (२) एक फल जिसको सुखा कर किशमिश या दाख बनती है।

अँगेजना—क्रि० स० [स० अग=शरीर+एज=हिलना, कँपना] (१) सहन करना। (२) स्वीकार करना, अपनाना।

अँगेरना—क्रि० स० [स० अग+ईर=जाना] (१) अगीकार करना। (२) सहना।

अँगोछि—क्रि० अ० [हि० अँगोछना] अँगोछे या कपड़े से पोछकर। उ०—उत्तम विधि सौं मुख पखरायौं ओदे बसन अँगोछि—१०-६०९।

अँगोछे—क्रि० अ० [हि० अँगोछना] गीले कपड़े से पोंछ दिये। उ०—अति सरस बसन तन पोछ। ले कर-मुखकमल अँगोछे-१०-१८३।

सज्ञा पु. बहु०—अनेक अँगोछे या देह पोछने के कपड़े।

अँचयो, अँचयौ—क्रि० स० भूत० [स० आचमन, हि० अचवना] पिया, पान किया। उ०—(क) कछु कछु खाइ दूध अँचयो तब जम्हात जननी जाने-१०-२३०। (ख) ग्वाल सखा सबही पय अँचयौ—३९६। (२) भोजन के पश्चात हाथ-मुँह धोकर कुल्ली की।

अचर—सज्ञा पु० [स० अचल] अंचल, आंचल, साड़ी का छोर, पल्ला। उ०—निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अचर लेत बलाइ—९-८३।

अँचरा—सज्ञा पु० [स० अँचल] आंचल, पल्ला। उ०—(क) जसुमति मन अभिलाष करै। कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौ झगरै—१० ७६। (ख) अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौ दूध पिलावति—१०-११०।

अंचल, अँचल—सज्ञा पु० [स०] (१) साडी का छोर, आँचल, पल्ला। उ० (क) इतनो कहत, सुकाग उहाँ तें हरी डार उडि बैठ्यौ। अचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ-९-१६४। (ख) तेजु बदन झाँप्यौ झुकि अचल इहै न दुख मेरे मन मान—सा० उ० १५। (२) दुपट्टा, दुशाला। उ०—लोचन सजल, प्रेम पुलकित तन, गर अचल, कर-माल—१-१८९।

मुहा०—(लियो) अचल—अचल डाल कर थोडा मुँह ढक लिया। उ०—रुद्र कौ देखि के मोहिनी लाज करि, लियो अचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ—८-१०। अचल जोरे—दीनता दिखाकर। उ०—

अचल जोरे करत बीनती, मिलिवे को सब दासी—३४२२। अचल दै—आँचल की ओट करके, घूंघट काढ़ कर। उ०—पीताम्बर वह सिर ते ओढत अचल दै मुसुकात—१०-३३८।

अँचवत—क्रि० स० [हिं० अचवना] पीते (हुए) पान करते (ही)। उ०—अँचवत पय तातो जब लाग्यो रोवत जीभ डढै—१०-१७४।

अँचवति—क्रि० स० स्त्री. [हिं० अचवना] आचमन करती है, पीती है। उ०—माधौ, नैंकु हटको गाइ। ···अष्टदस घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाति—१-५६।

अँचवन—सज्ञा पु० [हिं० अचवना] भोजन के पीछे हाथ मुंह धोना, कुल्ली करना; और आचमन का जल या आचमन किया हुआ जल। उ०—अँचवन लै तब धोए कर-मुख—३९६। (ख) सूरस्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२।

अचवौं—क्रि० स० [हिं० अँचवना, अचवना] आचमन करूंगा, पान करूंगा, पिऊंगा। उ०—आजु अजोध्या जल नहिं अँचवौं, मुख नहिं देखौं माई—९-४७।

अँचै—क्रि० स० [हिं० अचवना] आचमन करके, पीकर। उ०—(क) सुत-दारा को मोह अँचै विष, हरि-अमृत-फल डार्यौ—३६६। (ख) दवानल अँचै ब्रजजन बचायौ—५९७।

अंजत—क्रि० स० [हिं० अँजना, आँजना] अंजन या सुरमा लगाता है। उ०—प्यारी नैननि को अजन लै अपने लोचन अजत है—पृ० ३११।

अंजन—सज्ञा पु० [सं०] (१) सुरमा, काजल। उ०—अजन आड तिलक आभूषन सचि आयुध बड छोट—सा० उ० १६। (२) रात। उ—उदित अजन पै अनोषी देव अगिन जराय—सा: ३२। (३) स्याही।

वि०—काला, सुरमई। उ.—रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी। उडत फूल उडगन नभ अतर, अजन घटा घनी—२-२८।

अंजनि—सज्ञा स्त्री [स अजनी] हनुमान की माता अजना जो कुंजर नामक बानर की पुत्री और केशरी की स्त्री थी।

अंजल—सज्ञा पु॰ [स अन्न + जल] अन्नजल।

अंजलि, अंजली—सज्ञा स्त्री. [स] (१) दोनों हथेलियो को मिलाकर बनाया गया संपुट, अंजुली। (२) अजुली मे भरा हुआ जल आदि द्रव अथवा अन्य वस्तु। उ.—प्यारी स्याम अजली डारै। वा छवि को चित लाइ निहारै। मनो जलद-जल डारत ढारै—१८४४।

अँजवाना—क्रि स [स अजन] अजन या सुरमा लगवाना।

अँजाइ—क्रि. स. [हिं. अजन, अँजाना] अंजन, सुरमा या काजल लगवाकर। उ.—दोऊ अलवेले बने जु आए आँखि अँजाइ—२४४२।

अँजाय—क्रि स. [हिं. अजन,] काजल या सुरमा लगवाकर। उ.—आपुन हँसत पीत-पट मुख दै आए हो आँख अँजाय—२४४६ (३)।

अंजुरी—सज्ञा स्त्री [स. अँजली] दोनों हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ संपुट।

मुहा—अँजुरी को पानी—शीघ्र ही चू जाने या समाप्त होनेवाली वस्तु। उ.—जोवन रूप दिवस दस ही को ज्यो अँजुरी को पानी—२०४४।

अंजुलि—सज्ञा स्त्री. [स अजली] हथेलियों को मिलाने से बना हुआ संपुट। उ.—सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यौं अजुलि पानी—१-१४९।

अँजोर—सज्ञा पु. [स. उज्ज्वल, हिं. उजाला, उजेरा] उजाला, प्रकाश, चाँदनी।

अँजोरना—क्रि. स [हिं अँजुरी] छीनना, हरना, लेना, मूसना।

क्रि. स. [स. उज्ज्वल] जलाना, प्रकाशित करना।

अँजोरा—सज्ञा पु. [स उज्ज्वल] प्रकाश।

अँजोरि—क्रि स [हिं अँजुरी, अँजोरना] छीनकर, हरण करके, मूसकर। उ—(क) सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि—१०-२७०। (ख) मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि—१० ३२७। (ग) सूर स्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अजोर—६७०।

अँजोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अँजोर+ई] (१) प्रकाश, चमक। (२) चाँदनी।

वि. स्त्री.—उजेली, प्रकाशमयी, उज्ज्वल।

अँटकाए—क्रि. स. [हिं. अटकाना] फँसाए या उलझाए (हुए)। उ.—मनि आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनहीं अँटकाए—७८४।

अँटकावत—क्रि स. [हिं. अटकाना] रुकता है, बाधक होता है। उ.—भीतर तैं बाहर लौं आवत। घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत—१०-१२५।

अँटक्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं अटकना] फँस गया, उलझा, लगा रहा। उ.—पूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ अतर प्रीति जाति नहिं तोरी—१०-३०५। (ख) पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति, उलट-पलट उबरी—६५९।

अँटना—क्रि. अ [स अट्=चलना] (१) समा जाना। (२) पूरा होना, खप जाना।

अंड—संज्ञा पु ०[स०] (१) ब्रह्मांड, लोकपिंड, विश्व। उ०—(क) सब्दादिक तैं पचभूत सुदर प्रगटाए। पुनि सबकौ रुचि अंड, आपु मैं आपु समाए—२-३६। (ख) तिनतैं पचतत्व उपजायौ। इन सबकौ इक अंड बनायौ—३-१३। (ग) एक अड कौ भार बहुत है, गरव धर्‍यौ जिय सेप—५७०। (२) कामदेव। उ०—अति प्रचड यह अड महा भट जाहि सबै जग जानत। सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष सर तानत—३३९२। (३) अंडा।

अंडा—संज्ञा पुं० [स० अड] (१) मादा जीव जन्तुओं से उत्पन्न गोल पिंड जिसमे से बाद को बच्चा निकलता है। उ०—यह अडा चेतन नहिं होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ—३-१३। (२) शरीर।

अंत—संज्ञा पु० [स०] (१) समाप्ति, इति, अवसान। उ०—लाज के साज मैं हुती ज्यों द्रोपदी, बढ्यौ तन-चीन नहिं अंत पायौ—१-५। (२) शेष भाग, अंतिम अंश। उ०—सूरदास भगवत भजन करि अंत बार कछु लहियै—१-६२। (३) सीमा, अवधि, पराकाष्ठा। उ०—भुजा बाम पर कर छबि लागति उपमा अंत न पार—६८७। (ख) सोभा सिन्धु न अंत रही री—१०-२९। (४) अंतकाल, मरण, मृत्यु। उ०—(क) छनभगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नहिं सँग जाइ—१-३१७। (ख) पर्‍यौ जु काज अंत की बिरियाँ तिनहूँ न आनि छुड़ायौ—२-३०। (५) फल, परिणाम।

सज्ञा पु० [सं० अतर] (१) अंतःकरण, हृदय (२) भेद, रहस्य। उ०—(क) पूरन ब्रह्म पुरान बखानैं। चतुरानन सिव अंत न जानैं—१०-३। (ख) जाको ब्रह्मा अंत न पावैं—३९३।

स० पु० [स० अत्र] आँत, अँतड़ी।

क्रि० वि०—अंत मे, निदान।

क्रि० वि० [स० अन्यत्र—अनत—अंत] दूसरे स्थान पर, अलग, दूर। उ० कुंज कुंज मे क्रीडा करि करि गोपिन कौ सुख देहौं। गोप सखन सँग खेलत डोलौं तिन तजि अंत न जैहौं।

अंतक—सज्ञा पु० [स०] (१) अंत करनेवाला, यमराज, काल। उ०—भव अगाध-जल-मग्न महा सठ, तजि पद-कूल रह्यौ। गिरा रहित बृक-ग्रसित अजा लौं, अन्तक आनि गह्यौ—१-२०१, (२) सन्निपात ज्वर का एक भयंकर भेद जिसमे रोगी किसी को नहीं पहचानता। उ०—ब्याकुल नंद सुनत ए बानी। डसि मानौं नागिनी पुरानी। ब्याकुल सखा गोप भए ब्याकुल। अंतक दसा भयौ भय आकुल—२६४९

अंतकारी—सज्ञा पु० [सं०]अंत या संहार करने वाला, विनाशक। उ.—भक्त भय हरन असुर अतकारी—१० उ.—३१।

अंतगति—सज्ञा स्त्री [स.] अंतिम दशा, मृत्यु।

अंतत—क्रि वि० [हिं अंत] अंत मे। उ.—जाति स्वभाव मिटै नहिं सजनी अंतत उघरि कुबरी-३१८८।

अंतर—संज्ञा पु [स] (१) भेद, भिन्नता, अलगाव। उ (क) जब जहाँ तन वेष धारौ तहाँ तुम हित जाइ। नैंकु हूँ नहिं करौ अंतर, निगम भेद न पाइ ६८३। (ख) जो जासौं अंतर नहिं राखै सो क्यो अंतर राखै—११९२ [२] मध्यवर्ती काल, बीच का समय। उ (क) इहि अंतर नृपतमया आई।

(ख) पिता देखि मिलिबे को धाई-९-३। तेजु बदन झाँप्यो झुकि अचल इहै न दुख मेरे मन मान। यह पै दुसह जु इतनेहिं अतर उपजि परै कछु आन—सा० उ. १५। (३) ओट, आड। उ. (क) जा दिन ते नैनन अंतर भयो अनुदिन अति बाढति है बारि २७९५। (ख) एक दिवस किन देखहु, अतर रह्यौ छपाई। दस को है धौं बीस को नैननि देखौ जाइ—१०६८। (ग) कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी सकी न बचन सँभारि। तृन अनर दै दृष्टि तरौंवी, दियो नयन जल ढारि—९-७९। (घ) पट अतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ—२६१।

वि अंतर्द्धान, लुप्त। उ.—अगर्व जानि पिय अतर ह्वै रहे सो मैं वृथा बढायो री—१८१६।

क्रि वि—दूर, अलग, पृथक। उ—कहाँ गए गिरिधर तजि मोकौं ह्याँ कैसे मैं आई। सूर स्याम अंतर भए मोते अपनी चूक सुनाई—१८०३।

सज्ञा पुं [स. अतर] हृदय, अंतःकरण, मन। उ—(क) गोविंद प्रीति सबनि की मानत। जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अतर की गति जानत—१-१३। (ख) सूर तो सुहृद मानि, ईश्वर अतर जानि, सुनि सठ झूठौ हठ-कपट न ठानि—१-७७। (ग) राजा पुनि तब क्रीडा करै। छिन भरहू अतर नहिं धरै—४-१२। (घ) अतर ते हरि प्रगट भए। रहत प्रेम के बस्य कन्हाई युवतिन को मिल हर्ष दए—१८३२। (२) हृदय या मन की बात। उ—तब मैं कह्यौ, कौन हैं मोसी, अतर जानि लई—१८०३।

क्रि वि (१) भीतर, अंदर। उ.—(क) ज्यो जल मसक जीव-घट अनर मम माया इमि जानि—२-३८। (ख) हौं अलि केतने जतन बिचारौं। वह मूरति वाके उर अतर बसी कौन विधि टारौ सा. ७५। (२) ऊपर, पर। उ.—निरखि सुन्दर हृदय पर भृगु-पाद परम सुलेख। मनहुँ सोभित प्रभु अन्तर सम्भू-भूषन वेष—६६५।

वि — आंतरिक। उ.—(क) मलिन बसन हरि हेरि हित अतर गति तन पीरो जनु पातै—सा. उ. ४६। (ख) अगदान बल को दै बैठी। मंदिर आजु आपने राधा अतर प्रेम उमेठी—सा. १००।

अंतरगत—सज्ञा पु [स अतर्गत] हृदय, अंतःकरण, चित्त। उ—ज्यो गूँगे मीठे फल को रस अनरगत ही भावै—१ २।

अंतरजामी, अँतरजामी—वि. पु. [स अतर्यामी] हृदय की बात जानने वाला। उ.-(क) कमल-नैन, करुना-मय, सकल-अतरजामी—१-१२४। (ख) सूर विनती करै, सुनहु नँद-नद तुम कहा कह्यौ खोलि कै अँतर-जामी—१-२१४।

अंतरदाह—सज्ञा पु. [स.] हृदय की जलन; हृदय का संताप—उ,—अनरदाह जु मिट्यो ब्यास को इक चित ह्वै भागवत किऐं—१-८९।

अंतरधान—सज्ञा—पु. [स अतर्द्धान] लोप, अदर्शन। वि—गुप्त, अलक्ष, अदृश्य। उ.—करि अँतरधान हरि मोहिनी रूप कौ, गरुड असवार ह्वै तहाँ आए—८-८।

अंतरध्यान—सज्ञा पु [स. अतर्द्धान] अदृश्य, अतर्हित, लुप्त। उ—भयँ अंतरध्यान बीते पाछिली निस जाम—सा. ११८।

अंतरपट—सज्ञा पुं. [स.] (१) परदा, आड़, ओट (२) छिपाव, दुराव। (३) अधोवस्त्र।

अंतरा—सज्ञा पु [स. अतर] मध्यवर्ती काल, बीच का समय। उ—जब लगि हरत निमेष अतरा युगसमान पल जात—१३४७।

क्रि. वि [स] (१) मध्य (२) अतिरिक्त (३) पृथक।

सज्ञा पु.—गीत की स्थाई या टेक के अतिरिक्त पद या चरण।

अँतराना—क्रि. स. [सं. अतर] (१) पृथक करना। (२) भीतर ले जाना।

अंतराय—सज्ञा पुं. [स.] (१) बाधा। (२) ज्ञान का बाधक।

अंतराल—सज्ञा पु [स.] (१) घेरा, मंडल। (२) मध्य, बीच।

अंतरिक्ष—सज्ञा पु. [स] (१) आकाश। (२) स्वर्गलोक वि.—अतर्द्धान, गुप्त।

अंतरिच्छ—संज्ञा पु.[सं अंतरिक्ष](१) आकाश, अधर। उ —जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी। किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी—९-९६। (२) अधर, ओठ। उ - (क)अंतरिच्छ श्री वधु लेत हरि त्यौं ही आप आपनी घाती – सा. ५०। (ख)अंतरिच्छ मे परो बिंबफल सहज सुभाव मिलावौं–सा उ. १०३।

अंतरिच्छन—संज्ञा पुं. बहु. [सं अंतरिक्ष] दोनो अधर, ओंठ। उ —अंतरिच्छन सिंधु-सुत से कहत का अनुमान—सा ७८।

अंतरिछ—संज्ञा पु [सं अंतरिक्ष] ओठ, अधर। उ - (क) लगे फरकन अंतरिछ अनूप नीतन रंग—सा. ७५। (ख) हरि को अंतरिछ जब देखो। दिग्गज सहित अनूप राधिका उर तब धीरज लेखी—सा. ८३।

अंतरित—[सं.] (१) छिपा हुआ, गुप्त। (२) ढका हुआ।

अंतरीक—संज्ञा पुं [सं. अंतरिक्ष] आकाश।

अँतरौटा—संज्ञा पुं [सं० अंतरपट] महीन साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र जिससे शरीर दिखाई न दे। उ —चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मदमाते (हो)—१—४४।

अंतर्गत—वि. [सं०] (१) भीतर, छिपा हुआ, गुप्त। (२) हृदय के, हार्दिक।

संज्ञा पु —मन, हृदय, चित। उ.— (क) रुक्म रिसाई पिता सौं कह्यौ। मुनि ताको अंतर्गत दह्यौ—१०उ -७१(ख)बारबार सती जब कह्यौ। तब सिव अंतर्गत यौं लह्यौ—४ ५।

अंतर्गति—संज्ञा स्त्री. [सं](१) चित्तवृत्ति, मनोकामना, भावना। (२) हृदय मे। उ –करि समाधि अंतर्गति ध्यावहु यह उनको उपदेस—२९८८।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं](१) ज्ञानचक्षु, प्रज्ञा। (२) आत्मचिंतन।

अंतर्धान—संज्ञा पु० [सं० अन्तर्द्धान] लोप, तिरोधान।

वि०—गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित। उ.—कै हरि जू भए अन्तर्धान—१-२८६।

अंतर्धाना—वि. [सं. अंतर्द्धान] गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित। उ.—राधा प्यारी सङ्ग लिए भए अन्तर्धाना—१७९२।

अंतर्बोधि—संज्ञा पु.[सं](१)आत्मज्ञान। (२) आंतरिक अनुभव।

अंतर्यामी—वि. [सं.] हृदय की बात जानने वाला। उ.—सूरदास प्रभु अंतर्यामी भक्त संदेह हर्‌यौ—२५५२।

अंतर्हित—वि [सं] अंतर्द्धान, अदृश्य, लुप्त।

अंतावरी, अंतावली—संज्ञा स्त्री [हिं अंत+सं आवलि] आँतें, अँतड़ी समूह।

अंत:करण—संज्ञा पु. [सं.] (१) हृदय, मन. चित्त, बुद्धि। (२) नैतिक बुद्धि, विवेक।

अंत:पुर—संज्ञा पु [सं.] महल का मध्यभाग जहाँ रानियाँ रहती हैं, रनिवास। उ.-नृप मुनि मन आनन्द बढायौ। अन्त पुर मैं जाइ सुनायौ—४-९।

अँदरसे—संज्ञा पु. बहु. [फा. अंदर+सं. रस] एक मिठाई जो चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। उ सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि-मधु मिलि सरसे—१०-१८३।

अंदेस, अँदेस—संज्ञा: पु. [फा अंदेश] (१) सोच, चिंता फिक्र। उ —इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यो, सखि यह संसय मोर। सिय-अंदेश जानि सूरज प्रभु लियो करज की कोर–९–२३। (२) भय, डर, आशंका। उ -(क) सूर निर्गुन ब्रह्म धरि के तजहु सकल अंदेस—१९७४·(ख) छिन बिनु प्रान रहत नहिं हरि बिन निसदिन अधिक अंदेस—१७५३। (३) संशय, अनुमान। (४) हानि। (५) दुविधा, असमंजस।

अंदेसो—संज्ञा पु [फा. अंदेशा] (१) चिंता सोच। उ समै पाइ समुझाइ स्याम सो हम जिय बहुत अंदेसो–३४३१। (२) हानि, दुख। उ.—रवि के उदय मिलन चकई को ससि के समय अँदेसो —३३६५। (३) आशंका, भय, डर। उ —भली स्याम कुसलात सुनाई सुनतहि भयो अँदेसो—३१६३।

अंदोर—संज्ञा पु० [सं. अंदोल=झूलना, हलचल] हलचल, हल्ला, कोलाहल। उ —भहरात झहरात

दवा (नल) आयौ। घेरि चहु ओर, करि सोर अदोर बन, धरनि आकास चहूँ पास छायौ—५९६।

अंध—वि० [सं०] (१) नेत्रहीन। (२) अज्ञानी, अविवेकी। (३) अन्धकारपूर्ण। उ—जैसें अंधो अधकूप मैं गनत न खाल-पनार—१-८४। (४) असावधान, अचेत। (५) उन्मत्त, मतवाला। उ—काम अंध कछु रही न सँभारि। दुर्वासा रिषि कौ पग मारि—६-७। (६) प्रखर, तीव्र। उ०—क्यौ राधा फिर मौन गह्यौ री। जैसे नउआ अब भँवर खर तैसहि तैं यह मौन कह्यौ री—१३१०।

संज्ञा पुं—(१) नेत्रहीन प्राणी। (२) अंधकार। (३) धृतराष्ट्र।

यौ.—अंधसुत—धृतराष्ट्र के पुत्र। उ— अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंधसुत लाजे—१-३६।

अंधकार—संज्ञा पुं [सं] (१) अँधेरा, तम। (२) अज्ञान, मोह। (३) उदासी, कांतिहीनता।

अंधकाल—संज्ञा पुं [सं अंधकार] अँधेरा।

अंधकाला—संज्ञा पुं [सं अंधकार] अँधेरा, अंधकार। उ. ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंधकाला—९४६।

अंधकूप—संज्ञा पुं [सं] (१) सूखा कुआँ। (२) (२) अँधेरा।

अंधधुंध—संज्ञा पुं [सं अंध=अंधकार+हिं धुंध] (१) अंधकार, अँधेरा। उ.—अति विपरीत तृनावर्त आयौ। बात चक्र मिस ब्रज के ऊपर नंद पौरि के भीतर आयौ। अंधधुंध (अँधाधुंध) भयौ सब गोकुल जो जहा रह्यो सो तहाँ छपायौ—१०-७७। (ख) कोउ लै ओट रहत वृच्छन की अंधधुंध दिसि बिदिस भुलाने—९५१। (ग) अंधधुंध मग कहूँ न सूझै—१०५०। (२) अंधेर, अनरीति।

अंधबाई—संज्ञा स्त्री. [सं अंधवायु] धूलभरी आंधी, अधड। उ—स्याम अकेले आँगन छाँडे, आपु गई कछू काज घरै। यहि अंतर अँधबाइ उठी (अँधवाह उठ्यो) इक गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६।

अंधमति—वि [सं] नासमझ मूर्ख। उ—रे दसकंध, अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि—९-७९।

अंधर—वि [सं अंधकार] अंधकारमय।

अँधरा—संज्ञा पुं. [सं. अंध] अंधा प्राणी।

वि—जो अंधा हो।

अँधवाह—संज्ञा स्त्री [सं. अंधवायु. हिं. अँधवाई] आँधी। उ.—(क) इहि अंतर अँधवाह उठ्यो इक, गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६। (ख) धावहु नन्द गोहारि लगौ किन, तेरी सुत अँधवाह उडायौ—१० ७७।

अँधाधुंध—संज्ञा स्त्री [हिं अंधा+धुंध] (१) बड़ा अँधेरा, घोर अंधकार। उ.—अतिविपरीत तृनावर्त आयौ। बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि के भीतर धायौ। ......। अँधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जँह रह्यो सो तही छपायौ—१०-७७। (२) अंधेर, अविचार।

अँधार—संज्ञा पुं. [सं. अंधकार, प्रा. अँधयार] अँधेरा, अंधकार।

अँधियार—संज्ञा पुं [सं० अंधकार. प्रा. अँधयार] अंधेरा, अंधकार।

वि.—अंधकार, तमाच्छादित। उ.—भय-उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार—१-८८।

अँधियारा—संज्ञा पुं [सं. अंधकार, प्रा. अँधयार] (१) अँधेरा, अंधकार धुंधलापन।

वि.—(१) प्रकाशरहित। (२) धुँधला। (३) उदास, सूना।

अँधियारी—संज्ञा स्त्री [प्रा. अँधयार+हिं. ई=अंधारी] (१) तेज आंधी जिससे अंधकार छा जाय, काली आंधी। उ.—ता सँग दासी गई अपार। न्हान लगी सब बसन उतार। अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहिं तै न निहारी। बसन सुक्र तयना के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे—९-१७४। (२) अंधकार।

वि.—अंधकारपूर्ण अँधेरी। उ.—अँधियारी भादौ की रात—१०-१२।

अँधियारे—संज्ञा सवि [हिं० अँधियारा]। अँधेरे में। उ.—सूर स्याम मंदिर अँधियारे, (जुवति) निरखति बारबार—१०-२७७।

वि.—अंधकारमय, प्रकाशरहित। उ—अँधियारे घर स्याम रहे दुरि—१० २७८।

अँधियारौ—सज्ञा पुं० [हिं० अँधियारा] (१) अंधकार। (२) धुंधलापन।

वि.—(१) प्रकाशरहित। उ.—जब तैं हौं हरि रूप निहारौ। तब तैं कहा कहौं री सजनी लागत जग अँधियारौ—सा ४०। (२) धुंधला। (३) उदास, सूना, निराशापूर्ण। स०—वहौ सँदेस सूर के प्रभु को यह निर्गुन अँधियारौ—३९९४।

अंधु—वि० [स० अंध] अंधकारपूर्ण, अज्ञानतायुक्त। उ०—तुम्हारी कृपा बिनु सब जग अंधु—पृ० ३६१।

अंधेरना—क्रि० स० [हिं अंधेर] अंधेर करना, अंधकारमय करना।

अँधेरा—सज्ञा पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार, हिं० अंधेर] (१) अंधकार। (२) अन्याय, अविचार, अत्याचार। (३) उपद्रव, गड़बड़, धींगाधिंगी, अनर्थ। स०—महामत्त, बुधिबल को हीनौ, देखि करै अंधेरा—१-१८६। (४) उदासी, उत्साहहीनता।

अँधेरिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँधारी] (१) अंधकार। (२) अंधेरी रात।

अँधेरी—वि० स्त्री० [हिं० पुं० अँधेरा] अंधकारमय, प्रकाशरहित। स०—निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेघ —१०-५।

सज्ञा स्त्री० (१) अँधियारी (२) अंधेरी रात। (३) आँधी।

अँधेरें—सज्ञा पु० सवि० [हिं० अँधेरा] अंधकारपूर्ण स्थान मे। उ०—कृष्ण कियौ मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरैं—१०-४३१।

अँधेरौ—सज्ञा पु० [हिं० अँधेरा] (१) अंधकार। (२) धुंधलापन। (३) उदासी, उत्साहहीनता, निराशा, उ०—पाछे चढ़ो विमान मनोहर बहुरौ जदुपति होत अँधेरौ—२५३२।

वि० (१) अंधकारमय। (२) अंधा। उ०—एक अँधेरौ हिये की फूटी दौरत पहिर खराऊँ—३४६६।

अंधौ—सज्ञा पुं० [स० अंध, हि, अंधा] अंधा प्राणी, नेत्रहीन व्यक्ति। उ०—जैसे अंध अंध कूप मैं गनत न खाल-पनार—१-८४।

अँध्यारी—वि० स्त्री० [हिं० पु० अँधियार] अंधेरी, प्रकाशरहित। उ०—भादौं की अधराति अँध्यारी—१०-११।

संज्ञा स्त्री० श्यामता, कालिमा। उ०—अलक बारत अँध्यारी तिलक भाल सुदेस—१४१३।

अँध्यारैं—सज्ञा पु० सवि० [हिं अँधियारा] अंधेरे में। उ०—कबहुँ अघासुर बदन समाने, कबहुँ अँध्यारैं जात न धाम—४९७।

अँध्यारौ—सज्ञा पु० [हिं० अँधेरा] अंधेरा। उ० आवहु वेगि चलौं घर जैऐ, बनहीं होत अँध्यारौ—५०५।

अंब—सज्ञा पुं० [स० आम्र, प्रा० अंब] (१) आम का पेड़। अंब सुफल छाँडि, कहा सेमर को धाऊँ—१-१६। (२) माता।

अंबर—सज्ञा पु० [स०] (१) वस्त्र, कपड़ा, पट। उ.—नृपति रजक अंबर नृप धोवत—२५७४। (२) स्त्रियों की धोती, सारी। उ.—करपत सभा द्रुपद-तनया को अंबर अछय कियौ-१-१२१। (३) आकाश, आसमान। उ.—रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी। बढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा-मांझ पति राखी—१-२७।

अंबरबानी—सज्ञा स्त्री० [स० अंबर = आकाश + बाणी] (१) आकाशवाणी। (२) गर्जन। उ—अंबरबानी भई सजल बादल दल छाए—१० उ.—८।

अँबराई—सज्ञा स्त्री० [स आम्र + राजी = पंक्ति] आम का बगीचा। उ —अति दरेर की झरेर टपकत सब अँबराई—१५६५।

अबराव—सज्ञा पु० [स० आम्र + राजी = पंक्ति] आम का बगीचा।

अंबरीष, अँबरीष—सज्ञा पु० [स०] अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा। इन्हें कहीं प्रशुश्रक का पुत्र कहा गया है और कहीं नाभाग का। राजा इक्ष्वाकु से ये अट्ठाइसवीं पीढ़ी में हुए थे ये विष्णु के बड़े भक्त थे और उनके चक्र ने परम क्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप से इनकी रक्षा की थी।

अँबा—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) माता जननी। (२) गौरी, देवी।

सज्ञा पु० [स० आपाक = प्रावाँ, हिं० आँवा

अँवा] वह गढ़ा जिसमें कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं। उ.—विधि कुलाल कीने काचे घट ते तुम आनि पकाए।......ब्रजकरि अँवा जोग ईधन सम सुरति आगि सुलगाए—३१९१।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, हिं० आम] आम।

अंबा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता, जननी। (२) गौरी, देवी। (३) अँवा।

अंबावन—संज्ञा पु० [सं०] इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था। उ. पुनि सुद्युम्न वसिष्ठ सौं कह्यौ। अंबावन मैं तिय ह्वै गयौ ९-२।

अंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता, माँ। (२) दुर्गा, भगवती। उ—गए सरस्वती तट इक दिन सिव-अंबिका पूजन हेत—२२९१। (३) काशी के राजा इंद्रद्युम्न की मझली कन्या जिसे हर कर भीष्म ने विचित्रवीर को ब्याह दिया था। विचित्रवीर की मृत्यु के बाद इससे व्यास जी ने नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र का जन्म हुआ।

अंबिकावन—संज्ञा पु० [सं०] पुराणों के अनुसार इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे। उ.—एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अंबिकावन तिय भयौ—९-२।

अंबु—संज्ञा पु० [सं०] (१) जल, पानी। (२) आँसू। उ.-सारंग मुख ते परत अंबु ढरि मनु सिव पूजति तपति विनास—सा० उ० २८।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम का पेड़। उ—जंबुवृक्ष कह्यो क्यो लपट फलवर अंबु फरै—३३११।

अँबुआ—संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब, हिं० आम] आम, रसाल। उ.—द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले। भौंरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले—२३९१।

अंबुज—संज्ञा पु० [सं०] (१) जल से उत्पन्न वस्तु। (२) कमल।

अंबुनिधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र, सागर।

अंबूजी—संज्ञा पु० [सं० अंबु=जल+जा (स्त्री०[जल से उत्पन्न वस्तु)] कमलिनी। उ—मनुदिन काम बिलास बिलासिनि वै अलि तू अंबूजी—२२७५।

अंबोधि—संज्ञा पु० [सं० अंबुधि] समुद्र, सागर।

अंभ—संज्ञा पु० [सं० अंभस्] जल, पानी। उ—ससि चंदन लए अंभ छाँडि गुन वपु जु दहत मिलि तीन—२८६६।

अंभोज—संज्ञा पु० [सं०] कमल।

अंमर—संज्ञा पु० [सं. अंबर] आकाश, गगन। उ—चढि चढ़ि अमर विमान परम सुख कौतुक अमर छाए—२६२२।

अँवदा—वि [सं अधोध]। (१) औंधा, उलटा (२) नीचे की ओर मुँहवाला।

अँवा—संज्ञा पुं. [सं आपाक=आवाँ, हि. आवाँ, अँवा] कुम्हार का आँवा।

अंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाग, विभाग। (२) हिस्सा।

संज्ञा पु.—[सं. अश्रु] आँसू। उ.—प्रेमघट उच्छलित ह्वै है अंश नैन बहाइ—२४८६।

अंशी—वि. [सं. अंशिन्] अंशधारी, अंश रखनेवाला। उ.—द्वारपाल इहै कही जोवा कोउ बचे नाहिं, काँधे गजदंत धरे सूर ब्रह्मांशी—२६१०।

अंशु—संज्ञा पु० [सं.] (१) किरण, प्रभा। (२) लेश, बहुत सूक्ष्म भाग। उ.—दुख आवन कछु अटक न मानत सूनो देखि अगार। अंशु उसाँस जात अंतर ते करत न कछू बिचार—२८८८।

अंशुक—संज्ञा पु. [सं.) उपरना, उत्तरीय, दुपट्टा।

अंशुमान—संज्ञा पु० [सं.] अयोध्या के सूर्यवंशी राजा जो सगर के पौत्र और असमंजस के पुत्र थे। सगर के साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने पर अश्वमेध का घोड़ा खोजने ये ही निकले थे और इन्हें ही सफलता मिली थी।

अंशुमाली—संज्ञा पु० [सं.] सूर्य।

अंस, अँस—संज्ञा पुं० [सं. अंश] (१) भाग, शक्ति। उ. (क) विष्णु-अंस सौं दत्तऽवतरे। रुद्र-अंस दुर्वासा धरे। ब्रह्म-अंस चंद्रमा भयौ—४-३। (ख) राजा मंत्री सौं हित मानै। ताकैं दुख दुख, सुख सुख जानै। नरपति ब्रह्म, अंस सुख-रूप। मन मिलि परयौ दुख कैं कूप—४-१२। (२) कला,

सोलहवाँ भाग। उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी। ता पर उरग ग्रसित तब सोभित पूरन अस ससी—स. उ.–२५। (३) आत्मीयता, अपनत्व, अधिकार, संबंध। उ —इनके कुल ऐसी चलि आई सदा उजागर बस। अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अस—३०४९। (४) कंधा। उ —बाम भुजहिं सखा अँस दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरिया—४७०।

अंसक—वि [स अशक] अश रखनेवाला, अंशी, अंशधारी।

अंसु—सज्ञा पु. [स अशु] किरण, प्रभा। उ.—(क) मुख-छबि देखि हो नंद घरनि। सरद-निसि को अंसु अगनित इदु आभा हरनि—३५१। (ख) जागिये गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल, मिट्यौ अधकाल, उठौ जननी-सुखदाई—६१९।

सज्ञा पु [स अश] कधा। उ —सखा अंसु पर भुज दीन्हे, लीन्हे मुरलि, अधर मधुर, बिस्व भरन—६२४।

अँसुपात—सज्ञा पु [स. अश्रु + हि पात] आँसू, आँसू की झडी। उ —इहि बिधि सोच करत अति ही नृप, जानकि ओर निरखि बिलखात। इतनी सुनत सिमिटि सब आए, प्रेम-सहित धारे अँसुपात—९-३८।

अंसुमान—सज्ञा पु, स. [अशुमान] अयोध्या के एक राजा जो सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र और असमजस के पुत्र थे। राजा सगर के अश्वमेघ का घोड़ा कपिल मुनि के यहाँ से ये ही लाए थे।

अँसुव—सज्ञा पु [स अश्रु, पा प्रा. अस्सु, हि. आँसु] आँसू। उ —हृदय ते नहिं टरत उनके स्याम नाम सुहेत। अँसुव सलिल प्रवाह उर मनौं अरघ नैनन देत—३४८३।

अँसुवा—सज्ञा पु [स अश्रु, पा प्रा. अस्सु, हि. आँसू] आँसू। उ —(क) देखि भाई हरि जू की लोटनि। यह छबि निरखि रही नँदरानी, अँसुवा ढरि-ढरि परत करोटनि—१०-१८७। (ख) चपल दृग, पल भरे अँसुवा, कछुक ढरि-ढरि जात—३६०।

अँसुवाना—क्रि अ [स अश्रु] डबडबा आना, आँसू आ जाना।

अइयै—क्रि० अ०, [हि० आना, आइए] पधारिए। उ०—चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं, तिया कहै प्रभु अइयै—१-२३९।

अउत—वि० [स० अपुत्र, प्रा० अउत्त] निपूता, निसंतान।

अउलना—क्रि० अ० [स० उल् = जलना] जलना, गरम होना।

क्रि० अ० [स० आ० = अच्छी तरह + शूलन प्रा० सूलन, हि० हूलना] छिदना, चुभना।

अएरना—क्रि० स० [स. अगीकरण, प्रा० अगिअरण, हि० अगरना] स्वीकार करना, धारण करना।

अकंटक—वि० [स०] (१) बिना काँटे का। (२) निर्विघ्न, बाधारहित, बिना खटके का।

अकत्थ—वि० [स० अकथनीय] न कहने योग्य, अकथनीय।

अकथ—वि० [स०] जो कहा न जा सके, वर्णन के बाहर, अकथनीय, अवर्णनीय, । उ.—(क) अकथ कथा याकी कछू, कहत नही कहि आई (हो)—१-४४। (ख) य अब कहति देखावहु हरि को देखहु री यह अकथ कहानी—१-१२७६। (ग) सिह रहै जबुक सरनागत, देखी-सुनी न अकथ कहानी—पृ० ३४३। (घ) कमलनैन जगजीवन के सखी गावत अकथ कहानी—२७९६। किनहूँ के सँग धेनु चरावत हरि की अकथ कहानी—३४११।

अकथन—वि० [स० अकथ, अकथ्य] जो वर्णन न किया जा सके, अवर्णनीय, अकथनीय। उ०—मन, बच करि कर्म रहित वेदहु की बानी। काहुये जो निबहिवे अकथन कहुँ सोही। सूरस्याम मुख सुचद्र लीनि जुवति मोही—३२८९।

अकधक—सज्ञा पु० [स० धू = धडकना, काँपना] आशका भय, डर।

अकनत—क्रि० स० [सं० आकर्णन = सुनना, हि० अकनना] ध्यान से, कान लगाकर, आहट लेकर। उ०—नगर सोर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत —२५६१।

अकनना—क्रि० स० [स० आकर्णन = सुनना] कान लगाकर सुनना, आहट लेना।

अकना—क्रि० अ० [सं० आकुल] ऊबना, उकताना।

अकनि—क्रि० स० [स० आकर्णन=सुनना, हि० अकनना] सुनकर।

यौ०—अकनि रहत—कान लगा कर या चुपचाप सुनते रहते (हैं) ध्यान मे मग्न। उ०—आलस-गात जान मनमोहन, सोच करत, तनु नाहिन चैनु। अकनि रहत कछु, सुनत नही कछु, नहिँ गो-रमन बालक-बैनु—५०१।

अकनी—क्रि० स० [स० आकर्णन=सुनना, हि० अकनना] आहट ली, सुनी। उ—कह्यौ तुम्हारो सबै कही मैं और कछु अपनी। स्रवनन बचन सुनत हू उनके जो घट महँ अकनी—३४६५।

अकनै—वि० [स० आकर्ण्य=सुनना, हि० अकनना] सुनने को, सुनने योग्य, सुनने की चाह मे युक्त, इच्छ। उ०—सो हरि प्रान प्रनतवल्लभ मोहनलीला है अकनै। अ बन है कछु कह्यौ सूर प्रभु नहिं तौ रहौ तुम मौन बनै—३२१२।

अकबक—सज्ञा पु [स० अवाक्य, अवाच्य] (१) असंबद्ध प्रलाप। (२)धडक, चिंता। (३) चतुराई, सुध।

वि०—[स० अवाक्] भौचक्का, अवाक्, चकित।

अकबकात—क्रि० अ० [स० अवाक्, हि० अकबकाना] चकित होते हैं, भौचक्के रह जाते हैं, घबडाते हैं। उ०—सकसकात तन, धकधकात उर अकबकात सब ठाढे। सूर उपगसुत बोलत नाही अति हिरदै ह्वै गाढे—२९६९।

अकबकाना—क्रि० अ० [स० अवाक] चकित होना; भौचक्का रह जाना।

अकरखना—क्रि० स [स० आकर्षण] (१) खींचना, तानना। (२) चढ़ाना।

अकरतौ-क्रि अ.[हि. आ=अच्छी तरह+कड्ड=कडापन, हि अकडना] अभिमान दिखाता, घमड करता, अकड जाता। उ.—कबहुक राम-मान मद पूरन, कालहु तै नहि डरतौ। मिथ्या बाद आप-जस सुनि-सुनि, मूछहि पकरि अकरतौ—१-२०३।

अकरन-वि. [स. अ=नही+करण, अकरणीय] (१) न करने योग्य। उ.—दयानिधि तेरी गति लखि न परै। धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै—१-१०४। (२) बिना कारण का, अकारण।

अकरम—सज्ञा पु [स. अकर्म] न करने योग्य कार्य, बुरा काम, दुष्कर्म। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै, सोइ करत अनीति—१-१२९।

अकराथ—वि [स. अकार्यार्थ, प्रा. अकारियत्थ] अकारथ, व्यर्थ, निष्फल।

अकरी—वि. स्त्री. [स. अक्रय्य, हि. अकरा (पु.)] (१) महँगी, अधिक दाम की। उ —ऊधौ तुम ब्रज मैं पैठ करी। लै आए हो नफा जानि कै सबै बस्तु अकरी—३१०४। (२) खरी, श्रेष्ठ, उत्तम, अमूल्य।

अकरुन—वि. [स अकरुण] निर्दयी, निष्ठुर।

अकर्त्ता—वि. [स.] कर्म न करनेवाला, कर्म से निर्लिप्त।

अकर्म—सज्ञा पु. [स.] न करने योग्य कार्य, बुरा काम।

अकर्मा—वि [स.] काम न करने वाला, काम के लिए अनुपयुक्त।

अकर्षि—क्रि. स. [स. आकर्षण, हि. आकर्षना] खींच कर, आकर्षित करके। उ.—जेहि माया बिरचि सिव मोहे, वहै बानि करि चीन्हौ। देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी, आप बास करि लीन्हौ—१०-४।

अकलंक—सज्ञा पु. [स कलक] दोष, लाछन।

अकलंकता—सज्ञा स्त्री. [स.]कलंकहीनता, निर्दोषिता।

अकलंकित—वि [स.] निष्कलक, निर्दोष, शुद्ध, निर्मल। उ —अलक तिलक राजत अकलकित मृगमद अग बनी—पृ ३१६।

अकल—वि [स.] (१) अखड, सर्वागपूर्ण उ. [प्रेम पिये वर बारुनी बलकत बल न सँभार। पग डगडग जित तित धरति मुकुलित अकल लिलार—११८२। (२) परमात्मा का एक विशेषण। उ.—(क) पहिलै हौ ही हो तब एक। अमल, अकल, अज, भेद-बिवर्जित, सुनि विधि विमल विवेक—२-३८। (ख) फिरत बन बन विकल सहस सोरह सकल ब्रह्मपूरन अकल नही पावैं—।१८०६।

सज्ञा स्त्री. [अ अक्ल] बुद्धि, समझ, ज्ञान। उ —इद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई-९८५।

वि. [स अ = नहीं + कला] बिना कला या चतुराई का ।

वि [स. अ = नहीं + हिं कल = चैन] विकल, व्याकुल, बेचैन ।

अकलै—वि. [स. अकल] बिना कला या चतुराई का, निर्गुणी ।

सज्ञ [स अ = नहीं + हिं.कल = चैन](१) विकलता, व्याकुलता । (२) गुणहीनता । उ.—लगर, ढीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा । मचला, अकले-मूल, पातर, खाऊँ खाऊँ करि भूखा—१-१८६ ।

अकस—सज्ञा पु. [अ.] बैर, द्वेष, डाह, ईर्ष्या, विरोध, होड ।

अकसना—क्रि. स [हिं अकस] बैर या शत्रुता करना, रार ठानना ।

अकसर—क्रि. वि. [स. एक + सर (प्रत्य.)] अकेले, बिना किसी को साथ लिए ।

अकह—वि. [स. अकथ, प्रा. अकह] (१) जो कही न जा सके, अकथनीय, अवर्णनीय । (२) अनुचित, बुरी ।

अकहुवा—वि. [स. अकथ, प्रा अकह] जो कहा न जा सके, अकथनीय ।

अकाज—सज्ञा पु. [स. अ = नहीं + हिं. काज] (१) कार्य हानि, विघ्न, बिगाड । (२) दुष्कर्म, खोटा काम ।

क्रि. वि —व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।

वि.—महत्वहीन । उ.—अवलौं नान्हे-नून्हे तारे, ते सब वृथा-अकाज । साँचे विरद सूर के तारत लोकनि-लोक अवाज—१-९६ ।

अकाजना—क्रि. अ. [हिं. अकाज] (१) हानि होना, खो जाना । (२) मर जाना ।

क्रि. स.—हानि करना, विघ्न डालना ।

अकाजी—वि. [हिं. अकाज] कार्य की हानि करनेवाला, बाधक, विघ्नकारी ।

अकाथ—क्रि. वि. [स अकृतार्थ] अकारथ, व्यर्थ, निष्फल, निरर्थक । उ —(क) कर्म, धर्म, तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ । अभय दान दै अपनौ कर धरि सूरदास कै माथ—१ २०८ । (ख) रह्यौ न परै सु प्रेम आतुर अति जानी रजनी जात अकाथ—२७३६ ।

वि. [सं. अकथ्य] न कहने योग्य, अकथनीय, अनिर्वचनीय ।

अकाम—वि.[स अ = नहीं + काम = इच्छा]कामनारहित, निस्पृह इच्छारहित ।

अकामी—वि. [स. अकामिन्] कामनारहित, इच्छाहीन ।

अकार—सज्ञा पु० [स० आकार] (१) स्वरूप, आकृति, मूर्ति, रूप । उ०—कुच युग कुंभ मुंडि रोमावलि नाभि सुहृदय अकार । जनु जल सोखि लयौ नै सविता जोवन गज मतवार—२०६२ । (२) सादृश्य, साम्य । उ०—नैन जलद निमेष दामिनि आँसु बरषत धार । दरस रवि ससि दुर्यौ धीरज स्वास पवन अकार—२८३४ । (३) बनावट, सघटन । (४) चिह्न ।

अकारज—सज्ञा पु० [स० अकार्य] हानि, कार्य की हानि ।

अकारथ—वि० [स० आकार्य्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ] निष्फल, निष्प्रयोजन, व्यर्थ, वृथा ।

क्रि० वि०—व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—(क) आछौ गात अकारथ गार्‌यौ । करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्‌यो—१-१०१ । (ख) रे मन, जनम अकारथ खोइसि । हरि की भक्ति न कबहू कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि—१-३३२ । (ग) पाँच बान मोहिं सकर दीन्हे, तेऊ गए अकारथ—१-२८७ ।

अकारन—वि० [स० अकारण] (१) बिना कारण का । (२) निस्वार्थ । (३) जो किसी से उत्पन्न न हो ।

अकार्थ—वि० [स० अकार्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ हिं० अकारथ] व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।

क्रि० वि०—व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—साधु-सग भक्ति बिना तन अकार्थ जाई—१-३३० ।

अकाल—सज्ञा पु० [स०] अनुपयुक्त समय, कुसमय । उ०—यह बिनती हौं करौं कृपानिधि, बार बार अकुलाइ । सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ—९-११० ।

अकास—सज्ञा पु०[स०आकाश](१) अंतरिक्ष, आसमान,

गगन। (२) शून्य। उ०—जदुपति जोग जानि जिय साचो नयन अकास चढ़ायो—२९२२।

मुहा०—गहो अकास—अनहोनी या असंभव बात करते हो। उ०—बातनि गहो अकास सुनहि न आवै सांस बोलि तौ कछू न आवे ताते मौन गहिये—१२७३।

अकास गुन—संज्ञा पु० [सं० आकाश+गुण] आकाश का गुण, शब्द। उ०—गुन अकास को सिद्ध साधना सास्त्र करत बिस्तार—सा० १०४।

अकासबानी—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाशवाणी] आकाश से कहे हुए शब्द, देववाणी। उ०—भई अकासबानी तिहि बार। तू ये चारि श्लोक बिचार—२-३७।

अकासै—संज्ञा पु० सवि० [सं० आकाश] आकाश मे, आकाश को। उ०—यह कहिकै सो चली पर ई। जैसै तड़ित अकासै जाई—९-२।

अकीरति—संज्ञा स्त्री० [सं. अकीर्त्ति] अयश अपयश।

अकुंठ—वि० [सं०] (१) तीक्ष्ण, पैनी। (२) तीव्र, तेज।

अकुचत—क्रि० अ० [हिं० सकुचना अकुचना] मलिन या उदास होता है। उ०—काहे को पिय सकुचत हौ। अब ऐसौ जिनि काम करौ कहुँ जो अति ही जिय अकुचत हौ—२१८३।

अकुल—वि० [सं०] (१) कुलरहित, परिवारहीन। (२) नीचे वंश का।

अकुलाइ, अकुलाई—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] घबड़ाकर, व्याकुल होकर, दुखी होकर। उ०—(क) रोवत देखि कह्यौ अकुलाई, कहा कर्यो तैं विप्र अन्याई—१०-५७। (क) बिरहा-बिथा तन गई लाज छुटि, बारंबार उठै अकुलाई—९-५६। (ग) मैं अज्ञान अकुलाइ अधिक लै, जरत मांझ घृत नायो—१-१४५। (ग) निसि दिन पथ जोहत जाइ। दधि को सुत-सुत तासु आसन बिकल हो अकुलाई—सा० २२।

अकुलाए—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) उतावले हुए, ऊब गए, उकता गए। उ०—(क) लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलाए—१-१२५। (ख) रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए। भू सचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए—१-२७३ (२) घबड़ाए, व्याकुल हुए।

अकुलात—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) व्याकुल या दुखी हैं, घबडाते है। उ०—(क) दसरथ-सुत कोसलपुरवासी, त्रिया हरी तातें अकुलात—९-६९। (ख) बिधि लिखी नहिं टरत कैसेहु, यह कहत अकुलात—२९१७। (ग) सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं अति आतुर अकुलात—सा० उ० ३। (२) जल्दी करता है, उतावला है। उ०—कल्प समान एक छिन राघव, क्रम क्रम करि हैं चितवत। तातैं हौ अकुलात, कृपानिधि ह्वै है पैंडो चितवत—९-८७। (३) धीरज खोता है, बेचैन है। उ०—उ०—पूछौ जाइ तात सौ बात। मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की तुमही काज कस अकुलात—५३०।

अकुलान—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] घबड़ाया, व्याकुल हुआ, बेचैन हुआ। उ०—डोलत महि अधीर भयो फनिपति कूरम अति अकुलान—९-२६।

अकुलानी—क्रि० अ० स्त्री० [हिं अकुलाना] (१) व्याकुल हुई, दुखी या बेचैन हुई। उ (क) परै बज्र या नृपति-सभा पै, कहति प्रजा अकुलानी—१-२५०। (ब) जब जानी जननी अकुलानी। आप बँधायौ सारंगपानी—३९१। (२) घबरा गई, चकपका गई। उ०—कर तैं साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँडि अकुलानी। सूर कहै जसुमति मुख मूँदौ, बलि गई सारँगपानी—१०-२५५।

अकुलाने—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) घबडाए, व्याकुल हुए, बेचैन हुए। उ०—(१)..... हरि पीवत जब पाइ। बढ़्यौ बृच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात। महाप्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात—१०-३४। (२) आवेग मे आए, झुँझलाए। उ० अति रिसही तैं तनु छीजै, सूठि कोमल अंग पसीजै। बरजत बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने—१०-१८३।

अकुलानै—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] उतावला होकर, घबराकर। उ०—पालभाव अनुसरति भरत दृग, अग्र अमुकन आनैं। जनु खजरीट जुगल जठरातुर लेत सुभप अकुलानै—२०५३।

अकुलानौ—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] घबड़ाने लगा, व्याकुल हुआ। उ०—यह मुनि दूत गयो लंका मैं, सुनत नगर अकुलानौ—९-१२१।

अकुलान्यौ—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] घबड़ाया, दुखी या बेचैन हुआ। उ०—यह सुनि नंद डराइ, अतिहिं मन-मन अकुलान्यौ—५८९।

अकुलात—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] व्याकुल होकर, घबड़ाकर। उ०—गोपपति लखन के बैरी आन के अकुलाय। पक्षिराज सुनाथ पतिनी भोगिवो चित चाय—सा उ ४५।

अकुलायौ—क्रि० अ० [हिं० अकुलाया] (१) व्याकुल हुआ। (२) चकित हुआ, चकपकाया। उ०—कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ—९-९।

अकुलाहीं—क्रि अ [हिं अकुलाना] दुखी होती हैं, घबड़ाती हैं। उ—माघ-तुषार जुवति अकुलाहीं। स्याम कहूँ नंद सुवन नो नाहीं—७९९।

अकुलीन—वि [सं] बुरे कुल का नीच वंश का। उ—पुरुष अरु नारि को भेद भेदा नहीं कुलनि अकुलीन आवत हो काके—२६३५।

अकूत—वि. [सं अ + हिं. कूतना] जिसका अनुमान न लगाया जा सके, जो कूता न जा सके,। असीम, अपरिमित। उ—(क) धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत। धन्य भूमि, ब्रजवासी धनि-धनि, आनंद करत अकूत—१०-३६। (ख) निमि सपने को तृपित भए अति सुन्यो काम को दूत। सूर नारि नर देखन धाए घर घर सोर अकूत—२४९२।

अकूलन—वि [देश] बहुत अधिक, असंख्य। उ—खेलत हँसत करैं कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूलन—१०६२।

अकृत—वि. [सं] (१) निकम्मा, कर्महीन, मंद। उ—चाहति मेरैं और कोउ, बलि चरन-कमल बिनु ठाउँ। हौं असौच, अकृत (अक्रित) अपराधी, सन्मुख होत लजाउँ—१-१२८। (२) प्राकृतिक। (३) नित्य, स्वयंभू।

संज्ञा स्त्री [सं. आकृति] आकृति। उ—नाटक लिए सुदेस लाग्यन गावत धूनी लाग। अकृत बिरह बदन मइहिर धमत मैन बिलास—२७९०।

अकृपा—संज्ञा स्त्री. [सं अ + कृपा] कृपा का अभाव, क्रोध,। उ.—वदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं। बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तौ तैसैं।

अकेल—वि. [सं. एक + हिं. ला (प्रत्य०) = अकेला] बिना संगी-साथी का, अकेला, एकाकी। उ—(क) भारत-जुद्ध बितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ—१-२८९। (ख) बैठी आजु रही अकेल। आइगो तब लौं बिहारी रसिक रुच बरबेल—सा. १०१।

अकेली—वि. स्त्री. [सं एक + हिं ली (प्रत्य)] (१) जिसके साथ कोई न हो, एकाकी। उ—(क) अहो बधु, काहूँ अवलोकी इहिं मग बधू अकेली—९-६४। (ख) आजु अकेली कुंज भवन मे बैठी बाल बिमूरत—सा ३। (ग) कुंजभवन ते आज राधिका अलस अकेली आवत—सा. १३। (२) केवल, सिर्फ। उ—दूध अकेली धौरी को यह तन कौं अति हितकारि—४९६।

अकेलो—वि [सं. एक + हिं. ला (प्रत्य) = अकेला] जिसके साथ कोई न हो, बिना साथी का। उ.—संग लगाइ बीचही छाड्यो, निपट अनाथ अकेलो—१-१७५।

अकोट—वि. [सं कोटि] करोड़ों, असंख्य।

संज्ञा पु [हिं. कोट] कोट के भीतर का कोट, अंतर्दुर्ग। उ—रही दे घूँघट पट की ओट। मनो कियो फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट। नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दृग द्वार अकोट। भीतर भाग कृष्ण भूपति को राखि अधर मधु मोट—सा उ. १६।

अकोर—संज्ञा पु [सं अंकपालि या अंकमाल, हिं. अँकवार अँकोर] (१) भेंट, घूस, रिश्वत। उ—(क) फूले फिरत दिखावत औरन निडर भए दै हँसनि अकोर—२१३१। (ख) गए छँडाइ तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अकोर—३१५३। (२) गोद।

अकोरी—संज्ञा स्त्री. [सं अंकपालि, अंकमाल, हिं. अँकवार] गोद छाती। उ—यहि ते जो नेकु नुबुधियौरी। गहत सोइ जो समात अकोरी—३३४५।

अकोविद—वि. [सं] मूर्ख, अज्ञानी।

अकोसना—क्रि स [स आक्रोशन] कोसना, गालियां देना ।

अक्रम—वि [स] क्रमरहित, बेसिलसिले ।

अक्रित—वि [स अकृत] निकम्मा, बेकाम, कर्महीन, मद । उ —हौं असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ । तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम उधारन-नाउँ—१-१२८ ।

अक्रूर—सज्ञा पु [स] एक यादव जो श्रीकृष्ण का चाचा लगता था । यह श्वफल्क और गांदिनी का पुत्र था । कस की आज्ञा से श्रीकृष्ण बलराम को यही मथुरा बुला ले गया था ।

अच्छयवृच्छ—सज्ञा पु० [स०]प्रयाग और गया मे बरगद का एक वृक्ष जो प्रलय मे भी नष्ट न होने के कारण 'अक्षय' कहलाता है । उ —अक्षय वृक्ष बट बढनु निरतर वहा ब्रज गोकुल गाइ-९४५ ।

अच्छै—वि० [स० अक्षय] जिसका क्षय न हो, कभी न चुकनेवाला । उ —हरि-पद-सरन अछै फल पावै—१९२४ ।

अच्छोनि—सज्ञा पु० [स० अक्षौहिणी] अक्षौहिणी सेना ।

अखड —वि० [स०] (१) समूचा पूरा, जो खंडित न हो । (२) जिसका क्रम, सिलसिला या धार न टूटे, अटूट । उ.—सलिल अखड धार धर टूटत कियौ इद्र मन सादर । मेघ परस्पर यहै कहत है घोइ करहु गिरि खादर—९४८ । (३) निर्विघ्न ।

अखंडल—वि० [स० अखड] (१) अखड, अटूट । (२) पूरा सारा ।

अखंडित—वि० [स०] (१) भागरहित, अविच्छिन्न । (२) संपूर्ण, पूरा । उ.—(क) सर्वोपरि आनद अखडित सूर-मरम लपिटानी—१-८७ । (ख) वे हरि सकल ठौर के वासी । पूरन ब्रह्म अखडित मडित पडित मुनिन विलासी । (३) निर्विघ्न, बाधारहित । (४) लगातार ।

अखर—सज्ञा पु० [स० अक्षर] अक्षर ।

अखर्ब—वि० [स० अ=नहीं+हि० खर्ब=छोटा] जो छोटा न हो, बड़ा, लबा ।

अखाद—वि० [स० अखाद्य] न खानेयोग्य, अभक्ष्य । उ.—खाद-अखाद न छांडै अब लौ, सब मैं साधु कहावै—१-१८६ ।

अखारा—सज्ञा पु० [स० अक्षवाट, प्रा० अक्खआडो-हि० अखाडा] सभा, दरबार, रगशाला । उ.—तहाँ देखि अप्सरा-अखारा । नृपति कछू नहिं वचन उचारा—९-४ ।

अखिल —वि० [स०] (१) सपूर्ण, समग्र । उ.—(क) तुम सर्वज्ञ, सबै विधि पूरन, अखिल भुवन निज नाथ १-१०३ । (ख) तुम हर्त्ता तुम कर्त्ता एकै तुमही अखिल भुवन के साँई—२५५८ । (२) सर्वांगपूर्ण, अखड । उ.—तुमही ब्रह्म अखिल अबिनासी भक्तन सदा सहाय ।

अखीन—वि० [स० अक्षीण, प्रा० अक्खीण] स्थिर, नित्य, अक्षीण ।

अखुटित—वि० [स०अ=नहीं+खुटना=समाप्त होना] निरंतर, असमाप्त । उ.—अखुटित रहत सभीत ससकित सुकृत सब्द नहिं पावै—१-४८ ।

अखूट—वि० [स० अ=नहीं+खडन=तोडना, खडित करना] अखड, अक्षय, बहुत, अधिक । उ.—नैना अतिही लोभ भरे । ····· । लूटत रूप अखूट दाम को स्याम बस्य भो मोर । बड़े भाग मानी गह जानी इनते कृपिन न ओर—१८३३ ।

अखेट--सज्ञा पु० [स० आखेट] अहेर, शिकार, मृगया । उ.—जब अखेट पर इच्छा होइ । तब रथ साजि चलै पुनि सोइ—४-१२ ।

अखेटक—सज्ञा पु० [स० आखेटक] शिकार, अहेर । उ.--(क) सब दिन याही भाँति विहाइ । दिन भए, बहुरि अखेटक जाइ—४-१२ । (ख) इक दिन ताते अनुज सौ मागी लै गयौ अखेटक राजा—१० उ —२६ ।

अखेलत--वि० [स० अ=नहीं+केलि=खेल] (१) अचंचल, अलोल । (२) आलस्ययुक्त, उनींदा ।

अखै--वि० [स० अक्षय] अक्षय, अविनाशी ।

अखोलि--क्रि वि [स अ=नहीं+हि. खोलना] कसकर, दृढतापूर्वक । उ —रसना जुगल रसनिधि बोलि । कनकबेलि तमाल अरुझी सुभुज बध अखोलि सा. उ —५ ।

अख्यान—संज्ञा पु. [स आख्यान] (१) वर्णन, वृत्तांत। (२) कथा, कहानी।

अग—वि [स.] न चलनेवाला, अचर, स्थावर। उ.—अग जग जीव जल थल गनत सुनत न सुधि लहौं—१० उ—२४।

वि [स. अज्ञ] मूढ़, अनजान।

अगड़—संज्ञा पुं. [हि. अकड] अकड, ऐंठ।

अगति—संज्ञा स्त्री [स] (१) दुर्दशा, दुर्गति। (२) मृत्यु के पीछे की बुरी दशा, मोक्ष की अप्राप्ति, नरक। उ—(क) सूरदास हरि भजो गर्व तजि, विमुख अगति कौं जाही—२-२३। (ख) कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ जहाँ पिता सपति कौ। कहौ तौ मारि सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ—९-८४।

अगतिक—वि० [स०] अनाथ, निराश्रित।

अगतिनि—संज्ञा पु बहु [स अगती + नि (हि प्रत्य)] पापी मनुष्य, कुमार्गी व्यक्ति, वे जो मोक्ष के अधिकारी न हों। उ.—जय जय जय जय माधववेनी। जग हित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौ गति देनी—९-११।

अगती—वि० [स अगति] कुमार्गी, दुराचारी।

अगनत, अगनित—वि [स. अगणित] (१) अनगिनती, असंख्य, अनेक, बहुत। उ—(क) बंदौं चरन-सरोज तिहारे।.....। जे पद-पदुम रमत बृंदावन अहि-सिर धरि अगनित रिपु मारे—१-९४। (ख) अगनित गुन हरिनाम तिहारैं—१-१५७। (२) महान, अपार। उ.—सूरदास प्रभु-अगनित महिमा, भगतनि कैं मन भावन—१-१२५।

अगनिया—वि [स. अ = नहीं + हि. गिनना] अगणित, अनगिनती। उ—जेंवत स्याम नंद की कनियाँ—। बरी, बरा, बेसन बहु भांतिन, व्यंजन विविध, अगनियाँ—१०-२३८।

अगनू, अगनेउ, अगनेत—संज्ञा स्त्री० [स० आग्नेय] अग्निकोण।

अगम—वि० [स० अगम्य] (१) जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर। उ.—(क) जीव जल थल जिते, बेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०। (ख) देखत बन अति अगम डरौं वै मोहि डरपावैं—४३७। (२) न मिलने योग्य, दुर्लभ। उ—भक्त जमुने सुगम, अगम औरैं—१ २२२। (३) अपार, अत्यंत, बहुत। उ—समुझि अब निरखि जानकी मोहि। बडौ भाग गुनि, अगम दसानन, सिव वर दीनो तोहि—९-७७। (४) न जानने योग्य, बुद्धि से परे, दुर्बोध। उ०—(क) मन-बानी कौं अगम-अगोचर, जो जानै सो पावै—१-२। (ख) ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैं, अगम अनंत प्रभाव—२-३४। (५) अथाह, बहुत गहरा। उ—(क) अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम भार भरत। सूरदास ब्रत यहै, कृष्ण-भजि, भव-जलनिधि उतरत—१-५५। (ख) सूर मरत मीन तुरत मिले अगम पानी—२९५२। (६) विशाल, बड़ा। उ.—(क) लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर—९-८६। (ख) कैसैं बचे अगम तरु के तर मुख चूमति, यह कहि पछितावति—३९०।

संज्ञा पु. [स० आगम] अवाई, आगमन। उ.—दादुर मोर कोकिला बोलैं पावस अगम जनावै—२८२५।

अगमति—वि० [स० अगम + अति] बहुत अधिक, बड़ी। उ—आजु हौं राजकाज करि आऊँ। वेगि सँहारौं सकल घोष-सिसु, जो मुख आयसु पाऊँ। मोहन मुर्छन-वसीकरन पढ़ि, अगमति देह बढ़ाऊँ १०-४९।

अगमन—क्रि० वि० [स० अग्रवान] आगे, पहले, प्रथम। उ—सो राजा जो अगमन पहुचै, सूर सु भवन उताल—१०-२२३।

अगमने, अगमनैं—क्रि० वि० [स० अग्रवान, हि० अगमन] आगे, आगे से, प्रथम ही। उ.—(क) दह लै देहु मात सिर अपने जासो कहत कत तुम मेरी। सूरदास सो गई अगमने सब सखियन सो हरि मुख हेरी—९०३। (ख) पीछे हुते पर्यंक परम रुचि रुक्मिनि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नैन भरि आये नीर—१० उ.—६१। (ग) मोहन बदन बिलोकि थकित भए माई री ये लोचन मेरे। मिले जाइ अकुलाइ अगमने कहा भयो जो घूघट घेरे—१० ३३१।

अगमैया—वि [सं अगम्य, हिं अगम] (१) न जानने योग्य, अगम, गहन। (२) अपार, अत्यंत, बहुत। उ. ब्रज मैं को उपज्यौ यह भैया। सग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया—४२८।

अगम्य—वि [स.] न जाने योग्य, गहन। (२) अज्ञेय, दुर्बोध।

अगर—सज्ञा पु [स अगरु[एक पेड़ जिसकी लकडी सुगधित होती है। उ —चदन अगर सुगध और घृत, विधि करि चिता बनायी —९-५०।

अगरना—क्रि अ [स. अग्र] आगे आगे जाना, बढना।

अगरी—स्त्री [स अनर्गल] (१) अनुचित बात, बुरी बात। (२) धृष्टतायुक्त बात, अनचित कथन। उ – गेंडुरि दई फटकारि कै हरि करत हैं लँगरी। नित प्रति ऐसेई ढग करैं हमसो कहै अगरी—८५८। (३) असगत बात।

अगरु—सज्ञा पु [स] अगर की लकडी, ऊद।

अगरे—क्रि वि. [स. अग्र] सामने, आगे।

अगरौ—वि. [स. अग्र, हि अगरो] (१) बढ़कर, श्रेष्ठ, उत्तम। उ.—(क) हम तुम सब वैस एक, काते को अगरो। लियो दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ—१०-३३६। (ख) सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यौ छाँडहु दिए परत नहिं पगरौ। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सबते भाग यही कौं अगरौ—पृ. २३५। (ग) हम तुम एक सम कौन कातै अगरौ—१०५६। (२) अधिक ज्यादा। उ.—योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। ब्रजवासी नर नारि पति नहिं मानो सिंधु समान—९२२।

स पु. [स. आकर=खान, हिं आगर] (१) खान, आकर (२) समूह, ढेर। उ.—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरौ। और कहूँ जाइ रहे छाँडि ब्रज बगरौ—१०५६।

वि [स. आकर=श्रेष्ठ] चतुर, दक्ष, कुशल। उ सूर स्याम तेरौ अति गुननि माहि अगरौ। चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ—१०-३३६।

अगवना—क्रि अ. [हिं. आगे+ना(प्रत्य.)] किसी कार्य के लिए प्रस्तुत होना, आगे बढना।

अगवाई—सज्ञा स्त्री.[स. अग्र=आगे+आयान=आना] आगे से जाकर लेना, अभ्यर्थना।

सज्ञा पु. [स. अग्रगामी] आगे चलनेवाला, अगुआ।

अगवान—सज्ञा पु. [स. अग्र+यान] विवाह मे बारात का स्वागत करने वाले कन्या पक्ष के लोग।

सज्ञा पु. [स. अग्र+यान] (१) आगे से जाकर लेना। (२) विवाह मे बारात का स्वागत करने कन्या पक्षवालों का जाना।

अगवानी—सज्ञा स्त्री. [स. अग्र+यान] (१) आने वाले का आगे पहुँचकर स्वागत करना, पेशवाई। (२) आगे चलने की क्रिया। उ.—पाँच - पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे। सुनौं तगीरी, बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे—१-१४३।

सज्ञा पु. [स. अग्रगामी] अगुआ, अग्रसर, पेशवा। उ.—सखी री पुर बनिता हम जानी। याही तैं अनुमान होत है षटपद-से अगवानी—३४०२।

क्रि. अ.—आगे चली, अग्रगामिनी हुई उ०—क्यो करि पावै बिरहिन पारहि बिन केवट अगवानो—२७९६।

अगसार, अगसारी—क्रि. वि. [स. अग्रसर] आगे।

अगस्त्य—सज्ञा पु० [स.] (१) एक ऋषि जो मित्रा वरुण के पुत्र थे। ऋग्वेद मे इनकी ऋचाएँ हैं (२) एक ऊँचे पेड़ की फली जिसकी तरकारी बनती है। उ —फूल करील करी पाकर नम। फली अगस्त्य करी अमृत सम—२३२१।

अगह—वि० [स० अग्राह्य] (१) जो पकडी न जा सके, अति चचल। उ०—माधौ नैंकु हटको गाय। भ्रमत निसि-वासर अपथ पथ, अगह गहि नहिं जाइ—१-५६। (२) जो वर्णन और चिंतन से बाहर हो। उ०—अगमते अगह अपार आदि अविगत है सोऊ। आदि निरजन नाम ताहि रजै सब कोऊ—३४३। (३) न धारण करने योग्य। उ०—ऊधौ जो तुम हमहिं बतायौ। · · ·। जोग जाचना जबहिं अगह गहि तबहीं सौं है ल्यायौ।

अगहर. क्रि० वि० [स० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० हर (प्रत्य०)] (१) आगे। (२) पहले प्रथम।

अगहुँड़—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० हुँड(प्रत्य०)] अगुआ, आगे चलनेवाला।
क्रि० वि०-आगे, आगे की ओर।

अगा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे ही, पहले ही, अभी से। उ०—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यों खात दगा ? कहति मंदोदरि, सुनु पिय रावन, मेरी बात अगा—९-११४।

अगाउनी—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे।

अगाऊ—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० आऊ(प्रत्य०)] अगला, आगे का। उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यो, मन मैं अति गरबाऊ। धरि बाराह रूप सो मार्यो, लै छिति दंत-अगाऊ—१०-२२१।
क्रि० वि०—आगे, अगाडी, पहिले। उ०—(क) हौ डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ। थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ—४८१। (ख) प्रीतम हरि हमकौं सिधि पठई आयौ जोग अगाऊ—३११०।

अगाध—वि० [सं०] (१) अथाह, बहुत गहरा। (२) जिसका कोई पार न पा सके, जो समझ मे न आए, दुर्बोध। उ०—(क) मनसा और मानसी सेवा दोउ अगाध करि जानौं—१ २११। (ख) ऐसी कहि मोहिं कहा सुनावत तुमको यही अगाध—११२७। (ग) सूरज प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियनाह, निगमन को अगाध सहसामन नहिं जानै—२५५७। (घ) केसी अरु पूतना निपाती लीला गुननि अगाध—२५८०। (ङ) रसना रटत सुनत जस स्रवनन इतनी अगम अगाध—२७७८। (३) अपार, असीम, अत्यत बहुत। उ०—षोडस सहस नारि सँग मोहन कीन्हो सुख अगाध—१८३८।

अगाधा—वि० [सं० अगाध] (१) अपार, असीम, अत्यन्त। उ०—(क) जननी निरखि चकित रही ठाढी दपति-रूप अगाधा—७०५। (ख) भृकुटी धनुष नैन सर साधे बदन विकास अगाधा—१२३४। (२) जो समझ मे न आवे, अद्भुत, विचित्र। थाह या अनुमान से परे। उ०—मोकौ सग बोलि तू लेती करनी करी अगाधा—१४७९।

अगाधो—वि० [सं० अगाध] अपार, असीम, बहुत। उ०—(क) करिहै कहा अक्रूर हमारौ देहै प्रान अगाधो—२५०८। (ख) सूरदास राधा बिलपति है हरि को रूप अगाधो—२७५८।

अगान—वि० [सं० अज्ञान] अनजान।

अगामै—क्रि० वि० [सं० अग्रिम] आगे।

अगार—संज्ञा पुं० [सं० आगार] (१) घर, निवास-स्थान, धाम। उ०—दुख आवत कछु अटक न मानत सूनो देखि अगार—२८८८। (२) राशि, समूह।
क्रि० वि०— आगे, पहले।

अगास—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश। उ०—का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौ—१२०७।

अगाह—वि० [सं० अगाध] (१) अथाह, गहरा (२) अत्यत, बहुत।
क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से, पहले से।

अगिआई—क्रि० अ० [सं० अग्नि, हिं० अगियाना] सुलग जाय, जले। उ०—और कवन अवलन व्रत धार्यो जोग समाधि लगाई। इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगिआई—३३४३।

अगिदधा—वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग से जला हुआ।

अगिदाह—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + दाह] आग मे जलाना, भस्म करना।

अगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] आग।
वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गिनना] अगणित अपरिमित। उ०—सौंव को लक्ष्मण सहित लाए बहुरि दियो दायज अगिन गिनी न जाइ—१० उ. ४६।

अगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, हिं० अगिन] आग। उ०—अब तुम नाम गहौ मन-नागर। जातैं काल-अगिनि तै बाँचौ, सदा रहौ सुखसागर—१-९१।

अगिनित—वि० [सं० अगणित] अनगिनती, असख्य। उ०—कटक अगिनित जुर्यो, लक खरभर पर्यो, सूर को तेज धर-धूरि-ढाँप्यो—९,१०६।

अगियाना—क्रि० अ० [सं० अग्नि]। जल उठना, सुलग जाना।

अगिलेऊ—वि० [सं० अग्र, हिं० अगला + ऊ(प्रत्य०)] अगला भी, भावी भी, आगामी भी। उ०—रे पापी

तू पखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत। ....। सूर स्याम बिनु व्रज पर बोलत हठि अगिलेऊ जनम बिगारत—२८४९।

अगीठा—सज्ञा पुं० [स० अगीत=आगे स० अग्र, प्रा० अग्ग+स० इष्ट ; प्रा० इट्ठ (प्रत्य०) आगे का भाग।

अगुसरना—क्रि० अ० [सं० अग्रसर+ना (प्रत्य०)] आगे बढना, अग्रसर होना।

अगूठा—सज्ञा पु० [स० अगूढ] घेरा।

अगेह—वि० [स० अ=नहीं+गेह=घर] जिसका घर न हो, गृहहीन।

अगोचर—वि० [स०] (१) इंद्रियाँ जिसका अनुभव न कर सकें। इंद्रियातीत, अव्यक्त। उ०—मम बानी कौ अगम अगोचर जो जानैं सो पावै—१-२। (२) दिखाई न देना, अदृश्य। उ०—जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात—२५४१।

अगोट—सज्ञा पु० [स० अग्र=हिं० ओट=आड] (१) रोक, ओट, आड़। उ०—नहसुत कील कपाट सुलक्षण दै दृग द्वार अगोट। भीतर भाग कृष्ण भूपति को राखि अधर मधु मोट—२२१८। (३) आश्रय, आधार।

अगोटना—क्रि० स० [स० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० ओट+ना(प्रत्य०)] (१) रोकना घेरना। (२) पहरे मे रखना, बंदी करना। (३) छिपाना।

क्रि० स० [स० अग=शरीर+हिं० ओटना (प्रत्य.)] (१) अगीकार करना। (२) पसंद करना।

क्रि० अ०—रुकना, अडना।

क्रि० स० [स० अगूढ] चारो ओर से घेरना।

अगोटी—क्रि० अ० [हिं० अगोटना] रुकी हुई फँसी हुई, उलझी हुई। उ०—दोउ मैया मैया पै माँगत, दै री मैया, माखन-रोटी। सुनत भावती बात सुतनि की, झूठहि धाम के काम अगोटी—१०-१६५।

अगोरना—क्रि० स० [सं० अग्र=आगे] (१) बाट जोहना. प्रतीक्षा करना। (२) रखवाली करना। (३) रोकना, छेकना।

अगोरि—क्रि० स० [स० अग्र=आगे, हिं० अगोरना] रोककर, छेंक कर। उ—मेरे नैनन ही सब खोरि। स्याम बदन छबि निरख जु अटके बहुरे नही बहोरि। जो मैं कोटि जतन करि राखति घूंघट ओट अगोरि। पृ ३३३।

अगौनी—क्रि० वि० [स० अग्र, प्रा० अग्ग हिं० अगवानी] आगे।

सज्ञा स्त्री—अगवानी।

अगौहैं—क्रि० वि० [स० अग्रमुख] आगे, आगे की ओर।

अग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] आग, उष्णता। उ.—जठर अग्नि को व्यापै ताव—३-१३।

अग्नीध्र—सज्ञा पु० [स०] स्वयंभू मनु के आत्मज राजा प्रियव्रत का पुत्र। उ—ब्रह्मा स्वयभुव मनु जायौ। तातै जन्म प्रियव्रत पायौ। प्रियव्रत के अग्नीध्र सु भयौ—५-२।

अग्यान—वि० [स० अज्ञान] ज्ञानशून्य, जड़, मूर्ख। उ.—मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत मांझ घृत नायौ—१-१४५।

संज्ञा स्त्री०—मुग्धा नायिका। उ.—हान दिनपति सीस सोभा रच राजत आज। सूर प्रभु अग्यान मानो छपी उपमा साज—सा० २।

अग्र—सज्ञा पु० [स] आगे का भाग, सिरा, नोक। उ—हरि जब हिरन्याच्छ कौं मारयौ। दसन-अग्र पृथ्वी कौं धारयौ—७-२।

क्रि० वि० (१) आगे। उ.—(क) निधरक भयौ चल्यौ व्रज आवत अग्र फौजपति मैन—२८१९। (ख) दसनराज जो महारथी सो आवत अग्र अनूप—सा० ८२। (२) मे, पर, ऊपर। उ.—(क) बहुत श्रेय पुन कृत अग्र मे नौतन सो रग सारो—सा० ८३। (क) कृत अग्र गज औ नीकन मे आपुन ही ते देहैं—सा० ९७।

वि० अगला, प्रथम, श्रेष्ठ, उत्तम।

क्रि० वि०—(१) आगे करके, सामने रखकर, ओट लेकर। उ—मधुकर काके मीत भए। दिवस चारि करि प्रीति सगाई, रस लै अनत गए। डहकत फिरत आपने स्वारथ पाखड अग्र दए। चाड सरे पहिचानत नाहिन प्रीतम करत नए—५१२। (२) आगे से, पहिले ही से, अभी से। उ.—याहि मारि तोहिं और बिवाहौं अग्र सोच क्यो मरई—१०४।

अग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा भाई। (२) नायक, नेता।

वि.—श्रेष्ठ, उत्तम।

वि [सं. अग्र=आगे] अग्रिम, पहला। उ.—प्रभु जू यो कीन्ही हम खेती। ····· । इंद्रिय मूल किसान, महातृन-अग्रज बीज बई। जन्म-जन्म की विषय बासना उपजत लता नई—१-१८५।

अघ—संज्ञा पुं [सं] (१) पाप, पातक, अधर्म। उ.—प्रतिहिं किए अघ भारे—१-२७। (२) मथुरा के राजा कंस का एक सेनापति अघासुर जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था। उ —(क) अघ-अरिष्ट केसी काली मथि दावानलहिं पियौ—१-१२१। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तैं काढ्यौ काली—२५६७। (ग) नंद नहिं निकंद कारन अघ सघारन धीर—सा ९३।

अघट—वि. [सं. अ=नहीं+घट्=होना] (१) जो कार्य में परिणत न हो सके। (२) दुर्घट, कठिन। (३) जो ठीक न घटे, बेमेल, अनुपयुक्त।

वि [सं घट=हिंसा करना] (१) जो कभी न घटे, अक्षय। (२) एकरस, स्थिर। उ.—जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार। (३) सर्वांगयुक्त पूर्ण।

अघट उपमा—संज्ञा स्त्री. [सं. अ=नहीं+घट=घटना कम होना, अघट=जो कम न हो=पूर्ण+उपमा] अलुप्तोपमा, पूर्णोपमा अलंकार। वह अलंकार जिसमें उपमा के चारो अंग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और वाचक शब्द वर्तमान हों। उ.—सूरस्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव—सा. १।

अघटित—वि [सं] (१) जो घटित न हुआ हो। (२) जिसका घटना संभव न हो। (३) अमिट, अनिवार्य। (४) अयोग्य, अनुचित।

वि [सं घट=हिंसा] (१) न घटने योग्य, बहुत अधिक। (२) अभक्ष्य, अखाद्य। उ —उदर-अर्थ चोरी हिंसा करि, मित्र बंधु सौं लरतौ। रसना-स्वाद सिथिल लंपट ह्वै अघटित भोजन करतौ—१-२०३।

अघहर—संज्ञा स्त्री. [सं अघ=पाप+हर=हरण करने वाली] पापों का हरण करनेवाली त्रिवेणी। इसका संक्षिप्त रूप होता है 'वेणी' जिसका दूसरा अर्थ 'केश-पाश' या चोटी होता है। उ.—अघहर मोहन मुरन समेत। नीतन ते बिछुरो सारंगसुत कुन अग्र ते बदन रेख—सा. ९६।

अघा—संज्ञा पु. [सं. अघ] अघासुर जो मथुरा के राजा कंस का सेनापति था और कृष्ण द्वारा मारा गया था। उ.—अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माहीं—४३१।

अघाइ—क्रि. अ. [हिं. अघाना] भोजन पान से तृप्त होती है, छकती है। उ.—(क) माधौ नैंकु हटकौ गाइ · व्योम, धर, नद सैल, कानन इतै चरि न अघाइ—१-५६। (ख) राजनीति जानौ नहीं, गोसुत चरवारे। पीवौ छाँछ अघाइ कैं, कब के रथवारे—१-२३८।

अघाई—क्रि. अ. [हिं. अघाना] इच्छा पूर्ण हुई, संतुष्ट या तृप्त होता है, मन भरता है। उ.—(क) जब तैं जनम-मरन अंतर हरि, करत न अबहिं अघाई—१ १८७ (ख) फिरि दरस करन एहीं मिसि प्रेम न प्रीति अघाई—१०००।

अघाउँ—क्रि. अ [हिं. अघाना] तृप्त या संतुष्ट होऊँ। उ.-ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दियें अघाउँ—१-१६४।

अघाऊँ—क्रि अ. [हिं. अघाना] संतुष्ट या तृप्त करूँ, इच्छा पूर्ण करूँ। उ —घरै महराय भभकत रिपु घाइ सौं, करि कदन रुधिर भैरो अघाऊँ—९-१२९।

अघाए—क्रि. अ [हिं अघाना] (१) भोजन से तृप्त हो गए। उ.—कौरव काज चले रिषि सापन साक-पत्र सु अघाए—१-२३। (२ तृप्त हुये। (३) प्रसन्न हुये।

अघात—वि [हिं. अघाना] पेट भर, खूब, अधिक, बहुत। उ —तब उन मांगी इन नहिं दीन्ही, बाढ्यौ बैर अघात।

क्रि अ [सं. आघ्राण=नाक तक, हिं अघाना] संतुष्ट या तृप्त होता है। उ—निरट निसक बिबादति सम्मुख, सुनि सुनि नद रिसात। मोसौं कहति कृपन तेरे घर ढोटाहू न अघात—१०-३२६।

संज्ञा पु [सं आघात] चोट, मार, प्रहार धक्का। उ.—दुहुँ कर माट गह्यौ नँदनदन, छिटकि

बूँद-दधि परत अघात । मानौ गज-मुक्ता मरकत पर सोभित सुभग साँवरे गात—१०-१५९ ।

अघाति—क्रि. अ. [हिं अघाना] भोजन पान से तृप्त होती है, छकती है । उ माधौ नैकु हटकौ गाइ…… छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम-दलि खाइ—१-५६ ।

अघाना—क्रि. अ. [स आघ्राण = नाक तक] (१) भोजन या पान से तृप्त होना । (२) संतुष्ट होना, इच्छा पूर्ण होना । प्रसन्न होना । (४) थकना, ऊबना । (५) पूर्णता को पहुँचना ।

अघाने—क्रि. स. बहु. [हिं. अघाना] भोजन-पान से तृप्त हुये, छक गए । उ.—(क) बल - मोहन दोउ जेंवत रुचि सौं, सुख लूटति नँदरानी । सूर स्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२ । (ख) बिस्वभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ अघाने—११८७ ।

अघानौ—क्रि. अ. [हिं अघाना] (१) संतुष्ट हुआ, इच्छा पूरी हुई, मन भरा । उ —(क) याही करत अधीन भयो हौ, निद्रा अति न अघानौ—१-४६ । (ख) बहुत प्रपच किए माया के तऊ न अधम अघानौ—१ ३२९ । (२) पेट भर गया, छक गया, तृप्त होगया । उ —कान्ह कह्यौ हौं मातु अघानौ—३९६ ।

अघारि—सज्ञा पु. [स] पाप नाश करने वाले ।

अघासुर—सज्ञा पु. [स.] एक दैत्य जो कंस का सेनापति था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

अघी—वि [स. अघ = पाप] पापी, पातकी, कुकर्मी ।

अघैहौ—क्रि. अ. [स. आघ्राण = नाक तक, हि. अघाना] तृप्त होगे, छक जाओगे । उ.—भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ । … । चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ—१-३३१ ।

अघोरी—सज्ञा पु. [स] घृणित व्यक्ति ।

वि—घृणित, घृणा के योग्य । उ.—जिन हति सकट प्रलब तृन तृन दृढ प्रतिज्ञा टाली । एते पर नहिं तजत अघोरी कपटी कस कुचाली—२५६७ ।

अघौघ—सज्ञा पु. [सं] पाप-समूह ।

अघ्रानना—सज्ञा पु. [स. आघ्राण] सूँघना ।

अचंचल—वि. [स] स्थिर, ठहरा हुआ ।

अचंभव—सज्ञा पुं. [सं. असंभव] अचंभा, आश्चर्य, विस्मय ।

वि —आश्चर्यजनक, विस्मयकारी । उ तुम याही बात अचभव भाषत नाँगी आवहु नारी—८२६ ।

अचंभित—वि [हिं. अचभा] चकित, विस्मित । सज्ञा—अचंभा, विस्मय । उ.—यह मेरे जिय अतिहि अचभित तौ बिछुरत क्यो एक घरी—२०९२ ।

अचंभु—सज्ञा पु. [सं असभव, हिं. अचभा] अचभा, विस्मय । उ.—देख सखी पँच कमल द्वै सभु । एक कमल ब्रज ऊपर राजत निरखत नैन अचभु—१९१८ और सा. उ —४४ ।

अचंभो, अचंभौ—सज्ञा पु [हिं. अचभा] आश्चर्य, विस्मय । उ.—(क) अचभौ इन लोगनि को आवै । छाँडै स्याम-नाम-अम्रित-फल, माया-विष-फल भावै—२-१३ । (ख) डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई । नसै धर्म मन वचन काय करि, सिधु अचभौ करई—९-७८ । (ग) मोसो कहत तुहूँ नहिं आवै सुनत अचभो पाऊँ री—पृ. ३२३ । (घ) सोवत थी मैं सजनी आज । तब लग सुपन एक यह देखो कहत अचभो साज—सा. ६८ ।

अचई—क्रि. स. [स आचमन, हिं अचवना] पान कर ली, पी ली । उ —यह मूरति कबहूँ नहिं देखी मेरी अँखियन कछु भूल भई सी । सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौ मनमोहन मोहनी अचई सी—१६८३ ।

अचक—वि [स चक्र = समूह] भरपूर, पूर्ण ।

सज्ञा पु [स. चक् = भ्रात होना] भौचक्कापन ।

अचकाँ—क्रि. वि [हिं. अचानक, अचक्का] सहसा, एकाएक ।

अचगरी—सज्ञा स्त्री. [स अति, प्रा अच + करणम् = ज्यादती] नटखटपन, शरारत, शैतानी, छेड़छाड़ । उ —(क) सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार ब्राह्मनहिं खिझायौ—१०-२४८ । (ख) माखन दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही । अब तौ घात परे हौ लालन तुम्हें भलें मैं चीन्ही—१०-२९७ । (ग) मैं बरजे तुम करत अचगरी । उरहन कौ ठाढी रहै मिगरी—३९१ । (घ) बहुत अचगरी यहि करि राखो प्रथम मारिहै याहि—२५७४ । (ङ) अगचरी

करि रहे वचन एई कहे इर नहीं करन मुत अहीर केरे—२६११।

अचगरौ—वि [हिं. अचगरी] नटखट, चंचल, छेड़खानी करनेवाला। उ.—(क) ऐसौ नाहिं अचगरौ मेरौ, कहा बनावति बात—१०-२९०। (ख) जसुमति तेरौ वारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ—१०-३३६।

अचना—क्रि. स. [सं. आचमन] आचमन करना, पीना।

अचपल—वि. [स.] (१) धीर, गंभीर। (२) चंचल, शोख।

अचपली—सज्ञा स्त्री. [हिं. अचपल + ई] अठखेली, क्रीडा।

अचभौन, अचभौना—सज्ञा पु [स असभव हिं. अचभा] आश्चर्यजनक, विस्मयकारक। उ—कहा करत तू नद डिठौना। सखी सुनहु री बातें जैसी करत अतिहि अचभौना—पृ. ३३६।

अचमन—सज्ञा पु. [स आचमन, हिं अचवन] भोजन के पश्चात हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया। उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनिया—१०-२३८।

अचर—वि. [स] न चलने वाला, जड, स्थावर।

अचरज—सज्ञा पुं. [स. आश्चर्य, प्रा. अच्चरिय] आश्चर्य, अचभा, विस्मय। उ.—(क) अविगत, अविनासी पुरुषोत्तम, हाँकत रथ के आन। अचरज कहा पार्थ जौ बेधै, तीन लोक इक बान—१-२६९। (ख) अचरज सुभग वेद जल जातक कलस नील मनि गात—१९०७। (७) आजु अली लखि अचरज एक। सुत सुत लखत तिपीपी गोपी सुत सुत बाँधे टेक—सा. ४५।

अचरी—सज्ञा पु. [स. अचल] अचल। उ.—राधे तू अति रग भरी। मेरे जान मिली मनमोहन अचरा पीक परी—२१०६।

अचल—वि. [स] (१) जो न चले, स्थिर, निश्चल। उ—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रविससि किए प्रदच्छिनकारी—१३४। (२) सदा रहनेवाला, चिरस्थायी। (३) ध्रुव, दृढ़, अटल (४) जो नष्ट न हो, अटूट, अजेय।

सज्ञा पु [स.] पर्वत, पहाड।

अचलजा—सज्ञा स्त्री [स. अचल = पर्वत + जा = पुत्री] पार्वती।

अचलजापति—सज्ञा पुं. [स अचलजा = पार्वती + पति] पार्वती के पति शिव।

अचलजापति अंग-भूषन—सज्ञा पु [सं अचलजा-पति = शिव + अग = शरीर + भूषण = अलकार] शिव के शरीर का भूषण, सर्प, शेषनाग।

अचलजापति अग-भूषन भार-हित-हित—सज्ञा पु. [स. अचलजापति-अग-भूषन = शेष + भार (शेष का भार = पृथ्वी) का हित (पृथ्वी का हित या हितू = इद्र) + हित (इद्र का हितू या प्रिय = मेघ = घन = घनश्याम)] घनश्याम, कृष्ण।

अचला—सज्ञा स्त्री [स.] पृथ्वी।

अचवन—सज्ञा पु. [स आचमन] (१) आचमन या पान की क्रिया। (२) भोजन के बाद हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना।

अचवना—क्रि स. [स. आचमन] (१) आचमन या पान की क्रिया। (२) भोजन के बाद हाथ मुँह धोने और कुल्ली करने की क्रिया। (३) पचाने की क्रिया, हजम कर जाना।

अचवाई—वि [हिं अचवना] स्वच्छ, निर्मल।

अचवाना—क्रि. स. [स. आचमन] (१) आचमन कराना, पिलाना। (२) भोजन के बाद हाथ मुँह धुलाकर कुल्ली कराना।

अचवाहीं—क्रि. स [स. आचमन, हिं. अचवना] आचमन करते हैं, पीते हैं, पान करते हैं। उ.—रुक्मिनि चलहु जनमभूमि जाहीं। जदपि तुम्हारो हतो द्वारका मथुरा के सम नाहीं। यमुना के तट गाय चरावत अमृत जल अचवाहीं—१० उ.—१०४।

अचवौं—क्रि. स. [स आचमन, हिं. अचवना] पान करूँ, रस चखूँ। उ.—सुनहु सूर अधरन रस अँचवौ दुहुँ मन तृषा बुझाऊँगो—१९४४।

अचाक, अचाका—क्रि. वि. [स. आ = अच्छी तरह + चक्र = भ्रांति] अचानक, सहसा।

अचान—क्रि वि [स आ + चक् अथवा सं. अज्ञान] सहसा, अकस्मात।

अचानक—क्रि. वि. [स. आ = अच्छी तरह + चक् =

भ्रांति, अथवा स- अज्ञानात्] बिना पूर्व सूचना के, एकबारगी, सहसा, अकस्मात । उ.—(क) बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि करि जतन उडात । परै अचानक त्यो रस-लंपट, तनु तजि जमपुर जात—२-२४ । (ख) नृपति जजाति अचानक आयौ । सुक्र सुता कौ दरसन पायौ—९-१७४ । (ग) बटाऊ होहिं न काके मीत । सग रहत सिर मेलि ठगौरी हरत अचानक चीत—२७३० ।

अचार—सज्ञा पु . (फा] नमक, मिर्च, राई आदि मसाले मिलाकर तेल, सिरके आदि मे कुछ दिन रखकर खट्टे किए हुए फल या तरकारी । उ.—पापर बरी अचार परम सुचि—२३२१ ।

अचारी—वि [स- आचारी] आचार विचार से रहने वाला ।

अचाह—सज्ञा स्त्री. [स. अ = नहीं + चाह = इच्छा] अनिच्छा, अप्रीति, अरुचि ।

अचाहा—वि [स अ + चाह = इच्छा, अचाह] अप्रिय, अरुचिकर, अप्रीतिपात्र ।

अचिंत—वि [स] चितारहित, निश्चित ।

अचीता—वि. [स अचिंतित] असभावित, आकस्मिक । वि [स. अचित] निर्चित, चितारहित ।

अचूक—वि. [स. अच्युत] (१) जो (वार आदि) खाली न जाय, जो निर्दिष्टकार्य अवश्य करे । (२) जिसका बार खाली न जाय, अति कुशल । उ०—एहि बन मोर नही ए काम बान । बिरह खेद धनु पुहुप भृ ग गुन करिल तरैया रिपु समान । लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिसि तैं अचूक अहेरी, नहिं अजान—२८३८ । (३) ठीक, निश्चित, पक्का ।

क्रि वि.—(१) कौशल से । (२) निश्चय, अवश्य ।

अचेत—वि. [स.] (१) बेसुध, मूर्छित, सज्ञाशून्य । उ.—पोढे कहा समर-सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत । थकित भए कछु मत्र न फुरई कीन्हे मोह अचेत —१-२९ । (२) व्याकुल, विकल । (३) असावधान । (४) अनजान, नासमझ, अज्ञान । (५)उ.- सूर सकल लागत ऐसी यह सो दुख कासौं कहिये । ज्यो अचेत बालक की वेदन अपने ही तन सहिये—१४४२ । (५) मूढ, मूर्ख । उ —(क) ऐसौ प्रभू छांडि क्यो भटकै, अजहूँ चेति अचेत—१-२९६ । (ख) कुँअर जल लोचन भरि भरि लेत । बालक वदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत—३४९ । (६) जड़ । उ.—आपुन तरि तरि औरन तारत अस्म अचेत प्रकट पानी मैं बनचर लै लै डारत—९-१२३ ।

अचै—क्रि. स [स. आचमन हि अचवना] पीकर, पान करके । उ —(क) कालीदह जल अचै गए मरि तब तुम लियै जिवाय—९८६ । (ख) मोहन माँग्यो अपनो रूप । यहि ब्रज बसत अचै तुम बैठी ता बिन तहाँ निरूप ।

अचैन—सज्ञा पु [स अ = नही + मयन = सोना आराम करना] व्याकुलता, दुख ।

वि.—व्याकुल, विकल । उ.—ससि पावस कपिन के बिच मूँद राखे नैन । सह सिकारी नाग मनसिज सखिन बोर (और) अचैन—सा. ९२ ।

अचोना—सज्ञा पु ० स० [स० आचमन] पीने का बरतन, कटोरा ।

अच्छ—वि. [स] स्वच्छ, निर्मल । उ —सारग पच्छ अनज मिर ऊपर मुष सारग सुष नीके—सा० १०० ।

सज्ञा पु. [स. अक्ष] (१) आँख । (२) अक्षकुमार जो रावण का पुत्र था और हनुमान द्वारा मारा गया था ।

अच्छत—सज्ञा पु. [स० अक्षत] बिना टूटा चावल जो मंगल-द्रव्य माना गया है । ऊ.—अच्छत दूब लिये रिषि ठाढे, बारनि बदनवार बँधाई—१०-१९ ।

वि०—अखडित, निरन्तर ।

अच्छर—सज्ञा पु ० [स० अक्षर] अक्षर, वर्ण ।

अच्छरा, अच्छरी—सज्ञा स्त्री० [स अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा ।

अच्छु—सज्ञा पु [स. अक्ष] आँख, नेत्र । उ —भछ विध के परक फरकत अच्छु चारो ओर—सा०३४ ।

अच्छोत—वि [स० अक्षत, प्रा, अच्छत] पुरा, अधिक, बहुत । उ.—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ । वृषभ कह्यौ तासौ या भाइ । मेरे हेत दुखी तू होत । कै अधर्म्म तुम अच्छोत (के अधर्म तो ऊपर होत]—१-२९० ।

अच्छोहिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] चतुरंगिनी सेना जिसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे ।

अच्युत—वि० [स०] स्थिर, नित्य, अविनाशी । उ०—(क) अच्युत रहै सदा जल-साईं। परमानंद परम सुखदाई—१०-३ । (ख) सूरज प्रभु अच्युत ब्रजमंडल, वर्गहीं घर लागे सुख देनु—४३८ ।

संज्ञा पु. [सं०] विष्णु और उनके अवतारों का नाम ।

अछक—वि० [सं० चष, प्रा० चक, छक] अतृप्त, भूखा ।

अछकना—क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+चष्=खाना] अतृप्त रहना, न अघाना ।

अछत—संज्ञा पु. [स. अक्षत, हिं० अच्छत] अक्षत, देवताओं पर चढ़ाने के अक्षत । उ.—मेरे कहैं विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ । अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गाठि जुराइ, इहैं मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५ ।

क्रि० वि० [अ० क्रि० 'अछना' का कृदन्त रूप] रहते हुए, विद्यमानता में, सम्मुख । उ०—(क) माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजा कंठ-कुच सेइ—१-२०० । (ख) ता रावन कैं अछत अछयसुत सहित सैन सँहारी—९-१०० (ग) कुँवर सबै घेरि फेरे फेरत छुड़त नाहिने गुपाल । बलै अछत छलबल करि सूरदास प्रभु हाल—१० उ०—६ । सिवाय अतिरिक्त ।

क्रि० वि० [स अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छाइ—है] न रहते हुए, अनुपस्थित ।

अछन—संज्ञा पु. [स. अ=नहीं+क्षण] दीर्घकाल, चिरकाल ।

क्रि० वि०—धीरे धीरे, ठहर ठहर कर ।

अछना—क्रि० अ० [सं० अस्, प्रा० अच्छ=होना] विद्यमान रहना ।

अछय—वि० [सं० अक्षय] जिसका अंत न हो, जो समाप्त न हो । उ०—करपत सभा द्रुपद-तनया को अंबर अछय कियौ—१-१२१ ।

वि० [स० अ=नहीं+छय=छिपना] प्रकट, प्रत्यक्ष ।

अछयकुँवर, अछयकुमार—संज्ञा पुं [सं० अक्षकुमार, हिं० अक्षयकुमार] रावण का एक पुत्र जो लंका का प्रमोदवन उजाड़ने समय मारा गया था ।

अछरा, अछरी—संज्ञा स्त्री० [स० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा ।

अछवाना—क्रि० स० [स० अच्छ=साफ] सँवारना ।

अछाम—वि० [स० अक्षाम्] (१) बड़ा, भारी । (२) हृष्टपुष्ट, बली ।

अछूता—वि० [स० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ, प्रा० अछुत्त] (१) जो छुआ न गया हो, अस्पृष्ट । (२) जो काम में न लाया गया हो, कोरा ।

अछूते—वि० बहु० [स० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ], जो काम मे न लाए गए हों, नए, कोरे । उ—मेरे घर को द्वार, सखी री, तबलौं देखति रहियौ । दधि-माखन द्वै माट अछूतें तोहिं सौंपति हौं सहियौ—१०-३१३ ।

अछेद—वि० [स० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके, अभेद्य, अखंड्य । उ.—(क) अभिद् अछेद रूप मम जान । जो सब घट है एक समान—३-१३ । (ख) इह अछेद अभेद अविनासी । सर्व गति अरु सर्व उदासी—१२-४ ।

स० पुं०—अभेद, छलछिद्र का अभाव ।

अछेव—वि० [स० अच्छेद्य या अछिद्र] निर्दोष ।

अछेह—वि० [सं० अछेक] (१) निरंतर, लगातार । (२) बहुत अधिक ।

अछोभ—वि० [स० अक्षोभ] (१) गंभीर शांत । (२) मोह-मायारहित । (३) निडर ।

अछोह—संज्ञा पु० [स०, अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] (१) शांति, स्थिरता । (२) दयाहीनता, निर्दयता ।

अज—वि [स] अजन्मा, जन्म-बंधन-रहित स्वयंभू । उ०—अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६ ।

क्रि वि. [स. अद्य, प्रा. अज्ज] अब अभी तक ।

अजगर—संज्ञा पु. [स.] बहुत मोटा साँप जो बकरी और हिरन तक निगल जाता है । यह जंतु स्थूलता

और निरुद्यमता के लिए प्रसिद्ध है। उ०—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै। अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै—१-१०५।

अजगरी—संज्ञा स्त्री. [स अजगरीय] बिना परिश्रम की जीविका।

अजगुत—संज्ञा पु. [स अयुक्त, पु. हिं. अजुगुति] (१) अचंभे की बात, असाधारण व्यापार, अप्राकृतिक घटना। उ०—(क) गोपाल सबनि प्यारो, ताकौं तैं कीन्हौ प्रहारो जाकौ है मोहु कौ गारौ, अजगुत कियनौ—३७३। (ख) स्वान सँग सिंहिनि रति अजगुत वेद विरुद्ध असुर करैं आइ—१० उ—१०। (२) अनुचित बात, बेजोड़ प्रसंग या व्यापार। उ—(क) सरवस लूटि हमारौ लीनौ राज कूबरी पावै। तापर एक सुनौ री अजगुत लिख लिख जोग पठावै—३०९९। (ख) द्विज वेगि धावहु कहि पठावहु द्वारकाते जाइ। कुंदनपुर एक होत अजगुत बाघ घेरी गाइ—१० उ०—१३।

वि. आश्चर्यजनक, अद्भुत, बेजोड़। उ०—(क) पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत (अजुगुत) बात विचारी। सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै हौं समरथ की नारी—९-७९। (ख) रंगभूमि मुष्टिक चनूर हति भुजबल तार बजाए। नगर नारि देहिं गारि कंस कौ अजगुत युद्ध बनाए—२६२२।

अजन—वि. [स] जन्मरहित, जन्म-बंधन-मुक्त, स्वयंभू। उ०—(क) सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ—१०-४। (ख) शंख, चक्र, गदा, पद्म, चतुर्भुज अजन जन्म लै आयौ।

वि [सं.] निर्जन, सुनसान।

अजन्म—वि [स, अजन्मा] जन्म बंधन से रहित, अनादि, नित्य। उ० आतम, अजन्म सदा अविनासी ताकौं देह मोह बड फाँसी—५-४।

अजन्मा—वि. [स] जन्मरहित, अनादि, नित्य।

अजपा—वि [स] (१) जिसका उच्चारण न किया जाय। (२) जो न जपे या भजे।

संज्ञा पु—उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। उ०—षटदल अष्ट द्वादस दल निर्मल-अजपा जाप-जपाली। त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार मिट यौं मिलिहैं बनमाली।

अजभष—संज्ञा पु [स, अजा = बकरी + भक्ष्य = भोजन] बकरी का भक्षण या भोजन, पत्ता, पत्र। 'पत्र' का दूसरा अर्थ चिट्ठी भी होता है। उ०—कबै द्रग भर देखबो जू सबौ दुख बिसराइ। अजाभष की हान हमको अधिक ससि मुख चाइ—सा. २२।

अजय—वि [स. अजेय] जो जीता न जा सके।

अजयारिपु—संज्ञा स्त्री. [स. अजया = भाँग = भग + रिपु = शत्रु] भग का शत्रु, उद्दीपन, उत्तेजना। उ०—षट-कव अधर मिलाप उर पर अजयारिपु की घोर। सूर। अबलान मरत ज्यावो मिलो नंद किशोर—सा.उ.—४७।

अजर—वि. [स अ = नहीं + जरा = बुढापा] (१) जो बूढ़ा न हो, (१) जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण।

अजरायल—वि [स. अजर] अमिट, चिरस्थायी, पक्का। उ०—दिनाचारी मे सब मिटि जैहैं। स्यामरंग अजरायल रैहै—१४८८।

वि. [स. अ = नहीं + दर = भय] निर्भय निशंक।

अजरावन—वि. [स अजर] जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण। उ०—जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे। भलै सु दिन भयौ पूत, अमर अजरावन रे—१० २८।

अजरूढ़—वि [स अज = भेडा + स. अरूढ = सवार] (१) कबरे पर सवार। (२) भेडे पर सवार। उ.—असुर अजरूढ होइ गदा मारे फटकि स्याम अंग लागि सो गिरै ऐसे। बाल के हाथ ते कमल अमलनाल-जुत लागि गजराज तन गिरत जैसे—१० उ०—३१।

अजवाइन—संज्ञा स्त्री [स यवनिका, हिं. अजवायन] एक तरह का मसाला, अजवायन, यवानी। उ०—(क) हींग, मिरच, पीपरि, अजवाइन ये सब वनिज कहावैं—११०८। (ख) रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधौ मिलाइ धरि—२३११।

अजस—संज्ञा पु. [स. अयश] (१) अपयश, अपकीर्ति। (२) निंदा। (३) अपकार, बुराई। उ.—पावँ अवार सुधारि रमापति अजस करत जस पायौ—११८८।

अच्छोहिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अक्षौहिणी] चतुरंगिनी सेना जिसमे १०९३५० पैदल, ६५६१० घोडे, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे ।

अच्युत—वि० [सं] स्थिर, नित्य, अविनाशी । उ०—(क) अच्युत रहै सदा जल-साईं । परमानंद परम सुखदाई—१०-३ । (ख) सूरज प्रभु अच्युत ब्रजमंडन, तरहीं घर लागे सुख देनु—४३८ ।

सज्ञा पु. [स०] विष्णु और उनके अवतारों का नाम ।

अछक—वि० [स० चष, प्रा० चक, छक] अतृप्त, भूखा ।

अछकना—क्रि० वि० [स० अ = नही + चष् = खाना] अतप्त रहना, न अघाना ।

अछत—सज्ञा पु. [स. अक्षत, हि० अच्छत] अक्षत, देवताओ पर चढ़ाने के अक्षत । उ.—मेरे कहैं विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ । अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गाठि जुराइ, इहै मोहिं लाहो नैननि दिखरावौ—१०-९५ ।

क्रि० वि० [अ० क्रि० 'अछना' का कृदन्त रूप] रहते हुए, विद्यमानता मे, सम्मुख । उ०—(क) माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजा कठ-कुच सेइ—१-२०० । (ख) ता रावन कैं अछत अछयसुत सहित सैन सहारी—९-१०० (ग) कुँवर सबै घेरि फेरे फेरत छुडत नाहिने गुपाल । बलै अछत छलबल करि सूरदास प्रभु हाल—१० उ०—६ । सिवाय अतिरिक्त ।

क्रि० वि० [स अ = नहीं + अस्ति, प्रा० अच्छाइ —है] न रहते हुए, अनुपस्थित ।

अछन—सज्ञा पु. [स. अ = नही + क्षण] दीर्घकाल, चिरकाल ।

क्रि० वि०—धीरे धीरे, ठहर ठहर कर ।

अछना—क्रि० अ० [स० अस्, प्रा० अच्छ = होना] विद्यमान रहना ।

अछय—वि [स० अक्षय] जिसका अत न हो, जो समाप्त न हो । उ०—करषत सभा द्रुपद-तनया को अबर अछय कियो—१-१२१ ।

वि० [स० अ = नही + छय = छिपना] प्रकट, प्रत्यक्ष ।

अछयकुँवर, अछयकुमार—सज्ञा पुं [स० अक्षकुमार, हि० अक्षयकुमार] रावण का एक पुत्र जो लंका का प्रमोदवन उजाड़ने समय मारा गया था ।

अछरा, अछरी—सज्ञा स्त्री० [स० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा ।

अछवाना—क्रि० स० [स० अच्छ = साफ] सँवारना ।

अछाम—वि० [स० अक्षाम्] (१) बड़ा, भारी । (२) हृष्टपुष्ट, बली ।

अछूता—वि० [स० अ = नही + छुप्त = छुआ हुआ, प्रा० अछुत्त] (१) जो छुआ न गया हो, अस्पृष्ट । (२) जो काम में न लाया गया हो, कोरा ।

अछूते—वि० बहु० [स० अ = नही + छुप्त = छुआ हुआ], जो काम मे न लाए गए हो, नए, कोरे । उ —मेरे घर को द्वार, सखी री, लबनो देखति रहियौ । दधि-माखन द्वै माट अछूतें तोहिं सौंपति हौं सहियो—१०-३१३ ।

अछेद—वि० [स० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके, अभेद्य, अखंड्य । उ.—(क) अभिद् अछेद रूप मम जान । जो सब घट है एक समान—३-१३ । (ख) इह अछेद अभेद अविनासी । सर्व गति अरु सर्व उदासी—१२-४ ।

स० पुं०—अभेद, छलछिद्र का अभाव ।

अछेव—वि० [स० अच्छेद्य या अछिद्र] निर्दोष ।

अछेह—वि० [स० अछेक] (१) निरंतर, लगातार । (२) बहुत अधिक ।

अछोभ—वि० [स० अक्षोभ] (१) गंभीर शात । (२) मोह-मायारहित । (३) निडर ।

अछोह—सज्ञा पु० [स०, अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] (१) शाति, स्थिरता । (२) दयाहीनता, निर्दयता ।

अज—वि [स] अजन्मा, जन्म-बधन-रहित स्वयभू । उ०—अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२ ३६ ।

क्रि वि. [स. अद्य, प्रा. अज्ज] अब अभी तक ।

अजगर—सज्ञा पु. [स] बहुत मोटा सांप जो बकरी और हिरन तक निगल जाता है । यह जंतु स्थूलता

और निरुद्यमता के लिए प्रसिद्ध है। उ०—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै। अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै—१-१०५।

अजगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. अजगरीय] बिना परिश्रम की जीविका।

अजगुत—संज्ञा पु. [सं. अयुक्त, पु. हिं. अजुगुति] (१) अचंभे की बात, असाधारण व्यापार, अप्राकृतिक घटना। उ०—(क) गोपाल सबनि प्यारो, ताकौं तैं कीन्हौ प्रहारो जाकौ है मोहू कौ गारो, अजगुत कियनो—३७३। (ख) स्वान सँग सिंहिनि रति अजगुत वेद विरुद्ध असुर करै आइ—१० उ—१०। (२) अनुचित बात, बेजोड़ प्रसंग या व्यापार। उ—(क) सरवस लूटि हमारौ लीनौ राज कूबरी पावै। तापर एक सुनी री अजगुत लिख लिख जोग पठावै—३०९९। (ख) द्विज बेगि धावहु कहि पठावहु द्वारकाते जाइ। कुंदनपुर एक होत अजगुत बाघ घेरी गाइ—१० उ०—१३।

वि. आश्चर्यजनक, अद्भुत, बेजोड़। उ०—(क) पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत (अजुगुत) बात बिचारी। सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै हौं समरथ की नारी—९-७९। (ख) रंगभूमि मुष्टिक चनूर हति भुजबल तार बजाए। नगर नारि देहिं गारि कंस कौ अजगुत युद्ध बनाए—२६२२।

अजन—वि. [सं] जन्मरहित, जन्म-बंधन-मुक्त, स्वयंभू। उ०—(क) सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ—१०-४। (ख) शंख, चक्र, गदा, पद्म, चतुर्भुज अजन जन्म लै आयौ।

वि [सं.] निर्जन, सुनसान।

अजन्म—वि. [सं, अजन्मा] जन्म बंधन से रहित, अनादि, नित्य। उ० आतम, अजन्म सदा अविनासी ताकौं देह मोह बड फाँसी—५-४।

अजन्मा—वि. [सं] जन्मरहित, अनादि, नित्य।

अजपा—वि [सं] (१) जिसका उच्चारण न किया जाय। (२) जो न जपे या भजे।

संज्ञा पु—उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। उ०—षटदल अष्ट द्वादस दल निर्मल-अजपा जाप-जपाली। त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिट यौं मिलिहैं बनमाली।

अजभष—संज्ञा पु [सं, अजा = बकरी + भक्ष्य = भोजन] बकरी का भक्षण या भोजन, पत्ता, पत्र। 'पत्र' का दूसरा अर्थ चिट्ठी भी होता है। उ०—कबै द्रग भर देखबो जू सबो दुख बिसराइ। अजाभष की हान हमको अधिक ससि मुख चाइ—सा. २२।

अजय—वि [सं. अजेय] जो जीता न जा सके।

अजयारिपु—संज्ञा स्त्री. [सं. अजया = भाँग = भग + रिपु = शत्रु] भंग का शत्रु, उद्दीपन, उत्तेजना। उ०—घट-कच अधर मिलाप उर पर अजयारिपु की घोर। दूर। अबलान मरत ज्यावो मिलो नंद किशोर—सा.उ.—४७।

अजर—वि [सं अ = नहीं + जरा = बुढ़ापा] (१) जो बूढ़ा न हो, (२) जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण।

अजरायल—वि [सं. अजर] अमिट, चिरस्थायी, पक्का। उ०—दिनाचारी मे सब मिटि जैहै। स्यामरंग अजरायल रैहै—१४८८।

वि [सं. अ = नहीं + दर = भय] निर्भय निशंक।

अजरावन—वि. [सं अजर] जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण। उ०—जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे। भलै सु दिन भयौ पूत, अमर अजरावन रे—१० २८।

अजरूढ़—वि [सं अज = भेड़ा + सं. अरूढ = सवार] (१) कबरे पर सवार। (२) भेड़े पर सवार। उ.—असुर अजरूढ होइ गदा मारे फटकि स्याम अग लागि सो गिरै ऐसे। बाल के हाथ ते कमल अमलनाल-जुत लागि गजराज तन गिरत जैसे—१० उ०—३१।

अजवाइन—संज्ञा स्त्री [सं यवनिका, हिं. अजवायन] एक तरह का मसाला, अजवायन, यवानी। उ०—(क) हींग, मिरच, पीपरि, अजवाइन ये सब बनिज कहावैं—११०८। (ख) रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि—२३११।

अजस—संज्ञा पु. [सं अयश] (१) अपयश, अपकीर्ति। (२) निंदा। (३) अपकार, बुराई। उ.—पावैं अवार सुधारि रमापति अजस करत जस पायौ—१ १८८।

अजहुँ, अजहूँ—क्रि. वि [सं. अद्य, प्रा. अज्ज, हिं. अज + हूँ (प्रत्य.)] अब, अब भी, अभी तक। उ—(क) अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अविचल राज करै—१-३७। (ख) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै—१-६३। (ग) मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७५। (घ) मानिनि अजहूँ मान बिसारो—सा० २०।

अजा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) बकरी। (२) शक्ति, दुर्गा।

अजाचक—संज्ञा पु [सं. अयाचक] न माँगनेवाला आदमी, संपन्न व्यक्ति।

वि०—जो न माँगे, भरा-पूरा, संपन्न।

अजाची—वि० [सं. अयाचित, हिं. अयाची,] जिसे माँगने की आवश्यकता न हो, धन-धान्य से पूर्ण, भरा-पूरा। उ०—विप्रसुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि—१-१८ और १-१३५। (ख) अब तुम मोकौं करौ अजाची जो कहुँ कर न पसारौं—१०-३७।

अजाति, अजाती—संज्ञा पु [सं. अजाति] जाति रहित। उ०—सूरदास प्रभु महाभक्ति तैं जाति अजातिहिं साजै १-३६।

अजाद—वि [फ. आज़ाद] स्वतंत्र, स्वाधीन। उ—हमैं नँदनंदन मोल लिये। जमके फंद काटि मुकराये, अभय अजाद किये—१-१७१।

अजान—वि. [सं अ = नहीं + ज्ञान, प्रा. ज्जान] (१) अनजान; अबोध, नासमझ। उ.—सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु हौं अजान नहिं जानौं—१-११। (ख) इहाँ नाहिन नंदकुमार। इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल मार—२८३१। (२) अपरिचित, अज्ञात।

संज्ञा पु.—(१) अज्ञानता। (२) एक पेड़ जिसके नीचे जाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

क्रि. वि —अनजान स्थिति में, अज्ञानतावश। उ—जान अजान नाम जो लेइ हरि बैकुंठ-वास तिहिं देइ—६-४।

अजामिल, अजामील - संज्ञा पु [सं.] पुराणानुसार जीवन भर पाप कर्मों में ही लिप्त रहनेवाला एक पापी ब्राह्मण। मरते समय यमदूतों का भयानक रूप देख कर इसने अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लिया और अनजान में ही इस प्रकार ईश्वर का नाम लेने से तर गया।

अजित—वि [सं.] अपराजित, जो जीता न गया हो। उ०—इंद्री अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७। (ख) पौरुषरहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यौं गज पंक पर्यौ—१-२०१।

संज्ञा पु० [सं] विष्णु। उ.—तुम प्रभु अजित, अनादि, लोकपति, हौं अजान मतिहीन—१-१८१।

अजितेंद्र—वि० [सं० अजितेंद्रिय] जो इंद्रियों को जीत न सका हो, विषयासक्त, इंद्रियलोलुप। उ —पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले, जाइ भगवान सौं कहि सुनाई। असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई—८-१०।

अजिर—संज्ञा पु० [सं] आँगन, सहन। उ—धरे निसान अजिर गृह मंडल, विप्र वेद-अभिषेक करायौ—९-२५।

अजीरन—संज्ञा पु. [सं० अजीर्ण] (१) अजीर्ण, अपच, अध्यमन। उ —अब यह बिरह अजीरन ह्वै कै बमि लाग्यौ दुख दैन। सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी काहिं पठाऊँ लैन—२७६५।

(२) अधिकता बहुतायत।

वि०—जो पुराना न हो, नया।

अजुगुत—संज्ञा पु० [सं० अयुक्त, पु० हिं० अजुगुति, हिं० अजुगुत] अयुक्त बात अनुचित बात।

वि०—आश्चर्यजनक, अनुचित। उ.—पापी, जाउ, जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी। सिंह की भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरत्थ की नारी—९-७९।

अजूरा—वि० [सं० अ + युज् = जोड़ना] अप्राप्त, पृथक।

अजूह—संज्ञा पु० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध।

अजेइ, अजेय—वि [सं. अ = नहीं + जेय] जो जीता न जा सके।

अजोग—वि० [सं. अयोग्य] (१) जो योग्य न हो, अनुचित। (२) बेजोड़, बेमेल।

अजोध्या—संज्ञा पु० [सं० अयोध्या] सूर्यवंशी राजाओं

की पुरानी राजधानी जो सरयू के किनारे बसी थी। इसकी गिनती सप्त पुरियों मे है।

अजोरि—क्रि० स० [हिं० अँजोरना] छीनना, हरण करना। उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि चित-चितामनि लियौ अजोरि—११५८। (ख) बुधि-विवेक बल वचन चातुरी पहिलेहि लई अजोरि—पृ० ३३३।

अजोरी—वि० स्त्री० [हिं० अँजोरना] छीनकर, हरण करके। उ०—(क) राधा सहित चद्रावलि दोरी। औचक लीनी पीत पिछौरी। देखत ही लै गई अजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगोरी—२४५४। (ख) सूरस्याम भए निडर तबहिं ते गोरस लेत अजोरी—१४७२।

अजौ, अजौं—क्रि० वि० [स० अद्य, प्रा० अज्ज, हिं आज] अब भी, अब तक, अद्यापि। उ०—बालक अजौं अजान न जानै, केतिक दह्यो लुटायौ—३५६।

अज्ञ—वि० [स०] अनजान, नादान। उ०—खेलत स्याम पौरि कै बाहर, ब्रज लरिका सग जोरी। तैसेई आपु तैसई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी—१०-२५१।

अज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता, नासमझी।

अज्ञा—सज्ञा स्त्री०—[स० आज्ञा] आज्ञा।

अज्ञाकारी—वि० [स० आज्ञाकारिन्, हिं० आज्ञाकारी] आज्ञाकारी, आज्ञापालक। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। जिनकैं बस अनिमिष अनेक जन अनुचर आज्ञाकारी—१-१६३।

अज्ञात—वि० [स] (१) अविदित, अपरिचित। (२) जिसे ज्ञात न हो।
क्रि० वि०—बिना जाने, अनजाने मे।

अज्ञान—सज्ञा पु० [स०] (१) जड़ता, मूर्खता, अविद्या, मोह। (२) अविवेक।
वि०—ज्ञानशून्य, मूर्ख, जड़, अनजान। उ०—मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ—१-४६।

अज्ञानता—सज्ञा स्त्री० [स०] जडता, मूर्खता।

अज्ञानी—वि० [स०] ज्ञानशून्य, अबोध, अनजान।

अज्ञेय—वि० [स] जो समझ मे न आये, ज्ञानातीत, बोधागम्य।

अझोरी—सज्ञा स्त्री० [स० दोल=झूलना] कपड़े की लम्बी थैली, झोली।

अटक—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना अथवा स० आ+टक=बधन] (१) रोक, रुकावट, विघ्न, अड़चन, व्याघात। उ० (क) घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहिं निबाहि—१-३१०। (ख) अब लौं सकुच अटक रही अब प्रगट करौ अनुराग री—८८०। (ग) जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०। (घ) लोचन मधुप अटक नहिं मानत जद्यपि जतन करौं—१२०५। (ङ) सोषति तनु सेज सूर चले न चपल प्रान। दच्छिन रवि अवधि अटक इतनी जिय आन—२७४३। (च) गह्यौ कर स्याम भुजमल्ल अपने धाइ झटकि लीन्हौ तुरत पटकि धरनी। भटक अति सब्द भयौ खुटक नृप के हिये, अटक प्रानन परयो चटक करनी—२६०९। (छ) अब सखि नींदौ तो गई। भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचनि ओट लई। अति रिस अहनिसि कत किए बस आगम अटक दई—२७९१। (२) अकाज, हर्ज, बड़ी आवश्यकता। उ०—(क) गैयनि भई बडी अबार, भरि भरि पय थननि भार, बछरा गन करैं पुकार तुम बिन जदुराई। तातैं यह अटक परी, दुहन काज सौंह करी आवहु उठ क्यौं न हरी, बोलत बल-भाई—६१९। (ख) ह्याँ ऊधो काहे कौ आए कौन सी अटक परी—३३४६। (३) सकोच। उ०—नितही झगरत हैं मनमोहन देखि प्रेमरस-चाखी। सूरदास प्रभु अटक न मानत, ग्वाल सबैं हैं साखी—७७४।

अटकना—क्रि० अ० [स० अ=नहीं+टिक्=चलना] (१) ठहरना, अड़ना। (२) फँसना, उलझना। (३) प्रीति करना। (४) झगड़ना।

अटकर—सज्ञा स्त्री० [स अट्=घूमना+कल=गिनना, हिं० अटकल] अनुमान, कल्पना, अटकल। उ०—जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०।

अटकरना—क्रि० स० [हिं० अटकर, अटकल] अनुमानना, अटकल लगाना।

अटकरि—क्रि० स० [हिं० अटकरना] अटकल लगाकर, अनुमान करके। उ०—बार-बार राधा पछितानी। निकसे स्याम सदन ते मेरे इन अटकरि पहिचानी।

अटकल-संज्ञा स्त्री०[सं० अट्=घूमना + कल्=गिनना] अनुमान, कल्पना।

अटकलना—क्रि० स० [सं० अट + कल्] अनुमान लगाना, कल्पना करना।

अटकाइ—क्रि० स० [हिं० अटकाना] रोक लिया, ठहरा-कर। उ०—एक बार माखन के काजे राखे मैं अटकाइ—२७०४।

अटकाई—क्रि० स० [हिं० अटकाना] फँसाना, उलझाना। उ०—तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई। जुवती गई घरनि सब अपने, गृह-कारज जननी अटकाई—३८३।

अटकाइ—क्रि० स० [हिं० अटकाना] फँसा लिया, उलझाया। उ०—(क) मनि आभरन डार डारन प्रति देखत छवि मन ही अटकाए—८२२। (ख) लोचन भृंग को सरस पागे। स्याम कमल-पदसौं अनुरागे . । गए तबहिं ते फेरि न आए। सूर स्याम वेगहिं अटकाए—पृ० ३२५।

अटकायौ—क्रि० स० [हिं० अटकाना] टाँगा, लटकाया। उ०—लियो उपरना छीनि दूरी डारनि अटकायौ—११२४।

अटकाव-संज्ञा पु० [हिं० अटक] रुकावट, प्रतिबंध, अड़चन, बाधा।

अटकावहु—क्रि० स० [हिं० अटकाना] अटकाते या ठहराते हो, रोकते या अड़ाते हो, बाँधते हो। उ०—कैसे लै नोई पग बाँधत, लै गया अटकावहु—४०१।

अटकावै-क्रि स [हिं अटकाना] रोकता है, ठहराता है। उ०—सो प्रभु दधिदानी कहवावै। गोपिन को मारग अटकावै—११८६।

अटकि-क्रि. अ. [हिं. अटकना] अटककर, टिककर, ठहरकर। उ०–स्याम कर मुरली अतिहिं बिराजति ···। ग्रीव नवाइ अटकि बसी पर कोटि मदन-छबि लाजति—६४५। (२) उलझकर, फँसकर। उ०—मुकुट लटकि अरु भृकुटी मटक देखौ कुंडल की चटक सौं अटकि परी दृगनि लपट—८३९।

अटकी—क्रि. अ. स्त्री [हिं. अटकना]। रुकी, ठहरी अड़ी। उ०—ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी। देह गेह की सुधि नहिं काहू हरपति कोउ पछितानी—६४४। (२) उलझी, प्रीति में फँसी। उ०—देखौ हरि राधा उत अटकी। चितै रही इकटक हरि ही तन ना जाइयँ (जानियँ ?) कौन अँग अटकी—१३०१।

संज्ञा पु. [हिं. अटक] गरजमंद। उ०—ऐसी कहौ वनिज का अटकी। मुख-मुख हेरि तरुनि मुसु-कानी नैन सैन दै दै सब मटकी—११०५।

अटके—क्रि अ [हिं. अटकना] (१) रुके, ठहरे, अड़े। उ—घर पहुच अबही नहिं कोई। मारग मे अटके सब लोई—१०३६। (२) फँस गए, उलझे, चिपटे हैं। उ०—(क) लोचन भए स्याम के चर। ··· ललित त्रिभंगी छवि पर अटके फटके मोसा तारि—पृ० ३२२। (ख) छूटत नही प्रान क्यों अटके कठिन प्रेम की फाँसी—३४०९। (३) प्रीति से फँसे, प्रेम करने लगे, पग गए। उ०—तुमहिं दियौ बहराइ इतै को वे कुबिजा सौं अटके—३१०७। (ख) सूर स्याम सुन्दर रस अटके हैं मनो उहँहिं छएरी—सा० उ०—७। (४) झगड़ने लगे।

अटकै—क्रि. अ [हिं अटकना] फँसे रहकर, उलझकर। उ०—जनम सिरानौ अटके अटकै। राज-काज, सुत वित की डोरी, बिनु विवेक फिर्‍यौ फटकै—१.२९२।

अटकै—क्रि० अ० [हिं० अकटना] रोकने से मना करने से, ठहरने से। उ०—नैना न रहृ री मरे अटकै—पृ० २३९।

अटक्यौ—क्रि० अ० [हिं० अटकना] (१) झगड़ पड़ा, लड़ा, जूझा। उ०—अब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ। नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायौ—१-३२। (२) अकाज हुआ, आवश्यकता पड़ी, हर्ज हुआ। उ०—अति आतुर नृप मोहिं बुलायौ। कौन काज ऐसौ अटक्यौ है, मन मन सोच बढ़ायौ—२४६५। (३) फँसा, उलझा, रम गया। उ०—(क) कहा करौ चित चरन अटक्यौ सुधा-रस कै चाइ- ३-३। (ख) सूर-

दास प्रभु सों मन अटक्यौ से देह गेह की सुधि बिसराई—८७८। (ग) तनु लीन्हे डोलत फिरै रसना अटक्यौ जस—११७७।

अटखट—वि० [अनु०] टूटा-फूटा।

अटत—क्रि० अ० [स अट्, हि० अटना] घूमते फिरते हैं। उ०—जीव जल-थल जिते, वेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०।

अटन, अटनि—संज्ञा पुं० [सं०] घूमने फिरने की क्रिया, यात्रा, भ्रमण।

संज्ञा स्त्री. बहु. [स. अट्ट=अटारी, हि अटा] अटारियाँ, कोठे, छतें। उ०—(क) सखी री वह देखौ रथ जात। कमलनैन कांधे पर न्यारो पीत बसन फहरात। लई जाइ जब ओर अटन की चीर न रहत कृष गात—२५३९। (ख) ऊँच अटन पर छत्रन की छवि सीसन मानो फूली—२५६१। (ग) ऊँचे अटनि छाज की सोभा सीस उचाइ निहारी—२५६२।

अटना—क्रि. अ [स. अट, हि. अटन] (१) घूमना-फिरना, (२) यात्रा करना।

क्रि अ. [स उट=घास-फूस, हि. ओट] आड करना, घेरना।

अटपट—वि. अ [स अट्=चलना+पट=गिरना] (१) ऊटपटाँग, उल्टा सीधा, बेठिकाने। उ—अटपट आसन बैठि कै गो-धन कर लीन्हौं—४०९। (२) टेढ़ा विकट, कठिन, अनोखा। (३) गूढ, जटिल। (२) गिरता-पडता, लडखडाता।

अटपटात—क्रि अ [हि अटपट, अटपटाना] (१) घबडाकर, अटककर, लडखड़ाकर। उ०—(क) स्याम करन माता सों झगरो, अटपटात कलबल करि बोल—१०९४। (ख) कबहुँ जम्हात कबहुँ अँग मोरत अटपटात मुख बात न आवै, रैन कहूँ धौं थाके—२०८०। मुच्छम चरन चलावत बल करि। अटपटात कर देति मुँदरी, उठत तबै सुजतन तनमन-धरि—१०-१२०। (२) हिचकिचाकर, सकोचकरके।

अटपटी—संज्ञा स्त्री [हि अटपट] नटखटी, अनरीति उ०—(क) कर हरि सौं सनेह मन साँचौ। निपट कपट की छाँडि अटपटी, इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौ—१-८३ (ख) सूधे दान काहे न लेत। और अटपटी छाँडि नदसुत रहहु कँधावत वेत—१०३६।

वि — । (१) अनरीतियुत, अनुचित, नटखटपन से भरी हुई। उ०=मधुकर छाँडि अटपटी बातें—३०२४। (२) लडखडाती हुई, गिरती पडती। उ — छाँडि देहु तुम लाल लटपटी यहि गति मद मराल—१०-२२३।

अटपटे—वि. [स. अट्=चलना+पट्=गिरना (अटपट)] (१) गिरते-पड़ते, लडखडाते। उ.—निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैं—१०-१४७। (२) ऊटपटाँग, अडबड, उलटासीधा, बेठिकाने। उ.—आए हो सुरति किए ठाठ करख लिए सकसकी धकधकी हिये। छूटे बन्धन अरु पाग का बाँधनि छुटी लटपटे पेट अटपटे दिये—२००९।

अटपटो—वि [स अटपट] गूढ़, जटिल, गहरा, अनोखा। उ—राखो सब इह योग अटपटो ऊधौ पाइ परौं—३०२७।

अटल—वि. [स अ=नहीं+टल्=चचल होना] (१) जो न टले, स्थिर, दृढ़। उ.—(क) पतितपावन जानि सरन आयौ। उदधि ससार सुभ नाम—नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११९। (२) जो सदा बना रहे, नित्य चिरस्थायी। उ.—(क) दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम-दरबारी—१-१७६। (ख) बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौ—१-३१९। (३) ध्रुव, पक्का। (४) जिसका घटना निश्चय हो, अवश्यभावी उ.—चिरजीवि सीता तरुवर तर अटल न कबहूँ टरई—९-९९।

अटा—संज्ञा स्त्री [स. अट्ट=अटारी] अटारी, कोठा, छत,। उ.—(क) नँदनदन को रूप निहारन अहनिसि अटा चढी—२७९४। (ख) बिधि कुलाल कीन्हे काचे घट ते तुम आनि पकाए। ··· । याते गरे न नैन मेह हूँ अवधि अटा पर छाए—३१९१

अटारी-संज्ञा स्त्री० [स अटाली=कोठा] मकान के ऊपर की कोठरी या छत। उ —तुम्हरेहिँ तेज-प्रताप रही बिच, तुम्हरी यहै अटारी—९-१००।

अठंग—संज्ञा पु [स अष्टाग] अष्टांग योगी।

अठ—वि. [स. अष्ट, प्रा अट्ठ] आठ।

अठई--सज्ञा स्त्री० [स. अष्टमी] अष्टमी तिथि ।

अठयाव--सज्ञा पु. [स. अष्टपाद, पा. अट्ठपाद, प्रा. अटठपाव] ऊधम, उपद्रव ।

अठलाना--क्रि. अ [हि ऐंठ + लाना] (१) इतराना, ठसक दिखाना। (२) चोचले करना, नखरा दिखाना। (३) उन्मत्त होना, मस्ती दिखाना । (४) किसी को छेड़कर अनजान बनना ।

अठवना - वि [स स्थान, पा ठान = ठहराव] जमना, ठनना ।

अठाई--वि [स. अस्थायी] उपद्रवी, उत्पाती ।

अठान--सज्ञा पु. [अ = नही + हि ठानना] (१) अयोग्य कर्म । वैर, शत्रुता, झगडा ।

अठाना--क्रि स [स. अट्ट = वध करना] सताना, पीडित करना ।

क्रि. स. [स. स्थान = स्थिति, ठहराव, ठामना, प्रा ठान] ठानना, छेडना ।

अठारह--वि. [स. अष्टादश, पा. अट्ठादस, प्रा. अट्ठारस] दस और आठ मिलने से बनी हुई संख्या ।

सज्ञा पु --(१) काव्य मे पुराण सूचक सकेत या शब्द । उ'--हारि पासा साधु-सगति केरि रसना हारि । दाँव अबकै परचो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सत्रह मुनि अठारह चोर पाँचौ मार । (२) चौसर का एक दाँव, पासे की एक सख्या ।

अठासी--वि. [स अष्टासीति, प्रा अट्ठासीइ, अप. अट्ठासि] अस्सी और आठ की सख्या ।

अठिलात--क्रि अ [हि अठलाना (= ऐंठ + लाना)] ऐंठते हो, इतराते हो, ठसक दिखाते हो । उ.-- (क) नद दोहाई देत कहा तुम कस दोहाई । काहे को अठिलात कान्ह छाँडो लरिकाई--पृ. २३५ । (ख) बात कहत अठिलात जाति सब हँसत देति कर तारि। सूर कहा ये हमको जातै छाछिहि बेचनहारि-- १०९९ ।

अठिलाना--क्रि अ [हि अठलाना] (१) इतराना, ठसक दिखाना । (२) चोचले दिखाना ।

अठिलानी--क्रि वि. [हि. अठलाना] मदोन्मत्त होती हुई, इठलाई हुई । उ --सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानीह्--१०५७ ।

अठोठ--सज्ञा पु. [हि, ठाट] आडम्बर, पाखण्ड, ठाट,

अड़ार--वि. [स अराल] टेढा, तिरछा ।

अडारना--क्रि. स. [हि डालना] ढालना, देना ।

अडारी--क्रि. अ. [स. अलु = वारण करना, हि. अडना] रुके, अड़े, अटके, ठहरे । उ.--सहि न सकत अति विरह त्रास तन आग सलाकनि जारी । ज्यो जल थाके मीन कहा करै तेउ हरि मेल अडारी--सा. उ. ३५ और ३२४६ ।

अडिग--वि [स अ = नहीं - हि. डिगना] जो न डिगे, निश्चल, स्थिर ।

अडीठ--वि. [स अदृष्ट, या अदिष्ट प्रा. अडिट्ठ] जो दिखाई न पडे, लुप्त ।

अडोल--वि [स. अ = नहीं + हि डोलना] (१) जो हिले नहीं, अटल । (२) स्तब्ध, ठकमारा ।

अड़ना--क्रि. अ. [स. अल् = वारण करना] (१) रुकना, अटकना, फँसना । (२) हठ करना, टेक बाँधना ।

अड़ाना--क्रि स [हि. अडना] रोकना, अटकाना, फँसाना (२) टेकना ।

अड़े--क्रि. अ. [हि अडना] अटक गए फँस गए। उ.--इह उर माखन चोर गडे । अब कैसे निकसत सुन ऊधौ तिरछे ह्वै जो अडे--३१५१ ।

अढुक--सज्ञा पु [देश] चोट, ठोकर ।

अढुकना--क्रि. अ [स आ = अच्छी तरह + टक् = बधन = रोक, हि. अढुक] (१) ठोकर खाना, चोट खाना । (२) सहारा लेना, टेकना ।

अढ़वना--क्रि स. [आ + जा = बोध कराना, आज्ञापन, या अम्भापन, प्रा. आणवन] आज्ञा देना, काम मे लगाना ।

अतंक--सज्ञा पु. [स. आतक] भय, शका । उ.--जब तै तृनावर्त्त व्रज आयो, तब तै मो जिय सक । बैननि ओट होत पल एको, मैं मन भरति अतक--६०५ ।

अतंद्रिक, अतंद्रित--वि. [स.] (१) आलस्यरहित, चचल । (२) व्याकुल ।

अतदगुन--सज्ञा पु [अतदगुण] एक अलकार जिसमे एक वस्तु का अपने निकट,की वस्तु के गुण को ग्रहण न करना दिखाया जाय । उ.--आजु रत कोप्यो

भीमकुमार। ....। बैठे जदपि जुधिष्ठिर सामे सुनत सिखाई बात। भयौ अतदगुन सूर सरम बढ बली बीर विख्यात। सा ७४।

अतनु--वि. [स] (१) बिना शरीर का। (२) मोटा। सज्ञा पु — अनंग, कामदेव।

अतरौटा--सज्ञा पु [स. अन्तर + पट] देखिए अँतरौटा।

अतर्क्य--वि. [स.] जिस पर तर्क-वितर्क न हो सके, अचिंत्य।

अतबान--वि. [स अतिवान] अधिक, अत्यत।

अतसी--सज्ञा स्त्री. [स.] अलसी जिसके फूल नीले और बहुत सुन्दर होते हैं। उ.—(क) स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्भय करत विहार। ......। अतसी कुसुम कलेवर बूंदें प्रतिबिंबत निरधार—१८४७। (ख) आवत बन ते साँझ देखे मैं गायन माँझ काहू के ढोटा री एक सीस मोरपखियाँ। अतसी कुसुम जैसे चचल दीरघ नैन मानो रसभरी जो लरति युगल अँखियाँ—२३६६।

अतापी--वि [स.] दुखरहित।

अति--वि. [स] (१) बहुत अधिक। उ.—देत नद कान्ह अति सोवत। भूखे भए आजु बन भीतर, यह कहि कहि मुख जोवत-५१६। (२) जरा सा, छोटा। उ—सूर स्याम मेरी अति बालक मारत ताहि रिंगाई-५१०। (३) जरूरी, आवश्यक। उ-यह कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ। यह कहियौ व्रज जाइ नद सौ कसराज अति काज मँगायौ—५२३।

सज्ञा स्त्री—अधिकता, सीमा का उल्लघन।

अतिउक्त--सज्ञा स्त्री [स. अत्युक्ति] एक अलकार जिसमे गुणो का बहुत बढा-चढा कर अतथ्य वर्णन किया जाता है। उ-सेस ना कहि सकत सोभा जान जो अतिउक्त। कहै वाचिक वाचते हे कहा सूर अनुक्त—मा ९३।

अतिक--वि [स अति] बहुत, अधिक, तीव्र, अत्यत। उ.—अति आतुर आरोधि अतिक दुख तोहि कहा डर तिन यम कालहि—८९८।

अतिगत--वि. [स] बहुत, अधिक, अत्यंत।

अतिगति--सज्ञा स्त्री [स] उत्तम गति, मोक्ष।

अतिथि--सज्ञा पु. [स.] अभ्यागत, मेहमान, पाहुन।

अतिबल--वि. [स.] प्रचड, बली।

अतिवृष्टि--सज्ञा स्त्री [स] छह ईतियो मे से एक जिसमे पानी बहुत बरसता है। उ.—सब यादव मिलि हरि सौ इह कह्यौ सुफलक सुत जहँ होइ। अनावृष्टि अतिवृष्टि होत नहिं इह जानत सब कोइ—१० उ.-२७।

अतिसय--वि [स अतिशय] बहुत, अत्यत, अधिक। उ.—चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन विषय लोभा—१-६९।

अतिसै--वि [स. अतिशय] बहुत, अत्यत। उ.-कह्यौ हरि कैं भय रवि-ससि फिरैं। वायु वेग अतिसै नहिं करै-३-१३।

अतीत--वि. [स] (१) गत, व्यतीत, भूत। (२) निर्लेप, असग, विरक्त।

क्रि. वि -परे, बाहर। उ —गुन अतीत, अविगत, न जनावै। जस अपार, सुत पार न पावै—१०-३।

सज्ञा पु —(१) संन्यासी, विरक्त। (२) सगीत मे 'सम' से दो मात्राओं के उपरात आनेवाला स्थान। उ -वसी री बन कान्ह बजावत। ...। सुर स्रुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत—६४८।

अतीतना--क्रि अ. [स अतीत] बीतना, गत होना।

क्रि. स. —(१) बिताना। (२) छोड़ना, त्यागना।

अतीथ--सज्ञा पु [स. अतिथि] अभ्यागत, पाहुन।

अतीव--वि [स०] बहुत अधिक, अत्यत।

अतुराइ, अतुराई--क्रि वि [हि. अतुराना] (१) घबड़ाकर, आकुल होकर। उ.—(क) तुरत जाइ लै आउ उहाँ तै, विलब न करि मो भाई। सूरदास प्रभु बचन सुनत ही हनुमत चल्यौ अतुराई ९-१४९। (ख) वाकौ सावधान करि पठयौ चली आपु जल कौ अतुराई-१०-८५१। (२) हड़बड़ाकर, जल्दी करके। उ.—चलौ सखी, हमहू, मिलि जैऐ, नैकु करौ अतुराई १०-२२। (ख) कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम करहु अतुराई-१०-७५७।

अतुरात--क्रि. अ. [हि अतुराना] आतुर होता है, घबड़ाता है। उ —(क) तुरत ही तोरि, गनि, कोरि

सम्टनि जोरि, ठढे भए पैरिया तब सुनाए। सुनत यह बात, अतुरान और डरत मन, महल तैं निकसि नृप आपु आए—५८४। (ख) एक एक पल युग सवन को मिलन को अतुरात—२९५५।

अतुराना—क्रि. अ. [स आतुर] आतुर होना, घबडाना, अकुलाना।

अतुरानी—क्रि अ स्त्री [हिं. अतुराना] घवडा गई, हडवड ई, अकुलाई, जल्दी मचाने लगी। उ —(क) सुनत बात यह सखी अतुरानी—८४७। (ख) सूर स्याम सुखधाम, राधा है जाहि नाम, आतुर पिय जानि गवन प्यारी अतुरानी। (ग) सूर स्याम वन-धाम जानि कै दरसन को अतुरानी—१८८८।

अतुराने—क्रि अ [हिं अतुराना] आतुर हुए, हड-बड़कर, घबडाकर। उ.-(क) कर सों ठोकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठ अतुराने—१०-१९७। (ख) बालक बछरा धेनु सबै मन अतिहिं सकाने। अंधकार मिटि गयो देखि जहँ तहँ अतुराने—४३२। धेनु रही वन भूलि कहूँ ह्वै बालक, भ्रमत न पाए। यातैं स्याम अतिहिं अतुराने, तुरत तहाँ उठि धाए—४३६।

अतुल—वि. [स] (१) अमित, असीम अपार। उ.—कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरही—९—९१। (२) अनुपम, अद्वितीय।

अतुलित—वि. [स.] (१) अपार, बहुत अधिक। (२) असंख्य, अनगिनती। (३) अनुपम, अद्वितीय।

अत्र—क्रि वि [स] यहाँ, इस स्थान पर।

संज्ञा पु [स अस्त्र] अस्त्र।

अत्रि—संज्ञा पु [स] सप्तऋषियों मे से एक, जिनकी गिनती दस प्रजापतियों मे है। ये ब्रह्मा के पुत्र थे, अनुसूया इनकी स्त्री थी जिससे तीन पुत्र हुए दत्तात्रेय दुर्वासा और सोम।

अतूथ—वि [स अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] अपूर्व।

अतोर—वि. [स अ=नहीं+हिं. तोड] जो न टूटे, दृढ।

अत्त, अत्ति—संज्ञा स्त्री [स अति] अंत, अधिकता।

अथना—क्रि अ [स अस्त+ना (प्रत्य.)] अस्त होना, डूबना।

अथवत—क्रि अ [हिं अथवना] अस्त होने पर डूबने पर। उ भृग मिले भारजा बिछुरी जोरी कोक मिले उतरी पनच अब काम के कमान की। अथवत आए गृह बहुरि उदित भान उठी प्राननाथ महा जान मनि जानकी—१६०९।

अथवना—क्रि अ [स. अस्तमन=डूबना, प्रा, अत्थ-वन] (१) अस्त होना, डूबना। (२) लुप्त होना, नष्ट होना, चला जाना।

अथवा—अव्य [स.] वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है, जहाँ कई शब्दों या पदों मे से केवल एक को ग्रहण करना हो। या, वा, किंवा। उ. जननि कौं कदली सम जानैं। अथवा कनक खंभ सम मानैं—३-१३।

अथाई—संज्ञा स्त्री. [स. स्थायि=जगह, पा ठानीय प्रा. ठाइअँ] (१) बैठक, चौपारा। (२) गाँवों मे पचायत की जगह। (३) सभा दरबार।

अथान, अथाना—संज्ञा पु.। [स स्थाणु=स्थिर], अचार।

अथाना—क्रि अ [स अस्तमन, प्रा. अत्थवन, हिं. अथवना] डूबना अस्त होना।

क्रि स [स स्थान=जगह] (१) थाह लेना, गहराई नापना। (२) ढूँढना, छानना।

अथानो—संज्ञा पु [स स्थाणु=स्थिर, हिं, अथान, अथाना] अचार। उ —निबुआ, सूरन, आम, अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी—१०-२४१।

अथावत—वि. [स अस्तमित=डूबा हुआ. प्रा अत्थवन हिं. अथाना] अस्त डूबा हुआ।

अथाह—वि [स अ=नहीं+स्था=ठहरना. अथवा अगाध] (१) बहुत गहरा, अगाध। उ —मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यो, समायो। मेल्यो जाल काल जब खैंच्यो, भयो मीन जल-हायो—१-६७। (२) अपरिमिति अपार बहुत अधिक। उ—(क) सूरज-प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियानाह निगमन को अगाध सहसानन नहिं जानैं—२५५७। (ख) विरह अथाह होत निसि हमकौं बिन हरि समुद समानी—२७९६। (३) गभीर, गूढ।

संज्ञा पु - (१) गहराई, जलाशय। (२) समुद्र।

अथाहु—वि. [हिं अथाह।] (१) जिसकी थाह न हो,

जिसकी गहराई का अंत न हो, अगाध। उ.—तुम जानकी जनकपुर जाहु। कहा आनि हम संग भरमिहौ गहवर बन दुख-सिंधु अथाहु—९२३। (२) अपरिमित, बहुत अधिक।

अथिर—वि. [सं. अस्थिर] (१) जो स्थिर न हो, चंचल। (२) अस्थायी, क्षणिक।

अथोर—वि. [हिं. सं. अ = नहीं + सं. स्तोक, पा. थोक, प्रा. थोअ = हिं. थोड़ा] जो थोड़ा न हो, अधिक, बहुत। उ.—नीति बिन बलवान सीषत नीक जानत जोर। काज आपन समुझ कै किन करै आप अथोर—सा. ६१।

अदक—संज्ञा पु. [सं. आतंक] डर, भय, त्रास।

अदंड—वि. [सं.] (१) जो दंड के योग्य न हो। (२) निर्भय, स्वेच्छाचारी।

अदंभ—वि. [सं. अ = नहीं = दंभ] (१) दंभरहित, निष्कपट। (२) प्राकृतिक, स्वच्छ।

अदग—वि. [सं. अदग्ध, पा. अदग्घ] (१) निष्कलंक शुद्ध। (२) निरपराध। (३) अछूता, साफ, बचा हुआ।

अद्भुत—वि. [सं. अद्भुत] विलक्षण, विचित्र, अनूठा, अपूर्व। उ.—(क) अद्भुत राम नाम के अंक—१९०। (ख) देखौ यह बिपरीत भई। अद्भुत रूप नारि इक आई, कपट हेत क्यौं सहै दई—१०-५३। (ग) ये अद्भुत कहिवे न जोग जग देखत ही बनि आवै—सा. ४। (घ) गृह तैं चली गोप कुमारि। बरक ठाढी देख अद्भुत एक अनूपम मार—सा. १४।

अदभ्र—वि. [सं.] (१) बहुत, अधिक। (२) अपार, अनंत।

अदरख—संज्ञा पु. [सं. आर्द्रक, फा. अदरक] अदरक।

अदल—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

अदलपति—संज्ञा पु. [सं. अदल = पार्वती + पति] पार्वती के पति शिव।

अदलपति-रिपु-पिता-पतिनी—संज्ञा स्त्री [सं. अदलपति = शिव + रिपु (शिव का शत्रु = काम = प्रद्युम्न) + पिता (प्रद्युम्न का पिता = कृष्ण) + पत्नी (कृष्ण की पत्नी = यमुना)] यमुना। उ.—अदलपति रिपु-पिता-पतिनी अब न जहु फेर—सा. ११६।

अदाई—वि. [अ.] चतुर, काइयाँ, चालबाज, निर्दयी। उ.—सेवत सगुन स्याम सुन्दर को लही मुक्ति हम चारी। हम सालोक्य सरूप, सरोज्यो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई—३२९०।

अदात—वि. [सं. अदाता] जो दानी न हो जिसने कुछ दिया न हो, कृपण। उ. हरि को मिलन सुदमा आयो। । पूरब जनम अदात जानिकै तातैं कछु मँगायो। मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को बनिता बिनय पठायो—१० उ.—६५।

अदाता—संज्ञा पु. [सं.] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति। वि.—जो न दे, कृपण।

अदान—सं. पु. [सं. अ = नहीं + दान] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति।
वि. [अ. अ = नहीं + फा. दाना = जाननेवाला] नासमझ।

अदानी—वि. [सं. अ = नहीं + दानी] जो दान न दे, अदाता।

अदावँ—संज्ञा—पु. [सं. अ = नहीं + दाम = रस्सी या बंधन] कठिनाई, असमंजस।

अदिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रजापति की पुत्री जो कश्यप ऋषि की पत्नी और सूर्य आदि तेंतीस देवताओं की माता थी।

अदितिसुत—संज्ञा पु. [सं.] दक्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न तेंतीस देवता।

अदिन—संज्ञा पु. [सं. अ = नहीं + दिन] कुदिन, कुसमय, दुर्भाग्य।

अदिष्टी वि. [सं. अ = नहीं + दृष्टि = विचार (अथवा अदृष्ट = भाग्य)] (१) मूर्ख, अदूरदर्शी। (२) अभागा।

अदीठ—वि. [सं. अदृष्ट, प्रा. अदिट्ठ] बिना देखा हुआ अनदेखा, गुप्त।

अदीह—वि. [सं. अ = नहीं + सं. दीर्घ या दीघ, प्रा. दीह] जो बड़ा न हो छोटा।

अदुंद—वि. [सं. अद्वंद्व, प्रा. अदुंद] (१) द्वंद्वरहित। (२) शांत। (३) अद्वितीय।

अदृश्य वि. [सं.] (१) जो दिखाई न दे। (२)

जिसका ज्ञान इंद्रियों को न हो, अगोचर। (३) अंतर्द्धान, लुप्त।

अदृष्ट—संज्ञा पु. [सं.] भाग्य प्रारब्ध, भावी। उ.—काका नाम धराऊँ तोको। दुखदायक अदृष्ट मम मोकौं—१-२९०।

वि. [सं.] (१) न देखा हुआ, अलक्षित। (२) लुप्त, ओझल, अंतर्द्धान। उ.—(क) बछरा भए अदृष्ट कहूँ खोजत नहिं पाए—४९२। (ख) उ.—जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात-२८६१।

अदेस—संज्ञा पु. [सं. आदेश=आज्ञा, शिक्षा] (१) आज्ञा, शिक्षा। (२) प्रणाम।

अदोखित—वि. [सं. अदोष] निर्दोष अकलंक।

अदोस—वि [सं अदोष (अ=नहीं)] निर्दोष, निष्कलंक, दूषणहीन उ.—चंपकली सी नासिका राजत अमल अदोस—२०६५।

अद्भुत—वि. [सं.] आश्चर्यजनक, विचित्र, अनोखा, अनूठा। उ.-रूप मोहिनी धरि ब्रज आई। अद्भुत साजि सिंगार मनोहर, असुर कंस दै पान पठाई—१०-५०।

अध—अव्य. [सं अधः] नीचे, तले। उ.—उर-कलिंद तैं धँसि जल-धारा उदर धरनि परवाह। जाहि चली धारा ह्वै अध कौ नाभी-ह्रद अवगाह—६३७।

वि [सं अर्द्ध, प्रा. अद्ध] आधा, अर्द्ध। उ.—(क) तामैं एक छबीली सारंग अध सारंग उनहारि। अध सारँग परि सकलई सारंग अध सारँग बिचारि—सा उ-२। भादौं की अधराति अँध्यारी—१०-११।

अधकैया—वि. [सं अधिक] अधिक, बहुत। उ.—जैंवत रुचि अधिको अधिकैया—२३२१।

अधकट—[सं अर्द्ध=आधा+हिं. घटना=पूरा उतरना] जिसका ठीक अर्थ न निकले, अटपटा।

अधजेंवत—वि [सं अर्द्ध=जेवना] जिसने पेट भर खाया न हो, अधखाया। उ.—सूर-स्याम बलराम प्रातही अधजेंवत उठि धाए—४५४।

अधपर—संज्ञा पु. सवि. [सं अर्द्ध प्रा. अद्ध, हिं. अध=आधा+पर (प्रत्य.)] आधे मार्ग में, बीच ही में। उ.—हम सब गर्व गँवारि जानि जड अध पर छाँड़ि दई—३३०४।

अधपैया—संज्ञा पु [सं. अर्द्ध=आधा+पग] पैर के अगले भाग पर।

अधम—वि. [सं.] (१) पापी, दुष्ट, उ.—(क) अब मोसौ अलसात जात है। अधम-उधारनहारे हो—१-२५। (ख) अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनो—१-६५। (२) नीच, निकृष्ट, बुरा। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन-पद-परतगी। सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि गरजत अधम अनंगी—१ २१।

अधमई—संज्ञा स्त्री [सं. अधम+हिं. ई (प्रत्य.)] नीचता, अधमता, खोटापन। उ.—(क) औरनि कौं जम कैं अनुसासन किंकर कोटिक धावैं। सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवै—१-१९७। (ख) सूरस्याम अधमई हमहिं सब, लागैं तुमहिं भलाई—१०४९।

अधमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोटापन, नीचता।

अधमाई—संज्ञा स्त्री [सं अधम] अधमता, नीचता। उ.—(क) हुती जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी—१-१३०। (ख) अधम की जो देखौ अधमाई। सुनु त्रिभुवन पति, नाथ हमारे, तो कछु कह्यौ न जाई—१-१८। (ग) नैना लुब्धे रूप को अपने सुख माई।....मन इंद्री तहँई गए कीन्ही अधमाई—पृ० ३२३।

अधमुख—संज्ञा पु [सं० अधोमुख=नीचे की ओर मुँह किए] मुँह या सिर के बल, औंधा। उ. स्याम भजनि की सुंदरताई। • । बडे बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई। मनौ भुजग गगन तैं उतरत अधमुख रह्यौ झुलाई—६४१।

अधर—संज्ञा पु [सं] (१) नीचे का ओठ। (२) ओठ।

संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं+धृ=धरना] अंतरिक्ष, आकाश।

वि.—(१) चंचल, जो पकड़ा न जा सके। (२) नीच, बुरा।

अधरम—सं पु [सं अधर्म] पाप, असद्व्यवहार, अन्याय, कुकर्म।

अधरात—संज्ञा. [सं. अर्द्ध=आधा+रात्रि] आधी रात (क)। उ.—(क) उस पर देखियत ससि सात। सोवत

हुती कुँवरि राधिका चौंकि परी अधरात—सा. उ. । २६ । (ख) तब ब्रज बसत बेनु रव धुनि करि बन बोली अधरातनि—३०२५ ।

अधरै—संज्ञा पु सवि [स. अधर+ऐं (प्रत्य)] अधर पर, ओठ पर । उ —भाले जवाक रंग बनानी अधरै अंजन परगट जानी—१९६७ ।

अधर्म—संज्ञा [पु.] पाप, पातक, अन्याय, दुराचार, ।

अधर्मी, अधर्मिन - संज्ञा पु. [स. अधर्मी] पापी। उ —नैन-अधीन, अधर्मिन कैं बस, जहँ को तहाँ छयौ—१-६४ ।

अधार—संज्ञा पु [सं, आधार] आश्रय, सहारा, अवलब । उ.—(क) एक अधार साधु-संगति कौ, रचि पचि मति सँचरी । याहूँ सौंज संजि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी—१-१३० । (ख) दीनदयाल, अधार सबनि के परम सुजान, अखिल अधिकारी—१-२१२ । (ग) अबऊ अधार जु प्रान रहत है, इन बसहिन मिलि कठिन ठई री—२७८९ । (२) पात्र । उ —हरि परीच्छितहिं गर्भ मँझार । राखि लियौ निज कृपा-अधार—१-२८९ ।

अधारा—संज्ञा पु [स आधार] आश्रय, सहारा, अवलब । यौं—प्रानअधारा—प्रान के अधार, परम प्रिय । उ —तातें मैं पाती लिखी तुम प्रानअधारा—१०३ ८ ।

अधारी—संज्ञा स्त्री. [स. आधार] (१) आश्रय, अवलब । (२) काठ के डंडे मे लगा हुआ साधुओं का पीढा । उ—(क) अब यह ज्ञान सिखावन आए भस्म अधारी सेव—२९८३ । (ख) सृङ्गी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए—३०६० । (ग) दड कमडलु भस्म अधारी तौ युवतिन कहुँ दीजै—३११७ । (घ) सीगी मुद्रा भस्म अधारी हमको कहा सिखावत—३२१८ । (३) यात्रियो के सामान का झोला ।

वि स्त्री— सहारा देनेवाली, प्रिय, भली ।

अधारो, अधारौ—संज्ञा पु [स आधार] आश्रय, सहारा, आधार । उ —ममता-घटा, मोह की बूँदे, सरिता मैन अपारो । बूडत कतहूँ थाह नहिं पावत गुरुजन-ओट-अधारो—१ २०९ ।

यौ.—प्रानअधारो—प्राण का आधार, प्राणप्रिय । उ.—सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कौ भक्तन प्रानअधारो—पृ. ३५१ ।

अधावट—वि. पु. [सं. अर्द्ध=आधा+आवर्त्त=चक्कर] औटाने पर गाढ़ा होकर आधा रह जानेवाला । उ —खोवामय मधुर मिठाई । सो देखत अति रुचि पाई । कछु बलदाऊ कौं दीजै । अरु दूध अधावट पीजै—१०-१८३ ।

अधिक—वि. [स०] (१) बहुत, विशेष । (२), अतिरिक्त ।

क्रि वि —तेज । उ.—छाँडि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तै अधिक धायौ—१-५ ।

अधिकइयै—वि. [हिं अधिक] ज्यादा ।

क्रि स —[हिं अधिकाना] बढ़ाइए ।

अधिकई—वि [स. अधिक] अधिकता से, बहुत अधिक । उ.—करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि—९२९ ।

अधिकाई—संज्ञा स्त्री [सं. अधिक + हिं॰ आई (प्रत्य.)] (१) अधिकता, विशेषता, बढ़ती । (२) बढाई, महिमा, महत्व । उ.—(क) स्रवनिन की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावैं—२-७ । (ख) देखौ काम प्रताप अधिकाई । कियौ परासर बस रिषिराई—१-२२९ । उ—(क) राधे तेरे रूप की अधिकाई । जो उपमा दीजै तेरे तन तामे छवि न समाई—सा उ. १९ । (ख) इकटक नैन टरें नहिं छबि की अधिकाई—पृ. ३१८ । (३) कुशलता, चतुरता । उ.—जब लौं एक दुहौगे तब लौं चारि दुहौगे, नद दुहाई । झूठहि करत दुहाई प्रातहि देखहिगे तुम्हरी अधिकाई—६६८ ।

वि —अधिक, विशेष, बहुत । उ —(क) यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढि पढे हौ यही—२००८ । (ख) सोवत महा मनो सुपने सखि अवधि निधन निधि पाई ।··· · – । जो जागौं तो कहा उठि देखौं विकल भई अधिकाई—२७८४ ।

अधिकाए—क्रि अ [हिं अधिकाना] अधिक किया, बढाया, वृद्धि की । उ—सूरदास-प्रभु-पान परसि नित, काम-बेलि अधिकाए—६६१ ।

अधिकात—क्रि. अ. [हिं. अधिकाना] अधिक होता है, वृद्धि पाता है। उ—सारँग सुत छवि बिन नथुनी-रस बिदु बिना अधिकात—सा. ५२।

अधिकानी—क्रि० अ० [सं० अधिक, हिं० अधिकाना] बढ़ी, अधिक हुई, वृद्धि पाई। उ०—(क) महा दुष्ट लै उड्यो गोपालहिं, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी। चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी—१०-७८। (ख) देखत मूर अगिन अधिकानी, नभ लौं पहुँची झार—५९३।

अधिकार—संज्ञा पु० [सं०] (१) कार्यभार प्रभुत्व, आधिपत्य। (२) स्वत्व, हक। (३) दावा, कब्जा। (४) क्षमता, सामर्थ्य। (५) योग्यता ज्ञान।

अधिकारिनि—संज्ञा पु० बहु० [सं० अधिकारी + नि (प्रत्य०)] योग्य या उपयुक्त व्यक्ति। उ०-धर्म-कर्म-अधिकारिन सौं कछु नाहिन तुम्हरो काज। भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत-समाज—१-२१५।

अधिकारी—संज्ञा पु० [सं० अधिकारिन हिं० अधिकार] (१) प्रभु, स्वामी। उ०—(क) दीनदयाल अधार सबनि के, परम सुजान अखिल अधिकारी—१-२१२। (ख) कान्ह अचगरयौ देत लेहु सब आँगनवारी। कापहि मागत दान भए कबते अधिकारी—१११०। (२) योग्यता रखनेवाला, उपयुक्त पात्र। उ०—(क) ऊधो कोउ नाहिन अधिकारी। लैं न जाहु यह जोग आपनो कत तुम होत दुखारी—३२९१।

संज्ञा स्त्री०—अधिकारी की ठसक या ऐंठ, गर्व। उ०—जब जान्यो ब्रज देव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी। व्याकुल भयौ डर्‌यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी—१०६६।

वि०—(१) लिप्त, वशीभूत। उ०—मैं तोहिं सत्य कहौं दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी। बिदुर हमारौ प्रानपियारौ, तू विषया-अधिकारी—१-२४४ (२) अधिक। उ०—लोचन ललित कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी—१०९१।

अधिकी—वि० [सं० अधिक] अधिक, ज्यादा, बहुत। उ०—हम तुम जाति-पाँति के एकै, कहा भयौ अधिकी द्वै गैया—७३५।

अधिकौ—वि० [सं० अधिक] अधिक-अधिक। उ०—जेंवत रुचि अधिकौ अधिकैया—२३२१।

अधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी, राजा। उ०—हमरे तौ गोपतिसुत अधिपति बनिता और रतते—सा० उ० ३४।

अधिष्ठाता—संज्ञा पु० [सं०]। (१) अध्यक्ष, प्रधान, नियंता। (२) प्रकृति को जड़ से चेतनावस्था प्राप्त करानेवाला, ईश्वर।

अधीन—वि० [सं०] (१) आश्रित वशीभूत। (२) विवश, लाचार, दीन। उ०—अब हौं माया हाथ बिकानौ। ··· । हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाही लपटानौ। याही करत अधीन भयौ हौं निंदा अति न अघानौ—१७४।

संज्ञा पु०—दास, सेवक।

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परवशता, परतन्त्रता, आज्ञाकारिता। उ०—पीछे ललिता आगे स्यामा प्यारी तो आगे पिय मारग फूल बिछावत जात ···। सूरदास-प्रभु की ऐसी अधीनता देखत मेरे नैन सिरात—२०६८।

अधीनना—क्रि० अ० [सं० अधीन + ना (प्रत्य०)] अधीन होना।

अधीनी क्रि० अ० स्त्री० [हिं० अधीनना] अधीन हुई, वश मे हो गई।

अधीने—वि० [सं० अधीन] परवश, आश्रित, वशीभूत। उ०—आयु बँधाए पुनि लै सौंपी हरि-रस रति के लीने। ज्यौं डोरे बस गुड़ी देखियत डोलत संग अधीने—पृ० ३३५।

अधीन्यौ—वि० [सं० अधीन] आश्रित, आज्ञाकारी, दबैल, वशीभूत। उ०—हरि तुम बलि कौं छलि कहा लीन्यौ। बाँधन गए, बँधाए आपनु, कौन सयानप कीन्यौ ? लए लकुटिया द्वारै ठाढ़े, मन अति रहत अधीन्यौ—१-१५।

अधीन्ही—वि० [सं० अधीन] आश्रित, वशीभूत, आज्ञाकारी। उ०—जा दिन ते मुरली कर लीन्ही। · । तब ही ते तनु सुधि बिसराई निसि दिन रहति गोपाल अधीन्ही—२३३५।

अधीर—वि० पु० [सं०] धैर्यरहित, बेचैन, व्याकुल। उ०—(क) जोरी मारि भजत उतही कौं, जात जमुन कैं तीर। इक धावत पाछैं उनहीं के पावत नहीं अधीर—५३४। (ख) नैन सारग सैन मोतन करी जानि अधीर—सा० ४४।

अधीरज—संज्ञा पुं० [सं० + अधैर्य] (१) अधीरता, व्याकुलता, उद्विग्नता। (२) उतावलापन।

अधूरन—वि० [हिं० अधूरा] अपूर्ण खंडित, अधकचरा, अकुशल, अकेला। उ०—मन वाचा कर्मना एक दोउ एकौ पल न बिसारत। जैसे मीन नीर नहिं त्यागत ए खंडित ए पूरन। सूर स्याम स्यामा दोउ देखौ इत उत कोऊ न अधूरन—पृ० ३१५।

अधूरे—वि० [हिं अधूरा] अपूर्ण, असमाप्त।

अधोमुख—[सं.] (१) नीचा मुँह किए हुए मुँह लटकाए हुए। उ—गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिश्राम-१-५७। (२) औंधा, उलटा, मुँह के बल।

अधोरध—क्रि. वि [सं. अधोर्ध] ऊपर नीचे।

अनंग—संज्ञा पु. [सं] कामदेव।

वि.—बिना देह का शरीररहित।

अनंगना—क्रि. अ. [सं] बेसुध होना सुधबुध भुलाना।

अनंगवती—वि. स्त्री. [सं] कामवती, कामिनी।

अनंगी—वि. [सं. अनंगित] अंगरहित, बिना देह का, अशरीर।

संज्ञा पु. (१) परमेश्वर। (२) कामदेव। उ—सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी १-२१।

अनंत—वि [सं] (१) असीम, अपार। (२) असंख्य, अनेक। उ—एहि थर बनी क्रीडा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई—१-६।

अनंतनि—वि [सं अनंत + हिं नि (प्रत्य.)] असंख्य अनेकानेक। उ—फिर-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौं अब सुख सरन परयो—१-१५६।

अनंद, अनँद—संज्ञा पु [सं. आनंद] आनंद, हर्ष, प्रसन्नता। उ.—(क) चौक चंदन लीपिकै, धरि आरती सँजोइ। कहति घोषकुमारि, ऐसौ अनँद जो नित होइ—१०-२६। (ख) विविध बिलास अनंद रसिक सुख सूरस्याम तेरे गुन गावति—सा. उ. १३ (ग) यह छबि देखि भयो अनंद अति आपु आपुनैं ऊपर वारी-सा ९८।

वि. आनंदित, प्रसन्न, हर्षयुक्त। उ.—बोल न बोलिए ब्रजचंद। कौन है सतोष है सब मिलि, जानि आप अनंद-सा ५६।

अनंदना—क्रि. अ. [सं. आनंद] आनंदित होना, प्रसन्न होना।

अनंदित—वि. [सं. आनंदित] हर्षित, मुदित, सुखी। उ—कह्यौ जुधिष्ठिर सेवा करत। तातैं बहुत अनंदित रहत—१-२८४।

अनंभ—वि. [सं. अन् = नहीं + अंह = पाप = विघ्न = बाधा] निर्विघ्न बाधारहित।

अन—संज्ञा पुं. [सं. अन्न] (१) खाद्य पदार्थ। उ.—जैसे बने गिरिराज जू तैसो अन को कोट। मगन भए पूजा करैं नर नारी बड छोट—९११। (२) अनाज।

क्रि. वि. [सं. अन] बिना, बगैर।

वि [सं० अन्य] दूसरा, और।

अनईस—संज्ञा पु. [हिं. अनीस] वह जिसका ईश न हो, परमात्मा, कृष्ण। उ.—दधिसुत बाहन मेखला लेके बैठि अनईस गनौरी—सा. उ ५२।

अनउतर—वि. [सं. अनुत्तर] निरुत्तर। उ.—सुनि सखी सूर सरबस हरह्यौ साँवरै, अनउतर महरि कैं द्वार ठाढो—१०-३०७।

अनऋतु—संज्ञा पु [सं अन + ऋतु] (१) अनुपयुक्त ऋतु, अकाल, असमय। उ.—जातैं परयौ स्यामघन नाउँ। इतने निठुर और नहिं काऊ कवि गावत उपमान। चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत—पृ० ३३०। (२) ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकान—क्रि स. [सं. आकर्ण, प्रा. आकण्ण, हिं. अकनना, अनकना] (१) सुनना। (२) चुपचाप या छिपकर सुनना।

अनकनि—क्रि स. [सं आकर्ण, प्रा. आकण्ण हिं अकनना, अकनना (१) सुनकर। (२) छिपे-छिपे या चुपचाप सुनकर।

मुहा.—अनकनि दिए—चुप रहकर, चुपचाप सुन कर। उ.—सूरदास प्रभु त्रिय मिलि नैन प्रान सुख भयो चितए कछखिअनि अनकनि दिए—२०६९।

अनकही—वि. [स. अन = नही + कथ = कहना, हि. अन-कहा] बिना कही हुई, अकथित ।

मुहा.—अनकही दे—अवाक् रहकर, चुप होकर । उ.—मो मन उनही को भयौ । परयौ प्रभु उनके प्रेमकोस मे तुमहूँ बिसरि गयौ ।... । सूर अनकही दै गोपिन सौ स्रवनि मूँदि उठि धायौ—३४८८ ।

अनख—सज्ञा पु [स.अन् = बुरा + अक्ष = आँख, प्रा अनक्ख] (१) खीझ, झुँझलाहट, क्रोध । उ —(क) मृगनैनी तू अजन दे ।·· ।नैन निरखि अँग अग निरखियौ अनख गिया जु तजै—२२५४ । (ख) घनि घनि अनख उरहनो घनि घनि घनि माखन घनि मोहन खाए- २८४ । (२) दुख, ग्लानि खिन्नता । उ —कर कंकन दरपन लै देखो इहि अति, अनख मरी । क्यो जीवै सुयोग सुनि सूरज बिरहिनि बिरह भरी—३२०० । (३) ईर्ष्या, द्वेष, डाह । (४) झझट, अनरीति । (५) डिठौना ।

वि —(१) बुरा, अप्रिय । उ —हित की कहे अनख को लागति है ममुझहु भले सयानी—२२७५ । (२) रुष्ट, खीझी हुई । झुझलाई हुई । उ —वेगि चलिए अनख जहँ तुम इहाँ उह वहाँ जरति है—२२५९ ।

अनखना—क्रि अ [हि अनख] क्रोध करना, झुझलाना, खीझना ।

अनखाइ—क्रि अ [हि अनख] क्रोध करके, रुष्ट होकर । उ —गुन अवगुन की समुझ न सका, परि आई यह टेव । अव अनखाइ कहौं, पर अपनै राखौ बाँधि-विचारि । सूर स्याम के पालनहारैं आवति हैं नित गारि—१-१५० ।

अनखाऊँ—क्रि स॰ [हि॰ अनख, अनखाना] अप्रसन्न करूँ, खिझाऊँ । उ —उठत सभा दिन मधि, सैना-पति भीर देखि, फिरि आऊँ—न्हात-खात मुख करत साहिवी, कैसे करि अनखाऊँ—९-१७२ ।

अनखात—क्रि अ [हि अनखना] खीझती है, झुंझलाती है । उ.(क) जब लगि परत निमेष अतरा जुग समान पल जात । सूरदास वह रसिक राधिका निमिष पर अति अनखात—१३४७ । (ख) सूर प्रभु दासी लोभाने व्रज बधू अनखात—२६८० ।

अनखाती—क्रि. अ. स्त्री. [हि. अनखना] क्रोध करती हैं, खीझती हैं, झुँझलाती हैं । उ.—ऊधौ जब व्रज पहुँचे आइ । · ··· ··।गोपनि गृह-व्योहार बिसारे मुख सम्मुख मुख पाइ । पलक ओट (ओट) निमि पर अनखाती यह दुख कहा समाइ—३४४४ ।

अनखाना—क्रि अ [हि. अनखना] क्रोध करना, रिसाना, झुँझलाना, खीझना ।

क्रि स —अप्रसन्न करना, खिझाना ।

अनखानी—क्रि अ स्त्री. [हि. अनखना] झुँझलाई, रुष्ट हुई । उ. —लाल कुँवर मेरौ कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर । · ··।सूरदास जसुदा अनखानी यह जीवनधन मोर—१०-३१० ।

अनखावत—क्रि स. [हि. अनखाना] खिझाते हो, अप्रसन्न करते हो । उ.—काहे को हो बात बनावत । ··· ·· । वा देखत हमको तुम मिलिहौ काहे को ताको अनखावत—१८७० ।

अनखाहट—सज्ञा स्त्री [हि. अनखना + आहट (प्रत्य.)] अनखने या क्रोध दिखाने की क्रिया, अनख ।

अनखी—क्रि अ. [हि. अनखना] झुँझलाई, खीझी, रिसाई । उ —हम अनखी या बात को लेत दान को नाउँ—११४१ ।

वि. स्त्री [हि अनख] क्रोधी, जल्दी खीझने-वाली ।

अनखुला—वि [हि. अन (उप) + खुलना] (१) बद । (२) जिसका कारण प्रकट न हो ।

अनखैयत—क्रि स. [हि अनख, अनखाना] अप्रसन्न करती (है) खिझाती (है) उ.—मेरो बिलग मानति यह जानति या बातन मैं कछु पैयत है । सूर स्याम प्यारे न बूझिये यह मोको नहि भावै, काहे को अन-खैयत है—२१४६ ।

अनखौही—वि. [हि अनख] (१) क्रोधित, रुष्ट । (२) चिड़चिड़ी । (३) अनुचित, बुरी । उ —कबहूँ मोको कछु लगावति कबहूँ कहति जनु जाहु कही । सूरदास बातै अनखौही नाहिन मोपै जात सही—१२४८ । (४) क्रोध दिलानेवाली ।

अनंगत—क्रि अ. [स. अनग] शरीर की सुधि नहीं रख पाता, बेसुध हो जाता है, सुध-बुझ भुला देता है,

विदेह हो जाता है। उ.—जाको निरखि अनग अनगत ताहि अनग बढावै। सूर स्याम प्यारी छबि निरखत आपुहि धन्य कहावै—८७५।

अनग—सज्ञा पु [स अनग] कामदेव। उ —पखीपति सवही सकुचाने चातक अनग मर्‌यौ—२८९५।

अनगन—वि [स. अन्+गणन] अगणित, बहुत। उ —नीकैं गाइ गुपालहिँ मन रे। जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे—१–६६

अनगढ़—वि. [स० अन=नही+हि गढना] (१) बिना गढा हुआ। (२) जिसे किसी ने बनाया न हो, स्वयंभू। उ.—ऊधौ राखिये यह बात। कहत हौ अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात–३२९२।

अनगवना—क्रि. अ हिं अन्+अगवना=आगे होना] विलब करना।

अनगाना—क्रि अ. [हिं अन्+अगवना=आगे बढना] (१) विलंब करना देर करना। (२) टालमटोल करना।

अनगिने—वि. [स अन्+गणन] अगणित, बहुत। उ —हंस उज्ज्वल पख निर्मल, अग मलि मलि न्हाहिं। मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिं—१–३३८।

अनघ—वि. [स] (१) निर्दोष। (२) पवित्र। सज्ञा पु —पुण्य।

अनघरी—सज्ञा स्त्री. [स. अन्=विरुद्ध+घरी=घडी] कुसमय।

अनघेरो–वि. [स. अन+हिं घेरना] बिना बुलाया हुआ, अनिमत्रित, अनाहूत।

अनघोर—सज्ञा पु [सं घोर] अंधेर, अत्याचार।

अनचाहा—वि. [स. अन्=नही+हि चाहना] अप्रिय, अनिच्छित।

अनचाखा—वि. [हि. अन् (उप.)+चखना] बिना खाया हुआ।

अनचाहत—वि [स अन्=नही+च हना] जो न चाहे, जो प्रेम न करे।

अनजान—वि. [स अन्+हिं जानना] (१) अज्ञानी, नासमझ। (२) अपरिचित, अज्ञात।

क्रि वि अज्ञानतावश नासमझी के कारण। उ —डगरि गए अनजान ही गह्यो जाइ बन घाट—१००६।

अनजानत—क्रि वि [स. अन्+हिं. जानना (अनजान)] अनजाने मे, बिना जाने ही, अज्ञानतावश, उ —(क) धीर-धीर कहि कान्ह असुर यह, कदर नाही। अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माही—४३१। (ख) अनजानत अपराध किए प्रभु राखि सरन मोहिं लेहु—५५८। (ग) व्याकुल भयौ डर्‌यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी—१०६८।

अनजाने-अनजानैं—क्रि. वि [स अन्+हिं. जानना=अनजान] अज्ञानतावश, नादानी मे, नासमझी के कारण। उ.—अनजाने मैं करी बहुत तुमसौं बरियाई। ये मेरे अपराध छमहुँ, त्रिभुवन के राई—४९२।

अनट—सज्ञा पु [स अनृत=अत्याचार] उपद्रव, अन्याय, अत्याचार।

अनडीठ—वि [स अन्=नहीं+स दृष्ट, प्रा. डिट्ठ, हि. डीठ] अनदेखा, बिना देखा हुआ।

अनत—वि [स. अ=नही+नत=झुका हुआ] न झुका हुआ, सीधा।

क्रि. वि [स अन्यत्र, प्रा अन्नत्त] और कहीं, दूसरी जगह, अन्य स्थान पर। उ.—(क) हरि चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची–१-१८। (ख) जोग–जज्ञ–जप–तप नहिं कीन्हौ, वेद बिमल नहिं भाख्यौ। अति रस लुब्ध स्वान जूठनि ज्यो, अनत नही चित राख्यौ—१–१११। (ग) अतकाल तुम्हरै सुमिरन गति, अनत कहूँ नहि दाउँ–१-१६४। (घ) मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै—१–१६८। (ङ) राखियै दृग मद्ध दीजै अनत नाही जान–सा १०७।

अनतै—क्रि. वि [स. अन्यत्र, प्रा, अन्नत्त, हिं. अनत] दूसरी जगह को, अन्य स्थान के लिए, और कहीं। उ.–(क) मुरली मधुर बजावहु मुख ते रुख जनि अनतै फेरौ सा. ८। (ख) जाके गृह मैं प्रतिमा होई। तिन तजि पूजै अनतै सोइ—१२३।

अनदेखा—वि [सं अन् = नहीं + देखना] बिना देखा हुआ।

अनदेखे—क्रि. वि [हिं अनदेखा] बिना देखे हुए ही, अनजान मे ही। उ.-(क) कहहिं भूख औ नींद जीवन हौं जानत नाही। अनदेखे वे नैन लगे लोचन पथ-वाही—१० उ ८। (ख) सुनहु मधुप अपने इन नैनन अनदेखे बलवीर। घर-आँगन न सुहात रैनि दिन बिसरे भोजन-नीर-३१३७।

अनदोषे—वि. [स. अन + दोप] निर्दोषी, निरपराधी। उ.—इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फटे जु गँवारि। अनदोषे को दोष लगावति, दई देइगो टारि—१०-२९२।

अनन्य—वि [स.] एकनिष्ठ, एक मे ही लीन। उ-(क) भक्त अनन्य कछू नहिं माँगै। तातै मोहिं सकुच अति लागै—३ १३। (ख) और न मेरी इच्छा काइ। भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ—७-२। (ग) मधुकर कहि कैसे मन मानै। जिनके एक अनन्य व्रत सूझै क्यौ दूजौ उर आनै—३१३६।

अनप्रासन—सज्ञा पु. [स. अन्नप्राशन] बच्चों को पहले-पहल अन्न चटाने का सस्कार चटावन, पसनी, पेहनी। उ —कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट् मास गए। नद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्राशन जोग भए—१०८८।

अनफाँस-सज्ञा पु [हिं. अन् + फाँस = पाश]मोक्ष, मुक्ति।

अनबन—वि [स अन् = नहीं + बनना] भिन्न-भिन्न, अनेक, विविध। उ.—द्रुम फूले बन अनबन भाँती।

अनबोली—वि स्त्री. [स अन् = नहीं + हिं बोलना, पु अनबोला] चुप या मौन रहने वाली। उ.-(क) हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन। सूर-स्याम राधिका मिलैं बिनु कहा लगे दुख सैन—७४९। (ख) अनबोली क्यों न रहै री आली तू आई मोसों बनि बनावन—२२०४।

अनबोले—वि [सं अन् = नहीं + हिं बोलना] न बोलने वाला, चुप, मौन। उ —(क) चिबुक उठाय कह्यौ अब देखो अजहुँ रहति अनबोले – १९०९। (ख)जो तुम हमैं जिवायौ चाहत अनबोले होइ रहिए-३०६३।

अनभल—सज्ञा पु [स. अन् = नहीं + हिं. भला] बुराई, हानि। उ.—सूर अनभल आन को सुनत वृक्ष बैरि बुलाय—सा. उ.—४५।

अनभली—वि. स्त्री. [स. अन् = नहीं + हिं. भली] बुरी, हेय निंदित। उ.—सूर प्रभु को मिली भेंट भली अनभली चून हरदी रग देह छाही—१७८८।

अनभाया—वि. [स अन् + हिं. भाना = अच्छा लगना] जो न भावे अप्रिय।

अनभावत—वि. [स. अन् + हिं भावना = अनभावना, अनभाया] जो अच्छा न लगे, जो न रुचे। उ — खोलि किवार पैठि मदिर मैं दूध दही सब सखनि खवायौ। ऊखल चढि सीकैं को लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ—१०-३३१।

अनभो -सज्ञा पु [स अन् = नहीं + भव = होना]अचंभा, अनहोनी बात।

वि.—अपूर्व, अद्भुत, अलौकिक। उ.—तुम घट ही मो स्याम बताए। ...। मोहन वदन त्रिलोकि मान रुचि हँसि हरि कठ लगाये। हम मतिहीन अजान अल्पमति तुम अनभो पद ल्याए—३२०१।

अनमद—वि [स अन् = नहीं + मद] गर्वरहित।

अनमना—वि. [स. अन्यमनस्क] (१) उदास, खिन्न। (२) अस्वस्थ।

अनमनी—वि. स्त्री. [स. अन्यमनस्क, हिं. अनमना (पु)] उदास खिन्न। उ —मैं तुम्हें हँसत-खेलत छाँडि गई, अब न्यारे अनवाले रहे दोऊ। इत तुम रुखे ह्वै रहे गिरिधर उत अनमनी अवल उर माई मुख जब लगाइ रही ओऊ—२२४०।

अनमने—वि. [स अन्यमनस्क, हिं अनमना] उदास, खिन्न। उ मेरे इन नैन इते करे। ·· । घरे न धीर अनमने रहत बन सो हठ करनि परे पृ ३३१।

अनमनै—वि [स अन्यमनस्क, हिं. अनमना] खिन्न, उदास, सुस्त उचटे चित का। उ —लाल अनमनै कत होत हो तुम देखो धौं कैसे कैसे करि ल्याइ हौं—२२०९।

अनमाया—वि [हिं अन (उप) + मापना = नापना] जो नापा न जा सके, जो न समावे।

अनमारग—संज्ञा पु. [सं. अन् = बुरा + मार्ग] (१) कुमार्ग, बुरी राह। (२) दुराचार, अधर्म, पाप। उ.—प्रक्रम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२९।

अनमिल—वि. [सं. अन = नहीं + हिं. मिलना] (१) बेमेल, बेजोड, असंबद्ध। (२) पृथक्, भिन्न, निर्लिप्त।

अनमिलउक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. अन् = नहीं + मिल = मिलना और उक्ति] अक्रमातिशयोक्ति अलंकार जिसमें कारण के साथ ही कार्य का होना बताया जाता है। उ.—गिरिजापति-पितु-पितु-पितु ही ते सोगुन सो दरसावै। ससिसुत वेद-पिता की पुत्री आज कहा चित भावै। सूरजसुत माता सुतोत की अ पुन आदि ढहावै। सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा० १५।

अनमिलती—वि. स्त्री. [सं. अन = नहीं + हिं. मिलना पु. अनमिलता] (१) बेमेल, बेजोड़, बेतुकी, अनुचित। उ.—ये री मदमत ग्वालि फिरति जोवन मदमाती। गोरस बेचनहारि गूजरी अति इतराती। अनमिलती बातैं कहति सुनै पैहै तेरो नाह। कहँ मोहन कहँ तू रही कर्यहिं गहो तेरी बाँह—१०६५। (२) अप्राप्य, अलभ्य, अदृश्य।

अनमेष—वि. [सं. अनिमेष] स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ। उ०—अनमेष दृग दिए देखे ही मुखमंडली वर वारि—२२१६।

अनमोल—वि [सं. अन् = नहीं + हिं. मोल] (१) अमूल्य, मूल्यवान। (२) सुन्दर।

अनमोलना—क्रि स [सं. उन्मीलन] आँख खोलना।

अनय—संज्ञा [पु सं] (१) अमंगल, दुर्भाग्य। (२) अनीति, अन्याय।

अनयास—क्रि. वि. [सं. अनायास] बिना प्रयास या परिश्रम, अचानक, एकाएक। उ—(क) अद्भुत राम नाम के अंक · ·। अंधकार अज्ञान हरन को रवि ससि जुगल-प्रकास। बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास—१-९०। (ख) घर ही बैठे दोउ दास। ऋधि सिद्धि मुक्ति अभयपद दायक आइ मिले प्रभु हरि अनयास—१० उ०—१३५।

अनरँग—वि. [सं. अन् = नहीं + रंग] रंगरहित, रंगहीन, दूसरे रंग का। उ०—पेम, हरी, रातो अरु पियरो रंग लेत है धोई। कारो अपनी रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहूँ न धोई—१-६३।

अनरना—क्रि. स [सं. अनादर] अनादर करना।

अनरस—संज्ञा पु [सं. अन् = नहीं + रस] (१) रसहीनता, शुष्कता। (२) कोप, मान। (३) मनोमालिन्य, अनबन, बुराई। (४) दुख, उदासी उत्साहहीनता। उ०—लीन्हे पुहुप पराग पवन कर क्रीडत चहुँ दिसि धाइ। रस अनरस संयोग बिरहिनी भरि छाँडति मन भाइ—२३९०।

अनरसा—वि [सं अन् = नहीं = रस] अनमना, माँदा, बीमार।

अनराता—संज्ञा स्त्री [सं अन् = नहीं + रक्त] बिना रँगा हुआ सादा।

अनरीति—संज्ञा स्त्री [सं अन् = बुरी + रीति] (१) कुरीति, कुचाल कुप्रथा। (२) अनुचित व्यवहार, अत्याचार। उ०—इतनी कहत बिभीषन बोल्यो बंधू पाँय परौं। यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि अब नई कहा करौ—९-९८।

अनरुच—वि [हिं अन् (उप) + रुचि] जो पसंद न हो, अरुचिकर।

अनरुचि—संज्ञा [सं. अन् = नहीं + रुचि] (१) अरुचि, अनिच्छा। (२) भोजन अच्छा न लगने की बीमारी। उ०—मोहन काहैं न उगिलो माटी। बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी—१०-२५४।

अनरूप—वि [सं. अन् = नहीं = बुरा + रूप] (१) कुरूप। (२) असमान, अतुल्य।

अनरै—क्रि. स [सं. अनादर, हिं. अनरना] अनादर या अपमान करता है। उ०—मधुकर मन सुनि जोग डरै। ·· । और सुमन जो अमित सुगंधित सीतल रुचि जो करै। क्यों तुम कोकहिं बनै सरै औ और सबै निदरै—३३११।

अनर्थ—संज्ञा पु [सं] उपद्रव, उत्पात, अनिष्ट, बिगाड़।

अनल—संज्ञा पु [सं.] अग्नि, आग।

अनलहते—वि. [हिं. अन् + लहना] जो उपयुक्त न हो, जिन पर विश्वाम न किया जा सके, अनुचित। उ०—दिन प्रति सवै उरहने के मिस आवति हैं उठि प्रात। अनलहने अपराध लगावतिं, विकट वनावतिं वात—१०-३२६।

अनलायक—वि [स. अन् = नही + अ० लायक = योग्य] अयोग्य, नालायक। उ०—अनलायक हम हैं की तुम हो कहो न बात उघारि। तुमहू नवल नवल हमहूँ है वडी चतुर हो ग्वारि—२४२०।

अनलेख—वि० [स० अन् = नही + लक्ष्य = देखने योग्य] अदृश्य, अगोचर।

अनवय—सज्ञा पु० [स० अन्वय] वश, कुल।

अनवाद—सज्ञा पु० [स० अन = नही + वाद = वचन] कटुवचन, कुबोल।

अनसंग—सज्ञा पु० [स०, अन्य + सग] दूसरे का साथ। उ०—देख हुलसत हीय सव के निरखि अद्भुत रूप। सूर अनसंग तजत तावत अगोगतिका स्रूप—सा० ३१। (२) 'असंगति' नामक अलकार जिसमे कार्य का होना एक स्थान पर वर्णित हो और कारण का दूसरे स्थान पर, अथवा जो समय किसी कार्य के लिए निश्चित है तव कार्य का होना न दिखाकर अन्य समय दिखाया जाय।

अनसत—वि० [स० अन + सत्य] असत्य, झूठा।

अनसमझ—वि० [स० अन् = नही + समय] नासमझ, अनजान।

अनसमै—क्रि० वि० [स० अन् = नही = समय] असमय, कुसमय, कुअवसर, बेमौका। उ०—ऋतु वसन्त अनसमै अधममति पिक सहाउ जै धावन। प्रीतम संग न जान जुवती रुचि बोलेहु वोल न आवत—३४८६।

अनसहत—वि० [स० अन् = नही + हिं० सहना] जो सहा न जा सके, असहनीय।

अनहद (नाद)—सज्ञा पु० [स० अनाहतनाद] योग का एक साधन जिसमे हाथ के अँगूठो से कान वद करके शब्द विशेष सुनते हैं। उ०—(क) ऊगो राखिए वह बात। कहत हो अनगढिन अनहद सुनन हो चपि जात—३२९२। (ख) हृदय-कमल मैं ज्योति विराजै, अनहद नाद निरन्तर वाजै—३४४२।

अनहित—सज्ञा पु० [स० अन् = नही + हित] (१) अहित, अपकार, बुराई, हानि। उ०—(क) वाल-विनोद वचन हित-अनहित वार-वार मुख भाखैं। मानो वग वगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखैं—१-६०। (ख) चाहत गत्र वैरी वीर। आपनो हित चहत अनहित होत छोडत तीर—सा० २८। (२) अहितचिन्तक, शत्रु।

अनहोता—वि० [स० अन् = नही + हिं० होना] अनहोना असंभव, अचंभे का।

अनहोनी—सज्ञा स्त्री० [स० अन् = नही + हिं० होना] असभव वात, अलौकिक घटना। उ०—किहिं विधि करि कान्हहिं समुझैहौं ? मैं ही भूलि चद दिखरायो, ताहि कहत मैं खैहौं। अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न वात। यह तो आहि खिलौना सवको, खान कहत तिहिं तात—१०-१८९।

अनाकनी—सज्ञा स्त्री [स अनाकर्णन, हिं आनाकानी] सुनी अनसुनी करना टालमटोल।

अनागत—क्रि. वि. [स] अकस्मात, अचानक, सहसा, एकाएक। उ०—सुने हैं स्याम मधुपुरी जात। सकुचति कहि न सकति काहू सौं गुप्त हृदय की वात। सकित वचन अनागत कोऊ कहि जो गई अवरात—२५१९।

वि० (१) अनादि, अजन्मा। उ०—नित्य अखड अनूप अनागत अविगत अनघ अनत। जाको आदि कोउ नहिं जानत कोउ नहिं पावत अत (२) अपूर्व अद्भुत। उ०—(क) देखेहू अनदेखे से लागत। यद्यपि करत रग भरि एकहि एकटक रहे निमिष नहिं त्यागत। इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख उत शोभा गुन अमित अनागत—१६९५। (ख) पल इक माँह पलट सौं लीजत प्रगट प्रीति अनागत। सूरदास स्वामी वसी वस मुरछि निमेष न जागत—२३४२।

सज्ञा पु०—सगीत के अतर्गत ताल का एक भेद।

अनागम—सज्ञा पु० [स०] आगमन का अभाव, न आना।

अनाघात—सज्ञा पु [स] सगीत का वह ताल या विराम जो गायन मे चार मात्राओ के वाद आता है और कभी-कभी सम का काम देता है। उ०—

उपजावत गावत अति सुदर अनाघात के ताल—२३२० ।

अनाचार—सज्ञा पु. [स] (१) निंदित आचरण, दुराचार। (२) कुरीति, कुचाल।

अनाथ—वि. [स] (१) असहाय, अशरण। (२) दीन, दुखी। उ०—(क) परम अनाथ विवेक नैन बिनु, निगम-ऐन क्यों पावै —१ ४८ । (ख) सूरदास अनाथ के हैं सदा राखनहार—सा ११७ ।

अनादि—वि. [स०] जिसका आदि न हो, स्थान और काल से अबद्ध ।

अनाना—क्रि० स० [स० आ नयनम्] मँगाना ।

अनापा—वि [स. अ = नहीं + हि नापना] (१) बिना नापा हुआ । (२) जो नापा न जा सके। असीम ।

अनायास—क्रि वि. [स] बिना प्रयास या परिश्रम, बैठे बिठाए, अकस्मात, सहसा ।

अनारंगिन—सज्ञा पु. [हि नारंगी] (१) नारंगी के रग की वस्तु । (२) नारंगी की तरह लाल ओठ । उ०—कनक सपुट कोकिला रव बिबस ह्वै दे दान । बिकच कज अनारंगिन पर लसित करत पै पान—सा० उ०-५ ।

अनारी—वि. स्त्री. [हि. अनाडी] नासमझ, नादान । उ०—इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अनारी । अपनो दूध छाँडि को पीवै खारे कूप को बारी—३३०० ।

अनावृष्टि—सज्ञा स्त्री [स.] पानी न बरसना, सूखा। उ०—सब यादव मिलि हरि सों इह कह्यो सुफलक सुत जहँ होइ। अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं इह जानत सब कोई—१०—उ०-२७ ।

अनासा—वि [स अ = नहीं + नाश] जिसका नाश न हुआ हो, जो टूटा हुआ न हो । उ०—जग चरजासुत-सुत सम नासा धरे अनासा हार—सा० ३५ ।

अनाहक—क्रि वि [फा. ना + हक = नाहक] वृथा, व्यर्थ, निष्प्रयोजन। उ०—होउ मन, राम-नाम को गाहक। चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक—१-३१० ।

अनाहत—वि. [स] (१) जिस पर आघात न हुआ हो । (२) जिसका गुणन न हुआ हो ।

सज्ञा पु.—योग की एक क्रिया जिसमे हाथ के अगूठो से कान मूँदकर ध्यान करने से शब्द-विशेष सुनते हैं ।

अनाहत बानी—संज्ञा स्त्री. [स. अनाहत + वाणी] आकाश वाणी, देववाणी, गगनगिरा । उ०—समदत भई अनाहत बानी कस कान झनकारा । याकी कोखि औतरै जो सुत करै प्रान-परिहारा ।...... तब बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ पुरुष न तिय बध करई। मोको भई अनाहत बानी तातैं सोच न टरई—१०४ ।

अनाहूत—वि. [स] बिना बुलाया हुआ, अनिमंत्रित ।

अनिंद—वि. [स. अनिंद्य] (१) जो निंदा के योग्य न हो. (२) उत्तम, प्रशंसनीय ।

अनियाई—वि. पु. [स अन्यायिन, हि. अन्यायी] अन्यायी, अनीतिकारी, अंधेर करने वाला । उ०—अरे मधुप लंपट अनियाई यह सदेस कत कहीं कन्हाई—३४०८ ।

अनित्य—वि. [सं.] (१) जो सब दिन न रहे, अस्थायी। (२) नश्वर ।

अनिप—सज्ञा पु. [हि. अनी = सेना + प = पालक = स्वामी] सेनापति ।

अनिमा—सज्ञा स्त्री. [स. अणिमा] अष्टसिद्धियों में पहली जिससे सूक्ष्म रूप धारण करके अदृश्य हो जाते हैं ।

अनिमिष—वि. [स] एकटक दृष्टि से देखने-वाला ।

क्रि वि.—(१) बिना पलक गिराये (२) निरंतर ।

सज्ञा पुं—देवता ।

अनिमेष—वि [सं] स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ ।

क्रि वि —(१) एकटक। (२) निरंतर ।

अनियाउ—सज्ञा पु. [स. अन्याय] अन्याय, अनीति ।

अनियारे—वि. [स. अणि = नोक + हि. आर (प्रत्य) हि अनियारा] नुकीला, कटीला, धारदार, तीक्ष्ण । (क) नैन कमल-दल से अनियारे । दरसत तिन्हैं कटैं दुख भारे—३-१३ । (ख) उ०—ठाढ़ी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए । अति बिसाल चचल अनियारे हरि हाथनि न समाए—६७५ ।

अनियारो, अनियारौ—वि [स. अणि = नोक + हिं. आर (प्रत्य.) हिं. अनियारा] नुकीला, कटीला, तीक्ष्ण, पैना। उ०—(क) रघुपति अपनो प्रन प्रतिपारयो तारयो कोपि प्रबल गढ, रावन टूक टूक करि डारयो। ········ रह्यो मांस को पिंड, प्रान लै गयौ बान अनियारो—९-१५९। (ख) जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम-बान अनियारो—२८४८।

अनिरुद्ध—संज्ञा पु [स.] श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनका विवाह ऊषा से हुआ था।

अनिर्वचनीय—वि. [स.] जिसका वर्णन न हो सके, अकथनीय।

अनिल—संज्ञा पु [स] वायु पवन, हवा।

अनिवार्य—वि [सं.] (१) जो हटे नहीं, अटल। (२) जो अवश्य घटित हो। (३) परम आवश्यक।

अनी—संज्ञा स्त्री [स. अणि = अग्रभाग, नोक] नोक सिरा, कोर। उ०—भौंह कमान समान बान सेना हैं युग नैन अनी।

संज्ञा स्त्री. [स. अनीक = समूह] समूह दल, सेना। उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी। काल-कर्म-गुन ओर अन्त नहिं, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८।

संज्ञा स्त्री [हिं आन = मर्यादा] ग्लानि, खेद।

अनीक—संज्ञा पु. [स] सेना, कटक समूह। उ०—सारंगसुत नीकन मे सोहत मनो अनीक निहार—सा० ३५।

अनीठ—वि [स अनिष्ठ, प्रा अनिट्ठ] (१) अप्रिय अनिच्छित। (२) बुरा, खराब।

अनीतन—वि [स. अ = नहीं + नीतन = नेत्र] अनयन, नेत्रहीन, अंधा। उ०—तमहरसुत गुन आदि अन कवि को मतिवत विचारो। मेरे जान अनीतन इनको कीनो विध गुन वारो—सा० ४०।

अनीति—संज्ञा स्त्री [स०] (१) नीति विरोध, अन्याय। उ०—जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२९। (२) अंधेर, अत्याचार।

अनीस—वि० [स० अनीश, हिं अनीस] (१) अनाथ, असमर्थ। (२) जिसके ऊपर कोई न हो।

संज्ञा पु० (१) विष्णु। जीव, माया।

अनीह—वि० [सं०] इच्छारहित, निस्पृह। उ०—अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०-१७१।

अनु—अव्य० [हिं.] हाँ, ठीक है।

अनुकरण—संज्ञा पु [स] (१) देखादेखी आचरण। (२) पीछे आने वाला व्यक्ति।

अनुकूल—वि० [स०] (१) पक्ष मे रहने वाला, हितकर। (२) प्रसन्न। उ०—मुकुट सिर धारैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं चतुर्भुज स्याम सुन्दरहिं ध्यायौ। भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिं तुरत बर जगत करि राज पद अटल पायौ—४-१०।

क्रि० वि०—ओर तरफ।

अनुकूलना—क्रि० स० [स० अनुकूलन, हिं० अनुकूल] (१) पक्ष मे होना हितकर होना। (२) प्रसन्न होना।

अनुकूली—क्रि० स० [हिं० अनुकूलना (१) प्रसन्न हुई। (२) हितकर हुई।

अनुकूले—वि० [अनुकूल] समान, मिलता-जुलता। उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले। ··· ······। मोते गये कुम्भी के जर लौं ऐले वे निरमूले। सूर स्याम जलरासि परे अब रूप-रंग अनुकूले—पृ० ३३४।

अनुगामी—वि० [स०] (१) पीछे चलने वाला। उ०—दग्भूषन पनपन उठाइ दै नीतन हरि घर हेरत। तनु अनुगामी मनि मैं भंके भीतर मुरुच सकेरत—सा०—३। (२) आज्ञाकारी।

अनुग्रह—संज्ञा पु० [स०] (१) कृपा, दया। (२) अनिष्ट-निवारण।

अनुघातन—संज्ञा पु० [स० अनुघात] नाश, संहार। उ०—कालीदमन केसिकर पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन—९८२।

अनुच—वि० [स० अन् + उच्च] जो श्रेष्ठ या महान न हो। उ०—इहिं विधि उच्च-अनुच्च तन धरि-धरि, देस-विदेस विचरतौ—१-२०३।

अनुचर—संज्ञा पु० [स०] (१) दास, सेवक। (२) सहचर, साथी।

अनुज—वि [स अनु + ज] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। सज्ञा पु०—छोटा भाई।

अनुज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] आज्ञा।

अनुताप—सज्ञा पु० [स] (१) तपन, जलन। (२) दुख, खेद। (३) पछतावा।

अनुत्तर—वि० [सं० अन = नहीं + उत्तर] निरुत्तर, मौन।

अनुदिन—वि० [स०] नित्यप्रति, प्रतिदिन। उ०—सगति रहे साधु की अनुदिन भवदुख दूरि नसावत—२-१७।

अनुनय—सज्ञा पु० [सं०] (१) विनय, प्रार्थना। (२) मनाना।

अनुपम—वि० [स०] उपमा रहित, बेजोड़। उ०—(क) सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई—६१६। (ख) गृह ते चलो गोप-कुमारि। खरक ठाढो देख अदभुत एक अनुपम मार—सा० १४।

अनुप्राशन—सज्ञा पु० [स०] खाना।

अनुभव—सज्ञा पु. [स] जानकारी, परीक्षा-जन्य ज्ञान।

अनुभवति—क्रि. स [स. अनुभव, हिं अनुभवना] अनुभव करती है, समझती है, मानती है। उ.—पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि—१० १०९।

अनुभवना—क्रि. स [स. अनुभव] अनुभव करना।

अनुभवी—वि. [स अनुभविन] अनुभव या जानकारी रखने वाला।

अनुभेद—सज्ञा पु. [उप. अनु + स भेद] भेद, उपभेद। उ.—सखा परस्पर मारि करैं, कोउ कानि न मानै। कौन बडो को छोट, भेद-अनुभेद न जानै—१०-५८९।

अनुमान—सज्ञा पु. [सं] (१) अटकल, अंदाज। उ.—जमुमन देख अपनी कान। वर्ष सर को भयो पूरन अबै ना अनुमान-सा. ११४। (२) विचार, निश्चय, भावना। उ—सूरप्रभु अनमान कीन्हौ, हरौं इनके चीर—७८३। (३) एक अलंकार जिसमे अटकल के आधार पर कोई बात कही जाय। उ.—लै कर गेंद गए हैं खेलन लरिकन संग कन्हाई। यह अनुमान गयौ कालीतट सूर साँवरो माई—सा. १०२।

अनुमानत—क्रि स [स. अनुमान, हिं. अनुमानना] अनुमान करते हैं, सोचते हैं। उ.—यह सपदा कहौ क्यो पचिहै बालसँघाती जानत है। सूरदास जो देते कछु इक कहो कहा अनुमानत है—पृ. ३३०।

अनुमानना—क्रि स. [स अनुमान] अनुमान करना, सोचना।

अनुमानौं—क्रि. स [स अनुमान, हिं. अनुमानना] अनुमान करती हूँ, सोचती-विचारती हूँ। उ०—स्यामहिं मैं कैसे पहिचानौं · · ·। पुनि लोचन ठहराइ निहारति निमिष मेटि वह छबि अनुमानौं। औरे भाव और कछु सोभा कहौ सखी कैसे उर आनौं—१४२९।

अनुमान्यौ—क्रि. स भूत. [स अनुमान, हिं. अनुमानना] अटकल लगाई, अनुमान किया, सोचा, विचारा। उ.—(क) राधा हरि के भावहिं जान्यो। इहै बात कैहौं इन आगे मन ही मन अनुमान्यौ—१५२५। (ख) मधुबन ते चल्यौ तबहिं गोकुल नियरान्यौ। देखत ब्रज लोग स्याम आयौ अनुमान्यो—२९४९।

अनुमान्हो—क्रि स [स. अनुमान हिं अनुमानना] अनुमान किया, सोचा, विचारा। उ.—अब नहिं राखौं उठाइ, बैरी नहिं मान्हो। मारौ गज-रैं ऐंदाइ मनहिं यह अनुमान्हो—२४७५।

अनुरक्त—वि [स.] (१) आदर प्रेमयुक्त, लीन। (२) लीन. उ.—अंबरीष राजा हरि-भक्त। रहे सदा हरि-पद अनुरक्त—९-५।

अनुरत—वि. [स.] लीन आसक्त, अनुरागी। उ०—चरननि चित्त निरतर अनुरत, रसना चरित्र-रसाल—१-१८९।

अनुराग—सज्ञा पु [स.] प्रीति, प्रेम, आसक्ति। उ०—सूरदास अनुराग प्रथम तें विषय बिचार बिचारी—सा० ४०।

अनुरागत—क्रि. स. [स. अनुराग, हिं अनुरागना] आलस होता है, प्रेम करता है, लीन होता है। उ.—स्याम विमुख नर-नारि वृथा सब कैसे मन इनिसौं अनुरागत—११७५। (२) प्रसन्न होता है। उ—लोल पोल झलक कुडल की, यह उपमा कछु लागत।

मानहुँ मकर सुधा-सर क्रीडत, आपु-आपु अनुरागत—६४५ ।

अनुरागति—क्रि. स. स्त्री [स अनुराग, हि. अनुरागना] आसक्त होती है, प्रीति बढाती है । उ —गूँगी बातनि यौं अनुरागति, भँवर गुजरत कमल मों बदहिँ—१०-१०७ ।

अनुरागना—क्रि स. [स. अनुराग] प्रेम करना, आसक्त होना ।

अनुरागि—क्रि. स. [स अनुराग, हि. अनुरागना] सप्रेम, सरुचि, लगन के साथ । उ.—आजु नँद नदन रग भरे । ······ । पुहुप मजरी मुक्तनि माला अँग अनुरागि धरे । रचना सूर रची बृंदावन, आनँद काज करे—६८९ ।

अनुरागिन—वि स्त्री [सं. अनुरागिन, हिं. अनुरागिनी] प्रेम करने वाली, अनुराग रखने वाली । उ.—नँदनंदन बस तेरे री । सुनि राधिका परम बडभागिनि अनुरागिनि हरि केरे री—१६४१ ।

अनुरागी—वि [स. अनुरागिन] (१) अनुराग करने वाला, प्रेमी । (२) श्रद्धा रखने वाला, भक्त । उ.—अविनासी को आगम जान्यो सकल देव अनुरागी—१०-४ ।

अनुरागे—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना] अनुरक्त हुए, आसक्त हुए । उ —(क) लै बसुदेव धँसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे—१०-४ । (ख) नवल गुपाल, नवली राधा, नये प्रेम-रस पागे । अतर बन-बिहार दोउ क्रीडत, आपु आपु अनुरागे—६८६ । (ग) देवलोकि देखत सब कौतुक, बाल-केलि अनुराग—४१६ । (घ) आवत बलराम स्याम सुनत दौरि चली बाम मुकुट झलक पीताम्बर मन मन अनुराग—२९५६ ।

अनुरागै—क्रि स. [स अनुराग, हि अनुरागना] अनुरक्त होता है, प्रीति करता है । उ —त्रिकुटी सग भ्रूभग तराकट नैन नैन लगि लागै । हँसनि प्रकास सुमुख कुडल मिलि चद सूर अनुरागै ३०१८ ।

अनुरागौ—क्रि स [स अनुराग, हि अनुरागना] प्रेम करो प्रीति रखो । उ —ऐसो जानि मोह को त्यागौ । हरिचरनारबिंद अनुरागौ—७-२ ।

अनुराग्यौ—क्रि. स. भूत [सं अनुराग, हि अनुरागना] अनुराग किया, प्रीति की । उ.— (क) करि सकल्प अन्नजल त्याग्यौ । केवल हरि-पद सौं अनुराग्यौ—१-३४१ । (ख) सिव पद-कमल हृदय अनुराग्यौ—४-५ ।

अनुराध—सज्ञा पु [स.] विनय, प्रार्थना, याचना । उ —(क) तुम सन्मुख मैं विमुख तुम्हारो, मैं असाध तुम साध । धन्य-धन्य कहि-कहि जुवतिन को आप करत अनुराध—पृ. ३४३ (१) । (ख) वहै चूक जिय जानि सखी सुन मन लै गए चुराय । । सूर स्याम मन देहि न मेरो पुनि करिहौ अनुरोध—१४६२ ।

अनुराधना—क्रि. स [स. अनुरोध] विनय करना, मनाना, याचना करना ।

अनुराध्यौ—क्रि स [स अनुराध, हि. अनुराधना] आराधना की, याचना की, मनाया, विनय की । उ.—ग्रीव मुतलरी तारि कै अचरा सौं बाँध्यौ । इह बहानो करि लियो हरि मन अनुराध्यौ—१५४१ ।

अनुरूप—वि० [स०] (१) समाप्त, सदृश । (२) योग्य, अनुकूल ।

अनुरोध—सज्ञा पु. [स] (१) रुकावट, बाधा । (२) प्रेरणा, उत्तेजना । (३) आग्रह ।

अनुसंधानना—क्रि. स. [स अनुसधान] (१) खोजना, ढूँढना । (२) सोचना, विचारना ।

अनुसरई—क्रि स [हिं अनुसरना] साथ चल सके, अनुयायी हो सके । उ —नहिं कर लकुटि सुमति सतसगति जिहिं आधार अनुसरई—१-४८ ।

अनुसरत—क्रि स [हि. अनुसरना] (१) पीछे चलता है, साथ चलता है । (२) अनुकरण करता है ।

अनुसरतौ—क्रि स. [हि अनुसरना] अनुकरण करता, नकल करता । उ —पतित उद्धार किए तुम, हौं तिनकौं अनुसरतौ—१-२०३ ।

अनुसरना—क्रि स [स. अनुसरण] (१) पीछे या साथ-साथ चलना । (२) अनुकरण करना ।

अनुसरिए—क्रि स. [हि अनुसरना] अनुसरण कीजिए, अपनाइए । उ.—यहि प्रकार विषमनम तरिए । योग पथ क्रम क्रम अनुसरिए—३३०८ ।

अनुसरिहौं—क्रि स. [हिं. अनुसरना] अनुकूल आचरण करूँगा, (आज्ञा आदि) मानूँगा। उ०—नृपति कह्यो सो करिहौं। तुम्हरी आज्ञा मैं अनुसरिहौं—९-२।

अनुसरी—क्रि. स. स्त्री [हिं. अनुसरना] ग्रहण की, अपनायी। उ०—(क) रिषि कह्यौ बहुत बुरी तैं कीन्हौ। जो यह साप नृपति को दीन्हौ। .. ताकी रच्छा हरि जू करी। हरी अवज्ञा तुम अनुसरी—१-२९०। (ख) तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी—३-७।

अनुसरैं—क्रि. स बहु. [हिं. अनुसरना] अनुकूल आचरण करते हैं। उ०—अजहूँ स्रावग ऐसोहि करैं। ताही को मारग अनुसरैं—५ २।

अनुसरै—क्रि स. [हिं अनुसरना] (१) पीछे पीछे या साथ साथ चलता है। उ०—तुम बिनु प्रभु को ऐसी करै। जो भक्तिन कैं बस अनुसरै—१-२७७। (२) (आज्ञा आदि का) पालन करता है। उ०—राजा सेव भली विधि करै। दपति आयसु सब अनुसरै—१-२८४। (३) अनुकरण करे, नकल करे। उ०—भक्ति-पथ को जो अनुसरै। सो अष्टाग जोग कौं करै—२-२१।

अनुसार—क्रि. वि [स] अनुकूल, सदृश, समान। उ०—सुकदेव कह्यौ जाहि परकार। सूर कह्यौ ताही अनुसार—३-६।

अनुसारना—क्रि स [स. अनुसरण] (१) अनुसरण करना, देखा देखी कार्य करना। (२) आचरण या व्यवहार करना।

अनुसारी-क्रि स. [स. अनुसरण, हिं० अनुसारना] अनुसरण की, अनुकूल क्रिया की।

यौ० रू०। (१) उच्चारी कही। उ०—(क) ऐसी बिधि बिनती अनुसारी—३-१३। (ख) तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी—७-२। (ग) को है सुनत कासो हौ कौन कथा अनुसारी—३२९१। (२) प्रचलित की, आरंभ की। उ०—सूर इन्द्र पूजा अनुसारी। तुरत करी सब भोग सँवारी—१००७।

वि०—अनुसरण करने वाला। उ०—सूरदास सम रूप नाम गुन अरु अनुचर-अनुसारी—१०-१७१।

अनुसाल—सज्ञा पु० [स० अनु+हिं० सालना] वेदना, पीडा। उ०—यहाँ और कासो कहिहौ गरुडगामी। मधु-कैटभ-मथन, मुर भौम केसी भिदन कस-कुल-काल अनुसाल हारी—१० उ०—५०।

अनुसासन—सज्ञा पु० [स अनुशासन] आदेश, आज्ञा। उ०—औरनि कौं जम कै अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं। सुनि मेरी अपराध-अधमई कोऊ निकट न आवैं—१-१९७।

अनुसुया—सज्ञा स्त्री० [स० अनसूया] अत्रि मुनि की स्त्री।

अनुहरण—सज्ञा पु० [स०] अनुसरण, अनुकूल, आचरण।

अनुहरत—वि० [क्रि० स० 'अनुहरना' का कृदन्त रूप] उपयुक्त, योग्य, अनुकूल। उ०—मजु मेचक मृदुल तन अनुहरत भूषन भरनि। मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरयौ अद्भुत फरनि—१०-१०९।

अनुहरना—क्रि० स० [स० अनुसरण] अनुकरण करना, आदर्श पर चलना।

अनुहरिया—वि० [स० अनुहार] समान।

सज्ञा स्त्री०—आकृति।

अनुहार—वि० [स०] एक रूप, समान। उ०—हरि बल सोभित यौं अनुहार। ससि अरु सूर उदै भए मानौ दोऊ एकहिं बार—२५७२।

सज्ञा स्त्री०—(१) भेद, प्रकार। (२) आकृति।

अनुहारक—सज्ञा पु० [स०] अनुसरण करने वाला।

अनुहारना—क्रि० स० [स० अनुहारण] समान करना।

अनुहारि—वि० स्त्री० [स० अनुहार] (१) समान, सदृश तुल्य। उ०—(क) सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहि अनुहारि। मनहुँ अग-विभूति राजति सभु सो मदहारि—१०-१६९। (ख) गिरि समान तन अगम अति पन्नग की अनुहारि—४३१। (ग) रोमावली अनूप विराजति, जमुना की अनुहारि—६३७। (घ) आज घन स्याम की अनुहारि। उनइ आए साँवरे रे सजनी देखि रूप की आरि—२८२९। (ङ) है कोउ वैसो ही अनुहारि। मधुवन तन ते आवत सखी री देखहु नैन निहारि—२९५१। (२) योग्य, उपयुक्त।

संज्ञा स्त्री०—(१) रूप, आकृति, प्रतिच्छवि । उ०—(क) वलि गइ वाल-रूप मुरारि । पाइ पैंजनि रटति रुनझुन, नचावति नँदनारि । ··········। सूर सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि–१०-११८। (ख) सुनहु सखी ते धन्य नारि। जो अपने प्रानवल्लभ की सपनेहु देखति है अनुहारि–२७९५ । (२) रूप, भेद, प्रकार । उ०—बहु मिष्टान्न बहुत विधि भोजन बहु व्यंजन अनुहारि—९९२ ।

अनुहारी—वि०[सं० अनुहारिन्] अनुकरण करने वाला। वि० स्त्री० [सं० अनुहार] समान, सदृश । उ०—(क) मुकुट कुण्डल तनु पीत बसन कोउ गोविंद की अनुहारी—३४४१ । (ख) आजु कोउ स्याम की अनुहारी । आवत उत उमँगे सुन सबही देखि रूप की वारी—२९५७ ।

अनुहारे—क्रि० स० [सं० अनुहारण, हिं० अनुहारना] तुल्य करना, समान करना, उपमा देना । उ०—देखि री हरि के चंचल तारे । कमल मीन को कहा एती छवि खंजनहू न जात अनुहारे—१३३३ ।

अनुहारो—वि० [सं० अनुहार, हिं० अनुहारि (स्त्री०)] समान, सदृश । उ०—गति मराल, केहरि कटि, कदली युगल जंघ अनुहारो—२२०० ।

अनूज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुज्ञा] (१) आज्ञा । (२) एक अलंकार जिसमे दूषित वस्तु पाने की इच्छा उसकी कोई विशेषता देखकर हो । उ०-करत अनूज्ञा भूषन मोको सूर स्याम चित आवै—सा० ६९ ।

अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, अनुष्ट] (१) अनोखा । (२) सुन्दर ।

अनूतर—वि० [सं० अनुत्तर] (१) निरुत्तर, मौन । (२) चुपचाप रहने या मौन धारने वाला ।

अनूप—वि० [सं० अनुपम] (१) जिसकी उपमा न हो, अद्वितीय, बेजोड़ । (२) सुन्दर, अच्छा । उ०—हरि जस बिमल छत्र सिर ऊपर राजत परम अनूप—१-४० ।

संज्ञा पुं०—वह प्रदेश जहाँ जल अधिक हो ।

अनूपम—वि० [सं० अनुपम] अनुपम, बेजोड़ । उ०—(क) स्याम भुजनि की सुंदरताई । चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छवि कही न जाई—६४१ । (ख) अद्भुत एक अनूपम बाग—१६८० ।

अनूपी—वि० [सं० अनुपम, हिं० अनूप] (१) अद्वितीय, अनुपम । (२) सुन्दर । उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोवन-रूप अति अनूपी १३२५ ।

अनृत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिथ्या, असत्य । (२) अन्यथा, विपरीत ।

अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक, असंख्य, अनगिनती ।

अनेग—वि० [सं० अनेक] बहुत, अधिक ।

अनेरी—वि० स्त्री० [सं० अनृत, हिं० पुं० अनेरा] झूठ, व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—कर सों कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाय, आनँद उर नहिं समाइ, बात है अनेरी—१०-२७५ ।

अनेरे—वि० [सं० अनृत, हिं० अनेरा] (१) व्यर्थ, निष्प्रयोजन (२) झूठा, दुष्ट ।

क्रि० वि०—व्यर्थ ।

अनेरो, अनेरौ—वि० [सं० अनृत, हिं० अनेरा] झूठा, अन्यायी, दुष्ट । उ०—(क) रे रे चपल विरूप ढीठ तू बोलत वचन अनेरो–९-१३२ । (ख) कारौ कहि कहि तोहिं खिझावत, बरजत खरौ अनेरौ—१०-२१६ । (ग) अबलों मैं करी कानि, सही दूध-दही हानि, अजहूँ जिय जानि मानि, कान्ह है अनेरौ—१०-२७६ । (घ) अरी ग्वारि मैमत बोलत वचन जो अनेरो । कब हरि बालक भये, गर्भ कब लियो बसेरो—१११४ । (२) निकम्मा दुष्ट । उ०—लोक-वेद कुल कानि मानत अति ही रहत अनेरो–पृ० ३२२ ।

अनेह—संज्ञा पुं [सं अ = नहीं + स्नेह] अप्रीति, विरक्ति ।

अनैस—संज्ञा पुं० [सं० अनिष्ट] बुराई, अहित ।

वि०—बुरा । उ० निकसवी हम कौन मग हो कहै बारी वैस । मोह को यह गर्व सागर भरी आइ अनैस—सा० १७ ।

अनैसना—क्रि अ [सं अनिष्ट, हिं अनैस] बुरा मानना, रूठना, मान करना ।

अनैसा—वि. [सं. अनिष्ट, हिं. अनैस] अप्रिय, अरुचिकर, बुरा ।

अनैसी—वि. स्त्री. [सं अनिष्ट, हिं अनैस] बुरी। उ० तरुनिन की यह प्रकृति अनैसी थोरेहिं बात खिसावै—११५२।

अनैसे—क्रि. वि [स. अनिष्ट, हिं अनैस] बुरे भाव से, बुरी तरह से।

अनैसैं—वि. [हिं. अनैस, अनैसा] जो इष्ट न हो, अप्रिय, बुरा। उ०—जनम सिरानौ ऐसैं ऐसे। कै घर-घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत, कै बैसे। कै कहुँ खान-पान-रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं—१-२९६।

अनैहो—सज्ञा पु. [हिं अनैस] उत्पात, उपद्रव। उ०—जा कारन सुन सुत सुन्दर बर कीन्हौं इती अनैहो (कीन्ही इती अरै)। सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे हैं, हो (माँहि परै)—१०-१९५।

अनोखी—वि. स्त्री. [हिं. पु. अनोखो] अनूठी, निराली, अद्भुत, विलक्षण। उ०—झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई। कचन हार दिएँ नहिं मानति, तुही अनोखी दाई—१०-१६।

अनोखे—वि [हिं. अनोखा] (१) अनूठे, निराले। (२) सुन्दर। उ०—भूषनपति अहारजा फल से मेघ अनोखे दोऊ—सा १०३।

अनोखौ—वि. [हिं. अनोखा] (१) अनूठा, निराला, विलक्षण। उ०—सूर स्याम कौं हटकि न राखौ, तैंही पूत अनोखौ जायौ—१०-३३१। (२) प्रिय, सुन्दर। काकै नहीं अनोखौ ढोटा, किहिं न कठिन करि जायौ। मैं हूँ अपनै औरस पूतैं बहुत दिननि मैं पायौ—१०-३३९।

अनोन्या—सर्व [स अन्योन्य] परस्पर, आपस मे। उ०—दोऊ लगत दुहुन ते सुन्दर भले अनोन्या आज—सा० ४५।

सज्ञा पु.—एक अलंकार जिसमे दो वस्तुओ की क्रिया या गुण की उत्पत्ति पारस्परिक सबंध के कारण हो। उ०—उक्त पक्ति।

अन्न—सज्ञा पु [स.] (१) खाद्य पदार्थ। (२) अनाज, धान्य। (३) पकाया हुआ अन्न। उ०—होनी होउ होउ सो अबहीं यहि ब्रज अन्न न खाऊँ—२७८०।

अन्नकूट—सज्ञा पु—[स.] (१) एक उत्सव जो कार्तिक मास मे दीपावली के दूसरे दिन प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ मनाया जाता है। इसमे अनेक प्रकार के व्यंजनो और फलो से भगवान् का भोग लगाते हैं। उ०—अन्नकूट बिधि करत लोग सब नेम सहित करि पकवान्ह—९१०। (२) अन्न का ढेर। उ०—अन्नकूट जैसो गोवर्धन—१०२५।

अन्यत्र—वि. [स] और जगह, दूसरे स्थान पर। उ०—ता मित्र को परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र—४-१२।

अन्याइ, अन्याई—सज्ञा स्त्री. [सं अन्याय] न्याय विरुद्ध व्यवहार, अनीति। उ.-(क) पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे। पिता एक अवगुन नहिं हेरै—५४। (ख) सेए नाहिं चरन गिरधर के, बहुत करी अन्याई—१-१४७।

वि.—[स अन्यायिन्, हिं अन्यायी] अनुचित कार्य या अनीति करने वाला। उ०—अन्याई को बास नरक मो यह जानत सब कोइ—३४९४।

अन्याय—सज्ञा पु. [स. अन्याय] [वि. अन्यायी] (१) अनीति, न्याय विरुद्ध आचरण। उ०—करत अन्याय न बरजौ कबहूँ अरु माखन की चोरी—२७०८। (२) अधेर, अत्याचार।

अन्यारा—वि० पु० [स० अ=नही+हिं. न्यारा] (१) जो अलग न हो। (२) अनोखा, निराला। (३) खूब, बहुत।

अन्यारी—वि स्त्री. [स. अ=नही+न्यारी] अनोखी, अनूठी, निराली। उ०—अचल चचल फटी कचुकी विलुलित बर कुच सटी उघारी। मानो नव जलदबधु कीनी बिधु निकसी नभ कसली अन्यारी—२३०१।

अन्यास—क्रि. वि. [सं अनायास] (१) बिना परिश्रम। (२) अकस्मात, अचानक, सहसा। उ.—मोको तुम अपराध लगावत वृथा भई अन्यास। झुकत कहा मोपर ब्रजनारी सुनहु न सूरजदास—२९३४।

अन्योन्य—सर्व. [स] परस्पर, आपस मे।

अन्वय—सज्ञा पु. [स] (१) परस्पर संबंध (२) सयोग, मेल। (३) कार्य-कारण का सबंध।

अन्हवाइ—क्रि स. [हिं. नहाना] नहलाकर, स्नान

करा के। उ.—फूली फिरत जसोदा तन-मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल—१०-९४ ।

अन्हवाएँ—क्रि स सवि [हिं नहाना, नहलाना] स्नान कराने, नहलाने से । उ०—गज कौं कहा सरित अन्हवाएँ, बहुरि धरै वह ढग—१-३३२ ।

अन्हवाऊँ—क्रि स [हिं. नहाना] स्नान कराऊँ, नहलाऊँ। उ०—मोहन, आउ तुम्हैं अन्हवाऊँ—१०-१८५ ।

अन्हवायौ—क्रि. स. भूत. [हिं० नहाना] स्नान कराया, नहलाया । उ०—नद करत पूजा, हरि देखत । घण्ट बजाइ, देव अन्हवायौ, दल चन्दन लै भेंटत—१०-२६१ ।

अन्हवावति—क्रि स स्त्री. [हिं नहाना] नहलाती है। उ०—यह कहि जननी दुहुँनि उर लावति । सुमना, सत अंग परसि, तरनि-जल, वलि-वलि गई, कहि कहि अन्हवावति—५१४ ।

अन्हवावन—क्रि. स. [हिं नहलाना] स्नान कराने को, नहलाने को । उ०-जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री—१०-१८६ ।

अन्हवावहु—क्रि स [हिं. नहाना] नहलाओ, स्नान कराओ। उ०—विप्रनि कह्यौ याहि अन्हवावहु । याकैं अग सुगव लगावहु—५-३ ।

अन्हाइ—क्रि अ. [हिं नहाना] स्नान करता है नहाता है। उ०—जबै आवौ साधु सगति, कछुक मन ठहराइ। ज्यौं गयद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ—१४५ ।

अन्हाए—क्रि. अ [हिं नहाना] नहाने, स्नान करने । उ०—हम लकेस-दूत प्रतिहारी, समुद-तीर कौं जात अन्हाए—९-१२० ।

अन्हात—क्रि अ [हिं नहाना] स्नान करते हुए, नहाते हुए ।

मुहा.—अन्हात-खात—नहाते-खाते । आशय यह कि दैनिक जीवन सुखमय हो, चिन्ता उनके पास न फटकै । उ०—कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत खात अन्हात—१० २५७ ।

अन्हान—क्रि अ [हिं. नहाना] नहाने, स्नान करने। उ०—यह कहिकै रिषि गए अन्हान - ९-५ ।

अन्हावैं—क्रि. स. [हिं नहाना] स्नान करे, नहाए। उ०—वेद धर्म तजि कैं न अन्हावैं । प्रजा सकल कौं यहै सिखावैं—९-२ ।

अन्हावहु—क्रि अ. [हिं स्नान, नहान] नहलाओ, स्नान कराओ। उ०—कान्ह कह्यौ, गिरि दूध अन्हावहु—१०२३ ।

अन्हैवौ, अन्हैबौ—क्रि. अ. [हिं नहाना] नहावें। उ०—(क) कैसे बसन उतारि धरैं हम कैसे जलहिं समैबौ। नद-नदन हमको देखैंगे, कैसे करि जु अन्हैबौ—७७९। (ख) नद-नदन हमको देखैंगे, कैसे करि जो अन्हैबौ—८१८ ।

अपंग—वि [स. अपाग, हिं नाग] (१) अंगहीन। (२) काम करने मे अशक्त असमर्थ । उ०—सुभट भए डोलत ए नैन ।·.. आपुन लोभ अस्त्र लै धावत पलक कवच नहिं अग। हाव भाव रस लरत कटाक्षनि भ्रकुटी धनुष अपग—पृ० ३२६ । (३) लँगडा ।

अपकर्म—सज्ञा पु [स अप=बुरा + कर्म] बुरा काम, कुकर्म, पाप । उ०—पतिकौ धम इहै प्रतिपालै, जुवती सेवा ही को धर्म । जुवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म—पृ० ३४१ (१) ।

अपकाजी—वि [हिं आप + काज]अपस्वार्थी, मतलबी। उ०—महकारि लंपट अपकाजी सग न रह्यौ निदानी। सूरस्याम बिनु नागरि राधा नागर चित्त भुलानी—१६४७ ।

अपकार—सज्ञा पु [स] (१) द्वेष, द्रोह, बुराई। (२) अपमान। (३) अत्याचार, अनीति ।

अपकारी—वि० [स. अपकारिन, हिं अपकार] (१) हानिकारक, अनिष्टकारी । उ०—यह ससि सीतल काहे कहियत।·.. मीनकेत अम्बुज आनदित ताते ताहित लहियत। विरहिन अरु कमलनि त्रासत कहुँ अपकारी रथ नहियत—२८५६ । (२)विरोधी, द्वेषी ।

अपकारीचार-वि० [स० अपकार + आचार] हानि पहुँचाने वाला ।

अपकीरति—सज्ञा स्त्री [स. अपकीर्ति] अपयश निन्दा, बुराई ।

अपघात—सज्ञा पु [स.] (१) हत्या, हिंसा । (२) वचना, धोखा ।

संज्ञा पु [सं. अप = अपना + घात = मार] आत्मघात ।

अपचाल—संज्ञा पु [सं] कुचाल, खोटाई ।

अपच्छी - सं पु [सं. अ = नहीं + पक्षी = पक्षवाला] विपक्षी, विरोधी ।

अपछरा—संज्ञा पु [सं अप्सरा, प्रा. अच्छरा] अप्सरा ।

अपजस—संज्ञा पु० [सं० अपयश] (१) अपकीर्ति, बुराई । (२) कलंक, लांछन ।

अपडर—संज्ञा पु० [सं० अप + डर] भय, शंका ।

अपडरना—क्रि० अ० [हिं० अपडर] भयभीत होना, डरना, शंकित होना ।

अपड़ाई—क्रि० अ० [सं० अपर, हिं० अपडाना] खींचातानी करना । उ०—मन जो कहो करैं री माई । ...... । निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत हराई । इत कुलकानि उतै हरिको रस मन जो अति अपडाई—१६६९ ।

अपड़ाना—क्रि० अ० [सं० अपर] खींचातानी करना ।

अपड़ाव—संज्ञा पु० [सं० अपर, हिं० परावा = पराया] झगड़ा, रार, तकरार । (क) महर ढोटौना सालि रहे । जन्महि तें अपडाव करत हैं गुनि गुनि हृदय कहे—२४६३ । (ख) हँसत कहत कीधौं सतभाव । यह कहती औरै जो कोऊ तासों मैं करती अपडाव—१२४० ।

अपत—संज्ञा स्त्री० [सं० आपत्] दुर्दशा, दुर्गति । उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते । तौ मेरी अपत करत कौरव-सुत, होत पडवनि ओते—१ २५९ ।

वि० [सं० अ = नहीं + पत्र, प्रा० पत्त, हिं० पत्ता] (१) बिना पत्तों का । (२) नग्न । (३) निलज्ज ।

वि० [सं० अपात्र, पा० अपत्त] । अधम, पातकी । उ०—प्रभु जू हौं तौ महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागौ, कामी, विषयी निपट कुकर्मी—१-१८६ ।

अपतई—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त + ई (हिं० प्रत्य०)] (१) । निर्लज्जता, ढिठाई । उ—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई । · · । मिले धाय अकुलाय कै मैं करति लराई । अति ही करी उन अपतई हरि सो समताई—पृ० ३२३ । (२) चंचलता । उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब जग अपबस कीन्हो हो । सुनि ताको सब अपतई मुक सनकादिक मोहे हो—पृ० ३४९ (५९) ।

अपताना—संज्ञा पु० [हिं० अप = अपना + तानना] जंजाल, प्रपंच ।

अपति—संज्ञा स्त्री [सं० अ = बुरा + पत्ति = गति] अगति, दुर्गति, दुर्दशा । उ०—बैठी सभा सकल भूपनि की, भीपम द्रोन-करन व्रतधारी । कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी—१-२४८ ।

वि०—पापी, दुष्ट ।

अपथ—संज्ञा पु [सं०] कुपथ, कुमार्ग । उ०—(क) माधौ नैकु हटकौ गाइ । भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, खगह गहि नहिं जाइ—१-५६ । (ख) अपथ सकल चलि चाहि चहूँ, दिसि भ्रम उघटत मतिमंद—१-२०१ । (ग) हरि हैं राजनीति पढि आए । ते क्यों नीति करै आपुन जिन और न अपथ छुडाए । राजधर्म सुन इहै सूर जिहि प्रजा न जाहिं सताए—३३६३ । (२) बीहड राह, विकट मार्ग ।

अपद—संज्ञा पु [सं.] बिना पैर के रेंगनेवाले जंतु । यथा साँप, केंचुआ । उ०—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी । · ··· अपद-दुपद पसु भाषा बूझत, अविगत अल्प-अहारी—८-१४ ।

अपदाँव—संज्ञा पु . [सं अप = बुरा + हिं दाँव] चालबाजी, चालाकी, कुचाल, घात । उ०—कियौ वह भेद मन और नाहीं । पहिले ही जाइ हरि सो कियौ भेद वहि और वे काज कासो बताहीं । दूसरे आइकै इंद्रियनि लै गयौ ऐसे अपदाँव सब इनहिं कीन्हे—पृ० ३२१ ।

अपदेखा—वि० [हिं अप = अपने को + देखा = देखनेवाला] अपने को बड़ा समझनेवाला ।

अपन—सर्व० [हि. अपना] अपना, निजी, स्वयं का ।

अपनपौ—संज्ञा पु. [हिं अपना + पौ या पा (प्रत्य.)] (१) आत्मभाव, निजस्वरूप । (२) सत्ता, सुध, ज्ञान । (३) आत्मगौरव, मान ।

अपनाई—क्रि० स० [हिं. अपनाना] ग्रहण की, शरण में लिया । उ०—ना हमको कछु सुंदरताई । भक्त जानि कै सब अपनाई ।

अपनाऊँ—क्रि० स० [हिं अपनाना] अपने पक्ष मे करूँ, स्ववश करूँ। उ०—सूरस्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।

अपनाना—क्रि० स० [हिं अपनाना] अपने अनुकूल करना, अपने वश मे करना। (२) ग्रहण करना, शरण मे लेना।

अपनाम—सज्ञा पु [स] निंदा, अपयश।

अपनायौ—क्रि. स. भूत. [हिं अपना, अपना] अपना बनाया, अंगीकार या ग्रहण किया शरण मे लिया। उ—अब हो हरि, सरनागत आयौ। कृपानिधान सुदृष्टि हेरिये, जिहिं पतितनि अपनायौ—१-२०५।

अपनियाँ—सर्व स्त्री. [हिं. अपना] अपनी। उ—सूरदास प्रभु निरखि मगन भए, प्रेम-बिबस कछु सुधि न अपनियाँ—१०-१०६।

अपनी—सर्व. स्त्री [स. आत्मनो, प्रा अतणों, अप्पणो, हिं. अपना] निजी, निज की।

मुहा.—करत अपनी अपनी—स्वार्थ दिखाते हैं, केवल अपनी ही चिंता करते हैं। उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी। खाइ न सकै, खरच नहिं जानै, ज्यौं भुवग सिर रहत मनी—१ ३९। अपनी सी कीन्ही—शक्ति भर प्रयत्न किया, भरसक चेष्टा की। उ—दोवल कहा देति मोहिं सजनी तू तो बडी सुजान। अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही रहित न तेरी आन।

अपने—सर्व [हिं अपना] निजी, निज के।

अपनै—सर्व [हिं अपना] अपने निज के। उ—अपनै सुख को सब जग बाँध्यो, कोऊ काहू को नाही—१-७९।

अपनो, अपनौ—सर्व [हिं. अपना] निजी, निज का। उ—कारो अपनो रग न छांडै, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३।

अपबस—वि [हिं अप=अपना+स. वश] अपने वश मे, स्ववश। उ —(क) जो बिधना अपबस करि पाऊँ। ता सखि कही होइ कछु तेरी अपनी साध पुराऊँ। (ख) कान्ह तुम्हारी माइ महाबल सब जग अपबस कीन्हो हो—पृ ३४२ (५९)।

अपभय—सज्ञा पु [स] (१) निर्भयता। (२) अकारण भय। (३) डर, भय।

वि —निर्भय, निडर।

अपमान—सज्ञा पु. [स. अप. (उप.) + मान] (१) अनादर, अवज्ञा। (२) तिरस्कार, दुत्कार। उ —कौर-कौर-कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत अपमान—१-१०३।

अपमानत—क्रि स [स अपमान, हिं अपमानना] अपमान करते हैं, तिरस्कारते हैं। उ.—हारि जीति नैना नहिं जानत। धाए जात तहीं को फिरि फिरि वैं कितनो अपमानत—पृ. ३२८।

अपमानना—क्रि स [स अपमान] निंदा करना, तिरस्कारना।

अपमानै—क्रि. स [स. अपमान, हिं. अपमानना] अपमान करती हैं, तिरस्कारती हैं। उ.—ताको व्रज-नारी पति जानै। कोउ आदर कोऊ अपमानै—१९२६।

अपमारग—सज्ञा पु [स. अपमार्ग] कुमार्ग, कुपथ। उ —(क) माया नटी लकुट कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै। — । महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै—१-४२। (ख) चोरी अपमारग बटपारचौ इनि पटतर के नहिं कोऊ हैं—११५९।

अपमारगी—वि. [स. अपमार्गिन, अपमार्गी] कुमार्गी, अन्यायाचारी, कुपथी। उ —नैना नोनहरामी ये। चोर ढुढ बटपार अन्याई अपमारगी कहावैं जे—पृ. ३२६।

अपयोग—सज्ञा पुं. [स. अप=बुरा+योग] (१) कुयोग। (२) कुसगुन। (३) बुराई। उ.—सबैं खोट मधुबन के लोग। जिनके सग स्याम सुन्दर सखि सीखे सब अपयोग—३०५२।

अपरपार—वि [स. अपर=दूसरा+हिं पार=ओर] जिसका पारावार न हो, असीम।

अपर—वि. [स.] अन्य, दूसरा, भिन्न, और। उ.—भुज भुजग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि। रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरी डरनि—१०-१०९।

अपरछन—वि [स अप्रच्छन्न] छिपा, गुप्त।

अपरता—वि. [हिं अप=आप+स रत=लगा हुआ] स्वय मे लगा हुआ, स्वार्थी।

अपरती–सज्ञा स्त्री [हिं अप = आप + स. रति = लीनता] स्वार्थ ।

अपरना–सज्ञा स्त्री. [स अ = नहीं + पर्ण = पत्ता] पार्वती का एक नाम ।

अपरस–वि. [स अ = नहीं + स्पर्श, हिं परस] (१) जो छुआ न जाय। (२) न छूने योग्य, अस्पृश्य। (३) जो अछूता न हो, अछूत, जो छूना न चाहे दूर रहने वाला। उ०—ऊधौं तुम हो अति बडभागी। अपरस रहत सनेह लगा ते नाहिन मन अनुरागी—३३४९।

अपराध–सज्ञा पु [स०] (१) दोष, पाप। (२) भूल, चूक।

अपराधिनि–वि स्त्री [स. अपराधिन, हिं. अपराधिनी] दोषयुक्त स्त्री, पापिनी। उ०—अपराधिनि मर्म न जान्यौ अरु तुमहू ते तूटी—१० उ० ८०।

अपरधी–वि पु [स अपराधिन] (१) अपराध करने वाले, दोषी। (२) पाप करने वाले पापी। उ०—तुम मो से अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो) —१-७।

अपराधु–सज्ञा पु [स अपराध] (१) दोष, पाप। (२) भूल, चूक। उ०—चारौं मुख अस्तुति करत, छमौ मोहि अपराध—४९२।

अपराधौ–सज्ञा पु [स अपराध] दोष, पाप। उ०—जब ते बिछुरे स्याम तबते रह्यौ न जाइ सुनौ सखी मेरोइ अपराधौ—१८०९।

अपरिमित–वि [स.] (१) इयत्ताशून्य, असीम। उ०—अलख अनत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तनीर—९-२६। (२) असख्य अनत। उ०—कृपा सिंधु, अपराध अपरिमित छमौ, सूर तैं सब बिगरी—१-११५।

अपलोक–सज्ञा पु० [स०] (१) अपयश, अपकीर्ति। उ०—रहि रहि देख्यौ तेरौ ज्ञान। सुफलकसुत सरबस रस लै गयौ तू करन आयौ ज्ञान। वृथा कत अपलोक लावत कहत यह उपदेस—३१२३।

अपवाद–सज्ञा पु० [स०] (१) विरोध, प्रतिवाद। (२) निंदा, अपकीर्ति। (३) दोष, पाप।

अपसगुन–सज्ञा पु० [स० अपशकुन] असगुन, बुरा सगुन। उ०—अर्जुन बहुत दुखित तब भये। इहाँ अपसगुन होत नित नये। रोवैं वृषभ, तुरग अरु नाग। स्याम द्यौस, निसि बोलैं काग—१-२८६।

अपसना–क्रि० [स० अपसरण = खिसकना] (१) सरकना। (२) चल देना, चंपत होना।

अपसमार–सज्ञा पु० [स० अपस्मार] रोग-विशेष, मृगी, मूर्छा। उ०—सुनभीतमजासुनपित नाही चहत हार चित हेरो। अपसमार जहँ सूर समारत बहु बिषाद उर पेरो—सा० ६७।

अपसर–वि० [हिं० अप = अपना + सर प्रत्य०)] आप ही आप, मनमाना, अपनी तरंग का, अपने मन का। उ०—रहु रे मधुकर मधु मतवारे ··· ··· ···। लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अग सम्हारे। बारबार सरक मदिरा की अपसर रटत उघारे—२९९०।

अपसोच–क्रि० अ० [स० अप + हिं० सोचना] चिंता करके। उ०—काहे को अपसोच मरति है। नैन तुम्हारे नाही—पृ० ३२१।

अपसोस–सज्ञा पु० [फा० अफसोस] चिंता, सोच, दुख।

अपसोसना–क्रि० अ० [हिं० अफसोस] सोच करना, चिंता करना।

अपसोसनि–सज्ञा पु० सवि० [फा० अफसोस, हिं० चिंता, सोच या दुख मे। उ०—तातैं अब मरियत अपसोसनि। मथुरा हूँ तैं गये सखी री, अब हरि कारे कोसनि—१० उ०—८८।

अपसोसो–सज्ञा पु० [हिं० अपसोस] सोच, चिंता। उ०—भैनी मात पिता बधव गुरु गुरुजन यह कहैं मोसो। राधा कान्ह एक सँग बिलसत मन ही मन अपसोसो—१२ १।

अपसौन–सज्ञा पु [स० अपशकुन] असगुन।

अपस्वारर्थी–वि० [हिं० अप = अपना + स० स्वार्थी] स्वार्थ साधने वाला, मतलबी। उ०—नैना लुब्धे रूप को अपने सुख माई। अपराधी अपस्वारथी मोको बिसराई—पृ० ३२३।

अपहरन–सज्ञा पु [स. अपहरण] हर लेना, हरण। उ०—सोच सोच तू डार देखि दीनदयाल आयो। ।

अपहरन पुनि वरन वस हरि जानि हौं केहि योग भयो—१० उ०—१८ ।

अपहरना—क्रि० स० [सं० अपहरण] (१) छीनना, लूटना ।(२)चुराना ।(३)कम करना, नाश करना ।

अपहारी—संज्ञा पु० [सं. अपहारिन] (१) चोर, लुटेरा । (२) हरने वाला ।

वि० पराजित, हारा हुआ । उ.—तुव मुख देखि डरत ससि भारी । कर करि कै हरि हेर्यो चाहत, भाजि पताल गयो अपहारी—१०-१९६ ।

अपा—संज्ञा स्त्री [हि आप] अहंकार, गर्व ।

अपान—वि [सं अ=नहीं+पान=पेय] अपेय, न पीने योग्य । उ —भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी । कामी विवस कामिनी कै रस, लोभ लालसा थापी—१-१४० ।

संज्ञा पु [हि. अपना] (१) आत्मतत्व, आत्मज्ञान । (२) आपा, आत्मगौरव । (३) सुध, संज्ञा, ज्ञान । (४) अहम्, अभिमान ।

सर्व—अपना, निज का ।

अपाना—सर्व [हि अपना] अपना, अपने वश का, अपने हाथ का । उ.—निकट बसत हुती अस कियो अब दूर पयाना बिना कृपा भगवान उपाउ न सूर अपान—१० उ०—८१ ।

अपाप—संज्ञा पु [सं. अ=नहीं+प्रा०पाप]जो पाप न हो, पुण्य ।

अपाय—संज्ञा पु [सं.] उपद्रव अन्यथाचार ।

वि० [सं० अ=नहीं+पाद, पात=पैर] (१) लँगड़ा, अपाहिज । (२) निरुपाय असमर्थ ।

अपार—वि [सं] (१) सीमा रहित, अनन्त असीम । (२) असंख्य, अगणित अधिक ।

अपारा—वि० [सं अपार] अपार, असीम, अनन्त । उ०—मन मिलि गए जहाँ पुरुषोत्तम, जिहि गति अगम, अपारा—१०-४ ।

अपारी—वि० स्त्री० [हि० अपार] जिसका पार न हो, असीम । उ०—रसना एक नहीं मन कोटिक सोभा अमित अपारी—पृ० ३३६ ।

अपारौ—वि० [सं० अपार] जिसका पार न हो, सीमा-रहित बहुत बड़ी चढ़ौ । उ०—ममता-घटा, मोह की बूँदे, सरिता मैन अपारौ । बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट अधारौ—१-२०९ ।

अपावन—वि० [सं०] अपवित्र, अशुद्ध ।

अपीच—वि० [सं० अपीच्य] सुन्दर, अच्छा ।

अपुन—सर्व० [हि० आत्मनो, प्रा०, अत्तणो, अप्पणो हि० अपना] अपना ।

मुहा०—अपुन करि—अपना करके, अपना समझकर । अपने अनुकूल बनाकर । उ०—जो हरि व्रत निज उर न धरैगो । तौ को अस त्राता जु अपुन करि कर कुठाव पकरैगो—१-७५ ।

अपुनपौ—संज्ञा पु [हि० अपना+पौ या पा (प्रत्य०)] (१) आत्मभाव, निजस्वरूप, आत्मज्ञान । उ०-(क) अति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात बिचारौ । करत उपाव न पूछत काहु, गनत न खोटो खारौ । इन्द्री स्वाद-बिबस निसि बासर आप अपुनपौ हारौ —१-१५२ । (ख) अपुनपौ आपुन ही मैं पायो । सब्दहिं सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो—४-१३ । (२) संज्ञा, सुध, ज्ञान । उ०—(क) अपुनपौ आपुन ही बिसरायो । जैसे स्वान काँच-मंदिर मे भ्रमि भ्रमि भूकि मर्यो—२-२६ । (ख) अदभुत इक चितयौ हौं सजनी नंद महर कै आँगन री । सो मैं निरखि अपुनपौ खोयौ, गई मथानी माँगन री—१०-१३७ । (३) आत्मगौरव, मान, मर्यादा । उ०—ऐसो कौन मारिहै ताको, मोहि कहै सो आइ । वाकौं मारि अपुनपो राखैं, सूरब्रजहिं सो जाइ—१०-६० । (४) स्वशक्ति ज्ञान । उ०—कृष्ण कियो मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरे । बालक बछरन राखिहौं एक बार लै जाउँ । कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौ रह्यो सुभाउ-४३१ । (५) अपनायत, आत्मीयता, सम्बन्ध । उ०-अगनित गुन हरिनाम तिहारैं अजौं अपुनपौ धारौ । सूरदास स्वामी यह जन अब, करत करत स्रम हार्यौ - १-१५७ । (६) अहंकार, ममता ।

अपूठना—क्रि स [सं अ=नहीं+पृष्ठ, प्रा पुट्ठ+पीठ] (१) विध्वंसना, नासना । (२) उलटना-पलटना ।

अपूठा—वि. [सं अपुष्ट, प्रा अपुट्ठ] अज्ञानकार, अनभिज्ञ ।

वि [स. अस्फुट प्रा. अप्फुट] जो खिला न हो, अविकसित ।

अपूठी—क्रि स [स. अ = नहीं + पृष्ठ = पीठ, प्रा पुट्ठ = पीठ, हिं. अपूठना] उलट-पुलट कर । उ०—रावन हति, लै चलौं साथ ही, लका धरौं अपूठी । यातैं जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी—९-८७ ।

अपूत—वि [स. अ = नहीं + पूत = पवित्र] अपवित्र ।

वि० [स० अपुत्र, पा अपुत्त] जिसके पुत्र न हो, अपूता ।

सज्ञा पु.—कुपुत्र ।

अपूर—वि [स. आपूर्ण] पूरा, भरपूर ।

अपूरना—क्रि. स. [स. आपूर्णन] (१) भरना । (२) (बाजा आदि) बजाना या फूंकना ।

अपूरा—सज्ञा पु [स. आ + पूर्ण] भरा हुआ, फैला हुआ, व्याप्त ।

अपेल—वि [स. अ = नहीं + पीड = दबाना, ढकेलना] जो हटे नहीं, अटल ।

अपैठ—वि [स. अप्रविष्ट, पा अपविट्ठ, प्रा. अपइठ्ठ] जहाँ पहुँच न हो सके, दुर्गम ।

अप्सरा—सज्ञा स्त्री [स] इन्द्र सभा मे नाचने वाली देवांगना ।

अफरना—क्रि अ [स. स्फार = प्रचुर] (१) भोजन से तृप्त होना अघाना । (२) ऊबना ।

अफुल्ल—वि [स] जो फूला या खिला न हो, अविकसित ।

अबन्ध—वि [स अ = नहीं + बध = बधन] जो बंधन मे न हो, अबद्ध, निरंकुश । उ०—हमनौ रीझि लटू भइ लालन महाप्रेम तिय जानि । बध अबध अमित निसि बासर को सुरझावति आनि—२८११ ।

अबन्ध्य—वि. [स] सफल, फलीभूत, अव्यर्थ ।

अब—क्रि. वि [स अथ, प्रा अह, अथवा स. अद्य] इस समय इस घडी ।

अबतंस—सज्ञा पु [अबतस] भूषण, अलकार । उ०—स्रुति अवतस बिराजत हरिसुत सिद्ध दरस सुत ओर—सा उ०-२७ ।

अबद्ध—वि [स] (१) जो बँधा न हो, मुक्त । (२) निरंकुश । (३) असंबद्ध ।

अबध—वि [स. अबध्य (१) जिसे मारना उचित न हो । उ०—तोकौं अबध कहत सब कोऊ तातैं सहियत बात । बिना प्रयास मारिहौं तोकौं, आजु रैनि कैं प्रात—९-७९ । (ख) रावन कह्यौ, सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ । तब ही अबध जानि कैं राख्यौ मदोदरि समुझाइ—९-१०४ । (२) शास्त्र मे जिसे मारने का विधान न हो । (३) जिसे कोई मार न सके ।

अबधू—वि [स. अबोध पु. हिं. अबोध] अज्ञानी, अबोध, मूर्ख ।

संज्ञा पु [स अवधूत] त्यागी, संत, साधु, विरागी ।

अबर—वि. [हिं. अवर] अन्य, और दूसरा । उ०—सरिता सिंधु अनेक अबर सखी बिलसत पति सहज सनेह—२७७१ ।

अबरन—वि. [स० अ = नहीं + वर्ण्य] जो वर्णन न हो सके, अकथनीय ।

वि [स. अ = नहीं + वर्ण = रग] (१) बिना रूप रंग का, वर्णशून्य । उ.—सुक सारद से करत बिचारा । नारद से पार्वाहि नहि पारा । अबरन बरन सुरति नहिँ धारैं । गोपिनि के सो बदन निहारैं—१०-३ । (२) जो एक रग का न हो, भिन्न ।

अबराधे—क्रि स [स. आराधन, हिं अवराधना] उपासना करे, पूजे, सेवा करे । उ०—ऊधौ मन न भए दस-बीस । एक हुतो सो गयौ स्याम सँग को अबराधे ईस—३१४६ ।

अबल—वि. [स] निर्बल, बलहीन । उ०—अबल प्रह्लाद, बलि दैत्य सुखहो भजत, दास ध्रुव चरन चित-सीस नायौ—१-११९ ।

अबलनि—सज्ञा स्त्री. बहु. [स अबला + नि (प्रत्य)] स्त्रियो को । उ०—अबलनि अकेली करि अपने कुल नीति बिसरी अवधि सँग सकल सूर भहराइ भाजैं—२८१६ ।

अबल-हुतासन-मद्ध—सज्ञा पु [स. अबल = अजोर + हुताशन = अग्नि + मध्य = बीच (अजोर' और 'अग्नि' का मध्य = जोग)] योग । उ०—अबल हुताशन केर सदेसो तुमहूँ मद्ध निकासो—सा० १०५ ।

अबला—सज्ञा स्त्री [स.] (१) स्त्री । (२) अनाथ ।

अथवा निस्सहाय नारी । उ०—मन मैं डरी, कानि जिनि तोरै, मोहि अवला जिय जानि—९-७९ ।

अवाती—वि. [स० अ = नहीं + वात]; (१) विना वायु का । (२) भीतर भीतर सुलगने वाला ।

अवाद—वि० [स० अ = नहीं + वाद] वादशून्य, निर्विवाद ।

अवाध—वि० [स०] । (१) वेरोक, वाधा रहित । (२) निर्विघ्न । (३) अपार, अपरिमित । उ०—अकल अनीह अवाध अभेद । नेति नेति कहि गावहिं वेद ।

अवाधा—वि० [स० अवाध] अपार, असीम । उ०—खेलो जाइ स्याम सँग राधा ·······सँग खेलत दोउ झगरन लागे, सोभा वढी अवाधा—७०५ ।

अवार—सज्ञा स्त्री. [स अ = बुरा + वेला = हिं वेर = समय देर, विलम्ब । उ० (क) सूरदास प्रभु कहत चलो घर, वन मैं आजु अवार लगाई—४७१ । (ख) चलो आजु प्रातहि दधि वेचन नित तुम करति अवार —१०७८ । (ग) वानरहितजापति पतिनी से वांधे वार अवार—सा० ३१ ।

अवास—सज्ञा पु० [स० अवास] रहने का स्थान, घर । उ०—उत व्रजनारि सग जुरि कै वै हँसति करति परिहास । चलो न जाइ देखियै री वै राधा को जु अवास—१६१९ ।

अविगत—वि० [स० अविगत] (१) जो जाना न जाय । (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय । उ०—(क) अविगत गति कछु कहत न आवै—१-२ । (ख) काहू के कुल-तन न विचारत । अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत—१-१२ । (३) जो नष्ट न हो, नित्य । (ग) अपद-दुपद-पसु-भापा वूझत, अविगत अल्प अहारी—८-१४।

अविचल—वि० [स० अविचल] जो विचलित न हो, अचल स्थिर, अटल । उ०—अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अविचल राज करै-१-३७ ।

अविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] मिथ्या, ज्ञान, अज्ञान, मोह । उ०—कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल-सुधि नहिँ काल । सूरदास की सवै अविद्या दूरि करौ नँदलाल—१-१५३ ।

अविधि—सज्ञा स्त्री० [स० अविधि] व्यवस्था विरुद्ध, नियम रहित कर्तव्य विरुद्ध । उ०—राग द्वेप विधि अविधि, असुचि-सुचि, जिहिँ प्रभु जहाँ सँभारो । कियौ न कवहुं विलव कृपानिधि, सादर सोच निवारो १ १५७ ।

अविनासी—वि०पु० [स० अविनाशिन, हिं. अविनाशी] (१) जिसका नाश न हो, अक्षय । उ०—अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६ । (२) नित्य, शाश्वत ।

अविर—सज्ञा पु० [अ० अबीर] (१) रगीन वुकनी, गुलाल । उ०—चोवा चदन अविर, गलिनि छिरकावनि रे—१०-१८ । (२) अभ्रक का चूर्ण । (३) श्वेत रग की वुकनी जो वल्लभ-सम्प्रदायी मदिरो मे उत्सवो पर उडाई जाती है ।

अविरथा—वि० [स० वृथा] वृथा, व्यर्थ ।

अविरल—वि० [स० अविरल] घना, सघन । उ०—अलक अविरल, चारु हार-विलास, भृकुटी भग ६२७ ।

अविवेकी—वि० [स अविवेकिन, हिं. अविवेकी] (१) अज्ञानी, विवेक रहित । (२) मूढ, मूर्ख ।

अविसेक—वि० [स० अविशेप] तुल्य, समान । उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक । स्याम मनि मे अग चदन अमी के अविसेक—सा० उ०-५ ।

अविहित—वि० [स० अविहित] (१) विरुद्ध । (२) अनुचित, अयोग्य । उ०—अविहित वाद-विवाद सकल मत इन लगि भेप धरत । इहि विधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत—१ ५५ ।

अवीर—सज्ञा पु० [अ०] रगीन वुकनी जो होली के दिनों मे मित्र परस्पर डालते हैं । उ०—उडत गुन ल अवीर जोर तहँ विदिस दीप उजियारी—२३९१ ।

अवुध—वि० [स०] अवोध, नादान ।

अवूझ—वि० [स० अवुद्ध, पा० अवुज्झ] अवोध, नासमझ, नादान ।

अवेध—वि० [स० अविद्ध] जो छिदा न हो, अनवेधा ।

अवेर—सज्ञा स्त्री [स अवेला] विलम्व, देर । उ०—(क) खेलन कौ हरि दूरि गयौ री । सग सग धावत डोलत है, कह धौ वहुत अवेर भयौ री-१०-२१९ । (ख) आजु अवेर भई कहुँ खेलत, वोलि लेहु हरि कौ कोउ वाम री—१० २३५ ।

अबेरौ—संज्ञा स्त्री [सं अवेला, हिं. अबेर] देर, विलंब। उ०—चकित भई ग्वालिन-तन हेरौ। माखन छाँड़ि गई मथि वैसेहिं, तब तैं कियौ अबेरौ। देखैं जाइ मटुकिया रीती मैं राख्यौ कहुँ हेरि—१०-२७१।

अबेस—वि [फा. बेश = अधिक] बहुत अधिक। उ०—कीर कदब मजुका पूरन सौरभ उडत अवेस। अगर धूप सौरभ नासा सुख बरसत परम सुदेस।

अबै—क्रि. वि. [हिं अब] इसी समय, अभी-अभी। उ०—(क) हौ रघुनाथ, निसाचर कै संग अबै जात हौं देखी—९-६४। (ख) जसुमति देख आपनो कान। बर्ष सर को भयौ पूरन अबै ना अनुमान-सा ११४। (ग) हरि प्रति अंग-अंग की सोभा अँखियन मग ह्वै लेउ अबै—१३००।

अबोल—वि. [सं अ = नहीं + हिं. बोल] (१) मौन, अवाक्। (२) जिसके विषय मे बोल न सके, अनिर्वचनीय।

संज्ञा पु० कुबोल, बुरा बोल।

अबोला—संज्ञा पु० [सं० अ = नहीं + हिं. बोलना] मान या रिस के कारण न बोलना।

अबोले—वि. [सं अ = नहीं + हिं. बोल] मौन, अवाक्। उ०—कबहुँ न भयौ सुन्यौ नहिं देख्यौ तनु ते प्रान अबोले—२२७५।

अभंगी—वि [सं अभंगिन] (१) पूर्ण, अखंड। (२) जिनका कोई कुछ न ले सके। उ०—आए माई दुर्ग स्याम के संगी। । सूधी कहत सबन समुझावत, ते साँचे सरबंगी। औरन को सरवसु लै मारत आपुन भए अभंगी।

अभंगुर—वि [सं] (१) जो टूट न सके, दृढ। (२) जो नाश न हो, अमिट।

अभच्छ—वि. सं अभक्ष्य] (१) जिसके खाने का निषेध हो। उ०—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धरी—१-१४०। (२) अखाद्य, अभोज्य।

अभय—वि० [सं०] निर्भय, निडर। उ०—जाकौं दीनानाथ निवाजैं। भवसागर मैं कबहुँ न झूकैं, अभय निसाने बाजैं—१-३६।

मुहा०—अभय दयौ—शरण दी, निर्भय किया। उ०—ब्रह्मा रुद्रलोक हूँ गयौ। उनहुँ ताहि अभय नहिं दयौ।

अभयदान—संज्ञा पु० [सं०] निर्भय करना, शरण देना, रक्षा का वचन देना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ। अभयदान प्रह्लादहिं दीन्हौ—७ २।

अभयपद—संज्ञा पु० [सं०] निर्भय पद, मोक्ष मुक्ति। उ०—पिता बचन खंडै सो पापी, सोइ प्रह्लादहिँ कीन्हौ। निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हौ—१-१०४।

अभर—वि० [सं० अ = नहीं + भार = बोझा] न ढोने योग्य।

अभरन—संज्ञा पु. [सं. आभरण] गहना, आभूषण। उ०—(क) सूरदास कवन के अभरन लै झगरिनि पहिराई—१०-१६। (ख) इक अभरन लेहिँ उतारि, देत न संक करैं—१०-२४।

अभरम—वि. [सं० अ = नहीं + भ्रम] (१) अभ्रान्त, अचूक। (२) निशंक, निडर।

क्रि. वि—निसंदेह, निश्चय।

अभल—वि० [अ = नहीं + हिं० भला] जो भला न हो, बुरा।

अभाऊ—वि [सं. अ = नहीं + भाव] जो अच्छा न लगे, अप्रिय। (२) जो न सोहे, अशोभित।

अभाग—संज्ञा पु. [सं अभाग्य] दुर्भाग्य, बुरा भाग्य।

अभागि—वि. स्त्री. [हिं. अभागिनी] (१) भाग्यहीन। (२) स्त्रियों की एक गाली। उ०—कबहुँ बाँधति, कबहुँ मारति, महरि बडी अभागि—३८७।

अभागिनि—वि स्त्री [सं अभागिन, हिं. अभागिनी] भाग्यहीन। उ०—तृष्ना बहिन, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी। अति निसंक, निरलज्ज अभागिनि, घर-घर फिरत न हारी—१-१७३।

अभागे—वि० [हिं० अभागा] भाग्यहीन, प्रारब्धहीन।

अभागौ—वि० [सं० अभाग्य, हिं० अभागा] अभागा, भाग्यहीन, मन्दभाग्य। उ०—प्रभु जू हौं तौ महा अधर्मी। अपत, उधार, अभागौ, कामी, विषय निपट कुकर्मी—१-१८६।

अभाव—संज्ञा पु० [सं०] कुभाव, दुर्भाव, विरोध।

अभास—संज्ञा पु० [सं० आभास] (१) प्रतिबिंब,

झलक, समानता । उ०—(क) तहँ अरि पथ पिता जुग उदित वारिज बिबि रग भजो अभास—सा० उ०—२८ और २७२३ । (ख) नाथ तुम्हारी जोति अभास । करत सकल जग मैं परकास १० उ –१२९ ।

अभिद्—वि [स अभेद्य, हि. अभेद] भेदशून्य, एक रूप, समान । उ०—अभिद अछेद रूप मम जान । जो सब घट है एक समान—३-१३ ।

अभिन—वि. [स. अभिन्न] (१) जो भिन्न न हो, एक-मय । (२) मिला हुआ, सटा हुआ, सबद्ध । उ०— अब इहु वर्षा बीति गई । ···। उदित चारु चद्रिका अवर उर अतर अमृत मई । घटी घटा सब अभिन मोह मोद तमिता तेज हई—२८५३ ।

अभिमान—सज्ञा पु. [स] गर्व, अहकार, घमण्ड ।

मुहा०—बाँधे अभिमान—गर्व से युक्त हैं । उ०— आदि रसाल जगफल के सुत जे बाँधे अभिमान । सूरज सुत के लोक पठावत से सब करत नहान— सा०-७४ ।

अभिमानिनि—वि [स. अभिमानी + हि. नि (प्रत्य.)] अभिमानियो से, अहंकारियो से । उ०—यह बासा पापिनी दहै । घन-मद-मूढनि, अभिमानिनि मिलि, लोभ लिए दुर्वचन सहै—१-५३ ।

अभिमानी—वि [स अभिमानिन्] अहकारी, घमडी, दर्पी ।

अभिरत—वि० [स] (१) लीन, लगा हुआ । (२) युक्त, सहित ।

अभिरना—क्रि स [स अभि = सामने + रण = युद्ध] (१) लडना, भिडना । (२) टेकना, सहारा लेना ।

अभिराम—वि. [सं] आनददायक, सुन्दर, रम्य । उ०—नैन चकोर मतत ससि, कर अरबन अभिराम- २-१२ ।

सज्ञा पु —आनद, सुख ।

अभिरामिनि—वि स्त्री [हि अभिरामिनी] (१) रमण करने वाली, व्याप्त होने वाली । (२) सुन्दर, रम्य । उ०—यमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई यामिनि । सुन्दर ससि गुन रूप राग निधि अग अग अभिरामिनि—पृ० ३४४ ।

अभिलाख—सज्ञा पु [स अभिलाष] इच्छा, मनोरथ ।

अभिलाखना—क्रि स [स. अभिलषण] चाहना, इच्छा करना ।

अभिलाख्यौ—क्रि स [स. अभिलषण, हि. अभिलाखना] इच्छा की, चाहा । उ०—विधि मन चकित भयो बहुरि ब्रज को अभिलास्यो—४९२ ।

अभिलाष—सज्ञा पु. [स] इच्छा, मनोरथ । उ०— (क) पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तन्दुल खाए (हो) । सपति दै वाकी पतिनी को, मम अभि-लाष पुराए (हो)—१-७ । (ख) पर-तिय-रति अभि-लाष निसादिन मन-पिटरी लै भरतो—१-२०३ ।

अभिलाष्यौ—क्रि स भूत [स. अभिलषण, हि अभि-लाखना] इच्छा की, चाहा । उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यो, मन मैं अति गरवाऊ—१०-२२१ ।

अभिलासी—वि. [स. अभिलाषिन्, हि० अभिलाषी] चाह रखने वाला, इच्छुक, रुचि रखने वाला । उ०- निर्गुन कौन देस को बासी । ······ कैसो बरन भेष है कैसो केहि रस मे अभिलासी—३०८२ ।

अभिलासा—सज्ञा पु [स अभिलाषा] इच्छा, चाह, कामना ।

अभिषेक - सज्ञा पु. [स] सविधि मत्र-पाठ के साथ जल छिडकना अधिकार प्रदान करना ।

अभिसरन—सज्ञा पु [स अभिशरण] सहारा, आश्रय, शरण ।

अभिसरना—क्रि. अ. [स अभिशरण] जाना, प्रस्थान करना ।

अभिसार—सज्ञा पु [स.] (१) सहारा, अवलब । (२) नायक या नायिका का प्रेमिका या प्रेमी से मिलने के लिए सकेत-स्थल को जाना ।

अभिसारना—क्रि. अ [स अभिसारणम्] (१) जाना, घूमना । (२) प्रिय से मिलने के लिए नायिका का सकेत-स्थल को जाना ।

अभिसारी—क्रि अ. [स. अभिसारणम्, हि अभिसा-रना] घूमे-फिरे, विचरण किया, विहार किया । उ०—धनि गोपी धनि ग्वारि धन्य सुरभी बनचारी । धनि इह पावन भूमि जहाँ गोविन्द अभिसारी— ३४४३ ।

अभू—क्रि वि [हि अब + हू = भी] अब भी ।

अखभून—संज्ञा पु [स. आभूषण] गहने, भूषण ।

अभूत—वि. [स]अपूर्व, विलक्षण, अनूठी । उ०—उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तडित छपाए—१०-१०४ ।

अभूषन—संज्ञा पु [स आभूषण] गहना, अलंकार। उ०—करि आलिंगन गोपिका, पहिरै अभूषन चीर—१०-२६ ।

अभेद—सज्ञा पु. [स.] (१) अभिन्नता । (२) एकरूपता, समानता ।

वि —(१) भेदशून्य । उ०—इह अछेद अभेद अविनासी । सर्व गति अरु सर्व उदासी—१२-४ । (२) एकरूप, समान ।

वि० [स० अभेद्य] जिसको भेदा या छेदा न जा सके ।

अभेरा—सज्ञा पु [स. अभि = सामने + रण = लडाई] रगड, टक्कर ।

अभेव—सज्ञा पु [स अभेद] अभेद, एकता, अभिन्नता ।

वि०—अभिन्न, एक ।

अभै—वि० [स० अभय] निर्भय, निडर ।

मुहा०—अभै (पद) दियौ—निर्भय कर दिया । उ०—(क)ध्रुवहिं अभय पद दियौ मुरारी—१-२८ । (ख) सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ—१-१२१ ।

अभोग—वि० [स०] जिसका भोग न किया गया हो, अछूता ।

अभोगी—वि०[स० अ = नहीं + भोगी = भोग करनेवाला] इन्द्रियों के सुख से उदासीन ।

अभोज—वि० [स० अभोज्य] न खाने योग्य, अखाद्य ।

अभ्यन्तर—वि० [स० अभि + अन्तर] भीतरी, हृदय की ।

सज्ञा पु० [स०] (१) हृदय, अन्तःकरण । उ.—अभ्यन्तर अन्तर बसे पिय मो मन भाए—१९६४ । (२) मध्य, बीच । उ०—हमारी सुरत लेत नहिं माधो । तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधो । निसि लौ मरत कोस अभ्यन्तर जो हिय कहो सु थोरी । भ्रमत भोर सुख और सुमन सँग कमल देत नहिं कोरी—३२४४ ।

अभ्यास—सज्ञा पु०[स.] बार-बार एक काम को करना, अनुशीलन, आवृत्ति । उ०—नाना रूप निसाचर अद्भुत, सदा करत मद-पान । ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुन्त-असि-बान—९-७५ ।

अभ्र सज्ञा पु [स०] (१) आकाश, उ०—निरखि सुन्दर हृदय पर भृगु पाद परम सुलेख । मनहुँ सोभित अभ्र अन्तर सम्भु भूषन वेष—६३५ । (२)मेघ, बादल ।

अमंगल—वि० [स०] मंगलरहित, अशुभ ।

सज्ञा पु०—अकल्याण, दुख, अशुभ चिह्न । उ०—(क) भागे सकल अमंगल जग के—१०-३२ । (ख) सूर अमंगल मन के भागे—२३६७ ।

अमंद—वि० [स० अ = नहीं] जो धीमा न हो, तेज (प्रकाश वाला) । उ०—रही न सुधि सरीर अरु मन की पीवति किरन अमंद—१०-२०३ ।

अमनिया—वि० [स० अ + मल, अथवा कमनीय] शुद्ध, पवित्र, अछूता ।

अमनैक—सज्ञा पु० [स० आम्नायिक = वंश का, अथवा स० आत्मन । प्रा० अप्पण, हिं०, अपना से 'अपनैक' (१) अधिकारी । (२) ढीठ, साहसी ।

अमर—वि० [स०] जो मरे नहीं, चिरजीवी । उ०—(क) मेरे हित इतनौ दुख भरत । मोहिं अमर काहे नहिं करत—१-२२६ । (ख) अज अविनासी अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६ ।

सज्ञा पु०—देवता, सुर ।

अमरख—सज्ञा पु० [सं० अमर्ष = क्रोध] कोप, रिस ।

अमरखी—वि०[स० अमर्ष]क्रोधी, बुरा मानने वाला ।

अमरपद—सज्ञा पु० [स०] मोक्ष, मुक्ति ।

अमरपन—सज्ञा पु० [स०] अमरत्व, अमरता । उ०—ग्रह नछत्र अरु वेद अरव करि खात हरष मन बाढो । तातै चहत अमर पद तन को समुझ समुझ चित काढो—स० ६५ ।

अमरपुर—सज्ञा पु० [स०] अमरावती ।

अमरपुरी—सज्ञा स्त्री० [स०] अमरावती ।

अमरराज—सज्ञा पु०[स०]देवताओं का राजा, इन्द्र ।

अमरा—सज्ञा स्त्री० [स०] इन्द्रपुरी अमरावती ।

अमराई, अमराव—सज्ञा स्त्री० [स० आम्रराजि] आम का बगीचा ।

अमरराजसुत—संज्ञा पु [सं अमरराज = इन्द्र + (इन्द्र का) सुत = अर्जुन = पार्थ (पार्थ = पाथ = पथ)] मार्ग, रास्ता। उ०—माधौ बिलम बिदेस रह्यो री। अमरराजसुत नाम रइनि दिन निरखत नीर बह्यो री—सा उ—५१।

अमरापति—संज्ञा पु. [सं] इन्द्र। उ०—अमरापति चरनन लै परयौ जब बीते जुग गन की जोर—९९८।

अमल—वि [सं] (१) निर्मल, स्वच्छ। उ०—भूषन सार सूर स्रम सीकर सोभा उडत अमल उजियारी—सा० ५१। (२) निर्दोष, पापशून्य। (३) सुन्दर। उ०—चम्पकली सी राधिका राजत अमल अदोष—२०६५।

संज्ञा पु० [अ] (१) बान, टेव, आदत। उ०—(क) आनदकद चद मुख निसि दिन अवलोकन यह अमल परयो। सूरदास प्रभु सो मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तरयो—१०-८९१। (ख) हरि दरसन अमल परयो लाज न लजानी। (२) प्रभाव। (३) अधिकार, शासन।

अमला—संज्ञा स्त्री [सं] राधा की एक सखी गोपी का नाम। उ०—कहि राधा किन हार चुरायो। ब्रज युवतिनि सबहिन मैं जानति घर घर लै लै नाम बतायो। ...। अमला अबला कजा सुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०।

अमासना—क्रि स [सं आमंत्रण] बुलाना, निमंत्रित करना न्योता देना।

अमाति—क्रि स [सं आमंत्रण, हि अमानना] आमंत्रित करके, निमंत्रण देकर आह्वान करके। उ०—कह्यो महरि सौं करौ चड़ाई हम अपने घर जाति। तुम्हैं करौ भोग सामग्री, कुल-देवता अमाति—८१३।

अमान—वि [सं] (१) अपरिमित, परिमाण रहित। (२) अनगिनती बहुत (३) गर्वरहित निरभिमान सीधा सादा। (४) मानशून्य, अप्रतिष्ठित, अनादृत।

अमाना—क्रि अ [सं अ = पूरा + मान = माप] (१) समाना, अँटना (२) फूलना, उमडना, (३) इतराना।

अमानी—वि [सं अमानिन्] घमंडरहित निरभिमानी।

क्रि अ. स्त्री [हि अमाना] फूल गई, इतराने लगी। उ०—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।

अमानुष—वि. [सं] (१) जो मनुष्य से न हो सके। (२) जो मनुष्य के स्वाभाव से बाहर हो।

अमाप—वि [सं] जो मापा न जा सके, असीम, अपरिमित। उ०—उलटी रीति नदनदन की घरि-घरि भयो सताप। कहियो जाइ जोग आराधै अविगत अकथ अमाप—२९७९।

अमाया—वि. [सं.] (१) माया रहित, निर्लिप्त। उ—आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरतर घट-घट बासी। ...। जरा मरन तै रहति अमाया। मातु पिता, सुत बंधु न जाया—१०-३। (२) निस्वार्थ, निष्कपट, निश्छल।

अमारग—संज्ञा पु [सं] (१) कुमार्ग, कुराह। उ०—माधौजू वह मेरी इक गाय। ...। यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१ ५१ (२) बुरी चाल, दुराचरण।

अमिट—वि. [सं अ = नहीं + हि मिटना] जो नष्ट न हो, स्थायी, अटल, अवश्यभावी।

अमित—वि. [सं] (१) अपरिमित, असीम, बेहद। (२) बहुत अधिक। उ०—(क) अविगत-गति कछु कहत न आवै। ज्यौ गूँगे मीठे फल कौ रस अतरगत ही भावै। परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै—१-२। (ख) अग अग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावहिं ठाउँ—६६३।

अमिय—संज्ञा पु [सं अमृत, प्रा अमिअ] अमृत।

अमिरती—संज्ञा स्त्री [सं अमृत, हि इमरती] इमरती नाम की मिठाई जो उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चौरेठे की बनती है।

अमिल—वि. [सं अ = नहीं + हि मिलना] (१) जो न मिल सके, अप्राप्य। (२) बेमेल, बेजोड। (३) जिससे मेल जोल न हो। (४) ऊबड-खाबड, ऊँचा-नीचा।

अमी—संज्ञा पु [सं अमृत, प्रा. अमिअ, हि अमिय] (१) अमृत। (२) अमृत के समान। उ०—(क) अमी-बचन मुनि होत कुलाहल देवनि दिवि दुन्दभी

ब्रजाई—९-१६९ । (ख) स्याम मनि से अग चदन, अमी से अबिसेक—सा० उ०—५ ।

अमीगलित—वि. [स.] अमृत से हीन या रहित । उ०—घट सुत असन समै सुत आनन अमीगलित जैसे मेत—सा० उ०—२९ ।

अमीकर—सज्ञा पु, [अमृतकर] चन्द्रमा ।

अमीत—सज्ञा पु. [स अमित्र, प्रा अमित्त] जो मित्र न हो, शत्रु ।

अमीन—सज्ञा पु [अ] एक अदालती कर्मचारी । उ—नैन अमीन अधर्मनि कै बस, जहँ को तहाँ छायौ—१-६४ ।

अमूल्य—वि [स] (१) अनमोल । (२) बहुमूल्य ।

अमृत—सज्ञा पु [स.] पुराणानुसार समुद्र से निकले चौदह रत्नों मे एक जिसे पीकर जीव अमर हो जाता है ।

अमृतकुंडली—सज्ञा स्त्री [स.] एक प्रकार का बाजा ।

अमेली—वि. [स अमेलन] अनमिल, असबद्ध ।

अमोघ—वि [स] अव्यर्थ अचूक, वृथा न होने वाला । उ०—प्रभु तव माया अगम अमोघ है लहि न सकत कोउ पार—३४९४ ।

अमोचन—सज्ञा पु [स] छुटकारा न होना ।

वि.—न छूटने वाला दृढ । उ०—मूँदि रहे पिय प्यारी लोचन अति हित वेनी उर परसाए वेष्टित भुजा अमोचन—पृ—३१८ ।

अमोरि—सज्ञा स्त्री. [हिं. अमोरी (आम + औरी-प्रत्य.] (१) कच्चा आम अँबिया ।(२)आमडा, अम्मारी । उ०—और सखा सब जुरि-जुरि ठाढे आप दनुज सँग जोरि । फल को न म बुझावन लागे हरि कहि दियौ अमोरि—२३७७ ।

अमोल—वि]स अ = नही + हिं मोल] अमूल्य ।

अमोलक—वि [स. आ + हिं मोल] अमूल्य बहुमूल्य । उ०—लोभी, लपट, विषयिनि सो हित, यौं तेरी निबही । छाँडि कनक मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही—१-३२४ ।

अमोले—वि [हिं अमोल] बहुमूल्य । उ०—देखिवे की साध बहुत सुनि गुन विपुल अतिहि सुन्दर मुने दोउ अमोले—२४६७ ।

अमोही—वि. [स, अ = नही + मोह] (१) विरक्त, उदासी । (२) निर्मोही, निष्ठुर ।

अम्मर—सज्ञा पु [स अम्बर] वस्त्र ।

मुहा०—अम्मर लेत—वस्त्र हरण करना, वस्त्र हटाना । उ०—सुता दधिपति की क्रोध भरी । अम्मर लेत भई खिझि बालहि सारँग सग लरी—२०७५ ।

अम्रित—सज्ञा पु. [स अमृत] सुधा, पियूष, अमृत । उ०—हरि कह्यो साग-पत्र मोहि अति प्रिय, अम्रित ता सम नाही—१-२४१ ।

अयन—सज्ञा पु [स] घर, वासस्थान । उ०—जाको अयन जल मे तेहि अनल कैसे भावै—३१२९ ।

अयाचक वि. [स] (१) न माँगने वाला । (२) सन्तुष्ट ।

अयाची—वि [स अयाचिन्] (१) जो न माँगे । (२) पूर्ण काम सन्तुष्ट । उ०—किए अयाची याचक जन बहुरि—१० उ०—२४ ।

अयान—वि. [स. अजान] अनजान, अज्ञानी । उ०—सूरदास प्रभु कहौ कहाँ लागे है अयान मतिहीनी—३४४९ ।

अयानप, अयानपन-सज्ञा पु [हिं अजान + प या पन] (१) अनजानपन । (२) भोलापन, सीधापन ।

अयाना—वि. पु. [हिं. अजान] अज्ञानी, बुद्धिहीन, अनजाने ।

अयानी—वि स्त्री. [हिं. अजान, अयान (पु.)] (१) अजान, बुद्धिहीन । उ०—मोहन कत खिझत अयाना लिए लाइ हिऐं नँदरानी—१०-१८३ । (२) मूर्छित, सज्ञाहीन, बेहोश । उ०—द्रिगजापति पतिनी पति सुन के देखत हम मुर्झानी । उठि उठि परत धरनि पर सुन्दर मदिर भई अयानी—सा० ५५ ।

अयाने—वि. [हिं अजान] अजान, बुद्धिहीन । उ०—(क) ऊधौ जाहु तुम्हैं हम जानै । बडे लोग न विवेक तुम्हारे ऐसे भए अयाने—२९०६ । (ख) जानत तीनि लोक की महिमा अगलनि काज अयाने-३२२१ ।

अयानौ—वि [हिं अजान] बुद्धिहीन, अज्ञानी । उ०—जानि-बूझि कैहो कत पठवौ सट बावरी अयानौ—३४६७ ।

अयान्यौ—वि [हिं. अजान] अज्ञानता से युक्त, मूर्खतापूर्ण । उ०—चूक परी मोको सबही अग कहा करौ गई भूलि सयान्यौ । वे उतही को गए हरषमन मेरी करनी समुझि अयान्यौ—१४६० ।

अयोग—सज्ञा पु [स] (१) योग का अभाव । (२) कुसमय । (३) कठिनाई, संकट (४) अप्राप्ति, असंभव ।

वि. [स] बुरा ।

वि [स] अयोग्य अनुचित । उ०—सिर पर कस मधुपुरी बैठो छिनकही मे करि डारौ भोग । फूंकि-फूंकि घरणी पग धारौ अब लागी तुम करन अयोग—१४९७ ।

अयोगा—वि [सं अयोग्य] जो योग्य न हो, निकम्मा, अपात्र ।

अयोपतिका—सज्ञा स्त्री [स आगतपतिका] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों मे से एक । ऐसी नायिका जिसका पति बाहर से आया हो । उ०—सूर अनसग तजत आवत अयोपतिका रूप—सा ३९ ।

अरंग—सज्ञा पु. [स अर्घ्य = पूजा द्रव्य] सुगध, महक ।

अरभ—सज्ञा पु [स आरभ] आरंभ, शुरू । उ०—जग अरभ करि नृप तहँ गयौ—९-३ ।

अरंभना—क्रि स [स अ + रभ = शब्द करना] बोलना, नाद करना ।

क्रि स [स. आरभ] आरंभ करना, शुरू करना ।

क्रि अ. [सं. आरभ] आरंभ होना, शुरू होना ।

अर—सज्ञा पु [हिं. अड] हठ, अड, जिद । उ०—हौ तौ न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौं अर फोरतौ बासन सब, जानति बलैया—३७२ ।

सज्ञा पु [स. अरि] शत्रु, वैरी । उ०—निसि दिन कलमलात सुनि सजनी सिर पर गाजत मदन अर । सूरदास प्रभु रही मौन ह्वै कहि न सकति मैन के भर—२७६४ ।

अरक—सज्ञा पु [स] सेवार ।

अरकना—क्रि अ [अनु] टकराना, अररा कर गिरना । क्रि अ. [हिं दरकना] फटना ।

अरगजा—सज्ञा पु [हिं अरग + जा] शरीर मे लगाने का एक सुगंधित द्रव्य । उ०—खर कौ कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन-अग—१-३३२ ।

अरगजी—सज्ञा पु [हिं अरगजा] एक रंग जो अरगजे की तरह होता है ।

वि. (१) अरगजे रंग का । (२) अरगजा की सुगध का । उ०—उर धारी लटैं छूटी आनन पर भीजी फूलेलन सौं आली हरि सग केलि । सोधे अगरजी भरु मरगजी सारी केसरि खोरि बिराजति कहूँ कहूँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन बेलि—१५८२ ।

अरगजे—सज्ञा पु [हिं अरगजा] एक सुगंधित द्रव्य । उ०—भले हाजू जाने लाल अरगजे भीने माल केसरि तिलक भाल मैन मत्र काचे—२००३ ।

वि —*अरगजा की सुगध से युक्त* । उ०—तहीं जाहु जहँ रैन बसे हो । काहे को दाइन हो आए अग अग देखति चिन्ह जैसे हो । अरगजे अग मरगजी माला बसन सुगध भरे से हो—१९५३ ।

अरगट—वि [हिं अलगट] अलग भिन्न ।

अरगल—सज्ञा पु [स अर्गल] ब्योडा, गज ।

अरगाइ—क्रि. अ [हिं. अलगाना] (१) अलग, पृथक । (२) सन्नाटा खीचे हुए, मौन, चुप साधे हुए । उ.—(क) ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ । क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ—७-२ । (ख) सूनै सदन मथनियाँ कै ढिग, बैठि रहे अरगाइ—१०-२६५ । (ग) सुनि लीन्हो उनही को कह्यौ । अपनी चाल समुझि मन माही गुनि अरगाइ रह्यौ—३४६७ ।

मुहा —प्रान रहे अरगाइ—प्राण सूख गए विस्मित हो गए । उ०—जासो जैसी भाँति चाहिए ताहि मिल्यौ त्यौं छाइ । देस देस के नृपति देखि यह प्रान रहे अरगाइ—१० उ १६२ ।

पूजा कै अवसर नद समाधि लगाई । सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैठ रहे अरगाई—१०-२६३ । (ख) कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई तहाँ कहूँ कौं कार खाई । यह सुनि महरि मनहि मुसुक्यानी, अबहिं रही मेरे गृह आई । सूरस्याम राधहिं कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई—७५४ । (ग) जननी अतिहि भई रिसिहाई बार बार कहै कुँअरि राधिका री मोती श्री कहाँ गँवाई । बूझे ते तोहि ज्वाब न आवै कहाँ

अरगाई—क्रि अ [हिं अलगाना] (१) सन्नाटा खींच कर, चुप्पी साधकर, मौन होकर । उ०—एक समय

रही अरगाई—१५४४। (घ) तबहिं राधा सखियन पै आई। आवत देखि सबनि मुख मूँद्यौ जहाँ तहाँ रही अरगाई-१२८५। (२)अलग या पृथक होकर।

अरगाना—क्रि. अ. [हिं अलगाना] (१) अलग होना। (२) मौन रहना।

क्रि स.—अलग करना, छाँटना।

अरगानौ—क्रि. स.[हि. अलगाना] छाँट लूँ, चुनूँ नाम गिनाऊँ। उ०—बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारबार बखानौं। ध्रुव रजपूत बिदुर दासीसुत कौन कौन अरगानौं—१·११।

अरघ—सज्ञा पु [स. अर्घ] (१) वह जल जो फूल, अक्षत आदि के साथ देवता पर चढ़ाया जाय। (२) वह जल जो हाथ-मुंह धोने के लिए किसी अभ्यागत को उसके आते ही दिया जाय। उ०—हरि कौ मिलन सुदामा आयौ। बिधि करि अरघ पाँवडे दै-दै अतर प्रेम बढायो। (३) वह जल जो बरात के आने पर भेजा जाय। (४) वह जल जो किसी के आने पर द्वार पर छिड़का जाय। (५) जल का छिड़काव। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके स्याम नाम सुहेत। असु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत—३४८३।

अरघा—सज्ञा पु. [स. अर्घ] अरघ जल का पात्र।

अरघान—सज्ञा पु [स अघ्राण = सूँघना] गंध, महक।

अरचन—सज्ञा पु. [स. अर्चन] (१) पूजा, पूजन। उ०—(क) स्रवन सुजस सारंग-नाद-विधि, चातक-विधि मुख-नाम। नैन-चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम—२-१२। (ख) स्रवन-कीर्तन-सुमिरन करै। पद-सेवन-अरचन उर धारै—९-५। (२) आदर, सत्कार।

अरचना—क्रि. स [स अर्चन] पूजा करना।

अरचि—सज्ञा स्त्री [स अर्चि] ज्योति, दीप्ति।

अरज—सज्ञा स्त्री. [अ. अर्ज]विनय निवेदन, विनती। उ०—तुम न्याय कहावत कमलनैन। कमल-चरन कर कमल बदन छबि अरज सुनावत मधुर बैन—१९७७।

अरजुन—सज्ञा पु. [स. अर्जुन] पांडु के मंझले पुत्र जो धनुर्विद्या मे अत्यन्त निपुण और श्रीकृष्ण के अत्यंत प्रिय सखा थे। देवराज इन्द्र के आह्वान से कुंती के गर्भ से इनका जन्म हुआ था।

अरझत—क्रि अ. [स. अवरुंधन, प्रा. ओरुज्झन, हिं० अरुझना] अटकता है, अड़ता है, हठ करता है। उ०—ज्यौं बालक जननी सों अरझत भोजन को कछु माँगै। त्योंही ए अतिही हठ ठानत इकटक पलक न त्यागै—पृ० ३३३।

अरत—वि० [स०] (१) जो आसक्त न हो। (२) विरक्त, उदासीन।

क्रि० अ०[स० अल = वारण करना, हिं० अडना] (१) रुकता है, अटकता है। (२) हठ ठानता है, टेक बाँधता है।

अरततपर—वि० [हिं० अड + तत्पर] हठ से युक्त। उ०—मनसिज माधवे मानिनिहिं मारिहैं। ओटि पर लव अरततपर भौ अर निरषिमि मुख कौं तारिहैं—सा० उ०—४।

अरति—सज्ञा स्त्री० [स०] विरक्ति, चित्त का न लगना।

क्रि. अ. स्त्री.[स. अल = वारण करना,हिं. अडना] (१)रुकती है, ठहरती है। उ०-होनहारी होइहै सोइ अब इहाँ कत अरति। सूर तब किन फेरि राखे पाइ अब हेहि परति—२६६७। (२) हठ करती है, टेक बाँधती है।

अरथाई—क्रि० अ० [स० अर्थ + आई (हिं० प्रत्य०)] समझा बुझा कर, समाचार देकर। उ०—पठवौ दूत भरत कौ ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाइ। दसरथ बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाई—९-४९।

अरथाना—क्रि० स० [हिं० अर्थ + आना (प्रत्य०)] (१) समझाना। (२) व्याख्या करना, बताना।

अरदना—क्रि० स०[स० अर्दन](१) रौंदना, कुचलना। (२) वध करना।

अरधंग—सज्ञा पु० [स० अर्द्धांग] आधा अंग।

सज्ञा स्त्री० [स० अर्द्धांगिनी] भार्या, पत्नी। उ०—मिली कुबिजा मलै लैकै सो भई अरधंग। सूर प्रभु बस भए ताके करत नाना रंग—२६७२।

अरधंगी—सज्ञा स्त्री.[स अर्द्धांगिनी]पत्नी, भार्या। उ.—कुबिजा स्याम सुहागिनि कीन्ही, रूप अपार जाति नहिं

कीन्हीं। आपु भए पति वह अरधंगी। गोपिन नाव धरयो नवरंगी—२६७५।

अरध—वि. [सं. अर्द्ध] आधा, अपूर्ण। उ०—(क) अंत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ाए—१-११९ (ख) कहै तौ जनक गेह दै पठवौं अरध लंक कौ राज—९-७९।

क्रि वि [स. अव] अन्दर, भीतर।

अरधधाम—सज्ञा पुं. [सं. अर्द्ध = आधा + धाम = घर (घर का आधा = पाखा) (पाखा = पक्ष = दोसप्ताह)] पक्ष। उ०—सखी री सुनु परदेसी की बात। अरध बीच दै गयौ धाम कौ हरि अहार चलि जात—सा० २३।

अरधांगी—संज्ञा स्त्री. [सं अर्द्धांगिनी] पत्नी।

अरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अल = वारण करना, हिं० अडना] हठ, टेक। उ०—बरषि निकरे मेघ पाइक बहुत कीने अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परे दुहुँ चरनि—९९५।

अरन्य—सज्ञा पुं. [स. अरण्य] बन, जंगल। उ०—भली कही यह बात कन्हाई, अतिहीं सघन अरन्य उजारि—४७२।

अरपन—सज्ञा पु [स. अर्पण] (१) देना, दान। (२) भेंट।

अरपना—क्रि. स. [स. अर्पण] भेंट करना, देना।

अरपित—वि [स अर्पित] अर्पण किया हुआ।

अरपी—क्रि स [स अर्पण, हिं. अरपना] अर्पण की, भेंट की, दान दी। उ०—जाबवती अरपी कन्या भरि मनि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गयौ हरि पुर कौ जहाँ जोगेश्वर जाय।

अरपै—क्रि स [स अर्पण हि. अरपना] अर्पण किये। मुहा०—प्रान अरपै—प्रान सूख गये, विस्मित हो गये, अर्पण कर दिये। उ०—तडित आघात तररात उतपात सुनि, नर-नारि सकुचि तनु प्रान अरपै—९४६।

अरप्यौ—क्रि. स. भूत. [स अर्पण, हिं वर्त, अरपना] अर्पण किया, भोग लगाया। उ०—(क) पट अतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ। कहत कान्ह बाबा तुम अरप्यौ, देव नही कछु खाइ—१० २६१। (ख) हम प्रतीति करि सरबस अरप्यौ गन्यौ नहीं दिन राती—३४१८।

अरबर—वि, [अनु.] (१) ऊटपटांग, असंबद्ध। (२) कठिन।

अरबराइ—क्रि० अ० [हिं० अरबराना] लड़खड़ाकर, लटपटाकर, अड़बड़ाकर। उ०—(क) सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ करि पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया—१०-११५। (ख) गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत। अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेक उठावत—१०-१२२।

अरबराना—क्रि. अ. [हिं. अरबर] (१) घबड़ाकर, व्याकुल होकर। (२) लटपटाकर, अड़बड़ाकर।

अरबरी—सज्ञा स्त्री. [हिं. अरबर] घबड़ाहट, हड़बड़ी।

अरबिंद—सज्ञा पु. [सं. अरविंद] कमल।

अरबीला—वि० [अनु०] भोलाभाला, अंडबंड।

अरभक—वि० [सं. अर्भक] छोटा, अल्प।

सज्ञा पु.—बच्चा, लड़का।

अररात—क्रि. स. [हिं. अरराना] (अनु.)] टूटने या गिरने का अरररर शब्द करके गिरते (हुए)। उ०—अररात दोउ वृच्छ गिरे धर। अति अघात भयौ ब्रज भीतर—३९१।

अरराई—क्रि. स. [हिं. अरराना (अनु.)] टूटने या गिरने का अरररर शब्द करके। उ.—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाइ—३८७।

अरात—क्रि. स. [हिं. अरराना (अनु.)] अरररर शब्द करते हैं। उ०—(क) बरत बन पात, भहरात, झहरात अररात तरु महा धरनी गिरायो—५१६। (ख) घटा घनघोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपे—९४६।

अरराना—क्रि. स. [अनु] (१) टूटने या गिरने का अरररर शब्द करना। (२) तुमुल शब्द करके गिरना। (३) सहसा गिर पड़ना।

अरवाती—संज्ञा स्त्री [हिं. ओरती] छाजन का किनारा जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। ओलती, ओरौनी। उ०—सजनी नैना गये भगाइ। अरवाती को नीर बेरडी कैसे फिरिहैं धाइ पृ-३३१।

अरस—वि. [सं.] नीरस, फीका। (२) गँवार, अनाड़ी।
संज्ञा पुं. [सं. अलस] आलस्य। उ०—नहिं दुरत हरि पिय को परस। मन को अति आनंद, अघरन रँग, नैनन को अरस—२१०८।
संज्ञा पुं. [अ. अर्श] (१) छत, पाटन। (२) धरहरा, महल। उ०—मार मार कहि गारि दै धृग गाय चरैया। कस पास ह्वै आइयै कामरी चढ़ैया। बहुरि अरस तैं आनि कै तब अंबर लीजै।·····। अरस नाम है महल को जहाँ राजा बैठै। गारी दै दै सब उठे भुज निज कर ऐंठै—२५७५।

अरसना—क्रि. अ. [सं. अलस] शिथिल पड़ना, ढीला होना, मंद होना।

अरसना परसना—क्रि. स. [सं. स्पर्शन] (१) छूना। (२) मिलना, भेंटना, आलिंगन करना।

अरस परस—क्रि. स. [सं. स्पर्शन, हिं. अरसना-परसना] छूकर, मिलकर, लिपटकर, झपटकर। उ०—(क) खेलत खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई। अरस-परस चुटिया गहैं, बरजति है माई—१०-१६२। (ख) चलत गति करि रुनित किंकिनि घूँघरू झनकार। मनो हंस रसाल बानी अरस परस विहार—पृ० ३४६। (ग) जो जेहि विधि तासों तैसेहि मिलि अरस-परस कुसलात—२९४१।
संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श] आँख मिचौनी का खेल, छुआछुई।

अरसि परसि—क्रि. स. [सं. स्पर्शन] मिल-भेंटकर, आलिंगन करके। उ०—काहू के मन कछु दुख नाहीं। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाहीं।

अरसाना—क्रि. अ. [सं. अलस] अलसाना, निद्राग्रस्त होना।

अरसाय—क्रि. अ. [सं. अलस, हिं. अरसाना, अलसाना] अलसाकर, निद्राग्रस्त होकर। उ०—मरगजे हार बिथुरे बार देखियत आइ गई एक याम यामिनी। और सोभा सोहाई अंग अंग अरसाय बोलति है कहा अलसामिनी—१५८१।

अरसी—संज्ञा पुं. [सं. अतसी] अलसी, तीसी।

अरसीला—वि. [सं. अलस] आलस्ययुक्त।

अरसौंहाँ—वि. [सं. आलस्य] आलस्ययुक्त।

अरहना—संज्ञा स्त्री. [सं. अर्हण] पूजा।

अराज—वि. [सं. अ + राजन्] बिना राजा का। उ.—जग अराज ह्वै गयौ, रिषिन तब अति दुख पायौ। लै पृथ्वी को दान, ताहि फिरि बनहिं पठायौ—९-१४।

अराधन—संज्ञा पुं. [सं. आराधन] पूजा, उपासना।

अराधना—क्रि. स. [सं. आराधन] (१) उपासना करना। (२) पूजा करना। (३) ध्यान करना।

अराधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. आराधना] सेवा, पूजा, उपासना। उ०—जेहि रस सिव सनकादि मगन भए सभु रहत दिन साधा। सो रस दिए सूर प्रभु तोको सिवा न लहति अराधा—१२३४।

अराध्यौ—क्रि० स० [हिं० आराधना] उपासना की। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ—३०१४।

अराअरी—संज्ञा स्त्री [हिं० अड़ना] अड़ाअड़ी, होड़, स्पर्धा।

अरिंद—संज्ञा पु. [सं. अरि + इंद्र] शत्रु।

अरिंदम—वि. [सं.] (१) शत्रु का दमन करने वाला। (२) विजयी।

अरि—संज्ञा पु [सं] शत्रु, वैरी।
क्रि अ [हिं. अड़ना] अड़कर, हठ करके। उ०—को कर-कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खैहै—२५१२।

अरिकेसी—संज्ञा पु. [सं. अरि + केशी] केशी दैत्य का शत्रु, कृष्ण।

अरियाना—क्रि० स० [सं० अरे] 'अरे' कहकर बुलाना, तिरस्कार करना।

अरिष्ट—संज्ञा पु [सं.] एक राक्षस का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ०—अघ-अरिष्ट, केसी काली मथि, दावानलहिं पियौ—१-१२१।
वि० [सं०] (१) दृढ़, अविनाशी। (२) शुभ। (३) बुरा, अशुभ।

अरी—अव्य. [सं. अयि] संबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिए ही होता है। उ०—अरी अरी सुन्दर नारि सुहागिनि, लागौं तेरैं पाउँ—९-४४।
क्रि० अ० स्त्री० [हिं० अड़ना] अड़ गयी, फँसी

उलझी। उ०—खेवनहार न खेवत मेरै, अब मो नाव अरी—१-१८४।

अरुंधति—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुंधती] वशिष्ट मुनि की स्त्री। उ०—रमा, उमा अरु सची अरुंधति निसि दिन देखन आवैं—पृ० ३४५।

अरु—सयो० [हिं० और] शब्दों या वाक्यों को जोड़ने वाला संयोजक शब्द। उ०—विद्रुम अरु बधूक बिंब मिलि देत कबिन छबि दान—सा० उ०—१५।

अरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुचि का न रहना, अनिच्छा।

अरुझत—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] उलझते हैं, फँसते हैं। उ०—इक परत उठत अनेक अरुझत मोह अति मनसा मही—१० उ०-२४।

अरुझति—क्रि. अ स्त्री [हिं. अरुझना] लड़ती झगड़ती है। उ०—कहौ तुमहि हमको कहा बूझति। लैं-लैं नाम सुनावहु तुमही मोसों काहे अरुझति—११०६।

अरुझाइ—क्रि० स० [हिं० अरुझाना] उलझाकर, फँसाकर। उ०—(क) बाबा नंद, झखत किहिं कारन, यह कहि मयामोह अरुझाइ। सूरदास प्रभु मातु-पिता को, तुरतहिं दुख डारयौ बिसराइ—५३१। (ख) नागरि मन गई अरुझाइ। अति बिरह तन भई व्याकुल घर न नैंकु समाइ—६७८।

अरुझाई—क्रि० स० [हिं० अरुझना] उलझाकर, फँसाकर।

यौ०—रहे अरुझाई—उलझा रहे हैं, फँस रहे हैं। उ०—कहत सखा हरि सुनत नहीं सो, प्यारी सों रहे चित अरुझाई—७१७।

अरुझाए—क्रि० स०[हिं० अरुझना, अरुझाना](१) उलझा दिये, फँसा दिये। उ०—भक्त बछल बानों है मेरो, बिरुदहिं कहाँ लजाऊँ। यह कहि मया-मोह अरुझाए सिसु ह्वै रोवन लागे—१०-४। (२) लटका दिये, टाँग दिये। लीन्हे छीनि बसन सबही के सबही लै कुंजनि अरुझाए—१०९३।

अरुझाने—क्रि० स० [हिं० अरुझाना] उलझा दिया, फँसा दिया। उ०—मन हरि लीन्हो कुँवरि कन्हाई। कुटिल अलक भीतर अरुझाने अब निरुवारि न जाई—१४७७।

अरुझानो—क्रि. अ [हिं. अरुझना] उलझ गया, फँस गया। उ०—मेरो मन हरि चितवनि अरुझानो—१२०६।

अरुझावत—क्रि० स० [हिं० अरुझाना] उलझाते हो, फँसाते हो, रोकते हो। उ०—सूरस्याम माखन दधि लीजै जुवतिन कत अरुझावत—११०४।

अरुझाही—क्रि० अ० [हिं० अरुझना] उलझते हैं, झगड़ते हैं। उ०—जाइ न मिलो सूर के प्रभु को अरुझेन सों अरुझाही—पृ०२३८।

अरुझि—क्रि अ. [हिं. अरुझना] उलझ गया, फँसा।

यौ०—अरुझि परयो (रह्यो) उलझ गया, फँस गया। उ०—(क) ग्वाल-बाल सब संग लगाए, खेलत मैं करि भाव चलत। अरुझि परयौ मेरी मन तब तैं, कर झटकत चक-डोरि हलत—६७१। (ख) क्यों सुरझाऊँ री नंदलाल सौं अरुझि रह्यौ मन मेरौ-४१७०।

अरुझी—क्रि० अ० [हिं० अरुझना] (१) उलझ गयी, फँस गयी। उ०—खसि मुद्रावलि चरन अरुझी। गिरी धरनि बलही—३४५१। (२) लिपटी है, उलझी है। उ०—रसना जुगल रसनिधि बोलि। कनक-बेलि तमाल अरुझी सुभुज बंध अखोलि—सा० उ०—५।

अरुझे—क्रि० अ० बहु० [हिं० अरुझना] उलझ गये, फँसे। उ०—(क) प्रगटी प्रीति न रही छपाई। परी दृष्टि वृषभानु-सुता की, दोउ अरुझे, निरुवारि न जाई—७२०। (ख) मन तो गयो नैन हैं मेरे।—·——क्रम क्रम गए, कह्यो नहि काहू स्याम संग अरुझे रे—पृ० ३२०। (ग) चचल द्रग अचल-पट-दुति छबि झलकत चहुँ दिसि झालरी। मनु सेवाल कमल पर अरुझे भँवत भ्रमर भ्रम चाल री—१०-१४०।

अरुझ्यो—क्रि० अ० [हिं० अरुझना (उलझना)] उलझा, फँसा, अटका। उ०—दधि सुत जामे नँद-दुवार। निरखि नैन अरुझ्यो मनमोहन, रटत देहु कर बारबार—१०-१७३।

अरुन—वि० पु० [सं० अरुण] लाल। उ०—नली खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ—१-५६।

संज्ञा पु —सूर्य । उ०—उगत अरुन विगत सर्वरी, ससाँक किरनहीन, दीपक सु मलीन, छीन दुति समूह तारे—१०-२०५ ।

अरुनता—संज्ञा स्त्री. [स. अरुणता] (१) ललाई, लालिमा, लाली । उ०—(क) नान्ही एड़ियनि अरुनता, फल बिंब न पूजै—१३४ । (ख) सूर स्याम छवि अरुनता (हो) निरखि हरषि ब्रज-बाल—१०-४२ ।

अरुनाई—स. स्त्री [हि अरुणाई] लालिमा, रक्तता, लाली । उ०—लछिमन, रचौ हुतासन भाई ।...... आसन एक हुतासन बैठी, ज्यो कुन्दन-अरुनाई—९-१६२ ।

अरुनाए—क्रि. अ. [स अरुण,] लाल रंगे हुए । उ०—नीलाबर, पाटबर, सारी, सेत, पीत, चूनरी, अरुनाए—७८४ ।

अरुनानी—क्रि अ स्त्री. [हि. अरुनाना] लाल हो गयी । उ०—बोले तमचुर चारो याम को गजर मारचौ पौन भयौ सीतल तमतमता गई । प्राची अरुनानी भानि किरिन उज्यारी नभ छाई उडगन चद्रमा मलिनता लई—१६१० ।

अरुनित—वि० [स० अरुणित] लाल रंग का, लाल किया हुआ ।

अरुनिमा—संज्ञा स्त्री [स अरुणिम] लाली, लालिमा ।

अरुनाना—क्रि अ [स अरुण] लाल होना ।

क्रि. स.—लाल करना ।

अरुनारा—वि. [स अरुण + आरा (प्रत्य)] लाल, लाल रंग का ।

अरुनोदय—संज्ञा पु [स अरुण + उदय] सूर्योदय, उषाकाल ।

अरुराना—क्रि० स० [हि० अरुरना] (१) मरोड़ना । (२) सिकोडना ।

अरुसना—क्रि० अ० [स० अरुस् = घाव] छिलना, चुभना ।

अरुप—वि० [स ०] रूप या आकार से रहित ।

अरूरना—क्रि० अ० [स० अरुस् = घाव] दुखित होना ।

अरे—अव्य० [स०] सम्बोधनार्थक अव्यय, रे, ऐ, ओ । उ०—(क) सुनि अरे अध दसकध, लै सीय मिलि, सेतु करि बंध रघुबीर आयौ—९-१२८ ।

क्रि० अ० [सं० अल = धारण करना, हि० अड़ना] (१) रुक गये, ठहरे । (२) अड़ गये, हठ करने लगे, ठान लिया । उ०—(क) कलबल कै हरि आइ परे । नव रँग बिमल नबीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि आनि अरे—१०-१४१ । (ख) पठवति हौ मन तिनहिं मनावन निसि दिन रहत अरे री—१४४२ । (ग) को जानै काहे ते सजनी हम सों रहत अरे—१८४१ । (घ) लपट लटनि अटक नहिं मानत चचल चपल अरे रे—पृ०—३२५ । (३) उमड़ कर आये । उ०—(क) को करि लेइ सहाइ हमारो प्रलय काल के मेघ अरे—९५३ । (ख) बादर ब्रज पर आनि अरे—९६८ ।

अरेरना—क्रि० स० [हि०] रगड़ना ।

अरै—क्रि० अ० [स० अल = धारण करना, [हि० अडना] (१) हठ करता है, टेक पकड़ता है । उ०—जब दधि मथनी टेकि अरै । आरि करत मटुकी गहि मोहन, बासुकि सभु डरै—१४२ । (२) भिड़ता हैं, लड़ता है, रगड़ता है । उ०—कह्यौ न काहू को करै बहुरि अरै एक ही पाइ दै इक पग पकरि पछारयौ—१० उ०—५२ ।

संज्ञा पु० [स० हठ = जिद] हठ, टेक, जिद । उ०—जा कारन तैं सुनि सुत सु दर, कीन्हीं इती अरै । सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माँहि परे—१०-१९५

अरो—क्रि० अ० [हि० अडना] अड गया, हठ किया, ठान लिया । उ०—क्यों मारौ दोउ नन्द ढोटोना ऐसी अरनि अरो—२४६१ ।

अरोगना—क्रि० अ० [हि० आरोगना] खाना ।

अरोगैं—क्रि० अ० [स० आ + रोगना (रुज = हिंसा), हि अरोगना] खाते हैं, भोजन करते हैं । उ०—नन्द भवन मैं कान्ह अरोगै । जसुदा ल्यावै षटरस भोगैं—३९६ ।

अरोच—संज्ञा पु० [स० अरुचि] रुचि का अभाव, अनिच्छा ।

अरोहना—क्रि० अ० [आरोहण] चढना, सवार होना ।

अरौ—क्रि० अ० [हि० अडना] रुकते हो, ठहरते हो, अडते हो । उ०—हित की कहत कुहित की लागत इहाँ बेकाज अरौ—३०६६ ।

अर्क—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । उ०—वेदन अर्क विभूषित सोभा बेंदी रिच्छ बखानो—सा० १०३ ।

अर्गजा—सज्ञा पु० [हिं० अरगजा] एक सुगन्धित लेप ।

अर्घ—सज्ञा पु० [स०](१) षोड़शोपचार मे से एक, जल दूध आदि मिलाकर देवता पर चढ़ाना । (२) जल-दान (३) भेंट ।

अर्चन—संज्ञा पु० [स०] (१) पूजा । (२) आदर, सत्कार ।

अर्चमान—वि० [स०] पूजा करने के योग्य, पूजनीय ।

अर्चित—वि० [स०] पूजित ।

अर्जन—सज्ञा पु० [स०] (१) पैदा करना, उपार्जन । (२) संग्रह, संग्रह करना ।

अर्जुन—सज्ञा पु० [स०] (१) मझले पांडव का नाम । ये परम वीर और धनुर्विद्या मे निपुण थे । श्रीकृष्ण से इनकी बड़ी मित्रता थी । (२) एक वृक्ष । (३) दो वृक्ष जो गोकुल मे थे । नारद ऋषि के शाप से कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव इन पेड़ों के रूप में जन्मे थे । श्रीकृष्ण ने इनका उद्धार किया था । उ०—जमल अर्जुन तोरि तारे, हृदय प्रेम बढ़ाइ—४९८ ।(४)सहस्रार्जुन ।(५)सफेद कनेल । (६) मोर ।

अर्थ—सज्ञा पुं [स] शब्द का अभिप्राय, भाव, सकेत । उ०—एकन कर है अगर कुमकुमा एकन कर केसर लै घोरी । एक अर्थ सों भाव दिखावति नाचति तरुनि बाल वृद्ध भोरी—२४३६ । (२) अभिप्राय, प्रयोजन । (३) हेतु, निमित्त । (४) इन्द्रियों के पाँच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ।(५)चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मे से एक, धन संपत्ति । उ०—कहा कमी जाके राम धनी । ······। अर्थ, धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी—१-३९ ।

अर्थपति—सज्ञा पु० [स०] (१) प्रयोजन का कारण या स्वामी, श्रीकृष्ण उ०—हम तो बँधी स्याम गुन सुन्दर छोरनहार न कोई । जो व्रज तजो अर्थपति सूरज सब सुखदायक जोई—सा० १०५ । (२) अर्थापत्ति नामक अलकार । इसमे एक बात के कहने से दूसरी की सिद्धि आप से आप हो जाती है । उक्त उदाहरण का आशय है—ब्रज मे ऐसा कोई नहीं है जो अपने अर्थपति कृष्ण को छोड़ दे जो सब सुखों के दाता हैं । इससे सिद्ध हो गया कि बिना कृष्ण के सुख नहीं मिल सकता ।

अर्थना—क्रि० स० [सं०] मांगना ।

अर्थाना—क्रि स. [स. अर्थ + आना (प्रत्य.)] अर्थ समझाकर कहना ।

अर्थी—वि. [स अर्थिन] (१) चाह रखने वाला । (२) याचक ।

अर्दना - क्रि स. [अर्दन = पीडन] पीडित करना ।

अर्धांगिनि—सज्ञा स्त्री [स. अर्द्धांगिनी]पत्नी, भार्या । उ०—कहाँ स्याम की तुम अर्धांगिनी मैं तुम सर की नाहीं—२९३७ ।

अर्धंगी—सज्ञा स्त्री. [स. अर्द्धंगिनी] पत्नी, भार्या । उ०—ऐसी प्रीति की बलि जाउँ । सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाउँ ।···। अर्धंगी बूझत मोहन को कैसे हितू तुम्हारे—१० उ०—६२ ।

अर्द्धांग—सज्ञा पु. [स.](१) आधा अंग । (२) शिव ।

अर्द्ध—वि [स.] दो सम भागों में से एक, आधा ।

अर्ध—वि [स. अर्द्ध] आधा । उ०—अर्ध निसा तिनकों लै गयो—१-२८४ ।

अर्धांगिनी—सज्ञा स्त्री.[सं. अर्द्धांगिनी]पत्नी, भार्या । उ०—ऊधो यह राधा सो कहियो ।·········। कहाँ स्याम की तुम अर्द्धांगिनी, मैं तुम सर की नाही—२९३७ ।

अर्पत—क्रि. स. [स. अर्पण, हिं. अर्पना] अर्पण करता है भेंट देता है । उ०—पाँडे नहिं भोग लगावन पावे करि करि पाक जबै अर्पत है, तबही तब छ्वै आवै—१०-२४९ ।

अर्पन—सज्ञा पु [स. अर्पण] अर्पण करने की क्रिया । उ०—सिव-संकर हमकों फल दीन्हौ । पुहुप, पान, नाना फल, मेवा षटरस अर्पन कीन्हौं—७९८ ।

अर्पना—क्रि स. [स अर्पण] अर्पण करना, देना ।

अर्पि—क्रि. स. [स अर्पण, हिं. अर्पना, अरपना] अर्पण करके, भेंट देकर । उ०—अगनिक तरु फल सुगंध-मृदुल-मिष्ट-खाटे । मनसा करि प्रभुहिं अर्पि, भोजन करि डाटे—९-९६ ।

अर्पै—क्रि. स [सं. अर्पण, हिं. अरपना] अर्पण करने पर, भोग लगाने पर, भेंट देते हैं। उ०—वदत बेद-उपनिषद, छहों रस अर्पै भुक्ता नाहिं। गोपी ग्वालनि के मंडल मैं हँसि-हँसि जूठनि खाहि—४८७।

अर्यौ—क्रि अ. भूत. [स. अल=धारण करना, हिं. अडना] (१) अड गया, ठान लिया। उ०—जैसे गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ–२-२६। (२) टिकाकर, अड़ाकर, जमाकर। उ०—लपकि लीन्हो धाइ दवकि उर रहे दोउ भ्रम भयो जगहि कहाँ गए वेंऔं। अरयौ दै दसन धरनी कढे वीर दोउ कहत अवहीं याहि मारि कैयौं—२५९२।

अलंवन—सज्ञा पु. [सं. अवलवन] आश्रय, सहारा, अवलंब। उ०—अव लगि अवधि अलवन करि करि राख्यौ मनहिं सवाहि। सूरदास या निर्गुन सिंधुहिं कौन सकै अवगाहि—३१४५।

अलंकार—संज्ञा पु. [स.] (१) आभूषण, गहना। (२) शब्द और अर्थ मे विशेषता लाने की युक्ति।

अलंकित, अलंकृत-वि० [सं०](१) विभूषित, आभूषणों से युक्त। उ०—(क) भूषन वार सुधार तासु रग अंग अगन दीपत ह्वै है। यह विधि सिद्ध अलकृत सूरज सव विधि सोभा छैहै—सा० ९७। (ख) सुर स्याम के हेत अलकृत कीनो अमल सूमित हितकारी —सा० ९८। (२) सजाया हुआ, सुन्दर। उ०—यो प्रतपेद अलकृत जवहू सुमुखी सरस सुनायो। सूर कहो मुसुकाय प्रानप्रिय मो मन एक गनायो—सा० ९५। (३) काव्यालंकार से युक्त। उ०—करत विग ते विग दूसरी जुक्त अलकृत माँही—सा० ८७।

अल—सज्ञा पु [स](१) बिच्छू का डक। (२) विष, जहर। उ०—अति वल करि-करि काली हारयो। लपटि गयो सव अग-अग प्रति, निर्विष कियो सकल अल (वल) झारयो—५७४।

अलक—सज्ञा पु [स] इधर-उधर लटकते हुए छल्लेदार बाल।

अलकलड़ैता—वि [हिं अलक=वाल, लाड=दुलार (लडैता=दुलारा)] दुलारा, लाड़ला।

अलकलड़ैतौ—वि. [हिं अलकलडैता] लाड़ला, दुलारा। उ०—सूर पथिक सुन, मोहि रैन दिन वढयौ रहत उर सोच। मेरो अलकलडैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच—२७०७।

अलकसलोरा—वि. पुं. [स. अलक=वाल+हिं. सलोना=अच्छा] लाड़ला, दुलारा।

अलकसलोरी-वि स्त्री. [हिं. पु. अलकसलोरा] लाड़ली, दुलारी। उ०—हम तेरे ही नित ही प्रति आवैं सुनहु राधिका गोरी हो। ऐसो आदर कवहुँ न कीन्हो मेरी अलकसलोरी हो—पृ० ३१९।

अलकावलि—सज्ञा स्त्री० [स०] केश, वालों की लटें।

अलकैं—सज्ञा पु० वहु० [स० अलक] मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए घुँघराले बाल। उ०—विथुरि अलकैं रही मुख पर विनहिं वपन सुहाइ—१०-२२५।

अलख—वि. [सं. अलक्ष्य](१) ईश्वर का एक विशेषण। उ०—(क) अलख-अनत-अपरिमित महिमा, कटितट कसे तूनीर—९-२६। (ख) ब्रह्मभाव करि मैं सब देखौ। अलख निरजन ही को लेखौ—३३०८। (२) अगोचर, इंद्रियातीत। उ०—(क) जोपै अलख रह्यो चाहत तौ वादि भए ब्रजनायक—३३९३। (ख) पूरन ब्रह्म अलख अविनासी ताके तुम हो ज्ञाता —२९१९। (३) अदृश्य, अप्रत्यक्ष।

अलखित—वि. [स. अलक्षित] (१) अप्रकट, अज्ञात। (२) अदृश्य। (३) अचिह्नित।

अलगाइ—क्रि. अ [हिं. अलग, अलगाना] अलग हो गये, विछुड़ गये। उ०—कह्यो मयत्रेय सों समुझाइ, यह तुम विदुरहिं कहियो जाइ। वदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ—३-४।

अलगाना—क्रि स [हिं. अलग+आना (प्रत्य०)] (१) छांटना विलगाना। (२) दूर करना।

अलच्छ—वि. [सं. अलक्ष्य] (१ जो देख न पड़े। (२) जिसका लक्षण न कहा जा सके।

अलज—वि [स अ=नहीं+लज्जा] निर्लज्ज, वेहया।

अलप—वि० [स० अल्प] थोड़ा, कम, न्यून, छोटे। उ०—(क) अँग फरकाइ अलप मुसुकाने—१०-४६। (ख) सोभित सुकपोल-अधर, अलप अलप दसना—१०-९०। (ग) चपल द्रग, पल भरे अँसुवा कछुक

ढरि ढरि जात । अलप जल पर सीप द्वै लखि मीन मनु अकुलात—३६० ।

अलवेला—वि० पु० [सं० अलभ्य+हिं० ला (प्रत्य.)] (१) बाँका, बना-ठना । (२) अनूठा, सुन्दर । (३) मनमौजी ।

अलवेली—वि० स्त्री० [हिं० अलवेला (पु०)] (१) बनी-ठनी । (२) अनोखी, सुन्दर । उ०—आजु राधिका रूप अन्हायो । देखत बने कहत नहिं आवै मुख छवि उपमा अन्त न पायो । अलवेली अलक तिलक केसरि को ता बिच सेंदुर बिन्दु बनायो—२०६३ । (३) अल्हड़, मनमौजी । उ०—इहाँ ग्वालि बनि बनि जुरी सब सखी सहेली । सिरनि लिए दधि दूध सबै यौवन अलवेली—१००७ ।

अलस—वि० [सं०] आलस्ययुक्त, अलसाया हुआ । उ०—(क) कन्हैया हालरौ हलरोइ । हौं वारी तव इन्दु-वदन पर, अति छवि अलस भरोइ—१०-५६ । (ख) कुंजभवन तैं आजु राधिका अलस, अकेली आवत—सा० १३ ।

अलसाई—क्रि० अ० [हिं० अलसाना] अलसा जाती है, क्लांत होती है, शिथिलता का अनुभव करती है । उ०—काया हरि कैं काम न आई । भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई—१-२९५ ।

अलसात—क्रि अ. [सं. अलस, हिं अलसाना] आलस्य दिखाना, उदासीनता दिखाना । उ०—अब मोसो अलसात जात हो अधम-उधारनहारे—१२५ ।

अलसान—सज्ञा स्त्री [स आलस्य] आलस ।

अलसाना—क्रि. अ [स. अलस] आलस्य या शिथिलता का अनुभव करना ।

अलसाने—क्रि. अ बहु [स अलस, हिं अलसाना] थक गये, क्लांत हुए, शिथिल हो गये । उ०—बल मोहन दोऊ अलसाने—१०-२३० ।

अलसामिनी—सज्ञा स्त्री [हिं अलसाना] वह युवती जो अलसायी हुई या निद्रामग्न हो । उ०—मरगजे हार बिथुरि बार देखियत आइ गई, एक याम यामिनी । औरै सोभा सोहाई अंग अंग अरसाय बोलनि है कहा अलसामिनी—१५८१ ।

अलिवाहन को प्रीतम वाला ता वाहन रिपु—सज्ञा पु. [स. अलिवाहन (कमल) + प्रियतम (कमल का प्रियतम = समुद्र) + वाला (समुद्र की वाला = समुद्र की स्त्री = गंगा) + वाहन (गंगा का वाहन करने वाला = शिव) + रिपु (शिव का रिपु = काम)] कामदेव, काम ।

अलिसुत—सज्ञा पु [स.] भौंरा । उ०—अलिसुत प्रीति करी जलसुत सो सपुट माँझ गह्यो—२८०९ ।

अलसेट—सज्ञा पु. [सं. आलस] (१) ढील ढाल, व्यर्थ की देर । (२) बाधा, अड़चन । (३) टाल-मटूल ।

अलसौंहैं—वि० पु० [स० अलस + औहौ (प्रत्य०)] आलस्ययुक्त, क्लात, शिथिल ।

अलिसौंहैं—वि० [स० अलस + औहा (प्रत्य०)] क्लात, आलस्ययुक्त, शिथिल । उ०—जावक भाल नागरस लोचन मसिरेखा अधरनि जो ठए । बलि या पीठि बचन अलिसौंहैं बिन गुन कटक हार बनाए—२०९१ ।

अलाप—सज्ञा पु [स. आलाप] (१) बातचीत । (२) स्वर-साधन, तान ।

अलापना—क्रि अ. [हिं अलापना] (१) बातचीत करना । (२) तान लगाना, सुर खींचना । (३) गाना ।

अलापति—क्रि स. स्त्री [हिं. अलापना] (१) गाती है । उ०—गावत स्याम स्यामा रंग । सुघरगतिनागरि अलापति सुर धारति पिय संग—पृ०—३५१ (७६) । (२) सुर खींचती है, तान लगाती है ।

अलापि—क्रि. अ [हिं अलापना] सुर खींचकर, तान लगाकर । उ०—नटवर वेष धरे ब्रज आवत । ... अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत—२३४६ ।

अलापी—वि [स अलापी] (१) बोलने वाला । (२) गाने वाला ।

अलाभ—सज्ञा स्त्री. [स] लाभ का उलटा, हानि । उ०—दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हो रोइ—१-२६२ ।

अलायक—सज्ञा पु० [स० अ = नहीं + अ० लायक] अयोग्य ।

अलार—संज्ञा पु. [सं अलात] अलाव, अँवाँ, भट्ठी।

अलाल—संज्ञा पु [सं. अलात=अगार] घास-फूस से जलायी हुई आग जिसको गाँव के लोग तापते हैं, कौडा।

अलिंगन—संज्ञा पु. [सं आलिंगन] हृदय से लगाने की क्रिया, परिरंभण। उ—(क) करि अलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन-चीर—१०-२६। (ख) सूर सरचो गोपाल अलिंगन सकल किए कंचन घट—८६०।

अलिंद—संज्ञा पु [सं अलींद्र] भौंरा।

अलि—संज्ञा पु. [सं] भौंरा भ्रमर।

संज्ञा स्त्री—श्यामता। उ—छिति पर कमल-कमल पर कदली पंकज कियो प्रकास। तापर अलि सारंग प्रति सारंग रिपु नै कीनो वास—सा. उ. २८।

संज्ञा स्त्री [सं. आली, हिं. अली] सखी, सहचरी। उ—हौं अलि केतने जतन बिचारी। वो मूरत वाके उर अन्तर बसी कौन विधि टारी—सा ६७।

अलिप्त—वि [सं.] (१) जो लिप्त न हो, जो कोई संबंध न रखे, बेलौस, निर्लिप्त। उ.—जीवन-मुक्त रहै या भाइ। ज्यौं जल-कमल अलिप्त रहाइ—३-१३। (२) राग द्वेष से मुक्त, अनासक्त। उ.—देहऽभिमानी जीवहिं जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै—५-४।

अलिवाहन—संज्ञा पु. [सं. अलि=भौंरा+वाहन=सवारी] कमल।

अली—संज्ञा स्त्री. [सं. आली] (१) सखी, सहचरी, सहेली। उ.—(क) गुन गावत मंगलगीत, मिलि दस पाँच अली—१०-२४। (ख) का सतरात अली बतरावत उनने नाच नचावै—सा० ८४। (ग) बन ते आजु नंदकिसोर। अली आवत करत मुरली की महाधुनि घोर—सा ३९। श्रेणी, पंक्ति।

संज्ञा पु० [सं० अलि] भौंरा।

अलीक—संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं+हिं. लीक] अप्रतिष्ठा।

वि०—अप्रतिष्ठित।

वि०—[सं०] मिथ्या, झूठा।

अलीगन—संज्ञा पु [सं. अलि=भौंरा+गण (भौंरो का समूह। भौंरे काले होते हैं, इसलिए अलीगन से अर्थ लिया गया, कालिमा=श्यामता=काजल)] अंजन, काजल। उ०—चारि कीर पर पारस विद्रुम आजु अलीगन खात—सा० ९।

अलीन—वि [सं अ=नहीं+लीन=रत] (१) अग्राह्य, अनुपयुक्त। (२) अनुचित।

अलीह—वि० [सं० अलीक] मिथ्या, असत्य।

अलुझना—क्रि अ [अवरधन, प्रा ओरुज्झन, हिं उलझना] (१) फँसना, अटकना (२) लिपट जाना। (३) लीन होना। (४) लड़ना, झगड़ना।

अलुटना—क्रि. अ [सं लुट=लोटना=लड़खड़ाना] लड़खड़ाना, गिर पड़ना।

अलूप—वि [सं. लुप्त=अभाव] लुप्त, अदृश्य।

अलूला—संज्ञा पु [हिं. बुलबुला, बलूला] भभूका, लपट, उद्गार।

अलेख—वि. [सं.] (१) दुर्बोध, अज्ञेय। (२) अनगिनती, बहुत अधिक।

वि. [सं अलक्ष्य] अदृश्य।

अलेखनि—वि. [सं अलेख] (१) अनगिनती, बहुत अधिक। (२) व्यर्थ, निष्फल।

अलेखा—वि [सं अलेख] (१) जो गिना न जा सके। (२) व्यर्थ, निष्फल।

अलेखी—वि. [सं अलेख] (१) अंधेर करनेवाला, अन्यायी।

अलेखे—वि [सं. अलेख, हिं अलेखा] (१) अनगिनती, बेहिसाब। उ.-पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस स्रवन अलेखे—३०१४। (२) व्यर्थ, निष्फल। उ.—सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए अलेख। कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नैन बिन देखे—२-२५। (३) असत्य, बेसमझे बूझे। उ—कहा करनि तुम बात अलेखे। मोसों कहति स्याम तुम देखे तुम नीके करि देखे—१३११।

अलेखै—वि. [सं अलेख] व्यर्थ, निष्फल। उ—अब जो जतन करहुगे हमको ते सब हमहिं अलेखै। सूर सुमन सा तव सुख मानै कमलनैन मुख देखै—३३९३।

अलोक—वि. [सं.] (१) जो देखने में न आवे, अदृश्य। (२) जहाँ कोई न हो, निर्जन।

संज्ञा पु.—अनदेखी बात, मिथ्या, दोष, कलंक।

अलोकना—क्रि० स० [सं० आलोकन] देखना, ताकना।

अलोना—वि० [सं० अलवण] (१) जिसमे नमक न हो। (२) स्वाद रहित फीका।

अलोल—वि० [सं० अ=नहीं+लाल=चचल] जो चंचल न हो, स्थिर।

अलौलिक—सज्ञा पु० [सं० अलोल] स्थिरता, धीरता।

अलौकिक—वि० [सं०] (१) इस लोक से परे, लोकोत्तर। (२) असाधारण, अद्‌भुत।

अल्प—वि० [सं०] (१) थोड़ा, कम, न्यून। (२) छोटा।

सज्ञा पु०—एक अलकार जिसमे आधेय की तुलना मे आधार की अल्पता का वर्णन हो। उ०—नैन सारँग सैन मोनन करी जानि अधीर। आठ रवि तें देख तव तें परत नाहिं गम्भीर। अल्प सूर सुजान का सो कहौ मन की पीर—सा० ४४। [यहाँ नेत्रो की अपेक्षा रास्ते की अल्पता का वर्णन होने से 'अल्प' अलंकार है।]

अल्लाना—क्रि अ [सं अर्=बोलना] जोर से बोलना, चिल्लाना।

अवकलना—क्रि० अ० [सं० अवकलन=ज्ञात होना] समझ पड़ना, विचार मे आना।

अवगतना—क्रि० स० [सं० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०) सोचना, समझना, विचारना।

अवगनना—क्रि० अ० [सं० अवगणन] (१) निन्दा, करना, अपमान करना। (२) नीचा दिखाना, पराजित करना। (३) गिनना।

अवगारना—क्रि० स० [सं० अव+गृ] समझाना बुझाना, जताना।

अवगारे—क्रि० स० [सं० अव+गृ, हिं० अवगारना] समझावे-बुझावे, जतावे। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। . . . । हम जान्यो यह स्याम सखा है यह तो औरे न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे—३२६८।

अवगाह—वि० [सं० अवगाध] अथाह, बहुत गहरा, अत्यंत गंभीर। उ०—(क) उर-कलिंद तें धँसि जलधारा उदर-धरनि परवाह। जाहि चली धारा ह्वै . . . . . .भी-हृद अवगाह—६३७। (ख) विहरत मानसरम कुमारि। कबहुँ निकसत नहीं, हो रही करि मनुहारि। मौन धारि अपार रचि अवगाह अस जु वारि—२०२८। (२) अनहोनी, कठिन।

सज्ञा पु० (१) गहरा स्थान। (२) कठिनाई।

सज्ञा पु०—जल मे प्रवेश करके स्नान करना।

अवगाहत—क्रि० अ० [सं० अवगाहन, हिं० अवगाहना] खोजते हैं, ढूँढते हैं, छानबीन करते हैं। उ—कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह को, कर सौं पकरन चाहत। किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत—१०-११०। (२) सोचते विचारते हैं, समझते हैं। उ०—(क) नागरि नागर पथ निह रै। . . .। अग सिंगार स्याम हित कीने वृथा होन यह चाहत। सूर स्याम आवहिं की नाहीं मन-मन यह अवगाहत—१५९८। (ख) कहा होन अबही यह चाहत। जहँ तहँ लोग इहै अवगाहत—१०४९। (३) धारण करते हैं, ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, स्थापित करते हैं।

अवगाहन—संज्ञा पु० [सं०] (१) निमज्जन। (२) मथन, मथना। (३) थहाना, खोज छानबीन। (४) लीन होकर विचार करना।

अवगाहना—क्रि० अ० [सं० अवगाहना] (१) धँसना, मग्न होना। (२) निमज्जन करना।

क्रि० अ०—(१) छानबीन करना। (२) मथना। (३) सोचना, विचारना। (४) धारण करना, ग्रहण करना।

अवगाहि—क्रि० स० [सं० अवगाहन, हिं० अवगाहना] (१) सोच-विचार कर, समझ बूझ कर। उ०—जब मोहिं अगद कुसल पूछिहैं, कहा कहौंगो ताहि। या जीवन तैं मरन भलो है मैं देख्यो अवगाहि—९-७५। (ख) यह देखत जननी मन व्याकुल बालक मुख कहा आहि। नैन उघारि, बदन हरि मूँद्यो, माता मन अवगाहि—१० २५३।

अवगाहैं—क्रि० अ० बहु० [सं० अवगाहन, हिं० अवगाहना] सोचते-विचारते हैं। उ०—कोउ कहै देहैं दाम नृपति जेतो धन चाहैं। कोउ कहै जैए सरन सबै मिलि बुधि अवगाहैं—५८९।

अवगाहै—क्रि० स० [सं० अवगाहन, हिं० अवगाहना]

ग्रहण करता है, धारण करता या अपनाता है। उ०—(क) तमोगुनी चाहै या माइ। मम बैरी क्यों हूँ मरि जाइ। सुद्धा भक्ति मोहि कौ चाहै। मुक्तिहुँ को सो नहिं अवगाहै—३-१३। (ख) तमोगुनी रिपु मारिवौ चाहै। रजोगुनी धन कुटँबऽवगाहै—३-१३।

अवगाहौं—क्रि० अ० [सं० अवगाहन, हिं० अवगाहना] (१) निमज्जित होता हूँ, धँसता या पैठता हूँ, मग्न होता हूँ।

क्रि० स० (१) थहाता या छानबीन करता हूँ। (२) मथता हूँ, हलचल करता हूँ। (३) चलाता या हिलाता डुलाता हूँ। (४) सोचता-विचारता हूँ। (५) धारण या ग्रहण करता हूँ।

अवगुन—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] (१) दोष दूषण। (२) अपराध, बुराई।

अवग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुकावट, अड़चन। (२) प्रकृति, स्वभाव।

अवघट—वि० [सं० अव + घट्ट = घाट] अटपट, विकट, कठिन दुर्घट। उ०—घाट-बाट अवघट जमुना तट बातैं कहत बनाइ। कोऊ ऐसौ दान लेत है कौने सिख पढाय—१०२९।

अवचट—संज्ञा पुं० [सं० अव = नहीं + हिं० चित्त] अनजान, अचक्का।

अवछंग—संज्ञा पुं० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग, हिं० उछंग] गोद, क्रोड़, कोरा। उ०—इक-इक रोम विराट किए तन, कोटि-कोटि ब्रह्मांड। सो लीन्हो अवछंग जसोदा, अपनैं भरि भुजदंड—४८७।

अवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपमान, अनादर। (२) आज्ञा का उल्लंघन, अवहेला। (३) अपमान, अनादर, तिरस्कार। उ०—जोपै हृदय माँझ हरी। तो पै इती अवज्ञा उनपै कैसे सही परी—३२००।

अवघटना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आवट्टन] (१) मथना। (२) औटाना।

अवटि—क्रि० स० [हिं० अवटना] औटाकर, आँच पर गरमाने से गाढा करके।

अवडेर—संज्ञा पुं० [हिं० अव = रार या राड़] झंझट, बखेड़ा।

अवडेरना—क्रि० स० [हिं० अवडेर + ना (प्रत्य०)] चक्कर मे डालना, फँसाना।

अवडेरा—वि० [हिं० अवडेर] (१) घुमाव फिरावदार, चक्करदार। (२) बेढब।

अवढर—वि० [सं० अव + हिं० ढार या ढाल] जैसी मौज हो, वैसा ही करने वाला, मनमौजी। उ०—लच्छ सो बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर ढरन—१-२०२।

अवतंस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूषण, अलंकार। (२) मुकुट, श्रेष्ठ।

अवतरतौ—क्रि० अ० [सं० अवतरण, हिं० अवतरना) प्रकट होता, जन्मता, उत्पन्न होता। उ०—जो हरि को सुमिरन तू करतौ। मेरे गर्भ आनि अवतरतौ—४-९।

अवतरना—क्रि० अ० [सं० अवतरना] प्रकट होना, उपजना, जन्मना।

अवतरते—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] जन्मते, प्रकट होते, अवतार लेते। उ०—जो प्रभु नर देही नहिं धरते। देवै गर्भ नहीं अवतरते—११८६।

अवतरि—क्रि० अ० [सं० अवतरण, हिं० अवतरना] अवतरे, उत्पन्न हुए, जन्म लिया। उ०—धनि माता, धनि पिता, धन्य सो दिन जिहिं अवतरि—५८९।

अवतरिहउँ—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] जन्म लूँगा, प्रकट होऊँगा।

अवतरी—क्रि० स० स्त्री [हिं० अवतरना] प्रकट हुई, जन्मी। उ०—बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ वरी—४-५।

अवतरे—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] प्रकट हुए, अवतार लिया, जन्मे। उ०—विष्नु-अंस सौं दत्त अवतरे—४-३।

अवतरैं—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] प्रकट हों, उपजें जन्म लें। उ०—याकैं गर्भ अवतरैं जे सुत, सावधान ह्वै लीजै—१०-४।

अवतर्‌यौ—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] प्रकटा, जन्मा उपजा पैदा हुआ। उ०—धन्य कोखि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतर्‌यौ यह सुत आई—७६१।

अवतार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उतरना नीचे आना (२) जन्म, शरीर-ग्रहण। उ०—नहिं ऐसौ जनम

बारबार । पुरबलो लों पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर अव-तार—१-८८ । (३) विष्णु का संसार मे जन्मना । (४) सृष्टि, शरीर रचना ।

मुहा०—लीन्हौ अवतार—जन्म लिया, शरीर ग्रहण किया । उ०—तुम्हरे भजन सबहिं सिंगार । ...... । कलिमल दूरि करन के काजैं, तुम लीन्हौ जग मैं अवतार—१-४१ । अवतार धरना—जन्म ग्रहण । अवतार करना—शरीर, धारण किया ।

अवतारा—सज्ञा पु०[स० अवतार] जन्म, शरीर-ग्रहण । उ०—परसुराम जमदग्नि गेह लीनौ अवतारा—९१४ ।

अवतारी—वि० [स० अवतार] अवतार ग्रहण करने-वाला । उ०—त्रिभुवन नायक भयौ आनि गोकुल अवतारी—४९२ । (२) देवांशधारी, अलौकिक । उ०—(क) बारबार विचारनि जसुमति, यह लीला अवतारी । सूरदास स्वामी की महिमा, कापै जात विचारी—१०-३८८ । (ख) कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया बडो पूत तैं जायौ । यह कोउ आदि पुरुष अवतारी भाग्य हमारे आयौ ।

क्रि० स० [हिं० अवतारना] जन्म दिया । उ०—धन्य कोख जिहिं तोको राख्यौ, धन्य घरी जिहिं तू अवतारी—७०३ ।

अवतारना—क्रि स [स० अवतारण] (१) उत्पन्न करना, रचना । (२) जन्म देना ।

अवतारे—क्रि स [हिं. अवतारना] रचे बनाये, उत्पन्न किये । उ०—आपु स्वारथी की गति नाही । बिधिना ह्यां काहे अवतारे जुवती गुनि पछिताही—पृ ३२० ।

अवतार्‍यौ—क्रि० स० [हिं० अवतारना] उत्पन्न किया, रचा, बनाया । उ०—अब यह भूमि भयानक लागै बिधिना बहुरि कंस अवतार्‍यौ—२८३२ ।

अवदात—वि [स](१) उज्ज्वल, श्वेत । (२) स्वच्छ, निर्मल । पीत, पीला ।

अवध—सज्ञा पु०[स० अयोध्या](१) कोशल देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी । (२) अयोध्या नगरी । उ०—दसरथ चले अवध आनदत—९-२७ ।

सज्ञा स्त्री० [स० अवधि] (१) सीमा, हद, पराकाष्ठा । उ०—यह निरखित की अवध वाम तू भइ सूर हत सखी नवीन—सा० ९६ ।(२) निर्धारित समय, मियाद । उ०—(क) लोचन चातक जीवो नहि चाहत । अवध गए पावस की आसा क्रम क्रम करि निरवाहत—२७७१ । (ख) सूर प्रान लटि लाज न छांडत सुमिरि अवध आधार—२८८८ ।

वि० [स० अवध्य] न मरने योग्य । उ०—सिव न अवध सुन्दरी वधो जिन—१६८७ ।

अवधपुर—सज्ञा पु [स अयोध्या] अयोध्या नगरी ।

अवधपुरी—सज्ञा स्त्री० [स०] अयोध्या नगरी ।

अवधा—सज्ञा स्त्री० [हिं०] राधा की एक सखी का नाम । उ०—सुखमा सीला अवधा नदा बृ दा जमुना सारि—१५८० ।

अवधारना—क्रि स [सं अवधारण] धारण करना, ग्रहण करना ।

अवधि—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) सीमा, हद, परा-काष्ठा । उ०—यह हौं मन आनन्द अवधि सब । निरखि सरूप विवेक नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब—१-६९ । (२)निर्धारित समय, प्रति-ज्ञात काल । उ०—(क) इतनेहिं मे सुख दियौ सबन कौ मिलिहैं अवधि बताइ—२५३३ । (ख) दिवस-पति सुतमात अवधि विचार प्रथम मिलाइ - सा० ३२ । (३) अंत समय, अंतिम काल । उ०—तेरी अवधि कहत सब कोउ तातैं कहियत बात । बिनु बिस्वास मारिहै तोकौं आजु रैन कै प्रात ।

मुहा०—अवधि बदी-समय नियत किया । उ०—निसि बसिबे की अवधि बदी—मोहिं साँझ गएँ कहि आवन । सूर स्याम अनतहि कहुँ लुबधे नैन भए दोउ सावन । अवधि देना—समय निश्चित करना ।

अव्य [स] तक, पर्यन्त ।

अवधिमान—सज्ञा पु० [स] समुद्र ।

अवधूत—सज्ञा पु (१ एक सन्यासी, योगी । (२) साधुओ का एक भेद ।

अवधेस—सज्ञा पु [स अवध + ईश] श्रीरामचन्द्र । उ०—दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लकेस कहावत—९-१३३ ।

अवन, अवनु—सज्ञा पु [स] (१) प्रसन्न करना । (२) रक्षण, बचाव ।

संज्ञा पु [सं. अवनि] (१) भूमि। (२) राह, सड़क।

अवना—क्रि० अ० [सं० आगमन] आना।

अवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी, जमीन। उ०—हमारी जन्म भूमि यह गाउँ।] सुनहु सखा सुग्रीव-विभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ—९-१६५।

अवनिधरि—संज्ञा पु [सं अवनि=पृथ्वी+हिं धरि=धारण करने वाला] शेषनाग। उ०—भृकुटि को दड अवनिधरि चपला विधस हूँ कीर अरघो—सा० उ० १४।

अवनी—संज्ञा स्त्री [सं. अवनि] पृथ्वी। उ.—कुटिल अलक वदन की छवि, अवनी परि लोलै—१०-१०१।

अवनीप—संज्ञा पु [सं. अवनि+प=पति] राजा।

अवर—वि. [हिं. और] अन्य, दूसरा, और। उ०—(क) नहिं मोतैं कोउ अवर अनाथा—१०६९। (ख) नवमो छोड़ अवर नहिं ताकत दस जिन राखै साल स.-२९। (२) अधम, नीच।

वि [सं अ=नहीं+वल] निर्बल, बलहीन।

अवराधक—वि. [सं. आराधक] पूजा या आराधना करने वाला।

अवराधन—संज्ञा पुं [सं. आराधक] उपासना, पूजा। उ.—योग ज्ञान ध्यान अवराधन साधन मुक्ति उदासी। नाम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उदासी ३१०१।

अवराधना—क्रि स [सं. आराधन] उपासना करना, पूजा या सेवा करना।

अवराधहु—क्रि स.[हिं. अवराधना] उपासना या पूजा करो।

अवराधा—क्रि. स [हिं अवराधना] उपासना की, सेवा-अर्चना की। उ—जननी निरखि चकित रही ठाढी, दम्पति-रूप अगाधा। देखति भाव दुहुँनि को सोई, जो चित करि अवराधा—७०५।

अवराधि—क्रि. स. [हिं. अवराधना] उपासना या पूजा-सेवा करके। उ.—जोगी जन अवराधि फिरत जिहिँ ध्यान लगाए। ते ब्रजबासिनि सग फिरत अति प्रेम बढाए—४९२।

अवराधी—वि. [सं. आराधन] उपासक, पूजक।

अवराधैं—क्रि. स. [हिं. अवराधना] उपासना करते हैं, पूजते हैं। उ—पति के हेत नेम, तप साध। सकर सौ यहि कहि अवराधैं—७९९।

अवराधौ—क्रि. स. [हिं अवराधना] उपासना या पूजा करो। उ—ऐसी विधि हरि को अवराधौ।

अवरेखना—क्रि स [सं. अवलेखन] (१) लिखना, चित्रित करना। (२)देखना। (३)अनुमान करना, सोचना। (४) मानना, जानना।

अवरेखत—क्रि. स. [हिं अवरेखना] (१) अनुमान या कल्पना करता है, सोचता है। (२) मानता है, जानता है।

अवरेखिए—क्रि स [हिं. अवरेखना] (चित्र) खीचिए या बनाइए, चित्रित कीजिये। उ.—स्याम तन देखि री आपु तन देखिए। भीति जो होइ तो चित्र अवरेखिए—१०-३०७।

अवरेखी—वि. [हिं. अवरेखना] लिखित, चित्रित, खचित। उ.—चपक-पुहुप-बरन-तन-सुन्दर मनो चित्र-अवरेखी। हो रघुनाथ, निसाचर के सग अवै जात हौं देखी—९-६४।

क्रि. स देखी। उ०—फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली। अहो बधु काहू अवरेखी (अवलोकी) इहि मग बधू अकेली—९-६४।

अवरेखु—क्रि. स. [हिं. अवरेखना] लिखी है, चित्रित है।

अवरेखे—वि [हिं. अवरेखना] लिखे हुए, रँगे हुए, चित्रित। उ०—ऐसे मेघ कबहुँ नहिं देखे। अतिकारे काजर अवरेखे—१०४८।

अवरेखैं—क्रि स [हिं अवरेखना] अनुमान या कल्पना करते हैं, सोचते हैं।

अवरेख्यौ—क्रि. स. [हिं. अवरेखना] देखा। उ०—ऐसे कहत गये अपने पुर सबहि विलक्षण देख्यौ। मनिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यौ।

अवरेब—संज्ञा पु [सं अव=विरुद्ध+रेव=गति](१) वक्र गति, तिरछी चाल। (२) पेंच, उलझन। (३) बिगाड, खराबी। (४) झगड़ा, विवाद। (५) वक्रोक्ति।

अवरे—वि. [हिं अवर] अन्य, दूसरे, बदले हुए । उ.—(क) ऊधौ हरि के अवरै ढग—३३२७ । (ख) ऊधौ अवरै कान्ह भए—३३८४ ।

अवरोधना—क्रि स. [स अवरोधन] रोकना, मना करना ।

अवरोहना—क्रि. अ [स. आरोहण] उतरना, नीचे आना ।

क्रि. अ. [सं. आरोहण] चढ़ना, ऊपर जाना ।

क्रि. अ.[हिं उरेहना]अंकित या चित्रित करना ।

क्रि स. [स अवरोधना, प्रा. अवरोहन] रोकना, घेरना ।

अवर्त्त—सज्ञा पु. [स आवर्त्त] (१) भँवर, नांद ।(२) घुमाव, चक्कर ।

अवलंघना—क्रि स.[स अव+लघना]लांघना, फांदना

अवलंघ्यौ—क्रि. स. [स. अव+लघना, हिं अवलघना] लांघ लिया, पार कर लिया । उ —राम प्रताप, सत्य सीता की, यहै नाव-कन्धार् । तिहिं आधार छिन मैं अवलघ्यौ, आवत भई न वार—९-८९ ।

अवलंब—सज्ञा पु. [स.] आश्रय, सहारा ।

अवलंबन—संज्ञा पु [स] (१) आश्रय, आधार, सहारा । उ.—वे उत रहत प्रेम अवलबन इत ते पठयौ योग—३४९२ । (२) धारण, ग्रहण ।

अवलंबना—क्रि स. [स अवलंबन] आश्रय लेना, टिकना ।

अवलंबित—वि [स अवलबन] (१) आश्रित, सहारे पर स्थित, टिका हुआ । उ.—ऐसे और पतित अवलबित ते छिन माहिं तरे—१-१९८ (२) निर्भर ।

अवलंबिये—क्रि स [हिं. अवलबना] सहारा लीजिए, आश्रित होइए ।

अवला—सज्ञा स्त्री [देश] राधा की एक सखी गोपी का नाम । उ.—व्रज जुवतिनि सवहिन मैं जानति घर-घर लै-लै नाम वतायो ——। अमला अवला कजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८० ।

अवलि—सज्ञा स्त्री. [स आवलि] समूह झुड । उ —(क) मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि नैन छवि देत । मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि-समेत—३४९ । (ख) अति रमनीक कदव छाँह-रुचि परम सुहाई । राजत मोहन मध्य अवलि वालक छवि पाई—४९२ ।

अवली—सज्ञा स्त्री [स आवलि] (१) पंक्ति, पाँति । उ —अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख वगराई । मानौ प्रगट कज पर मजुल अलि-अवली फिरि आई—१०-१०८ । (२) समूह, झुंड ।

अवलेखन—क्रि. स. [स. अवलेखन] (१) खोदना, खुरचना । (२) चिह्नित करना, लकीर खींचना ।

अवलेखी—क्रि स [हिं अवलेखना] चिह्नित करो ।

अवलेप—सज्ञा पु [स अवलेपन] (१) उबटन, लेप । उ —कुच कुकुम अवलेप तरुनि किए सोभित स्यामल गात । (२) घमंड, गर्व ।

अवलोकत—क्रि. स [हि. अवलोकना] (१) दिखाई देता है, सूझता है, निहारने से । उ.—(क) हृद विच नाभि, उदर त्रिवली वर, अवलोकत भव-भय भाजै—१-६९ । (ख) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ । ·· ·—·—। अति गभीर तीर नहिं नियरैं किहिं विधि उतरयौ जात । नहिं अधार नाम अवलोकत, जित-तित गोता खात—१-१७५ । (२) जांचता हुआ, खोजता हुआ । उ.—फिरत वृथा, भाजन अवलोकत सूनें भवन अजान—१-१०३ ।

अवलोकन—सज्ञा पु [स] देखना । (२) जाँच, निरीक्षण । उ —रवि करि विनय सिवहिं मन लीन्हौं । हृदय माँझ अवलोकन कीन्हौं—७९९ ।

अवलोकनि—सज्ञा स्त्री. [स. अवलोकन] (१) आँख, दृष्टि । (२) चितवन । उ —(क) मैं बलि जाऊँ स्याम-मुख-छवि पर । ——। वलि-वलि जाऊँ चारु अवलोकनि, वलि-वलि कुण्डल-रवि की—६६४ ।
(ख) उ —मृदु मुसुकानि नेक अवलोकनि हृदये तै न हरै—१८०३ । (ग) देखि अचेत अमृत अवलोकनि चले जु सींचि हियौ—२८८६ ।

अवलोकना—क्रि स. [स अवलोकन] (१) देखना । (२) जाँचना खोज करना

अवलोकहु—क्रि स [हिं अवलोकना] देखो, निहारो । उ०—चित दै अवलोकहु नँदनदन पुरौ परम रुचिरूप । सूरदास प्रभु कस मारि कै होउ यहाँ के भूप—२५६१ ।

अवलोकि—क्रि स. [हिं अवलोकना] देखकर, निहार

कर । उ०—अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महामद माते (हो)—१-४४ ।

अवलोकित—वि [हिं. अवलोकना] देखी हुई, ताकती हुई ।

अवलोकी—क्रि स. [सं० अवलोकन, हिं० अवलोकना] देखी है, निहारी है । उ०—फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली । अहो बधु, काहूँ अवलोकी इहि मग बधू अकेली—९ ६४ ।

अवलोके—क्रि स [हिं. अवलोकना] देखे, निहारे । उ.—चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै—९-५३ ।

अवलोक्यो—क्रि स. [हिं अवलोकना] देखा, निरीक्षण किया । उ —लुब्ध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौं अव-लोक्यौ नहिं फंद—१-१०२ ।

अवलोचना—क्रि स [सं आलोचन] दूर करना ।

अवशेष—वि [स] (१) बचा हुआ, (२) समाप्त ।

अवसर—सज्ञा पु. [स] (१) समय, काल । उ —सूर स्याम सग बिसेसोक्ति कहि आई अवसर साँझ—सा. ३७ । (२) अवकाश ।

मुहा —अवसर के चूकें—अवसर का लाभ न उठाने पर, मौका हाथ से निकल जाने पर । उ०—सूरदास अवसर के चूकै, फिरि पछितैहौ देखि उघारी—१-२४८ ।

अवसाद्—सज्ञा पु. [स.](१)नाश, क्षय ।(२)विषाद । (३) दीनता ।

अवसान—सज्ञा पु [स] (१) सुध-बुध, होश-हवास, चेत, धैर्य ।(क) सुरसरी सुवन रन भूमि आए । बान बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ अवसान तब सब भुलाए—१-२७१ । उ.—(ख) पूँछ लीन्ही झटकि धरनि सौं गहि पटकि फुकरयौ लटकि करि क्रोध फूले । पूछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँप अवसान भूले—५५२ । (ख) झिरकि नारि, दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ । पग सौं चाँपी पूँछ सबै अवसान भुलायौ—५८९ । (ग) तनु बिष रह्यौ है छहरि । ······। गए-अवसान, भीर नहिं भावै, भावै नहीं घहरि—७५० । (घ) बिछुरत उमँगि नीर भरि आई अब न कछू अवसान—२७७५ । (२) विराम, ठहराव । (३) समाप्ति, अन्त ।

अवसि—क्रि वि. [स अवश्य] अवश्य, निश्चय करके, निस्संदेह । उ —रिषि कह्यौ, मैं करिहौ जहँ जाग । दैहौं तुमहिं अवसि करि भाग—९-३ ।

अवसेर—संज्ञा स्त्री [सं. अवसेरु=बाधक] (१)अटकाव, उलझन । उ०—भयौ मन माधव की अवसेर । मौन धरे मुख चितवत ठाढ़ी ज्वाब न आवे फेर—१२१५ । (२) देर, विलब । उ.—(क) महरि पुकारत कुँअरि कन्हाई । माखन धरयौ तिहारैं कारन आजु कहाँ अवसेर लगाई । (ख)अब तुमहूँ जनि जाहु सखा इक देहु पठाई । कान्हहिं ल्यावै जाइ आजु अवसेर लगाई—५८९ । (३) चिन्ता, व्यग्रता । उ.—(क) आजु कौन बन गाइ चरावत, कहूँ धौ भई अबेर । बैठे कहूँ सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करत अवसेर—४५८ । (ख) श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुन्दरि बड़े महर वृष-भानुदुलारी । अति अवसेर करत सब ह्वैहैं, जाहु वेगि दैहै पुनि गारी—१२२९ । (४) बेचैनी, व्याकुलता, हैरानी । उ०—दिन दस घोष चलहु ग्वाल । नाचत नहीं मोर ता दिन तैं बोल न बरषा काल—३४६३ ।

अवसेरत—क्रि. स. [हिं. अवसेर, अवसेरना] (१) देर लगाते हैं । (२) चिन्ता करते हैं ।

अवसेरन—सज्ञा स्त्री. सवि [हिं. अवसेर] चिन्ता में, व्यग्रता के कारण । उ०—मधुकर ए मन एसौ वरन । अहो मधुप निसिदिन मरियतु है कान्ह कुबर अवसेरन—३२७७ ।

अवसेरना—क्रि स. [हिं अवसेर] तंग करना, दुख देना ।

अवसेरि—सज्ञा स्त्री. [हिं. अवसेर] देर, विलम्ब । उ०—(क) महरि पुकारति कुवर कन्हाई । माखन धरयौ तिहारेहि कारन, आजु कहाँ अवसेरि लगाई—५४६ ।

अवसेरी—संज्ञा स्त्री [हिं. अवसेर] चिन्ता, व्यग्रता । उ.—(क) तेरे बस री कुँअरि कन्हाई करति कहा अवसेरी । सूरस्याम तुमको अति चाहत तुम प्यारी

हरि केरी—२४५७ । (ख) सखी रही राधा मुख हेरी । चकृत भई कछु कहत न आवै, करन लगी अवसेरी—१६५२ । (ग) जब तें नयन गए मोहिं त्यागि । इन्द्री गई, गया तन तें मन उनहिं बिना अवसेरी लागि—१८८४ ।

अवसेरें—सज्ञा स्त्री. [हिं. अवसेर] चिन्ता, व्यग्रता । उ.—ढूंढ़ति है द्रुम बेली बाला भई बेहाल करति अवसेरें—१८१३ ।

अवसेष—वि [स. बचा हुआ, शेष] । उ. - सो हौ एक अनेक भाँति करि सोभित नाना भेष । ता पाछे इन गुननि गए तैं, रहिहौ अवसेष—२-३८ ।

अवसेस—वि [स. अवशेष] (१) बचा हुआ, शेष । उ.—बिपति-काल पाडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी । करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन भूख हरी—१-१६ । (२) समाप्त ।

सज्ञा पु (१) शेष या बची हुई वस्तु । (२) समाप्ति, अन्त ।

अवस्था—सज्ञा स्त्री [स] (१) आयु, उम्र । (२) समय, काल । उ.—मरन अवस्था को नृप जानै । तौ हूँ घर न मन मैं ज्ञानै—४-१२

अवहेलना—क्रि स [स अवहेलना] तिरस्कार करना, अवज्ञा करना ।

अवाँ—सज्ञा पु [स. आपाक=हिं. आवाँ] वह गढा जिसमे कुम्हार बर्तन पकाते हैं ।

अवाई—सज्ञा स्त्री. [स आयन=आगमन] आगमन ।

अवागी—वि. [स. अवाग्विन्=अपटु] मौन, चुप ।

अवाज—सज्ञा स्त्री. [फा आवाज] ध्वनि, शब्द । उ.—(क) अबलौ नान्हे-नुन्हे तारे, ते सब बृथा-अकाज । साँचे बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज—१-९६ । (ख) कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज—१-१०८ । (ग) त्राहि त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुण्ठ अवाज खरी—१-२४९ ।

अवाजैं—सज्ञा स्त्री. [फा. आवाज] ध्वनि शब्द । उ.—ब्रज पर सजि पावस-दल आयौ । ...... । चातक मोर इतर पर दागन करत अवाजैं कोयल । स्याम घटा गज असन बाजि रथ चिन बगपाँति सजोयल—२८१९ ।

अवाया—वि [स. अवार्य] उच्छृङ्खल, उद्धत । उ—अकरम अविधि अज्ञान अवाया (अवज्ञा) अनमारग अनरीति । जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२९ ।

अवारजा—सज्ञा पु [फा.] (१) जमा खर्च की बही । (२) संक्षिप्त लेखा या वृत्तात । उ.—करि अवारजा प्रेम-प्रीति को, असल तहाँ खतियावै । दूजे करज दूरि करि देयत, नैकुँ न तामैं आवै—१-१४२ ।

अवास—सज्ञा पु [स. आवास] निवास स्थान, घर । उ.—(क) भयौ पलायमान दानव-कुल, व्याकुल सायक-त्रास । धजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनि-मय कनक अवास—९-८३ । (ख) बाजत नद-अवास बधाई । बैठे खेलन द्वार आपने सात बरस के कुँअर कन्हाई—९-१२ ।

अवासा—सज्ञा पु. [स आवास] घर, निवास स्थान । उ.—चितवत मन्दिर भए आवासा । महल महल लाग्यो मनि पासा—२६४३ ।

अविकल—वि. [स.] (१) पूर्ण, पूरा । (२) अव्याकुल, शात ।

अविकार—वि [स.]विकाररहित, निर्दोष ।

सज्ञा पु. [स.] विकार का अभाव ।

अविकारी—वि [स अविकारिन] जिसमे विकार न हो, निर्दोष ।

अविगत—वि [स.] (१) जो जाना न जाय । (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय । (३) जो नष्ट न हो, नित्य ।

अविचर—वि [स. अविचल] जो विचलित न हो। सदा बनी रहने वाली, अटल, स्थिर । उ—खेलत नवल किसोर किसोरी । ...... । देत असीम सकल ब्रज जुवती जुग-जुग अविचर जोरी—२३९३ ।

अविचल—वि. [स] अचल, स्थिर, अटल ।

अविजन—सज्ञा पु [स.] कुल, वश ।

अविद्य—वि [स अविद्यमान] नष्ट ।

अविद्या—सज्ञा स्त्री [स] (१) मिथ्या, ज्ञान, मोह । (२) माया । (३) माया का एक भेद ।

अविनय—सज्ञा पु [स.] विनय का अभाव, उद्दंडता ।

अविनासी—सज्ञा पु [स अविनाशिन, हिं अविनाशी[

ईश्वर, ब्रह्म। उ०—सूर मधुपुरी आइकै ये भए अविनासी।

वि०—(१) जिसका विनाश न हो, अक्षय। (२) नित्य, शाश्वत।

अविरल—वि० [सं०] (१) जो भिन्न न हो, सटा हुआ। (२) घना, सघन।

अविरोध—संज्ञा पु० [सं०] मेल, संगति।

अविर्था—क्रि० वि० [सं० वृथा] व्यर्थ ही, निष्प्रयोजन ही, वृथा ही। उ०—सूतत रही अविर्था सुरपति—१०३९।

अविहड़—वि [सं० अ + विघट] जो खंडित न हो, अनश्वर।

अव्यक्त—वि० [सं०] (१) अप्रत्यक्ष, अगोचर। (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय।

संज्ञा पु०—(१) विष्णु। (२) शिव। (३) प्रकृति।

अवेश—वि० [सं० आवेश] उन्मत्त, मतवाले, आवेशयुक्त। उ०—आयो पर समझै नही हरि होरी है। राजा रक अवेश अहो हरि होरी है—२४५३।

संज्ञा पु०—(१) आवेश, मनोवेग। (२) चेतनता। (३) भूत लगना या चढ़ना।

अशन—संज्ञा पु० [सं०] (१) भोजन, आहार। उ०—गरल अशन अहि भूषण धारी—८३७। (२) भोजन की क्रिया।

अशनि—संज्ञा पु० [सं०] वज्र, बिजली।

अशुन—संज्ञा पु० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र।

अशेष—वि० [सं०] (१) पूरा, सब। (२) अनंत, अपार, अनेक।

अषाढ़—संज्ञा पु० [सं० आषाढ] आषाढ़ नामक महीना जो ज्येष्ठ के पश्चात् और श्रावण के पूर्व आता है।

अष्ट—वि० [सं०] आठ।

अष्टकृष्ण—संज्ञा पु० [सं०] वल्लभकुल मे मान्य आठ कृष्ण-श्रीनाथ, नवनीतप्रिय मथुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुल चन्द्र, नवनमोहन।

अष्टम—वि० पु० [सं०] आठवां। उ०—अष्टम मास संपूरन होइ—३-१३।

अष्टमग्रह—संज्ञा पु० [सं० अष्टम (= आठवां) + ग्रह) सूर्य से आठवां ग्रह 'राहु', फिर 'राहु' शब्द से राह या रास्ता अर्थ हुआ)] राह, रास्ता। उ०—आवत थी वृषभानु नंदिनी आजु सखी के संग। ग्रह अष्टम मिली नंदसुत अंग अनंग उमंग—सा० ८२।

अष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठवीं तिथि, आठैं।

अष्टसुर—संज्ञा पु० [सं० अष्ट (= आठ = वसु, क्योंकि वसु आठ माने जाते हैं) + सुर (= देव) (वसु + देव से बना वसुदेव) श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव।

अष्टसुरन-सुत—संज्ञा पु० [सं० (अष्ट = आठ. 'वसु' आठ होते हैं अतएव अष्ट = वसु) + सुर (= देव— दोनो को मिलाने से बना 'वसुदेव') + सुत (= (वसुदेव के पुत्र) श्रीकृष्ण। उ०—ये है हेमपुर अष्टसुरन सुत दिनपति ही को बास—सा० ९५।

अष्टांग—संज्ञा पु० [सं०] योग-क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि। उ०—भक्तिपथ कौं जो अनुसर। सो अष्टांग जोग कौं करै—२-२१।

अष्टाकुल—संज्ञा पु० [सं० अष्टाकुल] पुराणानुसार सर्पो के आठ कुल शेष, वासुकि कंबल, कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक। दूसरों के मत से आठ कुल ये हैं तक्षक, महापद्म, शख, कुलिक, कंबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक। उ०—चिता मानि चितै अतरगति, नाग-लोक कौं धाए। पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल तब यदुनदन ल्याए—१ २९।

अष्टाक्षर—संज्ञा पु० [सं०] (१) आठ अक्षरो का मंत्र। (२) वल्लभ-सम्प्रदाय मे मान्य-श्रीकृष्ण शरणं मम।

अष्टौ—वि० [सं० अष्ट] आठों। उ०—भोजन सब लै धरे छहौ रस कान्ह संग अष्टौ सिधि—९२३।

असंक—वि० [सं० अशंक] निर्भय, निडर।

असंख—वि० [सं० असंख्य] अगणित, बहुत अधिक।

असंग—वि० [सं०] (१) अकेला, एकाकी। (२) किसी से संबंध न रखने वाला, न्यारा, निर्लिप्त, माया-रहित। उ०—मृग-तन तजि, ब्राह्मन-तन पायौ। पूर्व-जन्म-सुमिरन तहँ आयौ। मन मैं यहै बात ठहराई। होय असंग भजौं जदुराई—५ ३। (३) अलग, पृथक।

असंगत—वि० [सं०] (१) अयुक्त जो ठीक न हो।

(२) अनुचित। उ०—भ्रम-भायो मन भयो पखावज, चलत असगत चाल—१-१५३।

असंत—वि० [स०] खल, दुष्ट, बुरा। उ०—यह पूरन हम निपट अधूरी, हम असत यह सत—१३२४।

असंतुष्ट—वि० [स०] (१) जो सतुष्ट न हो। (२) जो अघाया न हो, अतृप्त। (३) अप्रसन्न।

असंभार—वि० [स०] (१) जिसकी सम्हाल या देख-भाल न हो सके। (२) अपार, बहुत बडा।

असंभाव—वि० [स० असभाव्य] न कहने योग्य।

सज्ञा पु०—बुरा वचन, खराब बात। उ०—अस-भाव बोलन आई है, ढीठ ग्वालिनी प्रात-१०-२९०।

असंभु—सज्ञा पु० [स० अ=नही+शभु=कल्याण] अशुभ, अमगल। उ०—नसै धर्म मन वचन काय करि सभु असभु करई (सिंधु अचभौ करई)। अचला चल चलत पुनि थाकै, चिरजीति सो मरई—९-७८।

अस—वि० [स० एष=यह, अथवा ईदृश] (१) ऐसा, इस प्रकार का। उ०—(क) जो हरि व्रत निज उर न धरैगो। तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगो—१-७५। (ख) धन्य नद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत—१०-३६। (२) तुल्य, समान।

असक्त—वि० [स० आसक्त] अनुरक्त, लीन, लिप्त। उ०—ज्वाला-प्रीति, प्रगट सम्मुख हठि, ज्यौं पतग तन जारयौ। विषय-असक्त, अमित अघ व्याकुल, तवहूँ कछु न सँभारयौ—१-१०२।

असगुन—सज्ञा पु० [स० अशकुन] बुरा, शकुन, बुरा, लक्षण।

असत—वि० [स० असत] (१) खोटा, असाधु, असज्जन। उ०—साधु-सील सद्रूप पुरुष को, अपजस बहु उच्चरतौ। औघड असत कुचीलनि सौ मिलि, माया जल मैं तरतौ—१-२०३।

वि० [स० अ=नही+सत्य] मिथ्या।

असत्कार—सज्ञा पु० [स०] अपमान, निरादर।

असद्व्यय—सज्ञा पु० [स०] बुरे कामो मे खर्च। उ०—हुतौ आढ्य तब कियौ असदव्यय करी न व्रज-बन-जात्र। पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौ पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६।

असन—सज्ञा पु० [स० अशन] भोजन, आहार। उ०—असन, बसन बहु विधि दए (रे) औसर-औसर आनि—१-३२५।

असनान—सज्ञा पु० [स० स्नान] स्नान। उ०—नृपति सुरसरी कैं तट आइ। कियौ असनान मृत्तिका लाइ—१-३४१।

असभई—सज्ञा स्त्री० [स० असभ्यता] अशिष्टता।

असमंत—सज्ञा पु० [स० अश्मत] चूल्हा।

असम—वि० [स०] (१) जो सम या तुल्य न हो। (२) ऊँचानीचा, ऊबड़-खाबड़।

असमबान—सज्ञा पु० [स० असमबाण] कामदेव।

असमय—सज्ञा पु० [स] विपत्ति का समय।

वि०—कुअवसर, कुसमय।

असमाथ—वि० [स० असमर्थ] (१) सामर्थ्यहीन, अशक्त। (२) अयोग्य।

असमसर—सज्ञा पु० [स० असमशर] कामदेव। उ०—अजन रजित नैन, चितवनि चित चोरै, मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर—१०-१५१।

असमेध—संज्ञा पु० [स० अश्वमेध] अश्वमेध।

असयाना—वि० [स० अ=नही+हिं० सयाना] (१) भोलाभाला, सीधासादा। (२) अनाड़ी, मूर्ख।

असरन—वि० [सं० अशरण] जिसे कहीं शरण या आश्रय न हो, अनाथ। उ०—प्रभु, तुम दीन के दुख-हरन। स्याम-सुन्दर, मदनमोहन, बान असरन-सरन १-२०२।

असरनसरन—सज्ञा पु० [स० अशरण+शरण] जिसे कहीं आश्रय न हो उसे शरण देने वाले, अनाथ के आश्रय दाता। उ०—सो श्रीपति जुग-जुग सुमिरन-बस, वद विमल जस गावै। असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—१-१७।

असरार—क्रि० वि० [हिं० सर सर] निरन्तर, लगातार, बराबर। उ०—कहो नद कहाँ छांडे कुमार। करुना कर जसोदा माता नैनन नीर बहै असरार—२६७१।

असल—वि० [अ०] (१) सच्चा, खरा। (२) उच्च, श्रेष्ठ। (३) बिना मिलावट का शुद्ध।

सज्ञा पु० [अ०] (१) जड़, मूल, बुनियाद तत्व। (२) मूल धन। उ०—बटटा काटि कसूर भरम कौ, फरद तले लै डारै। निहचै एक असल पै राखै, टरै

न कबहूँ टारै। करि अबारजा प्रेम प्रीति को, असल तहाँ खतियावै—१-१४२।

संज्ञा पु० [सं० शल्य] बाण, भाला।

असवार—वि० [फा० सवार] सवार होकर, चढ़कर। उ०—(क) नृपति रिषिन पर ह्वै असवार। चल्यौ तुरत सची कैं द्वार—६-७। (२) करि अंतरधान हरि मोहिनी-रूप कौं, गरुड असवार ह्वै तहाँ आए—८-८।

असवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० सवारी] सवारी, चढना। उ०—अमरन कह्यौ, करौ असवारी मानस कौ लेहु हँकारी—१०६६।

क्रि० अ०—सवार होकर, सवारी करके। उ०—निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैश्रवा के पोर—१० उ०—६।

असह्—वि० [सं० असह्य] जो सहा न जा सके।

असही—वि० [सं० असह्] दूसरे की बढ़ती न सहन करने वाला, ईर्ष्यालु।

असाँच—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य, झूठ।

असाध—वि० [सं० असाध्य] जिसका साधन न हो सके, कठिन, दुष्कर।

वि० [सं० असाधु] दुष्ट, बुरा।

असाधु—वि० [सं०] दुष्ट, दुर्जन। उ०—महादेव कौं भाषत साध। मैं तौ देखौ वडो असाधु—४-५।

असार—वि० [सं०] (१) सारहीन, व्यर्थ, निरर्थक। उ०—यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार। सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार—१-६८। (२) शून्य, खाली। (३) तुच्छ।

असि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, खड्ग।

असित—वि० [सं०] (१) जो सित (सफेद) न हो, काला। उ०—(क) असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवैं—१०-६५। (ख) उज्ज्वल अरुन असित दीसति हैं, दुहूँ ननिन की कोर—३५९। (२) दुष्ट, बुरा। उ०—हमारे हिरदै कुलसै जै त्यौ। ··· । हमहूँ समुझि परी नीकैं करि यहै असित तन रीत्यौ—२८८४। (३) टेढा, कुटिल।

असिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

असी—वि० [सं० अशीति, प्रा० असीति, हिं० अस्सी] अस्सी। उ०—(क) तासौं सुत निन्यानवे भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए। तिनमैं नव-नव खंड अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म-विचारी। असी-इक कर्म विप्र कौ लियौ। रिषभ ज्ञान सबही कौ दियौ—५२। (ख) असी सहस किंकर-दल तेहिके, दौरे मोहिं निहारि—९-१०४।

असीस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशिष] आशीर्वाद। उ०—इक बदन उघारि निहारि, देहिं असीस खरी—१०-२४।

असीसना—क्रि० स० [सं० आशिष] आशीर्वाद देना।

असीसैं—क्रि० स० [हिं० असीसना] आशीर्वाद देती हैं। उ०—जोरि कर विधि सौ मानवति असीसैं लै नाम। न्हात बार न खसै इनको कुसल पहुँचै धाम—२५६५।

असुचि—वि० [सं० अशुचि] (१) अपवित्र। (२) गंदा, मैला।

असुर—संज्ञा पु० [सं०] दैत्य, राक्षस।

असुरगुरु—संज्ञा पु० [सं०] शुक्राचार्य।

असुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० असुर + हिं० आई (प्रत्य०)] खोटाई, बुराई।

असूझ—वि० [सं० अ + हिं० सूझना] (१) अंधकारमय। (२) अपार, बहुत, विस्तृत। (३) विकट, कठिन।

असूत—वि० [सं० अस्यूत] विरुद्ध, असंबद्ध।

असूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईर्ष्या एक संचारी भाव। उ०—चंद्र भाग संग गयो सुआखर-रिपु सब सुख बिसराई। एक अबल करि रही असूया सुर सुनत कहू चाई—सा० ४९।

असैला—वि० [सं० अ = नहीं + शैली = रीति] (१) रीति विरुद्ध कर्म करने वाला, कुमार्गी। (२) रीति विरुद्ध, अनुचित।

असोकी—वि० [सं० अ = नहीं + शोक + हिं० ई (प्रत्य)] शोकरहित।

असोच वि० [सं० अ = नहीं + शोच] निश्चिंत, बेफिक्र। उ०—माधौ जू, मन सबही विधि पोच। अति उन्मत्त निरकुश मगल, चिंता रहित असोच—१-१०२।

असोज—संज्ञा पुं० [सं० अश्वयुज] आश्विन, क्वार।

असोस—वि० [सं० अ = नहीं + शोष] न सूखने वाला।

असोच—वि० [स० अशोच] अपवित्र। उ० हौ असोच अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाऊँ—१-१२८।

असौंधि—सज्ञा पु०[स० अ=नही + हि० सौंध=सुगध] दुर्गन्धि।

असेस—वि० [स० अशेष] (१) पूरा, सब। (२) अपार, अधिक, अनत। उ०—गगन गर्जत बीजु तरपति मधुर मेह असेस—२२९०।

अति—वि० [स०] (१) छिपा हुआ, (२) अदृश्य, डूबा हुआ। (३) नष्ट, ध्वस्त।

सज्ञा पु० [स०] तिरोधान, लोप।

अस्तन—सज्ञा पु. [स. स्तन] स्त्रियो की छाती जिनमें दूध रहता है।

मुहा०—अस्तन पान कराई—दूध पिलाती है। उ—वालक लियौ उछग दुष्टमति, हरषित अस्तन-पान कराई—१०-५०।

अस्ति—सज्ञा स्त्री [स. अस्थि] हड्डी। उ.—बहुरि हरि आवहिंगे किहि काम। ' । सूर स्याम ता दिन ते बिछुरे अस्ति रही कै चाम—२८२३।

अस्तुत—सज्ञा स्त्री. [स० अ=नही + स्तुति] निंदा। उ०—ह्वै गए सूर सूल सूरज बिरह अस्तुन फेर—सा० ३३।

अस्तुति - सज्ञा स्त्री. [स स्तुति] स्तुति, विनती प्रार्थना। उ.—पुनि सिव ब्रह्म अस्तुति करी—४-५।

अस्त्त—सज्ञा पु [स] (१) फेंककर शत्रु पर चलाये जाने वाले हथियार, जैसे वाण, शक्ति। (२) वह हथियार जिससे दूसरे अस्त्र फेंके जायँ जैसे धनुष, बंदूक। (३) शत्रु के हथियारो की रोक करने वाले हथियार, जैसे ढाल। (४) मत्र द्वारा चलाये जाने वाले हथियार। उ०—अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र कौं दियौ चलाइ—१-२८९।

अस्थल—सज्ञा पु. [स स्थल] स्थल, स्थान। उ.—अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्हे—१०-२६०।

अस्थान—सज्ञा पु. [स स्थान] स्थान, ठौर, आश्रय। उ० - पतितपावन जानि सरन आयौ। उदधि ससार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११९।

अस्थामा—सज्ञा पु. [स. अश्वत्थामा] द्रोणाचार्य को पुत्र। उ.—भीषम द्रोन करन अस्थामा सकुनि सहित काहूँ न सरी—१-२४९।

अस्थि—सज्ञा स्त्री [स.] हड्डी।

अस्थिर—वि. [स.] (१) जो स्थिर न हो, चंचल। (२) बेठौर-ठिकाने का। (३) स्थिर, अचंचल। उ—भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि। कामक्रोध मद-लोभ मोह तू, सकल दलाली देहि—१-३१०।

अस्नान—सज्ञा पु [स स्नान] स्नान। उ.-करि अस्नान नद घर आए—१०-९६०।

अस्पर्स—सज्ञा पु [स. स्पर्श, स्पर्श, छूना। उ.—जब गजेंद्र को पग तू गैहै। हरि जू ताको आनि छुटैहैं। भएँ अस्पर्स देव-तन धरिहैं। मेरौ कह्यौ नाहिं यह टरिहै—८-२।

अस्म—सज्ञा पु [स अश्मन्, अश्म] पत्थर। उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत अपमान। जँह-जँह जात तही तिहिं त्रासत अस्म लकुट, पदत्रान—१-१०३। (ख) आपुन तरि तरि औरन तारत। अस्म अचेत प्रकट पानी मैं, बनचर लै लै डारत—९-१२३।

अस्मय—सज्ञा पु, [सं. असमय] विपत्ति का समय, बुरा समय।

क्रि. वि.—कुअवसर पर।

अस्व—सज्ञा पु. [स अश्व] घोडा, तुरंग।

अस्वथाम, अस्वत्थामा—संज्ञा पु [स अश्वत्थ मा] द्रोणाचार्य का पुत्र। उ—अस्वत्थामा भय करि भग्यौ। ···। अस्वत्थामा न जब लगि मारौं। तब लगि अन्न न मुख मैं डारौं—१-२८९।

अस्वमेध—सज्ञा पु [स. अश्वमेध] एक महान् यज्ञ जिसमे घोड़े के मस्तक पर जय-पत्र बाँध कर भूमण्डल की दिग्विजय की जाती थी। पश्चात्, घोडे की चर्बी से हवन किया जाता था जो साल भर मे समाप्त होता था।

अस्विनिसुत—सज्ञा पु.[स. अश्विनीसुत] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नामक स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र। एक बार सूर्य का तेज सहन करने मे असमर्थ हो, यम यमुना नामक पुत्र-पुत्री के पास अपनी छाया छोड़, प्रभा भाग

गयी और घोडी बनकर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को शनि और तप्ती नामक दो सतति हुई। पश्चात, प्रभा की छाया ने अपनी सतान से प्रेम और प्रभा के पुत्र-पुत्री का तिरस्कार करना आरंभ किया। फलत प्रभा के भाग जाने की बात खुल गयी। तब सूर्य अश्वरूप मे अश्विनी रूपिणी प्रभा के पास गये। इस संयोग से दोनों अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति हुई।

अहं—सर्व [स] अहकार अभिमान। उ—ज्यौं महाराज या जलधि तैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यौं करौ स्वामी। अह ममता हम सदा लागी रहै, मोह मद-क्रोध-जुत मद कामी—८-१६।

अहँकार, अहंकार—सज्ञा पु. [स. अहकार] (१) अभिमान, गर्व। (२) मैं और मेरा का भाव, ममत्व।

अहंकारी—वि. [स अहकारिन] अभिमानी, घमडी।

अहंभाव—सज्ञा पु [स.] अपने को सब कुछ समझने का भाव, अहंकार, अभिमान। उ—अहभाव तैं तुम बिसराए, इतनहिं छुटयो माथ—१-२०८।

अहंवाद—संज्ञा पु [स] डींग मारना।

अह—सज्ञा पु [स अहन्] दिन। उ.—मही एक अह अरु निसि दुखी—१० उ०—१३८।

यौ—अहनिसि [स अहर्निश] दिनरात। उ—तृष्णा-तडित चमकि छनहीं-छन, अहनिसि यह तन जारौ—१ २०९।

अहकना—क्रि स [हिं अहक+ना (प्रत्य०)] इच्छा करना, चाहना।

अहटाना—क्रि अ [हिं आहट] आहट लगना, पता चलना। (२) टोह लगना।

क्रि अ [स आहत] दुखना।

अहल्या—सज्ञा स्त्री [स] गौतम ऋषि की पत्नी।

अहदी—वि पु [अ.] (१) आलसी। (२) अकर्मण्य।

सज्ञा पु. [अ.] अकबर के समय के ऐसे सिपाही जो विशेष आवश्यकता के अवसर पर काम मे लगाये जाते थे, शेष समय बैठे खाते थे। मालगुजारी वसूलने ज कर ये आकर बैठ जाते थे और बकाया लेकर ही लौटते थे। उ.—घेरयो आय कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी हठयौ। सूर नगर चौरसी भ्रमि भ्रमि घर घर बौ जु भयौ—१-६४।

अहना—क्रि. स. [स अस्ति] वर्तमान, रहना, होना।

अहनिसि-क्रि वि. [स अहर्निश] दिनरात।

अहने—सज्ञा पु [स आह्वान, हिं. अहान,] पुकार, शोर, चिल्लाहट।

अहमिति—सज्ञा स्त्री. [स. अहम्मति] (१) अहंकार। (२) अविद्या। उ.—रे मन जनम अकारथ खोइसि। हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि। निस दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३।

अहलना—क्रि अ [स आहलनम्] हिलना, काँपना।

अहलाद—सज्ञा पु. [स आह्लाद] आनंद, हर्ष। उ.—(क) ताको पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर-मन अति अहलाद—७-२। (ख) आनदित गोपी-ग्वाल नाचैं दै दै-ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ कैं—१०-३१। (ग) हस साखा सिखर पर चढि करत नाना नाद। मकरनि जु पद निकट विहरत मिलन अति अहलाद-सा० उ०—५।

अहवान—सज्ञा पु [आह्वान] बुलाना, आवाहन।

अहार—सज्ञा पु [स. आहार] भोजन।

अहारना—क्रि स [स आहरणम] खाना, भोजन करना।

अहारी—वि [स. आहारिन्, हिं आहारी] खाने वाला। उ—अपद-दुपद-पसु भाषा बूझत अबिगत अल्प अहारी—८-१४।

अहि—सज्ञा पु. [स] साँप।

अहिइंद्र—सज्ञा पु. [स] कालियानाग। उ.—यह कह्यौ नद रूप बदि, अहि इद्र पैं गयौ मेरी नद, तुव नाम लीन्हौ—५८४।

अहित—सज्ञा पु [स.] बुराई, अकल्याण। उ.—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पाडव अहित विचारी। साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी—१ १२२।

वि—(१) शत्रु, बैरी। (२) हानिकारी। उ.—छहौ रस जो धरौं आगैं, तउ न गध सुहाइ। और अहित भच्छ अभच्छति कला वरनि न जाइ—१-५६।

अहिनाह—सज्ञा पु. [स अहिनाथ] शेषनाग।

अहिपति-सुता-सुवन—सज्ञा पुं [स (अहि=नाग)

अहिपति =) ऐरावत = वशी कौरव्य नाग) + सुता (= कौरव्य नाग की कन्या उलूपी) + सुवन (उलूपी का पुत्र बभ्रुवाहन)] बभ्रुवाहन जो अर्जुन का पुत्र था और जिसने युद्ध मे पिता को मूर्छित कर दिया था। उ.—अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख ह्वै वचन कह्यौ इक हीनौ। पारथ विमल बभ्रुवाहन को सीस खिलौना दीनौं—१-२९।

अहिनी—सज्ञा स्त्री. [स. अहि (पु)] साँपिन, सर्पिणी। उ.—चदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अति सुखदाई। मानहुँ अर्धचद्र तट अहिनी सुधा चोरावन आई—१३५०।

अहिवेल—सज्ञा स्त्री. [स अहिवल्ली, प्रा अहिवेली] नागवेलि पान।

अहिर—सज्ञा पु [सं आभीर, हि. अहीर] अहीर, ग्वाला।

अहिराइ—सज्ञा पु. [हि अहिराय] कालियानाग। उ.—उरग लियौ हरिकौ लपटाइ। गर्व वचन कहि-कहि मुख-भाखत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ-५५५।

अहिराज—सज्ञा पु. [सं] कालियानाग। उ—सूर के स्याम, प्रभु लोक अभिराम, बिनु जान अहिराज बिष-ज्वाल बरसै—५५२।

अहिलता—सज्ञा स्त्री. [स.] नागवेलि, पान उ —अहिलता रंग मिट्यौ अधरन लग्यौ दीपकजात—२१३०।

अहिल्या—सज्ञा स्त्री. [स अहल्या] गौतम ऋषि की पत्नी, जिसका सतीत्व इन्द्र ने भ्रष्ट किया था और जो पति-के शाप से पत्थर की हो गयी थी। श्री रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से इसका उद्धार हुआ।

अहिवात—सज्ञा पु [स अभिवाद्य, प्रा. अहिवाद] सौभाग्य, सोहाग। उ—(जब) कान्ह काली लै चले, तब नारि विनवै देव हो। चेरि को अहिवात दीजै, करै तुम्हारी सेव हो—५७७।

अहिसायी—सज्ञा पु [स. अहि + हि. शायी (सं. शायिन्)] शेषनाग की शैया पर सोने वाले विष्णु। उ.—हरिहर सकर नमो नमो। अहिसायी, अहिअग विभूषन, अमित दान, बल-विष-हारी—१०-१७१।

अहीर—सज्ञा पु. [स अभीर] ग्वाला।

अहीरी—सज्ञा स्त्री [हिं. अहीरिन] ग्वालिन। उ.—नैंकहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी—३४८।

अहुटना—क्रि अ [स हठ, हि हटना] हटना, दूर होना।

अहुटै—क्रि अ. [हिं. अहुटना] दूर हो, हटे। उ.—हम अबला अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। सूर वदन देखत ही अहुटै या सरीर को रोग

अहुटाना—क्रि. स. [हि अहुटना] हटाना, दूर करना। भगाना।

अहुठ—वि. [स अध्युष्ठ, अर्द्ध मा अड्ढुइढ] साढे तीन, तीन और आधा। उ --(क) गरि गिरि परत, जाति नहिं उलँघी, अति स्रम होत नघावत अहुठ पैग वसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत—१०-१२५। (ख) जब मोहन कर गही मथानी।...। कबहुँक अहुठ परग करि वसुधा, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।

अहेर—सज्ञा पु [स. आखेट] (१) शिकार, मृगया। (२) वह जिसका शिकार खेला जाय।

अहेरी—सज्ञा पु. [हि अहेर] शिकारी, आखेटक। उ—लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिसि तु अचूक अहेरी नहिं अजान—२८३८।

अहेरौ—सज्ञा पु [स. आखेट, हि अहेर] आखेट, शिकार, भोजन। उ—केतिक सख जुगै जुग बीते मानव असुर अहेरौ—९-१३२।

अहै—क्रि. अ [सं. अस्ति, हिं अहना] वर्तमान है। उ—(क) राखन हार अहै कोउ औरै, स्याम धरे भुज चारि—७-३। (ख) मुरली मैं बीच प्रान बसत अहै मेरो—१० २८४।

अहो—अव्य. [स] विस्मयादिबोधक अव्यय जिसका बोध करुणा, खेद, प्रशसा, हर्ष विस्मय आदि सूचित करने के लिए होता है। कभी कभी सबोधन की तरह ही यह प्रयुक्त होता है। उ—(क) जिन तन-धन मोहिं प्रान समरपे, सील, सुभाव, बडाई। ताको विषम बिष अहो मुनि मोपै सह्यौ न जाई ९-७। (ख) अहो महरि पालागन मेरी, मैं तुमरो सुत देखन आई—१०-५१। ग) नद कह्यौ घर जाहु कन्हाई ऐसे

मैं तुम जैहौ जिनि कहुँ अहो महरि सुन लेहु बुलाई-९१२।

अह्यौ—संज्ञा पुं. [सं. अहि] सर्प साँप। उ.—सुधि न रही अति गलित गात भयौ जनु डसि गयौ अह्यौ—२६६७।

आ

आ—देवनागरी वर्णमाला का दूसरा अक्षर। यह 'अ' का दीर्घ रूप है।

आँक—संज्ञा पु [सं अंक] (१) अंक, चिह्न। (२) दाग, धब्बा। उ.—कतर मिलो लोचन बरषत अति दुत मुख के छबि रोयो। राहु केतु मानो सुमीडि विधु आँक छुटावत धोयो—३४८२। (३) संख्या का चिह्न। (४) अक्षर। (५) निश्चय, सिद्धांत। (६) अंश, भाग, हिस्सा। (७) बार, दफा। उ.—एकहुँ आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, सूर गँवार—१-३२५। (८) गोद।

आँकना—क्रि. स [सं. अंकन] (१) चिह्नित या अंकित करना। (२) मूल्य अनुमानना। (३) निश्चित करना ठहरना।

आँकरो—वि [सं आकर = खान (गहरी), हिं आँकर] (१) गहरा। (२) बहुत अधिक।

आँकुस—संज्ञा पु. [सं अंकुश] अंकुश।

आँख—संज्ञा स्त्री [सं. अक्षि प्रा अक्खि, पं. अँक्ख] लोचन, नेत्र, नयन।

आँखड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं आँख + डी (प्रत्य)] आँख।

आँख—संज्ञा स्त्री. [हिं आँख] नेत्र, लोचन। उ.—हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे बन मे आँखि मिचाइ—२३८८।

मुहा.—आवत न आँखि तर—आँख तले नहीं आता, तुच्छ मानता है, कुछ नहीं समझता। उ.—नख-सिख लौं मेरी वह देही है पाप की जहाज। और पतित आवत न आँखि तर देखत अपनो साज—१-९६। आँख गडि लागत—(१) खटकता है, चुभता है, बुरा लगता है। (२) मन मे बसता है, ध्यान पर चढता है पसद आता है। उ.—जाहु भले हो कान्ह दान अँग-अँग को माँगत। हमरो यौवन रूप आँखि इनके गडि लागत—१०२५। आँखि दिखावत—सक्रोध देखता है, क्रोध से घूरता है, कोप जताता है। उ.- आँखि दिखावत हौ जु कहा तुम करिहौ कहा रिसाय। हम अपनो भयौ करि लैहै छुवरि कुँअरि के पाय—२४४७ (७)। आँखि धूरि देनी-धोखा दिया, भ्रम मे डाला। उ.—हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीनी। लाल ढिगनि की सारी ताको पीत उढनियाँ कीनी—६९४। धूरि दै आँखि—आँख मे धूल झोककर, धोखा, देकर, भ्रम मे डालकर। उ.- सोइ अमृत अब पीसति मुरली सबहिन के सिर नाखि। लिए छँडाइ निडर सुनि सूरज धेनु धरि दै आँखि। आँखि लगी—(१) प्रीति हुई। (२) टकटकी बँधी, दृष्टि जम गयी, (३)नींद आयी झपकी लगी। उ.—बहुरचो भूलि न आँखि लगी। सुपेनेहू के सुख न सहि सकी नीद जगाइ भगी—२७९०। देखौं भरि आँख-आँख भरकर देखूँ, इच्छा भर देखूँ, देखकर अघा जाऊँ। उ.—अबकै जो परचौ करि पावौं अरु देखो भरि आँखि। सूरदास सोने कै पानी मढौं चोच अरु पाँखि—९-१६४। आँखि नहि मारत—पलक नहीं झपकाते, जरा नहीं थकते, विश्राम नहीं करते, भयभीत नहीं होते। उ.—जिहि जल तृन, पसु दारु बूडि, अपनैं सँग औरन पारत। तिहि जल गाजत महावीर सब तरत आँखि नहि मारत—९-११२।

आँखनि—संज्ञा स्त्री सवि [हिं. आँख + नि (प्रत्य.)] आँखो मे, नेत्रो मे।

मुहा.—आँखिनि धूरि दई—आँखों में धूल झोंकी, सरासर धोखा दिया, भ्रम डाला। उ.—ज्यों मधुमाखी सँचति निरतर, बन की ओट लई। व्याकुल होइ हरे ज्यो सरबस आँखिन धूरि दई—१-५०।

आँखी—संज्ञा स्त्री [हिं. आँख] नेत्र, लोचन।

आँग—संज्ञा पु. [सं अंग] (१) अंग, शरीर। (२) कुच स्तन।

आँगन—संज्ञा पु [सं अंगण] घर का चौक, अजिर।

आँगिरस—संज्ञा पु. [सं.] अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त।

आँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगिका, प्रा० अँगिआ] अँगिया, चोली।

आँगुर—संज्ञा पु० [सं० अंगुली] अंगुल।

आँगुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगुली, हिं० उंगली] उँगली। उ०—कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आँगुरी, बडे बडे नखनि के चिन्ह तेरे—१०-३०७।

आँच—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि = आग की लपट, प्रा० अच्चि] (१) गरमी ताप। उ०—मेरे दधि को हरि स्वाद न पायो। धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँच मैं औटि सिरायो। (२) आग, अग्नि। (३) ताव। (४) तेज, प्रताप। (५) विपत्ति, संकट, संताप। उ० - व एँ कर वाजि-वाग दहिन है वैठे। हाँकत हरि हाँक देत, गरजत ज्यों ऐंठे। छाता लौं छाँह किए सोभित हरि छाती। लागन नहिं देत कहूँ समर आँच ताती—१-२३ (६) प्रेम, मोह।

आँचना—क्रि० स० [हिं० आँच] जलाना तपाना।

आँचर—संज्ञा पु० [सं० अंचल, हिं० आंचल] अंचल, आँचल। उ०—स्रवन मूँदि, मुख आँचर ढाप्यौ, अरे निसाचर, चोर—९-८३।

आँचल—संज्ञा पुं० [सं० अंचल] (१) स्त्रियों की धोती, साडी आदि का सामने का भाग जो छाती पर रहता है। (२) पल्ला, छोर।

आँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँच] (१) तेज, प्रताप। (२) क्रोध। उ०—ब्रह्म रुद्र डरें डरत काल कैं, काल डरत भ्रू भंग की आँची—१-१८।

आँचे—क्रि० स० [हिं० आँच, आँचना] जलाया, तपाया। उ०—प्रीति के वचन वाचे विरह अनल आँचे अपनी गरज को तुम एक पाइ नाचे—२००३।

आँजति—क्रि० स० [सं० अंजन] अंजन लगाती है। उ०—(क) रवि ससि कोटि कला अवलोकत त्रिविध ताप छय जाइ। सो अंजन कर लै सुनि चच्छुहिं आँजति जसुमति माइ—८८७। (ख) निमिष निमिष में धोवति आँजति सिखए आवत रंग—पृ० ३२५।

आँजन—संज्ञा पु० [हिं० अंजन] काजल, अंजन।

आँजना—क्रि० स० [हिं० अंजन] अंजन लगाना।

आँजि—क्रि० स० [सं० अंजन, हिं० अँजना] अंजन लगाकर। उ०—कान्हें गरें सोहति मनि माला, अंग अभूषन अँगुरिनि गोल। सिर चौतनी डिठौना दीन्हौ आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-९४।

आँजैं—क्रि० स० [हिं० अंजन, आँजना] अंजन या काजल लगाकर। उ०—सूरदास सोभा क्यों पावत आँखि आँधरी आँजैं—३२३०।

आँट—संज्ञा पु० [हिं० अंटी] (१) दाँव, वश। (२) गाँठ, गिरह।

आँटना—क्रि० अ० [हिं० अँटना] (१) समाना, अटना। (२) मिलना, पहुँचना।

आँदू—संज्ञा पु० [सं० अंदु = बडी] (१) लोहे का कडा, बेड़ी। (२) बाँधने की जंजीर।

आँध—संज्ञा स्त्री० [सं० अंध] (१) अँधेरा, धुन्ध। (२) अंधा। (३) मतवाला, कामांध। उ०—सकर कौं मन हरयौ कामिनी, सेज छाँडि भू सोयौ। चारु मोहिनी आइ आँध कियौ तब नख-सिख तैं रोयौ १४३

आँधना—क्रि० अ० [हिं० आँधी] सवेग आक्रमण करना।

आँधर, आँधरा—वि० [सं० अंध] अंधा, नेत्रहीन।

आँधरि, आँधरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँधरी] अंधी स्त्री। उ०—(क) कच खुवि आँधरि काजरी कानी नकटी पहिरैं वसरि—३०२५। (ख) सूरदास सोभा क्यों पावत आँखि आँधरी आँजैं—३२३९।

आँधरौ—वि० [सं० अंध, हिं० अंधा] अंधा। उ०—सूर, कूर, आँधरौ, मैं द्वार परयौ गाऊँ—१-१६६।

आँधारंभ—संज्ञा पु० [हिं० अंधेर + प्रारंभ] अंधेरखाता।

आँधी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंध = अंधेरा] अंधड़, अंधवाव।

आँव—संज्ञा पु० [सं० आम्र, हिं० आम] आम। उ०—(क) सालन सकल कपूर सुवासत। स्वाद लेत सुन्दर हरि ग्रासत। आँव आदि दै सवै सँधाने। सब चाखे गोवर्द्धनराने—३९६। (ख) नीव लगाइ आँव क्यो खावे—१०४२। (ग) मनौ आँव दल मोर देखिकै कुहुकि कोकिला बानी हो—१५५६।

आँवड़ना—क्रि० अ० [हिं० उमडना] उमडना।

आँवड़ा—वि० [हिं० उमडना] गहरा।

आँवरे—संज्ञा पु० बहु० [सं० अमालक, प्रा० आमलओ, हिं० आँवला] आँवले।

आँवा—संज्ञा पु० [सं० आपाक] गड्ढा जिसमे रखकर कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं।

आँस—संज्ञा स्त्री. [सं. काश = क्षत, हिं. गांस] वेदना, पीड़ा।

आँसी—संज्ञा स्त्री [सं अंश = भाग] इष्ट-मित्रों के यहाँ भेजी जाने वाली मिठाई, भाजी।

आँसु—संज्ञा पु [सं अश्रु पा प्रा. अस्सु]अश्रु। उ.-निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनंद-आँसु ढरे—९-१७१।

आँसुवनि—संज्ञा पु. बहु [सं अश्रु, पा. प्रा अस्सु-हिं. आँसू] आँसुओं से।

मुहा०—आँसुवनि मुख धोवै— बहुत रो रहा है, बड़ा विलाप कर रहा है। उ —देखो माई कान्ह हिलकियनि रोवै। इतनक मुख माखन लपटान्यो, डरनि आँसुवनि धोवै—३४७।

आँसू-संज्ञा पु० [सं. अश्रु, पा० प्रा० अस्सु] अश्रु।

आ—अव्य० [सं०] सीमा, व्याप्ति आदि सूचक अव्यय जैसे—आ मरण आजीवन।

उप - यह प्राय 'गति' सूचक धातुओं के पूर्व जुडकर अर्थ मे विशेषता लाता है जैसे—आगमन।

संज्ञा पु०—ब्रह्मा।

आइ—क्रि० अ० [हिं० आना] आकर, पहुँचकर। उ०—(क) कह्यौ बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मगी—१-२१। (ख) सुख मे आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँदिसि घेरे—१ ७९।

मुहा०— आइ परे-आ जाना, उपस्थित हो, सहना पड़े। उ० — सुख दुख कोरति भाग आपने आइ परै सो गहियै—१-६२।

संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] आयु उम्र। उ०—(क) सतयुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ—९-२३०। (ख) पाँच बरस की भई जब आइ। पडा गर्गहि लियौ बुलाइ—७-२। (ग) बीतै जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कस तब आइ सरयो—१०-५९।

आइयै—क्रि० अ० [हिं० आना] (आदर सूचक सम्बोधन) आगमन कीजिए, पधारिये। उ०—टेरत हैं बार-बार आइयै कन्हाई—६१९।

आइयाँ—क्रि० अ० [हिं० आना] आये हैं। उ०—कसकारन गेंद खेलत कमल कारन आइया—५७७।

आइस, आइसु—संज्ञा स्त्री० [सं० आयसु] आज्ञा।

आइहै—क्रि० अ० भवि० बहु० [हिं० आना] आवेंगे।

यौ०—लै आइहैं—ले आवेंगे। उ०—नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८९।

आइहै—क्रि० अ० भवि० एक [हिं० आना] आयगा। उ०—सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरै निकट—८-१६।

आईं—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० आना] स्थल-विशेष पर एकत्र हुई या पहुँची। उ०—आजु बधायौ नदराइ कै, गावहु मंगलाचार। आईं मंगल-कलस साजिकै, दधि फल नूतन डार—१०-२७।

आई—क्रि० अ० [पु० हिं० आवना हिं० आना] 'आना' क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप। उ०—बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुण्ठ पठाई—१-३।

मुहा०—जो मुख आई सो आई-बिना सोचे समझे जो बात ध्यान मे आयी, कह दी। उ —भवन गई आतुर ह्वै नागरि जे आई मुख सबै कही—२१४२।

संज्ञा स्त्री-[सं० आयु] आयु, जीवन।

आउ-क्रि० अ० [हिं० आना] आ, आ जा, आओ। उ.-हरि की सरन महँ तू आउ—१-३१४।

संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] आयु, उम्र, जीवन।

आउज-संज्ञा पु [सं. वाद्य, प्रा. वज्ज]ताशा नामक बाजा। उ०-बीना-झाँझ-पखाउज-आउज और राजसी भोग। पुहुप-प्रजक परो नवजोवनि, सुख परिमल-सजोग—९ ७५।

आउबाउ-संज्ञा पु० [सं० वायु = हवा] अंड-बंड, निरर्थक प्रलाप।

आऊँ-क्रि० अ० [हिं० आना] आगमन करूँ। उ —नौका हौं नाही लै आऊँ—९-४१।

आऊँगो-क्रि० अ० भवि [हिं० आना] आऊँगा। उ०—स्याम बाम को सुख दै बोले रैन तुम्हारे आऊँगो —१९४४।

आऊ—क्रि० अ० [हिं आना] आये, आओ। उ०—मैया बहुत बुरौ बलदाऊ। कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौडा मिलि आऊ—४८१।

आए—क्रि० अ० [पु० हिं० आवना, हिं० आना] 'आना' क्रिया का भूतकालिक बहुवचन अथवा आदरसूचक

रूप। उ०—सतत भक्तभीत-हितकारी, स्याम विदुर कैं आए—१-१३।

आऐं—क्रि० अ० [हिं० आना] आने पर, जाने से। उ०—पकरयौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डोलै। जैसे राहु नीच ढिग आऐं, चन्द्र-किरन झकझोलै—१-२५६।

आक—संज्ञा पु० [सं. अर्क, प्रा. अक्क] मदार, अकौआ। उ०—जिहि दुहि धेनु औटि पय चाख्यो ते मुख परसैं आक। ज्यौं मधुकर मधुकमलकोश तजि रुचि मानत है आक-पृ० ३३३।

आकबाक—संज्ञा पु० [सं० वाक्य] अडबंड या ऊटपटांग बात।

आकर—संज्ञा पु० [सं०] (१) खानि, उत्पत्ति-स्थान। (२) भंडार। (३) भेद, प्रकार।

वि०—(१) श्रेष्ठ, उत्तम। (२) अधिक। (३) दक्ष, कुशल।

आकरखना—क्रि० स० [हिं० आकर्षना] आकर्षित करना।

आकरषन—संज्ञा पु० [सं० आकर्षण] खिंचाव।

क्रि० प्र०—करी—खींची। उ०—तिन माया आकरषन करी। तब वह दृष्टि नृपति कैं परी—९ २।

आकरषि—क्रि० स० [सं० आकर्षण, हिं० आकर्षना] खींचकर, आकर्षित करके। उ०—सूर-प्रभु आकरषि ताते सकर्षन है नाक—२५८२। (ख) कालिन्दी को निकट बुलायो जल-क्रीडा के काज। लियो आकरषि एक छन में हलिकति समरथ यदुराज।

आकर्ष—संज्ञा पु० [सं०] खिंचाव।

आकर्षक—वि० [सं०] अपनी ओर खींचनेवाला।

आकर्षण—संज्ञा पु० [सं०] खिंचाव।

आकर्षन—संज्ञा पु० [सं० आकर्षण] खिंचाव।

आकर्षना—क्रि० स० [सं० आकर्षण] खींचना।

आकर्ष्यौ—क्रि० स० [सं० आकर्षण, हिं० आकर्षना] आकर्षित किया, खींचा। उ०—(क) सजन कुटुंब परिजन बढ़े, (रे) सुत-दारा-धन-धाम। महामूढ़ विषयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम—१-३२५। (ख) चित आकर्ष्यौ नद-सुत मुरली मधुर बजाइ—११८२।

आकलन—संज्ञा पु० [सं०] (१) ग्रहण लेना। (२) संग्रह, संचय। (३) गिनती करना।

आकली—संज्ञा स्त्री० [सं० अ कुल + ई (प्रत्य.)] आकुलता, बेचैनी।

आकसमात, आकस्मात—क्रि० वि० [सं० अकस्मात] सहसा, एकाएक।

आकार—संज्ञा पु० [सं०] (१) बनावट, संघटन। उ.-(क) सागर पर गिरि, गिर पर अंबर, कपि घन कैं आकार—९ १०४। (ख) इत धरनि उत व्योम कैं बिच गुहा कै आकार। पैठि बदन बिदारि डारयौ अति भये बिस्तार—४२७। (२) आकृति, मूर्ति। (३) तरह, भाँति, प्रकार, रूप। उ०—सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहिं आकार। जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि, मिलत लए उपहार—१०-२८३। (४) डील-डौल।

आकारि—संज्ञा पु० [सं० आकार] स्वरूप, आकृति, मूर्ति, रूप। उ०—एक मास यह ह्वै है नारि। दूजे मास पुरुष आकारि—९-२।

आकारी—वि० [सं० अ कारण = आह्वान] बुलानेवाला।

आकास—संज्ञा पु० [सं० आकाश] (१) अंतरिक्ष, गगन। (२) शून्य स्थान जहाँ चंद्र, सूर्य आदि स्थित हैं। उ०—लंका राज बिभीषन राजैं, ध्रुव आकाश बिराजै—१-३६।

मुहा०—बाँधति आकास—अनहोनी या असंभव बात कहती हो। उ०—कहा कहति डरपाइ कछू मेरे घट जैहै। तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै।

आकासकुसुम—संज्ञा पु० [सं० आकाशकुसुम] (१) आकाश का फूल। (२) अनहोनी या असंभव बात।

आकासबानी—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाशवाणी] देववाणी, आकाशवाणी। उ०—सूर आकासबानी भई तबै तहँ यहै वैदेहि है, करु जुहारा—९-७६।

आकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकुलता, घबराहट। उ०—कबहुँक बिरह जरति अति व्याकुल आकुलता मन मो अति—१९४९।

आकुलित—वि० [सं०] (१) व्याकुल, घबराया हुआ। (२) व्याप्त।

आकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बनावट, गढ़न, ढाँचा, अवयव। (२) मूर्ति रूप। उ०—जानु सुजघन करभ कर आकृति, कटि प्रदेश किंकिनि राजै—१-६९। (३) मुख। (४) मुख का भाव, चेष्टा।

आक्रमण—संज्ञा पु० [सं०] (१) चढ़ाई, धावा। (२) आक्षेप करना, निंदा करना।

आक्रोश—संज्ञा पु० [सं०] कोसना, गाली देना।

आक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] (१) आरोप, दोष लगाना। (२) कटूक्ति, निंदा।

आखत—संज्ञा पु० [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] अक्षत।

आखना—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान प० आखना] कहना, बोलना।

क्रि० स० [सं० आकांक्षा] चाहना, इच्छा करना।

क्रि० स० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि = आँख] देखना, ताकना।

आखर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर] अक्षर। उ०—गौरि गनेस्वर बीनऊ (हो) देवी सारद तोहिं। गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो), मन आखर दै मोहिं—१०-४०।

आखा—वि० [सं अक्षय, प्रा० अक्खय] (१) कुल पूरा। (२) अनगढ़ा।

आखिर—वि० [फा० आखिर] (१) अंतिम, पिछला। (२) समाप्त।

संज्ञा पु०—(१) अन्त (२) परिणाम, फल।

क्रि० वि० (१) अंत मे, अंत को। उ०—औरन सी मोहू को जानति मोते बहुरि रम वैगी। सूर स्याम तोहिं बहुरि मिलैहौं आखिर हौं प्रगटावैगी—२१७७। (२) हार मानकर लाचार होकर। (३) अवश्य। (४) भला, अच्छा, खैर।

आखेट—संज्ञा पु० [सं०] अहेर, शिकार।

आखेटक—संज्ञा पु० [सं०] अहेर, मृगया।

वि०—शिकारी, अहेरी।

आखो—वि० [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय, हिं० आखा] कुल, पूरा, समस्त। उ०—कहिबे जोग न कछू सक राखो। लावा मेलि दए है तुमको बकत रहो दिन आखो—३०२१।

आख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कीर्ति, यश। (२) व्याख्या।

आख्यात—वि० [सं०] (१) प्रसिद्ध, विख्यात। (२) कहा हुआ।

आख्यान—संज्ञा पु० [सं०] (१) वर्णन, वृत्तांत। (२) कथा, कहानी।

आख्यानक—संज्ञा पु० [सं०] वर्णन, वृत्तांत। (२) कथा, कहानी। (३) पूर्व विवरण।

आगंतुक—संज्ञा पु० [सं०] अतिथि, पाहुना, आने वाला व्यक्ति।

आग—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] अग्नि, वैश्वानर। उ०—तप कीन्हैं सो देहैं आग। ता सेती तुम कीनो जाग—९-२

संज्ञा पु० [सं० अग्र] ऊख का अगौरा। उ०—मिल्यो सुहायो साथ स्याम को कहाँ हंस कहाँ काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडि के चतुर चचोरत आग—३०९५।

आगत—वि० [सं०] आया हुआ प्राप्त, उपस्थित।

संज्ञा पु०—मेहमान, अतिथि।

आगत स्वागत—संज्ञा पु० [सं० आगत + स्वागत] आये हुए व्यक्ति का आदर-सत्कार, आवभगत। उ०—मेरी कही साँचि तुम जानी कीजै आगत स्वागत। सूर स्याम राधावर ऐसे प्रीति हिये अनुरागत—१४८२

आगम—संज्ञा पु० [सं०] (१) अवाई, आगमन। उ०—(क) श्री मथुरा ऐसी आजु बनी। देखहु हरि जैसे पति आगम सजति सिंगार घनी—२५६१। (ख) अविनासीको आगम जान्यो सकल देव अनुरागी-१०४ (ग) गिरि गिरि परत बदन तैं उर पर हैं दधि-सुत के बिंदु। मानहु सुभग सुधाकन बरसत प्रियजन आगम इन्दु—१०-२८३। (घ) स्याम कह्यौ सब सखन सौं लावहु गोधन फेरि। संध्या कौ आगम भयौ ब्रज तन हाँकौ हेरि। (ङ) निसि आगम श्रीदामा के संग नाचत प्रभुहिं देखावौ—३४१०। (२) आने वाला समय। (३) होनहार,

भवितव्यता । (४) समागम, संगम । (५) शास्त्र । उ —भजि मन नद-नदन चरन । परम पकज अति मनोहर, सकल सुख के करन । सनक सकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन—१-३०८ । (६)उत्पत्ति । उ.—प्रथम समागम आनँद आगम दूलह वर दुलहिनीं दुलारी—१० उ —३९ । (७) नीति ।

वि —[स०] आने वाला, आगामी । उ.—दर्शन दियो कृपा करि मोहन वेगि दियो वरदान । आगम कल्प रमन तुव ह्वैहैं श्रीमुख कह्यो वखान ।

आगमन—सज्ञा पु. [स] अवाई, आना ।

आगमवाणी—सज्ञा स्त्री [स.] भविष्यवाणी ।

आगमी—सज्ञा पुं. [स. आगम = भविष्य] ज्योतिषी ।

आगर—सज्ञा पु [स आकर = खान] (१) खान, आकर । (२) समूह, ढेर । उ.—सूर स्याम ऐसे गुन आगर नागरि बहुति रिझाई (हो)-७०० । (३)कोष, निधि । उ —सूर स्याम बिनु क्यों मन राखौं तन जोवन को आगर—२९८० ।

सज्ञा पु [सं, अर्गल = व्योंडा] ब्योंडा, अगरी । उ —आगर एक लोहजरित लीन्हो वलवड । दुहूँ करन असुर हयो भयो माँस पिंड—९-९६ ।

सज्ञा पुं. [स आगार = घर](१)घर । (२)छप्पर । छाजन ।

वि —[स आकर = श्रेष्ठ] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । उ.-(क) सोचि विचारि सकल स्रुति सम्मति हरि तें और न नागर-१-९१ । (ख) ठाढ़े हैं द्विजवावन । चारो वेद पढ़त मुख आगर, अति सुकठ सुर गावन-८-१३ । (२) चतुर, दक्ष, कुशल ।

आगरी—सज्ञा स्त्री [स आकर = खान, हि. पु. आगर] समूह, ढेर । उ.—(क) मोहन तेरे अधीन भये री । इति रिस कबते कीजत री गुन आगरी नागरी—२२५० । (२) मोहन ते रसरूप आगरी करति न जानि निकाई—१२३५ ।

वि —समृद्ध, सपन्न, पूर्ण, भरी-पूरी । उ.—तेरे अनउत्तर सुनि सुनि स्याम हँसि हँसि देत नैंक चितै इत भाग आगरी—२२५० ।

आगरे—सज्ञा पु.—[स आकर = खान, हि. आगर] समूह, ढेर । उ -(क) सूर एक ते एक आगरे वा मथुरा की खानि—३०५१ । (ख) मधुकर जानत हैं सब कोऊ । जैसे तुम अरु सखा तिहारे गुनन-आगरे दोऊ—३३५३ ।

आगल—सज्ञा पुं. [स. अर्गल] अगरी, ब्योंडा ।

आगवन—सज्ञा पु. [स आगमन] आना ।

आगा—संज्ञा पुं [स. अग्र, प्रा. अग्ग](१) छाती, वक्षस्थल । (२) ललाट, माथा ।

आगान-संज्ञा पु [स. आ + गान = बात]प्रसंग वृत्तांत ।

आगामी—वि [स आगामिन्] होनहार, आने वाला ।

आगार—सज्ञा पु [स] (१) घर, मंदिर । (२) स्थान । (३ निधि, कोष ।

आगि—सज्ञा स्त्री [स. अग्नि, हि आग] आग आँच । उ —इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगिआई—३३४३ ।

आगिल—वि [हि आगे] (१) आगे का, अगला । (२) भावी, होने वाला ।

आगिला—वि. [हि. अगला] आगे का, (२) आने वाला ।

आगिलौ—वि [हि. आगे, अगला]भविष्य का होने वाला, आगे आने वाला । उ -जो तू राम नाम धन धरतौ । अबको जन्म, आगिलो तेरो, दोऊ जनम सुधरतो—१-२९७ ।

आगिवर्त—सज्ञा पु [स. अग्निवर्त] एक प्रकार के मेघ । उ - सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए । जलवर्त, वारिवर्त, पवनवत, वज्रवर्त, आगिवर्त, जलद सग आए ।

आगी—क्रि. वि. [स अग्र, प्रा अग्ग, हिं आगे] आगे, पहले, प्रथम । उ.—ग्वालिन सग तुरत वै धाई । अपने मन मैं हर्ष बढाई । काहू पुरुष निवारयो आई । कहाँ जाति है री अतुराइ । तिन तौ कह्यौ न कीन्हो कानी । तन तजि चली विरह अकुलानी । धन्य धन्य वैं परम सभागी मिलीं जाइ सवहिनि तैं आगी-८०० ।

आगे—क्रि. वि. [स. अग्र, प्रा अग्ग.](१) और दूर पर, और बढकर । (२) जीते जी, जीवन मे, भविष्य के लिए । उ.—पछिले कर्म सम्हारत नाही करत नहीं

कछु आगे—१-६१। (४) समक्ष, सम्मुख, सामने। उ—(क) श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौ नंद आगे—५८९। (ख) माँगि लेहु एही बिधि मोसे मो आगे तुम खाहू–१००४। (ग) अब न देहि उराहनो जसुमतिहि आगे जाइ–२७५६। (५)अनंतर, बाद। (६) पूर्व, पहले। उ—आगे हूँ के लोग भले हो पर-हित लागे डोलत—३३६३। (७)अतिरिक्त, अधिक। (८) तुलना, समता, बराबरी। उ.—पूजत सुरपति तिनके आगे—१०१६।

मुहा०—आगे कियौ-आगे बढाया, चलाया। उ—चक्र-सुदर्सन आगे कियौ। कोटिक सूर्य प्रकासित भयौ। आगे लेन सिधायौ—स्वागत किया, अभ्यर्थना की। उ.-हरि आगमन जानि कै भीषम आगे लेन सिधायौ। आगे ह्वै लयौ—आगे बढ़कर स्वागत किया। उ—तब ब्रजराज सहित सब गोपिन आगे ह्वै लयौ—३४४४।

आगैं—क्रि. वि. [स. अग्र, प्रा. अग्ग, हिं. आगे] (१) समक्ष, सम्मुख, सामने। उ.-माधौ जू, यह मेरी इक गाइ।·····। अब आज तैं आप आगैं दई, लै आइए चराइ—१-५१। (ख) माधौ, नैकु हटकौ गाइ।······ छहौं रस जौ धरौ आगैं, तऊ न गध सुहाइ—१-५६। (ग) दोउ भुज धरि गाढै करि लीन्हे गई महिर के आगैं—१०-३१७। (२) भविष्य मे, आगे चलकर। उ—(क) कहत है आगैं जपिहैं राम। बीचहिं भई और की औरे, परयौ काल सौं काम—१-५७। (ख) पाछैं भयौ न आगैं ह्वैहै, सब पतितनि सिरताज—१९१। (ग)यह तौ कथा चलैगी आगैं सब पतितनि मैं हाँसी—१-१९२। (३) और दूर, और बढ़कर। उ.—यह कहि ऊधव आगैं चले—३-४।

आगौन—सज्ञा पु. [स. आगमन, प्रा. आगवन] अवाई, आना।

आग्नेय—वि. [स.] (१) अग्नि का। (२) अग्नि से उत्पन्न, अग्नि-जनित।

आग्यौ—क्रि. वि. [सं अग्र, प्रा. अग्ग, हिं. आगे] आगे, भविष्य मे।

वि [हिं आग] दग्ध, दुखित, पीड़ित। उ.—तौ तुम कोऊ तारयौ नाहिन जौ मोसा पतित न दाग्यौ। स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ—१-७३।

आग्रह- सज्ञा पु [स.] (१) अनुरोध, हठ। (२) तत्परता। (३) बल, आवेश।

आघ—सज्ञा पुं. [स. अर्घ, प्रा. अग्घ=मूल्य]मूल्य, दाम, कीमत।

आघात—संज्ञा पु [स](१)धक्का, ठोकर। (२)शब्द, ध्वनि, गूँज, गरज। उ–(क) चढ़ि गिरि-सिखर सब्द उचरयौ, गगन उठ्यौ आघात–९ ७४। (ख) सागर पर गिरि, गिरि पर अबर, कोप घन कैं आकार। गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनि पावक झार ९-१२४। (ग)महाप्रलय के मेघ उठि करि जहाँ तहाँ आघात-१०-६४।(२)मार, प्रहार, चोट, आक्रमण। उ.-सुनत घहरानि ब्रज लोग चकित भये, कहा आघात धुनि करत आवै—१०-६२।

आघ्राण—सज्ञा पु. [स] (१) सूँघना। (२) अघाना, तृप्ति।

आचमन—सज्ञा पु. [स.] (१) जल पीना। (२) शुद्धि के लिए मुँह मे जल डालना।

आचरज—सज्ञा पु [हिं अचरज] आश्चर्य, विस्मय। उ—यमुना तट आइ अक्रूर अन्हाए। स्याम बलराम को रूप जल मे निरखि बहुरि रथ देखि आचरज पाए–२५७०।

आचरण—सज्ञा पु [स](१) व्यवहार, चाल-चलन। (२) आचार-शुद्धि। (३) अनुष्ठान।

आचरतौ—क्रि स. स. [आचरना] आचरण करता, व्यवहार करता। उ.—मुख मृदु बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पथ पग धरतौ। कर्म बासना छाँडि कबहुँ नहिं साप पाप आचरतौ—१-२०३।

आचरन—सज्ञा पु. [स. आचरण] आचरण-व्यवहार, चाल चलन।

आचरना—क्रि स. [स. आचरण] आचरण या व्यवहार करना।

आचरित—वि० [स०] किया हुआ।

आचरु—क्रि. स [हिं आचरना] व्यवहार मे लाओ।

आचरण करो ।

आचानक—क्रि० वि०[हिं० अचानक]सहसा, एकाएक ।

आचार—संज्ञा पु० [सं०] (१) रहन-सहन, कार्य-व्यवहार । (२) चरित्र, चाल-चलन । (३) शील । उ०—(क) मृग तृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावै । कहत जु सूरदास संतनि मिलि हरि-जस काहे न गावै—२-१३ । (ख) जो चहै मोहिं मैं ताहि नाही चहौं, असुर की राज थिर नाहिं देखौं। तपसियन देखि कह्यो, क्रोध इनमें बहुत, ज्ञानियनि मैं न आचार पेखौं—८-८ ।

आचारज—संज्ञा पु० [सं० आचार्य] आचार्य ।

आचारी—वि० सं० [सं० आचारिन्] चरित्रवान, शुद्ध आचरण का ।

आचार्य—संज्ञा पु० [सं०] (१) पुरोहित । (२) अध्यापक ।

अचिंत्य—वि० [सं०] चिंतन करने योग्य ।
संज्ञा पु० [सं०] परमेश्वर, जो चिंतन में नहीं आ सकता ।

आछन्न—वि० [सं०] ढका हुआ, आवृत्त ।

आच्छादन—संज्ञा पु०(१)ढक्कन ।(२)ढकने का वस्त्र ।

आच्छादित—वि० [सं०] (१) ढका हुआ आवृत्त । (२) छिपा हुआ । (३) सघन, घटायुक्त । उ०—निसि सम गगन भयो आच्छादित बरषि बरषि भर इन्दु—९६७ ।

आछत—क्रि० वि० [अ० क्रि० 'आछना' का कृदंत रूप] होते हुए, विद्यमानता में सामने ।

आछना—क्रि० वि० [सं० अस्=होना] (१) होना । (२) विद्यमान रहना ।

आछा—वि० पु० [हिं० अच्छा] अच्छा, भला ।

आछी—वि० स्त्री० [हिं० पु० अच्छी] भली, अच्छी, उत्तम खरी । उ०—(क) लै पौढी आँगन ही सुत कौं, छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६ । (ख) सूर लखि भई मुदित,सुंदर करत आछी उक्ति सा.१४।
वि०—[सं० अशिन] खाने वाला ।

आछे—वि० [हिं० अच्छा] अच्छे, भले, उत्तम, श्रेष्ठ । उ०—(क)आछे मेरे लाल(हो), ऐसी आरि न कीजै—१०-१९० । (ख) जैहैं बिगरि दाँत ये आछे, तातैं कहि समुझावति—१०-२२२ । (ग) मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, नैन बिसाल कमल हैं आछे ·· ···· पहुँचे आइ स्याम ब्रजपुर मैं, घरहिं चले मोहन-बल-आछे—५०७ ।
क्रि० वि०—अच्छी तरह, खूब, बहुत । उ०—बाँसुरी बजाइ आछे रंग सौं मुरारी । सुनिकै धुनि छूटि गई शंकर की तारी—६४९ ।

आछैं—क्रि० वि० [हिं० अच्छा] अच्छी तरह, खूब । उ०—आछैं औटयौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यौ न नन्हैया—१०-२२९ ।

आछो, आछौ—वि० [हिं० अच्छा] (१) श्रेष्ठ, उत्तम भला । उ०-(क) आछौ गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम-जुवा ज्यौं हारयौ—१-१०१ ।(ख) तुरत मथ्यौ दधि लागत अति प्यारो, और न भावै मोहिं—४९४ (२) मंगलकारी, शुभ घड़ीवाला । उ०—आछो दिन सुनि महरि जसोदा सखिनि बोलि सुभ गान करयौ—१०-८८ ।

आछयौ—वि० [हिं० आछा, अच्छा] अच्छा, भला, सुन्दर । उ०—एक सखी हलधर वपु काछयौ । चढी नीलपट ओढे आछयौ—२४१७ ।

आज—संज्ञा पु० [सं० अज्ज, प्रा० अज्ज] (१) वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा है, वह । उ०—माधौ जू, यह मेरी इक गाइ । अब आज तैं आप आगैं दई लै आइयै चराइ—१-५१ । (२) वर्तमान काल ।
क्रि० वि०—(१) वर्तमान दिन में । (२) वर्तमान समय में ।

आजन्म—क्रि० वि० [सं०] जीवन भर, जन्म भर ।

आजानबाहु-वि०[सं०]जिसके हाथ घुटने तक लंबे हो ।

आजानु—वि० [सं०] घुटने तक लम्बा ।

आजीवन—क्रि० वि० [सं०] जीवन भर ।

आजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्त, रोजी, जीवन का सहारा । उ०—बहुरि सब प्रजा मिलि आइ नृप सौं कह्यौ, बिना आजीविका मरत सारी—४-११ ।

आजु—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज,] आज । उ०—आजु हौ एक-एक करि टरिहौ—११३४ ।

आज्ञा—संज्ञा स्त्री, [सं] (१) आदेश, निर्देश (२) स्वीकृति, अनुमति।

आज्ञाकारी—वि. [सं आज्ञाकारिन्] आज्ञा माननेवाला। उ—(क) सती सदा मम आज्ञाकारी-४-५। (ख) पतिव्रता अति आज्ञाकारी—१० उ-—५९।

आटना—क्रि स [सं अट्ट] तोपना, दबाना।

आठ—वि. [सं अष्ट, प्रा अट्ठ] चार की दूनी सूचक संख्या।

आठक—वि [सं अष्ट, पा, अट्ठ, + हिं. एक] आठ, लगभग आठ।

आठवाँ—वि [सं, अष्टम, प्रा. अट्ठव] अष्टम।

आँठहू—वि [सं, अष्ट, प्रा. अट्ठ, हिं. आठ] आठो, कुल आठ। उ,—सूर स्याम महाइ हैं तो आठहू सिधि लेहि—१-३१४।

आठैं—संज्ञा स्त्री. [सं अष्टम] अष्टमी तिथि।

आठैं—संज्ञा स्त्री. [सं. अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ—(क) आठैं कृष्न पच्छ भादौं, महर कैं दधिकादौ, मोतिन बँधायौ बार महल मैं जाइकै—१०-३१। (ख) सवत सरस बिभावन, भादौ, आठैं तिथि, बुधवार। कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हृषन जोग उदार—१०-८६। (ग) आठैं सुनि सब साजि भए हरि होरी है—१४१०।

आठौं—संज्ञा स्त्री. [सं अष्टम] अष्टमी तिथि।

आठ्य—वि [सं] (१) संपन्न, पूर्ण धनी। उ—हुतौ आठ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न व्रज-वन-जात्र। होषै नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६। (२) युक्त, विशिष्ट।

आडंबर—संज्ञा पु [सं] तडक-भडक टीमटाम, झूठा आयोजन। उ.—पहिरि पटबर, करि आडबर, यह तन झूठ सिंगार्यौ। काम-क्रोध मद-लोभ, तिया-रति, बहु विधि काज बिगार्यौ—१-३३६। (२) गंभीर शब्द।

आड़—संज्ञा स्त्री [सं. अल = वारण, रोक] (१) ओट, परदा। (२) शरण, आश्रय। (३) रोक (४) टेक, थूनी।

संज्ञा स्त्री. [सं आलि = रेखा] (१) माथे पर लगाने की लंबी टिकली। (२) स्त्रियों के माथे का आड़ा तिलक। (३) माथे पर पहनने का एक गहना।

आड़ना—क्रि स. [सं अल् = वारण करना] (१) रोकना, घेरना (२) बाँधना। (३) मना करना। (४) गिरवीं रखना।

आढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. आड] (१) ओट, पनाह। (२) सहारा, ठिकाना। (३) अतर, बीच।

मुहा —आढ आढ कियौ—टाल-मटोल किया, आज-कल किया। उ.—जारि मोहिनी आढ़ आढ कियौ (चारु मोहिनी आइ आँधु कियौ) तब नखसिख तैं रोयौ—१-४३।

वि. [सं. आढ्य = संपन्न] कुशल, दक्ष।

संज्ञा स्त्री [हिं.आड = टीका]माथे.पर पहनने का स्त्रियों के लिये एक आभूषण।

आतंक—संज्ञा पु [सं] (१) प्रताप, रोब। (२) भय, शंका।

आततायी—संज्ञा पु. [सं. आततायिन्] अत्याचारी।

आतप—संज्ञा पु [सं.] (१) धूप, घाम। (२) उष्णता। (३) सूर्य का प्रकाश।

आतपत्र—संज्ञा पु. [सं.] छाता, छतरी। उ.—आतपत्र मयूर-चन्द्रिका लसति है रवि ऐनु—२७८५।

आतम—वि. [सं आत्मन्, हिं. आत्म] अपना, स्वकीय, निजी। उ.-मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहिं, भयौ विवेक बिहान। आतम-रूप सकल घट दरस्यौ, उदय कियौ रवि-ज्ञान—२-३३।

संज्ञा स्त्री [सं. आत्मा]। उ.-(क) आतम अजन्म सदा अविनासी। ताकौं देह-मोह बड फाँसी—५-४। (ख) एकइ आतम ह-मतुम माँही—११-६।

आतमज्ञान—संज्ञा पु. [सं आत्म ज्ञान] स्वरूप की जानकारी।

आतमा—संज्ञा स्त्री [सं. आत्मा] (१) जीव। (२)। चित्त (३) बुद्धि (४) मन। (५) ब्रह्म।

आतिथ्य—सं, स्त्री [सं] (१) अतिथि-सत्कार। (२) अतिथि को उपहार।

आतुर—वि [सं] (१) व्याकुल, व्यग्र, अधीर। उ.—(क) जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कैं उर

ध्याए(हो)। गरुड छाँडि, आतुर ह्वै धाए, सो तत-काल छुडाए (हो)—१-७। (ख) नवसत साजि सिंगार बनी सुन्दरि आतुर पथ निहारति—२५६२।
(२) उत्सुक। (३) दुखी।
क्रि. वि—शीघ्र, जल्दी। उ.—आतुर रथ हाँको मधुवन को व्रजजन भए अनाथ—२५३४।

आतुरता—संज्ञा स्त्री. [स] (१) व्याकुलता, व्यग्रता, अधीरता। (२) उतावलीपन, शीघ्रता।

आतुरताइ, आतुरताई—संज्ञा स्त्री [सं. आतुरता + ई प्रत्य] (१) शीघ्रता। उ—(क) सैननि नगरी समुझाइ। खरकि आवहु दोहनी लै, यहै मिल छल लाइ। गाइ-गनती करन जैहैं, मोंहि लै नँदराइ। बोलि वचन प्रमान कीन्हौ, दुहुनि आतुरताइ-६७६। (ख)स्याम काम तनु आतुरताइ—६७६। (ख) स्याम काम तनु आतुरताई ऐसे बामा बस्यभए री—पृ.३५३ (९८)। (२) घबड़ाहट व्याकुलता, व्यग्रता। उ.—(क) स्याम कुंज बैठारि गई। चतुर दूतिका सखियन लीन्हे आतुरताई जानि लई—१८७६। (ख) ज्यौं ज्यौं मौन भई तुम, उनके बाढी आतुरताई—२२७५।

आतुरी—क्रि वि. [स. आतुर] शीघ्र, जल्दी।
वि—घबड़ाई हुई। उ.—नारि गई फिरि भवन आतुरी—३९१।
संज्ञा स्त्री [सं. आतुर + ई (प्रत्य)] (१) व्याकुलता, व्यग्रता। (२) शीघ्रता, उतावली।

आतुरे—वि. [स आतुर] अधीर, उद्विग्न। उ—सूर स्याम भए काम आतुरे भुजा गहत पिय लागे-१८६६।

आत्म—वि. [स आत्मन] अपना, निजी।

आत्मकल्याण—संज्ञा पु [स] अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि पु. [स] अपना ही मतलब साधने वाला, स्वार्थी।

आत्मगौरव—संज्ञा पु. स] अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान।

आत्मज—संज्ञा पु. [स.] (१) पुत्र। (२ कामदेव।

आत्मज्ञ—वि. [स. आत्मा = निज + ज्ञ = जानने वाला] अपना स्वरूप जाननेवाला।

आत्मज्ञान—संज्ञा पु [स.] (१) स्वरूप की जानकारी। (२) जीव और परमात्मा के सम्बन्ध की जानकारी। (३) ब्रह्म का साक्षात्कार।

आत्मभू—वि [स] (१) स्वशरीर से उत्पन्न। (२) स्वयं उत्पन्न।

आत्मश्लाघा—संज्ञा पु. [स] अपनी प्रशंसा।

आत्मा—संज्ञा स्त्री [स] (१) जीव। (२) चित्त। (३) मन (४) ब्रह्म। (५) स्वभाव, धर्म।

आत्मीय—वि. [स.] निजी, अपना।
संज्ञा पुं—स्वजन, स्वसंबंधी।

आथना—क्रि. अ [स. अस् = होना, स. अस्ति, प्रा० अत्थि] होना।

आथी—संज्ञा स्त्री [स. स्थातृ; हि. थाती] धन-संपत्ति।
संज्ञा स्त्री [स अर्थ] समृद्धि, सपन्नता।

आदत—संज्ञा स्त्री (१) स्वभाव, प्रकृति। (२)अभ्यास।

आदमी—संज्ञा पु. [अ] (१) मनुष्य, मानव जाति। (२) नौकर, सेवक। (३) पति।

आदर—संज्ञा पु. [स] सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा।
उ.—अपने कौं को न आदर देइ—१-२००।

आदरणीय—वि. [स.] सम्मान के योग्य।

आदरना—क्रि स. [स. आदर] आदर करना, मानना।

आदरभाव—संज्ञा पु [स. आदर + भाव] सम्मान, सत्कार। उ—ऊधो, चलो बिदुर कै जइयै। दुर जोवन के कौन काज जँह आदर-भाव न पइयै—१-२३९।

आदरयौ—क्रि सं. (हि आदरना] आदर या सम्मान, किया। उ—तैहि आदरयो त्रिभुवन के नायक अव क्यों जात भिरयो—१० उ—६८।

आदर्श—संज्ञा पु [स.] (१) वह जिसका अनुकरण किया जाय। (२) दर्पण। (३) टीका व्याख्या।

आदान-प्रदान—संज्ञा पु. [स] लेना-देना।

आदि—अव्य. [स.] इत्यादि, आदिक। उ—सिंह-सावक ज्यौं तजै गृह, इद्र आदि डरात—१-१०६।
वि. [सं] प्रथम, पहला शुरू का। उ.—गाउँ-गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई। इनकी लज्जा नहिं हमैं, तुम राज वडाई—१-२३८।

अव्य० [सं०] आदिक, इत्यादि ।

मुहा०—आदि दै—आदि से लेकर, इत्यादि । उ०—इहि राजस को, को न बिगोयौ ? हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुम्भकरन कुल खोयौ—१-५४ ।

संज्ञा पु० [सं०] परमात्मा, ईश्वर ।

आदिक—अव्य०[सं०] आदि, इत्यादि । उ०—कौसल्या आदिक महतारी आरति करहिं बनाइ—९-२९ ।

आदित—संज्ञा पु० [सं० आदित्य] (१) देवता । (२) सूर्य । उ०—हरि दरसन सत्राजित आयौ । लोगन जान्यौ आवत आदित हरिसौं जाइ सुनायौ—१० उ०—२६ ।

आदित्य—संज्ञा पु० [सं०] (१) देवता । (२) सूर्य । (३) इन्द्र । (४) विश्वेदेवा । (५) वामन ।

आदिष्ट—वि० [सं०] जिसको आदेश दिया गया हो ।

आदृत—वि० [सं०[आदर किया हुआ, सम्मानित ।

आदेश—संज्ञा पु० [सं०] (१) आज्ञा । उ०—चतुर चेट की मथुरानाथ सौं कहियौ जाइ आदेश—३१२५ । [सूर ने इसको प्रायः स्त्रीलिंग रूप में लिखा है ।] (२) उपदेश । (३) प्रणाम, नमस्कार ।

आदेस—संज्ञा पु० [सं० आदेश] आज्ञा ।

आद्यंत—क्रि० वि० [सं०आदि + अंत] आदि से अंत तक ।

आध—वि० [हिं० आधा] आधा । उ०—(क) आध पैंड वसुधा दै राजा, ना तरु चलि सतहारौ—८-१४ । (ख) हैं प्रभु कृपा करन रघुनन्दन, रिस न गहैं पल आध—९-११५ ।

आधा—वि० [सं० अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा० अद्ध] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक, अर्द्ध ।

आधार—संज्ञा पु [सं०] (१) आश्रय, सहारा, अवलंब । उ०—(क) यहै निज सार, आधार मेरौ यहै, पतित पावन बिरद वेद गावै—१-११० । (ख) वेद, पुरान, सुमृति, संतनि कौं, यह आधार मीन कौं ज्यौं जल—१-२०४ । (२) पात्र । (३) नींव, मूल । (४) आश्रयदाता । सहारा देने वाला व्यक्ति ।

आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिन्ता, सोच ।

आधिक—वि० [हिं० आधा + एक] आधा ।

क्रि० वि०—आधे के लगभग, थोड़ा ।

आधिक्य—संज्ञा पु० [सं०] अधिकता ।

आधी—वि० स्त्री० [हिं० पु० आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक ।

आधीन—वि० [सं० अधीन] आश्रित, वशीभूत, लिप्त । उ०—(क) ज्यौं कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन । त्यौं सठ वृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत विषय-आधीन—१-१०२ । (ख) भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन—१-३२१ । (ग) सूरदास प्रभु बिन देखियत है सकल विरह आधीन—२५३९ । (२) विवश, लाचार, दीन । उ०—अति आधीन हीन मति व्याकुल कहां लौं कहौं बनाइ—२८११ ।

संज्ञा पु०—दास, सेवक ।

आधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अधीनता] (१) पर-वशता । (२) लाचारी, दीनता ।

आधीनौ—वि० [सं० अधीन] आश्रित, वशीभूत, दबैल । उ०—(क) पंच प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-बिधान जौ कीनौ । अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ—१-१८५ । (ख) मैं निज भक्तनि कैं आधीनौ—९-५ ।

आधीर—वि० [सं० अधीर] व्याकुल, अधीर । उ०—समर मारहु कीट की रट सहत त्रिय आधीर—३१८० ।

आधुनिक—वि० [सं०] वर्तमान समय का ।

आधे—वि०[सं० अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा० अद्ध, हिं० आधा] आधा भाग । उ०—आधे मैं जल वायु समावै —३-१३ ।

क्रि० वि०—आधे के समीप, थोड़ा । उ०—हलधर निरखत लोचन आधे—२६०६ ।

आधैं—वि०[सं० अर्द्ध पा० अद्धो, प्रा० अद्ध, हिं० आधा] आधा ही । उ०—लालहिं जगाइ बलि गई माता । निरखि मुख-चंद-छबि, मुदित भई मनहिं मन, कहत आधे बचन भयो प्राता—४४० ।

आधो, आधौ—वि० [सं० अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा० अद्ध, हिं आधा]आधा । उ.-(क) हौं तौ पतित सिरोमनि

माधौ । अजामील बातनि हीं तारचो, हुतौ जु मोतै आवौ—१ १३९ । (ख) बारबार निरखि सुख मानत तजत नहीं पल आधौ—२५०८ । (२) थोड़ा, जरा भी । उ०—तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधौ—३२४४ ।

आध्यात्मिक—वि० [सं०] आत्मा सम्बन्धी ।

आनंद, आनँद—संज्ञा पु० [सं०] हर्ष, प्रसन्नता, सुख, मोद, आह्लाद ।

वि०—सानंद, आनंदमय, प्रसन्न ।

आनंदत—क्रि० अ० [सं० आनंद] आनंद मनाते हुए, प्रसन्न, हर्षित । उ०—दसरथ चले अवध आनंदत—९ २७ ।

आनंदित, आनंदी—वि० [सं०] प्रसन्न, सुखी, हर्षित ।

आनंदन—संज्ञा पु० [सं० आनंद] आनंद, सुख । उ०—(क) कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन—४७९ । (ख) कुँवरि सुनि पायौ अति आनंदन—१० उ०—१६ ।

आनन्दना—क्रि० अ० [हिं० आनंद] सुख मानना, प्रसन्न होना ।

आनंदबधाई—संज्ञा स्त्री० [सं० आनंद + हिं० बधाई] (१) मंगल, उत्सव । (२) मंगल अवसर ।

आनंदवन—संज्ञा पु० [सं०] काशी, सप्त पुरियों मे चौथी, बनारस ।

क्रि० अ० [सं० आनन्द] आनंदित हुए । उ०—(क) ब्रज भयौ महर कै पूत, जब यह बात सुनी । सुनि आनंदे लोग सब, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४। (ख) सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि आनंदे ब्रज-बासी—१०-८४ ।

आनंदै—संज्ञा पु० सवि० [सं० आनन्द] आनंद ही आनंद । उ०—आनंदै आनंद बढ्यौ अति । देवनि दिवि दुन्दुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति—१०-६ ।

आन—संज्ञा स्त्री० [सं० आणि = मर्यादा, सीमा] (१) मर्यादा । (२) शपथ, सौगंध । उ०—(क) केतिक जीव कृपिन मम बपुरो, तजै कालहू प्रान । सूर एकही बान बिदारै, श्री गोपाल की आन—१-२७५ । (ख) मेरे जिय अब यहै लालसा लीला श्री भगवान । स्रवन करौं निसि-बासर हित सौ, सूर तुम्हारी आन—२-३३ । (ग) मोहि वृषभान बबा की मैया मत्र न लैहै—सा० १० । (३) दुहाई, विजय घोषणा । उ०—(क) मेरे जान जनकपुर फिरिहै रामचन्द्र की आन । (ख) रीछ लंगूर किलकारि लागे करन आन, रघुनाथ की जाइ फेरी—९-१३८ । (४) ढंग, अदा, छवि । (५) क्षण, अल्पकाल । (६) अकड़, ऐंठ ठसक । (७) दबाव, शंका, डर । उ०—हम दधि बेचन जाति हैं मथुरा मारग रोकि रहत गहि अचल कंस की आन न मानै—१०४३ । (८) लज्जा, अदब । (९) प्रतिज्ञा, प्रण, हठ ।

वि० [सं० अन्य] दूसरा और । उ०—(क) आन देव की भक्ति भाइ करि कोटिक कसब करैगो—१-७५ । (ख) सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ । मानौ आन सृष्टि करिबे कौ अंबुज नाभि जम्यौ—१-२७३ । (ग) जै दिवि भूतल सोभा समान । जै जै जै सूर, न सब्द आन—९-१६६ ।

आनक—संज्ञा पु० [सं०] (१) डंका, नगाड़ा । (२) गरजता हुआ बादल ।

आनक दुंदभी—संज्ञा पु० [सं०] (१) बड़ा नगाड़ा । (२) कृष्ण के पिता वसुदेव जी जिनके जन्म पर देवताओं ने नगाड़े बजाये थे ।

आनत—वि० [सं०] अत्यंत झुका हुआ, अति नम्र ।

क्रि० अ० [हिं० आना] आता है, होती है । उ०—(क) माया मंत्र पढत मन निसि दिन, मोह मूरछा आनत—१-४९ । (ख) इनकै गृह रहि तुम सुख मानत । अति निलज्ज कछु लाज न आनत—१-२८४ ।

क्रि० स० [सं० आनयन, हिं० आनना] लाता है । उ०—इते मान यह सूर महासठ हरि-नग बदलि बिषय बिष आनत—१-१४४ ।

आनति—क्रि० स० [सं० आनयन, हिं० आनना] लाती है, रखती है । उ०—तात कठिन प्रन जानि जानकी, आनति नहिं उर धीर—९-२६ ।

आनद्ध—वि० [सं०] (१) बँधा हुआ । (२) मढ़ा हुआ ।

आनन—संज्ञा पु० [सं०] (१) मुख, मुँह। (२) चेहरा।
उ०—कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन, कल-कपोल की छवि न उपनियाँ—१०-१०६।

आनना—क्रि० स० [सं० आनयन] लाना।

आनबान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) सजधज, ठाटबाट। (२) ठसक।

आनयन—संज्ञा पु० [सं०] लाना।

आनहु—क्रि० अ० [सं० आनयन, हिं० आनना] आओ। यौ०—लै आनहु—ले आओ। उ०—आजु बन कोउ वै जनि जाइ। सब गाइनि बछरनि समेत, लै आनहु चित्र बनाइ—१०-२०।

आना—संज्ञा पु० [सं० आणक] (१) रुपये का सोलहवाँ भाग। (२) किसी वस्तु का सोलहवाँ भाग।
क्रि० अ० [पु० हिं० आवना] (१) किसी स्थान की ओर चलना, पहुँचना। (२) जाकर वापस आना, लौटना। (३) प्रारम्भ होना। (४) फलना, फूलना। (५) किसी भाव का जन्मना।

आनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० आनाकर्णन] (१) सुनी अनसुनी करना, ध्यान न देना। (२) टालमटोल। (३) कानाफूसी, इशारों से बात।

आनि—क्रि० स० [सं० आनयन, हिं० आनना] लाकर, पकड़कर। उ०—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी—१-१६। (ख) गुरु सुत आनि दिए जमपुर तैं—१-१८।
क्रि० अ० [हिं० आना] आकर, पहुँचकर। उ०—हरि सौं मीत न देख्यौं कोई। बिपति-काल सुमिरत तिहिँ औसर आनि तिरीछौ होई—१-१६। (ख) सूर स्याम अबकैं इहिं औसर आनि राखि ब्रज लीजै—२८१९।

आनिय—क्रि० स० [हिं० आनना] लाकर, लाना। उ०—सगुन सूरति नंदनंदन हमहिं आनिय देहु—३२८९।

आनी—क्रि० अ० [हिं० आनना] (१) लायी गयी, उपस्थित की गयी। उ०—जब गहि राजसभा मैं आनी। द्रुपद-सुता पट-हीन करन कौं दुस्सासन अभिमानी—१-२५०। (२) ठानी, निश्चित की। उ०—रिषभदेव तबही यह जानी। कह्यौ, इन्द्र यह कहा मन आनी—५-२।

आनीजानी—वि० [हिं० आना+जाना] अस्थिर, क्षणभंगुर।

आने—क्रि० अ० [हिं० आनना] ले आये, छुड़ा लाये। उ०—गृह आने बसुदेव-देवकी कंस महाखल मारयौ—१-१७।

आनै—वि० [सं० अन्य हिं० आन] दूसरा, और। उ०—अब मैं जानी, देह बुढानी। सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी। आन कहत आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी—१-३०५।
क्रि० स० [सं० आनयन, हिं० आनना] लावे, ले आये। उ०—कालीदह के फूल कहौ धौं, को आनै, पछितात—५२७।

आनौं—क्रि० अ० [हिं० आनना] लाऊँगा, म नूंगा। उ०—जब रथ साजि चढौ रन सन्मुख जीय न आनौं तक। राघव सैन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पंक—९-१३४।

आनौ—क्रि० अ० [हिं० आना] (कोई भाव या विशेषता) उत्पन्न करो। उ०-(क) जड स्वरूप सब माया जानौ। ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ—३-१३। (ख) सो अब तुम सौं सकल बखानौं। प्रेम-सहित सुनि हिरदै आनौं—१०-२।
क्रि० स० [सं० आनयन, हिं० आनना] लाओ, ले आओ। उ०—(ख) कान्ह कह्यौ हौ मातु अघानौ। अब मोकौं सीतल जल आनौ—३९७। (ख) गेंद खेलत बहुत बनिहै आनौ जेऊ जाइ—५३२।

आन्यौ—क्रि० अ० [पु० हिं० आवना, हिं० आना] (कोई भाव) उत्पन्न हुआ या किया। उ०-(क) ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ—३-७। (ख) नेक मोहिं मुसकात जानि मनमोहन मन सुख आन्यौ—२२७५।

आप—सर्व. [सं० आत्मन्, प्रा० अत्तणो, अप्पण, पु० हिं० आपन] (१) स्वयं, अपने आप। उ०—पारथ के सारथि हरि आप भए हैं—१-२३। (२) 'तुम' और 'वे' के स्थान मे आदरार्थक प्रयोग। (३) ईश्वर। उ०—अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब विधि सुनि प्रसन्न भे आप।
मुहा०—आप आप सौं—स्वयं से, अपने मन मे(से)। उ०—पूरब जनम ताहि सुधि रही। आप आप सौं

तब यों कही—५-३ ।

सज्ञा पु० [स० आप: = जल] जल, पानी ।

आपगा—सज्ञा स्त्री० [स०] नदी ।

आपत—सज्ञा स्त्री० [स० आपद] (१) विपत्ति । (२) दु ख, कष्ट ।

आपत्काल—सज्ञा पु० [स०] (१) विपत्ति । (२) कुसमय ।

आपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) दुख, क्लेश । (२) विपत्ति, संकट । (२) उज्र, एतराज ।

आपदा—सज्ञा स्त्री० [स०] दुख, क्लेश । (२) विपत्ति, संकट । (३) कष्ट का समय ।

आपन—सर्व [हिं अपना] अपना, निजी । उ.—सुनि कृतघन, निसि दिन को सखा आपन, अब जो बिसारयौ करि बिनु पहचानि—१-७७ ।

आपनपो—सज्ञा पु० [हिं० अपना + पौ या पा (प्रत्य.)] (१) अपनायत । (२) आत्मभाव ।

आपनी—सर्व [हिं पु. अपना] निजकी, अपनी । उ.—गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ—१-१३२ ।

आपने, आपनैं—सर्व [हिं अपना] अपने, अपने ही । उ.—दुख, सुख, कीरति भाग आपनैं आइ परै सो गहियै—१-६२ ।

आपनौ—सर्व [हिं. अपना] अपना, स्वयं का, निजी, अपना ही । उ.-रह्यौ मन सुमिरन को पछितायौ । यह तन राँचि राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनो भयौ—१-६७ ।

आपन्न—वि [स] (१) दुखी । (२) प्राप्त ।

आपस—सज्ञा स्त्री [हि. आप + से] (१) सम्बन्ध, नाता । (२) एक दूसरे का साथ ।

आपहु—सर्व [हि. आप + हु (प्रत्य.)] स्वयं भी, आप भी । उ.—उग्रसेन की अपदा सुनि सुनि बिलखावै । कस मारि, राज करै, आपहु सिरनावै—१-४ ।

आपा—सज्ञा पु० [हिं आप] (१) अपनी सत्ता, अपना अस्तित्व । (२) अहकार, गर्व । (३) होशहवास, सुधबुध ।

मुहा.—आप सँभारयौ—होशियार हुआ, सजग हुआ, सँभल गया । उ —जाइहौ अब कहाँ सिसु पाँव लैहौ इहाँ छाँडि तीजार आपा सँभार्‌यौ—१० उ०-५६ ।

आपाधापी—सज्ञा स्त्री [हिं. आप + धाव] (१) अपनी अपनी चिंता या धुन । (२) खींचतान, लागडाँट ।

आपु—सर्व [हिं आप] स्वय को, आप को । उ —सुत कुबेर के मत्त मगन भए, विषै रस नैननि छाए (हो) । मुनि सहाय तैं भए जमल तरु, तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)—१-७ ।

आपुन—सर्व [हिं. आप] आप, स्वय । उ —दुखित गयदहिं जानि कै आपुन उठि धावै—१-४ ।

आपुनपौ—सज्ञा पु० [हिं. अपन + पौ या पा (प्रत्य.)] आत्म गौरव, मान, मर्यादा । उ.—धन-सुत-दारा काम न आवै, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ—१-८० ।

आपुनी—सर्व स्त्री [हिं पुं. अपना] निज की । उ.—भक्ति अनन्य आपुनी दीजै—३-१३ ।

आपुनौ—सर्व [हिं. अपना] अपना । उ.—आपुनौ कल्यान करिलै मानुषी तन पाइ—१-३१५ ।

आपुस—सज्ञा स्त्री. [हिं आप + से = आपस] एक दूसरे का साथ या संबध । इसका प्रयोग कभी-कभी विशेषण की तरह भी होता है । उ.—(क) दम्पति होड करत आपुस मैं स्याम खिलौना कीन्है री—१०-९८ । (ख) आपुस मैं सब करत कुलाहल, धौरी धूमरि धेनु बुलाए—४४७ । (ग) आपुस मैं सब कहत हँसत, येई अबिनासी—४९२ । (घ) इजै बिजै दोऊ आपुस मे निरये बिधना आनि—१५७२ ।

आपुहिं—सर्व [हिं आप + हिं (प्रत्य.)] अपने को, अपने को ही, स्वयं को । उ.—सूरदास आपुहिं समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३ ।

आपूरना—क्रि अ. [स आपूरण] भरना ।

आपूरि—क्रि. अ. [स आपूरण, हिं. अपूरना] भरा हुआ, पूर्ण है, घिरा है । उ.—कहा कहैं छवि आजु की मुख मडित खुर धूरि । मानौं पूरन चन्द्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि—४-३७ ।

आप—सर्व [हि. आप] आप ही, स्वयं ही। उ—हर्त्ता कर्त्ता आपै सोइ। घट-घट व्यापि रह्यौ है जोइ—७-२।

आप्त—वि. [स] (१) प्राप्त, लब्ध। (२) कुशल, दक्ष।

आप्लवन—सज्ञा पु [स] डुबाना, बोरना।

आब—सज्ञा स्त्री. [फा.] (१) चमक, तड़क-भड़क, छटा, आभा। (२) प्रतिष्ठा, महिमा। (३) शोभा, छवि।

संज्ञा पु—पानी।

आबद्ध—वि [स.] (१) बंधा हुआ। (२) बंदी, कैद।

आब्दिक—वि. [सं] वार्षिक।

आभ—सज्ञा स्त्री. [स. आभा] शोभा, काति।

सज्ञा पु. [स अभ्र] आकाश।

सज्ञा पु [फा आब] पानी।

आभरन—सज्ञा पु.[स आभरण]गहना, भूषण, आभूषण। उ.—(क) पहिरि सब आभरन, राज्य लागे करन, आनि सब प्रजा दडवत कीन्हौ—४-११। (ख) मनि आभरन डार-डारन प्रति, देखत छवि मनही अँटकाए—७८४।

आभा—सज्ञा स्त्री [स.] (१) चमक, दमक, काति, प्रभा। उ—मुख-छवि देखि हो नँदघरनि। सरस निसि को असु अगनित इन्दु आभा हरनि—३५१। (२) झलक, प्रतिबिंब, छाया।

आभार—सज्ञा पु [स] (१) बोझ। (२) गृहस्थी का बोझ। (३) उपहार, निहोर। उ—(क) हरि बसी हरि दासी जहाँ। हरि करुना करि राखहु तहाँ। नित विहार आभार दै—१८५६ (३०)। (ख) योग मिटि पति आहुत्योहार। मधुबन बसि मधुरिपु सुनु मधुकर छाँडे व्रज आभार—३३७१।

आभरित—वि [स.] सजाया हुआ, अलकृत।

आभारी—वि. [स आभारिन] उपकार मानने वाला, उपकृत।

आभास—सज्ञा पु. [स] (१) छाया, झलक। (२) पता, सकेत। (३) मिथ्या ज्ञान।

आभीर—सज्ञा पु [स] अहीर, ग्वाल।

आभूषण, आभूषन—सज्ञा पु [स. आभूषण] गहना, अलंकार। उ.—उलटि अग आभूषन साजति रही न देह सँभार—२५७२।

आभ्यंतर—वि. [स] भीतरी, अंदर का।

आमंत्रण—सज्ञा पु [स.] (१) संबोधन, बुलाना। (२) निमत्रण, न्योता।

आमत्रित—वि. [स] (१) बुलाया हुआ, सम्बोधित। (२) निमंत्रित।

आम—सज्ञा पु [सं आम्र] रसाल नाम का फल।

आमरखना—क्रि अ. [सं. आमर्ष=क्रोध] क्रुद्ध होना, क्रोध करना।

आमरण—क्रि. वि [स.] मृत्यु तक।

आमर्ष—सज्ञा पु [स] (१) क्रोध, गुस्सा। (२) असहनशीलता। (२) एक संचारी भाव।

आमलक—सज्ञा पु. [स] आँवला।

आमिर—सज्ञा पुं. [अ आमिल] अधिकारी, हाकिम।

आमिल—वि. [स. अम्ल] खट्टा।

आमिष—सज्ञा पुं. [स] मास, गोश्त। (२) भोग्य वस्तु। (३) लोभ, लालच।

आमी—सज्ञा स्त्री. [हि आम] छोटा आम, अँबिया। जो बहुत खट्टी होती है। उ—आई प्रीति उघटि कलई सी जैसी खाटी आमी—३०८०।

आमोद—सज्ञा पु. [स] (१) आनन्द, हर्ष, प्रसन्नता। उ.—सूर सहित आमोद चरन-जल लैकरि सीस धरे—९-१७१। (२) मनोरजन। (३) सुगंधि।

आमोद-प्रमोद—सज्ञा पु [स.] भोग-विलास, हँसी-खुशी।

आमोदित—वि. [स] (१) प्रसन्न, हर्षित (२) जिसका जी बहला हो। (२) सुगंधित।

आमोदी—वि [स] प्रसन्न रहने वाला, हँसमुख।

आम्र—सज्ञा पु. (१) आम का पेड़। (२) आम का फल।

आय—सज्ञा स्त्री [स.] आमदनी।

क्रि अ [स अस्=होना] 'आसना' या आहना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप। 'आहि' शुद्ध रूप है।

आयत—वि. [सं] विस्तृत, दीर्घ, विशाल। उ.—आयत दृग अरुन लोल कुण्डल मंडित कपोल अधर दसन दीपति की छवि क्यों हूँ न जात लखी री—२३६२।

आयतन—संज्ञा पुं. [सं] (१) घर। (२) निवास-स्थान। (३) देव-वंदना का स्थान।

आयत्त—वि. [सं.] अधीन, वशीभूत।

आयसु—संज्ञा स्त्री. [सं] आज्ञा।

आया-क्रि. अ भूत [हिं. आना] (१) उपस्थित हुआ, प्रस्तुत हुआ। (२) जन्म लिया, पैदा हुआ, जन्मा। उ.—हरि कह्यो अब न ब्यापिहैं माया। तब वह गर्भ छाँडि जग आया—१-२२६।

आयास—संज्ञा पुं. [सं] परिश्रम।

आयु—संज्ञा स्त्री. [सं] वय, उम्र, जीवनकाल।

मुहा०—आयु गई सिराइ—आयु का अंत हो गया। उ—काल अगिनि सबही जग जारत। तुम कैसे कै जिअन विचारत ? आयु तुम्हारी गई सिराइ। बन चलि भजो द्वारिकाराइ—१-२८४। आयु खुटानी—आयु कम हो गई। आयु तुलानी—उम्र समाप्त हो गई। अन्तकाल आ गया। उ—रे दसकंध, अधमति तेरी आयु तुलानी आनि—९-७९।

आयुध—संज्ञा पु. [सं] शस्त्र। उ.—उरग इन्द्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं—१-६९।

आयुः—संज्ञा स्त्री. [सं आयु] वय, आयु। उ—शत सवत आयुः कुल होइ—१२३।

आयुर्दा—संज्ञा स्त्री [सं. आयुर्दाय] दीर्घायु। उ—नृप ऐसे आयुर्दा पाई। पृथ्वी हित नित करैं उपाई—१२-३।

आयुष्मान—वि. [सं.] दीर्घजीवी।

आयोजन—संज्ञा पु. [सं] (१) किसी कार्य मे लगना, नियुक्ति। (२) प्रबन्ध, तैयारी। (३) उद्योग। (४) सामग्री, सामान।

आयौ—क्रि. अ. [हिं आना] (१) 'आना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'आया का ब्रजभाषा रूप, आया। (२) जन्मा, पैदा हुआ। उ—तिहिं घर देव-पितर काहे को जा घर कान्हर आयौ—३४६।

प्र०—बाँधि क्यों आयौ—किस प्रकार बाँधा गया, बाँधते समय इतनी कठोर कैसे रह सकी। उ—जसुदा तोहिं बाँधि क्यो आयौ। कसक्यो नाहिं नैंकु मन तेरौ, यहै कोखि को जायौ—३७४।

आरंभ—संज्ञा पुं. [सं] (१) किसी काम की प्रथम अवस्था, उत्थान, शुरू। (२) उत्पत्ति, आदि।

आरंभना—क्रि अ [सं आरंभण] शुरू करना।

आरंभ्यौ-क्रि. अ भूत. [हिं. आरंभना] आरम्भ किया।

आर—संज्ञा पु. [हिं अड] हठ, जिद। उ.-(क) अँखियाँ करति हैं अति आर। सुंदर स्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार——२७६९। (ख) कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेघ दिखाइ बिनानी।

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) तिरस्कार, घृणा। (२) बैर, शत्रुता। उ.— इहाँ नाहिन नन्दकुमार। इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर—२८३४।

आरक्त—वि [सं.] लाली लिये हुए, लाल।

आरज—वि. [सं. आर्य] श्रेष्ठ, उत्तम। उ.—(क) बिनु देखैं अब स्याम मनोहर, जुग भरि जात घरी। सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछू न चाड़ सरी——६५१। (ख) जब हरि मुरली अधर धरी। गृह ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न सक करी—६५९। (ग) आरज पथ चले कहा सरिहैं स्यामहि संग फिरौ री——१६७२। (घ) इतने मान ब्याकुल भइ सजनी आरज पथहूँ ते बिडरी——२५४४। (ङ) आरज पथ छिडाय गोपिन अपने स्वारथ भोरी —२८६३।

आरत—वि [सं. आर्त्त] दुखित, दुखी, कातर। उ (क) हा जदुनाथ, द्वारिका-वासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी। बसन-प्रवाह बढ्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी—१-२५१। (ख) नंद पुकारत आरत, ब्याकुल टेरत फिरत कन्हाई —६०४।

संज्ञा पु—दुखी व्यक्ति, दीन मनुष्य। उ.—सूरदास सठ तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाइक —१-१९।

आरति—संज्ञा स्त्री. [सं० आरात्रिक, हिं०आरती]

आरती, नीराजन। उ (क) राम, लखन अरु भरत सत्रुहन, सोभित चारो भाई। .. ... । कौसिल्या आदित महतारी, आरति करहिं बनाइ—९-२९। (ख) अति सुख कौसिल्या उठि धाई। उदित वदन मन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई—९-१६९।

सज्ञा स्त्री० [स आर्ति] (१) दुख, क्लेश। (२) हठ, जिद। उ—साँझहिं तैं अति ही बिरुझानौं, चदहिं देखि करी अति आरति—१०-२००। (३) अनीति। उ—नद घरनि व्रजनारि बिचारति व्रजहिं बसत सब जनम सिरानौ, ऐसी करी न आरति—५२९।

सज्ञा स्त्री० [सं] विरक्ति।

आरतिवंत—सज्ञा पु. [स. आर्त्त + वत] दुखी पर दया करनेवाला व्यक्ति। उ—सब-हित-कारन देव अभय पद, नाम प्रताप बढायौ। आरतिवत सुनत गज क्रदन फदन काटि छुडायौ—१-१८८।

आरती—सज्ञा स्त्री [स. आरात्रिक] (१) नीराजन (२) वह पात्र जिसमे कपूर आदि रखकर आरती की जाती है। उ—हरि जु की आरती बनी। अति बिचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी—२-२८।

आरन—सज्ञा पु [स. अरण्य] जंगल, वन।

आरभटी—सज्ञा स्त्री [स,] क्रोधाधिक उग्र भावो की चेष्टा। उ—झूठो मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठति के बदन निहारत मारत फिरत लटी—१-९८।

आरव-सज्ञापु[स] (१) शब्द। (२) आहट।

आरषी—वि. [स आर्ष] ऋषियो का।

आरस—सज्ञा पु. [स० आलस्य] आलस्य।

सज्ञा स्त्री० [हिं० आरसी] शीशा, दर्पण।

आरसी—सज्ञा स्त्री० [स० आदर्श] (१) शीशा, दर्पण। (२) एक गहना जिसमे शीशा जड़ा रहता है और जिसे स्त्रियाँ दाहिने अँगूठे मे पहनती हैं।

आराज—वि० [स० अ + राजन्, हिं० अराज] बिना राजा का। उ०—होइ तिन क्रोध तब साप ताकौं दियौ, मारिकै ताहि जग-दुख टारौ। भयौ आराज जब, रिषिन तब मत्र करि, वेनु की जाँघ कौ मथन कीन्हौ—४-११।

आराति—सज्ञा पुं० [स०] शत्रु, वैरी।

आराधक—वि० [स०] उपासक, पूजनेवाला।

आराधन—सज्ञा पुं० [स०](१) सेवा, पूजा, उपासना। उ०—जिहिं मुख कौ समाधि सिव साधी आराधन ठहराने (हो)। सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध लार लपटाने (हो)—१०-१२८। (२) तोषण, प्रसन्न करना।

आराधना—सज्ञा स्त्री० [स०] पूजा, उपासना।

क्रि० स० [स० आराधन] (१) उपासना करना, पूजन। (२) संतुष्ट करना, प्रसन्न करना।

आराधनीय—वि० [स०] आराधना के योग्य।

आराधित—वि०[स०]जिसकी उपासना हुई हो, पूजित।

आराधे—क्रि० स०[स० आराधन, हिं० आराधना]उपासना की, पूजे। उ०—सूर भजन महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे—९-५८।

आराधैं—क्रि० स० [स० आराधन, हिं० आराधना] उपासना या पूजा करें। उ०—(क)जती, सती, तापस आराधैं, चारौं वेद रटैं। सूरदास भगवत-भजन-बिनु करम-फाँस न कटै—१-२६३। (ख) कहियौ जाइ जोग आराधैं अविगत अथक अमाप—२९७९।

आराध्य—वि० [स०] पूज्य, पूजनीय।

आराध्यौ—क्रि० स० भूत०[स० आराधन, हिं० आराधना] उपासना या पूजा की। उ०—(क) लै चरनोदक निज व्रत साध्यौ। ऐसी बिधि हरि कौं आराध्यौ—९-५। (ख)ब्रह्मबान कानि करी, बल करि नहिं बाँध्यौ। कैसैं परताप घटै, रघुपति आराध्यौ—९—९७।

आराम—सज्ञा पु [स०] उपवन, फुलवारी, बाग।

सज्ञा पु० [फा०] (१) सुख, चैन, विश्राम।

आरि—सज्ञा स्त्री० [हिं० अड] हठ, टेक, जिद। उ०—(क)आरि करत कर चपल चलावत, नद-नारि-आनन छुवै मदहिं। मनो भुजग अमीरस-लालच, फिरि-

फिरि चाहत सुभग सुचदहिं—१०-१०७ । (ख) कल-बल कै हरि आरि परे। नव रँग विमल नवीन जलधि पर, मानहु द्वै ससि-आनि अरे—१०-१४१ । (ग) जब दधि-मथनी टेकि अरै। आरि करत मटुकी गहि मोहन, बासुकि संभु डरै—१०-१४२ ।

आरी—संज्ञा स्त्री० [सं० आर=किनारा] किनारा, ओट, तरफ ।

आरूढ़—वि० [सं०] (१) चढ़ा हुआ, सवार । उ०-(क) आजु अति कोपे हैं रन राम। ब्रह्मादिक आरूढ विमा-ननि. देखत हैं संग्राम—९-१५८ । (ख) रथ आरूढ होत बलि गई होइ आयौ परभात—२५३१ । (२) दृढ़, स्थिर ।

आरे—संज्ञा पुं० [सं० आलय, हिं० आला] आला, ताख। उ०—दै मैया भौंरा चक डोरी। जाइ लेहु आरे पर राख्यो, काल्हि मोल लै राख्यो कोरी—६६९ ।

आरोगत—क्रि० स० [सं० आ+रोगना=हिं० आरोगना] खाते हैं, भोजन करते हैं। उ०-(क) उज्ज्वल पान, कपूर, कस्तूरी, आरोगत मुख की छवि रूरी—३९६ । (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल। षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकैं कंचन-थाल—३९७ ।

आरोगना—क्रि० स० [सं० आ+रोगना (रुज्=हिंसा)] खाना, भोजन करना ।

आरोगे—क्रि० अ० [हिं० आरोगना] खाया, भोजन किया। उ०—सबरी परम भक्त रघुबर की बहुत दिनन की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरन भक्ति प्रकासी।

आरोग्य—वि० [सं०] रोग रहित, स्वस्थ ।

आरोधन—संज्ञा पुं० [सं० आ+रुधन=छेंकना] रोकने या छेंकने की क्रिया। उ०-मीनाऽपवाद पवन आरो-धन हित काम निकंदन—३०१४ ।

आरोधना—क्रि० स० [सं० आ+रुधन] रोकना, छेंकना।

आरोधि—क्रि० स० [सं० आरोधना] रोककर, छेंककर। उ०—अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहि कह डरति न यम औ कालहि ।

आरोप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थापित करना, लगाना। (२) मिथ्याभास, झूठी कल्पना ।

आरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थापित करना। (२) एक वस्तु के गुण को दूसरी मे मानना (३) मिथ्याज्ञान, भ्रम ।

आरोपना—क्रि० स० [सं० आरोपण] लगाना, स्थापित करना ।

आरोह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर की ओर जाना। (२) आक्रमण। (३) सवारी । (४) अविर्भाव, विकास। (५) संगीत के स्वरों का चढाव ।

आरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़ना, सवार होना। (२) वश मे करना। उ०—आसन बैसन ध्यान धारण मन आरोहण कीजै—३२९१ । (३) अंकुर निकलना ।

आरोही—वि० [सं० आरोहिन्] (१) ऊपर जाने वाला। (२) उन्नतिशील ।

संज्ञा पुं०—(१) संगीत मे वह स्वर जो उत्तरोत्तर चढ़ता जाय। (२) सवार ।

आर्जव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीधापन । (२) सुगमता। (३) व्यवहार की सरलता ।

आर्त्त—वि [सं०] (१) चोट खाया हुआ। (२) दुखी, कातर। (३) अस्वस्थ ।

आर्त्तनाद—संज्ञा पुं० [सं० आर्त्त=दुखी+नाद=शब्द] दुखसूचक ।

आर्त्तस्वर—संज्ञा पुं [सं, आर्त्त= दुखी +स्वर] दुख सूचक शब्द ।

आर्त्ति—संज्ञा पुं [सं] (१) पीडा, दर्द । (२) दुख, कष्ट।

आर्थिक—वि० [सं०] धन संबधी ।

आर्द्र—वि० [सं०] (१) गीला। (२) सना, लथपथ।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गीलापन ।

आर्द्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नक्षत्र । (२) आर्द्रा नक्षत्र के उदय का समय ।

आर्य—वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । (२) बड़ा, पूज्य। (३) श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न ।

संज्ञा पु०—(१) श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न पुरुष। (२) एक प्राचीन सभ्य जाति। ये कॅस्पियन सागर से गंगा-यमुना तक बसे थे। वर्तमान हिन्दू जाति अपने को इन्हीं का वंशज मानती है।

आर्यपुत्र—संज्ञा पु० [सं०] (१) आदरसूचक शब्द। (२) पति के संबोधन का संकेत।

आर्यावर्त—संज्ञा पु० [सं०] उत्तरीय भारत जहाँ आर्य बसे थे।

आरयौ—संज्ञा पु० [हिं० आर=अड] (१) अड, हठ। (२) निवेदन, अनुरोध—उ०—वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ। पठै सुत-काज कौं कहति हौं लाज तजि, पाइ परिकै महरि करति आरयौ—७५१।

आर्ष—वि० [सं०] (१) ऋषि-सम्बन्धी। (२) वैदिक।

आलंकारिक—वि० [सं०] अलंकार-संबंधी। अलंकार-युक्त।

आलंब—संज्ञा पु० [सं०] (१) आश्रय, सहारा। (२) गति, शरण।

आलंबन—संज्ञा पु० [सं०] (१) आश्रय, सहारा। (२) वह अवलंब जिससे रस की उत्पत्ति होती है। (३) साधन, कारण।

आलंबित—वि० [सं०] आश्रित, अवलम्बित।

आलंभ—संज्ञा पु० [सं०] मिलना, पकडना। (२) वध, हिंसा।

आल—संज्ञा पु० [अनु०] झंझट, बखेड़ा।

संज्ञा पु० [सं० आर्द्र] गीलापन, तरी। (२) आँसू।

संज्ञा स्त्री० [सं० अल्=भूषित करना] एक पौधा जिसका उपयोग रंग बनाने के लिए होता है। उ.—लाल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरेखत—११०८।

आलय—संज्ञा पु [सं०] (१) स्थान। उ—जानौं हौं बल तेरो रावन। पठवौं कुटुंब सहित जम-आलय, नेकु देहि धौं मोकौं आवन—९-१३१। (२) घर, मंदिर। उ.—मनिमय भूमि नंद कै आलय, बलि बलि जाउँ तोतरे बोलनि—१०-१२१।

आलवाल—संज्ञा पु [सं] थाला, अवाल। उ.—राजत रूचिर कपोल महावर रद मुद्रावलि नाइ दई री मनहुँ पीक दल सींचि स्वेद जल आलवाल रीति वेलि बई री—२११५।

आलस—सं. पु [सं. आलस्य] आलस्य, सुस्ती। उ.—(क) सुनि सतसंग होत जिय आलस- बिषयिनि सँग बिसरानी—१ १४८। (ख) उनके अछत आपने आलस काहे कत रहत कृसगात——१० उ—५९। वि. —आलसी, सुस्त, जो शीघ्रता से काम न करे।

आलसवंत—वि. [सं. आलसवत] आलस्ययुक्त। डगमगात डग धरत परत पग आलसवत जम्हात। मानहु मदन दत दै छाँडे चुटकी दै दै गात-२१६५।

आलसी—वि [हिं. आलस] सुस्त काम करने मे धीमा।

आलस्य—सं० पु. [सं] सुस्ती, काहिली।

आला—वि [सं. आर्द्र या ओल] (१) गीला, भीगा, (२) हरा, ताजा।

सं पु [सं. आलात] कुम्हार का आवाँ।

आलान—संज्ञा पु० [सं] (१) हाथी बाँधने की रस्सी। (२) बंधन, रस्सी।

आलाप—संज्ञा पु. [सं.] (१) बातचीत। (२) स्वर-साधन, तान।

आलापक—वि. [सं.] (१) बात करने वाला। (२) गाने वाला।

आलापना—क्रि स [सं.] गाना, सुर साधना।

आलापित—वि [सं] (१) कथित, संभाषित। (२) गाया हुआ।

आलापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँसुरी, वंशी।

आलापी—वि० [सं० अलापिन्] (१) बोलने वाला। उ०—कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा थापी। मन क्रम-बचन दुसह सबहिन सौं, कटुक बचन आलापी—१-१४०। (२) तान लगाने वाला, गायक।

आलिंगन—संज्ञा पु० [सं०] गले से या छाती से लगाने की क्रिया, परिरंभण।

आलिंगना—क्रि० स० [सं०] हृदय से लगाना, गले लगाना।

आलिंगित—वि०[सं०]हृदय से लगाया हुआ, परिरंभित।

आलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी, सहेली। (२) भ्रमरी। (३) पंक्ति अवली।

आली—संज्ञा स्त्री०[सं० आलि] सखी, सहेली, गोइयाँ। उ०—स्याम सुभग कै ऊपर वारौं, आली कोटि अनग—६४०।

वि० स्त्री० [सं० आर्द्र] गीली, तर।

वि० [हिं० आल] आल के रंग का।

आलेख—संज्ञा पु० [सं०] लिखावट, लिपि।

आलेख्य—संज्ञा पु० [सं०] चित्र, तसवीर।

आलेप—संज्ञा पु० [सं०] लेप।

आलेपन—संज्ञा पु० [सं०] लेप करने का काम।

आलै—संज्ञा पु० [सं० आलय] घर, निधान। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन मोहिं बहुत दुख सालै—३४९१।

आलोक—संज्ञा पु० [सं०] (१) प्रकाश, चाँदनी। (२) चमक, ज्योति। (३) दर्शन।

आलोकन—संज्ञा पु० [सं०] दर्शन।

आलोचक—वि० [सं०] (१) देखने वाला। (२) आलोचना करने या जाँचने वाला।

आलोचन—संज्ञा पु० [सं०] (१) दर्शन। (२) गुण-दोष-विचार, विवेचन।

आलोड़न—संज्ञा पु० [सं० आलोडन] (१) मथना। (२) सोच विचार।

आलोड़ना—क्रि० स० [सं० आलोडन] (१) मथना। (२) हिलोरना। (३) सोचना-विचारना, ऊहापोह करना।

आव—क्रि० अ० [हिं० आना] आता है।

संज्ञा पु० [सं० आयु] आयु, उम्र।

आव आदर—संज्ञा पु० [हिं० आना+सं० आदर] आवभगत, आदर-सत्कार।

आवई—क्रि० अ० [हिं० आना] आती है। उ०—मन प्रतीति नहिं आवई, उडिबो ही जानै—९-४२।

मुहा०—(मथनि नहिं) आवई—मथने का ज्ञान या जानकारी नहीं है। उ०—मथन नहिं मोहिं आवई तुम सीह दिवायौ—७१६।

आवज—संज्ञा पु० [सं० आवाद्य, पा० आवज्ज] एक बाजा जो ताशे के ढंग का होता है और जिसे चमार बजाते हैं।

आवझ—संज्ञा पु० [हिं० आवाज] ताशे की तरह का एक बाजा। उ०—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी एक अमृतकुण्डली एक डफ एक कर धारे—२४२५।

आवटना—संज्ञा पु० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] (१) हलचल, उथलपुथल (२) सोचविचार, ऊहापोह।

क्रि० स० [हिं० औटना] गरम करना, खौलाना।

आवत—क्रि० अ० [हिं० आना] आता है। उ०—(क) सूर स्याम बिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे—१-८५। (ख) देखे स्याम राम दोउ आवत गर्व सहित तिन जोवत—२५७४।

आवति—क्रि० अ० [हिं० आना] आती है। उ०—कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति व वही—१-२८४।

आवते—क्रि० अ० [पु० हिं० आवना, हिं० आना] आते हैं। उ०—इहिं बिरिया बन ते ब्रज आवत—२७३५।

आवन—संज्ञा पु० [सं० आगमन, पु० हिं० आगवन] आगमन, आना, आने की क्रिया। उ०—(क) अपने आवन को कह्यो कारन—४-३। (ख) बाणी सुनि बलि पूजन लागे, इहाँ विप्र करो आवन—८ १३। (ग) मृदु मुसुकानि आनि राखो पिय चलत कह्यो है आवन—२७५२। (घ) धनि हरि लियो अवतार, सु धनि दिन आवन रे—१० २८। (ङ) सुन्दर पथ सुन्दर गति आवन, सुंदर मुरली सब्द रसाल—४७४।

क्रि० अ० [हिं० आना] किसी भाव का उत्पन्न होना। उ०—सतोषादि न आवन पावैं। विषय भोग हिरदै हरपावै—४ १२।

आवनहार—वि०[हिं० आवन=आना+हार(प्रत्य०)=वाला] आने वाला, आने को। उ०—माधव जी

आवनहार भए। अचल उडत मन होत गहगहो फरकत नैन खए—१० उ-१०७।

आवनो—सज्ञा पु. [प. हिं० आगवन, आवन] आगमन, आना। उ.—सुनि स्यामा नवसत सँग सखी लै बरसाने तेहि आवनो—२२८०।

आवभगत—सज्ञा पु [हिं० आवना + भक्ति] आदर-सत्कार।

आवभाव—सज्ञा पु [हिं आवना + स. भाव] आदर सत्कार।

आवरण—सज्ञा पु [स] (१) आच्छादन, ढकना। (२) परदा।

आवर्त्त—संज्ञा पु० [स] पानी का भवर। (२) वह बादल जिससे पानी न बरसे।

वि.—घूमा हुआ।

आवर्त्तन—सज्ञा पु [स] (१) चक्कर, घुमाव, फिराव। (२) बिलोड़न, मथन।

आवलि आवली—सज्ञा स्त्री. [स] पक्ति श्रेणी।

आवश्यक—वि [स (१) जरूरी। (२) काम की।

आवश्यकता—स स्त्री [स०] (१) अपेक्षा, जरूरत। (२) प्रयोजन मतलब।

आवहिंगे—क्रि. अ [हिं आवना] आयेंगे। उ.—ऐसे जो हरि आवहिंगे—२८८९।

आवहीं—क्रि० अ० [हिं० आवना या आनना] लाये जायेंगे। उ०—कालिह कमल नहिं आवहीं, तो तुमको नहिं चैन—५८९।

आवागमन—सज्ञा पु० [हिं० आवा = आना + स० गमन आना-जाना। उ०—(१) कहौ कपि जनक-सुता-कुसलात। आवागमन सुनावहु अपनो, देहु हमैं सुख गात—९-१०४। (२) जन्म और मरण।

आवागवन, आवागौन—सज्ञा पु० [स आवागमन] (१) आन-जाना। (२) जन्म-मरण।

आवाज—सज्ञा पु. [फा आवाज] (१) शब्द, ध्वनि। (२) बोली, स्वर। (३) कोलाहल, शोर।

आवाय—सज्ञा पु [स]। (१) थाला। (२) हाथ का कड़ा, ककण।

आवाल—सज्ञा पु [स] थाला।

आवास—सज्ञा पु [स.] (१) निवासस्थान। (२) मकान।

आवाहन—सज्ञा पु [स] (१) मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना। (२) निमन्त्रित करना।

आविर्भाव—सज्ञा पु [स] (१) उत्पत्ति, जन्म। उ.—दशरथ नृपति अयोध्या-राव। ताकैं गृह कियौ आविर्भाव—९-१५। (२) प्रकाश। (३) आवेश।

आविर्भूत—वि. [स.] (१) प्रकाशित, प्रकटित। (२) उत्पन्न।

आविष्कर्ता—वि. [स.] नयी वस्तु का आविष्कार करने वाला।

आविष्कार—सज्ञा पु [सं] (१) प्रकाश, प्राकट्य। (२) सर्वथा नयी वस्तु प्रस्तुत करना।

आवृत्त—वि. [स] (१) छिपा हुआ। (२) आच्छादित। (३) घिरा हुआ।

आवृत्ति—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) दोहराना। (१) पाठ करना, पढना।

आवेग—सज्ञा पु [स.] (१) चित्त की प्रबल वृत्ति, जोश। (२) एक सचारी भाव।

आवेदन—सज्ञा पु [स] अपनी दशा बताना, निवेदन।

आवेश—सज्ञा पु. [स.] (१) व्याप्ति, संचार। (२) चित्त की प्रेरणा, आतुरता।

आवेष्ठन—सज्ञा पु. [स.] छिपाना, ढकना।

आवै—क्रि अ वहु. [हिं आना] आते है।

यौ—कहत न आवै—वर्णन नही किये जा सकते। उ—सूर विचित्र चरित स्याम के रसना कहत न आवै—१०-९७।

आवैंगे—क्रि. अ [स आगमन, पु हिं आवना, हिं. आना] आवेंगे, आ पहुँचेंगे। उ—जहां तहां तै तब आवैंगे, सुनि-सुनि सस्तो नाम—१-१९१।

आवै—क्रि अ [हिं आना] आवे, आ जाय।

मुहा०-आवै जावै—आना जाना, आवागमन।

आवौं—क्रि अ. [हिं आवना, आना] आ जाउँ, आउँ, आता हूँ। उ—जबै आवौं साधु सगीत, कछक मन ठहराइ—१ ४५।

आशंका—संज्ञा स्त्री [स.](१) डर, भय। (२) सन्देह। (३) अनिष्ट की भावना।

आशय—संज्ञा पु [स.] (१) अभिप्राय, तात्पर्य। (२) वासना, इच्छा।

आशा—संज्ञा स्त्री. [स.] किसी इच्छित वस्तु के पाने का थोडा-बहुत निश्चय।

आशिष—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) आशीर्वाद, आसीस (१) एक अलंकार जिसमे ऐसी वस्तु के लिए प्रार्थना होती है जो अप्राप्त हो।

आशिषा—संज्ञा स्त्री० [स०] आशीर्वाद, आसीस। उ०—सूर प्रभु चरित पुर नारि देखत खरी महल पर आशिषा देत लोभा—२५९१।

आशिषाक्षेप—संज्ञा पु० [स०] एक अलंकार।

आशीर्वाद—संज्ञा पु० [स०] आशिष, आसीस।

आशु—क्रि० वि० [स०] शीघ्र, तुरन्त।

आशुतोष—वि०[सं०[शीघ्र सन्तुष्ट या प्रसन्न होने वाला। संज्ञा पु०—शिव, महादेव।

आश्चर्य—संज्ञा पु० [स०] (१) विस्मय, अचरज। (२) एक स्थायी भाव।

आश्रम—संज्ञा पु० [स०] (१) तपोवन। (२) विश्राम का स्थान। (३)हिंदुओं के जीवन की चार अवस्थाएँ—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास।

आश्रय—संज्ञा पु० [स०] (१) आधार, सहारा। (२) शरण, ठिकाना (३) भरोसा। (४) घर।

आश्वासन—संज्ञा पु० [स०] सात्वना, धीरज।

आश्रित—वि० [स०] (१) सहारे टिका या ठहरा हुआ। (२) शरणागत। (३) सेवक, दास।

आषत—संज्ञा पु० [स० अक्षत] देवताओ पर चढाने का विना टूटा चावल, अक्षत। उ०—सूर समूह पय धार परम हित आषत अमल चढावो—सा० ९।

आषाढ़—संज्ञा पु०]स०] आषाढ़ का महीना जो जेठ के बाद आता है।

आषी—संज्ञा स्त्री० [हिं आंख] आँख। उ०—तो हमको होती कत यह गति निसि दिन बरषत आषी—२·७३९।

आसंग—संज्ञा पु० [स०] (१) साथ, सग। (२) लगाव, सम्बन्ध। (३) आसक्ति, अनुरक्ति।

आसंदी—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) मचिया, मोढ़ा। (२) खटोला।

आस—संज्ञा स्त्री० [स० आशा] (१) आशा। उ०—इतनेहि धीरज दियो सबन को अवसि गए दै आस—२५३४। (२) लालसा, कामना। (३) सहारा, भरोसा।

मुहा०—आस लगाये—भरोसे पर रहना, सहारे पर रहना। उ०—पद नौका की आस लगाये बूडत हौ विनु छांह—१-१७५। आस पुजावहु—इच्छा या आशा पूरी करो। उ०—तुम काहूँ धन दै लै आवहु, मेरे मन की आस पुजावहु—५-३।

आसक्त—वि० [स०] (१) लीन, लिप्त। (२) मुग्ध, मोहित।

आसक्ति—संज्ञा पु० [स०] (१) अनुरक्ति, लिप्तता। (२) लगन, चाह, प्रेम।

आसति—संज्ञा स्त्री [स. आसत्ति] निकटता, समीपता। उ०—सूर तुरत तुम जाय कहो यह ब्रह्म विना नहिं आसति—२९१९।

आसतीक—संज्ञा पुं. [स. आस्तीक] एक ऋषि जो जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या के पुत्र थे। इन्होने जनमेजय के सर्पसत्र मे तक्षक का प्राण बचाया था।

आसन—संज्ञा पु [स.] (१) बैठने के लिए मूंज, कुश आदि को चौखूंटा बिछावन। उ०—कुस-आसन दै तिन्हहि बिठायो—१-३४१। (२) बैठने की विधि।

आसना-क्रि अ [स. अस्=होना] होना।

संज्ञा पु. [स आसन] (१) जीव। (२) वृक्ष।

आसन्न—वि. [स] समीप आया या पहुँचा हुआ, प्राप्त।

आसपास—क्रि वि. [अनु. आस+स. पार्श्व] चारों ओर, निकट, इद गिद, अगल-बगल। उ.—कटि

ठट पीत, मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर सोहै। आस-पास बर ग्वाल-मंडली, देखत त्रिभुवन मोहै—४५१।

आसमान—संज्ञा पु० [फा०] (१) आकाश। (२) स्वर्ग, देवलोक।

आसय—संज्ञा पु० [सं० आशय] (१) अभिप्राय, तात्पर्य। (२) वासना, इच्छा।

आसरना—क्रि० स० [सं० आश्रय] आश्रय या सहारा लेना।

आसरा—संज्ञा पुं [सं० आश्रय] (१) सहारा, आधार। (२) आशा, भरोसा। (३) शरण।

आसरो—संज्ञा पु० [सं० आश्रय, हिं० आसरा] भरोसा, आशा। उ०—जब उनको आसरो कियो जिय तबही छोडि गए—पृ० ३२०।

आसव—संज्ञा पु० [सं०] फलों के खमीर से तैयार किया हुआ मद्य।

आसवी—वि० [सं०] मद्यप, शराबी।

आसा—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] (१) आशा, अप्राप्त के पाने की इच्छा। उ०—हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाही लपटानौ—१-४७। (२) इच्छित वस्तु के पाने के कुछ निश्चय का सन्तोष।

मुहा०—आसा लागी—(काम पूरा होने या कुछ प्राप्त होने की) आशा बँधी है। उ०—बहुत दिननि की आसा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ १०-१५। लागि आसा रही—प्राप्ति होने या काम पूरा होने की सम्भावना थी। उ०—जन्म तैं एक टक लागि आसा रही, विषय-विष खात नहिं तृप्ति मानी—१-११०।

आसामुखी—वि० [सं० आशा + मुख] (दूसरे का) मुँह जोहने वाला, (किसी की) सहायता चाहने वाला।

आसावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० आशावरी अथवा असावरी, हिं० असावरी] एक प्रधान रागिनी जो भैरव राग की स्त्री मानी गयी है। इसके गाने का समय प्रातःकाल सात से नौ बजे तक है। उ०—मालवाई राग गौरी अरु आसावरी राग। कान्हरो हिंडोल कौतुक तान बहु बिधि लाग—२२७९।

आसी—वि० [सं० आशिन, हिं० आशी] खाने वाला, भक्षक। उ०—मथि मथि सिंधु-सुधा सुर पोषे संभु भए विष आसी—३३०६।

आसीन—वि० [सं०] बैठा हुआ, विराजमान।

आसीस—संज्ञा पु० [सं० आशिष] आशीर्वाद। उ०—पुनि कह्यौ, देहु आसीस मम प्रजा कौं, सबै हरि-भक्ति निज चित्त धारैं—४-११

संज्ञा पु० [सं० आ + शीर्ष] तकिया।

आसु—सर्व० [सं० अस्य] इसका।

क्रि० वि० [सं० आशु] शीघ्र, तुरंत।

आसुर—संज्ञा पु० [सं० असुर] राक्षस।

आसुरी—वि० [सं०] असुर सम्बन्धी, असुरों का।

संज्ञा स्त्री०—राक्षसी।

आसौं—क्रि० वि० [सं० अस्मिन, प्रा० अस्सि = इस + सं० साल = वर्ष] इस वर्ष।

आस्चर्य—संज्ञा पु० [सं० आश्चर्य] अचरज की बात, असंगत बात। उ०—कहाँ धनुष कहाँ हम बालक कहि आस्चर्य सुनाए—२५८६।

आस्तिक—वि० [सं०] (१) वेद, ईश्वर आदि पर जिसका विश्वास हो। (२) ईश्वर के अस्तित्व पर जिसे विश्वास हो।

आस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रद्धा। (२) सभा, बैठक। (३) आलम्बन।

आस्पद—संज्ञा पु० [सं०] (१) स्थान। (२) कार्य। (३) पद, प्रतिष्ठा। (४) वंश, कुल।

आस्वाद—संज्ञा पु० [सं०] रस, स्वाद।

आस्वादन—संज्ञा पु० [सं०] चखना, रस या स्वाद लेना।

आस्रम—संज्ञा पु० [सं० आश्रम] आश्रम, तपोवन। उ०—रिषि समीक कैं आस्रम आयौ। रिषि हरि-पद सौं ध्यान लगायौ—१-२९०।

आस्रित—वि० [सं० आश्रित] (१) सहारे पर टिका या ठहरा हुआ। (२) भरोसे पर रहने वाला, अधीन।

आह—क्रि० अ० [आसना का वर्त० रूप] है, रहा है। उ०—(क) तिन कह्यौ—मेरो पति सिव आह—४-७। (ख) नृपति कह्यौ, मारग सम आह—५-४।

ताके देखन की मोहिं चाह। कह्यौ, पुरुष वह ठाढ़ो आह—९-२

अव्य. [स. अहह] पीड़ा, शोक, खेद सूचक अव्यय।

संज्ञा स्त्री०—कराहना, उसांस, ठंडी सांस। उ०—मारै मार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह। अरे कवच उघरे देखियत मनो विरहिनि घालो आह—२८२६।

संज्ञा पु०—[सं० साहस=स+आहस्] (१) साहस। (२) बल।

आहट—संज्ञा स्त्री [हि आ=आना+हट (प्रत्य)] (१) चलने का शब्द, पांव की चाप, खटका। (२) आवाज जिससे किसी स्थान पर किसी के रहने का अनुमान हो। उ.—आहट सुनि जुवती घर आई देख्यो नन्द कुमार। सूर स्याम मन्दिर अँधियारे, निरखति बारबार—१०२७७।

आहत—वि० [सं०] (१) घायल। (२)कंपित, थर्राता हुआ।

आहर—संज्ञा पु० [सं० अह] समय, दिन।

आहाँ—संज्ञा पु [सं० आह्वान] हांक, दुहाई। (२) पुकार, बुलावा।

आहा—अव्य० [सं० अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय।

आहार—संज्ञा पु० [सं०] (१) भोजन, खाना। उ०—जेतक सस्त्र सो किए प्रहार सो करि लिए असुर आहार—६-५। (२) खाने की वस्तु।

आहार-विहार—संज्ञा पु०[सं०]रहन-सहन, शारीरिक व्यवहार।

आहिं—क्रि अ. बहु ['आसना' का वर्तमानकालिक रूप] हैं। उ—गीध व्याध, गनिकाऽरुअजामिल, ये को आहि विचारे। ये सब पतित न पूजत मो सम जिते पतित तुम तारे—१-१७९।

आहि—क्रि अ एक ['आसना' का वर्तमानकालिक रूप] है। उ—(क) उमा आहि यह सो मुंडमाल। जब जब जनम तुम्हारो भयो तब तब मुण्डमाल मैं लयो—१-२२६। (ख) तृनावर्त प्रभु आहि हमारो इनहीं मारयो ताहि—२५७८।

आहूत—वि० [सं०] बुलाया हुआ, निमन्त्रित।

आहुति—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) मंत्र पढ़कर देवता के लिए द्रव्य अग्नि में डालना, होम, हवन। उ.—सिव-आहुति-बेरा जब आई। विप्रनि दच्छहि पूछ्यो जाई—४५। (२) होम-द्रव्य की वह मात्रा जो एक बार कुंड में डाली जाय। उ०—आहुति जज्ञकुंड मैं डारी। कह्यो, पुरुष उपजै बल भारी—८-५। (३) हवन मैं डालने की सामग्री।

आहुती—संज्ञा स्त्री [सं० आहुति] (१) होम, हवन। (२) हवन की सामग्री।

आहैं—क्रि० अ० बहु० ['आसना' का वर्त० बहु० रूप] हैं, हुए हैं। उ०—महिर स्वाप को परजति नाहिं न। जैंव हाथ लिए हरि हमरो, भए कहूँ जग आहैं न—७७२।

आहे—क्रि. अ ['आसना' का वर्तमान कालिक रूप] है। उ.—प्रबल मदन आहै यह मार। यातै सतो, चलो सँभार—१-२२९।

आह्लाद—संज्ञा पु० [सं०] आनंद हर्ष।

आह्लादित—वि० [सं०] प्रसन्न, हर्षित, आनंदित।

आह्वान—संज्ञा पु० [सं०] बुलाना, आमन्त्रित करना।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला का तीसरा स्वर। तालु इसका स्थान है।

इंग—संज्ञा पु०[सं०](१) हिलना डुलना। (२)संकेत। (३) चिह्न। (४ हाथी का दांत।

इंगन—संज्ञा पु. [सं०] (१) हिलना डोलना। (२) संकेत करना।

इंगला—संज्ञा स्त्री [सं. इड़ा] बाईं ओर की एक नाड़ी जो बाएँ नथने से श्वास निकालती है। उ०—इंगला (इड़ा)पिंगला सुखमना नारी। सून्य सहज मैं बसहिं मुरारी—३४४२ (८)।

इंगित—संज्ञा पु० [सं०] संकेत, चेष्टा, इशारा।

वि०—हिलता हुआ, चकित।

इँगुदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़, हिंगोट का पेड़।

इंगुर—संज्ञा पु०[सं० हिंगुल, प्रा०इंगुल, हि ईंगुर]ईंगुर।

इंगुरौटी—सज्ञा स्त्री. [हिं० ईगुर + औटा प्रत्य)] सिंदूर रखने की डिबिया ।

इंचना—क्रि० अ० [हिं० खिचना] आकर्षित होना ।

इँडहर—सज्ञा पुं. [स० इष्ट + हर (प्रत्य)] उर्द और चने की दाल की पीठी का बना हुआ सालन । उ.—अमृत इँडहर है रससागर । बेसर सालन अधिकी नागर ।

इंदा—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रा अथवा इ दिरा] राधा की एक सखी का नाम । उ०—इद्रा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि—पृ० २५२ (२) ।

इंदारुन—सज्ञा पु० [इ द्रावारुणी] इद्रायन ।

इदिरा—सज्ञा पु० [स०] (१) लक्ष्मी । (२) शोभा, कांति ।

इंदीवर—सज्ञा पु० [स०] नीला कमल ।

इन्दीवर-सुत—सज्ञा पु० [स० इन्दीवर = कमल + सुत = पुत्र] कमल का चूर्ण या सिंदूर । उ०—इ दीवर-सुत कर कपोल मे है सिंगार रस राधे—सा० ६ ।

इन्दु—सज्ञा पु० [स०] (१) चन्द्रमा । (२) कपूर । (३) एक की सख्या ।

इन्दुकर—सज्ञा पुं० [स०] चन्द्रमा की किरण ।

इन्दुकला—सज्ञा स्त्री. [स०] (१) चन्द्रमा की कला । (२) चन्द्रमा की किरण ।

इन्दुमती—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्णिमा ।

इन्द्र—वि० [स०] (१) ऐश्वर्यवान् । (२) श्रेष्ठ, बडा ।

सज्ञा पु — (१) एक वैदिक देवता जो पानी बरसाता है । यह देवराज कहा गया है । ऐरावत इसका वाहन, वज्र, अस्त्र; शची, स्त्री, जयत पुत्र; अमरावती नगरी, नन्दन, वन, उच्चैश्रवा, घोडा, और मातलि, सारथी है । इसकी सुधर्मा नामक सभा मे देव, गधर्व और अप्सरायें रहती हैं । वृत्र, बलि और विरोचन इसके प्रधान शत्रु हैं । यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूव दिशा का स्वामी है । (२) स्वामी । (३) चौदह की सख्या ।

इन्द्रजाल—सज्ञा पु० [स०] जादूगरी, मायाकर्म ।

इन्द्रजित —वि० [स०] इन्द्रियो को जीतने वाला । उ०—देखिकै उमा को रुद्र लज्जित भए कह्यो मैं कौन यह काम कीनो । इन्द्रजित हो कहावत हुतो, आपु कौं समुझि मन माँहि ह्वै रह्यो खीनो—८-१० ।

सज्ञा पु० [स०] रावण का पुत्र मेघनाद जिसने देवराज को जीता था । उ०—लकापति इन्द्रजित कौं बुलायौ—९-१३५ ।

इन्द्रजीत—वि० [स०] इन्द्र को जीतने वाला ।

सज्ञा पु०—रावण का पुत्र मेघनाद जिसने इन्द्र को जीता था ।

इन्द्रद्युम्न—सज्ञा पु० [स०]एक राजा जो अगस्त्य ऋषि के शाप से गज हो गया था और ग्राह से युद्ध होने पर जिसका उद्धार नारायण ने किया ।

इन्द्रधनुष—सज्ञा पु० [स०] वर्षाकाल मे आकाश मे दिखायी देने वाला सतरगी अर्द्ध वृत्त । यह सूर्य की विपरीत दिशा मे जल से पार-उसकी किरणों की प्रतिच्छया से बनता ।

इन्द्रनील - सज्ञा पु० [स०] नीलमणि, नीलम । उ०—इन्द्रनील-मनि तैं तन सुन्दर, कहा कहै बल चेरौ—१०-२१६ ।

इन्द्रपुर—सज्ञा पु० [स०] स्वर्ग । उ०—नृप कह्यो, इन्द्रपुर की न इच्छा हमैं—४-११ ।

इद्रपुरी - सज्ञा स्त्री [स०] अमरावती ।

इद्रप्रस्थ—सज्ञा पु० [स०] एक प्राचीन नगर जो आधुनिक दिल्ली के निकट था और जिसे पाडवो ने खाडव बन जलाकर बसाया था ।

इन्द्रबाहन—सज्ञा पु० [इन्द्र + वाहन = सवारी (इन्द्र की सवारी = ऐरावत] हाथी । उ०—चाहत गध बैरी वीर । आपनो हित चहत अनहित होत छोडत तीर । नृत्त भेद बिचार वा वितु इन्द्रवाहन पास—सा. २८ ।

इन्द्रलोक—सज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग ।

इद्रा—सज्ञा स्त्री [स] इन्द्र की स्त्री शची ।

इन्द्राणी—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) इन्द्र-पत्नी, शची । (२) दुर्गा देवी ।

इंद्रानी—सज्ञा स्त्री [स. इन्द्राणी] इन्द्र की पत्नी, शची ।

इन्द्रायन—सज्ञा पु० [स० इन्द्राणी] एक फल जो देखने मे बडा सुन्दर पर स्वाद मे कडुवा होता है ।

इन्द्रायुध—सज्ञा पु [स] (१) वज्र । (२) इन्द्रधनुष ।

इंद्रासन—सज्ञा पुं. [सं](१) इंद्र का सिंहासन। (२) राज सिंहासन।

इंन्द्रिय—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) वह शक्ति जिससे वाह्य वस्तुओं के गुणो और रूपों का ज्ञान प्राप्त होता है। (२) शरीर के अवयव जिनके द्वारा वाह्य वस्तुओं के रूप-गुण का अनुभव होता है। इनके दो वर्ग हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रियाँ पांच हैं जो केवल गुणों का अनुभव कराती है—चक्षु (रूप-ज्ञान) श्रोत्र (शब्द-ज्ञान), नासिका (गध ज्ञान), रसना (स्वाद-ज्ञान) और त्वचा (स्पर्श द्वारा ज्ञान) कर्मेंद्रियाँ भी पाँच हैं जिनके द्वारा विविध कर्म किये जाते हैं-वाणी हाथ, पैर गुदा और उपस्थ। इन दसो इन्द्रियों के अतिरिक्त एक उभयात्मक अंतरेंद्रिय है 'मन' जिसके चार विभाग हैं—मन, बुद्धि, अहकार और चित्त। उ०—अपनी रुचि जित ही जित एचति इ द्रिय कर्म-गटी। हौं तितही उठि चलत कपट लगि, वाँधे नैन-पटी—१९८।

इन्द्रयजित्—वि. [स.] जिसने इन्द्रियों को वश मे कर लिया हो, जो विषय मे लीन न हो।

सज्ञा पु०—रावण का पुत्र मेघनाद जिसने इद्र को पराजित किया था।

इंद्रियार्थ—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रिय + अर्थ] रूप, रस, गंध, शब्द आदि विषय जिनका अनुभव या ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है।

इन्द्री—सज्ञा स्त्री [स इन्द्रिय] (१) पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिय जिनसे क्रमशः विषय-ज्ञान और कर्म होते हैं। उ०—(क) मीन इ द्री तनहि काटत मोट अघ सिर भार। (ख) त्रिगुन प्रकृति तैं महत्तत्व, महत्तत्व तैं अहंकार मन-इन्द्री-सब्दादि पँच, तातैं कियौ विस्तार—२ ३५। (२) स्त्री-पुरुष सूचक अवयव लिंग। उ० पचम मास हाड वल पावै। छठै मास इन्द्री प्रगटावै—३.१३।

इकंग—वि० [स० एकाग] एक ओर का एकांकी।

इकत—वि. [स० एकात] निर्जन, अकेला, सुनसान।

इक—वि० [स० एक] एक। (क) (श्रुति) घरति न इक छिन धीर—१-२९। (ख) सखी री स्याम सबै इक सार—२६८७।

इकआंक—क्रि० वि० [स० इक = एक + अक = निश्चय] निश्चय, अवश्य।

इकईस—वि० [स० एकविंशत्, प्रा० एक्कवीस, हिं० इक्कीस] इक्कीस।

इकजोर—क्रि० वि० [स० एक + हिं० जोर = जोड़ना] इकट्ठा, एक साथ। उ०—देखि सखि चारि चन्द्र इकजोर। निरखति बैठि नितविनि पिय संग सार-सुता की ओर।

इकटक—सज्ञा स्त्री० [हिं० एकटक] टकटकी लगाकर देखने की क्रिया, स्तब्ध, दृष्टि। उ०—(क) वलिहारी छवि पर भई, इकटक चख लावैं। फरकत वदन उठाइ कैं, मनही मन भावैं—१०-७२। (ख) इकटक रूप निहारि, रही मेटति चित-आरति—४३७।

इकट्ठा—वि [स० एक + स्थ = एकस्थ, प्रा इकट्ठो] एकत्र।

इकठाई—वि [सं. एक + हिं ठाई = स्थान] एक स्थान पर इकट्ठा, एकत्र। उ—तब सब गाइ भई इकठाई—६१४।

इकठाई—वि. [स० एक + हिं ठांव = स्थान] (१) एक स्थान पर। (२) एकांत।

इकठैन—वि. [स एक + स्थान] एक स्थान पर, एक ठौर, इकट्ठा। उ—सुनति ही सब हाँकि ल्याए, गाइ करि इकठैन—४२७।

इकठौरी—वि. [स० एक + हिं० ठौर] एक ठौर या एक स्थान पर, इकट्ठा। उ०—अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इकठौरी—४४५।

इकठौर—वि. [हिं. इक + ठौर] एक स्थान पर एकत्र, एक साथ, एक पास। उ—(क, जब पांडे इत-उत कहुँ गए। वालक सब इकठौरे भए—७ २। (ख) जेंवत कान्ह नद इकठौरे—१०-२२४।

इकतन—क्रि वि. [हिं. एक+तन(ओर)] एक ओर। उ.—इकतन ग्वाल एकतन नारी। खेल मच्यो ब्रज के विच भारी—२४०८।

इकतर—वि [स. एकत्र] इकट्ठा।

इकताई—सज्ञा स्त्री [भा. यकता] (१) एक होने का भाव, एकत्व।(२) अकेले रहने की चाह या प्रकृति।

इकताना—वि. [स.एक+हिं. तानना=खिंचाव]एकसा, स्थिर, अनन्य।

इकतार—वि [स एक+हिं. तार] बराबर, समान।

इकतारा—सज्ञा पु [हिं एक+तार] एक प्रकार का तानपूरा या तंबूरा।

इकतीस—सज्ञा पु [स एकत्रिंशत्, पा. इकतीस] तीस और एक की संख्या।

इकत्र—क्रि. वि. [स. एकत्र] इकट्ठा।

इकरस—वि [स. एक+रस] समान, बराबर।

इकला—वि [हिं अकेला] एकही, अकेला।

इकलाई-सज्ञा स्त्री [स एक+हिं लाई या लोई=पर्त] (१) एक पाट की महीन सारी या चादर। (२) अकेलापन।

इकसर—वि. [स एक+हिं. सर (प्रत्य)] अकेला, एकाकी।

इकसार—वि. [स एक+हिं. सार=समान] एक समान, एक सा, समान। उ.—नीच-ऊँच हरि कैं इकसार—७-८।

इकसारी—वि [स एक+हिं सार] एक सी। उ-अति निसक, निरलज्ज अभागिन, घर घर फिरत न हारी। मैं तो वृद्ध भयौ वह तरुनी, सदौ बयस इकसारी। याकैं बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी—१-१७३।

इकसून—वि [स एकश्रुत=लगातार] एक साथ, एकत्र।

इकहाई—क्रि वि [स एक+हिं हाई (प्रत्य.)] (१) एक साथ। (२) एक दम, अचानक।

इकांत—वि [स एकांत] निर्जन, सुनसान, एकांत।

इकीस—वि [स एकविंशत्, प्रा इक्कवीस, हिं. इक्कीस] इक्कीस।

इकैठ—वि. [स. एकस्थ. पा. एकट्ठ] इकट्ठा।

इकौसो—वि, [स. एक+ आवास] एकांत, निराला।

ईक्का—वि. [स. एक] (१) एकाकी, अकेला। (२) अनुपम, बेजोड़।
सज्ञा पु. —वह योद्धा जो लडाई मे अकेला लडे।

इक्षु—सज्ञा पु [स] ईख।

इक्ष्वाकु—सज्ञा पु [स] सूर्यवंश का एक प्रतापी राजा जो वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया हैं। राम इसी के वंशज थे।

इच्छना—क्रि स [स. इच्छा] चाह करना।

इच्छवाकु—सज्ञा पु. [स इक्ष्वाकु] सूर्यवंश का एक प्रधान शासक जो वैवस्वत मनु का पुत्र माना गया है। उ.—दस सुत मनु के उपजे और भयो इच्छवाकु सबनि सिरमौर—९-२।

इच्छा सज्ञा स्त्री. [स.] कामना, लालसा, अभिलाषा, मनोरथ, चाह, आकांक्षा।

इच्छित—वि. [स.] चाहा हुआ, वांछित।

इच्छु—सज्ञा पुं [स इक्षु] ईख।
वि [स] चाहनेवाला।

इच्छुक—वि [सं.] अभिलाषी, चाह रखनेवाला।

ईठलाति—क्रि. अ. [हिं ऐंठ+लाना=इठलाना] मटकती या नखरे दिखाती है। उ.—कहाँ मेरे कुँवर पाँच ही बरष के, रोइ अजहूँ सु्ग्वै पान माँगैं। तू कहाँ ढीठ, जोवन-प्रमत्त सदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैं—१०-३०७।

इठलाना—क्रि. अ [हिं ऐंठ+लाना] (१) गर्व या ठसक दिखाना, इतराना। (२) चटकना-मटकना नखरे करना। (३) दूसरे को छकाने के लिए जानकर अनजान बनना।

इठलाहट—सज्ञा स्त्री. [हिं. इठलाना] इठलने की क्रिया या भाव, ठसक, ऐंठ।

इठाई—सज्ञा स्त्री [स. इष्ट पा इट्ठ+आई (प्रत्य)] (१) रूचि,। (१) मित्रता, प्रेम।

ईड़ा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) भूमि। (२) एक प्रधान नाडी जो पीठ की रीढ से बाएँ नथने तक है। चन्द्रमा

इसका प्रधान देवता माना गया है । उ.—इडा पिंगला सुषमन नारी । सहज सुंता मे बस मुरारी—३४४२ (८) ।

इत—क्रि. वि [स. इत:] इधर, इस ओर । उ.-इत की भई न उतकी सजनी भ्रमत भ्रमत मैं भई अनाथ पृ ३२९ ।

मुहा.— इत उत—इधर उधर । उ.—(क) पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार—१-९९ । (ख) जब सौंडि इतउत कहुँ गएं । बालक सब इकठौरे भए—७-१ ।

इतनक— क्रि वि [हि इतना] इतना छोटा-सा, बिलकुल जरा सा; नाममात्र का । उ—(क) कबहि करन गयौ माखन चोरी । जानै कहा कटाच्छ तिहारे, कमलनैन मेरौ इतनक सौ री —१०–३०५ । (ख) (कान्ह कौं) ग्वालिनि दोष लगावति चोर । इतनक दधि माखन कैं कारनैं कबहिं गयौ तेरी ओर—१०-३१० । (ग) देखौ माई कान्ह हिलकियानि रोवै । इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै—१०-३०७ ।

इतना—वि पु [स इयत्] इस मात्रा का ।

मुहा.—इतने मे–इसी बीच मे ।

इतनिक—वि [हि इतना] (१) इतनी, इस मात्रा की, इतनी जरा सी, थोडी । उ०—इतनिक दूरि जाहु चलि कासी जहाँ बिकत है प्यारी—३३१६ ।

इतनी—वि स्त्री. [हि इतना] इस मात्रा की, इस कदर, यह, ऐसी। उ.—इतनी सुनत कुति उठि धाई बरषत लोचन-नीर—१-२९ ।

इतनौ, इतनो—वि [हि इतना] इस मात्रा का, इस कदर । उ—बौरे मन समुझि-समुझि कछु चेत । इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत १-३२२ ।

इतर—वि [स] (१) दूसरा, और । (२) नीच, साधारण ।

इतराइ, इतराई—क्रि अ [हि इतराना] ऐंठ जाना, घमंड या ठसक दिखाकर । उ.—दिन दिन इनकी करौं बडाई अहिर गए इतराइ—२५७८ ।

इतरात—क्रि. अ. [हि उतराना, इतराना] (१) इतराते हो, घमंड करते हो, फूले नहीं समाते हो, ।उ.—(क) जम के फद परयो नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात । कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात—१–३१३ । (ख) तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहे कौ इतरात—२-२२ । (२) रूप-यौवन का घमड दिखाते हो, ऐंठते हो, ठसक दिखाते हो, इठलाते हो । उ.—तुम कत गाय चरावन जात ? अब काहू के जाउ कहौ जनि, आवति हैं युवती इतरात । सूर स्याम मेरे नैनन आगे रहौ काहे कहूँ जात हौ तात—५०९ ।

इतराति, इतराती—क्रि. अ [हि. इतराना] रूप-यौवन का गर्व या ठमक दिखाती है, इठलाती या ऐंठती है । उ — (क) देही लाइ तिलक केसरि कौ, जोवन मद इतराति । सुरज दोष देति गोबिंद कौ, गुरु लोगनि न लजाति— १०–२९४ । (ख) देखि हरि मथति ग्वालि दधि ठाढी । जोवन मदमाती इतराती, बेनि ढुरति कटिलौं, छबि बाढी—१०-३०० ।(ग) धन माती इतराती डोलै, सकुच नही करै मोर—१०-३२० । (घ) जननि बुलाइ बाहँ गहि लीन्ही, देखहु री मदमाती । इनकौ कौं अपराध लगावति, कहा फिरति मदमाती—७७५ ।

इतराना—क्रि अ [स उत्तरण, हि. उतारना] (१) सफलता पर गर्व या ठसक दिखाना' मदांध होना । (२) रूप, गुण, यौवन आदि पर घमंड करना, इठलाना ।

इतरानी—क्रि. अ स्त्री [हि इतराना] घमड करने लगी, मदांध हो गयी । उ.—सुर इतर ऊसर के बरमे थोरेहि जल इतरानी—२०२४ ।

इतराहट – सज्ञा स्त्री [हि. इतराना] मद, गर्व, घमड ।

इतरेतर—क्रि वि [स इतर + इतर] परस्पर, आपस मे ।

इतरौहाँ -वि [हि इतराना + औहाँ (प्रत्य] जिसमे ठसक या इतराना प्रकट हो ।

इतस्तत:—क्रि. वि. [स] इधर-उधर, यहाँ-वहाँ ।

इति—अव्य [स.] समाप्ति या अंत सूचक अव्यय । सज्ञा स्त्री [स] समाप्ति, अंत पूर्णता।

इतिवृत्त—सज्ञा पु० [स०] पुरानी कथा, कहानी ।

इतिहास—सज्ञा पु० [स०] (१) गत-प्रसिद्ध घटनाओ और तत्सबंधी व्यक्तियो का काल-क्रमानुसार वर्णन । उ०—सर्व सास्त्र को सार इतिहास सर्व जो । सर्व पुरान को सार युत सुतनि को—१८६१ । (२ पुस्तक जिसमे प्रसिद्ध घटना और पुरुषो का वर्णन हो ।

इती—वि०[स० इयत = इतना] ऐसी, इतनी, इस मात्रा की । उ०—(क) आजु जो हरिहि न सस्त्र गहाऊँ। ... ...। स्यदन खडि, महारथि खडौं कपिध्वज सहित गिराऊँ । पाडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ । इती न करौ, सपथ तो हरिकी, छत्रिय गतिहि न पाऊँ—१-२७० । (ख) कैसे करि आवत स्याम इती । मनक्रम वचन और नहिं मेरे पदरज त्यागि हिती-११-३ । (ग) इती दूर सम कियो राज द्विज भये दुखारे—१० उ०—८ ।

इते—क्रि० वि० [हि० इत] इतने, यहाँ, इन या इतने स्थानो मे । उ०—(क) (गाइ) व्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ—१-५६ । (ख) इते मान इहि जोग सँदेसनि सुनि अकुलानी दूखी—३०२९ ।

इतेक—वि० [हि० इत + एक] इतना एक ।

इतै—क्रि० वि० [स० इतः, हि० इत] इधर, इस ओर, यहाँ । उ—(क) हौं बलिहारी नद नदन की नैकु इतै हँसि हेरौ—१०-२१६ । (ख) आवहु आवहु इतै, कान्ह जू पाई हैं सब धेनु—५०२ ।

इतो—वि० [स० इयत = इतना] इतना, इस मात्रा का ।

इतोई—वि० [स० इयत = इतना, हि० इतो + ई(प्रत्य)] इतना ही यही । उ०—है हरि नाम को आधार । और इहि कलिकाल नाही, रह्यो विधि-ब्योहार ।— ... । सकल स्रुति-दधि मथत पायो, इतोई घृत सार —२-४ ।

इतौ—वि० [स० इयत = इतना] इतना, इस मात्रा का । उ०—(क) सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यो, किहिं जुग इतौ सह्यो—१-४९ । (ख) तब अगद यह वचन कह्यो । को तरि सिंधु सिया सुधि ल्यावै, किहिं बल इतौ लह्यो—९-७४ । (ग) रक रावन, कहा ऽतक तेरो इतो, दोउ कर जोरि बिनती उचारौं—९-१२९म (घ) तनक दधि कारन जसोदा इतो कहा रिसाई—३५० ।

इत्यादि—अव्य० [स०] इसी प्रकार, अन्य, और ।

इत्यादिक—वि० [स०] इसी प्रकार के अन्य या और ।

इत्यौ—वि० [हि० इतना] इतना, इस मात्रा का । उ०—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ए इत्यो नहि झूखी—३०२९ ।

इधन—सज्ञा पु० [स० इधन, हि० ईधन] जलाने की लकडी या कंडा, जलावन । उ०—घरघर मूढा उठि खेलत बालक सुठि आनित इधन दौरि दौरि सचारयो । ऐसे इहु नृप नर सकल सबेलि घर कें साकंकरत हृद रस बकुल जारयो—१० उ०—५२ ।

इधर—क्रि० वि० [स० इतर] इस ओर, यहाँ ।

इध्म—सज्ञा पु० [स०] (१) काठ, लकडी । (२) यज्ञ की समिधा ।

इन—सर्व० [हि०] 'इस' का बहु । उ०—इन पतितनि कौं देखि-देखि कै पाछै सोच न कीन्हौ—१-१७५ ।

इनतै—सर्व० [हि० इन + तें = से] इनसे । उ०—भीषम, द्रोन, करन, सब निरखत, इनतै कछु न सरी—१-२५४ ।

इनहूँ—सर्व. सवि. [हि. इन + हूँ (प्रत्य.)] इन्होने भी । उ—अर्जुन भीम महाबल जोधा, इनहूँ मौन धरी—१-२५४ ।

इन्नि—सर्व [हि. 'इस' का बहु,] इन, इन्होने । उ.—इति तब राज बहुत दुख पाए । इनकैं गृह रहि तुम सुख मानत । अति निलज्ज, कछु लाज न आनन—१—२८४ ।

इने-गिने—वि [अनु हि इन-गिनना] (१) कुछ, थोडे से । (२) चुने हुए, गिने-गिनाए ।

इनै—सर्व. [हि. इन] इनको । उ—बडो गिरिराज गोवर्धन इनै रहौ तुम माने—९३३ ।

इन्ह—सर्व [हि. इन] इन ।

इभ—सज्ञा पु. [स] हाथी । उ. राधे तेरे रूप की अधिकाइ । इभ तूटत अरु अरुन पक भए विधिना आन बनाइ—२२२४ ।

इभकुंभ—सज्ञा स्त्री. [स.] हाथी का मस्तक ।

ईभ्य—वि० [सं०] जिसके पास हाथी हो, धनी।
सज्ञा पुं०—राजा।

ईमरती—सज्ञा स्त्री० [स० अमृत] एक मिठाई।

इमली—सज्ञा स्त्री० [अम्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] एक बड़ा पेड़ जिसमे लबी खट्टे गूदेदार फलियाँ लगती हैं।

इमि—क्रि० वि० [स० एवम्] इस तरह, इस प्रकार। उ—(क) ज्यौं जल मसक जीव-घट-अतर, मम माया इमि जानि—३८१। (ख) सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे—१०-५८।

इयत्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] सीमा, हद।

इरषा—सज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या, डाह, जलन। उ.—इद्र देखि इरषा मन लायौ। करकै क्रोध न जल बरसायौ—५-२।

इरा—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) भूमि, पृथ्वी। (२) वाणी। (३) मदिरा।

इषना—सज्ञा स्त्री० [स० एषण] प्रबल इच्छा, कामना, वासना।

इला—सज्ञा स्त्री. [स] वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को व्याही थी और जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। (२) पृथ्वी। (२) वाणी, सरस्वती।

इलाचीपाक—सज्ञा स्त्री० [स० एला + ची (फा० + प्रत्य० 'च') + स० पाक] एक प्रकार की मिठाई जो इलाइची के दानों को चीनी मे पागकर बनायी जाती है।

इलावर्त, इलावृत्त—सज्ञा पु० [स० इलावृत्त] जंबू द्वीप के एक खंड का नाम।

इव—अव्य० [स०] समान, तरह, तुल्य।

इषणा—सज्ञा स्त्री० [स० एषण] प्रबल इच्छा, कामना, वासना।

इषु—सज्ञा पु० [स०] वाण, तीर।

इषुधी—सज्ञा पु० [स०] तूणीर, तरकश।

इषुमान—वि० [स०] वाण चलाने वाला।

इष्ट—वि० [स०] (१) इच्छित, चाहा हुआ। (२) अभिप्रेत। (३) पूजित।

सज्ञा पु० [स०] वह देवता जिसकी पूजा से कामना की सिद्धि होती है, इष्टदेव, कुलदेव। उ०—ये बसिष्ट कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सबनि सिखावत—९-१६३।

इष्टता—सज्ञा स्त्री० [सं०] मित्रता।

इष्टदेव—सज्ञा पु० [स०] आराध्य देव, कुल देवता।

इष्टसुर—संज्ञा पु० [स०] आराध्यदेव, कुलदेव, इष्टदेव। उ०—इष्टसुरनि बोलत नर तिहिं सुनि, दानव-सुर वड सूर—९-२६।

इष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] इच्छा, अभिलाषा, यज्ञ विशेष।

इष्य—सज्ञा पु० [स०] वसंत ऋतु।

इस—सर्व० [स० एष.] 'यह' का विभक्ति के पूर्व आदिष्ट रूप।

इसे—सर्व० [सं० एष.] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानरूप।

इस्त्री—सज्ञा स्त्री० [स० स्त्री] स्त्री, नारी। उ०—स्त्री-पुरुष नहीं कुछ नाम—१००५।

इहँ—सर्व० [स० इह] यह। उ०—देव-दानव-महाराज-रावन सभा, कहन कौं मत्र इहँ कपि पठाओ—९ १२८।

इहँई—क्रि० वि० [हिं० इह + ई (प्रत्य०)] यहाँ ही इसी स्थान पर। उ०—(क) इहँई रहौ तौ बदौं कन्हाई। आपु गई जसुमतिहिं सुनावन दै गई स्यामहिं नद दुहाई—८५७। (ख) की इहँई पिय को न बुलावै की तॉई चलि जाही—२१४५।

इह—क्रि० वि० [स०] इस जगह, इस लोक मे, यहाँ।
सज्ञा पु०—यह ससार, यह लोक।
वि०—यह, इस प्रकार की। उ०—तासो भिरहु तुमहिं मो लायक इह हेरनि मुसकानि—२४२०।

इहई—वि० [हिं० इह = यह] यही, ऐसा ही। उ०—(क) इहई बात मधुपुरी जहँ तहँ दासी कहत डरत जिय भरी—२६४०। (ख) रसना इहई नेम लियो है और नहीं भाखौं मुख बैन—२७६८।

इहलौकिक—वि० [सं०] (१) सासारिक, इस लोक से सम्बन्ध रखने वाला। (२) इस लोक मे सुख देने-वाला।

इहवाँ—क्रि० वि० [हिं० इह] इस जगह यहाँ।

इहाँ—क्रि० वि० [हिं० इह] यहाँ, इस जगह। उ०—नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी—१-१९२। (२) इधर, इस ओर। उ०—तहँ भिल्लनि सौं भई

सराई । लूटे सब बिन स्याम-सहाई । अर्जुन बहुत दुखित तब भए । इहाँ अपसगुन होत नित नए—१-२८६ । (१) इस लोक या संसार में । उ.—ते दिन बिसारि गए इहाँ आए । अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१—३२० ।

इहोई, इहाँई—क्रि वि. [हि यहाँ + उ प्रत्य]यहाँ भी । इस लोक में भी । उ —प्रगट पाप-संताप सूर अब, कायर इहै नहीं । और इहाँउ विवेक-अगिनि कै बिरह—बिपाक दहीं —३-२ ।

इहि—वि.[हि. इह = यह] इस, इसी, यही, इस प्रकार । उ —(क)इहि लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी(हो)-१ ४४ ।(ख) सुदर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार । जलरुह मनो वैर बिधु सों तजि, मिलत लए उपकार—१०—२८३ ।

सर्व —इसे, इसको, इसने । उ -(क) सूर स्याम इहि बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी (हो)—१-४४ । (ख) इहि बिधि इहि उहके सबै जल-थल-नभ-जिय जेते (हो) —१-४४ ।

इहि —वि. [हि इह = इस] इस, यही ।उ.- इहि आँगन गोपाललाल को कबहुँ कनियाँ लैहौ—२५५० ।

सर्व—इस, इससे । उ.—बिरद छुडाइ लेहु बलि अपनो, अब इहि तै हद पारौ—१-१९२ ।

इही—वि [हि इह = यह] इसी । उ —मह जिय जानि इही छिन भजि, दिन बीते जात असार—१—६८ ।

इहै—सर्व [हि. इह] यही, यहही । उ —(क)तीनो पन ओर निवहि, इतै स्वांग कौं काछे —१-१३६ ।(ख) यही गोप, यह ग्वाल इहै सुख, यह लीला कहुँ तजत न साथ । (ग)मानो माई सबन इहै है भावत-२८३५

ई

ई—देवनागरी वर्णमाला का चौथा स्वर । यह 'इ' का दीर्घ रूप है । तालु इसका उच्चारण स्थान है । यह प्रत्यय की भाँति शब्दों में जुड़कर विभिन्न शब्द रूप बनाता है ।

ईगुर—सज्ञा पु [स हिंगुल, प्रा. इंगुल] चमकीले लाल रंग का एक खनिज पदार्थ जिसकी बिंदी सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माथे पर लगाती है।

ईंचना—क्रि. स. [सं अंजन = लाना, ले आना, खींचना] खींचना, ऐंचना ।

ईंडरी—सज्ञा स्त्री,[स कुडली]वह कुंडल-कार गड्डी जो सर पर घड़ा या बोझ उठाते समय रखी जाती हैं ।

ईंधन—सज्ञा पुं.[स इंधन] जलाने की लकड़ी या कंडा ।

ई—सर्व. [स ई = निकट का सकेत] यह ।

अव्यय [स हि [प्रयोग या शब्द पर जोर देने का अव्यय, ही ।

ईक्षण—सज्ञा पु [स.] (१) दर्शन । (२) नेत्र । (३) जाँच, विचार ।

ईख—सज्ञा स्त्री. [स इक्षु, प्रा. इक्खु] ऊख, गन्ना ।

ईछन—सज्ञा पु. [स ईक्षण = आँख] आँख ।

ईछना—क्रि स.[सं इच्छा]इच्छा करना, चाहना ।

ईछा—सज्ञा स्त्री. [स. इच्छा] चाह रुचि ।

ईछी—सज्ञा स्त्री [स इच्छा] इच्छा, चाह, रुचि ।

ईठ—सज्ञा पु [स. इष्ट, प्रा. इट्ठ] मित्र, सखा, सखी ।

ईठना—क्रि. अ. [स इष्ट] इच्छा करना ।

ईठि—सज्ञा स्त्री. [स इष्टि, प्रा. इट्टि] (१) मित्रता, प्रीति । (२) चेष्टा, यत्न ।

ईठीदाड़—सज्ञा पु. [हि.ईठी + दंड] चौगान खेलने का डंडा ।

ईड़ा—सज्ञा स्त्री.[स ईडा = स्तुति] स्तुति, प्रशंसा ।

ईड़ित—वि [स] प्रशंसित ।

ईढ़—वि [स. इष्ट, प्रा. इट्ठ] हठ, जिद टेक ।

ईतर—वि [हि इतराना] इतराने वाला, ढीठ । उ.—गई नद घर को जमुमति जहँ भीतर । देखि महर को कहि उठी सुत कीन्हो ईतर ।

क्रि अ.— इतराते हैं । उ.—नान्हे लोग तनक धन ईतर —१०४१ ।

वि.[स इतर] निम्नश्रेणी का, साधारण,नीच ।

ईति—सज्ञा स्त्री [स] (१) खेती को हानि पहुँचानेवाले छह प्रकार के उपद्रव—अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी पडना, चूहे लगना, पक्षियो की बढ़ती शत्रु का आक्रमण । उ —अब राधे ना हिनें व्रजनीति । .. । पोच पिसुन लस दसत समासद प्रभु अनग मन्त्री बिनु भीति । सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन

कुराज राज की ईति–२२२३ ।(२)पीड़ा, दुख । उ.– तुम हो सत सदा उपकारी जानत हो सब रीति । सूरदास ब्रजनाथ बचै हो ज्यों नहिं आवै ईति– ३४२० ।

ईदृश–क्रि वि०[स] इस प्रकार, ऐसे ।
वि.–इस प्रकार का, ऐसा ।

ईप्सा–सज्ञा स्त्री [स] इच्छा, अभिलाषा ।

ईप्सित–वि. [स.] इच्छित, अभिलषित ।

ईप्सु–वि, [स] चाहनेवाला ।

ईरखा–संज्ञा पु [स०ईर्ष्या] डाह, द्वेष ।

ईरिण–सज्ञा पु०[स०] बलुआ मैदान, ऊसर ।

ईर्षणा–सज्ञा स्त्री [स. ईर्ष्यण] ईर्ष्या, डाह ।

ईर्षा–सज्ञा स्त्री. [स० ईर्ष्या] डाह, द्वेष ।

ईर्षालु–वि. [स.] दूसरे से डाह रखनेवाला ।

ईर्ष्या–सज्ञा स्त्री. [स०] डाह, द्वेष ।

ईश–सज्ञा पु०[स०] (१)स्वामी । (२) राजा । (३) ईश्वर । (४) महादेव । (५) ग्यारह की सख्या ।

ईशपुर–सज्ञा पु० [स०] शिवजी का नगर । उ०–जो गाहक साधन के ऊधो ते सब बसत ईशपुर काशी– ३३१५ ।

ईशा–सज्ञा स्त्री [स] (१) ऐश्वर्य । (२) ऐश्वर्य-संपन्न नारी ।

ईशान–सज्ञा पु० [स०] (१) स्वामी, अधिपति । (२) शिव । (३) ग्यारह की संख्या । (४) पूरब-उत्तर का कोना ।

ईशिता, ईशित्व–सज्ञा स्त्री [स०] आठ सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है ।

ईश्वर–सज्ञा पु० [स०] (१) स्वामी ।(२) भगवान ।

ईश्वरीय–वि [स](१)ईश्वर सम्बन्धी ।(२)ईश्वर का ।

ईषत्–वि० [स०] थोड़ा कुछ, अल्प ।

ईषद, ईषद्–वि० [स०] थोड़ा, कुछ, कम, अल्प । उ०–(क) ईषद हास दत-दुति बिगसति, मानिक मोती धरे जनु पोइ–१०.२१० । (ख) असन अधर कपोल नासा सुभग ईषद हास–१३५९ ।

ईषना–सज्ञा स्त्री० [स० एषण] प्रबल इच्छा ।

ईस–सज्ञा पु० [स० ईश] (१) शिव । (२) राजा । (३) भगवान । (४) स्वामी, अधिष्ठाता । उ०–कर्म भवन के ईस सनीचर स्याम बरन तन ह्वै है–१०-८६।

ईसन–सज्ञा पु० [स० ईशान] पूरब और उत्तर के बीच का कोना ।

ईसर–सज्ञा पु० [सं० ऐश्वर्य] धन-सम्पति ।

ईसान–सज्ञा पु० [स० ईशान] (१) स्वामी । (२) शिव । (३) पूरब उत्तर का कोना ।

ईस्वर–सज्ञा पु० [स० ईश्वर] परमेश्वर, भगवान ।

ईस्वरता–सज्ञा स्त्री०[हि० ईश्वरता] ईशता, स्वामित्व, प्रभुत्व । उ०–कै कहूँ खान-पान रमनादिक, कै कहूँ बाद अनेंष । कै कहुँ रक, कहूँ ईश्वरता, नट-बाजीगर जैसे–१-२९३ ।

ईहा–सज्ञा स्त्री० [स०] (१ चेष्टा । (२) इच्छा ।

ईहित–वि० [स०] इच्छित, अभीष्ट ।

ईहाँ–क्रि० वि०–हि० यहाँ] यहाँ, इस स्थान पर । उ०–अब वै बातें ईहाँ रहीं । मोहन मुख मुसकाइ चलत कछु काहू नहीं कही–२५४२ ।

उ

उ– देवनागरी वर्णमाला का पाँचवाँ स्वर । ओष्ठ इसका उच्चारण स्थान है ।

उँगली–सज्ञा स्त्री० [स० अगुलि] अँगुली ।

उँचाइ–क्रि० स०[हि० उँचाना]उठाकर, ऊँचा करके । उ०–सुनो किन कनकपुरी के राइ । हौं बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यो न सीस उँचाइ– ९-७८ ।

उँचाई-सज्ञा स्त्री० [सं० उच्च](१) ऊँचापन । (२) बड़प्पन, महत्व ।
क्रि० स०–[हि० उचाना]उठाकर, ऊँचा करके । उ०–बलि कह्यो बिलब अब नेकु नहिं कीजिए मदराचल अचल चलो धाई । दोउ एक मन्त्र करि जाइ पहुँचे तहाँ कह्यो अब लीजिए यहि उँचाई ।

उँचान–सज्ञा पु० [हि० ऊँचा] ऊँचाई ।

उँचाना –क्रि० स० [हि० ऊँचा] ऊँचा करना, उठाना ।

उँचाव–सज्ञा पु० [स० उच्च] ऊँचाई, ऊँचापन ।

उँचास—संज्ञा पु० [हिं० ऊँचा] ऊँचा होने का भाव, ऊँचाई।

उँजरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० अजोरी, अँजोरिया] (१) प्रकाश। (२) चाँदनी।

उँजियार—संज्ञा पु० [हिं० उजला] उजाला, प्रकाश।

उँजेरा, उँजेला—संज्ञा पु० [हिं० उजाला] प्रकाश, उजाला।

उँज्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियाला] प्रकाश। (२) चाँदनी।

उँदुर—संज्ञा पु० [सं०] चूहा मूसा।

उँहु—अव्य० [अनु०] (१) घृणा अथवा अस्वीकृति सूचक शब्द। (२) वेदना सूचक अव्यय।

उ—संज्ञा पु० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) नंद।

अव्य०—भी।

उअना—क्रि० अ० [हिं० उदयन] उदय होना, उठना।

उआना—क्रि० स० [हिं० 'उआना' का प्रे०] उगाना, उदय करना।

क्रि० स० [सं० उद्गुरण, पा० उग्गुरन = हथियार तानना] मारने के लिए शस्त्र उठाना।

उई—क्रि० अ० [हिं० उदयन, उअना] उदय हुई, जन्मी, उगी। उ०—जानों नहीं कहाँते आवति वह मूरति मन माँह उई—१४३३।

उऋण—वि० [सं० उत् + ऋण] जिसका ऋण से उद्धार हो गया हो, ऋण-मुक्त। उ०—कैसेहु करि उऋण कीजै वधुन ते मोहि—२९२४।

उकचन—संज्ञा पु० [सं० मुचकुन्द] मुचकुन्द का फूल।

उकचना—क्रि. अ. [सं. उत्कर्ष, पा. उक्कस = उखाड़ना] (१) उखड़ना, अलग होना। (२) भागना, स्थान त्यागना।

उकटना—क्रि० स० [सं० उत्कथन, पा० उक्कथन,] बार-बार कहना, उघटना।

उकटा—वि० [हिं० उकटना] उपकार जताने वाला।

उकठ—क्रि० अ० [हिं० उकठना] सूखकर। उ०—मधुवन तुम क्यों रहत हरी……। कौन काज ठाढ़ी रही बन मे काहे न उकठ परी—२७४१।

उकठना—क्रि० अ० [सं० अव + काष्ठ = लकड़ी] सूखना, ऐंठ जाना।

उकठा—वि० [हिं० उकठना] शुष्क, सूखा।

उकठि—क्रि० अ० [हिं० उकठना] सूखकर, शुष्क होकर। उ०—अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन वेलि प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३०।

उकठे—क्रि० अ० [हिं० उकठना] सूख गये, शुष्क हो गये।

उकताना—क्रि० अ० [सं० आकुल, पु० हिं० अकुताना] (१) ऊबना। (२) आकुल होना, उतावली करना, जल्दी मचाना।

उकति—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] कथन, वचन।

उकलना—क्रि० अ० [सं० उत्कलन = खुलना] अलग होना।

उकसन उकसनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसना] उभाड़, अंकुरित होने की क्रिया।

उकसाना—क्रि० अ० [सं० उत्कर्षण या उत्सुक] (१) ऊपर को उठना। (२) अंकुरित होना। (३) खोदना।

उकसाना—क्रि० स० [हिं० 'उकसना' का प्रे०] (१) उत्तेजित करना। (२) उठा देना, हटाना।

उकसाय—क्रि० स० [हिं० उकसाना] (१) उत्तेजित करके। (२) हटाकर, उठाकर। (३) खोदकर।

उकसारत—क्रि० स० [हिं० उकसाना] ऊपर उठाकर। उ०—कहा भयो जो घर कैं लरिका, चोरी माखन खायो। इतनी कहि उकसारत बाहैं, रोष सहित बल धायो—३७४।

उकसि—क्रि० अ० [हिं० उकसना] (१) उभरकर, ऊपर उठकर। (२) खुदकर।

उकसौंहाँ—वि० [हिं० उकसना + औंहाँ (प्रत्य०)] उमड़ता हुआ।

उकासत—क्रि० स० [हिं० उकसाना] (१) उभाड़ते हैं, ऊपर को खींचते हैं। (२) खोदते हैं। उ०—गैवाँ बिडरि चली जित तितको सखा जहाँ तहँ घेरैं। वृषभ सृंग सों धरनि उकासत बल मोहन तन हेरैं।

उकासना—क्रि० स० [हिं० उकसाना] (१) उभाड़ना। (२) खोदना।

उकुति—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] कथन, वचन।

उकुसना—क्रि० स० [हिं० उकसना] उजाड़ना, नष्ट करना।

उकसि—क्रि० स०[हिं० उकसना] उजाड़कर, नष्ट करके।

उकेलना—क्रि० स०[हिं० उकलना] उजाड़ना, नोचना।

उक्त—वि० [सं०] कथित, कहा हुआ, ऊपर का।

संज्ञा स्त्री०—(१) कथन, बात। (२) अनोखा, विशेषार्थपूर्ण कथन। उ०—सूरदास तज व्याज उक्त सब मोसो कौन चेतावै—सा० ८४।

उक्तगूढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति + गूढ़ = गूढ़ोक्ति] (१) एक अलंकार जिसमे विशेषार्थक गूढ़ बात करने वाले के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति के प्रति कही जाय। (२) गूढ़ वचन, विशेषार्थक कथन। उ०—उक्तगूढ़ तें भाव उदे सब सूरज स्याम सुनावै—सा०

उक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कथन, वचन। (२) चमत्कार वाक्य। उ०—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यामी अनमिल उक्ति गनावै—सा० १५।

उक्तियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्मति और उपाय।

उखटना—क्रि० अ० [सं० उत्कषण] (१) लड़खड़ाना। फुतरना।

उखड़ना—क्रि० अ० [हिं०] (१) अलग होना। (२) टूट जाना।

उखरना—क्रि० अ० [हिं० उखरना] उखड़ना, अलग होना।

उखरे—क्रि० अ० [हिं० उखड़ना] अलग हुए, छूट गये। उ०—माड़े माडि दुनेरो चुपरे। बहु घृत पाइ आपुहि उखरे—२३२१।

उखाड़ना—क्रि० स० [हिं० 'उखड़ना' का प्रे०] (१) अलग करना। (२) भड़काना, बिचकाना। (३) ध्वस्त करना।

उखारति—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना ('उखड़ना' का स० रूप)] उखाड़ती है, तोड़ती है। उ०—माधो जू यह मेरी गाइ। ···। फिरति वेद-बन ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति—१-५१।

उखारना—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] उखाड़ना।

उखारि—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] उखाड़ या खोदकर। उ० कह्यौ तो नख उखारि डारि दउँ जहाँ पिता मर्यो सो—९८४।

उखेरना—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] अलग करना छुड़ाना।

उखेरे—क्रि० स०[हिं० उखाड़ना] उखेड़ना, अलग करना, छुड़ाना। उ०—मन तो गए नैन हैं मेरे···। क्रम क्रम गए कह्यौ नहि काहू स्यामै संग अरुझे रे।···। सूर लटकि लागे अँग छवि पर निठुर न जात उखेरे—पृ० ३२०।

उखेरो—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] उखाड़ लो, अलग करो, पृथक करो। उ०—कियो उपाइ गिरिवर धरिवे को महि ते पकरि उखेरो—९५९।

उखेलना—क्रि० स० [सं० उल्लेखन] लिखना, चित्र खींचना।

उखेला—क्रि० स० [हिं० उखेलना] चित्रित किया, लिखा।

उगटना—क्रि० अ०[सं० उद्घाटन](१) बार बार कहना। (२) ताना मारना।

उगत—क्रि०अ०[सं० उद्गमन, प्रा. उग्गवन, हिं० उगना] निकलता है, उदय होता है। उ०—उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससांक किरन-हीन दीप सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे—१०-२०५।

उगन—क्रि० अ० [सं० उद्गमन, हिं० उगना] उगना, उदय या प्रकट होना। उ०—कह्यौ तो सूरज उगन देहुँ नहिं, दिसि दिसि बाढ़ै ताम—९-१४८।

उगना—क्रि० अ० [सं० उद्गमन, प्रा० उग्गवन] (१) उदय होना, निकलना। (२) जमना, अंकुरित होना। (३) उपजना, उत्पन्न होना।

उगरना—क्रि० अ० [सं० अग्र] सामने निकलना।

उगलत - क्रि० स०[हिं० उगलना] मुँह से बाहर निकलता या गिरता है। उ०—स्रवत जलकुच परत धारा नही उपमा पार। मनो उगलत राहु अमृत कनक गिरि पर धार—१८४९।

उगलना—क्रि० स० [सं० उद्गिलन] (१) मुँह की वस्तु को थूकना। (२) दूसरे का लिया हुआ माल वापस करना। (३) गुप्त भेद खोलना।

उगवना—क्रि० स० [हिं० 'उगना' का स० रूप] (१) उगाना उदय करना। (२) उत्पन्न करना।

उगवै—क्रि० स० [हिं० उगवना] (१) उदय करती है। (२) उत्पन्न करती है।

उगवो—क्रि० अ० [हिं० उगना] उपजे, उत्पन्न हो ।

उगसाना—क्रि० स० [हिं० उकसाना] (१) उभाड़ना, उत्तेजित करना । (२) उठाना ।

उगसारना—क्रि० स० [हिं० उकसाना] कहना, प्रकट करना ।

उगसारा—क्रि० स० [हिं० उकसाना] कहा, प्रकट किया ।

उगाना—क्रि० स० [हिं० 'उगना' का स० रूप] (१) अंकुरित करना, उत्पन्न करना । (२) उदय करना । (३) मारने को शस्त्र तानना ।

उगार, उगारु—संज्ञा पुं. [सं. उद्गार, पा. उग्गार, हिं. उगार] रस, आनंद । उ.—(क) स्यामल गौर कपोल सुचारु । रीझि परस्पर लेत उगारु—१८७७ । (ख) गौर स्याम कपोल सुललित अधर अमृत सार । पर-स्पर दोउ पियत प्यारी रीझि लेत उगार—पृ. ३५१ (७५) ।

उगाहत—क्रि स [हिं उगाहना] वसूल करते हैं । उ.—हाट बाट सब हमहिं उगाहत अपनो दान जगात—१०८७ ।

उगाहना—क्रि० स० [सं० उद्ग्रहण, प्रा० उग्गहन] वसूल करना ।

उगाही—संज्ञा स्त्री [हिं. उगाहना] (१) वसूल करने का कार्य या भाव । (२) वसूल हुआ धन ।

उगाहु—क्रि० स० [हिं० उगाहना] वसूल करो, ले लो । उ०—नंद नंदन तुम्हहिं गुन नायक लीजै दान उगाहु—११७४ ।

उगिलै—क्रि स. [हिं उगलना] उगल दे, थूके । उ०—मारति हौं तोहि बेगि कन्हैया, बेगि न उगिलै माटी—१०-२५५ ।

उगिलौ—क्रि स [सं उद्गिलन, पा. उग्गिलन, हिं. उग-लना] थूक दो, उगल दो । उ —मोहन काहे न उगिलौ माटी—१०-२५४ ।

उगेउ—क्रि अ [हिं. उगना] उगा, उदय हुआ ।

उगैया—वि [हिं. उगाना] उगाने वाले, उत्पन्न करने वाले, प्रकटाने वाले । उ०—जिहि माया मोहे ब्रह्मा-दिक, रवि-ससि कोटि उगैया । सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि बलि मैं बलि जैया—१० १३१ ।

उग्यो—क्रि० अ० भूत० [सं० उद्गमन, पा० उग्गवन, हिं० उगना] निकला, उदय हुआ, प्रकटा । उ०—सूर दास रसरासि रस बरसि कै चली, जानो हर-तिलक गुरु उग्यो री—६९१ ।

उग्र—वि० [सं०] प्रचंड, प्रबल, घोर, तेज ।

उग्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंडता, प्रबलता, तेजी ।

उग्रधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र । (२) शिव ।

उग्रशेखरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव के मस्तक की गंगा ।

उग्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा के राजा जो कंस के पिता थे । कंस ने इन्हें बन्दीगृह में डाल रखा था । श्रीकृष्ण ने कंस को मार कर इनका उद्धार किया और पुन. इन्हें सिंहासन पर बैठाया ।

उग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा, महाकाली । (२) कर्कशा स्त्री ।

उर्ग—संज्ञा पुं० [सं० उरग] सर्प । उ०—वेनी लसति कहौं छवि ऐसी महलनि चित्रे उर्ग—२५६२ ।

उघट—क्रि० अ० [सं० उत्कथन, पा० उक्कथन, अथवा सं० उद्घाटन, पा० उग्घाटन, हिं० उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोड़कर । उ.—कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ विषान, कोउ वेनु । कोउ निर-तत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज बालक सेनु-४४८।

उघटत—क्रि० अ० [सं० उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोड़कर । उ०—(क) कोउ गावत, कोउ नृत्य करत कोउ उघटत, कोउ करताल बजावत-४८० । (ख) काली नाग के फन पर निरतत, संकर्षन को बीर । लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गंभीर—५७५ । (ग) उघटत स्याम नृत्यत नारि—पृ० ३४६ (४५) ।

उघटति—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० उघटना] (१) ताल देती हैं, सम पर तान तोड़ती हैं । उ०—कबहुँक गावति, कबहुँ नृत्यत, कबहुँ उघटति रंग-पृ. ३४६ (४५)। (२) किसी को बुरा-भला कहते कहते बाप-दादे तक पहुँचना । उ०—उघटति हौ तुम माता-पिता लौं, नहिं जानौ तुम हमको—१०८९ ।

उघटना—क्रि. अ [सं. उत्कथन, पा. उक्कथन अथवा सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन](१)ताल देना, सम पर तान

तोड़ना। (२) बीती बात को उभाड़ना। (३) उपकार जताना। (४) किसी को गाली देते-देते बाप-दादे तक पहुँचना।

उघटा—वि० [हिं० उघटना] उपकार जताने वाला।

उघट्यौ—क्रि अ [स. उद्घाटन, पा उग्घाटन, हिं उघटना] ताल दी, सम पर तान तोड़ी। उ —मन मेरैं नट के नागर ज्यौं तिनहीं नाच नचायौ। उघट्यौ सकल सँगीत-रीति भव अगनि अग बनायौ। काम-क्रोध-मद लोभ-मोह की तान तरगनि गायौ-१-२०५।

उघड़ना—क्रि. अ. [स उद्घाटन, प्रा उग्घाटन] (१) खुलना, आवरण रहित होना। (२) प्रकट होना, प्रकाशित होना। (३) नग्न होना। (४) भेद खुलना, भंडा फूटना।

उघर—क्रि अ [हिं उघरना] प्रकट होना, ज्ञात होना। उ —उघर आयौ परदेसी को नेह–१० उ -९०।

उघरत—क्रि० अ० [हिं० उघड़ना] (१) खुलतां हैं, आवरण या परदा हटता है। उ०—(क) राखौ पति गिरिवर गिरिधारी। अब तौ नाथ रह्यौ कछ नाहिंन उघरत माथ अनाथ पुकारी—१-२४८। (ख) जैसे सपनो सोइ देखियत तैसो यह ससार। जात विलय ह्वै छिनक मात्र मैं उघरत नैन-किवार। (२) असली रूप मे प्रकटती है, असलियत खुलती है, भंडा फूटता है। उ०—सेमर फूल सुरग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप। परसत चोच तूल उघरत मुख, परत दुःख कै कूप—१-१०२। (३) ऊपर उठता है, उभरता है। उ०—हेरत हरष नन्दकुमार। बिनु दिये विपरीत कवजा पग छपाईन भार। रंच उघरत द्वेष नीकन मान उरवर भेद—सा० ३६।

उघरना—क्रि० अ० [स० उद्घाटन, पा० उग्घाटन हिं० उघड़ना] (१) खुलना, आवरण रहित होना। (२) नग्न होना। (३) प्रकट या प्रकाशित होना। (४) भेद खुलना, भण्डा फूटना।

उघर्‌यौ—क्रि अ [स उद्घाटन, पा. उदघाटन, हिं. उघरना] खुल गया खिसक गया। उ —(क) छोरे निगड, सो आए, पहरू द्वारे को कपाट उघर्‌यौ—१०-८। (ख) डोलत तनु सिर अचर उघर्‌यौ वेनी पीठ डुलति इहि भाइ—१०-२९८।

उघरारा—सज्ञा पु० [उघरना] खुला हुआ स्थान। वि०—खुला हुआ। (२) खुला रहने वाला।

उघरार—सज्ञा पु० सवि०[हिं० उघरारा] खुले स्थान मे।

उघरि—क्रि० अ० [हिं० उघरना] खुलता है, आवरण हटता है। उ०—स्यामा स्याम सो होरी खेलत आज नई। "सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई। (२) खुल गये, वन्द न रहे। उ०—सहज कपाट उघरि गए ताला कूँजी टूटि—२६२५। (३) नगा होकर।

मुहा —उघर नच्यौ चाहत हौं—लोकलाज को परवाह न करके मनमानी करना चाहता हूँ। उ — हौं तौ पतित सात पीढिन कौ पतितै ह्वै निस्तरिहौं। अब हौं उघरि नच्यो चाहत हौं तुम्हैं विरद विन करिहौं—१-१३४।

(४) प्रकट होना। (५) भेद खुलना, भण्डा फूटना। उ०—(क) थोरे ही मैं उघरि परैंगे अतिहि चले इतराइ—पृ० ३२२। (ख) हम जानहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी—१२६२।

उघरी—क्रि. अ. [हिं. उघरना] प्रकट हो गयी। उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी। सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु सब पाती उघरी—३३४६।

उघरे—क्रि. अ [स. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हिं उघरना] खुले, आवरणरहित हुए। उ —बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी। बडी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४।

उघाड़ना—क्रि. स [हिं. 'उघड़ना' का सक](१)खोलना, आवरण हटाना। (२) प्रकट करना। (३) भेद खोलना, भण्डा फोड़ना।

उघार—क्रि स [हिं. उघारना] खोलकर, खोल दे-(क) पलक नेक उघार देखत आय सुन्दर गात—सा. ६६। (ख) मनिन वार बसन उघार। सभु-कोप दुआर आयो आद को तनु मार—सा. ८९।

उघारत—क्रि स [हिं उघारना] खोलते है, ढकना हटाते हैं। उ —सूनैं भवन कहूँ कोउ नाही मनु याही को राज। भाँडे धरन, उघारत, मूँदत दधि माखन कैं काज—१०-२७७।

उघारत—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा. उग्घाटन] हि. उघारना] खोलना, आवरण हटाना । उ.—लाल उठो मुख धोइए, लागी वदन उघारन—४३९ ।

उघारना—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाटन, हि० उघाड़ना] (१) खोलना, आवरण रहित करना । (२) प्रकट करना, प्रकाशित करना ।

उघारि—क्रि० स० [हि० उघारना] (१) खोलकर, आवरण रहित करके, नग्न करके। उ०—(क) जीरन पट कुपीन तन धारि । चल्यो सुरसरी, सीस उघारि—१३४१ । (ख) विदुर सदन सब तबहिं उतारि । चल्यो तीरथनि मूड़ उघारि—१-२८४ । (२) खोलकर, प्रकट करके, बताकर । उ.—नीके जाति उघारि आपनी जुवतिन भले हँसावो—१०९८ ।

क्रि० वि०- (१) साफ-साफ, स्पष्ट रूप से । उ.—जननायक हम हैं की तुम हो कहो न बात उघारि—२५२० । (२) प्रकट करके, प्रकाशित रूप से । उ.—चली गावति स्याम के गुन हृदय ध्यान विचारि । सबके मन जो मिलैं हरि कोउ न कहत उघारि—१०८० ।

उघारी—क्रि स. [सं उद्घाटन, प्रा. उघाड़न, हि. उघाड़न (१) खोल कर, आवरणहीन की, नंगी की । उ.—(क) याके बस मैं बहु दुख पायो, सोभा सबै बिगारी । करिये कहा, लाज मरिये जब अपनी जाँघ उघारी—१०-१७३ । (ख) विदुर सदन सब तहीं उतारी । चल्यो तीरथनि मूड़ उघारी—१-२४४ । (२) खोल कर, पलक न झपकाकर । उ.—सिव की लागी हरि-पद तारी । तातें नहिं उन आँखि उघारी—४-५ ।

वि. [हि. उघाड़ना] नग्न, वस्त्रहीन । उ.—अब तो नाथ न मेरो कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंदमुरारी । सूर-दास अवसर के चूकें, फिरि पछितैहौ देखि उघारी—१-२४८ ।

उघारे—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाटन, हि० उघारना] (१) (आवरण आदि हटाकर) खोले । उ०—दुरलभ भयो दरस दसरथ को, सो अपराध हमारे । सूरदास स्वामी करुनामय, नैन जात उघारे—९-५२ । (२) नग्न होकर । (३) लोक लाज छोड़कर ।

उघारौ—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडन, हि० उघाड़ना] खोलता (है), आवरणहीन या नंगा (करता है) । उ०—द्रुपद-सुता को मिटयो महादुख, जबहीं सो हरि टेरि पुकारी । हौ अनाथ, नाहिंन कोउ मेरो, दुस्सासन तन करत उघारौ—१-१७२ ।

उघारयौ—क्रि० स० [हि० उघारना] खोला, आवरण-रहित किया । उ.—प्रात समय उठि सोवत सुत को वदन उघारयो नंद—१०-२०३ ।

उघेलना—क्रि स. [हि उघारना] खोलना ।

उचकना—क्रि. अ [सं उच्च = ऊँचा + करण = करना] उछलना, कूदना ।

उचका—क्रि वि. [हि. अचाका] अचानक, सहसा ।

उचकाइ—क्रि स [हि. उचकाना] उठाकर, ऊपर करके । उ —मै तिक लक, उपारि वाम कर, लै आवें उचकाइ—९-७४ ।

उचकाई—क्रि. स [हि. उचकाना] उठाकर, ऊपर करना । उ —(क) सत वचन गिरिदेव कहत है कान्ह लेउ मोहि कर उचकाई । (ख) गोवर्धन लीन्हो उचकाई—१०५६ ।

उचकाना—क्रि० स० [हि० 'उचकाना' का सक०] उठाना ऊपर करना ।

उचकाय—क्रि० स० [हि० उचकाना] उचकाकर, ऊपर उठाकर, ऊँचा करके । उ०—मिलि दस पाँच अली चलि कान्हहिं गहि लावत उचकाय । भरि अरगजा अबीर कनक घट देति सीस ते नाय—२४९९ ।

उचकि—क्रि० अ० [हि० उचकना] पैर के पंजो के बल ऊपर उठकर तथा सिर ऊँचा करके। उ०—अति ऊँचो विस्तार अतिहि बहु लीन्हो उचकि करज भुज वाम—९९७ ।

उचकी—क्रि० अ० स्त्री० [हि० उचकना] उछली, कूदी ।

उचक्का—संज्ञा पु० [हि० उचकना] (१) उठाईगीरा । उ०—वटमारी, ठग, चोर उचक्का, गाँठकटा, लठ-वाँसी—१-१८६ । (२) ठग ।

उचक्यौ—क्रि० अ० [सं० उच्च = ऊँचा + करण = करना, हि० उचकना] ऊपर उठा, उठकर ऊपर आया, उत-राया । उ०—हम सँग खेलत स्याम जाइ जल माँझ

धँसायौ । बूड़ि गयौ, उचक्यौ नहीं ता बातहिं भई अबेर—५८९ ।

उचटत—क्रि० अ० [स० उच्चाटन, हिं० उचटना] अलग होती है, छूटती है, छिटकती है । उ०-(क) लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस कुस ताल । उचटत भरि अगार गगन लौ, सूर निरखि ब्रजजन-बेहाल—५९४ । (ख) पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल । उचटत अति अगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल—६१५ ।

उचटना—क्रि० अ० [स० उच्चाटन] (१) उखाड़ना, अलग होना, छूटना । (२) जमी वस्तु का पृथ्वी से अलग होना । (३)भड़कना, बिचकना । (४)विरक्त होना, हट जाना ।

उचटाइ—क्रि० स०[हिं० उचटाना] खिन्न करके, उदासीन करके, विरक्त करना । उ०—अब न पियहिं उचटाइ हौं मोको सरमात । श्रास करत मेरी जिती आवत सकुचात—२१७४ ।

उचटाए—क्रि० स० [हिं० उचटाना] खिन्न किया, विरक्त कर दिये । उ०—नैननि हरि कौ निठुर कराए । चुगली करी जाइ उन आगे हमतें वे उचटाए—पृ० ३३० ।

उचटाना—कि० स० [स० उच्चाटन] (१)अलग करना, नोचना । (२) खिन्न करना, विरक्त करना । (३) भड़काना ।

उचटायौ—क्रि० स० [हिं० उचटना] (१) अलग किया, पृथक किया । (२) खिन्न या विरक्त किया । (३) भड़काया।

उचटावत—क्रि० स० [हिं० उचटाना](१) भड़काते हो, बिचकाते हो । उ०—वा देखत हमको तुम मिलिहौ काहे को ताको अनखावत । जैहै कहूँ निकसि हरि दै ते जानि-बूझि तेहि क्यौ उचटावत—१८७० । (२) खिन्न करते हो, उदासीन करते हो विरक्त करते हो। उ०—जल बिनु मीन रहत कहुँ न्यारे यह सो रीति चलावत । जब ब्रज की बातै यह कहियत तबहिं तबहिं उचटावत—२९१२ ।

उचटि—क्रि० अ० [सं० उच्चाटन, हिं० उचटना] उचट कर, छिटककर, छूटकर। उ.-अति अगिनझार, भँभार धुधार करि, उचटि अगार झझार छायौ—५९६ ।

उचटे—क्रि० अ० [स० उच्चाटन, हिं० उचटना] खुल गये । उ०—जागहु जागहु नद कुमार । रवि बहु चढ्यो, रैनि सब बिघटी, उचटे सकल किवार—४०८ ।

उचटैं—क्रि० अ० [हिं० उचटना] उखड़ती है, भूमि से अलग होती है ।

उचड़ना—क्रि० अ०[स० उच्चाटन, प्रा० उच्चाडन](१) जुड़ी चीजो का अलग होना । (२ भागना, जाना ।

उचत—क्रि० अ० [हिं० उचना] उचकता है, ऊँचा उठता है ।

उचना—क्रि० अ० [स० उच्च [ऊँचा या ऊपर उनठा, उचकना । (२) उठना ।

क्रि० स०—उचकाना, ऊपर उठाना ।

उचनि—सज्ञा स्त्री० [स० उच्च] उभाड, उठान । उ०—(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कह्यो न जाइ । (ख) चिबुक तर कठ श्री माल मोतीन छबि कुच उचनि हेमगिरि अतिहि लाजै ।

उचरना—क्रि० म०[स० उच्चारण] बोलना, मुँह से शब्द निकालना ।

क्रि० अ०—मुँह से शब्द निकालना ।

उचरी—क्रि० स०[स०उच्चारण, हिं०उचरना]उच्चारण की, मुँह से कही । उ०—निज पुर आइ, राइ भीषम सौं, कही जो बातैं हरि उचरी—१-२६८ ।

उचर्‌यौ—क्रि० स०[स० उच्चारण, हिं०उचरना]उच्चरित किया, कहा । उ०—लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ, चतुरगुन गात । चढ़ि गिरिसिखर सब्द इक उचर्‌यौ, गगन उठ्यो आघात—९-७४ ।

उचाइ—क्रि० स०[स० उच्च + करण, हिं० उचाना](१) ऊँचा करके, उठाकर, ऊपर करके । उ०-(क) सुनौ किन कनकपुरी के राइ । हौं बुधि बल-छल करि हारी लख्यौ न सीस उचाइ-९-७५ । (ख) बाँह उचाइ कालिह की नाइ धौरी धेनु बुलावहु—१०-१७९ । (२) उठाकर, उठाना । उ०—दरकि कचुक, तरकि

माला, रही धरनी जाइ। सूर प्रभु करि निरखि करुना, तुरत लई उचाइ।

उचाई—क्रि० स० [सं० उच्च+करण] उठा लेना, उखाड़ लेना। उ०—बलि कह्यौ, बिलंब अब नैंकु नहिं कीजिए, मदगायन अचल चले धाई। दोउ एक संग ह्वै जाइ पहुँचे तहाँ, कह्यौ, अब लीजिये इहि उचाई—८-८।

उचायौ—क्रि० स० [हिं० उचाना] उठाया, उठाकर खड़ा किया गिरे से उठाया। उ०—तब परे मुरझाइ धरनी काम करै अकाजु। सखिन तब भुज गहि उचाए कहा बावरे होत—२७६०।

उचाट—वि० [सं० उच्चाट] उदास, विरक्त, अनमना उ—चितै मंद मुसुकाय कै री जिय करि लेय उचाट—२८१३।

संज्ञा पु०—मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता।

उचाटन—संज्ञा पु० [सं० उच्चाटन] (१) जुड़ी वस्तु को अलग करना। (२) चित्त को किसी ओर से हटाना। (३) अनमनापन विरक्ति उदासीनता।

उचाटना—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] चित्त को किसी ओर से हटाना।

उचाटी—संज्ञा पु० [सं० उच्चाट] अनमना, विरक्ति, उदासीनता।

उचाटू—वि० [हिं० उचाट] जिसका मन उदास हो, अनमना।

उचाड़ना—क्रि० स० [हिं० उचड़ना] उखाड़ना, अलग करना।

उचाढ़ी—वि० [सं० उच्चाट, हिं० उचाटी] उचाट उदासीन, अनमनी, विरक्त। उ०—सखी सग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी। सूरदास प्रभु के रस-बस सब, भवन-काज तैं भई उचाढ़ी—७८६।

उचाना—क्रि० स० [सं० उच्च+करण] (१) ऊँचा करना ऊपर उठाना। (२) गिरे से उठाना।

उचायौ—वि० [सं० उच्च+करण, हिं० उचाना] ऊँचा उठा हुआ। उ०—इंद्र हाथ ऊपर रहि गयौ। तिन कह्यौ, दई कहा यह भयौ। कह्यौ सुरनि तुम रिपहिं सतायौ। तातैं कर रहि गयौ उचायौ—९-३।

उचार—संज्ञा पु० [सं० उच्चार] बोलना, कथन।

क्रि० स०—[हिं० उचारना] उच्चारण करके, कहकर उ०—दो हकार उचार थाको रहे काढत प्रान—सा० ५७।

उचारत—क्रि० स० [सं० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण करते हैं, कहते हैं। उ०—तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत—९-३९।

उचारा—क्रि० स० [सं० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण किया, कहा, बोला। उ०—(क) नपति कछू नहिं बचन उचारा—१०-४। (ख) छीरसमुद्र-मध्य तैं यौं हरि दीरघ बचन उचारा—१०-४।

उचारन—क्रि० स० [सं० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण करना उ०—विप्र लगे धुनि वेद, जुवतिन मंगल गान—९-२४।

उचारना—क्रि० स० [सं० उच्चारण] उच्चारण करना, बोलना।

क्रि० स०—[सं० उच्चाटन] उखाड़ना, नोचना।

उचारि-क्रि० स० [सं० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण करके, मुँह से शब्द निकालकर, बोलकर। उ०—तब अर्जुन नैननि जल डारि। राजा सौं कह्यौ वचन उचारि—१-२८६।

उचारी—क्रि० स० [सं० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण की, कही, मुँह से निकाली। उ०—(क) अधिक कष्ट मोहिं परयौ लोक मैं, जब यह बात उचारी। सूरदास-प्रभु हँसत कहा है, मेटौ विपति हमारी—१-२५३। (ख) पकरि लियो छन माँझ असुर बल डारयौ नखन बिदारी। रुधिर पान करि माल आँत धरि जय जय शब्द उचारी। (ग) सूर प्रभु निरखि दण्डवत सबहिनि कियौ, सुर रिषिन सबनि अस्तुति उचारी—४६।

क्रि० स० [सं० उच्चाटन, हिं० उचारना] उखाड़ी, नोच ली। उ०—रिषी क्रोध करि जटा उचारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।

उचारे—क्रि० स० [सं० उच्चाटन, हिं० उचारना] उच्चारण किये, कहे। उ०—सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परत, सिद्ध गधर्व जै जै उचारे—९-१६३।

उचार—क्रि० स० [स० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण करें, कहें। उ०–हाँसी मैं कोउ नाम उचारै। हरि जू ताकौ सत्य बिचारै। ···। जो जो मुख हरि-नाम उचारै—६-४।

उचारौं–क्रि० स० [स० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ०–रक रावन, व हु.स्तक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौं—९-१२९।

उचार्यौ— क्रि० स० भूत० [स० उच्चारण, हिं० उचारना] उच्चारण किया, कहा। उ०–जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनका तोरि उचार्यौ–१-३३६।

उचालना—क्रि० स० [हिं० उचाडना, उचारना] उखाड़ना, नोचना।

उचि—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० उचना] उचक कर, ऊँची उठकर।

उचित—वि० [स० औचित्य] योग्य, ठीक।

उचै—क्रि० स० [हिं० ऊचना] ऊँचा करके, उठाकर।

उचौंहा—वि० पु० [हिं० ऊँचा + औंहाँ (प्रत्य०)] ऊँचा उठा हुआ, उभड़ा हुआ।

उचौंहे—वि० [हिं० ऊँचा + औंहो (प्रत्य०)] ऊँचे, उभरे हुए।

उच्च–वि० [स०] (१) ऊँचा। (२) श्रेष्ठ, महान, उत्तम।

उच्चरण—सज्ञा पु० [स०] बोलना, शब्द निकालना।

उच्चतम–वि० [स०] (१) सबसे ऊँचा। (२) सबसे श्रेष्ठ।

उच्चता–सज्ञा स्त्री० [स०] (१) ऊँचाई। (२) श्रेष्ठता, बडाई। (३) उत्तमता, अच्छाई।

उच्चरतौ–क्रि० स० [हिं० उच्चरना] उच्चारण करता, बोलता, कहता। उ०—साधु सील सद्रूप पुरुष को, अपजस बहु उच्चरतौ—१-२०३।

उच्चरना—क्रि० स० [स० उच्चारण] बोलना, कहना।

उच्चरी—क्रि० स० [हिं० उच्चरना] उच्चारण की, कही। उ०—जज्ञ पुरुष बानी उच्चरी—४-५।

उच्चरै–क्रि० स० [हिं० उच्चरना] उच्चारण करे, कहे, बोले। उ०—ज्यौं त्यौं कोउ हरि-नाम उच्चरै। निश्चय करि सो तरै परै—६-४।

उच्चरौं–क्रि० स० [हिं० उच्चरना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ०—अब मैं यहै बिनै उच्चरौ। जो कछु आज्ञा होइ करौं—४-१२।

उच्चरौ–क्रि. स. [हिं उच्चरना] उच्चारण करो, कहो, बोलो। उ०—रामहिं राम सदा उच्चारौ–७–२।

उच्चर्यौ–क्रि. स. भूत [हिं. उच्चरना] उच्चारण किया, बोला। उ.–पुनि सो सुरुचि कै चरननि मर्यो। तासौं वचन मधुर उच्चर्यौ—४–९।

उच्चाट—सज्ञा पु [स] (१) नोचना। (२) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चाटन—सज्ञा पुं० [स०] (१) अलग करना। (२) नोचना। (३) चित्त को हटाना। (४) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चार—क्रि० स० [हिं० उच्चारना] बोलना, कहना, उच्चारण करके, मुँह से बोलकर। उ०–अत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुमृत गज ग्राह तैं तुम छुडायौ—१-११९।

उच्चारण—सज्ञा पुं० [स०] (१) बोलने की क्रिया। (२) बोलने का ढग।

उच्चारना—क्रि० स० [स० उच्चारण] उच्चारण करना, बोलना।

उच्चारित—वि० [स०] बोला या कहा हुआ।

उच्चारी—क्रि० स० स्त्री० [हिं० उच्चारना] उच्चारण की, मुँह से बोली, कही। उ०—नव कुती बिनती उच्चारी—१ २८१।

उच्चारे—क्रि० स० [हिं० उच्चारना] उच्चारण किये, बोले, वर्णित किये, बखाने। उ०—दोउ जन्म ज्यों हरि उद्धारे। सो तौ मैं तुमसौं उच्चारे—१०-२।

उच्चारैं—क्रि० स० [हिं० उच्चारना] उच्चारण करें बोले, कहे। उ०—हरि-हरि नाम सदा उच्चारैं—७-२।

उच्चार्यौ—क्रि० स० भूत० [हिं० उच्चारना] उच्चारण किया, बोला, कहा। उ०–विप्रनि जज्ञ बहुरि विस्तार्यौ। वेद भली विधि सौं उच्चार्यौ—४ ५।

उच्चैःश्रवा—सज्ञा पु० [स०] एक सुन्दर घोड़ा जो समुद्र के चौदह रत्नों मे था। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। इन्द्र इसका अधिकारी है। उ०—निकसे सर्व कुँवर असवारी उच्चैःश्रवा के पोर—१० उ०—३-६।

उच्छन्न—वि० [स०] दबा हुआ, लुप्त।

उच्छरना, उच्छलना—क्रि. अ [हि उछरना, उछलना] उछलना कूदना।

उच्छलित—क्रि अ [हि. उच्छलना] छलकता हुआ, उमड़ता हुआ। उ —पुलक अंग, पुलकित वचन, गद्गद् म हि मन सुख पाइ। प्रेमघट उच्छलित ह्वै है नैन अम बहाइ—२४८६।

उच्छव—संज्ञा पु. [स उत्सव, प्रा. उच्छव] उत्साह।

उच्छवसित—वि. [स] (१) साँस से युक्त। (२) खिला हुआ।

उच्छवासित—वि [स०] (१) साँस से पूर्ण। (२) जीवित। (४) फूला हुआ, विकसित।

उच्छवास—संज्ञा पु [स.](१)ऊपर खींची हुई साँस। (२) साँस।

उच्छाव—संज्ञा पु [सं उत्साह, प्रा. उच्छाह](१) उत्साह उमंग। (२) धूमधाम।

उच्छास—संज्ञा पु [स० उच्छ्वास] साँस।

उच्छाह—संज्ञा पु [स० उत्साह] उमंग।

उच्छिन्न—वि. [स०] (१)कटा हुआ। (२) तोड़ा या उखाड़ा हुआ। (३) नष्ट, निर्मूल।

उच्छिष्ट—वि० [स०] (१) जूठा। (२) दूसरे का उपयोग किया हुआ।

संज्ञा पु०—(१) जूठी चीज। (१) मधु शहद।

उच्छृंखल—वि० [स०] (१) जो क्रम से न हो। (२) मनमाना काम करनेवाला, निरकुश। (३) किसी की परवाह न करनेवाला, उद्दंड।

उच्छेद, उच्छेदन—संज्ञा पु० [स०](१) खंडन। (२) नाश।

उछंग—संज्ञा पु० [स०उत्सग, प्रा उच्छग] (१) गोद, क्रोड़ कोरा। उ०-(क) लै उछग उपमग हुतासन, 'निहकलक रघुराई।' लई विमान चढ़ाई जानकी, कोटि मदन छवि छाई—९-१६२। (ख)वचन छोरि नद बालक को लै उछग करि लीन्हो। (ग) बालक लियो उछग दुष्टमति हरषित अस्तन पान कराई—१०-५०। (२) हृदय।

मुहा०——उछग लई—छाती से लगा लिया, आलिंगन किया। उ०—सूर स्याम ज्यों उछग लई मोहि, त्यों मैं हूँ हँसि भेटौगी।

उछँगना—संज्ञा पु० [हि० उछग] गोद। उ०—धूसर धूरि दुहुँ तन मडित, मातु जसोदा लेति उछगना—१०—११३।

उछंगि—संज्ञा पु० [हि०उछग](१)गोद। (२) हृदय। मुहा०—उछगि लेई— छाती से लगाया। उ०—स्याम सकुच प्यारी उर जानी। उछगि लेई वाम भुज भरिकै वार-वार कहि वानी—१६०१।

उछकना—क्रि० अ०[हि० उचकना, उसकना =चौंकना] चौंकना, चेत मे आना।

उछकै—क्रि० अ० [हि० उछकना]चौके, चेत मे आये।

उछरना—क्रि. अ.[हि. उछलना]उछलना, कूदना।

उछरत—क्रि. अ [स. उच्छलन, हि. उछलना] उछलता है, ऊपर उठता और गिरता है। उ.—उछरत सिन्धु, धराधर कांपत, कमठ पीठ अकुलाइ—१०-६४।

उछरि—क्रि० अ० [स उच्छलन, हि. उछलना] उछलकर। उ.—सोनित छिछ उछरि आकासहि, गज-वाजिन सिर लागि—९-१५७।

उछरैं—क्रि. अ. [हि. उछलना] उमड़ते है, विह्वल पड़ते है, उछलते हैं।

उछलना—क्रि. अ. [स. उच्छलन](१)नीचे-ऊपर उठना। (२)कूदना। (३) प्रसन्न होना। (४) उमड़ना। (५) तरना, उतरना।

उछलि—क्रि अ [स उछलना] उछलकर वेग से ऊपर उठ और गिरकर। उ.—आनन्द-मगन धेनु स्रवै थनु पय फेनु, उमग्यो जमुन-जल उछलि लहर के-१०-३०।

उछलित—क्रि अ. [हि. उछलना] उछलता है, छलकता हुआ। उ.—स्याम रस घट पूरि उछलित बहुरि धरयो सँभारि—१२१७।

उछलैं—क्रि अ [हि.उछलना] (१) उछले, कूदे। (२) उतराये, तैरे।

उछल्यो—क्रि अ. भूत. [हि उछलना] ऊपर-नीचे हुआ, उठा-गिरा। उ.-उमगि आनद-सिधु उछल्यो स्याम के अभिलाष-पृ०३४३ (२२)

उछाँगे—सज्ञा पु [हि छलाँग] छलांग, उछाल। उ — लै बसुदेव धँसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे। जानु, जघ, कटि, ग्रीव, नासिका, तब लियौ स्याम उछाँगे। चरन पसारि परसी कालिंदी, तरवा नीर तियागे—१०-४।

उछाँटना—क्रि स [स० उच्चाटन, हि० उचाटना] उदासीन या विरक्त करना।

क्रि० स [हि छाँटना] छाँटना चुनना।

उछार—सज्ञा पु [हि, उछाल] (१) उछालने की क्रिया। (२) ऊँचाई जहाँ तक उछलो या उछाला जाय। (३) छींटा, उछलती हुई बूद।

उछारना—क्रि स० [हि उछालना] उछालना, ऊपर फेंकना।

उछाल—सज्ञा स्त्री [स उच्छाल] (१) उछालने की क्रिया। (२) कुदाना, छलाँग। (३) ऊँचाई जहाँ तक उछला जाय।

उछालना—क्रि स [स उच्छालन] (१) ऊपर फेंकना। (१) प्रकट या प्रकाशित करना।

उछाला—सज्ञा पु. [हि, उछाल] जोश, उबाल।

उछाह—सज्ञा पु. [स० उत्साह प्रा० उच्छाह] (१) उमग, हर्ष। (२) उत्सव, धूमधाम। (३) उत्कंठा, लालसा।

उछाही—वि [हि. उछाह] उत्साहित, आनदित।

उछाहु—सज्ञा पुं० [हि उछाह] (१) उत्साह, उमग, हर्ष। उ —उरनि उरनि वै परत आनि कै जोवा परम उछाहु —२८२६।

उछाहू—सज्ञा पुं० [हि० उछाह] (१) हर्ष, प्रसन्नता। (२) उत्सव, धूमधाम। (३) इच्छा।

उछिन्न—वि० [स० उच्छिन्न] (१) कटा हुआ। (२) नष्ट।

उछिष्ट—वि. [स उच्छिष्ट] (१) जूठा। (२) उपयोग मे लाया हुआ, प्रयुक्त।

उछीनना—क्रि, स [स. उच्छिन्न] उखाडना, नष्ट करना।

उछेद—सज्ञा पु [स. उच्छेद] नाश, विरोध। उ —जय अरु विजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ। असुर -जोनि ता ऊपर दीन्ही। धर्म-उछेद करायौ —१-१०४।

उछेद—सज्ञा. पु [स पु उच्छेद] (१) उखाडने की क्रिया। (२) नाश।

उजट—सज्ञा पु० [स० उटज] पर्णकुटी, झोपडी।

उजड्ड—वि० [स० उद = बहुत + जड = मूर्ख अथवा स उद्दड] (१) जगली, गँवार, वज्र मूर्ख। (२) जो मनमानी करे, निरकुश।

उजड़ना—क्रि अ [हि जडना = जमना] (१) नष्ट होना। (२) तितर-बितर होना। (३) निजन होजाना, बसा न रहना।

उजड़ा—वि. [हि. उजडना] (१) तितर-बितर, गिरा-गिराया। (२) नष्ट।

उजर—[हि उजड] उजाड ध्वस्त। उ-आय क्रूर लै चले स्याम को हित नाही कोउ हरि कैं। सूरदास प्रभु सुख के दाता गोकुल चले उजर कै —२५२९।

उजरउ—क्रि अ. [हि उजडना] उजड़ जाय, नष्ट हो जाय।

उजरा—वि [हि. उजला] (१) सफेद। (२) निर्मल, स्वच्छ।

उराइ —क्रि. स [हि उजराना] स्वच्छ करके, साफ करके।

उजराई—सज्ञा स्त्री. [स. उज्ज्वल हि० उज्जर,] (१) सफेदी। (२) स्वच्छता, काति।

उजराना—क्रि स [स उज्ज्वल] स्वच्छ करना, उज्ज्वल करना।

उजराय-क्रि स [स उज्ज्वल] स्वच्छ करके, निर्मल कर कर।

उजरे—क्रि अ. [हि उजडना] नष्ट हुए, उजड गये।

उजला—वि. [स उज्ज्वल, प्रा उज्जल] (१) सफेद, श्वेत। (२) निर्मल, स्वच्छ।

उजवास—सज्ञा पु० [स० उद्यास = प्रयत्न] चेष्टा, तैयारी।

उजागर—वि [स उद = ऊपर, अच्छी तरह + जागर = जागना, जलना, प्रकाशित होना] (१) कीर्तियुक्त, प्रकाशित, दीप्तिमान, जगमगाता हुआ। उ.—(क) क्रिया-कर्म करतहु निसि-बासर भक्ति कौ पथ उजागर —१-९१। (२) वश को गौरवान्वित करनेवाला। (क) सूर धन्य जदुवस उजागर धन्य ध्वनि घुमरि रह्यो—२६१६। (ख) इनके कुल ऐसी चलि आई

सदा उजागर बस—२०४९ । (२)प्रसिद्ध, विख्यात । उ०—(क) जाँबवान जो बली उजागर सिंह मारि मनि लीन्ही । (ख) दिन द्वै घाट रोकि जमुना को जुवतिन में तुम भए उजागर—११२३ । (३)चतुर, कुशल दक्ष । उ०—(क) तुमन नैन जम्हात बारहीं रीति-सयान उजागर हो—२१४० । (ख) कहियो मधुर सँदेस सुचित ह्वै मधुबन स्याम उजागर—२९८० ।

उजागरि—वि० स्त्री०[हिं० उजागर] प्रसिद्ध, विख्यात ।

उजाड़—संज्ञा पु० [हिं० उजड़ना] (१) उजड़ा हुआ स्थान । (२) निर्जन स्थान । (३ जंगल ।

वि०—(१) नष्ट, ध्वस्त, गिरा हुआ । (२) जन रहित, जो आबाद न हो ।

उजाड़ना—क्रि० स० [हिं० उजड़ना] (१) बिखराना, तितर बितर करना । (२)नष्ट करना, खोद फेंकना। (३) बिगाड़ना, हानि पहुँचाना ।

उजान—क्रि० वि० [सं० उद = ऊपर + यान] धारा से उलटी अर्थात् चढ़ाव की ओर ।

उजार—संज्ञा पु० [हिं० उजाड़] (१) उजड़ा स्थान । (२) निर्जन स्थान ।

वि०—उजड़ा हुआ ।

उजारा—संज्ञा पु० [हिं० उजाला] उजाला, प्रकाश ।

वि०—प्रकाशमान, कांतियुक्त ।

उजारि—क्रि० स०[हिं० उजाड़ना](१)उखाड़कर, खोद-खाद कर । उ०-भली कही यह बात कन्हाई अतिहिं सघन अरन्य उजारि—४७२ । (२) ध्वस्त या ध्वंस करके । उ०—जो मोकौं नहिं फूल पठावहु तो ब्रज देहु उजारि—५२६ ।

उजारी—क्रि० स०[हिं० उजाड़ना] नष्ट की, खोद डाली, उजाड़ दी ।

उजारो—संज्ञा पु० [हिं० उजाला] उजाला, प्रकाश ।

वि०—प्रकाशमान कांतियुक्त । उ०—हरि के गर्भ बास जननी को बदन उजारो लाग्यो । मनहु सरद-चंद्रमा प्रगट्यो, सोच-तिमिर तन भाग्यो—१०४ ।

क्रि०स०भूत०[हिं०उजाड़ना]नष्ट किया, बिगाड़ा । उ०—सूरदास-प्रभु सबहिनि प्यारो । ताहि डसन जाको हिय उजारो—७६२ ।

उजार्यौ—क्रि० स० भूत० [हिं० उजाड़ना] (१) उजाड़ डाला, ध्वस्त कर दिया । उ०—तुरतहिं गमन कियौ सागर तैं, बीचहिं बाग उजार्यौ—९-१०३ । (२) प्रकट हुआ, प्रकाशित किया । उ०—(क) दाऊ जू, कहि स्याम पुकार्यौ । नीलांबर कर ऐंचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजार्यौ—४०७ । (ख) तब हँसि चितए स्याम सेज तैं बदन उघार्यौ । मानहुँ पयनिधि मथत, फेन फटि चंद उजार्यौ—४३१ ।

वि—[हिं० उजाला] प्रकाशमान, कांतियुक्त । उ०—हरि के गर्भ बास जननी को बदन उजार्यो (उजारो) लाग्यो । मानहुँ सरद-चंद्रमा प्रगट्यो, सोच-तिमिर तन भाग्यो—१०-४ ।

उजालना—क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन] (१) प्रकाशित करना । (२) चमकाना, स्वच्छ करना ।

उजाला—संज्ञा पु० [सं० उज्ज्वल (१) प्रकाश, चाँदना (२) श्रेष्ठ व्यक्ति ।

वि०—प्रकाशमान ।

उजाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजाला] चाँदनी, चंद्रिका ।

उजास—संज्ञा पु०[हिं० उजाला + स (प्रत्य०)]प्रकाश, उजाला, चमक ।

उजियर—वि० [सं० उज्ज्वल] उजाला, सफेद ।

उजियरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० उज्ज्वल, हिं० उजियारी] चाँदनी, चंद्रिका । उ०—लै पौढी आँगन हीं सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६ ।

उजियार—संज्ञा पु० [सं० उज्ज्वल] उजाला, प्रकाश ।

वि०—(१) दीप्तिमान, प्रकाशयुक्त, (२) चतुर, बुद्धिमान ।

उजियारना—क्रि० स० [हिं० उजियारा](१) प्रकाशित करना । (२) जलाना ।

उजियारा—संज्ञा पु०[सं० उज्ज्वल](१) प्रकाश, चाँदना । (२) वंश को गौरवान्वित करने वाला पुरुष ।

वि०—(१)प्रकाशमय । (२)कांतियुक्त, दीप्तिमान ।

उजियारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पु० उजियारा](१) चंद्रिका, चाँदनी । उ०—केहरि-नख उर पर रुरे, सुठि

सोभाकारी। मनौ स्याम घन मध्य मैं नव ससि उजियारी—१०-१३४। (२) प्रकाश, उजाला, रोशनी। उ०—बदन देखि विधु-बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी—१०-१९६। (३) वंश को उज्ज्वल करने वाली, सती साध्वी स्त्री। उ०—बलिहारी वा बाँस बंस की बंसी-सी सुकुमारी। ~। बलिहारी वा कुज-जात की उपजी जगत उजियारी—३४९२।

वि० -प्रकाशयुक्त, उजाला। उ०—(क) कबहुँक रतनमहल चित्रसारी सरदनिसा उजियारी। बैठे जनकसुता सँग बिलसत मधुर केलि मनुहारी। (ख) भूपन सार 'सूर' सम सीकर सोभा उड़त अमल उजियारी—सा० ५१।

उजियार-संज्ञा पुं०[हिं० उजियाला] उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाला पुरुष। उ०—माखन-रोटी ताती-ताती लेहु कन्हैया बारे। मन मैं रुचि उपजावै, भावै त्रिभुवन के उजियारे—४१९।

उजियारौ—संज्ञा पुं० [हिं० उजाला] प्रकाश, उजाला। उ०—अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ। सब्दहिं सब्द भयौ उजियारौ सतगुरु भेद बतायौ—४ १३।

उजियाला-संज्ञा पुं० [हिं० उजाला] प्रकाश, उजाला।

उजीता—वि० [सं० उद्योत, प्रा० उज्जोत]प्रकाशमान।
संज्ञा—प्रकाश, चाँदना।

उजीर—संज्ञा पुं० [अ० वजीर] मंत्री, अमात्य, दीवान। उ०—पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धम-सुधन लुटयौ—१-६४।

उजेर—संज्ञा पुं० [हिं० उजाला] उजाला, प्रकाश।

उजेरत—क्रि० अ०[हिं० उजियारा]उजेला फैला रहो है, प्रकाशित है, चमक रही है। उ०—पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि-किरनि उजेरत—४०५।

उजेरना—क्रि० स० [हिं० उजाला, उजियारा] प्रकाशित करना, प्रकाश फैलाना।

उजेरा, उजेरो-संज्ञा पुं०[हिं० उजाला]उजाला, प्रकाश।
वि०—प्रकाशयुक्त।

उजेला—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश, चाँदना।
वि०—प्रकाशमान।

उज्जल-वि०[सं० उज्ज्वल](१) दीप्तिमान, प्रकाशमान। (२) शुभ्र, विशद स्वच्छ, निर्मल। (३) श्वेत, सफेद। उ०—हंस उज्जल, पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिं—१-३३८।

क्रि० वि०[सं० उद् = ऊपर + जल = पानी] चढाव की ओर, उजान।

उज्जर—[सं० उज्ज्वल] (१)प्रकाशयुक्त। (२) स्वच्छ, निर्मल।

उज्जागरी-वि० स्त्री०[हिं० उजागरी]उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाली। उ०—मध्य ब्रजनागरी रूपरस आगरी घोप उज्जागरी स्याम प्यारी—१२९०।

उज्झड़-वि०[सं०उद् = बहुत + जड = मूर्ख]झक्की मूर्ख।

उज्यारा—संज्ञा पुं० [हिं० उजाला] प्रकाश, चाँदना

उज्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारा] प्रकाश, कांति, दीप्ति, प्रभा। उ०—गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढी जमुना जल-कारी। तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यौं दुरिहै ससि-बदन उज्यारी—१०-११।

उज्यारे—संज्ञा पुं०[सं० उज्ज्वल, हिं० उजियारा] उजाला प्रकाश। उ०—प्रात भयो उठि देखऐ, रवि किरनि उज्यारे—४३९।

उज्यारौ-संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल, हिं० उजाला] प्रकाश, चाँदना, रोशनी। उ०—देखत आनि संच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री। मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री—१०-१३५।

उज्यास—संज्ञा पुं० [हिं० उजास] प्रकाश, उजाला।

उज्वल—वि०[सं० उज्ज्वल]श्वेत, सफेद। उ०—खारिक, दाख चिरौजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम—१०-२१२।

उज्ज्वल—वि० [सं०] (१) प्रकाशमान। (२) स्वच्छ, निर्मल। (३) श्वेत, सफेद।

उज्ज्वलता—संज्ञा स्त्री०[सं०](१) कांति, चमक। (२) स्वच्छता। (३) सफेदी।

उज्ज्वलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। (२) स्वच्छ करने की क्रिया।

उज्ज्वलित—वि० [सं०] (१) प्रकाशित किया हुआ। (२) स्वच्छ किया हुआ।

उझकत—क्रि०अ० [हि० उचकना, उझकना] (१) उचकते-कूदते हुए, जाते-जाते। उ०—बरज्यौ नहिं मानत उझकत फिरत हौ कान्ह घर घर—१६४३।

उझकति—क्रि०अ० स्त्री० [हि० उचकना] देखने के लिए ऊँची होती है उचककर। उ०—द्रुम-बेली पूछति सब उझकति देखति ताल तमाल—१८२७।

उझकना—क्रि० अ० [हि० उचकना] (१) उछलना, कूदना। (२) उमड़ना, उपटना। (३) झाँकने के लिए सिर बाहर निकालना। (४) चौंकना, सजग होना।

उझकि—क्रि० अ० [हि० उचकना, उझकना] (१) उचक कर कूद कर। उ०—(क) जैसे केहरि उझकि कूप-जल देखत अपनी प्रति—१-२००। (ख) बालबिन जु पुष्ट बन सुदर, परसपरहिं चितवत हरि-राम। झाँकि-उझकि बिहँसत दोऊ सुत, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम—१०—१५७। (ग) जैसे केहरि उझकि कूप जल देखे आप मरत। (२) ऊपर उठकर, उमड़कर। (३) देखने के लिए सिर उठाकर, झाँकने के लिए सिर बाहर निकालकर। उ–(क) जहँ तहँ उझकि झरोखा झाँकति जनक-नगर की नार। चितवति कृपाराम अवलोकन, दीन्ही सुख जो अपार। (ख) सूने भवन अकेली मैं री नीकैं उझकि निहारयौ। मोतें चूक परी मैं जानी, तातैं मोहिं बिसारयौ। (ग) फिरि फिरि उझकि झाँकत बाम—सा ३४।

उझलना—क्रि. स. [स. उज्झरण] (द्रव पदार्थ को) ऊपर से गिराना या बहाना।

क्रि अ.—उमड़ना, बढ़ना।

उझकुन—सज्ञा. पु [हि. उचकन] उचकने की क्रिया या भाव।

उझकै—क्रि. अ. [हि उचकना, उझकना] उछले-कूदे।

उझरना—क्रि स. [स. उत + सरण] ऊपर करना, ऊपर उठाना, ऊपर खिसकाना।

उझाँकना—क्रि. स. [हि झाँकना] उचककर देखना।

उटंग—वि० [स० उत्तग] छोटा कपड़ा जो पहनने पर ऊँचा-ऊँचा लगे।

उटकत—क्रि. स. [हि. उटकना] अनुमान करता है, अटकल लगाता है।

उटकना—क्रि स [स.अट् = घूमना. बार-बार + कलन = गिनना या उत्कलन] अनुमान करना।

उटज—सज्ञा पुं० [स०] पर्णकुटी, झोपड़ी।

उटँगना—क्रि०अ. [स० उत्‌ + अग] (१) ऊँची या ऊपर उठी हुई वस्तु का सहारा लेना, टेक लगाना। (२) पड़ जाना, लेट रहना।

उठइ—क्रि अ [हि उठना] उठती है, ऊपर की ओर जाती है।

उठत—क्रि. अ [स० उत्थान, प्रा. उट्ठान, हि. उठना] (१) उठते (हो), उठता (है)। उ०—बैठत-उठत सेज-सोवत मैं कस-डरनि अकुलात—१०—१२। (२) बनता है प्रकट होता है। उ—बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद लागि बाइ बिलाइ—१—३१६। (३) उत्पन्न होता है, (सुप्त भाव जैसे दुख) जागता है। उ—मातुसुत-हित-सत्रु-पित लागत उठत दुख फेर—सा. ३३।

मु.—उठत (गाइ)—[सयो० क्रि०]—(गा) उठती है, (गाने) लगती है। उ०—एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाई—१०-२०।

(२) जागते हैं। उ०—नद को लाल उठत जब सोई। निरखि मुखारबिंद की सोभा, कहि, काकै मन धीरज होइ—१०–२१०।

उठति—क्रि अ. [सज्ञा. उत्थान, प्रा. उट्ठान, हि. उठना] ऊँची होती है, ऊँचाई तक जाती है। उ०—या ससार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना-तरग उठति अति भारी—१—११२।

उठन—क्रि. अ [स उत्थान, प्रा. उट्ठान, हि० उठाना] (१) उठना, खड़ा होना। (२) सोकर जागना। उ०—आनि मथानी दह्यौ बिलोवौं जौ लगि लालन उठन न पावैं। जागत ही उठि रारि करत है, नहिं मानै जो इद मनावै—१०-२३१।

उठना—क्रि अ [स० उत्थान, पा. उट्ठान] (१) खड़ा होना, ऊँचा होना। (२) ऊँचाई तक पहुँचना। (३) ऊपर को ओर बढना। (४) उछलना, कूदना (५) जागना। (६) उदय होना। (७) उत्पन्न होना। (८) सहसा आरंभ हो जाना। (९) तैयार हो जाना। (१०) अंक या चिह्न उभड़ना।

उठहि—क्रि अ [हि उठना] (१) उठना, उछलना-कूदना। (२) उत्पन्न होता है।

उठाइ—क्रि. स. [हि उठाना] उठकर। उ—तब हरि धरि बाराह-वपु, ल्याए पृथी उठाइ—३—११।
मुहा —खड्ग उठाइ—मारने को तलवार उठाई, मारने को प्रस्तुत हुए। उ—ताहि परीच्छित खड्ग उठाइ—१—२९०।

उठाई—क्रि. स. [हि उठाना] उठाकर, हटाकर, अलग करके।
यौ —सकै उठाई—उठा या हटा सके।। उ—कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं ताहि जो सकै कोऊ उठाई।—९—१३५।
(२) किसी गिरी हुई वस्तुको ऊपर उठाना। उ.—लकुट लिए कर टेरत जाई। कहत परस्पर लेहु उठाई—१०५८। (३) शिरोधार्य की, मानी। उ—करै उपाय सो विरथा जाई। नृप की आज्ञा लियो उठाई।

उठाए—क्रि० स० [हि० उठाना ('उठना' का स० रूप)] खड़ा किया। उ०—अमृत-गिरा बहु बरषि सूर प्रभु, भुज गहि पार्थ उठाए—१-२९।

उठान—सज्ञा स्त्री० [स० उत्थान, पा० उट्ठान] (१) उठने की क्रिया। (२) बाढ़। (३) आरंभ।

उठाना—क्रि० स० [हि० 'उठाना' का सक०] (१) गिरी हुई वस्तु को खड़ा करना। (२) ऊपर ले जाना। (३) कुछ काल तक अपने ऊपर धारण करना। (४) उत्पन्न करना। (५) सहसा आरंभ करना। (६) हटाना, अलग करना। (७) जगाना। (८) प्रस्तुत या तैयार करना। (९) खर्च करना। (१०) स्वीकार करना, मानना।

उठाने—क्रि० अ० [हि० उठना] उठा। उ०—को जानै केहि कारन प्यारी सो लप तुरत उठाने। चपला और वराह रस आखर आद देख झपटाने—सा० ७२।

उठायौ—क्रि० स० [हि० उठाना] (बोझ आदि) ले जाने के लिए उठाया, धारण किया। उ०—(क) दोना गिरि हनुमान उठायौ। सजीवनि की भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ—९-१५०। (ख) मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत बहुरि लै चलन को जब उठायौ—८-८।

उठाव—सज्ञा पु० [हि० उठना] उठान।

उठावत—क्रि० स० [हि० उठाना] उठाते या खड़ा करते हैं। उ०—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत। अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेकि उठावत—१०-१२२। (२) नीचे से ऊपर ले जाता है। उ०—आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झपकि रही भारी—१०-२२८।

उठावति—क्रि० स० स्त्री० [हि० उठाना] (१) उठाती है, हाथ मे लेती है। उ०—जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै—१०-१९१। (२) सहसा आरंभ करती है, अचानक उभाडती या छेड़ती है। उ०—अब समुझी मैं बात सबन की झूठे ही यह बात उठावति—११५०।

उठावहु—क्रि० स० [हि० उठाना] ऊँचा करो, उठाओ। उ०—ऐसै नहि रीझौ मैं तुम सौं तटही बाहँ उठावहु—७९१।

उठावै—क्रि० स० [हि० उठाना] (१) उठाकर बैठाती है, खड़ा करती है। (२) जगाती है। उ०—ह्यां नागिनि सौं कहत कान्ह, अहि क्यौं न जगावै। बालक बालक करति कहा, पति क्यौ न उठावै—५८९।

उठि—क्रि० अ० [हि० उठना] उठकर, खड़े होकर।
मुहा०—उठि धावै—दौड़ पड़ता है। उ०—लच्छा-गृह तै काढ़ि कै पांडव गृह ल्यावै। जैसै मैया बच्छ कै सुमिरत उठि धावै—१-४।

उठिऐ—क्रि० अ० [हि० उठना] जागिए बिस्तर, त्यागिए। उ०—उठिऐ स्याम, कलेऊ कीजे—१०-२११।

उठिबे—क्रि० अ० [हि० उठना] ऊपर जाना, उड़ सकना।

उ०—धनुष देखि सब बल विधि-उरपत उहि न सकत उठिबे अकुलावत—२३४६ ।

उठिहै—क्रि० अ० [हि० उठना] उठेगा, उठकर बैठेगा । उ०—सूर पतित तबही उठिहै, प्रभु, जब हँसि देहौ बीरा—१-१३४ ।

उठीं—क्रि० अ० बहु० [हि० उठना] उठीं, खडी हुई । यौ०—उठीं गाइ—[संयो० क्रि०] गाने लगीं गाना शुरू किया । उ०—उठीं सखी सब मगन गाइ—१०-१४ ।

उठी—क्रि० अ० स्त्री० [हि० उठना] खडी हुई । उ०—उठी रोहिनी परम अनंदित हार-रतन लै आई—१०-१८ ।

उठे—क्रि० अ० [हि० उठना] (१) उठकर तैयार हुए । उ०—सुनत यह उठे जोधा रिसाई—९ १३५ । (२) घिरे, घिर आये । उ०—उरज अनूप उठे चारो दिस मिथुन बाहन गाद—सा० ३७ ।

उठै—क्रि० अ० [हि० उठना] ऊँचा होता है, ऊँचाई तक जाता है । उ०—सूर सरद-ससि-बदन दिखाएँ, उठै लहर जलनिधि की—१-२१३ ।

उठैया—संज्ञा पु० [हि० उठना] उठाने वाला । यौ०—लिए उठैया—उठा लिया । उ०—वाम भुजा गिरि लिए उठैया—१०७९ ।

उठौ—क्रि० अ० [हि० उठना] जागो, बिस्तर छोडो । उ०—उठौ नंदलाल भयौ भिनसार जगावत नंद की रानी—१०-२०८ ।

उठ्यौ—क्रि० अ० भूत० हि० उठना] उठा, खडा हुआ । यौ०—बर र उठ्यौ जल उठा । उ०—हरि नाम हरि-नाकुस बिसारयौ उठ्यौ बरि बरि बरि । प्रह्लाद-हित जिहिं असुर मारयौ ताहि डरि डरि डरि—१ ३०६ ।

उडु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नक्षत्र, तारा । (२) पक्षी । (३) मल्लाह ।

उडप—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा नाव ।

संज्ञा पु० [हि० उठना] एक तरह का नाच ।

उडपति, उडुराज—संज्ञा पु० [सं०] चद्रमा ।

उडुगन—संज्ञा पु० बहु० [सं० उडु+गण (प्रत्य०)] तारों का समूह ।

उडत—क्रि० अ० [हि० उडना] (१) उडता हुआ । उ०—उडत उडत सुक पहुँच्यो तहाँ—१-२२६ । (ख) फहराता है । उ०—फछुक अग तै उडत पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल—२७३ । (३) हवा मे गर्द आदि उडती है । उ०—(क) नितप्रति अलि जिमि गुंज मनोहर उडत जु प्रेम-पराग—२-१२ । (ख) हरि जू की आरती बनी ।—। उडत फूल उडग न नभ अन्तर, अजन घटा घनी—२-२८ ।

उडति—वि० स्त्री० [हि० उडना] उडती हुई । उ०—बाल अवस्था-मै तुम धाइ । उडति भँमारी पकरी जाइ—३-५ ।

उडन—संज्ञा स्त्री० [हि० उडना] उडने की क्रिया, उडान । उ०—जनु रवि गत सकुचित कमल जुग, निसि अलि उडन न पावै—१०-६५ ।

उडना—क्रि० अ० [सं० उड्डयन] (१) पक्षियो का आकाश मे इधर उधर जाना । (२) हवा मे निराधार फिरना । (३) हवा मे ऊपर उठना । (४) हवा मे फैल जाना । (५) हवा मे तितर-बितर हो जाना । (६) फहराना । (७) सवेग चलना । (८) कटकर दूर जा गिरना । (९) मिट जाना । (१०) बातो मे भुलावा देना ।

उडपति—संज्ञा पु० [सं० उडुपति] चद्रमा । उ०—प्रगटयौ भानु मद भयो उडपति फूले तरुन तमाल—१०-२०६ ।

उडमना—क्रि० अ० [देश०] नष्ट होना खडित होना ।

उडाँक—वि० [हि० उडना] (१) उडने वाला । (२) जो उड सकता हो ।

उडाइ—क्रि० अ० [हि० उडना] (१) हवा मे निराधार उडती है । उ०—(क) सरवर नीर भरै भरि उमडै, सूखे खेह उडाइ—१ २६५ । (ख) हरि हरि कहत पाप पुनि जाइ । पवन लागि ज्यो रुइ उडाइ—१२ ३ । (२) जाता रहना दूर होना, नष्ट होना । उ०—ऊधो हरि बिनु व्रजरिपु बहुरि जिये । उर ऊँचे उसांस तृनावर्त तिहिं सुख सकल उडाइ दिए—२०७३ ।

उडाइए—क्रि० स० [हि० उडाना] हवा मे इधर-उधर फैलाइये ।

उडाइक—संज्ञा पु० [सं० उड्डायक] पतग (आदि) उडानेवाला ।

उडाई—क्रि० स० [हि० उडाना] (१) उडने को प्रवृत्त की । उ०—तुरत गए नन्द-सदन कन्हाई । अकम दै राधा

घर पठई, बादर जहँ तहँ दिए उडाई—६९२ । (२) उडाकर (आकाश मे हवा द्वारा) उठाकर । उ०—तृनावर्त लै गयो उडाई । आपुहि गिरयो सिला पर आई—३९१ ।

उड़ाए—क्रि० स० [हि० उडाना] उडा दिये, उड़ने को प्रवृत्त किये । उ०-बरह मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनो रुचि पाए । बिलसत सुधा जलज आनन पर उडत न जात उडाए—४१७ ।

उड़ाऊँ—क्रि० स० [हि० उडाना] उड़ने के लिए प्रवृत्त करूँ । उ० सभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपण, स्वास आकास बनचर उडाऊँ—९-१२९ ।

उड़ाऊ—वि० [हि० उडना] (१) उड़ने वाला । (२) बहुत खर्चीला ।

उड़ात—क्रि० अ० [हि० उडना] उड जाता है, सवेग भागता है । भाग चलता है । उ०—विषया जात हरष्यो गात । ऐसे अन्ध, जानि निधि लूटत, परतिय सग लपटात । बरजि रहे सब, कह्यो न मानत, करि करि जतन उडात—२-२४ ।

उड़ान—सज्ञा स्त्री० [हि० उडना] (१) उड़ने की क्रिया (२) छलांग फँदान । (३) एक दौड़ मे पार की जाने वाली दूरी । (४) कलाई, पहुँचा ।

उड़ाना—क्रि० स० [हि० 'उडाना' का सक०] (१) उडने में प्रवृत्त करना । (२)हवा मे इधर उधर फैलाना । (३)झटके से काटकर अलग करना ।(४) दौडाना ।

उडानी—क्रि० अ० [हि० उडना]हवा मे निराधार उडते फिरना । उ०—बोलन हंसत चाल बदीजन मनहु धवला सोइ धूर उडानी—२३८३ ।

उडाने—क्रि० अ० [हि० उडना] उड़े, आकाश मे इधर-उधर विहरण करने लगे । उ०-ये मधुकर रुचि पकज लोभी ताहीते न उडाने—१३३४ ।

ऊडान्यौ—क्रि० अ० [स० उड्डयन, हि० उडना] उडा, उड़ गया । उ०-माथे पर ह्वै काग उडान्यो कुसगुन बहु तक पाई—५४१ ।

उडाहीं—क्रि० स०[हि० उडना] उड़ाते हैं, हवा मे इधर-उधर फैलाते हैं ।

उड़ायक—वि०[हि० उडान + क (प्रत्य०)] उडानेवाला ।

उड़ायौ—क्रि० स० भूत० [हि० उडाना] उड़ने को प्रवृत्त किया उडाया । उ०—धावहु नन्द गोहारि लगौ किन, तेरौ सुत अँधव ह उडायौ—१०-७ ।

उड़ावत—क्रि० स० [हि० उडाना] उछालते हैं ठुकराकर उडाते हैं । उ०—बाजत वेनु बिषान, सबै अपने रग गावत । मुरली धुनि, गो-रभ, चलत पग धूरि उडावत—४३७ ।

उड़ावन—क्रि० स०[हि० उडाना]उड़ने को प्रवृत्त करना । उ०—जहँ तहँ काग उडावन लागी हरि आवत उडि-जात नही—२९३४ ।

उड़ावै—क्रि० स० [हि० उडाना] हवा मे उडाता है, उछालता है । उ०—ससि सन्मुख जो धूरि उडावै उलटि ताहि कैं मुख परै—१-२३४ ।

उड़ास—सज्ञा स्त्री० [हि० उडन + स] उडने की चाह । सज्ञा स्त्री० [स० उद्वास] रहने का स्थान महल ।

उड़ासना—क्रि० स०[स० उद्वासन] बिछौना उठाना (२) उजाडना, नष्ट करना । (३) बैठने या सोने मे विघ्न डालना ।

उड़ि—क्रि० अ० [हि० उडना] उड़कर ।

मुहा०—उडि खात—उड उडकर काटता, घर, खाता है । उ०—जरति अगिनि में ज्यो घन नायो तनु जरि ह्वै है दाख । ता ऊपर लिखि जोग पठावत खाहु नीब तजि राख । सूरदास ऊधो की बतियाँ उडि-उडि बैठी खात । (२)अप्रिय लगता है, सुहाता नहीं । (३) तेज चलकर ।

मुहा०—उडि चले—सवेग भागे, सरपट दौडे । उ०—असुर केतनहि को लग्यो कलपन तुरग गत्र उडि चले लागी बयारी—१० उ०—३१ ।

उड़िबे—क्रि० अ०[हि० उडना] उडने को, उडने के लिए । उ०—डरनि डोल डोलत हैं इहि बिधि निरखि भ्रुवनि सुनि बात । मानो सूर सकात सरासन, उडिबे कौं अकुलात—३६६ ।

उड़िबो, उड़िबौ—क्रि० अ० [हि० उडना] जाते रहना, गायब हो जाना । उ०—बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर

नहिं मानै। मम प्रतीति नहिं आवई, उड़िबो ही जानै ९-४२।

संज्ञा स्त्री०—उड़ने की क्रिया। उ०-पंछि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं।....। देखि नीर जु छिलछिलो जग समुझि कछु मन माहिं। सूर क्यों नहिं चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबो नाहिं—१-३३८।

उड़ियै—क्रि. अ. [हिं. उड़ना] उड़कर, उड़ी उड़ी, उड़ती हुई। उ.—उड़ियै उड़ी फिरति नैनन सँग फर फूटे ज्यों आक रुई—१४३३।

उड़ी संज्ञा स्त्री. [हिं. उड़ना] कलाबाजी।

उडु—संज्ञा स्त्री. [सं.] पानी।

उड़ेलना—क्रि स [सं उद्धारण=निकालना अथवा उदीरण=फेंकना] (१) एक पात्र का तरल पदार्थ दूसरे में ढालना। (१) तरल पदार्थ को फेंकना।

उड़ैंनी-संज्ञा स्त्री. [हिं. उड़ना] जुगनू।

उड़ैहै-क्रि अ [हिं. उड़ना] (१) हवा में उड़ती फिरेगी। (२) हवा मे निराधार फिरेगी। उ.-या देही को गरब न करियै, स्यार-काग गिध खैहैं। तीननि मे तन कृमि, कै विष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै—१-८६।

उड़ौहौं -वि. [हिं. उड़ना+औहाँ (प्रत्य.)] उड़नेवाला।

उड़्यौ—क्रि. अ भूत [हिं. उड़ना] उड़ा, उड़ गया। उ —पीढ़े स्याम अकेले आँगन, लेत उड़्यौ आकाश चढ़ायौ—१०-७७।

उड़कना—क्रि अ. [हिं उड़कन] (१) ठोकर खाना। (२) रुकना, ठहरना। (२) सहारा लाना।

उड़काना—क्रि० स० [हिं० उढ़ाना] सहारे टेकना, भिड़ाना।

उढ़निया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओढ़नी] (१) ओढ़ने की वस्तु ओढ़नी, उपरैनी, फरिया। (२) पीतांबर उ०—पीत उढ़नियाँ कहा बिसारी। यह तो लाल ढिगनि की ओरै, है काहू को सारी —६९३।

उढ़रना क्रि० अ० [सं० ऊढा = विवाहिता] विवाहिता स्त्री का अन्य पुरुष के साथ निकल जाना।

उढ़ाऊँ—क्रि० स० [हिं० ओढ़ाना, उढ़ाना] कपड़ा ढकूँ, आच्छादित करूँ। उ.—वे मारे सिर पटिया पारे कया काहि उढ़ाऊँ—१४६६।

उढ़ाए-क्रि० स. [हिं० ओढ़ाना] ढक दिया, कपड़े से ढक दिये गये। उ—उपमा एक अभूत भई तब—जब जननी पट पीत उढ़ाए-१०-१०८।

उढ़ाना—क्रि. स. [हिं. ओढ़ाना] कपड़ा ढकना।

उढ़ावनी—संज्ञा स्त्री [हिं० उढ़ाना] चद्दर, ओढ़नी।

उतंक—संज्ञा पु [सं. उत्तुंक] एक ऋषि।

वि. [सं. उत्तुंग] ऊँचा।

उतंग—वि. [सं० उत्तुंग] (१) ऊँचा। उ०—(क) अतिहिं उतंग बयारि न लागत, क्यों टूटे तरु भारी—.८८। (ख) लहौं दान अंग अंगन को। गोरे भाल लाल सेंदु' छबि मुक्ता वर सिर सुभग मंग को। नक बेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच युग उतंग को —१०४२। (२) उच्च श्रेष्ठ।

उतंगनि—वि बहु [हिं. उतंग+नि (प्रत्य.)] ऊँचे। उ.- अति मद गलित ताल फल ते गुरु इनि जुग उरज उतंगनि को —१०३२।

उतंत—वि [सं उन्नत या उत्तत=ऊँचा] सयाना, बड़ी उम्र का

उत—क्रि. वि. [सं उत्तर] (१) वहाँ उधर, उस ओर। उ. - सुनत द्वारवती मांझ उतसो भयो सूर जन मंगलाचार गाए-१० उ २१। (२) दूसरी तरफ, मुँह फेर कर। उ —पचि हारे मैं मनायो न मानों आपुन चरन छुए हरि हाथ। तब रिसि धरि सोई उत मुख करि ढुकि आँचयो उपरैना माथ —२७३६।

उतकंठ-वि. [सं उत्कंठित] उत्सुक, उत्कंठायुक्त, चावयुक्त। उ.—श्रवन सुनत उतकंठ रहत है, जब बोलत तुतरात री— १०-१३६।

उतकंठा-संज्ञा स्त्री [सं उत्कंठा] चाह, लालसा इच्छा।

उतका—क्रि वि [हिं. (१) उत+का (२) उत्क] (१) उधर, उस ओर। (२) (श्लेषसे दूसरा अर्थ उत्का —) उत्कंठिता नायिका के पास। उ—हौं कहत न जाउ उतका नंद नंदन बेग,। सूर कर आछेप राधी आजु के दिन नेग—सा ३४।

उतन-क्रि, वि. [सं. उ+तनु] उस ओर।

उतना—वि. [हिं. उस + तन (प्रत्य —स. तावान' से)] उस मात्र का।

उतपति—संज्ञा स्त्री [स उत्पत्ति] सृष्टि। उ.-(क) तुम हीं करत त्रिगुन विस्तार। उतपति, थिति, पुनि करत सँहार—७-२। (ख) उतपति प्रलय करत है येई, शेष सहस-मुख, सुजस बखाने—३८०।

उतपन्न—वि [स उत्पन्न] जन्मा हुआ।

उतपल—संज्ञा पु [स उत्पल] कमल। उ—(क) लालन कर उतपल के कारन साँझ समै चित लावै—सा. ७९। (ख) जोर उतपल आदि उर तें निकस आयो कान—सा ७७।

उतपाटि—संज्ञा पु [हिं उत्पाटना] उखाड कर। उ—द्रुम गहि उतपाटि लिए दै दै किलकारी। दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—९-९५।

उतपात—संज्ञा पु. [स उत्पात] (१) कष्टदायक आकस्मिक घटना। (२) अशांति हलचल। (३) ऊधम, उपद्रव। उ-(क) लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए संग लागे (हो)। मुनि याके उतपात कौं सुक सनकादिक भगे (हो)-४४ (ख) जदुकुल मे दोउ सत सबै कहैं तिनके ए उतपात—३२५१। (ग) तुम बिन इहाँ कुँवर वर मेरे होते जिते उतपात —२७०३।

उतपानना—क्रि स० [स० उत्पन्न] उपजाया, पैदा किया।

उतपाने—क्रि स० [सं० उत्पन्न हिं० उतपानना] उत्पन्न या पैदा किये, उपजाये। उ—तासो मिलि नृप बहु सुख माने। अष्ट पुत्र तासों उतपाने—९-२।

उतमग—संज्ञा पु० [स० उत्तमांग] सिर, मस्तक।

उतर—संज्ञा पु [स. उत्तर] उत्तर जवाब। उ-(क) बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयो, नैकु न संका मानि। सूर स्याम यह उतर बनायो, चींटी काढ़त पानि —१०-२८०। (ख) ठढो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात—२६५७।

उतरत—क्रि. अ [हिं उतरना] उतरता है, पार जाता हैं। उ—सूरदास व्रत यहै कृष्ण भजि, भव-जल-निधि उतरत—१-५५।

उतरतौ—क्रि०स [हिं० उतरना] अवनति करता हुआ, घटता हुआ। उ.—मोतें कछू न उबरी हरि जू, आयो चढत-उतरतौ। अजहुँ सूर पतित-पद तरतौ, जौ औरहु निस्तरतौ—१-२०३।

उतरना—क्रि. अ. [स अवतरण, प्रा. उत्तरण] (१) ऊपर से नीचे आना। (२) अवनति पर होना। (३) स्वर या कांति मलिन होना। (४) मनो विकार की उग्रता शांत होना। (५) अंकित होना।

क्रि स [स उत्तरना] नदी, पुल आदि को पार करना।

उतराई—संज्ञा स्त्री [हिं उतरना] (१) नदी पार उतारने का महसूल। उ.—(क) दई न जात खेवट उतराई, चाहत चढ्यो जहाज—१ १०८। (ख) लै मैया केवट उतराई। महाराज रघुपति इत ठाढे तै कत नाव दुराई—१०—४०। (२) ऊपर से नीचे आने की क्रिया।

उतरात—क्रि अ [हिं. उतराना] (१) पानी की सतह पर तैरता है। उ. हेरि मथनी धरी माट तैं माखन हो उतरात। आपुन गई कमोरी माँगन, हरि पाई ह्याँ घात—१०-२७०। (२) उबलता है, उफान खाता है। उ —करत फन-घात, विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं गात परसै—५५२।

उतराना—क्रि अ० [स. उत्तरण] (१) पानी पर तैरना। (२) उबलना, उफनाना। ( ) प्रगट होना।

उतरानी—क्रि अ. [हिं० उतराना] पानी की सतह पर तैरने लगी, उतराने लगी। उ०—या व्रज को बसिबो हम छोड्यो, सो अपने जियँ जानी। सूरदास ऊसर की बरषा, थोरे जल उतरानी—१० ३३७।

उतरायल—वि० [हिं० उतराना] (१) बहका बहका या इधर-उधर मारा मारा फिरने वाला। (२) उतरा हुआ, पुराना।

उतरायो—क्रि० अ० [हिं. उतराना] नदी आदि के पार हुआ, तर गया, तारा गया। उ०-ऐनो का जुन सरन गहे तैं कहत सूर उतरायो—१-१५।

उतरारी—वि० [स उत्तर + हिं० वारी] उत्तर की (विशेषता 'हवा')।

उतराव—संज्ञा पु० [हिं० उतरना] उतार, ढाल।

उतरावै—क्रि० स० [सं० उत्तरण, हि० उतराना] साथ साथ घुमावे-फिरावे, चलावे। उ०—ताको लिए नन्द की रानी, नाना खेल खिलावै। तब जसुमति कर टेकि स्याम को, क्रम क्रम करि उतरावै—१०-१२६।

उतराहा—क्रि०वि०[सं. उत्तर + हा (प्रत्य)] उत्तर की ओर।

उतरि—क्रि. स [सं. उत्तरण, हि उतरना] (नदी आदि के) पार जाओ, पार कर लो। उ.-(क)भव उदधि जम-लोक दरसै, निपट ही अँधियार। सूर हरि को भजन करि करि उतरि पल्ले-पार—१-८८ (ख) सकल विषय-विकार तजि, तू उतरि सायर-सेत —१-३११।

क्रि. अ.[सं अवतरण, प्रा उत्तरण, हि. उतरना] (१)उग्र प्रभाव या उद्वेग दूर हुआ। उ —उतरि गई तब गर्व खुमारी—१०६६। (२) ऊपर से नीचे आकर। (क) रथतैं उतरि अवनि आतुर ह्वै चले चरन अति धाए—१-२७३। (ख) नाभि-सरोज प्रकट पदमासन उतरि नाल पछितावै—१० ६५। (३)घट जाना, कम हो जाना। उ — (क) मदनि सनेही छाँड़ि दयौ। हा जदुनाथ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२९८। (ख)आवत देखे स्याम हरष कीन्ही ब्रजवासी। सोकसिंधु गयौ उतरि, सिंधु आनंद प्रकासी—५८९।

उतरिन—वि. [सं उऋण] ऋण से मुक्त।

उतरिहै—क्रि स [हि. उतारना] उतारेगा, पार पहुँचावेगा। उ.—को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै—१-२९।

उतरे—क्रि. स [सं. उत्तरण, हि. उतरना] (१)(नदी, नाले आदि के) पार गये। उ—कहो कपि, कैसे उतरे पार—९-८९। (२) डेरा या पड़ाव डाला, टिके, ठहरे। उ.—कटक-सोर अति घोर दसौं दिसि, दीसति बनचर भीर। सूर समुझि, रघुबंस तिलक दोउ उतरे सागर-तीर—९-११५।

उतर्यौ—क्रि स [सं. उत्तरण, हि. उतरना] उतरा, (नदी आदि के)पार गया। उ —भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ। ...... । अति गंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं विधि उतर्यौ जात। नहिं अधार नाम अवलोकत, जित तित गोता खात—१-१७५।

क्रि. अ०[सं. अवतरण, प्रा उत्तरण, हि उतरना] उग्र प्रभाव दूर हुआ। उ०—अजहूँ सावधान किन होहि। माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतर्यौ नाहिन तोहि—२-३२।

उतलाना—क्रि० अ०[हि. अतुर] जल्दी मचाना।

उतवंग—संज्ञा पु [उत्तमांग] मस्तक, सिर।

उतसहकंठा—संज्ञा स्त्री [सं० उत्कंठा]तीव्र इच्छा, प्रबल अभिलाषा। उ०—सरद सुहाई आई राति। दुहुँ दिसि फूल रही बन जाति। ...। एक दुहावत तें उठि चली। एक सिरावत मन महँ मिली। उतसहकंठा हरि सौं बढ़ी—१८०३।

उतसाह—संज्ञा पु [सं. उत्साह] (१)उमंग, उछाह। (२) साहस, हिम्मत।

उताइल—वि.[हि० उतावला, उतायल] जल्दी, शीघ्र। उ०—दधिसुत-अरि-भष-सुत सुभाव चल तहाँ उताइल आई—सा०८७।

उताइली—संज्ञा स्त्री. [हि. उतावली, उतायली] जल्दी, शीघ्रता। उ.—करत कहा पिय अति उताइली मैं कहुँ जात परानी—१६०१।

उतान—वि [सं०उत्तान] चित, सीधा।

उतानपाद—संज्ञा० पु [सं. उत्तानपाद] एक राजा जो स्वयंभुव मनु के पुत्र और ध्रुव के पिता थे।

उतायल—वि०[सं० उत् + त्वरा] जल्दी, तेज।

उतायली—संज्ञा स्त्री. [सं. उत् + त्वरा, हि० उतावली] जल्दी, शीघ्रता।

उतार—संज्ञा पु.[हि. उतारना(१) उतारन, निकृष्ट। उ - प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी। अपत, उतार, अभागी, कामी, विषयी, निपट कुकर्मी—१-१८६। (२)उतारने की क्रिया। (३) ढाल। (४) घटाव, कमी। (५) उतारा, न्योछावर।

क्रि स० [सं अवतरण, हि. उतारना[खोलकर, अलग करके। उ०—न्हान लगी सब बसन उतार —९-१७४।

उतारत—क्रि स०[स० अवतरण, हिं० उतारना] (१) (धारण की हुई वस्तु को) अलग करते हैं, खोलते हैं। उ०—उतारत है कठनि तें हार। हरि हित मिलन होत है अतर, यह मन कियो विचार—६८७। (२)उतार रहा है, स्वय अपना रहा हैं, दूसरे को घटाना चाहता है। उ०—मानिनि अजहूँ छांडो मान। तीन बिवि दधिसुत उतारत राम दल जुत सान—सा २१। (३)सामने रखती है दिखाती है। उ —ग्रह मुनि दुत हित के हित कर ते मुकर उतारत नाघे —सा ६।

उतारति—क्रि० स०[हिं० उतारना] (१) उतारती है, शरीर के चारों ओर घुमाती है। उ —खेलत मैं कोउ दीठि लगाई- लै-लै राई लोन उतारति - १०-२००। (२) धारण की हुई वस्तु को खोलती या अलग करती है। उ०—अरु बनमाल उतारति गर तें सूर स्याम की मातु—५११।

उतारन—सज्ञा पु [हिं०उतारना](१)उतरन, उतारा हुआ कपड़ा।(२) न्योछावर। (३) निकृष्ट वस्तु।

क्रि० स. [स० अवतरण, हिं० उतारना] (किसी उग्र प्रभाव को) दूर करने के लिए,(किसी भार को हल्का करने के उद्देश्य से। उ०—(क)रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै चले चरन अति धाए। मनुसचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए—१-२७२। (ख)आजु दशरथ कैं आँगन भीर। ये भू-भार उतारन कारन प्रकटे स्याम सरीर—९-१६।

उतारना—क्रि० स०[स० अवतरण] (१) ऊँचे से नीचे उतरना।(२) चित्र आदि खींचना। (३) काटना, अलग करना। (४) धारण की हुई वस्तु को खोलना।(५)न्योछावर करना। (६)उग्र प्रभाव को दूर करना। (७) जन्म देना। (८) वस्तु या पदार्थ तैयार करना।

क्रि० स०[स० उत्तारण] नदी आदि के पार ले जाना।

उतारा—सज्ञा पु०[हिं०उतरना] (१) ठहरने या डेरा डालने की क्रिया। (२) उतरने का स्थान, पडाव।

सज्ञा पु० [हिं० उतारना] क्लेश या ग्रह-शांति के लिए कुछ सामग्री व्यक्ति विशेष के चारो ओर घुमा कर चौराहे पर रखना। (२)उतारे की सामग्री।

उतारि—क्रि. स० [स० उत्तारण, हिं० उतारना] (नदी आदि से) पार करके, पार पहुँचाकर, पार करो। उ.—लीजै पार उतारि सूर को महाराज ब्रजराज। नई न करन कहत प्रभु, तुम हो सदा गरीब-निवाज —१-१०८।

क्रि० स० [स० अवतरण, प्रा० उत्तरण, हिं० उतारना] (१) धारण की या पहनी हुई वस्तु को खोलकर। उ —(क)बिदुर सस्त्र तब सर्वहिं उतारि। चल्यौ तीरथनि मुड उघारि—१-२८४। (ख) इक अभरन लेहिं उतारि देत न सक करैं—१०-२४। (ग) ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि—१०—१६९। (२) जुडी या लगी हुई वस्तु को काट कर, अलग करके। उ.- अस्वत्थामा निसि तहँ आए। द्रोपदी-सुत तहँ सोवत पाए। उनके सिर लै गयौ उतारि। कह्यौ, पाड नि आयौ मारि—१-२८९। (३)उठायी हुई वस्तु को पृथ्वी पर रखना। उ०—सूर प्रभु कर ते गुवर्धन धरचौ धरनि उतारि—९९४। (४)उतारा करके, नजर उतार कर। उ०—कबहुँ अंग भूषन बनावति, राइ-लोन उतारि—१०-११८। (५) ऊपर रखी वस्तु को नीचे रखना। उ—(क) उफनत दूध न धरचौ उतारि—१८०३। (ख) एक उफनत ही चली उठि धरचौ नाहिं उतारि—पृ ३३९ (४)।

उतारिए—क्रि० स० [स० अवतरण, हिं० उतारना](१) ठहराइए। (२) न्योछावर कीजिए, वारिए।

उतारी—क्रि० स० [स० अवतरण, हिं० उतारना] (१) (पहने हुए वस्त्र आदि) खोलकर। उ०—(क) बसन धरे जल-नीर उतारी। आपुन जल पैठी सुकुमारी—१०-७९९। (ख) उरते सखी दूर कर हारहिं ककन धरहु उतारी—२७८२। (२) आरोही को किसी यान से नीचे पृथ्वी पर उतार कर, ठहरा कर डेरा देकर। उ०—निरखति ऊधो सुख पायो। सुन्दर सुजल सुबस देखियत याते स्याम पठायो। . . । महर लिवाय गये निज मदिर हरषित लियो उघारी—२९६३। (३) सिर पर उठाए हुए भारको

नीचे रखकर। उ०-(क) योग मोट सिर बोझ आनि तुम कत घोष उतारी—३३१६। (ख) लादि खेप गुन ज्ञान योग की ब्रज में आनि उतारी—३३४०।

उतारू—वि० [हिं० उतरना] तैयार, तत्पर।

उतारे—क्रि० स० [सं० अवतरण, हिं० उतारना] (१) मपट आदि दूर करे। उ०—निर्विष होत नहिं कैसेहूँ बहुत गुनी पचि हारे। सूर स्याम गारुड़ी बिना को, जो सिर गाड़ उतारे—७४७। (२) उग्र प्रभाव या उद्वेग को दूर करे। उ०—आनहु वेगि गारुरी गोविंदहि जो यहि बिषहि उतारे—३२५४।

उतारैं—क्रि० स० [सं० अवतरण, हिं० उतारना] (पहने हुए वस्त्रादि) खोलें। उ०—इत उत चितवति लोग निहारैं। तासों सर्वनि अब चीर उतारैं—७९९।

उतारै—क्रि० स० [सं० उत्तारण, हिं० उतारना] (नदी आदि के) पार पहुँचना। उ०—भवसमुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार—१-६८।

क्रि० स० [सं० अवतरण, हिं० उतारना] उतारा करे, नजर आदि उतारे। उ०—जाको नाम कोटि भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै—१०-१२९।

उतारौं—क्रि० स० [सं० उत्तारण, हिं० उतारना] (नदी नाले आदि को पार ले जाऊँ, पार पहुँचा दूँ।) उ०—(क) सोखि समुद्र, उतारौं कपि-दल, छिनक बिलंब न लाऊँ—९-१०९। (ख) आज्ञा होइ, एक छिन भीतर, जल इक दिसि करि टारौं। अन्तर मारग होइ, सबनि कौं इहिं बिधि पार उतारौं—९-१२१।

क्रि० स० [सं० अवतरण, हिं० उतारना] (१) जुड़ी हुई वस्तु को सफाई के साथ काटूँ, काटकर अलग करूँ। उ०—तजैं सूर सधान सकल हौं, रिपु को सीस उतारौं—९-१३७। (२) बोझ उतार कर हलका करूँ। उ०—असुर कुलहिं सहारि, धरनि कौं भार उतारौं—४३१।

उतारो—संज्ञा पु० [हिं० उतरना] उतारा, उतरने योग्य स्थान, पड़ाव। उ०—(क) जल औंडे में चहुँ दिसि पैरयौ, पाँउ कुल्हारी मारी। बाँधी मोट पसारि त्रिविध गुन, नहिं कहुँ बीच उतारो। देख्यौ सूर बिचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारी—१-१५२।

(ख) ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारो। बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट अधारो। गरजत क्रोध-लोभ को नारो, सूझत कहूँ न उतारो—१-२०९।

उतारयौ—क्रि० स० [सं० उत्तारण, हिं० उतारना] (नदी नाले आदि के) पार ले गया। उ०—नारद जू नृग कियो उपकार। बूड़त मोहिं उतारयौ पार—४-१२।

क्रि० स० [सं० अवतरण, हिं० उतारना] (१) उठाया हुआ भार पृथ्वी पर रखा। उ०—हरि करते गिरिराज उतारयौ—१०७०। (२) उग्र प्रभाव को दूर किया। उ०—भले कान्ह हो बिषहिं उतारयौ। नाम गारुड़ी प्रगट तिहारौ—७६२।

उताल—क्रि० वि० [सं० उद्+त्वर] जल्दी, शीघ्र। उ०—(क) सो राजा जो आगमन पहुँचे सूर सु भवन उताल। जो जैहैं बलदेव पहिलैं ही, तौ हँसिहैं सब ग्वाल—१०-२२३। (ख) कहै न जाइ उताल जहाँ भूपाल तिहारो। हो वृंदावन चंद्र कहा कोउ करै हमारो—११११२।

संज्ञा स्त्री०—शीघ्रता, जल्दी।

उताली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उताल] शीघ्रता, उतावली, फुर्ती।

क्रि० वि—शीघ्रता से, जल्दी से।

उतावल—क्रि० वि० [सं० उद्+त्वर] शीघ्रता से। उ०—कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत, कोऊ उतावल धावत। हरि दर्सन लालसा कारनै बिबिध मुदित सब आवत—१० उ०—११२।

वि०—उतावला, जल्दी मचाने वाला।

उतावला—वि० [सं० उद्+त्वर] (१) जल्दी मचाने वाला। (२) घबराया हुआ।

उतावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्+त्वर, हिं० उतावली] जल्दी, शीघ्रता, हड़बड़ी। उ०—अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहिं तैं न निहारी। बसन सुक्र-तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे—९-१७३।

उतावली—वि० स्त्री० [हिं० पु० उतावला] (१) जल्दी मचाने वाली। (२) घबरायी हुई, व्यग्र। उ०—प्रातहिं धेनु

दुहावन आई, अहिर तहाँ नहिं पाई। तबहिं गई मैं ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाई—७२८।

संज्ञा स्त्री०—(१) जल्दबाजी, हड़बड़ी। (२) व्यग्रता, चंचलता।

उताहल—क्रि० वि० [स० उद्+त्वर] शीघ्रता से, बहुत जल्दी से।

वि०—उतावला, घबराया हुआ।

उताहिल—क्रि० वि० [हिं० उताहल] जल्दी जल्दी, शीघ्रता से।

उतिम—वि० [स० उत्तम] उत्तम, श्रेष्ठ। उ०-नृतकार उतिम बनाइ बानिक संग चंद न आवें—सा० ९१।

उतृण—वि० [स० उद+ऋण] (१) ऋण से मुक्त। (२) उपकार का बदला चुका देने वाला।

उतै—क्रि वि० [हिं० उस+त (प्रत्य)=उत] उधर उस ओर, वहाँ। उ०—उतै देखि धावैं, अचरज पावैं, सूर सुरलोक-ब्रजलोक एक ह्वै रह्यो—४८४।

उतैला—क्रि० वि० [हिं० उतावला] (१) हड़बड़ी करने वाला। (२) घबराया हुआ।

उत्कंठा—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) प्रबल इच्छा। (२) एक संचारी भाव।

उत्कंठित—वि० [स०] चाव से भरा हुआ, उत्सुक।

उत्कंठिता—संज्ञा स्त्री० [स०] वह नायिका जो मिलन के स्थान पर प्रिय के न आने से चिंतित हो।

उत्कंप—संज्ञा पु० [स०] कँपकँपी।

उत्कट—वि० [स०] तीव्र, उग्र, प्रबल।

उत्कलिका—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) चाह, लालसा। (२) कली। (३) तरंग।

उत्कर्ष—संज्ञा पु० [स०] [१] बड़ाई, प्रशंसा। (२) बढ़ती, अधिकता। (३) समृद्धि, उन्नति।

उत्कर्षता—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) श्रेष्ठता, उत्तमता। (२) अधिकता। (३) समृद्धि।

उत्क्रम—संज्ञा पु० [स०] क्रमभंग, उलट पलट।

उत्क्रमण—संज्ञा पु० [स०] (१) क्रम का ध्यान न रखना। (२) मृत्यु।

उत्कीर्ण—वि० [स०] लिखा या खुदा हुआ।

उत्कृष्ट—वि०—[स०] उत्तम, श्रेष्ठ।

उत्कृष्टता—संज्ञा स्त्री० [स०] श्रेष्ठता, उत्तमता।

उत्कोच—संज्ञा पु० [स०] घूस, रिश्वत।

उत्कोचक—वि० [स०] घूस लेने वाला।

उत्क्रांति—संज्ञा स्त्री० [स०] पूर्णता या उत्तमता की ओर क्रमशः बढ़ने की प्रवृत्ति।

उत्खाता—वि० [स०] उखाड़ने वाला।

उत्तंस—संज्ञा पु० [स० अवतंस] (१) भूषण, गहना। (२) टीका। (३) मुकुट, श्रेष्ठ। (४) माला।

उत्त—संज्ञा पु० [स० उत] (१) आश्चर्य। (२) संदेह।

क्रि० वि०—उस ओर, उधर।

उत्तम—संज्ञा पु० [स०] ध्रुव का सौतेला भाई जो राजा उत्तानपाद की छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न हुआ था।

वि० [स०] सबसे अच्छा, श्रेष्ठ।

उत्तमगंधा - संज्ञा स्त्री० [स०] चमेली।

उत्तमतया—क्रि० वि० [स०] अच्छी तरह से।

उत्तमता—संज्ञा स्त्री० [स०] श्रेष्ठता, भलाई।

उत्तमताई—संज्ञा स्त्री० [स०] श्रेष्ठता, भलाई।

उत्तप्त—वि० [स०] (१) तप्त हुआ। (२) दुखी, पीड़ित। (३) क्रोधित।

उत्तमश्लोक—वि० [स०] यशस्वी, कीर्तियुक्त।

संज्ञा पु० (१) पुण्य, यश। (२) भगवान, विष्णु।

उत्तमांग—संज्ञा पु० [स०] सिर, मस्तक।

उत्तमा—वि० स्त्री० [स० पु० उत्तम] अच्छी, भली।

उत्तमोतम—वि० [स०] सबसे अच्छा, अच्छे अच्छे।

उत्तमौजा—वि० [स० उत्तमोजस्] उत्तम बल या तेज वाला।

उत्तर—संज्ञा पु० (१) दक्षिण के सामने की दिशा। (२) प्रश्न के समाधान में कही गयी बात। (३) बदला। (४) राजा विराट का पुत्र। (५) एक काव्यालकार।

वि०—(१) पिछला बाद का। (२) ऊपर का (३) बढ़कर, श्रेष्ठ।

क्रि० वि०—पीछे, बाद।

उत्तरदाता—पु० [स० उत्तरदातृ] जिम्मेवार।

उत्तरदायित्व—संज्ञा पु० [सं०] जिम्मेदारी।
उत्तरदायी—वि० [सं० उत्तरदायिन्] (१) उत्तर देने वाला, जिम्मेदार।
उत्तरपट—संज्ञा पु० [सं०] (१) दुपट्टा, चादर। (२) बिछाने की चादर।
उत्तरवयस—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ापा।
उत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा विराट की पुत्री जो अभिमन्यु को ब्याही थी। महाभारत के युद्ध में जब अभिमन्यु मारा गया था तब वह गर्भवती थी। इसी के गर्भ से आगे चलकर परीक्षित उत्पन्न हुए थे।
उत्तराखंड—संज्ञा पु० [सं०] हिमालय के समीप का प्रदेश।
उत्तराधिकार—संज्ञा पु० [सं०] किसी के मरने के बाद धन-संपत्ति का अधिकार।
उत्तराधिकारी—संज्ञा पु० [सं० उत्तराधिकारिन्] वह व्यक्ति जो किसी के मरने के बाद उसकी संपत्ति का अधिकारी हो।
उत्तराभास—संज्ञा पु० [सं०] झूठा या अटसंट उत्तर।
उत्तरायण—संज्ञा पु० [सं०] (१) मकर रेखा से उत्तर कर्क रेखा की ओर सूर्य की गति। (२) छह महीने का समय जब सूर्य मकर रेखा से कर्क रेखा तक बढ़ता रहता है।
उत्तरार्द्ध—संज्ञा पु०[सं० उत्तर+अर्द्ध]पीछे या बाद का आधा भाग।
उत्तरीय—संज्ञा पु० [सं०] उपरना, दुपट्टा, ओढ़ने की चादर।
वि०—(१)ऊपर का, ऊपरी। (२) उत्तर दिशा सम्बन्धी।
उत्तरोत्तर—क्रि० वि० [सं०] एक के बाद एक, लगातार, क्रमशः।
उत्ता—वि० [हिं० उतना] उतना, उस मात्रा का।
उत्तान—वि० [सं०] चित, सीधा।
उत्तानपाद—संज्ञा पु० [सं०] एक राजा जो स्वायंभुवमनु के पुत्र और प्रसिद्ध भक्त ध्रुव के पिता थे।
उत्ताप—संज्ञा पु० [सं०] (१) गर्मी, तपन। (२) कष्ट, वेदना। (३) दुख, शोक। (४) क्षोभ।
उत्तापित—वि० [सं०] (१) तपाया हुआ। (२) दुखी, क्षुब्ध।
उत्तीर्ण—वि० [सं०] (१) पारगत, पूर्ण ज्ञाता। (२) मुक्त। (३) परीक्षा में सफल।
उत्तुंग—वि० [सं०] बहुत ऊँचा।
उत्तेजक—वि० [सं०](१) उकसाने वाला, उभाड़ने वाला, (२) मनोवेगों को तीव्र करने वाला।
उत्तेजन—संज्ञा पु० [सं०] उत्साह, बढ़ावा।
उत्तेजना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रेरणा, बढ़ावा। (२) मनोवेगों को तीव्र करनेवाला।
उत्तोलन—संज्ञा पु० [सं०] (१) ऊँचा करना, तानना। (२) तौलना।
उत्थपऊ—वि० स० भूत०[सं० उत्थापन, हिं० उत्थवना] आरंभ किया।
उत्थवना—क्रि० स० [सं० उत्थापन] आरम्भ करना, अनुष्ठान करना।
उत्थान—संज्ञा पु० [सं०] (१) उठना। (२) आरंभ। (३) बढ़ती, उन्नति।
उत्थापन—संज्ञा पु० [सं०] (१) ऊँचा उठाना, तानना। (२) हिलाना-डुलाना। (३) जगाना।
उत्पट—संज्ञा पु० [सं०] उपरना, दुपट्टा।
उत्पतन—संज्ञा पु० [सं०] ऊपर उठना।
उत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म, उद्भव। (२) सृष्टि। (३) आरंभ।
उत्पन्न—वि० [सं०] जन्मा हुआ।
उत्पल—संज्ञा पु०[सं०](१) कमल। (२) नील कमल।
उत्पाटन—संज्ञा पु० [सं०] उखाड़ना।
उत्पात—संज्ञा पु० [सं०](१) उपद्रव, दुखदायी घटना। (२) अशांति, हलचल। (३) ऊधम।
उत्पातक—वि० [सं०] उपद्रव करनेवाला, उपद्रवी।
उत्पाती—संज्ञा पु० [सं०उत्पातिन्] उपद्रवी, अशांति फैलाने वाला व्यक्ति।
वि० स्त्री०—अशांतिकारिणी, हलचल मचाने वाली।
उत्पादक—वि० [सं०] उत्पन्न करने वाला।
उत्पादन—संज्ञा पु० [सं०] उत्पन्न करने का काम।
उत्पीड़क—वि० [सं०](१) दुखदायी। (२)अत्याचारी।

उत्पीडन—सज्ञा पु० [स०] दुख देना, पीड़ा पहुँचाना।

उत्प्रेक्षा—सज्ञा स्त्री० (१) उद्भावना। (२) एक अर्थालंकार जिसमे उपमान को भिन्न समझते हुए भी उपमेय मे उसकी प्रतीति की जाय।

उत्फुल्ल—वि० [स०] (१) खिला हुआ, विकच। (२) चित, सीधा।

उत्संग—सज्ञा स्त्री०[स०](१) गोद, अक। (२) निर्लिप्त, विरक्त।

उत्सर्ग—सज्ञा पु० [स०] (१) त्याग, छोडना। (२) दान, निछावर।

उत्सर्जन—सज्ञा पु० [स०] (१) त्याग। (२) दान।

उत्साह—सज्ञा पु० [स०] (१) उमग, उछाह, जोश। (२) साहस, हिम्मत।

उत्साही—वि० [स० उत्साहिन] उमग वाला।

उत्सुक—वि० [स०] (१) इच्छुक, चाह से युक्त। (२) उद्योग मे तत्पर।

उत्सुकता—सज्ञा स्त्री० [स०](१) तीव्र इच्छा, उत्कठा। (२) एक सचारी भाव, किसी कार्य के करने मे दूसरे की राह न देखकर, स्वयं तत्पर हो जाना।

उत्सूर—सज्ञा पु० [स०] सायकाल।

उत्सृष्ट—वि० [स०] त्यागा हुआ।

उत्सेध—सज्ञा पु० [स०] (१) बढ़ती। (२) ऊँचाई।

वि०—(१) ऊँचा। (२) श्रेष्ठ।

उथपना—क्रि० स०[स० उत्थापन] उखाडना, उजाडना।

उथपै—क्रि० स० [हिं० उथपना] उजड जाय, नष्ट हो।

उथलना—क्रि० अ० [स० उत्+स्थल (१) डगमगाना। (२) नीचे-ऊपर होना। (३) पानी का छिछला होना।

उथलपुथल—सज्ञा पु०[हिं० उथलना](१) उलट पुलट। (२) हलचल।

वि०—इधर का उधर।

उथला—वि० [स० उत+स्थल] कम गहरा, छिछला।

उदत, उदतक—सज्ञा पु० [स०] वार्ता, वृत्तात।

उदक—सज्ञा पु० [स०] जल, पानी।

उदकना—क्रि० अ० [स० उद्=ऊपर+क=उदक] कूदना, उछलना।

उदकि—क्रि० अ० [हिं० उदकना] कूदना, कूद कर।

उद्गार—सज्ञा पु० [स० उद्गार] उबाल, उफान। (२)घोर शब्द। (३) मन की बात सवेग कहना।

उदगारना—क्रि० स० [स० उद्गार] (१) बाहर निकलना, उगलना। (२) भडकाना, उत्तेजित करना, प्रज्वलित करना।

उदगारी—क्रि० स० [हिं० उद्गारना] उत्तेजित की, प्रज्वलित की।

वि०—(१) उगलने वाला। (२) बाहर निकालने वाला।

उदग्ग—वि० [स० उदग्र, प्रा० उदग्ग] (१) ऊँचा, उन्नत। (२) उग्र, प्रचड।

उदग्र—वि० [स] (१) ऊँचा, उन्नत। (२) बढाया हुआ। (३) प्रचड उग्र।

उद्घटत—क्रि० स० [हिं० उदघटना] प्रगट होता है, उदय होता है।

उदघटना—क्रि० स० [स० उद्घट्टन=सचालन] प्रगट होना, उदय होना।

उद्घाटन—सज्ञा पु० [स० उदघाटन] प्रकट करना।

उदघाटना—क्रि० स० [स० उद्घाटन] प्रकट करना, खोलना।

उदघाटी—क्रि० स०[हिं० उदघाटना] प्रकट की, खोली।

उदथ—सज्ञा पु० [स० उद्गीथ=सूर्य] सूर्य।

उदधि—सज्ञा पु० [स०] समुद्र।

उदधितनयापति—सज्ञा पु० [स० उदधि (=समुद्र)+तनया=पुत्री=शुक्ति=सीप)+पति (शुक्तिपति=मेघ=नीरद=जीवनद)] जीवनदान। उ०—वेगि मिलौ सूर के स्वामी उदधितनया-पति मिलिहै आई—सा० उ० ३०।

उदधि मेखला—सज्ञा स्त्री० [स०] पृथ्वी।

उदधिसुत—सज्ञा पु०[स०](१) चद्रमा। (२) अमृत। (३) शख। (४) कमला। उ०—दिनपति चले धौं कहा जात। धरावरनधरनिसुत न लीनो कहो उदधि सुत बात सा० ८।

उदधिसुता—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) लक्ष्मी (२) सीप।

उदपान—संज्ञा पु० [सं०] कमंडलु।

उदबस—वि० [सं० उद्वासन=स्थान से हटाना] (१) उजाड़, सूना। (२) स्थान से निकाला हुआ, एक स्थान पर न रहनेवाला। उ०—अब तो बात घरी पहरन सखि ज्यों उदबस की चोरयो। सूरस्याम दासी सुख सोवहु भयो उभय मन चीरयो—२८८४।

उदबासना—क्रि० स० [सं० उद्वासन, हिं० उदबस] (१) स्थान से उठाना या भागना। (२) उजाड़ना।

उदभट—वि० [सं० उद्भट] प्रबल, प्रचंड।

उदभव—वि० पु० [सं० उद्भव] (१) उत्पत्ति, सृष्टि। (२) वृद्धि, बढ़ती।

उदभौत—संज्ञा पु० [सं० अद्भुत] अद्भुत वस्तु, अचम्भा।

उदभौति—संज्ञा स्त्री [सं० अद्भुत] अदभुत वस्तु होना या घटना। उ.—अँगियनि तें मुरली अति प्यारी वह बैरिनि यह सौति। सूर परस्पर कहत गोपिका यह उपजी उदभौति—पृ.३२८।

उदमद—वि० [सं० उद्+मद] उन्मादपूर्ण, मतवाला। उ०—उदमद यौवन आनि ठाढि कै कैसे रोको जाइ—३११३।

उदमदना—क्रि० अ० [सं० उद्+मद] उन्मत्त या मतवाला होना।

उदमदे—वि० [हिं० उदमाद] उन्मत्त, मतवाला। उ०—गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।

उदमाद—संज्ञा पु० [सं० उद्+माद] उन्माद, मतवाला-पन, पागलपन। उ०—सरदकाल रितु जानि दीप-मालिका बनाई। गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।

उदमादी—वि० [हिं उदमाद] उन्मत्त, मतवाला। उ०—मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम ही यौवन मद उदमादी—१०५७।

उदमान—वि० [सं० उन्मत्त] उन्मत्त मतवाला। उ०—अगिन कबहुँक बरखि वारि बरषा करै प्रद्युम्न सकल माया निवारी। शाल्व परधान उदमान मारी गदा प्रद्युम्न मुरछित भए सुधि बिसारी—१० उ०—५६।

उदमानना—क्रि० अ० [सं० उन्मादन] उन्मत्त होना।

उदमानी—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० उदमादना] उन्मत्त हुई, मतवाली बनी। उ०—मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुमही जोवन मद उनमानी (उदमादी) —१०५७।

उदय—संज्ञा पु० [सं०] (१) निकलना, प्रकट होना। क्रि० प्र०—उदय कीनो—प्रकट किया, प्रकाशित किया। उ०—तिलक भाल पर परम रुचिर गोरोचन को दीनो। मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो।

मुहा०—उदय अरु अस्त लौं—सारे संसार में, सारी पृथ्वी पर। उ०—हिरनकस्यप बढ्यो उदय अरु अस्त लौं हठी प्रह्लाद चित चरन लायो। भीर के परे तें धीर सबहिनि तजी, खंभ तें प्रगट ह्वै जन छुड़ायो—१-५। (२) वृद्धि, उन्नति बढ़ती। (३) निकलने का स्थान, उद्गम।

उदयगढ़—संज्ञा० पु० [सं० उदय+हिं० गढ] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है।

उदयगिरि—संज्ञा पु० [सं.] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है।

उदयाचल—सं. पु. [सं. उदय+अचल=पर्वत] पूर्व दिशा का एक पर्वत जिसके पीछे से सूर्य निकलता दिखायी देता है।

उदयाद्रि—संज्ञा पु. [सं. उदय+अद्रि=पर्व] उदया-चल।

उदर—संज्ञा पु. [सं] पेट, जठर।

मुहा—उदर जियाऊँ—पेट पालूँ, पेट भरूँ, खाऊँ। उ—माँगत बार-बार सेष ग्वालन को पाऊँ। आप लियो कछु जानि भक्ष करि उदर जियाऊँ। उदर भरै—पेट पाले। भिक्षा-वृत्ति उदर नित भरै निसि दिन हरि हरि सुमिरन करे।

(२) किसी वस्तु के बीच का भाग। (३) भीतरी भाग।

उदरज्वाला—सज्ञा स्त्री. [स] (१) जठराग्नि। (२) भूख।

उदरना—क्रि अ. [हिं. उदारना] (१) फटना। (२) ढहना, नष्ट होना।

उदवत—क्रि. अ. [स उदयन, हिं. उदवना] निकलते या प्रकट होते ही (या होकर)। उ —मेरो हरन मरन है तेरो, स्यो कुटुम्ब-सतान। जरिहै लक कनकपुर तेरो, उदवत रघुकुल-भान—९-७९।

उदवना—क्रि अ [स उदयन] निकलना, प्रकट होना।

उदवाह—सज्ञा पु. [स उद्वाह] विवाह।

उदवेग—सज्ञा पु उद्वेग] (१) चित्त की घबड़ाहट। (२) आवेग, जोश।

उदसन—क्रि अ [स उदसन=नष्ट करना। अथवा उद्वासन] (१) उजड़ना। (२) अडवड होना।

उदात—सज्ञा पु [स उदात्त] एक अलकार जिसमे सभावित वैभव ऐश्वर्य या समृद्धि का बहुत बढा-चढाकर वर्णन हो। उ —यह उदात अनूप भूषन दियो सब घर तोर। सूर सब रे लच्छनन जुत सहित सब त्रिन तोर—सा-९४।

उदात्त—वि. [स] (१) ऊँचे स्वर से उच्चरित। (२) दयालु। (३) दाता, दानी। (४) श्रेष्ठ। (५) समर्थ योग्य। (६) स्पष्ट, विशद।

सज्ञा पु [स.] (१) ऊँचा स्वर। (२) एक काव्यालकार।

उदान—सज्ञा पु [स] प्राणवायु का एक भेद जिसकी गति हृदय से कठ और सिर के भ्रूमध्य तक है।

वि —उड़े-उड़े, मारे मारे अस्थिर। उ —अब मेरी को बोलै साखि। कैसे हरि के सग सिधारे अब लौ यह तन राखि। प्रान उदान फिरत व्रज वीथिनि अवलोकनि अभिलाषि—२८४७।

उदाम—वि. [स. उद्दाम] (१) उग्र, उद्दंड। (२) स्वतत्र। (३) गभीर।

उदायन—सज्ञा पु. [सं उद्यान=बाग[बाग, वाटिका, उपवन।

उदार—सज्ञा पु. [स] (१) दयालु, दानशील।

यौ.—उदार-उदधि—बहुत दयालु, महानदानी। उ —प्रभु औ देखौ एक सुभाइ। अति-गभीर-उदार-उदधि हरि जान-सिरोमनि राइ—१-८।

(२) महान, श्रेठ। (३) उदार विचारवाला। (४) सरल, सीधा, शिष्ट। (५) अनुकूल।

उदारचरित—वि [स]उच्च आचार विचार रखनेवाला।

उदारचेता—वि. [स. उदारचेत]उदार चित्त वाला।

उदारता—सज्ञा स्त्री.[स] (१) दानशीलता। (२) उच्च विचार, विशालहृदयता।

उदारना—क्रि. स. [स. उदारण] (१) फाडना। (२) ढहाना, नष्ट करना।

उदारी—वि. [स उदार] उदार, दयालु। उ.—धावत कनक—मृगा के पाछैं, राजिव-लोचन परम उदारी—९-१९८।

उदाराशय—वि [स उदार+आशय] उच्च विचारवाला' विशाल हृदय, महात्मा।

उदारौं—क्रि स. [हिं उदारना] तोड फोड दूँ, छिन्न-भिन्न कर दूँ, नष्ट कर डालूँ उ.—जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि तो एहि पुर सहारौं। कहहु तौ लक उदारौं (विदारौं)—९-१०७।

उदास—वि [स.] (१) खिन्न चित्त, दुखी। उ —(क) हरि अमृत लै गए अकास। असुर देखि यह भए उदास—७-७। (ख) रामचन्द्र अवतार कहत है सुनि नारद मुनि पास। प्रगट भयो निस्चर मारन को सुनि यह भयो उदास (२)जिसका चित हट गया हो, विरक्त। उ —(क) राजिव रवि को दोष न मानत, ससि सो सहज उदास—३२१९। (ख) ऐसे रहत उतहिं को आतुर मोसो रहत उदास। सूर स्याम के मन क्रम वच भए रीझे रूप प्रकास—पृ—३३४। (३) जो किसी से सम्बन्ध न रखे, तटस्थ, निरपेक्ष। उ —मै उदास सबसो रहौं इह मम सहज सुभाइ। ऐसोजानै मोहि जो मम माया न रचाइ—१० उ-४७

सज्ञा पु —दुख, खेद।

उद्रासना—क्रि० स० [सं० उद्वासन] (१) उजाड़ना, नष्ट करना। (२) लपेटना।

उदासा—वि० [सं० उदास] (१) जिसका चित्त हट गया हो, विरक्त। उ०—निःगमन जिनमें मम वासा। नारि संग में रहौं उदासा—१० उ० ३२। (२) खिन्न चित्त, दुखी। उ०—अरुणोदय उठि प्रात ही अक्रूर बोलाए।……। सोवत जाइ जगाइ के चलिए नृप पासा। उहै मंत्र मन जानि के उठि चले उदासा—२४७६।

संज्ञा पु०—दुख का प्रसंग दुख की बात। उ०—मन ही मन अक्रूर सोच भारी……। कुवलिया मल्ल मुष्टिक चाणूर से कियो मैं कंस पर अति उदासा—२५५१।

उदासिल—वि० [सं० उदास+हिं० इल (प्रत्य.)] उदास, उदासीन।

उदासी—संज्ञा पु० [सं० उदास+हिं० ई (प्रत्य०)] विरक्त या त्यागी पुरुष, सन्यासी।

संज्ञा स्त्री०—विरक्ति, त्याग। उ०—जोग ज्ञान ध्यान, अवराधन साधन मुक्ति उदासी। नाना प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उपासी—'१०९। (२) खिन्नता, दुख। उ०—बिनु दसरथ सब चले तुरत ही कोसलपुर के बासी। आए रामचन्द्र मुख देख्यो सबकी मिटी उदासी।

वि०—दुखी, विरक्त, त्यागी उदास। उ०—(क) ब्रज वासी सब भए उदासी को सताप हरै—३०४७। (ख) किहि अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भक्ति ते करत उदासी। सूरदास तो कौन विरहिनी मांग मुक्ति छांड़े गुनरासी—३३१५। (२) स्पष्ट, अ।सन्न। उ०—सूर सुनत सुरपती उदासी। देखहु ए आए जल-रासी—१०६१।

उदासीन—वि० [सं०] जिसका चित्त किसी वस्तु या व्यक्ति से हट गया हो, विरक्त। (२) जो किसी के झगड़े में न पड़े, निष्पक्ष तटस्थ। (३) रूखा, उपेक्षा से पूर्ण।

उदासीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्त का हटना, विरक्ति। (२) उदासी, खिन्नता।

उदाहरण-संज्ञा पु० [सं०] दृष्टांत।

उदित—वि० [सं०] (१) जो उदय हुआ हो, निकला हो। उ०—(क) घर अंबर, दिसि-विदिसि, बढ़े अति सायक किरन-समान। मानौ महाप्रलय के कारन, उदित उभय पट भान—९-१५८। (ख) उदित चारु चन्द्रिका अंबर उर अंतर अमृत मई—२८५३। (२) प्रफुल्लित, प्रसन्न। उ०—अति सुख कौसल्या उठि धाई। उदित वदन मन मुदित सदन तें, आरति साजि सुमित्रा ल्याई—९-१६९। (३) प्रकट। (४) उज्ज्वल, स्वच्छ।

उदितयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मुग्धा नायिका जिसमें बचपन का भोलापन शेष हो।

उदियाना—क्रि० अ० [सं० उद्विग्न] घबड़ाना, हैरान होना।

उदीची—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा।

उदीच्य—वि० [सं०] (१) उत्तर दिशा अथवा प्रदेश का रहने वाला। (२) उत्तर दिशा का।

उद्दीपन—संज्ञा पु० [सं० उद्दीपन] (१) उत्तेजित करने की क्रिया, जगाना। (२) उत्तेजित करने की वस्तु।

उद्वेग—संज्ञा पु० [सं० उद्वेग] चित्त की व्याकुलता।

उदै—संज्ञा पु० [सं० उदय] उदय, निकलना या प्रकट होना। उ०—टलै सुमेरु मेघ सिर कौं पश्चिम उदै करै वासरपति। सुनि त्रिजटी, तौहूं नहिं छाड़ौं मधुर मूर्ति रघुनाथ-गात रति—९-८२।

उदौ—संज्ञा पु० [सं० उदय] वृद्धि, उन्नति, बढ़ती, उदय। उ०—(क) तुम्हरो कठिन वियोग विषम दिनकर सम उदौ करै। हरि पद विमुख भए सुनु सूरज को इहि ताप हरै—३४५८। (ख) राधापति नहिं कियो उदौ सुनि या संग गे नहिं आवत—सा० उ० १३।

उदोत—संज्ञा पु० [सं० उद्योत] प्रकाश, दीप्ति। उ०—नव-तन चन्द्र रेख-मधि राजत, सुर गुरु-शुक्र-उदोत परस्पर—१०-९३।

वि०—(१) प्रकाशित दीप्त। (२) उत्तम।

उदोतकर—वि० [सं० उद्योतकर] (१) प्रकाश करने वाला। (२) उज्ज्वल करने वाला।

उदोती—वि० [सं० उद्योत] (१) प्रकाशित। (२) उत्तम।

(३) प्रकाश करने वाला विकाशक ।
संज्ञा पु०—प्रकाश ।

उदौ—संज्ञा पु० [सं० उदय] उदय प्रकटना, जन्म । उ०—नद उदौ सुनि आयो हो, वृषभानु को जगा—१०-३७ ।

उद्—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों के आदि में जुड़कर इन अर्थों की विशेषता लाता है। ऊपर जैसे—उदगमन। अतिक्रमण, जैसे -उत्तीर्ण । उत्कर्ष—जैसे उद्बोधन—जैसे उदगार । प्रधानता—जैसे उद्देश्य । कमी,—जैसे उदासन । प्रकाश,—जैसे उच्चारण । दोष,—जैसे उद्मार्ग (उन्मार्ग) ।
संज्ञा पु०—(१) मोक्ष, सुगति । (२) ब्रह्मा । (३) सूर्य । (४) जल ।

उद्गत—वि० [सं०] (१) उत्पन्न जन्मा हुआ । (२) प्रकट । (३) फैला हुआ व्याप्त ।

उद्गम—संज्ञा पु० [सं०] (१) उदय । (२) उत्पत्ति का स्थान । (३) स्थान जहाँ से नदी निकलती है ।

उद्गार—संज्ञा पु० [सं०] (१) उबाल, उफान । (२) तरल पदार्थ जो सवेग बाहर निकले । (३) घोर शब्द । (४) मन की पुरानी बात जो सतेज और एकबारगी कही जाय । (५) वमन होने क क्रिया और वस्तु । (६) बाढ़, अधिकता ।

उद्गारी—संज्ञा पु० [सं० उद्गारिन]प्रकट करने वाला ।

उद्गीर्ण-वि० [सं०] (१) निकला हुआ, कहा हुआ । (२) उगला हुआ ।

उद्घाट—संज्ञा पु० [सं०] खोलने की क्रिया ।

उद्घाटन—संज्ञा पु० [सं०] (१) खोलना । (२) प्रकट करना, प्रकाशित करना ।

उद्घात—संज्ञा पु० [सं०] (१) धक्का, ठोकर । (२) आरम्भ ।

उद्घातक—वि० [सं०] (१) धक्का देने वाला । (२) आरम्भ करने वाला ।
संज्ञा पु०—सूत्रधार की नाटकीय प्रस्तावना मे उसकी बात का मनमाना अर्थ लगाकर नेपथ्य से कुछ कहना ।

उद्घाती—वि० [सं० उद्घातिन्] (१) ठोकर या धक्का मारने वाला । (२) जो ऊँचा-नीचा या ऊबड़-खाबड़ हो ।

उद्दंड—वि० [सं० उद्दंड] अक्खड़, निडर ।

उद्दाम—वि० [सं०](१) बंधन रहित । (२)उग्र, उद्दंड। (३) स्वतंत्र । (४) महान ।
संज्ञा पुं०—वरुण ।

उद्दित—वि० [सं० उदित] उज्ज्वल, स्वच्छ, प्रकाशपूर्ण, कांतिवान । (क) उ०—नव-मन-मुकुट-प्रभा अति उद्दित, चित्त चकित अनुमान न पावति—१०-७ । (ख) तहँ अरि-पथ-पिता जुग उद्दित वारिज विवि रग मजो आकास—सा० उ० २८ ।

उद्दिष्ट—वि० [सं०](१) दिखाया या संकेत किया हुआ। (२) लक्ष्य, अभिप्रेत ।

उद्दीपक—वि० [सं०] उत्तेजित करने वाला, भावों को उभाड़ने वाला ।

उद्दीपन—संज्ञा पुं०[सं०](१) उत्तेजित करना, जगाना। (२) उत्तेजित करने वाला पदार्थ या वातावरण । (३) रस को उत्तेजित करने वाला विभाव ।

उद्देश—संज्ञा पु० [सं०](१) चाह, इच्छा । (२)कारण, हेतु ।

उद्देश्य—वि० [सं०] इष्ट, लक्ष्य ।
संज्ञा पु०—(१) आशय, अभिप्राय, अभिप्रेत अर्थ । (२) वाक्य मे जिसके विषय मे कुछ कहा जाय, विशेष्य ।

उद्दौत—संज्ञा पु० [सं० उद्योत] प्रकाश ।
वि० –(१) प्रकाशयुक्त चमकीला । (२) उत्पन्न, उदित ।

उद्ध-क्रि० वि० [सं० ऊर्द्ध, पा० उद्ध] ऊपर ।

उद्धत—वि० [सं०] (१) उग्र, प्रचंड । (२) प्रकांड, महान ।

उद्धना—क्रि० अ० [सं० उद्धरण] उड़ना, बिखरना, ऊपर उठना ।

उद्धरण-संज्ञा पु० [सं०] (१) ऊपर उठना । (२) मुक्त होना । (३) दशा अच्छी होना । (४) किसी पुस्तक आदि से उसका कुछ अंश नकल करना । (५) उखाड़ना ।

उद्धरणी—सज्ञा स्त्री [सं. उद्धरण + हिं. ई (प्रत्य)] (१) पाठ का अभ्यास । (२) अभ्यास, रटना ।

उद्धरन—वि [स उद्धरण, हिं. उद्धार, उद्धरना] उद्धार करनेवाले । उ.—(क) गए तरि लै नाम केते, पतित हरि-पुर-धरन । जासु पद-रज-परस गौतम—नारि-गति उद्धरन —१-३०८ । (ख) भक्तबछल कृपारन असरन-सरन पतित-उद्धरन कहै वेद गाई—८-९ । (ग) देखि देखि री नदकुल के उधारी । मातु पितु दुरित उद्धरन, ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन सिर मुकुट धारी—१४०३ ।

उद्धरना—क्रि. स [स उद्धरण] उद्धार करना । क्रि अ — मुक्त होना, छूटना ।

उद्धरि—क्रि स [स. उद्धरण, हिं. उद्धरना] तर गयी, मुक्त हो गयी । उ —जे पद परसि सिला उद्धरि गई, पाडव गृह फिरि आए—५६८ ।

उद्धरिहौ—क्रि. स. [स. उद्धरण, हिं. उद्धार] उबरोगे, मुक्त होगे छुटकारा पाओगे। उ —स्रुति पढि कै तुल नहिं उद्धरिहौ । विद्या वेचि जीविका करिहौ —४-५ ।

उद्धरौ —क्रि स. [स उद्धरण, हिं उद्धरना] उद्धार करो, उबारो । उ — और जो मो पर किरपा करौ । तौ सब जीवनि कौ उद्धरौ—७-२ ।

उद्धव—सज्ञा पु [स] (१) उत्सव । (२) कृष्ण के सखा, ऊधव ।

उद्धार—सज्ञा पु [स.] (१) मुक्ति , छुटकारा, मरण, निस्तार दुख निवृत्ति । उ — (क) अब मिथ्या तप जाप ज्ञान सब, प्रगट भई ठकुराई । सूरदास उद्धार सहज गति, चिता सकल गँवाई—१-२०६ । (ख) धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए । मम उद्धार करन तुम आए—१-३४१ । (ग) बाल गोप बिहाल गाई करत कोटि पुकार । राख गिरिवर लाल सूरज नाथ बिनु उद्धार—सा. ३० । (२) सुधार, उन्नति । (३) ऋण से छूटना ।

उद्धारन—सज्ञा. पु. [स. उद्धार] मुक्ति, छुटकारा, निवृत्ति, निस्तार ।

उद्धारना—क्रि. स [स उद्धार] मुक्त करना, छुटकारा देना ।

उद्धारि—क्रि स [स उद्धार हिं उद्धारना] उद्धार करके, मुक्त करके । उ.—सखासुर मारि कै वेद उद्धारि कै आपदा चतुरमुख की निवारी—८-१७ ।

उद्धारिहौं—क्रि स. [स उद्धार, हिं. उद्धारना] उद्धार या मुक्त करूँगा छुटकारा दूँगा । उ —कस को मारिहौ, धरनि निरवारिहौ, अमर उद्धारिहौ, उरग-धरनी—५५१ ।

उद्धारे—क्रि स. [स उद्धार, हिं उद्धारना] तार दिये, मुक्त किये । उ —दोउ जन्म ज्यौं हरि उद्धारे सा तौ मैं तुमसौं उच्च रे—१०—२ ।

उद्धृत—वि [स.] किसी पुस्तक पत्र आदि से नकल किया हुआ अश) ।

उद्बुद्ध—वि [स] (१) खिला हुआ, विकसित । (२) जगा हुआ । (३) चेतयुक्त सजग ।

उद्बुद्धा—सज्ञा स्त्री. [स] उपपति से स्वय प्रेम करने वाली परकीया नायिका ।

उद्बोधक—वि [स.] (१) ज्ञान करनेवाला सचेत करनेवाला । (२) सूचित करनेवाला । (३) उत्तेजित करनेवाला । (४) जगानेवाला ।

उद्बोधन—सज्ञा पु. [स] (१ चिताना, ध्यान दिलाना । ( ) उत्तेजित करना । (३) जगाना ।

उद्बोधिता—सज्ञा स्त्री [स] उपपति की इच्छा समझ कर प्रेम करने वाली परकीया नायिका ।

उद्भट—वि [स] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । (२) उच्च विचार वाला ।

उद्भव—सज्ञा पु. [स] (१) उत्पत्ति, सृष्टि । (२) वृद्धि, उन्नति, बढती ।

उद्भावन—सज्ञा पु [स.] (१) मन मे विचार लाना । (२) उत्पन्न होना ।

उद्भावना—सज्ञा स्त्री [स.] (१) कल्पना । (२) उत्पत्ति ।

उद्भास—सज्ञा पु [स.] (१) प्रकाश, आभा । (२) मन में कोई बात जन्मना ।

उद्भासित—वि. [स] (१) उत्तेजित । (२) प्रकट, प्रकाशित । (३) प्रतीति, विदित ।

उद्भ्रांत—वि० [सं०] (१) घूमता या चक्कर खाता हुआ। (२) भूला भटका। (३) भौचक्का।

उद्भिज—संज्ञा पुं० [सं० उद्भिज] पृथ्वी से पैदा होनेवाले प्राणी, वनस्पति।

उद्भिद्—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि मे पैदा होने वाले प्राणी, वनस्पति।

उद्भूत—वि० [सं०, उत्पन्न।

उद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाशन। (२) एक काव्यालंकार जिसमे गुप्त बात लक्षित की जाय।

उद्भेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ना, फोड़ना, भेदना।

उद्यत—वि० [सं०] तैयार, उतारू, प्रस्तुत। (२) ताना हुआ।

उद्यम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रयास, प्रयत्न, उद्योग। उ०—(क) अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै। अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै—१-१०५। (ख) साधन, जंत्र, मंत्र, उद्यम, बल, ये सब डरौ धोई। जो कछु लिखि राखी नंदनंदन, मेटि सकै नहिं कोई—१-२६२। (ग) मम सरूप जो सब घट जान। मगन रहै तजि उद्यम आन—३-१३। (२) कामधंधा व्यापार।

उद्यमी—वि० [सं० उद्यमिन] परिश्रमी उद्योगी।

उद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] बगीचा, उपवन।

उद्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्रत के समाप्त हो जाने पर किये जानेवाले हवन, दान आदि कार्य।

उद्युक्त—वि० [सं०] तैयार, तत्पर।

उद्योग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रयत्न, प्रयास। (२) काम धंधा।

उद्योगी—वि० [सं० उद्योगिन्] प्रयत्न करनेवाला।

उद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश, उजाला। उ०—(क) सूरदास प्रभु तौ जीवहिं देखहिं रविहिं उद्योत—३३६०। (ख) दामिनि थिर घनघटा वर कबहूँ ह्वै एहि भाँति। कबहु दिन उद्योत कबहुँ होत अति कुहुराति—सा० उ० ५। (२) चमक, झलक।

उद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना या चमकाना, प्रकट या व्यक्त करना।

उद्रेग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बढ़ती अधिकता। (२) एक काव्यालंकार जिसमें वस्तु के कई गुणो या दोषों का एक के आगे मन्द हो जाना वर्णित होता है।

उद्विग्न—वि० [सं०] घबराया हुआ।

उद्विग्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घबराहट, व्याकुलता या व्यग्रता।

उद्वेग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घबराहट। (२) आवेश। (३) शोक (४) रसशास्त्र मे वियोग की व्याकुलता।

उद्वेजन—संज्ञा पुं० [सं०] घबड़ाना।

उधर—क्रि० वि० [सं० उत्तर] उस ओर, दूसरी ओर।

उधड़ना—क्रि० अ० [सं० उद्धरण = उखड़ना] उखड़ना, तितर-बितर होना। (२) फटना, अलग होना।

उधरत—क्रि० स० [उद्धरण, हिं० उधरना] उद्धार पाता है, मुक्त होता है, छूटता है। उ—धर्म बढ़ै, धर-सयन गग-सुत, तेतिक नाहिं सँतोष। सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष—१-२१५। (ख) उधरत लोग तुम्हारे नाम -११-५।

उधरना—क्रि० स० [सं० उद्धरण] मुक्त होना, छुटकारा पाना। क्रि० स०—मुक्त करना, छुटकारा देना।

उधराइ—क्रि० अ० [हिं० उधराना] हवा मे इधर-उधर उड़कर, बिखरकर। उ०—लोक सकुच मर्यादा कुल की छिन ही मे बिसराइ। व्याकुल फिरति भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराइ—पृ० ३२१।

उधराना—क्रि अ० [सं० उद्धरण] (१) हवा में इधर-उधर उड़ना, बिखरना। (२) ऊधम मचाना।

उधरी—क्रि० स० स्त्री० [सं० उद्धरण, हिं० उद्धार, उधरना] उद्धार पा गयी, मुक्त हो गयी। उ०—गीध व्याध गज गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारो—१-१७८।

उधरै—क्रि० अ० [सं० उद्धरण, हिं० उधरना] उद्धार या छुटकारा पावे, मुक्त हो। उ०—(क) भक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ—३-१३। (ख) राज-लच्छमी मद नहिं होइ। कुल इकीस लौं उधरै सोइ। ७-२। (ग) बिना गुन क्यों पुहुमि उधारै यह करत मन डोर—२९०९।

क्रि० स०—उद्धार या मुक्त करे, छुटकारा दिलावे।

उ.—सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै —६–६ ।

उधरौं—क्रि स. [स. उद्धरण, हिं उद्धरना] उद्धार करूँ, उबारूँ, रक्षा करूँ । उ.—छीर-समुद्र-मध्य तैं यौं हरि दीरघ बचन उचारा । उधरौं धरनि, असुर-कुल-मारौं, धरि नर-तन अवतारा—१०–४ ।

उधर्‌यौ—क्रि स. [स उद्धारण, हिं. उधरना] उद्धार या छुटकारा पाया, मुक्त हुआ । उ.—तिन मैं कहौं एक की कथा । नारायन कहि उधर्‌यौ जथा——६–३ ।

उधार=सज्ञा पु. [स उद्धार] उद्धार, मुक्ति, निस्तार । उ.—इहिं सराप सौं मुक्ति ज्यौं होइ । रिषि कृपालु भाषौ अब सोइ । कह्यौ जुधिष्ठिर देखैं जोइ । तब उद्धार नृप तेरौ होइ—६–७ ।

सज्ञा पु [स. उद्धार=बिना ब्याज का ऋण] ऋण ।

उधारक—वि [सं उद्धारक] मुक्त करनेवाला ।

उधारन—सज्ञा पु [स. उद्धार, हिं उधारना] उद्धार करनेवाले, उद्धारक । उ०—(क) अब कहाँ लौं कहौं एक मुख या मन के कृत काज । सूर पतित, तुम पतित उधारन, गहौ बिरद की लाज—१–१०२ (ख) कापन लागी धरा, पाप तैं ताडित लखि जदुराई। आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीके पाई —१-२०७ ।

उधारनहारे—सज्ञा पु० [हिं० उधारन + हारे] उद्धारक, उद्धार करनेवाले । उ०—अत्र मोसौं अलसात जात हौ अधम उधारनहारे—१-२५ ।

उधारना—क्रि० स० [स०उद्धरण] मुक्त करना, उद्धार करना ।

उधारा—सज्ञा पु० [स०उद्धार] उद्धार, मुक्ति, छुटकारा । उ०—सूरदास सब तजि हरि भजिये जब कब करै उधारा—१०उ०—३६ ।

उधारि—क्रि० स०[स० उद्धरण, हिं० उधारना] उद्धारो मुक्त करो, पोर लगाओ । उ०—अब कैं नाथ, मोहिं उधारि । मगन हौं भव-अबुनिधि मैं, कृपासिधु मुरारि—१–९९ ।

उधारी—वि०[स. उद्धारनि]उद्धार करनेवाला, उद्धारक । उ०—देखि देखि री नदकुल के उधारी । मातु पितु दुरित उद्धरन ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन सिर मुकुट-धारी—१४०३ ।

उधारे—क्रि० स० बहु० [स० उद्धरण, हिं० उद्धार] तार दिये, मुक्त किये (उनका) उद्धार किया । उ —(क) गज, गनिका अरु विप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे—१-१२५ । (ख) अवगाहौ पूरन गुन स्वामी, सूर से अधम उधारे—१-१९७ ।

उधारैं—क्रि० स. [स०उद्धरण, हिं. उधारना] उद्धार या मुक्त करें । उ०—जो-जो मुख हरि-नाम उचारैं । हरि-गन तिहिं तिहिं तुरत उधारैं—६-४ ।

उधारै—क्रि० स०[स० उद्धार, हिं० उधारना]उद्धार करे, मुक्त करे, छुटकारा दिलावे । उ०-तुम बिनु करुना-सिधु और को पृथी उधारै —३—११ ।

उधारौं—क्रि० स० [स० उद्धरण, हिं० उधारना] उद्धार करूँ, मुक्त करूँ । उ०—नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौ अब जु उधारौं—१०–३४२ ।

उधारौ—क्रि० स०[स० उद्धारण, हिं० उधारना] उद्धार करो, मुक्त करो । उ.—(क)सततदीन, महा अपराधी, काहैं सूरज कूर बिसारौ सोकहिं नाम रह्यौ प्रभु तेरौ, बनमाली, भगवान, उधारौ—१–१७२ । (ख) प्रभु मेरे मोसो पतित उधारौ—१–१७८ ।(ग) नाथ सको तौ मोहिं उधारौ—१–१३१ ।

उधार्‌यौ—क्रि स' [हिं, उधारना]उद्धारा, मुक्त किया, रक्षा की । उ०— (क) सकट तैं प्रह्लाद उधार्‌यौ हरिनाकसिपु-उदर नख फारी—१—२२ ।(ख)धरनी-धर बिधि वेद उधार्‌यौ मधु सो सत्रु हयो—२२६४ ।

उधेड़ना—क्रि० स० [स० उद्धरण=उखाड़ना](१)अलग करना, उचाड़ना । (२) सिलाई खोलना । (३) बिखराना ।

उधेड़बुन सज्ञा पु०[हिं० उधेडना + बुनना] (१)सोच-विचार, ऊहापोह । (२) युक्ति सोचना ।

उनंत—वि०[स० उन्नयन] झुका हुआ ।

उन—सर्व [हिं० 'उस' का बहु०] उन्होने । उ०—उन

तौ करी पाछिले की गति, गुन तोरचौ बिच धार—१—१७५।

उनइ—क्रि० अ० [हिं० उनवना] छा जाना, घिरकर, उमडकर। उ०—आजु घन स्याम की अनुहारि। उनइ आए साँवरे ते सजनी देखि रूप की आरि—२८२९।

उनई—क्रि० अ० [हिं० उनवना] घिरी, छा गयी, उमडी। उ०—माया देखत ही जु गई। । सुत सतान-स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई। राखे सूर पवन पाखड हति, करी जो प्रीति नई—१—५०।

उनईस—वि० [हिं० उन्नीस] बीस से एक कम। उ०—जपत अठारहौ भेद उनईस नहिं बीसहू बिसो ते सुखहि पैहै—१२७८।

उनचास—वि० [स० एकोनपचाशत पा० एकोनपचास, उनपचास] पचास से एक कम।

उनतीस—वि० [स० एकोनत्रिंशत, पा० एकुनतीसा,] उन्तीसा] तीस से एक कम।

उनत—सर्व० [हिं० 'उस' का बहु० 'उन'+तैं(प्रत्य)] उनसे।

उनदा—वि० [स० उन्निद] नींद से भरा, उनींदा।

उनदौहाँ—वि० [स० उन्निद, हिं० उनींदा] नींद से ऊँघता हुआ।

उनमत—वि० [स उन्मत्त] उन्मत्त, मतवाला। उ०—(क) निद्रा-वस जो कबहूँ सोवै। मिलि सो अविद्या सुधि-बुधि खोवै। उनमत ज्यो सुख दुख नहिं जानै। जागै वहै रीति पुनि ठानै—४-१२। (ख) बहुरो भरतहि दै करि राजा। रिषभ ममत्व देह को त्याग। उनमत की ज्यो बिचरन लागे। असन-बसन की सुरतिहि त्यागे—५-२।

उनमत्त—वि० [स० उन्मत्त] मतवाला, मदांध। उ०—माधो जू मन सबही बिधि पोच। अति उनमत्त, निरकुस, मैंगल, चितारहित, असोच—१—१०२।

उनमद—वि० [स० उद्+मद] उन्मत्त, मतवाला।

उनमा—वि० [हिं० अनमना] उदास, खिन्न, उचाट चित्त का।

उनमाथना—क्रि० स० [स० उन्मथन] मथना।

उनमाथी—वि० [हिं० उनमाथना] मथनेवाला, बिलोनेवाला।

उनमाद—सज्ञा पु० [स० उन्माद] मतवालापन, पागलपन। उ०—भानुतपन किसान ग्रह के रच्छपालक आप। मद्ध ठाढ़ो होत नदनदन कर उनमाद—सा०—११६।

उनमान—सज्ञा पु० [स०] (१) अनुमान, ध्यान, समझ। उ०—(४) कहिबे मैं न कछू सक राखी। बुधि बिवेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी—३४६९। (ख) सुनि स्रवन उनमान करति हौं निगम नेति यह लखनि लखी री—२११३। (२) अटकल।

सज्ञा पु० [स० उद्+मान] (१) नाप, थाह, परिणाम। उ०—आगम निगम नेति करि गायौ, सिव उनमान न पायौ। सूरदास बालक रसलीला यह अभिलाष बढायौ। (२) शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता।

वि०— तुल्य, समान। उ०—(क) तुव नासापुट गत मुक्ताफल अधर बिंब उनमान। गजाफव सबके सिर धारत प्रकटी मीन प्रमान। (ख) उरग-इदु उनमान सुभग भुज पानि पदुम आयुध राजैं—१-६९।

उनमानना—क्रि० स० [हिं० उनमान] अनुमान करना, सोचना समझना।

उनमीलत—वि०—[स० उन्मीलित] स्पष्ट, प्रकट, खुला, हुआ। उ०—बाँसुरी तैं जान मोको परो ना सुत सोइ। सूर उनमीलत निहारो कहे का मति भोइ—सा० ७७।

सज्ञा पु०—एक काव्यालंकार जिसमे दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता हो, पर केवल थोड़ी बात का ही उनमे भेद दिखायी दे।

उनमुना—वि० [स० अन्यमनस्क, हिं० अनमना] मौन चुप।

उनमुनी—सज्ञा स्त्री० [स० उन्मनी] हठयोग की एक

मुद्रा जिसमे भौं को ऊपर चढाते और दृष्टि को नाक का नोक पर गड़ाते हैं ।

उनमूलना—क्रि० स० [सं० उन्मूलन] उखाडना ।

उनमेखना—क्रि० स० [सं० उन्मेष] (१) आंख खुलना । (२) खिलना, फूलना ।

उनमेद—संज्ञा पु० [सं० उद् + मेद = चरबी] पहली वर्षा के पश्चात जल में उत्पन्न जहरीला फेन जिससे मछलियाँ मर जाती हैं, माँजा । उ०—इन्द्री-स्वाद बिबस निसि बासर आपु अपुनपौ हारचौ । जल उनमेद मीन ज्यौं बपुरो पाँव कुल्हारो मारचौ ।

उनय—क्रि० अ० [हिं० उनवना] झुकती है, लटक रही है ।

उनयो—क्रि० अ० [हिं० उनवना] छाये, घिर आये । उ०—(क) आजु सखी अरुनोदय मेरे नैनन धोख भयौ । की हरि आजु पथ यहि गौने कीधौं स्याम जलद उनयो—१६२८ । (ख) नेक मोहिं मुसुकात जानि मनमोहन मन सुख आन्ययो । मानो दव द्रुम जरत आस भयो उनयो अंबर पान्यो—२२७५ ।

उनरत—क्रि० अ० [हिं० उनरना] उठता है, उमड़ता है ।

उनरना—क्रि० अ० [सं० उन्नरण] उठना, उभडना ।

उनरी—क्रि० अ० [हिं० उनरना] उमडी, उमड उमड़ कर आयी ।

उनरोगी—क्रि० अ० [हिं० उनवना] उठोगी, उमड़ोगी, झुकोगी, प्रवृत्त होगी ।

उनवत—क्रि० अ० [हिं० उनवना] घिरकर, चारो ओर छा जाती है ।

उनवना—क्रि० अ० [सं० उन्नमन] (१) झुकना, लटकना । (२) छा जाना, घिर आना । (३) ऊपर गिरना, टूट पड़ना ।

उनवर—वि० [सं० ऊन = कम] कम, तुच्छ ।

उनवा—क्रि० अ० [हिं० उनवना] टूट पड़ा, ऊपर आ पड़ा ।

उनवान—संज्ञा पु० [सं० अनुमान] सोच, ध्यान, समझ ।

उनसठ—वि० [सं० एकोनषष्ठि, प्रा० एकुनसटि, उनसट्टि] पचास और नौ ।

उनहार—वि० [सं० अनुसार, प्रा० अनुहार] समान, तुल्य, सदृश । उ०—नैननि निपट कठिन ब्रत ठानी ।··· । समुझि समुझि उनहार स्याम को अति सुन्दर वर सारँगपानी । सूरदास ए मोहि रहे अति हरि मूरति मन माँझ समानी—३०३७ ।

उनहारि—संज्ञा स्त्री० [हिं० उनहार] समानता, एकरूपता ।

वि०—समान, सदृश । उ०—तामैं एक छबीलो सारंग अध सारंग उनहारि—सा० उ० २ ।

उनहीं—सर्व० ['उस' का बहु०] उन्हीं ।

उनाना—क्रि० स० [सं० उन्नमन] (१) झुकाना । (२) प्रेरित या प्रवृत्त करना । (३) सुनना, ध्यान देना आज्ञा मानकर काम करना ।

उनि—सर्व० [हिं० उन] उन्होंने । उ०—कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए ? उनि कह्यौ, रिषि किरपा तैं जाए—९-१७४ ।

उनिहारि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुसार, प्रा० अनुहारि] समानता, एकरूपता ।

उनिहारी—वि० [सं० अनुसार, प्रा० अनुहार, हिं० उनहार] सदृश, समान । उ०—तव चितामनि चितै चित्त इक बुधि बिचारी । बालक बच्छ बनाइ रचे वेही उनहारी—४९२ ।

उनिहारे—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुसार, प्रा० अनुहारि, हिं० उनहार] समानता, एकरूपता ।

उनींदा—वि० [सं० उन्निद्र] नींद से भरा हुआ, ऊँघता हुआ ।

उनींदे—वि० बहु० [हिं० उनींदा] नींद से भरे हुए, ऊँघते हुए । उ—(क) बछरा-वृंद घेरि आगैं करि जन-जन सृंग बजाए । जनु बन कमल सरोवर तजिकैं, मधुप उनींदे आए—४३२ । (ख) स्याम उनींदे जानि मातु रचि सेज बिछाई । तापर पौढ़े लाल अतिहिं मन हरष बढाई—४३७ ।

उनै—सर्व० सवि० [हिं० उन] उनसे, उनको ।

क्रि० अ० [सं० उन्नमन, हिं० उनवना] उमड़ उमड़ कर, घिरकर, छाकर । उ०—उनै घन बरषत चख उर सरित सलिल भरी—२८१४ ।

उन्नत—वि० [स.] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ। उ०—(क) गोबिंद कोपि चक्र कर लीन्हों। .. । कछुक अग तैं उडत पीतपट, उन्नन बाहु बिसाल—१-२७३। (ख) आवहु वेगि सकल दुहुँ दिसि तैं कत डोलत अकुलाने। सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर, हरषि सबै समुहाने—५०३। (२) बढा हुआ। (३) श्रेष्ठ, बडा।

क्रि० वि०—ऊपर की ओर। उ०—हुतासन ध्वज उमँगि उन्नत चलेउ हरि दिसि बाउ—२७१५।

उन्नति—संज्ञा स्त्री. [स०] (१) ऊँचाई, चढाव। (२) वृद्धि, बढ़ती।

उन्नाय—संज्ञा पु० [स०] (१) ऊपर ले जाना, उठाना। (२) सोच विचार।

उन्नायक—वि० [स०] (१) ऊपर उठानेवाला। (२) बढाने वाला।

उन्निद्र—वि० [सज्ञा.] (१) निद्रा रहित। (२ जिसे निद्रा न आयी हो। (३) खिला हुआ, फूला हुआ।

उन्नैना—क्रि० अ० [स० उन्नयन] झुकना।

उन्मत्त—वि० [स०] मतवाला, मदाध। उ०—ते दिन बिसरि गये इहाँ आए। अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यो, फिरत केस बगराए—१-३२०। (२) जो आपे मे न हो, बेसुध। (३) पागल, बावला, मत वाला।

उन्मत्तता—संज्ञा स्त्री० [स०] मतवालापन।

उनमनी—संज्ञा स्त्री० [स०] हठयोग की एक मुद्रा जिसमे दृष्टि को नाक की नोक पर गाडते और भौंह, को ऊपर चढाते हैं।

उन्माद—संज्ञा पु० [स०] (१) पागलपन। (२) एक सचारी भाव जिसमे वियोग दुख आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

उन्मादक—वि० [स०] (१) पागल बनाने वाला। (२) नशा करने वाला।

उन्मादन—संज्ञा पु० [स०] (१) मतवाला करने की क्रिया। (२) कामदेव का एक बाण।

उन्मादी—वि० [स० उन्मादिन्] उन्मत्त, पागल।

उन्मार्ग—संज्ञा पु० [स०] (१) कुमार्ग। (२) बुरा आचरण।

उन्मार्गी—वि० [स० उनमार्गिन्] बुरे आचरण वाला, कुमार्गी।

उन्मीलन—संज्ञा पु० [स०] (१) नेत्र का खुलना। (२) खिलना, विकसित होना।

उन्मीलना—क्रि० स० [स० उन्मीलन] खोलना।

उन्मीलित—वि० [स०] खुला हुआ।

संज्ञा पु०—एक काव्यालकार जिसमे दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता वर्णित हो और अतर केवल एक छोटी बात का रह जाय।

उन्मुख—वि० [स०] (१) ऊपर मुँह करके ताकता हुआ। (२) उत्सुक। (३) तैयार, प्रस्तुत।

उन्मूलक—वि० [स०] जड से नाश करने वाला।

उन्मूलन—संज्ञा पु० [स०] जड से नाश करना।

उन्मेख—संज्ञा पु० [उन्मेष] (१) आँख का खुलना, (२) फूल खिलना। (३) प्रकाश।

उन्मेष—संज्ञा पु० [स०] (१) आँख का खुलना। (२) खिलना। थोडा प्रकाश।

उन्हानि—संज्ञा स्त्री० [हिं० उन्हारि] समता, बराबरी।

उपंग—संज्ञा पु० [स० उपाग] (१) एक बाजा, नस तरग। उ०—(क) उघटत स्याम नृत्यत नारि। धरे अधर उपग उपजै लेत हैं गिरिधारि—पृ० ३४६ (४५)। (ख) बीज मुरज उपग मुरली झाँझ झालरि ताल। पढत होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजलाल—२४१५। (ग) डिमडिमी पतह ढोल डफ बीणा मृदग उपग चग तार। गावत है प्रीति सहित श्रीदामा व ढ्यो है रग अपार—२४४६। (१) ऊधव के पिता एक यादव।

उपँगसुत } संज्ञा पु० [स०] उपंग का पुत्र, ऊधव जो
उपंगसुत } श्रीकृष्ण का सखा था। उ०—(क) हरि गोकुल की प्रीति चलाई। सुनहु उपँगसुत मोहि न बिसरत ब्रज निवास सुखदाई। (ख) कहत हरि सुन उपँगसुत यह कहत हो रसरीति—१९१६।

उपत—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पन्न] उत्पन्न, पैदा, जन्मा।

उप—[स०] समीपता, सामर्थ्य, न्यूनता आदि अर्थों का द्योतक एक उपसर्ग।

उपकरण—सज्ञा पु० [सं.] (१) साधन, सामग्री । (२) छत्र-चँवर आदि राजचिह्न ।

उपकरन—सज्ञा पु० [स० उपकरण] सामग्री, सामान ।

उपकरना—क्रि० स० [स० उपकार] भलाई करना ।

उपकार—सज्ञा पु० [सं०] (१) भलाई । (२) लाभ ।

उपकारिनि—सज्ञा स्त्री० [स० उपकारिणी] उपकार करनेवाली । उ०—तोसी नही और उपकारिनि यह बसुधा सब बुधि करि हेरी—२७५२ ।

उपकारी—वि० [सज्ञा उपकारिन्] (१) भलाई करनेवाला । (२) लाभ पहुँचाने वाला ।

उपकूल—सज्ञा पु० [स०] (१) किनारा, तट । (२) किनारे या तट की भूमि ।

उपक्रम—सज्ञा पुं० [स०] (१) कार्यारंभ । (२) भूमिका । (३) तैयारी ।

उपक्रमण—संज्ञा पु० [स०] (१) आरंभ, उठान । (२) तैयारी । (३) भूमिका ।

उपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] भलाई ।

उपखान—संज्ञा पु० [स० उपाख्यान] पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत । उ०—मोसो बात सुनहु ब्रजनारि । एक उपखान चलत त्रिभुवन मे तुमसो आजु उघारि —१०९९ ।

उपगति—सज्ञा स्त्री. [स०] (१) प्राप्ति । (२) ज्ञान ।

उपचय—सज्ञा पु• [स०] (१) वृद्धि, उन्नति । (२) सचय ।

उपचर्या—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) सेवा, पूजा । (२) चिकित्सा ।

उपचरना—सज्ञा पु० [स० उपचरण] (१) पास जाना । (२) सेवा या पूजा करना ।

उपचार—सज्ञा पु० [स०] चिकित्सा, दवा, इलाज । उ०—(क) जा कारन तुम यह बन सेयो, सो तिय मदन भुअगम खाई । .... । ताहि कछू उपचार न लागत, करी मीडै सहचरि पछिताई—७४८ । (ख) दिसिअति कालिंदी अति कारी । अहो पथिक कहियो उन हरि सो भई बिरह ज्वर जारी । । तट बारू उपचार चूर जल परी प्रसेद पनारी—२७२८ । (ग) आपुन को उपचार करौ कछु तउ औरन सिख देहु । बडो रोग उपज्यो है तुमको मौन-सबारे लेहु—३०१३ । (घ) आगम सुख उपचार विरह ज्वर बासर-ताप नसावते—२७३५ । (२) सेवा । (३) व्यवहार, प्रयोग । (४) पूजा के सोलह अग—आवाहन, आसन, अर्घपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गध, (चंदन), पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताबूल, परिक्रमा, वंदना । (५) खुशामद । (६) घूस ।

उपचारना—क्रि स. [स. उपचार] (१) काम मे लाना । (२) विधान करना ।

उपचारे—क्रि स [हिं उपचारना] (१) चिकित्सा करे, इलाज करे । उ —बिरही कहाँ लौ आपु सँभारे । ......। सूरदास जाके सब अग बिछुरे केहि बिधा उपचारे—३१८९ । (२) विधान करे । उ.—घर घर ते आई ब्रज सुन्दरि मगल काज सँवारे । हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र उपचारे । (३) काम में लाये, व्यवहार करे ।

उपचित—वि [सं.] (१) बढा हुआ (२) संचित ।

उपज—सज्ञा पु [स.] (१) उत्पत्ति, पैदावार । (२) नयी उक्ति । सूझ । (३) मनगढंत । (४) गान में राग की निश्चित तानो के अतिरिक्त नयी तानें अपनी ओर से मिलाना । उ—उर बनमाला सोहै सुन्दर बर गोपिन के सग गावै । लेत उपज नागर-नागरि संग बिच बिच तान सुनावै—पृ. ३५१-(७०) ।

उपजत—क्रि अ [हिं उपजना] उत्पन्न होता है, पैदा होता है, मिलता है । उ.—मोहन के मुख ऊपर वारी । देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार तातै बलिहारी—१-३०

उपजति—क्रि अ स्त्री. [हिं उपजना] पैदा होती है, उत्पन्न होती है । उ—चितवत चलत अधिक रुचि उपजति, भँवर परति सब अग—६२८ ।

उपजना—क्रि अ. [स उपज] उगना, पैदा होना ।

उपजाइ—क्रि अ [हिं उपजाना] (१) उत्पन्न करता हैं, पैदा करके । उ.—यह वर दै हरि कियौ उपाइ । नारद-मन-ससय उपजाइ- १-२२६ । (२) ध्यान मे लगाकर - उ.—करौ जतन, न भजौ तुमको, कछुक

मन उपजाइ । सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ-१ ४५ ।

उपजाई—क्रि स स्त्री० [हिं. उपजना, का स. रूप, 'उपजाना'] उत्पन्न की, पैदा की । उ —अजहुँ लौं मन मगन काम सौं बिरति नाहिं उपजाई-१-१८७ ।

उपजाऊँ—क्रि. स. [हिं उपजाना] उत्पन्न या पैदा करूँ । उ —सकट परें जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाउँ । जन्महिं तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित उपजाऊँ—९ १३२ ।

उपजाऊ—वि. [हिं उपज + आऊ (प्रत्य)] जिसमें अच्छी उपज हो उर्वरा ।

उपजाए—क्रि. स. [हिं. उपजाना ('उपजाना' का स. रूप)] (१) उत्पन्न किये, पैदा किये । उ —गो सुत अरु नर-नारि मिले अति हेत लाइ गई । प्रेम सहित वे मिलत है जे उपजाए आजु—४३७ । (२) प्रदान किया, दिया । उ —गिरि कर धारि इंद्र-मद मर्द्यो, दासनि सुख उपजाए—१-२७ ।

उपजाना—क्रि स [हिं. 'उपजना' का सक] उत्पन्न करना ।

उपजाया—क्रि स भूत [हिं. उपजाना] उत्पन्न किया, रचा । उ —पचतत्व तैं जग उपजाया—१० ३ ।

उपजायौ—क्रि स भूत. [हिं. 'उपजना' का स रूप 'उपजाना'] उत्पन्न किया, पैदा किया । उ० —नर-तन, सिंह-वदन, वपु कीन्हौ, जन लगि भेष बनायौ । निज जन दुखी जानि भय तैं अति, रिपु हति, सुख उपजायौ—१-१९० ।

उपजावत—क्रि स. [हिं. उपजना का स. रूप 'उपजाना'] उत्पन्न करता है, पैदा करता है, स्थिति-विशेष उपस्थित करता है । उ —(क) मन्त्री काम-क्रोध निज, दोऊ अपनी-अपनी रीति । दुविधा-दुंद रहै निसि-वासर, उपजावत विपरीत—१-१४१ । (ख) नंदनंदन बिनु कपट कथा एकन कहि रुचि उपजावत—२९८९ ।

उपजावहु—क्रि स [हिं उपजना] उत्पन्न करो, पैदा करो । उ —तारी देहु आपने कर की परम प्रीति उपजावहु—१० १७९ ।

उपजावै—क्रि. स. [हिं. उपजना का स रूप उपजाना] उत्पन्न करता है । उ —(क) परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै—१-२ । (ख) पुरुष वीर्य सौं तिय उपजावै—३-१३ । (ग) मन में रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे—४१९ ।

उपजि—क्रि अ [स. उपज, हिं. उपजना] उत्पन्न होकर, पैदा होकर । उ.—उपजि पर्यौ, सिसु कर्म-पुन्य-फल समुद्र-सीप ज्यौं लाल—१०-१२८ ।

मुहा—उपजि परी —सामने आयी, ज्ञात हुई, जान पड़ी । उ०—तनु आत्मा समर्पित तुम कहँ पाछे उपजि परी यह बात —१० उ —११ ।

उपजी—क्रि अ० बहु० [हिं० उपजना] जन्मीं पैदा हुई । उ —दच्छ के उपजी पुत्री सात—४-३ ।

उपजी—क्रि अ स्त्री [हिं. उपजना] उत्पन्न हुई, पैदा हुई । (क) भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ—१-६५ । उ.—(ख) काढि काढि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी लाज—१—२५५ । (ग) विषय-विकार दवानल उपजी, मोह बयारि लई —१-२९९ । (घ) सूरदास मोहन मुख निरखत उपजी सकल तन काम गुँभी —१४४६ ।

उपजे—क्रि. अ० बहु. [हिं० उपजना] (१) उत्पन्न हुए, जन्मे, पैदा हुए । उ —दस सुत मनु के उपजे और । भयौ इच्छवाकु सबनि सिरमौर—९-२ । (२) उपजने पर, उत्पन्न होने पर । उ०—समुझि न परत तुम्हारी ऊधो । ज्यौं त्रिदोष उपजे जक लागत पोलत वचन न सूधो—३०१३ ।

उपजैं—सज्ञा पु० [स० उपज] गाने मे राग की निश्चित तानों के अतिरिक्त नयी ताने मिलाना । उ०—धरि अधार उमग उपजैं लेत हैं गिरिधारि —पृ० ३४६ (४५) ।

उपजै—क्रि० अ० [हिं० उपजना] उपजता है, उत्पन्न होता है । उ०—(क) जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२९ । (ख) प्रेम-कथा अनुदिन सुनै (रे) तऊ न उपजै ज्ञान—१-३२५ । (ग) ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान—३-१३ ।

उपजैहै—क्रि० स०[हिं० उपजाना]उत्पन्न करेगा। उ०—बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहै—सा० ८१।

उपजौ—क्रि० अ०[हिं० उपजना]उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ। उ०—अब मेरी राखौ लाज मुरारी। सकट मैं इक सकट उपजौ, कहै मिरग सौं नारी—१-२२१।

उपज्यौ—क्रि० अ० [हिं० उपजना] उत्पन्न किया हुआ। जन्मा, पैदा हुआ। उ०—(क) गनिका उपज्यौ पूत सो कौन को कहावै—२-९। (ख) बडो रोग उपज्यौ है तुमको मौन सवारे लेहु—३०१३।

उपटना—क्रि०अ०[सं० उत्पट =पट के ऊपर अथवा उत्पतन +ऊपर उठना] (१) चिह्न बनना, निशान पड़ना। (२) उखडना।

उपटाना—क्रि० अ० [हिं० 'उपटना' का प्रे०] उबटन लगवाना।

क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखाड़कर।

उपटाय—क्रि० स०[हिं० उपटाना] उखाडकर, तोडकर। उ०—द्विरद को दंत उपटाय (उपठाय) तुम लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारचौ—२६०२।

उपटारना—क्रि० स० [सं० उत्पटन] उठाना, हटाना।

उपटारि—क्रि० स० [हिं० उपटारना] उठाकर, हटाकर। उ०—कोकिल हरि को बोल सुनाव। मधुबन तैं उपटारि (उपठारि) स्याम को यहि ब्रज लै करि आव—२८५१।

उपठाय—क्रि० स० [सं० उत्पाटन, हिं० उपटाना]उखाड़कर। उ०—द्विरद को दंत उपठाय (उपटाय) तुम लेत हो उहै बल आज काहे न सँभारचो-२६०२।

उपठारि—क्रि० स० [सं० उत्पटन, हिं० उपटारना] उठाकर, हटाकर। उ०—कोकिल हरि को बोल सुनाव। मधुबन से उपठारि (उपटारि) स्याम को यहि ब्रज लै करि आव—२८५१।

उपदंस—सज्ञा पु० [सं० उपदंश] मद्य की ऊपरी वस्तु, चाट। उ०—राधिका हरि अतिथि तुम्हारे। अधर सुधा उपदंस सीक सुचि विधु पूरन मुख बास सँचारे।

उपदेश—सज्ञा पु० [सं०] (१) हित की बात, शिक्षा। (२) दीक्षा, गुरुमंत्र।

उपदेशना—क्रि० स० [सं० उपदेश] (१) शिक्षा देना। (२) दीक्षा देना।

उपदेस—सज्ञा पु० [सं० उपदेश] शिक्षा। उ०—सतगुरु हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवारचौ—१-३३६।

उपदेसत—क्रि० स०[सं० उपदेश, हिं० उपदेशना]सिखाते हैं, शिक्षा देते हैं। उ०—(क) गोविन्द-भजन करौ इहि बार। संकर पारवती उपदेसत, तारक मंत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार—२-३। (ख) जद्यपि अलि उपदेसत ऊधो पूरन ज्ञान बखानि। चित चुभि रही मदन मोहन की जीवन मृदु मुसुकानि—३२१४।

उपदेसना—क्रि० स० [सं० उपदेश + ना (प्रत्य०)] शिक्षा देना।

उपदेसैं—सज्ञा पु० [हिं० उपदेशना] उपदेश देने पर, उपदेशो से। उ०—जैसैं अधौ अध कूप मैं गनत न खाल-पनार। तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार—१-८४।

उपदेसौं—क्रि० अ०[सं० उपदेश, हिं० उपदेशना]उपदेश या शिक्षा दूँ, समझाऊँ। उ०—अब मैं याकौ दृढ देखौं। लखि बिस्वास, बहुरि उपदेसौं—४९।

उपदेस्यौ—क्रि० स० [हिं० उपदेशना] शिक्षा दी, सिखलाया। उ०—तुम हमको उपदेस्यौ धर्म। ताको कछू न पायो मर्म—१८१२।

उपद्रव—सज्ञा पु० [सं०] (१) उधम, गड़बड। उ०—इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ—४-५। (२) उत्पात, हलचल, विप्लव।

उपधरना—क्रि० अ० [सं० उपधरण =अपनी ओर आकर्षित करना] अपनाना, शरण मे लेना।

उपधान—सज्ञा पु० [सं०] (१) सहारे की चीज। (२) तकिया गेड़ुआ। (३) प्रेम।

उपनंद—सज्ञा पु० [सं०] व्रजाधिप नंद के छोटे भाई।

उपनना—क्रि० अ० [हिं० उपजना] पैदा होना।

उपनय—सज्ञा पु० [सं०] पास ले जाना।

उपनयन—सज्ञा पु० [सं०] (१) पास ले जाना। (२) यज्ञोपवीत, संस्कार।

उपना—क्रि० अ० [सं० उत्पन्न] पैदा होना।

उपनियाँ—क्रि० अ० [हिं० उपनना] पैदा हुई, उपजी, उत्पन्न हुई, जन्मी। उ०—कुटिल भृकुटि, सुख की

निधि आनन, कल कपोल की छबि न उपनियां—१० १०६।

उपनिषद्—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण ग्रंथो के वे अंतिम भाग जिनमें आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध निरूपण मिलता है। इनकी संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इन्हें १८ मानता है तो कोई १०८।

उपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेल मिलाना, चरितार्थ होना। (२) युक्ति।

उपप्लव—संज्ञा पु० [सं०] (१) उत्पात, हलचल। (२) विघ्न, बाधा।

उपबन—संज्ञा पु० [सं० उपवन] (१) बाग, बगीचा। (२) छोटे-मोटे जगल।

उपभोग—संज्ञा पु० [सं०] (१) वस्तु के व्यवहार का आनन्द। (२) सुख या विलास की वस्तु।

उपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सादृश्य, समानता, तुलना, मिलान। उ०—(क) सूरदास-प्रभु भक्त-वछल हैं, उपमा को न बियो—१-३८। (ख) परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ। काकों तिनको उपमा दीजै, देह धरें वो कोइ—९-४५। (ग) अजिर पद-प्रतिबिंब राजत चलत उपमा-पुंज। प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज—१०-११८। (२) एक अलंकार जिसमें दो भिन्न वस्तुओ में समान धर्म बताया जाय।

उपमाइ—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा, सादृश्य तुलना पटतर। उ०—मुक्तमाल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ। मनो तारा-गगनि वेष्ठित गगन निसि रह्यो छाइ—१०-२३४।

उपमान—संज्ञा पु०—[सं०] वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय। उ०—प्रथम डार उपमान कहा मुख बैठी-मन्त्र सु-डारो—सा० २०।

उपमेय—संज्ञा पु० [सं०] वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। उ०—(क) तीन दस कर एक दोऊ आप ही मे दोर। पच को उपमान लीनो दाव आपुन तोर—सा० १०१। (ख) भामिन आजु भवन में बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन में धनु उपमेय उमेठी—सा० ११२।

उपयुक्त—वि० [सं०] ठीक; उचित।

उपयोग—संज्ञा पु० [सं०] (१) प्रयोग, व्यवहार। (२) योग्यता। (३) आवश्यकता।

उपर—क्रि० वि० [सं० उपरि, हिं० ऊपर] पर, ऊपर उ०—(क) नैन कमल-दल विशाल, प्रीति-बापिका मराल, मदन ललित वदन उपर कोटि वारि डारे—१०-२०५। (ख) सूर प्रभु नाम मुनि मदन तन बल भयो अंग प्रति छबि उपर रमा-दासी—१८९४।

उपरना—संज्ञा पु० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] ओढ़ना, दुपट्टा, चद्दर। उ०—(क) पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहे (हो)—१-४४। (ख) लियो उपरना छीनि दूरि डारनि अटकायो—११२४।

क्रि० स०— [सं० उत्पन्न] उखड़ना।

उपरफट—वि० [सं० उपरि+स्फुट] ऊपरी, इधर-उधर का, व्यर्थ का, निष्प्रयोजन। उ०—बाहँ तुम्हारी नैंकु न छांडौं, महर खीझिहैं हमकौं। मेरी बाहँ छाडि दै राधा, करत उपरफट-बातै। सूर स्याम नागर, नागरि सौं करत प्रेम की घातैं—६८१।

उपरफट्ट—वि० [सं० उपरि+स्फुट] (१) ऊपर का, अलग का। (२) व्यर्थ का, निष्प्रयोजन।

उपरांत—क्रि० वि० [सं०] अनंतर, बाद।

उपराग—संज्ञा पु० [सं०] (१) रंग। (२) वासना, विलास की इच्छा। (३) चन्द्र या सूर्य-ग्रहण। उ०—बिनु परवहि उपराग आजु हरि तुम है चलन कह्यौ। को जानै उहि राहु रमापति कत ह्वै सोच लह्यौ—२५२७।

उपरागा—संज्ञा पु० [सं० उपराग] चन्द्र या सूर्य-ग्रहण।

उपराज—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपज] पैदावार।

उपराजना—क्रि० स० [सं० उपार्जन] (१) पैदा करना, उपजाना। (२) बनाना, रचना। (३) उपार्जन करना।

उपराजा—क्रि० स० [हिं० उपराजना] रचा, बनाया।

उपराजी—क्रि० स० [हिं० उपराजना] पैदा की, उत्पन्न की। उ०—बांधो सुरति सुहाग सवन को हरि मिलि प्रीति उपराजी—३०९४।

उपराजै—क्रि० स० [हिं० उपराजना] उत्पन्न करे। (२) उपार्जन करे।

उपराना—क्रि० अ० [स० उपरि] (१) प्रकट होना। (२) उतराना।
क्रि० स०—उठाना, ऊपर करना।

उपराम—सज्ञा पु० [स०] (१) त्याग, विरक्ति। (२) आराम, विश्राम। (३) छुटकारा।

उपराला—सज्ञा पु० [हिं० ऊपर + ला (प्रत्य०)] सहायता, रक्षा।

उपरावटा—वि० [स० उपरि + आवर्त्त] गर्व से सिर ऊँचा किये हुआ, अकड़ता हुआ।

उपराहना—क्रि० स० [देश०] बड़ाई करना।

उपराही—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] ऊपर।
वि०—श्रेष्ठ, बढ़कर।

उपरि—क्रि० वि [स०] ऊपर।

उपरी-उपरा—संज्ञा पु० [हिं० ऊपर] (१) एक वस्तु के लिए कई आदमियो का प्रयत्न। (२ होड़, स्पर्द्धा, प्रतियोगिता।

उपरैना—सज्ञा पु० [हिं० ऊपर + ना (प्रत्य०)] दुपट्टा, चद्दर। उ०—(क) सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे-१०८। (ख) तब रिस धरि सोई उत मुख करि झुकि झांक्यो उपरैना माथ —२७३६।

उपरैनी—सज्ञा स्त्री० [स० उत् + परणी] ओढनी।

उपरोध—सज्ञा पु० [स०] (१) रुकावट, अटकाव। (२) ढकना, आड़।

उपरौना—सज्ञा पु० [हिं० उपरना] दुपट्टा, चादर।

उपल—सज्ञा पु० [स०] (१) पत्थर। उ०—हिम के उपल तलाई अत ते याके जुगुत प्रकासो—सा० १०५। (२) ओला। (३) मेघ।

उपलक्ष्य—सज्ञा पु० [स०] (१) सकेत। (२) उद्देश्य।

उपलै—सज्ञा पु० (स० उपल] पत्थर, उपल। उ०—इहि विधि उपलै तरत पान ज्यौ, जदपि सैल अति भारत। बुद्धि न सकति सेतु रचना रचि, राक प्रताप बिचारत —९-१३।

उपवन—सज्ञा पु० [स०] बाग, फुलवारी। उ०—उपवन बन्यो चहूँधा पुर के अति ही मोको भावत—२५५९।

उपवना—क्रि० अ० [स० उप + यमन] उड़ जाना, लोप हो जाना।
क्रि० अ० [स० उदय] उगना, उदय होना।

उपवास—सज्ञा पु० [स०] भोजन न करना।

उपवीत—सज्ञा पु० [स०] जनेऊ। (२) यज्ञोपवीत संस्कार।

उपशम—सज्ञा पु० [स०] (१) वासना को दबाना, इन्द्रियो को वश मे करना। (२) निवारण करना, दूर करना।

उपसंहार—सज्ञा पु० [स०] (१) समाप्ति। (२)पुस्तक का अतिम अध्याय। (३) सार, सारांश।

उपसुंद—सज्ञा पु० [स०] एक दैत्य जो सुंद का छोटा भाई था। ये दोनो परस्पर युद्ध करके एक दूसरे के हाथ से मारे गये थे।

उपस्थान—सज्ञा पु० [स०] (१) सामने आना। (२) खडे होकर स्तुति या पूजा करना। (३) पूजा का स्थान। (४) सभा।

उपस्थित—वि० [स०] (१) सामने या पास आया हुआ। (२) विद्यमान, मौजूद।

उपहार—सज्ञा पु० [स०] भेंट, नजराना। उ०—(क) सुन्दर कर आनन समीप, अति राजत रहिं आकार। जलरुह मनो बैर बिधु सौं तजि मिलत लए उपहार—३८३। (ख) आये गोप भेंट लै लै के भूषन-बसन सोहाए। नाना विधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए।

उपहास—सज्ञा पु [स०] (१) हँसी, ठट्ठा। (२) निंदा, बुराई। उ०—(क) निंदा जग उपहास करत, मग वदीजन जस गावत। हठ, अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१। (ख) सूरदास स्वामी तिहुँ पुर के, जग उपहास डराइ—९-१६१। (ग) घेरि राखे हमहिं नहिं बूझे तुमहिं जगत मे कहा उपहास तैहो—२६०५। (घ) हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।...। गुरुजन कानि अगिन चहुँदिसि नभ तरनि ताप बिनु देखे। पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस स्रवन अलेखे—३०१४।

उपहासी—सज्ञा स्त्री० [सं० उपहास] (१) हँसी। निंदा।

उपही—सज्ञा पु० [हिं० ऊपरी] अपरिचित या अजनबी व्यक्ति ।

उपांग—सज्ञा पु० [स०] (१) अंग का भाग । (२) तिलक, टीका । (३) एक प्राचीन बाजा ।

उपाइ—सज्ञा पु० [स० उपाय] (१) युक्ति, साधन उपाय । उ०—(क) अबकी बार मनुष्य देह धरि, कियौ न कछू उपाय—१-१०५ । (ख) यह वर दै हरि कियौ उपाइ । नारद मन-ससय उपजाइ—१-२२६ । (२) शत्रु पर विजय पाने का साधन या युक्ति । उ०—जब तैं जन्म लियौ ब्रज-भीतर तब तैं यहै उपाइ । सूर स्याम के बल-प्रताप तैं, बन बन चारत गाइ—५०८ ।

क्रि० स० [स० उत्पन्न, पा० उत्पन्न, हिं० उपाना] उत्पन्न की, उपजायी । उ०—सकल जीव जल-थल के स्वामी चीटी दई उपाय । सूरदास प्रभु देखि ग्वालिनी, भुज पकरे दोउ आइ—१० २७८ ।

उपाई—सज्ञा पु० [स० उपाय] उपाय, युक्ति साधन । उ०—(क) गुरु हत्या मोतैं ह्वै आई । कह्यो सो छूटै कौन उपाई—१-२६१ । (ख) पृथ्वी हित नित करै उपाई—१२-३ ।

क्रि० स०[स० उत्पन्न, प्रा० उप्पन्न, हिं० उपाना] (१) उत्पन्न की। उ०—(क) सूरदास सुरपति रिस पाई । कीडी तनु ज्यो पाँख उपाई—१०४१ । (ख) ब्रह्मा मन सो भली न भाई । सूर सृष्टि तब और उपाई—३-७ । (२) संपादन की, की । उ०-(क) तबहिं स्याम इक युक्ति उपाई—३८३ । (ख) सुने जदुनाथ इह बात तब पथिक सौं धर्मसुत के हृदय यह उपाई—१० उ०—५० । (ग) प्रीति तिनकी सुमुरि भय अनुकूल हरि सत्यभामा, हृदय यह उपाई—१० उ०—३१ ।

उपाउ-सज्ञा पु०[स० उपाय] युक्ति, तदबीर । उ०-सखी मिल करहु कछू उपाउ—मा० उ०-४० ।

उपाऊँ-क्रि० स०[हिं० उपाना] उत्पन्न करूँ, पैदा करूँ । उ०—(क) अब मैं उनकौ ज्ञान सुनाऊँ। जिहि तिहि विधि वैराग्य उपाऊँ—१-२८४ । (ख) जैसी तान तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ—पृ० ३११ । (ग) सुनहु सूर प्यारी हृदय रस विरह उपाऊ—पृ० ३१२ ।

उपाए—क्रि० स०[हिं० उपाना]उत्पन्न किये । उ०-तीनि पुत्र तिन और उपाए । दच्छिन राज करन सो पठाए—९-२ ।

उपाख्यान—सज्ञा पु० [स०] (१) प्राचीन कथा । (२) वृत्तात । (३) कथा के अतर्गत प्रासगिक कथा ।

उपाटत-क्रि० स० [हिं० उपाटना] उखाड़ता है, नष्ट करता है, नोचता है । उ०-जन के उपजत दुख किन काटत? जैसे प्रथम अषाढ आँजु तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७ ।

उपाटना-क्रि० स० [स० उत्पाटन] उखाड़ना ।

उपाटि—क्रि० स० [हिं० उपाटना] उखाडकर उ०-तरुवर तब इक उपाटि हनुमत कर लीन्हौ—९-९६ ।

उपाटी-क्रि० स०[हिं० उपाटना] उखाड या खोद ली । उ०—जोजन विस्तार सिला पवन-सुत उपाटी—९-९६ ।

उपाती-सज्ञा स्त्री० [स० उत्पत्ति] जन्म, उपज ।

उपादान-सज्ञा पु० [स०] (१) ग्रहण, स्वीकार । (२) ज्ञान, बोध । (३) इंद्रियनिग्रह ।

उपादेय-वि० [स०] (१) स्वीकार करने योग्य । (२) उत्तम, श्रेष्ठ । (३) उपयोगी ।

उपाधा-सज्ञा पु०[स० उपाधि] उपद्रव, उत्पात । उ०—सगति रहति सदा पिय प्यारी क्रीडत करत उपाधा । कोक कला वितपन्न भई है कान्ह रूप तनु आधा—१४३७ ।

उपाधि-सज्ञा स्त्री० [स०] (१) छल, कपट । (२) कर्तव्य का विचार धर्मचिंता । (३) प्रपंच, माया । झझट । उ०-(क) मन-बच-कर्म और नहिं जानत, सुमिरत और सुमिरावत । मिथ्यावाद-उपाधि-रहित ह्वै, विमल विमल जस गावत—२-१७ । उ०-(ख) क्रम-क्रम क्रम सो पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—२-२१ । (४) प्रतिष्ठासूचक पद । (५) उपद्रव, उत्पात ।

उपाधी-—वि० [स० उपाधिन्] उत्पात करने वाला, उपद्रवी ।

उपानत्—सज्ञा पु० [सं०] (१) जूता, पनही। (२) लडाऊँ।

उपानह्—सज्ञा पु० [स०] जूता।

उपाना—क्रि० स० [स० उत्पन्न, पा० उप्पन्न] (१) पैदा करना, उपजाना। (२) विचार सूझना, सोचना। (३) करना।

उपाय-सज्ञा पु० [स०] (१) साधन, युक्ति। (२) पास पहुँचना निकट आना।

उपायन—सज्ञा पु० [स०] भेंट, उपहार।

उपाया—क्रि स० [हिं० उपाना] उत्पन्न किया, रचा, बनाया। उ०—तुम्हारी माया जगत उपाया —१०उ—१२९।

उपायौ—क्रि० स. [हिं० उपाना] (१) कियो, संपादन किया। उ०—(क) ता रानी सौं नृप-हित भयौ। और तियनि कौ मन अति तयौ। तिन सबहिनि मिलि मत्र उपायौ। नृपति-कुँवरि कौं जहर पियायौ —६-५। (ख) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौ—१-२९। (२) उत्पन्न कियौ। उ.-(क) तिन प्रथमहि महतत्व उपायौ। तातैं अहकार प्रगटायौ—३-१३। (ख) तातैं कीने और ब्रह्म-नाल उपायौ—४३७।

उपारत—क्रि० स० [हिं० उपारना, उपाटना] उखाडते समय, उखाडने मे। उ०—मदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत, बहुरि लै चलन कौं जब उठायौ—८-८।

उपारना—क्रि. स० [स० उत्पाटन, हिं० उपाटना] उखाडना।

उपारि—क्रि० स० [हिं० उपाटना, उपारना] उखाड़ कर, अलग करके। उ०—(क) स्वर्ग-पाताल माहिं गम ताकौ, वहियै कहा बनाइ। केतिक लक उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ—९-७४। (ख) कहौ तौ सैल उपारि पेडि तैं, दै सुमेरु सौं मारौ—९-१०७। (ग) कद्य उपारि डारिहौं भूतल सूर सकल सुख पावत—९-१३३।

उपारी—क्रि० स० [हिं उपाटना, उपारना] उखाड ली। उ०-(क) सिव ह्वै क्रोध इक जटा उपारी। बीरभद्र उपज्यौ बलभारी—४-५। (ख) क्रुद्ध होइ इक जटा उपारी—६-५। (ग) पटक्यौ भूमि फेरि नहिं मटक्यो लीन्हे दत उपारी—२५९४।

उपारे—क्रि० स० [हिं० उपारना, उपाटना] उखाड़ लिये। उ०—रजक धनुष जोधा हति दतगज उपारे —१६०१।

उपारौं—क्रि० स० [हिं० उपारना, उपाटना] उखाड़ूँ, नोचूँ, तोडूँ। उ०—(क) जारौं लक छेदि दस मस्तक, सुर सकोच निवारौं। श्रीरघुनाथ-प्रताप-चरन करि, डर तैं भुजा उपारौं-९-१३२। (ख) प्रबल कुवलिया बन उपारौं—११६१

उपारौ—क्रि स. [हिं. उपाटना] उखाड़ लो, (किसी वस्तु से) अलग कर लो। उ.—गउ चटाइ, मम त्वचा उपारौ। हाडनि कौ तुम वज्र सँवारौ—६-५।

उपार्जन—सज्ञा पु. [स०] पैदा करना, प्राप्त करना।

उपारयौ—क्रि. स [स. उत्पाटन, हिं. उपाटना, उपारना] उखाड़ लिया, नोच-खसोट लिया। उ.—वीरभद्र तब दच्छहिं मारयौ। अरु भृग रिषि कौ केस उपारयौ—४-५।

उपलंभ—सज्ञा पु० [स०] उलाहना।

उपाव—सज्ञा पु० [स० उपाय] उपाय, साधन, युक्ति। उ.—(क) अति उनमत्त मोह-माया-बस, नहिं कछु बात बिचारौ। करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ—९-१५२। (ख) कहौ पितु, मोसौं सोइ सतिभाव। जातैं दुरजोधन-दल जीतौं, किहिं बिधि करौ उपाव—१-२७५।

उपावैं—क्रि. स०[हिं उपाना]उत्पन्न करें, रचें, बनावे। उ—बहुरो ब्रह्मा सृष्टि उपावैं—१२-४।

उपास—सज्ञा पु० [स० उपवास] भोजन न करना, लघन।

उपासक—वि. [स०] भक्त, सेवक।

उपासन—सज्ञा पु० [स] सेवा, पूजा, आराधना। उ—जौ मन कबहुँक हरि कौ जाँचै। आन प्रसग-उपासन छाँडै, मन-बच-क्रम अपनै उर साँचै—२-११

उपासना—सज्ञा स्त्री [स. उपासन] आराधना, पूजा। क्रि स — पूजा-सेवा करना, भजना। क्रि अ.[स. उपवास] निराहार रहना।

उपासी—वि [स उपासिन्] सेवक, भक्त । उ०—(क) नाम गोपाल जाति कुल गोपक गोप गोपाल उपासी —३३१४ । (ख) हम ब्रज बाल गोपाल उपासी —३४४२ ।

उपासे—क्रि स [हिं उपासना] भजे सेवा की ।

उपास्य—वि० [स०] पूजा सेवा के योग्य, पूज्य, सेव्य, आराध्य ।

उपेंद्र—सज्ञा पु० [स० उप + इद्र] वामन, विष्णु, कृष्ण ।

उपेक्षा—सज्ञा स्त्री [स] (१) चित्त का हटना, विरक्ति । (२) घृणा, तिरस्कार ।

उपै—क्रि अ. [स० उप + यमन, हिं० उपवना] लोप होना, उड जाता है, विलीन होता है ।

उपैना—वि. [स० उ + पल्लव] खुला हुआ, नग्न । क्रि अ. [देश] उडना, लोप हो जाना ।

उपैनी—वि. स्त्री [हिं० उपैना] खुली हुई, नगी, आच्छादन रहित । जय जय जय माधव-वेनी । जगहित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौं गति देनी । जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप, सग सजी अघ-सैनी । जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रम, धरि धरि कोप उपैनी—९-११ ।

उपैहौं—क्रि स [स० उत्पन्न, पा० उत्पन्न, हिं० उपाना] करूँगा, सपादन करूँगा । उ —स्याम तुम्हारी कुसल जानि एक मत्र उपैहौ—९३३ (४) ।

उफड़ना—क्रि अ०] हिं० उफनना] उबलना, उफान खाना ।

उफनत—क्रि० अ. [स. उप् + फेन, हिं० उफनना] उबलता है, उफनता है । उ०—(क) उफनत छीर जननि करि व्याकुल इहि विधि भुजा छुडाई—१०-३४२ । (ख) एक दुहनी दूध जावत को सिरावत जाहिं । एक उफनत ही चली उठि धरयौ नही उतारि—पृ० ३३९ (८४) । (ग) उतसहकठा हरि सो वढी । उफनत दूध न धरयौ उतारि । सीझो थूली चूल्हे दारि—१८०३ ।

उफनना—क्रि अ० [स० उत् + फेन] (१) उबलना, उफान आना (२) अंकित होना, चिह्न पडना ।

उफनात—क्रि० अ० [हिं० उफनाना] (१) उबलता है, फेन उठता है । (२) उमडता है हिलोरें मारता है ।

उफनाना—क्रि अ० [स० उत् + फेन] (१) आँच या गरमी से फेना उठना । (२) हिलोरा मारना, उमडना ।

उफनि—क्रि अ [हिं उफनना] उबलकर, उफान आकर फेना उठकर, छिटक कर । उ०—छलकति तक्र उफनि अँग आवत नहिं जानति तेहि कालहिं सो—११८० ।

उफान—सज्ञा पु० [हिं० उफनना] उबाल, फेना उठना ।

उबट—सज्ञा पु० [स० उफनना] ऊबडखाबड मार्ग । वि.—ऊँचा नीचा ऊबडखाबड ।

उबटन—सज्ञा पु० [स. उद्वर्त्तन, पा. उव्वटन] उबटन, अभ्यग । उ०—कबहुँ जतन जनन करि पाए । तन उबटन तेल लगाए—१०-१८३ ।

उबटना—सज्ञा पु० [हिं० उबटन] सुगन्धित लेप, बटना । उ०—एक दुहावत ते उठि चली । — । लेत उबटना त्यागो दूरि । भागन पाई जीवन मूरि । क्रि अ —बटना मलना, उबटन लगना ।

उबटनो—सज्ञा पु० [हिं० उबटन] बटना, उबटन । उ.—तेल उबटनो अरु तातो जल ताहिं देखि भजि जाते—२७०७ ।

उबटनौ—सज्ञा पु० [हिं उबटन] उबटन, बटना, अभ्यग । उ —(क) तब महरि बाँह गहि आनै । लै तेल उबटनौ सानै—१०-१८३ । (ख) केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ रचि रचि मैल छुडाऊँ—१०-१८५ ।

उबटि—क्रि० अ० [हिं० उबटना] बटना मलकर, उबटन लगाकर । उ०—(क) जननी उबटि न्हवाइ कै (सिसु क्रम सौ लीन्हे गोद—१०-४२ । (ख) जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौं पट भूषन पहराइ—१०-८९ । (ग) इक उबटि खोरि सृगारि सखिअनि कुँअरि चोरी आनियो—पृ० ३४८ (५८-१) ।

उबरते—क्रि० अ० [हिं० उबरना] मुक्त होते, बचते, छुटकारा पाते । उ०—यह कुमाया जो तबही करते । तौ कत इन ये जियत आजु लौं या गोकुल के लोग उबरते—२७३८ ।

उबरन—क्रि० अ० [हिं० उबरना] उद्धार पाना, मुक्त होना, छुटकारो या निस्तार पाना । उ०—मुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो) । बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावैं (हो)—१-४४ । सज्ञा. स्त्री—रक्षा, बचाव, मुक्ति उ०—बडे भाग्य

हैं महर महरिके । लै गयौ पीठि चढाइ असुर इक कहा कहौं उबरन या हरि के—६०७ ।

उबरना—क्रि. स० [सं० उद्वारण, पा० उब्बारन] (१) मुक्त होना, छूटना । (२)बच रहना, बाकी बचना ।

उबरा—वि० [हिं० उबरना] (१) बचा हुआ । (२) जिसका उद्धार हुआ हो ।

उबरिबो—क्रि० अ०[हिं० उबरना]छुटकारा पाना, बच सकना । उ०—मिलहु लोकपति छाँडि कै हरि होरी है । नाहिं उबरिबो निदान अहो हरि होरी है —२४१५ ।

उबरिहौ—क्रि० अ० [हिं० उबरना] उद्धार, मुक्ति या छुटकारा पाओगे । उ०—उनकै क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता चोउ । तब तुम काको सरन उबरिहौ, सो बलि मोहिं बताउ—९-७८ ।

उबरी—क्रि० अ० स्त्री.[हिं. उबरना] मुक्त हुई, उद्धार हुआ, रक्षा हुई, बची । उ०—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी । सुमिरत पट कौ कोट बढ्यौ तब, दुखसागर उबरी—१-१६१ (ख) सूरदास प्रभु सो यो कहियो केला पोष सँग उबरी बेरि—३२५८ । (ग) जाति स्वभाव मिटै नहिं सजनी अनत उबरी कुबरी—३१८८ ।

वि० स्त्री०—(१)मुक्त, जिसका उद्धार हुआ हो। (२)बची हुई, शेष ।

संज्ञा स्त्री० [सं० विवर, हिं० ओबरी] कोठरी, छोटा कमरा । उ०—बिलग मति मानहु ऊधो प्यारे । वह मथुरा काजरि कौं उबरी जे आवै ते कारे —३१७५ ।

उबरे—क्रि० अ० [सं० उद्वारण, पा० उब्बारण, हिं० उबरना] बच गये, मुक्त हुए । उ०—(क) बडे भाग्य है नंद महर के, बड भागिनी नदरानी । सूर स्याम उर ऊपर उबरे, यह सब घर-घर जानी—१०—५३ । (ख)तात कहि तब स्याम दौरे, महर लियौ अँकवारि । कैसैं उबरे वृच्छतर तैं सूर है बलिहारी —३८७ ।

उबरैं—क्रि० अ०[हिं० उबरना] बच जायँ, मुक्त रहे, निस्तार पा जायँ । उ०—कैसहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि पुनि सोचनि परी खभारे—५९५ ।

उबरै—क्रि० अ [हिं० उबरना] (१) उद्धार पा सकता है, मुक्त हो सकता है, छूट सकता है, निस्तार पा सकता है । उ.—(क)सूरदास भगवत भजन करि, सरन गए उबरै—१-३७ । (ख) इहिं कालिकाल-ब्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७ । (२) रक्षित रहेगा, बच जायगा, छुटकारा पा जायगा । उ—(क) रे मन, राम सौं करि हेत । हरि-भजन की बारि करि लै, उबरै तेरौ खेत—१-३११ । (ख) सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरै स्याम । हमहिं बरजत गयौ, देखौ, किए कैसे काम—४२७ ।

उबरौ—क्रि० अ [हिं० उबरना](१) मुक्त हुआ, छूटा । (२) बाकी रहा, शेष रहा । उ०—भली करी हरि माखन खायौ । इहौ मान लीन्हौ अपने सिर उबरो सो ढरकायौ—११२८ ।

उबरौगे—क्रि. अ० [हिं० उबरना] निस्तार पाओगे, छूटोगे, बचोगे, उद्धार पाओगे । उ०—अपनौं पिंड पोषिबे कारन, कोटि सहज जिय मारे । इन पापनि तैं क्यो उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे—१-३३४ ।

उबर्‌यौ—क्रि० अ० [हिं० उबरना] (१) मुक्त हुआ, रक्षित, रहा, उद्धार या निस्तार पाया । उ.—(क) गाए सूर कौन नहिं उबर्‌यो हरि परिपालन पन रे —१-६६ । (ख) उबर्‌यौ स्याम, महरि बडभागी । बहुत दूर तैं आइ पर्‌यौ घर, धौं कहुँ चोट न लागी —१-७९ । (२)जीवित बचा, बाकी रहा । उ०—मारे मल्ल एक नहिं उबर्‌यौ—२६४३ । (३) काम न-आया, बाकी बचा शेष रहा । उ०—(क)फोरि भांड दधि माखन खायौ, उबर्‌यौ सो डार्‌यौ रिस करिकै—१०-३१८ । (ख) माखन खाइ, खवायौ ग्वालिन, जो उबर्‌यो सो दियौ लुढाई-१०-३०३ ।

उबलना—क्रि० अ० [सं० उद् + वलन = जाना] (१) उफनता । (२) उमड़ता ।

उबहना—क्रि० स० [सं० उद्वहनी, पा० उब्बहन = ऊपर उठना] (१)शस्त्र उठाना, शस्त्र खींचना ।(२) पानी उलीचना ।

वि० [सं० उपानह] बिना जूते का, नगे पैर ।

क्रि० अ० [सं० उद्वहन] ऊपर उठना ।

उबहने—वि० [हिं० उबहना] बिना जूता पहने ।

उबहे—क्रि० स० [हिं उबहना] शस्त्र उठाया ।
उबॉट—सज्ञा स्त्री. [स उद्वात] उलटी, वमन, कै ।
उबाना—वि [हिं० उबहना] नगे पैर ।
उबार—संज्ञा पु.[स उद्धारण, हि.उद्धार]उद्धार, निस्तार छुटकारा ,बचाव, रक्षा । उ०—(क)अब उबार नहि दीसत कतहूँ सरन राखि को लेइ—५२८ । (ख) यासों मेरो नही उबार । मोहिं मारि मारै परिवार —५८५ । (ग) झरझराति भहराति लपट अति देखियत नही उबार—५९३ ।
उबारन—सज्ञा पु०[हि० उबारना]उबारने वाले, उद्धार-कर्त्ता । उ —सत-उबारन, असुर-सँहारन दूरि करन दुख-दुदा—१०-१९२ ।
उबारना—क्रि स [स० उद्धारण] उद्धार, करना रक्षा करना, मुक्त करना ।
उबारा—सज्ञा पु० [हि उबार] उद्धार, छुटकारा ।
उबारि—क्रि. स० [हि० उबारना]उद्धार या मुक्त करके, रक्षा या निस्तार करके । उ - करि बल-बिगत उबारि दुष्ट दै, ग्राह ग्रसत बैकुठ दियो—१-२६ ।
उबारी—क्रि० स [हि० उबारना]उद्धार किया, रक्षा की मुक्त किया, बचाया । उ०—द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी । गहत चीर हरि-नाम उबारी— १-२८ ।
उबारे—क्रि स [हि उबारना] उद्धार किया, रक्षा की, मुक्त करे, छुडाये । उ —(क)लाखागृह तैं जरत पाडु सुत बुधि-बल नाथ, उबारे—१-१० । (ख) तुम्हारी कृपा बिनु कौन उबारे—१-२५७ ।
उबारैं—क्रि० ह [हि उबरना] उद्धार करें, छुटकारा दिलाएँ, बचाएँ । उ —गाइ मिलि अब दसकध, गहि दत तृन, तौ फलै मृत्यु मुख तै उबारैं—९-१२९।
उबारै—क्रि० स [हि उबारना] उद्धार करे, मुक्ति दे, छुटकारा दे । उ —दुहूँ भाति दुख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान—१-९७ ।
उबारौं—क्रि० स [हि उबारना] रक्षा करूँ, बचाऊँ । उ.—कस बस को नास करत है, कहँ लौं जीव उबारौं—१०-४ ।
उबारौ—क्रि स. [हि. उबारना] उद्धारो, छुडाओ, निस्तारो, मुक्त करो । द.—अब मोहि मज्जत क्यों न उबारो । दीनबधु, करुनामय, स्वामी, जन के दुख निवारो—१-२०९ ।
उबारयौ—क्रि स. [हि उबारना] मुक्त किया, उद्धार किया, रक्षा की । उ —(क) सरन गए को को न उबारयो । जब जब भीर परी सतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ—१-१४ । (ख) ततकालहि तब प्रगट भए हरि, राजा जीव उबारयो—१-१०१।
उबाल—सज्ञा पु० [हि. उबलना] (१) उफान ।(२) जोश, क्षोभ, झुंझलाहट ।
उबासी—सज्ञा स्त्री [स० उश्वास] जँभाई ।
उबाहना - क्रि स [हि. उबहन] हथियार उठाना ।
उबीठना—क्रि स [स. अव, पा० ओ + स० इष्ट, पा० इट्ट = ओइट्ठ] अरुचि हो जाना, मन भर जाना । क्रि अ०—ऊबना, घबराना ।
उबीठे—क्रि० स० [हि०उबीठना]अरुचिकर हुए, न भाये। उ०—सुठि मोती लाडू मीठे । वै खात न कबहुँ उबीठे—१०-१८३ ।
उबीधना—क्रि अ० [स० उद्विद्ध] (१) फँसना। (२) गडना ।
उबीधा—वि. [हि० उबीधना] (१) धँसा हुआ, गडा हुआ । (२) काँटों से युक्त ।
उबेना—वि०[हि०उ = नही + स०उपानह = जूता]नगे पैर, बिना जूते का ।
उभइ—वि० [सं० उभय] दोनो ।
उबटना—क्रि० अ० [हि० उभरना] अभिमान करना।
उभड़ना—क्रि० अ० [स० उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा० उब्भरण] (१) प्रकट होना, उत्पन्न होना । (२) बढना, अधिक होना ।
उभय—वि [स०] दोनो ।
उभरौंहाँ—वि० [हि० उभार + औहाँ (प्रत्य.)] उभरा हुआ ।
उभाड़—सज्ञा पु० [हि. उभडना] (१) उठना (२) ओज, वृद्धि ।
उभाना—क्रि० अ०[हि० अभुआना]हाथ पैर पटकना और सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत आना समझा जाता है ।

उभिटना—क्रि० अ०[हिं०उबीठना] हिचकना, ठिठकना।

उभिटे—क्रि० अ० [हिं० उभिटना] ठिठके, हिचके।

उभै—वि० [स० उभय] दोनो। उ०-मनु उभै अभोज-भाजन, लेत सुधा भराइ—६२७।

उमँग, उमग—सज्ञा स्त्री० [स० उद्=ऊपर +मग=चलना, हिं० उमग] (१) उल्लास, मौज, आनंद। उ०-(क) उमँगो व्रजनारि सुभग, कान्ह वरष-गाँठि-उमँग, चहत बरष बरषनि—१०-९६। (ख) बसे जाय आनद उमँग सौ गैयाँ सुखद चरावैं।(२)उभाड, उमड़ना। (३) अधिकता, पूर्णता।

उमँगना—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)] (१) उमड़ना, बढ चलना। (२) हुलसना, आनद मे होना।

उमँगि—क्रि० अ० [हिं० उमगना] (१) सोल्लास, हुलास-सहित, जोश मे आकर। उ०—(क) भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने। मुडित केस-सीस बिहवल दोउ, उमँगि कठ लपटाने—९-५२। (ख) आनद भरी जसोदा उमँगि अँग न माति,] आनदित भई गोपी गावति चहर के—१०-३०। उमड़ कर, ऊपर, उठकर। उ०--भरत गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे। सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवध पुरी पग धारे—९ ५४।

उमंगी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उमग] (१) मौज, उल्लास, आनंद। (२) उभाड। (३) अधिकता, पूर्णता।

वि०—अधिक, बहुत, ज्यादा, अपार। उ०—पारथ तिय कुरुराज सभा में बोलि करन चहै नगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढयौ बसन उमगी—१-२१।

उमँगी—क्रि० अ- स्त्री० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)] उमड़ने लगी, उमड़ी।

वि० स्त्री०—उमड़ी हुई, उमड़ कर प्रवाहित होती हुई। उ०—उमँगी प्रेम-नदी-छवि पावै। नद नदन-सागर कौं धावै—१०-,२।

उमँगे—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)] (१) उमड़ने लगे, उमड़ चले, वह चले। उ०—सूरदास उमँगे दोउ नैना, सिंधु-प्रवाह बह्यौ—१-२४७। (२) आनंदित होकर, हुलास से भरकर। उ०—उमँगे लोग नागर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ—९-२९।

उमँगै—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)=उमगना] उमडे, उमड़े, उमड कर बह चले। उ०—उमँगै प्रेम नैन ह्वै के, कापे रोक्यौ जात जरी—१०-१३६।

उमग—सज्ञा स्त्री० [हिं० उमग] (१) आनद, उल्लास। (२) अधिकता।

उमगन—सज्ञा स्त्री० [हिं० उमग] आनद, उल्लास।

उमगना—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना] (१) उमड़ना। (२) आनदित होना।

उमचना—क्रि अ० [स० उत्‌मञ्च=ऊपर उठना] (१) तलुए को जोर देकर किसी वस्तु को दबाना, हुमचना। (२) चौंकना, चौकन्ना होना।

उमचि—क्रि० अ० [हिं० उमचना] चौंककर, चौकन्ना होकर। उ०—चकृत भई बिचार करत यह बिसरि गई सुधि गात। उमचि जात तबही सब सकुचति बहुरि मगन ह्वै जाति। सूर स्याम सौं कहौं कहा यह कहत न बनत लजाति—११९०।

उमड़—सज्ञा स्त्री० [स० उन्मडन] (१) बाढ़, बढ़ाव। उ०—फिरि फिरि उझकि झाँकन बाल। बह्नि-रिपु की उमड देखत करत कोटिन ख्याल—सा० ३४। (२) छाजन, घिराव। (२) धावा, उठान।

उमड़ना—क्रि० अ० [हिं० उमग] (१) द्रव पदार्थ के अधिक होने से बह चलना। (२) उठकर-फैलना, घेरना। (३) आवेशयुक्त होना, क्षुब्ध होना।

उमड़ि—क्रि० अ० [हिं० उमडना] (द्रव की बहुतायत के कारण)ऊपर उठकर, उतराकर। उ०—हा सीता, सीता कहि सियपति, उमडि नयन जल भरि-भरि ढारत—९-६२।

उमड़ी—क्रि० अ० [हिं० उमडना](१) द्रव पदार्थ अधिक भर जाने से बह चली। (२) आवेश मे भर गयी। (३) छा गयी, घर लिया।

उमड़े—क्रि० अ० [हिं० उमडना] फैलकर, चारो ओर

छा कर, घिरकर। उ०—अति आनद भरे गुन गावत उमडे फिरत अहीर—९२० ।

उमड़ै—क्रि० अ०[हिं० उमग] उतराकर बह चलता है। उ०—सरवर नीर भरै, भरि उमडै, सूखै, खेह उडाइ —१०-२६५।

उमड़्यौ—क्रि० अ० [हिं० उमडना] (१) भर आया, उतराकर बह चला। (२) उठकर, फैला, छाया, घेरा। उ०—अब हौं कौन कौ मुख हेरौं? रिपु-सैना-समूह-जल उमड्यो, काहि सग लै फेरौं—९-१४६।

उमदना—क्रि० अ० [स० उन्मद](१) उमंग मे भरना। (२) उमडना

उमदात—क्रि० अ० [हिं० उमदाना] मतवाला होता है, उन्मत्त होता है।

उमदाना—क्रि० अ०[स० उन्मद, हिं० उमदाना](१)मतवाला होना उमग मे भरना।(२)आवेशयुक्त होना।

उमद्—क्रि० अ० [हिं० उमदना] उमडते हैं।

उमराव—स पु० [अ० उमरा] प्रतिष्ठित व्यक्ति, सरदार दरबारी। उ०—असुरपति अति ही गर्व धरचौ। ... — । महा महा जो सुभट दैत्यबल बैठे सब उमराव। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरी मो सम्मुख को आव— २३७७।

उमहना—क्रि० अ० [स० उन्मथन, प्रा० उम्महन अथवा स० उद्+मह=उमडना] (१) (द्रव पदार्थ की अधिकता के कारण) बहना, उमडना। (२) घेरना, छा जाना। (३) आवेशयुक्त होना।

उमह्यो—क्रि० अ० [हिं० उमडना] (द्रव पदार्थ की अधिकता से) बह चला, उमडा। उ०—नहिं स्तुति सेस महेस प्रजापति जो रस गोपिन गायौ। कथा गग लागी मोहि तेरी उहि रस सिंधु उमह्यौ-३४९०।

उमही—क्रि० अ०[हिं० उमहना](१) उमग मे भर गयी, आवेश युक्त हो गयी। उ०—(क) सिर मटुकी मुख मौन गही। भ्रमि-भ्रमि विवस भई नव ग्वालिन नवल कान्ह के रस उमही—१२१३। (२) उमड पडी है। उ०—पालगौं तुमही बूझत हौं तुम पर बुधि उमही —३३७०।

उमहे—क्रि० अ० [हिं० उमहना] छा गये, घेर लिया। उ०—सघन बिमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन अम्मर उमहे—१८१९।

उमहै—क्रि० अ०[हिं० उमहना]उमंग मे आती है, आवेश युक्त हो जाती है। उ०—(क) पहिले अग्नि सुनत चन्दन सी सती बहुत उमहै। समाचार ताते अरु सीरे पीछे जाइ लहै—२७१३।

उमह्यो, उमह्यौ—क्रि० अ० [हिं० उमहना] (१) छा गये, एकत्र हुए। उ०—(क) आनद अति सै भयौ घर-घर, नृत्य ठाँवहिं-ठाँव। नद-द्वारे भेंट लै लै उमह्यौ गोकुल गाँव—१०-२६। (ख) उमह्यौ मानुष घोष यों रग भीजी ग्वालिनि—२४०५।(२)उमंगयुक्त हुआ, उमड पडा। उ०—मदन गुपाल मिलन मन उमह्यौ कौन बसै इह यदपि सुरेस-३२२५।(३)उमड पड़ा, उतरा कर बह चला-उ०-दोनौं मार तरग महँ उरनि सखी लोचन उमह्यौ-३४७०।

उमा—सज्ञा स्त्री० [स०] शिव की स्त्री, पार्वती।

उमाकना-क्रि० अ० [स० उ = नही + मक=जाना] नष्ट करना।

उमाकिनी—वि० स्त्री० [हिं० उमाकना] खोद कर फेंक देने वाली।

उमागुरु—सज्ञा पु० [स०] पार्वती के पिता हिमांचल।

उमाचना—क्रि० स०[हिं० उन्मचना](१) ऊपर उठाना। (२) निकालना।

उमाची क्रि० स० [हिं० उमाचना] निकाली है।

उमाधव—सज्ञा पु० [स०] पार्वती के पति, शिव।

उमापति—सज्ञा पु० [स०] महादेव शकर शिव। उ०—यहै कहहिं पति देहु उमापति गिरिधर नन्द-कुमार—७६६।

उमाह—सज्ञा पु० [स० उद्+माह=उमगाना, उत्साह करना] उत्साह, उमंग।

उमाहना-क्रि० अ० [हिं० उमहना](१) उमडना। (२) उमग मे आना।

क्रि० स०—वेग से बढाना।

उमाहल—वि०[हिं० उमाह]उमगयुक्त, उत्साहित। उ०—व्रज घर घर अति होत कोलाहल। ग्वाल फिरत उमँगे जहँ तहँ सब अति आनन्द भरे जु उमाहल।

उमेठन—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वेष्ठन] ऐंठन, बल, मरोड़।

उमेठी—वि० [हिं० उमेठना] (१) ऐंठी हुई, अप्रसन्न। उ०—भामिनि आजु भवन मे बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन मे धनु उपमेय उमेठी-सा० ११२। (२) इतराती हुई, गर्व भरी। उ०—अगदान बल को दे बैठी। मन्दिर आजु आपने राधा अन्तर प्रेम उमेठी-सा० १००।

उमेल—संज्ञा पु० [सं० उन्मीलन] वर्णन।

उमेलना—क्रि. स. [सं० उन्मीलन] (१) खोलना, प्रकट, करना। (२) वर्णन करना।

उये—क्रि. अ. [सं उद्गमन, पा० उग्गवन, हिं० उगना] उदय हुए, प्रकटे, उगे। उ.—नँदनँदन मुख देखौ माई। अंग अंग छबि मनहू उये रवि, ससि अरु समर लजाई—६२६।

उयौ—क्रि. अ. [हिं. उदयन, उअना] उदय हुआ, उगा।

उरग, उरंगम—संज्ञा पु० [सं] साँप।

उर—संज्ञा पु. [सं. उरस्] (१) वक्षस्थल, छाती। उ.—(क) भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर बोले बचन सकल सुखदाई—१-३। (ख) दनुष दरयौ उर दरि सुरसाँई—१-६।

मुहा०—उर आनना या लाना—छाती सेलगाना, आलिंगन करना। लियो उर लाई—छाती से लगा लिया। उ०—महाराज कहि श्री सुख लियो उर लाई—२६११।

(२) हृदय, मन, चित्त।

मुहा०—उर आनना या धरना—ध्यान करना, विचारना। उर धरना-ध्यान मे रखना। उर धरी-मन में सोचा, निश्चय किया। उ०—सदा सहाय करी दासिन की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी—१-१६०।

उरई—संज्ञा स्त्री. [सं० उशीर] खस।

उरकना—क्रि अ. [हिं० रुकना] ठहरना।

उरग—संज्ञा. पु० [सं०] (१) साँप।

मुहा—भई रीति हृठि उरग छछूंदर—साँप छछूंदर की गति होना, दुविधा या असमंजस मे पड़ना। उ०—जब वह सुरति होति है बात। सुनौ मधुप या वेदन कीरति मन जानै कै गात। रहत नही अंतर अति राखे कहत नही कहि जात। भईरीति हृठि उरग छछूंदरि छाँडै बनै न खात—३१२७।

(२) वेणी, चोटी, (क्योंकि इसकी उपमा साँप=उरग से दी जाती है।) उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी। तापर उरग ग्रसित तब सोभित पूरन अंस ससी—सा उ २५।

उरगइंद—संज्ञा पु [सं०] सर्पराज, वासुकी। उ०—उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै—१-६९।

उरगना—क्रि. स. [सं. ऊरीकरण]-मानना, स्वीकारना।

उरगाद—संज्ञा पु० [सं०] गरुड़।

उरगारि—संज्ञा पु० [सं० उरग+अरि] साँप का शत्रु, गरुड़।

उरगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उरगी, हिं० उरगिनी] सर्पिणी, नागिनी। उ.—सूर-प्रभु के बचन सुनत, उरगिनी कह्यौ, जाहि अब क्यौं न, मति भई भरनी—५५१।

उरज—संज्ञा पु० [सं० उरोज] कुच, स्तन। उ०—(क) दै दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटत उरज कठोरी—१०-३०५। (ख) उरज भँवरी भँवर मानो मीन मनि की कांति—१४१६।

उरजात—संज्ञा पु० [सं० उरस्+जात] कुच, स्तन।

उरझना—क्रि० अ० [हिं० उलझना] फँसना, अटकना।

उरझाई—क्रि० अ० [हिं० उलझना] उलझकर, गुंथकर, फसकर। उ०—मन चुभि रही माधुरी मूरति अंग अंग उरझाई—३३१७।

उरझाना—क्रि. स. [हिं उलझना] फँसाना, अटकाना।

उरझानो—क्रि स. [हिं उलझना] उलझ गया, फँसा, लिप्त हुआ। उ.—नवकिसोर मोहन मृदु मूरति तासौ मन उरझानो—३०६४।

उरझि—क्रि. अ. [हिं. उलझना] फँसकर, अटककर, उलझकर। उ—पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार—१-९९।

उरझ्यौ—क्रि अ भूत. [हिं० उलझना] (१) उलझी, फँसी, अटकी। उ०—मोह्यौ जाई कनक-कामिनि रस ममता मोह बढाई। जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौ उरझ्यो सूझी नही फँदाई—१-१४७। (२) काम मे फँस गया, लिप्त हुआ, लगा रहा। उ०-वात-चक्र वासना प्रकृति मिलि, तन तृन तुच्छ गह्यौ। उरझ्यौ विवस कर्म-निरअतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२।

उरझे—क्रि० अ० [हिं० उलझना] लिपटे, उलझ गये। उ—उरझे सग अग अग प्रति विरह वेलि की नाई—१८२१।

उरद—सज्ञा पु० [स० ऋद्ध, पा० उद्ध] एक अनाज। उ०—मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६।

उरध—क्रि० वि०[स०उद्ध्व] ऊपर, ऊपर की ओर।

उरधारना—क्रि० स० [हिं० उघाडना] बिखराना, छितराना।

उरधारी—वि०[हिं० उघडना, उरधारना] बिखरी हुई। उ०-उरधारी लटैं छूटी आनन पर भीजी फुलेलन सो आली सँग केलि।

उरवसी—सज्ञा स्त्री० [स० उर्वशी] उर्वशी नाम की अप्सरा।

उरमत—क्रि० अ० [हिं० उरमना] लटकता है।

उरमना—क्रि० अ० [स० अवलवन, प्रा० ओलवन] लटकना।

उरमाई—क्रि० स० [हिं० उरमाना] लटकाया।

उरमान—क्रि० स० [हिं० उरमना] लटकाना।

उरला—वि० [हिं० विरल] विरला, निराला।

उरविज—सज्ञा पु० [स० उर्वी=पृथ्वी+ज=उत्पन्न] मगल ग्रह।

उरवी—सज्ञा स्त्री० [स० उर्वी] पृथ्वी।

उरहन—सज्ञा पु [हिं उरहना, उलाहना]उलाहना।उ.- (क) उरहन दिन देउँ काहि, काहै तू इतो रिसाइ। नाही व्रजवास, साम्न, ऐस विधि मेरो—१०—२७६। (ख) ग्वालिनि उरहन कै मिस आई। नदनदन तन-मन हरि-लीन्हो, विनु देखें छिन रह्यौ न जाइ-१०-३०४। (ग) वृथा व्रज की नारि नित प्रति देइ उरहन आन—सा०१४४।

उरहने—सज्ञा पु०[हिं० उरहना]उलाहना। उ.—आवति सूर उरहने कै मिस, देखि कुँवर मुसुकानी—१०-३११।

उरहनो, उरहानो—सज्ञा पु० [हिं० उरहना, उलाहना] उलाहना। उ० - नैननि झुकी सुमन मैं हँसी नागरि उरहनो देत रुचि अधिक वाढी—१०-३०७।

उरस—वि० [स० कुरस] फीका, नीरस। उ०—तू कहि भोजन करयौ कहा री। वेसन मिले उरस मैदा सो अति कोमल पूरी है भारी।

सज्ञा पु० [स०] (१) छाती, वक्षस्थल। (२) हृदय, चित्त.

उरसना—क्रि० अ० [हिं० उडसना] ऊपर नीचे करना, हिलाना। उ०—जसुदा मदन-गुपाल सोवायै।....। स्वांस उदर उरसति (उससित) यौं मानो दुग्ध-सिंधु छवि पावै—१०-६५।

उरसिज—सज्ञा पु० [स०] स्तन।

उरस्क—सज्ञा पु० [स०] वक्षस्थल, छाती।

उरहना—सज्ञा पु० [स० उपालभ या अवलभन, पा० ओलभन, हिं० उलाहना] उलाहना।

उराना—क्रि० अ० [हिं० ओर + आना (प्रत्य०)] समाप्त होना।

उरारा—वि० [स० उरु] विस्तृत, विशाल।

उराव—सज्ञा पु०[स०उरस+आव]चाव, उमग, चाह। उ०—जे पद-कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन जस छाव। सूरस्याम पद-कमल परिसहौं मन अति वढ्यौ उराव—२४८४।

उराहना—सज्ञा पु० [स० उपालभ] उलाहना।

उराहनौ—सज्ञा पु० [हिं० उलाहना] उलाहना। उ०— (क) आखैं भरि लीनी उराहनो देन लाग्यो। तेरो री सुवन मेरी, मुरली लै भाग्यौ—१०-२८४। (ख) अब न देहिं उराहनो जसुमतिहिं आगे जाइ—२७५६।

उरोज—सज्ञा पु० [स०] कुच, स्तन, छाती।

उरिन—वि० [स० उऋण] ऋण से मुक्त।

उरु—वि० [स०] (१) लवा-चौडा। (२) विशाल, वडा।

सज्ञा पु० [स० ऊरु] जांघ।

उरुक्रम—वि० [सं०] (१) बली। (२) लंबे डग भरने वाला।

सज्ञा पु०—(१) वामन अवतार। (२) सूर्य।

उरेह—सज्ञा पु० [सं० उल्लेख] चित्रकारी।

उरेहना—क्रि० स [स उल्लेखन] (१) चित्र आदि खींचना, लिखना। (२) रँगना।

उर्मिला—सज्ञा स्त्री. [स. ऊर्मिला] सीताजी की छोटी बहन जो लक्ष्मण को ब्याही थीं।

उर्वरा—सज्ञा पु० [स०] (१) उपजाऊ भूमि। (२) पृथ्वी।

वि०—उपजाऊ।

उर्वशी—सज्ञा स्त्री. [स] एक अप्सरा।

उर्वी—सज्ञा स्त्री [स०] पृथ्वी।

उलंघना-उलँघना—क्रि स० [स० उल्लघन] (१) नाँघना, फाँदना, उल्लघन करना। उ०-वसुधा त्रिपद करत नहि आलस तिनहि कठिन भयो देहरी उलघना—१०-११३। (२) न मानना, अवहेलना करना।

उलँघि—क्रि. स. [हिं० उलघना] नाँघना, फाँदना, पार करना। उ—कबहुँक तीनि पैग भुव नापत कबहुँक देहरि उलँघि न जानी—१०-१४४।

उलँघी—क्रि स० स्त्री. [हिं० उलघना] नाँघी, फाँदी, उल्लघन की। उ०—घर आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत। गिरि-गिरि परत, जात नहि उलँघी, अति स्रम होत नँघावत—१०-१२५।

उलझन—सज्ञा पु० [स० अवरुधन, या ओरुज्झन] (१)अटकाव (२)बाधा। (३)समस्या, चिंता।

उलझना—क्रि० अ० [हिं० उलझन] (१) फँसना, अटकना। (२) लिपटना। (३) गुथ जाना।(४) लीन होना, रत होना। (५) प्रेम करना। (६) लड़ना, झगड़ना। विवाद करना। (७)कठिनाई मे फँसना। (८) रुक जाना।

उलझाना—क्रि स० [हिं० उलझना] (१) फँसाना, अटका देना। (२) अटकाये रखना।

क्रि० अ०—उलझना, फँसना।

उलझाव—सज्ञा पु० [हिं० उलझना] (१) अटकाव। (२)झझट। (३) समस्या, चक्कर।

उलझौहाँ—वि० [हिं० उलझना] (१) अटकानेवाला। (२) लुभाने वाला।

उलटना—क्रि० अ० [स० उल्लोठन] (१) औंधा होना, पलटना। (२) घूमना, पीछे मुड़ना। (३) उमड़ पड़ना, उमड आना।(४)अस्तव्यस्त हो जाना। (५) कुछ का कुछ हो जाना। (६) क्रुद्ध होना। (६) नष्ट होना। (८) अचेत होना, बेहोश होना। (९) इतराना।

क्रि० स०—(१) औंधा करना। (२) अस्तव्यस्त करना। (३) बात दोहराना। (४) खोद डालना। (५) नष्ट करना। (६) रटना, जपना।

उलटहु—क्रि० अ० [हिं० उलटना] लौट आओ, पलट आओ, वापस आ जाओ। उ०—अब हलधर उलटहु काहु तुम धावहु ग्वाल जो र—२४४६ (३)।

उलटाइ—क्रि० स० [हिं० उलटाना] उलटाकर, चित करते, पेट के बल से पीठ के बल लिटा कर। उ—महरि मुदित उलटाइ कै, मुख चूमन लागी—१०-६८।

उलटाना—क्रि० स० [हिं. उलटाना] (१) पीछे फेरना। (२) कुछ का कुछ कहना या करना।

उलटावहु—क्रि० स०[हिं० उलटाना]पलटाओ, लौटाओ, पीछे फेरो। उ०—बिहारीलाल आवहु आई छाक। भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाँक-४६४।

उलटि—क्रि अ. [हिं० उलटना] (१) लौटकर, उलट कर, वापस आकर, पीछे मुड़कर, घूमकर। उ.-(क) उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यो सिर झारी—१—२२१। (ख) जैसे सरिता मिलै सिंधु कौ उलटि प्रवाह न आवैहो—२८०४। (ग) हम रुचिकरी सूर के प्रभु सौं दूजे मन न सुहाइ। उलटि जाहि अपने पुर माही बादिहि करत लराई—३११०। (घ) जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मैं नाचै —२-११। (२) ऊपर नीचे होकर, उलट पलट कर। उ—नृत्यत उलटि गए अँग भूषण बिथुरी अलक बाँधी सँवारि—पृ० ३५२ (८४)।(३)ऊपर से नीचे गिर कर। उ—ससि-सन्मुख जो धूरि उडावै, उलटि ताहि कै मुख परै—१-२३४।

उलटी—वि० [हिं० उलटना] (१) औंधा, ऊपर का नीचे। (२) क्रम विरुद्ध, इधर का उधर। (३) अनुचित, अडबंड, अयुक्त। उ०—(क) इंद्री अजित, बुद्धि विषया रत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७। (ख) हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहि—११८१। (ग) अब समीर पावक सम लागत सब ब्रज उलटी चाल—३१५५। (४) असमान विरुद्ध, विपरीत।

क्रि. वि०—लौटकर, पीछे की ओर, पलटकर। उ.-जमुना उलटी धार चली बहि पवन थकित सुनि वेनु—पृ० ३४७ (५३)।

मुहा०—उलटी परी-आशा के विरुद्ध हुआ, दूसरे को हानि पहुँचाने के प्रयत्न मे स्वय हानि उठायी या स्वय नीचा देखा। उ.-अबरीष को सापदेन गयो बहुरि पठायो ताकौं। उलटी गाढ परी दुर्वासै दहत सुदरसन जाकौ—१-११३। उलटी-पलटी-भली-बुरी उचित-अनुचित। उ.—तब उलटी पलटी फबी जब सिसु रहे कन्हाई। अब उहि कछु धोखै करौं तौ छिनक माँह पति जाई—१०१०। उलटी-पुलटी—अडबड, बिना ठीक-ठिकाने। ई.—तुमहि उलटी कहौ तुमहि पुलटी कहौ, तुमहि रिस करति मैं कछु न जानौं।

उलटे—वि० [हिं० उलटना, उलटा] (१) औंधे, पट, पेट के बल। उ०—(क) हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई। किलकि झटकि उलटे परे, देवनि मुनिराई १०-६६। (ख) स्याम उलटे परे देखे, बढी सोभा लहरि—१०-६७। (२) पीछे करके, पीठ की ओर मोड़ कर। उ०—पलना पौढाई जिन्हैं बिकट बाउ काटै। उलटे भुज बाँधि तिन्हैं लकुट लिए डाँटै—३४८।

उलटोइ—वि० सवि० [हिं० उलटा + ही (प्रत्य०)] विपरीत, अयुक्त, अनुचित, विरुद्ध। उ०—उलटोइ ज्ञान सकल उपदेसत सुनि सुनि हृदय जरै—३३११।

उलटौ—वि. [हिं० उलटा] उलटा, पट, पेट के बल। उ—एक पाख त्रय मास को मेरो भयो कन्हाई। पटकि रान उलटौ परचो, मैं करौं बधाई—१०-६८।

उलटयौ—क्रि० स० [हिं० उलटना] उलटा हो गया, पीछे की ओर चला। उ०—अति थकित भयो समीर। उलटयो जु जमुना-नीर—६२३।

उलथना—क्रि० अ० [सं० उत्थलन] ऊपर-नीचे होना। उलटना।

क्रि० स०—उलट-पुलट करना।

उलद्—सज्ञा स्त्री० [हिं० उलदना] वर्षा की झड़ी।

उलदत—क्रि० स० [हिं० उलदना] गिराता है, लौटाता है, बरसाता है।

उलदना—क्रि० स० [हिं० उलटना] गिराना, बरसाना।

उलमना—क्रि० अ० [सं० अवलंबन, पा० ओलंबन=लटकना] लटकना, झुकना।

उलसना—क्रि० स० [सं० उल्लसन] सोहना, शोभित होना।

उलहना—क्रि० स० [सं० उल्लभन] (१) निकलना, उगना। (२) हुलसना, प्रसन्न होना

सज्ञा पु० [हिं० उलाहना] उलाहना।

उलाहना—सज्ञा पु० [सं० उपालभन, प्रा० उवाहन] शिकायत, गिला।

क्रि० स०—(१) गिला करना। (२) दोष देना।

उलीचना—क्रि० स० [सं० उल्लुचन] पानी फेंकना या उछालना।

उलीचै—क्रि० स० [हिं० उलीचना] उलीचती है, पानी फेंकती है। उ०—चिरिया कहा समुद्र उलीचै—१-२३४।

उलूक—सँज्ञा पु० [सं०] (१) उल्लू चिड़िया। (२) इंद्र।

सज्ञा पु० [सं० उल्का] लौ, लुक।

उलूखल—सज्ञा पु० [सं०] (१) ओखली। (२) खल, खरल।

उलेड़ना—क्रि० स० [हिं० उडेलना] ढरकाना, एक पात्र से दूसरे मे ढालना।

उलेड़े—क्रि० स० [हिं० उडेलना] उँडेले, ढरकाये। उ-गारी होरी देत दिवावत। ब्रज मे फिरत गोपिकन गावत। रुकि गए बाहन नारे पैंडे। नवकेसर के माट उलेडे।

उलेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलेल] उमंग, जोश।
वि०—अल्हड़, बेपरवाह।

उल्लंघन—संज्ञा पुं० [सं० (१) लाँघना। (२) पालन न करना, नीति-विरुद्ध आचरण।

उल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश, तेज। (२) लुक, लौ। (३) दिया, दीपक।

उल्कापात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तारा टूटना। (२) उत्पात, विघ्न।

उल्लसन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हर्ष करना। (२) रोमांच।

उल्लापन—संज्ञा पुं० [सं०] खुशामद, ठकुरसुहाती।

उल्लास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) झलक, प्रकाश। (२) हर्ष, उत्साह। उ०—हों चाहे तासों सब सीख रसबस रिझवो कान्ह। जागि उठी सुन सूर स्याम संग का उल्लास बखान—सा०—६८। (३) एक अलंकार जिसमें एक के गुण-दोष से दूसरे में गुण-दोष आना वर्णित हो।

उल्लासना—क्रि० स० [सं० उल्लासन] प्रकट करना, प्रकाशित करना।

उल्लिखित—वि० [सं०] (१) लिखा हुआ। (२) खोदा हुआ। (३) चित्रित।

उल्लेख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिखना, लेख। (२) वर्णन, चर्चा। (३) एक अलंकार जिसमें एक वस्तु या व्यक्ति का अनेक रूपों में दिखायी पड़ना वर्णित हो। उ०—मुरली मधुर बजावहु मुख ते रुख जनि अनतै फेरो। सूरज प्रभु उल्लेख सबन को हौ पर पतनी हेरो—सा० ८।

उवत—क्रि० अ० [हिं० उवना] उगता है, उदय होता है। उ०—अथवत आये गृह बहुरि उवत भान उठो प्रान-नाथ महाजान मनि जानकी—१६०९।

उवना—क्रि० अ० [हिं० उगना] उत्पन्न होना।

उवनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० उवना] उदय, प्रकाश।

उशीर—संज्ञा पुं० [सं०] खस।

उषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रभात, ब्रह्मबेला। (२) सूर्योदय की लालिमा। (३) बाणासुर की पुत्री जो अनिरुद्ध को ब्याही थी।

उषाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोर, प्रभात।

उष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी, ताप।

उष्णीष—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पगड़ी। (२) मुकुट।

उष्न—वि० [सं० उष्ण] तप्त, गरम। उ०—घर बिधपि नल करत किरषि हल, बारि बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत उष्न कौं, सोई सुफल करै—१-११७।
संज्ञा पुं०—ग्रीष्म ऋतु।

उस—सर्व [हिं० वह] 'वह' का विभक्तियुक्त रूप।

उसरना—क्रि० अ० [सं० उद् + सरण = जाना] (१) दूर होना, चले जाना। (२) बीतना। (३) याद न रहना।

उसरे—क्रि० अ० [हिं० उसरना] बीतने पर, बीतती है। उ०—सघन कुंज ते उठे भोर ही स्याम घरे। जलद नवीन मिली मानो दामिनी बरषि निसा उसरे।

उससत—क्रि० स० [हिं० उससन] खिसकता है, हट जाता है। उ०—गोरे गात उससत जो असित पट और प्रगट पहिचानै। नैन निकट ताटंक की सोभा मंडल कवनि बखानै।

उससना—क्रि० स० [सं० उत + सरण] (१) खिसकना, हट जाना। (२) साँस लेना।

उससित—क्रि० स० [हिं० उससना] साँस लेकर, दम लेकर, साँस से फूलकर। उ०—स्वास उदर उससित यों मानों दुग्ध सिंधु छबि पावै—१०-६५।

उसारना—क्रि० स० [सं० उद् + सरण] (१) हटाना। (२) उखाड़ना।

उसारौ—क्रि० स० [हिं० उसारना] खोदना, तैयार करना, बनाना। उ०—नवग्रह परे रहैं पाटी-तर, कूपहिं काल उसारौ। सो रावन रघुनाथ छिनक मैं, कियौ गीध कौ चारौ—१-१५९।

उसालना—क्रि० स० [सं० उत् + शालन] (१) उखाड़ना। (२) हटाना। (२) भगाना।

उसास—संज्ञा स्त्री० [सं० उत् + श्वास] लंबी साँस, ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ०—(क) गइ सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बाँस। सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेत उसास—९-४५। (ख) लेति उसास नयन जल भरि भरि, धुकि सो परै धरि धरनी। सूर सोच जिय पोच निसाचर, रामनाम

की सरनी—९-७३ । (ग) त्रिजटी वचन सुनत वैदेही अति दुख लेति उसास—९-८३ ।

उसासी—संज्ञा स्त्री. [हिं० उसास] (१) ठंडी साँस, लंबी साँस । उ०—कबहुँक आगे कबहुँक पाछे पग-पग भरत उसासी—१८१२ । (२) अवकाश, छुट्टी ।

उहँई—क्रि० वि० [हिं० वहाँ + ई = ही] वहाँ ही, वहीं । उ०—सूरश्याम सुन्दर रस अटके हैं मनो उहँइ छए री—पा० उ० ७ ।

उहवाँ—क्रि० वि० [हिं० वहाँ] वहाँ, उस जगह ।

उहाँ—क्रि० वि० [हिं० वहाँ] वहाँ । उ०—उहाँ जाइ कुरु- पति बल-जोग । दियौ छाँडि तन कौ सजोग—१-२८४ ।

उहि—सर्व [हिं० वही] उसे उन्हें । उ०—(क) दच्छ तुम्हारो मरम न पायौ जैसौ कियौ सो तैसो पायौ । अब उहि चाहियै फेरि जिवायौ—४५ । (ख) एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री । । कहत सुन्यौ नद कौ यह बारो, कछु पढि कै तुरतहि उहि झारी—६९७ ।

उहीं—सर्व० [हिं० वही] वही, उसी । उ०—जसुमति बाल विनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई—१०-१५७ ।

उहै—सर्व० [हिं० वही] वही । उ०—फन-फन-निरतत नद नदन । · । उहै काछनी कटि, पीतांबर, सीस मुकुट अति सोहत—५६५ ।

ऊ

ऊ—देवनागरी वर्णमाला का छठा अक्षर । ओष्ठय वर्ण ।

ऊँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ् = नीचे मुँह] उँघाई, झपकी ।

ऊँघना—क्रि० अ० [हिं० ऊँघ] झपकी लेना, नींद मे झूमना ।

ऊँच—वि० [सं० उच्च] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ । (२) बडा, श्रेष्ठ, उत्तम । उ०—अंबरीष, प्रह्लाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई—१-२४ । (३) कुलीन, उत्तम कुल का ।

यौ०—ऊँच-नीच—(१) छोटा-बडा । उ०-ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ—९-२ । (२) भला-बुरा ।

ऊँचा—वि० [सं० उच्च] (१) ऊपर उठा हुआ । (२) श्रेष्ठ, बड़ा । (३) जोर का, तेज ।

ऊँचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँचा + ई (प्रत्य०)] (१) ऊपर की ओर का विस्तार, उठान । (२) बडाई, श्रेष्ठता ।

ऊँची—वि० [हिं० ऊँचा] तेज तीव्र । उ०—स्रवन सुनाइ गारि दै गावति ऊँची तानि लेति प्रिय गोरी—२४४८ (२) ।

ऊँचे, ऊँचैं—क्रि० वि [हिं० ऊँचा] (१) ऊँचे पर, ऊपर की ओर । (२) जोर से जोर देकर । उ०—सतगुरु को उपदेस हृदय धरि निज भ्रम सकल निवारयौ । हरि भजि, बिलँब छाँडि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकारयौ—१-३३६ । (३) लंबे, बड़े, देर तक खिंचने वाले । उ०—उर ऊँचे उसाँस तृणावर्त तिहि सुख सकल उडाइ दिये—३०७३ ।

ऊँचो—वि० [हिं० ऊँचा] ऊँचा, ऊपरी ।

क्रि० वि०—ऊपर की ओर । उ०—भूसुतप्रिय तलफत सफरी भौ बार हीन तन हेरो । 'सूरज' चितै नीच जल ऊँचो लयौ विचित्र बसेरो—सा० ४२ ।

ऊँछ—संज्ञा पु० [देश] एक राग का नाम । उ०—ऊँछ अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन । करत बिहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन ॥

ऊँट—संज्ञा पु० [सं० उष्ट्र, प्रा० उट्ट] एक ऊँचा चौपाया जो रेगिस्तानो मे सर्वत्र होता है और जिसके बिना वहाँ के निवासियो का काम कदाचित चल ही नहीं सकता । भारी बोझ लादने के यह काम आता है । कवियो ने ऐसे लोगो को उपमा इससे दी है जो नीरस जीवन का भार भर ढोया करत हैं, कोई सार्थक काम नहीं करते । उ०—सूरदास भगवत भजनबिनु मनो ऊँट बृष-भैंसो—२-१४ ।

ऊँड़ा—संज्ञा पु० [सं० कुंड] तहखाना ।

वि—गहरा, गम्भीर ।

ऊ—संज्ञा पु०—(१) महादेव । (२) चंद्रमा ।

अव्य०—भी ।

सर्व—वह ।

ऊअना—क्रि० अ० [सं० उदयन, हिं० उगना] उगना, उदय होना ।

ऊआ—क्रि० अ० [हिं० ऊअना] उगा, उदित हुआ।

ऊआबाई—वि० [हिं० आव, बाव। सं० वायु=हवा]-अडबड, निरर्थक, व्यर्थ। उ०—जनम गँवायो ऊआबाई। भजे न चरन कमल जदुपति के, रह्यौ बिलोकत छाई—१-३२८।

ऊक—संज्ञा पुं० [सं० उल्का] (१) टूटता तारा, उल्का। (२)आँच, ताप, तव। उ०—हृदय जरत है दावानल ज्यों कठिन बिरह की ऊक।

ऊकना—क्रि० अ० [हिं० चूकना का अनु०] चूकना, भूल जाना।

क्रि० स०- छोड जाना।

क्रि० स० [सं० उल्का, हिं० ऊक] जलाना, भस्म करना।

ऊख—संज्ञा पुं० [सं० ईक्षु] ईख, गन्ना। उ—हरि-स्वरूप सब घट यौं जान्यौ। ऊख माहिं ज्यों रस है सान्यौ - ३-१३।

संज्ञा पुं० [सं० उष्ण]गर्मी, ताप।

वि०— गरम, तप्त।

ऊखम—संज्ञा स्त्री. [सं० उष्म] गरमी, तपन।

ऊखल संज्ञा पुं० [सं० उलूखल] (१) ओखली, काँडी, हावन। (२) एक तरह का पत्थर।

ऊखा - संज्ञा स्त्री [सं० ऊष्मा] आग, ताप। उ—और दिनन ते आजु दहो हम ऊखा ल्याई। देखत ज्योति बिलाय दई मुख बचन डिठाई—११४१।

संज्ञा स्त्री. [सं० उषा] प्रातःकाल, उषाकाल।

ऊगत—क्रि० अ० [हिं० उगना] उदय होकर, उदय होते होते। उ०—मानिक मध्य पास चहुँ मोती पगति पगति झलक सिंदूर। रँग्यौ जनु तम तट तारागन ऊगत घेर्यौ सूर—१८९६।

ऊगना—क्रि० अ० [हिं० उगना]उदय होना, निकलना।

ऊज—संज्ञा पुं० [सं० उद्वन] उपद्रव, ऊधम।

ऊजड़—वि० [हिं०उजडना] उजड़ा हुआ सूनसान, बिना बसा हुआ।

ऊजर—वि [हिं० उजला] सफेद, उजला।

वि० [हिं० उजडना] उजाड़, बिना बसा हुआ। उ०—ज्यों ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै। त्यों हम बिनु गोपाल भए ऊधो कठिन प्रीति को जानै —३३०६।

ऊजरा—वि० [हिं० उजला] सफेद, उजला।

ऊटना—क्रि० अ०[हिं० औंटना=खलबलना] (१)उत्साहित होना, उमग मे आना। (२) सोच विचार करना।

ऊटपटाँग—वि० [हिं० ऊँट+पट+टाँग] (१) बेढंगा, बेमेल टेढा-मेढ़ा। (२) व्यर्थ, निरर्थक।

ऊड़ना—क्रि० स० [सं० ऊढ] विचार करना।

ऊढ़ना—क्रि० अ० [सं० ऊह=सदेह पर विचार] सोच-विचार करना, अटकल लगाना।

ऊढ़ा—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) विवाहिता स्त्री। (२) वह परकीया नायिका जो पति को छोड कर किसी अन्य से प्रेम करे।

ऊत—वि० [सं०अपुत्र] (१) जिसके पुत्र न हो, निपूता। (२) उजड्ड।

ऊतर—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] (१) उत्तर, जवाब। (२) बहाना।

ऊतला—वि० [हिं० उतावला] चचल, तेज।

ऊतिम—वि [सं० उत्तम] अच्छा, श्रेष्ठ।

ऊदा—वि [अ० ऊद अथवा फा कबूद] बैगनी रंग का।

ऊधम—संज्ञा पुं०[सं० उद्धम=ध्वनित] उपद्रव, उत्पात, हल्ला-गुल्ला।

ऊधमी—वि [हिं ऊधम] उत्पाती, उपद्रवी।

ऊधव, ऊधौ—संज्ञा पुं [सं. उद्धव] श्रीकृष्ण के सखा एक यादव जिन्हे ज्ञान का गर्व था और जो गोपियों को ज्ञानोपदेश देने गये थे।

ऊन—संज्ञा पुं [सं. ऊर्ण] (१)भेड़ बकरी के रोएँ जिन से गरम कपड़े बनते है। (२) दुख, ग्लानि।

वि. [सं] (१) कम, थोड़ा। (२) तुच्छ, हीन।

ऊनता—संज्ञा स्त्री. [सं ऊन] (१) कमी, घटी। (२) हीनता, तुच्छता।

ऊना—वि. [सं ऊन] (१) कम। (२) हीन।

ऊनी—संज्ञा स्त्री.[सं ऊन] उदासी, ग्लानि।

ऊनो, ऊनौ—वि. [सं ऊन] (१) कम,थोडा। (२)तुच्छ, हीन।

ऊपर—क्रि. वि [स. उपरि] (१) ऊँचाई पर ।(२)आधार पर, सहारे पर । उ.—(क)भृगु की चरन राखि उर ऊपर बोले वचन सकल सुखदाई—१-३ । (ख) —मेरे हेत दुखी तू होत । कै अधर्म तो ऊपर होत —१-२९० । (ग) तुव ऊपर प्रसन्न मैं भयौ—९-३ । (घ)दूत पठाइ देहु व्रज ऊपर नन्दहि अति डरपावहु —५२२ । (३)प्रकट मे, प्रत्यक्ष मे ।(४) अतिरिक्त, पर ।

मुहा० —ऊपर(से)—इसके अतिरिक्त इसके साथ-साथ । उ.—जय अरु विजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ । असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही धर्म-उच्छेद करायौ—१-१०४ । ऊपर ऊपर—बिना किसी को बताये या जताये ।

ऊपरी—वि [हि ऊपर] (१) ऊपरी । (२) बाहरी, दिखाऊ ।

ऊब—सज्ञा स्त्री. [हि ऊभ=हौसला, उमग] उत्साह, उमग । उ —नँदनँदन लै गए हमारी अब व्रज कुल की ऊब । सूरस्याम तजि औरे सूझे ज्यो खेरे की दूब —३३६१ ।

सज्ञा स्त्री [हि. ऊबना] घबराहट उद्वेग ।

ऊबट—स पु. [स उद्=बुरा+वर्त्म, प्रा वट्ट=मार्ग] अटपट रास्ता कुमार्ग ।

वि.—ऊँचा नीचा ।

ऊबड़-खाबड़—वि [अनु] जो समतल न हो, ऊँचा नीचा, अटपट ।

ऊबना—क्रि अ [स उद्वेजन, पा. उव्बिजन, पु. हि. उबियाना] उकताना, घबराना ।

ऊबर—सज्ञा पु [हि. उबरना] उबरने का भाव या क्रिया ।

वि.—बचा हुआ, शेष ।

ऊबरना—क्रि. अ [हि उबरना] उबरना ।

ऊबरी—क्रि अ [हि उबरना] मुक्त हुई, बच गयी, छुटकारा पा गयी । उ.—बडी करवर टरी, साँप सौं उबरी, बात कै कहत तोहि लगति जरनी—६९८ ।

ऊभ—वि [हि. ऊभना=खडा होना] ऊँचा उठा हुआ ।

सज्ञा स्त्री [हि ऊब](१)उद्वेग, घबराहट ।(२) हौसला, उमंग । (३) उमस, गरमी ।

ऊभचूभ—सज्ञा स्त्री. [हि ऊभ] पानी में डूबना-उतराना ।

ऊभट—सज्ञा पु [हि ऊबड, ऊबट] ऊबड-खाबड़ मार्ग, कुमार्ग ।

वि —ऊँचा नीचा, अटपटा ।

ऊभना—क्रि अ. [स उद्भवन=ऊपर होना] उठना, खडा होना ।

क्रि अ - [हि ऊबना] घबराना उकताना ।

ऊभी—क्रि अ [हि ऊभना] उठीं, उमड पडीं, खडी हुई । उ —करुना करति मँदोदरि रानी । चोदहसहस सुन्दरी ऊभी (उमही) उठै न कत महा अभिमानी —९-१६० ।

ऊमक—सज्ञा स्त्री [स उमग] झोक, उठान, झपेटा, वेग ।

ऊमना—क्रि अ. [देश] उमड़ना, उमगना ।

ऊमर, ऊमरि सज्ञा पु० [स० उदुबर] गूलर ।

ऊमस—सज्ञा स्त्र [हि० उमस] गरमी, उमस ।

ऊर—सज्ञा पु० [देश] ओर, सीमा ।

ऊरज—सज्ञा पु० [हि उरोज, उरज]स्तन, कुच । उ—चारु कपोल पीक कहाँ लागी ऊरज पत्र लिखाई —२१२९ ।

वि०[स० ऊर्ज] बली, शक्तिशाली ।

सज्ञा पु०—बल, शक्ति ।

ऊरध—वि० [स० ऊर्ध्व] (१) ऊँचा, ऊपर का । उ—(क ऊरध स्वाँस चरन गति थाक्यो, नैनन नीर न रहाई—२६५० । (ख) परी रहत ना कहत कबहूँ कछु भरि भरि ऊरध श्वाँस—सा०-२६ । (२) खडा ।

क्रि० वि —ऊपर, ऊपर की ओर । उ०—अदभुत राम नाम के अक । · · । मुनि मन-हस-पच्छ-जुग, जाकै बल उडि ऊरध जात—१-९० ।

ऊरधरेता—वि० [स० ऊर्द्धवरेता] इद्रियो को वश मे रखनेवाला, ब्रह्मचारी ।

सज्ञा पु०—योगी ।

ऊरु—सज्ञा पु० [स०] जानु, जघा ।

ऊर्ज—वि० [स०] बली

सज्ञा पु०—(१) बल । (२) एक काव्यालकार

जिसमे सहायको के रहने पर भी उत्तम बने रहने या घमड न रहने का वर्णन रहता है।

ऊर्जस्वल, ऊर्जस्वित, ऊर्जस्वी—वि० [स०] (१) बली, शक्तिशाली। (२) प्रतापी, ओजयुक्त।

ऊर्जित—वि० [स० ऊर्ज] बली, शक्तिशाली।

ऊर्ण—सज्ञा पु० [स०] ऊन।

ऊर्ध्व—वि० [सं० ऊद्ध्व](१) ऊँची, ऊपर की। उ०—कहा पुरान जु पढे अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूँटे—२-१९। (२) खडा।

क्रि० वि०—ऊपर की ओर।

ऊर्ध्वगामी—वि०[स०](१) ऊपरकी ओर जाने वाला। (२) मुक्त।

ऊर्ध्वद्वार—सज्ञा पु० [स०] दसवाँ द्वार, ब्रह्मरंध्र।

ऊर्ध्वबाहु—सज्ञा पु० [स०] भुजा उठाये रह कर तप करने वाले तपस्वी।

ऊर्ध्वरेता—वि०[स०]इन्द्रियो को वश मे रखने वाला, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय।

सज्ञा पु०—(१) शिव। (२) भीष्म। (३) हनुमान। (४) योगी।

ऊर्मि, ऊर्मी—सज्ञा स्त्री० [स०](१) लहर, तरग। (२) पीडा, दुख।

ऊर्मिमाली—सज्ञा पु० [स०] समुद्र।

ऊषा—सज्ञा पु० [स०] (१) प्रभात। (२) पौ फटने की लाली। (३) बाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही थी।

ऊषाकाल—सज्ञा पु० [स०] प्रात काल।

ऊषापति—सज्ञा पु० [स०] श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध।

ऊष्म—सज्ञा पु० [स०] गरमी, तपन।

वि०—गरम।

ऊष्मवर्ण—सज्ञा पु० [स०] श, ष, स और ह।

ऊसर—सज्ञा पु० [स० ऊषर] वह भूमि जिसमे रेह की अधिकता के कारण कुछ न ज मे। उ०—(क) एक अग पृथ्वी कौं दयौ। ऊसर तामैं तातैं भयौ—६-५। (ख) या व्रज कौ बसिबौ हम छाँडचौ सो अपनै जिय जानी। सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी—१०-३३७।

ऊह—सज्ञा पु० [स०] (१) विचार, अनुमान। (२) तर्क।

अव्य०—दुख या आश्चर्यसूचक शब्द।

ऊहा—सज्ञा पु०[स०](१)सोच-विचार। (२)तर्क-वितर्क।

ऊहापोह—सज्ञा पु० [स० ऊह+अपोह] तर्क-वितर्क। सोच-विचार।

ऋ

ऋ—देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है।

सज्ञा स्त्री० [स०] (१) देवताओ की माता अदिति। (२) बुराई, निंदा।

ऋक्—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) वेदमंत्र। (२) ऋग्वेद।

ऋक्थ—सज्ञा पु० [स०] (१) धन। (२) सोना, स्वर्ण। (३) प्राप्त, सपत्ति।

ऋक्ष—सज्ञा पु० [स०] (१) भालू। (२) नक्षत्र।

ऋक्षपति—सज्ञा पु० [स०] (१) भालुओ का नायक जांबवान। (२) नक्षत्रो का राजा चद्रमा।

ऋग्वेद—सज्ञा पु० [स०] चार वेदों मे एक।

ऋचा—सज्ञा स्त्री० [स०] वेदमत्र, स्तुति। उ०—व्रज सुन्दरि नहिं नारि ऋचा स्रुति की सब आहिं—१८५१।

ऋच्छ—सज्ञा पु० [स० ऋक्ष] (१) भालू। (२)नक्षत्र।

ऋच्छराज—सज्ञा पु० [स० ऋक्ष+राज] जाम्बवान।

उ०—ऋच्छराज वह मनि तासो लै जामवती को दीन्ही—१०—उ०—२६।

ऋजु—वि० [स०] (१) जो टेढ़ा न हो, सीधा। (२) जो कठिन न हो सरल। (३) सरल स्वभाव वाला। (४) अनुकूल, प्रसन्न।

ऋजुता—सज्ञा स्त्री० [स०] (१) सीधापन। (२) सुगमता। (३) सिधाई, सज्जनता।

ऋण—सज्ञा पु० [स०] उधार, कर्ज।

ऋणी—वि० [स० ऋणिन्](१) जिसने ऋण लिया हो। (२) उपकार मानने वाला।

ऋत—सज्ञा पु० [स०] (१) मोक्ष। (२) जल। (३) कर्मफल।

वि०—(१) दीप्त। (२) पूजित।

ऋतु—सज्ञा स्त्री०[सं०](१) प्रकृति की स्थिति के अनुसार वर्ष के विभाग। (२) यज्ञ। (३) रजोदर्शन के बाद का समय।

ऋतुचर्या—संज्ञा. स्त्री. [स.] ऋतु के अनुसार खानपान की व्यवस्था।

ऋतुराज—संज्ञा पु० [स.] वसन्त ऋतु।

ऋत्विज—संज्ञा पु० [स०] यज्ञ करनेवाला।

ऋद्ध—वि. [स] सपन्न, समृद्ध।

ऋद्धि—संज्ञा स्त्री [स.] समृद्धि, बढ़ती।

ऋन—संज्ञा पु [स. ऋण] (१) उधार, कर्ज। उ.—सबै कूर मोसौ ऋन चाहत कहौ कहा तिन्है दीजै-१-१९६। (२) ऋण, उपकार। उ.—जौ पै नाही मानत प्रभु वचन ऋन। तौ का कहिए सूर स्याम सिन-३३९४।

ऋनिया—वि० [स० ऋणी] ऋणी, देनदार।

ऋनी—क्रि [सि ऋणी] (१) जिसने ऋण लिया हो। (२) उपकार माननेवाला, उपकृत. अनुग्रहीत। उ.-गर्भ देवकी के तन धरिहौं जसुमति को पय पीहौं। पूरव तप बहु कियो कष्ट करि इनको बहुत ऋनी हौं। —११८३।

ऋषभ—संज्ञा पु० [स०] (१) बैल। (२) राम की सेना का एक बदर। (३) सगीत के सात स्वरो मे से दूसरा।

ऋषभदेव—संज्ञा पु० [स०] (१) राजा नाभि के पुत्र जो विष्णु के चौबीस अवतारो मे माने जाते हैं। (२) जैन धर्म के आदि तीर्थकर।

ऋषभध्वज—संज्ञा पु० [स०] शिव, महादेव।

ऋषि—संज्ञा पु० [स०] (१) वेदमंत्रों का प्रकाश करने वाला। (२) तत्वज्ञानी।

ए

ए—देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर। 'अ' और 'इ' के सयोग मे बना है। कठ और तालु से इसका उच्चारण होता है।

एँचपेंच—संज्ञा पु० [फा० पेच] (१) उलझन। (२) दाँवपेच।

एँड़ा-बेंड़ा—वि० [हिं० वेड़ा] अडबड, उलटा-सीधा।

एँडुआ—संज्ञा पु० [हिं० एँडना] गेंडुरी, कुंडली, बिड़ुआ।

ए—संज्ञा पु० [स०] विष्णु।

अव्य०—एक अव्यय जिसका प्रयोग संबोधन के लिए किया जाता है।

सर्व० [स० एष] यह, ये। उ०-(क) छाँडत छिन मे ए जो सरीरहि गहि कै व्यथा जात हरि लैन—२७६८। (ख) लोचन लालच ते न टरें। हरि-मुख ए रग सँग विधे दाधौं फिरें जरें—२७७०।

एई—सर्व० सवि० [स० एष० + हिं० ही] यह ही, ये ही। उ०—(क) आघा बका सहारन ऐई असुर सँहारन आए—२५८१। (ख) एई माधव जिन मधु मारे—२५६८।

एऊ—सर्व० सवि [स० एष० + हिं० ऊ (प्रत्य०)] यह भी, ये भी। उ०—नाही के मोहन बिरहिनि को एऊ दीठ करे—२८४१।

एकंग, एकंगी—वि० [हिं० एक + अग] एक तरफ का, एक पक्ष का।

एकंत—वि० [स० एकांत] जहाँ कोई न हो, सूना।

एकांत—वि० [स०] (१) अत्यन्त नितांत। (२) अलग, पृथक।

संज्ञा पु० [स०] निर्जन, एकांत। उ०—बैठि एकात जोहन लगे पथ सिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई —८-१०।

एक—वि० [स०] (१) इकाइयों मे सबसे पहली सख्या। (२) अकेला, अद्वितीय। उ०—प्रभु को देखौ एक सुभाई—१८। (३) एक ही प्रकार का, समान, तुल्य।

मुहा०—एकटक लागि आशा रही—बहुत समय से आसरा बँधा था। उ०—जन्म ते एकटक लागि आसा रही विषय विष खात नहि तृप्ति मानी—१-११०। एक आँक (या अक)—पक्की बात। एकटक- दृष्टि गडाकर। एकताक—समान, बराबर। उ०—सखन सग हरि जेंवत छाक। प्रेम सहित मैया दै पठयौ सबै बनाए हैं एक (इक)ताक-४६६। एकतार-(१) वि०—समान रूप-रग-नाम का। (२) क्रि० वि०—सम भाव से। एक एक कर-अलग अलग, अकेले-अकेले। उ०—आजु हौं एक-एक करि टरिहौं। कै तुमही कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसे लरिहौं—११३४।

एकचक्र—संज्ञा पु० [स०] (१) सूर्य का रथ जिसमे एक ही चक्र माना गया है। (२) सूर्य।

वि०—चक्रवर्ती।

एकचित—वि० [स० एकचित्त] (१) स्थिर या एकाग्र मन का। (२) समान विचार का।

एकछत्र—वि. [स] (१) अपने पूर्ण अधिकार से युक्त, निष्कटक ।
क्रि. वि —प्रभुत्व के साथ ।

एकज—सज्ञा पु० [स०] (१) शूद्र । (२) राजा ।
वि [स एक + एव, प्रा. ज्जेव] केवल एक, एक मात्र, अकेला ।

एकटक—वि [हिं] जो पलक न झपाये, अपलक ।

एकठी—वि [हिं० इकट्ठा] एक स्थान पर, एक ठौर एकत्र। उ – इतहुँकी उतहुँकी सबै जुरी एकठी कहति राधा कहाँ जाति है री —१५२६ ।

एकत—क्रि० वि० [स० एकत्र, प्रा० एकत] एक जगह इकट्ठा एकत्र ।

एकता—सज्ञा स्त्री. [स०] (१) मेल, एका । (२) समानता ।

एकतान—वि [स०] लीन, एकाग्रचित्त ।

एकत्र— क्रि० वि. [स०] इकट्ठा, एक जगह ।

एकत्रित—वि० [सं०] जो इकट्ठा हुआ हो जुटाया हुआ ।

एकदंत—सज्ञा पु० [स] गणेश ।

एकदेशीय—सज्ञा पु० [स०] एकही स्थान या समय से सबध रखनेवाला, जो सदा न घटे ।

एकन, एकनि—सर्वं० [स० एक + हिं० नि] किसी किसी, कोई-कोई । उ०—एकनि कौ दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो) । एकनि लै मदिर चढै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो) —१-४४ ।

एकनिष्ठ—वि० [स०] एक ही पर श्रद्धा या निष्ठा रखनेवाला ।

एकरस—वि. [स०] एक ढग का, सदा एक सा रहने वाला, अपरिवर्तनीय । उ०—(क) सिसु, किसोर, बिरधौ तनु होइ । सदा एकरस आतम सोइ—७–२ । (ख) अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०–१७१ ।

एकरूप—वि० [स०] (१) समान रूप-रंग का, एक सा, एक समान । (२) ज्यों, का त्यों जैसे का तैसा । उ०—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नायौ ।

एकरूपता—सज्ञा स्त्री. [स०] (१) समानता । (२) सायुज्य मुक्ति जिसमे जीवात्मा परमात्मा से मिल जाता है ।

एकल—वि [हिं० एक] (१) अकेला । (२) एकता । (३) बेजोड़ ।

एकला—वि० [हिं० एक] अकेला ।

एकलिंग—सज्ञा पु० [स०] (१) शिव का एक नाम । (२) कुबेर ।

एकसर—वि० [हिं० एक + सर (प्रत्य)] (१) अकेला । (२) एक पल्ले या पर्त का ।

एकहिं—वि० [स० एक + हिं० ही (प्रत्य)] केवल एक, एक ही । उ०—सूरदास कचन अरु काँचहिं, एकहि धगा पिरोयौ—१-४३ ।

एकांगी—वि० [स०] (१) एक ओर का, एकपक्षीय । (२) हठी ।

एकांत—वि० [स०] (१) अति, अत्यन्त । (२) अलग, अकेला ।
सज्ञा पु०—सूना स्थान ।

एकांतिक—वि० [स० एकांत] एक स्थान से सम्बन्ध रखनेवाला, एकदेशीय ।

एका—सज्ञा पु० [स० एक] मिलकर रहना, एकता ।

एकाएकी—क्रि० वि० [हिं० एक] सहसा, अचानक ।
वि० [स० एकाकी] अकेला, एकाकी ।

एकाकी—वि० [स० एकाकिन्] अकेला ।

एकाक्ष—वि० [स०] एक आँख का काना ।
सज्ञा पु०—(१) शुक्राचार्य । (२) कौआ ।

एकाग्र—वि० [स०] (१) एक ओर लगा हुआ । (२) एक ओर ध्यान रखनेवाला ।

एकात्मता - सज्ञा स्त्री. [स०] (१) एक होना । (२) एकता ।

एकादशी—सज्ञा स्त्री [स०] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि । इस दिन वैष्णव मतावलम्बी व्रत रखते हैं ।

एकादश—वि० [स० एकादश] ग्यारह ।
सज्ञा पु०—(१) ग्यारह का संख्यावोधक अक । (२) ग्यारहवीं राशि अर्थात कुभ । इससे अर्थ निकला उरोज, स्तन । उ०—नवमी छोड अवर नहिं ताकत दस निज राखै साल । एकादस लै मिलो वेगहुँ

जानहु नवल रसाल—सा० २९ ।

एकादसी—सज्ञा स्त्री० [स० एकादशी] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि । इस दिन वैष्णव लोग अनाहार अथवा फलाहार करते हैं । उ०—एकादसी करै-निराहार—९-५ ।

एकै—वि० [हिं० एक] एकही, केवल एक, निश्चित रूप से यही । उ०—(क) एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ—१-२४७ । (ख) मेरै मात पिता-पति-बंधू, एकै टेक हगी—१-२५४ ।

एको—वि० [हिं० एक] एक भी । उ०—(क) सूरदास प्रभु बिनु व्रज ऐसो एको पल न सुहाइ—२५३८ । (ख) सूरस्याम देखत अनदेखत बनत न एको बीर—सा ८२ ।

एकौ—सर्व [स० एक + हिं औ (प्रत्य.)] एक भी । उ—माया देखत ही जु गई । ना हरि-हित, न तू-हित, इनमैं एकौ तौ न भई—१-५० ।

एकौभा—वि [हिं. एक, अकेला] अकेला ।

एड़ियनि—सज्ञा स्त्री बहु. [हिं एडी] ऐड़ियों को । उ०—नान्ही एडियनि, फल बिंब न पूजै—१०-१३४ ।

एडी—सज्ञा स्त्री. [स० एड्क = हड्डी] पैर की गद्दी का पीछे की ओर निकला हुआ भाग ।

एत—वि० [स० इयत] इतना (अधिक), इतनी (अधिक मात्रा का) । उ०—(क) कहि धौं री तोहिं क्यौं करि आवै, सिमु पर तामस एत—३४९ ।

एतदर्थ—क्रि० वि० [स०] इसके लिए ।

वि०—इस काम के लिए बना हुआ ।

एतद्देशीय—वि. [स] इस देश का, इस देश से संबंधित ।

एता—वि [हिं एत] इतना, ऐसा । उ.—तनक दधि कारन जसोदा एता कहा रिसाही ।

एतिक—वि स्त्री [हिं एती = इतनी + एक] इतनी (अधिक) इस मात्रा की । उ —जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मैं, भुज भरि आनि मिलाऊँ । सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढाऊँ—९-१०७ ।

एती—वि स्त्री. [हिं एता] इतनी, ऐसी । (संख्या-वाचक) उ —(क) एती करवर हैं हरी, देवनि करी सहाय । तब तैं अब गाढी परी, मोकौं कछु न सुझाई—५८९ । (ख) एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ बनाइ—३३३४ ।

एते—वि. [हिं एता] (१) इतने (अधिक, सख्यावाचक) । उ.—गाँउ बसत एते दिवसनि मैं, आजु कान्ह मैं देखे—१०-७३० । (२) इस मात्रा के । उ —हौं तो कहत तिहारे हित की एते मो कत भरमत—३३८७ ।

क्रि. वि —इतने पर भी, ऐसा होने, पर भी । उ.—एते पर नहिं तजत अघोडी कपटी कम कुचाली—२५६७ ।

एतै—वि. [स० इयत्] इस मात्रा का, इतना । उ०—(क) कहत सूर बिरथा यह देही, एयो कत इतरात—१-३११ । (ख) तनक दधि कारनै यसोदा, एतौ कहा रिसाहौ । (ग) सो सपूत परिवार चलावै एतौ लोभी धृग इनही—पृ० ३२२ ।

एरी—अव्य. [स. अयि, हिं० हे, ऐ + री] एक संबोधन । उ०—(एरी) आनन्द सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै—१०-२४७ ।

एला—सज्ञा स्त्री. [स० एला] इलायची ।

एव - क्रि वि. [स०] ऐसा ही इसी प्रकार ।

एव—अव्य [स०] (१) ही । (२) भी ।

एवमस्तु—यौ वा [स०एव] ऐसा ही हो (शुभाशीर्वाद) । उ०—एवमस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानद—१८६१ ।

एषणा—सज्ञा स्त्री [स०] (१) इच्छा । (२) छानबीन । (३) खोज ।

एषणा—सज्ञा स्त्री [स०] इच्छा ।

एह, एहा—सर्व० [स० एष] यह, ये । उ०—भक्तनि हित तुम धारी देह । तरिहैं गाइ-गाइ गुन एह—७-२ ।

वि०—यह ।

एहि—सर्व [हिं० एह + हि (प्रत्य.)] यही ।

वि —यहाँ, इसी । उ०—(क) एहि थर बनी

क्रीडा गज-मोचन और अनन्त कथा स्तुति गाई—१-६। (ख) भूसुत आइगो एहि बेर—सा० ५४।

एहु—सर्व [हिं० एह] यह। उ०—समय बिचारि मुद्रिका दीजो सुनो मत्र सुत एहु—९—७४।

एहो—अव्य [हि हे, हो] हे, ऐ। (सम्बोधन शब्द)।

ऐ

ऐ—देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वर। कठ और तालु से इसका उच्चारण होता है।

ऐंचत—क्रि स० [पु० हिं० हीचना, हिं० ऐंचना = खींचना] खींचता है। उ०—इत-उत देखि द्रौपदी टरी। ऐंचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवननाथ सरन हौ तेरी—१-१५१।

ऐंचति—क्रि० स० [हिं० ऐंचना] खींचती है। उ०—अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इद्रिय-कर्म-गटी। हौं तितही उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी—१-९८।

ऐंचना—क्रि० स० [हि खींचना, पू० हिं० हीचना] खींचना, तानना।

ऐंचि—क्रि० स० [हिं० खीचना, ऐंचना] उखाड़ कर, खींचकर। उ०—(क) नोरहू तैं न्यारो कीनो, चक्र नक्र-सीस छीनो, देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं—८-५। (ख) नीलाबर पट ऐंचि लियो हरि मनु बादर ते चाद उतारयौ—४०७। (ग) गहि पटकि पुहुमि पर नेक नहिं मटकियो दत मनु मृनाल से ऐंचि लीन्हे-२५९६।

ऐंछना—क्रि० स० [स० उच्छन = चुनना] (१) साफ करना, झाड़ना। (२) बाल मे कघी करना।

ऐंठ—सज्ञा पु० [हिं० ऐंठन] (१) अकड़, ठसक। (२) गर्व, घमड। (३) द्वेष, विरोध।

ऐंठति—क्रि० अ० [हि ऐंठना] टर्राती हैं सीधी तरह बात नहीं करती। उ०—अँखियन तब ते बैर धरचौ। तब ही ते उन हमही भुलाई गयी उतही को धाई। अब तो तरकि तरकि ऐंठति हैं लेनी लेति बनाई।

ऐंठन—सज्ञा स्त्री [स० आवेष्ठन] (१) घुमाव, लपेट, बल। (२) तनाव, खिचाव।

ऐंठना—क्रि० स० [हिं० ऐंठन] (१) बटना, घुमाव या बल देना। (२) धोखा देकर ले लेना।

क्रि० अ०—(१) बल खाना, खिचना। (२) अकड़ना। (३) घमण्ड करना, इतराना। (४) टर्राना।

ऐंठि—क्रि० स० [हि. ऐंठना] बल या घुमाव देकर बटकर। उ०—भुजा ऐंठि रज-अग चढायो—२६०६।

ऐंठी—क्रि० अ० [हि. ऐंठना] तन गयी, खिची, अकड़ी। उ०—चतुराई कहाँ गई बुद्धि कैसी भई चूक समुझे बिना भौह ऐंठी—१८७१।

वि०—जिसने मान किया हो, जो अप्रसन्न हो।

ऐंठे—वि० [हिं० ऐंठना] अभिमानी, गर्व भरे। उ०—बाएँ कर बाजि-बाग दाहिन हैं बैठे। हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यों ऐंठे—१-२३।

ऐंठ्यो—क्रि अ [हिं ऐंठना] घमण्ड किया, अकड़ दिखायी। उ०—कुवलिया मल्ल मुष्टिक चानूर सो होउ तुम सजग कहि सबन ऐंठ्यो-२६६३।

ऐंड़—सज्ञा पु० [हिं० ऐंठ] ठसक, गर्व, शान।

ऐंड़त—क्रि स० [हिं० ऐंडना] अँगडाई लेते हैं। उ—ऐंडत अग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी—१८५४।

ऐंड़ना—क्रि० अ० [हिं० ऐंडना] (१) बल खाना। (२) अँगडाई लेना। (३) घमड दिखाना।

ऐंड़ात—क्रि० अ० [हिं० ऐंडना] (१) अँगडाई लेते हैं, बदन तोड़ते हैं। उ०—आलस है भरे नैन बैन अट-पटात जात ऐंडात जम्हात जात अग मोरि बहियां झोलि—१५८२। (२) इठलाते हैं।

ऐंड़ाना—क्रि० अ० [हिं० ऐंडना] (१) अँगड़ाई लेना। (२) ठसक दिखाना।

ऐंड़ानी—क्रि० अ स्त्री. [हिं० ऐंडाना] अँगड़ाई ली। उ०—बाँह उँचाइ जोरि जमुहानी ऐंडानी कमनीय कामिनी—२११७।

ऐंड़ावत—क्रि. अ. [हिं. ऐंडाना] अँगडई लेते हैं। उ.—(क) खेलत तुल निसि अधिक गई, सुत नैननि नीद झँपाई। बदन जँभात, अग ऐंडावत, जननि पलोटहि पाई—१०-२४२। (ख) कबहुँक बाँह जोरि ऐंडावत बहुत जम्हात खरे—१९७४।

ऐंड़ी—क्रि अ [हिं० ऐंडना] घमण्ड करके, इठलाकर। उ०—जिनसो कृपा करी नँदनदन सो काहे न ऐंडी डोलै—३०९१।

एड़ो,एँड़ी–क्रि अ.[हिं० ऐंठना, एँडना] इतराकर, घमण्ड करके। उ०—धन जोवन-मद एँडो एँडो, ताकत नारि पराई। लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, सोऊ हाथ न आई—१-३२८।

मुहा० —एँडो डोलै—इतराता फिरता है, अकड दिखाता घूमता है। उ०–जिन पर कृपाकरी नँदनदन सो ऐ डो काहे नहिं डोलै—३०९१।

ऐ—सज्ञा—पु०[स०] शिव।

अव्य. [स० अयि या हिं० हे] सम्बोधन-सूचक अव्यय।

ऐक्य—सज्ञा पु० [स०] (१) एक होने का भाव। (२) एका, मेल।

ऐगुन - सज्ञा पु०[स० अवगुण] दोष, बुराई।

ऐन—सज्ञा पु०[स० अयन](१) गति, चाल। (२) मार्ग, राह। उ०—परम अनाथ, विवेक नैन बिनु, निगम-ऐन क्यों पावै ? पग-पग परत कर्म-तम,कूपहि, को करि कृपा बचावै—१-४८।(३)स्थान। उ०–सोभा सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय साँकरे ऐन–२७६५।(४) अश। उ—गग-तरग विलोकत नैन। ।त्रिभुवन हार सिंगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन —९-१२। (५) निधि, राशि, भडार। उ०-(क) निरखत अग अधिक रुचि उपजी नख-सिख सुन्दरता को ऐन—७४२। (ख) हौं जल गई जमुना लेन। मदन रिस के आदि ते मिल मिलो गुनगन ऐन—सा० ६६।(६) समय, काल। उ०—उर काँप्यौ तन पुलकि पसीज्यौ, बिसरि गए मुख-बैन। ठाढ़ी ही जैसैं तैसैं झुकि, परी धरनि तिहि ऐन—७४९।

ऐनु—सज्ञा पु०[स० अयन, हिं० ऐन] (१) मार्ग, राह। उ०—त्रिविधि पवन जहँ बहत निसादिन सुभग-कुज-घर ऐनु। सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु–४४८।(२)आश्रम, भवन। उ०–इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, व्रजवासिनि कै ऐनु। सूरदास ह्याँ की सरवरि नहिं, कल्पवृच्छ सुर-धैनु–४९१।(३) अश। उ०—आतपत्र मयूर चंदिका लसति है रवि ऐनु —२७५५। (४) भाग, प्राप्य वस्तु। उ०–रहि न सकति मुरली मधु पीवत चाहत अपनो ऐनु—२३५५।

ऐनोखी—वि [हिं. अनोखी] अनोखी,विचित्र। उ.–लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन को ऐनोखी बैनि जारिनि-१०४०।

ऐपन—सज्ञा वि०[स लेपन] (१) चावल और हल्दी से बना एक मागलिक द्रव्य जिसका छापा पूजा के अवसर पर दीवार, कलश आदि पर लगाते हैं। (२) सुनहरी कांति। उ०—ऐपन की सी पूतरी (सब) सखियनि कियौ सिंगार—१०-४०।

ऐबौ—क्रि० अ० [हिं० आना] आना, आवेंगे। उ–अंग भरि भरि लेत सूर-प्रभु, काल्हि न इहिं पथ ऐबौ—७७९।

सज्ञा पु० [हिं० आना] आना, आने की क्रिया। उ०—(क)बनत नही जमुना को ऐबौ। सुन्दर स्याम घाट पर ठाढे- कहौ कौन बिधि जैबो-७७९। (ख) सूरदास अबकैं ोई करिए बहुरि गोकुलहिं ऐबौ–३३७२।

ऐरापति—सज्ञा पु० [स० ऐरावत] ऐरावत हाथी। उ० - सुरगन सहित इद्र व्रज आवत। धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।

ऐरावत—सज्ञा पु० [स०] इन्द्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है।

ऐल—सज्ञा पु० [स०]पुरूरवा जो इला का पुत्र था।

सज्ञा पु० [हिं०अहिला](१)बाढ।(२)अधिकता। (३) शोरगुल, खलबली। (४) समूह।

सज्ञा पु०[देश]एक कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ लगभग एक फीट लबी होती हैं।

ऐलि—सज्ञा पु०[देश ऐल] एक कँटीली लता। उ०—फूले बेल निवारी फूली एलि फूले मरुवौ मोगरो सेवती फूल बेल सेवती सतन हित ही फूल डोल —२४०५।

ऐश्वर्य—सज्ञा पु० [स.](१)धन संपत्ति। (२)अधिकार, प्रभुत्व।

ऐसनि—वि [स. ईदृश,, हिं.ऐसा] ऐसे-ऐसे। उ.–तृनावर्त से दूत पठाए। ता पाछै कामासुर धाए। बकी पठाइ दई पहिलैहीं। ऐसनि को बलबैं सब लैहीं–५२१।

ऐसा—वि० [स० ईदृश] इस प्रकार का।

ऐसियै–वि सवि [स०ईदृश हि. ऐसा] ऐसे ही, ऐसी। उ - (क) ब्रह्मा कह्यौ, ऐसियै होइ—१७-२। (ख) लागे लैन नैन जल भरि भरि तब मैं कानि न तोरी। सूरदास प्रभु देत दिनहिं दिन ऐसियै लरिकसलोरी —१०-२८६।

ऐसो—वि०[स० ईदृश]इस प्रकार की, इस ढग या तरह की, इसके समान। उ९—ऐसी को करी अरु भक्त काजै। जैसी जगदीस जिय धरी लाजै—१-५।

ऐसे—क्रि० वि०[हिं० ऐसा] इस तरह, इस ढब से, इस ढग के। उ०—बिनु दीन्हे ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गोसाई—१-३।

ऐसैं—वि० [हिं० ऐसा] इस प्रकार इस तरह। उ०—कोटि छ्यानवे नृप-सेना सब जरासँध बँध छोरे। ऐसैं जन परतिज्ञा, राखन, जुद्ध प्रगट करि जोरे-१-३१।

ऐसोई—वि० [हिं० ऐसा+ही (प्रत्य०)] ऐसा ही, इसी प्रकार का। उ०—फिरि फिरि ऐसोई है करत। जैसै प्रम-पतग दीप सौं, पावक हू न डरत—१-५५।

ऐसौ—वि०[हिं. ऐसा]ऐसा, इस प्रकार का, इसके समान। उ०—(क) ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर इतरायौ—१-१५। (ख) ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ—१-६७।

ऐश्वर्य—सज्ञा पु० [स० ऐश्वर्य] विभूति, धन-सपत्ति। उ०—भाग्य-भवन मैं मीन महीसुत, बहु ऐश्वर्य बढैहैं—१०८६।

ऐहिक—वि० [स०] इस लोक से सम्बन्ध रखने वाला, सासारिक।

ऐहैं—क्रि० अ० [हिं० आना] आयँगे। उ०—(क)काके हित नृपति ह्यां ऐहैं, सकट रच्छा करिहैं ?—१-२९। (क) कैहो कहा जाइ जसुमति सो जब सनमुख उठि ऐहै—२६५०।

ऐहै—क्रि० अ०[हिं० आना]आवेगा। उ०-(क) श्रम तैं तुम्हैं पसीना ऐहै, कत यह टेक करी—१ १३०। (ख) सो दिन त्रिजटी कहु सब ऐहै। जा दिन चरन कमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै—९-८१।

ऐहौं—क्रि० अ०[हिं० आना]जन्म लूंगा, आऊँगा। उ.-(क) मन-बच-कर्म जानि जिय अपनं, जहाँ-जहाँ जन तहँ तहँ ऐहौं—७-५। (ख) बरस सात बीतैं हौ ऐहौ—९-२। (ग) यह मिथ्या ससार सदाई यह कहि कै उठि ऐहौ—२९२३।

ऐहौ—क्रि० अ०[हिं० आना] आओगे। उ०—क्यों रहिहैं मेरे प्रान दरस बिनु जब सध्या नहिं ऐहौ—२६५०।

ओ

ओ—देवनागरी वर्णमाला का दसवाँ स्वर। उच्चारण ओष्ठ और कठ से होता है। 'अ' और 'उ' के योग से बना है।

ओ—अव्य० [स०] (१)हाँ, अच्छा। (२)परब्रह्मवाचक शब्द। इसके 'अ' 'उ' और 'म्' वर्ण क्रमश विष्णु, शिव और ब्रह्मा के वाचक माने जाते है।

ओठ—सज्ञा पु० [स० ओष्ट, प्रा० ओट्ठ] होठ।

ओड़ा—वि० [स० कुड] गहरा।

सज्ञा पु०—(१) सेंध। (२) गड्ढा।

ओ—सज्ञा पु० [स०] ब्रह्मा।

अव्य०—(१) सम्बोधनसूचक शब्द। (२) स्मरण सूचक शब्द।

ओऊ—सर्व [हिं० ओ+ऊ(प्रत्य०)] वे भी, उन्हें भी। उ०—चुप करि रहो मधुप लपट तुम देखे अरु ओऊ—३३४९।

ओक—सज्ञा पु०[स०](१)घर, निवास स्थान। आश्रम। उ०—(क) सूर स्याम काली पर निरतत, आवत हैं ब्रज ओक—५६५। (ख)मारचो कस धरनि उद्धारचो ओक-ओक आनद भई—२६१६। (२) आश्रम, ठिकाना। (३) ग्रहो-नक्षत्रो का समूह।

सज्ञा स्त्री० [हिं० बूक=अजली] अंजली।

ओकपति—सज्ञा पु०[सं०] सूर्य या चद्रमा। उ०—नागरी स्याम सो कहत बानी। •।रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति ओकपति, धरनिपति, गगनपति अगम बानी।

ओकि—सज्ञा स्त्री० [हिं० बूक=अजली] अंजली।

ओखद—सज्ञा स्त्री० [स० ओषध] दवा।

ओखरी, ओखली—सज्ञा स्त्री० [स० उलूखल] कांडी, हवन, उलूखल उखली।

ओखा—सज्ञा पु० [स० ओख=वारण करना, बच ना] बहाना, हीला।

वि० [सं० ओख=सूखना] (रूखा)—सूखा। (२) कठिन, टेढ़ा। (३) जो शुद्ध न हो, खोटा।

ओग—सज्ञा पु० [हिं० उगहना] कर, महसूल, उगहनी। उ०—पैडो देहु बहुत अब कीनो सुनत हँसैगे लोग।

सूर हमैं मारग जनि रोकहु घर तैं लीजै ओग ।
सज्ञा स्त्री० [हिं० ओक] गोद ।

ओघ—सज्ञा पु० [स०] (१) समूह, ढेर । (२) बहाव, धारा । (३) संतोष तुष्टि ।

ओछत—क्रि० स० [हिं० ओछना] बालो मे कघी करता है ।

ओछना—क्रि० स० [हिं० ऊँछना] बाल सँवारना, कघी करना ।

ओछनि-वि० [हिं० ओछा + नि (प्रत्य०)] तुच्छ व्यक्ति क्षुद्र मनुष्य, खोटे । उ०—ऐसे जनम-करम के ओछे ओछनि हूँ ब्योहारत—१-१२ ।

ओछा—वि० [स० तुच्छ, प्रा० उच्छ] (१) क्षुद्र, नीच, खोटा । (२) छिछला, कम गहरा । (३) हल्को ।

ओछाई—संज्ञा स्त्री०[हिं० ओछा]नीचता, छिछोरापन, क्षुद्रता । उ०—हमहिं ओछाई भई जबहिं तुमको प्रतिपाले । तुम पूरे सब भाँति मातु पितु संकट घाले —११३७ ।

ओछी—वि० स्त्री० [हिं० ओछा] क्षुद्र, तुच्छ, बुरी । उ०—ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही—३९१ ।

ओछे—वि० [हिं० ओछा] जो गंभीर या उच्चाशय न हो, तुच्छ, क्षुद्र, छिछोरा, बुरा, खोटा । उ०—इन बातन कहुँ होत बडाई । डारत, खात देत नहिं काहू ओछे घर निधि आई ।

ओज—सज्ञा पु० [स०](१) तेज, प्रताप । (२)उजाला, प्रकाश । (३) काव्य का एक गुण जिससे सुनने वाले के चित्त मे उत्साह उत्पन्न होता है ।

ओजना—क्रि० स०[स० अवरुधन, प्रा० ओरुज्झन, हिं० ओझना] (भार) ऊपर लेना, सहन करना ।

ओजस्विता—सज्ञा स्त्री० [स०] तेज, कांति, प्रभाव ।

ओजस्वी—वि० [स० ओजस्विन] तेजयुक्त, प्रतापी, ओजपूर्ण ।

ओझ, ओझर—सज्ञा पु० [स० उदर, हिं० ओझर] (१) पेट । (२) आँत ।

ओझा—सज्ञा पु० [स० उपाध्याय, प्रा० उवज्झाओ, उवज्झाय] (१) ब्राह्मणो की एक जाति । (२) भूत-प्रेत झाडने वाला ।

ओट—सज्ञा स्त्री०[स० उट = घासफूस](१) रोक, आड, अतर, व्यवधान, ओझल । उ०—(क) ना हरि-हित, ना तू हित, इनमे एको तो न भई । ज्यौं मधु माखी सँचति निरन्तर, बन की ओट लई—१-५० । (ख) बसन ओट करि कोट विसभर, परन न दीन्हौं झाँको —१-११३ । (ग) ममता-घटा मोह की बूँदै, सरिता मैन अपारो । बूडत कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन ओट अधारो—१ २०९ । (घ) पलक भरे की ओट न सहतो अब लागे दिन जान—२७४७ । (ङ) सगुन सुमेर प्रगट देखियत तुम तृन की ओट दुरावत-३११५ (च) ललना लै लै उछग अधिक लोभ लागै । निरखति निदति निमेष करत ओट आगै -१०-९० । (छ) सूरदास प्रभु दुरत दुराये डुँगरनि ओट सुमेरु—४५८ । (२) शरण, रक्षा । उ०—(क)बडी है राम नाम की ओट । सरन गये प्रभु काढि देत नहिं करत कृपा कै कोट—१-२३२ । (ख) भागी जिय अपमान जा न जनु म्कुचाने ओट लई—२७९१ ।

ओटना—क्रि० स० [स० आवर्तन, प्रा० आवट्टन] (१) कपास के बिनोले अलग करना । (२) अपनी ही बात बार बार कहना । (३) स्वयं (आपत्ति, बात आदि) सहन करना ।

ओड़न—सज्ञा पु० [हिं० ओडना] (१) वार रोकने की वस्तु । (२) ढाल ।

ओड़ना—क्रि० स० [हिं० ओट] (१) रोकना, आड करना । (२) सहन करना, झेलना । (३) फैलाना, पसारना । (४) धारण करना, पहनना ।

ओड़हु—क्रि० स०[हिं० ओडना] फैलाओ, पसारो । उ०—लेहु मातु सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ । सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओडहु दच्छिन हाथ—९ ८३ ।

ओड़ि—क्रि० स० [हिं० ओडना] (अपने) ऊपर ले, स्वीकार कर, भागी बन जा, सहन कर । उ०—बोल्यौ नहीं, रह्यौ दुरि बानर, द्रुम मैं देहि छपाइ । कै अपराध ओड़ि तू मेरो, कै तू देहि दिखाइ—९-८३ ।

ओड़िये—क्रि स. [हिं ओडना] आड करो, रोको, सहो । उ०—ओडिये नँदनद जू के चलत ही दृगबान । राखिये दृग मद्ध दीजै अनतै नाहीं जान—सा० १०७।

ओड़ै—क्रि० स०[हिं० ओढना] रोकता है, सहता है। उ०—नृप भूषन कपि पितु गज पहिलो आस बचन की छोडै। तिथि नछत्र के हेतु सदाई महाबिपति तन ओडै—सा० ४३।

ओढ़—क्रि० स०[हिं०ओढना]अपने ऊपर ले, भागी बने, सहन करे। उ०—कै अपराध ओढ (ओडि) अब मेरो, कै तू देहि दिखाइ—९-८३।

ओढ़त—क्रि० स० [हिं० ओढना] ओढ़ता है, (वस्त्र से शरीर) ढकता है। उ०—पीतांबर यह सिर तें ओढत, अचल दै मुसुकात—१०-३३८।

ओढ़न—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओढना] ओढने की क्रिया। उ०—डासन कांस कामरी ओढन बैठन गोप सभा की—२२७५।

ओढ़ना—क्रि०स०[स०उपवेष्ठन, प्रा०ओवेड्ढन](१)किसी वस्त्र से ढकना।(२)अपने सिर लेना, भागी बनना।
सज्ञा पु०—ओढने का कपडा।

ओढ़नि, ओढ़नी—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओढना]स्त्रियो के ओढने का वस्त्र, उपरैनी, चादर, फरिया। उ०-(क) पीतांबर काकैं घर बिसरचौ, लाल ढिगनि की सारी आनी। ओढनि आनि दिखाई मोकौं, तरुनिनि की सिखई बुधि ठानी—६९५। (ख) सूरदास जसुमति सुत सौं कहै, पीत ओढनी कहाँ गँवाई—६९२।

ओढ़र—सज्ञा पु० [हिं० ओढना] बहाना, मिस।

ओढ़ावा—क्रि० स० [हिं० ओढना, ओढाना] ढकना, आच्छादित करना।

ओढ़िए—क्रि० स० [हिं० ओढना] देह ढकिये।
मुहा०—ओढ़िये पीठ—(अवसर और स्थिति के अनुकूल) काम कीजिए। उ०—सूरदास के प्रिय प्यारी आपुही जाइ मनाइ लीजै जैसी बयारि वहै तैसी ओढिए जु पीठि—२०७५।

ओढ़े—क्रि० स० [हिं० ओढना] (वस्त्र से) शरीर ढके, पहने हुए। उ०—पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी, बालक दामिनि मानो ओढे बारौ बारि-धर—१०-१५१।

ओढ़ैं—क्रि० स०[हिं० ओढना] देह ढकें।
मुहा०—ओढैं कि बिछावैं—क्या करें, किस काम मे लावें। उ०—दुस्सह बचन हमे नहि भावै। जोग कथा ओढैं कि बिछावैं।

ओढ़ौनी—सज्ञा स्त्री. [हिं० ओढना] ओढ़ने की चादर, ओढनी।

ओत—सज्ञा स्त्री. [स० अवधि] (१) आराम, चैन। (२) आलस्य। (३) मितव्ययता।
सज्ञा स्त्री. [हिं० आवत] प्राप्ति, लाभ।
सज्ञा पु० [स०] ताने का सूत।
वि०—बुना हुआ, गुथा हुआ।

ओत-पोत—वि० [स०] गुथा हुआ, बहुत मिला-जुला।

ओता, ओतो, ओत्ता—वि० [हिं० उतना]उतना।

ओद—वि०[स० उद=जल](१) गीला, तर, नम।(२) मग्न, निमग्न, लीन। उ०—आनँद कंद, सकल सुख-दायक, निसि दिन रहत, केलि-रस-ओद—१०-११९।
सज्ञा पु०—नमी, तरी।

ओदन—सज्ञा पु० [स०] पका हुआ चावल, भात। उ-(क) दधि ओदन दोना भरि दैहौ, अरु भाइन मैं थपिहौ—९-१६४। (ख) ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगैं तैं खैहौं—४१२। (ग) व्यजन बर कर बर पर राखत ओदन मधुर दह्यौ—४८६।

ओदर—सज्ञा पु० [स० उदर] पेट।

ओदरना—क्रि० अ० [हिं० ओदारना](१)फटना।(२) गिर पड़ना, नष्ट होना।

ओदा—वि० [स० उद=जल] गीला, नम।

ओदारना—क्रि०स०[स० अवदारण](१) फाड़ना।(२) गिराना, ढाना, नष्ट करना।

ओदे—वि० [स० उद्=जल] गीले, नम, तर। उ०—उत्तम बिधि सौ मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगोछि—६०९।

ओधना—क्रि० अ०[स० आबधन](१)फँसना, उलझना। (१)काम मे व्यस्त होना।

ओधे—सज्ञा पु० [स० उपाध्याय] स्वामी, अधिकारी।

ओनंत—वि० [स० अनुन्नत] झुका हुआ, नत।

ओनवना—क्रि० अ० [हिं० उनवना] (१) झुकना, नत होना। (२) घिर आना, उमड़ना।

ओनाना—क्रि०स०[हिं०उनाना] कान लगाकर सुनना।

ओप—सज्ञा पु०[हिं० ओपना] (१) चमक, दीप्ति, शोभा। उ —(क)सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यो अधिक ओप ओपी—३४८७। (ख) राधे तैं बहु लोभ करयौ। लावन रथ ता पति आभूषन आनन-ओप हरयौ—सा. उ०—१४। (२) गौरव, सम्मान। उ०—रघुकुल-कुमुद-चद चितामनि प्रगटे भूतल महियाँ। आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँदनिधि सब कहियाँ—९-१९।

ओपना—क्रि० स. [हिं० ओप] साफ करना, चमकाना, स्वच्छ करना।

क्रि अ — झलकना, चमकना।

ओपनिवारी—वि. [हि. ओप] चमकनेवाली।

ओपनी—सज्ञा स्त्री [हि. ओप] पत्थर या ईट का टुकडा जिससे कोई वस्तु माँजी या (घिसकर) साफ की जय।

ओपी—क्रि० अ० स्त्री [हिं० ओपना] झलकने लगी, चमकी। उ.—जेती हुती हरि के अवगुन की ते सवई तोपी। सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यो अधिक ओप ओपी—३४८७।

ओबरी—संज्ञा स्त्री. [स०विवर] छोटा कमरा, कोठरी। उ०—विलग मति मानौ ऊधो प्यारे। वह मथुरा काजर की ओवरी (उवरी) जे अ.वें ते कारे —३१७५।

ओभा—सज्ञा स्त्री. [हिं आभा] कांति, चमक। उ०—देखो री झलक कुडल की आभा—२९५२।

ओर—सज्ञा पु० [स० अवार=किनारा] (१) अंत, सीमा, सिरा, छोर, किनारा। उ०—सोभा-सिंधु अग-अगनि प्रति, बरनत नाहिन ओर री—१०-१३९। मुहा —ओर (निवाह्यौ) निवाहे—अत तक कर्तव्य का पालन किया। उ० -(क) और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनौ साज। तीनौं पन भरि ओर निवाह्यौ तऊ न आयौ वाज—१-९६। (ख) तीन्यौ पन मैं ओर निवाहे, इहै स्वाँग कौं काछै। सूरदास कौ यहै बडो दुख परत सबनि के पाछै—१-१३६। ओर आयौ—अत निकट आ गया।

(२) आदि, आरम्भ। उ.—हरि जू की आरती बनी।......। नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर अनी। काल-कर्म-गुन-ओर-अत नहिं, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८।

सज्ञा स्त्री [सं० अवार=किनारा] (१) दिशा, तरफ। (२) पक्ष। उ —यादव बीर बराइ बटाई इक हलधर इक आगैं ओर—१० उ०-६।

ओरती—सज्ञा स्त्री [हिं. ओलती] (१) ढलुआ छप्पर के किनारे का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। (२) वह भाग जहाँ यह पानी गिरे।

ओरभना—क्रि अ० [स० अवलवन] लटकना।

ओरहना—सज्ञा पु० [हिं० उरहना] उलाहना।

ओरा -संज्ञा पु० [हिं० ओला] ओला, पत्थर।

ओराना—क्रि० अ० [हिं० ओर=अत+आना] चुक जाना, समाप्त होना।

ओराहना—सज्ञा पु० [हिं० उराहना] उलाहना।

ओरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओलती] छप्पर का वह भाग जहाँ से पानी नीचे गिरे।

अव्य०[हिं० ओ+री]स्त्रियो के लिए संबोधन।

सर्व० [हिं० ओर] और कोई, दूसरी, अन्य। उ०—यह उपदेस सुनहिं ते ओरी—३३४५।

सज्ञा स्त्री०[हिं० ओर](१) ओर, दिशा, तरफ। उ०—मनहुँ प्रचड पवनवस पकज गगन धूरि सोभित चहुँ ओरी—२४०४। (२) पक्ष।

ओरे—सज्ञा पु० [हिं० ओला, ओरा] ओला। उ०—अपराधी मतिहीन नाथ हौं, चूक परी निज भोरे। हम कृत दोष छमौ करुनामय, ज्यौं भू परसत ओरे —४८८।

औरै—सज्ञा पु० [हिं० ओर] अत, सिरा, छोर, किनारा। उ०—कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरै। लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दोष नहिं ओरै—१—१२५।

ओलंवा, ओलंभा—सज्ञा पु० [स० उपालंभ] उलाहना।

ओल—सज्ञा स्त्री [स० क्रोड] (१) गोद। (२) आड़, ओट। (३) वह वस्तु या व्यक्ति जो कोई शर्त पूरी

न होने तक किसी दूसरे के पास रहे या रखा जाय । उ०—बने विसाल अति लोचन लोल । चितै चितै हरि चारु विलोकनि मानो माँगत हैं मन ओल—६३० । (४) शरण, रक्षा । (५) बहाना, मिस ।

वि० [हिं० ओला] गीला, तर ।

ओलती—संज्ञा स्त्री [हिं० ओलमना] (१) छप्पर का वह किनारा जहाँ से बरसा हुआ पानी नीचे गिरता है । (२) वह स्थान जहाँ यह पानी गिरता है ।

ओलना—क्रि० स० [हिं० ओल=आड] (१) परदा करना, ओट या आड में करना । (२)सहन करना, अपने ऊपर लेना ।

क्रि० स० [हिं० हूल] घुमाना, चुभाना ।

ओलरन—क्रि० अ०[हिं०ओल, ओलना] सोना, लेटना ।

ओलराना—क्रि० स० [हिं० ओल, ओलना] सुलाना, लिटाना ।

ओला—संज्ञा पु० [सं० उपल] मेह के जमे हुए पत्थर या गोले ।

संज्ञा पु० [हिं० ओल] (१) परदा ओट । (२) भेद, रहस्य ।

ओलिक—संज्ञा पु० [हिं० ओल+आड] ओट, परदा ।

ओलियाना—क्रि० स० [हिं० ओल, ओला] गोद मे भरना ।

क्रि० स० [हिं० हूलना] घुसना, प्रवेश करना ।

ओली—संज्ञा स्त्री [हिं० ओल] (१) गोद । (२) अंचल । (३) झोली ।

मुहा०—ओली ओडना—आँचल पसार कर याचना करना ।

ओलै—संज्ञा स्त्री. [सं० क्रोड, हिं० ओल] (१) गोद । (२) शरण, आश्रय । उ०—जाकै मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै । सूरदास ताको डर काको, हरि गिरिधर के ओलै—१ २५६ । (३)आड़, ओट । (४) जमानत-रूप में रखी हुई वस्तु या व्यक्ति ।

ओल्यौ—संज्ञा पु०[हिं० ओल] बहाना, मिस ।

ओषधि, ओषधी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) वनस्पति या, जड़ी-बूटी जो दवा के काम की हो । (२) फलने के बाद सूखे हुए पौधे । (३) दवा ।

ओषधीश—संज्ञा पु० [सं० ओषधि+ईश] (१)चंद्रमा । (२) कपूर ।

ओष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] होठ, ओठ ।

ओष्ठ्य—वि०[सं०] (१) ओठ का । (२)जिन(अक्षरों) का उच्चारण ओठ से हो । (उ ऊ प फ ब भ म ओष्ठ्य वर्ण हैं ।)

ओस—संज्ञा स्त्री [सं० अवश्याय, पा० उस्साव] हवा से मिली हुई भाप जो उससे अलग होकर गिर जाती है ।

मुहा.—ओस का मोती—शीघ्र नष्ट हो जानेवाला ।

ओसारा—संज्ञा पु० [सं० उपशाला] (१) दालान । (२) छाजन, सायबान ।

ओह—अव्य. [अनु०] दुख या आश्चर्यसूचक अव्यय ।

ओहट—संज्ञा स्त्री. [हिं० ओट] ओट, ओझल ।

ओहार—संज्ञा पु० [सं० अवधार] रथ या पालकी का परदा ।

ओहि—सर्वं० [हिं० वह] उसे ।

सब हलधर, माखन प्यारो तोहि । ब्रज प्यारो, जाको मोहि गारो, छोरत काहे न ओहि—३७५ ।

औ

औ—देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवा स्वर जो अ और ओ के संयोग से बना है । इसका उच्चारण कंठ और ओष्ठ से होता है ।

औंगा—वि० [हिं० औंगी] जो बोल न सके, गूंगा ।

औंगी—संज्ञा स्त्री [सं० आवड] चुप्पी, गूंगापन ।

औंघना—क्रि० अ० [सं० अवाङ] अलसाना, झपकी लेना ।

औंघाई—संज्ञा स्त्री. [हिं० औंघना] झपकी, उँघाई, आलस्य ।

औंघान—क्रि० अ० [हिं० औंघाना] ऊंघना, झपकी लेना ।

औंछि—क्रि० स० [हिं० पोंछना औंछना] पोंछकर, झाड-पोछकर, हाथ फेरकर । उ.—दोऊ भैया कछु करौ कलेऊ लई बलाइ कर औंछि -६०९ ।

औंजाना—क्रि० अ० [सं० आवेजन=व्याकुल होना] ऊबना, अकुलाना, घबराना ।

औंठ—सज्ञा स्त्री [सं० ओष्ठ, प्रा. ओटट] उठा हुआ किनारा, बारी ।

औंड़—सज्ञा पु०[स० कुड=गडढा] गड्ढा खोदनेवाला, बेलदार ।

औंड़ा—वि० [स० कुड] गहरा, गम्भीर ।
 वि० [हि० औडना, उमडना] उमडता हुआ, चढा या बढ़ा हुआ ।

औंड़े—वि० [हि० औंडा] गहरा, गम्भीर ।
 वि० [हिं. औडना, उमड़ना] बढ़ा हुआ, चढा हुआ । उ.—इन्द्री-स्वाद-बिबस निसि बासर, आपु अपुनपौ हारौ । जल ओडे मैं चहूँ दिसि पैरयौ, पाउँ कुल्हारी मारौ—१-१५२ ।

औंदना—क्रि० अ० [स० उन्माद या उद्विग्न] (१) उन्मत्त हो जाना । (२) घबराना, आकुल होना ।

औंदाना—क्रि० अ० [स० उद्वेलन] (१) ऊबना । (२) दम घुटने से घबराना ।

औंधना—क्रि० अ. [हिं. औधा] उलट जाना ।
 क्रि स—उलटा कर देना ।

औंधा—वि, [स. अधोमुख] (१) उलटा, पेट के बल, पट । (२) जिस (पात्र) का मुँह नीचे हो । (३) नीचा ।

औंधाना—क्रि स [हिं. औंधा](१) उबटना, पलट देना। (२) (पात्र को) मुख नीचे करके (द्रव आदि) गिराना । (३) नीचे लटकाना ।

औ—अव्य [स. अपर, प्रा. अवर, हिं. और] और । उ—मन बच-कर्म और नहिं जानत सुमिरत औ सुमिरावत—२-१७ ।
 संज्ञा पु. [स] अनत, शेष ।
 सज्ञा स्त्री.—पृथ्वी ।

औकन—सज्ञा स्त्री [देश] राशि, ढेर ।

औगत-सज्ञा स्त्री. [स अव+गति] दुर्दशा, दुर्गति ।
 वि [हि अवगत] जाना हुआ, विदित ।

औगाहना—क्रि अ [स. अवगाहन](१) नहाना (२) घुसना, धसना, प्रवेश करना । (३) प्रसन्न होना ।
 क्रि. स—(१ छानवीन करना ।(२)गति उत्पन्न करना । (३)धारण करना । (४)सोचना-विचारना ।

औगाह्यौ—क्रि. अ. [स. अवगाहन, हि अवगाहना] ग्रहण किया, अपनाना सीखा, छानबीन की । उ.—सब आसन रेचक अरु पूरक कुभक सीखे पाइ । बिनु गुरु निकट सँदेसन कैसे यह औगाह्यौ जाइ—३१३४ ।

औगुन—सज्ञा पु [स. अवगुण] (१) दोष, दूषण ।(२) अपराध, बुराई, खोटाई ।

औगुनी—वि [स. अवगुणिन्](१) निर्गुणी (२) दोषी ।

औघट—सज्ञा पु.— कठिन या दुर्गम मार्ग ।

औघड़—सज्ञा पु [स अघोर=भयानक] (१)अघोरी, अघोरपंथी । उ,—औघड-असत-कुचीलनि सौं मिलि, माया-जल मे तरतौं—१-२०३ । (२) मनमौजी ।
 वि.—अटपट, उलटा-पलटा ।

औघर—वि [स. अव+घट] (१) उलटा-पलटा, अड बड । (२) अनोखा, विचित्र । उ.—(क) बलिहारी वा रूप की लेति सुघर औ औघर तान दै चुम्बन आकर्षति प्रान । (ख) मोहन मुरली अधर धरी । । औघर तान बंधान सरस सुर अरु रस उमगि धरी ।

औचक—क्रि. वि [स. अव+चक=भ्राति] अचानक, एकाएक, सहसा । उ—(क) यह सुनतहिं जनुमति रिस मानी । कहाँ गयौ कहि सारगपानी । खेलत हैं औचक हरि आए । जननी बाँह पकरि बैठाए—३९१ । (ख) गए स्याम रवि तनया कैं तट, अग लसति चन्दन की खोरी । औचक ही देखी तहँ राधा नैन बिसाल भाल दिए रोरी—६२७ ।

औचट—क्रि. वि.[स अ=नही+हिं. उचटना=हटना] संकट, कठिनता, सँकरा । उ.—लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौ सुत-सँग, औचट गुनि गृह बन कौ—१-९ ।
 क्रि. वि (१) अचानक, अकस्मात ।(२) भूल से, अनचीते मे ।

औचिंत—वि [स० अव=नही+चिन्ता]निश्चिन्त ।

औचिती—सज्ञा स्त्री. [स० औचित्य] उचित बात या रीति ।

औचित्य—सज्ञा पु० [स०] उपयुक्तता ।

औज—सज्ञा पु० [स० ओज].(१) तेज, बल । (२) प्रकाश ।

औचक—क्रि० वि० [हिं० औचक] अचानक, सहसा।

औजड़—वि० [सं० अव+जड] उजड्ड, अनाड़ी।

औझड़, औझर—क्रि० वि० [सं० +हिं० झड़ी] लगातार, निरन्तर।

औटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० औटना] उबाल, ताव।

औटना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आवट्टन] (१) किसी द्रव को आग पर खौलाना या गाढ़ा करना। (२) घूमना, भटकना। (३) तप करना।

औटाइ—क्रि० स० [हिं० औटाना] औटाकर, खौलाकर। उ०—रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६३।

औटाए—क्रि० स० [हिं० औटाना] औटाने पर, खौलाने पर। उ०—फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड न होई—१-६३।

औटाना—क्रि० स० [हिं० औटना] आँच पर खौलाना या गाढा करना।

औटि—क्रि० स० [हिं० औटाना] औटा कर, खौला कर, गर्म करके। उ०—(क) आछौ दूध औटि धौरी कौ, लै आई रोहिनि महतारी—१०-२२७। (ख) ग्वाल सखा सबही पय अँचयौ। नीकैं औटि जसोदा रचयौ—३९६।

औटयौ—क्रि० स० भूत० [हिं० औटाना] औटाया खौलाया। उ०—आछैं औटयौ मेलि मिठाई, रुचि करि-अँचवत क्यौं न नन्हैया—१०-२२९।

वि०—औटा हुआ, खौला हुआ, पका हुआ। उ०—औटायौ दूध, सद्य दधि, मधु, रुचि सौ खाहु लला रे—४२९।

औठपाय—संज्ञा पु० [सं० उत्पात] नटखटी, शरारत।

औढर—वि० [सं० अव+हिं० ढार या ढाल] (१) मनमौजी। (२) शीघ्र ही या थोड़े ही मे प्रसन्न हो जाने वाला।

औतरना—क्रि० अ० [हिं० अवतरना] अवतार लेना।

औतरै—क्रि० अ० [सं० अवतार, हिं० अवतारन] अवतार ले, जन्म ग्रहण करे। उ०—याकी कोख औतरै जो सुत, करै प्रान-परिहारा—१०-४।

औतार—संज्ञा पु० [सं० अवतार] शरीर ग्रहण करना, जन्मना, सृष्टि, अवतार।

औत्सुक्य—संज्ञा पु० [सं०] उत्सुकता, उत्कंठा।

औथरा, औथरो—वि० [सं० अवस्थल] उथला, छिछला।

औदकना—क्रि० अ० [हिं० उदकना] (१) कूदना। (२) चौंकना।

औदसा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवदशा] बुरी दशा, दुख।

औदार्य—संज्ञा पु० [सं०] उदार होने की क्रिया या भाव।

औद्योगिक—वि० [सं०] उद्योग धन्धो से संबंधित।

औध—संज्ञा पु० [सं० अवध] अवध कौशल देश।

औध, औधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] (१) समय, अवसर काल। उ०—कहँ लगि समुझाऊँ सूरज सुनि, जाति मिलन की औधि टरी—८०६। (२) निर्धारित, समय, काल। उ०—सिसिर बसन्त सरद गत सजनी बीती औधि करी—२८१४।

औधारना—क्रि० स० [हिं० अवधारना] ग्रहण करना, धारण करना।

औनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] भूमि, पृथ्वी।

औनिप—संज्ञा पु० [सं० अवनि+प] पृथ्वी का पालक, राजा।

औम—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसकी हानि हो गयी हो।

और—अव्य० [सं० अपर, प्रा० अवसर] एक संयोजक शब्द; दो शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को जोडने वाला शब्द। उ०—एहि घर बनी क्रीडा गज-मोचन और अनत कथा स्तुति गाई—१-६।

वि०—(१) दूसरा, अन्य, भिन्न। उ०—हरि सौ ठकुर और न जन को—१-९। (२) कुछ। उ०—कानन सुनै आँखि नहिं सूझै। कहै और और कछु बूझै—४-१२।

मुहा०—भई और की और (औरै)—विशेष परिवर्तन हो गया, भारी उलट-फेर हो गया, कुछ का कुछ हो गया। उ०-(क) कहत हे आगै जपिहैं राम। बीचहिं भई और की औरै, परयौ काल सौं काम—१-५७। (ख) बीचहिं भयी और की औरै भयौ शत्रु कौ भायौ—९-१४६। (ग) हम सौं कहत और

की ओर इन बातनु मन भावहुगे--१९७८ । (घ) अब ही और की और होत कछु लागै बारा—१० । उ०—८ । और की औराई (औरै)—कुछ का कुछ । उ०—(क) कहति और की औराई मैं तुमहिं दुरैहौं—२१०२ । (ख) तै अलि कहत और की औरै स्तुति-मति की उर लीनी—१३८० ।

(३) अधिक, ज्यादा ।

औरस—वि० [स०] जो संतान विवाहिता पत्नी से उत्पन्न हो । उ०—मैं हूँ अपनै औरस पूतै बहुत दिननि मैं पायौ—१०-३३९ ।

औरसना—क्रि० अ० [स० अव=बुरा + रस] नष्ट होना, उदासीन होना ।

औरासा—वि० पु० [हि० औरसना] विचित्र बेढगा ।

औरासी—वि० [हि० औरसना] रुष्ट, उदासीन ।

वि०—विचित्र, बेढगा । उ०—बिसरो सूर विरह दुख अपनो अब चली चाल औरासी—२८७७ ।

औरेब–सज्ञा पु० [स० अव=विरुद्ध या उलटी + रेव=गति] (१) तिरछी चाल । (२) चाल भरी बातें, छल-कपट की घात ।

औरै—नि० सवि० [हि० और] (१) और को, दूसरे को । उ०—कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि के औरै—१-१८६ ।

औरौ—वि० [हि० और] (१) और भी, अन्य, अनेक । उ०—(क) जो प्रभु अजामील को दीन्हो, सो पाटौ लिखि पाऊँ । तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ—१-१४६ । (ख) अवहिं निवछरो समय, सुचित ह्वै, हम तौ निरधक कीजे । औरौ आइ निकसिहैं तातैं, आगैं हैं सो कीजै—१-१९१ ।

(२) अन्य, दूसरा । उ०—औरौ दँडदाता दोउ आहि । हम सौं क्यौं न बतावौ ताहि—६-४ ।

औलना—क्रि० अ० [हि० जलना] गरमी पड़ना, तप्त होना ।

औपध—सज्ञा स्त्री० [स०] रोग दूर करने की वस्तु, दवा । उ०—बिन जानै कोउ औपध खाइ । ताको रोग सफल नसि जाइ—६-४ ।

औपधि, औपधी—सज्ञा स्त्री० [स० औपध] दवा, ओपधि । उ०—तुम दरसन इक बार मनोहर, यह ओपधि इक सखी लखाई—७४८ ।

औसर—सज्ञा पु० [स० अवसर] समय, काल । उ०—(क) हरि सौं मीत न देख्यो कोई । विपति काल सुमिरत तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० । (ख) गए न प्रान सूरता औसर नंद जतन करि रहे घनेरो—२५३२ ।

मुहा—औसर हारयौ—मौका चूक गये । उ०—औसर हारयौ रे तैं हारयौ । मानुप-जनम पाइ नर बौरे, हरि को भजन बिसरायौ—१-३३६ ।

औसान–संज्ञा [स० अवसान] (१) अंत । (२) परिणाम । उ०—जेहि तन गोकुलनाथ भज्यौ । ऊधो हरि बिछुरत ते बिरहिनि सो तनु तबहिं तज्यौ । अब औसान घटत कहि कैसे उपजी मन परतीति ।

सज्ञा पु०—सुध-बुध, धैर्य । उ०—सुरस र-सुवन रनभूमि आए । बान वर्षा लागे करन अति क्रोध ह्वै पार्थ औसान (अवसान) तब सब भुलाए—१-२७३ ।

औसाना—क्रि० स० [हि० ओसाना] फल पाल मे रखकर पकाना ।

औसि—क्रि० वि० [सं० अवस्य] जरूर, अवश्य ।

औसेर—सं० स्त्री० [स० अवसेरु=बाधक, हि० अवसेर] चिंता, व्यग्रता । उ०—गोपिन बैठि औसेर कीनो—२४३२ (४) ।

औहत–सज्ञा स्त्री० [स० अपघात, अवहन=कुचलना, कूटना] दुर्गति, अपमृत्यु ।

औहाती—वि० स्त्री० [स० अहिवाती] सोहागनि, सौभाग्यवती ।

प्रथम खण्ड समाप्त

क

क—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम व्यंजन । कंठ्य और स्पर्श वर्ण ।

कं—संज्ञा पुं. [सं. कम्] (१) जल । (२) मस्तक । उ.—सिसु भष के पत्र बन दो बने चक्र अनूप । देव कं को छत्र छावत सकल सोभा रूप । (३) अग्नि । (४) काम । (५) सोना । (६) सुख ।

कँउधा—संज्ञा स्त्री. [हि. कौंधना] बिजली की चमक ।

कंक—संज्ञा पुं [सं.] (१) सफेद चील । (२) बगुला । (३) यम । (४) युधिष्ठिर का कल्पित नाम जो उन्होंने राजा विराट के यहाँ रक्खा था । (५) कंस का एक भाई ।

कंकड़—संज्ञा पु. [स. कर्कर, प्रा. वक्कर] छोटा टुकड़ा, पत्थर का टुकडा, रोडा ।

कँकडीला—वि. [हि. कंकड] जिसमें कंकड अधिक हों।

कंकण—संज्ञा पुं. [स] (१) कडा या चूड़ा नामक आभूषण जो कलाई में पहना जाता है । (२) एक धागा जिसमें सरसों की पुटली, लोहे का छल्ला आदि बाँधकर दुलहिन और दूल्हे के हाथ में पहनाते हैं। विवाह के पश्चात दूल्हा दुलहिन का और दुलहिन दूल्हे का कंकण खोलती है । (३) ताल का एक भेद ।

कंकन—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) कलाई में पहनने का एक आभूषण, कंगन, चूड़ा । उ.—तेरो भलो मनैहौं झगरिनि, तू मत मनहिं डरै । दीन्हौ हार गर, कर कंकन, मोतिनि थार भरे—१०-१७ । (२) एक धागा जिसमें सरसो की पुटली, लोहे का छल्ला आदि बाँधकर दुलहिन और दूल्हे के हाथ में बाँधते हैं। विवाह के पश्चात दूल्हा दुल्हिन का कंकन खोलता है और दुलहिन दूल्हे का खोलती है । उ.—कर कंपै, कंकन नहिं छूटै । राम-सिया-कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै —६-२५ ।

कंकना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] कलाई में पहनने का कडा । उ.—तज्यौ तेल तमोल भूषन अंग बसन मलीन । कंकना कर बाम राख्यौ गढी भुज गहि लीन—३४५१ ।

कँकरीला—वि. [हि. कंकड, कँकड़ीला] जिसमें कंकड अधिक हों।

कंकाल—संज्ञा पुं. [सं.] हड्डियों का ढाँचा, ठठरी, अस्थिपंजर ।

कंकालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा का एक नाम । (२) कर्कशा स्त्री ।

वि.—झगड़ालू, दुष्टा ।

कंकाली—संज्ञा पुं [सं. कंकाल] किंगरी बजाकर भीख माँगनेवाली जाति ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंकालिनी] दुर्गा ।

वि.—झगडालू, दुष्टा, कर्कशा ।

कंकोल—संज्ञा पुं. [सं.] शीतल चीनी की जाति का एक वृक्ष ।

कँगन, कँगना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) हाथ में पहनने का एक गहना, कड़ा, कंकण । (२) लोहे का चक्र या कड़ा ।

कँगनी—संज्ञा स्त्री. [हि. कँगना] छोटा कंगन ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंगु] एक अन्न, काकुन ।

कँगला—वि. [हि. कंगाल] भुखमरा, गरीब, बहुत लालची ।

कंगाल—वि. [स. कंकाल] (१) भुखमरा । (२) दरिद्र ।

कंगाली—संज्ञा स्त्री. [हि. कंगाल] (१) भुखमरी । (२) गरीबी, दरिद्रता ।

कँगुरिया, कँगुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनगुरिया] छिगुनी, उँगली, छोटी उँगली । उ.—जैसी तान

तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ। जैसे फिरत रंध्र मगु कँगुरी तैसे मैंहुँ फिराऊँ—पृ. ३११।

कँगूरन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कँगूरा] शिखर, चोटी। उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन। कंचन कोट कँगूरन की छवि मानहु बैठे मैन —२५५६।

कँगूरा—संज्ञा पुं. [फा. कुँगरा] (१) शिखर, चोटी। (२) किले का बुर्ज। (३) गहनों में शिखर की तरह की बनावट।

कंघा—संज्ञा स्त्री. [सं. कंक] बाल झाड़ने की वस्तु।

कंच—संज्ञा पुं. [हि. काँच] शीशा, काँच।

कंचन—संज्ञा पुं. [स. काचन] (१) सोना, स्वर्ण। (२) धन, संपत्ति। (३) धतूरा।

वि.—(१) स्वस्थ। (२) सुन्दर।

कंचनराज—सज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन नगर जो विदर्भ देश में था। यहाँ भीष्मक राज करते थे, जिनकी पुत्री रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर ले गये थे। उ.-कंचनराज को काज सँवारयौ भूपन को यह काज-१० उ.-१०८।

कंचनी—सज्ञा स्त्री. [सं. कंचन] (१) वेश्या। (२) अप्सरा।

कंचुक—संज्ञा पुं. [सं] (१) चपकन, अचकन। (२) वस्त्र। (३) एक प्रकार का कवच जो घुटने तक होता था।

संज्ञा स्त्री.— (१) चोली, अँगिया। (२) केंचुल।

कंचुकि, कंचुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुकी] (१) अँगिया, चोली। उ—(क) कसि कचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हियैं-१०-२४। (ख) कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर—१०-३५। (ग) कबहि गुपाल कंचुकि फारी, कब भये ऐसे जोग—७७४। (घ) कनक-कलस कुच प्रकट देखियत आनन्द कंचुकि भूली—२५६१। (२) केंचुल। उ.—सुत-पति नेह जगत इहि जान्यौ। ब्रज जुवती तिनका सों मान्यौ। काचो सूत तोरि सो डारयौ। उरग कंचुकी फिरि न निहारयौ—पृ. ३१६।

संज्ञा पुं. [सं. कंचुकिन्] (१) रनिवास के दास-दासियों का अध्यक्ष जो प्रायः विश्वासपात्र बूढ़ा ब्राह्मण होता था। (२) द्वारपाल। (३) साँप। (४) वह अन्न जो छिलकेदार होता है जैसे चना।

कंचुरि—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुली] साँप का केंचुल। उ.—नैना हरि अग रूप लुब्धे रे माई। लोकलाज कुल की मर्जादा बिसराई। जैसे चन्दा चकोर मृगीनाद जैसे। कंचुरि ज्यों त्यागि फनिक फिरत नहीं तैसे —पृ.३२१।

कंचुली—संज्ञा स्त्री. [सं.] साँप की केंचुल।

कंचुवा—संज्ञा पुं. [सं. कंचुकी] चोली, अँगिया।

कंचेरा—संज्ञा पुं. [सं. काँच] काच का काम करनेवाला।

कंज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) कमल। (३) अमृत। (४) सिर के बाल, केश।

कंजई—वि. [हिं. कंजा] धुएँ के रंग का, खाकी।

संज्ञा पुं.—(१) खाकी रंग। (२) कंजई रंग की आँख का घोड़ा।

कंजज—संज्ञा पुं. [सं. कंज + ज] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

कंजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कंज] राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। ब्रज जुवतिन सबहिन मैं जानति घट-घट लै लै नाम बतायो। अमला अबला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०

संज्ञा पुं. [सं. करंज] एक कटीली झाड़ी।

वि.—(१) गहरे खाकी की रंग की। (२) जिसकी आँख गहरे खाकी रंग की हो।

कँजियाना—क्रि. अ. [हि. कंजा] (१) काला पड़ना। (२) मुरझाना।

कंजूस—वि. [सं. कण + हि चूस] धन होने पर भी जो उसे खाये-खरचे नहीं, कृपण, सूम।

कंट—संज्ञा पुं. [सं. कंटक] काँटा, कंटक, उ.—द्रुमनि चढे सब सखा पुकारत, मधुर सुनावत बैनु। जनि धावहु बलि चरन मनोहर, कठिन कंट मग ऐनु —५०२।

कंटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँटा। (२) विघ्न, बाधा। (३) वह जो विघ्न या बाधा डाले। (४) रोमांच। (५) कवच।

कंटकित—वि. [सं. कंटक] (१) काँटेदार। (२) पुलकित, रोमांचयुक्त।

कँटाय—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] एक कँटीला पेड़ जिस की लकड़ी यज्ञ-पात्र बनाने के काम आती थी।

कंटिका—संज्ञा स्त्री [सं.] 'पिन' की तरह लोहे-पीतल का पतला काँटा।

कँटिया—संज्ञा स्त्री. [हि. काँटी] (१) छोटी कील। (२) सिर का एक गहना।

कँटीला—वि. पुं [हिं. काँटा + ईला (प्रत्य)] जिसमें काँटे लगे हों, काँटेदार।

कंठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला। (२) स्वर, शब्द। (३) वह रंगीन रेखा जो तोते, पडुक जैसे पक्षियों के गले में युवावस्था में पड़ जाती है। (४) कंठा, हँसुली।

मुहा—कंठ फूटना—(१) बच्चों का स्वर साफ होना। (२) युवावस्था में स्वर-परिवर्तन। (३) पक्षियों के गले में रेखा पड़ना। कंठ लाइ—गले लगाकर। उ.—ध्रुव राजा के चरननि परयौ। राजा कंठ लाइ हित करयौ—४ ६।

कंठगत—वि. [स.] जो गले मे अटका हो, जो निकलने को हो।

मुहा०—प्राण कंठगत होना—मरने लगना।

कंठमाला—सज्ञा स्त्री. [सं.] गले का एक रोग जिसमें बहुत सी गाँठे पड़ जाती है।

कँठला—सज्ञा पुं. [हिं.-कंठ +ला (प्रत्य.)] वह गहना जिसमे नजरबट्टू, बाघनख, और दो चार ताबीज गूँथ कर बच्चे को इसलिए पहनाते हैं कि उसे नजर न लगे और अन्य आपत्तियों से वह रक्षित रहे।

कंठश्री, कंठसिरी—संज्ञा स्त्री. [स] सोने का एक जड़ाऊ गहना जो गले में पहना जाता है, कंठी।

कंठस्थ—वि [सं.] (१) गले में स्थित, कंठगत। (२) कंठाग्र, जो जबानी याद हो।

कँठहरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कठहार का अल्प.] कंठी। उ.—सूर सगुन बँटि दियो गोकुल में अब निर्गुन को बसेरो। ताकी छटा छार कँठहरिया जो ब्रज जानो दुसेरो—३१५४।

कंठहार—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक गहना, कंठी।

कंठा—संज्ञा पुं. [हि. कंठ] (१) पक्षियों के गले में पड़ने वाली रंग-बिरंगी रेखा। (२) गले का एक गहना जिसमें सोने, मोती आदि के मनके होते हैं। (३) कुरते आदि पहनावों का गले पर पड़नेवाला भाग।

कंठाग्र—वि. [स.] जो जवानी याद हो।

कंठी—संज्ञा स्त्री. [हि. कंठ का अल्पा.] (१) माला जो छोटी छोटी गुरियों की बनी हो। (२) तुलसी आदि की माला।

कंठ्य—वि. [सं] (१) जो गले से उत्पन्न हो। (२) जिसका उच्चारण कंठ से हो।

संज्ञा पुं—वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से हो।

कँडरा—संज्ञा स्त्री [सं.] रक्त की नाड़ी।

कंडाल—संज्ञा पुं. [सं. करनाल] (१) तुरही नामक बाजा। (२) डोल नामक बरतन।

कंत—संज्ञा पुं. [सं. कात] (१) पति, स्वामी। उ.—सूरदास लै जाउँ तहाँ जहँ रघुपति कंत तुम्हार—६-८६। (२) ईश्वर।

कंता—सज्ञा पुं. [सं. कात] पति, स्वामी। उ.—छीर सिंधु अहि सयन मुरारी। प्रभु स्रवननि तहँ परी गुहारी। तब जान्यौ कमला के कंता। दनुज भार पुहुनी मे भंता—२४५६।

कंथ—संज्ञा पुं. [सं. कात] पति, स्वामी।

कंथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुदड़ी, कथरी। उ.—(क) सीस सेली कंस मुद्रा कनक बीरी बीर। बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी सहज कंथा चीर—३१२६। (ख) सृ गी मुद्रा कनक खपर करिहौ जोगिन भेष। कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ जटा बँधाऊँ केस—२७५४। (ग) वे मारे सिर पटिया पारे कंथा काहि उढ़ाऊँ—३४६६।

कंथारी—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष।

कंथी—संज्ञा पुं. [सं. कंथा=गुदडी] (१) फकीर जो गुदड़ी धारण करे। (२) भिखमंगा।

कंद - संज्ञा पुं. [सं.] (१) गूदेदार और बिना रेशे की

जड़ (२) कोमल मीठी दूब। उ.—विह्वल भई जसोदा डोलतदुखित नंद उपनंद। धेनु नहीं पय स्रवति रुचिर मुख चरति नाहि तृ'न कंद—२७६०। (२) बादल। संज्ञा पुं. [फा] जमी हुई चीनी, मिसरी।

कंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश, ध्वंस। (२) नाशक, ध्वंस करनेवाला।

कंदना—क्रि स. [हि. कंदन] नाश करना, मारना।

कंदर—संज्ञा पुं [सं.] (१) गुफा, गुहा। उ.—(क) सब्बा पृथ्वी करी विस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार —२-२०। (ख) अहो विहंग, अहो पन्नग-नृप, या कंदर के राइ। अबकै मेरी विपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ—६-६४। (२) अंकुश।
संज्ञा पुं. [स. कंद] (१)बादल। (२) मूल। उ— सुंदर नंद महर के मंदिर प्रगट्यो पूत सकल सुख-कंदर—१०-३२।

कंदरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुफा, गुहा। उ.—(क) कहन लगे सब अपुनमें सुरभी चरें अघाइ। मानहुँ पर्वत-कंदरा, मुख सब गए समाइ—४३१। (ख) स्याम बलराम गये धनुपसाला। लियौ रथ तें उतरि रजक मारयौ जहाँ कंदरा तें निकसि सिंह-ब्याला—२५८५।

कंदर्प—संज्ञा पुं. [स.] कामदेव।

कंदा—संज्ञा पुं [स कंद] (१) कंद। (२) शकरकंद।

कंदुक—संज्ञा पुं [सं.] (१) गेंद। (२) गोल तकिया।

कंदुक तीर्थ—संज्ञा पुं. [स.] ब्रज का एक तीर्थ। श्री कृष्ण यहाँ गेंद खेलते थे, अतएव उनके उपासकों के लिए यह दर्शनीय स्थान है।

कँदैला—वि. [हिं. कोंदौ+ला (प्रत्य.)] गँदला, मैला, मलिन।

कंध—संज्ञा पुं [सं स्कंध] (१) कंधा। उ.—चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ। टूटे कंधरु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौं—१-३३१। (२) सिर। उ.—तू भूल्यौ दससीस बीस भुज, मोहि गुमान दिखावत। कंध उपारि डारिहौं भूतल, सूर सकल सुख पावत—९-१३३। (३) तने का ऊपरी भाग जहाँ से शाखाएँ फूटती हैं।

कंधनी—संज्ञा स्त्री [हि. करधनी] मेखला, करधनी।

कंधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरदन (२) बादल।

कंधरा—संज्ञा स्त्री. [हि. कंधर] गरदन।

कंधा—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, प्रा. कंध] (१) गले और मोढ़े के बीच का भाग। (२) बाहुमूल, मोढा।

कंधार, कंधारी—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] (१) केवट, मल्लाह, माँझी। उ.—कहो कपि कैसे उतरयौ पार। दुस्तर अति गंभीर बारिनिधि सत जोजन विस्तार। राम प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कंधार। बिनं अधार छिन में अवलंम्यौ आवत भई न बार—९-८७। (२) पार लगानेवाला।

कँधावर—संज्ञा स्त्री. [हि. कंधा+आवर (प्रत्य.)] चादर या दुपट्टा जो कंधे पर डाला जाय।

कँधेला—संज्ञा पुं. [हि. कंधा+एला (प्रत्य.)] साड़ी का वह भाग जो स्त्रियाँ कंधे पर डालती हैं।

कँधैया—संज्ञा पुं. [हि. कन्हैया] श्रीकृष्ण।

कंप—संज्ञा पुं [स] (१) काँपना, कँपकँपी, धड़कन। (२) एक सात्विक अनुभाव।

कँपकँपी—संज्ञा स्त्री. [हि. काँपना] थरथराहट, कंपन।

कंपत—क्रि. अ. [हि. काँपना] (१) भयभीत होकर, डरा हुआ। उ.—कृपासिंधु पै केवट आयौ, कंपत करत सो बात। चरन-परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात—९-४१। (२) शीत से काँपता है। उ.—हा हा करति घोष कुमारि। सीत तें तन कँपत थर-थर बसन देहु मुरारि—७८९।

कँपति—क्रि. अ. [स. कंपन, हि. काँपना] शीत से काँपती हैं। उ.—थर-थर अंग कंपति सुकुमारी —७९९।

कंपति—संज्ञा पुं. [स.] समुद्र।

कंपन—संज्ञा पु. [स.] काँपना, कँपकँपी।

कँपना—क्रि. अ. [सं. कंपन] (१) हिलना-डोलना, काँपना। (२) डर से काँपना।

कँपनी—संज्ञा स्त्री [हि. काँपना] कँपकँपी।

कंपा—संज्ञा पुं. [हि. काँपना] बहेलियों की बाँस की

पतली तीलियाँ जिनमें लासा लगाकर वे चिड़ियों को फँसाते हैं।

कँपाना—क्रि. स. [हि. कँपना का प्रे.] (१) हिलाना-डोलाना। (२) डराना।

कँपावत—क्रि. स. [हि. कँपाना] हिलाते हो, हिलाकर धमकाते हो। उ.—तुम्हरे डर हम डरपत नाहिन कहा कँपावत वेत—सारा. ८६२।

कँपायौ—क्रि. स. [हिं. कँपाना] भयभीत किया, डराया। उ.—मनौ मेघनायक रितु पावस, बान वृष्टि करि सैन कँपायौ —६-१४१।

कँपावात—क्रि स. [हि. 'कँपना' का प्रे. कँपना] हिलाता-डुलाता (है), कंपित करता (है)। उ.—मुँह सम्हारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात। पावहुगे अपनौ कियौ अबही, रिसनि कँपावत गात —५३७।

कंपित—वि. [सं] काँपता हुआ, अस्थिर, चलायमान। उ.—छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित, पवन भयौ गति पग—६-१५८।

कंपै—क्रि. अ. [हि. कँपना] काँपता या हिलता डोलता है। उ.—(क) कंपै भुव, वर्षा नहिं होइ—१-२८६। (ख) कर कंपै, कंकन नहिं छूटै—६-२५। (ग) जसुदा मदन गुपाल सुवावै। देखि सपन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै—१०-६५।

कँप्यौ—क्रि. स. [सं. कंपन, हि. काँपना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—रिपिन कह्यौ, तुव सतम जज्ञ आरम्भ लखि, इन्द्र कौ राज-हित कँप्यौ हीयौ—४-११।

कंबर, कंबल—संज्ञा पुं. [सं. कंबल] ऊन का बना मोटा कपड़ा जो ओढ़ने-बिछाने के काम आता है।

कंबु—संज्ञा पुं. [स.] (१) शंख। उ.—कंबु-कंठ-धर, कौस्तुभ-मनि-धर, बनमालाधर, मुक्तमाल-धर—५७२। (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कंबुक—संज्ञा पुं. [स] (१) शंख, (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कँवल—संज्ञा पुं. [स. कमल] कमल।

कंस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथुरा का अत्याचारी राजा जो उग्रसेन का पुत्र और श्रीकृष्ण का मामा था। इसने अपनी बहिन देवकी को पति-सहित जेल में डाल रखा था। इसके अत्याचार से जब त्राहि-त्राहि मच गयी तब श्रीकृष्ण ने इसे मार कर अपने माता-पिता का उद्धार किया और नाना उग्रसेन को गद्दी पर बैठाया। (२) काँसा। (३) कटोरा (४) सुराही (५) झाँझ।

कंसताल—संज्ञा पुं. [सं.] झाँझ। उ.—कंसताल कठ-ताल बजावत सृंग मधुर मुँहचंग।

कंसासुर—संज्ञा पुं. [स. कंस+असुर] मथुरा का अत्याचारी राजा जो अपने अत्याचारों के कारण असुर समझा जाता था।

क—संज्ञा पुं [स.] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) कामदेव। (४) सूर्य। (५) यम। (६) मयूर। (७) शब्द। (८) जल। (९) अग्नि। (१०) वायु। (११) आत्मा।

कइक—वि. [हि. कई + एक] कई एक, कुछ। उ.—राम दिन कइक ता ठौर अबरो रहे आइ बल्कल तहाँ दई दिखाई—१० उ.-१८०।

कइत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कित] ओर, तरफ।

कई—वि. [सं. कति, प्रा. कइ] एक से अधिक, अनेक।

संज्ञा स्त्री [सं. कावार, हिं. काई] हल्के हरे रङ्ग की महीन घास जो जल या सील में होती है। उ.—अब इह बरपा बीति गई। घटी घटा सब अभिन मोह मद तमिता तेज हई। सरिता सबम स्वच्छ सलिल जल फाटी काम कई—२८५३।

ककड़ी—संज्ञा स्त्री. [स कर्कटी, पा. कक्कटी] (१) एक बेल जिसमें पतले-पतले पर लंबे फल लगते हैं। (२) एक बेल जिसमें धारीदार बड़े खरबूजे की तरह के फल लगते हैं और 'फूट' कहलाते हैं।

ककना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण, हि. कँगना] हाथ का एक गहना, कँगन।

ककनी—संज्ञा स्त्री. [हि. कँगना] हाथ का कँगूरेदार चूड़ीनुमा गहना।

ककनू—संज्ञा पु. [देश.] एक पक्षी जिसके गाने से

घोसले में आग लग जाती है और वह स्वयं जल मरता है।

ककमारी—स स्त्री. [सं. काक=कौवा+मारना] एक तरह की लता जिसके फल मछलियों और कौओं के लिए मादक होते हैं।

ककरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ककड़ी] ककड़ी का फल। उ.–(क) ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ—२३२१। (ख) सुनत जोग लागत हमें ऐसो ज्यों करुई ककरी—३३६०।

ककहरा—संज्ञा पुं. [हिं.] (१) 'क' से 'ह' तक वर्ण-माला। (२) प्रारंभिक बातें, साधारण ज्ञान।

ककही—संज्ञा स्त्री [हिं. कंघी] कंघी।

संज्ञा स्त्री. [स कंकती, प्रा. ककई] एक तरह की कपास जिसकी रुई कुछ लाल होती है।

ककुद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल के कन्धे का कूबड़। (२) राजचिह्न।

ककुभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन का पेड़। (२) वीणा का ऊपरी भाग। (३) दिशा। (४) एक राग।

ककुभा—संज्ञा स्त्री. [सं. ककुभ] दिशा।

ककोडा—संज्ञा पुं. [सं. कर्कोटक, प्रा. कक्कोडक] खेखसा या ककरौल नामक तरकारी।

ककोरना—क्रि. स. [हिं. कोड़ना] (१) खुरचना, कुरेदना। (२) मोड़ना, सिकोड़ना।

ककोरा—संज्ञा पुं [स. कर्कोटक, प्रा. कक्कोडक, हिं. ककोड़ा] खेखसा, ककरौल, । उ.—कुँदरू और ककोरा कौरे। कचरी चार चचेंड़ा सौरे—२३२१।

कक्ष—संज्ञा पु [स.] (१) काँख, बगल। (२) काँछ, कछोटा, लाँग। (३) कछार। (४) कमरा, कोठरी। (५) दुपट्टे या चादर का आँचल। (६) श्रेणी, दर्जा। (७) पटुका, कमरबंद।

कक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समता, बराबरी। (२) श्रेणी, दर्जा। (३) काँख, बगल। (४) काँछ, कछोटा, लाँग।

कखिआँ, कखियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष, हिं. काँख] बाहुमूल, काँख। उ.—चल्यौ न परत पग गिरि परी भूखे मग भामिनि भवन ल्याई कर गहे कखिआँ—२३६६।

कखौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँख] काँख, बगल।

कगर—संज्ञा पुं. [स. क=जल+अग्र=समाना] (१) ऊँचा किनारा, बाढ़। (२) मेंड, डाँड़। (३) कँगनी।

क्रि. वि.—(१) किनारे पर। (२) पास, निकट। (३) अलग, दूर।

कगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कगर] (१) किनारा, कगार। (२) टीला। उ.—ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। हंस सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छाहीं।

कगरो—क्रि. वि. [हिं. कगर] अलग, दूर। उ.—जसुमति तेरो बारो अतिहि अचगरो। दूध दही माखन लै डारि दयौ सगरो। लियो दियो कछु सोऊ डारि देहु कगरो—१०५६।

कगार—संज्ञा पुं. [हिं. कगर] (१) किनारा जो ऊँचा हो। (२) नदी का किनारा। (३) टीला।

कच—संज्ञा पुं [सं.] (१) बाल। (२) झुंड। (३) बादल। (४) बृहस्पति का पुत्र जो दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी-विद्या सीखने गया था।

संज्ञा पुं. [अनु.] चुभने का शब्द या भाव।

कचनार—संज्ञा पुं [सं. काचनार] एक छोटा पेड़ जो सुन्दर फूलों और कलियों के लिए प्रसिद्ध है।

कचनारयौ—संज्ञा. पुं. [हिं. कचनार] कचनार की कली। उ.—ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ—२३२१।

कचपच—संज्ञा पुं. [अनु.] बहुत सी चीजों को गचपच करके थोड़े से स्थान में रखना।

कचपची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] (१) छोटे-छोटे तारों का गुच्छा या समूह, कृतिका नक्षत्र। (२) चमकीली टिकलियाँ या बुँदे जिन्हें स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं।

कचबची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] चमकीले बुंदे या बिंदियाँ जिन्हें स्त्रियाँ माथे या गाल पर लगाती हैं, सितारा, चमकी।

कचरना—क्रि. स. [सं कचरण=बुरी तरह चलना] (१) रौंदना, कुचलना, दबाना। (२) चबाना, खाना।

कचरा—संज्ञा पुं. [हिं. कच्चा] (१) खरबूजा या ककड़ी का कच्चा फल। (२) सेमल का ढोढा। (३) कूड़ा-करकट। (४) सेवार।

कचरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कच्चा] (१) ककड़ी की तरह की एक बेल जिसे सुखाकर और तलकर खाया जाता है। कहीं-कहीं इसकी चटनी भी बनती है। उ.-(क) पापर बरी फुलौरी कचौरी। कूरवरी कचरी औ मिथौरी। (ख) ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ—२३२१। (२) काट कर सुखाये हुए फल-मूल आदि जो आगे तरकारी बनाने के लिए सुखाकर रख लिये जाते हैं। उ.—कुँदरू ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेंडा सौरे—२३२१। (३) छिलकेवाली दाल।

कचहरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कचकच = वादविवाद + हरी (प्रत्य.)] (१) जमाव, गोष्ठी। (२) दरबार, राज-सभा। (३) न्यायालय, अदालत, कोर्ट (४) कार्यालय, दफ्तर।

कचाई—संज्ञा स्त्री. [हि. कच्चा + ई (प्रत्य.)] (१) कच्चा होना, पका न होना (२) अज्ञानता, अनुभवी हीनता।

कचाना, कचियाना—क्रि. अ. [हि. कच्चा] (१) हिम्मत हार कर पीछे हटना। (२) डरना।

कचीली—संज्ञा स्त्री. [हि. कचपची] (१) तारों का समूह, कृत्तिका। (२) जबड़ा, दाढ़।

कचूर—संज्ञा पुं. [स. कर्चूर] हल्दी की जाति का एक पौधा।

सज्ञा पुं. [हि. कचोरा] कटोरा।

कचोटना—क्रि. अ. [हि. कुचोना] चुभना, गड़ना।

कचोरा—संज्ञा पुं. [हि. काँसा + ओरा (प्रत्य.)] कटोरा, प्याला। उ.-मुकुलित केस सुदेस देखियत नीलबसन लपटाये। भरि अपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहि चुखाये-१० उ.-१३८।

कचोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कचोरा + ई (प्रत्य.)] कटोरी, प्याली।

कचौड़ी, कचौरी—सज्ञा स्त्री. [हि. कचरी] मोटी पूरी जिसमें उरद या और किसी दाल की पीठी भरी जाती है। उ.—पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्जवल सुन्दर सौरी—२३२१।

कच्चा—वि. [सं. कषण = कच्चा] (१) जो (फल आदि) पका न हो, अपक्व। (२) जो आँच पर अच्छी तरह पका या सिका न हो। (३) जिसका पूरा विकास न हुआ हो (४) जो ठीक से तैयार न हो। (५) जो मजबूत या स्थायी न हो। (६) जो ठीक या उचित न हो। (७) जो प्रामाणिक तोल या नाप से कम हो। (८) नासमझ, जो कुशल या चतुर न हो।

संज्ञा पुं.—(१) बखिया, सींवन। (२) ढाँचा, खाका। (३) जबड़ा, दाढ़। (४) पांडुलेख।

कच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] कछुआ।

संज्ञा पुं. [सं.] नदी या जलाशय के किनारे की जमीन, कछार।

संज्ञा पुं.— तुन का पेड़।

कच्छप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ नामक जलजंतु। (२) विष्णु के २४ अवतारों में से एक। उ.—हरि जू की आरती बनी। अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी। कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँडी सहस फनी—२-२८।

कच्छपी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कछुई। (२) छोटी वीणा। (३) सरस्वती की वीणा का नाम।

कच्छा—सज्ञा पुं. [स. कच्छ] एक तरह की नाव।

कच्छू—संज्ञा पुं. [स. कच्छप] कछुआ।

कछना—सज्ञा स्त्री. [हि. काछना] पहिनना, धारण करना।

कछनी—संज्ञा स्त्री. [हि. काछना] घुटने के ऊपर चढ़ा कर पहनी हुई छोटी धोती। उ.—(क) कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचिकारि। कोउ निरखि हृद-नाभि की छबि डारयौ तन-मन-वारि—६३४। (ख) खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी। कटि कछनी पीताम्बर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी—६७२।

कछप—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक। उ.—सुरनि-हित हरि कछप-रूप धारयौ। मथन करि जलधि, अंमृत निकारयौ —८-८। (२) कछुआ।

कछरा—संज्ञा पुं. [सं. क = जल + क्षरण = गिरना] मिट्टी का चौड़े मुँह का एक पात्र जिसकी अवँठ ऊँची और दृढ़ होती है ।

कछान—संज्ञा पुं. [हि. काछना] घुटने से ऊँची धोती पहनना ।

कछार—संज्ञा पुं. [हि कच्छ] नदी या अन्य जलाशय के किनारे की नीची और तर भूमि, खादर, दिगारा ।

कछु—वि [स किंचित, पा. किंची, पू हि. किछु, हि. कुछ] थोड़ी संख्या या मात्रा का, जरा, थोड़ा, टुक ।

सर्व [सं. कश्चित, पा. कोचि] कोई (वस्तु या बात) ।

कछुअ—वि. [हि. कुछ] कुछ, थोड़ा । उ.—ऊधो जो तुम बात कही । ताको कछुअ न उत्तर आवै समुझि विचारि रही—३३७० ।

कछुआ—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] एक जल-जन्तु जिसकी पीठ बड़ी कड़ी होती है । यह जमीन पर भी चल सकता है।

कछुक—वि. [हिं. कछु + एक] कुछ, थोड़ा । उ.—(क) जबै आवै साधु-संगति कछुक मन ठहराइ—१-४५ । (ख) सूर कहौ क्यों कहि सकै, जन्म-कर्म-अवतार । कहे कछुक गुरु-कृपा तें श्री भागवतऽनुसार —२-३६ ।

मुहा.—कछुक कही नहि जात—दुविधा या असमंजस के कारण कुछ कहा नहीं जाता । उ.—स्रवन सुनत अकुलात साँवरो कछुक कही नहि जात—सारा०-६४६ ।

कछुव—वि. [हिं. कुछ] कुछ । उ.—(क) तुम प्रभु अजित, अनादि, लोकपति, हौं अजान मतिहीन । कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन—१-१८१ । (ख) जोग-जुक्ति हम कछुव न जानैं ना कछु ब्रह्मज्ञानो—३०६४ ।

कछुवा—संज्ञा पुं [हिं. कछुआ] कछुआ ।

कछुवै—वि. [हि. कुछ] कुछ भी । उ.—(क) जय अरु विजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख बध-विस्तार—१-२१५ । (ख) बालापन खेलत ही खोयौ, जोवन जोरत दाम । अब तो जरा निपट नियरानी, कर्यो न कछुवै काम—१-५७ । (ग) तीरथ व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे—१-६१ ।

कछू—सर्व. [सं. कश्चित, पा. कोचि, हि. कुछ] (१) कोई वस्तु । (२) कोई काम, कोई विशेष बात । उ.—जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै—१-३७ ।

कछोटा—संज्ञा पुं. [हि. काछ] घुटने के ऊपर तक पहनी हुई धोती, कछोटी, ऊपर चढ़ायी हुई धोती ।

कछोटी—संज्ञा स्त्री. [हि कछोटा] छोटी धोती ।

कज—संज्ञा पुं. [फा] (१) टेढ़ापन । (२) दोष, ऐब, कसर ।

कजरा—संज्ञा पुं. [हि काजल] (१) काजल । उ.—ता दिन तें कजरा मैं देहौं । जा दिन नँदनंदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं—२७७६ । (२) बैल जिसकी आँखें काली हों ।

वि.—काली आँखोवाला ।

कजराई—संज्ञा स्त्री. [हि. काजल] कालापन ।

कजरारा—वि. [हि. काजल+आरा (प्रत्य.)] (१) जिस (नेत्र) में काजल लगा हो, अंजनयुक्त । (२) (काजल के समान) काला ।

कजरी—संज्ञा स्त्री. [हि. काजल, कजली] काली आँखों वाली गाय । उ.—(क) कजरी कौ पय पियहु लाल जासौं तेरि बेनि बढ़ै—१०-१७४ । (ख) अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इक ठौरी । । पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती—४४५ । (ग) कजरी, धौरी, सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया—६६६ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. काजल] (१) कजराई, कालापन । (२) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को और कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाता है । इस दिन से कजली गाना बन्द कर दिया जाता है । (३) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है ।

संज्ञा पुं. [स. कज्जल] एक तरह का काला धान ।

कजरौटा—संज्ञा पुं [हिं. कजलौटा] काजलकी डिबिया ।

कजला—संज्ञा पुं. [हि. काजल] (१) काली आँखों वाला बैल । (२) एक काला पक्षी ।

वि.—काली आँखों वाला।

कजलाना—क्रि. अ. [हि. काजल] (१) काला हो जाना। (२) आग बुझना।

क्रि. स.—काजल लगाना, आँजना।

कजली—संज्ञा स्त्री. [हि. काजल] (१) कालापन, कालिख। (२) काली आँख वाली गाय। (३) सफेद भेंड जिसकी आँख के बाल काले होते है। (४) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है। (५) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को और कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाता है। इस दिन से कजली का गीत गाना बन्द कर दिया जाता है। (६) वे हरे अंकुर जिन्हें कजली का त्योहार मनाकर स्त्रियाँ अपने संबंधियों को बाँटती हैं।

कजलीबन—संज्ञा पुं. [सं. कदलीवन] केले का वन।

कजलौटा—संज्ञा पुं. [हि. काजल+औटा (प्रत्य.)] काजल रखने की डिबिया।

कजा—संज्ञा स्त्री. [सं. काजी] काँजी, माँड।

कजाक—संज्ञा पुं. [तु. कज्जाक़] लुटेरा, डाकू, ठग।

कजाकी—संज्ञा पुं. [हि. कजाक] (१) लूटमार। (२) छल-कपट, धोखाधड़ी।

कज्जल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंजन, काजल। उ.—(क) ललित कन-संजुत कपोलनि लसत कज्जल अंक। मनहु राजत रजनि, पूरन कलापति सकलंक—३५३। (ख) उनै उनै घन बरषत चप उर सरिता सलिल भरी। कुमकुम कज्जल कीच बहै जनु कुच जुग पारि परी—२८१४। (२) सुरमा। (३) कालिख, स्याही, (४) बादल।

कज्जलित—वि. [सं.] (१) जिस नेत्र में काजल लगा हो, आँजा हुआ। (२) काला।

कट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का गंडस्थल। (२) नरकट की घास या उसकी बनी चटाई। (३) खस की घास या उसकी बनी टट्टी। (४) शव। (५) टिकटी, अरथी। (६) श्मशान। (७) समय।

संज्ञा पुं. [हि. कटना] (१) एक प्रकार का काला रंग। (२) 'काट' का संक्षिप्त रूप।

वि.—(१) बहुत (२) उग्र।

कटक—संज्ञा पुं. [सं. कंटक]—काँटा, दुख।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेना, दल। उ.—महाराज, तुम तौ हौ साध। मम कन्या तैं भयौ अपराध। या कन्या कौं प्रभु तुम बरौ। कटक-सूल किरपा करि हरौ—६-२। स्याम बलराम जब कंस मार्‍यौ। सुनि जरासंध बृतात अस सुता तैं युद्ध हित कटक अपनौ हँकार्‍यौ—१० उ.-१। (२) राजशिविर। (३) चूड़ा, कंकण, कड़ा। (४) चक्र। (५) समूह।

कटकई—संज्ञा स्त्री. [सं. कटक+ई (प्रत्य.)] सेना, दल, लश्कर।

कटकट—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) दाँत बजने का शब्द। (२) लड़ाई, झगड़ा।

कटकटान, कटकटाना—क्रि. अ. [हिं. कटकट] क्रोध से दाँत पीसना।

कटकाई—संज्ञा स्त्री. [हि. कटक+आई (प्रत्य.)] सेना, दल, लश्कर।

कटजीरा—संज्ञा पुं. [सं. कणजीरक] काला जीरा। उ.—कूट कायफर सोंठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत। आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहिं बुधि अवरेखत—११०८।

कटत—क्रि अ. [हि. कटना] (१) कटते हैं, खंड खंड होते हैं। (२) नष्ट या दूर होते है, छीजते हैं। उ.—(क) जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे—१-६४। (ख) कमल नैन की लीला गावत कटत अनेक विकार—२-२।

कटताल—संज्ञा पुं. [हि. काठ+ताल] करताल नामक काठ का बाजा।

कटनंस—संज्ञा पुं. [हि. काटना+नाश] काट कर नष्ट करने की क्रिया।

कटना—क्रि. अ. [सं. कर्तन, प्रा. कट्टन] (१) टुकड़े-टुकड़े होना। (२) (किसी नोक आदि से) कट फट जाना। (३) (किसी अंश या भाग का) अलग हो जाना। (४) मरना। (५) कतरना। (६) नष्ट या दूर होना। (७) समय बीतना। (८) समाप्त होना। (९) चुपचाप खिसक जाना। (१०) लज्जित होना। (११) ईर्ष्या से जलना। (१२) मोहित होना। (१३) बेकार खर्च होना। (१४) बिक जाना। (१५) प्राप्त होना। (१६) (सूची से नाम) हटा दिया जाना।

कटनास—संज्ञा पुं. [सं. कीट अथवा हि. कटना + नाश] नीलकंठ पत्ती।

कटनि—संज्ञा स्त्री. [हि. कटना] (१) काट। (२) रीझ, प्रीति, आसक्ति।

कटनी—संज्ञा स्त्री. [हि कटना] (१) काटने का काम। (२) काटने का औजार। (३) फसल काटना। (४) आड़े-तिरछे भागना।

कटरा—संज्ञा पुं. [हिं. कटार] कटार।

कटवा—संज्ञा पुं. [देश.] गले का एक गहना।

कटसरैया—संज्ञा स्त्री. [हि. कटसारिका] एक कँटीला पौधा।

कटहर, कटहल—संज्ञा पुं. [स. कंठकिफल, हि. काठ + फल] (१) एक पेड़ जिनमें बड़े-बड़े फल लगते हैं। (२) इस पेड़ का फल जिसके ऊपरी मोटे छिलके पर नुकीले कँगूरे होते हैं।

कटा—संज्ञा. पुं [हिं. काटना] (१) मार-काट। (२) वध, हत्या। (३) प्रहार, चोट।

कटाइक—वि. [हि. काटना] काटनेवाला।

कटाई—क्रि. स. [हि. कटाना] (१) कटाया। (२) अपयश कराया। उ.—कौन कौन कौ विनय कीजिए कहि जेतिक कहि आई। सूर स्याम अपने या ब्रज की इहिं विधि कान कटाई—२०७७।

कटाउ—संज्ञा पुं [हि. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) काटकर बनाये हुए बेल-बूटे।

क्रि. स. [हिं. कटाना] काट लो, काटने का काम करो। उ.—पालनौ अति सुन्दर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया। सीतल चंदन कटाउ धरि खराद रँग लाउ, विविध चौकरी बनाउ, धाउ रे बढ़ैया—१०—४१।

कटाऊ—संज्ञा पुं. [हि. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) बेल-बूटे।

कटाक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिरछी चितवन या नजर। उ.—चंचलता निर्तनि कटाक्ष रस भाव बतावत नीके—सा. उ.—८। (२) व्यंग्य, ताना। (३) लीला या अभिनय के अवसर पर पात्रों के नेत्रों के बाहरी कोरों पर खींची जानेवाली पतली काली रेखाएँ।

कटाच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कटाक्ष] (१) चितवन, दृष्टि। उ.—(क) नमो नमो हे कृपानिधान। चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारी, मिटि गयौ तम-अज्ञान—२–३३। (ख) कृपा-कटाच्छ कमल-कर फेरत सूर-जननि सुख देत—१०–१५४। (२) कृपादृष्टि। उ.—काली विष-गंजन दह आइ। देखे मृतक वच्छ बालक सब लये कटाच्छ जिवाइ—५७८। (३) तिरछी चितवन या नजर, कटाक्ष। उ.—कबहि करन गयौ माखन चोरी। जानै कहा कटाच्छ तिहारे, कमलनैन मेरौ इतनक सो री—१०–३०५।

कटाछनि—संज्ञा पुं. सवि, [सं. कटाक्ष] तिरछी दृष्टि या चितवन। उ.—भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ.–१६।

कटान—संज्ञा स्त्री, [हि. काटना + आन (प्रत्य.)] काटने की क्रिया या भाव।

कटाना—क्रि. स [हिं. 'काटना' का प्रे०] काटने के काम में लगाना या नियुक्त करना।

कटार, कटारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कट्टार] एक छोटा दुधारी हथियार।

कटाव—संज्ञा पुं [हि. काटना] (१) काट-छाँट, कतर-ब्योंत। (२) काटकर बनाये गये बेल-बूटे।

कटाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा कड़ाव। (२) कछुए की खोपड़ी। (३) कुआँ। (४) नरक। (५) भैंस का बच्चा जिसके सींग निकलते हों। (६) ऊँचा टीला।

कटि—संज्ञा स्त्री [स] (१) कमर। उ.—गये कटि नीर लौं नित्य संकल्प करि करत स्नान इक भाव

देख्यौ—२५५४। (२) मंदिर का द्वार। (३) हाथी का गंडस्थल। (४) पीपल।

कटिजेब—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि + फा जेब] करधनी, किंकिणी।

कटिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमरबंद। (२) गरमी-सरदी के आधार पर किये हुए पृथ्वी के पाँच भाग।

कटिबद्ध—वि. [सं.] (१) कमर बाँधे हुए। (२) तैयार, उद्यत।

कटि-बसन—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि+बसन] कमर में पहनने का वस्त्र, साड़ी।

कटियाना—क्रि. अ. [हि. काँटा] हर्षित या पुलकित होना।

कटिसूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] सूत की करधनी, मेखला।

कटी—क्रि. अ. भूत. [हि. कटना] (१) कट गयी। (२) दूर होती है, नष्ट होती है, छूटती है। उ०—हृदय की कबहु न जरनि घटी। बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी—१-६८।

कटीला—वि. [हिं. काँटा] (१) तेज, तीक्ष्ण। (२) खूब चुभने या गहरा प्रभाव करनेवाला। (३) मोहित करनेवाला। (४) छैल-छबीला।

कटीलियाँ—वि. [हि. कटीली] (१) बहुत शीघ्र प्रभाव डालनेवाली, गहरा असर करनेवाली, मोहित करनेवाली। उ०—(क) ओढे पीरी पावरी हो पहिरे लाल निचोल। भौहैं काट कटीलियाँ मोहि मोल लई बिन मोल—८६३। (ख) भौहैं काट कटीलियाँ सखि बस कीन्हीं बिन मोल—१४६३।

कटीले—वि. [हि. काँटा] काँटेदार, काँटों से भरे हुए। उ०—कमल-कमल कहि बरनिए हो पानि पिय गोपाल। अब बवि कुल साँचे से लागे रोम कटीले नाल—पृ० ३४८ (५८)।

कटु—वि. [सं] (१) मन को बुरा लगनेवाला, कड़ुआ। उ०—कै सरनागत कौं नहि राख्यौ। कै तुमसौं काहू कटु भाख्यौ।—१-२८६। (२) छः रसों में से एक, चरपरा, कड़ुआ। उ०—कंचन-काँच कपूर कटु खरी एकहि सँग क्यौं तोले—३२६४।

कटुआ—वि. [हि. काटना] कटा हुआ, टुकडे-टुकड़े।

कटुक—वि. [सं.] (१) कड़ुआ, कटु। (२) जो चित्त को बुरा लगे। उ०—(क) मुख जो कही कटुक सब बानी हृदय हमारे नाहीं—११६१। (ख) एते मान भये बस मोहन बोलत कटुक डराई। दीपक प्रेम क्रोध मारुत छिन परसत जिनि बुझि जाई—१२७५। (३) खट्टे। उ०—सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई। जूठनि की कछु संक न मानी भच्छ किए सत-भाई—१-१३।

कटुके—वि. [सं. कटुक] (१) कड़ुआ, कटु। (२) अप्रिय, जो चित्त को भला या प्रिय न हो। उ०—लीजो जोग सँभारि आपनो जाहु तहीं तटके। सूर स्याम तजि कोउ न लैहै या जोगहि कटुके—३१०७।

कटुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कड़ुआपन, अप्रियता।

कटूक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. कटु + उक्ति] कड़ुई या अप्रिय बात।

कटे—क्रि. अ. भूत. [हि. कटना] छीज गये, नष्ट हुए, दूर हो गये। उ०—विप्र बजाइ चल्यौ सुत कै हित कटे महा दुख भारे—१-१५८।

कटैं—क्रि. अ. [हि. कटना] कटते हैं, बंधन कटते हैं, मुक्ति पाते हैं। उ०—जरासंध बंदी कटैं नृप-कुल जस गावै—१-४।

कटैया—संज्ञा पुं. [हि. काटना] (१) काटनेवाला। (२) फसल काटनेवाला।

कटोरा—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + ओरा (प्रत्य.) = कँसोरा] कटोरी से बडा बरतन, प्याले के ढंग का बना धातु का बरतन।

कटोरे—संज्ञा पुं. [हिं. कटोरा] कटोरे में। उ०—जोग कटोरे लिए फिरत है ब्रजबासिन की फाँसी—३१०८।

कटोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटोरा का अल्पा] (१) प्याली। (२) अँगिया का वह भाग जिसमें स्तन रहते हैं।

कट्टर—वि [हिं काटना] (१) अपने विश्वास के अतिरिक्त कुछ न सहन करनेवाला। (२) हठी। (३) पक्का।

कट्टे—क्रि स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन, हि. काटना] दो टुकडे या खण्ड किये। उ.—तब बिलंब नहि कियौ, सीस दस रावन कट्टे—१-१८०।

कटयानी—क्रि. अ. [हिं कटियाना] हर्षित या पुलकित हुई।

कठताल, कठताला—संज्ञा पुं. [हि. काठ+ताल) करताल नाम का बाजा जो काठ का बना होता है। उ.—कंसताल कटताल बजावत सृङ्ग मधुर मुँहचंग। मधुर, खंजरी, पटह, पणव, मिलि सुख पावत रत भंग।

कठमलिया—संज्ञा पुं. [हि. काठ+माला] (१) काठ की कंठी या माला पहननेवाला, वैष्णव। (२) बनावटी या झूठा साधु।

कठला—संज्ञा पुं. [स. कंठ+ला (प्रत्य.)] बच्चों को पहनाने की माला जिसमें सोने-चाँदी की चौकियों के साथ बघनख, तावीज आदि गुथे रहते हैं।

कठारा—संज्ञा पुं [सं. कंठ = किनारा+हिं आरा (प्रत्य.)] जलाशय या नदी का किनारा।

कठारी—संज्ञा स्त्री.[हि काठ+आरी (प्रत्य.)] (१) काठ का पात्र। (२) कमंडल।

कठिन—वि. [सं.] (१) कड़ा, सख्त। उ.—(क) रुधिर-मेद मल मूत्र कठिन कुच उदर गंध-गंधात। तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछै बात—२-२४। (ख) बालक बदन बिलोकि जसोदा कत रिस करति अचेत। छोरि उदर तें दुसह दाँवरी डारि कठिन कर बेंत—३४६। (२) दयारहित, निर्दयी, कठोर। उ.—तैं ककई कुमंत्र कियो। अपने कर करि काल हँकार्यौ, हठ करि नृप अपराध लियो। श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसें, तेरौ पाहन कठिन हियौ— ६-४८। (३) मुशकिल, दुःसाध्य, दुष्कर। उ.—ग्रह-पति सुत-हित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस। जलपति भूपन उदित होत ही पारत कठिन कलेस—सा. २७।
संज्ञा स्त्री.—(१) कठिनता। उ.—(क) उत वृप-भानुसुता उठी वह भाव बिचारै। रैनि बिहानी कठिन सौं मन्मथ बल भारै—१५४१। (ख) जब जब दीननि कठिन परी। जानत हौ करुनामय जन कौ, तब-तब सुगम करी—१-१६। (२) विपत्ति, कष्ट,संकट। उ.—(क) महाकष्ट दस मास गर्भ बसि अधोमुख सीस रहाई। इतनी कठिन सही तब निकस्यौ अजहूँ न तू समुझाई। (ख) कपट-रूप निसिचर तन धरिकै अमृत पियौ गुन मानी। कठिन परें ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुख-दानी—१-११२।

कठिनई—संज्ञा स्त्री. [हि. कठिन] (१) कड़ाई। (२) कठोरता। (३) संकट।

कठिनता, कठिनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कठिन] (१) कड़ापन, सख्ती। (२) मुश्किल, दिक्कत। (३) निर्दयता, कठोरता। (४) मजबूती, दृढ़ता।

कठिनाई—संज्ञा स्त्री. [हि. कठिन + आई (प्रत्य.)] मुश्किल, जबरदस्ती, हठ। उ.—ऊधौ जो तुम हमहि बतायौ। सो हम निपट कठिनई करि-करि या मन कौ समझायौ—३३८५।

कठुला—संज्ञा पुं. [हि. कंठ+ला (प्रत्य.) = कठला] बच्चों के गले में पहनाने की एक माला जिसमें चाँदी, सोने की चौकियों के साथ बाघ के नख, नजर से बचाने को तावीज आदि गुथे रहते हैं। विश्वास है कि इसको पहनाने से बच्चे को नजर नहीं लगती। उ.—कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, मसि-बिंदुका सु मृग-मद भाल। देखत देत असीस नारि-नर, चिरजीवौ जसुदा तेरौ लाल—१०-८४।

कठेठ—वि. पुं. [सं. कंठ+एठ (प्रत्य.)] (१) कड़ा, कठोर, सख्त। (२) बली, बलवान।

कठेठी—वि. स्त्री. [हि. कठेठा] कड़ी, कठोर, सख्त। (२) बलवाली।

कठोर—वि. [सं.] (१) कड़ा, सख्त। उ.— केस ओर निहार फिर फिर तकत उरज कठोर—सा. ३४। (२) निर्दयी, निठुर। उ.—केस गहे अरि कंस पछिरिहौं। असुर कठोर जमुन लै डरिहौं—११६१।

कठोरता, कठोरताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कड़ापन, सख्ती। (२) निर्दयता, निठुरता।

कठोरपन—संज्ञा पुं. [हि. कठोर + पन (प्रत्य.)] (१) कठोरता। (२) निर्दयता।

कठोरी—वि. [सं. कठोर] कठोर, कड़ा। उ.—दै दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटति उरज-कठोरी —१०-३०५।

कठौता—संज्ञा पुं. [हि. काठ+औता (प्रत्य.)] काठ का एक पात्र जो परात से ऊँचा होता है।

कठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कठौता] छोटा कठौता।

कड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़कड़] (१) कड़कड़ाहट का शब्द। (२) कड़कने की क्रिया या भाव। (३) गाज, वज्र। (४) रुक रुक कर उठनेवाला दर्द, कसक।

कड़कड़ाना—क्रि. स. [अनु.] घी को आँच पर तपाना।

कड़कना—क्रि. अ. [हिं. कड़कड़] (१) 'कड़कड़' शब्द करना। (२) गरजना, तड़पना। (३) फटना, दरकना।

कड़खा—संज्ञा पुं. [हिं कड़क] ओजपूर्ण प्रशंसात्मक गीत जिन्हें सुनकर युद्ध में जानेवाले वीर उत्तेजित हो जाते हैं।

कड़खैत—संज्ञा पुं. [हिं. कड़खा+ऐत(प्रत्य.)] (१) कड़खा गानेवाले। (२) भाट, चारण।

कड़ा—संज्ञा पुं [सं. कटक] (१) हाथ-पैर का एक गहना। (२) धातु का गोल छल्ला या कुंडा।

वि. [सं कडड] (१) कठोर, कठिन, ठोस। (२) जो कोमल न हो, रूखा। (३) उग्र, दृढ़। (४) तगड़ा, हृष्ट-पुष्ट। (५) तेज। (६) सहनशील, धैर्य-वान। (७) जिसका करना सरल न हो, मुश्किल। (८) तीव्र। (९) बुरा लगनेवाला। (१०) कर्कश, कठोर।

कड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] कड़ापन, कठोरता, सख्ती।

कड़ाही—संज्ञा स्त्री. [हिं.] लोहे पीतल आदि का पात्र जिसे चूल्हे पर चढ़ाकर पूरी-मिठाई बनाते हैं।

कड़ियल—वि. [हिं. कड़ा] कठोर, सख्त।

कड़िहार—वि. [हिं. काढना, कढ़िहार] (१) काढ़ने या निकालनेवाला। (२) उद्धार करने वाला।

कड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] (१) जंजीर का छल्ला। (२) गीत का एक चरण। (३) लगाम।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा=कठिन] विपत्ति, कठिनाई।

वि.—कठिन, कठोर।

कड़ुवा—वि. [सं. कटुक, प्रा. कडुआ] (१) जिसका स्वाद उग्र या तीक्ष्ण हो। (२) उग्र या तीक्ष्ण स्वभाव-वाला। (३) अप्रिय, अरुचिकर। (४) कठिन, मुश्किल।

कड़ुआना—क्रि. अ. [हिं. कड़ुआ (१) स्वाद में उग्र या तीक्ष्ण लगना। (२) बिगड़ना, खीझना। (३) नींद न आने पर आँख में दर्द होना।

कडूला—संज्ञा पुं. [हिं. कड़ा+ऊला] छोटा कड़ा जो बच्चे को हाथ-पैर में पहनाते हैं।

कड़ेरा—संज्ञा पुं. [हिं. कैंडा] वस्तु को खरादकर ठीक करनेवाला।

कढ़त—क्रि अ. [हिं. कढ़ना] निकलता है, बाहर आता है। उ.—नाहिन कढ़त और के काढे सूर मदन के बान—२०५१।

कढ़ति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. कढ़ना] निकलती हैं, बाहर आती है। उ.—अब वै बातें इहयाँ रही। ... .। अब वै सालति हैं उरमहियाँ कैसेहु कढ़ति नहीं —२५४२।

कढ़ना—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन] (१) निक-लना, बाहर आना। (२) उदय होना। (३) होड़ में आगे बढ़ना। (४) स्त्री का प्रेमी के साथ निकलना। (५) औटने से दूध का गाढ़ा होना। (६) लाभ होना।

कढ़नी—संज्ञा स्त्री [हिं. कढ़ना] मथानी घुमाने की डोरी, नेती।

कढ़राना, कढ़लाना क्रि स. [हिं. काढ़ना+लाना] घसी-टना, घसीटकर बाहर करना।

कढ़वाना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना+लाना] निकलवाना।

कढ़ाइ—क्रि. स. [हिं कढ़ाना] खींचना, अलग करना। उ.—दिन दिन इनकी करौं बड़ाई अहिर गये इत-राइ। तौ मैं जो वाहो सौ कहिकै उनकी खाल कढ़ाइ—२५७८।

कढ़ाई—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कढ़ाना, कढ़वाना] निकल-वायी, बाहर की, खींच ली। उ.—सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहि लयौ बुलाई। दधि मैं पड़ी सैंत की मौपैं चींटी सबै कढ़ाई—१०-३२२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ाह] कड़ाही।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काढ़ना] (१) निकालने की क्रिया या मजदूरी। (२) बूटा-कसीदा काढ़ने की क्रिया या मजदूरी।

कढ़ाना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना का प्रे०] निकलवाना, बाहर कराना, खिंचाना।

कढ़ावना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना का प्रे०] निकलवाना, बाहर कराना, खिंचाना।

कढ़िराइ—क्रि. स. [हिं कढ़लाना] घसीटकर, घसीटकर बाहर करके । उ.—नाहिं काँचौ कृपानिधि हौं, करौ कहा रिसाइ। सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै, डारिहौ कढ़िराइ—१-१०६ ।

कढ़िहार—वि. [हिं. काढ़ना] (१) निकालनेवाला। (२) उबारने या उद्धार करनेवाला।

कढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं कढ़ना = गाढ़ा होना] बेसन को पतला करके और आग पर गाढ़ा करके बनाया जानेवाला एक प्रकार का सालन या भोजन। उ.—(क) दाल-भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान। आरोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनन्द निधान। (ख) खाटी कढ़ी विचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि आई—२३२१।

कढ़ै—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन, हिं. कढ़ना] निकले, बाहर हो, दूर हो। उ.—सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै—१०-१७४।

कढ़ैया—संज्ञा स्त्री [हिं कड़ाह] कड़ाही।

संज्ञा पुं. [हिं. काढ़ना] (१) निकालनेवाला। (२) उद्धार करनेवाला।

कढ़ोरना—क्रि. स. [सं. कर्षण] घसीटना।

कढ़ोरि—क्रि. स [हिं. कढ़ोरना] घसीटकर।

कढ़ोरिबो—क्रि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटना।

कढ़ोलना—क्रि. स. [हिं. कढ़ोरना] घसीटना।

कढ्यौ—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन, हिं. कढ़ना] निकला, बाहर आया। उ.—(तब) लादि पंकज कढ्यौ बाहिर, भयौ व्रज-मन भावना—५७७।

कण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनका, रवा या जर्रा। (२) चावल का छोटा टुकड़ा। (३) अन्न के दो-चार दाने। (४) भिक्षा।

कणकण—संज्ञा पुं. [सं कंकणक] कंकण के बजने का शब्द।

कणिका—संज्ञा स्त्री. [सं] किनका, कण, छोटा टुकड़ा।

कण्व—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जिन्होंने शकुन्तला को पाला था।

कत—अव्य. [सं. कुतः, पा. कुतो] क्यों, किस लिए, काहे को। उ०—(क) सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत मारी ?—१-३४। (ख) काल-व्याल, रज तम-विष-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत—१-५५। (ग) छये पति वत जात खेलत कान मेरे प्रान —सा० ६३।

कतई—क्रि. वि. [अ.] निपट, बिलकुल।

कतक—अव्य. [सं. कुतः] किस लिए, क्यों।

वि. [सं. कियत, हिं. कितना] किस परिमाण या मात्रा का।

कतरना—क्रि. स. [सं. कर्तन] किसी औजार या कैंची से कतरना।

संज्ञा पुं. (१) बड़ी कैंची। (२) वह व्यक्ति जो बीच में बात काट देता हो।

कतर-ब्योंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. [कतरना + ब्योंतना] (१) काट-छाँट। (२) उलट-फेर। (३) सोच-विचार। (४) युक्ति, जोड़-तोड़।

कतलबाज—संज्ञा पुं. [अ. कत्ल + फा. बाज़] बधिक, हत्यारा, मारनेवाला।

कतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतरना] एक प्रकार की मिठाई या पकवान।

कतवार—संज्ञा पुं. [हिं. कातना] कातनेवाला।

संज्ञा पुं. [हिं. पतवार = पताई] कूड़ा-करकट।

कतहुँ, कतहूँ—अव्य. [हिं. कत + हूँ] कहीं, किसी जगह। उ०—ममता-घटा मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ। बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन ओट अधारौ—१-२०९।

कता—संज्ञा स्त्री. [अ. क़तअ] बनावट, आकृति। (२) ढंग, रीति। (३) काट-छाँट।

कतान—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का बढ़िया कपड़ा।

कतार—संज्ञा स्त्री. [अ कतार] (१) पाँति, पंक्ति, श्रेणी। (२) समूह, झुंड।

कतारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतार] ढंग।

कति—वि. [सं.] (१) (संख्या में) कितने। (२) (तौल या माप में) कितना। (३) कौन। (४) बहुत, अगणित।

कतिक—वि. [सं. कति+एक] (१) कितना। (२) थोड़ा, जरासा। (३) बहुत, अनेक।

कतिपय—वि [सं.] (१) कई, कितने ही। (२) कुछ, थोड़े से।

कतेक—वि. [सं. कति+एक] (१) कितने। (२) थोड़े, कुछ। (३) अनेक।

कतौनी—संज्ञा स्त्री [हिं. कातना] (१) कातने की क्रिया, भाव या मजदूरी। (२) काम में विलंब। (३) बेकार काम।

कत्ता—संज्ञा पुं. [सं. कर्तरी] (१) बाँका नामक औजार। (२) छोटी टेढ़ी तलवार। (३) चौपड़ का पासा।

कत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कत्ता] (१) छुरी। (२) छोटी तलवार या कटारी। (३) पगड़ी जो बटकर पहनी जाती है।

कत्थक—संज्ञा पुं. [सं. कथक] वे जो गाने-बजाने का पेशा करते हों।

कत्था—संज्ञा पुं [सं. क्वाथ] (१) खैर की लकड़ियों का उबाल कर निकाला हुआ रस जो पान में लगाकर खाया जाता है। (२) खैर का पेड़।

कथक—संज्ञा पुं. [सं.] कथा-पुराण कहने वाला।

कथत—क्रि. स. [हिं. कथना] (१) कहते हो, बखानते हो। उ.—(क) वेनु बजाय रास बन कीन्हो अति आनँद दरसायौ। लीला कथत सहस मुख तौऊ अजहूँ पार न पायौ। (ख) हमतौ निपट अहीरि बावरी जोग दीजिए जानन। कहा कथत मौसी के आगे जानत नानी-नानन—३३२६। (ग) ए अलि चपल मोद रस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—३०४२। (२) निंदा या बुराई करते हो।

कथति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कथना] कहती है, बखानती है। उ.—दिवस बितवति सकल जन मिलि कथति गुन बलवीर—३४७६।

कथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कहना। (२) कही हुई बात, उक्ति। (३) वक्तव्य, बयान।

कथना—क्रि. स. [सं. कथन] (१) कहना, बोलना। (२) निंदा या बुराई करना।

कथनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कथन+ई (प्रत्य.)] (१) बात, कथन। (२) बकवाद, विवाद।

कथनीय—वि. [सं.] कहने या वर्णन करने योग्य। (२) बुरी, निंदनीय।

कथरी—संज्ञा पुं. [सं. कंथा+री (प्रत्य.)] चिथड़े-गुदड़ों से बनाया हुआ बिछौना, गुदड़ी।

कथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धार्मिक आख्यान। (२) बात, चर्चा। उ.—नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी। यह तौ कथा चलैगी आगै, सब पतितनि मैं हाँसी—१-१६२। (३) समाचार, हाल, रहस्य। उ.—(क) सूरदास बलि जात दुहुन की लिखि-लिखि हृदय-कथा चित पाती—सा. ५०। (ख) सुनहु महरि, तेरे या सुत सौं हम पचि हार रही। चोर अधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही—१०-२६१। (४) वाद-विवाद, कहा-सुनी, झगड़ा।

कथानक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथा। (२) कथा का सारांश, कहानी।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री. [सं] नाटक, उपन्यास आदि की कहानी।

कथीर, कथील, कथीला—संज्ञा पुं. [सं. कस्तीर, प्रा. कत्थीर] राँगा।

कथोपकथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वार्तालाप। (२) बातचीत।

कदंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर, झुण्ड। उ.—सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल, भागे जंजाल-जाल दुख-कदंब हारे—१-२०५। (२) कदम का वृक्ष। उ.—अति रमनीक कदंब-छाँह-रुचि परम सुहाई—४९२।

कदंश—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा या सारहीन भाग।

कद—संज्ञा स्त्री. [अ. कद्] (१) ईर्ष्या, द्वेष। (२) हठ, जिद।

संज्ञा पुं. [अ. कद] डील, ऊँचाई।

संज्ञा पुं. [सं. कं=जल+द] बादल।

अव्य. [सं. कदा] कब, किस दिन, किस समय।

कदधव—संज्ञा पुं. [सं. कदध्वा] कुपथ।

कदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध, संग्राम, नाश। उ.—परै महराइ भभकंत रिपु घाइ सों, करि कदन रुधिर भैरौ अघाऊँ—९-१२६। (२) मरण, विनाश। (३) हिंसा, पाप। (४) दुख। (५) घातक, हत्यारा।

कदन्न—संज्ञा पुं. [सं.] वह अन्न जिसका खाना मना हो।

कदम—संज्ञा पुं. [सं. कदंब] (१) एक बड़ा पेड़ जिसमें पीले फूल और हरे फल लगते हैं। उ.—(क) सीतल कुंज कदम की छहियाँ छाक छहूँ रस लैए—४४५। (ख) कहि धों कुंद कदम बकुल बट चंपक लता तमाल—१८०८।

संज्ञा पुं. [अ. क़दम] (१) पैर, पग। (२) पैर का चिह्न। (३) दो पगों का अंतर, पैंड।

कदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंकुश। (२) गोंठ।

संज्ञा स्त्री. [अ. क़दर] (१) मात्रा। (२) मान, बड़ाई।

कदरई—संज्ञा स्त्री. [हि. कादर] कायरता।

कदरज—संज्ञा पुं. [सं. कदर्य] एक प्रसिद्ध पापी।

कदरमस—संज्ञा स्त्री. [सं. कदन + हि. मस (प्रत्य.)] मारपीट, लड़ाई।

कदराई—संज्ञा स्त्री. [हि. कादर + ई. (प्रत्य.)] कायरता।

कदरात—क्रि. अ. [हि. कदराना] कायर बनते हो, कचियाते हो, खिन्न होते हो, मन छोटा करते हो। उ.—स्याम भुज गहि दूतिका कहि मृदुबानी। काहे को कदरात हौ मैं राधा आनी—१८९०।

कदराना—क्रि. अ. [हि. कादर] (१) डरना। (२) कायरता दिखाना, कचियाना, पीछे हटना।

कदरो—संज्ञा स्त्री. [सं. कद + रव = शब्द] मैना के बराबर एक पक्षी।

कदर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] बेकार चीज।

वि.—बुरा, व्यर्थ, बेकार, कुत्सित।

कदर्थना—संज्ञा स्त्री. [सं. कदर्थन] (१) बुरी दशा, दुर्गति। (२) निंदा, बुराई।

कदर्थित—वि. [सं.] जिसकी दुर्दशा हुई हो।

कदर्य्य—वि. [सं.] कंजूस, लोभी, कृपण।

कदलि, कदली—संज्ञा स्त्री. [सं.] केला। उ०—कमलै ऊपर सरस कदली कदलि पर मृगराज—सा० १४।

कदली-छिकुला—संज्ञा पुं. [सं. कदली + हि. छिलका] केले का छीलन, केले के छिलके। उ०—प्रेम-विरल, अति आनँद उर-धरि, कदली-छिकुला खायें—१-१३।

कदा—क्रि. वि. [सं.] कब, किस समय।

कदाच, कदाचि—क्रि. वि. [सं. कदाचन] शायद, कदाचित, कभी।

कदाचार—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा आचरण, दुराचार।

कदाचित—क्रि. वि. [सं.] कभी, शायद कभी।

कदापि—क्रि. वि. [सं.] कभी भी, किसी समय।

कदी—क्रि. वि. [सं. कदा] कभी।

कदे—क्रि. वि. [हि. कदी] कभी।

कद्रुज—संज्ञा पुं. [सं. कद्रु + ज] कश्यप की एक स्त्री कद्रु के पुत्र, सर्प, नाग। उ०—दंभ टूटत अरु असन पक भये विधिना आन बनाइ। कद्रुज पैठि पताल दुरे रहे खगपति हरि-वाहन भये जाइ—२२२४।

कद्रू—संज्ञा स्त्री. [सं.] कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पैदा हुए थे।

कनंक—संज्ञा पुं. [सं. कनक] सोना।

कन—संज्ञा पुं. [सं. कण] (१) अन्न, अनाज के दाने। उ०—(क) जौ लौ मन-कामना न छूटै। तौ कहा जोग-जज्ञ-व्रत कीन्हें, बिनु कन तुम कौं कूटै—२-१६। (ख) ऐसी को ठाली बैठी है तोसौं मूढ़ लड़ावै। झूठी बात तुसी सी बिन कन फटकत हाथ न आवै—३२८७। (२) बालू या रेत के कण। उ०—कौनै रक सपटा बिलसी सोवत सपने पाई। अरु कन के माला कर अपने कौनै गूँथ बनाई—३३४३। (३) किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा, कण। (४) प्रसाद, जूठन। (५) भीख, भिक्षान्न। (६) चावल की कनी। (७) शक्ति, सत। (८) कान का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों के आदि में जुड़ता है। (९) बूँद। उ०—गिरिजा-पतिपतिनी पति ता सुत गुन गुन गनन उतारै। तन-सुत-कन से धन-विचार के तुरत भूमि पै डारै—सा०-५।

कनई—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या कंदल] कल्ला, कोंपल।

कनउँगली—संज्ञा स्त्री. [सं. कनीयान, हि. कानी+ उँगली] सबसे छोटी उँगली।

कनउँड—वि. [हि. कनौड़ा] दासी, सेविका।

कनउड़—वि. [कनौड़ा] (१) दीनहीन। (२) लज्जित। (३) कृतज्ञ, उपकृत। (४) काना, अपंग।

कनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना, स्वर्ण। उ०—सखी री वह देखो रथ जात। छत्र पत्र कनकदल मानो ऊपर पवन विहात। (२) धतूरा। (३) टेसू, पलाश। (४) नागकेसर।

संज्ञा पुं. [सं. कणिक = गेहूँ का आटा] (१) गेहूँ का आटा। (२) गेहूँ।

कनककली—संज्ञा. पुं. [सं. कनक+हि. कली] कान में पहनने की लौंग।

कनकना—वि. [हिं. कन+कना (प्रत्य०)] जो जरा सा जोर लगने से टूट जाय।

वि. [हिं. कनकनाना] (१) कनकनाने या चुनचुनानेवाला। (२) अरुचिकर। (३) जो जरा सी बात में चिढ़ जाय।

कनकपुर—संज्ञा. पुं. [सं.] सोने का नगर, लंका नगर। उ.—भलैं राम कों सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५।

कनकपुरि, कनकपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कनकपुरी] लंका। उ.—(क) सौ जोजन बिस्तार कनकपुरी, चकरी जोजन बीस। मनौं बिश्वकर्मा कर अपुनें, रचि राखी गिरि-सीस—६-७४। (ख) सुनौ किन कनकपुरी के राइ। हौं बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ—६-७८। (ग) लुटत सक्र के सीस नरन तर जुग गत समए। मानहु कनकपुरी-पति के सिर रघुपति फेरि दए—६८४।

कनकफल—संज्ञा. पुं. [सं.] धतूरे का फल।

कनकबेलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वर्णवल्लरी, स्वर्णलता। उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि। कनकबेलि तमाल अरुझी सुभुज बंध अखोलि—सा उ. ५।

कनका—संज्ञा पुं. [सं. कण] कनकी, कण।

कनकाचल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने का पर्वत। (२) सुमेरु पर्वत।

कनकानी—संज्ञा पुं. [देश] घोड़ों की एक जाति।

कनकी—संज्ञा स्त्री. [हि. कनका] कण।

कनखा—संज्ञा पुं. [सं. काड] (१) कोंपल। (२) शाखा, डाल।

कनखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोन+आँख] दूसरों की दृष्टि बचाकर देखना। (२) आँख का संकेत।

कनखैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवन।

कनगुरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कानी + अँगुरी या अँगुरिया] सबसे छोटी उँगली।

कनछेदन, कनछेदनि—संज्ञा पुं. [हिं. कान + छेदना] एक संस्कार जो प्रायः मुंडन के साथ होता है और जिसमें बच्चों के कान छेदे जाते हैं। उ.—कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है हाथ सोहारी भेली गुर की—१०-१८०।

कनधार—संज्ञा पुं [सं. कर्णधार] मल्लाह, केवट। उ.—हाटकपुरी कठिन पथ, बानर, आए कौन अधार? राम प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार। तिहि अधार छिन मैं अवलंघ्यौ, आवत भई न बार—६-८६।

कनफुँका, कनफुँकवा—वि. [हि. कान+फूँकना] (१) कान फूँकने वाला, दीक्षा देनेवाला। (२) जिसने दीक्षा ली हो।

संज्ञा पुं—(१) गुरु जिसने दीक्षा दी हो। (२) चेला जिसने दीक्षा ली हो।

कनफूल—संज्ञा. पुं. [हिं. कान + फूल] फूल की तरह का एक गहना जो कान में पहना जाता है।

कनबतिया—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कान + बात] धीरे से या कान में कही हुई बात।

कनमनाना—क्रि अ. [अनु०] (१) सोते-सोते हिलना-डुलना। (१) थोड़ी-बहुत चेष्टा करना, हाथ-पैर हिलाना।

कनय—संज्ञा पुं. [सं. कनक] सोना, सुवर्ण।

कनरस—संज्ञा पुं. [हिं. कान+रस] (१) संगीत का आनन्द। (२) संगीत का व्यसन या रुचि।

कनसार—संज्ञा पुं. [हि. काँसा+आर (प्रत्य.)] ताम्रपत्र पर लिखनेवाला।

कनसुई—संज्ञा स्त्री. [हि. कान+सुनना] आहट, टोह।

कनहार, कनहारू—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार, प्रा. कण्ण-हार] मल्लाह, केवट।

कनाउड़ा, कनाउड़ो—वि. [हिं. कनौड़ा] (१) दीन-हीन। (२) लज्जित। (३) कृतज्ञ, उपकृत।

कनात—संज्ञा स्त्री. [तु. कनात] कपड़े का ऊँचा परदा जिससे दीवार की तरह कोई स्थान घेरते हैं।

कनावड़ा—वि. [हिं. कनौड़ा] (१) दीनहीन। (२) लज्जित। (३) कृतज्ञ, उपकृत।

कनागत—संज्ञा पुं. [सं. कन्यागत] पितृपक्ष।

कनिआरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्णिकार] कनकचंपा का पेड़। उ.—अति व्याकुल भई गोपिका ढूँढति गिरधारी। बूझति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी। जाही-जूही सेवती करना कनिआरी। वेलि चमेली मालती बूझति द्रुम डारी—१८२२।

कनिक—संज्ञा स्त्री. [सं. कणिक]। (१) गेहूँ। (२) गेहूँ का आटा। उ.—षटरस व्यंजन को गनै बहु-भाँति रसोई। सरस कनिक बेसन मिलै रुचि रोटी पोई—१५५५।

कनिका—संज्ञा पुं. [सं. कणिका] कण, बूँद। उ.—मुख आँसू अरु माखन कनिका (कनुका) निरखि नैन छवि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि समेत—३४६।

कनिगर—संज्ञा पुं. [हि. कानि+फा० गर] मान-मर्यादा और कीर्ति का ध्यान रखनेवाला।

कनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँध] गोद, कोरा, उछंग। उ.—(क) नैकु गोपालहिं मौकों दै री। देखौं वदन कमल नीकें करि, ता पाछैं तू कनियाँ लै री—१०-५५। हरि किलकत जसुदा की कनियाँ—१०-८१। (ग) इहि आँगन गोपाल लाल को कबहुँक कनियाँ लेहौं—२५५०।

कनियाना—क्रि. अ. [हिं. कतराना] कतराकर या बच कर निकल जाना।

क्रि. अ. [हिं. कनिया] गोद में उठाना।

कनियार—संज्ञा पुं. [स. कर्णिकार] कनक चंपा।

कनिष्ट—वि. [स.] (१) छोटा। (२) जो पीछे जन्मा हो। (३) हीन।

कनिष्ठा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) छोटी उँगली। (२) नव विवाहिता छोटी पत्नी जिसपर पति का प्रेम कम हो।

कनिहार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] मल्लाह, केवट।

कनी—संज्ञा स्त्री. [स. कण] (१) कण, छोटा टुकड़ा। (२) हीरे का कण। (३) चावल का कण। (४) बूँद। उ.—(क) कहा काँच संग्रह के कीने हरि जो अमोल मनी। बिप सुमेरु कछु काज न आवै, अमृत एक कनी—८६४। (ख) ससि सम सुन्दर सरस अँदरसे। ऊपर कनी अमी जनु बरसे—२३२१।

कनीनिका—संज्ञा स्त्री [सं.] आँख की पुतली का तारा। उ.—सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसें डोर (ल)। रस भरे अंबुजनि भीतर, भ्रमत मानों भौंर—३६४।

कनीर—संज्ञा पुं. [हिं. कनेर] कनेर का वृक्ष या फूल।

कनु—संज्ञा पुं. [स. कण] (१) कण। (२) बूँद।

कनुका, कनूका—संज्ञा पुं. [स. कणिका] (किसी वस्तु का) छोटा टुकड़ा या थोड़ा अंग, कण। उ.—मुख आँसू अरु माखन कनुका, निरखि नैन छवि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, उडुगन, अवलि समेत—३४६।

कने—क्रि. वि [स. कोण] (१) पास, समीप (२) ओर, तरफ।

कनेखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवन।

कनेर, कनैर—संज्ञा पुं. [सं. करनेर] एक पेड़ जिसमें लाल या सफेद फूल लगते हैं। यह पेड़ बड़ा विषैला होता है।

कनेरिया—वि. [हिं. कनेर] कनेर के फूल के रंग का, श्यामता लिये हुए लाल रंग का।

कनेखा—वि. [हिं. कनखी] कटाक्षयुक्त।

कनौड़ा—वि. [हिं काना+औड़ा (प्रत्य.)] (१) काना। जिसका कोई अंग टूटा या हीन हो। (३) जो बदनाम हो। (४) दीन-हीन। (५) लज्जित। (६) कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद।

कनौड़े—वि. [हिं. कनौड़ा=काना+औड़ा (प्रत्य.)] कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद, दबैल। उ.—अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरधर नार नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सज्या पर, कर-पल्लव पलुटावति—६५५।

कनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कान + औती (प्रत्य.)] (१) पशुओं के कानों की नोक। (२) कानों को उठाने का ढंग। (३) कान में पहनने की बाली।

कन्ना—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कंड] (१) किनारा, कोर। (२) संबंध।

संज्ञा पुं. [सं. कण] चावल का कन।

कन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कन्ना] (१) किनारा, कोर। (२) धोती या चादर का किनारा।

संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] कोंपल।

कन्नौज—संज्ञा पुं. [सं. कान्यकुब्ज, प्रा. कण्णउज्ज] फरुखाबाद जिले का एक नगर जो किसी समय बड़े विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था।

कन्यका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पुत्री। (२) अविवाहित लड़की।

कन्यनि—संज्ञा स्त्री. सवि. बहु. [सं. कन्या] पुत्रियों ने। उ०—सब कन्यनि सौभरि कौं बरयौ—९-८।

कन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अविवाहित लड़की। (२) पुत्री, बेटी। (३) एक राशि। उ०—(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर को पुत्र-जन्म सुनि आयौ। लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुम्हहिं सुनायौ… । पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं—१०-८६।

कन्हाई—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कण्ह] श्रीकृष्ण।

कन्हावर—संज्ञा पुं. [हिं. कँधावर] कंधे पर डाला जाने वाला दुपट्टा।

कन्हैया—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कण्ह] (१) श्रीकृष्ण। (२) प्रिय व्यक्ति। (३) सुंदर बालक। (४) बाँका युवक।

कपट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छल, दंभ, धोखा। उ०—बकी कपट करि मारन आई, सो हरिजू बैकुंठ पठाई—१-४। (२) दुराव, छिपाव। उ०—कपट हीन न मीन एरी मरत बिछुरत प्यार—सा० २४।

कपटना—क्रि. स. [सं. कपट] (१) काटना, छाँटना। (२) छुपके से किसी चीज का कुछ अंश निकाल लेना।

कपटिन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कपट] छली-धूर्तों की। उ०—भँवर, कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार—२६८७।

कपटी—वि. [हिं. कपट] छली, धूर्त। उ०—साधु-निंदक, स्वाद-लंपट, कपटी, गुरु-द्रोही। जेते अपराध जगत, लागत सब मोही—१-१२४।

कपड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, प्रा. कप्पट, कप्पड़] (१) वस्त्र, पट। (२) पहनावा।

कपनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंपन] कँपकँपी, काँपना, थरथराहट। उ०—चारि चारि दिन सबै सुहागिनि री ह्वै चुकी मैं स्वरूप अपनी। कोउ अपने जिय मान करै माई हो मोहि तौ छुटति अति कपनी—१६६२।

कपरा—संज्ञा पुं. [हिं. कपड़ा] (१) वस्त्र, पट। (२) पहनावा।

कपर्द, कपर्दक, कपर्दिका—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव की जटा। (२) कौड़ी।

कपर्दिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, शिवा, भवानी।

कपर्दी—संज्ञा पुं. [सं. कपर्दिन्] शिव।

कपाट—संज्ञा पुं. [सं.] किवाड़, पट। उ०—(क) प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे। तैंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुम सौं क्यौं हारे—९-१०५। (ख) काजर कुलफ मेलि मैं राखे पलक कपाट दये री—सा० उ० ७। (ग) नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दृग द्वार अकोट—सा० उ० १६।

कपाटनि—संज्ञा पुं. [सं. कपाट + नि (प्रत्य०)] दरवाजे। उ०—तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत। लालच लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत—१-१७७।

कपार, कपाल—संज्ञा पुं. [सं. कपाल] (१) खोपड़ी। (२) मस्तक। (३) अदृष्ट, भाग्य। (४) खप्पर।

कपालक—संज्ञा पुं. [सं. कापालिक] साधु जो हाथ में नर-कपाल लिये रहते हैं और शैव मत मानते हैं।

कपालमाली—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव जो मनुष्य की खोपड़ियों की माला पहनते हैं।

कपालिक—संज्ञा पुं. [सं. कापालिक] साधु जो मनुष्य की खोपड़ी लिये रहते है और भैरव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं। उ.—जा परसें जीतें जग-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी—६-११।

कपालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोपडा।

संज्ञा स्त्री. [सं. कापालिक = शिव] काली, रणचंडी।

कपालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, काली।

कपाली—संज्ञा पुं. [सं. कपालिन्] (१) शिव। (२) भैरव। (३) भिक्षुक।

कपास—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्पसि] (१) रुई का पौधा। (२) रुई।

कपासी—वि. [हि. कपास] कपास के फूल की तरह बहुत हल्के रंग का।

कपिंजल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चातक, पपीहा। (२) तीतर। (३) एक मुनि।

कपि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बंदर। (२) हनुमान। उ०—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहैं—१-२९। (३) हाथी। (४) सूर्य।

कपिकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन जिनके रथ की ध्वजा पर हनुमान जी थे।

कपिध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन जिसकी ध्वजा में कपि का चिह्न था। उ.—स्यदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

कपिपति—संज्ञा पुं. [सं.] बंदरों का राजा सुग्रीव। उ.—इहिं गिरि पर कपिपति सुनियत है, बालि-त्रास कैसैं दिन जात—९-६९।

कपिराइ—संज्ञा पुं. [हि. कपिराय] श्रेष्ठ बंदर हनुमान। उ.—कैसैं पुरी जरी कपिराइ। बडे दैत्य कैसै कै मारे, अंतर आप बचाइ—९-१०५।

कपिल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि जिन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म कर दिया था। (२) अग्नि। (३) महादेव। (४) सूर्य। (५) विष्णु।

वि.—(१) भूरा। (२) सफेद।

कपिला—वि स्त्री. [सं.] (१) भूरे या सफेद रंग की। (२) सीधी-सादी।

संज्ञा स्त्री.—(१) सफेद रंग की गाय। (२) दक्षप्रजापति की एक कन्या।

कपिश—वि. [सं.] भूरे रंग का, मटमैला।

कपिस—वि. [सं. कपिश] भूरा या मटमैला। उ.—पुरइन कपिस निचोल विविध रँग विहँसत सचु उपजावै। सूरस्याम आनन-कंद की सोभा कहत न आवै।

संज्ञा पुं.—रेशमी वस्त्र।

कपी—संज्ञा पुं. [सं. कपि] बंदर। उ.—भक्ति के बस स्याम सुन्दर देह धरे आवैं। नंदघरनि बाँधि बाँधि कपी ज्यों नचावैं—३६४।

कपीश—संज्ञा पुं. [सं.] वानरों का राजा।

कपूत—संज्ञा पुं. [सं. कुपुत्र] बुरे चाल-चलन का लड़का।

कपूती—संज्ञा स्त्री. [हि. कपूत] पुत्र का बुरा आचरण।

कपूर—संज्ञा पुं. [सं. कर्पूर, पा. कप्पूर, जावा कापूर] सफेद रंग का जमा हुआ एक सुगन्धित द्रव जो जलाने से जलता है और खुला रहने पर हवा में उड जाता है।

कपोत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कबूतर। (२) परेवा। (३) चिड़िया।

कपोतव्रत—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कबूतर की रीति-नीति। (२) कबूतर की तरह अत्याचार सहन करना।

कपोल—संज्ञा पुं. [सं.] गाल।

संज्ञा स्त्री. [सं.] नृत्य या अभिनय में कपोल की क्रिया अथवा चेष्टा।

कपोलकल्पना—संज्ञा स्त्री. [सं.] मनगढ़ंत या बनावटी बात।

कपोलै, कपोलो—संज्ञा पुं. [सं. कपोल] गाल पर। (क) मकराकृत कुंडल छवि राजति लोल कपोलै—३१२९। (ख) चदन मिटाये तनु अति ही अलसात नागरी की पीक लगी तो कपोलो—१९५९।

कप्पर—संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, हिं. कपड़ा] वस्त्र, कपड़ा, पट।

कफ—संज्ञा पुं. [सं.] खाँसने-थूकने से निकलने वाली लसदार चीज, बलगम। उ.—परमारथ उपचार करत हौ विरह-विथा है जाहि। जाकौ राजरोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४५।

संज्ञा पुं. [अ. कफ] लोहे का टुकड़ा जो चकमक से आग झाड़ने के काम आता है।

कफन—संज्ञा पुं. [अ. कफ़न] वस्त्र जो शव पर लपेटा जाता है।

कफनी—संज्ञा स्त्री. [हि. कफन] साधुओं के पहनने का बिना सिला कपड़ा, जिसमें सिर डालने के लिए एक बड़ा छेद होता है।

कबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिना धड़ का शरीर। उ.—(क) पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ। इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरपत लोचन-नीर। पुत्र-कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर—१-२९। (ख) परि कबंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झर जागि—९-१५८। (२) एक राक्षस जिसके पेट में मुँह था। यह श्रीरामचन्द्र जी द्वारा दंडकारण्य में पराजित हुआ था। हाथ,पैर काटकर इन्होंने उसे जीता ही भूमि में गाड़ दिया था। उ.—मारग में कबंधरिपु मारयौ सुरपति काज सँवारयौ—सारा.-२७१। (३) बादल। (४) पेट। (५) राहु।

कब—क्रि. वि. [सं. कदा, हिं. कद] (१) किस समय। (२) नहीं, कदापि नहीं।

कबरा—वि. [सं कर्वर, पा. कब्बर] सफेद रंग पर काले-पीले-लाल या काले-पीले-लाल रगों पर सफेद दाग वाला, चितकबरा।

कबरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कवरी] स्त्रियों की चोटी, वेणी। उ.—अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गुँथे सुमन रसालहि। कबरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गोरी बालहि—पृ. ३४५ (४१)।

कबहुँक—क्रि. वि. [हि. कब] कब, कभी तो। उ.—(क) कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै—१-१०५। (ख) इहि आँगन गोपाल लाल कौ कबहुँक कनियाँ लैहौं—२५५०। (ग) कबहुँक कर करताल बजावत नाना भाँति नचावत—सारा. ४५८।

कबाय—संज्ञा पुं. [अ. कबा] एक ढीला-ढाला कपड़ा जो प्राय. संत पहनते हैं।

कबार—संज्ञा पुं [हिं. कारोबार या कबाड़] (१) व्यापार। (२) बेकार चीजें।

कबाहट, कबाहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) बुराई। (२) अड़चन।

कबि—संज्ञा पुं [सं. कवि] काव्य-रचयिता, कवि। उ.—तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कबि-ठोट—१-१३२।

कबीर—संज्ञा पुं [अ. कबीर=बड़ा, श्रेष्ठ] (१) एक प्रसिद्ध संत कवि। (२) एक प्रकार के अश्लील गीत जो होली में गाये जाते हैं।

कबीला—संज्ञा पुं. [अ. कबीलः] (१) समूह, झुंड। (२) एक परिवार का सदस्य।

संज्ञा स्त्री.—पत्नी, स्त्री।

कबुलाई—क्रि. स. [हि. कबुलाना] (कोई बात)स्वीकार करायी।

कबुलाना—क्रि. स. [हि. कबूलना का प्रे.] (कोई बात) स्वीकार कराना।

कबूतर—संज्ञा पुं. [फा. (सं. कपोत)] एक पक्षी, कपोत।

कबै—क्रि. वि. [हि. कब] किस समय, कब। उ०—कमल कोस मैं आनि दुरायौ बहुरि दरस धौं होइ कबै—१३००।

कभी, कभू—क्रि. वि. [हिं. कब+ही] किसी समय, किसी अवसर पर।

कमंडल—संज्ञा पुं. [सं. कमंडलु] साधु-संतों का जल-पात्र जो दरियाई नारियल या तुमड़ी आदि का होता है।

कमंडली—संज्ञा पुं. [सं. कमंडलु+ई (प्रत्य०)] ब्रह्मा। उ०—उतै देखि धावै, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक एक ह्वै रह्यौ। बिवस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकवानी, देखि गोप मंडली कमंडली चितै रह्यौ—४८४। (२) साधु।

वि. [सं. कमंडलु+ई (प्रत्य०)] पाखंडी, आडंबर रखनेवाला।

कमंडलु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधु-संन्यासियों का जल-पात्र जो प्राय. धातु, मिट्टी, तुमड़ा, दरियाई नारियल आदि का होता है। (२) एक पेड़।

कमंद—संज्ञा पुं. [सं. कबंध] बिना सिर का धड़।

संज्ञा स्त्री. [फा.] रेशम, सूत या चमड़े का फंदा।

कमंध—संज्ञा पुं. [सं. कबंध] (१) बिना धड़ का शरीर। उ०—(क) रावे सो रस बरनि न जाई। जा रस को सुर भान सीस दियो सो तैं पियो अकुलाई। पचि हारे सब बाल कमलमुख चंद्र बदन ठहराई। अजहुँ कमध फिरत तेहि लालच सुंदरि सैन बुझाई—१२३५। (ख) मन हठ परयौ कमंध जोधा लौं हारेहु नाहीं जीति—३२३७। (२) कलह, झगड़ा।

कम—वि. [फा] (१) थोड़ा, तनिक। (२) बुरा।

क्रि वि.—प्राय. नहीं, बहुत थोड़ा, कदाचित ही।

कमठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ, कच्छप। उ०—(क) बासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ में अपनी पीठ धारी—२-८। (ख) मथि समुद्र सुर असुरन के हित मंदर जलधि धसाऊ। कमठ रूप धरि धरयौ पीठि पर तहाँ न देखे हाऊ—१०-२२१। (२) साधुओं का तुंबा। (३) पुराने ढंग का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा जाता था।

कमठा—संज्ञा पुं. [सं. कमठ=बाँस] धनुष।

कमठी—संज्ञा पुं. [सं.] कछुई।

कमत—क्रि. अ. [हि. कमना] कम होता है।

कमना—क्रि. अ. [हि कम] कम होना, घटना।

कमनी—वि. [सं. कमनीय] सुंदर।

कमनीय—वि [सं.] (१) सुंदर, मनोहर। (२) कामना करने या चाहने योग्य।

कमनीयता—संज्ञा स्त्री. [सं. कमनीय] सुंदरता।

कमनैत—संज्ञा पुं. [फा. कमान + हि. ऐत (प्रत्य०)] धनुष चलानेवाला, तीरंदाज़।

कमनैती—संज्ञा पु. [हि. कमनैत] तीर चलाने की कला या विद्या, धनुर्विद्या।

कमर—संज्ञा स्त्री [फा] कटि।

कमरख—संज्ञा पु [स. कर्मरंग, पा० कम्मरंग] (१) एक पेड़ जिसके फल खटमिट्ठे होते हैं, कमरंग। (२) कमरंग का फल।

कमरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. कमली] कमली, कंबल। उ.—(क) काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, विहरत बछरनि साथ—४८७। (ख) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजै—सारा. ७४१।

संज्ञा स्त्री. [हि. कमर] कमर।

कमरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कमली] कमली, कंबल।

कमल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पानी में होने वाले एक पौधे का फूल जो अधिकतर लाल, सफेद या नीले रंग का होता है। (२) इस पेड़ का फूल। (३) जल।

कमलनाभ—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

कमलनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमल की डंडी, मृणाल।

कमलनैन—संज्ञा पुं. [सं. कमलनयन] (१) कमल के समान नेत्र हैं जिसके वह श्रीकृष्ण। उ.—कमलनैन कांधे पर न्यारो पीत बसन फहरात—२५३६। (२) विष्णु। (३) राम।

वि.—सुंदर नेत्रवाला।

कमलबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

कमलभव, कमलभू—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

कमला—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) लक्ष्मी। (२) धन, संपत्ति। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चुरायौ।.. सुखमा सीला अवधा नंदा वृंदा यमुना सारि। कमला तारा बिमला चंदा चंदावलि सुकुमारि—१५८०।

संज्ञा स्त्री. [सं. कमल] कमलिनी। उ.—चलि सखि तिहि सरोवर जाहिं। जिहि सरोवर कमल-कमला, रवि बिना बिकसाहिं—१-३३८।

कमलाकंत, कमलाकांत—संज्ञा पुं. [सं. कमला=लक्ष्मी+ कांत=पति] विष्णु, श्रीकृष्ण। उ.- सूर कछू यह ह्यौं री अद्भुत लीला कमलाकंत—२२२२।

कमलाकर—संज्ञा पुं [सं.] सरोवर।

कमलाग्रजा—संज्ञा स्त्री. [स. कमला=लक्ष्मी+अग्रजा= बड़ी बहन] लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा।

कमलापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मीपति विष्णु के अवतार श्री रामचंद्र। उ.—तीनि जाम अरु बासर बीते, सिंधु गुमान भरयौ। कीन्हौ कोप कुँवर कमलापति, तब कर धनुप धरयौ—६-१२२। (२) श्रीकृष्ण। उ.—हमसौं कठिन भए कमलापति काहि सुनावौं रोई—२८८१। (३) विष्णु।

कमलावली—संज्ञा स्त्री. [सं. कमल+अवली] कमलों की पाँति, कमल समूह। उ.—विकसत कमलावली, चले प्रपुंज-चंचरीक, गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि, कंज न्यारे—१०-२०५।

कमलासन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) कमल। (२) वह तालाब जिसमें कमल हों।

कमली—संज्ञा स्त्री. [हि. कंबल] छोटा कंबल।

कमाइच—संज्ञा स्त्री. [हि. कमानी] सारंगी बजाने की कमानी।

कमाई—क्रि. स. स्त्री. [हि. कमाना] संचय की, एकत्र की। उ.—लंका फिरि गई राम दोहाई। कहति मदोदरि सुनि पिय रावन, तैं कहा कुमति कमाई—६-१४०।

संज्ञा स्त्री.—(१) कमाया हुआ धन। उ.—भानु भानुसुत सी सुभान मम सबहित सरस कमाई—सा.-१६। (२) कमाने का धंधा, व्यवसाय।

कमाऊ—वि. [हि. कमाना] धन कमानेवाला।

कमान—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) धनुष। उ.—(क) कुबुधि-कमान चढाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ—१-६४। (ख) पिय बिन बहत बैरिन बाय। मदन बान कमान ल्यायौ करपि कोप चढाय—सा. ३२। इंद्रधनुष। (३) तोप, बंदूक।

कमाना—क्रि. स. [हि. काम] (१) धन पैदा करना। (२) सेवा के काम करना। (३) कर्म करना।

क्रि. अ.—तुच्छ काम करना।

क्रि स.—कम करना।

कमानियाँ—संज्ञा पुं [फा. कमान] धनुष चलानेवाला।

कमानिया—वि. [हिं. कमानी] मेहराबदार।

कमानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमान] धातु की लचीली तीली।

कमायौ—क्रि. स. भूत. [हि कमाना] कर्म संचय किया, कर्म किया। उ.—(क) जोग-जज्ञ जप तप नहि कीन्हौ, वेद विमल नहि भाख्यौ। अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ। जिहि जिहि जोनि फिरयौ संकट बस, तिहि तिहि यहै कमायौ। (ख) कहा होत अब के पछिताएँ, पहिलैं पाप कमायौ—१-३३५।

कमाल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कुशलता, निपुणता। (२) अनोखा काम। (३) कारीगरी। (४) कबीर के पुत्र का नाम।

वि.—(१) पूरा। (२) सबसे श्रेष्ठ। (३) अत्यंत।

कमासुत—वि. [हि. कमाना+सुत] कमा कर रुपया लाने वाला।

कमिहै—क्रि. अ. [हि. कमना] कम होगा, घट जाएगा।

कमी—संज्ञा स्त्री. [फा. कम] (१) न्यूनता, अभाव, अल्पता। उ.—(क) कहा कमी जाके राम धनी—१-३६। (ख) तुमही कहौ कमी काहे की नवनिधि मेरैं धाम—३७६। (२) हानि, घाटा।

कमुकंदर—संज्ञा पुं. [सं. कार्मुक+दर] शिवजी का धनुष तोड़नेवाले राम।

कमोदन—संज्ञा स्त्री. [हि. कुमुदिनी] कोईं, कुमुदिनी।

कमोदिक—संज्ञा पुं. [सं. कामोद=एक राग+क] (१) वह सङ्गीतज्ञ जो कामोद राग गाता हो। (२) गवैया, संगीतज्ञ। उ.—बेगि चलो बलि कुँअरि सयानी। समय बसंत बिपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप-फौज पलानी। ... । बोलत हँसत चपल बंदीजन मनहुँ प्रसंसित पिक बर बानी। धीर समीर रटत बर अलिगन मनहुँ कमोदिक मुरलि सुठानी।

कमोदिन, कमोदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी] कोईं, कुमुदिनी।

कमोरा—संज्ञा पुं. [सं. कुंभ+ओरा (प्रत्य)] (१) मिट्टी का चौड़े मुँह का पात्र जिसमें दूध, दही रखा जाता है। (२) घड़ा।

कमोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमोरा] मिट्टी का चौड़े मुँह का बर्तन जिसमें दूध-दही रखा जाता है, मटका। उ.—(क) माखन भरी कमोरी देखत, लै लै लागे खान। ... । जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठौ कत डारत—१०-२६५। (ख) मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी—१०-२६७। (ग) हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात। आपुन गई कमोरी माँगन हरि पाई ह्याँ घात। .... । आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल—१०-२७०। (घ) कहि धौं मधुर बारि मथि माखन काढ़ि जो भरो कमोरी—३०२८।

कया—संज्ञा स्त्री. [हि. काया] शरीर, काया।

कये—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] किये, करने से।

उ.—नीर छीर ज्यों दोउ मिलि गये। न्यारे होत न न्यारे कये -११-६।

करक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मस्तक। (२) कमंडलु। (३) नारियल की खोपडी। (४) ठठरी, ढाँचा, कंकाल।

करंज, करंजा—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) झाड़ी, कंजा नाम की कटीली झाड़ी। उ—भटकत फिरत पात द्रुम वेलनि कुसुम करंज भये। सूर विमुख पद अंबु न छाँडि विषैनि विष वर छये—२६६२। (२) एक पेड़।

वि.—(१) भूरी आँख वाला। (२) खाकी।

करंड—संज्ञा पुं [सं.] (१) शहद का छत्ता। (२) तलवार। (३) करंडव हंस। (४) डलिया, पिटारी। (५) हथियार तेज करने का पत्थर।

कर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ।

मुहा.—कर जोरे—(१) प्रार्थना करती हुई। (२) अनुनय-विनय करती हुई। उ.—मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई—सारा. ३८६। (३) प्रणाम करती हुई। (४) सविनय, विनम्र होकर, सेवा के लिए तत्पर। उ.—अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे द्वारैं रहत खरी—१०-७६। कर देति— (१) हाथ पकड़ती है, सहारा देती है। उ.—सूच्छम चरन चलावत वल करि। अटपटात कर देति सुन्दरी उठत तबै सुजतन तन-मन धरि—१०-१२०। (२) रोकती है, मना करती है। कर पसारौं— (किसी से कुछ) माँगूँ, याचना करूँ, कुछ देने के लिए विनती करूँ। उ.—अब तुम मोकौं करौ अजाँची जो कहुँ कर न पसारौं—१०-३७। कर मारै —हाथ मलता है, झुँझलाता है, निराश या दुखी होता है। उ—केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज मुरारे। . . । नगन न होति चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै—१-२५७। कर मीड़त— हाथ मलता है, पछताता है, निराश या दुखी होता है। उ.—(क) हरि दरसन कौं तड़पत अँखियाँ। झाँकति झपति झरोखा वैठी कर मीड़त ज्यौं मखियाँ—२७६६। (ख) सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन कौं कर मीड़त पछितात—३३५०। कर मीड़ै—दुखी होता है, पछताता है। उ.—सुदामा मन्दिर देखि डरयौ। सीस धुनै, दीऊ कर मीड़ै अंतर सोच परयौ—१०उ.-१६८। कर मीजै—हाथ मलकर, दुखी या निराश होकर। उ.—सूरदास विरहिनी विकल मति कर मीजै पछिताइ—२७१८।

(२) हाथी की सूँड। उ.—देखि सखी हरि-अंग अनूप। ....। कबहुँ लकुट तैं जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत। सूरदास मानहु करभी कर बारंबार डुलावत—६३२। (३) सूर्य की किरण। (४) प्रजा की आय या उपज से लिया गया राजा का भाग। (५) उत्पन्न करनेवाला। (६) छल, पाखंड।

प्रत्य. [सं. कृतः] का। उ.—जिनके क्रोध पुहुमि नभ पलटै सूखै सकल सिंधु कर पानी—६-११६।

करइयै—क्रि. स. [हि. 'करना' का प्रे. 'कराना'] कराइयै, करने में लगाइयै। उ.—दुरजोधन कैं कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै। गुरुमुख नहीं, बड़े अभिमानी, कापै सेवे कराइयै—१-२३६।

करई—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] करता है। उ.—(क) नसै धर्म मन बचन काम करि, सिंधु अचंभौ करई—६-७८। (ख) इतनी कहत गगनबानी भई, हनू सोच कत करई—६—६६। (ग) विधु वैरी सिर पर वसे निसि नींद न परई। हरि सुर भानु सुभट बिना यहि को वस करई—२८६१।

संज्ञा स्त्री. [हि. करवा] एक पात्र, करवा।

संज्ञा स्त्री. [सं. करक] एक छोटी चिड़िया।

करक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमंडलु, करवा। (२) अनार, दाड़िम। उ.—सहज रूप की रासि नागरी भूषन अधिक विराजै...नासा नथ मुक्ता बिंबाधर प्रतिबिंबित असमूच। बीध्यौ कनक पास सुक सुन्दर करक बीच गहि चूँच। (३) पलाश।

संज्ञा पु. [हि. कड़क] (१) कसक, चिनक। (२) शरीर पर रगड़ से पड़ने वाला चिन्ह।

करकट—संज्ञा पुं. [हि. खर + सं. कट] कूड़ा।

करकना—क्रि. अ. [हिं कड़क (करक)] (१) किसी वस्तु का चिटकना। (२) दर्द करना, कसकना, खटकना।

करकरा—संज्ञा पुं. [सं. कर्करेटु] एक तरह का सारस, करकटिया।

वि. [सं. वर्कर] खुरखुरा, जो चिकना न हो।

करकस—वि. [सं. कर्कश] कड़ा, कठोर,सख्त।

करखना—क्रि. अ. [सं. कर्षण] (१) खीचना। (२) जोश, उमंग या आवेश में आना।

करखा—संज्ञा पुं. [हि. कड़खा] युद्ध के अवसर पर गाये जाने वाले वीरोत्तेजक गीत।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ष] उत्तेजना, बढ़ावा,जोश, लाग-डॉट। उ.—नैननि होड़ बदी बरखा सौं राति दिवस बरसत झर लाये दिन दूना करखा सों—३४५७।

संज्ञा पुं [हि. कालिख] करिखा, कालिख।

करगत—वि. [स.] हाथ में आया हुआ, हस्तगत।

करगस—संज्ञा पुं. [सं. कर + हि. गाँस] तीर, भाला, काँटा।

करगह—संज्ञा पुं. [हि करघा] कपड़ा बिनने का यंत्र।

करगी—संज्ञा स्त्री. [हि. वर + गहना] बाढ़।

करघा—संज्ञा पुं. [फा. कारगाह] कपड़ा बिनने का यंत्र।

करचंग—संज्ञा पु. [हि. कर + चंग] (१) एक बाजा जिससे ताल दी जाती है। (२) डफ।

करछा—संज्ञा पुं. [हि करौछ = काला] एक पक्षी।

करछैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. करौछ = काला] हलके काले रंग की गाय।

करछौंह—संज्ञा पुं. [हि. करौछ = काला] हलका काला रंग।

करज—संज्ञा पुं. [स. कर + ज = उत्पन्न] (१) नख, नाखून। उ.—उरज करज मनो सिव सिर पर ससि सारग सुधागरी—२१११। (२) उँगली। उ.—(क) सिय अन्देस जानि सूरज प्रभु लियौ करज की कोर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ ज्यों तरागन भोर—९-२३। (ख) करज मुद्रिका, कर कंकन छवि, कटि किंकिन नूपुर छवि भ्राजत। (ग) बलिहारी वा बाँस-बंस की बंसी-सी सुकुमारी। सदा रहत है करज स्याम के नेकहु होत न न्यारी—३४१२।

संज्ञा पु. [अ. कर्ज, कर्ज] ऋण, उधार। उ.—करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असलत हाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत नैकु न तामैं आवै—१-१४२।

करट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौआ। (२) हाथी का गंडस्थल।

करटी—संज्ञा पुं [सं.] हाथी।

करण—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक कारक। (२) औजार। (३) देह। (४) क्रिया, कार्य। (५) हेतु। (६) इन्द्रिय।

करणिक—संज्ञा पुं. [सं.] काम का कर्त्ता, कार्यकर्त्ता।

करणी, करणीय—वि [स. करणीय] करने योग्य।

करत—क्रि. स. [सं. कण, हि. करना] करते है। उ.—(क) बिनु बदलें उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई—१-३। (ख) हौं कहा कहौं सूर के प्रभु के निगम करत जाकी कीति—१० उ-१७५।

मुहा०—करत (रैनि) – रात करते हो, रात तक बाहर रहते हो, देर लगाते हो। उ.—जसुमति मिलि सुत सौं कहत रैनि करत किहि काज—४३७।

करतब—संज्ञा पुं. [सं कर्तव्य] (१) करनी, करतूत। उ.—देखौ आइ पूत के करतब, दूध मिलावत पानी—१०-३३७। (२) कला, गुण। (३) जादू।

करतरी, करतल, करतली—संज्ञा पुं सवि. [सं.] (१) हाथ। उ.—करतल-सोभित बान धनुहियाँ—९-१९। (२) हथेली, हाथ की गदेरी।

करतव्य—संज्ञा पुं. [सं. कर्तव्य] करने योग्य कार्य या धर्म।

वि.—करने योग्य।

करता—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्ता] (१) रचने या करनेवाला। उ.—(क) नर के किएँ कछू नहि होइ। करता-हरता आपुहि सोइ—१-२६१। (ख) मै हरता करता संसार—५-२। (ग) येई हैं श्रीपति भुवनायक, येई करता हैं संसार—४६७। (२) विधाता, ईश्वर। (३) एक कारक।

करतार—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्तार] सृष्टि करनेवाला, ईश्वर। उ.—धर्मपुत्र तू देखि विचार। कारन करनहार करतार—१-२६१।

करतारी—संज्ञा स्त्री. [हि. करतारी] ईश्वरीय लीला।

संज्ञा स्त्री. [सं. कर+हि. ताली] (१) हाथ से

ताली बजाने की क्रिया। (२) ताल देने का एक बाजा।

करताल, करतालो—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दोनों हथेलियों के परस्पर बजाने का शब्द, ताली। उ.—दै करताल बजावति, गावति राग अनूप मल्हावै—१०-१३०। (२) एक बाजा जो लकड़ी या काँसे का होता है। इसका एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं। (३) झाँझ, मजीरा।

करतालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] हथेली। उ.—गावत हँसत, गँवाय हँसावत, पटकि पटकि करतालिका—८०६।

करताहि—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्ता+हि (हि प्रत्य.)] कर्त्ता को, ईश्वर को। उ.—रही ग्वालि हरि कौ मुख चाहि। कैसे चरित किए हरि अबहीं बार-बार सुमिरहि करताहि—१०-३१६।

करति—क्रि. स. [हि. करना] (१) करती है, संपादन करती है। उ०—करति बयारि निहारति हरि-मुख चंचल नैन बिसाल—३६७। (२) पकाती है, बनाकर तैयार करती है। उ०—नंदधाम खेलत हरि डोलत। जसुमति करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत—१०—१११।

करतूत, करतूति—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्तृत्व] (१) कर्म, करनी, काम, करतब। उ०—(क) जग जानै करतूति कंस की, वृष मारयौ, बल-बाहीं—२–२३। (ख) सब करतूति कैकेई कैं सिर, जिन यह दुख उपजायौ—६–५०। (ग) कहा कठिन करतूति न समुझत कहा मृतक अबलनि सर मारति—२८४९। (२) कला, हुनर, गुण।

करतौ—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] (काम) चलाता, संपादित करता, करता। उ०—(क) भक्ति बिना जौ कृपा न करते, तौ हौं आस न करतौ—१–२०३। (ख) जौ तू हरि कौ सुमिरन करतौ। मेरें गर्भ आनि अवतरतौ—४–६।

करद—वि [सं. कर+द=देनेवाला] (१) कर देने वाला, अधीन। (२) सहारा देनेवाला।

संज्ञा स्त्री. [फा. कारद] छुरा, चाकू।

करदम—संज्ञा पुं. [सं. कर्दम] (१) कीचड़। (२) पाप। (३) मांस।

करदा—संज्ञा पुं. [हिं. गर्द] (१) बट्टा, कटौती। (२) बदलाई।

करधनि—संज्ञा स्त्री. [हि. करधनी] कमर में पहनने का एक गहना। बच्चों के लिए यह घुँघरूदार होता है; जब वे चलते हैं तब इसके घुँघरू बजते हैं। उ०—तनक कटि पर कनक-करधनि छीन छबि चमकति—१०–१८४।

करधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि+आधाना। सं. किंकिणी] (१) कमर में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना जिसमें बच्चों के लिए घुँघरू लगाये जाते हैं। (२) कई लड़ों का सूत जो करधनी की तरह कमर में पहनने के काम आता है। इस सूत का रंग प्रायः काला होता है।

करधर—संज्ञा पुं. [सं. कर=वर्षोपल+धर=धारण करनेवाला] बादल, मेघ। उ०—करधर की धरमैर सखी री की सुक सीपज की बगपंगति की मयूर की पीड़ पखी री।

करन—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्याकाल में ही सूर्य से उत्पन्न हुआ था। उ०—करन-मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ। जित-जित मन अर्जुन कौ तितहिं रथ चलायौ—१–२३।

क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] (१) करना, (२) संपादित करना। (क) पारथ-तिय कुरुराज-सभा मैं बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भये बाढ़े बसन उमंगी—१-२१। (२) पकाना, बनाना, तैयार करना। उ.—जेवन करन चली जब भीतर छींक परी तों आजु सवारे—५६५।

वि. [सं. करणीय] करने योग्य, जिसका संपादन करना संभव हो। उ.—दयानिधि तेरी गति लखि न परै। धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै—१-१०४।

संज्ञा पुं. [सं. करण] (१) करनेवाले, कर्त्ता। उ.—भजि मन नंद-नंदन चरन। परम पंकज अति

मनोहर सकल सुख के करन–१-३०८। (२)इन्द्रिय। उ.—छल-पल राउरे की आस। करन नाव सुपंच संज्ञा जान के सब नास—सा. उ. ४१।

संज्ञा पुं. [देश.] एक ओषधि।

करनख—संज्ञा पुं. [सं. कर + नख] हाथ की छोटी उँगली का नाखून।

मुहा.—कर-नख पर धारी—हाथ की छोटी उँगली पर उठाना, बहुत थोड़े परिश्रम से उठाना। उ.—राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोवर्धन धारी—१ २२।

करनधार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] माँझी, मल्लाह, केवट।

करनपितु—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण + हि पिता] कर्ण का पिता सूर्य। उ.—माधो कीजिए बिस्राम। उटौ चाहत लेन वैरी करन-पितु हितु जाम—सा. ८८।

करनफूल—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण + हि. फूल] कान में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना जो सादा और जड़ाऊ, दोनों तरह का होता है, तरौना, काँप। उ.—जिन स्रवनन तारंक खुभी अरु करनफूल खुटिलाऊ। तिन स्रवनन कस्मीरी मुद्रा लै लै चित्र झुलाऊ—३२२१।

करनबेध—संज्ञा पुं. [सं. कर्णवेध] बच्चों का एक संस्कार जिसमें कान छेदे जाते हैं, कर्णछेदन संस्कार।

करनहार—संज्ञा पुं. [सं. करण + हिं. हार (प्रत्य.)] करने वाला, रचनेवाला। उ.— . । तब भीषम नृप सौं यौं कह्यौ। धर्मपुत्र तू देखि विचार कारन करनहार करतार—१-२६१।

करना—क्रि. स. [हि. करना] (१) (काम को) चलाना या संपादित करना। उ.—(क) काहूँ कह्यौ मंत्र जप करना। काहूँ कछु, काहूँ कछु बरना—१-३४१। (ख) तातैं सत-संग नित करना। संत-संग सेवौ हरि-चरना—५-२। (२) पकाना, रींधना, तैयार करना। (३) रखना। (४) पति या पत्नी बनाना। (५) व्यवसाय करना। (६) सवारी ठहराना। (७) बनाना, या नया रूप देना। (८) कोई पद देना।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं, सुदर्शन। उ.—जाही जूही सेवती करना अनिआरी। बेलि चमेली मालती बूझति द्रुम-डारी—१८२२।

संज्ञा पुं. [सं. करुण] पहाड़ी नीबू।

संज्ञा पुं. [सं. करण] किया हुआ काम, करनी, करतूत।

करनाई—संज्ञा स्त्री. [अ. करनाय] तुरही।

करनाल—संज्ञा पुं. [अ. करनाय] (१) सिंघा, भोंपा, नरसिंहा। (२) बड़ा ढोल। (३) तोप।

करनावली—संज्ञा पुं. बहु. [हि. करना+सं. अवली] सुदर्शन के पौधों का समूह जिनमें सफेद फूल लगते हैं। उ.—कमल बिकच करनावली मुद्रिका वलय पुट भुज बेलि शुकचारी—२३०६।

करनि—संज्ञा स्त्री. [हि. करनी] (१) कार्य, कर्म, करनी, करतूत। उ.—(क) बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिँन परत रह्यौ। सूर करनि तरु रच्यौ जु निज कर, सो कर नाहि गह्यौ—१-१६२। (ख) सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५६८। (ग) सुनहु सूर ऐसेउ जन-जग में करता करनि करै –पृ. ३३२। (२) मृतक-संस्कार।

करनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. करना] (१) सुकृत्य, कार्य, कर्म, महिमा। उ.—(क) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न आवै— १-४। (ख) गनिका तरी आपनी करनी नाम भयौ तोरो—१-१२२। (ग) सूरदास प्रभु मुदित जसोदा पूरन भई पुरातन करनी—१०-४४। (घ) मुरली कौन सुकृत-फल पाये।······ लघुता अग, नहीं कछु करनी, निरखत नैन लगाये–६६१। (ङ) लिखी मेटै कौन, करै करता जौन, सोइ ह्वै है जु होनहारि करनी—६६८। (च) देखो करनी कमल की, कीनो जल सौं हेत। प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यौ, सूख्यौ सरहि समेत। (२) करतूत (हीनता या उपेक्षा सूचक प्रयोग)। (३) मृतक-क्रिया या संस्कार, अन्त्येष्टि कर्म। (४) दीवार पर गारा लगाने की कन्नी। (५) करना, करने की क्रिया। उ.— मंदाकिनितट फटिक सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी। कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी—६-११०।

संज्ञा स्त्री [सं. करिणी] हथिनी, हस्तिनी। उ.—मानो ब्रज ते करनी चली मदमाती हो। गिरधर गज पै जाइ ग्वारि मदमाती हो। कुल अंकुस मानै नहीं मदमाती हो। संका बढे तुराइ मदमाती हो—२४०१।

क्रि. स [स करण, हि. करना] करना, संपादित करना। उ—मेरी कैतो बिनती करनी। पहिले करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाथ हाथ लै धरनी—६-१०१।

करनैता—संज्ञा पुं [हि. कर्नैता] रंग के आधार पर किये गये घोड़ों के भेदों में एक।

करपर—संज्ञा स्त्री [स. कर्पर] खोपड़ी।

वि. [सं कृपण] कंजूस।

करपरी—संज्ञा स्त्री [देश.] पीठी की पकौड़ी।

करपाल—संज्ञा पु [स.] खड्ग, तलवार।

करबर—संज्ञा स्त्री. [हि. करबर] अलप, घात, विपत्ति, आपत्ति। उ.—(क) ढोटा एक भयौ कैसेहुँ करि, कौन कौन करबर बिधि भानी—३६८। (ख) कौन-कौन करबर है टारे। जसुमति बाँधि अजिर लै डारे-३६१। (ग) आनँद बधावनो मुदित गोप गोपीगन आछुपरी कुसल कठिन करबर तें। (घ) बडी करबर टरी साँप सों ऊबरी, बात के कहत तोहि लागत जरनी। (ङ) जबते जनम भयौ हरि तेरो कितने करबर टरे कन्हाई।

करबार—संज्ञा स्त्री [सं. करवाल] तलवार। उ०—कोपि करबार गहि कह्यौ लंकाविपति, मूढ कहा राम कौ सीस नाऊँ—९-१२६।

करभा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का बच्चा। (२) हथेली के पीछे का भाग। (३) कटि, कमर।

करभ-कर—संज्ञा पुं [सं.] हाथी के बच्चे की सूँड़।

करभा—संज्ञा पु [स. करभ] हाथी का बच्चा। उ०—(क) देखि सखी हरि अंग अनूप। ... । कबहुँ लकुट तें जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत। सूरदास मानहुँ करभा कर बारंबार चलावत—६३२। (ख) चरन की छवि देखि डरप्यो अरुन गगन छपाइ। जानु करभा की सबै छवि निदरि लई छड़ाइ—१०-२३४।

करभीर—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह।

करभूषन—संज्ञा पुं. [सं. कर + भूषण] हाथ का भूषण, आरसी, आइना। उ०—कर भूषन तन हेरन लागी गयो देख मन चोरे—सा० १००।

करभोरु—संज्ञा स्त्री [सं.] हाथी की सूँड़ की तरह चिकनी और सुडौल जाँघ। उ०—पृथु नितंब करभोरु कमल-पद-नख-मनि चंद्र अनूप। मानहु लुब्ध भयो वारिज दल इंदु किये दस रूप।

वि —सुंदर या सुडौल जाँघवाली।

करम—संज्ञा पुं [सं. कर्म] (१) कर्म, करनी। (२) कर्म का फल, भाग्य।

मुहा०—करम का टेढा या तिरछा होना—भाग्य फूटना, किस्मत खोटी होना। उ०—पालागौं छाँड़ौ अब अंचल बार-बार बिनती करौ तेरी। तिरछो करम भयो पूरब को प्रीतम भयो पाँय की बेरी। करम के ओछे—भाग्य हीन, अभागा। उ०—कौन जाति अरु पाँति बिदुर की ताही के पग धारत। भोजन करत माँगि घर उनकें राज मान-मद टारत। ऐसे जन्म-करम के ओछे ओछनि हूँ ब्योहारत। यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल प्रन पारत—१-१२। करम कौ मारौ—भाग्यहीन, अभागा। उ०—जौ पै तुमहीं बिरद बिसारौ। तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ—१-१५७।

संज्ञा पुं. [देश०] हरदू या हलदू नामक पेड़।

करमचंद—संज्ञा पु. [सं. कर्म] कर्म, करनी, भाग्य।

करमट्ठा—वि. [स. कृपण] सूम, कजूस।

करमठ—वि [स. कर्मठ] (१) कर्म करने से आनन्द लेने वाला। (२) कर्मकांडी।

करमात—संज्ञा पुं. [स. कर्म] कर्म, भाग्य, किस्मत। उ.-वह मूरति द्वै नयन हमारे लिखी नहीं करमात। सूर रोम प्रति लोचन देतो विधिना पर तर मात—१४१८।

करमाली—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

करमी—वि. [सं. कर्म] कर्म मे आनंद लेनेवाला, कर्म-निष्ठ।

करमुखा, करमुहाँ—वि. [हि. काला + मुख] (१) कलंकी, पापी। (२) काले मुँह वाला।

करर—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक जहरीला कीड़ा। (२) एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है जिससे मोमजामा बनाया जा सकता है।

कररना, करराना—क्रि. अ. [अनु] (१) चरमर या मरमर शब्द करके टूटना। (२) कड़ा शब्द करना।

कररान—संज्ञा स्त्री. [अनु.] धनुष की टंकार।

कररि, कररी—संज्ञा पुं. [सं. कर्बुर] वनतुलसी, ममरी। उ.—ऊधो तनिक सुवास सौनन सुन। कचन कोंच कपूर कररि रस, सम दुख-सुख गुन-औगुन—३००१।

करल—संज्ञा पुं. [सं. कटाह] कड़ाह, कड़ाही।

करला—संज्ञा पुं. [हिं. कला] कोंपल, कोमल पत्ता।

करली—संज्ञा स्त्री. [सं. करील] कल्ला, कोंपल।

करवट—संज्ञा स्त्री. [सं. करवर्त, प्रा. करवट्ट] एक बगल होकर लेटना।

संज्ञा पुं. [सं. करपत्र, प्रा. करवत्त] (१) करवत, आरा। (२) प्रयाग, काशी आदि स्थानों में जो आरे या चक्र होते थे, वे करवट कहलाते थे। इनके नीचे लोग सुफल की आशा से प्राण देते थे। काशी-करवट लेना विशेष फलदायक समझा जाता था।

करवत—संज्ञा पुं [सं. करपत्र, प्रा. करवत्त] (१) आरा नामक दाँतेदार औजार। (२) प्रयाग, काशी आदि स्थानों में करवत रहते थे जिनके नीचे प्राण देने से सुफल मिलने की आशा होती थी। उ.—(क) कहा कहौं कोउ मानत नाहीं इक चंदन औ चंद करासी। सूरदास प्रभु ज्यों न मिलेंगे लेहौं करवत कासी। (ख) गोपी ग्वाल-बाल वृन्दावन खग मृग फिरत उदासी। सबई प्रान तज्यौ चाहत है को करवत को कासी—३४२२।

करवर—संज्ञा स्त्री. [देश.] अलप, विपत्ति, संकट, कठिनाई। उ.—(क) त्राहि त्राहि कहि ब्रज-जन धाए, अब बालक क्यौं बचैं कन्हाई। ...। करवर बड़ी टरी मेरे की, घर घर आनद करत बधाई—१०-५१। (ख) मैं नहि काहू को कछु घाल्यौ पुन्यनि करवर नाक्यौ—२३७३।

करवरना—क्रि. अ. [सं. कलरव, हिं. करवर, कलबल] चहकना, कलरव करना।

करवाई—क्रि. स. [हिं. करवाना] करने को प्रवृत्त किया। उ.—रिपि नृप सौं जग-विधि करवाई। इला सुता ताकै गृह जाई—९-२।

करवाये—क्रि. स [हिं करवाना] करने को प्रेरित किया। उ.—राजनीति मुनि बहुत पढाई गुरु सेवा करवाये—सारा. ५३८।

करवायौ—क्रि स. [हिं. करवाना] (१) करने को प्रवृत्त किया। उ.—दिन दस लौं जलकुम्भ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ—९-५०। (२) सिद्ध किया, संपादित किया। उ.-करि दिग्विजय विजय को जग में भक्त पच्छ करवायौ—सारा. ८४१।

करवार, करवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. करवाल] तलवार। उ.—दामिनि करवार करनि कंपत सब गात उरनि जलधर समेत सेन इन्द्र धनुप साजे—२८१६।

करवाली—संज्ञा स्त्री. [सं. करवाल] करौली, छोटी तलवार।

करवावति—क्रि. स. [हिं. करवाना] संपादन कराती है, (कार्य आदि) कराती है, (कर्म आज्ञापालन आदि) करने को प्रवृत्त करती है। उ.—कोमल तन आज्ञा करवावति, कटिटेढी ह्वै आवति—६५५।

करवीर—संज्ञा पुं [सं.] (१) कनेर का पेड़। (२) तलवार। (३) चेदि देश का एक प्राचीन नगर जहाँ के राजा शिशुपाल ने कृष्ण-बलराम से यु किया था।

करवील—संज्ञा पुं [सं.] करील, टेंटी का पेड़, कचरा। उ.—कुमुद कदंब कोविद कनक आदि सुकुंज। केतकी करवील बेलउ बिमल बहुविधि मंत-२८२८।

करवैया—वि. [हिं. करना + वैया (प्रत्य.)] करनेवाला।

करवोटी—संज्ञा पुं. [देश.] एक चिड़िया।

करप—संज्ञा पुं [सं. कर्प] (१) खिचाव। (२) मन-मोटाव, द्रोह। (३) क्रोध, ताव।

करपक—संज्ञा पु. [सं. कर्पक] किसान, खेतिहर।

करपत—क्रि. स. [हिं. करपना] खींचता है, घसीटता समय। उ.—करपत सभा द्रुपद तनया कौ अंबर अछय कियौ। सूर स्याम सरवज्ञ कृपानिधि, करुना मृदुल हियौ—१-१२१।

करषति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. करपना] खीचती है, तानती है, घसीटती है । उ.—दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढी । करपति है दुहु बरनि मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढी—१०-३०० ।

करषन—क्रि. स. [हि. करषना] खीचना, खीचने का प्रयत्न करना । उ.—हरष हरष करपन चित चाहत तेहितें वा प्रतिनीक—सा. ५८ ।

करषना—क्रि स [सं कर्षण] (१) खीचना, घसीटना । (२) सोख लेना, सुखाना । (३) बुलाना, निमंत्रित करना । (४) इकट्ठा करना, समेटना ।

करषहिं—क्रि. स. [हि. करषना] खींचते हैं, आकर्षित करते हैं ।

करषि—क्रि. स. [स. कर्षण, हि. करपना] (१) आकर्षण करके, समेट या बटोर कर । उ.—(क) छिन इक मैं भृगुपति प्रताप बल करषि हृदय धरि लीनौ—६-११५ । (ख) सकुचासन कुल सील करषि करि जगत बंध करबंदन । मौनऽपवाद पवन आरोधन हित क्रम काम निकदन—३०१४ । (२) खीचकर, तानकर । उ —(क) पिय बिनु बहत बैरिन बाय । मदनबान कमान ल्यायो करषि कोप चढ़ाय—सा. ३२ । (ख) केस गहि करषि जमुना धार डारि दै सुन्यौ नृप नारि पति कृष्न मारयौ — २६१८ । (ग) इन औरन अमरन सुख दीनो करषि केस सिर कंस—३०१८ ।

करषे—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] आकर्षण किये, समेटे, इकट्ठा किये, बटोरे, खीचे । उ.—अक्रम भरि भरि लेत स्याम कौं ब्रज नर-नारि अतिहिँ मन हरषे । सूर स्याम सतन सुखदायक दुप्टन के उर सालक करषे—६०७ ।

करषै—क्रि स. [स. कर्षण, हिं करपना] (१) खींचती है, आकर्षित करती है, घसीटती है, तानती है । उ.—(क) मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करषै री—१०-१३७ । (ख) जसुमति रिसकरि करि रजु करषै—१०-३४२ । (२) समेटती है, बटोरती है, इकट्ठा करती है । उ —सूरदास गोपी बड़भागिनि हरि सुख क्रीड़ा करषै हो—२४०० ।

करष्यौ—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] (१) आकर्षित किया, समेट लिया, बटोर लिया । उ — जिहिँ भुज परसुराम बल करष्यौ, ते भुज क्यौँ न सँभारत फेरी १—६-६३ । (२) खीचा, एकाग्र किया, लगाया । उ.—जब पूरी मुनि हरि हरष्यौ । तब भोजन पर मन करष्यौ—१०-१८३ । (३) ताना, घसीटा, दबाया । उ.—अंकुस राखि कुंभ पर करष्यौ हलधर उठे हुँकारी—२५६४ ।

करसना—क्रि. स. [सं. कर्षण] (१) खीचना । (२) बुलाना ।

करसाइल—संज्ञा पुं. [हि. करसायल] काला मृग ।

करसायर—संज्ञा पुं. [सं. कृपाण] किसान, खेतिहार ।

करसायल, करसायल—संज्ञा पुं. [सं. कृष्णसार] काला मृग ।

करसी—सज्ञा स्त्री [स. करीष] (१) उपला या कंडा । (२) उपले या कंडे का टुकड़ा ।

करह—संज्ञा पुं. [स. करभ] ऊँट ।

संज्ञा पुं. [सं. कलिः] फूल की कली ।

करहाट, करहाटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल की जड़ । (२) कमल का छत्ता या छत्र । (३) मैनफल ।

करहु—क्रि स [हिं. करना] करो । उ —पहिलेहि रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु ज्योनार-३६५ ।

कराँकुल—सज्ञा पुं. [सं. कलाकुर] एक बड़ी चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है ।

करा— संज्ञा स्त्री. [सं. कला] अंश, भाग ।

कराइवो—क्रि. स. [सं. करना] किया, संपादित कराया । उ.-जुवा-जुवती खेलाइ कुल-व्यवहार सकल कराइवो । जननि मन भयौ सूर आनँद हरषि मंगल गाइवो —१० उ.—१२४ ।

कराई—क्रि. स. [हि. कराना] (१) कराते हैं, कराया । उ.—(क) गावैं सखी परस्पर मगल, रिषि अभिषेक कराई—६-१७ । (ख) कर परनाम देवगुरु द्विज को जल सुस्नान कराई—सारा. २१४ । (२) कर दी, (देर) लगा दी । उ —धेनु नहिं देखियत कहुँ नियरैं, भोजन ही मैं साँझ कराई—४७१ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. कारा, काला] कालापन, श्यामता। उ.—मुख मुखी सिर पखौआ बन-बन धेनु चराई। जे जमुना-जल रंग रँगे हैं ते अजहूँ नहिं तजत कराई।

कराऊँगो—क्रि. स [हि करना] कराऊँगा, कर लूँगा। उ—तब तनु परसि काम दुख मेरो जीवन सफल कराऊँगो—१६४३।

कराएँ—क्रि. स. [हि. 'करना' का प्रे. 'कराना'] कराने से, (किसी काम आदि में) लगाने से। उ.—कहा होत पय-पान कराएँ, विष नहिं तजत भुजंग —१-३३२।

कराना—क्रि. स. [हि. 'करना' का प्रे.] करने को प्रवृत्त करना, करने में लगाना।

कराया, करायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. 'करना' का प्रे.] (१) कराने को प्रेरित किया। उ.—(क) असुर जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ—१-१०४। (ख) जानि एकादस विप्र बुलाए, भोजन बहुत करायो—६-५०। (२) किये, बनाये, अंगीकार किये, माने। उ.—कही कथा दत्तात्रय मुनि की गुरु चौबीस करायो —सारा. ८४३।

करार—संज्ञा पुं. [सं. कराल—ऊँचा। हि. कट = करना +सं. आर=किनारा] नदी का ऊँचा किनारा। उ — मैं तौ स्याम-स्याम कै टेरति कालिंदी के करार —२७६६।

संज्ञा पुं. [अ. क़रार] (१) स्थिरता, ठहराव। (२) धीरज, संतोष। (३) आराम। (४) वादा, प्रतिज्ञा।

करारत—क्रि. अ. [हि. करारना] कर्कश स्वर करता है, (कौआ) काँ काँ बोलता है। उ —कुँवरि ग्रसित श्री खंड अहि भ्रम चरन सिलीमुख लाग। बानी मधुर जानि पिक बोलत कदम करारत काग—१८२६।

करारना—क्रि. अ. [अनु] कर्कश शब्द करना, कौए का काँ काँ बोलना।

करारा—संज्ञा पुं. [हि. करार=किनारा] (१) नदी का ऊँचा किनारा। (२) टीला।

संज्ञा पुं. [स. करट] कौआ।

वि. [हि. कड़ा, करा] (१)कठोर। (२)दृढ़चित्त। (३) कुर कुर शब्द करने वाला। (४) उग्र, तेज। (५) खरा, चोखा। (६) हट्टा-कट्टा।

करारी—वि. स्त्री. [हि. पुं. कड़ा, करा, करारा] उग्र, तेज, तीक्ष्ण। उ.—चकित देखि यह कहैं नर-नारी। धरनि अकास बराबरि ज्वाला झपटति लपट करारी —५९८।

कराल—वि [सं] (१) डरावना,भयानक, भीषण। उ.— (क) सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६। (ख) उचटत अति अँगार फुटत झर, झपरत लपट कराल—६१५। (२) बड़े दाँत वाला। (३) ऊँचा।

करालिका, कराली—संज्ञा स्त्री. [सं.] अग्नि की एक जिह्वा।

वि.—डरावनी, भयावनी।

करावत—क्रि. स. [हि. कराना] कराते है, करने में प्रवृत्त करते है। उ.—सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि सुरति करावत—२-१७।

करावति—क्रि. स. [हि. कराना ('करना' का प्रे०)] कराती है। उ०—तुमसौं कपट करावति प्रभु जू. मेरी बुद्धि भरमावै—१-४२।

करावते—क्रि. स. [हिं. कराना] कराते है। उ०—सूरदास स्वामी तिहि अवसर पुनि-पुनि प्रगट करावते— २७३५।

करावन—क्रि स. [हि. कराना] कराने के लिए, संपादित करने के उद्देश्य से। उ०—पूतना पयपान करावन प्रेम-सहित चलि आई—सारा० ७४६।

करावहु—क्रि. स. [हि कराना] कराओ, करने को प्रवृत्त करो। उ०—तुव मुख-चंद्र, चकोर-दृग, मधु-पान करावहु—१०-२३२।

करावै—क्रि स. [हि. 'करना' का प्रे. रूप] कराता है, करवाये या करवावे। उ०—असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—१-१७।

करावौ—क्रि. स. [हिं. कराना] करो, करवाओ, करने को प्रवृत्त करो। उ०—अरी, मेरे लालन की आजु बरष-गाँठि, सबै सखिनि कौं बुलाइ मंगल-गान करावौ—१०-९५।

कराह, कराहा—संज्ञा पुं. [हिं. करना + आह] पीड़ा या कसक सूचक दुखभरा शब्द ।

संज्ञा पुं [हिं. कराह] कड़ाह, कड़ाही ।

कराहना—क्रि अ [हिं. कराह] पीड़ा या कसक सूचक शब्द करना, आह-आह या हाय-हाय करना ।

कराहि—क्रि. स. [हिं कराना] (इच्छा आदि) पूर्ण करे, करावे । उ०—यह लालसा अधिक मेरैं जिय, जो जगदीस कराहि । मो देखत कान्हा यहि आँगन, पग द्वै धरनि धराहि—१०-७५ ।

कराहि—क्रि अ. [हिं. कराहना] हाय-हाय या आह-आह करके ।

कराहीं—क्रि. स. [हिं. करना] करते हैं । उ०—घरी इक सजन-कुटंब मिलि बैठैं, रुदन विलाप कराहीं—१-३१६ ।

करिंद—संज्ञा पुं. [सं. करींद्र] (१) श्रेष्ठ हाथी । (२) ऐरावत हाथी ।

करि—संज्ञा पुं. [सं. करी, करिन्] सूँड़वाला, अर्थात हाथी ।

क्रि स. [सं. करण, हिं करना] (१) करके । उ —बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई—१-३ । (२) बनाकर, रूप बदल कर । उ —सुन्दर गऊ रूप हरि कीन्हौ । बछरा करि ब्रह्मा सग लीन्हौं—७-७ ।

अव्य.—द्वारा, से, जरिये से । उ.—तैं कैकई कुमंत्र कियौ । अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ करि नृप अपराध लियौ—६-४८ ।

प्रत्य. [हिं. की] की । उ.—बाला विरह दुसह सबही कौ जान्यौ राजकुमार । बान वृष्टि स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार—६—१२४ ।

करिखई, करिखा—संज्ञा स्त्री. [हिं.कालिख] कालापन ।

करिणी, करिनी—संज्ञा स्त्री. [स. पु करि] हथिनी ।

करिवदन—संज्ञा पुं. [स] जिनका मुँह हाथी का सा है, गणेश ।

करिबे—क्रि. स [हिं. करना] (१) करने में, करने (के लिए) । उ.—(क) अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई—१-११८ । (ख) सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ । मानौ आन सृष्टि करिबे कौ, अम्बुज नाभि जम्यौ—१-२७३ । (ग) थकित बिलोकि सारदा बर्नन करिबे बहुत प्रसंग —सारा. ६६६ । (२) रचने (को), बनाने (के लिए) उ.—दियो बरदान सृष्टि करिबे को अस्तुति करि प्रमान—सारा. ५२ ।

करिबो—क्रि. स. [हिं. करना] करना, संपादन करना । उ.—सूर सुकमलन के बिछुरे झूठो सब जतननि को करिबो—२८६० ।

करियत—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] करते हैं । उ.—सुधी निपट देखियत तुमकौं तातैं करियत साथ —६७४ ।

करिया—क्रि. अ. [हिं. करना] (१) किये, कर दिये । उ.—उपमा काहि देऊँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया—६८८ ।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] (१) पतवार, कलवारी । उ.—सारंग स्यामहि, सुरति कराइ । पौढे होंहि जहाँ नँदनंदन ऊँचे टेर सुनाइ । गए ग्रीषम पावस रितु आई सब काहू चित चाइ । तुम बिनु ब्रजवासी यौं जीवैं ज्यौं करिया बिनु नाइ—२८४४ । (२) माँझी, केवट, मल्लाह । (३) पतवार या कलवारी थामने वाला ।

वि.—काला, श्याम ।

करियाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. करिया+ई (प्रत्य)] (१) कालिमा, श्यामता । (२) कालिख ।

करियारी—संज्ञा स्त्री. [सं कलिकारी] (१) विष । (२) लगाम, बाग ।

करियै—क्रि स.[स.करण, हि करना] करिए (आदरसूचक) कीजिए । उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार काग, गिद्ध खैहैं—१-८६ ।

करियौ—क्रि. स [सं करण, हिं. करना] करना । उ.—बधू, करियौ राज सँभारे । राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे—६-५४ ।

करिल—संज्ञा स्त्री [हिं. कोंपल] नया कल्ला, कोंपल ।

वि.—काला ।

करिहाँ, करिहाउँ, करिहाँव, करिहैंयाँ—संज्ञा स्त्री [सं. कटिभाग] कमर, कटि ।

करिहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिकारी] (१) कलियारी, विष । (२) लगाम ।

करिहैं—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] (१) करेंगे, निबटाएँगे, संपादित करेंगे । उ.—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, सकट रच्छा करिहैं ? — १-२६ । (२) व्याहेंगे, अपनाएँगे । उ — (नद जू) आदि जोतिषी तुम्हारे घर कौ पुत्र-जन्म सुनि आयौ । लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुम्हहि सुनायौ । ··· । ऊँच-नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं—१०-८६ ।

करिहै—क्रि. स. [हि. करना] (१) करेगा, विगाड सकेगा । उ —जो घट अंतर हरि सुमिरै । ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै—१-८२ । (२) संपादित करेगा । उ.—तै हूँ जो हरि-हित तप करिहै । सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै—४-६ । (३) करेगा, घटित करेगा । उ.—पुनि हरि चाहै, करिहै सोइ—७-२ ।

करिहौ—क्रि. स. [स. करण, हि. करना] (१) करोगे, संपादित करोगे । उ.—पतित-पावन-विरद साँच कौन भाँति करिहौ—१-१२४ । (२) पैदा करोगे, अर्जन करोगे । उ.—स्तुति पढिकै तुम नहिं उद्धरिहौ, विद्या बेंचि जीविका करिहौ—४-५ ।

करी—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] (१) की । उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं । जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं—१-५ । (ख) अबलौं ऐसी नाहीं सुनी । जैसी करी नंद के नंदन अद्भुत बात गुनी—सा १०४ । उ.— पावक जठर जरन नहि दीन्हौ, कंचन सी मम देह करी-१-११६ । (२) रची, बनायी ।

संज्ञा पु. [सं. करि, करिन्] हाथी । उ.—पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी—१-१६ ।

सज्ञा स्त्री. [सं. काड, हि. कली] अधखिला फूल, कली ।

करीजै—क्रि. स [हि. करना] कीजिए । उ —(क) अब मोपै प्रभु कृपा करीजै । भक्ति अनन्य आपुनी दीजै—३-१३ । (ख) साधु-संग प्रभु मोकौं दीजै । तिहि सगति निज भक्ति करीजै—७-२ ।

करीना—संज्ञा पुं. [हि. केराना] मसाला ।

करीब—क्रि. वि. [अ.] (१) पास, समीप । (२) लगभग ।

करीम, करीमा—वि. [अ.] कृपालु, दयालु ।

सज्ञा पुं —ईश्वर ।

करीर—संज्ञा पुं [स.] (१) बाँस का नया कल्ला । (२) करील का झाडीदार पेड । (३) घडा ।

करील—संज्ञा पुं. [सं. करीर] एक तरह की झाड़ी जिसमें पत्तियाँ नहीं होती, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली डंठलें फूटती है । ब्रज मे करील बहुत होते है । इसका फल कसैला होता हे जिसे टेंटी कहते हैं। उ.—जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै—१-१६८ ।

करीश, करीस—संज्ञा पुं [सं. करि + ईश] गजेंद्र ।

करीप—सज्ञा पुं [सं.] गोबर जो जंगलों में प्रडे-पडे सूख जाता हे और जलाने के काम आता है ।

करु—क्रि. स. [सं. करण, हि करना] करो, अमल में लाओ । उ.—सूर बुलाइ पूतना सौं कह्यौ, करु न विलम्ब घरी—१०-४८ ।

करुआ—वि. पुं [सं. कटुक] (१) कडुआ, तीक्ष्ण । (२) अप्रिय ।

करुआई—सज्ञा स्त्री. [हि करुआ, कडुआ] कडुआपन ।

करुआना—क्रि. अ. [हि. करुआ] दुखना ।

क्रि. स.—कडुवा लगने पर मुँह बनाना ।

करुई—वि, स्त्री [हिं. करुआ] जिसका स्वाद कडुआपन लिए हुए हो, कडुई । उ.—(क) सुनत जोग लागत हमैं ऐसौ ज्यौं करुई ककरी—३३६० । (ख) फलन माँझ ज्यों करुई तोमरि रहत घुरे पर डारी । अब तौ हाथ परी जंत्री के बाजत राग दुलारी—२६३५ ।

करुखिअनि—संज्ञा स्त्री [हि. कनखी] तिरछी चितवन, तिरछी नजर । उ.—सूरदास प्रभु त्रिय मिली, नैन प्रान सुख भयौ चितए करुखिअनि अनकनि दिये—२०६६ ।

करुखी—संज्ञा स्त्री. [हि. कनखी] तिरछी चितवन या नजर ।

करुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दया। (२) शोक।
वि.—दया से युक्त।

करुणा—संज्ञा स्त्री [सं] (१) दया। (२) शोक। (३) करना का पेड़।

करुणाकर—वि. [सं.] दया करनेवाला।

करुणादृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं.] कृपा।

करुणानिधान, करुणानिधि—वि. [सं] करुणा से युक्त, दयालु।

करुणावान—वि. [सं करुणा + हि. वान] दयालु।

करुना—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) दुखी का दुख दूर करने के लिए अंत.करण की प्रेरणा, दया। उ.—कछुक करुना करि जसोदा करति निपट निहोर। सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलहि माखन चोर—३६४। (२) दुख, शोक। उ.—करुना करति मँदोदरि रानी। चौदह सहस सुंदरी उमहीं, उठै न कंत महाअभिमानी —६-१६०।

संज्ञा स्त्री —राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। ब्रजजुवतिन सबहीं मैं जानति घर घर लै लै नाम बतायौ। ......। रत्ना कुमुदा मोहा करुना ललना लोभा नृप—१५८०।

करुनाकर—वि [सं. करुणा + आकर (निधि)] बहुत दयालु, करुणानिधि, करुणा की खानि।

संज्ञा पुं. [सं.] दयालु ईश्वर। उ.—नरहरि रूप धरयौ करुनाकर छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ—१-१४।

करुनानिधान—वि [सं. करुणानिधान] जो बहुत दयालु हो।

करुनानिधि—वि [सं. करुणानिधि] जिसका हृदय दया से युक्त हो, दयालु।

करुनामय—वि. [सं करुणामय] जिसका हृदय दया से भरा हो, दयालु, करुणा से युक्त।

करुनामयी—वि. स्त्री. [सं. करुणामयी] जिसका हृदय करुणा से भरा हो, दयालु। उ.—ध्रुव बिमाता-बचन सुनि रिसायौ। दीन के दयाल गोपाल, करुनामयी मातु सौं सुनि, तुरत सरन आयौ—४-१०।

करुनामूल—संज्ञा पु [सं करुणा + मूल] करुणाजनक, करुणामय। उ.—पर्यो बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुनामूल—१-६६।

करुना-सरिता—संज्ञा स्त्री. [सं. करुणा + सरिता] दया की नदी, जिसके हृदय में करुणा की धारा-सी प्रवाहित हो, अत्यंत दयालु। उ.—पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़यौ बसन उमंगी—१-२१।

करुनासागर—वि. [सं. करुणा + सागर] दया के समुद्र, बड़े दयालु।

करुनासिंधु—वि. [सं करुणासिंधु] करुणा का समुद्र, जिसकी करुणा का भाव समुद्र के समान अथाह हो, अत्यंत दयालु।

संज्ञा पु.—दयालु भगवान।

करुर, करुवा—वि. [सं. कटुक, हिं कड़ुवा] कड़ुवा, कटु।

करुवार, करुवारि—संज्ञा पु. [हि. कलवारी] नाव खेने का डाँड़।

करुवावत—क्रि. अ. [हिं. कड़ुआना] कड़ुआ लगने का-सा मुँह बनाते हैं। उ.—षट्रस के परकार जहाँ लगि लै लै अधर छुवावत। बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत—१०-२८६।

करुवौ—वि [हि. कड़ुआ, करुवा] अप्रिय, चुभने वाले, जो भला न लगे। उ.—करुवौ वचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल—६-१०४।

करू—वि. [हिं. कटु] कड़ुआ, तीखा।

करे—क्रि स.[सं करण, हिं. करना] (१) रचे, बनाये। उ—सज्जा पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार—२-२०। (२) उपजाये, उत्पन्न किये। उ.—मैं तो जे हरे हैं ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन, अँगुरीनि दंत दै रह्यौ—४८४।

करेजा—संज्ञा पुं. [सं. यकृत] कलेजा, हृदय।

करेणु—संज्ञा पुं [सं] हाथी।

करेणुका, करेनुका—संज्ञा स्त्री. [सं पुं. करेणु] हथिनी।

करेर, करेरा—वि [हि. कठोर] कड़ा, सख्त, कठिन।

करेरन—संज्ञा स्त्री. [हि. करेर] कड़ीचोटें, थपेड़े, प्रहार। उ—सूर रसिक बिन को जीवति है निर्गुन कठिन करेरन—३२७७।

करेरुआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक कँटीली बेल जिससे

परवल के बराबर फल लगते हैं जो खाने में बहुत कड़ुए होते है ।

करेला—संज्ञा पुं. [सं. कारवेल्ल] एक बेल जिसमे गुल्ली की तरह लंबे हरे-हरे कड़ुए फल लगते हैं जो तरकारी के काम आते हैं। उ.—बने बनाइ करेला कीने । लोन लगाइ तुरत तलि लीने—२३२१ ।

करेली—संज्ञा स्त्री. [हि. करेला] छोटे-छोटे जंगली करेले जो बहुत कड़ुए होते है।

करैं—क्रि स. [हि. करना] करती हैं, लगाती हैं । उ.—हरद अच्छत दूब दधि लै तिलक करैं ब्रजबाल—१०-२६ ।

करै—क्रि. स. [हि करना] (१) करे, करता है । उ.—सूरदास जसुदा कौ नदन जो कछु करै सो थोरी—१०-२६३ । (२) पद देता है, बनाता है, पद पर प्रतिष्ठित करता है । उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै । कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै —१-४ ।

करैगौ—क्रि. स. [सं करण, हि. करना] करेगा, काम चलाएगा, संपादित करेगा । उ.—(क) जब जम जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि—१-३१२ । (ख) बदन दुराइ बैठि मंदिर में बहुरि निसापति उदय करैगो—२८७० ।

करैत—संज्ञा पुं. [हिं. काला] काला साँप ।

करैया—वि. [हिं करना+ऐया (प्रत्य)] करने वाला । उ.—(क) जब तें ब्रज अवतार धरयौ इन, कोउ नहिं घात करैया—४२८ । (ख) तुमसौं टहल करावति निसिदिन, और न टहल करैया—५१३ ।

करोंट—संज्ञा स्त्री. [हि. करवट] करवट ।

करोटी—संज्ञा स्त्री [स] खोपड़ी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं करवट] करवट । उ.—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषीं नँदरानी । विप्र बुलाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिनि नैन सिरानी—सारा. ४२१ ।

करोड़—वि. [सं. कोटि] एक संख्या जो सौ लाख के बराबर होती है ।

करोती—संज्ञा स्त्री [हि करौती] काँच का छोटा पात्र । उ.—वै अति चतुर प्रवीन कहा कहौं जिनि पठई तोको बहरावन । सूरदास प्रभु जिय की हौनी की जानति काँच करोती मे जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन—२२०४ ।

करोद, करोदना, करोना—क्रि. स. [सं. कर्त्तन] खुरचना, खरोचना ।

करोनी—संज्ञा स्त्री. [हि. करोना] (१) दूध-दही की खुरचन । (२) खुरचन नाम की मिठाई ।

करोर—वि. [हि. करोड] करोड । उ.—अबकै जब हम दरस पावैं देहि लाल करोर—३३८३ ।

करोरी—वि. [हि. करोडी] करोड़ों, बहुत, अनेक । उ.—कंचन की पिचकारी छूटति छिरकति ज्यौं सचु पावै गोरी । अतिहि ग्वाल दधि गोरस माते गारी-देत कहौ न करोरी—२४३६ ।

करोला—संज्ञा पुं. [हि. करवा] गडुआ ।

करोवत—क्रि. स. [हि. करोना] खुरचते या खरोचते हैं । उ.—(क) लाल निठुर ह्वै बैठि रहे । प्यारी हा हा करति न मानत पुनि पुनि चरन गहे । नहिं बोलत नहि चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत—पृ० ३१२ । (ख) मैं जानी पिय मन की बात । धरनी पग नख कहा करोवत अब सीखे ए घात—२००० ।

करोवति—क्रि. स. स्त्री. [हि. करोना] कुरेदती या खुरचती है । उ.—नीची दृष्टि करी धरनी नखनि करोवति एहो पिया तब हौं एक एक घूँघट तन चितै रही आहि कहा हो करो अब सोऊ—२२४० ।

करौं—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] (१) संपादित करूँ, पूर्ण करूँ । उ.—रसना एक अनेक स्याम-गुन कहँ लगि करौं बखानौं—१-११ । (२) रचूँ, बनाऊँ, निर्माण करूँ । (३) जन्माऊँ, पैदा करूँ ।

करौंछा—वि. [हिं. काला] काला ।

करौंजी—संज्ञा स्त्री. [हि कलौंजी] एक पौधा, मरगल, मँगरैला ।

करौंट—संज्ञा स्त्री. [हि. करवट] करवट ।

करौंदा—संज्ञा पुं. [सं. करमर्द, पा. करमद्द, पु. हि. करवँद] एक छोटा सुंदर फल जो कुछ सफेद और कुछ लाल होता है । इसका स्वाद खट्टा होता है और यह अचार-चटनी के काम आता है ।

करौंदिया—वि. [हिं. करौंदा] हल्की स्याही लिये हुए लाल रंग का।

करौ—क्रि. स. [हिं. करना] (१) करो। (२) बनाओ, स्वीकार करो, प्रतिष्ठित करो। उ.—अब तुम विस्व-रूप गुरु करौ। ता प्रसाद या दुख कौं तरौ—६-५। (३) बनाओ, रचाओ, जन्माओ, पैदा करो। उ.—माधौ मोहिं करौ वृंदावन रेनु जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन दिनप्रति बन-बन चारत धेनु—४८६।

करौगो—क्रि. स. [हिं. करना] करोगी, संपादित करोगी। उ.—सूर राधिका कहत सखिन सौं बहुरि आइ घर काज करौगी—१२८६।

करौत,करौता—संज्ञा पुं. [हिं. करवत] आरा।

करौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. करौता = आरा] लकड़ी चीरने की आरी।

संज्ञा स्त्री [हिं. करवा] (१) काँच का छोटा पात्र या बरतन, शीशी। उ.—(क) जाहीं सो लगत नैन, ताही खगत बैन, नख सिख लौं सब गात ग्रसति। जाके रँग रांचे हरि सोइ है अ तर संग, कौंच की करौती के जल ज्यौं लसति। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहौं जिन पठई तो को बहरावन। सूरदास प्रभुजी की होनी की जानति काँच करौती मे जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन। (२) काँच की भट्टी।

करौला—संज्ञा पुं. [हिं रौला = शोर] हाँक या हकवा देनेवाला, शिकारी।

करौली—संज्ञा स्त्री [सं. करवाली] छोटी छुरी।

कर्क, कर्कट—संज्ञा पु. [सं.] (१) केकड़ा। (२) बारह राशियों में से चौथी राशि। (३) अग्नि।

कर्कटी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) कछुई। (२) ककड़ी। (३) सेमल का फल। (४) साँप।

कर्कश—संज्ञा पु [सं] खड्ग, तलवार।

वि.—(१) कठोर, कड़ा। (२) काँटेदार। (३) तेज, प्रचण्ड। (४) कठोर हृदय, क्रूर।

कर्कशा—वि. स्त्री. [हिं कर्कश] झगड़ा करनेवाली, कटु या कठोर बोलनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—झगड़ालू स्त्री।

कर्ज—संज्ञा पुं [अ कर्ज़, कर्जा] ऋण, उधार।

कर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कान नाम की इंद्रिय। (२) कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्याकाल में सूर्य से उत्पन्न हुआ था। (३) नाव की पतवार।

कर्णकटु—वि. [स.] जो (बात, शब्द या अक्षर) सुनने में कटु या अप्रिय लगे।

कर्णकुहर—संज्ञा पुं. [सं.] कान का छेद।

कर्णधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) माँझी, मल्लाह। (२) पतवार, कलवारी।

कर्णपाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कान की बाली या लौ।

कर्णफूल—संज्ञा पुं. [सं.] कान का एक आभूषण।

कर्णवेध—संज्ञा पुं. [सं.] बालकों के कान छेदने का संस्कार, कनछेदन।

कर्णाट—संज्ञा पुं. [स.] एक राग जो मेघ राग का दूसरा पुत्र माना जाता है और जो रात के पहले पहर में गाया जाता है।

कर्णाटी—संज्ञा स्त्री. [स.] एक रागिनी जो मालवा या दीपक राग की पत्नी मानी जाती है और रात मे दूसरे पहर की दूसरी घड़ी मे गायी जाती है। उ.—मुरली बजाऊँ रिझाऊँ गिरिधर गाऊँ न आज सुनाऊँ। तेइ तेइ तान तुम सी गीत गावत जेइ कर्णाटी गौरी मैं गाय सुनाऊँ—पृ ३११।

कर्णाधार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] केवट, नाविक।

कर्णिका—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) कान का एक गहना, कर्णफूल। (२) हाथ मे बीच की उँगली। (३) हाथी के सूँड की नोक। (४) कमल का छत्ता।

कर्णिकार—संज्ञा पुं. [सं] कनक चंपा।

कर्त्तन—संज्ञा पुं [स.] (१) कतरना, काटना। (२) सूत कातना।

कर्त्तनी—संज्ञा स्त्री [सं.] कैंची।

कर्तरि, कर्त्तरी—संज्ञा स्त्री. [स. कर्त्तरी] (१) कैंची, कतरनी। उ.—अद्भुत राम-नाम के अंक। जनम-मरन-काटन कौ कर्तरि तीछन बहु विख्यात—१-९०। (२) छुरी, कटारी। (३) एक बाजा।

कर्तव्य—वि. [स.] करने के योग्य, करणीय।

संज्ञा पुं.—करने योग्य काम।

कर्तव्यमूढ, कर्तव्यविमूढ़—वि. [स.] घबड़ाहट के कारण जो कार्य को न समझ स ।

कर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं. 'कर्तृ' की प्रथमा का एक.] (१) रचनेवाला, निर्माता । उ.—हर्त्ता-कर्त्ता आपै सोइ। घट-घट व्यापि रह्यौ है जोइ—७-२ । (२) करनेवाला । (३) विधाता, ईश्वर । (४) व्याकरण में पहला कारक ।

कर्त्तार—संज्ञा पुं. [सं. 'कर्तृ' की प्रथमा का बहु०] (१) करनेवाला । (२) विधाता, ईश्वर ।

कर्दम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य का एक पुत्र, छाया से उत्पन्न होने के कारण जिनका 'कर्दम' नाम पड़ा । इसकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का कपिल-देव था । उ.—दच्छ प्रजापति कौं इक दई । इक रुचि, इक कर्दम-तिय भई । कर्दम कैं भयौ कपिल-ऽवतार—३-१२ । (२) कीचड़, कीच । (३) मांस । (४) पाप । (५) छाया ।

कर्नेता—संज्ञा पुं. [देश.] रंग के आधार पर किये गये घोड़े के भेदों में एक ।

कर्पट—संज्ञा पुं. [सं.] फटा-पुराना कपड़ा ।

कर्पटी—संज्ञा पुं. [सं. हि. कर्पट=चिथड़ा=गुदड़ा] भिखारी, भिखमंगा जो गूदड़ पहले-ओढ़े ।

कर्पर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खोपड़ी, कपाल । (२) खप्पर । (३) एक शस्त्र ।

कर्पूर—संज्ञा पुं. [सं.] कपूर ।

कर्बुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना, स्वर्ण । (२) धतूरा । (३) जल । (४) पाप । (५) राक्षस ।

वि.—रंग बिरंगा, चितकबरा ।

कर्म—संज्ञा पुं. [सं. कर्मन् का प्रथमा रूप] (१) क्रिया, कार्य, काम । उ.—असी-इक कर्म विप्र कौ लियौ । रिषभ ज्ञान सबही कौ दियौ—५-२ । (२) विहित और निषिद्ध कार्य जिनका फल जाति, आयु और भोग माने जाते हैं । (३) वह कार्य या क्रिया जिसका करना कर्तव्य है । (४) कर्मफल, भाग्य । उ.-(क) पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८ । (ख) जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै—३४६ । (५) मृत-संस्कार, क्रिया-कर्म । उ—जब तनु तज्यौ गीध रघुपति तब कर्म बहुत विधि कीनी । जान्यौ सखा राय दशरथ कौ तुरतहिं निज गति दीनी । (६) व्याकरण में दूसरा कारक ।

कर्मकांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ तथा अन्य धर्म के काम । (२) वह शास्त्र या ग्रंथ जिसमें धर्म-कर्म की चर्चा हो ।

कर्मकांडी—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ आदि करानेवाला व्यक्ति ।

कर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह स्थान जहाँ काम किया जाय । (२) संसार जहाँ कर्म करना पड़ता है । (३) भारतवर्ष ।

कर्मचारी—संज्ञा पुं. [सं. कर्मचारिन्] (१) काम के लिए नियुक्त, काम करनेवाला । (२) किसी विभाग में काम करनेवाला ।

कर्मज—वि. [सं.] (१) कर्म करने से उत्पन्न । (२) किये हुए पाप पुण्य से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं.—कलियुग ।

कर्मठ—वि. [सं.] (१) काम में चतुर । (२) धर्म-कर्म करनेवाला ।

संज्ञा पुं.—(१) वह मनुष्य जो नियमित रूप से धर्म-कर्म करे । (२) कर्मकांडी ।

कर्मणा—क्रि. वि. [सं. कर्मन् का तृतीय एक.] कर्म से, कर्म द्वारा ।

कर्मण्य—वि. [सं.] काम करने में आनंद लेनेवाला, उद्योगी, कर्मठ ।

कर्मन—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कर्म+न (प्रत्य.)] कर्मों का, भाग्य, प्रारब्ध । उ.—जैसोई बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे—१-६२ ।

कर्मना—क्रि. वि. [सं. कर्मणा] कर्म से, कर्म द्वारा । उ.—(क) मैं तौ राम-चरन चित दीन्हौ । मनसा, वाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौ आगम कीन्हौ—६-२ । (ख) मनसा बाचा कहत कर्मना नृप कबहूँ न पतीजै—१०-६ । (ग) मनसि बचन अरु कर्मना कछु कहति नाहिन राखि—३४७५ ।

कर्मनि—संज्ञा पुं. [हि. कर्म+नि (प्रत्य.)] कर्मों की ।

मुहा.—कर्मनि की मोटी—अत्यंत भाग्य-शालिनी, अच्छे कर्मों का सुख लूटने की अधिका-रिणी । उ—दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया

माखन रोटी। । सूरदास मन मुदित जसोदा, भाग बड़े, कर्मनि की मोटी—१०-१६५।

कर्मनिष्ठ—वि. [सं.] धर्म-कर्म तथा संध्या, अग्निहोत्र आदि में निष्ठा रखनेवाला।

कर्मभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म का फल। (२) पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना। उ.—जो कहौ कर्मभोग जब करिहैं, तब ये जीव सकल निस्तरिहैं —७-२।

कर्मयुग—संज्ञा पुं. [सं.] कलियुग।

कर्मयोग—संज्ञा पु. [स.] (१) चित्त की शुद्धि के लिए किए जानेवाले शास्त्र-सम्मत कर्म। उ.—(क) कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो। श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ—सारा० ११०२। (ख) तपसी तुमको तप करि पावैं। मुनि भागवत गुही गुन गावै। कर्मयोग करि सेवत कोई। ज्यौं सेवैं त्यौंही गति होई—१० उ-१२७। (२) सिद्धि-असिद्धि को समान समझ कर कर्म करना।

कर्मरेख—संज्ञा स्त्री. [स] भाग्य का लेखा, तकदीर का लिखा। उ.—काको न्याउ दोष सब हमको कर्मरेख को जानै। गोरस देखि जो राख्यौ गाहक विधिना की गति आनै—३४४१।

कर्मवाद—सज्ञा पुं. [स.] (१) कर्म की प्रधानता मानना। (२) चित्त की शुद्धि के लिए किया जानेवाला शास्त्र-सम्मत कर्म। उ.—कर्मवाद थापन को प्रगटे पृश्नि-गर्भ अवतार। सुधापान दीन्हो सुरगन को भयौ जग जस विस्तार—३२१।

कर्मवादी—सज्ञा पुं. [स. कर्मवादिन्] कर्म को प्रधान माननेवाला।

कर्मवान—वि. [सं.] शास्त्रसम्मत कर्म नियमित रूप से करनेवाला।

कर्मविपाक—सज्ञा पुं [सं.] पूर्वजन्म के कर्मों का भला-बुरा फल।

कर्मशील—संज्ञा पुं [स.] (१) सिद्धि-असिद्धि को समान समझ कर कर्म करनेवाला। (२) परिश्रमी, प्रयत्न-शील।

कर्मसंन्यास—सज्ञा पुं [स.] (१) कर्म न करना। (२) कर्म के फल की चाह न करना।

कर्मसाक्षी—वि. [स. कर्मसाक्षिन] जिसके सामने कर्म किया गया हो।

सज्ञा पुं.—वे नौ देवता—सूर्य, चन्द्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—जो प्राणी को कर्म करते देखते रहते हैं।

कर्महीन—वि [स.] (१) जो शुभ कर्म करने में समर्थ न हो। (२) अभागा, भाग्यहीन।

कर्महीनी—वि [हि. कर्महीन] अभागा, भाग्यहीन। उ.-मंदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए। प्रानपति सौं नेह बाँध्यौ कर्म लिख्यौ सो पाइए।

कर्मा—सज्ञा पुं. [हिं. कर्म] कर्म करनेवाला। उ.—जन बगत बैरोचन को सुत, वेद-विहित-विधि-कर्मा। सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि धर्मा—१-१०४।

कर्मिष्ठ—वि. [सं.] कर्म में आनंद लेनेवाला, कर्मण्य, कर्मनिष्ठ।

कर्मी—वि. [स] (१) कर्म करनेवाला। (२) कर्म के फल की इच्छा करनेवाला।

कर्मेंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] काम करनेवाली इंद्रियाँ। ये पाँच हैं—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ।

करयौ—क्रि. स. भूत. [स. करण, हिं करना] किया। उ.—द्रुपद सुता की तुम पति राखी अंबर-दान करयौ—१-१३३।

कर्ष—सज्ञा पुं [स] (१) खिंचाव। (२) खरोंचना। सज्ञा पुं.—ताव, चढ़ावा।

कर्षक—संज्ञा पु. [स] (१) खींचनेवाला। (२) किसान, खेतिहर।

कर्षण—संज्ञा पुं. [स.] (१) खींचना। (२)जोतना। (३) खेती का काम।

कर्षना—क्रि स. [स कर्षण] खींचना।

कर्षमर्ष—सज्ञा पु. [सं. कर्षण] खींच तान, संघर्ष।

कलंक—सज्ञा पुं. [स.] (१) लांछन, बदनामी। उ—मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं—७-५। (२) चन्द्रमा का काला दाग। (३) दोष। (४) धब्बा।

सज्ञा पु [स.कल्कि, हिं. कलकी] कल्कि अवतार। उ.—हरि करिहैं कलंक अवतार—१२-३।

कलंकि—संज्ञा पुं [सं. कल्कि] कल्कि अवतार। उ.—यों होइहै कलंकि अवतार—१२-३।

कलंकित—वि. [सं.] जिसे कलंक लगा हो, दोषी।

कलँकी, कलंकी—वि. [सं कलंकिन्] (१) जिसे कलंक लगा हो। उ.—का पटतरयौ चद्र कलंकी घटत बढत दिन लाज लजाई—२२२७।

संज्ञा पुं. [सं. कल्कि] कल्कि अवतार। उ.—कलि के आदि अंत कृतयुग के है कलँकी अवतार—सारा. ३२०।

कलंदर—संज्ञा पु. [अ. कलंदर] (१) एक तरह के मुसलमान फकीर। (२) रीछ-बंदर नचाने वाला।

कलंदरा—संज्ञा पुं. [हि.] (१) एक तरह का रेशमी कपडा। (२) खेमें का अँकुडा जिस पर रेशम या कपडा लिपटा रहता है।

कल—संज्ञा स्त्री. [स. कल्य, प्रा. कल्ल] (१) आराम, चैन, सुख। उ.—(क) पलित केस, कफ कंठ विरुध्यौ, कल न परति दिन-राती—१-११८। (ख) डेढ ल ल कल लेत नाही प्रान प्रीतम प्रान-सा.२१। (ग) जसुमति विकल भई छिन कल ना। लेहु उठाई पूतना-उर तैं, मेरौ सुभग साँवरो ललना—१०-५४। (घ) एक बार कुलदेवी पूजत भयो दरस सखि मोहि। ता दिन ते छिन कल न परत है सत्य कहत हौं तोहि।—सारा.२२१। (२) स्वास्थ्य, आरोग्य। (३) संतोष।

संज्ञा पुं. [स.] (१) मधुर ध्वनि। उ.—अरुन अधर छवि दास विराजत। जब गावत कल मंदन—४७६। (२) वीर्य।

वि.—(१) सुन्दर, मनोहर। (२) कोमल, मधुर।

क्रि. वि.—[स. कल्य—प्रत्यूप, प्रभात] (१) आने वाला दिन। (२) आगे किसी समय। (३) बीता हुआ दिन।

संज्ञा स्त्री. [स. कला—अंग, भाग] (१) ओर, पहलू। (२) अंग, अवयव।

संज्ञा स्त्री.—[स. कला=विद्या] (१) कला। उ.—रावे आज मदनमद माती। सोहत सुन्दर संग स्याम के खरचत कोट काम कल थाती—सा. ५०। (२) युक्ति, ढंग। (३) यन्त्र। (४) पेंच, पुरजा।

वि.—[हिं. काला] 'काला' का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों के शुरू में जुड़ता है।

कलई—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) राँगा। (२) राँगे का लेप जिसके चढ़ाने से बरतन में रखी हुई चीजें कसाती नहीं, मुलम्मा। (३) वह लेप जो किसी वस्तु पर रंग चढ़ाने के लिए लगाया जाय। (४) चमक-दमक, तडक-भड़क।

मुहा०—कलई आई उघरि—कलई खुल गयी, सच्चा रूप सामने आ गया, वास्तविकता ज्ञात हो गयी। उ.—(क) कीन्ही प्रीति पुहुप गुंडा की अपने काज के कामी। तिनको कौन परेखो कीजै जे हैं गरुड़ के गामी। आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी—३०८०। (ख) देखो माधौ की मित्राई। आई उघरि कनक कलई सी दै निज गये दगाई—२७१८।

(५) चूना।

कलकंठ—संज्ञा पुं. [स.] (१) कोयल। (२) कबूतर। (३) हंस।

वि.—जिसका स्वर मीठा, कोमल या सुंदर हो।

कलक—संज्ञा स्त्री. [अ. कलक] दुख, चिंता।

कलकना—क्रि. अ. [हि. कलकल=शब्द] शब्द करना, चिल्लाना।

कलकल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल के गिरने या बहने का शब्द। (२) कोलाहल, शोर।

संज्ञा स्त्री—झगडा, कलह।

कलकान, कलकानि, कलकानी—संज्ञा स्त्री. [अ.—कलक़=रंज] हैरानी, दुख। उ.—नारी गारी बिनु नहि बोलै पूत करै कलकानी। घर मे आदर कादर कोसौ सीझत रैनि विहानी।

कलकूजिका—वि. स्त्री. [सं.] मधुर या कोमल ध्वनि करनेवाली।

कलत्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) स्त्री, पत्नी। (२) दुर्ग, गढ़।

कलधूत—संज्ञा पुं. [सं.] चाँदी।

कलधौत—संज्ञा पु. [सं.] (१) सोना। (२) चाँदी। (३) सुंदर, मधुर या कोमल ध्वनि।

कलन—संज्ञा पुं. [स.] (१) उत्पन्न करना। (२) धारण करना। (३) संबंध।

कलना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्रहण करना।

(२) विशेष ज्ञान प्राप्त करना। (३) गणना, विचार। (४) लेन-देन, व्यवहार।

कलप—संज्ञा पु. [सं कल्प] (१) ब्रह्मा का एक दिन। (२) विधान, रीति। (३) कल्प।

कलपत—क्रि. अ. [हि. कल्पना] दुखी होना, सोचना, खिन्न होकर विचारना। उ.—ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि, कलपत दोउ कर जोर। वृन्दावन ए तृन न भये हम लगत चरन के छोर—४७७।

कलपतर, कलपतरु—संज्ञा पु. [स. कल्पतरु] एक वृक्ष जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों मे माना जाता है और जो सभी इच्छाएँ पूरी करता है। उ.— सूरदास यह सब हित हरि को रोप्यौ द्वार सुभगति कलपतर —१० उ.-७० ।

कलपना—क्रि अ [स. कल्पना=(दुख की) उद्भावना करना] (१) दुखी होना, बिलखना। (२) कल्पना करना।

संज्ञा स्त्री.=उद्भावना, अनुमान, कल्पना।

कलपाना—क्रि. स. [हि. कलपना] दुखी करना, रुलाना।

कलपै—क्रि. अ. [हि. कलपना] विलाप करता है, बिलखता है, दुखी होता है। उ.—प्रभु तेरो वचन भरोसो साँचो। पोपन भरन बिसंभर साहब जो कलपै सो काँचो—१-३२।

कलबल—वि [अनु] अस्पष्ट (स्वर)। उ—(क) अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिं परत बिचारी। बिकसित ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु में बिज्जु उज्यारी—१०-६१। (ख) स्याम करत माता सों, झगरौ, अटपटात कलबल करि बोल—१०-६४। (ग) गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलें। कलबल बचन तोतरे बोलें—१०-११७।

संज्ञा पुं.—शोरगुल, हल्ला।

संज्ञा पु. [स कला+बल] उपाय, युक्ति। उ.— लगे हुलसन मेघ मंगल भरे बिथक सजोर। करन चाहत राख रोके काम कलबल छोर—सा ६१।

कलबूत—संज्ञा पु. [फा. कालबुद] (१) साँचा। (२) ढाँचा।

कलभ—संज्ञा पु [स.] (१) हाथी का बच्चा। (२) ऊँट का बच्चा। (३) धतूरा।

कलम—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लिखने का उपकरण, लेखनी। (२) किसी पेड़-पौधे की वह मुलायम और नयी टहनी जो दूसरी जगह या पेड़ में लगाने के लिए काटी जाय। (३) वह पौधा जो कलम से तैयार हो। (४) चित्रकारों की कूची।

कलमख—संज्ञा पुं. [स. कल्मष] (१) पाप, दोष। (२) कलंक। (३) धब्बा।

कलमना - क्रि. स. [हि. कलम] काटना, टुकड़े करना।

कलमलना, कलमलाना—क्रि अ. [अनु] अंग या शरीर का इधर-उधर हिलना-डोलना।

कलमलात—क्रि. अ. [हि कलमलाना] शरीर के अंग इधर-उधर हिलते-डोलते हैं, कुलबुलाते हैं। उ.— कौन कौन की दसा कहौं सुन सब ब्रज तिनते पर। निसि दिन कलमलात सुन सजनी सिर पर गाजत मदन अर—२७६४।

कलमष, कलमस—संज्ञा पुं. [स. कल्मष] पाप, अघ। उ.—जौ पै यहै बिचार परी। तौ कत कलि-कल्मष लूटन कौं, मेरी देह धरी—१-२११।

कलमा—संज्ञा पुं. [अ. कल्मः] (१) वाक्य, बात। (२) इसलाम के मूलमंत्र का वाक्य।

कलमुहाँ—वि. [हि. काला+मुँह] (१) जिसका मुँह काला हो। (२) कलंकित, लांछित।

कलरव—संज्ञा पुं [स कल=सुंदर+रव=शब्द] (१) मधुर शब्द। उ.—नूपुर-कलरव मनु हसनि सुत रचे नीड, दै बाँह बसाए—१०-१०४। (२) कोयल। (३) कबूतर।

कलरौ—संज्ञा पुं [सं कलरव] मधुर ध्वनि।

कलवरिया—संज्ञा स्त्री. [हि कलवार] शराब की दूकान।

कलवार—संज्ञा पुं. [सं. कल्यपाल, प्रा. कल्लवाल] शराब बनाने-बेचने वाला।

कलश—संज्ञा पुं [सं.] (१) घड़ा, गगरा। उ—कनक कलश कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली— २५६१। (२) मंदिर का शिखर। (३) चोटी, सिरा। (४) प्रधान व्यक्ति।

कलशी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] (१) गगरी। (२) मंदिर आदि का कँगूरा।

कलस—संज्ञा पुं. [सं. कलश] मंदिर-महल आदि का शिखर या कँगूरा। उ.—ऊँचे मंदिर कौन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाए। भक्त-भवन मैं हौं जु बसत हौं, जद्यपि तृन करि छाए—१-२४३।

कलसा—संज्ञा पु. [सं. कलश] गगरा, घड़ा। उ.—हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर ससि भान—२१६१।

कलसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] (१) गगरी, कलसिया। (२) छोटे कँगूरे। (३) मंदिर का छोटा शिखर या कँगूरा।

कलहंस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजहंस। (२) श्रेष्ठ राजा। (३) ईश्वर, ब्रह्म।

कलह—संज्ञा पुं. [सं.] विवाद, झगड़ा। उ.—(क) काहे कौं कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ, कठिन लकुट लै तैं त्रास्यौ मेरैं भैया—३७२। (ख) सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई (हो)। माता सौं कछु करत कलह हे रिस डारी बिसराई (हो)—७००। (२) युद्ध, संघर्ष। उ.—निरखि नैन रसरीति रजनि रुचि काम कटक फिरि कलह मच्यौ—पृ० ३५० (६७)।

कलहकारी—वि. [सं. कलह + हिं. कारी (स्त्री.)] कलह करनेवाली।

कलहनीपतिपितापुत्री—संज्ञा स्त्री. [सं. कलहिनी = (शनि की स्त्री का नाम) + पति (कलहिनी का पति = शनि) + पिता (शनि का पिता = सूर्य) + पुत्री (सूर्य की पुत्री = यमुना)] यमुना नदी। उ०—कलहनी-पति-पिता-पुत्री तकत बनत न आज। कौन जानत रहे यह बिनु संभवन को काज —सा० ३८।

कलहांतरिता—संज्ञा स्त्री. [स.] वह नायिका जो पहले तो नायक का तिरस्कार करे, फिर पछताने लगे।

कलहा—वि. [सं. कलह] झगड़ालू, कलहप्रिय। उ.—कलहा, कुही, मूष रोगी अरु काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६।

कलहास—संज्ञा पु. [सं.] वह हास जिसमें कोमल ध्वनि हो।

कलहिनी—वि. स्त्री. [सं.] झगड़ालू।
संज्ञा स्त्री.—शनि की स्त्री।

कला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अंश, भाग। (२) चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग। (३) कार्य-कुशलता। (४) विभूति। (५) शोभा, छटा, प्रभा। (६) ज्योति, तेज। (७) विद्या, शास्त्र। उ.—कोक-कला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा—१४३७। (८) सूर्य का बारहवाँ भाग। (९) अग्निमंडल के दस भागों में एक। (१०) समय का एक छोटा भाग। (११) करतूत, करनी, कौतुक, लीला (व्यंगात्मक)। उ.—माधौ, नेकु हटकौ गाइ। ··· । छहौ रस जो धरौ आगैं, तउ न गंध सुहाइ। और अहित अभच्छ भच्छति कला बरनि न जाइ—१-५६। (१२) कौतुक, खेल, क्रीड़ा। उ.—(क) अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल। ·· ···। माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—१-१५३। (ख) ना हरि भक्ति, न साधु समागम, रह्यौ बीच ही लटकैं। ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं—१-२६२। (ग) अज, अविनासी अमर प्रभु जनमै मरै न सोइ। नट वत करत कला सकल बूझै बिरला कोइ—२-३६। (१३) चतुरता, कुशलता। उ.—रचि-पचि सोंचि सँवारि सकल अँग चतुर चतुराई ठानी। दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति इतनहि कला नसानी—१३२१। (१४) छल, कपट, धोखा। (१५) हीला, बहाना। (१६) उपाय, ढंग, युक्ति। उ.—रहेउ दुष्ट पचि-हार दुसासन कछू न कला चलाई—सारा. ७६६। (१७) यन्त्र, पेंच।

कलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कलाची] हथेली से जुड़ा हुआ हाथ का भाग, मणिबंध, गट्टा, पहुँचा।

कलाकर—संज्ञा पुं. [स.] चन्द्रमा।

कलाकौशल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कला में कुशलता, कारीगरी। (२) शिल्प।

कलात्मक—वि. [सं.] (१) कलापूर्ण। (२) कला सम्बन्धी।

कलाद—संज्ञा पुं. [सं.] सोनार।

कलादा—संज्ञा पुं. [सं. कलाप, हिं. कलावा] हाथी की गर्दन का वह भाग जहाँ महावत बैठता है, कलावा, किलावा।

कलाधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चन्द्रमा। (२) शिव। (३) कला का ज्ञाता।

कलानाथ, कलानिधि—संज्ञा पुं. [सं] चन्द्रमा।

कलानिधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कला का आश्रय। (२) विविध कलाओं का स्वामी।

कलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। (२) मोर की पूँछ। (३) तरकश। (४) चंद्रमा। (५) भूषण, गहना।

कलापति—संज्ञा पुं [सं.] चंद्रमा।

कलापिनी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) रात्रि। (२) मोरनी।

कलापी—संज्ञा पुं. [सं. कलापिन्] (१) मोर (२) कोयल।
वि.—(१) तरकश बाँधे हुए। (२) समूह में रहने वाला।

कलार, कलाल—संज्ञा पुं. [सं. कल्यपाल] मद्य बेचने वाला।

कलावंत—संज्ञा पुं. [सं. कलावान] (१) संगीतज्ञ। (२) कलाकुशल, नट।

कलावती—वि. स्त्री. [सं.] (१) जो कला में कुशल हो। (२) सुन्दर, शोभायुक्त।

कलास—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता था। उ.—धनुष कलास सही सब सिखि कै भई सयानी गानति। सूर सुन्दरी आपुही कहा तू सर संधानति—२६५१।

कलाहक—संज्ञा पुं. [सं] काहल नामक बाजा।

कलिंद—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक पर्वत जिससे जमुना नदी निकलती है। उ—उर कलिंद तें धँसि जल धारा उदर धरनि परवाह। जाति चली धारा ह्वै अध कौं, नाभी ह्रद अवगाह—६३७। (२) सूर्य।

कलिंदजा—संज्ञा स्त्री [सं. कलिंद+जा] कलिंद पर्वत से निकलने वाली जमुना नदी।

कलि—संज्ञा पुं. [सं] (१) कलियुग, चार युगों में चौथा युग, इसमें ४३२००० वर्ष होते हैं। ईसा के ३१०२ वर्ष पूर्व से इसका आरम्भ माना जाता है। प्राच्य पौराणिक विचारानुसार अधर्म और पाप की इस युग में प्रधानता रहती है। (२) कलह, झगड़ा। (३) पाप। (४) वीर। (५) तरकश। (६) दुख। (७) युद्ध।
वि.—श्याम, काला।

कलिकर्म—संज्ञा पुं. [सं] युद्ध।

कलिका—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) कली। (२) एक प्राचीन बाजा। (३) मुहूर्त्त। (४) भाग।

कलिकान—वि. [सं कलि+हिं. कान] हैरान, परेशान।

कलिकाल—संज्ञा पुं. [सं.] कलियुग।

कलित—वि. [सं.] (१) सुन्दर, मधुर। उ.—जानु जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड—१-३०७। (२) प्रसिद्ध। (३) मिला हुआ, प्राप्त। (४) सजा हुआ, शोभायुक्त।

कलिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं कली] कलियाँ, कलिकाएँ। उ.—अँकुरित तरु पात,उकठि रहे जे गात, बनबेलि प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३०।

कलिमल—संज्ञा पुं. [सं.] पाप, कलुष।

कलिमलहिं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कलिमल+हि (प्रत्य.)] पाप या कलुष को। उ—यह भव-जल कलिमलहि गहे है, बोरत सहस प्रकारौ। सूरदास पतितनि के संगी, बिरदहि नाथ सम्हारौ—१-२०६।

कलियाना—क्रि. अ. [हिं. कली] कलियाँ निकलना, कलियों से युक्त होना।

कलियारी—संज्ञा स्त्री [सं. कलिहारी] एक विषैला पौधा।

कलियुग—वि. [सं] चार युगों में चौथा।

कलियुगी—वि [सं] (१) कलियुग का। (२) बुरी आदतवाला।

कलिल—वि. [सं.] (१) मिला हुआ, मिश्रित। (२) घना, दुर्गम।
संज्ञा पुं.— समूह।

कली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिना खिला फूल, बोंडी, कलिका। (२) कन्या।

कलुख, कलुष—संज्ञा पुं [सं. कलुष] (१) मैल। (२) पाप, दोष।

कलुखी—वि. [सं कलुष] कलंकी, पापी।

कलुपाई—संज्ञा स्त्री. [सं कलुष+आई (प्रत्य)] (१) बुद्धि या चित्त का विकार, दोष। (२) पाप, मलिनता।

कलुषित—वि. [सं.] (१) दोष युक्त। (२) मलिन।

कलुषी—वि स्त्री. [सं] (१) पापिनी। (२) मैली, गंदी। वि. पुं [सं. कलुषिन्] (१) मैला, गंदा। (२) पापी, दोषी। उ—असरन-सरन नाम तुम्हारौ, हौं कामी, कुटिल निभाउँ। कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ—१-१२८।

कलूटा—वि. [हि. काला+टा (प्रत्य.)] बहुत काला।

कलेऊ—संज्ञा पुं. [हि. कलेवा] जलपान, कलेवा। उ.—(क) करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपरयौ अरु चोटी—१० १६३। (ख) उठिए स्याम कलेऊ कीजै—१०-२११। (ग) तिनहिं कह्यो तुम स्नान करौ ह्यॉं हमहिं कलेऊ देहु—२५५३। (घ) चारो भ्रात मिल करत कलेऊ मधु मेवा पकवान— सारा. १७१।

कलेजा—संज्ञा पुं [सं. यकृत] (१) हृदय, दिल। (२) छाती, वक्षस्थल। (३) साहस, जीवट।

कलेवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शरीर, देह। उ.— चरचित चदन, नील कलेवर, बरषत बूँदनि सावन— ८-१३। (२) ढाँचा।

कलेवा—संज्ञा पुं. [सं. कल्यवर्त्त, प्रा कल्लवट्ट] (१) प्रातःकाल का हलका भोजन, जलपान। उ.— कमल नैन हरि करौ कलेवा। माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि भाँति भाँति के मेवा— १०-२१२। (२) यात्रा के लिए साथ लिया हुआ भोजन, पाथेय, संबल। (३) विवाह के दूसरे दिन वर का सखाओं सहित ससुराल जाकर भोजन करने की प्रथा, खिचडी, बासी।

कलेस—संज्ञा पुं. [सं. क्लेश] दुख, कष्ट, व्यथा। उ —(क) प्रभु, मोहि राखियै इहिं ठौर। केस गहत कलेस पाऊँ, करि दुसासन जोर—१-२५३। (ख) जलपति-भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस— सा. २७। (ग) सूर स्याम सुजान संग ह्वै चली विगत कलेस—सा. ५६।

कलै—संज्ञा स्त्री. [सं. कला] (१) कला, चतुरता, कुशलता। (२) युक्ति, उपाय, रीति, ढंग। उ.— अजहूँ कह्यौ मानि री मानिनि उठि चलि मिलि पिय को जिय लैहै। सूर मान गाढो त्रिय कीन्हो, कहै बात कोउ कोटि कलै—२२१०।

कलोर—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्या] वह गाय जो बरदाई या ब्याई न हो।

कलोल—संज्ञा पुं. [सं. कल्लोल] आमोद-प्रमोद, क्रीडा, आनन्द। उ.—(क) विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति—१०-६। (ख) मिलि नाचत, करत कलोल, छिरकत हरद दही। मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत दूध दही—१० २४। (ग) दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति, बरष-दिवस कहि करति किलोल—१०-६४।

कलोलना—क्रि. अ. [हि. कलोल] आनंद करना, मौज उडाना, क्रीडा या विहार करना।

कलोलै—संज्ञा पु. [हि. कलोल] आनन्द, क्रीडा। उ.— इन घोसनि रूसनौ करति हौ करिहौ कबहि कलोलै —२२७५।

कलौस—वि. [हिं. काला+औस (प्रत्य.)] कालापन लिये हुए।

संज्ञा पुं.—(१) स्याही, कालिमा। (२) कलंक।

कल्क—संज्ञा पु [सं.] (१) दंभ, पाखंड। (२) मैल। (३) पाप।

कल्कि—संज्ञा पुं. [सं] विष्णु का दसवाँ अवतार।

कल्की—संज्ञा पु. [सं. कल्कि] विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो संभल (मुरादाबाद) में एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा। उ —बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयो पुनि सोइ। सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ—२-३६।

कल्प—संज्ञा पुं [सं] (१) विधि, विधान। (२) प्रातःकाल। (३) एक प्रकार का नृत्य। (४) काल का एक विभाग जो ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का होता है और ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है।

वि.—तुल्य, समान।

कल्पक—वि.-[सं.] (१)कल्पना करने वाला। (२)काटने वाला।

कल्पतरु—सज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो 'समुद्र से निकले चौदह रत्नों में गिना जाता है। प्राणी की इच्छा पूरी करने के लिए यह प्रसिद्ध है। उ.—तेरे चरन सरन त्रिभुवनपति मेटि कल्प तू होहि कल्पतरु—२२६६।

कल्पद्रुम—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माना जाता है।

कल्पन—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्पना] कल्पना, अनुमान। उ.-जौ मन कबहुँक हरि कौ जाँचै। . । निसि दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै—२-११।

कल्पना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बनावट, रचनाक्रम। (२) अनुमान, उद्भावना। उ.—जैसी जाकै कल्पना तैसहि दोउ आए। सूर नगर नर-नारि के मन चित्त चोराए—२५७६। (३) एक वस्तु में अन्य का आरोप। (४) मान लेना। (५) गढ़ी हुई बात।

कल्पलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वृक्ष जिसकी गिनती समुद्र से निकले चौदह रत्नों में है। यह प्राणियों की इच्छा पूरी करता है और इसका नाश कभी नहीं होता।

कल्पवृक्ष, कल्पवृच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कल्पवृक्ष] देवलोक का एक वृक्ष।

कल्पशाखी—संज्ञा पुं [सं.] कल्पवृक्ष।

कल्पांत—सज्ञा पुं. [सं. कल्प + अंत] प्रलय।

कल्पित—वि. [सं. कल्पना] (१) रचा हुआ, निकला हुआ, उद्भूत। उ.—चर-अचर-गति विपरीत। सुनि वेनु-कल्पित गीत—६२३। (२) मनमाना, मनगढ़ंत। (३) बनावटी, अयथार्थ, नकली।

कल्मष—संज्ञा पुं [सं.] (१) पाप। (२) मैल।

कल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सवेरा। (२) मधु, शराब।

कल्याण—संज्ञा पु. [सं.] (१) शुभ, भलाई। (२) सोना। (३) एक राग जो श्रीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है और जो रात के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—सूरदास प्रभु मुरली धरे आवत राग कल्याण (कल्यान) बजावत—२३४७।

वि.—शुभ, कल्याणप्रद।

कल्याणी—वि. [सं.] कल्याण करनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—(१) गाय। (२) प्रयाग की एक देवी।

कल्यान—संज्ञा पु. [सं. कल्याण] (१) मंगल, शुभ, भलाई, कल्याण। उ.—आपुनौ कल्यान करि लै, मानुषी तन पाइ—१-३१५। (२) एक राग जो रात के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—सूर स्याम अति सुजान गावत कल्यान तान सपत सुरन कल इते पर मुरलिका बरषी री—२३६२।

कल्योना—संज्ञा पुं [हिं. कलेवा] कलेवा।

कल्ला—संज्ञा पुं. [सं. करीर = बाँस का करैल] अंकुर, गोंफा।

सज्ञा पुं. [फा.] गाल का भीतरी भाग, जबड़ा।

सज्ञा पु. [हि. कलह] झगड़ा, विवाद।

कल्लाना—क्रि. अ. [सं. कड् या कल् = संज्ञाहीन होना] (१) जलन होना। (२) दुखदायी होना।

कल्लोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) उमंग, मौज।

कल्लोलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह नदी जिसमें तरंग या लहरें हों।

कल्हरना—क्रि. अ. [हि. कड़ाह+ना (प्रत्य०)] भुनना, तला जाना।

कल्हारना—क्रि. स. [हिं. कल्हरना] भूनना, तलना।

क्रि. अ. [सं. कल्ल = शोर करना] कराहना, चिल्लाना।

कवच—संज्ञा पुं. [सं] (१) युद्ध में पहनने की लोहे की पोशाक, जिरहबकतर। उ.—बीरा हार चीर चोली छवि सैना सजि सृङ्गार। परन बचन सन्नाह कवच दै जोरै सूर अपार—१५६६। (२) छाल, छिलका। (३) तंत्र-शास्त्र का एक अंग। (४) बड़ा नगाड़ा, डंका।

कवन—वि. [हि. कौन] कैसी, किस प्रकार की। उ.—तोहिं कवन मति रावन आई—६-११७।

सर्व.—किसने। उ.—सुधाधर मुख पै रवाई धौ कवन कह थाप—सा. ३६।

कवने—सर्व. [हिं. कवन, कौन] किसने। उ.—कंचन को मृग कवने देख्यौ किन बाँध्यौ गहि डोरी—३०२८।

कवर—संज्ञा पुं. [सं. कवल] ग्रास, कौर। उ.—कबहूँ कवर खात मिरचन की लागी दसन टकोर। भाज चले तव गहे रोहिनी लाई बहुत निहोर—सारा.- ६०८।

संज्ञा पुं [स.] (१) वाल, केश। (२) गुच्छा। (३) लोनापन।

वि.—(१)गुथा हुआ। (२) मिला हुआ।

कवरी—सज्ञा स्त्री. [सं.] चोटी, जूड़ा, वेणी। उ.—(क) गति मराल अरु विव अधर छवि, अहि अनूप कवरी —६-६३। (ख) अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गूँथे सुमन रसालहिं। कवरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गोरी वालहिं। (ग) सुंदर स्याम गही कवरी कर मुक्तामाल गही वलवीर—१०-१६१। (घ) अरुन नैनमुख सरद निसाकर कुसुम गलित कवरी—२१०६।

कवल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौर, ग्रास, गस्सा। (२) कुल्ली का जल।

सज्ञा पुं.—किनारा, कोना।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक पक्षी। (२) एक तरह का घोड़ा।

कवलित—वि. [सं. कवल] खाया हुआ, ग्रसित।

कवष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढाल। (२) एक प्राचीन ऋषि।

कवाट—संज्ञा पुं. [सं.] कपाट, किवाड़।

कवि—संज्ञा पुं.—[सं.] (१) कविता करनेवाला, काव्य रचनेवाला। (२) ऋषि। (३) ब्रह्मा। (४) शुक्राचार्य। (५) सूर्य।

कविकुल—संज्ञा पुं. [सं.] कवियों का समूह या वर्ग। उ.—लाल गोपाल वाल-छवि वरनत कविकुल करिहै हास री—१०-१३६।

कविता, कविताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कविता] काव्य, कविता।

कवित्त—संज्ञा पुं. [सं. कवित्व] (१)कविता, काव्य। (२) एक प्रसिद्ध छन्द जिसमें ३१ अक्षर होते हैं।

कवित्व—संज्ञा पु. [सं.] (१) कविता रचने की शक्ति। (२) काव्य गुण।

कविनासा—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्मनाशा] कर्मनाशा।

कविराज, कविराय—संज्ञा पुं. [सं. कविराज] श्रेष्ठ कवि।

कविलास—सज्ञा पुं. [सं. कैलास]. (१) कैलाश। (२) स्वर्ग।

कशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रस्सी (२) कोड़ा, चाबुक।

कश्चित—वि. सर्व. [सं.] कोई।

कष—संज्ञा पुं. [स.] (१) सान। (२) कसौटी। (३) परीक्षा।

कषाय—वि. [सं.] (१) कसैला, बकठा। (२) सुगंधित। (३) रँगा हुआ। (४) गेरू के रंग का।

संज्ञा पुं.—(१) कसैली वस्तु। (२) गोंद। (३) गाढ़ा रस। (४) कलियुग।

कष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीड़ा, दुख, तकलीफ। (२) संकट, मुसीबत।

कस—संज्ञा पुं. [सं. कष] (१) परीक्षा, कसौटी, जाँच। (२) तलवार की लचक।

संज्ञा. पुं. [हि. कसना] (१) वल, जोर। (२) दवाव, वश, अधिकार।

सज्ञा पुं. [सं. कषाय, हि. कसाव] सार, तत्व।

क्रि. वि.—(१) कैसे, क्योंकर। (२) क्यों।

कसक—संज्ञा स्त्री. [स. कष=आघात, चोट] (१)पीड़ा, दर्द, टीस। (२) पुराना वैर। (३) अरमान, अभिलाषा। (४) दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुखी होना, सहानुभूति।

कसकत—क्रि. अ. [हिं.कसक, कसकना] दर्द करता (है), सालता (है), टीसता (है)। उ—नाही कसकत मन, निरखि कोमल तन, तनिक से दधि काज, भली री तू मैया—३७२।

कसकना—क्रि. अ. [हि कसक] दर्द करना, टीसना।

कसक्यौ—क्रि. अ. [हि. कसक, कसकना] कसका, दर्द हुआ, टीस हुई। उ.—जसुदा तोहि बाँधि क्यों आयौ। कसक्यौ नाहि नैकु मन तेरौ, यहै कोखि को जायो—३७४।

कसत—क्रि. अ. [हिं. कसना] परखते है, जाँचते है। उ.—सूर प्रभु हँसत, अति प्रभु प्रीति उर में वसत इन्द्र को कसत हरि जग धाता।

कसन—संज्ञा स्त्री. [हि. कसना] (१) कसने की क्रिया

या भाव। (२) कसने का ढंग। (३) कसने की रस्सी या डोरी।

कसना—क्रि स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण] (१) बंधन खींचना या तानना। (२) जकड़ना, बाँधना। (३) सवारी तैयार करना। (४) दबा दबाकर भरना।

क्रि अ —(१) बंधन खिच जाना, जकड़ जाना। (२) बँधना। (३) सवारी तैयार होना। (४) खूब भर जाना।

क्रि स.—(१) कसौटी पर घिसकर परखना। (२) परीक्षा लेना जाँचना। (३) घी में तलना।

क्रि स [स. कषण=कष्ट देना] दुख देना, कष्ट पहुँचाना।

संज्ञा पु.—कसने या बाँधने की डोरी, रस्सी।

कसनि, कसनी—संज्ञा स्त्री [हि कसना] (१) कसने की रस्सी, बेठन। (२) कंचुकी, अँगिया। (३) कसौटी। (४) परख, जाँच।

संज्ञा स्त्री. [हि कसाव] कसैली वस्तु का पुट देने के लिए उसमें डुबोना।

कसब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) काम, परिश्रम, मेहनत। उ —आन देव की भक्ति-भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ। सब वे दिवस चारि मनरंजन, अंत काल बिगरैगौ—१-७५। (२) व्यभिचार।

कसम—संज्ञा स्त्री [अ कसम] शपथ, सौगंध।

कसमखाना—क्रि अ. [अनु] (१) रगड़ खाना, कुलबुलाना। (२) ऊबना, उकताना। (३) घबराना, बेचैन होना। (४) हिचकना, टाल-मटोल करना।

कसर—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) कमी, त्रुटि। (२) बैर, मनमोटाव। (३) हानि, घाटा। (४) दोष, विकार।

कसरत—संज्ञा स्त्री [अ.] व्यायाम, मेहनत।

कसरि—संज्ञा स्त्री [अ कसर] कमी, न्यूनता, त्रुटि। उ —अब कछू हरि कसरि नाहीं, कत लगावत बार? सूर प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहि आर—१-१९९।

कसाई—संज्ञा पुं [अ कस्साब] बधिक, हत्यारा। उ.—श्रीधर बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई। प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नंद-सुवन कौं आवौं मारी—१०-५७।

कसाना—क्रि. अ. [हि. काँसा] खट्टी चीज का कसैला हो जाना।

क्रि. स. [हि 'कसना' का प्रे] कसवाना।

कसार—संज्ञा पु. [सं कृसर] भुना आटा जिसमें चीनी मिला दी गयी हो, पँजीरी।

कसाला—संज्ञा पुं [स कष=पीड़ा, दुख] (१) दुख, कष्ट। (२) परिश्रम, मेहनत।

कसाव—संज्ञा पुं. [सं. कषाय] कसैलापन।

संज्ञा पुं —खिंचाव, तनाव।

कसावर—संज्ञा पु [देश०] एक देहाती बाजा।

कसि—क्रि स. [हि कसना] अच्छी तरह बाँधकर, जकड़कर। उ.—(क) तजौ बिरद कै मोहि उधारौ, सूर कहै कसि फेंट—१-१४५। (ख) कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये—१०-२४।

कसी—संज्ञा स्त्री. [स कशक] एक पौधा।

वि. [हि. कसना] तनी, तनी हुई। उ.—किरनि कटाच्छ बान बर साँधे भौंह कलंक समान कसी री—१८६८।

कसीटना—क्रि. स. [हि. कसना] कसना, रोकना।

कसीस—संज्ञा पुं. [स. कासीस] एक खनिज पदार्थ।

संज्ञा स्त्री.—(१) निर्दयता। (२) कोशिश।

कसीसना—क्रि. अ. [हि. कसना=खींचना] खीचना।

कसूँभी—वि. [हि कुसुम] (१) कुसुम के रंग का। (२) कुसुम के फूलों के रंग में रँगा हुआ।

कसूर—संज्ञा पुं [अ कसूर] अपराध, दोष।

कसे—क्रि. स. [हि. कसना] बाँधे हुए, जकड़कर बाँधे हुए। उ.—अलख-अनत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तूनीर—९-२६।

कसेरा—संज्ञा पु. [हि. काँसा + एरा (प्रत्य०)] फूल-काँसे आदि के बरतन ढालने-बेचनेवाला।

कसैया—संज्ञा पु. [हि कसना] (१) कसकर बाँधने-वाला (२) परखने, जाँचनेवाला, पारखी।

कसैला—वि. [हि कसाव+ऐला (प्रत्य)] जिसके स्वाद मे कसैलापन हो।

कसौंजा, कसौंदा—संज्ञा पुं [सं. कासमर्द, पा. कासमद्द] एक पौधा या उसका फूल।

कसौटिया—संज्ञा स्त्री [सं कषपट्टी, हि. कसौटी] कसौटी, सोना परखने का पत्थर। उ.—तनिक कटि पर कनक-करधनि, छीन छवि चमकाति। मनौ कनक कसौटिया पर, लीक-सी लपटाति—१०-१८४।

कसौटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कषपट्टी] (१) एक काला पत्थर जिसपर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। शालग्राम इसी पत्थर के होते हैं। (२) परख,परीक्षा। उ.—गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि धुनि सुनि स्रवन रमापति। सूर स्याम अँचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति—१०-१४६। (ख) प्रीति पुरातन मोरी उनसों नेह कसौटी तोलै—३०६१।

कस्तूरि, कस्तूरिका, कस्तूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कस्तूरी] मृग विशेष की नाभि से निकलनेवाला एक सुगंधित द्रव्य। उ.—उज्ज्वल पान कपूर कस्तूरी। आरोगत मुख की छवि रूरी—३९६।

कस्यप—संज्ञा पुं. [सं. कश्यप] एक प्रजापति जो सुरों और असुरों के पिता थे।

कस्यौ—क्रि. स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण, हि. कसना] जकड़कर बाँधा। उ.—(क) सुचि करि सरल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग—९-१५८। (ख) सूर प्रभु देखि नृप क्रोध पुरी धरी कस्यो कटि पीतपट देव राजै—२६१२।

कहँ—प्रत्य [सं. कक्ष, प्रा. कच्छ] के लिए। (अवधी में यह द्वितीया और चतुर्थी का चिन्ह है)।

क्रि. वि. [हि. कहाँ] कहाँ, किस जगह।

यौ.—कहँ लगि—कहाँ तक। उ.—रसना एक, अनेक स्याम-गुन कहँ लगि करौं बखानी—१-११।

कहंत—क्रि स. [सं. कथन, प्रा. कहना] कहता है, बोलता है। उ.—जिय अति डरयौ, मोहि मति सापै व्याकुल वचन कहंत। मोहिं बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत—९-८३।

कह—वि.—[सं, कः] क्या। उ.—जाँचक पै जाँचक कह जाँचै, जौ जाँचै तौ रसनाहारी—१-३४।

कहत—क्रि. स. [सं. कथन, प्रा कहन; हि. कहना] (१) कहने में, वर्णन करने में। उ.—अविगत गति कछु कहत न आवै। ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै—१-२। (२) कहता है, वर्णन करता है उ.—जग जानत जदुनाथ जिते जन निज भुज स्रम सुख पायौ। ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर-उतरायौ—१-१५।

कहति—क्रि. स. [हि कहना] वर्णन करती है। उ.—बकी जु गई घोष में छल करि, जसुदा की गति कीनी। और कहति स्रुति वृषभ व्याध की जैसी गति तुम कीनी—१-१२२।

कहती—क्रि स. स्त्री [हि. कहना] वर्णन करती, शब्दों में अभिप्राय बताती। उ.—जो मेरी अखियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री—१०-१३६।

कहन—क्रि. स. [हि. कहना] कहने या बताने के लिए। उ.-बिट्ठल मति कहन गए, जोरे सब हाथा—९-९६।

मुहा.—कहन सुनन को—केवल कहने भर को, नाम मात्र को। उ.—सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ। द्वापर सहस एक की भई। कलिजुग सत संवत रह गयी। सोऊ कहन सुनन कौं रही। कलि मरजाद जाइ नहि कही-१-२३०।

कहना—क्रि. स. [सं. कथन, प्रा कहन] (१) बोलना, अभिप्राय प्रकट करना। (२) प्रकट करना, रहस्य खोलना। (३) सूचना या खबर देना। (४) पुकारना, नाम रखना। (५) समझाना-बुझाना। (६) बनावटी बातें करके भुलावे में डालना। (७) भला-बुरा कहना। (८) कविता रचना।

संज्ञा पु.—कथन, बात, अनुरोध।

कहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. कथन, हि. कहन] (१) वचन, बात, कथन। (२) करनी, करतूत। उ.—तृन की आग बरत ही बुझि गई हँसि हँसि कहत गोपाल। सुनहु सूर यह करनि, कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५९८।

कहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कथनी, प्रा. कहनी] (१) कथा, कहानी। (२) बात, कथन।

कहनाउत, कहनावत, कहनावति—संज्ञा स्त्री. [हि. कहना + आवत (प्रत्य.)] (१) बात, कथन। उ.—सुनहु सखी राधा कहनावति। हम देखे सोई इन देखे ऐसेहि

तातें कहि मन भावति—१६२६। (२) चर्चा, प्रसंग। उ.—कहाँ स्याम मिलि बैठी कबहूँ कहनावति ब्रज ऐसी। लूटहिं यह उपहास हमारौ यह तौ बात अनैसी —पृ. ३२४।

कहनूत—संज्ञा स्त्री. [हि. कहना + उत (प्रत्य)] कहावत, कहनावत।

कहर—संज्ञा पुं. [अ.] विपत्ति, संकट।

वि.—[अ. कह्हार] (१) घोर, भयकर। (२) अपार, अथाह।

कहरति—क्रि. अ. [हि. कहरना] पीड़ित है, कराहती है। उ.—मोह विपिन में पड़ी कराहति हौं नेह जीव नहिं जात। सूरस्याम गुन सुमिरि सुमिरि वै अंतरगति पछितात—पृ. ३२६।

कहरना—क्रि. अ. [हि. कराहना] पीड़ा से 'आह' करना, कराहना।

कहरी—वि. [हि. कहर] विपत्ति लानेवाला।

कहल—संज्ञा पुं. [देश.] (१) हवा के बंद हो जाने पर बढ़नेवाली गर्मी, उमस। (२) कष्ट।

कहलना—क्रि. अ. [हि. कहल] अकुलाना, व्याकुल होना।

कहलवाना, कहलाना—क्रि. स. [हि. 'कहना' का प्रे.] (१) कहने की क्रिया दूसरे से कराना। (२) संदेश भेजना।

कहवनि—क्रि. स. [हिं. कहना] कहना है। उ.—अब मोकौं उनसौं कहवनि है कछु मैं गई बुलावन। आपुहिं काल्हि कृपा यह कीन्ही अजिर गये करि पावन—२१६४।

कहवाँ—क्रि. वि. [हि. कहाँ] कहाँ।

कहवाए—क्रि. स. [हिं. कहवाना] कहलाये, प्रसिद्ध हुए। उ.—(क) सूरजबंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए—६-२। (ख) राजा उग्रसेन कहवाए —२६४३।

कहवाना—क्रि. स. [हि. 'कहना' का प्रे.] (१) कहलाना। (२) संदेश भेजना।

कहवायौ—क्रि. स. [हिं. कहलाना] कहा जाता है, समझा जाता है, माना जाता है। उ.—बीरा लै आयौ सन्मुख तैं, आदर करि नृप कंस पठायो, जारि करौं परलय छिन भीतर, ब्रज बपुरौ केतिक कहवायौ—५६१।

कहवावत—क्रि. स. [हिं. कहवाना] कहलाते हैं। उ.—(क) सुंदर कमलन की सोभा चरन कमल कहवावत—१६७५। (ख) ऐसेहि जगतपिता कहवावत ऐसे घात करै सो दाता—१४२७। (ग) मधुकर अब भयौ नेह बिरानी। बाहर हेत हतो कहवावत भीतर काज सयानी—३३७५।

कहवावै—क्रि. स. [हिं. कहना] कहलाता है। उ.—(क) सिव सनकादि अंत नहिं पावैं, भक्त-बछल कहवावै—४८२। (ख) वे हैं बड़े महर की बेटी तौ ऐसी कहवावै—१५६६।

कहवैयौ—क्रि. स. [हि. कहना] कहलाना, प्रसिद्ध कराना। उ.—राधा-कान्ह कथा ब्रज घर घर ऐसे जनि कहवैयौ—१४६८।

कहाँ—क्रि. वि. [सं. कुहः] किस जगह, किस स्थान पर।

संज्ञा पुं. [अनु.] पैदा होने वाले बच्चे का शब्द।

कहा—संज्ञा पुं. [सं. कथन, प्रा. कहन, हिं कहना] कथन, बात, आज्ञा, उपदेश, कहना।

क्रि. वि. [सं. कथम्] कैसे, किस प्रकार के। उ.—रूप देखि तुम कहा भुलाने मीत भए बनयाते—२५२८।

सर्व. [सं. कः] क्या (ब्रज)। उ.—कलानिधान सकल गुन सागर, गुरु धौं कहा पढाये (हो)—१-७।

मुहा.—कहा हो—क्या है, तुलना में कुछ नहीं है, तुच्छ है। उ.—तुम जो प्यारी मोही लागत चंद्र चकोर कहा री हो। सूरदास स्वामी इन बातन नागरि रिझई भारी हो—१५६६।

वि.—क्या।

कहाइ—क्रि. स. [हिं. कहाना] कहाकर, कहलाकर, प्रसिद्ध होकर। उ.—(क) वेष धरि-धरि हरयौ परधन साधु-साधु कहाइ—१-४५। (ख) हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ—१-१६५।

कहाउति—संज्ञा स्त्री' [हि. कहावत] कहावत ।

कहाऊँ—क्रि. स. [हि. कहाना] कहलाऊँ । उ.—(क) हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ— १-१६६ । (ख) जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ गंगासुत न कहाऊँ —सारा. ७८० ।

कहाऊँगो—क्रि. स. [हि. कहाना] कहलाऊँगा ।

कहाए—क्रि. स. [हि. कहना] कहलाये, प्रसिद्ध हुए । उ.—तुम मोसे अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो) । सूरदास-प्रभु भक्त-बछल तुम, पावन-नाम कहाए (हो)—१-७ ।

कहाकही—संज्ञा स्त्री [हि. कहना] वादविवाद ।

कहानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] (१) कथा, आख्यायिका । (२) झूठी या गढ़ी बात, अद्भुत बात । उ.—(क)—कुटिल कुचाल जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि घर आनी । अब वह नवल बधू ह्वै बैठी ब्रज की कहत कहानी— १०८६ । (ख)—सिर रहे जंबुक सरनागति देखी सुनी न अकथ कहानी—पृ. ३४३ (२०) ।

कहार—संज्ञा पुं. [स. कं.=जल + हार अथवा स. स्कंध-भार] एक शूद्र जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का काम करती है ।

कहाल—संज्ञा पुं. [देश.] एक बाजा ।

कहावत—क्रि. स. [हि. कहाना] कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं । उ०—(क) कहावत ऐसे त्यागी दानि । चारि पदारथ दिए सुदामहि अरु गुरु के सुत आनि— १-१३५ । (ख) इन्द्रीजित हौं कहावत हुतौ, आरकौ समुझि मन माहि ह्वै रह्यौ खीनौ—८-१० । (ग) रूप-रसिक लालची कहावत सो करनी कछु वैन भई—२५३७ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] (१) अनुभव की बात जो सुंदर ढंग से कही जाने के कारण प्रसिद्ध हो जाय । (२) कही हुई बात, उक्ति । (३) मृत्यु का संदेश या सूचना ।

कहावै—क्रि. स. [हिं. कहाना] कहलाता है, प्रसिद्ध है । उ०—(क) साँचौ सो लिखहार कहावै । काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै—१-१४२ । (ख) कामिनी नीरज धरै को सो कहावै री—६२६ ।

कहाहिं—क्रि. स. [हिं. कहाना] कहलाते है । उ०—(क) ऐसे लच्छन हैं जिन माहि । माता, तिनसौं साधु कहाहि—३-१३ । (ख) स्याम हलधर सुत तुम्हारे और कौन कहाहि—२६२८ ।

कहि—क्रि. स. [हि. कहना] कहना, कहने में समर्थ होना । मुहा०—कहि परति—कह सकना, वर्णन कर सकना । उ०—काहू के कुल तन न विचारत । अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत—१-१२ । कहि आयौ—कह सका, मुँह से निकल गया । उ०—करत विवस्त्र द्रुपद-तनया कौ, सरनै सब्द कहि आयौ । पूजि अनंत कोटि बसननि हरि अरि को गर्व गँवायौ—१-१६० । कहि न जाइ—कहा नही जा सकता, वर्णन नहीं किया जा सकता । उ—हरष अक्रूर हृदय न माइ । नेम भूल्यौ ध्यान स्याम बलराम कौ हृदय आनन्द मुख कहि न जाय-२५५६ ।

कहिअहु—क्रि स [हि. कहना] कहना जाकर बताना, कह देना । उ.—विजै अधोमुख लेन सूर प्रभु कहिअहु विपति हमारी—सा. उ. ३५ ।

कहिए, कहिए—क्रि स. [हि. कहना] वर्णन कीजिए, बताइए । उ.—सखा भीर लै पैठत घर मैं आपु खाइ तौ सहिऐ । मैं जब चली सामुहे पकरैन, तब के गुन कहा कहिऐ—१०-३२२ ।

कहिबे—संज्ञा स्त्री. [हि. कहना] कथन, वचन । उ.—धिक तुम धिक या कहिबे ऊपर—१-२८४ ।

मुहा०—कहिबे के अनुमानें—केवल कहने के लिए, कहकर अपना मन बहला लेने के लिए । उ.—कहियै जो कुछ होइ सखी री, कहिबे के अनुमानैं । सुंदर स्याम निकाई कौ सुख, नैना ही पै जानैं—७३० ।

क्रि. स.—कहना, समाचार देना, बताना । उ.—ऊधौ और कछू कहिबे कौ । मनमानै सोऊ कहि डारौ पालागैं हम मुनि सहिबे कौ—३०७४ ।

कहिबौ—क्रि. स. [हि. कहना] कहना, बताना, वर्णन करना । उ.—(क) तुम सौं प्रेम कथा कौ कहिबौ मनहु काटिबो घास—३३३६ । (ख) हम पर हेतु किये रहिबो । या ब्रज को व्यवहार सखा तुम हरि सौं सब कहिबो—३४१४ ।

कहियत—क्रि. स. [हिं. कहना] (१) कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं। उ.—(क) वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोइ। या भयभीत देखि लंका में, सीय जरी मति होइ—६-६६। (ख) सूरदास गोपिन हित-कारन कहियत माखन-चोर—४७७। (२) कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ.—राम-कृष्ण अवतार मनोहर भक्तन के हित काज। सोई सार जगत में कहियत सुनो देव द्विजराज—सारा० ११३।

कहियाँ—क्रि. स. [हिं. कहना] कहते हैं, बताते हैं।

क्रि. वि. [हिं. कहँ] को, के लिए। उ.—रघु-कुल-कुमुद चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महियाँ। आए ओप देन रघुकुल कौं, आनंदनिधि सब कहियाँ—६-१६।

कहिया—क्रि. वि. [सं. कुह] कब, किस दिन।

कहियै—क्रि. स. [हिं. कहना] बोलिए, वर्णन कीजिए। उ.—मोसौं बात सकुच तजि कहियै—१-१३५।

कहियौ—क्रि. स. [हिं. कहना] कहना, बोलना, बताना। उ—कह्यौ मयत्रेय सौं समुझाइ। यह तुम विदुरहि कहियौ जाइ—३-४।

मुहा०—तब कहियौ नाम (बलराम)—जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह पूरा न हो तो मेरा नाम नहीं, मेरा कहा ठीक न हो तो मेरा नाम नहीं। उ.—मोहि दुहाई नंद की, अबहीं आवत स्याम। नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८६।

कहिहैं—क्रि. स [हिं. कहना] कहेंगे, बतायेंगे। उ.—ऊधव कह्यौ, हरि कह्यो जो ज्ञान। कहिहैं तुम्हैं मयत्रेय आन—३-४।

कहिहौं—क्रि. स. [हिं कहना] (१) कहूँगा, सूचना दूँगा। (२) शिकायत करूँगा। उ.—रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ—५३६।

कहीं—क्रि. वि. [हिं. कहाँ] (१) किसी ऐसी जगह जिसका पता न हो। (२) नहीं, कभी नहीं। (३) अगर, यदि, कदाचित। (४) बहुत बढ़कर।

कही—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कहना] वर्णन की, बतायी। उ.—मैं तो अपनी कही बड़ाई—१-२०७।

संज्ञा स्त्री —कही हुई बात, उक्ति, कथन। उ.—यह सुनि ग्वाल गये तहँ धाई। नंद महर की कही सुनायी—१००४।

कहीन्यौ—क्रि. स. [हिं. कहना] कहा है, वर्णन किया है। उ.—जो जस करै सो पावै तैसौ, वेद-पुरान कहीन्यौ—८-१५।

कहुँ—क्रि. वि. [हिं. कहूँ] कहीं, किसी स्थान पर। उ.—अब तुम मोसौं करौ अजाची, जौ कहुँ कर न पसारौं—१०-३७।

कहु—क्रि. वि. [हिं. कहो] कहो। उ.—खग-अंगुली अरु गीध-गीधनी, आइ जनम लियौ तैसौ। उनहूँ कैं गृह, सुत, दारा हैं उन्हें भेद कहु कैसौ—२-१४।

कहूँ—क्रि. वि. [सं. कुह, हिं. कहीं] कहीं, किसी स्थान पर। उ.—(क) हरि चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची—१-१८। (ख) मेरे लाड़िले हो तुम जाउ न कहूँ—१०-२६५।

मुहा०—कहूँ की कहूँ—कहीं की कहीं, एक सीधे प्रसंग से हटाकर किसी अन्य दूर के संबंध में जोड़ लेना, दूर का अर्थ निकालना। उ.—कहा करौ तुम बात कहूँ की कहूँ लगावति। तरुनिन इहै सोहात मोहिं यह कैसे भावति—१०७१।

कहे—संज्ञा पुं [हिं. कहना] कहना, कथन। उ.—मेरे कहे में कोऊ नाहीं—११६५।

क्रि. स.—बोले, वर्णित किये। उ.—नव स्कंध नृप सौं कहे श्रीसुकदेव सुजान - १०-१।

कहैं—संज्ञा पुं. [हिं. कहना] कहने से, बात मानकर। उ.—कहैं तात के पंचवटी वन छाँड़ि चले रजधानी —१०-१६६।

क्रि. स.—कहते हैं, बताते हैं। उ.—(क) चलत पथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ —३-१३। (ख) तनक सी बात कहै तनक तनकि रहे—१०-१५०। (ग) जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा-राय कहै—१-५३।

कहैंगे—क्रि. स. [हिं. कहना] कहेंगे, बतायँगे। उ.—नट मुनि मोहि कहा कहैंगे देखि तरु दोउ आइ —३८७।

कहैगौ—क्रि. स [हि. कहना] कहेगा, बोलेगा, अभिप्राय प्रकट करेगा। उ.—कब हँसि बात कहैगौ मोसौं जा छवि तैं दुख दूरि हरै—१०-७६।

कहैहैं—क्रि स. [हि. कहाना] कहलायँगे, प्रसिद्ध होंगे। उ.—नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रजनगरी —१०-३११।

कहैहौं—क्रि. स. [हि. कहाना] कहलाऊगा। उ.—(क) हृदय कठोर कुलिस तें मेरौ, अब नहिं दीनदयाल कहैहौं—७-५। (ख) काटि दसौ सिर बीस भुजा तब दसरथ-सुत जु कहैहौं—९-११३।

कहौं—क्रि. स. [हि कहना] कहूँ, वर्णन करूँ। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद परतगी। सूरदास, यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनगी —१-२१।

कहौंगो—क्रि. स. [हि. कहना] कहूँगा, बताऊँगा। उ—जब मोहि अंगद कुसल पूछिहैं, कहा कहौंगो वाहि—९-७५।

कहौ—क्रि. स. [हि. कहना] कहो, बताओ, समझाओ। उ—सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए—१-५२।

कहौगे—क्रि. स. [हि. कहना] बहकाओगे, बातों में भुलाओगे, बनावटी बातें करोगे। उ.— लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे। मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखैं निवहौगे—१० २५३।

कह्यउ—क्रि. स. [हि. कहना] कहा। उ.— नृपति कह्यउ मेरे गृह चलिये करो कृतारथ मोय— सारा ८००।

कह्यौ—क्रि. स. [हि. कहना] 'कहना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'कहा' का ब्रजभाषा का रूप, कहा, कहे। उ.—(क) का न कियौ जन-हित जदुराई। प्रथम कह्यौ जो वचन दयारत तिहि बस गोकुल गाय चराई—१-६। (ख) हरि कह्यौ-जज्ञ करत तहँ बाम्हन—८००। (ग) सूरदास प्रभु अतुलित महिमा जो कछु कह्यौ सो थोड़ा—१० उ.-५१।

संज्ञा पुं.—कहा, कथन, बात। उ.—(क) अजहूँ चेति, कह्यौ करि मेरौ, कहत पसारे बाहीं—१-२६६। (ख) बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात—२—२४। (ग) तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी। तब तजि चली बिरह अकुलानी —८००।

काँइयाँ—वि. [अनु० काँव-काँव] जो बहुत चालाकी दिखाये, धूर्त।

काँई— अव्य० [सं० किम्] क्यों।

सर्व [हि. काहि] किसे, किसको।

काँकर—संज्ञा पुं. [सं. कर्कर] ककड़।

काँकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोकर] कंकड़ी।

काँ काँ—संज्ञा. पुं. [अनु.] कौए की बोली। उ.—घरी इक सजन-कुटुंब मिलि बैठें, रुदन बिलाप कराहीं। जैसें काग काग के मूएँ काँ काँ करि उड़ि जाहीं—१-३१९।

काँक्षा—संज्ञा. स्त्री. [सं.] इच्छा, चाह।

काँक्षी—वि. [सं. कांक्षिन] इच्छा या चाह रखनेवाला, अभिलाषी।

काँख—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष] बगल।

काँखना—क्रि. अ. [अनु.] कराहना।

काँखासोती—संज्ञा स्त्री. [हि. काँख+सं. श्रोत्र, प्रा. सोत] जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का ढंग।

काँखी—संज्ञा पुं. [सं. कांक्षी] चाहनेवाला, इच्छा रखनेवाला। उ.—सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू न दुविधा राखी। सूरदास ब्रजनारि संग हरि माँगी करहिं नहीं कोऊ काँखी—१८५६।

काँगनी—संज्ञा स्त्री. [हि. कँगनी] छोटा कंकण।

काँगही—संज्ञा स्त्री. [हि. कघी] कघी, छोटा कंघा।

काँगुरा—संज्ञा पुं. [हि. कँगूरा] (१) शिखर, चोटी। (२) बुर्ज।

काँच—संज्ञा पुं. (स. काँच) एक प्रकार का शीशा, पारदर्शक शीशा। उ.—(क) कंचन-मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ—१-१६६। (ख) सूरदास कंचन अरु काँचहि एकहिं धगा पिरोयौ—१ ४३।

संज्ञा स्त्री. [स. कक्ष] धोती का पीछे खोंसा जानेवाला भाग।

काँचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना। (२) चंपा। (३) धतूरा।

काँचरी, काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं. कंचुलिका] (१) साँप की केंचुली। (२) चोली, कंचुकी।

काँचा—वि. [हिं. कच्चा] (१) जो पका न हो, कच्चा। (२) दुर्बल, अस्थिर।

काँची—वि. स्त्री. [हिं. पु. कच्चा] कच्ची, अपक्व। उ.—मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै लै भरि भरि। पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काँची गागरि गरि—१०-१२०।

मुहा०—काँची मति—खोटी समझ, कच्ची बुद्धि। उ.—हरिचरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची—१-१८।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करधनी। (२) गुंजा, घुँघची।

काँचुरी, काँचुली—संज्ञा. स्त्री. [सं. कंचुलिका, हिं. काँचली] साँप की केंचुल (केंचुली)। उ.—को है सुनत कहत कासौं हौ कौन कथा अनुसारी। सूर स्याम सँग जात भयौ मन अहि काँचुली उतारी—३२६१।

काँचे—वि. [हिं. कच्चा] कच्चा, दुर्बल, जो किसी विषय में दृढ़ न हो, अस्थिर। उ.—ऊधौ स्याम सखा तुम साँचे। फिर करि लियौ स्वाँग बीचहि तै वैसेहि लागत काँचे।

मुहा.—काँचे मन—मन में दृढ़ता न होना।

संज्ञा पुं. [सं. काच] काँच, शीशा। उ — प्रेम-योग रस कथा कहौ कंचन की काँचे—३४४३।

काँचै—संज्ञा पु. [सं. कोंच] काँच, शीशा। उ —यह व्रत धरे लोक मैं बिचरै, सम करि गनै महामनि काँचै—२-११।

काँचौ—वि [हिं. कच्चा, काँचा] (१) कच्चा, अपक्व। (२) अदृढ़, दुर्बल, अस्थिर। उ.—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ—१-३२। (३) जो मजबूत या पक्का न हो। उ.—जब तै आँगन खेलत देख्यौ मैं जसुदा कौ पूत री। तब तै गृह सौ नातौ टूट्यौ जैसे काँचौ सूत री—१०-१३६। (४) जो औटाया या पकाया न गया हो, ताजा दुहा हुआ। उ —काँचौ दूध पियावति पचि पचि देत न माखन रोटी—१०-१७५।

काँछना—क्रि. स. [हिं. काछना] सँवारना, पहनना।

काँछा—संज्ञा स्त्री. [सं. कांक्षा] इच्छा, चाह।

काँजी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांजिक] (१) पानी में पिसी राई का घोल जो दो तीन दिन रखने से खट्टा हो गया हो। (२) मट्ठा, छाँछ।

काँट—संज्ञा पुं. [हिं. काँटा] काँटा।

वि. स्त्री.—कटीली, प्रभावित करनेवाली, मुग्ध करनेवाली। उ.—भौहैं काँट कटीलियाँ सखि बस कीन्ही बिन मोल—१४६३।

काँटा—संज्ञा पुं. [सं. कटक] (१) पेड़-पौधों के नुकीले अंकुर, कंटक। (२) नुकीली वस्तु। (३) तराजू की सुई। (४) नाक में पहनने की कील, लौंग। (५) खटकनेवाली बात।

काँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँटा का अल्प.] (१) कटिया, कील। (२) छोटी तराजू। (३) झुकी हुई कील, अँकुड़ी।

काँठा—संज्ञा पुं. [सं. कंठ] (१) गला। (२) तोते के गले की गोल रेखा। (३) किनारा, तट। (४) बगल।

काँड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँस, ईख आदि का पोर। (२) वृक्ष का तना। (३) शाखा, डंठल। (४) गुच्छा। (५) धनुष के बीच का मोटा भाग। (६) कार्य का भाग। (७) ग्रंथ का वह भाग जिसमें एक विषय पूरा हो। (८) समूह। (९) झूठी प्रशंसा। (१०) निर्जन स्थान। (११) घटना।

वि.—बुरा।

काँड़ना—क्रि स. [सं. कंडन (कडि=भूसी अलग करना] (१) रौंदना, कुचलना। (२) कूट कर चावल की भूसी अलग करना। (३) मारना पीटना।

काँड़ी—संज्ञा स्त्री [सं. कांड] (१) धान कूटने का गड्ढा। (२) छड़, लट्ठा, डंठल।

कांत—संज्ञा पु० [सं०] (१) पति। (२) श्री कृष्ण का एक नाम। (३) चंद्रमा। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) वसंत ऋतु।

कांतलौह—संज्ञा पु० [सं०] चुंबक।

कांता—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुन्दर स्त्री। (२) विवाहित स्त्री, पत्नी।

कांतार—संज्ञा पु० [सं०] (१) भयानक स्थान। (२) गहन वन। (३) खेद। (४) दरार। (५) बाँस।

कॉति, कांति—संज्ञा स्त्री०[सं०] (१) प्रकाश, आभा, तेज। उ०—बदन कॉति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि—३५१। (२) शोभा, छवि। उ०—गोरे भाल बिंदु बंदन मनु इन्दु प्रात-रवि काति ७०८।

कांतिमान्—वि० [सं० कातिमत्] (१) कांति या चमक वाला। (२) सुन्दर।

कांतिसार—संज्ञा पुं० [सं० कांत] एक प्रकार का बढ़िया लोहा।

कॉती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती, हिं. काती] (१) बिच्छू का डंक। (२) कैंची, कतरनी। (३) छोटी तलवार। (४) छुरी। उ०—कोउ ब्रज बॉचत नाहिन पाती। कत लिखि लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की कॉती—२९८०।

कॉथरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कंथा] गुदड़ी, कथरी।

कॉदना—क्रि०स० [सं० क्रंदन=चिल्लाना] रोना, चिल्लाना।

कॉदव, कॉदो—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम] कीच, कीचड़।

कॉध—संज्ञा पुं. [हिं. कंधा] कंधा। उ.—(क) कॉध कमरिया हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ—४८७। (ख)—कहत न बनै कॉध कामरि छबि बन गैयन को घेरन—३२७७। (ग) बन बन गाय चरावत डोलत कॉध कमरिया राजे—७४१ सारा.।

कॉधना—क्रि. स. [हिं कॉध] (१) उठाना, सम्हालना। (२) ठानना, मचना। (३) सहन करना (४) स्वीकार करना।

कॉधर—संज्ञा पु. [सं. कृष्ण, प्रा. कण्ह] कृष्ण।

कोधा—क्रि. स. [हिं. कॉधना] (१) उठाया, सम्हाला। (२) स्वीकार किया।

संज्ञा पुं. [हिं. कंधा] कंधा।

कॉधयतु—क्रि. स. [हिं. कॉधना] (युद्ध) ठानते या मचाते हैं।

कॉधी—क्रि स. [हिं. कॉधन] मानी, स्वीकार की। उ.—जाकी बात कही तुम हम सौं सोधौं कहौ को कॉधी। तेरो कहो सो पवन भूस भयौ बहो जात ज्यौं आँधी—३०२१।

कॉधे, कॉधैं—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, प्रा. खंभ] कंधा, कंधे पर। उ.—(क) तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यौ। सुख-आसन कॉधे पर गह्यौ—५-३। (ख) ग्वाल के कॉधे चढे तब लिए छींके उतारि—१०-२८६। (ग) और बहुन कॉवरि दधि-माखन अहिरनि कॉधे जोरि—५८३। (घ) ग्वाल-रूप इक खेलत हो सँग लै गयौ कॉधे डारि—६०४।

क्रि. स. [हिं. कॉधना] (१) उठाये, सम्हाले। (२) स्वीकार करे।

कॉधो—क्रि. स. [हिं. कॉधना] (१) (युद्ध) ठानना, संग्राम करना। (२) स्वीकार करना, अंगीकार करना।

कॉन—संज्ञा पु. [सं. कृष्ण, हिं. कान्ह] कृष्ण।

कॉप—संज्ञा पु. [सं. कंपा] (१) बाँस की लचीली तीली। (२) कान में पहनने का एक गहना, करनफूल।

कॉपत—क्रि. स. [हिं. कॉपना] डर से कॉपते हैं, थर्राते हैं। उ.—(क) उछरत सिंधु, धराधर कॉपत, कमठ पीठ अकुलाइ। सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ—१०-६४। (ख) मंदर डरत सिंधु पुनि कॉपत फिरि जनि मथन करै—१०-१४३।

कॉपि—क्रि. स. [हिं. कॉपना] थरथरा कर, कॉपकर। उ.—पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली कॉपि देखि सब साँपि अवसान भूले—५५२।

कॉपन—क्रि. स. [हिं. कॉपना] हिलने या थरथराने (लगी)। उ.—कॉपन लागी धरा पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई। आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकैं पाई—१८-२०७।

कॉपना—क्रि. स. [सं. कंपन] (१) हिलना, थरथराना। (२) डर से थर्राना। (३) डरना।

कॉपा—क्रि. स. [हिं. कॉपना] हिला डुला, थरथराया।

कॉपी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कॉपना] (१) हिलने डुलने लगी। (२) थर्राने लगी, डर से कॉपने लगी। उ.—कॉपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि—९-१५८।

कॉपै—क्रि. स. [हिं. कॉपना] (१) हिलता-डुलता है, थर्राता है। उ.—(क) चितवनि ललित लकुटलासा लट कॉपै अलक तरंग—पृ. ३२५। (ख) ग्वालनि देखि मनहिं रिस कॉपै—५८५।

कॉपौं— क्रि. स. [सं. कंपन, हिं. कॉपना] डर से काँपता था, थर्राता था। उ.—हौ डरपो, काँपौं अरु रोवा, कोउ नहि धीर धराऊ। थरसि गयौ नहिं भागि सकौ, वै भागे जात अगाऊ—४८१।

कॉप्यौ—क्रि. स. [सं. कंपन, हि. कॉपना] (१) काँपा, डरा, भयभीत हुआ, थर्राया। उ.—(क) काल बली तें सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हू रोए—१-५२। (ख) उर कॉप्यो तन पुलकि पसीज्यौं बिसरि गये मुख-बैन—७४६।

कॉय कॉय, कॉव कॉव—संज्ञा, पुं. [अनु.] कौए का शब्द।

काँवर—संज्ञा स्त्री [हिं कॉंध + आव (प्रत्य.)] बहँगी जिसके दोनो सिरो पर लंबे छींके होते हैं। उ.—धेनु चरावन चले स्यामघन ग्वाल मंडली जोर। हलधर सग छाक भरि काँवर करत कुलाहल सोर —४७१ सारा.।

कॉवरा—वि. [पं. कमला=पागल] घबराया हुआ, हक्का-बक्का।

काँवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कॉवर] बहँगी, जिसके सिरे पर सामान ले जाने के लिए लंबे छींके होते हैं। उ.—(क) सहस सकट भरि कमल चलाये। । और बहुत काँवरि दधि माखन, अहिरनि काँधे जोरि। नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ बिनती कीजौ मोरि ५८३। (ख) ओदन भोजन दै दधि काँवरि भूख लगे तैं खैहौं-४१२।

कॉवरिया—संज्ञा पु [हि. काँवरि] बहँगी ले जानेवाला।

कॉवॉरथी—संज्ञा पुं. [सं. कामार्थी] किसी कामना से तीर्थ-यात्रा करनेवाला।

काँस—संज्ञा [सं. काश] एक प्रकार की घास। उ.-(क) लटकि जात जरि जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस ताल-५९४। (ख) डासन काँस कामरी ओढ़न बैठन गोप सभा ही—२२७५।

कॉसा, कॉस्य—संज्ञा पु [सं. कास्य] ताँबे और जस्ते के मिश्रण से बनी एक धातु।

का—प्रत्य [सं प्रत्य. क] संबंध या षष्ठी का चिन्ह या विभक्ति।

सर्व. [सं. कः] (१) क्या, कैसा। उ.—(क) का न कियो जन-हित जदुराई—१-८ (ख) देखौ धौं का रस चरननि मैं मुख मेलत करि आरति —१०-६४। (२) ब्रजभाषा में 'किस' या 'कौन' का विभक्ति लगने से पूर्व रूप। जैसे काको, कामें।

काइफल—संज्ञा पु. [सं. कट्फल, हिं. कायफल] एक वृक्ष जिसकी छाल दवा के काम आती है। उ.—कूट काइफल सोंठ चिरैता कटजीरा कहुँ देखत-११०८।

काई—संज्ञा स्त्री. [सं. कावार] (१) जल पर जमनेवाली एक प्रकार की महीन घास जो हलके हरे रंग की होती है। (२) मैल।

काऊ — क्रि. वि. [सं. कदा] कभी।

सर्व [सं. क.] (१) कोई। (२) कुछ।

काक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौआ। (२) लँगड़ा।

काकगोलक—संज्ञा पुं. [सं.] कौए की आँख की पुतली जो केवल एक होती है और दोनो आँखों में आती-जाती रहती है।

काकतालीय—वि. [सं] संयोगवश घटित होनेवाला।

काकदंत—संज्ञा पुं. [सं.] कौए के दाँत की तरह अविश्वसनीय बात।

काकपक्ष, काकपच्छ—संज्ञा पुं. [सं. काकपक्ष] बालों के पट्टे जो दोनो ओर कानों और कनपटियों के ऊपर रहते है, जुल्फ, कुल्ला। उ. – (क) कटि तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस—९-२०। (ख) कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, अग-अंग दोउ बीर—९-२६।

काकपद, काकपाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक चिन्ह जो छूटे हुए अंश का स्थान बताने के लिए लगाया जाता है।

काकपाली संज्ञा स्त्री. [सं.] कोयल।

काकवंध्या— संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्त्री जो केवल एक संतान उत्पन्न करे।

काकभुशुंडि— संज्ञा पुं. [सं.] राम का भक्त एक ब्राह्मण जो लोमश ऋषि के शाप से कौआ हो गया था।

काकरी—संज्ञा स्त्री [सं कर्कटी] ककड़ी।

काकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कोमल या मधुर ध्वनि। (२) गुंजा।

काका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घुँघची, (२) मकोय।
सज्ञा पुं. [फा.काका=बड़ा भाई] बाप का भाई, चाचा।

काकिणी, काकिनी—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुंजा, घुँघची। (२) कौड़ी।

काकी—सर्व. स्त्री. [हिं. का+की (प्रत्य.)] किसकी। (क) काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहि भय दुरजन-डरिहै —१-२६। उ.—(ख) तिन पूछ्यौ तू काकी धी है—४-१२ (ग) बूझत स्याम कौन तू गोरी। कहाँ रहत काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी—६७३।
सज्ञा स्त्री [हि. पुं. काका] चाचा की पत्नी, चाची।

काकु—सज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यंग्य, ताना, चुटीली बात। (२) एक अलंकार जिसमें शब्दों की ध्वनि से ही अर्थ समझा जाय।

काकुल—संज्ञा पुं. [फा.] कनपटी पर लटकते हुए लंबे बाल, जुल्फें।

काके—सर्व. [हिं. का + के (प्रत्य०)] किसके। उ.—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं ? —१-२९।

काकैं—सर्व. [सं. कः, हिं. का (कौन)+कैं (विभक्ति)] किसके, किसके यहाँ। उ.—काकैं सत्रु जन्म लीन्यौ है, बूझौ मतौ बुलाई—१०-४।

काकोदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौए का पेट। (२) साँप।

काकौ—सर्व. [हिं. का+कौ (प्रत्य.)] किसका, किसको। उ.—काकौ बदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी सभरिहै—१-२६।

काख—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष, हि. काँख] काँख, बगल। उ.—आतम ब्रह्म लखावत डोलत घर घर व्यापक जोई। चापे काँख फिरत निर्गुन गुन इहाँ गाहक नहिं कोई—३०२२।

काखी—संज्ञा पुं. [सं. काँक्षी, हि. काँखी] चाहनेवाला, इच्छुक। उ.—सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू न दुबिधा राखी। सूरदास ब्रजनारि संग हरि बाकी रह्यो न कोऊ काखी —१८५६।

काख्यौ—संज्ञा स्त्री. [सं काक्षा] इच्छा, चाह। उ.—फागु रंग करि हरि रस राख्यौ। रह्यौ न मन जुवतिन के काख्यौ—२४५६।

काग—संज्ञा पुं. [सं काक] कौआ, वायस।

कागज—सज्ञा पु [अ. कागज] (१)सन, रुई आदि से बना हुआ लिखने का पत्र। उ.—तनु जोबन ऐसे चलि जैहै जनु फागुन की होरी। भीजि बिनसि जाइ छन भीतर ज्यौं कागज की चोली री—२०४०। (२) समाचार पत्र। (३) लेख। (४) प्रमाणपत्र।

कागद—संज्ञा पु. [हि. कागज] कागज।—उ.—(क) चित्रगुप्त जमद्वार लिखत हैं, मेरे पातक भारि। तिनहुँ चाहि करी सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि —१-१६७। (ख) बिचारत ही लागे दिन जान। सजल देह, कागद तैं कोमल, किहिं बिधि राखै प्रान—१-३०४।

कागभुसुंड, कागभुसुंडी—संज्ञा पुं. [सं. काकभुशुंडि] एक ब्राह्मण जो शाप से कौआ हो गया था।

कागर—सज्ञा पुं० [अ० कागज] (१) कागज। उ.—(क) तुम्हरे देस कागर-मसि खूटी। प्यास अरु नींद गई सब हरि कै बिना बिरह तन टूटी। (ख) रति के समाचार लिखि पठए सुभग कलेवर कागर—२१२८।

मुहा.—चढावै कागर—कागज पर लिख ले, टाँक ले। उ.—अब तुम नाम गहौ मन नागर। जातैं काल अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर। मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावें कागर—१-६१। नाव कागर की—शीघ्र डूब जाने या नष्ट हो जानेवाली चीज, अधिक समय तक न टिकनेवाली चीज। उ.—जेइ निर्गुन गुनहीन गनैगौ सुनि सुंदरि अलसात। दीरघ नदी नाउ कागर की को देखो चढि जात—३२८२।

(२) पक्षियों के पर, पंख। (३) प्रमाणपत्र। (४)दस्तावेज, बहीखाता। उ.—व्याध, गीध, गनिका जिहि कागर, हौं तिहिं चिठि न चढायौ—१-१६३।

कागरी—वि० [हिं० कागर=कागज], तुच्छ, हीन।

कागा—सज्ञा पुं० [हिं० काग] कौआ।

कागरवासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागा+बासी] सबेरे के समय छानी जानेवाली भाँग।

कांगा-रोल—संज्ञा पुं० [हिं० काग = कौआ + रौल = रोर = शोर] कौओं की काँव-काँव की तरह होने वाला शोर।

कागासुर—संज्ञा पुं० [स. काक + असुर] कंस के एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ०—तृनावर्त-से दूत पठाये। ता पाछे कागासुर धाये—५२१।

कागौर—संज्ञा पुं० [सं० काकबलि] श्राद्ध में भोजन का वह भाग जो कौए के लिए निकाला जाता है।

काच—संज्ञा पुं० [हिं० काँच] शीशा। उ०—काच पोत गिरि जाइ नंदघर गथौ न पूजै —११२७।

वि० [हिं० कच्चा] (१) जो पका न हो, कच्चा। (२) जिसका मन पक्का न हो, कायर।

काचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा, कचरी] (१) कच्चे फल। पिसे हुए चावल या साबूदाने के सुखाये हुए टुकड़े जो घी में तलकर खाये जाते हैं। उ०—पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी—३९६।

संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुलिका, हिं० काँचली] साँप की केंचुल। उ०—ज्यों भुयंग काचरी बिसरात फिरि नहि ताहि निहारत। तैसेहिं जाइ मिले इकटक ह्वै डरत लाज निरवारत—पृ० ३२१।

काचा—वि० [हिं० कच्चा] (१) कच्चा। (२) अस्थिर, चंचल। (३) जो झूठा हो, जो नष्ट हो जाय, मिथ्या, अनित्य।

काची—वि० स्त्री० [हिं० पुं० कच्चा] (१) कच्ची, जो पकी न हो। (२ जिसका व्रत या निश्चय दृढ़ न हो, भक्ति या प्रीति में जो कच्ची हो। उ०—(क) दीन बानी स्रवन सुनि सुनि द्रए परम कृपाल। सूर एकहु अंग न काँची धन्य धनि ब्रजबाल—पृ० ३४२-१७। (ख) सूर एकहु अंग न काँची मैं देखी टकटोरी—३४६८। (३) झूठी, बनावटी, टालमटोल की, हँसने योग्य। उ०—कहे बनै छाँड़ौ चतुराई बात नहीं यह काची। सूरदास राधिका सयानी रूपरासि-रसखानी—१४३८।

काचे—वि० [हिं० कच्चा] (१) कच्चे, अकुशल, नौसिखिया, अदक्ष। उ.—भले ही जु जाने लाल अरगजे भीने माल बेसरि तिलक भाल मैन मत्र काचे—२००३। (२) कच्चे, शीघ्र टूट जानेवाले। उ०— प्रेम न रुकत हमारे बूते। किहि गयंद बाँध्यौ सुन मधुकर पदुमनाल के काचे सूते—३३०५।

काछ—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ, प्रा० कच्छ] (१) धोती का भाग जो पेड़ू से जाँघ के कुछ नीचे तक रहता है। उ०—(क) सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नांगे पाइनि, गाइनि टहल करैं—४५३। (ख) कटि तट काछ बिराजई पीतांबर छबि देत—२३५०। (२) पेड़ू से जाँघ के कुछ नीचे तक का भाग।

काछत—क्रि० स० [हिं० काछना] स्वाँग बनाते हैं, वेष धरते हैं, रूप धरते हैं, चाल चलते हैं। उ०—स्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मानत तोऊ है। सूर स्याम जितने रंग काछत जुवती-जन-मन के गोऊ हैं—११५६।

काछना—क्रि० स० [कच्छ, प्रा० कच्छ] (१) धोती, काछनी आदि पहनना। (२) बनाना, सँवारना। (३) वेश धरना, स्वाँग बनाना।

काछनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] (१) ऊँची कसी धोती, कछनी। उ०—काछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड—१-३०७। (२) मूर्तियों का चुन्नटदार पहनावा जो प्रायः जाँघिए के ऊपर पहना जाता है।

काछा—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] धोती जो कसकर पहनी जाय और जिसकी दोनों लाँगों को ऊपर खोंसा जाय, कछनी।

काछि—क्रि० स० [सं० कच्छ, प्रा० कच्छ, हिं० कच्छ] बन-ठनकर, साज-सँवार कर। उ०— क) माया को कटि फेटौ बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—१-१५३। (ख) कीन्हे स्वाँग जिते जाने मैं, एक तौ न बच्यौ। सोधि सकल गुन काछि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ —१-१७४।

काछी—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ = जलप्राय भूमि] तरकारी बोने-बेचने वाली एक जाति।

काछू—संज्ञा पुं० [हिं० कछुआ] कछुआ।

काछे—क्रि० स० [सं० कच्छ, प्रा० कच्छ, हिं० काछना] बनाये हुये, सँवारे हुए, पहने हुये। उ०—तीन्यौ पन

मैं ओर निबाहे इहै स्वाँग कौं काछे। सूरदास कौं यहै बड़ो दुख, परति सबनि के पाछे—१-१३६।

क्रि० वि० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] पास, निकट, समीप। उ०—ताहि कह्यौ सुख दे चलि हरि कौ मैं आवति हौं पाछे। वैसहि फिरी सूर के प्रभु पै जहाँ कुंज गृह काछे।

काछ्यौ—क्रि. स. [हिं. काछना] (रूप) धारण किया, बनाया। उ.—तब केसी है वर वपु काछ्यो लै गयौ पीठि चढाइ। उतरि परे हरि ता ऊपर तें कीन्हौ युद्ध अघाइ—२३७७।

काज—संज्ञा. पुं. [सं. कार्य, प्रा. कज्ज]। (१) कार्य, काम, कृत्य, सेवा कार्य। उ.—पाईं धोइ मंदिर पग धारे काज देव के कीन्हे—१०-२६०।

मुहा०—काज बिगारत—काम बिगड़ता है, नष्ट करता है। उ.—ज्ञानी लोभ करत नहिं कबहूँ, लोभ बिगारत काज। काज बिगारयौ— काम या मामला बिगाड़ दिया; सब चौपट कर दिया। उ.—रसना हूँ कौ कारज सारयो। मैं यौं अपनौ काम बिगारयौ—४-१२। काज सँवारे—काम बना दिया। उ.—(क) कहा गुन बरनौ स्याम तिहारे। कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका सब के काज सँवारे—१-२१। (ख) जो पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भये सब काज सँवारे—१-६४।

(२) व्यवसाय, धंधा। (३) अर्थ, उद्देश्य, प्रयोजन। उ.—(क) नृप कह्यौ सुरनि कैं हेतु मैं जग्य कियौ इंद्र मम अस्व किहिं काज लीन्हौ—४-११। (ख) गोपालहि राखौ मधुबन जात। लाज गये कछु काज न सरिहै बिछुरत नंद के तात—२५३१।

मुहा०—काज सरत—उद्देश्य पूरा हो, अर्थ सिद्ध हो। उ.—अविहित बाद-विवाद सकल मत इन लगि भेष धरत। इहि विधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत—१-५५। (इनहीं, तुमहीं) काज—(इनके, तुम्हारे) लिए, हेतु, निमित्त। उ—(क) गाउँ तजौं कहुँ जाउँ निकसि लै, इनही काज पराउँ—५२८। (ख) पूछौ जाइ तात सौं बात। मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात—५३०। काज परयौ—काम पड़ा, मतलब अटका, प्रयोजन पड़ा, आवश्यकता हुई। उ.—बोलि-बोलि सुत-स्वजन-मित्रजन, लीन्हौ सुजस सुहायौ। परयौ जु काज अंत की बिरियाँ तिनहु न आनि छुड़ायौ—२-३०।

काजर—संज्ञा. पु. [सं. कज्जल, हिं. काजल] काजल जो आँख में लगाया जाता है, कालौंछ। उ.—कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख ल्याऊँ—१-१६६।

वि.—काला। उ.—अघासुर मुख पैठि निकसे बाल बच्छ छुड़ाई। लिख्यौ काजर नाग द्वारें स्याम देखि डराई—४६८।

काजरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कज्जली] वह गाय जिसकी आँखों पर काले रंग का घेरा हो।

काजल—संज्ञा पु. [सं. कज्जल] दीपक के धुएँ की कालिख। उ.—वह मथुरा काजल की कोठरि जे आवहि ते कारे।

काजा—संज्ञा पु. [हिं. काज] काम, कृत्य।

मुहा.—(उन) काजा—(उनके) लिए (उनके) हेतु या निमित्त। उ.—तातें सकुचत हौं उन काजा। बालक सुनत होति जिय लाजा—२४५९।

काजी—संज्ञा पु [अ. क़ाज़ी] मुसलमानी न्यायाधीश। उ.—सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं ताको कहा करै काजी—२६७८।

काजूभोजू—वि. [हिं काज + भोग] जो अधिक समय तक काम न आ सके।

काजे—संज्ञा पु. सवि [हिं. काज] (काम) के लिए, (काम) के हेतु या निमित्त। उ—इन लोभी नैनन के काजे परबस भई जो रहौं—२७७४।

काजै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. काज] (काज) के लिए, (काम) के हेतु। उ.—(क) ऐसो को करी अरु भक्त काजैं। जैसो जगदीस जिय धरी लाजै—१-५। (ख) नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै—१० १४६। (ग) तेरे ही काजे गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ—१०-२९५।

काट—क्रि. स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन, हिं. काटना] काटना। उ.—हाथ-पाईं बहुतनि के काट। आइ नवायौ सिवहि ललाट—४-५।

संज्ञा स्त्री. [हि. काटना] (१) काटने की क्रिया। (२) काटने का ढंग, तराश। (३) घाव। (४) छल-कपट, चालबाजी।

वि.—[हि. काटा] तिरछी, टेढ़ी, कटीली, तेज, काट करनेवाली। उ.—भौहैं काट कटीलियाँ मोहिं मोल लई बिन मोल—८६३।

काट-कपट—संज्ञा स्त्री [हि काटना + कपटना] छल-कपट।

काटत—क्रि स [हि. काटना] दूर करते (हो), नष्ट करते (हो), मिटाते (हो)। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत—१-१०७।

काटन—क्रि स. [सं. कर्त्तन, प्रा कट्टन, हि. काटना] (१) काटने के लिए टुकड़े करना। उ—काटन दै दस सीस बीस भुज अपनौ कृत येऊ जो जानहि—९६१। (२) दूर करने या मिटाने के लिए। उ.—जिहिं जिहिं जोनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार। तिहिं काटन कौं समरथ हर कौ तीछन नाम कुठार—६८।

संज्ञा पु.— कतरन।

काटना—क्रि. स [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन] (१) टुकड़े करना, अलग करना। (२) चूरा करना। (३) घाव करना। (४) भाग निकालना। (५) मार डालना। (६) कतरना। (७) नष्ट करना, दूर करना, मिटाना। (८) समय बिताना। (९) रास्ता तय करना। (१०) अनुचित या असत्य ढग से ले लेना। (११) मिटाना। (१२) डसना। (१३) किसी जीव का सामने से निकल जाना। (१४) (किसी की बात या राय का) खडन करना। (१५) बुरा लगना, कष्ट पहुँचाना।

काटर—वि. [सं. कठोर] (१) कड़ा, कठिन। (२) कट्टर। (३) काटनेवाला।

काटि—क्रि. स. [हि. काटना] (१) काट कर, खंड करके। उ.—आनँद मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी—१-३९। (२) किसी जीव का सामने से निकल जाना। उ.—मजारी गई काटि बाट, निकसत तब बाहन—५८९।

काटिबो—क्रि स. [हि. काटना] काटना, छीलना। उ.—तुमसौं प्रेम-कथा कौ कहिबो मनहु काटिबो घास—३३३६।

काटी—क्रि. स. भूत. [हिं. काटना] (१) काट ली। उ.—सूरदास-प्रभु इक पतिनी व्रत, काटी नाक गई खिसियाई—९-५६। (२) टुकड़े टुकड़े कर दिया, चूर-चूर कर दिया। उ.—जोजन-बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी। किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी—९ ९६।

काटू—वि. [हि काटना] (१) काटनेवाला। (२) डरावना, भयानक।

काटे—क्रि० स० [हि. काटना] धड से अलग कर दिये, टुकड़े किये। उ०—जिहि बल रावन के सिर काटे कियौ बिभीषन नृपति निदान—१०-१२७।

काटै—क्रि० स० [हि० काटना] (१) काटता है। उ०—जद्यपि मलय वृक्ष जड़ काटै, कर कुठार पकरै। तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु तन-ताप हरै—१ ११७। (२) नष्ट करता है, मिटाता है। उ०—जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै—३४६।

काटौ—क्रि० स० [हि० काटना] मुक्त करो, छुड़ाओ, छुँटो। उ०—कर जोरि सूर बिनती करै, सुनहु न हो रुकुमिनि-रवन। काटौ न फंद मो अध के, अब बिलंब कारन कवन—१-१८०।

काट्यौ—क्रि० स० भूत० [हि० काटना] (१) काटा, मुक्ति दी, (बंधन से) छुड़ाया। उ०—हा करुनामय कुंजर टेरयौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ। लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन ताकौ—१ ११३। (२) दूर किया, नष्ट किया। उ०—बिछुरन कौ संताप हमारौ, तुम दरसन दै काट्यौ—९८७।

काठ—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ] (१) लकड़ी। (२) लकड़ी की बेड़ी। उ०—माडव ऋषि जब सूली दयौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ—३-५। (३) जलाने की लकड़ी, ईंधन। उ०—ताको जननी की गति दीन्हीं परम कृपालु गुपाल। दीन्हो फूँक काठ तन वाको मिलिके सकल गुपाल—४१८ सारा.। (४) काठ की पुतली।

काठिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ापन।

काठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ] (१) घोड़ा, ऊँट आदि

की पीठ पर कसी जानेवाली जीन या गद्दी जिसमें काठ लगा रहता है। (२) शरीर की गठन।

काढ़त—क्रि. स. [हिं. काढ़ना] (१) खींचा जाता (है), खोला जाता है, आवरण रहित किया जाता (है), निकालता है। उ.—(क) भीषम, द्रोन, करन दुरजोधन, बैठे सभा बिराज। तिन देखत मेरौ पट काढ़त, लीक लगै तुम लाज—१-२५१। (ख) फाटे बसन सकुच अति लागत काढ़त नाहिन हाथ—८१८ सा.। (२) बाल बनाता है, कंघे से बाल सँवारता है। उ.—तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी मोटी। काढ़त-गुहत न्हवावत जैहै नागिन सी भुइँ लोटी—१०-१७५। (३) किसी पदार्थ में पड़े हुए कीड़े-पतंगे निकालता है। उ.—मैं अपने मंदिर के कोनै राख्यौ माखन छानि। ...। सूर स्याम यह उतर बनायौ चींटी काढ़त पानि—१०-२८०।

काढ़ति—क्रि स [हिं. काढ़ना] (रेख आदि) खींचती है, चित्रित करती है। उ.—अपनी अपनी ठकुराइनि की काढ़ति है भुव रेख—पृ. ३४७ (५६)।

काढ़न—क्रि. स. [हिं. काढ़ना] निकालने के लिए, (भीतर की चीज को) बाहर करने के लिए। उ.—देखत हौं गोरस मैं चींटी, काढ़न कौं कर नायौ—१०-२७९।

काढ़ना—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] (१) किसी वस्तु को भीतर से बाहर निकालना। (२) खोलना या आवरण हटाना। (३) अलग करना। (४) बेल-बूटे बनाना। (५) उधार लेना। (६) पकाना।

काढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काढ़ना] पानी में उबाल कर निकाला हुआ ओषधियों का रस।

काढ़ि—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) किसी वस्तु के भीतर से बाहर करना, निकालना। उ०—(क) परयौ भव-जलधि मैं हाथ धारि काढ़ि, मम दोष जनि धारि चित काम—१-२१४। (ख) स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल—१-९९। (२) निकाल देना, आश्रय न देना, शरण में न लेना, ठुकरा देना। उ०—बड़ी है राम-नाम की ओट। सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत हैं, करत। कृपा कैं कोहा।

काढ़ी—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) तैयार की है, प्रस्तुत की है, बनायी है। उ०—(क) चकित भई देखैं ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरैं लिखि लिखि काढ़ी—३९१। (ख) रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी। हरि के चलत देखियत ऐसी मनहुँ चित्रि लिखि काढ़ी—२५३५। (२) कोई वस्तु दूसरी से अलग की। उ०—सब हेरि धरी है साढ़ी। लई ऊपर ऊपर काढ़ी—१०-१८३।

काढ़ो—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] निकालो, (भाव या विचार) दूर करो। उ०—ग्रह नछत्र अरु बेद अरध करि लात हरष मन काढ़ो। तातैं चहत अमरपन तन को समुझ समुझ चित काढ़ो—सा० ६५।

काढ़ौ—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण, हिं० काढ़ना] (१) किसी वस्तु को बाहर करो, निकालो। उ०—जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं। घर के कहत सवारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैं—१-८६। (२) तान लिये, खड़े किये, निकाल कर ताने। उ.—विषधर झटकी पूछ फटकि सहसौ फन काढ़ौ। देख्यौ नैन उघारि, तहाँ बालक इक ठाढ़ौ—५८९।

काढ़यौ—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) निकाल दिया, बाहर किया। उ०—(क) कंचन कलस विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ। तामैं तैं ततछन ही काढ़यौ, पल भर रहन न पायौ—१-३०। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तैं काढ़यौ काली—२५६७। (२) खींचा, निकाला, प्राप्त किया। उ०—यह भुवमंडल कौ रस काढ़यौ भाँति भाँति निज हाथ—८४ सारा०।

कातना—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] रुई से सूत कातना।

कातर—वि० [सं०] (१) अधीर, व्याकुल। उ०—भक्त-विरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे। सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे—१-८। (२) डरा हुआ, भयभीत। (३) कायर। (४) आर्त्त, दुखित।

कातरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अधीरता। (२) दुख। (३) कायरता।

काता—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] सूत, तागा।
  संज्ञा पुं० [सं० कर्त्तृ, कर्त्ता; प्रा० कत्ता] बाँस काटने की छुरी, छुरी।

कातिक—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] क्वार के बाद का महीना।

कातिब—संज्ञा पुं० [अ० कातिब] लिखनेवाला।

कातिल—वि० [अ० कातिल] (१) प्राण हरनेवाला। (२) हत्यारा।

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती] (१) कैंची, कतरनी। (२) छुरी, छोटी तलवार। उ.— ऊधौ कुलिस भई यह छाती। मेरे मन रसिक नंदलालहिं झपत रहत दिन राती। तजि ब्रज लोग पिता अरु जननी कंठ लाइ गए काती—३११६।

कातैं—सर्व. सवि. [सं. कः= हि. का+तैं (प्रत्य०)] किससे। उ.—(क) जुग जुग बिरद यहै चलि आयो टेरि कहत हौं यातैं। मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं-१-१३७। (ख) हम तुम सब बैस एक कातैं को अगरो—१०-३३६।

कात्यायनी—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) दुर्गा देवी। (२) भगवा वस्त्र पहननेवाली विधवा।

काथ—संज्ञा पु. [हि. क्वाथ] कत्था।
  संज्ञा स्त्री [हिं. कंथा] गुदड़ी।

काथरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कथरी] गुदड़ी।

कादंब—वि. [सं] समूह-संबंधी।
  संज्ञा पुं.-(१) कदंब का पेड या फूल। (२) कलहंस। (३) कदंब की शराब।

कादंबरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कोयल। (२) सरस्वती देवी। (३) शराब

कादंबिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेघ, घटा। (२) एक रागिनी।

कादर—वि. [सं. कातर, हिं. कायर (१) डरपोक, भीरु, कायर। (२) व्याकुल, अधीर। उ.-(क) भगत बिरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्व-बल नासत —१-३१. (ख) देखि देखि डरपत ब्रजवासी अतिहि भये मन कादर—६४६।

कादिरी—संज्ञा स्त्री [अ.] एक तरह की चोली।

कान—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कण्ण] श्रवणेंद्रिय, श्रवण, श्रुति।

मुहा०-कान कटाई-जगहँसाई होना, अपमान होना, उ.—(क) कीजै कृष्ण दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई। सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान कटाई—१-१८५ (ख) सूर स्याम अपने या ब्रज की इहि बिधि कान कटाई—३०७७। करी न कान-ध्यान नहीं दिया। उ.—जब तोसौं समुझाइ कही नृप तब तैं करी न कान—१-२६६। कान दै-ध्यान देकर, एकाग्र चित्त होकर, एक ही ओर ध्यान लगाकर। उ.—(क) तू जानति हरि कछू न जानत, सुनत मनोहर कान दै। सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हौ, राखति तन-मन-प्रान दै-१०-२७४। (ख) तब गदगद बानी प्रभु प्रगटी सुन सजनी दै कान—११८४। (ग) सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकनि क्रात—३४७६। कान लगि कह्यौ-चुपके से कहना, धीरे से सलाह देना। उ.—कान लगि कह्यो जननि जसोदा वा घर में बलराम। बलदाऊ कौं आवन दैहौं श्रीदामा सौं काम-१०-२४०। (२) सुनने की शक्ति। (३) कान में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कानि] (१) मर्यादा, लोकलाज। उ.-(क) तोहि अपनो लाल प्यारो हमैं कुल की कान—सा. ११४। (ख) मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है मेटि वेद की कान—७८५ सारा.। (२) लिहाज, संकोच।

संज्ञा पुं. [सं कृष्ण, हिं. कान्ह] कृष्ण। उ.-(क) हौ चाहे तासों सब सीखब रसबस रिझवो कान—सा. ६८। (ख) कूदो कालीदह में कान—सा. ७३। (ग) रथ को देखि बहुत भ्रम कीन्हों धों आये फिर कान—५६१ सारा.।

कानन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल, वन। (२) घर।

काना—वि. [सं. काण] जिसके एक ही आँख हो।
  वि. [सं. कर्ण] कोनेदार, तिरछा, टेढ़ा।
  वि. [सं. कर्णक] जिस फल में कीड़े हों।

कानि—संज्ञा स्त्री. [?] (१) लोक-लाज, मर्यादा, मर्यादा का ध्यान। उ.—जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि—१-२७९। (२) लिहाज, दबाव, संकोच, संबंध का विचार। उ.—

(क) ब्रह्मबान कानि करी बल करि नहिं बाँध्यौ—६-९७ । (ख) जसुदा कहँ लौं कीजै कानि । दिन प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि—१० २८० । (ग) लागे लैन नैन जल भरि भरि, तब मैं कानि न तोरी—१०-२८६ । (घ) लखा परस्पर मारि करें, कोउ कानि न मानें—५८६ ।

कानी—संज्ञा स्त्री. [हि. कानि] लोकलाज, मर्यादा का ध्यान । उ.—(क) कान्हहि बरजति किन नँदरानी । एक गाउँ के बसत कहाँ लौं, करैं नंद की कानी—१०-३११ । (ख) लोक-वेद कुल-धर्म केतकी नेक न मानत कानी हो—२४०० । (२) दबाव, सकोच, लिहाज । उ—कंस करत तुम्हरी अति कानी—१००३ ।

वि स्त्री. [हिं. काना] जिसकी एक आँख फूटी हो, एक आँखवाली । उ.—कुकुची खुमी आँधरि काजर कानी नकटी पहिरै बेसरि । मुँडली पटिया पारि सँवारे कोढी लावै केसरि—३०२६ ।

संज्ञा पु. [हि. कान] कान ।

मुहा०—न कीन्हौ कानी—कान न किया, सुना नहीं, सुनकर ध्यान नहीं दिया । उ.—तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानो । तन तजि चली विरह अकुलानी—८०० ।

वि. स्त्री–[स. कनीनी] सबसे छोटी (उँगली) ।

कानीन—वि. [सं.] क्वारी कन्या से उत्पन्न ।

संज्ञा पु.—वह पुत्र जो क्वारी कन्या से उत्पन्न हुआ हो ।

कानून—सज्ञा [यू० केनान] (१) राजनियम, विधि । (२) नियम-संग्रह, विधान ।

कानें—संज्ञा पुं० [हिं० कान] कान ।

मुहा०—न कीन्हौ कानें—कान नहीं किया, नहीं सुना, सुनकर ध्यान नहीं दिया । उ०—तिन तो कह्यौ न कीन्हौं कानें—८६६

कानैं—संज्ञा पुं० [हिं० कान] कान । उ०—निर्गुन बचन कहहु जनि हमसौं ऐसी करहिं न कानैं—३३६६ ।

कानौ—वि० [स० काना] (१) एक आँख का, काना । उ० —स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन । भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी आधीन—१-३२१ । (२) कमी, दोष । उ०—अपनैं ही अज्ञान—तिमिर मैं बिसर्‍यौ परम ठिकानौं । सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ—१-४७ ।

कान्यकुब्ज—संज्ञा पुं० [स०] (१) एक प्राचीन प्रांत जो वर्तमान कन्नौज के आसपास था । (२) इस देश का निवासी ।

कान्ह, कान्हर—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्री कृष्ण । उ०—मो देखत कान्हर इहि आँगन पग द्वै धरनि धराहि—१० ७५ ।

कान्हरो—सज्ञा पुं० [सं० कर्णाट, हिं० कान्हड़ा] एक राग जो रात को गाया जाता है । उ०-सुर सोवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान—१०१३ सारा. ।

कान्हा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण । उ०—ऐसी रिस करौ न कान्हा । अब खाहु कुँवर कछु नान्हा - १०-१८३ ।

कान्हैं—संज्ञा पुं० सवि० [स० कृष्ण, प्रा० कण्ह, हिं० कान्ह] श्रीकृष्ण को । उ०—कान्हैं लै जसुमति कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाए—१०-५३ ।

कान्है—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण । उ०—सुनु री सखी कहति डोलति है या कन्या सौं कान्है—१०-३१५ ।

कापर, कापरा—सज्ञा पुं० [स० कर्पट=वस्त्र, प्रा० कप्पड़] कपड़ा, वस्त्र । उ०—काढ़ौ कोरे कापरा (अरु) काढ़ौ घी के मौन । जाति पाँति पहिराइ कै (सब) समदि छतकौ पौन—१०-४० ।

कपाल—सज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन संधि ।

कापालिक—सज्ञा पुं० [स०] शैव मत के साधु जो कपाल या खोपड़ी में मांसादि खाते हैं ।

कापालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक बाजा जो मुँह से बजता था ।

कापा—सज्ञा पुं० [हिं० कंपा] बाँस की पतली तीलियाँ जिनमें लासा लगाकर चिड़ियाँ फँसायी या पकड़ी जाती हैं । उ०—मुरली अधर चंप कर कापा मोर मुकुट लट बारि—२७१७ ।

कापाली—सज्ञा पुं० [स० कापालिन्] शिव ।

कापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कायर।

कापै—सर्व० सवि० [सं० कः=का, केन] किससे, किसके द्वारा। उ०—वृन्दावन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ—४६२।

काफिया—संज्ञा पुं० [अ०] अन्त्यानुप्रास, तुक।

काफिर—वि० [अ०] (१) जो इस्लाम धर्म न माने। (२) जो ईश्वर को न माने। (३) निर्दयी।

काफिला—संज्ञा पुं० [अ०] यात्रियों का दल।

काफी—वि० [अ०] जितना चाहिए हो उतना; पर्याप्त।

काबर—वि. [सं कर्बुर, प्रा कब्बुर] चितकबरा।
संज्ञा पु - रेत मिली भूमि, दोमट, खाबर।

काबा—संज्ञा पु [अ.] अरब में मक्के का वह स्थान जहाँ मुहम्मद साहब रहते थे। यह मुसलमानों का तीर्थ है।

काबिल—वि [अ.] (१) योग्य। (२) विद्वान।

काबिस—संज्ञा पुं [सं कपिश] एक रंग जिससे मिट्टी के कच्चे बर्तन रँगे जाते हैं।

काबू—संज्ञा पु [तु] वश, अधिकार।

काम—संज्ञा पु. [सं.] (१) इच्छा, मनोरथ। उ.—(क) सूरदास प्रभु अंतरजामी कीन्हौ पूरन काम—६७६। (ख) चिरजीवौ जसुदा-नँद पूरन काम करी—१-२४। (ग) किये सनाथ बहुत मुनि कुल को बहु विधि पूरे काम—२४७ सारा (२) महादेव। (३) कामदेव। उ—(क) सूरदास प्रभु अंग अंग नागरि मनो काम कियो रूप बयोर—सा. उ १८। (ख) सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ—३५२। (४) इन्द्रियों की विलास की प्रवृत्ति। (५) भोग विलास की इच्छा। उ.—(क) मुख देखत हरि कौ चकित भई तन की सुधि बिसराई। सूरदास प्रभु के रसबस भई काम करी कठिनाई—७२६। (ख) भ्रम-मद-मत्त काम तृष्ना-रस बेग न क्रमै गह्यौ—१ ४६। चार पदार्थों में एक। उ.—अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदारथ देइ गनी—१ ३६।

संज्ञा पु. [सं कर्म, प्रा. कम्म] (१) क्रिया, व्यापार, कार्य। (२) कठिन कार्य, कौशलयुक्त क्रिया। (३) प्रयोजन, अर्थ, मतलब। उ—(क) अन्त के दिन कौं है घनस्याम। माता पिता बन्धु सुत तौ लगि जौ लगि जिहिं कौं काम—१-७६। (ख) कान लागि कह्यौ जननि जसोदा वा घर में बलराम। बलदाऊ कौं आवन दैहौं श्रीदामा सौं काम—१०-२४०।

मुहा.—काम परयौ—आवश्यकता हुई, प्रयोजन हुआ, दरकार हुई। काम बनावै-मतलब निकालता है, स्वार्थ पूरा करता है। उ.—सूर,निंद, निगोटा, भंडा कायर काम बनावै—१-१८६। काम सरै—काम बनता है, उद्देश्य की सिद्धि होती है, मतलब निकलता है। उ.-सब तजि भजिए नंदकुमार। और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव जंजार—१-६८।

(४) वास्ता, सरोकार सम्बन्ध।

मुहा.—काम परयौ-पाला पड़ना, वास्ता होना, व्यवहार या सम्बन्ध होना। उ.—परयौ काम सारँग पानी सौं राखि लियो बलबीर—१-३३। (ख) नर हरि ह्वै हिरनाकुस मारयो काम परयो हो जौ नै। गोपीनाथ सूर के प्रभु के बिरद न लाग्यौ टौनै—१-१२३। (ग) अब तो आनि परयौ है गाढौ सूर पतित सौं काम—१-१७६।

(५) उपयोग, व्यवहार।

मुहा.—काम आवै—(१) साथ दे, सहारा दे, सहायक हो, आड़े आवे। उ.—(क) धन-सुत दारा काम न आवै, जिनहि लागि आपुनपौ हारौ—१-८०। (ख) आवत गाढ़े काम हरि, देख्यौ सूर बिचारि—२-२६। (ग) हरि बिन कोऊ काम न आयौ—२-३०। (२) उपयोगी हुई, व्यवहार में आयी। उ.—माया हरि कै काम न आई। भावभवित जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई—१-२६५।

(६) कारबार, रोजगार। (७) कारीगरी, दस्तकारी। (८) बेल बूटे।

कामकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कामदेव की स्त्री, रति। (२) मैथुन।

कामकाज—संज्ञा पुं. [हिं. काम] कारबार।

कामकेलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] काम क्रीड़ा, रति।

कामग—वि [सं.] (१) मनमानी करनेवाला। (२) काम से।

काम-मथ-अरि गुन-रिपु-सुत—संज्ञा पु [सं. काममथ (कोक=चक्रवाक) + अरि (चक्रवाक का शत्रु=रात,

क्योंकि रात को चकवा-चकवी को अलग होने से दुख मिलता है) + गुन (रात का गुण = अन्धकार) + रिपु (अन्धकार का शत्रु=दीपक) + सुत (दीपक का सुत = अंजन = दिग्गज = गज=हाथी)] हाथी। उ.—काम ग्रन्थ-अरि गुन रिपु सुत सम गति अति नीक विचारी—सा. १०३।

कामजित्—वि. [सं.] काम या वासना को जीतनेवाला। संज्ञा पुं.—(१) महादेव। (२) कार्तिकेय।

कामतरु—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कामद—वि० [सं० (द = देनेवाला)] इच्छा पूरी करने वाला।

कामदगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट का एक पर्वत जहाँ श्रीराम ने वास किया था।

कामदहन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी।

कामदा—स्त्री० [सं० कामद] (१) कामधेनु। (२) एक देवी।

कामदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-पुरुष-संयोग का प्रेरक एक देवता जो बहुत सुन्दर माना गया है। रति इसकी स्त्री, सखा वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष-बाण है।

कामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० काम + धाम (अनु०)] काम-धंधा। उ०—व्रजधर गयीं गोप कुमारि। नेकहूँ कहुँ मन न लागत काम धाम बिसारि।

कामधुक—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामधुज—संज्ञा स्त्री० [सं० कामध्वज] मछली जो कामदेव को ध्वजा पर अंकित है। उ०—लाभ थान पंचमी कामधुज गृहनिधि गृह में आई। मान लेहु मन अपने भूसा हगो भार इन भाई—सा० ८१।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र से निकली गाय जो चौदह रत्नों में एक है और जो सभी अभिलाषाएँ पूरी करती है।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कामदेव की ध्वजा पर अंकित है, मछली।

कामना—संज्ञा स्त्री० [सं.] इच्छा, अभिलाषा।

कामनाधेनु—संज्ञा स्त्री. [सं.] कामधेनु जो समुद्र के रत्नों के साथ निकली थी। उ.—कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौं दई, लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे—८-८।

कामबन—संज्ञा पुं. [सं. काम + वन] व्रजमंडल के अंतर्गत एक वन।

कामबाण—संज्ञा पु. [सं.] कामदेव के पाँच बाण—मोहन, उन्मादन संतपन, शोषण और निश्चेष्ट करण। कामदेव के बाण फूलों के भी कहे जाते हैं, वे फूल ये है—लाल कमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल।

कामभूरुह—संज्ञा. पुं. [सं. (भूरुह=वृक्ष)] कल्पवृक्ष।

कामरि—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल] कमली, कंबल। उ.—(क) सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौं रंग—१-३३२। (ख) सोइ हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करैं—४१३।

कामरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल, हिं. कमली] कमली, कंबल। उ.—कान्ह काँधे कामरिया कारी, लकुट लिए कर घेरै हो—४५२।

कामरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल] कमली, कंबल। उ.—एक दूध, फल, एक झगरि कै बेना लेत निज निज कामरी के आसननि कीने—४६७।

कामली—संज्ञा स्त्री० [सं० कंबल] कमली, कंबल।

कामशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिसमें स्त्री-पुरुष-प्रसंग का सविस्तार वर्णन हो।

कामसखा—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत।

कामांध—वि० [सं०] जो कामवासना की प्रबलता के कारण उचित-अनुचित का ज्ञान न रख सके।

कामा—क्रि० वि० [हिं० काम] हेतु, लिए। उ०—फेंट छोड़ि मेरी देहु श्रीदामा। काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कै कामा—५३६।

संज्ञा स्त्री—कामवती स्त्री।

संज्ञा पुं०—इच्छा, अभिलाषा। उ०—तबहिं असीस दई परसन ह्वै सफल होहु तुम कामा—१०उ० ६६।

संज्ञा स्त्री०—राधा की एक सखी का नाम। उ०—(क) इंदा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि—११०१। (ख) स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि—१५८०। (ग) स्याम गये उठि भोर

हीं वृन्दा के धाम। कामा के गृह निसि बसे पुरयौ मन काम—२१२६।

कामातुर—वि० [सं० काम + आतुर] काम या संभोग की इच्छा से व्याकुल। उ०—भयौ मोहि कामातुरनारी—७६६।

कामानुज—संज्ञा पुं० [सं० काम + अनुज] क्रोध गुस्सा।

कामायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैवस्त मनु की पत्नी श्रद्धा का एक नाम।

कामारि—संज्ञा पुं [सं. काम + अरि] कामदेव के शत्रु, शिव।

कामि वि. [सं कामिन्, हि कामी] भोग-विलास में लिप्त रहनेवाला, कामुक। उ.—पुहुप पराग परस मधुकरगन मत्त करत गुंजार। मानो कामि जन देख जुवति जन विषयासक्ति अपार—१०४४ सार.।

कामिनी, कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कामिनी] (१) कामवती स्त्री। (२) सुन्दर नारी। उ०—अतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचित्रौ—१-५६। (३) मदिरा। (४) एक पुष्प।

कामी—वि. [सं. कामिन्] (१) कामना रखनेवाला, इच्छुक। (२) विषयी, कामुक। उ०—यहै जिय जानि कै अंध भव-त्रास तैं, सूर कामी कुटिल सरन आयौ—१-५। (३) मतलबी, स्वार्थी। उ.—कीन्हीं प्रीति पहुँप शुंडा की अपने काज के कामी—३०८०।

कामुक—वि. [सं.] (१) इच्छा रखनेवाला। (२) कामी, विलासी।

कामोद्दीपन—संज्ञा पुं. [सं काम + उद्दीपन] काम की इच्छा या उत्तेजन।

काम्य—वि. [सं.] (१) जिसकी इच्छा हो। (२) जिससे इच्छा पूरी हो। (३) चाहने योग्य। (४) कामना-संबंधी।

काय, कायक—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) काया, शरीर। उ.—वंदन दासपनौ सो करै। भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै। काय निवेदन सदा बिचारै। प्रेम-सहित नवधा विस्तारै—५८६-५। (२) मूल धन (३) स्वभाव, लक्षण।

कायफर, कायफल—संज्ञा पुं. [सं. कट्फल] वृक्ष जिसकी छाल दवा के काम आती है।

कायर—वि. [सं. कातर] भीरु, असाहसी, डरपोक। उ—मूकु, निद, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, काम बनावै—१-१८६।

कायरता—संज्ञा स्त्री. [सं० कातरता] डरपोकपन।

कायल—वि. [अ] जिसने दूसरे का तर्क स्वीकार कर लिया हो।

कायली—संज्ञा स्त्री. [सं. दर्विलिका] मथानी।

- संज्ञा स्त्री. [हि. कायर] ग्लानि लज्जा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कायल] कायल होने की भावना।

काया—संज्ञा स्त्री. [सं. काय] शरीर, तन, देह। उ.—जनम साहिबी करत गयौ। काया नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिन कछु बढ़यौ—१-६४।

कायाकल्प—संज्ञा पु. [सं.] औषधों के प्रयोग और नियम-संयम से वृद्ध और रोगी शरीर सशक्त और स्वस्थ करने की क्रिया।

कायापलट—संज्ञा पुं. [हिं. काया + पलटना] (१) शरीर या रूप बदल डालने की क्रिया। (२) महान परिवर्तन।

कायिक— वि. [सं०] (१) शरीर संबंधी। (२) शरीर से उत्पन्न।

कारंड, कारंडव—संज्ञा पुं. [सं.] हंस की जाति का एक पक्षी।

कारधमी—संज्ञा पुं. [सं.] लोहे जैसी धातुओं से सोना बनानेवाला, कीमियागर।

कार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्य, क्रिया। (२) करने या बनानेवाला। (३) पूजा की बलि। (४) पति।

कारक—वि० [सं०] करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य में संज्ञा सर्वनाम की अवस्था जो क्रिया के साथ संबंध प्रकट करती है।

कारकदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार।

कारकुन—संज्ञा पुं० [फा०] प्रबंधक।

कारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] व्यापारिक वस्तु निर्माण का स्थान।

कारगर—वि० [फा०] लाभदायक, प्रभावकारी।

कारगुजार—वि० [फा०] अच्छी तरह काम करनेवाला, मुस्तैद।

कारगुजारी—संज्ञा स्त्री [फा०] कार्य कुशलता, मुस्तैदी।

कारज—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] काम, उद्देश्य, मतलब। उ०—मम आयसु तुम माथैं धरौ। छल-बल करि मम कारज करौ—१०-५८।

मुहा०—कारज सरी—काम बन जायगा, उद्देश्य की सिद्धि होगी, इच्छा पूरी होगी। उ०—सूर प्रभु के सत विलसत सकल कारज सरी—१० ३०२। कारज सरै—उद्देश्य सिद्ध हो, मतलब निकले, काम बने। उ०—किए नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो आपनौ जन्म हारै—४-११। कारज सारयौ-काम बनाया, इच्छा पूरी की। उ०—रसना हूँ वौ कारज सारयौ, मैं यौं अपनौ काज बिगारयौ—४-१२।

कारजी—वि० [हि० कारज] काम करनेवाला, सेवक। उ०—ऐसे हैं ये स्वामि-कारजी तिनकौ मानत स्याम—पृ० ३२०।

कारटा—संज्ञा पुं० [सं० करट] कौआ, काग।

कारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सबब, हेतु। (२) हेतु, निमित्त। (३) आदि, मूल। (४) साधन। (५) कर्म। (६) प्रमाण।

कारणमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कारणों की श्रेणी, अनेक सम्बन्धित कारण। (२) एक अर्थालंकार जिसमें किसी कारण के फलस्वरूप कार्य से संबधित पुनः किसी कार्य के होने का वर्णन हो।

कारणिक—वि० [सं०] कर्मचारी से संबंध रखने वाला।

कारन—संज्ञा पुं० [सं० कारण] (१) हेतु,सबब। उ०—सूरदास सारँग किहि कारन सारँगकुलहि लजावत—सा० उ० ३६। (२) निमित्त। उ०—(क) बलि बल देखि, अदिति सुत-कारन त्रिपद-ब्याज तिहूँ पुर फिरि आई—१-६। (ख) अधर अरुन, अनूप नासा निरखि जन सुखदाइ। मनौ सुक फल बिंब कारन लेन बैठ्यौ आइ—१०-२३४। (ग) मो कारन कछु आन्यौ है बलि, बन- फल तोरि कन्हैया—४१८।

वि०—करनेवाले। उ०—सब हित कारन देव, अभयपद नाम प्रताप बढायौ—१-१८८।

संज्ञा स्त्री० [सं० कारुण्य] रोने की करुण ध्वनि।

कारन-अंत—संज्ञा पुं० [सं० कारण+अंत] कारण का अंत, काज, कार्य। उ०—कारन अंत-अंत ते घटकर आदि घटत पै जोई। मद्ध घटे पर नाम कियौ है नीतन में मन मोई—सा० ५।

कारनकरन—संज्ञा पुं. [सं. करण-कारण] उपादान कारण और सृष्टि का करनेवाला निमित्त कारण, सृष्टि का मूल तत्व, ईश्वर। उ.—(क) कारन करन, दयालु दयानिधि, निज भय दीन डरै। इहि कलिकाल-ब्याल मुख ग्रासित सूर सरन उबरै—१ ११७। (ख) माया प्रगति सकल जग मोहै। कारन करन करै सो सोहै—१०३।

संज्ञा स्त्री. [सं. करुणा] रोने की करुण ध्वनि।

कारनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. कारणमाला] एक अर्थालंकार जिसमें किसी कारण से होनेवाले कार्य से फिर किसी कार्य के होने का वर्णन हो। उ.—सौतन हान होन चाहत है बिना प्रानपति पाये। कर संका कारन की माला तेहि पहिराउ सुभाये—सा. ४८।

कारनी—संज्ञा पु. [सं. कारण] प्रेरणा करनेवाला, प्रेरक।

संज्ञा पु.[सं. कारीनि] (१) परस्पर भेद करनेवाला। (२) बुद्धि या विचार पलटनेवाला।

कारने—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कारण] के लिए, हेतु। उ.—(क) सखियन सुख देखन कारने रंग हो हो होरी—१४१०। (ख) दह्यौ बह्यौ के कारने कहहि बढ़ावति रारि—११०८। (ग) तुम सौं अब दधि कारने कौन बढावै रारि—११२३।

कारबार—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कामकाज। (२) पेशा।

कारबारी—वि. [हि. कारबार] कामकाजी।

कारा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बन्धन, कैद। (२) कारा-गृह, बन्दीगृह। (३) पीड़ा, दुख।

वि. [हि. काला] काले रंग का, काला।

कारागार, कारागृह—संज्ञा पुं. [सं.] बन्दीगृह, जेल।

कारावास—संज्ञा पुं. [सं.] जेल में रहना, कैद।

कारिंदा—संज्ञा पुं. [फा.] जो दूसरे की ओर से काम करे, गुमाश्ता।

कारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्लोक-रूप में की गयी किसी सूत्र की व्याख्या ।

कारिख—संज्ञा स्त्री. [सं. कलुष] (१) स्याही, कालिमा । (२) काजल । (३) कलंक, दोष । उ.—जे कारिख तन मेटो चाहत तौ कमलबदन तनु चाहि—३३६० ।

कारिणी—वि. स्त्री. [सं.] करनेवाली ।

कारित—वि [सं.] कराया हुआ ।

कारी—वि० स्त्री० [हिं० पुं० काला] (१) काले रंग की । उ०—(क) अनत सुत गोरस कौं कह जात । घर सुरभी कारी धौरी कौ माखन माँगि न खात १०-३२६ । (ख) गगनै घहराइ जुरी घटा कारी—६८४ । (ग) स्याम सुखरासि रसरासि भारी।··· । सील कीरासि जस रासि आनंदरासि, नव जलद छवि बरन कारी—१३४० ।

मुहा—होतपीरी कारी—काली-पीली होना, गुस्सा दिखाना, झुँझलाना । उ०—ज्यों ज्यों मैं निहोरे करौं त्यौं त्यौं यौ बोलत है री अनोखी रूसनहारी । बहियाँ गहत कौन पर मगधरी उँगरी कौन पै होत पीरी कारी—२०४७ ।

वि० [सं० कारिन्] करनेवाला (प्रत्य० रूप में) ।

वि० [फा०] मर्मभेदी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कारिता] करने का काम ।

कारीगर—संज्ञा पुं० [फा०] शिल्पकार ।

वि०—हाथ के काम मे चतुर ।

कारु—संज्ञा पुं० [सं०] कारीगर, शिल्पी ।

कारुणिक—वि० [सं०] दयालु, कृपालु ।

कारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दया, कृपा ।

कारे—वि० [सं० काल, हिं० काला] काला, श्याम । उ०—(क) गरजत कारे भारे जूथ जलधर के—१०-३४ । (ख) डसी स्याम भुअंगम कारे—७४७ । (२) बड़ा, भारी ।

मुहा०—कारे कोसनि—बहुत दूर । उ०—तातैं अब मरियत अपसोसनि । मथुरा हू ते गये सखी री अब हरि कारे कोसनि—१० उ०-८८ ।

संज्ञा पुं० [कारिन, कारी] करनेवाला (प्रत्य० रूप) । उ०—मोरन के सुर सरस सम्हारत पय सुरतिया बीच रुचकारे—सा० ६१ ।

कार—संज्ञा पुं० सवि० [सं० काल, हिं० काला] काले साँप । उ०—(क) ताकी माता खाई कारें । सो मरि गयी साँप के मारे—७-८ । (ख) एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री—६६-७ । (ग) क्यौंरी कुँवरि गिरी मुरझाई ? यह आनी कही सखियन आगैं, मोकौं कारैं खाई—७४१ ।

कारो—वि० [हिं० काला ।] काला । उ०—सूरस्याम सुजान पाइन परो कारो काम—सा० २१ ।

कारौ—वि० [सं० काल, हिं० काला] (१) काला, कृष्ण, श्याम । उ०—कारौ अपनौ रंग न छाँडै, अनरँग कबहूँ न होई—१-६३ । (२) बुरा, कलुषित । उ०—तीनौं पन मैं भक्ति न कीन्हीं, काजर हूँ तैं कारो—१-१७८ ।

कार्त्तवीय—संज्ञा पुं. [सं.] सहस्रार्जुन जिसके हजार हाथ थे । यह कृतवीर्य का पुत्र था । इसे परशुराम ने मारा था ।

कार्त्तिक—संज्ञा पुं. [सं.] क्वार के बाद का महीना ।

कार्त्तिकेय—संज्ञा पुं. [सं.] कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे स्कंद जी जिनके ६ मुख माने जाते हैं ।

कार्दम—वि. [सं.] (१) कीचड से भरा हुआ । (२) कर्दम से संबंधित ।

कार्पण्य—संज्ञा. पुं [सं.] कंजूसी, कृपणता ।

कार्मण, कार्मना—संज्ञा. पुं [सं.] तंत्र-मंत्र का प्रयोग ।

कार्मुक—संज्ञा पुं [सं.] (१) धनुष । (२) इंद्रधनुष ।

कार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम-धंधा । (२) कारण का फल । (३) परिणाम, फल ।

कार्यकर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं] काम करनेवाला, कर्मचारी ।

कार्यक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] काम की व्यवस्था या प्रबंध ।

काल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय, अवसर । उ०—हरि सौं मीत न देख्यौ कोई । बिपति-काल सुमिरत, तिहि औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० । (२) मृत्यु । उ०—काल अवधि जब पहुँची आइ । तब जम दीन्हें दूत पठाइ—६-४ । (३) यमराज, यमदूत । उ०—(क) ग्रस्यो गज ग्राह लै चल्यौ पाताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ । छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५ । (ख) कहत है, आगैं जपिहैं

राम। नीचहिं भई और की औरै परयौ काल सौ काम—१-५७। (४) नियत समय या ऋतु। (५) अकाल, महँगी। (६) काला साँप। (७) शनि। (८) शिव का एक नाम।

वि०—काले रंग का, काला।

क्रि० वि० [हि. काल] बीता हुआ दिन, आनेवाला दिन।

कालअगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० काल + अग्नि] प्रलय काल की आग।

कालकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) मोर। (३) नीलकंठ पक्षी।

कालकूट—संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर विष।

कालकेतु—संज्ञा पुं० [सं.] एक राक्षस का नाम।

कालक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] समय बिताना।

कालचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] समय का हेर-फेर या परिवर्तन।

कालधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु, नाश।

कालनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कालभैरव।

कालनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिवाली की रात। (२) भयंकर काली रात।

कालबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] कच्चा भराव जो मेहराव बनाने के लिए किया जाता है, छैना।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव जो देवताओं को पराजित करके स्वर्ग का अधिकारी बन बैठा था। अपने शरीर को चार भागों में बाँट कर यह सारा शासन-कार्य करता था। अंत में विष्णु द्वारा यह मारा गया और यही दूसरे जन्म में कंस हुआ। उ०—कालिंदी के कूल बसत इक मधुपुरी नगर रसाला। कालनेमि अरु उग्रसेन कुल उपज्यौ कंस भुआला—१०-४। (२) एक राक्षस जो रावण का मामा था।

कालयवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक यवन राजा जो जरासंध के साथ मथुरा पर चढ़ाई करने गया था। श्रीकृष्ण ने चालाकी से मुचकुंद की कोपदृष्टि से इसे भस्म करा दिया था। उ०—तब खिसियाइ कै (जरासंध) कालयवन अपने सँग ल्यायौ—१० उ०-३।

कालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर का विराट रूप। (२) काल।

कालयापन—संज्ञा पुं० [सं०] दिन बिताना।

कालराति, कालरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भयानक अँधेरी रात। (२) प्रलय की रात। (३) मृत्यु की राति। (४) दिवाली की रात।

कालवाचक, कालवाची—वि० [सं०] समय बतानेवाला।

कालविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय की समाप्ति। (२) काम पूरा होने की अवधि।

काल-सर्प—संज्ञा पुं. [सं.] वह साँप जिसका डसा हुआ बचता नहीं।

काला—वि. [सं. काल] (१) कोयले के रंग का। (२) बुरा, कलुषित, कलंकित। (३) भारी, बड़ा।

संज्ञा पु.—काला साँप।

संज्ञा पुं.—समय, अवसर। उ.—घन तन स्याम सुदेस पीत पट सीस मुकुट उर माला। जनु दामिनि घन रवि तारागन प्रगट एक ही काला—२५६६ और १० उ.-४।

कालाकलूटा—[हि. काला + कलूटा] बहुत काला, गहरा काला।

कालाक्षरी—वि. [सं.] भारी विद्वान।

कालाग्नि—संज्ञा पुं० [सं.] प्रलय काल की आग।

काला भुजंग—वि. [हि. काला + भुजंग] बहुत काला।

कालानल—संज्ञा पु. [सं] प्रलयकाल की आग।

काला नाग—संज्ञा पुं. [हिं. काला + नाग] (१) काला साँप जो बड़ा विषैला होता है। (२) बहुत बुरा आदमी।

कालिंदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कलिंद पर्वत से निकली हुई नदी यमुना। (२) श्रीकृष्ण की एक स्त्री। उ—(क) हरि सुमिरन कालिंदी कीन्हौ। हरि तब जाइ दरस तेहि दीन्हौं। पानिग्रहन पुनि तासौं कीन्हौ—१० उ.-२८। (ख) तहँ कालिंदी बन मे ब्याही अति सुन्दर सुकुमार—६५४ सारा।

कालिंदीभेदन—संज्ञा पुं. [सं] बलराम जो हल से यमुना नदी को वृंदावन खींच लाये थे।

कालि—क्रि. वि. [सं. कल्य] (१) आगामी दिवस, आने वाला दिन। उ.—बल मोहन तेरे दुहुँनि कौं, पकरि

मँगाऊ करि। पुहुप वेगि पठएँ बनै, जौ रे बचौ व्रजनारि-५८६। (२) बीता दिन। (३) शीघ्र ही।

कालिक—वि. [स.] (१) समय सम्बन्धी। (२) समय के अनुसार। (३) जिसका समय निश्चित हो।

कालिका—संज्ञा स्त्री. [स] कालापन, कलौंछ, कालिख। उ.—आजु दीपति दिव्य दीपमालिका। मनहु कोटि रवि-चंद्र कोटि छवि, मिटि जु गई निसि कालिका—८०६। (२) चंडिका देवी, काली। (३) स्याही। (४) आँखकी काली पुतली। (५) रणचंडी।

कालिख—संज्ञा स्त्री. [स. कालिका] कलौंछ, स्याही।

कालिनाग—संज्ञा पु [स. कालिय + नाग] काली नाम का सर्प जो यमुना में व्रज के समीप रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने वश में किया था।

कालिमा—संज्ञा स्त्री.[सं. कालिमन्] (१) कलंक,दोष,पाप, लांछन। उ.—कलिमल-हरन, कालिमा टारन, रसना स्याम न गायौ-१-५८। (२) कालापन, कलंक। उ.—बिधु बैरी सिर पर बसै निसि नींद न परई। घटै बढ़ै यहि पाप ते कालिमा न टरई—२८६१। (३) कालिख। (४) अँधेरा।

कालिय-संज्ञा पुं. [स.] एक सर्प जिसे श्री कृष्ण ने नाथा था।

कालियादह—संज्ञा पुं. [स. कालिय + दह=कुंड] एक कुंड जो वृन्दावन में जमुना में था और जहाँ काली नामक नाग रहता था। उ.—ग्वाल-संग मिलि गेंद खेलत आयो जमुना तीर। काहु लै मोहिं डारि दीन्हौ, कालियादह-नीर—५८०।

काली—संज्ञा पुं. [सं. कालिय] एक नाग का नाम जो वृंन्दावन में जमुना के एक कुंड या दह में रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने नाथा था। उ-(क) अघ अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहि पियौ-१-१२१। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तैं काढ़्यौ काली—२५६७।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंडी, देवी, दुर्गा। उ.—जब राजा तिहिं मारन लग्यौ। देवी काली मन-डगमग्यौ—५-३। (२) पार्वती। (३) एक नदी। (४) एक महाविद्या। (५) अग्नि की सात जिह्वा से पहली।

कालीदह—संज्ञा. पुं [सं. कालीय + हिं. दह=कुंड] वृंदावन में जमुना का एक कुंड जिसमें काली नामक नाग रहा करता था। उ.—तृषावंत सुरभी बालक गन, कालीदह, अँचयौ जल जाइ। निकसि आइ सब तट ठाढ़े भए, बैठि गए जहँ तहँ अकुलाइ—५०१।

कालौंछ, कालौंछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काला + औंछ (प्रत्य.)] (१) कालापन, स्याही। (२) कालिख, काजल।

काल्पनिक—संज्ञा पु [सं.] कल्पना करनेवाला।

वि.—कल्पना किया हुआ, कल्पित।

काल्ह, काल्हि—क्रि. वि. [स. कल्य=प्रत्यूष, प्रभात; हिं. कल] कल, दूसरे दिन। उ.—काल्हि जाइ अस उद्यम करौं। तेरे सब भंडारनि भरौं—४-१२।

काव्य—संज्ञा पु. [स.] (१) सरस, सुरुचिपूर्ण और आनंददायक वाक्य-रचना, कविता। (२) कविता का ग्रंथ।

काव्यलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालंकार।

काव्यार्थापत्ति—संज्ञा पु. [स.] एक अर्थालंकार।

काशिका—संज्ञा स्त्री. [स.] काशी पुरी।

काशी—संज्ञा स्त्री. [स.] उत्तरप्रदेश का एक प्रसिद्ध तीर्थ, बनारस, वाराणसी।

काशी करवट—संज्ञा पु [स. काशी + करपत्र, प्रा. करवत] काशी के अंतर्गत एक स्थान जहाँ पूर्व समय में आरे से कटकर मरना या प्राण त्याग करना बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता था।

काश्त—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) खेती, कृषि। (२) खेती करने का अधिकार।

काश्तकार—संज्ञा पुं. [फा.] खेतिहर, किसान।

काश्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) खेती, कृषि। (२) खेती करने का अधिकार। (३)वह भूमि जिस पर खेती करने का अधिकार हो।

काषाय—वि० [सं०] (१)कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ। (२) गेरुआ।

संज्ञा पु० -(१) कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ वस्त्र। (२) गेरुआ वस्त्र।

काष्ठ—संज्ञा पुं० [स०] (१) काठ। (२) ईंधन।

काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) अवधि, सीमा।

(२) अधिक से अधिक ऊँचाई या उन्नति। (३) ओर, तरफ। (४) स्थिति।

कास—संज्ञा पुं० [सं० काश] एक प्रकार की घास, काँस। उ०—(क) दिसिअति कालिंदी अति कारी। ······। बिगलित कच कुच कास कुलन पर पंक जु काजल सारी—२७२८। (ख) अमल अकास कास कुसुमित छिति लच्छन स्वाति जनाए—२८५४।

कासनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक पौधा जिसमें नीले रंग के फूल होते हैं। (२) एक प्रकार का नीला रंग।

कासा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) प्याला, कटोरा। (२) भोजन।

कासार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब, पोखर। (२) एक तरह का छंद। (३) एक पकवान जो प्रायः कथा के अवसर पर बाँटा जाता है।

कासी—संज्ञा स्त्री० [सं० काशी] काशी नामक प्रसिद्ध नगर जिसकी गणना श्रेष्ठ तीर्थ स्थानों में है। उ०—ऊधौ यह राधा सौं कहियौ। ······। मोपर रिस पावत वेकारन मैं हौं तुम्हरी दासी। तुमहीं मन मैं गुनि धौं देखौ बिन तप पायौ कासी—२९३७।

कासी करवत—संज्ञा पुं० [सं० काशीकरवट] काशी के अंतर्गत काशी-करवट नामक तीर्थस्थान में जाकर आरे से गला कटाना या अन्य किसी तरह से प्राण देना बड़ा पुण्य समझा जाता था। उ०—सूरदास प्रभु जौ न मिलेंगे लेहौं करवत कासी—२८४३।

कासे—सर्व० [हिं० का+से (प्रत्य०)] किससे। उ०—(क) कासे कहौ समूचे भूपन सुमिरन करत बखानी—सा० ५५। (ख) सूरदास पुकार कासे करै बिन घन मोर—सा० ११०।

कासों, कासौं—सर्व० [हिं० का+सौं (प्रत्य०)] किससे। उ०—तेरो कासों कीजै ब्याह? तिन कह्यौ मेरौ पति सिव आह—५-७।

काह—क्रि० वि० [सं० कः, को] क्या, कौन बात या वस्तु। उ०—कह्यौ प्रिया अब कीजै सोइ? देखौं नरपति, काह धौं होइ—४-२२।

काहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढोल। (२) मुर्गा। (३) अव्यक्त शब्द।

वि० [अ० काहिल] गंदा, मैला।

काहली—वि० [अ० काहिल] आलसी, सुस्त।
संज्ञा स्त्री.—आलस्य।

काहिं—सर्व० [सं० कः, हिं० का+हि (प्रत्य०)] (१) किसे किसको। उ०—यह बिपदा कब मेटहि श्रीपति अरु हौं काहि पुकारौं—१०-४। (२) किससे।

काहि—सर्व [सं० कः, हिं० का+हिं० (प्रत्य] किसको, किसे। उ०—तुमहि समान और नहिं दूजौ काहि भजौं हौं दीन—१-१११।

काहिल—वि० [अ०] आलसी, सुस्त।

काहिली—संज्ञा स्त्री० [अ०] आलस्य।

काहीं—अव्य० [हिं० को कहँ] को, पास, द्वारा।

काहु—सर्व० [सं. कः, हिं० का+हू (प्रत्य०)=काहू] किसी, किसी ने। उ०—कह्यौ तुम एक पुरुष जो ध्यायौ। ताकौ दरसन काहु न पायौ—४-३।

काहूँ, काहू—सर्व० [सं० कः, हिं० का+हूँ (प्रत्य०)] किसी, कीसी को, किसी के। उ०—(क) माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।.. ...। ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ—१-५६। (ख) वा घट मैं काहूँ के लरिका मेरौ माखन खायौ—१०-१५६।

काहे—क्रि० वि० [सं० कथं, प्रा० कहँ] क्यों, किसलिए उ०—तुम कब मोसौं पतित उधारयौ। काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत को तारयौ—१-१३२।

काहैं—क्रि० वि० [सं० कथ, प्रा० कहं, हिं० काहे] किससे, किस साधन से, क्यों। उ०—हौं कुटुंब काहे प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई—६-४०।

किं—क्रि. वि. [सं किम्] कैसे?

किंकर—संज्ञा पु [सं.] (१) दास, सेवक, परिचारक। (२) एक जाति के राक्षस जो हनुमान जी द्वारा मारे गये थे।

किंकर्तव्यविमूढ़—वि. [सं.] जिसे कर्तव्य न सूझ पड़े, भौचक्का।

किंकिणि, किंकिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] करधनी, क्षुद्रघंटिका।

उ.—किंकिणि सब्द चलत ध्वनि रुनझुन ठुमक-ठुमक गृह आवै—२५४६।

किंकिनि, किंकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] क्षुद्र घंटिका, करधनी। उ.—मनौ मधुर मराल-छौना किंकिनी-कल-राव—१०-३०७।

किंकिरिनि—संज्ञा स्त्री सवि. [सं. किंकरी] दासियों की, सेविकाओं की। उ.—किंकिरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करहु निटोल—३४७५।

किंगरी, किंगिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरी] छोटी सारंगी।

किंचन—संज्ञा पुं. [सं.] थोड़ी वस्तु।

किंचित—वि. [सं.] कुछ, थोड़ा।

क्रि. वि.—कुछ।

किंजल्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल के फूल का पराग। उ.—भृंगी री, भजि स्याम-कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास। जहँ किंजल्क भक्ति नव-लच्छन, काम-ज्ञान-रस एक—१-३३६। (२) कमल। (३) नागकेसर।

वि.—केसर के रङ्ग का, पीला।

किंतु—अव्य. [सं.] पर, परंतु, लेकिन।

किंपुरुष, किंपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] किन्नर।

किंभूत—वि. [सं.] (१) कैसा, किस प्रकार का। (२) अद्भुत। (३) भद्दा, कुरूप।

किंवदनि, किंवदंती—संज्ञा स्त्री [सं.] उड़ती खबर, जन-रव।

किंवा—अव्य. [सं.] या, अथवा, या तो।

किंशुक—संज्ञा पु. [सं.] पलाश, टेसू।

कि—प्रत्य. [हिं का] हिं 'विभक्ति 'का' का स्त्री० 'की'। उ.—सूर पतित, तुम पतित उधारन, बिरद कि लाज धरे—१ १६८।

क्रि. वि [सं. किम्] कैसे, किस प्रकार।

अव्य.—एक संयोजक अव्यय।

किए—क्रि. स. [सं. करण, हि. करना] 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किये या किया' का बहुवचन, बनाये, लगाये। उ.—चंदन की खौरि किए नटवर कछि काछनी बनाइ री—८८२।

किकियाना—क्रि. अ. [हिं. कीकना] रोना, चिल्लाना।

किचकिच—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) व्यर्थ की बकवाद। (२) झगड़ा।

किचकिचाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) पूरा जोर लगाने के लिए दाँत पर दाँत जमाना। (२) क्रोध से दाँत पीसना।

किचड़ाना—क्रि अ. [हि. कीचड़ + आना] आँख में कीचड़ भर आना।

किचपिच, किचर पिचर—वि. [अनु] (१) क्रमरहित, अस्पष्ट। (२) छोटी छोटी बहुत सी संतान।

किछु—वि. [हि. कुछ] कुछ।

किटकिट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) व्यर्थ की बकवाद। (२) झगड़ा।

किटकिटाना—क्रि. अ. [अनु.] क्रोध से दाँत पीसना।

किट्ट—संज्ञा पु. [हि. कीट] धातु पर जमा हुआ मैल।

कित—क्रि. वि. [सं कुत्र] कहाँ, किस ओर, किधर। उ.—रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै—१-२।

कितक—वि. [सं. कियदेक, हि कितेक] (१) कितने, बहुत, अधिक। उ.—(क) ऐसौ नीप-वृच्छ बिस्तारा। चीर हार धौं कितक हजारा—७६६। (ख) हरि मुख बिधु मेरी अँखियाँ चकोरी। राखे रहति ओट पट जतननि तऊ न मानत कितक निहोरी—पृ. ३२८। (२) कितना, बहुत थोड़ा, बिलकुल साधारण। उ.—(क) कितक बात यह धनुष रुद्र को सकल विश्व कर लैहौं। आज्ञा पाय देव रघुपति की छिनक माँझ हठ जैहौं—२२४ सारा.। (ख) अमित एक उपमा अव लोकत जिय में परत विचार। नहिं प्रवेस अज सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार—६६६ सारा.।

कितना—वि. [सं. कियत्] किस परिमाण, मात्रा या संख्या का; बहुत अधिक।

क्रि. वि.—(१) किस मात्रा या परिमाण में? कहाँ तक।

कितनौ—क्रि. वि. [हि. कितना] कितना, कहाँ तक। उ.—नैंकु नहि घर रहति, तोहि कितनौ कहति, रिसन मोहिं दहति, बन भई हरनी—६६८।

कितव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुआरी। (२) छली-कपटी। उ.—रे रे मधुप कितव के बंधू चरन परस जिन करिहौ। प्रिया अंक कुंकुम कर राते ताही को

अनुसरिहौं — ५६६ सारा। (३) पागल। (४) दुष्ट। (५) धतूरा।

किता—संज्ञा पु. [अ. कितऽ] (१) कपड़े की काट-छाँट या कतर-ब्योंत। (२) चाल-ढाल। (३) संख्या।

किताब—सज्ञा स्त्री. [अ.] (१) पुस्तक, ग्रंथ। (२) बही।

किताबी—वि. [अ. किताब] (१) किताब का। (२) किताब के आकार का। (३) लंबोतरा।

कितिक—वि. [हि कितना] (१) कितनी, बहुत साधारण। उ.—(क) राघौ जू, कितिक बात, तजि चित।—६-१०७। (ख) कर गहि धनुष जगत कौ जीतैं, कितिक निसाचर जूथ—६-१४७। (ग) सतभामा सौं इती बात जबतें न कही री। कितिक कठिन सुरतरु प्रसून की या कारन तू रूठि रही री—१० उ.-२८। (२) अधिक, बहुत ज्यादा। उ.—काल बितीत कितिक जब भयौ। गाइ चरावन कौ सो गयौ—६-१७३।

किती—वि. [सं. कियत] (१) कितनी, बहुत। उ.—मन, तोसौं किती कही समुझाइ—१-३१७। (२) कितनी (संख्यावाचक)। उ.—मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियति भई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७५।

किते—वि. [सं. कियत्, हि कित्ता या कित्ते] कितने। (सख्यावाचक)। उ.—किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए—१-५२।

कितेक—वि. [सं. कियदेक] (१) कितना। (२) बहुत, असंख्य।

कितेब—संज्ञा स्त्री [हि. किताब] (१) ग्रन्थ, पुस्तक। (२) धर्मग्रन्थ। (३) कुरान।

कितै—क्रि. वि. [सं. कुत्र, हि कित] किस ओर, कहाँ, किधर। उ.—पावँ अवार सु धारि रमापति, अजस करत जस पायौ। सूर कूर कहै मेरी बिरियाँ बिरद कितै बिसरायौ—१-१८८।

कितो—वि. [स कियत, हिं. कितो] कितना, बहुत। उ.—(क) सूर कितौ सुख पावत लोचन, निरखत घुटुरुनि चाल—१०-१४८। (ख) मानैं नहीं कितौ समुझाई—३६१।

कितोक—वि. [हि. कितना, कितो] कितना, कितना अधिक। उ.—कितोक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं—३०७४।

कित्ति—सज्ञा स्त्री. [स कीर्ति, प्रा. कित्ति] कीर्ति, यश।

कित्तो, कित्तौ—वि. [हि. कितना] कितना, कितना अधिक।

किधर—क्रि वि. [स. कुत्र] किस ओर।

किधौं, किधौं—अव्य. [स. किम्] अथवा, या तो, न जाने। उ.—(क) ह्वै अंतरधान हरि, मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हे दिखाई। सूर-ससि किधौं चपला परम सुन्दरी, अंग भूषननि छबि कहि न जाई—८-१०। (ख) किधौं यह प्रतिबिंब जल में देखत किधौं निज रूप दोऊ है सुहाए—२५७०।

किन—क्रि. वि. [सं. किम्+न] किसने, क्यों न। उ.—(क) पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत—१-१०७। (क) बिनु हरि भक्ति मुक्ति नहिं होई। कोटि उपाय करो किन कोई। (ख) तौ लगि बेगि हरौ किन पीर। जौ लगि आन न आनि पहूँचे, फेरि परैगी भीर—१-१६१।

सर्व०—किस का बहुवचन।

संज्ञा पुं. [सं. किण] चिह्न, दाग, निशान।

किनका—संज्ञा पुं. [सं. कणिक] (१) छोटा दाना, कण। (२) छोटी बूँद।

किनारा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) किसी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई का सिरा। (२) जलाशय या नदी का तट, तीर। (३) हाशिया, बार्डर। (४) बगल, पार्श्व।

किनि—सर्व. [हि. 'किस'] किसने, किनने। उ—किनि बहकाइ दई है तुमकौं, ताहि पकरि लै जौंहि—७५३।

किनिका, किनुका—संज्ञा पुं. [हि. किनका] छोटा दाना, कण।

किन्नर—संज्ञा पु. [सं.] देवताओं का एक वर्ग जो पुलस्त्य ऋषि का वंशज माना जाता है। किन्नरों का मुख घोड़े के समान होता है और ये संगीत में निपुण होते हैं।

संज्ञा स्त्री [सं किन्नरीवीणा] तँबूरा या सारंगी। उ.—एक बीना, एक किन्नर, एक मुरली, एक उपंग

एक तुंमर एक रवाव भाँति सौं बुरावै—५२४२ ।

किन्नरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] किन्नर जाति की स्त्रियाँ संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरी वीणा] तंबूरा या सारंगी । उ.—(क) झंझ झालरी किन्नरी रँग भीजी ग्वालिनि—२४०५ । (ख) ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रस सार—पृ. ३४६ (४५) । (ग) बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुंडली यंत्र—१०७३ सारा. ।

किफायती—संज्ञा स्त्री. [अ.] कमखर्ची, मितव्यय ।

किफायती—वि. [अ. किफायत] (१) कम खर्च करनेवाला, मितव्ययी । (२) कम दाम का ।

किमपि—सर्व. सवि. [सं. किम्] कोई भी, कुछ भी । उ.—कोक कोटि करम सरसि बहुरि सूरज विविध कल माधुरी किमपि नाहिंन बची—२२६८ ।

किमि—क्रि. वि. [सं. किम्] कैसे, किस प्रकार, किस तरह । उ.—बिदुख सिधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ—१०-१४३ ।

किम्—वि., सर्व. [सं.] (१) क्या, (२) कौन सा ।

किय—क्रि. स. [हिं. करना, किया] किया । उ.—निर्भय किय लंकेस बिभीषन राम लखन नृप दोय—२६५ सारा.

कियत्—वि. [सं.] कितना ।

कियारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. क्यारी] (१) सिंचाई के लिए बनाये गये खेतों के छोटे छोटे भाग । (२) बाग-बगीचों की नाली की तरह या गोल-तिकोनी खुदी पंक्तियाँ जिन में अलग अलग पेड़ लगाये जाते हैं, क्यारी ।

किये, कियौ—क्रि. स. [सं. करण, हिं करना] 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किया' का ब्रजभाषा रूप, किया । उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ—१-५ । (ख) का न कियौ जन-हित जदुराई —१-६ । (ग) चरित अनेक किये रघुनायक अवधपुरी सुख दीन्हो—३०८ सारा. ।

किरका, किरकी—संज्ञा पु. [सं. कर्कट=ककड़ी] कंकड़, किरकिरी । उ.-गर्व करत गोवर्द्धन गिरि कौ । पर्वत माँह आह वह किरका—१०४३ ।

किरकिटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कट] कण या धूल जो आँखों में पड़ कर दुख देती है ।

किरकिरा—वि. [सं. कर्कट] जिसमें महीन गर्द मिली हो ।

किरकिराना—क्रि. अ. [हिं. किरकिरा] हलकी हलकी पीड़ा होना ।

किरकिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कट] (१) धूल या तिनके का कण, किनका । (२) शान मे बट्टा लगाना, अप्रतिष्ठा ।

किरकिल—संज्ञा स्त्री. [सं. कृकर या कृकल] शरीर की वह वायु जिससे छींक आती है ।

किरकिला—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकिला] मछली खानेवाला एक पक्षी ।

संज्ञा पुं.—एक समुद्र ।

किरकी—संज्ञा स्त्री [सं. किंकिणी] एक गहना ।

किरच, किरचक—संज्ञा स्त्री. [सं. कृति=कैंची (अस्त्र)] (काँच आदि का) छोटा नुकीला टुकडा । उ.—छाँड़ि कनक मनि रतन अमोलक, काँच की किरच गही—१-३२४ ।

किरण—संज्ञा पुं. [सं.] प्रकाश या ज्योति की रेखाएँ, रश्मि, मयूख ।

किरणमाली—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य ।

किरतम—संज्ञा पुं. [सं. कृत्रिम] माया, प्रपंच ।

किरन—संज्ञा पुं. [सं. किरण] ज्योति या प्रकाश की रेखाएँ किरण ।

किरनि—संज्ञा पुं. [सं किरण] ज्योति-रेखाएँ, मयूख, रश्मि, मरीचि । उ.—तरनि किरन महलनि पर झाँई इहै मधुपुरी नाम—२५५६ ।

किरपा—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपा] दया, कृपा, अनुग्रह । उ. ..... । कर जोरे बिनती करी दुरजन-सुखदाई । पाँच गाउँ पाँचौ जननि किरपा करि दीजै । ये तुमरे कुल बंस हैं, हमरी सुनि लीजै—१-२३८ ।

किरपान—संज्ञा पुं. [सं. कृपाण] तलवार ।

किरम—संज्ञा पुं. [सं. कृमि] कीड़ा ।

किरमाल—संज्ञा पु. [सं. करवाल] तलवार, खड्ग ।

किरराना—क्रि. अ. [अनु०] (१) क्रोध से दाँत पीसना । (२) किर्र किर्र शब्द करना ।

किरवान, किरवार—संज्ञा पुं. [हिं. करवाल] तलवार, खड्ग।

किरवारा—संज्ञा पुं. [सं. कृतमाल] अमलतास का पेड़।

किरषि—संज्ञा स्त्री. [सं. कृषि] खेती, किसानी। उ.—घर बिधसि नर करत किरषि हल,वारि, बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै—१-११७।

किरॉची, किराचिन—संज्ञा स्त्री. [अँ. वेरोच] (१) माल ढोने की गाड़ी। (२) बैलगाड़ी।

किरात—संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली जाति।

किरान—क्रि. वि. [अ. क़िरान] पास, निकट।

किराना—संज्ञा पु. [सं. क्रयण] मसाले और सूखा मेवा।

किराया—संज्ञा पुं. [अ.] भाड़ा।

किरार—संज्ञा पुं. [देश] एक नीच जाति।

किरावल—संज्ञा पुं. [तु. करावल] लड़ाई का मैदान ठीक करनेवाली सेना जो सब से आगे जाती है।

किरिच, किरिचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. किरच] काँच आदि का नुकीला टुकड़ा। उ.—लोक लज्जा काँच किरिचक स्याम कंचन खानि।

किरिन—संज्ञा पुं. [सं. किरण] किरणें। उ.—(क) सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात—९-४३। (ख) अनतहि बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास—२०१८।

किरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रिया] (१) सौगंध, कसम। (२) क्रिया-कर्म।

किरीट—संज्ञा पुं [सं] माथे पर बाँधने का एक भूषण जिसके ऊपर कभी कभी मुकुट भी पहना जाता था।

किरीटी—संज्ञा पुं. [सं] (१) इन्द्र। (२) अर्जुन। (३) राजा।

किरीरा—संज्ञा. स्त्री. [हि. क्रीड़ा] खेल, क्रीडा।

किरोध—संज्ञा. पुं. [स. क्रोध] गुस्सा, क्रोध।

किर्च—संज्ञा स्त्री. [हि. किरच] एक तरह की तलवार।

किर्तनिया—संज्ञा पु. [सं. कीर्त्तन] कीर्त्तन करनेवाला।

किल—अव्य. [सं.] (१) अवश्य, निश्चय ही। (२) सचमुच।

किलक—संज्ञा स्त्री. [हि.किलकना]। किलकने या हर्ष ध्वनि करने की क्रिया। उ.—गरज किलक आघात उठतै, मनु दामिनि पावक झार—९-१२४।

किलकत—क्रि. अ. [हि. किलकना] हँसते हैं, हर्षध्वनि करते हैं, किलकारी मारते हैं। उ.—(क) निरखि जननी बदन किलकत त्रिदसपति दै तारि—१०-७१। (ख) हरि किलकत जसुदा की कनियाँ—१०-८१।

किलकन—संज्ञा स्त्री. [हि. किलकना] किलकने की क्रिया, किलक।

किलकना—क्रि. अ. [सं. किलकिला] किलकारी मारना, हर्षध्वनि करना।

किलकनि—संज्ञा स्त्री. [हि. किलकना] किलकारी, हर्षध्वनि। उ.—पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि। सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि—१०-१०९।

किलकात—क्रि. अ. [हि. किलकारना] किलकते हैं, हर्षध्वनि करते है। उ.—बिहरत बिबिध बालक संग।...। चलत मग, पग बजति पैंजनि, परस्पर किलकात। मनौ मधुर मराल छौना बोलि बैन सिहात—१०-१८४।

किलकार—संज्ञा स्त्री. [हि. किलक] हर्षध्वनि, किलकारी। उ.—चकित सकल परस्पर बानर बीच परी किलकार। तहँ इक अद्भुत देखि निसिचरी सुरसा-मुख-बिस्तार—९-७४।

क्रि. अ.—किलकते हैं, ध्वनि करते हैं। उ.—गर्जत गगन गयंद गुंजरत अरु दादुर किलकार—२८२०।

किलकारत—संज्ञा स्त्री. [हि. किलकारना] किलकारी भरते हैं, हर्षध्वनि करते हैं। उ.—गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखत नँदरानी। अति पुलकति गदगद मुख बानी, मन-मन महरि सिहानी—१०-२५३।

किलकारना—क्रि. अ. [स. किलकना] उत्साह दिखाना, हर्षध्वनि करना।

किलकारि, किलकारी—संज्ञा स्त्री. [हि. किलकना] हर्षध्वनि, किलकार। उ.—(क) द्रुम गहि उपाटि लिए, दै दै किलकारी। दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—९-९६। (ख) रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी—९-१३८।

किलकिंचित—संज्ञा पुं. [सं.] संयोग शृंगार का एक हाव जिसमें एक साथ कई भाव नायिका प्रकट करती है।

किलकि—क्रि. अ. [हिं किलकना] किलकारी मारकर, हर्षध्वनि करके, आनंद प्रकट करके। उ.—(क) आपु गयौ तहँ जहँ प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगुठा चचोरैं। किलकि किलकत हँसत, बाल सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु आगौ भोरैं—१०-६२। (ख) हँसे तात मुख हेरिकै, करि पग-चतुराई। किलकि झटकि उलटे परे, देवन-मुनि राई—१०-६६।

किलकिल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] लड़ाई झगड़ा।

किलकिला—संज्ञा स्त्री. [स. कूकल] मछली-खानेवाली एक छोटी चिड़िया जो पानी से आठ दस हाथ ऊपर उड़ती हुई बड़ी सतर्कता से मछली को देखती है। उ.—जैसें मीन किलकला दरसत, ऐसें रहौ प्रभु डाटत—१-१०७।

संज्ञा स्त्री. [सं.] हर्षध्वनि।

किलकिलात—क्रि. अ. [हि. किलकिलाना] चिल्लाता हुआ, भयंकर शब्द करता हुआ। उ.—रावन, उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरी।... । गहगरात किलकिलात अंधकार आयौ। रवि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायौ—९.१३६।

किलकिलाना—क्रि. अ. [हि. किलकिला] (१) हर्षध्वनि करना। (२) चिल्लाना। (३) झगड़ा करना।

किलकिहि—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकारी मारेगा, हर्षध्वनि करेगा। उ.—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहैं—१-२९।

किलकी—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकारी भरी, हर्षध्वनि की। उ.—सुपने हरि आये हौं किलकी—२७८६।

किलकै—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकता है, किलकारी भरता है हर्षध्वनि करता है। उ.—आनँद प्रेम उमंगि जसोदा खरी गोपाल खिलावै। कबहुँक हिलकै-किलकै जननी-मन-सुख-सिंधु बढ़ावै—१०-१३०।

किलकैया—संज्ञा पुं [हिं किलकना] किलकारी भरनेवाला।

किलना—क्रि. अ. [हि. कील] (१) मंत्रों से कीला जाना। (२) वश में किया जाना। (३) गति का रोका जाना।

किलनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कीट, हिं. कीड़ा] एक छोटा कीड़ा, किल्ली।

किलबिलाना—क्रि. अ. [हि. कुलबुलाना] बहुत से कीड़े या छोटे छोटे जंतुओं का थोड़ी जगह में हिलना डोलना, चंचल होना।

किलवाँक—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

किलवाना—क्रि. स [हिं. कीलन] (१) कील जड़ाना। [२] टोना-टुटका कराना। (३) तंत्र-मंत्र से भूत प्रेत की बाधा रुकाना।

किलविष—संज्ञा पुं. [सं. किल्विष] (१) पाप। (२) दोष। (३) रोग।

किला—संज्ञा पुं. [अ. किला] गढ़, दुर्ग।

किलोल—संज्ञा पु [सं. कल्लोल, हिं. कलोल] क्रीड़ा,

किल्लत—सज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कमी, तंगी। (२) कठिनता।

किल्ली—सज्ञा स्त्री [हि. कीला] (१) खूँटी, मेख। (२) सिटकिनी। (३) कल चलाने की मुठिया।

किल्विष—संज्ञा पु [स.] (१) पाप। (२) दोष। रोग।

किवाड़, किवार—सज्ञा पुं. [हि. किवाड़] पट, कपाट, किवाड़।

मुहा०—दीन्हे रहत किवार—द्वार बंद रखता है। उ.—गढ़वै भयौ नरकपति मोसौं, दीन्हे रहत किवार। सेना साथ भाँति भाँतिन की, कीन्हे पाप अपार—१-१४१। लाइ किवार—किवाड़ लगाकर, द्वार बंद करके। उ.—सूर पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार—१-१४४।

किवारा—संज्ञा पु. [हि. किवार, किवाड़] पट, कपाट, किवाड़। उ—लंक गढ माहि आकास मारग गयो, चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा—९-७६।

किशमिश—सज्ञा पुं. [फ़ा] सुखायी हुई छोटी दाख।

किशमिशी—वि.—किशमिश के रंग का।

किशलय—संज्ञा पुं. [सं.] नया पत्ता, कल्ला।

किशोर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ११ से १५ वर्ष की अवस्था का बालक। (२) पुत्र।

किशोरक—संज्ञा पु [सं.] छोटा बालक।

किष्किंध—संज्ञा पुं. [सं.] मैसूर प्रदेश का प्राचीन नाम।

किष्किंधा—संज्ञा स्त्री. [स.] किष्किंध देश की एक पर्वत श्रेणी।

किस—सर्व. [सं. कस्य] 'कौन' का विभक्तिरहित रूप।

किसनई—संज्ञा स्त्री. [हिं. किसान] किसानी।

किसब—संज्ञा पु. [अ. कसबी] कारीगरी, व्यवसाय।

किसमिस—संज्ञा पुं [फा. किशमिश] सुखाया हुआ छोटा अंगूर, किशमिश।

किसमी—संज्ञा पुं. [अ. कसबी] मजदूर, श्रमजीवी।

किसलय—संज्ञा पुं. [सं किशलय] कोमल पत्ता, कल्ला।

किसान—सज्ञा पु. [सं. कृषक] खेती करनेवाला।

किसानी—संज्ञा स्त्री. [हि. किसान] खेती बारी।

किसी—सर्व., वि. [हिं. किस+ही] (कोई) का वह रूप जो विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है।

किसू—सर्व. [हि. किसी] किसी।

किसोर—वि. [सं. किशोर] ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का।

संज्ञा पुं. (१) ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का बालक। (२) पुत्र, बेटा।

किसोरी—सज्ञा पुं [सं. किशोरी] (१) पुत्री, बेटी। (२) छोटी अवस्था की लड़की। उ.—नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि वृषभानु किसोरी—६८५।

किस्म—सज्ञा पु [अ.] भेद, प्रकार, जाति, चाल।

किस्सा—सज्ञा पुं [अ] (१) कहानी, गल्प। (२) बात, हाल, समाचार। (३) झगड़ा-बखेड़ा।

किहिं—सर्व. [हि. केहि] किस, किसके। उ.-किहिं भय दुरजन डरिहै—१-२९।

किहि—सर्व [हि. केहि] किस। उ.—महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात—९-६६।

की—प्रत्य [हिं. का] हिं. विभक्ति 'का' का स्त्री.। उ.—बासुदेव की बड़ी बड़ाई। जगतपिता जगदीस जगतगुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई—१-३।

क्रि. स [सं. कृत, प्रा. कि] हिं. 'करना' के भूत कालिक रूप 'किया' का स्त्री.। उ.—अब भ्रम-भँवर परयौ व्रजनायक निकसन की बस विधि की —१-२१३।

अव्य. ['कि' का विकृत रूप] (१) क्या ? (२) या तो।

कीक—सज्ञा पुं. [अनु.] चीख, चिल्लाहट, चीत्कार।

कीकट—संज्ञा पुं. [स.] (१) मगध-प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) घोड़ा।

कीकना—क्रि. अ. [अनु.] हर्ष-भय में 'की की' शब्द करना।

कीका—संज्ञा पुं. [सं. कीकट] घोड़ा।

कीकै—संज्ञा पु. [अनु. हिं. कीक] कूक, कीक, चिल्लाहट, चीत्कार। उ.—सूरदास प्रभु भले परे फँद. देउँ न जान भावते जी कैं। भरि गडूक, छिरक दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै—१०-२८७।

कीच—संज्ञा पुं [सं. कच्छ] कीचड़, पंक, कर्दम। उ.—(क) सुनि सुनि साधु-बचन ऐसौ सठ, हठि औगुननि हिरानौ। धोयौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहि मानौ—१-१६४। (ख) भाजन फोरि दही सब डारयौ माखन कीच मचायौ—१०-३४२। (ग) कुमकुम कज्जल कीच बहै जनु कुच जुग पारि परी—२८१४।

कीचक—संज्ञा पु. [सं.] राजा विराट का साला जो उसका सेनापति भी था। पांडवो के अज्ञातवास काल में इसने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली थी। इसलिए भीम ने इसे मार डाला था।

कीचड़, कीचर-संज्ञा पुं [हिं. कीच + ड (प्रत्य.)] (१) गंदी गीली मिट्टी, पंक। (२) आँख का मैल।

कीजत—क्रि. स. [हि. करना] करते हैं, (कार्य) संपादन करते हैं। उ.—(क) जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए—१-१६३। (ख) मोहन तेरे आधीन भये री। इति रिस कबते कीजत री गुनआगरी नागरी—२२५०।

कीजिए—क्रि. स. [हि. करना] किसी काम के संपादन के लिए निवेदन करना, करिए। उ.—अब मोहि कृपा कीजिए सोइ। फिर ऐसी दुरबुद्धि न होइ—४-५।

कीजै—क्रि. अ. [हि. करना] कीजिए, करिए। उ.—(क) मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहायौ—

१-३०२। (ख) दीन-बचन संतनि-सँग दरस-परस कीजै—१-७२। (ग) हरि को दोष कहा करि दीजै जो कीजै सो इनको थोर—पृ. ३३५।

कीजैगी—क्रि. स. [हिं. करना] करेगी, किया जायगा। उ.—अवसर गएँ बहुरि सुनि सूरज कह कीजैगी देह। बिछुरत हंस विरह कैं सूलनि, झूठे सबै सनेह—८०१।

कीजौ—क्रि. स. [हिं. करना] करना। उ.—नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि—५८३।

कीट—संज्ञा पुं. [सं.] कीडा मकोडा।
संज्ञा पुं. [सं. किट्ट] मैल।

कीडा—संज्ञा पुं. [सं. कीट, प्रा. कीड़] (१) उड़ने या रेंगनेवाले छोटे-छोटे जंतु। (२) थोड़े दिन का बच्चा।

कीडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कीड़ा] (१) छोटा कीड़ा। (२) चींटी।

मुहा०—कीड़ी तनु ज्यौं पाँख उपाई—चिउँटी के पंख निकलना। इस तरह इतराना, क्रोध या गर्व करना कि अंत में मरना ही पड़े। उ.—गिरिवर सहितै ब्रजै बहाई। सूरदास सुरपति रिस पाई। कीड़ी तनु ज्यौं पाँख उपाई—१०४१।

कीदहु—अव्य. [हिं. किधौं] (१) या, अथवा। (२) या तो, न जाने।

कीधौं—क्रि. वि. [सं. किम्, हिं. किधौं] अथवा, किधौं, कैधौं, या, या तो। उ.—(क) निसि के उनींदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि। कीधौं कहूँ प्यारी कौ लागी टटकी नजरि—७५२। (ख) हँसत कहत कीधौं सत-भाव—१२४०। (ग) कीधौं कौन कार्य को आये सो पूँछत हौं तोहिं—८१३ सारा.।

कीन—क्रि. स. [हिं. करना] (१) किया, संपादित किया। उ.—(क) दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप ब्रत पूरन कीन—६-२६। (ख) मुकुट कुंडल किरनि रवि छबि परम बिगसित कीन—२३५८। (ग) सूरदास प्रभु बिन गोपालहिं कत बिधनै दई कीन—२७६८। (२) रची, लिखी, बनायी, संपादित की। उ.—नंदनदनदास हित साहित्यलहरी कीन—सा १०६।

कीनना—क्रि. स. [सं. क्रीणन] खरीदना, मोल लेना।

कीना—संज्ञा पुं. [फा.] द्वेष, वैर।

कीनी—क्रि. अ. [हिं. करना] (१) की, किया। उ.—(क) बरज्यौ आवत तुम्हैं असुर-बुधि इन यह कीनी—३-११। (ख) एक मीन ने भक्त कियो तब हरि रख-वारी कीनी—६६३ सारा.। (२) पत्नी बनाया। उ.—बाम बाम जिन सजनी कीनी। तिनकौ ऊधौ कहाँ बात बढ हम हित जोग जुगत चित चीनी—सा. ५६। (३) कर दी, नाप ली। उ.—अढ़ैठ पैग बसुधा सब कीनी—१०-१२५।

कीने—क्रि. स. [हिं. करना] किये, कर दिया, किये हैं। उ.—थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत—१-२६।

कीनौ—क्रि. स. [हिं. करना] भूत. 'किया' का ब्रज. प्रयोग, किया, संपादित किया। उ.—नर तैं जनम पाइ कह कीनौ—१-६५।

संज्ञा पुं.—करनी का फल। उ.—जो मेरे लाल खिझावै। सो अपनो कीनौ पावै—१०-१८३।

कीन्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. करना] किया। उ.—बाँधन गए, बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ—८-१५।

कीन्ही—क्रि. स. [हिं. करना] 'करना' क्रिया के भूत-कालिक रूप 'किया' का ब्रजभाषिक स्त्रीलिंग, की। उ.—भक्तनि हित तुम कहा न कियौ? गर्भ परिच्छित इच्छा कीन्ही अम्बरीष-ब्रत राखि लियौ—१-२६।

कीन्हे—क्रि. स. [हिं करना] (१) 'करना' किया के भूतकालिक रूप 'किये' का ब्रजभाषा बहुवचन अथवा आदर-सूचक रूप, कार्य संपादित किये। उ.—(क) मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हे, मृतक विप्र सुत दीन्हौ—१-१७। (ख) कीन्हे केलि विविध गोपिन सों सबहिन कौं सुख दीन्हें—८६७ सारा.। (२) बनाये, स्वीकार किये। उ.—कीन्हे गुरु चौबीस सीख लै जदु को दीन्हो ज्ञान—६२ सारा.।

कीन्हौ—क्रि. स. [हिं. करना] 'करना' क्रिया के भूतका-लिक रूप 'किया' का ब्रजभाषा रूप, किया। उ.—(क) रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीन्हौ थानौ—१-११। (ख) कौरौ-दल नासि नासि कीन्हौ जन-भायौ—१-२३।

कीन्ह्यौ—क्रि स. भूत. [हि. करना] किया। उ.—बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यो—४ ११।

कीमत—संज्ञा पुं. [अ. कीमत] मूल्य, दाम।

कीमती—वि. [अ] अधिक मूल्य का।

कीमिया—संज्ञा स्त्री. [फा.] रसायन, रासायनिक क्रिया।

कीये—क्रि. स. [हिं. करना] (१) किये। (२) बनाये, चुने, स्थापित या नियुक्त किये। उ.—आठों लोकपाल तव कीये अपन अपन अधिकार २० सारा।

कीर—संज्ञा पुं. [स.] (१) तोता। (२) बहेलिया। संज्ञा पुं. [स. कीट] कीड़ा।

कीरत, कीरति—संज्ञा स्त्री. [स. कीर्त्ति] (१) पुण्य। (२) ख्याति, बड़ाई। उ.—नदनंदन की कीरत सुरज संभावन गावै—सा. ६३। (३) राधा की माता कीर्ति।

कीरतन—संज्ञा पुं० [सं० कीर्त्तन] (१) कथन, यश-गुण-वर्णन। उ०—जाके गृह मैं हरि-जन जाइ। नाम-कीरतन करै सो गाइ—६-४। (२) राम कृष्ण लीला संबंधी भजन या गीत।

कीरति-सुता—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्त्ति+सुता=पुत्री] कीर्ति की पुत्री, राधा।

कीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट] (१) चीटी, कीड़ा। (२) बहुत छोटे छोटे कीड़े।

कीर्ण—वि० [स.] (१) बिखरा या फैला हुआ। (२) छाया हुआ, ढका हुआ।

कीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यश-गुण-वर्णन। (२) राम-कृष्ण लीला के भजन, गीत या कथा। (३) भक्ति का एक अंग। उ०—स्रवन, कीर्तन, स्मरनपाद, रत अरचन बंदन दास-११६ सारा०।

कीर्त्तनिया—संज्ञा पुं० [स० कीर्त्तन+इया (प्रत्य०)] राम-कृष्ण की लीला का गानेवाला, कीर्त्तन करनेवाला।

कीर्ति, कीर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] (१) पुण्य। (२) यश, बड़ाई। उ०—तेरो तनु धनरूप महागुन सुन्दर स्याम सुनी यह कीर्ति—२२२३। (३) सीता की एक सखी। (४) राधा की माता का नाम।

कीर्त्तिमान—वि० [सं०] यशस्वी।

कीर्त्तिस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी की कीर्त्ति की स्मृति-रक्षा में निर्मित स्तंभ। (२) वह कार्य या वस्तु जिससे किसी की कीर्त्ति की स्मृति-रक्षा की जाय।

कील—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेख, काँटा, खूँटी। (२) नाक में पहनने का एक छोटा आभूषण, लौंग।

कीलन—संज्ञा पु [सं०] (१) रोक, रुकावट। (२) मंत्र कीलने की क्रिया।

कीलना—क्रि० स० [सं० कीलन] (१) कील लगाना। (२) मंत्र का प्रभाव नष्ट करना। (३) वश में करना।

कीलित—वि० [हि० कीलना] (१) जड़ित। (२) निश्चेष्ट।

कीली—संज्ञा स्त्री० [स० कील] (१) चक्र के बीच की कील या धुरी जिस पर वह घूमता है। (२) धुरी या कील।

कीश, कीस—संज्ञा पुं० [स० कीश] (१) बंदर, वानर, लंगूर। उ०—रीछ कीस बस्य करौं, रामहिं गहि ल्याऊँ—६-११८। (२) सूर्य।

कीसा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) थैली (२) जेब।

कुँअर—संज्ञा पु [सं. कुमार, हि. कुँवर] (१) लड़का। (२) राजकुमार। (३) धनी का पुत्र।

कुँअरविलास—संज्ञा पुं [हि. कुँअर + विलास] एक तरह का चावल।

कुँअरेटा—संज्ञा पु. [हि कुँअर + एटा (प्रत्य)] लड़का, बालक।

कुँअरि—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. कुमार]। (१) पुत्री, बालिका। (२) राजपुत्री, राजकुमारी। (३) प्रतिष्ठित पदाधिकारी या धनी की पुत्री। उ.—ठाढी कुँअरि राधिका लोचन मोचत तहँ हरि आए ६७५।

कुँआँ—संज्ञा पुं [हि. कुँआ] कूप, कूँआ।

कँआरा—वि. [सं कुमार] जिसका ब्याह न हुआ हो।

कुँई—संज्ञा स्त्री. [स. कुमुदिनी, प्रा. कुउइ] कुमुदिनी।

कुंकुम—संज्ञा पुं. [सं] (१) केसर। (२) रोली। (३) लाख का पोला गोला, कुकुमा।

कुकुमा—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] लाख का पोला गोला जिसमें गुलाल भर कर मारते हैं।

कुंचन—संज्ञा पु. [सं.] सिकुड़ने या सिमटने की क्रिया।

कुंचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घुँघची, गुंजा। (२) ताली, कुंजी।

कुंचित—वि. [सं.] (१) घूँघरवाले, छल्लेदार। उ.—कुंचित अलक, तिलक, गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन—१०-१०३। (२) टेढ़ा, घूमा हुआ।

कुँची, कुंचो—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंचिका] ताली, कुंजी, चाभी। उ.—धर्मवीर कुलकानि कुंची कर तेहि तारौ दै दूरि धरयौ री—१४४८।

कुंज—संज्ञा पुं [सं.] स्थान जो लतादि से मंडप की तरह ढका हो। उ —जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहँ कुंजलता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार।

यौ.—कुंजकी खोरी—कुंजगली, पतली गली। उ.—सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुंज की खोरी—१०-२६७।

कुंजक—संज्ञा पुं० [सं.] अन्त पुर में आने जाने का अधिकारी द्वारपाल या चोबदार, कंचुकी।

कुंजकुटीर—संज्ञा स्त्री. [सं] लताओं से घिरा हुआ घर।

कुंजगली—संज्ञा स्त्री. [हिं] (१) लताओं बेलों से छायी हुई पगडंडी। (२) गली।

कुंजबिहारी—संज्ञा पुं. [स कुंजविहारी] (१) कुंजों में विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण। उ.—(क) अगम अगोचर, लीलाधारी। सो राधा-बस कुंजबिहारी—१०-३। (ख) जबते बिछुरे कुंजबिहारी। नींद न परै घटै नहिं रजनी व्यथा विरह ज्वर भारी-२९८२।

कुँजड़ा—संज्ञा. पुं. [सं कुंज+ड़ा (प्रत्य.)] तरकारी बोने-बेचनेवाली एक जाति।

कुंजबिलासी—संज्ञा पुं० [स] कुंजों में विलास करने वाले। (२) श्रीकृष्ण। उ.—इहि घट प्रान रहत क्यों ऊधौ बिछुरे कुंजबिलासी—३३०५।

कुंजर—संज्ञा पु. [सं.] (१) हाथी। (२) बाल।

वि०—उत्तम, श्रेष्ठ।

कुंजरारि—संज्ञा. पुं. [स. कुंजर+अरि] हाथी का शत्रु, सिंह।

कुंजल—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी, गज। उ.—ज्यों सिवछुति दरसन रवि पायौ जेहि गरनि गरयौ। सूरदास प्रभु रूप थक्यौ मन कुंजल पंक परयौ—१४८६।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुंज में विहार करने वाला पुरुष। (२) श्रीकृष्ण।

कुंजित—वि. [स] कुंजों से युक्त।

कुंजी—संज्ञा स्त्री [सं. कुंजिका] (१) चाभी, ताली। (२) (ग्रंथ की) टीका।

कुंठ—[सं] (१) जो तेज न हो, गुठला, कुंद। (२) जिसकी बुद्धि तेज न हो, मूर्ख।

कुंठन—संज्ञा स्त्री. [स.] हिचक, कुंठित होने की क्रिया।

कुंठित—वि. [सं] (१) जिसकी धार तेज न हो। (२) मन्द, निकम्मा।

कुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्निहोत्र आदि करने का गढ़ा अथवा मिट्टी या धातु का पात्र जिसमें आग जलायी जाती है। उ.—(क) जग पुरुष प्रसन्न सब भए। निकसि कुंड तै दरसन दए—४-५। (ख) आहुति जज्ञकुंड में डारि। बह्यौ पुरुष उपजै बल भारि। (२) चौड़े मुँह का बरतन। (३) छोटा तालाब। (४) पूला, गट्ठा। (५) लोहे का टोप (६) हाथी का हौदा।

कुँड़रा—संज्ञा. पु. [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा। (२) लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा, इँडुवा, गेंडुरी।

कुँडरा—संज्ञा. पुं [स कुंड] कुंडा, मटका।

कुंडरी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) जन्म के ग्रहों की स्थिति बतानेवाला चक्र। (२) खँजरी, डफली। उ.—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी एक अमृत एक कुंडरी एक एक डफ कर धारे—२४२५।

कुंडल—संज्ञा पुं [स०] (१) कानो में पहनने का सोने-चाँदी का एक आभूषण। उ.-परम रुचिर मनि-कंठ किरनिगन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी—१-६६। (२) गोरखनाथ के अनुयायियों का कान में पहनने का गोल आभूषण। (३) वह मंडल जो बदली में चद्रमा या सूर्य के किनारे दिखायी देता है। (४) (साँप की) गोल फेरों में सिमटकर बैठने की स्थिति।

कुंडलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शरीर का एक कल्पित अंग जो मूलाधार में सुषुम्ना नाड़ी के नीचे साढ़े तीन कुंडली में घूमा माना गया है।

कुंडलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडलिका] दोहे और रोला के योग से बनानेवाला एक छंद।

कुंडली—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कुंडलिनी। (२) ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जो जन्मकाल में ग्रहों की स्थिति सूचित करने के लिए बनाया जाता है। (३) गेंडुरी। (४) साँप के गोलाकार बैठने का ढंग।

कुंडा—संज्ञा पुं० [सं. कुंड] बड़ा मटका।
संज्ञा पु० [सं. कुंडल] दरवाजे की बड़ी कुंडी, साँकल।

कुंडिका—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) कमंडल। (२) पथरी, कूँडी, प्याली। (३) ताँबे का हवन-कुंड।

कुंडी—संज्ञा स्त्री० [स. कुंड] तसले या कंडलदार थाली की तरह का बड़ा गहरा बर्तन। उ.—पूँगी फल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की। खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की—६-२५।
संज्ञा स्त्री. [हि. कुंडा (१) जंजीर की कड़ी। (२) साँकल।

कुंडोदर—संज्ञा पुं० [सं. कुंड+उदर] शिव जी का एक गण।

कुंत—संज्ञा पुं० [सं.] (१) भाला, बरछी। उ.—ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान—६-७५। (२) क्रूर भाव, अनख।

कुंतल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर के बाल, केश। उ.—(क) कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव नैन बिलोकनि बंक-१० १५४। (ख) स्रवन मनि ताटंक मंजुल कुटिल कुंतल छोर। (२) प्याला। (३) सूत्रधारा। (४)वेश बदलनेवाला पुरुष, बहुरूपिया। (५) जौ। (६) घास।

कुंता, कुंति, कुंती—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंती] राजा पांडु की स्त्री। यह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन थी। इस नाते श्रीकृष्ण की यह बुआ थी। भोज देश के राजा कुंतिभोज इसके चाचा थे और उन्होंने इसे गोद लिया था। दुर्वासा ऋषि की सेवा करके इसने पाँच मंत्र प्राप्त किये थे जिनके द्वारा यह देवताओं का आह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी। मंत्रों की सत्यता जाँचने के लिए इसने कुमारी अवस्था में ही सूर्य से 'कर्ण' को उत्पन्न किया था। विवाह के बाद धर्म, पवन और इंद्र द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इसके उत्पन्न हुए थे।
संज्ञा स्त्री. [स० कुंत] बरछी, भाला।

कुंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पौधा जिसमें मीठी सुगंध वाले सफेद फूल लगते हैं। इसकी कलियों से दाँतों की उपमा दी जाती है। उ.-(क) अति व्याकुल भईं गोपिका ढूँढति गिरिधारी। बूझति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी ·· । बूझा गरुवा कुंद सौं कहैं गोद पसारी। बकुल बहुलि बट कदम पै ठाढ़ी ब्रजनारी—१८२२। (ख) चिबुक मध्य मेचक रुचि उपजत राजति बिंब कुंद रदनी—पृ० ३१६। (२) कनेर का पेड़। (३) कमल। (४) विष्णु। (५) खराद।

कुंदन—संज्ञा पुं. [सं. कुंद=श्वेत पुष्प] स्वच्छ स्वर्ण, बढ़िया सोना। उ—आसन एक हुतासन बैठी, ज्यों कुंदन-अरुनाई। जैसैं रवि इक पल घन भीतर बिनु मारुत दुरि जाई—६-१६२।
(१) शुद्ध, बढ़िया। (२) सुंदर, नीरोग।

कुंदनपुर—संज्ञा पुं. [सं. कुंडिनपुर] विदर्भ देश का एक नगर जिसके राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर लाये थे। उ.—कुंदनपुर को भीषम राई—१० उ.-७।

कुंदर—सज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

कुंदा—सज्ञा पुं [फा.] (१) लकड़ी का लट्ठा। (२) लकड़ी का वह छोटा टुकड़ा जिस पर रखकर लकड़ी गढ़ी जाती है। (३) बन्दूक का पिछला भाग। (४) दस्ता, मूठ। (६) बड़ी मुगरी।

कुंदी—संज्ञा स्त्री. [हि. कुंदा] (१) कपड़े को मुगरी से कूटना। (२) खूब मारना पीटना।

कुंदुर—सज्ञा पुं. [स.] पीला गोंद।

कुँदेरना—सज्ञा पुं. [सं. कुंदलन =खोदना] खुरचना, छीलना।

कुँदेरा—संज्ञा पु. [हि. कुँदेरना+एरा (प्रत्य.)] खरादने का काम करनेवाला।

कुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, घट। उ.—सम-स्वेद

सीकर गुंड मंडित रुप अंबुज कोर। उमँगि ईषद यों सम तज्यौ पीयूष कुंभ हिलोर—पृ. ३१०। (२) हाथी के सिर के दोनों ओर का उभड़ा हुआ भाग। उ.—(क) बाज सौं टूटि गजराज हाँकत परयौ मनौ गिरि चरन धरि लपकि लीन्हे। बारि बाँधे बीर चहुँधा देखत ही बज्र सम थाप बल कुंभ दीन्हे—२५६०। (ख) तब रिस कियौ महावत भारी……। अंकुस राखि कुंभ पर करष्यौ हलधर उठे हँकारी—२५६४। (३) दसवीं राशि। (४) प्राणायाम के तीन भागों में एक। (५) एक पर्व जो प्रति बारहवें वर्ष होता है। (६) एक राग।

कुंभक—संज्ञा पुं [सं] प्राणायाम के तीन भागों में से एक जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोका जाता है। उ.—जोग विधि मधुबन सिखि आई जाइ ‥। सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ—३१३४।

कुंभकरन—संज्ञा पु. [सं. कुंभकर्ण] एक राक्षस का नाम जो रावण का भाई और बड़ा बली था। प्रसिद्धि है कि यह छह महीने सोता था।

कुंभकर्ण—संज्ञा पु. [सं.] रावण का भाई जो छ महीने तक सोता था।

कुंभकार—संज्ञा पु. [सं.] कुम्हार।

कुंभज, कुंभजात, कुंभयोनि, कुंभसंभव—संज्ञा पुं. [सं] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घड़े से हुई थी।

कुंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।

कुंभार—संज्ञा पुं [सं. कुंभकार] कुम्हार।

कुंभिका—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) जलकुंभी। (२) वेश्या। (३) कायफल।

कुँभिलाना—क्रि अ. [हिं कुम्हलाना] (१) ताजा न रहना, मुरझा जाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति मलीन होना, सुस्त हो जाना, उदासी छाना।

कुँभिलानी—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] (१) कुम्हला गयी, मुरझा गयी। उ.—(क) हरबराइ उठि धाइ प्रात ते बिथुरीं अलक अरु बसन सरगजे तैसीयै कुँभिलानी मात—१९८३। (ख) प्रफुलित कमल गुंजार करत अलि पटु फाटी कुमुदिनि कुँभिलानी—२२४८। (२) उदास हो गयी, सुस्त हो गयी। उ.—(ख) निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी। …। मनो तुषार कमलन परयौ ऐसे कुँभिलानी—पृ. ३४१। (ग) ऊधौ जिय जानी मन कुँभिलानी कृष्न संदेस पठाये—३४४१।

कुँभिलानो, कुँभिलानौ—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] कुम्हला गया, उदास हो गया, प्रभाहीन हो गया। उ.—अति रिसि कृस ह्वै रही किसोरी करि मनुहारि मनाइए। …। छूटे चिहुर बदन कुँभिलानौ सुहथ सँवारि बनाइए—१६८८।

कुँभिलाहि—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] सूख जाती है, मुरझा जाती है। उ.—जल में रहहि जलहि ते उपजहि जल ही बिन कुँभिलाहि—२७५७।

कुंभी—संज्ञा पु [सं.] हाथी।

संज्ञा स्त्री.—(१) बर्सी। (२) एक नरक का नाम, कुंभीपाक।

कुंभीनस—संज्ञा पु. [सं] (१) साँप। (२) रावण।

कुंभीपाक—संज्ञा पु [सं.] एक नरक जिसमें मांसाहारी व्यक्ति खौलते हुए तेल में डाला जाता है।

कुंभीपुर—संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर का एक नाम, पुरानी दिल्ली।

कुंभीर—संज्ञा पुं [सं.] नाक नामक जलजंतु।

कुँवर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार] राजपुत्र, राजकुमार। उ.—इक दिन नृपति सुरुचि-गृह आयौ। उत्तम कुँवर गोद बैठायौ—४-६।

कुँवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पु. कुँवर] (१) कुमारी। (२) राजकन्या, प्रतिष्ठित व्यक्ति की कन्या। उ.—(क) गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही, हृदय दुहुनि छिपाइ। सूर प्रभु के बचन सुनि-सुनि रही कुँवरि लजाइ—६७६। (ख) नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि बृषभानु-किसोरी—६८५।

कुँवरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँवरि] बेटी, पुत्री। उ.—सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया—६८८।

कुँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँवरि] कुमारी, कुँवरि। उ.—कुँवरी अहि जसु हेमखंभ लगि ग्रीव कपोत बिसारी—२३०४।

कुँवरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँवर+एटा (प्रत्य.)] छोटा लड़का, बच्चा।

कुँवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. कूआँ] कूप, कुआँ।

कुँवार, कुँवारा—वि. [सं. कुमार, प्रा. कुँवार] जिसका ब्याह न हुआ हो।

कुँहकुँह—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर, जाफरान।

कु—उप. [सं] एक उपसर्ग जो शब्द के आदि में जुड़कर 'नीच', 'बुरा' आदि का अर्थ देता है, जैसे कुपुत्र, कुसंग।

संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

कुअंक—संज्ञा पुं [सं. कु+अंक] (१) बुरे अंक। (२) बुरा भाग्य, दुर्भाग्य।

कुआँ—संज्ञा पुं [सं. कूप, प्रा. कूव] कूप।

कुआँर, कुआर—संज्ञा पुं [प्रा कुँमार, हि. क्वार] भादों के बाद का महीना।

कुइँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुइयाँ] छोटा कुआँ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुव] कुमुदिनी।

कुइयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुआँ] छोटा कुआँ।

कुकड़ना—क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] सिकुड़ जाना, संकुचित होना।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्कुटी] कच्चे सूत की अण्टी।

कुकनू—संज्ञा पुं. [यू.] एक पक्षी।

कुकरना—क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] सिकुड़ जाना।

कुकरी—संज्ञा स्त्री. [सं कुक्कुट, पु हि कुकड़ा] मुरगी।

कुकपि—संज्ञा पुं. [सं कु=बुरा] दुष्ट कपि। उ.—संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन, स्वास आकास बनचर उड़ाऊँ - ९-१२६।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० कु=बुरा+कर्म] बुरा या खोटा काम, दुष्कर्म।

कुकर्मी—वि० [हि० कुकर्म] बुरा काम करनेवाला, पापी।

कुकवि—संज्ञा पु० [सं० कु=बुरा+कवि] बुरा कवि, पापी कवि, ऐसा कवि जिसने कोई पुण्य कार्य न किया हो। उ०—सूरदास बहुरौ वियोग गति कुकवि निलज ह्वै गावत—३३६२।

कुकुर—संज्ञा पु० [सं०] (१) एक क्षत्रिय जाति। (२) कुत्ता। (३) एक साँप का नाम।

कुकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हि० कुक्कुर=कुत्ता+मूत] एक बदबूदार बनस्पति।

कुकुही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुभ, प्रा० कुक्कुह] बनमुर्गी।

कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गा। (२) चिनगारी। (३) जटाधारी।

कुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पेट, उदर।

कुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेट। (२) कोख। (३) गोद।

कुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्र, प्रा० कुखेत] बुरा स्थान, कुठाँव। उ०—चारों ओर ब्यास खगपति के झुंड झुंड बहु आये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल अंग कुम्हिलाये।

कुख्यात—वि. [सं. कु+ख्यात] बदनाम, निंदित।

कुख्याति - संज्ञा स्त्री. [सं.] बदनामी, निंदा।

कुगंधि - संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी गंध, दुर्गंध। उ०—हंस काग को भयौ संग।...। जैसे कंचन काँच संग ज्यौं चंदन संग कुगंध। जैसे खरी कपूर दोउ यक मय यह भइ ऐसी संधि—२९१२।

कुगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी दशा, दुर्गति।

कुगहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+ग्रहण] वह हठ या आग्रह जो उचित न हो।

कुघा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि] ओर, तरफ, दिशा।

कुघात—संज्ञा पु० [सं. कु+हि. घात] (१) बुरा अवसर या समय। (२) बुरी चाल, छल-कपट।

कुच—संज्ञा पुं. [सं.] स्तन, छाती।

वि.—(१) सिमटा हुआ, संकुचित। (२) कंजूस।

कुचकुचा—वि. [अनु. कुचकुच] कोंचा या मसला हुआ।

कुचकुचाना—क्रि. स. [अनु. कुचकुच] बारबार कोंचना या चुभाना।

कुचक्र—संज्ञा पुं [सं] षड्यंत्र, छलकपट।

कुचक्री—संज्ञा पु [सं. कुचक्र] छली, षड्यंत्रकारी।

कुचना—क्रि. अ [सं कुंचन] सिकुड़ना, सिमिटना, संकुचित होना।

क्रि. अ. [हि कूँचना] दब जाना, कुचल जाना।

कुचर—संज्ञा पु० [सं.] (१) आवारा। (२) कुकर्मी। (३) दूसरे की निंदा करनेवाला।

कुचलना—क्रि. स. [हि. कूँचना] (१) दबाना, मसल देना। (२) पैरों से रौंदना।

कुचाल—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हिं. चाल] (१) बुरा चाल-चलन। (२) खोटापन, दुष्टता।

कुचालिया, कुचाली—वि. [हिं. कुचाल] (१) जिसका आचरण अच्छा न हो। (२) जिसकी नीति ठीक न हो, दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारी। उ.—जिनि हति सकट, प्रलंब, तृनावृत, इंद्र-प्रतिज्ञा टाली। एते पर नहिं तजत अघोड़ी कपटी कंस कुचाली—२५६७।

कुचाह—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. चाह] बुरी या अशुभ बात, अमंगलसूचक समाचार।

कुचिल—वि [हिं. कुचैला] मैला, गंदा। उ.—कहौ कैसे मिले स्याम सघाती। कैसे गए सुदंत कौन विधि परसे हुते बस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-७२।

कुचिलगे—क्रि. स. [हिं. कुचलना] दब गया, मसल गया।

कुची—सज्ञा स्त्री. [हिं. कुंजी] (१) कुंजी, ताली। (२) कूचा, ब्रुश।

कुचील—वि [स. कुचेल] मैले वस्त्रवाला, मैला-कुचैला, मलिन। उ—(क) हौ कुचील, मतिहीन सकल विधि, तुम कृपालु जगजान—१-१००। (ख) कजल कीच कुचील किये तट अचर, अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हस्त चरन मुख बोल—३४५४। (ग) कुटिल कुचील जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि घर आनी—३०८६। (घ) दुर्बल विप्र कुचील सुदामा ताको कंठ लगाये—८१८ सारा.।

कुचीलनि—वि बहु. [सं. कुचेल, हिं. कुचील + नि (प्रत्य.)] मैले-कुचैलों से, मलिन लोगों से। उ.—साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उच्चरतौ। औघड़ - असत-कुचीलनि सौं मिलि, मायाजल मैं तरतौ—१ २०३।

कुचीला—वि. [हिं. कुचील] (१) मैला, गदा। (२) मैले या गदे वस्त्रवाला।

कुचेल—सज्ञा पु [सं.] मैला कपडा।

वि.—(१) मैला, गंदा। (२) मैले कपड़ेवाला।

कुचेष्ट—वि. [स] (१) बुरी आकृतिवाला। (२) बुरी चालबाजी।

कुचेष्टा—सज्ञा स्त्री. [सं] (१) बुरी चाल या चेष्टा। (२) बुरी आकृति-प्रकृति।

कुचैन—सज्ञा स्त्री. [सं कु + हि. चैन] व्याकुलता, अशांति।

कुचैल, कुचैला—वि [हि कुचैला] (१) जिसका कपड़ा मैला हो। (२) मैला, गंदा। उ.—पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाये (हो)। संपति दै वाकी पतिनी कौं, मन-अभिलाष पुराए (हो)—१-७।

कुच्छि—संज्ञा स्त्री. [सं कुक्षि] (१) पेट। (२) कोख।

कुच्छित—वि. [स. कुत्सित] बुरा, नीच।

कुछ—वि. [सं. किंचित, पा. किंची, पृ. हिं. किछु] थोड़ा, जरा।

सर्व. [स. कश्चित, पा. कोचि] (१) कोई (वस्तु), थोड़ी (वस्तु)। उ. - जब वह विप्र पढ़ावै कुछ कुछ सुनके चित धरि राखै—११० सारा.। (२) कोई (विशेषता या बड़ी बात)।

मुहा०—जो कुछ करै सो थोरा—सब कुछ करने की सामर्थ्य है, शक्ति या सामर्थ्य इतनी अधिक है कि बड़े से बड़ा काम करना भी उनके लिए साधारण बात होगी। उ—इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी। सूरदास जसुदा को नंदन, जो कछु करै सो थोरी—१०-२६३।

कुजंत्र—संज्ञा पु. [स कुयंत्र] टोना, टोटका।

कुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगल ग्रह। उ.—भाल विसाल ललित लटकन मनि, बालदसा के चिकुर सुहाए। मानौ गुरु सनि-कुज आगे करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए—१०-१०४। (१) पेड़। (१) (कु = पृथ्वी) पृथ्वी का पुत्र नरकासुर।

वि.—लाल रंग का।

कुजा—सज्ञा स्त्री. [स. कु = पृथ्वी + जा] पृथ्वी की पुत्री सीता।

कुजात, कुजाति, कुजाती—संज्ञा स्त्री. [सं. कुजाति] बुरी या नीच जाति।

वि.—(१) बुरी जाति का। (२) पतित या नीच, दीन-दुखी या अनाथ। उ.—कहौ कैसे मिले स्याम संघाती। कैसे गये सु कत कौन विधि परसे हुए वस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-८७।

कुजोग—संज्ञा पु. [स. कुयोग] बुरा मेल या सबंध, कुसंग। (२) बुरा सयोग या अवसर।

कुजोगी—वि. [सं. कुयोगी] जो संयमी न हो।

कुज्जा—सज्ञा पु. [फा. कूजा=प्याला] (१) पुराना मिट्टी का प्याला। (२) मिट्टी के कुज्जे में जमाई हुई मिश्री।

कुटंत—संज्ञा स्त्री. [हि. कूटना + त (प्रत्य.)] (१) कुटाई, पिटाई। (२) मार, चोट।

कुट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर (२) किला, गढ़। (३) कलश।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुष्ठ] एक झाड़ी।

संज्ञा पुं [सं. कूट=कूटना] कुटा हुआ अंश।

कुटका—संज्ञा पु. [हिं. काटना] कटा हुआ छोटा टुकड़ा।

कुटज—संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली वृक्ष, कुरैया, कर्ची। उ.—कुटज कुमुद कदंब कोविद कनक आरि सुभंज। केतकी करवील बेलउ बिमल बहु बिधि मत-२८२८।

कुटना—संज्ञा पुं. [हि. कुटनी] (१) नायक का दूत। (२) परस्पर झगड़ा करनेवाला।

संज्ञा पु. [हि. कुटना] कूटने का हथियार।

क्रि. अ.—कूटा जाना।

कुटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुट्टनी] (१) नायक की दूती। झगड़ा करनेवाली।

कुटिया—संज्ञा स्त्री. [स. कुटी] झोपड़ी।

कुटिल—वि. [सं.] (१) कपटी, छली, शठ, खल। उ.—(क) सोंचे सूर कुटिल ये लोचन ब्यथा मीन छवि छीनि लयी-२५३३। (ख) मल्लयुद्ध प्रति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे—२५६६। (ग) रिपु भ्राता ज न्यो जु बिभीषन निसिचर कुटिल सरीर-२६० सारा.। (२) वक्र, टेढ़ा। उ —कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा सीस सिखिनि सिखंड—१-३०७। (३) घूमा या बल खाया हुआ। (४) छल्लेदार, घुँघराला। उ.—लला हौं वारी तेरे मुख पर। कुटिल अलक मोहन मन बिहसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर-१०-६३। (ख) कुटिल कुंतल मधुप मिलि मनु कियौ चाहत लरनि—३५१।

कुटिलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टेढ़ापन। (२) छल, कपट।

कुटिलाई—संज्ञा स्त्री. [हि. कुटिल] कुटिलता।

कुटी—संज्ञा स्त्री. [स] (१) पर्णशाला, कुटिया, झोपड़ी। (२) घास-फूस का घेरा। उ.—तुम लछिमन या कुंज-कुटी मैं देखौ जाइ निहारि। कोउ इक जीव नाम मम लै लै उठत पुकारि-पुकारि—६-६५।

कुटीर—संज्ञा पुं. [स. कुटी] कुटी। उ.—सूरदास स्वामी अरु प्यारी बिहरत कुंज कुटीर—१५६१।

कुटुँब, कुटुम्ब—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुनबा।

कुटुम्बी—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार या कुटुंब के अन्य प्राणी।

कुटुम—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुटुम्ब। उ.—उग्रसेन सब कुटुम लै ता ठौर सिधायौ—१० उ.-३।

कुटेक—संज्ञा स्त्री [सं. कु=बुरा + हि. टेक] अनुचित बात पर अड़ना।

कुटेव—संज्ञा स्त्री. [स कु=बुरा + हि. टेव = आदत] खराब या बुरी आदत। उ —नैनन यह कुटेव पकरी। लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी —पृ. ३३०।

कुटौनी—संज्ञा स्त्री. [हि कूटना+औनी] (१) धान कूटने का काम। (२) धान कूटने की मजूरी।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटनी] दूती, कुटनी।

कुट्टमित—संज्ञा पु. [सं.] सुख-विलास के समय स्त्रियों का दुख या कष्ट का बनावटी भाव जो विशेष प्रिय लगता है।

कुठाँउ, कुठाँय, कुठाँव—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हि. ठाँव] (१) बुरी ठौर या जगह। उ०—यह सब कलियुग कौ परभाव, जौ नृप कौ मन गयौ कुठाँव। (२) संकट में, विपत्ति के स्थान में। उ०—जौ हरि ब्रत निज उर न धरैंगौ। तौ को अस त्राता जु अपन करि, कर कुठावँ पकरैंगौ—१-७५।

कुठाट—संज्ञा पुं. [सं. कु=बुरा+हि. ठाट] (१) बुरा साज-सामान। (२) बुरा विचार, प्रबंध या आयोजन।

कुठाय—संज्ञा स्त्री. [हि. कुठाँव] बुरा ठौर।

कुठार—संज्ञा पु [स.] (१) लकड़ी काटने की कुल्हाड़ी। उ०—जद्यपि मलय वृच्छ जड़ काटै, करकुठार पकरै। तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-तार हरै—१-११०। (२) परशु, फरसा। (३) नाश करनेवाला व्यक्ति।

कुठारपाणि, कुठारपानि—संज्ञा पुं. [स कुठार+पाणि] वह जिसके हाथ में परशु या फरसा हो, परशुराम।

कुठाराघात—संज्ञा पुं० [स०] (१) कुल्हाड़ी की चोट। (२) गहरी चोट।

कुठारी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) कुल्हाड़ी। (२) नाश करने वाली स्त्री।

कुचालिया, कुचाली—वि. [हि. कुचाल] (१) जिसका आचरण अच्छा न हो। (२) जिसकी नीति ठीक न हो, दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारी। उ.—जिनि हति सकट, प्रलय, तृनावृत, इंद्र प्रतिज्ञा टाली। एते पर नहिं तजत अघोड़ी कपटी कस कुचाली—२५६७।

कुचाह—संज्ञा स्त्री. [स. कु + हि. चाह] बुरी या अशुभ बात, अमंगलसूचक समाचार।

कुचिल—वि [हि. कुचैला] मैला, गंदा। उ.—कहो कैसे मिले स्याम सघाती। कैसे गए सुकत कौन विधि परसे हुते वस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-७२।

कुचिलगे—क्रि. स. [हि. कुचलना] दब गया, मसल गया।

कुची—संज्ञा स्त्री. [हि. कुंजी] (१) कुंजी, ताली। (२) कूचा, बुश।

कुचील—वि. [सं. कुचेल] मैले वस्त्रवाला, मैला-कुचैला, मलिन। उ.—(क) हौं कुचील, मतिहीन सकल विधि, तुम कृपालु जगजान—१-१००। (ख) कज्जल कीच कुचील किये तट अंचर, अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हरत चरन मुख बोल—३४५४। (ग) कुटिल कुचील जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि घर आनी—३०८६। (घ) दुर्बल विप्र कुचील सुदामा ताको कंठ लगाये—८१८ सारा.।

कुचीलनि—वि बहु. [सं. कुचेल, हिं. कुचील + नि (प्रत्य)] मैले-कुचैलों से, मलिन लोगों से। उ.—साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उचरतौ। औघड़ - असत-कुचीलनि सौं मिलि, मायाजल मैं तरतौ—१ २०३।

कुचीला—वि [हि. कुचील] (१) मैला, गंदा। (२) मैले या गंदे वस्त्रवाला।

कुचेल—संज्ञा पु. [सं.] मैला कपड़ा।

वि.—(१) मैला, गंदा। (२) मैले कपड़ेवाला।

कुचेष्ट—वि [स] (१) बुरी आकृतिवाला। (२) बुरी चालबाजी।

कुचेष्टा—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) बुरी चाल या चेष्टा। (२) बुरी आकृति-प्रकृति।

कुचैन—संज्ञा स्त्री. [स कु + हि. चैन] व्याकुलता, अशांति।

कुचैल, कुचैला—वि. [हि कुचैला] (१) जिसका कपड़ा मैला हो। (२) मैला, गंदा। उ.—पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाये (हो)। संपति दै वाकी पतिनी कौं, मन-अभिलाष पुराए (हो)—१-७।

कुच्छि—संज्ञा स्त्री. [स. कुक्षि] (१) पेट। (२) कोख।

कुच्छित—वि. [सं. कुत्सित] बुरा, नीच।

कुछ—वि. [स. किंचित, पा. किंची, पु. हिं. किछु] थोड़ा, जरा।

सर्व. [स. कश्चित, पा. कोचि] (१) कोई (वस्तु), थोड़ी (वस्तु)। उ.—जब वह विप्र पढ़ावें कछु कुछ सुनके चित धरि राखें—११० सारा.। (२) कोई (विशेषता या बड़ी बात)।

मुहा०—जो कुछ करे सो थोरा—सब कुछ करने की सामर्थ्य है, शक्ति या सामर्थ्य इतनी अधिक है कि बड़े से बड़ा काम करना भी उनके लिए साधारण बात होगी। उ—इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी। सूरदास जसुदा को नंदन, जो कछु करै सो थोरी—१०-२६३।

कुजंत्र—संज्ञा पु. [स. कुयंत्र] टोना, टोटका।

कुज—संज्ञा पुं. [सं] (१) मंगल ग्रह। उ.—भाल बिसाल ललित लटकन मनि, बालदसा के चिकुर सुहाए। मानौ गुरु सनि-कुज आगे करि, ससिहि मिलन तम के गन आए—१०-१०४। (१) पेड़। (१) (कु = पृथ्वी) पृथ्वी का पुत्र नरकासुर।

वि.—लाल रंग का।

कुजा—संज्ञा स्त्री. [स. कु = पृथ्वी + जा] पृथ्वी की पुत्री सीता।

कुजात, कुजाति, कुजाती—संज्ञा स्त्री. [सं कुजाति] बुरी या नीच जाति।

वि.—(१) बुरी जाति का। (२) पतित या नीच, दीन-दुखी या अनाथ। उ.—कहौ कैसे मिले स्याम संघाती। कैसे गये सुकत कौन विधि परसे हुए वस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-८७।

कुजोग—संज्ञा पु. [स. कुयोग] बुरा मेल या संबंध, कुसंग। (२) बुरा संयोग या अवसर।

कुजोगी—वि. [सं. कुयोगी] जो संयमी न हो।

कुज्जा—संज्ञा पु. [फा. कूजा=प्याला] (१) पुराना मिट्टी का प्याला। (२) मिट्टी के कुज्जे में जमाई हुई मिश्री।

कुटंत—संज्ञा स्त्री. [हि. कूटना + त (प्रत्य.)] (१) कुटाई, पिटाई । (२) मार, चोट ।

कुट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर (२) किला, गढ़ । (३) कलश ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुष्ठ] एक झाड़ी ।

संज्ञा पुं. [स. कूट=कूटना] कुटा हुआ अंश ।

कुटका—संज्ञा पुं. [हि. काटना] कटा हुआ छोटा टुकडा ।

कुटज—संज्ञा पुं. [सं] एक जंगली वृक्ष, कुरैया, कर्ची । उ.—कुटज कुमुद कदंब कोविद कनक आरि सुकंज । केतकी करवील वेलउ बिमल बहु बिधि मंत—२८२८।

कुटना—सज्ञा पुं. [हिं. कुटनी] (१) नायक का दूत । (२) परस्पर झगडा करनेवाला ।

संज्ञा पु. [हि कुटना] कूटने का हथियार ।

क्रि. अ.—कूटा जाना ।

कुटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुट्टनी] (१) नायक की दूती । झगड़ा करनेवाली ।

कुटिया—सज्ञा स्त्री. [सं. कुटी] झोपड़ी ।

कुटिल—वि. [सं.] (१) कपटी, छली, शठ, खल । उ.—(क) साँचे सूर कुटिल ये लोचन व्यथा मीन छवि छीनि लयी-२५३३ । (ख) मल्लयुद्ध प्रति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे—२५६६ । (ग) रिपु भ्राता जन्योजु विभीषन निसिचर कुटिल सरीर-२६० सारा. । (२) वक्र, टेढ़ा । उ —कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा सीस सिखिनि सिखड —१-३०७ । (३) घूमा या बल खाया हुआ । (४) छल्लेदार, घुँघराला । उ. —लला हौं वारी तेरें मुख पर । कुटिल अलक मोहन मन बिहसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर-१०-६३ । (ख) कुटिल कुंतल मधुप मिलि मनु कियौ चाहत लरनि—३५१ ।

कुटिलता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) टेढ़ापन । (२) छल, कपट ।

कुटिलाई—सज्ञा स्त्री. [हि. कुटिल] कुटिलता ।

कुटी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) पर्णशाला, कुटिया, झोपडी । (२) घास-फूस का घेरा । उ.—तुम लछिमन या कुंज-कुटी मैं देखौ जाइ निहारि । कोउ इक जीव नाम मम लै लै उठत पुकारि-पुकारि—६-६५ ।

कुटीर—सज्ञा पुं. [स. कुटी] कुटी । उ.—सूरदास स्वामी अरु प्यारी विहरत कुंज कुटीर—१५६१ ।

कुटुँब, कुटुम्ब—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुनबा ।

कुटुम्बी—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार या कुटुम्ब के अन्य प्राणी ।

कुटुम—संज्ञा पुं [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुटुम्ब । उ.—उग्रसेन सब कुटुम लै ता ठौर सिधायौ—१० उ.-३ ।

कुटेक—सज्ञा स्त्री [सं. कु=बुरा + हि. टेक] अनुचित बात पर अड़ना ।

कुटेव—सज्ञा स्त्री. [स. कु=बुरा + हि. टेव = आदत] खराब या बुरी आदत । उ —नैनन यह कुटेव पकरी । लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी —पृ. ३३० ।

कुटौनी—सज्ञा स्त्री. [हि कूटना+औनी] (१) धान कूटने का काम । (२) धान कूटने की मजूरी ।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटनी] दूती, कुटनी ।

कुट्टमित—सज्ञा पु. [सं.] सुख-विलास के समय स्त्रियों का दुख या कष्ट का बनावटी भाव जो विशेष प्रिय लगता है ।

कुठाँउ, कुठाँय, कुठाँव—संज्ञा स्त्री [सं. कु+हि. ठाँव] (१) बुरी ठौर या जगह। उ०—यह सब कलियुग कौ परभाव, जो नृप कौ मन गयौ कुठाँव । (२) सकट में, विपत्ति के स्थान मे । उ०—जौ हरि व्रत निज उर न धरैगौ। तौ को अस त्राता जु अपन करि, कर कुठाँव पकरैगौ—१-७५ ।

कुठाट—सज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा+हि. ठाट] (१) बुरा साज-सामान । (२) बुरा विचार, प्रबध या आयोजन ।

कुठाय—संज्ञा स्त्री. [हि. कुठाँव] बुरा ठौर ।

कुठार—सज्ञा पु. [स] (१) लकडी काटने की कुल्हाडी । उ०—जद्यपि मलय बृच्छ जड़ काटै, करकुठार पकरै । तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै—१-११० । (२) परशु, फरसा । (३) नाश करनेवाला व्यक्ति ।

कुठारपाणि, कुठारपानि—सज्ञा पुं. [स कुठार+पाणि] वह जिसके हाथ मे परशु या फरसा हो, परशुराम ।

कुठाराघात—संज्ञा पुं० [स०] (१) कुल्हाडी की चोट । (२) गहरी चोट ।

कुठारी—सज्ञा स्त्री [सं.] (१) कुल्हाडी । (२) नाश करने वाली स्त्री ।

संज्ञा स्त्री०—(१) हानिकारी भोजन करने की क्रिया। (२) बदपरहेजी। उ०—जो हुती निकट मिलन की आसा सो तो दूर गयी। जथा योग ज्यों होत रोगिया कुपथी करत नयी—२६०१।

कुपथ्य—संज्ञा पु० [सं०] वह आहार-विहार जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारी हो।

कुपना—क्रि. अ. [हि. कोपना] अप्रसन्न होना।

कुपाठ संज्ञा पुं० [सं.] बुरी सलाह।

कुपात्र—वि०—[सं०] (१) अयोग्य। (२) जो दान का अधिकारी न हो।

कुपार—संज्ञा पुं० [अकूपार] समुद्र।

कुपित—वि०—[सं०] (१) क्रोध में भरा हुआ। (२) अप्रसन्न।

कुपीन—संज्ञा पुं० [सं० कौपीन] लँगोटी, कफनी, कच्छी। उ.—जीरन पट कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि—१-३४१।

कुपुटना—क्रि. स. [हिं. कपटना] काटकपट करना, छिपा कर निकाल लेना।

कुपुत्र—संज्ञा पु [सं.] बुरा पुत्र, कपूत।

कुपेंड़े—संज्ञा पुं. [सं. कु + पैंड़] बुरा मार्ग। उ.—छाँड़ि राजमारग यह लीला कैसे चलहि कुपैंड़े—३०६६।

कुपैंड़ो—संज्ञा पु. [सं कु+पैंड़] बुरा पथ या मार्ग। उ.—राजपथ तें टारि बतावत उज्ज्वल कुचल कुपैंड़ो—३३१३।

कुप्रबन्ध—संज्ञा पुं [सं. कु + प्रबंध] बुरा इतजाम।

कुप्रयोग—संज्ञा पु. [सं. कु + प्रयोग] वस्तु, पद या अधिकार का अनुचित प्रयोग।

कुफुर, कुफ्र—संज्ञा पु [अ] (१) इसलाम से भिन्न धर्म। (२) इसलाम धर्म के विरुद्ध बात।

कुबंड—संज्ञा पु. [सं. कोदंड] धनुष।

वि. [सं. कु + खंड=खंड] जिसके शरीर का कोई अंग खंडित हो।

कुबड़—संज्ञा पु. [हिं. कूबड़] कूबड़।

कुबजा—संज्ञा स्त्री [सं. कुब्जा] कंस की एक दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबड़ा—वि. [सं. कुब्ज] जिसकी पीठ झुक गयी हो।

वि.—झुका हुआ।

कुबड़ी—वि. स्त्री. [हि. कुबड़ा] (१) जिसकी पीठ झुक गयी हो। (२) मोटी छड़ी जिसका सर झुका हो।

कुबत—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. बात] (१) बुराई, निंदा। (२) बुरी चाल।

कुबरी—संज्ञा स्त्री. [हि कुबड़ा] (१) कंस की कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। (२) जिसकी पीठ झुकी हुई हो।

कुबलय—संज्ञा पुं [सं. कुवलय] नीला कमल। उ.—कुवलयदल कुसमय सैय्या रचि पथ निहारत तोर—६२६ सारा।

कुबल्या—संज्ञा पुं. [सं. कुवलया] कुवलयापीड नामक कंस का हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

कुबाक—संज्ञा.पुं. [सं.कुवाक्य] (१) कड़ी या कठोर बात। (२) गाली।

कुबानि—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. बानि] बुरी आदत, कुटेव।

कुबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय।

संज्ञा स्त्री. [सं कु + वाणी] बुरी या अशुभ बात।

संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हिं. बानि] बुरी आदत।

कुबिज—संज्ञा पुं. [सं कुब्ज] पीठ का टेढ़ापन, कूबड़। उ.—हरि करि कृपा करी पटरानी कुबिज मिटायौ डारि—२६४०।

कुबिजा—संज्ञा स्त्री [सं कुब्जा] कुब्जा नामक कंस की दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबुद्धि—वि. [सं] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो, दुर्बुद्धि, मूर्ख।

संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा] (१) मूर्खता। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबुधि—वि. [सं. कुबुद्धि] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो, मूर्ख।

संज्ञा स्त्री [सं] (१) मूर्खता। उ.—तजो हरि-विमुखन कौ संग। जिनकैं संग कुबुधि (कुमति) उपजति है, परत भजन मैं भंग — १-३३। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबेर—संज्ञा पुं. [सं. कुबेर] एक देवता।

संज्ञा स्त्री. [सं कुवेला, हिं कुबेला] बुरा समय।

कुबेरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेला, हिं. कुबेला] अनुपयुक्त समय, बुरा काल। उ.—आवहु कान्ह, साँझ की

बेरिया। गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े, बहति जननि यह बड़ी कुबेरिया—१०-२४६।

कुबेला—संज्ञा स्त्री. [सं. कुबेला] बुरा समय।

कुबोल—संज्ञा पुं० [सं.कु+हि० बोल] बुरी या अशुभ बात।

कुबोलना—वि० पुं० [हि० कु+बोलना] बुरी या अशुभ बात कहनेवाला।

कुबोलिनी, कुबोली—वि. स्त्री. [हि. कुबोल] अप्रिय या कटु बात कहनेवाली।

कुब्ज—वि. [सं.] जिसकी पीठ टेढ़ी हो, कुबड़ा। उ.—स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन। भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी आधीन—१-३२१।

कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी और प्रसिद्धि है कि जिसे उन्होंने अपना लिया था। (२) कैकेयी की मन्थरा नामक दासी जो कुबड़ी थी।

कुब्बा—संज्ञा पुं० [हि० कुबड़ा] कूबड़, कोहान, डिल्ला।

कुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी की छाया। (२) काबुल नदी।

कुभाउ—संज्ञा पुं० [सं० कुभाव] बुरा या अनुचित विचार। उ०—यह सब कलिजुग कौ परभाउ। जो नृप कैं मन भयउ कुभाउ—१-२६०।

कुभाव—संज्ञा पुं. [स. कु+भाव] बुरा, अनुचित या अशुभ विचार।

कुमंठी,कुमंडी—संज्ञा स्त्री [सं. कमठ=बाँस] पेड़ की पतली और लचीली टहनी।

कुमंत्र—संज्ञा पुं० [स० कु+मंत्र] बुरी सलाह बुरी सलाह के अनुसार अनुचित कार्य। उ.–तैं कैकई कुमंत्र कियौ। अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ-करि नृप अपराध लियौ—६ ४८।

कुमंत्रणा—संज्ञा. स्त्री. [सं०] बुरी सलाह।

कुमक—संज्ञा स्त्री [तु.] (१) सहायता, मदद। (२) पक्षपात, तरफदारी।

कुमकुम-संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] (१) गुलाल। (२) केशर। उ.—(क) कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ—१-१६६। (ख) तहाँ स्याम घन रास उपायौ। कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायौ (ग) उनै उनै घन बरसत चख उर सरिता सलिल भरी। कुम-कुम कज्जल कीच बहै जनु कुचयुग पारि परी—२८१४। (३) कुमकुमा।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [तु. कुमकुमा] (१) लाख के बने पोले गोले जो अबीर गुलाल भरकर एक दूसरे को होली के दिनों में मारते है। (२) काँच के बने छोटे-बड़े गोले।

संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर। उ.—(क) मलयज पंक कुमकुमा मिलिकै जल जमुना इक रंग—१८९२। (ख) मृगमद मलय कपूर कुमकुमा सींचति आनि अली—२७३८।

कुमग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] कुमार्ग, बुरा मार्ग। उ.—अद्भुत राम नाम के अंक। अंधकार-अज्ञान हरन कौं रवि ससि जुगल-प्रकास। बासर-निसि दोऊ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास—१-९०।

कुमत—संज्ञा स्त्री [सं कुमति] (१) दुर्बुद्धि। उ.—बाजि मनोरथ, गर्व मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत—१ १४१। (२) दुर्बुद्ध नायिका। उ.—मेरी कही न मानत राधे। ए अपनी मत समुझत नाहीं कुमत कहाँ पन नाधे—सा. ६५।

कुमति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्बुद्धि। (२) कुमंत्रणा। उ—मंत्री काम कुमति दीवे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी—१-१४४(३) पुरंजन नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम। उ.—तन पुर, जीव पुरंजन राव। कुमति तासु रानी कौ नाँव—४ १२।

कुमया—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+माया] निष्ठुरता, कठोरता, निर्दयता, अनुचित व्यवहार। उ.—यह कुमया जौ तब ही करते। तौ कत इन ये जिवत आजु लौं या गोकुल के लोग उबरते—२७३८।

कुमाच—संज्ञा पुं. [अ. कुमाश] (१) रेशमी वस्त्र। (२) कौच नामक लता।

कुमार—संज्ञा पुं० [सं] (१) पाँच वर्ष की आयु का बालक। (२) पुत्र, बेटा। उ.—सब तज भजिए नंद-कुमार—१ ६८। (३) किशोर, वह जो किशोरावस्था का हो। उ.—बालमीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र उच्चार। ताकौ फल मोहिं आजु भयौ, मोहि दरसन दियौ कुमार। (४) वह मार (कामदेव)

जो शत्रु का सा कठोर व्यवहार करे। उ.—व्रज मे आजु एक कुमार। तपनरिपु चल तासु पति हित अंत हीन विचार—सा. ३०।

वि०—जिसका विवाह न हुआ हो, कुआँरा।

कुमारग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] बुरा या अनुचित मार्ग।

कुमारि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमारी] राजकुमारी। उ.—श्री रघुनाथ-रमनि, जग-जननी, जनक-नरेस कुमारी —६-६५।

कुमारिका—संज्ञा स्त्री [स कुमारी] बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या। उ.—रिषि कह्यौ ताहि, दान रति देहि। मैं वर देहुँ, तोहि सो लेहि। तू कुमारिका बहुरौ होइ। तोको नाम धरै नहिं कोइ —१-२२९।

कुमारी—संज्ञा स्त्री० [स] (१) वह कन्या जिसकी अवस्था बारह वर्ष से अधिक न हो। (२) सीता जी का एक नाम। (३) पार्वती (४)। दुर्गा।

वि०—जिस कन्या का विवाह न हुआ हो।

कुमारी-पूजन—संज्ञा पुं० [सं.] वह देवी-पूजा जिसमें कुमारियो का पूजन किया जाता है।

कुमारिल—संज्ञा पु. [सं.] प्रसिद्ध मीमासक जो जाति के भट्ट थे।

कुमार्ग—संज्ञा पु० [स] (१) बुरी राह। (२) पाप की रीति या चाल, अधर्म।

कुमार्गी—वि [हिं कुमार्ग] (१) बुरे मार्ग पर चलने वाला। (२) पापी, अधर्मी।

कुमीच—संज्ञा पु० [सं. कु + मीच=मृत्यु] (१) कुत्सित मृत्यु पानेवाला व्यक्ति। (२) अधम मृत्यु। उ.—कहा जानै कैवौं मुवौ, (रे) ऐसें कुमति कुमीच। हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच —१-३२५।

कुमुख—संज्ञा पुं० [सं.] (१) रावण पक्ष का एक वीर जिसका नाम दुर्मुख था। (२) सुअर।

वि—(१) भद्दे मुँहवाला। (२) बुरे या अनुचित शब्द कहनेवाला।

कुमुद—संज्ञा पुं० [सं] (१) कुई, कोईं। (२) एक लाल कमल जो चंद्रमा को देखकर (या रात्रि में) खिलता है। उ.—आँगन खेलें नंद के नदा। जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु चंदा—१०-११७। (३) चाँदी। (४) राम-पक्ष के एक बन्दर का नाम। (५) कपूर। (६) विष्णु का एक दरबारी।

वि.—(१) कजूस। (२) लोभी।

कुमुदकर—संज्ञा पु० [सं.] चंद्रमा की किरण।

कुमुदकला—संज्ञा स्त्री० [सं.] चंद्रकला।

कुमुदकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं.] चद्र किरण।

कुमुदनी—संज्ञा स्त्री० [स कुमुदिनी] (१) कुई, कोई। (२) वह स्त्री जो अनुचित बातों में आनन्द ले। उ. —बत मो सुमन सो लपटात।'' कुमुदनी सग जाहु करके केसरी बौ गत—सा.७१।

कुमुदवन—संज्ञा पुं० [सं. कुमुद + वन] वृंदावन के समीप एक गाँव। (क) उ.—आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह, कुमुदवन जैऐ। सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैहै-४४५। (ख) मधुवन और कुमुदवन सुंदर बहुलावन अभिराम —१०८८ सारा.।

कुमुदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी का नाम जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। उ.—कहि राधा किन हार चोरायौ। रत्ना कुमुदा मोहा करुना ललना लोभा नृप। इतनिन मे कहि कौने लीन्हौ ताको नाउ बताउ—१५८०। (ख) रहे हरि रैनि कुमुदा गेह —२१६०।

कुमुदिनि, कुमुदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं. कुमुदिनी] कुई, कोई जो रात मे खिलती है और दिन मे मुँद जाती है। उ.—कुमुदिनि सकुची बारिज फूले-१०-२३३।

कुमुदिनीनाथ—संज्ञा. पुं [सं.] चंद्रमा।

कुमेरु—संज्ञा पुं. [स] दक्षिणी ध्रुव।

कुमैत—संज्ञा पुं. [तु० कुमेत] स्याही लिये लाल रंग का मजबूत और तेज घोड़ा। उ.—निकसे सबै कुँअर असवारी उच्चैःश्रवा के पोर। लीले सुरंग कुमैत स्याम तेहि पर दे सब मन रग—१० उ०-६।

कुमोद—संज्ञा पुं० [सं. कुमुद] (१) कुईं। (२) लाल कमल।

कुमोदनी, कुमोदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं कुमुदिनी] कुईं, कोईं, कुमुदिनी।

कुम्मैत, कुम्मैद—संज्ञा पुं [तु० कुमेत] (१) घोड़े का स्याही लिये लाल रंग। (२) वह घोड़ा जिसका रंग स्याही लिये लाल हो।

वि.—स्याही लिये लाल रंग का।

कुम्हड़ा—संज्ञा पु [सं. कूष्माड, पा. कुम्हड, प्रा. कुमंड] (१) एक बेल जिसमें बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। (२) कुम्हड़े का फल।

कुम्हड़ौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुम्हड़ा + बरी] पीठी में कुम्हड़े के टुकड़े मिला कर बनायी हुई बरी।

कुम्हलाना—क्रि. अ. [सं कु + म्लान] (१) मुरझाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति या शोभा फीकी पड़ना।

कुम्हार—संज्ञा पु. [स कुंभकार, प्रा. कुंभार] मिट्टी के बरतन बनानेवाला।

कुम्ही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंभी] पानी पर फैलने, फूलने और फलनेवाला एक पौधा। उ—लोचन सपने के भ्रम भूले। ·· ··। निदरे रहत मोहिं नहिं मानत कहत कौन हम तूले। मोते गये कुम्ही के जर ज्यौं ऐसे वे निरमूले। सूर स्याम जल रासि परे अब रूप-रंग अनुकूले।

कुम्हिलाइ, कुम्हिलाई—क्रि. अ. [हि. कुम्हलाना] (१) प्रफुल्लतारहित हुई, कांतिहीन हो गयी। उ.—सुता लई उर लाइ, तनु निरखि पछिताइ, डरनि गइ कुम्हिलाइ, सूर बरनी—पृ०-६६८। (२) मुरझाने लगी, सूख चली। उ.—ससि उर चढ़त प्रेम पावक परि बंक कुसुम्भ रहे कुम्हिलाई—सा. उ. १६।

कुम्हिलाए—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] कुम्हला गये, कांति या शोभाहीन हो गये। उ.—(क) काहैं आजु अबार लगायी कमल बदन कुम्हिलाए-५११। (ख) चारो ओर व्यास खगपति के झुंड झुंड बहु आए। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल अंग कुम्हिलाए —सा. १०२।

कुम्हिलात—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] कांतिहीन होता है, प्रफुल्लतारहित हो जाता है। उ.—सुंदर तन सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात—९-४३।

कुम्हिलाना—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] मुरझाना, उदास होना।

कुम्हिलानि—क्रि. अ. [हि. कुम्हलाना] मुरझा गये, सूखने लगे। उ.—बाटिका बहु बिपिन जिनकै एक वै कुम्हिलानि—३३१५।

कुम्हिलानौ—क्रि. अ. [हि. कुम्हिलाना] कुम्हला गया, मलिन हुआ, प्रफुल्लतारहित हो गया। उ.—(क) है निरदई, दया कछु नाहीं, लागि रही गृह काम। देखि छुधा तैं मुख कुम्हिलानौ, अति कोमल तन स्याम—३६१। (ख) देखियत कमल बदन कुम्हिलानौ, तू निरमोही बाम—३६७।

वि—कुम्हलाया हुआ, मलिन। उ.—प्रातकाल तैं बाँधे मोहन, तरनि चल्यौ मधि आनि। कुम्हिलानौ मुख चंद दिखावति, देखौ धौं नँदरानि—३६५।

कुम्हिलैहै—क्रि. अ. [हि कुम्हलाना] कांतिहीन होगा, प्रफुल्लरहित हो जायगा। उ.—(क) तजि वह जनक-राज-भोजन सुख, कल तृन-तलप, बिपिन-फल खाहु। ग्रीषम कमल बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु—९-३४। (ख) तुम्हरौ कमल-बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिं माँझ—४११।

कुयश—संज्ञा पुं. [सं. कु + यश] बुराई, बदनामी।

कुयोनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] नीच योनि।

कुरंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मृग, हिरन। (२) बादामी रंग का हिरन।

संज्ञा पुं. [सं.कु = बुरा+हि. रंग] (१) बुरा रंग-ढङ्ग। (२) स्याही लिये लाल रंग। (३) स्याही लिये लाल रंग का घोड़ा।

वि.—बुरे रँग का।

कुरंगक—संज्ञा पु. [सं. कुरंग] हिरन, मृग।

कुरंगलांछन—संज्ञा पुं. [सं.] चद्रमा।

कुरंगसार—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी जो हिरन (कुरंग) की नाभि से निकलती है, मुश्क।

कुरंगिना—संज्ञा स्त्री. [सं. कुरंग] हिरनी।

कुरंड—संज्ञा पुं. [सं. कुरुविंद = मणिक] एक खनिज पदार्थ।

संज्ञा पुं. [सं] एक पौधा जिसके फूल सफेद होते हैं।

कुरकुट—संज्ञा पु. [हिं. कुक्कुट] मुर्गा।

कुरकुटा—संज्ञा पुं. [सं कुट = कूटना] (१) किसी चीज का छोटा टुकड़ा। (२) रोटी का टुकड़ा।

कुरकुर—संज्ञा पु [अनु] खरी चीजों के टूटने का शब्द।

कुरकुरा—वि. पु [हि. कुरकुर] जिसे तोडने पर कुरकुर शब्द हो।

कुरकुरी—सज्ञा स्त्री. [अनु] पतली मुलायम हड्डी।

वि. स्त्री [हि. कुरकुरा] जिसे तोडने मे कुरकुर शब्द हो।

कुरच—सज्ञा पु [सं. क्रौंच] पानी के पास रहनेवाला करॉकुल नामक जल-पक्षी।

कुरता—सज्ञा पु [तु] एक पहनावा।

कुरना—क्रि अ [हि. कूरा = ढेर] (१) ढेर लगाना। (२) पक्षियों का कलरव करना।

कुरबान—वि [अ] निछावर।

कुरबानी—संज्ञा स्त्री [अ] बलिदान।

कुरमा—संज्ञा पु [हि. कुनबा] परिवार।

कुररा—संज्ञा पु [स. कुरर] (१) करॉकुल नामक जल पक्षी। (२) टिटिहरी।

कुरल—सज्ञा पु [स] कुडली।

कुरलना—क्रि. अ. [स. कलरव या कुरव] पक्षियों का कलरव करना।

कुरवा—सज्ञा पु. [सं.] (१) लाल फूलवाला एक वृक्ष। (२) सफेद मदार का वृक्ष।

वि. [स कुरव] जिसका स्वर कटु या कठोर हो।

कुरव—सज्ञा पु [स. कु + हि. रव] बुरा या अशुभ स्वर।

वि.—बुरी बोली बोलनेवाला।

कुरवना—क्रि. स. [हि कुराना] एक जगह बहुत सा ढेर लगा देना।

कुरवाना—क्रि. स. [सं वर्तन] (१) खोदना, खरोचना। (२) नोचना।

कुरवारति—क्रि स. [हि कुरवारना] खोदती है, खरोचती है। उ.—राधा हरि की गरब गहीली।...। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली —१३०६।

कुरवारही—क्रि स [हि. कुरवारना] खोलती है, करोदती है। उ.—अपने कर नखनि अलक कुरवारही कबहुँ बाँधे अतिहि लगत लोभा—१५६३।

कुरविंद—सज्ञा पु [सं कुरुविंद] दर्पण, शीशा।

कुरा—संज्ञा पु० [स. कुरव] कटसरैया का पौधा।

कुराई—संज्ञा स्त्री. [हि. कुराह] ऊँचा-नीचा गड्ढा और तंग रास्ता।

कुरान—संज्ञा पुं. [अ.] इस्लामी धर्मग्रंथ।

कुराय—सज्ञा स्त्री. [हि + कुराह] (१) ऊँचा नीचा और तंग रास्ता। (२) गड्ढा।

कुराह—सज्ञा स्त्री. [स. कु + फ़ा. राह] (१) ऊँचा नीचा रास्ता। (२) बुरी रीति नीति या चाल।

कुराहर—सज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] शोर-गुल।

कुराही—वि. [हिं. कुराह + ई (प्रत्य)] कुमार्ग पर चलनेवाला।

कुरिया—संज्ञा स्त्री [हिं. कुटिया] (१) झोपड़ी। (२) महल।

कुरियार, कुरियाल—सज्ञा स्त्री [स. कल्लोल] चिड़ियों का पख खुजलाकर सुखी होना।

कुरिहार—सज्ञा पु. [हि. कोलाहल] शोरगुल।

कुरी—सज्ञा पु. [सं.] अरहर की फलियाँ।

सज्ञा स्त्री. [स. कुल] वश, खानदान।

सज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा = ढेर] भाग, टुकडा।

कुरीति—सज्ञा स्त्री. [स.] बुरी रीति, अनीति, कुचाल। उ.—अब राधे नाहिन ब्रजनीति। नृप भयो कान्ह काम अधिकारी उपजी है ज्यौं कठिन-कुरीति—२२२३।

कुरु—सज्ञा पु. [स] (१) एक चद्रवंशी राजा जिनके वंश में पाडु और धृतराष्ट्र हुए थे। (२) कुरु के वंश में जन्मा व्यक्ति।

कुरुई—संज्ञा स्त्री. [स. कुडव] बाँस या मूँज की छोटी डलिया।

कुरुक्षेत्र—सज्ञा पुं [सं.] एक प्राचीन तीर्थ जो सरस्वती नदी के किनारे था। यह अंबाले और दिल्ली के बीच में स्थित है। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के अतिरिक्त कई बड़े युद्ध यहाँ हुए थे। ग्रहण और कुम्भ के अवसर पर यहाँ बड़ा मेला लगता है।

कुरुख—वि. [स कु + फा. रुख] जो मुँह बनाये हो, कुपित, क्रुद्ध। उ.—थकित सुमन दृग अरुन उनींदे कुरुख-कटाक्ष, करत मुख थोरी। खंजन मृग अकुलात घात उर स्याम व्याध बाँधे रति डोरी।

कुरुखि—संज्ञा पु. [हिं. कुरुख] कटाक्ष, तिरछी चितवन।

कुरुखेत—संज्ञा पुं. [सं कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र । उ.—या रथ बैठि बंधु की गर्जहिं पुरवै को, कुरुखेत—१-२६ ।
कुरुच्छेत्र—संज्ञा पुं. [सं. कुरुक्षेत्र] अम्बाले और दिल्ली के बीच में स्थित एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था ।
कुरुपति—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन ।
कुरुम—संज्ञा पुं. [सं कूर्म्म] कछुआ ।
कुररना—क्रि. अ. [हि. कलरवना] बोलना, कलरव करना ।
कुरुराज—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन ।
कुरुविंद—संज्ञा पु [सं.] दर्पण, शीशा ।
कुरूप—वि [सं.] असुंदर, बेडौल, बेढंगा, बदसूरत ।
कुरूपता—संज्ञा स्त्री. [स.] असुंदरता, बदसूरती ।
कुरेदना—क्रि स [सं वतन] खुरचना, खरोचना ।
कुरेर—संज्ञा पुं [सं० कल्लोल] आमोद-प्रमोद, मन-बहलाव ।
कुरेलना—क्रि. स. [हि कुरेदना] खुरचना या खोदना ।
कुरैया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुठज] एक पेड़ जिसके फूल सुंदर होते हैं ।
कुरौना—क्रि. स० [हि० कुराना] ढेर लगाना ।
कुलङ्ग—संज्ञा पु० [फा] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल होता है और शरीर मटमैला ।
कुलंग, कुलंजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा ।
कुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंश । उ.—(क) राम भक्त बत्सल निज बानौं । जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं—१ ११ । (ख) भुव पर नहिं राखौ उनकौ कुल—१०४३ । (२) जाति । (३) समूह । उ.—जरासंध बन्दी करै नृप-कुल जस गावै—१ ४ ।
वि [अ] समस्त, सब ।
कुलकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] परिवारियों को कष्ट देने वाला ।
कुलकना—क्रि अ [हिं० किलकना] हर्ष से उछलने लगना ।
कुलकलंक—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपने कुल में दाग लगाये ।
कुल-कानि—संज्ञा स्त्री. [सं० कुल + हिं० कानि = मर्यादा] वंश की मर्यादा, कुल की लज्जा । उ०—जन की और कौन पति राखै । जाति-पाँति कुल-कानि न मानत, वेद पुराननि साखै—१-१५ ।
कुलकुल—संज्ञा पुं० [अनु०] पानी बहने का शब्द ।
कुलकुलाना—क्रि० अ० [अनु०] कुलकुल शब्द करना ।
मु०—आँतें कुलकुलाना—भूख लगना ।
कुलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा चिह्न या लक्षण । (२) बुरा आचरण या व्यवहार ।
कुलक्षणी—वि० [सं०] बुरे चिन्हवाली । (२) बुरे आचरणवाली ।
कुलचन्द—संज्ञा पुं० [सं०] वंश को चन्द्रमा के समान स्वकीर्ति से प्रकाशित करनेवाले । उ.—सोई दसरथ-कुलचन्द अमित बल, आए सारँगपानी—६-११५ ।
कुलच्छन—संज्ञा पुं० [सं० कुलक्षण] (१) बुरा चिन्ह । (२) बुरा आचरण ।
कुलच्छनि, कुलच्छनी—संज्ञा स्त्री. [सं० कुलक्षणी] (१) बुरे लक्षणवाली । उ०—कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबही—६-६१ । (२) बुरे आचरणवाली ।
कुलज—वि० [सं० कुल + ज = उत्पन्न] (१) कुल में उत्पन्न, वंश का । (२) अच्छे कुल में उत्पन्न ।
वि०—[सं कुल + हि० लाज = लजानेवाला] कुल को लजानेवाला ।
वि०—[सं० कु + लज्जा] निर्लज्ज । उ०—निर्घिन, नीच, कुलज, दुर्बुद्धी मौंदू, नित कौ रोऊ । तृष्ना हाथ पसारे निसि दिन, पेट भरे पर सोऊ—१ १८६ ।
कुलजा, कुलजात—वि० [सं०] (१) कुल या वंश में उत्पन्न । (२) अच्छे कुल में जन्मा ।
कुलट—वि० पु० [सं०] अनेक स्त्रियों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला, व्यभिचारी । उ०—तब चित चोर भोर ब्रजबासिनि प्रेम नेक ब्रत टारे । लै सरबस नहि मिले सूर-प्रभु कहिये कुलट बिचारे ।
कुलटा—वि० स्त्री० [सं०] अनेक पुरुषों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध रखनेवाली, व्यभिचारिणी ।
कुलटी—वि० स्त्री० [सं० कुलटा] अनेक पुरुषों से गुप्त प्रेम करनेवाली । उ०—(क) अहो सखी तुम ऐसी

हो। अब लौं कुलटी करि जानति मोकौं री सब तैसी हो —१५३६। (ख) उत हेरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नंद नाहि जाये तुम महरि गुनन भारी। कुलटी उनतैं को है नदादिक मन मोहै बाबा वृषभानु की वै सूर सुनहु प्यारी —२४२६।

कुलतारक, कुलतारन—वि० [सं० कुल + हिं० तारक या तारन] वंश को अपने आचरण से पवित्र करने या तारनेवाला।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] परंपरा से जिस देवता की पूजा कुल में सभी शुभ अवसरों पर की जाती हो, कुलदेवता। विश्वास है कि सभी संकटों से कुल-परिवार की ये रक्षा करते हैं। उ०—साँझहिं तैं अतिहीं विरुझानौ, चंदहि देखि करी अति आरति। बार-बार कुलदेव मनावति, दोउ कर जोरि सिरहिं लै धारति—१०-२००।

कुलदेवता—संज्ञा० पुं० [सं०] कुल का इष्टदेव, कुलदेव।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा कुल में बहुत समय से होती आयी हो।

कुलधर, कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] बेटा, पुत्र।

कुलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] परिवार की रीति या परपरा।

कुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का बड़ा। (२) अध्यापक जो शिक्षा देने के साथ साथ विद्यार्थियों का भरण-पोषण भी करे। (३) महत। (४) विश्व-विद्यालय का प्रधान।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिस (व्यक्ति) का मान कुल के स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, सभी करते हों।

कुलफ—संज्ञा पुं० [अ० कुलुफ] ताला। उ०—लोचन लालची भये री। सारँगरिपु के हरत न रोके हरि सरूप गिधए री। काजर कुलुफ मेलि मैं राखे पलक कपाट दये री—पृ० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलफा—संज्ञा पुं० [फा० खुर्फः] (१) एक साग। (२) जमी हुई बड़ी कुलफी।

कुलफी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलुफ] (१) पेंच। (२) टीन का पात्र जिसमें दूध की बरफ जमाते हैं। (३) जमी हुई दूध की बरफ।

कुलबधू—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलवधू] (१) कुलीन वंश की वधू। (२) मान मर्यादा से रहनेवाली स्त्री।

कुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु० कुलबुल] (१) धीरे-धीरे हिलना-डुलना। (२) चंचल होना।

कुलबोरन—वि० [हिं० कुल + बोरन = डुबाना] (१) अपने आचरण से वंश की मान मर्यादा मिटाने वाला। (२) अयोग्य।

कुललज्या—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल+लज्जा] वंश की मान-मर्यादा, कुल की लाज। उ०—लोचन लालची भये री। . . । हौं आधीन पच्छ तैं न्यारे कुललज्या न नये री—पृ० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलवंत—वि० [सं०] अच्छे वंश का, कुलीन।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छे कुल की वधू। (२) मान-मर्यादा से रहनेवाली वधू।

कुलवान्—वि० [सं० कुल + हिं० वान्] अच्छे कुल का।

कुलसै—संज्ञा पुं० सवि० [सं० कुलिश] वज्र को भी। उ०—हमारे हिरदै कुलसै (कुलिसै) जीत्यौ—२८८४।

कुलह, कुलहा—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] (१) टोपी। (२) शिकारी चिड़ियों की आँख पर पहनाया जाने वाला टोपी की तरह का ढक्कन।

कुलहि, कुलहिया, कुलही—संज्ञा स्त्री० [फा. कुलाह, हिं० कुलही] बच्चों की टोपी, कनटोप। उ०—(क) स्याम बरन पर पीत झगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ—१०-१३२। (ख) कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरंग बनाई—१०-१४८।

कुलांगार—वि० [सं०] वंश का नाश करनेवाला।

कुलाँच, कुलाँट—संज्ञा स्त्री. [तु कुलाच] चौकड़ी, छलाँग।

कुलाँचना—क्रि० अ० [तु. कुलाच] चौकड़ी भरना, छलाँग मारना।

कुलाचार—संज्ञा पुं. [सं० कुल+आचार] वह रीति-नीति जो किसी वंश में प्रचलित रही हो।

कुलाधि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुल = समूह + आधि = रोग, दोष] पाप।

कुलाबा—संज्ञा पु [अ.] लोहे का छल्ला जो दरवाजे को चौखटों से जकड़े रहता है।

कुलाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगली मुर्गा। उ.—जैसें स्वान कुलाल के पाछैं लगि धावै—२-६। (२) कुम्हार। उ.—ऊधो भली भई अब आये। विधि कुलाल कीन्हें काचे घट ते तुम आनि पकाये —१११।

कुलाह—संज्ञा स्त्री. [फा०] ऊँची टोपी।

कुलाहर, कुलाहल—संज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] चिल्लाहट, शोर, हल्ला। उ.—अस्व देखि कह्यौ, धावहु-धावहु। भागि जाहि मति, बिलँब न लावहु। कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ। कोपि-दृष्टि करि तिन्हैं जरायौ—६-६। (ख) जा जल सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुन्दरि सरसिज-नैनी। सूर परस्पर करत कुलाहल, गर स्रग पहिरावैनी—६-११। (ग) आपुस में रुच करत कुलाहर धौरी धूमरि धेनु बुलाये—४१७। (घ) हलधर संग छाक भरि काँवर करत कुलाहल सोर—४७१, सारा.।

कुलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] चिड़िया।

कुलिक—संज्ञा पुं० [सं.] (१) कारीगर, शिल्पकार। (२) कुलीन वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

कुलिश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हीरा। (२) वज्र। (३) ईश्वरावतारों (राम, कृष्ण आदि) के चरणों का वज्र-आकार का एक चिन्ह। (४) कुठार।

कुलिस—संज्ञा पुं. [सं. कुलिश] वज्र। उ.—हृदय कठोर कुलिस तें मेरौ—७४।

कुलीन—वि. [सं.] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न, अच्छे वंश का। (२) पवित्र, शुद्ध, निर्मल।

कुलुफ—संज्ञा पुं. [अ. कुफल] ताला। उ.—नैना न रहैं री मेरे हटकैं। कछु पढ़ि दिये सखी यहि ढोटा घूँघर वारे लटकैं। कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक सँदूक पट अटकैं।

कुलेल—संज्ञा स्त्री [सं. कल्लोल] खेल, क्रीड़ा, आनंद।

कुलेलना—क्रि. अ. [हिं. कुलेल] खेलना, आनन्द मनाना।

कुल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नहर। (२) छोटी नदी। (३) कुलीन स्त्री।

कुल्ल—वि. [अ. कुल] सब, समस्त, पूरा, तमाम। उ.—मुलजिम जोरे ध्यान कुल्ल कौ, हरिसौं तहँ लै राखै। निर्भय रूपै लोभ छाँड़िकै, सोई बारिज राखै—१-१४।

कुल्ला—संज्ञा पुं. [फा. काकुल। सं. कुंतल] बाल, पट्टा।

कुल्ली—संज्ञा स्त्री. [फा. काकुल। (सं. कुंतल)] बाल, पट्टा, जुल्फ।

कुल्हड़—संज्ञा पुं. [सं. कुल्हर] मिट्टी का पुरवा, चुक्कड़।

कुल्हरा, कुल्हाड़ा—संज्ञा पुं० [सं. कुठार] लकड़ी काटने या चीरने का एक औजार।

कुल्हरी, कुल्हाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुल्हड़] छोटा कुल्हाड़ा।

कुल्हारा, कुल्हारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुल्हाड़ा] पेड़ काटने या लकड़ी चीरने का एक औजार, कुल्हाड़ा।

मुहा.—पाउँ कुल्हारौ मारौ—अपने आप अपनी हानि करना। उ.—इंद्री स्वाद-बिबस निसि बासर, आपु अपुनपौ हारौ। जल औंडे मैं चहुँ दिसि पैर्‍यौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ—१-१५२।

कुव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल। (२) फूल।

कुवज—संज्ञा पुं. [सं. कुव+ज] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

कुवलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नीली कोईं। (२) नील कमल।

कुवलयापीड, कुवलिया—संज्ञा पुं. [सं०] कंस का एक हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—कुवलिया मल्ल मुष्टिक चानूर से कियौ मैं कर्म यह अति उदारा—२५५१।

कुवाँ—संज्ञा पुं. [सं० कूप, हिं. कुआँ] कुआँ।

कुवाँर—संज्ञा पुं० [हिं० कुवार] आश्विन मास।

कुवाच्य—वि० [सं०] जो बात कहने योग्य न हो, गंदी।

संज्ञा पुं०—गाली, दुर्वचन।

कुवाट—संज्ञा पुं. [सं. कपाट] किवाड़, दरवाजा।

कुवाण—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] धनुष।

कुवार—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी=कुमार] आश्विन का महीना।

कुविचार—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा विचार।

कुवेर—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवता जो विश्रवस् ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इलविला इनकी माता थी। विश्वकर्मा से कहकर सोने की लंका इन्होंने ही बनवायी थी। जब शिव के वर से

शक्तिशाली होकर रावण ने इनसे लंका छीन ली तो इन्होंने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने इन्हें इंद्र का भंडारी और समस्त संसार के धन का स्वामी बना दिया। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत है। इनका पूजन नहीं होता।

कुबेराचल—संज्ञा पु. [सं.कुबेर+अचल] कैलास पर्वत।

कुबेष—संज्ञा पु० [सं० कु+वेश] (१) बुरी वेश-भूषा, मैले-कुचैले वस्त्र। (२) असगुन। उ०—बातैं बूझति यौं बहरावति। सुनहु स्याम वै सखी सयानी पावस रितु राधहिं न सुनावति।..। कबहुँक प्रगट पपीहा बोलत कहि कुबेष करतारि बजावत—३४८५।

कुव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा या अनुचित व्यवहार।

कुश—संज्ञा पु [सं] (१) एक घास जो पवित्र मानी जाती है और जिसका प्रयोग प्रायः कर्मकांड तथा तंत्र में होता है, दाभ, डाभ। (२) जल। (३) रामचन्द्र का एक पुत्र। (४) सात द्वीपों में से एक जो चारो ओर घृत-समुद्र से घिरा है। उ.—सातौं द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर। जंबु, प्लक्ष, क्रौंच, शाक, शाल्मलि, कुश, पुष्कर भरपूर—३४ सारा०।

कुशध्वज—संज्ञा पु० [सं०] जनक के छोटे भाई का नाम।

कुशमुद्रिका—संज्ञा स्त्री [सं०] कुश का बना हुआ छल्ला जो कर्मकांड आदि के अवसर पर पहना जाता है।

कुशल—वि [सं] (१) चतुर, प्रवीण। (२) भला, अच्छा, श्रेष्ठ। (३) पुण्यात्मा।

संज्ञा पु० [सं०] (१) राजी-खुशी, क्षेम, मंगल। उ०—न्हात बार न खसै इनको कुशल पहुँचे धाम—२५६५। (२) वह जिसके हाथ में कुश हो। (३) शिव का एक नाम।

कुशलक्षेम—संज्ञा पु [सं०] राजी खुशी।

कुशलता—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) चतुराई। (२) योग्यता। संज्ञा स्त्री. [हिं० कुशल] कल्याण, क्षेम।

कुशलाई—संज्ञा स्त्री [हिं० कुशल] कल्याण,कुशल, क्षेम। उ—मेरौ कह्यौ सत्य कै जानौ। जौ चाहौ व्रज की कुशलाई तौ गोवर्धन मानौ—६१५।

कुशलात, कुशलाता—संज्ञा स्त्री. [सं० कुशलता] कुशल-क्षेम समाचार, मंगल-सूचना। उ.—(क) मधुकर ल्याये जोग सँदेसो। भली स्याम कुशलात (कुसलात) सुनाई सुनतहिं भयो अँदेसो—३२६३। (ख) ढुँढ़ै वो कुशलात कहियो तुमहिं भूलत नाहिं—३६३८। (ग) ऊधो जननी मेरी को मिलिहौ अरु कुशलात कहोगे—२६१२।

कुशलातैं—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं० कुशलता] क्षेम या कुशल सूचक समाचार। उ.—कहि वहि उधौ हरि कुशलातैं।..। कहि कुशलातैं साँची बातैं आवन कह्यौ हरि नाथै—३४४१।

कुशली—वि० [सं. कुशलिन्] (१) सकुशल (२) स्वस्थ।

कुशावन—संज्ञा पु० [सं] एक वन जो गोकुल के पास है।

कुशा—संज्ञा स्त्री. [सं] कुश।

कुशाग्र—वि० [सं.] कुश की नोक सा तेज, तीव्र।

कुशासन—संज्ञा पु [सं कुश+आसन] कुश का बना आसन या चटाई।

कुशिक—संज्ञा पुं० [सं] एक राजा जिनके पुत्र गाधि थे और पौत्र विश्वामित्र।

कुशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवि। (२) नट।

कुशेश, कुशेशय—संज्ञा पुं. [सं०] कमल।

कुश्ता—संज्ञा पु [फ़ा० कुश्तः] धातुओं को फूँककर बनाया हुआ चूर्ण।

कुश्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा] लड़ाई, मल्लयुद्ध।

कुष्ट, कुष्ठ—संज्ञा पु० [सं] कोढ़ नाम का रोग।

कुष्मांड—संज्ञा पुं [सं] कुम्हड़ा।

कुसंग—संज्ञा पु [सं कु+संग] बुरे लोगों का साथ।

कुसंगति—संज्ञा स्त्री [सं० कु=संगति] बुरे लोगों का साथ।

कुसंस्कार—संज्ञा पु० [सं०] बुरी वासना, वातावरण का बुरा प्रभाव।

कुस—संज्ञा पुं०[सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसका प्रयोग यज्ञों में होता था और जो अब भी पवित्र समझी जाती है। उ०—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव अहित विचारी। साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी १-१२२।

कुसआसन—संज्ञा पुं. [सं. कुश=आसन=कुशासन] कुश की बनी चटाई।

कुसगुन—संज्ञा पुं. [सं कु=बुरा (उप)=हिं सगुन] असगुन, कुलक्षण, बुरा सगुन। उ०—फटवंत स्रवन

स्नान द्वारे पर, गगरी करत लगाई। माथे पर ह्वै काग उड़्यौ, कुसगुन बहुतक पाई—५४१।

कुसमय—संज्ञा पु० [सं०] (१) बुरा या अनुपयुक्त समय। (२) बुरे या दुख के दिन।

कुसमित—वि० [सं. कुसुमित] फूलों से युक्त। उ—मधुर मल्लिका कुसमित कुंजन दंपति लसत सोहाये—१००३ सारा.।

कुसरात—संज्ञा पुं० [हि० कुशलात] कुशलता।

कुसल—संज्ञा पु० [सं० कुशल] (१) क्षेम, मंगल, राजी-खुशी। उ०—(क) मुनि राजा दुर्जोधना, हम तुम पैं आए। पाडव सुत जीवत मिले, दै कुसल पठाए। छेम-कुसल अरु दीनता दंडवत सुनाई—१-२३८। (ख) प्रभु जागे, अर्जुन तन चितयौ, कब आए तुम, कुसल खरी—१-२६८। (२) चतुर। उ०—परम कुसल कोबिद लीला नट मुसुकनि मन हरि लेत—१०-१५४।

कुसलई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + हि. ई (प्रत्य.)] चतुरता।

कुसलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुशल+हि. आई (प्रत्य.)] (१) चतुरता, कुशलता। (२) कुशल-क्षेम, खैरियत।

कुसलात—संज्ञा स्त्री. [सं कुशल, हिं. कुशलता] कुशल, क्षेम, आनन्द-मंगल। उ.—(क) ऐसै दिन एकै से नहिं जात। सुमिरन-भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन कुसलात—२-२२। (ख) कही कपि, जनक-सुता-कुसलात—९-१०४। (ग) सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे, पूछी कुसलात—९-६६। (घ) सूरज आज जथासक्त कर बूझी सखी कुसलात—सा.५२।

कुसली—संज्ञा पुं. [हिं. कसैली] (१) गोझा या पिराक नामक पकवान। (२) आम की गुठली।।

कुसाइत—संज्ञा स्त्री० [सं. कु. + अ. साअत] (१) बुरा समय। (२) बुरा मुहूर्त्त।

कुसाखी—संज्ञा पुं [सं० कु + साखिन=वृक्ष] बुरा पेड़।

कुसासन—संज्ञा पु० [सं० कुशासन=कुश+आसन। कुश की बनी चटाई।

संज्ञा पुं [सं. कु + शासन] बुरा राजप्रबन्ध।

कुसी—संज्ञा पुं० [सं कुशी] हल की फाल।

कुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं. कुसुंभ या कुसुंभक] एक वृक्ष।

कुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं.] (१) कुसुम। (२) केसर, कुमकुम। (३) लाल रंग। उ.—ऐसो माई एक कोद को हेतु। जैसे बसन कुसुम रँग मिलिकै नेक चटक पुनि स्वेत—३३०६।

कुसुंभा—संज्ञा पुं [सं कुसुंभ] कुसुम का लाल रंग।

कुसुंभी—वि. [सं. कुसुंभ] कुसुंभ के रंग का, लाल। उ.—(क) दीजै कान्ह काँधे हूँ को कंमर। नान्ही नान्ही बूँदन बरषन लागौ भीजत कुसुंभी अंबर—१५६६। (ख) स्याम अङ्ग कुसुंभी सारी फल गुंजा क भाँति। इत नागरी नीलांबर पहिरे जनु दामिनि घन काँति—पृ० ३१३।

कुसुंम—संज्ञा पुं. [सं. कुसुम्भ, कुसुंभक] कुमकुम, केसर, चपक। उ.—ससि उर चढत प्रेम पात्रक परि बक कुसुम रहे कुम्हिलाई—सा. उ १६।

कुसुम—संज्ञा पु. [सं] फूल, पुष्प, सुमन। उ.—सुनि सीता सपने की बात। कुसुम बिमान बैठी बैदेही देखी राघव-पास—९-८३।

संज्ञा पु. [सं. कुसुंभ, कुसुंभक] (१) एक वृक्ष। (२) लाल रग। (३) एक राग।

कुसुमनि—संज्ञा पु बहु. सवि. [सं. कुसुम+हि० नि (प्रत्य)] फूलों से। उ—सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप। सुनि परिमिति पिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि—१-३२५।

कुसुमपुर—संज्ञा पु. [सं] पटना का पुराना नाम।

कुसुमरेणु—संज्ञा पुं [सं.] पराग।

कुसुमबाण—संज्ञा पुं. [सं] कामदेव।

कुसुमशर, कुसुमसर—संज्ञा पुं. [सं] कामदेव। उ.—कुसुमसर रिपुनन्द बाहन हरषि हरषित गाउ—२७१५।

कुसुमांजलि, कुसुमांजली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुसुम + अंजलि] फूलों से भरी हुई अंजली। उ.—कुसुमांजलि बरषत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई—६२६।

कुसुमाकर—संज्ञा पु [सं] (१) वसंत। उ.—ठौर ठौर झिल्ली ध्वनि सुनियत मधुर मेघ गुंजार। मानो मन्मथ मिलि कुसुमाकर फूले करत बिहार—१०४१ सारा.। (२) वाटिका।

कुसुमागम—संज्ञा पुं. [कुसुम + आगम] वसंत।

कुसुमायुध—संज्ञा पुं. [सं कुसुम + आयुध] कामदेव।
कुसुमावलि, कुसुमावली—संज्ञा स्त्री [सं.कुसुम + अवलि] फूलों का गुच्छा।
कुसुमासव—संज्ञा पुं० [सं. कुसुम + आसव = मदिरा] पुष्परस, पुष्पमधु।
कुसुमित—वि. [सं] (१) फूलों से युक्त, पुष्पित। उ.—मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दंपति लसत सोहाये —१००३ सारा। (२) फूलों की कोमलता से युक्त, फूलों के समान सुखदायी सरल और सीधा-सादा। उ.—कुसुमित धर्म कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई। तदपि विमुख पाँनी सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई—१-६३।
कुसूत—संज्ञा पु [सं कु + सूत्र, प्रा. सुत्त] (१) बुरा सूत। (२) बुरा प्रबन्ध।
कुसेस, कुसेसय, कुसेसै—संज्ञा पु [सं कुशेशय] कमल। उ.—राजिव दल इंदीवर सतदल कमल कुसेसय (कुसेसै) जाति। निसि मुदित प्रातहिं ए विगसत ए विगसत दिन राति—१३४६।
कुस्टी—संज्ञा पुं. [स. कुष्ट] कोढ़ी।
कुस्तुभ—संज्ञा पुं. [स०] विष्णु।
कुहँकुहँ—संज्ञा पु. [हिं. कुहकुह] कुमकुम, केसर।
कुहक—संज्ञा पु [स.] धोखा, माया।
वि.—(१) धूर्त, ठग। (२) जादू जाननेवाला।
कुहकना—क्रि. अ. [स. कुहुक या कुहू] पक्षियों का मीठे स्वर में बोलना, पीकना, कलरव करना।
कुहकिनि, कुहकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहुक या कुहू] (१) कोयल। (२) जादूगरनी।
कुहकुह—संज्ञा पुं. [सं. कुमकुम] केसर, जाफरान।
कुहकुहाना—क्रि अ. [हिं. कुहकुह] कोयल का कूकना।
कुहन, कुहना—क्रि. स. [सं कु + हनन = मारना] बहुत मारना पीटना।
संज्ञा पुं० [अनु कुहू=कोयल की बोली] गाना।
कुहप—संज्ञा पुं [स. कुहू=अमावस्या + प] रजनीचर, राक्षस।
कुहबर—संज्ञा पुं [हि कोहबर] वह स्थान जहाँ विवाह के अवसर पर कुलदेवता स्थापित किये जाते हैं।
कुहर—संज्ञा पुं. [स.] (१) छेद, सूराख। (२) गले का छेद। (३) खाली या शेष भाग। उ.—कहा कहै छबि आज की मुख-मंडित खुर-धूरि। मानौ पूरन चद्रमा कुहर रह्यौ आपूरि-४३७।
संज्ञा पुं. [हिं. कुहरा, कोहरा] जमी हुई भाप के कण जो वायु से मिले रहते हैं, कोहरा। उ.—बिछुरन कौ संताप हमारौ तुम दरसन दै काट्यौ। ज्यों रबि तेज पाइ दसहूँ दिसि दोष कुहर कौ फाट्यौ —६-२७।
कुहरा—संज्ञा पुं. [हि. कोहरा] कोहरा।
कुहराम—संज्ञा [अ कहर+आम] (१) रोना-पीटना। (२) हलचल।
कुहरित—वि. [हिं. कोहराम] शब्दायमान।
कुहाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं. कुल्हाड़ा] कुल्हाड़ा।
कुहाना—क्रि. अ. [सं. क्रोधन्, पा. कोहन] रूठना, रिसाना।
कुहारा, कुहारौ—संज्ञा पु [सं कुठार, हि. कुल्हाड़ा] कुल्हाड़ा, टाँगी। उ.—इद्री स्वाद बिवस निसि बासर आपु अपुनपौ हारौ। जल औंडे मैं चहुँ दिसि पैर्यौ, पाउँ कुहारौ (कुल्हारौ) मारौ—१-१५२।
कुहासा—संज्ञा पुं. [सं. कुहेड़ी] कुहरा।
कुही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुधि] एक शिकारी चिड़िया।
संज्ञा पुं. [फ़ा. कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति।
वि. [हिं. कोह=क्रोध, कोही, क्रोधी] क्रोध करने वाला, क्रोधी। उ.—मूक, निंद निगोड़ा, भोड़ा, कायर काम बनावै। कलहा, कुही, मूषक रोगी अरु काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६।
कुहु—संज्ञा स्त्री [स. कुहू] अमावस्या।
कुहूकंठ—संज्ञा पु. [सं.] कोयल।
कुहुक—संज्ञा पु. [अनु.] पक्षियों, विशेषतः कोयल और मोर का मधुर स्वर।
कुहुकना—क्रि. अ. [हिं. कुहुक+ना (प्रत्य.)] पक्षियों, विशेषतः कोयल और मोर का मधुर स्वर में बोलना।
कुहुकबान—संज्ञा पुं [हिं. कुहुकना + बाण] एक तरह का बाण जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है।
कुहुकिनी—संज्ञा स्त्री [हिं. कुहुक] कोयल।
कुहुकुहाना—क्रि. अ. [हिं. कुहुकना] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना।

कुहुकुहानि—संज्ञा स्त्री. [हिं कुहुक] पक्षियों की मीठी बोली। उ.-ज्यों कोइ लखत राग जिवाए भक्ष अभक्ष कहाइ। कुहुकुहानि सुनि रितु बसंत की अन्त मिले कुल अपने जाइ-३०५३।

कुहुराति—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहू + रात्रि] अमावस्या की काली रात। उ.—दामिनी थिर घनघटा बर कबहुँ है एहि भाँति। कबहुँ दिन उद्योत कबहूँ होत अति कुहुराति—सा. उ. ५।

कुहू—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) अमावस्या की रात। उ.—(क) सूरदास रसरासि बरषि कै चली जनौ हरतिलक कुहू उग्यौ री-६६१। (ख) सदा सरद ऋतु सकल कला लै सनमुख रहै जन्हाइ। सो सित पच्छ कुहू सम बीतत कबहुँ न देत दिखाइ-३४८६। (ग) नँद नंदन बृन्दाबन चंद।...। जठर कुहू ते बहिर बारि-निधि दिसि मधुपुरी सुछंद-१३११। (२) अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी। (३) मोर या कोयल की मीठी बोली।

यौ.—कुहूकुहू- 'कुहू''कुहू' का शब्द।

कुहेलिका—संज्ञा स्त्री [सं] कुहरा, कोहरा।

कुहौ—संज्ञा स्त्री. [हि. कूक] बोली, ध्वनि। (२) मोर, कोयल आदि की कूक।

कूँख—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि] कोख, पेट।

कूँखना—क्रि. अ. [हिं. काँखना] काँखना।

कूँचना—क्रि. स. [अनु. कुचकुच] कुचलना, कूटना।

कूँचा—संज्ञा पुं. [सं कूर्च] झाड़ू, बढ़नी।

कूँची—संज्ञा स्त्री. [हिं कूँचा=झाड़ू] (१) छोटी झाड़ू। (२) चूना पोतने की मूँज की कूँची। (३) चित्रकार की तूलिका।

संज्ञा स्त्री. [सं कुंचिका] कुंजी या कुंडी जो दरवाजे में उसे बंद करने के लिए लगी रहती है। उ.-सहज कपाट उघरि गए ताला कूँची टूटि-२६९५।

कूँज—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रौंच] कौंच पक्षी।

कूँजत—क्रि. अ. [हि. कूजना, कूँजना] (१) मधुर स्वर से बोलता है। उ.-(क) ऊधव कोकिल कूँजत कानन। तुम हमकौ उपदेस करत हौ भसम लगावन आनन। (ख) पपिहा गुंज, कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन-६२२। (२) चिल्लाता या दहाड़ता है। उ.—बातैं बूझत यौ बहरावति। सुनहुँ स्याम वै सखी सयानी पावस-रितु राधहि न सुनावति। घन गर्जत मनु कहत कुसलमति कूँजत गुहा सिंह समुझावति—३४८५।

कूँजना—क्रि. अ. [हि. कूजना] (१) बोलना, चिल्लाना। (२) मधुर स्वर से बोलना।

कूँड, कूँड—संज्ञा स्त्री [सं. कुंड] (१) लोहे की टोपी जो लड़ाई के समय पहनी जाती है। (२) कुएँ से पानी निकालने का टोपीनुमा बरतन।

कूँडा—संज्ञा पुं. [सं. कुंड] (१) बड़ा बरतन। (२) गमला। (३) शीशे की बड़ी हाँडी जिसमें रोशनी जलायी जाती है।

कूँड़ी, कूँडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूँड़ा] (१) पत्थर की प्याली। (२) छोटी नाँद।

कूँथना—संज्ञा पुं [सं. कुंथन=दुख सहना] (१) दुख से कराहना। (२) कबूतरों का 'गुटुरगूँ' करना।

कूँदना—क्रि. स. [हि. कुनना] खरादना।

कूँआँ—संज्ञा पुं. [सं. कूप] कुआँ, कूप।

कूँई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुव+ई (प्रत्य.)] कमल की तरह का एक पौधा जो जल में होता है और चाँदनी रात में खिलता है, कोकाबेली, कुमुदिनी।

कूक—संज्ञा स्त्री. [सं. कूजन] (१) लंबी मधुर ध्वनि। उ०—सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं हँसत चलै दै कुक-१०-३१७। (२) कर्कश स्वर। उ०—यह सुनत रिस भरयौ दौरिवे को परयो सूड़ि झटक्कत पटकि कूक पारयौ—२५६२। (३) मोर या कोयल की सुरीली बोली। (४) रोने का महीन स्वर।

संज्ञा स्त्री. [हि हूक] हूक, कसक, वेदना। उ०—ऊधौ, कहा हमारी चूक। वै गुन-अवगुन सुनि सुनि हरि के हृदय उठत है कूक।

कूकना—क्रि. अ. [सं कूजन] (१) लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। (२) कर्कश स्वर से बोलना। (३) कोयल या मोर का बोलना।

कूकर—संज्ञा पुं० [सं. कुक्कुर] कुत्ता, स्वान। उ०—उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौं नाम न लीनौ—१-६५।

कूकरकौर—संज्ञा पुं. [हिं कुकुर+कौर] (१) बचा-खुचा भोजन, टुकड़ा। (२) तुच्छ वस्तु।

कूच—संज्ञा पुं० [तु०] यात्रा करना, जाना, प्रस्थान।
मुहा०—देवता कूच कर जाना—बहुत भयभीत होना।

कूचा—संज्ञा पुं. [फा.] गली।
संज्ञा पुं. [सं. क्रौंच] कौंच पक्षी, करांकुल।

कूचिका, कूची—संज्ञा स्त्री० [स तूलिका] ब्रश, तूलिका।

कूज—संज्ञा स्त्री [हि कूजना] (१) ध्वनि, शब्द। (२) शब्द करने की क्रिया।

कूजत—क्रि. अ. [सं० कूजन] मधुर स्वर से बोलते हैं। उ०—(क) कनक किंकनी, नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल। (ख) उपजत छविकर अधर संख मिलि सुनियत शब्द प्रसंसा। मानहु अरुन कमल-मंडल में कूजत हैं कल हंसा—२५६६।

कूजन—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) मधुर ध्वनि। (२) शब्द करने की क्रिया।

कूजना—क्रि. अ. [सं. कूजन] कोमल शब्द या ध्वनि करना, बोलना, कलरव करना।

कूजा—संज्ञा पुं. [फा. कूजः] (१) मिट्टी का पुरवा या कुल्हड़। (२) मिट्टी के पुरवे से जमायी हुई मिश्री।
संज्ञा पु [स. कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल।
उ०—कूजा, मरुओ, मोगरो मिलि झूमक हो।

कूजित—वि. [स. कूजन] (१) बोला हुआ, ध्वनित। (२) गूँजा हुआ स्थान। (३) पक्षियों के कलरव से युक्त।

कूजै—क्रि. अ [हिं. कूजना] मधुर शब्द करती है, कोमल स्वर से बजती है। उ.—(क) पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै—१०-१३४। (ख) चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि कल कूजै—६६२।

कूट—संज्ञा पुं. [स०] (१) पहाड़ की चोटी। (२) अन्न का ढेर। (३) छल, धोखा। (४) झूठ। (५) गुप्त भेद या रहस्य। (६) वह रचना जिसका अर्थ सरलता से न स्पष्ट हो। (७) गूढ़ हास्य या व्यंग्य।
वि.—(१) झूठा। (२) छलिया। (३) बनावटी। (४) अच्छा, प्रधान। (५) धर्म भ्रष्ट।

संज्ञा स्त्री. [हि. कुट] एक औषधि। उ०—कूट काइफल सोंठि चिरैता कटजीरा कहूँ देखत—११०८।
संज्ञा स्त्री. [हि. कूटना] कूटने-पीटने की क्रिया।
संज्ञा स्त्री. [हि. कुटी] झोपड़ी।

कूटता—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) कठिनाई। (२) झूठ। (३) छल-कपट।

कूटन—संज्ञा स्त्री. [हि. कूटना] (१) कूटने की क्रिया या भाव। (२) मारना-पीटना।

कूटना—क्रि. स. [सं कुट्टन] मारना, पीटना, ठोंकना।

कूटनीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] दाँव-पेंच की चाल जिसका भेद दूसरे न पा सकें।

कूटयोजना—संज्ञा पुं. [स.] षड्यंत्र।

कूटस्थ—वि. [स.] (१) अचल। (२) अविनाशी। (३) छिपा हुआ।

कूटि—संज्ञा स्त्री. [हि० कूटना] कुट्टी, मारना, पीटना। उ.—कूटि करैंगे बलभैया अब हमहीं छोड़ि किनि देहु—२४०८।

कूटै—क्रि० स० [स. कुट्टन, हि. कूटना] कूटे, कूटकर। उ.—बिनु कन तुस कौं कूटै—२-२०।

कूड़ा—संज्ञा पु. [स० कूट, प्रा० कूड=ढेर] बेकार या बेकाम चीज।

कूढ़—वि० [सं कूढ, पा० कूध] नासमझ, मूढ़।

कूत—संज्ञा पु० [स. आकूत=आशय] (१) अनुमान। (२) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान।

कूतना—क्रि. स [हि कूत] (१) अनुमान या अंदाज करना। (२) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान या अंदाज करना।

कूतै—क्रि० स० [हि. कूतना] अनुमान करे।

कूथना—क्रि स. [स. कुथन] मारना-पीटना।

कूद—संज्ञा स्त्री. [हि० कूदना] उछलने कूदने की क्रिया या भाव।
यौ०—कूद-फाँद—(१) उछलना-कूदना। (२) व्यर्थ का प्रयत्न।

कूदत—क्रि अ. [हिं० कूदना] कूदते ही, उछलता-फाँदता है। उ.—सुनि कै सिंह-भयान अवाज। मारि फलाँग चली सो भाज। कूदत ताकौ तन छुटि गयौ—५-३।

कूदन—क्रि. अ. [हि. कूदना] कूदना, फाँदना। उ.—नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन-कमल पर वारी—१-२२१।

कूदना—क्रि. अ. [सं. स्कुंदन,] (१) उछलना, फाँदना। (२) जानकर गिरना। (३) किसी के बीच में दखल देना। (४) बहुत खुश होना। (५) शेखी मारना।
क्रि. स.—लाँघना, नाँघ जाना।

कूदि—क्रि. अ. [हि कूदना] कूदकर, उछलकर, फाँद कर। उ.—जैसैं केहरि उभकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति। कूदि परयौ, कछु मरम न जान्यौ, भई आइ सोइ गति—१-३००।

कूदो—क्रि. अ. [हि. कूदना] कूदा, कूद पड़ा। उ.—कूदो, कालीदह में कान—सा. ७३।

कूनना—क्रि. स. [हि. कुनना] खरादना, खरोचना।

कूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुआँ। उ.—(क) सँदेसनि मधुवन कूप भरे। (ख) परो कूप पुकार काहू सुनी ना ससार—सा. ११८। (२) छेद। (३) गड्ढा।

कूपनि—संज्ञा पु. [सं. कूप+हि. नि. (प्रत्य.)] कुओं में। उ.—नरक-कूपनि जाइ जमपुर परयौ बार-अनेक—१-१०६।

कूपमंडूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुएँ में ही रहनेवाला, मेंढक। (२) संसार की बहुत कम जानकारी रखने वाला, अनुभवहीन व्यक्ति।

कूपहिं—संज्ञा पुं [सं. कूप + हि (प्रत्य)] कूप में, कुएँ में। उ.—पग पग परत कर्म-तम-कूपहि को करि कृपा बचावै—१-४८।

कूब,कूबड़—संज्ञा पुं. [सं. कूबर] (१) पीठ का उभाड़ या टेढ़ापन। (२) किसी चीज का उभाड़ या टेढ़ापन।

कूबरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कुबड़ी, कुबरी] कुब्जा नामक कंस की एक दासी जिसकी पीठ पर कूबड़ था। श्रीकृष्ण से इसको बड़ा प्रेम था और भक्तों का विश्वास है कि उन्होंने भी इसे अपना लिया था।

कूबा—संज्ञा पुं. [हि. कूबड़] कूबड़।

कूर—[सं. क्रूर] (१) जिसमें दया न हो, निर्दयी, कठोर। (२) डरावना। (३) दुष्ट, कुमार्गी, बुरा। उ.—(क) तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कवि ढ़ोट १-१३२। (ख) साँचे कूर कुटिल ए लोचन वृथा मीन छबि छीन लई—२५१७। (ग) सूरबरी लै जाहु तहाँ जहँ कुबजा कूर रई—सा. ३१। (४) बेकार, निकम्मा।

कूरता—संज्ञा स्त्री. [हि. कूर] (१) निर्दयता, कठोरता। (२) मूर्खता। (३) अरसिकता। (४) कायरता।

कूरपन—संज्ञा पुं. [हि. कूर] (१) कठोरपन। (२) कायरपन।

कूरम—संज्ञा पुं. [सं. कूर्म] विष्णु का दूसरा अवतार कछुआ। उ.—हरि जू अपनौ बिरद सँभारयौ। सूरज प्रभु कूरम तनु धारयौ—८-७।

कूरा—संज्ञा पुं. [सं. कूट, प्रा. कूड़=ढेर] (१) ढेर, राशि। (२) भाग हिस्सा।

कूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा] (१) टीला, धुस। (२) छोटी राशि।

कूरे, कूरै—वि. [सं. क्रूर, हिं. कूर] निर्दयी, कठोर। उ.—(क) पूरनता ए नैनन पूरे,...... । ए अति चपल मे दरस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—३०४२। (ख) सूर नृप क्रूर अक्रूर कूरै (कूरे) भयो-धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३।

कूर्च—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौंहों के बीच का स्थान। (२) झूठ। (३) दंभ। (४) सिर।

कूर्म—संज्ञा पुं [सं.] (१) कछुआ, कच्छप। (२) विष्णु का दूसरा अवतार जो पौष शुक्ल द्वादशी को कछुए के रूप मे हुआ था। उ.—कूर्म कौ रूप धरि, धरयौ गिरि पीठि पर—८-८। (३) एक ऋषि।

कूर्मिका,कूर्मी—संज्ञा स्त्री. [सं. कूर्मिका] एक प्राचीन बाजा।

कूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनारा, तट। (२) नहर। (३) तालाव।
क्रि. वि.—पास, निकट, समीप।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री [सं.] नदी।

कूल्हा—संज्ञा पुं. [सं. क्रोड=कोड, कोल] कमर में पेड़ू के दोनों तरफ निकली हुई हड्डियाँ।

कूवत—संज्ञा स्त्री. [अ.] बल, शक्ति।

कूवर—संज्ञा पुं [सं.] (१) रथ का एक भाग जिस पर जूआ बाँधा जाता है। (२) रथिक के बैठने का स्थान। (३) कुबड़ा।

वि.—सुन्दर।

कूष्मांड—संज्ञा पु. [सं.] (१) कुम्हड़ा। (२) पेठा। (३) एक ऋषि।

कूह—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूक] (१) हाथी की चिंघाड़। (२) चिल्लाहट।

कूही—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुही] एक शिकारी चिड़िया।

कृकाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कंधे और गले का जोड़, घाँटी।

कृच्छ्र—संज्ञा पुं [सं] (१) कष्ट,दुख। (२) पाप। (३) एक व्रत जिसमे पचगव्य (गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोवर और गोमूत्र) खा कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है।

वि.—कठिन, कष्टसाध्य।

कृत—वि. [सं.] (१) किया हुआ, संपादित। उ०—(क) मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यौ, समायौ—१ ६७। (ख) और कहाँ लौं कहौं एक मुख या मन के कृत काज—१-१०२। (२) बनाया हुआ, रचित। उ.—तू कृत मम जश जो गावैगो सदा रहै मम साथ—११०४ सारा०। (३) संबंध रखने वाला, तत्संबंधी।

संज्ञा पु० [सं.] (१) सतयुग। (२) चार की संख्या।

सज्ञा पुं. [सं. कृत्य] काम-काज। उ.—(क) बड़ी बेर भइ अजहुँ न आए गृह-कृत कछु न सुहाई—५८७। (ख) अपने कृत तैं हौं नहि बिलमत सुनि कृपाल बृजराई—१-२०७।

कृतक—वि. [सं] अनित्य, कृत्रिम।

कृतकर्मा—वि. [स] (१) जिसने अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर ली हो। (२) चतुर।

संज्ञा पुं०—(१) संन्यासी। (२) परमेश्वर।

कृतकाम—वि. [सं] जिसकी इच्छा पूरी हो चुकी हो।

कृतकारज—वि. [स कृतकार्य] जिसको अपने कार्य में सफलता मिल चुकी हो।

कृतकार्य—वि. [सं] जिसका काम पूरा हो चुका हो।

कृतकृत्य—वि. [स.] (१) जिसका कार्य या उद्देश्य सफल हो चुका हो, सफल मनोरथ। (२) धन्य।

कृतघन—वि. [सं. कृतघ्न] किये हुए उपकार को न मानने वाला, अकृतज्ञ।

कृतघ्न—वि. [सं] जो दूसरे का उपकार न माने, अकृतज्ञ।

कृतघ्नता—संज्ञा स्त्री. [स.] दूसरे का किया हुआ उपकार न मानने का भाव।

कृतताई—संज्ञा स्त्री. [हिं.कृतघ्न] किये हुए उपकार को न मानने का भाव।

कृतघ्नी—वि. [सं. कृतघ्न] अकृतज्ञ, नमकहराम। उ.—महा कठोर सुन्न हिरदै कौ, दोप देन कौं नीकौ। बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, बेधन, राकौ फीकौ—१-१८६।

कृतज्ञ—वि. [सं.] उपकार माननेवाला। उ.—मधुबन के सब कृतज्ञ धर्मीले। अति उदार परहित डोलत हैं बोलत बचन सुमीले—३०५५।

कृतज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दूसरों के उपकार को मानने का भाव, निहोरा मानना।।

कृतदंड—संज्ञा पुं. [सं.] यमराज। उ.—गोपन सखा भाव करि देखे दुष्ट नृपति कृतदंड। पुत्र भाव बसु-देव देवकी देखे नित्य अखंड।

कृतनिंदक—वि. [सं.] जो किये हुए उपकार को न माने।

कृतमुख—सज्ञा पुं. [सं.] पंडित।

कृतयुग—संज्ञा पुं. [सं.] सतयुग। उ.—कृतयुग धम भये त्रेता में पूरन रमा प्रकास—३०६ सारा.।

कृतविद्य—वि. [स.] किसी विद्या या कला का पूर्ण ज्ञाता, पंडित।

कृतवेदी—वि [सं.] दूसरे का उपकार माननेवाला।

कृतहस्त—वि. [सं] (१) काम में चतुर। (२) बाण चलाने में कुशल।

कृतहिं—संज्ञा पुं० सवि० [सं. कृति + हि. हिं (प्रत्य)] किये हुए उपकार को। उ.—(क) सूरदास जो सरबस दीजै कारे कृतहि न मानै—३४०४। (ख) तिनहि न पतीजै री जे कृतहि न मानै—२७२६।

कृतहीन—वि. [सं.] कृतघ्न।

कृतांजलि—वि. [स] हाथ बाँधे या जोड़े हुए।

कृतांत—संज्ञा पुं. [सं] (१) अंत करनेवाला। (२)

यमराज। (३) कर्मों का फल। (४) मृत्यु।

कृतात्मा—वि. [स. कृतात्मन्] शुद्ध आत्मावाला, महात्मा।

कृतारथ—वि. [सं कृतार्थ] कृतकृत्य, सफल-मनोरथ। उ.—(क) बन मैं करी तपस्या जाइ, रह्यौ हरि चरननि सौं चित लाइ। या विधि नृपति कृतारथ भयौ—६-१७४। (ख) नृपति कह्यौ मेरे गृह चलिये करौ कृतारथ मोय—८०० सारा।

कृतार्थ—वि० [स.] (१) जो सफलता से संतुष्ट हो। (२) संतुष्ट। (३) कुशल। (४) दूसरे के उपकार से प्रसन्न।

कृतास्त्र—वि. [सं.] धनुष चलाने में निपुण।

कृति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) करनी, करतूत। उ.—(क) निज कृति-दोष बिचारि सूर, प्रभु तुम्हारी सरन गयै—१-२१८। (ख) यह हित मनै कहत सूरज प्रभु इहि कृति कौ फल तुरत चखैहौ—७-५। (ग) नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देख न पायौ। देखौ आइ जसोदा, सुत कृति, सिद्ध पाक इहि आइ जुठायौ—१०-२४८। (२) बड़ा काम। (३) जादू।
संज्ञा पुं—विष्णु।

कृतिका—संज्ञा स्त्री [सं. कृत्तिका] एक नक्षत्र।

कृतिवास, कृतिवासा—संज्ञा पुं [सं. कृत्तिवास] महादेव।

कृती—वि [सं०] (१) कुशल। (२) साधु। (३) पुण्यात्मा। (४) जिसने महान कार्य किया हो।

कृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) मृगचर्म। (२) चमड़ा। (३) भोजपत्र। (४) कृत्तिका नक्षत्र।

कृत्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) सत्ताइस नक्षत्रों में तीसरा जिसमें छ: तारे हैं। इनका आकार अग्नि-शिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी मानी जाती है और अग्नि इसकी अधिष्ठात्री है। (२) बैलगाड़ी।

कृत्तिवास—संज्ञा पु. [सं] महादेव का एक नाम जो गजासुर को मारने के बाद उसकी खाल ओढ़ लेने के कारण पड़ा था।

कृत्य—संज्ञा पुं. [सं] (१) वे काम जिनका करना धर्म की दृष्टि से आवश्यक हो। (२) करनी, करतूत। उ०—सूर स्याम के कृत्य जसोमति ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत—४८०। (३) भूत-प्रेत।

कृत्यका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भयंकर कार्य कर सकनेवाली साहसी स्त्री।

कृत्यविद्—वि. [सं.] कर्तव्य-पालन में चतुर।

कृत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक राक्षसी जिसे तांत्रिक अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके विपक्षी का नाश करने के लिए भेजते हैं। उ.—(क) रिषि सक्रोध इक जटा उपारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी—९-५। (ख) तब सिव ने उन कृत्या दीन्हीं बाढो क्रोध अपार—७०७ सारा.। (२) तंत्र-मंत्र से साधे गये घातक कर्म। (३) कर्कशा स्त्री।

कृत्रिम—वि. [सं.] नकली, बनावटी।

कृदंत—संज्ञा पुं [स] वह शब्द जो धातु में 'कृत' प्रत्यय लगने से बनता है, जैसे भोक्ता।

कृपण—वि. [सं] (१) कजूस, सूम। (२) नीच, दुष्ट।

कृपणता—संज्ञा स्त्री. [स] (१) कजूसी, सूमता। (२) (२) नीचता।

कृपन—वि. [स. कृपण] (१) कंजूस, सूम, अनुदार। उ.—(क) कृपानिधान सूर की यह गति, कासौं कहै, कृपन इहिं काल—१-१२६ (ख) स्याम अछय निधि पाइकै तउ कृपन (कृपण) कहावै—पृ० ३२२। (ग) कीजै कहा कृपन की संपति बिन भोजन बिन दान—२०५१। (घ) हम निसिदिन करि कृपन की सम्पति कियो न कबहू भोग—२७९३। (२) तुच्छ, नीच।

कृपनाई—संज्ञा स्त्री [स. कृपण + आई (प्रत्य.)] कंजूसी, सूमता।

कृपया—क्रि. वि [स] कृपापूर्वक।

कृपा—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) निस्वार्थ भाव से दूसरे की भलाई करने की भावना या इच्छा। अनुग्रह, दया। (२) क्षमा।

कृपाकरन—वि [स कृपा + करण] कृपालु। उ—भक्त-बछल, कृपाकरन, असरन-सरन, पतित उद्धरन कहै बेद गाई—८-६।

कृपाचार्य - संज्ञा पुं [सं.] ये गौतम के पौत्र और शरद्वत के पुत्र थे। इन्होंने कौरवों और पांडवों को शस्त्र-विद्या सिखायी थी।

कृपाण, कृपान—संज्ञा पुं [सं.] (१) तलवार। (२) कटार।

कृपानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] कृपा करनेवाले ।

कृपानिधि—संज्ञा पु [स. कृपा + निधि] (१) कृपा के भांडार, अत्यन्त कृपालु । (२) कृपालु ईश्वर ।

कृपापात्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यक्ति जो दया का अधिकारी हो ।

कृपायतन—संज्ञा पुं. [सं.] दया के भांडार, बहुत दयालु ।

कृपाल—वि [सं. कृपालु] कृपा करनेवाला, दयालु ।

कृपालता—संज्ञा स्त्री. [स कृपालुता] दया का भाव ।

कृपाला—वि. [सं कृपालु] दया करनेवाला । उ.—जो तुम जानत तत्व कृपाला मौन रहौ तुम घर अपने —३२१२ ।

कृपालु—वि. [सं] कृपा करनेवाला, दयालु ।

कृपालुता—संज्ञा स्त्री. [सं] दया का भाव ।

कृपावंत—संज्ञा पुं [स.] (१) कृपा करनेवाला । उ०—सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै लै भक्तनि मैं डारौं १-१५८ । (२) कृपालु ईश्वर । उ.—सूरदास जो संतन कौं हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहिं—१-७४ ।

कृपिण, कृपिन—वि. [सं कृपण] कंजूस, सूम, अनुदार । उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी—१-३६ ।

कृपिणता, कृपिनता, कृपिनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपणता] कंजूसी ।

कृपी—संज्ञा स्त्री [सं.] द्रोणाचार्य की पत्नी जो कृपाचार्य की बहन थी । इसी के गर्भ से अश्वत्थामा का जन्म हुआ था ।

कृमि—संज्ञा पुं [सं.] छोटा कीड़ा ।

कृश—वि [स] (१) दुबला पतला । (२) छोटा ।

कृशता, कृशताई—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) दुबलापन । (२) कमी ।

कृशानु—संज्ञा पु ० [सं] अग्नि, आग ।

कृशित—वि [सं] दुबला-पतला ।

कृष—वि. [सं कृश] पतला, क्षीणांग । उ —(क) कृष (कृश या कृष) कटि सजल उर वचन मनो विधि दीन्हो बंधान—१६९७ । (ख) लई जाइ जब ओट अटन की चीर न रहत कृष गात —२५३६ ।

कृषक—संज्ञा पुं० [सं.] किसान, खेतिहर ।

कृषि—संज्ञा स्त्री [सं.] खेती, किसानी ।

कृषिक—वि [सं. कृषि] खेती-बारी से सम्बन्धित ।

कृषिफल—संज्ञा पुं० [सं] फसल, पैदावार ।

कृषी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृषि] खेती, किसानी । उ.—ते खोजत-खोजत तहँ आए । जहँ जड़ भरत कृषी मैं छाए—५-३ ।

कृष्ण—वि. [सं] (१) श्याम, काला । (२) नीला, आसमानी ।

संज्ञा पुं.—यदुवंशी वसुदेव के पुत्र जो कंस के कारागृह में देवकी के गर्भ से जन्मे थे । मथुरा के अत्याचारी राजा कंस को मार कर प्रजा को इन्होंने सुखी किया था । द्वारका में यादवों का राज्य स्थापित करने वाले ये ही थे । महाभारत के भयंकर युद्ध में ये पांडव पक्ष में रहे । एक बहेलिये का तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई । ये विष्णु के आठवें अवतार माने जाते हैं ।

कृष्णचंद्र—संज्ञा पु. [सं.] श्रीकृष्ण ।

कृष्णद्वैपायन—संज्ञा पुं. [सं.] वेदव्यास जो पराशर के पुत्र थे ।

कृष्णपक्ष—संज्ञा पुं. [स.] वह पक्ष जिसमें चंद्रमा घटता है । अँधियारा पक्ष ।

कृष्णसखा—संज्ञा पु. [सं] अर्जुन ।

कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री [स] द्रौपदी ।

कृष्णसार—संज्ञा पुं [स] (१) काला मृग । (२) शीशम ।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) द्रौपदी । (२) दक्षिण भारत की एक नदी । (३) राधा की एक सखी । उ —कहि राधा किन हार चोरायो । ... दर्वा रंभा कृष्णा ध्याना मैना नैना रूप । इतनिन में कहि कौने लीन्हौ ताको नाउ बताउ—१५८० । (४) अग्नि की एक जिह्वा । (५) आँख की पुतली । (६) काली देवी ।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री [सं] वह नायिका जो अँधेरी रात में प्रिय से मिलने संकेत-स्थल पर जाय ।

कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री. [स] भादों के कृष्णपक्ष की अष्टमी जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है ।

कृष्नाकृति—संज्ञा पुं [सं. कृष्ण + आकृति] कृष्ण-स्वरूप, कृष्ण-लक्षण, कृष्ण की आकृति । उ.—मुनि सानद चले बलिराजा, आहुति जज्ञ बिसारी । देखि सरूप सकल कृष्नाकृति, कीनी चरन जुहारी—८-१४ ।

कृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण ।

कृस—वि० [सं० कृश] दुबली, पतली, क्षीण । उ०—कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कृस, इहि मिस सूं स्याम-बदन चहूँ—१०-२६५ ।

कृसानु—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशानु] अग्नि ।

कृसानु सुत—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु + सुत] अग्नि का पुत्र धूम । उ०—सुत-कृसानु-सुत प्रबल भए मिल चार ओर ते आये—सा० ११ ।

कृष्य—वि. [सं.] खेती के योग्य (भूमि) ।

कृस्न—संज्ञा पुं [सं. कृष्ण] श्रीकृष्ण ।

केंचुआ—संज्ञा पु [स. किंचिलिक, प्रा केंचुओ] एक कीड़ा जो प्राय. बरसात में जन्मता है और मिट्टी खाता है ।

केंचुर, केंचुल—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुक] सर्प जैसे कीड़ों के शरीर के ऊपर की वह झिल्ली जो प्रतिवर्ष अपने आप अलग होकर गिर जाती है ।

केंचुरि, केंचुलि, केंचुली—संज्ञा स्त्री [हिं. केंचुल] झिल्ली, केंचुल । उ.—(क) नैन बैन मुख नासिका ज्यों केंचुलि तजै भुजंग—११८२ । (ख) ज्यों भुजग तजि गयौ केंचुली सो गति भई हमारी-३०५६ ।

केंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी घेरे के ठीक बीच का बिंदु । (२) मुख्य स्थान जहाँ से दूर-दूर फैले कार्यों का संचालन हो । (३) बीच या मध्य । (४) अधिक समय तक रहने का स्थान ।

केंद्रित—वि. [सं] केंद्र-स्थान में इकट्ठा किया हुआ ।

केंद्री—वि. [सं. केंद्रिन्] बीच मे स्थित ।

केंद्रीकरण—संज्ञा पु [सं.] शक्तियों-अधिकारों आदि को केंद्र में एकत्र करना ।

केंद्रीय—वि. [सं. केंद्र] जिसका सम्बन्ध केंद्र से हो ।

केंवरा, केंवरो—संज्ञा पुं [हि. केवड़ा] केवड़े का पौधा और फूल । उ.—तहाँ कमल केंवरो फूले जहाँ केतकी कनेर फूले सतन हित ही फूल डोल—२४०६ ।

के—प्रत्य. [हिं. का] सम्बन्ध सूचक 'का' विभक्ति का बहु वचन रूप । एक वचन प्रयोग भी होता है जब सम्बन्धवान् के आगे कोई विभक्ति होती है । उ—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तें अधिक धायौ—१-५ ।

सर्व.—[सं. कः] कौन ?

केउ—सर्व.—[हिं. के + उ (प्रत्य)=भी] कोई ।

केउर—संज्ञा पुं. [स. केयूर] एक आभूषण ।

केऊ सर्व. [हिं. के + ऊ (प्रत्य.)] कोई ।

वि —कई, कितने ही ।

केकइ—संज्ञा स्त्री. [सं. कैकेयी] राजा दशरथ की छोटी रानी जो भरत की माता थी ।

केकड़ा—संज्ञा पुं. [स.कर्कट, पा. कक्कट] पानी का एक कीड़ा ।

केकय—संज्ञा पुं. [स] (१) उत्तरी भारत का एक प्राचीन देश जो वर्तमान काश्मीर में है । (२) इस देश का निवासी या राजा । (३) कैकेयी के पिता ।

केकयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी ।

केका—संज्ञा स्त्री. [स.] मोर की बोली या कूक ।

केकि, केकी—संज्ञा पुं. [सं. केकिन्] मोर, मयूर । उ.—केकी-पच्छ मुकुट सिर भ्राजत, गौरी राग मिलै सुर गावत—५०६ ।

केचित्—सर्व. [स.] कोई-कोई ।

केड़ा—संज्ञा पुं. [सं. करीर=बाँस का कल्ला] (१) नया पौधा, कोंपल । (२) किशोर, नवयुवक ।

केणिक—संज्ञा पुं. [सं. कोणिका] तंबू, रावटी ।

केत—संज्ञा पु. [स. केतु] एक राक्षस का कबंध । यह राक्षस समुद्र-मंथन के समय अमृत-पान करते करते विष्णु द्वारा मारा गया था । इसका धड़ राहु कहाता है । सूर्य और चन्द्रमा ने इसे पहचाना था, इसी लिए ग्रहण-काल में यह उन्हीं को ग्रसता मानाजाता है । उ —राम-नाम बिनु क्यों छूटोगे, चंद्र गहै ज्यौं केत—१-२६६ ।

संज्ञा पु. [सं.] (१) घर, भवन । (२) स्थान, बस्ती । (३) ध्वजा । (४) बुद्धि । (५) सलाह (६) अन्न ।

केतक—संज्ञा पुं. [सं.] केवड़ा ।

वि. [सं. कति + एक] (१) कितने । (२) बहुत । (३) बहुत कुछ ।

केतकर—संज्ञा स्त्री. [सं केतकी] केतकी का पौधा और फूल ।

केतकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक छोटा झाड या पौधा जिसके सफेद फूल बहुत सुगंधित होते हैं । प्रसिद्धि है कि इसके फूल पर भौंरा नहीं बैठता । उ.—लोचन लालच तें न टरैं । ।ज्यौं मधुकर रुचि रच्यौ केतकी कटक कोटि अरैं । तैसोई लोभ तजत नहिं लोभी फिरि फिरि फिरी फिरैं—२७७० । (२) एक रागिनी-का नाम । उ.—रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गायौ । जेजैवंती जगतमोहिनी सुर सौं बीन बजायौ—१०१७ सारा. ।

केतन—संज्ञा पु. [स] (१) निमन्त्रण । (२) ध्वजा । (३) चिन्ह । (४) घर । (५) स्थान ।

केतने—वि० [हिं० कितना] कितने (सख्यावाचक) उ०—हौं अलि केतने जतन विचारौं—सा० ६७ ।

केता—वि. [स. कियत्] कितना ।

केतारा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की ऊख ।

केति,केतिक—वि. [सं. कति + एक](१) कितना, किस कदर । उ.—(क) तुम मोते अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पढ़ाए (हो)—१-७ । (ख) कही बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति ब्रजबालहि । (ग) केतिक दूरि गयौ रथ माई—२५८० । (घ) आगैं दै पुनि ल्यावत घर कौ तू मोहि जान न देति । सूर स्याम जसुमत मैया सौं हा हा करि कहै केति—४२४ । (२) बहुत ।

केती—वि. [हि. केता] कितनी । उ.—एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ-बनाई—३३३४ ।

केतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञान । (२) प्रकाश । (३) ध्वजा, पताका । (४) चिन्ह (५) एक राक्षस का कबन्ध, जो नौ ग्रहों में माना जाता है । (६) पुच्छल तारा जिसकी पूँछ से प्रकाश निकलता है ।

केतुमान—वि. [सं] (१) तेजस्वी । (२) जिसके पास ध्वजा हो । (३) बुद्धिमान ।

केते—वि. [हिं. केता] कितने । उ.—राका निसि केते अन्तर ससि, निमिष चकोर न लावत—१-२१० ।

केतो, केतौ—वि. [हिं. केता] कितना, कितना ही । उ.—कह्यौ, विषय सों तृप्ति न होइ । केतौ भोग करौ किन कोइ—६ ८ । (ख) मोहन हमारो भैया केतो दधि पियतौ—३७३ ।

केदलि, केदली—संज्ञा पुं [स कदली] केले का पेड़ । उ.—राग पर कमल कमल पर केदलि केदलि पर हरि ठान । हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर ससि भान—२१६१।

केदार—संज्ञा पु [स] (१) हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदार नामक शिवलिंग है । उ.—अस्व मेध जग्य जौ कीजै, गया बनारस-अरु केदार । राम नाम-सरि तऊ न पूजै, तनु गारौ जाइ हिवार—२-३ । (२) एक राग जो रात्रि के दूसरे पहर में गाया जाता है । उ.—राग-रागिनी सौंचि मिलाई गावैं सुघर गुंड मलार । सुहवी सारँग टोडी भैरवौं केदार २२७६ । (३) वृक्ष के नीचे का थाला, थाँवला । (४) कामरूप देश का एक तीर्थ । (५) श्रीराम की सेना का एक बंदर । उ०—कपि सोभित सुभर अनेक संग । ज्यौं पूरन ससि सागर तरंग । सुग्रीव विभीषन जामवंत अंगद सुषेन केदार संत—६-१६६ ।

केदारनाथ—संज्ञा पुं [सं.] हिमालय का एक पर्वत जिस पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है ।

केदारो, केदारौ—संज्ञा पुं. [स. केदार] मेघराग का चौथा भेद जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है । उ.—(क) मधुरैं सुर गावत केदारौ, सुनत स्याम चित लाई । सूरदास प्रभु नंदसुवन कौं नींद गई तब आई—१०-२४२ । (ख) ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन । करत विहार मधुर केदारो सफल सुरन सुख दीन—१०१४ सारा. ।

केना—संज्ञा पुं. [सं. क्रयण = मोल लेना] (१) वह अन्न जो साग भाजी लेने पर बदले में दिया जाता है । (२) साग भाजी ।

केम—संज्ञा पु. [स. कदंब] कदब ।

केयूर—संज्ञा पुं [स.] बाँह में पहनने का एक आभूषण; अंगद, भुजबंद, भुजभूषण । उ.—अंग-

अभूषनि जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, लै केयूर भुज स्याम निहारति—५१२।

केयूरी—वि. [सं.] जो केयूर नामक अलंकार धारण किये हो।

केर—अव्य० [सं. कृत] संबंध सूचक विभक्ति। अवधी भाषा में 'का' के लिए इसका प्रयोग होता है।

केरा—संज्ञा पुं. [हिं. केला] केला, कदली। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख रस सीरा—१०-२११।

केराना—संज्ञा पुं. [हि. किराना] मसाला, मेवा आदि।

केराव—संज्ञा पुं. [स. कलाय] मटर।

केरि—प्रत्य [स. कृत] की।

संज्ञा स्त्री. [सं. केलि] क्रीड़ा।

केरी—प्रत्य. [स. कृत, हि. 'केर' अथवा 'के' विभक्ति का स्त्री. रूप] की। उ.—(क) नाहीं सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी—६६३। (ख) सूर स्याम तुमको अति चाहत तुम प्यारी हरि केरी—१४५७।

संज्ञा स्त्री. [देश.] कच्ची अँबिया।

केरे—प्रत्य. [सं. कृत, हि. 'केर' का बहु० रूप] के। उ.—(क) गाउँ हमारो छाँड़ि जाइ बसिहौ केहि केरे—१०१५। (ख) बहुरि तातो कियो डारि तिन पर दियो आय लपटे सुतहु नंद केरे—२५६०।

केरो, केरौ—प्रत्य [सं. कृत, हि. केर] का, के। उ.—अजान जानिकै अपनो दूत भयो उन केरो–३४३१।

केलक—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचनेवाले लोग।

केला—संज्ञा पुं. [सं. कदल, प्रा. कयल] एक पेड़ जिसके पत्ते खूब लंबे और गूदेदार फल मीठे होते हैं।

केलि—संज्ञा स्त्री [स] (१) खेल, क्रीडा, लीला। उ.—आउ धाम मेरे लाल कैं आँगन बाल-केलि कौ गावति है—१०-७३। (२) रति, समागम। (३) हँसी- ठट्ठा। (४) पृथ्वी।

केलिक—संज्ञा पुं. [सं.] अशोक वृक्ष।

केलिकला—संज्ञा स्त्री. [स] (१) सरस्वती की वीणा। (२) रति, समागम।

केलिकिल—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का विदूषक।

संज्ञा स्त्री.— कामदेव की स्त्री, रति।

केली—संज्ञा स्त्री. [सं. कदली, प्रा. कदली] छोटी जाति का केला।

संज्ञा स्त्री. [सं. केलि] क्रीड़ा, आनंद, विनोद, रंजन। उ.—मधुकर हम न होहिं वै बेली। जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग करत कुसुम रस केली—२६६४।

केवट—संज्ञा पुं [सं. कैवर्त, प्रा केवट्ट] क्षत्रिय पिता और वैश्या माता से उत्पन्न एक वर्ण संकर जाति जिसके लोग प्राय. नाव चलाते हैं। उ.—जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन–१-३०८।

केवड़ा, केवरा—संज्ञा पुं [सं. केविका] (१) सफेद केतकी का पौधा। (२) इस पौधे का फूल। (३) इस फूल का उतारा हुआ अरक।

केवल—वि. [सं.] (१) अकेला। (२) पवित्र। (३) उत्तम, श्रेष्ठ। (४) जिसमें दूसरी बात या चीज की मिलावट न हो।

क्रि. वि.—सिर्फ, मात्र।

संज्ञा पुं.—विशुद्ध और सम्यक ज्ञान।

केवली—संज्ञा पुं [सं. केवल+ई (प्रत्य.)] (१) मुक्ति का अधिकारी। (२) मुक्ति प्राप्त।

केवाँच—संज्ञा स्त्री. [हि. कौंछ] एक बेल।

केवा—संज्ञा पु. [सं. कुव=कमल] कमल की कली।

संज्ञा पुं. [सं. किंवा] बहाना, मिस।

केवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. केवा] कुईं, कुमोदनी।

केश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। (२) विश्व। (३) विष्णु। (४) सूर्य के बाल। (५) केशी नामक दैत्य जो कंस का सेवक था।

केशकर्म—संज्ञा पुं० [स०] बाल सँवारने की क्रिया।

केशट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) कामदेव का शोषण नामक बाण।

केशपाश—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट।

केशर—संज्ञा पुं० [सं० केसर] केसर।

केशरिया—वि० [हि० केसरिया] केसर के रंग का।

री—संज्ञा पुं० [सं. केसरी] (१) सिंह । (२) हनुमान पिता का नाम ।

केशव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्रीकृष्ण का एक नाम । (३) परमेश्वर ।

केशविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] बालों का सँवारना ।

केशांत—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन संस्कार ।

केशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

केशिनी—वि० [सं०] सुंदर बालवाली ।

केशी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] (१) एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । (२) एक यादव ।

वि०—अच्छे बालोंवाला ।

केस—संज्ञा पुं० [सं० केश] सिर के बाल ।

मुहा०—केस खसै—बाल बाँका हो, कष्ट पड़े । उ०—जाकौ मनमोहन अंग करै । ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जो जग बैर परै—१-३७ । केस नहिं टारि सकै—बाल बाँका न कर सके, कुछ हानि न पहुँचा सके । उ.—जाकी कृपा पतित ह्वै पावन पग परसत पाहन तरै । सूर केस नहिं टारि सकै कोउ, दाँति पीसि जौ जग मरै—१-२३४ ।

केसपास—संज्ञा पुं० [सं० केशपाश] बालों की लट । उ०—बरना भख कर में अवलोकत केसपास कृतबंद —६८६ सारा ।

केसर—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की तरह पतली सींकें जो फूलों के बीच से होती हैं । (२) एक प्रकार के फूल का केसर जिसका रंग लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है । (३) घोड़े, सिंह आदि की गरदन के बाल, अयाल । (४) स्वर्ग । (५) नागकेसर ।

केसरि—वि० [हिं० केसर] केसर के रंग का, पीले रंग का । उ०—केसरि चीर पर अबीर मानो परयौ खेलत फागु डारयौ खिलारी—२५६५ ।

केसरिया—वि० [सं० केसर+इया (प्रत्य०)] (१) केसर के रंग का । (२) जिसमें केसर पड़ी हो ।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] (१) सिंह । (२) घोड़ा (३) नागकेसर । (४) हनुमान जी के पिता का नाम । (५) राम की सेना का एक बंदर । उ०—नल-नील द्विविद-केसरी-गवच्छ । कपि कहे बहुक हैं बहुत स्वच्छ—६-१६६ ।

केसव—संज्ञा पुं० [सं० केशव] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्रीकृष्ण का एक नाम ।

केसवराई—संज्ञा पुं० [सं० केशव + हिं० राय] श्रीकृष्ण का एक नाम, केशवराय । उ०—वर गहि छीर पियावत अपनी, जानति केसवराई—१०-५२ ।

केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, हिं० खेसारी] एक तरह का मटर ।

केसि, केसी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्, केशी] कंस का दरबारी एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । उ.—बकी बका सकटा त्रिन केसी वछ वृष भये सबै अलि बिन गोपाल इति बैर कीन—सा.उ. ३६ ।

केसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] टेसू, पलाश ।

केहरि, केहरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] (१) सिंह, शेर । उ०—कठुला-कंठ, वज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए—१०-६६ । (२) घोड़ा ।

केहरिनहा—संज्ञा पुं० [सं० केहरि + हिं० नख] बघनहा ।

केहूरी—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

केहा—संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] (१) मोर । (२) बटेर के बराबर एक पक्षी ।

केहि, केही—वि० [सं० कि] किस । उ०—ब्रह्मा सिव स्तुति न सकैं करि मैं बपुरो केहिं माहीं—१० उ०-१३२ ।

केहूँ—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी भाँति या तरह ।

केहू—सर्व० [हिं० के] कोई ।

कैं—प्रत्य० [हिं० कर] कर, करके । उ०—लच्छागृह तैं काढि कैं पांडव गृह ल्यावै—१-४ ।

प्रत्य [हिं० के] कर्म, संप्रदान और अधिकरण का विभक्ति-प्रत्यय, के, के यहाँ । उ०—(क) जैसैं गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि ध्यावै—१-४ । (ख) कौन जाति अरु पाँति बिदुर की ताही कैं पग धारत—१-१२ ।

प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक विभक्ति-प्रत्यय, के । उ०—(क) तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट

दास कै आयौ—१-१० ।

कैंकर्य—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा, सेवकाई ।

कैंचा—वि. [हिं. काना+ऐंचा = कनैंचा] ऐंचाताना ।

संज्ञा पुं. [तु. कैंची] बड़ी कैंची ।

कैंची—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) कतरनी । (२) तिरछी रखी हुई तीलियाँ-सलाइयाँ आदि ।

कैंचुल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केंचुल] केंचुल ।

कैंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कांड = एक माप] (१) नापने का एक पैमाना । (२) चाल, ढंग । (३) चतुराई ।

कैंती—क्रि० वि० [हि० कै + तीर] ओर से । उ०—मेरी कैंती बिनती करनी—६-१०१ ।

कै—वि. [सं. कति, प्रा. कइ] कितना (संख्या), किस कदर (परिमाण) । उ.—जैसें अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाल-पनार । तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार—१-८४ ।

अव्य. [सं. किम्] या, वा, अथवा, या तो । उ.—(क) राम भक्तवत्सल निज बानौं । जाति, गोत, कुल नाम गनत नहिं रक होइ कै रानौ—१-११ । (ख) जन्म सिरानौ ऐसैं ऐसैं । कै घर घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं । कै कहुँ खान पान रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं । कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरत्ता, नट-बाजीगर जैसे—१-२९३ ।

प्रत्य.—[हि. का] सम्बन्ध-सूचक विभक्ति, के, कर । उ.—(क) रोर कै जोर तें सोर घरनी कियौ चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढौ—१-५ । (ख) महा मोहिनी मोहि आत्मा अपमारगहि लगावै । ज्यों दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२ ।

क्रि. स. [हि. करना] (१) करो, उपयोग में लाओ । उ०—नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै । लै अपने कर काढि चंद कौ, जो भावै सो कै—१०-१९५ । (२) करके । उ०—सुनि स्रवन, दस बदन सदन-अभिमान, कै नैन की सैन अंगद बुलायौ—९-१२८ ।

सज्ञा पुं.—[देश.] एक तरह का मोटा धान ।

संज्ञा स्त्री. [अ. कै] वमन, उलटी ।

कैकइ, कैकई—संज्ञा स्त्री. [सं. कैकेयी] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी ।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं.] राक्षस ।

कैकेयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कैकय देश या गोत्र की स्त्री । (२) राजा दशरथ की रानी जो कैकय देश की राजकुमारी थी ।

कैटभ—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो मधु का छोटा भाई था और विष्णु द्वारा मारा गया था ।

कैटभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा का एक नाम ।

कैटभारि—संज्ञा पुं [सं. कैटभ + अरि] विष्णु का एक नाम जो कैटभ दैत्य को मारने के कारण पड़ा था । उ.—बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ, परम प्रान-जीवन-धन मेरे तुम बारे । मनौ वेद-बंदीजन, सूतवृंद मागधगन, विरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे—१०-२०५ ।

कैतव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोखा, छल-कपट । (२) जुआ, द्यूत । (३) लहसुनियाँ ।

वि.—(१) छली, कपटी । (२) जुआरी ।

कैतवापह्नुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अलंकार जिसमें विषय का किसी बहाने से गोपन या निषेध किया जाय ।

कैथ, कैथा—संज्ञा पुं० [सं. कपित्थ] एक कँटीला पेड़ ।

कैथी—संज्ञा स्त्री. [हि. कायस्थ] एक पुरानी लिपि जो अधिकतर बिहार में प्रचलित है ।

कैद—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कारावास । उ०—साचौं सो लिखहार कहावै । । मन महतौ करि कैद अपने मैं, ज्ञान-जहतिया लावै—१-१४२ । (२) बंधन । (३) शर्त, प्रतिबंध ।

कैदखाना—संज्ञा पु. [फा. क़ैदख़ाना] जेलखाना, कारागार, बंदीगृह ।

कैदी—सज्ञा पुं [अ. कैद] जो कैद हो, बंदी ।

कैदु—संज्ञा स्त्री. [हि. कैद] बंधन, प्रतिबन्ध । उ०—हारि मानि उठि चल्यौ दीन ह्वै जानि अपुन पै कैदु—३४६८ ।

कैधौं, कैधौ—अव्य. [हि. कै+धौं] या, वा, अथवा । उ.—कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं, कै कछु मो मैं भोलौ । तौ हौ अपनी फेरि सुधारौं, बचन एक जौ बोलौ—१-१३६ ।

कैन—संज्ञा स्त्री. [सं. कचिका] (१) बाँस की पतली टहनी। (२) पतली टहनी।
कैनित—संज्ञा स्त्री [देश.] एक खनिज पदार्थ।
कैफ—संज्ञा पु [अ] (१) नशा, मद। (२) चारा जिसमें मादक द्रव्य मिला हो।
कैफियत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) समाचार, हाल। (२) विवरण। (३) विचित्र घटना।
कैबर—संज्ञा स्त्री. [देश.] तीर का फल।
कैबा—संज्ञा स्त्री., अव्य० [हिं. कै = कई + बार] (१) कितनी बार। (२) कई बार।
कैबार—संज्ञा पुं [हिं. किवाड़] किवाड़।
कैम, कैमा—संज्ञा पुं [सं. कदंब] चौड़े सिरे के पत्तेवाला कदंब।
कैयो—क्रि. वि [हिं. कै = कई + यो] कई प्रकार के, कई तरह के। उ.—कैयो भाँति केरा करि लीने—२३२१।
कैर—संज्ञा स्त्री. [सं. करील] एक कँटीली झाड़ी।
कैरव—संज्ञा पु. [सं.] (१) कुमुद। (२) सफेद कमल। (३) शत्रु। (४) जुआरी।
कैरवाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कैरवों का समूह।
कैरवि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा।
कैरवी—संज्ञा स्त्री [सं] चाँदनी (रात)।
कैरा—संज्ञा पुं [सं. कैरव = कुमुद] (१) भूरा (रंग)। (२) लाल झलकवाली सफेदी। (३) एक तरह का बैल।
वि.—जिसकी आँखें भूरी हों।
कैरात—वि. [सं.] किरात जाति या देश संबंधी।
संज्ञा पु. [सं] (१) एक तरह का चंदन। (२) बली आदमी। (३) एक तरह का साँप। (४) एक चिड़िया। (५) राग का एक भेद।
कैरी—वि. स्त्री. [हिं. कैरा] (१) भूरे रंग की। (२) लाली लिये सफेद रंग की।
संज्ञा स्त्री. [हि. केरी] छोटा आम, अँबिया।
प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' का स्त्रीलिंग रूप] की।
कैल—संज्ञा स्त्री० [हि. कल्ला] वृक्ष की नयी पतली शाखा, कनखा।
कैलास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय की चोटी जिस पर शिव जी का निवास माना जाता है, शिव का निवास स्थान। (२) एक प्रकार के षट्कोण मंदिर। (३) स्वर्ग।
कैफी—वि. [अ.] (१) मतवाला। (२) नशेबाज।
कैलासपति—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी।
कैलासवास—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु।
कैलासी—संज्ञा पु. [सं. कैलास = ई (प्रत्य)] (१) कैलास निवासी शिव। (२) कुबेर।
कैवर्त—संज्ञा पुं. [सं. कैवर्त्त] एक वर्णसंकर जाति, केवट, मल्लाह।
कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।
कैवल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्धता, मिलावट न होना। (२) मुक्ति, निर्वाण। (३) एक उपनिषद् का नाम।
कैवाँ, कैवा—क्रि. वि. [हिं. कै = कई+वाँ = बार] कई बार।
उ.—कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसे कुमति, कुमीच। हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच—१-३२५।
कैशिक—वि. [सं.] बड़े बालवाला।
संज्ञा पुं.—(१) केशसमूह। (२) केशशृंगार।
कैशिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक की एक वृत्ति।
कैसा—वि. [सं. कीदृश, प्रा. करेस] (१) किस तरह का। (२) किसी प्रकार का नहीं (निषेधात्मक प्रश्न-रूप में)।
क्रि. वि. [हिं. का + सा] के समान, की तरह।
कैसिक—क्रि. वि. [हिं. कैसा] कैसे, किस भाँति।
कैसे, कैसैं—क्रि. वि. [हि. कैसा] (१) किस प्रकार से, किस रीति से। उ.—कहि, जावैं ऐसौ सुत बिछुरै, सो कैसैं जीवै महतारी—१०-११। (२) किस हेतु, किस लिए, क्यों।
मुहा०—कैसेहुँ करि—किसी प्रकार से, बडे यत्नों से, बड़े भाग्य से, राम-राम करके। उ.—ढोटा एक भयौ कैसेहुँ करि कौन कौन करबर विधि भानी—३६८।
कैसो, कैसौ—वि. [हिं. कैसा] कैसा। उ.—उनहूँ कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसो—२-१४।
क्रि. वि. [हि. का+सा] के समान, की तरह। उ.—कबहुँ नाहिं इहिं भाँति देख्यौ आजु कैसौ रंग—४१७।

कैहूँ—क्रि. वि. [हि. कै=कैसे+हूँ (प्रत्य.)] किस तरह, किस प्रकार।

कैहैं—क्रि. स. [हि. कहना] कहेंगे। उ.—सबै कैहैं इहै भली मति तुम यहै नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे—२६०५।

कैहै—क्रि. स. [हि. करना] करेगा, संपादन करेगा। उ.—कह्यौ तोहि ग्राह आनि जब गैहै। तू नारायन सुमिरन कैहै—८-२।

कैहौं—क्रि. स. [हि. करना] करूँगा। उ.—जब मैं भक्ति स्याम की कैहौं। जानत नहीं कहा मैं पैहौं—४-६।

कैहौ—क्रि. स. [हि कहना] कहोगे, मुख से बोलोगे। उ.—(क) एक गाँव एक ठाँव को बास एक तुम कैहौ, क्यों मैं सैहौं—८४३। (ख) कबहुक तात तात मेरे मोहन या मुख मोसौं कैहौ—२६५०।

कोंइछा—ज्ञासं पुं. [हिं. कोंछा] आँचल का भाग जिसमे कुछ बाँधकर कमर में खोंसा जाय।

कोंई—सज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी, प्रा. कुउई] कुमुदिनी।

कोंचना—क्रि. स. [सं. कुच्] चुभाना, गड़ाना।

कोंचा—संज्ञा पुं. [हि. कोंचना] (१) पक्षी फँसाने की लासा लगी लग्घी। (२) भड़भूजे का करछा।

कोंछ—संज्ञा पु. [सं. कक्ष, प्रा. कच्छ] स्त्रियों के अंचल का छोर या कोना।

कोंछना—क्रि. स. [हि. कोंछ] स्त्रियों की साड़ी का या मर्दों की बंगाली ढंग से पहनी जानेवाली धोती का आगे का भाग चुनना।

कोंछियाना—क्रि. स. [हि. कोछ] कोंछना।

कोंछी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोंछ] साड़ी या धोती का वह भाग जो चुनकर पेट के आगे खोंसा जाय, नीबी।

कोंड़ई—सज्ञा पु. [देश.] एक कँटीला पेड़।

कोंड़हा, कोंढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंडल] धातु का छल्ला।

कोंढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोष्ठ] कली जो खिली न हो।

कोंध—संज्ञा स्त्री. [स कोण अथवा कुत्र, पु हि. कोद, कोध] दिशा, ओर। उ०—एक कोंध व्रज सुन्दरी एक कोंध ग्वाल-गोविन्द हो। सरस परस्पर गावहीं द नारि गारि बहु बृंद हो—२४४६।

कोंप—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंपल] कल्ला, अकुर।

कोंपना—क्रि. अ. [हि. कोंपल] कोपल निकलना।

कोंपर—संज्ञा पुं. [हि. कोंपल] अधपका आम।

कोंपल—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमल या कुपल्लव] नयी पत्ती, कल्ला, कनखा।

कोंवर, कोंवरी—वि. स्त्री. [सं. कोमल] (१) कोमल, नरम, मुलायम। (२) सहनीय, भली लगनेवाली। उ.—प्रात-समय रवि-किरनि कोंवरी, सो कहि सुतहि बतावति है। आउ धाम मेरे लाल कैं आँगन, बाल केलि कों गावति है—१०-७३।

कोंस—सज्ञा पुं. [सं. कोश] लंबी कली, छीमी।

कोंहड़ा—संज्ञा पुं. [हि. कुम्हड़ा] कुम्हड़ा, सीताफल।

कोंहड़ौरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोंहड़ा = कुम्हड़ा + बरी] कुम्हड़े या पेठे की बरी।

कोंहरा—सज्ञा पुं. [देश.] उबाले हुए चने या मटर जो छौंक कर खाये जाते हैं।

कोंहार—संज्ञा पुं. [हिं. कुम्हार] कुम्हार।

को—सर्व [सं. कः] कौन, किसने। उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धारी लाजैं—१-५। (ख) तू को? कौन देश है तेरौ, कै छल गह्यौ राज सब मेरो—१-२९०।

प्रत्य.—कर्म और संप्रदान कारकों की विभक्ति।

कोआ—संज्ञा पु. [सं. कोश या हिं कोसा] (१) रेशम का कीड़ा। (२) रेशमी कीड़े का घर। (३) कटहल का कोया।

कोइ—प्रत्य. [हि. का] का। उ.—मुनि देवता बड़े, जग॰ पावन तू पति या कुल कोई—१०-५६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँई] कुमुदिनी। उ—पूरनमुख चंद्र देख नैन-कोइ फूली—६४२।

कोइरी—संज्ञा. [हि. कोंपर=साग-पात] साग-तरकारी बोने वाली एक जाति।

कोइल, कोइलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) मथानी में लगी गोल छेददार लकड़ी। (२) करघी के बगल में लगी करघे की लकड़ी।

संज्ञा स्त्री. [सं. कोकिल, हि. कोयल] कोयल।

कोइली—सज्ञा स्त्री. [हिं. कोयल] कच्चा आम जिस पर कोयल के बैठने से काला सा दाग पड़ जाय।

कोई—सर्व. [सं. कोपि, प्रा. कोवि] (१) अज्ञात मनुष्य या पदार्थ। (२) अनिर्देशित व्यक्ति या वस्तु। (३) एक

भी (मनुष्य)। उ.—हरि सौं मीत न देख्यो कोई—१-१०।

वि.—(१) मनुष्य या पदार्थ जो अज्ञात हो। (२) अनेक में से कोई एक। (३) एक भी।

क्रि. वि.—लगभग।

कोउ—सर्व. [हि. को + हू = भी] कोई। उ.—सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै—१-४।

कोउक—सर्व [हिं. कोउ + एक] कोइ एक, कुछ लोग।

कोऊ—सर्व. [हिं. को+हू (प्रत्य)=भी] कोई, कोई भी। उ.—गनिका सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४।

कोकंब—संज्ञा पुं [देश] एक पेड़ जिसके सब भाग खट्टे होते हैं।

कोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चकवा पक्षी, चक्रवाक। उ.—सूरस्याम पर गई वारनें निरप कोक जनु कोकी—सा. ११२। (२) कोकदेव जो रतिशास्त्र के आचार्य थे। (३) संगीत का एक भेद। (४) विष्णु। (५) भेड़िया।

कोकई—वि. [तु. कोक] गुलाबीपन लिये नीला।

कोककला—संज्ञा स्त्री. [सं.] रति विद्या, कामशास्त्र। उ.—(क) हाव-भाव, कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाई—६६०। (ख) कोककला-गुन प्रगटे भारी—१२१६। (ग) कोककला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा—१४३७।

कोकन—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

कोकनद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाल कमल। (२) लाल कुमुद।

कोकना—क्रि. स. [फा. कोक = कच्ची सिलाई] कच्ची सिलाई करना, लंगर डालना।

कोकनी—संज्ञा पुं. [सं. कोक = चकवा] एक तरह का तीतर।

संज्ञा पुं. [तु. कोक = आसमानी] एक रंग।

वि [देश.] (१) छोटा, नन्हा। (२) घटिया, मामूली।

कोकम—संज्ञा पुं. [देश] एक दक्षिणी पेड़।

कोकव—संज्ञा पुं० [सं.] एक राग।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] कोकदेव नामक एक पंडित-कृत रति शास्त्र।

कोका—संज्ञा पुं. [हि. कोक] एक तरह का कबूतर।

संज्ञा पुं.—चकवा।

कोकाबेरी, कोकाबेली—संज्ञा स्त्री. [सं. कोका + हि बेली] नीली कुईं या कुमुदिनी

कोकाह—संज्ञा पुं. [सं.] सफेद रंग का घोड़ा।

कोकिल—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कोयल। (२) छप्पय छंद का एक भेद।

कोकिल'—संज्ञा स्त्री. [सं.] कोयल।

कोकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा चकवा।

कोको—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कौआ।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षि, प्रा. कुक्खि] (१) गर्भाशय। उ०—(क) जसुमति कोख आय हरि प्रगटे असुर तिमिर कर दूर—सारा. ३६। (ख) धन्य कोख जिहिं तोको राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी—७०३।

मुहा०—कोख माग सुहाग भरी— पति-पुत्र का सुख देखनेवाली और भाग्यवती। उ.—धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर-घरी। धनि धनि महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी—१०-२४। कोख की आँच— संतान का वियोग, संतान की ममता।

(२) उदर, पेट। (३) पेट के दोनों बगलों का स्थान।

कोखजली—वि. स्त्री. [हि. कोख + जलना] जिसकी संतान मर जाती हो।

कोखबंद—वि. [हि. कोख + बंद] जिसके संतान हुई ही न हो, बाँझ।

कोखि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि, प्रा. कुक्खि, हि. कोख] गर्भाशय, गर्भ। उ.—(क) याकी कोखि औतरै जो सुत करै प्रान-परिहारा—१०४। (ख) अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि कौ जायौ—३४६। (ग) तिनमें प्रथम लियो कश्यप गृह दिति की कोखि मँझार—सारा. ४४।

कोखिजरी—वि स्त्री. [हिं. कोख+जलना] जिसकी संतान जीवित न रहे, जिसे संतान का सुख न मिले। उ.—पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया दुख कोखिजरी—१०-८०।

कोगी—संज्ञा पुं [देश] एक जानवर (सोनहा) जो लोमड़ी के बराबर होता है।

कोचना—क्रि. स. [सं. कुच् = लिखना] चुभाना, गड़ाना।

कोचरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक घनी लता।

कोचरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पक्षी ।

कोचा—संज्ञा पुं. [हिं. कोचना] (१) हल्का घाव । (२) चुटीली बात, ताना ।

कोजागर—संज्ञा पुं. [सं.] शरद की पूर्णिमा ।

कोट—संज्ञा पुं. [सं. कोटि] (१) यूथ, जत्था । (२) समूह, ढेर । उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी । सुमिरत पट कौ कोट बढ्यौ तब, दुख-सागर उबरी—१-१६ । (ख) जैसे बने गिरिराज जू तैसे अन को कोट—६१२ (ग) दसहूँ दिसि तैं उदित होत हैं दावानल के कोट—२७०३ ।

संज्ञा पु. [सं.] (१) महल, राजप्रासाद । उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन । कंचन कोट कँगूरनि की छबि मानहु बैठे मैन—२५५८ । (२) दुर्ग, किला । उ.—(क) मय, माया-मय कोट सँवारो । ता मैं बैठि सुरनि जय करौ । तुम उनके मारे नहि मरौ—७ ७ । (ख) रही दे घूँघट पट की ओट । मनो कियो फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट—सा. उ. १६ । (३) शहरपनाह, प्राचीर ।

वि. [सं. कोटि] करोड़ । उ.—(क) राधे आज मदन-मद माती । सोहत सुंदर संग स्याम के बरचत कोट काम कल याती—सा. ५० । (ख) भादौं की अधराति अँध्यारी । द्वार-कपाट कोट भट रोके दस दिसि कंत कंस-भय भारी—१०-११ ।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं.] दुर्गरक्षक ।

कोटर—संज्ञा पु [स०] (१) पेड़ का खोखला भाग । (२) दुर्ग के आसपास का वन ।

कोटरी—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा, चंडिका ।

कोटि—वि. [स.] सौ लाख की संख्या, करोड़ ।

संज्ञा स्त्री [सं.] (१) धनुष का सिरा । (२) वर्ग, श्रेणी । (३) उत्तमता । (४) समूह, जत्था ।

कोटिक—वि. [सं कोटि+क (प्रत्य.)] (१) करोड़ । (२) अमित, असंख्य ।

कोटिक्रम—संज्ञा पु [सं.] विषय प्रतिपादन-क्रम ।

कोटिच्युत—वि. [सं.] पद से नीचे भेजा हुआ ।

कोटिच्युति—संज्ञा स्त्री. [स.] पद से गिराने की क्रिया ।

कोटितीर्थ—संज्ञा पु [स] एक तीर्थ जो उज्जैन, चित्रकूट आदि अनेक स्थानों पर है ।

कोटिनि—संज्ञा पुं. [सं. कोटि+हि. नि (प्रत्य)] करोड़ों का समूह, ढेर । उ.—पाडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिनि बसन पुजाए । बिपति काल सुमिरत तिहि अवसर जहाँ तहाँ उठि धाए—१-१५८ ।

कोटिफली—संज्ञा पुं. [सं.] गोदावरी नदी के सागर संगम के समीप एक तीर्थ । प्रसिद्धि है कि इंद्र का अहिल्या संबंधी पाप यहीं स्नान करने से दूर हुआ था ।

कोटिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] पद, महत्व या मूल्य के अनुसार श्रेणी-विभाजन करना ।

कोटिबद्ध—वि. [सं.] श्रेणियों में विभक्त ।

कोटिशः—क्रि. वि. [सं०] बहुत तरह से ।

वि.—बहुत बहुत ।

कोटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] (१) नोक या धार । उ.—मेली सजि मुख-अंबुज भीतर उपजी उपमा मोटी । मनु बराह भूधर सह पुहुमी धरी दसन की कोटी—१०-१६४ । (२) किसी अस्त्र की नोक ।

कोटू—संज्ञा पुं. [देश.] एक पौधा जिसके बीजों का आटा फलाहार रूप में खाया जाता है ।

कोटृवी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) बाणासुर की माता जो पुत्र की श्रीकृष्ण से रक्षा के लिए वस्त्र त्याग कर युद्ध क्षेत्र में आयी थी । (२) वस्त्ररहित स्त्री । (३) दुर्गा ।

कोठ—वि. [स. कुंठ] बहुत खट्टा ।

कोठरिया, कोठरी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोठा+ड़ी (री)] छोटा या तंग कमरा ।

कोठा—संज्ञा पुं. [सं. कोष्ठक] (१) बड़ा कमरा । (२) भंडार । (३) अटारी । (४) पेट (५) गर्भाशय । (६) खाना (शतरंज या चौपड़) । (७) शरीर या मस्तिष्क का भीतरी भाग ।

कोठार—संज्ञा पुं. [हिं. कोठा] अन्न आदि का भडार ।

कोठारी—संज्ञा पुं. [हिं. कोठार+ई (प्रत्य.)] भडारी ।

कोठी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोठा] (१) बडा और बढ़िया पक्का मकान । (२) उस धनी या महाजन का मकान जो खूब लेन-देन करता हो या थोक विक्रेता हो ।

मुहा.—कोठी खोलि—लेन देन का काम या बड़ा कारबार शुरू करके । उ.—करहु यह जस प्रगट

त्रिभुवन निठुर कोठी खोलि। कृपा चितवनि भुज उठावहु प्रेम वचननि बोलि—पृ. ३४२ (१७)।

(३) अनाज का भंडार या कोठार।

संज्ञा स्त्री [स. कोटि=समूह] बाँसों का समूह जो एक साथ उगे हों।

कोठीवाल—संज्ञा पुं. [हि. कोठी + वाला (प्रत्य.)] (१) बड़ा महाजन। (२) बड़ा व्यापारी।

कोडना—क्रि. स. [स. कुंड=खंडित करना] खेत गोड़ना।

कोडा—संज्ञा पुं [सं कवच=गुथे हुए बाल] (१) चाबुक, सोंटा। (२) उत्तेजक बात। (३) चेतावनी।

कोडाई—संज्ञा स्त्री. [हिं कोड़ना] खेत गोड़ने की मजदूरी या काम।

कोड़ाना—क्रि. स. [हिं. कोड़ना का प्रे.] कोड़ने का काम दूसरे से कराना।

कोडी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] बीस का समूह।

कोढ़—संज्ञा पुं. [सं. कुष्ट] एक भयानक रोग।

मुहा.—कोढ की (में) खाज—दुख पर दुख।

कोढ़ी—संज्ञा पुं, [हिं. कोढ़] कोढ़ नामक भयानक रोग से पीड़ित मनुष्य जो घृणित और अस्पृश्य समझा जाता है। उ.—उलटी रीति तिहारी ऊधौ सुनै सु ऐसी को है। . । मुडली पटिया पारि सँवारैं कोढ़ी लावै बेसरि। ..। सो गति होई सबै ताकी जो ग्वारिनि जोग सिखावै—३०२६।

कोण—संज्ञा पुं. [स.] (१) कोना। (२) दो दिशाओं के बीच की दिशा। (३) हथियारों की धार। (४) सोटा, डंडा।

कोणार्क—संज्ञा पुं [सं] एक तीर्थ जो जगन्नाथपुरी में है।

कोत—संज्ञा स्त्री. [अ. कुवत] बल, शक्ति।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद, कोध] दिशा।

कोतल—संज्ञा पु. [फा] (१) सजा हुआ घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो। (२) राजा की सवारी का घोड़ा।

वि.—जिसे कोई काम न हो।

कोतवार, कोतवाल—संज्ञा पुं. [सं. कोटपाल] (१) पुलिस का एक प्रधान कर्मचारी। (२) सभा या पचायत में भोजनादि का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी।

कोतवाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोतवाल + ई (प्रत्य.)] (१) कोतवाल का कार्यस्थान। (२) कोतवाल का पद।

कोतह—वि. [फा] छोटा, कम।

कोता, कोताह—वि. [फ़ा. कोत.] छोटा, कम।

कोताही—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] कमी, त्रुटि।

कोति—संज्ञा स्त्री. [सं. कुथ=विभग] दिशा, ओर।

कोथ—संज्ञा पुं. [सं.] आँख का एक रोग।

कोथला—संज्ञा पुं. [हि. स्थल या कोठला] (१) बड़ा थैला। (२) पेट।

कोथली—संज्ञा स्त्री. [हि. कोथला] रुपए रखने की थैली जो कमर में बाँध ली जाती है।

कोथी—संज्ञा स्त्री. [देश.] म्यान के सिरे का छल्ला।

कोदंड—संज्ञा पु. [सं.] (१) धनुष, कमान। उ.—तोरि कोदंड मारि सब जोधा तब बल भुजा निहारौ—२५८८। (२) धनराशि। (३) भौंह।

कोद—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण अथवा कुत्र] (१) दिशा, ओर। उ.—(क) आनंदकंद, मगल सुखदायक, निशि दिन रहत केलि रस ओट। सूरदास प्रभु अंबुज लोचन, फिरि चितवत ब्रज-जन-कोद—१०-११६। (ख) नारि-नर सब देखि चकित भए, दवा लग्यौ चहुँ कोद—५६२। (२) कोना।

कोदइत—संज्ञा पु. [हिं. कोदो+ऐत (प्रत्य.)] कोदो दबने वाला।

कोदई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोद्रव] कोदो।

कोदन—संज्ञा स्त्री. [हि. कोद, कोध] दिशा, ओर, तरफ। उ.—अन्नकूट जैसो गोबर्धन। अरु पकवान धरे चहुँ कोदन—१०२५।

कोदरा, कोदव—संज्ञा पु. [हि. कोदो] एक कदन्न।

कोदवला—संज्ञा स्त्री [हिं. कोदो] एक घास।

कोदों, कोदो—संज्ञा पुं. [सं. कोद्रव] एक कदन्न।

मुहा.—कोदों देकर पढना (सीखना)-बेढंगी शिक्षा पाना। छाती पर कोदों दलना—दूसरे को बेबस करके कुढ़ाना या जलाना।

कोद्रव—संज्ञा पुं [स.] कोदो, कोदई।

कोध—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद] ओर, दिशा। उ.—(क) नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहुँ कोध। (ख) एक कोध गोविंद ग्वाल सब एक कोध ब्रज-नारि—२३६६।

कोन—संज्ञा पुं. [सं. कोण] कोना, कोर, किनारा। उ.—(क) नैन कोन की अंजन-रेखा पटतर कहूँ न छीजै—२१६७। (ख) तीनि लोक जाकैं उदर-भवन, सो सूप कै कोन परयौ है (हो)—१०-१२८।

कोना—संज्ञा पुं. [सं. कोण] (१) कोण, अंतराल। (२) नुकीला सिरा। (३) (वस्त्र या इमारत का) छोर या खूँट। (४) एकांत स्थान।

कोनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. कोना] (१) दीवार के कोने पर चीज रखने की पटिया। (२) मूर्ति आदि के कोनों का सजाना।

कोनी—सर्व. [हि. कौन+ई] कौन, कौन (स्त्री०)। उ.—अरुन अधर दसनावली छबि बरनै कोनी (कौनी) —१८२१।

कोप—संज्ञा पुं [सं.] क्रोध, रिस, गुस्सा। उ.—मदन बान कमान ल्यायौ करषि कोप चढ़ाय—सा. १२।

कोपन—वि. [हिं. कोपी] क्रोध करनेवाला।

कोपना—क्रि. अ [सं कोप] क्रोध करना, नाराज होना।
वि.—क्रोध में भरी हुई, अप्रसन्न।

कोपभवन—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ कोई स्त्री-पुरुष अपने मित्रों-संबंधियों से अप्रसन्न होकर चला जाय।

कोपर—संज्ञा पुं. [सं. कपाल] कुंडेदार बड़ा थाल या परात। उ.—(क) दधि-फल-दूब कनक कोपर भरि साजत सौंज विचित्र बनाई—६-१६६। (ख) मनि-मय आसन आनि धरे। दधि मधु-नीर कनक के कोपर आपुन भरत भरे—६-१७१।
संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपल्लव] डाल का पका आम।

कोपल—संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपल्लव] नयी पत्ती, कल्ला, अंकुर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री. [सं] एक बेल।

कोपली—वि. [हिं कोपल] नये निकले हुए पत्ते के रंग का, बैंगनी रंग का।
संज्ञा पुं.—कालापन लिये हुए लाल या बैंगनी रंग।

कोपि—क्रि. अ. [सं. कोप, हि. कोपना] कोप करके, क्रोधित होकर। उ.—(क) कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पाडु की बधू जस नैंकु गायौ—१-५। (ख) कोपि कै प्रभु बान लीन्हौं तबहि धनुष चढाइ —६-६०।

कोपित—वि. [सं. कुपित] (१) क्रुद्ध, क्रोधित। उ०—प्रात इन्द्र कोपित जलधर लै ब्रज मंडल पर छायौ —३०७७। (२) अप्रसन्न।

कोपी—वि. [स. कोपिन] (१) कोप करनेवाला, क्रुद्ध, अप्रसन्न। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। ....। वारे कुबिजा के रंगहि राँचे तदपि तजी सोपी। तदपि न तजैं भजै निसि-बासर नेकहू न कोपी—३४८७। (२) जल के किनारे रहनेवाला एक पक्षी।
वि. [सं. कोऽपि] कोई, कोई भी।

कोपीन—संज्ञा पुं. [सं. कौपीन] साधु-संन्यासियों की लँगोटी, कफनी, काछा।

कोपे—क्रि. अ. [सं. कोप, हि. कोपना] क्रोधित हुए, क्रुद्ध हुए। उ.—आजु अति कोपे हैं रनराम—१५८।

कोपै—क्रि. अ. [हिं. कोपना] क्रोध करता है, रुष्ट होता है। उ.—कोपै तात प्रहलाद भगत कौं, नामहि लेत जरै—१८२।

कोपो—क्रि. अ. भूत. [हि. कोप्यौ] क्रुद्ध हुआ। उ.—आजु रन कोपो भीमकुमार—सा. ७४।

कोप्यौ—क्रि अ. [हि. कोपना] क्रोध किया, क्रुद्ध हुआ। उ.—(क) जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै—१-३७। (ख) इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट राउ—१-२७४।

कोफ्त—संज्ञा स्त्री. [फा] (१) दुख। (२) परेशानी।

कोविद्—वि [सं. कोविद] पंडित, विद्वान। उ.—परम कुशल कोविद लीलानट, मुसुकनि मन हरि लेत —१०-१५४।

कोविदा—वि. स्त्री [सं. कोविद] पंडिता, प्रौढ़ा। उ.—सूरस्याम कोविदा सुभूषन कर विपरीत बनावै—सा. ५।

कोविदार—संज्ञा पु. [स. कोविदार] कचनार का पेड़ या फूल।

कोमता—संज्ञा पुं [देश] एक कँटीला पेड़।

कोमल—वि. [सं] (१) मृदु। (२) सुन्दर, मनोहर।

(३) सुकुमार। (४) कच्चा। (५) संगीत में स्वर का एक भेद।

कोमलता, कोमलताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमलता] (१) मृदुता। (२) मधुरता, सुन्दरता।

कोमला, कोमलावृत्ति—संज्ञा स्त्री [सं.] काव्य में एक मधुर वृत्ति।

कोमलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमलता] (१) कोमलता। (२) मधुरता।

कोय—सर्व. [हि कोई] कोई। उ —निश्चय किए मुक्त सब माधव ताते जिये न कोय—१९५ सारा.।

कोयर—संज्ञा पुं. [सं. कोंपल] (१) साग-सब्जी। (२) हरा चारा।

कोयल—संज्ञा स्त्री. [सं. कोकिल] कोकिला।
संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

कोयला—संज्ञा पुं. [सं. कोकिल=जलता हुआ अंगारा] (१) जला हुआ काला पदार्थ जो अंगारा बुझाने से बच जाता है। (२) एक खनिज पदार्थ।
संज्ञा पुं. [देश.] सोम नाम का पेड़।

कोया—संज्ञा पुं. [सं कोण] (१) आँख का डेला। (२) आँख का कोना।
संज्ञा पुं. [सं. कोश] कटहल के फल की गुठली जिसमें बीज रहता है।

कोर—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण] (१) किनारा, सिरा। सिय अदेस जानि सूरज-प्रभु लियो करज की कोर—६२३। (२) कोना। उ —(क) सूरके प्रभु कृपासागर चितै लोचन कोर। बढ्यौ बसन-प्रवाह जल ज्यौं, होत जयजय सोर—१-२५३। (ख) मन हर लियो तनक चितवनि में चपल नैन की कोर—३१४३।
मुहा.—कोर दबना—वश, अधिकार या दबाव में होना।

(३) वैर, द्वेष। उ.—उतते सूत्र न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर—पृ. ३३५। (४) दोष, बुराई। (५) हथियार की धार। (६) पंक्ति, कतार। (७) स्थान, घर। उ.—स्रवन ध्वनि सुर नाद मोहत करत हिरदे कोर—३३३५। (८) रेखा। उ —बहुरौ देख्यौ ससि की ओर। तामैं देखि स्यामता कोर—५-३।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) चैती की पहली सिंचाई। (२) जलपान का चबेना।

संज्ञा पुं. [सं.] शरीर के अवयवों की वह संधि जहाँ से वे मुड़ सकते हैं; उँगली, कुहनी आदि की संधि, गाँठ, पोर। उ.—इक सखी मिलि हँसति पूछति खैंचि कर की कोर—३३८६।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़, हि. कोरा] (१) गोद, उछंग, फंदा, पकड़। उ.—कँपति स्यास त्रास अति मोकति ज्यों मृग केहरि कोर—२१६२। (२) आलिंगन। उ.—सूर स्याम स्यामा भरि कोर अरस परस रीझत उपरै नाहीं मैं समाई—१५६५।

कोरक—संज्ञा पुं [सं.] (१) कली, अधखिला फूल। (२) फूल की हरी कटोरी जिसमें फूल रहता है; कमल की डंडी।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री.[हि. कोर+फा. कसर] (१) दोष और कमी। (२) कमी-बेशी।

कोरत—क्रि. स. [हि. कोरना, कोड़ना] कटता है, खुरचता है, कुरेदा जाता है, कचोटता है। उ.— सूर स्याम पिय मेरे तौ तुम ही जिय तुम बिनु देखे मेरो हिय कोरत—१५२०।

कोरना—क्रि. स [हिं. कोड़ना] (१) गोड़ना, खोदना। (२) कुतरना, कुरेदना।
क्रि. स. [हि. कोर+ना (प्रत्य.)] लकड़ी छील-छाल कर नुकीली करना।

कोरनि—संज्ञा पुं [सं. क्रोड़, हि. कोरा+नि प्रत्य.)] गोद में, पकड में। उ.—मन्मथ पीर अधिक तनु कंपित ज्यौं मृग केहरि कोरनि—२८४२।

कोरवा—संज्ञा पु. [हि. कोरा] गोद।

कोरहा—वि. [हिं. कोरा+ हा (प्रत्य.)]। नोकदार।
वि. [हिं. कोरा = गोद] गोद में ही रहनेवाला।

कोरा—वि [सं केवल] (१) जो काम में न लाया गया हो, अछूता, नया। (२) जो धोया न गया हो। (३) जिस (कागज इत्यादि) पर कुछ लिखा न गया हो, सादा। (४) खाली, रहित। (५) दोष या पाप से रहित। (६) अपढ़। (७) निर्धन। (८) केवल, खाली।

संज्ञा पुं. [सं. करक] एक चिड़िया।

संज्ञा पुं [सं. क्रोड़] गोद। उ.—(क) कान्हैं जमुमति कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाये—१०-५३। (ख) नंद उठाइ लिये कोरा करि, अपनैं सँग पौढाइ—५१८।

कोरापन—संज्ञा पुं. [हिं. कोरा + पन (प्रत्य)] अछूतापन, नयापन।

कोरि—वि. [सं. कोटि] करोड। उ.—तुरतहीं तोरि, गनि, कोरि सकटनि जोरि, ठाढे भये पौरिया तब सुनाये—५८४।

कोरिया—संज्ञा पुं. [सं. कोल = सुअर, हिं. कोरी] हिंदुओं में एक जाति, कोरी जो कपडा बुनने का कार्य करते हैं, हिन्दू जुलाहे।

संज्ञा स्त्री.—झोपड़ी। उ.—ढूँढि फिरे घर कोउ न बतायौ स्वपच कोरिया लौं—१-१५१।

कोरी—संज्ञा पुं. [सं कोल=सुअर] हिंदुओं में एक छोटी जाति जो कपड़े बुनती है।

संज्ञा स्त्री. [सं. कोरि या अँ. स्कोर] बीस का समूह, कोड़ी।

वि. [सं. कोटि, हिं. कोरि] करोड़ों। उ.—(क) ब्रज कहा खोरी। छत अरु अछत एक रस अंतर मिटत नहीं कोइ करहु कोरी—२८६०। (ख) निकसे देत असीस एक मुख गावत कीरति कोरी—१० उ. —१५१।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड, हि. कोर] (१) गोद। (२) आलिंगन। उ.—निधि लौं भरत कोस अभ्यतर जो हित कहो सु भोरी। भ्रमत भोर सुख और सुमन सँग कमल देत नहि कोरी—३२४४।

वि. स्त्री. [हिं. कोरा] (१) जो काम मे न लायी गयी हो, नयी। उ.—(क) जाउ लेहु आरे पर राखो काल्हि मोल लै राखैं कोरी। (ख) कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ जाख न पूजन पायौ—३४६। (२) जो धोयी न गयी हो। (३) जो रँगी, लिखी या चित्रित न हो, सादी। (४) रहित। (५) दोषरहित, निष्कलंक। उ.—दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु स्याम भये चाढी। (६) अपढ़। (७) निर्धन। (८) खाली, केवल। (९) सादी, जिसमें घी न लगा हो। उ.—रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी इक घीव चभोरी—३९६।

कोरे—वि. [हि. कोरा] (१) ताजा, हरा, जो सूखा न हो। उ.—मधुप करत घर कोरे काठ मैं बँधत कमल के पात—३३८६। (२) सूखे, जो पानी, दही या खटाई में भिगोये न गये हों। उ.—मूँग-पकौरा पनौ पतवरा। इक कोरे इक भिजे गुरवरा—३९६। (३) नये, जो पहने न गये हों, जो धुले न हों। उ.—काढौ कोरे कापरा (अरु) काढौ घी के मौन। जाति-पाँति पहिराइ कै (सब) समदि छतीसौ पौन —१०-४०।

कोरो—संज्ञा पुं. [हि. कोर] (१) खपरैल का नीचे का बाँस। (२) रेंड का सूखा पेड़।

कोल—संज्ञा पुं [सं.] (१) सुअर। (२) गोद। (३) आलिंगन की स्थिति में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। (४) एक जंगली जाति। (५) काली मिर्च। (६) बेर का फल।

कोलना—क्रि. स. [सं. क्रोड़न] लकड़ी, पत्थर आदि को बीच से खोखला करना।

क्रि. स —बेचैन-होना।

कोलाहल—संज्ञा पुं. [स] (१) शोरगुल, हल्ला। (२) एक संकर राग।

कोलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कोल = रास्ता] (१) पतली गली। (२) पतला पर लंबा खेत।

कोली—संज्ञा स्त्री. [स. क्रोड, प्रा. कोल] गोद, अँकवार।

संज्ञा पुं. [हि. कोरी] हिंदू जुलाहा।

कोल्हू—संज्ञा पुं [हिं कुल्हा ?] तेल पेरने का यन्त्र।

कोविद—वि. [सं] (१) पंडित, विद्वान। (२) चतुर, प्रवीण। उ.—सूर स्याम हित जानि कै तब काम कोविद निजकर कुटी सँवारी—२२६६।

कोविदार—संज्ञा पुं [सं.] कचनार का पेड या फूल।

कोश—संज्ञा पु [सं.] (१) अडा। (२) गोलक। (३) बिनखिली कली। (४) शराब का प्याला। (५) पूजा का पंचपात्र। (६) तलवार आदि की म्यान। (७) आवरण, खोल। (८) थैली। (९) वह ग्रंथ जिसमें शब्द और उसके अर्थ संकलित हों। (१०) रेशम,

कटहल आदि का कोया। (११) संचित धन, खजाना।

कोशकार—संज्ञा पुं. [सं] (१) शब्द-कोश बनानेवाला। (२) म्यान आदि बनानेवाला। (३) रेशम का कीड़ा।

कोशज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रेशम। (२) शंख घोंघे आदि जीव। (३) मोती।

कोशपाल—संज्ञा पुं [सं.] कोशाध्यक्ष।

कोशल—संज्ञा पुं [सं.] (१) सरयू और घाघरा का तटवर्ती प्रदेश जिसकी प्राचीन राजधानी अयोध्या थी। (२) अयोध्या नगर। (३) एक राग।

कोशला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अयोध्या जो कोशल की प्राचीन राजधानी थी।

कोशलिक—संज्ञा पुं [स] घूस, उत्कोच।

कोशागार—संज्ञा पुं [सं] खजाना, भंडार।

कोशाधिप, कोशाधिपति, कोशाधीप, कोशाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं] खजांची भंडारी।

कोशिश—संज्ञा पु. [फा.] चेष्टा, प्रयत्न।

कोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूलों की बँधी कली। उ.—सूर-मधुप निसि कमल-कोष-बस, करौ कृपा दिन भान—१-१००। (२) म्यान। (३) संचित धन। (४) समूह। (५) शब्द कोश। (६) कोया।

कोषाधिप, कोषाधिपति, कोषाधीश, कोषाध्यक्ष—संज्ञा पु [सं.] खजांची, भंडारी।

कोष्ठ—संज्ञा पु [सं] (१) पेट का भीतर भाग। (२) कोठा। (३) भंडार, खजाना। (४) चारो ओर से घिरा स्थान।

कोष्ठक—संज्ञा पुं. [सं] (१) स्थान को घेरने की दीवार या लकीर। (२) बहुत से खानेवाला चक्र। (३) ब्राइकेट।

कोस—संज्ञा पुं. [सं. कोश] फूलों की बँधी हुई कली। उ—वात-बस समृनाल जैसें प्रात पकज-कोस। नमित मुख इमि अधर सूचत सकुच मैं कछु रोस—३५०। संज्ञा पुं. [सं. कोश] दो मील की नाप। उ—कोस द्वादस रास परिमित रच्यौ नंदकुमार—१८३७। मुहा०—काले कोसों—बहुत दूर। कोसों दूर रहना या भागना—बहुत दूर रहना।

क्रि. स. [सं. क्रोशण] गाली देना, बुरा मनाना। मुहा.—पानी पीकर कोसना—बहुत बुरा मनाना।

कोसनि—संज्ञा पुं. अवि. [हिं. कोस+नि (प्रत्य.)] कोसों, कोसों तक।

मुहा.—कारे कोसनि—काले कोसों—बहुत दूर। उ.—मथुरा हुते गए सखी री अब हरि कारे कोसनि—१० उ.-१८८।

कोसभ, कोसम—संज्ञा पुं. [सं. कोशाम्र] एक बड़ा पेड़।

कोसल—संज्ञा पुं. [सं. कौशल] कोशल देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

कोसलपति—संज्ञा पुं. [सं. कोशलपति] (१) श्री रामचंद्र। उ.—सीता करति विचार मनहि मन, आजु-काल्हि कोसलपति आवें—९-८२। (२) राजा दशरथ।

कोसलपुर—संज्ञा पुं. [सं. कोशलपुर] अयोध्या नगर।

कोसा—संज्ञा पुं [हि. कोश] एक तरह का रेशम। संज्ञा पु. [सं. कोश=प्याला] बड़े दीपक की तरह का मिट्टी का पात्र।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री. [हि. कोसना+काटना] बहुत बुरा मनाना।

कोसिवे—क्रि.स. [हिं. कोसना] कोसने, बुरा चेतने, बुरा-भला कहने। उ.—गहि-गहि पानि मटुकिया रीतौ, उरहन कैं मिस आवत-जात। करि मनुहार, कोसिवे कैं डर, भरि भरि देत जसोदा मात—१०-३३२।

कोसिला—संज्ञा स्त्री [स. कोशल्या] कौशल्या जो राजा दशरथ की पत्नी और श्रीराम की माता थी।

कोसी—संज्ञा स्त्री [स. कौशिकी] एक नदी।

कोसौं—क्रि० स० [हिं० कोसना] कोसूँ, बुरा चेतूँ, बुरा-भला कहूँ। उ०—जसुदा तू जो कहति ही मोसौं। दिनप्रति देत उरहनैं आवति, कहा तिहारैं कोसौं—१०-३१५।

कोह—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध, गुस्सा। उ०—(क) अब मैं मरौं, सिंधु मैं बूड़ौं, चित मैं आवै कोह। सुनौ बच्छ, धिक जीवन मेरौ, लछिमन-राम-बिछोह—९-८३। (ख) जानिकै मै रह्यौ ठाढो, छुवत कहा जु मोहिं। सूर हरि खीझत सखा सौं, मनहि कीन्हौ कोह—१०-२१३।

सज्ञा पुं० [फा०] पहाड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष ।

कोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि] बाँह के बीच का जोड़ ।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर] विवाह के अवसर पर कुलदेवता की स्थापना का स्थान ।

कोहरा—संज्ञा पुं० [हि० कुहरा] कुहासा, कुहरा ।

कोहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशास्त्र के प्रणेता एक मुनि । (२) एक तरह की शराब । (३) एक बाजा ।

कोहाँर—संज्ञा पुं० [हि० कुम्हार] कुम्हार ।

कोहा—संज्ञा पुं० [सं० कोश = पात्र] नाँद के आकार का मिट्टी का पात्र ।

कोहान—सज्ञा पुं० [फा०] ऊँट का कूबड़, डिल्ला ।

कोहाना—क्रि० अ० [हि० कोह = क्रोध] (१) रूठना । (२) क्रोध करना ।

कोही—वि० [हिं० क्रोध] क्रोधी, गुस्सैल । उ०—सुर अति छमी, असुर अति कोही—३-६ ।

वि० [फा० कोह = पहाड़] पहाड़ का, पहाड़ी ।

कोहु—संज्ञा पु० [सं० क्रोध, हि० कोह] क्रोध, गुस्सा । उ०—कृपा करौ, मम प्रोहित होहु । कियौ बृहस्पति मोपर कोहु—६-५ ।

कौं—विभ०-प्रत्य० [हि० को] कर्म और सम्प्रदान कारकों का विभक्ति-प्रत्यय, को । उ०—(क) जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कुछ दरसाइ—१-१ । (ख) सिव-बिरंचि मारन कौं धाए यह गति काहू देव न पाई—१-३ ।

कौंकिर—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर, हि० कंकर] हीरे या काँच की कनी, किरिच या रेत । उ०—सुन री सखी इहै जिय मेरे भूलि न और चितैहौं । अब इठ सूर इहै व्रत मेरो कौंकिर खै मरि जैहौं—२७७६ ।

कौंकुम—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह के पुच्छल तारे ।

कौंच—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] एक बेल ।

कौंची—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचिका] बाँस की पतली टहनी ।

कौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] एक बेल, केवाँच ।

कौंडिन्य—सज्ञा पु० [सं०] कुंडिन मुनि का पुत्र ।

कौंतिक—वि० [सं०] भाला या बरछा चलानेवाला ।

कौंतेय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंती के पुत्र । (२) अर्जुन वृक्ष ।

कौंध—संज्ञा स्त्री० [हि० कौंधना] बिजली की चमक ।

कौंधति—क्रि० अ० [हि० कौंधना] बिजली चमकती है । उ०—बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कौंधति जात—१०-१२ ।

कौंधना—क्रि० अ० [सं० कनन = चमकना + अंध] बिजली का चमकना ।

कौंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी ।

कौंधा—संज्ञा स्त्री० [हि० कौंधना] बिजली की चमक । उ०—कारी घटा सधूम देखियत अति गति पवन चलायौ । चारौ दिसा चितै किन देखौ दामिनि कौंधा लायौ ।

कौंधै—क्रि० अ० [हिं० कौंधना] बिजली चमके । उ०—घन-दामिनि धरती लौं कौंधै, जमुना-जल सौं पागे—१०-४ ।

कौंभ, कौंभसर्पि—संज्ञा पुं० [सं०] सौ वर्ष पुराना घी ।

कौंर—संज्ञा पु० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।

कौंल—संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल ।

कौंवरा—संज्ञा पुं० [सं० कोमल] कोमल ।

कौंहर, कौंहरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक सुंदर लाल फल जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि इसके पास साँप नहीं आता । कवि इससे प्रायः एँड़ी की उपमा देते है ।

कौ—प्रत्य० [हि० का] का । उ०—दुर्वासा कौ साप निवारयौ, अंबरीष-पति राखी—१-१० ।

कौआ—संज्ञा पुं० [सं० काक] काग, काक ।

कौआना—क्रि० अ० [हि० कौआ] (१) चकित होकर इधर-उधर ताकना । (२) सोते-सोते बड़बड़ाने लगना ।

कौआर—संज्ञा पुं० [हि० कौआ + सं० रव = शब्द] कौओं का शोरगुल ।

कौटिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टेढ़ापन । (२) कपट, कुटिलता । (३) चाणक्य का एक नाम ।

कौटुंबिक—वि. [सं.] (१) कुटुम्ब संबंधी । (२) परिवार-वाला ।

कौड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कपर्दक, प्रा. कवड्डअ, कवड्डुअ] बड़ी कौड़ी ।

संज्ञा पुं [सं. कुंड] तापने का अलाव।

कौड़िया—वि. [हि. कौड़ी] कौडी के रंग का।

संज्ञा पु. [हि. कौड़िल्ला] कौडिल्ला पत्ती, किलकिला पत्ती।

कौड़ियाला—वि. [हि. कौड़ी] हल्के नीले रंग का।

संज्ञा पु.—(१) हल्का नीला रंग। (२) एक विषैला साँप जिस पर कौडी की तरह की चित्तियाँ होती हैं। (३) कंजूस धनी जो साँप की तरह रुपए पर बैठा रहे, खर्च नहीं। (४) एक पौधा।

कौड़िल्ला—सज्ञा पुं. [हि. कौड़ी] (१) किलकिला नाम की चिडिया। (२) एक पौधा।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कपर्दिका, प्रा. कवड्डिआ] (१) एक समुद्री कीडे का अस्थिकोष।

मुहा०—कौड़ीका—जिसका कुछ दाम न हो, बहुत मामूली। कौड़ी के तीन तीन—बहुत सस्ता। कौड़ी हू न लहै—कौड़ी को न लेना या पूछना—बिलकुल निकम्मा समझना, कुछ भी कदर न करना। उ०—सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै—२७११। कौड़ी-कौड़ी करि—एक एक कौड़ी (जैसे पाई, पाई), कुछ भी न छोड़ना, जरा भी रियायत न करना। उ०—दान लेहुँ कौड़ी कौड़ी करि बैर आपने लैहौं—११२५। कौड़ी कौड़ी को मुहताज—बहुत ही गरीब। कौड़ी कौड़ी चुकाना, भरना—पाई पाई अदा कर देना। कौड़ी फेरा करना—जरा जरा सी बात के लिए दौड़े आना। कौड़ी भर—बहुत जरा सा। कानी, भझी या फूटी कौड़ी—(१) टूटी हुई कौड़ी। (२) बहुत थोडा धन। कौड़ी लगि मग की रज छानत—कौड़ी के लिए मारे मारे फिरना, तुच्छ वस्तु के लिए बहुत परिश्रम करना। उ०—सब सुख निधि हरिनाम महामुनि, सो पायहुँ नहिं पहिचानत। परम कुबुद्धि तुच्छ रस लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत—१-११४। कौड़ी कौड़ी जोड़त—बहुत कष्ट से थोड़ा थोडा धन जोड़ता है। उ०—लपट, धूत, पूत दमरी कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै। कृपन, सूम, नहि खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै—१-१८६।

(२) धन, रुपया-पैसा। (३) अधीन राजाओं से लिया जानेवाला कर। (४) आँख का डेला। (५) छाती के नीचे की हड्डी। (६) जंघे, काँख और गले की गिलटी। (७) कटार की नोक।

कौणप—संज्ञा पुं. [स.] (१) राक्षस। (२) वासुकी-वंशज एक साँप। (३) पापी प्राणी।

कौणपदंड—संज्ञा पुं. [सं] भीष्म।

कौतिक, कौतिग—संज्ञा पुं. [सं. कौतुक] खेल, कुतूहल, अद्भुत बात।

कौतुक—संज्ञा पुं [सं.] उ०—(१) कुतूहल। (२) अचंभे की बात, अचंभा। उ०—तबही नंदराय जू आये कौतुक सुनि यह भारी। विस्मित भये देव ने राख्यौ बालक यह सुखकारी—सारा. ४१६। (३) विनोद। उ—संग गोप गोधन गन लीन्हे नाना गति कौतुक उपजावत—४८०। (४) प्रसन्नता। (५) खेल तमाशा, खिलवाड। उ०—(क) कौतुक करि मतंग तब मारयौ—२६४३। उ०—जहाँ तहाँ कौ कौतुक देखि। मन मैं पावै हर्ष विसेषि—४-११। (६) विवाह में पहना जानेवाला सूत्र।

कौतुकिया—संज्ञा पुं [हि. कौतुक+इया] (१) कौतुक करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतुकी—वि. [सं.] (१) खेल तमाशा करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतूह, कौतूहल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेल-तमाशे। उ०—(क) आनँद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन नर नारी—१०-४। (ख) बन मैं जाइ करौ कौतूहल यह अपनौ है खेरौ—१०-२१६। (ग) ग्वाल-बाल सँग करत कौतूहल गवनपुरी मझार—२५७२। (२) प्रसन्नता, आनंद। उ०—सुर नर मुनि फूले, भूलत देखत नदकुमार—१०-८४।

कौतूहलता—संज्ञा स्त्री. [हिं कुतूहल] कौतुक, कुतूहल।

कौत्स—सज्ञा पुं [सं] (१) कुत्स ऋषि के एक शिष्य। (२) कुत्स कृत साम-गान।

कौथ—संज्ञा स्त्री. [हि. कौन+तिथि] (१) कौन सी तिथि? (२) कौन संबंध?

कौथा—वि. [हिं. कौन+स. स्था (स्थान)] कौन सा? गणना मे किस सख्या या स्थान का।

कौधनी—संज्ञा स्त्री. [स. किंकिणी] करधनी।

कौन—सर्व. [सं० कः, किम्, प्रा. कवण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जिसका प्रयोग व्यक्ति या वस्तु के संबंध में परिचय पाने के लिए किया जाता है।

वि.—किस जाति का ? किस प्रकार का ?

कौनप—संज्ञा पुं. [सं. कौणप] (१) राक्षस। (२) एक सर्प।

कौना—सर्व० [हि. कौन] किसे, किसको। उ.—नटवर अंग सुभ सजे सजौना। त्रिभुवन में बस कियो न कौना। सूर नन्द सुत मदन-लजौना—२४२१।

कौनी—वि० [हि० कौन] किस, किसी। उ.—कहा करौं कौन भाँति मरौं मन धीरज न धरै—२७८३।

कौने—वि. [हि. कौन] कौन, किस। उ.—मेरें संग आइ दोउ बैठे, उन बिनु भोजन कौने काम—१०-२३५।

कौनेहुँ—वि. [हि० कौन] किसी भी प्रकार से। उ.—कौनेहु भाव भजै कोउ हमको, तिन तनताप हरैं री—७८७।

कौनैं—वि. [हि कौन] (१) कौनने, किसने। (२) क्या क्या। उ.—उद्यम कहा होत लंका कौं, कौनैं कियौ उपाय—६-१२१।

कौपीन—संज्ञा पुं [सं] (१) साधुओं की लँगोटी। (२) कौपीन से ढके शरीर के भाग। (३) पाप। (४) बुरा काम।

कौम—संज्ञा स्त्री. [अ.] जाति, वर्ण।

कौमकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक केतु तारा। (२) रक्त, खून।

कौमार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाँच वर्ष तक की कुमार-अवस्था। (२) कुमार।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं. [सं] बाल-चिकित्सा शास्त्र।

कौमारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पहली पत्नी। (२) कार्तिकेय की शक्ति। (३) पार्वती का एक नाम।

कौमी—वि [अ. कौम] (१) जातीय। (२) राष्ट्रीय।

कौमुद—संज्ञा पुं. [सं.] कातिक मास।

कौमुदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाँदनी, ज्योत्सना। (२) कार्तिक पूर्णिमा। (३) कार्तिकी पूर्णिमा का उत्सव। (४) कुमुदिनी।

कौमोदकी, कौमोदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु की गदा।

कौर—संज्ञा पुं. [सं. कवल] (१) ग्रास, गस्सा, निवाला। उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान। जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान—१-१०३। (ख) तब आपुन कर कौर उठायौ—२३२१।

मुहा०—मुँह का कौर छीनना-किसी का हिस्सा मार लेना।

(२) अन्न का वह भाग जो चक्की में पिसने के लिए एक बार में डाला जाय।

कौरना—क्रि. स. [हि. कौड़ा] भूनना, सेंकना।

कौरनि—संज्ञा पुं. सवि. [हि. कौरा + हि. नि (प्रत्य.)] कोने-कोने में, कोने की दीवार पर। उ.—कौरनि सथिया चीतति नवनिधि—१०-३२।

कौरव—संज्ञा पुं. [सं.] कुरु राजा की संतान, दुर्योधन और उसके भाई।

वि.—कुरु सम्बन्धी।

कौरवपति—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन।

कौरव्य—संज्ञा पुं. [सं.] कौरव।

कौरा—संज्ञा पुं. [सं. कोल, क्रोड़] द्वार का कोना।

संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ा] (१) बड़ी कौड़ी। (२) आग तापने का अलाव।

कौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोड़] (१) गोद, अँकवार। (२) आलिंगन।

मुहा०—कौरी भर कर मिलना—सस्नेह आलिंगन करना। उ.—पाछे ते ललिता चन्द्रावलि हरि पकरे भुज भरि कौरी की—२४०५।

संज्ञा स्त्री.—एक मिठाई। उ.—(क) पेठा पाक, जलेबी, कौरी। गोंद पाक, तिनगरी, गिंदौरी-३६६। (ख) पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्ज्वल सुन्दर सौरी—२३२१।

कौरे—संज्ञा पुं. [हि. कौड़ा] एक 'गली' फल।

संज्ञा पु. [हि. क्रोड़] द्वार का कोना।

मुहा० —कौरे लगना—(१) दूसरे की बात सुनने या अन्य किसी बात में छिपकर द्वार के पीछे खड़े होना। उ —मन जिनि सुनै बात यह माई। कौरे लग्यो नितहूँ कहि दैहै मो जाई। (२) मुँह फुला कर या रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना।

क्रि. स. [हि. कौरना] भूने, सेंके। उ.—कुंदरू

और ककोरा कौरै । कचरी चार कचेंडा कौरै —२३२१ ।

कौरे—संज्ञा पुं. [हिं. कौरा] द्वार का कोना।

मुहा०—कौरे लागी—पकड़ने की घात में थी, उसके पीछे लगी थी। उ०—माखन-चोर री मैं पायौ। बहुत दिवस मैं कौरे लागी, मेरी घात न आयौ—१०-२८८।

कौरै—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौरी] (१) अँकवार, गोद। (२) आलिंगन, छाती से लगना।

मुहा०—कौरै लग्यौ होइगो—छाती से लगा होगा, आलिंगित होगा। उ०—मन जिनि सुनै बात यह माई। कौरै लग्यौ होइगो कितहूँ कहि दैहै को जाई—१६६५।

कौरौ—संज्ञा पुं [सं. कौरव] कुरुवंशी, कौरव। उ०—क्यों विश्वास करहिगो कौरौ सुनि प्रभु कठिन कीती—११-३।

कौरौ-दल—संज्ञा पुं. [स. कौरव + दल] कौरवों की सेना।

कौल—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम कुल का।

संज्ञा पुं. [सं. कमल] कमल।

संज्ञा पुं. [सं. कवल] कौर, ग्रास।

संज्ञा पु [देश.] एक तरह का गाना।

संज्ञा पुं [तु. करावल] सेना की छावनी का मध्य भाग।

संज्ञा पु. [अ.] (१) कथन, वाक्य। (२) प्रतिज्ञा, प्रण।

यौ०—कौल-करार—दृढ निश्चय।

कौला, कौले—संज्ञा पुं. [सं. कोल=क्रोड़, गोद; हि. कौरा] (१) द्वार का कोना, कौरा।

मुहा०—कौले लगना—द्वार के कोने में छिपना। कौला सींचना—पूजा आदि अवसरों पर द्वार के इधर-उधर पानी छिड़कना।

(२) पाला।

कौलौं—क्रि. वि. [हि कौ = कौन या कब + लौं = तक] कब तक, किस समय तक। उ०—धिक तुम, धिक या कहिवे ऊपर। जीवित रहिहौ कौलौं भूपर—१-२८४।

कौवा—संज्ञा पुं. [सं. काक, प्रा. काओ] (१) एक काला पक्षी, कौआ, काग। (२) काँइयाँ आदमी। (३) गले की घाँटी, लंगर, ललरी।

कौवाल—संज्ञा पुं. [अ. क़ौवाल] मुसलमानी गवैयों की एक जाति।

कौवाली—संज्ञा स्त्री. [अ. कौवाली] (१) कौवालों का गाना। (२) कौवालों का पेशा।

कौश—संज्ञा पु. [सं.] (१) कुश नामक द्वीप। (२) रेशमी वस्त्र।

कौशल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुशलता। (२) कोशल देशवासी।

कौशलेय—संज्ञा पुं. [सं.] कौशल्या का पुत्र, राम।

कौशल्या—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी। (२) धृतराष्ट्र की माता। (३) पाँच बत्ती की आरती।

कौशिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) कुशिक राजा के पुत्र गाधि। (३) कुशिक राजा के वंशज विश्वामित्र। (४) कोशाध्यक्ष। (५) कोशकार। (६) एक राग।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंडिका। (२) कोसी नदी। (३) एक रागिनी। (४) काव्य में एक वृत्ति।

कौशिल्या—संज्ञा स्त्री. [सं कौशल्या] राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशिकी] एक देवी, चंडिका।

कौषेय—वि. [सं] रेशमी।

संज्ञा पुं.—रेशमी कपड़ा।

कौसल—संज्ञा पुं. [सं. कौशल] (१) चतुरता। (२) कोशल देशवासी।

कौसलनरेस—संज्ञा पुं. [सं. कोशलनरेश] श्रीरामचंद्रजी।

कौसल्या—संज्ञा स्त्री. [सं कौशिल्या] राजा दशरथ की बड़ी रानी जो राम की माता थी।

कौसिक—संज्ञा पुं. [सं. कौशिक] (१) इंद्र। (२) विश्वामित्र।

कौसिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक संकर राग।

कौसिला—संज्ञा स्त्री. [सं कौशल्या] कौशल्या जो राजा दशरथ की पत्नी और राम की माता थी। उ.—रामहि राखौ कोऊ जाइ। जब लगि भरत अजोध्या आवैं, कहति कौसिला माइ—९-४७।

कौसिल्या—संज्ञा स्त्री [सं. कौशल्या] राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी ।

कौसुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगली कुसुम । (२) एक साग ।

कौस्तुभ—संज्ञा पुं [सं.] (१) समुद्र से निकला हुआ एक रत्न जिसे विष्णु अपने वक्षस्थलपर धारण किये रहते हैं । (२) एक प्रकार की मणि ।

कौस्तुभ-मनि-धर—संज्ञा पुं. [सं.] कौस्तुभ मनि को धारण करनेवाले विष्णु का अवतार श्रीकृष्ण । उ.—कंबु कंठ-धर कौस्तुभ-मनि-धर बनमालाधर मुक्त-माल-धर —५७२ ।

कौह—संज्ञा पुं. [सं. ककुभ] अर्जुन वृक्ष ।

कौहर—संज्ञा पुं [देश] इंद्रायन ।

क्या—सर्व. [सं. किम्] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम ।

मुहा.—क्या कहना है (१) बहुत अच्छा है । (२) बहुत बुरा है (व्यंग्य) । क्या क्या—बहुत कुछ । (किसी की) क्या चलाना—बराबरी न कर पाना । क्या जाता है—क्या हानि होती है । क्या पड़ना—कुछ गरज न होना । क्या से क्या हो गया—दशा बिलकुल बदल गयी । क्या समझते (गिनते) हैं—कुछ नहीं गिनते । (तो) फिर क्या है—(तो) बड़ा अच्छा हो जाय ।

वि.—(१) कितना । (२) इतना (ऐसा) ज्यादा । (३) विचित्र, अद्भुत । (४) बहुत अच्छा ।

क्रि. वि —(१) किस लिए ? किस कारण ?

मुहा.—ऐसा क्या—इसकी क्या जरूरत है ? क्या आये क्या चले—इतनी जल्दी जाने की क्या जरूरत है ?

(२) नहीं ।

अव्य०—केवल प्रश्नसूचक अव्यय ।

मुहा.—क्या आग में डालूँ—यह मेरे किस काम का है !

क्यार—संज्ञा पु. [सं. केदार] पेड़ का थाला ।

क्यारी—संज्ञा स्त्री [हि० कियारी] बाग या खेतों के मेड़ों की बीच की गहरी जमीन जिसमें पेड़ों की पंक्तियाँ लगायी जाती हैं ।

क्यों, क्यौं—क्रि. वि. [सं. किम्, हि. क्यों] (१) किस कारण ? किस लिए ?

मुहा.—क्योंकर—किस प्रकार । क्यों नहीं—(१) ठीक है (समर्थन में) । (२) हाँ, जरूर (स्वीकृति सूचक) । (३) ठीक नहीं है (व्यंग्य) । (४) कभी नहीं (व्यंग्य) । क्यों न हो—(१) बहुत खूब (प्रशंसात्मक) । बहुत बुरा (व्यंग्य) ।

(२) किस प्रकार, कैसे ।

क्रंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोना, विलाप । (२) वीरों का आह्वान ।

क्रकच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़ । (२) आरा । (३) एक बाजा । (४) एक नरक ।

क्रकचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] केतकी ।

क्रकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़ । (२) किलकिला चिड़िया । (३) आरा । (४) दरिद्र ।

क्रतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दृढ़ संकल्प । (२) इच्छा । (३) विवेक । (४) जीव । (५) विष्णु । (६) अश्वमेध । (७) कृष्ण का एक पुत्र ।

क्रप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दयालु । (२) कृपाचार्य ।

क्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डग भरने की क्रिया । (२) वस्तुओं या कार्यों का सिलसिला । (३) धीरे धीरे काम करने की प्रणाली ।

मुहा.—क्रम क्रम करके—धीरे धीरे, शनैः शनैः । उ.—(क) लरखरात गिरि परति हैं, चलि घुटुरुनि धावैं । पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावैं —१०-११२ । (ख) जो कोउ दूरि चलन को करै । क्रम क्रम करि डग डग पग धरै । क्रम से, क्रम क्रम से—धीरे धीरे ।

(४) कार्य-संपादन की व्यवस्था । (५) वामन का एक नाम । (६) एक काव्यालंकार । (७) कर्म, प्रयत्न, श्रम । उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत । सूरदास व्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जलनिधि उतरत—१-५५ ।

संज्ञा पुं. [सं. कर्म] कार्य, कृत्य ।

क्रमण—संज्ञा पु. [सं.] पैर ।

क्रमनासा—संज्ञा स्त्री [सं. कर्मनाश] कर्मनाशा नदी ।

क्रोधमान छबि बरनि न आई। नैन अरुन, बिकराल दसन अति, नख सौं हृदय बिदारयौ जाई—७-४।

क्रोधवंत—वि. [हिं. क्रोध + वंत = वाला] गुस्से में भरा हुआ। उ.—माडव धर्मराज पै आयौ। क्रोध-वन्त यह बचन सुनायौ—३-५।

क्रोधवश—क्रि. वि. [सं.] क्रोध में।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक राक्षस। (२) एक साँप।

क्रोधा—संज्ञा पुं. [सं क्रोध] कोप, गुस्सा। उ.—कोटि कोटि तिनके सँग जोधा। को जीतै तिनके तनु क्रोधा —२४५६।

क्रोधित—वि. [हिं. क्रोध] कुपित, क्रुद्ध।

क्रोधी—वि. [सं.] जो बहुत क्रोध करता हो, जो शीघ्र क्रोध से भर जाता हो।

क्रौंच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करॉकुल पक्षी। (२) सात द्वीपों में एक। उ.—साती द्वीप जे कहे सुक मुनि ने सोई कहत अब सूर। जबु प्लक्ष क्रौंच शाक शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर—सारा. ३४। (३) एक राक्षस। (४) एक अस्त्र।

क्लांत—वि. [स] थका हुआ।

क्लांति—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) थकावट। (२) परिश्रम।

क्लिशित—वि. [सं.] जिसे बहुत दुख हुआ हो।

क्लिष्ट—वि [सं] (१) दुखी। (२) कठिन, मुश्किल से समझ में आनेवाली। (३) जो सरलता से सिद्ध या सत्य न हो सके।

क्लिष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) कठिनता। (२) काव्य का एक दोष जिससे भाव समझने में कठिनाई हो।

क्लिष्टत्व—संज्ञा पुं [सं] (१) क्लिष्टता का भाव। (२) काव्य का एक दोष।

क्लीव—वि. पुं [स] (१) नपुसक, पड, नामर्द। (२) कायर, डरपोक।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री. [स] नपुसकता।

क्लीवत्व—संज्ञा पु. [स.] नपुसकता।

क्लेद—संज्ञा पु. [सं] (१) गीलापन। (२) पसीना।

क्लेदक—संज्ञा पुं. [स] (१) पसीना लानेवाला। (२) शरीर की दस अग्नियों में एक।

क्लेदन—संज्ञा पुं [स] पसीना लाने का काम।

क्लेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुख, कष्ट। (२) लड़ाई, झगड़ा।

क्लेशित—वि. [सं.] दुखी, पीड़ित।

क्लोम—संज्ञा पुं. [सं.] फेफड़ा।

क्वचित—क्रि. वि. [स.] बहुत कम, शायद कोई।

क्वण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वीणा का शब्द। (२) घुँघरू का शब्द।

क्वणित—वि. [स.] (१) शब्द करता हुआ। (२) गूँजता हुआ। (३) बजता हुआ।

क्वाँर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, प्रा. कुवाँर, हिं. कुआर] भादों के बाद का महीना।

क्वाँरा—वि. [स. कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, कुआरा।

क्वाँरापन—संज्ञा पुं. [हिं. क्वारापन] कुमारपन।

क्वाथ—संज्ञा पुं. [स.] ओषधियों को उबालकर निकाला हुआ रस, काढ़ा। (२)व्यसन। (३) दुख।

क्वान—संज्ञा पु. [स. क्वण] (१) घुँघरू का शब्द। (२) वीणा की झनकार।

क्वार—संज्ञा पुं. [स. कुमार] (१) कुमार, पुत्र, कुँवर। उ.—भयौ सुरुचि तैं उत्तम क्वार। अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार—४-६। (२) क्वारा, बिनब्याहा।

क्वारछल—संज्ञा पु. [सं. कुमार, हिं. क्वार + छल] क्वारापन।

क्वारपत, क्वारपन—संज्ञा पु. [हिं. क्वारा+पत या पन] क्वारा होना, कुमारपन।

क्वारा—वि. [सं. कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, कुआरा।

क्वारापन—संज्ञा पुं [हिं क्वारा+पन] कुमारपन।

क्वासि—वाक्य [स.]—कहाँ या किस स्थान पर है। उ.—चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर। तुव बिनु कुँअर कोटि बनिता तजि सहत मदन की पीर। गद्गद सुर पुलकित बिरहानल स्रवत बिलोचन नीर। क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी बिलपत बिपिन अधीर।

क्वैला—संज्ञा पु. [हिं. कोयला] (१) अंगारा। (२) अधजला कोयला।

क्षंतव्य—वि. [सं.] क्षमा के योग्य, क्षम्य।

क्षंता—वि. [सं.] क्षमा करनेवाला, क्षमाशील।

क्षण—संज्ञा पु. [सं] (१) समय का बहुत छोटा भाग। (२) समय। (३) अवसर। (४) उत्सव।

क्षणक—क्रि. वि. [सं. क्षण + क (प्रत्य.) क्षण भर में। उ.—बहुत दिनन के, विरह ताप दुख मिलत क्षणक में मेटे—८२४ सारा.।

क्षणद—संज्ञा पु [सं] (१) जल। (२) ज्योतिषी। (३) जो रात मे देख न सके।

क्षणदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) हल्दी।

क्षणदाकर—संज्ञा पुं [सं.] चंद्रमा।

क्षणद्युति—संज्ञा स्त्री [सं.] बिजली।

क्षणप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली।

क्षणभंग, क्षणभंगु, क्षणभंगुर—वि. [सं क्षणभंगुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला। उ.—सुख संपति दारा सुत हय गय हठै सबै समुदाय। क्षणभंगुर (छनभंगुर) ए सबै स्याम बिनु अंत नाहि संग जाय।

क्षणिक—वि. [सं] क्षण भर मे (शीघ्र ही) नष्ट हो जाने वाला।

क्षणिकता—संज्ञा स्त्री. [सं] क्षण भर में, या बहुत शीघ्र नष्ट होने का भाव।

क्षणिकवाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक सिद्धांत जिसमें प्रति क्षण परिवर्तित होते होते वस्तु का नष्ट हो जाना मानते है।

क्षणिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली।

क्षणिनी—संज्ञा स्त्री. [सं] रात।

क्षणेक—क्रि. वि. [सं. क्षण + एक] क्षण भर।

क्षत—वि [सं] जो तोड़ा फोड़ा गया हो, जिसे क्षति पहुँची हो, घायल।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घाव। (२) फोड़ा, व्रण। (३) मार-काट। (४) क्षति पहुँचना।

क्षतज—वि. [सं] (१) घाव से उत्पन्न। (२) लाल रंग का।

संज्ञा पु [सं] (१) रक्त, खून। (२) मवाद। (३) बुरी खाँसी। (४) शरीर में बहुत घाव लगने पर मालूम होने वाली प्यास।

क्षत-विक्षत—वि. [सं.] (१) घायल, लहू-लुहान। (२) नष्ट-भ्रष्ट।

क्षति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हानि, नुकसान। (२) नाश।

क्षत्र—संज्ञा पुं [सं] (१) बल। (२) राष्ट्र। (३) धन। (४) शरीर। (५) जल। (६) क्षत्रिय।

क्षत्र कर्म (धर्म)—संज्ञा पुं. [सं०] (युद्ध, दान, रक्षा आदि) क्षत्रियों के कर्म।

क्षत्रप—संज्ञा पु. [सं०] ईरानी मांडलिक राजाओं की उपाधि जो भारतीय शासकों ने अपना ली थी।

क्षत्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

क्षत्रिअ—संज्ञा पु० [सं. क्षत्रिय] क्षत्रिय। उ.—दियौ उनपै वह्यौ तुम कोउ क्षत्रिआ कपट करि विप्र कौ स्वाँग स्वाँग्यौ—१० उ.-१५१।

क्षत्रिनी—संज्ञा स्त्री. [सं] मजीठ।

क्षत्रिय—संज्ञा पुं [सं.] (१) चार वर्णों में दूसरा जिसका काम देश का शासन और उसकी रक्षा माना गया था। (२) एक वर्ण का व्यक्ति। (३) राजा। (४) शक्ति।

क्षत्री—संज्ञा पुं [सं. क्षत्रिय] (१) क्षत्रिय वर्ण। (२) इस वर्ण का व्यक्ति।

क्षदन—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत।

क्षपणक—वि. [सं.] निर्लज्ज।

संज्ञा पु—(१) दिगंबर जैन साधु। (२) बौद्ध भिक्षु।

क्षपात—संज्ञा पु. [सं.] प्रभात।

क्षपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) हल्दी।

क्षपाकर—संज्ञा पु. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षपाचर—संज्ञा पुं. [सं] राक्षस।

क्षपानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षपापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षम—वि. [सं.] योग्य, समर्थ।

संज्ञा पु.—बल। शक्ति।

क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा करो। उ.—क्षम अपराध देवकी मेरो लिख्यौ न मेट्यौ जाई। मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई—१८६ सारा।

क्षमणीय—वि. [सं.] क्षमा के योग्य।

क्षमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति।

क्षमताशील—वि. [सं. क्षमता + शील] योग्य, समर्थ, सशक्त।

क्षमना—क्रि. स. [सं. क्षमा] क्षमा करना, माफ करना।

क्षमनीय—क्रि. स. [सं. क्षमणीय] क्षमा के योग्य।

वि. [सं. क्षम] बली, शक्तिशाली।

क्षमवाना—क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा कराना।

क्षमवाय—क्रि. स [हि. क्षमवाना] क्षमा कराकर, दूसरे से क्षमवाकर। उ.—बहुरि विधि जाय क्षमवाय कै रुद्र को विष्णु विधि रुद्र तहँ तुरत आये।

क्षमा—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) दिये हुए कष्ट को सहन करने और कष्ट देनेवाले के प्रति प्रतिकार की इच्छा न रखने की वृत्ति। (२) सहनशीलता। (३) पृथ्वी। (४) दुर्गा का नाम। (५) राधा की एक सखी का नाम। (६) एक छंद।

क्षमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. क्षमा+ई (प्रत्य०)] क्षमा करने की क्रिया।

क्षमाए—क्रि. स. [हि. क्षमाना] क्षमा कराये, क्षमा करवा दिये। उ.—तब हरि उनके दोष क्षमाए—८६६।

क्षमाना—क्रि स. [हि. क्षमना] क्षमा कराना।

क्रि. स. [हिं. क्षमा] क्षमा करना।

क्षमानै—क्रि. स. [हि. क्षमाना] क्षमा कराने के लिए। उ.—यह सुनि कै अकुलाई चले हरि कृत अपराध क्षमानै—२०५३।

क्षमापन—संज्ञा पुं [स. क्षमा+हिं. पन] (१) क्षमा करने का काम। (२) क्षमा कराने का काम।

क्षमायौ—क्रि. स. [हि क्षमना] क्षमा कराया। उ.—कौरवन मिलि बहुति भाँति विनती करी दोष तिनको द्विजन मिलि क्षमायौ—१० उ.-१४६।

क्षमालु—वि [स०] क्षमावान्, क्षमाशील।

क्षमावत—क्रि. स. [हिं. क्षमावना] क्षमा करते हे। उ.-परी पाँय अपराध क्षमावत सुनत मिलैगी धाय। सुनत बचन दूतिका वदन ते स्याम चले अकुलाय—६७३ सारा.।

क्षमावना—क्रि. स [हिं क्षमना का प्रे.] क्षमा कराना।

क्षमावान्—वि पुं [स क्षमावत्](१) क्षमा करनेवाला। (२) सहनशील।

क्षमाशील—वि [स] (१) क्षमा करनेवाला। (२) शात प्रकृतिवाला।

क्षमाहीं—क्रि, स [हिं क्षमाना] क्षमा कराते हैं। उ.—सूर स्याम जुवतिन सों कहि कहि सब अपराध क्षमाहीं—पृ. ३४१ (७०१)।

क्षमितव्य—वि. [स] जो क्षमा किया जा सके।

क्षमी—वि. [सं. क्षमा+ई (प्रत्य.)] (१) क्षमा करनेवाला। उ.—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर अति क्षमी असुर अति कोही। (२) शांत प्रकृतिवाला।

क्षमैंगे—क्रि. स [हिं. क्षमना] क्षमा करेंगे। उ.—अब हमको अपराध क्षमैंगे कृपा करौ मुख बोलौं जू—१६६१।

क्षम्य—वि. [सं.] क्षमा करने योग्य।

क्षयंकर—वि. [स.] नाश करनेवाला।

क्षय—संज्ञा पु. [सं.] (१) धीरे धीरे घटना या कम होना। (२) प्रलय। (३) नाश। (४) घर। (५) क्षयी रोग। (६) अंत।

क्षयवान्—वि. [स. क्षयवत्] नाश होनेवाला।

क्षयी—वि. [स.] चंद्रमा।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षय] एक भयंकर रोग।

क्षर—वि. [सं] नाशवान्।

संज्ञा पु [सं] (१) जल। (२) मेघ। (३) शरीर। (४) अज्ञान। (५) जीवात्मा।

क्षरण—संज्ञा पुं [स.] (१) धीरे धीरे बहना। (२)झगड़ा। (३) नाश होना।

क्षात—वि [स.] सहनशील, क्षमावान्।

क्षाति—संज्ञा स्त्री.[सं.] सहनशीलता।

क्षा—संज्ञा पु. [स.] पृथ्वी।

क्षात्र—वि. [स०] क्षत्रिय संबधी।

संज्ञा पुं. [स.] क्षत्रियपन।

क्षाम—वि. [सं] (१) दुबला-पतला। (२) दुर्बल, बलहीन। (३) थोड़ा।

क्षार—संज्ञा पुं० [स] (१) औषधियों को जलाकर तैयार किया हुआ नमक। (२) नमक। (३) सज्जी। (४) शोरा। (५) भस्म। (६) काँच।

वि [सं] (१) खारा। (२) धूर्त्त।

क्षालन—संज्ञा पु [सं.] धोना।

क्षालित—वि. [सं.] धुला हुआ, साफ।

क्षिति—संज्ञा पु. [सं.] (१) पृथ्वी। उ.—अमल अकास

कास कुसुमिन छिति लच्छन स्वाति जनाए—२८५४।
(२) जगह, घर। (३) च्चय। (४) प्रलयकाल।

छितिज—संज्ञा पु० [सं] (१) वह वृत्ताकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी, दोनों मिले जान पड़ते हैं। (२) मंगल ग्रह। (३) वृक्ष।

छितिधार—संज्ञा पु. [सं.] (१) पर्वत। (२) दिग्गज। (३) कच्छप।

छिपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात।

छिप्त—वि. [सं] (१) त्यक्त। (२) अपमानित। (३) पागल।

छिप्र—क्रि० वि० [सं] (१) जल्दी, शीघ्र। (२) तुरंत। वि. [सं.] (१) तेज। (२) चंचल।

छीण—संज्ञा पु. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) छोटा, सूक्ष्म। (३) घटा हुआ।

छीणक—वि. [सं.] छीण करनेवाला।

छीणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमजोरी। (२) दुबलापन। (३) छोटापन।

छीर—संज्ञा पु. [सं.] (१) दूध। (२) द्रव। (३) जल। (४) पेड़ों का दूध। (५) खीर।

छीरज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) शंख। (३) कमल। (४) दही।
वि.—दूध से बना हुआ, दूध से उत्पन्न।

छीरधि—संज्ञा पुं. [सं] समुद्र। उ.—पसुपति मंडल मध्य मनो छीरधि नीरधि नीर के—२५६६।

छीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

छीरनीर—संज्ञा पु. [सं] (१) आलिंगन। (२) मिलन।

छीरस—संज्ञा पुं. [सं.] दूध दही की मलाई।

छीरसागर—संज्ञा पु. [सं.] एक समुद्र।

छीरसार—संज्ञा पु [सं.] मक्खन।

छीरोद—संज्ञा पु. [सं] छीरसागर।

छीरोदक—[सं. छीर + उदक] दूध और पानी।
वि.—दूध के समान उज्ज्वल। उ.—छीरोदक घूँघट हाती करि सन्मुख दियो उघारि। मानो सुधाकर दुग्ध सिंधु ते कढ्यौ कलंक पखारि—१६८६।
संज्ञा पु० [सं.] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्राचीन काल में बनता था। उ.—कहा भयो मेरो गृह माटी को। हाँ तो गयो गुपालहि भेंटन और खरच तंदुल गाँठी को…। नौ तन छीरोदक (पीरोदक) जुवती पै भूषन हुते न वहुँ माटी को। सूरदास-प्रभु कहा निहोरो मानतु रंक त्रास टाटी को।

छीरोदतनय—संज्ञा पुं० [सं.] चंद्रमा जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसका पुत्र माना जाता है।

छीरोदतनया—संज्ञा स्त्री. [सं०] लक्ष्मी जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसकी पुत्री मानी जाती है।

छीरोदधि—संज्ञा पुं. [सं०] छीरसागर।

छीव—संज्ञा पुं [सं०] पागल।

छुणी—संज्ञा स्त्री. [सं०] पृथ्वी।

छुण्ण—वि. [सं०] (१) अभ्यासी, अभ्यस्त। (२) जो टुकड़े-टुकड़े या चूर चूर हो। (३) टूटे अंग का, खंडित।

छुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख, छुधा।

छुद्र—वि [सं०] (१) कंजूस। (२) नीच। (३) छोटा। (४) निर्धन।
संज्ञा पुं. [सं०] चावल का कण।

छुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घुँघरू। (२) घूँघरूदार करधनी।

छुद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीचता। (२) ओछापन।

छुद्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर। उ.—रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति वोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगम बानी।

छुद्र प्रकृति—वि. [सं] तुच्छ या नीच स्वभाववाला।

छुद्र बुद्धि—वि. [सं.] नीच स्वभाव का।

छुद्रमति—वि. [सं.] नीच बुद्धिवाला, ओछी बुद्धिवाला। उ.—बरष दिन संयोग देत मोकौं भोग छुद्रमति व्रजलोग गर्व कीनो—६४४।

छुद्रावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] छुद्रघंटिका, किंकिणी, करधनी। उ.—अंग अभूषन जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिन की लै केयूर भुज स्याम निहारति। छुद्रावली उतारति कटि तैं सोंपति धरति मन ही मन वारति।

छुद्राशय—वि. [सं.] नीच स्वभाव का, 'महाशय' का विपरीतार्थक।

छुधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूख।

छुधातुर—वि. [सं.] भूखा।

क्षुधावन्त—वि. [सं. क्षुधा + वंत (प्रत्य.)] भूखा।
क्षुधित—वि. [स.] भूखा।
क्षुप—संज्ञा पु [सं.] (१) झाड़ी, पौधा। (२) श्री कृष्ण की पत्नी, सत्यभामा का पुत्र।
क्षुब्ध—वि [पु] (१) चचल। (२) व्याकुल। (३) डरा हुआ। (४) क्रुद्ध।
क्षुभित—वि. [सं] (१) व्याकुल। (२) क्षोभ से युक्त।
क्षुर—सज्ञा पु. [सं.] (१) छुरा। (२) उस्तरा।
क्षेत्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) खेत। (२) समतल भूमि। (३) स्थान। (४) तीर्थ स्थान। (५) शरीर। (६) रेखाओं से घिरा हुआ स्थान।
क्षेत्रज—वि. [सं.] (१) खेत से उत्पन्न। (२) क्षेत्र-जनित।
क्षेत्रपति—सज्ञा पुं [सं] (१) खेत का रखवाला। (२) किसान। (३) जीवात्मा।
क्षेत्रफल—संज्ञा पु [सं.] वर्ग की लम्बाई-चौड़ाई का गुणन फल, वर्ग परिणाम।
क्षेत्री—सज्ञा पुं. [स. क्षेत्रिन्] (१) खेत का स्वामी। (२) स्वामी।
क्षेप—संज्ञा पु. [सं.] (१) ठोकर। (२) निंदा। (३) दूरी। (४) (समय) बिताना।
क्षेपक—वि [स.] (१) मिलाया हुआ। (२) निंदनीय। संज्ञा पु. [सं] (१) नाव खेनेवाला, केवट। (२) ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश।
क्षेमंकरी—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक तरह की चील। (२) एक देवी।
क्षेम—संज्ञा पुं. [स.] (१) रक्षा। (२) कुशल मंगल। (३) सुख। (४) आनन्द।
क्षेमी—वि. [सं. क्षेमिन्] (१) कुशल करनेवाला। (२) भलाई चाहनेवाला।
क्षोणि—सज्ञा स्त्री [स] (१) पृथ्वी। (२) एक की संख्या।
क्षोणिप—संज्ञा पुं [स.] राजा।
क्षोणी—सज्ञा स्त्री. [सं] पृथ्वी।
क्षोणीपति—संज्ञा पु. [सं] राजा।
क्षोभ—संज्ञा पु [स] (१) खलबली। (२) घबराहट। (३) भय। (४) शोक। (५) क्रोध।
क्षोभन—वि [सं.] क्षोभ उत्पन्न करनेवाला।
क्षोभना—क्रि. अ. [सं. क्षोभ] (१) व्याकुल होना। (२) भयभीत होना। (३) चंचल होना।
क्षोभित—वि. [स. क्षोभ] (१) घबराया हुआ। (२) विचलित। (३) डरा हुआ।
क्षोभी—वि. [सं. क्षोभिन्] व्याकुल, चचल।
क्षौणि, क्षौणी—सज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।
क्षौम—सज्ञा. पुं. [स.] कपड़ा।
क्षौर, क्षौरकर्म—सज्ञा पुं. [स.] हजामत।
क्षौरिक—संज्ञा पुं. [सं] नाई।
क्ष्मा—संज्ञा स्त्री. [स.] पृथ्वी।

(ख)

ख—देवनागरी वर्णमाला के कवर्ग का दूसरा अक्षर; स्पर्श, महाप्राण व्यंजन। कण्ठ्य वर्ण।
खं—संज्ञा पु [सं० खम्] (१) खाली या शून्य स्थान। (२) शून्य, बिंदु। (३) आकाश। (४) स्वर्ग। (५) सुख। (६) मोक्ष।
खंक—वि. [सं० कंकाल] बलहीन।
खंख, खंखी—वि [सं० कंक] (१) रिक्त, खाली। (२) उजाड़, वीरान। (३) निर्धन।
खंखर—वि. [हिं० खख] वीरान, उजाड़।
खँखार—संज्ञा पु [हिं० खखार] गाढ़ा कफ।
खँखारना—क्रि अ. [हिं० खखार] (१) खाँसना। खखारकर कफ निकालना।
खग, खँग—संज्ञा पुं. [सं० खड्ग] (१) तलवार। (२) गैंडा।
सज्ञा स्त्री०—घाव। उ०—कुंभकरन तनु खंग लग गई लंक बिभीपन पाई।

खँगड़—संज्ञा पुं [अनु०] कूड़ा कबाड़ा।
विं.—उग्र, उद्दंड।
खँगना—क्रि. स. [हि. छीजना] कम होना, घटना।
खंगर—वि. [देश०] बहुत सूखा।
खँगहा—वि. [देश०] बड़े दाँतवाला (पशु), दँतैल।
संज्ञा पु.—गैंडा।
खँगारना, खँगालना—क्रि स. [सं० चालन] (१) खाली पानी से साफ करना। (२) खाली करना, उड़ा ले जाना।
खँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं० खाँगना] कमी, घटी।
खँगुआ—संज्ञा पु [हि० खाँग] गैंडे के मुँह का सींग।
खँगैल—वि. [हिं० खँगहा] जिसके दाँत बाहर निकले हों, दँतैल।
खगौरिया—संज्ञा स्त्री. [देश०] गले का एक गहना, हँसुली
खँचना—क्रि. अ. [हि. खाँचना] चिह्न पड़ना, चिह्नित होना।
खँचाना—क्रि. स. [हि० खाँचना] (१) अंकित करना, चिह्न बनाना। (२) जल्दी लिखना। (३) खींचना।
खँचिया—संज्ञा स्त्री. [हि० खाँची] झाबा, बड़ी डलिया।
खँचैया—वि. [हिं० खाँचना] खींचनेवाला।
खंज—संज्ञा पुं० [सं० खंजन] खंजन पक्षी। उ०—आलिंगन दै अधर पान करि खंजन खंज लरै।
वि.—[सं०] लँगड़ा, पंगु।
खंजक—वि. [हिं० खंज] लँगड़ा, पंगु।
खँजड़ी—संज्ञा स्त्री [सं. खंजरीट] डफली की तरह एक बाजा।
खंजन—संज्ञा पुं [सं०] (१) एक सुंदर पक्षी जो बहुत चंचल होता है और जिसकी उपमा कवि नेत्रों से देते हैं। (२) एक तरह का घोड़ा। (३) एक छंद।
खंजन-रति—संज्ञा पुं. [सं०] बहुत गुप्त विवाह।
खंजनिका—संज्ञा स्त्री. [सं०] एक चिड़िया।
खंजर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कटार।
खंजरि, खँजरी—संज्ञा पुं. [सं. खंजरीट=एक ताल] डफली की तरह एक छोटा बाजा। उ.—कंसताल कठताल बजावत सृंग मधुर मुँह चंग। मधुर खंजरी पटह प्रणव मिलि सुख पावत रतभंग—१०७१ सारा.।
संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खंजर] (१) छोटा खाँडा। (२) एक तरह का रेशमी धारीदार कपड़ा।
खंजरीट—संज्ञा पु. [सं] खंजन पक्षी। उ.—(क) मनोहर है नैनन की भाँति। ...... । खंजरीट मृग मीन बिचारति उपमा को अकुलाति—२१४७। (ख) बालभाव अनुसरति भरति दृग अग्र अश्रुकन आनैं। जनु खंजरीट जुगल जठरातुर लेत सुभग अकुलानैं—२०५३। (ग) मनहुँ मुदित मरकत मनि-आँगन खेलत खंजरीट चटकारे।
खंजा—संज्ञा स्त्री. [सं] एक वृत्त।
खंड, खँड—संज्ञा पु. [सं.] (१) भाग, हिस्सा। उ.—तासौं सुत निन्यानवैं भए। ···तिन मैं नव नव-खँड अधिकारी—५-२। (२) खाँड, चीनी। (३) दिशा। (४) देश, पौराणिक भूगोल के अनुसार प्राचीन द्वीपों के नौ या सात भाग। उ.—अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा दिखराई मुख माँहिं—१०-२५५।
वि.—खंडित, छोटा।
संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] खाँड़ा।
खंडक—वि. [सं.] (१) खंड-खंड करनेवाला। (२) किसी बात का खंडन करनेवाला।
खंडकाव्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह काव्य जिसमें कथा की घटना विशेष का वर्णन हो। इसमें काव्य के सब लक्षण नहीं होते।
खंडत—वि. [सं. खंडित] टूटा-फूटा, अपूर्ण, असंबद्ध।
क्रि.स. [हि. खंडना] खंड खंड करता है।
खंडन—संज्ञा पु. [सं] (१) तोड़ना। (२) काटना। (३) असत्य, अशुद्ध या अनुचित सिद्ध करना।
खंडना—क्रि. स. [सं खंडन] (१) तोड़ना-फोड़ना। (२) (बात या सिद्धांत को) अयुक्त ठहराना।
खंडनीय—वि. [सं.] खंडन करने योग्य।
खंडपति—संज्ञा पु. [सं.] राजा।
खंडपरशु—संज्ञा पु. [सं.] (१) शिव जी। (२) विष्णु। (३) परशुराम।
खंडपाल—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।
खँडपूरी—संज्ञा स्त्री. [हि खाँड़+पूरी] पूरी जिसमें मेवे-मसाले और चीनी भरी हो।

खंडप्रलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटा प्रलय। (२) किसी प्रदेश या खंड का नाश।

खँडबरा — संज्ञा पुं. [हिं. खँडौरा] मिश्री का लड्डू, ओला।

खंडर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] किसी गिरे हुए भवन का बचा हुआ भाग, खँडहर।

खंडरना—सज्ञा पु. [हिं. खंडर] खंडित करना, नाश करना।

खँडरा—सज्ञा पुं. [हिं. खाँड़ + हि. बरा (प्रत्य.)] एक पकवान या बड़ा।

खँडरिच—संज्ञा पुं. [सं. खजरीट] खंजन पची।

खंडल—संज्ञा पुं. [सं.] खंड ग्रहण करनेवाला।
संज्ञा पुं. [स. खंड] खंड।

खँडला—संज्ञा पु. [स. खड] टुकड़ा।

खँडवानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँड़ + पानी] (१) शरबत। (२) वर पक्षवालों को भेजा गया जलपान या शरबत।

खंडशः—क्रि. वि. [सं. खंड] खड खंड करके।

खँडसार, खँडसाल—संज्ञा स्त्री [हि. खाँड + शाला] स्थान जहाँ खाँड बनती हो।

खँडहर—संज्ञा पुं. [सं. खंड + हिं. घर] टूटे हुए भवन का शेष, खंडर।

खंडा—संज्ञा पुं. [सं. खंड] (१) भाग, हिस्सा। (२) देश, पौराणिक द्वीपो के नौ नौ या सात-सात भाग। उ.—एक एक रोम कोटि ब्रह्मंडा। रवि ससि ध नी धर नवखंडा—१०७०।

खंडि—क्रि. स. [स खंडन, हि. खंडना] तोड़कर, टुकड़े करके। उ —स्यंदन खंडि, महारथि खडौं, कपि-ध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

खंडिक—संज्ञा पुं [सं.] (१) काँख। (२) वह व्यक्ति जो ग्रंथ को खडश पढ़े। (३) एक ऋषि।

खँडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] निश्चित समय पर अदा किया जानेवाला अंश, किश्त।

खंडित—वि. [सं. खंड] (१) टूटी हुई, असंबद्ध, भग्न। उ.—(क) चारि मास बरसे जल खूटे हारि समुझ उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी अकथ कहानी—३४५७। (ख) नैनन निरखि निमेष न खंडित प्रेम-व्यथा न बुझाई—२६७६। (२) जो पूरं न हो, अपूर्ण।

खंडिता—सज्ञा स्त्री. [सं.] ऐसी नायिका जिसका पति रात में अन्य स्त्री के पास रहकर प्रात.काल लौटे। उ.—नित्य रास जल नित्य विहार। नित्य मान खंडिताभिसार—२३८०।

खंडिनी—सज्ञा स्त्री. [स.] पृथ्वी।

खडी—सज्ञा स्त्री. [स. खंड] (१) लगान या कर इत्यादि की किश्त। (२) एक तोल या माप।

खंडै—क्रि. स. [हिं. खडना] खंडन करे, तोड़े, न माने, उल्लघन करे। उ.—पिता-वचन खडै सो पापी, सोइ प्रहलादहिं कीन्हौ। निकसे खंभ बीच तें नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ—१-१०४।

खंडौं—क्रि. स. [हि. खडना] टुकड़े-टुकड़े कर दूँ। उ.—स्यंदन खडि, महारथि खडौं, कपिध्वज-सहित उड़ाऊँ—१-२७०।

खंडौरा—सज्ञा पुं. [हि खाँड+ओरा (प्रत्य.)] खाँड़ का लड्डू, ओला।

खंतरा—संज्ञा पुं. [स. कातार या हिं. अंतरा] (१) कोना, अंतरा। (२) दरार। (३) छोटा गढ़ा।

खंदक—सज्ञा पु. [अ.] (१) गड्ढा (२) दुर्ग के चारो ओर की गहरी खाई।

खंदा—सज्ञा पु. [हिं. खनना] खोदनेवाला, नाश करनेवाला। उ.—दैत्य दलन गजदंत उपारन, कस केसि धरि फंदा। सूरदास बलि जाइ जसोमति सुत के सागर दुख के खंदा।

खँधवाना—क्रि. स. [हिं. खाली] खाली कराना।

खंधार—संज्ञा पुं. [स्कंधवार] सेना के रहने की जगह, छावनी।
सज्ञा पुं [सं. खंडपाल] सामत, सरदार।

खँधियाना—क्रि. स. [हिं. खाली] किसी पदार्थ को पात्र से बाहर निकालना।

खंभारा—सज्ञा पु. [हिं. खभार] घबराहट, चिंता। उ. —कंस परयौ मन इहै विचारा। राम-कृष्ण बध इहै खंभारा—२४५६।

खंभ—सज्ञा पुं. [सं. स्तंभ, प्रा. खभ] (१) स्तंभ, खंभा। (२) सहारा, आसरा।

खंभा—संज्ञा पुं. [हिं. खंभ] (१) स्तंभ। (२) सहारा।

खंभार—संज्ञा पुं. [सं. क्षोभ] (१) चिंता (२) घबराहट। (३) डर, भय। (४) शोक।

खंभारि, खंभारी—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] (१) खलबली, व्याकुलता, घबराहट। उ.—बहुत अचगरी जिनि करौ, अजहुँ तजौ भवारि। पकरि कंस लै जाइगौ, कालिहि परै खँभारि—५८६। (ख) जैहै बात दूरि लौं ऐसी परिहै बहुरि खँभारि—१०८८। (२) चिंता, ठेस, शोक। उ.—देखौ जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि। कबहुँक इत, कबहूँ उत डोलति, लागी प्रीति-खँभारि—६७६।

संज्ञा स्त्री. [सं. काश्मरी, प्रा. कम्हरी] एक वृक्ष।

क्रि. अ.—भयभीत कर दी, कँपा दी, विचलित कर दी। उ.—धायौ पवनहुतै अति आतुर धरनी देह खभारी—२५६४।

खंभारौ—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] डर, भय। उ.—तब ब्रह्मा करि विनय कह्यौ, हरि, याहि सँहारौ। तुम हौ लीला करत, सुरनि मन परयौ खँभारौ—३-११।

खंभिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खंभा] छोटा खंभा।

खँव—संज्ञा स्त्री. [सं. खं] खत्ता जिसमें अनाज भरा जाय।

खँसना—क्रि. अ. [हिं. खसना] गिरना, सरकना, खिसकना।

ख—संज्ञा पुं. [सं] (१) आकाश। (२) स्वर्ग। (३) शून्य। (४) ब्रह्म। (५) शब्द।

खइए—क्रि. स. [सं खादन, पा. खाअन, खान, हिं. खाना] खाइए, भोजन कीजिए। उ.—जूठा खइए मीठे कारन आपुहि खात लड़ावत—पृ. ३३१।

खई—संज्ञा स्त्री. [सं क्षयी] (१) क्षय करनेवाली क्रिया। (२) विरोध, तकरार, झगड़ा। उ.—(क) सुत-सनेह-तिय कुटुम्ब मिलि, निसि दिन होत खई—१-२६६। (ख) त्यौरी भौंहन मोतन चितवै नैंक रहौ तौ करै खई—१२६१। (ग) कहतहि पोच सोच मनही मन करत न बनति खई—२७६१। (घ) भोजन भवन कछू नहि भावत पलकन मानौं करत खई सी—१६८३। (३) युद्ध, लड़ाई।

खक्खा—संज्ञा पुं. [अनु०] जोर की हँसी।

खखरा—संज्ञा पुं. [हि. खखड़] (१) बाँस का टोकरा। (२) बड़ा देश।

खखरिया—संज्ञा स्त्री [देश.] पतली कुरकुरी पूरी।

खखसा—संज्ञा पुं. [हि. खेखसा] एक तरकारी।

खखार—संज्ञा पु. [अनु.] गाढ़ा कफ।

खखारना—क्रि. अ. [सं.क्षरण] (१) खाँसना। (२) खरखराहट के साथ कफ खींचना।

खखेटना—क्रि. स. [सं. आखेट=शिकार] (१) पीछा करना। (२) घायल करना। (३) दबाना, व्याकुल करना।

खखेटा, खखेट्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. खखेटना] (१) शंका, सदेह। (२) छिद्र।

खखोंडर—संज्ञा पुं. [सं. ख+कोटर] पेड़ के खोखले में बना हुआ घोसला।

खखोरना—क्रि. स. [हिं. खखोलना] खोजना, छानबीन करना।

खगंगा—संज्ञा स्त्री. [स] आकाशगंगा।

खग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी, चिड़िया। (२) गंधर्व। (३) बाण। (४) देवता। (५) सूर्य। (६) चंद्र। (७) वायु।

खगडडा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कड़ा।

खगकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

खगत—क्रि. स. [हि. खगना] चित्त पर असर करती है, मन में बैठती है। उ.—जाही सो लगत नैन ताही खगत बैन नख सिख लौं सब गात ग्रसति—१८६६।

खगना—क्रि. स. [हि. खाँग=काँटा] (१) गड़ना, चुभना। (२) चित्त पर प्रभाव डालना। (३) अनुरक्त होना। (४) उभर आना, चिन्तित होना। (५) अटक जाना, अड़ रहना।

खगनाथ, खगनायक, खगपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) सूर्य।

खगपतिअरि—संज्ञा पुं. [सं. खगपति=गरुड़+अरि=शत्रु] शेषनाग। उ.—जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ। खगपति-अरि डर, असुरनि संका, बासरपति आनंद कियौ—१०-१४३।

खगभूप - संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) सुआ, तोता। उ.—सेमर-फूल सुरंग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप। परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैं कूप—१-१०२।

खगराइ—संज्ञा पु. [सं. खग+हिं. राय] खगपति, गरुड़।

खगहा—संज्ञा पु. [हि. खाँग= पैना दाँत] गैंडा।

खगी—क्रि. स [हिं. खगना] उभर आयी, चिह्नित हो गयी। उ.—यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई।

खगे—क्रि. स. [हिं. खगना] (१) लिप्त हुए, अनुरक्त हुए। उ.—प्रफुलित बदन सरोज सुंदरी अति रस नैन रँगे। पुहुकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे—पृ ३५० (६४)। (२) अटके थे, अड़ रहे थे, उलझे थे। उ.—न्हात रहीं जल में सब तरुनी तब तुम नैना कहाँ खगे—१३१८।

खगेश—संज्ञा पु. [सं. खग + ईश] गरुड़।

खगौ—संज्ञा पु. [सं. खग] पक्षी। उ.—इहै कोऊ जानै री। वाकी चितवनि मैं कि चंद्रिका मैं किधौं मुरली माँझ ठगोरी। देखत सुनत मोहि जा सुर नर मुनि मृग और खगौ री—२३६१।

खगोल—संज्ञा पुं [सं.] (१) आकाशमंडल। (२) खगोल विद्या, ज्योतिष।

खग्ग—संज्ञा स्त्री [स. खड्ग, प्रा. खग्ग] तलवार।

खग्रास—संज्ञा पु [स.] पूर्ण ग्रहण।

खचन—संज्ञा पुं. [स.] (१) जड़ना। (२) अंकित या चित्रित करना।

खचना—क्रि. अ. [सं खचन=बाँधना, जड़ना] (१) जड़ा जाना। (२) अंकित या चित्रित होना। (३) रमना, अड़जाना। (४) अटकना, फँसना।

खचर—संज्ञा पुं. [स.] (१) सूर्य। (२) मेघ। (३) गृह। (४) नक्षत्र। (५) वायु। (६) पक्षी।

वि.—आकाश मे चलनेवाला।

खचरा—वि. [हि खचर] (१) वर्णसंकर, दोगला। (२) दुष्ट, नीच।

खचाई—क्रि. स. [हि. खचाना] अंकित या चिन्हित की।

मुहा०—अपनी खचाई—अपनी ही बात ऊपर रखी, दूसरे का तर्क न सुना। उ.—सुनौ भाँ दै कान अपनी लोक लोचन जीति। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन जीति।

खचाखच—क्रि. वि. [अनु.] खूब भरा हुआ, ठसाठस।

खचाना—क्रि. स. [हि. खँचाना] (१) अंकित करना। (२) शीघ्र लिखना, खींचना।

खचावट—संज्ञा स्त्री. [हि. खाँचना] खचन, गठन।

खचाइनो—वि. [हि. खँचाना] जड़े हुए। उ.—पटली बिच विद्रुम लागे हीरा लाल खचाइन—२२८०।

खचि—क्रि. अ. [हि. खचना] (१) जड़कर। उ.—(क) कंचन खंभ, मयारि, मरुवा-डाँड़ी, खचि हीरा बिच लाल प्रवाल—१०८८। (ख) किधौं बज्रकनि लाल नगनि खचि तापर विद्रुम पाँति—१४१०। (ग) विद्रुम स्फटिक पच्ची कंचन खचि मनिमय मंदिर बने बनावत—१०-उ.-५। (घ) इम सर-घात ब्रजनाथ सुधानिधि राखे बहुत जतन करि खचि खचि। मन मुख भरि भरि नैन ऐन ह्वै उर प्रति कमल कोश लौं खचि खचि-२६०२। (२) रमकर, अड़कर।

खचित—वि. [सं. खचन=बाँधना, जड़ना] (१) जड़ा हुआ। उ.—(क) कनक खचित मनिमय आभूषन, मुख स्रम कन सुख-देत ६९८। (ख) चारु चक्र मनि खचित मनोहर चंचल चमर पताका—२५६६। (२) चित्रित, लिखित।

खची—क्रि. अ. [हि. खचना] (१) अंकित हुई, चित्रित हुई। उ.—देत भाँवरि कुंज मंडप पुलिन में वेदी रची। बैठे जो स्यामा स्याम वर त्रैलोक की सोभा खची। (१) जड़ी गई। उ.—चौकी हेम चंद्र मनि लागी हीरा रतन जराय जरी—पृ. ३४५ (४१)।

खचे—क्रि. अ. [हि खचना] अटके, फँस गये। उ.—नैना पंकज पंक खचे। मोहन मदन स्याम मुख निरखत भ्रुवन विलास रचे—पृ ३२१।

खचेरना—क्रि स [हिं खदेरना] दबाकर वश में करना।

खच्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि खचना] रम गया, अड़ गया, मग्न हो गया। उ.—(क) आजु हरि ऐसे रास रच्यौ। ....। गत गुन मंद अभिमान अधिक रुचि लै

लोचन मन तहँइ खच्यौ—पृ ३५० (६६)। (ख) एक दिन बैंकुठवासी रास बृन्दावन रच्यौ। सोई स्वरूप बिलोकि माधौ आइ इन बिधि तनु खच्यौ —३२६०।

खच्चर—संज्ञा पुं. [देश] एक पशु।

खज—वि. [सं खाद्य, प्रा. खाज्ज] जो खाने योग्य हो।

खजला—संज्ञा पु. [हि. खाजा] एक पकवान।

खजहजा—संज्ञा पु [सं. खाद्य अ, प्रा. खज्जाज्ज] उत्तम मेवा।

वि.—खाने योग्य।

खजानची—संज्ञा पुं [हिं. खजाना] कोषाध्यक्ष।

खजाना, खजीना—संज्ञा पु. [अ. खजाना] (१) कोष, भंडार, धनागार। (२) कर।

खजुआ, खजुवा—संज्ञा पुं. [हि. खाजा] खजला या खाजा नाम की मिठाई। उ.—दोना मेलि धरे हैं खजुआ। हौंस होय तौ ल्याऊँ पूआ।

खजुलाना—क्रि. स. [हि. खुजलाना] शरीर को नाखून आदि से सहलाना या रगड़ना।

खजुली—संज्ञा स्त्री. [हिं खुजली] खुजलाहट।

संज्ञा स्त्री. [हि. खाजा] एक मिठाई।

खजूर, खजूरी—संज्ञा स्त्री [सं. खर्जूर, हिं. खजूर] (१) एक प्रकार की मिठाई। उ.—मधुरी अति सरस खजूरी। सद परसि धरी घृत पूरी—१८३। (२) खजूर का फल, खजूर।

खट—संज्ञा पु [अनु.] टूटने, टकराने या ठोंकने पीटने का शब्द।

खटक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खटकने की क्रिया। (२) आशंका, चिंता।

खटकत—क्रि अ [हिं. खटकना] बुरा लगता है, खलता है। उ. ब्रज मोहन खटकत याकें मन, आजु कही यह बात—५२७।

खटकना—क्रि अ [हि. खटक (अनु.)] (१) 'खटखट' का शब्द होना। (२) किसी चीज के गड़ने, चुभने या आ पड़ने से पीड़ा होना (३) बुरा लगना। (४) झगड़ा होना। (५) अनिष्ट या अपकार की आशंका होना। (६) अनुपयुक्त जान पड़ना।

खटका—संज्ञा पुं. [हि. खटकना] (१) 'खटखट' शब्द। (२) डर, आशंका। (३) चिंता।

खटकाना—क्रि. स. [हिं. खटकना] 'खटखट' करना।

खटकी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. खटकना (अनु.)] खटक, खटकनेवाली बात। उ.—कालिह मैं कैसे निदरति ही मेरे चित पर टरति न खटकी—१३०१।

खटखट—संज्ञा स्त्री. [अनु] (१) ठोंकने पीटने का शब्द। (२) खटपट, झगड़ा, झंझट।

खटखटाना—क्रि. स. [अनु.] खटखट शब्द करना।

खटना—क्रि. अ. [हिं.] (१) धन कमाना। (२) बड़ी मेहनत करना। (३) विपत्ति में पीछे न हटना।

खटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) टकराने या ठोंकने पीटने का शब्द। (२) झगड़ा।

खटपटिया—वि. [हि. खटपट] झगड़ालू।

खटपद्—संज्ञा पुं. [सं. षट्पद] भौंरा।

खटपदी—संज्ञा स्त्री. [सं, षट्पदी] (१) छः पंक्तियों का छन्द। (२) छप्पय छंद।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री. [हि. खाट + पाटी] खाट की पाटी।

खटमल—संज्ञा पु. [हि. खाट + मल = मैल] खटकीड़ा।

खटमिट्ठा, खटमीठा—वि. [हिं. खट्टा + मीठा] जो कुछ खट्टा हो और कुछ मीठा।

खटमुख—संज्ञा पुं [सं षटमुख] कार्तिकेय।

खटरस—संज्ञा पुं. [स. षट् + रस] खट्टा, मीठा, कड़ुआ, तीखा आदि छः रस।

खटराग—संज्ञा पुं. [षट्राग] (१) झंझट, झगड़ा, बखेड़ा। (२) व्यर्थ की चीजें।

खटला संज्ञा पु [देश.] कान का छेद जिसमें स्त्रियाँ बालियाँ पहनती हैं।

खटवाट, खटवाटी, खटवाटू—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाट + पाटी] खाट की पट्टी।

खटाई—संज्ञा स्त्री [हि खट्टा] (१) खट्टापन, अम्लता। उ.—(क) भरता भँटा खटाई दीनी—२३२१। (२) वह पदार्थ, जिसका स्वाद खट्टा हो।

खटाका—संज्ञा पु. [अनु.] 'खट' का शब्द।

खटाखट—संज्ञा पुं. [अनु.] खटखट का शब्द।

क्रि. वि.— (१) चटपट। (२) जल्दी ।

खटाति—क्रि. अ. [हिं. खटाना] (१) निर्वाह होता है, निभता है। उ.—मधुकर कह कारे की न्याति। ज्यों जल मीन कमल मधुपन कौ छिन नहिं प्रीति खटाति —३१६८। (२) परीक्षा में ठहरता है।

खटाना—क्रि. अ. [हिं. खट्टा] (किसी वस्तुका) खट्टा हो जाना।

क्रि. अ. [सं. स्कम्भ्, स्कन्ध, प्रा. खड्ड = ठहरा हुआ] (१) निर्वाह होना, निभना। (२) परीक्षा में डटे रहना।

खटापट, खटापटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटपट] लड़ाई, झगड़ा, तकरार।

खटाव—संज्ञा पु० [हिं. खटाना] निर्वाह, निभना।

खटास—संज्ञा स्त्री. [हिं. खट्टा] खट्टापन।

खटिक—संज्ञा पुं. [स. खट्टिक] तरकारी बेचनेवाली एक जाति।

खटीक—संज्ञा पु [हिं. खटिक] (१) खटिक। (२) कसाई।

खटोलना,खटोला—संज्ञा पुं. [हिं खाट + ओला (प्रत्य)] (१) बच्चों की खाट। (२) पालना। (३) पालकी।

खट्टा—वि [सं. कटु] अम्ल, तुर्श।

संज्ञा पु [सं. खट्वा] पलँग, चारपाई।

खट्वांग—संज्ञा पु० [सं.] (१) एक सूर्यवंशी राजा। (२) शिव का एक अस्त्र।

खट्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] खटिया, चारपाई।

खड़—संज्ञा पुं [सं.] (१) धान का पयाल। (२) घास। (३) एक ऋषि।

खड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक] खटकने का भाव, खटक।

खड़कना—क्रि. अ. [अनु.] (१) खड़ खड़ का शब्द होना। (२) खटकना।

खड़खडाना—क्रि स [अनु०] (१) खड़ खड़ का शब्द करना। (२) खटखटाना।

क्रि. अ — खड़ खड़ का शब्द होना।

खड़खड़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़खड़ाना] पालकी, पीनस।

खड़्ग—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] तलवार।

खड़्गी—वि. [सं. खड्गिन] जो तलवार लिये हो।

संज्ञा पु. [सं. खड्ग] गैंडा।

खड़्जी—संज्ञा पुं. [हिं. खड़्गी] गैंडा।

खड़बड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खटखट की ध्वनि। (२) उलट-फेर, गड़बड़। (३) हलचल।

खड़बड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) घबड़ाना। (२) उलट-फेर का होना। (३) घबरा देना।

खडबड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़बड़ाना] (१) उलट फेर, गड़बड़ी। (२) घबराहट।

खड़बिड़ा, खड़बीहड़—वि [हिं. खड्ड + स. विघट, प्रा. विहड] ऊँचा-नीचा, जो समतल न हो।

खड़मंडल—संज्ञा पुं [स खड + मंडल] गड़बड़, झंझट, झमेला।

वि.—(१) उलट-पुलट, नष्ट-भ्रष्ट।

खड़सान—संज्ञा पु [हिं. खर + सान] बहुत तीक्ष्ण सान जिस पर तलवार उतारी जाती है।

खड़हर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] टूटा फूटा मकान, मन्दिर आदि।

खड़ा—वि. [सं. खड्क—खम्भा, थूनी] (१) समकोण उठा हुआ, दंड की तरह सीधा।

मुहा.—खडे खडे-झटपट। खड़ा जवाब-साफ इन्कार। खड़ा होना-सहायता करना। खड़ी पछाड़े खाना—बहुत क्षोभ से पृथ्वी पर गिरना।

(२) टिका हुआ, स्थिर। (३) उत्पन्न। (४)सन्नद्ध, तैयार। (५) आरंभ। (६) बनाया हुआ, उठायाहुआ। (७) तैयार, जो काटी न गयी हो। (८) जो पका न हो, कच्चा। (९) समूचा, पूरा। (१०) जो बहता हुआ न हो।

खड़ाऊँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काठ + पाँव, या खटपट अनु०] पादुका।

खड़ाका—संज्ञा पु. [अनु.] खड़खड़ शब्द, खटका।

खड़ानन—संज्ञा पु [स. षडानन] कार्तिकेय।

खड़िया—संज्ञा स्त्री [सं. खटिका] एक तरह की सफेद मिट्टी, खड़ी।

मुहा —खड़िया में कोयला— बेमेल बात।

संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या हिं. खड़ा] फलों-पत्ती रहित अरहर का पेड़ या डंठल।

खड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया मिट्टी।

खड़ी बोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ी + बोली] आधुनिक हिंदी का वह रूप जिसका प्रचार सारे भारत में है। इसमें संस्कृत के साथ साथ अरबी, फारसी के भी प्रचलित शब्द घुले मिले हैं।

खड़ुआ—संज्ञा पुं [हिं. कड़ा] हाथ या पाँव का कड़ा।

खड्ग—संज्ञा पुं. [सं.] तलवार। उ.—शूद्रराज इहि अन्तर आयौ। वृषभ-गाइ कौं पाइ चलायौ। ताहि परीछित खग उठाइ। बहुरौ बचन कह्यौ या भाइ—१ २६०।

खड्गकोश—संज्ञा पुं. [सं] म्यान।

खड्गपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो यमराज के यहाँ है और जिसमें पत्तियों की जगह तलवारें कटारें आदि लगी हैं। पापियो को इसपर चढ़ने का दंड दिया जाता है।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह की कटारी।

खड्गारीट—संज्ञा पुं [सं.] चमड़े की ढाल।

खड्गिक—संज्ञा पुं. [सं.] शिकारी।

खड्गी—संज्ञा पुं [सं. खड्गिन्] (१) वह जो तलवार लिये हो। (२) गैंडा।

खड्ड, खड्ढा—संज्ञा पुं. [सं. खात्] गढ़ा।

खणक—संज्ञा पुं. [सं. खनक] चूहा।

खतंग—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कबूतर।

खत—संज्ञा पुं. [अ. ख़त] (१) चिट्ठी, पत्र। (२) लिखावट। (३) रेखा, धारी। (४) दाढ़ी के बाल।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षिति, प्रा. खिति) पृथ्वी।
संज्ञा पुं. [सं. क्षत] घाव।

खतखोट—संज्ञा स्त्री [सं. क्षत + हिं. खुड] घाव की सूखी हुई ऊपरी पपड़ी, खुरंड।

खतना—अ. [हिं. खाता] खाते में लिखा जाना, खतियाया जाना।

खतम—वि. [अ. ख़त्म] समाप्त।

खतर, खतरा—संज्ञा पुं. [अ. ख़तर, ख़तरा] (१) डर। (२) आशंका।

खता—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ता] (१) कसूर, अपराध। उ.—सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तें कृपा बिसारी—१-१६०। (२) धोखा। (३) भूल चूक।
संज्ञा पुं. [सं. क्षत] घाव।

खतावार—वि. [हिं. खता + वार] अपराधी, दोषी।

खति—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षति] हानि, नुकसान।

खतिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खत्ता] छोटा गड्ढा।

खतियाना—क्रि. स. [हिं खाता] प्रतिदिन का आय-व्यय अलग-अलग खातों या मदों में लिखना।

खतियावै—क्रि. स [हिं खाता, खतियाना] प्रति दिन की आय व्यय आदि खातों में यथानुसार लिखता है। उ.—साँचो सो लिखहार कहावै। .... । बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तले लै डारै। निहचै एक असल में राखै, टरै न कबहूँ टारै। करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवै—२-१४२।

खतियौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खतियाना] (१) आय व्यय का खाता। (२) खतियाने की क्रिया। (३) लगान आदि लिखने का कागज।

खत्ता—संज्ञा पुं. [सं. खात] (१) अन्न रखने का गड्ढा। (२) प्रांत, स्थान।

खत्म—वि. [हिं. खतम] समाप्त, जो चुक गया हो।

खत्रवट, खत्रवाट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षत्री+वट (प्रत्य.)] वीरता।

खदग—संज्ञा पुं. [फा.] बाण, तीर।
संज्ञा पुं [सं.] (१) जुगनू। (२) सूर्य।

खदखदाना, खदबदाना—क्रि. अ. [अनु] किसी चीज को इतना उबालना कि 'खदबद' शब्द होने लगे।

खदरा—संज्ञा पुं [हिं. खत्ता] (१) गड्ढा। (२) बछड़ा।
वि.—[सं. क्षुद्र] बेकाम चीज, रद्दी।

खदान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना या खान] खान जिसमें से खनिज पदार्थ निकलते हैं।

खदिर—संज्ञा पुं [सं.] (१) कत्था। (२) चंद्रमा। (३) इंद्र।

खदुका—संज्ञा पुं. [सं. खादक] (१) ऋणी। (२) ऋण लेकर व्यापार करनेवाला।

खदेड़ना, खदेरना—क्रि. स. [हिं. खेदना] भगाना, दूर हटाना ।

खद्दड़, खद्दर—संज्ञा पु. [देश.] हाथ से काते सूत का हाथ से बुना कपड़ा ।

खद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुगनूँ । (२) सूर्य ।

खद्योतक—संज्ञा पुं. [सं०] (१) सूर्य । (२) विषैले फल का एक वृक्ष ।

खन—संज्ञा पु [सं. क्षण] (१) क्षण, पल भर का समय, लमहा । उ.—खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इहिं भाँति—५४० । (२) समय । (३) तत्काल । उ.—खन गोपी कै पाँइँ परै धन सोई है नेम—३४४३ ।

क्रि. वि.—तुरंत ।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] मंजिल, तल्ला, मरातिब ।

संज्ञा पुं [देश.] (१) एक वृक्ष । (२) एक कपड़ा ।

खनक—संज्ञा स्त्री. [खन से अनु.] खनखनाहट ।

संज्ञा पुं. [स.] (१) चूहा । (२) चोर जो सेंध लगाये । (३) खोदनेवाला । (४) भूतत्व ।

खनकना—क्रि. अ. [अनु] खनखन शब्द होना ।

खनकाना—क्रि. स. [अनु] खनखन शब्द करना ।

खनखनाना—क्रि. अ. [अनु.] खनखन शब्द करना ।

खनन—संज्ञा पुं [हि. खनना] खोदने का कार्य ।

खननहारा—वि. [हिं. खनना+हारा] खोदनेवाला ।

खनना—क्रि. स. [स. खनन] (१) खोदना । (२) (खेत आदि) गोड़ना ।

खनवाना—क्रि. स. [हिं. खनाना] खुदवाना ।

खनहन — वि. [सं. क्षीण+हीन] (१) निर्बल । (२) निर्दोष, सुन्दर ।

खनाना — क्रि. स. [हि. खनना] खनने को प्रेरित करना, खुदवाना ।

खनावत—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदते हैं, खोदकर, खोदने (से) । उ.—वे हरि रत्न रूप सागर के क्यों पाइए खनावत घूरे (बूरे)—३०४२ ।

खनावै—क्रि. स. [हिं. 'खनना' का प्रे.] खोदवाता है । उ.—(क) परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै—१-१६८ । (ख) बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै—२-६ ।

खनि—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदकर । उ.—(क) कूप खनि कह जाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ । सूर हरि कौ भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ—१-३१५ । भरत भवन खनि कूप सूर त्यौं मदन अगिनि दहि जैहै—२०३४ ।

खनिज—वि. [स.] खान से खोदकर निकाला हुआ ।

खनियाना—क्रि. स. [हिं. खनना] खाली करना ।

खनोना—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदना, कुरेदना ।

खनोवति—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदती है । उ.—द्रुम साखा अवलंब वेलि गहि नख सौं भूमि खनोवति—१८०० ।

खपची—संज्ञा स्त्री. [तु. कमची] बाँस की पतली तीली ।

खपड़ा—संज्ञा पु. [सं. खपरि, प्रा. खप्पट] । (१) खपड़ैल मे लगाये जानेवाले मिट्टी के पके हुए टुकड़े । (२) भिखमंगों का खप्पर । (३) ठीकरा ।

संज्ञा पु. [स. क्षुरपत्र] चौड़े फल का तीर ।

खपड़ैल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपरैल] खपड़ों से छायी हुई छत ।

खपत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपना] (१) समाई, गुंजाइश । (२) माल की बिक्री ।

क्रि. अ.—खपता है, काम में आता है ।

खपना—क्रि. अ. [स. क्षेपण] (१) काम में आना, व्यय होना । (२) निभ जाना । (३) नष्ट होना । (४) तंग हो जाना ।

खपर—संज्ञा पुं. [हि खपड़ा] खप्पर, टूटा हुआ पात्र जो भिखारियों के पास रहता है । उ.—गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस । सृंगी मुद्रा कनक खपर करिहौं जोगिन भेष—२७५४ ।

खपरैल - संज्ञा स्त्री. [हिं. खपड़ा] खपड़े से छायी छाजन या छत ।

खपाना — क्रि. स. [सं. क्षेपण] (१) काम में लगाना । (२) निभाना । (३) स्वारथ करना, समाप्त करना । (४) तंग करना ।

खपायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. खपाना] नष्ट कर दी । उ.—मैना मेघनायक रितु पावस बान वृष्टि करि सैन खपायौ ।

खपुआ—वि. [हि खपना = नष्ट होना] कायर, डरपोक।

खपुर—संज्ञा पुं [सं.] (१) सुपारी का पेड़। (२) बबनखा।

खपुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाशकुसुम। (२) असंभव बात।

खप्पड़, खप्पर—संज्ञा पुं [सं. खर्पर] मिट्टी का चौड़ा पात्र जो भिखारियों के पास रहता है। उ.—हृदय सींगी टेर मुरली नैन खप्पर हाथ—३१२६।

खफगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खफा] नाराजगी, क्रोध।

खफा—वि. [अ. ख़फा] (१) अप्रसन्न। (२) क्रुद्ध।

खफीफ—वि. [अ. ख़फीफ] (१) थोड़ा, कम। (२) सामान्य। (३) लज्जित।

खबर—संज्ञा स्त्री [अ. खबर] (१) समाचार।

मुहा.—खबर उड़ना (फैलना)—चर्चा होना। खबर लेना—(१) समाचार जानना। (२) ध्यान देना, दया दिखाना। (३) दंड देना।

(२) सूचना, जानकारी। (३) संदेश। (४) पता, खोज। (५) सुध, चेत।

खबरगीरी—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़बरगीरी] (१) देखभाल। (२) दया, सहायता।

खबरदार—वि. [फा ख़बरदार] होशियार, सावधान।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री [फा खबरदारी] होशियारी, सावधानी।

खबरि—संज्ञा स्त्री. [अ ख़बर] (१) समाचार, वृत्तांत। उ.—(क) किधौं सूर कोई ब्रज पठयो, आजु खबरि कै पावत हैं—२६४६। (ख) द्वारावति पैठत हरि सौं सब लोगन खबरि जनाई—१० उ.–२७। (२) सूचना, ज्ञान, जानकारी। उ.—(क) क्यों जू खबरि कहौ यह कीन्हीं कंत परस्पर ख्याल—२४२७। (ख) कूदि परयौ चढि कदम तैं खबरि न करौ सबेर—५८६। (३) संदेश, सँदेसा। उ—ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु एक पंथ द्वै काज—३६२५। (४) चेत, सुधि, सज्ञा। (५) पता, खोज। उ.—अपने कुल की खबरि करौ धौं सकुन्न नहीं जिय आवति—११७४।

मुहा.—खबरि करि—ध्यान देकर, खबरदारी से पता लगाकर, समझ-बूझकर। अपनी बात खबरि करि देखहु न्हात जमुन के तीर—११४०।

खबरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खबर] समाचार, वृत्तांत।

खबरी—संज्ञा पुं. [फा. ख़बरी] समाचार लाने या ले जानेवाला, दूत।

खबीस—संज्ञा पुं. [अ. ख़बीस] दुष्ट, भयंकर।

खब्त—संज्ञा पुं. [अ. ख़ब्त] सनक, झक।

खब्ती—वि. [हिं. खब्त] सनकी, झक्की।

खब्भड़—वि. [हि. खाबड़] दुबला, जिसके हड्डियाँ निकली हों।

खभरना—क्रि. स [हि भरना] (१) मिलाना, (एक वस्तु में दूसरी का) मेल करना। (२) उथल-पुथल करना।

खभार—संज्ञा पुं. [हि. खँभार] (१) चिंता। (२) दुख। (३) व्याकुलता।

खभारे—संज्ञा पुं [हि. खँभार] अंदेशा, चिंता। उ.—कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि पुनि सोचति परी खभारे। सूर स्याम यह कहत जननिसौं, रहि री मा धीरज उर धारे—५६५।

खम—संज्ञा पुं [फा. ख़म] (१) दोष, टेढ़ापन।

मुहा०—खम खाना—(१) दब जाना। (२) हारना। खम ठोकना (बजना) (१) ताल ठोककर लड़ने को ललकारना। (२) दृढ़ होना।

(२) गाते समय स्वर में लोच लाने के लिए लिया जानेवाला विश्राम।

खमकना—क्रि. अ. [अनु०] खमखम शब्द होना।

खमदार—वि [हिं. खम+दार] टेढ़ा।

खमा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षमा] क्षमा, दया।

खमीर—संज्ञा पुं. [अ. खमीर] (१) गीले आटे का सड़ाव। (२) सड़ा कर तैयार किया हुआ पदार्थ। (३) स्वभाव।

खमीरा—वि. [अ. खमीरा] जिसमें खमीर मिला हो।

खय—संज्ञा स्त्री. [अ] (१) गबन। (२) चोरी।

खया—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] भुजमूल, दंड।

खयानत—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़यानत] धरोहर का कुछ भाग दबा लेना।

ख़याल—संज्ञा पुं. [हिं. ख़याल] (१) ध्यान, (२) याद। (३) विचार।

खयाली—वि. [हिं. ख्याल] कल्पित, फर्जी।
वि. [हि. खेल] कौतुकी, खिलाड़ी।

खये—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, हि. खवा] भुजमूल। उ.—अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये —१० उ.-१०७।

खर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गधा। (२) रावण का भाई जिसे राम ने मारा था। (३) घास, तृण।
वि.— (१) कड़ा। (२) तेज, तीक्ष्ण। (३) तेज धार का। (४) हानिकारी। (५) आड़ा, तिरछा।
संज्ञा पुं. [हि. खरा] खरापन, खराई।
संज्ञा पु [सं खर=तेज] कड़ा, करारा।

खरक—संज्ञा पुं. [सं खड्क=स्थाणु] (१) पशुओं के रखने का बाड़ा जो प्रायः आड़ी-सीधी बल्लियाँ खंभे गाड़कर तैयार किया जाता है। (२) चराई का स्थान।
संज्ञा स्त्री [हि. खटक (अनु.)] (१) खटका, खटकने का भाव। (२) भय, आशंका। (३) पीड़ा। उ.—हाहा चल प्यारा तेरो प्यारो चौंकि चौंकि परै पातकी खरक पिय हिय में खरक रही—२२३६।
क्रि. अ. [हिं. खटकना] रह रह कर पीड़ा होना।

खरकना—क्रि. अ. [हिं. खर] (१) फाँस चुभने का दर्द होना। (२) चल देना, भाग जाना, सरक जाना।
क्रि. अ. [हि. खड़कना (अनु.)] खड़खड़ शब्द करना।

खरका—संज्ञा पुं. [हिं. खर] तिनका।
संज्ञा पुं. [हि. खरक] (१) पशुओं का बाड़ा। (२) चराई का स्थान।

खरको, खरकौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक (अनु.)] खटका, 'खटकने' का भाव। उ.—ननदी तौन दिए बिनु गारी नैकहु रहति सासु सपनेहू में आनि गोउति काननि में लए रहै मेरे पौंइन को खरकौ—१४९२।

खरखशा—संज्ञा पुं. [फा. खरख़शा] (१) झगड़ा, बखेड़ा, झंझट। (२) भय, डर।

खरखौकी—संज्ञा स्त्री [हिं. खर=घास-फूस + खाना] घास-फूस भक्षण करनेवाली अग्नि।

खरग—संज्ञा पुं [सं. खड्ग] तलवार।

खरगोश—संज्ञा पु. [फा] खरहा।

खरच—संज्ञा पुं [अ. खर्ज, हिं. खर्च] व्यय, दाम। उ.—सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत —१-२६६।

खरचना—क्रि. स. [फा. ख़र्च] (१) खर्च करना। (२) उपयोग में लाना।

खरचा—संज्ञा पुं. [हिं. खर्चा] खर्च, व्यय।

खरचि—क्रि. स. [हिं. खरचना] व्यय करना, खर्च करना। उ.—खाइ न सकै, खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी—१-३६।

खरचियतु—क्रि. स. [हि. खरचना] व्यय करना, खरचना। उ.—यामें कछू खरचियतु नाही अपनो मतो न दीजै—२६७२।

खरचै—क्रि. स. [हि. खरचना] व्यय करता है। उ.—खरचै लाख, लिखै नहि एक—४-१३।

खरतर—वि. [हिं. खर+तर (प्रत्य.)] (१) बहुत तेज। (२) व्यवहार का खरा और सच्चा।

खरतल—वि. [हि. खरा] (१) स्पष्ट बात करनेवाला। (२) शुद्ध हृदयवाला। (३) प्रचंड, उग्र।

खरतुआ—संज्ञा पु. [हि. खर+बथुआ] एक घास।

खरदूषण, खरदूषन—संज्ञा पु. [सं.] (१) खर और दूषण नामक दो राक्षस जो रावण के भाई थे। (२) धतूरा।
वि.—जिसमें अनेक दोष हो।

खरधार—संज्ञा पुं [सं] तेज धारवाला।

खरब—संज्ञा पुं. [सं. खर्व] संख्या का बारहवाँ स्थान, सौ अरब की संख्या।

खरबूजा—संज्ञा पुं. [फा. खर्बुज़:] एक फल।

खरभर—संज्ञा पु. [अनु] (१) हलचल, गड़बड़। उ.—(क) तब मैं डरपि गियौ छोटौ तनु, पैठ्यौ उदर-मँझारि। खरभर परी, दियौ उन पैंडो, जीती पहिली रारि—६ १०४। (ख) कटक अगिनित जुरयौ, लक खरभर परयौ, सूर कौ तेज धर-धूरि ढाँप्यो—६-१० ६। (२) शोर, गुल - गपाड़ा।

खरभरना—क्रि. अ. [हिं. खरभर] (१) क्षुब्ध होना। (२) घबराना।

खरभराना—क्रि. स. [हिं. खरभर] (१) शोर करना। (२) गड़बड़ मचाना। (३) व्याकुल करना।

खरभरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरभर] (१) हलचल। (२) शोर-गुल।

खरभर्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. खरभर] चंचल या व्याकुल होकर खरभराने लगा। उ.—तब जलनिधि खरभर्यौ त्रास गहि, जंतु उठे अकुलाइ—९.१२१।

खरमंडल—संज्ञा पुं. [हिं. खड़मंडल] अव्यवस्था, गड़बड़ी।

वि — (१) उलटा-पुलटा। (२) नष्ट-भ्रष्ट।

खरमस्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] भद्दी हँसी, पाजीपन।

खरमास—संज्ञा पु. [सं] पूस-चैत मास जिसमें शुभ कार्य करना मना है।

खरमिटाव—संज्ञा पुं. [हिं. जल+पान] जलपान।

खरल—संज्ञा पुं. [सं. खल] पत्थर या लोहे का गोल या लंबोतरा पात्र जिसमें डालकर ओषधियाँ कूटी जाती हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं. [हिं. खर+मास] पूस-चैत मास जिनमें शुभ कार्य वर्जित हैं।

खरसा—संज्ञा पुं [सं. षड्रस] एक खाद्य पदार्थ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) गरमी के दिन। (२) अकाल।

संज्ञा पुं. [फा. ख़ारिश] खुजली, खाज।

खरसान—संज्ञा स्त्री. [हिं खर + सान] एक प्रकार की तीक्ष्ण सान जिस पर तीर, तलवार आदि की धार तेज की जाती है। उ.—झलमलात रति रैनि जनावत अति रस मत्त भ्रमत अनियारे। मानहु सकल जगत जीतन को कामबान खरसान सँवारे—२१३२।

खरहर—संज्ञा पु. [देश.] एक पेड़।

खरहरना—क्रि. अ. [हिं. खर=तिनका + हरना] झाड़ू देना।

खरहरा—संज्ञा पुं. [हिं. खरहरना] (१) डठलों का झाड़ू। (२) पशुओं का ब्रुश।

खरहरी—संज्ञा स्त्री [देश] एक मेवा।

खरांशु—संज्ञा पुं. [सं] सूर्य।

वि.—तेज किरणोंवाला।

खरा—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण] (१) तेज। (२) विशुद्ध, बिना मिलावट का।

मुहा.—खरा खोटा—भला-बुरा। जी खरा खोटा होना—नियत बुरी हो जाना।

(३) छल-कपट रहित, सच्चा।

मुहा.—खरा खेल—सच्चा व्यवहार।

(४) नकद और उचित (मूल्य या वेतन)।

मुहा.—रुपया खरा होना—रुपया मिलने की बात पक्की हो जाना।

(५) स्पष्ट और निष्पक्ष बात कहनेवाला। (६) स्पष्ट और सच्ची बात जो सुनने में चाहे कितनी ही अप्रिय लगे।

मुहा.—खरी सुनाना—सच्ची सच्ची बातें कहना पर यह ध्यान न देना कि ये भली लगेंगी या बुरी।

(७) बहुत, ज्यादा।

खराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरा + ई (प्रत्य.)] 'खरा' होने का भाव, खरापन।

खराऊँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ाऊ] खड़ाऊँ। उ.—एक अँधेरो हिये की फूटी दौरत पहिरि खराऊँ—३४६६।

खराद—संज्ञा पुं. [अ. खर्रात, फा. खर्राद] एक औजार जिस पर चढ़ाकर लकड़ी, धातु आदि की वस्तुएँ सुडौल, चिकनी और चमकीली की जाती हैं। उ.—पालनौ अति सुंदर गढ़ल्याउ रे बढ़ैया। सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, विविध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया—१०.४१।

मुहा.—खराद पर चढ़ना (उतरना)—(१) सुधर जाना। (२) व्यवहार में कुशल होना। खराद पर चढ़ाना (उतारना)—सुधारना, ठीक करना।

संज्ञा स्त्री.—(१) खरादने की क्रिया या भाव। बनावट, गढ़न।

खरादना—क्रि. स. [हिं. खराद] (१) खराद के सहारे किसी वस्तु को चिकना या सुडौल करना। (२) सुडौल करना।

खरापन—संज्ञा पुं. [हिं. खरा + पन] (१) खरा या शुद्ध होने का भाव। (२) सच्चाई। (३) उन्मत्त हो जाने का भाव।

खराब—वि. [अ. खराब] (१) बुरा, हीन, जिसकी दशा बिगड़ जाय। (२) जो पतित हो।

खराबी—संज्ञा स्त्री. [फा०] (१) बुराई, दोष। (२) बुरी दशा।

खरायँध—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षार + गंध] खार की-सी दुर्गन्ध।

खरारि, खरारी—संज्ञा पुं [सं.] (१) खर दैत्य को मारनेवाले श्री रामचन्द्र। (२) विष्णु। (३) कृष्ण। (४) धेनुकासुर को मारनेवाले बलराम।

खराश—संज्ञा स्त्री. [फा. खराश] खरोंच, छिलना।

खरिक—संज्ञा पुं. [देश.] ऊख जो खरीफ के बाद बोई जाय।

संज्ञा पु. [सं. खड्क = स्थाणु, हिं. खरक] पशुओं के चरने या रहने का स्थान, बाड़ा। उ.—अहो सुबल श्रीदामा भैया ल्यावहु जाय खरिक के नेरे।

संज्ञा पुं. [स. क्षारका, हिं. खारक] छोहारा नामक मेवा। उ.—खरिक दाख अरु गरो चिरारी। पिंड बदाम लेहु बनवारी—३९६।

खरिकौ—संज्ञा पुं [सं. खड्क=स्थाणु, हिं. खरक] पशुओं के रहने या चरने का स्थान। उ.—जो सुख मुनिगन ध्यान न पावत, सो सुख करत नंदसुत खरिकौ—१०-१८१।

खरिकनि—संज्ञा पु. बहु. [देश] गैयों के रहने का स्थान। उ.—राँभति गौ खरिकनि मैं, बछुरा हित धाई—१०-२०२।

खरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. खर+इया (प्रत्य)] (१) पतली रस्सी की जाली जिसमें घास, भूसा जैसी चीजें बाँधते हैं। (२) झोली।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया।

संज्ञा स्त्री. [हि खार = राख] कंडे की राख।

वि.—चोखी।

खरियाना—क्रि. स. [हि. खरिया = झोली] (१) झोला या थैली में भरना। (२) छीन लेना। (३) थैली से गिराना।

खरिहान—संज्ञा पु [स खल + स्थान] खेत के पास का स्थान जहाँ फसल काटकर रखी और माड़ी जाती है। उ.—माँहि माँहि खरिहान क्रोध को, पोता-भजन भरावै—१-१४२।

खरी—वि. स्त्री. [सं. खड्क = खम्भा, थूनी, हिं. पु. खड़ा] खड़ी, खड़ी खड़ी। उ.—(क) आनँद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपाल खिलावै—१०-११०। (ख) माखन दधि हरि खात प्रेम सौं निरखति नारि खरी—११७७।

वि. स्त्री. [सं खर = तीक्ष्ण, हिं. पुं. खरा] (१) तेज, तीखी, तीव्र स्वर की। उ.—त्राहि त्राहि द्रोपदी पुकारी, गई बैकुंठ अवाज खरी—१-२४६। (२) अच्छी, प्रिय, कल्याणकारिणी। उ.—इक बदन उघारि निहारि देहिं असीस खरी—१०-२४। (३) पूर्ण, बिलकुल, बहुत अधिक। उ.—(क) मैं जु रह्यौ राजीवनैन दुरि पाप-पहार-दरी। पावहु मोहिं कहौं तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी—१-१३०। (ख) प्रभु जागे अर्जुन तन चितयौ, कब आये तुम कुसल खरी—१-२६८। (ग) ठाढ़ीं जल माहिं गुसाईं खरी जुड़ाई नीर की—३३०३। (४) विशुद्ध, बिना मिलावट की। (५) छल कपट रहित, सच्ची। उ.—कपट हेतु कियौ हरि हमसे खोटे होंहि खरी—२७४१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया। (क) जैसे खरी कपूर दोउ एक सम यह भई ऐसी संधि—२६१२। (ख) सब विधि बानि ठानि करि राख्यौ खरी कपूर को रेहु—३०४०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खली] सरसों इत्यादि की खली जो पशुओं को खिलायी जाती है।

खरीक—संज्ञा पु. [हि. खर] तिनका।

खरीता—संज्ञा पु [अ.] (१) थैली। (२) जेब।

खरीद—संज्ञा स्त्री [फा. खरीद] (१) मोल लेना। (२) मोल ली हुई चीज।

खरीदना—क्रि. स. [हिं. खरीद] मोल लेना।

खरीदार—संज्ञा पु. [हि खरीद] (१) मोल लेने वाला। (२) चाहनेवाला।

खरीदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरीद] मोल लेने की क्रिया।

खरीफ—संज्ञा स्त्री. [अ. खरीफ़] असाढ़ से माघे

अगहन के बीच में कटनेवाली फसल जिसमें धान, बाजरा, उर्द, मूँग आदि होते हैं ।

खरु—संज्ञा पुं. [सं. खर] गधा । उ.—कामधेनु खरु लेइ काज अमृत उपजावै—१० उ. ८ ।

खरे—वि. [हि. खरा] (१) बहुत अधिक, ज्यादा । उ.—ऐसौ अघ, अधम, अविवेकी, खोटनि करत खरे—१-१६८। (२) ऐंठने या रूठनेवाले, जिद पकड़ लेनेवाले । उ.—पठवति हौं मन तिन्हैं मनावन निसि दिन रहत अरे री । ज्यों ज्यों मान करति उलटावन त्यों त्यों होत खरे री—१४४२ (३) तीखे, तीक्ष्ण, तेज । उ.—लागो या बदन की बलाई । खजन तेरे खरे कटाच्छनि न्याउ गुपाल बिकाई—२२२७ ।

वि. [हिं. खड़ा] खड़े, उपस्थित । उ.—(क) सूरदास भगवन्त भजन बिनु जम के दूत खरे हैं द्वार—२-३ । (ख) त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे—४८३ ।

खरेई—क्रि. वि. [हिं. खरा + ई] (प्रत्य.) (१) सचमुच, वस्तुत । (२) बहुत, अत्यन्त । उ.—सूरदास अब धाम दोहरी चढ़ि न सकत हरि खरेई अमान ।

खरो—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण] बहुत अधिक, ज्यादा । उ.—बालविनोद खरो जिय भावत—१०-१०२ ।

खरोंच, खरोंट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुरण] शरीर के किसी भाग के छिलने का हलका चिन्ह ।

खरोंचना, खरोंटना—क्रि. स. [हिं. खरोंच] खुरचना, छीलना ।

खरोई—क्रि. वि. [हि. खरा + ई (प्रत्य.)] सचमुच, वस्तुतः ।

खरोष्ट्री, खरोष्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं] एक लिपि जो भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर अशोक के समय में प्रचलित थी ।

खरौंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरोंच] नख या खरोंच लगने से छिलने का हलका चिन्ह ।

खरौंटना—क्रि स. [हिं. खरोंच, खरोंट] खरोंचना ।

खरौंहा—वि. [हि. खारा + औंहा] कुछ कुछ खारा या नमकीन ।

खरौ—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण, हि. खरा] (१) विशुद्ध, बिना मिलावट का, 'खोटा' का उलटा । उ.—इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ । सो दुविधा पारस नहि जानत, कंचन करत खरौ—१-२२० । (२) बहुत अधिक । उ.—कारौ कहि कहि तोहिं खिझावत, बरजत खरौ अनेरौ—१०-२१६ ।

वि. [हि. खड़ा] खड़ा, खड़ा हुआ । उ.—भरत पंथ पर देख्यौ खरौ—५-४० ।

खर्ग—संज्ञा पुं. [हिं. खड्ग] तलवार ।

खर्च—संज्ञा पुं. [अ. खर्ज, खर्च] (१) व्यय, काम में लगना । उ.—कहा भयौ मेरो गृह माटी को । हौं तो गयो हुतो गुपालहिं भेंटन और खर्च तदुल गाँठी को —१० उ.-७१ ।

मुहा.—खर्च उठाना — खर्च करना । खर्च निर्वाह करना ।

(२) धन जिसे व्यय करके काम चलाया जाय ।

खर्चना—क्रि. स. [हि. खर्च] व्यय करना ।

खर्चीला—वि [हि. खर्च] बहुत खर्चनेवाला ।

खर्पर—संज्ञा पु. [सं.] (१) तसले की तरह का भिक्षा-पात्र । (२) काली देवी का पात्र जिसमें वे रुधिर पान करती है ।

खर्ब—वि. [सं. खर्व] (१) जिसका अंग भंग हो । (२) छोटा, लघु । (३) वामन, बौना ।

संज्ञा पु —(१) सौ अरब की संख्या । (२) नौ निधियों में एक ।

खर्रा—संज्ञा पुं. [अनु] (१) लंबा कागज जिस पर बहुत विस्तार से लेख लिखा जा सके ।

खर्राट—वि. [हिं. खुर्राट] (१) होशियार, अनुभवी । (२) वृद्ध ।

खर्राटा—संज्ञा पुं. [अनु.] सोते समय नाक से होनेवाला खर खर का शब्द ।

खर्‍यौ—वि. [स. खर = तीक्ष्ण, हिं. खरा] (१) बहुत, अधिक, खूब । उ.—यहि अन्तर यमुना तट आए स्नान दान कियौ खर्‍यौ—२५५२ ।

खर्व—वि. [स.] (१) अपूर्ण अंग का । (२) छोटा, लघु । (३) वामन, बौना ।

संज्ञा पुं [सं.] (१) सौ अरब की संख्या, खरब । (२) नौ निधियों में एक ।

खल—वि. [सं.] (१) अधम, दुष्ट, दुर्जन, पापी। (२) धोखा देनेवाला। (३) क्रूर।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) पृथ्वी। (३) बादल।
मुहा.—खल भई—पिस गयी, चूर चूर हुई। उ.—खल भई लोक लाज कुल कानी।
संज्ञा पुं [स. खल = खरल] पत्थर का टुकड़ा। उ.—इहै मान यह सूर महा सठ हरि नग बदलि महा खल आनत।

खलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खल + ई (प्रत्य.)] दुष्टता।

खलक—संज्ञा पुं. [अ. ख़लक़] (१) प्राणी। (२) संसार।

खलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुष्टता, नीचता।

खलना—क्रि अ. [स. खर = तीक्ष्ण] बुरा लगना।
क्रि. स. [हिं. खल या खरल] (१) खरल में कूटना। (२) नाश करना, पीसना।

खलबल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हलचल। (२) शोर। (३) कुलबुलाहट।

खलबलाना—क्रि अ [हिं. खलबल] (१) खौलाना। (२) हिलना-डोलना। (३) विचलित हो जाना।

खलबली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खलबल] (१) हलचल। (२) घबड़ाहट।

खलल—संज्ञा पुं. [अ ख़लल] बाधा, रुकावट।

खलाइत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाल + इत (प्रत्य)] धौंकनी।

खलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खल + ई(प्रत्य.)] दुष्टता।

खलाना—क्रि स. [हिं. खाली] (१) खाली करना। (२) गड्ढा बनाना। (३) धँसाना, दबाना, पचाना।

खलार—वि. [हिं. खाली] नीचा, गहरा।

खलास—वि. [अ.] (१) मुक्त, स्वतंत्र। (२) समाप्त। (३) गिरा हुआ।

खलासी—संज्ञा स्त्री. [हिं खलास] मुक्ति, छुटकारा।

खलित—वि [स. स्खलित] (१) चलायमान, चचल, डिगा हुआ। उ.—डोलत महि अधीर भयौ फनिपति कूरम अति अकुलान। दिग्गज चलित, खलित मुनि आसन, इंद्रादिक भय मान—६-२६। (२) पतित।

खलियान, खलिहान—संज्ञा पुं. [सं. खल + स्थान] (१) स्थान जहाँ फसल रखी और माँड़ी जाय। (२) ढेर, राशि।

खलियाना—क्रि. स. [हिं. खाल] खाल अलग करना।
क्रि. स. [हिं. खाली] खाली करना।

खली—संज्ञा स्त्री. [सं. खलि] तेलहन की सीठी या फोकट।
वि. [हिं. खलना] जो बुरी लगे।
संज्ञा पु. [सं. खलिन्] महादेव।

खलीज—संज्ञा स्त्री [अ.] खाड़ी, उपसागर।

खलीता—संज्ञा पुं [हिं. खरीता] (१) थैली। जेब।

खलीफा—संज्ञा पुं [अ. खलीफा] (२) अधिकारी। (२) खानसामा। (३) नाई।

खलु—क्रि. वि. [सं.] (१) प्रार्थना। (२) निषेध। (३) निश्चय, अवश्य।

खलेल—संज्ञा पुं. [हिं. खली + तेल] फुलेल में मिला हुआ खली जैसे पदार्थों का वह अंश जो छानने पर निकलता है।

खल्ल—संज्ञा पु. [सं.] (१) चमड़ा। (२) चातक। (३) खरल।

खल्लड़—संज्ञा पु. [सं. खल्ल] (१) चमड़े की मशक। (२) खरल। (३) वह वृद्ध जिसका चमड़ा झूल गया हो।

खल्व—संज्ञा पुं. [स.] एक रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

खल्वाट—संज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिस में सिर के बाल गिर जाते हैं।
वि.—गंजा, जिसके सिर के बाल गिर गये हो।

खवा—संज्ञा पुं [सं. स्कंध] कंधा।

खवाइ—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाकर। उ.—संग खाइ खवाइ अपने सोच तो इतनौ दियो—३२६०।

खवाई—क्रि. स. [हिं. खाना, खवाना] खिलाने पर, खिलाने के पश्चात। उ.—पोषै ताहि पुत्र की नाई। खाहिं आप तब, ताहि खवाई—५-३।

खवाए—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाया, खिला दिये। उ.—नैन देखि चकृत भई क्यों पान खवाए—२७३६।

खवाना—क्रि. स. [हिं. खाना] खिलाना।

खवायौ—क्रि. स. [हि. खाना, खिलाना] खिलाया, खाने में लगाया। उ.—माखन खाइ, खवायो ग्वालनि, जो उबर्यौ सो दियो लुढाइ—१०-३०३।

खवारा—वि. [हिं. खराब] (१) खोटा, बुरा। (२) अनुचित।

खवावत—क्रि. स [हिं. खवाना] खिलाते हैं, भोजन कराते हैं। उ.—(क) कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मैं लौनी लिए खवावत—१०-११७। (ख) जाको राज-रोग कफ बाढत दह्यौ खवावत ताहि—३१४६।

खवावन—क्रि. स. [हिं. खाना, खिलाना] खिलाना, भोजन कराना। उ.—माखन माँगि लियौ जसुमति सौं। माता सुनत तुरत लै आई, लगी खवावन रति सौं—१०-३१२।

खवावहु—क्रि. स. [हि. खिलाना] खिलाओ। उ.—कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक लवनी ताहि खवावहु—१०-१७६।

खवावै—क्रि. स. [हिं. खाना] खिलाता है, भोजन कराता है। उ.—कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै—१०-१८६।

खवावौं—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाऊँ, खाने को दूँ। उ.—तब तंमोल रचि तुमहि खवावौं—१०-२११।

खवास—संज्ञा पुं. [अ. खवास] (१) राजाओं-रईसों का खिदमतगार। उ.—मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—१-१४१। (२) राजसेवक। उ.—कहि खवास कौं सैन दै सिरपाव मँगायौ—२४७६। (३) नाई (४) मंत्री।

खवासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खवास + ई (प्रत्य.)] (१) खवास का काम। उ.—इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत खवासी—३०८६। (२) सेवा, चाकरी। (३) खवास के बैठने का स्थान।

खवास्यौ—संज्ञा पुं. [हिं खवास] मंत्री। उ.—तुम हौ निपट निकट के बासी सुनियत हुए खवास्यौ।

खवैया—संज्ञा पु. [हि. खाना + वैया (प्रत्य.)] खानेवाला। उ.—खाटी मही कहा रुचि मानो सूर खवैया घी को—३२५१।

खस—संज्ञा पुं. [सं] (१) गढ़वाल प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) इस प्रदेश की एक प्राचीन जाति।

संज्ञा स्त्री. [फा खस] गाँडर घास की जड़ जो बहुत सुगंधित होती है।

खसकंत—संज्ञा स्त्री. [हि. खसकना + अंत] खिसकने की क्रिया।

खसकना—क्रि. अ. [हि खिसकना (अनु.)] (१) स्थान जरा सा हट जना। (२) चले जाना।

खसकाना—क्रि. स. [हिं. खसकना] (१) सरकाना। (२) जाने को प्रेरित करना।

खसखस—संज्ञा स्त्री. [सं. खसखस] पोस्ते का दाना।

खसखसा—वि. [अनु.] भुरभुरा।

वि. [हिं. खसखस] बहुत छोटा।

खसखाना—संज्ञा पु. [फा खस + खाना] खस की टट्टियों से घिरा स्थान।

खसखसी—संज्ञा पुं. [हि. खसखस] पोस्ते के फूल का हल्का आसमानी रंग।

वि.—पोस्ते के फूल की तरह हल्के आसमानी रंग का।

खसत—क्रि. अ. पुं. [हिं. खसना] खिसकते हैं, सरककर गिरते हैं। उ.—फूल खसत सिर ते भए न्यारे सुभग स्वाति-सुत मानो—पृ० ३४६ (४३)।

खसति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. खसना] खिसकती है, सरककर गिरती है। उ.—बिहँसि बोले गोपाल सुनि री ब्रज की बाल उछंग लेत कत धरनि खसति—१८६६।

खसना—क्रि. अ. [हि. खिसकना] (१) स्थान से हटना। (२) खिसक कर गिरना।

खसबो—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुशबू] सुगंध।

खसम-संज्ञा पुं.[अ.] (१) पति। उ.—(क)जियत खसम किन भसम रमायो। (ख) गुप्त प्रीति तासौं करि मोहन, जो है तेरी दैया। सूरदास प्रभु झगरो सीख्यौ, ज्यौं घर खसम गुसैंयाँ—७३४। (२) स्वामी, मालिक।

खसाना—क्रि. स. [हिं. खसना] नीचे गिरना।

खसि—क्रि. अ. [हिं. खसना] (१) स्खलित होकर। उ.—रुद्र कौ वीर्य खसि कै पर्यौ धरनि पर, मोहिनी

रूप हरि लिया दुराई—८-१० । (२) खिसककर, गिरकर । उ.—(क) खसि मुद्रावलि चरन अरुझी गिरी धरनि बलहीन—३४५१ । (ख) खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तें सुसुकि सुसुकि मन खीझै —१०-१६० ।

खसिया—संज्ञा स्त्री [देश.] (१) आसाम की एक पहाड़ी । (२) इस पहाड़ी का समीपवर्ती प्रदेश ।

वि. [अ ख़स्सी] (१) जिसके अंडकोश निकाले गये हों, बधिया । (२) नपुंसक । (३) बकरा ।

खसी—संज्ञा पु० [अ. खस्सी] बकरा ।

वि. [हिं. खसिया] नपुंसक ।

खसीस वि [अ खसीस] कंजूस ।

खसु—क्रि. अ. [हि. खसना] हटकर, खिसककर ।

यौ—खसु दीन्हौ—हटा लिया, खिसका लिया । उ.—सूर स्याम देख्यौ अहि व्याकुल खस दीन्हौ, मेटे त्रय ताप—५५६ ।

खसे, खसै—क्रि. अ. [हिं खसना] (१) गिरे, खिसके। उ. " भूषन खसे सुरत बस दोऊ वेसन आपु सँवारे —१०११ सार. ।

मुहा.—बार न खसै—बाल बाँका न हो, जरा भी अनिष्ट न हो । उ.—न्हात बार न खसै इनको कुसल पहुँचै धाम—२५६५ । केस खसै—अनिष्ट या अमंगल हो । उ —जाकौं मनमोहन अग करै । ताकौ केस खसै नहिं सिर तें जौ जग बैर परै—१-३७ ।

(२) दूर हो जाय, समाप्त हो जाय । उ.—तन-मन-धन जोबन खसै (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५ ।

खसो—क्रि. अ. [हिं. खसना] खिसको, सरको, गिरो ।

मुहा.—बार खसो—अनिष्ट हो, अमंगल हो । उ.—हम दिन देत असीस प्रात उठि बार खसो मत न्हातें—३०२४ ।

खसोट—संज्ञा स्त्री. [हिं खसोटना] (१) उखाड़ने-नोचने की क्रिया । (२) छीनने की क्रिया ।

खसोटना—क्रि. स [सं. कृष्ट] (१) उखाड़ना, नोचना । (२) बलपूर्वक छीनना ।

खस्ता—वि. [फा. खस्तः] बहुत मुलायम, जो जरा से दबाव से टूट जाय ।

खस्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं खसकना] अपने स्थान से हटा, खिसका, गिरा, नष्ट हुआ । उ.—(क) जैसैं सुलहीँ तन बढ्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग । धूम बढ्यौ, लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझत अंग—१-३२५ । (ख) जननी मथि, सनमुख संकर्षन, खैंचत कान्ह खस्यौ सिर-चीर—१०-१६१ ।

खाँखर—[हिं खोंख] (१) छेददार । (२) खोखला, पोला ।

खाँग—संज्ञा पुं. [सं खड्ग, प्रा. खग्ग] (१) काँटा । (२) गैंडे के मुँह पर का सींग ।

संज्ञा स्त्री [हिं. खँगना] कमी ।

खाँगना—क्रि. अ. [सं. खंज, हिं खोंड़ा] लँगड़ा ।

क्रि. अ. [हिं. छीजना] कम होना ।

क्रि. स.—छेदना ।

खाँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खँगना] कमी, त्रुटि, घटी ।

खाँच—संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१) दो वस्तुओं के बीच की संधि । (२) खींचा हुआ निशान । (३) गठन ।

खाँचना—क्रि. स. [स. कर्षण या कसन=खींचना, अथवा खचन=बैठाना] (१) चिह्न बनाना, अंकित करना । (२) खींच खींच कर (कसते हुए कोई वस्तु) बनाना । (३) जल्दी लिखना ।

खाँचा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१)झाबा । (२) बड़ा पिंजड़ा । (३) गड्ढा ।

खाँची—क्रि. स. [हि खाँचना] (१) खींचकर अंकित करके, चिह्नित है, खिंची है । उ.—(क) सूरदास भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची—१-१८ । (ख) जाके हृदय जौन कहै मुख ते तौन कैसे हरि को न कहि लीक खाँची—१२८८ ।

मुहा०—कहति लीक मैं खाँची । लीक खींच कर कहती हूँ, प्रतिज्ञापूर्वक कहती हूँ जो कहती हूँ, वह सत्य है, अटल है । उ.—सूर स्याम तेरे बस राधा कहति लीक मैं खाँची-१४७५ ।

(२) लिखना, लिखकर ।

संज्ञा स्त्री. [हि. खाँचा] छोटा झाबा, डलिया, खँची।

खाँचै—क्रि. स. [हि. खाँचना] अंकित करता है, खींचता है, चिह्न बनाता है, विचलित करता है। उ.—सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हर्ष-सोक नहिं खाँचै—१-८१।

खाँड़—संज्ञा स्त्री. [सं० खंड] कच्ची शकर। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई। फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई—१-६३। (ख) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड़ सरस रस बोरे—१०-१८३।

खाँड़ना—क्रि. स. [सं. खंड=टुकड़ा] चबाकर खाना।

खाँडर—संज्ञा पुं. [सं. खंड] टुकड़ा, कतला।

खांडव—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन वन जिसे अर्जुन ने जलाया था और जिसके स्थान पर इंद्रप्रस्थ नगर बसाया गया था।

खांडविक—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।

खाँड़ा—संज्ञा पु. [सं. खड्ग] (१) खड्ग। (२) खड्ग की तरह का एक अस्त्र।

संज्ञा पु. [सं. खंड] भाग, टुकड़ा।

खांडिक—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।

खाँड़ौंगी—क्रि. स. [सं. खंड या खंडन, हि. खाँडना] चबाऊँगी, (दाँत से) काटूँगी। उ.—मेरे इनके कोउ बीच परौ जिनि अधर दसन खाँड़ौंगी—१५११।

खाँधना—क्रि. स. [सं खादन] खाना।

खाँधो—क्रि. स. [हि. खाँधना] खाया। उ.—नैन नासिका मुख नहीं चोरि दधि कौनै खाँध्यो—३४४३।

खाँपना—क्रि. स. [स. क्षेपन, प्रा. खेपन] (१) खाँसना। (२) जड़ना।

खाँभ—संज्ञा पुं [स. स्तंभ, हि. खंभा] खंभा।

संज्ञा पु. [हि. खाम] (१) लिफाफा। (२) थैली।

खाँभना—क्रि. स. [हिं. खाम] लिफाफे या थैली में बंद करना।

खाँवाँ—संज्ञा पुं [स. खं.] बहुत चौड़ी खाई।

संज्ञा पुं. [देश०] एक पौधा।

खाँसना—क्रि. अ. [स कासन, प्रा. खाँसन] कफ आदि निकालने के लिए वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालना।

खाँसी—संज्ञा स्त्री. [सं. काश, कास] (१) खाँसने की क्रिया। (२) खाँसने का रोग।

खाइ—क्रि. स. [हि. खाना] (१) खा लेना, भोजन करना। उ.—(क) खाइ न सकै, खरच नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी—१-३६। (ख) प्रभु-वाहन डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ—५७३।

मुहा.—धाइ धाइ खाइ—खाने दौड़ता है। उ.—भूमि मसान विदित ए गोकुल मनहु धाइ धाइ खाइ—२७००।

(२) काटने से, डसे जाने से। उ.—मैया एक मन्त्र मोहि आवै। बिषहर खाइ मरै जो कोऊ मोसौ मरन न पावै—७५६।

खाई—क्रि. स. [हि. खाना] (१) भक्षण की, पेट में डाली। उ.—पाँचौ देखि प्रगट ठाढे ठग, हठनि ठगौरी खाई—१-१८७। (२) विषैले कीड़े (जैसे सर्प) ने काट लिया, डस लिया। उ.—(क) ताकी माता खाई कारैं। सो मरि गई साँप के मारैं—७-८। (ख) गई मुरछाइ, परी धरनी पर मनौं भुअंगम खाई—१०-५२। (ग) लागे हैं बिसारे बान स्याम बिनु जुग जाम घायल ज्यौं घूमैं मनौं विषहर खाई हैं—२८२७।

संज्ञा स्त्री. [सं खानि, प्रा. खाई] किले, महल आदि के चारों ओर रक्षा के उद्देश्य से खोदी गयी नहर। उ.—(क) लंका फिरि गई राम दुहाई। · · दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैं सौ जोजन की खाई—६-१४०। (ख) पश्चिम देस तीर सागर के कंचन कोट गोमती सी खाई—१०उ.-६२।

खाउँ—वि. [हिं. खाऊ] बहुत खानेवाला।

मुहा.—खाउँ खाउँ करै—खाने के लिए रिरियाता है। उ.—मचला, अलकैं-मूल, पातर, खाउँ खाउँ करै भूखा—१ १८६।

खाऊँ—क्रि. स. [हिं. खाना] खा जाऊँ, भक्षण कर लूँ। उ.—कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाहिं न राम—६-१४८।

खाऊ—वि. [हिं. खाना + ऊ (प्रत्य.)] (१) खूब खाने वाला। (२) दूसरे का धन हड़पनेवाला। (३) खूब रिश्वत लेनेवाला। (४) खूब उड़ाऊ।

खाए—क्रि. स. [हि. खाना] 'खाना' का भूत०, बहु०, भोजन किये, भक्षण किये। उ.—पट कुचैल, दुर-बल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)—१-७।

खाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. खाना] खाने से, खा लेने पर। उ.—सूर मिटे अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाएँ—६-१३२।

खाक—संज्ञा स्त्री [फा. ख़ाक] (१) धूल, गर्द, भस्म।

मुहा.—खाक उड़ना - उजाड़ होना, नाश होना। खाक उड़ैहै—(१) खाक उड़ेगी, नाश होगा, उजाड़ हो जायगा। (२) धूल बनकर उड़ जायगा। उ.—या देही कौं गरब न करिये, स्यार काग गिध खैहैं। तीननि मैं तन कृमि, कै विष्ठा, कै ह्वै खाक उड़ैहै—१-८६। खाक उड़ाना-(१) मारे मारे फिरना। (२) (दूसरे की) हँसी उड़ाना। खाक करना—नाश कर देना। खाक चाटना—खुशामद करना। खाक छानना—(१) मारे मारे फिरना। (२) बहुत ढूँढ़ना। खाक डालना—(१) छिपाना। (२) भूल जाना। खाक सिर पर डालना—रोना-पीटना। खाक बरसना—बरबाद हो जाना। खाक मे मिलना—नाश होना।

(२) तुच्छ, साधारण। (३) जरा भी नहीं, नाम को भी नहीं।

खाकसार—वि. [फा. खाकसार] (१) जो धूल में मिला हो। (२) तुच्छ, अकिंचन (नम्रतासूचक)।

खाका—संज्ञा पुं [फा. ख़ाकः] (१) नकशा, चित्र का ढाँचा।

मुहा.—खाका उड़ाना—(१) नकल बनाना। (२) निंदा करना।

(३) खर्च के अनुमान का ब्योरा। (४) कच्चा चिट्ठा।

खाकी—वि. [फ़ा. ख़ाकी] (१) भूरा। (२)जो (भूमि) सिंची न हो।

संज्ञा पुं [फा ख़ाक] साधु जो सारे शरीर में राख मलते हैं।

खाख—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाक] धूल, मिट्टी, राख, भस्म। उ.—मृगमद मिलै कपूर कुमकुमा केसनि मलया खाक—३३२१।

खाखरा—संज्ञा पुं. [देश०] एक बाजा।

खाग—संज्ञा पुं. [हिं. खाँग] चुभती है, गड़ती है। उ.—नासा तिलक प्रसून पदवि पर चिबुक चारु चित खाग। दाड़िम दसन मंदकति मुसकनि मोहत सुर नर नाग—१३१४।

खागना—क्रि. अ. [हि. खाँग = काँटा] चुभना, गड़ना।

क्रि. अ. [हिं. खाँगना] कम होना।

खागी—क्रि. अ. [हिं. खागना] चुभी, गड़ी।

क्रि. अ. —[हिं. खाँगना] घटी, कम हुई।

खाज—संज्ञा स्त्री. [सं. खर्जु] खुजली। उ.—पूरे चीर भीर तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज। काढि काढि थाक्यौ दुरसासन, हायनि उपजी खाज—१-२५५।

मुहा०—कोढ की खाज—दुख या विपत्ति को अधिक बढ़ानेवाली वस्तु।

खाज—संज्ञा पुं. [सं. खाद्य, पा. खज्ज] (१) खाद्य पदार्थ। (२) मैदे की एक मिठाई। (३) एक पेड़।

खाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाजा] (१) भक्ष्य या खाद्य पदार्थ। उ.—बातैं पै रहि रहति कहन कौं सब जग-जात काल की खाजी। (२) एक मिठाई।

मुहा०—खाजी खाना—मुँहकी खाना, बुरी तरह लज्जित होना।

खाझा—संज्ञा पुं. [हि. खाजा] एक मिठाई जो बारीक मैदे की बनती है।

खाट—संज्ञा स्त्री. [सं. खट्वा) चारपाई, खटिया।

यौ० —खाट खटोला—बोरिया - बँधना, कपड़ा-लत्ता।

मुहा०—खाट (पर) पड़ना—बीमार होना। खाट (से) लगना—लंबी बीमारी से बहुत दुबला हो जाना। खाट से उतारना—मरणकाल निकट आ जाना।

खाटा, खाटी—वि. स्त्री. [हिं. खट्टा] खट्टी। उ.—(क) सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी खाटी—१०-२५४। (ख) आई उघरि प्रीति कलई सी

जैसी खाटी आमी—३०८० ।

खाटे—वि. [हिं. खट्टा] खट्टे, तुर्श, अम्ल । उ.—भिल्लिनि के फल खाए, भाव सौ खाटे-मीठे खारे —१-२५ ।

खाटो, खाटौ—वि. [हिं. खट्टा] तुर्श, अम्ल, खट्टा । उ.—अति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात बिचारौ । करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ —१-१५५ ।

खाड़—संज्ञा पुं. [सं खात] गड्ढा, गर्त । उ.—पुनि कमंडल धरयौ, तहाँ सो बढ़ि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ । धरयौ खाड़, तालाब मैं पुनि धर्यौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ–८-१६ ।

खाड़व—संज्ञा पुं. [सं षाड़व] एक राग ।

खाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाड़] समुद्र का भाग जिसके तीन ओर पृथ्वी हो ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खाड़] अरहर का सूखा पेड़ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काढना] अंतिम बार निकाला हुआ रंग ।

खाड़ू—वि [हिं० खाँड़] मीठा । उ.—घी, खाँड़, घृत, लावनि लाडू । ऐसे होहि न अमृत खाँडू–३६६ ।

संज्ञा पुं. [हिं. खड] पतली लकड़ियाँ जिनपर खपड़े रखे जाते हैं ।

खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खादर] नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी कुछ दिनों तक भरा रहे ।

खात—क्रि. स [सं. खादन, पा. खाअन, खान; हिं. खाना] (१) खाता है, भक्षता है । उ —जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति । बिषय-बिष हठि खात नाहीं, डरत करत अनीति—१-१०६ । (२) सहता है, प्रभाव पड़ता है । उ.—भव-सागर मैं पैरि न लीन्हौ ।······। अति गंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं बिधि उतरयौ जात ? नहीं अधार नाम अवलोकत, जित तित गोता खात—१-१७१ ।

मुहा०— धाइ धाइ खात—खाने दौड़ता है । उ.—अब ए भवन देखियत सूनो धाइ धाइ व्रज खात —२७७६ ।

संज्ञा पुं. [सं] (१) खोदने की क्रिया । (२) तालाब । (३) कुआँ । (४) खाद का गड्ढा ।

संज्ञा स्त्री.—वह स्थान जहाँ मद्य तैयार करने के लिए महुआ रखा जाता है ।

वि—मैला, गंदा ।

खातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तलैया । (२) खाई । (३) कर्जदार, ऋणी ।

खातमा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ातमा] (१) अंत । (२) मृत्यु ।

खाता—संज्ञा पुं. [हिं. खाना] खानेवाले । उ.—तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता—१-१२३ ।

संज्ञा पुं. [सं. खात] अन्न रखने का गढ़ा, बखार।

संज्ञा पुं. [हिं. खत] (१) आयव्यय आदि लिखने की बही ।

मुहा०—खाता खोलना—नया संबंध होना । खाता डालना—लेन-देन शुरू करना ।

(२) मद, विभाग ।

खातिर—संज्ञा स्त्री [अ. खातिर] आदर-सत्कार ।

अव्य०— लिये, वास्ते ।

खातिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खातिर] (१) आदर-सत्कार । (२) संतोष ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] नदी किनारे की फसल ।

खाती—संज्ञा स्त्री. [सं खात] (१) खोदी हुई भूमि । (२) छोटा ताल । (३) बढ़ई ।

संज्ञा पुं.—खोदने का काम करनेवाली जाति ।

खातो, खातौ—क्रि. स. [हिं. खाना] (१) खाता है, भोजन करता है । उ.—साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ । सूरदास कछु फिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ—१-३०२ । (२) डस लेता, काट खाता । उ.—आजु सबनि धरिकै वह खातौ धनि तुम हमहि बचाये—२३६६ ।

खाद—वि. [सं. खाद्य] खानेयोग्य, भोज्य, भक्ष्य । उ.—खाद-अखाद न छाँड़ै अब लौं, सब मैं साधु कहावै—१-१८६ ।

संज्ञा स्त्री.—पदार्थ जिसके डालने से खेत की उपज बढ़ती है, पाँस ।

खादक—संज्ञा पुं. [स.] (१) कर्जदार, ऋणी (२) धातु की भस्म जो खायी जाती है ।

वि.—खानेवाला ।

खादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन। (२) दाँत।

खादनीय—वि. [सं] खाने योग्य।

खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खात] (१) तराई, कछार, समतल भूमि। उ.—मेघ परस्पर यहै कहत हैं धोय करहु गिरि खादर। (२) पशुओं के चरने की भूमि।

खादि—संज्ञा पुं [सं.] (१) खाने योग्य पदार्थ, खाद्य वस्तु। (२) कवच। (३) दस्ताना।

संज्ञा स्त्री. [सं. छिद्र] दोष।

खादित—वि. [सं.] खाया हुआ।

खादिम—[अ. ख़ादिम] नौकर।

खादिर, खादिरसार—संज्ञा पुं. [सं.] कत्था।

खादी—वि. [सं. खादिन्] (१) खानेवाला। (२) शत्रु का नाश करनेवाला। (३) काँटेदार।

संज्ञा स्त्री [देश.] (१) हाथ के सूत का बना मोटा कपड़ा। (२) मोटा कपड़ा।

वि. [हिं. खादि = दोष] (२) जिसमें दोष हो। (२) दोष निकालनेवाला।

खादुक—वि. [सं.] हिंसा करनेवाला।

खाद्य—वि. [सं.] खानेयोग्य, भक्ष्य।

संज्ञा पु.—भोजन।

खाध, खाधु, खाधुक—संज्ञा पुं. [सं. खाद्य] भोज्य पदार्थ।

वि. [सं. खादक] खानेवाला।

खाधे—क्रि. स. [हिं. खाना] खाया। उ.—नयन नासिका मुख न चोरि दधि कौने खाधे—३४४३।

खान—संज्ञा पु. [हिं. खाना] (१) खाना, खाने की क्रिया। उ.—(क) सूरदास प्रभु कौं घर तें लै, देहौं माखन खान—१०-२७२। (ख) गोपालहिं माखन खान दै—१०-२७४। (२) भोजन की सामग्री। (३) भोजन की रीति या आचार। उ.—कै कहुँ खान पान रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसे—१-२६३। (४) खाने के लिए, निगल जाने को, मार डालने के लिए। उ.—भूत प्रेत बैताल रच्यो बहु दौरे विधि कौ खान—६५ सारा।

मुहा०—लगत खान—खाने लगता है, खाने दौड़ता है, काटे खाता है। उ.—जिनि घरनि वह सुख विलोक्यो ते लगत अब खान—२७४६।

संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] (१) खानि, आकर। (२) आधार-स्थान, उत्पत्ति-स्थान। उ.—कुटिल-खान चपक चंचल मति सबही ते जु निनारी—३३१६। (३) निधि, कोष। (४) समूह, समाज। उ.—तहँ ते गये जु चित्रकूट को जहाँ मुनिन की खान—२४४ सारा.।

संज्ञा पु. [ता. काङ्=सरदार] (१) सरदार। (२) पठानों की उपाधि।

खानक—संज्ञा पुं. [सं. खन] (१) खान खोदनेवाला। (२) बेलदार। (३) बढ़ई।

खानगी—वि. [फा. खानगी] घरेलू, आपसी, निजी।

खानदान—संज्ञा पु. [फा.] वंश, कुल।

खानदानी—वि. [फा.] (१) ऊँचे कुल का। (२) कुल-परंपरा से चला आनेवाला, पैतृक।

खानपान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अन्न जल, भोजन और पानी, खाना-पीना। उ.—स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई। चित्त चचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई—६७८। (२) खाने-पीने का आचार-व्यवहार।

खाना—क्रि. स. [सं. खादन पा० खाअन, खान] (१) भोजन करना।

मुहा.—जिसका खाना उसे आँख दिखाना (गुर्राना)—उपकार या अहसान न मानना। खाने के दाँत और दिखाने के और—करना कुछ दिखाना कुछ। खाना न पचना—जी न मानना, चैन न मिलना।

(२) शिकार पकड़ना और भक्षण करना।

मुहा.—(कच्चा) खा जाना—मार डालना। खाने दौड़ना—बहुत झल्लाना और क्रुद्ध होना।

(३) विषैले कीड़ों का काटना। (४) कष्ट देना, तंग करना। (५) कुतरना, काटना। (६) चूसना, चबाना। (७) बरबाद करना। (८) मार लेना, हड़प जाना। (९) खर्च कर डालना। (१०) रिश्वत लेना। (११) (किसी काम में) रुपया खर्च करा देना। (१२) समाना, भरना। (१३) (बीच बीच में) कुछ छोड़ देना। (१४) सह लेना, बरदाश्त करना।

मुहा.—मुँहकी खाना—(१) बुराई के बदले में नीचा देखना। (२) बुरी तरह हार जाना।

संज्ञा पुं [फ़ा. ख़ाना] (१) घर, मकान। (२) कोई चीज रखने का घर। (३) अलमारी, मेज आदि का विभाग। (४) कोष्टक। (५) संदूक।

खानाज़ाद—वि. [फ़ा. ख़ानाजाद] जो घर में पैदा हुआ या पाला-पोसा गया हो।

संज्ञा. पुं.—सेवक, दास। उ.—मन बिगरयौ ये नैन बिगारे।......। ए सब कहौ कौन हैं मेरे खानाजाद बिचारे—पृ० ३२०।

खानि—संज्ञा स्त्री. [स. खानि] (१) खानि, आकार, खदान। उ.—सूर एक ते एक आगरे वा मथुरा की खानि—३०५१। (२) वह स्थान या व्यक्ति जहाँ या जिसमें किसी वस्तु की अधिकता हो, खजाना। उ.—(क) जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल बिधि बिषम, खलमल-खानि—१ ७७। (ख) उघरि आये कान्ह कपट की खानि—३२५०। (३) ओर, तरफ। (४) प्रकार, रीति।

खानिक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खान] खान, आकर, खदान।

खानी—संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] राशि, समूह, खजाना। उ.—आलस भरे नैन, सकल सोभा की खानी—१०-४४१

खापट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपाटा] कड़ी भूमि।

खापर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खापट] (१) कड़ी भूमि। (२) ऊँची-नीची भूमि।

खाब-संज्ञा पुं. [फा. ख्वाब] स्वप्न।

खाबड़, खूबड़—वि. [अनु.] ऊँचा-नीचा।

खाम—संज्ञा पुं [हिं. खामना] (१) चिट्ठी का लिफाफा। (२) जोड़, टाँका।

संज्ञा पुं. [हिं. खंभा] (१) खंभा। (२) मस्तूल।

वि. [सं. क्षाम] घटनेवाला।

वि. [फा. ख़ाम] (१) कच्चा। (२) जो दृढ़ न हो। (३) जो अनुभवी न हो।

खामना—क्रि. स. [सं. स्कंभन्=मूँदना, रोकना, प्रा. खंभन] (१) मिट्टी, आटे या मैदा से पात्र का मुँह बन्द करना। (२) लिफाफा बन्द करना।

खामी—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़ामी] (१) कच्चापन। (२) कमी। (३) अनुभवहीनता।

खामोश—वि. [फा. ख़ामोश] चुप।

खामोशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ामोशी] चुप्पी।

खायो, खायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. खाना] (१) भोजन किया, भक्षण किया, खाया। उ.—काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित हैं, विषय परम बिष खायौ—१-१११। (२) विषैले कीट का काटना या डसना। उ.—माया बिषम भुजंगिनि कौ बिष, उतरयौ नाहिन तोहिं।......। बहुत जीव देह अभिमानी, देखत ही इन खायौ—२-३२।

खार—वि. [स. क्षार, हिं. खारा] (१) खारी, क्षार या नमक के स्वाद का। (२) अरुचिकर, अप्रिय, अशुद्ध। उ.—जमुना तोहिं बह्यौ क्यौं भावै। तो मैं हेलुवा खेलै सो सुरत्यौ नहिं आवै। तेरो नीर सुची जो अब लौं खार पनार बहावै—५६१।

यौ.—नीर-खार—समुद्र। उ.—कहौ तौ परवत चाँपि चरन तर नीर खार मैं गारौं—६-१०७।

संज्ञा पुं.—(१) लोना, रेह। (२) धूल, राख। (३) एक झाड़ी। (४) छोटा तालाब, डबरा। उ.—(क) दई न जात खार उतराई चाहत चढन जहाज। (ख) पुनि पाछे अघ-सिंधु बढत है सूर खार किन पाटत।

संज्ञा पुं. [फा. ख़ार] (१) काँटा, फाँस। (२) खाँग। (३) डाह, जलन।

मुहा — खार खाना—जलना, बुरा लगना।

खारक—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक, प्रा. खारक] छोहारा।

खारा—वि. पुं. [सं. क्षार] (१) नमक के स्वाद का। (२) अरुचिकर, अप्रिय, अशुद्ध।

संज्ञा पुं. [सं. क्षार] (१) एक धारीदार कपड़ा। (२) जालदार बँधना। (३) थैला। (४) टोकरा। (५) बाँस का बड़ा पिटारा।

खारि—वि. [हि. पुं. खार] (१) नमक के स्वाद का। उ.—खारि समुद्र छाँड़ि किन आवत निर्मल जल जमुना को पीजो—१०उ. ९५। (२) अरुचिकर।

खारिक—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक] छोहारा, खारक। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख, रस सीरा—१० २११।

खारिज—वि० [अ. ख़ारिज] (१) निकाला हुआ। (२) अलग। (३) जिसकी सुनवाई न हो।

खारी—वि. [हिं. पुं. खार] (१) नमकीन । उ.—निर्मल जल जमुना को छाँड्यो सेवत समुद्र जल खारी —१० उ.-६७ । (२) अरुचिकर ।

संज्ञा स्त्री. [हि. खारा] एक तरह का खार, लवण ।

खारुआँ, खारुवा—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक] (१) एक प्रकार का रंग । (२) इस रंग से रँगा कपड़ा ।

खारे—वि. पुं. [सं. क्षार, हिं. खारा] (१) नमकीन । नमक के स्वाद का, खारी । उ.—(क) मधु मेवा पकवान मिठाई, व्यंजन खाटे, मीठे, खारे—१०-२६६ । (ख) जेहि मुख सुधा स्याम रस अँचवत अब पीवै जल खारे—३ ६८ । (२) कड़ुआ, अरुचिकर । उ.—भिलिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे —१-२५ ।

खारो,खारौ—वि. [हिं. खारा] (१) नमक के स्वाद का, खारी । उ.—याकौ कहा परेखौ-निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ-६-३६ । (२) कड़ुआ, अरुचिकर । उ.—कहौं कहा कछु कहत न आवै, औ रस लागत खारौ री- १०-१३५ । (३) बुरा, अनुचित । उ.—करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटो, खारौ—१-१५२ ।

खाल—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षाल, प्रा. खाल] (१) चमड़ा, त्वचा ।

मुहा.—खाल उड़ाना (उधेड़ना, खींचना)—बहुत मारना-पीटना । खाल कढ़ाइ—खाल उधड़ाना या खिंचवाना, कड़ा दंड दिलवाना । उ.—दिन दिन इनकी करौं बड़ाई, अहिर गए इतराइ । तौ मैं जो वाही सों कहिकै इनकी खाल कढ़ाइ—२५७८ ।

(२) मृत शरीर । उ.—कहि तू अपने स्वारथ सुख को रोकि कहा करिहै खलु खालहि—१०-८०२ । (३) धौंकनी । (४) देह, शरीर । (५) किसी चीज का मिला-जुला आवरण ।

संज्ञा स्त्री. [सं. खात या अ खाली] (१) नीची भूमि । (२) खड्ड । (३) खाली जगह । (४) गहराई ।

खालसा—वि. [अ. खालिस = शुद्ध] (१) जिस पर एक ही का अधिकार हो । (२) सरकारी, राजकीय ।

संज्ञा पुं.—सिक्खों का एक संप्रदाय ।

खाला—वि. [हिं. खाल - खाली] नीचा, निचला ।

संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ालः] माँ की बहिन, मौसी ।

खालिक—संज्ञा पुं. [अ. ख़ालिक] रचनेवाला, स्रष्टा ।

खालिस—वि. [अ. ख़ालिस] असली, शुद्ध ।

खाली—वि. [अ. ख़ाली] (१) जो भरा न हो, रीता । (२) जिसपर कुछ रखा न हो । (३) जहाँ कोई न हो ।

मुहा—खाली हाथ होना—पास में धन, अस्त्र-शस्त्र या काम न होना । खाली पेट-बिना कुछ खाये ।

(४) हीन, रहित । (५) व्यर्थ, निष्फल । उ.—पुनि लछमी हित उद्यम करै । अरु जब उद्यम खाली परै । तब वह रहै बहुत दुख पाई—३-१३ ।

मुहा.—निशाना (वार) खाली जाना—लक्ष्य चूक जाना । बात खाली जाना—वादा झूठा होना । खाली दिन—वह दिन जब कोई शुभ कार्य आरंभ करना मना हो ।

(६) जो किसी काम में न लगा हो ।

मुहा.—खाली बैठना-(१) काम न करना । (२) बेरोजगार होना ।

(७) जिससे काम न लिया जा रहा हो ।

क्रि. वि.—केवल, सिर्फ ।

संज्ञा पुं.—वह ताल जो खाली छोड़ दिया जाय ।

खालीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाल] चमड़ी, खाल ।

खाले—संज्ञा स्त्री [हि खाला] निचाई, गहराई ।

वि. [हिं. खाल या खाली] नीचा, निचला ।

क्रि. वि.—नीचे ।

खाव—संज्ञा स्त्री. [स. खात] खाली जगह ।

खाविंद—संज्ञा पु. [फा. खाविंद] (१) पति । (२) स्वामी ।

खास—वि. [अ. खास] (१) विशेष, मुख्य । (२) निजी, आत्मीय । (३) स्वयं । (४) ठेठ, विशुद्ध ।

खासा—संज्ञा पुं [अ.] (१) राजा का भोजन । (२) राजा का घोड़ा या हाथी । (३) एक सफेद सूती कपड़ा ।

वि. पुं [अ. ख़ास] (१) अच्छा भला । (२) स्वस्थ । (३) सुन्दर । (४) भरा पुरा ।

खासियत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) स्वभाव। (२) गुण। (३) विशेषता।

खाँहिं, खाहीं—क्रि. स [हि. खाना] खाते हैं, भोजन करते हैं। उ -हंस उज्ज्वल, पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिं। मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिं—१-३३८। (ख) बारम्बार सराहिं सूर प्रभु साग-विदुर घर खाहीं—१-२४१।

खाहु—क्रि. स. [हिं. खाना] खाओ, खालो। उ.—बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारे, ये अमृत फल खाहु —६ ८३।

खिंचना—क्रि. अ. [सं. कर्षण] (१) घसिटना, सरकना। (२) बाहर निकलना। (३) किसी ओर बढ़ना, तनना। (४) आकर्षित होना। (५) चुस जाना, सोखा जाना। (६) भभके से अर्क आदि तैयार होना। (७) शक्ति या सार निकलना। (८) रुक जाना। (९) चित्रित होना। (१०) खपते रहना, चला जाना। (११) प्रेम कम हो जाना। (१२) दाम बढ़ जाना।

खिंचवा—वि. [हि. खींचना] खींचनेवाला।

खिंचवाना—क्रि. स. [हि. खींचना] खींचने को प्रेरित करना।

खिंचाई—संज्ञा स्त्री. [हि. खींचना] (१) खींचने की क्रिया। (२) इस काम की मजदूरी।

खिंचाना-क्रि. स. [हिं. खींचना] खींचने की प्रेरणा देना।

खिंचाव—संज्ञा पुं. [हि. खिचना] (१) खींचने का भाव। (२) तनाव।

खिंचावट, खिंचाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. खिंचना] (१) खींचने की क्रिया। (२) खींचने का भाव।

खिंचिया—वि [हिं. खींचना] खींचनेवाला।

खिंडाना—क्रि. स. [सं. क्षिप्त] फैलाना, बिखराना।

खिआल—संज्ञा पुं. [हि. खेल, खियाल] (१) खेल। (२) हँसी, विनोद।

खिखिंद खिखिंध—संज्ञा पुं. [स. किष्किंधा] मैसूर के आसपास किष्किंधा देश की एक पर्वत श्रेणी।

खिचड़वार, खिचरवार—[हिं. खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति।

खिचड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृसर] (१) मिला हुआ दाल चावल।

मुहा.—खिचड़ी पकाना—गुप्त सलाह करना। ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना—बहुमत से अलग होकर काम करना। खिचड़ी खाते पहुँचा उतरना—बहुत नाजुक होना।

(२) मिले हुए एक या अधिक पदार्थ। (३) मकर संक्रांति जब खिचड़ी दान दी जाती है।

वि.—मिला हुआ।

खिजना—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाना।

खिजमत—संज्ञा स्त्री. [हि. खिदमत] सेवा, टहल।

खिजलाना—क्रि. अ. [हिं. खिझना] झुँझलाना।

क्रि. स.—चिढ़ाना, दुखी करना।

खिजाँ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खिज़ाँ] (१) पतझड़ की ऋतु। (२) अवनति काल।

खिझ—संज्ञा स्त्री [हि. खीझ] झुँझलाहट।

खिझत—क्रि. अ. [हि. खिझना] (१) खिझाते है, झुँझलाते है। उ.—(क) जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया। (ख) जाहु घर तुरत जुवतिजन खिझत गुरुजन कहि डरवाई — पृ. ३४० (९७) (ग) मैया जब मोहि टहल कहति कछु खिझत बबा वृषभान—७२४। (२) हठ करता है। रूठता है। उ.—कहत जननी दूध डारत खिझत कछु अनखाइ।

खिझना—क्रि. अ. [स. खिद्यते, प्रा. खिज्जइत] खीझना, झुँझलाना।

खिझवै—क्रि. स. [हि. खिझाना] चिढ़ाता है, खिझाता है। उ.—यह कहति जसोदा रानी। को खिझवै सारँगपानी—१० १८३।

खिझाइ—क्रि. स. [हिं. खिझाना] खिझाकर, चिढ़ाकर, छेड़कर। उ.—हमहिं खिझाइ आपु मति खोवत या मैं कहा कहौ तुम पावत—३२६६।

खिझाई—क्रि. स. [हिं. खिझाना] चिढ़ाया (है), परेशान किया (है)। उ.—कहा करौं हरि बहुत खिझाई। सहि नहिं सकी, रिस ही रिस भरि गई, बहुतै ढीठ कन्हाई—३७७।

खिझाना—क्रि. स. [हिं. खिझना] चिढ़ाना, रुलाना, छेड़ना।

खिझायौ—क्रि. स. [हिं. खिझाना] चिढ़ाया, दिक किया। उ.—मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायौ —१०-२१५।

खिझावत—क्रि. स. [हिं. खिझाना] खिझाते हैं, चिढ़ाते हैं, दिक करते हैं। उ.—(क) ऐसें कहि सब मोहिं खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया—१०-२१७। (ख) और ग्वाल सँग कबहुँ न जैहौं, वै सब मोहि खिझावत—४२४। (ग) सूर स्याम जहँ तहाँ खिझावत जो मनभावत दूरि करो लंगर सगरी—१०४५।

खिझावन—सज्ञा पुं. [हिं. खिझाना] चिढ़ाने के लिए, दिक करने की क्रिया। उ.—ऊधो तुम यह मत लै आए। इक हम जरें खिझावन आए मानौं सिखै पठाए —३२१०।

खिझवाना—क्रि. स [हिं. खिझना] चिढ़ाना।

खिझि—क्रि. अ. [हिं. खिझना] खीझकर, चिढ़कर, झुँझलाकर। उ.—सूरदास खिझि कहति ग्वालिनी, मन मैं महरि बिचारि —१०-७६।

खिझिलाइ—क्रि. अ. [हिं. खिझाना] खीझकर, चिढ़कर। उ.—रही ताहि खिझिलाई लकुट लै एकहु डर न डरे—पृ. ३३१।

खिझी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. खिझना] चिढ़ी, खीझी। उ.—कछुक खिझी कछु हँसि कह्यौ अति बने कन्हाई—२४४१।

खिझुवर—वि. [हिं. खीझना] शीघ्र ही चिढ़ने या खीझनेवाला।

खिझौना—वि. [हिं. खिझाना] खिझानेवाला।

खिझौनी—वि. स्त्री. [हिं. खिझौना] खिझानेवाली।

खिड़कना—क्रि. अ. [हि खसकना] चले जाना, चल देना, उठ भागना।

खिड़वाना—क्रि. स [हि. खिसकना] (१) टालना, हटाना (२) निकाल डालना, बेच देना।

खिड़की—संज्ञा स्त्री. [सं. खटक्किका] (१) छोटा दरवाजा, झरोखा। (२) चोर दरवाजा। (३) इस आकार का खाली स्थान।

खित—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षिति] पृथ्वी।

खिताब—सज्ञा पुं. [अ. ख़िताब] पदवी, उपाधि।

खिताबी—वि. [अ. ख़िताबी] जिसे खिताब मिला हो।

खित्ता—संज्ञा पुं. [अ.] प्रांत, देश।

खिदमत—संज्ञा स्त्री. [फा. खिदमत] सेवा।

खिदमती—वि. [हिं. खिदमत] (१) बहुत सेवा करने वाला। (२) जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो।

खिदरबन—सज्ञा पुं. [हिं. खदिरबन] बारह बनों में एक। उ.—नंदगाम संकेत खिदरबन और कामबन धाम—१०८९ सारा०।

खिन—वि. [सं. खिन्न] उदास, दुखी, चिंतित। उ. निरखत सून भवन जह हुँ रहे, खिन लोटत धर, बपु न सँभारत —६-६२।

संज्ञा पुं. [स. क्षण] क्षण, पल। उ.—खिन मुँदरी, खिन हीं हनुमति सौं, कहति बिसूरि बिसूरि —६-८३।

मुहा.—खिन खिन—प्रति क्षण।

खिन्न—वि. [सं.] (१) उदास, चिंतित। (२) अप्रसन्न। (३) असहाय।

खिपना—क्रि. अ. [सं. क्षिप्] (१) खप जाना। (२) तल्लीन होना।

खिपाना—क्रि. स. [हिं. खपाना] (१) काम मे लाना। (२) निभाना। (३) खत्म करना।

खियाना—क्रि. अ. [स. क्षय] घिसना।

क्रि. अ. [हि. खाना] खिलाना।

खियाल—सज्ञा पुं. [हि. ख्याल] (१) ध्यान। (२) विचार।

संज्ञा पुं. [हि. खेल] (१) खेल, क्रीड़ा। (२) विनोद।

खिर—संज्ञा स्त्री. [देश.] ढरकी या नार जिसमें बाने का सूत रहता है।

सज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर] (१) खीर। (२) दूध।

खिरकन—संज्ञा पु. [हिं. खरक] पशुओं का बाड़ा। उ.- रीझी गौ खिरकन मैं बछरा हित धाई।

खिरका—संज्ञा पुं. [हिं. खरक, खरिक] पशुओं का बाड़ा।

खिरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिड़की] झरोखा, गवाक्ष, खिड़की।

खिरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीरिणी] (१) एक ऊँचा पेड़। (२) इसका छोटा फल।

खिर-लाडु—संज्ञा पुं. [हिं. खीर+लड्डू] एक तरह की मिठाई। उ.—खिरलाडु लवगनि लाए। ते करि बहु जतन बनाए—१०-१८३।

खिराज—संज्ञा. पु. [अ. खिराज] कर, मालगुजारी।

खिरियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर, हिं. खीर] खीर। उ.—सूरदास प्रभु बैठि कदम तर, खात दूध की खिरियाँ —४७०।

खिरिरना—क्रि स. [अनु.] खुरचना, खरोचना।

खिरोरा, खिरौरा—संज्ञा पु. [हि खैर=कत्था+औरा (प्रत्य.)] कत्थे की टिकिया।

खिलंदरा—वि. [हि. खेल] खेल या खिलवाड़ करनेवाला।

खिलअत—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़िलअत] राजा की ओर से सम्मान रूप में दी जानेवाली पोशाक आदि।

खिलक़त—संज्ञा स्त्री [अ. ख़िलक़त] (१) संसार। (२) भीड़, समूह।

खिलकौरी—संज्ञा स्त्री [हि. खेल+कौरी (प्रत्य.)] खेल, खिलवाड़।

खिलखिलाना—क्रि. अ. [अनु.] खिलखिल करके जोर हँसना।

खिलत, खिलति—संज्ञा स्त्री. [हि. खिलअत] वस्त्र आदि जो सम्मान-रूप में राजा की ओर से दिये जायँ।

खिलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] प्रसन्न होना, प्रमुदित होना। उ.—सूरदास प्रभु की सुन री आली तेरे अंग अंग भयो उदोत वह हिलनि मिलनि खिलन की तेरे प्रेम प्रीति जनाई—२१०७।

खिलना—क्रि. वि [सं. स्खलन्] (२) कली का निकलना। (२) प्रसन्न होना। (३) शोभित होना। (४) बीच से फटना। (५) अलग होना।

खिलवत—संज्ञा स्त्री [अ. खिलवत] एकान्त स्थान।

खिलवतखाना—संज्ञा पु. [ख़िलवतख़ाना] (१) एकान्त स्थान। (२) मन्त्रणागृह।

खिलवति—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलअत] सम्मानसूचक वस्त्रआदि।

खिलवाड़, खिलवार—संज्ञा पुं. [हि. खेलवाड़] खेल, तमाशा।

खिलवाना—क्रि. स. [हि. खाना] भोजन कराना।

क्रि. स. [हि. खीलना] (१) खिलाने की प्रेरणा देना। (२) प्रफुल्लित कराना।

क्रि. स. [हि. खील] (१) खिलाने की प्रेरणा देना। (२) खीलें बनवाना।

क्रि. स. [हि. खेलवाना] खेलने की प्रेरणा देना।

खिलाई—संज्ञा स्त्री. [हि. खाना] (१) खाने का काम। (२) खेलने का काम।

खिलाए—क्रि. स. भूत० [हि. खेलना] खेल में लगाया। उ.—कौरव पासा कपट बनाए। धर्मपुत्र कौं जुआ खिलाए—१-२४६।

खिलाड़, खिलाड़ी—संज्ञा पुं [हिं. खेल+आड़ी (प्रत्य.)] (१) खेलनेवाला। (२) कुश्ती, पटा आदि के खेल दिखानेवाला। (३) जादूगर।

खिलाना—क्रि. स. [हि. खेलना] खेलने में लगाना।

क्रि. स. [हिं 'खाना' का प्रे.] भोजन कराना।

क्रि. स. [हि. खिलना] विकसित करना।

खिलाफ—वि. [अ. ख़िलाफ] विरोधी, उलटा।

खिलारी—संज्ञा स्त्री. [हि. खील=भुना हुआ दाना] धनिया और ककड़ी आदि के भुने हुए बीज जो भोजन के बाद खाये जाते हैं।

संज्ञा पुं. [हि. खिलाड़ी] खेलनेवाला, खिलाड़ी। उ.—केसरि चीर पर अबीर मानो परयो खेलत फाग डारयौ खिलारी—२५६५।

खिलावत—क्रि. स. [हिं. खिलाना] (१)बच्चों या पक्षियों को) खिलाता है। (२) दना आदि चुगाते हैं। उ.—नाहिन मोर बकत पिक दादुर ग्वाल मंडली खगन खिलावत—३४८५।

खिलावति—क्रि स. स्त्री [हिं. खिलाना] (खेल आदि) खिलाती है, खेलने में लगाती है। उ.—जाकौ ब्रह्म पार न पावत, ताहि खिलावत ग्वालिनियाँ—१०-१३२।

खिलावन—संज्ञा पुं. [हिं. खेल, खिलाना] खेल खिलाने की क्रिया। उ.—पाऊँ कहाँ खिलावन कौं सुख मैं दुखिया, दुख कोखि जरी—१०-८०।

खिलावै—क्रि. स. [हिं. खिलाना] (बच्चे को) खिलाती और हँसाती है, खेल में नियोजित करती है। उ.—(क) गुन गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै। (ख) आनंद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपाल खिलावै—१०-१३०।

खिलौना—संज्ञा पुं. [हिं. खेल+औना (प्रत्य.)] (१) छोटी मूर्ति या इसी प्रकार की चीज जिससे बच्चे खेलते हैं। (२) खेलने की चीज, प्रिय वस्तु। उ.—दंपति होड़ करत आपुस में स्याम खिलौना कीन्हौ री—१०-६८।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] हँसी, हास्य।

संज्ञा स्त्री [हिं. गिलौरी] पान की गिलोरी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खील] कील, काँटा।

खिल्लो—वि. स्त्री. [हिं. खिलना = प्रसन्न होना] बहुत हँसनेवाली।

खिसकना—क्रि. अ. [हिं. खसकना] सरकना, एक स्थान से दूसरे को जाना।

खिसकाना—क्रि. स. [हिं. खसकाना] सरकाना, हटाना।

खिसना—क्रि. अ. [हिं. खसना] किसी स्थान से गिरना, हटना।

खिसलना—क्रि. अ. [हिं. फिसलना] रपटना, सरकना।

खिसलाना—क्रि. स. [हिं. खिसलना] रपटाना, फिसलाना।

खिसलाव—संज्ञा पुं. [हिं. खिसलना] फिसलने का भाव।

खिसाई—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसियाकर, लज्जित होकर। उ.—(क) दुर्योधन यह रीति देखि कै मन में रह्यो खिसाई—१०उ.-५५। (ख) बहुरि भगवान सिसुपाल को छाँड़ि दियौ गयो निज देस को सो खिसाई—१० उ.-२१।

खिसाना—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाना, लज्जित होना।

वि.—खिसियाया हुआ, लज्जित।

खिसानी—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] लज्जित होकर, खिसियाकर। उ.—केती वही नेकु नहिं बोली फिरी आइ तब हमहिं खिसानी—१२८४।

वि.—खिसियायी हुई।

खिसाने—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसिया गये, लज्जित हुए। उ.—(क) सखा कहत हैं स्याम खिसाने। आपुहि आपु बलकि भए ठाढे, अब तुम कहा रिसाने—१०-२१४। (ख) जब हरि मुरली अधर धरी।···। दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी। उडुपति, विद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी—६५६।

वि.—खिसियाये हुए, लज्जित।

खिसाय (गये)—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसिया गये, लज्जित हो गये। उ.—कछु नहिं चलत खिसाय गये सब रहे बहुत पचि हार—२१८ सारा.।

खिसावै—क्रि. अ. बहु. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाती हैं, लज्जित होती हैं। उ.—तरुनिन की यह प्रकृति अनैसी थोरेहि बात खिसावैं—११५२।

खिसाहीं—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसिया जाते हैं, लजाते हैं। उ.—पर्वत घन गिरि देखि खिसाहीं—१०५६।

खिसिआई—क्रि. अ [हिं खिसियाना] लजाकर, खिसिया कर। उ.—तब खिसिआइ के काल यवन अपने सँग ल्यायौ—१०उ.-३।

खिसिआइ—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] लजाकर, खिसियाकर।

यौ.—गई खिसिआई—खिसिया गयी। उ.—रघुपति कह्यौ, निलज निपट तू, नारि राच्छसी ह्याँ तैं जाई। सूरदास प्रभु इक पत्नीव्रत, काटी नाक गई खिसिआई—९-५६।

खिसिआनपन—संज्ञा पुं. [हिं. खिसिआना + पन] लजाने का भाव।

खिसिआना—क्रि. अ. [हिं. खीस-दाँत] (१) लजाना, लज्जित होना। (२) क्रुद्ध होना।

वि.—लज्जित।

खिसिआने—वि. [हिं. खिसिआना] लजाये या शरमाये

हुए। उ.—लाज गये प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआने।

खिसियानो, खिसिआनौ—वि. [हिं. खीस, खिसिआना] खिसियानेवाला, खिसियाया हुआ। उ.—(क) हौ तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज खिसिआनौ—१-१६६। (ख) लाज गए प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआनो (खिसिआने)—३३४२।

खिसिआहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसिआना + हट (प्रत्य.)] लजाने का भाव।

खिसियाइ—क्रि. अ. [हि. खिसिआना] लज्जित होकर, खिसियाकर। उ.—(क) यह सुनि दूत चले खिसियाइ—६-४। (ख) यासौं हमरौ कछु न बसाइ। यह कहि असुर रह्यौ खिसियाइ—७ ७।

खिसियाना—क्रि. अ. [हि. खीस = दाँत] (१) लज्जित होना। (२) नाराज होना।

खिसी—संज्ञा स्त्री. [हि. खिसिआना] (१) लज्जा, शर्म। उ.—कहा चलत उपरावटे अजहूँ खिसी न गात। कंस सौंह दै पूछिये जिन पटके हैं सात—११३७। (२) ढिठाई, धृष्टता।

खिसै—क्रि. अ. [हिं. खसना] (१) हटना, सरकना। (२) नष्ट हो जाय, चला जाय। उ.—तन मन धन जोबन खिसै तऊ न मानै हार।

मुहा.—खिसै न बार—बाल बाँका न हो। उ.—इहै असीस सूर प्रभु सों कहि न्हात खिसै जनि बार—३१००।

खिसैया—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] खिसिया कर, लज्जित होकर। उ.—ऐसैं कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चल्यौ खिसैया—१०-२१७।

खिसौंहाँ—वि. [हिं. खिसियाना + औहाँ (प्रत्य.)] लज्जित, खिसियाया हुआ।

खिस्याइ—क्रि. अ. [हि. खिसिआना] (१) लज्जित होकर, खिसियाकर। उ.—सुरपति ताकैं रूप लुभायौ। बहुरि कुबेर तहाँ चलि आयौ। पै तिन तिहि दिसि देख्यौ नाहिं। गए खिस्याइ दोउ मन माहिं—६-३। (२) क्रुद्ध होकर, रिसाकर। उ.—अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र को दियौ चलाइ—१-२८६।

खिस्याई—क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] खिसियाकर, लज्जित होकर। उ.—रहे पचिहारि, नहिं टारि कोऊ सक्यौ, उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई—६-१३५।

खिस्यानो, खिस्यानौ - क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] लज्जित हुआ। उ.—आवत नहिं लाज के मारे मानो कान्ह खिस्यानो।

खींच—संज्ञा स्त्री. [हि. खींचना] (१) खिंचाव। (२) बहुत माँग।

खींचतान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना + तानना] (१) खींचातानी, नोकझोक। (२) जबरदस्ती अर्थ बैठाना।

खीचना—क्रि. स. [सं. कर्षण] (१) घसीटना। (२) बाहर निकालना। (३) ऐंचना। (४) आकर्षित करना। (५) लिखना, चित्रित करना। (६) सोखना। (७) अर्क आदि चुआना। (८) रोक रखना।

मुहा —हाथ खींचना—(१) काम बन्द करना। (२) उदासीन हो जाना।

खीचरी—संज्ञा स्त्री. [स. कृसर, हि. खिचड़ी] मिलाकर पकाया हुआ दाल-चावल। उ.—खीर, खाँड़ खीचरी सँवारी—२३२१।

खीज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खीजना] (१) झुँझलाहट। (२) ऐसी बात जो चिढ़ाने के लिए कही जाय।

खीजना—क्रि. अ. [सं. खिद्यते, प्रा. खिज्जइ] झुँझलाना, खिजलाना।

खीजै—क्रि. अ. [हि. खीजना] खिजलाता है, झुँझलाता है।। उ.—खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तैं, सुसुकि सुसुकि मन खीजै—१०-१६०।

खीझ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खीज] झुँझलाहट।

खीझत—क्रि. अ. [हिं. खीजना] झुँझलाते हैं, खिजलाते हैं। उ.—खीझत जात माखन खात। अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात—१०-१००।

खीझन—क्रि. अ. [हिं. खीजना, खीझना] खीजने लगे, झुँझलाने लगे। उ.—नंद बबा तब कान्ह गोद करि खीझन लागे मोको—२६२७।

खीझना—क्रि. अ. [हिं. खीजना] झुँझलाना।

खीझिहैं—क्रि. अ. [हिं. खीजना] खीजेंगी, नाराज होंगी, अप्रसन्न होंगी, झुँझलायँगी। उ.—भली भई तुम्हें

सौंपि गए मोहिं जान न देहौं तुमकौं। बाँह तुम्हारी नैंकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं—६८१।

खीझी—क्रि. अ. [हिं खीझना] अप्रसन्न हुई, झुँझलायी। उ.—प्रात गई नीकैं उठि घर तैं। मैं बरजी कहँ जाति री प्यारी, तब खीझी रिस भर तैं—७४४।

खीझे—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाये, रुष्ट हुए। उ.—उन नहि मान्यौ, तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय—६४ सारा.।

खीझै—क्रि. अ. [हिं. खीजना] खीजती है, झुँझलाती है, रुष्ट होती है। उ.—(क) तू मौहींकौं मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै—१०-२१५। (ख) बाँह गहे ढूँढति फिरै डोरी। बाँधौ तोहिं सकै को छोरी। बाँधि पची डोरी नहिं पूरै। बार-बार खीझै, रिस झूरै—३६१।

खीझो, खीझौ—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाओ, खिजलाओ। उ.—कोऊ खीझो, कोऊ कितनो बरजो जुवतिन के मन ध्यान—८७०।

खीन—वि. [सं. खिन्न] उदास, चिंतित। उ.—चित्रकूट तैं चले खीन तन मन बिस्राम न पायौ—९-५५।

वि. [सं. क्षीण] दुर्बल, पतला, पुराना। उ.—(क) भयौ बलहीन खीन तनु कंपित तज्यौ बयारि बस पात—२६५७। (ख) यहै अपूर्व जानि जिय लघुता खीन इन्दु एहि दुख भाज्यौ—२३००।

खीनता, खीनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीणता] दुर्बलता।

खीनौ—वि. [सं. क्षीण] क्षीण।

वि. [सं. खिन्न] उदासीन, खिन्न। उ.—देखिकै उमा कौं रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रिजित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माहि है रह्यौ खीनौ—८-१०।

खीप—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़। उ.—खीप पिडारू कोमल भिंडी।

खीमा—संज्ञा पुं. [हिं. खेमा] तंबू।

खीर—संज्ञा स्त्री. [स. क्षीर] दूध में पकाया हुआ चावल। उ.—खीर खाँड़ खीचरी सँवारी-२३२१।

संज्ञा पुं.—दूध। उ.—ए दोउ नीर-खीर निवारत इनहिं बँधायो कंस—३०४६।

खीरा—संज्ञा स्त्री. पुं. [सं. क्षीरक] एक फल जो ककड़ी की जाति का होता है। उ.—(क) खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस, सीरा—१०-२११। (ख) खीरा रामतरोई तामे। अरुचि न रुचि अंकुर जिय जामें—२३२१।

खीरी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीरनी] खिरनी नाम का फल।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर] थन का ऊपरी भाग जिसमें दूध रहता है।

खील—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] भूना हुआ धान, लावा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कील] (१) कील, काँटा। (२) नाक में पहनने की लौंग।

संज्ञा स्त्री. [देश.] भूमि जो बहुत दिन बाद जोती-बोई जाय।

खीलना—क्रि. स. [हिं. कील,खील] कील लगाना, कील की तरह तिनके खोसना।

खीला—संज्ञा पु. [हिं. कील] काँटा, कील।

खीली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खील] पान का बीड़ा।

खीवन, खीवनि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीवन] मस्ती, मतवालापन। उ.—मेरे माई स्याम मनोहर जीवनि। निरखि नयन भूले ते बदन छवि मधुर हँसनिपै खीवनि।

खीवर—संज्ञा पुं. [सं. क्षीव = मस्त] शूर, वीर।

खीस—वि [सं. किष्क = वध] नष्ट।

मुहा.—डारत खीस — नष्ट करता है। उ.—काहे को निर्गुन ग्यान गनत हौ जित तित डारत खीस—३१३०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खीज] (१) अप्रसन्नता। (२) क्रोध।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसियाना] लज्जा।

संज्ञा स्त्री. [सं. कीश = बन्दर] दाँत बाहर निकालना।

मुहा.—खीस काढ़ना—(१) दाँत बाहर निकाल कर हँसना। (२) दीनता दिखाकर माँगना। (३) मर जाना।

संज्ञा स्त्री. [देश.] गाय का दूध जो ब्याने के सात दिन तक निकलता है।

खीसा—संज्ञा पुं. [फा. कीसा] (१) थैला। (२) जेब। (३) कपड़े की थैली।
संज्ञा पुं [हि. खीस] दाँत जो ओंठ के बाहर निकले हों।

खुँटिला—संज्ञा पु [देश. खुटिला] कान में पहने का एक गहना, कर्णफूल। उ.—खुँटिला सुभग जराइ के मुकुता मनि छबि देत। प्रगट भयो घन मध्य ते ससि मनु नखत समेत—२०६५।

खुँदाना—क्रि. स [सं. क्षुण्ण=रौंदा हुआ] (एक ही स्थान पर घोड़ा) कुदाना।

खुआर—वि. [फ़ा. ख्वार] (१) जिसकी दशा बुरी हो। (२) जिसका कुछ मान न हो।

खुआरी—संज्ञा स्त्री. [हि खुआर] (१) बुरी दशा। (२) अनादर, अप्रतिष्ठा।

खुआरू—वि. [फा. ख्वार] (१) खराब। (२) जिसका आदर न हो।

खुक्ख—वि. [सं. शुष्क या तुच्छ, प्रा. छुच्छ] छूँछा, खाली।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) तकुए पर लपेटा हुआ सूत। (२) नैपाली छुरा।

खुखला—वि. [हि. खोखला] (१) जिसके भीतर पोला हो। (२) छूछा, खाली।

खुचर, खुचुर—संज्ञा स्त्री. [सं. कुचर=दूसरे के दोष निकालनेवाला] दोष निकालने की क्रिया या प्रकृति।

खुजलाना— क्रि. स. [स. खर्जु, खर्जन] खुजली मिटाने के लिए रगड़ना या सहलाना।
क्रि. अ.—खुजली जान पड़ना।

खुजली—संज्ञा स्त्री. [हि. खुजलाना] खुजलाने की इच्छा, अनुभव या रोग।

खुटक—संज्ञा स्त्री. [हि. खटकना] आशंका, खटका। उ.—(क) मन में खुटक जनि राखहु। दीन बचन मुख ते तुम भाखहु—१०२६। (ख) अपने जिय की खुटक मिटाऊँ—१४४६। (ग) भटक अति सब्द भयो खुटक नृप के हिए अटक प्रानन परयौ चटक करनी—२६०६।

खुटकना—क्रि. स. [सं. खुड् या खुंड] (ऊपरी भाग) खुटकना या तोड़ना।

खुटचाल—संज्ञा स्त्री. [हि. खोटी + चाल] (१) दुष्टता, नीचता। (२) बुरा आचरण। (३) उपद्रव।

खुटचाली—वि. [हि. खुटचाल + ई (प्रत्य.)] (१) दुष्ट, नीच। (२) दुराचारी। (३) उपद्रवी।

खुटना—क्रि. अ. [स खुड्] खुलना।
क्रि. अ. [हिं. छुटना] सम्बन्ध छोड़ देना, अलग होना।
क्रि. अ. [सं. खुड् या हि. खोट] समाप्त होना।

खुटपन, खुटपना—संज्ञा पुं. [हि. खोटा + पन, पना (प्रत्य.)] दोष, ऐब।

खुटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटाई] खोटापन, दोष।

खुटाना—क्रि. अ. [सं. खुड्=खोंडा, खोट] समाप्त होना।

खुटिला—संज्ञा पुं. [देश.] कान में पहनने का फूल या गहना। उ.—(क) नकवेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच जुग उतग को—१०४२। (ख) ससि मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिला खुभी जरायज री—पृ. ३४५ (४१)।

खुतबा—संज्ञा पु. [अ.] (१) प्रशंसा। (२) सामयिक राजा की प्रशंसा-घोषणा।

खुत्थी, खुथी—संज्ञा स्त्री. [हि. खूँटी] (१) अनाज कट जाने पर पृथ्वी में गड़ा रहनेवाला पेड़ का भाग। (२) थाती, धरोहर। (३) धन, संपत्ति।

खुद—अव्य [फा] स्वय, आप।

खुदगरज—वि. [फा.] स्वार्थी, मतलबी।

खुदना—क्रि. अ. [हि. खोदना] खोदा जाना।

खुदमुख्तार—वि. [फा.] जिसपर किसी का दबाव न हो, स्वच्छन्द।

खुदमुख्तारी—संज्ञा स्त्री. [हि. खुदमुख्तार] स्वच्छन्दता।

खुदवाना—[हि. खोदना] खोदने का काम कराना।

खुदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ुदा] ईश्वर।
यौ.— खुदा न ख्वास्ता [फा. ख़ुदा न ख़्वास्ता] ईश्वर न करे कि कहीं ऐसा (बुरा, अनिष्ट) हो।

मुहा.—खुदा ख़ुदा करके-बड़ी कठिनता से। खुदा की मार—ईश्वरीय कोप।

खुदाई—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़ुदाई] (१) ईश्वरता। (२) ईश्वर की रची सृष्टि।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना] (१) खोदने का भाव। (२) खोदने की क्रिया। (३) खोदने की मजदूरी।

खुदाव—संज्ञा पुं.[हिं. खोदना]खोदने कीक्रिया या भाव।

खुदी—संज्ञा पुं. [हिं. खुद] (१) अहंभाव। (२) घमण्ड।

खुनकी—संज्ञा स्त्री. [फा.] ठडक।

खुनखुना—वि. [अनु] खन खन शब्द करके। उ.—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर नचत डमरु बजाइ—१०-१७०।

संज्ञा पुं. [अनु.] झुनझुना नामक खिलौना।

खुनस—संज्ञा स्त्री. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध, गुस्सा।

खुनसनि—संज्ञा सवि, [हिं. खुनसाना] क्रोध से, रिसाकर उ.—सूर इते पर खुनसनि मरियत ऊधो पीवत मामी–३०८०।

खुनसाना—क्रि. अ. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध करना, गुस्सा होना।

खुनसी—वि. [हिं. खुनसाना] क्रोधी।

खुनुस—सज्ञा स्त्री. [हिं. खुनस] क्रोध, रिस, कुँझलाहट। उ.—कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि। न्याइ के नहिं खुनुस कीजै, चूक पल्लै बाँधि—१–१६६।

खुबानी—संज्ञा स्त्री [फा. ख़ूबानी] एक प्रकार का मेवा, जरदालू, कुरमालू। उ.—श्रीफल मधुर, चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा, अरुन खुबानी—१०-२११।

खुभना—क्रि. स. [अनु.] चुभना, धँसना।

खुभराना—क्रि. अ. [सं. क्षुब्ध] उमड़ना, इतराना, इठलाना।

खुभाना—क्रि. स. [हिं. खुभना] चुभाना, गड़ाना।

खुभिया, खुभी—संज्ञा स्त्री [हि. खुभना] (१) कान में पहनने का एक गहना जो लौंग की तरह का होता है और 'लौंग' ही कहलाता है। उ.—ससि मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिल खुभी जरायज री—पृ. ३४५ (४१। (२) पीतल, सोने या चाँदी का छल्ला या खोल जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ.—मोतिनहार जलाजल मानो खुभी दंत झलकावै।

खुमान—वि. [सं. आयुष्मान] बड़ी आयुवाला, आयुष्मान।

संज्ञा पुं.—शिव जी।

खुमार, खुमारि खुमारी—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ुमार] (१) मद, नशा। उ.—(क) जब जान्यौ ब्रजदेव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी। (ख) तरुनी स्यामरस मतवारि। प्रथम जोवन रस चढ़ायो अतिहि भई खुमारि। (२) नशा उतरने की दशा। (३) रात में जागने की दशा।

खुमी—संज्ञा स्त्री. [अ. कुमः] एक छोटा पौधा जो पत्र पुष्प रहित होता है।

संज्ञा स्त्री. [हि. खुभना] (१) सोने की कील जो दाँतों में जड़ी जाती है। (२) धातु का पोला छल्ला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ.—गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट झहनावै। मोतिनहार जलाजल मानो खुमी दत झलकावै।

खुम्हारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुमारी] नशे की खुमारी, आलस्य। उ.—कबहूँ इत कबहूँ उत डोलन लागी प्रीति खुम्हारि।

खुरंट,खुरंड—सज्ञा स्त्री. [सं. क्षुर = खरोचना + अंड] सूखे घाव की पपड़ी।

खुर—संज्ञा पुं. [सं. क्षुर] (१) सींगवाले चौपायों के पैर का निचला भाग जो बीच से फटा होता है। उ.—(क) मनहु चलत चतुरंग चमू नभ बाढी है खुर खेह—२८२० (ख) माधौ, नैकुँ हटकौ गाइ। ... । भुवन चौदह खुरनि खूँदति, सु धौं कहाँ समाइ—१-५६। (२) चारपाई, चौकी, कुर्सी के पाए का निचला भाग जो भूमि से लगा रहता है।

खुरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुटक] खुटका, अंदेशा।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिल का पेड़। (२) एक नाच।

खुरचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुरचना] (१) खुरच कर निकाली हुई वस्तु। (२) गाढ़ी रबड़ी।

खुरचना—सज्ञा स्त्री. [सं. क्षुरण] कुरेदना, करोना, करोचना।

खुरचाल—संज्ञा स्त्री. [हि. खोटी+चाल] (१) दुष्टता। (२) बुरा आचरण।

खुरचाली—वि. [हि. खुरचाल] (१) दुष्ट। (२) जिसका आचरण अच्छा न हो।

खुरतार—संज्ञा स्त्री. [हि. खुर+ताड़न] टाप, खुर या सुम की ठोकर। उ.—धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार—२८२६।

खुरया—संज्ञा [सं. क्षुरप्र] घास छीलने का औजार।

खुरमा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) एक प्रकार की मिठाई। (२) छोहारा।

खुरहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर+हर (प्रत्य)] (१) खुर का चिह्न। (२) पतली पगडंडी।

खुराक—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) भोजन। (२) औषध की मात्रा।

खुराकी—संज्ञा स्त्री. [फा.] भोजन के लिए दिया जाने वाला धन।

खुरुक—संज्ञा पु. [हिं खुटका] खटका, आशंका।

खुलना—क्रि. अ. [सं. खुड, खुल=भेदन] (१) आवरण हटना, परदा न रहना। (२) तितर-बितर हो जाना। (३) फटजाना, छेद होना। (४) बंधन छूटना। (५) बँधी वस्तु का छूटना। (६) कार्य आरंभ होना। (७) (बात का) प्रकट हो जाना। (८) भेद बताना। (९) सुहाना, अच्छा लगना।

खुला—वि. पुं. [हि. खुलना] (१) जो बँधा न हो। (२) बाधारहित। (३) स्पष्ट, प्रकट।

खुलासा—संज्ञा पुं. [अ.] सारांश।

खुली—क्रि. अ. [हिं. खुलना] (१) प्रकट हुई। (२) छूटी। (३) शोभित हुई, फली। उ.—ते सब तजि अति कहत मलिन मुख उज्ज्वल भस्म खुली—३२२१।

खुले—क्रि. अ. [हिं. खुलना] मुक्त, खुल रहे, बंद न रहे, जुड़े या उड़के न रहे। उ.—बंदि-बेरी सबै छूटी, खुले बज्र कपाट—१०-५।

खुल्लमखुल्ला—क्रि. वि. [हिं. खुलना] प्रकट या प्रत्यक्ष रूप से, खुले आम।

खुवारी—संज्ञा स्त्री. [हि. ख्वारी] (१) बरबादी। (२) बदनामी, अपमान।

खुश—वि. [फ़ा खुश] (१) प्रसन्न। (२) अच्छा, भला।

खुशामद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा] चापलूसी, चाटुकारी।

खुशामदी—वि. [हि. शामद+ई (प्रत्य.)] (१) चापलूस, चाटुकार। (२) मालिक की सब तरह से सेवा करनेवाला।

खुशियाली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खुशी] (१) खुशी, प्रसन्नता। (२) कुशल।

खुशी—संज्ञा स्त्री. [फा. खुशी] आनंद, प्रसन्नता।

खुसामति—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुशामद] चाटुकारी, चापलूसी।

खुसाल, खुस्याल—वि. [फा. खुशहाल] खुश, प्रसन्न।

खुही—संज्ञा स्त्री. [स. खोलक] लपेटा हुआ वस्त्र जिसे शरीर के ऊपरी भाग की रक्षा के लिए सिर पर बाँधते हैं।

खूँखार—वि. [फा.] (१) हिंसक। (२) क्रूर।

खूँट—संज्ञा पु. [सं. खंड] (१) छोर, कोना। उ.—(क) नीलांबर गहि खूँट चूनरी हँसि हँसि गाँठि जुराइ हो—२४३६। (ख) हा हा करति सबनि सौं मैं ही कैसेहु खूँट छँड़ावति—८६५। (ग) नैना झगरत आइ कै मोसौं री माई। खूँट धरत हैं धाइ कै चलि स्याम दुहाई—पृ. ३३३ (२८)। (२) ओट, तरफ। (३) भाग।

संज्ञा स्त्री. [स. खंड] कान में पहनने का एक बड़ा गहना, बिरिया, ढार।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँटना] रोक-टोक, पूछताछ।

खूँटना—क्रि. स. [सं. खंडन = तोड़ना] (१) पूछताँछ करना, टोंकना। (२) छेड़ना। (३) घट जाना।

खूँटा—संज्ञा. पुं. [सं. क्षोड] (१) बड़ी मेख। (२) गड़ी हुई लकड़ी।

खूँटी—संज्ञा स्त्री. [हि. खूँटा] (१) छोटी मेख। (२) सूखा डठल। (३) सीमा। (४) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो कुछ अटकाने के लिए किसी भीत में जड़ा या लगाया जाता है।

खूँद—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँदना] (१) थोड़ी जगह में घोड़े का धीरे धीरे चलना या पैर पटकना। (२) उछल-कूद।

खूँदति— क्रि. अ. [हिं. खूँदना] पैरों से रौंदती है, उछल-कूद कर खराब करती है। उ.—भुवन चौदह खुरनि खूँदति सु धौं कहाँ समाइ—१-५६।

खूँदना—क्रि अ. [सं. खुंदन = तोड़ना] (१) पैर पटकना, उछल-कूद करना। (२) पैरों से रौंदना। (३) कूटना, कुचलना।

खूआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक मिठाई या पकवान। उ.—दोना मेलि धरे हैं खुआ। हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूआ—१०-३६६।

खूक, खूखू—संज्ञा पुं. [फा. खूक] सुअर।

खूझा—संज्ञा पुं [सं. गुह्य, प्रा. गुज्झ] (१) फल का रेशेदार भाग जो बेकार समझा जाता है। (२) उलझा हुआ लच्छा जो काम न आ सके। (३) एक पेड़। उ.—खूझा मरुआ कुंद सों कहै गोद पसारी। बकुल बहुलि बट कदम पै ठाढ़ीं ब्रजनारी—१८२२।

खूझो—संज्ञा पुं. [हि. खूझा] एक पेड। उ.—खूझो मरवो मोगरो मिलि झूमकहो—२४४५ (३)।

खूटना—क्रि. अ. [सं. खुंडन] (१) रुकना, बंद होना। (२) चुकना, समाप्त होना।
क्रि. स. [सं० खुंड] छेड़ना।

खूटा—वि. [हिं. खोटा] बुरा, अरसिक, नीरस। उ.—प्रभु जू, हौं तौ महा अधर्मी।··· । चुगुल, ज्वारि, निर्दय अपराधी, झूठौ, खोटौ, खूटा—१-१८६।

खूटी—क्रि. अ. स्त्री. [हि खूटना] (१) रुक गयी, बंद हुई। (२) चुक गयी, समाप्त हो गयी। उ.—(क) कागज गरे मेघ मसि खूटी सर दौ लागि जरे। सेवक सूर लिखैते आंधो पलक कपाटअरे। (ख) तुम्हरेदेस कागर मसि खूटी—१० उ-८०। (३) मिट गयी, नष्ट हो गयी, निश्चित न रही। उ—सुरवासुर छल बोलवारी गढ़ अत्र अवधि मिति खूटी—२७५०।

खूटे—क्रि. अ [हि. खूटना] समाप्त हो गया, चुक गया। उ.—चारि मास बरसे जल खूटे हारि समुझ उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी अकथ कहानी—३४५७।

खून—संज्ञा पुं. [फ़ा. खून] (१) रक्त, लहू। (२) वध, हत्या।

खूब—वि. [फा. खूब] अच्छा, भला।
क्रि. वि.—अच्छी तरह से।

खूबसूरत—वि. [फा. खूबसूरत] सुंदर।

खूबसूरती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ूबसूरती] सुंदरता।

खूबानी—संज्ञा स्त्री. [फा ख़ूबानी] एक मेवा।

खूबी—संज्ञा स्त्री [फा. ख़ूबी] (१) भलाई, अच्छाई। (२) विशेषता।

खूसट—संज्ञा पुं० [सं कौशिक] उल्लू, घुग्घू। वि.—जिसे आमोद प्रमोद न रुचै, अरसिक।

खूसर—वि. [हि. खूसट] अरसिक, शुष्क हृदय।
संज्ञा पुं.—उल्लू।

खेई—क्रि. स. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण, हि. खेना] नाव चलायी थी। उ.—मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई। मैं खेई ही पार कौं, तुम उलटि मँगाई—९-४२।
संज्ञा स्त्री. [देश.] झाड़ झंखाड।

खेकस, खेखसा—संज्ञा पुं. [देश.] एक फल।

खेचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश में विचरनेवाला। (२) ग्रह। (३) तारा। (४) वायु। (५) देवता। (६) पक्षी। (७) बादल। (८) शिव।

खेट—संज्ञा पुं. [स] (१) गाँव, खेड़ा। (२) घोड़ा। (३) आखेट, शिकार। (४) एक अस्त्र।

खेटक—संज्ञा पुं [सं.] (१) गाँव, खेड़ा। (२) बलदाऊ जी की गदा।
संज्ञा पुं. [सं. आखेट] शिकार, मृगया।

खेटकी—संज्ञा पुं. [सं.] भड्डर, भड्डरी, भडेरिया। संज्ञा पुं [सं. आखेट] (१) खिलाड़ी, शिकारी। (२) वधिक।

खेड़—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] गाँव। उ.—द्रुम चढि काहे न टेरौ कान्हा, गैयाँ दूरि गईं। ·· ···। छाँड़ि खेड़ सब दौरि जात हैं, बोलौ ज्यौं सिखई। सूरदास प्रभु-प्रेम समुझि कै, मुरली सुनि आइ गई—६१२।

खेड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खेट] छोटा गाँव ।

खेड़े—संज्ञा पुं. [हि. खेड़ा] छोटा गाँव ।

मुहा.—खेड़े की दूब—दुर्बल, तुच्छ । उ.—नंद नँदन ले गए हमारी सब ब्रज कुल की ऊब । सूर स्याम तजि औरै सूझै ज्यों खेडे की दूब—३३६१ ।

खेत—संज्ञा पुं. [सं क्षेत्र] (१) जोतने-बोने-योग्य धरती ।

मुहा.—उबरै खेत—सुधर जाय, उद्धार हो जाय । खूब फूले-फले । उ.—रे मन, राम सौं करि हेत । हरि-भजन की बारि करिलै, उबरै तेरौ खेत—१-३११ । खेत करना—भूमि बराबर करना । खेत रखना—रखवाली करना ।

(२) तैयार फसल । (३) युद्धक्षेत्र । उ.—(क) मूर्छित सुभट हो नहीं राखिये खेत में, जानि यह बात मैं इहाँ ल्यायो—१० उ.-५६ । (ख) जैसे सुभट खेत चढ़ि धावै—पृ. ३१६ । (४) युद्ध । उ.—तापर बैठ कृष्ण संकर्सन जीते हैं सब खेत—५६६ सारा. ।

मुहा.—खेत आना—युद्ध में मारा जाना । खेत करना—लड़ना । खेत छोड़ना—युद्ध से भागना । खेत रखना—युद्ध जीतना । खेत रहना—मारे जाना।

(५) संसार, राज्य, ऐश्वर्य । उ.—ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत मुख देखे लेत । रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यों यह खेत—९ ३६ । (६) स्थान, आलय ।

मुहा.—नील को खेत—ऐसा स्थान जहाँ दोष, पाप और कलंक का भागी बनना पड़े । उ.—भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत··· । सेवा नहि भगवंत चरन की भवन नील कौ खेत—२-१५ ।

खेतिहर—संज्ञा पुं. [सं. क्षेत्रधर] खेती करनेवाला, किसान । उ.—जन के उपजत दुख किन काटत । जैसे प्रथम असाढ़—आँजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७ ।

खेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेत + ई (प्रत्य)] (१) कृषि, किसानी । (२) बोई हुई फसल ।

खेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अप्रसन्नता, दुख । (२) दुख का प्रसंग । उ.—करौं मनोरथ पूरन सबके इहि अंतर इक खेद उपायो—पृ. ३४० (६६) । (३) थकावट, ग्लानि । (४) भय, आशंका । उ.—फूले द्विजसत-वेद, मिटि गयौ कंस-खेद, गावत बधाई सूर भीतर बहर के—१०-३४ ।

खेदना—क्रि. स. [सं. खेट] मारकर भगाना ।

क्रि. स.—शिकार का पीछा करना ।

खेदा—संज्ञा पुं. [हि. खेदना] (१) हिंसक पशुओं को घेरकर निर्दिष्ट स्थान पर लाना । (२) शिकार ।

खेदित—वि [सं.] (१) खिन्न । (२) थका हुआ ।

खेना—क्रि. वि. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण] (१) नाव चलाना । (२) समय काटना, बिता देना ।

खेप—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षेप] (१) एक बार लादा जाने वाला बोझ । उ.—आयो घोष बड़ो ब्योपारी । लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आनि उतारी । (२) नाव, गाड़ी की एक बार की यात्रा ।

संज्ञा स्त्री. [सं. आक्षेप] दोष ।

संज्ञा स्त्री.—खोटा सिक्का ।

खेपना—क्रि. स. [सं. क्षेपण] बिताना, (समय) काटना ।

खेम—संज्ञा पुं. [सं. क्षेम] कुशल ।

खेमटा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक ताल । (२) एक गाना या नाच ।

खेमा—संज्ञा पुं. [अ.] तंबू, डेरा ।

खेरा—संज्ञा पुं. [हि. खेडा] गाँव ।

खेरे—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं. खेड़ा] गाँव ।

मुहा.—खेरे के देवन—निर्जन स्थान के देवी देवता । उ.—जो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै । तो हम बिनु गोपाल भए ऊधो कठिन प्रीति की जानै—३४०६ ।

खेरो, खेरौ—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं. खेड़ा] गाँव । उ.—(क) बन मैं जाइ करौ कौतूहल, यह अपनौ है खेरौ—१०-२१६ । (ख) इक उपहास त्रास उठि चलते तजि कै अपनो खेरो—१० उ.-१२४ । (ग) बिछुरत भेंट देहु ठाढे ह्वै निरखौ घोष जन्म को खेरो—२५३२ ।

खेरौरा—संज्ञा पुं. [हि. खाँड + औरा (प्रत्य.)] खाँड या मिसरी का लड्डू, ओला ।

खेल—संज्ञा पुं. [सं. केलि] (१) मन बहलाने या

व्यायाम के उद्देश्य से किया गया काम, क्रीड़ा, लीला । उ.—कोटि ब्रह्माड करत छिन भीतर, हरत बिलम्ब न लावै । ताकौ लिए नंद की रानी नाना खेल खिलावै—१०-१२६ ।

मुहा.—खेल जम्यो—अच्छी तरह खेल होने लगा। उ.—बटा धरनीढारि दीनौ लै चले ढरकाइ । आपु अपनी घात निरखत खेल जम्यौ बनाइ—१०-२४४ ।

(२) बात, प्रसंग । (३) साधारण काम । (४) काम-क्रीड़ा । (५) स्वाँग, तमाशा । (६) विचित्र व्यापार ।

खेलक—संज्ञा पुं [हिं. खेलना] खिलाड़ी ।

खेलत—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल खेल कर । उ.—बालापन खेलत हीं खोयौ—१-५७ ।

मुहा.—खेलत-खात रहे—आनन्द से जीवन बिताया, निश्चिंत रहकर दिन बिताये । उ.—खेलत खात रहे ब्रज भीतर । नान्ही जाति तनिक न ईतर —१०४२ । (ख) बाद-बिवाद सबै दिन बीते खेलत ही अरु खात—२-२२ ।

खेलन—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलने के लिए । उ.—(क) नृप-कन्या तहँ खेलन गई—९-३ । (ख) बीरा खाय चले खेलन को मिलिके चारों बीर—१८९सारा. ।

संज्ञा पु.—खेलना, खेल । उ.—अबहीं नैकु खेलन सीखे हैं, यह जानत सब लोग—७७४ ।

खेलना—क्रि. अ. [सं केलि,केलन] (१) मन बहलाने के लिए दौड़ना-कूदना आदि । (२) भोग-विलास । (३) आ बढ़ना ।

क्रि. स.—मन बहलाव के साथ-साथ हार-जीत के विचार से कोई क्रिया करना । (२) जी बहलाना। (३) अभिनय करना ।

खेलवाड़, खेलवार—संज्ञा पु. [हिं. खेल + वार (प्रत्य.)] (१) खिलाड़ी । (२) खेल, तमाशा । (३) विनोद ।

खेलवाड़ी, खेलवारी—वि. [हिं. खेलवाड़+ई प्रत्य)] (१) बहुत खिलाड़ी । (२) बड़ा विनोदी, हँसमुख ।

खेला—संज्ञा स्त्री. [हि. खेल] विनोद, मन-बहलाव ।

खेलाइ—क्रि. स. [हिं. खेलाना (प्रे)] बहलाना, उलझाये रखना । उ.—नवल आपुन बनी नवेली नागर रही खेलाइ—२६७६ ।

खेलाड़ी—वि. [हि. खेल + आड़ी (प्रत्य.)] (१)खेलनेवाला । (२) विनोदप्रिय ।

संज्ञा पुं. [हिं. खेल] (१) खेलनेवाला व्यक्ति। (२) तमाशा करनेवाला । (३) ईश्वर ।

खेलाना—क्रि. स. [हिं. खेल] (१) खेल में लगाना । (२) खेल में सम्मिलित करना । (३) बहलाना ।

खेलार—संज्ञा पु. [हिं. खेल + आर (प्रत्य.)] खिलाड़ी। उ.—कर लिए डफहि बजावे हो हो सनाक खिलार होरी की—२४०१ ।

खेलि—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल-कूद कर । उ.—सूरदास भगवत भजनु बिनु, चले खेलि फागुन की होरी—१-३०३ ।

खेलिये—क्रि. अ. [हिं. खेलना] मन बहलाओ, खेलो । उ.—आवहु हिलि मिलि खेलिये—१८१४।

खेलिहौ—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल खेलना । उ.—साँझ भई घर आवहु प्यारे । दौरत कहीं चोट लगिहै कहूँ, पुनि खेलिहौ सकारे—१०-२२६ ।

खेली—क्रि. अ, स्त्री. [हिं. खेलना] दौड़ी-धूपी, क्रीड़ा की ।

मुहा.—प्रान जात हैं खेली—प्राणों पर आ बनी है, प्राण निकलने ही वाले हैं । उ —बिरह ताप तन अधिक जरावत जैसे दव द्रुम बेली । सूरदास प्रभु वेगि मिलावौ, प्रान जात हैं खेली—९-९४ ।

खेलै—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलता है, क्रीड़ा करता है । उ —सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) विषयी खेल सार । तन-मन-धन-जोवन खसै, (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५ ।

खेलौना—संज्ञा पुं. [हिं. खिलौना] खिलौना, खेलने की चीज या साधन ।

खेल्यौ—क्रि. अ [हिं. खेलना] खेलना, खेल करना, खेला । उ.—पुनि जब पष्ठ बरस कौ होइ । इत उत खेल्यौ चाहै सोइ—३-१३ ।

खेल्योई—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलना ही, खेल में

लगे रहना ही। उ.—रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ। सूरदास-प्रभु खेल्यौई चाहत, दाउँ दियौ करि नंद दुहैया—१०-२४५।

खेवक—संज्ञा पुं. [सं. क्षेपक] केवट, मल्लाह।

खेवनहार—संज्ञा पुं. [हि. खेना + हार (प्रत्य.)] (१) खेनेवाला, मल्लाह, केवट। उ.—खेवनहार न खेवट मेरैं, अब मो नाव अरी—१-१८५। (२) पार लगानेवाला।

खेवट, खेवटिया—संज्ञा पुं. [हिं. खेना] मल्लाह, माँझी। उ.—दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ़यौ जहाज—१-१०८।

खेवना—क्रि. स. [हिं. खेना] नाव चलाना।

खेवरिया—संज्ञा पुं. [हि. खेवना] खेनेवाला, मल्लाह।

खेवा—संज्ञा पुं. [हि. खेना] बार, दफा, अवसर। उ.—जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, सत्य कहत अब होरे। सूरदास प्रभु पहिले खेवा, अब न बनै मुख मोरे—४८८। (२) नाव खेने का किराया। (३) नदी पार करने का काम। (४) लदी हुई नाव।

खेवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. खेना] (१) नाव चलाना। (२) नाव चलाने की मजदूरी।

खेस—संज्ञा पुं. [देश.] मोटे सूत की चादर।

खेसारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृसर] एक तरह की मटर।

खेह, खेहर—संज्ञा स्त्री. [सं क्षार] धूल, राख, खाक, मिट्टी। उ.—(क) सरवर नीर भरै, भरि उमडै, सूखै, खेह उड़ाहि—१-२६५। (ख) भई देह जो खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दढी—६ १७०। (ग) लेहु सँभारि सुखेह देह की को राखै इतने जंजालहिं—८०२।

मुहा.—बैरिन के मुख खेह—स्त्रियों की एक गाली। उ.—तनक तनक कछु खाहु लाल मेरे ज्यौं बढ़ि आवै देह। सूर स्याम अब होहु सयाने बैरिन के मुँह खेह—१००४। खेह खाना—(१) धूल फाँकना, व्यर्थ समय खोना। (२) बुरी दशा होना।

खेहु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेह] धूल, खाक, राख। उ.—जलके हेतु अस्व यह लेहु। पितर तुम्हारे भए जु खेहु। सुरसरि जब भुव ऊपर आवै।...। तबहीं उन सब की गति होइ—६-६।

खैंचना—क्रि. स. [हि. खींचना] पकड़कर घसीटना।

खैंचि—क्रि. स. [हिं. खैंचना] (१) खींचकर, घसीट कर। (२) लिखकर। उ.—(क) कोउ न समरथ अघ करिबे कौं खैंचि कहत हौं लीकौ—१-१३८। (ख) रेखा खैंचि, बारि बंधनमय, हा रघुबीर कहाँ हौ भाई—६-५६। (३) मंत्र आदि का प्रभाव लौटा ले, प्रभाव दूर कर दे। उ.—इन ग्रोसनि रूसनो करति हौ करिहौ कबहिं कलोलै। कहा दियो पढ़ि सीस स्याम के खैंचि आपनो सो लै—२२७५।

खैए—क्रि. स. [हि. खाना] खाइए, भोजन कीजिए। उ.—सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैऐ—४४५।

खैबे—क्रि. स. [हिं. खाना] खाना-पीना है। उ.—जननि कहति उठो स्याम, जानत जिय रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु खैबे—२३२०।

खैर—संज्ञा पुं. [सं. खदिर] (१) एक तरह का बबूल। (२) कत्था जो पान में डालकर खाया जाता है।

संज्ञा पुं. [देश.] एक छोटा पक्षी जो जमीन से सटाकर अपना झोपड़ा बनाता है।

संज्ञा स्त्री. [फा. खैर] क्षेम-कुशल, भलाई।

अव्य.—(१) कुछ परवाह नहीं, कुछ चिंता नहीं। (२) अस्तु, अच्छा।

खैर भैर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) शोरगुल। (२) हलचल।

खैरा—वि. [हिं. खैर] कत्थे के रंग का, कत्थई।

संज्ञा पुं.—कत्थई रंग का घोडा, कबूतर या बगला।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) तबले की एकताली धुन। (२) एक छोटी मछली।

खैरात—संज्ञा पु [अ. खैरात] दान।

खैरियत—संज्ञा स्त्री [फा. ख़ैरियत] (१) कुशल। (२) भलाई।

खैरी—वि. स्त्री. [हिं. पुं खैर] कत्थई रंग की।

संज्ञा स्त्री.—कत्थई रंग की गाय। उ.—पियरी,

गौरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती। दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी हाँकि ठिकाई तेती—४४५।

खैलर—संज्ञा स्त्री [सं. क्ष्वेल] मथानी।

खैला—संज्ञा पुं. [स. क्ष्वेल] मथानी।

खैहैं—क्रि. स. बहु. [हि. खाना] खायँगे, भक्षण करेंगे। उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं—१-८६।

खैहै—क्रि. स. [हि खाना] (१) खायगा, भोजन करेगा। उ.—इतनो भोजन सब वह खैहै—१०१०। (२) (आघात आदि) सहेगा, (प्रभाव आदि) पड़ने देगा, (कसम, गम आदि) खायगा। उ.—(क) नर-वपु धारि नाहि जन हरि कौं, गम की मार सो खैहै—१-८६। (ख) बडे गुरू की बुद्धि पढी वह काहू को न पत्यैहै। एकौ बात मानिहै नाहीं सबकी सौहैं खैहै—१२६३।

खैहौं—क्रि. स. [हि. खाना] खाऊँगा, भक्षण करूँगा। उ.—(क) लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि विरुझावत—१०-१८८। (ख) मैया मैं अपने कर खैहौं धरि दे मेरैं हाथ—१०-३१२।

खैहौ—क्रि. स. [हिं. खाना] खाओगे, भक्षोगे। उ.—टूटे कंध अरु फूटी नाकनि, कौलौं धौं भुस खैहौ—१-३३१।

खोंइचा—संज्ञा पुं [हि. खूँट] आँचल, किनारा।

खोखना—क्रि. अ. [खों खों से अनु.] खाँसना।

खोंखल—वि. [हिं. खोखला] खोखला।

खोंगा—संज्ञा पुं. [देश.] रुकावट, अटकाव।

खोंगाह—संज्ञा पुं [स.] पीलापन लिये सफेद घोड़ा।

खोंच—संज्ञा स्त्री. [सं. कुच] (१) किसी चीज से रगड़ कर शरीर छिलना। (२) किसी चीज से फँसकर कपड़ा फटना।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) मुट्ठी। (२) एक मुट्ठी में जो पदार्थ आ जाय।

संज्ञा पुं [सं. क्रौंच] एक तरह का बगुला।

खोंचा—संज्ञा पुं. [स. कुच] वह बाँस जिसके सिरे पर लासा लगाकर पक्षियों को फँसाया जाता है।

खोंचिया—संज्ञा पुं. [हिं. खोंची] भिखारी।

खोंची—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँट] भीख।

खोंटना—क्रि. स [सं. खुंड] (साग आदि वस्तुओं का) ऊपरी भाग नोचना।

खोंटा—वि. [हि. खोटा] (१) जो शुद्ध न हो। (२) बुरा।

खोंडर, खोंड़र—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] पेड़ का पोला या खोखला भाग।

खोंड़हा, खोंडा—वि. [सं. खुंड] जिसके अंग (विशेषत: आगे के दाँत) टूटे हों।

खोंतल—संज्ञा पुं. [हिं. खोंता] घोंसला, खोंता।

खोंता, खोंथा—संज्ञा पुं. [हिं. घोसला] चिड़ियों का घोसला।

संज्ञा पुं. [हिं. खोंचा] नुकीली वस्तु में फँसने से कपडे का फटा हुआ भाग।

खोंपना—क्रि. स. [हिं. खोभना] गड़ाना, चुभाना।

क्रि. स. [हिं. खोंप] खोंप या खोंटा सिक्का।

खोंपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोंता, खोंथा] वस्त्र का कील आदि से फटा हुआ भाग।

संज्ञा पुं. [हिं. खोपना] (१) हल की लकड़ी जिसमें फाल लगता है। (२) छाजन का कोना।

खोंसत—क्रि. स. [हि. खोसना] अटकाते हैं, घुसेड़ते हैं, खोंसते हैं। उ.—सखी री, मुरली लीजै चोरि। ......। छिन इक घर-भीतर, निसि बासर, धरत न कबहूँ छोरि। कबहूँ कर, कबहूँ अधरनि, कटि कबहूँ खोंसत जोरि—६५७।

खोंसना—क्रि. स. [सं. कोश + ना (प्रत्य.)] (१) किसी वस्तु को सुरक्षित रखने के विचार से जेब, टेंट या अंटी अथवा अन्य किसी वस्तु में घुसेड़ना, अटकाना या लपेटना। (२) धँसाना, चुभाना, घुसेड़ना।

खोआ—संज्ञा पुं [हिं. खोवा] दूध से बना एक पदार्थ, खोवा, मावा।

खोइ—क्रि. स. [हिं. खोना] (१) खोकर, नष्ट करके। उ.—रंक सुदामा कियौ इन्द्र-सम, पाडव-हित कौरव दल खोइ—१-६५। (२) मिटाकर, दूर करके। उ.—याकैं मारैं हत्या होइ। मनि लै छाँड़ौ सोभा खोइ—१-२८६।

यौ.—जात खोइ—खो जाता है, दूर होता है, मिट जाता है। उ.—नंद कौ लाल उठत जब सोइ।……। मुनि मन हरत, जुवति जन केतिक, रति-पति मान जात सब खोइ—१०-२१०।

खोइया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोई] (१) ऊख के नीरस डंठल। (२) धान की खील, लाई।

खोइसि—क्रि. स. [हिं. खोना] खो दिया, नष्ट कर दिया। उ.—रे मन, जनम अकारथ खोइसि। हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि —१-३३३।

खोई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुद्र] (१) ऊखडंडों के वे डंठल जो रस पेल लिये जाने पर कोल्हू में रह जाते हैं, छोई। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६६। (ख) हरि-सरूप सब घट यों जान्यौ। ऊख माहिं ज्यौं रस है सान्यौ। खोई तन, रस आतम-सार। ऐसी विधि जान्यौ निरधार-३-१३। (२) भुने हुए धान की खील, लाई।

क्रि. स. [हिं. खोना] खो दिया, गवाँ दिया। उ.—जो रस सिव सनकादिक दुर्लभ सो रस बैठे खोई—२८८१।

खोऊँ—क्रि. स. [हिं. खोना] (१) खोऊँ, गवाँऊँ। (२) बिताऊँ। उ.—कछु दिन जैसे तैसे खोऊँ दूरि करौ पुनि डर कौं—७३८।

खोए—क्रि. स. [हिं. खोना] व्यर्थ कर दिये, बिता दिये, नष्ट कर दिये। उ.--किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए—१५२।

खोखर—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया जाता है।

खोखला—वि. [हि. खुक्ख+ला (प्रत्य.)] (१) जिस वस्तु के भीतर कुछ न हो,जो वस्तु पोली हो। (२) जिस बात या कथन में कुछ सार न हो।

संज्ञा पुं.—(१) पोली या खाली जगह। (२) बड़ा छेद।

खोखा—संज्ञा पुं. [हिं. खुक्ख] वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो।

संज्ञा पुं. [बँ. खोका] बालक, लड़का।

खोचकिल—संज्ञा पुं. [देश.] घोंसला, खोंता।

खोचन—संज्ञा स्त्री. [हि. खोंच] (बातों का) घाव, आघात, चोट। उ.—धृग वै मात पिता धृग भ्राता उत रहत मोहिं खोचन। सूर स्याम मन तुमहिं लुभानों हरद चून रँग रोचन—१५१७।

खोज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोजना] (१) चिह्न, निशान, पता। उ.—(क) हम तिहुँ लोक माहिं फिरि आए। असुर खोज कतहुँ नाहिं पाए—६-६। (ख) राखौ नहिं काहू सब मारौं ब्रज गोकुल को खोज निवारौं—१०४३।

मुहा.—खोज मिटाना—ऐसा नाश करना कि चिह्न तक न रहे।

(२) अनुसंधान, शोध। (३) पता पाना, ढूँढ़ना, तलाश। उ.—ये सब मेरेहिं खोज परी। मैं तो स्याम मिली नहिं नीके आजु रही निसि संग हरी —१६१७।

मुहा.—परयौ है खोज हमारे—हमारी खोज में है, हमारे पीछे पड़ा है। उ.—(क) नन्द घरनि यह कहति पुकारे। कोउ बरखत, कोउ अगिनि जरावत दई परयौ है खोज हमारे—५६५। (ख) स्वर्गहिं गए कंस अपराधी परयौ हमारे खोज। दृष्टि से टारि ध्यानहु ते टारत वाऊ सबको चोज—३३४८।

(४) पहिए या पैर का चिह्न।

मुहा.—खोज मारना—पृथ्वी पर पड़े चिह्न इस तरह नष्ट करना जिससे उनके सहारे कोई कुछ पता न लगा सके।

खोजक—वि. [हिं. खोज + क (प्रत्य)] ढूँढ़नेवाला।

खोजत—क्रि. स. [स. खुज=चोराना] खोजते या ढूँढ़ते हैं। उ.–(क) खोजत जुग गए बीति, नाल कौ अन्त न पायौ—२-३६। (ख) खोजत नाल कितौ जुग गयौ—२-३७।

खोजना—क्रि. स [सं.खुज=चोराना] ढूढ़ना, तलाश करना।

खोजमिटा—वि. [हिं. खोज + मिटना] जिसका नाम-निशान मिट जाय।

खोजवाना—क्रि. स. [हिं. खोजना] खोज कराना, ढुँढ़वाना।

खोजा—संज्ञा पुं. [फा. ख़्वाजः] (१) नपुंसक व्यक्ति। (२) सेवक। (३) सरदार।

खोजाना—क्रि. स. [हिं. खोजना] खोज कराना।

खोजि—क्रि. स. [हिं. खोजना] खोजकर, ढूँढ़कर। उ.—कै प्रभु हारि मानि कै बैठो, कै करौ बिरद सही। सूर पतित जो झूठ कहत है, देखौ खोजि बही—१-१३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] चिह्न, निशान, पता। उ.—राखौ नहि काहू सब मारौं। ब्रज गोकुल को खोजि (खोजु) निवारौं—१०४३।

खोजी—वि. [हिं. खोज + ई प्रत्य.)] ढूँढ़नेवाला।

खोजु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] चिह्न, निशान, पता। उ.—छिन मैं बरषि प्रलय जल पाटौं खोजु रहै नहिं चीनो—९४५।

खोजो—क्रि. स [हिं. खोजना] पता लगाओ, खोज करो। उ.—जद्यपि सूर प्रताप स्याम कौ दानव दूरि दुरात। तद्यपि भजन भाव नहिं ब्रज बिनु खोजो दीपै सात—३३५१।

खोट-संज्ञा स्त्री. [सं. खोट=खोड़ा (दूषित)] (१) दोष,ऐब, बुराई। उ.—(क) पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यो न कोऊ खोट—१-१३२। (ख) सूरदास पारसके परसैं मिटति लोह की खोट—१-२३२। (२) अच्छी चीज में बुरी का मिलाया जाना। (३) बुरी चीज जो अच्छी में मिलायी जाय।

वि.—बुरा, दुष्ट। उ—हरि पटतर दै हमहि लजावत सकुच नहिं आवत खोट कवि.—१२६५।

खोटत, खोटता—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोट] बुराई, खोटापन। उ.—अमरापति चरनन पर लोटत। रही नहीं मनमें कछु खोटत—१०६६।

खोटनि—सवि. वि. [सं. खोट + नि (प्रत्य.)] बुरों को, दुष्टों या पापियों को। उ.—ऐसौ अँध अधम, अविवेकी, खोटनि करत खरे—१-१६८।

खोटपन—संज्ञा पुं. [हिं. खोटा + पन] खोटाई।

खोटा—वि. पुं. [हिं. खोट] (१) बुरा, ऐब से युक्त। (२) जो असली या शुद्ध न हो।

मुहा.—खोटा-खरा—बुरा-भला। खोटा खाना—अनुचित उपायों से कमाकर खाना। खोटा-खरा कहना— बहुत डाँटना-फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं खोटा+ई (प्रत्य.)] (१) बुराई, दुष्टता। (२) छल, कपट। (३) दोष, ऐब।

खोटाना—क्रि. अ. [हिं. खुटाना] समाप्त होना।

खोटापन—संज्ञा पुं. [हिं खोटा + पन (प्रत्य.)] खोटाई, दोष।

खोटी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. खोटा] (१) अनुचित, दूषित। उ.—(क) जो चाहौ सो लेहु तुरत हीं, छाँड़ौ यह मति खोटी—१०-१६३। (ख) खोटी करनी जाहि मेरे की सोई करे उपाधि—११३२। (२) बुरी, दुष्ट प्रकृति या स्वभाववाली। उ—(क) बन भीतर जुवतिन क्यौं रोकत हम खाटी तुम्हरे ये हाल-१०१२। (ख) जे छोटी तेई हैं खोटी साजति माजति जोरी—१६२१।

खोटे—वि. [हिं. खोटा] (१) बुरे, दुष्ट, जिसमें कोई दोष हो, दूषित, 'खरा' का उलटा। उ.—हरि कौ नाम, दाम खोटे लौ, झकि झकि डारि दयौ—१-६४। (ख) सूरदास प्रभु वै अति खोटे यह उनहीं ते अति ही खोटी—१४७६। (ग) परम सुसील सुलच्छन नारी तुमहिं त्रिभगी खोटे हौ—२०६१। (घ) सबै खोटे मधुबन के लोग -३०५२। (२) छल कपटयुक्त। उ.—अजलि के जल ज्यौं तन छीजत खोटे कपट तिलक अरु मालहिं—१-७४।

खोटो, खोटौ—वि. [हिं. खोटा] दूषित, बुरा, दुष्ट। उ.—(क) चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटो-खूटौ—१-१८६। (ख) सूरदास गथ खोटो काते पारखि दोष धरे—पृ.३३१।

मुहा—खोटो खायौ है—बेईमानी या बुरी तरह से कमाकर खाया है। उ.—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी। धुर ही ते खोटौ खायौ है, लिए फिरत सिर भारी—३३४०।

खोड़—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] छेद जो लकड़ी सड़ने पर वृक्ष में हो जाता है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटा] दैवी या अज्ञात शक्तियों का कोप।

खोड़रा—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] छेद जो सड़ने पर वृत्त की लकड़ी में हो जाता है।

खोद—संज्ञा पुं. [फा. ख़ोद] सैनिकों का टोप।
संज्ञा पुं. [हिं. खोदना] पूछ ताँछ।

खोदई—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

खोदना—क्रि. स. [स. खुद=भेदन करना] (१) मिट्टी हटाना, गड्हा करना, खनना। (२) उखाड़ना, गिराना। (३) नक्काशी करना। (४) छेड़-छाड़ करना। (५) उसकाना, उत्तेजित करना।

खोदनी—संज्ञा स्त्री. [हि. खोदना] खोदने की सीक या कील।

खोद-विनोद—संज्ञा पुं. [हि. खोद+विनोद (अनु)] बहुत जाँच-पड़ताल।

खोदवाना—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदने का काम कराना।

खोदाई—संज्ञा स्त्री. [हि. खोदना] (१) खोदने की क्रिया। (२) खोदने की मजदूरी।

खोदि—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदकर, खनकर। उ. —कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै खोदि पतालहिं पाटौं—६-१४८।

खोदै—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदने से, गड्ढा करने से। उ.—आज्ञा होइ जाहि पाताल। जाहु, तिन्हैं भाष्यौ भूपाल। तिनके खोदैं सागर भए—६-६।

खोना—क्रि. स. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण] (१) गँवाना, जाने देना। (२) छोड़ आना। (३) खराब या नष्ट करना, बिगाड़ना। उ.—सूर स्याम गारी कहा दीजै इही बुद्धि है घर खोना—१०३७।
क्रि. अ.—किसी वस्तु का छूट या निकल जाना। मुहा.—खोया जाना—हक्का बक्का होना।

खोन्चा—संज्ञा पुं. [फा. ख्वान्चा] बड़ा थाल जिसमें बेचने के लिए चीजे सजायी जायँ।

खोपड़ा—संज्ञा पुं. [सं.खर्पर] (१) सिर की हड्डी। (२) सिर। (३) नारियल। (४) गिरी। (५) खप्पर जो भिखारियों के पास रहता है।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं खोपड़ा] (१) सिर। (२) सिर की हड्डी।
मुहा.—अंधी (औंधी) खोपड़ी—मूर्ख। खोपड़ी खाना—बहुत बात करके परेशान करना। खोपड़ी चटकना—धूप या पीड़ा से सिर दुखना। खोपड़ी खुजलाना—मार खाने की इच्छा होना।

खोपरा—संज्ञा पुं. [हि. खोपड़ा] (१) गरी का गोला, गरी। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस सीरा—१०-२११। (२) नारियल।

खोपरी—संज्ञा स्त्री. [हि. खोपड़ी] (१) सिर की हड्डी, (२) सिर।

खोपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोपड़ा] (१) छाजन या छप्पर का कोना। (२) जूड़ा बँधी हुई वेणी।

खोभरा—संज्ञा पु. [हि. खुभना] (१) गड़ने या ठोकर लगनेवाली चीज। (२) कूड़ा-करकट।

खोम—संज्ञा पु. [अ. कौम] समूह, झुंड।
संज्ञा पुं. [स.क्षोम] किले का बुर्ज।

खोया—संज्ञा पुं. [सं. क्षुद्र] गरमाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, मावा, खोआ।
क्रि. स.—'खोना' क्रिया का भूतकाल।

खोयौ—क्रि. स. [हिं. खोना] 'खोना' के भूत. 'खोया' का ब्रज. प्र., व्यर्थ कर दिया, गँवा दिया। उ.—(क) नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयो—१-४३। (ख) चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी—६-१६०।
मुहा.—दई को खोयो—स्त्रियों की एक गाली। उ.—सूर इते पर समुझत नाहीं निपट दई को खोयो—३०२१।

खोर—वि. [सं. खोर या खोट] लँगड़ा, लूला, अंगभंग। उ.—प्रभु मोहिं राखिये इहि ठौर। ·····। पाँच पति हित हारि बैठे, रावरें हित मोर। धनुष-बान सिरान कैधौं, गरुड़ वाहन खोर—१-२५३।
संज्ञा पुं. [हिं. खोट] दोष, ऐब। उ.—लखहिं साँचे नर को खोर—१२-३।
संज्ञा स्त्री. [हि. खुर] (१) तंग या सँकरी गली, कूचा। उ.—लूट लूट दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर—८६४ सारा. (२) चारा देने की नाँद।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षालन, हिं. खोरना] नहान, स्नान।

खोरन—क्रि. अ. [हिं. खोरना] नहाने के लिए। उ.—आतुर चली जमुन-जल खोरन काहू संग न लाई —२१७०।

खोरना—क्रि. अ. [सं. क्षालन] नहाना, स्नान करना।

क्रि. स. [हिं. खोलना] खोलना, प्रकट करना, बताना।

खोरा—वि. [सं. खोर या खोट] (१) लँगड़ा-लूला, अंग-भंग। (२) बुरा, खोटा।

खोराक—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) भोजन की सामग्री। (२) भोजन की मात्रा।

खोराकी—संज्ञा स्त्री [फा. खोराक+ई (प्रत्य.)] खोराक के लिए दिया जानेवाला धन।

वि.—जिसकी खोराक बहुत अच्छी हो।

खोरि—संज्ञा स्त्री. [सं. खोट या खोर] (१) ऐब, दोष, बुराई। उ.—(क) नृपति कह्यौ मारग सम आइ। चलत न क्यौं तुम सूधै राइ। कह्यौ कहारनि, हमैं न खोरि। नयो कहार चलत पग भोरि—५-४। (ख) मेरे नैनन ही सब खोरि।स्याम बदन छबि निरखि जु अटके बहुरे नहीं बहोरि—पृ. ३३३। (२) लँगड़ी, लूली, अंगभंग।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर, खोर] तंग या सँकरी गली। उ.—(क) भीर भई बहु खोरि जहाँ तहाँ —१०३७।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर] चन्दन का आड़ा टीका।

खोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोरा] (१) पानी पीने का छोटा बरतन। (२) छोटी बिंदियाँ जो माथे पर लगायी जाती हैं।

खोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं खुर, खोरी] तंग गली। उ.—(क) सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी—१०-२६७। (ख) प्रथम करी हरि माखन चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे हरि ब्रज खोरी—१०-२६८। (ग) जाकर हेतु निरतर लीये डोलत ब्रज की खोरी—१०३-१५।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर] मस्तक पर लगा चंदन का आड़ा या धनुषाकार टीका। उ.—सुभग कलेवर कुमकुम खोरी—३३४५।

खोरैं—क्रि. अ. [सं. क्षालन, हिं. खोरना] स्नान करती हैं, नहाती है, स्नान करें, नहायें। उ.—(क) रवि सौं विनय करति कर जोरे। प्रभु अंतरजामी, यह जानी, हम कारन जल खोरैं—७६८। (ख) ब्रज-वनिता रवि कौं कर जोरैं। सीत-भीति नहिं छहीं रितु, त्रिविधि काल जल खोरैं—७८२। (ग) कह्यौ, चलौ जमुना-जल खोरैं—७९६।

खोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु के ऊपर से चढ़ाया हुआ आवरण, गिलाफ। (२) मोटी चादर जो ओढ़ने के काम आती है।

खोलत—क्रि. स [हिं. 'खुलना' का स. 'खोलना'] मिले या जुड़े भागों को अलग करता है। उ.—तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत। लालच लागी कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत—१-१७७।

खोलना—क्रि. स. [सं. खुड, खुल=भेदन] (१) जुड़े हुए भागों को अलग करना। (२) बँधन तोड़ना। (३) बँधी हुई वस्तु अलग करना। (४) नया कार्य आरम्भ करना। (५) दैनिक कार्य आरम्भ करना। (६) सवारी चलाना। (७) गुप्त भेद प्रकट करना। (८) मन की बात कहना।

खोलि—क्रि. स. [हिं खोलना] (१) (गुप्त बात को) प्रकट या स्पष्ट करके। उ.—सूर बिनती करै, सुनहु नँद-नंद तुम, कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी —१-२१४। (२) बोलो, कहो। उ.—मुख तौ खोलि सुनौं तेरी बानी भली-बुरी कैसी घर कैहै —११६२।

खोलिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] बढ़ई का एक औजार, रुखानी।

खोली—क्रि. स. [हिं. खोलना] बन्धनमुक्त कर दी, उन्नति का आरम्भ कर दिया, उत्थान का द्वार खोल दिया। उ.—सोच निवार करो मन आनन्द मानौ भाग्यदशा विधि खोली—१० उ.-१०६।

संज्ञा स्त्री. [फा. खोल] तकिए, लिहाफ या गद्दे का गिलाफ अथवा खोल।

खोले—क्रि. स. [हि. खोलना] खोल दिये । उ. — सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले । अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमिय भंडार खोले—९-१६३ ।

खोलै—क्रि. स. [हि. खोलना] खोलती है । उ.-संदूकन भरि धरे ते न खोलै री—१५४६ ।

खोलौ—क्रि. स. [हिं. खोलना] बंधन-मुक्त करो, खोल दो । उ.—जागे हो जु रावरे है नैना क्यों न खोलौ —१९५६ ।

खोवत –क्रि. स. [हिं. खोना] खोते या नष्ट करते है । उ.—तन धन-जोवन ता हित खोवत, नरक की पाछै बात—६१२४ ।

खोवन—वि. [हि. खोना] खोनेवाला, नाश करने वाला । उ.—सूरदास रावन कुल-खोवन, सोवत सिंह जगायौ—९-८८ ।

खोवहु—क्रि. स. [हि. खोना] खोना, गँवाना, हाथ से निकल जाने देना । उ.—(क) बिनु रति-काल नगन नहिं होवहु। अरु मम मैदनि कौ मति खोवहु—९-२। (ख) वृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु ह्याँ अपनौ नहिं कोई—७६५ ।

खोवनहारी—वि [हि. खोना + हारी (प्रत्य.) खोने वाली, नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली । उ —सुता वडे वृपभानु की कुल खोवनहारी—१२४५ ।

खोवा—संज्ञा पुं [स क्षुद्र, हिं. खोया] गरमाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, खोया, मावा । उ.—खोवा-मय मधुर मिठाई । सो देखत अति रुचि पाई—१०-१८३।

खोवै—क्रि स. [हिं. खोना] खोता है, गँवाता है । उ.—(क) निद्रा-बस जो कबहूँ सोवै । मिलि सो अविद्या सुधि-बुधि खोवै—४-१२ । (ख) देखिकै नारि मोहित जो होवै । आपनौ मूल या विधि सो खोवै—८-११ । (ग) कबहुँ अजिर ठाढे ह्वै ऐसे निसि खोवै—२४७४ ।

खोह—संज्ञा स्त्री [स. गोह] (१) गुफा, कंदरा । (२) पहाड़ी गहरा गड्ढा । (३) दो पहाड़ों के बीच का तंग रास्ता, दर्रा ।

खोहनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोह + नि (प्रत्य)] खोह मे, निर्जन स्थान मे, एकांत में । उ.—सूर सुबस घर छाँड़ि हमारो क्यों रति मानत खोहनि—२०१४ ।

खोहि—संज्ञा स्त्री. [हि. खेह] धूल, खाक । उ.– सूर सुवस्तुहि छाँड़ि अभागे हमहि बतावत खोहि —३०२० ।

खोही—संज्ञा स्त्री. [सं खोलक] (१) पत्तों की छतरी । (२) वर्षा या शीत से बचने के लिए सिर पर लपेटा हुआ कंबल आदि । (३) वस्त्र का सिर या कंधे पर पड़ा हुआ भाग । उ.—सुरंग केसरि खौरि कुसुम की दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी झलकत पीतांबर की खोही—८३८ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. खेह] धूल, खाक ।

खौं—संज्ञा स्त्री. [स. खन] (१) गड्ढा । (२) गहरा गढ़ा जिसमे अन्न जमा किया जाय । (३) वृक्ष का वह भाग जहाँ टहनी या पत्ती निकलती है ।

खौंचा—संज्ञा पुं. [स. षट् + च] साढ़े छः का पहाड़ा ।

खौंट—संज्ञा स्त्री. [हि. खोंटना] (१) नोचने-खसोटने की क्रिया । (२) नोचने-खसोटने का शरीर पर चिह्न, खरोंट ।

खौंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खन या खात] (१) गड्ढा । (२) अनाज रखने का गड्ढा ।

खौफ—संज्ञा पुं. [अ.] डर, भय ।

खौर—संज्ञा स्त्री. [स क्षौर या क्षुर] (१) चंदन का आड़ा तिलक । उ.— (क) और वेस को कहै बरनि सब अंग अंग केसरि खौर—३०३१ । (ख) खौर केसरि अति बिराजत तिलक मृगमद को दियौ —१० उ.-२४ । (२) एक गहना जो स्त्रियाँ माथे पर पहनती है ।

खौरना—क्रि. स. [हिं. खौर] तिलक लगाना, चंदन का टीका लगाना ।

खौरहा—वि. [हि. खौरा + हा (प्रत्य.)] (१) जिस (पशु)के बाल झड़ गये हो । (२) जिस (पशु) को बाल झाड़ने की खुजली का रोग हो ।

खौरा—संज्ञा पु. [स. क्षौर] भयानक खुजली जिसमें पशुओं के बाल झड़ जाते है ।

वि,—जिसे यह रोग हो ।

खौरि—संज्ञा स्त्री [सं. च्छौर या क्षुर, हिं. खौर] मस्तक पर लगा हुआ चन्दन का आड़ा तिलक। उ.—(क) फिरत बननि वृन्दावन, बंसीबट, संकेतवट, नागर कटि काछे, खौरि केसरि की किए—४६०। (ख) चन्दन खौरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत—४७६। (ग) चंदन की खौरि किये नटवर काछे काछनी बनाइ री—८८१।

खौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं खोपड़ी] कपाल, खोपड़ी।

संज्ञा स्त्री [देश.] राख।

संज्ञा स्त्री. [सं. च्छौर या क्षुर, हिं. खौर] मस्तक पर लगा चंदन का आड़ा या धनुषाकार तिलक। उ.—बरन बरन सिरपाग चौतनी बछि कटि छबि चन्दन खौरी की—२४०२।

खौरु—संज्ञा पु. [देश.] बैल या साँड़ की बोली।

खौलना—क्रि. स [सं. क्ष्वेल] (१) तरल पदार्थ का उबलना। (२) क्रोधित होना।

खौलाना—क्रि. स. [हिं. खौलना] उबालना।

खौहड़, खौहा—वि. [हिं. खाना] (१) बहुत खानेवाला। (२) दूसरे की कमाई खानेवाला।

ख्यात—वि. [सं.] प्रसिद्ध।

ख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि, नामवरी।

ख्याल—संज्ञा पुं [अ.] (१) ध्यान। उ.—औरै कहति और कहि आवति मन मोहन के परी ख्याल—११८३।

मुहा.—ख्याल करना—याद करना। ख्याल (पर चढ़ना)-याद आना। ख्याल रखना—ध्यान रखना, देखभाल करते रहना। ख्याल रहना—याद बनी रहना। ख्याल से उतरना (उतर जाना)—भूल जाना। ख्याल परी हैं—पीछे पड गयी हैं, परेशान करने पर उतारू है। उ.—राधा मन में यहै बिचारति। ये सब मेरे ख्याल परी हैं अब ही बातन लें निरुवारति—१३०८।

(२) अनुमान, अटकल, अंदाज।

मुहा.—ख्याल बाँधना—अनुमान लगाना।

(३) विचार, सम्मति। (४) आदर।

मुहा.—ख्याल करना—रियायत करना। ख्याल में लाना—(१) रियायत करना। (२) ध्यान देने योग्य समझना।

(५) एक विशेष गान। (६) लावनी गाने का एक ढंग।

संज्ञा पुं. [हिं खेल] खेल, दिल्लगी। (उ०—(क) आनंदित ग्वाल-बाल करत विनोद ख्याल, भुज भरि भरि धरि अकम महर के—१०-३०। (ख) सूर प्रभु नंदलाल, मार्‍यौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल ब्रज जन उबार्‍यौ—१०-६२। (ग) कूदि परे चढ़ि कदम तें, तुम खेलत यह ख्याल—५८६। (घ) हरि छबि अंग नट के ख्याल—पृ. ३२८। (ङ) अंतर्धान भये रचि ख्याल-१८११। (२) अनुचित करनी, करतूत, अद्भुत चरित्र। उ.—(क) मोसौं जनि बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल—३४५। (ख) ऐसे ख्याल करे इन बहु बिधि कहत जु आवै लाज—७४२ सारा। (३) लीला, माया, क्रीड़ा। उ.—(क) यह सुनि रुकमिनि भई बेहाल। जानि परयौ नहिं हरि कौ ख्याल—१० उ.-३२। (ख) सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५६८। (ग) जीव परयौ या ख्याल में अरु गये दसा दस—११७७।

ख्याला—संज्ञा पुं [हिं खेल, ख्याल] (१) खेल, हँसी, क्रीडा, दिल्लगी। उ.—चकृत भये नन्द सब महर चकृत भये चकृत नर नारि करत ख्याला—६४५। (२) लीला, माया। (३) करनी, करतूत, अद्भुत या अनुचित कृत्य। उ.—(क) नन्द महर की कानि करत हैं छाँड़ि देहु ऐसे ख्याला—१०३४। (ख) जोबन रूप देखि ललचाने अब हीं ते ये ख्याला—१०३८।

ख्याली—वि. [हिं. ख्याल] (१) कल्पित, अनुमित। (२) सनकी, वहमी।

वि. [हिं खेल] खिलाड़ी, कौतुकी। उ.—साँझ गये बहि आइहैं मोसों री आली। अनत बिरमि कतहूँ रहे बहु नायक ख्याली—२१७८।

ख्वाजा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) मालिक। (२) सरदार। (३) फकीर। (४) नपुंसक सेवक।

ख्वान—संज्ञा पुं. [फा.] थाल, परात।

ख्वाब—संज्ञा पुं [फा.] (१) नींद। (२) स्वप्न।

मुहा.—ख्वाब होना (हो जाना)-पुन. प्राप्त न होना।

ख्वाय—क्रि. स. [हि. खिलाना] खिलाकर। उ.-छॅल कियौ पाडवनि कौरव कपट-पासा ढरन। ख्वाय विष, गृह लाय दीन्हौ, तउ न पाए जरन—१-२०२।

ख्वार—वि. [फा.](१) नष्ट, बरबाद। (२) उपेक्षित।

ग

ग—कवर्ग का तीसरा व्यंजन। इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण है। इसका उच्चारण-स्थान कठ है।

गंग—सज्ञा स्त्री. [सं. गगा] गंगा नदी। उ.—गंग प्रवाह माहिं जो न्हाइ। सो पवित्र है सुरपुर जाइ —६-६।

संज्ञा पु.—(१) एक मात्रिक छन्द। (२) अकबर का दरबारी एक कवि।

गंगई—संज्ञा स्त्री. [अनु. गे गें] एक छोटी चिड़िया।

गंगकुरिया—सज्ञा स्त्री. [स. गंगा + कुल] एक तरह की हल्दी।

गंगबरार—संज्ञा पुं. [हिं. गंगा + फा. बरार=बाहर या ऊपर लाया हुआ] वह भूमि जो नदी की धार या बाढ़ के हटने पर निकल आती है।

गॅगरी—सज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की कपास।

गॅगवा—सज्ञा पु. [देश.] एक पेड़।

गंगसुत—संज्ञा पु. [स.] भीष्म।

गंगा—संज्ञा स्त्री. [स.] भारत की सर्वप्रधान नदी।

मुहा—गगा उठाना—गंगा जल छूकर कसम खाना। गगा पार करना—देश से निकालना। गगा नहाना—छुट्टी पाना। गंगा दुहाई—गंगा की कसम। गंगा कैसो पानी—बहुत पवित्र और निर्मल, शुद्ध आचरणवाला। उ.—तुम जो कहति हौ, मेरौ कन्हैया गंगा कैसो पानी। बाहिर तरुन किसोर वयस वर,बाट घाट का दानी—१०-३११।

गंगागति—सज्ञा स्त्री [सं.] (१) मृत्यु। (२) मोक्ष।

गगाचिल्ली—सज्ञा. स्त्री. [स] एक जलपक्षी।

गंगाजमनी—वि. [हिं. गंगा + जमुना] (१) मिला-जुला, दुरंगा। (२) सुनहले-रुपहले तारों का बना हुआ। (३) काला-सफेद।

संज्ञा स्त्री.—(१) कान का एक गहना। (२) अरहर-उर्द की मिली जुली दाल। (३) सुनहले-रुपहले तार का काम।

गंगाजल—संज्ञा पुं. [स] (१) गंगा का जल। (२) एक महीन कपड़ा।

गंगाजली—संज्ञा स्त्री. [स. गगाजल] (१) सुराही या पात्र जिसमें गगाजल भरा हो।

मुहा.—गंगाजली उठाना—गंगाजल से भरा पात्र हाथ में लेकर कसम खाना।

(२) धातु की सुराही।

सज्ञा पुं.—एक तरह का गेहूँ।

गंगाजाल—संज्ञा पु. [सं. गंगा + जाल] मछुओं का जाल जो घास से बनता है।

गंगाद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] हरद्वार।

गंगाधर—संज्ञा पुं. [स.] (१) शिवजी। (२) एक औषध। (३) एक वर्णवृत्त।

गगाधारी—सज्ञा पुं. [स. गंगाधर] शिव, महादेव। उ.—चन्द्र चूड़, शिखि-चन्द सरोरुह, जमुना प्रिय, गंगाधारी—१०-१७१।

गंगापथ—संज्ञा पुं. [स.] आकाश।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं. [स.] (१) एक तरह के ब्राह्मण जो घाट पर दान लेते हैं। (२) एक वर्णसंकर जाति।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री. [स.] विवाह के बाद की एक रीति।

गगायात्रा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) गंगा किनारे मरने जाना। (२) मृत्यु।

गंगाल—संज्ञा पुं. [सं. गंगा+आलय] पानी रखने का बड़ा कडाल।

गंगाला—संज्ञा पु० [सं. गंगा + आलय] गंगा का कछार।

गंगालाभ—संज्ञा पु [सं] (१) गंगा-प्राप्ति, गंगा-किनारे मृत्यु। (२) मृत्यु।

गंगावतरण—संज्ञा पु [सं.] गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर आना।

गंगासागर- संज्ञा पु. [सं.] (१) एक तीर्थ जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है। उ.—यह तनु त्यागि मिलन यों बनिहै गंगा सागर संग—२६०१। (२) एक तरह की मोटी जनानी धोती। (३) बड़ी टोंटीदार झारी।

गंगासुत—संज्ञा पुं. [सं.] भीष्म।

गंगेटी—संज्ञा स्त्री. [स. गंगाटी] एक बूटी।

गंगेय—संज्ञा पुं. [सं गांगेय] गंगा-पुत्र भीष्म।

गंगेरन— संज्ञा स्त्री. [सं. गांगेरुकी] एक पौधा।

गंगेरुवा—संज्ञा पुं. [स. गांगेरुक] एक पहाड़ी पेड़।

गंगेरू—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँगेरन] एक पौधा।

गंगेश—संज्ञा पुं. [स.] महादेव।

गंगोझ—संज्ञा पुं. [स. गंगोदक] गंगा-जल।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री. [स. गंगावतार] हिमालय का एक तीर्थ जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है।

गंगोदक—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + उदक] (१) गंगा-जल। (२) एक वर्णवृत्त।

गंगोल—संज्ञा पुं. [सं.] एक मणि, गोमेदक।

गंगौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंगा + मिट्टी] गंगा किनारे की बालू।

गंगौलिया—संज्ञा पुं. [हि. गंगाल] एक तरह का खट्टा नीबू।

गंज—संज्ञा पुं. [सं. कंज या खंज] एक रोग जिसमें सर के बाल गिर जाते हैं।

संज्ञा स्त्री०— (१) खजाना। (२) ढेर, राशि। (३) समूह, झुंड। (४) भंडार। (५) हाट, बाजार। (६) बनियों की आबादी। (७) मद्यपात्र। (८) मदिरालय।

संज्ञा पु. [स] तिरस्कार।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक लता।

गंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अवज्ञा, तिरस्कार, निरादर। (२) नाश, हानि। उ.—(क) वृषभ गंजन मथन-केसी हने पूँछ फिराइ—४६८। (ख) कालीविष गंजन दह आए—५७८। (३) दुख, कष्ट। (४) ताल का एक भेद।

गंजना—क्रि. स. [सं. गंजन] (१) निरादर करना। (२) नाश करना। (३) चूर-चूर करना।

गंजा—संज्ञा पुं. [हिं. गंज] गंज रोग।

वि.—जिसे गंज रोग हो।

गँजाना—क्रि. अ. [हिं. गँजना] (१) निरादर करना। (२) नाश करना।

क्रि. स. [हिं. गाँजना] ढेर लगाना।

गंजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंज] (१) ढेर, समूह। (२) शकरकंद।

संज्ञा स्त्री.— बनियायन।

वि. [हि. गाँजा] गाँजा पीनेवाला।

गँजीफा—संज्ञा पुं. [फा. गंजीफा] (१) एक खेल जो ९६ पत्तों से खेला जाता है। (२) ताश।

गँजेडी—वि [हि. गाँजा + एड़ी (प्रत्य.)] गाँजा पीने वाला।

गँठकटा—संज्ञा पुं. [हि. गाँठ + काटना] गिरहकट।

गँठछोर—संज्ञा पु. [हि. गाँठ + छोरना] गिरहकट।

गँठजोड़ा - संज्ञा पु. [हिं. गाँठ + जोड़ना] गँठबंधन।

गँठबंधन—संज्ञा पु [हिं. गाँठ + बंधन] (१) विवाह की एक रीति जिसमे वर के दुपट्टे से वधू के आँचल का छोर बाँधा जाता है। (२) दो व्यक्तियों का हर समय का साथ।

गँठि—संज्ञा स्त्री. [हि. गाँठ] गाँठ। उ.—अछत-दूब-दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ, इहै मोहि लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५।

गँठुआ—संज्ञा पुं [हिं. गाँठ] ताने-बाने के टूटे हुए तागों को जोड़ना।

गंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कपोल, गाल। (२) कनपटी, कान के नीचे गरदन का भाग। उ.—(क) स्याम सुभग तनु, चुअत गंड मद बरषत थोरे थोरे—२७९३। (ख) रत्न जटित कुंडल स्रवनन वर गंड कपोलनि झाईं—३०३१। (३) गले में पहनने का गंडा। (४) फोड़ा। (५) चिन्ह, दाग। (६) गाँठ। (७) गैंडा।

गंडक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गले में पहनने का गंडा। (२) गाँठ। (३) एक रोग जिसमें बहुत फोड़े निकलते है। (४) गैंडा। (५) चिन्ह। (६) एक नदी। (७) गडकी नदी का प्रदेश।

गंडाक—सज्ञा स्त्री [सं.] एक वर्णवृत्त।

गंडकि. गडकी—सज्ञा स्त्री. [सं. गंडकी] एक नदी जो नेपाल में हिमालय से निकलकर पटने के पास गगा में गिरती है। सालग्राम की बहुत सी वटियाँ इसमें मिलती हैं। जड भरत ने इसी के किनारे आश्रम मे तप किया था और यहीं हिरनी के बच्चे के प्रति मोह उनमें उत्पन्न हुआ था।

गँडदार—संज्ञा पुं. [सं. गंड या गँडासा+फा दार (प्रत्य.)] हाथीवान, महावत।

गंडदूर्वा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) गाँडर घास जिसकी जड़ 'खस' कहलाती है। (२) एक तरह की दूब।

गंडनि—संज्ञा पु. [स. गंड + नि (प्रत्य.] कनपटी में। उ.—गरजि घुमरात मद भार गडनि स्त्रवत पवन ते वेग तेहि समय चीन्हौ—२५६१।

गंडमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] कनपटी। उ.—(क) चलित कुंडल गडमंडल, मनहुँ निर्तत मैन—१-३०७। (ख) चलित कुंडल गडमंडल झलक ललित कपोल—६२७।

गंडमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का रोग जिसमें गले में बहुत से फोडे निकलते है।

गंडमूर्ख—वि. [सं.] बड़ा मूर्ख।

गँडरा—संज्ञा पुं. [सं. गंडाली] (१) एक घास। (१) एक तरह का धान।

गँडरी—सज्ञा स्त्री. [हिं. गँडरा] गँडरा घास।

गंडली—सज्ञा स्त्री. [सं.] । (१) छोटी पहाडी। (२) शिव।

गंडस्थल—संज्ञा पुं. [स.] कनपटी।

गंडा—संज्ञा पुं. [स. गंडक=गाँठ] गाँठ।

संज्ञा पु. [स गंडक=गले में पहनने का जंतर] (१) बटे हुए तागे का जतर जिसमें मंत्र पढ़कर गाँठ लगायी जाती है। (२) मत्र पढ़कर बाँधा जानेवाला तागा। (३) पशुओं के गले में पहनाने का पट्टा।

संज्ञा पुं. [सं. गंडक] गिनने के लिए चार-चार की संख्या।

संज्ञा पु. [सं. गंड = चिन्ह] (१) आड़ी लकीरो की पक्ति। (२) रंगीन धारी, कठी।

गंडारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कचनार।

गडाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाँडर घास।

गँडासा—संज्ञा पुं. [हिं. गँडी + असि=तलवार] चारा या घास काटने का औजार या हथियार।

गंडिका—सज्ञा स्त्री. [सं.] चमडे की छोटी नाव।

गंडिनी—संज्ञा स्त्री. [स.] दुर्गा।

गंडीर, गंडीरी—सज्ञा पुं. [सं.] एक साग।

गंडुपद—सज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिसमें पैर बहुत मोटा हो जाता है।

गंडूक—संज्ञा पुं. [हि. गंडूप] (१) चुल्लू। (२) कुल्ली।

गंडूपद—संज्ञा पुं. [सं.] केंचुआ।

गंडुपदभव—संज्ञा पुं. [सं.] सीसा धातु।

गंडूप—संज्ञा पुं. [स.] (१) चल्लू, कुल्लू। उ.—सूरदास प्रभु भले परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैं। भरि गंडूप, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै—१०-२८७। (२) हाथी की सूड़ की नोक।

गँडेरी—संज्ञा स्त्री. [सं, कांड या गड] (१) ईख या गन्ने का छोटा टुकड़ा। (२) छोटा टुकड़ा।

गँडोरी—सज्ञा पुं. [सं. गंडोल = ईख या गुड़] कच्चा खजूर।

गंडोल—संज्ञा पु. [सं.] (१) कच्ची शकर, गुड़। (२) ईख। (३) कौर, ग्रास।

गंतव्य—संज्ञा पुं. [सं.] लक्ष्य।

वि.—चलने योग्य।

गंता—संज्ञा पुं. [सं. गंत] जानेवाला।

गंदगी—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] (१) मैलापन। (२) अपवित्रता। (३) मैला।

संज्ञा पुं [सं, गंध] दुर्गंध।

गंदना—संज्ञा पुं. [स. गध] (१) एक कंद। (२) एक घास।

गंदुम—संज्ञा पुं [देश.] एक पत्ती।
गँदला—वि. [हि गंदा + ला (प्रत्य.)] मैला, गंदा।
गंदा—वि. [फा.] (१) मैल-कुचैला। (२) अपवित्र। (३) घिनौना।
गँदील—सज्ञा पुं [स गंध] एक घास।
गंदुम—संज्ञा पु. [फा] गेहूँ।
गंदुमी—संज्ञा पुं [फा. गंदुम] (१) गेहुँआँ, ललाई लिये भूरे रंग का। (२) गेहूँ या उसके आटे का बना पदार्थ।
गँदोलना—क्रि स. [फा. गंदा] (पानी) गंदा करना।
गंध—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) बास, महक। उ.—चाहत गंध बैरी बीर—सा. २८। (२) सुगंध, सुवास। उ.—माधौ नैंकु हटकौ गाइ।···छहौं रस जौ धरौं आगें, तउ न गंध सुहाइ—१-५६। (३) सुगंधित लेप या द्रव्य। (४) लेशमात्र संबंध। (५) गंधक।
गंधक—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक खनिज पदार्थ।
गंधकाष्ठ—संज्ञा पुं [सं.] अगर की लकड़ी।
गँधकी—वि [हिं. गंधक] गंधक के हल्के पीले रंग वाला।
संज्ञा पुं.—सफेदी लिये हलका पीला रंग।
गंधकोकिल—सज्ञा पुं. [सं.] एक सुगंधित पदार्थ।
गंधगात—संज्ञा पु. [सं गंधगात्र] चंदन।
गंधचाहन—संज्ञा पुं. [स गंध+चाहन=चाहने वाले] गंध के चाहनेवाले भौंरे। उ.— चाहत गंध बैरी बीर। अपनो हित चहत अनहित होत छोड़त तीर —सा २८।
गंधत्राण—संज्ञा पुं. [सं. गंध + त्राण] एक तरह की घास।
गंधद—संज्ञा पुं. [सं. गंध+ द] चंदन।
गंधनाल—संज्ञा पु. [हिं.] नाक का छेद, नथुना।
गंधपत्र—संज्ञा पुं. [स.] (१) सफेद तुलसी। (२) नारंगी। (३) बेल।
गंधप्रत्यय—संज्ञा पुं. [सं.] नाक।
गंधप्रसारिणी—सज्ञा स्त्री [सं] एक लता।
गंधबंधु—संज्ञा पुं. [सं] आम।
गंधबबूल—संज्ञा पुं. [सं. गंध+बबूल] एक तरह का बबूल।
गंधबेन—सज्ञा. पु. [सं गंधवेणु] एक सुगंधित घास।
गंधमृग—संज्ञा पु. [स.] कस्तूरी मृग।
गंधमाद—सज्ञा पुं. [सं.] भौंरा।
गंधमादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत। (२) भौंरा। (३) एक सुगंधित द्रव्य।
गंधरब—संज्ञा पु. [सं. गंधर्व] देवताओं का एक भेद। उ.—जच्छ, मनु, बासुकी नाग, मुनि, गंधरब, सकल बसु, जीति मैं किए चेरे—६-१३०।
गंधरबिन—संज्ञा स्त्री. [हि गंधर्बिन] गंधर्व की स्त्री।
गंधराज—सज्ञा पु. [स.] (१) एक तरह का बेला। (२) एक सुगंधित द्रव। (३) चंदन।
गंधर्व, गंधर्ब—सज्ञा पु [स] (१) देवताओं की एक जाति जो गाने में निपुण मानी गयी है। (२) मृग। (३) घोड़ा। (४) प्रेत। (५) स्त्रियों की वह अवस्था जब उनका स्वर विशेष मधुर होता है। (६) एक मानसिक रोग। (७) ताल का एक भेद। (८) विधवा का दूसरा पति।
गंधर्वनगर, गंधर्वपुर—सज्ञा पु. [सं.] (१) मिथ्या भ्रम।(२) हल्के बादलों से ढका चंद्रमंडल। (३) पश्चिम में संध्या की लाली। (४) मानसरोवर के निकट माना हुआ एक नगर जिसकी रक्षा गंधर्व करते थे।
गंधर्व विद्या—सज्ञा पु. [सं.] गान विद्या।
गंधर्वविवाह—सज्ञा पुं [स] वह विवाह जो वर-वधू माता पिता की आज्ञा लिये बिना कर लें।
गंधर्ववेद—सज्ञा पुं. [स.] संगीत शास्त्र।
गंधर्वा—संज्ञा स्त्री. [स.] दुर्गा।
गंधर्विन—संज्ञा स्त्री. [स. गंधर्व + हिं. इन (प्रत्य.)] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) गंधर्व जाति की सुन्दर स्त्री। उ.—जो तुम मेरी इच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।
गंधर्वी—सज्ञा स्त्री. [स.] गंधर्व की स्त्री।
वि. [सं गंधर्व + ई (प्रत्य.)] गंधर्व संबंधी।
गंधवह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वायु। (२) नाक। (३) चंदन।

वि.—(१) गंध ले जानेवाला। (२) सुगंधित।

गंधवाह—संज्ञा पुं [सं.] वायु।

गंधवाहपूत बांधव तासु पतनी भाइ—संज्ञा पु. [सं. गंधवाह (=वायु, पवन) + पुत्र (पवन का पुत्र, भीम) + बांधव (=भाई, भीम का भाई=अर्जुन) तासु पतिनी (=उसकी पत्नी=अर्जुन की पत्नी=सुभद्रा) + भाइ (=भाई=सुभद्रा का भाई=श्रीकृष्ण) श्रीकृष्ण। उ.—गंधवाहन-पूत-बांधव तासु पतिनी भाई। बवै द्रग भर देखयो जू सबै दुख बिसराइ—सा. २२।

गंधवाही—संज्ञा पु. [सं.] गंध का वहन करनेवाला।

गंधसार—संज्ञा पु. [सं.] (१) चंदन। (२) बेला।

गंधहर—संज्ञा पुं [सं.] नाक।

गंधहस्ती—संज्ञा पु. [सं.] मतवाला हाथी जिसकेमस्तक से मद बहता हो।

गंधा—वि. स्त्री [सं.] गंधयुक्त, गंधवाली।

गँधात—क्रि. स. [हिं. गँधाना] दुर्गंध करता है, गँधाता है। उ.—रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच उदर गंध गधात—२-२४।

गँधाना, गंधाना—क्रि. स. [हिं. गंध] गंध देना, दुर्गंध करना।

संज्ञा पुं. [सं. गंधन] रोला छन्द।

गंधार—संज्ञा पु. [सं. गांधार] गांधार देश।

गंधारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गांधारी] (१) धृतराष्ट्र की स्त्री जो दुर्योधन आदि कौरवों की माता थी। गांधार देश के राजा सुबल इनके पिता थे। पति को अंधा देखकर ये आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रहीं। (२) गांधार देश की स्त्री।

गंधाशन—संज्ञा पु. [सं.] पवन।

गंधाष्टक—संज्ञा पुं. [सं.] आठ गंध द्रव्यों से बना हुआ एक गंध।

गंधिनि, गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं गंधी] गंधी या अत्तार की स्त्री। उ.—दूलह देखौंगी जाय उनरे सँकेतवट केहि मिस देखन पाऊँ। ' । चन्दन अरगजा सूर केशरि धरि लेऊँ। गंधिनि ह्वै जाउँ निरखि नैन सुख देऊँ—पृ. ३४६ (६१)।

२ गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा।

गंधिया—संज्ञा पु [हिं. गंध] एक कीड़ा।

संज्ञा स्त्री.—एक बरसाती घास।

गंधी—संज्ञा पुं. [सं. गंधिन्](१) तेल, इत्र आदि बेचने वाला। (२) गंधिया घास। (३) गँधिया कीड़ा।

गँधीला, गंधीला—वि. [सं. गंध या हिं गंदा] (१) मैला, गंदा। (२) बुरी गंधवाला।

गंधेज—संज्ञा स्त्री [सं. गंध] एक तरह की घास।

गंधेल—संज्ञा पुं. [सं. गंध] एक झाड़।

गंधेला, गंधेली—वि. [हिं गंध] जिसमें बुरी गंध हो।

गंध्रब—संज्ञा पु [सं. गंधर्व] देवताओं की एक जाति। उ.—गंध्रब ब्रह्म-सभा मँझारि। हँस्यौ अप्सरा ओर निहारि—७ ८।

गंध्रबपुर—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्वपुर] (१) स्वर्ग। (२) गंधर्वों का देश। उ.—गंधर्वनि कै हित तप करौ। तप कीन्हैं सो दैहैं आग। ता सेती तुम कीनौ जाग। जब कियँ गंध्रबपुर जैहो। तहाँ आइ मोको तुम पैहो —६-२।

गंभारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़।

गँभीर, गंभीर—वि. [सं] (१) गहरा, जिसकी थाह न मिले। उ.—कुंजर कूल रमित अति राजत तहँ सोनित सलिल गँभीर—१० उ.-२। (२) घना, गहन। (३) शांत, सौम्य। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति गंभीर उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ —१-८। (४) गूढ़, जटिल। (५) घोर, प्रचंड। (६) बलशाली, सशक्त, भारी, दृढ़। उ.—लै लै खोन हृदय लपटावति, चुंबति भुजा गँभीर—१-२६। (७) कठोर, धैर्ययुक्त, दृढ़। उ.—तब ऊधो कर लै लिखी हरि जू की पाती। पढ़ी परत नहिं नेक रहे गंभीर करि छाती—३४४३। (८) प्रसिद्ध, महत्वपूर्ण। उ.—बड़ कुल, बडे भूप दसरथ सखि, बड़ौ नगर गंभीर—६-४४।

संज्ञा पुं—(१) जंभीरी नीबू। (२) कमल। (३) एक तरह का मंत्र। (४) शिव। (५) एक राग।

गंभीरवेदी—संज्ञा पुं. [सं. गंभीरवेदिन्] इतना मस्त हाथी कि अंकुश की मार से भी वश में न हो।

गंभीरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा ढोल।

गँवँ—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (१) दाँव, घात। (२) मतलब। (३) अवसर, मौका। (४) ढङ्ग, उपाय।

मुहा.— गँवे से—(१) ढङ्ग से, उपाय से। (२) धीरे से, चुपके से।

गँवई—संज्ञा स्त्री [हि. गाँव] छोटा गाँव।

गँवरदल—वि. [हिं. गँवार + दल] (१) गँवारों की तरह का भद्दा। (२) गँवार, उजड्ड।

गँवरमसल—संज्ञा पुं. [हिं गँवार + अ मसल] गँवारों की कहावत या उक्ति।

गँवहियाँ—संज्ञा पुं. [स. गोघ्न=अतिथि] मेहमान, अतिथि।

गँवाइ—क्रि. स. [हि गँवाना] (समय) गँवा देना, खो देना।

यौ.-जैहै गँवाइ-व्यर्थ हो जायगा। उ.—सूरदास भगवत भजन बिनु जैहै जनम गँवाइ—१-३१७।

गँवाई—क्रि. स. [हिं. गँवाना] दूर की, खो दी, मिटा दी। उ.—(क) सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (ख) रंच काँच सुख लागि मूढ़-मति, कंचन रासि गँवाई—१-३२८। (ग) भली करी हरि गेंद गँवाई—५२५।

गँवाए—क्रि. स. [हि गँवाना] खो दिये, दूर किये। उ.—(क) पहुँचे आइ बिपिन घन बृंदा, देखत द्रुम दुख सबनि गँवाए—४४७। (ख) मुरली कौन सुकृति-फल पाए। अधर-सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गँवाए—६६१।

गँवाना—क्रि स. [सं. गमन, पुं. हि गवन] (१) (समय) बिताना या काटना। (२) (प्राप्त वस्तु) खो देना।

गँवायौ—क्रि. स. [हि. गँवाना] (समय) बिताया या काटा। उ.—सूरदास भगवत-भजन-बिनु, नाहक जनम गँवायौ—१-७६।

गँवार—वि. [हिं. गाँव + आर (प्रत्य.)] (१) देहाती, असभ्य। (२) मूर्ख, नासमझ। उ.—(क) इहि तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार। (ख) एकहुँ आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ सूर गँवार—१-३२५। (३) अनाड़ी, अनजान।

गँवारता—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँवार + ता (प्रत्य.)] गँवारपन।

गँवारि, गँवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँवार] (१) देहातीपन। (२) मूर्खता। (३) नासमझी। (४) गँवार स्त्री।

वि. स्त्री. [हि. गँवार + ई (प्रत्य.)] (१) गँवार की तरह का। (२) भद्दा। (३) नासमझ, मूर्ख। उ.—(क) बाँह पकरि तू ल्याई काकौं अति बेसरम गँवारि—१०-३१४। (ख) वारौं लाज भई मोकौं बैरिनि मैं गँवारि मुख ढारयौ—२५४६।

गँवारू—वि. [हिं. गँवार + ऊ (प्रत्य.)] (१) गँवार की भद्दी रुचि का। (२) भद्दा। (३) जो सुरुचिपूर्ण न हो।

गँवावत—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बिताते या व्यर्थ खोते हैं। उ.—मैं-मेरी करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परत जम-डोरी—१-३०३।

गँवावै—क्रि. स. [हि. गँवाना] (१) (समय) बिताता या काटता है। (२) व्यर्थ खो देता है, नष्ट कर देता है। उ.—(क) आन देव हरि तजि भजे, सो जनम गँवावै—२-६। (ख) हरि की कृपा मनुष-तन पावै। मूरख बिषय-हेतु सो गँवावै—४-१२।

गँवैहै—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बितावेगा या काटेगा। उ.—सूरदास भगवत भजन बिनु वृथा सुजनम गँवैहै—१-८६।

गँवैहौं—क्रि. स. [हि. गँवाना] दूर करूँगा, मिटाऊँगा। उ.—मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं—७-५।

गँवैहौ—क्रि स. [हिं. गँवाना] (समय) नष्ट करोगे या व्यर्थ खोओगे। उ.—सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ—१-३३१।

गँस, गस—संज्ञा पुं [सं. ग्रंथि] (१) द्वेष, बैर। उ.—(क) मरौ वह कंस, निरवंस वाकौ होइ, कन्यौ यह गस तोकौं पठायौ—५५१। (ख) अपने घर के तुम राजा हौ सबके राजा कंस। सूर स्याम हम देखत ठाढे अब सीखे ये गँस—१०६२। (२) चुभने या लगने वाली चुटीली बात, आक्षेप, व्यंग्योक्ति। उ.—चलत सो मोहित गति राजहंस। हँसत परस्पर गावत गस—१८२७।

संज्ञा स्त्री [सं. कषा = चाबुक] तीर की नोक, गाँसी।

गॅसना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन, हि. गांस] (१) जकड़ना, अच्छी तरह कसना। (२) विने हुए तागों को इस तरह कसना कि छेद न रह जाय।

क्रि. अ.—(१) गँठ जाना, कस जाना। (२) (२) ठसाठस भर जाना, अच्छी तरह छा जाना।

गॅसी, गंसी—क्रि. स. [हि. गॅसना] (१) कस गयी, जकड़ गयी, खूब गँठ गयी। उ.—वृन्दावन की माल कलेवर लता माधुरी गंसी। सूरदास लै भुज बीच राखी माधव मदन प्रसंसी—१६८५। (२) मिली, कसी।

गॅसीला—वि. [हिं. गाँसी] नुकीला, चुभनेवाला।

वि. [हिं. गॅसना] (१) गँठा हुआ, कसा हुआ। (२) जिसकी बुनावट गँठी हुई हो।

ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गीत। (२) गंधर्व। (३) गुरु या दीर्घ मात्रा। (४) गणेश।

सज्ञा पुं [सं.] (१) गानेवाला मनुष्य। (२) जानेवाला मनुष्य।

गइंद—संज्ञा पु. [स. गयंद] हाथी।

गइनाही—संज्ञा स्त्री. [सं ज्ञान] जानकारी, ज्ञान। उ.—डसी री माई स्याम भुअङ्गम कारे। ··· । फुरै न जंत्र मंत्र गइनाही चले गनी गुन डारे।

गईं—क्रि. अ. स्त्री. [सं. गम] 'जाना' क्रिया का भूत. स्त्री० बहु० रूप, प्रस्थानित हुईं।

गई—क्रि. अ. [सं. गम] (१) 'जाना' क्रिया का भूत. स्त्री. रूप, प्रस्थान किया। इसका प्रयोग संयोजक क्रिया के रूप में भी होता है।

मुहा.—गई करना-छोड़ देना, ध्यान न देना।

(२) भूली, (संज्ञा) खो दी। उ.—सुरछि परी तन-सुधि गई, प्रान रहे कहुँ जाई—५८६।

गई बहोर—वि. [हिं गया + बहुरि] खोई या बिगड़ी हुई वस्तु को फिर पाने या बनानेवाला।

गउंक—सज्ञा स्त्री. [देश.] एक घास।

गउ, गऊ—सज्ञा स्त्री. [सं. गो] गाय।

गए—क्रि. अ. [सं गम, हि जाना] (१) जाना-क्रिया के भूतकालिक बहुवचन या आदरसूचक एक-वचन रूप, प्रस्थानित हुए, जाने पर। उ.—सरन गए को को न उबारयौ—१-१४। (२) बीते, व्यर्थ ही व्यतीत हुए। उ.— (क) सब दिन गए अलेखे। (ख) कछु दिन घटि पट मास गए—१०८८।

वि.—गया हुआ, खोया हुआ, नष्ट। उ.– गए राज का दुख नहिं कोइ—१-२८६।

गऐ—क्रि. अ. सवि. [सं. गम, हि जाना] (१) चले जाने पर, खो जाने पर, नष्ट होने पर। उ.—हरि रस तौ अब जाइ कहुँ लहिये। गऐ सोच आऐ नहि आनँद, ऐसो मारग गहिये—२-१८। (२) बीतने पर, समाप्त होने पर। उ.—दिन दस गऐ विषय के हेतु···। —१०-४।

गगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) शून्य स्थान। (३) छप्पय छन्द का एक भेद।

गगनकुसुम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश-कुसुम। (२) असभव बात।

गगनगढ़—संज्ञा पुं. [सं. गगन + गढ] बहुत ऊँचा महल या किला।

गगनगति—सज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश में चलनेवाले पक्षी आदि। (२) सूर्य आदि ग्रह। (३) देवता।

गगनचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी। (२) ग्रह।

वि.—आकाश में चलनेवाले।

गगनचुंबी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।

गगनधूल—सज्ञा स्त्री. [सं. गगन + हिं. धूल] केतकी या केवड़े के फूल की धूल।

गगनध्वज—सज्ञा पुं. [स.] (१) सूर्य। (२) बादल।

गगनपति—सज्ञा पुं [सं.] इंद्र। उ.—रुद्रपति, छुद्र-पति, लोकपति, वोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगमबानी—१५२१।

गगनबानी—संज्ञा स्त्री. [स. गगनवाणी] आकाशवाणी।

गगनवाटिका—संज्ञा स्त्री [सं] (१) आकाश की वाटिका। (२) असभव बात।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गगन + भेड़] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

गगनभेदी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।

गगनवती—संज्ञा पुं. [सं. गगनवर्ती] सूर्य।

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशवाणी।
गगनस्पर्शी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।
गगनानंग—संज्ञा पुं. [स.] एक मात्रिक छन्द।
गगनांगना—संज्ञा स्त्री. [स.] अप्सरा।
गगनांबु—संज्ञा पु [सं. गगन + अंबु] वर्षा का जल।
गगनापगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशगंगा।
गगनेचर—संज्ञा पुं. [स.] (१) ग्रह, नक्षत्र। (२) पक्षी। (३) देवता।
वि.—आकाश में चलनेवाला।
गगरा—संज्ञा पुं. [सं. गर्गर = दही मथने का बर्तन] किसी धातु का कलसा।
गगरिया, गगरी—संज्ञा स्त्री. [सं गर्गरी = दही मथने की हाड़ी] धातु का छोटा घड़ा, कलसी।
गच—संज्ञा पुं. [अनु] (१) किसी नरम वस्तु में पैनी वस्तु के धँसने का शब्द। (२) चूने, सुरखी आदि का मसाला। (३) इस मसाले से बनी पक्की जमीन। (४) पक्की छत।
गचकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गच + फ़ा. कारी] गच पीटने का काम।
गचगर—संज्ञा पुं. [हिं. गच + फा. गर = बनानेवाला] कारीगर, थवई।
गचगीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गच + फ़ा. गीरी] गच बनाने का काम, गचकारी।
गचना—क्रि. स. [अनु. गच] (१) ठूँस ठूँस कर भरना। (२) घुमाना। (३) वश में रखना।
गचाका—संज्ञा पुं. [हिं. गच से अनु.] गच से गिरने का शब्द।
क्रि. वि.—भरपूर।
गच्छ—संज्ञा पुं. [सं] (१) पेड़। (२) साधुओं का मठ। (३) एक ही साधु के शिष्य।
गच्छना, गछना—क्रि अ. [सं. गच्छ = जाना] जाना, प्रस्थान करना।
क्रि. स.—(१) निबाहना। (२) स्वयं भार लेना।
गजंद—संज्ञा पुं. [सं. गयंद] हाथी।
गज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी, गयंद। उ.—बारबार संकर्षन भाषत लेत नहीं ह्याँ ते गज टारी—२५८६। (२) महिषासुर का पुत्र। (३) श्रीराम की सेना का एक बंदर। (४) आठ की संख्या। (५) मकान की नींव।
संज्ञा पुं. [फा. गज] (१) लंबाई नापने की एक नाप। (२) बैलगाड़ी के पहिये की लकड़ी। (३) सारंगी बजाने की कमानी।
गजअसन—संज्ञा पुं. [सं. गजाशन] पीपल का पेड़।
गजक—संज्ञा पुं. [फ़ा. कजक] (१) तिल की पपड़ी। (२) जलपान। (३) चटपट खाने की चीज।
गजकुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी का उभरा हुआ मस्तक।
गजकेसर—संज्ञा पु. [सं.] एक तरह का धान।
गजगति—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) हाथी की चाल। (२) मंद और मस्तानी चाल। (३) एक वृर्णवृत्त।
गजगमन—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी की सी मंद और मस्तानी चाल।
गजगामिनि, गजगामिनी—वि. [हिं. गजगामी] मंद और मस्तानी चालवाली। उ.—खंजन मीन मराल हरन छवि भान भेद गजगामिनि—पृ० ३४४ (३५)।
गजगामी—वि. [सं. गजगामिन्] जिसकी चाल मंद और मस्तानी हो।
गजग्राह—संज्ञा पुं. [सं. गज + ग्राह] (१) हाथी की झूल। (२) झूल।
गजगौन—संज्ञा पु. [स. गजगमन] हाथी की सी मंद-मस्तानी चाल।
गजगौनी—वि. स्त्री. [सं. गजगामिनी] हाथी की सी मंद-मस्तानी चालवाली।
गजगौहर—संज्ञा पुं. [हिं. गज + फा. गौहर] गजमुक्ता।
गजचर्म—संज्ञा पुं. [स.] (१) हाथी का चमड़ा। (२) एक रोग।
गजता—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथियों का झुंड।
गजदंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का दाँत। (२) दीवार में लगी खूँटी। (३) घोड़ा जिसके दाँत मुँह के बाहर निकले हो (४) दाँत के ऊपर का दाँत।
गजदंती—वि. [सं. गजदंत + ई (प्रत्य.)] हाथीदाँत का बना हुआ, हाथी दाँत का। उ.—कर कंकन चूरी गजदंती नख मनिमानिक मेटति देती।
गजदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का दान। (२) हाथी का मद।

गजधर—संज्ञा पुं. [हिं. गज + धर] राज, मेमार, थवई।
गजना—क्रि. अ. [हिं. गाजना] गरजना।
गजनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ी तोप जिसे हाथी खींचे।
गजनी—संज्ञा स्त्री. [सं. गज] हथिनी। उ.—जो राजत तिहिं काल लाल ललनारसाल रस रंग। मानहु नहात मदन वधु सजनी गज गजनी गज संग २४५० ।
गजपति—संज्ञा पुं. [सं. गज + पति] (१) बहुत बड़ा हाथी। (२) वह बड़ा हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था और जिसको छुड़ाने के लिए भगवान विष्णु गरुड़ छोड़कर नंगे पैर दौड़े थे। (३) वह राजा जिसके पास बहुत हाथी हों। (४) कलिंग देशीय राजाओं की उपाधि।
गजपाँव—संज्ञा पुं [हिं. गज + पाँव] एक जलपक्षी।
गजपाल—संज्ञा पुं [सं.] महावत, हाथीवान। उ.—क्रोध गजराज गजपाल कीन्हो—२५६१ ।
गजपुट—संज्ञा पुं. [सं.] धातुओं के फूँकने की रीति।
गजपुर—संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर।
गजबंध—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का चित्रकाव्य।
गजब—संज्ञा पुं. [अ. गजब] (१) कोप, रोष। (२) आफत, विपत्ति। (३) अंधेर। (४) अद्भुत बात।
मुहा०—गजब का— अद्भुत, बहुत अधिक।
गजबदन—संज्ञा पुं [सं.] गणेश।
गजबाँक, गजबाग—संज्ञा पुं. [सं. गज + बाँक या बाग] हाथी का अंकुश।
गजबेली—संज्ञा स्त्री. [स. गज + वल्ली] एक तरह का लोहा।
गजभक्षक, गजभक्ष्य—संज्ञा पुं [सं.] पीपल।
गजमणि, गजमनि—संज्ञा स्त्री., पुं. [सं.] गजमुक्ता।
गजमनियाँ—संज्ञा स्त्री. अल्प. [स. गजमणि] गजमणि, गजमुक्ता। उ.—पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ—१०-१०६।
गजमुक्ता—संज्ञा पु. [सं.] मोती जो हाथी के मस्तक से निकलता माना गया है।
गजमुख—संज्ञा पुं. [स.] गणेश।
गजमोचन—संज्ञा स्त्री [सं] गज को संकट से छुड़ाने की क्रिया। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गजमोचन और अनत कथा स्रुति गाई—१-६।
संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का वह रूप जो उन्होंने ग्राह से गज को छुड़ाने के लिए धारण किया था। उ.—गजमोचन ज्यों भयो अवतार। कहौं सुनौ सो अब चितधार।
गजमोती—संज्ञा पुं. [सं. गजमौक्तिक, प्रा. गजमोत्तिय] गजमणि, गजमुक्ता।
गजर—संज्ञा पुं. [सं. गर्ज, हिं. गरज] (१) पहर-सूचक घंटे का शब्द। (२) प्रातःकाल-सूचक घंटे का शब्द। उ.—बोले तमचुर चारो याम को गजर मारयौ पौन भयौ सीतल तम तमता गई—१६०८। (३) जगाने की घंटी।
संज्ञा पुं. [हिं. गजर-बजर] मिला हुआ लाल-सफेद गेहूँ।
गजरथ—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा रथ जिसे हाथी खींचे।
गजर-बजर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) मिले हुए कई पदार्थ। (२) अंड-बंड चीजों का मेल। (३) भक्ष्य-अभक्ष्य।
गजरा—संज्ञा पुं. [हिं. गाजर] गाजर के पत्ते।
संज्ञा पु. [हिं. गंज = समूह] (१) फूलों की घनी गुँथी माला। (२) कलाई का एक गहना। (३) एक रेशमी कपड़ा।
गजराज—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा हाथी। उ.—(क) धाए गजराज काज, केतिक यह बाता—१-१२३। (ख) ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत —३०६३।
गजरिपु—संज्ञा पुं. [सं. गज + रिपु=शत्रु] सिंह।
संज्ञा स्त्री.—पतली कमर या कटि जिसकी उपमा हाथी के शत्रु सिंह की पतली कमर से दी जाती है। उ.—एक कमल पर धारे गजरिपु एक कमल पर ससि-रिपु जोर—सा. उ. ४७।
गजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गजरा] कलाई का एक आभूषण।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गाजर] छोटी गाजर।
गजरौट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाजर + औटा] गाजर के पौधे की पत्ती।
गजल—संज्ञा [फा. गजल] शृंगार रस की कविता।
संज्ञा पुं. [सं० गज = करि = करी+ल = करील]

करील, बबूल । उ.—पग रिपु ता महँ परत गजल के को तन तैं सुरझावै—सा. ८५ ।

गजवदन—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश ।

गजवान—संज्ञा पुं. [हिं. गज + वान (प्रत्य.)] हाथी-वान, महावत ।

गजशाला, गजसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. गज + शाला] वह स्थान जहाँ हाथी बाँधे जाते हैं ।

गजही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाज + फेन] वह लकड़ी जिससे दूध मथकर फेना या मक्खन निकालते हैं ।

गजाधर—संज्ञा पुं. [सं. गदाधर] विष्णु जिन्होंने गदा-सुर की हड्डियों से बनी गदा धारण की थी ।

गजानन—संज्ञा पु. [सं. गज + आनन] गणेश ।

गजा—सज्ञा पुं. [फा. गज] नगाड़ा बजाने का डंडा ।

गजारि—संज्ञा पुं. [स. गज + अरि] (१) शाल । (२) एक वृक्ष । (३) सिंह ।

गजाशन—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल ।

गजास्य—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश ।

गजी—संज्ञा पु. [फ़ा. गज] गाढ़ा, मोटा कपड़ा ।

संज्ञा पुं. [सं. गज + ई (प्रत्य.) अथवा गजिन्] हाथी का सवार ।

सज्ञा स्त्री. [सं.] हथिनी ।

गजेंद्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) बड़ा हाथी । (२) ऐरावत ।

गज्जर—सज्ञा पुं. [अनु] दलदल, कीचड़ ।

गज्जूह—सज्ञा पुं. [सं. गज + व्यूह] हाथियों का झुंड ।

गज्झा—सज्ञा पु. [स. गज्ज=शब्द] (१) पानी में छोटे-छोटे बुलबुलों का समूह । (२) गज ।

सज्ञा पुं. [सं. गज] (१) ढेर, अंबार । (२) खजाना, भंडार । (३) धन-संपत्ति । (४) लाभ ।

गझिन—वि. [हिं. गछना] (१) घना । (२) मोटा कपड़ा, गाढ़ा ।

गटई—सज्ञा स्त्री. [सं. कंठ, पु हिं. घंट] (१) गला । (२) गिट्टी । (३) गोटी ।

गटकना—क्रि. स. [हिं. गट से अनु] (१) खाना, निगलना । (२) दवा लेना ।

गटकि—क्रि. स. [हिं. गटकना] खाना, निगलना । उ.—लटकि निरखन लग्यो मटक सब भूलि गयौ छटक हुै कै गयौ गटकि सिल सौं रह्यौ मीचु जागी —२६०६ ।

गटकीला—वि. [हिं. गटक] खानेवाला ।

गटगट—सज्ञा पुं [अनु] घूँट भरने का शब्द ।

क्रि. वि.—(१) धड़ाधड़, लगातार । (२) घूँटने का शब्द करते हुए ।

गटना—क्रि. अ [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन] बँधना ।

गटपट—सज्ञा स्त्री. [अनु] (१) पदार्थों या प्राणियों की मिलावट । (२) सहवास, प्रसंग ।

गटा—संज्ञा पुं [हिं. गट्टा] (१) कलाई, गट्टा । (२) गाँठ ।

गटागट—क्रि. वि. [हिं. गटगट] (१) गटगट शब्द करके । (२) लगातार, धड़ाधड़ ।

गटी—सज्ञा स्त्री. [स. ग्रंथि, पा गंठि] (१) गाँठ । (२) समूह ।

क्रि. अ. [हिं. गठना] गठी, बँधी । उ.—(क) अपनी रुचि जित ही-जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म गटी । हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी —१-६८ ।

गट्ट—सज्ञा पुं. [अनु.] निगलने का शब्द ।

गट्टा—सज्ञा पु. [सं. ग्रंथ, प्रा. गंठ, हि. गाँठ] (१) कलाई (२) पैर और तलुए के बीच की गाँठ । (३) गाँठ । (४) बीज । (५) एक मिठाई ।

गट्टी—सज्ञा स्त्री [देश.] नदी का किनारा ।

गट्ठर, गट्ठा—सज्ञा पु. [हिं. गाँठ] बड़ी गठरी, बड़ा बोझ ।

गठकटा—वि. पु. [हिं. गाँठ + काटना] (१) गिरहकट । (२) धोखा देकर रुपया ठग लेनेवाला ।

गठजोरा—सज्ञा पु. [हिं. गाँठ जोड़ना] गठबंधन ।

गठन—संज्ञा स्त्री. [स. ग्रथन, प्रा. गठन] बनावट ।

गठना—क्रि. अ. [सं. ग्रथन, प्रा. गठन, हिं. गाँठना का अक. रूप] (१) जुड़ना, सटना, मिलना । (२) मोटी सिलाई होना । (३) ऐसी बनावट होना जिसमें छेद न रहे । (४) गुप्त कार्य या विचार में सम्मिलित होना । (५) ठीक बनना । (६) सयोग होना । (७) गहरी मित्रता होना ।

गठबंधन—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ+बाँधना] विवाह की एक रस्म, गँठजोड़ ।

गठरी—संज्ञा स्त्री [हिं. गट्ठर] (१) बड़ी पोटली । बोझ, भार का झंझट । उ—सूरदास स्वामी के रँग रचि कहाँ धरैं गठरी-३३१८। (२) जमा की हुई दौलत । उ—इह निर्गुन निमोल की गठरी अब किन करत घरी—३१०४ । (३) तैरने की एक रीति ।

गठवाना, गठाना—क्रि. स. [हिं. गँठना] (१) मोटी सिलाई कराना । (२) जोड़ मिलवाना । (३) संयोग कराना ।

गठाव—संज्ञा पुं. [हिं. गठना] गठन, बनावट ।

गठित—वि. [सं. ग्रंथित, पा. गठित] गठा हुआ ।

गठिबंध—संज्ञा पु. [सं. ग्रथिबंध] गँठजोड़, गठबधन ।

गठिया—संज्ञा स्त्री० [हिं गाँठ] (१) छोटी गठरी । (२) एक रोग ।

गठियाना—क्रि. स. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ लगाना । (२) गाँठ में रखना या बाँधना ।

गठिवन—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथिपर्ण] एक पेड़ ।

गठीला—वि. [हिं. गाँठ+ईला (प्रत्य.)] जिसमें कई गाँठें हों ।

वि. [हिं. गठन] (१) गठा हुआ, सुडौल । (२) मजबूत, दृढ़ ।

गठौंद—संज्ञा स्त्री [हिं. गाँठ+ बंध] (१) गाँठ- बँधाई । (२) अमानत, धरोहर, थाती ।

गठौत, गठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. गठना] (१) मेल, मित्रता । (२) पक्की सलाह या बात, गुप्त चक्र, षड्यंत्र ।

गड़ंग—संज्ञा पुं [सं. गर्व] (१) घमंड, शेखी, डींग । (२) अपनी प्रशंसा ।

गडंगिया—वि. [हिं. गड़ंग] डींग हाँकनेवाला, शेखी बघारनेवाला, बढ़ बढ़कर बातें बनानेवाला ।

गड़ंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाड़ना] वह वस्तु जो मंत्र पढ़कर गाड़ी जाय ।

गड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ओट, आड़ । (२) घेरा । (३) गड्ढा । (४) गढ़, किला ।

गड़कना—क्रि. अ. [अनु.] गड़गड़ शब्द करना ।

गड़क—संज्ञा पुं. [अ. गर्क] (१) डुबाव । (२) डूबने या बूड़ने का शब्द ।

गड़गड़ाना—क्रि. अ. [हिं. गड़गड़] गड़गड़ शब्द होना, गरजना, कड़कना ।

क्रि. स.—गड़गड़ शब्द निकालना ।

गड़गडी—संज्ञा स्त्री० [हिं. गड़गड़] नगाड़ा, डुग्गी ।

गड़दार—संज्ञा पुं. [हिं. गड़ना + दार] (१) वह नौकर जो मतवाले हाथी के साथ भाला लेकर इसलिए चलता है कि उसे इधर-उधर भटकने न दे । (२) महावत ।

गड़ना—क्रि. अ. [सं. गर्त, प्रा. गड्ड] (१) चुभना, घुसना, धँसना । (२) चुभने की सी पीड़ा होना, दर्द करना । (३) जमीन में दबना ।

मुहा.—गड़े मुर्दे उखाड़ना—भूली हुई या दबी-दबाई पुरानी झगड़े की बात की फिर चर्चा चलाना । (४) समा जाना, पैठना ।

मुहा.—गड़ जाना—झेंपना, लजाना । लज्जा (ग्लानि) से गड़ना—बहुत लज्जित होकर सिर नीचे कर लेना ।

(५) खड़ा होना, जमीन पर ठहरना । (६) जम जाना, एक स्थान पर स्थिर होना ।

गड़पंख—संज्ञा पुं. [सं. गरुड़+पंख] एक बड़ी चिड़िया ।

गड़प—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पानी, कीचड़ आदि में डूबने का शब्द ।

गड़पना—क्रि. स. [अनु. गड़प] (१) खा लेना । (२) किसी चीज को अनुचित रीति से हथिया लेना ।

गड़बड़, गड़बड़ी—वि. [हिं. गड़=गड्ढा ऊँचा] (१) ऊँचा-नीचा (२) अस्तव्यस्त, अंडबंड ।

संज्ञा पुं.—(१) ऊटपटाँग काम, अव्यवस्था । (२) दंगा, झंझट । (३) (रोग आदि का) उपद्रव ।

गड़बड़ाना—क्रि. अ. [हिं. गड़बड़] (१)चक्कर में आ जाना, भूल कर बैठना । (२) क्रम बिगड़ जाना, व्यवस्था ठीक न रहना । (३) नष्ट होना ।

क्रि. स—(१) (किसी को) चक्कर में डालना, भुलाना । (२) व्यवस्था या क्रम बिगाड़ना । (३) नष्ट करना ।

गड़वाना—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम (दूसरे से) कराना।

गड़हा—संज्ञा पुं. [सं. गर्त, प्रा. गड्ड] गड्ढा।

मुहा.—गड़हा खोदना—बुराई करना। गड़हा भरना (पाटना)—(१) घाटा पूरा करना। (२) रूखी-सूखी खाकर पेट भरना। गड़हे में पड़ना—कठिनाई या असमंजस होना।

गड़ाए—क्रि. स. [हिं. गड़ना] धँसाये हुए। उ.—अति संकट मैं भरत भँटा लौं, मल मैं मूड़ गड़ाए—१-३२०।

गड़ाना—क्रि. स. [हिं. गड़ना] चुभाना, धँसाना।

क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम कराना।

गड़ायट—वि. [हिं. गड़ना] गड़ने या चुभनेवाला।

गड़ारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा, वृत्त। (२) घेरा, मंडल।

संज्ञा स्त्री. [सं. गड = चिन्ह] आड़ी रेखाएँ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) कुएँ की चरखी। (२) चरखी के बीच का भाग जिस पर रस्सी रहती है। (३) एक घास।

गड़ाव—क्रि. स. [हिं. गड़ाना] गड़वा दो। उ.—पाडव-सुत अरु द्रौपदी कौं मारि गड़ावौ—१-२३८।

गड़ि—संज्ञा पुं [स.] (१) बछड़ा। (२) एक बैल।

क्रि. अ. [हिं. गड़ना] (१) गड़ने का चिन्ह बनना। उ.—बिनु गुण गड़ि माला रही ठाढ़ि कहुँ बिहराने—२१३८। (२) चुभना, खटकना, बुरा लगना। उ.—हमरौ यौवन रूप आँखि इनके गड़ि लागत—१०२५।

गड़िबे—क्रि. अ. [हिं. गड़ना] चुभना, धँसना, घुसना। उ.—कठिन कठिन कली बीनि करत न्यारी प्यारी के चरन कोमल जानि सकुच अति गड़िबेहि डराति—१०६८।

गडुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं गेडुरी] एक पक्षी।

गड़े—क्रि अ. [हिं गड़ना] चुभे, धँसे, घुस गये। उ.—इहि उर माखन चोर गड़े—३१५१।

गड़ेरिया—संज्ञा पुं. [सं. गड्डरिक, पा. गड्डरिअ] एक जाति जो भेड़ें पालती है।

गड़ोना—क्रि. स. [हिं. गड़ाना] चुभाना, धँसाना।

गड़ना—संज्ञा पुं. [हिं. गाड़ना] एक तरह का पान।

संज्ञा पुं. [हिं. गड़ना] काँटा।

गड्ड—संज्ञा पुं. [सं. गण] समूह, गड्डी।

संज्ञा पुं. [सं. गर्त्त = गड्ढा] गड्ढा।

गढ़ंत—वि [हिं. गढ़ना] कल्पित, बनावटी।

संज्ञा स्त्री.—बनावटी या कल्पित बात।

गढ़—संज्ञा पु. [सं. गड़=खाई] (१) खाई। (२) किला, कोट। उ.—निरभय देह, राजगढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाहु—१-४०।

मुहा.—गढ़ तोड़ना (जीतना)—कठिन काम करना।

गढ़त, गढ़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़ना] गढ़न, ढाँचा।

गढ़ना—क्रि. स. [सं. घटन, प्रा घडन] (१) काँट-छाँट करना, रचना, बनाना। (२) सुडौल करना, ठीक करना। (३) बात बनाना, कल्पना करना।

मुहा.—गढ़ गढ़ कर बातें करना—झूठ-मूठ की बातें गढ़ना।

(४) मारना, पीटना। (५) प्रस्तुत या उपस्थित करना।

गढ़पति—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़+पति] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वना—क्रि. अ. [सं. गढ़=किला] (१) किले में जाना। (२) रक्षित स्थान में पहुँचना।

गढ़वार, गढ़वाल—संज्ञा पुं. [हिं गढ़ + वाला] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वै—क्रि. अ [सं. गढ़=किला] (भयभीत होकर) किले में आश्रय लिया। उ.—गढ़वै भयौ नरक-पति मोसौं, दीन्हें रहत किवार। सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हें पाप अपार—१-१४१।

संज्ञा पुं. (१) गढ़पति। (२) राजा। (३) सरदार।

गढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़ना] (१) बनाने या सुडौल करने का काम। (२) गढ़ने की मजदूरी।

गढ़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. गढ़ाना] गढ़वाऊँ, बनाऊँ, तैयार कराऊँ। उ.—मैं निरबल बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ—६-४२।

गढ़ाना—क्रि. स. [हिं. गढ़ना का प्रे.] (१) बनवाना, सुडौल करना।

क्रि. अ. [हिं. गाढ=कठिन] बुरा लगाना।

गढ़ाये—क्रि. स. [हिं. गढाना] बनवाये, सुघटित कराये। उ.—कंचन कलस गढाये कब हम देखे धौं यह गुनिये—११३०।

गढ़ि—क्रि. स. [हिं. गढना] (१) बनाकर, रचकर। उ.—गढि गढि ल्यायौ बाढई, धरती पर डोलाइ, बलि हालरु रे—१०-४७।

मुहा.—गढि गढ़ि बात बनावत (बानति)—झूठ-मूठ की कल्पना करना, नमक मिर्च लगाकर कोई बात कहना। उ.—(क) उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहीं कही तु मानति। कदम तीर तैं मोहि बुलायौ, गढि गढि बातैं बानति। (ख) जो जैसो तैसौ त्यों चलिये हरि आगे गढि बात बनावत—पृ. ३२६।

(२) लीन होकर, पगकर, मग्न होकर। उ.—यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढ़ि पढे हौ पटी—२००८।

गढ़िया—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़ना] गढ़नेवाला।

गढ़ी—क्रि. स. स्त्री [हिं. गढना] सुघटित की, रची, ठीकठाक की। उ.—(क) भई देह जो खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी। सूरदास प्रभु दृष्टि कृपा-निधि, मानौ फेरि बनाई गढ़ी—९-१७०। (ख) हौं अपराधिनि चतुर बिधाता काहे कौ बनाइ गढ़ी—२७६४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़] (१) छोटा किला। (२) मजबूत मकान।

गढ़ीश, गढ़ीस—वि [हिं. गढ़+सं. ईश] गढ़ का स्वामी या अधिकारी।

गढ़ै—क्रि. स. [हिं. गढ़ना] गढ़ता है, सोचता है, कल्पना करता है। उ.—जिय जिय गढ़ै, करै बिस्वासहिं, जौन लंका लोग—९-७५।

गढ़ैया—वि. [हिं. गढना] गढ़नेवाला, बनानेवाला, रचनेवाला। उ.—आनि धरयौ नन्दद्वार, अति हीं सुन्दर सुढार। ब्रज बधू कहैं बार-बार धन्य र गढैया १०-४१—।

गढ़ोई—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़] किले का स्वामी।

गढ़यौ—क्रि. स. [हिं. गढना] गढ़ा, बनाया, रचा। उ.—कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़यौ काम सुतहार—१०-४२।

गण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, झुंड। (२) श्रेणी, कोटि। (३) तीन वर्णों का समूह। (४) शिव के पारिषद। (५) दूत, सेवक। (६) स्वपच के व्यक्ति। (७) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य। (८) समाज, संघ। (९) शासन के प्रबधकों का संघ या मंडल।

गणक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्योतिषी। (२) गणना या हिसाबकिताब करनेवाला।

गणतंत्र—संज्ञा पु. [सं.] प्रजा के प्रतिनिधियों का शासन, जनतंत्र, प्रजातंत्र।

गणन—संज्ञा पुं. बहु. [सं. गण] दूत, सेवक। उ.—गणन समेत सती तहँ गयी।

संज्ञा पुं. [स.] (१) गिनना। (२) गिनती।

गणना—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) गिनती। (२) हिसाब। (३) संख्या। (४) एक अलंकार।

गणनाथ, गणनायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश। (२) शिव।

गणनायिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गणनीय—वि. [सं] (१) गिनने योग्य। (२) प्रसिद्ध।

गणप, गणपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश। (२) शिव।

गणराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह राज्य जो प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता हो।

गणाधिप गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गण का स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गणिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेश्या। (२) एक वृक्ष। (३) एक फूल। (४) धन के लोभ से प्रेम करने वाली स्त्री।

गणित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मात्रा, संख्या और परिमाण की विद्या। (२) हिसाब।

गणितज्ञ—वि. [सं.] (१) गणित शास्त्र का जानने वाला। (२) ज्योतिषी।

गणेश—संज्ञा पुं. [सं.] एक देवता जिनका शरीर मनुष्य का और सिर हाथी का सा है। इनके चार हाथ, एक

दाँत और तीन आँखें हैं। इनकी सवारी चूहा है। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु हैं। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं।

वि.—गणों का स्वामी या अधिकारी।

गण्य—वि. [सं.] (१) गिनने योग्य। (२) प्रसिद्ध, मान्य।

गत—वि. [सं.] (१) गया हुआ, बीता हुआ।

मुहा०—गत होना—मर जाना।

(२) रहित, हीन।

क्रि.अ.—(१) व्यतीत हुये, बीत गये, अतीत हुए। उ.—इहिं विधि भ्रमत सकल निसि दिन गत कछू न काज सरत—१ ५५। (२) जाने पर, अस्त होने पर। उ.—जनु रवि गत सकुचित कमल जुग निसि अलि उड़न न पावै—१०-६५।

संज्ञा स्त्री—(१) दशा, अवस्था।

मुहा.—गत का—ठीक, काम का। गत बनाना—(१) दुर्गति करना। (२) मारना-पीटना। (३) हँसी उड़ाना।

(२) रूप, रंग, आकृति।

मुहा.—गत बनाना— (१) विचित्र वेश या धजा बनाना। (२) आकृति बिगाड़ना। (३) काम या उपयोग में लाना। (४) दुर्गति, दुर्दशा। (५) मृतक का क्रिया-कर्म। (६) नृत्य में शरीर का संचालन।

गतांक—वि. [सं.] जिसमें सद्गुण न रहे हों, गया-बीता, निकम्मा।

गतागत—वि. [सं] आया-गया।

संज्ञा पुं. [सं] जन्म-मरण।

गतालोक—वि. [सं. गत + आलोक] (१) प्रकाशरहित। (२) महत्वहीन।

गति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) चाल, जाने की क्रिया, गमन। उ.—(क) ग्राह गह्यौ गज-बल बिनु व्याकुल विकल गात, गति लंगी। धाइ चक्र लै ताहिं उबार्यौ मार्यौ ग्राह-विहंगी—१-२१। (ख) मधु मराल जुग पद पंकज के गति-विलास जल मीन—३०३८। (२) हिलने-डोलने की क्रिया या शक्ति। उ.—स्रवन न सुनत चरन-गति थाकी, नैन भए जलधार—११९८। (३) अवस्था, दशा। उ.—(क) सूर स्यामसुन्दर जौ सेवै क्यों होवै गति दीन—१-४६। (ख) ज्यौं भुवग तजि गयौ केंचुली सो गति भई हमारी—३०५६।

मुहा—गति कीनी—दुर्दशा की, बुरी दशा को पहुँचा दिया। उ.—अजामील तौ विप्र तिहारौ हुतौ पुरातन दास। नैकु चूक तें यह गति कीनी पुनि बैकुंठ निवास—१-१३२।

(४) रूप, रंग, वेश। (५) पहुँच, प्रवेश। उ—गति नाहीं काहू की जहाँ—१० उ.-१२८। (६) प्रयत्न या युक्ति की सीमा। (७) सहारा, शरण। उ.—मेरी तौ गति-पति तुम अनतहिं कहँ सुख पाऊँ (८) चेष्टा, कार्य। उ.—जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम तिन की गति मैं नापी—१-१४०। (९) लीला, माया। उ.—(क) अविगत गति कछु कहत न आवै—१-२। (ख) दयानिधि तेरी गति लखि न परै—१-१०४। (ग) या गति की माई को जानै—२८८७। (१०) रीति, ढंग। (११) सुधि, ध्यान। उ.—स्रवन न सुनत देह-गति भूली गई बिकल मति बौरी—८८३। (१२) चर्चा, प्रसंग, बात। उ.—जोग की गति सुनत मेरे अंग आगि बई—३१३१। (१३) जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे में प्रवेश। (१४) मृत्यु के बाद जीवात्मा की दशा। उ.—कपट-हेत परसैं बकी जननी-गति पावै—१-४। (१५) मोक्ष, मुक्ति। (१६) कुश्ती का पैंतरा। (१७) ग्रहों की चाल। (१८) ताल-स्वर के अनुसार शरीर-संचालन।

गति वधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेष्टा। (२) काम का रंग-ढंग या चाल-ढाल।

गतिशील—वि. [सं.] (१) जिसमें गति हो। (२) उन्नति करनेवाला।

गत्थ—वि. [सं.] (१) पूँजी, जमा। (२) माल।

गत्वर—वि. [सं.] (१) जानेवाला। (२) नाशवान।

गथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रथ, प्रा. गत्थ] पूँजी, गाँठ का धन, धन संपत्ति। उ.—(क) घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं। धर्म-जमानत मिल्यौ न

चहैं, तातैं ठाकुर लूटौ—१-१८५। (ख) अति मलीन वृषभानु कुमारी।... अधोमुख रहति उपर नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी—३४२५। (२) व्यापार का सामान, पण्य द्रव्य। उ.—(क) तुम्हरो गथ लादो गयंद पर हींग मिरच पीपरि कहा गावति। (ख) सूरदास गथ खोंटो काहे पारखि दोष धरे—पृ. ३३१। (३) झुंड, गरोह।

गथना—क्रि.स. [सं.ग्रंथन] (१) एक चीज को दूसरे में जोडना या गूँथना। (२) गढ़ गढ़कर बातें करना।

गथु—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूँजी। उ.—ज्यों जुआरि रस-बीधि हारि गथु, सोचति पटकि चितो--११--१।

गथौ—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूजी, जमा। उ.—झीनी कामरि काज कान्ह ऐसी नहिं कीजै। काच पोत गिर जाइ नंद घर गथौ न पूजै—११२७।

गद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष। उ.—फुरै न मंत्र, ंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे। प्रेम-प्रीति विष हिरदै पारयौ, डारत है तनु जारे—७४७। (२) रोग। (३) श्रीकृष्ण का छोटा भाई। (४) श्रीराम की सेना का एक वानर। (५) एक असुर। (६) मोटापा।

संज्ञा पु. [अनु.] गुलगुली वस्तु पर कड़ी या गुलगुली वस्तु के आघात का शब्द।

गदका-संज्ञा पुं. [स. गदा या गदक, हिं. गतका] (१) खेलने का डंडा। (२) एक खेल।

गदकारा—वि. पु [अनु. गद+कारा (प्रत्य.)] गुलगुला, गुदगुदा।

गदगद—वि. [स. गद्गद] श्रद्धा, हर्ष आदि के आवेग से पूर्ण। उ.—गदगद वचन नयन जल पूरित बिलख बदन कृस गातैं—सा. उ. ४६।

गदगदा—संज्ञा पु. [देश.] रत्ती का पौधा।

गदना—क्रि. स. [स. गदन] कहना।

गदबद—वि. [हि. गुदगुदा] गुलगुला, मुलायम।

गदम—संज्ञा पुं [देश] थाम, आड़, पुश्ता।

गदर—संज्ञा पुं. [अ गदर] (१) हलचल, उपद्रव। (२) बगावत, विद्रोह।

संज्ञा पु. [हिं गद्दा] रुई की बगलबंदी जो जाड़े मे ठाकुर जी को पहनाते हैं।

गदरा—वि. [हि. गदर] जो अच्छी तरह पका न हो, अधपका।

गदराना—क्रि. अ. [अनु. गद] (१) (फल आदि) पकने लगना। (२) युवावस्था में शरीर का पुष्ट होने लगना। (३) आँखें दुखने पर होना।

वि.—गदराया हुआ, पुष्ट।

गदला—वि. [हिं. गंदा] मटमैला या गंदा (पानी)।

गदलाना—क्रि. स. [हिं. गदला] पानी गंदा करना।

क्रि. अ.—(पानी का) गंदा या मैला होना।

गदहपचीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं.] अनुभवहीनता की उम्र जो १६ से २५ वर्ष तक मानी जाती है।

गदहपन—संज्ञा स्त्री. [हि. गदहा+पन (प्रत्य.)] मूर्खता, अनुभवहीनता।

गदहा—संज्ञा पुं. [सं.] रोग हरनेवाला, वैद्य।

संज्ञा पुं. [सं. गर्दभ, प्रा. गद्दह] (१) गधा, खर, गर्द। (२) मूर्ख, नासमझ, अनुभवहीन।

गदांबर—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ।

गदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लोहे का एक प्राचीन शस्त्र जिसमें डंडे के एक सिरे पर लट्टू होता था। (२) लोढ़ जो गदा के आकार का होता है।

संज्ञा पुं [फ़ा.] भिखमंगा।

गदाई—वि. [फा. गदा=फकीर+ई (प्रत्य.)] (१) तुच्छ, नीच। (२) रद्दी, बेकार।

गदाका—वि. [हिं. गद] सुडौल शरीरवाला।

संज्ञा पुं.—जमीन पर पटकने की क्रिया।

गदाधर—संज्ञा पुं. [सं.] गदासुर की हड्डियों की बनी गदा धारण करनेवाले विष्णु।

गदाला—संज्ञा पुं. [हिं. गदा] (१) हाथी पर कसने का गद्दा। (२) बहुत मोटा रुई का वस्त्र।

गदावारण—संज्ञा पु. [स.] एक प्राचीन बाज।

गदित—वि. [स.] कहा हुआ।

गदी—वि. [स. गदिन्] (१) रोगी। (२) गदाधारी।

गदेला—संज्ञा. पुं. [हिं. गद्दा] (१) रुई का मोटा वस्त्र। (२) हाथी की पीठ का गद्दा।

संज्ञा पु [देश.] छोटा बालक।

गदोरी—संज्ञा. स्त्री. [हि. गद्दी] हथेली।

गद्गद—वि. [सं.] (१) अधिक हर्ष प्रेम, श्रद्धा आदि

के आवेग से ऐसा युक्त कि अपनी स्थिति का उसे ज्ञान न रहे। (२) अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग के कारण रुका या अस्पष्ट। उ.—गद्गद सुर पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै—१-७२। (३) प्रसन्न, पुलकित।

संज्ञा पुं. [सं.] हकलाने का रोग।

गद्द—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) मुलायम या गुदगुदी जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। (२) किसी चीज के हजम न होने पर पेट का भारीपन। (३) एक कल्पित जादू की लकड़ी जिसका स्पर्श करके मनुष्य मूर्ख हो जाता है।

मुहा.—गद्द मारना—वश में करना। गद्द मारा जाना—मूर्ख हो जाना।

वि.— मूर्ख, जड़।

गद्दर—वि. [देश.] (१) अधपका। (२) मोटा गद्दा।

गद्दा—संज्ञा पुं. [हिं. 'गद्द' से अनु.] (१) मोटा बिछौना जिसमें रुई या पयाल भरा हो। (२) हाथी की पीठ का मोटा बिछौना जिस पर हौदा कसा जाता है। (३) घास, रुई आदि का बोझ। (४) गुदगुदी चीज की पोली-पोली मार।

गद्दी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गद्दा] (१) छोटा गद्दा। (२) घोड़े, ऊँट आदि की काठी रखने की गद्दी। (३) बैठने की छोटी गद्दी। (४) किसी बड़े पदाधिकारी का पद। (५) राजवंश या शिष्यवश-परंपरा। (६) हाथ-पैर की हथेली या गदेली।

गद्दीनशीन—वि. [हिं. गद्दी + फा. नशीन] (१) जो सिंहासन पर बैठे। (२) उत्तराधिकारी।

गद्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह रचना जिसमें वर्ण-मात्रा आदि का नियम न हो, पद्य का उलटा। (२) काव्य का एक भेद जिसमें छंद-वृत्त का नियम न हो। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

गद्यात्मक—वि. [स.] गद्य का, गद्य में रचा हुआ।

गधा—संज्ञा पुं. [हिं. गदहा] (१) खर, गदहा। (२) मूर्ख, अनुभवहीन।

गधेड़ी—सज्ञा स्त्री. [हिं. गधी + एड़ी (प्रत्य.)] फूहड़ या गँवार स्त्री।

गन—संज्ञा पुं. [सं. गण] (१) समूह, दल, जत्था। उ.—(क) श्रीपति जू अरि-गन-गर्व प्रहारयौ—१-११। (ख) मदन रिस के आदि ते मिल मिली गुनगन ऐन—सा. ६६। (२) दूत, सेवक। उ.—गनन समेत सती तहँ गयी। तासौं दच्छ बात नहीं कही। (३) श्रेणी, कोटि। (४) पक्षपाती। (५) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य।

गनक—संज्ञा पुं. [सं. गणक] ज्योतिषी। उ.—सुनि आनदे सब लोग, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४।

गनगनाना—क्रि. अ. [अनु. गनगन] (१) रोमांच होना। (२) जाड़े आदि से काँपना।

गनगौर—संज्ञा स्त्री. [सं. गण+गौरी] चैत्र के शुक्ल पक्ष की तीज जब गणेश और गौरी की पूजा होती है।

गनत—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] (१) गिनते हैं, मानते हैं, समझते हैं। उ.- तिनका-सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान। सकुचि गनत अपराध - समुद्रहिं बूँद - तुल्य भगवान—१-८। (२) ध्यान में लाते हैं,महत्व का समझते हैं। उ.—राम भक्तवत्सल निज बानौं। जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं—१-११।

मुहा.—न गनत काहू—किसी को कुछ नहीं समझते, बदते या मानते हैं, बहुत तुच्छ समझते। उ.—एक एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाय—१०-२६।

(३) गिनते-गिनते, हिसाब लगाते लगाते, जोड़ते-जोड़ते। उ.—अँखियाँ हरि दरसन की भूखी ......। अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूँखी—३०२६।

गनती—सज्ञा स्त्री. [सं. गणना, हि. गणना, गिनती] गिनती, गणना। उ.—(क) गाइ-गनती करन जैहैं, मोहि लै नँदराइ—६७६। (ख) गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिं नियरैं तुम रैहौ—६८०।

मुहा.—कौने गनती—किस हिसाब में, बिलकुल तुच्छ, नगण्य। उ.—तुम हरता करता प्रभु जू, मातु-पिता कौने गनती—१२२८।

गनना—क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनती करना या हिसाब लगाना।

संज्ञा स्त्री. [गिनना] गिनती ।

गननाना—क्रि. अ. [हिं गन गन (अनु.)] (१) शब्द से भर जाना, गूँजना । (२) घूमना, चक्कर में आना ।

गननायक—संज्ञा पु. [सं गण+नायक] (१) गणेश । (२) शिव ।

गनप—संज्ञा पुं. [सं. गणप] गणेश ।

गनपति—संज्ञा पु. [सं. गणपति] (१) गणों के नायक । (२) शिव । (३) गणेश ।

गनराय—संज्ञा पुं. [सं गणराज] गणेश ।

गनहिं—क्रि. स. [हि. गिनना] गिनते हैं, समझते हैं, मानते है । उ.—सूरदास प्रभु सदा भक्तबस रंक न गनहिं न राइ —२६३६ ।

संज्ञा पुं. सवि. [सं. गण + हि. हि (प्रत्य.)] गणों को ।

गनाइ — क्रि. स. [हिं. गिनाना] गिनाकर, गिनवा (लीजिए) । उ.—बहुत विनय करि पाती पठई, नृप लीजै सब पुहुप गनाइ—५८२ ।

गनाना—क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनती कराना ।

क्रि. अ.—गिना जाना, गिनती होना ।

गनायौ—क्रि. स. [हिं. गिनना] मानता है, समझता है । उ.—सूर कह्यो मुसुकाय प्रानप्रिय मो मन एक गनायौ —सा. ६५ ।

गनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. गज + नाल] एक तोप ।

गनावत—क्रि. स. [हिं. गिनाना] गिनाते हैं, गिनती कराते हैं, महत्त्व समझाते है । उ.—मेंढ़ा मढी मगर गुडरारो मोर आपु मनवाह गनावत—६७८ ।

गनावन—क्रि. स. [हि. गिनाना] गणना कराने (के लिए), हिसाब लगवाने (के उद्देश्य से) । उ.—कस्यप रिषि सुर तात, सु लगन गनावन रे–१०-२८ ।

गनावै—क्रि. स. [हिं. गिनाना] (१) गिना रही है । (२) बता रही है, संकेत कर रही है । उ.—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै —सा. १५ ।

गनि—क्रि. स. [हिं. गिनना] (१) समझ कर, अनुमान करके । उ.—अब मिथ्या तप, जाप, ज्ञान सब प्रगट भई ठकुराई । सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७ । (२) गिनाकर, गणना करके । उ.—सूर-प्रभु चरित अनगित, न गनि जाहिं —४-११ ।

गनिका—संज्ञा स्त्री. [सं. गणिका] (१) एक वेश्या जिसका उद्धार तोते को राम नाम पढ़ाते समय हो गया था । (२) वेश्या । उ.—गनिका सुत सोभा नहिं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४ । (३) धन के लोभ से प्रेम करनेवाली स्त्री । (४) एक फूल । (५) एक वृक्ष ।

गनिकै—क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनकर, गणना करके, हिसाब लगाकर । उ.—(नद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ । लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहि सुनायो—१०-८६।

गनियत—क्रि. स. [हि. गिनना] (१) गिनते हैं, गणना करते है । उ.—कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई । तदपि विमुख पाँती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई—१-६३ । (२) मानते हैं, ध्यान देते है । उ.—तुम्हरी प्रीति हमारी सेवा गनियत नाहिन कातें—२५२८ ।

गनियारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गणिकारी] एक पौधा ।

गनियै — क्रि. स. [हि. गिनना] गिनिए, गणना कीजिए, शुमार लगाइए । उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी—१-३६ ।

गनी—क्रि. स. [हिं, गिनना] गिनी, गिनकर, गणना करके । उ.—अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी –१-३६ ।

संज्ञा स्त्री [हिं. गिनती] गणना, गिनती ।

मुहा.—कहा गनी—क्या गिनती है, क्या समझा जाता है, तुच्छ या नगण्य है । उ —इन्द्र समान हैं जिनके सेवक नर बपुरे की कहा गनी—१-३६ ।

वि. [अ. गनी] धनी या धनवान ।

गनीम—संज्ञा पुं. [अ. गनीम] (१) लुटेरा । (२) शत्रु ।

गनीमत—संज्ञा पुं [अ. गनीमत] (१)लूट का माल । (२) मुफ्त या बेमेहनत का माल । (३) बड़ी बात, संतोष की बात ।

गनेस—संज्ञा पुं. [सं. गणेश] हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवताओं में एक जिनको महादेवजी का पुत्र माना गया है और जो उनके गणों के अधिपति हैं ।

गनेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. गण + ईश्वर] गणों के नायक, गणेश जी। उ.—गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) —१०.४०।

गनै—क्रि. स. [हिं. गिनना] (१) समझे, माने, महत्व का जाने। उ.—(क) यह व्रत धारे लोक में विचरै समकरि गनै महामनि-काँचै—२-११। (ख) चरन-सरोज विना अवलोके, को सुख धरनि गनै—६-५३। (ग) रुक्म बरबस ब्याहि देहै गनै पितहि न माइ—१०उ.-११३। (२) गिनता है। उ.—भूमि रेनु कोउ गनै, नक्षत्रनि गनि समुझावै। जहाँ चहै अवतार, अन्त कोऊ नहि पावै—२-३६।

गनैगो—क्रि.स. [हिं. गिनना] गिनेगा, मानेगा, समझेगा। उ.—जेइ निरगुन गुनहीन गनैगो सुनि सुन्दरि अलसात—२२८२।

गनो, गनौ—क्रि. [हिं. गिनना] (१) गिनो, गणना करो। (२) ध्यान लगाओ। उ.—दधिसुत वाहन मेखला लैके बैठि अनईस गनौ री—सा. उ. ५२।

गनौं—क्रि. स. [हिं. गनना, गिनना] गिन लूँ, अनु-मानूँ, शुमार लगाऊँ। उ.—जिह्वा रोम रोम प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हार—६-१४७।

गनौ—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] समझो, मानो, स्वीकार करो। उ.—मोहिं विधि, विष्नु, सिव, इन्द्र, रवि ससि गनौ, नाम मम लेइ आहुतिनि डारौ —४-११।

गन्ना—संज्ञा पुं. [सं काड] ईख, ऊख।

गन्नी—संज्ञा पुं. [हिं. गोन या गून=रस्सी] (१) टाट। (२) रीहा घास आदि से बना कपड़ा।

गप—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्प, प्रा. कप्प] (१) इधर-उधर की सत्य-असत्य बात। (२) सारहीन बात। (३) झूठी बात। (४) झूठी सूचना। (५) डींग।
संज्ञा पुं. [अनु.] (१) झटपट निगलने का शब्द। (२) खाने या निगलने की क्रिया।

गपकना—क्रि. स. [हिं. गप (अनु.) + करना] झट पट खा लेना या निगलना।

गपड़चौथ—संज्ञा पुं [हिं. गपोड़=बातचीत + चौथ] सारहीन बातचीत।
वि — लीप-पोत की हुई, ऊटपटाँग।

गपत—क्रि. स. [हिं. गपना] व्यर्थ की बात या बक-वाद करता है।

गपना—क्रि. स. [हिं. गप (अनु.)] व्यर्थ की बात या बकवाद करना।

गपिया—वि. [हिं. गप] गप्पी, बकवादी।

गपिहा—वि [हिं. गप + हा (प्रत्य.)] गप्प हाँकने वाला, गप्पी।

गपोड़, गपोड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. गप] व्यर्थ की बात या बकवाद।
वि.—झूठी बात करनेवाला।

गपोड़बाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गपोड़ा + फा. बाजी] व्यर्थ की बकवाद।

गप्प—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गप] व्यर्थ की बात, बकवाद।

गप्पा—संज्ञा पुं. [अनु. गप] धोखा।

गप्पी—वि. [हिं. गप] (१) डींग मारनेवाला। (२) बकवाद करनेवाला। (३) झूठा।

गप्फा—संज्ञा पुं. [हिं. गप (अनु.)] (१) बड़ा सा कौर। (२) लाभ, फायदा।

गफ—वि. [सं. ग्रप्स=गुच्छा] घनी या गझिन (बुनावट)।

गफलत—संज्ञा स्त्री. [अ. गफलत] (१) लापरवाही। (२) बेखबरी। (३) भूलचूक।

गफिलाई—संज्ञा स्त्री. [फा. गाफिल] (१) असावधानी। (२) बेखबरी। (३) भ्रम, मोह।

गबड़ी, गबड्डी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कबड्डी] एक खेल, कबड्डी का खेल।

गबदी—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गबद्द—वि. [हिं. गावदी] मूर्ख।

गबन—संज्ञा पुं. [अ. गबन] चोरी से माल उड़ा देना।

गबरगंड—वि. [हिं. गबर + सं. गंड] मूर्ख, नासमझ।

गबरहा—वि. [हिं. गोबर + हा (प्रत्य.)] गोबर मिला या लगा हुआ।

गबरा—वि. [हिं. गब्बर] (१) घमंडी। (२) धनी।

गबरू—वि. [फ़ा. खूबरू] (१) उठती जवानी का। (२) भोला भाला।
संज्ञा पुं.—पति, दूल्हा।

गबरून—संज्ञा पु. [फा. ग़बरून] एक मोटा कपड़ा।

गब्बर—वि. [सं. गर्व, पा. गब्ब] (१) घमंडी, अभि-

मानो। (२) चुप्पी साधनेवाला, काम टालनेवाला, मट्ठर। (३) मूल्यवान। (४) धनी।

गब्भा—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गब्भ] (१) रुई का गद्दा। (२) चारे का गट्ठा।

गभस्तल—संज्ञा पुं. [सं. गभस्तिमान] गभस्तिमान नामक द्वीप।

गभस्ति—संज्ञा पुं. [स.] (१) किरण। (२) सूर्य। (३) हाथ।

संज्ञा स्त्री.—अग्नि की स्त्री, स्वाहा।

गभस्तिमान्—संज्ञा पु. [सं.] सूर्य।

गभीर—वि. [सं. गभीर] (१) गहरा। (२) घना। (३) घोर। (४) शांत, सौम्य।

गभुआर, गभुवार—वि. [सं. गर्भ, पा० गब्भ + आर या वार (प्रत्य.)] (१) गर्भ काल का (बाल)। (२) जिसके जन्म काल के बाल न कटे हो, जिसका मुंडन न हुआ हो। (३) छोटा, नादान।

गभुआरी—वि. स्त्री. [हि. गभुआर] (१) गर्भ-काल की (बालों की लटें)। (२) नादान, छोटी।

गभुआरे—वि. [हिं. गभुआर] गर्भ के (बाल)। उ.—गभुआरे सिर केस हैं, वर घूँघरवारे—१०-१३४।

गम—संज्ञा पुं. [सं] (१) राह, मार्ग। (२) सहवास।

सज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (किसी स्थान या विषय में) प्रवेश, पहुँच, पैठ। उ.—(क) जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल बिधि बिषम, खल मल खानि —१-७७। (ख) असुरपति अति ही गर्व धरयौ। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को आउ! (ग) स्वर्ग-पताल माहि गम ताको—६-७४।

मुहा.—गम करना—चटपट खा लेना।

वि.—जो जानी जा सकें, जो ज्ञात हो सके। उ. —प्रभु की लीला गम नहीं, कियो गव अति अंग —४६२।

संज्ञा पुं [अ. गम] (१) दुख, शोक।

मुहा.—गम खाना—क्षमा करना, ध्यान न देना। गम गलत—दुख भुलाने का प्रयत्न। (२) चिंता, फिक्र।

गमक—संज्ञा पुं. [सं.॰] (१) जानेवाला व्यक्ति। (२) सूचक, बतलानेवाला (व्यक्ति)। (३) एक स्वर से दूसरे पर जाने का एक भेद (संगीत)। (४) तबले की ध्वनि।

संज्ञा स्त्री. [सं. गमक=फैलनेवाला] सुगंध, महक।

गमकना—क्रि.अ. [हि गमक] महकना, सुगंध फैलाना।

गमकीला—वि. [हिं. गमक + ईला (प्रत्य.)] सुगंधित, महकनेवाला।

गमखोर—वि. [फा. गम +ख्वार] सहनशील।

गमखोरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गम+ख्वारी] सहनशीलता।

गमगीन—वि. [फा. गम + गीन] दुखी, उदास।

गमत—संज्ञा पुं [सं. गमन या गमथ=पथिक] (१) मार्ग, पथ। (२) व्यवसाय, धंधा।

गमथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह, मार्ग। (२) व्यवसाय, धंधा। (३) राही, पथिक।

गमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाना, चलने की क्रिया, यात्रा करना। उ.—अस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हौ—१-२६। (२) संभोग, सहवास। (३) राह, मार्ग। (४) सवारी।

गमनना—क्रि. अ [सं. गमन] जाना, गमन करना।

गमनपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] यात्रा का अधिकारपत्र।

गमना—क्रि. अ. [सं. गमन] जाना, चलना।

क्रि. अ. [अ. गम=रंज+ना (प्रत्य.)] (१) शोक करना, दुख मनाना। (२) परवाह करना, ध्यान देना।

गमनाक—वि. [फ़ा. ग़म+नाक] दुख भरा।

गमला—सज्ञा पुं. [?] छोटे पौधे लगाने का पात्र।

गमाई—क्रि. अ. [सं. गमन, हिं. गमना] बीत गयी,समाप्त हुई। उ.—तृतीय पहर जब रैनि गमाई—१०७२।

क्रि. स. [हिं. गमाना] खो दी, गँवा दी। उ.—(क) इंद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई—६८५। (ख) बार बार कहै कुँवर राधिका मोतिसरी कहाँ गमाई—१५४४। (ग) लोक लाज की कानि गमाई फिरत गुडीबस डोरी—१४७२। (घ) हरि-ग्रह जननी हित न सरस कह सुरभी सुतर गमाई —सा. १६।

गमाए—क्रि. स. [हि. गमाना] खोकर, खो दिये, गँवाए। उ —कीन्ही प्रीति प्रगट मिलिवे की अँखिया सर्म गमाए।

गमागम—संज्ञा पुं. [सं. गम + आगम] आना, जाना।

गमाना—क्रि. स. [हिं गँवाना] खोना, गँवाना।

गमार—वि. [हिं. गँवार] (१) गाँव का, देहाती। (२) मूर्ख, असभ्य, उजड्ड।

गमि—संज्ञा स्त्री. [हि. गम] पहुँच, प्रवेश, पैठ। उ. —तिहूँ भुवन भरि गमि है मेरो मो सम्मुख को आउ —२३७७।

गमिना—क्रि. स. [हि. गम = ध्यान देना] ध्यान देना।

गमी—संज्ञा स्त्री. [अ गम, गमी [(१) शोक की अवस्था। (२) मृत व्यक्ति का शोक। (३) मृत्यु।

गम्मत—संज्ञा स्त्री. [मराठी] (१) विनोद, हँसी। (२) मौज, बहार।

गम्य—वि. [सं.] (१) जाने योग्य। (२) प्राप्य, लभ्य, साध्य। उ.—तन-रिपु काम चित रिपु लीला ज्ञान गम्य नहिं याते—३११५। (३) संभोग या सहवास के योग्य।

संज्ञा स्त्री. [स.] पहुँच, प्रवेश, पैठ। उ.—तिहूँ भुवन भरि गम्य है जाको नर नारी सब गाउँ —११५८।

गम्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] गमन।

गम्हीर—वि. [सं. गंभीर] गहन, जिसको पार करना कठिन हो। उ —आठ रवि लै देख तब तें परत नाहिं गम्हीर—सा. ४४।

गयंद—संज्ञा पुं [सं. गजेंद्र, प्रा. गयिंद, गइन्द्र] (१) हाथी, गज। (२) दोहे का एक भेद।

गय—संज्ञा पुं. [सं. गज, प्रा. गय] हाथी। उ.—(क) जो वनिता सुत-जूथ सकेले, हय गय-बिभव घनेरो। सबै समर्पौ सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरो— १-२६६। (ख) अमरा सिव रवि ससि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, मकान। (२) आकाश। (३) धन। (४) प्राण। (५) श्री रामकी सेना का एक वानर सेनापति (६) एक राजर्षि। (७) पुत्र, संतान। (८) एक असुर। (९) गया तीर्थ।

गयन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] (१) मार्ग, राह, गैल। (२) गमन, प्रस्थान। उ.—ना करु विलंब, भूपन करत दूपन, चिहुर विहुर ना ना करत गयन—२२१४।

गयनाल—संज्ञा स्त्री. [हि. गज + नाल] बड़ी तोप।

गयल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गैल] मार्ग, राह।

गयवली—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गयवा—संज्ञा स्त्री. [देश.] मोहेली मछली।

गयशिर—संज्ञा पुं. [स.] (१) आकाश। (२) गया के समीप एक पर्वत जो गय नामक असुर के सिर पर माना जाता है। (३) गया तीर्थ।

गया—संज्ञा पुं. [सं.] विहार या मगध देश का एक पुण्य स्थान जो प्राचीन समय में प्रधान यज्ञस्थल था। यह तीर्थ श्राद्ध और पिंडदान के लिए बहुत प्रसिद्ध है। उ.—अस्व-जज्ञहु जौ कीजै, गया, बनारस अरु केदार—२-३।

संज्ञा स्त्री.—गया तीर्थ में की जानेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

क्रि. अ. [सं. गम] 'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रस्थानित हुआ।

मुहा —गया-गुजरा (बीता)—बुरा, नष्ट-भ्रष्ट।

गयापुर—संज्ञा पुं. [सं.] गया तीर्थ।

गयाल—संज्ञा स्त्री. [देश.] वह जायदाद जिसका कोई मालिक न हो।

गयावाल—संज्ञा पुं. [हि. गया+वाल (प्रत्य.)] गया तीर्थ का पंडा।

गयो—क्रि. अ. [हि. गया] (१) प्रस्थानित हुआ। (२) बीत गया, समाप्त हुआ। उ —जनम साहिबी करत गयौ—१६४।

गरंड—संज्ञा पु. [सं. गंड = मंडलाकार रेखा] चक्की के चारो ओर का घेरा जिसमें पिसा आटा गिरता है।

गरंथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ] पुस्तक, ग्रंथ।

गर—संज्ञा पुं. [हिं गला] गला, गरदन। उ.—(क) कंचन मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ— १-१६६। (ख) लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर-अंचल, कर माल—१-१८९। (ग) सूर परस्पर करत कुलाहल गर-स्रग पहिरावैनी—६-११। (घ) मुंड-माला मनौ हर-गर—१०-१७०।

संज्ञा पुं. [सं.]—(१) कड़ुआ और मादक रस। (२) एक रोग। (३) विष, जहर।

प्रत्य. [फ़ा.] बनानेवाला।

गरक—वि. [अ. गर्क] (१) डूबा हुआ। (२) नष्ट, बरबाद। (३) (काम में) लीन।

गरकाब—संज्ञा पुं. [हि. गरक] डूबने का भाव।

वि.—डूबा हुआ, निमग्न।

गरगज—संज्ञा पुं. [हि. गढ़ + गज] (१) किले की दीवारों पर तोपों लिए बना बुर्ज। (२) ऊँचा टीला जहाँ युद्ध-सामग्री रखी जाती थी। (३) नाव की ऊपरी छत। (४) फाँसी का तख्ता।

वि.—बहुत बड़ा, विशाल।

गरगरा—संज्ञा पुं. [अनु.] गराड़ी, चरखी।

गरगवा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) नर गौरैया। (२) एक घास।

गरगाव—संज्ञा पुं. [फ़ा. गर्क, गरक़ाब] डूबने की क्रिया या भाव।

वि.—(१) डूबा हुआ। (२) बहुत लीन।

गरज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्जन] गंभीर शब्द।

संज्ञा स्त्री. [अ. गरज] (१) प्रयोजन, मतलब। उ.—प्रीति के वचन बाँचे विरह अनल आँचे अपनी गरज को तुम एक पाँइ नाचे—२००३। (२) आवश्यकता। (३) चाह, इच्छा।

मुहा.—गरज का बावला—बहुत अधिक जरूरतमद, जो अपनी इच्छा पूरी करने के लिए भला बुरा सभी कुछ करने को तैयार हो।

क्रि. वि.—(१) निदान, आखिरकार। (२) अस्तु, अच्छा, खैर।

गरजत—क्रि. अ. [हि. गरजना] (१) गंभीर और तुमुल शब्द करता है। उ.—गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहुँ न उतारौ—१-२०६। (२)गर्व से ललकारता है। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन पद परतंगी। सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी—१-२१। (३) चटकता है, तड़कता है, कड़कता है।

गरजन—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन] (१) गरज,कड़क, गंभीर शब्द। (२) गरज का भाव। (३) गरजने की क्रिया।

गरजना—क्रि. अ. [सं. गर्जन] (१) गंभीर शब्द करना। (२) चटकना, तड़कना। (३) ललकारना, चुनौती देना।

वि.—गरजनेवाला, जोर से बोलनेवाला।

गरजमंद—वि. [फा. गरज़मन्द] (१) जरूरतवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरजी—क्रि. अ. स्त्री [हिं. गरजना] गंभीर शब्द करने लगी, जोर से बोली। उ.—धर-अम्बर लौं रूप निसाचरि गरजी बदन पसारि—६-१०४।

वि. [हि.गरज + ई(प्रत्य.)] (१) मतलब गाँठनेवाला, प्रयोजन रखनेवाला। (२) चाहनेवाला,गाहक। उ.—तुम्हरी प्रीति ऊधो पूरब जनम की अब जु गये मेरे तनहु के गरजी—३११६२।

गरजू—वि. [हिं. गरजी] (१) मतलब रखनेवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरट्ट—संज्ञा पुं. [सं. ग्रन्थ, पा. गठ, हि. गट्ठ] समूह, झुंड।

गरत—क्रि. अ. [हिं. गलना] गलता है, क्षीण होता है। उ.—अब सुनि सूर कान्ह केहरि के बिन गरत गात जैसे ओरे-२८१८।

गरतौ—क्रि. अ. [हिं. गलना] नष्ट होता, वृथा हो जाता। उ.—तुम गुन की जैमे मिति नाहिंन, हौं अघ कोटि बिचरतौ। तुम्हैं-हमैं प्रतिबाद भए तैं गौरव काकौ गरतौ—१-२०३।

गरद—संज्ञा स्त्री. [फा गर्द] धूल, राख, खाक।

मुहा.—गरद समोयौ—धूल में मिला दिया, नष्ट हो गये। उ.—सौ भैया दुरजोधन राजा, पल में गरद समोयौ—१-४३।

संज्ञा स्त्री. [सं.] विष देनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष। (२) एक कपड़ा।

गरदन—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) धड़ और सिर के बीच का अंग, ग्रीवा।

मुहा.—गरदन उठाना—विरोध या विद्रोह करना। गरदन ऐंठना (मरोड़ना)—(१) गला दबाकर मार डालना। (२) कष्ट पहुँचाना। गरदन

काटना—(१) सिरकाटना (२)हानि पहुँचाना।गरदन झुकना—(१) नम्र या अधीन होना। (२) लज्जित होना। (३) बेहोश होना। (४) मरना। गरदन न उठाना—(१) चुपचाप सहन करना। (२) लज्जित होना। (३) दुख या बीमारी से पड़े रहना। गरदन नापना—अपमान करना। गरदन पर—जिम्मे, ऊपर। गरदन पर बोझ रखना—भारी काम सौंपना। गरदन पर बोझ होना—(१) बुरा लगना। (२) भार होना। गरदन मारना—(१) मार डालना। (२) बहुत हानि पहुँचाना।

(२)जुलाहों की एक लकड़ी, साल। (३) बरतन आदि का ऊपरी पतला भाग।

गरदना—संज्ञा पुं.[हिं. गरदन] (१) मोटी गरदन। (२) गरदन पर लगनेवाला झटका या थप्पड़।

गरदनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन + इयाँ (प्रत्य.)] गरदन में हाथ डालने की क्रिया।

गरदनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन](१) कुर्ते आदि का गला। (२) गले का एक गहना। (३) कारनिस, कगनी।

गरदर्प—संज्ञा पुं. [स.] साँप।

गरदा—संज्ञा पुं. [फा. गर्द] धूल, मिट्टी।

गरदान—वि. [फ़ा.] घूम फिरकर एक ही स्थान पर आ जानेवाला।

संज्ञा पुं—(१) एक तरह का कबूतर जो घूम फिर कर अपने स्थान पर आ जाता है। (२) शब्द रूप-साधन। (३) फेर, चक्कर।

गरदानना—क्रि.स [फा. गरदान] (१) शब्द-रूप साधना। (२) बार बार कहना। (३) मानना, आदर करना।

गरदुआ—संज्ञा पुं [हिं. गरदन] एक तरह का ज्वर।

गरधरन—संज्ञा पुं. [स.] विष धारण करनेवाले, शिव।

गरना—क्रि अ. [हिं. गलना] गल जाना।

क्रि अ. [हिं. गड़ना] चुभ जाना।

क्रि. अ. [हिं. गारना] (१) निचोड़ा जाना। (२) निचुड़ना।

गरनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर+नली] चौड़े मुँह की तोप।

गरप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] विष पीनेवाले शिव।

गरब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] (१) घमंड, अभिमान। (२) हाथी का मद।

गरबई—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्व.] गर्व का भाव।

गरबगहेला—वि. पुं. [हिं. गर्व+गहना=ग्रहण करना] गर्वयुक्त, अभिमानी।

गरबत—क्रि. अ. [सं. गर्व, हिं. गरबना] गर्व करता है, घमंड या अभिमान दिखाता है। उ.—इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार—१-८४।

गरबना—क्रि. अ. [सं. गर्व.] गर्व या शेखी करना।

गरबाइ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व करना, घमंड में आना। उ.—रूप जोवन सकल मिथ्या, देखि जनि गरबाइ। ऐसे हीं अभिमान-आलस, काल ग्रसिहै आइ—१-३१५।

गरबाए—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व किया, घमंड में आये। उ.—मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय मैं गरबाए। जीत्यौ जरासंध, रिपु मार्यौ, बल करि भूप छुड़ाए—१-१०६।

गरबाऊ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व हुआ, अभिमान किया। उ.—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ। धरि बाराह रूप सो मार्यौ, लै छिति दंत अगाऊ—१०-२२१।

गरबाना—क्रि. अ. [सं.गर्व.] अभिमान या घमंड करना।

गरबानो, गरबानौ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] घमंड में आया, अभिमान किया। उ.-भक्ति कब करिहौ जनम सिरानौ। बालापन खेलत ही खोयौ, तरुनाई गरबानौ—१-३२६।

गरबाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गलबाहीं] गले में बाँह डालने की क्रिया।

गरबित—वि. [सं. गर्व] गर्वयुक्त, अभिमानी। उ.—दाउँ पर्यौ अहि जानि कै, लियौ अग लपटाइ। काली तब गरबित भयौ, दियौ दाउँ बताइ—५८६।

गरबीला—वि [सं. गर्व.] अभिमानी, घमंडी।

गरबीली—वि स्त्री [हिं. पुं. गर्वीला] अभिमानिनी, गर्व करनेवाली। उ—दधि लै मथति ग्वालि गरबीली—१०-२६६।

गरभ—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ] गर्भाशय। उ.-गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम—१-५७।

संज्ञा पुं. [सं. गर्व.] अभिमान, घमंड।

गरभदान—संज्ञा पुं [सं. गर्भाधान] ऋतु प्रदान, पेट रखना।

गरभाना—क्रि. अ. [हिं. गर्भ] (१) गर्भ से होना। (२)गेहूँ आदि के पौधों में बाल लगना।

गरभी—वि. [हि. गर्वी] अभिमानी।

गरम—वि. [फा. गर्म (१) जलता हुआ, तप्त। (२) तेज, उग्र। (३) प्रबल, जोरशोर का। (४) जिसके सेवन से गरमी बढ़े। (५) आवेशयुक्त, उत्साहपूर्ण, जोश से भरा हुआ।

गरमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी।

गरमागरमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम+गरम] (१) मुस्तैदी, जोश, उत्साह। (२) कहा-सुनी।

गरमाना—क्रि. अ. [हि. गरम] (१) शरीर में गरमी आना, उष्ण होना।

मुहा.—टेंट (हाथ) गरमाना—पास में रुपया पैसा आना या होना।

(२) मस्ताना, मद से भर जाना। (३) क्रोध करना, झल्लाना। (४) कुछ परिश्रम करने के बाद पशुओं का तेजी पर आना।

क्रि. स.—गरम करना, तपाना।

मुहा.—टेंट (हाथ) गरमाना-(१) रुपया देना। (२) रिश्वत या इनाम देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी, उष्णता।

गरमी—संज्ञा स्त्री. [फा. गर्मी] (१) ताप, उष्णता। (२) तेजी, उग्रता। (३) क्रोध, आवेश। (४) उमंग, जोश। (५) ग्रीष्म ऋतु।

गररा—संज्ञा पुं. [देश गर्रा] एक तरह का घोड़ा।

गररात—क्रि. अ [अनु.] भीषण ध्वनि करता हुआ, गरजता हुआ। उ.—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आए। • । घहरात तररात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाए—६४४।

गरराना—क्रि. अ. [अनु.] गरजना, गड़गड़ाना, गंभीर या भीषण ध्वनि करना।

गररी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया जिसका दर्शन अथवा लड़ना अशुभ माना जाता है। इसे किलहटी, गलगलिया या सिरोही भी कहते हैं। उ.—फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करत लराई। माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई—५४१।

गरल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष, गर, जहर। उ.—अहि मयंक मकरंद कंद हति दाहक गरल जिवाए—२८५४। (२) साँप का विष। (३) घास का मुट्ठा, अँटिया या पूला।

गरलधर—संज्ञा पुं. [सं.] (२) विषपान करनेवाले शिव। (२) साँप।

गरलारि—संज्ञा पुं. [सं.] मरकतमणि, पन्ना।

गरवा—वि. [सं. गुरु] भारी, गरुआ।

संज्ञा पुं. [हिं. गला] गरदन, गला।

गरवाना—क्रि. अ. [हिं. गर्व] घमंड करना, अभिमान या गर्व करना।

गरवाने—क्रि. अ. [हिं. गरवाना] घमंड या अभिमान में आ गये। उ.—कहि कुसलातैं, साँची बातैं आवन कह्यौ हरि नाथै। कै गरवानै राजसभा अब जीवत हम न सुहाथै—३४४१।

गरवानौ—वि. [हिं. गरवाना] गर्व में चूर, अभिमान में भरा हुआ। उ.—हँसे स्याम मुख हेरि कै धोवत गरवानो—२५७५।

गरव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] मोर, मयूर।

गरसना—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] (१) खाना, भक्षण करना। (२) पकड़ना, थामना, रोकना।

गरह—संज्ञा पुं. [सं. ग्रह] (१) ग्रह। (२) बाधा।

वि.-बुरी तरह से पकड़ने या कष्ट पहुँचानेवाला।

गरहन—संज्ञा पुं. [सं.] काली तुलसी।

संज्ञा पु. [देश.] एक मछली।

संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) चंद्र या सूर्य-ग्रहण। (२) पकड़ने की क्रिया।

गरहर—संज्ञा पुं. [हिं. गर = गल + हर] नटखट चौपायों के गले में बँधा हुआ काठ का टुकड़ा, कुंदा।

गरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

संज्ञा पुं. [हि. गला] गरदन, गला।

गरागरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

गराज—संज्ञा स्त्री. [स. गर्जन] गरज, गंभीर शब्द ।
गराड़ी—संज्ञा स्त्री [सं. कुंडली या हिं. गड़गड़ (अनु.)] काठ या लोहे की चरखी जो कुएँ में घड़े की रस्सी डालने के लिए लगायी जाती है, घिरनी, चरखी ।
संज्ञा स्त्री. [सं. गड = चिह्न] रगड़ का चिह्न ।
गराना—क्रि. स. [हि. गलाना] (१) घुलाना । (२) पिघलाना ।
क्रि. स. [हिं गारना] निचोड़कर दूर फेंक देना ।
गरानि, गरानी—सज्ञा स्त्री. [स. ग्लानि] लज्जा ।
गरारा—वि. [सं. गर्व, पु. हिं. गारो + आर (प्रत्य.)] प्रबल, प्रचंड, गर्वीला, उद्धत ।
संज्ञा पु. [अ. गरगरा] (१) गरगर शब्द करके कुल्ली करना । (२) गरगरा करने की दवा ।
संज्ञा पु. [हि. घेरा] (१) ढीली मोहरी का पायजामा । (२) ढीली मोहरी । (३) चौड़ा थैला ।
संज्ञा पुं. [अनु.] चौपायों का एक रोग ।
गरारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गराड़ी] कुएँ की चरखी ।
गरावन—संज्ञा पुं. [हिं, गड़ावन] एक तरह का नमक ।
गरावा—सज्ञा पुं. [देश.] कम उपजाऊ भूमि ।
गरास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] कौर, गस्सा ।
गरासना—क्रि. स. [हि. ग्रसना] (१) पकड़ना, थामना । (२) खाना, भक्षण करना ।
गरासी—वि. [स. ग्रस्त, ग्रसित] पकड़ा या जकड़ा हुआ । उ.—अपनी सीतलता नहि तजई जद्यपि बिधु भयो राहु गरासी—३३१५ ।
गरि—क्रि. अ. [हि, गलना] गलकर, सड़कर ।
यौ.—जाउ गरि—गल जाय, सड़ जाय, नष्ट हो जाय । उ.—पापी जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी—६७६ । गए गरि—नष्ट हो गये, दूर हो गये । उ.—गज-गीध-गनिका-व्याध के अघ गए गरि गरि गरि—१-३०६ ।
गरिमा—सज्ञा स्त्री. [सं. गरिमन्] (१) भारीपन, गुरुता । (२) महिमा, गौरव । (३) गर्व, अहंकार । (४) आत्मप्रशंसा, शेखी । (५) आठ सिद्धियों में एक जिससे साधक अपने को जितना चाहे भारी कर सकता है ।
गरिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ ।
गरियाना—क्रि. अ. [हि. गारी+आना (प्रत्य.)] गाली देना ।
गरियार—वि. [हिं. गड़ना-एक जगह रुकना] आलसी ।
गरियालू—संज्ञा पु. [हिं. करिया, करियालू] काला या नीला रंग ।
वि.—काले-नीले रंग का ।
गरिष्ठ—[स.] (१) बहुत भारी । (२) जो जल्दी न पचे ।
सज्ञा पुं.—(१) एक राजा (२) एक दानव । (३) एक तीर्थ ।
गरी—संज्ञा स्त्री. [स. गुलिका, प्रा. गुड़िया] (१) नारियल के भीतर का गूदा, गोला । (२) बीज की गूदी, गिरी, मींगी ।
संज्ञा स्त्री. [सं] देवदारु ।
गरीब—वि. [अ. गरीब] (१) दीन-हीन । उ.—स्याम गरीबनि हूँ के गाहक । दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक—१-१६ । (२) निर्धन, दरिद्र ।
संज्ञा पुं. [सं.] एक राग ।
गरीबनिवाज, गरीबनेवाज—वि. [फ़ा. गरीब + निवाज] दीन का दुख हरनेवाला, दयालु । उ.—लीजै पार उतारि सूर कों महाराज ब्रजराज । नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीबनिवाज-१-१०८ ।
गरीबपरवर—वि. [फा.] दीनों को पालनेवाले ।
गरीबाना—वि. [फा.] गरीबों की हैसियत का ।
गरीबामऊ—वि. [हि. गरीब + मय (प्रत्य.)] गरीबों की हैसियत का ।
गरीबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरीब + ई (प्रत्य.)] (१) दीनता, नम्रता । (२) दरिद्रता, निर्धनता ।
गरीयसी—वि. [स.] (१) बड़ी भारी । (२) महान, प्रबल । (३) गौरवयुक्त, महत्वपूर्ण ।
गरु, गरुअ, गरुआ—वि [सं. गुरु] (१) भारी, वजनी । (२) गौरवयुक्त । (३) गंभीर, ।
गरुआई—सज्ञा स्त्री [हिं. गरुआ] गुरुता, भारीपन ।
गरुआना—क्रि. अ [सं. गुरु] भारी होना ।
गरुड़—संज्ञा पु. [सं.] (१) पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन । इसके पिता कश्यप थे और माता

विनता थी। यह सर्पों का शत्रु समझा जाता है। (२) उकाब पक्षी। (३) एक सफेद पक्षी जो पानी के किनारे रहता है। (४) सेना के एक व्यूह की रचना। (५) एक तरह का प्रासाद। (६) श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (७) छप्पय छंद का एक भेद।

गरुड़गामी—संज्ञा पुं [सं.] विष्णु, श्रीकृष्ण। उ.—(क) नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहिं पर, सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी—१-२१४। (ख) इहाँ औ कासौं कैहौ गरुड़गामी।

गरुड़घंटा—संज्ञा पुं. [सं.] घंटा जिस पर गरुड़ की मूर्ति हो।

गरुड़ध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु (२) वह स्तंभ जिस पर गरुड़ की आकृति बनी हो।

गरुड़पाश—संज्ञा पु. [सं.] एक तरह का फंदा।

गरुड़पुराण—संज्ञा पु. [सं.] अठारह पुराणों मे एक।

गरुड़भक्त—संज्ञा पुं [सं.] गरुड़ के उपासक भक्त जो भारत में लगभग दो हजार वर्ष पूर्व रहते थे।

गरुड़यान—संज्ञा पुं. [स.] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

गरुड़रुत—संज्ञा पुं [सं.] सोलह अक्षरों का एक छन्द।

गरुड़व्यूह—संज्ञा पु. [स.] सेना की एक व्यूह रचना।

गरुड़ासन—संज्ञा पुं. [सं. गरुड़ + आसन] वाहन गरुड़। उ.—जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै (हो)—१०-१२८।

गरुत—संज्ञा पुं. [सं.] पंख, पक्ष, पर।

गरुता—संज्ञा स्त्री [स. गुरुतर] (१) भारीपन, गुरुता। (२) बड़प्पन, बड़ाई, महत्व।

गरुवा—वि. [स. गुरु] (१) भारी, वजनी। (२) गंभीर, शांत। (३) गौरवयुक्त।

गरुवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरुआई] भारीपन, गुरुता।

गरुहर—संज्ञा पुं. [हि. गरू + हर (प्रत्य)] बहुत भारी बोझ।

गरू—वि. [सं. गुरु] भारी, वजनी। उ.—गरू भए महि मैं बैठाये, सहि न सकी जननी अकुलानी—१०-७८।

गरूर—संज्ञा पु. [अ. गरूर] घमंड, अभिमान। उ.—हरि सरि कटि तटि लरकि जाइ जिनि बिसद नितम्ब गरूर—२११६।

गरूरता, गरूरताई संज्ञा स्त्री. [हि. गरूर] (१) घमंड। (२) मस्ती।

गरूरा—वि. [हि. गरूर] अभिमानी।

गरूरियो—वि. [हिं. गरूरी] घमंडी, अभिमानी। उ.—औषधि बैद गरूरियो हरि नहिं मानै मंत्र दोहाई—२८३९।

संज्ञा स्त्री.—अभिमान, घमंड।

गरूरी—वि. [अ. गरूरी] घमण्डी, अभिमानी।

संज्ञा स्त्री.—अभिमान, घमण्ड।

गरे—संज्ञा पुं. [सं. गल, हिं. गला] गला। उ.—बिच बिच हीरा लगे (नन्द) लाल गरे को हार—१०-४०।

मुहा.—गरे परी—अनिच्छित वस्तु, अनचाही चीज। उ.—सूरदास गाहक नहिं कोऊ दिखिअत गरे परी—३१०४।

गरेड़िया—संज्ञा पुं. [हि गड़रिया] वह व्यक्ति जो भेड़ें पालता हो।

गरेबान—संज्ञा पुं. [फा. गरेबान] (१) अंगे-कुरते आदि का गला। (२) कोट आदि का कालर।

गरेरना—क्रि. स. [हिं. घेरना] (१) घेरना। (२) रोकना।

गरेरा—वि. [हि. घेरा] चक्कर या घुमावदार।

गरेरी, गरेली—संज्ञा स्त्री. [हि. घेरा,] चरखी, घिरनी।

वि.—चक्करदार, घुमावदार।

गरैं—संज्ञा पुं. सवि [हि. गला] गले में, गरदन में। उ.—मुकुट सिर धरैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं—४-१०।

गरै—क्रि. अ. [हि गलता] गलता है, नष्ट होता है। उ.—राजा कौन बड़ौ रावन तैं गर्बहिं गर्ब गरै—१-३५।

गरैयाँ—संज्ञा स्त्री [हि. गला] दोहरी रस्सी जो पशुओं के गले में डाली जाती है, पगहा।

गरोह—संज्ञा पुं [फा.] झुंड, समूह, जत्था।

गर्ग—संज्ञा पुं. [स.] (१) एक वैदिक ऋषि जो आंगिरस भरद्वाज के वंशज और ऋग्वेद, छठे मंडल के सैंतालीसवें सूक्त के रचयिता माने जाते है। (२) नंद जी के पुरोहित का नाम। उ.—गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छनु, अबिगत हैं अबिनासी—१०-८७।

(३) बैल, साँड़। (४) गगोरी कीड़ा। (५) बिच्छू। (६) केचुआ। (७) एक पर्वत। (८) ब्रह्मा का एक पुत्र। (९) संगीत में एक ताल।

गर्गर—संज्ञा पुं. [सं] (१) भँवर। (२) एक प्राचीन बाजा। (३) गागर। (४) एक मछली।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दही मथने का बरतन। (२) गगरी, कलसी। (३) मथानी।

गर्ज—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरज] गंभीर या तुमुल शब्द। उ.—मनहुँ सिंह की गर्ज सुनत गोवच्छ दुखित तनु डोलत—३४२०।

संज्ञा स्त्री. [अ. गरज़] (१) मतलब, स्वार्थ। (२) आवश्यकता, जरूरत। (३) चाह, इच्छा।

गर्जत—क्रि. अ. [सं गर्जन, हिं. गरजना] (१) गर्जता हूँ। (२) निर्भीक होकर विचरता हूँ। उ.—मोहि वर दियो देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत। अंजनि कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गर्जत—९-८३।

गर्जत—क्रि. अ. [हिं. गरजना] (१) गरजता है, गंभीर शब्द करता है। (२) गर्व से बोलता है।

गर्जन—संज्ञा पु. [सं.] भीषण ध्वनि, गंभीर नाद। उ.—गर्जन औ तरपन मानो गो पहरक में गढ लेइ—१० उ.-१९८।

यौ.—गर्जन-तर्जन—(१) तड़प। (२) डाँटडपट।

संज्ञा पुं. [देश] एक पेड़।

गर्जना—क्रि. अ. [हिं. गरजना] घोर शब्द करना।

गर्जहिं—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन+हिं (प्रत्य.)] गर्जना को, गंभीर नाद को।

संज्ञा स्त्री. [फा. गरज़] मतलब, काम, स्वार्थ कामना। उ.—या रथ बैठ बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरु-खेत ?—१-२९।

गर्जि—क्रि. अ. [हिं. गरजना] गंभीर ध्वनि करके, भीषण रूप से गरज कर। उ.—इतने में मेघन गर्जि वृष्टि करि तनु भीज्यो मों भई जुड़ाई—२८८५।

गर्जित—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर्जन] गर्जनपूर्ण।

गर्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गड्ढा, गढ़हा (२) दरार। (३) घर। (४) रथ। (५) जलाशय। (६) एक नरक का नाम।

गर्द—संज्ञा स्त्री. [फा.] धूल, राख, भस्म।

मुहा.—गर्द उड़ाना—नष्ट करना। गर्द झड़ना—मार की परवाह न करना। गर्द फाँकना—मारे मारे घूमना। गर्द को पहुँचना—बराबरी न कर सकना। गर्द होना—(१) तुच्छ ठहरना। (२) नष्ट होना।

गर्दखोर, गर्दखोरा—वि. [फा. गर्दखोर] जो गर्द से खराब न हो।

संज्ञा पुं.—पैर पोछना।

गर्दन—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] गला, गरदन।

गर्दना—संज्ञा पु. [हिं. गरदना] मोटा गला।

गर्दभ—संज्ञा पुं. [स.] (१) गधा, गदहा। उ.—हय-गयंद उतरि कहा गर्दभ-चढि धाऊँ—१-१६६। (२) सफेद कुमुद या कोईं। (३) एक कीडा।

गर्दिश, गर्दिस—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) घुमाव, चक्कर। (२) विपत्ति।

गर्द्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोभ। (२) एक वृक्ष।

गर्द्धत, गर्द्धित—वि. [सं.] लुब्ध।

गर्द्धी—वि. [सं. गर्द्धिन्] (१) लोभी। (२) लुब्ध।

गर्व—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] अहंकार, घमंड, अभिमान।

मुहा.—गर्व प्रहारयौ—घमंड चूर कर दिया, गर्व तोड़ दिया। उ.—ग्वालनि हेत धरयौ गोवर्धन, प्रगट इंद्र कौ गर्व प्रहारयौ—१-१४।

गर्वगत—वि. [सं. गर्व + गत = रहित (प्रत्य.)] जिसका गर्व नष्ट हो गया हो, गर्वरहित, गर्वहीन। उ.—करुनामय जब चाप लियौ कर, बाँधि सुदृढ कटि-चीर। भूभृत सीस नमित जो गर्वगत, पावक सींच्यौ नीर—९-२६।

गर्वना—क्रि. अ. [सं. गर्व] गर्व या अभिमान करना।

गर्व-प्रहारी—संज्ञा पुं. [सं गर्व + हिं. प्रहारी] गर्व का नाश करनेवाला, अभिमान तोड़नेवाला, गर्वनाशक। उ.—जाकौ बिरद है गर्वप्रहारी, सो कैसैं बिसरै—१-३७।

गर्वहिं-गर्व—संज्ञा पुं. [सं. गर्व+हि= (प्रत्य.) + गर्व] गर्व ही गर्व, बहुत अधिक घमंड।

गर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गर्भ के अंदर का बालक।

उ.—ब्रह्म बाण तैं गर्भ उबारयौ, टेरत जरी जरी—१-२६। (२) गर्भाशय।

गर्भक—संज्ञा पुं. [स.] एक वृक्ष।

गर्भकार—संज्ञा पुं. [सं.] पति या प्रेमी जिससे गर्भ रहे।

गर्भकाल—संज्ञा पु. [सं.] (१) ऋतुकाल। (२) वह काल जब स्त्री गर्भवती हो।

गर्भकेसर—संज्ञा पुं. [स.] फूलों के पतले सूत जिनसे पराग का मेल होने पर फल और बीज पुष्ट होते हैं।

गर्भकोष—संज्ञा पु. [सं.] गर्भाशय।

गर्भगृह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर का भीतरी भाग। (२) आँगन। (३) तहखाना। (४) मंदिर की वह कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा हो।

गर्भज—वि. [सं.] (१) गर्भ से उत्पन्न, संतान। (२) जन्मकाल से साथ रहनेवाला (रोग आदि)।

गर्भपत्र—संज्ञा पु [सं.] (१) कोंपल, कोमल पत्ता। (२) फूल के भीतरी पत्ते जिनमें गर्भकेसर हो।

गर्भपात—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भ गिरना।

गर्भवती—वि. स्त्री. [सं.] जिसके पेट में बच्चा हो।

गर्भांक—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक के अंक का वह भाग जिसमें केवल एक दृश्य होता है।

गर्भाधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोलह संस्कारों में पहला। (२) गर्भ की स्थिति।

गर्भाशय—संज्ञा पुं. [सं.] पेट का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है।

गर्भिणी—वि. स्त्री. [सं] (१) गर्भवती। (२) खिरनी का पेड़।

संज्ञा स्त्री —[सं.] प्राचीन काल की एक नाव।

गर्भित—वि. [सं.] (१) गर्भयुक्त। (२) भरा हुआ, पूर्ण।

संज्ञा पुं. [स.] काव्य में अतिरिक्त वाक्य-दोष।

गर्रा—वि. [स. गरहाधिक=लाख] लाख के रंग का।

संज्ञा पुं—(१) लाख का रंग। (२) इस रंग का घोड़ा। (३) इस रंग का कबूतर।

संज्ञा पुं. [अनु.] बहते पानी का थपेड़ा।

संज्ञा पु. [हि. गराड़ी] चरखी, फिरकी, घिरनी।

गर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरेरना] तार लपेटने की चरखी।

गर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिमान, घमंड। (२) एक संचारी भाव जिसके अनुसार अपने को दूसरों से बड़ा समझा जाता है।

गर्वप्रहारी—वि. [सं.] घमंड चूर करनेवाला।

गर्ववंत—वि. [स. गर्ववान का बहु गर्ववंतः] घमंडी, अभिमानी। उ.—गर्ववत सुरपति चढ़ि आयो। बाम करज गिरि टेकि दिखायौ।

गर्वाना—क्रि. अ. [सं. गर्व.] गर्व या अभिमान करना, घमंड दिखाना।

गर्वानी—क्रि. अ. [हि. गर्वाना] गर्व करने लगी, घमड दिखाने लगी। उ.—कहा तुम इतनेहि को गर्वानी। जोबन रूप दिवस दसही को ज्यों अँजुरी को पानी।

गर्वानो—क्रि. अ. [हि. गर्वाना] गर्व किया, घमंड दिखाने लगा। उ.—यह सुनि हर्ष भयो गर्वानो जबहि कही अक्रूर सयानी—२४६६।

गर्विणी—वि. स्त्री. [सं.] गर्व करनेवाली।

गर्वित-वि. [सं.] अहंकारी, अभिमानी। उ. (क) हस्ती देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मति है थोरी—१-३०३। (ख) सूर सरस सरूप गर्वित दीपकाद्युत चाह—सा. १८।

गर्विता—संज्ञा स्त्री [सं.] वह नायिका जिसे रूप, गुण आदि का गर्व हो।

गर्विष्ठ—वि. [सं.] अहंकारी, अभिमानी।

गर्वी, गर्वीला, गर्वीले—वि. [सं. गर्व+हि. ईला (प्रत्य.)] घमण्डी, अहंकारी। उ.—जिनि वह सुधा पान मुख कीन्हौं वे कैसे कटु देखत। त्यों ए नैन भए गर्वीले अब काहे हम लेखत।

गर्वै—संज्ञा पु सवि. [स. गर्व] अहंकार या अभिमान करे। उ.—गगन शिखर उतरै चढ़ै गर्वै जिय धरई—१८६१।

गर्हण—संज्ञा पुं. [सं.] निंदा, बुराई।

गर्हणीय—वि. [सं.] निन्दा के योग्य, बुरा।

गर्हित—वि. [स.] (१) जिसकी निंदा की जाय, निंदित। (२) बुरा, दूषित।

गर्ह्य—वि. [सं.] निंदनीय, नीच।

गल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला, कण्ठ।

मुहा.—गल गाजना—हर्षित होना। गल गाजै—गरजते हैं। उ.—ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजै, प्रभु हाँकै रथ यान—१-२६५। गल गाजि—(१) हर्षित होकर। उ.—धाये मत्र गलगाजि कै ऊधो देखो जाइ—३४४३। (२) क्रोध से गरज कर। उ.—खंभ फारि, गल गाजि मत्त बल, क्रोधमान छवि बरन न आई—७-४।

(२) एक मछली। (३) एक बाजा। (४) गाल।

गलकंबल—संज्ञा पुं. [सं] गाय के गले का निचला भाग, झालर।

गलगंजना—क्रि. अ. [हिं. गाल + गाजना] जोर से बोलना, भारी शब्द करना।

गलगंड—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक रोग।

गलगल—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) एक छोटी चिड़िया। (२) बड़ा नीबू।

गलगला—वि. [हि. गीला] भीगा हुआ, तर।

गलगलाना—क्रि. अ. [हिं. गलगला] गीला होना।

गलगाजना—क्रि. अ. [हिं गाल + गाजना] (१) गाल बजाना। (२) खुशी से किलकारी मारना।

गलजँद्डा—संज्ञा पु. [सं. गल + यंत्र या पं. जंदरा] (१) सदा साथ रहनेवाला। (२) गले की पट्टी।

गलजोड़, गलजोत-संज्ञा स्त्री. [हिं. गला+जोड़ या जोत] (१) वह रस्सी जिससे दो बैलों के गले बाँधे जायँ। (२) गले का हार, सदा साथ रहनेवाला व्यक्ति। वि.—जो सहा न जा सके।

गलझंप—संज्ञा पुं. [हिं. गला+झंप] लोहे की झूल जो युद्ध में हाथियों को पहनायी जाती है।

गलतंग—वि.—[हिं. गला + तंग] जिसे सुधि न हो।

गलतंस—संज्ञा पुं. [सं. गलित + वंश] (१) मनुष्य जो निसन्तान मरे। (२) ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति जिसके कोई सन्तान न हो।

गलत—वि.—[अ. गलत] (१) जो शुद्ध न हो। (२) जो सत्य न हो, मिथ्या।

गलतफहमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गलत + फहम] भ्रम, गलती।

गलतान—वि. [फा. गलताँ] चक्कर मारतो या लुढ़कता हुआ।

गलती—संज्ञा स्त्री. [अ. गलत + ई (प्रत्य.)] (१) भूल-चूक। (२) अशुद्धि।

गलथन, गलथना—संज्ञा पुं. [सं. गलस्तन, पा. गलत्थन, गलथन] बकरी के गले के स्तन या थन जिनमें दूध नहीं होता।

गलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिरना (२) गलना।

गलना—क्रि. अ. [सं. गरण=तर होना] (१) पिघलना, घुल जाना। (२) क्षीण होना। (३) शरीर सूख जाना। (४) सर्दी से ठिठुरना। (५) व्यर्थ हानि होना, बेकार हो जाना, कुछ स्वार्थ न निकलना।

गलफाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल+फाँसी] (१) गले की फाँसी। (२) दुखदायी वस्तु या काम।

गलबल—संज्ञा पुं. [अनु.] कोलाहल, खलबली। उ—गलबल सब नगर पर्यो प्रगटे जदुबंसी। द्वारपाल द्वै कहे जोधा कोउ बच्यौ नहीं, काँपे गजदंत धारे सूर ब्रह्म अंसी—२६१०।

गलबहियाँ, गलबाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला + बाँह] गले मे बाह डालना, कंठालिंगन।

गलमुँदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+मुद्रा] (१) गाल बजाने की मुद्रा। (२) व्यर्थ बकवाद करना।

गलमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. गल + मुद्रा] शिवभक्तों की गालबजाने की मुद्रा।

गलवाना—क्रि. स. [हिं. 'गलाना' का प्रे.] गलाने का काम करना।

गलशुंडी संज्ञा स्त्री. [सं०] जीभ की तरह का मांस का टुकड़ा जो जिह्वा की जड़ के पास रहता है।

गलसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+श्री] गले का एक गहना।

गलसुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल + सुई] छोटा तकिया जो गाल के नीचे रखा जाता है।

गलस्तन—संज्ञा स्त्री. [स.] बकरियों के गले के थन जो व्यर्थ होते हैं।

गलस्वर—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।

गला—संज्ञा पुं. [सं. गल] (१) गरदन, कंठ।

मुहा.—गला काटना—(१) मार डालना। (२) बहुत दुख देना। (३) अन्याय से माल हड़प लेना। (४) बुराई करना। गला घुटना—(१) दम घुटना। (२) बड़े कष्ट का जीवन व्यतीत करना। गला छूटना—झंझट से पीछा छूटना। गला दबाना (घोटना)—(१) गला दबाकर मार डालना। (२) अनुचित दबाव डालना। गला फाड़ना—बहुत जोर से चिल्लाना। गला बँधना-मजबूर हो जाना। गले का हार—बहुत प्यारा। गले पड़ना—(१) न चाहने पर भी कोई भार माथे मढ़ा जाना। (२) भोगने या सहने को तैयार होना। गले मढ़ना—(१) इच्छा के विरुद्ध देना या सौंपना। (२) इच्छा के विरुद्ध विवाह कर देना। गले लगाना—(१) आलिंगन करना। (२) इच्छा के विरुद्ध सौंपना।

(२) कंठस्वर। (३) कपड़े का भाग जो कंठ पर रहता है। (४) बर्तन का भाग जो उसके मुँहड़े के नीचे होता है।

गलाना—क्रि. स. [हिं. गलना] (१) पिघलाना, नरम या द्रव करना। (२) पिघलाकर धीरे धीरे लुप्त या क्षय करना। (३) (रुपया) व्यर्थ खर्च करना।

गलानि—संज्ञा स्त्री. [स. ग्लानि] (१) दुख या पछतावे की लज्जा या खिन्नता। (२) दुख, खेद।

गलित—वि. [सं.] (१) गला या पिघला हुआ। (२) प्रयोग या उपयोग के कारण जो चुस्त या कठिन न हो, जिसका बहुत उपयोग हो चुका हो। (३) जीर्ण-शीर्ण, पुराना। (४) चुआ या गिरा हुआ। (५) नष्ट-भ्रष्ट। (६) परिपक्व, परिपुष्ट। उ.—दान लैहौं सब अंगनि कौ। अति मद गलित तालफल ते गुरु जुगल उरोज उतंगनि कौ। (७) बिखरा हुआ, अस्तव्यस्त साज-शृंगारवाला। उ.—छूटी लट छूटी नकबेसरि मोतिन की दुलरी। अदन नैन सुख सरद निसा-कर कुसुम गलित कबरी—२१०६। (८) शिथिल, क्लांत, थका हुआ। उ.—सुधि न रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयौ अहौ—२५६७।

गलित यौवना—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्त्री जिसका यौवन ढल गया हो।

गलिन, गलिनि—संज्ञा स्त्री. [सं. गल, हिं गली] गलियाँ, तंग रास्ते। उ.—सो रस गोकुल-गलिनि बहावैं—१०-३।

गलियारा—संज्ञा पु. [हि. गली + आरा (प्रत्य.)] पतली गली, तंग रास्ता।

गली—संज्ञा स्त्री. [सं. गल] (१) खोरी, कूचा, तंग रास्ता। उ.—आजु मेरी गली होके करत बंसी सोर —सा. ६१। (२) मोहल्ला।

मुहा.—गली गली फिरना—(२) जीविका के लिए भटकना। (२) बहुत साधारण होना।

क्रि. स. भूत. [हि. गलना] (१) गल गयी, घुल गयी। (२) क्षीण या नष्ट हो गयी।

गलीचा—संज्ञा पु. [फ़ा गालीचा] ऊन या सूत का मोटा बिछौना जिस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे हों।

गलीज—वि. [अ. गलीज़] मैला-कुचैला।

संज्ञा पुं —गंदगी, मैल।

गलीत—वि. [अ. गलीज़ = मैला या अशुद्ध] मैला-कुचैला, बुरी दशा को प्राप्त।

गलेबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला + बाजी] डींग, बढ़ बढ़कर बातें करना।

गलौ—संज्ञा पुं. [सं. ग्लौ] चद्रमा।

गल्प—संज्ञा स्त्री. [सं. जल्प या कल्प] (१) झूठी कथा। (२) डींग, शेखी। (३) कहानी।

गल्ल—संज्ञा पुं. [स] गाल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल या गल्प अथवा फ़ा. गिला] बात, चर्चा।

गल्ला—संज्ञा पुं. [अ. गुल, हि. गुल्ला] शोर, हुल्लड़।

संज्ञा पुं. [फा. गल्ल] झुड, समूह।

संज्ञा पु. [हिं. गाल] अन्न जो एक बार चक्की में पिसने के लिए डाला जाय, मुट्ठी भर अन्न, कौरी।

संज्ञा पुं. [अ. गल्लः] (१) फसल, पैदावार। (२) अन्न, अनाज। (३) धन की गोलक।

गवँ, गवँही—संज्ञा स्त्री. [स. गम, प्रा. गवँ] (१) घात, अवसर। (२) मतलब, प्रयोजन।

मुहा०—गवँ से—(१) घात या अवसर देखकर। (२) चुपचाप, धीरे से।

गव—संज्ञा पुं. [सं. गवय] एक बंदर जो श्रीराम की सेना में था ।

गवई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव] छोटा गाँव । उ.—अब हरि क्यौं बसैं गोकुल गवई—३३०४ ।

गवच्छ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] एक बंदर जो श्रीरामचंद्र की सेना में था । उ.—नल-नील-द्विविद-केसरि गवच्छ । कपि कहे बहुक, हैं बहुत लच्छ-६-१६६ ।

गवन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] (१) चलना, जाना, प्रस्थान । उ.—तहाँ गवन प्रभु सूरज कीन्हौ—२६४३ । (२) वधू का पहिली बार पति के घर जाना, गौना । (३) गवन का वेग या गति । उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ —१-५ ।

गवनचार—संज्ञा पुं. [सं. गमन + आचार] वधू का पति के घर पहली बार जाना, गौना ।

गवनना—क्रि. अ. [हिं. गवन] जाना, प्रस्थान करना ।

गवना—संज्ञा पुं. [हिं. गौना] वधू का पहली बार पति के घर जाना ।

गवनीं—क्रि. अ स्त्री. [हिं. गवनना] प्रस्थान किया, (अन्य स्थान को) गयीं । उ.—(क) गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब—१०-३२ । (ख) मुरली सब्द सुनत बन गवनी पति सुत गृह बिसराये —३०६० ।

गवने—क्रि. अ. [हिं. गमना या गवनना] गये, चले गये, यात्रा की, प्रस्थान किया । उ.—(क) पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाई । दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ—६-४७ । (ख) जब तैं तुम गवने कानन कौं भरत भोग सब छाँडे —६-१५४ ।

गवय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नील गाय । (२) एक वानर जो श्रीराम की सेना में था । (३) एक छंद ।

गवाँए—क्रि. स. [हिं. गवाँना] खो दिये, खो बैठे । उ.—सूरदास तेहिं बनिज कवन गुन मूलहु माँझ गवाँए—३२०१ ।

गवाँना—क्रि. स. [हिं. गवना का प्रे.] खोना, नष्ट करना ।

गवाँवत—क्रि. स. [हिं. गवाना] खोते हैं, नष्ट करते हैं । उ.—बचन कठोर कहत कहि दाहत अपनो महत गवाँवत—३००८ ।

गवाइ—क्रि. स. [हिं 'गाना' का प्रे.] गवाकर, मधुर आलाप कराकर । उ—सखियनि संग गवाइ, बहु बिधि बाजे बजाइ—१०-४१ ।

गवाक्ष गवाख, गवाछ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] (१) छोटी खिड़की, झरोखा । (२) एक वानर जो श्रीराम की सेना में था ।

गवाची—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) इंद्रायन । (२) एक लता ।

गवाय—क्रि. स. [हिं. गाना, गवाना] गवाकर, गाने के लिए प्रेरित करके । उ.-गावत हँसत गवाय हँसावत, पटकि पटकि करतालिका ६०६ ।

गवारा—वि. [फा.] (१) मनभाता, रुचिकर । (२) अंगीकार, रुचनेवाला ।

गवास, गवासा—संज्ञा पुं. [सं. गवाशन] कसाई । संज्ञा स्त्री. [हिं. गाना] गाने की इच्छा ।

गवाह—संज्ञा पुं. [फा.] साक्षी, साखी ।

गवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गवाह] गवाह का बयान, साक्षी का कथन, साक्ष्य ।

गवीश—संज्ञा पुं [सं. गवेश] (१) गोस्वामी । (२) विष्णु । (३) साँड़ ।

गवेल—वि. [हिं. गाँव] गँवार, देहाती ।

गवेषणा—संज्ञा स्त्री [सं] खोज, छानबीन ।

गवेषी, गवेसी—वि. [सं. गवेषण] खोजी, ढूँढ़नेवाला ।

गवेसना—क्रि. स. [सं. गवेषण] खोज करना ।

गवैया—वि. [हिं. गाना + ऐया (प्रत्य.) अथवा गावना] गानेवाला, गायक ।

गवैहा—वि. [हिं. गाँव + ऐहा (प्रत्य.)] (१) गाँव का रहनेवाला । (२) गँवार, असभ्य ।

गव्य—वि. [सं] गाय से प्राप्त दूध, दही, घी, गोबर आदि पदार्थ ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गायों का समूह । (२) पंचगव्य—गाय से मिलनेवाले पाँच पदार्थ—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र ।

गश—संज्ञा पुं. [फा. गश] मूर्च्छा, बेहोशी।

गश्त—संज्ञा. पुं. [फा.] (१) घूमना फिरना। (२) घूम घूम कर पहरा देना।

गश्ती—वि. [फा.] (१) घूमनेवाला। (२) कई व्यक्तियों के पास भेजा जानेवाला (पत्र आदि)।

संज्ञा स्त्री.—व्यभिचारिणी स्त्री।

गसना—क्रि. स. [सं. गुथना] (१) गाँठना, जोड़ना। (२) गठी हुई बुनावट करना।

गसीला—वि. [हिं. गसना] (१) गठा हुआ। (२) गठी हुई बुनावट का (कपड़ा)।

गस्सा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास, प्रा. गास, गस्स] कौर

हित। उ.—माधव जू आवनहार भये। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये।

गहडोरना—क्रि. स. [अनु.] पानी मथकर गंदा करना।

गहत—क्रि. स. [हि. गहना] (१) पकड़ते, रोकते या ग्रहण करते ही, थामते ही। उ.—रिपु कच गहत द्रुपदतनया जब सरन सरन कहि भाषी। बढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा माँझ पति राखी—१-२७। (२) धारण करता है।

गहति—क्रि. स. [हि. गहना] पकड़ता, रोकता या ग्रहण करता है, थामता है। उ.—चिरजीवौ सुकुमार

नोट—फार्म ३७६-३८६ के बाद के फार्म पर भी भूल से यही पृष्ठ-संख्या पड़ गयी है। कृपा करके सुधार लें। शब्दों का क्रम ठीक है। तीसरे खंड में पृष्ठ संख्या ४११ से आरंभ की जायगी।

—संपादक

युक्त। (२) जो खूब धूमधाम से हो।

गहगहात—क्रि. अ. [हि. गहगहाना] (१) प्रफुल्लित होकर, उमंग से भरा हुआ। उ.—बायस गहगहत सुभ बानी बिमल पूर्व दिसि बोलै। आजु मिलाओ स्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले—१० उ.-१०६। (२) खूब घिरता हुआ, बड़ी धूमधाम और जोरशोर के साथ। उ.—गहगहात किलकिलात अंधकार आयौ। रवि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायौ—६-१३६।

गहगहाना—क्रि. अ. [हिं. गहगहा] (१) आनंद या उमंग में भरा हुआ। (२) फसल का अच्छा होना।

गहगहे—क्रि. वि. [हिं. गहगहा] (१) बड़ी प्रफुल्लता या उमंग के साथ, अच्छी तरह। (२) खूब धूमधाम और जोरशोर से। उ.—बाजन बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि—१०-४०।

गहगहो—वि. [हिं. गहगहा] सानंद, प्रफुल्लित, उत्सा-

संज्ञा पुं.—(१) गहराई, थाह। (२) दुर्गम स्थान। (३) गुप्त स्थान। (४) दुख। (५) जल।

संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) ग्रहण। उ.—बड़ो पर्व रवि गहन कहा कहौं तासु बड़ाई—१० उ.-१०५। (२) कलंक, दोष। (३) दुख। (४) बंधक, रेहन।

संज्ञा स्त्री. [हि. गहना = पकड़ना] (१) पकड़। (२) हठ, जिद, अड़। उ.—एकै गहन धरी उन हठ करि मेटि बेद बिधि नीति—३४७८। (३) घास खोदने का एक औजार।

गहना—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण = धारण करना] (१) आभूषण, अलंकार। (२) बंधक, रेहन।

क्रि. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] पकड़ना, थामना।

गहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रहण] टेक, हठ, जिद। उ.—(क) छबि तरंग सरितागन लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही। (ख) हरि पिय

गव—संज्ञा पुं. [सं. गवय] एक बंदर जो श्रीराम की सेना में था।

गवई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव] छोटा गाँव। उ.—अब हरि क्यौं बसैं गोकुल गवई—३३०४।

गवच्छ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] एक बंदर जो श्रीरामचंद्र की सेना में था। उ.—नल-नील-द्विविद-केसरि गवच्छ। कपि कहे वच्छुक, हैं बहुत लच्छ-९-१६६।

गवन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] (१) चलना, जाना, प्रस्थान। उ.—तहाँ गवन प्रभु सूरज कीन्हो—२६४३। (२) वधू का पहिली बार पति के घर जाना, गौना। (३) गवन का वेग या गति। उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ —१-५।

गवनचार—संज्ञा पुं. [सं. गमन+आचार] वधू का पति के घर पहली बार जाना, गौना।

गवनना—क्रि. अ. [हिं. गवन] जाना, प्रस्थान करना।

गवना—संज्ञा पुं. [हिं. गौना] वधू का पहली बार पति के घर जाना।

गवनी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. गवनना] प्रस्थान किया, (अन्य स्थान को) गयीं। उ.—(क) गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब—१०-३२। (ख) मुरली सब्द सुनत बन गवनी पति सुत गृह बिसराये —३०६०।

गवने—क्रि. अ. [हिं. गमना या गवनना] गये, चले गये, यात्रा की, प्रस्थान किया। उ.—(क) पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाई। दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ—९-४७। (ख) जब तैं तुम गवने कानन कौं भरत भोग सब छाँड़े —९-१५४।

गवय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नील गाय। (२) एक वानर जो श्रीराम की सेना में था। (३) एक छंद।

गवाँए—क्रि. स. [हिं. गवाँना] खो दिये, खो बैठे। उ.—सूरदास तेहिं बनिज कवन गुन मूलहु माँझ गवाँए—३२०१।

गवाँना—क्रि. स. [हिं. गवना का प्रे.] खोना, नष्ट करना।

गवाँवत—क्रि. स. [हिं. गवाना] खोते हैं, नष्ट करते हैं। उ.—वचन कठोर कहत कहि दाहत अपनो महत गवाँवत—३००८।

गवाइ—क्रि. स. [हिं. 'गाना' का प्रे.] गवाकर, मधुर आलाप कराकर। उ—सखियनि संग गवाइ, बहु बिधि बाजे बजाइ—१०-४१।

गवाक्ष गवाख, गवाछ—संज्ञा पुं. [सं गवाक्ष] (१) छोटी खिड़की, झरोखा। (२) एक वानर जो श्रीराम की सेना में था।

गवाक्षी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इंद्रायन। (२) एक लता।

गवाय—क्रि. स. [हिं. गाना, गवाना] गवाकर, गाने के लिए प्रेरित करके। उ.-गावत हँसत गवाय हँसावत, पटकि पटकि करतालिका ६०९।

गवारा—वि. [फा.] (१) मनभाता, रुचिकर। (२) अंगीकार, रुचनेवाला।

गवास, गवासा—संज्ञा पुं. [सं. गवाशन] कसाई।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गाना] गाने की इच्छा।

गवाह—संज्ञा पुं. [फा.] साक्षी, साखी।

गवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गवाह] गवाह का बयान, साक्षी का कथन, साक्ष्य।

गवीश—संज्ञा पुं [सं. गवेश] (१) गोस्वामी। (२) विष्णु। (३) साँड़।

गवेल—वि. [हिं. गाँव] गँवार, देहाती।

गवेषण—संज्ञा स्त्री. [सं] खोज, छानबीन।

गवेषी, गवेसी—वि. [सं. गवेषण] खोजी, ढूँढ़नेवाला।

गवेसना—क्रि. स. [सं. गवेषण] खोज करना।

गवैया—वि. [हिं. गाना + ऐया (प्रत्य.) अथवा गावना] गानेवाला, गायक।

गवैंहा—वि [हिं. गाँव+ऐहा (प्रत्य)] (१) गाँव का रहनेवाला। (२) गँवार, असभ्य।

गव्य—वि. [सं.] गाय से प्राप्त दूध, दही, घी, गोबर आदि पदार्थ।
संज्ञा पुं [सं.] (१) गायों का समूह। (२) पंचगव्य—गाय से मिलनेवाले पाँच पदार्थ—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र।

गश—संज्ञा पुं. [फ़ा. गश] मूर्च्छा, बेहोशी।

गश्त—संज्ञा. पुं. [फ़ा.] (१) घूमना फिरना। (२) घूम घूम कर पहरा देना।

गश्ती—वि. [फ़ा.] (१) घूमनेवाला। (२) कई व्यक्तियों के पास भेजा जानेवाला (पत्र आदि)।

संज्ञा स्त्री.—व्यभिचारिणी स्त्री।

गसना—क्रि. स. [सं. ग्रुथना] (१) गाँठना, जोड़ना। (२) गठी हुई बुनावट करना।

गसीला—वि. [हिं. गसना] (१) गठा हुआ। (२) गठी हुई बुनावट का (कपड़ा)।

गस्सा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास, प्रा. गास, गस्स] कौर, ग्रास, नेवाला।

गह—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रह] (१) मूठ, कब्जा, दस्ता। (२) कोठरी की ऊचाई। (३) खंड, मंजिल।

गहकना—क्रि. अ. [सं. गद्गद] (१) चाह या लालसा से ललकना। (२) उमग या उत्साह भरना।

गहगह—वि. [सं. गद्गद] (१) चाह से युक्त। (२) उत्साह या उमंग से भरा हुआ।

क्रि. वि.—खूब धूमधाम से।

गहगहा—वि. [सं. गद्गद] (१) उमंग या आनंद से युक्त। (२) जो खूब धूमधाम से हो।

गहगहात—क्रि. अ. [हिं. गहगहाना] (१) प्रफुल्लित होकर, उमंग से भरा हुआ। उ.—बायस गहगह त सुभ बानी विमल पूर्व दिसि बोलै। आजु मिलाओ स्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले—१० उ.-१०६। (२) खूब घिरता हुआ, बड़ी धूमधाम और जोरशोर के साथ। उ.—गहगहात किलकिलात अधकार आयौ। रवि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायौ—६-१३६।

गहगहाना—क्रि. अ. [हिं गहगहा] (१) आनंद या उमंग में भरा हुआ। (२) फसल का अच्छा होना।

गहगहे—क्रि. वि. [हिं. गहगहा] (१) बड़ी प्रफुल्लता या उमंग के साथ, अच्छी तरह। (२) खूब धूमधाम और जोरशोर से। उ.—बाजन बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि—१०-४०।

गहगहो—वि. [हिं. गहगहा] सानंद, प्रफुल्लित, उत्साहित। उ.—माधव जू आवनहार भये। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये।

गहडोरना—क्रि. स. [अनु.] पानी मथकर गंदा करना।

गहत—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ते, रोकते या ग्रहण करते ही, थामते ही। उ.—रिपु कच गहत द्रुपदतनया जब सरन सरन कहि भाषी। बढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा माँझ पति राखी—१-२७। (२) धारण करता है।

गहति—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ता, रोकता या ग्रहण करता है, थामता है। उ.—चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ—६ ८३।

गहन—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ने अथवा ग्रहण करने (के लिए), धरने या थामने (के लिए)। उ.—(क) इंद्र-भय मानि, हय गहन सुत सौं कह्यौ, सो न लै सक्यौ, तब आप लीन्हौ—४-११। (ख) सकल भूषन मनिनि के बने सकल अँग, बसन बर अरुन सुंदर सुहायौ। देखि सुर असुर सब दौरि लागे गहन, कह्यौ मैं बर बरौं आप भायौ—८-८।

वि. [सं.] (१) गहरा, अथाह। (२) घना, दुर्गम। (३) कठिन, जटिल। (४) घना, निविड़।

संज्ञा पुं.—(१) गहराई, थाह। (२) दुर्गम स्थान। (३) गुप्त स्थान। (४) दुख। (५) जल।

संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) ग्रहण। उ.—बड़ो पर्व रवि गहन कहा कहौं तासु बड़ाई—१० उ-१०५। (२) कलंक, दोष। (३) दुख। (४) बंधक, रेहन।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना = पकड़ना] (१) पकड़। (२) हठ, जिद, अड़। उ.—एकै गहन धरी उन हठ करि मेटि वेद विधि नीति—३४७८। (३) घास खोदने का एक औजार।

गहना—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण = धारण करना] (१) आभूषण, अलंकार। (२) बंधक, रेहन।

क्रि. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] पकड़ना, थामना।

गहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रहण] टेक, हठ, जिद। उ.—(क) छबि तरंग सरितागन लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही। (ख) हरि पिय

तुम जिनि चलन कहौ। यह जिनि मोहिं सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहौ—२४५५।

गहनु—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) ग्रहण। (२) कलंक।

गहनै—क्रि. वि. [हिं. गहना=बंधक] बंधक या रेहन के रूप में।

गहबर, गहबरा—वि. [सं. गह्वर] (१) गहन, दुर्गम। उ.—तुम जानकी, जनकपुर जाहु। कहा आनि हम सग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु—९-३४। (२) दुखी, व्याकुल। (३) ध्यान में लीन, बेसुध।

गहबरना—क्रि. अ. [हिं. गहबर] (१) घबराना। (२) जी भर आना।

गहबराना—क्रि. स. [हिं. गहबर] घबरा देना, व्याकुल करना।

गहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी, अथवा सं. ग्रह; अथवा फा. गाह=समय] (१) देर, विलंब। उ.—(क) क्त हौ गहर करत बिन काजैं, वेगि चलौ उठि धाइ—१०-२०। (ख) गहर जनि लावहु गोकुल जाइ। तुमहिं बिना व्याकुल हम होइहैं यदुपति करी चतुराई। (ग) गहर करत हमको कहा सुख कहा निहारत—२५७६। (२) टालना, बहाना करना। उ.—देहो दधि कौ दान नागरी गहर न लाओ चित्त—सारा. ८७६।

वि. [सं. गह्वर] दुर्गम, कठिन।

गहरना—क्रि. अ. [हिं. गहर=देर] देर लगना, विलंब करना।

क्रि. अ. [अ. क़हर] (१) झगड़ा करना, उलझना। (२) कुढ़ना, खीझना, झुँझलाना।

गहरा—वि. [सं. गंभीर, पा. गहीर] (१) जिसकी थाह सरलता से न मिले। (२) जिसकी सतह बहुत नीचे हो। (३) बहुत ज्यादा।

मुहा.—गहरा असामी—बड़ा धनी। गहरा हाथ मारना—(१) पूरा वार करना। (२) बहुत धन पा जाना। (३) बड़े मूल्य या काम की चीज पाना।

(४) मजबूत, दृढ़। (५) गाढ़ा, जो पतला न हो।

मुहा.—गहरी घुटना (छानना)—(१) बहुत मेल-जोल होना। (२) घुलघुल कर बातें होना।

गहराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहरा+ई (प्रत्य.)] गहरापन।

गहराना—क्रि. अ. [हिं. गहरा] गहरा होना।

क्रि. स.—खूब गहरा करना या बनाना।

क्रि. अ. [हिं. गहर] नाराज होना, खीझना।

गहरानी—क्रि. अ. [हिं. गहर, गहराना] नाराज हुई, रूठ गयी, अप्रसन्न हुई। उ.—अधर कंप, रिस भौंह मरोरयौ, मन ही मन गहरानी—१८६५।

गहराव—संज्ञा पुं. [हिं. गहरा+आव (प्रत्य.)] गहरापन।

गहरि—क्रि. अ. [हिं. गहर=झगड़ा] झगड़ा करके, रूठ कर, खीझकर। उ.—तुम सौं कहत सकुचत महरि। स्याम के गुन नहीं जानति जात हम सौं गहरि—८६०

गहरु—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी अथवा फा. गाह=समय] देर, विलंब। उ.—(क) सूर एक पल गहरु न कीन्हयौ किहिं जुग इतौ सह्यौ—१-४६। (ख) माखन बाल गोपालहि भावै। भूखे छिन न रहत मन मोहन, ताहि बदौं जो गहरु लगावै—१०-२३५। (ग) ऊधौ ब्रज जिनि गहरु लगावहु—२६२६। (घ) नव और सात बीस तोहि सोभित-काहे गहरु लगावति—सा. उ.—११।

गहरे—क्रि. वि. [हिं. गहरा] अच्छी तरह, खूब।

गहवा—संज्ञा पुं. [हिं. गहना=पकड़ना] सँडसी।

गहवाना—क्रि. स. [हिं. गहाना] पकड़ाना।

गहाइ—क्रि स. [हिं. गहाना] पकड़ाकर, थमाकर। उ.—कहौ तौ तावौं तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौं—९-१०८।

गहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना] पकड़ने का कार्य या भाव, पकड़।

गहाऊँ—क्रि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] पकड़ाऊँ, थमाऊँ, उठवाऊँ। उ.—(क) आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ। तौ लाजौं गंगा जननी कौं, संतनु सुत न कहाऊँ—१-२७०। (ख) जो तुमरे कर सर न गहाऊँ गंगा-सुत न कहाऊँ—सारा. ७८०।

गहागह—क्रि. वि. [हिं. गहगह] धूमधाम से।

गहाना—क्रि. स. [हिं. गहना=पकड़ना] पकड़ने या थामने को प्रेरित करना।

गहायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गहाया] पकड़ाया, धरने को प्रेरित किया। उ.—अति कृपालु आतुर अबलनि कौं

व्यापक अंग गह्यौ—२६६८।

गहावत—क्रि. स. [हिं. गहना=पकड़ना का प्रे. 'गहाना'] पकड़ाते हैं, थमाते है। उ.—(क) सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया—१०-११५। (ख) सुफलकसुत ए सखि ऊधौ मिली एक परिपाटी। उनतौ वह कीन्ही तब हमसौं, ए रतन छँड़ाइ गहावत माटी—३०५६।

गहावन—क्रि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] पकड़ाने की, थमाने की। उ—निज पुर आइ, राइ भीषम सौं, कही जो बातैं हरि उचरी। सूरदास भीषम परतिज्ञा, अस्त्र गहावन पैज करी—१-२६८।

गहावै—क्रि स. [हि. 'गहना'=पकड़ना का प्रे.]गहाती है, पकड़ाती है, थमाती है। उ.—कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आँगन माँझ रिगावै—१०-१३०।

गहासना—क्रि. स. [सं. ग्रसना] पकड़ना।

गहि—क्रि. स. [हिं. गहना] रकर, टेककर, पकड़कर, थामकर। उ.—गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई—९-२४।

गहिए—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़िए, धरिए, थामिए। उ.—जो तुम जोग सिखावन आए निर्गुन क्यों करि गहिए।—२६८७।

गहिबो—क्रि. स [हि. गहना] पकड़ना, धरना।

मुहा.—चित गहिबो—ध्यान में लाना, ख्याल करना, विचार में रखना। उ.—घोष बसत की चूक हमारी कछू न चित गहिबो—३३१५।

गहियत—क्रि. स. [हि. गहना] पकड़ता है, थामता है। उ.—फिरि फिरि वहइ अवधि अवलंबन बूड़त ज्यौं तृन गहियत—३३००।

गहियै—क्रि. स. [हि. गहना] ग्रहण कीजिए, पकड़िए, अपनाइए, स्वीकारिए। उ.—(क) दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परै सो गहियै—१-६२। (ख) गएँ सोच आएँ नहिं आनँद ऐसौ मारग गहियै—२-१८।

गहियौं—क्रि. स. [हि. गहना] पकड़ूँगा, ग्रहण करूँगा। उ.—ये सब बचन ऽ मनमोहन यहै राह मन गहियौ—१०-३१३।

गहिर, गहिरा—वि. [हिं. गहरा] जिसकी थाह सरलता से न मिले, अथाह।

गहिराई—संज्ञा स्त्री. [हि. गहराई] गहरापन।

गहिराव—संज्ञा पुं. [हि गहरा] गहरापन।

गहिरो, गहिरौ—वि. [हि. गहरा] जहाँ पानी ज्यादा हो, गहरा। उ.—आगैं जाउँ जमुन-जल गहिरौ, पाछैं सिंह जु लागे—१०-४।

गहिला - वि. [हिं. गहेला] पागल, उन्मत्त।

गही—क्रि. स. [हिं. गहना] रोकी, पकड़ी, हाथ में ली। उ.—(क) दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिं बसन बढ़ायौ—१ ३२। (ख) भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ. १६।

गहीर—वि. [हिं. गहरा] अथाह, गहरा।

गहीली—वि. स्त्री. [हिं. गहेला, गहिला] (१) घमंड में चूर रहनेवाली, अभिमानिनी। उ. (क) राधा हरि के गर्व गहीली—१३०६। (ख) हम तैं चूक कहा परी जिय गर्व गहीली—१७१५। (ग) यह तौ जोबन रूप गहीली संका मानत हर की—पृ. ३१७ (६८)। (२) पगली, उन्मत्त।

गहु—संज्ञा स्त्री. [सं. गह्वर या हि. गँव] छोटा रास्ता, ली।

गहूँ—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ूँ, थामूँ। उ.—चित्र गुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी—१-१४३।

गहूरी—संज्ञा स्त्री [हि. गहना=रखना] दूसरे के माल की रक्षा की मजदूरी।

गहे—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़े, रोके या थामे हुए। उ.—क्रोध-दुसासन गहे लाज यह, सर्व अंध-गति मेरी—१-१६५। (२) किसी के द्वारा पकड़े या ग्रसे जाने पर। उ.—ग्रह गहे गजपति मुकरायौ—१-१०। (३) ग्रहण करने पर। उ.—ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ—१-१५।

गहेजुआ—संज्ञा पुं [देश] छछूँदर।

गहेलरा—वि. [हिं. गहेला] (१) पागल, उन्मत्त। (२) मूर्ख, गँवार।

गहेला—वि. [हिं. गहना=पकड़ना+एला (प्रत्य.)]

(१) हठी, जिद्दी। (२) घमंडी, अभिमानी। (३) पागल, उन्मत्त। (४) मूर्ख, अज्ञानी।

गहैं—क्रि. स. [हिं. गहना] गहते हैं, रोकते हैं, पकड़ते हैं। उ. (क) गहैं दुष्ट द्रुपदी कौ सारँग, नैननि बरसति नीर—१-३३। (ख) ……चंद्र गहैं ज्यौं केत—१-२६६।

गहै—क्रि स. [हिं. गहना] (१) पकड़ता है, थामता है। उ.—सूरदास सब सुखदाता-प्रभु-गुन बिचारि नहिं चरन गहै—१-५३। (२) ग्रहण करता है, प्राप्त करता है। उ.—और कछू विद्या नहिं गहै—५-३।

गहैया—वि. [हिं. गहना + ऐया (प्रत्य)](१) पकड़नेवाला। (२) मानने या स्वीकार करनेवाला।

गहोगे—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ोगे, थामोगे। उ. —बाबा नंदहिं पालागन कहि पुनि पुनि चरन गहोगे—२६३२।

गहौं—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ूँ, थामूँ। उ.—सूरदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं—१-१६१।

गहौंगौ—क्रि. स. [हिं. गहना] गहूँगा, पकड़ूँगा। उ. —मैया री मैं चद लहौंगो। कहा करौं जलपुट भीतर कौं, बाहर ब्यौंकि गहौंगौ—१०-१६४।

गहौ—क्रि. स. [स. ग्रहण, प्रा. गहण] (१) पकड़ो, रोको, थाम लो। उ.—(क) सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज—१-१०२। (ख) अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, वेगि गहौ किन बाँह—१-१७५। (२)अपनाओ, स्वीकार करो। उ.—अब तुम नाम गहौ मन नागर—१-६१।

गह्यो गह्यौ—क्रि. स. [हिं गहना] (१) पकड़ा, थामा, अंगीकार किया। उ.—(क) स्याम गह्यौ भुज सहज हीं वयों मारत हमकौं—२५७७। (ख) सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख, हनूमान-सिव जानि गह्यौ—२-८। (२) ग्रहण किया, उठाया। उ.—सक्र कौ दान-बलि,मान ग्वारनि लियौ गह्यौ गिरि पानि जस जगत छायौ—१-५।

गह्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल, वन। उ.—कटि-तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता-बंधु-समेत। सूर गमन गह्वर कौ कीन्हौ जानत पिता अचेत—९-३६। (२) अंधकारमय और अनजाना गूढ़ स्थान। (३) बिल, सूराख। (४) विषम स्थान। (५) गड्ढा, गहरा स्थान। उ.—अति गह्वर में जाइ परी हम—२४३३। (६) कुंज। (७) झाड़ी। (८) गुप्त स्थान। (९) दंभ। (१०) रोना। (११) गूढ़ार्थक वाक्य (१२) जटिल विषय। (१३) जल।

वि.—(१) दुर्गम, जटिल (२) छिपा हुआ।

गांग—वि. [सं.] गंगा-संबंधी।

संज्ञा पुं.—(१) भीष्म। (२) वर्षा का जल। (३) कार्तिकेय। (४) एक मछली। (५) सोना।

गांगायनि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भीष्म। (२) कार्तिकेय। (३) एक ऋषि।

गांगेय—संज्ञा पु. [सं.] (१) भीष्म। (२) कार्तिकेय। (३) एक मछली। (४) सोना। (५) धतूरा।

गांग्य—वि. [सं. गंगा] गंगा-संबंधी।

गाँछना—क्रि. स. [स. गुत्थन] (माला आदि) गूँथना।

गाँज—संज्ञा पुं. [फ़ा. गंज] (१) राशि। (२) डंठल या लकड़ी का तले ऊपर लगा हुआ ढेर।

गाँजना—क्रि. स. [हिं. गाँज] ढेर लगाना।

गाँजा—संज्ञा पुं. [सं. गंजा] एक नशीला पौधा।

गाँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि, प्रा. गंठि] (१) गिरह, ग्रंथि।

मुहा.—गाँठ खुलना— समस्या या उलझन दूर होना। गाँठ खोलना (छोरना)—उलझन मिटाना। मन की गाँठ खोलना—(१) जी खोलकर बात करना (२) इच्छा पूरी करना। मन में गाँठ करना (पड़ना)—बुरा मानना। गाँठ पर गाँठ—(१) उलझन बढ़ना। (२) द्वेष बढ़ना।

(२) कपडे में कुछ लपेटकर लगायी हुई गिरह।

मुहा.—गाँठ काटना—(१) गाँठ काट लेना। (२) सौदे में ठगे जाना। गाँठ करना—(१) अपने पास इकट्ठा करना। (२) याद रखना। गाँठ का—अपना, अपने पास का। गाँठ का पूरा— धनी। गाँठ खोलना—अपने पास का धन खरचना। (बात) गाँठ बाँधना—ध्यान रखना। गाँठ में—पास में। गाँठ से—पास से।

(३) बोझ, गठरी। (४) शरीर के अंगों का जोड़। (५) ईख आदि की पोर। (६) गाँठ की बनावट की चीज आदि।

गाँठकट—संज्ञा पु. [हिं. गाँठ+काटना] (१) गाँठ काटनेवाला। (२) ठग।

गाँठना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन]। (१) गाँठ लगाना, साँटना। (२) टाँकना, गूँथना। (३) जोड़ना। (४) क्रम से लगाना।

मुहा.—मतलब गाँठना—काम निकालना।

(५) अपनी तरफ मिला लेना। (६) तय कर लेना। (७) दबाना, दबोचना। (८) वश में करना।

गाँठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ, गिरह, ग्रंथि, फंदा। उ.—(क) वचन बाँह लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी—१-१४६। (ख) अचल गाँठि दयी दुख भाज्यौ सुख जु आनि उर पैठ्यो—६-१६४।

मुहा.—कहा गाँठि को लागत-पास का क्या खर्च होता है, क्या जमा जथा खर्च होती है। उ.—इतनो कहा गाँठि को लागत जो बातनि जस पाइए—१६८८। गाँठि परी—और जकड़ गयी, मामला पेचीदा होगया। उ.—कठिन जो गाँठि परी माया की तोरी जाति न झटकैं—१-२६३। गाँठि को—अपने पास की। उ.—सूर सुगंध गँवाइ गाँठि को रही बौरई मानि-१५७२।

(२) किसी कपड़े में लपेटकर लगायी हुई गाँठ। उ.—होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ-१-२९७। (३) बाँस, ऊख आदि की गाँठ। उ.—मुरली कौन सुकृत फल पाये। ....। मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाये-६६१।

गाँठिकटा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + काटना] जेब काटनेवाला, गिरहकट। उ.—बटपारी, ठग, चोर, उचक्का गाँठिकटा, लठबाँसी—१-१८६।

गाँठी—संज्ञा स्त्री. [हि. गाँठ] (१) गाँठ। उ.—मेरो जिव गाँठी बाँधो पीतांबर की छोर—८८०।

मुहा.—गाँठी को—अपना, अपने पास का। उ.—हौं तो गयौ गुपालहि भेंटन और खर्च गाँठी कौ—१० उ.-८७। गाँठि दै राखति—छिपा कर या बंद करके रखती है। उ.—दधि माखन, गाँठी दै राखति करत फिरत सुत चोरी—१०-३२४।

(२) हाथ की कोहनी में पहनने का एक गहना। (३) गँठीला डंठल।

गाँडर—संज्ञा स्त्री. [सं. गंडाली] (१) एक घास। (२) एक तरह की गँठीली दूब।

गाँडा—संज्ञा पुं. [सं. काड या खंड] (१) कटा हुआ खड। (२) गँडेरी। (३) ईख, गन्ना।

संज्ञा पुं [सं. गंड] चक्की की मेड़।

गांडीव—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन के धनुष का नाम।

गांडीवी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन। (२) अर्जुन नामक वृक्ष।

गाँथना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन] (१) (माला आदि) गूँथना। (२) गाँठना, जोड़ना, सीना।

गांदिनी, गांदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अक्रूर की माता। (२) गंगा।

गांधर्व—वि. [सं] गंधर्व का, गंधर्व जातीय।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंधर्व विद्या। (२) गान विद्या। (३) विवाह का एक प्रकार। (४) घोड़ा।

गांधर्वी—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्गा।

गांधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंधु नद का पश्चिमी प्रदेश। (२) इस प्रदेश का निवासी। (३) गंधरस।

गांधारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गांधार देश की स्त्री। (२) धृतराष्ट्र की पत्नी जो गांधार देश के राजा सुबल की पुत्री थी।

गांधी—संज्ञा स्त्री. [सं. गाधिक] (१) हरे रंग का एक बरसाती कीड़ा। (२) एक घास। (३) हींग।

संज्ञा पुं. [सं. गाधिक] (१) इत्र तेल बेचनेवाला, गंधी। (२) गुजराती वैश्यों की एक जाति।

गांभीर्य—संज्ञा पुं. [स.] (१) गहराई। (२) गंभीरता। (३) स्थिरता। (४) धीरता। (५) (विषय की) जटिलता।

गाँव—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम, प्रा. गावँ] किसानों की बस्ती, खेड़ा।

मुहा.—गँवई-गाँव — देहात। गाँव-गिराव — जमींदारी। गाँव मारना—डाका डालना।

गाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँसना] (१) संकट, आपत्ति, बाधा । उ.—अजहूँ नाहिं डरात मोहन, बचे कितने गाँस—१०—४२७ । (२) गुप्त बात, भेद, रहस्य । उ.—जोवन दान लेहिगे तुम सौं । चतुराई मिलवति है हम सौं । इनकी गाँस कहा री जानौ । इतनी कही एक जिय मानौ—११६१ । (३) गाँठ, फंदा, गठन, बनावट । उ.—इतने सबै तुम्हारे पास । निरखि न देखहु अंग अंग अब चतुराई की गाँस —११३२ । (४) रोकटोक, बंधन, प्रतिबंध । (५) बैर, ईर्ष्या, द्वेष । (६) तीर या बरछी की नोक । (७) नुकीला हथियार, छुरी, बर्छी । उ.—भुजा धरे रज अंग चढ़ायौ , गाँस धरे हरि ऊपर आयौ—२६०६ । (८) देखरेख, निगरानी ।

मुहा.—गाँस करि राखी—ध्यान में रखी, मन में बैठा ली । उ.—तुम वह बात गाँस करि राखी, हम कहँ गई भुलाइ ।

गाँसना—क्रि. स. [हिं. ग्रंथन] (१) गूँथना, गाँठना । (२) चुभोना, आर-पार करना । (३) कसना (४) देखरेख में रखना, वश में करना, दबोचना । (६) ठूसना, ठूँसकर भरना (७) छेद बंद करना ।

गाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँस] (१) तीर या बरछी की नोक । (२) तीर । उ.—सूरदास सोई पै जानैं जा उर लागै गाँसी— ३,१३३ । (३) गाँठ, गिरह । (४) कपट । (५) ईर्ष्या, द्वेष । (६) वश, अधिकार ।

मुहा.—जोर करैगो गाँसी—जबरदस्ती वश में करेगा, हठपूर्वक अधिकार या शासन जमायगा । उ.—पावैगो पुनि कियौ आपनो जोर करैगो गाँसी ।

गाइ—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) मधुर स्वर से गाकर । (२) सविस्तार वर्णन करके । उ.—पारथ के सारथि हरि आप भए हैं । भक्त-बछल नाम निगम गाइ गये हैं—१-२३ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. गौ, हिं. गाय] गाय । उ.—(क) माधो जू, यह मेरी इक गाइ । अब आज तैं आप आगैं दई, लै आइए चराइ—१-५१ । (ख) माधो सखा स्याम इन कहि कहि अपने गाइ-ग्वाल सब घेरो—२५३२ ।

गाइयै—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रशंसा या बड़ाई कीजिए, बखानिए । उ.—हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि-गुन गाइयै—उ.—३-११ ।

गाइयो—क्रि. स. [हिं. गाना] (गीत) गाया । उ.—जन मन भयो सूर आनँद हरषि मंगल गाइयो—१० उ.-२४ (८) ।

गाईं—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रार्थना करने लगीं, स्तुति की । उ.—राजरवनि गाईं व्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौ धीरक । मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर पीरक—१-११२ ।

गाई—क्रि. स. [हिं. गाना] (१)मधुर स्वर में अलापी । (२) विस्तार के साथ वर्णन की । उ.—एहि पर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनत कथा स्तुति गाई —१-६

गाउँ—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम] (१) गाँव, खेड़ा । उ.—प्रभु जू, यौं किन्ही हम खेती । बंजर भूमि, गाँउ हर जोते, अरु जेती की तेती—१-१८५ । (२) जमीन, जायदाद । उ.—याऊँ तोहिं राज-धन-गाँऊँ —४-६ । (३) राज्य, राजधानी । उ.—भलैं राम कौ सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५ ।

गाउ—क्रि. अ. [हिं. गाना] गा रहे हैं, मधुर स्वर से बोल रहे है । उ.—कुसुमसर रिपु नंद वाहक हहर हरषित गाउ—सा. उ.-४० ।

गाऊँ—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रशंसता हू , बखानता हूँ, स्तुति करता हूँ । उ.—सूर कूर, आँधरौ, मैं द्वार परयौ गाऊँ—१-१६६ ।

गाऊ—क्रि. स. [हिं. गाना] गाते हैं, बखानते हैं । उ.—सूरदास प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाऊ—१०-२२१ ।

गाए—क्रि. स. [हिं. गाना] गाये गये, सविस्तार वर्णित किये गये । उ.—दीनबंधु हरि, भक्तकृपानिधि, वेद-पुराननि गाए-(हो) —१-७ ।

गाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. गाना] गाने से, वर्णन करने या बखानने से । उ—जो सुख होत गुपालहि गाएँ —२-६ ।

गाऊवप्प—वि. [हिं. खाऊ+ गप्प (१) जमा मार लेनेवाला। (२) खूब खरचने-उड़ानेवाला।

गागर, गागरा, गागरि, गागरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्गर, पा. गग्गर, हि. गगरा] घड़ा, गगरी। उ.—(क) पुलकित सुमुखी भई स्याम रस ज्यौं जल मैं काँची गागरि गरि—१०-१२०। (ख) ज्यौं जल माँह तेल की गागरि बूँद न ताको लागी—३३३५। (ग) मटकति गिरी गागरी सिर तैं अब ऐसी बुधि ठानति।

गाछ—संज्ञा पुं. [सं. गच्छ] पौधा, पेड़।

गाछी—संज्ञा स्त्री. [हि. गाछ+ई (प्रत्य)] (१) कुंज, बाग। (२) (खजूर की) कोंपल। (३) बोरा या गद्दा जो पशुओं की पीठ पर रखा जाता है।

गाज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्ज] (१) गरज, शोर। (२) बिजली गिरने का शब्द। (३) बिजली, वज्र।

मुहा.—गाज पड़ना—बिजली गिरना, वज्रपात होना। (किसी पर) गाज पड़ना—आफत आना। (किसी बात पर) गाज पड़ना—समूल नष्ट होना। गाज मारना—(१) वज्रपात होना। (२) आफत आना। जिय गाज—जी में भय उत्पन्न होना, भयानक संकट पड़ना। उ.—चक्र धरे हरि आवहीं सुनि असुरन जिय गाज—१० उ.-८।

संज्ञा पुं. [अनु. गजगज] फेन, झाग।

गाजत—क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) (प्रसन्न होकर) हुंकारते हैं। उ.—जिहिं जल तृन, पशु, दारु बूड़ि, अपनैं सँग औरनि पारत। तिहिं जल गाजत महावीर सब, तरत आँखि नहिं मारत—६-१२३। (२) क्रोध से गरजता है। उ.—(क) रावन तब लौं ही रन गाजत। जब लौं सारँगधर कर नाहीं सारँग-बान बिराजत। तैसें सूर असुर आदिक सब सँग तेरे हैं गाजत—६-१३०। (ख) निसि दिन कलमलात सुन सजनी सिर पर गाजत मदन अर—२७६४।

गाजति—क्रि. अ. [हिं. गाजना] गरजकर, शब्द करके।

यौ.—गाजति बाजति—धूमधाम के साथ। उ.—मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।.... । गाजति-बाजति, चढ़ी दुहूँ कर, अपनैं शब्द न सुनत पराई—६५४।

गाजन—संज्ञा. पुं. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] गर्जन, हुंकार, जोर का शब्द, ध्वनि। उ.—सुनत बन मुरली धुनि की बाजन। पपिहा गुंज कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन—६२२।

क्रि. अ. [हि. गाजना] गरज कर।

प्र०—आए गाजन—गरजने आये हैं, भयंकर ध्वनि करके डराने आये हैं। उ.—ब्रज पर बदरा आये गाजन—२८१७। लागे गाजन—गरजने लगे हैं। उ.—ब्रज पर बहुरो लागे गाजन—१० उ.-६६।

गाजना—क्रि. अ. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] (१) शब्द करना, गरजना। (२) प्रसन्न होना।

मुहा.—गल गाजना—(१) प्रसन्न होकर हुंकारना या किलकारी मारना। (२) क्रोध से गरजना।

गाजनु—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] गरज, हुंकारने की क्रिया। उ.—सूरदास नागर बिन अब यह कौन सहै सिर गाजनु—२८७२।

गाजर—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] एक पौधा, उसकी जड़।

गाजा—संज्ञा पुं. [हिं. गाज] गरज, ध्वनि।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गाज़ा] मुँह पर मलने का पाउडर।

गाजी—संज्ञा पुं. [अ. गाज़ी] (१) धर्मयुद्ध करनेवाले इस्लामी वीर। (२) वीर।

क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) गरजने लगी। (२) हर्षित हुई।

मुहा.—सबहिनि के सिर गाजी—सबको परास्त करके हर्षित हुई, सबको चुनौती देकर किलकारी भरी। उ.—सुफल भयो पछिलो तप कीन्हो देखि सुरूप काम-रति भाजी। जगत के प्रभु बस किये सूर सुनि सबहिं सुहागिन के सिर गाजी—३०६४।

गाजु—क्रि. अ. [हिं. गाजना] गरजा कर, चिल्लाया कर, बकाकर। उ.—राखौ रोकि पाइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाजु। हौ तौ तुरत मिलौंगी हरिकौं, तू घर बैठौ गाजु—८०८।

गाजे—क्रि. अ. [हिं. गाजना] गरजते हैं, हुंकारते हैं। उ.—(क) बिप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं, अर्जुन रन मैं गाजे—१-३६। (ख) माई री ए मेघ गाजैं—२८१६।

गाजै—क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) हुंकारे, गरजे, चिल्लाये। (२) प्रसन्न हुए।

मुहा.—गल गाजै—हर्षित होकर किलकारता है। (किसी पर) गाजै—परास्त कर सकता है, चुनौती देता है, बहुत बढ़कर है। उ.—तेज प्रताप राइ केसो कौ तीनि लोक पर गाजै—२६३२।

गाटर, गाटी—संज्ञा पुं. [हिं. कट्टा] छोटा खेत।

गाठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] ग्रंथि, बंधन। उ.—प्रभु कब देखिहौ मम ओर। जान आपुन आपु ते गिरनाथ गाठी छोर—सा. उ. ४२।

गाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्त्त, प्रा. गड्ड] (१) गड्ढा, गढ़ा। (२) अन्न रखने का गड्ढा। (३) कुएँ की ढाल। (४) खेत की मेंड़, बाढ़।

गाड़ना—क्रि. स. [हिं. गाड़=गड्ढा] (१) गड्ढा खोद कर किसी चीज को मिट्टी आदि से दवा देना, तोपना। (२) गड्ढा खोद कर किसी चीज को इस तरह खड़ा करना कि वह मजबूती से जमी रहे। (३) किसी चीज को उसके नुकीले भाग की तरफ से धँसाना। (४) (किसी बात या रहस्य को) छिपाना या प्रकट न करना।

गाडर—संज्ञा स्त्री. [सं. गड्डरी या गड्डरिका] (१) भेड़। (२) गाँडर घास जो मूँज की तरह होती है।

गाड़रू—संज्ञा पु. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष झाड़ने वाला व्यक्ति।

गाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शकट, प्रा. सगड़] बैलगाड़ी, छकड़ा। उ.—सीधो बहुत सुरासुर नंदै गाड़ा भरि पहुँचायौ।

संज्ञा पुं. [सं. गर्त्त, प्रा. गड्ड] (१) छिपकर बैठने का गड्ढा (२) कोल्हू के नीचे का गड्ढा।

गाड़ि—क्रि. वि. [हिं. गाड़=गड्ढा, गाड़ना] जमीन में गाड़कर। उ.—(क) भैया-बंधु कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी।······मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी—१-७१। (ख) कबहूँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहिं देत—२-१५। (ग) सूर जोग-धन राख मधुपुरी- कुबिजा के घर गाड़ि—३००४।

गाड़िऐ—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गड्ढे में दबा दीजिए, तोपिए। उ.—ये पाडव क्यों गाड़िऐ, धरनीधर डोलै—१-२३८।

गाड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. शकट, प्रा. सगड़] सवारी जिसे घोड़े या बैल खींचते हैं।

क्रि. स. [हिं. गाड़ना] (१) गड्ढे में गाड़कर, तोप कर। (२) जबरदस्ती रोककर। उ.—मोको बैरी भए कुटुँब सब फेरि फेरि ब्रज गाड़ी। जो हौं, कैसेहुँ जान पावती तौ कत आवत छाड़ी—२७०१।

गाड़ू—संज्ञा पुं. [सं. गारुड़] मंत्र, जादू। उ.—कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परसि करि, विष अपनो लियौ झारि। सूरदास प्रभु बडे गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि—७५६।

गाड़े—संज्ञा पुं. [सं. गर्त. प्रा. गड्ड, हिं. गाड़] गड्ढा, गहरा गढ़ा। उ.—गृह गृह प्रति द्वार फिरयौ, तुमकौं प्रभु छाँड़े। अंध अंध टेकि चलै, क्यों न परै गाड़े—१-१२४।

गाढ़—वि. [स.] (१) बहुत अधिक। (२) दृढ़, मजबूत। (३) घना, गाढ़ा। (४) गहरा, अथाह। (५) दुर्गम।

संज्ञा पुं.—(१) आपत्ति, संकट। उ.—(क) उलटी गाढ़ परी दुर्वासैं दहत सुदरसन जाकौं—१-११३। (ख) डसी री माई स्याम भुजंगम कारे।···सूरस्याम गारुड़ी बिना को जो सिर गाढ़ उतारै। (ग) जहँ-जहँ गाढ़ परै तहँ आवै—६७०। (घ) जब-जब गाढ़ परति है हमकौ तहँ करि लेत सहैया—२३७४। (२) जुलाहों का करघा।

गाढ़ा—वि. [स. गाढ] जो कम पतला हो। (२) जिसके सूत खूब घने मिले हों। (३) घनिष्ट, गहरा। (४) घोर, कठिन।

संज्ञा पुं.—(१) हाथ के सूत का मोटा कपड़ा। (२) मस्त हाथी।

गाढ़ी—वि. स्त्री. [हिं. गाढा] (१) बढ़ी-चढ़ी, घोर, कठिन। उ.—एती करबर हैं टरी, देवनि करी सहाय। तब तैं अब गाढ़ी पड़ी, मोकौं कछु न सुझाइ—५८६। (२) बहुत बढ़ी हुई, अत्यत। उ.—धेनु दुहत अतिहीं रति-बाढ़ी। मोहनै कर तैं धार चलति, परि मोहनि

मुख अति ही छवि गाढ़ी—७३६ । (३) घनी, गहरी, घोर । उ.—मानहु मेघ घटा अति गाढ़ी—१०३२ ।

गाढ़े—वि. [हि. गढ़ा] (१) घनिष्ट, गूढ़ । (२) बड़े-चढ़े, घोर, कठिन, विकट । उ.—सूर उपँग-सुत बोलत नाहीं अति हिरदै हैं गाढे—२६६६ ।

मुहा.—गाढ़े की कमाई—मेहनत से कमाई हुई दौलत । गाढ़े के मीत, साथी या संगी—संकट समय के मित्र, विपत्ति में साथ देनेवाले । उ.—गोविंद गाढे दिन के मीत । गज अरु ब्रज, प्रहलाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत—१-३१ । गाढे दिन—संकट के दिन, विपत्ति काल । गाढे में—विपत्ति या संकट के दिनों में ।

क्रि. वि. [हि. गाढा] (१) दृढ़ता से, मजबूती से । उ.—(क) पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढे—४१३ । (ख) हार सहित अँचरा गह्यो गाढे एक कर गह्यौ मटुकिया मेरी । (२) अच्छी तरह, खूब ।

गाढ़ै—वि. सवि. [सं. गाढ़, हि. गाढा] विपत्ति के दिनों में । उ.—हमारे निर्धन के धन राम । चोर न लेत, घटत नहि कबहूँ, आवत गाढ़ै काम—१ ६२ ।

क्रि. वि. [हि. गाढा] दृढ़ता से, जोर से, मजबूती से । उ.—(क) इक कर सौं भुज गहि गाढ़ैं करि, इक कर लीन्ही साँटी— १० २५५ । (ख) दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हें, गई महरि के आगें—१०-३१७ । (ग) लिए लगाइ कठिन कुच कैं बिच, गाढ़ैं चापि रही अपनें कर—१०-३०१ । (२) अच्छी तरह, भली भाँति, खूब, ऊँचे (स्वर) से । उ.—बरजति है घर के लोगनि कौं हरुऐं लै लै नामहि । गाढै बोलि न पावत कोऊ डर मोहन बलरामहि —५१५ ।

गाढ़ो—वि. [हि गाढ़ा] गहरा, गूढ़, बहुत अधिक, खूब बढ़ा हुआ । उ.—(क) गाढो मान दूरि करि डारयौ हरष भई मन बाम—२१५१ । (ख) बहुरि सखी सुफलक सुत आयौ परयौ संदेह जिय गाढौ—२६७१ । (ग) नाम सुदामा कहत नाथ जो दुखी आहि अति गाढ़ो—१० उ.-७७ ।

गाढ़ौ—वि. [हि. गाढा] कठिन, विकट, प्रचंड, घोर । उ.—(क) सुनियत हैं, तुम बहु पतितनि कौं, दीन्हौ है सुखधाम । अब तौ आनि परयौ है गाढौ सूर पतित सौं काम—१-१७६ । (ख) इत पारथ गांगेय बली उत जुरो जुद्ध अति गाढौ—सारा.७८१ ।

गाणपत्य—वि. [सं.] गणपति-संबंधी ।

संज्ञा पुं.— गणेश-उपासक संप्रदाय ।

गात—संज्ञा पुं. [सं. गात्र, पा० गत्त] (१) शरीर, अंग । उ.—(क) ग्राह गह्यौ गज बल बिनु व्याकुल, बिकल गात गति लंगी । धाइ चक्र लै त हि उबारयौ, मारयौ ग्राह बिहंगी—१-२१ । (ख) सूरदास प्रभु बोलि न आयौ प्रेम पुलकि सब गात—२५३१ । (२) शरीर के गुह्यांग । (३) स्तन, कुच । (४) गर्भ ।

गातन—संज्ञा पुं. सवि. [हि. गात] शरीर में । उ.—पाये जानि सकल सुनि मधुकर जे गुन साँवरे गातन—३०२५ ।

गाता—संज्ञा पुं. [हि. गात] शरीर, अंग । उ.—नैन अलसात अति, बार-बार जमुहात, कंठ लगि जात, हरषात गाता—४४० ।

संज्ञा पुं. [सं. गातृ (गाता)] गानेवाला, गवैया ।

संज्ञा पुं. [सं. गत्ता] दफ्ती, कुट ।

गाती—संज्ञा स्त्री. [स. गात्री या गात्रिका] (१) चद्दर जो शरीर या गले में बाँधी-लपेटी जाय । उ.—सारी सुभग काछ सब दिये । पाटंबर गाती सब दिये । (२) गाती या चादर शरीर के चारो ओर लपेटकर गले में बाँधने का ढंग ।

गातु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोयल । (२) भौंरा । (३) गंधर्व । (४) गानेवाला । (५) गान । (६) पथिक । (७) पृथ्वी ।

गाते—संज्ञा पुं. [हि. गात] शरीर । उ.—गदगद वचन नैन जल पूरित बिलखि बदन कृस गाते—३४६१ और सा. उ.—४६ ।

गात्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंग, देह, शरीर । उ.—पोपे नहि तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनो गात्र—१-२१६ । (२) हाथी के अगले पैरों का ऊपरी भाग ।

गाथ—संज्ञा पुं. [सं. गाथा] (१) गान, गीत । उ.—सूर स्याम हौं ठगी महानिसि पढ़ि जु सुनाये प्रात के

गाथ—२७३६। (२) स्तोत्र। (३) यश, प्रशंसा। उ.—(हरि) पतित पावन, दीनबन्धु अनाथनि के नाथ। संतत सब लोकनि स्तुति, गावत यह गाथ —१-१८२। (४) वचन, वाणी, कथन। उ.—तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनो सूर मम गाथ। तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहै मम साथ—सारा.११०४।

गाथक—संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गायक।

गाथना—क्रि. स. [हिं गाँथना] गूँथना, गाँथना।

गाथा—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) स्तुति। (२) श्लोक। (३) रचना जिसमें दान, यज्ञ आदि का वर्णन हो। (४) आर्यावृत्ति। (५) एक प्राचीन भाषा जिसमें पाली और संस्कृत के विकृत शब्द-रूप रहते थे। (६) गीत। (७) कथा, वृत्तांत।

गाथी—संज्ञा पुं. [सं. गाथिन्] सामवेद-गायक।

गाद—संज्ञा स्त्री. [सं. गाध = जल का तल] (१) तरल पदार्थ की निचली गाढ़ी चीज, तलछट। (२) तेल की कीट। (४) गाढ़ी चीज।

गादड—वि. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] कायर। संज्ञा पुं.— (१) अड़ियल बैल। (२) गीदड़। संज्ञा पुं. [सं. गड्डर] भेड़ा, मेढ़ा।

गादर—वि. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] (१) कायर, भीरु। (२) सुस्त, मट्ठर। संज्ञा पुं —(१) अड़ियल बैल। (२) गीदड़। वि. [हिं. गदराना] गदराया हुआ।

गादा—संज्ञा पुं. [सं. गाधा = दलदल] (१) अधपका अन्न। (२) कच्ची फसल। (३) हरा महुआ।

गादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गद्दी] (१) एक पकवान। (२) गद्दी।

गादुर—संज्ञा पुं. [सं. कातर, प्रा. कादर] चमगादड़।

गाध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान, जगह। (२) जल की थाह (३) नदी का बहाव। (४) लोभ। वि.— (१) जो बहुत गहरा न हो। (२) थोड़ा।

गाधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गायत्री-स्वरूपा महादेवी।

गाधि—संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र के पिता जो कुशिक राजा के पुत्र थे।

गाधितनय, गाधिपुत्र, गाधिसुत — संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र।

गाधी - संज्ञा स्त्री. [हिं. गद्दी] गद्दी।

गाधेय—संज्ञा पु. [सं.] विश्वामित्र।

गान—संज्ञा पु. [सं.] (१) गाने की क्रिया, गाना। (२) गाने की चीज, गीत।

गानत—क्रि. स. पुं. [हिं. गाना] गाते हैं। उ.—परे रहत द्वारे सोभा के कोई गुन गनि गानत—पृ. ३२८।

गानति—क्रि. स. स्त्री. [हिं गाना] गाती हैं। उ.—ग्वालन संग रहत जे माई, यह कहि कहि गुन गानति —१८०५।

गाना - क्रि. स. [सं. गान] (१) ताल, स्वर के ध्यान से मधुर ध्वनि निकालना। (२) मधुर ध्वनि करना। (३) विस्तार के साथ वर्णन करना।

मुहा.—अपनी गाना—(१) अपना दुखड़ा रोना। (२) अपनी बात कहना। अपनी ही गाना—अपने मतलब की कहना।

(४) स्तुति या प्रशंसा करना।

संज्ञा पुं —(१) गाने की क्रिया, संगीत। (२) गाने की चीज, गीत।

गानि—क्रि. स. [हिं. गाना] बखान कर, प्रशंसा करके। उ.—तेहि समय सुख स्याम स्यामा सूर क्यों कहै गानि— पृ. ३४३ (२२)।

गानी—क्रि. स. [हिं. गाना] वर्णन की, गायी, सविस्तार कही। उ.—(क) तब पठयौ ब्रज-दूत, सुनी नारद-मुख बानी। बार बार रिपि-काज, कंस अस्तुति मुख गानी—५८६। (ख) जो तुम अंग अग अवलोक्यो धन्य धन्य मुख अस्तुति गानी—१३१६।

गाने—क्रि. स. [हिं. गाना] गाये, बखान किये। उ-ताही के जाहु स्याम जाके निसि बसे धाम मेरे गृह कहा काम सूरदास गाने—१६५२।

गानै—क्रि. स. [हिं गाना] गाता है, स्तुति करता है। उ.—बार बार स्याम राम अक्रूरहि गानै। अबहिं तुम हरष भए तबहिं मन मारि रहे, चले जात रथहिं बात, बूझत हैं बानै—२५५७।

गान्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गाना] गाया, बखान किया

स्तुति की। उ.—गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यौ—पृ. ३५० (५७)।

गाफिल—वि. [अ. गाफिल] (१) बेसुध, बेखबर। (२) लापरवाह, असावधान।

गाब—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गाभ—संज्ञा पुं. [स. गर्भ, पा. गब्भ] (१) पशुओं का गर्भ। (२) नया कल्ला, कोंपल। (३) बरतन का साँचा।

गाभा—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा गब्भ] (१) नया कल्ला, कोपल। (२) पेड़ के डंठल के बीच का भाग या हीर। (३) लिहाफ आदि से निकली हुई पुरानी रुई। (४) कच्ची खेती।

गाभिन, गाभिनी—वि. स्त्री. [सं. गर्भिणी, पा. गब्भिणी] मादा पशु जिसके पेट में बच्चा हो।

गाम—संज्ञा पुं [सं. ग्राम, पा. गाम] गाँव। उ.—"' सुभ दिन हरि आये निज धाम। तौलौं घर घर प्रति दुर्गा कौ पूजन कियौ सब गाम—सारा-६५१।

गामिनी—सं. स्त्री. [सं.] एक तरह की नाव।

गामी—वि. [सं. गामिन्] (१) चलनेवाला, चालवाला। उ.—तिनको कौन परेखो कीजै जे हैं गरुड़ के गामी—३०८०। (२) संभोग या रमण करनेवाला।

गामुक—वि. [सं.] जानेवाला।

गाय—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] (१) गैया, गऊ।

मुहा.—गाय की तरह काँपना—बहुत डरना, थर्राना। गाय का बछिया और बछिया का गाय के तले करना— थोड़े में काम चलाने के लिए हेरा-फेरी करना।

(२) बहुत सीधा आदमी, दीन मनुष्य।

क्रि. स. [हि. गाना] गाकर, बखान करके। उ.—नंद महर की गारी गाय—२४०६।

गायक-संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गवैया।

गायगोठ—संज्ञा स्त्री. [हिं गाय+सं. गोष्ठ] गैयों का बाड़ा, गोशाला।

गायत—वि. [अ. गायत] बहुत, अत्यंत।

गायताल—संज्ञा पुं [हि. गाय + तल] (१) निकम्मा बैल या चौपाया। (२) बेकार या रद्दी चीज।

वि.—निकम्मा, बेकार, गया-गुजरा, रद्दी।

गायत्र—संज्ञा पुं. [सं.] गायत्री छंद।

गायत्री—संज्ञा पुं. [सं गायत्रिन्] खैर का पेड़।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वैदिक छंद। (२) एक पवित्र मंत्र। उ.—तिन गायत्री सुने गर्ग सों प्रभु गति अगम अपार—२६२६। (३) खैर। (४) दुर्गा।

गायन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गानेवाला, गायक, गवैया। (२) गाकर जीविका कमानेवाला। (३) गीत, गान। (४) स्वामी कार्तिकेय।

संज्ञा स्त्री. बहु [ब्रज. गैयन] गैयाँ। उ.—गायन घर घर घेर चरावत लोभ नचावत हारे—सा. उ. ८।

गायब—वि. [अ. गायब] लुप्त, अंतर्धान।

गायबाना—क्रि. वि. [हि. गायब] छुपके से, धीरे धीरे, अनुपस्थिति में।

गायिका—संज्ञा स्त्री. [सं. गायक] गानेवाली।

गायिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गानेवाली स्त्री, गायिका। (२) एक मात्रिक छंद।

गायौ—क्रि. स. [सं. गान, हि. गाना] स्तुति की, बखान किया, प्रशंसा की। उ.—(क) कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पाँडु की बधू जस नैंकु गायौ। लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ़यौ तन- चीर नहिं अंत पायौ—१-५। (ख) सरन गए राखि लेत सूर सुजस गायौ—१-२३।

संज्ञा पुं. सवि. [हि. गैया] गाय (का)। उ. गायौ घृत भरि धरी कटोरी—३६५।

गार—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] गाली।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) गड्ढा। (२) गुफा।

गारड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष उतारने वाला।

गारत—वि. [अ. गारत] नष्ट, बरबाद।

गारना—क्रि. स [सं. गालन = निचोड़ना] (१) पानी या रस निकालना या निचोड़ना। (२) घिसकर मिलाना। (३) त्यागना, दूर करना।

क्रि स. [सं. गल] (१) गलाना, घुलाना।

मुहा.—तन [देह या शरीर] गारना—तप करना जिससे शरीर गले या कष्ट हो।

(२) नष्ट करना, बरबाद करना।

गारभेली—संज्ञा स्त्री [देश.] फालसे की जाति का एक जंगली फल।

गारा—संज्ञा पुं. [हिं. गारना] गाढ़ा चूना या मिट्टी जो जोड़ाई या पलस्तर के काम आता है।

संज्ञा पुं. [देश.] नीची भूमि जिसमें पानी न टिके।

गारि—क्रि. स. [सं. गालन = निचोड़ना] निकालना, त्यागना, दूर करना।

क्रि. स. [हिं. गारना] (१) गलाना, घुलाना।

मुहा.—तन (तनु) गारि—तप द्वारा शरीर को कष्ट देकर या गला कर। उ.—(क) तब तन गारि बहुत स्रम कीन्हो सो फल पूरन दैन। (ख) सरद ग्रीसम डरत नाहीं, करति तप तनु गारि—७८१।

(२) नष्ट करके, खोकर मिटाकर, समाप्त करके। उ.—ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै—१०-१५८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] (१) दुर्वचन, शाप। उ.—बंस निर्बंस करि डारिहौं छिनक मैं गारि दै दै ताहि त्रास दीन्हो—२६०२। (२) उत्सवों मे गाये जाने वाले गीत जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती है। उ.—(क) गावत नारि गारि सब दै दै—६-२५। (ख) सजन प्रीतम नाम लै लै दै परस्पर गारि—१०-२६।

गारियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु [हिं. गाली] (१) गालियाँ, दुर्वचन। (२) गीत जो उत्सवों में गाये जाते हैं जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती हैं, उत्सवों में गायी जानेवाली गालियाँ। उ.—आईं जुरि जुवती दूहूँ दिसि मनों देति आनँद गारियाँ—पृ. ३४८ (४)।

गारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] (१) गाली, दुर्वचन, अपशब्द। उ.—(क) गारी देहि प्रात उठि मोकौ सुनत रहत यह बानी—२६३६। (ख) नारी गारी बिनु नहिं बोलै पूत करै कलकानी। घर में आदर कादर कोसौं खीझत रैन बिहानी। (२) कलंकजनक आरोप। उ.—(क) सूरस्याम इहि बरजि कै मेट्यो अब कुल-गारी हो—१-४४। (ख) खीझ कह्यो ताहि क्यों इहाँ ल्यायौ मुझे मम पिता-मात कौ लगैं गारी—१० उ.—५६।

मुहा.—गारी आवै (पड़े, लगे)—कलंक लगता है, लांछन लगता है। उ.—लोचन लालच भारी। इनके लए लाज या तन की सबै स्याम सौं हारी। बरजत मात पिता पति बांधव अरु आवै कुल गारी। तदपि रहत न नंद नँदन बिनु कठिन प्रकृति हठ धारी। हाथ रहेगी गारी—गाली देकर व्यर्थ ही पछताना होगा। उ.—अब दुख मानि कहा धौं करिहौ हाथ रहैगी गारी—२६३८। गारी लाना—कलंक या दाग लगाना।

(३) एक गीत जो उत्सवों में स्त्रियाँ गाती हैं जिनमें दी हुई गालियाँ प्रिय लगती हैं। उ.—निर्भय अभय-निसान बजावत, देत महर कौं गारी—१०-४।

क्रि. स. [सं. गल] गलाया, घुला दिया।

मुहा.—कीन्हो तनु गारी—तप करके या कष्ट सहकर, सारा शरीर गला कर। उ.—(क) व्रत-साधति नीकैं तन गारी—७६६। (ख) षटरितु तप कीन्हो तनु गारी—१००५।

गारुड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र जिसका देवता गरुड़ हो, साँप का विष उतारने का मंत्र। उ.—आवति लहर मदन बिरहा की को हरि वेगि हँकारै। सूरदास गिरिधर जौ आवहिं हम सिर गारुड़ डारै—३२५४।

गारुड़ि, गारुड़ी, गारुड़िक—संज्ञा पुं. [सं. गारुडिन्] (१) मंत्र से साँप का विष उतारनेवाला, साँप झाड़नेवाला। उ.—(क) कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी जिन जन मरत जिवायौ। बारबार निकट स्रवनन ह्वै गुरु गारुड़ी सुनायौ—२-३२। (ख) औरै दसा भई छिन भीतर, बोले गुनी नगर तैं। सूर गारुड़ी गुन करि थाके, मत्र न लागत थर तैं—७४४। (ग) चले सब गारुड़ी पछिताइ। नैकुहूँ नहि मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ—७४५। (घ) डसी री स्याम भुअंगम कारे। ···। सूर स्याम गारुड़ी बिना को, जो सिर गाढ़ उतारै—७४७। (२) मन्त्र से साँप पकड़नेवाला, सँपेरा।

गारुत्मत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मरकत, पन्ना। (२) गरुड़ जी का अस्त्र।

गारुरी—संज्ञा पु. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष उतारने

वाला। उ.—डसी री माई स्याम भुअंगम कारे।...। आनहु वेगि गारुरी गोविंदहिं जो यहि विषहिं उतारै।

गारै—क्रि. स. [सं. गल] गलाती या घुलाती हैं।

मुहा.—तनु गारै—शरीर गलाती या क्षीण करती है। उ.—नैनन ते बिछुरी भौहैं भ्रम ससि अजहूँ तन गारै—३१८६।

गारो, गारौ—संज्ञा पुं [सं. गर्व] (१) गर्व, अहंकार, अभिमान। उ.—(क) छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ—१-१३१। (ख) बिदुर दास के भोजन कीन्हौ, दुरजोधन कौ मेट्यो गारौ—१-१७२। (ग) देखत बल दूरि करयौ मेघनाद गारौ। (घ) हमको नँदनंदन को गारो—६८७। (ङ) बात सुनत रिस भरयौ महावत तुमहिं कहा इतनो रे गारो-२५६०। (२) मान, प्रतिष्ठा। उ.—जो मेरो लाल खिझावै। सो अपनो कियो फल पावै। तेहि देहौं देस निकारो। ताको ब्रज नाहिन गारो—१०-१८३।

क्रि. स. [हिं. गारना, गलाना] गलाओ, गलाकर समाप्त करो, तप द्वारा क्षीण करो। उ.-(क) राम-नाम सरि तऊ न पूजैं, जौ तन गारौ जाइ हिवार—२-३। (ख) जप तप करि तनु अब जनि गारौ—७६७।

गारौं—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ दूँ, धँसा दूँ। उ.—कहौ तौ परवत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैं गारौं—६-१०७।

गार्गी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गर्ग गोत्र की एक प्रसिद्ध विदुषी। (२) याज्ञवल्क्य की एक स्त्री। (३) दुर्गा।

गार्ग्य—संज्ञा पु. [सं.] (१) गर्ग गोत्रीय व्यक्ति। (२) एक प्राचीन वैयाकरण।

गारयौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गलाना] नष्ट किया, खोया, बरबाद किया। उ.—आछौ जनम अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जन्म जुवा ज्यौं हारयौ—१-१०१।

गार्हस्थ्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गृहस्थाश्रम। (२) गृहस्थ के मुख्य कर्म।

वि.—गृहस्थी संबंधी।

गाल—संज्ञा पु. [सं. गंड, गल्ल] (१) गंड, कपोल।

मुहा.—गाल फुलाना—(१) गर्व प्रकट करना। (२) रूठकर बोलना। गाल बजाना—(१) बढ़ बढ़ कर बातें करना। (२) व्यर्थ बकवाद करना। गाल बजैहै—बढ़ बढ़कर बातें करेगी, डींग मारेगी। उ.—देखहु जाइ चरित तुम वाके जैसे गाल बजैहै—१२६३। गाल में जाना—मुँह में जाना। काल के गाल में जाना—मृत्यु के मुख में पड़ना, मरना। गाल मारना—(१) डींग हाँकना। (२) व्यर्थ की बकवाद करना।

(२) बड़बड़ाने या मुँहजोरी करने का स्वभाव।

मुहा.—गाल करना—(१) मुँहजोरी करना, निसंकोच अंडबंड बकना। (२) बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना, डींग हाँकना। बहुत करत हैं गाल—निसकोच अंडबंड बकते हैं। उ.—आई हँसत कहति हरि एई बहुत करत हैं गाल—२४२७। करि करि गाल—बहुत बढ़ बढ़कर बातें करके, खूब डींग हाँककर। उ.—वेगि करो मेरो कह्यौ पकवान रसाल। वह मघवा बलि लेत है नित करि करि गाल।

(३) मध्य भाग, बीच का अंश। (४) फंका, कौर।

मुहा.—गाल मारना—कौर मुँह में रखना।

(५) अन्न जो एक बार में चक्की में डाला जाय।

संज्ञा पु. [देश.] एक तरह की तंबाकू।

गालगूल—संज्ञा पुं. [हिं. गाल (अनु.)] व्यर्थ की गपशप, अंडबंड बात।

गालबंद—संज्ञा पुं. [हिं. गाल + बंद] एक बंधन।

गालमसूरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की मिठाई। उ.—(क) अरु तैसियै गालमसूरी। जो खातहिं मुख-दुख दूरी—१०-१८३। (ख) दूध बरा, उत्तम दधि-बाटी, गालमसूरी की रुचि न्यारी—१०-२२७।

गालव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि। (२) एक प्राचीन वैयाकरण। (३) एक पेड़।

गाला—संज्ञा पुं. [हिं. गाल=ग्रास] (१) कपास की ढोंढ़ी से निकली हुई रुई। (२) धुनी हुई रुई की पूनी।

मुहा.—रुई का गाला (गाला सा)—बहुत सफेद।

संज्ञा पुं. [हिं. गाल] (१) बड़बड़ाने या मुँहजोरी का स्वभाव। (२) कौर, ग्रास।

गालिब—वि. [अ. गालिब] विजयी, श्रेष्ठ।

गालिम—वि. [अ. गालिब] प्रबल, बली।

गाली—संज्ञा स्त्री. [सं. गालि] (१) दुर्वचन, अपशब्द। (२) कलंक, कलंकसूचक आरोप।

गालीगलौज—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली+अनु. गलौज] गाली की अदला-बदली, तू-तू मैं-मैं।

गालीगुफ्ता—संज्ञा पुं [हि. गाली+फा. गुफ्तार=कहना] (१) दुर्वचन, अपशब्द। (२) तू-तू मैं-मैं।

गालना—क्रि. अ. [सं. गल्प = बात] बात करना।

गालू—वि. [हि गाल + ऊ (प्रत्य)] (१) बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला, गाल बजानेवाला। (२) डींग हाँकनेवाला, डींगिया।

गालोड्य—संज्ञा पुं. [सं] कमलगट्टा।

गाल्हना—क्रि अ. [हि. गालना] बात करना।

गाव—संज्ञा पुं. [सं. गो या फ़ा. गाव] गाय-बैल।

गावकुशी—संज्ञा स्त्री [फा] गोवध।

गावकुस—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा + कुश] लगाम।

गावकोहान—संज्ञा पुं. [फा.] घोड़ा जिसके कूबड़ हो।

गावखाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] गोशाला।

गावड—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीवा] गला, गर्दन।

गावत—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) गाते हैं। (२) प्रशंसा करते हैं, बखानते हैं। उ.—(क) कमल नैन की लीला गावत कटत अनेक विकार—२-२। (ख) बारंबार ग्यान गीता को ब्रज बनितनि आगे गावत —२६८६।

गावतकिया—संज्ञा पुं. [फा.] बड़ा तकिया, मसनद।

गावति—क्रि. स. [हिं. गाना] गाती है। उ.—अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुल्लित मगन होति नँद-घरनी—१०-४४।

गावते—क्रि. स. [हिं. गाना] गाते हैं। उ.—कबहुँक काहू भाँति चतुर चित अति ऊँचे सुर गावते—२७३५।

गावदी—वि. [हिं. गाय+दी या स. धीर] (१) मूर्ख, नासमझ। (२) कुंठित बुद्धि का।

गावदुम—वि. [फा.] (१) ढालू। (२) चढ़ाव-उतार।

गावन—संज्ञा स्त्री. [सं. गान, हिं. गाना] गाने की क्रिया, गाना। उ.—(क) द्वारे ठाढ़े हैं द्विज बावन। चारौ वेद पढत मुख आगर, अति सुकंठ सुर-गावन —८-१३। (ख) सूरदास निस्तरिहैं यह जस करि-करि दीन-दुखित जन गावन—६-१३१। (ग) अमर-नगर उत्साह अपसरा-गावन रे—१०-२८। (घ) वेनु पानि गहि मोको सिखावत ग ा गावन गौरी —२८७७।

गावनो—क्रि. स. [हि. गाना] गाना, बखान करना। उ.—सूर स्याम सुप्रेम उमँग्यौ हरि जस सु लीला गावनो—२२८०।

गावहि—क्रि स. [हिं. गाना] प्रशंसा करता है, बखानता है। उ.—जो गावहि ताकी गति होइ—२५।

गावहिंगे—क्रि. स. [हि. गाना] गायेंगे। उ.—तैसेइ मोर पिक करत कुलाहल हरषि हिंडोला गावहिंगे —२८८६।

गावहु—संज्ञा पुं. [हि. गाना] गाओ। उ.—बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु—१०-१७६।

गावै—क्रि. स. [हिं. गाना] स्वर निकालते हैं, बखानते हैं। उ.—भक्त बछल है बिरद हमारौ, वेद सुमृति हूँ गावै—१ २४४।

गावै—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) गाता है। (२) स्तुति करता है, प्रशंसा करता है। उ.—जरासंध बंदी कटै नृप कुल जस गावै—१-४।

गावैगो—क्रि. स. [हिं. गाना] गायगा, पढ़ेगा, पाठ करेगा। उ.—तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहै मम साथ—सारा. ११०४।

गावौ—क्रि. स. [हिं. गाना] गाओ, मधुर स्वर निकालो, आलापो। उ.—गावौ हरि कौ सोहिलौ (हो)—१०-४०।

गास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] संकट, दुख। उ.—अजहूँ नाहि डरात मोहन बचे कितने गास।

क्रि. स. [हिं. ग्रसना] ग्रसे हुए है, गाँसे है। उ.—सिंधु सुत-धर सुहित सुत गुन गहक, गोपी गास —सा. उ. ४२।

गासिया—संज्ञा पुं [अ. गाशियः] जीनपोश।

गाह—संज्ञा पुं. [स.] (१) दुर्गम या गहन स्थान। (२) गहन स्थान में विचरनेवाला मनुष्य।

संज्ञा पुं [सं ग्राह] (१) गाहक। (२) घात। (३) ग्राह, मगर।

गाहक—संज्ञा पुं [सं. ग्राहक, प्रा. गाहक] (१) खरीदनेवाला, मोल लेनेवाला। उ.—सूरदास गाहक नहिं

कोऊ दिखिअत गरे परी—३१०४ । (२) चाहने वाला, अभिलाषी, प्रेमी, इच्छुक । उ.—(क) स्याम गरीबनि हूँ के गाहक । दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति निबाहक—१-१६ । (ख) हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक—१-२३६ । (ग) सुर नर सब स्वारथ के गाहक—८-६ । (घ) तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधो—३२४४ ।

गाहकी—सज्ञा स्त्री. [हिं. गाहक] (१) बिक्री, खरीदारी । (२) ग्राहक की रुचि ।

गाहकताई—सज्ञा स्त्री. [स. ग्राहकता] (१) खरीदारी । (२) कदरदानी, चाह ।

गाहत—क्रि. स. [हिं. गाहना] झाड़ता है, ओहने में लगा है । उ.—झारि झूरि मन तौ तू लै गयो बहुरि पयार हि गाहत—३०६५ ।

गाहन—संज्ञा पुं. [सं.] स्नान करना ।

गाहना—क्रि स. [सं. अवगाहन] (१) थाह लेना, अवगाहना । (२) विलोडना, मथना । (३) झाड़ना, ओहना । (४) दूर दूर पर खेत जोतना ।

गाहा—सज्ञा स्त्री. [सं. गाथा, प्रा. गाहा] (१) कथा, वृत्तांत । (२) एक छंद ।

गाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना] गिनने का एक मान जो पाँच पाँच का होता है ।

गाहे—क्रि. स [हिं. गाहना] झाड़ने से, ओहने की क्रिया से । उ.—यह भ्रम तौ अब हीं भजि जैहै ज्यों पयार के गाहे—३०६७ ।

गिंजना—क्रि. अ. [हिं. गींजना] कपड़े आदि का सिकुड़ जाना, गींजा जाना ।

गिंजाई—सजा स्त्री. [सं. गुंजन] एक बरसाती कीड़ा ।

गिंडनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक साग ।

गिंडुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. इँडुरी] गेडुरी, बिड़ई । उ.—नीके देहु न मेरी गिंडुरी—८५४ ।

गिंदौड़ा, गिंदौरा—संज्ञा पुं. [हिं. गेंद] गलाकर बड़े पेड़े के आकार में ढाली हुई शकर ।

गिंदौरी—सज्ञा स्त्री. [हि पुं. गिंदौड़ा, गिंदौरा] गलाकर बड़े पेड़े के आकार में जमाई हुई चीनी । उ.—पेठा पाक जलेबी कौरी । गोंदपाक तिनगरी, गिंदौरी—३६६ ।

गिआन—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञान] जानकारी ।

गिउ—संज्ञा पुं. [स. ग्रीवा] गला, गरदन ।

गिचपिच, गिचरपिचर, गिचिरपिचिर—वि. [अनु.] (१) बहुत ज्यादा मिलाजुला । (२) अस्पष्ट ।

गिजगिजा—वि. [अनु.] (१) बहुत मुलायम । (२) मुलायम मांस-सा ।

गिजा—संज्ञा स्त्री. [अ. गिजा] भोजन ।

गिटकिरी, गिटकौरी—सज्ञा स्त्री. [हि. गिट्टी] कंकड़ी ।

गिट्टी—संज्ञा स्त्री. [हि. गेरू + ड़ा (प्रत्य)] (१) कंकड़ी । (२) ठिकरे का टुकड़ा । (३) फिरकी, रील ।

गिठुआ—संज्ञा पुं. [देश.] जुलाहे का करघा ।

गिड़गिड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] बहुत दीनता से किसी बात के लिए प्रार्थना करना ।

गिड़गिड़ाहट—क्रि. अ. [हि. गिड़गिड़ाना] (१) दीनता से युक्त प्रार्थना । (२) दीनता का भाव ।

गिड़राज—सज्ञा पुं. [स. ग्रहराज] सूर्य ।

गिड्डा—वि. [देश.] नाटा, ठिगना ।

गिद्ध—संज्ञा पुं [स. गृध्र] (१) एक मांसाहारी बड़ा पक्षी जिसकी दृष्टि बहुत तेज होती है । (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था ।

गिद्धराज—सज्ञा पुं. [हिं. गिद्ध + राज] जटायु जिसे भगवान ने तारा था ।

गिध—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र, हिं. गिद्ध] (१) गिद्ध, गीध पक्षी । (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था ।

गिधए—क्रि अ. [हिं. गीधना] लुब्ध हुए, परच गये, रीझ गये । उ.—सारँगरिपु के रहत न रोके हरि स्वरूप गिधए री—पृ. ३३५ और सा. उ. ७ ।

गिनगिनाना—क्रि. अ. [अनु. गनगन = काँपना] (१) बल लगाते समय काँपना । (२) रोंगटे खड़े होना । क्रि. स. [हिं. गिन्नी = चक्कर] झकझोरना ।

गिनत—क्रि. स. [हिं गिनना] महत्व देते हैं, मान करते है, कुछ समझते हैं, मानते हैं । उ.—ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ—७२ ।

गिनती—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिनना + ती (प्रत्य.)] (१) गणना, शुमार ।

मुहा.—गिनती में आना (होना)—कुछ समझा जाना, कुछ महत्व का होना । किहिं गिनती मैं आऊँ

—किस काम या महत्व का समझा जाऊँ। उ.—रजनी-मुख आवत गुन गावत, नारद तुंबुर नाऊँ। तुमही कहौ कृपानिधि रघुपति, किहिं गिनती मैं आऊँ—६-१७२। गिनती कराना—किसी विशेष कोटि या वर्ग में समझा जाना। गिनती कराने (गिनाने) के लिए—नाम मात्र के लिए। गिनती होना—कुछ समझा जाना।

(२) संख्या, तादाद।

मुहा.—गिनती के—बहुत थोड़े।

(३) उपस्थिति, हाजिरी। (४) एक से सौ तक की अंकमाला।

गिनना—क्रि. स. [सं. गणन] (१) गणना करना।

मुहा.—गिनगिन कर सुनाना (गालियाँ देना)—बहुत अधिक और चुभती हुई गालियाँ देना। गिन-गिन कर लगाना (मारना)—खूब मारना। गिनगिन कर दिन काटना—बहुत कष्ट के दिन बिताना। दिन गिनना—(१) आशा या सुख के दिनों की प्रतीक्षा बेचैनी से करना। (२) बेचैनी से समय काटना।

(२) हिसाब लगाना। (३) मान या प्रतिष्ठा के योग्य समझना।

गिनवाना, गिनाना—क्रि. स. [हिं. गिनना (प्रे)] (१) गिनने का काम कराना। (२) अपने को या अन्य किसी को गिनती में शामिल कराना।

गिनि—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] गिनकर, गणना करके। उ.—चार पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिर गिनि आनै—१-६०।

गिन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिरनी] चक्कर, चक्कर देने की क्रिया।

गिय—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गला, गरदन।

गियाह—संज्ञा पु. [सं हय (?)] एक तरह का घोड़ा।

गिर—संज्ञा पुं. [सं. गिरि] (१) पहाड़। (२) एक तरह के सन्यासी। (३) एक भैंसा।

गिरई—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।

गिरगिट, गिरगिटान—संज्ञा पुं. [स. कृकलास या गलगति] छिपकली की जाति का एक जंतु जो कई रंग बदल सकता है, गिरदौना। उ.—(क) नृगतें गिरगिट कीन्हे ताको को करि सकै बखान —१०-उ.-३६। (ख) कृष्ण भक्ति बिन विप्र साप तैं गिरगिट की गति पाये—सारा. ८२२।

मुहा.—गिरगिट की तरह रंग बदलना—बात, नियम या सिद्धांत से जल्दी जल्दी हट जाना।

गिरगिरी—संज्ञा स्त्री [अनु.] एक खिलौना जो चिकारे की तरह का होता है। उ.—फूले बजावत गिरगिरी गार मदन मेरि घहराई अपार संतन हित ही फूल डोल।

गिरजा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी।

संज्ञा स्त्री. [सं. गिरिजा] पार्वती जी।

गिरजापति-पतनी पति जा सुत-गुन—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरिजा (पार्वती जी) + पति (पार्वती के पति = शिव जी) + पत्नी (शिव की पत्नी=गंगा) + पति (गंगा का पति = समुद्र) + जा=पुत्री (समुद्र की पुत्री शुक्ति या सीप) + सुत (शुक्ति का पुत्र मोती) + गुण (मोती का गुण—प्रातःकाल शीतल हो जाना)] शीतलता। उ.—गिरजापति-पतनी-पति-जा सुत-गुन गुनगनन उतारै—सा. ६।

गिरजापति पितु पितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा = पार्वती + पति (पार्वती के पति शिव) + पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल)] कमल। उ.—गिरजापति पितु पितु से दोऊ कर-वर देख विचारो—सा. १०३।

गिरजापति पितु पितु पितु—संज्ञा पुं. [सं गिरिजा-पति = शिव जी+पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल) + पितु (कमल का पिता समुद्र)] समुद्र। उ.—गिरजापति पितु पितु पितु ही ते सौ गुन सी दरसावै—सा. १५।

गिरजापति भूषन—संज्ञा. पु. [सं. गिरिजा = पार्वती + पति (पार्वती के पति शिव) + भूषण (शिव का भूषण = चंद्रमा)] चंद्रमा। उ.—(क) गिरजा-पति भूषन पै मानहु मुनि भए पंक प्रकासी—सा. १३ (ख) गिरजपति भूषन जिन देखे ते कह देखत हैं नभ तारो—सा. १११।

गिरत—क्रि. अ. [हिं गिरना] गिर पड़ता है। उ.—जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस —१-१०६।

मुहा.—गिरत-परत—गिरता-पडता, उतावली से, हड़बड़ी में। उ.—ब्रजवासी नर-नारि सब गिरत-परत चले धाइ—५८६।

गिरतनया—संज्ञा स्त्री [सं. गिरि + तनया = पुत्री] पार्वती जी।

गिरतनया-पतिभूपन—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि + तनया = पुत्री (पर्वत की पुत्री पार्वतीजी) + पति (पार्वती के पति शिव) + भूपण (शिव का भूपण विभूति = राख—विभूति का अर्थ 'आग' भी होता है)] आग। उ.—गिरतनयापति-भूपन जैसे विरह जरी दिन रातें—सा. उ. ४६।

गिरद—अव्य [हिं. गिर्द] आसपास, चारो ओर।

गिरदा—संज्ञा पुं. [फा. गिर्द] (१) घेरा, चक्कर। (२) तकिया। (३) काठ की थाली। (४) ढाल। (५) ढोल आदि का मुड़ेरा।

गिरदान—संज्ञा पुं. [हि. गिरगिट] गिरगिटान।

गिरधर, गिरधारन, गिरधारी—संज्ञा पुं. [सं. गिरि+धर] (१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होंने गोवर्द्धन उठाया था। उ.—जो तिय चढ़त सीस गिरधर के सो अब कंठ गहोरी—सा. उ. ५२। (३) हनुमान जी।

गिरना—क्रि. अ. [सं. गलन] (१) ऊपर से नीचे आ जाना। (२) खड़ा न रह सकना, जमीन पर पड़ जाना। (३) अवनति होना। (४) जलधारा (नाली, नदी आदि) का बडे जलस्थान में मिलना। (५) प्रतिष्ठा, शक्ति आदि कम होना।

मुहा.—गिरे दिन—दुर्दशा का समय।

(६) किसी पर टूटना, झपटना। (७) अपने स्थान से हटना या झडना। (८) रोग होना। (९) सहसा आ जाना। (१०) युद्ध में मारा जाना।

गिरनाथ—संज्ञा पुं [सं. गिरि + नाथ (शंकर = भर्व = संसार)] संसार। उ.—प्रभु कब देखिहौ मम ओर। ज्ञान आपुन आप ते गिरनाथ गाठी छोर—सा.उ.४२।

गिरफ्त—संज्ञा स्त्री. [फा गिरफ्त] (१) पकड़, पकड़ने का भाव। (२) पकडने की क्रिया।

गिरफ्तार—वि. [फा गिरफ्तार] (१) जो पकड़ा या कैद किया गया हो। (२) ग्रसा हुआ।

गिरफ्तारी—संज्ञा स्त्री [फा. गिरफ्तारी] (१) पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया।

गिरवर—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + वर] श्रेष्ठ पर्वत।

गिरवान—संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] सुर, देवता।

संज्ञा पुं. [फा. गरेवान] (१) अंगे या कुरते का गला या कालर। (२) गला, गरदन।

गिरवाना—क्रि. स. [हि. गिराना] गिराने का काम कराना, गिराने की प्रेरणा देना।

गिरवीं—वि. [फा.] बंधक, गिरों, रेहन।

गिरह—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) गाँठ, ग्रंथि। (२) जेब, खरीता। (३) दो पोरों के जुड़ने का स्थान। (४) कलाबाजी, उलटने की क्रिया।

गिरहकट—वि. [फा. गिरह + हिं. काटना] जेब काटने वाला।

गिरहदार—वि. [फा.] गाँठदार, गँठीला।

गिरहबाज—वि. [फा. गिरह + बाज़] एक कबूतर जो उड़ते उड़ते कलाबाजी खा जाता है। उ.—देखि नृप तमकि हरि चमकि तहाँई गये दमकि लीन्हों गिरह-बाज जैसे—२६१५।

गिरहर—वि. [हिं. गिरना + हर (प्रत्य.)] गिरनेवाला, अवनति की ओर बढ़ता हुआ।

गिरही—संज्ञा पु. [सं. गृहिन्] घरबारी, गृहस्थ।

गिराँ—वि. [फा गराँ] (१) महँगा। (२) जो हलका न हो, भारी। (३) जो भला न लगे, अप्रिय।

गिरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बोलने की शक्ति। उ.—गिरा-रहित वृक ग्रसित अजा लौं अंतक आनि ग्रस्यौ—१-२०१। (२) जीभ। (३) वचन, वाणी। उ.—(क) अमृत गिरा बहु बरषि सूर प्रभु भुज गहि पार्थ उठाए—१-२६। (ख) गदगद गिरा सजल अति लोचन हिय सनेह-जल छायो—६-५५। (४) भाषा, बोली। (५) कविता। (६) सरस्वती देवी।

गिराइ—क्रि. स. [हिं. गिराना] किसी ऊँचे स्थान से फेंक कर।

प्र०—देहु गिराइ—ऊपर से फेंक दो। उ.—पर्वत सों इहिं देहु गिराइ—७-२। दियौ गिराइ—फेंक दिया, गिराया। उ.—असुरनि गिरि तैं दियौ गिराइ—७-२।

गिराऊँ—क्रि. स. [हिं. 'गिरना' का सक.] (१) नीचे डाल दूँ, पतित कराऊँ। (२) युद्ध में मार डालूँ। उ.—स्यंदन खंडि, महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ—१-२७० ।

गिराए—क्रि. स. [हिं. गिराना] खड़ी चीज को तोड़ कर जमीन पर गिरा दिया । उ.—नगर-द्वार तिन सबै गिराए—४-१२ ।

गिराना—क्रि. स. [हिं. गिरना का सक.] (१) नीचे फेंकना या डालना। (२) घटाना या अवनत करना। (३) बहाना। (४) शक्ति, मान आदि कम करना। (५) रोग उत्पन्न करना। (६) सहसा प्रकट करना। (७) लड़ाई में मार डालना।

गिरानी—संज्ञा स्त्री. [फा.](१) महँगी। (२) अकाल। (३) कमी, घटी। (४) किसी चीज का भारीपन।

गिरापति—संज्ञा पुं [सं.] ब्रह्मा।

गिरापितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरा+पितृ] ब्रह्मा।

गिरायौ—क्रि. स. [हिं. गिराना] गिराया, फेंका, डाल दिया, छोड़ दिया। उ.—लगत त्रिसूल इंद्र मुरझायौ। कर तैं अपनौ बज्र गिरायौ—६-५।

गिराव—संज्ञा पु. [हिं गिरना+ आव (प्रत्य.)] गिरने की क्रिया या भाव, पतन।

गिरावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिराव] गिरने की क्रिया।

गिरास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] कौर, ग्रास।

गिरासना—क्रि स. [सं. ग्रसना] भक्षण करना, खा जाना, ग्रस लेना।

गिराह—संज्ञा पुं. [स. ग्राह] मगर, ग्राह।

गिराहिं—क्रि. अ. [हिं. गिराना] गिरते हैं, पतित होते हैं। उ.—बहुरि कह्यौ सुरपुर कछु नाहिं। पुन्य-छीन तिहिं ठौर गिराहिं—१-२९० ।

गिरि—संज्ञा पुं. [स] (१) पर्वत, पहाड़। (२) गोवर्द्धन। उ.—(क) सक्र कौ दान-बलि मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि, जस जगत छायौ—१-५ । (ख) गोपी-ग्वाल-गाय गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हौ—१-१७। (३) एक तरह के संन्यासी।

क्रि. अ. [हिं गिरना] गिरकर, गिरने पर। उ.—धरनिपत्ता गिरि परे तें फिरि न लागै डार—१-८८।

गिरिजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हिमाचल कन्या पार्वती, गौरी। (२) गंगा। (३) चमेली।

गिरिजापति-भष—संज्ञा पुं. [स. गिरिजा + पति (गिरिजा के पति शिव) + भष=भक्ष्य (शिव का भक्ष्य विष)] विष। उ.—गिरिजापति-भष बीच कौ न सो ह्वैगै मोंको माई—सा. ६३।

गिरिजापति रिपु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा + पति (शिव) + रिपु (शिव का शत्रु कामदेव)] काम। उ.—गिरिजापति-रिपु नख सिख व्यापतु ग्रसत सुधा पिय कथा सुनाई—सा. उ. ३०।

गिरिधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होने गोवर्द्धन को उठाकर ब्रज-वासियों की रक्षा की थी। उ.—सूरदास ए रीझे गिरिधर मनमाने उनही तें—सा. उ. ८।

गिरिधरन—संज्ञा पुं. [स. गिरिधारिन्] गोवर्द्धन पर्वत को उठानेवाले श्रीकृष्ण। उ.—कहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल बिमल जस गाइ- १-१५५।

गिरिधातु—संज्ञा पुं. [स.] गेरू।

गिरिधारन—संज्ञा पु. [स. गिरि + धारण] श्रीकृष्ण।

गिरिधारी—संज्ञा पुं. [सं गिरिधारिन्] श्रीकृष्ण।

गिरिध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

गिरिनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती (२) नदी। (३) गंगा नदी।

गिरिनंदी—संज्ञा पुं. [स गिरिनंदिन्] शिव के गण।

गिरिनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

गिरिपति—संज्ञा पुं [सं] (१) शिव। (२) गणेश जी। उ.—जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ। मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ—१-१११।

गिरिपथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो पर्वतों के बीच का मार्ग, दर्रा। (२) पहाड़ी मार्ग।

गिरिबूटी—संज्ञा स्त्री. [स.] एक वनस्पति या औषध।

गिरिराज,गिरिराजा—संज्ञा पु [सं.] (१) बड़ा पर्वत। (२)हिमालय। (३) गोवर्द्धन पर्वत। उ.—गोपनि सत्य मानि यह लीनो बडे देव गिरिराजा—६१६। (४) सुमेरु पर्वत।

गिरिवरधारी—संज्ञा. पुं. [सं. गिरिवर + धारी = धारण करनेवाले] गोवर्द्धन को उठानेवाले श्रीकृष्ण ।

गिरिव्रज—संज्ञा पुं. [सं.] जरासंध की राजधानी ।

गिरिशृंग—संज्ञा पु. [स.] (१) पहाड़ की चोटी । (२) गणेश जी ।

गिरिसुत—सज्ञा पुं. [सं.] मैनाक पर्वत ।

गिरिसुता—सज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती ।

गिरीद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा पर्वत । (२) हिमालय । (३) गोवर्द्धन पर्वत । (४) शिव जी ।

गिरी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. गिरना] नीचे आ पड़ी । संज्ञा स्त्री. [हिं. गरी] अखरोट आदि की गरी ।

गिरीश,गिरीस—सज्ञा पुं. [सं. गिरि+ईश] (१) शिव, भव । उ. - भानुग्रंस गिरीस आखर आदि अंग प्रकास—सा. उ.४१ । (२) हिमालय पर्वत । (३) सुमेरु पर्वत । (४) कैलाश पर्वत । (५) गोवर्द्धन पर्वत ।

गिरे—क्रि. अ. [हि. गिरना] (जमीन पर) आ पड़े, गिर पड़े । उ.—यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जानि झहरि—१०-६७ ।

गिरेबान—संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेबान] कुरते, कोट आदि का गला ।

गिरैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेरॉव (प्रत्य.)] गले की रस्सी । वि. [हिं. गिरना] जो गिरने को हो, जो गिर रहा हो, गिरनेवाला ।

गिरौं—वि [फ़ा] रेहन, बंधक, गिरवीं ।

गिर्गिट—संज्ञा पुं. [हिं. गिरगिट] गिरगिटान ।

गिर्द—अव्य. [फा.] आसपास, चारो ओर ।

गिर्दावर—वि. [फा.] (१) घूमनेवाला । (२) दौरा करके जाँचनेवाला ।

गिर्यौ—क्रि, अ. [हिं. गिरना] मारा गया, मरकर गिरा । उ.—कनक-मृग मारीच मार्यौ, गिर्यौ लषन सुनाइ—६.६० ।

गिल—संज्ञा पुं. [फा.] (१) मिट्टी । (२) गारा । संज्ञा पुं [सं.] (१) मगर, ग्राह । (२) वह जो निगल ले या भक्षण कर ले ।

गिलई—क्रि. स. [हि. गिलना] निगल ले, खा डाले ।

गिलगिल—सज्ञा पु. [सं.] नक्र, मगर ।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री. [अनु.] एक चिड़िया ।

गिलटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि] (१) शरीर के संधि-स्थानो की गाँठ । (२) शरीर के सधि स्थानों का सूजा हुआ भाग जो गाँठ के आकार का हो जाता है ।

गिलन—संज्ञा पुं. [सं.] निगलना ।

गिलना—क्रि. स. [सं. गिरण] (१) निगलना । (२) मन में रखना. प्रकट न करना ।

गिलपिला—वि. [अनु.] पिलपिला, मुलायम ।

गिलबिलाना—क्रि. अ. [अनु] अस्पष्ट बात कहना ।

गिलम—संज्ञा स्त्री. [फा. गिलमि = कंबल] (१) ऊनी कालीन । (२) मुलायम बिछौना या गद्दा । वि.—जो बहुत मुलायम या कोमल हो ।

गिलगिल—संज्ञा पुं. [देश.] एक कपड़ा ।

गिलहरा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक कपड़ा । (२) पान का बेलहरा ।

गिलहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि = चुहिया] एक छोटा जंतु, गिलाई, चिखुरी ।

गिला—सज्ञा पुं. [फा.] (१) उलाहना । (२) शिकायत, निंदा ।

गिलान, गिलानि—संज्ञा स्त्री [सं. ग्लानि] (१) घृणा, नफरत । (२) लज्जा ।

गिलाफ—संज्ञा पुं. [अ. गिलाफ] (१) तकिए आदि का खोल । (२) बड़ी रजाई । (३) म्यान ।

गिलाव, गिलावा—संज्ञा पु. [फा. गिल + आब] गारा ।

गिलि—क्रि. स. [हि. गिलना] (१) निगल कर, बिना दाँतों से चबाये गले में उतार कर । (२) नष्ट हो गयी, प्रभावरहित हो गयी । उ.—बेनु के राज मैं औषधी गिलि गईं, होइहैं सकल किरपा तुम्हारी —४-११ ।

गिलिम—सज्ञा स्त्री [हिं. गिलम] (१) ऊनी कालीन । (२) मुलायम गद्दा या बिछौना ।

गिलिहै—क्रि. स. [हिं. गिलना] मन ही मन में रखेगी, प्रकट न करेगी । उ.—की धौं हमहि देखि उठि हमकौं मिलिहै कीधौ बाति उघारि कहैगी की मन ही गिलिहै—१२६५ ।

गिली—संज्ञा स्त्री [हि. गुल्ली] गुल्ली डंडे के खेल की छोटी गुल्ली ।

गिले—क्रि. स. [हि. गिलना] (१) निगल गये। उ.—(क) आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मारयौ। पन्नग-रूप गिले सिसु गोकुल, इहिं सब साथ उबारयौ—४३३। (२) गुप्त रखा, प्रकट न किया।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) उलाहना। उ.—खरिकहू नहिं मिलै कहै कह अनभले करन दे गिले तू दिननि थोरी। (२) शिकायत, निंदा।

गिलेफ—संज्ञा पु. [हि. गिलाफ] तकिए आदि का खोल।

गिलो, गिलोय—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] गुरुच, गुडूची।

गिलोला—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुलेला] मिट्टी की छोटी गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है।

गिलौरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पान या मलाई का बीड़ा जो तिकोना-चौकोना होता है।

गिल्यान—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्लानि] घृणा, नफरत। उ. —ताके मन उपजी गिल्यान। मैं कीन्ही बहु जिय की हान।

गिल्ला—संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) उलाहना। (२) शिकायत, निंदा।

गिल्ली—संज्ञा स्त्री [हि० गुल्ली] गुल्ली।

गिष्ण, गिष्णु—संज्ञा पुं. [सं.] गवैया।

गींजना—क्रि. स. [हि. मींजना] मोसना, दबाना, मलना, मसलना।

गींव—संज्ञा स्त्री. [स. ग्रीव] गर्दन, गला।

गी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) बोलने की शक्ति। (२) सरस्वती।

गीउ—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव] गरदन।

गीठम - संज्ञा पुं. [देश.] घटिया कालीन या गलीचा।

गीड, गीड़र—संज्ञा पुं. [हिं कीट=मैल] आँख का मैल, मैल।

गीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाना, गाने की चीज।

मुहा.—गीत गाना—बड़ाई करना। अपना ही गीत गाना—अपनी ही हाँके जाना।

(२) बड़ाई, यश। (३) गीत का नायक।

गीता—संज्ञा स्त्री [स.] (१) उपदेश। (२) भगवद् गीता। उ.—(क) वेद, पुरान, भागवत, गीता, सबकौ यह मत सार —१ ६८। (ख) समुझति नहीं ग्यान गीता कौ हरि मुसुकानि अरे—३१५०। (३) एक राग। (४) एक छंद। (५) कथा वृत्तांत।

गीति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) गान, गीत। उ.—(क) चर अचर-गति बिपरीत। सुनि वेनु-कल्पित गीति—६२३। (ख) सूर बिरह ब्रज भलो न लागत जहाँ ब्याहु तहाँ गीति—३११३। (२) एक छंद।

गीतिका—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक छंद। (२) गाना।

गीतिरूपक - संज्ञा पुं [स.] रूपक जिसमें गद्य कम और पद्य अधिक हो।

गीदड़, गीदर—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र। फा. गीदी] सियार। वि.—कायर, डरपोक, अलाहसी।

गीध—संज्ञा पुं [स. गृध्र, हिं. गिद्ध] (१) गिद्ध पक्षी। (२) जटायु पक्षी जिसको भगवान ने तारा था।

गीधना—क्रि. अ. [स. गृध=लुब्ध] ललचना, परचना।

गीधि—क्रि. अ. [हिं. गीधना] ललचकर, परचकर। उ.—जानि जु पाए हौं हरि नीकैं। चोरि चोरि दधि माखन मेरौ, नित प्रति गीधि रहे हौ छींकैं—१०-२८७।

गीधिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गिद्ध] गिद्ध की मादा। उ.—बग-बगुली अरु गीध गीधिनी आइ जन्म लियौ तैसी—२-२४।

गीधे—क्रि. अ. [हि. गीधना] ललचाये, परचे। उ. —(क) इंद्री लई नैन अब लीने स्यामहिं गीधे भारे —पृ. ३२०। (ख) अब हरि कौन के रस गीधे —३२३६। (ग) लोचन लालच ते न टरे। हरि सारँग सों सारँग गीधे दधि सुत काज अरे—मा.उ.६।

गीध्यौ—क्रि. अ. भूत [हिं. गींधना] परच गया, ललचा गया, लिप्त रहा। उ.—(क) गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यों, अति आतुर मतिमंद—१-१०२। (ख) धोखैं ही धोखैं डहकायौ। समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ—१-३२६। (ग) स्याम रूप में मन गीध्यौ भलो बुरौ कहौ कोई—१४६३।

गीर—संज्ञा स्त्री. [सं. गिर या गी] वाणी।

गीरवाण, गीरवान—संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] देवता।

गीर्ण—वि. [सं.] (१) जिसका वर्णन किया गया हो। (२) निगला हुआ।

गीर्वाण—संज्ञा पु. [सं.] देवता, सुर।

गीला—वि. [हि. गलना] भीगा हुआ, तर, नम ।
संज्ञा पुं. [देश.] एक लता ।

गीलापन—संज्ञा पु. [हि. गीला + पन (प्रत्य.)] नमी ।

गीली—संज्ञा स्त्री. [देश] एक बड़ा पेड़ ।
वि. स्त्री. [हि. पु गीला] भीगी हुई, तर । उ.—(क) पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली—१३०६ । (ख) कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे लटकि रही लट गीली—१८४६ ।

गीव, गीवा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गरदन, गला ।

गुंग, गुंगा—वि. [हि. गूँगा] जो बोल न सके, मूक, गूँगा । उ.—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहौ । पाउँ चारि, सिर सृग गुंग मुख, तब कैसें गुन गैहौ —१-३३१ ।
संज्ञा पुं.—गूँगा मनुष्य । उ.—बोलै गुंग, पंगु गिरि लघै अरु आवै अंधौ जग जोइ—१-६५ ।

गुंगी—संज्ञा स्त्री. [हि. गूँगा] दोमुहाँ साँप ।
वि. स्त्री.—जो (स्त्री) बोल न सके ।

गुँगुआना—क्रि. अ. [अनु.] (१) अच्छी तरह न जलना । (२) गूँगे की तरह अस्पष्ट शब्द निकालना ।

गुंचा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कली । (२) नाच रंग ।

गुंची—संज्ञा स्त्री. [हि. घुँघची] घुँघची की लता ।

गुंज—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] (१) भौंरो की गुंजार । उ.—(क) नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, उड़त सु प्रेम-पराग—२-२२ । (ख) गये नवकुंज कुसुमनि के पुंज अलि करैं गुंज सुख हम देखि भई लवलीन—सा. उ.४८ । (२) अस्पष्ट गुजार । उ.—अति बिलच्छन गुंज जोग मति लाए—२६६१ । (३) कलरव । (४) घुँघची की लता या उसका फल । (५) एक गहना ।
संज्ञा पुं.—सलई नामक पेड़ ।

गुंजत—क्रि. अ [हि. गुंजना] गुनगुनाते है, भनभनाते हैं । उ.—जहँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास । प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास—१-३३७ ।

गुंजन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुंजार, भनभनाहट । (२) आनंद ध्वनि, कलरव ।

गुंजना—क्रि. अ. [सं. गुंज] (१) भनभनाना, गुनगुनाना । (२) मधुर या आनंद-ध्वनि निकालना, कलरव करना ।

गुंजनिकेतन—संज्ञा पुं. [सं] भौंरा ।

गुंजरत—क्रि. अ. [हि. गुंजारना] (१) (भौंरे) गूँजते हैं, भनभनाते हैं । उ.—गूँगो बातनि यौं अनुरागति, भँवर गुंजरत कमल मौ बंदहि—१०-१०७ । (२) बोलते हैं, ध्वनि करते है, गरजते हैं । उ.—गर्जत गगन गयंद गुंजरत अरु दादुर किलकार—२८९३ ।

गुंजरना—क्रि. अ. [हि. गुंजार] (१) भौंरों का गूँजना या भनभनाना । (२) शब्द करना, गरजना ।

गुंजरैं—संज्ञा पुं. [सं. गुंजान] गुजार ।

गुँजहरा—संज्ञा पुं. [हि. गुंजार] बच्चो का कड़ा ।

गुंजा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) घुँघची नाम की लता । (२) घुँघची के लाल दाने । उ—ज्यौं कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिट होत लौलीन । त्यौं सठ वृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत बिषय-आधीन—१-१०२ ।

गुंजाइश, गुंजाइस—संज्ञा पुं. [फा. गुंजाइश] (१) स्थान, अँटने की जगह । उ.—जनम साहिबी करत गयौ । काया-नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिंन कछु बढ़यौ—१ ६४ । (२) समाई, सुबीता ।

गुंजान—वि. [फा.] घना, सघन ।

गुंजायमान—वि. [सं.] (१) गूँजता या ध्वनि करता हुआ । (२) बोलता या शब्द करता हुआ ।

गुंजार—संज्ञा पुं. [सं. गुज + आर] (१) भौंरों की गूँज, भनभनाहट । उ.—जहँ बृंदाबन आदि अजिर जहँ कुंजलता बिस्तार । तहँ बिहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग-गुंजार । (२) मधुर ध्वनि, कलरव ।

गुंजारना—क्रि. अ. [हि. गूँजना] गूँजना ।

गुंजारित, गुंजित—वि. [सं. गुंजित] भौंरों आदि की गुंजार से युक्त ।

गुंजिया—संज्ञा स्त्री [हि. गूँज] एक गहना ।

गुंजैं—क्रि. अ [हि. गुंजना] (भौंरे) भनभनाते या गुनगुनाते हैं । उ.—वृथा बहति जमुना तट खगरौं वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं—२७२१ ।

गुंटा—संज्ञा पु [देश.] छोटा तालाब ।

गुंठा—संज्ञा पुं. [हि. गठना] नाटा घोड़ा, टाँगन ।

संज्ञा पुं, [सं.] कसेरू का पौधा।

वि —महीन पिसा हुआ।

गुंड —संज्ञा पु —मलार राग का एक भेद। उ.—राग रागिनी सँचि मिलाई गावैं गुंड मलार—२२७६।

गुंडई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा + अई (प्रत्य.)] गुंडापन।

गुंडरी —संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा] गुंडापन।

गुंडली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) फेंटा। (२) गेंडुरी।

गुंडा—वि. [सं. गुंडक=मलिन] (१) दुराचारी, कुमार्गी। (२) झगड़ा करनेवाला। (३) छैला।

गुंडापन—संज्ञा पुं [हिं. गुंडा+पन] बदमाशी।

गुंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेंडुरी] इँडुरी, गेंडुरी।

गुँथना—क्रि. अ. [सं. गुत्स=गुच्छा] (१) (तागों, बालों आदि का) उलझना। (२) मोटी सिलाई करना। (३) लड़ने को भिड़ना।

गुंदल—संज्ञा पुं. [सं. गुंडाला] एक घास।

गुँदहिं—क्रि. स. [हिं. गूँधना] गूँधते हैं। उ.—बाजीपति अग्रज अंबा तेहि, अरक थान सुत माला गुँदहिं—१०.१०७।

गुँधना—क्रि. अ. [सं. गुध=क्रीड़ा] (आँटे आदि का पानी से) साना या माड़ा जाना।

क्रि. अ. [सं. गुत्स=गुच्छ] (बाल आदि का) गूँथना।

गुँधवाना—क्रि. स. [हिं. गूँधना] गूँधने का काम कराना या इसकी प्रेरणा देना।

गुँधाई— संज्ञा स्त्री [हिं गूँधना] गूँधने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

गुँधावट—संज्ञा स्त्री [हिं गूँधना] (१) गूँधने की क्रिया। (२) गूँधने की रीति।

गुंफ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फँसाव, गुत्थमगुत्था। (२) गुच्छा। (३) गलमुच्छा। (४) अलंकार।

गुंफन—संज्ञा पुं. [सं.] उलझाव, गूँधना।

गुंफित—वि. [सं. गुंफन] गुँथा हुआ, उलझा हुआ।

गुंबज, गुंबद—संज्ञा पुं [फा. गुंबद] गोल छत।

गुंबा—संज्ञा पु. [हिं गोल+अंब] गोल सूजन जो चोट लगने से सिर या माथे पर आ जाय।

गुँभी, गुंभ—संज्ञा पुं० [सं गुंफ=गुच्छा] अंकुर, गाभ। उ.—टरति न टरे वह छबि मन में चुभी।... सूरदास मोहन मुख निरखत उपजी सरल तन काम गुँभी—१४४६।

गुआ—संज्ञा पुं. [सं. गुवाक] (१) चिकनी सुपारी। (२) सुपारी।

गुआर, गुआरि, गुआरी, गुआलिन—संज्ञा स्त्री. [सं. गोरागी, हिं. ग्वार] एक पौधा, कौरी, खुरथी।

गुइयाँ—संज्ञा. स्त्री., पुं. [हिं. =गोइन=साथ] साथी, सखी, सहचर, सहेली।

गुग्गुर, गुग्गुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पेड़। (२) एक सुगंधित द्रव्य।

गुच्ची—संज्ञा स्त्री. [अनु.] छोटा गड्ढा।

वि.—बहुत छोटी, नन्ही।

गुच्चीपारा, गुच्चीपाला—संज्ञा पुं [हिं. गुच्ची+पारना] लड़कों का एक खेल।

गुच्छ, गुच्छक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुच्छा। (२) घास की जूरी। (३) झाड़। (४) हार। (५) मोर की पूँछ।

गुच्छा—संज्ञा पुं. [सं. गुच्छ] (१) पत्ती, या किसी चीज का समूह। (२) फुलरा, फुँदना।

गुच्छी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुच्छ] (१) कंजा। (२) एक साग।

गुच्छेदार—वि. [हिं. गुच्छा] जिसमें गुच्छे हो।

गुजर—संज्ञा पुं. [फा. गुजर] (१) निकास। (२) पहुँच, प्रवेश। (३) निर्वाह, काम चलना।

गुजरना—क्रि. अ. [हिं. गुजर+ना प्रत्य.)] (१) समय कटना। (२) आना-जाना।

मुहा.—गुजर जाना—मर जाना।

(३) निर्वाह होना, निभना, काम चलना।

गुजर-बसर—संज्ञा पुं. [फा] निर्वाह, काम चलाना।

गुजराती—वि. [हिं. गुजरात] गुजरात का।

संज्ञा स्त्री.—गुजरात की भाषा।

गुजरान —संज्ञा पु. [हिं. गुजर] निर्वाह, निबाह।

गुजराना—क्रि. स. [हिं. गुजारना] बिताना, काटना।

गुजरिया —संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] ग्वालिन, गोपी।

गुजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] (१) एक तरह की पहुँची। (२) एक रागिनी।

गुजरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. गूजर] (१) गूजर का लड़का। (२) ग्वाला।

गुजरेटी, गुजरेठी—संज्ञा स्त्री [हिं. गूजर] (१) गूजर की बेटी। (२) ग्वालिन, गोपी।

गुजारना—क्रि. स. [फा.] बिताना, काटना।

गुजारा—संज्ञा पुं. [फा. गुजारा] (१) निर्वाह। (२) निर्वाह की वृत्ति। (३) नाव की उतराई।

गुजारिश, गुजारिस — संज्ञा स्त्री. [फा. गुजारिश] प्रार्थना, निवेदना, विनय।

गुज्जरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गूजरी। (२) एक रागिनी।

गुज्झा—संज्ञा पुं. [सं. गुह्यक] (१) एक घास। (२) गूदा।

वि.— गुप्त, छिपा हुआ, अप्रकट।

गुझरोट, गुझरौट, गुझौट—संज्ञा पुं. [स. गुह्य, प्रा. गुज्झ + सं. आवर्त] (१) कपड़े की सिकुड़न। (२) स्त्रियों की नाभि के आसपास का भाग।

गुझा—संज्ञा पु. [हिं. गोझा] एक पकवान, गुझिया। उ.—गुझा इलाचीपाक अमिरती—३९६।

गुझाना—क्रि. स. [स. गुह्य] छिपाना, लुकाना।

गुझिया—संज्ञा स्त्री. [स. गुह्यक, प्रा. गुज्झअ, गुज्झा] (१) एक पकवान, पिराक। (२) एक मिठाई।

गुटकना—क्रि अ. [अनु.] गुटरगूँ करना।

क्रि. स. — (१) निगलना (२) खा लेना।

गुटका—सज्ञा पुं [स. गुटिका] (१) गोटी, बटी। (२) छोटे आकार की पुस्तक। (३) लट्टू। (४) एक मिठाई।

गुटरगूँ—सज्ञा स्त्री. [अनु] कबूतरों की बोली।

गटिका—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोटी, बटी। (२) एक सिद्धि जिसमें गोली मुँह में रखने पर साधक सब जगह जा सके और कोई उसे देख न पावे।

गुट्ट—संज्ञा पुं. [सं गोष्ठ=समूह] झुंड, दल।

गुट्ठल—वि. [हिं. गुठली (१) जो तेज या पैना न हो। (२) जड़, मूर्ख। (३) गुठली के आकार का।

सज्ञा पुं.—(१) गाँठ, गुलथी। (२) गिलटी।

गुट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] गोल या लंबी गाँठ।

गुठली—संज्ञा स्त्री. [सं. गुटिका] फल का कड़ा बीज।

गुठाना—क्रि. अ. [हि. गुठली] (१) गुठली-सी बँध जाना। (२) बेकार या निकम्मा हो जाना।

गुडंबा—संज्ञा पुं. [हिं. गुड़ + आँब, आम] गुड़ की चाशनी में उबाली हुई कच्चे आम की फाँकें।

गुड़—संज्ञा पुं. [सं.] ऊख का जमाया हुआ रस। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुड़ (गुर) डारि देत हैं खोई। फिर औटाये स्वाद जात है, गुड़ तैं खाँड़ न होई—१-६३। (ख) दानव प्रिया सेर चालीसो सुरभी रस गुड़ सीचो—सा. ६०।

मुहा.—कुल्हिया में गुड़ फूटना—(१) गुप्त रूप से काम होना। (२) छिपाकर पाप होना। गुड़ भरा हँसिया—ऐसा काम जिसे न करने से जी ललचाये और करने से सकोच हो। जो गुड़ खायगा सो कान छेदायेगा—जिसे लाभ होगा, उसे कष्ट भी सहना पड़ेगा। गुड़ खायगा, अँधेरे में आयगा—जिसे लाभ होगा वह कष्ट सहकर भी समय कुसमय काम करेगा। गुड़ दिखाकर ढेला मारना = कुछ लालच देने के बाद रूखा या कठोर व्यवहार करना। गुड़ दिये मरे तो जहर क्यों दे—जब सीधेसे काम चल जाय तो कठोर बर्ताव क्यों किया जाय। गुड़ खाना गुलगुलों से परहेज (घिनाना)—कोई बड़ी बुराई करना पर उसी ढंग की छोटी बुराई करने में संकोच करना। गूँगे का गुड़—विषय या वस्तु का अनुभव करना परन्तु उसे शब्दों में उचित ढंग से समझा न पाना। चोरी का गुड़—छिपाकर पाया हुआ बेमेहनत का माल। उ.—मिसरी सूर न भावत घर की चोरी को गुड़ मीठो—सा. ६०। जहाँ गुड़ होगा, चीटियाँ (मक्खियाँ) आजायेंगी – पासमें धन या दूसरों के लाभ की चीज होगी तो लाभ उठानेवाले बिना बुलाये अपने आप जुट आयेंगे।

गुडगुड—संज्ञा पुं [अनु.] वह शब्द जो बन्द चीज (जैसे पेट, हुक्का) में हवा के चलने से होता है।

गुड़गुड़ाना—क्रि. अ. [अनु० गुड़गुड़] गुड़गुड़ शब्द होना।

गुड़धनिया, गुड़धानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुड़ + धान]

मिठाई जो भुने हुए गेहुँओं को गुड़ में पागने से बनती है।

गुड़ना—क्रि. अ. [हिं. गोड़ना] विकार या खराब होना।

गुडरा, गुडरू—संज्ञा पुं. [देश.] गडुरी चिड़िया।

गुडहर गुड़हल—संज्ञा पुं [हिं. गुड़ + हर](१) अड़हुल का पेड़ या फूल। (२) एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चबाने के बाद गुड़ का स्वाद ही नहीं आता।

गुडाकेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) अर्जुन।

गुड़िया, गुडिला—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गुड्डा] कपड़े, मोम आदि की बनी छोटी पुतली जिससे बच्चे खेलते हैं।

मुहा.—गुड़िया सी-छोटी और सुन्दर। गुड़ियों का खेल-बहुत सरल काम।

गुड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. गुड्डी] पतंग, चंग। उ.—(क) बँधी दृष्टि यों डोर गुडी बस पाछे लागति धावति—१४३१। (ख) परबस भई गुड़ी ज्यों डोलति परति पराये कर ज्यों—पृ. ३३२।

गुड़ीला—वि. [हिं. गुड़ + ईला (प्रत्य.)] (१) गुड़-सा मीठा। (२) उत्तम, बढ़िया।

गुडुची, गुड़ूची—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुरुच] एक बड़ी लता, गिलोय।

गुड्डा—संज्ञा पुं. [सं. गुरु=खेलने की गोली] कपड़े, मोम आदि का बना पुतला जिससे बच्चे खेलते हैं।

मुहा.—गुड्डा बाँधना—बुराई या निन्दा करना।

संज्ञा पुं [हिं. गुड्डी] बड़ी पतंग।

गुड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुरु + उड्डीन] पतंग, चंग। उ.—(क) अति आधीन भई संग डोलति ज्यों गुड्डी बस डोर—पृ. ३३३। (ख) हम दासी बिन मोल की ऊधो ज्यों गुड्डी बस डोर—३३२०।

गुढ़, गुढ़ा—संज्ञा पुं. [स. गूढ़] छिपने का स्थान।

गुढ़ना—क्रि. अ. [हिं. गुढ] छिपना, लुकना।

गुढ़ि—क्रि. स. [हिं. गढना (अनु०)] गढ़-गढ़ाकर, ठीक ठाक करके। उ.-कन्हैया हालरु रे। गढ़ि गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई धरनी पर डोलाई बलि हालरु रे—१०४७।

गुढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. गूढ] गाँठ, गुत्थी।

गुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु की विशेषता। (२) निपुणता, चतुरता। (३) कला, विद्या, हुनर। (४) प्रभाव, असर। (५) शील, सद्वृत्ति।

मुहा.—गुण गाना-प्रशंसा करना। गुण मानना—अहसान मानना।

(६) विशेषता, खासियत। (७) तीन की संख्या। (८) रस्सी, डोरा। (९) धनुष की डोरी।

प्रत्य.—एक प्रत्यय जो संख्यावाची शब्दों के अंत में रहता है।

गुणक—संज्ञा पुं. [सं] वह अंक जिससे किसी अंकको गुणा किया जाय।

गुणकर—वि. [सं.] लाभदायक।

गुणकरी, गुणकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

गुणकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संगीतज्ञ। (२) रसोइया। (३) पाकशास्त्रज्ञ। (४) भीमसेन।

गुणकारक, गुणकारी—वि. [सं.] लाभदायक।

गुणगौरि, गुणगौरी—संज्ञा स्त्री [सं. गुणगौरि] (१) गौरी के समान सौभाग्यवती स्त्री। (२) एक व्रत जो सौभाग्यवती स्त्रियाँ चैत की चौथ को करती हैं।

गुणग्राहक, गुणग्राही—वि. [सं] गुण या गुणी का आदर करनेवाला।

गुणज्ञ—वि. [सं.] (१) गुण का पारखी। (२) गुणी।

गुणज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुण की परख।

गुणन—संज्ञा पु. [स.] गुणा, जरब।

गुणनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नाटकीय अनुष्ठान जो नट कार्यारम्भ के पूर्व विघ्न शांति के लिए करते हैं।

गुणनफल—संज्ञा पुं. [सं.] वह संख्या जो गुणा करने पर निकले।

गुणवन्त—वि. [स.] गुणवान, गुणी।

गुणवती—वि. स्त्री [स] जो गुणवान हो।

गुणवाचक—वि. [स] गुणसूचक।

गुणवान—वि. [सं.] गुणवाला।

गुणसागर—वि. [स.] गुणों का समुद्र, गुणनिधि।

गुणा—संज्ञा पुं [सं. गुणन] गुणन क्रिया, जरब ।
गुणाकर—वि. [सं. गुण+आकर] गुणनिधान ।
गुणाढ्य—वि. [स. गुण+आढ्य] गुण-संपन्न, गुणवान ।
गुणातीत—वि. [सं. गुण+अतीत] गुणों के परे ।
सज्ञा पुं.—परमेश्वर ।
गुणानुवाद—सज्ञा पुं. [स.] बड़ाई, प्रशंसा ।
गुणित—वि. [सं.] गुणा किया हुआ ।
गुणी—वि. [सं. गुणिन्] गुणवाला, गुणवान ।
संज्ञा पुं.—(१) निपुण या कुशल व्यक्ति । (२) जन्त्र मन्त्र या झाड फूँक करनेवाला ।
गुणीन—वि. [हिं. गुणा] (१) गुणा किया गया । (२) गिना गया, गिनती में आया ।
गुण्य—संज्ञा पु. [स.] (१) वह अंक जिसे गुणा करना हो । (२) गुणवान व्यक्ति ।
गुत्ता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) लगान पर खेत देने की रीति । (२) लगान, भूमिकर ।
गुत्थमगुत्था—संज्ञा पुं [हिं. गुथना] (१) उलझाव, फॅलाव । (२) हाथापाई, भिड़त ।
गुत्थी—सज्ञा स्त्री. [हि. गुथना] (१) गिरह, ग्रंथि । (२) समस्या, उलझन ।
गुथति—क्रि. स. [हिं. गूथना] गूँथती है । उ.—वाके गुनगन गुथति माल कबहूँ उरते नहिं छोरी—१० उ.११६।
वि.—गूथी हुई, बनायी हुई ।
गुथना—क्रि. अ. [सं. गुत्सन, प्रा. गुत्थन] (१) बँधना, फँसना, नथना । (२) टाँका या गूँथा जाना । (३) बहुत मोटी और भद्दी सिलाई होना । (४) हाथापाई करना, भिड़ जाना ।
गुथवाना—क्रि. स. [हिं. गूथना] गूथने का काम कराना ।
गुदकार, गुदकारा—वि. [हि. गूदा या गुदार] (१) गूदेदार । (२) गुदगुदा, मोटा ।
गुदगुदा—वि. [हिं. गूदा] (१) मुलायम । (२) गूदेदार, मास या गूदे से युक्त ।
गुदगुदाना—क्रि. अ. [हि. गुदगुदा] (१) गुदगुदी करना । (२) हँसी के लिए छेड़ना । (३) चित्त मे चाह या उत्कंठा पैदा करना ।
गुदगुदी—संज्ञा स्त्री. [हि. गुदगुदाना] (१) मीठी खुजली या सुरसुराहट । (२) चाव (३) उत्कंठा । (४) उमंग ।
गुदड़िया—वि. [हि. गुदड़ी] गुदड़ीवाला ।
गुदड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. गूदड़] फटे-पुराने कपड़ों से बना ओढ़ना या बिछौना, कंथा ।
मुहा.—गुदड़ी के लाल—साधारण स्थान में बहु-मूल्य वस्तु या महान व्यक्ति । गुदड़ी का लाल—ऐसा धनी या गुणी जिसके वेश से धन या गुण का पता न लगे ।
गुदन—सज्ञा स्त्री. [हिं. गोदना] स्त्री जो गोदना गुदाये हो ।
गुदना—संज्ञा पुं. [हि. गोदना] गोदा हुआ चिन्ह ।
क्रि. अ.—चुभना, धॅसना, गडना ।
गुदर—सज्ञा स्त्री. [फा. गुजर] (१) निर्वाह, निभना । (२) निवेदन, प्रार्थना । (३) उपस्थिति, हाजिरी ।
गुदरना—क्रि. अ. [फा. गुजर + हिं. ना (प्रत्य.)] (१) त्याग करना, अलग रहना । (२) हाल कहना, निवेदन करना । (३) बीतना, गुजरना । (४) उपस्थित या पेश किया जाना ।
गुदरानना, गुदराना—क्रि. स. [फा. गुजरान+हिं. ना (प्रत्य.)] (१) भेंट देना, सामने रखना । (२) हाल कहना, निवेदन करना ।
गुदरिया, गुदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुदड़ी] गुदडी, कंथा । उ.—अब कंथा एकै अति गुदरी क्यों उपजी मति मन्द—३२३१ ।
गुदरैन—सज्ञा स्त्री. [हिं. गुदरना] (१) पढ़ा हुआ पाठ सुनाना । (२) परीक्षा, इम्तहान ।
गुदाना—क्रि. स. [हि. गोदना (प्रे.)] गोदने का काम कराना या गोदने की प्रेरणा देना ।
गुदार—वि. [हिं. गूदा] गूदेदार, मांसल ।
गुदारना—क्रि. स.[हि. गुदरना](१) ध्यान न देना । (२) सेवा में उपस्थित करना । (३) बिताना, गुजारना ।
गुदारा—संज्ञा पुं [फा. गुज़ारा] (१) नाव पर नदी पार करना । (२) नाव की उतराई । (३) निर्वाह ।
वि. [हिं. गुदार] गूदेदार, मासल ।
गुद्दी, गुद्दी—संज्ञा स्त्री. [हि. गुद्दी] (१) गुद्दी, ल्योंड़ी; गरदन के पीछे का भाग । उ.—गुदी चाँपि लै जीभ

मरोरी—१०-५७ । (२) मींगी, गिरी ।

मुहा.—आँखें गुद्दी में होना— (१) दिखायी न देना । (२) समझ में न आना । गुद्दी नापना—गुद्दीपर चाँटा (धौल) देना । गुद्दी से जीभ खींचना —जबरन खींचना, कड़ा दण्ड देना ।

(३) हथेली का गुदगुदा भाग ।

गुन—संज्ञा पुं. [स. गुण] (१) किसी वस्तु या व्यक्ति की विशेषता या धर्म जो उससे अलग न हो सके । उ.—वेद धरत न सुन्न गुन के नखत टारन केर—सा. ६० । (२) सत्व, रज और तम । उ.—रूप-रेख-गुन-जाति, जुगति बिनु निरालंब कित धावै—१-२ । (३) कला, विद्या । उ.—तंत्र न चलै, मन्त्र नहिं लागै, चले गुनी गुन हारे—३२५४ । (४) प्रभाव, फल । (५) शील, सद्वृत्ति, सदाचरण, पुण्य कार्य । उ.—(क) तिनुका सो अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान । सकुचि गनत अपराध समुद्रहि बूँद-तुल्य भगवान—१-८ । (ख) ऐसें कहौं कहाँलगि गुनगन लिखत अन्त नहिं लहिए—१-११२ । (६) करनी, करतूत (व्यंग्य) । उ.—लरिकाई तें करत अचगरी मैं जाने गुन तबहीं । ८०६ । (ख) कौनैं गुन बन चली बधू तुम, कहि मोसौं सति भाउ-६-४४ । (ग) सुनहु महरि अपने सुत के गुन—१०-३०३ । (घ) तुम्हरे गुन सब नीके जाने—३६१ । (७) विशेषण । (८) तीन की सख्या । (९) प्रकृति । (१०) रस्सी, तागा, डोरी । उ.—(क) इन तौ करी पाछिले की गति गुन तोरयौ बिच धार—१-१७५ । (ख) तमहर सुत गुन आदि अन्त कवि का मतिवन्त बिचारो—सा. ४० ।

प्रत्य.—[सं. गुण] एक प्रत्यय जो संख्यावाची शब्दों के अन्त में जुड़कर उतने ही गुण होना सूचित करता है । उ.—गिरिजा पितु पितु पितु ही ते सौ गुन सी दरसावै—सा. १५ ।

क्रि. स. [हिं. गुनना] मनन करके, सोच विचार कर । उ. (क) हम पहि गुनकै सब बिसरायौ—८९६ । (ख) गिरिजा-पति-पतनी पति जा सुत गुनगुन गनन उतारै—सा. ५ ।

गुन अकास— संज्ञा पु. [सं. गुण + आकाश] आकाश का गुण, शब्द । उ.—गुन अकास को सिद्ध साधना सास्त्र करत बिस्तार—सा.१०४ ।

गुनकारी—वि. [सं. गुण + हि. कारी] लाभदायक, गुण करनेवाली । उ.—सिव रिपु पितु सुत बंधु तात हित जाके चरन-कमल गुनकारी—सा. १०३ ।

गुनगुना—वि. [अनु] नाक में बोलनेवाला ।

वि. [हिं. कुनकुना] मामूली गरम ।

गुनगुनाना — क्रि. अ. [अनु.] (१) गुनगुन शब्द करना । (२) नाक में बोलना । (३) धीरे धीरे गाना ।

गुनगौरि—संज्ञा स्त्री. [सं. गुण + गौरी] (१) पार्वती के समान सौभाग्यवती स्त्री । (२) पतिव्रता नारी ।

गुनज्ञा—वि. [सं. गुणज्ञ] (१) (गुणों के) पारखी । उ.—सूर स्याम सबके सुखदायक लायक गुननि गुनज्ञा—पृ० ३४६ (४४) ।

गुनति—क्रि. अ. [हिं. गुनना] गुन रही है, सोच-विचार रही है । उ.—मेरौ कह्यौ नाहिन सुनति । तबहिं ते इकटक रही है, कहा धौं मन गुनति—७१६ ।

गुनन—संज्ञा पुं. [हिं. गुनना] मनन, विचार ।

संज्ञा पु. बहु. [हिं. गुण] (१) अनेक गुण । (२) करनी, करतूत (व्यंग्य) । उ.—उत होरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नद नहीं जाये तुम महरि गुनन भारी—२४२६ । (३) रस्सी, डोरी, तागा । उ.—मोल की बिधु कीजिए, उर बिनु गुनन की माल—सा. ८८ ।

गुनना—क्रि. अ. [हिं. गुणन] (१) मनन या विचार करना । (२) सोचना, समझना ।

गुननि—संज्ञा पुं. बहु. [सं. गुण + नि (प्रत्य.)] अनेक गुण या विशेषताएं । उ.—काहे न निस्तारत प्रभु, गुननि अंगनि-हीन—१-१८२ ।

गुनभरी—वि. स्त्री. [स. गुण + हिं. भरना, भरी] गुण वाली । उ.—सूर राधिका गुनभरी कोउ पार न पावै—१५४५ ।

गुनमनि—वि. [सं. गुण + मणि] गुणियों में श्रेष्ठ । उ.—ज्ञाननमनि, विद्यामनि, गुनमनि, चतुरनमनि चतुराई—१७७० ।

गुन लवन—संज्ञा पु. [स. गुण + लवण] लवण का गुण, खारापन, खारा । उ.—सिंधुजा गुन लवन कीन्हो अत ते पहिचान—सा. ११४ ।

गुनवंत—वि. पुं. [सं. गुण + वंत (प्रत्य.)] जिसमें गुण हों, जो गुणवान हो।

गुनवती—वि. स्त्री. [सं. गुण + हिं. वती] गुणवाली।

गुनहगार—वि. [फा.] (१) पापी। (२) दोषी, अपराधी। उ.—सिंधु तें काढ़ि संभु-कर सौंप्यो गुनहगार की नाईं—३०७७।

गुनहगारी—संज्ञा. स्त्री. [फ़ा. गुनाह] (१) पाप। (२) दोष, अपराध।

गुनही—संज्ञा पुं. [फा गुनाह] गुनहगार, अपराधी।

क्रि. स. [हिं. गुनना] समझे, बूझे, जाने। उ. —को गति गुनही सूर स्याम सँग काम बिमोह्यौ कामिनि—पृ. ३४४ (३४)।

गुना—संज्ञा पुं. [सं. गुणन] (१) एक प्रत्यय जो संख्या वाची शब्दों के अंत में लगता है। (२) गुण।

गनाधि—वि. [सं. गुण + आधि] गुणयुक्त, सगुण। उ. —निगमन नेति कह्यौ निर्गुन सों कह गुनाधि बरनिहै सूर नर—१६०६।

गुनावन—संज्ञा स्त्री. [हि. गुनना] सोचना, विचारना।

गुनाह—संज्ञा पुं. [फा.] (१) पाप। (२) अपराध।

गुनाहगार—वि. [फ़ा.] (१) पापी। (२) दोषी।

गुनाहगारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] पापी, दोषी या अपराधी होने का भाव।

गुनाही—संज्ञा पुं. [फ़ा.](१) पापी। (२) दोषी।

गुनि—क्रि. स [हिं. गुनना] समझकर, सोचकर। उ. —(क) हरि सौं ठाकुर और न जन कौं।...। लाग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत सँग, औचट गुनि गृह बन कौं —१-६। (ख) तुमहीं मन मैं गुनि धौं देखौ बिनु तप पायौ कासी—२६३७।

गुनिनि—वि. बहु [हिं. गुणी] झाड़-फूँक करने वाले, जंत्र-मंत्र जाननेवाले। उ.—जंत्र-मंत्र कह जानै मेरौ? यह तुम जाइ गुनिनि कों बूझौ, इहाँ करति कत फेरौ —७५३।

गुनियत—क्रि. स. [हिं. गुनना] सोचता-विचारता है, समझता-बूझता है। उ.—कैसो कनक मेखला कछनी यह मन गुनियत हैं—१४१२।

गुनिया, गुनियाला—वि. [हिं. गुणी] गुणवान्, गुणी।

संज्ञा स्त्री. [हि. कोन] राजों, बढ़इयों आदि का गोनिया नामक औजार।

संज्ञा पुं. [सं. गुण = रस्सी] वह मल्लाह जो नाव की गून खींचता है, गुनरखा।

गुनिये—क्रि. स. [हि. गुनना] समझिए, सोचिए। उ.—कंचन कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये—११३०।

गुनी, गुनीला—वि. [सं. गुणिन, हि. गुणी] गुण वाला, गुणयुक्त, सगुण। उ.—गुन बिना गुनी, सुरूप रूप बिनु नाम बिना श्री स्याम हरी—१-११५।

संज्ञा पुं.—(१) कला-कुशल व्यक्ति। उ.—सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल-गनक-गुनी - १०-२४। (२) झाड़-फूँक या जंत्र-मंत्र जाननेवाला। उ.—(क) स्याम भुजंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बोलाई— ७४३। (ख) तंत्र न फुरै, मंत्र नहिं लागै, चले गुनी गुन हारे—३२५४।

क्रि. स. [हि. गुनना] सोची, मानी, समझी। उ.—अब लौं ऐसी नाहि सुनी। जैसी करी नंद के नंदन अद्भुत बात गुनी—सा. १०४।

गुने—क्रि. अ. बहु. [हिं. गुनना] मनन किये, सोचे, विचारे। उ.—सूत व्यास सौं हरि-गुन सुने। बहुरौ तिन निज मनमैं गुने—१-२२८।

गुनोबर—संज्ञा पुं [फ़ा. सनोबर] चिलगोजे का वृक्ष।

गुन्नी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुण, हिं. गून = रस्सी] एक कोड़ा जिससे ब्रजवासी होली पर मार करते हैं।

गुन्यो—क्रि. अ. [हि. गुनना] मनन किया, विचार किया। उ.—सुक सौं नृपति परीछित सुन्यौ। तिहि पुनि भली भाँति करि गुन्यौ—१-२२७।

गुप—संज्ञा पुं. [अनु] सन्नाटा, सूनसान।

गुपचुप—क्रि. वि. [हिं. गुप्त + चुप] छिपाकर, चुपचाप।

संज्ञा स्त्री.— (१) एक मिठाई। (२) एक खेल। (३) एक खिलौना।

गुपाल—संज्ञा पुं. [सं. गोपाल] श्रीकृष्ण।

गुपुत, गुप्त—वि. [सं. गुप्त] (१) छिपा हुआ, अप्रकट। उ.—(क) राजहु भए, तजत नहिं लोभहिं गुप्त नहीं जदुराइ—३११४। (ख) एक केहरि एक हंस गुपुत

रहै, तिनहिं लग्यौ यह गात—सा. उ.—३ ।

यौ.—जाति न गुप्त करी—छिपती नहीं । उ.—कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी। ······। मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुपुत करी—६-६३ ।

(२) जो प्रकट करने योग्य न हो, रहस्यपूर्ण। उ.—गुप्त मते की बात कहौ जनि काहू के आगे—३२२७ । (३) जो शीघ्र समझ में न आ सके, गूढ़। (४) रक्षित ।

संज्ञा पुं [सं.] (१) वैश्यों की एक पदवी या जाति। (२) एक प्राचीन भारतीय राजवंश।

गुप्त काशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तीर्थ जो हरद्वार और बदरीनाथ के बीच में है।

गुप्तचर—संज्ञा पुं. [सं.] भेदिया, जासूस।

गुप्त दान—संज्ञा पुं. [सं.] दान जिसे कोई न जाने।

गुप्त मार—संज्ञा स्त्री. [सं. गुप्त + हि. मार] (१) भीतरी चोट या आघात। (२) छिपाकर किया हुआ अनिष्ट।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नायिका जो सुरति छिपा ले। (२) गुप्त रूप से रखी हुई अविवाहिता स्त्री।

गुफा—संज्ञा स्त्री. [सं गुहा] कंदरा, गुहा।

गुबर्धन—संज्ञा पुं. [सं. गोवर्द्धन] गोवर्द्धन पर्वत। उ.—सूर प्रभु कर तैं गुबर्धन धरयौ धरनि उतारि—६६४।

गुबार—संज्ञा पुं [अ.] (१) गर्द, धूल। (२) दबाया हुआ क्रोध, दुख आदि मनोभाव।

गुबिंद—संज्ञा पुं. [सं. गोविंद] श्रीकृष्ण।

गुब्बाड़ा, गुब्बारा—संज्ञा पुं. [हि. कुप्पा] रबड़ या कागज का थैलीनुमा एक खिलौना।

गुम—संज्ञा पुं. [फा.] (१) छिपा हुआ। (२) अप्रसिद्ध। (३) खोया हुआ।

गुमक—संज्ञा स्त्री. [सं. गमक=जाने या फैलनेवाला] महक, सुगंध।

संज्ञा पुं.—(१) जानेवाला। (२) सूचक, बोधक। (३) तबले की गंभीर ध्वनि।

गुमकना—क्रि. अ. [सं. गम] किसी पदार्थ आदि के भीतर ही भीतर शब्द का गूँजना।

गुमका—संज्ञा पुं. [देश.] भूसी से दाना अलगाना।

गुमकि—क्रि. स. [हिं. गुमकना] (हृदय में) शब्द गूँजकर, क्रोध से भरकर, धड़क कर। उ.—धमकि मारयौ घाउ गुमकि हृदय रहयौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे—२६१५।

गुमची—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजा] गुंजा, घुँघची।

गुमटा—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक कीड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. गुंबा + टा (प्रत्य.)] मत्थे या सिर की सूजन।

गुमटी—संज्ञा स्त्री. [फा. गुंबद] (१) ऊपरी छत। (२) गोलाकार घर। (३) चोट के कारण सिर या माथे पर आनेवाली सूजन।

गुमना—क्रि. अ. [फा. गुम] खो जाना।

गुमनाम—वि. [फा.] जिसे कोई जानता न हो।

गुमर—संज्ञा पुं. [फा. गुमान] (१) घमंड। (२) दबाया हुआ क्रोध आदि भाव, गुबार। (३) कानाफूसी, धीरे धीरे की हुई बात।

गुमराह—वि. [फ़ा.] (१) भूला-भटका। (२) जो उचित मार्ग पर न चले, कुमार्गी।

गुमराही—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) भूल। (२) कुमार्ग।

गुमान—संज्ञा पु. [फा.] (१) घमंड, अहंकार, गर्व। उ.—(क) दधि लै मथति ग्वालि गरबीली।······। भरी गुमान बिलोकति ठाढ़ी, अपनैं रंग रँगीली—१०-२६६। (ख) बृन्दाबन की बीथिनि तकि तकि रहत गुमान समेत। इन बातनि पति पावत मोहन जानत होहु अचेत—१०३५। (२) अनुमान। (३) लोगों की बुरी धारणा, लोकापवाद।

गुमाना—क्रि. स. [फा. गुम] खोना, गँवाना।

गुमानी—वि. [हिं गुमान] घमंडी, अभिमानी।

गुमाश्ता, गुमास्ता—संज्ञा पुं. [फा.] वह कर्मचारी जो माल खरीदने-बेचने पर नियुक्त हो।

गुमिटना—क्रि. अ. [सं. गुंफित] लिपटना।

गुमेटना—क्रि. स [सं. गुंफित] लपेटना।

गुम्मट, गुम्मर—संज्ञा पु. [देश.] (१) गुंबद, गुंबज। (२) चेहरे या शरीर के किसी अंग पर गोल सूजन, मसा या मांस का लोथड़ा।

गुरंब, गुरंबा—संज्ञा पुं. [हिं. गुड़ंबा] गुड़ की चाशनी में पगाया हुआ पाग।

गुर—संज्ञा पुं. [सं. गुड़] कड़ाह में गाढ़ा करके जलाया हुआ ऊख का रस, गुड । उ.—(क) रस लैलै-औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६३ । (ख) गूँगे गुर की दसा भई है पूरन स्याम सोहाग सही—१६८२ । (ग) अति विचित्र लरिका की नाईं गुर देखाइ बौरावहिं—२६८५ ।

संज्ञा पुं. [हि. गुरू] अध्यापक, उपदेशक, आचार्य । उ.—तुम गुर होहु और जो सीखै तिनकी समुझ सहेली—सा. ८४ ।

संज्ञा [सं. गुर मंत्र] मूलमंत्र, सार, तत्व की बात । उ.—सूर भजि गोविद के गुन, गुर बताए देत—१ ३११ ।

संज्ञा पुं. [सं. गुण] तीन की संख्या ।

वि. [सं. गुरु] (१) भारी, बड़ा ।

गुरगा—संज्ञा पुं [सं. गुरुग] (१) चेला, शिष्य । (२) टहलुआ, नौकर । (३) दूत, चर, गुप्तचर ।

गुरचियाना—क्रि. अ. [हि. गुरुच] सिकुड़ना ।

गुरची—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुरुच] सिकुड़न ।

गुरचौं—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कानाफूसी, गपचुप बात ।

गुरज—संज्ञा पुं. [हिं. गुर्ज] गदा, सोंटा ।

संज्ञा पुं. [फा. बुर्ज] गुर्जा, बुर्ज ।

गुरदा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कलेजे के पास का एक अंग । (२) साहस, हिम्मत । (३) छोटी तोप । (४) बड़ा चमचा ।

गुरबरा—संज्ञा पुं. [हि. गुड़ + बड़ा = पीठी की गोल चकतियाँ] उर्द की पीठी के बडे जो गुड के रस में या उसकी चटनी में भिगोये गये हों । उ.—मूँग-पकौरा पनौ पतवरा । इक कोरे, इक भिजे गुरबरा—३९६ ।

गुरमुख—वि. [हिं. गुरु + मुख] गुरू से मंत्र लेनेवाला, जिसने दीक्षा ली हो, दीक्षित ।

गुरम्मर—संज्ञा पुं. [हि. गुड़ + अंब] आम का वह वृक्ष जिसके फल खूब मीठे हों ।

गुरवी—वि. [सं. गर्व] घमडी, अहंकारी ।

गुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोरा] गोरापन ।

गुराब—संज्ञा पुं [देश.] तोप लादने की गाड़ी ।

गुराव—संज्ञा पु. [हि. गुरिया] (१) चारे के टुकड़े । (२) चारा काटने का हथियार, गड़ासा ।

गुरिंदा—संज्ञा पुं. [फा. गोइंदा] गुप्तचर, भेदिया ।

गुरिद—संज्ञा पुं. [फा. गुर्ज] गदा या सोंटा ।

गुरिया—संज्ञा स्त्री. [सं गुटिका] (१) माला आदि का दाना, मनका या गाँठ । (२) छोटा टुकड़ा ।

गुरीरा, गुरीला—वि. [हि. गुड़+ईला (प्रत्य.)] (१) गुड़ की तरह मीठा । (२) सुन्दर, बढ़िया ।

गुरु—वि. [सं.] (१) बड़ा, लम्बा-चौड़ा । (२) भारी, वजनी । (३) जो कठिनता से पके या पचे ।

संज्ञा पुं.—(१) देवताओं के आचार्य, बृहस्पति । (२) बृहस्पति नायक ग्रह । उ.—लटकन लटकि रहे भ्रू ऊपर रंग रंग मनिगन पोहे री । मानहु गुरु सनि-सुक्र एक ह्वै लाल भाल पर सोहै री—१०-१३६ । (३) पुष्य नक्षत्र । (४) कुलगुरु, कुलाचार्य । (५) किसी मन्त्र का उपदेष्टा । (६) शिक्षक, उस्ताद । (७) दीर्घ मात्रावाला अक्षर । (८) वह व्यक्ति जो विद्या, वय, पद आदि में बड़ा हो । उ.—सूरज दोष देत गोविद कौं गुरु लोगनि न लजात—१०-२६४ । (९) ब्रह्मा । (१०) विष्णु । (११) शिव । (१२) कुमंत्रणा देनेवाला व्यक्ति, गुरु घंटाल (व्यंग्य) । उ.—एक हरि चतुर हुते पहिले ही अब बहुते उन गुरु सिखई—३३०४ ।

गुरु असुर—संज्ञा पुं. [सं. असुर + गुरु] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य । उ.—नील सेत अरु पीत लाल मनि लटकन भाल रुलाई । सनि गुरु-असुर देवगुरु मिलि मनु-भौम सहित समुदायी—१०-१०८ ।

गुरुआईन—संज्ञा स्त्री [सं. गुरु+हिं. आइन (प्रत्य.)] (१) गुरु की स्त्री । (२) अध्यापिका ।

गुरुआई—संज्ञा स्त्री. [स गुरु+हिं. आई (प्रत्य)] (१) गुरु का धर्म । (२) गुरु का काम । (३) चालाकी, धूर्तता ।

गुरुआनी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुरु + आनी (प्रत्य.)] गुरु की स्त्री । (२) अध्यापिका ।

गुरुकुल—संज्ञा पुं. [सं.] आचार्य का निवास स्थान जहाँ रहकर ही विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करें ।

गुरुघ्न—संज्ञा पुं. [स.] गुरु का वध करनेवाला ।

गुरुच—संज्ञा स्त्री. [सं. गुडूची] एक बेल ।

गुरुज—संज्ञा पुं. [फा. गुर्ज] गदा, सोंटा ।

संज्ञा पुं. [अ. बुर्ज] (१) किले की बुर्जी, गरगज। (२) मीनार या अन्य इमारत का ऊपरी भाग।

गुरुजन—संज्ञा पुं. [सं] विद्या, बुद्धि, वय, पद आदि में बड़े, पूज्य व्यक्ति।

गुरुता, गुरुताई—संज्ञा स्त्री. [स. गुरुता] (१) भारीपन। (२) बड़प्पन। (३) गुरु या आचार्य का कर्तव्य।

गुरुत्व—संज्ञा पु. [सं.] (१) भारीपन। (२) बड़प्पन।

गुरुत्व-केंद्र—संज्ञा पुं. [स] किसी पदार्थ का वह विंदु या स्थान जिसे किसी नोक पर टिकाने से वह पदार्थ ठीक ठीक तुल जाय, इधर उधर झुका न रहे।

गुरुत्वाकर्पण—संज्ञा पु. [स.] वह आकर्पण जिसके द्वारा पृथ्वी पर सब पदार्थ गिरते हैं।

गुरुदक्षिणा—संज्ञा स्त्री [सं.] भेंट या दक्षिणा जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात आचार्य को दी जाय।

गुरुद्वारा—संज्ञा पुं. [स. गुरु + द्वार] (१) आचार्य का निवास स्थान। (२) सिखों का पूज्य स्थान।

गुरु-बाधव—संज्ञा पु [स गुरु + बन्धु, हिं. बाधव] एक ही गुरु के शिष्य, गुरु भाई।

गुरुबिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुर्विणी] गर्भवती स्त्री।

गुरुभाई—संज्ञा पुं. [सं. गुरु + हिं. भाई] एक ही गुरु के शिष्य, गुरु बांधव।

गुरुमुख—वि [सं गुरु + मुख] जिसने गुरुमंत्र लिया हो, दीक्षित, गुरु के प्रति कृतज्ञ या नम्र। उ.—दुरजोधन कें कौन काज जहँ आदर भाव न पइयै। गुरु-मुख नहीं बड़े अभिमानी, कापै सेवा करइयै–१-२३६।

गुरुमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं गुरु + हिं मुखी] पंजाब में प्रचलित एक लिपि जो देवनागरी का ही एक रूप है।

गुरुविनी—संज्ञा स्त्री. [स. गुर्विणी] गर्भवती।

गुरुवार—संज्ञा पुं. [स] बृहस्पति का दिन।

गुरुसिंह—संज्ञा पुं. [स] एक पर्व।

गुरू—संज्ञा पु. [स. गुरु] अध्यापक। उ.—बड़े गुरु की बुद्धि बड़ी वह काहू को न पत्यैहै–१२६३।

गुरेरना—क्रि. स. [स. गुरु=बड़ा + हेरना = ताकना] आँखें फाड़ फाड़ कर देखना, घूरना।

गुरेरा—संज्ञा पुं. [हिं. गुलेला] मिट्टी की गोली जो गुलेल से चलायी जाती है।

गुर्ज—संज्ञा पुं. [फा. गुर्ज] गदा, सोंटा।

संज्ञा पुं. [फा. बुर्ज] किले का गोलाकार स्थान जहाँ से सिपाही लड़ते हैं, बुर्ज।

गुर्जर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुजरात प्रदेश। (२) गुजरात निवासी। (३) गूजर जाति।

गुर्जरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुजराती स्त्री। (२) एक रागिनी।

गुर्राना—क्रि. अ. [अनु] क्रोधी का अभिमानवश कर्कश स्वर में बोलना।

गुर्री—संज्ञा स्त्री. [देश] भुने हुए जौ।

गुर्वि—वि. स्त्री. [हिं. गुर्वि] विशाल, बड़ी।

गुर्विणी—वि. स्त्री. [सं] गर्भवती।

गुर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं] श्रेष्ठ या उत्तम स्त्री।

वि.—स्त्री गर्भवती।

वि—विशाल, बड़ी।

गुलंच—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रकार का कंद।

गुलंचा—संज्ञा पुं. [हिं गुड़ुच] एक बेल, गुरुच।

गुल—संज्ञा पुं [फा.] (१) गुलाब का फूल। (२) फूल।

मुहा०—गुल खिलना—(१) आनंददायी घटना होना। (२) उपद्रव होना। गुल कतरना—(१) कागज-कपड़े के बेल बूटे बनाना। (२) अद्भुत काम करना। (३) गालों में हँसते समय पड़नेवाला गड्ढा। (४) शरीर पर गरम धातु से डाला गया दाग या छाप (५) दीपक की बत्ती का जला हुआ भाग। (६) चिलम की तवाकू का जला हुआ अंश। (७) किसी चीज पर भिन्न रंग का दाग या चिन्ह। (८) आँख का डेला। (९) अंगारा।

मुहा०—गुल बँधना—(१) कोयलों का खूब दहकना। (२) कुछ धन प्राप्त होना।

(१०) सुंदर स्त्री, नायिका।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) हलवाई की भट्ठी। (२) कनपटी।

संज्ञा पु. [फा. गुल] शोर, कोलाहल।

गुलकंद—संज्ञा पुं. [फा.] चीनी में अमलतास या गुलाब के फूल धूप की गर्मी से पकाकर तैयार किया हुआ पदार्थ।

गुलअकीक—संज्ञा पुं. [फा. गुल + अकीक] एक पौधा।

गुलकारी—संज्ञा पुं. [फा.] बेल-बूटे का काम।

गुलकेश—संज्ञा पु. [फा.] कलगे का पौधा या फूल ।
गुलगपाड़ा—संज्ञा पुं. [अ. गुल + हि. गप] शोर ।
गुलगुला—वि. [हि. गुदगुदा] कोमल, मुलायम ।
संज्ञा पुं. [हि. गोल + गोला] (१) एक पकवान । (२) कनपटी ।
गुलगुलाना—क्रि. स. [हि. गुलगुला] मुलायम करना ।
गुलगोथना—संज्ञा पुं. [हि. गुलगुला + तन] मोटा आदमी ।
गुलचना—क्रि स. [हि. गुलचाना] गुलचा मारना ।
गुलचाँदनी—संज्ञा पुं. [फा. गुल+हि. चाँदनी] एक पौधा या उसका फूल जो रात में खिलता है ।
गुलचा—संज्ञा पु. [हि. गाल] फूले हुए गालों पर हलका घूँसा सप्रेम मारना ।
गुलचाना, गुलचियाना—क्रि. स. [हिं. गुलचा + ना] गुलचा मारना, गाल थपथपा कर प्रेम दिखाना ।
गुलछर्रा—संज्ञा पुं. [हि. गोली + छर्रा] खूब भोग विलास करना ।
मुहा०—गुलछर्रे उड़ाना—बहुत विलास करना ।
गुलजार—संज्ञा पुं. [फा. गुलजार] बाग-बगीचा ।
वि.—हरा-भरा, जहाँ चहल-पहल हो ।
गुलझटी, गुलझड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोल + स. झट = जमाव] (१) तागे आदि के उलझने की गुत्थी । (२) सिकुड़न, शिकन ।
गुलथी—संज्ञा स्त्री, [हि. गोल + सं. अस्थि] किसी गाढ़े पदार्थ की गुठली या गोली ।
गुलदस्ता—संज्ञा पुं. [फा.] (१) तरह तरह के फूल पत्तिओं का बनाया हुआ गुच्छा । (२) एक घोडा ।
गुलदाउदी, गुलदावदी—संज्ञा स्त्री. [फा.] एक पौधा या फूल ।
गुलदुपहरिया—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुल + हि. दुपहरी] एक पौधा जिसके लाल फूल दोपहर को खिलते हैं ।
गुलनार—संज्ञा पुं. [फा.] (१) अनार का फूल । (२) लाल रंग ।
गुलफाम—वि. [फा.] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो, सुन्दर, खूबसूरत ।
गुलबकावली—संज्ञा स्त्री. [फा. गुल + स. बक+अवली] एक पेड़ जिसके सफेद फूल बहुत सुगन्धित होते हैं ।
गुलबदन—संज्ञा पुं. [फा] एक रेशमी कपड़ा ।
गुलमखमल—संज्ञा पु [फा.] एक पौधा या फूल ।
गुलमेंहदी—संज्ञा स्त्री. [फा. गुल + हि. मेंहदी] एक पौधा ।
गुलरू—वि. [फा.] फूल के समान सुन्दर ।
गुलशन—संज्ञा पुं. [फा] बाग, वाटिका ।
गुलशब्बो—संज्ञा पुं [फा.] (१) एक पौधा जिसके सफेद फूल रात मे खिलते हैं । (२) एक खेल ।
गुलाब—संज्ञा पुं [फा. गुल + आब] (१) पौधा जिसका फूल कोमलता और सुगंध के लिए प्रसिद्ध है । उ.—चंपक जाइ गुलाब बकुल फूले तरु प्रति बूझति कहुँ देखे नँदनंदन—१८१० । (२) गुलाब जल ।
गुलाबजल—संज्ञा पुं [हि. गुलाब + जल] गुलाबी फूलों का अरक ।
गुलाबजामुन—संज्ञा पुं. [फा. गुलाब+हिं. जामुन] (१) एक मिठाई । (२) एक पौधा या उसका फल ।
गुलाबपाश—संज्ञा पुं. [फा.] गुलाबजल का पात्र ।
गुलाबाँस—संज्ञा पुं. [फा.] एक पौधा या फूल ।
गुलाबा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक बरतन ।
गुलाबी—वि. [फा.] (१) गुलाब सम्बन्धी । (२) गुलाब के रंग का । (३) गुलाबजल मे बसाया हुआ । (४) थोड़ा, हलका, कम ।
संज्ञा स्त्री. (१) शराब पीने की प्याली । (२) एक मिठाई । (३) एक मैना पक्षी ।
गुलाम—संज्ञा पु. [अ.] (१) खरीदा हुआ दास या सेवक । उ.—(क) सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ सुनत सिरात हिये—१-१७१ । (ख) सूर है नंदनंद जू को लयो मोल गुलाम—सा. ११८ । (२) आज्ञाकारी और नम्र सेवक, नौकर । उ.—नैन भए बजाइ गुलाम—पृ. ३२१ । (३) ताश का एक पत्ता ।
गुलाममाल—संज्ञा पु. [अ.] काम की पर सस्ती चीज ।
गुलामी—संज्ञा स्त्री. [अ. गुलाम + ई (प्रत्य.)] (१) सेवा, नौकरी, चाकरी । उ.—सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयिनि सँग बिसरामी । श्री हरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि दिन करत गुलामी—१-१४८ । (२) दासता । (३) पराधीनता ।

गुलाल—संज्ञा पुं. [फा. गुल्लाला] एक लाल बुकनी जो होली में चेहरे पर मली जाती है।

गुलियाना—क्रि. स. [हिं. गोलियाना] गोल बनाना।

गुलिस्ताँ—संज्ञा पुं. [फा.] बाग-वाटिका।

गुलू—संज्ञा पुं [देश.] एक बड़ा वृक्ष।

गुलूबन्द—संज्ञा पु. [फा.] (१) सूती, ऊनी या रेशमी पट्टी जो गले या सिर में लपेटी जाती है। (२) गले का एक गहना।

गुलेनार—संज्ञा पुं. [हि. गुलनार] (१) अनार का फूल। (२) लाल रंग।

गुलेराना—संज्ञा पुं. [फा. गुल + अ. राना] सुन्दर फूल।

गुलेल—संज्ञा स्त्री. [फा. गिलूल] एक तरह की कमान जिससे मिट्टी की गोलियाँ चलायी जाती हैं।

गुलेलची—संज्ञा पु. [हिं. गुलेल+ची (प्रत्य.)] गुलेल चलानेवाला व्यक्ति।

गुलेला—संज्ञा पु [हिं. गुलेल] (१) गुलेल से चलाने की गोली। (२) बड़ी गुलेल।

गुलौर, गुलौरा—संज्ञा पुं. [सं. गुल = गुड़ हिं. औरा (प्रत्य.)] वह स्थान जहाँ गुड़ बनाया जाता है।

गुल्गा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का ताड़।

गुल्फ—संज्ञा पु [सं.] एँड़ी के ऊपर की गाँठ।

गुल्म—संज्ञा पुं. [स] (१) पौधों की एक जाति। उ.—एक जाति हुँ रहे वृन्दावन गुल्मलता कर वास—सारा. ५७९। (२) सेना का एक वर्ग। (३) पेट का रोग।

गुल्मप—संज्ञा पु. [सं.] एक गुल्म का नायक।

गुल्लक—संज्ञा पुं. [हिं. गोलक] धन रखने का पात्र।

गुल्ला—संज्ञा पु. [हिं गोला] (१) गुलेल की गोली। (२) एक बँगला मिठाई।

संज्ञा पुं. [हिं. गुल्ली] गन्ने की गँडेरी।

संज्ञा पुं [अ. गुल] शोर, हल्ला, कोलाहल।

संज्ञा पु. [हिं. गुलेल] गुलेल नामक कमान।

संज्ञा पुं. [देश.] एक पहाड़ी पेड़।

गुल्लाल—संज्ञा पुं. [फा.] एक लाल फूल।

संज्ञा पुं.—श्मशान।

गुल्ली—संज्ञा स्त्री [स. गुलिका=गुठली] (१) फल की गुठली। (२) महुए का बीज। (३) किसी चीज का छोटा नुकीला टुकड़ा। (४) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जिसे डंडे से मारने का एक खेल होता है। (५) केवड़े का फूल। (६) एक तरह की मैना। (७) गन्ने की गँडेरी। (८) एक पामा।

गुवा, गुवाक—संज्ञा पु. [स.] चिकनी सुपारी।

गुवार—संज्ञा पुं. [हिं. ग्वाल] अहीर, ग्वाला।

गुवारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. ग्वाल] ग्वालिन, गोपी। उ.—हरि को टेरत फिरति गुवारि —४६१।

गुवाल, गुवाला—संज्ञा पुं. [हिं. ग्वाल] ग्वाल, अहीर। उ.—(क) सब आनंद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं—१०-२४। (ख) बिहँसत हरि-संग चले गुवाला —४६६।

गुविंद—संज्ञा पुं. [सं. गोविंद] श्रीकृष्ण।

गुसल—संज्ञा पु. [अ. गुस्ल] स्नान।

गुसलखाना—संज्ञा पु. [अ. गुस्ल + फा. खाना] नहाने का घर या स्थान।

गुसाँई—संज्ञा पु. [सं. गोस्वामी] (१) प्रभु, स्वामी, ईश्वर। उ.—बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं—१-३। (२) वैष्णव-आचार्य। (३) उपदेशक, वक्ता (व्यंग्य)। उ.—होहु बिदा घर जाहु गुसाईं माने रहियो नात—२६५७।

गुसा—संज्ञा पुं. [हिं. गुस्सा] क्रोध, रोष। उ.—(क) सूरदास चरननि के बलि बलि कौन गुसा तैं कृपा बिसारी। (ख) रति माँगत पै मान कियौ सखि सो हरि गुसा गही—२८६६।

गुसाईं, गुसैयाँ—संज्ञा पुं. [हिं. गोसाईं, गुसाईं] (१) प्रभु, नाथ, ईश्वर। उ.—(क) मेरौ मन मति-हीन गुसाईं। सब सुखनिधि पद-कमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईं—१०-१०३। (ख) तुम्हरी कृपा कृपाल गुसाईं किहिं किहिं स्रम न गँवायौ—१-१६०। (२) मालिक, स्वामी। (३) पूज्य व्यक्ति। उ.—(क) खेलत मैं को काको गुसैयाँ—१०-२४५। (ख) नहिं अधीन तेरे बाबा के नहिं तुम हमरे नाथ-गुसैयाँ—७३५। (ग) यह सुनि कै बलदेव गुसाईं हल मूसल लियौ हाथ—सारा-८३३।

गुस्ताख—वि. [फ़ा. गुस्ताख] ढीठ, अशिष्ट।

गुस्ताखी—संज्ञा स्त्री. [हि.गुस्ताख] ढिठाई, अशिष्टता।

गुस्सा—संज्ञा पुं. [अ.] क्रोध, रिस।

मुहा—गुस्सा उतरना—क्रोध शांत होना। (किसी पर) गुस्सा उतारना (निकालना)—(१) क्रोध का फल चखाना। (२) एक के क्रोध का फल दूसरे को चखाना। गुस्सा थूक देना—क्षमा करना। नाक पर गुस्सा होना (रहना)— बहुत जल्दी गुस्सा हो जाना। गुस्सा पीना (मारना)—क्रोध प्रगट न करना। गुस्से से लाल होना—क्रोध से तमतमा जाना।

गुस्सैल—वि [हि गुस्सा + ऐल (प्रत्य.)] बहुत जल्दी क्रोधित हो जानेवाला।

गुह—संज्ञा पुं. [सं. गुह्य] मैला, गंदा।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्त्तिकेय। (२) घोड़ा। (३) केवट जिसने श्रीराम को गंगा पार पहुँचाया था। (४) एक लता। (५) गुफा। (६) हृदय।

गुहत—क्रि स. [हिं. गुहना] (चोटी आदि) गूँधकर, गूँधने पर। उ.—मैया, कबहि बढैगी चोटी ··· । काढत गुहत न्हवावत जैहै नागिन-सी भुइँ लोटी —१०.१७५।

गुहन—क्रि. स. [हिं. गुहना] एक में पिरोने (को), गूँथने या गूँधने (को)। उ.—कहिहैं न चरनन देन जावक गुहन बेनी फूल—२७५६।

गुहना—क्रि. स. [सं. गुंफन] (१) पिरोना, गूँथना। (२) सुई - तागे से सी देना।

गुहराना—क्रि. स. [हि. गुहार] चिल्लाकर पुकारना।

गुहरायो—क्रि. स. [हि. गुहार, गुहराना] (१) पुकारा, चिल्लाया। (२) (जोर-जोर से चिल्ला कर) शिकायत की, उलाहना दिया। उ.—काहू के लरिकहि हरि मारयौ, भोरहिं आनि तिनहिं गुहरायौ—३६६।

गुहरावत—क्रि. स. [हिं. गुहराना] पुकारते हैं। उ.—बार बार हरि सौं गुहरावत मोहिं मँगावत पुनि-पुनि आनि लरै—१६७१।

गुहरावहु—क्रि. स. [हि. गुहराना] शिकायत करो, पुकारो, दोहाई दो। उ.—जाइ सबै कंसहि गुहरावहु। दधि माखन घृत लेत छँड़ाए आजुहिं मोहिं हजूर बोलावहु—१०६४।

गुहरावै—क्रि. स. [हि. गुहराना] पुकार करे, दोहाई दें। उ.—हम अब कहा जाइ गुहरावें बसत तुम्हारे गाउँ—१०६२।

गुहवाना—क्रि. स. [हिं गुहना का प्रे०]) गुँथवाना।

गुहा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुफा, कंदरा। उ.—(क) अयुत अधार नहीं कछु समझत भ्रम गहि गुहा रहै—३३५६। (ख) जनु सु अहेरो हति यादव पति गुहा पींजरी तोरी—१० उ.५२।

गुहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुहना] (१) गुहने की क्रिया या भाव। (२) गुहने की मजदूरी।

गुहाए—क्रि. स. [हि. गुहना] गुथाये या पिरोये (हुए)। उ.—इन बिरहिन मैं कहूँ तू देखी सुमन गुहाए मंग —३२२३।

गुहाना—क्रि. स. [हिं. गुहना का प्रे.] गुँथवाना।

गुहार, गुहारि, गुहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गो + हार] (१) रक्षा के लिए की गयी पुकार, दोहाई। उ.—(क) सृंगीरिषि तब कियौ बिचार। प्रजा दोष करै नृपति गुहार—१-२६०। (ख) दीन गुहारि सुनौ स्रवननि भरि गर्व बचन सुनि हृदय जरौं—११०३। (ग) प्रभु स्रवनन तहँ परी गुहारी—२४५६। (घ) अब दह कृपा जोग लिखि पठए मनसिज करी गुहारि —३००२।

प्र०—लगहु गुहार—दुहाई करो, पुकार लगाओ। उ.—शत्रु - सेन सुधाम फेरयौ सूर लगहु गुहार—२८३४।

(२) शोर-गुल, हो-हल्ला, कोलाहल, जोर का शब्द। उ.—(क) दौरि परे ब्रज के नर-नारी। नंद द्वार कछु होत गुहारी—३६१। (ख) धाए नंद, जसोदा धाई, नित प्रति कहा गुहारि—६०४।

गुहारना—क्रि. स. [हि गुहार] रक्षार्थ दुहाई देना।

गुहाल—संज्ञा पु. [सं. गोशाला] गोशाला।

गुहि—क्रि. स. [सं. गुंफन, हि० गुहना] गूँथकर, पिरोकर। उ.-(क) गुहि गुंजा घसि बन धातु, अंगनि चित्र ठए—१०-२४। (ख) सूरदास प्रभु की यह लीला, ब्रज-बनिता पहिरै गुहि हार—१०-१७३। (ग) संभु-भूषन बदन बिलसत कंज ते गुहि माल—सा. ६४।

गुही—क्रि स. [सं-गुंफन, हिं. गुहना] गूँथी, एक में पिरोई, गाँथी। उ.—(क) सुभ स्रवननि तरल तरौन बेनी सिथिल गुही—१०-२४। (ख) तब कित लाइ

लड़ाइ लड़इते बेनी कुसुम गुही गाढी — पृ० ३५३ (६५)।

गुहैहौं—क्रि. स. [हि. गुहाना, गुहवाना] गुँथवाऊँगा, गुहाऊँगा। उ.—सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं—१०-१६३।

गुह्य—वि. [सं.] (१) छिपा हुआ, गुप्त। (२) छिपाने योग्य। (३) गूढ़, जटिल।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) छल-कपट। (२) कछुआ। (३) शरीर के गुप्त अंग। (४) विष्णु। (५) शिव।

गूँग, गँगा, गूँगे—संज्ञा पुं. [फा. गुंग] वह मनुष्य जो बोल न सके। उ.—बहिरौ सुनै गूँग पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई—१-१।

वि.—जो बोल न सके, मूक।

मुहा०—गूँगे का गुड़—वह विषय या बात जिसका अनुभव तो हो परंतु वर्णन न किया जा सके। उ.—(क) अमृत कहा अमित गुन प्रगटै सो हम कहा बतावें। सूरदास गूँगे के गुर ज्यों बूझति कहा बुझावै—१६३६। (ख) गूँगे गुर की दसा भई हु पूरन स्याम सोहाग सही—१६८२।

गूँगी—संज्ञा स्त्री. [हि. गूँगा] (१) गोल बिछिया जो स्त्रियाँ उँगली में पहनती हैं। (२) दोमुहाँ साँप।

वि. स्त्री.—जो गूँगी हो।

गूँगै—सज्ञा पु. सवि. [हि. गूँगा] गूँगे व्यक्ति को (ने)। उ.—(क) अविगत-गति कछु कहत न आवै। ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै—१-२। (ख) कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यौं गूँगै गुर खायो—४-३३।

गूँगौ—संज्ञा पुं. [हि. गूँगा] गूँगा व्यक्ति, मूक प्राणी।

मुहा०—गूँगौ गुर खाइ—ऐसी बात जिसका अनुभव तो हो, परंतु वर्णन न हो सके, जैसे गुड़ के स्वाद का अनुभव करके भी गूँगा उसे कह नहीं पाता। उ.—ज्यौं गूँगौ गुर खाइ अधिक रस, सुख-स्वाद न बतावै (हो)—२-१०।

गूँच—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंज] गुंजा, घुँघची।

गूँज—संज्ञा स्त्री. [सं गुंज] (१) भौंरों का गुंजार। (२) प्रतिध्वनि। (३) लट्टू की कील।

गूँजना—क्रि. अ. [सं. गुंजन] (१) भौंरों का गुंजारना। (२) प्रतिध्वनि होना। (३) ध्वनि तरंगों का दूर तक व्याप्त होना।

गूँझा—संज्ञा पुं. [सं. गुह्यक, प्रा. गुज्झा, हि. गूझा] बडी पिराक, जो आटे या मैदे की अर्द्धचंद्राकार बनती है। उ.—पिस्ता, दाख, बदाम, छुहारा, खुरमा, खाझा, गूँझा, मटरी—८१०।

गूँथना—क्रि. स. [हिं. गूथना] पिरोना, गूँधना।

गूँथि—संज्ञा पुं [हिं. गूथना] गूथ कर, (एक लडी में) पिरोकर। उ.—दरसन कौं ठाढ़ी ब्रजवनिता, गूँथि कुसुम बनमाल—१०-२०६।

गूँथी—सज्ञा पुं. [हि. गूँथना] (लडी में) गूँथ दी, पिरो ली। उ.—माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुन्दर भाँति—७०४।

गूँदना—क्रि. स. [हि. गूँधना] गुझियाँ, पिराक, समोसे आदि का मुँह बंद करना।

गूँदे—क्रि. स. [हिं. गूँदना] गुझिया, पिराक आदि बनाये। उ.—गोझा गूँदे गाल मसूरी—२३२१।

गूँदि—क्रि. स. [हि. गूँदना, गूँथना] चोटी गूँधकर। उ.—बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी। किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी—७०८।

गूँधना—क्रि. स. [सं. गुध=क्रीड़ा] (आटा आदि) माड़ना, मलना या मसलना।

क्रि. स. [सं. गुंथन] (माला आदि) गूँथना या पिरोना। (२) (चोटी आदि) करना।

गूग्गुल, गूगुल—सज्ञा पुं. [सं. गुग्गुल] एक गोंद जो सुगंध के लिये जलाया जाता है।

गूजर—संज्ञा पुं. [स. गुर्जर] (१) अहीर। (२) एक क्षत्रिय जाति।

गूजरी—सज्ञा स्त्री. [सं. गुर्जरी] (२) अहीरिन, ग्वालिन, गोपी। उ.—गोरस बेचनहारि गूजरी अति इतराती—१०६५। (२) पैर का एक गहना। (३) एक रागिनी।

गूझा—सज्ञा पु. [स. गुह्यक, प्रा. गुज्झा] (१) आटे या मैदे का एक पकवान। उ.—गूझा बहु पूरन पूरे। भरि भरि कपूर रस चूरे—१०-१८३। (२) गूदा।

गूढ़—वि. [सं.] (१) छिपा हुआ, गुप्त। (२) विशेष अर्थ या अभिप्राय से युक्त, गंभीर। (३) कठिनता से समझ में आनेवाला, जटिल, कठिन। उ.—कहत पठवन बदरिका मोहि गूढ़ ज्ञान सिखाइ—३-३।
संज्ञा पुं.—एक अलंकार, गूढ़ोक्ति।

गूढ़ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छिपाव, गुप्तता। (२) गंभीरता, अबोध्यता। (३) कठिनता, जटिलता।

गूढ़त्व—संज्ञा पु. [सं.] (१) गुप्तता। (२) गंभीरता, अबोध्यता। (३) कठिनता, जटिलता।

गूढ़नीड़—संज्ञा पुं. [सं.] खजन पक्षी।

गूढ़जीवी—संज्ञा पुं. [सं. गूढ़जीविन्] (१) गुप्त रीति से जीविका प्राप्त करनेवाला। (२) गुप्त कार्य (जैसे चोरी) करके निर्वाह करनेवाला।

गूढ़पद, गूढ़पाद—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प।

गूढ़ोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अलंकार।

गूढ़ोत्तर—संज्ञा पुं. [सं.] एक अलंकार। उ.—गूढ़ोत्तर अस कहत ग्वालिनी मोहि गेह रखवारी—सा.८०।

गूथना—क्रि. स. [सं. गुथन] (१) (माला आदि) गूँथना या पिरोना। (२) टाँकना। (३) जोड़ देना। (४) मोटी सिलाई करना, गाँथना।

गूद—संज्ञा पुं. [सं. गुप्त, प्रा. गुत्त] गूदा।
संज्ञा स्त्री [सं. गर्त्त] (१) गड्ढा। (२) गहरा चिह्न, निशान या दाग।

गूदड़ गूदर—संज्ञा पु [हिं. गूथना=मोटी सिलाई करना] फटा-पुराना कपड़ा, चिथड़ा।

गूदना—क्रि. स. [हिं. गूथना] माला आदि गूँथना।

गूदा—संज्ञा पुं. [सं. गुप्त, प्रा. गुत्त] (१) फल का सरस सार भाग। (२) खोपड़ी का सार भाग, भेजा, मगज। (३) गिरी, मींगी। (४) वस्तु का सार या तत्व।

गूदरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूदड़] फटा-पुराना ओढ़ना बिछौना। उ.—पाटंबर-अंबर तजि गूदरि पहराऊँ—१-१६६।

गूदे—क्रि. स. [हिं. गूदना] चोटी आदि में फूल, मोती आदि) गूँथे या पिरोये। उ.—जिहि सिर केस कुसुम भरि गूदे तेहि कैसे भसम चढ़ैए—३१२४।

गून—संज्ञा स्त्री. [सं गुण=रस्सी] (१) नाव खींचने की रस्सी। (२) रीहा नामक घास।

गूनसराई—संज्ञा स्त्री. [देश.] रोहू नामक वृक्ष।

गूमा—संज्ञा पुं. [सं. कुंभा, गुंभा] एक पौधा।

गूलर—संज्ञा पुं. [सं. उदुंबर] एक बड़ा पेड़ जिसके फल में बहुत से भुनगे रहते हैं। उ.—मैं ब्रह्मा इक लोक कौ, ज्यौं गूलर-फल जीव। प्रभु तुम्हरे इक रोम प्रति, कोटिक ब्रह्मा सींव—४६२।
मुहा०—गूलर का कीड़ा—अनुभवहीन व्यक्ति, कूपमंडूक। गूलर का फूल—वह (वस्तु, पात्र आदि) जो कभी देखने में न आवे। गूलर का फूल होना—कभी दिखायी न देना। गूलर का पेट फड़वाना (पेट फाड़कर जीव उड़ाना)—गुप्त भेद प्रकट कराना, भंडा फुड़वाना।
संज्ञा पुं. [देश.] मेढक, दादुर।

गूलू—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक वृक्ष।

गूषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोरपखी का अर्द्धचंद्र।

गूह—संज्ञा पुं. [सं. गुह] मल, मैला।

गृध्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिद्ध, गीध। (२) जटायु, संपाती आदि पक्षी जिनकी पौराणिक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

गृध्रव्यूह—संज्ञा पु. [सं.] सेना की एक व्यूह रचना।

गृह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर (२) वंश।

गृहआस्रम—संज्ञा पु. [सं. गृह+आश्रम] गृहस्थाश्रम जिसमें मनुष्य बाल बच्चों के साथ रहता है। उ.—गृहआस्रम है अति सुखदाई। तप तजि कै गृहआस्रम करौं—९-८।

गृहप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर का स्वामी। (२) घर का रक्षक। (३) कुत्ता। (४) आग।

गृहपति—संज्ञा पु. [सं.] (१) घर का स्वामी। (२) कुत्ता। (३) आग, अग्नि।

गृहपाल—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) घर का रक्षक। (२) कुत्ता।

गृहमणि, गृहमनि—संज्ञा पुं. [सं.] दीप, दीपक।

गृहस्त, गृहस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] गृहस्थ (१) ब्रह्मचर्य के बाद के आश्रम का धर्म निबाहनेवाला व्यक्ति। (२) घरबारवाला व्यक्ति।

गृहस्थाश्रम—संज्ञा पु. [सं.] ब्रह्मचर्य के पश्चात का आश्रम जिसमें स्त्री और संतान के साथ व्यक्ति रहता और उनके प्रति स्वकर्तव्य निबाहता है।

गृहस्थी—संज्ञा स्त्री. [सं. गृहस्थ+हिं. ई (प्रत्य.)] (१) गृहस्थाश्रम। (२) घर-बार। (३) लड़के-बाले। (४) घर का सामान।

गृहवासी—संज्ञा पुं. [सं. गृहवासी] घर में रहनेवाला, गृहस्थ।

गृहिणी, गृहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घर की स्वामिनी, मालकिन। (२) पत्नी, भार्या, स्त्री।

गृही—संज्ञा पुं. [सं. गृहिन्] (१) गृहस्थ। उ.—तपसी तुमको तप करि पावैं। मुनि भागवत गृही गुन गावैं—१० उ.-१२७। (२) यात्री।

गृहीत—वि. [सं.] (१) स्वीकृत। (२) पकड़ा हुआ।

गृह्य—वि. [सं.] गृह-गृहस्थी-संबंधी।

गेंगटा—संज्ञा पुं. [सं. कर्कट] केकड़ा।

गेड़—संज्ञा पुं. [सं. काड] ऊख का ऊपरी भाग।
संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ] अन्न रखने का घेरा, घेरा।

गेड़ना—क्रि. स. [हिं. गेड़] (१) हद बाँधना, पतली दीवार से घेरना। (२) अन्न रखने का घेरा बनाना।

गेंडली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] कुंडल, घेरा, फेंटा।

गेंडा—संज्ञा पुं. [सं. काड] (१) ईख का ऊपरी भाग, अगौरा। (२) गन्ना, ईख।

गेंडु, गेंडुक—संज्ञा पुं. [सं.] गेंद, कंदुक।

गेंडुआ—संज्ञा पुं. [सं. गंडुक] (१) तकिया। (२) गेंद।

गेंडुरी, गेंडुली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) रस्सी का मेंडरा, इँडुरी, विड़वा। उ.—काहू की छीनत हौ गेंडुरी काहू की फोरत हो गगरी—८५३। (२) फेंटा, कुंडली, घेरा। (३) साँप की कुंडलाकार बैठक।

गेंद—संज्ञा पुं. [सं. कंदुक] रबर, चमड़े आदि का छोटा गोला जिससे लड़के खेलते हैं, कंदुक। उ.—लै कर गेंद गये हैं खेलन लरिकन संग कन्हाई—सा. १०२।

गेंदई—वि. [हिं. गेंदा] गेंदे के फूल की तरह पीला।
संज्ञा पुं.—गेंदे के फूल की तरह पीला रंग।

गेंदवा—संज्ञा पुं. [सं. गेंडुक] तकिया।

गेंदा—संज्ञा पुं. [हिं. गेंद] (१) एक पौधा जिसमें पीले फूल लगते हैं। (२) एक गहना।

गेंदुआ—संज्ञा पु. [सं. गेंदुक] (१) तकिया। (२) गेंद।

गेंदुकि—संज्ञा पुं. [सं. कंदुक] गेंद, कंदुक। उ.—(क) कर राजति गेंदुकि नौलासी—२४४१। (ख) फूलन के गेंदुकि नवला सजि कनक लकुटिया हाथ-२५०२।

गेंदुवा—संज्ञा पुं [सं. गेंडुक] गोल तकिया।

गे—क्रि. अ. बहु. [हिं. गया] गये। उ.—(क) तैसेहिं सूर बहुत उपदेसे सुनि सुनि गे कै बार—१-८४। (ख) बाचर खचर हार गे बनचर—सा ११५।

गेय—वि. [सं.] गाने के योग्य।

गेरत—क्रि. स. [हिं. गेरना = गिराना] (१) गिराते हैं, नीचे डालते हैं। (२) ढालते हैं, उँडेलते हैं, मूँदते हैं। उ.—बारंबार जगावति माता, लोचन खोलि पलक पुनि गेरत—४०५।

गेरना—क्रि. स. [सं. गलन या गिरण] (१) गिराना। (२) उँडेलना। (३) (सुरमा आदि) डालना।
क्रि. अ. [हिं. घेरना] घूमना, परिक्रमा करना।

गेरवाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. गेराँव] पशुओं के गले पर लिपटा हुआ रस्सी का भाग।

गेरुआ—वि. [हिं. गेरू + आ (प्रत्य.)] (१) गेरू के मटमैले लाल रंग का। (२) गेरू में रँगा हुआ, जोगिया, भगवा।
संज्ञा पुं.—(१) एक कीड़ा। (२) पौधों का एक रोग।

गेरू—संज्ञा स्त्री. [सं. गवेरुक] मटमैलापन लिये हुए एक तरह की लाल मिट्टी। उ.—जैसे कंचन काँच बराबर गेरू काम सिंदूर—२६८३।

गेह—संज्ञा पुं. [सं. गृह] घर, मकान। उ.—(क) बिदुर-गेह हरि भोजन पाए—१-२३६। (ख) करि दंडवत चली ललिता जो गई राधिका गेह—१ २३६ और सारा. ६२०।

गेहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेह] घरवाली, पत्नी। उ.—तुम रानी वसुदेव गेहनी हौं गँवारि ब्रजबासी-२७१०।

गेहपति—संज्ञा पु. [हि. गेह + सं. पति] (१) घर का स्वामी। (२) पति, स्वामी।

गेहरा—संज्ञा पु. [हि. गेह] घर, गेह। उ.—मुँह की इत भलई मोहू सों करन आये जिय की जासों ताही सो तुम बिन सूनो वाको गेहरा—२००१।

गेहिनी—संज्ञा स्त्री. [स. गृहिणी] घरवाली, पत्नी।

गेही—संज्ञा पुं. [हिं. गेह] गृहस्थ।

गेहुँअन—संज्ञा पु. [हिं. गेहूँ] एक विषैला साँप।

गेहुँआँ—वि. [हिं. गेहूँ] गेहूँ के बादामी रंग का ।
गेहु—संज्ञा पुं. [सं. गृह, हिं. गेह] घर, झाड़ी, झोपड़ी । उ.—पैरि-पैरि प्रति फिरौ बिलोकत गिरि-कंदर-बन-गेहु—९-७३ ।
गेहूँ—संज्ञा पुं. [सं. गोधूम] एक प्रसिद्ध अनाज ।
गैंडा—संज्ञा पुं. [स. गंडक] एक बहुत बली पशु ।
गैंती—संज्ञा स्त्री. [देश.] जमीन खोदने का कुदाल ।
गै—क्रि. अ. [सं. गम, हिं. गया] गये, हुये । उ.—(क) लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि बारनैं गै री—१०-५५ । (ख) सुर मुनि सवन तजि भवन करि गवन मन रवन तनु तबहिं कहँ सुगति गै री—१६०४ ।
गैन—संज्ञा पुं. [स. गमन] (१) प्रस्थान, गमन । उ.—हेरि दै-दै ग्वाल-बालक कियौ जमुन-तट गैन—४२७ । (२) गैल, मार्ग, रास्ता । (३) कदम, पग । उ.—कबहुँक ठाढे होत टेकि कर, चलि न सकत इक गैन—१०-१०३ ।
संज्ञा पु. [सं. गगन] आकाश, आसमान ।
संज्ञा पु. [सं. गयंद] हाथी ।
गैना—संज्ञा पुं. [हि. गाय] नाटा बैल ।
गैनी—वि. स्त्री. [हि. गैन = गमन + ई (प्रत्य.)] चलनेवाली, गामिनी ।
संज्ञा स्त्री. [हि. खता] कुदाल, फावड़ा ।
गैब—वि. [अ. गैब] छिपा हुआ, परोक्ष ।
गैबर—संज्ञा पुं. [स. गजवर] (१) बड़ा हाथी । (२) एक तरह की चिड़िया ।
गैबी—वि॰ [अ. गैब] (१) छिपा हुआ, गुप्त । (२) अजनबी, अज्ञात । (३) अबोधगम्य ।
गैयर—संज्ञा पु. [सं. गजवर] हाथी, गज ।
गैयाँ—संज्ञा स्त्री. बहु [हिं. गाय] अनेक गऊ । उ.—नंदकुमार चराईं गैयाँ ।
गैया—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] गाय, गऊ ।
गैर—वि. [अ.गैर] (१) दूसरा, अन्य । (२) पराया, अजनबी, जो अपना न हो ।
संज्ञा स्त्री.—अत्याचार, अंधेर ।
संज्ञा पुं. [हि. गैयर] हाथी ।
संज्ञा स्त्री. [हि. गैल] मार्ग, गली ।
संज्ञा स्त्री. [हि. बैर] (१) निंदा । (२) चुगली ।
गैरख—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर=गला+रखी] गले का हँसुली नामक गहना ।
गैरजिम्मेदार—वि. [अ. गैर + फा. ज़िम्मेदार] जो अपने दायित्व का ध्यान न रखे ।
गैरत—संज्ञा स्त्री. [अ. गैरत] लाज, शर्म ।
गैरमामूली—वि. [अ. ग़ैर+मामूली] (१) जो साधारण न हो । (२) जो नित्य नियम के विरुद्ध हो ।
गैरमुनासिब—वि. [अ. गैरमुनासिब] अनुचित ।
गैरमुमकिन—वि. [अ. ग़ैर+मुमकिन] असम्भव ।
गैरवाजिब—वि. [अ. गैर+वाज़िब] अनुचित ।
गैरहाजिर—वि. [अ. गैर + हाज़िर] जो मौजूद न हो ।
गैरहाजिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गैरहाजिर] अनुपस्थिति ।
गैरिक—संज्ञा पु. [सं.] (१) गेरू । (२) सोना ।
वि.—गेरू से रँगा हुआ, गेरुआ ।
गैरी—संज्ञा पुं. [देश.] डाँठ या डंठलों का ढेर ।
संज्ञा स्त्री. [सं. गर्त] खाद रखने का गड्ढा ।
गैल—संज्ञा स्त्री. [हि. गली] मार्ग, राह । उ.—(क) चंद्रमहि बिसरी नभ की गैल—१८२१ । (ख) मथुरा ते निकसि परे गैल माँझ आइ उहै मुकुट पीतांबर स्याम रूप काछे—२९४९ ।
मुहा.—गैल जाना—(१) साथ जाना । (२) अनुकरण करना । गैल करना—साथ कर देना । गैल लेना—साथ लेना ।
गैला, गैलारा—संज्ञा पु. [हिं. गैल] (१) गाड़ी के पहिये की लीक या लकीर । (२) गाड़ी का मार्ग ।
गैवर—संज्ञा पुं. [स. गज + वर] श्रेष्ठ या बड़ा हाथी । उ.—(क) हैवर गैवर सिह हंसवर खग मृग कहँ हैं हम लीन्हे—११३१ । (ख) गैवर मेंति चढ़ावत रसता प्रभुता मेटि करत हिनती—१२२८ ।
गैहै—क्रि. स. [हिं. गहना] रोकेगा, पकड़ेगा, थामेगा । उ.—जब गजेंद्र को पग तू गैहै । हरि जू ताको आनि छुटैहै—८-२ ।
क्रि. स. [हिं. गाना] (गीत आदि) गायगा ।
गैहौं—क्रि. स. [हिं. गाना] गाऊँगा, आलापूँगा । उ.—

—सूरदास ह्वै कुटिल बराती गति सुमंगल गैहैं —१०-१६३।

क्रि स. [हिं. गहना] (१) गहूँगा, पकडूँगा। उ.—सूर दिना द्वै ब्रज जन सुख दै आइ चरन पुनि गैहौं—१६२३। (२) (टेक, हठ आदि) रखूँगा। उ.—आज्ञा पाय देव रघुवर की छिनक माँझ हठ गैहौं—सारा० ९२४।

गैहौ—क्रि. स. [हिं गाना] गाओगे, वर्णन करोगे, बखानोगे। उ —भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ। पाउँ चारि, सिर स्रंग, गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ—१-३३१।

गोँइँठा—संज्ञा पुं. [सं. गो + विष्ठा] कंडा, उपला।

गोँइँड़, गोइँड़ा—संज्ञा पु. [हिं. गाँव + मेड़] गाँव के आसपास की भूमि।

गोँइँयाँ—संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. गोइयाँ] साथ में रहनेवाला मित्र, साथी। उ.—रहठि करै तासौं को खेलै रहे बैठि सब गोइँयाँ (ग्वैयाँ)—१०–२४५।

गोँईं—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोहन] बैलों की जोड़ी।

गोँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. गोष्ठ] धोती की लपेट जो कमर पर रहती है, मुर्री।

गोँठना—क्रि. स. [सं. कुंठन] (१) नोक या धार कुंद कर देना। (२) गुझिया, समोसे आदि गूँधना।

क्रि. स. [सं. गोष्ठ, प्रा. गोट्ट+ना (प्रत्य.)] चारो ओर लकीर से घेरना।

गोँठनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोंठना] गोठने का औजार।

गोँड—संज्ञा पु.. [सं. गोंड] (१) मध्य प्रदेशीय एक जाति। (२) बंग और भुवनेश्वर के बीच का प्रदेश। (३) एक राग।

संज्ञा पु. [सं. गोष्ठ] गैयो का बाड़ा।

वि. [सं. कुंड] जिसकी नाभि निकली हो।

गोँडरा—संज्ञा पुं. [सं. कुंडल] (१) मोट के मुँह पर बँधी लोहे या लकड़ी की गोल छड़। (२) गोल वस्तु, मँड़रा। (३) लकीर का घेरा।

गोँडरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) गोल वस्तु, मँड़रा। (२) इँडुरी।

गोँडल, गोँडला—संज्ञा पुं. [सं. कुडल] लकीर का घेरा।

गोँड़ा, गोँड़े—संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ] (१) पशुओं का बाड़ा। (२) मोहल्ला, पुरा। (३) चौड़ी सड़क। (४) आँगन, सहन। (५) बारात की न्योछावर, परछन। (६) गाँव के समीप की भूमि। उ.—निकसि ब्रज के गई गोडे—१०-८०।

गोँद—संज्ञा पुं. [सं कुँदुरू या हिं. गूदा] वृक्षों के तने से निकला हुआ लस जो चिपचिपा होता है। उ. —(क) एक अंस वृच्छनि को दीन्हौं। गोंद होइ प्रकास तिन कीन्हौं-६-५। (ख) बाइ बिरंग बहेरा हर्रै कहूँ बैल गोंद ब्यापारी—११०८।

संज्ञा स्त्री. [सं. गुंद्रा] एक घास।

संज्ञा स्त्री [हिं. गोंदी] एक पेड़। हिंगोट।

गोँदनी—संज्ञा स्त्री. [हिं गोंद] एक पेड़। हिंगोट।

गोँदपँजीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोंद+पँजीरी] पँजीरी या पाग जिसमे गोंद मिला हो।

गोँदपाक, गोँदपाग—संज्ञा पुं. [हिं. गोंद+ पाक = पाग] चीनी में पगा हुआ गोंद, गोंद की पपड़ी या कतली। उ.—पेठा पाक, जलेबी, कौरी। गोंदपाक, तिनगरी, गिंदौरी—३९६।

गोँदमखाना—संज्ञा पुं. [हिं गोंद + मखाना] मखाने के साथ चीनी में पगा हुआ गोंद।

गोँद्रा—संज्ञा पुं. [सं. गुद्रा] एक नरम घास।

गोँद्री—संज्ञा स्त्री. [सं. गुद्रा] एक घास। चटाई।

गोँदला—संज्ञा पु [सं गुद्रा] नागरमोथा। एक घास।

गोँदा—संज्ञा पु. [हिं. गूँधना] (१) भुने चनो का गूँधा हुआ बेसन। (२) मिट्टी का गारा।

गोँदी—संज्ञा स्त्री. [सं गोवंदनी = प्रियंगु] (१) गोंदनी का पेड़। (२) इगुदी, हिंगोट।

मुहा.—गोंदी सा लदना—(१) फलों से लद जाना। (२) शरीर में बहुत से दाने निकलना।

गोँदीला—वि. [हिं. गोंद+ईला (प्रत्य.)] जिस (वृक्ष) से गोंद निकले।

गो—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गाय, गऊ। उ.—ल्याए ग्वाल घेरि गौ, गोसुत —४७१। (२) किरण। (३) इंद्रिय। (४) वाणी, वाक्शक्ति। (५) सरस्वती। (६) आँख। (७) बिजली। (८) पृथ्वी।

(९) दिशा। (१०) माता। (११) दूध देनेवाले पशु। (१२) जीभ, जिह्वा।

संज्ञा पुं.—(१) बैल। (२) शिव का नंदी। (३) घोड़ा। (४) सूर्य। (५) चंद्र। (६) बाण, तीर। (७) गवैया। (८) प्रशंसा करनेवाला। (९) आकाश। (१०) स्वर्ग। (११) जल। (१२) बज्र। (१३)। शब्द। (१४) नौ का अंक। (१५) शरीर के रोम।

अव्य. [फा.] यद्यपि।

क्रि. अ. [हि. गया] गया। उ.—दूर बहि गो स्याम सुंदर ब्रज संजीवन मूर—सा. ३८।

गोइँठा—संज्ञा पुं. [सं. गो+विष्ठा] कंडा, उपला।

गोइँड़—संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ] (१) गाँव की सीमा। (२) गाँव के आसपास की भूमि।

गोइंदा—संज्ञा पुं. [फा.] गुप्त भेदिया, गुप्तचर।

गोइ—क्रि स. [हिं. गोना] छिपाकर, लुकाकर।

मुहा.—लेत मन गोइ—मन चुरा लेते हैं, मन हर लेते हैं। उ.—नागर नवल कुँवर बर सुंदर, मारग जात लेत मन गोइ—१०-२१०। मन धरयौ गोइ—मन चुराकर रख लिया, छिपा लिया। उ.—कहौ घर हम जाहि कैसे मन धरयौ तुम गो—इ ११६४। राखहु गोइ—छिपाकर या सम्हाल कर रखो। उ.—हाँसी होन लगी है ब्रज में जोगहु राखहु गोइ—३०२१।

संज्ञा पुं. [हि गोल, गोय] गेंद।

गोइन—संज्ञा पुं.—एक तरह का मृग।

गोइयाँ—संज्ञा पुं., स्त्री. [हि. गोहनियाँ] साथ में रहनेवाला, साथी, सहचर, सखी, सहेली।

गोई—क्रि. स. [हिं. गोना] छिपा लिया, लुका लिया। उ.—सूर बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वालि रही मुख गोई—१०-३२२।

मुहा.—लै गयो मन गोई—मन चुरा लिया, हर लिया या मुग्ध कर लिया। उ.—(क) सूरदास मुख मूरि मनोहर लै जो गयौ मन गोई—२८८१। (ख) कपट की करि प्रीति लै गयौ मन गोई—३२०६।

संज्ञा पुं., स्त्री. [हि. गोइयाँ] साथी, सखी।

गोऊ—वि. [हिं. गोना+ऊ (प्रत्य)] छिपानेवाला, हरनेवाला। उ.—सूरदास जितने रंग काछत जुवती-जन-मन के गोऊ हैं।

गोए—क्रि. स. [हि. गोना] छिपा लिये, अदृश्य कर दिये। उ.—चतुरानन बछरा लै गोए, फिरि माडव आए तिहि ठाँव—४३८।

गोकंटक—संज्ञा पुं. [सं.] गोखरू।

गोकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] कामधेनु।

गोकर—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

गोकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मलाबार का वह क्षेत्र जो शिव की उपासना के लिए प्रसिद्ध है। (२) इस क्षेत्र की शिवमूर्ति। (३) खच्चर। (४) एक साँप। (५) बालिश्त, बित्ता। (६) काश्मीर का एक प्राचीन राजा। (७) शिव का एक गण। (८) एक मुनि। (९) गाय का कान।

वि.—जिसके कान गाय की तरह लंबे हों।

गोकर्णी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मुरहरी नामक लता।

गोकील—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हल। (२) मूसल।

गोकुंजर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल। (२) शिव का नंदी।

गोकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गैयों का झुंड या समूह। (२) गैयों के रहने का स्थान, गोशाला, खरिक। (३) एक प्राचीन गाँव जो वर्तमान मथुरा के पूर्व दक्षिण में प्रायः तीन कोस पर जमुना के दूसरे किनारे स्थित था। अब यह महाबन कहलाता है। श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था यहीं बीती थी। वर्तमान गोकुल इससे भिन्न नये स्थान पर है।

गोकुलचंद—संज्ञा. पुं. [सं. गोकुल+चंद्र] गोकुल-वासियों को चंद्रमा के समान सुख-शांति देनेवाले श्रीकृष्ण। उ.—हिंडोरना झूलत गोकुलचंद—२२८१।

गोकुलनाथ, गोकुलपति, गोकुलराइ—संज्ञा पुं [सं.] गोकुल के स्वामी श्रीकृष्ण। उ.—गोकुलनाथ नाथ सब जनके मोपति तुम्हरे हाथ—सा. ७६४।

गोकुलस्थ—वि. [स] गोकुलग्राम निवासी।

संज्ञा पुं. [स.] (१) वल्लभी गोसाइयों का एक भेद। (२) तैलंग ब्राह्मणों का एक भेद।

गोकोस—संज्ञा पुं. [सं. गो+क्रोश] उतनी दूरी जहाँ तक गाय का रँभाना सुनाई दे, छोटा कोस।

गोनू—संज्ञा पुं. [सं.] जोंक नामक कीड़ा।
गोखग—संज्ञा पुं. [सं. गो+खग] थलचर, पशु।
गोखरू—संज्ञा पुं [सं. गोक्षुर] एक पौधा, उसका फल।
गोख—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] मोखा, झरोखा।
संज्ञा पुं. [हिं. गो+खाल] गाय का कच्चा चमड़ा।
गोखुर—संज्ञा पुं [सं.] (१) गाय का पैर। (२) गाय के खुर का थल पर बना चिन्ह।
गोखुरा—संज्ञा पुं. [हि. गो+खुर] एक साँप।
गोगा—संज्ञा पुं [देश.] छोटा काँटा, मेख।
गोगापीर—संज्ञा पुं. [हिं. गो+पीर] एक पीर जो देवताओं के समान पूजा जाता है।
गोग्रासि—संज्ञा पुं [सं.] श्राद्ध आदि के आरंभ में गाय के लिए निकाला गया भोजन।
गोघरी—संज्ञा स्त्री [देश.] एक तरह की कपास।
गोघात—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाय की हत्या।
गोघातक, गोघाती—संज्ञा पुं [सं.] गाय का हत्यारा।
गोघ्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाय का हत्यारा या वधिक। (२) अतिथि, मेहमान।
गोचंदन—संज्ञा पुं. [सं.]एक तरह का चंदन।
गोचंदना—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक जहरीली जोंक।
गोचना—क्रि. स. [पुं. हिं. अगोछना] रोकना।
संज्ञा पुं. [हिं. गेहूँ+चना] मिला हुआ गेहूँ-चना।
गोचर—वि. [सं.] जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) बात या विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो। (२) गैयों के चरने का स्थान, चरने का स्थान, चरी, चरागाह। (३) प्रदेश, प्रांत।
गोचरी—संज्ञा स्त्री [हिं. गो+ चरना] भिक्षावृत्ति।
गोचर्म—संज्ञा पुं. [सं.] गाय का चमड़ा।
गोची—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) एक मछली। (२) हिमालय की स्त्री का नाम।
क्रि सं. भूत. [हिं. गोचना] रोकी, थाम ली।
गोजई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेहूँ+जौ] मिला हुआ गेहूँ-जौ।
गोजर—संज्ञा पु. [सं.] बूढ़ा बैल।
संज्ञा पुं. [हिं. गुनगुना] कनखजूरा नामक कीड़ा।
गोजरा—संज्ञा पु [हिं गेहूँ+जौ] जौ मिला गेहूँ।
गोजा—संज्ञा पुं [सं. गवाजन] पौधों का नया कल्ला।
संज्ञा पु.—गाय या पशु हाँकने की लकड़ी।
गोजिह्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गोभी नामक घास।
गोजी—संज्ञा स्त्री. [सं. गवाजन] (१) गाय या पशु हाँकने की लकड़ी। (२) लाठी, लट्ठ।
गोजीत—वि. [सं.] इंद्रियों को जीतनेवाला।
गोझनवट—संज्ञा स्त्री. [देश.] साड़ी का अंचल।
गोझा—संज्ञा पुं. [सं. गुह्यक] (१) गुझिया नामक पकवान। उ.—(क) गोझा बहु पूरन पूरे। भरि भरि कपूर रस चूरे। (ख) गोझा गूँदे गाल मसूरी—२३२१ (२) लकड़ी की कील, गुज्झा। (३) एक घास। (४) जेब, खीसा।
गोट—संज्ञा स्त्री. [सं. गोष्ट] किनारा, किनारे का फीता।
संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ] गाँव, खेड़ा, टोली।
संज्ञा पुं [हिं. गोल] तोप का गोला।
संज्ञा स्त्री. [सं. गोष्ठी] (१) मंडली (२) सैर जिसमें कच्ची रसोई का स्वयं प्रबंध किया जाय।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गोटी] कंकड़ आदि का टुकड़ा।
संज्ञा स्त्री [सं. गुटिका] चौपड़ की गोटी।
गोटा—संज्ञा पुं [हिं. गोट] (१) सुनहला-रुपहला फीता या गोट। (२) सुपारी, धनिया इलायची आदि का भुना हुआ मसाला।
संज्ञा पुं. [सं. गुटिका] (१) चौपड़ की गोटी। (२) तोप का गोला।
गोटी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुटिका] (१) कंकड़ पत्थर का छोटा टुकड़ा। (२) चौपड़, शतरंज आदि का मोहरा (३) एक खेल। (४) लाभ या आमदनी का उपाय।
मुहा.—गोटी जमना. (बैठना)—उपाय लग जाना। गोटी जमाना (बैठाना)— उपाय लगाना।
गोटू—संज्ञा स्त्री. [देश.] घटिया चिकनी सुपारी।
गोठ—संज्ञा स्त्री. [सं. गोष्ठ] (१) गोशाला, गोस्थान। उ.—गो-सुत गोठ बँधन सब लागे, गो-दोहन की जूनटरी—४०४। (२) श्राद्ध। (३) सैर-सपाटा।
गोठिल—वि. [सं. कुंठित] कुंद धारवाला।
गोड़—संज्ञा पुं [सं. गम, गो] पैर, पाँव। उ— (क) निसिदिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। गोड़ पसारि पर्यौ दोउ नीकैं,

अब वैसी कह होइसि—१-३३१ । (ख) सूर सो मनसा भई पँगुरी निरखि डगमगे गोड़—१३४७ । (ग) सैल से मल्ल वै धाइ आये सरन वोऊ भले लागे तब गोड पर थरथराने—२५६६ ।

मुहा.—गोड़ भरना—(१) पैर में महावर लगाना । (२) वर के पैर में महावर लगाना ।

गोडइत—संज्ञा पुं. [हिं. गोइँड़+ऐत (प्रत्य.)] चौकीदार, पहरेदार ।

गोडई—संज्ञा पुं. [हिं. गोइँड़ + ऐत (प्रत्य.)] (१) चौकीदार। (२) चिट्ठी ले जानेवाला पुराना कर्मचारी ।

गोडना—क्रि. स. [हिं. गोड़ना] (१) कुछ गहराई तक मिट्टी खोदना, पेड़ की जड़ के पास की मिट्टी खोदना। (२) (किसी काम को) बिगाड़ देना ।

गोड़वरियाँ—संज्ञा स्त्री [हि गोड] पैताना ।

गोडवाना—क्रि स [हिं. गोड़ना का प्रे.] (१) गोड़ने का काम करना । (२) कोई काम बिगाड़ देना ।

गोड़सँकर—संज्ञा पुं [हिं. गोड़ + साँकर] स्त्रियों के पैर का एक गहना ।

गोड़सिया—वि. [हिं. गोड़ + सिहाना] जलने, कुढ़ने या ईर्ष्या रखनेवाला ।

गोड़हरा—संज्ञा पुं [हिं. गोड़ा + हरा (प्रत्य.)] पैर का एक गहना, कड़ा ।

गोडाँगी—संज्ञा पुं. [हिं. गोड़ + अँगिया] (१) पायजामा । (२) जूता ।

गोड़ा—संज्ञा पुं [हिं. गोड़] (१) पलँग का पाया । (२) छोटा घोड़ा ।

संज्ञा पुं. [हिं. गोड़ना] थाला, आलबाल ।

गोडाई—संज्ञा पुं. [हिं. गोड़ना] गोड़ने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

गोडाना—क्रि. स [हिं. गोड़ना का प्रे] गोड़ने का काम कराना ।

गोडपाई, गोडापाही—संज्ञा स्त्री [हिं गोड़=पाँव+पाई =ताने का सूत फैलाने का ढाँचा] (१) मडल में घूमने की क्रिया । (२) किसी स्थान पर बार बार आने की क्रिया ।

गोड़ारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोड़ाई] ताजी खोदी घास।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गोड़ + आरी (प्रत्य.)] (१) पलँग का पैताना । (२) जूता ।

गोड़ाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँडर] गाँडर दूब ।

गोड़ियाँ—संज्ञा पुं. [हिं. गोड़] पैर, पाँव । उ.—छोटी छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख-ज्योती, मोती मानौ कमल दलनि पर—१०-१५१ ।

संज्ञा पुं [हिं. गोटी=युक्ति] उपाय करनेवाला ।

संज्ञा पुं. [देश.] मल्लाह ।

गोड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि गोटी=लाभ] लाभ, फायदा ।

मुहा०—गोड़ी जमना (लगना)—लाभ या सफलता होना । गोड़ी हाथ से जाना—हानि होना ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गोड़=पैर] पैर, चरण ।

मुहा०—गोड़ी आना (पड़ना)—किसी का चरण पड़ना, आना ।

गोणी—संज्ञा स्त्री. [स] (१) टाट का बोरा, गोन । (२) एक माप या तोल । (३) बहुत महीन कपड़ा ।

गोत—संज्ञा पुं. [सं. गोत्र] (१) कुल, वंश । उ.—(क) राम भक्त-बत्सल निज बानौ । जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहि, रंक होइ कै रानौं—१-११ । (ख) तुम बड़े जदुबंस राजा मिले दासी गोत—२६८२ । (ग) इतनिक दूरि भये कुछ औरे बिसरयौ गोकुल, गोत—३३६४ । (२) समूह, जत्था । उ.—सुनि यह स्याम विरह भरे ।''' '' । सखिन तब भुज गहि उठाए कहा बावरे होत । सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत—३४२६ ।

गोतना—क्रि. सं. [हि गोता] (१) गोता देना, डुबाना । (२) नीचे की तरफ ले जाना ।

क्रि. अ.—(२) नीचे झुकना । (१) औंधाना ।

गोतम—संज्ञा पुं [स.] (१) गोत्र चलानेवाला व्यक्ति । (२) एक ऋषि ।

गोतमी—संज्ञा स्त्री [सं.) गोतम की स्त्री अहल्या ।

गोता—संज्ञा पु. [स.] डुब्बी, डुबकी ।

मुहा०—गोता खाना—(१) डुबकी लगाना । (२) धोखे में आना। गोता खात— धोखे में आते हैं । उ.—भवसागर में पैरि न लीन्हौ । '''' ' '''। अति गंभीर, तीर नहि नियरै, किहि विधि उतरयौ जात ?

नहीं अधार नाम अवलोकत जित तित गोता खात—१-१७५। गोता देना—(१) डुबाना। (२) धोखा देना। गोता मारना (लगाना) (१) डुबकी लगाना। (२) काम करते-करते बीच बीच में नागा करना।

गोताखोर, गोतामार—संज्ञा पुं. [हिं. गोता + अ. खोर, हिं. मारना] डुबकी लगानेवाला।

गोतिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोत] सखी, सहेली।

गोतिया—वि. [सं. गोत्र + इया (प्रत्य)] अपने गोत्र वाला (व्यक्ति)।

गोती—वि. [सं. गोत्रीय] अपने गोत्र का, गोत्रीय, भाई-बंधु। उ.—बिधु आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकत मोती री। मानो सोम संग करि लीने, जानि आपने गोती री—१०-१३६।

गोतीत—वि. [सं. गो + अतीत] जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाना न जा सके, अगोचर।

गोत्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) संतान। (२) नाम। (३) क्षेत्र। (४) राजा का छत्र। (५) समूह। (६) वृद्धि, बढ़ती। (७) धन-संपत्ति। (८) पहाड़। (९) भाई। (१०) वंश, कुल। (११) वंश या कुल की संज्ञा जो उस प्रवर्तक के अनुसार होती है।

गोत्रज—वि [सं.] एक ही वंश-परम्परावाला।

गोत्रसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती जी।

गोत्री—वि. [सं.] समान गोत्र का, गोतिया।

गोत्रोच्चार—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह में वर-वधू के वंश, गोत्र आदि का परिचय।

गोदंती—संज्ञा पुं. [सं.] एक मणि।

गोद—संज्ञा स्त्री. [सं क्रोड़] (१) उत्संग, कोरा, ओली। मुहा०—गोद का—(१) छोटा बच्चा जो गोद में ही रहे। (२) बहुत पास का। गोद बैठना—दत्तक बनना। गोद लेना—दत्तक बनाना। गोद देना—अपने लड़के को दूसरे को इसलिए देना कि वह उसे अपना दत्तक पुत्र बना ले।

(२) आँचल। उ—(क) सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई। जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत-भाई—१-१३। (ख) तिल चाँवरी गोद भरि दीन्ही फरिया दई फारि न सारी—७०८।

मुहा०—गोद पसार कर विनती करना (माँगना)—बहुत दीनता से प्रार्थना करना। करै गोद पसारि—अधीरता से विनती करती है। उ.—सूभा सखआ बृंद मों कहि गोद पसारी। ..... । बार बार हा हा करैं रहुँ हो गिरिधारी—१८२०। गोद भरना-(१) शुभ या विशेष अवसरों पर सौभाग्यवती स्त्री के अंचल में नारियल आदि पदार्थों के साथ आशीर्वाद देना। (२) संतान होना। लेहु गोद पसारि—हा भक्ति के साथ ग्रहण करो। उ.—दियौ फल यह गिरि गोवर्धन लेहु गोद पसारि—९५०।

गोदनहर, गोदनहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोदना + हर, हारी (प्रत्य)] गोदना गोदने का काम करनेवाली।

गोदनहरा—संज्ञा पु. [हिं. गोदना + हारा (प्रत्य.)] टीका लगाने या गोदना गोदनेवाला।

गोदना—क्रि. स. [हिं. खोदना = गड़ना] (१) नुकीली चीज चुभाना या गड़ाना। (२) कोई काम करने के लिए बार बार जोर देना। (३) छेड़छाड़ करना, ताना मारना। (४) हाथी के अंकुश मारना। (५) गोदना। (६) अस्पष्ट लिखना।

संज्ञा पु.—(१) गुदा हुआ काला-नीला चिन्ह। (२) टीका लगाने की सुई। (३) गोदने का औजार।

गोदनी—संज्ञा स्त्री. [हिं गोदना] (१) गोदने की सुई। (२) चुभाने-गड़ाने की नुकीली चीज।

गोदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोदावरी नदी। (२) गायत्री स्वरूपा महादेवी।

संज्ञा पुं. [देश] कटवाँसी बाँस।

संज्ञा पुं. [हिं. गोजा] नयी शाखा या डाल।

संज्ञा पुं [हिं. गौद] पीपल आदि के पके फल।

संज्ञा पुं [हिं. गोद] कोरा, ओली, गोदी। उ—धन्य नंद धनि धन्य जसोदा। धनि धनि तुमैं खिलावति गोदा—१०७२।

गोदान—संज्ञा पु. [सं.] (१) गाय दान देने की क्रिया। (२) विवाह के पूर्व का एक संस्कार।

गोदावरी—संज्ञा स्त्री. [सं] दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी जो नासिक के पास से निकलती और बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

गोद्दी—संज्ञा स्त्री. [हि. गोद] कोरा, ओली।
 संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का बबूल।
गोध, गोधा—संज्ञा स्त्री. [सं. गोधा] गोह नामक पशु।
गोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गौओं का समूह। उ.—(क) माधौ जू, यह मेरी इक गाइ। ...। हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माहँ—१५१। (ख) कमलनयन घनस्याम मनोहर सब गोधन को भूप। (२) गो-रूपी संपत्ति। (३) चौड़े फल का तीर।
 संज्ञा पुं [सं गोवर्द्धन] गोवर्द्धन पर्वत।
 संज्ञा पु [देश.] एक पक्षी।
गोधर—संज्ञा पुं. [सं.] पहाड़, पर्वत।
गोधापदी, गोधावती—संज्ञा स्त्री [सं.] एक लता।
गोधी—संज्ञा स्त्री. [सं. गोधूम] एक तरह का गेहूँ।
गोधूम—संज्ञा पु. [सं.] (१) गेहूँ। (२) नारंगी।
गोधूमक—संज्ञा पु [सं.] गेहुँअन नामक साँप।
गोधूलि, गोधूली—संज्ञा स्त्री. [सं.] संध्या का समय जब चरकर लौटती हुई गैयो के खुरों से उड़ी धूल सब तरफ छा जाती है।
गोध्र—संज्ञा पु. [सं.] पहाड़, पर्वत।
गोनंद—संज्ञा पुं. [सं.] कार्तिकेय का एक गण।
गोन—संज्ञा स्त्री [सं. गोणी] (१) बैलों आदि पर लादने की खुरजी जिसका एक-एक भाग दोनों तरफ रहता है। (२) टाट का बोरा या थैला।
 संज्ञा स्त्री. [सं. गुण] नाव खींचने की रस्सी।
 संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की घास।
गोनरा—संज्ञा पु. [सं. गुन्द्र] एक तरह की घास।
गोनर्द—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नागरमोथा। (२) सारस पक्षी। (३) एक प्राचीन देश। (४) महादेव।
गोनस—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक साँप। (२) एक मणि।
गोना—क्रि. स [सं. गोपन] छिपाना, लुकाना।
गोनिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण, हिं. कोना+इया (प्रत्य.)] बढ़ई का एक औजार।
 संज्ञा पुं. [हि. गोन=बोरा + इया (प्रत्य.)] बोरा ढोनेवाला पशु या मनुष्य।
 संज्ञा पुं. [हिं. गोन = रस्सी + इया (प्रत्य)] नाव की रस्सी खींचनेवाला।
गोनी—संज्ञा स्त्री [सं. गोणी] (१) टाट का थैला या बोरा। (२) सन, पटुआ।
गोपँगना—संज्ञा. स्त्री [सं. गोपांगना] गोप जाति की स्त्री, गोपी। उ.—हरि कौं विमल जस गावति गोपँगना—१०-११२।
गोप—संज्ञा पुं [सं] (१) गाय की रक्षा करनेवाला। (२) ग्वाला, अहीर। (३) गोशाला का प्रबंधक। (४) राजा। (५) रक्षक। (६) एक गंधर्व। (७) एक ओषधि। (८) गाँव का मुखिया।
 संज्ञा पु. [सं. गुंफ] गले का एक गहना।
 क्रि. स. [हिं. गोपना] छिपाकर, लुकाकर, गुप्त रखकर। उ०—कही नहीं साँची सो हमसौं जिनि गोप करो सुनिकै अक्रूर विमल स्तुति मानै—२५५७।
 वि. [सं. गुप्त] छिपा हुआ, गुप्त।
गोपक—संज्ञा पुं. [सं.] गोप, ग्वाला, अहीर। उ.—नाम गोपाल जाति कुल गोपक गोप गोपाल उपासी—३३१४।
गोपजा—संज्ञा स्त्री. [सं. गोप + जा] गोप जाति की कन्या या बालिका।
गोपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) श्रीकृष्ण। (४) सूर्य। (५) राजा। (६) बैल। (७) एक ओषधि। (८) ग्वाल। (९) नंदजी। उ.—हमरे तो गोपति-सुत अधिपति वनिता और रन ते—सा. उ. ३४।
 क्रि. स. [गोपना] छिपाती है।
गोपद—संज्ञा पु. [सं. गोष्पद] (१) गौओं के रहने का स्थान। (२) जमीन पर बना गाय के खुर का चिह्न। (३) गाय के पैर। उ.—मोहनि कर तें दोहनि लीन्हीं गोपद बछरा जोरे—७३२।
गोपदल—संज्ञा पुं. [सं.] सुपारी का पेड़।
गोपदी—वि [सं. गो+पद + ई (प्रत्य.)] गाय के खुर के समान छोटा।
गोपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छिपाव, दुराव। (२) रक्षा। (३) व्याकुलता। (४) दीप्ति।
गोपना—क्रि. स. [सं. गोपन] छिपाना, लुकाना।
गोपनीय—वि. [सं.] छिपाने योग्य, गोप्य।

गोपपति—संज्ञा पुं [सं.] श्रीकृष्ण । उ.—दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि —१-३१२ ।

गोपांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] गोप जाति की स्त्री ।

गोपा—वि. [सं] (१) छिपानेवाला । (२) नाशक ।
संज्ञा स्त्री.—(१) अहीरिन । (२) एक लता । (३) गौतम बुद्ध की पत्नी, यशोधरा ।

गोपाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाय का पालन-पोषण करनेवाला । (२) ग्वाला, अहीर । (३) इंद्रिय-निग्रह करनेवाला । (४) श्रीकृष्ण । उ.— गाइ लेहु मेरे गोपालहिं—१-७४ । (५) राजा । (६) एक छंद ।

गोपालक—संज्ञा पुं [सं] (१) ग्वाला, अहीर । (२) शिव । (३) राजा ।

गोपालिका—संज्ञा स्त्री [सं] (१) ग्वालिन । (२) एक ओषधि । (३) एक कीड़ा ।

गोपाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गाय पालनेवाली । (२) ग्वालिन, अहीरिन ।

गोपाष्टमी—संज्ञा स्त्री. [सं] कार्तिक शुक्ल अष्टमी जब श्रीकृष्ण ने गैया चराना शुरू किया था ।

गोपिकन—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. गोपिका] गोपियों से । उ.—आरजपथ छिड़ाय गोपिकन अपने स्वारथ भोरी—२८६२ ।

गोपिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोप की स्त्री, गोपी । (२) अहीरिन, ग्वालिन । (३) छिपानेवाली ।

गोपित—वि. [सं.] छिपा हुआ, गुप्त ।

गोपिनी—वि. स्त्री. [सं] छिपानेवाली ।
संज्ञा स्त्री. [सं] श्यामलता ।

गोपिया—संज्ञा स्त्री. [सं] जाल का झोला जिसमें कंकड़-पत्थर रखकर चलाये या फेंके जायँ ।

गोपी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्वालिनी, गोपपत्नी या गोपकुमारी । (२) व्रज की गोपालक जाति की वे स्त्रियाँ या कन्याएँ जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं और जिन्होंने उनकी बालक्रीड़ा तथा अन्य लीलाओं का सुख उठाया था । (३) एक लता ।
वि.—छिपाने या गुप्त रखनेवाली ।
क्रि. स. [हि. गोपना] छिपायी या गुप्त रखी ।

गोपीकामोदी—संज्ञा स्त्री [सं] एक रागिनी ।

गोपीचंद—संज्ञा पुं. [सं. गोपी + हि. चंद] भर्तृहरि की बहन मैनावती का पुत्र जो रंगपुर (बंगाल) का राजा था और माता के उपदेश से वैरागी हो गया था ।

गोपीचंदन—संज्ञा पुं. [सं.] एक पीली मिट्टी जो द्वारका के उस सरोवर से निकलती है जिसके किनारे जाकर, श्रीकृष्ण के स्वर्गवासी होने पर, अनेक गोपियों ने प्राण तजे थे ।

गोपीजन—[सं. गोपी + जन=समूह] गोपियों का समूह । उ.—गाइ-गोप-गोपीजन कारन गिरि कर-कमल लियौ—१-१२१ ।

गोपीत—संज्ञा पुं. [सं] एक खंजन पक्षी ।

गोपीता—संज्ञा पुं. [सं. गोपी] गोपकन्या, गोपी ।

गोपीथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरोवर जहाँ गैयाँ जल पिएँ । (२) एक तीर्थ । (३) रक्षा । (४) राजा ।

गोपीनाथ—संज्ञा पुं [सं.] गोपियों के स्वामी श्रीकृष्ण । उ.—रहै सूरदास, देखि नैनन की मिटी प्यास, कृपा कीनी गोपीनाथ, आए भुवतल मैं—८-५ ।

गोपुच्छ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाय की पूँछ । (२) एक बंदर । (३) एक हार । (४) एक बाजा ।

गोपुत्र—संज्ञा पुं. [सं] सूर्य-पुत्र कर्ण ।

गोपुर—संज्ञा पुं [सं] (१) नगर का द्वार । उ.—ऐसे कहत गये अपने पुर सबहि विलच्छन देख्यौ । मनिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भुमि अवरेख्यौ —सारा. ८२० । (२) किले का द्वार । (३) द्वार, दरवाजा । (४) स्वर्ग, गोलोक । उ.—करि प्रतिहार तज्यौ सुर गोपुर कंचनकोट सन फूट्यौ—२७५२ ।

गोपेन्द्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण । (२) गोपों में श्रेष्ठ श्रीनंद ।

गोप्ता—वि. [सं.] रक्षा करनेवाला, रक्षक ।
संज्ञा पु. [सं गोप] विष्णु ।
संज्ञा स्त्री.—गंगा ।

गोप्रवेश—संज्ञा पुं. [सं.] गोधूली, संध्या ।

गोप्य—वि. [सं.] (१) छिपाने लायक । (२) छिपाया हुआ । (३) रक्षा करने योग्य ।

गोफ—संज्ञा पुं. [सं] (१) दास, सेवक । (२) दासीपुत्र । (३) गोपियों का समूह ।

गोफण, गोफन, गोफना—संज्ञा पुं. [सं. गोफण] जाल का झोला जिसमें कंकड़-पत्थर रखकर चलाये जायँ।

गोफा—संज्ञा पुं. [सं. गुफ] (१) नया मुँहबँधा पत्ता। संज्ञा स्त्री.—तहखाना, गुफा।

गोबर—संज्ञा पुं. [सं. गोमय] गाय का मल।

गोबरगणेश गोबरगनेस—वि. [हिं. गोबर + गणेश] (१) भद्दा, कुरूप। (२) मूर्ख। (३) निकम्मा।

गोबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोबर + ई (प्रत्य.)] (१) कंडा, उपला। (२) गोबर की लिपाई।

गोबरैल, गोबरौरा, गोबरौला—संज्ञा पुं. [हिं. गोबर + ऐला या औला (प्रत्य.)] गोबर में उत्पन्न एक कीड़ा।

गोबर्धन—संज्ञा पु [सं. गोवर्द्धन] (१) गायों की वृद्धि करनेवाला। (२) व्रज का एक पर्वत। प्रसिद्धि है कि एक बार बहुत वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने इसे उँगली पर उठा लिया था।

गोबर्धनधारी—संज्ञा पुं. [सं. गोवर्द्धन + धारी] गोबर्धन पर्वत को उठानेवाले, श्रीकृष्ण।

गोबिंद, गोबिन्दा—संज्ञा. पुं. [सं. गोपेंद्र, या गोविंद, हिं. गोबिंद] (१) श्रीकृष्ण। (२) परब्रह्म।

गोबिया—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का बाँस।

गोभी, गोभी—संज्ञा स्त्री. [सं गोजिह्वा] (१) एक घास। (२) एक शाक। (३) पौधों का एक रोग।

गोम, गोमा—संज्ञा स्त्री.—लहर।

गोभुज—संज्ञा पुं [सं.] राजा।

गोभृत—संज्ञा पुं. [सं.] पर्वत, पहाड़।

गोमत—संज्ञा पु. [सं.] सह्याद्रि की एक पहाड़ी जहाँ गोमती देवी का स्थान है।

गोम—संज्ञा स्त्री.[देश] (१)घोड़ों की भँवरी। (२)पृथ्वी।

गोमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तर प्रदेश की एक प्रसिद्ध नदी। उ.—मन यह करत विचार गोमती तीर गये—१०-४४७। (२) बंगाल की एक नदी। (३) गोमत पर्वत की एक देवी। (४) एक मंत्र।

गोमतीशिला—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिमालय की एक शिला जहाँ अर्जुन का शरीर गला था।

गोमय, गोमल—संज्ञा पुं. [सं.] गोबर।

गोमर—संज्ञा. पुं. [सं. गो + हिं. मर (प्रत्य)] गाय को मारने वाला, गोहिंसक, कसाई।

गोमा—संज्ञा पुं. [देश.] गोमती नदी।

गोमाय, गोमायु—संज्ञा पु. [सं. गोमायु] (१) सियार, गीदड़। उ.—चल्यौ भाजि गोमायु जतु ज्यों लैके हरि कौ भाग—सारा.२६७। (२) एक गन्धर्व।

गोमी—संज्ञा पुं. [सं. गोमिन्] (१) सियार। (२) पृथ्वी।

गोमुख—संज्ञा पुं. [सं] (१) गाय का मुख। उ.—गउ चराइ, मम त्वचा उपारौ। हाड़न कौ तुम बज्र सँवारौ सुरपति रिषि की आज्ञा पाई। लिए हाड़, दियौ बज्र बनाई। गोमुख असुध तबहिं तैं भयौ—६-५। मुहा०—गोमुख नाहर (व्याघ्र)—वह मनुष्य जो देखने में तो सीधा हो, पर वास्तव में बड़ा क्रूर और अत्याचारी हो। (२) नरसिंहा नामक बाजा। उ.—एक पटह, एक गोमुख, एक आवझ, एक झालरी, एक अमृत कुंडल रवाब भाँति सौं बजावैं—२४२५। (३) एक शंख। (४) माला रखने की थैली जिसकी बनावट गाय के मुख की सी होती है। (५) नाक नामक जल जंतु। (६) योग का एक आसन। (७) टेढ़ा मेढ़ा घर। (८) हल्दी-चावल का लेपन।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) माला रखने की ऊनी थैली। (२) गंगोत्तरी का वह स्थान जहाँ से गंगा निकलती है और जिसकी बनावट गाय के मुख की सी है। (३) एक नदी। (४) घोड़ों के ऊपरी होठों की एक भँवरी।

गोमुद्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन बाजा।

गोमूत्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक चित्रकाव्य। (२) एक घास।

गोमेद—संज्ञा पु [सं.] (१) गोमेदक मणि। (२) शीतल चीनी।

गोमेदक—संज्ञा पु. [सं.] (१) एक मणि, राहु रत्न। (२) काला विष। (३) एक साग।

गोमेध—संज्ञा पु. [सं.] गोसव यज्ञ।

गोयँड—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव + मेड़] गाँव के आसपास की भूमि।

गोय—संज्ञा पुं. [हिं गोल] गेंद।

गोया—क्रि. वि. [फा.] मानो।

गोयो—क्रि. स. [हिं. गोना] छिपाया, लुप्त किया, दूर

किया, मिटाया। उ.—गोकुल गाय दुहत दुख गोयो क्रूर भए ए बार—२८०० ।

गोर—संज्ञा स्त्री [फा.] मृत शरीर की कब्र ।

संज्ञा पु [अ गार] फारस का एक प्रदेश ।

वि [सं. गौर] (१) गोरा। उ—(क) द्वै ससि स्याम नवल घन द्वै कीन्हें विधि गोर—१६१६ । (ख) बलि तुहि जाउँ वेगि लै मिलऊ स्याम सरोज वदन तुव गोर—२५१५ । (ग) मनमोहन पिय दूलह राजत दुलहिन राधा गोर-धारा १०६६ ।(२)उजला ।

गोरका—संज्ञा पुं. [देश] अम्लल नामक वृक्ष ।

गोरख अमली (इमली)—संज्ञा स्त्री [हि. गोरख+इमली] एक बडा पेड़ जिसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं ।

गोरखधंधा—संज्ञा पुं [हि. गोरख+धंधा] (१) कई तारों-कड़ियों आदि का समूह जिन्हें जोड़ना या अलग करना कठिन होता है। (२) झगड़ा या उलझन का काम। (३) झगड़ा, उलझन ।

गोरखनाथ—संज्ञा पु [स. गोरक्षनाथ] गोरखपुर के एक प्रसिद्ध सिद्ध जिनका संप्रदाय अभी तक है ।

गोरखपंथी—वि. [हि. गोरखनाथ+पंथी] गोरखनाथ का अनुयायी ।

गोरखमुंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुंडी] मुंडी नामक घास ।

गोरखा—संज्ञा पु [हि गोरख] (१) नैपाल का एक प्रदेश । (२) इस प्रदेश का निवासी ।

गोरखी—संज्ञा स्त्री. [हि. गोरख] एक लता जिसमें फूट नामक ककड़ी फलती है ।

गोरज—संज्ञा पु [स.] गैयों के (चलते समय) खुरों से उड़ी हुई धूल ।

गोरटा—वि. पु [हि. गोरा] गोरे रंग का, गोरा ।

गोरस—संज्ञा पुं. [स.] (१) दूध । (२) दधि, दही । उ.—(क) गोरस मथन नाद इक उाजत, किंकिनि धुनि सुनि स्रवन रमापति—१०-१४८ । (ख) रैनि जमाई धर्यौ हो गोरस, पर्यौ स्याम कैं हाथ—१० २७७ । (ग) गोरस वेचन गई ब्रज की सौं हौं मथुरा तें आई २५४८ । (३) मठा, छाछ । (४) इंद्रियों का सुख, विषय-सुख ।

गोरसा—संज्ञा पु. [स. गोरस] बच्चा जो केवल ऊपरी (विशेषत. गाय के) दूध पर पला हो ।

गोरसी—संज्ञा स्त्री [सं. गोरस+ई (प्रत्य.)] दूध गरमाने की अँगीठी ।

गोरा—वि. [सं. गौर] (१) उज्ज्वल वर्ण का। (२) उजला, सफेद ।

संज्ञा पुं.—उज्ज्वलवर्ण का व्यक्ति ।

गोराई—संज्ञा स्त्री. [हि. गोरा+ई+या आई] (१) गोरापन । (२) उज्ज्वलता । (३) सुंदरता ।

गोरिल्ला - संज्ञा पुं. [अफ्रिका] एक वनमानुष ।

गोरी—संज्ञा स्त्री [सं गौरी, हि. पुं. गोरा] गौर वर्ण की स्त्री, रूपवती रमणी । उ.- जौ तुम सुनहु जसोदा गोरी—१० २८६ ।

वि. -उजले रंग की, सफेद । उ.—अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करो इक ठौरी । धियरी, मौरी, गोरी गैनी, खैरी, कजरी जेती-४४५ ।

गोरू—संज्ञा पुं. [सं. गो] (१) सींगवाला पशु, चौपाया, मवेशी । (२) दो कोस की नाप ।

गोरुद्र—संज्ञा पु [सं.] महादेव ।

गोरे, गोरैं—वि. [सं. गौर, हि. गोरा] गोरे, गौर वर्ण के । उ.—गौरैं भाल बिंदु बंदन, मनु इंदु प्रात-रवि कांति—७०४ ।

गोरोचन—संज्ञा पुं [सं] एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य । उ.—(क) बदन सरोज तिलक गोरोचन, लटलटकनि मधुकर - गति डोलनि—१०-१२१ । (ख) सुंदर भाल-तिलक गोरोचन, मिलि मसि-बिंदुका लाग्यौ री—१०-१३७ ।

गोरोचना—संज्ञा स्त्री [सं.] गोरोचन ।

गोलंदाज—संज्ञा पु [फा.] गोला चलानेवाला ।

गोलंदाजी—संज्ञा स्त्री [फा.] गोला चलाने की कला ।

गोलंबर—संज्ञा पुं. [हि. गोल+अंबर] (१) गुंबद । (२) गोलाई । (३) बाग का गोल चबूतरा ।

गोल—वि. [स] (१) जिसका घेरा वृत्ताकार हो । (२) अंडे, नीबू आदि के आकार का ।

मुहा०—गोल गोल—(१) मोटे तौर पर, स्थूल रूप से । (२) साफ साफ नहीं । गोल बात—जो बात बिल्कुल स्पष्ट या साफ न हो । गोल मटोल (मठोल)—(१) मोटे तौर पर। (२) मोटा और नाटा ।

(३) कम ऊँचाई का पर ज्यादा मोटाईवाला।

गोल होना— (१) चुप हो जाना। (२) चुपके से चले जाना।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) वृत्त, घेरा। (२) गोला। (३) एक ओषधि। (४) मैनफल या मदन वृक्ष।

संज्ञा पुं. [फा. गोल] झुंड, समूह।

संज्ञा पुं [सं. गोल (योग)] गोलमाल, गड़बड़, खलबली, हलचल।

मुहा.—गोल पारना (मारना)—गड़बड़, खलबली या हलचल मचाना। पार्यो गोल—खलबली पैदा कर दी, हलचल मचा दी। उ.—ल्याए हरि कुसलात धन्य तुम घर घर पार्यो गोल—३२६५।

गोलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गोलोक। (२) गोल पिंड। (३) मिट्टी का गोल घड़ा। (४) फूलों का सार, इत्र। (५) आँख की पुतली। (६) गुंबद। (७) धन जोड़ने का पात्र। (८) गल्ला, गुल्लक। (९) आँख का डेला। उ.—(क) अपने दीन दास कैं हित लगि, फिरते सँग सँगहीं। लेते राखि पलक गोलक ज्यों, संतन तिन सबहीं—१-२८३। (ख) अति उनींद अलसात कर्मगति गोलक चपल सिथिल कछु थोरे। (ग) अति बिसाल बारिज दल-लोचन, राजति काजर रेख री। इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अलि गोलक के वेष री—१०-१३६।

गोलमाल—संज्ञा पुं. [हिं. गोल (योग)] गड़बड़ी।

गोला—संज्ञा पुं. [हिं. गोल] (१) गोल बड़ा पिंड। (२) तोप से चलाने का गोल पिंड। (३) नारियल की गरी। (४) रस्सी, सूत आदि की गोल पिंडी।

संज्ञा स्त्री [सं.] (१) गोदावरी नदी। (२) सखी, सहेली। (३) मंडल। (४) गोली।

गोलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोल + आई (प्रत्य)] गोल होने का भाव, गोलापन।

गोलाकार, गोलाकृति—वि. [सं.] गोल आकार या आकृतिवाला।

गोलार्द्ध—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी का आधा भाग।

गोलियाना—क्रि. स. [हिं. गोल] (१) गोल करना या बनाना। (२) समूह या गोल बाँधना।

गोली—संज्ञा स्त्री [हिं. गोला] (१) छोटा गोल पिंड। (२) ओषधि की बटी। (३) बालकों के खेलने का गोल पिंड। (४) गोली का खेल। (५) सीसे का गोल छर्रा जो बंदूक से चलाया जाता है।

मुहा.—गोली खाना—घायल होना। गोली बचना—संकट टल जाना। गोली मारना—परवाह न करना।

गोलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णुलोक, जो वैकुंठ के दक्षिण में बताया जाता है। (२) स्वर्ग। (३) ब्रजभूमि।

गोलोकेश—संज्ञा पुं. [सं. गोलोक + ईश] श्रीकृष्ण।

गोलोचन—संज्ञा पुं [सं. गोरोचन] एक सुगंधित द्रव्य।

गोवत—क्रि स. [हिं गोना] छिपाते हैं। उ.—कबहूँ नैन की कोर निहारत कबहूँ बदन पुनि गोवत—१९९६।

गोवति—क्रि स. स्त्री. [हिं. गोना] छिपाती है। उ.—सूरदास प्रभु तजो गर्व तैं नये प्रेम गति गोवति—१८००।

गोवध—संज्ञा पुं. [सं.] गाय की हत्या।

गोवना—क्रि. स. [हिं. गोना] (१) छिपाना। (२) खोना।

गोवर्द्धन—संज्ञा पुं [सं.] (१) वृन्दावन का एक पर्वत जिसे श्रीकृष्ण ने उँगली पर उठाया था। (२) मथुरा का एक प्राचीन नगर और तीर्थ।

गोविंद—संज्ञा पुं. [सं. गोपेंद्र, प्रा. गोविंद] (१) श्रीकृष्ण। (२) वेदांत का ज्ञाता। (३) बृहस्पति। (४) परब्रह्म। (५) गोशाला का अध्यक्ष।

गोविंदपद—संज्ञा पुं. [सं.] मोक्ष, मुक्ति।

गोवीथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्र मार्ग का एक अंश।

गोवै—क्रि स [हिं गोवना, गोना] छिपाता है, लुकाता है। उ.—माखन लागि उलूखल बाँधौ, सकल लोग ब्रज जोवै। निरखि कुरुख उन बालनि की दिसि, लाजनि अँखियनि गोवै—३४७।

गोश—संज्ञा पुं [फा.] कान, श्रवण।

गोशमायल—संज्ञा पुं [फा.] पगड़ी में लगा मोतियों का गुच्छा जो कान के पास रहता है।

गोशमाली—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) कान उमेठना। (२) कड़ी चेतावनी देना।

गोशा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कोना, कोण। (२) एकांत स्थान। (३) दिशा, ओर। (४) कमान के सिरे।

गोशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] गैयों के रहने का स्थान।

गोश्त—संज्ञा पुं. [फा.] मांस, आमिष।

गोष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गोशाला, (२) पशुशाला। (३) सलाह, परामर्श। (४) दल, मंडली।

गोष्ठशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] सभाभवन।

गोष्ठी—संज्ञा स्त्री [सं] (१) सभा, मंडली। (२) बात चीत। (३) सलाह, परामर्श।

गोष्पद—संज्ञा पुं. [सं] (१) गोशाला। (२) गाय के खुर के बराबर गढ़ा।

गोस—संज्ञा पु [सं] (१) एक झाड़। (२) प्रभात।

गोसई—संज्ञा स्त्री [देश] कपास का एक रोग।

गोसनि—संज्ञा पुं [फा गोशा + नि (प्रत्य.)] कमान के दोनो सिरो से। उ —यह अचरज सुगड़ो जिय मेरे वह छाँड़नि वह पोसनि। निपट निकामजानि हम छाँड़ी ज्यों कमान बिन गोसनि—१०३, ८८।

गोसमायल—संज्ञा पुं. [फा. गोशमायल] पगड़ी में लगी मोतियों की गुच्छी जो कानो के पास लटकती है। उ —पाग ऊपर गोसमयल रंग रंग रचि बनाइ —२३५०।

गोसव—संज्ञा पु [सं.] गोमेध।

गोसा—संज्ञा पुं [सं गो] उपला, कंडा।
संज्ञा पुं [हिं. गोशा] (१) कोना। (२) किनारा।

गोसाँई, गोसाई—संज्ञा पुं. [सं. गोस्वामी] (१) गैयों का स्वामी। (२) स्वर्ग का स्वामी, ईश्वर। (३) सन्यासियों का एक संप्रदाय। (४) विरक्त साधु। (५) वह जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। (६) मालिक, प्रभु।

गोसुत—संज्ञा पुं. [सं गो+सुत] गाय का बच्चा, बछड़ा। उ —(क) गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हयौ—१-१७। (ख) गोकुल पहुँचे जाइ गए बालक अपने घर। गोसुत अरु नर नारि मिली अति हेत लाइ गर।

गोसूक्त—संज्ञा पुं [सं] अथर्ववेद का एक अंश जिसमें ब्रह्मांड रचना का गाय के रूप में वर्णन है।

गोसैयाँ—संज्ञा पुं. [हिं. गोसाईं] प्रभु, नाथ।

गोस्वामी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसने इंद्रियों को जीता हो। (२) वैष्णवाचार्यों के वंशधर या गद्दी के अधिकारी।

गोह—संज्ञा स्त्री. [सं गोधा] एक जंगली जंतु।
संज्ञा पुं —उदयपुरी राजवंश का एक पूर्व पुरुष।

गोहन—संज्ञा पुं [सं. गोधन = गौओं का समूह] (१) संग, साथ। उ.—(क) भागि कहाँ बचौगे मोहन। पाछैं आइ गई तुव गोहन—१०-७६६। (ख) बरन बरन ग्वाल बने महरनंद गोर जने एक गावत एक नृत्यत एक रहत गोहन—२४२८। (ग) जाके दृष्टिपरे नदनंदन सोउ फिरत गोहन डोरी डोरी—१४६६। (२) साथी, सहचर। उ.—(क) सूरदास प्रभु गोहन गोहन की छवि बाढ़ी मेटति दुख निरखि नैन मैन के दरद को—पृ. ३५२ (८२)। (ख) बार बार भुज धरि अंकम भरि मिलि बैठे दोउ गोहन—पृ. ३१५।

गोहनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गोहन + इयाँ (प्रत्य)] साथ रहनेवाला, संगी, सहचर।

गोहर—संज्ञा स्त्री. [सं गोधा] बिसखोपरा जंतु।

गोहरा—संज्ञा पुं. [सं. गो + ईल्ल] कंडा, उपला।

गोहराना—क्रि अ. [हिं. गोहार] आवाज देना।

गोहरायौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. गोहराना] पुकारा, गोहार मचायी। उ —को यह लिये जात कहँ हमको कृष्ण-कृष्ण कहि गोहरायौ—२३१६।

गोहलोत—संज्ञा पु. [सं. गोह] गहलौत क्षत्रिय।

गोहार, गोहारि, गोहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गो + हार (हरण)] (१) पुकार मचाना, जोर से दुहाई देना, रक्षा या सहायता के लिए चिल्लाना। उ.—धावहु नंद गोहारि लगौ किन तेरौ सुत अँधवाइ उड़ायौ—१०-७७। (२) शोर गुल, कोलाहल। (३) भीड़ जो पुकार सुनकर इकट्ठा हो।

गोही—संज्ञा स्त्री [सं. गोपन] (१) दुराव, छिपाव। (२) छिपी हुई बात, गुप्त बात। उ.—अपनो बनिज दुरावत हौ कत नाउँ लियौ इतनौ ही। कहा दुरावत हौ मो आगे सब जानत तुव गोही—११०३। (३) महुए का बीज। (४) फलों का बीज, गुठली।

गोहुअन, गोहुवन—संज्ञा पुं [हिं. गेहूँ] एक साँप।

गोहुं—संज्ञा पुं. [सं. गोधूम] गेहूँ।
गोहेरा—संज्ञा पुं. [सं. गोधा] विसखोपरा जतु।
गौं—संज्ञा स्त्री. [सं. गम, प्रा. गँव] (१) सुयोग, सुअवसर। (२) मतलब, अर्थ। उ.—तुम तौ अलि उनहीं के संगी अपना गौं के टेकौ—३२८७।
मुहा०—गौं का—(१) विशेष कामका, उपयोगी। (२) स्वार्थी, मतलबी। गौं का यार (साथी)—मतलबी या स्वार्थी मित्र। गौं गाँठना (निकालना)—काम निकालना, स्वार्थ साधना। गौं पड़ना—गरज अटकना, काम पड़ना।
(३) ढब, चाल, ढंग। उ.—(क) यह सखि मैं पहिलै कहि राखी असित न अपने होहीं। सूर काटि जौ माथौ दीजै चलत आपनी गौं हीं—३०५६। (ख) हम बावरी त्यों न चलि जानै ज्यों गज चलत आपनी गौ हैं—३४२८। (४) पक्ष, पार्श्व।
गौंटा—संज्ञा पुं. [हि. गाँव+टा (प्रत्य०)] (१) छोटा गाँव। (२) गाँव के लाभ के लिए किया गया खर्च।
गौंहाँ—वि. [हि० गाँव+हाँ (प्रत्य.)] गाँव-संबंधी।
गौ—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाय, गैया।
गौख—संज्ञा स्त्री. [सं. गवाक्ष] (१) छोटी खिड़की, झरोखा। (२) बाहरी दालान, चौपाल, बैठक।
गौखा—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] झरोखा, छोटी खिड़की। संज्ञा पुं. [हिं. गौ=गाय+खाल] गाय का चमड़ा।
गौखी—संज्ञा स्त्री. [हि. गौखा] जूता।
गौगा—संज्ञा पु. [अ. गौगा] (१) शोरगुल, हो हल्ला। (२) अफवाह, जनश्रुति।
गौचरी—संज्ञा स्त्री. [हि. गौ+चरना] गाय चराने का कर जिससे कुछ भूमि चराई की छोड़ी जाती है।
गौड़—संज्ञा पु. [सं.] (१) प्राचीन वंग प्रदेश। (२) इस प्रदेश का निवासी। (३) ब्राह्मणों की एक जाति। (४) राजपूतों की एक जाति। (५) कायस्थों की एक जाति। (६) एक राग जो तीसरे पहर और संध्या को गाया जाता है।
गौड़िया—वि. [सं. गौड़+इया (प्रत्य.)] गौड़देशीय। यौ.—गौड़िया सम्प्रदाय—चैतन्य महाप्रभु का वैष्णव संप्रदाय।
गौड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुड़ से बनी मदिरा। (२) काव्य की परुषावृत्ति। (३) एक रागिनी।
गौड़ेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण चैतन्य स्वामी जो गौरांग महाप्रभु भी कहलाते हैं।
गौण—वि. [सं.] (१) अप्रधान, जो मुख्य न हो। (२) सहायक, संचारी।
गौणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जो मुख्य न हो। संज्ञा स्त्री.—लक्षणा का एक भेद।
गौतम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गोतम ऋषि के वंशज। (२) एक न्यायशास्त्र प्रणेता ऋषि। (३) बुद्ध देव। (४) सप्तर्षि मंडल का एक तारा। (५) वह पर्वत जिससे गोदावरी निकलती है। (६) एक ऋषि जिन्होंने अपनी पत्नी अहल्या को इन्द्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर का बना दिया था। (८) क्षत्रियों की एक जाति।
गौतमतिया—संज्ञा स्त्री. [सं. गौतम = हिं. तिया] गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या। इन्द्र ने छल करके इसका सतीत्व नष्ट किया, यह भेद जानने पर गौतम ने इसे शाप देकर पत्थर का बना दिया। भगवान् रामचन्द्र ने विश्वामित्र के साथ जाते समय इसका उद्धार किया।
गौतमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या। (२) कृपाचार्य की पत्नी। (३) गोदावरी नदी। (४) गौतम ऋषिकृत स्मृति। (५) दुर्गा।
गौद, गौदा—संज्ञा पुं. [देश.] (केले आदि) फलों का गुच्छा, घौद।
गौदान—संज्ञा पुं. [हिं गोदान] गाय को संकल्प करके दान करने की क्रिया।
गौदुमा—वि. [हिं. गाय + दुम + आ (प्रत्य.)] गाय की पूँछ की तरह मोटे से क्रमशः पतला होता जाना, उतार-चढ़ाव, गावदुम।
गौन—संज्ञा पु. [सं. गमन] जाना, चलना, यात्रा करना। उ.—(क) तात वचन रघुनाथ माथ धरि, जब बन गौन कियौ—६-४६। वि.—चचल, स्थिर।
गौनई—संज्ञा स्त्री. [सं. गायन] गान, संगीत।
गौनहर—संज्ञा स्त्री. [हि. गौनहारी] गाने बजानेवाली।
गौनहर, गौनहाई—वि. [हिं. गौना + हाई (प्रत्य.)] जिसका गौना हाल ही में हुआ हो।

गौनहार—संज्ञा स्त्री. [हिं. गौना + हार (प्रत्य)] वह स्त्री जो दुलहिन के साथ उसकी ससुराल जाय।

गौनहारिन, गौनहारी—संज्ञा स्त्री. [हि. गाना + हारी (वाली)] गाने बजाने का काम करनेवाली स्त्रियाँ।

गौना—संज्ञा पुं. [स. गमन] (१) गमन, प्रस्थान, जाना। उ.—(क) अका बकासुर तहिं सँहारयौ, प्रथम कियौ बन गौना—६०१। (ख) मो देखत अबहीं कियौ गौना—२४२१। (२) विवाह के बाद की एक रीति जिसमें वर वधू को ससुराल से बिदा करा कर घर ले आता है, मुकलावा, द्विरागमन।

गौने—क्रि. अ [सं गमन] गये, प्रस्थान किया। उ.—(क) की हरि आजु पंथ यहि गौने कीधौं स्याम जलद उनयौ—१६२८। (ख) सूरदास प्रभु मधुबन गौने तो इतनो दुख सहियत—२८५६।

गौमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं. गोमुखी] धन रखने की थैली।

गौर—वि. [स.] गोरे चमड़ेवाला, गोरा। उ.—गौर बरन मोरे देवर सखि, पिय मम स्याम सरीर—९-४४। (२) उजला, सफेद।

संज्ञा पु. [स] (१) लाल रंग। (२) पीला रंग। (३) चन्द्रमा। (४) सोना। (५) तौलने का तीन सरसों के बराबर भाग। (६) केसर। (७) एक मृग। (८) सफेद सरसों। (९) चैतन्य महाप्रभु का नाम।

संज्ञा पुं. [स. गौड़] गौड़।

संज्ञा पु [अ. गौर] (१) सोच-विचार, चिंतन। (२) ध्यान, ख्याल।

गौरता—संज्ञा स्त्री. [स] (१) गोरापन। (२) सफेदी।

गौरव—संज्ञा पुं [सं.] (१) महत्व, बड़प्पन। (२) भारीपन। (३) आदर, सम्मान। (४) उत्कर्ष।

गौरवान्वित, गौरवित—वि. [सं.] (१) महिमामय। (२) सम्मानित, मान्य।

गौराग—संज्ञा पु. [सं.] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) चैतन्य महाप्रभु।

गौरा—संज्ञा स्त्री. [सं. गौर] (१) गोरे रंग की स्त्री। (२) पार्वती जी। (३) हल्दी। (४) एक रागिनी।

संज्ञा पुं. [स. गोरोचन] एक सुगंधित द्रव्य।

गौरी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) गोरे रंग की स्त्री। (२) पार्वती जी। (३) आठ वर्ष की कन्या। (४) हल्दी। (५) तुलसी। (६) गोरोचन। (७) सफेद रंग की गाय। (८) गंगा नदी। (९) चमेली। (१०) पृथ्वी। (११) गुड़ से बनी शराब, गौड़ी। (१२) एक रागिनी जो श्रीराग की स्त्री मानी जाती है। उ.—(क) मालश्री राग गौरी अरु आसावरी राग—२२१३। (ख) बेनु पानि गहि मोको सिखावत मोहन गावन गौरी—२८७३।

गौरीचंदन—संज्ञा पुं [सं.] लाल चंदन।

गौरीज—संज्ञा पुं [सं. गौरी+ज] (१) अभ्रक। (२) कार्तिकेय। (३) गणेशजी।

गौरीनाथ, गौरीपति – संज्ञा पुं [सं.] शिव, महादेव। उ.—गौरीपति पूजति ब्रजनारि—७६६।

गौरीशंकर—संज्ञा पुं [स.] (१) महादेव। (२) हिमालय की सबसे ऊँची चोटी।

गौरीश, गौरीस—संज्ञा पु [स.] शिव, महादेव।

गौरैया—संज्ञा स्त्री.—एक काला जल-पक्षी।

गौला—संज्ञा स्त्री. [सं.] गौरी, पार्वती।

गौल्मिक—संज्ञा पुं. [सं] सिपाहियों के गुल्म का नायक।

गौवन—संज्ञा स्त्री. बहु [सं. गो+हि. वन, अन] गैयों ने। उ.—कमल-बदन कुँभिलात सबन के गौवन छाँड़ी तृन की चरनी—३३३०।

गौहर—संज्ञा पुं. [फा.] मोती, मुक्ता।

गौहरा—संज्ञा पु. [हि. गौ + हरा] गैयों का स्थान।

ग्याति—संज्ञा स्त्री. [हिं. जाति] वंश, कुल, जाति।

ग्यान—संज्ञा पु- [स. ज्ञान] जानकारी, ज्ञान।

ग्यारह—वि. [स. एकादश, प्रा. एगारस] दस और एक।

संज्ञा पु.—दस और एक सूचक संख्या।

ग्रंथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुस्तक। उ.—पहिले ही अति चतुर हुते अरु गुरु सब ग्रंथ दिखाये—३३६३। (२) गाँठ, ग्रंथि, गुत्थी। उ —जिय परी ग्रंथ कौन छोरे निकट ननँद न सास—३४८ (५७)। (३) गाँठ लगाने की क्रिया। (४) धन।

ग्रंथकर्ता, ग्रंथकार—संज्ञा पुं. [स.] ग्रंथ का रचयिता।

ग्रंथचुम्बक—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ+चुंबक = चूमनेवाला] वह पाठक जिसने ग्रंथ का अध्ययन और मनन भली भाँति न किया हो।

ग्रंथचुम्बन—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ + चुंबन] ग्रंथ का सरसरे ढंग से पाठ मात्र करना, अध्ययन-मनन न करना।

ग्रंथन—संज्ञा पुं [सं.] (१) दो चीजों को गाँठ देकर जोड़ना। (२) जोड़ना। (३) गूँथना।

संज्ञा पु. बहु. [सं. ग्रंथ] अनेक ग्रंथ।

ग्रंथना—क्रि. स. [हि. ग्रथन] (१) जोड़ना, बाँधना। (२) गूँथना।

ग्रंथसंधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] ग्रंथ-विभाग अध्याय आदि।

ग्रंथसाहब—संज्ञा पुं. [हि. ग्रंथ + साहब] सिक्खों का धर्मग्रंथ जिसमें उनके गुरुओं के उपदेश संकलित हैं।

ग्रंथालय—संज्ञा पुं. [सं] पुस्तकालय।

ग्रंथि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गाँठ। उ.—कारी कारी कुटिल अति कान्हर अन्तर ग्रंथि न खोलै—३०६१। (२) बंधन। (३) मायाजाल। (४) गाँठ होने का रोग (५) कुटिलता।

ग्रंथित—वि. [सं. ग्रंथन] (१) गूँथा हुआ। (२) जिसमें गाँठ लगी हो। उ.—जैसो कियो तुम्हारे प्रभु अलि तैसो भयो तत्काल। ग्रंथित सूत धरत तेहि ग्रीवा जहाँ धरत बनमाल—३३३३।

ग्रंथिबंधन—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह के समय वर-कन्या के दुपट्टे का परस्पर गँठबंधन।

ग्रंथिभेद—संज्ञा पु. [सं.] गिरहकट।

ग्रंथिल—वि. [सं.] गँठीला, गाँठदार।

संज्ञा पु.—(१) करीलवृक्ष। (२) अदरक। (३) कटायवृक्ष। (४) चोरक नामक गंधद्रव्य।

ग्रंथै—क्रि. स. [हि ग्रंथना] गुहते या गूँथते है। उ.—जा सिर फूल फुलेल मेलि कै हरि-कर ग्रंथै मोरी

ग्रथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रथि = कुटिलता] (१) छल-कपट। उ.—ऊधो री मधुरा मैं दो हुते। वै अक्रूर ए ऊधो सजनी जानत नीके ग्रथ—३०४६। (२) छल कपट करनेवाला व्यक्ति। (३) दुष्ट व्यक्ति।

ग्रथित—वि. [हि. गुँथना] गुँथा हुआ, गुंफित। उ.—ऐसें में सबहिन तें न्यारी, मनिन ग्रथित ज्यों सूत—१-३८।

ग्रसत—क्रि. स. [हि. ग्रसना] पकड़ लेता है, ग्रस लेता है, पकड़ने पर। उ.—ग्राह ग्रसत गज कौ जल बूड़त, नाम लेत वाको दुख टारयौ—१-१४।

ग्रसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निगलना, भक्षण करना। (२) पकड़, ग्रहण। (३) चंगुल में फाँसना। (४) ग्रास। (५) ग्रहण।

ग्रसना—क्रि. स. [सं. ग्रसन] (१) बुरी तरह पकड़ना, चंगुल में फाँसना। (२) सताना।

ग्रसि—क्रि. स. [सं. ग्रसन, हिं. ग्रसना] ग्रास करके, दाँत से पकड़कर। उ.—(क) कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न राम—९-१४८। (ख) सिंह को सुत हर-भूषण ग्रसि ज्यों सोइ गति भई हमारी—सा. उ. २६।

ग्रसित—वि [हि. ग्रसना] (१) ग्रसा हुआ, जकड़ा जाकर। उ.—(क) काम-क्रोध-मद लोभ ग्रसित हैं विषय परम विष खायौ—१-१११। (ख) हरि उर मोहनी बेलि लसी। तापर उरग ग्रसित तव सोभित पूरन अंस ससी सा. उ. २५। (२) पीड़ित। (३) खाया हुआ।

ग्रसिहै—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] ग्रस लेगा, पकड लेगा। उ.—रूप, जोबन सकल मिथ्या, देखि जनि गरबाइ। ऐसेहिं अभिमान आलस, काल ग्रसिहै आइ—१-३१५।

ग्रसी क्रि. स. [हिं. ग्रसना] ग्रसता है। उ.—चतुर्भुवा उरहार ग्रसी ज्यों छिन पुनि या बपु रेख—सा. उ. २६।

वि. [हिं. ग्रस्त] ग्रसित, ग्रस्त।

ग्रस्त—वि. [हिं. ग्रसना] (१) जकड़ा या पकड़ा हुआ। (२) पीड़ित। (३) खाया हुआ, ग्रसित।

ग्रस्यौ—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] बुरी तरह पकड़ लिया, ग्रस लिया। उ.—ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यौ पाताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ—१-५।

ग्रह—संज्ञा पुं [सं] (१) वे तारे जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं। (२) नौ की संख्या। (३) ग्रहण करना। (४) कृपा। (५) चंद्र या सूर्य ग्रहण। (६) राहु।

वि.—बुरी तरह जकड़ने या तंग करनेवाला।

ग्रहक—संज्ञा पु. [सं] ग्रहण करनेवाला, ग्राहक।

ग्रहण—संज्ञा पु. [सं] (१) सूर्य आदि ज्योति-पिंडों के ज्योति मार्ग में किसी अन्य आकाशचारी पिंड के आ जानेके कारण होनेवाली रुकावट या ज्योति-अवरोध। (२) पकड़ने या लेने की क्रिया। (३) स्वीकृति, मंजूरी। (४) अर्थ, तात्पर्य, मतलब।

ग्रहणि, ग्रहणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शरीर की एक नाड़ी। (२) एक रोग।

ग्रहणीय—वि. [सं] ग्रहण करने योग्य।

ग्रहदशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्रहों की स्थिति। (२) ग्रहों की स्थिति के अनुसार मनुष्य की भली-बुरी दशा। (२) अभाग्य, बुरी दशा।

ग्रहपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) शनि। (३) आक या मदार का वृक्ष।

ग्रहपति-सुत-हित अनुचर को सुत—संज्ञा पुं [सं.] ग्रहपति = सूर्य + सुत (सूर्य का पुत्र=सुग्रीव) + हित = मित्र (सुग्रीव का मित्र राम) + अनुचर (राम का अनुचर या सेवक हनुमान) + सुत (हनुमान का सुत या पुत्र मकरध्वज और कामदेव का भी एक नाम है मकरध्वज)]। काम उ.—ग्रहपति सुत-हित-अनुचर कौ सुत जारत रहत हमेस—सा. २७।

ग्रहवसु—संज्ञा पुं [सं. ग्रह-वसु (वसु आठ हैं। अतः आठवाँ ग्रह हुआ राहु। फिर राहु से अर्थ लिया राह)] राह, रास्ता। उ.—ग्रहवसु मिलत संभु की सैना चमकत चित न चितैहै—सा. १०।

ग्रहमुनि-दुत—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रह+मुनि (मुनि सात हैं; अतः ग्रह-मुनि का अर्थ हुआ सूर्य से सातवाँ ग्रह शनि जिसका दूसरा नाम है मंद) + द्युति = प्रकाश] मंद प्रकाश। उ.—ग्रहमुनि-दुत हित के हित कर ते मुकर उतारत नाथे—सा. ६।

ग्रहमुनि-पिता-पुत्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रह + मुनि मुनि सात हैं, अतः ग्रहमुनि का अर्थ हुआ सातवाँ ग्रह = शनि) + पिता (शनि के पिता=सूर्य)+पुत्रिका सूर्य की पुत्रिका या पुत्री यमुना)] यमुना नदी। उ.—ग्रहमुनि पिता-पुत्रिका को रस अति अदभुत गति मातो—सा. ११।

ग्रहमैत्री—संज्ञा. स्त्री. [सं.] वर-कन्या के ग्रहों की अनुकूलता जिसका विचार विवाह के समय होता है।

ग्रहयज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] ग्रहों की उग्रता या कोप-शांति के लिए किया गया पूजन या यज्ञ।

ग्रहराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) चंद्रमा। (३) बृहस्पति।

ग्रहवेध—संज्ञा पुं. [सं.] ग्रहों की स्थिति, गति आदि का परिचय वेधशाला के यंत्रों द्वारा जानना।

ग्रहित—क्रि. स. [हिं. ग्रहना] पकड़ा, ग्रहण किया, आच्छादित किया, अवरोध किया। उ.—चारु स्रवननि ग्रहित कीनी भ्रूजक ललित कपोल—१३५१।

ग्रहीत—वि. [हिं. ग्रहण] पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ, स्वीकृत, अंगीकृत।

ग्रहीता—वि. पुं. [हिं. ग्रहीत] लेने या ग्रहण करनेवाला।

ग्राम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटी बस्ती, गाँव। (२) बस्ती, आबादी, जनपद। (३) समूह, ढेर। (४) शिव। (५) संगीत का सप्तक।

ग्राममृग, ग्रामसिंह—संज्ञा पुं. [सं.] कुत्ता।

ग्रामिक—वि. [सं.] ग्राम-संबंधी, गाँव का।

ग्रामी—वि. [सं. ग्राम] गाँव का उ.—जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोनहरामी। भरि भरि द्रोह विषै कौं धावत, जैसें सूकर-ग्रामी—१-१४८।

ग्रामीण—वि. [सं.] (१) देहाती (२) गँवार। संज्ञा पुं. (१) मुरगा। (२) कुत्ता।

ग्राम्य—वि. [सं.] (१) गाँव-सम्बन्धी, गाँव का। (२) मूर्ख। (३) असली, प्राकृत।

संज्ञा पुं.—(१) काव्य का एक दोष, जिसमें ग्रामीण विषयों या प्रयोगों की अधिकता हो। (२) अश्लील प्रयोग। (३) बैल आदि गाँव के पालतू पशु।

ग्राव—संज्ञा पु—(१) ओला। (२) पत्थर। (३) पहाड़ी।

ग्रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कौर, गस्सा, निवाला। (२) पकड़ने की क्रिया। (३) ग्रहण लगना।

ग्रासक—वि. [सं.] (१) पकड़नेवाला। (२) निगलने वाला। (३) छिपाने या दबानेवाला।

ग्रासत—क्रि. स. [हिं. ग्रासना] खाते हैं, भोजन करते हैं। उ.—सालन सकल कपूर सुवासत। स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत—३९६।

ग्रासना—क्रि. स. [सं. ग्रास] (१) पकड़ना, धरना। (२) निगलना। (३) कष्ट देना, सताना।

ग्रासित—वि. [हिं. ग्रासना] ग्रसा हुआ, जकड़ा या फँसा हुआ। उ.—इहिं कलिकाल-व्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७।

ग्रासै—क्रि. स. [हिं. ग्रासना] ग्रस सकता है, निगलता है। उ.—मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर—१-६१। (२) कष्ट देता या सताता है।

ग्रास्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. ग्रासना] ग्रस लिया, निगल लिया। उ.—सबनि सनेहौ छाँड़ि दयौ। हा जदुनाथ जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२६८।

ग्राह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगर, घड़ियाल। (२) ग्रहण। (३) पकड़ लेना। (४) ज्ञान। (५) ग्रहण करनेवाला, ग्राहक।

ग्राहक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रहण करने या लेने वाला। (२) खरीदनेवाला। (३) एक साग।

ग्राहना—क्रि. स. [सं. ग्रहण] लेना, ग्रहण करना।

ग्राही—संज्ञा पुं. [सं.] ग्रहण या स्वीकार करनेवाला व्यक्ति।

ग्राह्य—वि. [सं.] (१) लेने योग्य। (२) मानने या स्वीकार करने योग्य। (३) जानने योग्य।

ग्रीखम—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीष्म] गरमी की ऋतु।

ग्रीव, ग्रीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गर्दन। उ.—ग्रीव कर परसि पग पीठि तापर दियौ उर्बसी रूप पटतरहि दीन्हीं—२५८८।

ग्रीवी—संज्ञा पु. [सं. ग्रीविन्] (१) वह जिसकी गर्दन लंबी हो। (२) ऊँट।

ग्रीषम—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीष्म] (१) गरमी की ऋतु। (२) वह जो उष्ण हो।

ग्रीषमरिपुन—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीष्म=गर्मी+रिपु=शत्रु (गर्मी का शत्रु पयोधर ; पयोधर के दो अर्थ हैं—(१) एक बादल। (२) स्तन, यहाँ दूसरा अर्थ लिया गया है)] स्तन, कुच। उ.—सुद्ध आखर भरत ग्रीषम रिपुन मध्ये साप—सा.-२।

ग्रीष्म—संज्ञा पु. [सं.] (१) गर्मी की ऋतु। (२) वह जो गर्म या उष्ण हो।

ग्रैवेयक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गले में पहनने का गहना। (२) हाथी की हैकल।

ग्रेह—संज्ञा पुं. [सं. गृह., हिं. गेह] घर। उ.—नीकन अदभुत बात लई। आपु ना तजत ग्रेह पुर में करवर सूर सई—सा. ११५।

ग्रेही—संज्ञा पु. [हिं. गेह, ग्रेह] गृहस्थ। उ.—सहज माधुरी अंग अंग प्रति सहज सदा वन ग्रेही—१४८५।

ग्लान—वि. [सं.] (१) रोगी, बीमार। (२) थका हुआ, क्लांत, श्रांत। (३) कमजोर, निर्बल।

संज्ञा स्त्री.—दीनता, निरीहता।

ग्लानि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मानसिक शिथिलता, अनुत्साह, अक्षमता। (२) अपने अनुचित कार्यों के विचार से उत्पन्न खेद या खिन्नता। उ.—ताकैं मन उपजी तब ग्लानि। मैं कीन्ही बहु जिय की हानि—४-१२। (३) बीभत्स रस का एक स्थायी भाव।

ग्वाँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. गुड] (१) घेरा, वृत्त। (२) मकानादि के चारो ओर का बाड़ा। (३) बाड़े या चारदीवारी से घिरा हुआ स्थान।

ग्वाच्छ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] छोटी खिड़की, झरोखा। उ.—सखा सहित गए माखन-चोरी। देख्यौ स्याम गवाच्छ पंथ ह्वै, मथति एक दधि भोरी—१०-२७०।

ग्वार—संज्ञा पुं. [हिं. ग्वाल] अहीर, ग्वाल। उ.—(क) सोर सुनि नंद-द्वार आए बिकल गोपी-ग्वाल—३५७। (ख) उत होरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नंद नहीं जाये तुम महरि गुनन भारी—२४२६।

संज्ञा स्त्री. [सं. गोराणी] एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी और बीजों की दाल होती है।

ग्वारिन, ग्वारी—संज्ञा स्त्री [हिं. ग्वार] एक पौधा।

ग्वारिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ग्वालिन] अहीरिन। उ.—ढूँढ़त फिरत ग्वारिनी हरि कौं, कितहूँ भेद नहिं पावति—४५६।

ग्वाल—संज्ञा पु. [सं. गो + पाल, प्रा. गोवाल] (१) गाय पालने-चरानेवाले, अहीर। (२) ब्रज के गोपजातीय बालक जो श्रीकृष्ण के बाल-सखा थे। (३) दो अक्षरों का एक छन्द।

ग्वालककड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. ग्वाल+ककड़ी] जंगली चिचड़ा नामक ओषधि।

ग्वालदाड़िम—संज्ञा पु. [हिं. ग्वाल + दाड़िम] एक पेड़।

ग्वालनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ग्वाल] अहीरिन। उ.—गूढ़ोत्तर अस कहत ग्वालिनी—सा. उ. ८०।

ग्वाला—संज्ञा पुं. [हिं. ग्वाल] अहीर।

ग्वालिन, ग्वालिनियाँ, ग्वाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ग्वाल]

(१) ग्वाल जाति की स्त्री, अहीरिन (२) गँवार या मूर्ख स्त्री। उ. (क) हम ग्वाली तुम तरनि रूप रस रवि-ससि मोहै—११४१। (ख) जाको ब्रह्मपार न पावत ताहि खिलावति ग्वालिनियाँ—१०-१३२।

संज्ञा स्त्री. [हि. ग्वार] ग्वार नामक पौधा।

संज्ञा स्त्री. [सं. गोपालिका] एक बरसाती कीड़ा।

ग्वाह—संज्ञा पुं. [हि. गवाह] गवाह, साक्षी।

ग्वैठना—क्रि. स. [सं. गुंठन, हिं. गुमेठना] मरोड़ना, ऐंठना, घुमाना, टेढ़ा करना।

ग्वैंठा —वि. [हि ऐंठा (अनु) ऐंठा हुआ, टेढ़ा-मेढ़ा।

संज्ञा पु. [हि गोंइठा] गोबर का कंडा, उपला।

ग्वैंड़—संज्ञा स्त्री. सीमा हद।

ग्वैंड़े,ग्वेंडा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँव+इड़ा]गाँव के आसपास की भूमि। उ.—(क) गोकुल के ग्वैंड़े एक साँवरो सो ढोटा माई—८७२। (ख) निकसि गाँव के ग्वैंड़े आये—१०१८।

क्रि. वि.—निकट, पास, करीब।

ग्वैयाँ—संज्ञा स्त्री. पुं. [हि. गोइनियाँ, गोइयाँ] (१) साथ का खिलाड़ी। उ.—रहठि करैं तासौं को खेलै रहे बैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ—१०-२४५। (२) सखा, साथी, सहचर। उ.—सूधी प्रीति न जसुदा जानैं, स्याम सनेही ग्वैयाँ—३७१।

घ

घ—हिंदी वर्णमाला का चौथा व्यंजन, उच्चारण जिह्वामूल या कंठ से होता है, स्पर्श वर्ण; इसमें घोष, नाद, संवार और महाप्राण प्रयत्न होते हैं।

घँगोल—संज्ञा पुं [देश.] कुमुद।

घँघरा—संज्ञा पुं. [हिं. घघरा] स्त्रियों का लहँगा।

घँघराघोर—संज्ञा पु. [देश.] छुआछूत न मानना।

घँघरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घघरी] छोटा लहँगा।

घँघोरना, घँघोलना—क्रि. स. [हि. घन + घोलना] (१) पानी में कुछ घोलना। (२) पानी गंदा करना।

घंट—संज्ञा पुं [सं. घट] (१) घड़ा। (२) जलपात्र जो मृतक-क्रिया में पीपल से बाँधा जाता है।

घंट, घंटा—संज्ञा पु [स. घंटा] (१) धातु के औंधे पात्र में लगे लंगर या लट्टू से बजनेवाला बाजा। उ.—घंट बजाइ देव अन्हवायौ—१० २६१। (२) धातु का गोल पत्तर जो मुँगरी से बजाया जाता है।

मुहा०—घंटे मोरछल से उठाना—किसी वृद्ध वृद्धा के शव को बाजे-गाजे से श्मशान ले जाना।

(३) घड़ियाल जो समय की सूचना के लिए बजाया जाता है। (४) छोटी छोटी घंटियाँ जो पशुओं के गले में बाँधी जाती हैं। उ.—कटि किंकिन नूपुर बिछुयनि धुनि। मनहु मदन के गज-घंटा धुनि—१००५। (५) घंटे का शब्द या ध्वनि। (६) दिन रात का चौबीसवाँ भाग, साठ मिनट का समय। (७) ठेंगा, सींगा।

मुहा०—घंटा दिखाना—कोई चीज माँगने पर न देना, सींगा दिखाना। घंटा हिलाना—व्यर्थ के काम में समय नष्ट करना।

घंटाकरन घंटाकर्ण—संज्ञा पुं. [सं. घंटा + कर्ण] शिव का एक उपासक जो कान में इसलिए घंटा बाँधे रहता था कि विष्णु या राम का नाम लिये जाने पर उसे हिला दूँ और वह नाम सुन न सकूँ।

घंटाघर—संज्ञा पु [हिं. घंटा + घर] वह ऊँचा स्थान जिस पर बहुत बड़ी घड़ी लगी हो।

घटिका—संज्ञा स्त्र. [स.] (१) छोटा घटा। (२) घुँघरू।

संज्ञा स्त्री.—छोटे छोटे लंबे घड़े जो रहँट में लगे रहते हैं, घरिया। उ—सत्तन कूप की रहँट घटिका राजत सुभग समाज।

घँटियार—संज्ञा पु [हिं घँटी] पशुओं के गले में काँटे पड़ने का एक रोग।

घंटी—संज्ञा स्त्री. [स. घटिका] छोटी लुटिया।

संज्ञा स्त्री [सं. घटा] (१) बहुत छोटा घटा। (२) घटी बजने का शब्द। (३) घुँघरू। (४) गले की हड्डी का उभरा हुआ भाग। (५) गले का कौआ।

घटील—संज्ञा स्त्री. [देश] एक घास।

घई—संज्ञा स्त्री. [सं. गंभीर] (१) पानी का भँवर या

चक्कर, प्रवाह। (२) थूनी, टेक।
वि. [सं. गंभीर] गहरा, अथाह।
घउरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घवरि] फल पत्तियों का गुच्छा।
घघरा—संज्ञा पुं [हि. घन + घेरा] स्त्रियों का लहँगा।
घघरी—संज्ञा स्त्री. [हि. घघरा] छोटा लहँगा।
घचाघच—संज्ञा स्त्री. [अनु.] नरम चीज में नुकीली चीज घुसने या धँसने का शब्द।
घट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, जलपात्र, कलसा। उ.—(क) माधौ, नैकु हटकौ गाइ। ···। अष्टदस घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ—१-५६। (ख) नैन घट घटत न एक घरी। कबहुँ न मिटत सदा पावस ब्रज लागी रहत झरी—३४५५। (२) पिंड, शरीर। (३) मन, हृदय। उ.—(क) जो घट अंतर हरि सुमिरै। ताको काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै—१-८२। (ख) वै अबिगत अबिनाशी पूरन सब घट रह्यौ समाइ—२६८८।
मुहा०—घट में बसना (बैठना)—(१) मन में बसना, ध्यान रहना। (२) बात समझ में आ जाना।
वि.—[हि. घटना] कम, थोड़ा, छोटा।
घटक—संज्ञा पु. [स.] (१) मध्य में होनेवाला, मध्यस्थ। (२) विवाह ते करानेवाला, बरेखिया। (३) दलाल। (४) चतुर व्यक्ति। (५) वंश-परपरा बतानेवाला. (६) घटा। (७) दो पक्षों का मध्यस्थ।
घटकना—क्रि. स. [हि. घूँटना] पी जाना।
घटकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] कुंभकर्ण।
घटका, घटकी—संज्ञा पु. [अनु घर्र घर्र] कफ रुकना।
मुहा०—घटका लगना—मरते समय कफ रुकना।
घटकार—संज्ञा पु. [सं.] कुम्हार।
घटज—सज्ञा पु. [सं. घट + ज] अगस्त्य मुनि।
घटत—क्रि.अ. पुं. [हिं. घटना] कम होता है, क्षीण होता है, घटते-घटते। उ.-(क) हमारे निर्धन के धन राम। चोर न लेत, घटत नहि कबहूँ, आवत गाढ़े काम—१६२। (ख) नैन घट घटत न एक घरी। कबहुँ न मिटत सदा पावस ब्रज लागी रहत झरी—३४५५। (ग) दुतिया चद बहुत ही बाढ़े घटत घटत घटि जाइ—१-२६५।
घटति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. घटना] कम या क्षीण होती है। उ.—(क) सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यों अजुलि पानी—१-१५६। (ख) जिह्वास्वाद, इंद्रियनि-कारन, आयु घटति दिन मान—१३०४।
घटती—संज्ञा स्त्री. [हि. घटना] (१) कमी, कोर-कसर।
मुहा०—घटती का पहरा—अवनति के दिन।
(२) हीनता, अप्रतिष्ठा। उ.—घटती होइ जाहि ते अपनी कीजै ताको त्याग—१०६५।
घटदासी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नायक नायिका का मेल करानेवाली। (२) कुटनी।
घटन संज्ञा पुं. [सं.] (१) गढ़ा जाना। (२) होना, उपस्थित होना।
घटना—क्रि. अ. [सं. घटन] (१) होना, घटित होना। (२) मेल मिल जाना। (३) उपयोग में आना।
क्रि. अ. [हिं. कटना] कम या क्षीण होना।
संज्ञा स्त्री. [सं.] होनेवाली बात, वाकया।
घटबढ़—संज्ञा स्त्री. [हि. घटना + बढ़ना] कमीबेशी।
वि.— कमबेश, न्यूनाधिक, कम ज्यादा।
घटयोनि—सज्ञा पु [सं. घट + योनि] अगस्त्य मुनि।
घटवाई—सज्ञा पु. [हिं. घाट + वाई] (१) घाट का कर लेनेवाला। (२) कर या तलाशी के लिए रोकनेवाला। उ.—आवत जात न पावत कोऊ तुम मग में घटवाई। सूर स्याम हमको बिरमावत खीझत बहिनी माई—११४४।
संज्ञा स्त्री. [हि. घटना] कम करवाई।
घटवाना—क्रि. स. [हि घटाना का प्रे.] कम कराना।
घटवार, घटवाल—सज्ञा पुं [हिं. घट + वाला] (१) घाट का कर या महसूल उगाहनेवाला। (२) मल्लाह, केवट। (३) घाट पर दान लेनेवाला ब्राह्मण, घाटिया। (४) घाट का देवता।
घटवारिया, घटवालिया—संज्ञा पु [हिं. घाट + वाला] नदी के घाट पर बैठकर दान लेनेवाला पंडा।
घटवाही—सज्ञा स्त्री. [हिं. घट] घाट का कर।
घटसंभव—सज्ञा पुं. [सं.] अगस्त्य मुनि।
घटसुत—संज्ञा पुं. [सं. घट + सुत] अगस्त्य ऋषि जो घट से उत्पन्न माने जाते हैं।

घट-सुत-अरितनयापति—संज्ञा पुं. [सं. घटसुत = अगस्त्य ऋषि + अरि=शत्रु (अगस्त्य का शत्रु समुद्र) + तनया (समुद्र की पुत्री लक्ष्मी) + पति (लक्ष्मी के पति विष्णु = श्रीकृष्ण)] श्रीकृष्ण। उ.—घटसुतअरितनयापति सजनी नाहिं नेह निबहो री—सा. उ. ५१।

घटसुत-असनसुत—संज्ञा पुं. [सं. घटसुत = अगस्त्य ऋषि + असन = भोजन (अगस्त्य ऋषि का भोजन समुद्र जिसका उन्होंने पान किया था) + सुत (समुद्र का पुत्र, चंद्रमा)] चंद्रमा। उ.—घटसुत असन समै सुत आनन अमीगलित जैसे मेत—सा. २६।

घटस्थापन—संज्ञा पु. [सं.] (१) किसी मंगल कार्य के पूर्व जल से भरा घड़ा पूजन के स्थान पर स्थापित करना। (२) नवरात्र का पहला दिन जब घट की स्थापना होती है।

घटहा—संज्ञा पुं. [हि. घाट + हा (प्रत्य.)] (१) घाट का ठेकेदार। (२) नदी पार पहुँचानेवाली नाव।

घटा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उमड़े हुए मेघ, घिरे हुए बादल, मेघमाला। उ.—उडत फूल उड़गन नभ अंतर, अंजन घटा घनी—२-२८। (२) समूह।

घटाई—क्रि. स. स्त्री. [हिं घटाना] कम की, क्षीण कर दी। उ.—नैतिक राम कृपन, ताकी पितु मातु घटाई कानि—६ ७७।

संज्ञा स्त्री. [हि. घटना+ई (प्रत्य.)] (१) हीनता। (२) अप्रतिष्ठा, बेइज्जती।

घटाटोप—संज्ञा पु. [सं.] (१) बादलों की चारो ओर घिरी हुई घटा। (२) गाड़ी, पालकी आदि को ढकनेवाला कपड़ा या ओहार। (३) चारो ओर से घेर लेनेवाला दल या समूह।

घटाना, घटावना—क्रि. स. [हिं. घटना] (१) कम करना। (२) निकाल लेना। (३) अपमान या अप्रतिष्ठा करना।

क्रि. स. [सं. घटन] (१) घटित करना। (२) भाव, अर्थ अथवा परिणाम के विचार से ठीक ठीक सिद्ध करना या पूरा उतारना।

घटाव—संज्ञा पु. [हिं. घटना] (१) कमी, न्यूनता। (२) अवनति, पतन। (३) नदी का घटना।

घटावत—क्रि. स. [हि. घटाना] कम करते या घटाते हैं। उ.—बहुत कानि मैं करी सजनी अब देखौ मर्याद घटावत—पृ. ३२६।

घटावै—क्रि. स. [हिं. घटना] कम या क्षीण करे। उ.—ऐसौ को अपने ठाकुर कौ इहिं विधि महत घटावै—१-१६२।

घटि—वि [हिं. घटना] (१) कम, हीन, घटकर। उ.—(क) अजामिल गनिका हैं कहा मैं घटि कियौ, तुम जो अब सूर चित तैं बिसारे—१-१२०। (ख) मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं—१ १३७। (ग) दुतिया-चंद बढ़त ही बाढ़ै, घटत घटत घटि जाइ—१-२६५। (घ) विधि-मर्यादा लोक की लज्जा तृन हूँ ते घटि मानैं—पृ. ३४१ (१३)। (२) तुच्छ, नीच, गिरी हुई। उ.—(क) डर पावहु तिनको जे डरपहिं तुम ते घटि हम नाहीं—१११९। (ख) कहाहम या गोकुल की गोपी बरनहीन घटि जाति—३२२२।

घटिक—संज्ञा पुं. [सं.] घंटा बजानेवाला।

घटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक घडी (२४ मिनट) का समय। (२) घड़ी यंत्र। (३) छोटा घड़ा।

घटित—वि. [सं.] (१) बना या रचा हुआ, रचित। (२) (बात या घटना) जो हुई हो। (३) भाव, अर्थ आदि के विचार से ठीक उतरा हुआ।

घटिताई—संज्ञा स्त्री [हिं. घटी] कमी, त्रुटि। उ.—रनहूँ मैं घटिताई कीन्हीं। रसना, स्रवन, नैन के होते की रसनाहीं को नहिं दीन्हीं।

घटिया—वि. [हिं. घट + इया (प्रत्य.)] (१) कम मोल का, सस्ता। (२) तुच्छ, नीच।

घटिहा—वि. [हिं. घात + हा (प्रत्य.)] (१) मौका देखकर स्वार्थ साधनेवाला। (२) चतुर। (३) धोखेबाज। (४) आचरणहीन। (५) दुष्ट, दुखदायी।

घटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक घड़ी (२४ मिनट) का समय। (२) घड़ी यंत्र। (३) घंटा घड़ी। (४) रहँट की घरिया।

संज्ञा स्त्री. [हिं. घटना] (१) कमी, हानि, घाटा।

मुहा.—घटी आना (पड़ना)—हानि होना।

क्रि. अ.—कम हुई, क्षीण हुई। उ.—हृदय की कबहुँ न जरनि घटी। बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी—१-६८।

घटूका—संज्ञा पुं. [सं. घटोत्कच] घटोत्कच नामक भीमसेन का पुत्र जो हिडिंबा से पैदा हुआ था।

घटै—क्रि. अ. [हि. कटना] (१) कम होता है, छोटा होता है, क्षीण होता है, घटता है। उ.—(क) घटै पल-पल, बढै छिन-छिन, जात लागि न बार—१८८। (ख) ब्रह्मज्ञान कानि करी, बल करि नहिं बाँध्यौ। कैसैं परताप घटै, रघुपति आराध्यौ—६-६७। (२) बीते, समाप्त हो, व्यतीत हो। उ.—नींद न परै, घटै नहिं रजनी व्यथा विरह-ज्वर भारी—२७८२।

घटैगौ—क्रि. अ. [हि. घटना] (१) कम होगा, क्षीण होगा। (२) हानि या घाटा होगा, छोटा या तुच्छ हो जायगा। उ.—इहि बिधि कहा घटैगौ तेरौ? नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ—१-२६६।

घटो—संज्ञा पुं. [सं. घट] घड़ा, कलश।

घटोत्कच—संज्ञा पुं. [सं.] भीमसेन का एक पुत्र जो हिडिंबा राक्षसी से पैदा हुआ था।

घटोद्भव—संज्ञा पुं. [सं घट + उद्भव] अगस्त्य मुनि।

घटोर—संज्ञा पुं [सं. घटोदर] मेढ़ा, भेड़।

घट्ट—संज्ञा पुं. [स.] घाट।

घट्टकर—संज्ञा पु. [हि. घाट+कर] घाट का कर।

घट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. घटना] (१) घाटा, हानि। (२) कमी, घटी (३) दरार, छेद। (४) घट्टा।

घट्टा—संज्ञा पुं. [सं. घट्ट] हाथ-पैर आदि में अधिक या नये काम के कारण पड़ जानेवाला कड़ा या उभड़ा हुआ चिन्ह।

घड़घड़—संज्ञा पुं. [अनु.] घड़घड़ाने का शब्द।

घड़घड़ाना—क्रि. अ. [अनु] गड़गड़ाने का शब्द होना।
क्रि. स.—गड़गड़ाने का शब्द करना।

घड़घड़ाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु घड़घड़] (१) घड़घड़ शब्द होने का भाव। (२) बादल गरजने या गाड़ी चलने का शब्द।

घड़त—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़त] बनावट, ढाँचा।

घड़नई, घड़नैल—संज्ञा पुं. [हि. घड़ा + नैया (नाव)] बाँस में घड़े बाँधकर बनाया हुआ नाव का ढाँचा।

घड़ना—क्रि. स. [हि. गढ़ना] रचना, बनाना।

घड़ा—संज्ञा पुं. [सं. घट] मिट्टी का गगरा।
मुहा.—घड़ों पानी पड़ना—लज्जा के कारण सिर नीचा हो जाना, बहुत लज्जित होना।

घड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हि. गढ़ाई] गढ़ने की क्रिया।

घड़ाना—क्रि. स. [हि. गढ़ाना] गढ़वाना।

घड़ामोड़—वि. [हिं. गढ़+मोड़ना] शूरवीर।

घड़िया—संज्ञा स्त्री. [सं. घटिका] (१) मिट्टी का एक पात्र जिसमें चाँदी गलायी जाती है, घरिया। (२) मिट्टी का छोटा प्याला। (३) शहद का छत्ता। (४) गर्भाशय। (५) रहँट की ठिलियाँ।

घड़ियाल—संज्ञा पुं. [स. घटिकालि, प्रा० घड़िआलि=घंटों का समूह] थालीनुमा बड़ा घंटा।
संज्ञा पुं. [हि. घड़ा + आल = वाला] एक बड़ा जलजंतु, ग्राह।

घड़ियाली—संज्ञा पुं. [हि. घड़ियाल] घंटा बजानेवाला।
संज्ञा स्त्री—घंटा जो पूजन में बजाया जाता है।

घड़िला—संज्ञा पुं [हि. घड़ा] छोटा घड़ा।

घड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. घटी] (१) २४ मिनट का समय।
मुहा०—घड़ी-घड़ी—बार बार। घड़ी तोला, घड़ी माशा—कभी एक बात कभी दूसरी। घड़ी गिनना—(१) उत्कंठा से प्रतीक्षा करना। (२) मृत्यु का आसरा देखना। घड़ी में घड़ियाल है—(१) जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं। (२) जरा देर में उलट-पुलट हो जाती है। घड़ी देना—मुहूर्त या सायत बताना। घड़ी भर—थोड़ी देर। घड़ी सायत पर होना—मरने के करीब होना।
(२) समय, काल। (३) उपयुक्त अवसर। (४) समयसूचक यंत्र।

घड़ीसाज—संज्ञा पुं [हि घड़ी + फ़ा. साज] घड़ी की मरम्मत करनेवाला।

घड़ीसाजी—संज्ञा स्त्री. [हि. घड़ीसाज] घड़ीसाज का काम।

घड़ोला—संज्ञा पुं. [हिं. घड़ा+ओला (प्रत्य.)] छोटा घड़ा।

घड़ौंचो—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ा + औंची (प्रत्य.)] घड़ा रखने की चौकी या तिपाई।

घण—संज्ञा पुं. [हिं. घन] घन, बादल।
घतर—संज्ञा पुं. [देश.] प्रभातकाल, तड़का।
घतिया—संज्ञा पुं. [हिं. घात + इया (प्रत्य.)] घात करने या धोखा देनेवाला।
घतियाना—क्रि. स. [हिं. घात] घात या दाँव में लाना। (२) चुराना, छिपाना।
घन—संज्ञा पुं. [सं.] (१ क) मेघ, बादल। उ.—किधौं घन बरसत नहिं उन देसनि। (१ ख) पयोधर, स्तन। उ.—पगरिपु लगत सघन घन ऊपर बूझत कहा बतैहै—सा. १०। (ख) नीकनन तें दिवस डारत परत घन पै हेर—सा. ६०। (२) लोहारों का बड़ा हथोड़ा। (३) लोहा। (४) मुख। (५) समूह। (६) कपूर। (७) घंटा। (८) लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई का विस्तार। (९) एक सुगंधित घास। (१०) अबरक। (११) कफ। (१२) झाँझ, मँजीरा आदि बाजे। (१३) शरीर।
वि.—(१) घना, गझिन। (२) गठा हुआ, ठोस। (३) दृढ़, मजबूत। (४) बहुत अधिक।
घनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] गरज, गड़गड़ाहट।
घनकना—अ. [अनु.] गरजना।
घनकारा—वि. [हिं. घनक] गरजनेवाला।
घनकोदंड—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष, मदाइन। उ.—कुटिल भ्रू पर तिलक-रेखा, सीस सिखिनि सिखंड। मनु मदन धनु-सर-सँधाने, देखि घनकोदंड—१-३०७।
घनगरज—संज्ञा स्त्री. [हिं. घन + गरज] (१) बादल गरजने की ध्वनि। (२) एक पौधा। (३) एक तोप।
घनघनाना—क्रि. अ. [अनु.] घन घन शब्द होना।
क्रि. स.—(१) घनघन करना। (२) घंटा बजाना।
घनघनाहट—संज्ञा स्त्री [अनु] घनघन शब्द या भाव।
घनघोर—संज्ञा पुं. [स. घन+घोर] (१) भीषण ध्वनि, घनघनाहट। (२) बादल की गरज।
वि.—(१) बहुत घना। (२) बहुत भयानक।
घनचक्कर—वि. [सं. घन = चक्कर] (१) चंचल बुद्धिवाला। (२) मूर्ख। (३) निठल्ला। (४) आतशबाजी, चरखी। (५) सूर्यमुखी का फूल। (६) चक्कर।
घनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] घना या ठोसपन।
घनतार, घनताल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चातक पक्षी। (२) करताल, झाँझ।
घनतोल—संज्ञा पुं. [स.] चातक पक्षी, पपीहा।
घनत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घनापन। (२) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का विस्तार। (३) अणुओं का गठाव, ठोसपन।
घनदार—वि. [सं. घन, फा. दार (प्रत्य.)] घना, गुंजान।
घननाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बादलों की गरज। (२) रावण का पुत्र मेघनाद। (३) भीषण शब्द।
घनपति—संज्ञा पुं. [सं. घन + पति=स्वामी] इंद्र।
घनप्रिय—संज्ञा पुं. [स.] (१) मोर, मयूर। (२) मोर-शिखा नामक घास।
घनफल—संज्ञा पुं. [सं] (१) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (या ऊँचाई) का गुणनफल। (२) किसी संख्या को दो बार उसीसे गुणा करने पर प्राप्त फल।
घनबान—संज्ञा पुं. [हिं. घन + बाण] एक बाण।
घनबेल—वि. [हिं. घन + बेल] बेल-बूटेदार, जिसमें बेल-बूटे बने हों। उ.—कहुँ कहुँ कुचन पर दरकी अँगिया घनबेलि।
घनबेली—संज्ञा स्त्री. [सं. घन + हिं. बेल] बेला नामक पौधे की एक जाति।
घनमूल—संज्ञा पुं. [सं.] घनराशि का मूल अंक।
घनरस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल, पानी। (२) कपूर। (३) हाथी का कोढ़ के समान एक रोग।
घनवर्द्धन—संज्ञा पुं. [स.] धातु को पीट कर बढ़ाना।
घनवाह—संज्ञा पुं. [स.] वायु।
घनवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र जिसका वाहन मेघ है।
घनश्याम—वि. [सं.] बादल के समान श्याम।
संज्ञा पु.—(१) काला बादल। (२) श्रीकृष्णचंद्र। (३) श्रीरामचंद्र।
घनसागर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल। (२) कपूर।
घनसार, घनसारि—संज्ञा पुं. [सं. घनसार] कपूर। उ.—पवन पानि घनसारि सुमन दै दधिसुत-किरनि भानु भई भुँजैं—२७२१।
घनस्याम—वि [सं. घनश्याम] बादल-सा काला।
संज्ञा पुं. (१) काला बादल। उ.—तड़ित बसन,

घन-स्याम-सदृश तन, तेज पुंज तम कौं त्रासै—१-६६। (२) श्रीकृष्ण। उ.—अंत के दिन कौं हैं घनस्याम—१-७६।

घनहर—संज्ञा पुं [हिं. धान+हारा (प्रत्य.)] अनाज भुनाने के लिए भड़भूँजे के पास लेजानेवाला।

घनहस्त—संज्ञा पुं. [सं.] एक हाथ लंबा, चौड़ा और मोटा या ऊँचा पिंड, क्षेत्र या मान।

घना—वि. [सं. घन] (१) सघन, गझिन। (२) घनिष्ट, निकट का (३ बहुत अधिक, ज्यादा।

घनाक्षरी—संज्ञा पुं. [सं.] दंडक, मनहर या कवित्त।

घनाघन—सज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) मस्त हाथी। (३) बरसनेवाला बादल।

घनात्मक—वि. [सं.] (१) जिसकी लंबाई, चौड़ाई और मोटाई समान हो। (२) घनफल।

घनानंद—संज्ञा पुं. [सं] (१) गद्यकाव्य का एक भेद। (२) हिंदी का एक प्रसिद्ध कवि।

घनाली-सज्ञा स्त्री. [सं. घन + अवली] घन-समूह।

घनिष्ट—वि. [सं.] (१) घना, बहुत अधिक। (२) पास का, गहरा (संबंध आदि)।

घनी-वि. [सं. घन] (१) सघन, गुंजान। (२) घनिष्ट, निकट की। (३) बहुत अधिक। उ.—कहा कमी जाके राम धनी। मनसानाथ मनोरथपूरन, सुख निधान जाकी मौज घनी-१-३६।

घने—वि. [सं. घन] अनेक (संख्यावाचक)।

घनेरा—वि. [हिं. घना] बहुत अधिक (परिमाण-वाचक), अतिशय।

घनेरे—वि. [हि. घने + एरे (प्रत्य.)] बहुत, अधिक, अगणित (संख्या में)। उ.—मैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी-१-७१।

घनेरो, घनेरौ—वि. [हिं. घनेरा] (१) अधिक, अगणित (संख्यावाचक)। उ.—(क) जो वनिता-सुत जूथ सकेले, हयगय विभव घनेरौ। सबै समर्पौं सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ—१-२६६। (ख) मैं निर्धन, कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ-६-४२। (२) बहुत अधिक (परिमाणवाचक), अतिशय। उ.—(क) पु पैचाहि लै स्याम करत उपहास घनेरो-१११६। (ख) निज जन जानि हरि इहाँ पठायो दीनो बोझ घनेरो—१४११।

घनो, घनौ—वि. [हिं. घना] बहुत अधिक (परिमाण-वाचक), ज्यादा। उ.—रवि-सुत-दूत बारि नहि सकते, कपट घनौ उर धरतौ—१-२०३।

घनोपल—संज्ञा पुं. [सं. घन+उपल=पत्थर] ओला।

घन्नई—संज्ञा पुं. [हि. घड़+नैत] घड़ों से बनायी नाव।

घपचियाना—क्रि. अ. [हिं. घाबी] घबराना।

घपची—संज्ञा स्त्री. [हिं. घन+पंच] मजबूत पकड़।

घपला—सज्ञा पुं. [अनु.] गड़बड़, गोलमाल।

घपुआ, घप्पू—वि. [हिं. भकुआ] मूर्ख।

घपूचंद—सज्ञा पुं. [हिं. घपुआ] मूर्ख आदमी।

घबड़ाना, घबराना—क्रि. अ. [सं. गह्वर या हि. गड़बड़ाना] (१) व्याकुल, अधीर या अशांत होना। (२) सकपकाना, भौचक्का होना (३) जल्दी करना, आतुर होना। (४) ऊबना, जी उचाट होना।

घबड़ाहट, घबराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. घबराना] (१) व्याकुलता, अधीरता, अशांति। (२) सकपकाहट, कर्तव्यविमूढ़ता। (३) हड़बड़ी। (४) उदासी।

घबराने—क्रि. अ. [हि. घबराना] (१) व्याकुल या अधीर हुए। (२) सकपका गये, भौचक्के हो गये। उ.—पाती बाँचत नद डराने। कालीदह के फूल पठावहु सुनि सबही घबराने—५२६।

घमंका—सज्ञा पु. [अनु.] (१) घूँसा। (२) वह प्रहार जिससे 'घम' शब्द हो।

घमंड—संज्ञा पु [स. गर्व] (१) अभिमान, गर्व। मुहा०—घमंड पर आना (होना)—इतराना, अभिमानना। घमंड निकलना (टूटना)—गर्व चूर होना। (२) बल, वीरता, जोर, भरोसा। उ.—जासु घमंड बदति नहिं काहुहिं कहा दुरावति मोसौं।

घमंडिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. घमंड] गर्वीली, अभिमानिनी।

घमंडी—वि. [हिं. घमंड] गर्वी, अभिमानी।

घम—संज्ञा पुं. [अनु.] धमाके का शब्द।

घमक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घूँसे के प्रहार का शब्द।

घमकना—क्रि. अ. [अनु. घम] 'घम' शब्द होना।
क्रि. स.—'घम' से घूँसा मारना।
घमका—संज्ञा पुं [अनु.] 'घम' से प्रहार का शब्द।
संज्ञा पुं [हिं घाम] ऊमस, घमसा।
घमकि—क्रि. वि. [हिं. घमकना] 'घम घम' की ध्वनि करके। उ.—(एरी) आनँद सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै—१०-१४७।
घमखोर--वि. [हिं. घाम+फा. खोर (खानेवाला)] जो घाम या धूप में रह सके।
घमघमाना—क्रि. अ. [अनु.] गंभीर शब्द करना।
क्रि. स.—(१) घूँसा मारना,। (२) प्रहार करना।
घमर—संज्ञा पुं. [अनु] भारी शब्द, गंभीर ध्वनि। उ.—(क) त्यौं त्यौं मोहन नाचै ज्यौं ज्यौं रई-घमर कौ होई (री)—१०-१४८। (ख) माखन खात पराये घर कौ। नित प्रति सहस मथानी मथिऐ, मेघ-शब्द दधि-माट घमर कौ—१०-३३३।
घमरा—संज्ञा पुं. [सं. भृंगराज] भँगरा बूटी।
घमरौल—संज्ञा स्त्री. [अनु. घमघम] (१) शोर-गुल, हो-हल्ला। (२) गड़बड़घोटाला।
घमस, घमसा—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. घाम] (१) ऊमस, तपन। (२, घनापन, सघनता।
घमसान—संज्ञा पुं. [अनु. घम+सान] घोर युद्ध।
घमाका—संज्ञा पुं. [अनु. घम] 'घम' का शब्द।
घमाघम—संज्ञा स्त्री. [अनु घम] (१) घमघम की ध्वनि। (२) धूमधाम, चहलपहल।
क्रि. वि.—(१) घमघम करके। (२) धूमधाम से।
घमाघमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घमाघम] मारपीट।
घमाना—क्रि. अ. [हिं घाम] धूप खाना।
घमायल—वि. [हिं. घाम] धूप में पका हुआ फल।
घमासान—संज्ञा पुं [हिं. घमासान] घोर युद्ध।
घमीला—वि. [हिं. घाम] घाम में मुरझाया हुआ।
घमोई—संज्ञा स्त्री. [देश.] बाँस का एक रोग।
घर—संज्ञा पुं. [सं. गृह] (१) मकान, गृह, गेह।
मुहा०—अपना घर (समझना)—घर की तरह नि.संकोच व्यवहार का स्थान। घर उजड़ना—(१) कुल परिवार की धन-संपत्ति नष्ट होना। (२) घर के प्राणियों का तितर-बितर हो जाना। घर करना—(१) बसना, रहना। (२) किसी वस्तु के लिए स्थान निकालना। (३) घर का प्रबंध करना। (स्त्री का) घर करना—(१) पत्नी की तरह रहना। (२) बस जाना। उ.—मनु सीरज घर कियौ बारिज पर—१०-६३। आँख (चित्त, मन, हृदय) में घर करना—(१) बहुत पसंद आना। (२) बहुत प्रिय लगना। घर का (की)—(१) अपना, निजी। उ.—मिसरी सूर न भावत घर की चोरी को गुड़ मीठो—सा. ६०। (२) आपस का, आपसी। (३) अपने परिवार का व्यक्ति। (४) पति, स्वामी। घर का अच्छा—अच्छे खाते पीते परिवार का। घर का आदमी—भाई-बंधु। घर का उजाला—(१) कुल की कीर्ति फैलानेवाला। (२) बहुत प्यारा। (३) बहुत सुन्दर। घर का घरवा (घरौंदा) कराना—घर उजाड़ना। घर का बोझ उठाना (सम्हालना)—घर का प्रबंध करना। घर का भेदी—घर की सब बातें जाननेवाला। घर का भेदी (भेदिया) लंका दाहै (ढाहै)—घर का भेद बतानेवाला घर का सर्वनाश करा देता है। घर का काटने दौड़ना—घर का सूनापन भयानक लगना। घर का न घाट का—(१) जो न इधर का हो न उधर का, दोनों तरफ जिसका आदर न हो। (२) निकम्मा, बेकाम। घर का मर्द (शेर, वीर, बहादुर)—घर ही में डींग हाँकनेवाला, जो बाहर कुछ न कर सके। घर के बाढ़े—घर में या शत्रु के पीठ पीछे डींग हाँकनेवाला, सामने कुछ न कर सकनेवाला। उ.—(क) तुम कुँवर घर ही के बाढ़े अब कछू जिय जानिहौ—२२५६। (ख) अब घर के बाढ़े हौ तुम ऐसे कहा रहे मुरझाई—२२६१। घर ही की बाढ़ी घर में ही घमंड दिखानेवाली। उ.—ग्वालिन घर ही की बाढ़ी। निस दिन देखत अपने ही आँगन ठाढ़ी। घर का नाम उछालना (डुबोना)—कुल-परिवार की बदनामी कराना। घर की बात—कुल-परिवार की बात या इज्जत। घर की तरह बैठना (रहना)—आराम से बैठना या रहना। घर की खेती—अपने यहाँ पैदा होनेवाली चीज, जो खरीदी न गयी हो। घर के घर—(१) चुपचाप, गुप्त रीति से। (२)

बहुत से घर। घर खोना—घर का नाश करना। घर-घर—सभी घरों में। घर चलना—(१) घर का नाश होना। (२) घर की बदनामी होना। घर-घाट—(१) रंग-ढग। (२) प्रकृति, स्वभाव। (३) ठौर-ठिकाना। घर-घाट जानना—सभी भेद जानना। घर घालना—(१) घर का नाश करना। (२) घर की बदनामी कराना। (३) प्रेम करके घर बरबाद करा देना। घर घुसना—हर समय घर ही में रहनेवाला। घर चलना—निर्वाह होना। घर चलाना—निर्वाह करना। घर डुबोना—(१) घर बरबाद करना। (२) घर की बदनामी कराना। घर डूबना—(१) घर बरबाद होना। (२) घर की बदनामी होना। घर जमना—गृहस्थी का सामान जुटना। घर जाना—कुल का नाश होना। घर जुगुत—गृहस्थी का प्रबंध। घर-झँकनी—घर-घर झाँकनेवाली। घर तक पहुँचना—माँ-बहन या बापदादे को गाली देना। घर देखना—किसी के घर माँगने जाना। घर देख लेना (पाना)—एक बार कुछ पाकर परच जाना। किसी के घर पड़ना—पत्नी के रूप से रहना। (वस्तु) घर पड़ना—किस भाव से घर आना। घर पीछे—एक एक घर से। घर फटना—(१) बुरा लगना। (२) घर वालों में झगड़ा होना। घर फूँक तमाशा देखना—घर की संपत्ति आदि का नाश करके मनोरंजन करना या प्रसन्न होना। घर फोड़ना—घर वालों में झगड़ा कराना। घर बंद होना—(१) घर में ताला पड़ना। (२) घर वालों का तितर-बितर हो जाना। (३) घर से संबंध न रहना। घर बिगाड़ना—(१) घर की संपत्ति नष्ट करना। (२) घरवालों में फूट पैदा करना। (३) घर की बहू-बेटी को बुरे मार्ग पर ले जाना। घर बनना—घर की आर्थिक दशा सुधरना। घर बनाना (१) जम कर रहना। (२) घर की आर्थिक दशा सुधारना। (३) अपना घर भरना, अपना लाभ करना। घर बरबाद होना—घर की आर्थिक दशा बिगड़ना। घर बसना—(१) घर की दशा सुधरना। (२) विवाह होना। घर बसाना—(१) घर की दशा सुधारना। (२) विवाह करना। घर बैठना—(१) एकांत में रहना (२) स्त्रियों में रहना। (३) काम छोड़ बैठना। (४) पत्नी-रूप में रहने लगना। घर बैठे रोटी—बेमेहनत की जीविका। घर बैठे बैठे—(१) बिना काम किये। (२) बिना कहीं गये-आये। (३) बिना यात्रा किये। घर भर—परिवार के सब लोग। घर भरना—(१) अपना ही लाभ करना। (२) हानि की पूर्ति होना। (३) घर में मेहमान आना। घर में—स्त्री, घरवाली। घर में डालना-पत्नी-रूप में रख लेना। घर में पड़ना—पत्नी रूप से रहना। घर से—पास से। घर से पाँव निकालना—मनमाने ढंग से घूमना-फिरना। घर से बाहर पाँव निकालना—हैसियत से ज्यादा काम करना। घर से देना—(१) अपने पास से देना। (२) हानि उठाना। घर सेना—(१) घर में पड़े रहना। (२) बेकार बैठना। घर होना—(१) निबाह होना। (२) परस्पर प्रेम या मेल होना।

(२) जन्मभूमि, जन्मस्थान। (३) कुल, वंश। (४) कार्यालय। (५) कोठरी, कमरा। (६) रेखाओं से घिरा स्थान, खाना। (७) चौपड़, शतरंज आदि का खाना। उ.—चौपरि जगत मड़े दिन बीते। गुन पासे क्रम अंक चार गति सारि न कबहूँ जीते। चारि पसारि दिसानि, मनोरथ घर फिरि फिरि गिनि आने—१६०।

मुहा०—घर बंद होना—गोटी चलने का रास्ता बंद होना।

(८) कोश, डिब्बा। (९) (संदूक, अलमारी आदि का) खाना। (१०) (पानी आदि के समाने का) स्थान। (११) (नगीना आदि जड़ने का) स्थान। (१२) छेद, बिल। (१३) स्वर। (१४) उत्पत्ति का कारण। (१५) गृहस्थी, घरबार। (१६) गृहस्थी का सामान। (१७) (चोट या वार का) स्थान। (१८) आँख का गड्ढा। (१९) चौखटा। (२०) भंडार, खजाना। (२१) दाँव पेंच, युक्ति। (२२) (बाँस का) समूह।

घरऊ—वि. [हिं. घर + आऊ (प्रत्य.)] घरेलू, घराऊ।

घरघराना—क्रि. अ. [अनु.] 'घर्रघर्र' ध्वनि करना।

संज्ञा पु. [हिं. घर + घराना] कुल, परिवार।

घरघराहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घर्रघर्र की ध्वनि। (२) कफ के कारण कंठ से साँस लेते समय निकलने वाला शब्द।

घरघालं, घरघालक, घरघालन—वि. [हिं. घर+घालना] (१) घर की आर्थिक दशा बिगाड़नेवाला। (२) कुल में कलंक लगानेवाला।

घरजाया—संज्ञा पुं [हिं. घर + जाया] घर का गुलाम।

घरणी—संज्ञा स्त्री. [हिं घरनी] घरवाली, स्त्री।

घरदासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर + सं. दासी] पत्नी।

घरद्वार—संज्ञा पुं. [हिं घर + सं. द्वार] (१) रहने का स्थान, ठौर, ठिकाना। (२) गृहस्थी, घरबार। (३) मकान, जायदाद।

घरद्वारी—संज्ञा स्त्री [हिं. घरद्वार] कर जो घर पीछे लगे।

घरन—संज्ञा स्त्री. [देश.] पहाड़ी भेड़, जुँबली।

घरनाल—संज्ञा स्त्री [हिं. घड़ा + नाली] एक तोप।

घरनि, घरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. गृहिणी, प्रा. घरणी] घरवाली, भार्या, गृहिणी। उ.—तरुवर मूल अकेली ठाढ़ी दुखित राम की घरनी। बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी—६-७३। (ख) जाकी घरनि हरी छल-बल करि, लायो बिलँब न आवत—६-१३३। (ग) सूरदास धनि नंद की घरनी, देखत नैन सिराइ—१०-३३।

घरफोड़ना, घरफोर—वि. [हिं. घर + फोड़ना] घरवालों में झगड़ा-बखेड़ा करानेवाला।

घरफोरी—वि. [हिं. घर + फोड़ना] घरवालों में फूट या कलह करानेवाली।

घरबसा—संज्ञा पुं. [हिं घर + बसना] उपपति, प्रेमी।

घरबसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर+बसना] रखेली। घर में पत्नी की तरह रहनेवाली प्रेमिका।

वि. स्त्री. (१) घर की दशा सुधारनेवाली। (२) घर की दशा बिगाड़नेवाली (व्यंग्य)।

घरबार—संज्ञा पुं. [हिं. घर + बार=द्वार] (१) रहने का स्थान, ठौर ठिकाना। (२) घर का जंजाल, गृहस्थी। (३) निज की सारी संपत्ति, गृहस्थी का साज-सामान, घरद्वार। उ.—तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार। जो कोउ प्रीति करै पद अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार। किंकिनि नूपुर पाट-पटंबर, मानो लिये फिरैं घरबार—१-४१।

घरबारी—संज्ञा पुं. [हिं. घर+बार] बाल-बच्चोंवाला, गृहस्थ। उ.—अब तो स्याम भये घरबारी।

घरबैसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर + बैठना] उपपत्नी।

घरमकर—संज्ञा पुं. [सं. घर्मकर] सूर्य।

घरमना—क्रि. अ. [सं. घर्म + ना (प्रत्य.)] बहना।

घररघरर—संज्ञा पुं. [अनु.] घिसने का शब्द।

घररना—क्रि. अ. [हिं. घररघरर] घिसना, रगड़ना।

घरवा, घरवाहा—संज्ञा पुं [हिं. घर + वा या वाहा (प्रत्य.)] (१) छोटा-मोटा घर (२) घरौंदा।

घरवात—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर + वात (प्रत्य.)] घर का साज-सामान या धन संपति, गृहस्थी।

घरवाला—संज्ञा पुं. [हिं घर + वाला (प्रत्य.)] (१) घर का स्वामी या मालिक। (२) पति।

घरवाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर + वाली (प्रत्य.)] (१) घर की मालिकिन या स्वामिनी। (२) पत्नी।

घरसा—संज्ञा पुं. [सं. घर्ष] रगड़ा, घिस्सा।

घरहाँई, घरहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. घर+सं घाती, हिं. घाई] (१) घर में झगड़ा करानेवाली स्त्री। (२) घर की बुराई करने या कलंक लगानेवाली स्त्री।

वि.—(१) झगड़ा करानेवाली। (२) कलंक, लांछन या दोष लगानेवाली स्त्री।

घराऊ—वि. [हिं. घर + आऊ (प्रत्य.)] (१) घर का, घरेलू। (२) निजी, आपसी।

घराती—संज्ञा पुं. [हिं. घर + आती (प्रत्य)] विवाह में कन्या-पक्ष के लोग।

घराना—संज्ञा पुं. [हिं. घर + आना (प्रत्य)] वंश, कुल।

घरि—संज्ञा स्त्री. [हिं घड़ी] घड़ी भर का समय। उ.—(क) तुरतहिं देत बिलंब न घरि कौ—१०-१८१। (ख) और किए हरि लगी न पलक घरि—३४०६।

घरिआर, घरियार—संज्ञा पुं. [हिं. घड़ियाल] (१) घंटा-घड़ियाल। उ.—सुनत शब्द घरियार के नृप द्वार बजावत—२५६०। (२) घड़ियाल नामक जल जंतु।

घरिक—क्रि. वि. [हिं घड़ी + एक] घड़ी भर, थोड़ी देर। उ.—(क) तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। ··· । कोउ रहे अकास देखत, कोउ रहे सिरनाइ। घरिक लौं जकि रहे जहँ तहँ, देह गति बिसराइ—३८७। (ख) घरिक मोहिं लगिहै खरिका मैं, तू जनि आवै हेत—६७६।

घरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़िया] मिट्टी का एक पात्र जिसमें सोना-चाँदी गलायी जाती है।

घरियाना—क्रि. स. [हिं. घरी] (कपड़े आदि की) तह लगाना, लपेटना।

घरियारी—संज्ञा पुं [हि घड़ियाल] घंटा बजानेवाला।

घरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी](१) काल का एक समय जो चौबीस मिनट के बराबर होता है। उ.—(क) राम न सुमिरयौ एक घरी—१-७१। (ख) मोक्षौं मुक्ति बिचारत है प्रभु पचिहौ पहर-घरी—१-१३०। (२) समय, अवसर। उ.—(क) बहुरि हिमाचल कैं सुभ घरी। पारवती ह्वै सो अवतरी—४-७। (ख) मेरे कहैं बिप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ भूषन पहिरावौ—१०-३५।

संज्ञा स्त्री. [हि. घर=कोठा, खाना] तह, परत।

प्र.—करत घरी—बाँधते हो, लपेटते हो, सम्हालते हो। उ.—इन निर्गुन निर्मोल की गठरी अब किन करत घरी—३१०४।

घरीक—क्रि. वि. [हि. घड़ी+एक] एक घड़ी भर।

घरुआ, घरुवा—सज्ञा पुं. [हिं. घर+वा (प्रत्य.)] घर का ठीक-ठीक, बँधा-बँधाया प्रबंध या खर्च।

घरू—वि. [हिं. घर+ऊ (प्रत्य.)] घर का, घरेलू।

घरेला, घरेलू - वि. [हि. घर+एला, एलू (प्रत्य)] (१) पालू, पालतू। (२) निजी, घर का। (३) घर का बना या तैयार किया हुआ।

घरै—संज्ञा सवि. [सं. गृह, हि घर] घर की। उ.—स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै—१०७६।

घरैया—वि. [हिं. घर+ऐया (प्रत्य)] घर का, घरेलू।

सज्ञा पुं.—घर का आदमी, सबंधी।

घरो—सज्ञा पु. [हिं. घड़ा] घड़ा, गगरा।

घरौंदा, घरौंधा—सज्ञा पुं. [हिं. घर+औंदा (प्रत्य.)] (१) बच्चों द्वारा बनाया हुआ धूल-मिट्टी का घर। (२) छोटा-मोटा कच्चा घर।

घरौना—संज्ञा पुं. [हिं. घर + औना (प्रत्य)] (१) घर, मकान। (२) छोटा घर, घरौंदा।

घर्घर—संज्ञा पु. [स] एक प्राचीन बाजा।

सज्ञा पुं. [अनु.] घेड़घड़ाहट, घरघर शब्द।

घर्म—संज्ञा पुं. [सं.] घाम, धूप।

घर्मबिंदु—संज्ञा पुं. [सं.] पसीना।

घर्मांशु—संज्ञा पुं [सं.] सूर्य।

घर्रा—संज्ञा पुं. [हि. घरघरर] (१) आँख में लगाने का अंजन। (२) कफ से गले की घरघराहट।

मुहा०—घर्रा चलना (लगना)—मरते समय कफ के कारण साँस का घरघराहट के साथ निकलना।

घर्राटा—सज्ञा पुं. (अनु. घर्र+आटा (प्रत्य.)] गहरी नींद में नाक से निकलनेवाला 'घरघर' का शब्द।

मुहा०—घर्राटा भरना—गहरी नींद में सोना।

घर्षण—संज्ञा पुं. [स.] रगड़, घिस्सा।

घर्षित—वि. [सं.] रगड़ा हुआ, रगड़ खाया हुआ।

घलना—क्रि. अ. [हि. घालना] (१) छूट जाना, गिर पड़ना, फेंका जाना। (२) हथियार चल जाना, गोली छूट पड़ना। (३ मारपीट हो जाना।

घलाघल, घलाघली—संज्ञा स्त्री. [हिं. घलना] मारपीट।

घलुआ—संज्ञा पुं. [हि. घाल] घेलौना, घाता।

घवद्—संज्ञा स्त्री. [हि. गौद, घौद] फलों का गुच्छा।

घवरि—संज्ञा स्त्री [सं. गह्वर] फल पत्तियों का गुच्छा।

घसकना—क्रि. अ. [हिं. खिसकना] सरकना, खिसकना।

घसखुदा—वि. [हिं. घास+खोदना (१) जो घास खोदता हो। (२) मूर्ख, गँवार, अनाड़ी।

घसना—क्रि स. [सं. घर्षण] रगड़ना, घिसना।

क्रि. स [सं घसन] खाना, भक्षण करना।

घसि—क्रि. अ. [हिं. घिसना, घसना] (१) घिसकर, रगड़कर, पीसकर। उ.—(क) गुहि गुंजा, घसि बन धातु, अंगनि चित्र ठए—१०-२४। (ख) एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चंदन घसिनीर—१०-२५। (ग) घसि कै गरल चढाइ उरोजनि, लै रुचि सौं पय प्याऊँ—१०-४९। (२) (अपराध स्वीकार करके क्षमा मागते या विनती करते हुए माथा आदि चरणों या देहली पर) घिसकर या रगड़कर। उ.—जावक रस मनौ संवर अरिगन पिया मनायौ पद ललाट घसि—१६५४।

घसिटना—क्रि. अ. [सं. घर्षित + ना (प्रत्य.)] रगड़ खाते हुए खिंचना।

घसियारा—संज्ञा पुं. [हिं. घास + आरा (प्रत्य.)] (१) ास खोदनेवाला। (२) मूर्ख, नासमझ।

घसिआरिन, घसियारी—संज्ञा स्त्री [हिं. घसियारा] (१) घास बेचनेवाली। (२) मूर्ख या नासमझ स्त्री।

घसीट—संज्ञा स्त्री. [हिं. घसीटना] (१) जल्दी लिखने का भाव (२) जल्दी लिखा हुआ लेख। (३) घसीटने क भाव।

वि.—(१) जल्दी जल्दी लिखा हुआ। (२) घसीटा हुआ।

घसीटना—क्रि स. [सं. घृष्ट, प्रा घिष्ट + ना (प्रत्य.)] (१) रगड़ते हुए खींचना, कढ़ोरना।

यौ—घसीटा-घसीटी—खींचातानी।

(२) जल्दी से लिखकर चलता करना। (३) किसी झगड़े या मामले में जबरदस्ती शामिल करना।

घसेहो—क्रि. स. [हिं. घसना] घिस चुके हो, रगड आये हो। उ.—लटपटी पाग महावर के रँग मानिनि पग पर सीस घसेहो—१६५५।

घहनाना—क्रि. अ. [अनु.] किसी धातु खंड (घंटे आदि) पर आघात का शब्द होना, घहराना।

घहनाने—क्रि. अ. [हिं. घहनाना] (घंटे आदि) बजने या घनघनाने लगे।

घहरत—क्रि अ [हिं. घहरना] ोर शब्द करता है, गरजता है। उ.—गर्जत ध्वनि प्रलयकाल गोकुल भयौ अधकाल चकृत भए ग्वालबाल घहरत नभ करत चहल—६८८।

घहरना—क्रि. अ. [अनु.] गंभीर, घोर या भीषण ध्वनि करना, गरजना।

घहराइ—क्रि. अ. [हिं. घहराना] गरजकर, गंभीर शब्द करके, घहराकर। उ.—(क) गगन घहराइ जरी घटा कारी—३८४। (ख) फूले बजावत गिरि गिरी गार मदन भेरि घहराइ अपार संतन हित ही फूल डोल —२४१३।

घहरात—क्रि. अ. [हिं. घहराना] घोर शब्द करते हैं। उ.- गगन भेद घहरात थहरात गात—६६०।

घहरान—संज्ञा स्त्री. [हिं. घहराना] गंभीर ध्वनि।

घहराना—क्रि. अ. [अनु.] गरजना, गंभीर या घोर ध्वनि करना, भीषण शब्द निकालना।

घहरानि, घहरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घहराना] गंभीर ध्वनि, तुमुल शब्द, गरज। उ.—सुनत घहरानि ब्रज लोग चकित भए, कहा आघात धुनि करत आव—१०-६२,

क्रि. अ.—गरजने लगी, घोर शब्द किया।

घहरारा—संज्ञा पुं. [हिं. घहराना] घोर शब्द, गरज।

वि.—घोर शब्द करनेवाला, गरजनेवाला।

घहरारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घहरारा] गंभीर ध्वनि।

वि.—गंभीर ध्वनि करनेवाली, गरजनेवाली।

घहरि—क्रि. अ. [हि. घहरना] गूँजना, शब्दायमान होना। उ.—मथति दधि जसुमति मथानी, धुनि रही घर-घहरि—१०-६७।

घहरै—क्रि. अ. [हि. घहरना] घोर शब्द करता है। उ.—इहिं अंतर अँधवाइ उठ्यौ इक, गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६।

घाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. ख या घाट = ओर] (१) दिशा, दिक्। उ.—किहिं घाँ के तुम बीर बटाऊ कौन तुम्हारौ गाउँ—६४४। (२) ओर, तरफ, पक्ष। उ.—(क) गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौ। मेटी पीर परम पुरुषोत्तम, दुख मेट्यौ दुहुँ घाँ कौ— —१-११३। (ख) सूर तबहिं हम सौं जौ कहती तेरी घाँ ह्वै लरती—१२७१।

घाँघरा, घँघरी, घाँघरो—संज्ञा पुं [सं. घर्घर = क्षुद्र-घंटिका] स्त्रियों का घेरदार पहनावा, लहँगा।

घाँची—संज्ञा पुं. [हि. घान + ची] तेली।

घाँटी—संज्ञा स्त्री. [सं. घटिका] (१) गले की भीतरी घटी, कौआ। (२) गला।

घँटो—संज्ञा पु. [हि. घट] एक तरह का गाना।

घाँह, घाँही—संज्ञा स्त्री. [हिं. घाँ] (१) ओर, तरफ, पक्ष। (२) दिशा।

घा—संज्ञा स्त्री. [हि. घाँ] ओर, तरफ।

घाइ—संज्ञा पुं [हि. घाव] घाव, जख्म, चोट, आघात। उ.—हरि बिछुरे हम जिती सहत हैं तिते बिरह के घाइ—३१५६।

क्रि. स. [हिं. घाना] मारकर, नाश करके।

घाइल—वि. [हिं. घायल] जिसे घाव लगा हो, जखमी, घायल।

घाईं—संज्ञा स्त्री. [हि. घाँ, घा] (१) ओर, तरफ। (२) दिशा। (३) दो वस्तुओं के बीच का स्थान, संधि। (४) बार, दफा। (५) पानी का भँवर।

घाई—संज्ञा स्त्री. [सं. गभस्ति=उँगली] (१) दो उँगलियों के बीच की संधि। (२) पेड़ी और डाल के बीच का कोना।

संज्ञा स्त्री. [हि. घाव] (१) चोट, आघात, मार। (२) धोखा, चालबाजी।

मुहा.—घाइयाँ बताना—झाँसा देना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाही] पाँच वस्तुओं का समूह।

घाउ—संज्ञा पु. [हिं. घाव] घाव, क्षत, जखम, चोट, आघात। उ.—(क) धमकि मारयौ घाउ गुमकि हृदय रह्यौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे—२६१५। (ख) रिषि दधीचि हाड़ लै दान। ताकौ तू निज बज्र बनाउ। मरि है असुर ताहि कैं घाउ—६-५।

घाऊघप्प—वि. [हिं. खाऊ+गप या घप] (१) गुप्त रूपसे माल उड़ानेवाला। (२) जिसका भेद न खुले।

घाएँ—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) ओर, तरफ। (२) बार, अवसर, दफा।

क्रि. वि.—ओर से, तरफ से।

घाग,घाघ—संज्ञा पुं.—(१) एक अनुभवी व्यक्ति जिसकी कहावतें बहुत प्रसिद्ध हैं। (२) बड़ा चालाक या खुर्राट आदमी। (३) जादूगर।

संज्ञा पुं. [हिं. घुग्घू] उल्लू की जाति का एक पक्षी।

घाघरा—संज्ञा [सं. घर्घर=क्षुद्रघंटिका] स्त्रियों का एक पहनावा, लहँगा।

संज्ञा पुं. [सं. घर्घर=उल्लू] एक कबूतर।

संज्ञा पुं. [देश.] एक पौधा।

संज्ञा स्त्री.—सरजू नदी का एक नाम।

घाघरिया,घाघरी—संज्ञा स्त्री. [हि. घाघरा=लहँगा] घघरिया, लहँगा। उ.—मोहन मुसुकि गही दौरत मैं छूटि तनी छंद रहित घाघरी—२३६६।

घाघस—संज्ञा पुं [हि घाघ=घुग्घू] घाघ पक्षी।

घाट—संज्ञा पु. [सं. घट्ट] नदी या जलाशय का ऐसा स्थान जहाँ लोग नहाते धोते हैं।

यौ.—घाट-बाट—सर्वत्र, सभी स्थलों पर। उ.—हरि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैं पुर लै जाहि। घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि—१-३१०।

(२) नदी या जलाशय का वह स्थान जहाँ धोबी कपड़े धोते है। (३) नदी या जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग नाव पर चढ़कर पार उतरते है।

मुहा.—घाट धरना—राह रोकना। घाट धरयौ-जबरदस्ती रास्ता रोक लिया। उ.—घाट धरयौ तुम यहै जानि कै करत ठगन के छंद। घाट मारना—नाव या पुल का किराया (उतराई) न देना। घाट लगना—नाव पर एक बार में चढ़नेवाले यात्रियों का इकट्ठा होना। नाव वा घाट लगना—नाव किनारे पहुँचना। (किसी का) किनारे लगना—आश्रय या सहारा पा जाना।

(४) तंग पहाडी रास्ता या उतार। (५) पहाड़। (६) ओर, तरफ। (७) दिशा। (८) रंग-ढंग, चाल ढाल। (९) तलवार की धार। (१०) अँगिया का गला। (११) दुलहिन का लहँगा।

संज्ञा स्त्री. [सं. घात या हि. घट=कम] (१) छल, कपट, धोखा। (२) बुरा कर्म।

वि. [हिं. घट] कम, थोड़ा।

संज्ञा पुं. [सं.] गरदन का पिछला भाग।

घाटवाला—संज्ञा पुं. [हिं. घाट+वाला] घाटिया।

घाटा—संज्ञा पुं. [हिं. घटना] हानि, नुकसान।

मुहा०—घाटा भरना—कमी पूरी करना।

घाटारोह—संज्ञा पुं. [हिं. घाट+सं. रोध) घाट से किसी को उतरने-चढ़ने न देना।

घाटि—वि. [हि. घटना, घाटा] बाकी (रही), शेष (बची), कम (रही)। उ.—कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि। न्याइ कै नहिं खुनस कीजै, चूक पल्लैं बाँधि—१-१९९।

संज्ञा स्त्री. [सं. घात, हिं. घाट=कम] नीच कर्म, पाप, बुरा काम।

घाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] गरदन का पिछला भाग।

घाटिया—संज्ञा पुं. [सं. घाट+इया (प्रत्य.)] घाट पर दान लेनेवाला ब्राह्मण, गंगापुत्र।

घाटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गले का पिछला भाग।

संज्ञा स्त्री. [हिं. घाट] (१) पर्वतों के बीच की

भूमि। (२) पहाड़ी सँकरा मार्ग, दर्रा। (३) पहाड़ी ढाल या उतार। (४) मार्ग कर चुकाने का प्रासिपत्र।

घाटे—वि. [हिं. घटना] घटकर, कम। उ.—ये कुलटा कलीट वे दोऊ। इक ते एक नहिं घाटे दोऊ।

घाटो—संज्ञा पुं. [हिं. घाटा] कमी, घटी, हानि।
संज्ञा पुं. [हिं. घट] घाँटो नामक गीत।
वि. [हिं. घटना = कम करना] दरिद्र।

घात—संज्ञा पुं. [सं.] प्रहार, चोट, मार। उ.—(क) सुआ पढ़ावत गनिका तारी, व्याध तर्यौ सर-घात किएँ —१-८६। (ख) घात कर्यौ नख उर कौं—७३८।

मुहा.—घात चलाना—जादू टोना करना।

(२) वध, हत्या, नाश। उ.—(क) प्रान हमारे घात होत हैं तुमरे भावै हाँसी—३०६३। (ख) सूरदास सिसुपाल पानि गहै पावक जारि करौ तन घात—१०उ. ११। (३) अहित, बुराई।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दाँव, सुयोग। उ.—आप अपनी घात निरखत खेल जम्यौ बनाइ।

मुहा.—घात पर चढ़ना (में आना)—वश में आना, हत्थे चढ़ना। घात में पाना—काम सिद्ध होने की स्थिति में पा जाना। घात लगना—सुयोग मिलना। घात लगाना—उपाय भिड़ाना, तदबीर लगाना, मौका ढूँढ़ना। उ.—सहसबाहु के सुतनि पुनि राखी घात लगाइ। परसुराम जब बन गयौ मार्यौ रिषि कौं धाइ—६-१४।

(२) उपयुक्त अवसर या सुयोग की प्रतीक्षा, ताक।

मुहा.—घात में फिरना—ताक में घूमना। घात में बैठना—छिपकर बैठना या तैयार रहना। घात में रहना (होना)—अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करना। घात लगाना—तदबीर लड़ाना, मौका ताकना।

(३) दाँव-पेंच, छल-कपट। उ.—(क) मैं जानी पिय मन की बात। धरनी पग-नख कहा करोवत अब सीखे ए घात—२०००। (ख) घात मन करत लैं डारिहौं दुहुनि पर दियो गज पेलि आपुन हँकार्यो—२५६२। (ग) भाजि जाहि सघन स्याम महँ जहाँ न कोऊ घात—२७७७।

मुहा.—घात बताना—(१) चालाकी सिखाना। (२) चाल चलना, बहलाना, रास्ता बताना।

(४) रंग ढंग, तौर-तरीका, ढब, धज।

घातक, घातकी—संज्ञा पुं. [सं. घातक] (१) मारनेवाला, हत्यारा। (२) क्रूरकर्मा, हिंसक, वधिक, जल्लाद। उ.—माधौ जू मोतैं और न पापी। घातक, कुटिल, चवाई कपटी, महाक्रूर सतापी—१-१४०। (३) शत्रु।

वि.—[हिं. घात] हानिकारिणी, नाशक। उ.—किंचित स्वाद स्वान बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी —१-६८।

घाता—वि. [सं. घात] समाप्त, खत्म। उ.—केशि कंस दुष्ट मारि, मुष्टिक कियौ घाता —१-१२३।

घातिक—संज्ञा पुं. [हिं. घातक] (१) हत्यारा, वधिक।

घातिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाश करनेवाली। उ.— कुच विष बाँटि लगाइ कपट करि, बाल-घातिनी परम सुहाई—१०-५०। (२) मारनेवाली।

घातिया, घाती—संज्ञा पुं. [सं. घातिन्, हिं. घाती] (१) घातक, हिंसक, संहारक। उ.—घाती कुटिल ढीठ अति क्रोधी कपटी कुमति, जुलाई—१-१८६। (२) वध या नाश करनेवाला। उ.—क्यों ए वचन सुअंक सूर सुनि बिरह मदन सर घाती—२६८०।

घातुक—वि. [सं.] (१) वधिक। (२) क्रूर।

घाते,घातैं—संज्ञा पुं. [सं. घात] (१) दाँव, सुयोग, स्वार्थ सिद्धि का उपयुक्त स्थान और अवसर। उ.—मोसौं कहत स्याम हैं कैसे ऐसी मिलईं घातें—१२६०। (२) चाल, छल, कपटयुक्ति। उ.—(क) मेरी बाहँ छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं। सूर स्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की घातैं—६८१। (ख) हम सब जानत हरि की घातैं—३३३८। (ग) तुम निसि दिन उर अतर सोचत ब्रज जुवतिन की घातैं—३०२४।

घातुक—वि. [हिं. घात] निष्ठुर, हिंसक।

घान—संज्ञा. पुं. [सं. घन=समूह] उतनी वस्तु जितनी एक बार कोल्हू में पेरने, चक्की में पीसने, कड़ाही में पकाने या भाड़ में भूनने के लिए डाली जाय।

संज्ञा पुं [हिं. घन=बड़ा हथौड़ा] प्रहार, चोट।

घाना—क्रि. स [सं. घात, प्रा. घाय + ना (प्रत्य.).] संहार या नाश करना, मारना।

क्रि. स. [हि. गहना = पकड़ना] पकड़ा देना।

घानी—संज्ञा स्त्री. [हि घान] (१) घान। (२) ढेर।

घाम—संज्ञा. पुं. [सं. घर्म, प्रा. घम्म] धूप, सूर्यातप। उ.—सीत, घाम घन, बिपति बहुत बिधि, भार तरैं मर जैहौं—१-३३१।

मुहा.—घाम खाना—धूप में रहना। घाम लगना—लू खा जाना। घाम मे घर छाना—घर को कष्ट या संकट में डालना। घर में घाम आना—बड़ी मुसीबत में पड़ जाना।

घामड़—वि. [हिं. घाम] (१) जो (चौपाया) धूप से व्याकुल हो। (२) नासमझ, मूर्ख। (३) आलसी।

घाय—संज्ञा पुं [हिं. घाव] घाव, जख्म।

घायक—वि. [हि. घातक] (१) मारनेवाला। (२) घायल करनेवाला।

घायल—वि. [हि. घाय] आहत, चुटैल, जख्मी। उ. —कहुँ जावक कहूँ बने तँबोल रँग, कहुँ अँग सेंदुर दाग्यौ। मानो रन छूटे घायल कौं जहँ तहँ स्रोनित लाग्यौ—१६७२।

घार—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्त] पानी के बहाव से कटकर बननेवाला गड्ढा या मार्ग।

घाल, घाला—[हिं. घलना] घलुआ, घाता।

मुहा०—घाल न गिनना—बहुत तुच्छ समझना।

घालक—संज्ञा पुं. [हिं. घालना] (१) मारनेवाला। उ. —जो प्रभु भेष धरैं नहिं बालक। कैसें होहिं पूतना-घालक—११०४। (२) नाश करनेवाला।

घालकता—संज्ञा स्त्री. [सं. घालक + ता (प्रत्य.)] मारने या नाश करने की क्रिया या भावना।

घालत—क्रि. स. [हि. घालना] (१) बिगाड़ते है, नाश करते हैं। उ.—सूर स्याम संगहि सँग डोलत औरनि के घर घालत—पृ० ३२२। (२) (मारकर) डाल देंगे। उ.—तनक तनक से ग्वाल छोहरन कंस अबहिं बधि घालत—२५७४।

घालति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. घालना] मारती है, चलाती है, चुभोती हे। उ.—घालति छुरी प्रेम की बानी सूरदास को सकै सँभारि।

घालना—क्रि. स. [सं. घटन, प्रा. घडन या घल्लन] (१) (किसी वस्तु के भीतर या ऊपर) रखना या डालना। (२) फेंकना, चलाना, छोड़ना। (३) (काम) कर डालना। (४) नाश करना, बिगाड़ना। (५) मार डालना।

घालमेल—संज्ञा पुं. [हिं. घालना + मेल] (१) मिलावट, गड़बड़। (२) मेलजोल, घनिष्टता।

घालि—क्रि. स. [हिं. घालना] (१) रखकर, डालकर। उ.—टूक टूक ह्वै सुभट मनोरथ आने झोली घालि —३८२६। (२) (चोंच आदि) मारकर। उ.—रसमय जानि सुआ सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ —१-५८। (३) किसी वस्तु के भीतर या ऊपर रखकर। उ.—वहा मन मैं घालि बैठी भेद मैं नहिं लख सकी—२२५६।

घालिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. घालक] नाश करनेवाली।

घालिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घालना] नाश करनेवाली।

घाली—क्रि. स. [हिं. घालना] चलायी, फेंकी।

क्रि. स. [हिं. घायल] घायल किया।

घाले—क्रि. स. [हि. घालना] दूर किये, मिटाये, नष्ट किये। उ.—तुम पूरे सब भाँति मातु पितु संकट घाले —११३७।

घालौं—क्रि. स. [हि. घालना] नष्ट कर दूँ, मिटा दूँ। उ.—इनकी बुद्धि इनकौं अब घालौं—१०४२।

घाल्यौ—क्रि. स. [हिं. घालना] (१) बिगाड़ा, बुरा चेता, अनिष्ट किया। उ.—मै नहिं काहू को कछु घाल्यौ पुन्यनि करवर नाग्यौ—२३७३। (२) किसी चीज के भीतर या ऊपर डाला। उ.—बिन ही भीत चित्र किन कीनो किन नभ हठ करि घाल्यौ झोरी —३०२८।

घाव—संज्ञा पुं. [सं. घात, प्रा. घाअ] (१) क्षत, जख्म। उ —परत निसानि घाव तमकि धनु तरपत जिहि जिहिं बार—२८२६। (२) चोट, आघात।

मुहा०—घाव खाना—घायल होना। घाव (जले) पर नमक (नोन) छिड़कना—दुख के समय और जी दुखाना। घाव देना—जी दुखाना। घाव पूजना (भरना, पूरना)—(१) घाव ठीक होना। (२) शोक या दुख कम होना।

घावरिया—संज्ञा पुं. [हिं. घाव + वरिया (वाला)] घाव का इलाज करनेवाला, जर्राह ।

घास—संज्ञा स्त्री. [सं.] तृण, चारा । उ.—हरी घास हू सो नहि चरै—५-३ ।

मुहा०—घास काटना (खोदना)— (१) तुच्छ या हीन काम करना (२) व्यर्थ का प्रयत्न करना । (३) लापरवाही से काम करना । काटियो घास—निरर्थक प्रयत्न करना । उ.—तुम सों प्रेम-कथा को कहिबो, मनौ काटिबो घास—३३३६ । घास खाना—मूर्खता का काम करना । घास छीलना—तुच्छ या निरर्थक काम करना ।

घासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घास] चारा, तृण ।

घाहू—संज्ञा पुं. [सं. गभस्ति = उँगली] उँगलियों के बीच की संधि, गावा, घाई ।

घाहु—संज्ञा पु. [हिं. घाव] जख्म, आघात, चोट । उ.—देखहु जाइ रूप कुबजा को सहि न सकत यह घाहु—३२२४ ।

घिअ—संज्ञा पुं. [हिं. घी] घी, घृत ।

घिऑड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. घी + हंडा] घी का पात्र ।

घिआ—संज्ञा पुं. [हिं. घिया] एक बेल ।

घिउ—संज्ञा पु. [हिं. घी] घी, घृत ।

घिग्घी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) रोते-रोते पड़नेवाली सुबकी या हिचकी । (२) डर के मारे मुँह से शब्द न निकलना ।

घिघियाना—क्रि. अ. [हिं. घिग्घी] (१) करुण स्वर से विनती करना, गिड़गिड़ाना । (२) चिल्लाना ।

घिचपिच—संज्ञा स्त्री. [सं. घृष्ट पिष्ट] (१) स्थान की कमी (२) कम जगह में बहुत सी चीजें होना ।

घिन—संज्ञा स्त्री. [सं. घृणा] (१) नफरत, घृणा, अरुचि । (२) जी मिचलाना ।

घिनाना—क्रि. अ. [हिं. घिन] घृणा करना ।

घिनाने—क्रि. अ. [हिं. घिनाना] घृणा करने लगे ।

घिनावना—वि. [हिं. घिन + आवना (प्रत्य)] जिसे देखकर घिन लगे, बुरा, गंदा, घिनौना ।

घिनैहैं—क्रि. अ [हिं. घिनाना] घृणा करेंगे, अरुचि दिखायँगे । उ.—जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं—१-८६ ।

घिनौना—वि. [हिं. घिनाना] घिनावना ।

घिनौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिन] एक कीड़ा ।

घिन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिरनी] चरखी । चक्कर ।

घिय, घियतो—संज्ञा पुं. [सं. घृत, हिं. घी] घी । उ.—ठाढ़ो भीज्यौ बलबीर, नैननि गिरत नीर, हरिजू तैं प्यारो तोसौं, दूध, दही घियतो—२७३ ।

घिया—संज्ञा पुं. [हिं. घी] (१) एक बेल । (२) तुरई ।

घियाकश—संज्ञा पु. [हिं. घिया + फा. कश] कद्दूकश ।

घियातरोई, घियातोरई—संज्ञा स्त्री [हिं. घिया + तोरी] तुरई की लता या फली ।

घिरत—संज्ञा पु. [सं. घृत] घी, घृत । उ.—घेवर अति घिरत चभोरे—१०-१८३ ।

घीरति—क्रि. स. [सं. ग्रहण, हिं. घिरना] घिरती हैं, रुकती हैं । उ.—घेरे घिरति न तुम बिनु माधौ, मिलति न बेगि दई—६१२ ।

घिरना—क्रि. अ. [सं. ग्रहण] (१) घेरा या ढँका जाना । (२) चारो ओर छा जाना ।

घिरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. घूर्णन] (१) चरखी, (२) चक्कर ।

घिराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. घेरना] घेरने की क्रिया ।

घिराना—क्रि. स. [अनु. घर्र] रगड़ना, घिसना ।

क्रि. स. [हिं. घेरना] चारों ओर से रुकवाना ।

घिराव—संज्ञा पुं. [हिं. घेरना] (१) घेरना । (२) घेरा ।

घिरावत—क्रि. स. [हिं घिराना] चारो तरह से रुकवाते हैं, घिरवाते हैं । उ.—गैया हांन चरैहौं गाइ । सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइ—५१० ।

घिरावना—क्रि. स. [हिं. घिराना] इकट्ठा कराना ।

घिरित—संज्ञा पुं. [सं. घृत] घी ।

घिरिनपरेवा—संज्ञा पु. [हिं. घिरनी + परेवा] (१) गिरहबाज कबूतर । (२) एक पक्षी जो पानी के ऊपर मँडराता रहता है ।

घिरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिरना] शिकारियों का घेरा ।

घिरौरा—संज्ञा पुं. [देश.] घूस या चूहे का बिल ।

घिर्राना—क्रि. स. [अनु. घिरघिर] (१) घसीटना । (२) घिघियाना, गिड़गिड़ाना ।

घिर्री—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) एक घास । (२) चरखी, गराड़ी । (३) घेरा, चक्कर ।

घिव—संज्ञा पुं. [हिं. घी] घी, घृत ।

घिसकना—क्रि. अ. [हिं. खसकना] सरकना, हटना ।
घिसघिस—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिसना] (१) सुस्ती, शिथिलता । (२) अनिश्चय, गड़बड़ी ।
घिसटना—क्रि. अ. [हिं. घसिटना] रगड़ा जाना ।
घिसटाना—क्रि. स. [हिं. घसीटना] रगड़ते हुए खीचना ।
घिसटायौ—क्रि. स. [हिं. घिसटाना] रगड़ते हुए घसीटा । उ.—केस गहे पुहुमी घिसिटायौ—२६२१ ।
घिसन—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिसना] (१) रगड़ । (२) काम होने से मशीन आदि की क्षीणता ।
घिसना—क्रि. स. [सं. घर्षण, प्रा. घसण] (१) रगड़ना । (२) पीसना, मलना ।
क्रि. अ.—रगड़ खाकर कम होना, छीजना ।
घिसपिस—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घिसघिस । (२) मेलजोल ।
घिसवाना—क्रि. स. [हिं. घिसाना] रगड़ाना ।
घिसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिसना] घिसने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।
घिसाना—क्रि. स. [हिं. घिसना का प्रे.] रगड़ना ।
घिसावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिसना] रगड़, घिसन ।
घिसि—क्रि. स. [हिं. घिसना] घिसकर, पीसकर । उ.—कुब्जा घिसि चंदन लै आई—सारा. ५०२ ।
घिसिआना,घिसियाना—क्रि. स.[हिं. घिसना]घसीटना ।
घिसियाइ—क्रि. स [हिं. घिसिआना] घसीटेगा, रगड़ेगा। उ.—तुमहिं कहत कोउ करै सहाइ । वह देवता कंस मारैगौ, केस धरे धरनी घिसिआइ—५३१ ।
घिसिरपिसिर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घिसघिस ।
घिस्टपिस्ट—संज्ञा पुं. [हिं. घिसघिस] (१) गहरा मेलजोल, घनिष्टता । (२) अनुचित संबंध ।
घिस्समघिस्सा—संज्ञा पुं. [हिं. घिसना] (१) खूब भीड़-भाड़ । (२) हाथ से डोरी लड़ाने का खेल ।
घिस्सा—संज्ञा पुं. [हिं. घिसना] (१) रगड़ा । (२) धक्का, ठोकर । (३) हाथ से डोरी लड़ाने का खेल ।
घींच—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव अथवा हिं. घींचना] गरदन, ग्रीव । उ.—(क) घींच मरोरि, दियौ कागासुर मेरैं ढिग फटकारी—१०-६० । (ख) नाथत ब्याल बिलँब न कीन्हौ । पग सौं चाँपि घींच बल तोरयौ, नाक फोरि गहि लीन्हौ—५५७ ।
घींचना—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. खींचना] खींचना ।
घी—संज्ञा पुं. [सं. घृत, प्रा. घीअ] दूध का सार, घृत ।
मुहा०—घी का कुप्पा—बड़ा धनी । घी का कुप्पा लुढ़ना—(१) धनी आदमी का मरना । (२) गहरी हानि होना । घी के कुप्पे से जा लगना—(१) धनी से भेंट और लाभ होना । (२) मोटा होने लगना । घी के दिये जलना—(१) कामना पूरी होना । (२) उत्सव होना । (३) धन धान्य से पूर्ण होना । घी के दिये जलाना— (१) इच्छा-पूर्ति पर उत्सव मनाना । (२) धन-धान्य से पूर्ण होना । घी के दिये भरना— (१) उत्सव मनाना । (२) सुख-संपति भोगना । घी-खिचड़ी—खूब मिला-जुला । घी खिचड़ी होना—बहुत गहरी मित्रता होना । पाँचों उँगलियाँ घी में होना—खूब लाभ का सुख होना ।
घीउ, घीऊ—संज्ञा पुं. [हिं. घी] घी, घृत ।
घीकुवाँर—संज्ञा पुं. [सं. घृतकुमारी] ग्वार पाठा ।
घीया—संज्ञा स्त्री. [हिं. घी] (१) तुरई । (२) कद्दू ।
घीव—संज्ञा पुं. [हिं. घी] घी । उ.—रोटी, बाटी, पोरी झोरी । इक कोरी, इक घीव चभोरी—३९६ ।
घीसा—संज्ञा पुं. [हिं. घिसना] घिसने या रगड़ने की क्रिया, माँजा, रगड़ ।
घुँगची, घुँघची—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजा, प्रा गुंचा] (१) गुंजा की लता । (२) इस लता का लाल बीज जिस पर एक छोटा काला छींटा रहता है ।
घुँघनी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घी-तेल में तला हुआ अन्न ।
मुहा०—घुँघनी मुँह में रखकर बैठना—मौन रहना ।
घुँघरारे, घुँघराला, घुँघराले—वि. [हिं घुँघरना+वाले] छल्ले या लच्छेदार (बाल) । उ.—मृगमद मलय अलक घुँघरारे । उन मोहन मन हरे हमारे ।
घुँघरू—संज्ञा पुं. [अनु. घुन घुन + सं. रव या रू] (१) धातु की पोली गुरिया जिसमें कंकड़ आदि भरकर बजाते हैं ।
मुहा०—घुँघरू सा लदना—शरीर में बहुत अधिक चेचक के दाने, छाले या फुंसियाँ होना ।
(२) छोटी छोटी गुरियों का बना पैर का गहना जो बच्चों को पहनाया जाता है या नाचनेवाले पहनते

हैं। उ.—प्रेम सहित पग बाँधि घूँघरू सक्यौ न अंग नचाइ—१५५।

मुहा०—घुँघरू बाँधना—(१) नाचना सिखाने के लिए चेला बनाना। (२) नाचने को तैयार होना।

(३) मरते समय कफ की अधिकता के कारण निकलनेवाला घुरघुर शब्द।

मुहा०—घुँघरू बोलना—मरते समय कफ के कारण घुरघुर शब्द निकलना, घर्रा या घटका लगना।

(४) बूट का कोष जिसमे चना दाना रहता है।

(५) सनई का सूखा फल जिसके बीज बजते हैं।

घुँघरूदार—वि. [हि. घुँघरू + फा. दार] जिसमें घुँघरू लगे या बँधे हों, घुँघुरुओं से युक्त।

घुँघरारा, घुघरारे—वि. [हिं.घुँघराला] छल्लेदार।

घुंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि] (१) कपड़े की सिली हुई छोटी गोली जो बटन की जगह लगायी जाती है।

मुहा०—जी की घुंडी खोलना—मन से वैर द्वेष निकालना।

(२) कड़े, बाजू, जोशन आदि गहनों की गाँठ।

(३) कटने पर भाग की जड़ से फूटनेवाला नया अंकुर, दोहला।

घुंडीदार—वि. [हि. घुंडी+फा. दार] घुडीवाला।

घुग्घू, घुघुआ—संज्ञा पुं. [सं. घूक, हिं. घुग्घू] उल्लू।

घुघुआना, घुघुवाना—क्रि. अ. [हिं. घुघुआ] (१) उल्लू का, या उल्लू की तरह, बोलना। (२) बिल्ली का, या बिल्ली की तरह, गुर्राना।

घुघरी, घुघुरी—संज्ञा पु. [हिं. घुँघरू] घुँघरू।

संज्ञा स्त्री. [हिं. घुघुनी] घी-तेल में तला अन्न।

घुटकना—क्रि. स. [हि. घूँट + करना] (१) पीना। (२) निगलना।

घुटकी—संज्ञा स्त्री. [हि. घुटकना] घुटकने की नली।

घुटना—संज्ञा पुं. [सं. घुंटक] जाँघ और टाँग के बीच की गाँठ, संधि या जोड़।

मुहा.—घुटना टेकना—(१) घुटनों के बल बैठना। (२) नम्र होना, प्रार्थना करना। घुटनों (के बल) चलना—बच्चों का बैयाँ बैयाँ चलना। घुटनों में सिर देना—(१) सिर नीचा करना, चिंतित या उदास होना। (२) मुँह छिपाना, लज्जित होना। घुटनों से लगकर बैठना—हर समय पास रहना।

क्रि. अ [हिं. घूँटना या घोटना] (१) साँस का रुकना, फँसना या खुल कर न लिया जाना।

मुहा०—घुटघुट कर मरना—(१) बड़ी कठिनता से प्राण निकलना। (२) बहुत कष्ट सहकर जीवन बिताना। (३) कष्ट सहने को इस प्रकार विवश या अधीन होना कि उसका विरोध करना तो दूर, चर्चा तक न कर सकना।

(२) फँसना, उलझ कर खड़ा हो जाना।

क्रि. अ. [हिं. घोटना] (१) घोटा जाना।

मुहा०—घुटा हुआ— बहुत चालाक, काँइयाँ, छँटा हुआ।

(२) रगड़ से चिकना-चमकीला होना। (३) मेल जोल या घनिष्टता होना। (४) घुलघुल कर बातें होना। (५) (कार्य या अभ्यास) बार बार होना।

क्रि. स. [अनु.] जोर से पकड़ना या कसना।

घुटन्ना—संज्ञा पुं. [हिं. घुटना] पायजामा।

घुटरुनि, घुटरुवनि—क्रि. वि. [हिं. घुटना] घुटनों के बल। उ.—(क) घुटरुनि चलत अजिर महँ बिहरत मुख मंडित नवनीत—१० ६७। (ख) घुटरुन चलत कनक आँगन में—सारा. १६६।

घुटरूँ—संज्ञा पु. [हिं. घुटना] पैर के बीच की गाँठ या जोड़, घुटना।

घुटवाना—क्रि. स. [हिं. घोटना का प्रे.] (१) घोटने या रगड़ने का काम कराना। (२) बाल मुँड़ाना।

घुटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं.घुटना] घोटने, रगड़ने, चिकना या चमकीला बनाने की क्रिया या मजदूरी।

घुटाना—क्रि स. [हिं. घोटना का प्रे.] (१) घोटने या रगड़ने का काम कराना। (२) बाल मुड़ाना।

घुटुरुनि, घुटुरुअनि, घुटुरुवनि—क्रि. वि. [स. घुंटक, हिं. घुटना] घुटनों के बल। उ.—(क) कबहिं घुटुरुवनि, चलहिंगे, कहि, बिधिहि मनावै—१०-७४। (ख) कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै—१० ७६। (ग) घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित सूरदास बलि जाई—१०-१०८।

घुटुरू, घुटुवा—संज्ञा पुं. [हि. घुटना] घुटना।

घुट्टा—संज्ञा पुं. [हि. घोटा] घोटने की वस्तु।

घुट्टी—संज्ञा स्त्री. [हि. घूँट] बच्चों की एक दवा।
मुहा०—घुट्टी में पड़ना - स्वभाव का अंग होना।
घुड़कना—क्रि. स. [सं. घुर] डाँटना, डपटना।
घुड़की—संज्ञा स्त्री. [हि. घुड़कना] (१) डाँट, डपट, फटकार। (२) घुड़कने की क्रिया।
या—बंदर घुड़की—झूठमूठ डराना, धमकाना।
घुड़चढ़ा—संज्ञा पुं. [हि. घोड़ा + चढ़ना] घुड़सवार।
घुड़चढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. घोड़ +चढ़ना] विवाह की एक रीति जिसमें दुलहिन के घर जाने के लिए दूल्हा घोड़े पर चढ़ता है।
घुड़दौड़, घुड़दौर—संज्ञा स्त्री. [हि. घोड़ा + दौड़] (१) घोड़ों की दौड़। (२) जुआ जो घोड़ों के दौड़ने पर खेला जाता है।
क्रि. वि —बड़ी तेजी या शीघ्रता से।
घुड़नाल—संज्ञा स्त्री. [हि. घोड़ा + नाल] एक तोप।
घुड़बहल—संज्ञा स्त्री. [हि. घोड़ा + बहल] वह रथ जिसमें घोड़े जोते जाते हों।
घुड़मुहाँ—वि. [हि. घोड़ा+मुँह] लंबे मुँहवाला।
घुड़ला—संज्ञा पुं. [हि घोड़ा + ला (प्रत्य.)] (१) मिट्टी धातु आदि का घोड़ा। (२) छोटा घोड़ा।
घुड़सार, घुड़साल—संज्ञा स्त्री. [हि घोड़ा + शाला] घोड़े बाँधने का स्थान, अस्तबल, पैंड़ा।
घुड़िया—संज्ञा स्त्री [हि. घोड़ी (अल्प.)] (१) छोटी घोड़ी। (२) दीवाल में लगी खूँटी।
घुण—संज्ञा पु. [सं] एक बहुत छोटा कीड़ा।
घुणाक्षरन्याय—संज्ञा पु. [सं.] ऐसा कार्य या रचना जो अनजान या आकस्मिक रूप से हो जाय।
घुन—संज्ञा पुं. [सं. घुण] एक छोटा कीड़ा।
मुहा०—घुन लगना—(१) इस कीड़े का लकड़ी या अनाज को खाना। (२) धीरे धीरे किसी चीज का छीजना या नष्ट होना।
घुनघुना—संज्ञा पुं. [अनु.] एक खिलौना, झुनझुना।
घुनना—क्रि. स. [हि. घुन] (१) घुन के द्वारा लकड़ी आदि का खाया जाना। (२) किसी चीज का भीतर ही भीतर छीजना या नष्ट होना।
घुना—वि. [हि. घुनना] घुना हुआ, छीजा हुआ।
क्रि. स.— घुन गया, नष्ट हो गया।

घुनि—क्रि. स. [हिं. घुनना] घुन लग गया, घुन गया।
उ.—स्याम के बचन सुनि, मनहिं मन रह्यो गुनि, काठ ज्यौं गयौ घुनि, तनु भुलानौ—५६०।
घुनो—वि. [हि. घुना] घुना हुआ, छीजा हुआ। उ.—घुनो बाँस गत बुन्यो खटोला बाहू को पलँग बनक पाटी को—१० उ.-७१।
घुन्ना—वि. पु [अनु. घुनघुनाना] क्रोध, द्वेष आदि को मन ही मन रखने या पालनेवाला, चुप्पा।
घुन्नी—वि. स्त्री. [हि. घुन्ना] मन का भाव छिपाने में कुशल, चुप्पी, मौन।
घुप—वि. [सं. कूप या अनु.] गहरा या घना (अँधेरा)।
घुमँड़ना—क्रि. अ. [हिं. घुमड़ना] इकट्ठा होना, छाना।
घुमक्कड़—वि. [हिं. घूमना + अक्कड़ (प्रत्य.)] (१) बहुत घूमने-फिरनेवाला। (२) आवारा।
घुमची—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुँघची] गुंजा, गुंजिका।
घुमटा—संज्ञा पुं. [हि. घूमना + टा (प्रत्य.)] चक्कर।
घुमड़—संज्ञा स्त्री [हि. घुमड़ना] बादलों का उमड़ना।
घुमड़ना—क्रि. अ. [हिं. घूम + अटना] (१) बादलों का छाना या उमड़ना। (२) इकट्ठा होना, छाना।
घुमड़ाना—क्रि. अ. [हि. घुमड़ना] छाना, उमड़ना।
वि.—छाया हुआ, उमड़ते हुए।
घुमड़ा—संज्ञा स्त्री [हिं. घूमना] (१) घूमने या चक्कर खाने की क्रिया। (२) सिर का चक्कर। (३) चक्कर आने का रोग। (४) परिक्रमा।
घुमना—वि. [हिं. घूमना] घूमनेवाला, घुमक्कड़।
घुमनी—वि स्त्री. [हि घुमना] घूमने-फिरनेवाली।
संज्ञा स्त्री. [हि. घूमना] (१) चक्कर। (२) चक्कर आने का रोग। (३) परिक्रमा।
घुमरना—क्रि. अ. [अनु. घमघम] घोर शब्द करना।
क्रि. अ [हि. घुमड़ना] बादलों का छाना।
क्रि. अ. [हि. घूमना] घूमना-फिरना।
घुमरात—क्रि. अ. [हि. घुमरना] घुमरता हुआ। उ.—गरजि घुमरात मद मार गंडनि स्रवत पवन ते बेग तेहि समय चीन्हो—२५६१।
घुमराना—क्रि. अ [हि. घुमरना] शब्द करना, गूँजना।
घुमरि—क्रि. अ. [हिं. घुमरना] घोर शब्द करके, ऊँचे स्वर से बजकर, गूँजकर। उ.—सूर धन्य जदुबंस उजागर धन्य धन्य धुनि घुमरि रह्यौ—२६१६।

घुमरी—संज्ञा स्त्री [हिं. घुमड़ा] (१) चक्कर। (२) (पानी का) भँवर। (३) चक्कर आने की बीमारी।

घुमर्यौ—क्रि. अ. [हिं घुमरना] घुमरने लगा। उ.—पटकि चरन नृप सत्रनन घुमर्यौ—२६४३।

घुमाँ—संज्ञा पुं. [हिं. घूमना] जमीन की एक नाप जो दो बीघों के बराबर होती है।

घुमाना—क्रि. स. [हिं. घूमना] (१) चक्कर देना, चारो ओर फिराना। (२) टहलाना, सैर कराना। (३) किसी विषय या काम में लगाना (४) ऐंठना, मरोड़ना।

घुमाव—संज्ञा पुं. [हिं. घुमाना] (१) घुमाने का भाव। (२) फेर, चक्कर।

मुहा०—घुमाव-फिराव की बात—छल कपट, हेर-फेर या दाँव-पेच की बात या चाल।

घुमावदार—वि. [हिं. घुमाव+फा. दार] जिसमें घुमाव-फिराव या चक्कर हों, चक्करदार।

घुम्मरना—क्रि. अ. [हिं. घुमरना] (१) शब्द करना, बजना। (२) उमड़ना, छाना। (३) घूमना।

घुरकना—क्रि. अ. [हिं. घुड़कना] घुड़की देना।

घुरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुड़कन, घुड़की] घुड़की, डाँट-डपट। उ.—लोचन भरि भरि दोउ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी। रोवत देखि जननि अकुलानी, दियौ तुरत नौवा कौं घुरकी—१०-१८०।

घुरघुर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) कफ रुकने के कारण होनेवाला शब्द। (२) (बिल्ली आदि के) गुर्राने का शब्द।

घुंघुराना—क्रि. अ. [अनु. घुरघुर] घुरघुर करना।

घुंघुराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुरघुराना] घुरघुर शब्द निकालने का भाव, घुर्राहट।

घुरत—क्रि. अ. [सं. घुर] बजता है, शब्द करता है। उ.—अवधपुर आए दसरथ राई। ...... घुरत निसान, मृदंग-सख धुनि, भेरि झाँझ सहनाइ—६-२६।

घुरना—क्रि अ. [हिं. घुलना] हिलमिल जाना।

क्रि अ. [सं. घुर] शब्द करना, गूँजना।

घुरबिनिया—संज्ञा स्त्री. [हिं घूरा + बीनना] (१) घूरे के दाने बीनना। (२) टूटी-फूटी चीजें बीनना।

वि.—घूरे से दाने बीननेवाला।

घुरमना—क्रि अ. [हिं. घूमना] फिरना, चकराना।

घुरमित—वि. [सं. घूर्णित] घूमता हुआ।

घुरहुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुर + हर (प्रत्य.)] पगडंडी।

घुरि—क्रि. अ. [हिं. घुलना] घुलकर, हिलमिलकर। उ.—फेनी घुरि मिलि मिली दूध संग—२३२१।

क्रि. अ. [हिं. घुरना] शब्द करके, बजकर।

घुरहुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुरहुरी] तंग रास्ता, पगडंडी।

घुरे—संज्ञा पुं. [हिं. घूरा] कूड़े-करकट का ढेर, घूरा। उ.—फलन माँझ ज्यों करुई तोमरि रहत घुरे पर डारी—२६३५।

क्रि. अ. [हिं. घुरना] बजने या शब्द करने लगे।

घुर्मित—क्रि. वि. [सं. घूर्णित] घूमता फिरता हुआ, चक्कर खाता हुआ।

घुर्राना—क्रि अ. [हिं. गुर्राना] घुरघुर शब्द करना।

घुरुवा—संज्ञा पुं. [देश.] जानवरों का एक रोग।

घुलना—क्रि. अ. [सं. घूर्णन, प्रा. घुलन] (१) किसी द्रव पदार्थ का खूब हिल-मिल जाना।

मुहा.—घुलघुल कर बातें करना—बड़ी लगन या प्रीति से बातें करना। घुलमिलकर—बड़ी लगन या प्रीति से। नजर (आँखें) घुलना—प्रेमपूर्वक देखना। (२) जल, दूध आदि के संयोग से गलना। (३) नरम या पिलपिला होना। (४) रोग आदि से शरीर क्षीण या दुर्बल होना।

मुहा०—घुला हुआ—जिसकी शक्तियाँ क्षीण हो गयी हैं, बुड्ढा। घुलघुल कर काँटा होना—इतना दुर्बल होना कि हड्डियाँ दिखायी दें।

(५) (समय) बीतना या व्यतीत होना।

घुलाना—क्रि स. [हिं. घुलना] (१) गलाना। (२) शरीर क्षीण करना। (३) धीरे धीरे रस चूसना। (४) पकाकर या दबाकर पिलपिला करना। (५)समय बिताना। (६) घुलने की क्रिया।

घुलावट—संज्ञा स्त्री [हिं. घुलना] घुलने की क्रिया।

घुसना—क्रि. अ. [सं कुश = घेरा अथवा घर्षण] (१) अंदर जाना, प्रवेश करना। (२) चुभना, गड़ना। (३) किसी काम में दखल देना। (४) किसी विषय में ध्यान लगाना। (५) दूर होना, जाता रहना।

घुसपैठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुसना + पैठना] पहुँच ।
घुसाना—क्रि. स. [हिं. घुसना] (१) भीतर करना, प्रवेश कराना (२) चुभाना, धँसाना ।
घुसेड़ना—क्रि. स. [हि. घुसना] घुसाना, धँसाना ।
घूँगची—संज्ञा स्त्री. [हि. घुँघची] गुंजा ।
घूँघट—संज्ञा पुं. [सं. गंठ] साड़ी जैसे वस्त्र का वह भाग जिससे कुलवधू का मुँह ढका रहता है । उ.—(क) घूँघट पट कोट टूटे, छुटे दृग ताजी—६५० । (ख) घूँघट ओट महल में राखति पलक कपाट दिये—पृ. ३२६ ।
मुहा०—घूँघट उठाना (उलटना)—(१) घूँघट हटाकर मुँह खोलना । (२) परदा दूर करना । (३) नयी वधू का मुँह खोलना । घूँघट करना-लाज शर्म करना । घूँघट काढ़ना (निकालना, मारना)—घूँघट डाल कर मुँह ढकना । दै घूँघट पट—घूँघट काढ़कर, मुँह ढककर । उ.—दै घूँघट पट ओट नील, हँसि, कुँवरि मुदित मुख हेरे—६३२ ।
(२) परदे की दीवार, ओट ।
घूँट—संज्ञा पुं. [अनु. घुटघुट] पानी आदि द्रवों का उतना अंश जितना एक बार में घूँटा जाय ।
घूँटना—क्रि. स. [हिं. घूँट] घूँट भरना, पीना ।
घूँटा—संज्ञा पुं. [सं. घुंटक, हि. घुटना] घुटना ।
घूँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घूँट] बच्चों की एक औषध ।
घूँघर—संज्ञा पुं. [हिं. घुमरना] बालों का छल्ला ।
घूँघरवारी—वि. स्त्री. [हिं. घूँघर] छल्लेदार, झबरीले । उ.—लघु-लघु लट सिर घूँघरवारी, लटकन लटकि रह्यो माथे पर—१०-६३ ।
घूँघरवारे, घूँघरवाले—वि. [हि. घूँघर] छल्लेदार । (क) गभुआरे सिर केस हैं वर घूँघरवारे--१०-१३४ । (ख) अरुझि रहे मुकताहल निरवारत सोहत घूँघरवारे बाल—पृ. ३११ ।
घूँघरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का बाजा ।
घूँघरी—संज्ञा स्त्री. [अनु. घुन+घुर] नूपुर, घुँघरू ।
घूँघरू—संज्ञा पुं [हिं. घुँघरू] नुपूर, नेउर ।
घूँटै—क्रि. स. [हि. घूँटना] पीता है । उ.—लाख जतन करि देखौ, तैहैं बार बार बिष घूँटै—१-६३ ।
क्रि. स, सवि. [हिं. घुटना] साँस रोकने से, साँस दबाने से । उ.—कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूँटै—२-१६ ।
घूँसा—संज्ञा पु. [हिं. घिस्सा] (१) बँधी हुई मुट्ठी, मुक्का, धमाका । (२) मुक्के का प्रहार ।
घूआ—संज्ञा पुं. [देश.] काँस आदि के फूल ।
घूघ—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोघो या फा. ख़ोद] सिपाहियों की लोहे-पीतल की टोपी ।
घूटना—क्रि. स. [हिं. घुटना] साँस रोकना ।
घूम—संज्ञा स्त्री. [हि. घूमना] (१) घुमाव । (२) मोड़ ।
घूमना—क्रि. स. [सं. घूर्णन] (१) घूमना, चक्कर खाना । (२) टहलना, सैर करना । (३) यात्रा करना । (४) घेरे में मँडराना, कावा काटना । (५) मुड़ जाना । (६) लौटना, वापस आना । (७) मतवाला होना ।
घूमनी—संज्ञा स्त्री. [हि. घूमना] सिर का चक्कर, घुमटा ।
घूमि—क्रि. अ. [हि. घूमना] चक्कर खाकर । उ.—घूमि रहीं जित तित दधि-मथनी, सुनत मेघ-धुनि लाजै री—१०-१३६ ।
घूमै—क्रि. अ. [हि. घूमना] चारो ओर फिरती है, चक्कर खाती है । उ.—(एरी) आनँद सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै—१०-१४० ।
घूर—संज्ञा पुं. [सं. कूट, हि. कूरा, कूड़ा, घूरा] (१) कूड़ा फेंकने का स्थान । उ.—(क) पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै—२-१३ । (ख) अपनो घर परिहरै कहौ को घूर बतावै·······। (ग) ऊधौ घर लागै अब घूर कहौ मन कहा धावै--३४४३ । (२) कूड़े का ढेर । (३) गंदा स्थान ।
घूरना—क्रि. अ. [सं. घूर्णन] (१) बुरे भाव या बुरी नियत से ताकना । (२) क्रोध से देखना । (३) घूमना, टहलना ।
घूरा—संज्ञा पुं. [हिं. घूर=कूड़ा] (१) कूड़े का ढेर । (२) वह स्थान जहाँ कूड़ा फेका जाय । (३) गंदा स्थान ।
घूराघारी—संज्ञा स्त्री. [हि. घूरना] घूरने की क्रिया ।
घूस—संज्ञा स्त्री. [सं. गुहाशय] एक बड़ा चूहा ।
संज्ञा स्त्री. [सं गुह्य + आशय] रिश्वत ।
घृणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घिन, नफरत । (२) बीभत्स रस का स्थायी भाव ।

घृणित—वि. [सं.] (१) घृणा के योग्य। (२) जिसे देख या सुनकर मन में घृणा पैदा हो।

घृत—संज्ञा पुं. [सं.] घी।

घृतकुमारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] घीकुवार।

घृतपूर—संज्ञा पुं. [सं.] घेवर नामक पकवान।

घृतसार—संज्ञा पुं. [सं.] सार रूप घृत। उ.—है हरि नाम कौ आधार। ... । सकल स्रुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार—२-४।

घृताची—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक अप्सरा। (२) यज्ञ में घी डालने की करछुली, स्रुवा।

घेंट—संज्ञा पुं [हिं घाँटी] गला, गरदन।

घेघा—संज्ञा पुं. [देश.] गले की नली।

घेपना—क्रि. स. [हिं घोपना] (१) (किसी गाढ़ी चीज को) हाथ या उँगली से मिलाना। (२) खुरचना।

घेर—संज्ञा पुं [हिं. घेरना] घेरा, परिधि।

संज्ञा पुं. [हिं. घैर] निंदामय चर्चा, बदनामी। उ.—घर घर इहै घेर (घैर) बृथा मोसों करै बैर यह सुनि स्रवननि हृदय सहि दहिये—१२७३।

घेरघार—संज्ञा पुं. [हिं घेरना] (१) घेरने या छाने की क्रिया। (२) चारो ओर का फैलाव, विस्तार। (३) बार-बार प्रार्थना या सिफारिश लेकर जाना।

घेरत—क्रि. स. [हिं. घेरना] चारो ओर से रोकते हैं, इधर उधर नहीं जाने देते। उ.—मैया री मोहिं दाऊ टेरत। मोकौं बन-फल तोरि देत हैं, आपुन गैयनि घेरत—४२४।

घेरन—संज्ञा स्त्री [हिं. घेरना] घेरने, रोकने या छाने की क्रिया, युक्ति या रीति। उ.—(क) कहत न बनै काँध कामरि छवि बन गैयन की घेरन—३२७७। (ख) कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछरू लिवाइ—५००।

घेरना—क्रि. स. [सं. ग्रहण] (१) चारो ओर छाना। (२) चारो ओर से रोकना या छेंकना। (३) (पशु) चराना। (४) किसी स्थान पर अधिकार जमाये रखना। (५) आक्रमण के लिए चारो ओर फैलना। (६) किसी के पास प्रार्थना या स्वार्थ से जाना।

घेरनो—संज्ञा स्त्री [हिं. घेरना] चारो ओर से घेरने या रोकने की क्रिया। उ.—गैयाँ गईं बगराइ सघन वृंदावन बंसीबट जमुना तट घेरनो—२२८०।

घेरहिं—क्रि. स. [हिं. घेरना] आक्रमण करने या अधिकार जमाने के लिए चारो ओर से घेर लें। उ.—सब दल होहु हुसियार चलहु मठ घेरहिं जाई—१० उ.८।

घेरा—संज्ञा पुं. [हिं. घेरना] (१) चारो ओर की सीमा या फैलाव, परिधि। (२) सीमा या परिधि का जोड़ या मान। (३) दीवार आदि जो किसी स्थान को घेरे हो। (४) घिरा हुआ स्थान, हाता। (५) सेना का आक्रमण।

संज्ञा पुं. [हिं. घैर] निंदामय चर्चा, बदनामी। उ.—(क) सकुचति हौं घर घर घेरा को नेक लाज नहिं तेरे—१०३६। (ख) घेरा यहै चलावत घर घर स्रवन सुनत जिय खुनसौं—१२२१। (ग) सुनि न जात घरघर को घेरा काहू मुख न समाऊ—१२२२।

घेराई—संज्ञा स्त्री [हिं. घिराई] (१) घेरने की क्रिया या भाव। (२) पशु चराने की क्रिया या मजदूरी।

घेराव—संज्ञा पुं. [हिं. घिराव] (१) घेरने या घिरने की क्रिया या भाव। (२) घेरा, मंडल।

घेरि, घेरी—क्रि. स. [हिं. घेरना] (१) चारो ओर से उमड़ कर, छा कर। उ—(क) अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यों घेरि रह्यौ, घट घहरि—१-३१२। (ख) माधव मेघ घेरि कितौ आए—१५८। (२) चारो ओर से रोक या छेंक कर। उ.—(क) गैयन घेरि सखा सब लाए। (ख) ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहे डगरौ—१०-३३६। (३) रोककर, पकड़ कर। उ.—तुम तें दूरि होत नहिं कतहूँ तुम राखौ मोहिं घेरी—११९३। (४) दुर्ग पर अधिकार करने के लिए आक्रमण करने या चारो ओर से छेंक कर। उ.—(क) लखन दल संग लै लंक घेरी—९-१३६। (ग) भीषम भवन रहत ज्यों लुब्धक असुर सैन्य मिलि घेरी—१० उ-१२।

घेरे—क्रि. स. [हिं. घेरना] (१) घेरने से, रोकने से। उ.—घेरे घिरतिं न तुम बिनु माधौ, मिलतिं न बेगि दई—६१२ (२) चारो ओर छा जाते हैं। (३)

किसी स्वार्थ या उद्देश्य से सदा साथ रहते हैं। उ.—या संसार विषय विष-सागर, रहत सदा सब घेरे—१-८५।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. घेरा] मंडल में।

घेरै—क्रि. स. [हिं. घेरना] आक्रांत करता, छेंकता या ग्रसता है। उ.—दिन द्वै लेहु गोविंद गाई। मोह-माया-लोभ लागे, काल घेरै आइ—१-३१६।

घेरो, घेरौ—संज्ञा पुं. [हिं. घेरा] स्थान, विस्तार, फैलाव। उ.—कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ—१-२३६।

क्रि. स. [हिं. घेरना] चारों ओर से रोको, छेंको। उ.—माधव सखा स्याम इन कहि-कहि अपने गाइ-ग्वाल सब घेरौ—२५३२।

संज्ञा पुं. [हिं. घैर] निंदामय चर्चा, बदनामी। उ.—कहाँ कान्ह कहाँ मैं सजनी ब्रज घर घर यह चलत है घेरो—१२७१।

घेर्‌यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. घेरना] चारों ओर से घेरा, ग्रसा, छेंका, आक्रांत किया। उ.—(क) ग्राह जब गजराज घेर्‌यौ, बल गयौ हारी। हारि कै जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरधारी—१-१७६। (ख) सुरति के दस द्वार रूँधे, जरा घेर्‌यौ आइ। सूर हरि की भक्ति कीन्हैं, जन्म-पातक जाइ—१-३१६।

घेलौना—संज्ञा पुं. [हिं. घाल] घलुवा, घाता।

घेवर—संज्ञा पुं. [हिं. घी + पूर] एक प्रकार की मिठाई जो, मैदे, घी और चीनी से बनती है। उ.—घेवर अति घिरत-चभोरे—१०-१८३।

घैया—संज्ञा पुं. [देश] (१) ताजे दूध के ऊपर के माखन को काछकर इकट्ठा करने की क्रिया। उ.—(क) कजरी धौरी, सेंदुरि, धूमरि मेरी गैया। दुहि ल्याऊँ मैं तुरत हीं, तू करि दै री घैया—६६६। (ख) दूध दोहनी लै री मैया। दाऊ टेरत सुनि मैं आऊँ तब लौं करि बिधि घैया—७२५। (२) गाय के थन से निकलती हुई दूध की धार जो मुँह लगाकर पी जाय। उ.—गिरि पर चढ़ि गिरवर-धर टेरे। अहो सुबल, श्रीदामा भैया, ल्यावहु गाइ खरिक कैं नेरे। आई छाक अबार भई है, नैंसुक घैया पिएउ सबेरे —४६३। (३) पेड़ काटने या उसमें से रस निकालने के उद्देश्य से किया गया आघात।

संज्ञा स्त्री. [हिं. घाई या घा] ओर, दिशा।

घैर, घैरु, घैरो, घैरौ—संज्ञा पुं. [देश.] (१) निंदामय चर्चा, बदनामी, अपयश। उ.—सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, ब्रज-घर-घर यह घैरु चलाइ—७६१। (२) चुगली, शिकायत, उलाहना।

घैला—संज्ञा पु. [सं. घट] घड़ा, कलसा।

घैहल, घैहा—वि. [हिं. घाव] घायल, जख्मी।

घोंघा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) शंख की तरह का पानी का एक कीड़ा। (२) गेहूँ के दाने का कोश।

वि.—(१) व्यर्थ, सारहीन। (२) मूर्ख, जड़।

घोंचा—संज्ञा पुं. [हिं. गुच्छा] गौद, गुच्छा।

घोंटना—क्रि. स. [हिं. घूँट, पू. हिं. घोंट] (१) घूँट घूँट करके या धीरे धीरे पीना। (२) हजम करना।

क्रि. स. [सं. घुट] (गला) दबाना।

घोंपना—क्रि. स. [अनु. घप] चुभाना। गाँठना।

घोंसला, घोंसुआ—संज्ञा पुं. [सं. कुशालय या हिं. घुसना] चिड़ियों का घर, नीड़, खोता।

घोखना—क्रि. स. [स. घुष] रटना, घोटना।

घोट, घोटक—संज्ञा पुं. [सं. घोटक] घोड़ा, अश्व।

घोटना—क्रि. स. [स. घुट] (१) एक वस्तु को चमकीली बनाने के लिए दूसरी से रगड़ना। (२) पीसने के लिए रगड़ना। (३) मिलाना। (४) बार बार अभ्यास करना, रटना। (५) डाँटना, फटकारना। (६) गला इस तरह दबाना कि दम घुट जाय।

संज्ञा पु.—घोटने की वस्तु या औजार।

घोटा—संज्ञा पुं. [हिं. घोटना] (१) वस्तु जिससे घोटने का काम किया जाय। (२) चमकीला कपड़ा। (३) एक औजार। (४) रगड़ा, घुटाई। (५) हजामत।

घोटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोटना + आई (प्रत्य)] घोटने का भाव, क्रिया या मजदूरी।

घोटाला—संज्ञा पुं. [देश.] गड़बड़, घपला।

घोटू—संज्ञा पुं. [हिं घोटना] (१) घोटनेवाला। (२) रट्टू। (३) घोटने का औजार या वस्तु।

संज्ञा पुं. [हिं. घुटना] पैर की गाँठ, घुटना।

घोड़, घोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. घोटक, प्रा. घोड़] (१) अश्व, तुरंग।

मुहा०—घोड़ा छोड़ना—(१) किसी के पीछे घोड़ा दौड़ाना। (२) घोड़े को इच्छानुसार चलने देना। घोड़ा डालना—किसी के पीछे घोड़े को जोर से दौड़ाना। घोड़ा निकालना—घोड़े को दूसरे से आगे बढ़ा लेना। घोड़े पर चढ़े आना—लौटने की बहुत जल्दी करना। घोड़ा फेंकना—घोड़ा बहुत तेज दौड़ाना। घोड़ा बेचकर सोना—गहरी नींद लेना।

(२) बंदूक का एक पेंच या खटका। (३) शतरंज का एक मोहरा जो ढाई घर चलता है। (४) खूँटी।

घोड़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोड़ी + इया (प्रत्य.)] (१) छोटी घोड़ी। (२) छोटा घोड़ा। (३) छोटी खूँटी।

घोड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोड़ा] (१) घोड़े की मादा। (२) विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर दुलहिन के घर जाता है। (३) विवाह के गीत जो वर-पक्ष की ओर से गाये जाते हैं।

घोण—संज्ञा पुं. [देश.] तारदार एक बाजा।

संज्ञा स्त्री. [सं. घ्राण] नाक।

घोर—वि. [सं.] (१) कठिन, कड़ा। उ.—कटक सोर अति घोर दसौं दिसि, दीसति बनचर-भीर—९-११५। (२) सघन, घना। (३) भयानक, डरावना। उ.—ज्यौं पावस रितु घन-प्रथम-घोर। जल जीवक, दादर रटत मोर—९-१६६। (४) क्रोध की मुद्रा के साथ, दृढ़ता से पकड़े हुए। उ.—चित दै चितै तनय मुख ओर। सकुचत सीत भीत जलरुह ज्यौं तुव कर लकुट निरखि सखि घोर—३५७। (५) गहरा, गाढ़ा। (६) बहुत बुरा। (७) बहुत अधिक।

संज्ञा स्त्री. [सं. घुर] शब्द, गर्जन, ध्वनि। उ.—कहि काको मन रहत स्रवन सुनि सरस मधुर मुरली की घोर—१४४७।

संज्ञा पुं. [हिं. घोड़ा] अश्व, तुरंग।

क्रि. वि.—बहुत, अत्यंत।

घोरत—क्रि. अ. [हिं. घोरना] भारी शब्द करता है, गरजता है। उ.—चहुँ दिसि पवन चकोरत घोरत मेघ घट गंभीर—९६४।

घोरना—क्रि. स. [हिं. घोलना] घोलना, मिलाना।

क्रि. अ. [हिं घोर] भारी शब्द करना, गरजना।

घोरनो—क्रि. अ. [हिं. घोरना] शब्द करना। उ.—तैसोई नन्ही नन्ही बूँदनि बरषै मधुर मधुर ध्वनि घोरनो—२२८०।

घोरा—संज्ञा पुं. [हिं. घोड़ा] (१) घोड़ा। (२) खूँटा।

घोरि—क्रि. स. [हिं. घोलना] घोलकर, पानी आदि में मिलाकर। उ.—(क) जो गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ। ममकृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ—१-१११। (ख) घोरि हलाहल सुन री सजनी औसर सर तेहि न पियो—२५४५।

घोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोड़िया] छोटा घोड़ा-घोड़ी।

घोरिला—संज्ञा पु. [हिं. घोड़ी] (१) लड़कों के खेलने का मिट्टी का घोड़ा। (२) खूँटा जिसकी बनावट घोड़े के मुँह की तरह हो।

घोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घोड़ी] घोड़ी।

क्रि. स. [हिं. घोलना] घोलकर, मिलाकर।

उ.—कुंकुम चंदन अरगजा घोरी—२४४४।

घोरै—संज्ञा सवि. [हिं. घोड़ा] घोड़े (पर)।

मुहा०—मनु आई चढ़ि घोरै—(१) बहुत जल्दी मचा रही है। (२) बड़ा गर्व कर रही है, किसी घमंड में है। उ.—कहा भयौ तेरे भवन गए जो दियौ तनक लै भोरै। ता ऊपर काहैं गरजति है, मनु आई चढ़ि घोरै—१०-३२१।

संज्ञा स्त्री. [सं. घुर, हिं. घोर] ध्वनि, शब्द। उ.-सुनि मुरली को घोरै सुर-बधू सीस ढोरैं—२२८७।

क्रि. स. [हिं. घोलना] घोलता है, पानी आदि में मिलाता है। उ.—कागद धरनि करै द्रुम लेखनि जल-सायर मसि घोरै—१-१२५।

घोरौं—क्रि. स. [हिं. घोलना] घोल दूँ, मिला दूँ। उ.—कहौ तौ पैठि सुधा कैं सागर, जल समस्त मैं घोरौं—९-१४८।

घोल—संज्ञा पुं. [हिं. घोलना] वह पानी जिसमें कुछ घुला हो।

घोलना—क्रि. स. [हिं. घुलना] पानी आदि द्रव पदार्थों में हल करना या मिलाना।

घोला—वि. [हिं. घोलना] जो घोलकर बना हो।
मुहा०—घोले मे डालना—(१) किसी काम को उलझन में डाल कर देर लगाना। (२) टालटूल करना। घोले में पड़ना-झगड़े में पड़ना, देर लगाना।

घोलुवा—वि [हि. घोलना + उवा (प्रत्य.)] घोला हुआ।
मुहा०-घोलुवा पीना—कड़ुई वस्तु पीना। घोलुवा घोलना—काम में देर लगाना।

घोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अहीरों की बस्ती। उ.—(क) बकीजु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति दीनी—१-१२२। (ख) आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री। खेलत रह्यौ घोष के बाहर कोउ आयो शिशु रूप रच्यौ री। (२) अहीर। उ.—बिछुरत भेंट देहु ठाढे ह्वै निरखो घोष-जन्म को खेरो—२५३२। (३) गोशाला। उ.—नंद बिदा ह्वै घोष सिधारौ — २६५३। (४) तट, किनारा। (५) शब्द, नाद। (३) गरजने का शब्द।

घोषकुमारि, घोषकुमारी—संज्ञा स्त्री. [सं. घोष + हि. कुमारी] अहीरो या ग्वालों की कुमारियाँ। उ.—बहुत नारि सुहाग सुंदरि और घोषकुमारि—१०-२६।

घोषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूचना। (२) राजाज्ञा आदि की सूचना, मुनादी।

घोषणापत्र—संज्ञा पुं. [सं.] राजाज्ञा सूचना पत्र।

घोषपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. घोष + हि. पुरी] अहीरों की बस्ती या नगरी। उ.—जो सुख ब्रज में एक घरी। सो सुख तीनि लोक मैं नाहीं धनि यह घोष पुरी —१०-६६।

घोषवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] वीणा।

घोसी—संज्ञा पुं. [सं. घोष] अहीर, ग्वाला।

घौंर, घौंरा, घौद—संज्ञा पुं. [हिं. गौद] घौद, गौद, फलों का गुच्छा।

घौरी—संज्ञा स्त्री. [हि. घौद] गौद, फलगुच्छ।

घौहा—सज्ञा पुं. [हिं. घाव + हा (प्रत्य.)] चुटीला फल।
वि.—चुटीला, घायल, चोट खाया हुआ।

घ्राण—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाक। (२) सूँघने की शक्ति। (३) गंध, सुगंध।

ङ

ङ—कवर्ग का अंतिम अक्षर, स्पर्श वर्ण जिसका उच्चारण कंठ और नाक से होता है।

ङ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूँघने की शक्ति। (२) गंध, सुगंध। (३) भैरव।

च

च—हिंदी का छठा व्यंजन और अपने वर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारण तालु से होता है।

चंक—वि. [सं. चक्र] (१) पूरा-पूरा, सारा। (२) उत्सव जो फसल कटने पर मनाया जाता है।

चंकुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रथ। (२) पेड़।

चंक्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] घूमना, टहलना।

चंग—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) एक बाजा। उ.—(क) महुवरि बाँसुरी चंग लाल रंग हो हो होरी—२४१०। (ख) डिमडिमी पटह ढोल डफ बीणा मृदंग उपंग चग तार—२४४६।
संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) जौ। (२) जौ की शराब।
संज्ञा स्त्री. [सं चं=चंद्रमा] पतंग, गुड्डी।
मुहा.—चंग चढना या उमड़ना—खूब जोर या बढ़ती होना। चंग पर चढना—(१) इधर उधर की बातें करके अपने अनुकूल या पक्ष में करना। (२) मिजाज बढ़ा-चढ़ा देना।
वि.—(१) कुशल। (२) स्वस्थ। (३) सुंदर।

चंगना—क्रि. स. [हिं. चंगा या फ़ा. तंग] (१) खींचना। (२) कसना।

चंगा—वि. [हिं. चंग] (१) स्वस्थ, तंदुरुस्त। (२) सुंदर, भला। (३) निर्मल, शुद्ध।

चंगी—वि. स्त्री. [हिं. चंगा] भली लगनेवाली, सुंदर। उ.—भले जू भले नंदलाल वेऊ भली चरन जावक

पांग जिनहिं रंगी। सूर-प्रभु देखि अंग अंग बानिक कुसल मैं रही रीझि वह नारि चंगी।

मुहा०—चनी-चगी—बनी-चुनी, सजी-सजायी, खूब छँटी हुई, चतुर, भली (व्यंग्य)। उ.—सखी बूझत ताहि हँसत जामुख चाहि स्याम को मिली री बनी चगी—२१७५।

चंगु—संज्ञा पुं. [हिं. चंगुल] (१) चगुल, पंजा। (२) पकड़, वश, अधिकार।

चंगुल—संज्ञा पुं. [हिं चौ=चार+अंगुल] (१) पशु-पक्षियों का टेढ़ा और कड़ा पजा। (२) किसी चीज को पकड़ते या लेते समय हाथ के पंजों की स्थिति।

मुहा.—चगुल मे फँसना—वश या काबू में होना।

चँगेर, चँगेरी, चंगेली—संज्ञा स्त्री [सं. चंगोरिक] (१) बाँस की डलिया या टोकरी। (२) फूल रखने की डलिया। (३) चमड़े की मशक। (४) बच्चों का झूला या पालना। (५) चाँदी का जालीदार पात्र।

चंच—संज्ञा पुं. [हिं. चंचु] (१) चेंच नामक साग। (२) मृग।

चँचरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

चंचरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भ्रमरी। (२) होली का एक गीत। (३) एक छद।

चंचरीक—संज्ञा पु. [सं.] भ्रमर, भौंरा। उ.—विकसत कमलावली, चले प्रपुज-चंचरीक, गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे—१०-२०५।

चंचरीकावली—संज्ञा स्त्री. [सं. चंचरीक+अवली] (१) भौंरों की पक्ति। (२) एक वर्णवृत्त।

चंचल—वि. पुं. [स] (१) अस्थिर, चलायमान। (२) अधीर, एकाग्र न रहनेवाला। (३) घबराया हुआ। (४) नटखट, शैतान।

संज्ञा पु.—(१) वायु। (२) रसिक, कामुक।

चंचलता, चचलताई—संज्ञा स्त्री. [सं. चंचलता] (१) अस्थिरता, चपलता। उ.—तब लगि तरुनि तरल-चंचलता, बुधि-बल सकुचि रहै। सूरदास जब लगि वह धुनि सुनि, नाहिंन धीर ढहै—६४६। (२) नटखटी, शरारत।

चंचला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) बिजली।

चंचलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. चंचल + आई (प्रत्य.)] चपलता, अस्थिरता। (२) नटखटी।

चंचलास्य—संज्ञा पुं. [सं] एक सुगंधित द्रव्य।

चंचलाहट—संज्ञा स्त्री [सं. चंचल + आहट] (१) चचलता, चुलबुलाहट। (२) नटखटी।

चंचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] घास फूस का पुतला जो खेतों में पशु-पक्षियों के डराने के लिए गाड़ते हैं।

चंचु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चेंच का साग। (२) रेंड़ का पेड़। (३) मृग, हिरन।

संज्ञा स्त्री.—चिड़ियों की चोंच।

चंचुका, चंचुपुट—संज्ञा स्त्री. [सं.] चोंच।

चंचुभृत, चंचुमान्—संज्ञा पुं. [सं.] पक्षी।

चचुर—वि. [सं.] दक्ष, कुशल, निपुण, चतुर।

संज्ञा पुं.—चेंच या चेंचु का साग।

चँचोरना—क्रि. स. [अनु.] दाँत से दबाकर चूसना।

चँचोरि—क्रि. स. [हिं. चँचोरना] चूसकर।

चट—वि. [स. चड] (१) चालाक (२) छटा हुआ।

चंड—वि. [सं.] (१) तेज, उग्र, घोर। (२) बहुत बलवान। (३) विकट, कठोर। (४) क्रोधी।

संज्ञा पुं.—(१) ताप, गरमी। (२) एक यमदूत। (३) एक दैत्य। (४) कार्तिकेय। (५) राम की सेना का एक बदर। (६) कंस का एक भाई।

चंडकर—संज्ञा पुं. [सं.] तेज किरणोंवाला सूर्य।

चंडकौशिक—संज्ञा पुं. [सं.] एक मुनि।

चडता, चंडताई—संज्ञा स्त्री. [सं. चंडता] (१) उग्रता, प्रबलता। (२) बल, प्रताप, वीरता।

चंडत्व—संज्ञा पु. [सं.] (१) उग्रता (२) प्रताप।

चडांशु—संज्ञा पु [स. चड+ अंशु=किरण] सूर्य।

चडा—वि. स्त्री. [सं.] उग्र स्वभाववाली।

संज्ञा पुं.—(१) आठ नायिकाओं में एक। (२) चोर नामक गंध-द्रव्य। (३) केवाँच।

चँड़ाइ चड़ाई—संज्ञा स्त्री. [सं. चड=तेज] (१) शीघ्रता, जल्दी, उतावली। उ.—(क) जेंवत परखि लियौ नहिं हमकौं, तुम अति करी चँड़ाइ—४४४। (ख) मैं अन्हवाए देति दुहूनि कौं, तुम अति करी चँड़ाई—५११। (ग) राहिनि भोजन करो चँड़ाई बार-बार

कहि-कहि करि आरति—५१२। (घ) जननि मथत दधि, दुहुत कन्हाई। सखा परस्पर कहत स्याम सौं हमहूँ सौं तुम करत चँड़ाई—६६८। (ङ) गाई गई सब ब्याइ कै, प्रातहि नहि आई। ता कारन मैं जाति हौं, अति करति चँडाई—७१३। (च) सूर नंद सौं कहति जसोदा, दिन आए अब करहु चँडाई—८११। (२) प्रबलता। (३) अन्याय, अत्याचार।

चंडाल—संज्ञा पुं. [सं. चांडाल] (१) डोम। (२) नीच।

चंडालता—संज्ञा स्त्री [सं.] नीचता, अधमता।

चंडालपक्षी—संज्ञा पुं. [सं.] काक, कौआ।

चंडालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंडाल वर्ण की स्त्री। (२) दुष्ट या कर्कशा स्त्री।

चंडावल—संज्ञा पुं. [सं. चंड + अवलि] (१) सेना के पीछे का भाग, 'हरावल' का विपरीतार्थक। (२) वीर योद्धा। (३) पहरेदार।

चंडिका, चंडी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा। (२) लड़ाकू स्त्री।

वि. स्त्री.—लड़ाकू, कर्कशा, उग्र स्वभाववाली।

चंडीपति—संज्ञा पुं. [सं] शिव, महादेव।

चंडू—संज्ञा पु. [स. चंड] अफीम का किवाम।

चंडूल—संज्ञा पु. [देश.] एक चिड़िया।

मुहा.—पुराना चंडूल-वेडौल या मूर्ख आदमी।

चंडोल—संज्ञा पु [सं. चंद्र + दोल] (१) एक तरह की पालकी। (२) मिट्टी का एक खानेदार खिलौना।

चंद—संज्ञा पुं [स. चद्र] (१) चंद्रमा। (२) चंद्रमा के समान सुख शांति देनेवाला व्यक्ति। उ.—सूरदास पर कृपा करौ प्रभु श्रीवृंदाबन-चंद—१-१६३। (३) पृथ्वीराज-रासो का रचयिता हिंदी का एक कवि।

वि. [फा.] (१) थोड़े से। (२) गिने चुने।

चंदक—संज्ञा पुं. [सं. चद्र] (१) चंद्रमा। (२) चाँदनी। (३) एक मछली। (४) माथे का एक गहना।

चंदचूर—संज्ञा पुं. [स. चद्रचूड़] शिव जी।

चंदक पुष्प—संज्ञा पुं. [स] (१) लौंग। (२) चंद्रकला।

चंदन—संज्ञा पुं. [सं] (१) एक सुगंधित लकड़ी जिसको पीसकर हिंदू माथे पर तिलक लगाते हैं, पूजा करते हैं और स्थान आदि लिपाते हैं। उ.—कंचन-कलस, होम द्विज-पूजा, चंदन भवन लिपाऔ—१०-४। (२) राम की सेना का एक बानर।

चंदनगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] मलय पर्वत।

चंदनहार—संज्ञा पु. [स चंद्रहार] गले का एक गहना।

चंदना—संज्ञा पुं. [सं. चद्रमा] चद्रमा।

चंदनी—संज्ञा स्त्री. [हि. चाँदनी] चाँदनी।

चँदनौता—संज्ञा पुं. [देश] एक तरह का लहँगा।

चंदबाण, चंदबान—संज्ञा पु. [सं. चंद्रबाण] एक बाण।

चँदराना—क्रि. स. [सं. चंद्र (दिखलाना)] (१) बहलाना। (२) जान-बूझ कर अनजान बनना।

चंदला—वि. [हिं. चाँद = खोपड़ी] गंजा।

चँदवा—संज्ञा पुं. [स. चद्र] सिंहासन का चँदोवा।

संज्ञा पुं. [स. चंद्रक] (१) गोल चकती। (२) तालाब में गहरा गड्डा। (३) मोर की पूँछ का अर्द्धचंद्रक चिह्न। उ.—मोरन के चँदवा माथे बने राजत रुचिर सुदेस री। (४) मछली।

चंदा—संज्ञा पु. [सं. चंद्र] चंद्रमा। उ.—(क) अपने कर गहि गगन बतावै खेलन को माँगै चंदा—१०-१६२। (ख) ज्यौं चकोर चंदा को इकटक भृंगी-ध्यान लगावै—१८१८।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी। उ.—कमला तारा बिमला चंदा चद्रावलि सुकुमारि—१५८०।

संज्ञा पुं. [फ़ा. चंद्र = कुछ] (१) वह धन जो दान या सहायता रूप में लिया जाय। (२) पत्र-पत्रिका या सभा-समिति का मासिक, छमाही या वार्षिक शुल्क।

चंदिका—संज्ञा स्त्री. [सं. चंद्रिका] चाँदनी।

चंदिनि, चंदिनी—संज्ञा स्त्री. [स. चंदू] चाँदनी।

वि.—उजेली, चाँदनी से युक्त।

चँदिया—संज्ञा स्त्री. [हि. चाँद] (१) खोपड़ी।

मुहा०—चँदिया पर बाल न छोड़ना—(१) सब कुछ हर लेना। (२) खूब जूते मारना। चँदिया मूड़ना—धन-सपत्ति हर लेना। चँदिया खाना—(१) बक-वाद से सिर खाना। (२) सब कुछ हरकर दरिद्र बनाना। चँदिया खुजलाना-मार खाने को जी चाहना।

(२) पिछली छोटी रोटी। (३) ताल का सबसे गहरा तल या स्थान। (४) चाँदी की टिकिया।

चंदिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) हाथी ।
चँदेरी—संज्ञा स्त्री. [सं. चेदि या हि. चंदेल] एक प्राचीन नगर जो ग्वालियर राज्य में था । उ.—(क) रुक्म चँदेरी विप्र पठायौ—१० उ. ७ । (ख) राव चँदेरी को भूपाल ।
चँदेरीपति—संज्ञा पुं [स.] शिशुपाल ।
चंदेल—संज्ञा पुं. [स.]क्षत्रियों की एक शाखा ।
चँदोआ, चँदोया, चँदोवा—संज्ञा पुं. [हिं. चँदवा] सिंहासन पर सोने-चाँदी के चोवों पर तना वितान ।
चंद्र—सज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) एक की संख्या । (३) मोर की पूँछ की चंद्रिका । (४) कपूर । (५) जल । (६) सोना । (७) वह बिंदी जो सानुनासिक वर्ण पर लगायी जाती है । (८) लाल रंग का मोती । (९) हीरा । (१०) सुखदायी वस्तु या पात्र ।
वि.—(१) आनंददायक । (२) सुदर ।
चंद्रक—सज्ञा पुं. [सं.] (१) चद्रमा । उ.—काम की केलि कमनीय चद्रक चकोर, स्वाति को बूँद चातक परौ री—६६१ । (२) चद्रमा-सा मंडल या घेरा । (३) चाँदनी । (४) मोर-पूँछ की चंद्रिका । (५) नाखून । (६) एक मछली । (७) कपूर ।
चंद्रकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चद्रमडल का सोलहवाँ भाग । (२) चद्रकिरण या ज्योति । उ.—चद्रकला जनु राहु गह्यौ री—१० उ. ३० । (३) एक वर्णवृत्त । (४) माथे का एक गहना । (५) छोटा ढोल ।
चंद्रकलाधर—संज्ञा पु. [स.] महादेव, शिव ।
चद्रकांत—सज्ञा पु. [स.] (१) एक रत्न जो चंद्रमा के सामने पसीजता है । (२) एक राग । (३) चंदन । (४) कुमुद ।
चंद्रकाता—सज्ञा स्त्री [सं.] (१) चंद्रमा की पत्नी । (२) रात । (३) एक वर्णवृत्त ।
चंद्रकाति—संज्ञा स्त्री. [स.] चाँदी ।
चंद्रकी—संज्ञा स्त्री [सं. चंद्रकिन्] मोरपखी ।
चंद्रकुमार—संज्ञा पुं. [स.] चद्रमा का पुत्र बुध ।
चंद्रकेतु—संज्ञा पुं [सं.] लक्ष्मण का एक पुत्र ।
चंद्रक्षय—संज्ञा स्त्री. [स.] अमावास्या ।
चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं. [स.] (१) चित्रगुप्त । (२) एक मौर्यवंशी राजा । (३) एक गुप्तवंशी राजा ।
चंद्रगोलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदनी, चंद्रिका ।
चंद्रग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का ग्रहण ।
चंद्रचूड—संज्ञा पुं. [सं.] मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले शिव, महादेव ।
चंद्रज—संज्ञा पु. [स.] चद्रमा का पुत्र बुध ।
चंद्रजोत, चंद्रजोती, चद्रज्योति—संज्ञा स्त्री [सं. चंद्र + ज्योति] (१) चंद्रमा का प्रकाश । (२) एक आतशबाजी ।
चंद्रदारा—सज्ञा स्त्री. [सं.] सत्ताइस नक्षत्र जो चंद्रमा की पत्नियाँ मानी जाती हैं ।
चंद्रद्युति—सज्ञा स्त्री. [सं] (१) चंद्रकिरण या चंद्र प्रकाश । (२) चदन ।
चंद्रधनु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा के प्रकाश से रात को दिखायी देनेवाला इंद्रधनुष ।
चंद्रधर—संज्ञा पुं. [सं.] महादेव, शिव ।
चंद्रप्रभ—वि. [सं.] चंद्रमा-सी कांतिवाला ।
चंद्रप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चद्रमा की ज्योति । (२) बकुची नामक औषध ।
चंद्रबंधु—सज्ञा पुं. [सं.] (१) शंख । (२) कुमुद ।
चंद्रबधूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. इंद्रवधू] बीरबहूटी ।
चंद्रबाण, चंद्रबान—संज्ञा पुं. [सं.] बाण जिसका फल अर्द्धचंद्राकार होता है । उ.—नख मानों चंद्रबान साजि कै झझकारत उर आयौ—१६७२ ।
चंद्रबिंदु—संज्ञा पुं. [सं.] अर्द्ध अनुस्वार का चिह्न ।
चंद्रबिंब—सज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का मंडल ।
चंद्रभस्म—संज्ञा पुं. [सं.] कपूर ।
चंद्रभा—संज्ञा स्त्री. सं.] चंद्रमा का प्रकाश ।
चंद्रभाग—संज्ञा पुं. [स.] (१) चंद्रमा की कला । (२) सोलह की संख्या । (३) एक पर्वत ।
चंद्रभागा—संज्ञा पुं. [सं.] पंजाब की एक नदी । उ.—सुभ कुरुखेत अयोध्या, मिथिला, प्राग त्रिवेनी न्हाए । पुनि सतद्रु औरहु चद्रभागा, गंग ब्यास अन्हवाए —सारा. ८२८ ।
चंद्रभाट—संज्ञा पुं. [सं. चद्र + हिं. भाट] एक साधु ।
चंद्रभानु—सज्ञा पु. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र जो सत्यभामा के गर्भ से पैदा हुआ था ।
चंद्रभाल—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

संज्ञा स्त्री. [सं. चक्र] घिरनी के आकार का छोटा खिलौना जिसे डोरी के सहारे लड़के नचाते हैं। उ.—भौंरा चकई लाल पाट को लेड़ुआ माँग खिलौना।

वि.—गोल बनावट का।

चकचकाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) पानी, खून आदि का छन छन कर ऊपर आना। (२) भीग जाना।

चकचकी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] करताल नामक बाजा।

चकचाना—क्रि. अ. [अनु.] चकाचौंध लगना।

चकचाल—संज्ञा पुं. [सं. चक्र + हि. चाल] चक्कर।

चकचाव—संज्ञा पुं. [अनु.] चकाचौंध।

चकचून—वि. [सं. चक्र+चूर्ण] पिसा हुआ।

चकचोही—वि. [हिं. चिकना] चिकनी-चुपड़ी।

चकचौंध—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकाचौंध] कड़ी चमक या अधिक प्रकाश के सामने आँखों की झपक।

चकचौंधति—क्रि. स. [हिं. चकचौंधना] आँख में चमक या चकचौंध उत्पन्न करती है। उ.—चमकि चमकि चपला चकचौंधति स्याम कहत मन धीर।

चकचौंधना—क्रि. अ. [सं. चक्षुष् + अंध] अधिक प्रकाश में आँख झपकना, चकाचौंध होना।

क्रि. स.—आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करना।

चकचौंधी—क्रि. अ. [हि. चकचौंधना] चमक से आँख तिलमिला गयी, प्रकाश के सामने न ठहर सकी। उ.—कोउ चकित भई दसन-चमक पर चकचौंधी अकुलानी—६४४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चकाचौंध] अत्यधिक प्रकाश के कारण आँखों की झपक या तिलमिलाहट।

चकचौंह—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकाचौंध] आँखों की झपक।

चकचौंहना—क्रि. अ. [देश.] आशा से ताकना।

चकचौंहाँ—वि. [देश.] देखने योग्य, सुंदर।

चकडोर, चकडोरि, चकडोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकई + डोर] (१) चकई में लपेटने की डोरी। उ.—अरुझि परयो मेरो मन तब तैं, कर झटकत चकडोरि हलत—६७१। (ख) दै मैया भँवरा चकडोरी। (ग) हाथ लिए भौंरा चकडोरी। (२) चकई नामक खिलौना, चक्कर खानेवाली वस्तु, चक्कर, फेरी। उ.—उत ते वै पठवत इतते नहिं मानत हौ तौ दुहुनि बिच चकडोरी कीनी—२२३८। (३) चकई की डोरी

चकत—संज्ञा पुं. [हिं. चकत्ता] दाँत की काट या पकड़।

चकताई—संज्ञा पुं. [हिं. चकत्ता] दाग, धब्बा, चकत्ता।

चकती—संज्ञा स्त्री. [सं. चक्रवत्] कपड़े, चमड़े आदि का टुकड़ा, चकत्ता, थिगली।

मुहा.—बादल में चकती लगाना—असंभव बात करने को तैयार होना, बहुत बढ़ी-चढ़ी बातें करना।

चकत्ता—संज्ञा पुं. [सं. चक्र + वत्] (१) शरीर पर लाल-नीले उभरे हुए दाग। (२) काटने का चिह्न।

मुहा०—चकत्ता भरना (मारना)—काटना।

संज्ञा पुं. [तु. चगताई] (१) तातारवंशी चगताई के वंशज मुगल बादशाह। (२) चगताई वंशज पुरुष।

चकदार—संज्ञा पु. [हिं. चक + फ़ा. दार (प्रत्य.)] दूसरे की जमीन पर कुँआ बनवाने, उसे काम में लाने और उसका लगान देनेवाला।

चकना—क्रि. अ. [सं. चक = भ्रांति] (१) चकपकाना, भौचक्का होना। (२) चौंकना, आशंकित होना।

चकनाचूर—वि. [हिं. चक=भरपूर] (१) चूर चूर, खंड खंड। (२) बहुत हारा-थका, शिथिल।

चकपक—वि. [सं. चक = भ्रांत] चकित, भौचक्का।

चकपकाना—क्रि. अ. [हि. चकपक] (१) आश्चर्य से ताकना, भौचक्का होना। (२) शंकित होकर चौंकना।

चकफेरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चक + फेरी] चक्कर, परिक्रमा।

चकबंदी—संज्ञा स्त्री. [हि. चक+फा. बंदी] हद बाँधना।

चकबस्त—संज्ञा पुं. [फा.] जमीन की चकबंदी।

संज्ञा पुं.—काश्मीरी ब्राह्मणों का एक भेद।

चकमक, चकमाक—संज्ञा पुं. [तु. चकमक़] एक पत्थर जिस पर चोट करने से जल्दी आग निकलती है।

चकमा—संज्ञा पुं. [सं. चक = भ्रांत] (१) भुलावा, धोखा। (२) हानि, नुकसान। (३) एक खेल।

चकमाकी—वि. [हिं. चकमक] जिसमें चकमक लगा हो।

चकर—संज्ञा पुं. [सं. चक्र] (१) चकवा या चक्रवाक पक्षी। (२) चक्कर, फेरा, परिक्रमा।

चकरबा—संज्ञा पुं. [सं. चक्रव्यूह] (१) असमंजस, ऐसी स्थिति जब उचित-अनुचित न सूझे। (२) झगड़ा।

चकरा—संज्ञा पुं. [सं. चक्र] पानी का भँवर।

वि. [हिं. चौड़ा] चौड़ा, विस्तृत।

चकराना—क्रि. अ. [सं. चक्र] (१) सिर का घूमना या चक्कर खाना। (२) चकित होना, चकपकाना।
क्रि. स.—चकित करना, आश्चर्य में डालना।
चकरानी—संज्ञा स्त्री. [फा. चाकर] दासी, सेविका।
चकरिया, चकरिहा—संज्ञा पुं. [फा. चाकरी + हा (प्रत्य.)] चाकरी या नौकरी करनेवाला, सेवक।
चकरी—वि. स्त्री. [सं. चक्री] चौड़ी, विस्तृत। उ.—सौ जोजनविस्तारकनकपुरी, चकरीजोजन बीस—६-७५।
संज्ञा स्त्री.—(१) चक्की, चक्की का पाट। (२) लड़कों का चकई नामक खिलौना।
वि.—भ्रमित, घूमनेवाला, अस्थिर, चंचल। उ.—सु तौ व्याधि हमकौ लै आए देखी-सुनी न करी। यह तौ सूर तिन्हैं लै सौंपौ जिनके मन चकरी—३३६०।
चकरीन—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकरी + न (प्रत्य.)] चकई नामक खिलौना। उ.—तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक कर भौंरा चकरीन की जोरी।
चकल—संज्ञा पुं. [हिं. चका] (१) पौधे को उखाड़ने और दूसरे स्थान में लगाने की क्रिया। (२) मिट्टी की पींड़ी जो ऐसे पौधे में लगी रहती है।
चकलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकला] चौड़ाई।
चकला—संज्ञा पु [हिं. चक + ला (प्रत्य.)] (१) पत्थर या लकड़ी का रोटी बेलने का गोल पाटा। (२) चक्की। (३) इलाका, जिला।
वि.—चौड़ा, विस्तृत।
चकलाना—क्रि. स. [हिं. चकल] पौधे को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।
क्रि. स. [हिं. चकला] चौड़ा करना।
चकली—संज्ञा स्त्री [सं. चक्र, हिं. चक] (१) घिरनी, गड़ारी। (२) चंदन आदि घिसने का छोटा चकला।
वि. स्त्री.—[हिं. चकला] चौड़ी, विस्तृत।
चकवा, चकवाहा—संज्ञा पुं. [सं. चक्रवाक] एक पक्षी जिसके संबध में प्रसिद्ध है कि रात में यह अपनी मादा से अलग रहता है।
चकवाना—क्रि. अ. [देश.] हैरान या चकित होना।
चकवारि—संज्ञा. पुं.—कछुवा।
चकवी—संज्ञा स्त्री [हिं. चकवा] चकवे की मादा।
चकहा, चका—संज्ञा पुं. [सं. चक्र] पहिया, चक्का।
संज्ञा पुं. [हिं. चकवा] चकवा, चक्रवाक।
चकाचक—संज्ञा स्त्री [अनु.] शरीर पर तलवार आदि के प्रहार का शब्द।
वि.—तर, डूबा हुआ, निमग्न।
क्रि. वि. [सं. चक=तृप्त होना] भरपेट।
चकाचौंध, चकाचौंधी—संज्ञा स्त्री. [सं. चक=चमकना +चौ=चारो ओर + अंध] बहुत चमक या प्रकाश से आँखों की झपक या तिलमिलाहट। उ.—चमकि गए बीर सब चकाचौंधी लगी चितै डरपे असुर घटा घोटा—२५६१।
चकाना—क्रि. अ. [सं. चक=भ्रांत] अचंभे से ठिठकना, चकराना, हैरान होना, चकपकाना।
चकाने—क्रि. अ. [हिं. चकाना] चकराये, घबराये।
चकाबू, चकाबूह—संज्ञा पुं. [सं. चक्रव्यूह] चक्रव्यूह।
चकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चवर्ग का पहला वर्ण। (२) सहानुभूति सूचक शब्द।
चक्रबंधु, चक्रबांधव—संज्ञा पुं. [सं. चक्र = चकवा] सूर्य (जिसके प्रकाश में चकवा - चकवी साथ रहते है)।
चक्रभेदिनी—संज्ञा स्त्री [सं. चक्र = चकवा] रात (जो चकवा-चकवी को अलग कर देती है)।
चक्रमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु के आयुधों के चिन्ह जो वैष्णव बाहु आदि पर गुदाते हैं। उ.—मूडे मूड़ कंठ बनमाला मुद्राचक्र दिये। सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ सुनत सिरात हिए।
चक्रवर्ती—वि. [सं. चक्रवर्तिन] सार्वभौम।
संज्ञा पुं.—(१) सार्वभौम राजा, समुद्रांत पृथ्वी का राजा। (२) किसी दल का समूह।
चकासना—क्रि. अ. [हिं चमकना] चमकाना।
चकित—वि. [सं.] (१) विस्मित, आश्चर्यान्वित। उ.—सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए पथ चलत नर बाम—६-४४। (२) हैरान, घबराया हुआ। उ.—अजित रूप है शैल धरो हरि जलनिधि मथिबे काज। सुर अरु असुर चकित भए देखे किये भक्त के काज— (३) चौकन्ना, डरा हुआ। (४) कायर।
संज्ञा पुं. (१) विस्मय। (२) भय। (३) कायरता।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदी।
चंद्रभूषण—संज्ञा पुं. [स.] शिव, महादेव।
चंद्रमणि, चद्रमनि—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रकांत मणि। उ.—चौकी हेम चंद्रमनि लागी हीरा रतन जराय खची।
चंद्रमा—संज्ञा पुं. [सं.] चाँद, इंदु, सुधांशु।
चंद्रमाललाट—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।
चंद्रमाललाम—संज्ञा पुं. [सं. चंद्रमा + ललाम = मस्तक पर तिलक का चिन्ह] महादेव, शिव, शंकर।
चद्रमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक छंद। (२)चद्रहार।
चंद्रमास—संज्ञा पुं. [सं. चंद्र+मास] वह मास जिसमें चद्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा कर लेता है।
चंद्रमौलि—संज्ञा पुं. [सं.] मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले शिव, महादेव।
चंद्ररेखा, चद्रलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चद्रमा की कला। (२) चद्रमा की किरण। (३) द्वितीया का चंद्रमा जो एक रेखा के रूप में होता है।
चंद्रलोक—संज्ञा पुं. [सं.] चद्रमा का लोक। उ.—चद्रलोक दीन्ही ससि को तब फगुआ में हरि आय। सब नछत्र को राजा कीन्हो ससि मंडल में छाय।
चंद्रवंश—संज्ञा पुं. [सं.] क्षत्रियों का एक कुल।
चंद्रवंशी—वि. [सं. चंद्रवंशिन्] चंद्रवंश का।
चंद्रवधू, चंद्रवधूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. इंद्रवधू] बीर-बहूटी नामक एक छोटा लाल कीड़ा।
चंद्रवल्लरी, चद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।
चद्रवार—संज्ञा पुं. [सं.] सोमवार।
चद्रबिंदु—संज्ञा पुं. [स.] अर्द्धअनुस्वार का चिन्ह।
चंद्रवेश—संज्ञा पुं [सं.] शिव, महादेव।
चंद्रव्रत—संज्ञा पुं. [सं. चाद्रायण] एक व्रत।
चंद्रशाला, चंद्रसाला—संज्ञा स्त्री. [स. चद्रशाला] (१) चाँदनी। (२) मकान की सबसे ऊपरी अटारी।
चंद्रशृंग—संज्ञा पु. [स.] द्वितीया के चद्रमा के दोनों नुकीले ओर या किनारे।
चंद्रशेखर, चंद्रसेखर—संज्ञा पुं. [सं. चंद्र + शेखर] शिव जी जिनके मस्तक पर चद्रमा है।
चंद्रसरोवर—संज्ञा पुं. [सं.] व्रज का एक तीर्थ स्थान जो गोवर्द्धन के समीप स्थित है।

चंद्रहार—संज्ञा पुं [सं.] गले में पहनने की सोने की माला जिसके बीच में सोने का चंद्राकार पान रहता है।
चंद्रहास—संज्ञा पुं. [स.] (१) तलवार। (२) रावण की तलवार (३) चाँदी।
चंद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चँदोवा। (२) गुर्च। संज्ञा स्त्री. [सं चद्र] मरने की अवस्था जब टकटकी बँध जाती है और गला रुँध जाता है।
चंद्रातप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चाँदनी। (२) चँदोवा।
चंद्रापीड़—संज्ञा पुं. [सं] शिव, महादेव।
चंद्रायण, चद्रायन—संज्ञा पुं. [सं. चाद्रायण] महीने भर का एक व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार आहार घटाना-बढ़ाना होता है। उ.—सहस बार जौ बेनी परसै, चंद्रायन कीजै सौ बार—२-३।
चंद्रालोक—संज्ञा पुं. [स.] चंद्रमा का प्रकाश।
चंद्रावलि, चंद्रावली—संज्ञा स्त्री. [सं. चद्रावली] श्री कृष्ण की प्रेमिका और राधा की एक सखी जो चंद्रभानु की पुत्री थी। उ.—(क) ललिता अरु चंद्रावली सखिन मध्य सुकुमारि—११०२। (ख) तारा कमला बिमला चंद्रा चद्रावलि सुकुमारि—१५८०।
चंद्रिका—संज्ञा पु. [सं] (१) चंद्रमा का प्रकाश, चाँदनी। (२) मोर की पूँछ का अर्द्धचंद्राकार चिन्ह। उ.—सोभित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम। (३) इलायची। (४) चाँदा मछली। (५) चंद्रभागा नदी। (६) जूही, चमेली। (७) एक देवी। (८) एक वर्णवृत्त। (९) माथे का बेंदी नामक गहना। (१०) रानियों का एक शिरोभूषण, चद्रकला।
चंद्रिकोत्सव—संज्ञा पुं. [सं.] शरदपूनों का उत्सव।
चंद्रिल—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।
चदोदय—संज्ञा पु. [सं. चंद्र + उदय] (१) चंद्रमा का उदय। (२) चँदवा, चँदोवा।
चंद्रोपल—संज्ञा पुं. [सं. चंद्र+उपल] चद्रकांतमणि।
चंप—संज्ञा पुं. [सं. चंपक] (१) चंपा। (२) कचनार।
चंपई—वि. [हिं. चंपा] चंपे के पीले रंग का।
चंपक—संज्ञा पुं. [सं.] चंपा जिसका फूल हलका पीले रंग का होता है। सुंदर नारियों के रंग की उपमा इससे दी जाती है। उ.—(क) चंपक-बरन, चरन-

कमलनि, दाड़िम दसन लरी—६-६३ । (ख) चंपक जाइ गुलाब बकुल फूले तरु प्रति बूझति कहुँ देखे नँदनंदन—१८१० ।

चंपकली—संज्ञा स्त्री. (१) चंपे की कली । उ.—(क) रगमरी सिर सुरंग पाग लटकि रही वाम भाग चंप-कली कुटिल अलक बीच-बीच रखी री—२३६२ । (ख) चंपकली सी नासिका रंग स्यामहि लीन्हे—पृ ३२६ । (२) गले में पहनने का एक आभूषण ।

चंपत—वि. [देश.] गायब, लुप्त, अंतर्द्धान ।
क्रि. अ. [हिं. चँपन] दबता है ।

चँपना—क्रि. अ. [सं. चप्] (१) बोझ से दबना । (२) लज्जित होना । (३) उपकार मानना ।

चंपा—संज्ञा पुं. [सं. चपक] (१) एक पौधा जिसमें हल्के पीले रग के फूल लगते है, जिन पर, प्रसिद्धि है कि भौंरे नहीं बैठते । (२) अगदेश के राजा कर्ण की राजधानी । (३) एक केला । (४) एक घोड़ा । (५) रेशम का एक कीड़ा । (६) एक पेड़ ।
संज्ञा स्त्री—राधा की एक सखी । उ.-सुमना, बहुला चंपा जुहिला ज्ञाना भाना भाउ—१५८० ।

चपाकली—संज्ञा स्त्री [हिं चंपा + कली] गले का एक गहना जिसमें चंपे की कली की तरह के दाने होते हैं ।

चंपू—संज्ञा पु. [सं] गद्यपद्य मय काव्य ।

चँपै—क्रि. स. [हिं. चँपना] दबाते है । उ.—घर बैठेहि दसन अधरन धरि चँपै स्वाँस भरैं ।

चंबल—संज्ञा स्त्री. [सं. चर्मण्वती] एक नदी ।
संज्ञा पुं.— पानी की बाढ़ ।
संज्ञा पुं. [फ़ा. चुंबल] भिखारी का कटोरा ।

चँवर—संज्ञा पुं. [सं चामर] (१) सुरागाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने या चाँदी की डाँड़ी में लगाकर राजाओं या देवी-देवताओं पर डुलाया जाता है । उ.—बैठति कर-पीठ ढीठि, अधर-छत्र-छाँहि । राजति अति चँवर चिकुर, सरद सभा माँहि —६५३ । (२) घोड़े या हाथी के सिर पर लगाने की कलगी ।

चँवरढार—संज्ञा पुं. [हिं. चँवर + ढारना] वह सेवक जो चँवर डुलाता हो, चँवरधारी सेवक ।

चँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चँवर]लकड़ी की डाँड़ी जिसमें घोड़े की पूँछ के बाल लगाकर चँवर बनाते हैं ।

च—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ, कच्छप । (२) चंद्रमा । (३) चोर । (४) दुर्जन ।

चइत—संज्ञा पुं.—[हिं. चैत] चैत नामक महीना ।

चइन—संज्ञा पुं. [हिं. चैन] आराम, सुख, आनंद ।

चउँहान—संज्ञा पु. [हिं. चौहान] क्षत्रियों की एक शाखा ।

चउक—संज्ञा पु. [हिं. चौक] (१) आँगन । (२) बाजार ।

चउकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौकी] (१) छोटा तख़्त । (२) पड़ाव, टिकान । (३) स्थान जहाँ सिपाही रहें ।

चउतरा—संज्ञा पुं. [हिं. चौतरा] चबूतरा ।

चउथा—वि. [हिं. चौथा] तीसरे के बाद का ।

चउदस—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौदस] पक्ष का चौदहवाँ दिन ।

चउदह—वि. [हिं. चौदह] तेरह के बाद का ।

चउपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौपाई] एक छंद । खाट ।

चउपार, चउपारि चउपाल, चउपालि—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौपाल] (१) बैठक । (२) दालान ।

चउर—संज्ञा पु. [हिं. चँवर] चँवर, मोरछल ।
संज्ञा पुं. [हिं. चावल] धान, चावल ।

चउरा—संज्ञा पु. [हिं. चौरा] (१) चौतरा । (२) किसी देवी-देवता, महात्मा, साधु आदि का स्थान ।

चउहट्ट—संज्ञा पुं. [हिं. चौ + हाट] चौहट्ट, चौराहा ।

चऊतरा—संज्ञा पुं. [हिं. चौतरा] चबूतरा ।

चक—संज्ञा पुं. [सं. चक्र.] (१) चकई नाम का खिलौना । उ.—(क) दै मैया भौंरा चक डोरी—६७६ । (ख) ब्रज लरिकन सँग खेलत, हाथ लिए चक डोरि—६७० । (२) चकवा पक्षी, चक्रवाक । (३) चक्र नामक अस्त्र । (४) चक्का, पहिया । (५) छोटा गाँव । (६) किसी बात का सिलसिला या क्रम । (७) अधिकार, दखल । (८) एक गहना ।
वि.—भरपूर, अधिक, ज्यादा ।
वि.—चकपकाया हुआ, भौचक्का, चकित ।
संज्ञा पुं. [स. [साधु ।

चकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकवा] मादा चकवा कवि-प्रसिद्धि के अनुसार जो अपने नर से रात्रि मे बिछुड़ जाती है । उ.—चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग—१-३३७ ।

चखना—क्रि. स. [सं. चष] स्वाद लेना।

चखपूतरि, चखपुतरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चक्षु + पुतली] (१) आँख की पुतली। (२) अत्यंत प्रिय पात्र।

चखा—वि. [हिं. चखना] (१) चखनेवाला। (२) रस या स्वाद लेनेवाला, रसिक।

चखाचखी—संज्ञा स्त्री. [हि. चखचख] कहा-सुनी।

चखाना—क्रि. स. [हि. चखना का प्रे.] स्वाद दिलाना।

चखावहु—क्रि. स. [हिं. चखाना] स्वाद दो, खिलाओ। उ.—कनक कलस रस मोहि चखावहु—१०५०।

चखु—संज्ञा पुं. [सं. चक्षु] आँख।

चखैहौं—क्रि. स. [हिं. चखना] चखाऊँगा, खिलाऊँगा, स्वाद दिलाऊँगा। उ.—यह हित मनैं कहत सूरज प्रभु, इहिं कृत कौ फल तुरत चखैहौं—७-५।

चखोड़ा, चखौड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. चख + ओड़ा] काजल की लंबी रेखा जो बच्चों को नजर से बचाने के लिए उनके माथे पर लगाई जाती है। उ.—(क) लट लटकनि सिर चारु चखौड़ा, सुठि सोभा सिसु भाल—१०-११४। (ख) भाल तिलक पख स्याम चखौड़ा जननी लेति बलाइ—१०-१३३। (ग) चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं—१०-१४७। (घ) अंजन दोउ दृग भरि दीन्हौ। भ्रुव चारु चखौड़ा कीन्हौ—१०-१८३।

चखौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. चखना] चटपटा भोजन।

चगड़—वि [देश.] चालाक, चतुर, काइयाँ।

चचींडा, चचेंडा—संज्ञा पुं. [सं. चिचिंड] एक तरकारी।

चचेरा—वि. [हिं. चाचा] चाचा से उत्पन्न।

चचोड़ना, चचोरना—क्रि. स. [अनु. या देश.] दाँत से दबा-दबाकर या खींच खींचकर रस चूसना।

चचोरत—क्रि. स. [हिं. चचोड़ना] चूसता है। उ.—सूरदास प्रभु जल छाँड़ि कै चतुर चकोरत आग-३०६५।

चचोरैं—क्रि. स. [हि. चचोड़ना] चूसते हैं। उ.—आपु गयौ तहाँ जहँ प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगुठा चचोरैं—१०-६२।

चच्छुवादिक—संज्ञा पुं. [सं. चक्षु + आदिक] चक्षु इत्यादि। उ.—तामैं सक्ति आपनी धरी। चच्छुवादिक इंद्री विस्तरी—३-११।

चच्छु—संज्ञा पुं. सवि. [सं. चक्षु] नेत्र। उ.—सो अंजन कर ले सुत-चच्छुहि आँजति जसुमति माइ—४८७।

चट—क्रि. वि. [सं. चटुल = चंचल] झटपट, तुरंत।

संज्ञा पुं. [सं. चित्र, हिं. चित्ती] (१) दाग, धब्बा। (२) घाव का चकत्ता। (३) दोष, ऐब।

संज्ञा [अनु.] (१) किसी कड़ी चीज के टूटने का शब्द। (२) उँगली आदि चटकाने का शब्द।

वि. [हिं. चाटना] चाट पोंछकर खाया हुआ।

मुहा०—चटकर जाना—(१) झटपट खा लेना। (२) दूसरे की चीज हड़प लेना या हजम कर जाना।

चटक—संज्ञा पु. [स.] गौरैया पक्षी, चिड़ा।

संज्ञा स्त्री. [स. चटुल = सुंदर] चमकदमक, कांति। उ.—मुकुट लटकि भ्रकुटी मटक देखौ कुंडल की चटक सौं अटकि परी दृगनि लपट—१०३६।

यौ.—चटक-मटक—बनाव सिंगार, चमकदमक।

वि—चटकीला, चमकीला, मनोहर, आकर्षक। उ.—(क) नटवर वेष बनाये चटक सौं ठाढ़ो रहै जमुना के तीर नित नव मृग निकट बोलावै—८४०। (ख) ऐसो माई एक कोद को हेत। जैसे बसन कुसुंभ रँग मिलिकै नेकु चटक पुनि स्वेत—३३४६।

संज्ञा स्त्री. [सं. चटुल = चंचल] तेजी, फुर्ती।

क्रि. वि.— तेजी या फुर्ती से, चटपट।

वि.—फुर्तीला, तेज।

वि.—चटपटे या तीक्ष्ण स्वाद का।

संज्ञा पुं.— छपे कपड़ों को धोने की रीति।

चटकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चटक] तेजी, फुर्ती।

चटकत—क्रि. अ. [हि. चटकना (अनु.)] 'चट' ध्वनि करके टूटता या फूटता है, तड़कता है। उ.—दसहूँ दिसा दुसह दवागिनि, उपजी है इहिं काल। चटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल—६१५।

चटकदार—वि. [हिं. चटक + फा. दार (प्रत्य.)] चटकीला, भड़कीला, चमकीला।

चटकन—संज्ञा पुं. [हिं. चटकना] चटकना, तड़कना।

संज्ञा पुं. [हि. चटक] चमकदमक, कांति।

चटकना—क्रि. अ. [अनु. चट] (१) 'चट' शब्द करके

टूटना या तड़कना। (२) (कोयले आदि का) चटचट करना। (३) चिड़चिड़ाना, झल्लाना। (४) (उँगली का) चटचट करना। (५) कलियों का फूटना। (६) अनबन या खटपट होना।

संज्ञा पु. [अनु. चट] तमाचा, थप्पड़।

चटक-मटक—संज्ञा स्त्री. [हि. चटकना + मटकना] (१) बनाव-सिंगार। (२) नाज नखरा।

चटका—संज्ञा पुं. [हिं. चट] फुर्ती, जल्दी। उ.—जुग जुग यहै बिरद चलि आयो टेरि कहत हौ याते। मरियत लाज पाँच पतितन में होत कहा चटका ते।

संज्ञा पुं. [सं. चित्र, हिं. चित्ती] चकत्ता।

संज्ञा पुं. [हि. चाट]। (१) चटपटा या तीक्ष्ण स्वाद। (२) चस्का।

चटकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चटक] चटकीलापन।

चटकाना—क्रि. स. [अनु चट] (१) तड़काना, तोड़ना। (२) उँगलियाँ दबाकर चटचट शब्द करना। (३) किसी वस्तु से चटचट शब्द निकालना।

मुहा०—जूतियाँ चटकाना—मारे मारे फिरना।

(४) अलग या दूर करना। (५) चिढ़ाना।

चटकारा, चटकारे—वि. [सं. चटुल] चमकीला, चटकीला। (२) चचल, चपल, तेज। उ.—अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे। मनहुँ मुदित मरकत मनि आँगन खेलत खंजरीट चटकारे—२१३२।

वि. [अनु. चट] स्वाद या रस लेते हुए जीभ चटकाने का शब्द।

मुहा०—चटकारे का—चरपरे या मजेदार स्वाद का। चटकारे भरना—स्वाद लेकर चाटना।

चटकाली—संज्ञा स्त्री. [सं. चटक + आलि] (१) चिड़ियों का समूह। (२) गौरैया का झुंड।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चटकना] (१) चटकने का शब्द या भाव। (२) कलियाँ खिलने का शब्द।

चटकि—क्रि. अ. [हिं. चटकना] बिगड़कर, झगड़कर, अनबन करके। उ.—एक ही संग हम तुम सदा रहति हीं आजु ही चटकि तू भई न्यारी—२२६६।

चटकीला, चटकीलो—वि. [हिं. चटक + ईला (प्रत्य.)] (१) चटक रंग का, भड़कीला। उ.—चटकीला पट लपटानो कटि बंसीवट जमुना के तट नागर नट—८३६। (२) चमकदार। (३) चटपटे स्वाद का।

चटकीलापन—संज्ञा पु. [हिं. चटकीला + पन (प्रत्य.)] (१) चमकदमक, कांति। (२) चटपटापन।

चटकोरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक खिलोना।

चटखना—क्रि स. [हिं. चटकना] तड़कना, खिलना।

संज्ञा पुं.—तमाचा, थप्पड़।

चटचट—संज्ञा स्त्री. [अनु] (१) चटकने या टूटने का शब्द। (२) उँगलियाँ चटकाने का शब्द।

चटचटकि—क्रि अ. [हिं. चटचटाना] चटचटाकर (टूटना, फूटना) या जलना। उ.—झपटि झपटत लपट, फूल-फल चटचटकि, फटत लटलटकि द्रुम द्रुमनवारौ—५९६।

चटचटात—क्रि. अ. [हिं. चटचटाना] चटचट ध्वनि करके (टूटता या फूटता)। उ.—सरन-सरन अब मरत हौं, मैं नहिं जान्यौ तोहिं। चटचटात अँग फटत हैं, राखु राखु प्रभु मोहिं—५८६।

चटचटाना—क्रि. अ. [सं. चट = भेदन] (१) चटचट शब्द करके टूटना या फूटना। (२) लकड़ी-कोयले का चटचट करके जलना।

चटचेटक—संज्ञा पुं. [सं. चेटक] इंद्रजाल।

चटनी—संज्ञा स्त्री. [हि. चाटना] (१) चाटने की पतली चीज। (२) धनिया-पुदीना आदि की पिसी हुई चरपरी चीज।

मुहा०—चटनी करना (बनाना)—चूर चूर करना।

चटपट—क्रि. वि. [अनु.] झटपट, तुरंत।

मुहा०—चटपट होना—चटपट मर जाना।

चटपटा—वि. [हिं. चाट] चरपरे स्वाद का।

चटपटाइ—क्रि. अ. [हिं. चटपट, चटपटाना] हड़बड़ा कर, जल्दी करके। उ.—कर सौं हौंकि सुतहि दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने—१०-१६७।

चटपटाना—क्रि. अ. [हि. चटपट] जल्दी करना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चटपट] (१) उतावली, शीघ्रता, हड़बड़ी। (२) घबराहट, आकुलता। (३) उत्सुकता, छटपटाहट। उ.—(क) देखे बिना चटपटी लागति कछू मूड़ पढ़ि पर ज्यौं। (ख) नैनन चटपटी मेरे

चकितवंत—वि. [सं. चकित+वत् (प्रत्य.)] (१) विस्मित, चकित, चकपकाया हुआ। उ.—अब अति चकितवंत मन मेरो। हौं आयौ निर्गुन उपदेसन भयौ सगुन कौ चेरौ —३४३१।

चकिताई—संज्ञा स्त्री. [हि. चकित+आई (प्रत्य.)] विस्मय, अचरज, आश्चर्य।

चकी—वि. [सं. चकित] चकित, विस्मित।

चकुला—संज्ञा पुं. [देश.] चिड़िया का बच्चा।

चकृत—वि. [सं. चकित] (१) विस्मित, चकपकायी हुई। उ.—अंबू पंडन शब्द सुनत ही चित चकृत उठि धावत—सा. उ. ३३। (२) हैरान, घबराई हुई। उ.—कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए। बिह्वल तन-मन, चकृत भई सो यह प्रतच्छ सुपनाए—९-३१।

चकैया—संज्ञा स्त्री [हि. चकई] चकई।

चकोटना—क्रि. स. [हि. चिकोटी] चुटकी काटना।

चकोतरा—संज्ञा पुं. [सं. चक्र = गोला] एक बड़ा नीबू।

चकोर—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक तीतर जिसके काले काले रँग पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। चोंच और आँखें इसकी लाल होती हैं। भारतीय कवियों में यह चंद्रमा का बड़ा प्रेमी प्रसिद्ध है और उन्होंने इसके प्रेम का बराबर उल्लेख किया है।

चकोरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा चकोर।

चकोरै—संज्ञा पुं. [हि. चकोर] नर चकोर। उ.—तुव मुख दरस आस के प्यासे हरि के नयन चकोरै —२२७५।

चकोह—संज्ञा पुं. [सं चक्रवाह] पानी का भँवर।

चकौंध—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकाचौंध] चमक या प्रकाश की अधिकता से आँख की झपक।

चक्क—संज्ञा पु. [सं.] पीड़ा, दर्द।

संज्ञा पुं. [सं. चक्र] (१) चकवा पक्षी। (२) कुम्हार का चाक। (३) दिशा, प्रांत।

चक्कर—संज्ञा पु [सं. चक्र] (१) पहिए की तरह गोल वस्तु। (२) गोल घेरा। (३) घुमाव का रास्ता। (४) फेरा, परिक्रमा। (५) पहिए की तरह घूमना।

मुहा.—चक्कर काटना—मँडराना, बार बार आना-जाना। चक्कर खाना—(१) टेढ़े-मेढ़े या घुमावदार मार्ग से जाना। (२) धोखा खाना। (३) भटकना, मारे मारे फिरना। चक्कर पड़ना—ज्यादा घुमाव या फेर पड़ना। चक्कर आना—हैरान होना, दंग रह जाना। चक्कर में डालना—(१) हैरान करना। (२) कठिन स्थिति में डालना। चक्कर में पड़ना—(१) हैरान होना। (२) दुविधा में पड़ना। चक्कर लगाना—(१) मँडराना। (२) घूमना-फिरना।

(६) घुमाव, पेंच, जटिलता, धोखा, भुलावा।

मुहा.—चक्कर में आना (पड़ना)—धोखा खाना।

(७) सिर घूमना, मूर्च्छा। (८) पानी का भँवरा।

(९) चक्र नामक अस्त्र।

चक्कवइ—वि. [सं. चक्रवर्ती, प्रा. चक्कवट्टी] चक्रवर्ती (राजा)।

चक्कवत्ते—संज्ञा पुं. [सं. चक्रवर्ती] चक्रवर्ती राजा।

चक्कवा—संज्ञा पुं. [सं. चक्रवाक] चकवा पक्षी।

चक्कवै—वि. [हि. चक्कवइ] चक्रवर्ती राजा।

चक्का—संज्ञा पुं. [सं. चक्र, प्रा. चक्क] (१) पहिया। (२) पहिये की तरह गोल चीज। (३) बड़ा टुकड़ा। (४) जमा हुआ भाग, थक्का। (५) ईंटों का ढेर।

चक्काव्यूह—संज्ञा पु. [सं. चक्रव्यूह] चक्रव्यूह।

चक्की—संज्ञा स्त्री. [सं. चक्री, प्रा. चक्की] आटा दाल आदि पीसने का यंत्र, जाँता।

मुहा.—चक्की की मानी—(१) चक्की के निचले पाट की वह खूँटी जिस पर ऊपरी पाट घूमता है। (२) ध्रुव तारा। चक्की छूना—(१) चक्की चलाना शुरू करना। (२) अपनी कथा छेड़ना। चक्की पीसना—(१) चक्की चलाना। (२) कड़ा परिश्रम करना।

संज्ञा स्त्री [सं. चक्रिका] (१) पैर के घुटने की गोल हड्डी। (२) बिजली, बज्र।

चक्कू—संज्ञा पु. [हि. चाकू] चाकू।

चक्खै—क्रि. स. [हि. चखना] स्वाद लेकर खाय।

चक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहिया। उ.—चकित होत रथ चक्र हीन ज्यौं—१-२०१। (२) कुम्हार का चाक। (३) चक्की, जाँता। (४) कोल्हू। (५) पहिए की तरह गोल वस्तु। (६) एक गोल अस्त्र। (७) विष्णु भगवान का विशेष अस्त्र। उ.—ग्राह गहे गज-पति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ—१-१०।

मुहा.—चक्र गिरना (पड़ना)—विपत्ति आना।

(८) पानी का भँवर। (९) हवा का चक्कर, बवंडर। उ.—अति विपरीत तृनावर्त आयौ। बात चक्र मिस ब्रज ऊपर परि नंद-पौरि कैं भीतर धायौ—१०-७७। (१०) समूह, मंडली। (११) दल, झुंड। (१२) सेना का एक व्यूह। (१३) मडल, प्रदेश। (१४) चकवा पक्षी। (१५) शरीर के ६ कमल। (१६) मडल, घेरा। (१७) रेखाओं से घिरे हुए खाने। (१८) घुमाव, चक्कर। (१९) दिशा। (२०) धोखा।

चक्रतीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दक्षिण भारत का एक तीर्थ। (२) नैमिषारण्य का एक कुंड।

चक्रधर, चक्रधारी—वि. [सं.] जो चक्र धारण करे।

संज्ञा पुं.—(१) चक्र धारण करनेवाला। (२) विष्णु। (३) श्रीकृष्ण। (४) जादूगर। (५) साँप।

चक्रपाणि, चक्रपाणी, चक्रपानि, चक्रपानी—संज्ञा पुं. [स चक्र + पाणि = हाथ] चक्रधारी विष्णु।

चक्रवाक—संज्ञा पुं. [सं.] चकवा पक्षी।

चक्रवाकि—संज्ञा स्त्री [सं. चक्रवाक] चकवी, चकई। उ.—रवि-छवि कैधौं निहारि, पकज बिगसाने। किधौं चक्रवाकि निरखि, पतिहीं रति मानैं—६४२।

चक्रवात—संज्ञा पुं. [सं.] वेग से चक्कर खाती हुई हवा, बवंडर, वातचक्र। उ.—तृनावर्त विपरीत महाखल सो नृप राय पठायौ। चकवात ह्वै सकल घोष मैं रज धुंधर ह्वै धायौ—सारा ४२८।

चक्रवाल—संज्ञा पुं. [सं.] अंतरिक्ष।

चक्रव्यूह—संज्ञा पु [स.] सेना की एक स्थिति।

चक्रांक—संज्ञा पुं. [स. चक्र + अंक] चक्र आदि का चिह्न जो वैष्णव शरीर पर गुदाते हैं।

चक्रांकित—वि. [स.] जिसके चक्र आदि का चिह्न शरीर पर गुदा या अंकित हो।

संज्ञा पुं—वैष्णवों का एक वर्ग जो विष्णु के चक्र आदि आयुधो के चिह्न शरीर पर गुदाता है।

चक्राकार—वि. [सं. चक्र + आकार] गोल।

चक्राकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा हंस।

चक्राट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साँप पकड़नेवाला। (२) साँप का विष झाड़नेवाला। (३) धूर्त।

चक्रायुध—संज्ञा पुं. [स.] विष्णु।

चक्रिक—संज्ञा पुं. [सं.] चक्र धारण करनेवाला।

चक्रित—वि. [सं. चकित] (१) हैरान, घबराया हुआ। उ.—(क) नंदहिं कहति जसोदा रानी। माटी कैं मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी। नदी सुमेर देखि चक्रित भई, याकी अकथ कहानी—१०-२५६। (२) चौकन्ना, सशंकित। उ.—(क) गोपाल दुरे हैं माखन खात।......। उठि अवलोकि ओट ठाटे ह्वै, जिहिं विधि हैं लखि लेत। चक्रित नैन चहूँ दिसि चितवत, और सखनि कौ देत—१०-२८३। (ख) तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाइ। भए चक्रित लोग ब्रज के सकुचि रहे डराइ—३८७। (३) चकित, विस्मित, भौंचक्का, भ्रांत। उ.—(क) सुनत नद जसुमति चक्रित चित, चक्रित गोकुल के नर-नारि—४३०। (ख) देखि बदन चक्रित भई सौंनुप की सपनैं—४३६।

चक्री—संज्ञा पुं. [स. चक्रिन्] (१) चक्र धारण करनेवाला। (२) विष्णु। (३) चकवा पक्षी। (४) कुम्हार। (५) साँप। (६) जासूस, दूत। (७) तेली। (८) चक्रवर्ती। (९) कौआ। (१०) गदहा। (११) रथी।

चक्षुःश्रवा—संज्ञा पुं. [सं. चक्षुःश्रवस्] साँप जो आँख से सुनता भी है।

चक्षु—संज्ञा पुं. [सं. चक्षुस्] आँख।

चक्षुरिंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [स.] देखने की इंद्रिय, आँख।

चक्षुश्रवा—संज्ञा पुं. [हिं. चक्षुःश्रवा] साँप। उ.—चक्षुश्रवा डर हर ग्रसी ज्यौं छिन द्वितिया वपु रेख —२७५१।

चक्षुष्पति—संज्ञा पुं [सं.] सूर्य।

चक्षुष्य—वि. [सं.] (१) जो (औषध आदि) नेत्रों को हितकर हो। (२) जो नेत्रों को प्रिय लगे, सुंदर। (३) नेत्र-संबंधी।

संज्ञा पु.—(१) केतकी, केवड़ा। (२) अंजन।

चख—संज्ञा पुं. [सं. चक्षुस्] आँख। उ.—लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै—१०-७२।

संज्ञा पुं [अनु] झगड़ा, तकरार, टंटा।

चखचख—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बकबक, कहासुनी।

चखचौंध—संज्ञा स्त्री. [हिं. चकचौंध] अधिक प्रकाश के कारण आँखों की झपक या तिलमिलाहट।

तब ते लगी रहति कहौ प्रान प्यारे निर्धन कौ धन —१८१० ।

वि. स्त्री. [हिं. चटपटा] चटपटे स्वाद की ।

संज्ञा स्त्री.—चटपटे स्वादवाली चीज ।

चटर—संज्ञा पुं. [अनु.] चटचट शब्द ।

चटवाना—क्रि. स. [हिं. चाटना का प्रे.] (१) चाटने का काम कराना । (२) तलवार पर सान रखाना ।

चटशाला, चटसार, चटसाल—संज्ञा स्त्री. [सं. चेतक या हिं. चट्ट=चेला+सार, साल या शाला] (१) बच्चों की पाठशाला, शिक्षालय । उ.—(क) तिनकैं सँग चटसार पठायौ । राम-नाम सौं तिन चित लायौ —७-२ । (ख) अब समझीं हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार—१४८६ । (ग) चातक मोर चकोर वदत पिक मनहु मदन चटसार पढ़ावत—१०उ.-५ । (२) शाला, समाज, समूह । उ.—भँवर कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार—२६८७ ।

चटाइ—क्रि. स. [हिं. चटाना] चटाकर । उ.—गउ चटाइ मम त्वचा उपारौ—६-५ ।

चटाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कट] सींक, ताड़ के पत्तों आदि से बननेवाला बिछावन, साथरी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चाटना] चटाने की क्रिया ।

चटाक, चटाख—संज्ञा [अनु.] टूटने या चटकने का शब्द ।

संज्ञा पुं. [हिं. चट्टा] चकत्ता, दाग ।

चटाका—संज्ञा पु. [अनु.] टूटने या चटकने का शब्द ।

मुहा.—चटाके का—बहुत तेज या कड़ा ।

चटाना—क्रि. स. [हिं. चाटना का प्रे.] (१) चटाने-खिलाने का काम करना । (२) चटाना, खिलाना । (३) घूस देना । (४) छुरी आदि पर सान रखाना ।

चटापटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चटपट] (१) शीघ्रता । (२) शीघ्र या चटपट मृत्यु ।

चटावन—संज्ञा पुं. [हिं. चटाना] बच्चे को पहली बार अन्न चटाने का संस्कार, अन्नप्राशन ।

चटावै—क्रि. स. [हिं. चटाना] चटाती है, खिलाती है । उ.—दधिहिं बिलोइ सदमाखन राख्यौ, मिश्री सानि चटावै नँदलाल—१०-८४ ।

चटिक—क्रि. वि. [हिं. चट] चटपट, तुरंत ।

चटियल—वि. [देश.] जिसमें पेड़ पौधे न हों ।

चटिया—संज्ञा. पु. बहु [सं. चेटक] दास, नौकर । उ.—अजामील, गनिका, व्याध, नृग, ये सब मेरे चटिया । उनहूँ जाइ सौंह दै पूछौ, मैं करि पठयौ सटिया—१-१९२ ।

चटिहाट—वि. [देश.] जड़, मूर्ख ।

चटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चट्ट=चेला] पाठशाला ।

चटु—संज्ञा पु. [सं.] (१) खुशामद । (२) पेट, उदर ।

चटुल—वि. [स.] (१) चचल, चपल । (२) चालाक, काँइयाँ । (३) जिसे देखकर सुख मिले, प्रियदर्शन । सुंदर । उ.—चटुल चारु रतिनाथ के हरि होरी है —२४५५ (८) ।

चटुला—संज्ञा स्त्री. [संज्ञा] बिजली, चपला ।

चटोरा—वि. [हिं. चाट + ओरा (प्रत्य.)] (१) अच्छी चीजें खाने का लालची, स्वादू । (२) लोभी ।

चटोरापन—संज्ञा पुं. [हि. चटोरा + पन (प्रत्य.)] अच्छी चीजे खाने का लोभ या व्यसन ।

चट्ट—वि. [हि. चाटना] (१) चाट-पोंछ कर खाया हुआ । (२) समाप्त, नष्ट ।

चट्टा—संज्ञा पु. [सं. चेटक=दास] चेला, शिष्य ।

संज्ञा पुं. [सं. कट] बाँस की चटाई ।

संज्ञा पुं. [देश.] सफाचट मैदान ।

संज्ञा पुं. [हिं. चकत्ता] शरीर के चकत्ते, दाग ।

चट्टान—संज्ञा स्त्री. [हि. चट्टा] पत्थर का बड़ा टुकड़ा ।

चट्टाबट्टा—संज्ञा पुं. [हि. चट्टू=चाटने का खिलौना + बट्टा=गोला] (१) काठ के छोटे छोटे खिलौनों का समूह । (२) बाजीगर के छोटे-बड़े गोले ।

मुहा.—एक ही थैली के चट्टे-बट्टे—एक ही रुचि, स्वभाव और ढंग के आदमी । चट्टे-बट्टे लड़ाना—कुछ कहकर आपस में झगड़ा कराना ।

चट्टी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) टिकान, पड़ाव, मंजिल । (२) पैर का एक गहना ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चाँटा] (१) हानि । (२) दंड ।

चट्टू—वि. [हिं. चाट] चटोरा, स्वादू, लोभी ।

संज्ञा पुं. [हिं. चट्टान] पत्थर का खरल ।

संज्ञा पुं. [हिं. चाटना] चाटने का खिलौना ।

चड़बड़—संज्ञा पुं. [अनु.] बकबक, झकझक।

चड्डा—संज्ञा पुं. [देश.] जाँघ का ऊपरी भाग।

वि.—गावदी, मूर्ख, उजड्ड।

चढत—क्रि. अ. [हि. चढना] (१) चढ़ता है, लगाया या पोता जाता है।

मुहा.—रंग चढ़त—रंग खिलता (है)। उ.—(क) सूरदास कारी कामरि पै, चढत न दूजौ रंग—१-३३२। (ख) जो पै चढत रंग तौ ऊपर स्यौं पै होत स्यामता हेतु—३३६०।

(२) ऊपर उठता है, उड़ता है। उ.—परनि परेवा प्रेम की (रे) चित लै चढत अकास—१-३२५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चढना] किसी देवता पर चढ़ाई वस्तु या भेंट।

चढता—वि. [हिं. चढना] (१) ऊपर की ओर उठाया जाता हुआ। (२) आरंभ होता और बढ़ता हुआ।

चढ़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. चढना] (१) चढ़ने की क्रिया या भाव। (२) देवता पर चढ़ायी हुई वस्तु।

चढ़ना—क्रि. अ. [सं. उच्चलन, प्रा. उच्चडन, चड्ढन] (१) ऊँचाई की ओर जाना। (२) ऊपर उठना, उड़ना। (३) ऊपर की ओर खिसकना या समिटना। (४) एक वस्तु के ऊपर दूसरी का मढ़ा जाना। (५) उन्नति करना, बढ़ना।

मुहा०—चढ़ (बढ) कर होना—अधिक श्रेष्ठ या महत्व का होना। चढा बढा—श्रेष्ठ। चढ़ बनना—लाभ का अवसर हाथ आना। चढ़ बजना—बात बनना, पौ बारह होना।

(६) (नदी या पानी का) बढ़ना। (७) धावा या चढ़ाई करना। (८) धूमधाम या साज बाज के साथ कहीं जाना। (९) महँगा हो जाना। (१०) सुर या स्वर तेज होना। (११) नदी के प्रवाह के विरुद्ध चलना। (१२) (नस, डोरी या तार) कस जाना। (१३) देवता या महात्मा को अर्पित करना। (१४) सवारी करना। (१५) वर्ष, मास आदि का आरंभ होना। (१६) ऋण या कर्ज होना। (१७) बही आदि में लिखा जाना। (१८) बुरा असर या प्रभाव होना। (१९) चूल्हे या अँगीठी पर रखा जाना। (२०) पोतना।

मुहा०—रंग चढना—(१) रंग का खिलना या आना। (२) किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना।

(२१) किसी झगड़े को अदालत तक ले जाना।

चढ़वाना—क्रि. स. [हि. चढाना] चढ़ाना।

चढ़ाइ—क्रि. स. [हिं. चढाना] (१) सितार, धनुष आदि में तार या डोरी चढ़ाकर या कसकर। उ.—कुबुधि-कमान चढाइ कोप करि, बुधि- तरकस रितयौ—१ ६४। (२) मलकर, लगाकर। उ.—घषि कै गरल चढाइ उरोजनि लै रुचि सौं पय प्याऊँ—१०-४६।

चढ़ाई—क्रि. स. [हिं. चढाना] (१) (सितार, धनुष आदि में) डोरी कसी या कसकर।

मुहा.—लियो धनुष चढाइ—धनुष की डोरी कसी उ.—तुम तौ द्विज, कुल पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई? क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक-धनुष चढ़ाई—९-२८।

(२) भेंट की, अर्पित की। उ.—मेरी बलि पर्व-तहिं चढाई—१०४१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चढना] (१) चढ़ने की क्रिया या भाव। (२) ऊँचाई की ओर जानेवाली भूमि। (३) लड़ने के लिए प्रस्थान, धावा, आक्रमण। (४) किसी देवी-देवता की पूजा की तैयारी। (५) किसी देवी देवता को पूजा या भेंट चढ़ाने की क्रिया या सामग्री, चढ़ावा, कढ़ाई। उ.—सूर नंद सौं कहत जसोदा दिन आये अब करहु चढ़ाई।

चढ़ाउ—संज्ञा पुं. [हिं. चढाव] चढ़ने का भाव।

चढ़ाउतरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चढ़ना+उतरना] (१) बार बार चढ़ने-उतरने की क्रिया। (२) कूद फाँद।

चढ़ाऊँ—क्रि. स. [हि चढ़ाना] लगाऊँ, मलूँ, पोतूँ। उ.—तन मन जारौं, भस्म चढ़ाऊँ बिरहिन गुरु उपदेस—२७५४।

चढ़ाऊपरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चढ़ना+ऊपर] (१) अधिक ऊँचे चढ़ने का भाव। (२)आगे बढ़ जाने का भाव या प्रयत्न, लागडाँट।

चढ़ाए—क्रि. स. [हिं. चढ़ाना] (१) मढ़वाए, आवरण-रूप में लगाए। उ.—ऊँचे मंदिर कौन काम के कनक-कलस जो चढ़ाए। भक्त भवन मैं हौं जू बसति हौं जद्यपि तृन करि छाए—१-२४३। (२) सवार कराये। उ.—कंचन को रथ आगे कीन्हों हरिहिं चढ़ाए वर कै—२५२६। (३) लगाये हुए, मले हुए। उ.—भुजा बिसाल स्याम सुंदर की चंदन खौरि चढ़ाए री—१३४१। (४) कसे, खींचे।

मुहा.—नैन चढ़ाए— क्रोध से भृकुटी ताने हुए। उ.—नैन चढ़ाए कापर डोलति ब्रज मैं तिनुका तोरि —१०-३१०।

चढ़ाचढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चढ़ना] होड़, लागडाँट।

चढ़ाना—क्रि. स. [हिं. चढ़ना का प्रे.] (१) ऊँचाई पर पहुँचाना। (२) चढ़ने का काम कराना। (३) ऊपर की ओर सिकोड़ना या समेटना। (४) धावा या चढ़ाई करना। (५) भाव बढ़ाना, महँगा करना। (६) स्वर ऊँचा करना। (७) सितार, धनुष आदि की डोरी कसना या चढ़ाना। (८) देवता या महात्मा को भेंट देना। (९) सवारी कराना। (१०) चटपट पी जाना। (११) ऋण या कर्ज बढ़ाना। (१२) बही आदि में लिखना या टाँकना। (१३) चूल्हे-अँगीठी पर रखना। (१४) लगाना, पोतना। (१५) एक वस्तु को दूसरी पर मढ़ना।

चढ़ानी- संज्ञा स्त्री. [हिं. चढ़ना] चढ़ाई।

चढ़ायो, चढ़ायौ—क्रि. स. [हिं. चढाना] (१) लेप किया, लगाया, मला, पोता। उ.—चोवा चंदन अगर कुमकुमा परिमल अंग चढायौ—१०उ. ६५। (२) किसी देवी-देवता को अर्पित किया। उ.—अब गोकुल भूतल नहिं राखौं मेरी बलि मोको न चढ़ायौ—६४२। (३) लिखा, दर्ज किया, टाँका। उ.—ब्याध, गीध, गनिका जिहिं कागर, हौं तिहिं चिठि न चढ़ायौ—१-१६३। (४) पान किया, पी लिया। उ.—प्रथम जोबन रस चढायौ अतिहिं भई खुमारि—११६६। (५) ऊँचे पर पहुँचाया, ऊपर उठाया।

मुहा०—मूड़ चढ़ायौ—सरपर चढ़ा लिया है, ढीठ कर दिया है। उ— (क) बारे ही तें मूढ़ चढ़ायौ —३६१। (ख) तैंही उनको मूढ चढ़ायौ—१६५८। सीस चढायौ—माथे से लगाया, प्रणाम किया, वंदना की। उ.—तब बसुदेव लियौ कर पलना अपने सीस चढ़ायौ—सारा. ३७४।

(६) किसी के ऊपर चढ़ाकर ऊँचा किया। उ.—ऊखल ऊपर आनि पीठि दै तापर सखा चढायौ—१०-२६२। (७) सवार कराया, सवारी पर बैठाया। उ.—चले बिमान सग गुरु-पुरजन तापर नृप पौढ़ायौ। भस्म अंत तिल अंजलि दीन्हीं, देव बिमान चढ़ायौ —९-५०।

चढ़ाव—संज्ञा पुं. [हिं. चढ़ना] (१) चढ़ने का भाव। यौ.—चढाव-उतार— ऊँचा - नीचा स्थान।

(२) बढ़ने का भाव, वृद्धि, बाढ़, बढ़ती।

यौ०—चढाव-उतार—क्रमशः मोटाई कम होना।

(३) विवाह में दुलहिन को चढ़ाये गये गहने आदि, चढ़ावा। (४) विवाह में दुलहिन को दिये गये गहने आदि पहनने की रीति। (५) वह दिशा जिधर से नदी बहकर आ रही हो।

चढ़ावत—क्रि. स. [हिं. चढ़ाना] (१) सवार कराते हैं। उ.—गैवर मेटि चढ़ावत रासभ प्रभुता मेटि करत हिनती—१२२८। (२) मलते हैं, लगाते है। उ. —जो पै जोग लिखि पठयौ हमकौ तुमहु न भस्म चढ़ावत—३२१८।

चढावन—संज्ञा स्त्री [हिं. चढाना] (१) देवार्पित करना, चढ़ाने की क्रिया। उ.—दस मुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं, संकर-उर दससीस चढावन—९-१३१।

चढ़ावहु—क्रि. स. [हिं. चढाना] अर्पित करो। उ.—जरासंध सिसुपाल नृपति ते जीते हैं उठि अर्घ्य चढ़ावहु—१० उ.-२३।

चढ़ावा—संज्ञा पुं. [हिं. चढना] वे गहने जो दुलहिन को चढ़ाये जाते हैं। (२) वह सामग्री जो देवी-देवता पर चढ़ायी जाती है, पुजापा। (३) टोने-टुटके की चीज। (४) उत्साह प्रोत्साहन।

चढ़ावै—क्रि. स. [हिं. चढाना] देवता के अर्पण करें। उ.—कमल-पत्र मालूर चढ़ावैं—७६६।

चढ़ावै—क्रि. स. [हिं. चढ़ाना] पुस्तक, बही, कागज आदि पर लिखे। उ.—अब तुम नाम गहौ मन नागर।.........। मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढावै कागर—१-६१।

चढ़ाहु—क्रि. स. [हिं. चढ़ाना] चढ़ाओ, सवार कराओ। उ.—कहै भामिनि कंत सौं मोहि कंध चढ़ाहु-१८८६।

चढ़ि—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] (१) चढ़कर, सवार होकर। उ.—विप्रनि पै चढि कै जो आवहु। तौ तुम मेरौ दरसन पावहु—६-७। (२) उन्नति करके, बढ़कर।

मुहा.—चढि बाजी—बात बन गयी, पौ बारह हो गयी। उ.—अधर रस मुरली लूटि करावति। आपुन बार बार लै अँचवति जहाँ तहाँ ढरकावति। आजु यहाँ चढ़िबाजी बाकी जोइ कोइ करै बिराजे।

(३) धावा या आक्रमण करके, चढ़ाई करके। उ.—बार सत्रह जरासंध मथुरा चढि आयो—१० उ.३। (४) लगाकर, मलकर, पोतकर।

मुहा.—रंग चढि रह्यौ—रंग आ चुका है, रंग चढ़कर खिल चुका है। उ.—पहले ही चढि रह्यौ स्याम रंग छूटत नहिं देख्यो धोई—३१४५।

चढ़ी—क्रि. स. [हिं. चढना] (नदी आदि) बाढ़ पर आयी, बढ़ गयी। उ.—तुम्हरे बिरह ब्रजनाथ राधिका नैनन नदी बढी। लीने जाति निमेष कूल दोउ एते मान चढ़ी—३४५४।

वि.—ऊपर गयी हुई, ऊँचे स्थान पर पहुँची हुई। उ.—नँदनंदन को रूप निहारत अहनिसि अटा चढ़ी—२७६४।

चढ़े—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] (सवारी पर) बैठकर, सवार होकर। उ.—(क) आनँदमगन सब अमर गगन छाए, पुहुप बिमान चढे पहर पहर के—१०-३०। (ख) वहुं गजराज बाजि सिंगारे तापर चढे जु आप—सारा. ६७७।

चढ़ेउ—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] आक्रमण या धावा किया, चढ़ाई की। उ.—सब मिलि करहु कछू उपाव। मार मारन चढेउ बिरहिन करहु लीनो चाव—२७१५।

चढ़ै—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] (१) नीचे से ऊपर जाती है, चढ़ती है। उ.—एकनि लै मन्दिर चढ़ै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)—१-४४। (२) लेप होता है, पोता या लगाया जाता है।

मुहा.—रंग चढ़ै—किसी वस्तु पर रंग आवे या खिले। उ.—सूरदास स्याम रंग राँचे, फिर न चढे रँग रातै—३०२४। (३) (चूल्हे, अँगीठी आदि पर) चढ़ाकर। उ.—एक जेंवन करत त्याग्यौ चढै चूल्है दारि—पृ० ३३६ (८४)

चढ़ैए—क्रि. स. [हिं. चढ़ाना] पोतिए, मलिए, लगाइए। उ.—जिहि सिर केस कुसुम भरि गूँदै तेहि कैसे भसम चढ़ैए—३१२४।

चढ़ैत—संज्ञा पुं. [हिं. चढना + ऐत (प्रत्य.)] चढ़नेवाला।

चढ़ैया—वि. [हिं. चढ़ना + ऐया (प्रत्य.)] चढ़ने या चढ़ानेवाला।

चढ़ैहैं—क्रि. स. [हिं. चढ़ावा] भेंट देंगे, (देवता पर) चढ़ावेंगे। उ.—जा दिन राम रावनहिं मारैं, ईसहिं लै दससीस चढ़ैहैं। ता दिन सूर राम पै सीता सरबस वारि बधाई दैहैं—६-८१।

चढ़ैहौं—क्रि. स. [हिं. चढाना] भेंट करूँगा, देवार्पित करूँगा। उ.—दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर-माला सिव सीस चढैहौं—६-१५७।

चढ़ौ—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] सवार हो। उ.—सूरज दास चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै—६-४१।

चढ़्यौ—क्रि. अ. [हिं. चढ़ना] (१) ऊपर उठा, ऊँचे स्थान को गया।

मुहा०—रवि चढ़्यौ—सूर्य उदय होकर क्षितिज पर आ गया। उ.—रवि बहु चढ़्यौ, रैनि सब निघटी, उचटे सकल किवार—४०८।

(२) सवार हुआ, सवार होना। उ.—दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ़्यौ जहाज—१-१०८। (३) आक्रमण किया, धावा किया। उ.—(क) गज अहंकार चढ़्यौ दिग बिजयी, लोभ-छत्र-करि सीस—१-१४४। (ख) इंद्रजित चढ़्यौ निज सैन सब साजि कै रावरी सैनहूँ साज कीजै—६-१३६।

चणक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चना। (२) एक ऋषि।

चतुरंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक गाना। (२) चतुरंगिणी सेना का प्रधान अधिकारी।

संज्ञा स्त्री.—(१) सेना के चार अंग—हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल। (२) चार अंगों से युक्त सेना।

वि.—चार अंगों से युक्त। उ.—मनहुँ चढ़त चतुरंग चमू नभ बाढ़ी है खुर खेह—२८२०।

संज्ञा पुं. [सं.] शतरंज का खेल।

चतुरंगिणी, चतुरंगिनी—वि० स्त्री. [सं. चतुरंगिणी] चार अंगों से युक्त (सेना)।

संज्ञा स्त्री.—सेना जिसमें चारो अंग हों—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल।

चतुर—वि. पुं. [सं.] (१) प्रवीण, कुशल, निपुण। (२) फुरतीला, तेज। (३) धूर्त, काँइयाँ।

संज्ञा पुं.—नायक का एक भेद।

चतुरई—संज्ञा स्त्री. [हि. चतुराई] (१) चतुराई, चतुरता। उ.—(क) मोहन काहैं न उगिलै माटी।......। महतारी सौं मानत नाहीं कपट-चतुरई ठाटी—१०-२५४। (ख) चोर अधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही—१०-२६१। (२) धूर्तता, काँइयाँपन। उ.—जैसे हरि तैसे तुम सेवक कपट चतुरई साने हो—३००५।

मुहा०—चतुरई छोलत हौ—चालाकी दिखाते हो, धोखा देते हो। उ.—जाहु चले गुन प्रगट सूर-प्रभु कहा चतुरई छोलत हौ। चतुरई तौलत हौ—चालाकी करते हो। उ.—बहुनायकी आजु मैं जानी कहा चतुरई तौलत हौ।

चतुरक—संज्ञा पुं. [सं.] चतुर प्राणी।

चतुरगुन—वि. [स. चतुर्गुण] चौगुना। उ.—लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात—६-७४।

चतुरता—संज्ञा स्त्री. [चतुर + ता (प्रत्य.)] (१) चतुर होने का भाव, चतुराई। (२) कुशलता, निपुणता।

चतुरदस—वि. [सं. चतुर्दश] चौदह।

चतुरनमनि—वि. [स. चतुर + मणि] चतुरों में श्रेष्ठ। उ.—ग्याननमनि, विद्यामनि, गुनमनि, चतुरनमनि, चतुराई—२१७०।

चतुरनीक—संज्ञा पुं. [सं.] चतुरानन, ब्रह्मा।

चतुरभुज—वि. [सं. चतुर्भुज] चार भुजाओंवाला। उ.—बहुरौ धरै हृदय महँ ध्यान। रूप चतुरभुज स्याम सुजान—३-१३।

चतुरमास—संज्ञा पुं. [सं. चातुर्मास, हिं. चतुर्मास] बरसात के चार महीने, चौमासा। उ.—चतुरमास सूरज प्रभु तिहिं ठौर बितायौ—६-७१।

चतुरमुख—संज्ञा पुं. [सं. चतुर्मुख] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु।

वि.—चार मुखवाला।

चतुरसम—संज्ञा पुं. [सं.] एक गंध द्रव्य।

चतुरा—वि. [हिं. चतुर] (१) चतुर। (२) काँइयाँ।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी का नाम। उ.—स्यामा, कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि—१५८०।

चतुराइ, चतुराई—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुर + हि. आई (प्रत्य.)] (१) निपुणता, दक्षता। (२) धूर्तता, चालाकी। उ.—(क) मन तोसौं किती कही समुझाइ। नंद नँदन के चरन-कमल भजि, तजि पाखँड चतुराइ—१-३१७। (ख) स्याम फाँसि मन करष्यौ हमरो अब समुझी चतुराई—११४३। (३) कपट-कपट। उ.—वृद्ध बयस पूरे पुन्यनि तैं तैं बहुतै निधि पाई। ताहू के खैबे-पीबे कौ कहा करति चतुराई—१०-३२५।

चतुरात्मा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुरानन—संज्ञा पुं. [सं.] चार मुखवाले, ब्रह्मा। उ.—माया कला ईस चतुरानन चतुर्व्यूह धर रूप—सारा. ३५५।

चतुरापन—संज्ञा पुं. [हिं. चतुरा + पन (प्रत्य.)] (१) चतुराई, होशियारी। (२) धूर्तता।

चतुराय—संज्ञा स्त्री. [हिं. चतुराई] चतुरता, चालाकी। उ.—गह्यौ हरषि भुज ललिता धाय। गयी स्याम की सब चतुराय—२४५४ (८)।

चतुर्—वि. [सं.] चार।

संज्ञा पुं.—चार की संख्या।

चतुर्गति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुर्गुण, चतुर्गुन—वि. [स. चतुर्गुण] (१) चारगुना, चौगुना। (२) चार गुणवाला।

चतुर्थ—वि. [सं.] चौथा।

चतुर्थांश—संज्ञा पुं. [सं.] चौथाई भाग।

चतुर्थी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) चौथी तिथि, चौथ। (२) मृत्यु के चौथे दिन की रस्म, चौथा।

चतुर्दश, चतुर्दस—संज्ञा पुं. [सं. चतुर्दश] चौदह।

चतुर्दशी, चतुर्दसि, चतुर्दसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चौदहवीं तिथि, चौदस।
चतुर्दिक, चतुर्दिश—संज्ञा पुं. [सं. चतुर + दिक्, दिशा] चारो दिशाएँ।
क्रि. वि.—चारो ओर।
चतुर्बाहु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) विष्णु।
चतुर्भुज—वि. पुं. [स.] चार भुजाओंवाला।
संज्ञा पुं.—विष्णु।
चतुर्भुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी।
चतुर्भुजी—संज्ञा पुं. [सं. चतुर्भुज + ई (प्रत्य.)] (१) एक वैष्णव संप्रदाय। (२) इस संप्रदाय का अनुयायी।
वि.—चार भुजावाला।
चतुर्मास—संज्ञा पु. [सं. चातुर्मास] वर्षा के चार महीने—आषाढ़, सावन, भादों और कुआर, चौमासा।
चतुर्मुख—वि. पुं. [सं.] चार मुखवाला। उ.—चारौं वेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत हैं ताको—१-११३।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु।
क्रि. वि.—चारो ओर।
चतुर्मूर्ति—संज्ञा पुं. [सं.] ईश्वर।
चतुर्युगी—संज्ञा स्त्री. [सं.] उतना समय (४३२००००० वर्ष) जिसमें एक बार चारो युग बीत जायँ।
चतुर्वर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।
चतुर्वर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
चतुर्विद्या—संज्ञा स्त्री. [स.] चारो वेदों की विद्या।
चातुर्वेद—संज्ञा पु [स.] (१) ईश्वर। (२) चार वेद।
चतुर्वेदी—संज्ञा पुं [सं. चतुर्वेदिन्] (१) चारो वेद जाननेवाला व्यक्ति। (२) ब्राह्मणों की एक जाति।
चतुर्व्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चार मनुष्यों या पदार्थों का वर्ग अथवा समूह जैसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न या कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। उ.—(क) प्रगट भए दसरथ गृह पूरन चतुर्व्यूह अवतार—सारा. १६०। (ख) माया कला ईश चतुरानन चतुर्व्यूह धरि रूप—सारा. ३५५। (२) विष्णु। (३) योग शास्त्र। (४) चिकित्सा शास्त्र।
चतुष्कोण—वि, [सं.] चौकोर, चौकोना।
चतुष्पद—संज्ञा पुं. [सं.] चार पैरवाला पशु।
वि.—चार पद या चरणवाला।
चतुष्पदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चार पदों का गीत।
चतुस्सम—संज्ञा पुं. [सं.] एक गंध द्रव्य।
चत्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चौराहा। (२) चबूतरा, वेदी। (३) घिरा हुआ कोई चौकोर स्थान।
चद्दरा—संज्ञा पुं. [फा. चादर] दुपट्टा, ओढ़ना।
चदिर—संज्ञा पु. [सं.] (१) कपूर। (२) चद्रमा।
चद्दर—संज्ञा स्त्री. [फा. चादर] (१) चद्दरा, दुपट्टा। (२) किसी धातु का लंबा चौड़ा पत्तर। (३) नदी आदि के बहते हुए पानी का वह अंश, जिसका ऊपरी भाग चादर के समान समतल हो जाता है, जिसमें लहरें नहीं उठतीं और जिसमें फँस जानेवाली नाव या प्राणी कठिनता से बचता है।
चनक—संज्ञा पुं. [सं. चणक] चना। उ.—बेसन दारि चनक करि बान्यो—१००६।
चनकना—क्रि. अ. [हिं. चटकना] फूटना, खिलना।
चनखना—क्रि. अ. [हिं. अनखना] चिढ़ना।
चनदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चना + दाल] चने की दाल। उ.—मूँग, मसूर, उरद, चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६।
चनन—संज्ञा पुं. [स. चंदन] संदल, चंदन।
चनवर—संज्ञा पुं.—ग्रास, कौर।
चनसित—संज्ञा पुं. [सं.] श्रेष्ठ, महान।
चना—संज्ञा पुं. [सं. चणक] एक प्रधान अन्न। उ.—साग चना सँग सब चौराई—२३२१।
मुहा.—चने का मारा मरना—इतना दुबला कि जरा सी चोट से मर जाय। नाकों चने चबवाना—बहुत हैरान करना। लोहे का चना—बहुत कठिन काम। लोहे के चने चबाना—कठिन काम करना।
चपकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. चपकना] अंगा, अँगरखा।
चपकना—क्रि. अ. [हिं. चिपकना] जुड़ना, चिपकना।
चपकाना—क्रि. स. [हिं. चिपकाना] जोड़ना।
चपट—संज्ञा पु. [स.] चपत, तमाचा, चोट।
चपटना—क्रि. अ. [चिपटना] भिड़ना, जुटना।
चपटा—वि. [हिं. चिपटा] बैठा या धँसा हुआ।

चपटाना—क्रि. स. [हिं. चिपटाना] (१) चिपकाना, सटाना। (२) लिपटाना, आलिंगन करना।

चपटी—वि. स्त्री. [हिं. चिपटी] धँसी या बैठी हुई।

चपड़ चपड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] वह शब्द जो खाते-पीते समय कुत्ते के मुँह से निकलता है।

चपड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. चपटा] (१) साफ की हुई लाख का पत्तर। (२) चिपटी वस्तु, पत्तर।

चपत—संज्ञा पुं. [सं. चपट] (१) हलका तमाचा या थप्पड़। (२) धक्का, हानि, नुकसान।

क्रि. अ. [हिं. चपना] कुचल जाता है।

चपना—क्रि. अ. [सं. चपन=कूटना, कुचलना] (१) कुचल जाना। (२) लज्जित होना। (३) नष्ट होना।

चपनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चपना] (१) कटोरी। (२) एक कमंडल। (३) हाँडी का ढक्कन। (४) घुटने की हड्डी।

चपरगट्टू—वि. [हिं. चौपट + गटपट] (१) नाश करनेवाला। (२) अभागा। (३) उलझा हुआ।

चपरना—क्रि. स. [अनु. चपचप] (१) गीली या चिपचिपी वस्तु चुपड़ना या लगाना। (२) मिलाना, सानना, ओतप्रोत करना। (३) भाग जाना, खिसकना।

क्रि. अ. [सं. चपल] तेजी करना।

चपरा—संज्ञा पुं. [हिं. चपड़ा] लाख का पत्तर।

वि.—कहकर मुकर जानेवाला, झूठा।

अव्य. [हिं. चपरना] हठात्, जैसे हो वैसे।

चपराना—क्रि. स. [हिं. चपरा] झूठा बनाना।

चपरास—संज्ञा स्त्री [हिं. चपरासी] (१) चपरासी की पट्टी या पेटी। (२) मुलम्मा करने की कलम।

चपरासी—संज्ञा पुं. [फ़ा. चप=बायाँ+रास्ता=दाहिना] चपरास पहननेवाला अरदली या नौकर।

चपरि—क्रि. स. [हिं. चपरना] (१) किसी गीली या चिपचिपी वस्तु को चुपड़कर। उ.—ऊधौ जाके माथे भागु। अबलन जोग सिखावन आए चेरिहि चपरि सोहाग—३०६५ (२) मिलाकर, सानकर, ओतप्रोत करके। उ.—विषय चिंता दोऊ हैं माया। दोउ चपरि ज्यों तरुवर छाया—११-६।

क्रि. वि. [सं. चपल] फुर्ती से, तेजी से, जोर से। उ.—मवरजु एक चक्रत चपरि कर भरि दंदूप पग डारिहै—सा. उ. ४।

चपल—वि. पुं. [सं.] (१) चंचल, अस्थिर, तेज, गतिवान। उ.—(क) रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए। मनु संचित भू-भार उतारन चपल भए अकुलाए—१-२७३। (ख) चपल समीर भयो तेहि रजनी भजे चारों यामा—१० उ. ६६। (२) क्षणिक। (३) हड़बड़ी मचानेवाला। (४) अवसर पर न चूकनेवाला, बहुत चालाक।

संज्ञा पुं.—(१) पारा। (२) मछली। (३) चातक। (४) एक पत्थर। (५) चोर नामक सुगंधित द्रव्य। (६) एक चूहा। (७) राई।

चपलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंचलता, तेजी, जल्दी। (२) चालाकी, ढिठाई, धृष्टता।

चपला—वि. स्त्री. [सं.] फुरतीली, तेज।

संज्ञा स्त्री.—(१) लक्ष्मी। (२) बिजली। (३) चरित्रहीन स्त्री। (४) पीपल। (५) जीभ। (६) भाँग। (७) मदिरा।

चपलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. चपल] चपलता, चंचलता। उ.—(क) मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करषै री—१०-१३७। (ख) कुंडल किरनि निकट भूलोचन आरति मीन दृग सम चपलाई—१३३८। (ग) खंजन मीन मृगज चपलाई नहि पटतर एक सैन—१३४६।

चपलाना—क्रि. अ. [सं. चपल] हिलना डोलना।

क्रि. स.—हिलाना-डोलाना, चलाना।

चपाक—क्रि. वि. [हिं. चटपट] चटपट। अचानक।

चपाना—क्रि. स. [हिं. चपना] (१) जोड़ना, फँसाना। (२) दबवाना। (३) लज्जित करना, झिपाना।

चपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चपाना = दबाना] (१) धक्का, आघात। (२) थप्पड़,तमाचा। (३) सकट, दबाव।

चपेटना—क्रि. स. [हिं. चपेट] (१) दबाना, दबोचना। (२) मारते-पीटते हुए पीछे खदेड़ना। (३) फटकारना, डाँटना।

चपेरना—क्रि. स. [हिं. चापना] दबाना।

चपै—क्रि. अ. [हि. चपना] दबे, प्रभावित हो। उ.—बरनि सिंह तुम्हरी घरी, कैसे चपै सृगाल—१० उ.—८।

चप्पा—संज्ञा पुं. [सं. चतुष्पाद, प्रा. चउप्पाव] (१) चौथाई भाग। (२)थोड़ा भाग। (३) चार अंगुल या एक बालिस्त जगह। (४) थोड़ी जगह।

चप्पी—संज्ञा स्त्री. [हिं.चपना = दबना] धीरे धीरे पैर दाबने की क्रिया।

चप्यौ—क्रि. अ. [हि. चपना] दब गया, कुचल गया। उ.— वृच्छ दोउ धर परे देखे, महरि कीन्ह पुकार। अबहिं आँगन छाँड़ि आई, चप्यौ तरु की डार—३८७।

चबक—संज्ञा स्त्री. [देश.] टीस, चिलक।

वि. [हिं. चपना] दब्बू, कायर, डरपोक।

चबकना—क्रि. अ. [हिं. चबक] टीसना, चिलकना।

चबकी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पराँठा, चँवरी।

चबाइ—वि. पुं. [हिं. चबाव] चुगलखोर। उ.—चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, लिए मोह की फाँसी—१-१८६।

चबाइन—संज्ञा स्त्री. [हिं चबाव] बदनामी की चर्चा, निंदा। उ.—दासी तृष्ना भ्रमत टहल-हित, लहत न छिन विश्राम। अनाचार-सेवक सौं मिलिकै, करत चबाइनि काम—१-१४१।

चबाई—वि. पुं. [हि. चबाव] इधर की उधर लगाने-वाला, चुगलखोर। उ.—(क) माधौ जू, मोतैं और न पापी। घातक, कुटिल, चबाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी—१-१४०। (ख) सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत—१०-२१५। (ग) सूरदास बल बड़ौ चबाई तैसेहिं मिले सखाऊ—४८१।

चबाउ—संज्ञा पुं. [हिं. चौबाई, चबाव] (१) चारो ओर फैलनेवाली चर्चा, प्रवाद। (२) बुराई या निंदा की चर्चा। उ.—नैनन तें यह भई बड़ाई। घर घर यहै चबाउ चलावत हम सौं भेट न माई। (३) पीठ पीछे की निंदा।

चबात—क्रि. स. [हिं. चबाना] चबाते हुए।

मुहा०— दाँत चबात—क्रोध प्रदर्शित करते हुए। उ.—दाँत चबात चले जमपुर तें धाम हमारे कौ—१-१५१।

चबाना—क्रि. स. [सं. चर्वण] (१) दाँत से कुचलना।

मुहा.—चबा चबाकर बात करना—स्वर बनाकर बोलना। चबे को चबाना—किया हुआ काम फिर से करना।

(२) दाँत से काटना, दरदराना।

चबारा—संज्ञा पुं. [हिं. चौबारा] ऊपरी बैठक।

चबाव, चबावन—संज्ञा पुं. [हिं. चबाव] (१) चर्चा, प्रवाद। (२) निंदा या बुराई की चर्चा। (३) चुगलखोरी।

चबूतरा—संज्ञा पुं [हिं. चौतरा] चौतरा।

चबेना—संज्ञा पुं. [हिं. चबाना] भुना हुआ सूखा अनाज, भूँजा, चर्वण। उ.—एक दूध, फल, एक झगरि चबेना लेत, निज निज कामरी के आसननि कीने—४६७।

चबेनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चबाना] (१) बरातियों को दिया जानेवाला जलपान। (२) जलपान का मूल्य।

चब्भू, चब्बू—वि. [हिं. चबाना] बहुत खानेवाला।

चभो—संज्ञा पुं [हिं. चभकना] दूसरे का दिया हुआ गोता, डुब्बी, डुबकी।

चभक—संज्ञा [अनु.] पानी में डूबने का शब्द।

संज्ञा स्त्री. [देश.] डंक मारने की क्रिया।

चभड़चभड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खाते-पीते समय मुँह का शब्द। (२) कुत्ते-बिल्ली का पानी पीने का शब्द।

चभना—क्रि. अ [हिं चाभना] कुचला जाना।

चभाना—क्रि स. [हिं. चाभना] खिलाना।

चभोक—वि. [देश.] मूर्ख, गावदी, बेवकूफ।

चभोकना, चभोरना—क्रि. स. [हिं. चुभकी] (१) गोता देना, डुबोना। (२) भिगोना, तर करना।

चभोरी—वि. [हिं. चभोरना] भीगी हुई, तर। उ.—रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी इक घीव चभोरी—३९६।

चभोरे—वि. [हिं. चभोरना] भीगे हुए, तर, रस में डूबे हुए। उ.—(क) मीठे अति कोमल हैं नीके।

तातें, तुरत चभोरे घी के—३६६ । (ख) घेवर अति घिरत चभोरे । लै खाँड उपर तर बोरे—१०-१८३ ।

चमंक—संज्ञा पुं. [हिं. चमक] (१) प्रकाश । (२) कांति ।

चमंकना—क्रि. अ. [हिं. चमकना] जगमगाना ।

चमक—संज्ञा स्त्री. [सं. चमत्कृत] (१) प्रकाश, ज्योति, रोशनी । (२) कांति, आभा, दमक ।

मुहा०—चमक देना (मारना)—चमकना । चमक लाना—चमकाना ।

(३) कमर आदि की चिक या झटका ।

चमकत—क्रि. अ. [हिं. चमकना] चमकते हुए, ज्योतियुक्त । उ.—रिपि-ढग चमकत देखत भई—९-३ ।

चमकताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमक] कांति, आभा, दमक । उ.—हँसति दसननि चमकताई बज्रकन रुचि पाँति—१३५५ ।

चमक दमक—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमक + दमक (अनु.)] आभा, क्रांति, तड़क-भड़क । उ.—मिटि गई चमक दमक अँग-अँग की,मति अरु दृष्टि हिरानी-१-३०५।

चमकदार—वि. [हिं. चमक + फ़ा. दार] चमकीला ।

चमकना—क्रि. अ. [हिं. चमक] (१) जगमगाना, प्रकाशपूर्ण होना । (२) झलकना, दमकना । (३) प्रसिद्ध होना, उन्नति करना । (४) बढ़ना, बढ़ती पर होना । (५) चौंकना, भड़कना । (६) झटपट खिसक जाना । (७) एक बारगी दर्द होने लगना । (८) मटकना, उँगलियाँ मटकाकर भाव बताना । (९) क्रोध प्रकट करना (१०) लड़ाई-झगड़ा होना । (११) कमर में चिक आना या झटका लगना ।

चमकनी—वि. स्त्री [हिं. चमकना] (१) जल्दी चिढ़ने या भड़कनेवाली । (२) हाव-भाव बतानेवाली ।

चमकाति—क्रि. स. [हिं. चमकाना] चमकाती है, कांति लाती है । उ.—तनक कटि पर कनक-करधनि, छीन छवि चमकाति—१०-१८४ ।

चमकाना—क्रि. स. [हिं. चमकना] (१) चमकीला करना, झलकाना । (२) साफ या उजला करना । (३) भड़काना, चौंकाना । (४) चिढ़ाना, खिझाना । (५) उँगली मटका कर भाव बताना ।

चमकारा—संज्ञा पुं. [सं. चमत्कार] चमक, प्रकाश ।

चमकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमकारा] चमक, प्रकाश । उ.—अधर बिंब दसननि की सोभा दुति दामिनि चमकारी ।

वि.—चमकीली, प्रकाशयुक्त, आभावाली ।

चमकावै—क्रि. स. [हिं. चमकाना] चमकता है । उ.—तरपि तरपि चपला चमकावै—१०४६ ।

चमकि—क्रि. अ. [हिं. चमक] (१) चमक कर, जगमगाकर, प्रकाशयुक्त होकर । उ.—तृष्ना-तड़ित चमकि छनहीं छन, अह-निसि यह तन जारौ—१-२०६ । (२) फुरती से खिसक कर, झटपट भाग कर । उ.—सखा साथ के चमकि गये सब गह्यौ स्याम कर धाइ । औरनि जानि जान मैं दीन्हौं, तुम कहँ जहु पराइ—१०-३१४ । (३) चौंके कर, भड़क कर । उ.—चमकि गये बीर सब चकाचौंधी लगी चितै डरपै असुर घटा घोटा—२५६१ ।

चमकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमक] रुपहले-सुनहले तारों के गोल-चौकोर तारे या सितारे ।

चमकीला—वि. [हिं. चमक + ईला (प्रत्य.)] (१) जिसमें चमक हो, चमकदार । (२) भड़कीला ।

चमकै—क्रि. अ. [हिं. चमकना] चमकती है, जगमगाती है, आलोकित होती है । उ.—निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरसै मेह—१०-५ ।

चमक्यौ—क्रि. अ. [हिं. चमकना] मटकने लगा । उ.—एक सखा हरि त्रिया रूप करि पठै दियौ तिन पास ।··· । पीतांबर जिनि देहु स्याम को यह कहि चमक्यौ ग्वाल—२४१६ ।

चमगादड़—संज्ञा पुं. [सं. चर्मचटका, पं. चमचिचड़ी, हिं. चमगिदड़ी] एक पक्षी जो दिन में नहीं निकलता, रात में उड़ता है ।

चमचम—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक बंगाली मिठाई ।

क्रि. वि.—झलक या कांतिसहित ।

चमचमाति—क्रि. अ. [हिं. चमचमाना] चमकती है, झलकती है । उ.—(क) चपला चमचमाति चमकि नभ भहरात राखिले क्यों न व्रज नंद तात—६६० । (ख) चपला अति चमचमाति व्रज जन सब डर डराँत टेरत सिसु पिता-मात व्रज गलबल ।

चमचमाना—क्रि. अ. [हिं. चमक] चमकना, प्रकाशित होना, झलकना, दमकना।

क्रि. स.—चमक-दमक लाना, झलकाना।

चमचा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) चम्मच। (२) चिमटा।

चमची—संज्ञा स्त्री, [हिं. चमचा] (१) छोटा चम्मच। (२) आचमनी। (३) चिमटी।

चमजुई, चमजोई—संज्ञा स्त्री. [सं. चर्मयूका] (१) एक कीड़ा। (२) पीछा न छोड़नेवाली वस्तु या पात्र।

चमटना—क्रि. स. [हि. चिमटना] चिपटना, लिपटना।

चमड़ा—संज्ञा पुं. [सं. चर्म] (१) चर्म, त्वचा। (२) खाल, चरसा। (३) छाल, छिलका।

चमड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. चमड़ा] (१) चर्म। (२)खाल।

चमत्करण—संज्ञा पु. [सं.] चमत्कार लाने की क्रिया।

चमत्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आश्चर्य, विस्मय। (२) अद्भुत व्यापार। (३) अनूठापन, विलक्षणता।

चमत्कारक—वि. [सं.] अनूठा, विलक्षण।

चमत्कारी—वि. [सं.] (१) अद्भुत, विलक्षण। (२) विलक्षण काम करनेवाला, करामाती।

चमत्कृत—वि. [सं.] विस्मित, चकित।

चमत्कृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] विस्मय, आश्चर्य।

चमन—संज्ञा पुं. [फा.] (१) हरी भरी क्यारी। (२) फुलवारी। (३) गुलजार या रौनकदार बस्ती।

चमर—संज्ञा पु. [सं.] (१) सुरा गाय। (२) सुरा गाय की पूँछ का बना चँवर या चामर। उ.—चारु चक्रमनि खचित मनोहर चंचल चमर पताका—२५६६। (३) एक दैत्य।

चमरख—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाम + रक्षा] चरखे की गुडियों में लगाने की चकती।

संज्ञा स्त्री.—बहुत दुबली-पतली, सूखी-साखी।

चमरशिखा, चमरसिखा—संज्ञा स्त्री. [सं. चामर + शिखा] घोड़ों की कलगी।

चमरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुरा गाय। (२) चँवरी, चामर। (३) मंजरी।

चमरौधा—संज्ञा पुं. [हिं. चाम] एक भद्दा जूता।

चमला—संज्ञा पुं [देश.] भीख माँगने का पात्र।

चमस—संज्ञा पु. [सं.] एक यज्ञपात्र, चम्मच।

चमाऊ—संज्ञा पुं. [सं. चामर] चमर, चँवर।

चमाक—संज्ञा स्त्री. [हि. चमक] कांति, प्रकाश।

चमाकना—क्रि. अ [हिं. चमकना] चमकना।

चमाचम—वि. [हि. चमक] चमकता हुआ।

चमार—संज्ञा पुं [सं चर्मकार] एक जाति जो चमड़े का काम बनाती है।

चमारनी, चमारिन, चमारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमार] (१) चमार की स्त्री। (२) चमार का काम।

चमू—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) सेना, फौज। उ.—(क) सत्रह बार फेर फिरि आयौ हरि सब चमू सँहारी—सारा. ५६८। (ख) सखा री पावस सैन पलान्यो। ...... । दसहु दिसा सों धूम देखियत कंपति है अति देह। मनहु चलत चतुरंग चमू नभ बाढ़ी है खुर खेह—२८२०। (२) सेना जिसमें ७२९ हाथी, इतने ही रथ, तिगुने सवार और पँचगुने पैदल हों।

चमूर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिपाही। (२) सेनापति।

चमेलिया—वि. [हिं. चमेली] (१) पीले रंग का। (२) चमेली की गंध से युक्त।

चमेली—संज्ञा स्त्री. [सं. चंपकवेलि] एक झाड़ी या लता जिसके फूल सफेद या पीले होते हैं।

चमोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाम + औटा (प्रत्य.)] (१) चाबुक, कोड़ा। उ.—माखन-चोर री मैं पायौ।...। बारबार हौं ढूँका लागी मेरी घात न आयौ। नोई नेत की करौं चमोटी घूँघट में डरवायौ ९०६। (२) पतली छड़ी, बेंत।

चम्मच—संज्ञा पुं. [फा. सं. चमस] हल्का चमचा।

चय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर, राशि। (२) टीला। (३) गढ़, किला। (४) चहारदीवारी। (५) नींव। (६) चबूतरा। (७) चौकी, ऊँचा आसन।

चयन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इकट्ठा करने का कार्य, संग्रह, संचय। (२) चुनने का काम, चुनाई। (३) क्रम से लगाने की क्रिया।

संज्ञा पुं. [हिं. चैन] चैन, आराम, सुख। उ.—त्रिविध पवन मन हरष दयन। सदा बहत न बिहरत चयन—२३८७।

चयनशील—वि. [सं. चयन + शील (प्रत्य.)] संग्रही।

चयना--क्रि. स. [सं. चयन] संचय या इकट्ठा करना।

चयनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] चुनी हुई वस्तुओं, बातों या रचनाओं का संग्रह।

चर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुप्त रूप से कार्य करने को नियुक्त व्यक्ति। (२) कौड़ी। (३) दलदल।

वि. [सं.] (१) आप चलनेवाला, जंगम। उ.—जब हरि मुरली अधर धरत। थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना जल न बहत—६२०। (२) अस्थिर, एक स्थान पर न रहनेवाला। (३) भोजन करनेवाला।

संज्ञा पुं. [अनु.] कागज-कपड़ा फटने का शब्द।

चरई—संज्ञा स्त्री. [हि. चारा] पशुओं को पानी पिलाने का पक्का गहरा गढ़ा या छोटा हौज।

चरक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूत, चर। (२) जासूस। (३) पथिक, मुसाफिर। (४) भिखारी।

संज्ञा स्त्री.—एक प्रकार की मछली।

चरकटा—संज्ञा पु. [हि. चारा+काटना] (१) पशु का चारा काटनेवाला आदमी। (२) तुच्छ मनुष्य।

चरकना—क्रि. अ.—टूटना, फूटना, दरकना।

चरका—संज्ञा पुं. [फ़ा. चरक] (१) हलका घाव, जख्म। (२) दागने का चिन्ह। (३) हानि, नुकसान।

चरख—संज्ञा पुं. [फा. चर्ख] (१) पहिया, चाक। (२) खराद (३) रेशम आदि लपेटने का ढाँचा। (४) चरखा। (५) तोप लादने की गाड़ी। (६) एक शिकारी चिड़िया।

चरखा—संज्ञा पुं. [फा. चर्ख] (१) गोल चक्कर, चरख। (२) सूत कातने का यंत्र। (३) कुएँ से पानी निकालने का रहट। (४) सूत लपेटने की चरखी। (५) गराड़ी। (६) बुढ़ापे या कमजोरी के कारण बहुत शिथिल शरीर। (७) झगड़े या झंझट का काम।

चरखी—संज्ञा स्त्री. [हि. चरखा] (१) घूमनेवाली वस्तु। (२) छोटा चरखा। (३) कपास की ओटनी। (४) कुएँ से पानी खींचने की गराड़ी। (५) कुम्हार का चाक। (६) एक आतशबाजी।

चरग—संज्ञा पु. [फा.] एक शिकारी चिड़िया।

चरचना—क्रि. स. [स. चर्चन] (१) देह में चंदन आदि लगाना। (२) लेपना, पोतना। (३) अनुमान करना। (४) पहचानना।

क्रि. स. [सं. अर्चन] पूजा करना, पूजना।

चरचरा—संज्ञा पुं. [अनु.] एक चिड़िया।

वि. [हि. चिड़चिड़ा] चिड़चिड़े स्वभाव का।

चरचराना—क्रि. अ. [अनु. चरचर] (१) चरचर शब्द करके जलना, टूटना या फटना। (२) घाव आदि का दर्द करना या चर्राना।

चरचराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरचराना+हट (प्रत्य.)] (१) दर्द करने या चर्राने का भाव। (२) चरचर करके फटने या टूटने का शब्द।

चरचा - संज्ञा स्त्री. [सं. चर्चा] जिक्र, वर्णन। उ.—हरि-जन हरि-चरचा जो करैं। दासी-सुत सो हिरदै धरै—७-८।

चरचारी—संज्ञा पुं. [हिं. चरचा] (१) चर्चा या वर्णन करनेवाला। (२) निंदा या शिकायत करनेवाला।

चरचि—क्रि. स. [हि. चरचना] (१) देह में चंदन, अरगजा आदि सुगंधित पदार्थ लगाकर। उ.—बाजत ताल-मृदंग जंत्र-गति, चरचि अरगजा अंग चढ़ाई—१०-१६। (२) पूजकर। उ.—सूरदास मुनि चरन चरचि करि सुर लोकनि रुचि मान।

चरचित—वि. [सं. चर्चित] लगाया या पोता हुआ, लेपा हुआ। उ.—चरचित चादन नील कलेवर, बरसत बूँदन सावन—८१३।

चरच्यौ– क्रि. स. [हिं. चरचना] चंदन आदि लगाया। उ.—चादन अंग सखिन कै चरच्यौ—३६६।

चरज—संज्ञा पुं. [फा. चरग़] चरख नामक पक्षी।

चरजना—क्रि. अ. [स. चर्चन] (१) बहकाना, भुलावा देना। (२) अनुमान करना, अंदाज लगाना।

चरट—संज्ञा पु. [स.] खंजन पक्षी।

चरण—संज्ञा पु. [स.] (१) पैर, पग।

मुहा०—चरण देना— पैर रखना। चरण पड़ना —आगमन होना, कदम जाना।

(२) बड़ों का संग, बड़ों की समीपता। उ.—जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ तहाँ तहाँ जनि चरण (चरन) छुड़ावहु। (३) छंद या श्लोक का एक पद। (४) चौथाई भाग। (५) मूल, जड़। (६) गोत्र।

(७) क्रम। (८) घूमने का स्थान। (९) सूर्य आदि की किरण। (१०) गमन, जाना। (११) चरना।

चरणचिह्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धूल आदि पर पड़ा पैर का निशान। (२) चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है।

चरणतल—संज्ञा पुं० [सं.] पैर का तलुवा।

चरणदासी—संज्ञा स्त्री. [सं. चरण + दासी] (१) स्त्री, पत्नी। (२) जूता, पनही।

चरणपादुका—संज्ञा स्त्री. [स] (१) खड़ाऊँ, पाँवड़ी। (२) चरणचिह्न जिसका पूजन होता है।

चरणपीठ—संज्ञा पु. [सं.] खड़ाऊँ, पाँवड़ी।

चरणामृत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जल जिसमें किसी महात्मा आदि के चरण धोये गये हों। (२) दूध, दही, घी, शकर और शहद का घोल जिसमें किसी देवमूर्ति को स्नान कराया गया हो।

चरणायुध—संज्ञा पुं. [सं.] मुरगा।

चरणोदक—संज्ञा पुं. [सं.] चरणामृत।

चरत—क्रि. स. [सं. चर=चरना] (पशु आदि) चरते हैं। उ.—अजानायक मगन क्रीड़त, चरत बारंबार—१-३२१।

संज्ञा पुं. [देश.] एक बड़ा पक्षी।

चरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चलने का भाव। (२) पृथ्वी।

चरति—क्रि. स. [हिं. चरना] चरती है, (चारा आदि) खाती हैं। उ.—जहँ जहँ गाइ चरति ग्वालनि संग, तहँ तहँ आपुन धायो—४१५।

चरती—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] व्रत न करनेवाला।

चरन—संज्ञा पुं [सं. चरण] (१) चरण, पैर। (२) बड़ों का संग-साथ या सामीप्य। उ.—जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ तहाँ तहाँ जनि चरन छुड़ायहु। (३) छंद का एक पद।

चरनदासी—संज्ञा स्त्री. [सं. चरणदासी] जूता।

चरना—क्रि. स. [सं. चर] पशु का घास खाना।

क्रि. अ.—घूमना-फिरना, विचरना।

संज्ञा पुं. [सं. चरण] काछा।

चरनायुध—संज्ञा पुं. [सं. चरणायुध] मुरगा।

चरनारविंद—संज्ञा पु. [सं. चरण + अरविंद] चरण-कमलों को। उ.—सूर भज चरनारविंदनि, मिटै जीवन-मरन—१-३०६।

चरनि—संज्ञा स्त्री. [सं. चर=गमन] चाल, गति।

चरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरना] (१) चरने का स्थान, चरी, चरागाह। (२) चारा देने की नाँद। (३) पशुओं का चारा या आहार। उ.—कमल वदन कुँभिलात सबन के गौवन छाँड़ी चरनी—३३३०। (४) चरने की क्रिया। उ.—गौवन छाँड़ी तृन की चरनी।

चरनोदक—संज्ञा पुं. [सं. चरण + उदक=जल] चरणामृत। उ. (क) जाको चरनोदक सिव सिर धरि तीनि लोक हितकारी—१-१५। (ख) चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं—१-२३९।

चरपट—संज्ञा पु. [सं. चर्पट] (१) चपत, तमाचा। (२) चोर, उचक्का। (३) एक छंद।

चरपर, चरपरा—वि. [अनु.] स्वाद में तीक्ष्ण या तीता। उ.—मीठे चरपर उज्ज्वल कौरा। हौंस होइ तौ ल्याऊँ औरा—३९६।

वि. [सं. चपल] चुस्त, तेज, फुर्तीला।

चरपराना—क्रि. अ. [हिं. चरचर] घाव या जख्म का चर्राना या पीड़ा देना।

चरपराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरपरा] (१) स्वाद की तीक्ष्णता। (२) घाव की जलन। (३) ईर्ष्या।

चरफरा – वि. [हिं. चरपरा] तीक्ष्ण स्वाद का।

चरफराना—क्रि. अ. [अनु.] तड़पना।

चरब—वि. [फ़ा. चर्ब] तेज, तीखा।

यौ.—चरब जबानी—खुशामद करना।

चरबन—संज्ञा पुं. [सं. चर्वण] भुना अन्न, चबेना।

चरबाँक, चरबाक—वि. [हिं. चरब] (१) चतुर, चालाक, होशियार। (२) निर्भय, निडर, शोख।

मुहा०—चरबाँक दीदा—(१) चंचल दृष्टिवाला। (२) ढीठ, निडर, शोख।

चरबा—संज्ञा पुं [फ़ा. चरबः] नकल, खाका।

मुहा०—चरबा उतारना—नकल करना।

चरबी—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] शरीर का चिकना गाढ़ा पदार्थ जो मांस से बनता है, मेद।

मुहा०—चरबी चढ़ना—मोटा होना। चरबी छाना—(१) मोटा होना। (२) गर्व से अंधा होना।
चरम—वि. [सं.] सबसे बढ़ा-चढ़ा, चोटी का।
संज्ञा पुं०—(१) पश्चिम। (२) अंत।
संज्ञा पुं. [सं. चर्म] चमड़ा।
चरमगिरि—संज्ञा पु. [सं.] अस्ताचल।
चरमर—संज्ञा पुं. [अनु.] चीमड़ वस्तु के दबने या मुड़ने पर होनेवाला शब्द।
चरमराना—क्रि. अ. [अनु.] चरमर शब्द होना।
चरवाँक—वि. [हिं. चरवाँक] (१) चतुर। (२) निडर।
चरवा—संज्ञा पुं. [देश] मुलायम चारा।
चरवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चराना] (१) चराने का काम। (२) चराने की मजदूरी।
चरवाना—क्रि. स. [हिं. चराना] चराने का काम कराना।
चरवारे—संज्ञा पुं. [हि. चरवाहा] चरवाहा, चौपायों का रक्षक। उ.—राजनीति जानौ नहीं, गो-सुत चरवारे—२-२३८।
चरवाहा—संज्ञा पुं. [हि. चरना+वाहा=वाहक] पशुओं को चरानेवाला, चौपायों का रक्षक।
चरवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरवाहा] (१) पशुओं को चराने का काम। (२) चराने की मजदूरी।
चरवैया—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] चरनेवाला पशु आदि। (२) चरानेवाला, चरवाहा।
चरबो—संज्ञा स्त्री. [हि. चरना] खाने, पीने आदि की क्रिया। उ.—इन गैयन चरबो छाँड़ो है जो नहिं लाल चरैहैं—३४३६।
चरस, चरसा—संज्ञा पुं. [सं. चर्म] (१) चमड़े का थैला। (२) चमड़े का पुर या मोट। (३) गाँजे के पेड़ का गोंद जो मादक होता है।
संज्ञा पुं [फा. चर्ज] बनमोर नामक पक्षी।
चरसिया, चरसी—संज्ञा पु [हि. चरस + इया ई,(प्रत्य.)] (१) चरस से पानी खींचनेवाला। (२) चरस नामक मद पीनेवाला।
चरहिं—क्रि. स. [हि. चरना] चरती है। उ.—तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं। जो चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं—१०-२४।
चरही—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरनी] पशुओं के चरने या पानी पीने का स्थान।
चराइ—क्रि. स. [हि. चरना] पशुओं को चारा खिलाने के लिए मैदान में ले जाना। उ.—माधौ जू, यह मेरी इक गाइ। अब आज तैं आप-आगैं दई, लै आइयै चराइ—१-५१।
चराई—क्रि. स. [हिं. चरना] मैदान में ले जाकर पशुओं को चारा खिलाया। उ.—प्रथम कह्यौ जो बचन दया रत, तिहिं बस गोकुल गाइ चराई—१ ६।
संज्ञा स्त्री. [हि. चरना] (१) चरने का काम। (२) चराने का काम। (३) चराने की मजदूरी।
चराऊ—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरना] चारागाह, चरनी।
चरागाह—संज्ञा पुं. [फा.] चरने का स्थान, चरी।
चराचर—वि. [सं.] (१) चर और अचर, जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम। उ.—त्रिभुवन-हार सिंगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन। सूरजदास विधाता कैं तप प्रगट भई संतनि सुख दैन—९-१२। (२) जगत्, संसार। (३) कौड़ी।
चरान—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] (१) चरने की भूमि। (२) समुद्र के किनारे का दलदल।
चराना—क्रि. स. [हिं. चरना] (१) पशु को चराने ले जाना। (२) धोखा देना, मूर्ख बनाना।
चरायौ—क्रि. स. [हिं. चराना] (गाय, भैंस आदि को) चराया। उ.—धनि गो-सुत, धनि गाइ ये, कृष्ण चरायौ आपु—४६२।
चराव—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] चरने का स्थान।
चरावन—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. चराना] चराने के लिए। उ.—(क) गाय चरावन को सो गयो—९-७१। (ख) आजु मैं गाय चरावन जैहौं—४११।
चरावना—क्रि. स. [हि. चराना] चारा खिलाना।
चरावर—संज्ञा स्त्री. [देश.] व्यर्थ की बात।
चरावै—क्रि. स. [हिं. चराना] (गाय, भैंस आदि) चराता है। उ.—सोइ गोप की गाइ चरावै—१०-३।
चरिंदा—संज्ञा पुं. [फा.] चरनेवाला पशु।
चरि—क्रि. स. [सं. चर=चलना] चारा खाकर, चरकर। उ.—(क) व्योम, थर, नद, सैल, कानन इते चरि न

अघाइ—१-५६। (ख) जगत-जननी करी बारी मृगा चरि चरि जाइ—६-६०।

संज्ञा पुं. [सं.] पशु।

चरित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रहन-सहन, आचरण। (२) करनी, करतूत (व्यंग्य)। उ.—अपनो भेद तुम्हें नहिं कैहैं। देखहु जाइ चरित तुम वाके वैसे गाल बजैहै—१२६३। (३) कृत्य, लीला। उ.—चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना-चरित-रसाल—१-१८८। (४) जीवनचरित, जीवनी।

चरितनायक—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यक्ति या नायक जिसके चरित्र के आधार पर पुस्तक लिखी जाय।

चरितवान—वि. [सं. चरित्रवान] सदाचारी।

चरितव्य—वि. [सं.] आचरण करने योग्य।

चरितार्थ—वि [स.] (१) जिसका उद्देश्य पूरा हो चुका हो, कृतार्थ। (२) जो ठीक ठीक घटे या पूरा उतरे।

चरित्तर—संज्ञा पु. [सं. चरित्र] धूर्तता, चालबाजी।

चरित्र—संज्ञा पु. [सं.] (१) कार्य, लीला। उ.—भूषन-विविध बिसद अंबर जुत सुंदर स्याम सरीर। देखत मुदित चरित्र सबै सुर व्योम-विमाननि भीर—६-२६। (२) स्वभाव। (३) करनी, करतूत (व्यंग्य)। (४) आचरण, चरित।

चरित्रनायक—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यक्ति जिसके चरित्र के आधार पर कोई ग्रंथ लिखा जाय।

चरित्रवती—वि.स्त्री. [हिं. चरित्रवान] अच्छे चरित्रवाली।

चरित्रवान—वि. [सं.] अच्छे आचरणवाला।

चरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चारा] (१) चराई का स्थान। (२) छोटी ज्वारका हरा पेड़ जो चारेके काम आता है।

सज्ञा स्त्री. [चर=दूत] (१) दूती। (२) दासी।

चरु—संज्ञा पु. [स.] (१) हवन या आहुति का अन्न। (२) हवन का अन्न पकाने का पात्र। (३) माँड़ के साथ पकाया हुआ चावल। (४) चराई का स्थान। (५) यज्ञ। (६) बादल।

चरुआ—संज्ञा पु. [स. चरु] मिट्टी का पात्र जिसमें प्रसूता स्त्री के लिए जल पकाया जाता है।

चरुखला—संज्ञा पु. [हिं. चरखा] चरखा।

चरू—संज्ञा पुं. [हिं. चरु] हवन का अन्न।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चरी] चराई का स्थान।

चरेर, चरेरा—वि. [अनु.] (१) कड़ा और खुरदुरा। (२) कर्कश और रूखा।

चरेरू—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] चिड़िया, पक्षी।

चरै—क्रि. स. [हिं. चरना] चरता है, खाता है। उ.—संग मृगनिहू की नहिं करै। हरी घासहू सो नहिं चरै—५-३।

चरैऐ—क्रि. स. [हिं. चराना] चराइए। उ.—जमुना-तट तृन बहुत, सुरभि-गन तहाँ चरैऐ—४३१।

चरैया—संज्ञा पुं. [हिं. चराना] (१) चरानेवाला। उ.—(क) ये दोऊ मेरे गाइ चरैया—५११। (ख) मार मार कहि गारि दै धृग गाइ चरैया—५७५। (२) चरनेवाला पशु।

चरैहैं—क्रि. स. [हिं. चराना] चरायेंगे। उ.—इन गैयन चरवो छाँड़ो है जो नहिं लाल चरैहैं—३४१६।

चरैहौं—क्रि. स. [हिं. चराना] चराऊँगा। उ.—मैया हौं न चरैहौं गाइ—५१०।

चरोखर—संज्ञा स्त्री. [हिं. चारा+खर] चरी।

चरौवा—संज्ञा पुं. [हिं. चराना] चरने का स्थान।

चर्खा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूत कातने का चरखा।

चर्खी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चरखी] चरखी, गराड़ी।

चर्चक—संज्ञा पुं. [सं.] चर्चा करनेवाला व्यक्ति।

चर्चन—संज्ञा पु. [सं.] (१) चर्चा। (२) लेपन।

चर्चरिका—संज्ञा स्त्री. [स.] एक नाटकीय गान।

चर्चरी—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बसत या फाग का गीत, चाँचर। (२) होली की धूमधाम। (३) ताली बजाने का शब्द। (४) आमोद-प्रमोद। (५) गाना-बजाना। (६) नाटक का एक गान।

चर्चरीक—संज्ञा पुं. [सं.] बाल सँवारने की क्रिया।

चर्चा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) जिक्र, वर्णन। उ.—हरि-जन हरि-चर्चा जो करैं। (२) बातचीत। (३) किंवदंती, अफवाह। (४) ऐसी बातचीत का प्रसग जो जगह-जगह किसी की निंदा के उद्देश्य से छिड़ा रहे। उ.—चर्चा परी बहुत द्वारावति कृष्णचद्र की बात। तब हरि गये सैल कंदर मैं अति कोमल मृदु गात—सारा, ६४६। (५) लेपना, पोतना।

चर्चिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] चर्चा, जिक्र ।
चर्चित—वि. [सं.] (१) लगाया या पोता हुआ । (२) जिसकी चर्चा, वर्णन या जिक्र हो ।
संज्ञा पुं.—लेपन ।
चर्चट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) थप्पड़ । (२) हथेली ।
वि.—विपुल, अधिक ।
चर्भटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चर्चरी गीत । (२) चर्चा । (३) आनंद, क्रीड़ा । (४) आनंद ध्वनि ।
चर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमड़ा । (२) वृक्षादि की) ऊपरी छाल । उ.—हुँ विरक्त, सिर जटा धरैं द्रुम-चर्म, भस्म सब गात—९-३८ । (३) ढाल ।
चर्मकार—संज्ञा पुं. [सं.] चमार ।
चर्मचक्षु—संज्ञा पुं [सं.] साधारण नेत्र ।
चर्मजा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोआँ । (२) खून ।
चर्मदृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] साधारण दृष्टि, आँख ।
चर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह जो किया जाय । (२) चालचलन । (३) काम-काज । (४) जीविका । (५) सेवा । (६) गमन ।
चर्य्य—वि. [हिं. चर्चा] करने या आचरने योग्य ।
चरयौ—क्रि. अ. [हिं. चरना] घूमा-फिरा, विचरण करता रहा । उ.—मन बस होत नाहिंनैं मेरैं ।······। कहा करौं, यह चरयौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरैं । अब करि सूरदास प्रभु आपुन, द्वार परयौ है तेरैं—१-२०६ ।
चर्राना—क्रि. अ. [अनु.] (१) चरचर शब्द करना । (२) घाव में पीड़ा होना । (३) तीव्र इच्छा होना ।
चर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. चर्राना] चुभती हुई बात ।
चर्वण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चबाना । (२) वह वस्तु जो चबायी जाय । (३) भुना अन्न, चबेना ।
चर्वित—वि. [सं.] दाँतों से चबाया हुआ ।
चर्वित चर्वण—संज्ञा पुं. [सं.] किसी की हुई क्रिया या बात को बार-बार करना या कहना, पिष्टपेषण ।
चर्व्य—वि. [सं.] चबाकर खाने योग्य ।
चलंता—वि. [हिं. चलना] चलनेवाला ।
चल—वि. [सं.] चंचल, चलायमान ।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) पारा । (२) दोहे का एक भेद । (३) शिव । (४) विष्णु । (५) काँपना । (६) दोष । (७) भूल-चूक । (८) छल-कपट ।
चलकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) चमकना । (२) रह-रह कर दर्द उठना । (३) दर्द का एकबारगी बंद हो जाना ।
चलचलाव—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] (१) यात्रा । (२) मृत्यु ।
चलचा—संज्ञा पुं. [देश.] ढाक, पलाश ।
चलचाल—वि. [सं.] चंचल, अस्थिर ।
चलचूक—संज्ञा स्त्री. [सं. चल+हिं. चूक] धोखा ।
चलत—क्रि. अ. [हिं. चलना] चलते या गमन करते (समय) । उ.—चिंति चरन मृदु-चारु-चंद-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा—१-६९ ।
चलता—वि. [हिं. चलना] (१) चलता या जाता हुआ ।
मुहा०—चलता करना—(१) हटाना, टालना । (२) झगड़ा निपटाना । चलता पुरजा - बहुत काइयाँ । चलता बनना (होना)—झटपट चल देना ।
(२) जिसका क्रम या सिलसिला न टूटा हो ।
मुहा०—चलता लेखा (खाता)— चालू हिसाब ।
(३) जिसका चलन या प्रचार खूब हो ।
मुहा०—चलता गाना-जो गाना खूब लोकप्रिय हो ।
(४) जो काम करने योग्य हो । (५) चतुर ।
संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक पेड़ । (२) कवच ।
संज्ञा स्त्री. [सं.] चंचल होने का भाव ।
चलति—क्रि. अ. [हिं. चलना] चलती है, प्रचलित है । उ.—कैसी सकट अरु वृषभ पूतना तृनावर्त की चलति कहानी—२३७६ ।
चलती—संज्ञा स्त्री. [हिं. चलना] प्रभाव, अधिकार ।
चलतू—वि. [हिं. चलना] (१) चलता हुआ । (२) चालू । (३) जो (भूमि) जोती-बोई जाती हो ।
चलदल—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल का पेड़ ।
चलन—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] (१) चलना, गति, चाल, चलने का भाव, ढंग या क्रिया । उ.—(क) ज्यों कोउ दूरि चलन कौ करै । क्रम-क्रम करि डग-डग पग धरै—३-१३ । (ख) कबहुँ हरि कौं लाइ अँगुरी, चलन सिखावति ग्वारि—१०-११८ । (ग)

तीनि पैंड़ जाके धरनि न आवै। ताहि जसोदा चलन सिखावै—१०-१२६ । (२) रीति-रिवाज, रस्म-व्यवहार ।

मुहा.—चलन से चलना—हैसियत से रहना।

(३) किसी चीज का व्यवहार या प्रचार ।

संज्ञा पु. [सं.] (१) गति, भ्रमण। (२) काँपना, कंपन । (३) हिरन । (४) पैर, चरण ।

क्रि. अ. [हिं. चलना] चलना, चलते रहना ।

प्रयो०—लागी चलन—चलनेलगी । प्रवाहित हुई, बह चली । उ.—कियौ जुद्ध अति ही विकरार। लागी चलन रुधिर की धार—१-२७६ ।

चलनसार—वि. [हिं. चलन + सार (प्रत्य.)] (१) जिसका खूब व्यवहार या प्रचार हो । (२) जो काफी समय तक चल या टिक सके ।

चलना—क्रि. अ. [सं. चलन] (१) गमन या प्रस्थान करना, जाना। (२) हिलना डोलना।

मुहा०—पेट चलना—निर्वाह होना । मन (दिल) चलना—प्राप्ति की इच्छा होना । मुँह चलना—(१) खाते रहना। (२) मुँह से बराबर अनुचित शब्द निकलना। हाथ चलना— मारने को हाथ उठाना। चल बसना—मर जाना । अपने चलते—भरसक, यथाशक्ति, शक्ति भरे ।

(३) कोई काम करने में समर्थ होना, निभना।

मुहा.—चल निकलना — उन्नति करना।

(४) बहना, प्रवाहित होना । (५) वृद्धि या बढ़ती पर होना । (६) किसी उपाय का काम में आना। (७) आरंभ होना । (८) क्रम या परंपरा का निर्वाह होना ।(९) खाने के लिए रखा जाना ।(१०) टिकना ठहरना, काम मे आना । (११) लेन-देन या व्यवहार में आना । (१२) जारी होना, प्रचार बढ़ना । (१३) उपयोग या काम में लाया जाना । (१४) अच्छी तरह या ठीक काम देना । (१५) तीर-गोली छूटना । (१६) लड़ाई-झगड़ा होना । (१७) काम चमकना । (१८) पढ़ जाना । (१९)सफल होना, प्रभाव डालना ।

मुहा.—किसी की चलना—प्रयत्न सफल होना, दूसरे का वश या अधिकार होना ।

(२०) आचरण या काम करना । (२१) खाया जाना । (२२) सड़ जाना ।

क्रि. स.—शतरंज, ताश आदि के मोहरे या पत्ते बढ़ाना या डालना ।

संज्ञा पुं. [हिं. चलनी] (१) बड़ी चलनी । (२) छन्ना ।

चलनि—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] चलने की क्रिया, गति, चाल । उ.—रथ तें उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि—१-२७६ ।

चलनिका—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) लहँगा । (२) झालर ।

चलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छलनी] आटा-आदि छानने की छलनी ।

चलनौस, चलनौसन—संज्ञा पुं. [हिं. चलना + औस (प्रत्य.)] चोकर, चालन ।

चलपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल का वृक्ष ।

चलबाँक—वि. [हिं. चलना + बाँका] तेज चालवाला।

चलवंत—संज्ञा पुं. [सं. चल + वंत] । पैदल सिपाही।

चलवाना—क्रि. स. [हिं. चलाना] (१) चलाने का काम दूसरे से कराना । (२) छानने का काम कराना।

चलविचल—वि. [सं. चल + विचल] (१) अंडबंड, बेठिकाने,अस्तव्यस्त । (२) अक्रम, अव्यवस्थित ।

संज्ञा स्त्री.—नियम का उल्लघन, व्यतिक्रम ।

चलवैया—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] चलनेवाला ।

चलहिंगे—क्रि. अ. [हिं. चलना] चलेंगे, (एक स्थान से दूसरे को जायँगे । उ.—कबहिं घुटरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहिं मनावै—१०-७४ ।

चला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिजली । (२) पृथ्वी। (३) लक्ष्मी । (४) पीपल । (५) एक गंधद्रव्य ।

संज्ञा पुं. [हिं. चाल या चलना] (१) व्यवहार, प्रचार, रीति, रस्म । (२) अधिकार, प्रभुत्व ।

चलाइ—क्रि. स. [हिं. चलना] (१) हिला डुलाकर, भाव बताकर । उ.—चलत अंग त्रिभंग कटिकै भौंह भाव चलाइ—१३५६ । (२) आरंभ की, वर्णन की, बतायी। उ.—बचन परगट करन कारन प्रेमकथा चलाइ—२६१६ । (३) लक्ष्य पर फेंक कर, (तीर आदि) छोड़कर ।

प्रयो.—दियौ चलाइ— चला दिया, लक्ष्य करके छोड़ दिया। उ.—अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म अस्त्र कौं दियौ चलाइ—१-२८६। दए चलाइ—भगा दिये। उ.—छिरक लरिकन मही सौं भरि, ग्वाल दए चलाइ—१० २८६।

चलाई—क्रि. स. [हिं. चलाना] (१) आरंभ की, प्रचलित की। उ.—नई रीति इन अबहिं चलाई—१०४१। (२) कृतकार्य या सफल हुए।

मुहा०—कछु न चलाई—कुछ वश न चला, कोई उपाय काम न आया, प्रयत्न सफल न हुआ। उ.—(क) रहेउ दुष्ट पचि हार दुसासन कछू न कला चलाई—सारा. ७६६। (ख) दुर्वासा सापन को आये तिनकी कछु न चलाई—सारा. ७७२। (३) प्रसंग छेड़ा, बात शुरू की। उ.—(क) सूरदास वे सखी सयानी और कहूँ की बात चलाई—१२६६। (ख) समय पाय ब्रज बात चलाई सुख ही माझ सुहाती—३४१८। (४) चोट की, प्रहार किया। उ.—मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब-फल चाखन कारन चोंच चलाई—६१६।

चलाऊँ—क्रि. स. [हिं. चलाना] (१) प्रचलित करूँ। उ.—(क) यह मारग चौगुनो चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यापारी—१-१४६। (ख) यकटक रहैं पलक नहिं लागैं पद्धति नई चलाऊँ—१४२५। (२) प्रहार या आघात करूँ। उ.-सूरजदास भक्त दोऊ दिसि कापर चक्र चलाऊँ—१-२७४।

चलाऊ—वि. [हिं. चलना] (१) बहुत दिन चलनेवाला, टिकाऊ। (२) बहुत घूमने-फिरनेवाला।

चलॉक, चलाक—वि. [हिं. चालाक] होशियार।

चलॉकी, चलाकी—संज्ञा स्त्री. [हि. चालाकी] होशियारी।

चलाका—संज्ञा स्त्री. [सं. चला] बिजली, विद्युत।

चलाचल—संज्ञा स्त्री. [हिं. चलना] (१) चलने की धूमधाम या तैयारी। (२) गति, चाल।

वि. [सं.] चपल, चचल, अस्थिर।

चलाचली—संज्ञा स्त्री. [हिं. चलना] (१) चलने की धूम या तैयारी। (२) बहुतों का साथ चलना। (३) चलने का समय।

वि.—जो चलने को तैयार हो।

चलान—संज्ञा स्त्री. [हिं. चलना] (१) चलने की क्रिया। (२) चलाने की क्रिया। (३) अपराधी का न्यायालय भेजा जाना। (४) एक स्थान से दूसरे को भेजा जानेवाला माल। (५) ऐसे माल की सूची, रवन्ना।

चलाना—क्रि. स. [हि. चलना] (१) चलने को प्रेरित करना, चलने में लगाना। (२) हिलाना-डुलाना।

मुहा०—किसी की चलाना—किसी की चर्चा करना। पेट चलाना— निर्वाह करना। मन (दिल) चलाना—पाने की इच्छा होना, मन विचलित होना। मुँह चलाना—(१) खाते रहना। (२) बहुत बातें करना या बनाना। हाथ चलाना— मारना-पीटना। (३) निभाना, निर्वाह करना। (४) बहा देना। (५) उन्नति करना। (६) काम को जारी रखना या पूरा करना। (७) आरंभ करना, छेड़ना। (८) क्रम बनाये रखना (९) खाने की चीज परसना। (१०) बराबर उपयोग में लाना। (११) लेन-देन या व्यवहार में लाना। (१२) प्रचलित करना, प्रचार करना। (१३) लाठी (आदि) का उपयोग करना। (१४) (तीर गोली) छोड़ना। (१५) प्रहार करना। (१६) काम चमकाना। (१७) आचरण करना।

चलायमान—वि. [सं.] (१) जो चलनेवाला हो। (२) चंचल, अस्थिर। (२) विचलित, डिगा हुआ।

चलायौ—क्रि. स. [हि. चलना] चलाया, चलने के लिए प्रेरित किया। उ.—जित-जित मन अर्जुन कौ तितहिं रथ चलायौ—१-२३।

चलाव—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] (१) यात्रा (२) रस्म।

चलावत—क्रि. स. [हिं. चलाना] (१) हिलाते-डुलाते हैं, गति देते हैं। उ.—मनहूँ तें अति बेग अधिक करि, हरिजू चरन चलावत—८-४। (२) आरंभ करते है, छेड़ते है। उ.—(क) फिरि फिरि नृपति चलावत बात। कहु री सुमति कहा तोहि पलटी, प्रान-जिवन कैसे बन जात—९-१८। (ख) निकट नगर जिय जानि धँसे घर, जन्मभूमि की कथा चलावत—६-१६७। (ग) कहुँ पाडव की कथा चलावत चिंता करत अपार—सारा.६७५। (३) (तीर

गोली आदि) छोड़ते हैं। उ.—तीर चलावत सिष्य सिखावत धर निसान देखरावत—सारा. १६० । (४) (धार, पानी आदि) चलाते या फेकते हैं। उ.—इत चितवत उत धार चलावत यहै सिखायौ मैया—७३४ ।

चलावन—संज्ञा पुं. [हि. चलाना] चलाने के लिए, प्रचलित करने को, प्रचार करने को। उ.—देहौं राज बिभीषन जन कौं, लंकापुर रघु-आन चलावन—६-१३१ ।

चलावना—क्रि. स. [हि. चलाना] गति देना, चलाना।

चलावा—संज्ञा पु. [हि चलना] (१) रीति-रस्म। (२) गौना, मुकलावा, द्विरागमन। (३) एक उतारा।

चलावै—क्रि. स [हि. चलाना] (१) हिलावे डुलावे, गति दे। (२) (खाने के लिए) मुँह हिलाये, खाने का प्रयत्न करे। उ.—हौं यहि जानति बानि स्याम की अँखियाँ मींचे बदन चलावै—१०-२३१ । (३) आँखें या भौंहें) मटकावे, चमकावे या भाव बतावे। उ.—(क) सखियन बीच भरयो घट सिर पर तापर नैन चलावै—८७५। (ख) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै वंकट भौंह चलावै—८७६ । (४) (प्रसंग) छेड़े, (चर्चा) करे। उ.-(क) रे मन, निपट निलज अनीति। जियत की कहि को चलावै, मरत विषयनि प्रीति—१-३२१ । (ख) इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत खवासी—३०८६ । (५) निर्वाह करे, वंश-परिवार का क्रम या परंपरा बनाये रखे। उ.—सो सपूत परिवार चलावै एतौ लोभी धूत इनही—पृ. ३२२ ।

चलि—क्रि. अ. [हि. चलना] चलकर, प्रस्थान करके।
मुहा.—चलि आयो—प्रसिद्ध है, प्रचलित है। उ—(क) जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि-हाथ बिकानौ—१-११ । (ख) जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं—१-१३७ । (ग) जुग जुग यह चलि आयौ—६-५० ।

चलित—वि. [स.] (१) अस्थिर, हिलता डोलता हुआ। उ.—चलित कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन—१-३०७ । (२) चलता हुआ।

चलिबे—संज्ञा पुं. [हि. चलना] चलना, प्रस्थान। उ—धर्मपुत्र कौं दै हरि राज। निज पुर चलिबे कौ कियौ साज—१-२८१ ।

चलिये—क्रि. अ. [हि. चलना] प्रस्थान कीजिए।

चलिहौं—क्रि. अ. [हि. चलना] चलूँगा, प्रस्थान करूँगा। उ.—सूर सकल सुख छाँड़ि आपनौ, बन-बिपदा-सँग चलिहौं—६-३५ ।

चली—क्रि. अ. स्त्री. [हि. चलना] आरंभ हुई, छिड़ी। उ.—भारतादि कुरुपति की जथा, चली पाडवनि की जब कथा—१-२८४ ।

चले—क्रि. अ. [हि. चलना] (१) प्रस्थान या गमन किया, जाने लगे। (२) प्रस्तुत हुए, कटिबद्ध हुए, तैयार हुए। उ.—कौरव-काज चले रिषि-सापन, साक पत्र सु अघाए—१-१३ ।

चलै—क्रि. अ. [हि. चलना] (१) चलता है। उ.—रंक चलै सिर छत्र धराइ—१-२ । (२) प्रसिद्ध है, प्रचलित है। उ.—जाकी जग मैं चलै कहानी—१ २२६ । (३) सफल हो।

मुहा.—(एक की) कहा चलै— (एक का) क्या वश चल सकता है, क्या सफलता मिल सकती है। उ.—अग निरखि अनंग लज्जित सकै नहिं ठहराय। एक की कहा चलै शत कोटि रहत लजाय।

चलैगी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. चलना] प्रचलित होगी, प्रसिद्ध रहेगी। उ.—यह तौ कथा चलैगी आगैं, सब पतितनि मैं हाँसी—१-१६२ ।

चलैगौ—क्रि. अ. [हि. चलना] (१) प्रचलित होगा, प्रचार बढ़ेगा। उ.—सूर सुमारग फेरि चलैगौ, वेद-बचन उर धारौ—१-१६२ । (२) जायगा, चलेगा। उ.—(क) सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी—१-३०३ । (ख) धोखैं ही धोखैं बहुत बह्यौ। मैं जान्यौ सब संग चलैगौ, जहँ को तहाँ रहैगौ—१-१३७ ।

चलैया—संज्ञा पुं. [हि. चलना] चलनेवाला।
क्रि. अ.—चले गये। उ.—सूर स्याम सनमुख जे आये ते सब स्वर्ग चलैया—२३७४ ।

चलौं—क्रि. अ. [हि. चलना] चलूँ, गमन करूँ।

उ.—बचन बाह लै चलौ गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी—१-१४६।

चलौ—क्रि. अ. [हिं. चलना] (१) चलो, प्रस्थान करो। उ.—सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतरि चलौ भवसागर—१-६१। (२) व्यवहार या आचरण करो, ढंग रखो। उ.—हम अहीर ब्रजवासी लोग। ऐसे चलौ हँसै नहिं कोऊ घर में बैठि करौ सुख भोग—१४९७।

चलौखा—संज्ञा पुं. [हिं. चलावा] एक उतारा।

चल्यौ—क्रि. अ. [हिं. चलना] चला, प्रस्थान किया। उ.—रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका द्वार ठाढौ—१-५।

चल्ली—संज्ञा स्त्री. [देश.] सूत की तकली, कुकड़ी।

चवकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौकी] छोटा तखत, चौकी।

चवना—क्रि. अ. [हिं. चुअना] चू पड़ना, टपकना।

चवन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+आना] चार आने का सिक्का।

चवपैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौपैया] (१) एक छंद। (२) खाट।

चवर—संज्ञा पुं. [हिं. चौंवर] मोरछल, चँवर।

चवरा, चवल—संज्ञा पुं. [सं. चवल] लोबिया।

चवर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] च से ञ तक पाँच अक्षरों का समूह जिसका उच्चारण तालु से होता है।

चवा—संज्ञा स्त्री [हिं. चौवाई] सब दिशाओं से एक साथ चलनेवाली हवा।

चवाई—संज्ञा पुं. [हिं. चवाव] (१) बदनामी की चर्चा फैलानेवाला, निंदा करनेवाला। उ.—घातक कुटिल चवाई कपटी महाक्रूर संतापी। (२) झूठी बात कहनेवाला, चुगली खानेवाला। उ.—सुनहु स्याम बलभद्र चवाई (चवाई) जनमत ही कौ धूत—१०-२१५।

चवाउ, चवाव—संज्ञा पुं. [हिं. चवाव] (१) निंदा या बुराई की चर्चा। उ.—(क) गोरी इहै करति चवाउ। देखौं धौं चतुराई वाकी हमहि कियौ दुराउ—१२८३। (ख) नैनन तैं यह भई बड़ाई। घर घर यहै चवाव चलावत हम सौं भेंट न माई—२८८०। (२) अपवाद, अफवाह। (३) चुगलखोरी।

चवैया—संज्ञा पुं. [हिं. चवाई] (१) बदनामी की चर्चा। (२) झूठी बात कहनेवाला, चुगलखोर।

चश्म—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. चश्मा] नेत्र, आँख।

चश्मा—संज्ञा पु. [फा.] (१) ऐनक। (२) पानी का सोता। (३) छोटी नदी। (४) जलाशय।

चष—संज्ञा पुं. [सं. चक्षु] नेत्र, आँख। उ.—उनै उनै घन बरषत चष उर सरिता सलिल भरी—२८१४।

चषक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शराब पीने का पात्र। उ.—प्रान ये मन रसिक ललित घी लोचन-चषक पिवति मकरंद सुख रासि अंतर सची। (२) मधु, शहद। (३) एक मदिरा।

चषचोल—संज्ञा पुं. [हिं. चष=आँख+चोल=वस्त्र] आँख का परदा या पलक।

चषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन। (२) वध। (३) क्षय।

चसक—संज्ञा स्त्री. [देश.] हलका दर्द, कसक।

संज्ञा पुं. [सं. चषक] शराब पीने का पात्र।

चसकना—क्रि. अ. [हिं. चसक] मीठा दर्द होना।

चसका—संज्ञा पुं. [सं. चषण] शौक, आदत।

चसना—क्रि. अ. [सं. चषण] प्राण त्यागना।

क्रि. अ. [हिं. चाशनी] चिपकना, जुड़ना।

चसम—संज्ञा स्त्री. [फा. चश्म] आँख।

चसमा—संज्ञा पुं. [फा. चश्मा] (१) ऐनक। (२) पानी का सोता।

चसी—क्रि. अ [हिं. चसना] सट गयी, लगी, जुड़ी, चिपकी। उ.—ज्यों नाभी सर एक नाल नव कनक बिख रहे चसी री।

चस्का—संज्ञा पुं. [हिं. चसका] शौक, लत।

चस्पाँ—वि. [फा.] चिपकाया या सटाया हुआ।

चह—संज्ञा पुं. [सं. चय] नाव पर चढ़ने का पाट।

संज्ञा स्त्री. [फा. चाह] गड्ढा, गर्त।

चहक—संज्ञा स्त्री. [हिं. चहकना] चहचह शब्द।

संज्ञा पुं. [हिं. चहला] पंक, कीचड़।

चहकना—क्रि. अ. [अनु] (१) पक्षियों का चहचहाना। (२) उमंग या प्रसन्नता से बोलना।

चहका—संज्ञा पुं. [देश.] जलती हुई लकड़ी।
संज्ञा पुं. [हि. चहला] कीचड़, पंक।
चहकार—संज्ञा स्त्री. [हि. चहक] चहचह शब्द।
चहकारना—क्रि. अ. [हि. चहकना] चहचहाना।
चहकारा—वि. [हि. चहकार] कलरव करनेवाला।
चहचहा—संज्ञा पुं. [हि. चहचहाना] (१) चहकने का भाव, चहक। (२) हँसी-दिल्लगी, ठट्ठा, चुहलबाजी।
वि.—(१) मनोहर, आनंददायी। (२) ताजा, नया।
चहचहाना—क्रि. अ. [अनु.] पक्षियों का चहकना।
चहटा—संज्ञा पुं. [अनु.] कीचड़, पंक।
चहत—क्रि. स. [हि. चाह] चाहता है, इच्छा करता है। उ.—अजहुँ सँग रहत, प्रथम लाज गहेउ संतत सुभ चहत, प्रिय जन जानि—१-७७।
चहता—संज्ञा पुं. [हि. चहेता] प्रिय पात्र।
चहति—क्रि. स. [हि. चाह, चाहना] चाहती हैं, अभिलाषती हैं। उ.—उमँगी ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि उमँग, चहति बरष बरषनि—१०-६६।
चहनना—क्रि. स. [हि. चहलना] दबाना, रौंदना।
मुहा०—चहनकर खाना— डटकर खाना।
चहना—क्रि. स. [हि. चाहना] इच्छा या प्रेम करना।
चहनि—संज्ञा स्त्री. [हि. चाह] इच्छा, प्रीति।
चहबच्चा—संज्ञा पुं. [फ़ा. चाह=कुआँ+बच्चा] (१) गंदे पानी का गड्ढा। (२) छोटा तहखाना।
चहर—संज्ञा स्त्री. [हि. चहल] (१) आनंद की धूम। उ.—पंच सब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार चहर की—१०-३०। (२) शोरगुल, हल्ला। (३) उपद्रव, उत्पात।
वि.—(१) बढ़िया, उत्तम। (२) चुलबुला, तेज।
चहरना—क्रि. अ. [हि. चहर] प्रसन्न होना।
चहर पहर—संज्ञा स्त्री. [हि. चहलपहल] चहलपहल।
चहराना—क्रि. अ. [हि. चहर] प्रसन्न होना।
क्रि. अ. [हि. चर्राना] हलकी पीड़ा होना।
क्रि. अ. [देश.] फटना, चटकना।
चहरि—संज्ञा स्त्री. [सं. चहर] (१) शोर-गुल, हो-हल्ला। उ.—(क) मथति दधि जसुमति मथानी, धुनि रही घर घहरि। स्रवन सुनति न महर-बातैं, जहाँ-तहँ गइ चहरि—१०-६७। उ.—(ख) तनु बिष रह्यौ है छहरि। ‘ ......गए अवसान, भीर नहिं भावै, भावै नहीं चहरि। ल्यावौ गुनी जाइ गोविंद कौं बाढ़ी अतिहि लहरि-७५०। (ग) नेकहूँ नहिं सुनति स्रवननि करति हैं हम चहरि—८६०। (२) आनंद की धूम, रौनक। (३) उपद्रव, उत्पात। उ.—सुत को बरजि राखौ महरि। ...... । सूर स्यामहिं नेक बरजौ करत हैं अति चहरि—२०३६।
चहल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कीचड़, कीच, कर्दम।
संज्ञा स्त्री. [हि. चहचहाना] आनंद की धूम।
चहलपहल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) आनंद की धूम, रौनक। (२) बहुत से लोगों का आना-जाना।
चहला—संज्ञा पुं. [स. चिक्किल] कीचड़, पंक।
चहली—संज्ञा स्त्री. [देश.] कुएँ की गराड़ी।
चहारदीवारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] प्राचीर, कोट, परिखा।
चहिबो—क्रि. स. [हि. चाहना] चाहना, इच्छा करना। उ.—तब न कियो प्रहार प्राननि को फिरि फिरि क्यों चहिबो—३३१४।
चहियत—क्रि. स. [हि. चाहना] चाहता है, इच्छा करता है। उ.—एक जु हरि दरसन की आसा तां लगि यह दुख सहियत। मन क्रम बचन सपथ सुन सूरज और नहीं कछु चहियत—३३००।
चहिये—अव्य. [हि. चाहिए] उचित है, उपयुक्त है। उ.—(क) कहत नारि सब जनक नगर की बिधि सों गोद पसारि। सीता जू को बर यह चहिये है जोरी सुकुमार—सारा. २११। (ख) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि रसिकहिं सब गुन चहिये जू-२०१५।
चही—क्रि. स. [हि. चाहना] चाही थी, इच्छा की थी। उ.—रिषि कह्यौ, रानी पुत्री चही। मेरे मन मैं सोई रही—६-२।
चहुं—वि. [हि. चार] चार, चारों।
चहुँक—संज्ञा स्त्री. [हि. चिहुँक] चौंकना।
चहुँघा—क्रि. वि. [हि. चहुँ=चार+घा=ओर, तरफ] चारो तरफ, चारो ओर। उ.—(क) दावानल ब्रजजन पर धायौ। गोकुल ब्रज वृंदावन तृन द्रुम, चहुँघा चहत जरायौ—५६२। (ख) बारि बाँधे बीर चहुँघा देखत ही बज्र सम थाप गल कुंभ दीन्हो—२५६०।

चहुटना—क्रि. स.—चोट-चपेट लगना।

चहुँघार—वि. [हिं. चार (चहुँ=चार)]+घार=ओर, दिशा] चारो तरफ। उ.–बिबिध खिलौना भाँति के (बहु) गजमुक्ता चहुँघार—१०-४२।

चहुआन, चहुवान—[हिं. चौहान] एक क्षत्रिय जाति।

चहूँ—वि. [हिं. चार] चार, चारों। उ.—सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची–१-१

- क्रि. स. [हिं. चाहना] चाहती हूँ।

चहूँघा—क्रि. वि. [हिं. चहूँ+घा=ओर] चारो तरफ। उ—उपवन बन्यौ चहूँघा पुर के अति ही मोकों भावत—२५५६।

चहूँटना—क्रि. अ. [हिं. चिमटना] सटना, मिलना।

चहेटना—क्रि. स. [हिं. चपेटना] (१) निचोड़ना, गारना। (२) दबाना, दबोचना, चपेटना।

चहेता—वि. [हिं. चाहना+एता (प्रत्य.)] प्यारा।

चहेती—वि. स्त्री. [हिं. चहेता] जिसे चाहा जाय।

चहेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. चहला] (१) कीचड़, कीच, कर्दम। (२) दलदली भूमि।

चहैं—क्रि. स. बहु. [हिं. चाहना] चाहते हैं, इच्छा है। उ.—कह्यौ, यहै हम तुम सौं चहैं। पाँच बरस के नितहीं रहैं—३-६।

चहै—क्रि. स. [हिं. चाहना] (१) चाहता या इच्छा करता है, अभिलाषा रखता है। उ.—पारथ तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नगी—१-२१। (२) प्रीति करता है। उ.—जों चहै मोहिं मैं ताहि नाहीं चहौं—८-८।

चहोड़ना, चहोरना—क्रि. अ. [देश.] (१) पौधा रोपना या बैठाना। (२) सहेजना, सँभालना।

चहौं—क्रि. स. [हिं. चाहना] (१) चाहता हूँ, इच्छा है। उ —आयसु दियौ, जाउ बदरीबन, कहैं, सो कियौ चहौं—३-२। (२) प्रीतिकरती हूँ। उ.—जो चहै मोहिं मैं ताहि नाहीं चहौं—८-८।

चह्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. चाहना] चाहा, अभिलाषा की। उ.—(क) उरझ्यौ बिबस कर्म-निरअंतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२। (ख) एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ—१-२४७।

चाँइयाँ, चाँईं—वि. [देश.] (१) ठग। (२) छली, कपटी।

चाँक, चाँका—संज्ञा पुं. [हिं. चौ+अंक] (१) अन्न की राशि पर ठप्पा लगाने की थापी। (२) अन्न-राशि पर लगाया हुआ ठप्पा या चिह्न। (३) टोटके के लिए शरीर पर खींचा गया घेरा।

चाँकना—क्रि. स. [हिं. चाकना] (१) अन्न की राशि पर ठप्पा लगाना। (२) सीमा की हद बाँधना। (३) पहचान का चिन्ह लगाना।

चाँगला—वि. [हिं. चंगा] (१) स्वस्थ। (२) चतुर।

चाँचर, चाँचरि, चाँचरी—संज्ञा स्त्री. [हिं.चाचर] होली, फाग या बसंत का राग या गीत।

चांचल्य—संज्ञा पुं. [सं.] चंचलता, चपलता।

चाँचु—संज्ञा पुं. [सं. चञ्चु] चोंच। उ.—बकासुर रचि रूप माया रह्यौ छल करि आइ। चाँचु पकरि पुहुमी लगाई इक अकास समाइ।

चाँट—संज्ञा पुं. [हिं. छींटा] उड़ते हुए जलकण।

चाँटा—संज्ञा पुं. [हिं. चिमटना] चींटा, च्युँटा।

संज्ञा पु. [अनु. चट] थप्पड़, तमाचा।

चाँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाँटा] चींटी।

चाँड़—वि. [सं. चंड] (१) प्रबल, बलवान। (२) उद्दंड, शोख, उग्र। (३) बढ़ा-चढ़ा, उत्तम। (४) संतुष्ट।

संज्ञा स्त्री.—(१) खभा, टेक, थूनी। (२) बहुत आवश्यकता, गहरी चाह, भारी लालसा।

मुहा०—चाँड़ सरना—इच्छा या लालसा पूरी होना। चाँड़ सराना—इच्छा या लालसा पूरी करना। चाँड़ सरायौ— इच्छा पूरी की। उ.—पुहुप भँवर दिन चारि आपने अपनो चाँड़ सरायौ।

(३) दबाव, संकट। (४) प्रबलता, अधिकता।

चाँड़ना—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] खोदना, उजाड़ना।

चांडाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डोम श्वपच। (२) कुकर्मी।

चांडाली—संज्ञा स्त्री. [स.] चांडाल जाति की स्त्री।

चाँड़िला—वि. [चाँड़] (१) प्रबल, उग्र। (२) अधिक।

चाँड़िले—वि. [हिं. चाँड़िला] प्रचंड, उग्र, उद्धत, नटखट। उ.—नंद सुत लाड़िले प्रेम के चाँड़िले सौंहु दै कहत है नारि आगे।

चाँड़े— वि. [सं. चंड, हिं. चाँड़] (१) प्रबल, बलवान,

वेगवान। उ.—हरि बिन अपनौ को संसार। माया-लोभ-मोह हैं चाँडे काल नदी की धार—१-८४।
(२) उग्र, उद्धत, शोख। उ.—धीर धरहु फल पावहुगे। अपने ही प्रिय के सुख चाँड़े कबहूँ तो बस आवहुगे।

चाँड़ू—संज्ञा पुं. [सं. चंड] अफीम का किवाम, चंडू।

चाँद—संज्ञा पुं. [स. चंद्र] (१) चंद्रमा।

मुहा०—चाँद का कुंडल (मंडल) बैठना—हलकी बदली में चद्रमा के चारो ओर घेरा बन जाना। चाँद का टुकड़ा—बहुत सुंदर व्यक्ति। चाँद चढ़ना—चाँद का ऊपर उठना। चाँद दीखे—शुक्लपक्ष की द्वितीया के बाद। चाँद पर थूकना—महात्मा पर कलंक लगाना जिससे स्वयं अपमानित होना पड़े। चाँद पर धूल डालना—निर्दोष या साधु को दोष लगाना। चाँद सा—बहुत सुंदर। किधर चाँद निकला है—कैसे दिखायी दिये, बहुत दिन बाद दिखायी दिये।

(२) चाँदमास, महीना। (२) द्वितीया के चंद्रमा के आकार का एक आभूषण।

संज्ञा स्त्री.—(१) खोपड़ी। (२) खोपड़ी का निचला भाग।

मुहा०—चाँद पर बाल न छोड़ना—बहुत मारना-पीटना। (२) सब कुछ हर लेना, खूब मूड़ना।

चाँदना—संज्ञा पुं. [हिं. चाँद] (१) प्रकाश। (२) चाँदनी।

चाँदनी—सज्ञा स्त्री. [हिं. चाँद] (१) चद्रमा का प्रकाश या उजाला, चद्रिका।

मुहा०—चार दिन की चाँदनी-थोड़े दिन का सुख। (२) बिछाने की सफेद चादर। (३) एक पौधा।

चाँदला—वि. [हिं. चाँद] टेढ़ा, कुटिल, वक्र।

चाँदी—सज्ञा स्त्री [हिं. चाँद] (१) एक धातु, रजत।

मुहा०—चाँदी का जूता—घूस से दिया जाने वाला धन। चाँदी काटना—खूब माल मारना। चाँदी का पहरा—सुख-समृद्धि का समय। चाँदी होना—खूब लाभ होना।

(२) धन का लाभ। (३) चाँद, चँदिया।

चांद्र—वि. [सं.] चद्रमा-संबंधी।

संज्ञा पुं.-(१) चाँद्रायण व्रत। (२) चंद्रकांतमणि।

चाँद्रमास—संज्ञा पुं. [सं.] वह काल (या महीना) जो चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करने में लगाता है।

चाँद्रवत्सर—संज्ञा पुं [सं.] वह वर्ष जो चंद्रमा की गति के अनुसार निश्चित किया जाता है।

चाँद्रायण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महीने भर का एक व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार आहार घटाया-बढ़ाया जाता है। (२) एक छंद।

चाँद्री—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चद्रमा की स्त्री। (२) चाँदनी।

वि.—चंद्रमा संबंधी, चंद्रमा का।

चाँप—संज्ञा पुं [हिं. चाप] धनुष।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चँपना] (१) चँपने का भाव, दबाव। (२) पैर की आहट, चाप।

संज्ञा पुं. [हिं. चंपा] चपे का फूल।

संज्ञा स्त्री [हिं.चपना] (१)दबाव। (२) रेलपेल।

चाँपति—क्रि. स. [हिं. चाँपना] दबाकर, मीड़कर। उ.— चाँपति कर भुज दंड रेष गुन अंतर बीच कसी—सा. उ. २५।

चाँपना—क्रि. स. [सं. चपन] दबाना, मीड़ना।

चाँपि—क्रि. स. [हिं. चाँपना] दबाकर, मीड़कर। उ. —कहौ तौ परवत चाँपि चरन तर, नीर खार मैं गारौं—६-१०७।

चाँयचाँय, चाँवचाँव—सज्ञा स्त्री. [अनु.] बकवाद।

चाँवर, चाँवरी—सज्ञा पुं. [हिं. चावल] चावल। उ.—(क) नीलावती चाँवर दिवि-दुर्लभ। भात परौस्यौ माता सुरलभ—३९६। (ख) तिल चाँवरी, बतासे, मेवा, दियो कुँवरि की गोद। सूर स्याम-राधा-तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद—७०४।

चाइ,चाई—संज्ञा पुं. [हिं. चाह, चाव] (१) प्रबल इच्छा, अभिलाषा। उ.—(क) अबकी बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू उपाइ। भटकत फिरयौ स्वान की नाईं, नैंकु जूठ कैं चाइ—१-१५५। (ख) कहा करौं चित चरन अटक्यौ सुधा-रस कैं चाइ—३-३। (ग) विष्णु-भक्ति कौ ता मान चाईं—१०

उ. ७ । (२) चाव, उमंग, उत्साह । उ.—गए ग्रीषम पावस रितु आई सब काहू चित चाइ —२८४४ ।

चाउ, चाऊ—संज्ञा पुं. [सं. चाव] इच्छा, अभिलाषा । उ.—(क) चित्रकेतु पृथ्वीपति राउ । सुत-हित भयौ तासु चित चाउ—६-५। (ख) मन-बच-कर्म और नहिं दूजौ, बिन रघुनदन राउ । उनकैं क्रोध भस्म ह्वै जैहौं, करौ न सीता चाउ—९ ७८ ।

मुहा.—चाउ सरना—इच्छा पूरी होना । चाउ सरै—इच्छा पूरी होने पर । उ—चाउ सरै पहिचानत नाहिंन प्रीतम करत नये—२९९३ ।

चाउर—संज्ञा पुं. [हिं. चावल] चावल ।

चाक—संज्ञा पुं. [स. चक्र, प्रा. चक्क] (१) कुम्हार का एक गोल पत्थर । (२) गाड़ी का एक पहिया । (३) कुएँ की गराड़ी । (४) अन्न राशि पर छापा लगाने का थापा । (५) गोल चिन्ह की रेखा, गोंडला ।

संज्ञा पुं. [फा.] दरार, चीड़ ।

मुहा०—चाक करना (देना)—चीरना, फाड़ना । चाक होना— चिरना, फटना ।

वि. [तु.] (१) दृढ़ । (२) स्वस्थ ।

चाकचक—वि.[तु. चाक (१)] दृढ़, मजबूत ।

चाकचक्य—संज्ञा स्त्री.[सं.] (१) चमक । (२) सुंदरता ।

चाकना—क्रि. स. [हिं. चाक] (१) सीमा बाँधना । (२) अन्न-राशि पर छापा लगाना । (३) चिन्ह बनाना ।

चाकरनी, चाकरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाकर] दासी ।

चाकर—संज्ञा पुं. [फा.] दास, सेवक ।

चाकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाकर] सेवा, नौकरी ।

चाकल—वि. [हि. चकला] चौड़ा, विस्तृत ।

चाका—संज्ञा पुं. [हिं. चाक] गाड़ी का पहिया ।

चाकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाक] पीसने की चक्की ।

संज्ञा स्त्री [सं. चक्र] बिजली, वज्र ।

चाकू—संज्ञा पुं. [तु.] फल या तरकारी आदि काटने का छुरीनुमा औजार ।

चाक्रि—संज्ञा पु. [सं.] (१) चारण, भाट । (२) तेली । (३) गाड़ीवान । (४) कुम्हार । (५) सेवक ।

वि०—मडल या चक्र से सबंधित ।

चाक्षुष—वि. [सं.] (१) चक्षु संबंधी । (२) जिसका ज्ञान या बोध नेत्रों से हो, देखने का ।

चाख—संज्ञा पुं. [सं. चाष] (१) चाहा पक्षी । (२) नीलकंठ पक्षी ।

संज्ञा पुं. [सं. चक्षु] आँख, नेत्र ।

चाखत—क्रि. स [हिं. चखना] चखकर, स्वाद लेकर । उ.—यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखत ही उड़ि जात—१ ३१३ ।

चाखन—क्रि. स. [हिं. चखना] चखना, स्वाद लेना । उ.—यह ससार सुवा-सेमर ज्यों, सुंदर देखि लुभायो । चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ —१-३३५ ।

संज्ञा पु.—चखना, खाना । उ.—मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब फल चाखन कारन चोंच चलाई—६१६ ।

चाखनहारौ—क्रि. स. [हिं. चखना + हार (प्रत्य.)] चखनेवाला, स्वाद लेनेवाला । उ.—इनहिं स्वाद जो लुब्ध सूर सोइ जानत चाखनहारौ री—१०-१३५ ।

चाखना—क्रि. स. [हिं. चखना] खाना, स्वाद लेना ।

चाखि—क्रि. स. [हिं. चखना] चखकर, स्वाद लेकर । उ.—सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि गोद भरि ल्याई—१-१३ ।

चाखे—क्रि. स. [हि. चखना] (१) चखता है, स्वाद लेता है । उ.—ब्यंजन सकल मँगाइ सखनि के आगैं राखे । खाटे-मीठे स्वाद, सबै रस लै-लै चाखे—४९१। (२) खाये । उ.—औंर आदि दै सबै सँधाने । सब चाखे गोबर्धन-राने—३९६ ।

चाख्यौ—क्रि. स. [हिं. चखना] स्वाद लिया, खाया । उ.—(क) जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै—१-१६८ । (ख) सद माखन अति हित मैं राख्यौ । आज नहीं नैंकहुं तुम चाख्यौ—५४७ ।

चाचर, चाचरि—संज्ञा स्त्री. [सं. चर्चरी] (१) होली या फाग के गीत । (२) होली का स्वाँग और हुल्लड़ । (३) हल्ला गुल्ला, उपद्रव ।

चाचरी—संज्ञा स्त्री. [सं. चर्चरी] योग की एक मुद्रा ।

चाचा—संज्ञा पुं. [सं. तात] बाप का छोटा भाई ।

चाची—सज्ञा स्त्री. [हिं. चाचा] चाचा की स्त्री ।

चाट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाटना] (१) स्वाद लेने की

प्रबल इच्छा (२) शौक, चसका। (३) प्रबल इच्छा, लोलुपता। (४) लत, आदत।(५) चटपटी चीज।

संज्ञा पुं. [सं] (१) ठग। (२) उचक्का, चाँई।

चाटत—क्रि. स. [हिं. चाटना] (जीभ लगाकर) चाटता है। उ.—(क) मनौ भुजंक अमी-रस-लालच, फिरि फिर चाटत सुभग सुवदहि—१०-१०७। (ख) जैसे धेनु वच्छ कौ चाटत तैसे मैं अनुरागूँ—सारा.१३३।

चाटति—क्रि. स [हिं. चाटना] (प्यार से किसी वस्तु पर) जीभ चलाती है। उ.—ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया—१०-३३५।

चाटना—क्रि. स. [अनु. चटचट = जीभ चलाने का शब्द] (१) जीभ लगाकर खाना या स्वाद लेना। (२) पोछ-पाँछ कर खा जाना। (३) प्यार से जीभ फेरना। (४) कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना।

चाटु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मीठी या प्रिय लगनेवाली बात। (२) झूठी प्रशंसा, खुशामद, चापलूसी।

चाटुकार—संज्ञा पुं. [सं.] चापलूस, खुशामदी।

चाटुकारी—संज्ञा स्त्री. [सं. चाटुकार+ई (प्रत्य.)] झूठी प्रशंसा या खुशामद, चापलूसी।

चाटुपट—संज्ञा पुं [सं.] (१) झूठी प्रशंसा या चापलूसी करने में बहुत कुशल। (२) भाँड़, भड।

चाटे—क्रि. स. [हिं. चाटना] पोछ पाँछ कर चट कर गये। उ.—दूध-दही के भोजन चाटे नेकहुँ लाज न आई—सारा. ७४६।

चाड़—संज्ञा स्त्री. [हिं चाँड़] (१) चाह, चाव, प्रेम। उ.—हौं अपने गोपाल लड़ैहौं, भौन-चाँड़ सब रहौ धरी। पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया, दुख कोखि जरी—१० ८०।

चाड़िला—वि. [हिं. चाँडिला] नटखट।

चाड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. चाटु] निंदा, चुगली।

चाढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाड़] इच्छा, कामना। उ.—जज्ञ-पुरुष तजि करत जज्ञ-विधि, तातैं कहि कह चाढ़ सरी—८०६।

चाढ़ा—संज्ञा पुं [हिं. चाड़] (१) प्रिय पात्र। (२)प्रेमी।

चाढ़ी—वि. [हिं, चाढ़ा] चाहनेवाला, प्रेमी,आसक्त। उ.—देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी। जोबन मदमाती इतराती, वेनि ढुरति कटि लौं, छवि बाढ़ी। दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी।—१०-३००।

चाढ़े—संज्ञा पुं. [हिं. चाढा] (१) प्रिय पात्र। उ.—धन्य धन्य भक्त के चाढे—१०३५। (२) प्रेमी, चाहनेवाला। उ.—(क) तुम हम पर रिस करति हौ हम हैं तुव चाढे। निठुर भई हौ लाड़िली कब के हम ठाढे। (ख) दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु स्याम भए चाढे (चाढी)—१०-३००।

चाणक्य—संज्ञा पुं. [स.] चंद्रगुप्त मौर्य का मंत्री।

चाणाक्ष—वि. – धूर्त, चालाक, काँइयाँ।

चाणूर—संज्ञा पुं. [सं.] कंस का एक पहलवान जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

चातक—संज्ञा पुं. [सं.] वर्षाकाल में बोलनेवाला एक पक्षी जिसके सबंध में कवियों का विश्वास है कि यह नदी-सरोवर का संचित जल न पीकर केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों से अपनी प्यास बुझाता है।

चातकनी—संज्ञा स्त्री [हिं. चातक] मादा चातक।

चातर—संज्ञा पुं. [हिं. चादर] (१) जाल। (२)षड्यंत्र।

वि. [हिं. चातुर] चालाक, काँइयाँ।

चातुर—वि. [सं.] (१) दिखायी देनेवाला। (२) चतुर, चालाक। (३) खुशामदी, चापलूस, चाटुकार।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चातुर] चतुरता। उ.—रोचन भरि लै देत सीक सौं, स्रवन निकट अतिहीं चातुर की—१०-१८०।

संज्ञा पुं.— (१) गोल तकिया। (२) चौपहिया गाड़ी।

चातुरई, चातुरता, चतुरताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चतुरता] (१) चालाकी। (२) बुद्धि। उ.—जे जे प्रेम छके मैं देखे तिनहिं न चातुरताई—२२७५।

चातुरिक—संज्ञा पु. [स.] सारथी, रथवान।

चातुरी—वि. [सं.] चतुर। उ.—नारि गईं फिरि भवन आतुरी। नद-घरनि अब भई चातुरी—३६१।

चातुर्थक, चातुर्थिक—वि. [सं.] चौथे दिन होनेवाला।

चातुर्मास्य, चातुर्मासिक—वि. [सं.] चार महीनों मे होनेवाला, चार महीने का।

चातुर्य—संज्ञा पुं. [सं.] चतुराई, निपुणता।

चातुर्वर्ण्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । (२) इनका धर्म ।

चात्रिक—संज्ञा पुं. [हि. चातक] चातक पक्षी ।

चादर—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) ओढ़ना, दुपट्टा ।

मुहा.—चादर उतारना-स्त्री का अपमान करना । चादर रहना—इज्जत बनी रहना । चादर से बाहर पैर फैलाना—हैसियत से ज्यादा खर्च करना ।

(२) धातु का पत्तर । (३) पानी की ऊपर से गिरने वाली धार । (४) पानी का फैलाव जिसमें लहरें या भँवर न हों । (५) देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जानेवाली फूलों की राशि ।

चादरा—संज्ञा पुं. [हि. चादर] मरदानी चादर ।

चान—संज्ञा पुं. [हिं. चाँद] चंद्रमा ।

चानक—क्रि. वि. [हि. अचानक] सहसा, एकाएक ।

चानन—संज्ञा पुं. [हिं. चंदन] चंदन ।

चानना—क्रि. अ. [हिं. चान + ना (प्रत्य.)] उमंग में होना ।

चानूर—संज्ञा पुं. [सं. चाणूर] कंस का एक मल्ल जिसे धनुष-यज्ञ के समय श्रीकृष्ण ने मारा था ।

चाप—संज्ञा पुं. [सं.] धनुष, कमान ।

संज्ञा स्त्री—(१) दबाव । (२) पैर की आहट ।

चापट, चापड़, चापर—संज्ञा स्त्री. [हि. चपटा] भूसी, चोकर ।

वि.—(१) चपटा । (२) समतल । (३) उजाड़ ।

चापति—क्रि. स. [हिं. चापना] (स्नेह से) दबाती है ।

उ.—भुज चापति चूमति बलि जाई—१०-७१ ।

चापना—क्रि. स. [सं. चाप] दबाना, मीड़ना ।

चापल—संज्ञा पुं. [सं.] चंचल होने का भाव ।

वि. [हिं. चपल] चंचल, अस्थिर ।

चापलता, चापलताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चापल + ता, ताई] (१) चचलता, अस्थिरता । (२) ढिठाई ।

चापलूस—वि. [फ़ा.] खुशामदी, चाटुकार ।

चापलूसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चापलूस] खुशामद ।

चापल्य—संज्ञा पुं. [हिं. चपल] चपलता ।

चापि—क्रि. स. [हिं. चापना] दबाकर, मसलकर, मीड़ कर । उ.—चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दग-रक्त-प्रवाह चल्यौ अधिकानी—१०-७८ ।

चापी—संज्ञा पुं. [सं. चापिन्] (१) धनुष धारण करनेवाला । (२) शिव ।

चाब—संज्ञा स्त्री. [हि. चाबना] (१) डाढ़, जबड़ा । उ.—जब मुख गए समाइ, असुर तब चाब सकोरयौ —४३१ । (२) चौखूँटे दाँत । (३) बच्चे के जन्मोत्सव की एक रीति ।

संज्ञा पुं. [सं. चप] एक बाँस ।

संज्ञा स्त्री. [सं. चव्य] (१) एक पौधा या उसका फल । (२) चार की संख्या । (३) कपड़ा ।

चाबना—क्रि. स. [सं. चर्वण, प्रा. चव्वण] (१) दाँतों से कुचलना । (२) खूब भोजन करना ।

चाबी, चाभी—संज्ञा स्त्री. [हि. चाप] कुंजी, तांली ।

चाबुक—संज्ञा. पुं. [फा.] (१) कोड़ा, हंटर, सोंटा । (२) बात जिससे काम करने की उत्तेजना मिले ।

चाभ—संज्ञा स्त्री. [हि. चाब] । (१) पौधा । (२) डाढ़ ।

चाभना—क्रि. स. [हि. चाबना] खाना, भक्षण करना ।

चाम—संज्ञा पुं. [सं. चर्म] चमड़ा, खाल, चमड़ी । उ.—आमिष-रुधिर अस्थि अँग जौ लौं, तौ लौं कोमल चाम—१-७६ ।

मुहा.—चाम के दाम—चमड़े का सिक्का । चाम के दाम चलाना—अन्याय या अंधेर करना । चाम के दाम चलावै—अन्याय या अंधेर करता है । उ.—ऊधौ अब कछु कहत न आवै । सिर पै सौति हमारे कुबिजा चाम के दाम चलावै—४२५७ ।

चामड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमड़ी] चमड़ी, खाल ।

चामर—संज्ञा पु. [हि. चँवर] (१) चौंर, चँवर, चौरी । (२) मोरछल । (३) एक छद ।

चामरिक—संज्ञा पुं. [सं.] चँवर डुलानेवाला ।

चामरी—सज्ञा स्त्री. [सं.] सुरा गाय ।

चामिल—सज्ञा स्त्री. [हि. चंबल] भिक्षापात्र ।

चामीकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ण । (२) धतूरा ।

वि.—स्वर्णमय, सुनहरा ।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी ।

चाय—संज्ञा स्त्री. [चीनी चा] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ उबाल कर पी जाती है ।

संज्ञा पुं. [हिं. चाव] (१) उमंग, उत्साह, चाव ।

उ.—मरि मरि सकट चले गिरि सनमुख अपने अपने चाय—६१८। (२) इच्छा, कामना। उ.—चित में यह अनुरक्त विचारत हरि दरसन की चाय—सारा. ८४८। (३) प्रेम।

चायक—संज्ञा पुं. [हिं. चाय] चाहनेवाला, प्रेमी। संज्ञा पुं. [सं. चयन] चुननेवाला।

चार—वि. [सं. चतुर] दो और दो का योग।

मुहा.—चार आँखें करना—सामने आना। चार आँखें होना— देखा देखी होना। चार चाँद लगना—मान, प्रतिष्ठा या सौंदर्य बढ़ना। चार कंधे चढ़ना (चलना)—मरना। चार-पाँच करना—(१) हीला-हवाला करना। (२) झगड़ा करना। चारों फूटना—न देख सकना और न विचार कर सकना। चारों खाने चित्त होना—(१) बिलकुल हार जाना। (२) सकपका जाना।

(२) कई एक, बहुत से। (३) थोड़े, कुछ।

मुहा.—चार दिन— थोड़े दिन। चार पैसे—थोड़ा धन।

संज्ञा पुं.—चार की संख्या।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गति, चाल। (२) बंधन। (३) दूत, चर। (४) दास, सेवक। (५) चिरौंजी का पेड़। (६) बनावटी विष। (७) रीति रस्म।

चारक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चरवाहा। (२) संचालक, (३) गति, चाल। (४) कारागार। (५) गुप्तचर। (६) साथी। (७) सवार। (८) मनुष्य।

चारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाट, बंदीजन। उ.—विद्याधर गंधर्व अपसरा गान करत सब ठाढ़े। चारण (चारन) सिद्ध पढ़त बिरुदावलि लै फगुवा सुख बाढे—सारा. २८। (२) राजपूताने की एक जाति। (३) भ्रमणकारी।

संज्ञा पुं. [हिं. चराना] चराना। उ.—गोपी ग्वाल गाइ बन चारण (चारन) अति दुख पायौ त्यागत—२६१५।

चारत—क्रि. स. [हिं. चारना] चराते हुए। उ.—बन-बन फिरत चारत धेनु—४२७।

चारदा—संज्ञा पुं. [हिं. चार+दा (प्रत्य.)] चौपाया।

चारदीवारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] घेरा, हाता, प्राचीर।

चारन—संज्ञा पुं. [सं. चारण] वंश की कीर्ति गाने वाला, बंदीजन। उ.—(क) विप्र-सुजन-चारन-बंदी-जन सकल नंद-गृह आए—१०-८७। (ख) चारन सिद्ध पढ़त बिरुदावलि लै फगुवा सब ठाढे-सारा. २८।

संज्ञा पुं. [हिं. चराना] चराने की क्रिया या भाव। उ.—(क) धन्य गाइ, धनि द्रुम-बन चारन। धनि जमुना हरि करत बिहारन—३६१। (ख) प्रात जात गैया लै चारन घर आवत है साँझ—४११।

क्रि. स. [हिं. चारना] (गाय आदि) चराने। उ.—बछरा चारन चले गोपाल—४१०।

चारना—क्रि. स. [सं. चारण] चराना।

चारपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं चार+पाया] खाट, खटिया।

मुहा.—चारपाई पर पड़ना — बीमार होना। चारपाई धरना (पकड़ना, लेना)—(१) बहुत बीमार होना। (२) लेट जाना। चारपाई से पीठ लगना—बीमारी से बहुत दुबले हो जाना।

चारा—संज्ञा पुं. [हिं. चरना] (१) पशुओं के चुगने की चीजें। उ.—लोचन भए पखेरू माइ। लुब्धे स्याम रूप चारा को अकल फंद परे जाइ—पृ.३२५। (२) मछलियों को फँसाने का आटा या अन्य वस्तु जो कँटिया पर लगायी जाती है।

संज्ञा पुं. [फा.] उपाय, इलाज, तदबीर।

चारि— वि. [हिं. चार] (१) चार, तीन और एक का योग। उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते। गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते—१-६०। (२) थोड़ा-बहुत, कुछ।

मुहा.—चारि दिवस—थोड़े दिन, कुछ दिन। उ.—सब वे दिवस चारि मन रंजन, अंत काल बिगरैगो—१-७५।

चारिणी—वि. स्त्री [सं.] आचरण करनेवाली।

चारित, चारितु—वि. [सं.] जो चलाया गया हो।

संज्ञा पुं. [हिं. चारा] पशुओं का चारा।

संज्ञा पु. [सं.] (चलाया जाने वाला) आरा।

संज्ञा पु. [हिं. चरित्र] चरित्र।

चारित्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुल-आचार। (२) स्वभाव, प्रकृति।

चारित्र्य—संज्ञा पुं. [सं.] चरित्र, चालचलन।

चारी—वि. [सं. चारिन्] (१) चलनेवाला। (२) व्यवहार या आचरण करनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) पैदल सिपाही। (२) संचारीभाव।

संज्ञा स्त्री. [सं.] नृत्य का एक अंग।

वि. [हिं. चार] चार। उ.—महामुक्ति कोऊ नहिं बाँछै जदपि पदारथ चारी—३३१६।

क्रि. स. [हिं. चराना] चरायीं। उ.—सूरदास प्रभु नाँगे पाँयन दिन प्रति गैयाँ चारी—३४१२।

चारु—वि. [सं.] (१) सुंदर, मनोहर। उ.—चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ—१-४३। (२) रुचिकर, सरस। उ.—सूरप्रभु कर गहत ग्वालिनी, चारु चुंबन हेत—१०-१८४।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) बृहस्पति। (२) रुक्मिणी से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (३) केसर।

चारुगर्भ—संज्ञा पुं [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चरुगुप्त—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुचित—सज्ञा पुं. [सं.] धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

चारुता, चारुताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुंदरता, मनोहरता, सुहावनापन। (२) सरसता।

चारुदेष्ण—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुधारा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इंद्र की पत्नी शची।

चारुनेत्र—वि. [सं.] सुंदर नेत्रवाला।

संज्ञा पुं.—हिरन, मृग।

चारुबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुभद्र—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की एक पुत्री।

चारुयशा—संज्ञा पुं [सं.] श्रीकृष्ण की एक पुत्री।

चारुविंद—संज्ञा पु. [स.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुश्रवा—वि. [सं. चारुश्रवस्] सुंदर कानवाला।

संज्ञा पुं.—श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

चारुहासी—वि. [सं.] सुंदर हँसीवाला।

चारुहासिनी—वि. [सं.] सुंदर मुस्कानवाली।

चारे—क्रि. अ. [हिं. चारना] चरने (के लिए)।

उ.—टेरि उठे बलराम स्याम कौं आवहु जाहिं धेनु बन चारे—४२३।

चारैं—वि. [हिं. चार] चार। उ.—दुखित देखि बसुदेव-देवकी, प्रगट भए धारि कै भुज चारैं—१०-१०।

चारौं—वि. [हिं चार] चारों। उ.—चारों वेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत हैं ताको—१-११३।

चारौ—संज्ञा पुं. [हिं. चरना, चारा] भोजन, भोज्य पदार्थ।

मुहा०—कियो गीध कौ चारौ—मार डाला। उ.—नवग्रह परे रहैं पाटीतर, कूपहि काल उसारौ। सो रावन रघुनाथ छिनक मैं कियो गीध कौ चारौ—९-१५७।

वि. [हिं. चार] चारों। उ.—दीनदयाल, पतित-पावन, जस वेद बखानत चारौ—१-१५७।

क्रि.स.[हिं.चराना] चराता है। उ.—ब्रह्म, सनक, सिव, ध्यान न आवत, सो ब्रज गैयनि चारौ—१०-३७८।

चारयौ—वि. [हिं. चार] चारों।

मुहा०—चारयो (चारों) फूटना—चर्मचक्षु और ज्ञानचक्षु नष्ट होना, दृष्टि और बुद्धि का नाश होना। उ.—निसि दिन विषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तब चारयौ—१-१०१।

चार्वाक—सज्ञा पुं. [सं.] एक नास्तिक।

चार्वी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) बुद्धि। (२) चाँदनी। (३) कांति। (४) सुंदर स्त्री। (५) कुबेर की पत्नी।

चाल—संज्ञा स्त्री. [सं. चार, हिं.चलन] (१) गति, गमन, चलने की क्रिया। उ.—(क) इंद्री अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन दिन उलटी चाल—१-१२७। (ख) टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ैं टेढ़ैं धायो—१-३१०। (२) आचरण, चलन, बर्ताव। उ.—(क) महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द रसाल। भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल—१-१५३। (ख) अब कछु औरहि चाल चाली-२७३४। (ग) अब समीर पावक सम लागत सब ब्रज उलटी चाल—३१५५। (घ) कहा वह प्रीति रीति राधा सौं कहाँ यह करनी उलटी चाल –३४५। (३) चलन, रीति-रिवाज, प्रथा, परिपाटी। उ.—सूर स्याम कौ कहा निहोरौ, चलत वेद की चाल—१-१५६। (ङ) अपने सुत की चाल न देखत उलटी तू हमपैं रिस

ठानति। (४) चलने का ढंग, ढब या प्रकार। उ.—(क) हौं वारी नान्हें पाइनि की दौरि दिखावहु चाल—१०-२२३। (ख) धूरि धौत तन अंजन नैननि, चलत लटपटी चाल—१०-११४। (ग) सूरदास गोरी अति राजत ब्रज यों आवत सुंदर चाल—४७३। (घ) वह चितवन वह चाल मनोहर वह मुसुक्यानि जो मंद धुनि गावन—३३०७। (५) आकार, प्रकार, बनावट, गढ़न। (६) गमन-मुहूर्त, चलने की सायत, चाला। (७) कार्य करने की युक्ति, उपाय या ढंग। (८) धोखा देने की युक्ति, छल-कपट, धूर्तता।

मुहा०—चाल चलना (अक.)—धोखा देने की युक्ति या कार्य सफल होना। चाल चलना (सक.)—धोखा देना, चालाकी करना। चाल में आना—धोखे में पड़ना।

(९) ढंग, प्रकार, विधि, तरह। (१०) शतरंज-ताश में मोहरा या पत्ता चलना। (११) हलचल, धूम। (१२) आहट, खटका।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) छाजन। (२) स्वर्णचूड़ पक्षी।

चालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलानेवाला, संचालक। (२) नटखट हाथी। (३) हाथ चलाने की क्रिया।

संज्ञा पुं. [हिं. चाल=धूर्तता] छली-कपटी।

चालचलन—संज्ञा पुं. [हिं. चाल+चलन] आचरण।

चालढाल—संज्ञा पुं. [हिं. चाल+ढाल] तौर तरीका, ढंग।

चालन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलाने की क्रिया। (२) चलने की क्रिया, गति। (३) चलनी, छलनी। (४) छानने की क्रिया।

संज्ञा पुं. [हिं. चालना] चोकर, चलनौस।

चालनहार—संज्ञा पुं. [हिं. चालन+हार (प्रत्य)] चलानेवाला, ले जानेवाला।

संज्ञा पुं [हिं चलना] चलनेवाला।

चालना—क्रि. स. [सं. चालन] (१) चलाना, संचालित करना। (२) एक स्थान से दूसरे को ले जाना। (३) विदा कराके ले जाना। (४) हिलाना-डुलाना। (५) काम निपटाना या भुगताना। (६) बात या प्रसंग छेड़ना। (७) छानना।

क्रि. अ. [सं. चालन] (१) गति में होना, चलना। (२) विदा होकर आना, चाला होना।

चालनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चलनी, छलनी।

चालबाज—वि. [हिं. चाल+फा. बाज़] धूर्त, छली।

चालबाजी—वि. [हिं. चालबाज] छल-कपट।

चालहिं—संज्ञा स्त्री [हिं. चाल+हिं (प्रत्य.)] चाल से, गति से। उ.—कनक-कामिनी सौं मन बाँध्यौ, ह्वै गज चल्यौ स्वान की चालहिं—१-७४।

क्रि. अ. [हिं. चलना] चलते हैं। उ.—सूरदास प्रभु पथिक न चालहिं कासौं कहौ सँदेसनि।

चाला—संज्ञा पुं. [हिं. चाल] (१) प्रस्थान, कूच। (२) नयी वधू का पहले पहल ससुराल या मायके जाना। (३) यात्रा का मुहूर्त या शुभ सायत।

चालाक—वि. [फा.] (१) चतुर। (२) चालबाज।

चालाकी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) चतुराई, दक्षता। (२) धूर्तता, चालबाजी। (३) युक्ति, कौशल।

चालान—संज्ञा पुं. [हिं. चलना] (१) भेजे हुए माल का बीजक या हिसाब। (२) माल लाने या लेजाने का आज्ञापत्र। (३) अपराधियोंका अदालतमें भेजा जाना।

चालिया—वि. [हिं. चाल+इया (प्रत्य)] धूर्त, छली।

चालीं—क्रि. अ. [हिं. चलना] चल दीं, प्रस्थान कर दिया। उ.—वेनु स्रवन सुनि, गोबर्धन तैं तृन दतनि धरि चालीं—६११।

चाली—वि. [हिं. चाल] (१) धूर्त, चालबाज, चालिया। (२) चंचल, नटखट, शैतान।

क्रि. स. [हिं. चालना] (१) प्रसंग चलाया, बात शुरू की। उ.—(क) ऊधौ कत ए बातैं चालीं—३२२८। (ख) बहुरयो ब्रज बात न चाली। १० उ.-७६। (२) आयोजन किया।

मुहा०—चाल चाली—धोखा देने का आयोजन किया, चालाकी की। उ.—अब कछु औरहिं चाल चाली—२७३४।

चालीस—संज्ञा पुं [सं चत्वारिंशत्, प्रा. चत्तालीस] बीस की दुगनी संख्या।

चालीसवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. चालीस] जो क्रम में उनतालीस के आगे पड़ता है।

चालू—वि. [हिं. चलना] (१) जो चल रहा हो। (२) जिसका चलन रोका न गया हो, चलता हुआ।

चालै—क्रि. अ. [हिं. चलना] चलता है, जाता है। उ.-साधु-संग, भक्ति बिना, तन अकार्थ जाई। जुआरी ज्यौं हाथ झारि चालै छुटकाई—१-३३०।

क्रि. स. [चलाना] चलावे, बखान करे, प्रशंसा करे। उ.—अपनी को चालै सुनि सूरज पिता जननि बिसराई।

चाल्ह, चाल्हा—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।

चाँवचाँव—संज्ञा पुं. [हिं. चाँयँ चाँयँ] व्यर्थ की बकवाद।

चाव—संज्ञा पुं. [हिं चाह] (१) प्रबल इच्छा, लालसा। उ.—चित्रकेतु पृथ्वीपति राव। सुतहित भयो तासु हिय चाव।

मुहा०—चाव निकलना—लालसा पूरी होना।

(२) प्रेम, चाह। (३) शौक,उत्कंठा। (४) लाड़-प्यार, दुलार (५) उमंग, उत्साह।

चावड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] ठहरने का स्थान, चट्टी।

चावण—संज्ञा पुं [देश.] एक गुजराती राजवंश।

चावना—क्रि. स. [हि. चाव] चाहना।

चावर, चावल—संज्ञा पुं. [सं. तंडुल] (१) एक अन्न, तंदुल। (२) पकाया चावल, भात। (३) छोटे-छोटे बीज के दाने जो खाये जायँ। (४) एक रत्ती का आठवाँ भाग।

मुहा०—चावल भर-रत्तीकेआठवें भाग के बराबर।

चाशनी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) चीनी या गुड़ का रस जो आँच पर चढ़ाकर गाढ़ा किया गया हो। (२) किसी पदार्थमें मीठेकी मिलावट। (३) चसका,मज़ा।

चाष—संज्ञा पुं. [सं] नीलकंठ पक्षी। चाहा पक्षी।

संज्ञा पुं [सं. चक्षु] आँख, नेत्र।

चास—संज्ञा स्त्री. [हि. चासा] जोत, बाँह।

चासना—क्रि. स. [हिं. चास] जोतना।

चासनी—संज्ञा स्त्री. [फा. चाशनी] चाशनी।

चासा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) हलवाहा। (२) किसान।

चाह—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा, पु. हि. चाहि अथवा सं. उत्साह, प्रा उच्छाह] (१) इच्छा, अभिलाषा। उ.—(क) भक्ति भाव की जो तोहिं चाह। तो सौं नहि हुँ है निर्वाह—४-६। (ख) तुम कह्यौ मरिबे की तोहिं चाह। मन काहू कौं है यह राह—५-३। (२) प्रेम, प्रीति। (३) आदर, कद्र। (४) माँग, आवश्यकता।

संज्ञा स्त्री. [हि. चाल = आहट] खबर, सूचना, समाचार, भेद की बात। उ.—(क) हौं सखि नई चाह इक पाई। ऐसे दिननि नंद कैं सुनियत उपज्यौ पूत कन्हाई—१०-२२। (ख) चकित भयौ ब्रज चाह सुनाई—१५६१।

संज्ञा स्त्री. [हि. चाव] उमंग, रुचि।

चाहक—संज्ञा पु. [हि. चाहना] प्रेम करनेवाला।

चाहत—संज्ञा स्त्री. [हिं. चाह] प्रीति, लगन।

क्रि. स. [हि. चाह] इच्छा करता है, चाहता है, अभिलाषा करता है। उ.—(क) बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे—१-६१। (ख) सुरतरु सदन सुमात्र छाँड़ि कह चाहत है द्रुम भूम भँडारौ—सा. १११।

चाहति—क्रि. स. [हि. चाह, चाहना] इच्छा करती है, अभिलाषती है। उ.—(क) चरन-कमल नित रमा पलोवै। चाहति नैंकु नैन भरि जोवै—१०-३। (ख) काहौं कहौं सखी कोउ नाहिंन, चाहति गर्भ दुरायौ—१०-४।

चाहना—क्रि. स. [हिं. चाह] (१) इच्छा करना, कामना रखना। (२) प्रेम करना, प्रीति रखना। (३) पाने की इच्छा जताना, माँगना। (४) प्रयत्न या कोशिश करना। (५) चाह से ताकना। (६) खोजना, ढूँढ़ना।

संज्ञा स्त्री.— चाह, जरूरत, आवश्यकता।

चाहा—संज्ञा पुं. [सं. चाष] बगले-सा एक जलपक्षी।

क्रि. स. [हि. चाहना] (१) इच्छा की, कामना की। (२) प्रीति की, लगन लगायी।

चाहि—क्रि. स. [हि. चाहना] (१) प्रेम करके। (२) देखकर।

प्रो.—चाहि रही—देखती, ताकती या निहारती रही। उ.-रही ग्वालि हरि कौ मुख चाहि-१०-३१६।

अव्य. [सं चैव = और भी] अपेक्षाकृत (अधिक), से बढ़कर, बनिस्बत।

चाहिए—अव्य. [हिं, चाहना] उचित या उपयुक्त है।

चाही—वि. स्त्री. [हिं. चाह] इच्छित, चहेती।
वि [फा. चाह=कुआँ] (वह भूमि) जो कुएँ के जल से सींची जाय।

चाहे—क्रि. स [हिं. चाहना] देखे, निहारे। उ.—सूर नृप नारि हरि वचन मान्यौ सत्य हरप ह्वै स्याम मुख सवनि चाहे—१६१८।
अव्य.—(१) जी चाहे, इच्छा हो। (२) जैसा जी चाहे, या तो। (३) होनेवाला हो।

चाहैं—क्रि. स. [हिं. चाहना] चाहते हैं, इच्छा करते हैं। उ.—लियें दियौ चाहैं सब कोऊ, सुनि समरथ जदुराई—१-१६५।

चाहै—क्रि. स. [हिं. चाहना] इच्छा करते ही, इच्छा होते ही। उ.—रीतै भरै, भरै पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै—१-१०१।
प्रो.—मिल्यौ न चाहै—मिल नहीं पाती, प्राप्त नहीं होती। उ.—घर मैं गथ नहि भजन तिहारौ, जौन दिऐ मैं छूटौं। धर्म-जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ—१-१८५।

चाहो, चाहौ—क्रि. स. [हिं. चाहना] (१) इच्छा करो, चाह हो। उ.—(क) हरि की भक्ति करो सुख नीके जो चाहो सुख पायौ—सारा. ७३। (ख) करो उपाव वचो जो चाहो मेरो वचन प्रमानो—सारा. ४८७। (२) देखो, निहारो। उ.—कोउ नयनन सों नयन जोरि कै कहति न मो तनचाहो—२४२७।

चाहौं—क्रि. स. [हिं. चाहना] चाहता हूँ, इच्छा करता हूँ। उ.—कछू चाहौं कहौं, सकुचि मन मैं रहौं, आपने कर्म लखि त्रास आवै—१-११०।

चाह्यौ—क्रि. स. [हिं. चाहना] चाह की, इच्छा की। उ.—(क) नाग-नर-पसु सवनि चाह्यौ सुरसरी कौ छंद—६-१०। (ख) जल ते बिछुरि तुरत तनु त्याग्यौ तउ कुल जल को चाह्यौ—३१४६।

चिआँ, चियाँ—संज्ञा पुं [सं. चिंचा=इमली] इमली का बीज। मुहा.—चिआँ सी—बहुत छोटी।

चिउँटा—संज्ञा पुं. [स. चिमटा] चींटा नामक कीड़ा।
मुहा.—गुड़ चींटा होना—परस्पर चिमट जाना।
चिउँटे के पर निकलना—मरने को होना, इतराकर ऐसा काम करना जिससे हानि की संभावना हो।

चिउँटिया रेंगान—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिउँटी + रेंगना] बहुत धीमी या सुस्त चाल या क्रिया।

चिउँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिमटना] चींटी, पिपीलिका।
मुहा.—चिउँटीकी चाल—सुस्त चाल, मंदगति।

चिंगट—संज्ञा पुं. [सं.] झिंगवा या झिंगा मछली।

चिंघाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. चीत्कार] (१) चीखने-चिल्लाने का घोर शब्द। (२) हाथी की बोली।

चिंघाड़ना—क्रि. अ. [सं. चीत्कार] (१) चीखना, चिल्लाना। (२) हाथी का बोलना।

चिंचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इमली।

चिंचिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तिंतिड़ी] इमली।

चिंची—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुंजा, घुँघची।

चिंज, चिंजा—संज्ञा पुं. [स. चिरंजीव] पुत्र, बेटा।

चिंजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिंजी] लड़की, बेटी।

चिंत—संज्ञा स्त्री. [सं. चिंता] चिंता, चिंतन, ध्यान, याद, फिक्र। उ.—राघौ जू, कितिक बात, तजि चिंत—६-१०७।

चिंतक—वि. [सं.] (१) चिंतन या ध्यान करनेवाला। (२) ख्याल या ध्यान करनेवाला।

चिंतत—क्रि. स. [हिं. चिंतना] ध्यान लगाते हैं, स्मरण करते हैं। उ.—सनक-सकर ध्यान धारत, निगम-आगम वरन। सेस, सारद, रिषय नारद, संत चिंतत सरन—१-३०८।

चिंतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्मरण, ध्यान। उ.—चित्त चिंतन करत जग-अघ हरत, तारन-तरन—१-३०८। (२) विचार, गौर।

चिंतना—क्रि. स. [सं. चिंतन] (१) ध्यान या स्मरण करना। (२) सोचना, गौर करना।
संज्ञा स्त्री.—(१) ध्यान, स्मरण। (२) चिंता।

चिंतनीय—वि. [सं.] (१) ध्यान करने योग्य। (२) चिंता या फिक्र करने लायक। (३) विचार करने योग्य।

चिंतवन—संज्ञा पु. [स. चिंतन] स्मरण, ध्यान।

चिंता—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) ध्यान, भावना। (२) सोच, फिक्र, खटका। उ.—चिंता मानि, चितै अंतर-गति, नाग-लोक कौं ध्याए—१-२६।

मुहा.—चिंता लगना—बराबर फिक्र रहना। कुछ चिंता नहीं—कोई परवाह या फिक्र की बात नहीं।

चिंताकुल—वि. [सं. चिंता+आकुल] चिंता से आतुर।

चिंतातुर—वि. [सं. चिंता+आतुर] चिंता से आतुर।

चिंतापत्र—वि.—चिंतित, चिंता से व्यग्र।

चिंतामणि, चिंतामनि—संज्ञा पुं. [सं. चिंतामणि] (१) परमेश्वर उ.—परम उदार चतुर चिंतामनि कोटि कुबेर निधन कौ—१-६। (२) एक कल्पित रत्न जो सभी तरह की इच्छा पूरी करता है। (३) ब्रह्मा। (४) सरस्वती देवी का एक मंत्र।

चिंति—क्रि. स. [हिं. चिंतना] ध्यान करो, स्मरण करो। उ.—चिंति चरन मृदु-चद-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिशि सोभा—१-६६।

संज्ञा पुं. [सं.] एक देश या उसका निवासी।

चिंतित—वि.[सं.] जिसे बहुत चिंता हो।

चिंत्य—वि. [सं.] विचार या चिंता के योग्य।

चिंदी—संज्ञा स्त्री. [देश.] टुकड़ा।

मुहा.—हिंदी की चिंदी निकालना—बहुत छोटी छोटी भूलें दिखाना।

चिउड़ा, चिउरा—संज्ञा पुं. [सं. चिपिट, प्रा. चिविड, चिउड़ा] चिउड़ा, चूरा। उ.—श्रीफल मधुर, चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा, अरुन खुबानी—१०-२११।

चिउली—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) महुए की जाति का एक जंगली पेड़। (२) एक रेशमी कपड़ा।

संज्ञा स्त्री. [स. चिपिट, प्रा. चिविड, चिविल] चिकनी सुपारी।

चिक—संज्ञा स्त्री. [तु. चिक़] (१) बाँस आदि की तीलियों का परदा। (२) कसाई।

संज्ञा स्त्री. [देश.] कमर की चिलक या झटका।

चिकट, चिकटा—वि. [सं. चिक्लिद] (१) मैला कुचैला, गंदा। (२) लसीला या चिपचिपा।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक रेशमी कपड़ा।

चिकटना—क्रि. अ. [हिं. चिकट] मैल से चिपकना।

चिकन—संज्ञा पुं. [फा.] एक महीन कपड़ा।

चिकना—वि. [सं. चिक्कण] (१) जो खुरदुरा या ऊबड़ खाबड़ न हो। (२) जिस पर हाथ-पैर फिसलें।

मुहा.—चिकना देखकर फिसल पड़ना—ऊपरी धन रूप की चमक-दमक पर लुभा जाना।

(३) जो रूखा-सूखा न हो, स्निग्ध।

मुहा.-चिकना घड़ा—निर्लज्ज या बेहया। चिकने घड़े पर पानी पड़ना (न ठहरना)—अच्छी बात या उपदेश का कुछ असर न होना।

(४) साफ सुथरा, सजा सजाया।

मुहा.—चिकना चुपड़ा—बना-ठना, छैला। चुपड़ी (बातें)-बनावटी स्नेह की मीठी मीठी बातें जो फुसलाने या धोखा देने के लिए की जायँ। चिकना मुँह—(१) सजा-सजाया। (२) धन या पदवाला। चिकने मुँह का ठग—वह धूर्त जो देखने में भला जान पड़े। चिकने मुँह को चूमना—धनी मानी का आदर करना।

(५) चिकनी चुपड़ी या मीठी-मीठी बातें कहने वाला। (६) स्नेही, प्रेमी।

संज्ञा पुं०—तेल घी आदि चिकने पदार्थ।

चिकनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिकना+ई (प्रत्य.)] (१) चिकनाहट। उ.—चित महिं और कपट अंतर-गति ज्यौं फल, नीर खीर चिकनाई—३३१०। (२) सरसता। (३) घी तेल जैसे चिकने पदार्थ।

चिकनाना—क्रि. स. [हिं. चिकना+ना (प्रत्य.)] (१) चिकना करना। (२) तेल आदि लगाना। (३) साफ सुथरा करना, सँवारना।

क्रि. अ.—(१) चिकना होना। (२) तेल आदि लगा होना। (३) मोटा-ताजा होना। (४) स्नेह-पूर्ण या प्रेमयुक्त होना।

चिकनापन—संज्ञा पुं [हिं चिकना+पन (प्रत्य.)] चिकनाई, चिकनाहट।

चिकनावट, चिकनाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिकना+वट, हट (प्रत्य)] चिकनाई, चिकनापन।

चिकनियाँ, चिकनिया—वि. [हिं. चिकना] बना-ठना, छैल-छबीला, शौकीन। उ.—(क) सब हीं ब्रज के लोग चिकनियाँ मेरे भाएँ घास। (ख) बहुरि

गोकुल काहे को आवत भावत नवजोबनियाँ। सूरदास प्रभु वाके बस परि अब हरि भये चिकनियाँ—२८७।

चिकनी—वि स्त्री. [हिं चिकना] (१) साफ सुथरी। (२) बनी ठनी। (३) जिस पर हाथ पैर फिसले। (४) जिसमें तेल लगा हो।

चिकरना—क्रि. अ. [सं. चीत्कार प्रा. चीक्कार, चिक्कार] जोर से चीखना, चिल्लाना।

चिकवा—संज्ञा पुं. [देश.] एक रेशमी, कपड़ा।

चिकार—संज्ञा पुं. [सं. चीत्कार, प्रा. चिक्कार] चीत्कार, चिल्लाहट। उ.—(क) मरत असुर चिकार पार्‍यौ मार्‍यौ नंदकुमार। (ख) गर्जनि पवन निसान संख इव गय दींग चिकार—१० उ. २।

चिकारना—क्रि. अ. [हिं. चिकार] चिल्लाना।

चिकारा—संज्ञा पुं [हिं. चिकार] (१) सारंगी की तरह का एक बाजा। (२) एक जंगली जानवर।

चिकित्सक—संज्ञा पुं. [सं] रोग दूर करने का उपाय करनेवाला, वैद्य।

चिकित्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रोग दूर करने की युक्ति या क्रिया। (२) वैद्य का व्यवसाय या कार्य।

चिकित्सालय—संज्ञा पु. [सं. चिकित्सा + आलय] वैद्य के बैठने का स्थान, दवाखाना, अस्पताल।

चिक्किल—संज्ञा पुं [सं.] कीचड़, पंक।

चिकुटी—संज्ञा स्त्री. [हि. चिकोटी] चुटकी।

चिकुर, चिकूर—संज्ञा पु. [सं.] (१) सिर के बाल, केश। (२) पर्वत। (३) रेंगने वाले जतु, सरीसृप। वि.—चंचल, चपल।

चिकोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं चुटकी] चुटकी।

चिक्कट—संज्ञा पुं [हिं चिकना + काट] मैल, कीट।

चिक्कण, चिक्कन—वि [सं.] चिकना। संज्ञा पु.—(१) सुपारी। (२) हड़, हर्रे।

चिक्करना—क्रि. अ. [सं. चीत्कार] चिल्लाना।

चिक्कार—संज्ञा पु. [हिं. चिकार] चीत्कार।

चिखना—संज्ञा पु [हिं. चखना] चटपटी चाट।

चिखुरन—संज्ञा-स्त्री.खेत जोतने पर निकाली हुई घास।

चिखुरना—क्रि. स.-खेत जोतते समय घास निकालना।

चिखुराई—संज्ञा स्त्री.—चिखुरने की क्रिया या मजदूरी।

चिखुरी—संज्ञा स्त्री—गिलहरी नामक जंतु।

चिखौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चीखना] (१) चखने की क्रिया। (२) स्वाद लेने की वस्तु।

चिचान—संज्ञा पुं. [सं. सचान] बाज पक्षी।

चिचाना, चिचावना—क्रि. अ. [अनु. चीचीं] चिल्लाना।

चिचिंगा, चिचिंड, चिचिंडा, चिचिंडी, चिचेंडा—संज्ञा पु. [सं. चिचिंड] एक बेल जिसके फलों की तरकारी होती है। उ.—चनकौरा पिंडीक चिचिंडी। सीप सिंडारू कोमल भिंडी—३६६।

चिचियाना—क्रि. अ. [अनु. चींची] चिल्लाना।

चिचियाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिचियाना] चिल्लाहट।

चिचोड़ना, चिचोरना—क्रि. स. [हिं. चिचोड़ना] खूब दबाकर चूसना।

चिजारा—संज्ञा पुं.—राज, कारीगर, मेमार।

चिट—संज्ञा स्त्री.[हिं.चीड़ना या सं.चीर] (१) कपड़े-कागज आदि का छोटा टुकड़ा। (२) पुरजा, रुक्का।

चिटकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) सूखने पर जगह जगह फटना या दरकना। (२) चिढ़ना, चिड़चिड़ाना।

चिटका—संज्ञा पुं. [हिं. चिता] चिता।

चिट्टा—वि. [सं. सित, प्रा. सित्त] सफेद, धवल। संज्ञा पुं.—(चमचमाता हुआ) रुपया। संज्ञा पुं.—झूठा बढ़ावा देना।

चिट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. चिट] (१) जमा-खर्च या लेनदेन की बही, खाता या लेखा। (२) लाभ हानि का लेखा। (३) सूची। (४) प्रति सप्ताह या मास की मजदूरी में बटनेवाला धन। (५) ब्योरा।

मुहा.—कच्चा चिट्ठा—पूरा पूरा और ठीक ठीक भेद। कच्चा चिट्ठा खोलना—भेद को ब्योरे के साथ प्रकट करना।

चिट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिट] (१) पत्र, खत। (२) लिखा हुआ छोटा पुरजा। (३) आज्ञा पत्र (४) निमंत्रण पत्र।

चिट्ठीपत्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिट्ठी+पत्री] (१) पत्र, खत। (२) पत्र व्यवहार, खत-किताबत।

चिठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिट, चिट्ठा] (१) चिट्ठा। (२) हिसाब का कागज। (३) नाम की सूची।

चिड़चिड़ाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. चिड़चिड़ाना + हट] चिढ़ने या चिड़चिड़ाने का भाव ।

चिड़वा—संज्ञा पुं. [सं. चिपिट] चिउड़ा, चूरा ।

चिड़ा—संज्ञा पुं. [स. चटक] नर गौरैया ।

चिड़िया—संज्ञा स्त्री. [स. चटक, हि. चिड़ा] पक्षी ।

मुहा.—चिड़िया का दूध—अप्राप्य वस्तु । चिड़िया चोंथन (नोचन)-चारों तरफ का तकाजा या झंझट । चिड़िया फँसना—किसी मालदार को अपने पक्ष में करना । सोने की चिड़िया—(१) धनी असामी । (२) सुंदर या प्रिय पात्र ।

चिड़िहार, चिड़िमार—संज्ञा पुं. [हिं. चिड़िया + मार (प्रत्य.)=मारना] चिड़ियाँ पकड़नेवाला, बहेलिया ।

चिढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिड़चिड़ाना] कुढ़न, खीझ ।

मुहा.—चिढ़ निकालना (पकड़ना)—कुढ़ाना, खिझाना, चिढ़ाने की बात पकड़ना ।

चिढ़ना—क्रि. अ. [हि. चिड़चिड़ाना] (१) कुढ़ना, खीझना, झल्लाना । (२) बुरा मानना ।

चिढ़ाना—क्रि. स. [हिं चिढ़ना] (१) खिझाना, कुढ़ाना । (२) खिझाने के लिए भद्दी नकल बनाना । (३) लज्जित करने के लिए हँसी उड़ाना ।

चित्—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) चेतना ।(२) चित्तवृत्ति ।

निश्चयवाचक—संज्ञा पुं—(१) चीननेवाला । (२) अग्नि

प्रत्य.—एक निश्चयवाचक प्रत्यय ।

चित—वि. [सं.] (१)एकत्र । (२) ढका हुआ ।

संज्ञा पुं [सं. चित्त] मन, जी, अंतःकरण ।

मुहा.—चित उचटना—जी न लगना । चित करना—इच्छा होना । चित कीन्हौ—इच्छा हुई । उ—द्वादश बन अवलोक मधुपुरी तीरथ कौं चित कीन्हौ—सारा. ८२७ । चित चढ़ना—ध्यान रहना, याद आना । चित चुराना—मन हरना । चित चोरै—मन हरता या मोहित करता है । उ.—रमकत झमकत जनकसुता सँग हाव-भाव चित चोरै—सारा. ३१० । चितहिं चुरावति — मन हरती है । उ.—नैन सैन दै चितहिं चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि । चित देना—ध्यान देना, मन लगाना । चित दै—ध्यान देकर । उ.—(क) चित दै सुनौ हमारी बात । (ख) बिनती सुनौ दीन की चित दै कैसै तुव गुन गावै—१-४२ । चित धरना—(१) मन लगाना । (२) मन में लाना । चित धार (सुनौ)—ध्यान से (सुनो) । उ.—कहौं सो कथा सुनौ चित धार । चित न धरौ—ध्यान मत दो, मन में न लाओ । उ.—हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ—१-२२० । चित धरि राखे—स्मरण रखे, ध्यान में रखे । उ—जब वह विप्र पढ़ावै कुछ कुछ सुन कै चित धरि राखै—सारा. ११० । चित पर चढ़ना—(१) बार बार ध्यान में आना । (२) याद होना । चित बँटना—ध्यान इधर उधर होना । चित बँटाना—ध्यान एक ओर न रहने देना । चित में बैठना—जी में पैठ जाना, मन में दृढ़ होना । चित बैठ्यौ—हृदय में (यह विचार) दृढ़ हो गया है । उ.—अब हमरे चित बैठ्यौ यह पद होनी होउ सो होउ । चित मे आना (होना, में होना)—इच्छा होना, जी चाहना । चित में आई—इच्छा हुई, जी चाहा । उ.—खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार—सारा. ५ । चित होत—इच्छा होती है । उ.—यह चित होत जाउँ मैं अबही यहाँ नहीं मन लागत । चित न रहना—जी उचाट होना । चित न रहै—जी घबराता है, मन नहीं लगता । उ.—तब ही तें व्याकुल भइ डोलति चित न रहै कितनौं समझाऊँ—१६५४ । चित लगना—(१) जी न घबराना । (२) ध्यान बना रहना । चित लाग्यौ—ध्यान बना रहता है । उ.—(क) गुरु दच्छिना देन जब लागे गुरुपत्नी यह माँग्यौ । बालक बहेउ सिंधु मे हमरो सो नित प्रति चित लाग्यौ—सारा. ५३६ । (ख) उफनत तक चहूँ दिसि चितवति चित लाग्यौ नँदलालहिं—११८१ । चित लेना—जी चाहना । चित से उतरना-(१) भूल जाना । (२) प्रेम या आदर का पात्र न रहना । चित से नहिं उतरत—ध्यान नहीं भूलता, याद बनी रहती है । उ.—सूर स्याम चित तें नहिं उतरत वह बन कुंज थली । चित से न टलना—न भूलना । चित तें टरत नहिं—ध्यान से नहीं हटती, कभी भूलती

नहीं, बराबर याद आती है। उ.—सूर चित तैं टरत नाहीं राधिका की प्रीति।

संज्ञा पुं. [हिं चितवन] दृष्टि, नजर।

वि. [सं चित=ढेर किया हुआ] पीठ के बल गिरा या पड़ा हुआ।

मुहा —चित करना—कुश्ती में हराना। चारो खाने चित—(१) हाथ पैर फैलाये पीठ के बल गिरा हुआ। (२) हक्का बक्का। चित होना—बेहोश होना।

क्रि. वि.—पीठ के बल।

चितई—क्रि. स. [स. चेतना, हिं. चितवना] देखा, ताका, निहारा। उ.—देखी जाइ मथति दधि ठाढ़ी, आपु लगे खेलन द्वारे पर। फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुएँ सूनें घर—१०-३०१।

चितउन—संज्ञा पुं [सं. चितवन] दृष्टि।

चितउर—संज्ञा पु. [हिं चित्तौर] चित्तौर नगर।

चितए—क्रि स. [हिं. चितवना] देखे, देखने लगे। उ.—(क) सूर रघुराइ चिते हनुमान दिसि, आइ तिन तुरत ही सीस नायौ—६-१०६। (ख) देखत नारि चित्र सी ठाढ़ी चितए कुँअर कन्हाइ—२५३३।

चितकबरा—वि. [सं. चित्र+कर्बुर] दाग-धब्बीला।

चितकूट—संज्ञा पु. [सं. चित्रकूट] एक प्रसिद्ध पर्वत।

चितगुपति—संज्ञा पु. [सं. चित्रगुप्त] एक यमराज जो पाप-पुण्य का लेखा रखते हैं।

चितचिता, चितचेता—वि. [हिं. चित्त+चीता] मनचाहा, इच्छित, अभिलषित।

चितचोर—संज्ञा पु. [हिं. चित+चोर] मन-भावना, प्रिय पात्र। उ.—सूरदास चातक भईं गोपी कहाँ गए चितचोर—३०८४।

चितभंग—संज्ञा पुं. [सं. चित+भंग] (१) ध्यान न लगना, उदासी। उ—(क) कमल खंजन मीन मधुकर होत है चितभग। (ख) मेरौ मन हरि चितवन अरुझानौ।... । सूरदास चितभंग होत क्यों जो जिहिं रूप समानौ—२२८१। (२) होश ठिकाने न रहना, भौचक्कापन, मतिभ्रम।

चितयौ—क्रि. स. [चेतना] देखा, दृष्टि डाली।

चितरन—संज्ञा पुं [हिं. चितरना] चित्रित करना।

चितरनहार—संज्ञा पुं. [हिं. चितरना+हार (प्रत्य.)] चित्रण करनेवाला।

चितरना—क्रि. स. [सं. चित्र] चित्रित करना।

चितला—वि. [सं. चित्रल] चितकबरा, रंग-बिरंगा।

चितवत—क्रि स. [हिं. चेतना] देखता (है), अवलोक कर, देखते देखते। उ.—(क) सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यौं अंजुलि पानी—१-१४६। (ख) ज्यों चितवत ससि ओर चकोरी, देखत ही सुख मान—१-१६६।

चितवति—क्रि. स. [हिं. चितवना] देखती है, ताकती है। उ.—कधनि बाँह धरे चितवति—२५३५।

चितवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेतना] ताकने का भाव या ढंग, दृष्टि, कटाक्ष। उ.—(क) चितवन रोके हूँ न रही—१२७०। (ख) मेरौ मन हरि चितवन अरुझानौ—२२८५।

मुहा —चितवन चढ़ाना—क्रोध से घूरना।

क्रि. स.—देखना, निहारना।

प्र.—चितवन देत—देखने देना, निगाह डालने देना। उ —नाहिं चितवन देत सुत तिय नाम नौका ओर—१-६६।

चितवना—क्रि. स. [हिं. चेतना] देखना, ताकना।

चितवनि, चितवनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. चितवन] देखने का ढग, दृष्टि, कटाक्ष। उ.—(क) अंजन रंजित नैन चितवनि चित चोरै, मुख सोभा पर वारौं अमित असम-सर—१०-१५१। (ख) बाल सुभाव बिलोल बिलोचन,चोरतिचितहिंचारु चितवनियाँ—१०-१०६।

चितवाना—क्रि. स. [हिं. चितवना का प्रे.] दिखाना।

चितवै—क्रि. स. [हिं. चितवना] देखता है, दृष्टि डालता है। उ.—चितवै कहा पानि-पल्लव पुट, प्रान प्रहारौ तेरो—६-१३२।

चितवौं—क्रि. स. [हिं. चेतना, चितवना] देखता हूँ, ताकता हूँ, अवलोकता हूँ। उ.—हौं पतित अपराध पूरन, भरयौ कर्म-विकार। काम-क्रोध अरु लोभ चितवौं, नाथ तुमहिं बिसार—१-१२६।

चिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शव-दाह के लिए बिछायी गयी लकड़ियों का ढेर। (२) श्मशान, मरघट।

चिताना—क्रि. स. [हिं. चेतना] (१) सचेत या सावधान करना, होशियार करना। (२) याद या सुध दिलाना। (३) ज्ञानोपदेश करना। (४) (आग) सुलगाना या जलाना।

चिताभूमि—संज्ञा स्त्री [सं.] श्मशान।

चितारी—संज्ञा पुं. [हिं. चितेरा] चित्र बनानेवाला।

चितावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं चिताना] सतर्क, सावधान, या होशियार करने की क्रिया।

चिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चिता। (२) समूह। (३) चुनने की क्रिया चुनाई। (४) ईंटों की जुड़ाई।

चितिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] करधनी, मेखला।

चिती—संज्ञा स्त्री [हिं. चित्ती या चित=पीठ के बल पड़ा हुआ] वह कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी होती है और जो फेंकने पर चित अधिक पड़ती है। उ.—अंतर्यामी वहौ न जानत जो मो उरहिं बिती। ज्यों जुआरि रस बींधि हारि गथ सोचत पटकि चिती—१० उ.-२०३।

चितु—संज्ञा पुं. [सं. चित्त] मन, जी, दिल।

चितेरा—संज्ञा पु. [स चित्रकार] चित्र बनानेवाला।

चितेरिन, चितेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चितेरा] (१) चित्र बनानेवाली। (२) चित्रकार की स्त्री।

चितेरे, चितेरैं, चितेला—संज्ञा पुं.[हिं चितेरा]चित्रकार। उ.—(क) राधा ये ढंग हैं री तेरे। वैसे हाल मथत दधि कीन्हे, हरि मनु लिखे चितेरे—७१८। (ख) चकित भई देखि ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरैं लिखि लिखि काढ़ी—३६१।

चितै—क्रि. स. [हिं. चेतना, चितवना] (१) देखकर, दृष्टि डाल कर। उ.—(क) नैकु चितै, मुसक्याइ कै, सबकौ मन हरि लीन्हौ (हो)—१-४४। (ख) चितै रघुनाथ वदन की ओर—९-२३। (ग) अति कोमल तन चितै स्याम कौ बार बार पछितात—१०-८१। (२) सोच-समझकर, विचार करके। उ.—चिंता मानि, चितै अंतरगति, नाग-लोक कौं धाए—१-२६। (३) ध्यान या स्मरण करके। उ.—तव संकर तप को निकसे चितै कमलदल नैन—सारा. ६६।

चितैबो—संज्ञा स्त्री. [हिं. चितवना] देखना, ताकना, निहारना, दृष्टि मिलाना। उ.—चितैबौ छाँड़ि दै री राधा। हिल-मिल खेलि स्यामसुंदर सौं, करति काम कौ बाधा—८२०।

चितौन—संज्ञा स्त्री. [हिं. चितवन] दृष्टि, कटाक्ष।

चितौना—क्रि. स. [हिं. चितवना] देखना, ताकना।

चितौनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. चितवन] दृष्टि, कटाक्ष।

चितौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेतावनी] सावधान करने या चिताने की क्रिया।

चित्कार—संज्ञा पुं [हिं. चीत्कार] चिल्लाहट।

चित्त संज्ञा पुं [सं] (१) अंतःकरण का एक भेद या वृत्ति। (२) वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि की जाती है, जी, मन।

मुहा.—चित्त उचटना—जी न लगना। चित्त करना—जी चाहना। चित्त चढ़ना (पर चढ़ना)—(१) मन में बसना। (२) याद पड़ना। चित्त चुराना—मन मोहना। चित्त चुराइ—मुग्ध करके, मोहित करके, आकर्षित करके। उ.—हरे खल-बल दनुज-मानव सुरनि सीस चढ़ाइ। रवि-बिरंचि मुख-भौंह-छबि, लै चलति चित्त चुराइ—१-५६। चित्त चोराए-मन हर लिया। उ.--सूर नगर नर नारि के मन चित्त चोराए—२५६५। चित्त देना—गौर करना, ध्यान देना। चित्त धरना—(१) ध्यान देना। (२) मन में लाना। चित्त बँटना—ध्यान इधर उधर होना। चित्त बँटाना—ध्यान इधर-उधर करना। चित्त में धँसना (जमना, बैठना)—मन में दृढ़ होना। चित्त होना (में होना)—जी चाहना। चित्त लगना—(१) जी न ऊबना। (२) प्रेम होना। चित्त से उतरना—(१) भूल जाना। (२) प्रेम या आदर का पात्र न रहना। चित्त से न टलना—बराबर ध्यान बना रहना।

चित्तज, चित्तभू—संज्ञा पुं.[स.] कामदेव।

चित्तरसारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चित्रशाला] चित्रसाला।

चित्तवान—वि. [स.] उदार चित्तवाला।

चित्त विक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] चित्त की चंचलता।

चित्तविद्—संज्ञा पुं. [सं.] चित्त की बात जाननेवाला।

चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्त की गति या अवस्था।

चित्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ख्याति। (२) कर्म।

चित्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. चित्र, प्रा. चित्त] (१) छोटा दाग या धब्बा। (२) लाल की मादा। (३) चित्तीदार साँप, चीतल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चित=पीठ के बल पड़ा हुआ] कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी हो, टैयाँ।

चित्तौर—संज्ञा पुं. [सं. चित्रकूट, प्रा. चित्तऊड़, चितउड़] एक प्राचीन नगर जो उदयपुरी महाराणाओं की राजधानी थी।

चित्य—वि. [सं.] (१) चुनने लायक।(२) चिता संबंधी। संज्ञा पुं.—(१) चिता। (२) अग्नि।

चित्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंदन अथवा अन्य किसी सुगंधित पदार्थ या भस्म से माथे, छाती या बाहु आदि अंगों पर बनाये हुए चिह्न। उ.—गुहि गुंजा घसि बनधुत्रा, अंगनि चित्र ठए—१०-२४। (२) विविध रंगों के मेल से बनायी हुई आकृतियाँ, तसवीर। (३) काव्य का एक अंग जिसमें व्यंग्य की प्रधानता रहती है। (४) एक अलंकार जिसमें पदों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि रथ, कमल आदि के आकार बन जायँ। (५) एक वर्णवृत्त। (६) आकाश। (७) चित्रगुप्त।

वि.—(१) अद्‌भुत, विचित्र। (२) चितकबरा, रंगबिरंगा। (३) अनेक प्रकार का।

वि. [सं.] चित्र के समान ठीक, दुरुस्त।

चित्रकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कबूतर, परेवा, कपोत।

चित्रक—संज्ञा पु [सं.] (१) तिलक। (२) चीते का पेड़। (३)चीता,बाघ।(४) बलवान। (५)चित्रकार।

चित्रकर—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र बनानेवाला।

चित्रकर्मी—संज्ञा पु. [सं. चित्रकर्मिन्] (१) चित्र बनानेवाला। (२) विचित्र या अद्‌भुत कार्य करनेवाला।

चित्रकला—संज्ञा स्त्री [सं.] चित्र बनाने की विद्या।

चित्रकाय—संज्ञा पुं. [सं.] चीता।

चित्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र बनानेवाला, चितेरा।

चित्रकारि, चित्रकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चित्रकार+ई (प्रत्य.)] (१) चित्र, चित्र बनाने की कला। उ.—ऐसे रहैं नर नारि बिना भीति चित्रकारि काहे को देखें मैं कान्ह कहा कहौ सखिए—१२७३। (२) चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पु. [सं.] काव्य का एक ढंग जिसमें अक्षरों को ऐसे क्रम से रखते हैं कि कमल, रथ आदि के चित्र बन जायँ।

चित्रकूट—संज्ञा पुं [सं.] (१) बाँदा जिले का एक पर्वत जहाँ वनवास-काल में राम-सीता ने बहुत समय तक वास किया था। (२) हिमालय का एक शृंग।

चित्रकेतु—संज्ञा पुं [सं] (१) एक राजा जिसके पुत्र को उनकी छोटी रानियों ने जहर देकर मार डाला और पुत्रशोक से जिसे दुखी देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था। (२) वह जो चित्रित पताका लिये हो। (३) लक्ष्मण का एक पुत्र।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं. [सं.] चौदह यमराजों में एक जो प्राणियों के पाप-पुण्य का लेखा रखते हैं।

चित्रण—संज्ञा पु. [सं.] चित्र या दृश्य अंकित करना, चित्रित करने की क्रिया।

चित्रना—क्रि. स. [सं. चित्र+ना (प्रत्य)] (१) चित्रित करना, चित्र बनाना। (२) रंग भरना।

चित्रपट—संज्ञा पु. [सं] (१) चित्र बनाने का कपड़ा, कागज आदि आधार। (२) वह वस्त्र जिस पर चित्र बने हों।

चित्रपटी—संज्ञा स्त्री. [सं चित्रपट] छोटा चित्रपट।

चित्रपत्र—संज्ञा पु [सं.] आँख की पुतली का पिछला भाग जिसपर प्रकाश की किरणें पड़ने पर पदार्थों के रूप दिखायी देते हैं।

वि.—रंग बिरंगे या विचित्र पत्तवाला।

चित्रपदा—संज्ञा पु [सं.] (१) एक छंद। (२) मैना, सारिका। (३) छुईमुई की लता।

चित्रपिच्छक—संज्ञा पु [सं.] मयूर, मोर।

चित्रपुंख—संज्ञा पुं. [सं.] बाण, तीर।

चित्रमति—वि. [सं. चित्र+मति] अद्‌भुत बुद्धिवाला।

चित्ररथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य । (२) एक गंधर्व ।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाणासुर की कन्या ऊषा की सहेली जो चित्रकला में बहुत निपुण थी । उ.—कुँअर तन स्याम मानो काम है दूसरो सपन में देखि ऊषा लोभाई । चित्ररेखा सकल जगत के नृपन की छिन में मुरति तब लिखि देखाई—१०-उ. ३४ ।

चित्रल—वि. [सं.] चितकबरा, रंगबिरंगा ।

चित्रलिखन—संज्ञा पु. [सं.] (१) सुंदर लिखावट । (२) चित्र बनाने का कार्य ।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की कूची ।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वर्णवृत्त । (२) बाणासुर की कन्या ऊषा की सखी । (३) एक अप्सरा । (४) चित्र बनाने की कूँची ।

चित्रविचित्र—वि. [सं.] (१) रंगबिरंगा । (२) बेल-बूटे या नक्काशीदार ।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की कला ।

चित्रशाला, चित्रसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. चित्र+शाला] (१) चित्र बनने बिकने का स्थान । (२) चित्रों के संग्रह का स्थान । (३) चित्रकला सिखाने का स्थान ।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह स्थान जहाँ चित्रों का संग्रह हो अथवा दीवालों पर चित्र बने हों । (२) सजा हुआ भवन, विलास भवन, रंगमहल । उ.—कबहुँक रत्न महल चित्रसारी सरद निसा उजियारी । बैठे जनकसुता सँग विलसत मधुर केलि मनुहारी—सारा. ३१२ ।

चित्रसेन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धृतराष्ट्र का एक पुत्र । (२) एक गंधर्व । (३) परीक्षित का एक पुत्र ।

चित्रस्थ—वि. [सं.] (१) चित्र में अंकित किया हुआ । (२) चित्र से अंकित व्यक्ति या पात्र के समान ।

चित्रांग—संज्ञा पुं [सं.] जिसके अंग पर चित्तियाँ हों ।

चित्रांगद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सत्यवती और शांतनु का एक पुत्र । (२) एक गंधर्व ।

चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्रवाहन की कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी । (२) रावण की एक पत्नी ।

चित्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नक्षत्र । (२) खीरा-ककड़ी । (३) एक नदी । (४) एक अप्सरा । (५) एक रागिनी । (६) एक वर्णवृत्ति । (७) एक बाजा ।

चित्राक्ष—वि. [सं.] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला ।

चित्राधार—संज्ञा पुं [सं.] चित्र-संग्रह । चित्रपट ।

चित्रित—वि. [सं. चित्र] (१) चित्रयुक्त, जिस पर चित्र बने हों । उ.—चित्रित बाँह, पहुँचिया पहुँचे, साथ मुरलिया बाजै—४५१ । (२) चित्र द्वारा दिखाया हुआ । (३) सांगोपांग वर्णन से युक्त । (४) जिसपर चित्तियाँ पड़ी हों ।

चित्रे—क्रि. स. [सं. चित्र] चित्र बनाये, चित्रित किये । उ.—बेनी लसति कहौं छबि ऐसी महलन चित्रे उर्ग—२५६२ ।

चित्रेश—संज्ञा पुं. [सं.] चित्रा नक्षत्र का पति चंद्र ।

चित्रोक्ति—संज्ञा स्त्री [सं. चित्र + उक्ति] वह बात जो अलंकृत भाषा में कही जाय ।

चित्रोत्तर—संज्ञा पुं. [सं.] एक अलंकार जिसमें प्रश्न में ही उत्तर हो अथवा कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो ।

चिथड़ा—संज्ञा पु. [सं. चीर्ण] फटा-पुराना कपड़ा ।

चिथाड़ना—क्रि. स. [हिं चिथड़ा] (१) चीरना-फाड़ना । (२) लज्जित करना, नीचा दिखाना ।

चिदात्मा—संज्ञा पुं. [सं.] चैतन्यस्वरूप ब्रह्म ।

चिदानंद—संज्ञा पु [सं.] चैतन्य आनंदमय ब्रह्म ।

चिदाभास—संज्ञा पुं [सं] हृदय पर ब्रह्म का आभास ।

चिद्रूप—संज्ञा पुं [सं.] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म ।

चिद्विलास—संज्ञा पु [सं.] (१) चैतन्यस्वरूप ब्रह्म की माया । (२) शंकराचार्य का एक शिष्य ।

चिनक, चिनग—संज्ञा पुं. [हिं. चिनगी] जलन, पीड़ा।

चिनगारी, चिनगी—संज्ञा स्त्री. [सं. चूर्ण हिं. चुन + अंगार] (१) दहकते कोयले का टुकड़ा । (२) दहकती आग से उड़नेवाले कण ।

मुहा०—आँख से चिनगारी छूटना—क्रोध से आँख लाल होना । चिनगारी छोड़ना (डालना)—झगड़ेवाली बात करना ।

चिनना—क्रि. अ. [हिं. चुनना] दीवार खड़ी करना ।

चिनाना—क्रि. स. [हिं. चुनाना] (१) चिनवाना । (२) ईंट आदि की जोड़ाई करना ।

चिनाब—संज्ञा पुं. [सं. चंद्रभाग] पंजाब की एक नदी

चित्तविद्—संज्ञा पुं [सं.] चित्त की बात जाननेवाला।
चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्त की गति या अवस्था।
चित्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ख्याति। (२) कर्म।
चित्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. चित्र, प्रा. चित्त] (१) छोटा दाग या धब्बा। (२) लाल की मादा। (३) चित्तीदार साँप, चीतल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चित=पीठ के बल पड़ा हुआ] कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी हो, टैयाँ।

चित्तौर—संज्ञा पुं. [सं. चित्रकूट, प्रा. चित्तऊड़, चित-उड़] एक प्राचीन नगर जो उदयपुरी महाराणाओं की राजधानी थी।
चित्य—वि. [सं.] (१) चुनने लायक।(२) चिता संबंधी।
संज्ञा पुं.—(१) चिता। (२) अग्नि।

चित्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) चदन अथवा अन्य किसी सुगंधित पदार्थ या भस्म से माथे, छाती या बाहु आदि अगों पर बनाये हुए चिह्न। उ—गुहि गुंजा घसि बनमुद्रा, अंगनि चित्र ठए—१०-२४। (२) विविध रंगों के मेल से बनायी हुई आकृतियाँ, तसवीर। (३) काव्य का एक अंग जिसमें व्यंग्य की प्रधानता रहती है। (४) एक अलंकार जिसमें पदों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि रथ, कमल आदि के आकार बन जायँ। (५) एक वर्णवृत्त। (६) आकाश। (७) चित्रगुप्त।

वि.—(१) अद्भुत, विचित्र। (२) चितकबरा, रंगबिरंगा। (३) अनेक प्रकार का।

वि. [सं.] चित्र के समान ठीक, दुरुस्त।

चित्रकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कबूतर, परेवा, कपोत।
चित्रक—संज्ञा पु. [सं.] (१) तिलक। (२) चीते का पेड़। (३)चीता,बाघ। (४) बलवान। (५)चित्रकार।
चित्रकर—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र बनानेवाला।
चित्रकर्मी—संज्ञा पु. [सं. चित्रकर्मिन्] (१) चित्र बनानेवाला। (२) विचित्र या अद्भुत कार्य करनेवाला।
चित्रकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की विद्या।
चित्रकाय—संज्ञा पुं. [सं.] चीता।
चित्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र बनानेवाला, चितेरा।
चित्रकारि, चित्रकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चित्रकार+ई (प्रत्य.)] (१) चित्र, चित्र बनाने की कला। उ.—ऐसे कहूँ नर नारि बिना भीति चित्रकारि काहे को देखें मैं कान्ह कहा कहौ सहिए—१२७३। (२) चित्र बनाने का व्यवसाय।
चित्रकाव्य—संज्ञा पुं [सं.] काव्य का एक ढंग जिसमें अक्षरों को ऐसे क्रम से रखते हैं कि कमल, रथ आदि के चित्र बन जायँ।
चित्रकूट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँदा जिले का एक पर्वत जहाँ वनवास-काल में राम-सीता ने बहुत समय तक वास किया था। (२) हिमालय का एक शृंग।
चित्रकेतु—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक राजा जिसके पुत्र को उसकी छोटी रानियों ने जहर देकर मार डाला और पुत्रशोक से जिसे दुखी देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था। (२) वह जो चित्रित पताका लिये हो। (३) लक्ष्मण का एक पुत्र।
चित्रगुप्त—संज्ञा पुं. [सं.] चौदह यमराजों में एक जो प्राणियों के पाप-पुण्य का लेखा रखते हैं।
चित्रण—संज्ञा पु. [सं.] चित्र या दृश्य अंकित करना, चित्रित करने की क्रिया।
चित्रना—क्रि. स [सं. चित्र+ना (प्रत्य)] (१) चित्रित करना, चित्र बनाना। (२) रंग भरना।
चित्रपट—संज्ञा पु. [सं] (१) चित्र बनाने का कपड़ा, कागज आदि आधार। (२) वह वस्त्र जिस पर चित्र बने हों।
चित्रपटी—संज्ञा स्त्री. [सं चित्रपट] छोटा चित्रपट।
चित्रपत्र—संज्ञा पु [सं.] आँख की पुतली का पिछला भाग जिसपर प्रकाश की किरणें पड़ने पर पदार्थों के रूप दिखायी देते हैं।

वि—रंग बिरंगे या विचित्र पत्तवाला।

चित्रपदा—संज्ञा पु. [सं.] (१) एक छंद। (२) मैना, सारिका। (३) छुईमुई की लता।
चित्रपिच्छक—संज्ञा पुं. [सं.] मयूर, मोर।
चित्रपुंख—संज्ञा पुं. [सं.] बाण, तीर।
चित्रमति—वि. [सं. चित्र+मति] अद्भुत बुद्धिवाला।

चित्ररथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) एक गंधर्व।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाणासुर की कन्या ऊषा की सहेली जो चित्रकला में बहुत निपुण थी। उ.—कुँअर तन स्याम मानो काम है दूसरो सपन में देखि ऊषा लोभाई। चित्ररेखा सकल जगत के नृपन की छिन में मुरति तब लिखि देखाई—१०-उ. ३४।

चित्रल—वि. [सं.] चितकबरा, रंगबिरंगा।

चित्रलिखन—संज्ञा पु [सं.] (१) सुंदर लिखावट। (२) चित्र बनाने का कार्य।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री. [स.] चित्र बनाने की कूची।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वर्णवृत्त। (२) बाणासुर की कन्या ऊषा की सखी। (३) एक अप्सरा। (४) चित्र बनाने की कूँची।

चित्रविचित्र—वि. [सं] (१) रंगबिरंगा। (२) बेल-बूटे या नक्काशीदार।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की कला।

चित्रशाला, चित्रसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. चित्र+शाला] (१) चित्र बनने बिकने का स्थान। (२) चित्रों के सग्रह का स्थान। (३) चित्रकला सिखाने का स्थान।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री. [स] (१) वह स्थान जहाँ चित्रों का संग्रह हो अथवा दीवालों पर चित्र बने हों। (२) सजा हुआ भवन, विलास भवन, रंगमहल। उ.—कबहुँक रत्न महल चित्रसारी सरद निसा उजियारी। बैठे जनकसुता सँग विलसत मधुर केलि मनुहारी—सारा. ३१२।

चित्रसेन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (२) एक गधर्व। (३) परीक्षित का एक पुत्र।

चित्रस्थ—वि [स] (१) चित्र में अंकित किया हुआ। (२) चित्र में अकित व्यक्ति या पात्र के समान।

चित्रांग—संज्ञा पुं. [सं.] जिसके अग पर चित्तियाँ हों।

चित्रांगद—संज्ञा पु. [सं.] (१) सत्यवती और शांतनु का एक पुत्र। (२) एक गधर्व।

चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्रवाहन की कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी। (२) रावण की एक पत्नी।

चित्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नक्षत्र। (२) खीरा-ककड़ी। (३) एक नदी। (४) एक अप्सरा। (५) एक रागिनी। (६) एक वर्णवृत्ति। (७) एक बाजा।

चित्राक्ष—वि. [सं.] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला।

चित्राधार—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र-सग्रह। चित्रपट।

चित्रित—वि. [सं. चित्र] (१) चित्रयुक्त, जिस पर चित्र बने हों। उ.—चित्रित बाँह, पहुँचिया पहुँचे, साथ मुरलिया बाजै—४५१। (२) चित्र द्वारा दिखाया हुआ। (३) सांगोपांग वर्णन से युक्त। (४) जिसपर चित्तियाँ पड़ी हो।

चित्रे—क्रि. स. [सं. चित्र] चित्र बनाये, चित्रित किये। उ.—बेनी लसति कहौं छबि ऐसी महलन चित्रे उर्ग—२५६२।

चित्रेश—संज्ञा पुं. [सं.] चित्रा नक्षत्र का पति चंद्र।

चित्रोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. चित्र+उक्ति] वह बात जो अलंकृत भाषा में कही जाय।

चित्रोत्तर—संज्ञा पुं [सं] एक अलकार जिसमें प्रश्न में ही उत्तर हो अथवा कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो।

चिथड़ा—संज्ञा पु. [सं. चीर्ण] फटा-पुराना कपड़ा।

चिथाड़ना—क्रि. स [हि. चिथड़ा] (१) चीरना-फाड़ना। (२) लज्जित करना, नीचा दिखाना।

चिदात्मा—संज्ञा पुं. [सं.] चैतन्यस्वरूप ब्रह्म।

चिदानंद—संज्ञा पुं [सं.] चैतन्य आनंदमय ब्रह्म।

चिदाभास—संज्ञा पुं [स] हृदय पर ब्रह्म का आभास।

चिद्रूप—संज्ञा पुं. [स.] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म।

चिद्विलास—संज्ञा पुं. [स.] (१) चैतन्यस्वरूप ब्रह्म की माया। (२) शंकराचार्य का एक शिष्य।

चिनक, चिनग—संज्ञा पुं [हि. चिनगी] जलन, पीड़ा।

चिनगारी, चिनगी—संज्ञा स्त्री [सं. चूर्ण हि. चुन+अगार] (१) दहकते कोयले का टुकड़ा। (२) दहकती आग से उड़नेवाले कण।

मुहा०—आँख से चिनगारी छूटना—क्रोध से आँख लाल होना। चिनगारी छोड़ना (डालना)—झगड़ेवाली बात करना।

चिनना—क्रि. अ. [हि. चुनना] दीवार खड़ी करना।

चिनाना—क्रि. स. [हि. चुनाना] (१) चिनवाना। (२) ईंट आदि की जोड़ाई करना।

चिनाब—संज्ञा पुं. [सं. चंद्रभाग] पजाब की एक नदी

जिसका प्राचीन नाम चन्द्रभागा था।

चिनार—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिन्हार] जान-पहचान।

चिन्मय—वि. [सं] ज्ञानमय।

संज्ञा पुं — परब्रह्म, परमेश्वर।

चिन्ह—संज्ञा पु. [स. चिह्न] निशान, संकेत, लक्षण। उ.—मेचक अधर निमेष पिक रुचि सों चिह्न देखि तुम्हारे—२०८८।

चिन्हवाना, चिन्हाना—क्रि स. [हिं. चीन्हना का प्रे.] पहचान करा देना, पहचनवाना।

चिन्हानी—संज्ञा स्त्री. [स. चिन्ह] (१) चीन्हने की वस्तु, पहचान, लक्षण। (२) स्मारक, यादगार। (३) रेखा, धारी।

चिन्हार—वि [हिं. चिन्ह] जान पहचान का, जिससे जान पहचान हो, परिचित।

चिन्हारा—संज्ञा पुं [सं चिन्ह] जान-पहचान, भेंट-मुलाकात। उ.—सोच लाग्यौ करन, यहै धौं जानकी, कै कोऊ और, मोहिं नहिं चिन्हारा—९-५६।

चिन्हारी—संज्ञा स्त्री [हिं. चिन्ह] जान-पहचान।

चिन्हित—वि. [सं. चिन्हित] चिह्न लगाया हुआ।

चिन्हौरी—संज्ञा स्त्री [स चिन्ह, हिं. चिन्हारी] पहचानने का लक्षण, पहचान, संकेत का नाम। उ.—अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इकठौरी। धौरी, धूमरि, राती, रौंछी, बोल बुलाइ चिन्हौरी—४४५।

चिपकना—क्रि अ. [अनु. चिपचिप] लसीली वस्तु से जुड़ना या सटना। ( ) लिपटना। (३) किसी व्यवसाय या काम में लगना। (४) प्रेम में फँसना।

चिपकाना—क्रि. स. [हिं चिपकना] (१) लसीली वस्तु से जोड़ना। (२) लिपटाना। (३) काम-धंधे या व्यापार में लगाना।

चिपचिप—संज्ञा पुं. [अनु] लसीली वस्तु छूने से होनेवाला शब्द या अनुभव।

चिपचिपा—वि. [अनु. चिपचिपा] लसदार।

चिपचिपाना—क्रि अ [हिं. चिपचिप] लसदार या चिपचिपा मालूम होना।

चिपचिपाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव, लसीलापन, लस।

चिपटना—क्रि.अ. [सं. चिपिट — चिपटा] (१) सटना, चिपकना। (२) लिपटना, चिमटना।

चिपटा—वि. [स. चिपिट] दबा या धँसा हुआ।

चिपटाना—क्रि. स. [हिं. चिपटना] (१) सटाना, जोड़ना। (२) लिपटाना, आलिंगन करना।

चिपड़ी, चिपरी—संज्ञा स्त्री [हिं. चिप्पड़] उपली।

चिपिट—वि. [सं] चिपटा, चपटा।

संज्ञा पुं.—(१) चिउड़ा, चिड़वा। (२) वह मनुष्य जिसकी नाक चपटी हो। (३) दृष्टि की चकपकाहट।

चिप्पड़—संज्ञा पुं [स. चिपिट] (१) छोटा टुकड़ा। लकड़ी की सूखी पपड़ी। (३) ऊपरी छाल।

चिप्पिका—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) एक रात्रि जंतु। (२) एक चिड़िया। उ.—बाँसा, बटेर, लव और सिचान। धूती चिप्पिका चटक भान।

चिप्पी—संज्ञा स्त्री [हिं. चिप्पड़] (१) छोटा टुकड़ा। (२) उपली। (३) तौलने का एक बाँट।

चिबिल्ला—वि [हिं. चिलबिला] चंचल, चपल, शोख।

चिबु, चिबुक—संज्ञा पु [सं. चिबुक] ठुड्डी, ठोड़ी।

चिमटना—क्रि. अ. [हिं चिपटना] (१) सट जाना। (२) लिपटना। (३) गुथना। (४) पीछा न छोड़ना।

चिमटा—संज्ञा पु. [हिं.चिमटना] लोहे पीतल की सँसी।

चिमटाना—क्रि. स. [हिं. चिमटना] (१) चिपकाना, सटाना, लसाना। (२) लिपटाना।

चिमटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिमटा] छोटा चिमटा।

चिमड़ा—वि. [हिं. चमड़ा] चीमड़।

चिरजीव—वि. [हिं. चिर + जीना] बहुत दिनों तक जीवित रहनेवाला, चिरजीवी। उ.—(क) जब लगि जिय घट-अंतर मेरैं, को सरवरि करि पावै ? चिरंजीव तौलौं दुरजोधन, जियत न पकरयौ आवै—१-२७५। (ख) चिरंजीव रहौ सूर नंदसुत जीजत मुख चितए—३१४१।

चिरंजीवी—वि. [हिं. चिरजीवी] (१) बहुत दिन तक जीनेवाला। (२) अमर।

चिरंटी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) सयानी लड़की जो पिता के घर रहे। (२) युवती।

चिरंतन—वि. [सं.] बहुत पुराना, पुरातन।

चिर—वि. [सं.] बहुत दिनों का।

क्रि. वि.—अधिक समय तक। उ.—सूरदास चिर जीवहु जुग जुग दुष्ट दले दोउ नंददुलारे—२५६६। (ख) कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिर जीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया—१०-११५। (ग) चिर जीवहु जसुदा कौ नंदन, सूरदास कौं तरनी—१०-१२३। (घ) देत असीस सूर, चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर—६-२८। (च) चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ—६-८३।

चिरई—संज्ञा स्त्री. [सं. चटक] चिड़िया, पक्षी।

चिरकाल—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत समय।

चिरकालिक, चिरकालीन—वि. [सं.] पुराना।

चिरकुट—संज्ञा पु. [सं. चिर+कुट्ट] चिथड़ा।

चिरचना—क्रि.अ.—चिड़चिड़ाना, क्रुद्ध होना।

चिरजीवी—वि. [सं.] (१) बहुत दिनों तक जीवित रहनेवाला। (२) सदा जीवित रहनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) विष्णु। (२) कौआ। (३) मार्कंडेय ऋषि। (४) अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम जो चिरजीवी माने जाते हैं।

चिरता—संज्ञा स्त्री. [सं.चिर + हिं. ता] अमरता।

चिरना—क्रि. अ. [हिं. चीरना] (१) फटना, कटना। (२) लकीर के रूप में घाव होना।

संज्ञा पुं.—चीरने का औजार।

चिरनिद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मृत्यु, मौत।

चिरमि—संज्ञा स्त्री [देश.] गुंजा, घुँघची।

चिरवाई—संज्ञा स्त्री [हिं.] चीरना, चिरने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

चिरवाना—क्रि.स. [हिं.चीरना] चीरने का काम कराना।

चिरस्थायी—वि. [सं.] बहुत समय तक रहनेवाला।

चिरस्मरणीय—वि. [सं.] (१) बहुत समय तक स्मरण रखने योग्य। (२) पूजनीय।

चिरहँटा—संज्ञा पुं. [हिं. चिड़ी+हंता] चिड़ीमार।

चिराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चीरना] चिरने का भाव, क्रिया या मजदूरी।

चिराक, चिराग—संज्ञा पुं. [फा. चिराग] दीपक।

मुहा.—चिराग गुल होना—(१) दीपक बुझना। (२) रौनक न रहना। (३) वंश का नाश होना। चिराग जले—संध्या समय। चिराग ठंडा करना—दीपक बुझाना। चिराग तले अँधेरा—(१) ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसे रोकने का प्रबंध हो। (२) ऐसे व्यक्ति द्वारा बुराई होना जो उसे रोकने पर नियुक्त हो।

चिरातन—वि. [सं. चिरंतन] (१) पुराना, पुरातन। (२) जीर्ण। उ.—हम तौ तबही तैं जोग लियौ। पहिरि मेखला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सिआए—३१२५।

चिराना—क्रि. स. [हिं. चीरना] फड़वाना।

वि. [हिं. चिरातन] (१) पुराना। (२) जीर्ण।

चिरायँध—संज्ञा स्त्री. [स. चर्म+गंध] (१) मांस आदि के जलने की दुर्गंध। (२) बदनामी।

चिरायता—संज्ञा पुं. [स. चिरात्] एक पौधा।

चिरायु—वि. [सं. चिर+आयु] बड़ी उम्र वाला।

संज्ञा पुं.—देवता।

चिरारी—संज्ञा स्त्री.-चिरौंजी। उ.—खरिक, दाख अरु गरी चिरारी। पिंड बदाम लेहु बनवारी—३९६।

चिराव—संज्ञा पुं. [हि. चिरना] (१) चीरने का भाव या क्रिया। (२) चीरने से होनेवाला घाव।

चिरिया, चिरैया, चिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिड़िया] पक्षी, पखेरू, पंछी। उ.—(क) चिरिया कहा समुद्र उलीचे—१-२३४ (ख) सूरस्याम कौं जसुमति बोधत गगन चिरैया उड़त दिखावत—१०-१८८।

चिरिहार—संज्ञा पुं. [हिं. चिड़िया + हार = वाला (प्रत्य)] चिड़ियाँ फँसानेवाला, बहेलिया।

चिरीखाना—संज्ञा पुं [हिं. चिड़िया + खाना] चिड़िया घर।

चिरौंजी—संज्ञा स्त्री. [सं. चार+बीज] पियाल वृक्ष के फलों के बीज की गिरी जो मेवों में समझी जाती है। उ.—श्रीफल मधुर चिरौंजी आनी—१०-२११।

चिरौरी—संज्ञा स्त्री. [अनु०] विनीत, प्रार्थना।

चिलक—संज्ञा स्त्री. [हि. चमक] (१) आभा, कांति, झलक। (२) दर्द, टीस।

चिलकना—क्रि. अ. [हि. चिल्ली] (१) रह रह कर चमकना। (२) दर्द का उठना और बंद होना।

चिलका—संज्ञा पुं. [हिं. चिलक] चाँदी का रुपया।

चिलकाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चिलक + आई] चमक।

चिलकाना—क्रि. स. [हिं. चिलकना] (१) चमकाना, झलकाना। (२) माँज कर उजला करना।

चिलगोजा—संज्ञा पुं [फा.] एक मेवा।

चिलचिल—संज्ञा पुं [हिं. चिलकना] अबरक।

चिलचिलाना—क्रि. अ. [हि. चिलकना] रह रह कर चमकना।

क्रि. स. [अनु] चमकाना।

चिलबिल—संज्ञा पुं. [सं. चिलबिल्ल] एक पेड़।

चिलबिला, चिलबिल्ला—वि. [सं. चल + बल] चंचल, चपल, शोख, नटखट।

चिलम—संज्ञा स्त्री. [फा.] मिट्टी की कटोरी जिसका निचला भाग नली की तरह होता है। इस पर आग रखकर तंबाकू पी जाती है।

चिलमन—संज्ञा स्त्री. [फा.] बाँस की तीलियों से बना परदा, चिक।

चिल्ला—संज्ञा पुं. [फा] चालीस दिन का समय।

मुहा.—चिल्ले का जाड़ा—चालीस दिन का बहुत अधिक जाड़े का समय।

संज्ञा पु [देश] (१) एक जंगली पेड़। (२) मोटी रोटी। (३) धनुष की डोरी।

चिल्लाना—क्रि. अ. [हिं. चीत्कार] जोर से बोलना।

चिल्लाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिल्लाना] (१) चिल्लाने का भाव। (२) शोर, गुल, हल्ला।

चिल्लिका—संज्ञा स्त्री [सं.] भौंहों के बीच का स्थान।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री [सं.] झिल्ली नामक कीड़ा।

संज्ञा स्त्री. [स चिरिका = एक अस्त्र] बिजली।

चिल्ही—संज्ञा स्त्री. [सं.] चिल्ल, चील।

चिवि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चिबुक, ठोढ़ी।

चिहुँकना—क्रि. अ. [सं. चमत्कृ, प्रा. चवँक्कि] चौंकना।

चिहुँटना—क्रि. स. [सं. चिपिट, हिं. चिमटना] (१) चुटकी काटना, चिकोटी लेना।

मुहा.—चित्त चिहुँटना—चित्त में चुभना, मन स्पर्श करना।

(२) चिपटना, लिपटना।

चिहुँटिनी—संज्ञा स्त्री [देश] गुंजा, घुँघची।

चिहुँटी—संज्ञा स्त्री [हिं चुटकी] चिकोटी।

चिहुर—संज्ञा पु. [सं. चिकुर] सिरके बाल, केश। उ. —(क) तरुवर मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी। बसन कुचील, चिहुर लपटाने, बिपति जाति नहिं बरनी—९-७३। (ख) छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी—३४२५।

चिह्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निशान, संकेत, लक्षण। (२) पताका, झंडी। (३) दाग।

चिह्नित—वि. [सं.] जिस पर चिह्न हो।

चीं, चींचीं, चीं चपड़—संज्ञा स्त्री. [अनु] किसी के विरोध में किया हुआ शब्द या कार्य।

चींटवा, चींटा—संज्ञा पुं. [हि. चिंउटा] चिहुँटा नामक कीड़ा।

चींटी—संज्ञा स्त्री. [हि. चिउँटी] चिउँटी, पिपिलिका।

चींतना—क्रि. स. [हि. चितना] चित्रित करना।

चींथना—क्रि. स. [हिं. चीथना] नोचना-फाड़ना।

चीक, चीख—संज्ञा स्त्री. [सं. चीत्कार] चिल्लाहट।

चीकट—संज्ञा पुं. [हिं. कीचड़] मैल, तलछट।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक रेशमी कपड़ा। (२) गहने कपड़े जो भाई द्वारा बहन को इसकी संतान के विवाह में दिये जायँ।

वि.—बहुत मैला या गंदा।

चीकना, चीखना—क्रि. अ. [सं. चीत्कार] (१) जोर से चिल्लाना। (२) ऊँचे स्वर से बात करना।

चीखना—क्रि स. [सं. चषण, हिं. चखना] चखना, स्वाद लेना।

चीखर, चीखल—संज्ञा पुं. [हि. चीकड़ (कीचड़)] (१) कीच, कीचड़। (२) गारा।

चीज—संज्ञा स्त्री. [फा. चीज] (१) वस्तु, पदार्थ, द्रव्य। (२) आभूषण, गहना। (३) राग, गीत। (४) विलक्षण वस्तु। (५) महत्व की वस्तु।

चीठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. चीकड़ (कीचड़)] मैल ।
चीठा—संज्ञा पुं. [हि. चिट्ठा] (१) बही-खाता (२) सूची । (३) मजदूरी का धन । (४) ब्योरा ।
चीठी—संज्ञा स्त्री. [हि. चिट्ठी] चिट्ठी-पत्री ।
चीड़, चीढ़—संज्ञा पुं. [सं. चीडा] एक पेड़ ।
चीत—संज्ञा पुं. [सं. चित्त] चित्त, मन ।
मुहा.—हरत चीत—चित्त हरता है मन मोहता है । उ.—संग रहत सिर मेलि ठगौरी, हरत अचानक चीत—२७३० ।
संज्ञा पुं. [सं. चित्रा] चित्रा नक्षत्र ।
संज्ञा पु. [सं.] सीसा नामक धातु ।
चीतकार—संज्ञा पुं. [सं. चीत्कार] चिल्लाना ।
संज्ञा पु. [सं. चित्रकार] चित्र खींचनेवाला ।
चीतहि—क्रि. स. [सं. चित्र, हि. चीतना] चित्रित करती है, (चित्र या बेल बूटे आदि) खीचती है । उ.—द्वार बुहारति फिरति अष्टसिधि । कौरनि सथिया चीतति नवनिधि—१०-३२ ।
चीतना—क्रि. स [स. चेत] (१) सोचना, विचारना । (२) होश में आना । (३) याद आना ।
क्रि. स. [सं. चित्र] चित्रित करना, तसवीर या बेल-बूटे बनाना ।
चीतर, चीतल—संज्ञा पुं. [हिं. चित्ती] एक हिरन ।
चीता—संज्ञा पुं. [सं. चित्रक] (१) एक हिंसक पशु । (२) एक बड़ा क्षुप ।
संज्ञा पुं. [सं. चित्त] हृदय, दिल ।
संज्ञा पु. [सं. चेत] सज्ञा, होश-हवास । उ.—तिनको कहा परेखो कीजै कुबजा के मीता को । चढि-चढि सेज सातहूँ सिंधू बिसरी जो चीता को—३३७६ ।
वि. [हि. चेतना] सोचा-विचारा हुआ ।
चीते—वि. [हि. चेतना] सोचा हुआ, विचारा हुआ, अनुमानित । उ.—डोलत ग्वाल मनौ रन जीते । भए सबनि के मन के चीते १०-३२ ।
क्रि. स. [सं. चेत, हिं. चीतना] सचेत हुए, सोचा, विचारा, (मन में) भावना हुई । उ—ऐसैहिं करत बहुत दिन बीते । प्रभु अंतरजामी मन चीते । एक दिवस आपुन आए तहँ । नव तरुनी असनान करत जहँ—७९९ ।
चीत्कार—संज्ञा पुं. [सं.] शोरगुल, चिल्लाहट ।
चीत्यौ—वि. [हि. चेतना, चीता] सोचा हुआ, विचारा हुआ । उ.—(क) मेरौ चीत्यौ भयौ नँदरानी, नंद-सुवन सुखदाई—१०-१६ । (ख) अपने-अपने मन कौ चीत्यौ, नैननि देख्यौ आइ—१०-२० । (ग) हमरौ चीत्यौ भयौ तुम्हारैं, जो माँगौं सो पाऊँ—१०-३७ ।
चीथड़ा—संज्ञा पुं. [हि. चीथना] फटा-पुराना कपड़ा ।
चीथना—क्रि. स. [स. चीर्ण] चीरना-फाड़ना ।
चीन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पताका । (२) सीसा धातु । (३) तागा । (४) एक रेशमी कपड़ा । (५) एक हिरन । (६) एक प्रकार की ईख ।
संज्ञा पुं. [सं. चिह्न] चिह्न, लक्षण, संकेत ।
चीनना—क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहिचानना ।
चीना—संज्ञा पुं. [हि. चीन] एक तरह का सावाँ ।
संज्ञा पुं. [सं. चिह्न] एक चित्तीदार कबूतर ।
चीनी—संज्ञा स्त्री. [सं. चीन=देश+ई (प्रत्य.)] शकर ।
चीनो, चीनौ—संज्ञा पुं. [सं. चिह्न] पहचान, पता, लक्षण, सकेत । उ.—छिन मे बरषि प्रलय जल पारौ खोजु रहै नहि चीनौ—९४५ ।
क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहचाना जाना । उ.—श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु-गोविंद नहिं चीनौ—१-६५
चीन्ह, चीन्हा—संज्ञा पुं. [सं. चिह्न] चिह्न, पहचान ।
यौ.—चीन्ह लीन्हौ—क्रि. स.—पहचान लिया । उ.—बहुरि जब बढि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्ह लीन्हौ—८-१६ ।
चीन्हना—क्रि. स. [सं. चिह्न] जानना, पहचानना ,
चीन्हि—क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहचानकर ।
चीन्ही—क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहचान गयी, जान गयी । उ.—(क) अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलें मैं चीन्ही—१०-२९७ (ख) ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही । याकी जाति अबै हम चीन्ही—

१०-३६१ । (ग) जाहु घरहिं तुमकों में चीन्ही । तुम्हरी जाति जान मैं लीन्ही १०-७६६ ।

चीन्हे—क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहचाने । उ.—(क) अँधियारी आई तहँ भारी । दनुज-सुता तिहिं तें न निहारी । बसन सुक्र-तनया के लीन्ह । करत उतावलि परे न चीन्हे—६-१७४ । (ख) निसि चिन्ह चीन्हे सूर स्याम रति भीने ताही के सिधारो पिय जाके रग राचे—१६०३ ।

चीन्है—क्रि. स. [हि. चीन्हना] पहचानता है । उ.—जब भगत भगवत चीन्है, भरम मन तें जाइ – १-७०।

चीन्हौ—संज्ञा पु. [सं. चिह्न] लक्षण, चिह्न, संकेत । उ.—(क) नेकु न राखो ताको चीन्हो—१०४३ । (ख) कैसे सूर अगोचर लहिए निगम न पावत चीन्हौ—३०३४ ।

क्रि. स. [हि. चीन्हना] जानो-पहचानो । उ.—बडे देव सब दिन को चीन्हौ – १००६ ।

चीन्ह्यौ—क्रि. स. [हिं. चीन्हना] पहचाना । उ.—बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ । पै इन मोकों कबहुँ न चीन्ह्यौ—४-१२ ।

चीमड़, चीमर—वि. [हि. चमड़ा] (१) चिमड़ा, जो तोड़ने फोड़ने पर टूटे नहीं । (२) कंजूस, खमीस, जो किसी तरह गाँठ से पैसा न निकाले ।

चीर—संज्ञा पुं. [स.] (१) वस्त्र । उ.—(क) लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ्यौ तन-चीर नहि अंत पायौ—१-५ । (ख) प्रातकाल असनान करन को जमुना गोपि सिधारी । लै कै चीर कदंब चढे हरि विनवत हैं ब्रजनारी । (२) वृक्ष की छाल । (३) चिथड़ा, लत्ता । (४) गाय का थन । (५) एक पक्षी । (६) धूप का पेड । (७) छप्पर का मँगरा । (८) सीसा नामक धातु ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चीरना] चीरने की क्रिया ।

चीरचरम—संज्ञा पुं. [सं. चीरचर्म] मृगचर्म ।

चीरना—क्रि. स. [स. चीर्ण=चीरा हुआ] किसी पदार्थ को धारदार औजार से फाड़ना ।

चीरा—संज्ञा पु. [हिं. चीरना] (१) एक रंगीन कपड़ा । (२) चीर कर बनाया हुआ घाव ।

चीरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] झींगुर, भिल्ली ।

चीरी - संज्ञा पु. [स.] (१) झींगुर । (२) एक मछली ।

संज्ञा स्त्री. [हि. चिड़िया] पक्षी, चिड़िया ।

चीरु—संज्ञा पु. [स. चीर] (१) वस्त्र । (२) लत्ता ।

चीरू—संज्ञा. पु. [सं. चीर] लाल रंगीन सूत ।

चीरे—संज्ञा पुं. [हिं. चीरना, चीरा] एक प्रकार का रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है, पगड़ी । उ.—मेरे कहे विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ—१०-६५ ।

चीरौं—क्रि. स. [हि. चीरना] चीर डालूँ, फाड़ दूँ । उ.—गहि तन हिरनकसिप को चीरौं, फारि उदर तिहिं रुधिर नहैहौं—७-५ ।

चीर्ण—वि. [सं.] चीरा फटा हुआ ।

चीर्‌यौ—क्रि. स. [हि. चीरना] फाड़ा, चीरा । उ.—चीर्‌यौ उदर पुत्र तब निकर्‌यौ—सारा. ६६८ ।

चील—संज्ञा स्त्री. [स. चिल्ल] एक बड़ी चिड़िया ।

चीलड, चीलर—संज्ञा पु. [देश.] एक छोटा कीड़ा ।

चीलिका, चील्लक—संज्ञा स्त्री. [स.] भिल्ली, झींगुर ।

चील्ही—संज्ञा स्त्री. [देश.] टोटके द्वारा उपचार ।

चीवर—संज्ञा पु. [स.] साधुओं का वस्त्र ।

चीवरी—संज्ञा पु. [सं.] बौद्ध साधु । भिक्षुक ।

चीह—संज्ञा स्त्री. [फा. चीख] चिल्लाहट ।

चुगल—संज्ञा पु. [हि. चगुल] (१) चिड़ियों का पंजा, चगुल । (२) मनुष्य के हाथ का पंजा ।

मुहा.—चगुल में फँसना—हाथ या वश में होना ।

चुगली—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की नथ ।

चुगी—संज्ञा स्त्री. [हि. चुगल] (१) चुगल भर वस्तु । (२) बाहरी माल पर लगनेवाला महसूल ।

चुँधाना—क्रि. स. [हि. चुसाना] चुसा कर पिलाना ।

चुच—संज्ञा स्त्री. [हि. चोंच] चोंच, चचु ।

चुडा—संज्ञा पुं. [सं.] कूआँ, कूप ।

चुडित—वि. [हि. चुडी] चुटिया या चोटीवाला ।

चुडी, चुंदी—संज्ञा स्त्री. [सं. चुंटी] कुटनी, दूती । संज्ञा स्त्री. [सं. चूड़ा] चोटी, चुटैया ।

चुँदरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चूनरी] ओढ़नी ।

चुँदी—संज्ञा स्त्री. [स. चूडा] स्त्रियों की चोटी ।

चुँधलाना, चुँधियाना—क्रि. अ. [हि चौ=चार + अंध=अंधा] आँखों का चौंधियाना या तिलमिलाना।

चुंधा—वि. [हि. चौ = चार + अंध] (१) जिसे सुझाई न दे। (२) जिसकी आँखें छोटी-छोटी हों।

चुंवक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो चुंबन ले। (२) कामी पुरुष। (३) धूर्त्त मनुष्य। (४) उलटपलट कर ग्रथ का अध्ययन करनेवाला (५) फंदा, फाँस। (६) एक पत्थर जिसमें आकर्षण शक्ति होती है। (७) आकर्षण-केंद्र, सुंदर पुरुष जिसके रूप में आकर्षण हो। उ'—हरि चुवक जहँ मिलहि सूर प्रभु मो लै जाउ तहीं—२५४२।

चुंवकत्व—सज्ञा पु. [सं.] (१) चुंबक का गुण, भाव या कार्य। (२) आकर्पण-शक्ति।

चुवत—क्रि. स. [सं. चुंवन, हि, चुंवना] (१) चूमता है, प्यार करता है। उ.—कवहुँक माखन रोटी लै कै खेल करत पुनि माँगत। मुख चुवत जननी समुझावत आप कंठ पुनि लागत—सारा. १६७ (२) स्पर्श करता है, छूता है।

चुवति—क्रि. स. [हि. चुवना] (१) चूमती है, चुवन करती है। (२) मुँह, सर और आँखो से लगाती है। उ.—इतनी सुनत कुति उठि धाई, वरषत लोचन नीर। पुत्र-कवध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर। लै लै खौन हृदय लपटावति, चुवति भुजा गँभीर—१-२६।

चुवन—संज्ञा पु. [स.] प्रेमावेश में होठों से दूसरे के हाथ, गाल आदि को स्पर्श करने की क्रिया, चुम्मा। उ.—(क) सूर प्रभु कर गहति ग्वालिनि चारु चुंवन हेतु—१०-१८४। (ख)कवहुँक मुख मोरि चुंवन देत—१५६३। (ग) दै चुवन हरि मुख लियौ—१८२७।

चुवनकर—वि. [सं चुंवन + कर] चूमनेवाला।

चुवना—क्रि. स. [सं. चुवन] (१) चूमना, चूम्मालेना। (२) छूना, स्पर्श करना।

चुवित—वि. [सं.] (१) चूमा हुआ। (२) स्पर्श किया हुआ। (३) चखा हुआ।

चुंविनी—वि. स्त्री [हि. चुंवन] चूमनेवाली।

चुंवी—वि. [सं. चुम्बिन्] (१) चूमनेवाला, जो चूमे। (२) छूने या स्पर्श करनेवाला।

चुँभना—क्रि. अ. [हि. चुभना] गड़ना, चुभना।

चुअत—क्रि. अ. [हि. चूना] चूता या टपकता है। उ.—देखिअत चहुँ दिसि तैं घर घोरे। स्याम सुभग तनु चुअत गंड मद वरवस थोरे थोरे—२८१८।

चुअना—क्रि. अ. [हि चूना] चूना, टपकना।

चुआई—संज्ञा स्त्री. [हि. चुआना] टपकाने का काम, भाव या मजदूरी।

चुआक—संज्ञा पुं. [हि. चुआना] पानी आने का छेद।

चुआन—संज्ञा स्त्री. [हि. चूना] नहर, खाई, सोता।

चुआना—क्रि. स. [हि. चूना] (१) टपकाना। (२) रसीला करना। (३) अर्क उतारना।

चुआव—संज्ञा स्त्री. [हि. चुआना] चुआने की क्रिया।

चुई—क्रि. अ. [हि. चूना] चू पड़ी, टपकी। उ.—कछु वै कहती कछू कहि आवत प्रेम पुलकि स्रम स्वेद चुई—१४३३,

चुक—संज्ञा पुं. [हि. चूक] भूल-चूक।

चुकचुकाना—क्रि. अ. [हिं. चूना] पसीजना।

चुकट, चुकटा—संज्ञा पुं. [हि. चुटकी] चुटकी।

चुकता, चुकती—वि. [हि. चुकाना] वेबाक, अदा।

चुकना—क्रि. अ [सं. च्युत्कृत, प्रा. चुक्कि] (१) समाप्त होना, वाकी न रहना (२) अदा होना, वेबाक होना। (३) तै होना, निवटना। (४) भूल या त्रुटि करना। (५) व्यर्थ होना, लक्ष्य पर न पहुँचना।

क्रि. अ. [हि. चूकना] समाप्ति सूचक संयोज्य क्रिया।

चुकरैंड़—संज्ञा पुं. [देश.] दोमुहाँ साँप, गूँगी।

चुकवाना—क्रि. स. [हि. चुकाना का प्रे.] अदा कराना।

चुकाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चुकता] अदा होने का भाव।

चुकाना—क्रि. स. [हि. चुकना] (१) अदा या वेबाक करना। (२) तै करना, निवटाना।

चुकिया—संज्ञा स्त्री. [हि. चुक्कड़] कुल्हिया।

चुकौता—संज्ञा पुं. [हि. चुकाना+औता (प्रत्य.)] ऋण का अदा होना, कर्ज की सफाई।

चुक्कड़—संज्ञा पुं. [सं. चषक] कुल्हड़, पुरवा।

चुक्का—संज्ञा पुं. [हि. चूक] भूल, कसर, कमी।

चुक्कार—संज्ञा पुं. [सं.] गरज, गर्जन।

चुक्की—संज्ञा स्त्री. [हि. चूक] धोखा, छल, कपट।

चुखाए—क्रि. स. [हि. चुखाना] चखाये। उ.—भरि अपने कर कनक कचोरा पियति प्रियहिं चुखाए—१० उ. ३८।

चुखाना—क्रि. स. [सं. चुप] (१) गाय के थन से दूध उतारने के लिए बछड़े को पिलाना। (२) चखाना।

चुगना—क्रि. स. [सं. चयन] चिड़ियों का चोंच से दाना बीनना और खाना।

चुगल, चुगलखोर—संज्ञा पु. [फा.] पीठ पीछे निंदा करने या इधर की उधर लगानेवाला।

चुगलखोरी—संज्ञा स्त्री. [फा.] चुगली खाने की क्रिया।

चुगली—संज्ञा स्त्री. [फा.] पीठ पीछे निंदा या शिकायत करनेवाली। उ—व्रजनारी वटपारिनि हैं सब चुगली आपुहि जाइ लगायौ—११६१।

संज्ञा स्त्री—पीछे पीछे की निंदा या शिकायत।

चुगा—संज्ञा पु. [हि. चुगना] चिड़ियों का चारा।

चुगाइ—क्रि. स. [हि. चुगाना] चुगाकर। उ.—जैसें बधिक चुगाइ कपट कन पीछे करत बुरी—२७१७।

चुगाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चुगाना+आई (प्रत्य.)] चुगने या चुगाने का भाव, क्रिया या मजदूरी।

चुगाऐं—क्रि स. [हि. चुगना] (चिड़ियों को) दाना खिलाने से। उ.—कहा होत पय-पान कराऐं, विष नहिं तजत भुजग। कागहि कहा कपूर चुगाऐं, स्वान न्हवाऐं गंग—१-३३२।

चुगाना—क्रि. स. [हि. चुगना] चिड़ियों को खिलाना।

चुगुल—संज्ञा पु. [हि. चुगल] चुगलखोर, पर-निंदक। उ.—चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटौ-खूटा—१-१८६।

चुगुली—संज्ञा स्त्री. [हि. चुगुली] पीठ पीछे की निंदा। उ.—ऐसे डरति रहति हैं वाकौ चुगुली जाइ करैगौ—१६६५।

चुग्गी—संज्ञा स्त्री. [देश.] चखने की थोड़ी चीज।

चुचकारना—क्रि. स. [अनु] पुचकारना, दुलारना।

चुचकारि—क्रि. स. [हि. चुचकारना (अनु.)] पुचकारकर, दुलार-प्यार दिखाकर। उ.—मैया बहुत बुरौ बलदाऊ। कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ। मोहूं कौ चुचकारि गयौ लै, जहाँ सघन बन झाऊ। भागि चलौ, कहि, गयौ उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ—४८१।

चुचकारी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पुचकारने की क्रिया।

चुचकारैं—क्रि. स. [हिं. चुचकारना] पुचकारती हैं, चुमकारती हे, दुलराती हे। उ.—तब गिरत-परत उठि भागैं। कहुँ नैंकु निकट नहि लागैं। तब नद घरनि चुचकारै। आवहु बलि जाउँ तुम्हारै—१०-१८३।

चुचात—क्रि. अ. [हिं. चुचाना] चूता है, टपकता है। उ.—अरुन अधर सु स्मित मुख बोलत ईषद कछु मुसुकात री। मानहु सुपक बिंब ते प्रगटत, रस अनुराग चुचात री—२३१३।

चुचाना—क्रि. अ. [हि. चूना] बूँद बूँद चूना, टपकना।

चुचाय—क्रि. अ. [हि. चुचाना] बूँद बूँद टपकने, चूने या निचुड़ने (लगे)। उ.—जसुमति मात उछंग लगाये बल मोहन को आय। बाल-भाव जिय मे सुधि आई, अस्तन चले चुचाय—सारा. ७१७।

चुचुआना—क्रि. अ. [हि. चुचाना] चूना, टपकना।

चुचुक—संज्ञा पुं. [स.] स्तन की गोल बुंडी।

चुचुकना—क्रि. अ. [सं. शुष्क+ना (प्रत्य.)] सूख कर इस तरह सिकुड़ना कि झुर्रियाँ पड़ जायँ।

चुचुकारे—क्रि. स. [हि. चुचुकारना] पुचकारता या दुलराता है। उ.—वै देखि निरखि नमित मुरली पर कर मुख नयन एक भए वारे। मैन सरोज विधु बैर विरचि करि करत नाद वाहन चुचुकारे—१३३३।

चुटक—संज्ञा पुं. [देश.] एक गलीचा या कालीन।

संज्ञा पुं [हिं. चोट+क] कोड़ा, चाबुक।

संज्ञा स्त्री. [अनु. चुटचुट] चुटकी।

चुटकना—क्रि. स. [हि. चोट] कोड़ा-चाबुक मारना।

क्रि. स. [हि. चुटकी] (१) (साग, फूल आदि) चुटकी से तोड़ना। (२) साँप का काटना।

चुटका—संज्ञा पुं. [हिं. चुटकी] बड़ी चुटकी।

चुटकि, चुटकी—संज्ञा स्त्री. [अनु. चुटचुट] (१) अँगूठे और उँगली की पकड़।

मुहा.—चुटकी देना—चुटकी बजाना। चुटकी देहि, चुटकी दै दै—चुटकी देकर। उ.—(क) चुटकी देहि नचावहीं, सुत जानि नन्हैया—१०-११६। (ख) जो मूरति जल-थल में व्यापक निगम न खोजत पाई। सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई। (ग) चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत—१०-२१५। चुटकी बजाते—चटपट। चुटकी बजाने वाला—खुशामदी। चुटकी भर—बहुत थोड़ा। चुटकियों में—बहुत शीघ्र। चुटकियों में (पर) उड़ाना—कुछ परवाह न करना।

(२) थोड़ी चीज। (३) चुटकी बजने का शब्द। (४) चिकोटी।

मुहा.—चुटकी भरना (लेना)— (१) हँसी उड़ाना। (२) चुभती हुई बात कहना। (३) चुटकी से दबाना, कुरेदना या काटना। उ.—बार बार गहि गहि निरखत घूँघट ओट करौ किन न्यारौ। कबहुँक कर परसत कपोल छुइ चुटकि लेत ह्याँ हमहि निहारौ।

(५) पैर की उँगलियों का छल्ला।

चुटकुला—संज्ञा पुं [हि. चोट+कला] (१) विनोद और चमत्कारपूर्ण बात। (२) दवा का नुस्खा जो बहुत सस्ता और कारगर हो।

चुटपुट, चुटफुट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] फुटकर वस्तु।

चुटला—संज्ञा पुं. [हि. चोटी] (१) स्त्रियों की वेणी। (२) वेणी के ऊपर लगाने का एक गहना।

चुटाना—क्रि. अ. [हि. चोट] चोट खाना।

चुटिया—संज्ञा स्त्री. [हि. चोटी] चोटी, शिखा, बालों की गुँथी हुई लट। उ.—अरस-परस चुटिया गहैं, बरजति है माई—१०-१६२।

मुहा.—(किसी की) चुटिया हाथ में होना—अपने अधीन, नीचे या वश में होना।

चुटियाना, चुटीलना—क्रि. स. [हि. चोट] घायल करना।

चुटीला—वि. [हि. चोट] चोट या घाव खाया हुआ।

संज्ञा पु. [हि. चोटी] छोटी चोटी या वेणी।

वि.—सबसे बढ़िया, चोटी पर का।

चुटुकि, चुटुकी—संज्ञा स्त्री [हिं. चुटकी] चुटकी।

मुहा.—चुटुकि बजावति—चुटकी बजाती हैं। उ.—चुटुकि बजावति नचावति जसोदा रानी, बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर—१०-१५१।

चुटैल—वि. [हि. चोट] घायल। चोट करनेवाला।

चुड़िहार, चुड़िहारा—संज्ञा पुं. [हि. चूड़ी+हार (प्रत्य.)] चूड़ी बेचने का व्यवसाय करनेवाला।

चुड़ैल—संज्ञा स्त्री. [सं. चूड़ा=चोटी+हार (प्रत्य.)] (१) भूतनी, डायन। (२) कुरूपा स्त्री। (३) दुष्टा।

चुत—वि. [सं. च्युत] गिरा हुआ, च्युत।

चुन—संज्ञा पुं. [सं. चूर्ण] आटा, चूर्ण।

चुनट—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] शिकन, सिलवट।

चुनत—क्रि. स. [हि. चुनना] चुग लेता है, खाता है। उ.—एक समय मोतिन के धोखे हंस चुनत है ज्वारि—पृ. ३४३।

चुनन—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] कपड़े की सिलवट।

चुनना—क्रि. स. [सं. चयन] (१) बीनना, इकट्ठा करना। (२) छाँटना, अलग करना। (३) पसंद या संग्रह करना। (४) सजाकर क्रम से रखना। (५) कपड़े में शिकन डालना। (६) फूल आदि चुटकी से नोच कर अलग करना।

चुनरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] रंग-बिरंगी ओढ़नी।

चुनवाना—क्रि. स.[हि. चुनाना] चुनने का काम कराना।

चुनही—क्रि. स. [हि. चुनना] चुनते हैं, चुगते हैं। उ.—सूरदास मुकुताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनही—३०१३।

चुनाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] (१) चुनने की क्रिया या मजदूरी।

(२) दीवार की जोड़ाई।

चुनाना—क्रि. स. [हि. चुनना का प्रे.] (१) इकट्ठा करवाना। (२) अलग छँटवाना। (३) सजवाना। (४) दीवार में गड़वाना। (५) कपड़े में शिकन डलवाना।

चुनाव—संज्ञा पुं. [हिं. चुनना] (१) चुनने या बीनने का काम। (२) किसी के पक्ष में मत देने की क्रिया।

चुनावट—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] कपड़े की चुनट।

चुनावनहारे—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनाना+हारे] चुनने का काम करनेवाले । उ—सूर सुगंध चुनावनहारे कैसे दुरत दुराए—१२३३ ।

चुनिंदा—वि. [हिं. चुनना+इंदा (प्रत्य.)] (१) चुना चुनाया, छाँटा हुआ । (२) बढ़िया । (३) मुख्य ।

चुनि—क्रि. स. [हि. चुनना] (१) बीनकर, एक एक उठाकर । उ.—ऐसैं बसिऐ ब्रज की बीथिनि। ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथिनि —१०-४६० । (२) छाँटकर, सग्रह करके । उ.—हंस उज्वल पख निर्मल, अग मलि-मलि न्हाहिं। मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं—१-३३८ । (३) चुटकी से नोच कर । उ.—फूले-फूले मग धरे कलियों चुनि डारे—२०६७ ।

चुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. चुन्नी] मानिक का कण ।

चुनी—सज्ञा स्त्री. [सं. चूर्ण, हि. चूनी] (१) रत्न-कण । उ.—मरुवेति मानिक चुनी लागी बिच बिच हीरा तरंग—२२८१ । (२) मोटा पिसा हुआ अन्न ।

क्रि. स. [हि. चुनना] छाँट ली, चुन ली ।

सज्ञा स्त्री. [हिं. चुनरी] रंगीन ओढ़नी ।

चुनौटिया—संज्ञा पु.[हि. चुनौटी]कालापन लिये लाली ।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री [हिं. चूना+औटी (प्रत्य.)] छोटी डिबिया जिसमें पान का चूना रखा जाता है ।

चुनौती—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] (१) उत्तेजना, बढ़ावा । उ.—मदन नृपति को देस महामद बुधिबल बसि न सकत उर चैन । सूरदास प्रभु दूत दिनहि दिन पठवत चरित चुनौती दैन—१३१३ । (२) युद्ध के लिए ललकार या प्रचार ।

चुन्नी—संज्ञा स्त्री. [स चूर्ण] (१) मानिक आदि रत्नों के कण । (२) अनाज का भूसी मिला चूरा । (३) स्त्रियों की चादर । (४) चमकी या सितारे जो स्त्रियाँ माथे या गाल पर चिपकाती हैं ।

चुप—वि. [सं. चुप (चोपन) मौन] अवाक्, मौन ।

यौ.—चुपचाप—(१) मौन रहकर । (२) शांति से । (३) छिपे छिपे । (४) निठल्ला, बेकार ।

मुहा.—चुप करना—(१) बोलने न देना । (२) मौन रहना । चुप मारना, लगाना—मौन रहना ।

संज्ञा स्त्री.— (१) मौन, खामोशी, शांति ।

चुपकहिँ—क्रि. वि. [हि. चुप, चुपका] चुपके-चुपके, चुपके से । उ.—पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई । चुपकहि आनि कान्ह मुख मेल्यौ, देखौ देव-बड़ाई—१०-२६२ ।

चुपका—वि. [हि. चुप] (१) चुप्पा । (२) मौन ।

मुहा.—चुपके से—शांत भाव से, गुप्त रूप से ।

चुपकाना—क्रि. स. [हि. चुपका] बोलने न देना ।

चुपकी—संज्ञा स्त्री. [हि. चुप] मौन, खामोशी ।

मुहा —चुपकी लगाना—शांत रहना ।

चुपचाप—क्रि. वि. [हि. चुप] (१) शांति से । (२) छिपे छिपे । (३) चेष्टारहित । (४) निर्विरोध ।

चुपड़ना, चुपरना—क्रि. स. [हि. चिपचिपा] (१) लेप करना, पोतना । (२) दोष छिपाना । (३) चापलूसी करना ।

चुपरयौ—क्रि. स. [हि. चुपड़ना] थोड़े पानी से धोकर पोंछना । उ.—करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपरयौ अरु चोटी—१०-१६३ ।

चुपाना—क्रि. अ. [हि. चुप] बोलने या रोने न देना।

चुप्पा—वि. [हि. चुप] (१) कम बोलनेवाला, जो सदा शात रहे । (२) जो मन की बात न कहे, घुन्ना ।

चुप्पी—सज्ञा स्त्री. [हि. चुप] मौन, खामोशी ।

वि. स्त्री. [हि. चुप्पा] (१) शात । (२) घुन्नी।

चुबलाना, चुभलाना—क्रि. स. [अनु.] मुँह में रखकर धीरे धीरे रस या स्वाद लेना।

चुभकना—क्रि. अ. [अनु] पानी में डूबना-उतराना।

चुभकाना—क्रि. स. [अनु.] गोता देना, डुबाना ।

चुभकी—सज्ञा स्त्री. [अनु. चुभ चुभ] डुबकी, गोता।

चुभना—क्रि. स. [अनु.] (१) गड़ना, धँसना। (२) मन में खटकना या चोट पहुँचाना। (३) मन में बस जाना या बना रहना। (४) मग्न, लीन ।

चुभलाना—क्रि. स. [अनु.] मुँह में घुलाना ।

चुभवाना, चुभाना—क्रि. स. [हि. चुभना] धँसाना ।

चुभि—क्रि. स. [हि. चुभना] मन में बसकर या बनी

रहकर। उ.—मन चुभि रही माधुरी मूरति अंग-अंग उरझाई—३३१७।

चुभी—क्रि. स. [हि. चुभना] चित्त में बस गयी। उ.—टरति न टारे यह छवि मन में चुभी—१४४६।

चुभीला—वि. [हि. चुभना] (१) चुभनेवाला। (२) मुग्ध या आकृष्ट करनेवाला।

चुभोना—क्रि. स. [हि. चुभाना] धँसाना, गड़ाना।

चुमकार, चुमकारी—संज्ञा स्त्री. [हि. चूमना+कार] पुचकार, दुलार, प्यार।

चुमकारना—क्रि. स. [हि. चुमकार] पुचकारना।

चुम्मा—संज्ञा पुं. [हि. चूमना] चुंबन।

चुर—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बाघ की माँद। (२) बैठक। वि. [सं. प्रचुर] बहुत, अधिक, ज्यादा।
संज्ञा पुं, [अनु.] सूखी चीज के टूटने का शब्द।

चुरकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) चहचहाना। (२) टूटना।

चुरकी—संज्ञा स्त्री. [हि. चोटी] चुटिया, शिखा।

चुरकुट—क्रि. वि. [हि. चूर+करना] चूर-चूर, चकनाचूर। उ.—(क) मुष्टिकौ गर्द मरदि चार गूर चुरकुट करयौ कंस मनु कंप भयौ भई रंगभूमि अनुराग रागी—२६०६। (ख) रामदल मारि सो वृच्छ चुरकुट कियो द्विविद सिर फट गयौ लगत ताके—१०उ.४५।

चुरकुस—क्रि. वि. [हि. चूर] चूर चूर।

चुरचुरा—वि. [अनु.] चुरचुर शब्द करके टूटनेवाला।

चुरचुराना—क्रि. अ. [अनु.] (१) चुर-चुर शब्द करना। (२) चूर-चूर हो जाना।
क्रि. स.—चूर-चूर करना। चुर-चुर शब्द करना।

चुरना—क्रि. अ. [स. चूर] (१) खौलते पानी के साथ पकना। (२) साधारण या गुप्त बात होना।

चुरमुर—संज्ञा पुं. [अनु.] कुरकुरी वस्तु टूटने का शब्द।

चुरमुरा—वि. [अनु.] करारा, चुरमुरानेवाला।

चुरमुराना—क्रि. अ. [अनु.] चुरमुर शब्द करना।

चुरा—संज्ञा पु [हिं. चूरा] वस्तु का पिसा हुआ अंश।

चुराइ—क्रि. स. [हि. चुराना] चुरा कर, हरण करके। उ.—तवहिं निसिचर गयौ छल करि, लई सीय चुराइ—९-६०।

चुराई—संज्ञा स्त्री. [हि. चुरना] पकने की क्रिया।

चुराना—क्रि. स. [सं. चुर=चोरी] (१) चोरी करना।
मुहा.—चित्त चुराना— मन मोहित करना।
(२) छिपाना, दूसरों की दृष्टि से बचाना।
मुहा.—आँख चुराना—सामने मुँह न करना।
(३) लेन-देन या काम में कमी करना।
क्रि. स. [हि. चुरना] खौलते पानी में पकाना।

चुरावत—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराते हैं। उ.—महा अछय निधि पाइ अचानक आपुहि सबै चुरावत हैं—पृ. ३३०।

चुरावन—संज्ञा स्त्री. सवि. [हि. चुराना] चुराने के लिए। उ.—सूर गए हरि रूप चुरावन उन अप-वस करि पाए—पृ. ३२४।

चुरावै—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराता है, चोरी करता है। उ.—घर-घर गोरस सोइ चुरावै-१०-३।

चुरिहार, चुरिहारा—संज्ञा पुं. [हि. चूड़ी + हारा (प्रत्य.)] चूड़ी का व्यवसाय करनेवाला।

चुरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चूड़ा, चूड़ी] चूड़ी। उ.—(क) फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं, फाटे चीर दिखावैं गात—१०-३३२। (ख) किंकिनी करि कुनित कंकन कर चुरी झनकार—पृ.३४४ (२६)।

चुरू—संज्ञा पुं. [सं. चुलुक] चुल्लू। उ.—(क) हँसि जननी चुरू भराए। तब कछु-कछु मुख पखराए—१०-१८३। (ख) भरयौ चुरू मुख धोइ तुरतहीं पीरे पान-विरी मुख नावति—५१४। (ग) धरि तुष्टी झारी जल ल्याई। भरयौ चुरू खरिका लै आई।

चुरैहौं—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराऊँगा। उ.—यह पर-तीति नहीं जिय तेरे सो कहा तोहि चुरैहौं—१२४३।

चुल—संज्ञा स्त्री. [सं. चल] खुजलाहट, मस्ती।

चुलचुलाना—क्रि. अ. [हि. चुल] खुजलाहट होना।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. चुलबुलाना] खुजलाहट।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री. [हि. चुलचुलाना] चुल।

चुलबुल—संज्ञा स्त्री. [सं. चल+वल] चचलता।

चुलबुला—वि. [हि. चुलबुल] चचल, नटखट।

चुलबुलाना—क्रि. अ. [हि. चुलबुल] (१) हिलना-डोलना। (२) चंचल होना।

चुलुक, चुलूक—संज्ञा पुं. [सं.] दलदल, कीचड़।

चुल्ला, चुल्ली—वि.—नटखट।

चुल्लू—संज्ञा पु. [सं. चुलुक] हथेली का गड्ढा।

मुहा.—चुल्लू भर—जितना चुल्लू में आ सके। चुल्लुओं रोना—बहुत रोना। चुल्लू में समुद्र न समाना—(१) छोटे पात्र में बहुत वस्तु न आना। (२) साधारण व्यक्ति से महान् कार्य न हो सकना।

चुल्हौना—संज्ञा पुं. [हि. चूल्हा] चूल्हा।

चुवत—क्रि. अ. [हि चुवना] बूँद बूँद टपकता है। उ.—(क) विधु पर सुदंत विम्बंत अमृत चुवत सूर विपरीत रति पीड़ि नारी—१६०३। (ख) मुरली माहि बजावत गावत बंगाली अधर चुवत अमृत बनवारी—२३६७। (ग) देखी मैं लोचन चुवत अचेत—३४५६।

चुवना—क्रि. अ. [हि. चूना] बूँद बूँद टपकता है।

चुवा—संज्ञा पु. [हि. चौआ] पशु, चौपाया।

चुवाना—क्रि. स. [हि. चूना का प्रे.] टपकाना।

चुवावत—क्रि. स. [हि. 'चूना' का प्रे. 'चुवाना'] टपकाती है, बूँद बूँद करते गिराती हैं। उ.—राँभति गाइ बच्छ हित सुधि करि, प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत—४८०।

चुसकी—संज्ञा स्त्री. [सं. चषक] शराब का पात्र।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चूसना] थोड़ा थोड़ा पीना।

चुसना—क्रि. अ. [हि. चूसना] (१) चूसा या चचोड़ा जाना। (२) निचुड़ जाना। (३) सारहीन होना। (४) निर्धन या साधनहीन हो जाना।

चुसवाना—क्रि. स. [हि. चूसना] चूसने देना।

चुसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चूसना] चूसने की क्रिया।

चुसाना—क्रि. स. [हिं. चूसना का प्रे.] चूसने देना।

चुसौअल, चुसौवल—संज्ञा स्त्री [हि. चूसना] (१) अधिकता से चूसना। (२) अनेकों का चूसना।

चुस्त—वि. [फा.] (१) कसा हुआ, जो ढीला न हो। (२) फुर्तीला, जिसमें आलस्य न हो। (३) दृढ़, मजबूत।

चुस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) फुर्ती, तेजी। (२) तंगी, कसावट। (३) दृढ़ता, मजबूती।

चुहँटी, चुहटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] चुटकी।

चुहचुहा—वि. [अनु.] चटक रंग का।

चुहचुहाती—वि. [हि. चुहचुहाना] सरस, रसीला।

चुहचुहाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) रस टपकना। (२) चिड़ियों का चहचहाना।

चुहचुहानी—क्रि. अ. [हि. चुहचुहाना] (चिड़ियाँ) चहचहाने लगीं। उ.—(क) चिरई चुहचुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवीन की। (ख) मैं जानी जिय जहँ रति मानी। तुम आए हौ ललना जब चिरियाँ चुहचुहानी।

चुहचुही—संज्ञा स्त्री. [अनु.] फूलसुँघनी चिड़िया।

चुहटना—क्रि. स. [देश.] रौंदना, कुचलना।

चुहना—क्रि. स. [सं. चूषण] किसी वस्तु का रस चूसना।

चुहल—संज्ञा स्त्री. [अनु. चुहचुह] हँसी-विनोद।

चुहलबाज—वि. [हि. चुहल+फा. बाज (प्रत्य.)] ठठोल।

चुहलबाजी—संज्ञा स्त्री [हिं. चुहलबाज] हँसी-ठठोली।

चुहिया—संज्ञा स्त्री. [हि. चूहा] चूहा का स्त्रीलिंग तथा अल्पार्थक रूप।

चुहिल—वि. [हि. चुहचुहाना] जहाँ खूब रौनक हो।

चुहुकना—क्रि. स. [सं. चूष] चूसना।

चुहुचुहु—वि. [अनु.] चटकीला, शोख। उ.—पहिरे चीर सुहि सुरंग सारी चुहुचुहु चूनरी बहुरंगनो। नील लहँगा लाल चोली कसि उबरि केसरि सुरंगनो—१२८०।

चुहुटना—क्रि. अ [हिं. चिमटना] चिपकना।

वि.— चिपकने या पकड़नेवाला।

चुहुटनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] गुंजा, घुँघुची।

चूँ—संज्ञा पु. [अनु.] (१) चिड़ियों के बोलने का शब्द। (२) चूँ शब्द।

मुहा.—चूँ करना—(१) कुछ कहना। (२) विरोध में कुछ कहना।

चूँकि—क्रि. वि. [फा.] क्योंकि, इसलिए कि।

चूँच—संज्ञा स्त्री. [हि. चोंच] चोंच। उ.—बींध्यो कनक परसि सुक सदर चुनै बीज गहि.गूँज।

चूँचूँ—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) चिड़ियों का शब्द। (२) चूँचूँ शब्द।

चूँचरा—संज्ञा पुं. [फा. चूँ+चरा] (१) विरोध, प्रतिवाद। (२) आपत्ति, उज्र। (३) बहाना।

चूँदरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चूनरी] ओढ़नी।

चूँनी—संज्ञा स्त्री. [हि. चून] अन्नकण। मानिककण।

चूक—संज्ञा स्त्री. [हिं. चूकना] (१) भूल, गलती। उ.—(क) अजामील तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास। नैकुँ चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास—१-१३२। (ख) कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि। न्याइ कै नहि खुनुस कीजै, चूक पल्लैं बाँधि—१-१९६। (ग) घोष बसत की चूक हमारी कछू न चित गहिवो—३४१५। (२) छल, कपट, फरेब, दगा।

संज्ञा पु. [सं. चुक] (१) खट्टे फल के गाढ़े रस से बना एक पदार्थ। (२) एक खट्टा साग।

वि.—बहुत ज्यादा खट्टा।

चूकना—क्रि. अ. [सं. च्युतकृत, प्रा. चुक्कि] (१) भूल करना। (२) लक्ष्य से हटना। (३) अवसर खोना।

चूका—संज्ञा पुं. [सं. चुक] एक खट्टा साग।

चूकैं—क्रि. अ. [हि. चूकना] चूकने पर, अवसर खोने पर। उ.—सूरदास अवसर के चूकैं, फिरि पछितैहौ देखि उघारी—१ २४८।

चूची—संज्ञा स्त्री. [सं. चूचुक] (१) स्तन, कुच। (२) स्तन का अग्र भाग।

चूचुक—संज्ञा पु. [सं.] स्तन का अग्र भाग।

चूड़, चूड़क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चोटी, शिखा। (२) सिर की कलँगी। (३) छोटा कुआँ।

चूड़ांत—वि. [सं.] चरमसीमा, पराकाष्ठा।

क्रि. वि.—बहुत अधिक, अत्यंत।

चूड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चोटी, शिखा। (२) मोर के सिर की चोटी। (३) कुआँ। (४) घुँघुची। (५) चूडाकरण नामक संस्कार।

संज्ञा पुं. [स. चूडा = बाहु-भूषण] (१) कड़ा, कंकण। (२) वधू की चूड़ियाँ।

चूड़ाकरण, चूडाकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] बच्चे का पहली बार सर मुँड़वाकर चोटी रखने का संस्कार, मूड़न।

चूड़ापाश—संज्ञा पुं. [सं] बालों का जूड़ा।

चूड़ामणि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शीशफूल नामक गहना। (२) सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति। (३) घुँघुची।

चूड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. चूड़ा] (१) महीन गोलाकार पदार्थ। (२) हाथ में पहनने का एक गहना।

मुहा.—चूड़ियाँ ठंडी करना (तोड़ना)—विधवा वेश बनाना। चूड़ियाँ पहनना—स्त्री-वेश बनाना (व्यंग्य)। चूड़ियाँ बढ़ाना—चूड़ियाँ अलग करना।

चूड़ीदार—वि. [हि. चूड़ी+फा. दार] जिसमें चूड़ी या छल्ले की तरह घेरे पड़े हों।

चून—संज्ञा पुं. [सं. चूर्ण] (१) आटा, पिसान। (२) चूना। उ.—(क) सूर स्याम को मिली चून हरदी ज्यौं रंग रजी—११७३। (ख) सूर स्याम मन तुमहि लुभानो हरद चून रँग रोचन—१५१७।

संज्ञा पुं. [देश.] एक बड़ा पेड़।

चूनर, चूनरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चुनना] ओढ़ने का लाल रंगीन बूटियोंदार दुपट्टा। उ.—(क) पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)—१-४४। (ख) पहिरि चुनि चुनि चीर चुहि चुहि चूनरी बहुरंग—२२७८।

चूना—संज्ञा पुं. [सं. चूर्ण] एक तीक्ष्ण भस्म जो पान में खाने, और औषध के काम आती है।

क्रि. अ. [सं. च्यवन] (१) बूँद बूँद टपकना। (२) (फल आदि का) गिरना। (३) (छत लोटा आदि में) दराज या छेद होना जिससे पानी टपके। (४) गर्भ गिरना।

वि.—जो टपक रहा हो।

चूनी—संज्ञा स्त्री. [हि. चुन्नी] (१) मोटा पिसा अन्न। (२) रत्नकण, चुन्नी। उ.—धन भूषन धन मुकुट जरयौ नग हीरा चुनी सय नाल—पृ.३४२ (३६)।

चूनै—वि [सं. चूर्ण, हि. चूरा] चूर चूर, टुकड़े टुकड़े। उ.—गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैं। माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनै—६१७।

चूनो—संज्ञा पुं. [हिं. चूना] चूना नामक भस्म। उ,—रंग कापे होत न्यारो हरद चूनो सानि—८६५।

मुहा.—जरो पर चूनो—जले पर चूना छिड़कना, जो विपत्ति में हो उसे और दुख देना। उ.—वैसहि जाइ जरो पर चूनो दूनो दुख तिहि काल—३१५६।

चूपड़ी—वि. स्त्री. [हिं. चुपड़ना] घी चुपडी हुई।

चूमति—क्रि. स. [हिं. चूमना] चूमती है, प्यार करती है। उ.—(क) मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई—१०-५२। (ख) चूमति कर-पग-अधर-भ्रू, लटकति लट चूमति—१०-७४।

यौ.—चूमति-चाटति—प्यार करती हुई, चूम-चाटकर प्रेम जताती हुई। उ.—लै आई गृह चूमति-चाटति, घर-घर सबनि वधाई मानी—१०-७८।

चूमन—क्रि. स. [हि. चूमना] चूमना, प्यार करना। उ.—महरि मुदित उलटाइ कै, मुख चूमन लागी—१०-६८।

चूमना—क्रि. स. [सं. चुंबन] चुम्मा लेना।

मुहा.—चूमकर छोड देना—कार्य आरम्भ करके या वस्तु को छूकर छोड देना, पूरा उपयोग न करना।

चूमना-चाटना—प्यार दिखाना।

चूमा—संज्ञा पुं. [हि. चूमना] चूमने की क्रिया, चुंबन।

चूमाचाटी—संज्ञा पुं. [हि. चूमना+चाटना] चूम-चाट कर प्रेम जताना या प्यार दिखाना।

चूमि—क्रि. स. [हि. चूमना] चूमकर, प्यार करके, चुम्मा लेकर। उ.—(क) निरखि हरषि मुख चूमि कै, मंदिर पग धारी—१०-६६। (ख) मुख चूमि हरषि लै आए—१०-१८३।

चूम्यौ—क्रि. स. [हिं. चूमना] चूम लिया, प्यार किया। उ.—(क) वडौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई। वार-वार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ, दियौ घरहि पठाई—७६१। (ख) काहू तुरत आइ मुख चूम्यौ कर सौं छुयो कपोल—२४२७।

चूर—संज्ञा पुं. [स. चूर्ण] (१) छोटे-छोटे टुकड़े। (२) चूरा, बुरादा, भूर, महीन कण।

मुहा.—चूर चूर कर डाला—तोड-फोड डाला, नष्ट कर दिया। उ.—जोगन डेढ विटप वेली सव चूर चूर कर डाल—सारा. ४१७।

वि.—(१) किसी काम या भाव में लीन। (२) किसी नशे से प्रभावित, मद-मत्त।

चूरण, चूरन—संज्ञा पुं. [सं. चूर्ण] (१) चूरा। उ.—घृत मिष्टान्न सवै परिपूरन। मिस्रित करत पाग कौ चूरन—१००६। (२) बहुत महीन पिसी हुई औषध।

चूरना—क्रि. स. [सं. चूर्णन] (१) चूर-चूर करना। (२) तोड़-फोड डालना, बरबाद करना।

चूरमा—संज्ञा पुं [सं. चूर्ण] रोटी-पूरी का घी-शकर में मिलाकर भूना हुआ भोजन।

चूरा—संज्ञा स्त्री. [स. चूडा = बाहुभूषण] कडा नामक आभूषण जो बच्चो के हाथ-पैर में पहनाया जाता है। उ.—तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर पाइ—१०-८६।

संज्ञा पुं. [सं. चूर्ण] पिसा हुआ चूर्ण।

संज्ञा पु. [हि. चिउड़ा] चिउड़ा।

चूरामनि—संज्ञा पुं. [सं. चूड़ामणि] एक गहना।

चूरि—क्रि. स. [हि. चूरना] चूर करके, तोडकर, नष्ट करके। उ.—भंजन-शब्द प्रगट अति अद्भुत, अष्ट-दिसा नभ-पूरि। स्रवन-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरव भयौ चूरि—६-२६।

चूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चूड़ी] हाथ की चूडी।

संज्ञा स्त्री. [सं. चूर्ण] (१) चूरा। (२) चूरमा।

चूरे—वि. [हि. चूर] डूबे हुए, निमग्न। उ.—गूझा बहु पूरन पूरे। भरि-भरि कपूर रस चूरे—१०-१८३।

चूर्ण—संज्ञा पुं [स.] (१) महीन पिसा पदार्थ। (२) महीन पिसी औषध। (३) अबीर। (४) धूल।

वि.—तोडा-फोडा या नष्ट किया हुआ।

चूर्णिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सत्तू। (२) गद्य का एक प्रकार जिसमें सरल शब्द और वाक्य हो।

चूर्णित—वि. [स.] चूर-चूर किया हुआ।

चूल—संज्ञा पुं. [स.] चोटी, शिखा।

संज्ञा स्त्री. [देश.] लकडी का पतला सिरा जो दूसरी के छेद में ठोका जाय।

मुहा.—चूलें ढीली होना—बहुत थकावट होना।

चूलिका—संज्ञा स्त्री. [स.] नाटक का एक अंग जिसमें घटना होने की सूचना नेपथ्य से दी जाती है।

चूल्हा—संज्ञा पुं. [स. चुल्लि] भोजन पकाने का पात्र।

मुहा.—चूल्हा न्योतना—घर भर को निमत्रण

देना। चूल्हा जलाना (फूँकना, झोंकना)—भोजन पकाना। चूल्हे में जाना (पड़ना)—नष्ट-भ्रष्ट होना। चूल्हे मे डालना—नष्ट-भ्रष्ट करना। चूल्हे से निकल कर भट्ठी (भाड़) मे पड़ना—छोटी विपत्ति से बचकर बड़ी में फँसना।

चूषण—संज्ञा पुं. [सं.] चूसना।

चूसना—क्रि. स. [सं. चूषण] (१) किसी पदार्थ को दबा-दबा कर रस पीना। (२) किसी चीज (जैसे धन, स्वास्थ्य, यौवन आदि) का सार भाग खींच लेना।

चूसे—क्रि. स. [हि. चूसना] खींच-खींचकर रस पिये। उ.—सूरदास गोपाल छाँड़ि कै चूसै टेटा खारे-३०४५।

चूहड़ा, चूहरा—संज्ञा पुं.—चाडाल, भगी।

चूहरी—सज्ञा स्त्री. [हि. चूहरा] भगिन।

चूहा—संज्ञा पुं. [अनु. चूँ+हा] एक छोटा जतु।

चूहादंती—संज्ञा स्त्री. [हि. चूहा+दाँत] एक गहना।

चे—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चिड़ियो की बोली।

चेंचुआ—संज्ञा पु. [अनु.] चातक या पछी का बच्चा।

चेंचुला—संज्ञा पु. [देश.] एक पकवान।

चेंचें—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) चिड़ियो की बोली, चीं चीं। (२) व्यर्थ की बक-बक या बकवाद।

चेंटुआ—संज्ञा पुं. [हि. चिड़िया] चिड़िया का बच्चा।

चें पें—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) धीमें स्वर में किया हुआ विरोध। (२) व्यर्थ की बकवाद।

चेचक—सज्ञा स्त्री. [फा.] शीतला रोग।

चेजा—संज्ञा पुं. [हि. छेद (?)] सूराख, छेद।

चेट—संज्ञा पुं. [स.] (१) दास। (२) पति।

चेटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जादू, इद्रजाल, मत्र, टोना। उ.—तब हँसि कै मेरौ मुख चितयौ, मीठी बात कही। रही ठगी, चेटक सौ लाग्यौ, परि गई प्रीति सही—१०-२८१। (२) दास, सेवक। (३) चटक-मटक। (४) चाट, चसका, मजा। (५) तमाशा।

चेटकनी—सज्ञा स्त्री. [हि. चेटी] दासी, सेविका।

चेटका—संज्ञा स्त्री. [सं. चिता] (१) मुरदा जलाने की चिता। (२) श्मशान, मरघट।

चेटकी—संज्ञा पु [स.] (१) इद्रजाली, जादूगर। (२) कौतुक या लीलाएँ करनेवाला, कौतुकी। उ.—परम गुरु रतिनाथ हाथ सिर दियो प्रेम उपदेस। चतुर चेटकी मथुरानाथ सों कहियौ जाइ अदेस—३१२५।

चेटुआनि—संज्ञा पुं. बहु. [सं. चेटक=दास, हि. चट्टा=चेला] बालक, विद्यार्थी, शिष्य। उ.—सब चेटुआनि मन ऐसी आई। रहे सबै हरि-पद चित लाई—७-२।

चेटिका, चेटिकी, चेटिया, चेटी, चेटुई, चेटुवी—संज्ञा स्त्री. [सं. चेटी] दासी।

चेत—क्रि. अ. [हि. चेतना] सावधान या सतर्क हो ले। उ.—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यों खात दगा—६-११४।

संज्ञा पुं. [सं. चेतस्] (१) चेतना, सज्ञा, होश। (२) ज्ञान, बोध। (३) सावधानी, चौकसी। उ.—मन सुवा, तन पींजना, तिहि माँझ राखै चेत—१-३११। (४) स्मरण, सुध। (५) चित्त।

अव्य. [सं. चेत्] (१) यदि। (२) शायद।

चेतक—वि. [सं.] चितानेवाला।

चेतकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हड़। (२) चमेली का पौधा। (३) एक रागिनी का नाम।

चेतत—क्रि. स. [हि. चेतना] सचेत या सावधान होता है। उ.—(क) सूरदास प्रभु क्यों नहि चेतत, जब लगि काल न आयौ—१-३०१। (ख) चेतत क्यौं नाहि मूढ सुनि सुबात मेरी। अजहूँ नहि सिधु बँध्यौ, लंका है तेरी—६-११८।

चेतन—वि. [सं. चैतन्य] चेतनायुक्त, सचेत। उ.—जिन जड़ तै चेतन कियौ, (रे) रचि गुनि-तत्व-विधान। चरन, चिकुर, कर, नख दए, (रे) नयन, नासिका, कान—१-३२५।

संज्ञा पुं. [स.] (१) आत्मा, जीव। (२) मनुष्य। (३) प्राणी, जीवधारी। (४) परमेश्वर।

चेतनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सज्ञानता। उ.—सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टम मास सँपूरन होइ—३-१३।

चेतनत्व—संज्ञा पु. [हि. चेतना+त्व] चेतनता।

चेतना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुद्धि। (२) मनोवृत्ति। (३) स्मृति, याद। (४) सज्ञा, होश।

क्रि.अ.—(१) होश में आना। (२) सावधान होना।

क्रि. स.—[सं. चितन] सोचना-विचारना।

चेतनावान—वि. [हिं. चेतना+वान् (प्रत्य.)] सचेतन, चेतनायुक्त, सज्ञान ।
चेतनीय—वि. [सं.] जो जानने योग्य हो ।
चेतवनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेतावनी] चेतावनी ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. चितवन] दृष्टि, कटाक्ष ।
चेता—संज्ञा पुं. [सं. चित्] (१) सज्ञा, होश, बुद्धि । (२) स्मृति, याद ।
क्रि. अ. [हिं. चेतना] होश में आया ।
चेताना—क्रि. स. [हिं. चिताना] चेतावनी देना ।
चेतावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेतना] सतर्क, सावधान या होशियार होने की सूचना ।
चेति—क्रि. अ. [सं. चेतना] सचेत हो, होश में आ, सावधान हो । उ.—क्यौं तू गोविंद नाम बिसारौ ? अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ—१-८० ।
चेतिका—संज्ञा स्त्री. [सं. चिति] मुरदे की चिता ।
चेतौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेतावनी] चेतावनी ।
चेत्य—वि. [सं.] (१) जानने योग्य (२) स्तुति-योग्य ।
चेत्यौ—क्रि. स. [हिं. चेतना] चेता, सचेत या सावधान हुआ । उ.—(क) चेत्यौ नाहिं गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसैं—१-२९३ । (ख) लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकातौ—१-३२९ ।
चेदि—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन देश जिसके अंतर्गत वर्तमान बुंदेलखंड का चंदेरी नगर है। शिशुपाल यहाँ का राजा था ।
चेदिराज—संज्ञा पुं. [सं.] शिशुपाल जो श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में मारा गया था ।
चेप—संज्ञा पुं. [चिपचिप से अनु.] (१) कोई चिपचिपा लस । (२) चिड़ियों के फँसाने का लासा ।
संज्ञा पुं.—चाव, उमंग, उत्साह ।
चेपदार—वि. [हिं. चेप+फा. दार] चिपचिपा ।
चेपना—क्रि. स. [हिं. चेप] चिपकाना, सटाना ।
चेय—वि. [सं.] जो चयन करने योग्य हो ।
चेर, चेरा—संज्ञा पुं. [सं. चेटक, प्रा. चेड़अ, चेड़ा, हिं. चेला] (१) दास, सेवक । (२) चेला, शिष्य ।
चेराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेरा+ई] सेवा, नौकरी । उ.—ऐसे करि मोकौं तुम पायौ मनौ इनकी मैं करौं चेराई। सूरस्याम वे दिन बिसराये जब बाँधे तुम ऊखल लाई।
चेरि, चेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेरा] दासी । उ.—सूरदास जसुदा मैं चेरी कहि कहि लेत बलैया—५१३ ।
मुहा.—बिन दामन की चेरी—बे मोल की दासी, बहुत नम्र और आज्ञाकारिणी सेविका । उ.—बहुरि न सूर पाइहैं हमसी बिन दामन की चेरी—२७१९ ।
चेरे, चेरो, चेरौ—संज्ञा पुं. [हिं. चेरा] दास, सेवक । उ.—(क) तुम प्रताप-बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे—१-१७० । (ख) जच्छ, मृतु, बासुकी, नाग, मुनि, गंधर्व, सकल बसु, जीति मैं किए चेरे—९-१२९ । (ग) इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ । नंदनँदन करि घरि कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ—१-२६६ । (घ) जब मोहि रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति जैसैं चेरौ—३६६ ।
चेल—संज्ञा पुं. [सं.] वस्त्र, कपड़ा ।
चेलकाई, चेलहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेला] शिष्य वर्ग ।
चेला—संज्ञा पुं. [सं. चेटक, प्रा. चेड़अ, चेड़ा] (१) वह जिसने दीक्षा ली हो, शिष्य । (२) वह जिसने शिक्षा ली हो, छात्र ।
चेलिकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेला] चेलों का समूह ।
चेलिन, चेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. चेला] शिष्या, छात्रा ।
चेष्टक—संज्ञा पुं. [सं.] चेष्टा करनेवाला ।
चेष्टा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उद्योग, यत्न, कोशिश । (२) काम । (३) परिश्रम । (४) इच्छा ।
चेहरई—संज्ञा स्त्री. [फा. चेहरा] चित्र या मूर्ति में चेहरे की रंगत या आकृति ।
चेहरा—संज्ञा पुं. [फा.] मुखड़ा, वदन ।
मुहा.—चेहरा उतरना—लज्जा, निराशा आदि से चेहरा फीका हो जाना। चेहरा तमतमाना—गर्मी या क्रोध से चेहरा लाल होना ।
चैंटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिउँटी] चींटी । उ.—सूरदास अबला हम भोरी गुर चैंटी ज्यौं पागी—३३३५ ।
चै—संज्ञा पुं. [सं. चय] समूह, ढेर ।
चैत—संज्ञा पुं. [सं. चैत्र] फागुन के बाद का महीना ।
चैतन्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चेतन आत्मा । (२) ज्ञान ।

(३) परमात्मा। (४) प्रकृति। (५) चैतन्यदेव।
वि.—(१) सचेत। (२) होशियार।
चैती—संज्ञा स्त्री. [हि. चैत+ई (प्रत्य.)] (१) रबी की फसल जो चैत में कटे। (२) एक गाना।
वि.—चैत संबंधी, चैत का।
चैत्त—वि. [सं.] चित्त संबंधी, चित्त का।
चैत्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मकान, घर। (२) देव-मंदिर। (३) यज्ञशाला। (४) गौतम बुद्ध या उनकी मूर्ति। (५) बौद्ध भिक्षुक या सन्यासी। (६) बौद्ध मठ या विहार। (७) चिता। (८) पीपल का पेड़।
वि.—चिता संबंधी, चिता का।
चैत्र—संज्ञा पु. [स.] (१) चैत का महीना। (२) बौद्ध भिक्षुक। (३) यज्ञभूमि। (४) देवमंदिर।
वि.—चित्रा नक्षत्र संबंधी, चित्रा नक्षत्र का।
चैत्रसखा—संज्ञा पुं. [स.] कामदेव, मदन।
चैत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] चैत की पूर्णिमा।
चैन—संज्ञा पुं. [सं. शयन] सुख, आनंद।
मुहा.—चैन से कटना—सुख से समय बीतना।
चैपला—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी।
चैयाँ—संज्ञा स्त्री.—बाँह। उ.—चैयाँ चैयाँ गहौ चैयाँ वैयाँ वैयाँ ऐसे वोल्यौ।
चैल—संज्ञा पुं. [सं.] कपड़ा, वस्त्र।
चैहौं—क्रि. स. [हिं. चाहना] चाहूँगा।
चोंक—संज्ञा स्त्री. [देश.] चुंबन का चिह्न।
चोंघना—क्रि. स. [हि. चुगना] दाना चुगना।
चोंच—संज्ञा स्त्री. [सं. चंचु] (१) पक्षियों की चंचु या टोट। उ.—मनु सुक सुरंग विलोकि बिंब-फल चाखन कारन चोंच चलाई—१६१६। (२) मुंह (व्यंग्य)।
मुहा.—दो दो चोंचें होना—कहा-सुनी होना।
चोंटना—क्रि. स. [हि. चिकोटी या अनु.] नोचना।
चोंडा, चोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. चूड़ा] (१) स्त्रियों का झोंटा। (२) सिर, माथा।
चोंथना—क्रि. स. [अनु.] नोचना, खसोटना।
चोंधर—वि. [हिं. चौंधियाना] (१) छोटी आंखवाला। (२) जिसे कम दिखायी दे। (३) मूर्ख।
चोआ—संज्ञा पुं. [हिं. चुआना] एक सुगंधित द्रव।
चोकर—संज्ञा पुं. [हि. चून+कराई=छिलका] आटे का अंश जो छानने के बाद चलनी में बचता है।
चोका—संज्ञा पुं. [स. चूषण] चूसने की क्रिया।
मुहा.—चोका लगाना—मुँह लगाकर चूसना।
चोख—संज्ञा स्त्री. [हि. चोखा] तेजी, फुरती।
चोखना—क्रि. स. [हि. चूसना] चूसकर पीना।
चोखनि—संज्ञा स्त्री. [हि. चोखना] चोखने की क्रिया।
चोखा—वि. [सं. चोक्ष] (१) शुद्ध, बेमेल। (२) सच्चा, ईमानदार। (३) तेज धार का। (४) चतुर।
चोखाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चोखा+ई] चोखापन।
संज्ञा स्त्री. [हि. चोखना=चूसना] चुसाई।
चोचला—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) हावभाव। (२) नखरा।
चोज—संज्ञा पुं. (१) विनोदपूर्ण उक्ति, सुभाषित। (२) हास्य-व्यंग्यपूर्ण उपहास।
चोट—संज्ञा स्त्री. [सं. चुट=काटना (१) आघात, प्रहार, टक्कर, मार। (२) घाव, जख्म। उ.—दौरत कहा, चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे—१०-२२६। (३) हथियार का वार या प्रहार। उ.—प्रेम-बान की चोट कठिन है लागी होइ कहो कत ऐसी—३३२६। (४) पशु का आक्रमण। उ.—गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु—४०१। (५) दुख, शोक। (६) ताना, व्यंग्य, कटाक्ष। (७) दाँव-पेंच। (८) धोखा, दगा। (९) बार, दफा।
चोटइल—वि. [हि. चुटैल] जिसे चोट लगी हो।
चोटत-पोटत—क्रि. स. [हि. चोटना पोटना] फुसलाकर, मनाकर। उ.—तेल उबटनौ लै आगैं धरि, लालहिं चोटत-पोटत री—१०-१८६।
चोटना-पोटना—क्रि. स.—फुसलाना, मनाना।
चोटाना—क्रि. अ. [हि. चोट] घायल होना।
चोटार—वि. [हिं. चोट+आर (प्रत्य.)] (१) चोट करने वाला। (२) चोट खाया हुआ।
चोटारना—क्रि. अ. [हि. चोट] चोट करना।
चोटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. चोटी] बालो की लट।
चोटियाना—क्रि. स. [हि. चोट] चोट लगाना।
क्रि. स. [हिं. चोटी] (१) चोटी पकड़ना। (२) बल का प्रयोग करना।

चोटी—संज्ञा स्त्री. [सं. चूड़ा] (१) सिर की शिखा।
मुहा.—चोटी हाथ में होना—काबू में होना।
(२) स्त्रियों या बालकों के गुंथे हुए सिर के बाल। उ.—करि मनुहार कलेऊ दीन्हौं मुख चुपरयौ अरु चोटी—१०-१६३।
मुहा.—करौं चोटी—बाल गूँथ दूँ, चोटी कर दूँ। उ.—महरि कहरि मो यहि कहि भावति, आउ करौं तेरी चोटी—१०-७०३।
(३) ऊन, सूत या रेशम का डोरा जो बाल गूँथने के काम आता है। (४) जूड़े का एक गहना। (५) पक्षियों की कलँगी। (६) सबसे ऊपरी भाग।
मुहा.—चोटी का—सबसे अच्छा या बढ़िया।

चोटी-पोटी—वि. स्त्री. [देश.] (१) चिकनी-चुपड़ी या खुशामद से भरी (बात)। (२) झूँठी, बनावटी इधर-उधर की (बात)। उ.—तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अँग अंग भरी है पूरन ज्ञान न बुधि की मोटी। हम सों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी-पोटी—१४७६।

चोट्टा—संज्ञा पु. [हि. चोर+टा (प्रत्य.)] चोर।

चोढ—संज्ञा पु.—उत्साह, उमंग।

चोप—संज्ञा पु. [हिं. चाव] (१) चाह, इच्छा। (२) शौक, रुचि। (३) उमंग, उत्साह। (४) उत्तेजना, बढ़ावा।

चोपना—क्रि. अ. [हि. चोप] मुग्ध होना।

चोपी—वि. [हि. चोप] (१) इच्छुक। (२) उत्साही।

चोब—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) शामियाने का खंभा। (२) नगाड़ा बजाने की लकड़ी। (३) सोने-चाँदी से मढ़ा डंडा। (४) छड़ी, सोंटा।

चोबदार—संज्ञा पु. [फ़ा] नौकर जो सोने-चाँदी से मढ़ा हुआ डंडा लेकर चलता है।

चोर—संज्ञा पु. [सं.] चोरी करनेवाला। उ.—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ये भए चोर तैं साहू—१-४०।
मुहा.—चोर पर (के घर) मोर पड़ना—धूर्त के साथ धूर्तता होना। मन में चोर बैठना—मन में संदेह या खटका होना। चोर सबनि चोरी करि जानी—बुरा सबको बुरा ही समझता है। उ.—चोर सबनि चोरी करि जानैं ज्ञानी मर्न सब ज्ञानी—१२८७। बीस बिरियाँ चोर की तै कबहुँ मिलिहै साहु—बुरा अपनी धूर्तता से दस-बीस बार भले ही सफलता पा ले, कभी तो चूककर साहु के फंदे में पड़ेगा ही। उ.—कबहुँ तौ हम देखिहैं एक संग राधा कान्ह। भेद हमसों कियौ राधा नहुर भई सिदान्ह। बीस बिरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलिहै साहु। सूर सब दिन चोर कौ कहूँ होत है निरबाहु—१२८०।
(२) वह लड़का जिससे दूसरे खेल में दाँव लेते हैं।
वि.—जिसके सच्चे रूप का पता न लगे।

चोरक—संज्ञा पुं. [सं.] एक गंध-द्रव्य।

चोरटा—संज्ञा पु. [हि. चोट्टा] चोर।

चोरटी—संज्ञा स्त्री. [हि. चोरटा] चोरी करनेवाली। उ.—कैहै कहा चोरटी हमसौं बातैं बात उबरिहै—१२६४। प्र.—चोरटी भई—छिपाकर, चोरी से। सदा जाहु चोरटी भई, आजु परी फँग मोर—१०२२।

चोरत—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराता है,चोरी करता हुआ। उ.—(क) घर-घर डोलत माखन चोरत, षटरस मेरैं धाम—३७६। (ख) कछु दिन करि दधि-माखन-चोरी, अब चोरत मन मोर—७७६।
मुहा.—मन चोरत—मोहित करता है। उ.—सूर-दास प्रभु बचन बनावत अब चोरत मनमोर—१६६५।

चोरथन—वि. [हिं. चोर+थन] जो (पशु) थनों में दूध चुरा ले, पूरा न दुहने दे।

चोरना—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराना।

चोराइ, चोराई—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराकर, चोरी करके। उ.—(क) माखन चोराइ बैठ्यौ, तौलौं गोपी आई—१०-२८४। (ख) प्रभु तबहीं जान्यौ यहै बिधि लै गयौ चोराइ—४३७। (ग) सोऊ तौ घर ही घर डोलतु माखन खात चोराई—१०-३२५।

चोराए—क्रि. स. [हिं. चुराना] चोरी किये।
मुहा.—चित्त चोराए—मन हर लिये। उ.—सूर नगर नर नारि के मन चित्त चोराए—२५१६।

चोराना—क्रि. स. [हि. चुराना] चोरी करना।

चोरायो—क्रि. स. भूत. [हि. चुराना] चुराया, छिपा लिया। उ.—चक्र काहु चोरायो, कैधों भुजनि बल भयो थोर।

चोरावत—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराते हैं।

मुहा.—चितहि चोरावत—मन हरते या मोहते हैं। उ.—सूर स्याम नागर नारिनि के चंचल चितहि चोरावत—१३४३।

चोरि—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराकर, चोरी करके। उ.—नंद-सुत, सँग सखा लीन्हे, चोरि माखन खात—१०-२७३।

चोरिका, चोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चोर] चुराने की क्रिया। उ.—चल सखि देखन जाहि पिया अपने की चोरी—२४०८।

चोरीचोरा, चोरीचोरी—क्रि. वि. [हि. चोरी] चोरी से, लुक छिप कर, दूसरे की आँख बचाकर।

चोरै—क्रि. स. [हि. चुराना, चोराना] चुराती है। उ.—(क) अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै—१०-१५१। (ख) मेरौ माई कौन कौ दधि चोरै—१०-३२१।

चोरयौ—क्रि. स. [हि. चुराना] चुराया। उ.—दूध दही काहे को चोरयौ काहे कौ बन गाइ चराए-३४३४।

चोल, चोलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन देश। (२) स्त्रियों की चोली का एक प्रकार। (३) ढीला-ढाला कुरता। (४) छाल, वल्कल। (५) कवच।

चोलकी, चोलन—संज्ञा पु. [सं. चोलकिन्] (१) बाँस का कल्ला। (२) हाथ की कलाई।

चोलना—संज्ञा पुं. [सं. चोल, हि. चोला] ढीला-ढाला कुरता। उ.—अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल। काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल—१-१५३।

चोला—संज्ञा पुं. [सं. चोल] (१) ढीला-ढाला कुरता। (२) बच्चे को पहली बार कपड़े पहनाने की रस्म। (३) शरीर, बदन।

मुहा.—चोला छोड़ना—प्राण त्यागना।

चोली—संज्ञा स्त्री [सं] (१) स्त्रियों का एक पहनावा जो अँगिया से मिलता-जुलता होता है और जिसकी गाँठ पेट के ऊपर बँधती है। (२) ढीला-ढाला कुरता। (३) अँगरखे आदि का ऊपरी अंश जिसमें बंद रहते हैं।

चोल्ला—संज्ञा पु. [हिं. चोला] ढीला कुरता।

चोवा—संज्ञा पुं. [हि. चौआ] एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ। उ.—चोवा-चंदन-अबिर, गलिनि छिरकावन रे—१०-२८।

चोषण—संज्ञा पु. [सं.] चूसना, चूसने की क्रिया।

चोषना—क्रि. स. [हि. चोखना] दूध पीना।

चोष्य—वि. [सं.] जो चूसने योग्य हो।

चौंक—संज्ञा स्त्री. [सं. चमत्कृत, प्रा. चमंक्कि, चवँक्कि] भय, आश्चर्य या पीडा-जन्य भडक या झिझक।

चौंकना—क्रि. अ. [हि.चौंक+ना (प्रत्य.)] (१) भड़कना, झिझकना। (२) चौकन्ना या सतर्क होना। (३) चकित या हैरान होना। (४) भय या आशंका से हिचकना।

चौंकाना—क्रि. स. [हि. चौंकना का प्रे.] (१) भडकाना, झिझकाना। (२) चौकन्ना या सतर्क करना। (३) चकित या हैरान करना, आश्चर्य में डालना।

चौंकि—क्रि. अ. [हि. चौंकना] (भय के सहसा उपस्थित होने से) चंचल होकर, काँप या झिझककर। उ.—चौंकि परी तन की सुधि आई। आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिरयौ कन्हाई—५४८।

चौंटना—क्रि. स. [हि. चुटकी] चुटकी से तोड़ना।

चौंतरा—संज्ञा पुं. [हि. चबूतरा] चबूतरा।

चौंतिस, चौंतीस—वि. [सं. चतुस्त्रिंशत्, प्रा. चतुत्तिसो, या चउतीसो] जो गिनती में तीस और चार हो।

संज्ञा पु.—तीस और चार की संख्या।

चौंध—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ=चारों ओर+अंध] अधिक प्रकाश से दृष्टि की तिलमिलाहट।

चौंधना—क्रि. अ. [हि. चौंध] चकाचौंध उत्पन्न करना।

चौंधियाना—क्रि. अ. [हि. चौंध] (१) अधिक प्रकाश से चकाचौंध होना। (२) सुझाई न पड़ना।

चौंधी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौंध] तिलमिलाहट।

चौंप—संज्ञा पुं. [हि. चोप] चाव, चोप।

चौंर—संज्ञा पु. [सं. चामर] (१) सुरागाय की पूँछ के बालों का चँवर। (२) झालर, फुँदना।

चौंरगाय—संज्ञा स्त्री. [हि. चौंर+गाय] सुरागाय।

चौंरा—संज्ञा पु. [स. चुंड] अनाज रखने या संग्रह करने का गड्ढा, गाड़।

चौंराना—क्रि. स. [सं. चामर] (१) चँवर करना या डुलाना। (२) झाड़ू देना, बुहारना।

चौंरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौंर+ई (प्रत्य.)] (१) घोड़े की पूंछ के वालो का चॅवर । (२) चोटी या वेणी बांधने की डोरी । उ.—चौंरी डोरी विगलित केस । झूमत लटकत मुकुट सुदेस । (३) सफेद पूंछवाली गाय ।

चौंसठ—वि. [सं. चतुष्षष्ठि, प्रा. चउसट्ठि] जो गिनती में साठ और चार हो ।

संज्ञा पुं.—साठ और चार की संख्या ।

चौ—वि. [सं. चतु:, प्रा. चउ] चार (संख्या) ।

चौआ—संज्ञा पुं. [हिं. चौ+आर] (१) चार अंगुलियो का समूह । (२) चार अंगुल की नाप ।

संज्ञा पु.—चौपाया ।

चौआई—संज्ञा स्त्री. [हि. चौवाई] (१) चारो तरफ से बहनेवाली हवा । (२) अफवाह ।

चौआना—क्रि. अ. [हि. चौंकना] (१) चकित होना, चकपकाना । (२) चौकन्ना होना, घबराना ।

चौक—संज्ञा पु. [सं. चतुष्क, प्रा. चउक्क] (१) चौकोर या चौखूंटी जमीन । (२) आंगन, सहन । (३) बडी वेदी । (४) मगल अवसरो पर देव-पूजन के लिए आटे-अबीर आदि से खींचा गया चौखूंटा क्षेत्र जिसमें कई खाने होते हैं । उ.—कदली खंभ, चौक मोतिन के बाँधे वंदनवार—सारा. २३६ । (ख) मंगलचार भए घर घर में मोतिन चौक पुराए—सारा. ५३४ । (ग) दधि अक्षत फल फूल परम रुचि अंगन चंदन चौक पुरावहु—१० उ.-२३ । (५) शहर का बड़ा बाजार । (६) चौराहा । (७) चौसर खेलने का कपड़ा, बिसात । उ.—राखि सत्रह पुनि अठारह चोर पाँचो मारि । डारि दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि । (८) सामने के चार दांत । (९) चार का समूह ।

चौकडा—संज्ञा पु. [हिं. चौ+कड़ा] कान की बाली ।

चौकडी, चौकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ=चार+सं. कला=अंग] (१) हरिण की छलांग ।

मुहा.—चौकडी भूल जाना—भौचक्का होना ।

(२) चार की मडली । (३) एक गहना । (४) चार युगो का समूह । (५) पलथी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+घोड़ी] चार घोड़ो की गाड़ी ।

चौकन्ना—वि. [हि. चौ=चारो ओर+कान] (१) सावधान, चौकस । (२) चौंका हुआ ।

चौकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौकड़ी] (१) हरिण की छलांग । (२) चार की मडली । (३) चार युगो का समूह ।

चौकस—वि. [हि. चौ=चार+कस] (१) सावधान, सचेत, चौकन्ना । (२) ठीक, दुरुस्त ।

चौकसाई, चौकसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौकस] सावधानी, होशियारी, खबरदारी ।

चौका—संज्ञा पु. [सं. चतुष्क, प्रा. चउक्क] (१) पत्थर का चौकोर टुकडा । (२) चकला । (३) सामने के चार दांतो की पंक्ति । (४) सीसफूल । (५) बराबर लबाई-चौडाई की ईंट । (६) लिपा-पुता स्वच्छ स्थान ।

मुहा.—चौका लगाना—(१) लीप-पोत कर बराबर करना । (२) सत्यानाश करना, चौपट करना ।

(७) चार वस्तुओ का समूह ।

चौकी—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुष्की] (१) छोटा तखत । (२) कुरसी । (३) मदिर के निचले खंभो के ऊपर का घेरा । (४) पडाव, टिकान, अड्डा । (५) वह स्थान जहां पुलिस रहती हो । (६) रखवाली, खबरदारी । (७) देवी-देवता की भेंट । (८) जादू, टोना । (९) गले का एक गहना । उ.—और हार चौकी हमेल अब तेरे कंठ न नैहौं—१५५० ।

चौकोन, चौकोना—वि. [सं. चतुष्कोण, प्रा. चउक्कोण, चउक्कोड़] जिसके चार कोने हों, चौखूंटा ।

चौकोर—वि. [सं. चतुष्कोण] जिसके चारो कोने बराबर हो, चार कोने का ।

चौकैं—संज्ञा पु. सवि. [हिं. चौक] मगलकार्यों में देव-पूजन के उद्देश्य से छोटे-छोटे खानेदार चौकोर क्षेत्र को जो आटे या अबीर से बनते हैं । उ.—चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ, उमँगि अंगनि आँनद सौं, तूर बजायौ—१०-९५ ।

चौखंडा—वि. [हि. चार+खंड] चौमजिला ।

चौखट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चार+काठ] (१) दरवाजे की चार लकड़ियो का ढांचा । (२) देहली, दहलीज ।

चौखटा—संज्ञा पुं. [हि.चौखट] चार लकडियों का ढांचा ।

चौखना—वि. [हिं. चौखंडा] चार खड का ।

चौखानि—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ=चार+खानि=जाति, प्रकार] अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्‌भिज आदि चार प्रकार के जीव। उ.—जाके उदर लोकत्रय, जल-थल, पंच तत्व चौखानि। सो बालक ह्वै भूलत पलना, जसुमत भवनहि आनि—४८७।

चौखूँट—संज्ञा पुं. [हि. चौ+खूट] (१) चारो दिशा। (२) भूमंडल। क्रि. वि.—चारो ओर।

चौखूँटा—वि. [हि. चौखूँट] चौकोना।

चौगड़ा—संज्ञा पुं. [हि. चौ+गोड] खरगोश।

चौगान—संज्ञा पुं. [फा.] (१) एक खेल जिसमें (हाकी या पोलो की तरह) लकडी के बल्ले से गेंद मारते हैं। यह खेल घोड़े पर चढकर भी खेला जाता है। उ.—श्रीमोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन मैं रच्यौ रुचिर मैदान। यादव वीर बराइ बटाई इक हलधर इक आपै ओर। निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैश्रवा के पोर। लीले सुरँग, कुमैत स्याम तेहि पर दै सब मन रंग। (ख) मनमोहन खेलत चौगान—१० उ. ६। (२) चौगान नामक खेल खेलने की लकड़ी जो आगे की ओर टेढ़ी या झुकी हुई होती है। उ.—(क) बार-बार हरि मातहि बूझत, कहि चौगान कहाँ है। दधि-मथनी के पाछैं देखौ, लै मैं धर्यौ तहाँ है—१०-२४३। (ख) लै चौगान बटा करि आगे प्रभु आए जब बाहर। सूर स्याम पूछत सब ग्वालन खेलैंगे केहि ठाहर। (३) चौगान खेलने का मैदान। (४ नगाडा बजाने की लकड़ी।

चौगिर्द—क्रि. वि. [हिं. चौ+फा. गिर्द] चारो ओर।

चौगुन, चौगुना, चौगुने, चौगुनौ, चौगून—वि. [सं. चतुर्गुण, प्रा. चउग्गुण, हि. चौगुना] (१) चतुर्गुण, चार बार उतना ही। उ.—गोपालहिं माखन खान दै। ··· याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं, मोहि जसुमति लौं जान दै—१०-२७४। (२) बहुत अधिक। उ.—(क) यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी—१-१४६।

मुहा.—मन चौगुना होना—उत्साह बढना।

चौघड़—संज्ञा पुं. [हि. चौ=चार+दाढ] चबानेवाले चिपटे या चौड़े दाँत, चौभर।

चौघड़ा, चौघरा—संज्ञा पुं. [हि. चौ=चार+घर] (१) चारखानेदार डिब्बा या बरतन। (२) चार घरों का समूह। (३) दीवट जिसके दीपक में चार बत्तियाँ जलती हैं। (४) एक बाजा।

चौघर—वि. [देश.] घोडे की सरपट चाल।

चौघोड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ=चार+घोड़ा] चार घोड़ों की गाडी या रथ।

चौचंद—संज्ञा पुं. [हि. चौथ या चवाव+चंद] बदनामी, निंदा, कलंक।

चौचंदहाई—वि. स्त्री. [हिं. चौचंद+हाई (प्रत्य.)] निंदा या बदनामी फैलानेवाली।

चौड़ा—वि. [सं. चिपिट=चिपटा] लंबा का उलटा।

चौड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चौडा+ई (प्रत्य.)] लंबाई के दोनो किनारों के बीच का फैलाव।

चौड़ान—संज्ञा स्त्री. [हि. चौड़ा] चौडाई।

चौड़ाना—क्रि. स. [हि. चौड़ा] चौड़ा करना।

चौडोल—संज्ञा पुं. [हि. चौ+डोल (?)] एक बाजा।

चौतनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ (=चार)+तनी (=बंद) =चौतानी] (१) चार बंदवाली बच्चों की टोपी। उ.—(क) भाल-तिलक मसि बिंदु बिराजत, सोभित सीस लाल चौतनियाँ—१०-१०६। (ख) करत सिंगार चार भैया मिलि सोभा बरनि न जाई। चित्र विचित्र सुभग चौतनियाँ इंद्र-धनुष छबि छाई—सारा. १७२। (२) अँगिया, चोली, चौबंदी।

वि.—चार बंदवाली। उ.—स्याम बरन पर पीत झँगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ—१०-१३२।

चौतनी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ=चार+तनी=बंद] चार बंदवाली बच्चो की टोपी। उ.—(क) तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ—१०-८६। (ख) सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-६४।

चौतरा—संज्ञा पुं. [हि. चौ+तार] चार तार का बाजा।

वि.—जिसमें चार तार लगे हों।

चौताल—संज्ञा पुं. [हि. चौ+ताल] (१) मृदंग का एक ताल। (२) होली का एक गीत।

चौथ—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुर्थी, प्रा. चउत्थि, हिं. चउथि] (१) हर पक्ष की चौथी तिथि, चतुर्थी। (२) चतुर्थांश,

चौथाई भाग। (३) एक कर जिसमें आय का चौथाई भाग ले लिया जाय।

वि.—चौथा। उ.—(क) चंपक लता चौथ दिन जान्यौ मृगमद रीर लगायौ। (ख) तीजैं मास हस्त पग होंहि। चौथ मास कर-आँगुरि सोहि—३-१३।

चौथपन, चौथापन—संज्ञा पुं. [हिं. चौथा+पन] बुढ़ापा।

चौथा—वि. [सं. चतुर्थ, प्रा. चउत्थ] तीसरे के बाद का।

संज्ञा पुं.—मृत्यु के चौथे दिन की एक रीति।

चौथाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौथा+ई (प्रत्य.)] चौथा भाग।

चौथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौथा] (१) विवाह के चौथे दिन होनेवाली एक रीति। (२) फसल की बाँट जिसमें जमींदार उपज का चौथा भाग ले लेता है।

चौदंता—वि. [सं. चतुर्दंत] (१) चार दाँतवाला (पशु), उभड़ती जवानी का। (२) अल्हड़, उद्दंड।

चौदंती—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौदंत] उद्दंडता।

वि.—चार दाँतवाली (मादा पशु)।

चौदश, चौदस—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुर्दशी, प्रा. चउद्दसि] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि, चतुर्दशी। उ.—फागुन बदि चौदस को सुभ दिन अरु रविवार सुहायौ। नखत उत्तरा आय विचारयौ काल कंस कौ आयौ।

चौदह—वि. [सं. चतुर्दश, प्रा. चउद्दस, अप. प्रा. चउद्दह] जो दस से चार अधिक हो।

संज्ञा पुं.—दस और चार की संख्या।

चौदाँत—संज्ञा पुं. [हिं. चौ=चार+दाँत] दो हाथियों की मुठभेड़।

चौदानिया, चौदानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ=चार+दाना+ई (प्रत्य.)] कान की बाली जिसमें चार मोती हों।

चौधराई, चौधरात, चौधराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौधरी] (१) चौधरी का काम। (२) चौधरी का पद। (३ चौधरी को मिलनेवाला धन।

चौधराना—संज्ञा पुं. [हिं. चौधरी] चौधरी का पद या पुरस्कार।

चौधरी—संज्ञा पुं. [सं. चतुर=मसनद+धर=धरनेवाला] किसी जाति, समाज आदि का मुखिया।

चौधारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+धारा] चारखाना।

चौप—संज्ञा स्त्री. [हिं. चोप] उमंग।

चौपई—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुष्पदी] एक छंद।

चौपट—वि. [हिं. चौ+पट=किवाड़ा या हिं. चापट] चारों तरफ से खुला हुआ, अरक्षित।

वि.—नष्ट-भ्रष्ट, तबाह, बरबाद।

यौ.—चौपट चरण—जिस (व्यक्ति) के पहुँचते ही सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाय।

चौपटहा, चौपटा—वि. [हिं. चौपट] काम बिगाड़ने वाला, सत्यानाशी। उ.—चंचल चपल, चबाइ, चौपटा, लिये मोह की फाँसी—१-१८६।

चौपड़—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुष्पद, प्रा. चउप्पट] (१) चौसर का खेल। (२) चौसर की बिसात और गोटियाँ।

चौपत—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ=चार+परत] कपड़े की चार परत या तह।

चौपतना—क्रि. स. [हिं. चौपत] तह लगाना।

चौपथ—संज्ञा पुं. [सं. चतुष्पथ] चौराहा।

चौपद—संज्ञा पुं. [सं. चतुष्पद] चौपाया।

चौपर, चौपारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौपड़] चौसर नामक खेल जो बिसात और गोटियों से खेला जाता है। उ.—सभा रची चौपर क्रीड़ा करि कपट कियो अति भारी—सारा. ७६२।

चौपरना, चौपरतना—क्रि. स. [हिं. चौपत] तह लगाना, कपड़े की परत लगाना।

चौपहरा—वि. [हिं. चौ+पहर] चार पहर का।

चौपहल, चौपहला, चौपहलू—वि. [हिं. चौ+फा. पहलू] जिसमें चार पहल हों, वर्गात्मक।

चौपाई—संज्ञा स्त्री. [सं. चतुष्पदी] एक छंद।

चौपाया—संज्ञा पुं. [सं. चतुष्पद, प्रा. चउप्पाव] चार पैर वाला पशु।

चौपार, चौपाल—संज्ञा पुं. [हिं. चौबार] (१) खुली हुई बैठक, बैठक। (२) दालान, (३) खुली पालकी।

चौपैया—संज्ञा पुं. [सं. चतुष्पदी] एक छंद।

चौफेर—क्रि. वि. [हिं. चौ+फेर] चारों ओर।

चौफेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+फेरी] परिक्रमा।

चौबंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+बंद] चुस्त अंगा।

चौबाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+बाई=हवा] (१) चारों

ओर से आनेवाली हवा। (२) उड़ती खबर। (३) धूमधाम की चर्चा।

चौवार, चौवारा—संज्ञा पुं. [हि. चौ+वार=द्वार] (१) खुली बैठक, बैठक। (२) दालान।

क्रि. वि. [हि. चौ+वार=दफा] चौथी बार।

चौविस, चौवीस—वि. [सं. चतुर्विंशति, प्रा. चउवीसा] बीस से चार अधिक।

संज्ञा पुं—बीस और चार की संख्या।

चौवे—संज्ञा पुं. [सं. चतुर्वेदी, प्रा. चउव्वेदी, हि. चउवे] ब्राह्मणों की एक जाति।

चौवोला—संज्ञा पु [हि. चौ+बोल] एक छंद।

चौभड़, चौभर—संज्ञा पु.—चबाने के दाँत।

चौमंजिला—वि. [हि. चौ+फा. मंजिल] चौखंडा।

चौमसिया—वि. [हि. चौ+मास] चार मास का।

चौमार्ग—संज्ञा पु. [सं. चतुर्मार्ग] चौरस्ता।

चौमास, चौमासा—संज्ञा पुं. [स. चतुर्मास] (१) वर्षा के चार महीने। (२) वर्षा-संबंधी कविता।

चौमुख—क्रि. वि. [हि. चौ+मुख] चारो ओर।

चौमुखा—वि. [हि. चौमुख] चार मुँहवाला।

चौमुहानी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ+फा. मुहानी] चौराहा।

चौरंग—संज्ञा पुं. [हि. चौ+रंग] खड्ग-प्रहार की एक रीति, तलवार का एक हाथ।

वि.—तलवार के वार से खंड खंड।

चौरंगा—वि. [हि. चौ+रंग] चार रंग का।

चौर—संज्ञा पु. [स.] (१) चोर। (२) एक गन्धद्रव्य। उ.—चंदन चौर सुगंध बतावत कहाँ हमारे पास—११३०।

चौरस—वि. [हि. चौ+रस] (१) जो ऊँचा-नीचा न हो, समथल। (२) चौपहल।

चौरसाना—क्रि. स. [हि. चौरस] चौरस करना।

चौरा—संज्ञा पु. [सं. चतुर, प्रा. चउर] (१) चौतरा, चबूतरा, वेदी। (२) देवी-देवता की वेदी। (३) चौपाल, चौबारा। (४) लोबिया नामक साग।

चौराई—संज्ञा स्त्री [हि. चौ+राई] चौलाई नामक साग। उ.—(क) चौराई लाल्हा अरु पोई—३९६। (ख) साग चना सँग सब चौराई—२३२१।

चौरानवे—वि. [सं. चतुर्नवति, प्रा. चउणवइ] नब्बे से चार अधिक। संज्ञा पुं.—नब्बे और चार की संख्या।

चौरासी—वि. [सं. चतुराशीति, प्रा. चउरासीइ] जो अस्सी से चार अधिक हो।

संज्ञा पु.—(१) अस्सी और चार की संख्या। (२) चौरासी लाख योनि।

मुहा.—चौरासी मे पड़ना (भरमना)—बार-बार शरीर धारण करना।

(३) एक तरह का पैर का घुँघरू।

चौराहा—संज्ञा पु. [हि. चौ+राह] चौरास्ता।

चौरी—संज्ञा स्त्री. [हि. चौरा] छोटा चबूतरा, वेदी। उ.—रची चौरी आपु ब्रह्मा जरित खंभ लगाइ कै—१० उ. २४।

संज्ञा स्त्री. [सं.] चोरी।

चौरेठा—संज्ञा पु. [हि. चावल+पीठा] पिसा चावल।

चौर्य—संज्ञा पु. [स.] चोर।

चौलड़ा—वि. [हि. चौ+लड] चार लड़वाला।

चौलाई—संज्ञा स्त्री. [हि. चौ+राई=दाने] एक साग। उ.—चौलाई लाल्हा अरु पोई—३९६।

चौवन—संज्ञा पु. [सं. चतु पंचाशत, पा. चतुपंचासो, प्रा. चउवण्ण] पचास और चार की संख्या।

चौवा—संज्ञा पु. [हि. चौ=चार] हाथ की चार उँगलियों का समूह या विस्तार।

संज्ञा पु. [सं. चतुष्पाद] चौपाया।

चौवालीस—संज्ञा पुं. [स. चतुश्चत्वारिंशत, पा. चतुच्चत्तालीसति, प्रा. चउव्वालीसइ] चालीस और चार की संख्या।

चौसई—संज्ञा स्त्री.—गजी, गढी।

चौसर—संज्ञा पुं. [हि. चौ=चार + सर=बाजी अथवा चतुस्सारि] एक खेल जो गोटो और पासों से खेला जाता है।

संज्ञा पुं [सं. चतुस्सृक] चार लड़ों का हार, चौलड़ी। उ.—चौसर हार अमोल गरे को देहु न मेरी माई—१५४८।

चौसिंघा, चौसिंहा—वि. [हि. चौ+सींग] चार सींग वाला (पशु या चौपाया)।

चौहट, चौहटे, चौहट्ट, चौहट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. चौ=चार+हाट] (१) वह स्थान जिसके चारो ओर दूकाने हो, चौक। (२) चौरस्ता, चौराहा। उ.—(क) ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन कन कौं चौहटें नचायौ—१-३२६। (ख) या गोकुल के चौहटे रंग भीगी ग्वालिन—२४०५।

चौहत्तर—संज्ञा पुं. [स. चतु.सप्तति, प्रा. चौहत्तरि] सत्तर से चार अधिक की सख्या।

चौहद्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. चौ+फा. हद] चारो ओर की सीमा, चारदीवारी।

चौहरा—वि. [हिं. चौ=चार+हर (प्रत्य.)] (१) चार परतवाला। (२) चौगुना।

चौहान—संज्ञा पुं. [हि. चौ=चार+भुजा] क्षत्रियो की एक शाखा।

चौहैं—क्रि. वि. [देश.] चारो ओर।

च्यवन—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जिनके पिता का नाम भृगु और माता का पुलोमा था। इन्होने इतने समय तक तप किया कि इनका सारा शरीर दीमक की मिट्टी से ढक गया, केवल आँखें खुली रहीं। राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या ने खेल समझ कर इनक चमकती हुई आँखो में काँटा चुभो दिया जिससे उनक ज्योति जाती रही। पश्चात्, राजा ने क्षमा माँग क अपनी पुत्री का विवाह वृद्ध ऋषि से कर दिया सुकन्या के पातिव्रत से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार ने वृद्ध ऋषि को युवक बना दिया।

च्युत—वि. [सं.] (१) टपका या गिरा हुआ। (२ पतित। (३) भ्रष्ट। (४) अपने स्थान से हटा हुआ (५) कर्त्तव्य-विमुख।

च्युति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पतन। (२) उपयुक्त स्थान से हटना। (३) कर्त्तव्य-विमुखता। (४ अभाव।

च्यूड़ा—संज्ञा पुं. [हि. चिउड़ा] चूड़ा।

च्यूत—संज्ञा पुं. [सं.] आम का पेड या फल।

च्योनो—संज्ञा पुं.—धातु गलाने की घरिया।

च्वै—क्रि. अ. [सं. च्यवन, हि. चूना] (१) बहना यौ.—च्वै चले—बहने लगे, टपकने लगे। उ.—सुनत तिहारी बातैं मोहन च्वै चले दोऊ नैन—७४६ (२) गर्भपात होना।

छ

छ—चवर्ग का दूसरा व्यंजन, इसका उच्चारण-स्थान तालु है।

छंग—संज्ञा पुं. [स. उत्संग, प्रा. उच्छंग] गोद, अक।

छंगा, छंगू—वि. [हि. छ.+उँगली] छ उँगलियोवाला।

छँगुनिया, छँगुनी, छँगुलिया, छँगुली—संज्ञा स्त्री. [हि' छगुनी] हाथ की सबसे छोटी उँगली।

छंछाल—संज्ञा पुं. [दि.] हाथी।

छंछोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँछ+बरी] एक पकवान।

छँटना—क्रि. अ. [सं. चटन=तोड़ना, छेदना] (१) कट कर अलग होना। (२) दूर होना, निकल जाना। (३) तितर-बितर होना। (४) साथ छूट जाना। (५) चुना जाना। मुहा.—छँटा हुआ—चुना हुआ, बहुत चालाक। (६) साफ हो जाना। (७) दुबला हो जाना।

छँटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाँटना+ई (प्रत्य.)] (१) छाँट की क्रिया या भाव, छँटाई। (२) (कर्मचारी को काम से हटाने की क्रिया या भाव।

छँटवाना—क्रि. स. [हि. छाँटना] (१) वस्तु आदि क कोई भाग कटवा देना। (२) चुनवाना। (३ छिलवाना।

छँटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाँटना] (१) छाँटने की क्रिया (२) चुनने की क्रिया। (३) साफ करने की क्रिया (४) इन क्रियाओ की मजदूरी।

छँटाना—क्रि. स. [हिं. छाँटना] छँटवाना।

छँटाव—संज्ञा पुं. [हिं. छाँटना] (१) छँटा-छँटाया शेष बेकार अंश । (२) छाँटने का भाव ।

छँटैल—वि. [हि. छँटना] (१) चुना हुआ । (२) धूर्त ।

छंडना—क्रि. स. [हि छोड़ना] (१) छोड़ना, त्यागना । (२) ओखली में डालकर अन्न कूटना । (३) छाँटना ।

क्रि. अ. [सं. छर्दन] कै या वमन करना ।

छड़ाना—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] छुड़ा लेना ।

छँड़ावत—क्रि. स. [हि. छँड़ाना] छुड़ाते है, छीन लेते है । उ.—ग्वालन कर तैं कौर छँड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात—१०८४ ।

छँड़ावै—क्रि. स. [हि. छँड़ाना] छुड़ा ले, मुक्त करावे । उ.—तब कत पानि धरो गोवर्द्धन कत ब्रजपतिहि छँड़ावै—३०६८ ।

छँड़ैहै—क्रि. स. [हि. छँड़ाना] छुड़ावेगा, मुक्ति दिलायेगा । उ.—सूर मोहि अटक्यौ है नृपवर तुम विनु कौन छँड़ैहै—११५४ ।

छँड़ुआ—वि. [हि. छाँड़ना] जो दड से मुक्त हो ।

संज्ञा पुं.—(१) वह पशु जो किसी देवता के लिए छोडा गया हो । (२) ब्याज, ऋण आदि की छूट ।

छंद—संज्ञा पुं. [सं. छंदस्] (१) वेद-वाक्यो का अक्षर-गणना के अनुसार किया गया एक भेद । (२) वेद । (३) वह वाक्य जिसमें वर्ण या मात्रा के अनुसार विराम लगे । (४) वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षणों आदि का विचार हो । (५) इच्छा, अभिलाषा । (६) मनमाना व्यवहार । (७) वधन, गाँठ । (८) समूह । (९) छल-कपट का व्यवहार । उ.—(क) बाट धरयौ तुम इहै जानि कै करत ठगन के छंद—११२१ । (ख) वाके छंद-भेद को जानै मीन कबहि धौं पीवति पानी—१२८४ । (ग) छद कपट कछु जानति नाहीं सूधी हैं ब्रज की सब बाल—१३१५ ।

मुहा.—छल-छंद–छल कपट, चालबाजी, धोखेबाजी ।

(१०) चाल, युक्ति । (११) रग-ढग, चेष्टा । (१२) अभिप्राय । (१३) एकात स्थान । (१४) विष । (१५) आवरण, ढक्कन । (१६) पत्ती ।

संज्ञा पुं. [सं. छदक] कलाई का एक गहना ।

छंदक—वि. [सं.] (१) रक्षक । (२) छली ।

संज्ञा पुं.—(१) श्रीकृष्ण का एक नाम । (२) बुद्धदेव के सारथी का नाम । (३) छल ।

छंदज—संज्ञा पुं. [सं.] वसु आदि वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदो में है ।

छंदन—संज्ञा पुं. सवि. [हि. छंद] छदो में । उ.—सूर-दास प्रभु सुजस वखानत नेति नेति स्रुति छंदन—४७६ ।

छदना—क्रि. अ. [. छंद] रस्सी से बांधा जाना ।

छद्पातन—संज्ञा पु. [सं.] बनावटी छली साधु ।

छद्बंद—संज्ञा पुं. [हिं. छंद+वंद] छल-छपट ।

छदी, छदेली—संज्ञा स्त्री. [हि. छंद] कलाई का एक गहना ।

वि.—छली, कपटी, धोखेबाज ।

छंदोबद्ध—वि. [सं.] जो पद्य-रूप में हो ।

छदोभंग—संज्ञा पुं. [सं.] छद-रचना में मात्रा-वर्ण आदि के नियम पालन न करने का दोष ।

छ—संज्ञा पुं [सं.] (१) काटना । (२) ढांकना ।(३) घर । (४) खड, टुकड़ा ।

वि.—(१) निर्मल, साफ । (२) चचल, तरल ।

संज्ञा पुं. [सं. षट् ,प्रा. छ] वह सख्या, या अक जो पाँच से एक अधिक हो ।

छई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षयी] क्षय रोग ।

वि.—नष्ट होनेवाला ।

क्रि. अ. [हि. छाना] छा गयी, फैल गयी । उ.—मेरे नैना विरह की वेल वई । अब कैसैं निरवारौं सजनी सब तब पसरि छई—२७७३ ।

छए—क्रि. अ. [हि. छाना] विराज रहे है, बस गये है । उ.—सूरस्याम सुंदर रस अटके उहँइ छए री—सा. उ. ७ और पृ. ३३३ ।

छक—संज्ञा स्त्री. [हि. छकना] नशा, तृप्ति, लालसा ।

छकइयै—क्रि. स. [हि. छकना, छकाना] खिला-पिला कर तृप्त कीजिए, भोजन से सतुष्ट कीजिए । उ.—हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक, भाजी-साक छकइयै—१-२३९ ।

छकड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शकट, प्रा. सगड़ो, छंगडो] दुपहिया बैलगाड़ी, लढ़ी, लढ़िया, सग्गड़ ।

वि.—जिसके अंजर-पंजर ढीले हो गये हो।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री. [हि. छ + कड़ी] छः कहारों द्वारा उठायी जानेवाली पालकी।

छ:कड़ी, छकरी—संज्ञा स्त्री. [हि छ +कड़ा] (१) छः का समूह। (२) छ कहारों की पालकी। (३) छः बाँधों से चारपायी बिनने का ढंग।

वि.—जिसके छ अंग हो, छ से बना हुआ।

छकना—क्रि.अ. [स. चकन=तृप्त होना] (१) खाकर अघाना या तृप्त होना। (२) नशे से चूर होना।

क्रि. अ [सं. चक्रभ्रांत] (१) अचभे में आना। (२) हैरान या दिक होना।

छकाछक—वि. [हि छकना] (१) तृप्त, अघाया हुआ, सतुष्ट। (२) भरा हुआ, परिपूर्ण। (३) नशे से चूर।

छकाना—क्रि. स. [हि. चकना] (१) खिला-पिलाकर तृप्त करना। (२) नशे से चूर करना।

क्रि. स. [स. चक्र=भ्रांत] (१) चक्कर या अचभे में डालना। (२) दिक या हैरान करना।

छकि—क्रि. अ. [हि. छकना] (१) तृप्त होकर। (२) मद से मस्त होकर। (३) हैरान होकर।

छकी—क्रि. अ. [हि. छकना] छक गयी। उ.—सुनहु सूर रस छकी राधिका बातन बैर बढ़ै है—१२६३।

छकीला—वि. [हि. छकना] छका हुआ, मस्त।

छक्का—संज्ञा पु. [सं. षंक, प्रा. छक्को] (१) छ अंगो से बनी वस्तु। (२) जुए का एक दाँव।

मुहा.—छक्का-पंजा—दाँव-पेच, चालबाजी। छक्का-पंजा भूलना—कोई उपाय या चाल न चलना।

(३) जुआ। (४) ताश जिसमें छ बूटियाँ हो। (५) होश-हवास।

मुहा.—छक्के छूटना—(१) बुद्धि का काम न करना। (२) हिम्मत हारना। (१) हैरान करना। (२) साहस छुड़ाना।

छग, छगड़ा—संज्ञा स्त्री [सं. छागल] बकरा।

छगण—संज्ञा पुं. [स] सूखा गोबर, कंडा।

छगन, छगना—संज्ञा पु. [सं. चंगट] छोटा प्रिय बालक।

वि—बच्चों के लिए प्यार का एक शब्द।

यौ.—छगन-मगन, छगना मगना—छोटे-छोटे प्यारे बच्चे। उ.—(क) गिरि गिरि परत घुटुरुवनि टेकत खेलत है दोउ छगन-मगन (छगना मगना)। (ख) कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ—२६७३।

छगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. छाग, हि. पु छगड़ा] बकरी।

छगुनी—संज्ञा स्त्री. [हि. छोटी+उँगली] हाथ की सबसे छोटी उँगली,कनीनिका, कानी उँगली।

छछिया, छछिया—संज्ञा स्त्री [हि. छाँछ] (१) छाँछ पीने या नापने का पात्र। (२) छाँछ, मट्ठा, तक्र।

छछुंदर, छछूँदर छछूँदरि—संज्ञा पु [स. छछुंदरी] (१) चूहे की जाति का एक जतु जिसके सबध में प्रसिद्ध है कि यदि साँप इसे पकड कर छोड़ दे तो अंधा हो जाय और खा ले तो मर जाय। उ.—भई रीति हठि उरग छछूँदरि छाँड़ै बनै न खात—३१५७। (२) एक प्रकार का यत्र या तावीज। (३) एक आतिशबाजी।

मुहा.—छछूँदर छोड़ना—झगड़ा कराना।

छछेरू—संज्ञा पु. [हि छाछ] घी का फेन या मैल।

छजना—क्रि. अ. [सं. सज्जन, हि. सजना] (१) शोभा देना अच्छा लगना, सोहना। (२) ठीक या उचित होना।

छजाना—क्रि. स. [हि. छजना] बनाना, छाना।

छज्जन, छज्जा—संज्ञा पु. [हिं. छाजना या छाना] (१) छाजन या छत और कोठे या पाटन का भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है। उ—छज्जन तें छूटति पिचकारी। भीगि गई सब महल अटारी। (२) टोपी का निकला हुआ किनारा।

छज्जे—संज्ञा पु. बहु [हि. छज्जा] कोठे या छत के दीवार से बाहर या ऊपर निकले हुए भाग। उ—छज्जे महलन देखि कै मन हरष बढ़ावत—२५६०।

छटंकी—संज्ञा स्त्री. [हि छटाँक] (१) छटाँक का बाँट। (२) बहुत छोटा और हल्का व्यक्ति।

छटकना—क्रि. अ. [हि छूटना] (१) सवेग अलग होना, सटकना। (२) अलग-अलग रहना। (३) हाथ न लगना, हत्थे न लगना। (४) उछलना-कूदना।

छटकाना—क्रि. अ. [हि छटकना] (१) सटने या अलग होने देना। (२) झटका देकर पकड या बंधन से छुड़ाना। (३) बलपूर्वक अलग करना।

छटकाये—क्रि. अ. [हि. छटकाना] झटका दिया, झटका देकर छुडाया। उ.—रिसि करि खीझि खीझि लट झटकति स्याम सुजनि छटकाये दीन्हो।

छटना—क्रि. अ. [हि. छँटना] अलग होना।

छटपट—संज्ञा पुं [अनु.] छटपटाने की क्रिया।
वि.—चंचल, चपल, नटखट।

छटपटाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) बंधन या कष्ट से हाथ-पैर पटकना, तडपना। (२) व्याकुल होना। (३) किसी चीज के लिए अकुलाना।

छटपटाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. छटपटाना] छटपटाने या अधीर होने की क्रिया या भाव।

छटपटी—संज्ञा स्त्री [अनु.] (१) बेचैनी। (२) उत्कंठा।

छटाँक—संज्ञा स्त्री. [हि. छ+टाँक] पाव का चौथाई।
मुहा.—छटाँक भर-(१) पाव का चौथाई। (२) थोडा।

छटा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रभा, दीप्ति। (२) छवि, शोभा। (३) बिजली।

छटाई—संज्ञा स्त्री. [सं. छटा+ई (प्रत्य.)] प्रकाश, दीप्ति। उ.—किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु घन मैं बिज्जु छटाई—१०-१०८।

छटाभा—संज्ञा स्त्री. [सं.]। (१) बिजली की चमक या कौंध। (२) मुख की कांति, प्रभा या दीप्ति।

छटैल—वि. [हि. छँटना] छँटा हुआ, बहुत चालाक।

छट्ठ, छट्ठि, छट—संज्ञा स्त्री. [सं. षष्ठी, प्रा. छट्ठी] प्रति पक्ष की छठी तिथि। उ.—भादो देव छट्ठि को सुभ दिन प्रगट भये बलभाई—सारा.४२२।

छट्ठि, छट्ठी, छठि, छठी—संज्ञा स्त्री. [सं. षष्ठी, प्रा. छट्ठी] (१) जन्म के छठे दिन की पूजा। उ.—काजर रोरी आनहू (मिलि) करौ छठी कौ चार—१०-४०।
मुहा.—छठी आठे होना—परस्पर न बनना, आपस में झगडा होना। उ.—छठि आठैं मोहि कान्ह कुँवर सो तिनकौ कहति प्रीति सो है—१२५६। छठी का दूध निकलना (याद आना)—बहुत कष्ट या हैरानी होना। छठी का दूध निकालना—बहुत हैरान करना। छठी का राजा—पुराना रईस। छठी में न पड़ना—(१) भाग्य में बदा न होना। (२) स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध होना।

(२) वह देवी जिसकी पूजा छठी को होती है।

छठएं—क्रि. वि. [हि. छठा] छठे (स्थान या घर) में। उ.—छठएं सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहि पैहैं—१०-८६।

छठा—वि. [हि. छठ] पाँचवें के बाद का।

छठैं—वि. [हि. छठा] छठा। उ.—पंचम मास हाड़ बलि पावै। छठें मास इंद्री प्रगटावै - ३-१३।

छड़—संज्ञा स्त्री. [सं. शर] धातु आदि की लंबी डंडी।

छड़ना—क्रि. स [हि. छँटना] अनाज कूटना-छाँटना।
क्रि. स. [हि. छोड़ना] त्यागना, छोडना।

छड़ा—संज्ञा पु. [हि. छड़] (१) पैर में पहनने का एक गहना। (२) मोतियो की लडो का गुच्छा या लच्छा।
वि. [हि. छोड़ना] जिसके साथ कोई न हो।

छड़ाइ—क्रि. स. [हि. छुडाना] छुडाना, छीन लेना।
प्र.—लई छड़ाइ—छुडा ली, छीन ली। उ.—चरन की छवि देखि डरप्यौ अरुन, गगन छपाइ। जानु करभा की सबै छवि, निदरि, लई छड़ाइ - १०-२३४।

छड़ाए—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] छुडा लिये।

छड़िया—संज्ञा पुं. [हि. छड़ी] दरबान, द्वारपाल।

छड़ियाल—संज्ञा पुं. [हि. छड़ी] एक तरह का भाला।

छड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. छड़] (१) पतली लकडी। (२) झडी।
वि. स्त्री [हि. छोड़ना] जिसके साथ कोई न हो।

छड़ीदार—संज्ञा पुं. [हि. छड़ी+दार (प्रत्य.)] द्वारपाल।

छड़े—क्रि. स. [हि. छोड़ना] छोड़े, अलग किये, त्यागे। उ.-जदपि अहीर जसोदानंदन कैसैं जात छड़े-३१५१।

छत—संज्ञा स्त्री. [सं. छत्र, प्रा. छत्त] (१) दीवारो का ऊपरी फर्श। (२) घर का खुला हुआ ऊपरी फर्श। (३) ऊपरी चादर।
मुहा.—छत बँधना—बादलो का घिरकर छाना।
संज्ञा पुं. [सं. क्षत] घाव, जख्म।
क्रि. वि. [सं. सत्] रहते या होते हुए।

छतना—संज्ञा पुं. [हि. छाता, अव. छतौना] छाता जो पत्तो आदि से बनाया गया हो।

छतनार—वि. [हि. छतना] दूर तक छाया हुआ।

छतरी, छतुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. छत्र] (१) छाता। (२) पत्तो का छाता। (३) मंडप। (४) चिता या समाधि

पर बना ऊपरी मडप। (५) डोली या वाहन का छाजन।

छतवंत—वि. [स. क्षत+वंत] क्षतयुक्त।

छता—सज्ञा पुं. [हि. छाता] छतरी, छाता।

छति—संज्ञा स्त्री. [स. क्षति] हानि, घाटा।

छतियाँ, छतिया—सज्ञा स्त्री. [हि. छाती] (१) छाती, वक्षस्थल। उ.—(क) सूरस्याम बिलमाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी—१०-१६६। (ख) चित चरनन लाग्यौ, छतियाँ धरकि रही—२२३६। (ग) छतियाँ लै लाऊँ बालक लीला गाऊँ—२६६६। (घ) वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नँदलाल कही—२६६६। (२) हृदय, कलेजा, मन, जी। उ.—कुलि-सहुँ तै कठिन छतियाँ चितै री तेरी, अजहूँ द्रवति जो न देखति दुखारि—३६२।

छतियाना—क्रि. स. [हि छाती] छाती के पास ले जाना।

छतीसा—वि. [हि. छत्तीस] चतुर, धूर्त्त।

छतीसापन—सज्ञा पु. [हि. छत्तीसा] चालाकी, मक्कारी।

छतीसौ—वि. [हि. छत्तीस] कुल छत्तीस। उ.—जाति पाँति पहिराइ कै समदि छत्तीसौ पौन—१०-४०।

छतौना—सज्ञा पुं. [हि. छाता] छाता, छतरी।

छत्तर—संज्ञा पु. [हि. छत्र] (१) छाता। (२) छत्र।

छत्ता—सज्ञा पु. [स. छत्र, प्रा. छत्त] (१) छाता, छतरी। (२) पटाव जिसके नीचे रास्ता हो। (३) मधुमक्खी का घर। (४) छत्तेदार चकत्ता। (५) कमल का बीजकोश।

छत्तीस—संज्ञा पु [स. षट्त्रिंशति, प्रा. छत्तीसा] तीस और छ के जोड से बननेवाली सख्या।

छत्तीसा—संज्ञा पुं. [हि. छत्तीस] नाई, हज्जाम।

वि.—धूर्त्त, बहुत चालाक, काँइयाँ।

छत्तीसी—वि. स्त्री. [हि. छत्तीसा] छल-कपटवाली।

छत्तुर—संज्ञा पुं. [स. छत्र] (१) छाता। (२) छत्र।

छत्र—सज्ञा पुं. [सं.] (१) छतरी। (२) राजाओ का राजचिह्न-सूचक छाता। उ.—चरन-कमल बंदौं हरिराइ। रक चलै सिर छत्र धराइ—१०१।

मुहा.—किसी के छत्र की छाँह मे होना (रहना)—किसी की शरण या रक्षा में होना (रहना)।

छत्रक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुकुरमुत्ता। (२) छाता। (३) एक चिड़िया। (४) मंदिर। (५) शहद का छत्ता।

छत्रधर, छत्रधारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छत्र धारण करनेवाला राजा। (२) छत्र लगानेवाला सेवक।

छत्रन—संज्ञा पु. बहु. [हि. छत्र] राजछत्र, उ.—ऊँचे। अटन पर छत्रन की छबि सीतल मानो फनों—२५६१।

छत्रपति—संज्ञा पु. [सं.] छत्र धारण करनेवाला राजा। उ.—जस किये अगनित बहुत जोगी छत्रपति [illegible] —१० उ. २८।

छत्रपन—संज्ञा पुं. [सं.] राजत्व, राज्याधिकार। उ.—अब लौं तौ [illegible] । जाते रहे छत्रपन [illegible]—१-२६६।

छत्रबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] नीच कुल का क्षत्रिय।

छत्रभंग—संज्ञा पु. [सं.] (१) राजा का नाश। (२) वैधव्य। (३) अराजकता। (४) हाथी का एक दोष।

छत्रिय—संज्ञा पु. [सं. क्षत्रिय] हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा जिसका कर्तव्य देश-रक्षा था। विश्वास है कि इस वर्ग के लोग युद्ध में वीरों की भाँति मरने पर स्वर्ग जाते हैं। उ.—[illegible] सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ—१-२७०।

छत्री—वि. [स. छत्रिन्] छत्र धारण करनेवाला।

सज्ञा पु.—नाई, हज्जाम।

संज्ञा पु. [स. क्षत्रिय] क्षत्रिय। उ.—मारे छत्री इकइस बार—६-१३।

छत्वर—सज्ञा पु. [स.] (१) घर। (२) कुज।

छदंब, छदम—सज्ञा पु. [सं. छद्म] छिपाव, बहाना, छल।

छद, छदन—संज्ञा पु. [स.] (१) ढकने का आवरण, ढक्कन। (२) चिड़ियो का पख। (३) पत्ता।

छदाम—सज्ञा पुं [हि. छ +दाम] चौथाई पैसा।

छद्दर—सज्ञा पु. [हि. छ.+स रद] नटखट लडका।

छद्म—सज्ञा पु [स.] (१) छिपाव। (२) बहाना, हीला। (३) छल-कपट।

छद्मवेश—संज्ञा पुं. [सं.] बदला हुआ वेश।

छद्मवेशी—वि [स. छद्मवेशिन्] जो वेश बदले हो।

छद्मी—वि. [स. छद्मिन्] (१) छद्मवेशी। (२) छली।

छन—संज्ञा पु. [सं. क्षण] (१) छण भरका समय।

उ.—वरुन-पास तैं ब्रजपतिहि छन माहि छुड़ावै—१-४। (२) अवसर।

छनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) छन-छन का शब्द। (२) तपी वस्तु पर पानी पडने से होनेवाला छन-छन शब्द।

संज्ञा स्त्री. [सं. शंका] चौंक कर भागना।

संज्ञा पुं. [हि. छन+एक] एक क्षण का समय।

छनकना—क्रि. अ. [अनु. छनछद] (१) तपी धातु पर पानी की बूंद का गिरकर छनछन करके उड जाना। (२) झनझनाना।

क्रि. अ. [सं. शंका] चौंककर भागना।

छनक मनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.](१)गहनों की झनकार। (२) साजबाज। (३) आभूषण झनकारते फिरते बच्चे।

छनकहि--क्रि. वि. [हि. छनक] जरा देर में, क्षणभर में। उ.—छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखै उठि जागि जम्हाई—५५०।

छनकाना—क्रि. स. [हि. छनकना] तपे बरतन में पानी आदि किसी द्रव को डालकर छनछनाना।

क्रि. स. [सं. शंका, हि. छनकना] भडकाना।

छनछनाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) तपे हुए पात्र में पानी पडने से छनछन का शब्द होना। (२) खौलते हुए घी-तेल में तरकारी आदि पडने का शब्द होना।

क्रि. स.—(१) छनछन करना। (२) झनकारना।

छनछवि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षण + छवि] बिजली।

छनदा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षणदा] रात, रात्रि।

छननमनन—संज्ञा पुं. [अनु.] खौलते घी-तेल में किसी गीली वस्तु के पडने पर होनेवाला शब्द।

छनना—क्रि. अ. [स. क्षरण] (१) छलनी से साफ होना। (२) छेदों से छानना। (३) नशे का पिया जाना।

मुहा.—गहरी छनना—(१) खूब मेल जोल होना, गाढी मित्रता होना। (२) आपस में बिगाड होना।

(४) बहुत से छेद होना। (५) खूब बिध जाना। (६) छानबीन द्वारा सच्ची-झूठी बात का पता चलना।

संज्ञा पु.—छानने का बहुत महीन कपडा।

छनभंगु, छनभंगुर—वि. [सं. क्षणभंगुर] शीघ्र नष्ट होने वाला। उ.—(क) इहि तन छनभगुर के कारन गरवत कहा गँवार—१-८४। (ख) सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, झूठ सबै समुदाइ। छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहि सँग जाइ—१-३१७। (ग) तनु मिथ्या छनभंगुर जानौ—५-३। (घ) नर सेवा तैं जौ सुख होइ, छनभंगुर थिर रहै न सोइ—७-२।

छनवाना, छनाना—क्रि. स. [हि. छानना] (१) छानने का काम दूसरे से कराना। (२) नशा आदि पिलाना।

छनाका—संज्ञा पु. [अनु.] (रुपए आदि की) झनकार।

छनिक—वि. [सं. क्षणिक] थोडे समय का।

सज्ञा पुं. [हि. छन+एक] एकक्षण, थोडा समय।

छन्न—वि. [सं.] (१) ढका हुआ। (२) लुप्त।

संज्ञा पुं.— (१) एकात स्थान। (२) गुप्त स्थान।

संज्ञा पुं. [सं. छंद] छद नामक हाथ का गहना।

संज्ञा पुं. [अनु.] (१) खूब तपती धातु पर पानी आदि पडने से उत्पन्न छनछनाहट (२) खौलते हुए घी-तेल म गीली चीज पड़ने पर होनेवाला शब्द।

मुहा.--छन्न होना—छनछनाकर उड़ जाना।

(३) धातुओ के पत्तरो की छनकार।

छन्नमति—वि. [सं.] मूर्ख, जड।

छन्ना—संज्ञा पुं. [हि. छनना] छानने का कपड़ा।

छप—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पानी में किसी वस्तु के जोर से गिरने का शब्द।

छपकना—क्रि. स. [छप से अनु.] (१) पतली छडी से पीटना। (२) कटारी आदि से काटना या छिन्न करना।

छपका—संज्ञा पु. [हि. चपकना] सिर का एक गहना।

संज्ञा पु. [हि. छपकना] पतली कमची, साँटा।

संज्ञा पुं. [अनु.] (१) पानी का जोरदार छींटा। (२) पानी में हाथ-पैर मारने की क्रिया या भाव।

छपछपाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) पानी पर हाथ-पैर से छपछप शब्द करना। (२) कुछ-कुछ तैर लेना।

छपटना—क्रि. अ. [सं. चिपिट, हि चिपटना] (१) किसी वस्तु से सटना। (२) आलिंगित होना।

छपटाना—क्रि. स. [हि. छपटना] (१) चिपकाना, सटाना। (२) छाती से लगाना, आलिंगन करना।

छपटी—वि. [हिं. छपटना] दुबला-पतला, कृश।

छपत—क्रि. अ. [हि. छिपना] छिपते है। उ.—जदुपति

जल क्रीड़त जुवतिन सँग । ·· । जल नाकि परस्पर छपत दूर—२४५२ ।

छपद—संज्ञा पु. [सं. षट्पद] भौंरा, भ्रमर । उ.—(क) छपद कंज तजि बेलि सों लटि प्रेम न जान्यौ । (ख) सूर अक्रूर छपद के मन में नाहिंन त्रास टरै कौ—३०५५ ।

छपन—वि. [हि. छिपना] गुप्त, गायब, लुप्त ।
संज्ञा पु. [सं. क्षपण] नाश, सहार, विनाश ।
वि. [हि. छप्पन] छप्पन । उ.—छपन कोटि के मध्य राजत हैं जादवराइ—१० उ. ८ ।

छपनहार—वि. [हि. छपन+हार] नाशक ।

छपना—क्रि. अ. [हि. चपना=दबना] (१) चिह्न पड़ना । (२) चिह्नित होना । (३) मुद्रित होना ।
क्रि. अ. [हि. छिपना] छिप जाना, लुप्त होना ।

छपरछपर—वि. [हि. छपर] तराबोर ।

छपरबंद—वि. [हि. छप्पर+बंद] (१) अच्छे घर-द्वार वाला । (२) छप्पर छानेवाला ।

छपरबंदी—वि. [हिं. छपरबंद] (१) छप्पर छाने की क्रिया । (२) छप्पर छाने की मजदूरी ।

छपरा—संज्ञा पु. [हि. छप्पर] छप्पर ।

छपरिया, छपरी—संज्ञा स्त्री. [हि. छप्पर] (१) छोटा छप्पर । (२) साधुओं की झोपड़ी, मढ़ी ।

छपवैया—संज्ञा पु. [हि. छापना] (१) छापनेवाला । (२) छपाने या मुद्रित करानेवाला ।

छपटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] उँगलियों का एक गहना ।

छपा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षपा] (१) रात । उ.—छपा न छीन होत सुन सजनी भूमि डसन रिपु कहा दुरौनी—१० उ. ६३ । (२) हलदी ।

छपाइ, छपाई—क्रि. स. [हि. छिपाना] (१) छिप गयी । उ.—मुख छबि कहौं कहाँ लगि माई । भानु उदै ज्यौं कमल प्रकासित रवि ससि दोऊ जोति छपाई—६३६ । (२) छिपा ली । उ.—बोल्यौ नहीं, रह्यौ दुरि बानर, द्रुम में देहि छपाइ—९-८३ । (३) छिपाकर, गायब करके । उ.—महरि तैं बड़ी कृपन है माई । दूध दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई—१०-३२५ । प्र.—रह्यौ छपाइ—छिप रहा । उ.—भनि रिषि साप दियौ नागपति कौं, सो तब रह्यौ छपाइ—५७३ । न रही छपाई—छिपी न रही । उ.—प्रगटी प्रीति न रही छपाई—६२० ।
संज्ञा स्त्री [हि. छापना] (१) छापने का काम या ढंग । (२) छापने की मजदूरी ।

छपाए—क्रि. स. [हि. छिपाना] छिपाये हुए हैं, आड़ में किये हैं । उ.—नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए—१०-१०४ ।

छपाकर—संज्ञा पु [सं. क्षपाकर] (१) चंद्रमा । उ.—सोलह कला छपाकर की छबि सोभित छत्र सीस सिर तानी—३३८३ । (२) कपूर ।

छपाका—संज्ञा पु. [अनु.] (१) पानी पर जोर से गिरने का शब्द । (२) पानी का जोरदार छींटा ।

छपाना—क्रि. स. [हि. छापना] (१) छापने का काम कराना । (२) चिह्नित कराना । (३) मुद्रित कराना ।
क्रि. स. [हि. छिपाना] छिपा लेना ।
क्रि. अ. [हि. छपछप] खेत सींचना ।

छपानाथ—संज्ञा पुं. [सं. क्षपानाथ] चंद्रमा ।

छपानी—क्रि. अ. [हि. छिपना] छिप गयी, ओट या आड में हो गयी ।
प्र.—रहौं छपानी—छिप जाऊँ, आड में हो जाऊँ । उ.—बैठे जाइ मथनियौं के ढिग, मैं तब रहौं छपानी—१०-२६४ । रहै छपानी—छिपी रहै, प्रगट न हो । उ.—(क) या मोहन सो प्रीति निरंतर क्यों अब रहै छपानी—१२६८ । (ख) अब ही जाइ प्रगट करि देहैं कहा रहै यह बात छपानी—१२६७ ।

छपाने—क्रि. अ. [हि. छिपना] (१) छिप गये, लुक गये, ओट या आड में हो गये । उ.—हरि तब अपनी आँख मुँदाई । सखा सहित बलराम छपाने, जहँ-तहँ गए भगाई—१०-२४० । (२) अदृश्य हो गये, लुप्त हो गये । उ.—इहि अंतर भिनुसार भयो । तारागन सब गगन छपाने, अरुन उदित, अँधकार गयो—५२० ।

छपान्यौ—क्रि. अ. [हि. छिपना] छिप गया, ओट में हो गया । उ.—(क) खेलत तैं उठि भज्यौ सखा यह, इहिं घर आइ छपान्यौ ।—१०-२७० । (ख) कहत

स्याम मैं अतिहि डरान्यौ। ऊखल तर मैं रह्यौ छपान्यौ—३६१ ।

छपायो, छपायौ—क्रि. अ. [हि. छिपना] **छिप गया, लुक गया** । उ.—अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जहँ रह्यौ सो तहीं छपायौ—१०-७७ ।

छपाव—संज्ञा पुं. [हि. छिपाव] **दुराव-छिपाव** ।

छपावत—क्रि. स. [सं. क्षिप, हि. छिपाना] **छिपाता है, ढकता है** । उ.—सूर स्याम के ललित वदन पर, गोरज छवि कछु चंद छपावत—५०६ ।

छपावहु—क्रि. स. [हि. छिपाना] **छिपाओ, ओट में करो** । उ.—घटाघोर करि गगन छपावहु—१०४६ ।

छपैहौं—क्रि. स. [हि. छिपाना] **छिपाओगे** ।

छप्पन—संज्ञा पुं. [स. षट्पंचाशत, प्रा. छप्पण्णम्, छप्पण्ण] **पचास और छ की सख्या** । उ.—चले साजि बरात जादव कोटि छप्पन अति बली—१० उ. २४ ।

छप्पय—संज्ञा पु. [स. षट्पद] **एक मात्रिक छद** ।

छप्पर—संज्ञा पु. [हि. छोपना] (१) **छाजन, छान** ।

मुहा.—छप्पर पर रखना—**चर्चा या जिक्र न करना** । छप्पर पर फूस न होना—**बहुत ही निर्धन होना** । छप्पर फाड़कर देना—**बैठे-बिठाये मिल जाना**। छप्पर रखना—(१) **एहसान लादना** । (२) **दोष देना** ।

(२) **छोटा ताल, डाबर, पोखर, तलैया** ।

छप्परबंद—वि. [हिं. छप्पर+फा. बंद] (१) **छप्पर छानेवाले** । (२) **जिसने घर बना लिया हो** ।

छप्यौ—क्रि. अ. [हि. छिपना] **छिप गया, ओट में हो गया** । उ.—(क) इंद्र-सरीर सहस भग पाइ । छप्यौ सो कमल-नाल में जाइ—६-८ । (ख) पौरि सब देखि सो असोक बन मैं गयौ, निरखि सीता छप्यौ वृच्छ डारा—६-७६ ।

छब—संज्ञा स्त्री. [सं. छवि] **काति, शोभा** ।

छबड़ा—संज्ञा पु. [देश.] (१) **झाबा** । (२) **खाँचा** ।

छबतखती—संज्ञा स्त्री. [हि. छवि+अ. तक्तीअ] **शरीर की सुदर गठन, सुदरता, सजधज** ।

छबना—क्रि. अ. [हि. छवि] **सुदर लगना** ।

छबि—संज्ञा स्त्री. [स. छवि] (१) **शोभा, सौंदर्य** । उ.—(क)कछुक अग तैं उड़त पीतपट उन्नत बाहु बिसाल । स्रवत स्रौनकन, तन-सोभा, छबि-घन बरसत मनु लाल—१-२७३ । (ख) भली बनी छवि आजु की क्यों लेत जम्हाई—२०२२ । (२) **काति, प्रभा** ।

छबिधर, छबिमान, छबिवंत—वि. [हि. छवि+धर, मान्, वंत (प्रत्य.)] **सुदर, शोभायुक्त, रूपवान** ।

छबीरा, छबीला—वि. [हि. छवि+ईला (प्रत्य.), छबीला] **सुदर, सजाधजा, शोभायुक्त, सुहावना** ।

छबीरी, छबीली—वि. स्त्री. [हि.पुं. छबीला] **शोभायुक्त, सुहावनी, सुदर, सजी-धजी** । उ.—(क) चंद्र बदन लट लटकि छबीली, मनहुँ अमृत रस ब्यालि चुरावति—१०-१४६ । (ख) छोटी छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख-ज्योती, मोती मानौ कमल-दलनि पै—१०-१५१ । (ग) छवि की उपमा कहि न परति है, या छवि की जु छबीली—१०-२६६ । (घ) सूर स्याम मुसकानि छबीरी अँखियन मैं रहीं तब न जानो हो कोही—८३८ । (ङ) सूरदास प्रभु नवल छबीले नवल छबीली गोरी—पृ. ३४३ (२८)

छबीरे, छबीले, छबीलो, छबीलौ—वि. [हि. छबीला] **छैल-छबीला, सुहावना, सुदर** । उ.—(क) हौं बलि जाउँ छबीले लाल की । धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगति, बोलनि बचन रसाल की—१०-१०५ । (ख) सोभा मेरे स्यामहिं पै सोहै । बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या उपमा कौं को है—१०-१५८ (ग) नटवर रूप अनूप छबीलौ, सबहिनि कै मन भावत—४७६ । (घ) मोहनलाल, छबीलौ गिरिधर, सूरदास बलि नागर नटकनि—६१८ ।

छब्बीस—संज्ञा पु. [सं. षड्विंश, प्रा. छव्वीसा] **बीस और छः के जोड़ वाली सख्या तथा इसका सूचक अक** ।

छमंड—संज्ञा पुं. [सं.] **पितृहीन बालक** ।

छम—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) **घुंघरू बजने का शब्द** । (२) **पानी बरसने का शब्द** ।

संज्ञा पुं. [सं. क्षम] **शक्ति, बल** ।

छमक—संज्ञा स्त्री. [हि. छम] **ठाटबाट, ठसक** ।

छमकना—क्रि. अ. [हि. छम (अनु.)] **घुंघरू या गहने हिलाकर छमछम शब्द करना** ।

छमछम—संज्ञा स्त्री. [अनु] (१) नूपुर, पायल या घुंघरू का शब्द । (२) पानी बरसने का शब्द ।

छमछमाना—क्रि. अ. [अनु.] छमछम करना ।

छमता—संज्ञा स्त्री. [स. क्षमता] योग्यता, सामर्थ्य ।

छमना—क्रि. स. [हि. क्षमा] क्षमा करना ।

छमवाइ—क्रि. स. [स. क्षमा] क्षमा करवा कर । उ.—बहुरि विधि जाइ, छमवाइ कै रुद्र कौं विष्नु विधि, रुद्र तहँ तुरत आए—४-६ ।

छमहु—क्रि. स. [हि. छमना] क्षमा करो । उ.—(क) सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम माँगैं पति पावैं—५६६ । (ख) छमहु मोहि अपराध, न जानैं करी ढिठाई—५८६ ।

छमा, छमाई—वि. [स. क्षमा] शात, ठढा । उ.—बरुन कुबेरादिक पुनि आइ । करी विनय तिनहूँ बहु भाइ । तेहूँ क्रोध छमा नहिं भयौ—७-२ ।

संज्ञा स्त्री.—क्षमा, माफ । उ.—करौ छमा कियौ असुर सँहार—७-२ ।

छमाए—क्रि. स. [हि. छमना] क्षमा किये । उ.—अब हम चरन-सरन हैं आए । तब हरि उनके दोष छमाए—८०० ।

छमाछम—सज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) गहनो के बजने का शब्द । (२) पानी बरसने का शब्द ।

क्रि. वि.—छमछम के निरतर शब्द के साथ ।

छमादिक—संज्ञा स्त्री. [स. क्षमा+आदिक] क्षमा आदि सतोगुणी वृत्तियाँ । उ.—दया, धर्म, सतोषहु गयौ । ज्ञान, छमादिक सब लय भयौ—१-२६० ।

छमाना, छमवाना—क्रि. स. [सं. क्षमा] क्षमा कराना ।

छमापन—सज्ञा पु. [हिं. क्षमा+पन] क्षमा करने का भाव ।

छमायौ—क्रि. स. [हि. छमना] क्षमा कर दिया । उ.—पहिलौ पुत्र देवकी जायौ लै वसुदेव दिखायौ । बालक देखि कस हँस दीन्यौ, सब अपराध छमायौ—१०-४ ।

छमावति—क्रि. स. [हि. छमाना] क्षमा कराती है । उ —कर जोरति अपराध छमावति—१०१० ।

छमावान—वि. [स. क्षमावान्] क्षमा करनेवाला ।

छमासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छ.+सं. मास] मृत्यु के छ. महीने पश्चात् किया जानेवाला श्राद्ध ।

छमासील—वि. [स. क्षमाशील] क्षमा करनेवाला ।

छमि—क्रि. स. [हि. छमना] क्षमा करके । उ.—रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै । छमि सब छोभ जु छाँड़ि छवौ रस लै समीप सँचरै—१-१०७ ।

छमिच्छा—सज्ञा स्त्री. [सं. समस्या] (१) समस्या, उलझन, शका । (२) इशारा, सकेत ।

छमियै—क्रि. स. [हि. छमना] क्षमा कीजिए । उ.—ह्वै है जग अब देव मुरारी । छमियै क्रोध मुरनि सुखकारी—७-२ ।

छमी—वि. [स. क्षमा] क्षमावान्, क्षमा करनेवाले । उ.—सुर हरि-भक्त, असुर हरि-द्रोही । सुर अति छमी, असुर अति कोही—३-६ ।

छमुख—संज्ञा पु. [हि. छ +मुख] कार्तिकेय ।

छमौ—क्रि. स. [हिं. छमना] क्षमा करो । उ.—(क) कृपासिंधु, अपराध अपरिमित, छमौ, सूर तैं सब बिगरी—१-११५ । (ख) छमौ, प्रलय कौ समय न भयौ—७-२ ।

छय—सज्ञा पु. [स. क्षय] नाश, विनाश । उ.—बान एक हरि सिव कौं दियौ । तासौं सब असुरनि छय कियौ—७-७ ।

प्र.—छय जाइ—नष्ट हो जाय । उ.—रवि-ससि-कोटि कला अवलोकत त्रिविध ताप छय जाइ—४८७ ।

छयना—क्रि. अ. [सं. क्षय] नष्ट होना ।

क्रि. अ. [हि. छाना] छा जाना, फैलना ।

छयल—संज्ञा पुं. [हि. छैल] सुदर, बाँका, रसिक । उ.—नित रहत मन्मथ मदहि छाकी निलज कुच झाँपत नहीं । तब देखि देखि छयल मोहित विकल ह्वै धावत तहीं—१० उ. २४ ।

छयौ—क्रि. स. [हि. छाना] छा लिया, ढक लिया । उ.—(क) एक अस जल कौ पुनि दयौ । ह्वै कै काई जल कौं छयौ—६-५ । (ख) ताकौ जस तीनौ पुर छयौ—४-६ ।

छर—संज्ञा पुं. [हि. छल] छल, कपट । उ.—(क)

सहचरि चतुरातुर लै आई बाँह बोल दै करि कहत वह छर—१८०६। (ख) तबही सूर निरखि नैनन भरि आयौ उघरि लाल ललिता छर—२२६६।

संज्ञा पु. [सं. क्षर] नाशवान।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] छर्रों या कणों के निकलने या गिरने का शब्द, छड़ी से पीटने की ध्वनि। उ.—जब रजु सौ कर गाढ़े बाँधे, छर-छर मारी साँटी—३७५।

छरकना—क्रि. अ. [अनु. छरछर] छरछर करके छिटकना, बिखरना या उछलना।

क्रि. अ. [हिं. छलकना] छलकना।

छरकीला—वि.—लंबा और सुडौल।

छरछंद—संज्ञा पु. [हिं. छलछंद] छल-कपट।

छरछंदी—वि. [हिं. छलछंदी] छली, कपटी।

छरछर—संज्ञा पुं. [हिं. छर] (१) कणों या छर्रों के गिरने का शब्द। (२) पतली छड़ी मारने से होनेवाला सटसट शब्द। उ.—जब रजु सौं कर गाढो बाँधे छरछर मारी साँटी—६६३।

छरछराना—क्रि. अ- [स. क्षार, हि. छार] नमक या क्षार लगने से छिले या कटे हुए स्थान में पीड़ा होना।

क्रि. अ. [अनु. छरछर] छर्रों का बिखराना।

छरछराहट—संज्ञा स्त्री. [हि. छरछराना] (१) कणों के बिखरने का भाव। (२) घाव के छरछराने की पीड़ा।

छरत—क्रि. अ. [हि. छरना] छूटती है, दूर होती है, रह नहीं जाती। उ.—जब हरि मुरली अधर धरत। थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं। जमुना-जल न बहत। खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छवि छरत—६२०।

छरद—क्रि. स. [स. छर्दि] घिनाकर, घृणा करके। उ.—जो छिया छरद करि सकल संतनि तजी, विषय-विष खात नहि तृप्ति मानी—१-११०।

छरना—क्रि. अ. [सं. क्षरण, प्रा. छरण] (१) बहना, टपकना। (२) चुचुआना। (३) छूट जाना।

क्रि. अ. [हि. छलना] भूत-प्रेत के वशीभूत होना।

क्रि. स. [हि. छलना] धोखा देना। लुभाना।

क्रि. स. [हिं. छड़ना] ओखली में अन्न कूटना।

छरभार—संज्ञा पुं. [सं. सार+भार] कार्य-भार, झंझट।

छरहरा—वि. [हि. छड़+हरा (प्रत्य.)] (१) दुबला-पतला और हलका। (२) तेज, फुरतीला।

छरा—संज्ञा पुं.—(१) रस्सी। (२) नारा। (३) लड़ी। (४) पैर का एक गहना।

छरिंदा—वि. [हिं. छरींदा] अकेला।

छरी—संज्ञा स्त्री. [हि. छड़ी] छड़ी।

संज्ञा स्त्री. [हि. छली] छली-कपटी।

छरींदा—वि. [अ. जरीद.] (१) जिसके पास कुछ सामान न हो। (२) अकेला।

छरीदार—संज्ञा पु. [हि. छड़ी+दार (प्रत्य.)] द्वारपाल, रक्षक। उ.—छरीदार वैराग विनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे—१-४०।

छरै—क्रि. स. [स. छल, हि. छलना] छलता है, भुलावे में डालता है। उ.—जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौ काम छरै—१-३५।

छर्दि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कै, वमन।

छर्रा—संज्ञा पु. [अनु. छर छर] ककड़ी, कण।

छल—संज्ञा पु. [सं.] (१) दूसरे को धोखा देने के लिए असली रूप छिपाने का कार्य। (२) बहाना, व्याज। (३) धूर्तता, धोखा। उ.—(क) बकी जु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति दीनी—१-१२२। (ख) छल कियौ पाडवनि कौरव, कपट-पास ढरन—१-२०२।

मुहा.—छल-बल करि—उचित-अनुचित किसी भी उपाय से। उ.—(क) छल-बल करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र—१-२१६। (ख) जाकी घरनि हरी छल-बल करि—९-१३३।

(४) दंभ। (५) युद्ध की नीति के विरुद्ध शत्रु पर प्रहार या आक्रमण।

संज्ञा पुं. [अनु.] पानी गिरने का शब्द।

छलक—संज्ञा स्त्री. [हि. छलकना] पानी आदि द्रव-पदार्थों के छलकने की क्रिया या भाव।

संज्ञा पुं. [सं.] छल करनेवाला, कपटी।

छलकत—क्रि. अ. [हि. छलकना] कोई द्रव-पदार्थ छलकता है। उ.—छलकत तक्र उफनि अँग आवत नहि जानति तेहि कालहिं सो—११८०।

छलकन—संज्ञा स्त्री [हिं. छलकना] (१) छलकने का भाव। (२) छलकी हुई चीज। (३) उद्गार।
छलकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) (पानी आदि का) उछल कर भरे पात्र के बाहर गिरना। (२) उमडना।
छलकाना—क्रि स. [हिं. छलकना] पानी आदि द्रवों को उछाल कर पात्र के बाहर गिराना।
छलकै—क्रि. अ. [हिं. छलकना (अनु.)] उमडती है, बाहर प्रकटित होती है, उद्गारित होती है। उ.—तन दुति मोर-चंद जिमि झलकै, उमँगि-उमँगि-अँग अँग छवि छलकै—१०-११७।
छलछंद—संज्ञा पुं [हिं. छल+छंद] चालबाजी।
छलछंदी—वि [हिं. छलछंद] चालबाज, कपटी।
छलछलाना—क्रि अ [अनु] (१) पानी का 'छलछल' शब्द करना। (२) मार से खून निकलने को होना।
छलछात, छलछाया—संज्ञा पुं. [सं. छल] छल-कपट, माया, मायाजाल।
छलछिद्र—संज्ञा पुं. [सं] कपट, धोखेबाजी।
छलछिद्री—संज्ञा पुं. [हिं. छलछिद्र] छली, कपटी।
छलन—क्रि. स. [सं. छल, हिं. छलना] धोखा देने के लिए, भुलावे में डालने या प्रतारित करने के हेतु। उ.—ये तौ विप्र होहि नहि राजा, आए छलन मुरारी—८-१४।
छलना—क्रि. स. [सं. छल] धोखा या दगा देना।
संज्ञा स्त्री. [सं.] छल-कपट, धोखा।
छलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं चालना] छानने की चलनी।
मुहा.—छलनी करना—(१) बहुत से छेद करना। (२) फाड डालना। छलनी में डाल छाज में उड़ाना—जरा सी बात को बढ़ा-चढ़ाकर झगडा करना। कलेजा छलनी होना—(१) दुख सहते-सहते ऊब जाना। (२) दुख या कष्ट की बातें सुनते-सुनते घबरा जाना।
छलहाई—वि. स्त्री. [सं छल+हा (प्रत्य)] छली।
संज्ञा स्त्री.—छल, कपट, धोखा।
छलहाया—वि. [हिं छलहाई] छली, कपटी।
छलाँग—संज्ञा स्त्री [हिं उछल+अंग] कुदान, फलाँग।
छलाँगना—क्रि. अ. [हिं. छलाँग] कूदना, फलाँगना।
छला—संज्ञा पुं. [सं. छल्ली=लता] छल्ला।
संज्ञा. स्त्री [सं. छटा] आभा, चमक।
छलाई—संज्ञा स्त्री [हिं. छल+आई (प्रत्य.)] छल।
छलाना—क्रि. स. [हिं. छलना] धोखा दिलाना।
छलावा—संज्ञा पुं [हिं. छल] (१) भूत-प्रेत आदि की कल्पित छाया जो क्षण भर में ही अदृश्य हो जाती है।
मुहा.—छलावा सा—बहुत चंचल।
(२) प्रकाश जो जंगलों में क्षण भर दिखायी देकर बार-बार लुप्त हो जाता है, अगियाबैताल।
मुहा.—छलावा खेलना—प्रकाश का क्षण भर इधर-उधर दिखायी देकर बार-बार लुप्त हो जाना।
(३) चपल, चंचल। (४) इंद्रजाल, जादू।
छलि—क्रि. स. [हिं. छलना] छलकर, धोखा देकर, भुलावे में डालकर। उ—(क) जज्ञ करत बैरोचन कौ सुत, बेद-विदित विधि कर्मा। सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि, धर्मा—१-१०४। (ख) हरि तुम बलि को छलि कहा लीन्यौ—८-१५।
छलित—वि. [सं.] जो छला गया हो।
छलिया—वि. [सं. छल+इया (प्रत्य.)] छली, कपटी।
छलियौ—क्रि. स. [हिं. छलना] छला, धोखा दिया, प्रतारित किया। उ.—जिन चरननि छलियौ बलि राजा, नख गंगा जु बहैया—१०-१४१।
छली—वि. [सं. छलिन्] छल-कपट करनेवाला।
क्रि. स. [हिं. छलना] कपट किया, धोखा दिया। उ.—मैं यह ज्ञान छली ब्रज बनिता दियौ सु क्यौं न लहौं—पृ. ५६८ (२)।
छलीक—वि. [हिं. छली] कपटी, मायावी।
छलु—संज्ञा पुं. [हिं छल] कपट, धोखा। उ.—आवन आवन कहि गे ऊधौ करि गए हमसौं छलु रे—३२२६।
छले—क्रि. स. [हिं छलना] धोखा दिया, भुलावे में डाला। उ.—सूरदास प्रभु बोनि, छले बलि, धर्यौ पीठि पद पावन—८-१३।
छल्ला—संज्ञा पुं. [सं. छल्ली=लता] (१) सादी मुंदरी या अँगूठी। (२) गोल चीज, कडा, कुंडली।
छल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) छाल। (२) लता। (३) संतान। (४) एक फूल।
छवना—संज्ञा पुं. [हिं. छौना] बच्चा, छौना।

छवा—संज्ञा पुं. [सं. शावक] (पशु का) छौना।
संज्ञा पुं. [देश.] एँडी।

छवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. छाना, छावना] छाने की क्रिया, मजदूरी या भाव।

छवाना—क्रि. स. [हि. छाना] छाने का काम करना।

छवावै—क्रि. स. [हि. छवाना] छवाता है। उ.—कलि मै नामा प्रगट ताकी छानि छवावै—१-४।

छवि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शोभा। (२) कांति।
संज्ञा स्त्री. [अ. शबीह] चित्र, प्रतिकृति।

छवैया—संज्ञा पुं. [हिं. छाना] छप्पर छानेवाला।

छवौ—वि. [हि. छह] छहो। उ.—छुमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै—१-११७।

छह—संज्ञा पु. [हि. छः] छः की संख्या।

छहर—संज्ञा स्त्री. [हि. छहरना] बिखरने की क्रिया।

छहरि—क्रि. अ. [हि. छहरना] फैलना, छिटकना। उ.—तनु विष रह्यौ है छहरि—७५०।

छहरना—क्रि. अ. [सं. क्षरण, प्रा. खरण, छरण] बिखरना, छिटकना, छितर जाना।

छहरा—वि. [हिं. छः+हरा (प्रत्य.)] (१) छः परत या पल्ले का। (२) छठा भाग।

छहराना—क्रि. अ. [सं. क्षरण] बिखरना, गिरकर, इधर-उधर फैल जाना।
क्रि स.—बिखराना, फैलाना, छितराना।
क्रि. स. [सं क्षार] भस्म करना।

छहरीला—वि. [हि. छरहरा] (१) हलका, इकहरा, छरहरा। (२) फुरतीला, चुस्त।

छहियाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] छाँह, छाया। उ.—(क) खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ। दसरथ-कौसिल्या के आगैं, लसत सुमन की छहियाँ—९-१९। (ख) सीतल कुंज कदम की छहियाँ छटक छहूँ रस खैऐ—४४५। (ग) सीतल छहियाँ स्याम हैं बैठे, जानि भोजन की बिरियाँ—४७०।

छहूँ—वि. [स. षट्, प्रा. छ, हि. छ+हूँ (प्रत्य.)] छहों। उ.—(क)मेरे लाडिले हो तुम जाउ न कहूँ। तेरेहीं काजैं गोपाल, सुनहु लाडिले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ—१०-२९५। (ख) सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैऐ—४४५।

छहौं—वि. [हि. छ+हौं (प्रत्य.)] कुल छह, छह (वस्तुओं) में सब। उ.—छहौं रितु तप करति नीकैं गेह-नेह बिसारि—७६७।

छाँ, छाँउँ—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] छाया, छाँह।

छाँक—संज्ञा पुं. [फा. चाक] खंड, भाग, टुकड़ा।
संज्ञा पु. [हि. छाक] (१) छाक। उ.—(क) छाँक खाय जूठन ग्वालिन कौं कछु मन मै नहि मान्यौ—सारा. ७५०। (ख) एक ग्वाल मंडली करि बैठति छाँक बाँटि कै देत। (२) टुकड़ा

छाँगना—क्रि. स. [सं. छिन्न+करण] काटना, छाँटना।

छाँगुर—वि. [हि. छ+अंगुल] छः उँगलियोंवाला।

छाँछ—संज्ञा स्त्री. [हि. छाछ] मट्ठा, मही। उ.—प्रथम ग्वाल गाइन सँग रहते भए छाँछ के दानी—३३०२।

छाँट—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँटना] (१) काटने-कतरने की क्रिया या ढंग। (२) कतरना। (३) भूसी, कन। (४) छाँटने से बची बेकार चीज।
संज्ञा स्त्री. [सं. छर्दि, प्रा. छड्डि] वमन, कै।

छाँटन—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँटना] (१) कटी-छँटी कतरन। (२) छाँट कर अलग की हुई बेकार चीज।

छाँटना—क्रि. स. [सं. खंडन] (१) काट या कतर कर अलग करना। (२) (कपड़ा आदि) काटना। (३) छान-फटक कर अनाज से भूसी अलग करना। (४) बेकार चीजें चुनना या निकालना। (५) गंदी या बुरी चीज हटाना। (६) साफ करना। (७) काट कर संक्षिप्त करना। (८) बाल की खाल निकालना। (९) सम्मिलित न करना।

छाँटा—संज्ञा पुं. [हि छाँटना] (१) छाँटने की क्रिया। (२) छल से किसी को दूर या अलग करना।

छाँड़त—क्रि. स. [हि. छाँडना, छोड़ना] (१) छोडता (है), त्यागता (है)। उ.—निरखि पतंग बानि नहि छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत—१-२१०। (२) अलग करता है, (अपने से) दूर हटाता है। उ.—चलनि चहति पग चलै न घर कौं। छाँडत बनत नहीं कैसेहूँ, मोहन सुंदर वर कौं—७३८।

छाँड़ना—क्रि. स [सं छर्दन, प्रा. छड्डन] छोड़ना।

छाँड़ि—क्रि. स. [हि. छाँड़ना] छोड़ कर, त्याग कर। उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५।

छाँड़िवो—क्रि. स. [हि. छाँड़ना] छोड़ देना। उ.—कह्यौ भगवान सौं कहा यह कियौ तुम छाँड़िवो हुतौ या भलौ मारे—१० उ. २१।

छाँड़िहौं—क्रि. स. [हि. छाँड़ना, छोड़ना] छोड़ूँगा, जाने दूँगा। उ.—अब लैहौं वह दाउँ, छाँड़िहौं नहिं बिन मारे—३ ११।

छाँड़ी—क्रि. स. [हि. छाँड़ना] छोड़ दी, त्याग दी। उ.—नीरस करि छाँड़ी सुफलकसुत जैसे दूध बिन साठी—२५३५।

छाँड़े—क्रि स [हि छाँड़ना] (१) छोड़ते हैं, अलग होते हैं। उ.—विपति परी तब सब सँग छाँड़ि, कोउ न आवै नेरे—१-७६। (२) त्याग कर, विमुख होकर। उ.—गृह गृह प्रति द्वार फिरयौ तुमकौं प्रभु छाँड़ि—१-१२४। (३) छोड़ दिये, अलग किये, साथ न लिये। उ.—कहि मुद्रिके, कहाँ तैं छाँड़े मेरे जीवन-मूरि—९-८३।

छाँड़ै—क्रि. स. [हि. छाँड़ना] (१) छोड़ता है, अलग करता है। उ.—कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३। (२) त्यागता है, अग्राह्य समझता है। उ.—खाद-अखाद न छाँड़ै अबलौं सब मैं साधु कहावै—१-१८६।

छाँड़ौगी—क्रि. स. [हि छाँड़ना] त्याग करूँगी। उ.—चतुर नाइक सौं काम परयौ है कैसे ह्वै छाँड़ौगी—१५११।

छाँड्यौ—क्रि. स. [हिं. छाँड़ना] संधान किया, लक्ष्य पर चलाया। उ.—देख्यौ जब दिव्य बान निसिचर कर तान्यौ। छाँड़्यौ तब सूर हनू ब्रह्म-तेज मान्यौ—९-९६।

छाँद—संज्ञा स्त्री. [सं. छंद=बंधन] पशुओं के पैर बाँधने की रस्सी, नोई।

छाँदना—क्रि. स [सं. छदन=बंधन] (१) रस्सी से बाँधना। (२) रस्सी से (पशु के पैर) बाँधना। (३) हाथ से पैर जकड़ कर पकड़ना।

छांदस—वि. [सं] (१) वेद-संबंधी। (२) वेदपाठी। (३) रट्टू। (४) अल्पबुद्धि, मूर्ख।

छाँदा—संज्ञा पुं. [हि. छाँटना] हिस्सा, भाग।
संज्ञा पु. [हि. छानना] बढ़िया भोजन।

छांदोग्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सामवेद का एक ब्राह्मण। (२) इस (छांदोग्य) ब्राह्मण का एक उपनिषद।

छाँव—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] छाँह, छाया, शरण, आश्रय। उ.—रसमय जानि सुवा सेमर कौं चौंच घालि पछितायौ। कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन इहि रस छाँव न आयौ—१-५८।

छाँवड़ा—संज्ञा पु. [हि. छौना] (१) पशु का छौना या बछड़ा। (२) छोटा बच्चा, बालक।

छाँस—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँटना] (१) भूसी या कन जो अनाज छाँटने-फटकने पर बचता है। (२) कूड़ा।

छाँह, छाँहरि—संज्ञा स्त्री [सं. छाया] (१) छाया। उ.—हरषित भए नँदलाल बैठि तरु छाँह मैं।
मुहा.—छाँह में होना—आड़ में होना, छिपना।
(२) ऊपर से छाया हुआ स्थान। (३) बचाव का स्थान, शरण। (४) बचाव, रक्षा। उ.—छाता लौं छाँह किये सोभित हरि-छाती—१-२३। (५) परछाईं।
मुहा.—छाँह न छूने देना—पास न आने देना। छाँह बचाना—पास न जाना। छाँह छूना—पास जाना।
(६) पदार्थों का जल या शीशे में दिखायी देनेवाला प्रतिबिंब। (७) भूत-प्रेत का प्रभाव।

छाँहगीर—संज्ञा पु. [हिं. छाँह+फा. गीर] (१) छत्र, राजछत्र। (२) दर्पण, शीशा, आइना।

छाँही—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] छाया, परछाईं।

छाइ—क्रि अ [हि. छाना] (१) आसक्त (है), रम (रहा है)। प्र.—छाइ रह्यौ—आसक्त हुआ है, रम रहा है। उ.—मैं कछू करिबे छाँड़्यौ, या सरीरहि पाइ। तऊ मेरौ मन न मानत, रह्यौ अघ पर छाइ—१-१९९। (२) फैलकर, भरकर। उ.—रावन कह्यौ सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ—९-१०४।
क्रि. स. [स. छादन] (१) फैलाकर, बिछाकर। उ.—तब लौं तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम पाखाननिछाइ। द्वितीय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै, जब लौं मिलै न आइ—९-११०। (२) (मंडप आदि) छाकर। उ.—लग्न लै जु बरात साजी उनत मंडप छाइ—१० उ. १३।

छाईं—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] (१) छाँह, छाया। (२) प्रतिबिंब। उ.—छैलनि कै सँग यौं फिरै जैसैं तनु सँग छाईं (हो)—१-४४।

छाई—क्रि. अ. [हि. छाना] (१) फैली, भर गयी। उ.—(क) लई बिमान चढाइ जानकी कोटि मदन छवि छाई—९-१६२। (ख) चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इंद्रधनुष छवि छाई—सारा. १७२। (ग) भीर भई दसरथ कैं आँगन सामवेद धुनि छाई—९-१७। (२) ढक गयी, आच्छादित हो गयी। उ.—अति आनन्द होत गोकुल मै रतन भूमि सब छाई—१०-२१।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षार] (१) राख। (२)पांस।

छाउँ—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँह] छाया, छाँह। उ.—कामधेनु, चिंतामनि, दीन्हौं कल्पवृच्छ-तर छाउँ-१-१६४।

छाए—क्रि. अ. [हि. छाना] (१) फैल गये, बिछ गये, भर गये। उ.—आनँद मगन सब अमर गगन छाए पुहुप बिमान चढे पहर पहर के—१०-३०। (२) डेरा डाले थे, बसे हुए थे, टिके थे। उ.—(क) बंदीजन अरु भिक्षुक सुनि-सुनि दूरि दूरि तैं छाए। इक पहिलैं ही आसा लागे, बहुत दिननि तैं छाए—१०-३५। (ख) अंग-अंग प्रति मार निकर मिलि, छवि-समूह लै लै मनु छाए—१०-१०४।

छाक—संज्ञा स्त्री. [हि. छकना] दोपहर का भोजन। उ.—(क) मध्य गोपाल-मंडली मोहन, छाक बाँटि कै लेत—४१६। (ख) अहिर लिए मधु-छाक तुरत बृंदावन आए—४३७। (ग) छाक लेन जे ग्वाल पठाए—४५४। (घ) जाति-पाँति सबकी हौं जानौं, बाहिर छाक मँगाई। ग्वालनि कैं संग भोजन कीन्हौं, कुल कौं लाग लगाई—१-२४४। (२) तृप्ति, तुष्टि। (३) नशा, मस्ती। (४) मैदे के सुहाल, माठ।

छाकना—क्रि. अ. [हि. छकना] (१) खा-पीकर अघाना या तृप्त होना। (२) मद पीकर मस्त होना।

क्रि. अ. [हि. छकना] हैरान या चकित होना।

छाकी—वि. [हि. छकना] मस्त, नशे में भरी हुई। उ.—नित रहत मदन मद छाकी—१० उ. २४।

छाके—वि. [हि. छाकना] छके हुए, मस्त, तृप्त। उ.—धाइ धाइ द्रुम भेंटइ ऊधौ छाके प्रेम—३४४३।

छाकै—संज्ञा स्त्री. सवि. [हि. छाक] छाक, दोपहर का भोजन। उ.—(क) घर-घर तैं छाकैं चली मानसरोवर-तीर। नारायन भोजन करैं, बालक संग अहीर—४९२। (ख) छाकैं खात खवावत ग्वालन सुंदर जमुना तीर—सारा. ४६६।

क्रि. स. [हि. छाकना] हैरान करते है।

क्रि. अ.—तृप्त होते या अघाते है।

छाक्यौ—क्रि. स. भूत. [हि. छकना] तृप्त हुआ, उन्मत्त हुआ। उ.—(क) ते दिन बिसरि गऐ इहाँ आए। अति उन्मत मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१-३२०। (२) कछु करि गए तनक चितवनि मैं यातैं रहत प्रेम-मद छाक्यौ—२५४६।

छाग—संज्ञा पुं. [सं.] बकरा।

छागन—संज्ञा पुं. [सं.] उपले की आग।

छागर, छागल—संज्ञा पुं. [सं. छागल] (१) बकरा। (२) बकरे की खाल की बनी चीज।

संज्ञा स्त्री. [हि. साँकल] स्त्रियों के पैर का एक घुंघरूदार गहना, झाँझ, झाँझन।

छाछ—संज्ञा स्त्री. [सं. छच्छिका] (१) पनीला दही, मट्ठा, मही। उ.—राजनीति जानौ नहीं, गोसुत चरवारे। पीवौ छाछ अघाइकै, कब के रयवारे—१-२३८। (२) घी तपने पर नीचे बैठनेवाला मट्ठा।

छाछठ—संज्ञा पुं. [हि. छासठ] छासठ की सख्या।

छाछि—संज्ञा स्त्री. [हि. छाछ] मही, मट्ठा।

छाज—संज्ञा पु. [सं. छाद] (१) अनाज फटकने का सूप। मुहा.—छाज सी दाढी—लबी दाढ़ी। छाजों मेह बरसना—मूसलाधार पानी बरसना।

(२) छाजन, छप्पर। (३) गाडी के कोचवान के सामने का छज्जा। (४) मकान का छज्जा। उ.—ऊँचे अटनि छाज की सोभा सीस ऊँचाइ निहारी—२५६२।

छाजत—क्रि. अ. [हि छाजना] शोभा देता है, भला लगता है, फबता है। उ.—युद्ध को करत छाजत नहीं है तुम्हैं—१० उ. ३१।

छाजति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. छाजना] (१) सुशोभित होती है शोभा बढ़ाती है। उ.—(क) पीत झँगुलिया की छवि छाजति, बिजुलता सोहति मनु कंदहि — १०-१०७। (ख) भृगु-पद-रेख स्याम-उर सजनी, कहा कहौं ज्यौं छाजति—६३८।

छाजन—संज्ञा पु. [सं. छादन] वस्त्र, कपडा।
संज्ञा स्त्री—छान, छप्पर, खपरैल।

छाजना—क्रि. अ. [सं. छादन] (१) फबना, भला लगना, ठीक जान पडना। (२) सुशोभित होना।

छाजा—संज्ञा पुं. [सं. छाद] छज्जा। उ.—ऊँचे भवन मनोहर छाजा, मनि कंचन की भीति—१० उ. ६६।

छाजी—क्रि. अ. [हि. छाजना] फबी, भली लगी। उ.—यह गति करत नहीं छाजी—२६६५।

छाजैं—क्रि. अ. [हि. छाजना] सुंदर लगते हैं, सुशोभित हैं। उ.—गोवर्धन बिंदाबन जमुना सघन कुंज अति छाजैं—सारा. ४६२।

छाजै—क्रि. अ [हि. छाजना] (१) सुशोभित होता है। उ.—जसुमति दधि-माखन करति, बैठी वर धाम अजिर, ठाढे हरि हँसत नान्हि दँतियनि छवि छाजै—१० १४६। (२) शोभा देती है, भली लगती है, फबती है, उपयुक्त जान पडती है। उ.—(क) चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै—४५१। (ख) पल्लव हस्त मुद्रिका भ्राजै। कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै—६२५।

छाड़ना—क्रि. अ. [सं. छर्दि] वमन या कै करना।
क्रि. स. [हिं. छोंड़ना] छोडना, त्यागना।

छाड़ौ—क्रि. स. [हिं. छोंड़ना] त्यागो। उ.—छाड़ौ नाहिं स्याम-स्यामा की वृंदावन रजधानी—१-८७।

छाड़यौ—क्रि. स. भूत. [हि. छाँड़ना] छोड़ा, त्यागा। उ.—(क) सग लगाइ बीच ही छाँड़यौ, निपट अनाथ अकेलौ—१-१७५। (ख) पाडव सब पुरुषारथ छाँड़यौ, बाँधे कपट-बचन की बेरी—१-१५१।

छात—संज्ञा पुं. [सं. छत्र, प्रा छत्त] (१) छाता, छतरी। (२) राजछत्र। (३) आश्रय, आधार।
वि—[स.] (१) छिन्न। (२) दुबला-पतला।
संज्ञा स्त्री. [हिं. छत] छत, छाजन।

छाता—संज्ञा पु. [सं. छत्र, प्रा. छत्त] (१) छतरी। उ.—छाता लौ छाँह किए सोभित हरि छाती—१-२३। (२) छत्ता, खुमी। (३) चौडी छाती। (४) छाती की चौडाई की नाप।

छाती—संज्ञा स्त्री. [स. छादिन्, छादी=आच्छादन करनेवाला] (१) वक्षस्थल, सीना।

मुहा.—छाती का जम—(१) दुखदायी व्यक्ति। (२) ढीठ आदमी। छाती पर का पत्थर (पहाड़)-(१) चितित करनेवाली वस्तु। (२) सदा कष्ट देनेवाली वस्तु। छाती कूटना (पीटना)—शोक से छाती पर हाथ मारना। छाती के किवाड़ खुलना—(१) छाती फटना। (२) गहरी चीख निकलना। (३) ज्ञान का उदय होना। छाती तले रखना-(१) पास ही रखना। (२) बडे प्रेम से रखना। छाती तले रहना-(१) पास रहना।(२) प्रिय होकर रहना। छाती दरकना (फटना) —(१) दुख से मानसिक कष्ट होना। (२) ईर्ष्या से जलना, कुढ़ना। छाती निकाल कर चलना—ऐंठकर चलना। छाती पत्थर की करना—अधिक से अधिक कष्ट या हानि सहने को तैयार होना। छाती पर मूँग (कोदो) दलना—(१) सामने ही ऐसा काम करना जिससे कोई कुढ़े। (२) बहुत कष्ट देना। छाती पर चढना—कष्ट देने के लिए पास जाना। छाती पर धर कर ले जाना—अपने साथ परलोक ले जाना। छाती पर पत्थर रखना—दुख सहने को तैयार होना। छाती पर बाल होना—उदार और न्यायप्रिय होना। छाती पर साँप लोटना (फिरना)—(१) दुख से मानसिक कष्ट मिलना। (२) ईर्ष्या, डाह या जलन होना। छाती पीटना—दुख या शोक से छाती पर हाथ पटकना। छाती फुलाना—(१) अकड कर चलना। (२) घमड करना। छाती से पत्थर टलना—चिंता का कारण सरलता से दूर होना। (२) बेटी का ब्याह हो जाना। छाती से लगना—गले लगना। छाती से लगाना—प्यार से गले लगाना। छाती से लगाकर रखना—(१) पास ही रखना। (२) प्रेम से रखना। वज्र की छाती—ऐसा कठोर हृदय जो बड़े से बड़ा कष्ट सहकर भी न फटे। उ.—(क)

निकसि न जात प्रान ए पापी फाटत नाहि वज्र की छाती—२८८२ । (ख) विहरत नाहि वज्र की छाती हरि वियोग क्यों सहिए—३४३५ ।

(२) कलेजा, हृदय, जी, मन ।

मुहा.—छाती उड़ी जाना—दुख या कमजोरी से जी घबड़ाना। छाती उमड़ आना—प्रेम या दया से जी भर आना। छाती छलनी होना—दुख सहते-सहते या कुढ़ते-कुढते जी ऊब जाना। छाती जलना—(१) अजीर्ण आदि के कारण हृदय में जलन जान पड़ना। (२) बड़े कष्टो के कारण मानसिक संताप होना। (३) ईर्ष्या या क्रोध से जी जलना या कुढना। छाती जरत—(१) कष्ट मिलता है। उ.—काम पावक जरेत छाती लोन लायौ आनि—३३५५। (२) जी कुढता है, डाह होती है। उ.—वह पापिनी दाहि कुल आई देखि जरत मोहि छाती। छाती जलाना—(१) मानसिक कष्ट पहुँचाना। (२) कुढाना, जी जलाना। छाती जारहु—मानसिक कष्ट दो। उ.—सूर न होई स्याम के मुख को जाहु न जारहु छाती—३१०६। छाती जुड़ाना—(१) क्रि. अ.—मन की इच्छा पूरी होना। (२) क्रि. स.—मन की इच्छा पूरी करना। छाती ठंडी करना—मन की इच्छा पूरी करना। छाती ठंडी होना—मन की इच्छा पूरी होना। छाती ठुकना—हिम्मत बँधना। छाती ठोकना—कठिन काम करने की हिम्मत बाँधना। छाती धड़कना—भय या आशंका से जी धक धक होना। छाती थाम कर (पकड़कर) रह (बैठ) जाना—मानसिक कष्ट या गहरी हानि सहने को लाचार हो जाना। छाती पक जाना—कष्ट सहते सहते जी ऊब जाना। छाती पत्थर की करना—भारी कष्ट या गहरी हानि सहने को तैयार होना। छाती पत्थर की होना—जी इतना कठोर करना कि भारी कष्ट या गहरी हानि सह लेना। छाती पर फिरना—बारबार याद आना। छाती भर आना—प्रेम या दया से जी गद्गद् होना। छाती मसोसना—कष्ट या हानि सहने को लाचार होना। छाती में छेद होना (पड़ना)—कुढते-कुढते कलेजा छलनी हो जाना छाती से लाना—आलिंगन करना। छाती लै लावत—कलेजे से लगाती है। उ.—निरखत अंक स्याम सुंदर के वारवार लावत लै छाती—२६७७। छाती सों लाई—कलेजे से लगाकर। उ.—निसि वासर छाती सों लाई बालक लीला गाई—३४३५।

(३) स्तन, कुच।

मुहा.—छाती उभरना—किशोरावस्था के पश्चात स्त्रियो के स्तन उठना या उभरना। छाती देना—दूध पिलाना। छाती भर आना—(१) दूध उतरना (२) प्रेम या दया उमडना, आँख में आँसू आ जाना।

(४) हिम्मत, साहस, दृढता।

छात्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विद्यार्थी। (२) मधु। (३) छत्रया नामक मधुमक्खी। (४) इसका मधु।

छात्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] धन जो विद्यार्थी को अध्ययन के लिए सहायतार्थ दिया जाय।

छात्रालय, छात्रावास—संज्ञा पुं. [सं.] बाहरी छात्रों के रहने या ठहरने का स्थान।

छादक—संज्ञा पुं. [सं.] छाने या ढकनेवाला।

छादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छाने या ढकने का काम। (२) वह जिससे छाया या ढका जाय। (३) छिपाव।

छादित—वि. [सं.] छाया या ढका हुआ।

छादी—वि. [हि. छादन] ढकनेवाला।

छाद्मिक—वि. [सं.] (१) जो अपना वेश छिपाये हो। (२) पाखंडी, मक्कार। (३) बहुरूपिया।

छान—संज्ञा स्त्री. [सं. छादन=छाजन] छप्पर।

संज्ञा स्त्री. [सं. छद=बंधन] पशु के पैर बाँधने की रस्सी, बंधन, नोई।

छानत—क्रि. स. [हि. छानना] (१) ढूँढते है, खोजते है। उ.—परम कुबुद्धि, तुच्छ-रस लोभी, कौडी लगि मग की रज छानत—१-११४। (२) छानते है। उ.—अतिशय सुकृत-रहित, अघ-व्याकुल, वृथा श्रमित रज छानत—१-२०१।

छानन—संज्ञा स्त्री. [हि. छानना] छानने पर बच रहने वाली मोटी चीज जो छन न सके।

छाननहार—संज्ञा पु. [हि. छानना+हार (प्रत्य.)] (१) छाननेवाला। (२) अलग करनेवाला।

छानना—क्रि. स. [सं. चालन या क्षरण] (१) किसी पिसी या तरल चीज को महीन कपड़े के पार इसलिए निकालना कि कूड़ा-करकट या मोटा अंश ऊपर ही रह जाय। (२) मिली-जुली चीजों को अलग करना। (३) जाँच-पड़ताल करना (४) ढूँढना, खोज करना। (५) छेद कर आर-पार करना। (६) नशा पीना।

क्रि. स. [सं. छंदन, हिं. छादना] (१) रस्सी से बाँधना या जकड़ना। (२) पशु के पैर बाँधना।

छानबीन—संज्ञा स्त्री. [हि. छानना+बीनना] (१) जाँच-पड़ताल, गहरी खोज। (२) विचार, विवेचना।

छाना—क्रि. स. [सं. छादन] (१) ढकना, आच्छादित करना। (२) ऊपर तानना या फैलाना। (३) बिछाना। (४) शरण में लेना।

क्रि. अ. (१) बिछ जाना, भर जाना, फैलना। डेरा डालना, बसना, रहना, टिकना।

छानबे—संज्ञा पुं. [सं. षण्णवति, प्रा. छण्णवइ या छः+नब्बे] नब्बे और छः की संख्या।

छानि, छानी—संज्ञा स्त्री. [सं. छादन=छाजन, हिं. छान] छप्पर, घासफूस की छाजन। उ.—टूटी छानि मेघ जल बरसै टूटे पलँग बिछइये—१-२३६।

क्रि. स.—ढक कर, आच्छादित करके। उ.—मैं अपने मंदिर के कोने राख्यौ माखन छानि—१०-२८०।

छाने छाने—क्रि. वि.—छिपे-छिपे, चुपके से, छिपाकर।

छान्यौ—क्रि. स. [हि. छानना] महीन कपड़े में छान ली। उ.—मैदा उज्ज्वल करिकै छान्यौ—१००४।

छाप—संज्ञा स्त्री. [हिं. छापना] (१) खुदे या उभरे हुए ठप्पे का निशान। (२) किसी चीज के गड़ने से बनने-वाला चिह्न। उ.—कंकन वलय पीठि गड़ि लागे उर पर छाप बनाए हो—२०११। (३) मुहर-चिह्न, मुद्रा। उ.—(क) दान दिए बिनु जान न पैहौ। माँगत छाप कहा दिखराओ को नहि हमको जानत। सूर-स्याम तब कह्यो ग्वारि सौं तुम मोकौं क्यौं मानत। (ख) आजुहि दान पहिरि ह्याँ आए कहाँ दिखावहु छाप—१०८८। (४) वैष्णवों के अंगों पर मुद्रित शंख, चक्र, आदि के चिह्न, मुद्रा। उ.—मेटे क्यौं हूँ न मिटति छाप परी टटकी। सूरदास-प्रभु की छवि हिरदय मौं अटकी। (५) अन्न की राशि पर लगाया जानेवाला चिह्न, चाँक। (६) अँगूठी जिस पर अक्षर या नाम का ठप्पा रहता है। (७) उपनाम।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षेप=क्षेप] (१) लकड़ी का बोझ। (२) टोकरी जिससे पानी उलीचा जाता है।

छापक—वि. [हि. छापा] छोटा।

छापना—क्रि. स. [सं. चपन] (१) (आकृति आदि) चिह्नित करना। (२) अंकित करना। (३) (पुस्तक आदि) मुद्रित करना।

छापा—संज्ञा पु. [हि. छापना] (१) उभरा या खुदा हुआ साँचा या ठप्पा। (२) मुहर, मुद्रा। (३) ठप्पे या मुद्रा का चिह्न। (४) वैष्णवों के अंगों पर गुदे हुए शंख, चक्र आदि के चिह्न। (५) शुभ कार्यों में हल्दी आदि से लगाया जानेवाला हाथ का चिह्न, थापा। (६) मुद्रा यंत्र। (७) अन्न की राशि पर चिह्न डालने का ठप्पा। (८) किसी वस्तु की नकल। (९) असावधान शत्रु पर वार या धावा।

छाम—वि. [स. क्षाम] दुबला-पतला, कृश।

छामोदरी—वि. [स. क्षाम+उदर] जिसका पेट छोटा (और सुंदर लगनेवाला) हो।

छाय—संज्ञा स्त्री. [स. छाया।] परछाहीं।

छायल—संज्ञा पुं. [हि छाना] स्त्रियों का एक पहनावा।

छायांक—संज्ञा पु. [सं. छाया+अंक] चंद्रमा

छाया—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (पेड़ आदि का) साया। (२) वह स्थान जहाँ सूर्य आदि का प्रकाश न पड़े। (३) परछाईं। (४) जल, दर्पण आदि में दिखायी देनेवाली वस्तु या व्यक्ति की आकृति। (५) प्रतिकृति, अनुहार। उ.—जनक-तनया धरी अगिनि मैं, छाया-रूप बनाइ—९-६०। (६) नकल, अनुकरण। (७) सूर्य की एक पत्नी। (८) कांति। (९) शरण, रक्षा। (१०) घूस, रिश्वत। (११) पंक्ति। (१२) एक छंद। (१३) एक रागिनी। (१४) भूत-प्रेत का प्रभाव।

छायाग्राहिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक राक्षसी जो छाया पकड़ कर जीवों को खींच लिया करती थी।

छायातन—संज्ञा पु [सं. छाया+तन] वह जिसका शरीर छाया से बना हो, निराकार।

छायादान—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का दान।

छायादार—वि. [सं. छाया+दार] जहाँ छाया हो।

छायापथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) आकाशगंगा।

छायापुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश में दृष्टि स्थिर करने पर दिखायी देनेवाली छायाकृति।

छायाभ—वि. [सं. छाला+भ] छाया से युक्त।

छायालोक—संज्ञा पुं. [सं.] अदृश्य जगत, स्वप्नलोक।

छायावाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक सिद्धांत जिसमें लाक्षणिक प्रयोगों के आधार पर अव्यक्त के प्रति प्रणय, विरह आदि के भाव प्रकट किये जाते हैं।

छायावादी—वि. [सं] छायावाद-संबंधी। (२) छायावाद के सिद्धांत या उसकी पद्धति का समर्थक।

छाये—क्रि. अ. [हि. छाना] लगे थे, रत थे। उ.—जहँ जड़भरत कूपी मैं छाये—५-३।

छायौ—क्रि. अ. [हि. छाना] (१) फैल गया, छा गया। उ.—(क) गह्यौ गिरि पानि जस जगत छायौ—१-५। (ख) प्रात इंद्र कोपित जलधर लै ब्रजमंडल पर छायौ—३०२१। (ग) चक्रवात ह्वै सकल घोष मैं रज धुंधर ह्वै छायौ—सारा. ४२८। (२) डेरा डाला, बसे रहे, टिके। उ.—(क) कहा भयो जो लोग कहत हैं कान्ह द्वारका छायौ। (ख) किहिं मातुल कियौ जगत जस कौन मधुपुरी छायौ—३०७१।

क्रि. स [सं. छादन] छप्पर आदि ताना या छाया। उ.—प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ—१-२०।

छार—संज्ञा पुं [सं. क्षार] (१) वनस्पतियों या धातुओं की राख का नमक। (२) खारी नमक या पदार्थ। (३) राख, खाक, भस्म मिट्टी। उ.—(क) जग मैं जीवत ही कौ नातौ। मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ—१-३०२। (ख) धिक धिक जीवन है अब यह तन क्यौं न होइ जरि छार—६-८३। (ग) लंक जाइ छार जब कीनी—१०-२२१।

मुहा.—छार-खार करना—भस्म या नष्ट करना। (४) धूल, गर्दा।

छाल—संज्ञा स्त्री [सं. छल्ल, छाल] (१) पेड़ की शाखा, टहनी आदि का ऊपरी वक्कल। (२) एक मिठाई। (३) चीनी जो बहुत साफ न हो।

छालना—क्रि. अ. [सं. चालन्] (१) (आटा-आदि) छानना, चालना। (२) बहुत से छेद कर डालना।

छाला—संज्ञा पुं. [हि. छाल] (१. छाल, चमड़ा। (२) जलने या रगड़ने से पड़नेवाला फफोला या झलका।

छालित—वि. [सं. प्रक्षालित] धोया हुआ।

छाली—संज्ञा स्त्री. [हि. छाला] कटी हुई सुपारी।

छालो—संज्ञा पुं. [सं. छागल, प्रा. छाअलो] बकरा।

छाँव—संज्ञा स्त्री. [सं. छाया] (१) छाँह, छाया। (२) शरण, आश्रय। (३) अक्स, प्रतिबिंब।

छाव—क्रि. अ. [हिं. छाना] छा गया है, फैल रहा है। उ.—जे पद कमल सुरसरी परसे तिहुँ भुवन जस छाव—२४८४।

छावत—क्रि. अ. [सं. छादन, हि. छाना] (१) फैलाती है, बिखराती है। उ.—वै देखौ रघुपति है आवत। दूरिहि तैं दुतिया के ससि ज्यौं, ब्योम बिमान महा-छवि छावत—६-१६२। (२) चारो ओर छा जाती है। उ.—पावस बिबिध बरन बर बादर उड़ि नहिं अंबर छावत—२८३५।

छावन—क्रि. स. [हिं. छाना] (१) छाने (के लिए,) तानने या फैलाने (के लिए)। उ.—तीनि पैंड़ बसुधा हौं चाहौं परनकुटी कौं छावन—८-१३। (२) रहने या बसने (के लिए)। उ.—हौं इह बात कहा जानौं प्रभु जात मधुपुरी छावन—३१०१ और ३१९६।

छावना—क्रि. स. [हि. छाना] छाना, तानना।

छावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाना] (१ छप्पर, छान। (२) डेरा, पड़ाव (३) सेना के रहने का स्थान।

छावरा—संज्ञा पुं. [सं. शावक] छौना, बच्चा।

छावा—संज्ञा पुं. [स. शावक] (१) छौना, बच्चा। (२) पुत्र, बेटा। (३) जवान हाथी।

छावैं—क्रि. अ. [हि. छाना] एकत्र हो जाते हैं। उ.—सुर-मुनि देव कोटि तेंतीसौ कौतुक अंबर छावैं-१०-४५।

छावै—क्रि. अ. [हि छाना] बिखरती है, फैलती है, भर जाती है। उ.—गंधवास दस जोजन छावै—५-२।

(ख) कंचन मुकुट कंठ मुक्तावलि मोर पंख छवि छावै—२५४६ ।

क्रि. स.—(१) तानते या छाते हैं । उ.—कंचन के बहु भवन मनोहर राजा रंक न तृन छावै री-१०उ.८४।

छासठ—संज्ञा पुं. [सं. षट्षष्टि, प्रा. छाछठि] साठ में छ जोड़ने से बननेवाली संख्या ।

छाहँ, छाहिं—संज्ञा स्त्री. [सं. छाया] (१) शरण, सरक्षा । उ.—विविध आयुध धरे, सुभट सेवत खरे, छत्र की छाहँ निरभय जनायौ—६-१२६ । (२) छाया, समीपवर्ती सुरक्षित स्थान । उ.—जनि डर करहु सवै मिलि आवहु या पर्वत की छाहँ—६५७ ।

छाहिं, छाहि, छाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाँह] छाया, छाँह । उ.—सूर स्याम ग्वालनि लए, चले वसीवट-छाहि—४३१ ।

मुहा.—जलद (बादल) की छाँहीं—शीघ्र नष्ट हो जानेवाली वस्तु । उ.—(क) जौवन-रूप-राज-धन धरती जानि जलद की छाँहीं—२-२३ । (ख) जगत पिता जगदीस-सरन विनु, सुख तीनों पुर नाहीं । और सकल मैं देखे-ढूँढे, बादर की-सी छाहीं । सूरदास भगवंत भजन विनु, दुख कबहुँ नहिं जाहीं – १-३२३ ।

छिउँका—संज्ञा पु. [हिं. चिउँटा] भूरा चींटा ।

छिंगुनिया, छिगुनी, छिंगुलिया, छिंगुली—संज्ञा स्त्री. [हि. छँगुली] सबसे छोटी उँगली ।

छिछ, छिंछि—संज्ञा स्त्री [अनु.] छींटा, धार, फौवारा । उ.—शोनित छिछि उछरि आकासहि गज वाजिन सर लागी । मानौ निकरि तरनि-रध्रनि ते उपजी हैं अति आगि—६-१५८ ।

छिडाना—क्रि. स [हिं. छीनना] जवरदस्ती छीन लेना, बल दिखाकर लेना ।

छिंडाय – क्रि. स. [हि. छिड़ाना] छीन (लो), ले (लो) । उ —(क) बहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिड़ाय । (ख) डरनि तुम्हरे जाति नाही लेत दहिउ छिंड़ाय ।

छिं', छि—अव्य. [अनु.] घृणा या अरुचि सूचक शब्द ।

छिउला—संज्ञा पु. [स. क्षुप+ला (प्रत्य.)] पौधा ।

छिकना—क्रि. अ. [हि. छेंकना] (१) घिरना, छेंका जाना । (२) नाम चढ़ी रकम आदि काटा जाना ।

छिकुला—संज्ञा पुं. [हि. छाल] फलो, तरकारियों आदि का ऊपरी आवरण, छिलका ।

छिगुनिया, छिगुनी, छिगुली—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुद्र+अँगुली] सबसे छोटी उँगली, कनिष्ठिका ।

छिच्छ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बूंद, छीटा, सीकर । उ.—राम सर लागि मनु आगि गिरि पर जरी उछलि छिच्छिनि सरनि भानु छाए ।

छिछकारना—क्रि. स. [अनु.] छिड़कना ।

छिछला, छिछिला—वि. [हि. छूछा+ला] उथला ।

छिछली—वि. स्त्री. [हि. छिछला] जो गहरी न हो । संज्ञा पुं—लड़कों का खेल ।

छिछियाना—क्रि. स. [अनु. छिछि] घिन करना ।

छिछिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. छिछला] (१) उथला होने का भाव । (२) गभीरता का अभाव ।

छिछोरपन, छिछोरापन—संज्ञा पु. [हि. छिछोरा] (१) ओछापन, नीचता । (२) गभीरता का अभाव ।

छिछोरा—वि. [हि. छिछला] ओछा, नीच प्रकृति का ।

छिजई—क्रि. अ. [हि. छीजना] छीजती या क्षीण होती है । उ.—तन धन सजल सेइ निसि वासर रटि रसना छिजई—३३०८ ।

छिजना—क्रि. अ. [हिं. छीजना] क्षीण या नष्ट होना ।

छिजाना—क्रि. स. [हि. छीजना] नष्ट होने देना ।

छिटकना—क्रि. अ [स. क्षिप्त, प्रा. खित्त, छित्त+करण] (१) बिखरना, छितरना, बगरना । (२) प्रकाश फैलना, उजाला होना ।

छिटका—संज्ञा पुं. [हिं. छिटकना] पालकी का परदा ।

छिटकाति—क्रि. अ [हि. छिटकना] छिटकी है, बिखरी हुई है, फैल रही है । उ—ललित लट छिटकाति मुख पर, देहि सोभा दून—१०-१८४ ।

छिटकाना—क्रि. स. [हिं. छिटकना] बिखराना ।

छिटकि—क्रि अ. [हि. छिटकना] (१) इधर-उधर फैलकर, चारो ओर बिखरकर, छितराकर । उ.—(क) छिटकि रहीं चहुँ दिसि जु लटुरियाँ, लटकन-लटकनि भाल की—१०-१०५ । (ख) दुहुँ कर माट गह्यौ नँदनदन, छिटकि बूँद-दधि परत अघात—१०-१५६ । (ग) छिटकि रही दधि-बूँद हृदय पर, इत-उत चितवत करि मन मैं डर—१०-२८२ । (२) प्रकाश फैलना,

उजाला छाना। उ.—लै पौढी आँगन ही सुत कौं, छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६।

छिटकुनी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पतली छडी, कमची।

छिटके—क्रि. अ. [हि. छिटकना] इधर-उधर फैल गये, बिखरे, छितरे। उ.—केस सिर बिन बयन के चहुँ दिसा छिटके भारि—१०-१६६।

छिटनी—संज्ञा स्त्री [हि. छीटना] टोकरी, झौआ।

छिट्टी—संज्ञा स्त्री. [हि. छींटा] छोटा जलकण।

छिड़कना—क्रि. स. [हिं. छींटा+करना] (१) भिगोने के लिए पानी की बूँदें डालना। (२) न्योछावर करना।

छिड़काई—संज्ञा स्त्री. [हि. छिड़कना] (पानी आदि द्रव पदार्थ) छिडकने की क्रिया या मजदूरी।

छिड़काना—क्रि. स. [हि. छिड़कना] छिडकने का काम करना, या इसकी प्रेरणा देना।

छिड़का, छिड़काव—संज्ञा पुं. [हिं. छिड़कना] (पानी आदि द्रव पदार्थ) छिडकने का काम।

छिड़ना—क्रि. अ. [हिं. छेड़ना] आरंभ होना।

छिड़ाइ—क्रि. स. [हि. छिड़ाना] छीन (लेते हैं)। उ.—डरनि तुम्हरे जाति नाहीं लेत दह्यौ छिड़ाइ-११६७।

छिड़ाय—क्रि. स. [हि. छिड़ाना] छुड़ा (ली), छुडाकर। उ.—(क) अधरपान रस करहि पियारी मुरली लई छिड़ाय—२४४६। (ख) आरजपंथ छिडाय गोपिकन अपने स्वारथ भोरी—२८६३।

छिण—संज्ञा पुं. [सं. क्षण] थोडा समय, क्षण।

छितनी—संज्ञा स्त्री. [सं. छत्र, प्रा. छत्त] छोटी टोकरी।

छितरना—क्रि. अ. [हिं. छितराना] फैलना, बिखरना।

छितराना—क्रि. अ. [सं. क्षिप्त+करण, प्रा. छितकरण, छितरण] बिखर जाना, तितरबितर होना।

क्रि. स.—(१) इधर-उधर बिखेरना, फैलाना। (२) अलग या दूर करना।

छितराव—संज्ञा पुं. [हि. छितराना] बिखरने का भाव।

छिति—संज्ञा स्त्री. [स. क्षिति] (१) भूमि, पृथ्वी। उ.—अमल अवास कास कुसुमिन छिति लच्छन स्वाति जनाए—२८५४। (२) एक का अंक।

छितिकंत—संज्ञा पु. [सं. क्षिति+कांत] राजा।

छितिज—संज्ञा पुं. [सं. क्षितिज] वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले जान पडते हैं।

छितिपाल—संज्ञा पुं. [सं. क्षिति+पाल] राजा।

छितिरुह—संज्ञा पु. [सं. क्षितिरुह] पेड, वृक्ष।

छितीस—संज्ञा पु. [सं. क्षिति+ईश] राजा।

छिदना—क्रि. अ. [हि. छेदना] (१) छेद होना, विधना, भिदना। (२) घायल या जख्मी होना।

क्रि. स.—(सहारे के लिए) थामना, पकड़ना।

संज्ञा पुं.—बरच्छा, फलदान, मँगनी।

छिदरा—वि. [हि. छिद्र] (१) जो घना न हो, छितराया हुआ। (२) छेददार। (३) फटा हुआ।

वि. [सं. क्षुद्र] ओछा, तुच्छ बुद्धि का।

छिदाना—क्रि. स. [हि. छेदना का प्रे.] छेदने को प्रेरित करना, छेदने देना।

छिदि—क्रि. अ. [हि. छिदना] चुभकर, भिदकर। उ.—छिदि छिदि जात विरह सर मारे—३०७५।

छिद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेद। उ.—मुरली कौन सुकृत-फल पाए। ···। मन कठोर, तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाए—६६१। (२) गड्ढा, बिल। (३) (छूटा हुआ) स्थान। (४) दोष, त्रुटि।

छिद्रदर्शी—वि. [सं. छिद्रदर्शिन्] दूसरे का दोष देखने या नुक्स निकालनेवाला।

छिद्रान्वेषण—संज्ञा पुं. [सं. छिद्र+अन्वेषण] दूसरे के दोष या नुक्स ढूँढ़ना।

छिद्रान्वेषी—वि. [स. छिद्र+अन्वेषिन्] दूसरे के दोष ढूँढ़ने या नुक्स निकालनेवाला।

छिद्रित—वि. [सं.] (१) छेदा हुआ। (२) दूषित।

छिन—संज्ञा पुं. [सं. क्षण] क्षण। उ.—पुत्र कबंध अंक-भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर—१-२६।

छिनक—क्रि. वि. [सं. क्षण+एक] एक क्षण, दम भर, थोडी देर। उ.—(क) नरहरि रूप धरयौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ—१-१४। (ख) जैसैं सुपनैं सोइ देखियत, तैसैं यह संसार। जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैं उघरत नैन-किवार—२-३१।

छिनकना—क्रि. अ. [हि. चमकना] भड़कना।

छिनछवि, छिनौछवि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षण+छवि] क्षण भर चमकनेवाली बिजली ।

छिनदा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षणदा] रात ।

छिनना—क्रि. अ. [हिं. छीनना] छिन जाना ।

क्रि. स. [सं. छिन्न] छेनी या टाँकी से कटना ।

छिनभंग—वि. [सं. क्षणभंगुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला ।

छिनाइ, छिनाई—क्रि. स. [हिं. छिनाना] छीनकर, हरण करके । उ.—(क) इंद्र-हाथ तैं वज्र छिनाइ—६-५ । (ख) लियौ सुरनि सौं अमृत छिनाइ—७-७ । (ग) ग्वारनि पै लै खात है जूठी छाक छिनाइ—११२६ । (घ) असुर सब अमृत लै गए छिनाई—८-८ । (ङ) सिंधु मथि सुरासुर अमृत बाहर कियौ, बलि असुर लै चल्यौ सो छिनाई—८-६ ।

छिनाए—क्रि. स. [हिं. 'छीनना' का प्रे.] छिनवाए, हरण कराए । उ.—द्रौपदि के तुम वस्त्र छिनाए—१ २८४ ।

छिनाना—क्रि. स. [हिं. छीनना] छीनने का काम कराना ।

क्रि. स.—छीनना, हरण करना ।

क्रि. स. [सं. छिन्न] टाँकी या छेनी से कटाना ।

छिनायौ—क्रि. स. [हिं. छिनाना] छीन लिया, हरण किया । उ.—भयौ आनंद सुर-असुर कौं देखि कै, असुर तब अमृत करि बल छिनायौ—८-८ ।

छिनार, छिनारि—वि. स्त्री. [हिं. छिनाल] व्यभिचारिणी, कुलटा । उ. - मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमकौ जानति । जमुना-तट बहु बार मिलन-भयौ, तुम नाहिंन पहिचानति । ऐसी कहि वाकौं मैं जानति, वह तौ बडी छिनारि—७०३ ।

छिनारौ—संज्ञा पुं. [हिं. छिनाल] व्यभिचार । उ.—चोरी रही, छिनारौ अब भयौ, जान्यौ ज्ञान तुम्हारौ । औरै गोप-सुतनि नहिं देखौ, सूर स्याम हैं बारौ—७७३ ।

छिनाल—वि. स्त्री. [सं. छिन्न+नारी, प्र. हिं. छिनारि] व्यभिचारिणी, कुलटा ।

छिनालपन, छिनालपना, छिनाला—संज्ञा पुं. [हिं. छिनाल+पन] व्यभिचार ।

छिन्न—वि. [सं.] कटा हुआ, खंडित ।

छिन्नभिन्न—वि. [सं.] (१) कटा-फटा । (२) नष्ट-भ्रष्ट । (३) जिसका क्रम ठीक न हो, तितर-बितर ।

छिपकली—संज्ञा स्त्री. [हिं. चिपकना] (१) एक जंतु । (२) कान में पहनने का एक गहना ।

छिपना—क्रि. अ. [सं. क्षिप+डालना] (१) ओट में होना । (२) अदृश्य होना । (३) जो स्पष्ट न हो, गुप्त ।

छिपाइ—क्रि. स. [हिं. छिपाना] छिपा लिया, ओट में कर लिया । उ.—च्यवन रिषीस्वर बहु तप कियौ । । बामी ताकौं लियौ छिपाइ । तासौं रिषि नहिं देइ दिखाइ—६-३ ।

छिपाए—क्रि. स. [हिं. छिपाना] ढँके हुए, आड़ में किये हुए, दृष्टि से ओझल किये हुए । उ.—सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मँगइयै—१-२३६ ।

छिपाछिपी—क्रि. वि. [हिं. छिपना] चुपचाप ।

छिपाना—क्रि. स. [सं. क्षिप+डालना] (१) ओट या आड में करना । (२) प्रकट न करना, गुप्त रखना ।

छिपाव—संज्ञा पुं. [हिं. छिपना] दुराव, गोपन ।

छिपावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. छिपाना] छिपाती है, प्रकट नहीं करती । उ.—राधे हरि-रिपु क्यौं न छिपावति—सा. उ. ११ ।

छिपी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. छिपना] प्रकट न हुई, गुप्त है, अस्पष्ट है । उ.—मो सम कौन कुटिल खल कामी । तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब कैं अंतरजामी—१-२४८ ।

छिप्यौ—क्रि. अ. [हिं. छिपना] छिप गया, ओट में हो गया । उ.—सो हत्या तिहिं लागी धाइ । छिप्यौ सो कमलनाल मैं जाइ—६-५ ।

छिप्र—क्रि. वि. [सं. क्षिप्र] शीघ्र, तुरत ।

छिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षमा] क्षमा ।

छिया—संज्ञा स्त्री. [सं. छिम, प्रा. छिव, हिं. छि] (१) घृणित वस्तु, घिनौनी चीज । (२) मल, गलीज, मैला ।

मुहा.—मल और वमन के समान घृणित समझ कर, घिना कर । उ.—जन्म तैं एक टक लागि आसा रही विषय-विष खात नहिं तृप्ति मानी । जो

छिया छरद करि सकल संतन तजी, तासु तैं मूढ़मति प्रीति ठानी—१-११० ।

वि.—(१) मैला, मलिन । (२) घृणित ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बछिया] छोकरी, लड़की ।

छियालीस—संज्ञा स्त्री. [सं. षड्चत्वारिंश, हिं. छः+ चालीस] चालीस और छः की सख्या ।

छियासी—संज्ञा स्त्री. [सं. षड्शीति, पा. छासीति, प्रा. छासी] अस्सी और छः की संख्या ।

छिरक—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छिड़ककर, छींटा देकर । उ.—भरि गंडूष, छिरक दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै—१०-२८७ ।

छिरकत—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छिड़कते है, (हलके) छींटे डालते है । उ.—(क) छिरकत हरद दही, हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई—१०-१९ । (ख) मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही—१०-२४ ।

छिरकना—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छिड़कना ।

छिरकावन—संज्ञा पुं. [हिं. छिड़काव] (पानी जैसे द्रव पदार्थ) छिड़कने की क्रिया, छींटो से तर करना । उ.—चोवा-चंदन-अबिर, गलिनि छिरकावन रे—१०-२८ ।

छिरकि—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छिड़ककर, छींटा देकर । उ.—सोवत लरिकनि छिरक मही सौं, हँसत चले दै कूक—१०-३१७ ।

छिरकैं—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छिड़कते है, छींटे फेंकते है । उ.—कनक कौ माट लाइ, हरद-दही मिलाइ, छिरकैं परस्पर छल-बल धाइकै—१०-३१ ।

छिरक्यौ—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] पानी छिड़का, छींटो से तर किया । उ.—चकित देखि यह कहै नर-नारी । धरनि अकास बराबरि ज्वाला, झपटति लपट करारी । नहि बरष्यौ, नहिं छिरक्यौ काहू, कैसें गई बुझाइ—५९८ ।

छिरना—क्रि. अ. [हिं. छिलना] छिल जाना ।

छिलकना—क्रि. स. [हिं. छिड़कना] छींटा डालना ।

छिलका—संज्ञा पु. [हिं. छाल] फलो का ऊपरी आवरण ।

छिलछिला, छिलछिलौ—वि. [हिं. छूछा+ला (प्रत्य.), छिछला] (पानी की) उथली या कम गहरी सतह । उ.—देखि नीर जु छिलछिलौ जग, समुझि कछु मन माहिं । सूर क्यौं नहि चलै उड़ि तहँ बहुरि उड़िबौ नाहिं—१-३३८ ।

छिलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. छिलना] (१) छिलने की क्रिया या भाव । (२) खरोच, खरोचा ।

छिलना—क्रि. अ. [हिं. छीलना] (१) छिलका उतरना । (२) खरोच लगना । (३) खुजली सी होना ।

छिलाई, छिलाव, छिलावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. छीलना] छीलने की क्रिया या भाव ।

छिलौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाला] छोटा छाला ।

छिल्लड़—संज्ञा पुं. [हिं. छिलका] भूसी, छिलका ।

छिहत्तर—संज्ञा स्त्री. [सं. षट्सप्तति, प्रा. छसत्तति, पा. छसत्तरि, छहत्तरि] छः और सत्तर की सख्या ।

छिहरना—क्रि. अ. [हिं. छितरना] बिखरना, फैलना ।

छिहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. छिहाना] (१) ढेर लगाने का काम । (२) चिता, सरा । (३) मरघट ।

छिहाना—क्रि. स. [सं. चयन] ढेर लगाना ।

छिहानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छिहाना] श्मशान, मरघट ।

छींक—संज्ञा स्त्री. [सं. छिक्का] नाक-मुंह से सहसा और सवेग निकलनेवाला वायु का स्फोट । हिंदुओ में किसी काम के आरभ में छींक होना अशुभ माना जाता है । उ.—(क) महर पैठत सदन भीतर, छींक बाईं धार । सूर नंद कहत महरि सौं, आज कहा बिचार—५२४ । (ख) छींक सुनत कुसगुन कह्यौ, कहा भयौ यह पाप । अजिर चली पछितात छींक कौ दोष निवारन—५८९ ।

मुहा.—छींक होना—असगुन होना ।

छींकना—क्रि. अ. [हिं. छींक] छींक आना ।

मुहा.—छींकते नाक काटना—जरा जरा सी बात पर चिढ़ना या दड देना ।

छींका—संज्ञा पुं. [सं. शिक्य] (१) पतली डोरी का जाल जिसमें कुछ रखा जाता है, सिकहर । (२) झूला ।

छींकी—क्रि. अ. [हिं. छींक] छींकने लगी, छीक दी । (हिंदुओ में किसी काम के समय छींकना अशुभ माना जाता है) । उ.—जसुमति चली रसोई भीतर, तवहि

ग्वालि इक छींकी। ठठकि रही द्वारे पर ठाढी, बात नहीं कछु नीकी—५४०।

छींके—संज्ञा पु. सवि. [सं. शिक्य, हि. छीका] छींके से, सीके से, सिकहर से। उ.—ग्वाल के काँधे चढे तब, लिए छींके उतारि—१०-२८६।

छींट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षिप्त, प्रा. चित्त] (१) पानी आदि की बूंद। उ.—राधे छिरकति छींट छबीली। कुच कुकुम कंचुकि बँद टूटे, लटकि रही लट गीली। (२) बूंद या छींट का चिह्न। उ.—भभकि कै दंत तैं रुधिर धारा चली छींट छवि वसन पर भई भारी—२५६५। (३) कपडा जिस पर रंगीन बेल-बूंटे हो।

छींटना—क्रि. स. [हि. छींट] छींटे डालना।

छींटा—संज्ञा पुं. [हि. छींट] (१) बौछार, झडी। (२) छींट का चिह्न। (३) व्यंग्यपूर्ण उक्ति।

छींटि—क्रि. स. [हि. छींटना] छींटे देना, छींटों से भिगोना, छींटे छितरा कर। उ.—गोरस तन छींटि रही, सोभा नहिं जाति कही, मानौ जल-जमुन बिंब उडुगन पथ केरौ—१०-२७६।

छींटैं—संज्ञा पु. बहु० [हिं. छींटा] छोटी-छोटी बूंदें। उ.—आनन रही ललित पय छींटैं, छाजति छवि तृन तोरे—७३२।

छींदा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिंबी, हि. छीमी] छीमी, फली।

छी—अव्य. [सं.] घृणा या घिनसूचक शब्द।

मुहा.—छी छी करना—घृणा प्रकट करना।

संज्ञा पुं. [अनु.] वह शब्द जो कपडा धोते समय धोबियों के मुंह से निकलता है।

छीउल—संज्ञा पुं. [देश.] पलाश, ढाक।

छीका—संज्ञा पु. [सं. शिक्य] (१) सीका, सिकहर।

मुहा.—छीका टूटना—अनायास ऐसी घटना होना जिससे कुछ लाभ हो जाय।

(२) झरोखा। (३) पशुओं के मुख पर पहनाया जानेवाला जाल। (४) झूला।

छीकें—संज्ञा पुं. [हिं. छीका] छीके के ऊपर। उ.—अब कहि देउ कहत किन यौं कहि माँगत दही धरयौ जो है छीके।

छीछल—वि. [हिं. छिछला] उथला, छिछला।

छीछालेदर—संज्ञा स्त्री. [हिं. छी छी] दुर्गति।

छीज—संज्ञा स्त्री. [हि. छीजना] घाटा, कमी, घिसन।

छीजत, छीजतु—क्रि. अ. [हि. छीजना] क्षीण होता है, घटता है, ह्रास होता है। उ.—(क) अंजलि के जल ज्यौं तन छीजत, खोटे कपट तिलक अरु मालहिं—१-७४। (ग) वायस अजा सब्द की मिलवनि याही दुख तनु छीजतु—३३०१।

छीजना—क्रि. अ. [स. क्षयण या क्षीण] (१) घटना, कम होना। (२) अवनत होना, ह्रास होना।

छीजै—क्रि. अ. [हिं. छीजना] क्षीण या कम होती है। उ.—आयु भग्न-घट-जल ज्यौं छीजै—१-३४२।

छीतना—क्रि. स. [सं. छिद्र+ना (प्रत्य.)] (१) मारना। (२) बिच्छू, भिड आदि का डंक मारना।

छीतस्वामी—संज्ञा पु—वल्लभाचार्य के शिष्य, अष्टछाप के एक वैष्णव कवि।

छीति—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षति] (१) हानि, घाटा। (२) बुराई। उ.—तेरो तन धन रूप महा गुन सुंदर स्याम सुनी यह कीर्ति। सो करु सूर जेहि भाँति रहै पति जनि बल बाँधि बढावहु छीति—३३६३।

छीति छान—वि. [सं. क्षति+छिन्न] छिन्न-भिन्न।

छीदा—वि. [स. छिद्र] (१) जिसमें बहुत से छेद हों, झाँझरा। (२) जो घना न हो, विरल।

छीन—वि. [सं. क्षीण] (१) दुबला, पतला, कृश। उ.—(क) दिन-दिन हीन-छीन भइ काया दुख-जंजाल जटी—१-६८। (ख) बुधि, विवेक, बलहीन, छीन तन सबही हाथ पराए—१-३२०। (२) शिथिल, मंद, मलिन। उ.—पूँछ को तजि असुर दौरि के मुख गह्यौ, सुरन तब पूँछ की ओर लीनी। मथत भए छीन तब बहुरि अस्तुति करी श्री महाराज निज सक्ति दीनी—८-८। (३) क्षीण, क्षय होने का भाव। उ.—बहुरि कह्यौ, सुरपुर कछु नाहिं। पुन्य-छीन तिहि ठौर गिराहि—१-२६०।

छीनचंद—संज्ञा पुं. [सं. क्षीण चंद] द्वितीया का चांद।

छीनता—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीणता] दुबलापन।

छीनना—क्रि. स. [सं. छिन्न+ना (प्रत्य.)] (१) छिन्न या अलग करना। (२) दूसरे की वस्तु जबरदस्ती

ले लेना, हरण करना। (३) अनुचित अधिकार करना। (४) छेनी से काटकर खुरदरा करना।

छीना—क्रि. स. [सं. छुप=छूना] स्पर्श करना।

वि. [सं० क्षीण] कृश, दुबला।

छीनि—क्रि. स. [हि. छीनना] (दूसरे की वस्तु आदि) छीन कर या जबरदस्ती लेकर। उ.—(क) छल करि लई छीनि मही, बामन ह्वै धायौ—६-११८। (ख) एक जु हुतो मदन मोहन की सो छवि छीनि लियौ—३१४७।

छीनी—वि. [सं. क्षीण] क्षीण, दुबली। उ.—देह छिन होति छीनी, दृष्टि देखत लोग—१-३२१।

छीने—क्रि. स. [हि. छीनना] छीन लिये, ले लिये।

प्र.—लेत कर छीने—छीने-झपटे लेते हैं। उ.—जेंवतऽरु गावत है सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य कान्ह छाक लेत कर छीने—४६७।

छीनौ—क्रि. स. [हि. छीनना] छिन्न किया, काटकर अलग किया। उ.—नीर हू तैं न्यारौ कीनौ चक्र नक्र-सीस छीनौ, देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं—८-५।

छीप—वि. [सं. क्षिप्र] तेज, वेगवान।

संज्ञा स्त्री. [हि. छाप] चिह्न, दाग, धब्बा।

छीपना—क्रि. स. [हि. छीप] (१) फँसी हुई मछली को बाहर फेंकना। (२) पानी का छींटा देना।

छीपी—संज्ञा पुं. [हि. छीप] छींट छापनेवाला।

छीबर—संज्ञा स्त्री. [हि. छापना] मोटी छींट।

छीमी—संज्ञा स्त्री. [स. शिवी] फली।

छीर—संज्ञा पुं. [सं. क्षीर] दूध। उ.—माता-अछत छीर बिन सुत मरै, अजा-कंठ कुच सेइ—१-२००।

छीरज—संज्ञा पु. [स. क्षीर+ज (प्रत्य.)] दही।

छीरधि—संज्ञा पु. [सं. क्षीरधि] क्षीरसागर।

छीरप—संज्ञा पुं. [सं. क्षीरप] दूध पीता बालक।

छीरफेन—संज्ञा पु. [स. क्षीर+फेन] मलाई।

छीरसमुद्र, छीरसागर, छीरसिंधु—संज्ञा पुं. [सं. क्षीर+समुद्र, सागर, सिंधु] क्षीरसागर।

छीलक—संज्ञा पु. [हि. छिलक] छिलका।

छीलना—क्रि. अ. [हि. छाल] (१) छिलका उतारना। (२) खुरचना। (३) खुजली-सी उत्पन्न करना।

छीलर—संज्ञा पुं. [हि. छिछला अथवा सं. क्षीण] छोटा छिछला गढा, तलैया। उ.—(क) सागर की लहरि छाँड़ि, छीलर कत न्हाऊँ—१-१६६। (ख) अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस—१-३३७।

छीव—संज्ञा पुं. [सं. क्षीव] पागल, मतवाला।

छुँगनी—संज्ञा स्त्री. [हि. छँगुली] सबसे छोटी उँगली।

छुँगली—संज्ञा स्त्री. [हि. छँगुली] घुंघरूदार अँगूठी।

छुअत—क्रि. अ. [हि. छूना] छूते ही, स्पर्श करते ही। उ.—(क) बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ—६-२८। (ख) सूर प्रभु छुअत धनु टूटि धरनी परयौ—२५८४।

छुआई—संज्ञा स्त्री. [हि. छूना] छूने की क्रिया या रीति। उ.—हाहा करिए लाल कुँअरि के पायँ छुआई—२४१६।

छुआछूत—संज्ञा स्त्री. [हि. छूना] छूत-छात।

छुआना—क्रि. स. [हिं. छुलाना] स्पर्श करना।

छुई—क्रि. स. [हि. छूना] स्पर्श की। उ.—बिन देखे की मया बिरहिनी अति उर जरति न जात छुई—२४३३।

छुईमुई—संज्ञा स्त्री. [हि. छूना+मुवना] लज्जावती नामक एक पौधा जो छूने से मुरझा जाता है।

छुगुनूँ—संज्ञा पुं. [अनु. छुनछुन] घुंघरू।

छुच्छा—वि. [हिं. छूछा] खाली, जो भरा न हो।

छुच्छी—संज्ञा स्त्री. [हि. छूछा] (१) पोली नली। (२) नाक की लौंग की तरह का एक गहना।

छुछकारना—क्रि. स. [अनु.] डाँटना, फटकारना।

छुछहँड़—संज्ञा स्त्री. [हि. छूछी+हंडी] खाली हाँड़ी।

छुछुआना—क्रि. अ. [अनु. छूछू] बेकार घूमना।

छुट—अव्य. [हिं. छूटना] छोड़कर, सिवाय, अतिरिक्त। उ.—जब ते जग जन्म पाय जीव है कहायौ। तब ते छुट अवगुन इक नाम न कहि आयौ।

छुटकाई—क्रि. स. [हिं. छूटना, छुटकाना] साथ छोड़कर, अलग होकर। उ.—साधु-संग, भक्ति

बिना, तन अकारथ जाई। ज्वारी ज्यौं हाथ भारि, चाले छुटकाई—१-३३०।

छुटकाना—क्रि. स. [हि. छूटना] (१) छोड़ना, अलग करना। (२) छोड़ देना, साथ न लेना। (३) मुक्त करना, छुटकारा देना।

छुटकायौ—क्रि. स. भूत. [हि. छुटकाना] (१) छुड़ाया, मुक्त किया, छुटकारा दिलाया। उ.—हा करुनामय कुंजर टेर्‌यौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ। लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्‌यौ बंधन ताकौ—१-११३। (२) छोड़ दिया, साथ न लिया। उ.—चितत ही चित में चितामनि, चक्र लिए कर धायौ। अति करुना-कातर करुनामय, गरुड़हु कौ छुटकायौ—८-३। (३) अलग किया, पकड़े न रहे।

छुटकारा—संज्ञा पुं. [हि. छुटकाना] (१) मुक्ति, छूटने की क्रिया। (२) रक्षा, निस्तार। (३) छुट्टी।

छुटत—क्रि. अ [हिं. छूटना] छूटते ही।

मुहा.—देह छुटत—प्राण निकलते ही। उ.—मेरी देह छुटत जम पठए दूत—१-१५१।

छुटति—क्रि. अ. [हि. छूटना] छूटती है। उ.—कोउ अपने जिय मान करै माई हो मोहि तो छुटति अति कँपनी—१६६२।

छुटना—क्रि. अ. [हिं. छूटना] छूट जाना, रह जाना।

छुटपन—संज्ञा पु. [हि. छोटा+पन (प्रत्य.)] (१) छोटाई, लघुता। (२) बचपन, लड़कपन।

छुटाई—संज्ञा स्त्री. [हि. छोटाई] (१) छोटापन, लघुता। (२) तुच्छता, हीनता।

छुटाना—क्रि. स. [सं. छूट] छुड़ाना।

क्रि. अ.—गाय-भैंस का दूध देना बंद होना।

छुटायो, छुटायौ—क्रि. स. [हि. छुटाना] छुड़ाया, मुक्त किया। उ.—(क) तब गज हरि की सरनहि आयो। सूरदास प्रभु ताहि छुड़ायो। (ख) ताकौ चरन परसि कै माधव दुःखित साप छुटायो—सारा. ८२३।

छुटावत—क्रि. स. [हिं. छुटाना] छुड़ाते हैं, साफ करते हैं। उ.—राहु केतु मानहु सुमीड़ि बिधु आँक छुटावत धोयौ—३४८२।

छुटि—क्रि. अ. [हि. छूटना] दूर हुई, संबंध न रहा। उ.—लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)—१-४४।

छुटैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. छुटाना] छुड़ानेवाला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. छूट] भाटों के चुटकुले।

छुटैहै—क्रि. स. [हिं. छुटाना] छुड़ावेगा। उ.—जब गजेंद्र कौ पग तू गहिहै। हरि जू ताकौं आनि छुटैहै—८-२।

छुटौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूट] सूद की छूट।

छुट्टा—वि. [हिं. छूटना] (१) जो बँधा न हो। (२) अकेला। (३) जिसके पास कुछ न हो।

छुट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूट] (१) छुटकारा, मुक्ति। (२) अवकाश, फुरसत। (३) वह दिन जब दैनिक कार्य न करना हो। (४) जाने की आज्ञा।

छुट्‌यौ—क्रि. अ. [हिं. छूटना] दूर हुआ, नष्ट हुआ। उ.—मैं मेरी अब रही न मेरैं, छुट्‌यौ देह अभिमान—२-३३।

छुडाइ—क्रि. स. [हिं. छुड़ाना] छुड़ाकर, अलग करके। उ.—भुजा छुड़ाइ, तोरि तृन ज्यौं हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ—६-४६।

छुड़ाई—क्रि. स. [हि. छोड़ना] छुड़ाना, मुक्त कराना। उ.—राज-रवनि सुमिरे पति-कारन, असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई—१-२४।

छुड़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. छुड़ाना] (१) दूर करूँ, अलग करूँ। उ.—कै हौं पतित रहौं पावन ह्वै, कै तुम बिरद छुड़ाऊँ—१-१७६। (२) बचाऊँ, रक्षा करूँ। उ.—जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ—१-२७२।

छुड़ाए—क्रि. स. [हिं. छुड़ाना] छुड़ाया, रक्षा की। उ.—जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कौं उर ध्याए (हो)। गरुड़ छाँड़ि, आतुर ह्वै धाए, तो ततकाल छुड़ाए (हो)—१-७।

छुड़ाना—क्रि. स. [हि. छोड़ना] (१) अलग करना, खोलना। (२) दूसरे के अधिकार से निकालना। (३) लगी हुई वस्तु दूर करना। (४) नौकरी से हटाना। (५) क्रिया या प्रवृत्ति को दूर करना।

क्रि. स. [हि. छोड़ना का प्रे.] छोड़ने का काम कराना या इसकी प्रेरणा देना।

छुड़ायौ—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] (१) रक्षा की। उ.—खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ—१-५। (२) मुक्त किया। उ.—अंत औसर अरध-नाम उचार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ—१-११६।

छुड़ावत—क्रि. स. [छुड़ाना] छुड़ाता है, अलग करते हो। उ.—(क) दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावत, सुमिरत नाम द्रौपदी वाँची—१-१८। (ख) इहिं अवसर कह वाँह छुड़ावत, इहिं डर अधिक डर्यौ—१-१५६।

छुड़ावहु—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] छोड़ो, अलग करो, (अपने पास से) दूर करो। उ.—जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ, तहाँ तहाँ जनि चरन छुड़ावहु—४५०।

छुड़ावै—क्रि. स. [हि. छोड़ना, छुड़ाना] छुड़ाता है, अलग करता है। उ.—दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावै—१-२४६।

छुड़ैया—वि. [हिं. छुड़ाना+ऐया] बचानेवाला।

छुड़ौती—संज्ञा स्त्री [हि. छुड़ाना] छूट, छुटौती।

छुत्—संज्ञा स्त्री. [सं क्षुत्] क्षुधा, भूख।

छुतिहर—संज्ञा पुं [हि. छूत+हंडी] (१) अशुद्ध बरतन या पात्र। (२) नीच या तुच्छ आदमी।

छुतिहा—वि. [हिं. छूत+हा (प्रत्य.)] (१) जिसे छूत लगी हो। (२) दोषी, पतित, कलंकित।

छुद्र—वि. [सं. क्षुद्र] छोटा, साधारण। उ.—छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ—१-१३१।

छुद्रघंट—संज्ञा पुं. [सं. क्षुद्रघंटिका] (१) घुंघरू। (२) घुंघरूदार करधनी।

छुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुद्रघंटिका] (१) घुंघरू। (२) करधनी जिसमें बहुत से घुंघरू लगे हो।

छुद्रपति—संज्ञा पुं. [सं. क्षुद्रपति] कुबेर। उ.—रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, वाकपति, धरनिपति गगनपति, अगम बानी—१५२२।

छुद्रावलि, छुद्रावली—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुद्रावली] क्षुद्रघंटिका, किंकिणी, करधनी। उ.—अंग-अभूपन जननि उतारति। ' '...। छुद्रावली उतारति कहि सौंति धरति मनहीं मन वारति—५१२।

छुधा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुधा] क्षुधा, भूख। उ.—देखि छुधा तैं मुख कुम्हिलानौ, अति कोमल तन स्याम—३६१।

छुधित—वि. स्त्री., पुं. [सं. क्षुधित] भूखी, भूखा। उ.—(क) माधौ, नैंकु हटकौ गाइ। ; छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ—१-५६। (ख) छिन छिन छुधित जान पय-कारन, हँसि हँसि निकट बुलाऊँ—१०-७५।

छुनछुनाना—क्रि. अ. [अनु.] 'छुन छुन' करना।

छुननमुनन, छुनमुन—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) खौलते घी-तेल में तली जानेवाली चीज के पड़ने पर होने वाला शब्द (२) पैर के घुंघरूदार आभूषणो का शब्द।

छुप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्पर्श। (२) झाड़ी। (३) वायु। वि.—चचल।

छुपना—क्रि. अ. [हि. छिपाना] सामने न होना।

छुपाना—क्रि. स. [हि. छिपाना] सामने न रखना।

छुबुक—संज्ञा पुं. [सं.] चिबुक, ठुड्डी, ठोढ़ी।

छुभित—वि. [सं. क्षुभित] विचलित, घबराया हुआ।

छुभिराना—क्रि. अ. [हिं. क्षोभ] क्षुब्ध होना।

छुयौ—क्रि. अ. [हि. छूना] छुआ, स्पर्श किया। उ.—सोवत काग छुयो तन मेरौ—६-८३।

छुरधार—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुरधार] तीक्ष्ण धार।

छुरा—संज्ञा पुं. [सं. क्षुर] (१) बड़ा चाकू। (२) बाल मूँड़ने का उस्तरा।

छुराइ—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] (फँसे, उलझे या झगड़नेवालो को) छुड़ाकर, अलग करके, हटाकर। उ.—मुख-छवि कहा कहौं बनाइ। ' । अमृत अलि मनु पिवन आए, आइ रहे लुभाइ। निकसि सर तैं मीन मानौ लरत कीर छुराइ—२५२।

छुरित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नृत्य का एक भेद। (२) बिजली की चमक।

छुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छुरा] छोटा छुरा

मुहा.—छुरी चलना—छुरी से लड़ाई होना। किसी पर छुरी चलाना—बहुत कष्ट देना। छुरी

तेज करना—हानि पहुँचाने की तैयारी करना।

छुरी फेरना—भारी हानि पहुँचाना।

छुलछुलाना—क्रि. अ. [अनु.] इतराना।

छुलाना—क्रि. स. [हिं. छूना] स्पर्श कराना।

छुवत—क्रि. अ. [हिं. छूना] (१) छूते ही, स्पर्श करते ही। उ.—नल अरु नील विस्वकर्मा-सुत, छुवत पषान तरथौ—६-१२२। (२) छूते हो, दौड़ की बाजी में पकड़ते हो। उ.—जानिकै मैं रह्यौ ठाढौ, छुवत कहा जु मोहिं—१०-२१३।

छुवना—क्रि. स. [हिं. छूना] स्पर्श करना।

छुवाई—क्रि. स. [हिं. छुआना, छुलाना] छुआया, स्पर्श कराया। उ.—अवहि सिला तैं भई देव-गति जव पग-रेनु छुवाई—६-४०।

छुवाऊँ—क्रि. स. [हिं. छुवाना] स्पर्श कराऊँ, छुलाऊँ। उ.—ये दससीस ईस - निरमालय, कैसैं चरन छुवाऊँ—६ १३२।

छुवाना—क्रि. स. [हिं. छूना] स्पर्श कराना।

छुवाव—संज्ञा पुं. [हिं. छुवाना] सवध, लगाव।

छुवावत—क्रि. स. [हिं. छुवाना] छुआते हैं, स्पर्श कराते हैं। उ.—पटरस के परकार जहाँ लगि, लै लै अधर छुवावत—१० ८६।

छुवावैं—क्रि. स. [हिं. छूना] स्पर्श करावें, छुलावें। उ.—माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहि छुवावैं—१०-२७२।

छुवै—क्रि. स. [हिं. छूना] छूता है, स्पर्श करता है। उ.—आरि करत कर चपल चलावत, नद-नारि-आनन छुवै मंदहिं—१०-१०७।

छुहना—क्रि. अ. [हिं. छुवना] (१) छू जाना, स्पर्श हो जाना। (२) रँग जाना, लिप-पुत जाना।

क्रि. स. [हिं. छूना] स्पर्श करना।

छुहाना—क्रि. स. [हिं. छोहाना] प्रेम या दया करना।

छुहारा—संज्ञा पुं. [स. क्षुत+हार] एक प्रकार का खजूर, जिसका फल खाने में मीठा होता है। उ.—ऊधौ, मन माने की वात। दाख छुहारा छाँड़ि कै विष कीरा विष खात।

छुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूना] सफेद मिट्टी।

छूँछ, छूँछा—वि. पुं. [सं. तुच्छ, प्रा. चुच्छ, छुच्छ] (१) खाली, रीता, रिक्त।

मुहा.—छूँछा हाथ—(१) पास में धन न होना। (२) पास में हथियार न होना। (३) साथ में कोई चीज न लाना।

(२) जिसमें कुछ तत्व न हो। (३) निर्धन।

छूँछी—वि. स्त्री. [हिं. छूँछा] खाली, रीती, रिक्त। उ.—पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि-माखन सव खाए। छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की, हँसि सव वाहिर आऐ—१०-२६०।

छूँछे—वि. [हिं. छूछा] सारहीन, तत्व-रहित। उ.—तौ हूँ प्रश्न तुम्हारे छूँछे।

छू—संज्ञा पुं. [अनु.] फूँक मारने का शब्द।

मुहा.—छू बनना (होना)—उड़ जाना। छू छू बनाना—मूर्ख बनाना। छू मंतर—जादू या मंत्र की फूँक। छू मंतर होना—गायब हो जाना।

छूआछूत—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूना + छूत] अस्पृश्य को न छूने का विचार, भाव या रीति।

छूईमूई—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूना+मूना=मरना] लज्जावती पौधा जिसकी पत्तियाँ छूते ही मुरझा जाती हैं।

छूचक—संज्ञा पुं. [सं. सूतक] (१) वह समय जब धर्म-कर्म नहीं किये जाते। (२) बच्चा पैदा होने पर छ दिन का सूतक काल।

छूछा—वि. [हिं. छूँछा] (१) खाली। (२) निस्सार।

छूट—संज्ञा स्त्री. [हिं. छूटना] (१) मुक्ति, छुटकारा। (२) फुरसत। (३) ऋण-लगान की माफी, छुटौती। (४) कार्य के अंग-विशेष पर ध्यान न देना। (५) कार्य या व्यवहार विशेष की स्वतंत्रता।

छूटत—क्रि. अ. [हिं. छूटना] (१) दूर होते (हैं), नहीं रहते। उ.—(क) मोसौं पतित न और गुसाईं। अवगुन मोपैं अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यौ अव ताईं—१-१४७। (ख) ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीचहीं लटकैं। ज्यौं बहु कला काछि दिखरावैं, लोभ न छूटत नट कैं—१-१६२। (२) अस्त्र- शस्त्र चलते हैं। उ.—विविध सस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार—सारा. २६।

छूटति—क्रि. अ. [हिं. छूटना] अलग रहना, मान करना, छुटकारा पाना, दूर हटना। उ.—सुनि राधे रीझे हरि तोकों अब उनते तुम छूटति हौ—पृ. ३१६ (८०)।

छूटना—क्रि. अ. [सं. छुट=(बंधन आदि) काटना] (१) लगाव या संबंध न रहना, दूर होना।

मुहा.—शरीर (प्राण) छूटना—मृत्यु होना।

(२) बंधन आदि ढीला होना। (३) छुटकारा पाना। (४) चल देना, रवाना होना। (५) बिछुड़ना। (६) अस्त्र-शस्त्र चलना। (७) (काम या अभ्यास) न होना। (८) बहना, प्रवाहित होना। (९) धीरे-धीरे पानी निकलना। (१०) कण या छींटे निकलना। (११) काम बच या रह जाना। (१२) नौकरी आदि से हटाया जाना।

छूटि—क्रि. अ. [हि. छूटना] छूटने पर, छूट कर।

सयो.—छूटि गए—छूट जाने पर, अलग होने पर उ.—तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान। छूटि गऐ कैसैं जन जीवत, ज्यौं पानी विनु पान—१-१६६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. छूट] छुटकारा, मुक्ति। उ.—जानति हौं, वली वालि सौं न छूटि पाई—६-११८।

छूटी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. छूटना] (युद्ध में शक्ति आदि) चल पडी। उ.—इंद्रजीत लीन्ही तब शक्ती, देवनि हहा करयौ। छूटी विज्जु-रासि वह मानौ, भूतल बंधु परयौ—६-१४४।

वि.—बिखरी हुई। उ.—छूटी अलक भुअंगनि कुच तट पैठी त्रिवलि निकेत—१६२३।

छूटे—क्रि. अ. [हि. छूटना] (१) असबद्ध होने पर।

मुहा.—तन छूटे—मृत्यु होने पर। उ.—जीवत जाँचत कन कन निर्धन, दर-दर रटत विहाल। तन छूटे तैं धर्म नहीं कछु, जौ दीजै मनि-माल—११५६।

(२) सवेग निकले, बहे। उ.—देखत कपि बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटे—६-६७। (३) बिखर गये, बँधे या कसे न रहे। उ.—छूटे चिहुर वदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी—३४२५।

छूटै—क्रि. अ. [हि. छूटना] अलग होता है, छूट सकता है, दूर होता है। उ.—तू तौ विषया-रंग रँग्यौ है, विन धोए क्यौं छूटै—१-६३।

छूटौं—क्रि. अ. [हि. छूटना] छूटूँ, मुक्त होऊँ, मुक्ति पाऊँ। उ.—घर मैं गथ नहि भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं—१-१८५।

छूटौगे—क्रि. अ. [हि. छूटना] मुक्ति पाओगे, बंधन-मुक्त होगे। उ.—रामनाम विनु क्यौं छूटौगे, चंद गहै ज्यौं केत—१ २६६।

छूट्यौ—क्रि. अ. [हि. छूटना] छूटा, छूट गया। उ.—सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान—१-६७।

छूत—संज्ञा स्त्री. [हि. छूना] (१) स्पर्श, छूने का भाव। (२) गंदी या अपवित्र चीज का स्पर्श। (३) गंदी चीज छूने का दोष। (४) भूत-प्रेत की छाया।

छूना—क्रि. अ. [सं. छुप, प्रा. छुव+ना (प्रत्य.), पू. हि. छुवना] थोड़ा-थोड़ा स्पर्श होना।

क्रि. स.—(१) स्पर्श करना। (२) हाथ लगाना। (३) दान देने के लिए किसी चीज का स्पर्श करना। (४) दौड या खेल में किसी को पकड़ना। (५) धीरे-धीरे मारना। (६) बहुत कम व्यवहार में लाना।

छेंकना—क्रि. स. [सं. छद=ढाँकना+करण] (१) स्थान घेरना। (२) रोकना, जाने न देना। (३) लकीरो से घेरना। (४) (अशुद्धि) काटना या मिटाना।

छेक—संज्ञा पुं. [हिं. छेद] (१) छेद, सूराख। (२) कटाव, विभाग।

छेकानुप्रास—संज्ञा पुं. [सं.] एक शब्दालकार।

छेकापह्नुति—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालकार।

छेकोक्ति—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालकार।

छेटा—संज्ञा स्त्री. [सं. छिप्र, प्रा. छित्त] बाधा, रुकावट।

छेड़—संज्ञा स्त्री. [हि. छेद] (१) तंग करना। (२) चिढ़ाना। (३) चिढ़ाने की बात। (४) झगड़ा।

छेड़ना—क्रि. स. [हि. छेदना] (१) कोंचना, खोदना-खादना। (२) तंग करना। (३) चिढाना। (४) (काम) शुरू करना। (५) छेद करना, काटना।

छेत्र—संज्ञा पुं. [सं. क्षेत्र] स्थान, प्रदेश। उ.—वन वारानसि मुक्ति-छेत्र है—१-३४०।

छेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काटने का काम। (२) नाश।

(३) छेदने-काटनेवाला । (४) खंड ।

संज्ञा पुं. [सं. छिद्र] (१) सूराख, छिद्र । (२) खोखला, विवर, कुहर । (३) दोष, ऐब ।

छेदक—वि. [सं.] (१) छेदने या काटनेवाला । (२) नाश करनेवाला । (३) विभाजक ।

छेदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेदने-काटने की क्रिया । उ.—जसुदा, नार न छेदन दैहौं । मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं—१०-१५ । (२) नाश, ध्वस । (३) छेदने-काटने का अस्त्र ।

छेदनहार—वि. [हिं. छेदन+हारा] छेदनेवाला ।

छेदना—क्रि. स. [स. छेदन] (१) बेधना, भेदना । (२) घाव करना । (३) काटना, अलग करना ।

छेदि—क्रि. स. [स. छेदन] अलग करके, छिन्न करके । उ.—(क) जारौं लक, छेदि दस मस्तक, सुर-संकोच निवारौं—६-१३२ । (ख) दससुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं, संकर-उर दससीस चढावन—६-१३१ ।

छेदे—क्रि. स. [हिं. छेदना] काटे, छिन्न किये । उ.—रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँगपानि—१-१३५ ।

छेद्य—वि. [सं.] छेदने-काटने के योग्य ।

संज्ञा पुं.—परेवा, कबूतर ।

छेना—संज्ञा पुं. [स. छेदन] (१) फाड़े या फटे हुए दूध का खोया, पनीर । (२) कडा, उपला ।

क्रि. स.—कुल्हाड़ी आदि से काटना ।

छेनी—संज्ञा स्त्री. [हिं छेना] लोहे का एक औजार ।

छेमंड—संज्ञा पुं. [सं.] अनाथ लडका, यतीम ।

छेम—संज्ञा पु. [सं. क्षेम] कुशल, कल्याण, मगल । उ.—छेम-कुसल अरु दीनता, दंडवत सुनाई । कर जोरे बिनती करी, दुरबल-सुखदाई—१-२३८ ।

छेमकरी—संज्ञा स्त्री. [स. क्षेमकरी] सफेद चील ।

छेरी, छेली—सज्ञा स्त्री. [सं. छेलिका] बकरी । उ.—सूरदास प्रभु-कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।

छेव—सज्ञा पुं. [स. छेद, प्रा. छेव] (१) काटने-छीलने के लिए किया गया आघात या वार । (२) काटने-छीलने का चिह्न ।

(३) आनेवाली विपत्ति । (४) अनिष्ठ ।

मुहा.—छल छेव—छल-कपट के दाँव । उ.—जानति नहीं कहाँ ते सीखे चोरी के छल छेव—३११४ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टेव] आदत, स्वभाव ।

छेवन—संज्ञा पुं. [हिं. छेवना=काटना] कुम्हार का तागा ।

छेवना—सज्ञा स्त्री. [हि. छेना] ताड़ी ।

क्रि. स. [स. छेदन] काटना, चिह्न लगाना ।

क्रि. स. [सं. क्षेपण] फेंकना, मिलाना ।

छेवर, छेवरा—सज्ञा पुं. [हि. छेवना] छाल, चमडा ।

छेवा—संज्ञा पुं. [हिं. छेव] (१) छीलने-काटने का काम, आघात या चिह्न । (२) वेग से वहनेवाला जल ।

छेह—संज्ञा पुं. [हि. छेव] (१) काटने छीलने का काम, अघात या चिह्न । (२) खडन, नाश । (३) अनिष्ट ।

वि.—(१) खडित, कटा-पिटा । (२) कम ।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षार, हि. खेह] राख, मिट्टी ।

संज्ञा स्त्री. [हि. छाया] साया, छाया ।

छेहर—संज्ञा स्त्री. [सं. छाया] साया, छाया ।

छै—संज्ञा पुं. [स. क्षय] नाश । उ.—यह कहि पारथ हरि-पुर गए। सुन्यौ, सकल जादव छै भऐ—१-२८६ ।

वि. [हिं. छः] जो पाँच से एक अधिक हो ।

छैऊ—वि. [स. षट्, प्रा. छ] छहो । उ.—सार वेद चारौ कौ जोइ । छैऊ सास्त्र-सार पुनि सोइ—७-२ ।

छैना—क्रि. स. [हिं. छय+ना (प्रत्य.)] (१) छीजना, कम होना । (२) नष्ट-भ्रष्ट होना ।

मुहा.—छै जाना—छेद का फटकर फैलना ।

छैयाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. छाया, हिं. छाँह] वचाव का स्थान, शरण, सरक्षा ।

मुहा.—बसत तुम्हारी छैयाँ—तुम्हारी ही शरण है, तुम्हारे ही अधीन है । उ.—खेलत मै को काको गुसैयाँ । । जाति-पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ—१०-२४५ ।

छैया—संज्ञा पु. [हि. छवना] बच्चा, वत्स । उ.—(क) बिसकर्मा सूतहार, रच्यौ काम ह्वै सुनार, मनिगन लागे अपार, काज महर-छैया—१०-४१ । (ख) भूतनु के छैया, आस पास के रखैया और काली

नथैया हू ध्यान इतै न चलै ।

छैल—संज्ञा पुं. [हि. छैला] रँगीले-सजीले युवक, बाँके शौकीन जवान । उ.—छैलनि कै सग यौं फिरै, जैसै तनु संग छाई (हो)—१-४४ ।

छैल चिकनियाँ—सज्ञा पुं. [देश.] शौकीन आदमी ।

छैल छबीला—सज्ञा पुं. [देश.] बाँका शौकीन युवक ।

छैला—संज्ञा पुं. [स. छवि+ऐला (प्रत्य.)] बना-ठना, बाँका, सुंदर और रसिक पुरुष ।

छैलाना—क्रि. अ. [हि. छैल] बालकों का हठ करना ।

छोकर, छोकरा—संज्ञा पुं. [हं. शंकरा] शमी वृक्ष ।

छोड़ा—सज्ञा पुं. [सं. क्ष्वेड] दही मथने की मथानी ।

छोड़ि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्ष्वेड़िका] मथानी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. द्रोणि] बडा बरतन या पात्र ।

छो—संज्ञा पु. [सं. क्षोभ, हि. छोह] (१) प्रेम, चाह, छोह । (२) दया, क्रोध । (३) क्षोभ, झुँझलाहट ।

छोई—सज्ञा स्त्री. [हि. छोलना] (१) ईख की छीलकर फेंकी हुई पत्ती । (२) गन्ने की गँडेरी का चोफुर ।

छोकड़ा, छोकरा—संज्ञा पुं. [स. शावक, प्रा. छावक+रा (प्रत्य.)] (अनुभवहीन) लड़का, बालक।

छोकड़िया, छोकड़ी, छोकरिया, छोकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छोकड़ा] (अनुभवहीन) लडकी ।

छोकला—संज्ञा पुं. [सं. छल्ल] छाल, छिलका, वक्कल ।

छोट—वि. [हिं. छोटा] छोटा, पद-मान में कम । उ.—बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट—१-२३२ ।

छोटका—वि. [हि. छोटा+का (प्रत्य.)] जो छोटा हो ।

छोटा—वि. [सं. क्षुद्र] (१) आकार, डील-डौल या बडाई में कम । (२) उम्र या अवस्था में कम । (३) पद-प्रतिष्ठा या मान-मर्यादा में कम । (४) सार या महत्वहीन । (५) जो गभीर या उदार न हो, ओछा ।

छोटाई—संज्ञा स्त्री. [हि. छोटा+ई (प्रत्य.)](१) छोटापन, लघुता । (२) नीचता, ओछापन, तुच्छता ।

छोटापन—सज्ञा पु. [हि. छोटा+पन (प्रत्य.)] (१) छोटा होने का भाव, छोटाई । (२) बचपन, लडकपन ।

छोटि—वि. स्त्री. [हि. छोटा] तुच्छ, साधारण, महत्वहीन । उ.—कोटि द्वैक जलहीं धरे, यह बिनती इक छोटि—५८६ ।

छोटियै—वि. स्त्री. सवि. [हि. पुं. छोटा] आकार या विस्तार में कम ही, छोटी ही । उ.—छोटौ बदन छोटियै झिगुली, कटि किंकिनी बनाइ—१०-१३३ ।

छोटी—वि. स्त्री. [हि. पुं. छोटा] (१) जो बडी न हो, कम आकार की । उ.-छोटी छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख-ज्योति मोती मानो कमल-दलनि पै—१०-१५१ । (२) अवस्था में कम । उ.—जे छोटी तेई हैं खोटी साजति भाजति जोरी—१६२१ ।

छोटौ—वि. [हि. छोटा] (१) उम्र में छोटा । (२) तुच्छ, साधारण, मामूली । उ.—जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौ हूँ पतित न छोटौ—१-१७६ ।

छोड़छुट्टी, छोड़ाछुट्टी—संज्ञा स्त्री [हि. छोड़ना+छुट ना] सबध न रहना, नाता छूटना ।

छोड़ना—क्रि. स. [सं. छोरण] (१) किसी पकड़ी हुई वस्तु को पकड़ से अलग करना । (२) किसी लगी या चिपकी हुई वस्तु का अलग हो जाना । (३) बधन से मुक्ति या छुटकारा देना । (४) अपराध क्षमा करना, दड न देना । (५) ग्रहण न करना, न लेना । (६) ऋण आदि में छूट देना । (७) पास न रखना, त्यागना, अलग करना । (८) न उठाना, साथ न लेना । (९) चलाना, दौडाना । (१०) अस्त्र आदि चलाना । (११) किसी स्थान आदि से आगे बढ़ जाना । (१२) किसी काम को करते-करते बद कर देना । (१३) रोग आदि का दूर होना । (१४) (पिचकारी, आतशबाजी आदि) चलाना । (१५) बाकी रखना, काम में न लाना । (१६) वेग से बाहर निकालना । (१७) किसी काम को भूल जाना । (१८) ऊपर से गिराना या डालना ।

छोड़ाना—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] छुडाना ।

छोड़ावना—संज्ञा पुं. [हि. छोड़ाना] छुडाने के लिए । उ.—परी पुकार द्वार गृह गृह ते सुनहु सखी इक जोगी आयो । पवन सधावन भवन छोड़ावन नवल रिसाल गोपाल पठायौ—२६६६ ।

छोत—संज्ञा स्त्री. [हि. छूत] अस्पृश्यता का भाव ।

छोनिप—संज्ञा पु. [स क्षोणी+प=पालक] राजा ।

छोनी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षोणी] पृथ्वी, भूमि।

छोप—संज्ञा पुं. [सं. क्षेप, हि. खेप] गाढी चीज का मोटा लेप। (२) यह लेप चढाने की क्रिया। (३) वार, आघात। (४) छिपाव, दुराव।

यौ.—छोप छाप—(१) छिपाव। (२) बचाव।

छोपना—क्रि. स. [हि. छुपाना] (१) गाढ़ा लेप आदि करना। (२) मिट्टी आदि थोपना।

यौ.—छोपना छापना—ठीक करना, बनाना।

(३) धर दबाना, ग्रसना। (४) ढकना, छेंकना। (५) किसी बात को छिपाना। (६) वार से बचाना।

छोपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. छोपना] (१) छोपने की क्रिया (२) छोपने का भाव या मजदूरी।

छोभ—संज्ञा पु. [सं. क्षोभ] (१) दुख-क्रोध-जनित चित्त की विचलता। उ.—रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै। छमि सब छोभ जु छाँड़ि छवौ रस लै समीप सँचरै—१-११७। (२) नदी, तालाब आदि का उमडना।

छोभना—क्रि. स. [हि. छोभ+ना (प्रत्य.)] (१) चित्त का दुख-क्रोध से विचलित होना। (२) नदी आदि का उमडना।

छोभित—वि. [सं. क्षोभित] क्षुब्ध, चचल, विचलित। उ.—आजु अति कोपे हैं रन राम। ।छोभित सिंधु, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग—९-१५८।

छोम—संज्ञा पु. [स. क्षोम] (१) चिकना। (२) कोमल।

छोर—संज्ञा पुं. [हि. छोड़ना] (१) किसी वस्तु के दोनो ओर का किनारा। (२) विस्तार की सीमा। (३) किनारे का कुछ भाग। उ.—वृंदावन के तृन न भए हम लगत चरन कैं छोर।

क्रि स. [हिं. छुड़ाना] खोलकर, छुडाकर, मुक्त करके। उ.—बंधन छोर पिता माता के अस्तुति करि सिर नायौ—सारा. ५२६।

छोरटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छोरी] लडकी, बालिका।

छोरत—क्रि. स. [हि. छोड़ना] छोडते है, बधन से मुक्त कराते है। उ.—(क) आपु बँधावत भक्तनि छोरत, वेद विदित भई बानी—१०-३४३। (ख) ब्रज-प्यारौ, जाकौ मोहिं गारौ, छोरत काहे न ओहि—३७५।

छोरन—संज्ञा पुं. [हि. छोड़ना] छोड़ने (के लिए), (बधन से) मुक्त करने को। उ.—जाहु चली अपनैं अपनैं घर। तुमहीं सबनि मिलि ढीठ करायौ, अब आई छोरन बर—१-३४५।

छोरना—क्रि. स. [सं. छोरण=परित्याग, हिं. छोड़ना] (१) बधन या फँसाव दूर करना। (२) मुक्त करना, छुटकारा देना। (३) छीनना।

छोरा—संज्ञा पुं. [सं. शावक, हि. छावक+रा (प्रत्य.)] छोकडा, बालक, लड़का।

छोराए—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] बधन-मुक्त कराये। उ.—मात पिता बंदि ते छोराए—२६३१।

छोरा-छोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छोरना] (१) नोच-खसोट, छीना-झपटी। (२) झगडा, बखेडा, झंझट।

छोरि—क्रि. स. [हिं. छोड़ना] (१) छुड़ाकर, मुक्त करके। उ.—(क) सूर प्रभु मारि दसकंध, थापि बंधु तिहिं, जानकी छोरि जस जगत लीजै—९-१३६। (ख) नृपन को छोरि सहदेव को राज दियो देव नर सकल जै जै उचारयौ—१० उ. ५१। (२) छीन (लिए)। उ.—जोरि अजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के विभव तैं अधिक बाढौ—१-५।

छोरी—क्रि. स. [हिं. छोरना] (१) बधन दूर किये। उ.—जरासिंधु कौ जोर उघारयौ, फारि कियौ द्वै फाँकौ। छोरी बंदि बिदा किए राजा, राजा ह्वै गए राँकौ—१-११३। (२) छुड़वा दी, खुलवा दी। उ.—बीचहि मार परी अति भारी, राम लछमन तब दरसन पाए। दीन दयालु बिहाल देखिकै, छोरी भुजा, कहाँ तैं आए?—९-१२०। (३) अलग की। उ.—जाके गुननि गुथति माल कबहूँ उर तें नहिं छोरी—१० उ. ११६। (४) त्याग दी। उ.—त्रेता-जुग इक पत्नी ब्रत किए सोऊ बिलपति छोरी—२८६३।

संज्ञा स्त्री. [हि. छोरा] लडकी, छोकड़ी।

छोरे—क्रि. स. [हिं. छोरना] (१) बधन से मुक्त किया। उ.—कोटि छयानवे नृप-सेना सब जरासंध बँध छोरे—१-३१। (२) खोलकर, बंधन में न रखकर।

उ.—विनवै चतुरानन कर जोरे । तुव प्रताप जान्यौ नहि प्रभु जू करै अस्तुति लट छोरे—४८८ ।

छोरै—क्रि. स. [हि. छोरना] **खोलती है, उतारती है।** उ.—अंग अंग आभूषन छोरैं—७६६ ।

छोरै—क्रि. स. [हि. छुड़ाना] (१) **छुड़ावे, बंधन से मुक्त कराता है।** उ.—(क) बाँधौं आजु कौन तोहि छोरै—१०-३४४ । (ख) कोउ छोरै जनि ढीठ कन्हाई । बाँधे दोउ भुज ऊखल लाई—३६० । (२) **खोलता है।** उ.—जिय परी ग्रंथ कौन छोरै निकट ननद न सास—पृ. ३४८ (५७) ।

छोरयौ—क्रि. स. [हि. छोड़ना] **छोड दिया, बधन से मुक्त किया।** उ.—जब जब बंधन छोरयौ चाहहि, सूर कहै यह कोवै—३४७ ।

छोल—संज्ञा स्त्री. [हि. छोलना] **छिलने का चिह्न।**

छोलना—क्रि. स. [हि. छाल] **छीलना, खुरचना।**

मुहा.—कलेजा छोलना—**बहुत व्यथा देना।**

छोलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. छोलना] **छीलने, खुरचने या छेद करने का औजार।**

छोला—संज्ञा पुं. [हि. छोलना] **चना।**

छोलि, छोली—क्रि. स. [हि. छाल, छीलना] **छीलकर, छिलका उतारकर।** उ.—छोलि धरे खरबूजा केरा। सीतल बास करत अति वेरा—३९६ ।

छोवन—संज्ञा पुं. [हिं. छेवना] **कुम्हारो का डोरा।**

छोह—संज्ञा स्त्री. [हि. क्षोभ] (१) **ममता, प्रीति।** उ.—(क) नंद पुकारत रोइ बुढाई मैं मोहि छाँड्यौ। ... । यह कहिकै धरनी गिरत, ज्यौं तरु कटि गिरि जाइ। नंद-घरिन यह देखिकै कान्हहि टेरि बुलाइ। निठुर भए सुत आजु, तात की छोह न आवति—५८६ । (ख) माइ जसुदा देखि तोकौं करति कितनौ छोह—७०७ । (२) **दया, अनुग्रह, कृपा।** उ.—मोसौं कहत तोहिं बिनु देख, रहत न मेरौ प्रान। छोह लगति मोकौं सुनि बानी, महरि तुम्हारी आन—७२३ ।

छोहना—क्रि. अ. [हि. छोह] (१) **विचलित या क्षुब्ध होना।** (२) **प्रेम या दया का व्यवहार करना।**

छोहरा—संज्ञा पुं. [सं. शावक, प्रा. छावक, छाव+रा (प्रत्य.)] **लड़का, बालक।**

मुहा.—मो आगे को छोहरा—**मेरे सामने का लड़का, बहुत छोटा या अनजान बालक।** उ.—(क) मो आगे को छोहरा जीत्यौ चाहै मोहि—११३१ । (ख) भले रे नंद के छोहरा डर नहीं कहा जो मल्ल मारे विचारे—२६१२ ।

छोहरिया, छोहरी—संज्ञा स्त्री. [हि. छोहरा] **लडकी।**

छोहाना—क्रि. अ. [हिं. छोह] (१) **प्रेम, प्रीति या स्नेह करना।** (२) **दया या अनुग्रह करना।**

छोहारा—संज्ञा पुं. [हि. छुहारा] **छुहारा।** उ.—ऊधो मन माने की बात। दाख छोहारा छाँड़ि कै विष कीरा विष खात।

छोहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. अक्षौहिणी] **अक्षौहिणी।**

छोही—वि. [हि. छोह] **प्रेमी, स्नेही।**

संज्ञा स्त्री. [हि. छोलना] **गँडेरी का चीफुर।**

छौंक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **बघार, तड़का।**

छौंकना—क्रि. स. [हि. छौंक] **बघारना, तड़काना।**

छौंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. चुंडा=गड्ढा] **खत्ता, गाड़।**

छौकना—क्रि. अ. [सं. चतुष्क, प्रा. चउक्क] **पशु का चौकड़ी भरते हुए कूदना या झपटना।**

छौना—संज्ञा पुं. [सं. शावक, प्रा. छाव+औना (प्रत्य.)] (१) **पशु-पक्षी का बच्चा।** उ.—मनौ मधुर मराल-छौना, किंकिनी कल-राव—१-३०७ । (२) **वत्स, पुत्र, बालक।** उ.—मधु-मेवा-पकवान-मिठाई माँगि लेहु मेरे छौना—१०-१९२ ।

छौर—संज्ञा पुं. [हिं. छौरा] **कपास आदि का डंठल।**

संज्ञा पुं. [सं. क्षौर] **हजामत।**

छौरा—संज्ञा पुं. [सं. क्षर=नाशवान्, नष्ट] (१) **ज्वार या बाजरे का डठल** (२) **कपास का डंठल।**

छ्यानबे—वि. [सं. षण्णवति, प्रा. छण्णवइ या छ + नब्बे] **नब्बे से छह अधिक।** उ.—कोटि छ्यानबे मेघ बुलाए आनि कियौ ब्रज डेरौ—९५९ ।

छ्वै—क्रि. स. [पू हिं. छुवना, हि. छूना] **छूना, छूकर।**

प्र.—छ्वै आवै—**छू लेता है, अपवित्र कर देता है।** उ.—पाँड़े नहि भोग लगावन पावै। करि-करि पाक जबै अर्पत है, तबहीं तब छ्वै आवै—१०-२४९ ।

ज

ज—चवर्ग का तीसरा अल्पप्राण व्यजन; इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंग—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) लडाई। (२) झगड़ा। संज्ञा पु. [फा.] लोहे-टीन का मुरचा।

जंगजू—वि. [फा.] वीर, लड़ाका।

जंगम—वि. [सं.] (१) चलने-फिरने वाला, चर। उ.—(क) तिन मोकों आज्ञा करी, रचि सब सृष्टि बनाइ। थावर-जंगम, सुर-असुर, रचे सबै मैं आइ—२-३६। (ख) थावर-जंगम मैं मोहि जानै। दयासील, सबसौं हित मानैं—३-१३। (२) जो इधर-उधर हटाया या रखा जा सके। संज्ञा पुं.—चल वस्तु।

जंगम-गुल्म—संज्ञा पु. [सं.] पैदलों की सेना।

जंगमता—संज्ञा स्त्री. [हिं. जंगम+ता] चलने की क्रिया, शक्ति या क्षमता।

जँगरैत—वि. [हि. जंग] परिश्रमी।

जंगल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भूमि जहाँ जल न हो। (२) मास। (३) वन, अरण्य।

मुहा.—जंगल में मंगल—सुनसान जगह में चहल-पहल।

जँगला—संज्ञा पुं. [पुर्त. जँगिला] (१) कटहरा। (२) जालीदार खिडकी। (३) दुपट्टे के किनारे की कढ़ाई। संज्ञा पुं. [सं जांगल्य] (१) एक राग। (२) एक मछली। (३) अन्न के अनाजरहित डठल।

जंगली—वि. [हिं. जंगल] (१) जंगल संबधी। (२) अपने आप उगने वाले। (३) जंगल में रहने वाले। (४) जो पालू न हो।

जंगा—संज्ञा पुं. [फा. जंगूला] घुंघरू का दाना।

जंगार, जंगाल—संज्ञा पु. [फा.] तूतिया। एक रंग।

जंगारी, जंगाली—वि. [फा.] नीले रंग का।

जंगी—वि. [फा.] (१) लडाई संबधी। (२) फौजी। (३) बहुत बडा। (४) वीर, लडाका, बहादुर।

जंगुल—संज्ञा पुं. [सं.] जहर, विष।

जंगै—संज्ञा स्त्री. [हि. जंगा] घुंघरूदार कमरपट्टी।

जंघ, जंघा—संज्ञा स्त्री. [सं. जंघा] (१) जाँघ, रान। उ.—(क) जानु-जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन दंड—१-३०७। (ख) कर कपोल भुज धरि जंघा पर लखति माई नखन की रेखनि—२७२२। (२) पिंडली। (३) कैंची का दस्ता।

जँघारथ—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि।

जंघारि—संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र का एक पुत्र।

जंघाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूत। (२) मृग।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि।

जँचना—क्रि. अ. [हि. जाँचना] (१) देखा-भाला जाना। (२) जाँच में पूरा होना। (३) मन में निश्चय होना, मन को ठीक लगना।

जँचा—वि. [हिं. जँचना] (१) जाँचा हुआ। (२) अचूक। मुहा.—जँचा-तुला—सधा हुआ। ठीक ठीक।

जँच्यौ—क्रि. अ. [हिं. जँचना] जाँचा जाना, देखा-भाला जाना। उ.—सोधि सकल गुन काढ़ि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ। जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं, तौ कह जात जँच्यौ—१-१७४।

जंजपूक—संज्ञा पु. [सं.] मंद स्वर में जप करनेवाला।

जंजर, जंजल—वि. [सं. जर्जर] पुराना, बेकार।

जंजार, जंजाल, जंजाला—संज्ञा पुं. [हिं. जग+जाल, जंजाल] (१) प्रपंच, झंझट, कपट, संकट, कुचक्र। उ.—(क) सूर-प्रभु नंदलाल, मार्यौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल ब्रजजन उबार्यौ—१०-६२। (ख) गाइ लेहु मेरे गोपालहि। नातरु काल-व्याल लेतै है, छाँड़ि देहु तुम सब जंजालहि—१-७४। (ग) मुरछि काहैं गिरे धरनी, कहा यह जंजाल। मैं यहाँ जो आइ देखौं, परे सब बेहाल—५०४। (घ) कह्यौ प्रहलाद पढत मैं सार। कहा पढावत और जँजार—७-२। (२) बंधन, फँसाव, जाल, उलझन। उ.—(क) सब तजि भजिऐ नंदकुमार। और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार—१-६८। (ख) करि तप विप्र जन्म जब लीन्हो मिल्यौ जन्म जंजाल—सारा. ६१६। (ग) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन भई काया दुख जंजाल जटी। (घ) भव जंजाल तोरि तरु वन के पल्लव हृदय विदार्यौ। (च) अंग परसि मेटे जंजाला—७६६।

मुहा.—जंजाल में पड़ना (फँसना)—कठिनता या सकट में पड़ना। परिहै बहुरि जँजाला—उलझन में फँसेगा, सकट में पड जायगा। उ.—बार बार मैं तुमहि कहति हौं परिहै बहुरि जँजाला—१०३८।

(३) पानी का भँवर। (४) बड़ा जाल।

जंजालिया, जंजाली—वि. [हि. जंजाल+इया, ई (प्रत्य.)] बखेड़ा करनेवाला, झगड़ालू, उलझनी।

जंजीर—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) साँकल, कुडी। (२) बेड़ी।

मुहा.—जंजीर डालना—बाँधना, बेड़ी डालना। जंजीर पड़ना—जजीर से जकडा जाना।

जंजीरि—वि. [हिं. जंजीर] जिसमें जजीर लगी हो।

जंतर—संज्ञा पुं. [सं. यंत्र] (१) कल, यत्र। (२) तात्रिक यत्र। (३) तावीज। (४) गले का कठुला। (५) मानमदिर। (६) वीणा, वीन।

जंतरमंतर—संज्ञा पुं. [हिं. यंत्र+मंत्र] (१) टोना-टुटका, जादू-टोना। (२) मानमंदिर जहाँ से नक्षत्रो की गति, स्थिति आदि देखी जाती है।

जंतरी—संज्ञा स्त्री. [सं. यंत्र] (१) पत्रा। (२) जादूगर। (३) बाजा बजाने में कुशल। (४) एक औजार।

जँतसर—संज्ञा पुं. [हि. जाँता] गीत जो चक्की चलाते समय स्त्रियाँ गाया करती है।

जँतसार—संज्ञा स्त्री. [सं. यंत्रशाला, हि. जाँता] चक्की गाड़ने या जमाने का स्थान।

जँतसारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जँतसार] जँतसर।

जंता—संज्ञा पु. [सं. यत्र] (१) यत्र। (२) एक औजार।

वि. [सं. यंतृ=यंता] यातना देनेवाला।

जँताना—क्रि. अ. [हिं. जाँता] जाँते में पीसा जाना।

जंती—संज्ञा स्त्री. [हिं. जंता] तार खींचने का औजार।

संज्ञा स्त्री. [हि. जनना] माता, जननी।

जंतु—संज्ञा पुं. [स.] जन्म लेनेवाला, जीव।

जंत्र—संज्ञा पु. [सं. यंत्र] (१) कल, उपकरण, औजार। (२) तांत्रिक यत्र। उ.—साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, वल ये सब डारौ धोइ। जो कछु लिखि राखी नँद-नंदन, मेटि सकै नहि कोइ—१-२६२। (३) ताला।

जंत्रना—क्रि. स. [हिं. जंत्र] ताला बद करना।

संज्ञा स्त्री. [सं. यंत्रणा] कष्ट, यातना।

जंत्रमंत्र—संज्ञा पुं. [सं. यंत्रमंत्र] जादू-टोना।

जंत्रित—वि. [सं. यंत्रित] बद, बँधा।

जंत्री—संज्ञा पुं. [सं. यंत्रिन्] वीणा बजानेवाला।

वि.—जकड़ कर बद करनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं. यंत्र] बाजा।

क्रि. स. [हि. जत्रना] जकड़ दी, बाँध दी।

संज्ञा स्त्री. [हि. जंतरी] पत्रा, तिथिपत्र।

जंद—संज्ञा पुं. [फ़ा. जंद] (१) पारसियो का प्राचीन धर्म ग्रथ। (२) इस ग्रथ की भाषा।

जंदरा—संज्ञा पुं. [स. यंत्र] (१) ताला। (२) चक्की। (३) यंत्र।

मुहा.—जंदरा ढीला होना—(१) कल-पुरजे बेकार होना। (२) थकावट से हाथ पैर सुस्त होना।

जंपना—क्रि. स. [सं. जल्पन] बोलना।

जंबाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कीचड, काई। (२) सेवार।

जंबालिनी—संज्ञा स्त्री.—नदी, सरिता।

जबीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक नीबू। (२) बन तुलसी।

जंबु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जामुन का वृक्ष या फल। (२) जबु द्वीप। उ.—सातौं द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर। जंबु, प्लक्ष, क्रौंच, साक, साल्मलि, कुस, पुष्कर भरपूर—सारा. ३४।

जंबुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फरेंदा। (२) एक वृक्ष। (३) गीदड़, स्यार। उ.—(क) सिह रहै जबुक सरनागत देखी सुनी न अकथ कहानी—पृ. ३४३। (ख) कृष्ण सिह बलि धरी तिहारी लेवे को जंबुक अकुलात—१० उ. ११। (४) वरुण।

जंबुखंड, जंबुद्वीप, जंबुध्वज, जंबूखंड, जंबूद्वीप—संज्ञा पुं. [स.] सात पौराणिक द्वीपो में से एक जो पृथ्वी के मध्य में स्थित है और खारे समुद्र से घिरा है

जंबू—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जामुन का वृक्ष। उ.—जंबू वृक्ष कहो क्यौं लंपट फलवर अंबु फरै—३३११। (२) जामुन का फल। वि.—बहुत बड़ा या ऊँचा।

जंभ—संज्ञा पु. [सं.] (१) दाढ, चौभड़। (२) जबड़ा। (३) एक दैत्य जो महिषासुर का पिता था और इंद्र द्वारा मारा गया था। (४) भक्षण। (५) जम्हाई।

जंभक—वि. [सं.] (१) जँभाई या नींद लानेवाला।

(२) हिंसा करनेवाला, भक्षक। (३) कामी, कामुक।
जँभका—संज्ञा स्त्री. [सं.] जम्हाई, जँभाई, उवासी।
जभन—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) भक्षण। (२) रति, सभोग। (३) जम्हाई, उवासी।
जंभा, जँभाई—सज्ञा स्त्री. [सं. जृम्भा] जमुहाई, उवासी। उ.—नैन चपलता कहाँ गँवाई। । मनौ अरुन अंबुज पर बैठे मत्त भृंग रस आई। उडि न सकत ऐसे मतवारे लागत पलक जँभाई—२००५।
जँभात—क्रि. अ. [हि. जँभाना] जँभाई लेते हैं, जँभाते हैं। उ.—(क) खीभत जात माखन खात। अरुन लोचन, भौंह टेढी, बार-बार जँभात—१०-१००। (ख) वदन जँभात, अंग ऐंड़ावत—१०-२४२।
जँभाना—क्रि. अ. [स. जृम्भण] जँभाई लेना।
जँभारि—सज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) विष्णु।
जंभी, जंभीर—संज्ञा पु.—एक तरह का नीबू।
जँभुआने—क्रि. अ. [हिं. जँभाना] जँभाई ली, जँभाने लगे। उ.—पौढि गई हरुऐं करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने—१०-१९७।
ज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जन्म। (२) पिता।
वि.—(१) वेगवान। (२) जीतनेवाला।
प्रत्य —उत्पन्न, जात (जैसे जलज)।
जइयै—क्रि. स. [हिं. जेंवना] भोजन कीजिए।
क्रि. अ. [हिं. जाना] जाइए, प्रस्थान कीजिए।
जई—संज्ञा स्त्री [हि. जौ] (१) जौ की जाति का एक अन्न। (२) जौ का छोटा अंकुर।
मुहा.—जई डालना—अंकुर निकालने के लिए किसी अन्न को तर स्थान में रखना।
(३) फूलों की बतियां जिनमें फूल भी लगा रहता है। उ.—परस परम अनुराग सींचि सुख लगी प्रमोद जई—१३००।
वि.—[हिं. जयी] विजयी।
जईफ—वि. [अ. जईफ] बूढा, वृद्ध।
जईफी—सज्ञा स्त्री. [हिं. जईफ] बुढ़ापा।
जउ, जऊ—अव्य. [हिं. जऊ] जब, यद्यपि। उ.—इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीं धाम—१-७६।

जउबन—संज्ञा पुं. [सं. यौवन] यौवन, युवावस्था।
जए—क्रि. स. [हिं. जनना] जने, पैदा किये।
वि. [हिं. जयी] विजयी, जयशील।
क्रि. स. [हि. जीतना] जीत लिये।
जकंद—संज्ञा स्त्री. [फा. जग़ंद] छलांग, चौकड़ी।
जकंदना—क्रि. अ. [हिं. जकंद] (१) कूदना, उछलना, छलांग मारना। (२) टूट पड़ना।
जकंदनि—संज्ञा स्त्री. [हि. जकंद] दौडधूप, उलझन।
जक—संज्ञा पुं. [स. यक्ष] (१) धन के रक्षक भूत-प्रेत, यक्ष। (२) कंजूस आदमी।
सज्ञा स्त्री [हि. झक] (१) जिद्द, हठ, अड़। उ.—हुती जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी। अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी—१-१३०। (२) धुन, रट। उ.—(क) ज्यों त्रिदोस उपजे जक लागत बोलति वचन न सूधो—३०१३। (ख) जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि कान्ह कान्ह जक री—३३६०।
मुहा.—जक बँधना—रट या धुन लगना।
संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) हार, पराजय। (२) हानि, घाटा। (३) लज्जा, पराभव। (४) डर, खौफ।
जकड़—संज्ञा स्त्री. [हि. जकड़ना] कसने का भाव।
जकड़ना—क्रि. स. [सं. युक्त+करण] कसकर बांधना।
क्रि. अ.—(अंगों का) हिल-डुल न सकना।
जकना—क्रि. अ. [हि. जक या चकपकाना] चकित या भौचक्का होना, अचंभे में आना।
जकरना—क्रि. स. [हि. जकड़ना] बांधना, जकड़ना।
जकरि—क्रि. स. [हि. जकड़ना] जकड़ कर, अच्छी तरह बांध कर, कड़ा बंधन करके। उ.—(क) सूरदास प्रभु कौं यौं राखौ, ज्यौं राखिऐ, गजमत्त जकरि कै—१०-३१८। (ख) अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी, बहुतै मोहि खिझायौ। सौंटिनि मारि करौं पहुँनाई, चितवत कान्ह डरायौ—१०-३३०। (ग) काकौ व्रज माखन दधि काकौ, बाँधे जकरि कन्हाई—३७५।
जकर्यौ—क्रि. स. [हि. जकड़ना] जकड़ा, बांधा।
जकात—संज्ञा स्त्री. [अ. जकात] (१) दान। (२) कर।
जकाती—संज्ञा पुं. [हि. जकात] कर वसूलने वाला।

जकि—क्रि. अ. [हि. जकना] **भौचक्के होकर, चकपका कर।** उ.—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। ' '' । घरिक लौं जकि रहे जहँ तहँ देहगति बिसराइ–३८७।

जकित—वि. [हि. चकित] **विस्मित, चकित।** उ.—हरि-मुख किधौं मोहिनी भाई। '' '' । सूरदास प्रभु वदन बिलोकत जकित थकित चित अनत न जाई।

जक्त—संज्ञा पुं. [हि. जगत] **संसार।**

जक्ष—संज्ञा पुं. [सं. यक्ष] **यक्ष।**

जक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] **भोजन, खाना।**

जक्ष्मा—संज्ञा स्त्री. [सं. यक्ष्मा] **क्षयी।**

जखम, जख्म—संज्ञा पुं. [फा. ज़ख्म] (१) **क्षत, घाव।** (२) **मानसिक दुख का आघात, सदमा।**

जखमी, जख्मी—वि. [हि. जखम] **घायल।**

जखीरा—संज्ञा पुं. [अ. ज़खीरा] **खजाना। ढेर।**

जग—संज्ञा पुं. [सं. जगत्] (१) **संसार, विश्व।** (२) **संसार के लोग।** उ.—जग जानत जदुनाथ, जिते जन निज भुज-स्रम-सुख पायौ—१-१५।

संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ] **यज्ञ।** उ.—(क) चलिए विप्र जहाँ जग-वेदी बहुत करी मनुहारी—८-१४। (ख) जग अरंभ करि नृप तहँ गयौ—६-३।

जगकर—संज्ञा पुं. [हि. जग+करना] **ब्रह्मा।**

जगजगा—संज्ञा पु. [जगमग से अनु.] **चमकदार पन्नी।**

वि.—**चमकदार, जगमगाया हुआ।**

जगजगाना—क्रि. अ. [अनु.] **चमकना।**

जगजीवन—संज्ञा पुं. [सं. जग+जीवन] **संसार के प्राणाधार, ईश्वर।** उ.—जे जन सरन भजे बनवारी। ते ते राखि लिए जगजीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२।

जगजोनि—संज्ञा पुं. [सं. जगयोनिः] **ब्रह्मा।**

जगझंप—संज्ञा पु. [सं.] **एक बाजा।**

जगड्वाल—संज्ञा पुं. [सं.] **व्यर्थ का आडंबर।**

जगण—संज्ञा पं. [सं.] **तीन अक्षरो का एक गण जिसमें लघु, गुरु, लघु (जैसे महेश) का क्रम रहता है।**

जगत, जगत्—संज्ञा पुं. [सं जगत्] (१) **विश्व, संसार।** (**श्री वल्लभाचार्य और सूर के विचार से 'जगत' ब्रह्म का सत्-अंश होने के कारण सत्य है और 'संसार' अहंता-ममतात्मक माया-जन्य होने के कारण मिथ्या है। ब्रह्म की सत् शक्ति से उत्पन्न सृष्टि जगत है और अध्यास से उत्पन्न सृष्टि संसार है।**) (२) **वायु।** (३) **महादेव।** (४) **जंगम।**

संज्ञा स्त्री. [सं. जगति=घर की कुरसी] **कुएँ के चारो तरफ का ऊँचा चबूतरा।**

जगत-गुरु—संज्ञा पुं. [सं. जगद्गुरु] **परमेश्वर।** उ.—देखौ री जसुमति बौरानी। ' । जानत नाहि जगत गुरु माधौ, इहि आए आपदा नसानी—१०-२५८

जगतपति—संज्ञा [सं. जगत्+पति] **परमेश्वर।**

जगतपिता—संज्ञा पुं. [सं. जगत्पिता] **विश्व की सृष्टि करने वाले, सष्टिकर्त्ता।**

जगतमणि, जगतमनि—संज्ञा पुं. [सं. जगत्+मणि] **संसार से सबसे श्रेष्ट, परमेश्वर।** उ.—जहाँ बसत जदुनाथ जगतमनि वारक तहाँ आउ दै फेरी–२८५२।

जगतवंदन—वि. [सं. जगत्+वदन] **जिसकी संसार वंदना करता है, संसार में वंदनीय।** उ.—नंदनंदन जगतवंदन धरे नटवर वेस—१० उ. ६४।

जगतसेठ—संज्ञा पुं. [सं. जगत+श्रेष्ठ] **बहुत धनी और विख्यात महाजन।**

जगतात—संज्ञा पुं. [हि. जग+तात=पिता] **जगतपिता।** उ.—नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ। '' '' । अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य धन्य जगतात—५३७।

जगती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **संसार।** (२) **पृथ्वी।**

जगतीतल—संज्ञा पुं. [सं.] **भूमि, पृथ्वी।**

जगदंबा, जगदंबिका—संज्ञा स्त्री. [स.] **दुर्गा।**

जगद्—वि. [सं.] **पालक, रक्षक।**

जगदाधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **ईश।** (२) **वायु।**

जगदानंद—संज्ञा पुं. [सं.] **परमेश्वर।**

जगदायु—संज्ञा पुं. [सं.] **वायु।**

जगदीश, जगदीस—संज्ञा पुं. [सं. जगत्+ईश] (१) **परमेश्वर।** (२) **विष्णु।** (३) **जगन्नाथ।**

जगदीश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] **परमेश्वर।**

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **भगवती।**

जगदीसर—संज्ञा पुं. [सं. जगदीश्वर] **परमेश्वर।** उ.—

तुम्हरौ नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तौ कहौ मेरे और कहा बल—१-२०४।

जगद्गुरु—संज्ञा पु [सं.] (१) परमेश्वर (२) शिव। (३) नारद। (४) प्रतिष्ठित व्यक्ति। (५) शंकराचार्य की गद्दी के महंतो की उपाधि।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) दुर्गा। (२) मनसा देवी जो नागो की बहन और जरत्कारु ऋषि की स्त्री थी।

जगद्धाता—संज्ञा पुं. [सं. जगद्धातृ] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) महादेव।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) दुर्गा। (२) सरस्वती।

जगद्वंद्य—वि. [स.] ससार भर में पूज्य।

जगना—क्रि. अ. [स. जागरण] (१) नींद से उठना। (२) सचेत होना। (३) उत्तेजित होना। (४) जलना, दहकना। (५) चमकना।

जगनाथ—संज्ञा पु. [स.] ससार के स्वामी, ईश्वर। उ.—ज्योतिरूप जगनाथ जगतगुरु, ज्योति पिता जगदीस—४८७।

जगन्नाथ—संज्ञा पु. [सं.] (१) जगत का नाथ, ईश्वर। (२) विष्णु। (३) पुरी नामक स्थान में विष्णु की मूर्त्ति जो सुभद्रा और बलभद्र की मूर्तियो के साथ है। (४) उड़ीसा में समुद्र के किनारे एक प्रसिद्ध तीर्थ।

जगन्नियंता—संज्ञा पु [सं. जगन्नियंतृ] ईश्वर।

जगन्मय—संज्ञा पु. [सं.] विष्णु।

जगन्मयी—संज्ञा स्त्री [स.] (१) लक्ष्मी (२) ससार की संचालिका शक्ति।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री. [स.] दुर्गा।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा। (२) महामाया।

जगपति—संज्ञा पुं. [सं.] ससार के स्वामी।

जगपाल—संज्ञा पु. [स.] ससार के पालक। उ.—अब धौं कहो कौन दर जाउँ। तुम जगपाल, चतुर चिंतामनि, दीनबंधु सुनि नाउँ—१ १६५।

जगप्रान—संज्ञा पु. [हिं. जग + प्राण] वायु।

जगवंद—वि. [स. जगद्वंद्य] ससार भर में पूज्य।

जगमग, जगमगा—वि [अनु.] (१) जिस पर प्रकाश पड़ता हो। (२) जो चमक रहा हो।

जगमगाति—क्रि. अ. [हिं. जगमगाना (अनु.)] जगमगाती है, चमकती है, दमकती है। उ.—अरुन चरन नख-जोति जगमगाति, रुन-झुन करति पाइँ पैजनियाँ—१०-१०६।

जगमगाना—क्रि. अ. [अनु.] चमकना, दमकना।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. जगमग] चमक, दमक।

जगर—संज्ञा पु. [सं.] कवच।

जगरन—संज्ञा पुं [सं. जागरण] जागना।

जगरमगर—वि. [हि. जगमग] प्रकाश या चमकयुक्त।

जगवाना—क्रि. स. [हिं. जगना] (१) सोते से उठवाना। (२) मत्र द्वारा किसी वस्तु में प्रभाव कराना।

जगह—संज्ञा स्त्री [फा. जायगाह] (१) स्थान, स्थल। मुहा—जगह जगह—सब जगह, हर जगह। (२) स्थिति। (३) मौका। (४) पद, ओहदा।

जगहर—संज्ञा स्त्री. [हि. जगना] जगने का भाव।

जगाइ—क्रि. स. [हि. जगाना] जगा दिया, नींद त्यागने को प्रेरित किया। उ.—परसुराम उनकौं दियौ सोवत मनौ जगाइ—६-१४।

जगाऊँ—क्रि. स. [हिं. जगाना] (१) नींद से उठाऊँ, सोते से जगाऊँ। उ.—सकुच होत सुकुमार नींद मैं कैसैं प्रभुहिं जगाऊँ—६-१७२। (२) यत्र या सिद्धि आदि का साधन करूँ। उ.—हरि कारन गोरखहिं जगाऊँ जैसे स्वाँग महेस—२७५४।

जगाए—क्रि. स. [हिं. जगाना] (१) जगाया, नींद त्याग कर उठने को प्रेरित किया। उ.—सोवत नृप उरवसी जगाए—९-२। (२) उत्तेजित किया, सुप्त भाव को जाग्रत किया। उ.—(क) दादुर मोर पपीहा बोलत सोवत मदन जगाए—२८८३। (ख) सूरजस्याम मिटी दरसन आसा नूतन विरह जगाए—२९५६।

जगात—संज्ञा पुं. [अ. ज़कात] (१) दान। (२) कर।

जगाती—संज्ञा पु. [हि. जगात या फा. जगाती] (१) कर वसूलने वाला कर्मचारी। (२) कर वसूलने का काम या भाव।

जगाना—क्रि. स. [हिं. जागना] (१) नींद त्यागने की प्रेरणा देना। (२) चेत में लाना, सजग करना। (३) ठीक स्थिति में लाना। (४) सुप्त भाव को जाग्रत

करना। (५) उत्तेजित करना, क्रुद्ध करना। (६) धीमी आग को तेज करना। (७) मंत्र या सिद्धि की साधना करना।

जगायौ—क्रि. स. [हि. जगाना] (१) जगा दिया, नींद से उठा दिया, क्रुद्ध कर दिया।

मुहा.—सोवत सिंह जगायौ—बलवान व्यक्ति को अपना शत्रु बना लिया; अपने से शक्तिशाली को छेड़ दिया। उ.—तुम जनि डरपौ मेरी माता, राम जोरि दल ल्यायौ। सूरदास रावन कुल खोवन, सोवत-सिंह जगायौ—६-८८।

(२) सचेत किया, होश में लाये। उ.—व्याकुल धरनी गिरि परे नंद भए बिनु प्रान। हरि के अग्रज बंधु तुरतहीं पिता जगायौ—५८६। (३) तीव्र किया, उत्तेजित किया, सुलगाया। उ.—प्रेम उमँगि कोकिला बोली बिरहिनि बिरह जगायौ—१३६२। (४) प्रसिद्ध किया।

मुहा.—नाम जगाओ—नाम फैलाया, प्रसिद्ध किया। उ.—त्रिभुवन मैं अति नाम जगायौ फिरत स्याम सँग ही—पृ. ३२२।

जगार—संज्ञा स्त्री. [हिं. जगाना] जागरण, जागृति। उ.—नैना ओछे चोर सखी री। स्याम रूप निधि नोखैं पाई देखत गए भरी री। ' ' ' '। कहा लेहिं कह तजैं बिवस भए तैसिय करनि करी री। भोर भए भोर सौ ह्वै गयौ धरे जगार परी री—२६१८।

जगावत—क्रि. स. [हि. जगाना] (१) उत्तेजित करता है। उ.—बंसी री बन कान्ह बजावत। ' '। सुर-नर-मुनि बस किए राग रस, अधर-सुधा-रस मदन जगावत—६४८। (२) नींद से उठाती है, सोते से जगाती है। उ.—प्रातकाल उठि जननि जगावत—सारा. १७०।

जगावति—क्रि. स. स्त्री. [हि. जगाना] जगाती है, नींद त्यागने को प्रेरित करती है, सोते से उठाती है। उ.—बदन उघारि जगावति जननी, जागहु बलि गई आनँद-कंद—१०-२०४।

जगावते—क्रि. स. [हिं. जगाना] जगाते थे, उत्तेजित करते थे। उ.—इहिं बिरियाँ बन ते ब्रज आवते। ' ''''। कबहुँक लै लै नाम मनोहर धवरी धेनु बुलावते। इहि बिधि बचन सुनाय स्याम घन मुरछे मदन जगावते—२८३५।

जगावन—संज्ञा. स्त्री. सवि. [हि. जगाना] जगाने, नींद त्यागने या (सोते से) उठाने को। उ.—दासी कुँवर जगावन आई। देख्यौ कुँवर मृतक की नाईं—६-५।

जगावै—क्रि. स. [हि. जगाना] जगाती है, निद्रा दूर करती है। उ.—भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै - १-४४।

जगी—क्रि. अ. स्त्री. [सं. जागरण, हि. जगना] (१) (देवी, योगिनी आदि) प्रभाव दिखाने लगी। उ.—भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहस-फन-सेस कौ सीस काँप्यौ—९-१०६। (२) जागती रही, सोयी नहीं। उ.—कर मीड़ति पछिताति बिचारति इहिं बिधि निसा जगी—२७६०।

संज्ञा स्त्री. [देश.] मोर की जाति का एक पक्षी।

जगीत—संज्ञा स्त्री. [हि. जगत] कुएँ की जगत।

जगीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. जागीर] जागीर।

जगीला—वि. [हि. जागना] नींद न आने के कारण अलसाया हुआ, उनींदा।

जगुरि—संज्ञा पुं. [सं.] जगम।

जग्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भोजन। (२) सहभोज।

जग्मि—संज्ञा पुं. [सं.] वायु, हवा।

वि.—चलता-फिरता, हिलता-डोलता, गतियुक्त।

जग्य—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ] यज्ञ। उ.—जोग-जग्य-जप-तप-व्रत दुर्लभ, सो हरि गोकुल ईस—४८७।

जग्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. जागना] जागे, सोकर उठे। उ.—अस्वत्थामा भय करि भग्यौ। इहाँ लोग सब सोवत जग्यौ—१-२८९।

जघन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमर के नीचे आगे का भाग, पेड़ू। (२) नितंब।

जघन्य—वि. [सं.] (१) अंतिम, चरम। (२) त्याज्य, बहुत बुरा। (३) क्षुद्र, नीच।

संज्ञा पुं.—(१) शूद्र। (२) नीच जाति।

जघ्नि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वधिक। (२) वधिक-अस्त्र।

जचना—क्रि. अ. [हि. जँचना] (१) देखा-भाला जाना।

(२) जांच में ठीक उतरना। (३) जान पड़ना।

जच्चा—संज्ञा स्त्री. [फा. जच्चा] वह स्त्री जिसे बच्चा हुआ हो।

जच्छ—संज्ञा पुं. [सं. यक्ष] यक्ष, एक प्रकार के देवता जो प्रचेता की सतान और कुवेर के सेवक माने जाते हैं। उ.—जच्छ, मृतु, वासुकी, नाग, मुनि, गंधरव, सकल वसु, जीति मैं किए चेरे—९-१२९।

जजना—क्रि. स.—पूजना, आदर करना।

जजमान, जजिमान—संज्ञा पु. [सं. यजमान] (१) धर्म-कर्म करने और दान देनेवाला। (२) यज्ञ करने वाला।

जजवा—संज्ञा पु.—प्रवृत्ति,झुकाव, रुचि।

जजा—संज्ञा स्त्री. [फा. जज़ा] इनाम, पुरस्कार।

जजाति—संज्ञा पुं. [सं. ययाति] ययाति जो राजा नहुष के पुत्र थे और जिनका विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से हुआ था।

जजिया—संज्ञा पु. [अ. जज़िया] (१) दंड। (२) एक कर जो हिंदुओं से लिया जाता था।

जज्ञ—संज्ञा पु. [सं. यज्ञ] भारतीयों का प्रसिद्ध वैदिक कर्म जिसमें वेद-मंत्रों के साथ हवन और पूजन होता है।

जज्ञपुरुष—संज्ञा पु. [सं. यज्ञपुरुष] विष्णु। उ.—(क) दत्तात्रेयऽरु पृथु वहुरि, जज्ञ पुरुष वपु धार। कपिल, मनू, हयग्रीव पुनि, कीन्हौ ध्रुव अवतार—२-३६। (ख) जज्ञपुरुष प्रसन्न जब भए। निकसि कुंड तैं दरसन दए।

जज्ञ-भाग—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञभाग] यज्ञ का भाग जो देवताओं को दिया जाता है। उ.—जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिपिपति पतित विचारे—१-२५।

जटना—क्रि. स. [हि. जाट] धोखा देना, ठगना।

क्रि. स. [सं. जटन] जड़ना, ठोकना।

जटल—संज्ञा स्त्री. [स. जटिल] गप, बकवास।

यौ.—जटल काफिया—ऊटपटांग बात।

जटा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) सिर के उलझे हुए लंबे-लंबे बाल। (२) जड़ के पतले-पतले सूत। (३) उलझे हुए रेशे। (४) शाखा। (५) जूट, पाट।

जटाचीर, जटाटीर- संज्ञा स्त्री. [सं.] महादेव, शिव।

जटाजूट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जटा का समूह। (२) लंबे बालों का समूह। (३) शिव जी की जटा।

जटाधर—संज्ञा पुं. [स.] (१) शिव जी। (२) एक बुद्ध।

जटाधारी—वि. [सं.] (१) जो जटा रखता हो। (२) जिसके बाल लंबे और उलझे हुए हों।

संज्ञा पुं.—(१) शिव, महादेव। (२) एक बुद्ध।

जटाना—क्रि. अ. [हि. जटना] ठगा जाना।

जटामाली—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी, महादेव।

जटामासी—संज्ञा स्त्री. [सं. जटामासी] एक सुगंधित जड़।

जटायु—संज्ञा पुं. [सं.] रामायण का एक गिद्ध जो सूर्य के सारथी अरुण का, उसकी श्येनी नाम्नी स्त्री से उत्पन्न पुत्र था। सीता जी को हर कर लिये जाते हुए रावण से युद्ध करके यह घायल हुआ। रामचंद्र ने इसकी अंत्येष्टि क्रिया की।

जटाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बरगद। (२) गुग्गुल।

वि.—जिसके लंबी जटा हो, जटाधारी।

जटासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जो द्रौपदी पर मोहित होकर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को हरकर ले जाते समय भीम के द्वारा मारा गया था।

जटि—वि. [सं. जटित] जड़ा हुआ। उ.—किंकिनी कलित कटि, हाटक रतन जटि, मृदु कर कमलनि पहुँची रुचिर वर—१०-१५१।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बरगद का वृक्ष। (२) पाकर का वृक्ष। (३) जटा। (४) समूह। (५) जटामासी।

जटित—वि. [स.] जड़ा हुआ। उ.—(क) नगनि-जटित मनि-खंभ बनाए, पूरन बात सुगंध—९-७५। (ख) आगर इक लोह जटित लीन्हीं बरिवंड। दुहूँ करनि असुर हयौ, भयौ मास-पिंड—९-९६।

जटिल—वि. [सं.] (१) जिसके जटा हो, जटाधारी। (२) दुरूह, दुर्बोध, कठिन। (३) क्रूर, दुष्ट।

संज्ञा पुं.-(१) सिंह। (२) ब्रह्मचारी। (३) शिवजी।

जटिला—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) ब्रह्मचारिणी। (२) जटामासी। (३) पीपल। (४) एक ऋषि-कन्या जिसका विवाह सात ऋषि-पुत्रों से हुआ था।

जटी—क्रि. स. [हिं. जटना] जकड़ी हुई। उ.—दिन-

दिन हीन छीन भइ काया दुख-जंजाल जटी—१-६८।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पाकर-वृक्ष। (२) जटामासी।

जटै—संज्ञा स्त्री. [सं. जटा] जटा को, साधुओं के उलझे हुए बड़े-बड़े बालों को। उ.—जोगी जोग धरत मन अपनैं, सिर पर राखि जटै—१-२६३।

जठर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेट।

मुहा.—जठर जरै—पेट की अग्नि में जले, गर्भ में यातना भोगे। उ.—यह गति-मति जानै नहि कोऊ, किहिं रस रसिक ढरै। सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै—१-३५।

(२) एक पर्वत। (३) शरीर। (४) एक देश।

वि.—(१) वृद्ध, बूढ़ा। (२) कठिन।

जठराग्नि, जठरानल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पेट की गर्मी जिससे अन्न पचता है। (२) माता-पिता का संतान से वात्सल्य या प्रेम।

जठरातुर—वि. [सं. जठर+आतुर] भूख से व्याकुल, भूखा। उ.—बालभाव अनुसरति भरति दृग अग्र-अंसुकन आनैं। जनु खंजरीट जुगल जठरातुर लेत सुभप अकुलानैं—२०५३।

जठेरा—वि. [हि. जेठ या जठर] जेठा, बड़ा।

जड़—वि. [सं] (१) चेतनारहित, अचेतन। (२) चेष्टाहीन, स्तब्ध। (३) मंद बुद्धि, नासमझ। (४) अनजान, अनभिज्ञ, मूर्ख। उ.—जड़ स्वरूप सौं जहँ-तहँ फिरै। असन-बसन की सुधि नहि धरै—५-३। (५) गूँगा। (६) बहरा। (७) जिसके मन में मोह हो।

संज्ञा पुं.—(१) जल। (२) सीसा नामक धातु।

संज्ञा स्त्री. [सं जटा—वृक्ष की जड़] (१) वृक्षों या पौधों की मूल जो जमीन के भीतर रहकर उनका पोषण करती है। (२) नींव, बुनियाद।

मुहा.—जड़ उखाड़ना (खोदना)—हानि पहुँचाना, नाश करना। जड़ जमना—दृढ़ या स्थायी होना, स्थिति सम्हलना। जड़ पकड़ना—मजबूत होना। जड़ पड़ना—नींव पड़ना।

(३) हेतु, कारण। (४) आधार, आश्रय, सहारा।

जड़ता, जड़ताई—संज्ञा स्त्री. [हि. जड़ता] (१) मूर्खता, अज्ञानता। उ.—(क) परम कुबुद्धि अजान ज्ञान तैं, हिय जु बसति जड़ताई—१-१८७। (ख) कहिए कहाँ दोष दीजै किहिं अपनी ही जड़ताई—२७८४। (२) अचेतनता। (३) चेष्टा न करने का भाव, स्तब्धता, अचलता।

जड़त्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिलडुल न सकने का भाव। (२) स्थिति और गति की इच्छा का अभाव।

जड़ना—क्रि. स. [सं. जटन] (१) एक चीज को दूसरी में ठोक-पीट कर बैठाना। (२) किसी वस्तु से प्रहार करना। (३) चुगली खाना, शिकायत करना, कान भरना।

जड़भरत—संज्ञा पु. [सं.] भरत नामक एक ब्राह्मण राजा का हिरन के बच्चे से इतना प्रेम था कि मरते समय उन्हे उसी की चिंता बनी रही। दूसरे जन्म में वे हिरन की योनि में जन्मे। पुण्य के प्रभाव से उन्हे पिछले जन्म का ज्ञान था। अतएव अगले जन्म में पुनः ब्राह्मण होने पर सांसारिक माया-मोह से अपने को बचाते रहकर वे जड़वत् रहने लगे। अतएव वे जड़भरत के नाम से विख्यात हो गये। उ.—ऐसी भाँति नृपति बहु भाषी। सुनि जड़ भरत हृदय मै राखी—५-४।

जड़मति—वि. [सं.] मूर्ख बुद्धिवाला। उ.—जनि डरयौ मूढ़मति काहू सौं, भक्ति करौ इकसारि—७-३।

जड़वाद—संज्ञा पुं. [स.] भौतिकवाद।

जड़वादी—वि. [सं.] भौतिकवादी।

जड़वाना—क्रि. स. [हि. जड़ना] नग, कील आदि जड़ाना।

जड़ाई—क्रि. अ. [हि. जाड़ा, जड़ाना) जाड़ा सहा, ठंड या सरदी खाई। उ.—छाँड़हु तुम यह टेक कन्हाई। नीर माहिं हम गईं जड़ाई—७९६।

संज्ञा स्त्री. [स.] (१) जड़ने का काम, पच्चीकारी। (२) जड़ने का भाव। (३) जड़ने का वेतन।

जड़ाऊ—वि. [हि. जड़ना] जिसमें नग आदि जड़े हो।

जड़ाना—क्रि. स. [हिं. जड़ना] जड़ने का काम कराना।

क्रि. अ. [हिं. जाड़ा] जाड़ा सहना, शीत लगना।

जड़ाव, जड़ावट—संज्ञा पुं. [हिं. जड़ना] जड़ने का काम, भाव या ढंग।

जड़ावर, जड़ावल—संज्ञा पु [हि. जाड़ा] जाड़े के कपड़े।

जड़ित—वि. [हिं. जड़ना या स. जटित] (१) जो (नग आदि) जड़ा गया हो। (२) जिसमें नग आदि जड़े हो। उ.—कुडल स्रवन कनक मनि भूषित जड़ित लाल अति लोल मीन तन—२५७३।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री. [सं] जड़ता, जड़त्व।

जड़िया—संज्ञा पु. [हि. जड़ना] जड़नेवाला।

जड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ से औषध बनती है।

यौ.—जड़ी बूटी—जगली औषध या वनस्पति।

जड़ीभूत—वि. [सं.] जड़वत्, सुन्न।

जड़ुआ—संज्ञा पु. [हिं. जड़ना] पैर का एक गहना।

जड़ैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूड़ी] जूड़ी।

संज्ञा पु. [हिं. जड़िया] नग जड़नेवाला।

जढ़ता—संज्ञा स्त्री. [हिं. जड़ता] निश्चेष्टता। मूर्खता।

जत—वि. [सं. यत्] जितना, जिस मात्रा का।

जतन—संज्ञा पुं. [सं. यत्न] उपाय, यत्न। उ.—(क) करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ—१-४५। (ख) माधौ इतने जतन तव काहे को किए—२७२७।

जतननि—संज्ञा पुं. [हिं. जतन+नि] उपायो से, यत्न करके। उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत—१-५५।

जतनी—संज्ञा पु. [सं. यत्न] (१) यत्न या उपाय में लगा रहनेवाला। (२) बहुत चतुर, चालाक।

जतलाना, जताना—क्रि. स. [सं. ज्ञात, हि. जताना] (१) ज्ञात कराना, बताना। (२) सूचना देना, सावधान करना।

जतारा—संज्ञा पुं. [हिं. जाति या यूथ] वंश, जाति।

जति, जती—संज्ञा पुं. [सं. यतिन, हिं. यती] सन्यासी। उ.—जती, सती, तापस आराधैं, चारौं वेद रटैं—१-२६३।

संज्ञा स्त्री. [सं. यति] छंद के चरणो का वह स्थान जहाँ पढ़ते समय रुका जा सकता है।

जतु, जतुक—संज्ञा पु. [स.] (१) गोंद। (२) लाख।

जतेक—क्रि. वि. [हिं. जितना + एक] जितना, जिस मात्रा का।

जत्था—संज्ञा पुं. [सं. यूथ] समूह, झुंड, गरोह।

जत्रु—संज्ञा पु. [सं.] (१) गले की कमानीदार हड्डी, हँसली। (२) कंधे और बाँह का जोड़।

जथा—क्रि. वि. [सं. यथा] जिस प्रकार, जैसे। उ.—(क) पावक जथा दहत सबही दल तूल-सुमेरु समान—१-२६६। (ख) तिन में कहौं एक की कथा। नारायन कहि उधरयौ जथा—६-३।

संज्ञा स्त्री. [स. यूथ] मंडली, समूह, झुंड।

संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथ] धन-सम्पत्ति, पूँजी।

यौ.—जमा-जथा—धन-दौलत, पूँजी।

जथाजोग—अव्य. [स. यथायोग्य] जैसा चाहिए, वैसा, उपयुक्त, यथोचित। उ.—जथाजोग भेंटे पुरवासी, गए सूल, सुख-सिंधु नहाए—६-१६८।

जथामति—अव्य. [सं. यथामति] बुद्धि के अनुसार। उ.—सूर प्रभु-चरित अगनित, न गनि जाहिं, कछु जथा मति आपनी कहि सुनाए—४-११।

जथारथ—वि. [सं. यथार्थ] (१) उचित। (२) ज्यो का त्यो।

जद—क्रि. वि. [हि. यदा] जब, जब कभी।

अव्य. [सं. यदि] यदि, अगर।

जदपि—क्रि. वि. [सं. यद्यपि] यद्यपि। उ.—मुरली तऊ गुपालहि भावति। सुन री सखी जदपि नँदलालहिं नाना भाँति नचावति—६५५।

जदवद—संज्ञा पुं. [हिं. जद्‌वद्‌] न कहने योग्य बात।

जदु—संज्ञा पुं. [सं. यदु] राजा ययाति का बड़ा पुत्र जो देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वृद्ध होने पर ययाति ने इससे कहा—विलास से मेरा मन नहीं भरा है; अत. तुम मेरी वृद्धावस्था से अपनी युवावस्था का विनिमय कर लो जिससे मैं युवक हो जाऊँ। यदु ने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया। इस पर पिता ने राज्य नष्ट हो जाने का इसे शाप दिया। इसका राज्य नष्ट तो हुआ; पर बाद में इंद्र की कृपा से इसे पुन. राज्य प्राप्त हुआ। इसके वंशज यादव कहलाते हैं। श्रीकृष्ण इसी के वंश में हुए थे। उ.—बड़े पुत्र जदु सौं कह्यौ आइ। उन कह्यौ,

वृद्ध भयौ नहि जाइ—६-१७४ ।

जदुकुल—संज्ञा पुं. [सं. यदुकुल] यदुवंश, यदुकुल । उ.—आजु हौं बधायौ बाजै नंद गोपराइ कै । जदुकुल जादौराइ जनमें है आइ कै—१०-३१ ।

जदुनंदन—संज्ञा पुं. [सं. यदुनंदन] श्रीकृष्ण ।

जदुनाथ—संज्ञा पुं. [सं. यदुनाथ] श्रीकृष्ण ।

जदुपति, जदुपाल—संज्ञा पुं. [सं. यदुपति, यदुपाल] श्रीकृष्ण । उ.—सातएँ दिन आइ जदुपति कियौ आप उधार—सा. ११८ ।

जदुपुर—संज्ञा पुं. [सं यदुपुर] राजा यदु की राजधानी मथुरा नगरी ।

जदुबंसी—संज्ञा पुं. [सं. यदुवंशी] राजा यदु के वंशज ।

जदुराइ, जदुराई, जदुराज, जदुराय—संज्ञा पुं. [सं. यदुराज] यादवराज, श्रीकृष्ण ।

जदुराम—संज्ञा पुं. [सं. यदुराम] बलराम ।

जदुवर—संज्ञा पुं. [सं. यदुवर] श्रेष्ठ यादव, श्रीकृष्ण ।

जदुवीर—संज्ञा पुं. [सं. यदुवीर] वीर यादव, श्रीकृष्ण ।

जद्द—वि. [अ. ज्याद:] अधिक, ज्यादा ।
वि. [सं. योद्धा] प्रबल, प्रचंड ।
संज्ञा पुं. [अ.] दादा, पितामह ।

जद्दपि, जद्यपि—क्रि. वि. [सं. यद्यपि] यदि, अगर ।

जद्दबद्द—संज्ञा पुं. [सं. यत्+अवद्य] न कहने योग्य बात ।

जद्दी—वि. [फा. जद] बाप-दादा के समय का ।

जन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोक, लोग । (२) प्रजा । (३) देहाती, गँवार । (४) अनुयायी, भक्त, दास । उ.—(क) खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ—१-५ । (ख) हरि अर्जुन निज जन जान । लै गए तहाँ न जहँ ससि भान—(५) समूह, समुदाय । उ.—दुर्वासा कौ साप निवारयौ, अंबरीष-पति राखी । ब्रह्मलोक-परजंत फिरयौ तहँ देवमुनीजन साखी—१-१० ।

जनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जन्मदाता । (२) पिता । (३) मिथिला के एक राजवंश की उपाधि । इस वंश के लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे । इसी कुल में उत्पन्न राजा सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था । (४) एक वृक्ष ।

जनकजा—संज्ञा स्त्री. [सं. जनक+जा] सीता जी ।

जनकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम । (२) उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जनक की पुत्री सीता ।

जनकपुर—संज्ञा पुं. [सं.] मिथिला की प्राचीन राजधानी जो हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है ।

जनकसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जनक की पुत्री सीता ।

जनकौर—संज्ञा पुं. [हि. जनक+औरा (प्रत्य.)] (१) जनक का स्थान या नगर । (२) जनक का वंशज या संबंधी ।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अफवाह ।

जनतंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] जनता के प्रतिनिधियों का शासन ।

जनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जनन या उत्पादन का भाव । (२) जनसाधारण, सर्वसाधारण ।

जनधा—संज्ञा पुं [सं.] अग्नि, आग ।

जनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति । (२) जन्म । (३) आविर्भाव । (४) वंश, कुल । (५) पिता । (६) परमेश्वर ।

जनना—क्रि. स. [सं. जनन=जन्म] (संतान को) जन्म देना ।

जननि, जननी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्पन्न करने वाली । (२) माता । उ.—(क) कपट हेत परसैं बकी जननी गति पावै—१-४ । (ख) सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत मारी—१-३४ । (ग) हौं यहाँ तेरे ही कारन आयो । तेरी सौं सुन जननि जसोदा हठि गोपाल पठायो । (३) जूही का पेड़ । (४) दया, कृपा । (५) एक गंध-द्रव्य ।

जननेंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है ।

जनपद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देश । (२) लोक, लोग ।

जनपाल, जनपालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनुष्य या लोक का पोषक । (२) सेवक, पालनेवाला ।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जगनिंदा । (२) अफवाह ।

जनप्रिय—वि. [सं.] जो सबका प्रिय हो, सर्वप्रिय ।
संज्ञा पुं.—(१) धनिया । (२) एक वृक्ष । (३) शिवजी ।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] लोकप्रियता ।

जनम—संज्ञा पु. [सं. जन्म] (१) उत्पत्ति, जन्म। (२) जीवन, आयु, जिंदगी। उ.—अधिक सुरूप कौन सीता तें जनम वियोग भरै—९-३५।

मुहा.—जन्म गँवाना (विगोना)-जीवन व्यर्थ नष्ट करना। जनम बिगड़ना—धर्म नष्ट होना।

जनमत—वि. [हि जन्म+त (प्रत्य)] जीवन के आदि या आरंभ से जीवन भर का, सारे जन्म का। उ.—(क) प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ। और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ—१-१३८। (ख) सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही कौ धूत—१०-२१५।

संज्ञा पुं [सं. जन=लोक + मत=सम्मति] जनता का मत, सर्वसाधारण की सम्मति।

जनमदिन—संज्ञा पुं [स. जन्मदिन] जन्म का दिन।

जनमधरती, जनमभूमि—संज्ञा स्त्री. [हि. जन्म+धरती, भूमि] वह स्थान जहाँ जन्म हुआ हो।

जनमना—क्रि. अ. [सं. जन्म] (१) पैदा होना, जन्म लेना। (२)खेल में हारी या 'मरी' हुई गोटी या गुइयाँ का फिर से खेलने योग्य होना।

जनमनि—संज्ञा पुं. [सं. जन्म + नि (प्रत्य.)] जन्म में, शरीर धारण करने पर। उ.—सुजन-वेष-रचना प्रति जनमनि, आयौ पर-धन हरतौ। धर्म-धुजा अतर कछु नाहीं, लोक दिखावत फिरतौ—१-२०३।

जनमपत्री—संज्ञा स्त्री. [स. जन्मपत्री] वह पत्र जिसमें जन्मकाल के ग्रहों की स्थिति आदि लिखी जाय।

जनमर्यादा—संज्ञा स्त्री [स.] लोकाचार।

जनमसँगाती, जनमसँघाती—संज्ञा पुं. [हि. जन्म+ सँघाती] बहुत समय तक साथ रहनेवाला मित्र।

जनमाना—क्रि. स. [हिं. जन्म] सतान पैदा कराना।

जनमारो—संज्ञा पुं. [सं.] जन्म, जीवन।

जनमि—क्रि. अ. [हिं. जन्मना] जन्म लेकर, शरीर धारण करके। उ.—जग मै जनमि पाप बहु कीन्हें, आदि-अंत लौं सब बिगरी—१-११६।

जनमे—क्रि. अ. [सं जन्म+ना (प्रत्य)=हिं. जन्मना] पैदा हुए, अवतरे, उत्पन्न हुए। उ.—रिषभदेव तब जनमें आइ। राजा कैं गृह बजी बधाइ—५-२।

जनमेजय—संज्ञा पुं. [स. जन्मेजय] एक कुरुवंशी राजा।

जनमैं—क्रि. अ. [हि. जन्मना] जन्मता है, पैदा होता है। उ.—अज, अविनासी अमर प्रभु जन्मैं-मरै न सोइ—२-३६।

जनम्यो, जनम्यौ—क्रि अ. [हिं. जनमना] जन्म लिया, पैदा किया, उत्पन्न किया। उ.—(क) पुनि-पुनि कहत धन्य नँद जसुमति, जिनि इनकों जनम्यौ सो धनि धनि—४२६। (ख) यह कोइ नहीं भलो ब्रज जनमयो याते बहुत डरात—२३७७।

जनयिता—संज्ञा पु. [सं. जनयितृ] जन्मदाता।

जनयित्री—संज्ञा स्त्री [स] जन्म देनेवाली।

जनरव—संज्ञा पु. [सं.] (१) किंवदती, अफवाह। (२) लोकनिंदा। (३) कोलाहल, शोर।

जनलोक—संज्ञा पु. [हि. जन+लोक] सात लोकों में से पाँचवाँ लोक। उ.—सत्यलोक, जनलोक, तपलोक और महर निज लोक। जहँ राजत ध्रुवराज महा निधि निसि दिन रहत असोक—सारा. २२।

जनवल्लभ—वि. [सं.] जनप्रिय, लोकप्रिय।

जनवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. जनाई] (१) जनानेवाली, दाई। (२) दाई की क्रिया या मजदूरी।

जनवाद—संज्ञा पु. [सं.] (१) अफवाह। (२) बदनामी।

जनवाना—क्रि स. [हिं. जनना] बच्चा पैदा कराना।

क्रि. स. [हि. जानना] समाचार दिलवाना।

जनवास, जनवासा—संज्ञा पु. [स. जन+वास] (१) लोगों का निवास स्थान। (२) बरातियों के ठहरने का स्थान। (३) सभा।

जनश्रुत—वि. [स.] प्रसिद्ध, विख्यात।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री. [स] अफवाह, किंवदती।

जनहरण—संज्ञा पुं. [स.] एक दडक वृत्त।

जनहित—संज्ञा पुं [सं. जन + हित] भक्त की भलाई। उ —का न कियौ जन-हित जदुराई—१-६।

वि.—जो भक्तों की भलाई में लगे रहते हैं।

जनांत—संज्ञा पु. [सं.] (१) निश्चित सीमा का प्रदेश। (२) जनहीन स्थान। (३) अंत करनेवाला, यम।

वि.—मनुष्यों का नाश करनेवाला।

जना—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्पत्ति, पैदाइश।

वि.—उत्पन्न किया हुआ, जन्माया हुआ।

जनाइ—क्रि. अ. [हि. जनाना] (१) जताकर, मालूम कराकर। उ.—बाबा नंद बुरौ मानैंगे, और जसोदा मैया। सूरजदास जनाइ दियौ है, यह कहिकै बल भैया—४४५। (२) विदित हो गया, प्रकट हो गया। महर-महरि मन् गई जनाइ। खन भीतर, खन आँगन ठाढे, खन बाहिर देखत है जाइ—५४३।

जनाई—क्रि. स. [हि. जनाना] जताया, मालूम कराया। उ.—(क) ग्वाल रूप ह्वै मिल्यौ निसाचर, हलधर सैन बताई। मनमोहन मन में मुसुक्यानैं, खेलत भलैं जनाई—६-४। (ख) सूरदास प्रीति हृदय की सब मन गए जनाई—(ग) द्वारावति पैठत हरि सौं सब लोगन खबरि जनाई—१० उ. २७।

संज्ञा स्त्री. [हि. जनना] (१) बच्चा पैदा करानेवाली दाई। (२) दाई की क्रिया या मजदूरी।

जनाउ—संज्ञा पुं. [हि. जनाना] सूचना, जनाव।

जनाऊँ—क्रि. स. [हिं जनाना] जताऊँ, मालूम कराऊँ। उ.—(क) बालक बछरनि राखिहौं, एक बार लै जाउँ। कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौं रह्यौ सुभाउँ—४३१ (ख) अहि कौं लै अब ब्रजहि दिखाऊँ। कमल-भार याही पर लादौं, याकौं आपन रूप जनाऊँ—५५३।

जनाए—क्रि. स. [हि. जनाना] सूचित किये, जताये। उ.—अमल अकास कास कुसुमित छिति लच्छन स्याति जनाए—२८५४।

जनाचार—संज्ञा पुं [सं.] लौकिक आचार या रीति।

जनाजा—संज्ञा पुं. [अ. जनाजा] (१) शव, लाश। (२) अरथी।

जनाधिनाथ—संज्ञा पु. [सं.] (१) ईश्वर। (२) राजा।

जनानखाना—संज्ञा पुं. [फा. जनाना + खाना] घर का वह भाग जहाँ स्त्रियाँ रहती हो, अंत पुर।

जनाना—क्रि. स. [हि जानना] मालूम कराना, जताना।

क्रि. स. [हि जनना] बच्चा पैदा कराना।

वि. [फा. जनाना] (१) स्त्री का, स्त्रीसबंधी। (२) नपुंसक। (३) निर्बल, डरपोक।

संज्ञा पु.—(१) जनखा। (२) अंत पुर।

जनाब—संज्ञा पुं [अ.] आदरसूचक शब्द या संबोधन।

जनायौ—क्रि. स. [हि जानना] (१) जताया, प्रकट किया। उ.—जहँ जहँ गाढि परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ—१२०। (२) सूचित किया। उ.—तबहीं तैं बाँधे हरि बैठे सो हम तुमकौं आनि जनायौ—३६६।

जनार्दन—संज्ञा पुं. [सं] (१) विष्णु। (२) शालग्राम।

वि.—जनता को कष्ट पहुँचानेवाला, दुखदायी।

जनाव—संज्ञा पुं. [हि जनाना] सूचना, इत्तिला।

जनावत—क्रि. स. [हि. जनाना] मालूम कराता है, जताता है, बताता है। उ.—(क) को जानै प्रभु कहाँ चले हैं, काहू कछू न जनावत—८४। (ख) अब वहि देस नंदनदन कहँ कोउ न समो जनावत—२८३५।

जनावति—क्रि. स. [हि. जनावना, जनाना=बताना] बताती हूँ। उ.—इतनी बात जनावति तुमसौं, सकुचति हौं हनुमंत। नाहीं सूर सुन्यौ दुख कबहूँ प्रभु करुनामय कंत—९-९२।

जनावर—संज्ञा पुं. [हि. जानवर] पशु, पक्षी, पतिंगा।

जनावे, जनावै—क्रि. स. [हि. जनाना] जताती है, बतलाती है, सूचित करती है। उ.—जमुना तोहि बह्यौ क्यौं भावै। भरि भादौं जो राति अष्टमी, सो दिन क्यौं न जनावै—५६१।

जनाशन—संज्ञा पुं. [सं. जन+अशन] मनुष्य-भक्षक।

जनाश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर। (२) धर्मशाला।

जनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जन्म, उत्पत्ति। (२) नारी, स्त्री। (३) माता। (४) पुत्रवधू। (५) जन्मभूमि।

अव्य.—मत, नहीं, न (निषेधार्थक)। उ.—गुप्त मते की बात कहौ जनि काहू कै आगे।

क्रि. स. [हि. जनना] जनकर, पैदा करके। उ. —लछिमन जनि हौं भई सपूती राज-काज जो आवै —९-१५२।

जनिका—संज्ञा स्त्री. [हि. जनाना] पहेली।

जनित—वि. [स.] उपजा हुआ, जन्य।

जनिता—संज्ञा पुं. [स. जनितृ] उत्पन्न करनेवाला।

जनित्र—संज्ञा पुं. [स.] जन्म स्थान।

जनित्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्पन्न करनेवाली।

जनियाँ—संज्ञा पु. [स. जन] (१) जने, लोग, व्यक्ति। उ.—झुनक स्याम की पैजनियाँ। जसुमति-सुत कौं चलन सिखावति,अँगुरी गहि-गहि दोउ जनियाँ—१०-१३२। (२) समूह, समुदाय, (बहुवचन वाचक प्रत्य.) उ.—जाकौ ध्यान धरैं सबै, सुर नर-मुनि जनियाँ—१०-१४५।

सज्ञा स्त्री. [सं. जानि] प्रियतमा, प्रेयसी।

जनी—संज्ञा स्त्री [स. जन] (१) दासी। (२) स्त्री। (३) उत्पन्न करनेवाली। (४) जन्माई हुई, कन्या।

वि. स्त्री.—उत्पन्न या पैदा की हुई।

क्रि. स. [हि. जनना] पैदा की।

जनु, जनुक—क्रि. वि. [हि. जानना] मानो। उ.—उदित वदन, मन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई। जनु सुरभी वन वसति वच्छ बिनु, परवस पसुपति की वहराई—९-१६६।

संज्ञा स्त्री. [स.] जन्म, उत्पत्ति।

जनेंद्र—संज्ञा पु. [सं. जन+इंद्र] राजा।

जने—संज्ञा पु. [सं.] लोग, व्यक्ति, प्राणी। उ.—तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल पुरधाम—९-४४।

जनेऊ, जनेव—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ या जन्म] (१) यज्ञोपवीत। उ.- हरि हलधर को दियो जनेऊ करि षट-रस जेवनार—२६२९। (२) यज्ञोपवीत सस्कार।

जनेत—सज्ञा स्त्री. [स. जन+एत (प्रत्य.)] वरात।

जनेता—सज्ञा पु. [सं. जनयिता] पिता, बाप।

जनेश—सज्ञा पुं. [स. जन + ईश] राजा, नरेश।

जनै—क्रि. स. [हि. जनना] जनती है। उ.—बाँझ सुत जनै उकठै काठ पल्लवै विफल तरु फलै विन मेघ-पानी—२२७३।

जनैया—वि. [हिं. जनना + ऐया (प्रत्य.)] जाननेवाला, जानकार। उ.—बदले को बदलो लै जाहु। उनकी एक हमारी दोइ तुम बडे जनैया आहु—४६१९।

वि [हिं. जनना] जनने या पैदा करनेवाला।

जनैहौं—क्रि. स. [हि. जनाना] बताऊँगा, जताऊँगा। उ.—आगै आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं। हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं—१०-१९३।

जनो, जनौ—संज्ञा पुं. [हिं. जनेऊ] जनेऊ।

क्रि. वि. [हिं. जानना] मानो, गोया।

जनौ—क्रि. वि. [हि. जानना] मानो।

जन्म—सज्ञा सं. [सं.] (१) उत्पत्ति। (२) अस्तित्व प्राप्त करने का भाव, आविर्भाव। (३) जीवन।

मुहा.—जन्म बिगड़ना—धर्म नष्ट होना। जन्म जन्म—सदा, नित्य। जन्म में थूकना—धिक्कारना। जन्म हारना—(१) व्यर्थ जन्म खोना। (२) दूसरे का दास होकर रहना।

जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जन्माष्टमी] भादो की कृष्णाष्टमी जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

जन्मकुडली—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह चक्र जिसमें जन्म-काल के ग्रहो की स्थिति का लेखा हो।

जन्मकृत्—संज्ञा पुं. [सं.] पिता, जन्मदाता।

जन्मग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] उत्पत्ति।

जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) जन्म की तिथि, जन्म दिन। (२) वर्षगांठ।

जन्मतुआ—वि. [हि. जन्म + तुआ (प्रत्य.)] दुधमुहाँ।

जन्मदिन—सज्ञा पु. [सं.] (१) जन्मतिथि। (२) वर्षगांठ।

जन्मना—क्रि. अ. [सं. जन्म + ना (प्रत्य.)] (१) जन्म लेना। (२) आविर्भूत होना, अस्तित्व में आना।

जन्मपत्रिका, जन्मपत्री—सज्ञा स्त्री. [स.] वह पत्र जिसमें जन्म-काल के ग्रहो की स्थिति आदि दी गयी हो।

जन्मभूमि, जन्मस्थान—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्थान या देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो।

जन्मांतर—सज्ञा पुं. [सं.] दूसरा जन्म।

जन्मांध—वि. [सं. जन्म + अधा] जन्म का अंधा।

जन्मा—वि. [स. जन्मन्] जो पैदा हुआ हो।

जन्माना—क्रि. स. [हिं. जन्मना] जन्म देना।

जन्माष्टमी—सज्ञा स्त्री. [सं.] भादो की कृष्णाष्टमी जब श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

जन्मि—क्रि. अ. [हि. जन्मना] जन्म लेकर, पैदा होकर। उ.—चौरासी लख जोनि जन्मि जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ—१-७५।

जन्मी—संज्ञा पुं. [सं. जन्मिन्] प्राणी, जीव।
वि.—जो पैदा या उत्पन्न हुआ हो।
जन्मेजय—संज्ञा पु. [सं.] (१) विष्णु। (२) कुरुवंशी राजा परीक्षित का पुत्र जिसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था। (३) एक नाग।
जन्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जनसाधारण। (२) अफवाह। (३) एक देश के वासी। (४) लड़ाई। (५) बाजार। (६) निंदा। (७) वर, दूलह। (८) बराती। (९) दामाद। (१०) पुत्र। (११) पिता। (१२) महादेव। (१३) शरीर। (१४) जन्म। (१५) जाति।
वि.—(१) जन-संबंधी। (२) किसी देश या वंश संबंधी। (३) राष्ट्रीय। (४) जो उत्पन्न हुआ हो।
जन्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जन्म होने का भाव।
जन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वधू। (२)प्रीति, स्नेह।
जन्यु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्नि। (२) ब्रह्मा। (३) जीव। (४) जन्म, उत्पत्ति। (५) एक ऋषि।
जन्यौ—क्रि. स. [हि. जनना] जना, पैदा किया। उ.—कौन ऐसौ बली सुभट जननी जन्यौ, एकहीं बान तकि बालि मारै—९-१२९।
जप—संज्ञा पुं. [सं] (१) मंत्र आदि का बार-बार या निश्चित संख्या में पाठ करना। (२) जपनेवाला।
जपत—क्रि. स. [हिं. जपना] जप करती है, जपती है। उ.—दुर्बल दीन-छीन चिंतित अति, जपत नाइ रघुराइ—९-७५।
जपतप—संज्ञा पुं. [हि. जप+तप] पूजा-पाठ।
जपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जप की क्रिया या भाव।
जपति—क्रि. स. [हि. जपना] बारबार (नाम, मंत्र आदि) जपती या रटती है। उ.—ऐसी कै व्यापी हौ मनमथ मेरो जी जानै माई स्याम कहि रैनि जपति—१६५६।
जपन—संज्ञा पुं. [सं.] जपने का काम, जप।
जपना—क्रि. स. [सं. जपन] (१) किसी नाम या बात को बार-बार कहना, दोहराना या रटना। (२) मंत्र आदि को निश्चित संख्या में कहना या उच्चारण करना। (३) जल्दी-जल्दी खा जाना, हड़प लेना।
क्रि. स. [सं. यजन] यज्ञ-यजन करना।
जपनी—संज्ञा स्त्री. [हि. जपना] (१) माला। (२) माला रखने की थैली, गोमुखी। (३) जपने की क्रिया।
जपनीया—वि. [सं.] जो जपने योग्य हो।
जपमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] जपने की माला।
जपयज्ञ, जपहोम—संज्ञा पुं. [सं.] जप।
जपा—संज्ञा पुं. [हि. जप] जप करनेवाला।
जपाना—क्रि. स. [हि. जप, जपना] जप कराना।
जपिया—वि. [हि. जप] जप करनेवाला।
जपिहैं—क्रि. स. [हि. जपना] जपेंगे, जप करेंगे। उ.—कहत है, आगैं जपिहैं राम—१-५७।
जपिहौं—क्रि. स. [हि. जपना] जपूँगा। उ.—जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं—९-१६४।
जपी—संज्ञा पुं. [हिं. जप+ई (प्रत्य.)] जप करनेवाला।
जपै—क्रि. स. [हि. जपना] जपता है। उ.—विंच नारद मुनि तत्व बतायौ जपै मंत्र चित लाय—सारा. ७४।
जप्तव्य—[सं.] जो जपने योग्य हो, जपनीय।
जफा—संज्ञा स्त्री. [फा. जफा] अन्याय, सख्ती।
जफाकश—वि. [फा. जफाकश] (१) सहिष्णु, सहनशील। (२) मेहनती, परिश्रमी।
जब—क्रि. वि. [सं. यावत्, प्रा. याव, जाव] जिस समय।
मुहा.—जब जब—जब कभी। जब तब—कभी-कभी। जब होता है तब—प्राय। जब देखो तब—सदा।
जबड़ा—संज्ञा पु. [सं. जम्भ] मुंह में ऊपर-नीचे की हड्डियाँ जिनमें डाढें रहती है, कल्ला।
जबर—वि. [फा. ज़बर] (१) बली। (२) मजबूत।
जबरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जबर] सख्ती, ज्यादती।
जबरदस्त—वि. [फा.] (१) बली। (२) दृढ।
जबरदस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] अत्याचार, अन्याय।
क्रि. वि.—इच्छा के विरुद्ध, दबाव से।
जबरन्—क्रि. वि. [अ. जब्रन्] जबरदस्ती।
जबरा—वि. [हि. जबर] बली, प्रबल।
जबह—संज्ञा पु. [अ. ज़बह] गला काट कर प्राण लेना।
जबहा—संज्ञा पुं.—साहस, हिम्मत।
जबान—संज्ञा स्त्री. [फा. जबान] (१) जीभ, जिह्वा।
मुहा.—जबान खींचना—कठोर दंड देना। जबान खुलना—मुँह से बात निकलना। जबान चलना—

अनुचित शब्द या कड़ी बात निकलना। जबान चलाना —कड़ी या अनुचित बात कहना। जबान डालना—(१) माँगना। (२) प्रश्न करना। जबान थामना (पकड़ना)—बोलने न देना। जबान पर आना—कहने को होना। जबान पर रखना—(१) चखना। (२) याद रखना। जबान पर लाना—मुँह से कहना। जबान पर होना—हरदम याद रखना। जबान बंद करना (१) चुप होना। (२) बोलने न देना। (३) वाद-विवाद में हराना। जबान बंद होना—(१) चुप होना। (२) विवाद में हारना। जबान बिगड़ना—(१) मुँह से अनुचित बात या गाली निकलने की आदत पड़ना। (२) स्वाद खराब लगना। (३) जबान चटोरी होना। जबान में लगाम न होना—अनुचित बात कहने की आदत पड़ना। जबान रोकना—(१) जबान पकड़ना। (२) चुप करना। जबान सँभालना—सोच-समझ कर बोलना। जबान से निकलना—बोला जाना। जबान हिलाना—मुँह से शब्द निकालना। दबी जबान से कहना (बोलना)—बात पर जोर न देना।

(२) मुँह से निकला हुआ शब्द, बात, बोल।

मुहा.—जबान बदलना—बात से हट जाना।

(३) प्रतिज्ञा, वादा, कौल।

मुहा.—जबान देना (हारना)—वादा करना।

(४) भाषा, बोलचाल।

जबानी—वि. [फा. ज़बानी] मौखिक।

जबै—क्रि. वि. [हिं. जब] जब ही, जभी। उ.—(क) जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ—१-४५। (ख) सूरस्याम तबहीं मन मानै सबहि रैहौं जाइ जबै—१३०० ।

जभी—क्रि. वि. [हिं. जब + ही (प्रत्य.)] (१) जिस समय ही। (२) ज्योंही।

जम—संज्ञा पुं. [सं. यम] भारतीय आर्यों के एक प्रसिद्ध देवता। इन्हें दक्षिण दिशा का दिक्पाल माना जाता है। सूर्य इनके पिता और माता सज्ञा थी। प्राणियों के मरने पर उसके शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार स्वर्ग-नरक भेजने वाले ये ही हैं। इन्हे धर्मराज भी कहा जाता है। भैंसा इनका वाहन है।

जमई—वि. [फा.] जो जमा हो, नगदी।

जमकात, जमकातर—संज्ञा पुं. [सं. यम + हि. कातर] पानी में पड़नेवाला भँवर।

सज्ञा स्त्री. [सं. यम+हि. कर्त्तरी] यम का छूरा।

जमघंट, जमघट, जमघटा, जमघट्ट—संज्ञा पुं. [हिं. जमना + घट्ट] भीड़, ठट्ट, जमाव।

जमत—क्रि. अ. [हिं. जमना] उगता है, उपजता है, (अंकुर) फूटता है। उ.—जज मै करत तब मेघ बरसत मही, बीज अंकुर तवै जमत सारौ—४-११।

जमदग्नि, जमदग्नि—संज्ञा पु. [सं. जमदग्नि] भृगु-वंशी एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे।

जमदिसा—संज्ञा स्त्री. [स. यम + दिशा] दक्षिण दिशा।

जमन—संज्ञा पुं. [सं. यवन] यवन, म्लेच्छ, विधर्मी। उ.—जा परसें जीतैं जम सैनी, जमन, कपालिक जैनी—६-११।

जमधर—संज्ञा पुं. [सं. यम + धर] तलवार।

जमना—क्रि. अ. [सं. यमन = जकड़ना] (१) किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना। (२) एक पदार्थ का दूसरे पर मजबूती से स्थित हो जाना।

मुहा.—दृष्टि जमना—किसी चीज पर नजर का देर तक ठहरना। मन में बात जमना—बात का मन पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ना। रंग जमना—(१) अच्छा प्रभाव पड़ना। (२) खूब आनंद आना।

(३) इकट्ठा होना। (४) अच्छा हाथ या प्रहार पड़ना। (५) पूरा अभ्यास होना। (६) किसी काम या बात का खूब प्रभाव पड़ना। (७) अच्छी तरह काम चलने लगना।

क्रि. अ. [सं. जन्म + ना (प्रत्य.)] उगना।

सज्ञा स्त्री. [स. यमुना] एक प्रसिद्ध नदी।

जमनि—संज्ञा पुं. ब० [सं यम+हि. नि (प्रत्य.)] यमदूत। उ.—काल-जमनि सौं आनि बनी है, देखि देखि मुख रोइसि—१-३३३।

जमनिका—संज्ञा स्त्री. [सं यवनिका] (१) यवनिका, परदा। (२) काई। (३) मैल।

जमपुर—संज्ञा पुं. [स. यमपुर] यम के रहने का स्थान, यमलोक। हिंदुओं का विश्वास है कि मरने पर

प्रेतात्मा को यम के दूत पहले यहीं लाते हैं और यहाँ यम उसके भले-बुरे कर्मों का विचार करते हैं।

जमपुरी—संज्ञा स्त्री. [स. यमपुरी] यमलोक, यमपुर।

जमराज—संज्ञा पुं. [सं यमराज] धर्मराज, जो हिंदुओं के विश्वास के अनुसार, प्राणी के कर्मों का दंड या फल देते हैं।

जमलअर्जुन, जमलतरु, जमलद्रुम—संज्ञा पुं. [सं. यमल + अर्जुन, तरु, द्रुम] गोकुल में दो अर्जुन-वृक्ष। पुराणों के अनुसार ये कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे। एक बार मतवाले होकर ये स्त्रियों के साथ नदी में नंगे क्रीडा कर रहे थे। इसी पर नारद ने इन्हें जड हो जाने का शाप दिया। पेड़ होकर ये दोनो नंद जी के आँगन में जमे। यशोदा ने जब कृष्ण को दंड देने के लिए मूसल से बाँधा तब इन्होंने उनका उद्धार किया।

जमल द्रुम-भंजन—संज्ञा पुं. [यमल+द्रुम+भंजन] यमल वृक्ष को तोड़नेवाले, यमलार्जुन नामक वृक्षो के द्वारा कुबेर के दोनो पुत्रों का उद्धार करनेवाले, श्रीकृष्ण।

जमलार्जुन—संज्ञा पु. [सं. यमलार्जुन] गोकुल में दो अर्जुन वृक्ष। कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव नारद के शाप से वृक्ष बन गये थे। इनका उद्धार श्रीकृष्ण ने किया था जब वे यशोदा-द्वारा बाँधे गये थे। उ.—नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं—१०-३४२।

जमलोक—संज्ञा पुं. [सं. यम+लोक] (१) वह लोक जहाँ मरने के बाद, हिंदुओं के विश्वास के अनुसार, लोग जाते है, यमपुरी। (२) नरक।

जमवार—संज्ञा पु. [स. यम+द्वार] यमद्वार।

जमा—वि. [अ.] (१) एकत्र, इकट्ठा, संगृहीत।

मुहा.—कुल जमा—सब मिलाकर, कुल।

(२) जो अमानत के तौर पर रखा गया हो।

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) मूल धन, पूँजी। (२) धन-संपत्ति, रुपया-पैसा। उ.-हरि, हौं ऐसौ अमल कमायौ। साविक जमा हुती जो जोरी मिनजालिक तल ल्यायौ—१-१४३।

मुहा.—जमा मारना—बेईमानी या अनुचित रीति से किसी का धन या माल ले लेना।

(३) भूमिकर, लगान। (४) योग, जोड़।

जमाइ—क्रि. स. [हि. जमाना] द्रव पदार्थ को ठोस बनाकर, (दही आदि) जमाकर। उ.—रैनि जमाइ धरयौ हौ गोरस परयौ स्याम कैं हाथ—१०-२७७।

जमाई—क्रि. स. [हि. जमाना] स्थित की, (किसी पदार्थ पर दृढतापूर्वक) स्थित की। उ.—सूर-स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई—१०-८२।

संज्ञा पुं. [सं. जामातृ] दामाद।

संज्ञा स्त्री. [हिंदी जमाना] जमने या जमाने की क्रिया, रीति या मजदूरी।

जमाए—क्रि. स. [हिं. जमाना] द्रव पदार्थ को ठोस बनाया, (दही आदि) जमाया। उ.—दूध भात भोजन घृत अमृत अरु आछौ करि दह्यौ जमाए—१०-३०६।

जमाखर्च—संज्ञा पुं. [फा. जमा+ख़र्च] आय-व्यय।

जमाजथा—संज्ञा स्त्री. [हि. जमा+गथ] धन-संपत्ति।

जमात—संज्ञा स्त्री. [अ. जमाअत] (१) जत्था। (२) श्रेणी।

जमानत—संज्ञा स्त्री. [अ. जमानत] वह जिम्मेदारी जो किसी अपराधी या ऋणी के लिए ली जाय, जामिनी। उ.—धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूट्यौ—१-१८५।

जमानति—संज्ञा स्त्री. [अ. जमानत] जमानत रूप में। उ.—थाती प्रान तुम्हारी मोपै, जनमत हीं जौ दीन्ही। सौ मैं बाँटि दई पाँचनि कौं, देह जमानति लीन्ही—१-१९६।

जमानती—संज्ञा पुं. [हि जमानत+ई (प्रत्य.)] वह जो जमानत करे, जामिन, जिम्मेदार।

जमाना—क्रि. स. [हि. जमना का सक. रूप.] (१) किसी द्रव पदार्थ को ठोस बनाना। (२) किसी पदार्थ को दूसरे पर मजबूती और स्थायी रूप से स्थित करना।

मुहा.—दृष्टि जमाना—एक टक देर तक किसी ओर देखना। मन म बात जमाना—किसी बात का मन पर पूरा-पूरा प्रभाव डालना। रंग जमाना-(१) बहुत अधिक प्रभावित करना। (२) बहुत आनंदित करना।

(३) प्रहार करना। (४) हाथ के काम का अच्छा अभ्यास करना। (५) किसी काम को अच्छी तरह

करना। (६) किसी कार-बार को अच्छी तरह चलने योग्य बनाना।

क्रि. स. [हि. जमना = उगना] उपजाना।

संज्ञा पु. [फा. जमाना] (१) समय, वक्त। (२) बहुत अधिक समय। (३) प्रताप, सौभाग्य या सुख-समृद्धि के दिन। (४) दुनिया, ससार।

मुहा.—जमाना देखना—बहुत अनुभव प्राप्त करना।

जमामार—वि. [हि. जमा + मारना] अनुचित रीति या बेईमानी से दूसरो का धन मार लेने या हड़प जानेवाला।

जमायौ—क्रि. स. [हि. जमाना] किसी द्रव पदार्थ को ठडा करके गाढा किया, जमाया। उ.—(क) माखन-रोटी लेहु सद्य दधि रैन जमायौ—४३१। (ख) अति मीठौ दधि आज जमायौ, बलदाऊ तुम लेहु—४४२।

जमाव—संज्ञा पुं. [हिं. जमाना] (१) जमने का भाव। (२) जमाने का भाव। (३) भीड-भाड, जमघट।

जमावट—संज्ञा स्त्री. [हि. जमाना] जमने का भाव।

जमावड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. जमना] भीड़-भाड।

जमींदार—संज्ञा पुं. [फा.] भूमि का स्वामी।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जमींदार] (१) जमींदार की भूमि। (२) जमींदार का स्वत्व या अधिकार।

जमी—वि. [सं. यमी] सयमी, इद्रियनिग्रही।

जमीं, जमीन—संज्ञा स्त्री. [फा. जमीन] (१) पृथ्वी। (२) धरती।

मुहा.—जमीन-आसमान एक करना—बहुत परिश्रम या उद्योग करना। जमीन आसमान का फरक—बहुत अधिक अतर या भिन्नता। जमीन-आसमान के कुलावे मिलाना—बहुत डींग या शेखी हांकना। जमीन का पैर तले से निकलना—सन्नाटे में आ जाना, बहुत चकित होना। जमीन चूमने लगना—मुंह के बल जमीन पर गिरना। जमीन देखना—(१) मुंह के बल गिरना। (२) नीचा देखना। जमीन दिखाना—(१) मुंह के बल गिराना। (२) नीचा दिखाना। जमीन पकड़ना—जमकर बैठना। जमीन पर पैर न रखना (पड़ना)—बहुत घमंड या अभिमान करना (होना)।

(३) कपड़े, कागज आदि की सतह। (४) आधार-रूप सामग्री। (५) किसी कार्य की निश्चित प्रणाली या योजना।

जमुकना—क्रि. अ.—समीप होना।

जमुन—संज्ञा स्त्री [हिं. जमुना] यमुना नदी।

जमुन-जल—संज्ञा पु. [स यमुना + जल] यमुना नदी का जल।

जमुना—संज्ञा स्त्री. [सं. यमुना] यमुना।

जमुनियाँ—सज्ञा पु. [हि. जामुन] जामुन का रग।

वि.—जामुन के रग का, जामुनी।

जमुने—संज्ञा स्त्री. [स. यमुना] यमुना नदी। उ.—भक्त जमुने सुगम, अगम औरें—१-१२२।

जमुवाँ—संज्ञा पुं. [हि. जामुन] जामुन का रंग।

जमुहात—क्रि. अ. [हिं. जँभाना, जम्हाना] जँभाई लेते हैं। उ.—दोउ माता निरखत आलस मुख, छवि पर तन-मन वारति। बार-बार जमुहात सूर प्रभु, इहिं उपमा कवि कहै कहा री—१०-२२८।

जमुहाना—क्रि. अ. [हि. जम्हाना] जँभाई लेना।

जमूरक, जमूरा—सज्ञा पु. [फा. जंबूरक] छोटी तोप।

जमोग—संज्ञा पुं. [हिं. जमोगना] (१) स्वीकार कराने की क्रिया। (२) अन्य द्वारा समर्थन।

जमोगना—क्रि. स. [अ जमा+योग] (१) हिसाब जांचना। (२) स्वीकार कराना, सरेखना। (३) समर्थन कराना।

जम्यौ—वि. [हिं. जमना] जमा हुआ। उ.—कमल-नैन हरि करौ कलेवा। माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा—१०-२१२।

क्रि. अ.—(१) बहुतो के सामने कोई काम उत्तमता पूर्वक हुआ, बहुतो को रुचा या प्रभावित किया। उ.—बटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ। आपु अपनी घात निरखत, खेल जम्यौ बनाइ—१०-२४४। (२) उगा, उत्पन्न हुआ। उ.—मानौ आन सृष्टि रचिवे कौं अंबुज नाभि जम्यौ—१-२७३।

जम्हाइ—क्रि. अ. [हिं. जँभाना] (१) जँभाकर, जमुहाई लेकर, (मुख) खोलकर। उ.—मुख जम्हाइ त्रिभुवन दिखरायौ—१०-३६१।

जम्हाई—क्रि. अ. [हि. जँभाना] जँभाकर, जमुहाई ली। उ.—(क) छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखै उठि जागि जम्हाई–१०-५५० । (ख) सकसकात तन भीजि पसीना, उलटि पलटि तन तोरि जम्हाई–७४८ ।

जम्हात—क्रि. अ. [हि. जँभाना, जम्हाना] जँभाई लेते है। उ.—(क) बल-मोहन दोऊ अलसाने। कछु-कछु खाइ दूध-अँचयौ तब जम्हात जननी जाने —१०-२३० । (ख) ऐंडत अंग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी—३४५४ ।

जम्हाना—क्रि. अ. [हि. जँभाना] जँभाई लेना।

जयंत—वि. [सं.] (१) विजयी। (२) बहुरूपिया।
संज्ञा पुं.—(१) एक रुद्र। (२) इद्र का एक पुत्र। (३) कुमार कार्तिकेय। (४) अक्रूर के पिता।

जयंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विजय करनेवाली। (२) ध्वजा, पताका। (३) दुर्गा का एक नाम। (४) पार्वती का नाम। (५) वर्षगाँठ का उत्सव। (६) ऋषभ देव की स्त्री का नाम। उ.—रिषभ राज सब मन उत्साह। कियौ जयंती सौं पुनि ब्याह—५-२। (७) एक बड़ा पेड़। (८) जन्माष्टमी। (९) अरणी।

जय—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विपक्षियो का पराभव, जीत। (२) देवताओं या महात्माओं की अभिवंदना करने के लिए हृदयोल्लास-व्यंजक शब्द। उ.—(क) सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान—१-९७। (ख) जय जय करत सकल सुर-नर-मुनि जल मैं कियौ प्रवेश—सारा. ४१।
संज्ञा पुं.—(१) विष्णु के एक पार्षद का नाम जो विजय का भाई था। सनकादिक के शाप से इसको हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस के रूप में जन्मना पड़ा। उ.—(क) जय अरु विजय कथा नहि कछुवै दसमुख-बध बिस्तार—१-२१५। (ख) जय अरु बिजय असुर योनिन कौ भये तीन अवतार—सारा. ४४। (२) लाभ। (३) सूर्य। (४) इंद्र का पुत्र जयत।
वि.—जीतने वाला, विजयी।

जयजयकार—संज्ञा स्त्री. [सं.] जय मनाने का घोष।

जयजीव—संज्ञा पुं. [हि. जय+जी] एक अभिवादन जिसका तात्पर्य है—जय हो और जियो।

जयति—क्रि. अ. [सं.] जय हो।

जयदेव—संज्ञा पुं. [सं.] गीतगोविंद नामक संस्कृत काव्य के रचयिता।

जयद्रथ—संज्ञा पुं. [सं.] सौराष्ट्र का एक राजा जो दुर्योधन का बहनोई था।

जयध्वज—संज्ञा स्त्री. [सं.] विजयपताका।

जयना—क्रि. अ. [सं. जयत] जीतना।

जयपत्त, जयपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] पराजित द्वारा विजयी को लिखकर दिया हुआ विजय-पत्र।

जयफर, जयफल—संज्ञा पुं [हि. जायफल] जायफल।

जयमंगल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा की सवारी का हाथी। (२) हाथी जिस पर राजा विजय के बाद सवार हो।

जयमाल, जयमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. जयमाला] (१) विजय मिलने पर विजयी को पहनायी जानेवाली माला। (२) विवाह के पूर्व वरे हुए पुरुष के गले में कन्या द्वारा डाली जानेवाली माला।

जयश्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] विजय, विजयलक्ष्मी।

जयस्तंभ—संज्ञा पुं. [सं.] स्तंभ जो विजय के स्मारक-रूप में बनवाया जाय।

जया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) पार्वती का एक नाम। (३) पताका, ध्वजा।
वि.—जय दिलानेवाली, विजय करानेवाली।

जयिष्णु—वि. [सं.] जो जीतता हो, जयशील।

जयी—वि. [सं. जयिन्] विजयी, जयशील।

जयो—क्रि. स. [हि. जीतना] जीता। उ.—तोरयौ धनुष स्वयंवर कीनो रावन अजित जयो—२२६४।

जय्य—वि. [सं.] जो जीतने योग्य हो।

जर—संज्ञा पुं. [सं. जरा] (१) बुढापा, वृद्धावस्था। (२) बूढा मनुष्य। उ.—बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी—१-६०।
संज्ञा पुं. [स.] जीर्ण होने की क्रिया।
संज्ञा पुं. [स. ज्वर] रोग, ज्वर, बुखार।
संज्ञा स्त्री. [हि. जड़] जड़, मूल। उ.—जमलार्जुन दोउ सुत कुवेर के तेउ उखारे जर तैं—९९३।

संज्ञा पुं. [फा] (१) स्वर्ण। (२) धन।

जरई—क्रि. अ. [हि. जरना = जलना] जलती है, भस्म होती है, जले। उ.—जाकै हिय-अंतर रघुनंदन, सो क्यों पावक जरई—९-९९।

संज्ञा स्त्री. [हि. जड़] धान के अंकुरित बीज।

जरकटी—संज्ञा पु. [देश] एक शिकारी पक्षी।

जरकस, जरकसी—वि. [फा जरकश] जिस पर सोने के तार आदि का काम बना हो।

जरखेज—वि. [फा. जरखेज] उपजाऊ।

जरजर—वि [हि जर्जर] जीर्ण, फटा-पुराना।

जरठ—वि. [सं] (१) कर्कश। (२) बूढ़ा। (३) पुराना, जीर्ण। (४) पीलापन लिये सफेद।

संज्ञा पु.—बुढ़ापा।

जरठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जरठ + आई] बुढापा।

जरत—वि. [हिं. जलना] जलते हुए। उ.—लाखागृह तैं जरत पाडुसुत बुधि-बल नाथ उबारे—१-१०।

क्रि. अ.—जलता है, बलता है।

जरतार—संज्ञा पु [फा. जर + तार] सोने-चाँदी का तार जिससे जरी का काम होता है।

जरतारा, जरतारी—वि. [हिं. जरतार] जरी के काम का, जिसमें सुनहरे-रुपहले तार लगे हो।

जरति—क्रि. अ. [हि. जलना] जलती है, भस्म होती है। उ.—देखि जरनि जड़, नारि की, (रे) जरति प्रेत के संग—१-३२५।

जरतुआ—वि. [हिं. जलना] ईर्ष्या करनेवाला।

जरतौ—क्रि. अ. [हि. जलना] जलता, जल जाता। उ.—अब मोहिं राखि लेहु मनमोहन, अधम अंग पद परतौ। खरकूकर की नाईं मानि सुख, विषय-अगिनि मैं जरतौ—१-२०३।

जरत्—वि. [सं.] (१) बूढ़ा। (२) पुराना।

जरत्कारु—संज्ञा पुं. [स.] एक ऋषि जिन्होंने वासुकि नाग की मनसा नामक कन्या से विवाह किया था।

जरद—वि. [फा. जर्द] पीला, पीत।

जरदष्टि—वि. [स.] (१) बूढ़ा। (२) दीर्घायु।

जरदी—संज्ञा स्त्री. [फा.] पीलापन।

जरन—क्रि. अ. [हिं. जलना] जलना, जल सकना, जलने देना। उ.—(क) पावक-जठर जरन नहिं दीन्हौं, कंचन सी मम देह करी—१-११९। (ख) छल कियौ पाडवनि कौरव, कपट-पासा ढरन। ख्याय विष, गृह लाय दीन्हौ, तउ न पाए जरन—१-२०२।

जरना—क्रि. अ. [हि. जलना] जलना, बलना।

क्रि. अ. [हिं. जड़ना] जडने का काम करना।

जरनि—संज्ञा स्त्री. [हि. जरना = जलना] (१) जलने की पीडा, जलन। उ.—(क) सुत-तनया-बनिता-विनोद-रस, इहि जुर-जरनि जरायौ—१-१५४। (ख) तब फिरि जरनि भई नख सिख तैं दिआ बात जनु मिलकी—२७८९। (२) व्यथा, पीडा। उ.—(क) देखि जरनि, जड़, नारि की, (रे) जरति प्रेत के संग। चिता न चित फीकौ भयौ, (रे) रची जु पिय कैं रंग—१-३२५। (ख) हृदय की कबहुँ न जरनि घटी। बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी—१-९८। (ग) अति तप देखि कृपा हरि कीन्हो। तन की जरनि दूर भयी सबकी मिलि तरुनिनि सुख दीन्हौ—७९९।

जरनी—संज्ञा स्त्री. [हि. जरना = जलना] (१) जलन, जलने की पीड़ा। उ.—बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी। चितवत रहत चकित चारौं दिसि, उपजी बिरह तन जरनी—९-७३। (२) पीड़ा, व्यथा, कष्ट। उ.—(क) बड़ी कस्वर टरी साँप सौं ऊबरी, बात कैं कहत तोहि लगति जरनी—६९८। (ख) देखौ चारौ चंद्र-मुख सीतल बिन दरसन क्यौं मिटती जरनी—३३३०।

जरब—संज्ञा स्त्री. [अ. जरब] (१) चोट। (२) गुणा।

जरबीला—वि. [फा. ज़रब + ईला (प्रत्य.)] जो देखने में बहुत चटक, भड़कीला और सुंदर हो।

जरमुआ—वि. [हि. जरना + मुअना] ईर्ष्यालु।

जरवारा—वि. [फा. जर + वाला] धनी।

जरहु—क्रि. स. [हि. जलना] जल जाय, भस्म हो जाय, नष्ट हो जाय। उ.—चारौं कर जु कठिन अति, कोमल नयन जरहु जिनि डाँटी—१०-२५९।

जरा—संज्ञा स्त्री. [स] (१) वृद्धावस्था। उ.—(क) हा जदुनाथ जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२९८। (ख) सुरति के दस द्वार रूँधे जरा घेरयौ

आइ—१-३१६ । (२) एक राक्षसी जिसने जरासंध के शरीर के दो खडो को मिलाकर जीवित कर दिया था । उ.—(क) जरा जरासध की सधि जोरयौ हुतौ भीम ता संध को चीर डारयौ—२७५१ । (ख) जुग-जुग जीवै जरा बापुरी मिलै राहु अरु केतु—२८५६ ।

संज्ञा पुं. [स.] एक व्याध जिसके बाण से श्रीकृष्ण देवलोक सिधारे थे ।

वि. [अ. जर्रा, ज़रा] थोडा, कम ।

क्रि. वि.—थोड़ा, कम ।

जराइ—वि. [हि. जड़ना] जडी हुई, जडाऊ । उ.—राजत जंत्रहार, केहरिनख, पहुँची रतन-जराइ—१०-१३३ ।

जराई—क्रि. स. स्त्री. [हि. जराना = जलाना] जला दी । उ.—पवन कौ पूत महाबल जोधा, पल मैं लंक जराई—९-१४० ।

जराउ—वि. [हि. जड़ना] जिस पर नग इत्यादि जड़े हो, जड़ाऊ । उ.—(क) पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढैया । पँच रँग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढाउ, बहुविधि रुचि करि जराउ, ल्याउ रे जरैया—१०-४१ । (ख) गोरे भाल बिंदु सेंदुर पर टीका धरयौ जराउ ।

जराऊ—वि. [हिं. जड़ाऊ] जिसमें नग जडे हो ।

जराकुमार—संज्ञा पुं. [सं. जरा+कुमार] जरासंध ।

जराग्रस्त—वि. [स. जरा+ग्रस्त] बहुत बूढा ।

जराति—क्रि. स. [हिं. जराना, जलाना] पीडित करती है, जलाती है । उ.—मनसिज व्यथा जराति अरनि लौ उर अंतर दहिए—२८९२ ।

जराना—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाना, बलाना ।

जराफत—संज्ञा स्त्री. [अ. जराफत] मसखरापन ।

जराय—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाकर, भस्म करके । उ.—कृत्या चली जहाँ द्वारावति हरि जानी यह बात । आज्ञा करी चक्र को माधव छिन कृत्या कर घात । कासी जाय जराय छिनक में गये द्वारका फेर—सारा. ७०८, ७०९ ।

क्रि. स. [हि. जड़ना] जड़ाऊ बनवा कर ।

जरायु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह झिल्ली जिसमें लिपटा हुआ बच्चा पैदा होता है । (२) गर्भाशय । (३) जटायु ।

जरायुज—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भ से झिल्ली में लिपटा हुआ पैदा होनेवाला जीव, पिंडज ।

जरायौ—क्रि. स. [हिं. जलाना] (१) पीड़ित किया, तपाया । उ.—(क) सुत-तनया-वनिता-विनोद रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ—१-१५४ । (२) जलाया, भस्म किया । उ.—कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ । कोप-दृष्टि करि तिन्हैं जरायौ—९-९ ।

जराव—वि. [हि. जड़ना] जिसमें नग जडे हो ।

संज्ञा स्त्री. पुं.—वह जो जड़ाऊ हो, जड़ाऊ काम-वाली । उ.—बहु नग लगे जराव की अँगिया भुजा बहूटनि वलय संग को—१०४२ ।

जरावत—क्रि. स. [हिं. जराना = जलाना] (१) जलाता है, झुलसाता है । उ.—विरह ताप तन अधिक जरावत, जैसैं दव-द्रुम बेली—९-९४ । (२) पीडित करता है, कष्ट पहुँचाता है । उ.—जब नहिं देख्यौ गुपाल लाल को विरह जरावत छाती—२९८१ ।

क्रि. स. [हि. जड़ाना] नग आदि जड़ाते हैं ।

जरावन—क्रि. स. [हिं. जलाना] जलाना, भस्म करना । उ.—पठवौ कुटुँब-सहित जम आलय, नैंकु देहि धौं मोकौं आवन । अगिनि-पुंज सित धनुष-बान धरि, तोहिं असुर-कुल-सहित जरावन—९-१३१ ।

जरावै—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाता है, पीड़ित करता है । उ.—सूरदास प्रभु मोकों करहि कृपा अब नित प्रति विरह जरावै—१९७७ ।

जरासंध, जरासिंधु—संज्ञा पु. [सं. जरा+संधि] मगध देश का एक राजा जो बृहद्रथ का पुत्र और कस का ससुर था । श्रीकृष्ण ने जब कस को मार डाला तब दामाद की मृत्यु का बदला करने के लिए इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीम और अर्जुन को लेकर श्रीकृष्ण इसकी राजधानी गिरिव्रज पहुँचे । वहाँ भीम ने इसे मार डाला ।

जरासुत—संज्ञा पुं. [सं. जरा+सुत] जरासध ।

जरि—क्रि. अ. [हि. जलना] जलकर, भस्म होकर ।

उ.—धिक धिक जीवन है अब यह तन, क्यों न होइ जरि छार—६-८३।

क्रि. स. [हिं. जड़ना] नग आदि जड़ कर। उ.—बहु विधि जरि करि जराउ ल्याउ रे जरैया—१०-४१।

जरिबो—संज्ञा स्त्री. [हिं. जलना] जलने की क्रिया। उ.—चंदन चरचि तनु दहत मलयनिल स्रवन विरहानल जरिबो—२८६०।

जरिया—वि. [हिं. जड़ना] जड़ी हुई। उ.—क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया। यौं लपटाइ रहे उर उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया—६८८।

सज्ञा पुं. [हिं. जड़िया] नग आदि जड़नेवाला।

वि. [हिं. जरना] जलाकर बनाया हुआ।

संज्ञा पुं. [अ. जरिया] (१) सबब। (२) कारण।

जरियौ—क्रि. स. [हिं. जलाना] जला, जलाया। उ.—उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर भारी—१-२२१।

जरिहै—क्रि. अ. [हिं. जलना] जल जायगा। उ.—जरिहै लंक कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल भानु—६-७६।

जरी—क्रि. अ. [हिं. जलना] (हाय) जली, (अरे) जल गयी, जली हुई। उ.—ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबारयौ, टेरत जरी जरी—१-१६।

वि. [सं जरिन्] बुड्ढा, बूढा, वृद्ध।

संज्ञा स्त्री. [फा. जरी] सोने के तारों का काम।

जरीफ—वि. [अ. जरीफ] मसखरा, विनोदी।

जरीब—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) एक नाप। (२) लाठी।

जरूर—क्रि. वि. [अ. जरूर] अवश्य।

जरूरत—संज्ञा स्त्री. [हिं. जरूर] अवश्यकता।

जरूरी—वि. [हिं जरूर] जिसके बिना काम न चले। (२) जिसकी आवश्यकता हो।

जरे—सज्ञा पुं. [हिं. जलना] जला हुआ भाग।

मुहा.—जरे पर चूना—दुखी को और दुख पहुँचाना। उ—वैसहि जाइ जरे पर चूनो दूनो दुख तिहिं काल—३१५६।

जरैं—क्रि. स. [हिं. जलना] (१) जल जायँ, नष्ट हों। (२) दुखी हूं, पीड़ित हूं। उ.—ऊधौ तुम यह मत लै आए। इक हम जरैं खिझावन आए मानौ सिखै पठाए—३११०।

मुहा.—जरैं बरैं - नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ। उ.—(क) डीठि लगावति कान्ह को जरैं बरैं वै आँखि—१०६६। (ख) जरैं रिसि जिहिं तुम्हहिं बाध्यौ लगै मोहिं बलाइ—३८७।

जरै—क्रि. अ. [हिं. जलना] डाह करता है, ईर्ष्या या द्वेष के कारण कुढ़ता है। उ.—कोपै तात प्रहलाद भगत कौ, नामहिं लेत जरै—१-८२।

जरैगो—क्रि. अ. [हिं. जलना] जल जायगी, सुलगेगी। उ.—काहे को साँस उसाँस लेति है बैरी विरह को दवा जरैगो—२८७०।

जरैया—संज्ञा पुं. [हिं. जड़िया] नग जड़ने का काम करनेवाला पुरुष, कुदनसाज। उ.—पालनौ अति सुदर गढि ल्याउ रे बढैया। ' । पँच रँग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढाउ, बहु विधि जरि करि जराउ, ल्याउ रे जरैया—१०-४१।

जरौंगी—क्रि. अ. [हिं. जलना] जलूँगी, भस्म हो जाऊँगी। उ.—हौं तव संग जरौंगी, यौं कहि तिया धूति धन खायौ—२-३०।

जरौ—वि. [हिं. जरना = जलना] जलता हुआ, प्रज्वलित। उ.—तेल, तूल, पावक पुट धरिकै, देखन चहै जरौ—६-६८।

जरौट—वि. [हिं. जड़ना] जड़ाऊ।

जर्कवर्क—वि [फा. जर्कवर्क] तड़क-भड़कदार।

जर्जर—वि. [सं.] (१) पुराना, घिसा हुआ। (२) टूटा-फूटा। (३) बूढ़ा।

जर्जरता—सज्ञा स्त्री. [सं. जर्जर] जीर्णता, कमजोरी।

जर्जरित—वि. [सं. जर्जरित] (१) पुराना (२) टूटा-फूटा, घिसा-घिसाया।

जर्जरीक—वि. [स.] (१) बूढ़ा। (२) छेददार।

जर्द—संज्ञा पु. [फा. ज़र्द] पीला, पीत।

जर्दी—सज्ञा स्त्री. [हिं. जर्द] पीलापन।

जरयौ—क्रि. अ. [हिं. जलना] जल गया, भस्म हो गया। उ.—दन्छ-सीस जो कुंड मैं जरयौ। ताके बदलैं अज-सिर धरयो—४-५।

जर्रा—संज्ञा पुं. [अ. ज़र्रा] (१) कण। (२) खंड।

जलंधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक राक्षस। (२) एक ऋषि।

जल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पानी। (२) उशीर, खस।

जल-अलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पानी का भँवर। (२) पानी का एक काला कीड़ा, पैरौवा, भौंतुआ।

जलकांत, जलकांतर—संज्ञा पुं. [सं.] वरुण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] जलविहार।

जलखावा—संज्ञा पुं. [हिं. जल+खाना] जलपान।

जलघुमर—संज्ञा पु. [हिं. जल+घूमना] पानी का भँवर।

जलचर—संज्ञा पु. [सं.] पानी के जीव-जतु।

जलचरी—संज्ञा स्त्री. [सं] मछली। उ.—हमते भली जलचरी बापुरी अपनो नेम निबाह्यौ—३१४६।

जलचादर—संज्ञा स्त्री. [सं. जल+हिं. चादर] ऊँचे स्थान से होनेवाला पानी का विस्तृत झीना प्रवाह।

जलचारी—संज्ञा पुं. [सं.] जल के जीव-जतु।

जलज—वि. [सं.] जल में उत्पन्न होनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) कमल। (२) शख। (३) मछली। (४) मोती। उ.—दुर दसंकत सुभग स्रवननि जलज जुग डहडहत—१०-१८४।

जलजन्य—संज्ञा पुं. [सं.] कमल।

जलजला—संज्ञा पुं. [फ़ा. ज़लज़ला] भूकंप।

जलजात, जलजातक—वि. [सं. जल+जात, जातक=उत्पन्न] जो जल से उत्पन्न हो।

संज्ञा पुं.—(१) कमल, पद्म। उ.—बिराजत अंग अंग रति बात। अपने कर करि धरे बिधाता षग षग नव जलजात—सा. उ. ३। (२) चद्रमा। उ.—अवर जु सुभग बेद जलजातक कनक नीलमनि गात। उदित जराउ पंच तिय रवि ससि किरनि तहाँ सुदुरात—सा. उ. ६।

जलजासन—संज्ञा पुं. [सं. जल+ज+आसन] ब्रह्मा।

जलतरंग—सज्ञा पु. [स.] धातु की कटोरियो में पानी भर कर बजाया जानेवाला बाजा।

जलथंभ—संज्ञा पुं. [सं. जलस्तंभ] जल रोकना।

जलद—वि. [सं. जल+द] जल देनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) मेघ, बादल। (२) कपूर।

जलदकाल—संज्ञा पुं. [सं.] वर्षा ऋतु, बरसात।

जलदक्षय—संज्ञा पुं. [सं.] शरद ऋतु।

जलदेव, जलदेवता—संज्ञा पुं. [सं.] वरुण।

जलधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बादल। उ.—(क) उमँगे जमुन-जल प्रफुलित कुंज-पुंज, गरजत कारे भारे जूथ जलधर के—१०-३४। (ख) पूजत नाहि सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत—६६५। (ग) मोहन कर तैं धार चलति, परि मोहिनि-मुख अतिहीं छवि गाढी। मनु जलधर जलधार वृष्टि लघु, पुनि-पुनि प्रेम-चंद पर बाढी—७३६। (२) समुद्र।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] बादलो की श्रेणी।

जलधरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्थर या धातु का अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है।

जलधार, जलधारा—संज्ञा स्त्री. [सं. जलधारा] (१) जल-प्रवाह, पानी की धारा, पानी की झड़ी। उ.—मोहन-कर तैं धार चलति, परि मोहनि-मुख अति हीं छवि गाढी। मनु जलधर जलधार वृष्टि-लघु, पुनि-पुनि प्रेम-चंद पर बाढ़ी—७३६। (२) तपस्या की एक रीति जिसमें धार बाँध कर पानी डाला जाता है।

जलधारी—संज्ञा पुं. [सं. जलधारिन्] बादल, मेघ। उ.—सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी। स्रवन न सुनत, चरन-गति थाकी, नैन भए जलधारी १-११८।

वि.—पानी को धारण करनेवाला।

जलधि—संज्ञा पुं. [सं.] सागर, समुद्र।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) नदी।

जलधिज—संज्ञा पुं. [सं. जलधि+ज] चद्रमा।

जलन—संज्ञा स्त्री. [हि. जलना] (१) जलने की पीड़ा या कष्ट। (२) बहुत अधिक ईर्ष्या या डाह।

जलना—क्रि. अ. [सं ज्वलन] (१) दग्ध होना, बलना।

मुहा.—जलती आग—भयानक विपत्ति। जलती आग में कूदना—जान-बूझकर भारी विपत्ति में फँसना।

(२) आँच की तेजी से फुंक जाना। (३) झुलसना।

मुहा.—जले पर नमक (चूना) छिड़कना

(लगाना)—दुखी को और दुख देना। जले फफोले फोड़ना—दुखी को बदला चुकाने के लिए और दुख देना।

(४) बहुत अधिक ईर्ष्या, डाह या द्वेष करना।

मुहा.—जली कटी (भुनी) बात कहना (सुनाना)—लगती या चुभती हुई बातें कहना। जल मरना—कुढ़ जाना, ईर्ष्या के कारण दुखी होना।

जलनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

जलपति—संज्ञा पु. [सं.] (१) वरुण। (२) समुद्र।

जलपना—क्रि. अ. [सं. जल्पन] (१) लंबी-चौड़ी या बढ़ी-चढ़ी बातें करना। (२) बकवाद करना।

संज्ञा स्त्री.—डींग, व्यर्थ की बकवाद।

जलपहिं—क्रि. अ. [हिं. जलपना] बोलते हैं।

जलपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जलपना] बोलना।

जलपाटल—संज्ञा पुं. [हिं. जल-पटल] काजल।

जलपान—संज्ञा पुं. [सं.] नाश्ता, हल्का भोजन।

जलपै—क्रि. अ. [हिं. जलपना] बोले, कहे, बके।

जलप्रवाह—संज्ञा पु. [सं.] (१) पानी का बहाव। (२) शव को नदी में बहाने की क्रिया।

जलप्लावन—संज्ञा पुं. [स.] (१) पानी की बाढ़। (२) एक प्रलय, जिसमें सा ी सृष्टि जलमग्न हो जाती है।

जलमानुप—संज्ञा पु. [सं.] एक कल्पित जलजतु जिसका ऊपरी शरीर मनुष्य और निचला मछली का होता है।

जलयान—संज्ञा पुं. [सं.] जल की सवारी, जहाज।

जलरितु—सज्ञा स्त्री. [हिं. जल+ऋतु, जलर्तु] बरसात।

जलरितु नाम जान अब लागे हरि-भख-बचन गयौ री —सा. उ. ५१।

जलरुह, जलरूह—संज्ञा पु. [सं.] कमल। उ.—सुंदर कर आनन समीप अति राजत इहिं आकार। जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि मिलत लए उपहार—२८३।

जललता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पानी की लहर, तरग।

जलवर्त—संज्ञा पु. [सं.] मेघ का एक भेद। उ.—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आये। जलवर्त,वारिवर्त, पवन-वर्त, बीजुवर्त, आगिवर्तक जलद सग ल्याये—६४४।

जलवाना—क्रि. स. [हिं. जलाना का प्रे.] जलाने का काम दूसरे से कराना, सुलगवाना, बलवाना।

जलवाह—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल।

जलविहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नदी आदि पर नाव की सैर। (२) जल में स्नान और खेल।

जलशय, जलशयन—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

जलशायी—संज्ञा पुं. [सं. जलशायिन्] विष्णु।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नहाना। (२) धोना। (३) शव को जल में बहा देना।

जलसा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) किसी उत्सव में बहुत से लोगो का एकत्र होना। (२) सभा-समाज का बड़ा अधिवेशन।

जलसुत—सज्ञा पुं. [हिं. जल+सुत=पुत्र] (१) कमल। उ.—अलिसुत प्रीति करी जलसुत सौं संपुटि हाथ गह्यौ—सा. ३-३१। (ख) तैं जु नील पट ओट दियो री ।जल-सुत बिंब मनहुँ जल राजत मनहुँ सरदससि राहु लियौ री—सा. उ. १८। (२) मोती। उ.—स्यामहृदय जलसुत की माला अतिहिं अनूपम छाजै री—१३४३।

जलसुततिति—संज्ञा स्त्री. [हिं. जल+सुत (जल से उत्पन्न जोंक) + तित (=गति)] जोंक की गति, धृष्टता, ढिठाई। उ.—उठि राधे कह रैन गँवावै। महिसुत गति तजि जल-सुत-तित तजि सिंधु-सुता-पति-भवन न भावै—सा. उ. २२।

जलसुत—प्रीतम-सुत-रिपु-बाधव-आयुध—संज्ञा पुं. [सं. जल+सुत (जल से उत्पन्न कमल)+प्रीतम (प्रियतम= कमल का प्रियतम, सूर्य)+सुत (सूर्य का सुत या पुत्र कर्ण)+रिपु (कर्ण का रिपु या शत्रु अर्जुन)+बाधव (अर्जुन का भाई भीम)+आयुध (= हथियार, भीम का हथियार गदा, यहाँ 'गदा' शब्द से 'गद' अर्थ लिया)] गद, रोग। उ.—जलसुत - प्रीतम - सुत-रिपु-बाधव आयुध आपुन बिलख भयौ री—सा. उ. २१।

जलस्तंभ—सज्ञा पुं. [सं.] समुद्र में बादलो से बननेवाला एक स्तभ जिसका दर्शन अशुभ होता है।

जलस्तंभन—सज्ञा पुं. [सं.] मत्र आदि की सहायता से पानी बाँधना या उसकी गति रोकना।

जलहर—वि. [हिं. जल+हर] जल से भरा हुआ।

संज्ञा पु. [हिं. जलधर] तालाब आदि जलाशय।

उ.—वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जिवहि निनारे —४८७० ।

जलहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जलधरी] (१) पत्थर या धातु का अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। (२) शिवलिंग के ऊपर गर्मी में टाँगा जानेवाला जल भरा घड़ा जिससे पानी बराबर टपकता रहता है।

जलांजलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पानी-भरी अँजुली। (२) पितरों को अँजुली भर कर जल देना।

जलांतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक समुद्र। (२) सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

जलाक, जलाका—संज्ञा स्त्री.—(१) पेट की ज्वाला या आग, प्रेम, भूख। (२) लू।

जलाकर—संज्ञा पुं. [सं. जल+आकर] समुद्र, नदी।

जलाजल—संज्ञा पु. [हि. झलाझल] गोटे की झालर। उ.—गति गयंद कुच कुंभ किंकिणी मनहुँ घंट झहनावै। मोतिनहार जलाजल मानो खुमीदंत झलकावै।

जलातन—वि. [हि. जलना+तन](१) क्रोधी। (२) द्वेषी।

जलाद—संज्ञा पुं. [हि. जल्लाद] घातक।

जलाधिप—संज्ञा पुं. [सं. जल+अधिप] वरुण।

जलाना—क्रि. स. [हिं. जलना का सक.] (१) बलाना, प्रज्वलित करना। (२) आँच पर चढ़ाकर भाप या कोयले के रूप में करना। (३) झुलसाना। (४) ईर्ष्या, द्वेष आदि पैदा करना।

मुहा.—जला जला कर मारना—बहुत तंग करना।

जलापा—संज्ञा पुं [हि. जलना+आपा (प्रत्य.)] ईर्ष्या, डाह आदि के कारण होनेवाली जलन या कुढ़न।

जलाल—संज्ञा पुं. [अ.] रोब, आतक, तेज।

जलाव—संज्ञा पु. [हि. जलना+आव (प्रत्य.)] खमीर।

जलावन—संज्ञा पुं. [हि. जलाना] (१) इंधन। (२) किसी पदार्थ का तपान-गलाने पर जल जानेवाला अंश। (३) जलाने, तपाने, झुलसाने का काम या भाव। उ.—तेज भगवान को पाय जलावन लगे असुरदल चल्यौ सबही पराई—१०उ.-३५।

जलावर्त्त—संज्ञा पुं. [सं. जल+आवर्त्त] पानी का भँवर।

जलाशय—संज्ञा पुं. [सं. जल+आशय] (१) वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। (२) उशीर, खस।

जलाहल—वि. [सं. जलस्थल या हि. जलाजल] जलमय।

जलिका, जलुका, जलूका, जलौका—संज्ञा स्त्री. [सं. जलिका] जोक।

जलील—वि. [अ. ज़लील] तुच्छ, अपमानित।

जलूस—संज्ञा पुं. [अ.] लोगों का सजधज कर किसी उत्सव में या सवारी के साथ चलना।

जलेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वरुण। (२) महासागर।

जलेचर—संज्ञा पु. [सं. जलचर] जल का जीव।

जलेतन—वि. [हिं. जलना+तन] (१) क्रोधी, असहनशील। (२) डाह, ईर्ष्या आदि से सदा जलनेवाला।

जलेबी—संज्ञा स्त्री. [हि. जलाव=खमीर] (१) एक मिठाई। (२) एक पौधा। (३) गोल घेरा, कुंडली।

जलेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वरुण। (२) समुद्र।

जलोदर—संज्ञा पुं. [सं.] पेट फूलने का रोग।

जल्द—क्रि. वि. [अ.] (१) शीघ्र। (२) तेजी से।

जल्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जल्द] शीघ्रता, फुरती।

क्रि. वि.—(१) शीघ्र, चटपट। (२) तेजी से।

जल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथन। (२) बकवाद।

जल्पक—वि. [सं.] बकवादी, बातूनी।

जल्पन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बकवाद, डींग।

जल्पना—क्रि. अ. [सं. जल्पन] डींग मारना।

जल्पाक—वि. [सं.] बकवादी, वाचाल।

जल्पित—वि. [सं.] (१) मिथ्या। (२) कहा हुआ।

जल्लाद—संज्ञा पुं. [अ.] घातक, वधुआ, वधिक। (२) निर्दयी, कठोर।

जव—संज्ञा पुं. [सं.] वेग।

संज्ञा पुं. [सं. यव] जौ।

जवन—वि. [सं.] तेज, वेगवान।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेग। (२) घोड़ा।

संज्ञा पु. [सं. यवन] (१) यूनानी। (२) मुसलमान।

जवनिका—संज्ञा पुं. [सं. यवनिका] परदा, नाटक का परदा, यवनिका। उ.—वदन उघारि दिखायौ अपनौ नाटक की परिपाटी। बड़ी बार भई, लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४।

जवनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] तेजी, वेग।

जवाँमर्द—वि. [फा.] शूरवीर, बहादुर।

जवाँमर्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जवाँमर्द] वीरता ।
जवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जाना] (१) जाने का काम या भाव, गमन । (२) धन जो जाते समय दिया जाय ।
जवादानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जौ+दाना] चपाकली ।
जवादि—संज्ञा पुं. [अ. ज़वाद] एक सुगंधित वस्तु ।
जवान—वि. [फा.] (१) युवक । (२) वीर ।
संज्ञा पुं.—(१) वीर पुरुष । (२) सिपाही ।
जवानी—संज्ञा स्त्री. [फा.] यौवन, तरुणाई ।
मुहा.—जवानी उठना (उभड़ना, चढ़ना)—(१) यौवन का आगमन होना । (२) मस्त होना । जवानी ढलना—बुढ़ापा आना । उठती (चढती) जवानी—यौवन का आरंभ । उतरती जवानी—यौवन का ढलाव ।
जवाब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) उत्तर । उ.—(क) सूर आप गुजरान मुसाहिब लै जवाब पहुँचावै—१-१४२ ।
मुहा.—जवाब तलब करना—कारण पूछना, कैफियत माँगना । (कोरा) जवाब मिलना—बात अस्वीकृत होना । जवाब का जवाब देना—प्रतिपक्षी के बदले या कथन का कड़ा जवाब देना । उ.—सूर स्याम मैं तुम्हैं न डरैहौं जवाब कौ जवाब दैहौं—८४३ ।
(२) बदला, बदले में किया हुआ कार्य । (३) जोड़, मुकाबले की चीज । (४) नौकरी छूटना ।
जवाबदेह—वि. [फा.] उत्तरदाता ।
जवाबदेही—संज्ञा स्त्री. [फा.] उत्तरदायित्व ।
जवाबसवाल—संज्ञा पुं. [अ.] वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर ।
जवार—संज्ञा पुं. [अ.] अड़ोस-पड़ोस ।
संज्ञा पुं. [अ. जवाल] (१) अवनति, गिरे या बुरे दिन । (२) झंझट, झगड़ा, जजाल ।
जवारा—संज्ञा पुं. [हिं. जौ] जौ के हरे अंकुर ।
जवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जव] एक तरह का हार ।
जवाल—संज्ञा पुं. [अ. जवाल] (१) अवनति, घटी, उतार । (२) जजाल, आफत, झंझट ।
जवास, जवासा—संज्ञा पुं. [सं. यवासक, प्रा. यवासअ] एक कँटीला क्षुप जो वर्षा के बाद फूलता-फलता है ।
जवाहर, जवाहिर—संज्ञा पुं. [अ.] रत्न, मणि ।
जवी, जवीय—वि. [सं. जविन्, जवीयस्] तेज ।
जवैया—वि. [हिं. जाना+ऐया (प्रत्य.)] जानेवाला ।
जशन—संज्ञा पुं. [फा.] (१) जलसा । (२) हर्ष ।
जस—संज्ञा पुं. [सं. यशस्, हि. यश] (१) कीर्ति, सुख्याति । उ.—गह्यौ गिरि पानि जस जगत छायौ । (२) महिमा, प्रशसा । उ.—(क) जरासंध बंदी कटै नृप-कुल जस गावै—१-४ । (ख) कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं पांडु की वधू जस नैंकु गायौ ।
क्रि. वि. [सं. यथा, प्रा. जहा] जैसा ।
जसद, जस्ता—संज्ञा पुं. [सं. जसद] एक धातु ।
जसुदा, जसुमत, जसुमति—संज्ञा स्त्री. [सं. यशोदा] नदजी की पत्नी जिन्होंने श्रीकृष्ण को पाला था ।
जसूस—संज्ञा पुं. [अ. जासूस] भेदिया ।
जसोइ—संज्ञा स्त्री. [सं. यशोदा] यशोदा । उ.—दुतिया के ससि लौं बाढै सिसु, देखै जननि जसोइ—१०-५६ ।
जसोद, जसोमति, जसोवा, जसोवै—संज्ञा स्त्री. [सं. यशोदा] यशोदा । उ.—दै री मोकौं ल्याइ बेनु, कहि, कर गहि रोवै । ग्वालिनि डराति जियहिं, सुनै जनि जसोवै—१०-२८४ ।
जस्ता—संज्ञा पुं. [सं. जसद] एक मटमैली धातु ।
जहँ—क्रि. वि. [हिं. जहाँ] जिस स्थान पर, जहाँ । उ.—जहँ जहँ गाढ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ—१-२० ।
मुहा. जहँ के तहाँ—जिस स्थान पर हो, वहीं । उ.—निरखि सुर नर सकल मोहे रहि गए जहँ के तहाँ—१० उ. २४ ।
जहँड़ना, जहँड़ाना—क्रि. अ. [सं. जहन, हि. जहँड़ाना] (१) घाटा या हानि उठाना । (२) धोखे या भ्रम में पड़ना ।
जहकना—क्रि. स. [हि. झकना] चिढ़ना, कुढ़ना ।
जहतिया—संज्ञा पुं. [हि. जगात = कर] भूमिकर, लगान या जगात उगाहने या वसूलने वाला । उ.—साँचो सो लिखहार कहावै । " मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै—१-१४२ ।
जहदना—क्रि. अ. [हिं. जहदा] (१) कीचड़ या दलदल होना । (२) शिथिल पड़ना, थक जाना ।

जहदा—संज्ञा पुं.—दलदल, कीचड़ ।

जहना—क्रि. स. [सं. जहन] (१) त्यागना, छोड़ना । (२) नाश, नष्ट या बरबाद करना ।

जहन्नुम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) नरक । (२) वह स्थान जहाँ बहुत दुख और कष्ट हो ।

जहमत—संज्ञा स्त्री. [अ. जहमत] मुसीबत, झंझट ।

जहर, जहरि—संज्ञा स्त्री. [फा जह्र] (१) विष, गरल । उ.—अधर सुधा मुरली की पोषे जोग-जहर कत प्यावै रे—३०७० ।

मुहा.—जहर उगलना—(१) बहुत चुभनेवाली बात कहना । (२) जली-कटी सुनाना । जहर करना—बहुत तेज नमक करना । कड़ुआ जहर—(१) बहुत कड़ुआ । (२) जिसमें बहुत तेज नमक पड़ा हो । जहर का घूँट—बहुत बुरे स्वाद का । जहर का घूँट पीना—क्रोध को मन ही मन दबाना । जहर का बुझाया हुआ—बहुत कष्ट देनेवाला, बड़ा दुष्ट । जहर की गाँठ (पुड़िया)—बहुत दुखदायी ।

(२) अप्रिय बात या काम ।

मुहा.—जहर लगना—बहुत बुरा लगना ।

वि.—(१) घातक । (२) हानिकारक ।

संज्ञा पुं. [हि. जौहर] जौहर-व्रत ।

जहरी, जहरीला—वि. [हि. जहर + ईला] विषैला ।

जहाँ—क्रि. वि. [सं. यत्र, पा. यत्थ, प्रा. जह] जिस जगह, जिस स्थान पर ।

मुहा.—जहाँ का तहाँ—जिस स्थान पर हो, वहीं । जहाँ का तहाँ रह जाना—(१) आगे न बढ़ पाना । (२) कुछ काम या कारवाई न होना । जहाँ तहाँ—(१) (१) इधर-उधर, इतस्ततः । उ.—जहाँ तहाँ तैं सब आवैंगे, सुनि-सुनि सस्तौ नाम । अब तौ परयौ रहैगौ दिन-दिन तुमकौं ऐसौ काम—१-१६१ । (२) सब जगह, सब स्थानों पर । उ.—मंत्र-जंत्र मेरैं हरि-नाम । घट-घट मैं जाकौ बिस्राम । जहाँ तहाँ सोइ करत सहाइ । तासौं तेरौ कछु न बसाइ—७-२ ।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री. [फा] हाथ का एक जड़ाऊ गहना ।

जहाँदीद, जहाँदीदा—वि. [फा.] अनुभवी ।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] ससार का रक्षक ।

जहाज—संज्ञा पुं. [अ. जहाज] जलयान । उ.—बिनती करत मरत हौं लाज । नख-सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज—१-९६ ।

मुहा.—जहाज का कौवा (काग या पंछी)—(१) कौआ या पक्षी जो जहाज से इधर-उधर उड़कर जाय और आश्रय न मिलने पर फिर लौटकर आ जाय । इसकी तुलना ऐसे व्यक्ति से की जाती है जिसको इधर-उधर भटकने के बाद हारकर या लाचार होकर अंत में केवल एक व्यक्ति का ही आश्रय लेना पड़े । उ.—मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै । जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै—१-१६८ । (२) धूर्त, चालाक ।

जहाजी—वि. [हिं. जहाज] जहाज से संबंधित ।

जहान—संज्ञा पुं. [फा.] संसार, जगत ।

जहानक—संज्ञा पुं. [सं.] प्रलय ।

जहालत—संज्ञा स्त्री. [फा.] अज्ञान, मूर्खता ।

जहिया—क्रि. वि. [सं. यद्+हिया] जब, जिस समय ।

जहीं—क्रि. वि. [सं. यत्र, पा. यत्थ] (१) जहाँ या जिस स्थान पर ही । (२) ज्योंही, जैसे ही ।

जहीन—वि. [अ. जहीन] बुद्धिमान, स्मृतिवान् ।

जहूर—संज्ञा पुं. [अ. ज़हूर] प्रकाश ।

जहूरा—संज्ञा पुं. [अ. ज़हूरा] (१) दिखावा । (२) ठाठ ।

जहेज—संज्ञा पुं. [अ. जहेज़, मि. सं. दायज] दहेज ।

जह्नु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु । (२) एक ऋषि जिन्होंने सारी गंगा का पान करके उसे कान से निकाल दिया था ।

जह्नुजा, जह्नु तनया, जह्नुसुता—संज्ञा स्त्री. [सं. जह्नु + जा, तनया, सुता=पुत्री] जह्नु की पुत्री, गंगा ।

जह्नुसप्तमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैशाख शुक्ल सप्तमी, जब जह्नु ने गंगा का पान किया था ।

जाँग—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों की एक जाति ।

संज्ञा स्त्री. [हि. जाँघ] जाँघ, उरु ।

जाँगड़ा, जाँगरा—संज्ञा पुं. [देश.] भाट, बंदी आदि जो राजाओं का यश गाते हैं ।

जाँगर—संज्ञा पुं. [हिं. जाँघ] (१) शरीर । (२) हाथ-पैर ।

जाँगल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीतर। (२) मांस। (३) वह भू-भाग जहाँ जल कम बरसे। (४) इस भू-भाग में पाये जानेवाले हिरन आदि पशु।
वि.—जंगल-संबधी, जगली।

जाँगलि, जाँगलिक—संज्ञा पु. [सं.] (१) साँप पकडने वाला। (२) साँप का विष उतारनेवाला।

जाँगलू—वि. [हि. जंगल] जंगली, उजड्ड, गँवार।

जाँगुलि, जाँगुलिक—संज्ञा पु [सं.] (१) साँप पकडने-वाला। (२) साँप का विष उतारनेवाला।

जाँगुली—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष उतारने की विद्या।

जाँघ—संज्ञा स्त्री. [सं. जघा] घुटने और कमर के बीच का भाग, उरु।

जाँघा—संज्ञा पु. [देश.] (१) हल। (२) कुएँ की गराड़ी का खभा या धुरा।
संज्ञा स्त्री. [सं.] उरु, जांघ।

जांघिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊँट। (२) एक मृग। (३) हरकारे आदि जिन्हे बहुत दौड़ना पडता है।

जाँघिल—वि. [हि. जाँघ] पिछले पैर का लँगड़ा।
सज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की चिड़िया।

जाँच—संज्ञा स्त्री. [हिं. जाँचना] (१) जाँचने की क्रिया, भाव या परख। (२) खोज, गवेषणा।

जाँचक—सज्ञा पुं. [स. याचक] माँगनेवाला, भिखारी। उ.—जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै ? जौ जाँचै तौ रसना हारी—१-३४।
सज्ञा पुं. [हिं. जाँच] जाँचने या परीक्षा करनेवाला।

जाँचकता—संज्ञा स्त्री. [सं. याचकता, हिं. जाचकता] माँगने की क्रिया या भाव, भिखमगी।

जाँचत—क्रि. स. [हिं. याचना] (१) प्रार्थना या निवेदन करता है, माँगता है। उ.—असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—१-१७।

जाँचति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. याचना] प्रार्थना या निवेदन करती हूँ। उ.—प्रिय जनि रोकहि जान दै। हौं हरि-विरह-जरी जाँचति हौं, इती बात मोहिं दान दै—८०५।

जाँचन—क्रि. स. [हि. जाँचना] याचना करने (के लिए), माँगने (के हेतु)। उ.—नंद-पौरि जे जाँचन आए। बहुरौ फिरि जाचक न कहाए—१०-३२।

जाँचना—क्रि. स. [सं. याचन] (१) परख या परीक्षा करना। (२) प्रार्थना करना, माँगना।

जाँचा—क्रि. स. भूत. [हि. जाँचना] (१) परख या परीक्षा की। (२) माँगा, याचना की, निवेदन किया।

जाँचि—क्रि. स. [हि. याचना] प्रार्थना करके, माँगकर। उ.—सिव-बिरचि, सुर असुर, नाग-मुनि, सु तौ जाँचि जन आयौ। भूल्यौ भ्रम्यौ, तृषातुर मृग लौं, काहूँ स्रम न गँवायौ—१-२०१।

जाँचे—क्रि. स. [हि. जाँचना] माँगे, माँगने पर, प्रार्थना करने पर, (आश्रय आदि के लिए) निवेदन किया। उ.—(क) कलानिधान सकल गुन-सागर, गुरु धौं कहा पढाए (हो)। तिहि उपकार मृतक सुत जाँचे, सो जमपुर तैं ल्याए (हो)—१-७। (ख) जाँचे सिव बिरंचि-सुरपति सब, नैंकु न काहू सरन दयौ—६ ६। (ग) देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर। भए निहाल सूर सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर—९-१६।

जाँच्यो, जाँच्यौ—क्रि. स. [हि. जाँचना] माँगा, (किसी वस्तु के देने की) प्रार्थना की। उ.—(क) जन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराय ढरे—१०-२४। (ख) जिन जाँच्यौ जाइ रस नँदराय ढरे। मानो बरसत मास असाढ दादुर मोर ररे।

जाँजरा—वि. [सं. जर्जर] जीर्ण, जर्जर।

जाँझ—संज्ञा पु. [सं. झंझा] आँधी और वर्षा।

जाँत, जाँता—संज्ञा पु. [सं. यंत्र] आटा पीसने की चक्की जो जमीन में गड़ी होती है।

जांतव—वि. [सं.] (१) जीव-जतु का। (२) जीव-जतुओं से प्राप्त।

जाँपना—क्रि. स. [हि. चाँपना] दबाना।

जाँब—सज्ञा पुं [सं. जंबा] जामुन, जबूफल।

जांबवंत—संज्ञा पु. [सं. जाबवान] सुग्रीव का एक मत्री। उ.—(क) महाधीर गंभीर वचन सुनि जाँबवंत समुझाए। (ख) जाबवंत सुतासुत कहौं मम सुता बुधिवंत पुरुष यह सब सँभारे।

जांबव, जांबवक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जामुन का फल। (२) जामुन की बनी शराब या सिरका। (३) स्वर्ण।**

जांबवती—संज्ञा स्त्री. [सं. जाम्बवती] **जांबवान की कन्या जो श्रीकृष्ण को ब्याही थी।** उ.—जावबती अरपी कन्या भरि मनि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गये हरि-पुर को जहाँ जोगेस्वर जाय।

जांबवान—संज्ञा पुं. [सं.] **सुग्रीव का रीछ मत्री जो ब्रह्मा का पुत्र माना गया है। प्रसिद्धि है कि सतयुग में इसने वामन भगवान की परिक्रमा की थी; द्वापर में इसने स्यमतक मणि की खोज में गये श्रीकृष्ण से घोर युद्ध किया था और अंत में उन्हें पहचान कर अपनी पुत्री जांबवती उन्हे ब्याह दी थी।**

जांबवि—संज्ञा पुं. [सं.] **वज्र।**

जांबवी—संज्ञा स्त्री. [हि. जाबवती] **जाबवान की कन्या जाबवती जो श्रीकृष्ण को ब्याही थी।**

जांबुवत्, जांबुवान—सज्ञा पुं. [सं. जांबवान] **सुग्रीव का मत्री।**

जांबू—संज्ञा पुं. [सं. जंबू] **जंबू द्वीप।**

जाॅवत—अव्य. [सं यावत्] (१) **सब, सारा।** (२) **जब तक।** (३) **जितना।**

जाॅवर—संज्ञा पुं [हिं. जाना] **गमन, जाना, प्रस्थान।**

जा—सर्व. [हि. जो] **जो, जिस, जिसे।** उ.—नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे। जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे—१-६६।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **माता।** (२) **देवरानी।**

वि. स्त्री.—**उत्पन्न, जन्य, संभूत।**

वि. [फा.] **उचित, मुनासिब।**

क्रि. अ. [हिं. जाना] (**तुच्छतासूचक, आज्ञार्थक**) **जाओ, प्रस्थान या गमन करो।**

मुहा.—जा पड़ना—(१) **किसी जगह पर अकस्मात पहुँच जाना।** (२) **हारे-थके या लाचार होकर कहीं पहुँचना।** जा रहना—(१) **किसी स्थान पर थोड़ा समय काटने के लिए ठहरना।** (२) **जा बसना।**

जाइ—क्रि. अ. [हि. जाना] (१) **जाती है।**

प्र.—बरनि न जाइ—**वर्णन नहीं की जा सकती।** उ.—बरनि न जाइ भगत की महिमा, बारंबार बखानौं—१-११

(२) **जाकर।** उ.—भरि सोवै सुख-नीद मैं तहाँ सु जाइ जगावै—१-४४।

वि.—**व्यर्थ, वृथा, निष्प्रयोजन।**

जाइगौ—क्रि. अ. [हि. जाना] **जायगा।**

प्र.—लै जाइगौ—**ले जायगा।** उ.-पकरि कंस लै जाइगौ, कालहि परै खँभारि—५८६।

जाइफर, जाइफल—सज्ञा पुं. [हि. जायफल] **जायफल।**

जाइस—संज्ञा पुं. [हि. जायस] **रायबरेली जिले का एक प्राचीन नगर जहाँ सूफी फकीरो की गद्दी है।**

जाई—संज्ञा स्त्री. [सं. जा = उत्पन्न] **पुत्री, बेटी।**

सज्ञा स्त्री. [सं. जाती] **चमेली।**

क्रि. अ. [हि. जाना] **जाकर।** उ.—बहु दिन भए, हरि सुधि नहि पाई। आज्ञा होउ तौ देखौं जाई—१-२८६।

जाउँ—क्रि. अ. [हि. जाना] **जाऊँ, प्रस्थान करूँ।** उ.—तुम तजि और कौन पै जाउँ—१-१६४।

जाउँनि—संज्ञा स्त्री. [हि. जामुन] **जामुन का फल।**

जाउ—वि. [हिं. जाना] **व्यर्थ, वृथा, असफल, अपूर्ण।** उ.—वरु मेरी परतिज्ञा जाउ। इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट-राउ—१-२७४।

क्रि. अ. [हि. जाना] **जाय, प्रस्थान करे।**

प्र.—चली जाउ—**चली जाय, गमन करे।** उ.—चली जाउ सैना सब मोपर धरौ चरन रघुवीर। मोहिं असीस जगत-जननी की नवत न वज्र-सरीर—६-१०७।

जाउनि—सज्ञा स्त्री. [हि. जामुन] **जामुन।**

जाउर—संज्ञा पुं. [हि. चाउर = चावल] **खीर।**

जाए—क्रि. स. [हिं. जनना जाना] **उत्पन्न किय, पैदा किये।** उ.—(क) कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए? उनि कह्यौ, रिषि-किरिपा तैं जाए—६-१७४ (ख) ता सगति नव सुत तिन जाए—४-१२।

वि.—**पैदा किये हुए।** उ.—मथुरा क्यों न रहै जदुनदन जो पै कान्ह देवकी जाए—३४३४।

जाएस—संज्ञा पुं. [हि जायस] **रायबरेली जिले का एक नगर जहाँ सूफी फकीरो की गद्दी है।**

जाक—संज्ञा पुं. [सं. यक्ष] **यक्ष।**

जाकी—सर्व. [हि. जा=जो+की] जिसकी । उ.—जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै—१-१ ।

जाके—सर्व. [हि. जा=जो+के (प्रत्य.)] जिसके । उ.—मानी हार विमुख दुरजोधन, जाके जोधा है सौ भाई—१-२४ ।

जाकैं—सर्व. [हि. जा+कैं (प्रत्य.)] जिसके । उ.—रघुवीर मोसौं जन जाकैं, ताहि कहा सँकराई—६-१४८ ।

जाकों, जाकौं—सर्व. [हिं. जा+कौं (प्रत्य.)] जिसे, जिसको । उ.—जाकौं दीनानाथ निवाजैं । भव-सागर मैं कबहुँ न भूकै, अभय निसाने वाजैं—१-३६ ।

जाको, जाकौ—सर्व. [हि. जा+को] जिसको । उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भए नैन—२५५८ ।

जाख—संज्ञा स्त्री. [सं. यक्षिणी] यक्षिणी । उ.—कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ—३४६ ।

जाखन—संज्ञा स्त्री. [देश.] लकड़ी का पहिया जो कुम्रों की नींव में दिया जाता है, जमवट, नेवार ।

जाखनी, जाखिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. यक्षिणी] (१) यक्ष जाति की स्त्री । (२) कुबेर की पत्नी ।

जाग—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ] यज्ञ, मख । उ.—तप कीन्हैं सो देहैं आग । ता सेती तुम कीनौ जाग । जज्ञ कियैं ग्रंधवपुर जैहौ । तहाँ आइ मोकौं तुम पैहौ—६-२ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. जगह] (१) स्थान । (२) घर ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जागना] जागने या सावधान होने की क्रिया या भाव, जागरण, सतर्कता । उ.—घटती होइ जाहि ते अपनी ताकौ कीजै त्याग । धोखे कियो वास मन भीतर अब समुझे भइ जाग—११६५ ।

संज्ञा पु. [देश.] बिलकुल काला कबूतर ।

जागता—वि. [हि. जागना] (१) प्रभाव या महिमा प्रकट रूप से और तुरत दिखानेवाला । (२) प्रकाशमान ।

मुहा.—जागता—प्रत्यक्ष, साक्षात् ।

जागतिक—वि. [सं.] जगत से संबंधित, सांसारिक ।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री. [हि. जागना+ज्योति] (१) किसी देवी-देवता का प्रत्यक्ष चमत्कार । (२) दीपक ।

जागना—क्रि. अ. [सं. जागरण] (१) नींद त्यागना । (२) जाग्रत अवस्था में होना । (३) सजग या सावधान होना । (४) चमक उठना, उदित होना । (५) बढ़-चढ़कर होना, धनी, आढ्य या समृद्ध होना । (६) संगठित होना । (७) जलना । (८) पैदा होना, उपजना ।

जागनोल—संज्ञा पुं. [देश.] एक हथियार ।

जागवलिक—संज्ञा पु. [सं. याज्ञवल्क्य] याज्ञवल्क्य ।

जागर—संज्ञा पु [सं.] (१) जागना, जागरण । (२) कवच । (३) आंतरिक वृत्तियों की जाग्रत अवस्था ।

जागरण, जागरन—संज्ञा पुं. [सं. जागरण] (१) जागना, नींद त्यागना । (२) किसी धार्मिक अनुष्ठान के उपलक्ष में देवी-देवता का भजन-कीर्तन करते हुए सारी रात जागना । उ.—बासर ध्यान करत सब बीत्यौ । निसि जागरन करन मन चीत्यौ ।

जागरित—संज्ञा पुं. [सं] (१) जागने की अवस्था, जागरण । (२) इंद्रियों द्वारा कार्यों का अनुभव होता रहने की स्थिति या अवस्था ।

वि.—जागा हुआ, सजग, सावधान ।

जागरू—संज्ञा पुं. [देश.] भूसा, भुसैला अन्न ।

जागरूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो जाग्रत या चैतन्य हो । (२) पहरेदार, रखवाला ।

जागरूप—वि. [हिं. जागना+रूप] प्रत्यक्ष, स्पष्ट ।

जागर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जाग्रति । (२) चेतनता ।

जागहु—क्रि अ. [हि. जागना] (१) जागो, नींद त्यागो, सोकर उठो । उ.—बदन उघारि जगावति जननी, जागहु बलि गई आनँद-कंद—१०-२०४ । (२) सचेत, सजग या सावधान हो ।

जागा—संज्ञा स्त्री. [हि. जगह] जगह, स्थान ।

संज्ञा पुं. [हि जागरण] किसी उत्सव या व्रत में रात भर जागकर भजन-कीर्तन करना ।

जागि—क्रि. अ. [हिं. जागना] (१) जागकर, जागनेपर । उ.—(क) सोवत मुदित भयौ सपने मैं पाई निधि जो पराई । जागि परैं कछु हाथ न आयौ, यौं जग की प्रभुताई—१-१४७ । (ख) नारायन जल मैं रहे सोइ । जागि कह्यौ, बहुरो जग होइ—६-२ । (२) सचेत या सजग होने पर ।

जागी—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ] भाट।
क्रि. अ. [हि. जागना] होश में आयी, संज्ञा प्राप्त की, सचेत हुई। उ.—(क) स्याम नाम चक्रत भई स्रवन सुनत जागी—१६५१। (ख) किती दई सिख मंत्र साँवरे तउ हठ लहरि न जागी—२२७५।
जागीर—संज्ञा स्त्री. [फा.] राजा या शासक की ओर से किसी सेवा के पुरस्कार-रूप में मिली हुई भूमि।
जागीरदार—संज्ञा पुं. [फा.] वह जिसे किसी राजा या शासक से जागीर मिली हो।
जागीरी—संज्ञा स्त्री. [हि. जागीर+ई (प्रत्य.)] (१) जागीरदार होने की भावना। (२) अमीरी, रईसी।
जागुड़—संज्ञा पुं. [सं.] केसर।
जागृति—संज्ञा स्त्री. [सं. जाग्रत] जागरण, सजगता।
जागे—क्रि. अ. [हिं. जागना] (१) सोकर उठे। उ.—कमलनैन पौढे सुख-सेज्या, बैठे पारथ पाइ तरी। प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ, कब आए तुम, कुसल खरी?—१-२६८। (२) सजग हुए, चेते, सावधान हुए। उ.—जोग जुगति बिसरी सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)—१-४४।
जागै—क्रि. अ. [हि. जागना] जागने पर। उ.—जब जागै तब मिथ्या जानै—१०३-६।
जाग्यौ—क्रि. अ. [हि जागना] सचेत हुआ, सावधान हुआ। उ.—तीनौ पन ऐसैं ही खोयौ समय गए पर जाग्यौ—१-७३।
जाग्रत—वि. [सं.] जो जागता हो, सचेत, सजग।
जाग्रति—संज्ञा स्त्री. [सं. जाग्रत] जागरण, सजगता।
जाघनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जाँघ, जघा, उरु।
जाचक—संज्ञा पुं. [सं. याचक] (१) माँगनेवाले, मगन। उ.—नंद-पौरि जे जाँचन आए। बहुरौ फिरि जाचक न कहाए—१०-३२। (२)भीख माँगनेवाला, भिखमंगा।
जाचकता—संज्ञा स्त्री. [सं. याचक + ता (प्रत्य.)] (१) माँगने का भाव। (२) भीख माँगने की क्रिया।
जाचना—क्रि. स. [सं. याचन] (१) माँगना, याचना करना। (२) भीख माँगना।
जाजम, जाजिम—संज्ञा स्त्री. [तु.] (१) बेल-बूटेदार चादर। (२) गलीचा, कालीन।
जाजरा—वि. [सं. जर्जर] जीर्ण-शीर्ण, जर्जर।
जाजरी—संज्ञा पुं. [देश.] बहेलिया, चिड़ीमार।
जाजात—संज्ञा स्त्री. [हि. जायदाद] जायदाद।
जाज्वल्य—वि. [सं.] प्रकाशयुक्त, तेजवान।
जाज्वल्यमान—वि. [सं.] प्रकाशमान, तेजवान।
जाट—संज्ञा पुं—(१) एक जाति। उ.—ऐसे कुमति जाट सूरज कौ प्रभु बिनु कोउ न धात्र—१-२१६। (२) एक तरह का गाना।
संज्ञा स्त्री. [हि. जाठ] मोटा लट्ठा।
जाटलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोखा नामक वृक्ष।
जाठ, जाठि—संज्ञा पुं. [सं. यष्ठि] (१) कोल्हू का मोटा लट्ठा। (२) तालाब आदि में गडा हुआ लट्ठा।
जाठर—संज्ञा पुं. [सं. जठर] (१) पेट। (२) पेट की अग्नि जो भोजन पचाती है। (३) भूख।
वि.—(१) पेट सबधी। (२) पेट से उत्पन्न।
जाठराग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं. जठराग्नि] (१) पेट की आग। (२) भूख। (३) संतान आदि के प्रति माता की ममता।
जाड़—संज्ञा पुं. [हि जाड़ा] शीत, सरदी, जाड़ा।
वि.—बहुत अधिक, अत्यत।
जाड़नि—संज्ञा पुं. सवि. [हि. जाड़ा + नि (प्रत्य).] जाड़-पाले से, ठडक से। उ.—हा हा लागैं पाइ तिहारैं। पाप होत है जाड़नि मारैं—७६६।
जाड़ा—संज्ञा पु. [सं.] (१) शीत काल। (२) ठड।
जाड्य—संज्ञा पुं. [सं.] जड़ता, मूर्खता।
जात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जन्म। (२) पुत्र। (३) वह पुत्र जो माता के गुणो से युक्त हो। (४) जीव, प्राणी।
क्रि. अ. [हि जाना] (१) नष्ट होता है, नाश होता है। उ.—(क) रावन सौ नृप जात न जान्यौ, माया विषम सीस पर नाची—१-१८। (ख) रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई। फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई—१-६३। (२) जाता हुआ, जाने से। उ.—अधम कौन है अजामील तैं, जम जहँ जात डरै—१-३५।
वि.—(१) उत्पन्न, जन्मा हुआ। उ.—सदा हित यह रहत नाहीं, सकल मिथ्या जात—१६१७। (२)

व्यक्त, प्रकट । (३) अच्छा ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जाति] जाति ।

संज्ञा स्त्री. [अ. जात] (१) शरीर । (२) जरिया ।

जातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बच्चा । उ.—जानै कहा बाँझ ब्यावर दुख जातक जनहि न पीर है कैसी—३३२६ । (२) भिखारी । (३) वे बौद्धकथाएँ जिनमें बुद्धदेव के पूर्व जन्मों की बातें होती हैं ।

जातकर्म, जातक्रिया—संज्ञा पु., स्त्री. [सं.] एक संस्कार जो बालक के जन्म के समय हिंदुओं में होता है । उ.—जातकर्म करि पूजि पितर सुर पूजन विप्र बरायौ—सारा ३६२ ।

जातना, जातनाई—संज्ञा स्त्री [सं. यातना] पीड़ा, कष्ट । उ.—सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६ ।

जातपाँत—संज्ञा स्त्री. [सं. जाति+पंक्ति] जाति-बिरादरी ।

जातरा—संज्ञा स्त्री. [सं. यात्रा] यात्रा ।

जातरूप—संज्ञा पु. [सं.] (१) सोना । (२) धतूरा ।

जातवेद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्नि । (२) इंद्र ।

जाता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कन्या, पुत्री ।

वि. स्त्री.—उत्पन्न ।

संज्ञा पु. [हिं. जाँता] आटे की चक्की ।

जाति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हिंदू समाज का जन्मानुसार किया गया विभाग । (२) मानव समाज का निवास स्थान या कुल-परंपरा के अनुसार किया गया विभाग । (३) गुण, धर्म आदि के अनुसार किया गया विभाग, कोटि, वर्ग । उ.—याकी जाति अबै हम चीन्ही—३६१ । (४) वर्ण । (५) कुल, वंश । (६) गोत्र । (७) जन्म । (८) सामान्य, साधारण ।

क्रि. अ. [सं. यान=जाना, हिं. जाना] (१) जाती है, प्रस्थान करती है । उ.—यह अति हरिहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१-५१ । (२) नष्ट होती है । उ.—कीजै कृपा दृष्टि की बरषा जन की जाति लुनाई—१-१८५ ।

जातिकर्म—संज्ञा पु. [सं. जातिकर्म] बालक के जन्म के समय होनेवाला एक संस्कार ।

जातिच्युत—वि. [सं.] जाति से निकाला हुआ ।

जातित्व—संज्ञा पु [सं.] जाति का भाव, जातीयता ।

जातिधर्म—संज्ञा पु. [सं.] हर वर्ण का कर्तव्य ।

जाति-पाँति – संज्ञा स्त्री [सं. जाति + हिं. पाँति (पंक्ति)] जाति, वर्ण, कुल, गोत्र आदि । उ.—जाति-पाँति उन सम हम नाहीं । हम निर्गुन सब गुन उन पाहीं ।

जातिवैर—संज्ञा पुं. [सं.] सहज वैर या शत्रुता ।

जातिसंकर—संज्ञा पु. [सं.] वर्णसंकर, दोगला ।

जातिस्वभाव—संज्ञा पु. [सं.] एक अलंकार ।

जाती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चमेली । (२) मालती ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जाति] वर्ण, कुल, गोत्र आदि ।

संज्ञा पुं.—हाथी ।

वि. [अ. जाती] (१) अपना । (२) निजी ।

जातीय—वि. [सं.] जाति का, जाति-संबंधी ।

जातीयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जाति का भाव या प्रेम ।

जातु—अव्य. [सं.] कदाचित्, शायद ।

जातुज—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भवती की इच्छा ।

जातुधान—संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस, असुर ।

जातुधानि—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. जातुधान] (१) राक्षसी, निशाचरी । (२) राक्षसी पूतना । उ.—सेसनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बड़ाई । जातुधानि-कुच-गर मर्दत तब, तहाँ पूर्नता पाई—१-२१५ ।

जातू—संज्ञा पु. [सं.] वज्र, कुलिश, पवि ।

जातैं—क्रि. वि. [हिं. जा + तें (प्रत्य.)] जिससे । उ.—सोइ कछु कीजै दीनदयाल । जातैं जन छन चरन न छाँड़ै, करुनासागर, भक्तरसाल—१ १२७ ।

जातौ—क्रि. अ. [हिं. जाना] (१) जाता, होता । उ.—जम कौ त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ—१-२६७ । (२) नष्ट होता (है), जाता है । उ.—सूरदास कछु थिर न रहैगो जो आयौ, सो जातौ—१-३०२ । (३) जाता, प्रस्थान करता ।

संज्ञा पुं.—लै जातौ—क्रि. स.= ले जाता, साथ लिवा जाता । उ.—रावन मारि, तुम्हैं लै जातौ, रामाज्ञा नहिं पायौ—६-८८ ।

जात्य—वि. [सं.] (१) अच्छे वंश का, कुलीन । (२) श्रेष्ठ, उत्तम । (३) अच्छा लगनेवाला, सुंदर ।

जात्र, जात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. यात्रा] यात्रा । उ.—हुतौ

आढ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-बन-जात्र।
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६।

जात्री—संज्ञा पुं. [सं. यात्री] यात्रा करनेवाला।

जाथका—संज्ञा स्त्री. [सं. जूथिका] ढेरी, राशि।

जादव—संज्ञा पुं. [सं. यादव] यदुवंशी। उ.—यह कहि पारथ हरि-पुर गए। सुन्यौ, सकल जादव छै भए—१-२८६।

जादवनाथ, जादवपति—संज्ञा पुं. [सं. यादव+नाथ, पति] श्रीकृष्णचंद्र। उ.—(क) जन यह कैसे कहै गुसाईं। तुम बिनु दीनबंधु जादवपति, सब फीकी ठकुराई—१-१९५।

जादवराइ, जादवराई—संज्ञा पुं. [सं. यादव+हिं. राय] श्रीकृष्णचंद्र। उ.—(क) भक्तबछल श्री जादवराइ। भीषम की परतिज्ञा राखी, अपनौ बचन फिराइ—१-२६७। (ख) हरि सौं भीषम बिनय सुनाई। कृपा करी तुम जादवराई—१-२७७।

जादसपति, जादसपती—संज्ञा पुं. [सं. यादसांपति] जल-जीव-जंतु के स्वामी, वरुण।

जादा—वि. [फा. ज़्याद:] ज्यादा, अधिक।

जादू—संज्ञा पुं. [फा.] (१) अद्भुत काम, इंद्रजाल। (२) अद्भुत खेल या कृत्य। (३) टोना, टोटका। (४) मोहनी शक्ति।

जादूगर—संज्ञा पुं. [फा.] जादू करनेवाला।

जादूगरी—संज्ञा स्त्री. [फा.] जादूगर का खेल।

जादौ—संज्ञा पुं. [सं. यादव] यदुवंशी। उ.—रोवत सुनि कुंती तहँ आई। कहौ, कुसल जादौ-जदुराई—१-२८८।

जादौकुल—संज्ञा पुं. [सं. यादव+कुल] यादवकुल, यदुवंश। उ.—फूले फिरैं जादौकुल आनँद समूल मूल, अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४।

जादौपति—संज्ञा पुं. [सं. यादव+पति] श्रीकृष्णचंद्र। उ.—अब किहिं सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु, बलि, त्रास निवारी—१-२६०।

जादौराइ, जादौराई—संज्ञा पुं. [सं. यादव+हिं. राय] श्रीकृष्णचंद्र। उ.—तुम्हरी गति न कछु कहि जाइ। दीनानाथ, कृपाल, परम सुजान जादौराइ—३-३।

जान—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्ञान] (१) ज्ञान, जानकारी। (२) समझ, अनुमान, ख्याल, विचार।

यौ.—जान-पहचान—परिचय, जानकारी।

मुहा.—जान में—जानकारी में, ध्यान में।

वि. [सं. ज्ञानी] सुजान, ज्ञानवान, चतुर। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि जान-सिरोमनि राइ—१-८।

संज्ञा पुं. [सं. जानु] घुटना।

संज्ञा पुं. [फा. जानू] जाँघ, रान।

अव्य. [हिं. जानो] जानो, मानो।

संज्ञा पुं. [सं. यान] (१) सवारी। (२) विमान।

संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) प्राण, जीव, दम।

मुहा.—जान आना—जी ठिकाने होना, चित्त स्थिर होना। जान का गाहक (लेवा)—(१) मार डालने को इच्छा रखनेवाला। (२) परेशान करनेवाला। जान का रोग—सदा कष्ट देनेवाला विषय, व्यक्ति या वस्तु। जान के लाले पड़ना—जान बचाना कठिन हो जाना। अपनी जान को जान न समझना—(१) अपने प्राण की चिंता न करना। (२) बहुत ज्यादा परिश्रम करना, परिश्रम के आगे अपने सुख-दुख की परवाह न करना। दूसरे की जान को जान न समझना—दूसरे से बहुत ज्यादा परिश्रम कराना, अपने काम के आगे दूसरे के सुख-दुख को परवाह न करना। (दूसरी को, किसी को) जान को रोना—कष्ट देनेवाले को झुँझलाहट के साथ याद करके उसे बुरा-भला कहना। जान खाना—(१) बार-बार परेशान करना। (२) किसी बात या काम के लिए बार-बार कहना। जान खोना—मरना। जान चुराना—किसी काम को न करने की इच्छा से टाल-टूल करना। जान छुड़ाना—(१) किसी झंझट से बचने के लिए अपने को अलग रखना, संकट टालना। (२) प्राण बचाना। जान छूटना—(१) किसी झंझट या मुसीबत से छुटकारा मिलना। (२) प्राण बचना। जान जाना—मरना। (किसी पर) जान जाना—(किसी से) इतना प्रेम होना कि उसे बिना देखे विकल हो

जाना। जान जोखों—जीवन का संकट या डर। जान तोड़कर—बहुत परिश्रम करके। जान दूभर होना—झंझटों, कष्टों या संकटों के मारे जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना—मरना। (किसी पर) जान देना—(१) किसी के अप्रिय कार्य से दुखी होकर, लजाकर या क्रोध से मरना। (२) किसी को इतना चाहना कि उसके लिए प्राण देने को तैयार रहना। (किसी के लिए) जान देना—(किसी से) इतना ज्यादा प्रेम करना कि सब कुछ सहने, यहाँ तक कि प्राण तक देने, को तैयार रहना। (किसी वस्तु के लिए या पीछे) जान देना—किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिए प्राण तक देने को तैयार रहना। जान निकलना—(१) मरना। (२) डर लगना। (३) बहुत कष्ट होना। जान पड़ना—ज्ञात होना, मालूम पड़ना। जान पर आ बनना (नौबत आना)—(१) बहुत परेशानी होना। (२) जान बचना कठिन मालूम होना। जान पर खेलना—प्राण की परवाह न करके अपने को किसी संकट या मुसीबत में डालना। जान बचाना—(१) प्राण की रक्षा करना। (२) किसी झंझट या मुसीबत से बचने के लिए अपने को दूर रखना। जान मार कर काम करना—कड़ा परिश्रम करना। जान मारना—(१) मार डालना। (२) परेशान करना। (३) बहुत मेहनत करना। (४) कड़ा काम लेना। जान में जान आना—धीरज बँधना, भय या घबराहट का संकट-काल टल जाना। जान लेना—(१) मार डालना। (२) परेशान करना। (३) कड़ा काम लेना। जान सी निकलने लगना—(१) बहुत कष्ट होना। (२) संकट या कष्ट से घबड़ा जाना। जान सूखना—(१) भय या संकट के कारण स्तब्ध रह जाना। (२) बहुत बुरा लगना, परंतु कुछ कह न सकना, खल जाना। (३) बड़ा कष्ट होना। जान से जाना—(१) मरना। (२) बहुत कष्ट सहना या परेशान होना। जान से मारना—प्राण लेना। जान से हाथ धोना—मर जाना। जान हलकान (हलाकान) करना—तंग या हैरान करना। जान हलकान (हलाकान) होना—तंग या परेशान होना। जान हथेली पर लिये फिरना—जान की परवाह न करके संकट का सामना करना। जान होंठों पर आना—(१) प्राण निकलने को होना। (२) बहुत कष्ट होना।

(२) बल शक्ति। (३) उत्तम या श्रेष्ठ अंश या भाग, सार भाग या तत्व। (४) शोभा, सुंदरता, मजा या स्वाद बढ़ानेवाली चीज।

मुहा.—जान आना—शोभा या सुंदरता बढ़ना।

क्रि. अ. [हिं. जाना] (१) जाना, प्रस्थान करना। (२) बीतना, व्यर्थ जाना, निष्फल होना।

प्र.—लागे (लागो) जान—बीतने लगे, व्यर्थ ही कटने लगे। उ.—(क) हरि न मिले माई री जनम ऐसे ही लागो जान—२७४३। (ख) अब यों ही लागे दिन जान—२७४४। पाऊँ जान—जाने का मार्ग पाऊँ। उ.—चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानव दल, कैसें पाऊँ जान—६-७५।

क्रि. स. [हिं. जानना] जानकर, समझकर।

मुहा.—जान-अजान—जान बूझकर या बे समझे बूझे। उ.—जान-अजान नाम जो लेइ। हरि बैकुंठ बास तिहिं देइ—६-४। अपनें जान—अपनी समझ में, जहाँ तक मेरी बुद्धि जाती है। उ.—अपनें जान मैं बहुत करी—१-११५। जान पड़ना—(१) मालूम होना, प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। जानकर अनजान बनना—दूसरे को धोखा देने या स्वयं झंझट और परेशानी से बचने के लिए जानते हुए भी किसी प्रसंग में अनभिज्ञ बनना। जान-बूझकर—समझ-बूझकर, सोच-विचार कर। जान रखना—(१) ध्यान में रखना। (२) (चेतावनी देते या धमकाते हुए) समझाना।

जानई—क्रि. स. [हिं. जानना] (१) जानता (है), अनुभव करता (है)। उ.—दीपक पीर न जानई (रे) पावक परत पतंग। तनु तौ तिहिं ज्वाला जरयौ, (पै) चित न भयौ रस-भंग—१-३२५। (२) परवाह करती, ध्यान देती। उ.—कछु कुल-धर्म न जानई, रूप सकल जग राँच्यौ (हौ)—१-४४।

जानकार—वि. [हिं. जानना + कार (प्रत्य.)] (१)

जाननेवाला, जानकारी रखनेवाला। (२) कुशल, चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री. [हि. जानकारी] (१) विषय या प्रसंग का ज्ञान या परिचय। (२) कुशलता, विज्ञता।

जानकि, जानकी—संज्ञा स्त्री. [सं. जानकी] राजा जनक की पुत्री सीता जो श्रीरामचंद्र की पत्नी थीं। उ.—इहिं विधि सोच करत अति ही नृप, जानकि-ओर निरखि विलखात—६-३८।

जानकी-जानि—संज्ञा स्त्री. [स.] जानकी जिनकी स्त्री है वे रामचंद्र जी।

जानकी जीवन—संज्ञा पुं. [सं.] जानकी के लिए जीवन-रूप हैं जो वे रामचंद्र जी।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] जानकी के पति श्रीरामचंद्र-जी। उ.—सौ बातन की एकै बात। सब तजि भजौ जानकीनाथ।

जानकी मंगल—संज्ञा पुं. [सं.] तुलसीदास जी का एक काव्य जिसमें जानकी-विवाह वर्णित है।

जानकीरमण, जानकीरमन, जानकीरवन—संज्ञा पु. [सं. जानकीरमण] जानकी के पति श्रीराम।

जानत—क्रि. स. [हि. जानना] जानते हैं। उ.—जिहि जिहिं भाइ करत जन-सेवा अंतर की गति जानत—१-१३।

जानदार—वि. [फा.] (१) जिसमें जान हो, सजीव। (२) जिसमें बल या बूता हो, सबल।

संज्ञा पुं.—जीव, जानवर, प्राणी।

जाननहार—वि. [हि. जानना + हारा] जाननेवाला।

जानना—क्रि. स. [सं. ज्ञान] (१) किसी वस्तु या प्रसंग के संबंध में ज्ञान या जानकारी होना।

यौ.—जानना-बूझना-ज्ञान या जानकारी रखना।

मुहा.—किसी का कुछ जानना—(१) किसी से सहायता पाना। (२) किसी के किये हुए उपकार को मानना। मैं नहीं जानता—मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।

(२) सूचना या खबर पाना या रखना। (२) सोचना, अनुमान करना, अटकल लड़ाना।

जानपद—संज्ञा पु. [सं.] (१) जनपद संबंधी वस्तु या प्रसंग। (२) जनपद वासी। (३) देश। (४) लगान।

जानपदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वृत्ति। (२) एक अप्सरा।

जानपन, जानपना—संज्ञा पुं. [हि. जान+पन (प्रत्य.)] (१) जानकारी। (२) चतुराई, कुशलता।

जानपनी—संज्ञा स्त्री. [हि. जान + पन (प्रत्य.)] (१) जानकारी, अभिज्ञता। (२) चतुराई, कुशलता।

जानमनि, जानराय—संज्ञा पु. [हिं. जान + मणि, राय] ज्ञानियों में श्रेष्ठ, बहुत बुद्धिमान व्यक्ति, सुजान।

जानवर—संज्ञा पुं. [फा.] (१) जीव, प्राणी। (२) पशु।

वि.—मूर्ख, उजड्ड, नासमझ।

जानशीन—संज्ञा पुं. [फा.] (१) वह जो स्वीकृति लेकर किसी पद पर काम करे। (२) उत्तराधिकारी।

जानसिरोमनि—संज्ञा पु. [सं. ज्ञानशिरोमणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ, बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति गंभीर उदार उदधि हरि जान-सिरोमनिराइ—१-८।

जानहार—वि. [हि. जानना + हार (प्रत्य.)] जानने-समझनेवाला, जानकार।

वि. [हिं. जाना + हारा] (१) जानेवाला। (२) खो जानेवाला। (३) मरने या नष्ट हो जानेवाला।

जानहु—अव्य. [हि. जानना] जानो, मानो।

जाना—क्रि. स. [हिं. जानना] समझा, मालूम किया। उ.—पौरि-पाट टूटि परे, भागे दरवाना। लंका मैं सोर परयौ, अजहूँ तैं न जाना—६-१३६।

क्रि. अ. [सं. यान = सवारी] (१) गमन या प्रस्थान करना, अग्रसर होना।

मुहा.—किसी बात पर जाना—किसी बात या कथन पर ध्यान देना या उसे मान लेना।

(२) दूर या अलग होना। (३) हानि होना।

मुहा.—क्या जाना है—क्या हानि होनी है? किसी बात से भी जाना—बहुत कुछ करके भी कुछ हाथ या अधिकार न होना, कुछ करने योग्य न समझा जाना।

(४) खोना, चोरी होना। (५) (समय) बीतना या व्यतीत होना। (६) नष्ट या चौपट होना, बिगड जाना। (७) मरना। (८) बहना, प्रवाहित रहना।

क्रि. स. [सं. जनन] जन्म देना, पैदा करना।

जानि—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्नी, भार्या।

वि. [सं. ज्ञानी] (१) जानकार। (२) ज्ञानी।

क्रि. स. [हि. जानना] (१) **जान कर, समझ कर, सूचना पाकर।** उ.—जैसे तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ। अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ—१-२०। (२) **सावधान हो, होश में आ, चेत जा।** उ.—रे मन, आपु को पहिचानि। सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि—१-७०। (३) **जान-बूझकर।** उ.—(क) जानि बँधाए श्री बनवारी—३६१। (ख) औरन जानि जान मैं दीन्हौ—१०-३१४।

मुहा.—जानि बूझि—**जान बूझकर, सब कुछ समझते हुए भी।** उ.—जानि-बूझि मैं होत अजान—१-३४२।

जानिब—संज्ञा स्त्री. [अ.] **ओर, दिशा।**

जानिबदार—संज्ञा स्त्री [फा.] **पक्षपाती, तरफदार।**

जानिबदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] **पक्षपात, तरफदारी।**

जानिबो—क्रि. स. [हि. जानना] **जानना, समझना।** उ.—मेरे जीव ऐसी आवत भइ चतुरानन की साँझ। सूर बिन मिले प्रलय जानिबो इनही दिवसनि साँझ—२७६२।

जानियत—क्रि. स. [हि. जानना] **जानता(हूँ), समझता (हूँ), अनुभव करता (हूँ)।** उ.—जे जे जात, परत ते भूतल, ज्यौं ज्वालागत चीर। कौन सहाइ, जानियत नाहीं, होत बीर निर्बीर—१-२६६।

जानियै—क्रि स. [हि. जानना] **जानो, जान लो।**

प्र.—ना जानियै—**न जाने।** उ.—ना जानियै आहि धौं को वह, ग्वाल रूप वपु धारि—६०४।

जानिहौं—क्रि. स. [हिं. जानना] **जानूँगा, अनुभव करूँगा।** उ.—जानिहौं अब बाने की बात—१-१७६।

जानी—क्रि. स. [हिं. जानना] (१) **ज्ञात होना, जान पड़ना।** उ.—(क) अबिगत-गति जानी न परै। मन-बच-कर्म अगाध अगोचर, किहिं बिधि बुधि सँचरै—१-१०५। (ख) हरि, हौं महापतित, अभिमानी। परमारथ सौं बिरत, बिषय-रत, भाव-भगति नहिं नैंकहु जानी—१-१४६। (२) **जान ली, ज्ञात हो गयी।** उ.—(क) सूर स्याम उर ऊपर उबरे, यह सब घर-घर जानी—१०-५३। (ख) ब्रज भीतर उपज्यौ मेरौ रिपु, मैं जानी यह बात—१०-६०। (ग) उन ब्रज-बासिनि बात न जानी समुझे सूर सकट पग पेलत—१०-६३। (घ) तुमहिं भलैं करि जानो—५३४।

वि. [फा. जान] **जान से संबंध रखनेवाला।**

यौ.—जानी दुश्मन—**प्राण का गाहक शत्रु।**

संज्ञा स्त्री.—**प्राणप्यारी।**

जानु—संज्ञा पुं. [स.] **घुटना।** उ.—जानु-जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड—१-३०७।

संज्ञा पु. [फा. जानू] **जाँघ, रान।** उ.—जानु सुजानु करभ-कर आकृति, कटि-प्रदेस किंकिनि राजै—१-६६।

अव्य. [हिं. जानो] **मानो, जानो।**

जानुपाणि, जानुपानि—क्रि. वि. [सं. जानुपाणि] **पैयाँ-पैयाँ, हाथ-पैरो के बल।**

जानूँ—क्रि. स. [हि. जानना] **समझूँ, मानूँ, जानता हूँ।** उ.—और बात नहिं जानूँ—सारा. ११७।

मुहा.—तो मैं जानूँ—**(यदि अमुक कार्य हो जाय या बात ठीक सिद्ध की जा सके) तो मैं समझूँ।**

जानू—संज्ञा पु. [फा.] **जंघा, जाँघ।**

जानै—क्रि. स. [हि. जानना] **जान लेता है, ज्ञान रखता है, अनुभव करता है।** उ.—मन-बानी कौं अगम अगोचर सो जानै जो पावै—१-२।

जानो—अव्य. [हिं. जानना] **मानो, जैसे।**

जानौं—क्रि. स. [हिं. जानना] **जानता-समझता हूँ।**

जानौ—अव्य. [हिं जानना] **मानो, जैसे।**

जानौगे—क्रि. स. [हिं. जानना] **समझोगे, मानोगे।**

मुहा.—तब जानौगे—**(सावधान या मना करते हुए कहना कि अमुक कार्य करने पर) बुरा फल या परिणाम देखोगे।** उ.—अब जु कालि ते अनत सिधारो तब जानौगे तुम्हहिं हरी—११८४।

जान्य—संज्ञा पुं. [सं.] **एक ऋषि का नाम।**

जान्यो, जान्यौ—क्रि. स. [हि. जानना] (१) **पता हुआ, मालूम पड़ा, जाना, ज्ञात हुआ।** उ.—रावन सौ नृप जात न जान्यौ माया बिषम सीस पर नाची—१-१७।

(२) समझा, माना, अनुमान किया। उ.—पायौ बीच इंद्र अभिमानी हरि बिन गोकुल जान्यौ—२८२०।

जान्ह—संज्ञा पुं. [हि. जाँघ] जाँघ, रान।

जाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र या स्तोत्र की विधिपूर्वक आवृत्ति। उ.—लंपट-धूत, पूत दमरी कौ, विषय-जाप कौ जापी—१-१४०। (२) भगवान के नाम का बार-बार स्मरण-उच्चारण।

जापक—संज्ञा पुं. [सं.] जप करनेवाला।

जापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जप। (२) निवारण।

जापर—सर्व. [हिं. जा=जो+पर (प्रत्य.)] जिस पर। उ.—जापर दीनानाथ ढरै। सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोइ, जिहि पर कृपा करै—१-३५।

जापा—संज्ञा पुं. [सं. जनन] सौरी, सौरगृह।

जापी—संज्ञा पुं. [सं. जापिन] जापक, जप करनेवाला। उ.—माधौ जू, मोतैं और न पापी। लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, विषय-जाप कौ जापी—१-१४०।

जापू—संज्ञा पुं. [सं. जाप] जप, जाप।

जाफ—संज्ञा पुं. [अ. ज़ोफ, ज़ाफ] मूर्च्छा, बेहोशी।

जाफत—संज्ञा स्त्री. [अ. ज़ियाफत] भोज, दावत।

जाफरान—संज्ञा पुं. [अ. ज़ाफरान] केसर।

जाफरानी—संज्ञा पुं. [हि. जाफरान] केसर के रंग का।

जाव—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाना, गमन करना। उ.—इन नैननि के नीर सखी री सेज भई घरनाव। चाहत हौं ताही पै चढ़िकै हरि जी के ढिग जाव—२७६८।

जावजा—क्रि. वि. [फा.] जगह-जगह, इधर-उधर।

जावर—वि. [सं. जर्जर] बुड्ढा, वृद्ध।

जाबाल—संज्ञा पुं. [सं.] एक मुनि जिनकी माता का नाम जबला था। सत्यकाम नाम से भी इन्हे पुकारा जाता है।

जाबालि—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्री थे। इन्होंने चित्रकूट-सभा में राम को घर लौटने के लिए समझाया था।

जाबिर—वि. [फा.] जबरदस्त, अत्याचारी।

जाब्ता—संज्ञा पुं. [अ. जाब्ता] नियम, कानून।

जाम—संज्ञा पुं. [सं. याम] पहर, प्रहर, तीन घंटे का समय। उ.—रघुनाथ पियारे, आजु रहो (हो)। चारि जाम विस्राम हमारैं, छिन-छिन मीठे वचन कह्यौ (हो)—९-३३।

संज्ञा पुं. [फा.] (१) प्याला। (२) कटोरा।

संज्ञा पुं. [सं. जंबू] जामुन का फल।

जामगी—संज्ञा पुं. [लश.] तोप का पलीता।

जामत—क्रि. स. [हि. जमना] (१) उगता है। (२) उत्पन्न होता है। उ.—विरह दुख जहाँ नाहिं जामत नहीं उपजै प्रेम—२९०९।

जामदग्न्य—संज्ञा पुं. [सं.] जमदग्नि के पुत्र परशुराम।

जामदानी—संज्ञा स्त्री. [फा. जामःदानी] (१) एक कढ़ा हुआ कपड़ा। (२) शीशे या अबरक की बनी पेटी।

जामन—संज्ञा पुं. [हि. जमाना] वह दही या खट्टा पदार्थ जो दूध जमाने के काम आता है।

संज्ञा पुं. [सं. जंबू] जामुन का फल।

जामना—क्रि. अ. [हि. जमना] उगना, उत्पन्न होना।

जामनी—वि. [सं. यावनी] यवनों की।

जामल—संज्ञा पुं. [सं.] एक तंत्र।

जामवंत, जामवंत—संज्ञा पुं. [सं. जांबवान्] सुग्रीव का मित्र जो ब्रह्मा का पुत्र था। त्रेता में इसने श्रीरामचंद्र की सहायता की थी, द्वापर में श्रीकृष्ण ने इसे हरा कर इसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था और सतयुग में इसने वामन भगवान की परिक्रमा की थी।

जामवती—संज्ञा स्त्री. [सं. जांबवती] जांबवान की पुत्री जो श्रीकृष्ण को ब्याही थी। उ.—रिच्छराज वह मनि तासौं लै जामवती कहँ दीन्हीं—१० उ. २६।

जामा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कपड़ा, वस्त्र। (२) एक ढीला-ढाला पहनावा जो प्रायः विवाह आदि के अवसर पर अब भी पहना जाता है।

मुहा.—जामे से बाहर होना—बहुत क्रुद्ध होना। जामा (जामे) में फूला न समाना—बहुत प्रसन्न होना।

क्रि. अ. [हि. जमना] जमा, उगा, उत्पन्न हुआ।

संज्ञा पुं. [सं. याम] याम, पहर।

जामात, जामाता, जामातु—संज्ञा पुं. [सं. जामातृ] कन्या का पति, दामाद।

जामातनि—संज्ञा पु. बहु. [सं. जामातृ+हिं. (प्रत्य.)] जामाताओं को, दामादों को। उ.—तनया जामातनि कौं समदत, नैन नीर भरि आए—६-२७।

जामि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बहन, भगिनी। (२) पुत्री। (३) पतोहू। (४) कुल-गोत्र की स्त्री।

जामिक—संज्ञा पुं. [सं. यामिक] पहरेदार, रक्षक।

जामिन—संज्ञा पुं. [अ. ज़ामिन] जमानत करनेवाला।

जामिनि, जामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. यामिनी] रात। उ.—जाम रहत जामिनि के बीतैं, तिहि औसर उठि धाऊँ। सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसैं प्रभुहिं जगाऊँ—६-१८२।

संज्ञा स्त्री. [फा.] जमानत, जिम्मेदारी।

जामी—संज्ञा स्त्री. [सं. यामी] पहरुआ, रक्षक।

संज्ञा स्त्री. [सं. जामि] (१) बहन। (२) पुत्री।

संज्ञा पु. [हिं. जमना, जनमना] पिता।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जमीन] भूमि, जमीन।

जामुन—संज्ञा पुं. [सं. जंबु] एक छोटा बेर के बराबर फल जिसका रंग बैंगनी और काला होता है।

जामुनी—वि. [हिं. जामुन] बैंगनी या काले रंग का।

जामे—क्रि. अ. [हिं. जमना=उगना] जमे, उगे, उत्पन्न हुए। उ.—दधि-सुत जामे नंद-दुवार—१०-१७३।

जामेय—संज्ञा पु. [सं.] बहन का लड़का, भांजा।

जाय—अव्य. [फा. जा=ठीक] व्यर्थ, निष्फल।

वि.—उचित, वाजिब, ठीक।

जायका—संज्ञा पुं. [अ. ज़ायक़ा] स्वाद, लज्जत, मजा।

जायकेदार—वि. [हिं जायका+फा. दार] स्वादिष्ट।

जायचा—संज्ञा पु. [फा. जायचा] जन्मपत्री।

जायज—वि. [अ. जायज़] उचित, मुनासिब, ठीक।

जायजा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) जांच। (२) हाज़िरी।

जायद—वि. [फा. जायद] ज्यादा, अधिक।

जायदाद—संज्ञा स्त्री. [फा.] भूमि और धन-संपत्ति।

जायफर, जायफल—संज्ञा पु. [सं. जातीफल] एक सुगंधित फल।

जायस—संज्ञा पुं.—रायबरेली का समीपवर्ती एक प्राचीन स्थान जहां सूफी फकीरों की गद्दी है।

जाया—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्नी, भार्या। उ.—जरा मरन ते रहित अमायां। मात पिता सुत बंधु न जाया।

वि. [फा. जाया] खराब, नष्ट, व्यर्थ।

क्रि. स. [हिं. जनना] पैदा या उत्पन्न किया।

जायाजीव—संज्ञा पुं. [सं.] बगुला पक्षी।

जायु—संज्ञा पु. [सं.] औषध, दवा।

वि.—जीतनेवाला, जेता।

जाये—क्रि. स. [हिं. जनना] पैदा किये, जन्म दिया।

जायो, जायौ—क्रि. स. [हिं. जनना] जना, पैदा किया, जन्म दिया। उ.—(क) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ। मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ—१०-२१५। (ख) धनि जसुमति ऐसौ सुत जायौ—१०-२४८।

वि.—उत्पन्न या पैदा किया हुआ। उ.—अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि कौ जायौ—३५६।

जार—संज्ञा पुं. [सं. जाल] जाल, फंदा। उ.—दसौं दिसि तैं कर्म रोक्यौ, मीन कौं ज्यौं जार—२-४।

संज्ञा पुं. [सं.] उपपति, प्रेमी।

वि.—मारनेवाला, नाशक।

क्रि. स.—जलाना, आग लगाना।

प्र.—जार दई—जला दी। उ.—चले छुड़ाय छिनक मैं तबहीं जार दई सब लंक—सारा. २८६।

जारकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] व्यभिचार।

जारज—संज्ञा पुं. [सं.] उपपति से उत्पन्न संतान।

जारजयोग—संज्ञा पुं. [सं.] जन्मपत्री में पड़नेवाला एक योग जिससे ज्ञात होता है कि संतान जारज है।

जारण—संज्ञा पुं [सं.] धातु को भस्म करना।

जारत—क्रि. स. [हिं. जलाना] जलाती है, भस्मती है। उ.—(क) काल अगिनि सबही जग जारत—१-२८४। (ख) हौं तो मोहन की बिरहजरी रे तू कत जारत रे पापी—२८४६।

जारन—संज्ञा पुं. [हिं. जलाना] (१) ईंधन; लकड़ी, कंडे आदि। (२) जलाना, बलाना, सुलगाना।

क्रि. स.—जलाने, भस्म करने। उ.—(क) अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र कौं दियौ चलाइ। गर्भ परीच्छित जारन गयौ। तब हरि ताहि जरननहिं दयौ—१-२८९। (ख) पुनि रिपिहूँ कौं जारन लाग्यौ—९-५।

वि.—जलानेवाला। उ.-महापतित कुल तारन, एक नाम अघ जारन, दारुन दुख विसरावन—१०-२५१।

जारनहार—संज्ञा पुं. [हि. जलाना+हार (प्रत्य.)] जलाने-वाला। उ.—मीठे वचन सुहाये वोलत अंतर जारन हार—२७८७।

जारना—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाना।

जारा—संज्ञा पुं. [हि. जाला] जाला।

जारि—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाकर, नष्ट करके। उ.—हरि की सरन महँ तू आउ। काम-क्रोध-विषाद-तृष्ना, सकल जारि वहाउ—१-३१४।

जारिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यभिचारिणी स्त्री।

जारी—वि. [अ.] (१) वहता हुआ, प्रवाहयुक्त। (२) चलता हुआ, प्रचलित।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) झरवेरी। (२) एक मुहर्रमी गीत जो प्राय स्त्रियाँ गाती हैं।

संज्ञा स्त्री. [सं. जार+ई (प्रत्य.)] व्यभिचार।

क्रि. स. [हि. जलाना] जला दी, जलायी। उ.—(क) भैया-बंधु-कुटुंव घनेरे, तिनतैं कछु न सरी। लै देही घर-वाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१। (ख) तव वियोग सोक तौ उपज्यौ काम देह तनु जारी—२७६२।

वि.—जलायी या सताई हुई। उ.—विट वाहर गृह गृह प्रति दुरि जाति आवति विकल मदन की जारी—२२६६।

जारुथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन नगरी।

जारुधि—संज्ञा पुं. [सं.] एक पर्वत।

जारूथ्य, जारूथ्य—संज्ञा पुं. [सं. जारूथ्य] वह अश्वमेध जिसमें तिगुनी दक्षिणा ली जाय।

जारे—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाये, दग्ध किये। उ.—चल तन चपल रहत थिरकै रथ विरहिन के तनु जारे—२८६२।

जारै—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाता है, भस्मता है, नष्ट करता है। उ.—अंतकाल जो नाम उचारै। सो सव अपने पापनि जारै—६-४।

जारोब—संज्ञा स्त्री. [फा.] झाड़ू, वुहारी।

जारौं—क्रि. स. [हिं. जलाना] जलाता हूँ, नष्ट करता हूँ। उ.—सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र सुदरसन जारौं—१-२७२।

जारौ—क्रि. स. [हि. जलाना] जलाती है, पीड़ित करती है। उ.—तृष्ना-तड़ित चमकि छनहीं-छन, अहनिसि यह तन जारौ—१-२०६।

जार्यक—संज्ञा पुं. [सं. जार्य्यक] एक मृग।

जार्‌यौ—क्रि. स. [हि. जलाना] (१) जलाया। उ.—ज्वाला प्रीति प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौं पतंग तन जार्‌यौ—१-१०२। (२) पीड़ित किया, दुख दिया। उ.—हिरनाकुस प्रह्लाद भक्त कौं वहुत सासना जार्‌यौ—१-१०६।

जालंधर-संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि। (२) एक दैत्य।

जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री. [सं. जालंधर=एक दैत्य] माया, जादू।

जाल—संज्ञा पुं. [सं.] तार या सूत का बुना हुआ पट जो मछलियों, चिड़ियों आदि को फँसाने के काम में आता है। उ.—मेल्यौ जाल काल जब खैंच्यौ, भयौ मीन-जल-हार्‌यौ—१-६७।

मुहा.—जाल डालना (फेंकना)—मछलियों आदि को फँसाने के लिए जल में जाल डालना। जाल फैलाना (विछाना)—पक्षियों को फँसाने के लिए जाल लगाना।

(२) किसी को फँसाने की युक्ति या तदवीर।

मुहा.—जाल फैलाना (विछाना)—किसी को फँसाने या वश में करने का उपाय करना।

(३) मकड़ी का जाला। (४) समूह। उ.—(क) वल मोहन वन ते वने आवत लीने गैया जाल—२३७१। (ख) कुटिल अलक विना वपन के मनौ अलि-सिसु-जाल—१०-२३४। (ग) भागे जंजाल जाल—१०-२०५। (५) इन्द्रजाल, जादू। (६) झरोखा। (७) अभिमान। (८) क्षार, खार। (९) कदम का पेड़। (१०) एक तोप। (११) फूल की कली।

संज्ञा पुं. [अ. जअल] धोखा देने का उपाय।

जालक—संज्ञा पु [सं.] (१) जाल। (२) कली। (३)

समूह । (४) झरोखा । (५) मोतियों का एक आभूषण । (६) केला । (७) घोंसला । (८) अभिमान ।

जालजीवी—संज्ञा पुं. [सं.] मछुआ, धीवर ।

जालदार—वि. [सं. जाल+फा. दार] छेददार ।

जालना—क्रि. स. [हिं. जलाना] जलाना ।

जालपाद—संज्ञा पुं. [सं] (१) हंस । (२) वह पक्षी जिसके पैर की उँगलियों पर जालदार झिल्ली हो ।

जालप्राया—संज्ञा स्त्री. [सं.] कवच, जिरहबख्तर ।

जालरंध्र—संज्ञा पुं. [सं.] झरोखा ।

जालव—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो वलवल का पुत्र था और श्रीबलदेव जी द्वारा मारा गया था ।

जालसाज—संज्ञा पुं [अ. जअल+फा. साज़] जालिया ।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जालसाज] दगाबाजी ।

जाला—संज्ञा पुं. [सं. जाल] (१) समूह । उ.—कंबुकंठ, भुज नैन विसाला । कर केयूर कंचन नगजाला—६२५ । (२) मकड़ी का जाल । (३) आँख का एक रोग । (४) सूत या सन का जाल । (५) बड़ा बरतन ।

जालाक्ष—संज्ञा पु. [सं.] गवाक्ष, झरोखा ।

जालिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाल बुननेवाला । (२) जाल से पशु-पक्षियों को फँसाने वाला । (३) मदारी, जादूगर । (४) मकड़ी ।

जालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पाश, फंदा, जाल । (२) जाली । (३) विधवा स्त्री । (४) कवच । (५) मकड़ी । (६) लोहा । (७) समूह ।

जालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तरोई । (२) चित्रशाला ।

जालिम—वि. [अ. ज़ालिम] अत्याचारी ।

जालिया—वि. [हि. जाल=फरेब+इया (प्रत्य.)] छली-कपटी, धोखेबाज, दगाबाज, फरेबी ।

संज्ञा पुं. [हिं जाल+इया (प्रत्य.)] धीवर ।

जाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तरोई । (२) परवल ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जाल] (१) छोटे-छोटे छेदों का समूह । (२) महीन छेद काढ़ने-बनाने का काम । (३) महीन छेददार कपड़ा । (४) कच्चे आम की गुठली के ऊपर का तंतु-समूह ।

वि. [अ. जअल] नकली, बनावटी ।

वि. [हिं. जलाना] जलायी हुई । उ.—सूरदास प्रभु तव न मुई हम जिवहिं बिरह की जाली—३२२८ ।

जालीदार—वि. [हिं. जाली + दार] जिसमें जाली हो ।

जाल्म—वि. [सं.] (१) नीच । (२) मूर्ख ।

जाल्मक—वि. [सं.] गुरु आदि का द्वेषी ।

जाल्य—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

जाव—क्रि. स. [हिं. जाना] जाओ । उ.—सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भाई पोइसि—१-३३३ ।

जावक—संज्ञा पुं. [स. यावक] पैरों में लगाने का अलता । उ.—कहिहैं न चरनन देन जावक गुहन वेनी फूल—२७५६ ।

जावत—अव्य. [सं. यावत्] (१) सब, सारा । (२) जब तक । (३) जहाँ तक ।

जावदेक—अव्य., वि. [सं. यावत्+एक] जितनी भी, जो कुछ भी । उ.—घर वाहर ते वोलि लेहु सब जावदेक ब्रजवाल—३२७४ ।

जावन—संज्ञा पुं. [हिं. जामन] वही जमाने का जामन । उ.—(क) नई दोहिनी पोंछि पखारी धरि निधूम खीर पर तायौ । तामें मिलि मिस्रित मिस्री करि दै कपूर पुट जावन नायौ । (ख) कोउ दधि मैं जावन पय फेरै—पृ. ३३८ (७५) ।

जावित्री—संज्ञा स्त्री. [स. जातिपत्री] जायफल का ऊपरी सुगंधित छिलका ।

जावै—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाता है ।

मु.—मिटि जावै—नष्ट हो जाता है । उ.—बहुरौ ताहि बुढापा आवै । इंद्री-सक्ति सकल मिटि जावै—३-१३ ।

क्रि. स. [सं. जनन] उत्पन्न करे, पैदा करे, जने । उ.—(क) धनि जननी जो सुभटहिं जावै । भीर परैं रिपु कौ दल दलि-मलि, कौतुक करि दिखरावै—९-१५२ । (ख) मातु कहै कन्या कुल को दुख जनि कोऊ जग जावै—१२२३ ।

जाषक—संज्ञा पुं. [सं.] पीला चंदन ।

जाषनी, जाषिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. यक्षिणी] (१) यक्ष की स्त्री, यक्षिणी । (२) कुबेर-पत्नी ।

जासु, जासू—वि. [हिं. जो] जिसका ।

जासूस—संज्ञा पुं. [अ.] भेदिया, गुप्तचर।
जासूसी—संज्ञा स्त्री. [हि. जासूस] जासूस का काम।
जासौं—सर्व. [हि. जा+सौं (प्रत्य.)] जिससे। उ.—घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी—१-७६।
जास्पति—संज्ञा पुं. [सं.] जँवाई, दामाद।
जाहक—संज्ञा पुं. [सं.] बिछौना, बिस्तर।
जाहर, जाहिर—वि. [अ. जाहिर] (१) जो छिपा न हो, खुला हुआ। (२) विदित, जाना हुआ।
जाहि—क्रि. अ. [हि. जाना] जा, जाओ। उ.—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैं पुर लै जाहि—१-३१०। वि. [हि. जा+हि] जिसको।
जाहिरा—क्रि. वि. [अ. ज़ाहिरा] प्रकट रूप से।
जाहिरी—वि. [अ. ज़ाहिरा] जाहिर, प्रकट।
जाहिल—वि. [अ.] (१) मूर्ख। (२) अपढ़।
जाहीं—क्रि. अ. [हिं. जाना] (१) जाते हैं, जाना होता है। उ.—सूरदास हरि भजौ गर्व तजि, विमुख अगति कौं जाहीं—२-३३। (२) बीतते हैं, (दिन आदि) व्यतीत होते हैं। उ.—नेम-धर्म हीं मैं दिन जाहीं—७६६।
प्र.—रीझि जाहीं—प्रसन्न हो जाते हैं। उ.—कबहुँ कियैं भक्ति हूँ के न ये रीझिहीं, कबहुँ कियैं बैर के रीझि जाहीं—८-८।
जाही—संज्ञा स्त्री. [सं. जाति] (१) चमेली की जाति का एक सुगंधित फूल। उ.—जाही जूही सेवती करना कनिआरी—१८२३। (२) एक तरह की आतिशबाजी।
जाहु—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाओ। उ.—मिथ्या तन कौ मोह बिसार। जाहु रहौ भावै गृह-वार—३-१३।
जाहुगे—क्रि. अ. [हि. जाना] जाओगे, प्रस्थान करोगे। उ.—नंद बबा की बात सुनौ हरि। मोहि छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौं धरि—१०-६८१।
जाह्नवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जह्नु से उत्पन्न गंगा।
जिंद—संज्ञा पुं. [अ.] भूत, प्रेत, जिन।
जिंदगानी, जिंदगी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) जीवन। (२) जीवन-काल, आयु।
मुहा.—जिंदगी के दिन पूरे करना (भरना)—(१) कष्ट से जीवन बिताना। (२) मरने के समीप होना।
जिंदा—वि. [फा.] जो जीवित या जीता हो।
जिंदा दिल—वि. [फा.] खुशमिजाज, हँसोड़।
जिंवाइ—क्रि. स. [हि. जिमाना] खाना खिला कर, जिमाकर। उ.—मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ। आहुति अगिनि जिवाइ सँतोषी, निकस्यौ रथ बहु रतन बनायौ—९-१४१।
जिंवाना—क्रि. स. [हि. जिमाना] भोजन कराना।
जिंवावति—क्रि. स. [हि. जिमाना] खिलाती है, भोजन कराती है। उ.—सरस बसन तन पोछि गई लै, षटरस की ज्योनार जिवावति—५१४।
जिंवावै—क्रि. स. [हि. जिमाना] खिलाता है, भोजन कराता है, भोग लगाता है। उ.—इच्छा करि मैं बाह्मन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिझावै। वह अपने ठाकुरहिं जिवावै, तू ऐसैं उठि धावै—१०-२४६।
जिंस—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) प्रकार, किस्म, तरह। (२) चीज, वस्तु। (३) सामान। (४) अन्न, अनाज।
जिअन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन, हिं. जीना] जीना, जीवित रहना। उ.—काल-अगिनि सबही जग जारत। तुम कैसैं कै जिअन बिचारत—१-२८४।
जिआना—क्रि. स. [हि. जिलाना] जीवित करना।
जिआवत—क्रि. स. [हि. जिलाना] जीवित करता है, जिलाता है। उ.—सखी री चातक मोहिं जिआवत—२८४५।
जिउ—संज्ञा पुं. [हिं. जीव] जीव-जंतु, प्राणी।
जिउका—संज्ञा स्त्री. [सं. जीविका] रोजी, जीविका।
जिउकिया—संज्ञा पुं. [हि. जीविका, जिउका] (१) जीविका पैदा करनेवाले। (२) कठिनता से प्राप्त वस्तुओं का व्यापार करनेवाले पहाड़ी लोग।
जिउतिया—संज्ञा स्त्री. [सं. जिता या जीमूत] आश्विन कृष्ण या शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन पुत्रवती स्त्रियों द्वारा किया जानेवाला एक व्रत।
जिउलेवा—वि. [हि. जीव+लेना] बहुत कष्टदायी।
जिए—क्रि. स. [हिं. जीना] जीता है, जीवित रहता है। उ.—नैन दरस देखन कौं दिए। मूढ देखि परनारी जिए—४-१२।
जिऐं—क्रि. स. [हिं. जीना] जीवित रहने (से) न

मरन (से)। उ.—सूरजदास विमुख जो हरि तें, कहा भयौ जुग कोटि जिएँ—१-८६ ।

जिकिर, जिक्र—संज्ञा पु. [अ. जिक्र] चर्चा, प्रसंग ।

जिगर—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कलेजा। (२) चित, मन । (३) साहस, हिम्मत । (४) सार भाग, गूदा । (५) पुत्र ।

जिगरा—संज्ञा पुं [हिं. जिगर] हिम्मत, साहस ।

जिगरी—वि. [फा.] (१) भीतरी, दिली । (२) बहुत घनिष्ट ।

जिगिन—संज्ञा स्त्री. [सं जिगिनी] एक जगली पड ।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जय या विजय पाने की इच्छा । (२) उद्यम ।

जिच, जिच्च—संज्ञा स्त्री. [फा. जिच] (१) विवशता, लाचारी । (२) कोई मार्ग, चारा या उपाय न होना, गतिरोध ।

वि.—विवश, लाचार, तग, मजबूर ।

जिजिया—संज्ञा स्त्री. [हि. जीजी] बहन, भगिनी ।

संज्ञा पु. [फा. जजिय] जजिया कर ।

जिज्ञासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नयी बात जानने या जानकारी प्राप्त करने की इच्छा । (२) पूछताँछ ।

जिज्ञासु, जिज्ञासू—वि. [सं.] (१) जानकारी प्राप्त करने या नयी बात जानने का इच्छुक । (२) खोजी ।

जिज्ञास्य—वि. [सं.] जो जानने योग्य हो ।

जिठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठ] बड़ाई, जेठापन ।

जिठानी—संज्ञा स्त्री. [हि. जेठ] जेठ की पत्नी ।

जिठैरौ—संज्ञा पुं. [हिं. जेठ, जेठा] बड़ा दुलारा पुत्र । उ.—देखियत नहिं भवन माँझ, जैसोइ तन तैसि साँझि, छल सौं कछु करत फिरत महरि कौ जिठेरौ—१०-२७६ ।

जित—क्रि. वि. [सं. यत्र] जिधर, जिस ओर । उ.—जित जित मन अर्जुन कौ तितहिं रथ चलायौ–१-२३ ।

मुहा.—जित - तित—इधर - उधर, यहाँ वहाँ, जिधर-तिधर । उ.—नाम अधार नहीं अवलोकत जित-तित गोता खात—१-१६५ ।

संज्ञा पुं. [स.] जीत ,विजय ।

वि. [सं.] (१) जो जीत लिया गया हो । (२) जीतनेवाला । उ.—इंद्रि - जित हौं कहावत हुतौ—८-१० ।

जितक—वि. [हिं. जितना] जितने (संख्या या परिमाणवाचक) । उ.—मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं—१-१५१ ।

जितना—वि. [हिं. जिस+तना (प्रत्य.)] जिस मात्रा या परिणाम का ।

क्रि. वि.—जिस मात्रा या परिमाण में ।

जितलोक—वि. [सं.] पुण्यो के कारण स्वर्गादि उच्चलोक प्राप्त करनेवाला ।

जितवना—क्रि. स. [सं. ज्ञात] प्रकट करना ।

जितवाना—क्रि. स. [हि. जिताना] जीतने देना ।

जितवार, जितवैया—वि. [हिं. जीतना] जीतनेवाला ।

जिताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जीत] जीत, विजय ।

क्रि. स. [हिं. जीतना] जीतने दिया ।

जिताए—क्रि.स. [हिं. जिताना] जीतने में समर्थ किया, विजयी बनाया । उ.—पाडव पाँच भजे प्रभु चरननि रनहिं जिताए हैं जदुराई—१-२४ ।

जितात्मा—वि. [सं. जितात्मन्] जितेंद्रिय ।

जिताना—क्रि. स. [हि. 'जीतना' का प्रे.] जीतने में समर्थ करना, जीतने देना ।

जितार—वि. [सं. जित्वर] (१) जीतनेवाला । (२) जो जीत सके । (३) भारी वजन या भार का ।

जितारि—वि. [सं.] जितेंद्रिय ।

संज्ञा पुं.—गौतम बुद्ध का एक नाम ।

जितावै—क्रि. स. [हिं. जिताना] जिता दे, विजयी करा दे । उ.—तौ हम कछु न बसाइ पार्थ, जौ श्रीपति तोहिं जितावै—१-२७५ ।

जिताष्टमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आश्विन कृष्ण या शुक्ल अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियो का एक व्रत ।

जिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीत, विजय ।

जितिक—वि. [हि. जितना] जितने (संख्या.) । उ.—जितिक बोल बोल्यौ तुम आगैं, राम प्रताप तुम्हारैं । सूरदास प्रभु की सौं साँचै, जन करि पैज पुकारैं—६-१०७ ।

जिती—क्रि. अ. [हि. जीतना] जीती, विजयी हुई ।

उ.—खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हार रघुपति जिती जनक की—६-२५।

वि. [हिं. जिस] जितनी। उ.—(क) हुतीं जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी—१-१३०। (ख) सुनहु कृपानिधि, जिती कृपा तुम या काली पै कीन्ही—५७०।

जितेंद्रिय—वि. [स.] (१) जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। (२) समान वृत्तिवाला, शांत।

जिते—वि. [हिं. जितना] जितने (सख्या-सूचक)। उ.—(क) जानत जदुनाथ, जिते जन निज भुज-स्रम-सुख पायौ—१-१५। (ख) पाप-मारग जिते सबै कीन्हे तिते—१-११०।

जितै—क्रि. स. [हिं. जीतना] जीते, विजयी हो। उ.—हरि कृपा करै जिहिं, जितै सोई—८-१०।

क्रि. वि. [सं. यत्र, प्रा. यत्त] जिस ओर।

जितैया—वि. [हिं. जीतना] जीतनेवाला, विजयी।

जितो, जितौ—वि. [हि. जिस] जिस परिमाण का। उ.—आनि देहि अपने घर तैं हम, चाहति जितौ जसोवै—३४७।

जित्—वि. [सं.] जीतनेवाला, जेता, विजयी।

जित्य—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा हल।

जित्वर—वि. [सं.] जीतनेवाला, विजयी।

जिद—संज्ञा स्त्री. [अ. ज़िद] (१) हठ। (२) बैर।

मुहा.—जिद पर आना (पकड़ना)—हठ करना।

जिदियाना—क्रि. अ. [हि. जिद] हठ करना।

जिद्द—संज्ञा स्त्री. [हि. जिद] हठ, अड़।

जिद्दी—वि. [हिं. जिद] (१) हठी, अड़नेवाला। (२) दूसरे की बात न माननेवाला, दुराग्रही।

जिधर—क्रि. वि. [हि. जिस+धर (प्रत्य.)] जिस ओर।

जिधर-तिधर—(१) इधर-इधर। (२) बेठिकाने।

जिन—सर्व. ['जिस' का बहु.] जिन्होंने, जिसने। उ.—सब करतूति कैकई कैं सिर, जिन यह दुख उपजायौ—६-५०।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) सूर्य। (३) बुद्धदेव। (४) जैनों के तीर्थंकर।

संज्ञा पुं. [अ.] भूत-प्रेत, जिन।

अव्य. [हि. जनि] नहीं, मत। उ.—जिन कोउ काहू के बस होइ—२८११।

जिनकौ—सर्व. [हि. जिन+कौ (प्रत्य.)] जिनका।

जिना—संज्ञा पुं [अ. ज़िना] व्यभिचार।

जिनि—अव्य. [सं. जनि] नहीं, मत, न (निषेधात्मक)। उ.—(क) सूरदास आपुहि समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३। (ख) द्वारे खड़े रहे हैं, कबके जिनि रे गर्व करै जिय भारी—२५८६।

जिनिस—संज्ञा स्त्री. [फा. जिस] अनाज, सामान।

जिन्ह—सर्व. [हिं. जिन] 'जिस' का बहुवचन।

जिब्भा—संज्ञा स्त्री. [सं. जिह्वा] जीभ, जबान।

जिभला—वि. [हिं. जीभ+ला (प्रत्य.)] चटोरा, चट्टू।

जिभ्या—संज्ञा स्त्री. [सं. जिह्वा] जीभ, जबान।

जिमाना—क्रि. स. [हिं. जीमना] भोजन कराना।

जिमि—क्रि. वि. [हि. जिस+इमि] जैसे, ज्यो।

जिम्मा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) भारग्रहण, उत्तरदायित्व, प्रतिज्ञा, जवाबदेही। (२) देखरेख, संरक्षा।

जिम्में—संज्ञा पुं. [अ. जिम्मा] ऋण-स्वरूप रकम होना, देना ठहरना। उ.—मोहरिल पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी विपरीत। जिम्में उनके, माँगैं मोतें, यह तौ बड़ी अनीति—१-१४३।

मुहा.—किसी के जिम्मे करना—(१) काम सौंपना। (२) देखरेख में रखना। किसी के जिम्मे रुपया आना (निकलना, होना)—किसी के ऊपर ऋण होना। किसी के जिम्मे रुपया डालना—किसी के ऊपर ऋण ठहराना।

जिम्माधार, जिम्मेदार, जिम्मेवार—वि. [हिं. जिम्मा] जो किसी बात का जिम्मा ले चुका हो।

जिम्मावारी, जिम्मेदारी, जिम्मेवारी—वि. [हि. जिम्मा] (१) जवाबदेही। (२) सुपुर्दगी, संरक्षा।

जिय—संज्ञा पुं. [सं. जीव] (१) मन, चित्त, जी। उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं—१-५। (ख) य जिय जानि कै अंध भव त्रास तैं सूर कामी कुटिल सरन आयौ—१-५। (ग) कहा मल्ल चानूर कुवलिया, अब जिय त्रास नहीं तिन नैकौ—२५५८। (२) जीव, प्राणी।

उ.—(क) हारि-जीति नाहिं जिय कैं हाथ—६-५ । (ख) एकनि कौ जिय-वलि दै पूजैं—१-१७७ । (ग) मैं कीन्हीं बहु जिय की हानि—४-१२ । (३) सकल्प, विचार, इच्छा ।

मुहा.—जिय में खुभना (गड़ना)—(१) हृदय पर गहरा प्रभाव करना । (२) चित्त में बराबर ध्यान बना रहना । जिय में खुभी—चित्त में बराबर ध्यान बना रहता है । उ.—माधव-मूरति जिय में खुभी । जिय दीन्ह—ध्यान लगाया । उ.—पाइँ धोइ मंदिर पग धारे प्रभु-पूजा जिय दीन्ह—१०-२६० ।

जियत—क्रि. स. [हिं. जीना] (१) जीता है । (२) जीते जी, जीवित रहते हुए । उ.—सूरदास रनभूमि विजय विनु, जियत न पीठि दिखाऊँ—१-२७० । (३) पलते हैं । उ.—कितने अहिर जियत मेरैं घर—१०-३३ ।

जियतौ—संज्ञा पुं. [सं. जीव, हिं. जी] मन, चित्त, जी । उ.—सूर स्याम गिरिधर, धराधर हलधर, यह छवि सदा थिर, रहौ मेरैं जियतौ—३७३ ।

जियन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन] जिंदगी, जीवन ।

जियरा—संज्ञा पु. [हि. जीव] जी, हृदय ।

जियरी—संज्ञा पुं. [हिं. जीव] जीव ।

जियाजंतु—संज्ञा पुं. [हिं. जीवजंतु] पशु-पक्षी ।

जियादती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ज्यादती] (१) अधिकता, बहुतायत । (२) अन्याय, अत्याचार ।

जियादा—वि. [हि. ज्यादा] अधिक, ज्यादा ।

जियान—संज्ञा पुं. [अ. ज़ियान] घाटा, हानि ।

जियाना—क्रि. स. [हि. जिलाना] (१) जीवित करना, जिलाना । (२) पालन-पोषण करना, पालना ।

जियाफत—संज्ञा स्त्री. [अ. जियाफत] दावत ।

जियारत—संज्ञा स्त्री. [अ. ज़ियारत] तीर्थ-दर्शन ।

मुहा.—जियारत लगना—दर्शकों की भीड़ होना ।

जियारती—वि. [हिं. जियारत] तीर्थ-यात्री, दर्शक ।

जियारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जीना] (१) जीवन, जिंदगी । (२) जीविका । (३) दृढ़ता, साहस ।

जियावन—वि. [हि जिलाना] जिलानेवाली, जीवित करने की । उ.—कृष्ण-सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ—२-३२ ।

जियावहि—क्रि. स. [हि. जिलाना] जिला लें, जीवनदान दे, जीवित कर दे । उ.—ऐसौ गुनी नहीं त्रिभुवन कहूँ, हम जानति हैं नीकैं । आइ जाइ तौ तुरत जियावहि, नैंकु छुवत उठै जीकै—७४६ ।

जिये—क्रि. स. [हिं. जीना] जीवित रहे । उ.—सूरदास कौं और बड़ौ सुख जूठनि खाइ जिये—१-१७१ ।

संज्ञा पु.सवि.—जी में, मन में । उ.—स्यामसुंदर कमलनयन बसौ मेरे जिये—३१२६ ।

जियै—क्रि. अ. [हि. जीना] जीवित रहे, जिये । उ.—सूर जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै—६-१५१ ।

जियो, जियौ—क्रि. स. [हि. जीना] जिया, जीवित हो गया । उ.—(क) जिहिं तन हरि भजिवौ न कियौ । सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यौं इहिं सुख कहा जियौ—२-१६ । (ख) बिसरि गई सब रोष हरष मन पुनि फिरि मदन जियो री—१६८६ ।

संज्ञा पुं.—जीना, जीवित रहना । उ.—इहि बिधि विकल सकल पुरवासी, नाहिंन चहत जियौ—६४४ ।

जिरगा—संज्ञा पुं. [फा. जिर्ग.] (१) झुंड । (२) मडली ।

जिरह—संज्ञा स्त्री. [अ. जुरह] (१) हुज्जत, वाद-विवाद । (२) पूँछताछ, छानबीन ।

संज्ञा स्त्री. [फा. ज़िरह] कवच ।

जिरही—वि. [हि. जिरह] जो कवच पहने हो ।

जिराअत, जिरायत—संज्ञा स्त्री. [अ. ज़िराअत] खेती ।

जिला—संज्ञा स्त्री. [अ.] चमक दमक ।

संज्ञा पुं. [अ. ज़िला] प्रात का विभाग ।

जिलाट—संज्ञा पुं. [स.] एक प्राचीन बाजा ।

जिलाना—क्रि. स. [हि. जीना] (१) जिंदा या जीवित करना । (२) पालना, पोसना । (३) मरने से बचाना ।

जिलाद—संज्ञा पु. [अ. जल्लाद] अत्याचारी ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) खाल । (२) ऊपर का चमड़ा । (३) दफ्ती । (४) एक पुस्तक । (५) पुस्तक का एक भाग ।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री. [अ. जिल्लत] (१) अनादर, अपमान । (२) दुर्गति, दुर्दशा ।

मुहा.—जिल्लत उठाना (पाना)-अपमानित होना ।

जिव—संज्ञा पुं. [सं. जीव] **जीव, प्राणी, जीवधारी।** उ.—जिव कौ कियौ कछू नहिं होइ—६-१७३।

जिवन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन] **जीवन, प्राणाधार, परम प्रिय।** उ.—मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहि बँधे दिखाए—१०-३७०।

जिवाँना—क्रि. स. [हिं. जिमाना] **भोजन कराना।**

जिवाइ—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जीवित करके।**

जिवाई—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जिला लेना, जीवित कर लेना।** उ.–सुक्र असुर कौं लेत जिवाई—६-२७३।

जिवाऊँ—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जिलाऊँ, जीवनदान दूँ।** उ.—रतन चौदह तहाँ तैं प्रगट होहि तव, असुर कौं सुरा, तुम्हैं अमृत प्याऊँ। जीतिहौ तब असुर महा बलवंत कौं, मरैं नहिं देवता यौ जिवाऊँ—८-८।

जिवाए—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जीवित कर दिये।** उ.—मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ—१ ३८।

जिवाजिव—संज्ञा पुं. [सं.] **चकोर पक्षी।**

जिवाना—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जीवित करना।**

जिवायौ—क्रि. स. [हिं. जिलाना] **जिलाया, जीवित किया।** उ.—कृष्ण सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ—२-३२।

जिवावति—क्रि. स. [हिं. जिमाना] **जिमाती है, खिलाती है, भोजन कराती है।** उ.—बल-मोहन दोउ करत बियारी। प्रेम सहित दोउ सुतनि जिवावति, रोहिनि अरु जसुमति महतारी—१०-२२८।

जिष्णु—वि. [सं.] **जीतनेवाला, विजयी।**
संज्ञा पुं.—(१) **विष्णु।** (२) **इन्द्र।** (३) **अर्जुन।** (४) **सूर्य।** (५) **वस्तु।**

जिस—वि. [सं. यः, यस्] **'जो' का विभक्ति-सहित विशेष्य के साथ प्रयुक्त रूप।**
सर्व.—**'जो' का विभक्ति लगने के पूर्व रूप।**

जिसिम, जिस्म—संज्ञा पुं. [फा. जिस्म] **शरीर।**

जिह—संज्ञा स्त्री. [फा. जह, सं. ज्या] **धनुष की डोरी।**
सर्व. [हिं. जिस] **जिस।** उ.—जिहके प्रीति निरंतर मन मैं सो मन क्यों समुझावै—३४४१।

जिह्न—संज्ञा पुं. [अ. जिह्न] **समझ, बुद्धि।**
मुहा.—जिह्न खुलना—**बुद्धि बढ़ना।** जिह्न लड़ना—**बुद्धि का काम करना।** जिह्न लड़ाना—**बुद्धि दौड़ाना।**

जिहाज—संज्ञा पुं. [हिं. जहाज] **जलयान, जहाज।**

जिहाद—संज्ञा पुं. [अ.] **धर्म-युद्ध।**

जिहालत—संज्ञा स्त्री. [अ. जहालत] **मूर्खता।**

जिहासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **त्याग की इच्छा।**

जिहासु—वि. [सं.] **त्याग का इच्छुक।**

जिहिं, जिहि—सर्व. [हिं. जिस] **जिसे, जिसको।** उ.—साँची निस्चय प्रेम को जिहि रे मिलै गोपाल—३४४३।

जिहीर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **लेने या हरने की इच्छा।**

जिहीर्षु—वि. [सं.] **लेने या हरने का इच्छुक।**

जिह्म—वि. [सं.] (१) **वक्र।** (२) **दुष्ट।** (३) **खिन्न।**
संज्ञा पुं.—(१) **एक फूल।** (२) **अधर्म।** (३) **दुष्टता।**

जिह्मग, जिह्मगामी—वि. [सं.] (१) **टेढ़ी चालवाला।** (२) **धीमी चालवाला।** (३) **कुटिल, कपटी।**
संज्ञा पुं.—**साँप, सर्प, भुजंग।**

जिह्मता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **टेढ़ापन।** (२) **धीमापन।** (३) **कुटिलता, कपट।**

जिह्मित—वि. [सं.] (१) **टेढ़ा।** (२) **चकित।**

जिह्मीकृत—वि. [सं.] **टेढ़ा किया हुआ।**

जिह्वल—वि. [सं.] **चटोरा, चट्टू, जिभला।**

जिह्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **जीभ।**

जिह्वाग्र—संज्ञा पुं. [सं.] **जीभ की नोक, टूँड़।**

जिह्वामूल—संज्ञा पु. [सं.] **जीभ का पिछला स्थान।**

जिह्वामूलीय—वि. [सं.] **जिह्वामूल से संबंधित।**
संज्ञा पुं.—**वह वर्ण (जैसे क, ख) जिसका उच्चारण जिह्वामूल से होता है।**

जिह्विका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **जीभी।**

जींगन—संज्ञा पुं. [सं. जृंगण] **जुगनूँ, खद्योत।**

जी—संज्ञा पुं. [सं. जीव] (१) **मन, चित्त।** उ.—मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ—१-१३८। (२) **हिम्मत।** (३) **संकल्प, विचार।**
मुहा.—जी अच्छा होना—**स्वस्थ होना।** जी

आना—प्रेम होना। जी उकताना (उचटना)—मन न लगना, तबियत घबराना। जी उठना—(१) मन न लगना। (२) जीवित हो जाना। जी उठाना—(१) विरक्त होना। (२) इच्छा करना। जी उड़ जाना (उड़ना)—घबराहट होना। जी उदास होना—खिन्न या उदास होना। जी उलट जाना (उलटना)—(१) होश न रहना। (२) विरक्त होना। जी करना—(१) साहस करना। (२) इच्छा होना। जी काँपना—डरना। जी का बुखार (गुबार) निकालना—क्रोध या दुख से बकना-झकना। जी का बोझ हलका करना—खटका मिटाकर चिंता दूर करना। जी की अमान माँगना—प्राण दान की प्रतिज्ञा कराना। जी का आ लगना—प्राण सकट में पडना। जी की निकालना—(१) इच्छा पूरी करना (२) क्रोध या दुख से बकना-झकना। जी की जी में रह जाना (रहना)—इच्छा पूरी न हो सकना। जी की पड़ना—प्राण बचाना कठिन हो जाना। जी का—साहसी, हिम्मती। जी के पीछे (पैंडे) पड़ना—बहुत परेशान करना, सताना, कष्ट देना। जी के पैंडे परयो है—जी के पीछे पड़ा है, बहुत सताता या कष्ट देता है। उ.—गोकुल के ग्वैंडे एक साँवरो सो ढोटा माई अँखियन के पैंडे पैठि जी के पैंडे पर्यौ है—८७२। जी को जी समझना—दूसरे को भी अपने समान आदमी समझना, दूसरे से मनुष्यता का व्यवहार करना। जी (को) मारना—(१) इच्छाओं को रोकना। (२) सतोष करना। जी को लगना—(१) वेदना या सहानुभूति होना। (२) प्रिय या भला लगना। (३) चिंता होना। जी को न लगाना—विशेष चिंता न करना। जी खटकना—(१) सदेह या चिंता होना। (२) जी हिचकिचाना। जी खट्टा करना—घृणा या विरक्ति उत्पन्न करना, चित्त हट जाना, घृणा होना। जी खपाना—(१) मन लगाकर परिश्रम से काम करना। (२) बहुत कष्ट सहना। जी खुलना—सकोच या हिचक न रहना। जी खोल कर—(१) बिना सकोच या हिचक के, बेधड़क। (२) मनमाना। (३) उत्साह के साथ। जी गँवाना—जान खोना। जी गिरना—(१) सुस्ती या आलस्य छाना। (२) हलका ज्वर होना। जी घबराना—(१) मन व्याकुल होना। (२) मन न लगना। जी चलना—(१) इच्छा होना। (२) चित्त विचलित होना। (३) मोहित होना। जी चला—(१) वीर। (२) दानी (३) रसिक। जी चलाना—(१) इच्छा करना। (२) चित्त विचलित करना। (३) हिम्मत बाँधना। जी चाहना—इच्छा होना। जी चाहे—यदि इच्छा हो। जी चुराना (छुपाना)—किसी काम से भागना या टाल-टूल करना। जी छूटना—(१) साहस या उत्साह में कमी होना। (२) थकावट या आलस्य आना। (३) किसी झगड़े से पीछा छूटना। जी छूटा करना—(१) निरुत्साहित या उदास होना। (२) कजूसी करना। जी छोड़ना—(१) प्राण त्यागना। (२) हिम्मत हारना। जी छोड़कर भागना—इस तरह भागना कि कहीं साँस लेने के लिए भी न रुकना। जी जलना—(१) गुस्सा या झुँझलाहट लगना, कुढ़ना। (२) डाह या ईर्ष्या होना। जी जलाना—(१) कुढ़ाना, चिढ़ाना। (२) सताना, दुखी करना। (३) ईर्ष्या या डाह पैदा करना। जी जानता है (होगा)—जो कुछ या जैसा कुछ किया या सहा वह कहा नहीं जा सकता। जी जान एक करना (लड़ाना)—(१) खूब मन लगाना। (२) कडा परिश्रम करना। जी जानै—जो कुछ सहा या किया है, मेरा जी ही जानता है। उ.—ऐसी कै व्यापी हौं मनमथ मेरो जी जानै माई स्याम स्याम कहि रैनि जपति—१६५६। जी-जान से जुटना (लगना)—(१) खूब मन लगाना, ध्यान के काम करना। (२) कड़ी मेहनत करना। किसी को जी-जान से लगना—(१) किसी को बराबर काम या बात की चिंता रहना और उसके लिए प्रयत्न करना। (२) स्वार्थ अटकने के कारण किसी काम या बात को पूरा करने का शक्ति भर प्रयत्न करना। जी टूट जाना (टूटना)—निरुत्साह या निराशा होना। जी टँगा रहना (होना)—चित्त चिंतित रहना। जी टटोलना—मन की इच्छा जानने-परखने की कोशिश करना, मन की थाह लेना।

जी ठंडा होना—(१) चित्त शांत या संतुष्ट होना। (२) इच्छापूर्ति से प्रसन्नता होना। जी टुकना—(१) चित्त स्थिर होना। (२) हिम्मत बँधना। जी डालना—(१) जीवित करना। (२) मरने से बचाना। (३) प्रेम करना। (४) निराश, उदास या निरुत्साहित होना। जी डूबना—(१) मूर्छित होना। (२) घबराहट होना। (३) निराशा होना। जी ढहा जाना—(१) मूर्छा सी आना। (२) उदासी होना। जी तपना—क्रोध चढ़ना। जी तरसना—(१) बहुत इच्छा होना। (२) किसी के लिए अधीर या दुखी होना। जी दहलना—बहुत भय लगना। जी दान—प्राण का दान या रक्षा। जी दार—साहसी, हिम्मती। जी दुखना—कष्ट या दुख होना। जी दुखाना—दुख देना, सताना। जी देना—(१) मरना। (२) बहुत प्रेम करना। जी दौड़ना—(१) बड़ी चाह होना। (२) जी भटकना। जी धँसा जाना—(१) मूर्छा-सी आना। (२) उदास होना। जी धड़कना—(१) भय के कारण घबराहट होना। (२) साहस या हिम्मत न बँधना। जी धकधक करना (होना)—डर से घबराहट होना। जी निकलना—(१) मृत्यु होना। (२) डर लगना। (३) बहुत कष्ट होना। जी निढाल होना—(१) जी बहुत घबराना। (२) उदासी या खिन्नता होना। जी पक जाना (पकना)—कोई अप्रिय बात देखते-सुनते चित्त बहुत दुखी या खिन्न हो जाना। जी पड़ना—(१) शरीर में प्राण पड़ना। (२) मरे हुए में जान सी आना, निरुत्साहित में उत्साह भर जाना। जी पकड़ लेना—कलेजा थामना। जी पकड़ा जाना—संदेह या खुटका पैदा होना। जी पर आ बनना—अचानक ही कोई ऐसा संकट आना कि प्राण बचाना कठिन हो जाय। जी पर खेलना—(१) प्राण संकट में डालना। (२) प्राण की चिंता न करके बड़े साहस का काम करना। जी पानी करना—(१) प्राण लेने-देने की स्थिति पैदा करना। (२) कठोर चित्त को कोमल कर देना। जी पानी होना—कठोर चित्त का कोमल हो जाना। जी पिघलना—कठोर चित में दया या प्रेम का संचार होना। जी पीछे पड़ना—दुख आदि भूलकर मन बहलना। जी फट जाना—(१) पहले सा प्रेम न रहना, प्रेम में अंतर पड़ जाना। (२) उत्साह-भंग होना। जी फिर जाना—पहले सा प्रेम न रहकर विरक्ति या अरुचि उत्पन्न होना। जी फिसलना—(१) मन मोहित होना। (२) पाने की इच्छा या लालसा उत्पन्न होना। जी फीका होना—चित हट जाना, विरक्ति होना। जी बँटना—(१) दुख आदि भुलाने के लिए मन का बहलकर दूसरी ओर लगना। (२) ध्यान स्थिर न रहना, मन उचटना। (३) केवल एक के प्रति प्रेम न रह जाना। जी बंद होना—विरक्ति होना। जी बढ़ना—(१) उत्साहित होना। (२) हिम्मत आना। जी बढ़ाना—(१) उत्साहित करना। (२) हिम्मत बँधाना। जी बहलना—(१) आनंद या मनोरंजन होना। (२) दुख-चिंता भूल कर किसी अन्य बात या काम में चित्त लगना। जी बहलाना—(१) आनंद या मनोरंजन करना। (२) दुख-चिंता भुलाने के लिए दूसरे काम में मन लगाना। जी बिखरना—(१) चित्त ठिकाने न होना। (२) मूर्छा होना। जी बिगड़ना—(१) जी मचलाना। (२) घिन मालूम होना। (३) अस्वस्थ होना। जी बुरा करना—कै करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना—किसी के प्रति घृणा, क्रोध या अरुचि होना। (दूसरे का) जी बुरा करना—दूसरे के मन में घृणा, क्रोध या अरुचि पैदा करना। जी बुरा होना—(१) जी मचलाना। (२) घिन या अरुचि होना। (३) अस्वस्थ होना। जी बैठ जाना (बैठना)—(१) चित ठिकाने न होना। (२) मूर्छा आना। (३) उदास या खिन्न होना। जी भटकना—(१) घबराहट होना, मन उड़ा-उड़ा फिरना। (२) बहुत चिंता लगना, बड़ी लालसा होना। जी भिटकना—घिन लगना। जी भर आना—चित्त में दुख या दया उमड़ना, रोमांच होना। जी भरकर—जितना जी चाहे उतना, मनमाना। जी भरना—(क्रि. अ.) (१) संतुष्ट होना, मन भर जाना। (२) इच्छा पूरी होना। (३) रुचि या इच्छा के अनुकूल काम होना। (क्रि. स.)

(१) खटका या संदेह मिटाना। (२) दिलजमई करना। जी भरभरा उठना—चित्त में दुख या दया उमड़ना, रोमांच होना। जी भारी करना—चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना—(१) चित्त उदास होना। (२) तबियत ठीक न होना। जी भुरभुराना—मोहित होना, लुभाना। जी मचलना (मतलाना)—(१) वमन या कै सी होने लगना। (२) घिन होना। जी मर जाना (मरना)—(१) चित्त उदास होना। (२) उत्साह या उमंग न रहना। जी मलमलाना—(१) अफसोस या पछताना होना। (२) स्नेह को प्रकट करने का अवसर न पाने के कारण पछताना होना। जी मारना—(१) उमंग या उत्साह को दबाना। (२) संतोष करना। (किसी से) जी मिलना—(१) समान प्रकृति के कारण विचार, कार्य और भाव एक से होना। (२) स्नेह होना। जी में आना—(१) विचार उठना। (२) इच्छा या इरादा होना। जी में घर करना—(१) बराबर ध्यान बना रहना। (२) मन में बसना। जी में खुभना (गड़ना, चुभना)—(१) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (२) बराबर ध्यान बना रहना। जी में जलना—(१) मन ही मन कुढ़ना या झुँझलाना। (२) डाह या ईर्ष्या होना। जी में जी आना—चिंता या घबराहट दूर होना, भय या आशंका मिट जाना। जी में जी डालना—(१) चिंता या घबराहट दूर करना। (२) विश्वास दिलाना; दिलजमई कराना। जी में डालना—सोचना, विचारना। जी में धरना—(१) ख्याल करना, ध्यान बनाये रहना। (२) नाराज होना; बुरा मानना। जी में पैठना (बैठना)—(१) मन में जम जाना। (२) बराबर ध्यान में बना रहना। (३) मन में निश्चित या दृढ़ होना। जी में रखना—(१) ध्यान रखना। (२) बुरा मानना। (३) बात गुप्त रखना, प्रकट न करना। (किसी का जी रखना—(१) मन को रख लेना, इच्छा पूरी कर देना। (२) प्रसन्न या संतुष्ट करना। जी रुकना—(१) जी घबराना। (२) जी में संकोच होना। जी लगना—(१) मन का किसी काम में रम जाना। (२) मन बहलना। (३) प्रेम होना। जी लगाना—किसी से प्रेम करना। जी लगा रहना (होना)—चित्त में ध्यान या ख्याल बना होना। किसी से जी लगाना—प्रेम करना। जी लड़ाना—(१) प्राण जाने की चिंता न करके किसी काम में जुटना। (२) सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना—भय या आशंका होना। जी ललचाना—(१) कुछ पाने की लालसा या इच्छा होना। (२) मन मोहित होना। जी ललचाना—(क्रि. अ.) (१) लोभ होना। (२) मोह होना। (क्रि .स.) (१) एक दूसरे के मन में लोभ पैदा करना। (२) दूसरे का मन लुभाना या मोहित करना। जी लुटना—मन मुग्ध होना। जी लुभाना—(क्रि. अ.) मन मोहित होना। (क्रि. स.) चित्त आकर्षित करना, मन मोहित करना। जी लूटना—मन मोहित करना। जी लेना—(१) जी चाहना, चाह होना। (२) मन की थाह लेना, मन की इच्छा जानने-परखने की कोशिश करना। (दूसरे का जी लेना)—मार डालना। जी लोटना—मन छटपटाना। जी सन (सन्न, सुन्न) होना—भय-आशंका से जी घबरा जाना। जी सनसनाना (सायँ सायँ होना)—भय-आशंका से शरीर स्तब्ध होना। जी से—खूब ध्यान लगाकर। जी से उतर जाना—स्नेह, श्रद्धा या आदर न रह जाना, विरक्ति या उदासीनता होना। जी से जाना—जान खो बैठना। जी से जी मिलना—(१) भावों, विचारों और आदर्शों में समानता होना। (२) परस्पर प्रीति होना। जी हट जाना (हटना)—इच्छा या चाह न रहना, विरक्ति हो जाना। जी हवा होना—मृत्यु होना। जी हवा हो जाना—भय-आशंका से घबरा जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना (लेना)—(१) प्रसन्न या संतुष्ट रखना। (२) सांत्वना या धीरज दिये रहना। जी हारना—(१) घबरा जाना। (२) हिम्मत या साहस छोड़ना। जी हिलना—(१) भय से हृदय काँपना। (२) दया से चित्त उद्विग्न होना।

अव्य. [सं. जित्, प्रा. जिव=विजय अथवा सं. (श्री) युक्त, प्रा. जुक, हिं. जू] (१) एक सम्मान

सूचक शब्द । (२) किसी बड़े के कथन या संबोधन के उत्तर में प्रति- संबोधन-रूप में कहा जानेवाला शब्द ।

जीअ—संज्ञा पुं. [सं. जीव] (१) मन । (२) हिम्मत ।

संज्ञा पुं. [सं. जीव] जीव, प्राणी ।

जीअन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन] (१) जीवन । (२) आयु ।

जीउ—संज्ञा पुं. [सं. जीव] जीव, प्राणी ।

जीगन—संज्ञा पुं. [हि. जुगनूँ] जुगनूँ ।

जीगा—संज्ञा पुं. [तु. जीग़ा] सिरपेच, कलगी ।

जीजत, जीजतु—क्रि. अ. [हिं. जीना] जीता है, जीवित रहता है, जीवन के दिन बिताना है । उ.—(क) चिरंजीव रहौ सूर नंद-सुत जीजत मुख चितए—३१३१ । (ख) सूर स्याम बिहरत ब्रज भीतर जीजतु है मुख चाहे—३०६७ । (ग) निसि दिन जीततु है या ब्रज मैं देखि मनोहर रूप—३२२३ ।

जीजा—संज्ञा पुं. [हि. जीजी] बड़ी बहन का पति ।

जीजियति—क्रि. अ. [हि जीना] जीवित रहती है, जीवन के दिन बिताती है । उ.—दामिनि की दमकनि, बूँदनि की झमकनि, सेज की तलफ कैसे जिजियति माई है—२८२७ ।

जीजी—संज्ञा स्त्री. [सं. देवी, हिं. दीदी] बड़ी बहन ।

जीजूराना—संज्ञा पुं. [देश.] एक चिड़िया ।

जीजै—क्रि. अ. [हिं जीना] (१) जीवन के दिन बिताइए, जीवित रहिए । उ.—सूरदास गिरिधर-जस गाइ-गाइ जीजै—१-७२ । (२) जीवित है, जीवन के दिन बिताती है । उ.—सूर स्याम प्रीतम बिनु राधे सोचि सोचि त्रिय जीजै—२८६४ ।

जीट—संज्ञा स्त्री. [फा. जीट] डींग ।

जीत—संज्ञा स्त्री. [सं. जिति, वैदिक जीति] (१) जय, विजय । (२) सफलता । (३) लाभ, फायदा ।

संज्ञा स्त्री. [देश. जीति] जीति नामक लता ।

जीतना—क्रि. स. [हिं. जीत+ना (प्रत्य.)] (१) विपक्षी को हराना, विजय प्राप्त करना । (२) सफलता पाना ।

जीता—वि. [हिं. जीना] (१) जो मरा न हो, जीवित ।

मुहा.—जीता-जागता—जीवित और सचेत, भला चंगा । जीता लहू—ताजा खून ।

(२) नाप या तोल से कुछ ज्यादा ।

क्रि. स. [हि. जीतना] विजय प्राप्त की ।

जीति—क्रि. स. [हि. जीतना] (१) युद्ध में विपक्षी को परास्त करके, युद्ध में विजय पाकर । (२) किसी कार्य में विपक्षी को हरा कर । (३) विजय । उ.—जीति भक्त अपनें की—१-२७२ ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक लता जिसके रेशों से धनुष की डोरी बनायी जाती है ।

जीती—क्रि. स. [हि. जीतना] जीत ली, विजय प्राप्त की । उ.—खरभर परी, दियौ उन पैंड़ौ, जीती पहिली रारि—६-१०४ ।

क्रि. अ.—विजयी हुई । उ.—जीती जीती है रन बंसी—१६८८ ।

क्रि. अ. [हि. जीना] जीवित और सचेत (है) ।

मुहा.—जीती जागती—जीवित और सचेत, भली चंगी । जीती मक्खी निगलना—(१) जान-बूझ कर अन्याय, बुराई या बेइमानी करना । (२) जान-बूझकर अन्याय, बुराई या बेइमानी में शामिल होना।

जीते—क्रि. स. [हिं. जीतना] जीत सके, विजयी हुए । उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते । गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते—१-६० ।

क्रि. अ. [हिं. जीना] जीवित रहे ।

मुहा—जीते जी—(१) जीवित रहते हुए, बने रहते । (२) जीवन भर । जीते जी मर जाना (मरना)—किसी भारी विपति या हानि से जीवन का रस या आनंद नष्ट हो जाना, जीवन नष्ट होना । जीते रहो—बड़ों का आशीर्वाद, जीवित रहो ।

जीतैं—क्रि. स. [हि. जीतना] जीतने से, विजयी होने से, सफलता पाने पर । उ.—जीतैं जीति भक्त अपनें कैं, हारैं हारि विचारौं—१-२७२ ।

जीतै—क्रि. स. [हि. जीतना] विजयी हो, जीत जाय । उ.—भगवती कह्यौ तिनकौं सुनाई । जुद्ध जीतैं सो मोहि वरै आई—८-११ ।

जीतौ—क्रि. स. [हि. जीना] जीवित रहता । उ.—रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट है, अघटित भोजन करतौ । यह ब्यौहार लिखाइ, रात-दिन, पुनि जीतौ, पुनि मरतौ—१-२०३ ।

जीत्यौ—क्रि.स. [हिं. जीतना] युद्ध में जीता, शत्रु को हराया । उ.—गहि सारंग, रन रावन जीत्यौ, लंक विभीषन फिरी दुहाई—६-२४ ।

जीन—संज्ञा पुं. [फा. जीन] घोड़े की काठी ।

वि. [सं. जीर्ण] (१) पुराना, जर्जर । (२) वृद्ध ।

जीनत—संज्ञा स्त्री. [फा. जीनत] (१) शोभा, सुंदरता । (२) शृंगार, सजावट ।

जीना—क्रि. स. [सं. जीवन] (१) जिंदा रहना, न मरना । (२) जीवन के दिन बिताना, जिंदगी काटना ।

मुहा.—जब तक जीना तब तक सीना—जीविका के लिए जीवन भर प्रयत्न करना या हाथ पैर मारना; जिंदगी भर रोजी कमाने के लिए कुछ न कुछ काम-धंधा करना ।

(३) सुखी, संतुष्ट या प्रसन्न होना ।

मुहा.—अपनी खुशी जीना—(इतना स्वार्थी होना कि) केवल अपने को सुखी देखकर ही संतुष्ट होना ।

संज्ञा पुं. [फा. जीनः] पक्की सीढ़ी ।

जीभ—संज्ञा स्त्री. [सं. जिह्वा, प्रा. जिब्भ] रसना, जिह्वा ।

मुहा.—जीभ करना—बहुत बढ़ कर बोलना । जीभ खोलना—मुँह से शब्द निकालना । जीभ चलना—(१) कुछ चटपटी चीज खाने की इच्छा होना । (२) बहुत जल्दी-जल्दी बोलना । (३) उचित-अनुचित का ध्यान न रखते हुए बकते जाना । जीभ थोड़ी करना—(१) चटोरापन कम करना । (२) बकवाद कम करना, ज्यादा न बोलना । जीभ न करही थोरी—बकवाद कम नहीं करती, बहुत बके जाती है । उ.—मेरौ गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी । हाथ नचावति आवति ग्वालिनि जीभ न करही थोरी । जीभ निकालना—(१) जीभ मुँह से बाहर करना । (२) जीभ खींचना या उखाड़ना । जीभ पकड़ना—बोलने न देना । जीभ पिराना—बकवाद करने की इच्छा होना । जीभ पिरावति—बकवाद करने या बकने की इच्छा होती है । उ.—काहे को जीभ पिरावति—३०८१ । जीभ बंद करना—बोलने न देना । जीभ बंद होना—चुप रहना । जीभ बढ़ाना—चटोरपन की आदत होना । जीभ लड़ाना—बहुत बातें या बकवाद करना, बहुत बोलना । जीभ लड़ावति—बेसमझे-बूझे बातें करती हुई । उ.—सुवा पढ़ावति, जीभ लड़ावति, ताहि विमान पठायौ—१-१८८ । जरा जीभ हिलाना—मुँह से कुछ कहना, दो-एक शब्द बोलना । जीभ के नीचे जीभ होना—एक बार कही हुई बात बदल देना, अपनी बात पर दृढ़ न रहना ।

(२) जीभ के आकार की कोई चीज ।

मुहा.—कलम की जीभ—कलम का नुकीला भाग ।

जीभी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जीभ] (१) जीभ साफ करने की लचीली वस्तु । (२) छोटी जीभ ।

जीमना—क्रि. स. [सं. जेमन] भोजन करना ।

जीमूत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत । (२) बादल । (३) इंद्र । (४) जीविका देनेवाला । (५) एक ऋषि । (६) एक मल्ल जो भीम द्वारा मारा गया था ।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] बादल से बरसनेवाला एक कल्पित मोती जिसे किसी ने आज तक नहीं देखा ।

जीमूतवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र । (२) शालिवाहन राजा का पुत्र जिसकी पूजा पुत्र की कामनावाली स्त्रियाँ करती हैं । (३) जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो नागानंद नाटक का नायक है ।

जीमूहवाही—संज्ञा पुं. [सं. जीमूहवाहिन्] धुआँ, धूम ।

जीय—संज्ञा पुं. [हिं. जी] मन, चित्त, जी ।

मुहा.—जीय धरै—(१) ध्यान दे, परवाह करे । (२) मन में बुरा माने, असंतुष्ट हो । उ.—माधौ जू, जौ जन तैं बिगरै । तउ कृपाल करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै—१-११७

संज्ञा पुं. [सं. जीव] जीव, प्राणी ।

जीयट—संज्ञा पुं. [हिं. जीवट] साहस, हिम्मत ।

जीयति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. जीना] जीवित है, जीती है । उ.—जिय जिय सोच करत मारुत-सुत, जीयति न मेरैं जान । कै वह भाजि सिंधु मैं डूबी, कै उहिं तज्यौ परान—९-७५ ।

संज्ञा स्त्री.—जीवन, जिंदगी ।

जीयदान—संज्ञा पुं. [सं. जीव = प्राण + दान] प्राणदान, जीवनदान । उ.—बालक-काज धर्म उनि

छाँड़ौ राय न ऐसी कीजै हो। तुम मानी वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो।

जीयन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन, हि. जीना] जीवन, जीना, जीवित रहना। उ.—धृग तव जन्म, जीयन धृग तेरौ, कहीं कपट-मुख बाता—६-४६।

जीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जीरा। (२) फूल की केसर या जीरा। (३) तलवार।

वि.—तेज या जल्दी चलनेवाला।

संज्ञा पुं. [फा. जिरह] जिरह, कवच।

वि. [सं. जीर्ण] पुराना, जर्जर, नष्ट।

जीरई—क्रि. अ. [हि. जीरना] फटती है।

जीरक—संज्ञा पुं. [स.] (१) जीरा। (२) फूल-केसर।

जीरण, जीरन—वि. [सं. जीर्ण] पुराना, फटा-पुराना। उ—(क) जीरन पट, कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी सीस उघारि—१-३४१। (ख) निरपत पटे कटुक अति जीरन चाहत मम उर लेख्यौ—३००४।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) जीरा। (२) फूल-केसर।

जीरणता, जीरनता, जीरनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. जीर्णता] (१) बुढ़ापा, बूढ़ापन। (२) पुरानापन।

जीरना—क्रि. अ. [सं. जीर्ण] (१) पुराना होना। (२) मुरझाना, कुम्हलाना। (३) फटना। (४) नष्ट होना।

जीरा—संज्ञा पुं. [सं. जीरक, फा. ज़ीर: (१) एक पौधा जिसमें सौंफ की तरह के फूल लगते हैं। (२) जीरे की तरह के महीन बीज। (३) फूलो का केसर।

जीरी—संज्ञा पुं. [हि. जीरा] एक तरह का धान।

जीर्ण—वि. [स.] (१) बहुत बुड्ढा। (२) बहुत दिनो का। (३) फटा-पुराना और कमजोर।

यौ.—जीर्ण-शीर्ण—फटा-पुराना, टूटा-फुटा।

(४) पेट में अच्छी तरह पचा हुआ।

संज्ञा पुं.—(१) जीरा। (२) फूल-केसर।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुढ़ापा। (२) पुरानापन।

जीर्णा—वि. स्त्री. [सं.] वृद्धा, बुढ़िया।

जीर्णोद्धार—संज्ञा पुं. [स. जीर्ण+उद्धार] (१) टूटी फूटी चीजो की मरम्मत। (२) मृत संस्थाओ आदि का पुनः सुधार या उद्धार।

जील—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़ीर] (१) धीमा या मध्यम स्वर। (२) बायाँ तबला।

जीला—वि. [सं. झिल्ली] (१) पतला। (२) महीन।

जीलानी—संज्ञा पुं. [अ.] एक तरह का लाल रंग।

जीवंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राण। (२) औषध।

वि.—जीता-जागता, जीवित और सचेत।

जीवंतिका, जीवंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

जीव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आत्मा, जीवात्मा। (२) प्राण, जीवनतत्व, जीव। उ.—(क) निसि-निसि ही रिषि लिए सहस-दल दुरवासा पग धार्यौ। ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबार्यौ—१-१०६। (ख) रुद्र अपमान कियौ सती तब जीव दियौ—४-६। (३) प्राणी, जीवधारी।

यौ.-जीव-जंतु-(१) जानवर। (२) कीड़े-मकोड़े।

(४) जीवन। (५) विष्णु। (६) बृहस्पति।

संज्ञा पुं. [हि. जी] जी, मन। उ.—मेरे जीव ऐसी आवत भइ—२७६२।

जीवक—संज्ञा पु. [सं.] (१) प्राणधारी, जीव। उ.—जब कही पवन-सुत बंधु-बात। तब उठी सभा सब हरषगात। ज्यौं पावस-ऋतु घन-प्रथम-घोर। जल जीवक, दादर रटत मोर—६-१६६। (२) सँपेरा। (३) सेवक। (४) ब्याज या सूद खानेवाला। (५) एक जड़ी या बूटी।

जीवट—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवथ] साहस, हिम्मत।

जीवत—क्रि. स. [हि. जीना] जीवित रहता है।

जीवति—वि. [हिं. जीना] जीवित रहते हुए, जीते जी। उ.—जौ पै पतिव्रता व्रत तेर, जीवति बिछुरी काइ—६-७७।

संज्ञा स्त्री.—जीविका, रोजी।

जीवथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राण। (२) मेघ। (३) मोर।

वि.—(१) धर्मात्मा। (२) दीर्घ आयुवाला।

जीवद—संज्ञा पु. [सं.] (१) जीवनदाता। (२) वैद्य।

जीवदान—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणदान, प्राणरक्षा। उ.—दोष इन कियो मोहिं छमा प्रभु कीजिए भद्र करि सीस जीवदान दीयौ।

जीवधन—संज्ञा पु. [सं.] (१) जीव या पशु-रूप धन,

पशु-धन। (२) जीवनधन, बहुत प्रिय।
जीवधानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीव-आधार, पृथ्वी।
जीवधारी—संज्ञा पुं. [सं.] जंतु, प्राणी, जानवर।
जीवन—संज्ञा पु. [सं.] (१) जीवित रहने की अवस्था, जिंदगी। (२) जीवित रहने का भाव। (३) प्राण या जीवन का सहारा। (४) प्राणाधार, परम प्रिय। उ.—येई हैं सब ब्रज के जीवन सुख पावहिं लिएँ नाम—३६७। (५) जीविका। (६) जल। (७) वायु। (८) पुत्र।
जीवनचरित, जीवनचरित्र—संज्ञा पुं. [सं. जीवनचरित] (१) जीवन का वृत्तांत। (२) जीवनी।
जीवनधन—संज्ञा पु. [स.] (१) सबसे प्रिय वस्तु या व्यक्ति। (२) बहुत प्रिय, प्राणाधार।
जीवनधर—वि. [हिं. जीवन+धारण] जीवनदायक।
जीवनद—वि. [हिं. जीवन+द] जीवनदायक।
जीवनकर—वि. [हिं. जीवन+कर] जीवनदायक।
जीवनबूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवन + हि. बूटी] संजीवनी बूटी।
जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवन+मूल] (१) अत्यंत प्रिय वस्तु, प्राणप्रिय। उ.—खिन मुँदरी, खिनहीं हनुमत सौं, कहति बिसूरि-बिसूरि। कहि मुद्रिके, कहाँ तैं छाँडे मेरे जीवनमूरि—६ ८३। (२) संजीवनी बूटी।
जीवनवृत्त, जीवनवृत्तांत—संज्ञा पु. [सं.] जीवन चरित।
जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] जीविका, रोजी।
जीवनहर—वि. [हिं. जीवन+हरना] जीवननाशक।
जीवनहारि—वि. [हिं. जीवन+हार] जीवित रहने की इच्छा या कामना रखनेवाली। उ.—परति धाइ जमुना-सलिल, गहि आनति ब्रजनारि। नैंकु रहौ सब मरहिंगी, को है जीवनहारि—५८६।
जीवनहेतु—संज्ञा पु. [सं.] जीवन-साधन, जीविका।
जीवना—क्रि. अ. [हिं. जीना] जीवित रहना।
जीवनावास—संज्ञा पुं. [सं. जीवन+आवास] शरीर।
जीवनि—संज्ञा पुं. [स जीवन] जीवन की, जीवित रहने की। उ.—जीवनि-आस प्रबल श्रुति लेखी। साच्छात सो तुममें देखी—१-२८४।

संज्ञा स्त्री. [सं. जीवनी] (१) संजीवनी बूटी। (२) जिलानेवाली वस्तु। (३) प्राणप्रिय वस्तु।
जीवनी—संज्ञा. स्त्री. [स. जीवन+ई (प्रत्य.)] जीवन-वृत्त या वृत्तात, जीवनचरित।
जीवनीय—वि. [सं.] (१) जीवनप्रद। (२) व्यवहार या बरतने योग्य।
संज्ञा पुं.—(१) जल। (२) दूध।
जीवनोपाय—संज्ञा पु. [सं. जीवन+उपाय] जीविका।
जीवनौषध—सं. स्त्री. [स. जीवन+औषध] वह दवा जो मरते हुए को भी जिला सके, सजीवनी औषध।
जीवन्मुक्त—वि. [सं.] जो जीवन-काल में ही आत्म-ज्ञान द्वारा सासारिक माया या बंधन से छूट जाय।
जीवन्मृत—वि. [सं.] जो जीते जी मरे के समान हो।
जीवपति—संज्ञा पुं. [स. जीव+पति] धर्मराज।
संज्ञा स्त्री. [स.] सुहागिनी स्त्री।
जीवप्रभा—संज्ञा स्त्री. [स.] आत्मा।
जीवबंद, जीवबंधु—संज्ञा पु. [देश.] गुलदुपहरिया।
जीवयोनि—संज्ञा स्त्री [सं.] जीव-जतु, प्राणी।
जीवरा—संज्ञा पु. [हि. जीव] जीव, प्राण।
जीवरि, जीवरी—संज्ञा पुं. [स. जीव या जीवन] जीवन या प्राण-धारण करने की शक्ति। उ.—बीज मन माली मदन चुर आलवाल बयौ। प्रेम-पय सींच्यौ पहिल ही सुभग जीवरि दयौ—३३०७।
जीवलोक—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी, मृत्युलोक।
जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीव का गुण या व्यापार। (२) पशु पालने का व्यवसाय।
जीवसू—वि. [स] जिसकी संतान जीवित हो।
जीवस्थान—संज्ञा पु. [स] हृदय जहां जीव रहता है।
जीवहत्या, जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीवों का वध। (२) जीवों का वध करने से लगनेवाला पाप।
जीवहु—क्रि. स. [हि. जीना] जीवित रहो, जियो। उ. —(क) जुग जुग जीवहु कान्ह, सबनि मन भावन रे —१०-२८। (ख) सूरदास प्रभु जीवहु जुगजुग—४१८।
जीवांतक—संज्ञा पुं [सं. जीव+अंत+क=करनेवाला] (१) जीवहिंसक। (२) व्याध, बहेलिया। (३) काल।
जीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीधी रेखा, ज्या। (२)

धनुष की डोरी। (३) भूमि (४) जीविका। (५) जीवन।

जीवाजून—संज्ञा पुं. [सं. जीवयोनि] जीव-जंतु।

जीवाणु—संज्ञा पुं. [सं.] प्राण-युक्त अणु जो अनेक रोग फैलाते हैं।

जीवात्मा—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणी की चेतन-वृत्ति या जीवन का कारण-रूप तत्व, जीव, आत्मा।

जीवाधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हृदय जो आत्मा का आश्रय स्थान है। (२) जीवन का हेतु या आधार।

जीवानुज—संज्ञा पुं. [सं.] गर्गाचार्य जो बृहस्पति के वंशज या उनके अनुज माने जाते हैं।

जीवावहु—क्रि. स. [हि. जिलाना] जिला लेना, जीवित कर लेना। उ.—जब तुम निकसि उदर तैं आवहु। या विद्या करि मोहिं जीवावहु—६-१७३।

जीवावै—क्रि. स. [हिं. जिलाना] जिला ले, जीवित कर ले। उ.—मृतक सुरनि कौ फेरि जीवावै—६-१७३।

जीवावौ—क्रि. स. [हि. जिलाना] जिला लो, जीवित कर लो। उ.—मृतक सुरनि कौं तुमहूँ जीवावौ—६-१७३।

जीविका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भरण-पोषण का साधन, वृत्ति, रोजी। उ.—मेरी सकल जीविका यामैं रघुपति मुक्त न कीजै। सूरजदास चढ़ौं प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै—६-४१।

मुहा.—जीविका लगना—रोजी का ठिकाना होना। जीविका लगाना—रोजी का ठिकाना करना।

जीवित—वि. [सं.] जीता हुआ, जिंदा। उ.—जीवित रहिहौ कौ लौं भू पर—१-२८४।

संज्ञा पुं.—जीवन, प्राणधारण।

जीवितेश—संज्ञा पुं. [सं. जीवित = जीवन + ईश] (१) प्राणाधार, प्राणनाथ। (२) यम। (३) इंद्र। (४) सूर्य। (५) इडा-पिंगला नाड़ी।

जीवी—वि. [सं. जीविन्] (१) जीवित रहनेवाला, जीनेवाला। (२) जीविका या रोजी करनेवाला।

जीवेश—संज्ञा पु. [सं. जीव + ईश] परमात्मा।

जीवैं—क्रि. अ. [हिं. जीना] जीवित रहें। उ.—कह्यौ विनय करि सुनु रिषिराइ। दोउ जीवैं सो करौ उपाइ—६-१७३।

जीवै—क्रि. अ. [हिं. जीना] जीवित रहे, जिये। उ.—जीवै तौ सुख बिलसै जग मैं, कीरति लोकनि गावै—६-१५२।

जीवो—संज्ञा स्त्री. [हि. जीना] जीवित रहना। उ.—लोचन चातक जीवो नहिं चाहत—२७७१।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री. [सं. जीव + उपाधि] स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत अवस्थाएँ।

जीवौं—क्रि. अ. [हिं.जीना] जीवित रहूँ। उ.—जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं—६-१६४।

जीवौ—क्रि. अ. [हि. जीना] जीवित रहो।

जीह, जीहि, जीही—संज्ञा स्त्री. [हिं. जीभ] जिह्वा, जीभ, जबान।

जीहौ—क्रि. स. [हिं. जीना] जीवित रहोगे, जियोगे। उ.—धिक धिक नंदहिं कह्यौ, और कितने दिन जीहौ—५८६।

जुंबिश, जुंबिस—संज्ञा स्त्री. [फा. जुंबिश] गति।

जु—सर्व. [हिं. जो] जो। उ.—जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगौ। तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ—१-७५।

क्रि. वि.—यदि, अगर।

वि.—जो।

संज्ञा पुं. [हिं. जू] बड़े लोगों के लिए एक संबोधन या आदरसूचक शब्द।

जुअती—संज्ञा स्त्री. [सं. युवती] युवती।

जुआँ—संज्ञा पुं. [सं. यूका, प्रा. जूआ] सिर का जूँ।

जुआँरी—संज्ञा स्त्री. [हि. जुआँ] छोटी जूँ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ज्वार] एक मोटा अनाज।

जुआ—संज्ञा पुं. [सं. युज = जोड़ना] (१) गाड़ी की लकडी जो बैलों के कंधे पर रहती है। (२) चक्की की मूठा जिसे पकड़कर उसे चलाते हैं।

संज्ञा पुं. [सं. द्यूत, प्रा. जूत] कौडी या ताश का वह खेल जिसमें हारनेवाले से कुछ धन जीतनेवाले को मिलता है, द्यूत। उ.—(क) कौरव-पासा कपट बनाए। धर्म-पुत्र कौं जुआ खिलाए—१-२४६। (ख) आछो गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति

कमल-लोचन सौं जनम जुआ ज्यों हारयौ—१-१०१ ।

जुआचोर—संज्ञा पुं. [हिं. जुआ+चोर] (१) वह जो जीतकर खिसक जाय । (२) ठग, वचक ।

जुआचोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. जुआ+चोरी] ठगी ।

जुआनी—संज्ञा स्त्री. [हि. जवानी] युवावस्था ।

जुआर—संज्ञा स्त्री. [हि. ज्वार] एक मोटा अनाज ।

संज्ञा स्त्री —समुद्र का ज्वार ।

संज्ञा पुं. [हि. जुआ] जुआ खेलनेवाला । उ.—कहो नंद कहाँ छाँडि कुमार । ' । चितवत नंद ठगे से ठाढे मानो हारयौ हेम जुआर—२६७१ ।

जुआरभाटा—सज्ञा पुं. [हि. ज्वार+भाटा] ज्वार भाटा ।

जुआरी - संज्ञा पुं. [हि. जुआ] जुवा खेलनेवाला । उ.—अधोमुख रहति उरध नहिं चितवत ज्यों गथ हारे थकित जुआरी—३४२५ ।

जुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) उपाय, ढंग । उ.—जोग न जुक्ति ध्यान नहि पूजा विरध भएँ पछितांत—२-२२ । (२) कौशल, चातुरी । (३) चाल, रीति, प्रथा । (४) न्याय, नीति । (५) अनुमान । (६) हेतु, कारण, उपपत्ति ।

जुग—संज्ञा पुं. [सं. युग] (१) पुराणानुसार समय का बहुत बडा परिमाण । ये सख्या में चार माने गये है, यथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । उ —चौपरि जगत मडे जुग बीते—१-६० ।

मुहा.—जुगजुग—चिरकाल तक, बहुत समय तक । उ.—जुगजुग विरद यहै चलि आयौ भक्तनि-हाथ विकानौ—१-११ ।

(२) जोडा, दल, दो । उ.—अद्‌भुत राम नाम के अक । धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटंक । मुनिमन-हंस पच्छ जुग जाकैं वल उड़ि ऊरध जात—१-६० ।

मुहा.—जुग टूटना—(१) गुट्ट या दल का तितर-वितर हो जाना । (२) गुट्ट या दल में एका या मेल न रहना । जुग फूटना—दो साथियो में एक का न रहना ।

(३) चौसर में दो गोटियों का एक ही घर में होना । (२) पुश्त, पीढ़ी ।

जुगजुगाना—क्रि. अ. [हिं. जगना=प्रज्वलित होना] (१) टिमटिमाना । (२) कुछ-कुछ उन्नति करना ।

जुगत, जुगति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) युक्ति, विधान, उपाय । (२) व्यवहार-कुशलता । (३) चमत्कारपूर्ण उक्ति ।

जुगती—वि. [हि. जुगत] (१) युक्ति या तरकीब लडानेवाला । (२) चतुर, चालाक ।

संज्ञा स्त्री.—(१) युक्ति, तरकीव । (२) चतुरता ।

जुगनी, जुगनू—सज्ञा पुं. [हिं. जुगजुगाना] (१) एक कीडा जिसका पिछला भाग चमकता है, खद्योत, पटबीजना । (२) एक गहना ।

जुगम—वि. [सं. युग्म] दो, जोड़ा, युग ।

जुगल—वि. [सं. युगल] वे जो एक साथ दो हों, युग्म, जोडा । उ.—अंधकार-अज्ञान हरन कौं रवि-ससि जुगल-प्रकास—१-६० ।

जुगवना—क्रि. स. [सं. योग+अवना (प्रत्य.)] (१) एकत्र या सचित करना, जोडना । (२) सुरक्षित रखना ।

जुगवनि—वि. [हि. जुग] दो । उ.—द्रुमवल्ली पर दीप जुगवनि जननि अनल त्रिय जारिहै—सा. उ. ४ ।

जुगादरी—वि. [सं. युगातरीय] बहुत पुराना ।

जुगाना—क्रि. स. [हिं. जुगवना] इकट्ठा करना ।

जुगालना—क्रि. अ. [सं.] पागुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुगालना] पागुर ।

जुगुत—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुगत] युक्ति, उपाय ।

जुगुप्सक—वि. [स.] दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं. [सं.] पर-निंदा, बुराई ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निंदा । (२) घृणा ।

जुगुप्सित—वि. [सं.] (१) निंदित । (२) घृणित ।

जुगुप्सू—वि. [स.] बुराई करनेवाला ।

जुगुल—वि. [सं. युगल] दो, दोनो । उ.—(क) सुख की रासि जुगुल मुख ऊपर सूरदास बलि जात—सा. उ. ६ । (ख) जुगुल कपाट विदारि बाट करि लतनि जुही सँधियोंरी—१०-५२ ।

जुगै—क्रि. स. [हिं. जुगवना] (१) जमा या सचित करके । (१) कोशिश करके । उ.—नभ तैं निकट आनि राखौ है जलपुट जरान जुगै—१०-१६५ ।

संज्ञा पुं. [हिं. जुग] युग, जुग।

मुहा.—जुगै जुग—अनेक जुग। उ.—(क) केतिक संख जुगै जुग बीते मानव असुर अहेरो—६-१३२। (ख) हरि की भक्ति जुगै जुग विरधै—२-२।

जुजीठल—संज्ञा पुं. [सं. युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर।

जुज्झ—संज्ञा स्त्री. [सं. युद्ध, प्रा. जुज्झ] लड़ाई-झगड़ा।

जुझवाना—क्रि. स. [हिं. जुझाना] (१) लड़ने की प्रेरणा देना, लड़ाना। (२) लड़ाकर मरवा डालना।

जुझाऊ—वि. [हिं. जुज्झ, जूझ + आऊ प्रत्य)] (१) युद्ध-संबंधी। (२) युद्ध के लिए उत्साहित करनेवाला।

जुझार—वि. [हिं. जुज्झ + आर (प्रत्य.)] वीर-बाँकुरा।

जुट—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्त, प्रा. जुत्त] (१) जोड़ी। (२) समूह। (३) गुट्ट, दल। (४) मेल का साथी। (५) जोड़ का आदमी।

जुटना—क्रि. अ. [सं. युक्त, प्रा. जुत्त + ना (प्रत्य.) या सं. जुड = बाँधना] (१) जुड़ना, संबद्ध होना। (२) सटना, लगना। (३) लिपटना, चिमटना। (४) इकट्ठा होना, (५) कार्य में जोग देना। (६) तत्पर होना। (७) एकमत होना।

जुटली—वि. [सं. जूट] जूड़ेवाला, जटाधारी, बालों की लंबी लटवाला। उ.—सखी री, नंद-नंदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु—१०-१७०।

जुटाना—क्रि. स. [हिं. जुटना] (१) दो वस्तुओं को जोड़ना। (२) मिलाना, सटाना। (३) इकट्ठा करना।

जुटाव—संज्ञा पुं. [हिं. जुटना] (१) जुटने की क्रिया या भाव। (२) जमाव, भीड़, जमावड़ा।

जुटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शिखा, चोटी। (२) लट, गुच्छा, जूड़ा। (३) कपूर।

जुट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुटना] (१) घास-पत्ती का पूला। (२) गड्डी। (३) एक पकवान।

वि.—जुड़ी, मिली या सटी हुई।

जुठरावत—क्रि. स. [हिं. जूठा] जूठा करते हैं।

मुहा.—मुख जुठरावत—जरा-सा खिलाते हैं, चखाते हैं। उ.—नंद लै लै हरि मुख जुठरावत—१०-८६।

जुठायौ—क्रि. स. [हिं. जूठा, जुठारना] जूठाकर दिया, उच्छिष्ट किया। उ.—नैन उघारि विप्र जौ देखै, खात कन्हैया देख न पायौ। देखौ आइ जसोदा, सुत-कृति, सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ—१०-२४८।

जुठनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठ, जूठन] किसी के आगे का बचा हुआ भोजन, जूठन। उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनियाँ—१०-२३८।

जुठारना—क्रि. स. [हिं. जूठा] (१) खाने-पीने की चीज मुँह से लगाकर या कुछ खाकर अपवित्र कर देना। (२) किसी वस्तु को स्वयं भोग कर दूसरे के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा, जुठिहारे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. जूठा + हारा, जुठिहारा (एक वचन)] जूठा खानेवाले। उ.—तुम साकट, वै भगत-भागवत, राग द्वेष तैं न्यारे। सूरदास प्रभु नंदनंदन कहैं, हम ग्वालिन जुठिहारे—१-२४२।

जुड़ना—क्रि. अ. [हिं. जुटना या सं. जुड़ = बाँधना] (१) दो वस्तुओं का संबद्ध या संयुक्त होना। (२) इकट्ठा होना। (३) किसी काम में योग देने को प्रस्तुत होना। (४) मिलना, प्राप्त होना। (५) गाड़ी में पशु जुतना।

जुड़वाँ—वि. [हिं. जुड़ना] जुड़े हुए, एक साथ पैदा होनेवाले, जुड़वाँ (बच्चे)।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोड़ना] जोड़ने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

जुड़वाना—क्रि. स. [हिं. जूड़] (१) ठंडा या शीतल करना। (२) शांत, सुखी या संतुष्ट करना।

क्रि. स. [हिं. जोड़वाना] जोड़ने में प्रवृत्त करना,

जुड़ाई—क्रि. अ. [हिं. जुड़ाना] सरदी खा गयी, जड़ा गयी। उ.—ब्रज-ललना कह्यौ नीर जुड़ाई। अति आतुर ह्वै तट कौं धाई—७६६।

जुड़ाई—क्रि. अ. [हिं. जुड़ाना] शांत या सुखी करना, ठंडा या शीतल करना। उ.—(माखन) अति कोमल तुम्हरे मुख लायक, तुम खैयहु मेरे नैन जुड़ाई—५४६।

वि.—जड़ायी हुई, सरदी खाई हुई। उ.—एम

ठाढ़ी जल माहिं गुसाईं खरी जुड़ाई नीर की—३३०३।

जुड़ाना—क्रि. अ. [हिं. जूड़] (१) ठंडा या शीतल होना। (२) प्रसन्न या सुखी होना।

क्रि. स. (१) शीतल करना। (२) संतुष्ट करना।

क्रि. स. [हिं. जोड़ना] जोड़ने का काम कराना।

जुड़ाने—क्रि. अ. [हिं. जुड़ाना] ठंडे या शीतल हुए, प्रसन्न हुए। उ.—अँचवत तव नयन जुड़ाने—१०-१८३।

जुड़ावत—क्रि. अ. [हिं. जुड़ाना] सुख-संतोष देता है, शांति मिलती है। उ.—ठाढी अजिर जसोदा अपनैं, हरिहिं लिए चंदा दिखरावत। रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत-१०-१८८।

जुड़ावन—वि. [हिं. जुड़ाना] सुखी-संतुष्ट करनेवाले। उ.—मोतें को हो अनाथ, दरसन तैं भयौ सनाथ, देखत नैन जुड़ावन—१०-२५१।

जुड़ावना—क्रि. स. [हिं. जुड़ाना] (१) ठंडा या शीतल करना। (२) शांत, सुखी या प्रसन्न करना।

क्रि. अ.—(१) ठंडा होना। (२) तृप्त होना।

जुडावाँ—वि. [हिं. जुड़ना] जुड़े हुए, जुड़वाँ।

जुत—वि. [सं. युक्त] युक्त, सहित। उ.—(क) हरि कह्यौ, राज न करत धर्मसुत। कहत हते मैं भ्रात तात-जुत—१-२६१। (ख) छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहि पैहैं—१०-८६।

जुतना—क्रि. अ. [हिं. युक्त, प्रा. जुत्त] (१) बैल-घोड़े का गाडी में लगना। (२) किसी काम में तत्पर होना। (३) लड़ना, गुथना, जुटना। (४) जमीन, खेत आदि का जोता जाना।

जुतवाना—क्रि. स. [हिं. जोतना] (१) जमीन जुताना। (२) गाडी में बैल-घोड़ा बँधवाना।

जुताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोताई] जोतने की क्रिया, रीति या मजदूरी, जोताई।

जुताना—क्रि. स. [हिं. जोतना] (१) जमीन जोतने में लगाना। (२) गाड़ी में घोड़ा-बैल नथवाना। (३) जबरदस्ती काम में लगाना।

जुतियाना—क्रि. स. [हिं. जूता+इयाना (प्रत्य.)] (१) जूता मारना। (२) निरादर या अपमान करना।

जुतियौअल—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूता] जूतों की मार।

जुत्थ—संज्ञा पुं. [सं. यूथ] (१) समूह। (२) सेना।

जुदा—वि. [फा.] (१) अलग। (२) भिन्न।

जुदाई—संज्ञा स्त्री. [फा.] वियोग, विछोह।

जुदी—वि. स्त्री. [हिं. जुदा] (१) अलग। (२) भिन्न।

जुद्ध, जुध—संज्ञा पुं. [सं. युद्ध] लडाई, संग्राम, रण। उ.—(क) कोटि छ्यानवे नृप-सेना सब जरासंध बँध छोरे। ऐसैं जन परतिग्या राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे—१-३१। (ख) बहुरौ क्रोधवंत जुध चह्यौ। सहस-बाहु तब ताको गह्यौ—९-१३।

जुधिष्ठिर—संज्ञा पुं. [सं. युधिष्ठिर] राजा पांडु के क्षेत्रज पुत्र जो उनकी पत्नी कुंती के गर्भ से धर्म द्वारा उत्पन्न थे। पांचो भाइयो में ये सबसे बड़े थे। परम सत्यवादी और धर्म परायण होने के कारण ये धर्मराज कहलाते थे।

जुनून—संज्ञा पुं. [फा.] पागलपन।

जुन्हरी, जुन्हार—संज्ञा स्त्री. [सं. यवनाल] ज्वार अन्न।

जुन्हाई, जुन्हैया—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योत्स्ना, प्रा. जोन्हा] (१) चाँदनी, चंद्रिका। (२) चंद्र, चंद्रमा।

जुपना—क्रि. अ. [हिं. जुड़ना] (दीपक का) बुझना।

जुवराज—संज्ञा पुं. [सं. युवराज] बड़ा राजकुमार जो राज्य का अधिकारी हो।

जुवाद—संज्ञा पुं.—एक तरह की कस्तूरी।

जुवान—संज्ञा स्त्री. [हिं. जबान] जीभ, जबान।

जुबानी—वि. [हिं. जबानी] जबानी।

जुमला—वि. [फा.] सब कुछ, सबके सब।

संज्ञा पुं.—वाक्य, सार्थक वाक्य।

जुमा, जुम्मा—संज्ञा पुं. [अ.] शुक्रवार (दिन)।

जुमिल—संज्ञा पुं.—एक तरह का घोड़ा।

जुमुकना—क्रि. अ. [सं. यमक] (१) पास, निकट या समीप आ जाना। (२) इकट्ठा या एकत्र होना।

जुमेरात—संज्ञा स्त्री. [अ.] गुरुवार (दिन)।

जुर—संज्ञा पुं. [सं. ज्वर] ज्वर, ताप, बुखार। उ.—(क) सुत-तनया-वनिता-विनोद-रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ—१-१५४। (ख) बिन देखे की जथा विरहिनी अति जुर जरति न जाति छुई—१४३३।

जुरअत—संज्ञा स्त्री. [फा.] साहस, हिम्मत।

जुरझुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वर या जूर्ति+हि. झरझराना] (१) हरारत। (२) ज्वर के कारण कँपकँपी।

जुरना—क्रि. अ. [हिं. जुड़ना] सटना, जुडना।

जुरवाना, जुरमाना—संज्ञा पुं. [हि. जुरमाना] धन दंड।

जुरा—संज्ञा स्त्री. [हि. जरा] (१) बुढापा। (२) मौत।

जुराइ, जुराय—क्रि. स. [हि. जुड़ाना] जुडाकर, (एक में) बँधवा कर। उ.—(क) अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ, इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५। (ख) राधा मोहन गाँठि जुराय—२४५४ (६)।

जुराना—क्रि. अ. [हिं. जुड़ाना] शीतल या ठंडा होना।

जुरावौ—क्रि. स. [हि. जुड़ाना] जुड़वाओ, बँधवाओ। उ.—सूर स्याम छबि निहारति. तन-मन जुवति जन वारति, अतिहीं सुख धारति, वरग-गाँठि जुरावौ—१०-९५।

जुरि—क्रि. स. [हि. जुड़ना] जुडकर, एकत्र होकर। उ.—आज बधाई नंद कैं माई। व्रज की नारि सकल जुरि आई—१०-३२।

जुरीं—क्रि. अ. [हिं. जुड़ना] जुड़ीं, इकट्ठा हुईं। उ.—(क) षटरस सहस जुरीं सुकुमारी—७९६। (ख) जुरी व्रजसुंदरी दसन छबि कुंदरी काम तनु दुदरी करनहारी—१२९०।

जुरी—संज्ञा स्त्री. [सं जूर्ति=ज्वर] हरारत।

क्रि. अ. स्त्री. [हिं. जुड़ना] एकत्र हुई, इकट्ठा हुई। उ.—भोग-समग्री जुरी अपार। विचरन लागे सुख-संसार—३-१३।

जुरे—क्रि. अ. [हि. जुड़ना] एकत्र हुए, इकट्ठा हुए। उ.—(क) माखन खात चले उठि खेलन, सखा जुरे सब साथ—१०-३१२। (ख) बहुत जुरे व्रजवासी लोग—९२२। (ग) दुहुँ दिसि सुभट बाँके विकट अति जुरे—१० उ. १। (घ) जुरे मनुज नहि पार—सारा. २३०।

जुर्म—संज्ञा पु. [अ.] अपराध।

जुर्रा—संज्ञा पु. [फा.] नर बाज (पक्षी)।

जुर्राब—संज्ञा स्त्री. [तु.] मोजा।

जुरयौ—क्रि. अ. [हि. जुटना=जुड़ना] जुड़ा, एकत्र हुआ, इकट्ठा हुआ। उ.—कटक अगिनित जुरयौ, लंक खरभर परयौ, सूर कौ तेज धर-धूरि ढाँप्यौ—९-१०६।

जुल—संज्ञा पुं. [सं. छल] धोखा, झाँसा, बुत्ता।

जुलना—क्रि. स. [हि. जुड़ना] (१) सम्मिलित होना। (२) मिलना, भेंट करना।

जुलबाज—वि. [हि. जुल+फा. बाज] छली, धूर्त्त।

जुलबाजी—संज्ञा स्त्री. [हि. जुलबाज] छल, धूर्त्तता।

जुलम—संज्ञा पुं. [हि. जुल्म] अत्याचार।

जुलाई—वि.—हीन, तुच्छ। उ.—प्रभु जू हौं तौ महा अधर्मी। घाती कुटिल ढीठ अति क्रोधी कपटी कुमति जुलाई—१-१८६।

जुलाब, जुल्लाब—संज्ञा पुं. [अ. जुल्लाव] रेचन, दस्त।

जुलाहा—संज्ञा पुं. [फा. जौलाह] (१) कपड़ा बिनने या बुनने वाला। (२) पानी का एक कीड़ा। (३) एक बरसाती कीड़ा।

जुलुफ, जुल्फ, जुल्फी—संज्ञा स्त्री. [फा. जुल्फ] सिर के बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं, पट्टे, कुल्ले।

जुलुम, जुल्म—संज्ञा पुं. [अ. जुल्म] अत्याचार, अनीति। मुहा.—जुल्म टूटना-आफत आना। जुल्म ढाना-(१) अत्याचार करना। (२) अद्भुत काम करना।

जुलूस—संज्ञा पुं. [अ.] धूम-धाम की सवारी।

जुलोक—संज्ञा पुं. [सं. द्युलोक] सुरलोक, बैकुंठ।

जुवक—संज्ञा पुं. [सं. युवक] नौजवान, युवक।

जुवति, जुवती—संज्ञा स्त्री. [सं. युवती] (१) युवती, नयी उम्र की स्त्री। उ.—षोड़स जुक्ति, जुवति चित्त षोड्स, षोड्स बरस निहारै—१-६०। (२) पत्नी। उ.—पतिव्रता जालंधर-जुवती, सो पतिव्रत तैं टारी—१-१०४।

जुवराज—संज्ञा पुं. [सं. युवराज] युवराज।

जुवाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. यूका, हि. जूँ] जूँ नामक स्वेदज कीड़ा। उ.—बालापन दुख बहु बिधि पावै। ... कबहूँ जुवाँ देहिं दुख भारी। तिनकौं सो नहि सकै निवारी—३-१३।

जुवा—संज्ञा पुं. [सं. द्यूत, पा. जूत] जुआ, द्यूत। उ.—आछौ गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति

कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हारयौ—१-१०१ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. युवा] युवावस्था, यौवनावस्था । उ.—बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा विषय-रस मातैं—१-११८ ।

जुवान—संज्ञा पु. [हिं. जवान] नवयुवक ।

जुवानी—संज्ञा पुं. [हिं. जवानी] युवावस्था ।

जुवार, जुवारि—संज्ञा स्त्री. [हि. ज्वार] ज्वार नामक अन्न । उ.—सूर हस स्वाति-सुत धोखैं कबहुँक खात जुवारि—२१४६ ।

जुवारि, जुवारी—संज्ञा पु. [हि. जुआरी] जुआरी ।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] तलाश, खोज ।

जुहाना—क्रि. स. [स. यूथ, प्रा. जूह+आना (प्रत्य.)] (१) इकट्ठा करना । (२) जोडना, सचित करना ।

जुहार, जुहारा, जुहारि, जुहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. अवहार=युद्ध रुकना, हि. जुहार] प्रणाम, अभिवादन । उ.—(क) सूर आकासबानी भई तवै तहँ, यहै वैदेहि है, करु जुहारा—६-७६ । (ख) देखि सरूप सकल कृष्णाकृति कीनी चरन-जुहारो—८-१४ ।

जुहारना—क्रि. स. [हि. जुहार] (१) प्रणाम या अभिवादन करना । (२) सहायता माँगना, अहसान लेना ।

जुहावना—क्रि. स. [हिं. जुहाना] जोडना, सचित करना ।

जुहिला—संज्ञा स्त्री. [हि. जुही] राधा की एक सखी का नाम । उ.—कहि राधा किन हार चुरायौ । ' ' । सुमना बहुला चंपा जुहिला नाना भाना भाउ—१५८० ।

जुही—संज्ञा स्त्री. [सं. यूथी, हि. जूही] एक पौधा जिसके फूल सफेद होते हैं ।

जुहू—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक यज्ञ पात्र । (२) पूर्व दिशा ।

जुहोता—संज्ञा पुं. [सं. जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला ।

जूँ—संज्ञा स्त्री. [स. यूका] एक छोटा स्वदेज कीड़ा ।

मुहा.—कानों पर जूँ रेंगना—परवाह न करना, सतर्क न होना । जूँ की चाल—बहुत सुस्त चाल ।

जूँठ—वि. [वि. जूठा] खाया हुआ, जूठा ।

जूँठन—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठन] जूठा किया हुआ पदार्थ, खाने से बचा हुआ शेष अन्न । उ.—छौंक खाय जूँठन ग्वालिनकौ कछु मन मैं नहि मान्यौ—सारा. ७५० ।

जूँठे—वि. वहु. [हिं. जूठा] जो जूठे हों, उच्छिष्ट । उ.—खाटे फल तजि मीठे ल्याई । जूँठे भए सो सहज सुहाई—६-६७ ।

जूँदन—संज्ञा पुं. [देश.] बदर ।

जूँमुहाँ—वि. [हि. जूँ+मुँह] जो देखने म सीधा पर भीतर से बडा धूर्त और कपटी हो ।

जू—अव्य. [सं. (श्री) युक्त] (१) आदरसूचक शब्द जो प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम के साथ लगाया जाता है; यह व्रज, बुदेलखड और राजपूताने में विशेष प्रचलित है, जी । उ.—बकी कपट करि मारन आई सो हरिजू वैकुंठ पठाई—१-३ । (२) सबोधन का एक प्रत्युत्तर ।

अव्य. [देश.] एक निरर्थक शब्द ।

सज्ञा स्त्री. [स.] (१) सरस्वती । (२) वायुमंडल ।

जूआ—संज्ञा पुं. [स. युग] (१) हल आदि में नये बैलो के कधे पर बँधी लकड़ी । उ.—काम-क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रस-तामस सब कीन्हौ । अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया-जूआ दीन्हौ—१-१८५। (२) चक्की फिराने की लकड़ी ।

संज्ञा पु. [सं. द्यूत, प्रा. जूआ] धन की हार-जीत का खेल, द्यूत ।

जूजू—सज्ञा पुं. [अनु.] हाऊ, हउआ ।

जूझ—सज्ञा स्त्री. [सं. युद्ध, प्रा. जुज्झ] युद्ध ।

जूझत—क्रि. अ. [हिं. जूझना] (१) लड़ना । (२) लडकर मर जाना । उ.—असी सहस किंकर-दल तेहिके, दौरे मोहिं निहारि । तुव प्रताप तिनकौं छिन भीतर जूझत लगी न वार—६-१०४ ।

जूझना—क्रि. अ. [सं. युद्ध, हिं. जूझ] (१) लड़ना । (२) लड़कर मरना, युद्ध में प्राण त्यागना ।

जूझि—क्रि. अ. [हि. जूझना] युद्ध में लड़ते-लड़ते मरना । उ.—सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै—६-१५४ ।

जूझे—क्रि. अ. [हि. जूझना] जूझते या लड़ते रहे । उ.—सहस वरस लौं जल में जूझे कियौ दनुज सहार—सारा. ४६ ।

जूट—सज्ञा पुं. [सं.] (१) जटा की गाँठ । (२) लट,

जटा। (३) शिव की जटा। (४) पटसन।

जूटना—क्रि. स. [हि. जोड़ना] जोड़ना, मिलाना।

क्रि. अ.—(१) जुड़ना, एकत्र होना। (२) फँसना।

जूटि—संज्ञा स्त्री. [हि. जोड़ी] जोड़ी।

जूठ—संज्ञा स्त्री. [हि. जूठ] जूठन, उच्छिष्ट भोजन। उ.—अबकी बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू उपाइ। भटकत फिरयौ स्वान की नाईं नैकुँ जूठ कैं चाइ—१-१५५।

वि.—खाकर अपवित्र किया हुआ, जूठा।

जूठन, जूठनि—संज्ञा स्त्री. [हि. जूठा] (१) खाकर अपवित्र किया हुआ सामान। (२) खाने से बचा भोजन। उ.—(क) इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु ब्रजवासिनि कैं ऐनु—४६१। (ख) जूठनि माँगि सूर जन लीन्हौ। बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीन्हौ—३६६।

जूठा, जूठो, जूठौ—वि. [सं. जुष्ठ, प्रा. जुठ्ठ, हि. जूठा] (१) किसी के खाने से बचा हुआ, किसी का खाया हुआ, उच्छिष्ट। उ.—ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत। जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपनैं मुख लै नावत—४६८।

मुहा.—मीठे के लालच से जूठा खाना—किसी लोभ या लाभ की आशा से अनुचित काम करने को तैयार होना। जूठो खइए मीठे कारन—लाभ की आशा से अनुचित काम करना। उ.—नैनन दसा करी यह मेरी। आपुन भए जाइ हरि चेरे मोहि करत हैं चेरी। जूठो खइए मीठे कारन आपुहि खात लड़ावत। और जाइ सो कौन न फेको, देखन तौ नहिं पावत—पृ. ३३१।

(२) जिसका स्पर्श मुँह या जूठे पदार्थ-पात्र आदि से हुआ हो।

मुहा.—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना—बहुत ज्यादा कंजूस होना।

(३) व्यवहार या भोग किया हुआ।

संज्ञा स्त्री.—खाने से बचा हुआ भोजन, जूठन।

जूठी—वि. स्त्री. [हि. जूठा] खायी हुई चीज।

जूड़—वि. [हि. जाड़ा] ठंडा, शीतल।

जूड़ा—संज्ञा पुं. [सं. जूट] (१) स्त्री के सिर के बालों की गाँठ, साधु की जटा की गाँठ। (२) चोटी, कलगी। (३) पगड़ी का पिछला भाग।

जूड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. जूड़ या जाड़ा] जाड़ा लगकर चढ़नेवाला ज्वर या बुखार।

संज्ञा स्त्री. [हि. जुड़ना] गड्डी।

जूत, जूता—संज्ञा पुं. [स. युक्त, प्रा. जुत्त] पनही, उपानह।

मुहा.—जूता उठाना—(१) जूता मारने को तैयार होना। (२) हीन सेवा करना। (३) खुशामद करना। जूता उछलना (चलना)—मारपीट या झगड़ा होना। जूता खाना—(१) जूतों की मार खाना। (२) भली-बुरी बातें सुनकर अपमानित होना। जूता गाँठना—नीच काम करना। जूता चाटना—खुशामद करना। जूता जड़ना (देना, मारना, लगाना)—(१) जूता मारना। (२) जली-कटी, मुँहतोड़, चुभती हुई या अपमान करनेवाली बात करना। जूता पड़ना (लगना)—(१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँहतोड़ जवाब मिलना। (३) हानि होना। जूता बरसना (बैठना)—जूते की मार पड़ना। जूते का आदमी—मार खाकर या फटकार सुनकर ही ठीक काम करनेवाला।

जूताखोर, जूतीखोर—वि. [हि. जूता + फा खोर] (१) जो जूते पड़ने पर ठीक रहे। (२) निर्लज्ज, बेहया।

जूति—संज्ञा पुं. [सं.] वेग, तेजी।

जूतियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हि. जूती] (१) स्त्रियों के जूते। (२) छोटे-हल्के जूते।

मुहा.—जूतियाँ उठाना—(१) नीच सेवा करना। (२) खुशामद-करना। जूतियाँ खाना—(१) जूतों से पिटना। (२) भली-बुरी सुनना। (३) अपमानित होना। जूतियाँ गाँठना—नीच काम करना। जूतियाँ चटकाते फिरना—(१) निर्धनता के मारे घूमना। (२) बेकार मारे-मारे घूमना। जूतियाँ पड़ना—(१) जूतों की मार पड़ना। (२) अपमानित होना। जूतियाँ दबाकर भागना—चुपचाप चले जाना, खिसकना। जूतियाँ मारना (लगाना)—(१) जूते मारना। (२) कड़ी बात कहना। (३) अपमानित करना। जूतियाँ

सौंधी करना—(१) तुच्छ सेवा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

जूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूता] (१) स्त्री का जूता। (२) छोटा-हलका जूता।

मुहा.—जूती की नोक पर मारना—कुछ न समझना, कुछ परवाह न करना। जूती की नोक से—बला से, सींगे से, कुछ परवाह नहीं। जूती के बराबर—बहुत हीन या तुच्छ। जूती के बराबर होना—बहुत तुच्छ होना। जूती चाटना—बहुत खुशामद करना। जूती देना—जूता मारना। जूती पर जूती चढना—कहीं यात्रा का शकुन होना। जूती पर मारना—परवाह न करना। जूती पर रखकर रोटी देना—अपमान के साथ खिलाना-पिलाना। जूती से—कुछ परवाह नहीं।

जूतीखोर—वि. [हिं. जूती + फा. खोर] (१) जो मार या ताड़ना से ही ठीक रहे। (२) निर्लज्ज, वेहया।

जूतीछुपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूती + छुपाना] (१) विवाह में वर के जूते छिपाने की रसम। (२) इस रसम का नेग।

जूतीपैजार—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूती + फा. पैजार] (१) मार-पीट, धौल-धप्पा। (२) लड़ाई-झगड़ा।

जूथ—संज्ञा पुं. [स. यूथ] समूह। उ.—(क) नरक-कूपनि जाइ जमपुर परयौ बार अनेक। थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारैं न नेक—१-१०६। (ख) जो वनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-विभव घनेरौ। सबै समर्पौ सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ—१-२६६।

जूथकर—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का फूल।

जूथनि—संज्ञा पुं. [सं. यूथ+हिं. नि (प्रत्य.)] समूह या झुंड पर। उ.—ज्यौं कदर तैं निकसि सिंह, झुकि, गज-जूथनि पर धाए—१-२७४।

जूथपति—संज्ञा पुं. [स. यूथपति] सेनानायक, सेनापति। उ.—जाके दल सुग्रीव सुमंत्री, प्रबल जूथपति भारी—६-११५।

जूथिका—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का फूल।

जून—संज्ञा पुं. [स. द्युवन्=सूर्य] समय, बेला, काल। उ.—गो-सुत गोठ बँधन सब लागे, गो-दोहन की जून टरी—४०४।

संज्ञा पुं. [सं. जूर्ण=एक तृण] तिनका।

वि. [हि. जीर्ण] पुराना, घिसा-घिसाया।

जूना—संज्ञा पुं. [सं. जूर्ण=तिनका] (१) घास-फूस की बटी हुई रस्सी। (२) घास-फूस या बाँधो का लच्छा या पूला जो बरतन माँजने के काम आता है।

जूप—संज्ञा पु. [सं. द्यूत, प्रा. जूअ या जूव] (१) जुआ, द्यूत। (२) विवाह की एक रीति जिसमें वर-वधू परस्पर जुआ खेलते हैं। उ.—खेलत जूप सकल जुवतिनि में, हारे रघुपति, जिती जनक की—९-२५।

संज्ञा पुं. [सं. यूप] (१) यज्ञ का बलि-पशु बाँधने का खम्भा। (२) खभा, यूप। उ.—प्रति प्रति गृह तोरन ध्वजा धूप। सब तजे कलस अरु कदलि जूप।

जूमना—क्रि. अ. [अ. जमा] इकट्ठा होना, जुड़ना।

जूर, जूरु—संज्ञा पुं. [हिं. जुरना] जोड, सचय।

जूरना—क्रि. स. [हिं. जोड़ना] जोड़ना।

जूरा—संज्ञा पु. [हि. जूड़ा] स्त्रियो की चोटी।

जूरी—संज्ञा स्त्री. [हि. जुरना] (१) छोटा पूला, जुट्टी। (२) नये कल्ले। (३) एक पकवान। (४) एक पौधा।

जूर्णि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेग। (२) देह। (३) क्रोध।

वि.—(१) तेज। (२) गला हुआ। (३) स्तुति या प्रशसा करने में कुशल।

जूवै—संज्ञा पुं. सवि. [स. द्यूत, पा. जूत, हि. जुआ] जुए में, द्यूत में। उ.—दूतनि कह्यौ बड़ौ यह पापी। इन तौ पाप किए हैं धापी। विप्र जन्म इन जूवैं हारयौ। काहे तैं तुम हमैं निवारयौ—६-४।

जूर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] ज्वर, बुखार।

जूष, जूस—संज्ञा पु. [स. जूष] (१) झोल। (२) उबाली हुई दाल का पानी।

मुहा.—जूस देना—उबली दाल का पानी देना।

संज्ञा पुं. [फा जुफ्त। सं. युक्त] सम सख्या।

जूह—संज्ञा पुं [सं. यूथ, प्रा. जूह] झुड, समूह।

जूहर—संज्ञा पुं. [फा. जौहर] राजपूत स्त्रियो का युद्ध-सकट में चिता में जीवित जल जाना।

जूही—संज्ञा स्त्री. [सं. यूथी] एक पौधा ।
संज्ञा स्त्री. [सं. यूक] जुई नामक कीडा ।
जृंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जँभाई । (२) आलस्य ।
जृंभक—वि. [सं.] जँभाई लेनेवाला ।
संज्ञा पुं.—(१) एम रुद्र-गण । (२) एक अभिमंत्रित अस्त्र जो शत्रुओं को शिथिल कर देता था । ताड़का-संहार के पश्चात् विश्वामित्र ने अग्नि से प्राप्त यह अस्त्र श्रीराम को दिया था ।
जृंभण—संज्ञा पुं. [सं.] जँभाने की क्रिया ।
जृंभमान—वि. [सं.] (१) जँभाई लेता हुआ । (२) सुस्त, आलसी, शिथिल (३) प्रकाशमान ।
जृंभा—[संज्ञा] स्त्री. [सं.] (१) जँभाई । (२) एक शक्ति ।
जृंभिका—[संज्ञा] स्त्री. [सं.] (१) आलस्य । (२) जँभाई ।
जृंभित—वि. [सं.] (१) चेष्टित । (२) स्फुटित ।
संज्ञा पु. [सं.] (१) रंभा । (२) स्त्रियों की इच्छा ।
जेइ—क्रि. अ. [हिं. जेवना] जीमकर, भोजन करके ।
उ.—जेंवत अति रुचि पावहीं, परुसति माता हेत । जेंइ उठि अँचमन लियौ, दुहुँ कर बीरा देत—४३७ ।
जेंगना—संज्ञा पुं. [हिं. जुगनूँ] जुगनूँ ।
जेंगरा—संज्ञा पुं. [देश.] अनाज के शेष डठल ।
जेना—क्रि. स. [हिं. जेंवना] भोजन करना ।
जेंवत—क्रि. स. [हिं. जेंवना] भोजन करते हैं, खाते हैं ।
उ.—(क) लै लै अधर-परस करि जेंवत, देखत फूल्यौ मात हियौ—१०-१६८ । (ख) सुठि सरस जलेबी बोरी । जिहिं जेंवत रुचि नहि थोरी—१०-१८३ । (ग) जेंवत कान्ह नंद इकठौरे—१०-२२४ । (घ) जेंवत अति रुचि पावहीं, परुसनि माता हेत—४३७ ।
जेंवन—संज्ञा पुं. [हिं. जीमना] (१) भोज, ज्योनार । (२) भोजन करना । (३) रसोई, भोजन । उ.—(क) टेरत बड़ी बार भई मोकौं, नहिं पावत घनस्याम तमालहिं । सिध जेंवन सिरात, नंद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह तत्कालहिं—१०-२३६ । (ख) जेंवन करन चली जब भीतर—५६५ ।
क्रि. स.—जीमना, खाना, भोजन करना ।
प्र.—जेंवन लागे—खाने लगे । उ.—बैठे संग नंद बाबा के चारों भैया जेंवन लागे—सारा. १८५ ।
जेंवना—क्रि. स. [सं. जेमन] भोजन करना ।
संज्ञा पुं.—खाने का पदार्थ, भोजन ।
जेंवनार—संज्ञा स्त्री. [हि. जेवनार] भोज, दावत ।
जेवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेवरी] रस्सी । उ.—प्रेत-प्रेत तेरौ नाम परयौ, जब जेंवरि बाँधि निकारयौ—१-३३६।
जेंवहु—क्रि. स. [हि. जेंवना] जीमो, भोजन करो, खाओ । उ.—(क) लुचुई लपसी, सद्य जलेबी, सोइ जेंवहु जो लगै पियारी—१०-२२७ । (ख) बेसन मिलै सरस मैदा सौं, अति कोमल पूरी है भारी । जेंवहु स्याम मोहि सुख दीजै, तातैं करी तुम्हैं ये प्यारी—१०-२४१ ।
जेंवाना—क्रि. स. [हिं. जेंवना] भोजन कराना ।
जेंवावत—क्रि. स. [हिं. जिमाना] भोजन कराते हैं ।
उ.—मधु मेवा पकवान मिठाई अपने हाथ जेंवावत—सारा.—१६५ ।
जेंवौ—क्रि. स. [हि. जीमना] जीमो, भोजन करो ।
उ.—फेनी, सेव, अँदरसे प्यारे । लै आवौं जेंवौ मेरे बारे—३९६ ।
जे—सर्व. [सं. ये] संबधवाचक सर्वनाम 'जो' का बहुवचन, जो लोग । उ.—सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची—१-१८ ।
जेइ, जेउ, जेऊ—सर्व. [हि. जो] (१) जो, जो लोग ।
उ.—अहो नाथ जेइ जेइ सरन आए तेइ तेइ भए पावन—१०-२५१ । (२) जो भी ।
जेठ—संज्ञा स्त्री. [सं. यूथ] (१) समूह । (२) तह, गड्डी । (३) गोद, कोरा । (४) बर्तनों का ढेर ।
संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ] (१) बैसाख के बाद का महीना । (२) पति का बड़ा भाई ।
वि.—(१) बड़ा, अग्रज । (२) श्रेष्ठ ।
जेठरा—वि. [हिं. जेठ] बडा, अग्रज ।
जेठरैयत—संज्ञा पुं. [हिं. जेठ+अ. रैयत] मुखिया ।
जेठवा—संज्ञा पुं. [हिं. जेठ] जेठ मास की कपास ।
जेठा—वि. [सं. ज्येष्ठ] अग्रज, बडा ।
जेठाई—संज्ञा स्त्री. [हि. जेठ] बड़प्पन, जेठापन ।
जेठानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठ] जेठ की स्त्री ।

जेठी—वि. [हिं. जेठ+ई (प्रत्य.)] जेठ-मास संबंधी।
संज्ञा स्त्री.—जेठ मास में तैयार कपास।
संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठ = बड़ा] बड़ी लड़की। उ.—जमुना जस की रासि चहूँ जग जम-जेठी जग की महतारी—१० उ. ४२।
जेठुआ—वि. [हिं. जेठी] जेठ मास संबंधी।
जेठौत, जेठौता—संज्ञा पु. [हिं. जेठ+पूत] जेठ-जेठानी का पुत्र।
जेठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठौता] जेठ की पुत्री।
जेतक—वि. [हिं. जेते] जितने (संख्यावाचक)। उ.—जेतक सस्त्र सो किए प्रहार। सो करि लिए असुर आहार—६-५।
जेतवार, जेतवारु—वि. [हिं. जीत+वार] विजयी।
जेतव्य—वि. [सं.] जो जीता जा सके।
जेता—वि. [स. जेतृ] जीतनेवाला, विजयी।
सज्ञा पु—विष्णु।
वि. [हिं. जितना] जितना, जिस कदर।
जेतार—वि. [हिं. जेता] विजय पानेवाला।
जेतिक—क्रि. वि. [सं. य.] जितना, जिस मात्रा में, जिस सख्या में। उ.—जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम, तिनकी गति मैं नापी—१-१४०।
जेती—वि. स्त्री. [हिं. जेते] जितनी (सख्यावाचक)। उ.—चौदह सहस किन्नरी जेती, सब दासी हैं तेरी—६-७६।
मुहा.—जेती की तेती—जैसी की तैसी, पूर्ववत्, बिना लाभ या वृद्धि के। उ.—प्रभु जू, यौं कीन्ही हम खेती। बजर भूमि, गाउँ हर जोते, अरु जेती की तेती—१-१८५।
जेते—वि. [सं. य., यत्] जितने। उ.—इहिं विधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ जिय जेते (हो)—१-४४।
जेतो, जेतौ—क्रि. वि. [सं. यः, यत्] जितना, जिस कदर। उ.—(क) कोउ कहैं देहैं दाम, नृपति जेतौ धन चाहैं—५८६। (ख) हमैं तुम्हैं अंतर है जेतो जानत हैं बनवारी—३६३८।
जेना—क्रि स. [हिं. जेंवना] भोजन करना, खाना।
जेन्य—वि. [सं.] (१) ऊँचे वश में उत्पन्न। (२) जो बनावटी न हो, सच्चा, असली।
जेन्यावसु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इद्र। (२) अग्नि।
जेब—संज्ञा पु. [फा.] खीसा, खरीता।
संज्ञा स्त्री. [फा. ज़ेब] शोभा, सुंदरता।
जेबदार—वि. [फा ज़ेब+दार] सुदर।
जेबी—वि. [हिं. जेब] (१) जो जेब में आ सके। (२) बहुत छोटा।
जेमन—संज्ञा पु. [सं.] भोजन का कार्य।
जेय—वि. [स.] जो जीता जा सके।
जेर—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) गर्भगत बालक की आँवल या झिल्ली। (२) एक पेड।
वि. [फा. ज़ेर] (१) परास्त, पराजित। उ.—मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यौ धनुष उतारि—१६८४। (२) तंग, परेशान, सताया हुआ।
जेरना—क्रि. स. [हि. ज़ेर] तग या पीड़ित करना।
जेरपाई—संज्ञा स्त्री. [फा.] स्त्री की जूती।
जेरबार—वि. [फा. ज़ेरबार] (१) तग, दुखी, परेशान। (२) जिसकी बहुत हानि हो गयी हो।
जेरबारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेरबार] (१) तगी, कष्ट, परेशानी, हैरानी। (२) हानि, क्षति।
जेरि, जेरिया, जेरी—संज्ञा स्त्री. [हि. जेर] नवजात शिशु की आँवल।
सज्ञा स्त्री.—(१) ग्वालो या चरवाहो की साथ रहनेवाली लाठी। उ.—(क) उतहिं सखी कर जेरी लीन्हे गारी देहिं सकुच तोरी की। इतहिं सखा कर बाँस लिये बिच मारु मची झोरा झोरी की—२४०५। (ख) इत लिए कनक लकुटिया नागरि उत जेरी धरे ग्वार—२४३७। (२) खेती का एक औजार।
जेल—संज्ञा पुं. [फा. ज़ेर] (१) जजाल, झझट, बधन। (२) बदीगृह।
जेवड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. जेवरी] रस्सी।
जेवन—सज्ञा स्त्री. [हिं. जेवना] भोजन, रसोई। उ.—देखहु जाइ कहा जेवन कियौ रोहिनि तुरत पठाई—५११।
जेवना—क्रि. स. [हि. जीमना] भोजन करना, खाना।
जेवनार—सज्ञा स्त्री. [हिं. जेवना] (१) रसोई, भोजन।

उ.—(क) भूखौ भयौ आजु मरौ वारौ । ···· ··· । पहिलेहिं रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार—१०-३६५ । (ख) रोहिनि करि जेवनार, स्याम-बलराम बुलाए—४३७ । (२) सहभोज, दावत ।

जेवर—संज्ञा पुं. [फा. जेवर] गहना, आभूषण ।

संज्ञा पुं. [देश.] जघी नामक पक्षी ।

संज्ञा स्त्री. [हि. जेवरी] रस्सी ।

जेवरा—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योरा] फसल तैयार होने पर नाई, चमार आदि को दिया जानेवाला अनाज ।

जेवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवा] रस्सी । उ.—हो हरि प्रेम जेवरी बाँध्यौ जननि सॉट लै डाँटै ।

जेवहु—क्रि. स. [हि. जेवना] भोजन करो । उ.—कहाँ माखन रोटी कहाँ जसुमति जेंवहु कहि कहि प्रेम—२६१५ ।

जेष्ठ—संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ] (१) जेठ का महीना । (२) पति का बड़ा भाई, जेठ ।

वि.—(१) अग्रज, जेठा , बड़ा । (२) श्रेष्ठ ।

जेष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्येष्ठा] (१) एक नक्षत्र । (२) बीच की उँगली । (३) गंगा । (४) अलक्ष्मी ।

वि.—(१) बड़ी, जेठी । (२) श्रेष्ठ (स्त्री) ।

जेह—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़िह । सं. ज्या] (१) धनुष की डोरी, ज्या, चिल्ला । (२) दीवार के निचले भाग का मोटा पलस्तर ।

जेहड़—संज्ञा स्त्री. [हि. जेट+घंट] तले-ऊपर रखे हुए पानी के कई घड़े ।

जेहन—संज्ञा पुं. [अ. जेहन] बुद्धि, धारणाशक्ति ।

जेहर, जेहरि, जेहरी—संज्ञा स्त्री —पैर का पाजेब नामक घुँघरूदार गहना । उ.—(क) पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत । (ख) पग जेहरि जंजीरनि जकरयौ । (ग) पगनि जेहरि लाल लहँगा अंग पचरंग सारि—पृ. ३४४ (२६) । (घ) जुगल जंघ जेहरि जराव की राजति परम उदार ।

जेहल—संज्ञा स्त्री. [फा. जहल] हठ, जिद ।

जेहली—वि. [हिं. जेलह] हठी, जिद्दी ।

जेहि—सर्व. [सं. यस] जिसको, जिसका, जिसकी ।

उ.—जेहिं माया बिरंचि सिव मोहें, वहै बानि करि चीन्हौ—१०-४ ।

जैं—अव्य. [हि. जनि] मत, नहीं, न ।

जैंता—संज्ञा पुं. [सं. जयंती] जैंत का पेड़ ।

जै—संज्ञा स्त्री. [सं. जय] जय । उ.—जै जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे—६-६७ ।

वि. [सं. यावत्, प्रा. जाव] जितने ।

जैऐ—क्रि. अ. [हि. जाना] जाइए, गमन कीजिए । उ.—गुरु-पितु गृह बिनु बोलेहु जैऐ—४-५ ।

जैकरी—संज्ञा पुं. [हि. जयकरी] चौपाई नामक छंद ।

जैकार—संज्ञा स्त्री. [हि. जयकार] जय-घोषणा ।

जैगीषव्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक योगशास्त्रज्ञ मुनि ।

जैजैकार—संज्ञा स्त्री. [सं. जयजयकार] जयजयकार, 'जय हो', 'जय हो' कहना । उ.—जैजैकार, दसौं दिसि भयौ । असुर देह तजि, हरि-पुर गयौ—७-२ ।

जैजैवंती—संज्ञा स्त्री. [सं. जयजयवती] एक रागिनी ।

जैढक—संज्ञा पुं. [सं. जय + ढक्का] बड़ा ढोल ।

जैत—संज्ञा स्त्री. [सं. जयति] विजय, जीत ।

संज्ञा पुं. [अ.] जैतून नामक वृक्ष ।

संज्ञा पु. [सं. जयंती] एक पेड़ ।

जैतपत्र—संज्ञा पुं. [सं. जयति + पत्र] विजय-पत्र ।

जैतवार—संज्ञा पुं. [हिं. जैत+वार] विजयी, विजेता ।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री. [सं. जयतिश्री] एक रागिनी ।

जैति—अव्य. [सं. जयति] जय हो । उ —मनौ वेद बंदीजन सूत-वृंद मागध-गन, बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे—१०-२०५ ।

जैती—संज्ञा स्त्री. [सं. जयतिका] एक तरह की घास ।

जैतून—संज्ञा पु. [अ.] एक सदाबहार पेड़ ।

जैत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विजयी । (२) पारा ।

जैत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] जैत का पेड़ ।

जैन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भारत का एक प्रसिद्ध धर्म । (२) जैन धर्म का अनुयायी, जैनी ।

जैनी—संज्ञा पुं. [हिं. जैन] जैन मतावलंबी । उ.—जा परसैं जीतैं जम सैनी, जमन, कपालिक जैनी—६-११ ।

जैनु—संज्ञा पु. [हिं. जेंवना] भोजन, अहार । उ.—इहाँ रहौ जहँ जूठनि पावै ब्रजवासी के जैनु ।

जैपत्र—संज्ञा पुं. [हिं. जयपत्र] विजयपत्र ।

जैवे—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाना में। उ.—बोलत नद वार वार मुख देखे तुव कुमार गाइन भई बड़ी बार वृंदावन जैवे—२३२० ।

जैवैं—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाने के लिए, गमन के हेतु, प्रस्थान करने को। उ.—पग दिए तीरथ जैवैं काज। तिन सौं चलि नित करै अकाज—४-१२ ।

जैवो, जैवौ—क्रि अ. [हिं. जाना] जायँ, प्रस्थान करें। उ.—बनत नहीं जमुना कौ ऐवौ । सुंदर स्याम घाट पर ठाढे, कहौ कौन विधि जैवौ—७७६ ।

जैमंगल—संज्ञा पु [स. जयमंगल] (१) एक वृक्ष । (२) राजा की सवारी का हाथी ।

जैमाल, जैमाला—सज्ञा स्त्री. [हिं. जयमाला] (१) विजयमाल । (२) वधू द्वारा वर को पहनायी गयी माला, जयमाला ।

जैमिनि—सज्ञा पुं. [सं.] व्यास जी के एक शिष्य ।

जैयतु—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाओगे, जाते हो। उ.—रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुंदरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै। अब कैसैं जैयतु अपनैं वल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै—१० २८७ ।

जैयद—वि. [अ. जदे = दादा] (१) बहुत । (२) बहुत धनी ।

जैयहु—क्रि अ. [हिं. जाना] जाना, प्रस्थान करना। उ.—खेलहु जाइ घोष के भीतर, दूर कहूँ जनि जैयहु बारे—४२३ ।

जैया—क्रि. स. [हिं. जनन] उत्पन्न किया, जन्म दिया, जाया। उ.—कितिक बात यह बका विदारयौ, धनि जसुमति जिनि जैया—४२८ ।

क्रि. अ. [हिं. जाना] जाता हूँ ।

प्र —बलि जैया—बलि जाता हूँ, निछावर होता हूँ। उ.—सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि बलि मैं बलि जैया—१०-१३१ । दिन जैया—दिन जाते या बीतते है। उ.—भले बुरे को मात-पिता तन हरषत ही दिन जैया—११४० ।

जैयै—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाइए, प्रस्थान कीजिए। उ.—(क) जज्ञदान करि सुरपुर जैयै। तहाँ जाइ क सुख वहु पैयै—१-२६० । (ख) गौतम रूप बिना जो जैये। ताके साप अग्नि सौं तैये—६-८ ।

जैल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दामन । (२) निचला भाग या स्थान । (३) पंक्ति, समूह । (४) इलाका ।

जैव—वि. [सं.] जीव-संबंधी ।

जैसा—वि. [सं. याद्दश, प्रा. जारिस, पैशा. जइस्सो] (१) जिस प्रकार (रूप, रंग, आकार या गुण) का।

मुहा.—जैसा करना वैसा भरना, जैसा बोना वैसा काटना—जैसा उचित अनुचित कर्म होगा, वैसा ही उचित-अनुचित फल मिलेगा। जैसा चाहिए—जैसा उचित या ठीक हो ।

(२) जितना, जिस परिमाण या मात्रा का। (३) समान, बराबर, सदृश।

क्रि. वि.—जितना, जिस परिमाण या मात्रा में।

जैसी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. जैसा] जिस प्रकार की।

जैसे, जैसैं, जैसो, जैसौ—वि. [हिं. जैसा] जिस प्रकार का।

मुहा.—जैसे का तैसा—ज्यो का त्यो, जैसा था वैसे ही। जैसे को तैसा—(१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) एक ही व्यवहार या स्वभाव का।

क्रि. वि.—जिस प्रकार या ढंग से।

मुहा.—जैसे जैसे—ज्यो-ज्यो। जैसे तैसे—बहुत यत्न करके, बडी कठिनता से। उ.—(क) कछु दिन जैसैं तैसैं खोऊँ दूरि करौं पुनि डर कौ—७३८। (ख) ठाढी ही जैसैं-तैसैं झुकि परी धरिनि तिहिं ऐन—७४६। जैसे बने (हो)—जिस तरह हो सके।

जैसोइ—वि. [हिं. जैसा + ही (प्रत्य.)] जैसा ही, जैसा भी।

मुहा.—जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिए—जैसा उचित-अनुचित कर्म करोगे, वैसा ही उचित-अनुचित फल मिलेगा। उ —जैसोइ बोइयै, तैसोइ लुनिए, कर्मन भोग अभागे—१-६१ ।

जैहैं—क्रि. अ. बहु. [हिं. जाना] जायँगे। उ.—ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं—१-८६ ।

जैहै—क्रि. अ. एक. [हिं. जाना] जायगा। उ.—जा दिन मन पछी उड़ जैहै—१-८६ ।

जैहौं—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाऊँगा । उ.—लछिमन, सिया समेत सूर की, सब सुख सहित अजोध्या जैहौं—६-१५७ ।

जैहौ—क्रि. अ. [हिं. जाना] जाओगे । उ.—जश किये गंध्रवपुर जैहौ—६-२ ।

जो—क्रि. वि. [हिं. ज्यों] ज्यो, जैसे, जिस भाँति ।

जोंक—संज्ञा स्त्री. [सं. जलौका] (१) पानी का एक कीड़ा । (२) वह व्यक्ति जो काम निकालने के लिए हर समय पीछे पड़ा रहे । (३) चीनी साफ करने का छनना ।

जोंकी—संज्ञा स्त्री. [हि. जोंक] (१) जोंक पेट में पहुँच जाने से होनेवाली जलन या पीड़ा । (२) तख्ते जोड़ने का काँटा । (३) पानी का एक लाल कीड़ा ।

जों तों—क्रि वि. [हि. ज्यों त्यों] ज्यो-त्यो ।

मुहा.—जों तों करके—बड़ी मुसीवत से ।

जोंदरा, जोंधरा—संज्ञा पुं. [सं. जूर्ण] बड़ी ज्वार ।

जोंदरी, जोंधरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जूर्ण] छोटी ज्वार ।

जोंधैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुन्हैया] चाँदनी, चंद्रिका ।

जो—सर्व. [सं. यः] एक सबंध-वाचक सर्वनाम । उ.—जो जानै सो पावै—१-२ ।

अव्य. [सं. यद्] यदि, अगर । उ.—अब जिनि गहर करो हो मोहन जो चाहत हो ज्यायौ—३४८० ।

जोअना—क्रि. स [हि. जोवना] (१) देखना, निहारना । (२) ढूँढ़ना, तलाश करना ।

जोइ—संज्ञा स्त्री. [सं. जाया] पत्नी, भार्या । उ.—बिरथ अरु विभाग हू को पतित जो पति होइ । जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ ।

सर्व. [हिं. जो] जो (सबधवाचक) ।

मुहा.—जोइ-सोइ-यह वह, इधर उधर की । उ.—जोइ सोइ मुखहिं कहत मरन निज न जानै—६-६७ ।

क्रि. स. [हिं. जोवना] (१) देखकर । उ —हरि जू, तुमतैं कहा न होइ ? बोलै गुंग, पंगु गिरि लघै अरु आवै अंधौ जग जोइ—१-६५ । (ख) भयो सोच नृप-चित यह जोइ—१-२८६ । (२) ध्यान देकर, विचार करके । (२) ताहि कछु यह बहुत नाहीं हृदय देखौ जोइ—२६४२ ।

जोइतो—क्रि. स. [हि. जोवना] देखकर, प्रतीक्षा करके ।

मुहा.—मग जोइतो—प्रतीक्षा करते-करते, रास्ता देखते-देखते । उ.—सुन री सखी सँदेस दुर्लभ भए नैन थके मग जोइतो—१० उ. ८७ ।

जोइसी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिषी ।

जोई—क्रि. स. [हिं. जोवना] (१) देखने लगे, निहारने लगे । उ.—उमा कौं छाँड़ि अरु डारि मृग चर्म कौं, जाइकै निकट रहे रुद्र जोई—८-१० ।

प्र.—आवे जोई—देख आवे । उ.—बोलै गूंग पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधा जग जोई ।

जोउ—सर्व. [हिं. जो] (सबधवाचक) जो ।

जोऊ—सर्व. सवि. [हि. जो + ऊ] जो ही, जो भी ।

जोए—क्रि. स. [हि. जोहना] देखे, निहारे ।

मुहा.—मुख जोए—मुँह ताका । उ.—तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै विषयनि के मुख जोए–१-५२।

जोक—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोंक] जोक नामक कीडा ।

जोख—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोखना] तौल, वजन ।

जोखता—संज्ञा स्त्री. [सं. योषिता] स्त्री, लुगाई ।

जोखना—क्रि. स. [सं. जुष = जाँचना] तौलना ।

जोखम, जोखिम—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाक, झोंको, जोखों](१)अनिष्ट या विपत्ति की आशका या संभावना ।

मुहा.—जोखिम उठाना (में पड़ना, सहना)—ऐसा काम करना जिसमें विपत्ति या अनिष्ट की आशंका हो । जान जोखिम होना—(१) जान मुसीबत में फँसना । (२) प्राण जाने का भय होना ।

(२) धन-सपत्ति या जेवर आदि जिनके कारण विपत्ति आने की सभावना हो ।

जोखा—संज्ञा पुं. [हिं. जोखना] लेखा, हिसाब ।

संज्ञा स्त्री. [सं. योषा] पत्नी, लुगाई, भार्या ।

जोखाई—संज्ञा स्त्री. [हि. जोखना] तौलने का काम, भाव या मजदूरी ।

जोखिउँ—संज्ञा स्त्री. [हि. जोखिम] सकट, विपत्ति ।

जोखिता—संज्ञा स्त्री. [सं. योषिता] स्त्री, औरत ।

संज्ञा पुं. [हि. जोगी] योगी या जोगीपन ।

जोखिम—संज्ञा स्त्री. [हि. झोंका] (१) सकट, विपत्ति । (२) सकट या विपत्ति का कारण ।

जोखुआ, जोखुवा—संज्ञा पुं. [हिं. जोखना + उआ (प्रत्य.)] तौलनेवाला, वजन करनेवाला।

जोखों, जोखौं—संज्ञा स्त्री. [हि. जोखिम] जोखिम।

जोगंधर—संज्ञा पुं. [सं. योगंधर] शत्रु के अस्त्र से बचने की एक युक्ति।

जोग—संज्ञा पुं. [सं. योग] (१) शुभ काल, शुभ घड़ी। उ.—हरषीं सखी-सहेलरी हो, आनँद भयो सुभ जोग—१०-४०। (२) चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान, चित्त की वृत्ति का निरोध। उ.—आये जोग देन अबलनि को सुरभि-कंठ वृष जोत—३३६४।

अव्य. [सं. योग्य] को, के निकट।

वि.—(१) उपयुक्त। (२) योग्य, समर्थ। उ.—(क) पाँच बरस अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग—१०-२६२। (ख) कबहिं गुपाल कंचुकी फारी कब भए ऐसे जोग—७७४। (३) श्रेष्ठ।

जोग-जुगुत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. योग+युक्ति] योग की क्रिया, योग-विधान। उ.—(क) जोग-जुगुति बिसरी सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)—१-४४। (ख) जोग-जुगुति केहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि।

जोगड़ा—संज्ञा पुं [हि. जोग+ड़ा (प्रत्य.)] बना हुआ, पाखंडी या धूर्त्त जोगी।

जोगता—संज्ञा स्त्री. [सं. योग्यता] योग्यता।

जोगन, जोगनिया—संज्ञा स्त्री. [सं. योगिनी] (१) योग-साधनेवाली, तपस्विनी (२) रण-पिशाचिनी।

जोगमाया—संज्ञा स्त्री. [स. योगमाया] (१) भगवती जो विष्णु की माया है। (२) वह कन्या जो यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी और जिसे कंस ने मार डाला था। विश्वास है कि वह भगवती का ही रूप थी। उ.—पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न सका कीन्हीं। देखी परी जोगमाया, वसुदेव गोद करि लीनी—१०-४।

जोगवना—क्रि. स. [स. योग+अवना (प्रत्य.)] (१) किसी वस्तु को सम्हालकर या सावधानी से रखना। (२) इकट्ठा या एकत्र करना। (३) आदर करना। (४) जाने देना, कुछ ख्याल न करना। (५) पूरा करना।

जोगसाधन—संज्ञा पुं. [सं. योगसाधन] तपस्या।

जोगानल—संज्ञा स्त्री. [सं. योगानल] योगबल से उत्पन्न की हुई आग।

जोगिंद—संज्ञा पुं. [सं. योगींद्र] (१) योगीराज। (२) शिव, महादेव।

जोगिन, जोगिनि, जोगिनियाँ, जोगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. योगिनी] (१) योगिनी, तपस्विनी। उ.—(क) के रघुनाथ तज्यौ पन अपनौ, जोगिनि दसा गही—९-९१। (ख) भूमि अति डगमगी जोगिनी सुनि जगी, सहसफन सेस कौ सीस काँप्यौ—९-१६०। (२) योगी की स्त्री। (३) रण-पिशाचिनी। (४) पिशाचिनी। (५) एक पौधा।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) लाल ज्वार। (२) एक धान।

जोगिया—वि. [हिं. जोगी] (१) योगी या जोगी से सबंधित। (२) गेरू के रंग में रँगा हुआ, गेरुआ।

जोगींद्र—संज्ञा पुं. [सं. योगींद्र] (१) बड़ा योगी। (२) शिव, महादेव।

जोगी—संज्ञा पु. [सं. योगी] (१) वह, जो योग करता हो, योगी। (२) एक तरह के भिक्षुक।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. योगी+ड़ा (प्रत्य.)] (१) एक गाना। (२) गानेवाला जोगी। (३) गानेवाले जोगियो की मंडली।

जोगीस्वर, जोगेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. योगी, योग+ईश्वर] (१) योग का अधिकारी, योग का ज्ञाता, सिद्ध योगी। उ.—तासों सुत निन्यानवे भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए। तिनमैं नव नव-खँड-अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म-विचारी—५-२। (२) श्रीकृष्ण। (३) महादेव, शिव।

जोगोटा—वि. [हिं. जोगी] योगी।

जोग्य—वि. [सं. योग्य] (१) समर्थ। (२) लायक।

जोजन—संज्ञा पुं. [सं. योजन] (१) दूरी की एक नाप जो किसी के मत से दो कोस, किसी के मत से चार कोस और किसी के मत से आठ कोस की होती है। (२) बहुत अधिक समय।

जोजनगंधा—संज्ञा स्त्री. [स. योजनगंधा] व्यासजी की

माता और शांतनु की पत्नी सरस्वती। अपनी कौमार्यावस्था में ही पराशर मुनि की कामना पूरी करने पर सरस्वती के शरीर से आनेवाली मत्स्यगंध दूर हो गयी और सुगंध निकलने लगी। इसी से इसका नाम गंधवती या योजनगंधा पड़ा। उ.—जोजनगंधा-काया करी।

जोट—संज्ञा पुं. [सं. योटक] (१) जोड़ा, जोड़ी। उ.—हंस के से जोट दोऊ असुर कियौ निपात—२६२३। (२) साथी।

वि.—बराबरी का, मेल या टक्कर का।

जोटनि—संज्ञा पुं. [सं. योटक] जोड़ा, युग। उ.—देखि माई हरि जू की लोटनि। यहं छवि निरखि रही नंदरानी, अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि। परसत आनन मनु रवि-कुंडल, अंबुज स्रवत सीप-सुत जोटनि—१०-१८७।

जोटा—संज्ञा पुं. [सं. योटक] (१) जोड़ा, बराबर की जोड़ी। उ.—(क) श्रीदामा गहि फेंट कह्यौ, हम तुम इक जोटा। कहा भयौ जौ नंद बड़े, तुम तिनकैं ढोटा—५८६। (ख) एइ बसुदेव के दोउ ढोटा। गौर स्याम नट नील पीत पट कलहंसन के जोटा—२५८०। (२) टाट का दोहरा थैला।

जोटिंग—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

जोटी—संज्ञा स्त्री. [हि. जोट] (१) जोड़ी, युग्मक। उ.—(क) सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी—१०-१७५। (ख) सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि हलधर की जोटी—४१८। (ग) नैन बिसाल, बदन अति सुंदर, देखत नीकी छोटी। सूर महरि सविता सौं बिनवति, भली स्याम की जोटी—७०२। (२) बराबर या जोड़ का साथी।

जोड़—संज्ञा पुं. [सं. योग] (१) जोड़ने की क्रिया। (२) योग का फल। (३) स्थान जहाँ टुकड़े टाँके या सिये गये हों।

मुहा.—जोड़ उखड़ना—(१) जोड़ ढीला हो जाना। (२) संबंध में कुछ भेद पड़ जाना।

(४) टुकड़ा जो जोड़ा जाय। (५) योग का चिह्न। (६) शरीर के दो अंगों का मिलन-स्थान, गाँठ।

मुहा.—जोड़ उखड़ना—शरीर के जोड़ों की हड्डी झटके आदि से हट जाना। जोड़ बैठना—हटी हुई हड्डी का अपने स्थान पर आना।

(७) मेल, मिलाप। (८) बराबरी, टक्कर। (९) एक ही तरह की दो चीजें, जोड़ा।

मुहा.—जोड़ बाँधना—कुश्ती के लिए बराबर के पहलवान छाँटना। (२) चौपड़ में दो गोटों को एक घर में रखना।

(१०) एक ही से स्वभाव-गुणवाला। (११) पूरी पोशाक। (१२) किसी वस्तु के कुल आवश्यक अंग। (१३) जोड़ा। (१४) जोड़ने की क्रिया या भाव। (१५) छल, दाँव।

यौ.—जोड़-तोड़—(१) युक्ति, उपाय, तरकीब। (२) दाँव-पेच, छल-कपट।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोड़ + ती (प्रत्य.)] योग, जोड़।

जोड़न—संज्ञा स्त्री. [हि. जोड़] दही का जामन।

जोड़ना—क्रि. स. [हि. जोड़ + बाँधना, या सं. युक्त, प्रा. जुड़] (१) दो चीजों को सी या चिपकाकर एक करना। (२) टूटी चीज को मिलाकर एक करना। (३) इकट्ठा करना। (४) स्थापित करना। (५) योगफल निकालना। (६) वर्णन करना। (७) जलाना, बलाना। (८) संबंध स्थापित करना। (९) गाड़ी में पशु जोतना।

जोड़ला, जोड़वाँ—वि. [हि. जोड़ा+ला, वाँ (प्रत्य.)] साथ जन्मे दो या अधिक बच्चे, यमज।

जोड़वाई—संज्ञा स्त्री. [हि. जुड़वाना] जुड़वाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

जोड़वाना—क्रि. स. [हि. जुड़ाना] जोड़ने में लगाना।

जोड़ा—संज्ञा पु. [हि. जोड़ना] (१) एक सी दो चीजें। (२) दोनों पैरों के जूते। (३) एक साथ पहने जाने-वाले कपड़े।

यौ.—जोड़ा-जामा—पूरी पोशाक।

(४) स्त्री-पुरुष। (५) नर-मादा (पशु-पक्षी)। (६) जोड़।

जोड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हि. जोड़ना+आई (प्रत्य.)] (१)

जोड़ने की क्रिया, भाव या मजदूरी। (२) दीवार की चुनाई।

जोड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोड़ा] (१) एक सी दो चीजें।

यौ.—जोड़ीदार—बराबर का, जोड़वाला।

(२) एक साथ पहने जानेवाले कपड़े। (३) स्त्री-पुरुष। (४) नर-मादा (पशु-पक्षी)। (५) दो घोड़ों या बैलों की गाड़ी। (६) दो मुगदर। (७) मँजीरा, ताल। (८) समान गुण-धर्मवाला व्यक्ति, जोड़।

जोत—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोतना] (१) गाड़ी में जोते जानेवाले पशुओं के गले की रस्सी या तस्मा। (२) तराजू की डोरी जिसमें पल्ले लटकते हैं। (३) एक असामी द्वारा जोती जानेवाली भूमि।

संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योति] (१) प्रकाश। (२) लौ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जोतना] जोतने योग्य भूमि।

जोतत—क्रि. स. [हिं जोतना] जोतते (समय), जोतता है, जोतने में। उ.—लादत, जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूड़ दुरैहौ—१-३३०।

जोतदार—संज्ञा पुं. [हिं. जोत+दार] जोतने-बोने के लिए भूमि पानेवाला असामी।

जोतना—क्रि. स. [स. योजन या युक्त, प्रा. जुत+ना] (१) गाड़ी-कोल्हू आदि चलाने के लिए पशु बाँधना। (२) पशु बाँधकर चलाने के लिए गाड़ी तैयार करना। (३) किसी को जबरदस्ती कोई काम करने में लगाना। (४) हल चलाना।

जोतनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोत या जोतना] जुते हुए जानवर के गले के निचले भाग में बँधी रस्सी।

जोतसी—संज्ञा पुं. [स ज्योतिषी] ज्योतिषी।

जोता—संज्ञा पुं. [हिं. जोतना] (१) जोतनी। (२) करघे की डोरी। (३) धरन। (४) खेती करने या हल जोतनेवाला।

जोताई—संज्ञा स्त्री. [हि. जोतना+आई (प्रत्य.)] जोतने का काम, भाव या मजदूरी।

जोति—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योति] (१) प्रकाश, द्युति, कांति। (२) देवी-देवता के सामने का दीपक। (३) आग, लौ, लपट। उ.—निरखि पतंग बानि नहिं छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत—१-२१०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जोतना] बोने योग्य भूमि।

जोतिख—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योतिष] ज्योतिष विद्या।

जोतिखी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिषी।

जोतिलिंग—संज्ञा पुं. [स. ज्योतिर्लिंग] शिव।

जोतिष, जोतिस—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिष] ज्योतिष विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहों, नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है। उ.—(क) धनि सो दिन, धनि सो घरी (हो), धनि सो जोतिष-ज्ञान—१०-४०। (ख) लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहति तुमहिं सुनायौ—१०-८६।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिष्टोम] एक यज्ञ।

जोतिषी, जोतिसी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिष विद्या जाननेवाला व्यक्ति, ज्योतिषी। उ.—(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ—१०-८६।

जोतिहा—संज्ञा पुं. [हिं. जोतना] जोतने-बोनेवाला।

जोती—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योति] (१) लौ। (२) प्रकाश।

संज्ञा स्त्री. [सं. जोति] देवी-देवता की जोत।

संज्ञा स्त्री. (१) रास, लगाम। (२) तराजू की डोरी।

जोते—क्रि. स. [हिं. जोतना] जोतते है, जोता। उ.—प्रभु जू, यौं कीन्ही हम खेती। बंजर भूमि गाउँ हर जोते, अरु जेती की तेती—१-१८५।

जोत्स्ना—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योत्स्ना] चाँदनी।

जोधन—संज्ञा स्त्री. [स. योग+धन] बैल के जुए में ऊपर-नीचे बँधी रस्सी।

संज्ञा पु. बहु. [हि. योद्धा] योद्धाओं ने या में।

जोध, जोधा, जोधार—संज्ञा स्त्री. [हि. जोधन] जुआठे की रस्सी।

संज्ञा पुं. [हि. योद्धा] युद्ध करनेवाला, भट, वीर। उ.—(क) मानी हार विमुख दुरजोधन जाके जोधा हे सौ भाई—१-२४। (ख) प्रगट कपाट बड़े दीने हैं, बहु जोधा रखवारे। (ग) सूर प्रभु सिंहध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे लराई। (घ) मन हठ परयौ कमंध जोधा लौं हारेउ नाहीं जीति—३२३७।

जोन, जोनि—संज्ञा स्त्री. [सं. योनि] प्राणियों के विभाग,

जातियाँ या वर्ग जिनकी संख्या चौरासी लाख कही गई है।

जोना—क्रि. स. [हि. जोहना] देखना, निहारना।

जोनरी, जोन्हरी, जोन्हार—संज्ञा स्त्री. [देश.] ज्वार।

जोन्ह, जोन्हइया जोन्हाई—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योत्स्ना] (१) चांदनी, चंद्रिका जुन्हाई। (२) चांद, चद्रमा।

जोप—संज्ञा पुं. [सं. यूप] यज्ञ का बलि पशु बांधने का खंभा।

जोपै—प्रत्य. [हिं. जो+पर] (१) यदि। (२) यद्यपि।

जोफ—संज्ञा पुं. [अ. जोफ] (१) बुढ़ापा। (२) सुस्ती।

जोबन—संज्ञा पु. [सं. यौवन] (१) युवापन, यौवन, युवा होने का भाव। उ.—(क) धन-जोबन-अभिमान अल्प जल कहँ कूर आपनी बोरी—१-३०३। (ख) त जोबन-मद तैं यह कीन्हो—६-१७४।

मुहा.—जोवन लूटना—यौवन का आनंद लेना।

(२) युवावस्था। उ.—बालापन खेलत ही खोयौ, जोवन जोरत दाम—१-५७। (३) युवक। (४) युवावस्था का रूप, सुदरता।

मुहा—जोवन उतरना (खसना, ढलना)—युवावस्था समाप्त होना। जोवन खसै—युवावस्था समाप्त हो। उ.—तन-मन-धन जोवन खसै (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५। जोवन चढना—युवावस्था की सुदरता आना।

(५) कुच, स्तन। (६) रौनक, बहार, सजावट। (७) एक फूल।

जोबना—क्रि. स. [हि. जोवना] (१) देखना, निहारना। (२) ढूंढना, तलाश करना।

संज्ञा पु. [हिं. यौवन] (१) यौवन। (२) युवावस्था। (३) रूप, सुदरता। (४) कुच, स्तन।

जोम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) उमग, चाव, उत्साह। (२) जोश, आवेश। (३) अहकार, अभिमान।

जोय—संज्ञा स्त्री. [सं. जाया] पत्नी, जोरू।

सर्व पुं. [हि. जो] जो, जिस।

क्रि. स. [हिं. जोवना] देखकर।

जोयना—क्रि. स. [हिं. जोवना] (१) देखना, निहारना। (२) ढूंढ़ना, तलाश करना।

क्रि. स. [हि. जोति] जलाना, बलाना।

जोयसी—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योतिषी] ज्योतिषी।

जोर—संज्ञा पुं. [फा. जोर] (१) बल, शक्ति, ताकत। उ.—बिना जोर अपनी जाँघन के कैसे सुख कियौ चाहत—२२६१।

मुहा.—जोर करना—(१) बल या ताकत लगाना। (२) कोशिश करना। करि जोर—बल का प्रयोग करके। उ.—केस गहत कलेस पाऊँ करि दुसासन जोर—१-२५३। जोर टूटना—(१) बल घट जाना। (२) प्रभाव कम होना। जोर डालना (देना)—(१) (शरीर आदि का) बोझ या भार लादना। (२) बल या ताकत लगाना। (३) सिफारिश पहुँचाना। (किसी बात पर) जोर देना—बहुत आवश्यक या जरूरी बताकर ध्यान दिलाना। (किसी बात के लिए) जोर देना—किसी बात के लिए हठ, जिद या आग्रह से करना। जोर देकर कहना—बहुत दृढता या आग्रह से कहना। जोर मारना (लगाना)—(१) बल या ताकत का प्रयोग करना। (२) बहुत कोशिश करना।

यौ.—जोर-जुलुम (जुल्म)—अत्याचार।

(२) प्रबलता, अधिकता, बढ़ती, तेजी। उ.—रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ चल्यौ द्विज द्वारका-द्वार ठाढौ—१०५।

मुहा.—जोर पकड़ना (बाँधना, में आना)—(१) प्रबल या तेज होना। (२) सहसा वृद्धि या उन्नति होना। जोर करना (मारना)—तेजी दिखलाना। जोरों पर होना—(१) प्रबल या तेज होना। (२) उन्नति या वृद्धि पर होना। (३) प्रभाव बढ़ा-चढा या अधिक होना।

(३) वश, अधिकार, काबू।

मुहा.—जोर डालना—अधिकार के साथ आग्रह करना, प्रभावशाली व्यक्ति के द्वारा दबाव डालना, सिफारिश पहुँचाना।

(४) वेग, आवेश, झोंक, उत्तेजना।

मुहा.—जोर (जोरों) पर—वेग से, तेजी से।

(५) भरोसा, आसरा, सहारा।

मुहा.—(किसी मोहरे पर) जोर देना (पहुँचाना)-

(शत ज के खेल में) सहायता के लिए दूसरा मोहरा रखना या चलना। (मोहरे का) जोर पर होना—सहायता के लिए दूसरा मोहरा होना। किसी के जोर पर कूदना—दूसरे के बल या भरोसे पर तेजी दिखाना या काम करना। बेजोर—असहाय, निर्बल, निराश्रय। (६) परिश्रम, मेहनत। (७) कसरत, व्यायाम।

वि.—प्रबल, तेज, बढा-चढा, सशक्त। उ.—(क) गृह-दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर—१-४६। (ख) कान्ह हलधर वीर दोऊ, भुजा बल अति जोर—१०-२४४।

संज्ञा पु [हि जोड़] (१) शरीर के अगो का संधि-स्थान, जोड। (२) वह स्थान जहाँ दो टुकड़े जोड़े गये हो। उ.—जरासंध कौ जोर उघारयौ, फारि कियौ द्वै फाँकौ—१-११३।

वि.—बराबरी के, जोड के, समान। उ.—देख सखि चारि चंद इक जोर—१९१९।

संज्ञा पु. [हिं. जोड़ा] (१) जोडा, युग्म। उ.—चंद्र-मुख पर बैठे सुभग जोर चकोर—पृ. ३४२ (१८)। (२) जोड़े, समूह। उ.—देत छवि अति गिरत उर पर अंबु-कन के जोर—३५८८।

क्रि. स. [हि. जोड़ना] (१) जोड़कर, मिलाकर।

मुहा.—कर जोर—हाथ जोडकर, विनय के साथ, नम्रतापूर्वक। उ—व्रज घर समझ लेहु महरैटी, कहत सूर कर जोर—१०-३२३।

(२) इकट्ठा करके, एकत्र करके। उ.—तब हरि जाय संग हलधर लै सब यादव दल जोरि-सारा. ७०१।

जोरई—संज्ञा स्त्री. [हिं जोड़] (१) एक ही में बंधे दो लवे बांस। (२) एक हरा कीड़ा।

क्रि. स. [हिं. जोड़ना] जोडता है।

जोरत—क्रि. स. [हि. जोड़ना] (१) एकत्र करते हुए, सग्रह करने में, जोड़ते रहने में। उ.—बालापन खेलत हीं खोयौ, जोवन जोरत दाम—१-५७। (२) इकट्ठा या सग्रह करता है। उ.—फूले फूले फूल जोरत—२४५४ (१)। (३) सबंध स्थापित करता है। उ.—बिमुखनि सौं रति जोरत दिन-प्रति, साधुनि सौं न कबहुँ पहिचानी—१-१४६।

जोरति—क्रि. स. [हिं. जोड़ना] संबंध स्थापित करती है। उ.—सूर स्याम को केतिक बात यह जननी जोरति नात—१००२।

जोरदार—वि. [फा. जोर + दार] (१) बली, सबल। (२) शक्ति, प्रभाव या असर से युक्त। (३) जोरदार।

जोरन—संज्ञा पुं. [हिं. जोड़न] दही का जामन।

जोरना—क्रि. स. [हिं. जोड़ना] जोड़ना।

क्रि. स. [हि. जोतना] गाडी में जोतना।

जोरशोर—संज्ञा पुं. [फा. जोर + शोर] बहुत जोर।

जोरहि—क्रि. स. [हि. जोड़ना] अलग-अलग टुकड़ों को एक ही में जोड़ दे। उ.—देति असीस जरा देवी को राहु-केतु किनि जोरहि—२८६२।

जोरहु—क्रि स. [हि. जोड़ना] मिलाओ, (एक-दूसरे से) सटाओ।

मुहा.—कर जोरहु-हाथ जोड़ो, विनती या प्रार्थना करो। उ.—सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात—१०-२६१।

जोरा—संज्ञा पुं. [हिं. जोड़ा] (१) दो समान पदार्थ। (२) स्त्री-पुरुष। (३) नर-मादा। (४) जूते का जोड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. जोर] (१) बल। (२) अधिकार।

क्रि. स. [हिं. जोड़ना] लगाया, सटाया।

जोराजोरी—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़ोर] जबरदस्ती।

क्रि. वि.—बलपूर्वक, जबरदस्ती करके।

जोरावर—वि. [फा. ज़ोरावर] ताकतवर, जबरदस्त।

जोरावरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोरावर] जबरदस्ती।

जोरि—क्रि. स. [हिं. जोड़ना] (१) जोड़ कर, मिलाकर, सटाकर। उ.—(क) जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के विभव तें अधिक बाढौ—१५। (ख) मुख मुख जोरि बत्यावही सिसुताई ठानै—१०-७२। (ग) मुख मुख जोरि अलिंगन दीन्हो-१२१६।

मुहा.—कर (हाथ) जोरि—हाथ जोड़कर, विनय पूर्वक। उ.—(क) महाराज रघुबीर धीर कौं हाथ जोरि सिर नायौ—९-१५६। (ख) जानि मैं यह नहीं कीन्हौ जोरि कहौं दोउ हाथ—४८५।

(२) इकट्ठा करके, एकत्र करके। उ.—(क) तुम जनि डरपौ मेरी माता राम जोरि दल ल्यायौ—९-

८८ । (ख) राम कपि जोरि ल्यायौ—६-१३५ । (ग) अब हलधर उलटहु काहे तुम धावहु ग्वालन जोरि—२४४६ । (३) बचाकर, संचित करके । उ.—बहुत भाँति मेवा सब मेरे षटरस व्यंजन न्यारे । सबै जोरि राखति हित तुम्हरे मैं जानति तुम बानि—४६४ । (४) लादकर । उ.—और बहुत काँवरि दधि-माखन अहिरिन काँधे जोरि—५८३ । (५) गढ़कर, बनाकर, (पदों की) योजना करके । उ.—उरहन लै जुवती सब आवति झूँठी बतियाँ जोरि—८६८ ।

जोरिय—क्रि. स. [हि. जोड़ना] जुड़वा लीजिए ।

जोरी—क्रि. स. भूत. [हिं. जोड़ना] (१) जोड़ी, संग्रह की, एकत्र की, संचित की । उ.—(क) हरि, हौं ऐसौ अमल कमायौ । साबिक जमा हुती जो जोरी, मिनजालिक तल ल्यायौ—१-१४३ । (ख) सिर पर धरि न चलैगो कोऊ जतननि करि माया जोरी—१-३०३ । (२) संबंध स्थापित किया । उ.—(ग) कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी—१-३०३ । (ख) बरबस ही इन गही मूढता प्रीति जाय चंचल सों जोरी—पृ. ३२८ । (ङ) अब हरि कौन सौं रति जोरी—२८६३ ।

संज्ञा स्त्री. [फा. जोरी] (१) जोड़ी, हमजोली, साथी । उ.—(क) गौर-स्याम जोरी बनी—१० ११६ । (ख) बिधिना जोरी भली बनाई—७६१ । (ग) ए अहीर वह दासी पुर की बिधिना जोरी भली मिलाई—२६७६ । (घ) बारक हमें दिखाओ अपने बालपने की जोरी—१० उ. ११५ । (ङ) सीता जू को बर यह चहिये है जोरी सुकुमार—सारा. २११ । (२) प्रतिद्वंदी, प्रतिपक्षी । उ.—तब कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात । मोरि जोरी है श्रिदामा हाथ मारे जात—१०-२१३ ।

संज्ञा स्त्री. [फा. जोर] जोरावरी, जबरदस्ती । उ.—जोरी मारि भजत उतही कौं जात जमुन के तीर—५३४ ।

वि.—[हि. जोरी] मत्त, प्रमत्त, मतवाली । उ.—(क) सूर कहाँ मेरो तनक कन्हाई आपुन जोबन जोरी—८५८ । (ख) चमकति चलै बदन मटकाव ऐसी जोबन जोरी—१६२१ ।

जोरू—संज्ञा स्त्री. [हि. जोड़ा] पत्नी, घरवाली ।

यौ.—जोरू-जाता—घर-बार, बीबी-बच्चे ।

जोरे—क्रि. स. [हि. जोड़ना] जोड़कर, मिलाकर ।

मुहा.—कर जोरे—हाथ जोड़कर, अत्यंत नम्रता-पूर्वक । उ.—(क) कर जोरे प्रहलाद जो बिनवै, बिनय सुनौ असरन-सरनाई—७-४ । (ख) अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे—४८८ ।

जोरैं—क्रि. स. [हि. जोड़ना] मिलाते हैं, सटाते हैं ।

मुहा.—कर (हाथ) जोरैं—हाथ जोड़ते हैं, बहुत विनय के साथ । उ.—ताहि जमहूँ रहै हाथ जोरैं—१-२२२ ।

जोरै—क्रि. स. [हि. जोड़ना] (१) योगफल निकालता है, मीजान लगाता है । उ.—मुजलिम जोरै ध्यान कुल्ल कौ, हरि सौं तहँ लै राखै—१-१४२ । (२) मिलाती है, सटाती है ।

मुहा.—नैन जोरै—नेत्र मिलाती है, देखती है । उ.—निरखि आपनो रूप आपुही बिवस भई सूर परछाँह को नैन जोरै—पृ. ३१६ ।

(२) संग्रह करता है । उ.—लंपट, धूत, पूत, दमरी कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै—१-१८६ । (३) बाँधती है । उ.—भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै—३४४ । (४) संबंध स्थापित करती है । उ.—सूरदास यह रसिक ग्वालिनीं नेह नवल सँग जोरै—१०-३२१ ।

जोरो, जोरौ—क्रि. स. [हि. जोड़ना] (संबंध) स्थापित करो ।

जोरयौ—क्रि. स. [हि. जोड़ना] (१) एकत्र किया, संग्रह किया, जोड़ा, इकट्ठा किया । उ.—जिहि-जिहि जोनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार—१-६८ । (२) (टुकड़ा) जोड़ा, सटाया, मिलाकर एक किया । उ.—जरा जरासंध की संधि जोरयौ हुत्यौ भीम ता संधि को चीर डारयौ—१० उ. ५१ ।

मुहा.—चित जोरयौ—मन रमाया । उ.—सूरदास प्रभु सों चित जोरयौ—१२०१ ।

(३) क्रमशः स्थापित किया, क्रम-क्रम से एकत्र

क्रिया। उ.—जब मुख गए समाइ, असुर तब चाव सकोरयौ। अंधकार इमि भयौ मनहुँ निसि बादल जोरयौ—४३१।

जोल—संज्ञा. पु. [हि. जाल] झुंड, समूह। उ.—कहा करौं वारिज मुख ऊपर बिथके षटपद जोल।

जोलहा, जोलाहा—संज्ञा पुं. [हि. जुलाहा] जुलाहा।

जोलाहल—संज्ञा स्त्री. [स. ज्वाला] आग, अग्नि।

जोली—संज्ञा स्त्री. [हि. जोड़ी] जोड़, जोडी।

संज्ञा स्त्री. [हि. झोली] (१) किरमिच का जहाजी विस्तर। (२) रस्सी की गाँठ।

जोलो—संज्ञा पुं. [हिं. झोल] अतर। उ.—कैधौं तुम पावन प्रभु नाही कै कछु मौपै जोलो।

जोवत—क्रि. स. [हिं. जोहना, जोवना] देखता है, ताकता है। उ.—(क) बोवत बबुर, दाख फल जोवत—१-६१। (ख) बैठी तहँ अहिनारि, डरी बालक कौं जोवत—५८६।

जोवति—क्रि. स. [हिं. जोवना] आसरा देखती है, रास्ता देखती है। उ.—सूरस्याम मग जोवति जननी, आइ गए सुनि वचन रसालहिं—१०-२३६।

जोवना—क्रि. स. [हिं. जोहना] (१) देखना, ताकना। (२) ढूँढ़ना, तलाशना। (३) रास्ता देखना।

जोवारी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की मैना।

जोवै—क्रि. स. [हिं. जोवना] जोहता (है), देखता (है)। उ.—(क) पुत्र-कलत्र देखि सब रोवै। राजा तिनकी ओर न जोवै—१-३४१। (ख) हरि पथ जोवै छिन छिन रोवै—३४४२।

जोश—संज्ञा पुं. [फा.] (१) उफान, उबाल।

मुहा.—जोश खाना—खौलना। जोश देना—उबालना।

(२) आवेश, मनोवेग।

मुहा.—जोश में आना—आवेश में आना।

खून का जोश—वंशज या संबंधी के लिए प्रेमावेग।

यौ.—जोश-खरोश—अधिक आवेश।

जोशन—संज्ञा पुं. [फा.] (१) भुजा का एक गहना। (२) जिरह बकतर, कवच।

जोशाँदा—संज्ञा पुं. [फा.] काढ़ा, क्वाथ।

जोशी—संज्ञा पु. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिषी।

जोशीला—वि. [फा.] जोश+ईला (प्रत्य.)] ओजपूर्ण।

जोष—संज्ञा पु. [सं.] (१) प्रेम, अनुराग। (२) सुख, आनंद। (३) सेवा।

संज्ञा स्त्री. [हि. जोख] तौल, वजन।

जोषक—संज्ञा पुं. [सं.] सेवक।

जोषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेम। (२) सेवा।

जोषा, जोषिता—संज्ञा स्त्री [सं.] नारी, स्त्री।

जोषी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] गुजराती, महाराष्ट्री और पहाडी ब्राह्मणो की एक जाति। (२) ज्योतिषी, गणक।

जोस—संज्ञा पुं. [सं. जोश] (१) उफान। (२) आवेग।

जोह—क्रि. अ. [हि. जोहना] देख, ताक या निहार (रहा है)। उ.—माइ जसुदा देखि तोकौं, करति कितनौ छोह। सुनत हरि की बात प्यारी, रही मुख-तन जोह—७०७।

संज्ञा स्त्री.—(१) खोज, तलाश। (२) इंतजार, परीक्षा। (३) नजर, दृष्टि या दयादृष्टि।

जोहड़—संज्ञा पुं. [देश.] कच्चा तालाब।

जोहत—क्रि. स. [हि. जोहना] राह देखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं। उ.—जज्ञ माहि तुम पसु जे मारे। ते सब ठाढे सस्त्रनि धारे। जोहत हैं वे पंथ तिहारौ। अब तुम अपनौ आपु सँभारौ—४-१२।

जोहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोहना] (१) देखने या जोहने की क्रिया। उ.—सघन कला तरु तर मन मोहन। दच्छिन चरन चरन पर दीन्हे तनु त्रिभंग मृदु जोहन। (२) तलाश, खोज। (३) प्रतीक्षा, इंतजार।

क्रि. स.—प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ.—बैठि एकांत जे हन लगे पंथ सिव, मोहनी रूप कब दै दिखाई—८-१०।

जोहना—क्रि. स. [सं. जुषण=सेवन] (१) देखना, निहारना। (२) खोजना, तलाश करना। (३) इंतजार या प्रतीक्षा करना।

जोहर—संज्ञा स्त्री. [देश.] छोटा तालाब।

जोहार—संज्ञा स्त्री. [सं. जुषण=सेवन] प्रणाम, वंदन।

क्रि. अ.—प्रणाम या अभिवादन करता है। उ.—मनसिज भवन जोहार अहो हरि होरी है—२४४८।
जोहारना—क्रि. अ. [हि. जोहार] प्रणाम करना।
जोहारि, जोहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोहार] प्रणाम, वंदन, अभिवादन। उ.—इक इक बान भेज्यौ सकल नृपन पै मानों सब साथ कीन्हे जोहारी—१० उ.४६।
जोहि, जोही—क्रि. स. [सं. जोहना] देखकर।
जोहै—क्रि. स. [हिं. जोहना] देखता है, ताकता है, निहारता है। उ.—ससि-गन गारि रच्यौ विधि आनन, बाँके नैननि जोहै—१०-१५८।
जोह्यौ—क्रि. स. [हिं. जोहना] देखा, निहारा। उ.—उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहित भई, तासु सम रूप अपनौ न जोह्यौ—८-१०।
जौं—अव्य. [सं. यदि] जो, यदि।
क्रि. वि.—ज्यों, जैसे।
जौंकना—क्रि. स. [अनु. झौंव] डाँटना, डपटना।
जौंची—संज्ञा स्त्री. [देश.] फसल का एक रोग।
जौंरा भौंरा—संज्ञा पुं. [हिं. भुँइधर, भुँइहर] गुप्त तहखाना जिसमें खजाना आदि हो।
संज्ञा पुं. [हिं. जोड़ा+भौंरा] दो बच्चों की जोड़ी।
जौंरे—क्रि. वि. [फा. जवार] निकट, पास।
जौ—अव्य. [स. यद्] यदि, अगर। उ.—जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै, तौ जाँचै तौ रसना हारी—१-३४।
क्रि. वि.—जब।
यौ.—जौ लौं, जौ लगि, जौ लहि—जब तक।
संज्ञा पुं. [सं. यव] (१) एक अनाज। (२) एक पौधा। (३) एक तौल जो ६ राई के बराबर होती है।
जौक—संज्ञा पु. [तु. जूक] (१) झुंड। (२) सेना।
जौकेराई, जौकेराव—संज्ञा स्त्री. [हि. जौ + केराव] मटर मिला हुआ जौ।
जौख—संज्ञा पुं. [तु. जूक] झुंड, जत्था, समूह, गोल। (२) फौज। (३) पक्षियों की श्रेणी।
जौगढ़वा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का धान।
जौचनी—संज्ञा स्त्री. [हि. जौ+चना] चना मिला जौ।
जौजा—संज्ञा स्त्री [अ. जौज.] पत्नी, घरवाली।
जौतुक—संज्ञा पुं. [सं. यौतुक] दहेज, जहेज।
जौधिक—संज्ञा पुं. [सं.] तलवार का एक हाथ।
जौन—संज्ञा पुं. [सं. यवन] म्लेच्छ, यवन।
सर्व. [सं. यः] जो, जिसे। उ.—घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं—१-१८५।
वि.—(१) जो। उ.—जौन ठौर मोहिं आज्ञा होई। ताही ठौर रहौं मैं जोइ—१-२६०। (२) जैसा, जिस प्रकार का। उ.—कही जात न सखी मोपै मिले जौन सनेह—पृ. ३१६।
जौनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. यव+नाल] रबी का खेत।
जौन्ह—संज्ञा स्त्री. [स. ज्योत्स्ना] चाँदनी, चंद्रिका।
जौपै—अव्य. [हि. जौ+पर] यदि, अगर।
जौवति—संज्ञा स्त्री. [सं. युवती] युवती।
जौवन—संज्ञा पुं. [सं. यौवन] युवा होने का भाव, यौवन। उ.—(क) जौवन-रूप-राज-धन धरती जानि जलद की छाहीं—२-२३। (ख) धन जौवन अभिमान अलप जल कहँ कूर आपुनी बौरी।
जौम—संज्ञा पुं. [हिं. जोम] उमंग, जोश, उत्साह।
जौरा—संज्ञा पुं. [हिं. जूरा] नाई आदि को साल भर की सेवा के बदले में दिया जानेवाला अन्न।
संज्ञा पुं. [हिं. ज्या+वर] बड़ा रस्सा।
जौलाऊ—संज्ञा स्त्री. [हिं. जौलाय] रुपए में बारह पैसे का भाग या हिस्सा।
जौलाय—वि. [देश.] बारह।
जौलौं—अव्य. [हिं. जौ+लौं (प्रत्य.)] जब तक, जिस समय तक। उ.—आमिष-रुधिर-अस्थि अँग जौलौं, तौलौं कोमल चाम—१-७६।
जौशन—संज्ञा पुं. [हिं. जोशन] भुजा का एक गहना।
जौहर—संज्ञा पु. [फा. गौहर का अ. रूप] (१) रत्न। (२) सार, तत्व। (३) हथियार की ओप या चमक। (४) विशेषता, उत्तमता, खूबी।
मुहा.—जौहर खुलना—(१) गुण या खूबी प्रकट होना। (२) भेद या रहस्य खुलना। जौहर खोलना—(१) विशेषता प्रकट करना। (२) रहस्य खोलना।
संज्ञा पुं. [हि. जीव+हर] (१) युद्ध के सकट-

काल में राजपूत-वीरांगनाओं का धर्म-रक्षा के लिए जलती आग में कूदकर प्राण देने की प्रथा।

मुहा.—जौहर होना—धर्म-रक्षा के लिए जल मरना। (२) प्राणत्याग, आत्महत्या। (३) वह चिता जो जौहर के लिए प्रस्तुत स्त्रियों के लिए बनायी जाती है।

जौहरी—संज्ञा पुं. [फा] (१) जवाहरात बचनेवाला। (२) जवाहरात का पारखी। (३) गुण का पारखी। (४) गुण का ग्राहक या आदर करनेवाला।

ज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञान, बोध। (२) ब्रह्मा। (३) निर्विकार ब्रह्म। (४) बुध ग्रह। (५) मंगल ग्रह। (६) ज् और ञ से बना संयुक्त अक्षर।

प्रत्य.—जाननेवाला, ज्ञाता, ज्ञानी।

ज्ञपित—वि. [सं.] (१) जाना हुआ। (२) मारा हुआ। (३) तुष्ट किया हुआ। (४) तेज किया हुआ। (५) प्रशंसित।

ज्ञप्त—वि. [सं.] जाना हुआ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जानकारी, (२) बुद्धि। (३) मारना। (४) तुष्टि। (५) जलाना। (६) स्तुति।

ज्ञवार—संज्ञा पुं. [सं.] बुधवार।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] जानकारी।

ज्ञात—वि. [सं.] जाना हुआ, विदित।

ज्ञातनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] जैन-तीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञात यौवना—संज्ञा स्त्री [सं.] वह किशोरी नायिका जिसे अपनी युवावस्था का ज्ञान हो गया हो।

ज्ञातव्य—वि. [सं] जो जाना जा सके, जो जानने योग्य हो, ज्ञेय, बोधगम्य।

ज्ञाता—वि. [सं. ज्ञातृ] (१) जाननेवाला, जानकर। (२) ज्ञानी, तत्वदर्शी। उ.—व्याध-गीध-गनिका-गज इनमें को ज्ञाता—१-१२३।

ज्ञाति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य, भाई, बंधु-बांधव। उ.—(क) हँसि हँसि दौरि मिले अंक भरि हम तुम एकै ज्ञाति—१०-३६ (ख) आपु गये नँद सकल महर घर लै आए सब ज्ञाति—१०८६। (२) जाति। अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही—१०२४।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] जैनतीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] जानकारी, ज्ञान।

ज्ञात्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. ज्ञाता] जाननेवाली।

ज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोध, जानकारी।

मुहा.—ज्ञान छाँटना—योग्यता या जानकारी दिखाने के लिए लंबी चौड़ी बातें करना।

(२) तत्वबोध, आत्मबोध, सम्यक्‌बोध। (३) ध्यान, विचार। उ.—(क) ऐसे दुख सौं मरन सुख मन करि देखौ ज्ञान—५८६। (ख) आइ गए दिन अवहि नेरैं, करत मन यह ज्ञान—८१४।

ज्ञानकांड—संज्ञा पुं. [सं.] वेद का एक विभाग जिसमें ब्रह्म आदि गहन विषयों की चर्चा है।

ज्ञानकृत—वि. [सं.] जान-बूझ कर किया हुआ।

ज्ञानगम्य—वि. [सं.] जो जाना जा सके।

ज्ञानगोचर—वि. [सं.] जो ज्ञानेंद्रियाँ जान सकें।

ज्ञानत—क्रि. वि. [सं.] जान-बूझ कर।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञानी संन्यासी।

ज्ञानदाता—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञानदातृ] गुरु।

ज्ञाननमनि—वि. [सं. ज्ञानी+मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ। उ.—ज्ञाननमनि, विद्यामनि, गुनमनि चतुरनमनि, चतुराई—२१७६।

ज्ञानमद—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञानी होने का गर्व।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा पुं. [सं] राम-पूजा की एक रीति।

ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म-जीव-ज्ञान।

ज्ञानयोग—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञान-प्राप्तिद्वारा मोक्ष साधन। उ.—एक ज्ञान योग विस्तरै। ब्रह्म ज्ञान सब सौं हित करै।

ज्ञानवान, ज्ञानवान्—वि. [सं.] ज्ञानी।

ज्ञानवृद्ध—वि. [सं.] ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न। (२) इंद्रियाँ जो ज्ञान-प्राप्ति में सहायक हों।

ज्ञानाकर—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञान+आकर=खान] बुद्ध।

ज्ञानावरण—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञान+आवरण] (१) ज्ञान-प्राप्ति की बाधा। (२) ज्ञान-लाभ में बाधक पाप।

ज्ञानासन—संज्ञा पुं [सं.] ज्ञान का एक आसन।

ज्ञानियनि—वि. बहु. [स. ज्ञानी] जो आत्मज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी हो। उ.—तपसियनि देखि कह्यौ, क्रोध इनमैं बहुत, ज्ञानियनि मैं न आचार पेखौं—८-८।

ज्ञानी—वि. [सं. ज्ञानिन] (१) जानकार, जिसे ज्ञान हो, ज्ञानवान् (२) आत्मज्ञानी।

ज्ञानेंद्रिय, ज्ञानेंद्री—संज्ञा स्त्री. [स. ज्ञानेंद्रिय] वे पाँच इंद्रियाँ जिनसे विषयों का बोध होता है—दर्शनेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, रसना और स्पर्शेन्द्रिय जिनके आधार क्रमश: आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा है। उ.—इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच। नर कौं सदा नचावैं नाच—५-४।

ज्ञानै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. ज्ञान] ज्ञान को। उ.—(क) मरन अवस्था कौं नृप जानै। तौ हू धरै न मन मैं ज्ञान—४-१२। (ख) तौ तजि सगुन साँवरी मूरति कत उपदेसै ज्ञानै—३४०४

ज्ञापक—वि. [सं.] सूचक, जतानेवाला, व्यंजक।

ज्ञापन—संज्ञा पुं. [सं.] जताने का कार्य।

ज्ञापित—वि. [सं.] जताया या बताया हुआ।

ज्ञेय—वि. [सं.] (१) जिसका जानना उपयोगी या आवश्यक हो। (२) जो जाना जा सके।

ज्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धनुष की डोरी। (२) रेखा जो चाप के एक सिरे से दूसरे तक खींची जाय। (३) पृथ्वी। (४) माता।

ज्याइ—क्रि स. [हि जिलाना] जीवित करके।

प्र.—ज्याइ लीन्ही—जीवित कर लिया। उ.—सूर प्रभु तोहिं ज्याइ लीन्ही कही कुँवरि सौं मात —७६०।

ज्याई—क्रि. स. [हि. जिलाना] जिला दी, जीवित कर दी, जान डाल दी। उ.—महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई। एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरत हीं ज्याई—७५४।

ज्याए—क्रि. स. [हिं. जिलाना] (१) जिलाने से, जीवित रखने से। उ.—तिहि न करत चित अधम अजहुँ लौं, जीवत जाके ज्याए—१-३२०। (२) जीवित किये। उ.—सीस अज राखि कै दच्छ ज्याए-४-६।

ज्यादती—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़ियादती] (१) अधिकारी, बहुतायत। (२) अनीति, अत्याचार।

ज्यादा—वि. [फा. ज़्यादा] बहुत, अधिक।

ज्यान—संज्ञा पुं. [फा. ज़ियान] हानि, घाटा, नुकसान।

ज्याना—क्रि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना।

ज्याफत—संज्ञा स्त्री. [अ. जियाफत] (१) दावत, भोज, सहभोज। (२) मेहमानी, आतिथ्य।

ज्यामिति—संज्ञा स्त्री. [स.] रेखागणित।

ज्यायौ—क्रि. स. [हि. जिलाना] जिलाना, जीवित रखना, जी डालना। उ.—(क) जौ सूरज प्रभु ज्यायौ चाहत, तौ ताकौ अब देहु दिखाई—७४८। (ख) अब जिनि गहर करौ हो मोहन जो चाहत हौ ज्यायौ—३४८०।

ज्यारना, ज्यावना—क्रि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना।

ज्यावहु—क्रि. स. [हिं. जिलाना] जीवन दो, जिला दो, जीवित करो। उ.—सूर स्याम मेरौ बड़ौ गारुड़ी, राधा ज्यावहु जाई—७५६।

ज्यूँ—अव्य. [हि. ज्यों] ज्यो, जैसे।

ज्येष्ठ—वि. [सं.] (१) बड़ा, जेठा (२) बूढ़ा।

संज्ञा पुं.—(१) जेठ का महीना। (२) वह वर्ष जिसमें वृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा या श्रेष्ठ होने का भाव।

ज्येष्ठाबु—संज्ञा पु. [सं.] चावल का धोवन।

ज्येष्ठा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) अठारहवाँ नक्षत्र। (२) पत्नी जो पति को सबसे प्रिय हो। (३) छिपकली। (४) बीच की उँगली। (५) गगा। (६) अलक्ष्मी देवी।

वि. स्त्री—बड़ी, श्रेष्ठ।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ+आश्रम] गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं. [स. ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ, गृही।

ज्येष्ठी—संज्ञा स्त्री. [स.] छिपकली, पल्ली।

ज्यों—क्रि. वि. [सं. य.+इव] (१) की तरह, के ढग से, जैसे, के रूप से। उ.—करी न प्रीति स्याम सौं जनम जुआ ज्यों हार्‌यौ—१-१०१।

मुहा.—ज्यों त्यों—(१) किसी न किसी तरह

बड़े झंझट या बखेड़े के साथ। (२) अरुचि के साथ, अनिच्छा से। (३) जिस तरह हो सके वैसे, किसी भी उपाय से। उ.—ज्यों त्यों कीन्हो चाहैं भोग—११-३। ज्यों त्यों करके—(१) किसी भी उपाय से। (२) बड़ी कठिनाई से। ज्यों का त्यों—(१) जैसा था वैसे ही। (२) जैसा था, वैसा (उसी तरह का) ही।

(२) जिस क्षण, जैसे ही।

मुहा.—ज्यों-ज्यों—जिस क्रम से, जैसे जैसे।

ज्योति शास्त्र—संज्ञा पु. [सं.] ज्योतिष।

ज्योति—संज्ञा स्त्री. [सं ज्योतिस्] (१) प्रकाश, उजाला, कांति, द्युति। उ.—(क) विकसति ज्योति अधर-बिच, मानौ विधु मैं विज्जु उज्यारी—१०-६१। (ख) कहा करौं जू सनेह न छूटे रूप-ज्योति गयी तातैं—३४२६। (२) लपक, लौ।

मुहा.—ज्योति जगना—(१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवी-देवता का दीपक जलना।

(३) अग्नि। (४) सूर्य। (५) नक्षत्र। (६) आँख की पुतली का मध्यबिंदु जो दृष्टि का मुख्य साधन है, (७) विष्णु। (८) परमात्मा का एक नाम।

ज्योतिक—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योतिषी] ज्योतिषी। उ.—बार-बार ज्योतिक सौं घरी बूझि आवै।

ज्योतित—वि० [सं० ज्योति] चमकता हुआ।

ज्योतिरिंग, ज्योतिरिंगण—संज्ञा पं. [सं.] जुगनूं।

ज्योतिमान, ज्योतिर्मय, ज्योतिर्मान—वि. [सं०] जगमगाता या चमकता हुआ।

ज्योतिर्लिंग—संज्ञा पुं [सं.] (१) महादेव, शिव। (२) शिव के बारह लिंग जिनके नाम और स्थान इस प्रकार है—सोमनाथ (सौराष्ट्र), मल्लिकार्जुन (श्रीशैल),महाकाल (उज्जयिनी), ओंकार (नर्मदा-तट), केदार (हिमालय), भीमशंकर (डाकिनी), विश्वेश्वर (काशी), त्र्यंबक (गोमती तट), वैद्यनाथ, (चिता-भूमि), नागेश्वर (द्वारका), रामेश्वर (सेतुबंध) और घृष्णेश्वर (शिवालय)।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पु० [सं०] (१) ध्रुवलोक जहाँ ध्रुव स्थित है। (२)इस लोक के स्वामी परमेश्वर या विष्णु।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं. [सं.] ज्योतिष जाननेवाला।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्हस्ता—संज्ञा स्त्री [सं.] दुर्गा।

ज्योतिश्चक्र—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्र और राशि मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पु. [स] (१) वह विद्या जिससे ग्रहों-नक्षत्रो की दूरी, गति और शुभ-अशुभ फल आदि का निश्चय किया जाता है। (२) शत्रु के चलाये हुए अस्त्र की रोक।

ज्योतिषिक—वि. [सं.] ज्योतिष संबंधी।

संज्ञा पु.—ज्योतिष का अध्ययन करनेवाला।

ज्योतिषी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषिन्]ज्योतिष जाननेवाला।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं. [स.] (१) ग्रह-नक्षत्र समूह। (२) चित्रक वृक्ष। (३) मेरु पर्वत की एक चोटी।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पु. [स.] एक तरह का यज्ञ।

ज्योतिष्पथ—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।

ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्र-समूह।

ज्योतिषमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) एक नदी। (३) एक वैदिक छंद। (४) एक प्राचीन बाजा।

ज्योतिष्मान—वि. [सं.] प्रकाशपूर्ण।

संज्ञा पुं.—(१) सूर्य। (२) एक पर्वत।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाँदनी। (२) चाँदनी रात। (३) सफेद फूल की तोरई। (४) सौंफ।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] चकोर।

ज्योत्स्नावृक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] दीवट, दीपाधार।

ज्योत्स्निका, ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदनी रात।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री. [सं. जेमन] (१) भोजन, रसोई, पक्का खाना। (२) सहभोज, दावत।

ज्योरा, ज्यौरा—संज्ञा पु. [हिं. जीविका] फसल तैयार होने पर नाई-धोबी आदि को दिया जानेवाला अन्न।

ज्योरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवा] रस्सी, डोरी।

ज्योहत—संज्ञा पुं. [सं. जीव + हत] आत्महत्या, जौहर। उ.—भई ब्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत बिचारयौ।

ज्योहर—संज्ञा पुं. [हिं. जौहर] राजपूत स्त्रियों का युद्ध-संकट-काल में धर्म-रक्षार्थ आग में जलना, जौहर।

ज्यों—क्रि. वि. [हिं. ज्यों] (१) जिस प्रकार, जैसे, जिस ढंग से। उ.—(क) ज्यों गूँगैं मीठे फल कौ

रेस अंतरगत हीं भावै—१-२ । (ख) करी न प्रीति स्यामसुंदर सौं जन्म जुआ ज्यौं हार्यौ ।

मुहा.—ज्यौं त्यौं—**किसी भी प्रकार, ढंग या रीति से**। उ.—ज्यौं त्यौं कौउ हरि-नाम उच्चरै। निस्चय करि सो तरै पै तरै—६-४।

(२) **जिस क्षण, जैसे ही**।

संज्ञा स्त्री.—**तरह, प्रकार, रीति**। उ.—उनमत की ज्यौं विचरन लागे—५-२।

ज्यौ—अव्य. [सं. यदि] **जो**।

संज्ञा पु. [सं. जीव] **जीव, प्राणी**। उ.—तन माया ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ—१-२२०।

संज्ञा पुं. [सं. जी] (१) **प्राण**। उ.—कागासुर आवत नहिं जान्यौ। सुनी कहत ज्यौ लेइ परान्यौ—३९१। (२) **जी, मन, चित्त**। उ.—तव तैं मेरौ ज्यौ न रहि सकत—६७१।

ज्यौतिषिक—संज्ञा पुं. [सं.] **ज्योतिषी**।

ज्यौनार—संज्ञा स्त्री. [सं. जेंमन=खाना] (१) **पक्का भोजन, रसोई**, उ.—(क) नंदघरनि व्रज-बधू बुलाईं, जे सब अपनी पाँति। कोउ ज्यौनार करति, कोउ घृत-पक, षट्‌रस के बहु भाँति—१०-८६। (ख) सरस बसन तन पोंछि गईं लै, षट रस की ज्यौनार जिंवावति—५१४। (२) **सहभोज, दावत**।

ज्वर—संज्ञा पुं. [सं.] **ताप, बुखार**।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं [सं.] (१) **गुड़ुच** (२) **बथुआ**।

ज्वरता—संज्ञा स्त्री. [हिं. ज्वर] **ताप, ज्वाला**। उ.—मनहुँ विरह की ज्वरता लगि लियो नेम प्रेम सिव-ससि सहस घट—३४६५।

ज्वरराज—संज्ञा पु. [सं.] **ज्वर की एक औषध**।

ज्वरांकुश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **एक औषध**। (२) **एक घास**।

ज्वरांतक—संज्ञा पुं. [सं.] **चिरायता। अमलतास**।

ज्वरा—संज्ञा स्त्री. [सं. जरा] **मौत, मृत्यु**।

ज्वरार्त्त—वि. [सं.] **ज्वर से दुखी या पीड़ित**।

ज्वरित, ज्वरी—वि. [हि. ज्वर] **जिसे ज्वर हो**।

ज्वर्रा—संज्ञा पु. [हिं. जुर्रा] **नर बाज (पक्षी)**।

ज्वलंत—वि. [सं.] (१) **जलता हुआ, प्रकाशमान**। (२) **प्रकाश में आया हुआ, अत्यंत स्पष्ट**।

ज्वल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अग्नि**। (२) **प्रकाश**।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री. [स.] **आग की लपट**।

ज्वलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जलन, दाह**। (२) **आग, अग्नि**। (३) **लपट, ज्वाला**। (४) **चित्रक वृक्ष**।

ज्वलित—वि. [सं.] (१) **जला हुआ**। (२) **चमकीला**।

ज्वान—वि. [हिं. जवान] **युवक, जवान**।

ज्वाना—संज्ञा स्त्री. [फा. जवानी] **यौवन, तरुणाई, युवावस्था**। उ.—बालपनौ गए, ज्वानी आवै। वृद्ध भए मूरख पछितावै—७-२।

ज्वाब—संज्ञा पु. [हि. जवाब] **जवाब, उत्तर**। उ.—(क) ज्वाब देति न हमहि नागरि रही बदन निहारि—८७६। (ख) दीन्हो ज्वाब दई को चैहौ देखौ री यह कहा जँजाल—१११२।

ज्वार—संज्ञा स्त्री. [सं. यवनाल, यवाकार या जूर्ण] (१) **एक मोटा-अनाज**। (२) **समुद्री तरगों का चढ़ाव**।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं. [हिं. ज्वार+भाटा] **समुद्री लहरो का चढ़ार-उतार या बढ़ना-घटना**।

ज्वारि, ज्वारी—संज्ञा पुं. [हिं. जुआरी] **जुआ खेलनेवाला**। उ.—चुगुल ज्वारि निर्दय अपराधो, झूठौ, खोटौ-खूटा—१-१८६।

संज्ञा स्त्री. [हि. ज्वार] **ज्वर नामक अनाज**। उ.—सूरदास मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनही—३०१३।

ज्वाल—संज्ञा पुं. [स.] **अग्निशिखा, लौ, लपट**। उ.—(क) बिनु जान अहिराज विष ज्वाल बरसै—५५२। (ख) धरनि आकास लौं ज्वाल-माला प्रबल घेरि चहुँपास ब्रजबास आयौ—५९७।

ज्वालक—वि. [सं.] **जलानेवाला**।

ज्वालमाली—संज्ञा पुं. [सं. ज्वालमालिन्] **सूर्य**।

ज्वाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **अग्निशिखा, दीपशिखा, लपट**। उ.—गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर—१—४६। (२) **गरमी, ताप, जलन**। (३) **विष आदि की गरमी का ताप**। उ.—काल-व्याल, रज-तम-विष-ज्वाला कत जड़ जंतु

जरत—१-५५ । (४) तक्षक की पुत्री-जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था ।

सज्ञा पु.—एक देश । उ.—भूप प्रथीराज दीनौ तिन्है ज्वाला देस—सा. ११८ ।

ज्वालाजिह्व—संज्ञा पु. [सं.] आग, अग्नि ।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी ।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी ।

ज्वालामुखी—वि. [सं.] जिसके मुख से ज्वाला निकले ।

ज्वालामुखीपर्वत—सज्ञा पु. [सं.] एक पर्वत जिससे समय समय पर धुआँ, राख, पिघले पदार्थ आदि निकलते हैं ।

ज्वैना—क्रि. स. [हि. जोहना] देखना, निहारना ।

झ

झ—देवनागरी वर्णमाला का नवाँ और चवर्ग का चौथा व्यजन । यह स्पर्श वर्ण है और इसका उच्चारण-स्थान तालु है ।

झं—संज्ञा पु. [अनु.] (१) धातु-खडो के टकराने से होनेवाला शब्द । (२) हथियार टकराने का शब्द ।

झंकना—सज्ञा पुं. [हि. झीखना] खीजना ।

झंकाड़—संज्ञा पुं. [हिं. झखाड़] (१) ठूँठ या पत्तेरहित पौधे । (२) काठ की बेकार चीजो का ढेर ।

झंकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. झनकार] (१) झनझन की ध्वनि, झनझन शब्द, झनकार । उ.—घर-घर गोपी दह्यौ विलोवैं, कर-कंकन-झंकार—४०८ । (२) झींगुर आदि के बोलने का झनझन शब्द । (३) झनझन शब्द होने का भाव ।

झंकारना—क्रि. स. [सं. झंकार] झनझन शब्द करना ।

क्रि. अ.—झनझन शब्द होना ।

झँकियाँ—सज्ञा स्त्री. [हिं. झाँकना] झरोखा, जाली ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँकी] (अल्पार्थक) झांकी ।

झंकृत—वि. [स.] जिसमें झनकार हुई हो ।

झंकृति—संज्ञा स्त्री. [सं. झकृत] झनकार ।

झँकोर, झँकोरा—सज्ञा पुं. [हि. झकोर] (१) हवा का झोका या हिलोर । (२) झटका,धक्का ।

झँकोरना, झकोलना—क्रि. अ. [हिं. झकोरना] (१) हवा का झोका या हिलोर आना । (२) झटका या धक्का लगना ।

झँकोलना, झँकोला—संज्ञा पु [हिं. झकोर] (१) हवा का झोका या हिलोर । (२) झोका, झटका ।

वि.—(वह पलँग, खटोला आदि) जिसकी बुनावट बहुत ढीली हो ।

झँखत—क्रि. अ. [हि. खीजना] झुँझलाते हैं, झगड़ते हैं, खीझते हैं, झीखते हैं, । उ.—क्रीड़त प्रात समय दोउ वीर । माखन माँगत, वात न मानत, झँखत जसोदा-जननी तीर—१०-१६१ ।

झँखति—क्रि. अ. [हि. खीजना] खीजती या झीखती है । उ.—सूरज प्रभु आवत हैं, हलधर को नहिं लखत झँखति कहति तो होते सगदोऊ—३०५६ ।

झँखना—क्रि. अ. [हि. झीखना] झुँझलाना, झींखना ।

झंखाट, झंखाड़—सज्ञा पुं. [हिं. झाड़ का अनु.] (१) घनी झाडी । (२) डाल-शाखा-रहित ठूँठ । (३) काठ की बेकार चीजो का समूह ।

झंखे—क्रि. अ. [हि. झखना] डरे, भयभीत हुए । उ.—तीन लोक डर जाके कँपै तुम हनुमान न झखे ।

झँगरा—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का बाँस ।

झँगा—संज्ञा पु. [हि झगा] (१) ढीला-ढाला कुरता । उ.—झँगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढिन को पहिरायौ—सारा. ४०८ । (२) बच्चो का ढीला ढाला कुरता ।

झँगिया—सज्ञा स्त्री. [हि. झँगुली] ढीला कुरता ।

झँगुआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक गहने की चूड़ी ।

झँगुला—सज्ञा पुं. [हिं. झगा] ढीला कुरता ।

झँगुली, झँगूली, झँगुलिया—सज्ञा स्त्री. [हिं. झगा का अल्पा.] (१) बच्चो के पहनने का ढीला-ढाला कुरता । उ.—(क) स्याम वरन पर झँगुलिया पीत

सीस कुलहिया चौतनियाँ—१०-१३२। (ख) तन झँगुली, सिर लाल चौतनीं, चूरा दुहुँ कर-पाइ—१० ८६। (ग) कुलही चित्र-बिचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली—१०-११७। (घ) नील नलिन तनु पीत झँगुलिया घनदामिनि द्युति पेखत—सारा. १६६।

झंझ—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँझ] झाँझ नामक बाजा।

झंझट—संज्ञा पुं. [अनु.] झगड़ा, बखेड़ा।

झँझनाना—क्रि. अ. [अनु.] झनझन शब्द होना।

क्रि. स.—झनझन का शब्द उत्पन्न करना।

झंझर—संज्ञा पुं. [हि. झज्झर] मिट्टी का एक पात्र।

झँझरा—संज्ञा पुं. [अनु.] मिट्टी का जालीदार ढक्कन।

वि.—छोटे छोटे छेदवाला, झीना।

झँझरी—संज्ञा स्त्री. [हि. झरझर से अनु.] (१) जाली। (२) जालीदार खिड़की। (३) बमचूल्हे की जाली। (४) छानने की चलनी। (५) कपड़े पर बनायी हुई जाली।

वि. स्त्री.—जिसमें बहुत से छोटे-छोटे छेद हो।

झँझरीदार—वि. [हि. झँझरी+फा. दार] जालीदार।

झंझा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तेज आँधी और वर्षा। (२) आँधी, अंधड़। (३) हल्की वर्षा। (४) झाँझ।

वि.—प्रचंड, तेज।

झंझानिल—संज्ञा पुं. [सं. झंझा+अनिल] (१) आँधी, अंधड़। (२) जोर का पानी और आँधी।

झंझार—संज्ञा पु. [सं. झंझा] आग की लपट जिसमें से एक अव्यक्त ध्वनि के साथ धुआँ और चिनगारियाँ निकलती हैं। उ.—अति अगिनि झार, भंभार, धुधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ—५९६।

झंझावात—संज्ञा पुं. [स. झंझा+वात=हवा] (१) आँधी, अंधड़। (२) तेज आँधी और पानी।

झंझी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फूटी कौड़ी। (२) दलाली का धन, झज्झी।

झँझोड़ना, झँझोरना—क्रि. स. [सं. झर्झन, हिं. झँझो-ड़ना] वेग या झटके से हिलाना, झकझोरना।

झँझोटी, झँझौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिझौटी] एक राग।

झंड—संज्ञा पुं. [सं. जट] मूँडन के पहले के बाल।

झंडा—संज्ञा पुं [सं. जयत] (१) ध्वजा, पताका।

मुहा.—झंडा खड़ा करना—(१) झंडे से सैनिकों को संकेत करना। (२) किसी स्थान पर अधिकार जताना। (३) आडंबर करना। झंडा गाड़ना—(फहराना)—किसी स्थान पर अधिकार जताना। झंडा तले (झंडे के नीचे) आना—पक्ष में एकत्र होना। झंडा (झंडे) तले की दोस्ती—मामूली जान-पहचान। झंडा (झंडे) पर चढ़ना—बदनाम होना। झंडा (झंडे) पर चढ़ाना—बदनाम करना।

(२) ज्वार-बाजरे आदि का ऊपरी नर-फूल।

झंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झंडा] रंगबिरंगे कपड़े-कागज का छोटा झंडा।

झंडीदार—वि. [हिं. झंडी+फा. दार] जिसमें झंडी हो।

झँडूलना, झँडूला—वि. [हि. झंड+ऊला (प्रत्य.)] (१) जिसके सिर पर मूँडन के पहले के बाल हो। (२) जो (बाल) मूँडन के पहले के हों। (३) सघन, घनी पत्तीवाला।

संज्ञा पुं.—(१) वह बालक जिसका मूँडन न हुआ हो। (२) बाल जो मूँड़े न गये हों। (३) सघन वृक्ष।

झँडूले—वि. [हि. झँडूला] मूँडन-संस्कार के पहले का, गर्भ का। उ.—उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार, बेनी लटकन मसि-बुंदा-मनि-मनहार—१०-१५१।

झंप—संज्ञा पुं. [सं.] उछाल, कुदान, फँदान।

मुहा.—झंप देना—कूदना-फाँदना। उ.—करि अपनो कुल नास वहिन सों अगिन झंप दै आई।

संज्ञा पुं. [देश.] घोड़े के गले का एक गहना।

झँपकना—क्रि. अ. [हि. झपकना] (१) पलक गिरना। (२) झपकी लेना। (३) झपटना। (४) डरना। (५) पखे आदि से हवा करना।

झँपकी—संज्ञा स्त्री. [हि. झपकी] (१) हलकी नींद। (२) आँख झपकने की क्रिया। (३) धोखा, चकमा।

झँपताल—संज्ञा पुं. [हि. झपताल] ताल का एक भेद।

झंपति—क्रि. अ. [हिं. झँपना] उछलती-कूदती या लपकती है। उ.—जबहिं झंपति तबहिं कंपति बिहँसि लगति उरोज—२४५७।

झँपना—क्रि. अ. [सं. झंप] (१) छिपना, आड़ में होना। (२) उछलना-कूदना, लपकना-झपकना। (३)

एक दम से टूट पड़ना। (४) झेंपना, लज्जित होना।

झँपरिया, झँपरी—संज्ञा स्त्री [हि. झाँपना] पालकी ढकने की खोली, गिलाफ, ओहार।

झँपाई—क्रि. अ. [हिं. झपाना] झपका दिये, मूँदे, बंद किये। उ.—खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत नैननि नींद झँपाई—१०-२४२।

झँपाक—संज्ञा पुं. [सं.] बंदर।

झंपान—संज्ञा पुं. [सं. झप] खटोली की सवारी।

झंपित—वि. [सं. झंप] ढका या छिपा हुआ।

झँपोला—संज्ञा पुं. [हि. झाँपा+ओला] छोटा झाबा।

झँव—संज्ञा पुं. [देश.] गुच्छा, झब्बा।

झँवकार—वि. [हि. झाँवला] कुछ काले रंग का।

झँवयो—क्रि. स. [हिं. झँवाना] घटाया, कम किया। उ.—ज्ञान को अभिमान किए मोकों हरि पठयो। मेरोई भजन थापि माया सुख झँवयो।

झँवरना, झँवराना—क्रि. अ. [हि. झाँवर] (१) कुछ काला पड़ना। (२) कुम्हलाना, मुरझाना, सूखना।

झँवा—संज्ञा पु. [हि. झाँवाँ] मैल छुटाने का झाँवा।

झँवाना—क्रि. अ. [हि. झाँवा] (१) कुछ काला पड़ना। (२) आग का मंद या कम हो जाना। (३) घट जाना। (४) मुरझाना, कुम्हलाना। (५) झाँवें से रगड़कर मैल का छुड़ाया जाना।

क्रि. स.—(१) कुछ काला कर देना। (२) आग की तेजी कम करना। (३) कम करना, घटाना। (४) कुम्हला देना, मुरझा देना। (५) झाँवें से रगड़कर मैल छुटाना। (६) झाँवे से रगडवाना।

झँसना—क्रि. स. [अनु.] (१) सिर या तलुए में चिकना पदार्थ रगडना। (२) धन ऐंठ लेना।

झ—संज्ञा पु. [सं.] (१) आँधी-पानी। (२) बृहस्पति। (३) ध्वनि, शब्द, गूँज। (४) तेज हवा।

झइँ, झईं, झई—संज्ञा स्त्री. [हि. झाँईं] आँख के आगे अँधेरा, तिरमिराहट। उ.—सूरदास स्वामी के बिछुरे लागे प्रेम झईं—२७७३।

झउआ, झउवा—संज्ञा पुं. [हि. झावा] खाँचा, झौआ।

झक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] धुन, सनक।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झख] झीखने की क्रिया या भाव।

वि.—चमकीला, बहुत साफ।

संज्ञा पुं. [सं. झष] (१) मछली। (२) मकर।

झककेतु—संज्ञा पुं. [हि. झषकेतु] कामदेव।

झकझक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) व्यर्थ की कहा-सुनी, हुज्जत, तकरार (२) बकवाद, विवाद।

झकझका—वि. [हिं. झक (अनु.)] चमकदार।

झकझकाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. झक (अनु.)] चमक।

झकझेलना—क्रि. स. [अनु.] झोका या झटका देना।

झकझोर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) झोका या झटका। (२) हिलने-डोलने या चचल होने की क्रिया या भाव। उ.—सूरदास बलि बलि या छबि की अलकन की झकझोर—२३१२।

वि.—(१) झोंकेदार, तेज। उ.—क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्णा पवन अति झकझोर। नाहिं चितवन देत सुत-तिय नाम-नौका ओर—१-९९। (२) चचल, हिलता-डोलता। उ.—त्रास तैं अति चपल गोलक, सजल सोभित छोर। मीन मानौ बेधि बंसी, करत जल झकझोर—३५८।

झकझोरत—क्रि. अ. [हि. झकझोरना] झोका खाता है, हिलता-डुलता है। उ.—(क) मैया री मैं चंद लहौंगौ। यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसैं कै जु लहौंगो—१०-१९४। (ख) इत-उत अंग मुरत झकझोरत, अँगिया बनी कुचनि सौं माढी—१०-३००।

क्रि. स.—झोका या झटका देता है। उ.—काहे कौं झकझोरत नोखे, चलहु न देउँ बताइ—९८२।

झकझोरति—क्रि. स. स्त्री. बहु. [हि. झकझोरना] झोका या झटका देती है। उ.—जाकौ नेति-नेति स्रुति गावत ध्यावत सुर-मुनि ध्यान धरे। सूरदास तिहिंकौं ब्रज-बनिता झकझोरति उर अक भरे—१०-८८।

झकझोरति—क्रि. स. स्त्री. [हि. झकझोरना] झटका देती या झँकोरती है। उ.—सूरदास तिनकौ ब्रज-जुवती झकझोरति उर अंक भरे। (ख) यह ऐसेहि झकझोरति मोको पायौ नीके दाँउ—१६१३।

झकझोरना—क्रि. स. [हि. झोंका] झोका-झटका देना।

झकझोरा—संज्ञा पुं. [अनु.] झोका, झटका, धक्का।

झकझोरि—क्रि. स. [हि. झकझोरना] झटका देकर,

झोका देकर, जोर से हिलाकर। उ.—नाक मूँदि, जल सींचि जबहि जननी कहि टेरयौ। बार-बार झकझोरि, नैंकु हलधर-तन हेरयौ—५८६।

झकझोरयो—क्रि. स. [हि. झकझोरना] झोका, झटका या धक्का दिया। उ.—भुज भरि धरि अँकवारि बाँह गहि कै झकझोरयौ—१०२६।

झकझोलना—क्रि. स. [हि. झकझोलना] झटका देना। क्रि. अ.—हिलना-डुलना, झटका या धक्का सहना।

झकझोलै—क्रि. अ. [हि. झकझोरना] हिलती डुलती है, काँपती है। उ.—पकरयौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलखि बदन भर डोलै। जैसे राहु नीच ढिग आएँ, चंद्र-किरन झकझोलै—१-२५६।

झकड़—संज्ञा पुं. [हि. झक्कड़] आँधी, अंधड़, तूफान।

झकड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] दूध दुहने का पात्र।

झकति—क्रि. अ. [हि. झीखना] खीजती या कुढ़ती रहती है। उ.—ऊधौ कुलिस भई यह छाती। मेरो मन-रसिक लग्यौ नँदलालहि झकति रहति दिन राती—४२६६।

झकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) व्यर्थ की बातें कहना। (२) झुँझलाना, खीजना। (३) क्रोध में बकना।

झकर—संज्ञा पुं. [हि. झक्कड़] आँधी, अंधड, तूफान।

झका—वि. [हि. झक] चमकीला बहुत साफ।

झकाझक—वि. [अनु.] साफ और चमकीला।

झकिझकि—क्रि. अ. [हि. झकना] बकझक कर, खीझ कर, झुँझला कर, बेकार समझ कर। उ.—हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकिझकि डारि दयौ—१-६४।

झकुराना—क्रि. अ. [हिं. झकोरा] झूमना।

झकोर, झकोरा, झकोरो—संज्ञा पुं. [अनु. झोंका] (१) हवा का झोंका या हिलकोरा। उ.—(क)चारु लोचन हँसि बिलोकनि देखि कै चित भोर। मोहनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर—१३३५। (ख) नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर झकोर। (२) झटका, धक्का, लहर, झोका, छींटा। उ.—(क) जगमग रहो जराइ को टीको छबि की उठत झकोरो हो—२२४३। (ख) गोपी ग्वाल गाइ ब्रज राख्यो नेकु न आई बूँद झकोर—६६८।

झकोरत—क्रि. अ. [अनु.] (हवा का) झोंका देता या मारता है। उ.—चहुँ दिसि पवन झकोरत घोरत मेघ घटा गँभीर।

झकोरना—क्रि. अ. [अनु.] हवा का झोका मारना।

झकोल—संज्ञा पुं [हिं. झकोर] हवा का झोका या हिलकोरा। उ.—नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर झकोल।

झक्क—वि. [अनु.] खूब साफ और चमकीला। संज्ञा स्त्री. [हिं.] धुन, सनक, लहर।

झक्कड़—संज्ञा पुं. [अनु.] आँधी, अंधड, तूफान। वि. [हि. झक्की] (१) बकवादी। (२) सनकी।

झक्का—संज्ञा पुं. [अनु.] हवा का झोका, झक्कड़, आँधी।

झक्की—वि. [अनु.] (१) बकवादी। (२) सनकी।

झक्खना—क्रि. अ. [हिं. झींखना] खीजना, कुढ़ना।

झख—संज्ञा स्त्री. [हिं. झींखना] झीखने का भाव।

मुहा.—झख मारना—(१) बेकार समय खराब करना। (२) अपनी दशा बिगाड़ना। (३) लाचार होकर कुढना। झख मारि—लाचार होकर, विवश होकर, अछताते-पछताते। उ.—सूर अपनो अंस पावै, जाहिं घर झख मारि—११३५।

झखकेतु—संज्ञा पुं. [सं. झषकेतु] कामदेव।

झखत—क्रि. अ. [हि. झीखना] दुखी होता या खीजता है, झीखता है। उ.—(क) बाबा नद झखत किहिं कारन, यह कहि मया मोह अरुझाइ। सूरदास-प्रभु मातु-पिता कौ, तुरतहिं दुख डारयौ बिसराइ—५३१।

झखना—क्रि. अ. [हि. झीखना] झुँझलाना, झीखना।

झखनिकेत—संज्ञा पुं [सं झषनिकेत] कामदेव।

झखराज—संज्ञा पुं. [स. झषराज] मगर, मकर।

झखलगन, झखलग्न—संज्ञा पुं. [स. झषलग्न] मीनलग्न।

झखिआँ, झखियाँ, झखी—संज्ञा स्त्री [सं. झष] मछली, मीन। उ.—आवत बन तें साँझ देखो मैं गायन माँझ काहू को ढोटा री एक सीस मोर पखियाँ। अतसी कुसुम जैसे चचल दीरघ नैन मानो रसभरी जो लरति जुगल झखिआँ—२३६६।

झगड़ना—क्रि. अ. [हि. झकझक से अनु.] (१) हुज्जत, तकरार या तेज वाद-विवाद करना। (२) लड़ाई-

झगड़ा करना।

झगड़ा—संज्ञा पुं. [हि. झकझक से अनु.] (१) हुज्जत, तकरार, तेज वाद-विवाद। (२) लड़ाई,मारपीट।

झगड़ालू—वि. [हिं. झगड़ा+आलू (प्रत्य.)] (१) हुज्जती, बकवादी। (२) लड़ाई-झगडे में लगा रहने या रुचि लेनेवाला।

झगड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. झगड़ा] (१) झगड़ा करने-वाली। (२) अपने नेग या हक के लिए झगड़नेवाली।

झगर—संज्ञा पुं. [देश.] एक चिड़िया।

क्रि. अ. [हि. झगड़ना] झगड़ा करके।

झगरत—क्रि. अ. [हि. झगड़ना] झगड़ा करते हैं, लड़ते-झगडते हैं, वाद-विवाद करते हैं। उ.—(क) खेलत-खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई—१०-१६२। (ख) आपुनि हारि सखनि सौं झगरत यह कहि दियौ पठाइ—१०-२१४। (ग) व्रज की ढीठी गुवारि, हार की बेचनहारि, सकुचै न देत गारि झगरत हूँ—१०-२६५। (घ) नितहीं झगरत हैं मनमोहन, देखि प्रेम-रस-चाखी—७७४।

झगरना—क्रि. अ. [हि. झगड़ना] झगड़ा करना, लड़ना।

झगरा—संज्ञा पुं. [हिं. झगड़ा] हुज्जत, लड़ाई।

झगराऊ—वि. [हिं. झगड़ालू] झगड़ा करनेवाला।

झगरि—क्रि. अ. [हिं. झगड़ा] झगड़ा करके, लड़-झगड़कर, वाद-विवाद करके। उ.—एक दूध-फल, एक झगरि चबेना लेत, निज निज कामरि के आसननि कीने—४६७।

झगरिनि, झगरी—संज्ञा स्त्री. [हि. झगड़ी] (१) झगड़ने-लड़नेवाली। (२) अपने नेग के लिए झगड़नेवाली। उ.—(क) वहुत दिननि की आसा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ—१०-१५। (ख) झगरिनि तैं हौं वहुत खिझाई। कंचन-हार दिऐ नहि मानति, तुहीं अनोखी दाई—१०-१६। (ग) जसुमति लटकति पाइ परै। तेरौ भलौ मनैहौं झगरिनि, तू मति मनहिं डरै—१०-१७।

झगरू—वि. [हिं. झगड़ालू] कलहप्रिय, झगड़ा-बखेड़ा करनेवाला, लड़ाकू। उ.—लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, वड़ौ पढैलौ, लूटा—१-१८६।

झगरै—क्रि. अ. [हिं. झगड़ना] झगड़ा करे, वाद-विवाद करे, लड़े। उ.—(क) सूरदास स्वामी प्रगटे हैं, औसर पै झगरै—१०-१७। (ख) कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै—१० ७६।

झगरो, झगरौ—संज्ञा. पुं. [हिं. झगड़ा] झगड़ा, वाद-विवाद, हुज्जत, तकरार। उ.—(क) वहुत दिननि की आसा लगी, झगरिनि झगरौ कीनौ—१०-१५। (ख) स्याम करत माता सौं झगरौ—१०-६४। (ग) भोरहि नित प्रति ही उठि, मोसौं करत झगरो—१०-३३६। (घ) हमहिं तुमहिं कैसोइ झगरो सूर सुजान हम गँवारी—१०३०। (ङ) दान देत की झगरो करिहौ—११२४।

झगला, झगा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बच्चो का ढीला-ढाला कुरता। उ.—(क) नंद-उदौ सुनि आयौ हो, वृषभानु कौ जगा। दैवे कौं वढ़ौ महर, देत न लावै गहर, लाल की वधाइ पाऊँ लाल कौ झगा—१०-३६। (ख) झगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढिन को पहिरायौ। (२) ढीला-ढाला बड़ा कुरता।

झगुलि, झगुलिआ, झगुलिया, झगुली—संज्ञा स्त्री. [हि. झगा का अल्पा.] ढीलाढाला बच्चो का छोटा कुरता। उ.—प्रफुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानी झीनीयै झगुलि तामैं कंचन-तगा—१०-३६।

झज्झर—संज्ञा पुं. [स. अलिंजर] मिट्टी का एक छोटा पात्र जिसमें गर्मी में पानी ठढा करते हैं।

झज्झी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फूटी कौड़ी। (२) दलाली में प्राप्त धन।

झझक—संज्ञा स्त्री. [हि. झझकना] (१) झिझक, भड़क। मुहा.—झझक निकलना—भय-सकोच दूर होना। झझक निकालना—भय-संकोच दूर करना।

(२) झुँझलाहट। (३) अप्रिय गंध। (४) कुछ सनक।

झझकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. झझकना] सकोच, भड़क।

झझकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) भय या आशका से ठिठकना या भड़कना। (२) झुँझलाना। (३) चौंकना।

झझकनि—संज्ञा स्त्री [हिं. झझकना] झिझक, भड़क। उ.—वह रस की झझकनि, वह महिमा, वह मुसु-कनि वैसो सजोग।

झझकाना—क्रि. स. [हिं. झझकना का प्रे.] (१) भय या आशंका से बिदकाना या भड़काना। (२) खिझाना। (३) चौंका देना।

झझकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. झझकारना] डांटने, डपटने या दुरदुराने का भाव या कार्य।

झझकारत—क्रि. स. [अनु.] अपने सामने मद या फीका कर देता है। उ.—नख मानो चंदवान साजि कै झझकारत उर आयौ—१६७२।

झझकारना—क्रि. स. [अनु.] (१) डांटना डपटना। (२) दुतकारना, दुरदुराना। (३) अपने सामने कुछ न गिनना-समझना, तुलना में मद या हीन कर देना।

झझकि—क्रि. अ. [हिं. झझकना (अनु.)](१)चौंककर। प्र.—झझकि उठे, उठ्यौ—चौंक पड़ा। उ.—(क) जसुमति मन-मन यहै बिचारति। झझकि उठ्यौ सोवत हरि अवहीं, कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति—१०-२००। (ख) जागे नंद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास। सोवत झझकि उठे काहे तैं, दीपक कियौ प्रकास—५१७।

(२) भय-आशंका से चमककर, बिदककर या भड़ककर। उ.—मिलति भुज कंठ दै रहति अँग लटकि कै जात दुख दूरि ह्वै झझकि सपने—१७४७। (३) सकुचित हुए, सकुचाये। उ.—अति प्रतिपाल कियो तुम हमरो सुनत नंद जिय झझकि रहे—२६४६।

झझक्यौ—क्रि. अ. [हिं. झझकना (अनु.)] चौंक पड़ा, आशंकित हुआ। उ.—केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि। बाल-ससि मनु भाल तैं लै उर धर्यौ त्रिपुरारि। देखि अंग अनग झझक्यौ, नंद-सुत हर जान—१०-१७०।

झट—क्रि. वि. [सं. झटिति] तुरत, फौरन, तत्क्षण।

मुहा.—झट से—जल्दी से, तुरत ही।

झटकना—क्रि. स. [हि. झट] (१) झटका देना, झोका देकर हिलाना। (२) जोर से हिलाना, झोका देना।

मुहा.—झटक कर—झोके या झटके से, तेजी से।

(३) दबाव, चालाकी या छल से कोई चीज लेना, ऐंठना।

मुहा.—झटके का माल—दबाव, चालाकी या छल से लिया हुआ, ऐंठा हुआ या चुराया हुआ माल।

क्रि. अ.—रोग-शोक से बहुत दुबला हो जाना।

झटका—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) झोका, धक्का। (२) धक्के का भाव। (३) एक ही वार में पशु का वध करने का ढग। (४) रोग-शोक का आघात।

झटकारना—क्रि. स. [हिं. झटका] झटका देना।

झटकि—क्रि. स. [हिं. झटकना](१) झटका या धक्का देकर। उ.—(क) धरनि पट पटकि कर झटकि भौंहनि मटकि अटकि तहाँ रीझे कन्हाई। (ख) रिसन उठी झहराइ झटकि भुज छुवत कह पिय सरम नाहीं—२१४२। (२) झटक कर, झिटका खाकर। उ.—किलकि झटकि उलटे परे देवन मुनि-राई—१०-६६।

झटकाई—क्रि. स. [हिं. झटकना] झटके से छीनी। उ.—यहि लालच अँकवारि भरत हौ हार तोरि चोली झटकाई।

झटकी—क्रि. स. [अनु.] झटका दिया, फटकारी। उ.—(क) बिषधर झटकी पूँछ फटकि सहसौ फन काढो—५८६। (ख) छोरे ते नहीं छुटति कइक बेर झटकी—१२००।

झटकै—संज्ञा पुं. सवि. [हि. झटका] झटके से, झटकने से। उ.—कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं—१-२६२।

झटक्यौ—क्रि. स. [हिं. झटकना] झोका दिया, झटका, (किसी चीज को) जोर से हिलाया। उ.—वृच्छ-जीव ऊखल लै अटक्यौ। आगैं निकसि नैंकु गहि झटक्यौ—३६१।

झटपट—अव्य. [हि. झट + पट] तुरंत ही, फौरन।

झटाका—क्रि. वि. [हिं. झड़ाका] चटपट।

झटास—संज्ञा स्त्री. [हि. जड़ी] बौछार।

झटिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाटा] जूही।

झटित—क्रि. वि. [सं.] (१) झटपट, तुरंत, तत्काल। (२) बिना समझे-बूझे।

झट्ट—क्रि. वि. [हिं. झट] तुरंत, शीघ्र, तत्काल।

झड़—संज्ञा स्त्री. [हि. झड़ना] वर्षा की झड़ी।

झड़कना—क्रि. स. [हिं. झिड़कना] (१) अपमान या

अनादर करते हुए कुछ कहना। (२) अलग फेंक देना।

झड़क्का—संज्ञा पुं [हिं. झड़क्का] झड़प, मुठभेड़।

झड़झड़ाना—क्रि. स. [हि. झिड़कना] डाँटना। क्रि. स. [हि. झँझोड़ना] झोका-झटका देना।

झड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. झड़ना] (१) झाड़ने से गिरी हुई चीज। (२) झाड़ने की क्रिया या भाव।

झड़ना—क्रि. अ. [सं. क्षरण] (१) कण या बूंद के रूप में गिरना। (२) बहुत अधिक गिरना। (३) झाड़कर साफ किया जाना।

झड़प—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झगडा, मुठभेड लडाई। (२) क्रोध, गुस्सा, जोश, आवेश। (३) आग की लपट।

झड़पना—क्रि. अ. [अनु.] (१) वेग से गिरना। (२) आक्रमण करना। (३) छोपना। (४) लड़ना-झगड़ना। (५) छीनना, एँठना।

झड़पा झड़पी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हाथापाई।

झड़पाना—क्रि. स. [हि. झड़प] दूसरों को लडाना।

झड़वेरी, झड़वैरी—संज्ञा स्त्री. [हि. झाड़+वेरी] जगली वेर का पौधा या फल।

मुहा.—झड़वेरी का काँटा—झगड़ालू आदमी।

झड़वाना—क्रि. स. [हिं. झाड़ना का प्रे.] झाडने का काम दूसरे से कराना, झाडने में लगाना।

झड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हि. झाड़ना] झाड़ने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

झड़ाक, झड़ाका—संज्ञा पुं [अनु.] झड़प, मुठभेड़। क्रि. वि.—जल्दी से, चटपट, तुरत।

झड़ाझड़—क्रि. वि. [अनु.] लगातार, जल्दी-जल्दी।

झड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झड़ना] (१) कणों या बूंदो के वरावर गिरने की क्रिया। (२) छोटी बूंदो की वर्षा। (३) लगातार वर्षा। (४) विना रुके वहुत सी वातें कहे या वकते जाना।

झन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] धातुखड वजने की ध्वनि।

झनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झनकार का शब्द।

झनकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) झनकारना, झनझनाना। (२) क्रोध से हाथ पैर पटकना। (३) चिडचिडाना।

झनकमनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] गहनो की झनकार।

झनकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. झंकार] झनझन की ध्वनि, गहनों की झनक। उ.—(क) किंकिनी कटि कुनित ककन कर चुरी झनकार—१७२६। (ख) छीन लंक कटि किंकिनि वाजत अति झनकार—२७६२।

झनकारना—क्रि. स. [हिं. झनकार] झनझन करना। क्रि. अ.—झनझन शब्द होना।

झनकारनो—क्रि. स. [हि. झनकारना] गहनों का बज-कर झनझन करना। उ—मनिमय नूपुर कुनित कंकन किंकिनी झनकारनो—२२८०।

झनकारा—संज्ञा स्त्री. [सं. झंकार] झनझन शब्द, झनकार। उ.—समदत भई अनाहत वानी, कंस कान-झनकारा—१०-४।

झनझन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झनकार।

झनझना—संज्ञा पुं. [देश.] 'चनचना' कीड़ा। वि. [अनु.] जिससे झनझन शब्द निकले।

झनझनाना—क्रि. अ. [अनु.] झनझन शब्द होना। क्रि. स.—झनझन का शब्द करना।

झनझनाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झनकार।

झननन—संज्ञा पुं. [अनु.] झनझन शब्द, झकार।

झननाना—क्रि. स. [अनु.] झनझन शब्द करना। क्रि. अ.—झनझन शब्द होना।

झनस—संज्ञा पुं. [हि. झन] एक प्राचीन वाजा।

झनाझन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झनझन शब्द, झकार। क्रि. वि.—झनझन शब्द के साथ।

झनिया—वि. [हिं. झीना] बहुत महीन, झीना। उ.—कनक रतन मनि जटित कटि किंकिन कलित पीत पट झनिया।

झन्नाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झनझनाहट।

झप—क्रि. वि. [सं. झप=जल्दी से कूदना] जल्दी से, तुरंत, झटपट। उ.—खेलत खेलत जाइ कदम चढि झप जमुना-जल लीन्हो।

झपक—संज्ञा स्त्री. [हि. झपकना] (१) पलक झपकने का थोडा समय। (२) पलक का गिरना। (३) हलकी नींद, झपकी। (४) शर्म, झेंप।

झपकना—क्रि. अ. [सं. झंप] (१) पलक गिरना। (२) हलकी नींद या झपकी लेना। (३) झपट कर आगे वढ़ना। (४) ढकेलना। (५) झेंपना। (६) सहमना।

झपका—संज्ञा पुं. [अनु.] हवा का झोंका ।
झपकाना—क्रि. स. [अनु.] बराबर पलकें गिराना ।
झपकी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हलकी नींद, ऊँघ । (२) आँख झपकना । (३) कपड़ा जो अनाज ओसाने में हवा करने के काम आता है । (४) धोखा, चकमा ।
झपकौहाँ, झपकौहे—वि. पुं. [हिं. झपना] (१) नींद से भरा या ऊँघता हुआ । (२) मस्त, नशे में चूर ।
झपकौहीं—वि. स्त्री. [हिं. झपकौहाँ] (१) नींद-भरी, झपकती या ऊँघती हुई । (२) मस्त, नशे में चूर ।
झपट—संज्ञा स्त्री. [सं. झप = जल्दी से कूदना] झपटने की क्रिया या भाव ।
यौ.—लपट-झपट—झपटने की क्रिया या भाव ।
मुहा.—झपट लेना—तेजी से आगे बढ़कर छीनना।
झपटत—क्रि. अ. [हिं. झपटना] झपटती है, सवेग बढ़ती है । उ.—झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट चटकि, फटत, लटलटकि द्रुम द्रुमनवायौ—५९६।
झपटना—क्रि. अ. [हिं. झपट] (१) तेजी या झोंके से बढ़ना । (२) पकडने या आक्रमण के लिए टूटना ।
क्रि. स.—झपट कर पकड़ या छीन लेना ।
झपटा—क्रि. अ. [हिं. झपटना] लपका, दौड़ा ।
झपटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. झपटना] झपट ।
झपटाना—क्रि. स. [हिं. झपटने का प्रे.] (१) झपटने में प्रवृत्त करना, दौडाना । (२) विपक्षी पर धावा या आक्रमण कराना ।
झपटि—क्रि. अ. [हिं. झपटना] किसी (वस्तु या व्यक्ति की) ओर झोके के साथ बढ़कर, सवेग चलकर । उ.—झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट चटकि, फटत, लटलटकि द्रुम द्रुमनवायौ—५९६ ।
झपट्ट—संज्ञा स्त्री. [हिं. झपट] झपटने की क्रिया ।
झपट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. झपट] तेजी से लपककर झटका या झोका देने की क्रिया या भाव ।
झपताल—संज्ञा पुं. [देश.] संगीत में एक ताल ।
झपति—क्रि. अ. [हिं. झपना] (१) झपकी लेती है । (२) झुकती है । (३) लज्जित होती या झेंपती है ।
झपना—क्रि. अ. [अनु.] (१) आँखें झपकना, पलक गिरना । (२) झुकना । (३) झेंपना, लज्जित होना ।
झपनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) ढकना । (२) पिटारी । संज्ञा स्त्री. [हिं. झपना] झपकी, ऊँघ ।
झपलैया—संज्ञा स्त्री [हिं. झँपोला] छोटा झावा ।
झपवाना—क्रि. स. [अनु.] झपाने में लगाना ।
झपस—संज्ञा स्त्री. [हिं. झपसना] (१) गुंजान होने की क्रिया या भाव । (२) झुकी हुई डाल या शाखा ।
झपसना—क्रि. अ. [हिं. झँपना = ढँकना] लता या पेड़-पौधे का खूब गुंजान या घना होकर फैलना ।
झपाका—संज्ञा पुं. [हिं. झप] शीघ्रता, जल्दी । क्रि. वि.—जल्दी से, शीघ्र ही ।
झपाट—क्रि. वि. [हिं. झपट] शीघ्र ही, तुरंत ।
झपाटा—संज्ञा पुं. [हिं. झपट] (१) चपेट, आक्रमण । (२) झपट्टा, झपट ।
झपाना—क्रि. स. [हिं. झपना] (१) मूँदना, बंद करना, झपकाना । (२) झुकाना ।
झपाव—संज्ञा पुं. [देश.] घास काटने का औजार ।
झपि—क्रि. वि. [सं. झप = जल्दी से गिरना, कूदना] जल्दी से, तुरत, झटपट । उ.—खेलत खेलत जाइ कदम चढि, झपि जमुना-जल लीन्हौ—५७६ ।
झपित—वि. [हिं. झपना] (१) मुँदा हुआ, बद । (२) जिसमें नींद भरी हो, उनींदा । (३) झेंपा हुआ ।
झपिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक गहना । पिटारी ।
झपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. झपट] झपट, वेग ।
झपेटना—क्रि. स. [अनु.] दबोचना, छोपना ।
झपेटा—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) झपट, वेग की चपेट । (२) भूत-प्रेत की बाधा । (३) हवा का झोका ।
झपोला—संज्ञा पुं. [हिं. झँपोला] छोटा झावा ।
झपोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. झँपोली] छोटी डलिया ।
झप्पड़, झप्पर—संज्ञा पु. [अनु.] झापड़, थप्पड़ ।
झप्पान—संज्ञा पुं. [हिं. झंपान] खटोली की सवारी ।
झप्पानी—संज्ञा पुं. [हिं. झंपान] झप्पान उठानेवाला ।
झब—संज्ञा पुं. [हिं. झब्बा] गुच्छा, फुँदना ।
झबझबी—संज्ञा स्त्री [देश.] कान का एक गहना ।
झबड़ा, झबरा—वि. [हिं झबरा] बड़े बालवाला ।
झबधरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक घास ।
झबरीला—वि. [हिं. झबड़ा+ईला (प्रत्य.)] (१) बड़ा

बिखरा-घुंघराला (बाल)। (२) ऐसे बालवाला।

झबरीली—वि. स्त्री. [हिं. झबरीला] बड़े बाल वाली।

झबरैरा—वि. [हिं. झबरीला] बड़ा, बिखरा हुआ और घुंघराला। उ.—कुतक कुटिल छवि राजत झबरैरी। लोचन चपल तारे रुचिर भॅवरैरी।

झबा—संज्ञा पु. [हिं. झब्बा] रेशमी या सूती फुंदना या गुच्छा। उ.—सीस फूल धरि पाटी पोंछत फुंदनि झबा निहारत।

झबार, झबारि—संज्ञा स्त्री. [अनु.] झगड़ा, बखेड़ा। (क) बहुत अचगरी जिन करौ अजहूं तजौ झबारि। (ख) बड़े घर की बहू बेटी. करति वृथा झबारि।

झबिया—संज्ञा स्त्री. अल्पा. [हिं. झब्बा] (१) छोटा फुंदना या गुच्छा। (२) सोने-चांदी की छोटी-छोटी कटोरियां जिनसे गहनों का फुंदना तैयार होता है।

झबुआ—वि. [हिं. झबरा] बड़े बालवाला।

झबूकना—क्रि. अ. [अनु.] भड़कना, बिदकना।

झबूकै—क्रि. अ. [हिं. झबूकना] भड़कते हैं।

झब्बा—संज्ञा पु. [अनु.] (१) रेशमी-सूती तारों का गुच्छा या फुंदना। (२) एक सी चीजों का गुच्छा।

झमक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) प्रकाश, उजेला। (२) झमझम शब्द। (३) ठसक या नखरे की चाल।

झमकत—क्रि. अ. [हिं. झमकना] गहनों की झमझम-छमछम के साथ उछलता-कूदता है। क.—कबहुँक निकट देखि बरसा रितु झूलत सुरंग हिंडोरे। रमकत झमकत जनकसुता सँग हाव-भाव चित चोरे—सारा. ३१०।

झमकना—क्रि. अ. [हिं. झमक] (१) चमकना, दमकना, प्रकाश करना। (२) छा जाना, झपकना। (३) झमझम की ध्वनि होना। (४) गहनों की झनकार के साथ उछलना-कूदना। (५) गहने झनकारते हुए नाचना। (६) हथियारों का चमकना और खनकना। (७) ठसक दिखाना। (८) झमझम शब्द करना।

झमकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झमकना] झमझम ध्वनि। उ.—(क) दामिनि की दमकनि, बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जीजियत माई- है—२८२७। (ख) पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत।

झमकाइ—क्रि. स. [हिं. झमकना] आभूषण आदि बजाकर और ठसक दिखाकर। उ.—(क) सूर स्याम आए ढिग आपुन घट भरि चलि झमकाइ—८८४। (ख) ग्वारि घट सिर धरि चली झमकाइ—८८५।

झमकाई—क्रि. स. [हिं. झमकना] (१) गहनों की छमछमाहट की। (२) ठसक दिखायी।

झमकाना—क्रि. स. [हिं. झमकना] (१) चमक पैदा करना। (२) आभूषण झमझमाना। (३) हथियार चमकाना या खनखनाना।

झमकार, झमकारा, झमकारे—वि. [हिं. झमझम] झमाझम बरसने या पानी बरसानेवाला (बादल)।

झमकि—क्रि. अ. [हिं. झमकना] (१) गहनों का झमझम शब्द या झनकार की ध्वनि करके। उ.—हँसत नंद, गोपी सब बिहँसीं, झमकि चलीं सब भीतर ढुरकी—१०-१८०। (२) झपकी लेकर, (नींद आदि) छाकर। उ.—आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी—१०-२२८। (३) झमझम शब्द करके। उ.—तैसिये नन्ही बूँदनि बरसत झमकि झमकि झकोर। (४) तेजी करके, झमक दिखाकर। उ.—धमकि मार्यौ घाउ गुमकि हृदय रह्यौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे—२६१५।

झमझम—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घुंघरू आदि का छमाछम शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द। (३) चमक-दमक।

क्रि. वि.—(१) छमाछम ध्वनि के साथ। (२) चमक-दमक के साथ।

वि.—जिससे खूब चमक-दमक या आभा हो।

झमझमाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) झमझम शब्द होना। (२) चमकना, चमचमाना।

क्रि. स.—(१) झमझम करना। (२) चमकाना।

झमझमाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झमझम होने की क्रिया या भाव। (२) चमकने की क्रिया या भाव।

झमना—क्रि. अ. [अनु.] झुकना, नम्र होना।

झमा—संज्ञा पुं. [हिं. झाँवाँ] झाँवाँ।

झमाई—क्रि. अ. [हिं झमाना] (नेत्रों में नींद) छा गयी या भर गयी। उ.—खेलत तुम निसि अधिक गई सुत नैनन नींद झमाई।

झमाका—संज्ञा पु. [अनु.] (१) पानी बरसने या गहने बजने का शब्द। (२) चटक मटक, ठसक, नखरा।

झमाझम—क्रि. वि. [अनु.] (१) चमक-दमक के साथ। (२) झमझम या छमछम शब्द के साथ।

झमाट—संज्ञा पुं. [अनु.] झुरमुट।

झमाना—क्रि. अ. [अनु.] (नींद से) झपकना।

क्रि. अ. [हि. झँवाना] (१) कुछ काला पड़ जाना। (२) घटना, कम होना। (३) कुम्हलाना। (४) झाँवे से रगड़ा जाना।

क्रि. स.—इकट्ठा या एकत्र करना।

झमी—क्रि. अ. [हि. झमना] झुकी, नम्र हुई। उ.—मुरली स्याम के कर अधर-बिंब रमी। । महा कठिन कठोर आली बाँस बंस जु जमी। सूर पूरन परसि श्रीमुख नैक नाहीं झमी।

झमूरा—वि. [हि. झबूरा] (१) बड़े बालवाला, झबड़ा। (२) जो ढीले-ढाले कपड़े पहने हो।

झमेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. झमेला] झगड़ा, झझट।

झमेला—संज्ञा पुं. [अनु. झाँव झाँव] (१) झगड़ा, बखेड़ा, झझट। (२) भीड़-भाड़, जमावड़ा, झुंड।

झमेलिया—वि. [हिं. झमेला+इया (प्रत्य.)] झगड़ालू।

झर—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पानी गिरने का स्थान। (२) पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। (३) समूह, झुंड। (४) तेजी, वेग। उ.—प्रात गई नीके उठि घर तैं। मैं बरजी कहाँ जात री प्यारी तव खीझी रिस झर तैं—७४४। (५) लगातार वर्षा, वर्षा की झडी। उ.—सूरदास के प्रभु सौं कहियौ नैनन है झर लायौ—२८१५। (६) किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ.—सूरदास तबही तम नासै ग्यान अगिनि झर फूटै—२-१६। (७) आंच, ताप, लपट, ज्वाला। उ.—(क) सूरस्याम अंकम भरि लीन्हों बिरह अगिनि झर तुरत बुझानी। (ख) स्याम गुन-रासि मानिनी मनाई। रह्यौ रस परस्पर मिटयौ तनु बिरह-झर भरी आनँद त्रिय उर न माई। (ग) नहि दामिनि द्रुम-दवा सैल चढि फिरि बयारि उलटी झर धावति—३४८५। (८) ताले का खटका।

झरक—संज्ञा स्त्री. [हि. झलक] चमक-दमक।

झरकना—क्रि. अ. [हि. झलकना] (१) चमक-दमक होना। (२) कुछ कुछ प्रकट या आभासित होना।

क्रि. अ. [हि. झिड़कना] घुड़कना, डाँटना।

झरकी—संज्ञा स्त्री. [हि. झिड़की] झिड़की। उ.—रोवति देखि जननि अकुलानी दियो तुरत नौआ को झरकी (घुरकी)—१०-१८०।

झरझर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] जल बहने, बरसने या हवा चलने से होनेवाला शब्द।

झरझराति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. झरझराना (अनु.)] झरझर शब्द करके, झरझराकर। उ.—झरझराति भहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार—५९३।

झरझराना—क्रि. स. [अनु.] झरझर शब्द करना।

झरत—क्रि. अ. [हि. झड़ना] बहते रहते है, प्रवाहित रहते है। उ.—झरना लौं ये झरत रैन दिन उपमा सकल वहीं।

झरना—क्रि. अ. [सं. क्षरण] (१) झड़ना, बहना। (२) ऊपर से जल-धारा गिरना।

संज्ञा पुं.—(१) बड़ा छलना या चलना। (२) बड़ा करछुल, पौना। (३) एक घास।

संज्ञा पुं. [हि. झर] (१) ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जल-प्रवाह। (२) लगातार बहनेवाली जल-धारा, सोता।

वि.—(१) जो झरता हो। (२) जिससे झरता हो।

झरन—संज्ञा स्त्री. [हि. झरना] (१) झडने की क्रिया या भाव (२) झड़ी हुई वस्तु।

झरनि, झरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झरना] झरने की क्रिया, भाव या रीति।

वि.—(१) झरनेवाला। (२) जिससे झरता हो।

झरप—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झोका, झकोरा। (२) वेग, तेजी। (३) टेक, सहारा। (४) परदा, चिलमन। (५) लड़ाई-झगड़ा। (६) कोध, गुस्सा (७) जोश, आवेश। (८) आग की लौ या लपट।

झरपत—क्रि. अ. [हि. झरपना] (१) झोका देता है,

बौछार मारता है। उ.—बरषत गिरि झरपत ब्रज ऊपर—१०५४। (२) लड़ता-झगड़ता है। उ.—एते पर कबहूँ जब आवत झरपत लरत घनेरो।
झरपना—क्रि. अ. [अनु.] (१) झोंका देना, बौछार मारना। (२) वेग से टूटना। (३) लड़ना-झगड़ना।
झरपेटा—संज्ञा पुं. [हि. झपट] झपट, झपट्टा।
झरबेर—संज्ञा पुं. [हिं. झड़बेर] जंगली बेर।
झरबेरी—संज्ञा स्त्री [हि. झड़बेरी] जंगली बेर।
झरवाना—क्रि. स. [हि. झाड़ना का प्रे.] (१) झाड़ने में दूसरे को लगाना। (२) झड़वाना।
झरसना—क्रि. अ. [अनु.] (१) आग या गरमी से झुलसना। (२) मुरझाना, कुम्हलाना, सूखना।
क्रि. स.—(१) झुलसाना। (२) मुरझा देना।
झरहरना—क्रि. अ. [अनु.] झरझर शब्द करना।
झरहरा—वि. [हिं. झँझरा] छेददार।
झरहरात—क्रि. अ. [हि. झरहराना] हवा के झोंके से पत्तो का शब्द करना, झरझर ध्वनि करके गिरना। उ.—झरहरात बन-पात, गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाइ—५९४।
झरहराना—क्रि. अ. [अनु.] हवा के झोंके से पत्तों का झर-झर शब्द करते हुए गिरना।
क्रि. स.—(१) झरझर शब्द सहित पत्तो आदि को गिराना। (२) झाड़ना, झटकना।
झरहरि—क्रि. अ. [हि. झरहरना] झरझर शब्द करके। उ.—अजहूँ चेति मूढ, चहुँ दिसि तैं उपजी काल-अगिनि झर झरहरि। सूर काल-बल-ब्याल ग्रसत है, श्रीपति सरन परत किन फरहरि—१-३१२।
झरहिल—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।
झरा—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का धान।
झराझर—क्रि. वि. [अनु.] (१) झरझर शब्द के साथ। (२) लगातार। (३) वेग के साथ।
झराबोर—संज्ञा पुं. [हिं. लाबोर] (१) कलाबत्तू का कढा-बुना साडी या चादर का अचल। (२) कारचोबी। (३) कांटा, झाडी। (४) चमक।
वि. [हिं. झलमल=चमक] चमकीला।
झरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झड़ी] लगातार वर्षा, झड़ी, बराबर पानी बरसना। उ.—करन मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ—१-२३।
क्रि. अ. [हि. झड़ना] झड़कर, गिर कर। उ.—हरि बिनु फूल झरी सी लागत झरि झरि परत अँगार—२७६८।
झरिफ—संज्ञा पुं. [हिं. झरप] परदा, चिलमन।
झरिबो—संज्ञा पु. [हिं. झड़ना] गिरने या प्रवाहित रहने की क्रिया या भाव। उ.—प्राननाथ संगहुँते बिछुरे रहत न नैन-नीर कौ झरिबो—२८६०।
झरी—संज्ञा स्त्री. [हि. झरना] (१) झरना, सोता, स्रोत। (२) छोटे दूकानदारो से किराये या ब्याज-रूप में प्राप्त धन। (३) लगातार वर्षा,वर्षा की झड़ी। उ.—कबहुँ न मिटत सदा पावस ब्रज लागी रहत झरी—३४४५।
संज्ञा स्त्री. [हि. झर] आंच, ताप, ज्वाला। उ.—हरि बिनु फूल झरी सी लागत झरि झरि परत अँगार—२७६८।
झरुआ—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह की घास।
झरे—क्रि. अ. [हि. झड़ना] झड़े, गिरे। उ.—ज्यों सरिता पर्वत की खोरी प्रेम पुलक स्रम-स्वेद झरे री—पृ. ३२७।
झरै—क्रि. अ. [हि. झड़ना] झड़ते हैं, (मुख से वचन आदि) निकलते हैं। उ.—कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरै—१०-७६।
झरोखा—संज्ञा पु. [अनु.झरझर+गौख] छोटी खिड़की, मोखा, गौखा, गवाक्ष। उ.—(क) झाँकति झपति झरोखा बैठी कर मीड़त ज्यौ मँखियाँ—२७६६। (ख) तहँ तहँ उझकि झरोखा झाँकति जनक नगर की नार—सारा. २०८।
झरोखै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. झरोखा] खिड़की में (पर)। उ.—चितवत हुती झरोखैं ठाढी, किये मिलन कौ साजु—८०८।
झर्झर—संज्ञा पुं. [स.] (१) हुड़ुक नामक बाजा। (२) कलियुग। (३) बड़ा करछुल, पौना। (४) झाँझ बाजा। (५) पैर का झाँझ नामक गहना।
झर्झरक—संज्ञा पु. [सं.] कलियुग।

झर्झरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तारा देवी। (२) वेश्या।
झर्झरी—संज्ञा पुं. [सं झर्झरिन्] शिव।
संज्ञा स्त्री. [सं.] झाँझ नामक बाजा।
झर्झरीक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देश। (२) देह।
झरयौ—क्रि. अ. [हिं. झरना=झड़ना] गिरा, बहा। उ.—करुना करत सूर कोसलपति, नैननि नीर झरयौ—९-१४४।
झर्रा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी।
झरैया—संज्ञा पुं. [देश.] बया नामक पक्षी।
झल—संज्ञा पुं. [हिं. झार, सं. झल=ताप] (१) दाह, जलन। (२) उत्कट या तीव्र इच्छा। (३) विषय-भोग की कामना। (४) क्रोध, गुस्सा। (५) समूह, झुंड।
झलक—संज्ञा स्त्री. [सं. झल्लिका=चमक] (१) आकृति का आभास, प्रतिबिंब। उ.—(क) पीत-वसन चंदन-तिलक, मोर-मुकुट, कुंडल-झलक, स्याम-घन-सुरंग-छलक, यह छबि तन लिए—४६०। (ख) चलित कुंडल गंड-मंडल झलक ललित कपोल—६२७। (७) चमक-दमक, प्रभा, द्युति।
झलकत—क्रि. अ. [हिं. झलकना] चमकता है, दमकता है, झलकता है। उ.—(क) कुंडल लोल कपोलनि झलकत, मनु दरपन मैं झाईं री—१०-१३७। (ख) चंचल दृग अंचल-पट-दुति-छबि, झलकत चहुँ दिसि झालरी—१०-१४०।
झलकदार—वि. [हिं. झलक+फा. दार] चमकीला।
झलकना—क्रि. अ. [सं. झल्लिका=चमक] (१) चमकना, दमकना (२) आभास होना, जान पड़ना।
झलकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झलक] झलक। उ.—सलिल झलकनि रूप आभा देख री नँदलाल—१२५६।
झलका—संज्ञा पु. [स. ज्वल=जलना] छाला, फफोला।
झलकाउ—क्रि. स. [हिं. झलकाना] दिखाता है, दरसाता है। उ.—जोवन-मद रस अमृत भरे है रूप-रग झलकाउ—११३३।
झलकाना—क्रि. स. [हिं. झलकना] (१) चमकाना-दमकाना। (२) दरसाना, दिखलाना।
झलकावत—क्रि. स. [हिं. झलकाना] चमकाते हैं, दिखाते या दरसाते हैं। उ.—कैसे रूप हृदय राखति हौ वै तो अति झलकावत री—१६३४।
झलकी—संज्ञा स्त्री. [हि. झलक] (१) चमक-दमक, आभा। (२) छाया, झलक, प्रतिबिंब।
झलझल—संज्ञा स्त्री [हि. झलकना] चमक-दमक।
क्रि. वि—चमक-दमक के साथ।
झलझलाना—क्रि. अ. [अनु.] चमकना, चमचमाना।
क्रि. स.—चमकाना, दमकाना, झलकाना।
झलझलाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चमक-दमक।
झलना—क्रि. स. [हि. झलझल से अनु.] (१) किसी चीज को हिलाकर हवा लगाना। (२) (पखे आदि को हिलाकर) हवा करना। (३) ढकेलना, ठेलना, धक्के से आगे बढ़ाना।
क्रि. अ.—(१) किसी चीज का इधर-उधर हिलना-डुलना। (२) शेखी बघारना, डींग हाँकना। (३) झाला जाना, टाँका लगाया जाना। (४) (वार, आघात आदि) झेला जाना।
झलमल—वि. [हि. झलमला] (१) झिलमिलाता हुआ, हिलती-डुलती लौ या ज्योतिवाला। उ.—झलमल दीप समीप सौंज भरि लेकर कंचन थालिका—८०९।
संज्ञा पुं. [सं. ज्वल=दीप्ति] (१) हल्का प्रकाश या उजाला। (२) अँधेरा। (३) चमक-दमक या आभा। उ.—मकर कुंडल गंड झलमल निरखि लज्जित काम—१४००।
क्रि. वि.—हल्की चमक-दमक या आभा के साथ।
झलमला—वि. [हिं. झलमलाना] चमकता हुआ।
झलमलात—क्रि. अ. [हि. झलमलाना] अस्थिर ज्योति निकलती है, प्रकाश झिलमिलाता है। उ.—मैरा री मैं चद लहौंगौ। कहा करौं जलपुट भीतर कौ, वाहर ब्यौंकि गहौंगौ। यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसैं कै जु लहौंगौ—१०-१९४।
झलमलाति—क्रि. अ. [हिं. झलमलाना] रहरहकर ज्योति या आभा चमकती है। उ—स्याम अलक बिच मोती गंगा। मानहु झलमलाति सीस गंगा।
झलमलाना—क्रि. अ. [हि. झलमल] (१) रहरह कर चमकना, चमचमाना। (२) हल्की, अस्थिर ज्योति या लौ निकलना।

क्रि. स.—ज्योति या लौ का हिलना-डुलना ।

झलमले—वि. [हिं. झलमला] चमकीला, चमकता हुआ । उ.—ललित कपोलनि झलमले सुंदर अति निर्मल ।

झलरा—संज्ञा पुं. [हिं. झालर] चौड़ी झालर ।

झलराना—क्रि. अ. [हि. झालर] फैलकर छा जाना ।

झलरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक बाजा । (२) झाँझ ।

झलवाना—क्रि. स. [हि. झलना] (१) हवा करने का काम दूसरे से कराना । (२) झालने का काम कराना ।

झलहाया—संज्ञा पु. [हिं. झल] ईर्ष्यालु, डाही ।

झला—संज्ञा पुं [हि. झड़] (१) हल्की या थोड़ी वर्षा । (२) झालर, वदनवार । (३) पखा । (४) समूह ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] आतप, धूप ।

झलाझल—वि. [अनु.] खूब चमकता हुआ ।

झलाझली—वि. [अनु.] बहुत चमकदार ।

संज्ञा स्त्री.—चमकने की क्रिया या भाव ।

झलाना—क्रि. स. [हि. झलना] (१) हवा कराना । (२) झालने या टाँका देने का काम दूसरे से कराना ।

झलाबोर—संज्ञा पुं. [हि. झलमल] (१) कलबत्तू से कढ़ा अचल । (२) कारचोबी । (३) एक आतिशबाजी । (४) काँटा । (५) चमक ।

वि.—चमकीला, जिसमें चमक-दमक हो ।

झलामल—संज्ञा स्त्री. [हि. झलमल] चमक-दमक ।

वि.—चमकीला, जिसमें चमक-दमक हो ।

झल्ल—संज्ञा पु. [अनु.] (१) एक वर्णसकर जाति । (२) भांड, विदूषक । (३) एक बाजा । (४) ज्वाला ।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] झल्ला होने का भाव ।

झलकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कबूतर, परेवा ।

झल्लक—संज्ञा पु. [सं.] (१) करताल । (२) मंजीरा ।

झल्लना—क्रि. अ. [अनु.] डींग हाँकना ।

झल्लरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक बाजा । (२) झाँझ । (३) पसीना, स्वेद, पसेव ।

झल्ला—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बड़ा झौआ । (२) वर्षा ।

वि.—जिसमें बहुत पानी मिला हो, पतला ।

संज्ञा पुं. [हिं. झल्लाना] क्रोध, झुँझलाहट ।

वि.—(१) पागल । (२) बड़ा मूर्ख ।

झल्लाना—क्रि. अ. [हिं. झल] झुँझलाना, चिढ़ना ।

क्रि. स.—किसी को चिढ़ाना या कुढ़ाना ।

झल्लिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अँगोछा । (२) शरीर का मैल । (३) प्रकाश । (४) सूर्य की किरणों की तेजी ।

झल्ली—वि. [हि. झलना] बातूनी, गप्पी, डींगिया ।

संज्ञा स्त्री. [स.] चमड़ा-मढा एक बाजा ।

संज्ञा पुं. [देश.] छोटा झौआ या टोकरा ।

झवर, झवारि—संज्ञा पुं. [हि. झवार, झवारि (अनु.)] झगड़ा, बखेड़ा, टटा, नटखटपन । उ.—(क) बहुत अचगरी जिनि करौ, अजहूँ तजौ झवारि—५८६ । (ख) बरे घरन की बहू बेटी करत वृथा झवारि ।

झष—संज्ञा पु. [सं.] (१) मीन, मछली । उ.—(क) फिरति सदन दरसन के काजे ज्यों झष सूखे सर-२७६४ । (ख) पै झष कनक रुद्र रंगी तंत्री सुन्न आद भर भोग—सा. ११५ । (२) मकर, मगर । (३) ताप, गरमी । (४) वन । (५) मीन, राशि । (६) झीखने का भाव या क्रिया ।

झषकेतु, झषकेतन—संज्ञा पु. [सं. झषकेतन] कामदेव ।

झषत—क्रि. अ. [हि. झषना] झीखता या खिजलाता है । उ.—मेरे मन रसिक लग्यो नंदलालहि झषत रहत दिन राती—३११६ ।

झषना—क्रि. अ. [हिं. झीखना] खीजना, झीखना ।

झषनिकेत—संज्ञा पु. [सं.] (१) जलाशय । (२) समुद्र ।

झषराज—संज्ञा पुं [स.] मकर, मगर ।

झषलग्न—संज्ञा पुं. [सं.] मीन लग्न ।

झषांक—संज्ञा पुं. [सं. झष+अंक] कामदेव ।

झषोदरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यास की माता मत्स्यगधा ।

झहनना—क्रि. अ. [अनु.] (१) सन्नाटे में आना, चकित होना । (२) रोएँ खड़े होना । (३) झनझन शब्द करना ।

क्रि. स.—(१) किसी को सन्नाटे में डालना या चकित करना । (२) झनझन शब्द निकालना ।

झहनाना—क्रि. स. [अनु.] (१) किसी को सन्नाटे में डालना या चौंकाना । (२) झनझन का शब्द करना ।

झहनावै—क्रि. स. [हिं. झहनावै] झनकारते हैं, झनझन का शब्द निकालते हैं । उ.—गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहुँ घंट झहनावै ।

झहरना—क्रि. अ. [अनु.] (१) झड़न का झरझर शब्द करना। (२) (शरीर) शिथिल या ढीला पड़ना।
क्रि. स. [हिं. झल्लाना] झिड़कना, डाँटना-डपटना।

झहराइ, झहराई— क्रि. अ. [हिं. झहराना] (१) झरझर शब्द करके, खड़खड़ाकर। उ.—(क) आपु गए जमलार्जुन-तरु-तर, परसत पात उठे झहराई—१०-३८३। (ख) असुर लै तरु सौं पछारयौ गिरयौ तरु झहराई। (२) खीजकर, झुँझला कर, झल्ला कर। (ग) रिसनि रही झहराइ कै मन ही मन बाम—२१२६। (घ) रिसन उठी झहराइ झटकि भुज—२१४२। (ङ) सबै चली झहराइ कै—१०२५। (च) जो देखे ह्याँ सग विराजत चली त्रिया झहराई—१६७६।

झहरात—क्रि. वि. [हिं. झहराना (अनु.)] (१) हिलता डोलता और झरझर शब्द के साथ। उ.—झहरात झहरात दवा (नल) आयौ—५६५।
क्रि. अ.—झरझर शब्द करके गिरता है।

झहराना—क्रि. अ. [अनु.] (१) झरझर शब्द करके या खड़खड़ाकर गिरना। (२) झल्लाना, खिजलाना। (३) हिलना-डोलना।
क्रि. स.—(१) झरझर शब्द करते हुए गिराना। (२) दूसरे को खिजाना। (३) हिलाना-डुलाना।

झहरानी—क्रि. अ. [हि. झहराना] (१) झल्लायी, खिजलायी। उ.—(क) बेसरि नाउ लेत सरमानी तब राधा झहरानी—१५३४। (ख) एक अभिमान हृदय करि बैठी ऐते पर झहरानी—१६४५। (ग) नागरि हँसति हँसी उर झाया तापर अति झहरानी। (२) झरझर-शब्द करके गिरी।

झहराय—क्रि. अ. [हिं. झहराना] झल्लाकर।
प्र.—उठी हराय—झुँझला उठी, झल्लाने लगी। उ.—रिसनि उठी झहराय कह्यौ यह बस कीन्हो मन मेरो—१६६६।

झहरि—क्रि. अ. [हिं. झहरना (अनु.)] (१) झरझर का शब्द करके। उ.—यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जाने झहरि—१०-६७। (२) झल्लाकर, झुँझलाकर। उ.—रिसनि नारि झहरि उठी क्रोध मध्य बूड़ी—२६७४।

झहरैं—क्रि. अ. [हि. झहरना] झुँझलाते है, झल्लाते हैं। उ.—सुनि सजनी मैं रही अकेली विरह दहेली इत गुरुजन झहरैं—१६७१।

झाँई—संज्ञा स्त्री. [सं. छाया] (१) परछाईं, प्रतिबिंब, छाया, आभा, झलक। उ.—(क) पराधीन, पर बदन निहारत, मानत मूढ बड़ाई। हँसैं हँसत, बिलखैं बिलखत हैं, ज्यौं दरपन मैं झाँई—१-१६५। (ख) अरुन अधरनि दसन झाँई कहौं उपमा थोरि। नील-पुट बिच मनौ मोती धरे बदन बोरि—१०-२२५। (ग) बेसरि के मुकता मे झाँई बरन बिराजत चारि। मानौ सुरगुरु सुक्र भौम सनि चमकत चद मझारि। (२) अधकार। (३) धोखा, छल। (४) प्रतिध्वनि। (५) रक्त-विकार से चेहरे पर पड़ने वाले हल्के-हल्के धब्बे।

झाँक—संज्ञा स्त्री. [हि. झाँकना] झाँकने की क्रिया।
यौ.—ताक झाँक—छिपकर देखना।
संज्ञा पुं.—झाँख—एक जगली हिरन।

झाँकत—क्रि. अ. [हि. झाँकना] (१) इधर-उधर या ऊपर-नीचे झुककर देखता है। उ.—निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहि। देत परम सुत पितु अरु अबहिं—१०-११७। (२) ओट या आड़ में से मुँह निकालकर देखता है। उ.—जहँ तहँ उझ क झरोखा झाँकति जनक नगर की नारि—सारा. २०८।

झाँकति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. झाँकना] ओट या आड़ से मुँह निकाल कर देखती है। उ.—झाँकति झपटि झरोखा बैठी कर मीड़ति ज्यों मखियाँ—२७६६।

झाँकना—क्रि. अ. [सं. अध्यक्ष, प्रा. अज्झक्ख=आँख के सामने] (१)ओट या आड़ से मुँह निकालकर देखना। (२) इधर उधर झुक कर देखना।

झाँकनी—संज्ञा स्त्री. [हि. झाँकना] झाँकी।

झाँकर—संज्ञा पुं. [हिं. झंखाड़] काठ-किवाड़।

झाँका—संज्ञा पुं. [हि. झाँकना] (१) जालीदार खाँचा या झौआ। (२) झरोखा, खुला भाग, सधि।
क्रि. अ.—ओट या आड़ से मुँह निकालकर देखा।

झाँकि—क्रि. अ. [हिं. झाँकना] ओट में से देखकर,

झाँक कर। उ.—झाँकि-उझकि विहँसत दोऊ सुत, प्रेम मगन भइ इकटक जाम—१०-१५७।

झाँकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँकना] (१) झाँकने की क्रिया या भाव, दर्शन। (२) दृश्य। (३) झरोखा। (४) कृष्ण की व्रज की लीलाओं का चित्र-द्वारा प्रदर्शन।

क्रि. अ.—ओट से देखा, दर्शन किया।

झाँकै—क्रि. अ. [हिं. झाँकना] झाँकती है। उ.—ठाढी तन काँपै टेरै झाँकै बार-बार अकुलाइ–३४४१।

झाँकौ—संज्ञा पुं. [हिं. झाँकना] संधि, झाँकने का स्थान या छिद्र, झरोखा। उ.—सभा-माँझ द्रौपदि-पति राखी, पति पानिप कुल ताकौ। वसन ओट करि कोट विसंभर, परन न दीन्हौ झाँकौ—१-११३।

झाँक्यो, झाँक्यौ—क्रि. अ. [हिं. झाँकना] झाँका। उ.—तव रिस धरि सोई उत मुख करि झुकि झाँक्यौ उपरैना माथ—२७३६।

झाँख—संज्ञा पु. [देश.] एक जगली हिरन।

झाँखना—क्रि. अ. [हिं. झींखना] खीजना, झल्लाना।

झाँखर—संज्ञा पु. [हिं. झखाड़] (१) काँठ-किवाड, झखाड। (२) अरहर की सूखी खूँटियाँ।

झाँखा—क्रि. अ. [हिं. झाँखना] खीजा, झल्लाया।

झाँखि—क्रि. अ. [हिं. झाँखना] खीजकर, झल्लाकर।

झाँगला—वि. [देश.] ढीला-ढाला।

झाँगा—संज्ञा पु. [हिं. झगा] ढीला-ढाला कुरता।

झाँजन—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँझन] पायल, पैंजनी।

झाँझ—संज्ञा स्त्री. [स. झल्लक या झनझन से अनु.] (१) झाल नामक एक बाजा जिसका प्रयोग प्राय. घड़ियाल-शखो आदि अन्य बाजो के साथ होता है। उ.—ताल, मृदग, झाँझ, इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ—१-२०५। (२) क्रोध, गुस्सा। (३) दुष्टता, शरारत। (४) बुरे विचार का उत्तेजित होना। (५) सूखा कुआँ या तालाब। (६) भोग की इच्छा (७) पायल या पैजनी नामक पैर का गहना।

झाँझड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँझ] झाँझ नामक बाजा।

सज्ञा स्त्री [हिं. झाँझन] पैंजनी, पायल।

झाँझन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पैर का एक तरह का पोला कड़ा जिसके अदर के छर्रे बजते हैं, पायल।

झाँझर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झाँझन (२) चलनी।

वि.—(१) टूटा फूटा, पुराना। (२) छेददार।

झाँझरि, झाँझरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) झाँझ या झाल नामक बाजा। (२) झाँझन, पायल, पैंजनी।

झाँझा—संज्ञा पुं. [हिं. झँझरा] (१) एक कीड़ा। (२) घी-चीनी के साथ भूनी हुई भाँग। (३) सेव छानने या बनाने का पौना, करछुल।

संज्ञा पुं. [हिं. झाँझ] झाँझ या झाल बाजा।

संज्ञा पुं. [हिं. झझट] झंझट, बखेड़ा।

झाँझिया—वि. [हिं. झाँझ + इया (प्रत्य.)] झाँझ या झाल नामक बाजा बजानेवाला।

झाँटा—संज्ञा पुं. [हिं. झझट] बखेडा, झझट।

झाँप—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँपना] (१) पर्दा, चिक, ढाँकने की चीज। उ.—पूजत नाहिं सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत। बसन समान होत नहि हाटक, अगिनि झाँप दै आवत—६६५। (२) नींद, झपकी।

संज्ञा पु. [सं. झंप] उछल-कूद।

झाँपत—क्रि. स. [हिं. झाँपना] ढकती है। उ.—नित रहत मनमन मदहि छाकी निलज कुच झाँपत नहीं —१०-३२४।

झाँपना—क्रि. स. [सं. उत्थान, हि. ढाँपना] (१) ढकना, आवरण में करना। (२) लजाना, झेंपना।

झाँपी—संज्ञा स्त्री. [हि. झाँपना] (१) ढकने की टोकरी। (२) मूँज की पिटारी। (३) नींद, ऊँघ, झपकी।

झाँपो—संज्ञा स्त्री. [देश] (१) खजन। (२) बुरी स्त्री।

झाँप्यो, झाँप्यौ—क्रि. स. [हिं. झाँपना] ढका, ओट या आड़ में किया। उ.—तैं जु वदन झाँप्यौ झुकि अंचल इहै न दुख मेरे मन मान—२२१७।

झाँवँ झाँवँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बकवाद। तकरार।

झाँवना—क्रि. स. [हिं. झाँवा] झाँवें से रगड़ कर हाथ-पैर का मैल छुडाना।

झाँवर, झाँवरी—संज्ञा स्त्री. [हि. डाबर] नीची भूमि।

वि. [सं. श्यामल] (१) कुछ कुछ काले रंग का। (२) मलिन। (३) मुरझाया या कुम्हलाया हुआ। (४) शिथिल, सुस्त।—उ. कबहुँ कहत ब्रजनाथ बन गए जोवत मग भइ दृष्टि झाँवरी— ६५८।

झाँवली—संज्ञा स्त्री. [हि. छाँव, छाया] (१) झलक। (२) आँख की कनखी या कोर।

मुहा.—झाँवली देना—आँख से इशारा करना।

झाँवाँ—संज्ञा पुं. [सं. झामक] जली हुई काली ईंट जिससे रगड़कर हाथ-पैर का मैल छुड़ाते हैं।

झाँसना—क्रि. स. [हि. झाँसा] धोखा देना, ठगना।

झाँसा—संज्ञा पुं. [सं. अध्यास=मिथ्या ज्ञान, प्रा. अज्झास] धोखा-धड़ी, ठगी, छल-कपट।

यौ.—झाँसा-पट्टी—धोखा-धड़ी, छल-कपट।

मुहा.—झाँसे में आना—धोखा खाना, ठग जाना।

झाँसिया, झाँसू—संज्ञा पुं. [हि. झाँसा + इया (प्रत्य.)] धोखेबाज, धोखादेनेवाला, छली, कपटी।

झा—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय, प्रा. उज्झाओ, हिं. ओझा] मैथिल ब्राह्मणो की एक उपाधि।

झाँई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाँई] छाया, प्रतिबिंब, झलक। उ.—रत्न जटित कुंडल स्रवनन वर गंड कपोलनि झाँई—३०३१।

झाऊ—संज्ञा पुं. [सं. झाबुक] एक छोटा झाड़ जिसकी टहनियाँ प्रायः टोकरियाँ और रस्सियाँ बनाने के काम आती हैं।—उ.—मोहूँ कौं चुचकारि गयौ लै, जहाँ सघन वन झाऊ—४८१।

झाग—संज्ञा पुं. [हिं. गाज] पानी आदि का फेन।

झागुड़—संज्ञा पुं. [हिं. झगड़ा] झगड़ा, बखेड़ा।

झागना—क्रि. अ. [हिं. झाग] फेन निकलना।

क्रि. स.—फेन निकालना, झाग उत्पन्न करना।

झाझ—संज्ञा स्त्री. [हि. झाँझ] झाँझ नामक बाजा।

झाड़—संज्ञा पुं. [सं. झाट] (१) एक कटीला पेड़। (२) रोशनी करने का एक सामान जो प्रायः शोभा के लिए लटकाया जाता है और जिसमें शीशे के कई गिलास होते हैं। (३) एक आतिशबाजी। (४) एक समुद्री घास। (५) गुच्छा, लच्छा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़ना] (१) झाड़कर साफ करने की क्रिया। (२) डाँट-फटकार। (३) मंत्र से झाड़ने की क्रिया।

झाड़खंड—संज्ञा पुं. [हिं. झाड़+खंड] जगल, वन।

झाड़-झंखाड़—संज्ञा पुं. [हि. झाड़+झंखाड़] (१) काँटेदार झाड़ियाँ। (२) काठ-किवाड़, बेकार चीजें।

झाड़दार—वि. [हि. झाड़+फा. दार] (१) घना। (२) काँटेदार। (३) जिस पर बेल-बूंटे बने हों।

संज्ञा पुं.—बेल-बूटेदार कसीदा या कालीन।

झाड़न—संज्ञा स्त्री. [हि. झाड़ना] (१) झाड़ने से निकलने वाला कूड़ा या धूल। (२) झाड़ने का कपड़ा, साफी। (३) झाडने की क्रिया।

झाड़ना—क्रि. स. [सं. क्षरण] (१) झटकार-फटकार कर साफ करना। (२) झटका देकर गिराना। (३) पड़ी हुई चीज झाड़कर हटाना। (४) छल-बल से धन पाना या ऐंठना। (५) मत्र से भूत-प्रेत-बाधा दूर करना। (६) डाँटना, फटकारना।

झाड़फूँक—संज्ञा स्त्री. [हि. झाड़ना+फूँकना] भूत-प्रेत-बाधा दूर करने के लिए मत्र पढकर फूँक मारना।

झाड़-बुहार—संज्ञा स्त्री. [हि. झाड़ना+बुहारना] सफाई।

झाड़ा—संज्ञा पुं.—[हिं. झाड़ना] (१) झाड़-फूँक। (२) तलाशी। (३) सितार के तारो का एक साथ बजना।

क्रि. स. [हिं. झाड़ना] (१) झाड़कर साफ किया। (२) छल-बल से ऐंठ लिया। (३) मत्र पढ़कर फूँका।

झाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़] (१) छोटा झाड़। (२) छोटे-छोटे पेड़ो का समूह। (३) बालो की कूँची।

झाड़ीदार—वि. [हि. झाड़ी+फा. दार] कँटीला।

झाड़ू—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़ना] (१) कूँचा, बोहारी।

मुहा.—झाड़ू देना—सफाई करना। झाड़ू फिरना—सब कुछ साफ हो जाना, कुछ (धन-संपति) न रहना। झाड़ू फेरना—सब कुछ मिटा देना। झाड़ू मारना—(१) घृणा करना। (२) अपमान करना। झाड़ू से (की सींक से) भी न छूना—(१) बहुत ही घृणा करना। (२) बहुत ही तिरस्कार के साथ त्यागना।

(२) दुमदार सितारा, पुच्छल तारा, केतु।

झाड़ूबरदार—संज्ञा पुं. [हि. झाड़ू + फा. बरदार] (१) वह जो झाड़ू देता है। (२) चमार, भगी।

झापड़—संज्ञा पुं. [सं. चपट] थप्पड़, तमाचा।

झाबर—संज्ञा पुं. [देश. डाबर] दलदली भूमि।

झाबा—संज्ञा पुं. [हिं. झाँपना] (१) टोकरा, खाँचा।

(२) टोंटीदार बरतन। (३) रोशनी करने का झाड़। (४) गुच्छा।

झाबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाबा] छोटा छाबा, टोकरी।

झाम—संज्ञा पुं. [देश.] (१) झब्बा, गुच्छा। उ.—सुंदर भुजा पीठ कटि सुंदर सुंदर कनक मेखला झाम—१४०२। (२) बड़ी कुदाल। (३) घुड़की, डांट। (४) छल-कपट।

झामक—संज्ञा पु. [सं.] जली हुई ईंट का झाँवाँ।

झामा—संज्ञा पुं. [हिं. झूमर] (१) औजार तेज करने की सिल्ली। (२) पैर का एक गहना।

झाँमरा—वि. [हिं. झाँवर] गंदा, मैला, काला।

झामा—संज्ञा पुं. [सं. झामक] झाँवाँ।

झामी—संज्ञा पु. [हिं. झाम] छली-कपटी, धूर्त्त।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झन झन शब्द। (२) सन्नाटे में हवा का सन सन शब्द। (३) तकरार।

झार—वि. [सं. सर्व, प्रा. सारो, हि. सारा] (१) एक मात्र, केवल। (२) सब, कुल, समस्त (३) समूह, झुंड।

संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वाला=ताप] (१) डाह, ईर्ष्या, जलन। उ.—कहा कहौं तुमसौं मैं प्यारे, कस करत तुमसौं कछु झार—५३०। (२) ज्वाला, लपट, आँच। उ.—(क) और कौन जो तुमसौं बाँचै, सहस फननि की झार—५५८। (ख) बार-बार फन घात कै विष ज्वाला की झार—५८६। (ग) अति अगिनि झार भंभार धुंधारि करि उचटि अंगार झंझार छायौ——५९६। (३) झाल, चरपरापन।

संज्ञा पुं. [हि. झड़ना] झरना, पौना, करछुल।

संज्ञा स्त्री. [हि. बौछार] बौछार, छींटा, वर्षा की झड़ी, पानी की बूँदें। उ.—सात दिन भरि ब्रज पर गई नेक न झार—९७३।

झारखंड—संज्ञा पु. [हि. झाड़ + खंड] एक पहाड़ जो वैद्यनाथ से जगन्नाथपुरी तक फैला है। (२) जंगल।

झारत—क्रि. स. [हिं. झाड़ना] (१) (रज, धूल, आदि) झाड़ कर, पोंछकर। उ.—झारत रज लागैं मेरी अँखियनि रोग-दोष-जंजाल—१०-१३८। (२) कुछ गिराने या पाने के लिए किसी चीज को झाड़ता-फटकारता है। उ.—उनके गुन कैसे कहि आवै सूर पयारहि झारत—पृ. ३२७।

झारति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. झाड़ना] (धूल, गर्द आदि) झाड़ती है, झटकारती है, फटकारती है। उ.—(क) सूरज प्रभु जसुमति रज झारति, कहाँ भरी यह खेह—१०-१११। (ख) सूरदास प्रभु मातु जसोदा, पट लै, दुहुनि अंग-रज झारति—५१२।

झारन—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़न] (१) झाड़ने-पोंछने का कपड़ा। (२) झाड़ी हुई धूल आदि। (३) झाड़ने की क्रिया या रीति।

झारना—क्रि स. [सं. झट] (१) बालों में कंघी करना। (२) अलग करना, छाँटना।

क्रि. स. [हिं. झाड़ना] (१) झाड़ना। (२) डाँटना।

झार-फूँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़ना+फूँकना] झाड़फूँक।

झारा संज्ञा पु. [हिं झारना] (१) सूप। (२) झरना।

झारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झार]. (१) डाह, ईर्ष्या। (२) ज्वाला, लपट, आँच। (३) झाल, चरपरापन।

वि.—(१) केवल। (२) सब। (३) समूह।

क्रि. स. [हिं. झाड़ना] (१) किसी चीज को साफ करने के लिए झटक या फटकार कर। (२) झाड़कर, साफ करके। उ.—मुख के रेनु झारि अंचल सौं जसुमति अंग भरै—२८०३।

मुहा.—झारि झूरि—झाड़-फटकार कर, झाड़ने-झूड़ने से पाकर। उ.—झारि झूरि मन तो तू लै गयौ बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५।

(३) डालकर, फेंककर। उ.—इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रभु दियौ धनुष कर झारि—९-६५। (४) रोग, विष या भूत-प्रेत बाधा दूर करने के लिए मंत्र पढ़कर और फूँककर। उ.—कहूँ राधिका कारैं खाई जाहु न आवौ झारि—७५५।

झारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झरना] एक टोंटीदार जलपात्र। उ.—(क) जमुना-जल राख्यौ झारी भरि। (ख) आपुन झारी माँगि विप्र के चरन पखारे। (ग) सीतल जल लियौ मँगाई। भरि झारी जसुमति ल्याई—१०-१८३।

संज्ञा स्त्री [सं. झारि] (हाजमा ठीक रखने का) पानी जिसमें नमक, जीरा आदि छोड़ा गया हो।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झाड़ी] छोटा झाड़, झाडी ।

वि. [हिं. झार] (१) एक मात्र । (२) सब ।

क्रि. स. [हिं. झाड़ना] (१) झाड़कर, फटफटाकर । उ.—उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी—१-२२१ । (२) रोग, विष, प्रेत-बाधा आदि दूर करने के लिए मंत्र आदि पढ़ा और फूंक मारी । उ.—एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री । ⋯ कहत सुन्यौ नंद कौ यह बारौ, कछु पढिकै तुरतहिं उहिं झारी—६६७ ।

झारू—संज्ञा पु. [हिं. झाड़ू] बोहारी, कूंचा ।

झारै—क्रि. स. [हिं. झाड़ना] झाड़-पोछ कर साफ करता है । उ.—मम तन रज-पथ लागी पीत पट सौं झारै—१०उ.७६ ।

झारयौ—क्रि. स. [हिं. झाड़ना] झाड़ लिया, निचोड सा लिया, खींच-सा लिया । उ.—अति बल करि-करि काली हारयौ । लपटि गयौ सब अंग-अंग प्रति, निर्विष कियौ सकल बल झारयौ—५७४ ।

झाल—संज्ञा पु. [सं. झल्लक] झाँझ बाजा ।

संज्ञा पुं. [देश.] झालने की क्रिया या भाव ।

संज्ञा स्त्री. [सं. झाला] (१) चरपराहट, तीतापन । (२) लहर, मौज । (३) विलास की कामना ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झड़] पानी की लगातार झड़ी ।

वि. [हिं. झार] (१) केवल । (२) सब । (३) झुंड ।

संज्ञा स्त्री.—(१) डाह, जलन । (२) ज्वाला, आंच ।

झालड़—संज्ञा स्त्री. [स. झल्लरी] (१) घड़ियाल जो बजाया जाता है । (२) झालर ।

झालना—क्रि. स. [हिं. झाल] धातु की वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना ।

झालर—संज्ञा स्त्री. [सं. झल्लरी] (१) शोभा के लिए लगायी जानेवाली बेल-बूटे या जालीदार चौड़ी गोट । (२) झाला या गोट की तरह लटकती हुई चीज । (३) किनारा, छोर । (४) झाँझ, झाल । (५) घड़ियाल जो बजाया जाता है ।

झालरदार—वि. [हिं. झालर+फा. दार] जिसमें शोभा के लिए झालर या गोट लगी हो ।

झालरना—क्रि. अ. [हि. झलराना] फैलना, बढ़ना ।

झालरा—संज्ञा पुं. [हिं. झालर] रुपहला हार ।

संज्ञा पुं. [हि. ताल] चौड़ा कुआं, कुंड, बावली ।

झालरि, झालरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झालर] (१) किसी चीज के किनारे या नीचे लगा या टँका हिलने या लटकनेवाला हाशिया जो शोभा के लिए लगाया जाता है । उ.—(क) रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा-लाल । मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना रचे बिस्वकर्मा सुतहार—१०-८४ । (ख) चंचल दृग अंचल-पट-दुति-छबि, झलकत चहुँ दिसि झालरी—१०-१४० । (२) एक बाजा । उ.—(क) बीन मुरज उपंग मुरली झाँझ झालरि ताल—२४१५ । (ख) रज मुरज डफ झाँझ झालरी यंत्र पखावज तार—२४३७ ।

झाला—संज्ञा पुं. [देश.] राजपूतो की एक जाति ।

झालि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झड़ी] पानी की झड़ी ।

संज्ञा स्त्री [सं.] कच्चे आम की काँजी ।

झाँव झाँव—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) बकबक, बकवाद । (२) तकरार, हुज्जत । (३) झगड़ा, लड़ाई ।

झावर—संज्ञा पुं. [हिं. झाबर] दलदली भूमि ।

झावरि, झावरी—[हिं झाँवर] शिथिल, मंद, सुस्त । उ.—निसि न नींद आवै दिवस न भोजन भावै चितवत मग भइ दृष्टि झावरी—३४३२ ।

झावुक—संज्ञा पुं. [सं.] एक झाड़, झाऊ ।

झिंगा—संज्ञा स्त्री. [सं. झिंगाक] तरोई, तुरई ।

झिंगवा—संज्ञा स्त्री. [सं. चिंगट] एक छोटी मछली ।

झिंगाक—संज्ञा पुं. [सं.] तरोई, तुरई ।

झिंगिनी, झिंगी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक जंगली वृक्ष ।

झिंगुलि, झिंगुली—संज्ञा स्त्री. [हि. झगा] बच्चो के पहनने का ढीला-ढाला कुरता । उ.—छोटी बदन छोटियै झिंगुली, कटि किंकिनी बनाइ—१०-१३३ ।

झिंझिया—संज्ञा स्त्री. [अनु.] छेददार छोटा घड़ा जिसमें दिया जलाकर लडकियाँ कुआर मास में घूमती है ।

झिंझी—संज्ञा स्त्री. [सं.] झिल्ली, झींगुर ।

झिंझोटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक रागिनी जो दिन में चौथे पहर गायी जाती है ।

झिगड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. झगड़ा] झगड़ा, बखेड़ा।
झिझक—संज्ञा स्त्री. [हिं. झझक] झझक, सकोच।
झिझकना—क्रि. अ. [हिं. झझकना] सकोच न करना।
झिझकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. झझकार] झझक।
झिझकारना—क्रि. स. [हिं. झझकारना] (१) डाँटना, डपटना। (२) दुरदुराना। (३) अपने सामने कुछ न मानना या समझना।
क्रि. स. [हिं. झटकना] झटका देना।
झिझकारि—क्रि. स. [हिं. झिझकारना] (१) डाँट-डपट कर, बुरा-भला कहकर। उ.—वोही ढंग तुम रहे कन्हाई सबै उठीं झिझकारि। (२) क्रोध से ललकार कर। उ.—उठ्यौ झिझकारि कर ढाल खडगहिं लिये रंग रनभूमि के महल वेढ्यौ—२५६३।
झिटकारना—क्रि. स. [हिं. झटकारना] झटका देना।
झिड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिड़कना] डाँट-डपट।
झिड़कना—क्रि. स. [अनु.] (१) झुँझला कर डाँटना, डपटना या घुड़कना। (२) अलग फेंक देना।
झिड़की—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिड़कना] (१) डाँट-फटकार। (२) झड़कने की क्रिया या भाव।
झिड़झिड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] बुरा भला कहना।
झिड़झिड़ाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिड़झिड़ाना] झिड़-झिड़ाने का भाव या क्रिया।
झिनवा—संज्ञा पु. [देश.] महीन चावल का धान।
वि. [हिं. झीना] (१) महीन। (२) छेददार।
झिपना—क्रि. अ. [हिं. झेंपना] लजाना, शरमाना।
झिपाना—क्रि. स. [हिं. झेंपाना] लज्जित करना।
झिमकना—क्रि. अ. [हिं. झमकना] (१) चमकना। (२) झपकना। (३) झमझम होना। (४) झनकारना।
झिर—सज्ञा स्त्री. [हिं. झिरी] (१) दराज। (२) गढ़ा।
झिरकना—क्रि. स. [हिं. झिड़कना] (१) डाँटना-डपटना। (२) झटक कर अलग फेंक देना।
झिरकि—क्रि. स. [हि. झिड़कना] (१) झिड़क कर, झिड़की देकर, तिरस्कार करके। उ.—(क) छरीदार वैराग विनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे—१-४०। (ख) झिरकि कै नारि, दै गारि गिरिधारि तव, पूँछ पर लात दै अहि जगायौ—५५२। (२) अलग फेंक कर, झटक कर। उ.—मुकुट सिर श्रीखंड सोहे निरखि रही व्रजनारि। कोटि सुर को दंड आभा झिरकि डारैं वारि।
झिरझिर—क्रि. वि. [अनु.] (१) झिरझिर शब्द के साथ। (२) मद-मद, धीरे-धीरे।
झिरझिरा—वि. [हिं. झीना] महीन, झँझरा, झीना।
झिरझिराना—क्रि. अ. [हिं. झिड़झिड़ाना] झुँझलाना।
झिरना—क्रि. अ. [हिं. झरना] झड़ना, गिरना।
संज्ञा पुं.—(१) पौना, करछुल। (२) छेद, सूराख।
झिरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. झरना] आय, आमदनी।
झिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं झरना] (१) छोटा छेद, दरज। (२) गड्ढा जिसमें झिर झिर कर पानी भरे। (३) तुषार, पाला।
झिर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिरी] पानी रोकने का गढ़ा।
झिलँग—संज्ञा पुं. [हिं. ढीला+अंग] टूटी या ढीले बाँध या बुनावट वाली खाट।
संज्ञा पुं. [हिं. झींगा] एक मछली। एक धान।
झिलना—क्रि. अ. [हिं. झेलना] (१) घुसना, धँसना। (२) अघाना। (३) लीन होना। (४) (कष्ट आदि) सहा या झेला जाना।
सज्ञा पुं. [स. झिल्ली] झींगुर।
झिलम—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिलमिला] लोहे का टोप।
झिलमा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का धान।
झिलमिल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हिलती या झल-मलाती हुई रोशनी। (२) रोशनी घटने-बढ़ने की क्रिया। (३) एक बढ़िया मुलायम कपड़ा।
वि.—रह-रहकर झलमलाता या काँपता हुआ।
झिलमिला—वि. [अनु.] (१) जो गाढ़ा न हो। (२) छेददार, झीना। (३) अस्थिर प्रकाशवाला। (४) चमकता हुआ। (५) अस्पष्ट।
झिलमिलाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) रह-रह कर चमकना। (२) प्रकाश या ज्योति का हिलना-डोलना।
क्रि. स.—(१) रह-रह कर चमकाना। (२) हिलाना।
झिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चमकाने या हिलाने-डुलाने की क्रिया या भाव।

झिलमिली—संज्ञा स्त्री. [हि. झिलमिल] (१) आड़ी-तिरछी पटरियों का ढांचा। (२) परदा, चिलमन। (३) कान का एक गहना।

झिल्ल—संज्ञा पुं. [सं.] लाल फूल का एक पौधा।

झिल्लड़—वि. [हिं. झिल्ली] झीनी बुनावट का।

झिल्ला—वि. [अनु.] (१) पतला। (२) छेददार।

झिल्लिका, झिल्लीक—संज्ञा स्त्री. [सं.] झींगुर, झिल्ली।

झिल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं. चैल] (१) किसी चीज की ऊपरी पतली तह। (२) बारीक छिलका। (३) आँख का जाला।

वि.—बहुत पतला या बारीक, झीना।

संज्ञा पुं. [सं.] झींगुर, झिल्लिका।

झिल्लीदार—वि. [हिं. झिल्ली+फ़ा. दार] जिस पर पतली तह या बारीक झिल्ली हो।

झींक, झींका—संज्ञा पुं. [देश.] उतना अन्न जितना एक बार चक्की में डाला जाय।

झींकना—क्रि. अ. [हिं. झींखना] कुढ़ना, खीजना।

क्रि. स. [देश.] फेंकना, पटकना।

झींखना—क्रि. अ. [हिं. खीजना] (१) दुखी होकर पछताना, कुढ़ना या खीजना। (२) दुखड़ा रोना।

संज्ञा पुं—(१) झींखने का भाव। (२) दुखड़ा।

झींखि—क्रि. अ. [हि. झींखना] झींखकर। उ.—देखि सखी कछु कहत न आवै झींखि रही अपमानन मारि—२७९५।

झींगट—संज्ञा पुं. [देश.] केवट, मल्लाह।

झींगा—संज्ञा पु. [सं. चिंगट] (१) एक मछली। (२) एक धान। (३) कपास का हानिकारक एक कीड़ा।

झींगुर—संज्ञा पुं. [अनु. झीं+कर] झिल्ली नामक कीड़ा।

झींझना—क्रि. अ. [अनु.] झुँझलाना, खिजलाना।

झींझी—संज्ञा पुं. [देश.] (१) आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को कन्याओं का एक छेददार घड़े में दिया जलाकर संबंधियों के घर जाने की रस्म। (२) छेददार घड़ा जिसमें दिया जलाया जाता है।

झींटना—क्रि. अ. [हि. झींकना] खीजना, कुढ़ना।

झींपना—क्रि. अ. [हि. झेंपना] लज्जित होना।

क्रि. अ. [हि. ढँपना] छिपना।

झींसा—संज्ञा पुं. [हि. झींसी] बहुत हल्की वर्षा।

झींसी—संज्ञा स्त्री. [हि. झीना] फुहार, महीन बूँदें।

झीख—संज्ञा स्त्री. [हि. खीझ] कुढ़न, खीझ।

झीखना—क्रि. अ. [हि. झींखना] (१) कुढ़ना, खीजना, झुँझलाना। (२) दुखड़ा रोना, विपत्ति कहना।

झीन, झीना—वि. [सं. क्षीण] (१) बहुत पतला। (२) महीन, छेददार। (३) दुबला, पतला। (४) मंद, धीमा।

झीनियै, झीनीयै—वि. [हिं. झीना] महीन, बारीक, पतला। उ.—प्रफुल्लित ह्वै के आनि दीन है जसोदा रानि झीनियै (झीनीयै, झोनीयै) झँगुलि तामें कंचन (को) तगा—१०-३९।

झीनी—वि. स्त्री. [हि. पुं. झीना] (१) बहुत महीन, बारीक, पतली। उ.—(क) पियरी पिछौरी झीनी और उपमा न भीनी, बालक दामिनि मानौ ओढे बारौ बारि-धर—१०-२५१। (ख) फटी कंचुकी झीनी—३४४९। (२) फटी-पुरानी। उ.—झीनी कामरि काज कान्ह ऐसो नहि कीजै—११२७।

झीमर—संज्ञा पुं. [हिं. झीवर] मल्लाह, माँझी।

झील—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर=जल] (१) बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय। (२) बहुत बड़ा तालाब।

झीली—संज्ञा स्त्री. [हिं. झिल्ली] (१) झिल्ली। (२) दूध पर पड़नेवाली मलाई।

झीवर—संज्ञा पुं. [सं. धीवर] माँझी, मल्लाह।

झुँकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंकाई] झोकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

झुँगरा—संज्ञा पुं. [देश.] साँवाँ नामक अन्न।

झुझलात—क्रि. अ. [हि. झुँझलाना] खीजते हैं।

झुँझलाना—क्रि. अ. [अनु.] खीजना, कुढना।

झुँझलावत—क्रि. अ. [हि. झुँझलाना] खीजते हैं।

झुझायौ—संज्ञा पुं. [हि. झुँझलाना] झूँझल, खिजलाहट, झुँझलाहट। उ.—नित प्रति रीती देखि कमोरी, मोहिं अति लगत झुँझायौ—१०-२८८।

झुंड—संज्ञा पुं. [सं. यूथ] समूह, गिरोह।

मुहा.—झुंड के झुंड—बहुत बड़ी संख्या में। झुंड में रहना—अपने ही वर्ग वालों के साथ रहना।

झुकझोरना—क्रि. स. [हि. झकझोरना] जोर से हिलाना।

झुकति—क्रि. अ. [हि. झुकना] झुँझलाती है, क्रुद्ध होती है, रिसाती है। उ.—(क) लोगन कहा झुकति तू बौरी—१० ३२४। (ख) अब झूठौ अभिमान करति सिय झुकति हमारे ताईं। (ग) झुकति कहा मोपर ब्रजनारी—३०३४।

झुकना—क्रि. अ. [सं. युज्, युक्, हि. जुक] (१) नीचे लटकना, नवना।

मुहा.—झुक झुक पड़ना—नशे या नींद के कारण झूमना या सीधा न रह सकना।

(२) नीचे की ओर होना। (३) प्रवृत्त होना, ध्यान देना, मुखातिब होना। (४) कुछ लेने को बढ़ना। (५) नम्र या विनीत होना। (६) रिसाना, क्रोध करना।

झुकमुख—संज्ञा पु. [हि. झुकना+मुख] झुटपुटा।

झुकरना—क्रि. अ. [अनु.] झुँझलाना, खीझना।

झुकराना—क्रि. अ. [हि. झोका] झोका खाना।

झुकवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झुकवाना] झुकवाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

झुकवाना—क्रि. स. [हिं. झुकाना] झुकाने में लगाना।

झुकाइ—क्रि. स. [हि. झुकना] झुकाकर, दबाकर। उ.—इहि विधि लखत, झुकाइ रहे, जम अपनैं हीं भय भाल। सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६।

झुकाई—क्रि. स. [हि. झुकाना] झुकाया।

संज्ञा स्त्री.—झुकाने की क्रिया, भाव, या मजदूरी।

झुकाना—क्रि. स. [हिं. झुकना] (१) नीचे लाना, नवाना। (२) किसी चीज को किसी ओर प्रवृत्त करना। (३) ध्यान दिलाना, प्रवृत्त या रुजू करना। (४) दबाना, नम्र या विनीत करना।

झुकामुखी—संज्ञा स्त्री. [हि. झुकमुख] झुटपुटा।

झुकार—संज्ञा पुं. [हि. झकोरा] हवा का झोका।

झुकाव—संज्ञा पु. [हिं. झुकना] (१) झुकने की क्रिया या भाव। (२) ढाल, उतार। (३) प्रवृत्ति, रुचि।

झुकावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. झुकना+आवट (प्रत्य.)] (१) नम्र होने की क्रिया या भाव। (२) रुचि।

झुकि—क्रि. अ. [हि. झुकना] झुककर। उ.—रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, सुभट सामुहैं आए। ज्यौं कंदर तैं निकसि सिंह, झुकि, गज-जूथनि पर धाए—१-२७४।

झुकी—क्रि. अ. [हिं. झुकना] क्रुद्ध हुई, रिसाई। उ.—कह जानैं मेरी वारौ भोरौ, झुकी महरि दै दै मुख गारि—१०-३०४।

झुगिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटिया] कुटिया, झोपड़ी। उ.—हरि, तुम क्यौं न हमारैं आए? षट्रस व्यंजन छाँड़ि रसोई, साग विदुर-घर खाए। ताके झुगिया मैं तुम बैठे कौन बड़प्पन पायौ—१-२४३।

झुटपुटा—संज्ञा पुं. [अनु.] प्रातः और संध्या काल की वह घड़ी जब कुछ अँधेरा और कुछ उजेला होता है।

झुटुंग—वि. [हिं. झोटा] झोंटे या जटा वाला।

झुट्ठा—वि. [हिं. झूठा] (१) जो सच न बोले। (२) जो पवित्र, शुद्ध या अनखाया न हो।

झुठकाना, झुठलाना—क्रि. स. [हि. झूठ] (१) झूठी बात कहकर बहलाना या धोखा देना। (२) झूठा बनाना या ठहराना।

झुठयो, झुठयौ—क्रि. स. [हिं. झुठाना] झुठलाया।

झुठवत—क्रि. स. [हिं. झुठलाना] झूठा या असत्य सिद्ध करता है। उ.—साँटी लिए दौरि भुज पकरयौ, स्याम लँगरई-ठानी। लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे—१०-२५३।

झुठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झूठ+आई (प्रत्य.)] झूठापन, असत्यता, अयथार्यता। उ.—जानि परत नहि साँच-झुठाई, चारत धेनु झुरैया—५१३।

झुठाना—क्रि. स. [हिं. झूठ+आना] झूठा ठहराना।

झुठामुठी—क्रि. वि. [हि. झूठमूठ] झूठे ही, व्यर्थ।

झुठालना—क्रि. स. [हि. झुठलाना] झूठा बनाना।

झुन—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

झुनक—क्रि. अ. [हि. झुनकना (अनु.)] झुनझुन शब्द करती है। उ.—झुनक स्याम की पैंजनियाँ—१०-१३२।

क्रि. वि.—झुनझुन शब्द या ध्वनि के साथ। उ.—रुनक झुनक कर कनन बाजें, बाँह डुलावति ढीली—१०-२६६।

झुनकना—क्रि. अ. [अनु.] झुनझुन शब्द करना।

संज्ञा पुं—बच्चों का 'झुनझुना' नामक खिलौना।

झुनका—संज्ञा पुं.—धोखा, छल, कपट।

झुनकार—वि. [हि. झीना] महीन, झीना।

झुनकरी—वि. [हिं. पुं. झुनकार] झीना।

झुनझुन—संज्ञा पुं. [अनु.] नूपुर आदि का झुनझुन शब्द। उ.—अरुन तरनि नख ज्योति जगमगित झुनझुन करत पाय पैंजनियाँ।

झुनझुना—संज्ञा पुं. [हिं. झुनझुन] एक खिलौना।

झुनझुनाना—क्रि. अ. [अनु.] झुनझुन शब्द होना।
क्रि. स.—झुनझुन शब्द करना या निकालना।

झुनझुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) 'झुनझुन' करनेवाला पैर का आभूषण। (२) बेड़ी, निगड़।
संज्ञा स्त्री.—सनई का पौधा।

झुनझुनी—संज्ञा स्त्री. [हि. झुनझुनाना] सनसनाहट।

झुनुक-झुनुक—क्रि. वि. [हि. झुनक] झुनझुन शब्द के साथ। उ.—ललित आँगन खेलै, ठुमुकि-ठुमुकि डोलै, झुनुक झुनुक बोलै पैंजनी मृदु मुखर—१०-१५१।

झुपझुपी, झुबझुबी—संज्ञा स्त्री. [देश.] कान में पहनने का देहाती स्त्रियो का एक गहना।

झुपरी—संज्ञा पुं. [हिं. झोपड़ी] झोपड़ी।

झुप्पा—संज्ञा पुं. [हिं. झब्बा] गुच्छा, झब्बा।
संज्ञा पुं. [हि. झुंड] समूह, वृंद, गरोह।

झुमका—संज्ञा पुं. [हिं. झूमना] (१) कान का एक गहना। (२) एक पौधा या उसका फूल।

झुमना—वि. [हि. झूमना] झूमनेवाला, मस्त।

झुमाऊ—वि. [हिं. झूमना] झूमनेवाला, मस्त।

झुमाना—क्रि. स. [हि. झूमना] झूमने में प्रवृत्त करना, हिलाना-डुलाना, किसी को मस्त करना।

झुरकुट—वि. [हिं. झुराना] (१) दुबला। (२) सूखा।

झुरकुटिया—वि. [हिं. झुराना] दुबला-पतला।
संज्ञा पुं. [देश.] पक्का लोहा, खेड़ी।

झुरकुन—संज्ञा पुं. [हिं. झड़+कण] चूरा, चूर।

झुरझुरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) कँपकँपी, घबराहट। (२) सर्दी के बुखार या जूड़ी की कँपकँपी।

झुरना—क्रि. अ. [हि. धूल, या चूर] (१) सूख जाना, खुश्क होना। (२) बहुत दुखी होना। (३) चिंता या परिश्रम से दुबला होना, घुलना।

झुरमुट—संज्ञा पुं. [सं. झुंट+झाड़ी] (१) झाड़ी आदि की आड़। (२) समूह, झुंड। (३) चादर से सारा शरीर ढकना।

झुरवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. झुरना+वन (प्रत्य०)] अंश जो किसी चीज के सूखने पर उसमें से निकल जाय।

झुरवाना—क्रि. स. [हिं. झुरना] सुखाने में लगाना।
क्रि. अ.—सूख जाना, झुरा जाना।

झुरसना—क्रि. अ. [हि. झुलसना] ताप की अधिकता से जल या सूख जाना।

झुरसाना—क्रि. अ. [हि. झुलसाना] ताप अधिक करके जलाना या सुखाना।

झुरहुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झुरझुरी] कँपकँपी।

झुराइ—क्रि. अ. [हिं. झुराना] (दुख या भय से) उदास होना, सूख जाना, कुम्हला जाना। उ.—(क) नंद घरनि सौं पूछत बात। बदन झुराइ गयौ क्यों तेरौ, कहाँ गए बल, मोहन तात—५४२। (ख) जबहि आए सुने ऊधो, अतिहिं गई झुराइ—२६६१।

झुराना—क्रि. स. [हिं. झुरना] सुखाना।
क्रि. अ.—(१) सूखना। (२) दुख से खिन्न, उदास या क्षुब्ध होना। (३) दुबला या क्षीण होना।

झुरानी—क्रि. अ. [हिं. झुराना] दुख से खिन्न, उदास या स्तब्ध हो गयी। उ.—यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भयौ मानो बिन पानी—११६१।

झुराये—क्रि. अ. [हि. झुराना] उदास किये हुए।

झुरावन—संज्ञा स्त्री. [हि. झुरना+वन (प्रत्य.)] वह अंश जो किसी चीज के सूखने पर निकल जाय।

झुरि—क्रि. अ. [हि. झुरना] (१) बहुत दुखी या शोकग्रस्त होकर। उ.—झुरि-झुरि सब मरति विरह गोपीजन की तें—२६५२। (२) सूखकर। उ.—झुरि-झुरि पियरी भई है यह तौ सुकुमारी—१६७८।

झुरैया—क्रि. अ. [हिं. झुरना] (चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण) घुल जाना, दुर्बल हो जाना। उ.—जानि परत नहिं साँच झुठाई, चारत धेनु झुरैया—५१३।

झुरी—संज्ञा स्त्री. [हि. झुरना] सिकुड़न, शिकन।
झुलना—संज्ञा पुं. [हि. झूलना] झूला।
वि.—झूलनेवाला, झूलने का शौकीन।
झुलनी—संज्ञा स्त्री. [हि. झूलना] चाँदी-सोने के हार में गुँथा मोतियों का गुच्छा।
झुलमुला—वि. [हि. झिलमिला] चमकदार।
झुलय—संज्ञा पु. [हि. झूला] झूला।
झुलवत—क्रि. अ. [हि. झूलना] झूला झूलती है। उ. कुज-पुंज झुलय झुलवत सहचरी चहुँ ओर—२२८१।
झुलवा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) जेठवा कपास। (२)झूला।
झुलवाना—क्रि. स. [हिं. झूलना] झुलाने के काम में दूसरे को लगाना या प्रवृत्त करना।
झुलसन—संज्ञा स्त्री. [हि. झुलसना] (१) झुलसने की क्रिया या भाव। (२) झुलसाने वाली गरमी।
झुलसना—क्रि. अ. [सं. ज्वल+अंश] (१) आँच की तेजी से अधजला हो जाना, झौंसना। (२) धूप की तेजी से सूखकर काला-सा पड़ जाना।
क्रि. स.—(१) आँच में अधजला करना, झौंसना। (२) अधिक धूप में सुखाकर काला करना।
झुलसवाना—क्रि. स. [हिं. झुलसाना] झुलसाने या सुखाने में लगाना।
झुलसाना—क्रि. स. [हिं. झुलसना] (१) तेज आँच में अधजला करना। (२) तेज गरमी में सुखाकर काला करना।
झुलाइ, झुलाई—क्रि. अ. [हि. झुलाना] झुलाकर।
प्र.—रह्यौ झुलाई—झूल रहा है, लटक रहा है, हिलडुल रहा है। उ.—स्याम भुजनि की सुंदरताई। ... बडे विसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई। मनौं भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई—६४१। देत झुलाइ—झुलाते हैं। उ.—डरत लाल हिंडोल झूलत, हरैं देत झुलाइ—४६८।
झुलाना—क्रि. स. [हिं. झूलना] (१) झूले या हिंडोले में बैठा कर हिलाना या पेंग देना। (२) बार-बार झोंका देकर या टाँगकर हिलाना। (३)आसरे में रखना।
झुलावति—क्रि. स. [हिं. झुलाना] झुलाती है। उ.—पलना स्याम झुलावति जननी—१०-४४।
झुलावना—क्रि. स. [हिं. झुलाना] झुलाना, हिलाना।
झुलावनि—संज्ञा स्त्री. [झुलाना] झुलाने की क्रिया।
झुलावहीं—क्रि. स. [हिं. झुलाना] झुलाती हैं। उ.—झूलैं सखी झुलावहीं, सूरदास बलि जाइ हालरु रे—१०-४७।
झुलावैं—क्रि. स. [हिं. झुलाना] झूला झुलाते हैं। उ. पालनैं गुपाल झुलावैं—१०४५।
झुलावै—क्रि. स. [हिं. झुलाना] झुलाती है। उ.—जसोदा हरि पालनैं झुलावै—१०-४३।
झुलुआ—संज्ञा पुं. [हिं. झूला] झूला।
झुलैया—संज्ञा पुं. [हिं. झूला] झूलनेवाला। उ.—पालनौ आन्यौ बनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ, नीकौ सुभ दिन सुधाइ, झूलौ हो झुलैया—१०-४१।
झुलौवा—संज्ञा पुं. [हिं. झूला] (१) ढीला-ढाला जनाना कुरता। (२) झूलना, हिंडोरा।
वि. [हिं. झूलना] झूलनेवाला।
झुल्ला—संज्ञा पु. [हिं. झूला] झूला, हिंडोला।
झुहिरना—क्रि. अ.—लदना, लादा जाना।
झुहिराना—क्रि. स. [हि. झुहिरना] (बोझ) लादना।
झूँक—संज्ञा पुं. [हिं. झोंका] हवा का झोंका।
संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंक] (१) झुकाव। (२) बोझ। (३) तेजी। (४) कार्य की उठान या गति। (५) ठाठ। (६) झोंका, झकोरा।
झूँकना—क्रि. स. [हिं. झोंकना] छोड़ना, डालना।
क्रि. स. [हिं. झखना] झीखना। दुखड़ा रोना।
झूँखना—क्रि. अ. [हिं. झींखना] कुढ़ना। दुखड़ा रोना।
झूँझल—संज्ञा स्त्री. [हिं. झुँझलाना] झुँझलाहट।
झूँका—संज्ञा पुं. [हि. झोंका] झकोरा, हिलोरा।
झूँटा—संज्ञा पु. [हिं. झोंटा] झूले का पेंग।
वि. [हिं. झूठा] झूठ बोलनेवाला।
झूँठ—संज्ञा पुं. [हिं. झूठ] असत्य कथन।
वि.—असत्य, मिथ्या।
झूँपड़ा—संज्ञा पु. [हि. झोपड़ा] झोपड़ा, कुटिया।
झूँसना—क्रि. अ. [हिं. झुलसना] झुलसना।
झूँसा—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह की घास।
झूक—संज्ञा पु. [हिं. झोंका] हवा का झोंका।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंक] (१) झुकाव। (२) झोका।

झूकटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूट+काँटा] छोटी झाड़ी।

झूकै—क्रि. अ. [हिं. झुकना=झोंका जाना] गिरे, पड़े, डूबे। उ.—जाकौ दीनानाथ निवाजै। भवसागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय निसाने बाजै—१-३६।

झूखी—क्रि. अ. [हिं. झीखना] दुखी हुई, कुढ़ी, खीझी, पछतायी। उ.—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहि झूखी—३०२६।

झूझ—संज्ञा पुं. [सं. युद्ध] युद्ध।

झूझना—क्रि. अ. [हिं. जूझना] युद्ध करना।

झूझी—क्रि. अ. [हिं. झूझना] लड़ी, युद्ध किया।

झूट, झूठ—संज्ञा पुं. [सं. अयुक्त, प्रा. अजुत्त, हिं. झूठ] मिथ्या या अयथार्थ कथन। उ.—सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि वही—१-१३७।

मुहा.—झूठ-सच कहना (लगाना)—ठीक बेठीक बातें बताकर शिकायत करना।

वि. [हिं. जूठा] निस्सार, असार। उ.—सुख-संपति, दारा सुत, हयगय, झूठ सबै समुदाइ। छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहिं सँग जाइ—१-३१७।

संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठन] जूठी चीज, जूठन।

झूठनि—वि. [हिं. झूठ+नि (प्रत्य.)] जो सच्चे नहीं हैं, जो नश्वर हैं, असार। उ.—झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी—१-६८।

झूठमूठ—क्रि. वि. [हिं. झूठ+अनु. मूठ] (१) बिना किसी तथ्य या आधार के। (२) यों ही, व्यर्थ।

झूठहिं—क्रि. वि. [हिं. झूठ+हिं. (प्रत्य.)] झूठे ही, झूठमूठ ही। उ.—प्रेम सहित मुख खीझति जाहीं। झूठहिं बार-बार पछिताहीं—७६६।

झूठा—वि. [हिं. झूठ] (१) मिथ्या, असत्य। (२) जो सच न बोले। (३) जो असली न हो। (४) जो (पुरजे आदि बिगड़ जाने से) ठीक काम न दे। (५) साररहित, असार, मायामय।

वि. [हिं. जूठा] (१) जो शुद्ध या पवित्र न हो। (२) भोगा हुआ। (३) खाया हुआ।

झूठी—वि. [हिं. पुं. झूठा] (१) असत्य, मिथ्या। (२) नाशवान। उ.—झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी—१-६८। (३) गलत, अशुद्ध बातों से युक्त। उ.—अहंकार पटवारी कपटी झूठी लिखत वही—१-१८५।

झूठे—वि. [हिं. झूठ] (१) मिथ्या, असत्य, जो सच्चे न हों। उ.—एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे। तब पहिचानि सबनि कौं छाँड़े, नख-सिख लौं सब झूठे—१-१७७। (२) नाशवान, निस्सार, मायामय। उ.—झूठे नाते जगत के सुत कलत्र परिवार—२-२६।

झूठेहि—क्रि. वि. [हिं. झूठ] झूठमूठ। उ.—झूठेहिं मोहि लगावति ग्वारि—१०-३०४।

झूठैं—क्रि. वि. [हिं. झूठ] झूठ ही, झूठमूठ ही। उ.—झूठैं लोग लगावत मोकौं, माटी मोहिं न सुहावै—१०-२५३।

झूठौं, झूठौं—क्रि. वि. [हिं. झूठा] (१) झूठमूठ, यों ही सा, व्यर्थ ही। (२) नाममात्र को, कहने भर को।

झूठो, झूठौ—वि. [हिं. झूठ] (१) असत्य, निस्सार, मिथ्या। उ.—(क) झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौं—१-६५। (ख) यहै तन-गति जनम झूठौ, स्वान काग न खाइ—१-३१६। (२) गलत, अयथार्थ। उ.—अब झूठौ अभिमान करति है—६-७७। (३) मिथ्यावादी।

झूना—वि. [हिं. झीना] महीन, पतला, झीना।

झूम—संज्ञा स्त्री. [हिं. झूमना] (१) झूमने की क्रिया या भाव। (२) ऊँघ, उँघाई, झपकी।

झूमक—संज्ञा पु. [हिं. झूमना] (१) होली का एक गीत जिसे स्त्रियाँ झूमझूम कर गाती हैं। उ.—झूमि झूमि झूमक सब गावति बोलति मधुरी बानी—२३६१। (२) विवाह के अवसर का एक गीत। (३) गीत के साथ का नृत्य। (४) गुच्छा। (५) चाँदी-सोने की गोलियों या मोतियों के गुच्छे जो साड़ी के उस भाग में लगाये जाते हैं जो माथे पर रहता है। (६) झुमका नामक कान का गहना।

झूमकसाड़ी, झूमकसारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झूमक+सारी] वह साड़ी या ओढ़नी जिसके माथे पर रहने-

वाले भाग में सोने-चाँदी की गोलियाँ या मोती आदि लगे हों। उ.—लाख टका और झूमक (झुमका) सारी देहु दाइ की नेगु—१०-४०।

झूमका—संज्ञा पुं. [हिं. झुमका] (१) कान का एक गहना, फूल के आकार का एक गहना। उ.—मोतिन झालरि झूमका राजत बिच नीलमनि बहुभावनो। (२) सोने-चाँदी की गुरियों या मोतियों का गुच्छा जो माथे की शोभा बढ़ाने को साड़ी या ओढ़नी में टाँका जाता है। उ.—अंचल चंचल झूमका।

झूमड़—संज्ञा पु. [हिं. झूमरा] एक गहना।

झूमड़ा—संज्ञा पुं [हिं झूमरा] एक तरह का ताल।

झूमड़ झामड़—संज्ञा पु. [हिं झूमड़ा] ढकोसला।

झूमना—क्रि. अ. [सं. झंप] (१) हिलना, झोके खाना। (२) नशे या नींद में सिर हिलाना।

मुहा.—दरवाजे (द्वार) पर हाथी झूमना—बहुत धनी होना। झूमझूमकर—बड़ी मस्ती या नशे से सिर हिला हिलाकर।

झूमर, झूमरि—संज्ञा पुं. [हिं. झूमना, या सं. युग्म, प्रा. जुम्म+र (प्रत्य.)] (१) सिर का एक गहना। (२) झुमका नामक गहना। (३) होली का झूमक गीत। (४) इस गीत का नाच। (५) चीजों का अवार या जमघटा। (६) स्त्री-पुरुषों का घेरा बनाकर नाचना। (७) झूमरा ताल। (८) एक खिलौना।

झूमरा—संज्ञा पु. [हिं. झूमर] ताल का एक भेद।

झूमरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] ताल का एक भेद।

झूमि—क्रि. अ. [हिं. झूमना] मस्ती से झूमझूमकर। उ.—झूमि-झूमि झूमक सब गावति बोलति मधुरी बानी—२३६१।

झूमै—क्रि. अ. [हिं. झूमना] झूमता है, मस्त चाल से उठता या चलता है। उ.—चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छवि मुक्ता ताहू मैं। मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत-प्यावन-हित झूमै—१०-१४७।

झूर—वि. [हिं. धूर या चूर] सूखा, शुष्क।

वि. [हिं. झूठा] (१) खाली। (२) बेकार।

वि. [हिं. जुष्ट] जूठा, खाया हुआ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झार] (१) दाह। (२) दुख।

झूरना—क्रि. स. [हिं. झूर] सूखना, दुबला होना।

झूरा—वि. [हिं. झूर] (१) सूखा। (२) खाली। (३) व्यर्थ। (४) जूठा, उच्छिष्ट।

संज्ञा पुं.—(१) सूखा स्थान। (२) वर्षा का अभाव। (३) कमी।

झूरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. झूर] (१) जलन, दाह। (२) दुख, व्यथा। उ.—सूर दाहनि मरत गोपी कुंवरी के झूरि—२६८२।

क्रि. स. [हिं. झाड़ना] झाड़कर, खोज या झटककर, प्राप्त करके। उ.—झारि झूरि मनं तौं तू लै गयौ बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५।

झूरै—क्रि. अ. [हिं. झूर] दुखी होती है, परिताप सहती है। उ.—बाँधि पची डोरी नहिं पूरै। बार-बार खीझै, रिस झूरै—३६१।

क्रि. वि.—व्यर्थ, निष्प्रयोजन।

झूल—संज्ञा स्त्री. [हिं. झूलना] (१) शोभा के लिए चौपायों की पीठ पर डाला जानेवाला चौकोर कपड़ा।

मुहा—गधे पर झूल पड़ना—अयोग्य या कुरूप को बढ़िया वस्त्र मिलना।

(२) ढीला-ढाला और बेढंगा सिला कपड़ा।

मुहा.—झूल डाले घूमना—ढीला-ढाला और बेढंगा सिला कपड़ा पहने घूमना।

(३) झूलने का झूला, हिंडोला।

झूलत—क्रि. अ. [हिं. झूलना] (पालने या झूले आदि पर) झूलते हुए, पेंग लेते हुए। उ.—सुर-नर मुनि कौतूहल फूले, झूलत देखत नंदकुमार—१०-८४।

झूलन—संज्ञा पु. [हिं. झूलना] (१) वह उत्सव जिसमें श्रीराम या श्रीकृष्ण की मूर्तियों को झूले में बैठाकर झुलाते हैं, हिंडोल। (२) एक तरह का गाना।

संज्ञा स्त्री.—झूलने की क्रिया या भाव। उ.—वह छवि छाँके अति हैं दोऊ लोचन बाँहे गहि झूलनि की—३२६६।

झूलना—क्रि. अ. [सं. दोलन] (१) इधर-उधर हिलना। (२) झूले पर बैठकर पेंग लेना। (३) किसी आशा या आसरे में रहना।

वि.—झूलनेवाला, जो हिलता-डोलता हो।

संज्ञा पुं.—(१) एक छंद । (२) हिंडोला, भूला ।

भूलनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूलन] भूलने की क्रिया या भाव । उ.—कहाँ लता तरु तरु प्रति भूलनि कुंज कुंज बन धाम—३०११ ।

भूलरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूलना] भूलता या हिलता-डोलता गुच्छा या भुमका ।

भूला—संज्ञा पुं [सं. दोला] (१) ऊँचे स्थान पर बँधी रस्सी या जजीर जिस पर पटरी डाल कर भूलते हैं, हिंडोला । (२) भूलता हुआ पुल । (३) पशुओं की भूल । (४) ढीला-ढाला कुरता । (५) झोंका, झटका, धक्का, हिलकोरा ।

भूलि—क्रि. अ. [हिं. भूलना] हिलडुल या भूलकर ।

भूले—वि. [हि. भूलना] भूलते या भूमते हुए । उ.—कुमुदिनि सकुची, वारिज फूले । गुंजत फिरत अलीगन भूले – १०-२३३ ।

क्रि. अ.—भूले पर पेंग लिये । उ.—जो छवि निरखत सो पुनि नाहीं भरम-हिंडोरे भूले—पृ. ३३४ ।

भूलै—क्रि. स. [हि. भूलना] भूलते हैं । उ.—भूलै सखी भुलावहीं, सूरदास वलि जाइ, वलि हालरु रे—१०-४७ ।

भूलौ—क्रि. अ. [हिं. भुलना] भूलो, भूले पर वैठकर पेंग लो । उ.—(क) पालनौ आन्यौ वनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ, नीकौ सुभ दिन सुधाइ, भूलौ रे भुलैया—१०-४१ । (ख) पलना भूलौ मेरे लाल पियारे—१०-१६० ।

भूल्यौ—क्रि. अ. [हिं. भूलना] हिला-डुला, डोल गया, भ्रम में भटक गया । उ.—यह गोकुल किधौं और किधौं मैं ही चित्त भूल्यौ । ये अविनासी होइँ, ज्ञान मेरौ भ्रम भूल्यौ—४९२ ।

झेंपना, मेपना—क्रि. अ. [हि. छिपना] लजाना ।

झेर—संज्ञा स्त्री. [फा. देर] (१) विलव, देर । उ.—(क) काहे को तुम झेर लगावति । दान देहु घर जाहु वेचि दधि तुम ही को यह भावति—११४५ । (ख)दधि वेचहु घर सूधे आवहु काहे झेर लगावति—११७४ । (ग) चलहु तुरत जिनि झेर लगावहु—१८८१ । (२) झगड़ा, वखेड़ा, टंटा । उ.—विरह विषय चहुँधा भरमति है स्याम कहा कियौ झेर—१२१५ ।

झेरन—संज्ञा स्त्री. [हि. झेर] झगड़ा, वखेड़ा । उ.—नंदकुमार छाँड़ि को लैहे जोग दुखन की टेरन । जहाँ न परम उदार नंदसुत मुक्ति परो किन झेरन—२४७७ ।

झेरना—क्रि. स. [हि. झेलना] झेलना, सहना ।

क्रि. स. [हिं. छेड़ना] आरंभ या शुरू करना ।

झेरा—संज्ञा पुं. [हि. झेर] झगड़ा, वखेड़ा, झंझट ।

झेरे, झेंरे—सज्ञा पुं [हिं. झेर] झगडा, वखेड़ा, झंझट । उ. - (क) श्री वनवारी वृथा करत काहे झेरे । (ख) कतहि करत त्रिय झेरे री—२०३४ ।

झेरो, झेरौ संज्ञा स्त्री. [फा. देर, हि. झेर] (१) झगडा, वखेड़ा । उ.—(क) दीपक मैं धर्‍यौ वारि, देखत भुज भए चारि, हारी हौं धरति करति दिन-दिन कौ झेरौ—१०-२७६ । (ख) जत्र-मंत्र कह जानै मेरौ । यह तुम जाइ गुननि कौं बूझौ, इहाँ करति कत झेरौ—७५३ ।

झेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. झेलना] (१) तैरने की क्रिया । (२) हल्का धक्का या हिलकोरा । उ.—सुरत समुद्र मगन दंपति रस झेलत अति सुख झेल । (३) भूलने की क्रिया या भाव ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झेर] विलंब, देर ।

झेलत – क्रि. स. [हि. झेलना] (हाथ-पैर से) पानी उछालते या हटाते हैं । उ.—(क) कर पग गहि, अँगुठा मुख झेलत । प्रभु पौढे पालनैं अकेले, हरषि हरषि अपनैं रंग खेलत । सिव सोचत, विधि वुद्धि विचारत, वट वाढ्यौ सागर जल झेलत—१०-६३ । (ख) वाल केलि को विसद परम सुख सुख समुद्र नृप झेलत—सारा. १८६ ।

झेलना—क्रि. स. [सं. क्ष्वेल = हिलाना-डुलाना] (१) सहना, वरदाश्त करना । (२) तैरने में पानी को हाथ-पैर से हटाना । (३) पानी में हिलना । (४) ठेलना, आगे वढाना । (५) हजम करना ।

झेलनि, झेलनी – सज्ञा स्त्री. [हि. झेलना] सोने-चाँदी की जजीर जो नाक के गहने का भार सम्हालने के

लिए बालों में अटकायी जाती है।

झेलि—क्रि. स. [हिं. झेलना] ऊपर लेकर। उ.—ठेलि हलधर दियो झेलि तब हरि लियो महल के तरे धरनी गिरायौ—२६१५।

झोंक—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्त, हिं. झुकना] (१) झुकाव, प्रवृत्ति, रुचि। (२) बोझ, भार। (३) वेग, झटका, तेजी। (४) कार्य की गति। (५) ठाट, सजावट, चाल। (६) पानी का हिलोरा। (७) झोंका।

झोंकना—क्रि. स. [हिं. झोंक] (१) तेजी से फेंकना।

मुहा.—भाड़ झोंकना—तुच्छ काम करना।

(२) ठेलना, आगे बढाना। (३) अंधाधुंध खर्च करना। (४) दुख या मुसीबत में डालना। (५) बहुत ज्यादा काम किसी पर लादना। (६) दोष लगाना।

झोंकवा—वि. [देश.] भाड़ झोंकनेवाला।

झोंकवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंकना] (भाड़ आदि) झोंकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

झोंकवाना—क्रि. स. [हिं. झोंकना] झोंकने के काम में लगाना या प्रवृत्त करना।

झोंका—संज्ञा पुं. [हिं. झोंक] (१) धक्का, रेला, झपेटा। (२) वायु का झटका या थपेड़ा। (३) वायु का प्रवाह या झकोरा। (४) पानी का हिलकोरा। (५) झूमने या हिलने-डोलने की क्रिया।

मुहा.—झोंका आना—ऊँघना, नींद से झूमना। झोंका खाना—झटका खाना।

(६) ठाट, सजावट, चाल।

झोंकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंकना] (भाड़ आदि) झोंकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

झोंकिया—वि. [हिं. झोंकना] झोंकनेवाला।

झोंकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंक] (१) बोझ। (२) हानि।

झोंको—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंका] ठाट, सजावट, चाल, अदाज। उ.—पहिरे राती चूनरी सिर उपरना सोहै। कटि लहँगा लीलो बन्यौ झोंको जो देखि मन मोहै।

झोंझ—संज्ञा पुं. [देश.] (१) घोसला। (२) खुजली।

झोंझल—संज्ञा पुं. [हिं. झुँझलाना] झुँझलाहट।

झोंझा—संज्ञा पुं. [हिं. झोंझ] बया का घोसला।

झोंट—संज्ञा पुं. [सं. झुट] (१) झाड़ी। (२) झाड़। (३) समूह, जुट्टी, गड्डी। (४) झोंटा।

झोंटा—संज्ञा पुं. [सं जूट] (१) बड़े बड़े और बिखरे हुए बाल। (२) जुट्टा, समूह, गड्डी।

संज्ञा पुं. [हिं. झोंका] झूले का झोंका या पेंग। उ.—ललिता बिसाखा देहिं झोंटा रीझि अंग न समाति—२८८१।

संज्ञा पुं. [हिं. ढोटा] भैंस का बच्चा। भैंसा।

झोंटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंटा] बड़े बड़े बाल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंका] हिलोर, झकोरा, झोंका।

झोंपड़ा—संज्ञा पुं [हिं. छोपना = छाना] कुटी।

मुहा.—अंधा झोंपड़ा—पेट। अंधे झोंपड़े में आग लगना—भूख लगना।

झोंपड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंपड़ा का अल्प.] कुटिया।

झोपा—संज्ञा पुं. [हिं. झब्बा] गुच्छा, झब्बा।

झोटा—संज्ञा पुं. [हिं. झोंका] झूले का पेंग। उ.—ललिता बिसाखा देहि झोटा रीझि अंग न समाति—२२८१।

झोंटिंग—वि. [हिं. झोंटा] बड़े बालवाला।

झोपड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. झोंपड़ा] कुटी।

झोपड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोंपड़ी] कुटिया।

झोर—संज्ञा पुं. [हिं. झोल] गाढ़ा रसा, शोरबा।

झोरई—वि. [हिं. झोल] झोल या रसेदार। उ.—सूर करत री सरस तोरई। सेमि सींगरी छमकि झोरई।

संज्ञा स्त्री.—झोल या रसेदार तरकारी।

झोरना—क्रि. स. [सं. दोलन] (१) झटके से हिलाना। (२) हिलाकर गिराना। (३) इकट्ठा करना।

झोरा—संज्ञा पुं. [हिं. झब्बा] गुच्छा, झब्बा।

झोरि—क्रि. स. [हिं. झेरना] झटके से हिलाकर या कँपाकर। उ.—कहयौ कहारनि हमैं न खोरि। नयौ कहार चलत पग झोरि।

संज्ञा स्त्री. [हिं. झोली] झोली।

झोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. झोली] (१) झोली। उ.—हमरे कौन बेद बिधि साधै। बटुआ झोरी देउ अधारा इतनेन को आराधै—३२८४। (२) पेट। (३) एक तरह की रोटी। उ.—रोटी बाटी पोरी झोरी। इक कोरी इक घीव चभोरी—३९६।

झोल—संज्ञा पुं. [हिं. झाल] (१) तरकारी का रसा। (२) पतली लेई। (३) माँड (४) मुलम्मा।

संज्ञा पुं. [हिं. झूलना] (१) कपड़े का भाग जो ढीला होने के कारण लटक जाय। (२) पल्ला, आँचल। उ.—तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट झोल।

(३) परदा, ओट, आड़। उ.—कहन देहु कहा करै हमरौ बस उठि जैहै झोल।

वि.—(१) जो कसा या तना न हो, ढीला।

यौ.—झोल-झाल—(१) ढीला। (२) झगड़ा।

संज्ञा पुं.—भूल, गलती।

संज्ञा पुं. [हिं. झिल्ली या झोली] गर्भ।

संज्ञा पुं. [सं. ज्वाल, हिं. झाल] (१) भस्म, राख। (२) दाह, जलन।

क्रि. स. [हि. जलाना] जलाना, भस्मना।

प्र.—झोल डारयौ—जला दिया। उ.—तिन अति बोल झोल तन डारयौ अनल भँवर की नाईं—३०७७।

झोलदार—वि. [हिं. झोल+फा. दार] (१) रसेदार। (२) जिस पर मुलम्मा हो। (३) ढीला-ढाला।

झोलना—क्रि. स. [सं. ज्वलन] जलाना।

झोला—संज्ञा पु. [सं. चोल या हि. झूलना] (१) कपड़े की बड़ी थैली या झोली। (२) ढीला-ढाला गिलाफ या खोल। (३) ढीला-ढाला कुरता, चोला। (४) वात का एक रोग।

मुहा.—किसी को झोला मारना—(१) वात रोग से अंग बेकाम होना। (२) सुस्त या शिथिल पड़ना।

(५) पेड़ों के सूखने का रोग। (६) झटका, अघात। (७) हाथ का संकेत या इशारा। (८) रस्सी को ढीला करना।

झोलिहार, झोलिहारा—संज्ञा पु. [हिं. झोली+हारा (प्रत्य.)] (१) झोली लटकानेवाला। (२) कहार।

झोली—संज्ञा स्त्री. [हि. झूलना] (१) कपड़े की थैली। उ.—टूक टूक ह्वै सुभट मनोरथ आने झोली घालि—२८२६।

मुहा.—झोरी छोड़ना—बुढ़ापे में खाल लटकना। झोली डालना (लेना, सम्हालना)—साधु या भिक्षुक होना। झोली भरना—(१) बहुत सा सामान भरना। (२) भरपूर भिक्षा देना।

(२) घास बाँधने का जाल। (३) मोट, चरसा।

संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वाल या झाला] राख, भस्म।

झोलौ—संज्ञा पुं. [हिं. झोल] निकम्मापन, दोष, बुराई, कमी। उ.—कैधों तुम पावन प्रभु नाहीं, कै कछु मो मैं झोलौ। तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, वचन एक जौ बोलौ—१-१३६।

झौंका—संज्ञा पुं. [हिं. झोंका] हवा का झोंका।

झौंझट—संज्ञा पुं. [हिं. झंझट] झगड़ा, बखेड़ा।

झौंद—संज्ञा पुं. [हि. झौंझ] पेट, उदर।

झौंर—संज्ञा पुं. [सं. युग्म, प्रा. जुम्म, हि. झूमर] (१) झुंड, समूह। (२) फूल, पत्ती, फल का गुच्छा। (३) एक गुच्छेदार गहना। उ.—कलगी तुर्रा झौंर जगग सिरपेच सुकुंडल। (४) पेड़ों-झाड़ों का समूह, कुंज।

झौंरना—क्रि. अ. [अनु.] (१) गूंजना, गुंजारना। (२) झपट कर पकड़ लेना, धर दबाना।

झौंरा—संज्ञा पुं. [हिं. झौंर] (१) झुंड। (२) गुच्छा।

झौंराना—क्रि. अ. [हिं. झाँवा या झाँवरा] (१) काला या बदरंग हो जाना। (२) मुरझाना, कुम्हलाना।

क्रि. अ. [हिं. झूमना] हिलना, झूमना।

झौंसना—क्रि. अ. [हिं. झुलसना] (१) ताप की अधिकता से अधजला होना। (२) धूप की तेजी से झुलसना या कुम्हलाना।

झौआ—संज्ञा पुं. [हिं. झावा] खँचिया, खँची।

झौनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] टोकरी।

झौड़, झौर—संज्ञा पुं. [अनु. झाँव-झाँव] (१) झंझट, बखेड़ा, झगड़ा, विवाद। उ.—(क) महरि तैं व्रज चाहति कछु और। बात एक मैं कही कि नाहीं, आपु लगावति झौर—१०-३२३। (ख) नहीं ढीठ नैनन ते और। कितनो मैं बरजति समुझावति उलटि करत हैं झौर। (२) डांट-फटकार, कहा-सुनी।

झौरना—क्रि. स. [हिं. झपटना] झपट कर पकड़ लेना, दबा या छोप लेना।

झौरा—संज्ञा पु. [हिं. झाँव-झाँव] झंझट, हुज्जत।

झौरे—क्रि. वि. [हिं. धौरे] (१) समीप, पास, निकट। (२) संग-संग, साथ-साथ।

झौलना—क्रि. स. [सं. ज्वाल] जलाना, बलाना।

झौवा—संज्ञा पुं. [हिं. झावा] टोकिया, खँची।

झौहाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) गुर्राना। (२) जोर से बकना, झपटना या चिड़चिड़ाना।

ञ

ञ—देवनागरी वर्णमाला का दसवाँ व्यंजन, चवर्ग का पाँचवाँ वर्ण, उच्चारण तालु और नाक से होता है।

ट

ट—देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवाँ व्यंजन, टवर्ग का पहला वर्ण, इसका उच्चारण करने में तालू से जीभ लगानी होती है।

टंक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तौल। (२) सिक्कों की तौल का एक मान। (३) सिक्का। (४) पत्थर काटने की टाँकी या छेनी। (५) कुल्हाड़ी। (६) कुदाल। (७) तलवार। (८) टाँग। (९) क्रोध। (१०) अभिमान। (११) खजाना। (१२) एक राग। (१३) म्यान। (१४) एक कँटीला पौधा।

टंकक—संज्ञा पुं [सं.] चाँदी का सिक्का।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] टकसाल।

टंकटीक—संज्ञा पु. [सं.] शिव।

टंकण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धातु के पात्र आदि में टाँका लगाने की क्रिया। (२) एक तरह का घोड़ा।

टँकना—क्रि. अ. [सं. टंकण] (१) टाँका या जड़ा जाना। (२) सिया या जोड़ा जाना। (३) सींकर अटकाया जाना। (४) रेती (औजार) तेज होना। (५) लिखा या दर्ज किया जाना। (६) चक्की आदि का खुरदुरा किया जाना।

टंकपति—संज्ञा पु. [सं.] टकसाल का अध्यक्ष।

टँकवाना—क्रि.स. [हि. टँकाना] टाँकने का काम कराना।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री. [स.] टकसाल।

टका—संज्ञा पु. [सं. टक] (१) एक तौल। (२) टका।
संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का गन्ना।
संज्ञा स्त्री. [स.] (१) जाँघ। (२) तारा देवी।

टँकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टँकाना] टाँकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

टँकाना—क्रि. स. [हिं. टाँकना का प्रे.] (१) जुड़वाना, सिलवाना। (२) सिला कर लगवाना। (३) चक्की, सिल आदि को खुरदुरा कराना।

टंकार—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टनटन शब्द। (२) धनुष की डोरी खींचकर छोड़ने का शब्द। (३) झनकार, ठनाका। (४) विस्मय। (५) यश, कीर्ति।

टंकारना—क्रि. स. [सं. टंकार] धनुष की डोरी खूब खींचकर और छोड़कर 'टंकार' ध्वनि करना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़।

टंकिका—संज्ञा स्त्री. [स.] पत्थर काटने की छेनी।

टंकी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंक] एक रागिनी।
संज्ञा स्त्री. [सं. टंक = गड्ढा] पानी का कुंड।

टंकोर—संज्ञा पु [हिं. टंकार] धनुष की टंकार।

टँकोरत—क्रि. अ. [हिं. टंकोरना] 'टंकोर' ध्वनि करता है। उ.—जाके धनुष टँकोरत हाथा—२६३१।

टँकोरना—क्रि. स. [अनु.] (१) धनुष की डोरी से टंकार शब्द करना। (२) ठोकर या टक्कर मारकर शब्द निकालना।

टँकौरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटी तराजू।

टंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टाँग। (२) कुल्हाड़ी। (३) कुदाल, फरसा। (४) सुहागा। (५) एक तौल।

टँगड़ी—संज्ञा स्त्री. [स. टंग] टाँग।

टँगना—क्रि. अ. [सं. टंकण=जड़ा जाना] (१) लटकना। (२) फाँसी पर चढ़ना।
संज्ञा पुं—टाँगने की रस्सी, अलँगनी, बिलगनी।

टँगरी—संज्ञा स्त्री. [हि. टँगड़ी] टाँग।

टँगारी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंग] कुल्हाड़ी, फरसा।

टंच—वि. [सं. चंड, हि. चंठ] (१) कजूस, सूम । (२) निष्ठुर । (३) चालाक, काइयाँ ।

वि. [हि. टिचन] तैयार, मुस्तैद ।

टंट-घंट—संज्ञा पुं [अनु. टन टन+घंटा] बहुत साज-सामान के साथ पूजा करने का आडबर ।

टंटा—संज्ञा पुं. [अनु. टनटन] (१) प्रपंच, बखेड़ा, खटराग । (२) दगा, फसाद । (३) लड़ाई, तकरार ।

टँड़िया—संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़] बाँह का एक गहना ।

टँडुलिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] बन-चौलाई का साग ।

टंसरि, टंसरी—संज्ञा स्त्री.—एक तरह की वीणा ।

टँसहा—संज्ञा पुं. [हिं. टाँस+हा.] लँगड़ा बैल ।

वि.—जो लँगड़ा हो गया हो ।

ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नारियल का खोपड़ा । (२) चौथाई भाग । (३) शब्द ।

टई—संज्ञा स्त्री. [हि. टही] जोड़तोड, युक्ति ।

टक—संज्ञा स्त्री. [सं. त्राटक या टक] स्थिर दृष्टि से देखने की क्रिया, गड़ी नजर । उ.—सहज समाधि रूप रस इक टक करत न टक तें टारे—३०३६ ।

मुहा.—टक बँधना—स्थिर दृष्टि से देखना । टक बाँधना—स्थिर दृष्टि होना । एक टक देखना—स्थिर दृष्टि से देखना । टक लगाना—आसरा देखना, प्रतीक्षा में रहना ।

टकटका—संज्ञा पु. [हि. टक] स्थिर दृष्टि, टकटकी ।

वि.—स्थिर, बँधी हुई या एक तरफ जमी (दृष्टि) ।

टकटकाना—क्रि. स. [हि. टक] (१) एक टक या दृष्टि जमाकर देखना । (२) टकटक शब्द करना ।

टकटकी—संज्ञा स्त्री. [हि टक] स्थिर दृष्टि ।

मुहा.—टकटकी बँधना—दृष्टि स्थिर होना या जमना । टकटकी बाँधना—स्थिर दृष्टि से देखना ।

टकटकै—क्रि. स. [हिं. टकटकाना] स्थिर या एकटक दृष्टि से देखकर । उ.—टकटकै मुख झुकी नैनहीं नागरी, उरहनो देत रुचि अधिक बाढी ।

टकटोना—क्रि. स. [हि. टकटोरना] टटोलना ।

टकटोरत—क्रि. स. [हि. टकटोरना] टटोलता है, स्पर्श करके देखता है । उ.—पुनि पीवत ही कच टकटोरत झठहि जननि रहै—१०-१७४ ।

टकटोरना—क्रि. स. [हि. टटोलना] (१) छूकर या स्पर्श करके जाँचना । (२) ढूँढना । (३) कुतरना ।

टकटोरि—क्रि. स. [हि. टकटोरना] जाँचकर, परखकर, परीक्षा लेकर । उ.—सूर एकहू अंग न काची मैं देखी टकटोरि—३४६८ ।

टकटोलना—क्रि. स. [हि. टकटोरना] टटोलना ।

टकटोहन—संज्ञा पुं. [हि. टकटोना] टटोलकर या स्पर्श करके देखने या जाँचने की क्रिया या भाव । उ.—स्याम-स्याम मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन ।

टकटोहना—क्रि. स. [हि. टकटोलना] टटोलना ।

टकटोहै—क्रि. स. [हिं. टकटोलना, टकटोहना] जाँचता है, टटोलता है, खोजता है । उ.—या छबि की पटतर दीवै कौं सुकबि कहा टकटोहै । देखत अंग-अंग प्रति बानक, कोटि मदन-मन मोहै—१०-१५८ ।

टकटौरै—क्रि. स. [हि. टकटोरना] कुतरता है, काट लेता है । उ.—बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरै । तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरै—१०-२२४ ।

टकतंत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पुराना बाजा ।

टकना—संज्ञा पुं. [हि. टाँग] घुटना, टँखना ।

क्रि. अ. [हिं. टँकना] टाँका या सिया जाना ।

टकबीड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] विवाहादि की भेंट ।

टकरात—क्रि. अ. [हिं. टकराना] मारे-मारे बेकार घूमता है । उ.—जहँ-तहँ फिरत स्वान की नाईं द्वार-द्वार टकरात ।

टकराना—क्रि. अ. [हि. टक्कर] (१) धक्का या ठोकर खाना । (२) इधर-उधर मारे-मारे घूमना-फिरना ।

मुहा.—टकराते फिरना—मारे-मारे बेकार घूमना ।

क्रि. स.—एक वस्तु को दूसरी से भिड़ाना ।

मुहा.—माथा टकराना—(१) पैर पर सिर रखकर विनय करना । (२) बहुत प्रयत्न करना ।

टकरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का पेड़ ।

टकसरा—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का बाँस ।

टकसार, टकसाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकशाला] (१) सिक्के बनाने या ढालने का स्थान ।

मुहा.—टकसाल का खोटा—नीच, अशिष्ट ।

टकसाल चढना—(१) परखा जाना, परीक्षा होना। (२) चतुर या कुशल समझा जाना। (३) बुराई में पक्का होना। टकसाल बाहर—(१) (जो सिक्का) प्रचार में न हो। (२) (जो वाक्य, शब्द या प्रयोग) शिष्ट या प्रामाणिक न हो।

(२) निर्दोष, प्रामाणिक या असल चीज।

टकसाली—वि. [हि. टकसाल] (१) टकसाल का या उससे सबधित। (२) खरा, चोखा, असली। (३) सर्वसम्मत, सर्वमान्य, (४) ऊँचा हुआ, प्रामाणिक, शिष्ट, मान्य।

मुहा.—टकसाली बात—ठीक और पक्की बात। टकसाली बोली या भाषा—शिष्ट और सर्वसम्मत भाषा या प्रयोग।

सज्ञा पुं.—टकसाल का अध्यक्ष या अधिकारी।

टका—संज्ञा पु. [सं. टक] (१) चाँदी का एक पुराना सिक्का, रुपया। उ.—नाइन बोलहु नवरंगी (हो), ल्याउ महाउर वेग। लाख टका अरु झूमका (देहु) सारी दाइ कौं नेगु—१०-४०। (२) ताँबे का एक सिक्का जो दो पैसो के बराबर होता है।

मुहा.—टका पास न होना—दरिद्र होना। टका सा जवाब देना—(१) साफ इनकार करना, कोरा जवाब देना। (२) साफ निकल जाना। टका सा मुँह लेकर रह जाना—लज्जित हो जाना, खिसिया जाना। टका सी जान—(१) अकेला दम। (२) बहुत सुकुमार या कोमल होना।

(३) रुपया-पैसा। (४) तीन तोले की तौल।

टकाटकी—संज्ञा स्त्री. [हि टकटकी] गडी हुई दृष्टि।

टकानी—सज्ञा स्त्री. [हि. टँकना] बैलगाड़ी का जूआ।

टकासी—संज्ञा स्त्री. [हि टका] टके रुपए का व्याज।

टकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकटकी] गडी हुई दृष्टि।

टकुआ—संज्ञा पुं [स. तर्कुक, प्रा तकुआ] सूत चढाने का सूआ, चरखे का तकुआ या तकला।

टकुली—सज्ञा स्त्री. [सं. टक] पत्थर काटने की टाँकी।

टकूचना—क्रि.स. [हिं. टाँकना] मुनाफा लेना या खाना।

टकैट, टकैत—वि [हि. टका+ऐत (प्रत्य.)] धनी।

टकोर—संज्ञा स्त्री [सं. टंकार] (१) हल्की चोट, ठेस। (२) डके या नगाडे की चोट या आवाज। (३) धनुष की टकार। (४) गरम पोटली की सेंक। (५) खटास से दाँतो की टीस। (६) झालपन, चरपराहट। उ.—कबहूँ कौर खात मिरचन की लागी दसन टकोर।

टकोरना—क्रि. स. [हि. टकोर] (१) ठोकर या ठेस मारना। (२) डके पर चोट देना। (३) सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं. [सं. टंकार] डके की चोट।

टकोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. टक्कर] चोट, आघात।

टकौना—संज्ञा पुं. [हिं. टका] (१) टका। (२) रुपया।

टकौरी—संज्ञा स्त्री. [स. टंक] छोटी तराजू, काँटा।

टक्कर—संज्ञा स्त्री. [अनु. ठक] (१) धक्का, ठोकर।

मुहा.—टक्कर खाना—(१) धक्का या ठोकर लगाना। (२) बेकार फिरना और सफल न होना।

(२) मुटभेड, लडाई, भिडत।

मुहा.—टक्कर का—बराबरी का, समान। टक्कर खाना—(१) लडना-भिड़ना। (२) मुकाबले का या समान होना। टक्कर लेना—मुकाबला करना, लड़ना-भिडना। पहाड़से टक्कर लेना—बड़े प्रतिद्वंद्वीसे भिडना।

(३)कडी चीज से सिर टकराने का आघात।

मुहा.—टक्कर मारना—(१) सिर पटकना। (२) कठिन परिश्रम करने के बाद भी लाभ न होना।

(४) घाटा, हानि, नुकसान।

मुहा.—टक्कर झेलना—नुकसान सहना।

टखना—सज्ञा पुं. [स. टक=टाँग] पैर का गट्टा।

टगटगाना—क्रि. स. [हिं टकटकी] एकटक देखना।

टगण—सज्ञा पु. [स.] छ मात्राओं का एक गण।

टगर—संज्ञा पुं. [स. टकण] विलास, क्रीडा।

टघरना—क्रि अ. [हिं. पिघलना] (१) घी आदि पिघलना। (२) हृदय में दया आदि उपजना।

टघराना—क्रि. स. [हिं. टघरना] (१) घी आदि पिघलाना। (२) हृदय में दया आदि का सचार करना।

टचटच—क्रि. वि. [हिं. टचना=जलना] (आग की लपट के) धकधक या धाँय-धाँय शब्द के साथ।

टचना—क्रि अ. [अनु.] धकधक करके जलना।

टचनी—संज्ञा स्त्री. [स. टंक] नक्काशी का औजार।

टटका—वि. [सं. तत्काल] (१) हाल का, ताजा, तुरत का। (२) जो बरता न गया हो।
टटकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टटका+आई] ताजापन।
टटकी—वि. स्त्री. [हिं. टटका] (१) तत्काल की, हाल की, अभी की। उ.—निसि के उनींदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि, कीधौं कहुँ प्यारी कौं लागी टटकी नजरि—७५२। (२) नयी, कोरी, बिना बरती।
टटड़ी—संज्ञा स्त्री. [पंजाबी] (१) खोपड़ी। (२) हड्डियों की ठठरी। (३) खपच्चियों का ढांचा।
टटरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टी] खपच्चियों का ढांचा।
टटाना—क्रि. अ. [हिं. ठाँठ] सूख जाना।
टटल-बटल—वि. [अनु.] ऊटपटांग, अंटसंट।
टटावली—संज्ञा स्त्री. [सं. टिट्टिभावलि] कुररी चिड़िया।
टटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टी] खपच्चियों का ढांचा।
टटियाना—क्रि. अ. [हिं. टटाना] सूख जाना।
क्रि. अ. [हिं. टट्टी] टट्टी से घेरना।
टटीबा—संज्ञा पुं. [अनु.] घिरनी, चक्कर।
टटीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिटिहरी] कुररी चिड़िया।
वि.—(१) बहुत दुबला-पतला। (२) तेज।
टटुआ—संज्ञा पुं. [हिं. टट्टू] छोटा घोड़ा, टांगन।
टटुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टू] मादा टट्टू।
टटोना, टटोरना, टटोलना, टटोहना—क्रि. स. [सं. त्वक्+तोलन=अंदाज करना, हिं. टटोलना] (१) छूना, दबाना। (२) ढूँढ़ना, खोजना। (२) मन की थाह लेना। (४) परीक्षा करना।
टटोल—संज्ञा स्त्री. [हिं. टटोलना] टटोलने का भाव।
टट्टड़, टटटर—संज्ञा पु. [सं. तट या स्थाता] (१) बाँस की खपच्चियों का दरवाजा। (२) सीखचों का छाजन। (३) भेरी का शब्द।
टट्टनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] छिपकली।
टट्टरी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) ढोल-नगाड़े का शब्द। (२) लबी-चौड़ी बात। (३) चुहलबाजी।
टट्टा—संज्ञा पुं. [सं तट या स्थाता=जो खड़ा हो] (१) बांस की खपच्चियों का परदा। (२) तख्ता।
टट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टर] (१) बांस की खपच्चियों या खस के परदे आदि की आड़ या रोक।

मुहा.—टट्टी की आड़ (ओट) से शिकार खेलना—(१) छिपकर चाल चलना। (२) छिपाकर बुरा काम करना। टट्टी में छेद करना—खुलकर बुरा काम करना। टट्टी लगाना—(१) आड़ करना। (२) सामने ही भीड़ इकट्ठा करना। धोखे की टट्टी—(१) धोखा देने की आड़। (२) ऐसी आड़ या चीज जिसके कारण लोग धोखा खा जायँ। (३) ऐसी चीज जो सुंदर हो, पर ज्यादा काम की न हो, चटपट टूट जानेवाली दिखावटी चीज।

(२) परदा, चिलमन। (३) परदे की पतली दीवार। (४) बाँस की खपच्चियों का हलका छाजन।
टट्टू—संज्ञा पु. [अनु.] छोटा घोड़ा, टांगन।
मुहा.—टट्टू पार होना—मतलब निकल जाना। भाड़े का टट्टू—रुपया लेकर काम करनेवाला।
टठिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाठी] छोटी थाली।
टड़िया—संज्ञा स्त्री. [स. ताड़] बाँह का एक गहना जो अनत से कुछ मोटा और बेघुडी का होता है, टाँड़।
टन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घंटा बजने का शब्द।
मुहा.—टन हो जाना—चटपट मर जाना।
टनकना—क्रि. अ. [अनु. टन] (१) टनटन बजना। (२) सिर में रहरह कर पीड़ा होना।
टनटन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घटा बजने का शब्द।
टनटनाना—क्रि. अ. [हिं. टनटन] घटा बजना।
क्रि. स.—घंटा बजाना, टनटन करना।
टनमन—संज्ञा पुं. [हिं. टोना] जादू-टोना।
टनमन, टनमना—वि. [स. तन्मनस्] स्वस्थ, चंगा।
टनाका—संज्ञा पुं. [अनु. टन] घटा बजने का शब्द।
वि.—माथा टनकानेवाली तेज और कड़ी (धूप)।
टनाटन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] लगातार टनटन शब्द।
वि.—बिलकुल ठीक दशा में और दृढ़।
क्रि. वि.—'टनटन' शब्द के साथ।
टप—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोप, तोप=आच्छादन] खुली गाड़ियों का ओहार, सायवान, कलदरा या छतरी।
संज्ञा पुं [हिं. ठप्पा] एक औजार।
संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) बूंद टपकने का शब्द। उ.—परत स्रम-बूँद टप टपकि आनन बाल भई

बेहाल रति मोह भारी। (२) किसी चीज के अचानक ऊपर से गिर पड़ने का शब्द।

मुहा.—टप से—झटपट, चट से, तुरत।

टपक—संज्ञा स्त्री. [हिं टपकना] (१) टपकने का भाव। (२) बूंद टपकने का शब्द। (३) रुक रुक कर होनेवाला दर्द, टीस, कसक।

टपकत—क्रि. अ. [हिं. टपकना] चूता है, बूंद बूंद पानी गिरता है। उ.—अति दरेर की झरेर टपकत सब अँवराई—१५६५।

टपकना—क्रि. अ. [अनु. टपटप] (१) बूंद-बूंद गिरना, चूना, रसना। (२) फल का पककर गिरना। (३) ऊपर से अचानक गिरना।

मुहा.—आ टपकना—टपक पड़ना, एकाएक आकर उपस्थित हो जाना।

(४) लक्षण, चेष्टा आदि से कोई भाव प्रकट या व्यंजित होना। (५) चित्त लुभाना या मोहित होना। (६) घाव-फोड़े का टीसना। (७) घायल होकर गिरना।

टपका—संज्ञा पुं. [हिं. टपकना] (१) टपकने का भाव। (२) टपकी हुई चीज। (३) गिरा हुआ पक्का फल। (४) रह रहकर उठनेवाला दर्द, टीस।

टपका-टपकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टपकना] (१) बूंदा-बांदी, हलकी वर्षा। (२) पके फलों का गिरना। (३) किसी चीज के लिए बहुतों का टूट पड़ना। (४) एक एक करके कई मौतें।

वि.—एक-आध, बहुत कम, भूला-भटका।

टपकाना—क्रि स. [हिं. टपकना] (१) बूंद बूंद गिराना। (२) भबके से अरक उतारना।

टपकाव—संज्ञा पुं. [हिं. टपकाना] टपकाने का भाव।

टपना—क्रि. अ. [हिं. तपना] (१) बिना खाये-पिये पड़े रहना। (२) बेकार आसरे में पड़े रहना।

क्रि. अ. [हिं. टाप] उछलना, कूदना।

क्रि. स. [हिं. तोपना] ढक देना।

टपरा—संज्ञा पुं. [हिं तोपना] (१) छप्पर, छाजन। (२) झोपड़ा, कुटी।

संज्ञा पुं. [हिं. टप्पा] खेत का छोटा भाग।

टपाटप—क्रि. वि. [अनु. टपटप] (१) बूंद-बूंद करके बराबर गिरना। (२) झटपट, जल्दी जल्दी।

टपाना—क्रि. स. [हिं. टपाना] (१) बिना खिलाये-पिलाये डाल रखना। (२) बेकार आसरे में रखकर हैरान करना। (३) कुदाना, फँदाना।

क्रि. स. [हिं. टाप] कुदाना, फँदाना।

टप्पर—संज्ञा पुं. [हिं. तोपना] छप्पर, छाजन।

मुहा.—टप्पर उलटना—दिवाला निकलना।

टप्पा—संज्ञा पुं. [सं. स्थापन, हिं. थाप, टाप] (१) उछलने वाली चीज का जमीन से टकराना। (२) कूद-फाँद। (३) तय की हुई दूरी। (४) दो स्थानों के बीच का मैदान। (५) अंतर, फर्क।

मुहा.—टप्पा देना—अंतर करना, फर्क डालना।

(६) मोटी भद्दी सिलाई। (७) टिकान। (८) एक चलता गाना। (९) एक तरह का काँटा।

टप्पेत—वि. [हिं. टप्पा] (१) टप्पे (गाने) से संबंधित। (२) टप्पा (गाना) गानेवाला।

टब्बर—संज्ञा पुं. [हिं. कुटुंब] कुटुंब, परिवार।

टमकी, टमुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंकार] छोटा नगाड़ा।

टमटी—संज्ञा स्त्री [देश.] एक तरह का बरतन।

टमस—संज्ञा स्त्री. [सं. तमसा] टौंस या तमसा नदी।

टर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) कर्कश या अप्रिय बोली।

मुहा.—टर टर करना (लगाना)—(१) ढिठाई से जबान लड़ाना। (२) बकवाद करना।

(२) मेढ़क की बोली। (३) घमंड या अकड़भरी बात। (४) हठ, जिद, अड़। (५) तुच्छ या बेमेल बात। (६) ईद के बाद का एक मेला।

टरई—क्रि. अ. [हिं. टरना=टलना] (१) विचलित होती है, डिगती है। उ.—अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरजीवि सो मरई। श्री रघुनाथ-प्रताप पतिव्रत, सीतासत नहिं टरई—९-७८। (२) दूसरे स्थान को जाती है, हटती है। उ.—चिरंजीवि सीता तरुवर तर छिनकं न कबहूँ टरई—९-९९। (३) मिटता है, दूर होता है। उ.—(क) मोकौं भई अनाहत बानी, तातैं सोच न टरई—१०-४। (ख) घटै बढै यहि पाप तें कालिमा न टरई—२८९१।

टरकना—क्रि. अ. [हिं. टरना] चले जाना, दूर होना।

क्रि. अ. [हि. टर] कर्कश स्वर से बोलना।

टरकनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] ईख की दूसरी सिंचाई।

टरकाना—क्रि. स. [हि. टरकना] (१) हटाना, खिसकाना, दूर करना। (२) बहाने से टालना।

टरकुल—वि.—खराब, बहुत मामूली।

टरटराना—क्रि. स. [हि. टर] (१) बकबक करना, अप्रिय वाणी बोलना। (२) ढिठाई से बोलना।

टरत—क्रि. अ. [हिं. टलना] हटता (है), अपने स्थान से अलग होता (है)। उ.—नरक कूपनि जाइ जमपुर परयौ वार अनेक। थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारे न नेक—१-१०६।

मुहा.—व्रत टरत न टारे—(प्रतिज्ञा) अवश्य पूरी होती है, (निश्चय) नहीं टल सकता। उ.—हम भक्तनि के भक्त हमारे। सुनि अरजुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे—१-२७२।

टरतौ—क्रि. अ. [हि. टरना, टलना] (१) दूर होता, सबध न रखता, जाता रहता, वंचित होता। उ.—परतिय-रति-अभिलाष निसा-दिनु मनपिटरी लै भरतौ। दुर्गति, अति अभिमान, ज्ञान बिनु, सब साधन तैं टरतौ—१-२०३। (२) पास न बना रहता, चला जाता। उ.—होतौ नफा साधु की संगति मूल गाँठ नहि टरतौ।

टरना—क्रि. अ. [हि. टलना] हटना, दूर होना।

टरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. टरना] टरने का भाव।

टरहीं—क्रि. अ. [हिं. टलना] दूर होते हैं।

मुहा.—चित ते टरहीं—ध्यान नहीं रहता, याद नहीं बनी रहती। उ.—सकल सखा अरु नंद जसोदा वे चित तें न टरहीं—१० उ० १०३।

टराना—क्रि. अ. [हि. टरना] हटाना, टालना।

टराहीं—क्रि. अ. [हिं. टलना] टलते हैं, दूर होते हैं। उ.—सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति मम चित तें न टराहीं—१० उ० १०४।

टरि—क्रि. अ. [हिं. टलना] (समय) टल गया, बीत गया। उ.—चेत्यौ नाहि, गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसे—१-२९३।

टरिबो—संज्ञा पु. [हि. टलना] टलने का भाव या क्रिया। उ.—रथ थाक्यौ मानो मृग मोहे नाहिंन कहूँ चंद्र को टारिबो—२८९०।

टरिहै—क्रि. अ. [हिं. टलना] टलेगा, अन्यथा होगा, खंडित होगा, ठीक न होगा। उ.—मेरौ कह्यौ नाहि यह टरिहै—८-२।

टरिहौं—क्रि. अ. [हि.टलना] (१) भगाऊँगा, हटाऊँगा। उ.—आज हौं एक-एक करि टरिहौं। कै तुमहीं कै हमहीं माधौ, अपन भरोसौं लरिहौं—१-१३४। (२) हटूँगा, आना-कानी करूँगा, पिछडूँगा। उ.—बिदुर कह्यौ, सेवा मैं करिहौं। सेवा करत नैंकु नहि टरिहौं—१-२८४।

टरी—क्रि. अ. भूत. स्त्री. [हि. टरना, टलना] (१) टूटी, दूर हुई, मिटी, खंडित हुई। उ.—मो अनाथ के नाथ हरी। ब्रह्मादिक, सनकादिक, नारद, जिहि समाधि नहि ध्यान टरी—१-२४९। (ख) मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि सिध समाधि टरी—६२३। (ग) सूरदास प्रभु तुम्हरे बिछुरे बिधि मरयाद टरी—३४५५। (२) दूर हुई, टल गई। उ.—करवर बड़ी टरी मेरे की, घर-घर आनँद करत बधाई—१०-५१।

टरे—क्रि. अ. [हि. टलना] चंचल या गतियुक्त हुए। उ.—चल थाके अचल टरे—६२३।

टरैगो—क्रि. अ. [हि. टलना] दूर होगा, मिटेगा। उ.—काहे को लेति नयन जल भरि भरि नयन भरे ते कैसे सूल टरैगो—२८७०।

टरै—क्रि. अ. [हि. टालना] हटाता है, खिसकाता है। उ.—चिरिया कहा समुद्र उलीचै, पवन कहा परबत टरै—१-२३४।

क्रि. अ.-[हि. टलना] (१)(अपने स्थान से) हटता है, डिगता है। उ.—ग्रह नछत्रहू सबही फिरैं। तू भयौ अटल न कबहूँ टरै-४-९।(२) टलता है, अघटित होता है। उ.—भावी काहू सौं न टरै—१-२६४। (३) मिटे, दूर हो। उ.-यह मम दोष कौन बिधि टरै-४-१२।

टरौ—क्रि अ. [हि. टलना] (कोई बात) अपूर्ण या खंडित हुई जाती है। उ.—(क) कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ—१-२२०। (ख) सुनि

राजा, मेरो प्रन टर्यो—९-५।

टर्यो—क्रि. अ. [हिं. टरना=टलना] टला, टल गया, असत्य हुआ, झूठा हो गया। उ.—राजा, वचन तुम्हारो टर्यो—९-२।

टर्रा—वि. [अनु. टरटर] (१) ऐंठ या अकड़कर बोलनेवाला, टर्रानेवाला। (२) ढीठ।

टर्राना—क्रि. अ. [अनु. टर] ऐंठ या अकड़ कर बात करना, सीधे न बोलना।

टर्रापन—संज्ञा पुं. [हिं. टर्रा + पन (प्रत्य.)] ऐंठ या अकड़कर बात करने का भाव या ढंग।

टर्रू—संज्ञा पुं. [हिं. टरटर] (१) टर्रा आदमी। (२) मेढक। (३) एक खिलौना।

वि.—ऐंठ या अकड़कर बात करनेवाला।

टलना—क्रि. अ. [सं. टलन=विचलित होना] (१) अपने स्थान से अलग होना। खिसकना।

मुहा.—बात से टलना—प्रतिज्ञा पूरी न करना।

(२) स्थान-विशेष पर उपस्थित न रहना। (३) दूर होना, मिटना, न रहना। (४) किसी काम या बात के लिए आगे का समय तय होना। (५) किसी बात का ठीक न रहना या खंडित होना। (६) (किसी बात का) माना न जाना। (७) समय बीतना।

टलहा—वि. [देश.] खोटा, खराब।

टलाटली—संज्ञा स्त्री. [हिं. टालटूल] बहाना।

टल्ला—संज्ञा पुं. [अनु.] धक्का, ठोकर।

मुहा.—टल्ला (टल्ले) मारना—मारे-मारे-फिरना।

टवर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] ट ठ ड ढ ण का समूह।

टवाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अटन] मारे-मारे फिरना।

टस—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खिसकने का शब्द।

मुहा.—टस से मस न होना—(१) भारी चीज का जरा भी न हटना। (२) कड़ी चीज का जरा भी न गलना। (३) कहने-सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना।

(२) (कपड़ा) फटने या मसकने का शब्द।

टसक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टसकना] कसक, टीस।

संज्ञा स्त्री.—टलने या हटने का भाव।

टसकना—क्रि. अ. [हिं. टस] (१) हिलना, हटना, खिसकना। (२) रह रहकर दर्द करना, कसकना। (३) प्रभावित होना। (४) (फल आदि का) पके जाना। (५) रोना-धोना।

टसकाना—क्रि. स. [हिं. टसकना] सरकाना, खिसकाना।

टसना—क्रि. अ. [अनु. टस] (कपड़ा) फटना।

टसर—संज्ञा पुं. [सं. त्रसर] एक तरह का रेशम।

टसुआ—संज्ञा पुं. [हिं. आँसू, अँसुआ] आँसू।

मुहा.—टसुआ बहाना (ढरकाना) झूठमूठ रोना।

टहक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टसक] कसक, टीस, चसक।

टहकना—क्रि. अ. [हिं. टसकना] (१) रहरहकर दर्द मारना। (२) (घी आदि) पिघलना।

टहकाना—क्रि. स. [हिं. टहकना] पिघलाना।

टहटहा—वि. [हिं. टटका] ताजा, नया, कोरा।

टहना—संज्ञा पुं. [सं. तनु] वृक्ष की मोटी डाल।

टहनी—संज्ञा स्त्री [हिं. टहना] वृक्ष की पतली डाल।

टहरना—क्रि. अ. [हिं. टहलना] घूमना-फिरना।

टहल—संज्ञा स्त्री. [हिं. टहलना] (१) सेवा, शुश्रूषा। उ.—(क) दासी तृष्ना भ्रमत टहल-हित, लहत न छिन विस्राम—१-१४१। (ख) जसुमति मात और ब्रजपति जू बहुतहि आनँद दीनौं। यातैं टहल करन नहि पायौ कहत स्याम रँगभीनौं—सारा. ५३०। (ग) जिहि डर भ्रमत पवन, रवि, ससि जल सो करै टहल, लकुटिया सौं डरि—३६२।

यौ.—टहल टई (टकोर)—सेवा-शुश्रूषा।

(२) नौकरी-चाकरी, काम-धंधा। उ.—जाकौ ब्रह्मा अंत न पावै। तापै नद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै—३६३।

टहलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टहल] सेवा, नौकरी।

टहलना—क्रि. अ. [सं. तत्+चलन] (१) घूमना-फिरना।

मुहा.—टहल जाना—(१) चुपचाप चले जाना। (२) सैर करना, हवा खाना। (३) मर जाना।

टहलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टहल] दासी, लौंडी।

टहलाना—क्रि. स. [हिं टहलना] (१) घुमाना-फिराना। (२) सैर कराना, हवा खिलाना। (३) हटा देना।

टहलुआ—संज्ञा पुं. [हिं. टहल] सेवक, नौकर।

टहलुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टहल] दासी, लौंडी।
टहलुवा, टहलू—संज्ञा पुं. [हिं. टहल] सेवक, नौकर।
टही—संज्ञा स्त्री. [हि. घात] जोड़-तोड़, घात।
टहुआटारी—संज्ञा स्त्री. [देश.] चुगलखोरी।
टहूका—संज्ञा पुं. [देश.] (१) पहेली। (२) चुटकुला।
टहोका—संज्ञा पुं. [हि. ठोकर] धक्का, झटका।
मुहा.—टहोका देना—ढकेलना, ठेलना। टहोका खाना—धक्का खाना, ठोकर सहना, ठेला जाना।
टाँक—संज्ञा स्त्री. [सं. टंक] (१) तीन या चार माशे की तौल। (२) धनुष-परीक्षा की पचीस सेर की तौल। (३) जाँच, कूत, अदाज। (४) हिस्सेदारों का भाग।
संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँकना] (१) लिखने का अक्ष या चिह्न, लिखावट, (२) कलम की नोक या डक।
टाँकना—क्रि. स. [स. टकन] (१) चिप्पी आदि जड़ना। (२) सुई से सीना या जोडना। (३) सी कर अटकाना। (४) सिल, चक्की आदि को खुरदुरा करना। (५) कागज, बही आदि में लिखना।
मुहा.—मन में टाँकना (टाँक रखना)—याद रखना, सदा ध्यान रखना।
(६) लिखकर भेजना। (७) (भोजन आदि) चटपट खा लेना। (८) (रुपया-पैसा) मार लेना।
टाँकली—संज्ञा स्त्री. [स. टक्कर] एक पुराना बाजा।
टाँका—संज्ञा पुं. [हि. टाँकना] (१) धातु-पत्तरों आदि का जोड़ मिलाने की कील या काँटा। (२) सुई का एक बार ऊपर-नीचे करने पर लगनेवाली सीवन या ग्रथि। (३) सिलाई, सीवन। (४) सी हुई थिगली या चकती। (५) धातु जोड़ने का मसाला।
संज्ञा पुं. [सं. टक] पत्थर काटने की छेनी।
संज्ञा पु—(१) पानी का हौज। (२) कडाल।
टाँका टूट—वि. [हि. टाँक+तौल] ठीक तुला हुआ।
टाँकी—संज्ञा स्त्री. [हि. टाँका] पत्थर गढ़ने की छेनी। (२) काटकर किया हुआ छेद। (३) दाँता, दँदाना।
टाँकौ—संज्ञा पु. [हि. टाँकना] (१) टँकी हुई चकती, जोड़, थिगली, पैवद, चिप्पी। (२) दोष, लाछन, कलक। उ.—नरहरि ह्वै हिरनाकुस मार्यौ, काम परयौ हो बाँको। गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं बिरद न लाग्यौ टाँकौ—१-११३।
टाँग—संज्ञा स्त्री. [सं. टंग] जाँघ से एड़ी तक अंग।
मुहा.—टाँग अड़ाना—(१) किसी काम में बेकार हाथ डालना या दखल देना। (२) विघ्न-बाधा डालना। (३) जिस विषय का ज्ञान या जानकारी न हो उसकी चर्चा करना। टाँग उठाना—जल्दी-जल्दी चलना। टाँग तले (नीचे) से निकलना—हार मानना, अधीन होना। टाँग तोड़ना—(१) अग भग करना। (२) बेकार करना। (३) टूटी फूटी भाषा लिखना-बोलना। (४) पैर थकाना। टाँग पसार कर सोना—(१) सुख की नींद सोना। (२) चैन के दिन बिताना। टाँग रह जाना—चलते-चलते पैर दुखने लगना। टाँग लेना—(१) टाँग पकडना। (२) कुत्ते की तरह काटना। (३) पिंड न छोड़ना। टाँग बराबर—छोटा सा। टाँग से टाँग बाँधकर बैठना—पास से न हटना।
टाँगन, टाँघन—संज्ञा पु. [हि. ठेंगना या सं. तुरंगम्] पहाड़ी टट्टू, छोटा घोड़ा।
टाँगना—क्रि. स. [हिं. टँगना] (१) अटकाकर लटकाना। (२) फाँसी पर चढाना।
टाँगा—संज्ञा पुं. [सं. टग] बड़ी कुल्हाडी।
संज्ञा पु. [हि. टँगना] एक घोड़े का एक गाडी।
टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री. [हि. टाँग+नोचना] नोच-खसोट, छीन-झपट।
टाँगी—संज्ञा स्त्री. [हि. टाँगा] कुल्हाडी।
टाँगुन—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मोटा अनाज।
टाँच, टाँचु—संज्ञा स्त्री. [हि. टाँकी] दूसरे का काम बिगाड़ने या चित्त बहकानेवाली बात, भाँजी।
संज्ञा स्त्री. [हि. टाँका] (१) सिलाई। (२) थिगली, जोड।
टाँचना—क्रि. स. [हि. टाँच] (१) सीना। (२) छीलना।
क्रि. अ—गुलछर्रे उडाते घूमना-फिरना।
टाँची—संज्ञा स्त्री. [स. टक=रुपया] रुपए कमर में बाँधने की लबी थैली, न्योजी, मियानी, बसनी।
संज्ञा स्त्री. [हि. टाँकी] भाँजी, खटकती बात।

टाँट, टाँटर—संज्ञा पुं. [हिं. टट्टी] खोपड़ी, कपाल।

मुहा.—टाँट के बाल उड़ना—(१) सिर के बाल गिरना। (२) पास में कुछ धन न रहना। (३) बहुत मार पड़ना। टाँट खुजाना—मार खाने को जी चाहना। टाँट गंजी करना—(१) बहुत मारना। (२) खूब धन खर्च कराना।

टाँठ, टाँठा—वि. [अनु. टन] (१) कड़ा (२)तगड़ा।

टाँड़—संज्ञा पुं. [सं. ताड़] बाँह का गहना, टँड़िया। उ.—कर कंकन तैं भुज टाँड भई।

संज्ञा पुं. [सं. अट्टाल, हिं. अटाला, टाल] (१) ढेर, टाल। (२) पंक्ति। (३) घरों की पंक्ति।

टाँड़ा—संज्ञा पु. [हि. टाँड़=समूह] (१) व्यापारी या बनजारों के सामान से लदे बैलों का समूह। (२) माल का एक स्थान से दूसरे को जाना, खेप चलाना।

मुहा.—टाँड़ा लदना—(१) बिक्री का माल लदना। (२) चलने की तैयारी होना। (३) मरने के समीप होना।

(३) व्यापारियों या बनजारों का चलता-फिरता झुंड। (४) नाव पर पार जानेवाले यात्रियों और व्यापारियों का समूह। (५) कुटुंब, परिवार।

संज्ञा पुं. [सं. तुड, हिं. टूँड़] एक हरा कीड़ा।

टाँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. तत्+डीन+उड़ान] टिड्डी।

टाँड़ौ—संज्ञा पुं. [हिं. टाँड़=समूह] पथिकों या व्यापारियों का समूह जो नाव द्वारा इस पार से उस पार जाता है। उ.—बहुत भरोसौ जानि तुम्हरौ अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ। लीजै बेगि निबेरि तुरतहीं सूर पतित कौ टाँड़ौ—१-१४६।

टाँयटाँय—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) टें टें जैसा कर्कश शब्द। (२) बकबक, बकवाद।

मुहा.—टाँयटाँय फिस—शुरू में बहुत हाथ-पैर मारे जायें पर बाद में जोश ठंडा हो जाना।

टाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. टनना] नसों का तनाव।

टाँसना—क्रि. स. [हिं. टाँचना] काटना-छाँटना।

क्रि. स. [हिं. टाँकना] टाँका मारना, सीना।

टाकू—संज्ञा पुं. [सं. तर्कु] टकुआ, तकुआ, टेकुरी।

टाट—संज्ञा पु. [सं. तंतु] (१) सन का मोटा कपड़ा।

मुहा.—टाट में मूँज की बखिया—दो भद्दी चीजों का मेल। टाट में पाट की बखिया—भद्दी और सस्ती चीज का सुंदर और मूल्यवान चीज के साथ मेल।

(२) कुल, वंश, बिरादरी।

मुहा.—एक ही टाट के—(१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने-बैठनेवाले, एक दल के।

(३) साहूकार या महाजन की गद्दी।

मुहा.—टाट उलटना—दिवालिया होना।

टाटक—वि. [हिं. टटका] (१) ताजा। (२) कोरा।

टाटबाफी—वि. [फ़ा. तारबाफी] कलाबत्तू के काम का, जिस पर कलाबत्तू का काम हो।

टाटर—संज्ञा पुं. [सं. स्थातृ=खड़ा हुआ] (१) टट्टर, टट्टी। (२) सिर की हड्डी, खोपड़ी।

टाटिका, टाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टी] छोटा टट्टर, टट्टी। उ.—सूर प्रभु कहा निहोरो मानत रंक त्रास टाटी कौ—१० उ. ७१।

टाठी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थाली, प्रा. ठाली, ठाडी] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़] भुजा का एक गहना, टाँड़, टँड़िया। उ.—बाहु टाड कर कंकन बाजूबंद एते पर हौ तौकी।

टाडर—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

टान—संज्ञा स्त्री. [सं. तान=फैलाव, खिंचाव] (१) तनाव, खिंचाव। (२) खींचने की क्रिया।

संज्ञा पुं. [सं. स्थाणु=थून, खंभा] मचान।

टानना—क्रि. स. [हिं. टान] तानना, खींचना।

टाप—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थापन, हि. थापन, थाप] (१) घोड़े का पद-तल या सुम। (२) घोड़े का पैर जमीन पर पड़ने का शब्द।

टापड़—संज्ञा पु. [सं. टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि. [हिं. टाप+फ़ा. दार] जिसके सिरे पर कुछ भाग उभरा हुआ हो।

टापना—क्रि. अ. [हिं. टाप] (१) घोड़े का पैर पटकना। (२) हैरान होकर फिरना। (३) उछलना-कूदना।

क्रि. स.—लाँघना-फाँदना।

क्रि. अ. [सं. तप] (१) बिना खाये-पिये रहना।

(२) ऐसी बात के आसरे में रहना जो हो न सके।
(३) हाथ मलना, पछताना।

टापर—संज्ञा पुं. [देश.] ओढ़ने की मोटी चादर।
संज्ञा पुं. [हिं. टाप] टट्टू आदि की सवारी।

टापा—संज्ञा पुं. [हिं. थाप] (१) मैदान। (२) ऊसर मैदान।(४) उछल-कूद, छलांग।
मुहा.—टाप देना—लंबे-लंबे डग भरना।

टापू—संज्ञा पुं. [हिं. टापा] (१) द्वीप। (२) टापा।

टाबर—संज्ञा पुं. [पंजाबी टब्बर] (१) लड़का, बच्चा। (२) परिवार, कुल, वंश।

टामक—संज्ञा पुं. [अनु.] डुग्गी, डुगडुगी।

टामन, टामनि—संज्ञा पुं. [सं. तंत्र] टोना, टोटका। उ.—टोना-टामनि जंत्र-मंत्र करि ध्यायौ देव-दुआरो री—१०-१३५।

टार—संज्ञा स्त्री. [हि. टालना] टालटूल।
क्रि. स.—टालना, ध्यान न देना।
प्र.—दीन्ह्यौ टार—टाल दिया, ध्यान न दिया, बचा गये। उ.—खेलन चले नदकुमार। दूत आवत जानि ब्रज मैं, आपु दीन्ह्यौ टार—५२४।
संज्ञा पुं. [सं.] घोड़ा।
संज्ञा पुं. [सं. अट्टाल, हि. टाल] राशि, ढेर।

टारत—क्रि. स. [हि. टालना] दूर करते हैं, मिटाते हैं, रहने नहीं देते, टालते हैं, निवारते हैं। उ.—(क) कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत। भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत—१-१२। (ख) चिंतत चित्त सूर चिंता पति मोह-मेरु दुख टरत न टारत—६-६२।

टारन—वि. [हि.टालना] दूर करनेवाले, मिटानेवाले, निवारक। उ.—कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ—१-५८।
संज्ञा स्त्री.—(१) टालने या सरकाने की क्रिया। (२) विचलित करने का भाव। उ.—कैसै कै पठवत वें आवत टारन को हित नेम—३३४८।

टारना—क्रि. स. [हि. टालना] हटाना, टरकाना।

टारि—क्रि. स. [हिं. टालना] (१) टेढ़ा करना। उ.—सूर केस नहि टारि सकै कोउ—१-२३४। (२) हटाना, खिसकाना। उ.—कोपि अगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं, ताहि जो सकै कोऊ उठाई।...... रहे पचि हारि नहिं टारि कोऊ सक्यौ—६-१३५। (३) बहलाकर, टालटूल करके, बातें बनाकर। उ.—खेलत जमुना तट गये आपुहि लाए टारि—५८६।

टारी—क्रि. स. [हिं. टालना] (१) दूर की, मिटायी, निवारी। उ.—(क) जे जन सरन भजे बनवारी। ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२ (ख) कठिन आपदा टारी—१-२८२। (२) धर्म आदि से विचलित की। उ.—पतिव्रता जालंधर-जुवती सो पति-ब्रत तैं टारी—१-१०४।

टारे—क्रि. स. [हि. टलना] (१) दूर किये, मिटाये, निवारे। उ.—(क) सर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे—१-२५। (ख) सूर सहाइ कियौ बन बसि कै बन बिपदा-दुख टारे—६-१४७। (२) अलग किये, हटाये, सरकाये। उ.—जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे—१-६४।

टारैं—क्रि. स. [हि. टालना] (१) हटाने पर, खिसकाने पर। (२) निकालने या खदेड़ने पर। उ.—नरक-कूपनि जाइ जमपुर परयौ बार अनेक। थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारैं न नेक—१-१०६।

टारै—क्रि. स. [हि. टालना] (१) हटाये जाने पर। उ.—निहचै एक असल पै राखै, टरै न कबहूँ टारै—१-१४२। (२) दूर करता है, निकालता है। उ.—सूरदास प्रभु अपने जन कौं, डर तैं नैंकु न टारै—१-२५७।

टारौं—क्रि. स. [हिं. टालना] (आदेश आदि का) पालन न करूँ, उल्लघन करूँ, न मानूँ। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे बचन लगि, सिव-बचननि कौं टारौं—६-१०८।

टारौ—क्रि. स. [हिं. टालना] दूर करो, मिटाओ, निवारण करो। उ.—(क) तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ—१-२१८। (ख) मारि कै ताहि जग-दुख टारौ—४-११। (ग)

परम पुनीत जानकी सँग लै कुल-कलंक किन टारौ—९-११५।

टार्यौ—क्रि. स. [हि. टालना] (१) दूर किया, मिटाया, निवारा। उ.—ग्राह ग्रसत गज कौ जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख-टार्यौ—१-१४। (२) हटाया, खिसकाया। उ.—सूरदास प्रभु प्रान-दान कियौ, पठयौ सिंधु उहाँ तैं टार्यौ—५७८।

टाल—संज्ञा स्त्री. [स. अट्टाल, हि. अटाला] (१) ऊपर-नीचे रखी चीजों का ढेर, अटाला, ऊँचा ढेर। (२) लकड़ी आदि की दूकान।

संज्ञा स्त्री [हि. टालना] टालने का बहाना।

टालटूल—संज्ञा स्त्री. [हिं. टालना] टालने का बहाना।

टालना—क्रि. स. [हि टलना] (१) हटाना, खिसकाना, सरकाना। (२) दूर भेजना, टरकाना, भगा देना। (३) दूर करना, मिटाना, निवारण करना। (४) किसी काम को आगे के लिए हटाना। (५) समय बिताना, (६) आज्ञा या आदेश का पालन न करना। (७) बहाना करके पीछा छुड़ाना।

मुहा.—दूसरे पर टालना—दूसरे को सौंपना। (८) झूठा वादा करना। (९) टरकाना, धता बताना। (१०) और का और करना, बदलना। (११) ध्यान न देना, दरा जाना, तरह देना।

टालमटाल, टालमटूल, टालमटोल—संज्ञा पु. [हि. टालना] टालने या टरकाने का बहाना।

टाला—वि. [देश.] आधा (भाग)।

टाली—संज्ञा स्त्री. [हि. टाला] (१) तीन वर्ष से कम की चंचल बछिया। उ.—पाई पाई है रे भैया, कुंज-पुंज मैं टाली। अबकैं अपनी हटकि चरावहु, जैहै भटकी घाली—५०३। (२) पशुओं के गले की घंटी। (३) एक बाजा (४) आधा रुपया, अठन्नी।

क्रि. स. [हिं. टालना] मिटायी, निभने न दी, पूरी न होने दी। उ.—जिन हति सकट प्रलंब तृनाव्रत इंद्र प्रतिज्ञा टाली—२५६७।

टाहली—संज्ञा पुं. [हि. टहल] सेवक, नौकर।

टिंड, टिंडा, टिंडसी, टिंडिश—संज्ञा पु. [स. टिंडिश] एक तरकारी, डेंड़सी, ढेंडसी।

टिंडी—संज्ञा स्त्री. [देश.] हल या चक्की की मूँठ।

टिकई—संज्ञा स्त्री. [हि. टीका] सफेद टीकेवाली गाय।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घोड़ा हाँकने का शब्द। (२) घड़ी के चलने का शब्द।

टिकटिकी, टिकठी—संज्ञा स्त्री. [स. त्रिकाष्ठ, हिं. तीन काठ] (१) अपराधियों को दंड या फाँसी देने का तीन लकड़ियों का ढाँचा। (२) ऊँची तिपाई।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकटकी] स्थिर दृष्टि।

टिकड़ा—संज्ञा पु. [हि. टिकिया] (१) गोल चिपटा टुकड़ा। (२) सोने चाँदी का जड़ाऊ टुकड़ा। (३) मोटी रोटी।

मुहा.—टिकड़ा लगाना—बाटी, मोटी रोटी या अंगाकड़ी सेंकना।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. टिकड़ा] छोटी मोटी रोटी।

टिकना—क्रि. अ. [सं. स्थित+कृ अथवा हिं. अ=नहीं+टिक=चलना] (१) ठहरना, डेरा करना। (२) घुली हुई चीज का तल में बैठना। (३) कुछ दिन तक काम देना या चलना। (४) जम जाना, बैठना, स्थिर रहना।

टिकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकिया] एक पकवान।

टिकली—संज्ञा स्त्री. [हि. टीका] (१) छोटी टिकिया। (२) छोटी बिंदी, चमकी। (३) छोटा टीका।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तकला] सूत बटने की फिरकी।

टिकसार—वि. [हि. टिकना] टिकाऊ।

टिकाई—संज्ञा पु. [हि. टीका] युवराज।

क्रि. स. [हि. टिकाना] टिकाकर, ठहराकर, स्थिर करके। उ.—दसरथ कह्यौ, देवहू भाष्यौ व्योम विमान टिकाई—९-१६२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकना] (१) रहने या ठहरने की क्रिया। (२) ठहराने की मजदूरी।

टिकाऊ—वि. [हि. टिकना] (१) कुछ दिन रहने-बसने वाला। (२) कुछ दिन काम देनेवाला।

टिकान—संज्ञा स्त्री [हि. टिकना] (१) रहने या ठहरने का भाव। (२) रहने या ठहरने का स्थान।

टिकाना—क्रि. स. [हि. टिकना] (१) रहने या ठहरने का स्थान देना, ठहराना। (२) सहारे खड़ा करना,

जमाना ।(३) सहारा देना ।(४) रुपया पैसा हाथधरना ।

टिकाव—संज्ञा पुं. [हिं. टिकना] (१) ठहरने का भाव । (२) स्थिरता । (३) ठहरने का स्थान, पडाव ।

टिकिया—संज्ञा स्त्री. [स. वटिका] (१) छोटा गोल-चिपटा टुकडा । (२) एक मिठाई । (३) छोटी मोटी रोटी, छोटी बाटी ।

संज्ञा स्त्री. [हि. टीका] (१) माथा । (२) माथे-पर लगी बिंदी, टिकुली ।

टिकुरा—संज्ञा पुं. [देश.] टीला, भीटा ।

टिकुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकुआ] सूत बटने की फिरकी ।

टिकुला, टिकोरा, टिकोला—संज्ञा पु. [हिं. टिकिया] कच्चा आम जिसमें जाली न पडी हो ।

टिकुली—संज्ञा स्त्री. [हि. टिकली] बिंदी, टिकली ।

टिकुवा—सज्ञा पुं. [हिं. टेकुआ] चरखे का तकला ।

टिकैत—संज्ञा पु. [हि. टीका + ऐत (प्रत्य.)] उत्तराधिकारी राजकुमार, युवराज । (२) सरदार, स्वामी ।

वि. [हिं. टिकना] जमकर रहनेवाला ।

टिकोर—संज्ञा स्त्री. [हि टकोर] (१) हल्की चोट या ठेस । (२) डके की चोट । (३) धनुष की टकार ।

टिकोरा—संज्ञा पुं. [हि. टिकिया] कच्ची अंबिया ।

टिक्कड़—संज्ञा पु. [हिं. टिकिया] (१) बड़ी टिकिया । (२) हाथ की मोटी रोटी, बाटी । (३) मालपुआ ।

टिक्का—संज्ञा पु. [हिं. टीका] (१)तिलक । (२) याव ।

टिक्की—संज्ञा स्त्री. [हि. टिकिया] (१)छोटी टिकिया ।

मुहा.—टिक्की जमना (बैठना, लगना)—जुगत बैठना ।

(२) छोटी मोटी रोटी, बाटी । (३) एक पकवान ।

संज्ञा स्त्री. [हि.टीका] (१) बिंदी, टिकुली । (२) गोल टीका ।

टिघलना—क्रि. अ. [सं तप + गलन] पिघलना ।

टिघलाना—क्रि स. [हि. टिघलना] पिघलाना ।

टिटकारना—क्रि. स. [अनु.] टिकटिक करके हाँकना ।

टिटिहू, टिटिहा, टिटिहरी—सज्ञा स्त्री. [सं. टिट्टिभ हिं. टिटिह] पानी के किनारे रहनेवाली कुररी नामक चिड़िया जिसकी बोली कड़ई होती है ।

टिटिहा रोर—संज्ञा पु. [हि. टिटिहा+रोर] (१) कुररी का कर्कश स्वर । (२) शोर-गुल, कोलाहल । (३) रोना-पीटना ।

टिट्टिभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टिटिहरी । (२) टिड्डी ।

टिट्टिभा, टिट्टिभी—संज्ञा स्त्री. [सं. टिट्टिभ] मादा टिटिहरी ।

टिड्डा—संज्ञा पुं. [सं. टिट्टिभ] एक परदार कीड़ा ।

टिड्डी—संज्ञा स्त्री. [हि. टिड्डा]एक तरह का टिड्डा ।

मुहा.—टिड्डी दल—बडी भारी भीड़ या सेना ।

टिढ़बिंग—वि. [हि. टेढा+स. वक] टेढा-मेढ़ा ।

टिप—संज्ञा स्त्री. [हि. टीपना] साँप के काटने की एक रीति जिससे रक्त में विष मिल जाय ।

टिपकना—क्रि. अ. [हि. टपकना] बूँद बूँद चूना ।

टिपका—संज्ञा पुं. [हि. टिपकना] बूँद, कतरा ।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बूँद टपकने का शब्द ।

टिपवाना—क्रि. स. [हि. टीपना] (१) दबवाना । (२) पिटवाना ।

टिपारा, टिपारो—संज्ञा पुं. [हि. तीन+फ़ा. पार:= टुकड़ा] तीन शाखाओं वाली एक मुकुटनुमा टोपी ।

टिपुर—संज्ञा पु. [देश.] (१) घमड । (२) पाखंड ।

टिप्पणी, टिप्पनी—सज्ञा स्त्री. [स. टिप्पनी] (१) टीका, व्याख्या । (१) विशेषण सूचक लेखा ।

टिप्पन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टीका । (२) जन्मपत्री ।

टिप्पस—संज्ञा स्त्री. [देश.] उपाय, युक्ति, जुगत ।

टिबरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पहाडो की छोटी चोटी ।

टिब्बा—संज्ञा पु. [देश.] पहाडो का छोटा शिखर ।

टिमकी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) छोटा पात्र । (२) बच्चो का पेट ।

टिमटिमाना—क्रि. अ. [स. तिम = ठडा होना] (१) मद-मद जलना, धीमी रोशनी देना । (२) बुझने पर हो होकर जलना ।

टिमाक—संज्ञा स्त्री. [देश.] बनाव, श्रृंगार, ठसक ।

टिमिला—सज्ञा पु. [देश.] लडका, छोकरा ।

टिमिली—संज्ञा स्त्री. [हि. टिमला] लडकी, छोकरी ।

टिम्मा—वि. [देश.] नाटे डील डौल का ।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री. [हि. टर+फिस] चीं-चपड़ ।

टिलवा—सज्ञा पु. [देश.] (१) गंठीला लक्कड़ । (२)

नाटा या ठिगना आदमी। (३) चापलूस आदमी।
टिल्ला—संज्ञा पुं [हि. ठेलना] धक्का, चोट, प्रहार।
टिल्लेनवीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिल्ला+फा. नवीसी] (१) हीन या नीच सेवा। (२) बेकार का काम। (३) टालटूल, टालमटोल।
टिसुआ—संज्ञा पुं. [हि. आँसू, अँसुआ] आंसू।
टिहुकना, टिहूकना—क्रि अ. [देश.] (१) ठिठकना, झिझकना। (२) चौंक पडना।
टिहुनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुटना] (१) घुटना, टखना। (२) कोहनी।
टिहूक—संज्ञा स्त्री. [देश.] झिझक, चौंक।
टींड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. टिड्डी] टिड्डी।
मुहा.—टींड़ी दल—बड़ी भीड़ या सेना।
टीक—संज्ञा स्त्री. [सं. तिलक] (१) गले का एक गहना। (२) माथे का एक गहना। (२) रक्त की धार।
टीकठ—संज्ञा पु. [हि. टिकना] रीढ़ की हड्डी।
टीकन—संज्ञा पुं. [हिं. टेकना] टेक का खंभा, थूनी।
टीकना—क्रि. स. [हिं. टीका] तिलक करना।
टीका—संज्ञा पु. [सं. तिलक] (१) रोली-चदन का तिलक। (२) विवाह तय होने की एक रीति, तिलक। (३) दोनों भौहो के बीच का भाग। (४) श्रेष्ठ पुरुष। (५) राजतिलक। (६) युवराज। (७) प्रधानता या विशेषता की छाप।
मुहा.—टीके का—विशेषता रखनेवाला।
(८) राजा या स्वामी को दी जानेवाली भेंट। (९) माथे का एक गहना। (१०) दाग, धब्बा।
सज्ञा स्त्री. [सं.] व्याख्या, अर्थ का स्पष्टीकरण।
टीकाकार—सज्ञा पुं. [सं] व्याख्या करनेवाला।
टीकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टीका] टिकुली। टिकिया।
टीकुर—सज्ञा पुं. [देश.] (१) ऊँची जमीन। (२) वन।
टीको, टीकौ—संज्ञा पु. [हि. टीका] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति, शिरोमणि, अगुआ। उ —प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ। और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ—१-१३८। (२) रोली चदन आदि का तिलक। उ.—भ्रुकुटी धनुष नैन सर सॉधे सिर केसरि को टीको—१८४१। (३) माथे का एक गहना। उ.—मोतिन माल जराउ को टीको करए फूल नक बेसरि—११२०। (४) भेंट, उपहार। उ.—रघुकुल प्रकटे हैं रघुबीर। देस-देस तें टीकौ आयौ, रतन कनक मनि हीर—९-१८। (ख) लोक-लोक को टीको आयौ—२६३०।
टीड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिड्डी] टिड्डी।
टीप—संज्ञा स्त्री. [हि. टीपना] (१) हाथ से दबाने की क्रिया या भाव। (२) धीरे-धीरे ठोकने का भाव। (३) गच या फर्श की पिटाई। (४) ईंट के जोड़ो में मसाला भरना। (५) टकार, ध्वनि। (६) जोर की तान। (७) टांकने या लिखने का काम। (८) दस्तावेज। (९) जन्मपत्री।
वि.—सबसे अच्छा या बढ़िया।
टीपटाप—संज्ञा स्त्री. [देश.] सजावट, ठाट-बाट।
टीपना—क्रि. स. [सं. टेपन = फेंकना] (१) हाथ से दबाना। (२) धीरे-धीरे ठोकना। (३) ऊँचे स्वर से गाना।
क्रि. स. [सं. टिप्पनी] लिख या टांक लेना।
टीबा—संज्ञा पु. [हिं. टीला] टीला, ढूह, भीटा।
टीमटाम—संज्ञा स्त्री. [देश.] ठाट-बाट सजावट।
टीला—सज्ञा पुं. [स. अष्ठीला = उभार] १) पृथ्वी का ऊँचा भाग, ढूह, भीटा। (२) छोटी पहाड़ी।
टीस—संज्ञा स्त्री. [देश.] रह-रहकर उठनेवाली पीड़ा, कसक, चसक,
टसना—क्रि. अ. [हि. टीस] रहरहकर दर्द उठना।
टुँगना—क्रि. स. [हि. टुनगा] कुतरकर चबाना।
टुँच—वि. [सं. तुच्छ] क्षुद्र, टुच्चा, ओछा।
मुहा.—टुँच भिड़ाना (लड़ाना)—(१) थोड़ी पूँजी से काम करना। (२) थोडे धन से जुआ खेलना।
टुंटा—वि. [सं. रुंड, हि. टूटा] जिसका हाथ कटा हो।
टुंड—संज्ञा पुं. [स. रुंड] (१) डाल शाखारहित वृक्ष, ठूंठ। (२) कटा हुआ हाथ। (३) एक प्रेत।
टुंडा—वि [हि तुड] (१) डाल-शाखा-रहित। (२) लूला, लुज। (३) सींगटूटा, डूंडा।
संज्ञा. पुं.—(१) लूला या लुंजा आदमी। (२) एक सींगवाला बैल।

टुंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंडि] नाभि, ढोंढी, तोंदी।
संज्ञा स्त्री. [सं. दंड] भुजा, बाहुदंड, मुश्क।
टुइयाँ—वि. [देश.] ठिगना, नाटा, बौना।
टुक—वि. [सं. स्तोक+थोड़ा] थोड़ा, तनिक।
मुहा.—टुक सा—थोड़ा सा, जरा-सा।
क्रि. वि.—थोड़ा, जरा, तनिक।
टुकड़गदा—संज्ञा पुं. [हि. टुकड़ा+फा. गदा] भिखारी।
वि.—(१) तुच्छ, हीन। (२) दरिद्र, कंगाल।
टुकडतोड़—वि. [हि. टुकड़ा+तोड़ना] दूसरे के आश्रित।
टुकड़ा—संज्ञा पुं. [सं. स्तोक=थोड़ा, हि. टुक, टूक + ड़ा (प्रत्य.)] (१) छोटा खंड या अंश।
मुहा.—टुकड़े-टुकड़े उड़ाना (करना)—काटकर छोटे-छोटे कई भाग करना।
(२) रोटी का टुकड़ा, ग्रास, कौर।
मुहा.—दूसरे का टुकड़ा तोड़ना—भोजन के लिए दूसरे के आश्रित होना। टुकड़ा तोड़कर (सा) जवाब देना—साफ इनकार करना। दूसरे के टुकड़ों पर पड़ना—भोजन के लिए दूसरे के आश्रित होना। टुकड़ा माँगना—भीख माँगना।
टुकड़ी, टुकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. टुकड़ा] (१) छोटा टुकड़ा। (२) दल, झुंड, जत्था। (३) सेना का एक भाग। (४) स्त्रियों का लहँगा। (५) कार्तिक स्नान का मेला।
टुकनी—संज्ञा स्त्री. [हि. टोकनी] टोकरी, डलिया।
टुघलाना—क्रि. अ. [देश.] (१) चूसना। (२) जुगाली करना।
टुंचा—वि. [सं. तुच्छ] ओछा, छिछोरा, नीच।
टुटका—संज्ञा पु. [हिं. टोटका] तंत्र-मंत्र, टोना।
टुटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोंटी] छोटी टोंटी।
टुटपुँजिया—वि. [हि. टूटी+पूँजी] थोड़े धनवाला।
टुटरूँ—संज्ञा पुं. [अनु.] छोटी पंडुकी या फाख्ता।
मुहा.—टुटरूँ सा—अकेला, एकाकी।
टुटरूँ टूँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पडुकी का शब्द।
वि.—(१) अकेला। (२) दुबला-पतला।
टुटुका—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चमड़ा-मढ़ा बाजा।
टुटुहा—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।
टुटैला—वि. [हि. टूटना] टूटा फूटा।
टुड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंडि] (१) नाभि। (२) ठोड़ी।
संज्ञा स्त्री. [हि. टुकड़ी] छोटा टुकड़ा, डली।
टुनकी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक परदार कीड़ा।
टुनगा, टुनगी—संज्ञा स्त्री. [सं. तनु=पतला + अग्र= अगला] टहनी का अगला कोमल भाग।
टुनटुना—संज्ञा पुं. [देश.] एक नमकीन पकवान।
टुनहाया—संज्ञा पु. [हि. टोनहाया] टोना करनेवाला।
टुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] मिट्टी का टोंटीदार पात्र।
टुनिहाई—संज्ञा स्त्री. [हि. टोनहाई] टोना करनेवाली।
टुन्ना—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] नाल जिसमें फूल लगता है।
टुपकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) धीरे से काटना या डंक मारना। (२) चुगली खाना, किसी के विरुद्ध कुछ कहना। (३) धीरे से मारना।
टुबी—संज्ञा स्त्री. [हि. डुबना] गोता, डुब्बी।
टुर्रा—संज्ञा पुं. [देश.] टुकड़ा। अनाज का दाना।
टुलकना—क्रि. अ. [हि. ढुलकना] लुढ़कना।
टुलड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का बाँस।
टुसकना—क्रि. अ. [हि. टसकना] रोना-धोना।
टूँक—संज्ञा पुं. [हिं. टूक] टुकड़ा।
टूँगना—क्रि. स. [हिं. टुनगा] (१) कुतर कर चबाना। (२) संकोच या चिंता से बहुत धीरे-धीरे खाना।
टूँड़—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] (१) मच्छड़, मक्खी आदि के अगले बाल। (२) जौ-गेहूँ आदि की बाल के दाने के कोश का नुकीला सींग।
टूँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) जौ-गेहूँ की बाल के दाने के कोश का नुकीला सींग। (२) तोंदी, नाभि। (३) गाजर-मूली की नोक। (४) नुकीला भाग, नोक।
टूक, टूकर, टूका—संज्ञा पुं. [सं. स्तोक] (१) टुकड़ा, खंड। उ.—(क)सूर- ससि कह्यौ, यह असुर, तव कृष्नजू लै सुदरसन सु द्वै टूक कीन्ह्यौ—८-८। (ख) लखन कह्यौ, करवार सम्हारौं। कुंभकरन अरु इंद्रजीत कौं टूक-टूक करि डारौं—९-१४३। (२) रोटी का टुकड़ा। (३) भीख।
टूकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टूक] (१) टुकड़ा। (२) भीख।
टूट—संज्ञा स्त्री. [हि. टूटना] (१) टूटा हुआ भाग।

(२) टूटने का भाव। (३) छुटा हुआ शब्द आदि जो वाद में लिखा जाय।

संज्ञा पुं.—(१) घाटा, कमी। (२) भूल, चूक।

टूटत—क्रि. अ. [हिं. टूटना] टूटते ही, टुकडे-टुकडे होते ही। उ.—टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ, ज्यौं तारागन भीर—६-२३।

टूटना—क्रि. स. [सं. त्रुट] (१) खडित या भग्न होना। (२) शरीर के किसी जोड का उखडना। (३) क्रम या सिलसिला भग होना। (४) झपटना। (५) वहुत से लोगो का एक साथ आ जाना, पिल पडना।

मुहा.—टूट टूट कर—वहुत ज्यादा।

(६) आक्रमण या धावा करना। (७) एकाएक आ जाना। (८) अलग होना, मेल न रहना। (९) सवंध छूटना, लगाव न रहना। (१०) दुवला-पतला होना।

मुहा.—(कुएँ आदि का) पानी टूटना—पानी कम होना।

(११) निर्धन हो जाना, विगड जाना। (१२) चालू न रहना, वद होना। (१३) किले पर शत्रु का अधिकार होना (१४) रुपये का वसूल न होना। (१५) हानि या घाटा होना। (१६) शरीर में पीड़ा होना। (१७) पेड का फल तोड़ा जाना।

टूटा—वि. [हिं. टूटना] भग्न, खडित।

यौ.—टूटा फूटा—वेकार, निकम्मा, वरता हुआ।

मुहा.—टूटी फूटी वात(वोली)(१) जिस वात में क्रम या सवध न हो। (२) जो वात स्पष्ट न हो। टूटी वाँह गले पड़ना—अपाहिज के निर्वाह का भार पड़ना।

(२) दुवला-पतला। (३) निर्धन, दरिद्र।

संज्ञा पु. [हिं. टोटा] घाटा, नुकसान।

टूटि—कि. अ. [हिं. टूटना] (१) टूट कर, टुकड़े-टुकड़े होकर। उ.—गज दोउ दंत टूटि धर परे—७-२। (ख) पाट गए टूटि, परी लूटि सब नगर मैं, सूर दरवान कह्यौ जाइ टेरी—६-१३८। (ग) पैरि पाटि टूटि परे, भागे दरवाना—६-१३६। (घ) सहज कपाट उघरि गये ताला-कूँची टूटि—२६२५।

मुहा.—टूटि परीं—दल वाँध कर सहसा आक्रमण किया। उ.—टूटि परी चहुँ पास घेरि लीन्हो वलभाई—३४१६।

टूटी—वि. [हिं. टूटना] भग्न, खडित, टुकड़े-टुकडे। उ.—टूटी छानि मेघ जल वरसैं—१-२३६।

मुहा.—टूटी फूटी वात—जो वात स्पष्ट न हो। उ.—सीत पित्त कफ कंठ निरोधे रसना टूटी फूटी वात।

टूटे—क्रि. अ. [हिं. टूटना] (१) टुकड़े-टुकडे हो गये। उ.—जै-जै रघुनाथ कहत वंधन सव टूटे—६-६७। (२) ढह गये, दूसरे के अधिकार में चले गये। उ.—घूँघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी—६५०।

टूटै—क्रि. अ. [हिं टूटना] (१) खडित होता है, भग्न होता है।

मुहा.—टूटै वात—अस्पष्ट या असबद्ध वात (निकलती है)। उ.—सीत-वात-कफ कंठ विरोधै, रसना टूटै वात—१-३१३।

(२) लपकता है, दौडता है। उ.—करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै—२-१६।

टूटैगी—क्रि. स. [हिं. टूटना] टूट जायगी। उ.—तव मैं कह्यौ खीझि, हरि छाँड़हु, टूटैगी मोतिन लर मेरी—१२०६।

टूटौ- वि. [हि. टूटना] टूटा, भग्न हुआ, खडित। उ.—टूटी छानि, मेघ जल वरसैं, टूटौ पलँग विछइयै—१-२३६।

टूटयौ—क्रि. स. [हि. टूटना] (१) टूटा, भग्न हुआ, खडित हुआ। उ.—सव नृप पचे धनुष नहिं टूटयौ तव विदेह दुख पायौ—सारा. २८८।-(२) संबंध छूट गया, लगाव न रहा। उ.—जा तैं आँगन खेलत देख्यौ, मैं जसुदा कौ पूत री। तव तैं गृह सौं नातौ टूट्यौ, जैसैं काँचौ सूत री—१०-१३६। (२) ढह गया। उ.—सखी री कठिन मान गढ़ टूट्यौ—२१५२।

टूठना—क्रि. अ. [सं. तुष्ठ, प्रा तुट्ठ] संतुष्ट होना।

टूठनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. टूठना] सतोष, तुष्टि।

टूठे—क्रि. अ. [हिं. टूठना] सतुष्ट हुए। उ.—हमसौं मिले वर्ष द्वादस दिन चारिक तुम सों टूठे—३२८०।

टूना—संज्ञा पुं. [हिं. टोना] जादू-टोना ।

टूम—संज्ञा स्त्री. [अनु. टुन टुन] (१) गहना, माल ।

यौ.—टूमटाम—(१) गहना,जेवर । (२) बनाव-सिंगार । टूम छल्ला—छोटा मोटा गहना ।

(२) सुंदर स्त्री । (३) मालदार स्त्री । (४) चालाक आदमी । (५) झटका, धक्का । (६) ताना, व्यंग्य ।

टूमना—क्रि. स. [अनु.] (१) धक्का या झटका देना । (२) ताना मारना, व्यंग्य करना ।

टूसा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) टुकड़ा । (२) एक फूल ।

टूसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टूसा] अधखिला फूल, कली ।

टें—संज्ञा स्त्री. [अनु.] तोते या सुए की बोली ।

यौ.—टें टें—व्यर्थ की बकवाद ।

मुहा.—टें होना (बोलना)—चटपट मर जाना ।

टेंकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का नृत्य ।

टेंगड़ा, टेंगना, टेंगर, टेंगरा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] एक मछली जो मुँह से गनगुनाती-सी है ।

टेंघुना—संज्ञा पुं. [सं. अष्ठीवान्] घुटना ।

टेंघुनी -संज्ञा स्त्री. [हि. टेंघुना] घुटना ।

टेंचन—संज्ञा पुं. [हि. टेक] खंभा, चाँड, टेक ।

टेंट—संज्ञा स्त्री. [देश.] कमर पर धोती की ऐंठन या मुर्री जिसमें रुपया-पैसा भी रखा जाता है ।

मुहा.—टेंट में कुछ होना—पास में रुपया-पैसा होना ।

संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड, हिं. टोंट] (१) कपास की ढोढ़ या डोडा जिससे रुई निकलती है । (२) करील का कड़ुआ फल ।

टेंटड़, टेंटर—संज्ञा पु. [सं. तुड] रोग या चोट से आँख के डेले का सूजा हुआ मांस, ढेंढर ।

टेंटा, टेंटार—संज्ञा पुं. [देश.] एक चितकबरा पक्षी ।

टेंटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) करील । उ.—सूर कहौ कैसे रुचि मानै टेंटी के फल खारे । (२) करील का फल, कचड़ा ।

संज्ञा पु. [हिं टें टें (अनु.)] टर्रानेवाला ।

वि.—चपल, चचल ।

टेंटुआ, टेंटुवा—संज्ञा पुं. [देश.] गला, घीची ।

टेंटें—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) तोते की बोली । (२) व्यर्थ की बकवाद या हुज्जत ।

मुहा.—टें टें करना—बकवाद या हुज्जत करना ।

टेंव, टेउ—संज्ञा स्त्री. [हि. टेक, टेव] आदत, स्वभाव, प्रकृति । उ.—(क) विषय-विकार-दवानल उपजी, मोह-बयारि लई । भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेंव गई—१-२९९ । (ख) जदपि टेंव तुम जानति उनकी तऊ मोहि कहि आवै—३७९३ ।

टेउकन—संज्ञा पुं. [हिं. टेक] आड़, रोक ।

टेउकी—संज्ञा स्त्री. [हि. टेक] आड, रोक, टिकान ।

टेक—संज्ञा स्त्री. [हि. टिकना] (१) रोक का खंभा, थूनी, चाँड । (२) रोक, सहारा । (३) संकल्प, दृढ निश्चय, अड, हठ, जिद । उ.—(क) मोकौं मुक्ति विचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी । श्रम तैं तुम्हैं पसीना ऐहै, कत यह टेक करी—१-१३० । (ख) लोगनि तिहिं बहु विधि समुझायौ । पै तिहिं मन-संतोष न आयौ । तब हरि कह्यौ टेक परिहरौ भीष्म पितामह कहैं सो करौ—१-२६१ ।

मुहा.—टेक निभना (रहना)—(१) हठ पूरा होना । (२) प्रतिज्ञा पूरी होना । टेक गहना (पकड़ना)—हठ या जिद करना ।

(४) आश्रय, अवलंब, सहारा । उ.—अब मोकौं धरि रही न कोऊ, तातैं जाति मरी । मेरैं मात-पिता- पति-बंधू, एकै टेक हरी—१-२५४ । (५) बैठने का ऊँचा चबूतरा या वेदी । (६) ऊँचा टीला, छोटी पहाड़ी । (७) बान, आदत, संस्कार । (८) गीत का चरण जो बार बार गाया जाय ।

टेकड़ा—संज्ञा पुं. [हि. टेक] (१) टिकान । (२) शांति या आराम से बैठने की क्रिया ।

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. टेक] (१) ऊँचा टीला, छोटी पहाड़ी । (२) टिकान । (३) शांति या आराम से बैठने की क्रिया या रीति ।

टेकत—क्रि स. [हि. टेकना] (चलते, उठते, बैठते समय किसी वस्तु को) हाथ से पकड़ते हैं, सहारे के लिए थामते हैं । उ.—(क) स्याम उलटे परे देखै बढ़ी सोभा लहरि । सूर प्रभु कर सेज टेकत, कबहुँ

टेकत ठहरि—१०-६७। (ख) नाचत गावत गुन की खानि। सोभित भए टेकत पिय पानि।

टेकन, टिकनी—संज्ञा पुं. [हिं. टेकना] रोक, थूनी।

टेकना—क्रि. स. [हिं. टेक] (१) उठने-बैठने में किसी चीज का सहारा लेना। (२) शरीर को सहारे के लिए टिकाना या ठहराना।

मुहा.—माथा टेकना—प्रणाम या दंडवत करना।

(३) सहारे के लिए थामना। (४) हाथ का सहारा लेना। (५) हठ ठानना।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का जंगली धान।

टेकर, टेकरा—संज्ञा पुं [हिं. टेक] ऊँचा टीला।

टेकरी—संज्ञा स्त्री [हिं. टेकरा] ऊँचा टीला।

टेकला—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेक] धुन, रट।

टेकहु—क्रि. स. [हिं. टेकना] रोको, थामो। उ.—टेकहु गिरि गोवर्धनराई—१०५८।

टेकान—संज्ञा पुं. [हिं. टेकना] (१) टेक, थूनी। (२) चबूतरा जिस पर बोझा रखकर सुस्ताया जा सके।

टेकाना—क्रि. स. [हिं. टेकना] उठने या चलने-फिरने में सहारा देने को पकड़ना या थामना।

टेकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकना] फँसाने की कील।

टेकि—क्रि. स. [हिं. टेकना] (१) उठते, चलते, चढ़ते समय किसी वस्तु को थाम कर, सहारा लेकर। उ.—गृह गृह प्रति द्वार फिरयौ, तुमकौं प्रभु छाँड़े। अंध-अंध टेकि चलै, क्यौं न परै गाड़े—१-१२४। (२) पकड़कर, थामकर। उ.—चरन टेकि दोउ हाथ जोरि कै विनती क्यौं नहिं कीजै—६-१२६।

टेकी—वि [हिं. टेक] (१) कही हुई बात या प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। उ.—ऐ तो अलि उनहीं के संगी अपनी बात के टेकी—३२८८। (२) हठी, जिद्दी।

मुहा.—गौं के टेकी—पक्का मतलबी, बड़ा स्वार्थी। उ.—तुम तौ अलि उनहीं के संगी अपनी गौं के टेकी—३२८७।

टेकुआ, टेकुवा—संज्ञा पु. [हिं. तकला] चरखे का तकुला जिस पर सूत लपेटा जाता है।

संज्ञा पुं. [हिं. टेक] टिकाने की चीज।

टेकुरा—संज्ञा पुं. [देश.] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकुआ] (१) तकला। (२) फिरकी।

टेघरना—क्रि. अ. [हिं. टिघलना] पिघलना।

टेटका—संज्ञा पुं. [सं. ताटंक] कान का एक गहना।

टेटा—संज्ञा पुं. [हिं. टेंट] करील का कड़ुआ फल। उ.—सूरदास गोपाल छाँड़ि कै चूसे टेटा खारे—३०४५।

टेढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेढ़ा] (१) टेढ़ापन। (२) ऐंठ।

वि.—जो सीधा न हो, वक्र, कुटिल।

टेढ़बिड़ंगा—वि. [हिं. टेढ़ा+बेढंगा] टेढ़ा-मेढ़ा।

टेढ़ा—वि. [स. तिरस्] (१) जो सीधा न हो, वक्र, कुटिल। (२) तिरछा। (३) जो सरल न हो, कठिन। (४) जो शिष्ट या नम्र न हो, उजड्ड।

मुहा.—टेढ़ा पड़ना (होना)—(१) उग्र या कठोर होना (२) अकड़ना, ऐंठना।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेढ़ा] टेढ़ापन।

टेढ़ापन—संज्ञा पु. [हिं. टेढ़ा+पन (प्रत्य.)] टेढ़ा होने का भाव, टेढ़ाई।

टेढ़ी—वि.स्त्री. [हिं. टेढ़ा] (१) जो सीधी न हो, वक्र।

मुहा.—टेढ़ी चितवन—तिरछी नजर।

(२) जो समानांतर न हो, तिरछी। उ.—(क) अरुन लोचन भौंह टेढ़ी बार बार जँभात—१०-१००। (ख) रोकि रहत गहि गली साँकरी टेढ़ी बाँधत पाग—१०-३२८। (३) जो सरल न हो, कठिन।

मुहा.—टेढ़ी खीर—कठिन या मुश्किल काम।

(४) जो शिष्ट या नम्र न हो, उग्र, उजड्ड। उ.—कुटिल कुचील जन्म की टेढ़ी सुंदर करि घर आनी—३०८६।

मुहा.—टेढ़ी आँख से देखना—क्रोध से देखना, दुष्टता के व्यवहार का विचार करना। टेढ़ी आँखें करना—क्रोध से देखना, बिगड़ना।

टेढ़ी (टेढ़ी-सीधी) सुनाना—बुरा-भला कहना।

टेढ़े, टेढ़ै, टेढ़ो—क्रि. वि. [हिं. टेढ़ा] घूम कर, सीधे नहीं।

मुहा.—टेढ़ टेढ़े (टेढ़ो टेढ़ो) जाना (चलना

धाना)— घमंड करना। टेढे टेढे जात—घमंड करता है, इतराता है। उ.—कबहूँ कमला चपल पाय के टेढे टेढे (टेढ़ैं टेढ़ैं) जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत, भोजन को बिललात—२-२२। टेढ़ैं टेढ़ैं धायौ—इतराया, घमंड किया। उ.—टेढी चाल, पाग सिर टेढी, टेढ़ैं टेढ़ैं धायौ—१-३०१। टेढे बताना—घमंड से बात करना। टेढे बतात—घमंड से बकते हो। उ.—टेढे कहा बतात कंस कौं देहु कमल अब—५८६।

टेना—क्रि. स. [देश.] (१) हथियार आदि तेज करने को रगड़ना। (२) मूँछें ऐंठना या मरोड़ना।

टेनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] छोटी उँगली।

टेपारा—संज्ञा पुं. [हि. टिपारा] टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शाखाएँ होती हैं।

टेम—संज्ञा स्त्री. [हि. टिमटिमाना] दीपक की लौ।

टेमन—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का साँप।

टेर—संज्ञा स्त्री. [सं. तार] (१) गाने की तान, टीप। (२) पुकार, हाँक, बुलाहट। उ.—(क) हा लछिमन सुनि टेर जानकी, बिकल भई, आतुर उठि धाई—९-५६। (ख) स्याम स्याम कहि टेर लगायौ—११-७७। (ग) सिखिनि सिखर चढ़ि टेर सुनायौ। बिरहिनि सावधान ह्वै रहियौ सजि पावस दल आयौ—३६४६।

संज्ञा स्त्री. [सं. तार=तै करना] निर्वाह, गुजर।

मुहा.—टेर करना—बिताना, काटना, निबाहना।

टेरति—क्रि. स. [हिं. टेरना] बुलाती (है), पुकारती (है), हाँक लगाती (है)। उ.—(क) जसुमति सुनत चली अति आतुर, ब्रज घर-घर टेरति लै नाम—१०-२३५। (ख) हरि कौं टेरति है नँदरानी। बहुत अबार भई कहँ खेलत रहे मेरे सारँगपानी—१०-२३६। (२) चिल्लाती है। उ.—ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबारयौ, टेरति जरी जरी—१-१६।

टेरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेरना] संगीत की तान, टीप। उ.—तन-मन लियौ चुराइ हमारौ वा मुरली की टेरन—३२७७।

टेरना—क्रि. स. [हिं. टेर+ना (प्रत्य.)] (१) तान निकालना, सस्वर गाना। (२) बुलाना, पुकारना, हाँक लगाना।

क्रि. स. [सं. तोरण=तै करना] (१) पूरा करना, निभाना। (२) बिताना, काटना, निर्वाह करना।

टेरहीं—क्रि. स. [हिं. टेरना] बुलाते हैं, पुकारते हैं। उ.—ग्वाल-बाल सब टेरहीं, गैया बन चारन—१०-४३६।

टेरा—क्रि. स. [हिं. टेरना] बुलाया, पुकारा।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) अकोल का पेड़। (२) पेड़ का तना। (३) शाखा, डाली।

टेरि—क्रि. स. [हि. टेरना] ऊँचे स्वर से चिल्लाकर, हाँक लगाकर। उ.—(क) प्रभु हौं बड़ी देर कौ ठाढौ टेरि कहत हौं यातैं। मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं—१-१३७। (ख) द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख, जबहीं सो हरि टेरि पुकारौ।

संज्ञा स्त्री. [हि. टेर] पुकार, हाँक। उ.—ग्राह जब गजराज घेरयौ, बल गयौ हारी। हारि कै जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरधारी—१-१७६।

टेरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] टहनी, पतली शाखा।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पौधा। एक फली।

क्रि. स. [हि. टेरना] (१) बुलाया, पुकारा, दुहाई दी, हाँक लगायी। उ.—इत-उत देखि द्रौपदी टेरी। ऐंचत बसन, हँसत कौरव सुत, त्रिभुवन-नाथ, सरन हौं तेरी—१-२५१। (२) चिल्लाकर, पुकार-कर। उ.—पाट गये टूटि, परी लूटि सब नगर मैं, सूर दरवान कह्यौ जाइ टेरी—९-१३८।

टेरै—क्रि. स. [हिं. टेरना] टेरता है, बुलाता है। उ.—बृंदावन मैं गाइ चरावै, धौरी धूमरि टेरै हो—४५२।

टेरो, टेरौ—क्रि. स. [हि. टेरना] बुलाओ, पुकारो, हाँक लगाओ। उ.—(क) द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्ह, गैयाँ दूरि गईं—६१२। (ख) राधा सौं कहति नारि काग सगुन टेरो—३०४६।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की सरसो।

टेर्‍यौ—क्रि. स. भूत. [हि. टेरना] बुलाया, पुकारा, हाँक लगायी। उ.—हा करुनामय, कुंजर टेर्‍यौ,

रह्यौ नहीं वल, थाकौ—१-११३ ।

टेली—संज्ञा पुं [देश.] एक तरह का पेड़ ।

टेव—संज्ञा स्त्री. [हि. टेक] अभ्यास, आदत, बान, स्वभाव । उ.—(क) जुग-जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत-भेव । ज्यौं दिनकरहिं उलूक न मानत, परि आई यह टेव—१-१०० । (ख) सब विधि सोधै ताकी टेव—६-१७३ । (ग) तुम तौ टेव जानतिहि ह्वै हौ, तऊ मोहि कहि आवै । प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतै माखन रोटी भावै—३७६३ ।

टेवकी—संज्ञा स्त्री. [हि. टेकन] नाव का ऊपरी पाल ।

टेवना—क्रि. स [हि. टेना] (१) हथियार तेज करने के लिए रगड़ना । (२) मूंछें ऐंठना ।

टेवा—संज्ञा पुं. [सं. टिप्पन] (१) जन्म-पत्री या कुंडली । (२) विवाह का लग्नपत्र ।

टेवैया—संज्ञा पुं. [हिं. टेवना] (चाकू, हथियार आदि पर) धार धरने या तेज करनेवाला ।

टेसुआ, टेसू—संज्ञा पुं. [सं. किंशुक] पलाश या ढाक का पेड़ या फूल । (२) लड़कों का एक उत्सव जिसमें विजयदशमी को घास का एक पुतला बनाकर घर घर घुमाते हैं और शरद्पूर्णिमा को खेल खेलते और मिठाई खाते हैं । उ.—जे कंच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल । तिन केसन को भस्म चढावत टेसू केसे खेल—३२२१ ।

टेहला—संज्ञा पुं. [देश.] विवाह की रीति-रस्म ।

टैयाँ—संज्ञा स्त्री. [देश] चित्ती कौड़ी ।

टैन—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की घास ।

टैना—संज्ञा पु. [देश.] घास का पुतला जो खेत में पक्षियों को डराने के लिए रखा जाता है ।

टोंक—संज्ञा स्त्री [हि. टोंकना] किसी के टोकने या पूँछ-ताँछ करने से लगनेवाली नजर ।

संज्ञा पु. [हि टोंका] छोर, सिरा, नोक ।

टोंकना—क्रि. स [हि. टोंकना] (१) दूसरे के बीच में एकाएक बोल उठना । (२) हूँसना, नजर लगाना ।

टोंका—संज्ञा पु. [सं. स्तोक = थोड़ा] (१) छोर, सिरा, किनारा । (२) नोक, कोना ।

टोंचना—क्रि. स. [सं टकन] चुभाना, गड़ाना ।

टोंट, टोंटा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चोंच । (२) चोंच की तरह की निकली हुई चीज । (३) टुलटुली ।

टोंटरी, टोंटी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) झारी, लोटे आदि की पतली नली या टुलटुली । (२) पशुओं का थूथन ।

टोआ—संज्ञा पु. [पंजाबी] गड्ढा, गढ़ा ।

टोइयाँ—संज्ञा स्त्री. [देश.] पीली चोंच का तोता ।

टोई—संज्ञा स्त्री. [देश.] गन्ने आदि की पोर ।

टोक—संज्ञा पु. [सं. स्तोक] बोला हुआ शब्द ।

संज्ञा स्त्री.—(१) दूसरे के बीच में कुछ पूछने या जानने के लिए कहा हुआ शब्द या वाक्य ।

यौ.—टोक टाक—पूछ-ताँछ । रोक-टोक—मनाही, विघ्न-बाधा, छेड़-छाड़ ।

(२) नजर, कुदृष्टि का प्रभाव ।

मुहा.—टोक में आना—नजर लगानेवाले के सामने पड़ जाना । टोक लगना—कुदृष्टि का प्रभाव पड़ना ।

टोकना—क्रि. स. [हि. टोक] (१) बीच में बोलकर या पूछताँछ करके बाधा डालना । (२) हूँसना, नजर लगाना ।

संज्ञा पु.—(१) बड़ा भौआ । (२) बड़ा हंडा ।

टोकनी—संज्ञा स्त्री. [हि. टोकना] (१) छोटा झाबा, डलिया । (२) छोटा हंडा या कलसा । (३) बटलोई ।

टोकरा—संज्ञा पुं.—झाबा, भौआ ।

मुहा.—टोकरे पर हाथ रहना—इज्जत बनी रहना ।

टोकरिया, टोकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. टोकरा] डलिया ।

टोकवा—संज्ञा पुं. [देश.] नटखट लड़का ।

टोका—संज्ञा पुं. [सं. स्तोक] (१) सिरा, छोर । (२) कपड़े आदि का कोना, पल्ला । (३) नोक ।

टोकारा—संज्ञा पुं [हिं. टोक] इशारे का शब्द ।

टोकै—क्रि स. [हि टोकना] दूसरे के बीच में एकाएक बोलता या टोकता है । उ.—घाट बाट जमुना तट रोकै । मारग चलत जहाँ तहँ टोकै—पृ०२३४ (५) ।

टोक्यौ—क्रि. स. [हि. टोकना] रोका, सावधान किया, पूछा-ताँछा, बाधा डाली । उ.—जब जब अधम करी अधमाई, तब तब टोक्यौ नाथ—१-१६६ ।

टोट—संज्ञा पुं. [हि. टोटा] (१) घाटा। (२) कमी।

टोटका—संज्ञा पुं. [सं. त्रोटक] तंत्रमंत्र, जादू-टोना।

मुहा.—टोटका करने आना—आकर तुरत ही चल देना। टोटका होना—किसी काम का चटपट हो जाना।

टोटकेहाई—संज्ञा स्त्री. [हि. टोटका] टोना करनेवाली।

टोटा, टोटो—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] कटा हुआ टुकड़ा।

संज्ञा पुं. [हि. टूटना, टूटा] (१) कमी, अभाव। (२) घाटा, हानि, नुकसान।

मुहा.—टोटा देना (भरना)—हरजाना देना।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रोटकी] प्रातःकाल गायी जानेवाली एक रागिनी।

टोनहा—वि. [हि. टोना] टोना करनेवाला।

टोनही—वि. स्त्री. [हिं. टोनहा] जादू करनेवाली।

टोनहाई—संज्ञा स्त्री. [हि. टोना+टाई (प्रत्य.)] (१) जादू-टोना करनेवाली। (२) झाड़-फूँक करनेवाली।

टोनहाया—संज्ञा पुं. [हि. टोना+हाया (प्रत्य.)] जादू-टोना करनेवाला। (२) झाड़-फूँक जाननेवाला।

टोना—संज्ञा पुं. [सं. तंत्र] (१) तंत्र-मंत्र का प्रयोग, जादू। उ.—(क) नैकुँ दृष्टि जहँ परि गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)—१-४४। (ख) हरि कछु ऐसो टोना जानत—१० उ. ८०।

यौ.—टोना टामनि (टम्मन)—जादू-टोना, जंत्र-मंत्र। उ.—टोना टामनि जंत्र मंत्र करि ध्यायौ देव-दुआरौ री—१०-१३५।

(२) विवाह का एक गीत जिसमें 'टोना' शब्द कई बार प्रयुक्त होता है।

संज्ञा पुं. [देश.] एक शिकारी चिड़िया।

क्रि. स. [सं. त्वक्=स्पर्शेंद्रिय+ना (प्रत्य.)] हाथ से टटोलना, छूकर मालूम करना।

टोनाहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोनहाई] (१) जादू-टोना करनेवाली। (२) झाड़-फूँक जाननेवाली।

टोप—संज्ञा पुं. [हिं. तोपना=ढाँकना] (१) बड़ी टोपी। (२) लोहे की टोपी, सिरस्त्राण। (३) गिलाफ।

संज्ञा पुं. [अनु. टपटप या सं. स्तोक] बूँद।

टोपा—संज्ञा पुं. [हिं. टोप] बड़ी टोपी।

संज्ञा पुं. [हिं. तोपना] झाबा, टोकरा।

संज्ञा पुं. [हि. तुरपना] टाँका, सीवन।

टोपी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तोपना=ढाकना] (१) सिर का एक पहनावा।

मुहा.—टोपी उछालना—बेइज्जती करना। टोपी बदलना—भाई-चारे का संबंध स्थापित करना।

(२) ताज, राजमुकुट। (३) टोपी की तरह गोल और गहरी चीज। (४) थैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ी रहती है।

टोभ—संज्ञा पुं. [हि. डोभ] टाँका, सीवन।

टोया—संज्ञा पुं. [सं. तोय] गड्ढा, गढा।

टोर—संज्ञा स्त्री. [देश.] कटार, कटारी।

टोरना—क्रि. स. [सं. त्रुट] तोड़ना।

मुहा.—आँख टोरना—लज्जा आदि के कारण दृष्टि छिपाना, नजर बचाना।

टोरा—संज्ञा पु. [सं. तोक] लड़का, छोकरा।

टोरि—क्रि. स. [हिं. टोरना] तोड़कर।

मुहा.—लोचन टोरि—लज्जा आदि से दृष्टि बचाकर, नजर चुराकर। उ.—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि।

संज्ञा स्त्री [हि. टोली] (१) समूह, (२) मुहल्ला।

टोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोड़ी] एक रागिनी।

टोल—संज्ञा स्त्री. [सं. तोलिका=घेरा, बाड़ा] (१) मंडली, समूह, झुंड। उ.—कुंचित केस सुगंध सुबसु मनु उठि आये मधुपन के टोल—१३३०। (२) बस्ती, मुहल्ला। उ.—आजु भोर तमचुर के रोल। गोकुल मैं आनद होत है, मंगल-धुनि महराने टोल—१०-६४। (३) चटसार, पाठशाला।

संज्ञा पु.—एक राग।

टोला—संज्ञा पुं. [सं. तोलिका=घेरा, बाड़ा] बस्ती, मुहल्ला।

संज्ञा पु. [देश.] बड़ी कौड़ी, टग्घा।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) पत्थर का टुकड़ा, रोड़ा। (२) मार-पीट का लाल-नीला चिह्न, नील।

टोलिया, टोली—संज्ञा स्त्री. [सं. तोलिका=हाता, बाड़ा] (१) छोटा मुहल्ला। (२) समूह, झुंड,

खंडली । (३) पत्थर की सिल ।

टोवना—क्रि. स. [हिं. टोना] टटोलना ।

टोह—संज्ञा स्त्री. [हिं. टटोलना] (१) खोज, तलाश ।

मुहा.—टोह मिलना—पता लगाना । टोह में रहना—तलाश में रहना । टोह लगाना (लेना)—पता लगाना ।

(२) खबर, देखभाल ।

मुहा.—टोह रखना (लेना)—खोज-खबर लेना ।

टोहना—क्रि. स. [हिं. टोह] (१) ढूंढना, खोजना, तलाशना । (२) छूना, टटोलना ।

टोहाटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोह] (१) छानबीन, ढूंढ-ढांढ़, तलाश । (२) देखभाल ।

टोहिया—वि. [हिं. टोह] ढूंढ़ने या खोजनेवाला ।

टोहियाना—क्रि. स. [हिं. टोहना] ढूंढना, टटोलना ।

टोही—संज्ञा स्त्री. [हिं. टोह] तलाश करनेवाला ।

टौंस—संज्ञा स्त्री. [सं. तमसा] तमसा नदी ।

टौना—संज्ञा पुं. [हिं. टोना] टोना, जादू, तंत्र मंत्र का प्रयोग । उ.—अति सुन्दर नंद-महर ढुटौना निरखि निरखि ब्रजनारि कहति सब, यह जानत कछु टौना—६०१ ।

टौर—संज्ञा पुं.— दाँव, घात ।

टौरना—क्रि. स. [हिं. टेरना] (१) जांचना, परखना । (२) पता लगाना, खोजना ।

ठ

ठ—टवर्ग का दूसरा और देवनागरी वर्णमाला का बारहवां व्यंजन, उच्चारण-स्थान मूर्धा है—उच्चारण में जीभ का मध्य भाग तालु से लगता है ।

ठंठ—वि. [सं. स्थाणु] (१) ठूँठ, सूखा (पेड़) । (२) खाली, रीता, छूँछा । (३) सारहीन ।

ठंठनाना—क्रि. अ. [हिं. ठनठनाना] 'ठनठन' होना ।

क्रि. स.—'ठनठन' शब्द निकालना या बजाना ।

ठंठार—वि. [हिं. ठठ] खाली, रीता, छूँछा ।

ठंठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठ] ज्वार-मूंग का दाना जो पीटने के बाद भी बाल में लगा रहे ।

वि. स्त्री.—जो (गाय-भैंस) बच्चा या दूध न दे ।

ठंड, ठंढ—संज्ञा स्त्री [हिं. ठंढा] जाड़ा, सरदी ।

ठंडई, ठंढई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठंढाई] (१) शरीर की गरमी शात करनेवाला शरबत । (२) भांग का शरबत जिसमें सौंफ, इलायची आदि पड़ती है ।

ठंडक, ठंढक—संज्ञा स्त्री. [हिं.ठंढा](१) सरदी, जाड़ा । (२) ताप या जलन की शांति । (३) संतोष, प्रसन्नता, तसल्ली । (३) रोग या उपद्रव की शांति ।

ठंडा, ठंढा—वि. [सं. स्तब्ध, प्रा. तद्ध, ठढ्ढ, हिं. ठंढा] (१) शीतल, सर्द । (२) बुझा या बुता हुआ । (३) जो उद्विग्न या आवेशयुक्त न हो, शांत ।

मुहा.—ठंढा करना—(१) क्रोध शांत करना । (२) धीरज या तसल्ली देकर शोक कम करना ।

(४) जिसे कामोद्दीपन न हो । (४) जिसे क्रोध न हो, धीर, शांत, गंभीर । (५) धीमा, सुस्त, उत्साहहीन, उमंगरहित । (६) चुप रहने या विरोध न करनेवाला । (७) तृप्त, संतुष्ट । (८) निश्चेष्ट, मृत, मरा हुआ ।

मुहा.—ठंढा होना—मर जाना । ताजिया ठंढा करना—(१) ताजिया दफनाना । (२) झगड़ा या विरोध दबा देना । (मूर्ति आदि को) ठंढा करना—नदी आदि में विसर्जन करना । (पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंढा करना—फेंकना या तोडना-फोड़ना ।

(९) जिसमें चहल-पहल, बहार या रौनक न हो ।

मुहा.—बाजार ठंडा होना—खूब बिक्री न होना ।

ठंडाई, ठंढाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठंढा] (१) सौंफ, इलायची, गुलाब के फूल आदि से बना ठंडक पहुँचाने वाला शरबत । (२) भांग का शरबत ।

ठंढा मुलम्मा—संज्ञा पुं. [हिं. ठंढा+अ.मुलम्मा] बिना आंच के सोने-चांदी का पानी चढ़ाना ।

ठंडी, ठंढी—वि. स्त्री. [हिं. पुं.ठंढा](१) सर्द, शीतल ।

मुहा.—ठंढी आग—(१) बरफ । (२) पाला ।

ठंढी कढाई—सब पकवानों के अंत में हलुआ बनाने की रीति। ठंढी मार—भीतरी या गुप्त चोट। ठंढी मिट्टी—(१) शरीर जो जल्दी न बढ़े। (२) शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंढी साँस—दुखभरी साँस या आह। ठंढी साँस भरना (लेना)—दुख की साँस लेना।

(२) बुझी हुई। (३) आवेशरहित, अक्रुद्ध।

मुहा.—माता (चेचक, शीतला) ठंढी करना—शीतला के अच्छे होने पर देवी की पूजा करना।

(४) जिसे कामोद्दीपन न हो। (५) शांत, गंभीर। (६) तृप्त, प्रसन्न। (७) धीमी, सुस्त, मंद।

मुहा.—ठंढी गरमी—बनावटी या दिखावटी प्रीति।

(८) विरोध न करनेवाली। (९) मरी हुई।

मुहा.—चूड़ी ठंढी करना—किसी स्त्री के विधवा हो जाने पर उसकी चूड़ी तोड़ना-फोड़ना।

संज्ञा स्त्री.—शीतला, माता, चेचक।

मुहा.—ठंढी ढलना—चेचक का जोर कम होना। ठंढी निकलना—शीतला या चेचक का रोग होना।

ठंडे, ठंढे—वि. बहु. [हिं. ठंढा] (१) सर्द, शीतल।

मुहा.—ठंढे-ठंढे—ठंढे समय में, सबेरे।

(२) आवेशरहित। (३) जिन्हें कामोद्दीपन न हो। (४) धीर, गंभीर। (५) जिनमें उमंग न हो। (६) जो विरोध न करें।

मुहा.—ठंढे-ठंढे—बिना विरोध किये, चुपचाप।

(७) संतुष्ट, तृप्त, प्रसन्न, खुश।

मुहा.—ठंढे-ठंढे—हँसी-खुशी से। ठंढे पेट (पेटों)-हँसी खुशी के साथ। ठंढे रहना—प्रसन्न रहना।

(८) बेरौनक। (९) मरे हुए, निश्चेष्ट।

मुहा.—ठंढे होना—मर जाना।

ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) मंडल।

ठई—क्रि. स. [हिं. ठयना] (१) दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ की, ठानी, छेड़ी। उ.—दासी सहस प्रगट तहँ भई। इंद्रलोक-रचना रिषि ठई—९-३। (२) ठहरायी, निश्चित की, स्थिर की। उ.—नृप पुत्री दासी करि ठई। दासी सहस ताहि सँग दई—६-१७४। (३) स्थित हुई, घटित हुई। उ.—ठानी हुती और कछु मन मैं औरै आनि ठई—१-२६६।

ठउर, ठऊर—संज्ञा पुं. [हिं. ठौर] स्थान, ठौर।

ठए—क्रि. स. [हिं. ठयना] किये, संपादित किये। उ.—प्राचीनबर्हि भूप इक भए। आयु प्रजत जज्ञ तिन ठए—४-१२।

ठक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] ठोंकने का शब्द।

वि.—भौचक्का, स्तब्ध, निश्चेष्ट।

ठकठक—संज्ञा स्त्री [अनु.] झगड़ा-बखेड़ा।

ठकठकाना—क्रि. स. [अनु.] ठोकना-पीटना।

ठकठकिया—वि. [अनु. ठकठक] झगड़ालू, बखेड़िया।

ठकठौआ—संज्ञा पुं. [अनु] (१) एक करताल। (२) करताल बजाकर भीख माँगनेवाला। (३) एक नाव।

ठकार—संज्ञा पुं. [हि. ठ+कार] 'ठ' की ध्वनि।

ठकुरई—संज्ञा स्त्री. [हि. ठकुराई] (१) प्रभुता। (२) स्वामी के अधिकार का उपयोग। (३) रियासत, जमींदारी। (४) महत्व, बड़प्पन।

ठकुरसुहाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर+सुहाना] वह बात जो दूसरे को खुश करने के लिए कही जाय, खुशामद, लल्लोचप्पो।

ठकुराइत—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठकुरायत] (१) प्रभुत्व, प्रधानता। (२) ठाकुर का अधिकृत प्रदेश, रियासत।

ठकुराइन, ठकुराइनि—संज्ञा स्त्री. [हि. पुं. ठाकुर] (१) स्वामिनी, मालकिन। उ.—(क) नहिं दासी ठकुराइन कोई—३४४२। (ख) तुम ठकुराइनि घर रहौ, मोहिं चेरी पाई—७१३। (२) क्षत्राणी। (३) नाइन, नाउन। (४) देवी।

ठकुराइस—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठकुरायत] (१) प्रभुता, प्रधानता, आधिपत्य। (२) ठाकुर की रियासत।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर] (१) आधिपत्य, प्रभुत्व, सरदारी, प्रधानता। उ.—(क) कह पांडव कें घर ठकुराई अरजुन के रथ-वाहक—१-१९। (२) ठाकुर का अधिकार, स्वामीत्व का उपयोग। (३) महत्व, बड़प्पन, श्रेष्ठता। उ.—(क) हरि के जन की अति ठकुराई। महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई—१-४०। (ख) उन सम नहिं हमरी ठकुराई—१० उ. ३२।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर] (१) ठाकुर या सरदार की स्त्री। (२) रानी। उ.—सूरदास प्रभु तहँ पग धारे जहँ दोऊ ठकुरानी—१० उ. १२०। (३) देवी। स्वामिनी। (४) क्षत्राणी।

ठकुराय—संज्ञा पुं. [हिं. ठाकुर] एक क्षत्रिय जाति।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर] (१) आधिपत्य, प्रभुता। उ.—ठकुरायत गिरिधर की साँची। कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची—१-१८। (२) ठाकुर या सरदार का अधिकृत प्रदेश, रियासत, जमींदारी।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकना, ठेकना+ओर (प्रत्य.)] कुलियो आदि की सहारे की लकडी, सहारा, टेक।

ठक्कर—संज्ञा स्त्री. [हिं. टक्कर] चोट, आघात।

ठक्कुर—संज्ञा पुं. [स.] देवता, पूज्य प्रतिमा।

ठग—वि. पुं. [सं. स्थग] (१) लुटेरा, धोखा देकर धन हड़पनेवाला। उ.—बटपारी, ठग, चोर उचक्का, गाँठिकटा लठबाँसी—१-१८६।

मुहा.—ठग लगना—ठगो का पीछे पडना।

(२) छली, धूर्त, धोखेबाज, कपटी।

ठगई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+ई (प्रत्य.)] (१) ठग का काम, धोखे से धन हडपने की क्रिया। (२) छल, धूर्तता।

ठगण—संज्ञा पुं. [स.] पाँच मात्राओं का एक गण।

ठगत—क्रि. अ. [हि. ठगना] धोखा खाने से, भुलावे में पडने से, ठगे जाने से। उ.—बिनु देखैं, बिनुहीं सुनैं, ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)—१-४४।

ठगना—क्रि. स. [हि. ठग] (१) धोखा देकर धन हडपना। (२) छल करना, भुलावे में डालना।

मुहा.—ठगा सा—चकित, भौचक्का, दग।

(३) किसी चीज का उचित से अधिक मूल्य लेना।

क्रि. अ.—(१) धोखा खाकर माल खोना। (२) धोखे में आना। (३) चकित होना, चक्कर में पड़ना।

ठगनी—वि. स्त्री. [हि. ठग] (१) ठगनेवाली। (२) छल-कपट करनेवाली, धोखा देनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—(१) ठग की स्त्री। (२) कुटनी।

ठगपना—संज्ञा पु. [हिं. ठग + पन] (१) ठगने का भाव या काम। (२) धूर्तता, चालाकी, छल।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग + मूरी] एक नशीली जड़ी-बूटी जिससे बेहोश करके ठग यात्रियों को लूटते है।

मुहा.—ठगमूरी खाना—होश-हवास में न होना। ठगमूरी खायी—मतवाली हुई, होश हवास में न रही। उ.—काहू तोहि ठगोरी लाई। बूझति सखी सुनति नहिं नेकहुँ तुही किधौं ठगमूरी खाई—८४६।

ठगमोदक—संज्ञा पुं. [हिं. ठग+सं. मोदक] ठगो के नशीले लड्डू। उ.—चलत चितै मुसकाय कै मृदु बचन सुनाये। ते ही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि-तन छुछो छिटकाए।

ठगलाड़ू—सज्ञा पुं. [हिं. ठग+लड्डू] ठगो के नशीले लड्डू जिन्हे खाकर पथिक बेहोश हो जाता है।

मुहा.—ठगलाड़ू खाना—मतवाला या बेसुध होना। ठगलाड़ू खायौ—मस्त या बेसुध हुए। उ.—सूर कहा ठगलाड़ू खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहु न सुधि करि हरि चित लायौ।

ठगवाना—क्रि. स. [हिं. ठगना का प्रे.] धोखा दिलाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री. [हि. ठग+विद्या] धोखेबाजी।

ठगहाई, ठगहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] ठगपना।

ठगाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ठग+आई (प्रत्य.)] ठगपना, छल, धोखा। उ.—हम जानैं हरि हितू हमारे उनके चित्त ठगाई—२७१८।

क्रि. अ. [हिं. ठगाना] ठगा दिया।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] धोखाधड़ी, छल।

ठगाना—क्रि. अ. [हिं ठगना] (१) धोखे में हानि सहना। (२) किसी वस्तु का उचित से अधिक मूल्य देना।

ठगायौ—क्रि. अ. [हिं. ठगाना] ठगा गया, धोखा खा गया, भुलावे में पड़ा। उ.—रे मन, जग पर जानि ठगायौ। धन-मद, कुल-मद, तरुनी कैं मद, भव-मद हरि बिसरायौ—१-५८।

ठगाही—संज्ञा स्त्री. [हि. ठगाई] ठगपना, छल।

ठगि—क्रि. अ. [हिं. ठगना] चक्कर में आ गयी, चकित हुई, दंग रह गयी। उ.—सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि—१०-२७०।

क्रि. स.—धोखा दिया, धूर्तता की, भुलावे में डाला। उ.—अबहि त तू करति ये ढँग, तोहिं

अब हीं होन । स्याम कौं तू ऐसैं ठगि लियौ, कछु न जानै जौन—७१६ ।

ठगिन, ठगिनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठग] (१) ठग की स्त्री । (२) धोखेबाज या धूर्त स्त्री ।

वि.—ठगनेवाली, धोखेबाज, छल करनेवाली । उ.—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी—११६० ।

ठगिया—वि. [हिं. ठग] धूर्त, छली, ठग ।

ठगीं—क्रि. स. [हि. ठगना] ठग लीं, धोखा दिया, भुलावे में डालीं । उ.—मैं इहिं ज्ञान ठगीं ब्रजवनिता दियौ सुक्यौं न लहौं—३-२ ।

ठगी—क्रि. स. [हि. ठगना] (१) ठग लिया । उ.—जनु हीरा हरि लिए हाथ तैं ढोल बजाइ ठगी—२७६० । (२) धोखे में डाला, धूर्तता की ।

मुहा.—रही ठगी—चकित, भौचक्की, स्तब्ध । उ.—(क) तब हँसि कै मेरौ मुख चितयौ, मीठी बात कही । रही ठगी, चेटक सौ लाग्यौ, परि गई प्रीति सही—१०-२८१ । (ख) इतने बीच आइ गये ऊधौ रहीं ठगी सब बाम—३०५८ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] (१) धोखा देकर माल या धन लूटना । (२) ठगने का भाव । धूर्तता ।

ठगे—क्रि. अ. [हिं. ठगना] ठक से रह गये, ठग रहे । उ.—दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार—१०-१७३ ।

मुहा.—ठगे से—स्तब्ध, ठक से । उ.—बिनु गोपाल ठगे से ठाढे अति दुर्बल तनु कारे—३४४६ ।

ठगै—क्रि. स. [हिं. ठग] धोखा देती है, भुलावे में डालती है । उ.—एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)—१-४४ ।

ठगोर, ठगोरि, ठगोरी, ठगौर, ठगौरि, ठगौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+मूरि, ठगोरी] ठगमाया, मोहिनी, टोना, जादू । उ.—(क) दसन चमक अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि—६७० । (ख) संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि, तन-गोरी । सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी—६७२ । (ग) सूर चकित भई सुंदरी सिर परी ठगोर—पृ. ३३७ (७१) । (घ) कुटिलकच मृगमद तिलक छबि-बचन मंत्र ठगोर—पृ. ३२७ ।

ठग्यौ—क्रि. स. [हि. ठगना] ठग लिया, ठगा । उ.—चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)—१-४४ ।

ठट—संज्ञा पुं. [सं. स्थाता = जो खड़ा हो] (१) बनाव, रचना, सजावट । (२) (बहुत सी वस्तुओं या व्यक्तियों का) समूह, भीड़ । उ.—घर-घर तैं नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री—८१० ।

मुहा.—ठट के ठट—झुंड के झुंड । ठट लगना—(१) भीड़ होना । (२) ढेर या राशि लगना ।

क्रि. स. [हि. ठटना] सजाकर, तैयार करके ।

मुहा.—ठट कर बातें करना—एक एक शब्द पर जोर देते हुए या गढ़ गढ कर बात करना ।

ठटकि—क्रि. अ. [हिं. ठिठकना] रुक कर, अड़कर, ठिठककर । उ.—क्रोध गजपाल के ठटकि हाथी रह्यौ देत अंकुस मसकि कहा सकानो—२५६० ।

ठटकील, ठटकीला—वि. [हि. ठाट] सजा-सजाया, ठाटदार, तड़क-भड़कवाला ।

ठटकीली—वि. स्त्री. [हि. ठटकीला] सजी-सजायी, तड़क-भड़कदार । उ.—आछी चरननि कंचन लकुट ठटकीली बनमाल कर टेके द्रुम डार टेढे ठाढ़े नंदलाल छबि छायी घट-घट—८३६ ।

ठटना—क्रि. स. [हिं. ठाट, ठाढ] (१) स्थिर या निश्चित करना, ठहराना । (२) सुसज्जित या तैयार करना, सजाना ।

क्रि. अ.—(१) अड़ना, डटना । (२) तैयार होना ।

क्रि. स.—[हिं. ठाठ] (राग) छेड़ना, आरंभ करना ।

ठटनि, ठटनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठटना] बनाव, सजावट, रचना । उ.—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन तुलिन ठटनी ।

ठटया—संज्ञा पु. [देश.] एक जंगली जानवर ।

ठटरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट] (१) हड्डियों का ढाँचा ।

मुहा.—ठटरी होना—बहुत दुबला हो जाना ।

(२) घास आदि बाँधने का जाल । (२) किसी चीज का ढाँचा । (४) मुरदे की अरथी ।

ठटी—क्रि. स. [हिं. ठाट, ठाढ] ठहरायी, निश्चित की, स्थिर की, ठानी, अपनायी। उ.—(क) किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी—१-६८। (ख) होत सु जो रघुनाथ ठटी।

ठटु—संज्ञा पुं. [हिं. ठाट] बनाव, रचना, सजावट।

ठटै—क्रि. स. [हिं. ठाट, ठाढ, ठटना] निश्चित या स्थिर करता है, सोचता है। उ.—होत सो जो रघुनाथ ठटै। पचि-पचि रहें सिद्ध, साधक, मुनि तऊ न बढ़ै-घटै—१-२६३।

ठट्ट—संज्ञा पुं. [हिं. ठट] (१) ढेर। (२) समूह।

मुहा.—ठट्ट के ठट्ट—झुंड के झुंड।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट] हड्डी का ढांचा, ठटरी।

ठटठइ, ठटठई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठट्ठा] हँसी-दिल्लगी।

ठट्ठा—संज्ञा पुं. [सं. अट्टहास] हँसी, खिल्ली।

मुहा.—ठट्ठा उड़ाना—खिल्ली उडाना। ठट्ठा मारना (लगाना)—खिलखिला कर हँसना।

ठट्ठेबाज—वि. [हिं. ठट्ठा+फा. बाज] मसखरा।

ठट्ठेबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठट्ठा+फ़ा. बाजी] दिल्लगी।

ठठ—संज्ञा पु. [सं. स्थाता] भीड़, समूह, ढेर।

ठठई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठट्ठा] हँसी-दिल्लगी।

ठठकत—क्रि. अ. [हिं. ठठकना] ठिठक ठिठक कर, रुक रुक कर। उ.—सुनहु सूर ठठकत सकुचत ता गृह गये नंदकुमार—२०८१।

ठठकति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. ठठकना] ठिठककर, रुक कर। उ.—ठठकति चलै मटकि मुह मोरै बंक्ट भौंह चलावै।

ठठकना—क्रि. अ. [सं. स्थेष्ट+करण] (१) ठिठकना, रुकना, ठहरना। (२) चकित या स्तब्ध होना।

ठठकान—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठकना] ठिठकने का भाव।

ठठकि—क्रि. अ. [हिं. ठिठकना] (१) स्तंभित होकर, ठक रहकर, ठिठककर। उ.—(क) जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी। ठठकि रही द्वारे पर ठाढी, बात नहीं कछु नीकी—५४०। (ख) मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर स्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय।

ठठना—क्रि. स. [हिं. ठटना] (१) निश्चित या स्थिर करना, ठहराना। (२) सजाना, तैयार करना।

क्रि. अ.—(१) अडना, डटना। (२) तैयार होना।

ठठनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठना] (१) बनावट, रचना। (२) ठाठ, सजावट, तैयारी।

ठठरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठटरी] हड्डी का ढांचा।

ठठवा—संज्ञा पु. [हिं. ठाट] एक मोटा कपडा।

ठठा—संज्ञा पु. [हिं. ठट्ठा] हंसी-दिल्लगी।

ठठाना—क्रि. स. [अनु. ठ+] ठोकना-पीटना।

क्रि. अ. [स. अट्टहास] खिलखिलाकर हंसना।

ठठियार—संज्ञा पु. [देश.] चरवाहा।

ठठिरिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठेरा] ठठेरे की स्त्री।

ठठुकना—क्रि. अ. [हिं. ठिठकना] (१) रुकना, ठहरना, ठिठकना। (२) चकित होना, ठक रह जाना।

ठठेर-मंजारिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठेरा+स. मार्जारिका] ठठेरे की बिल्ली जो खड़खडाहट से नहीं डरती।

ठठेरा—संज्ञा पुं. [अनु. ठकठक] बरतन बनानेवाला।

संज्ञा पु. [हिं. ठौंठ] ज्वार-बाजरे का डठल।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठेरा] (१) ठठेरे की स्त्री। (२) बरतन बनाने का काम।

वि.—ठठेरो का, ठठेरे से संबंधित।

ठठेरे—संज्ञा पु. बहु. [हिं. ठठेरा] बरतन बनानेवाल।

मुहा.—ठठेरे ठठेरे बदलाई—धूर्त और कांइयां मनुष्यो का पारस्परिक व्यवहार। ठठेरे की बिल्ली—ऐसा आदमी जो बुराई देखते-देखते उसका अभ्यस्त हो गया हो।

ठठोल—वि. [हिं. ठट्ठा] दिल्लगीबाज, मसखरा।

संज्ञा पु.—हँसी, ठठोली, मसखरापन।

ठठोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठट्ठा] हँसी-दिल्लगी।

ठड़कना—क्रि. अ. [हिं. ठिठकना] रुकना, ठहरना।

ठड़ा—वि. [सं. स्थातृ] जो बैठा न हो, खड़ा।

ठड्डा—संज्ञा पु. [हिं. ठड़ा] (१) रीढ़ की हड्डी, रीढ़। (२) पतग की खडी कमाची।

ठढ़ा—वि. [सं. स्थातृ] जो बैठा न हो, खड़ा।

ठढ़िया, ठढ़ुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाढ] ऊँची ओखली।

ठढ़ियाना—क्रि. स. [हिं. ठढा] खड़ा करना।

ठढ़े—क्रि. अ. [हिं. ठढा] खड़े हुए। उ.—सूरदास

विपरीत विधातैं यहि तनु फेरि ठढे—३३६६ ।

ठन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] धातुखड का शब्द ।

ठनक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) मृदंग आदि बाजो का शब्द । (२) रहरह कर होनेवाली पीड़ा, कसक ।

ठनकना—क्रि. अ. [अनु. ठनठन] (१) ठनठन शब्द करना । (२) रहरह कर पीड़ा या कसक होना ।

मुहा.—माथा ठनका—किसी बुरे लक्षण को देखकर दुख, हानि या अनिष्ट की आशका होना ।

ठनका—संज्ञा पु. [हिं. ठनक] (१) ठनकने का शब्द । (२) आघात, ठोकर । (३) रहरहकर होनेवाली पीड़ा।

क्रि. अ.—(१) शब्द निकला । (२) पीडा हुई ।

ठनकाना - क्रि. स. [हिं. ठनकना] 'ठनठन' करना ।

मुहा.—रुपया ठनका लेना—रुपया वसूल करना ।

ठनकार—संज्ञा पुं. [अनु. ठनठन] 'ठनठन' शब्द ।

ठनगन—संज्ञा पुं. [अनु. ठनठन] किसी शुभ अवसर पर नेग या पुरस्कार पानेवाले की अड ।

ठनठन—संज्ञा पुं. [अनु.] धातुखड बजने का शब्द ।

ठनठनगोपाल—संज्ञा पुं. [अनु. ठनठन+गोपाल=कोई व्यक्ति] (१) आदमी जिसके पास कछ न हो । (२) वस्तु जो छूछी और निस्सार हो ।

ठनठनाना—क्रि. स. [अनु.] 'ठनठन' शब्द निकालना ।

क्रि. अ.—'ठनठन' होना या बजना ।

ठनना—क्रि. अ. [हिं. ठानना] (१) किसी कार्य या भाव का छिड़ना या आरभ होना । (२) मन में पक्का या निश्चित होना । (३) धारण किया जाना । (४) मुस्तैद होना ।

मुहा.—किसी बात पर ठनना—(१) कोई काम करने को तैयार होना । (२) किसी बात पर झगडा होना ।

ठनाका—संज्ञा पुं. [अनु.] 'ठनठन' शब्द ।

ठनाठन—क्रि. वि [अनु.] 'ठनठन' शब्द के साथ ।

ठप—वि. [अनु.] (चलता हुआ कार्य या व्यापार) किसी कारण से रुक जाना ।

ठपका—संज्ञा पुं. [देश.] धक्का, ठोकर, ठस ।

ठप्पा—संज्ञा पुं. [सं. स्थापन, हिं. थापन, थाप] (१) लकड़ी आदि का सांचा । (२) लकड़ी का बेलबूटेदार छापा । (३) छाप ।

ठभोली—संज्ञा स्त्री. [हि. ठठोली] हँसी-दिल्लगी ।

ठमक—संज्ञा स्त्री. [हि. ठमकना] (१) ठहरने का भाव । (२) रुकावट । (३) चलने की ठसक या लचक ।

ठमकना—क्रि अ. [सं. स्तंभ हि. थम+करना] (१) ठिठकना, रुकना । (२) ठसक या लचक से चलना ।

ठमकाना, ठमकारना—क्रि. स. [हिं. ठमकना] (१) ठहराना, रोकना । (२) चलने में ठसक या हावभाव दिखाना ।

ठयना—क्रि. स. [सं. अनुष्ठान] (१) दृढ़ संकल्प के साथ कोई काम आरंभ करना या छेड़ना । (२) अच्छी तरह से करना । (३) मन में ठहराना, निश्चित या पक्का करना ।

क्रि. अ.—(१) दृढ़ संकल्प के साथ कोई काम आरंभ होना या छिड़ना । (२) मन में निश्चित या दृढ़ होना ।

क्रि. स. [सं. स्थापन, प्रा. ठावन] (१) ठहराना, स्थापित करना । (२) लगाना, नियोजित करना ।

क्रि. अ—(१) जमना, बैठना । (२) लगना, नियोजित होना ।

ठये—क्रि. स. [हि. ठयना] किया, बनाया, सजाया । उ.—करति प्रतीति आपु आपुन तें सबन सिंगार ठये—१० उ. १०७ ।

ठयो, ठयौ—क्रि. स [हि. ठयना] (१) किया, ठाना, छेड़ा, आरभ किया । उ.—(क) होत समय तिन रोदन ठयौ—३-७ । (ख) इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ । तब भृगु रिषि उपाइ यह ठयौ—४-५ । (२) माना, अनुभव किया । उ.—बिनु देखैं ताकौं सुख भयौ, देखे तैं दूनौ दुख ठयौ—१-२८६ ।

क्रि. स.—(१) स्थापित किया, ठहराया, बैठाया । (२) लगाया, नियोजित किया । उ.—विधिना अति ही पोच कियो री । । रोम रोम लोचन एकटक करि जुवतिन प्रति काहे न ठयौ री–१५०६ ।

ठरना—क्रि. अ. [सं. स्तब्ध, प्रा. ठड्ढ+ना (प्रत्य.)] (१) सरदी से ठिठुरना, अकड़ना या सुन्न होना । (२) बहुत ठड पड़ना ।

ठरमरुआ, ठरुआ—वि [हि. ठार+मारना] (फसल) जो पाले से मारी गयी हो।

ठर्रा—संज्ञा पु. [हिं. ठड्डा=खड़ा] (१) मोटा सूत। (२) महुए की मामूली शराब। (३) अँगियाँ की तनी। (४) भद्दा मोती।

ठवना—क्रि स [हिं. ठयना] (१) ठानना, छेड़ना। (२) करना, कर चुकना। (३) मन में ठहराना, निश्चित करना।

क्रि. अ.—(१) ठनना। (२) मन में दृढ़ होना।

क्रि. स.—(१) बैठाना, ठहराना। (२) नियोजित करना।

क्रि. स -(१) स्थित होना। (२) नियोजित होना।

ठवनि, ठवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थापन, हिं. ठवना= बैठना या स. स्थान] (१) बैठक, स्थिति। (२) खड़े होने की मुद्रा।

ठवर—संज्ञा पु. [हि. ठौर] स्थान, ठौर।

ठस—वि. [सं. स्थास्नु=दृढता से जमा हुआ] (१) ठोस, कड़ा। (२) भीतर से भरा हुआ। (३) घनी बुनावट का। (४) दृढ़, मजबूत। (५) भारी, वजनी। (६) सुस्त, आलसी। (७) (सिक्का) जिसकी आवाज ठीक न हो (८) भरापुरा, धनी, सपन्न। (९) कजूस। (१०) हठी, जिद्दी।

ठसक—संज्ञा स्त्री. [हि. ठस] (१) नाज-नखरा, गर्वभरी चेष्टा। (२) शान, घमड, अभिमान।

ठसकदार—वि. [हि. ठसक+फा. दार] (१) नाज-नखरेवाला, घमडी। (२) शानदार, तड़क-भडकदार।

ठसका—सज्ञा पु. [अनु.] (१) सूखी खाँसी। (२) धक्का।

संज्ञा स्त्री [हिं. ठसक] नखरा, शान।

ठसाठस—क्रि. वि. [हिं. ठस] दबादबाकर भरा हुआ।

ठस्सा—संज्ञा पुं. [देश] (१) ठसक, नखरा। (२) घमड, अहकार। (३) ठाट-बाट, शान। (४) खड़े होने की मुद्रा, ठवनि।

ठह—क्रि. अ [हिं. ठहना] बनाकर, सजाकर।

मुहा —ठह ठहकर बोलना—हाव-भाव के साथ रुकरुक कर बोलना। ठहकर—अच्छी तरह जमकर।

ठहक—सज्ञा स्त्री. [अनु.] नगाड़े का शब्द।

ठहना—क्रि. अ. [अनु.] (१) घोड़े का हिनहिनाना। (२) घटे का बजना, ठनठनाना, घनघनाना।

क्रि. अ. [सं. स्था, प्रा. ठा] बनाना, सँवारना।

ठहर—संज्ञा पु [सं. स्थल] (१) स्थान, जगह। (२) लिपा-पुता स्वच्छ स्थान, चौका।

मुहा.—ठहर देना—चौका लगाना।

ठहरना—क्रि. अ. [सं. स्थैर्य+ना (प्रत्य.)] (१) रुकना, थमना। (२) टिकना, विश्राम करना। (३) इधर-उधर न होना—एक स्थान पर बना रहना।

मुहा.—मन (चित्त) ठहरना—चित्त शात होना। तबियत ठहरना—तबियत ठीक होना।

(४) अड़ा या टिका रहना। (५) बना रहना, न मिटना, नष्ट न होना। (६) जल्दी न टूटना-फूटना। (७) घुली हुई चीज का नीचे बैठना, थिराना। (८) प्रतीक्षा करना, धीरज रखना। (९) कार्य आरभ करने में देर करना, आसरा देखना। (१०) किसी बात या काम का रुकना, थमना। (११) पक्का होना, निश्चित होना।

मुहा.-किसी बात का ठहरना-विचार स्थिर होना।

ठहराइ—क्रि. अ. [हिं. ठहरना] स्थिर होता है रुकता है, एकाग्रता आती है। उ.—जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ—१-४५।

ठहराई—क्रि. स. [हिं. ठहराना] निश्चित की, पक्की की, स्थिर की। उ.—मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असग भजौं जदुराई—५-३।

संज्ञा स्त्री.—(१) ठहराने की क्रिया। (२) ठहराने की मजदूरी। (३) अधिकार, कब्जा।

ठहराउ—संज्ञा पु. [हिं. ठहराव] (१) ठहरने का भाव, स्थिरता। (२) निश्चय, स्थिर किया हुआ विचार।

ठहराऊ—वि. [हिं. ठहरना] (१) ठहरने या रुकनेवाला। (२) नष्ट न होनेवाला। (३) टिकाऊ, मजबूत।

ठहरात—क्रि. अ. [हि. ठहरना] टिकता है, हिलता-डुलता नहीं। उ.—मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै लै भरि-भरि—१०-१२०।

ठहरान—संज्ञा स्त्री. [हि ठहरना] ठहरने या स्थिर होने की क्रिया। उ.—संत दरस कबहूँ जौ होइ।

जग-सुख मिथ्या जानै सोइ । पै कुबुद्धि ठहरान न देइ । राजा कौं अंकम भरि लेइ—४-१२ ।

ठहराना—क्रि. स. [हिं. ठहरना] (१) चलने से रोकना, थामना । (२) टिकाना, विश्राम कराना । (३) टिकाना, अड़ाना, स्थित करना । (४) इधर-उधर न जाने देना । (५) काम या बात को बंद करना । (६) पक्का या तय करना ।

ठहरानी—क्रि. अ. [हिं. ठहरना] टिकी, स्थिर रही । उ.—छूटत ही उड़ि मिले आपुन कुल, प्रीति न पल ठहरानी—३४७५ ।

ठहराने—क्रि. अ. [हिं. ठहरना] स्थिर हुए । उ.—इक टक रहे चकोर चंद ज्यों निमिष बिसरि ठहराने —पृ. ३२२ ।

ठहराय—क्रि. अ. [हिं. ठहरना] रुके, स्थिर रहे ।

मुहा.—सकै नहिं ठहराय—रुक न सके, सामने न ठहर सके । उ.—अग निरखि अनंग लज्जित सकै नहि ठहराय ।

ठहरायौ—क्रि. स. [हिं. ठहराना] निश्चित किया, स्थिर किया, विचार दृढ़ किया । उ.—तब नारद मुनि आय चक्र सों बात करन ठहरायौ-सारा. ६६२ ।

ठहराव—संज्ञा पुं. [हिं. ठहरना] (१) ठहरने का भाव, स्थिरता । (२) निश्चय, स्थिर किया हुआ मत ।

ठहरावत—क्रि. स. [हिं. ठहराना] टिकाते हैं, आकर्षित करते हैं । उ.—बरन-बरन मंदिर बने लोचन ठहरावत—२५६० ।

ठहरावति—क्रि. स. [हिं. ठहराना] स्थिर करती हैं; एक टक जमाती हैं । उ.—कैसे स्याम अंग अवलोकति क्यों नैनन को ठहरावत री—२६३४ ।

ठहरावै—क्रि. स. [हिं. ठहराना] (१) चलने से रोकता है । (२) टिकाता है, विश्राम देता है । (३) पक्का करता है, तय करता है, निश्चित करता है ।

ठहरु—संज्ञा पुं. [हिं. ठहर] स्थान, जगह ।

ठहरौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहराना] विवाह में वर पक्षवालो का कन्या पक्षवालों से धन आदि सबंधी करार ।

ठहाका—संज्ञा पु. [अनु.] जोर की हंसी ।

वि.—चटपट, तुरंत, तड़ से ।

ठहियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँव] जगह, ठिकाना ।

ठही—क्रि. अ. भूत [हिं. ठहना] बचायी, रक्षा की, सँवारी । उ.—पूरे चीर, अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही । सूरदास प्रभु द्रुपद-सुता की, हरि जू लाज ठही—१-२५८ ।

ठाँ—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. ठाँव] ठांव, स्थान, ठिकाना । उ.—(क) महर कठ लावत, मुख पोंछत, चूमत तिहिं ठाँ आयौ—१०-१५६ । (ख) भीतरि भरि भोग भामिनी की तेहि ठाँ कौन पठाऊँ—१० उ. ८५ ।

संज्ञा पुं. [अनु.] बदूक की आवाज ।

ठाँई—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. ठाँव] (१) स्थान, ठौर, ठिकाना । (२) तईं, प्रति । (३) पास, निकट, समीप ।

ठाँउँ, ठाँऊँ—संज्ञा पु. [हिं. ठाँव] स्थान, आश्रय, ठिकाना । उ.—(क) कृपा अब कीजिये बलि जाउँ । नाहिंन मेरे और कोउ, बलि, चरन-कमल बिन ठाँउँ—१-१२८ । (ख) रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय-पद ठाँउँ—१ १६४ ।

ठाँठ—वि. [अनु. ठनठन] (१) जो सूख गया हो, नीरस । (२) जो (गाय-भैंस) दूध न देती हो ।

ठाँयँ—संज्ञा पुं. स्त्री. [हिं. ठाँव] (१) स्थान, ठिकाना, ठौर । (२) पास, निकट, समीप ।

संज्ञा पुं. [अनु.] बदूक छूटने का शब्द ।

ठाँयँ ठाँयँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) बदूक छूटने का शब्द । (२) लड़ाई-झगड़ा ।

ठाँव—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. स्थान, प्रा. ठान] स्थान, ठौर, ठिकाना । उ.—एक गाँव एक ठाँव को वास एक तुम कैहौ क्यों मैं सैहौं—८४३ ।

ठाँसना—क्रि. स. [सं. स्थास्नु=मजबूती से बैठाया हुआ] (१) कसकर घुसेड़ना । (२) दबा-दबाकर भरना । (३) रोकना, मना करना ।

क्रि. अ.—बिना कफ निकाले जोर से खाँसना ।

ठाँहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँई] (१) स्थान, ठौर, ठिकाना । (२) तईं, प्रति । (३) पास, निकट, समीप ।

ठाई—क्रि. स. [हिं. ठयना] सजाये, पहने । उ.—उलटे अंग अभूषन ठाई—पृ. ३३८ (७५) ।

ठाकुर—संज्ञा पुं. [सं. ठक्कुर] (१) देव-मूर्ति, देवता। (२) ईश्वर, भगवान, परमेश्वर। उ.—सूरदास प्रभु पूरन ठाकुर, कह्यौ, सकल मैं हूँ नियराई—७-४। (३) मालिक, स्वामी, प्रभु। उ.—(क) हरि सौं ठाकुर और न जन कौ। जिहिं जिहि विधि सेवक सुख पावै, तिहिं विधि राखत मन कौं—१-६। (ख) इहि विधि कहा घटैगो तेरौ। नदनँदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहु चेरौ—१-२६६। (४) गाँव का मालिक, जमीदार। उ.—(क) घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ जौन दियें मैं छूटौं। धर्म-जमानत मिल्यौ न चाहै तातैं ठाकुर लूटौं—१-१८५। (ख) घर के ठाकुर कैं सुत जायौ—१०-३२। (५) पूज्य या आदरणीय व्यक्ति। (६) नायक, सरदार। (७) क्षत्रियों की उपाधि। (८) नाइयों की उपाधि।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पु. [हिं. ठाकुर+सं. द्वार] देवालय, मदिर।

ठाकुरबाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर+बाड़ा, बाड़ी=घर] देवालय, मदिर।

ठाकुरसेवा—सज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर+सेवा] (१) देवता का पूजन। (२) धन-सपत्ति जो मदिर के नाम हो।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं ठाकुर] ठकुराई, स्वामित्व।

ठाट—संज्ञा पु. [स. स्थातृ=खड़ा होनेवाला] (१) लकड़ी या बाँस की खपच्चियों का बना ढाँचा या परदा। (२) ढाँचा, पजर।

ठाट खड़ा करना—ढाँचा तैयार करना। ठाट खड़ा होना—ढाँचा तैयार होना।

(३) सजावट, बनावट, शृगार। उ.—(क) ब्रज नर-नारि ग्वाल-बालक कहँ कौने ठाट रच्यौ। (ख) पहिरि पटबर करि आडबर वहु तन ठाट सिंगारयौ।

मुहा.—ठाट बदलना—(१)नया रूप-रग दिखाना। (२) मतलब गाँठने के लिए झूठा रूप-रग बनाना या वेष-भूषा धारण करना। (३) झूठमूठ का अधिकार या बड़प्पन जताना, रग बाँधना।

(४) तड़क-भड़क, धूमधाम। (५) चैनचान। मुहा.—ठाट मारना—चैन करना, मजे उड़ाना। ठाट से रहना—चैन या आराम से दिन बीतना।

(६) रीति, प्रकार, ढग, ढब। (७) आयोजन, सामान, प्रबध, अनुष्ठान, समारभ। उ.—सोइ तिथि बार-नछत्र-ग्रह, सोइ जिहिं ठाट ठयौ। तिन अंकन कोउ फिरि नहिं बाँचत, गत स्वारथ समयौ—१-२९८। (८) माल-असबाब, सामान। (९) युक्ति, उपाय, रीति, व्यवहार, डौल। उ.—(क) पेड़ पेड़ तरु के लगे ठाटि ठगन को ठाट—१००६। (ख) कहा हाथ परयौ सठ अक्रूर के यह ठग ठाट ठए—३१४१। (१०) कुश्ती का पैंतरा।

मुहा.—ठाट बदलना—पैंतरा बदलना। ठाट बाँधना—वार करने की मुद्रा में खड़ा होना।

(११) कबूतर आदि पक्षियों का प्रसन्नता से पख फड़फड़ाने या झाड़ने की क्रिया या रीति। (१२) सितार का तार।

सज्ञा पु.—(१) समूह, झुड। (२) अधिकता, प्रचुरता। (३) बैल या साँड़ की गरदन का कूबड़।

ठाटना—क्रि. स. [हिं. ठाट] (१) रचना, बनाना। (२) ठानना, अनुष्ठान करना। (३) सजाना।

ठाटबंदी—सज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट+बदी] (१) बाँस की खपच्चियों और फूस का परदा या ढाँचा बनाने की क्रिया। (२) इस प्रकार बना हुआ ढाँचा, टट्टर।

ठाट-बाट—संज्ञा पु [हि. ठाट] (१) सजावट, सजधज। (२) धूमधाम, साजबाज, तड़क-भड़क, शानशौकत।

ठाटर—सज्ञा पुं. [हिं. ठाट] (१) बाँस की खपच्चियों का टट्टर। (२) ठटरी, पजर। (३) ढाँचा। (४) ठाटबाट, सजावट।

ठाटि—क्रि. स [हिं. ठाटना] (१) रचकर, संयोजित करके, सजाकर, सँवारकर। उ.—मैं विरंचि विरच्यौ जग मेरौ, यह कहि गर्व बढ़ायौ। ब्रज नर-नारि, ग्वाल-बालक, कहि कौनैं ठाटि रचायौ—४३६। (२) ठानकर, आयोजित करके, अपनाकर। उ.—पेड़ पेड़ तरु के लगे ठाटि ठगन के ठाट—१००६।

ठाटी—क्रि. स. [हिं. ठाटना] ठानी, आयोजित की। उ.—बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी। महतारी सौं मानत नाहीं कपट-चतुराई

ठाटी—१०-२५४ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट] ठट, समूह, श्रेणी ।

ठाटु, ठाठ—संज्ञा पुं. [हिं. ठाट] (१) ढाँचा । (२) सजावट । (३) चैनचान । (४) ढग । (५) तैयारी ।

ठाठना—क्रि. स. [हिं. ठाटना] (१) बनाना, रचना । (२) ठानना, आयोजित करना । (३)सजाना, सँवारना ।

ठाठर—संज्ञा पुं. [हिं. ठाटर] (१) टट्टर । (२) ठठरी, पंजर । (३) ठाट-बाट, सजावट, बनावट ।

संज्ञा पुं. [देश.] नदी का काफी गहरा भाग ।

ठाड़ा, ठाढ़ा—संज्ञा पु. [हिं. खड़ा] (१) खड़ा, जो बैठा न हो । (२) जो पिसा-कुटा न हो, साबुत । (३) उत्पन्न ।

मुहा.—ठाढा देना—ठहराना, टिकाना ।

वि.—हट्टा-कट्टा, बली, मजबूत ।

ठाढ़—वि. [हि. ठाढा] खड़े । उ.—तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े, अरु कुस हाथ धरे—१०-२४ ।

ठाढ़ा—वि. [स. स्थातृ] (१) खड़ा, जो बैठा न हो । (२) समूचा, साबुत, सारा ।

ठाढ़ीं—क्रि. अ. [हि. ठाढ़ा] खड़ी हैं । उ.—अष्ट महा-सिधि द्वारैं ठाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हे—१-४० ।

ठाढ़े—क्रि. अ. [हिं. ठाढा] खड़े थे, खड़े रहे । उ.—ठाढ़े भीम,नकुल,सहदेवऽरु नृप सब कृष्न समेत-१-६ ।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा पुं. [हि. ठाढ+ईश्वर] साधु जो आध्यात्मिक साधना के लिए दिन-रात खड़े रहते हैं; खड़े खड़े ही खाते-पीते और सोते हैं ।

ठाढ़ो ठाढ़ौ—क्रि. अ. [हि. ठाढा] (१) खड़ा हुआ । उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर धरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढौ—१-५ । (ख) काकैं द्वार होउँ ठाढौ, देखत काहि सुहाउँ—१-१२८ । (२) उत्पन्न, पैदा ।

मुहा.—दयो ठाढो—ठहराया, टिकाया । उ.—बारह वर्ष दयो हम ठाढो यह प्रताप बिनु जाने । अब प्रगटे बसुदेव सुवन तुम गर्ग वचन परिमाने ।

ठादर—संज्ञा पुं. [देश.]रार, झगड़ा, मुठभेड़ । उ.—देव आपनो नहीं सँभारत करत इंदु सों ठादर—६,४६ ।

ठान—संज्ञा स्त्री. [सं. अनुष्ठान] (१) कार्य का आरंभ या आयोजन । (२) आरंभ किया हुआ काम । (३) दृढ़ संकल्प, पक्का इरादा । (४) चेष्टा, मुद्रा, अंग-संचालन । उ.—पाछे बंक चितै मधुरै हँसि गात किए उलटे सु ठान सौं ।

ठानत—क्रि. स. [हि. ठानना] करता है, आरंभ करता है । उ.—तातैं हमरी अस्तुति ठानत—१० उ.१२७ ।

ठानना—क्रि. स. [सं. अनुष्ठान, हि. ठान] (१) किसी काम को तत्परता और संकल्प के साथ आरंभ करना । (२) मन में दृढ़ या स्थिर करना, दृढ़ संकल्प करना ।

ठानहु—क्रि. स. [हिं. ठानना] तत्परता से आरंभ करो । उ.—गोवर्धन की पूजा ठानहु—१०१६ ।

ठाना—क्रि. स. [हि. ठानना] (१) तत्परता और सकल्प से आरंभ किया, छेड़ा । (२) मन में ठहराया या निश्चित किया । (३) स्थापित किया, धरा ।

ठानि—क्रि. स. [हिं. ठानना] निश्चय कर, दृढ़ संकल्प कर, कोई बात ठानकर । उ.—सूर सो सुहृद मानि, ईश्वर अतर जानि, सुनि सठ, झूठौ हठ-कपट न ठानि—१-७७ ।

ठानी—क्रि. स. [हि. ठानना] (१) मन में निश्चित की, दृढ़ सकल्प किया । उ.—(क) जन्म तैं एक टक लागि आसा रही, विषय-बिष खात नहिं तृप्ति मानी । जो छिया छरद करि सकल संतनि तजी, तासु तैं मूढ-मति प्रीति ठानी—१-११० । (ख) ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई—१-२६६ । (ग) लीन्हे गोद बिभीषन रोवत कुल-कलंक ऐसी मति ठानी—६-१६० । (घ) हरि माँग्यौ माखन, नहिं दीन्ह्यौ, तब मन में रिस ठानी—सारा. ४४८ । (२) तत्परता के साथ आरंभ की । उ.—अर्ध निसा ब्रजनारि सग लै बन बंसी लीला ठानी—३४०२ ।

ठानै—क्रि. स. [हि. ठानना] स्थिर करता है, चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करता है । उ.—उनमत ज्यौं सुख-दुख नहि जानै । जागै वहै रीति पुनि ठानै—४-१२ ।

ठानो, ठानौ—क्रि. स. [हि. ठानना] किया, माना,

ठाना। उ.—ऐसी बातनि भगरो टानो हो मूरख तेरो कौन हवाला—१०३४।

ठान्यो, ठान्यौ—क्रि. स. [हिं. ठानना] (१) अनुष्ठित की, दृढ़तापूर्वक आरभ की। उ.—विप्रनि वेद-धर्म नहिं जान्यौ। तातैं उन ऐसौ वलि ठान्यौ—९-३। (२) मन में ठहराया, निश्चित किया। उ.—(क) अवलन को लै सो व्रत ठान्यौ जो जोगनि को जोग—३०८३। (ख) सुफलक सुत मिलि ढंग ठान्यौ है—३३५१।

ठाम—संज्ञा पुं. [सं. स्थान] (१) स्थान, जगह। उ.—छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर वृंदावन सौं ठाम—१-७६। (१) अंग-सचालन, मुद्रा, ठवनि। (३) शरीर की दीप्ति या कान्ति।

ठायँ—संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. ठाँव] ठौर, ठिकाना, स्थान।

ठार—संज्ञा पुं. [सं. स्तब्ध, प्रा. ठड्ढ, ठड्ड] (१) कड़ा जाड़ा या शीत। (२) पाला, हिम।

ठारे—संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. ठौर] ठौर, स्थान, जगह। उ.—पूरव पवन स्वाँस उर ऊरध आनि जुरे इक ठारे—३३८४।

ठाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. निठल्ला] (१) बेकारी, बेरोजगारी। (२) फुरसत, खाली समय।

वि.—जो खाली या बेकार हो, निठल्ला।

ठाला—संज्ञा पुं. [हिं. निठल्ला] (१) रोजगार की कमी, बेकारी। (२) आमदनी की कमी।

वि.—खाली, बेकार, निठल्ला।

मुहा.—ठाला बताना—बिना कुछ दिये टरकाना।

ठाली—वि. स्त्री. [हिं. निठल्ला] खाली, बेकार, निठल्ली, जिसके पास काम-धधा न हो। उ.—ऐसी को ठाली बैसी है तो सौं मूड़ चढावै (चरावै)—३२८७।

ठावँ—संज्ञा स्त्री., पुं. [हिं. ठाँव] स्थान, जगह, ठिकाना।

यौ.—ठावँहि-ठावँ—स्थान-स्थान पर, अनेक स्थानों पर। उ.—अनंद अतिसै भयौ घर-घर, नृत्य ठावँहि-ठावँ—१०-२६।

ठावना—क्रि. स. [हिं. ठाना] (१) ठानना, आरंभ करना। (२) मन में ठहराना, सकल्प करना।

ठासा—संज्ञा पुं. [हिं. ठाँसना] लोहारों का एक औजार।

ठाह—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहना] (१) ठहने की क्रिया या भाव। (२) संगीत में साधारण से अधिक समय लगाकर गाने की क्रिया या भाव, विलंबित।

ठाहना—क्रि. स. [हिं. ठहरना] सकल्प करना।

ठाहर, ठाहरु—संज्ञा पुं. [सं. स्थल, हिं. ठहर] (१) स्थान, जगह। उ.—(क) सुक-सुता जब आई बाहर। बसन न पाए तिन ता ठाहर—९-१७४। (ख) तातैं खरी मरत इहि ठाहर—३३६१। (ग) सर्वव्यापी तुम सब ठाहर—१० उ. १ ६। (२) निवास स्थान, बसने या टिकने का स्थान।

ठाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँई] (१) स्थान, जगह। (२) तईं, प्रति। (३) समीप, पास, निकट।

ठिंगना—वि. [हिं. हेठ+अग] छोटे कद का, नाटा।

ठिंगनी—वि. स्त्री. [हिं. ठिंगना] छोटे कद की, नाटी।

ठिक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकिया] धातु की चकती।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकना] स्थिरता, ठहराव।

ठिकठान—संज्ञा पुं. [हिं. ठीक+स्थान] ठौर, ठिकाना।

ठिकठैन, ठिकठैना—संज्ञा पुं. [हिं. ठीक + ठयना] प्रबंध।

ठिकड़ा, ठिकरा—संज्ञा पुं. [हिं. ठीकरा] घड़े आदि मिट्टी के पात्र का टूटा हुआ टुकड़ा।

ठिकना—क्रि. अ. [हिं. ठिठकना] ठहरना, रुकना।

ठिकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठीकरी] (१) मिट्टी के बरतन का टुकड़ा। (२) तुच्छ चीज। (३) चिलम का तवा।

ठिकान, ठिकाना—संज्ञा पुं. [हिं. टिकान] (१) स्थान, ठौर। (२) निवास-स्थान, रुकने-ठहरने की जगह। (३) आश्रय, जीविका, निर्वाह का स्थान।

मुहा.—ठिकाना करना—(१) जगह या स्थान नियत करना। (२) टिकना, डेरा डालना। (३) आश्रय ढूँढ़ना, जीविका ठीक करना। (४) ब्याह ठीक करना। ठिकाना ढूँढना—(१) जगह तलाश करना। (२) ठहरने या टिकने की जगह खोजना। (३) नौकरी खोजना। (४) कन्या के लिए वर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगना—(१) ठहरने या टिकने का स्थान मिलना। (२) जीविका का

प्रबंध होना। (३) कन्या का विवाह हो जाना।

(४) ठीक,प्रमाण, यथार्थता। (५) प्रबंध, बदोबस्त।

मुहा.—ठिकाना लगना—प्रबंध होना, प्राप्ति का डौल होना। ठिकाना लगाना—प्राप्ति का डौल लगाना।

(६) अंत, हद, सीमा, पारावार।

क्रि. स. [हि. ठिकना] अड़ाना, स्थिर करना।

ठिकाने, ठिकानैं—संज्ञा पुं. सवि. [हि. ठिकाना] ठिकाने पर, स्थान पर।

मुहा.—ठिकानैं आवै—(१) निश्चित या नियत स्थान पर पहुँचे। उ.—चलत पथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ। जो कोउ ताकों निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकानैं आवै—३-१३। (२) ठीक विषय, विचार या निष्कर्ष पर पहुँचे। (३) असली या मतलब की बात छेड़े या कहे। ठिकाने की बात—(१) ठीक या असली बात। (२) समझदारी की बात। (३) पते या भेद की बात। ठिकाने न रहना—चचल हो जाना ठिकाने पहुँचाना—(१) ठीक जगह पर पहुँचाना। (२) किसी चीज को नष्ट या लुप्त करना। (३) मार डालना। ठिकाने लगना—(१) ठीक जगह पर पहुँचना। (२) काम या उपयोग में आना। (३) सफल होना। (४) मर जाना। ठिकाने लगाना—(१) ठीक जगह पहुँचाना। (२) काम या उपयोग में लाना। (३) सफल करना। (४) खो देना, लुप्त कर देना। (५) खर्च कर डालना। (६) काम-धंधे से लगाना। (७) काम पूरा करना। (८) मार डालना।

ठिकानौ—संज्ञा पुं. [हिं. टिकान] (१) ठिकाना, स्थान। (२) आश्रय स्थान, अवलब। उ.—अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसर्‍यौ परम ठिकानौ—१-४७।

ठिठकना—क्रि. अ. [सं. स्थित+करण] (१) चलते-चलते रुकना, ठहरना। (२) अंगो का स्थिर होना, ठक या स्तब्ध हो जाना।

ठिठरना, ठिठुरना—क्रि. अ. [सं. स्थित] सरदी से ऐंठना या अकड़ना, बहुत सरदी खा जाना।

ठिनकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) बच्चो का रह रह कर रोने-सा शब्द निकालना। (२) रोने का नखरा करना।

ठिया—संज्ञा पु. [सं. स्थित] (१) गांव की सीमा या हद का पत्थर। (२) चाँड, थूनी, टेक। (३) टिकने का ठीहा, चबूतरा।

ठिर—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थिर] कड़ा जाड़ा, पाला।

ठिरना—क्रि. स. [हि. ठिर] सरदी से ठिठुरना।

क्रि. अ.—बहुत ज्यादा सरदी पड़ना।

ठिलना—क्रि. अ. [हिं. ठेलना] (१) ठेला-ठकेला जाना। (२) घुसना, धँसना। (३) बैठना, जमना।

ठिलाठिल—क्रि. वि. [हि. ठिलना] धकेलते हुए।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री. [हि. स्थाली, प्रा.ठाली] छोटा घड़ा।

संज्ञा स्त्री. [हि. ठेला] छोटा ठेला।

ठिलुआ—वि. [हि. निठल्ला] बेकाम, बेरोजगार।

ठिल्ला—संज्ञा पुं. [हि. ठिलिया] घड़ा, गगरी।

ठिल्ली, ठिल्ही—संज्ञा स्त्री. [हि. ठिल्ला] छोटा घड़ा।

ठिहार—वि. [सं. स्थिर] विश्वास करने योग्य।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहरना] करार, ठहराव।

ठीक—वि. [हिं. ठिकाना] (१) सच, यथार्थ, जैसा हो वैसा। (२) भला, अच्छा, उचित, योग्य।

मुहा.—ठीक लगना—भला या उचित जान पड़ना।

(३) जिसमें भूल या अशुद्धि न हो, सही। (४) जो बिगड़ा या खराब न हुआ हो, दुरुस्त। (५) जो ढीला या कसा न हो, अच्छी तरह बैठा या जमा हुआ।

मुहा.—ठीक आना—ढीला या कसा न होना।

(६) सीधा, नम्र, अच्छे आचरणवाला।

मुहा.—ठीक करना (बनाना)—(१) (सुधारने के उद्देश्य से) दड देना। (२) मारना-पीटना।

(७) जो आगे-पीछे, इधर-उधर घटा-बढ़ा न हो।

मुहा.—ठीक उतरना—तौल में कम-बढ़ न होना।

(८) ठहराया हुआ, निश्चित या पक्का किया हुआ।

क्रि. वि.—जैसे चाहिए वैसे, उचित रीति से।

संज्ञा पु.—(१) निश्चय, पक्की या दृढ़ बात।

मुहा.—ठीक देना—दृढ़ निश्चय करना।

(२) ठहराव, करार, निश्चित प्रबंध, पक्का आयोजन। (३) जोड़, योग।

मुहा.—ठीक देना (लगाना)—जोड़ या योग निकालना ।

ठीकठाक—संज्ञा पु. [हिं. ठीक] (१) निश्चित प्रबंध, पक्का आयोजन। (२) जीविका का प्रबध। (३) पक्की बात ।

वि.—बनकर तैयार, काम देने योग्य ।

ठीकड़ा, ठीकरा—संज्ञा पु. [हिं. टुकड़ा] (१) मिट्टी के बरतन का टूटा-फूटा टुकड़ा ।

मुहा.—ठीकरा फोड़ना—दोष या कलंक लगाना। ठीकरा समझना—तुच्छ या बेकार समझना, कुछ न मानना । (किसी वस्तु का) ठीकरा होना—पानी की तरह अँधाधुंध खर्च होना ।

(२) बहुत पुराना बरतन । (३) भिक्षापात्र ।

ठीकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठीकरा] (१) मिट्टी के फूटे बरतन का टुकड़ा। (२) बेकार या तुच्छ चीज ।

ठीका—संज्ञा पुं. [हिं. ठीक] (१) धन लेकर किसी काम को पूरा कर देने का जिम्मा। (२) कुछ धन देकर आयवाली किसी वस्तु की आमदनी वसूलने का काम सौंपना, इजारा ।

ठीकेदार—संज्ञा पु. [हि.] ठीका लेनेवाला ।

ठीठी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हँसी का शब्द ।

ठीलना—क्रि. स. [हि. ठेलना] जबरदस्ती भेजना ।

ठीले—क्रि. स. [हि. ठीलना] जबरदस्ती भेजने (से)। उ.—मैं तो भूलि ज्ञान को आयौ गयउ तुम्हारे ठीले।

ठीवन—संज्ञा पु. [सं. ष्ठीवन] थूक, खखार ।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] घोड़ो की हिनहिनाहट ।

ठीहा—संज्ञा पुं. [सं. स्था] (१) जमीन में गड़ी लकड़ी। (२) लकड़ी छीलने, काटने या गढ़ने का कुंदा। (३) गद्दी । (४) हद, सीमा ।

ठुंठ, ठुंड—संज्ञा पु. [हिं. ठूँठ] (१) सूखा पेड़। (२) कटे हुए हाथवाला या लूला मनुष्य ।

ठुकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) ठोका-पीटा जाना। (२) चोट पड़ने से गड़ना या धँसना। (३) मारा-पीटा जाना। (४) कुश्ती में हारना। (५) हानि होना। (६) कैद होना। (७) दाखिल होना।

ठुकराना—क्रि. स. [हि. ठोकर] (१) ठोकर या लात मारना। (२) तुच्छ या बेकार समझ कर पैर से किनारे करना ।

ठुकवाना—क्रि. स. [हिं. ठोकना का प्रे.] (१) ठोकने का काम कराना, पिटवाना। (२) मरवाना। (३) गड़वाना, धँसवाना ।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] चिबुक, ठोड़ी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठड़ा = खड़ा] वह भुना हुआ अनाज जो फूटकर खिला न हो, टोर्री ।

ठुनकना—क्रि. अ. [हि. ठिकना] ठिठकना, रुकना ।

क्रि. स. [हिं. ठोंकना] धीरे धीरे ठोकना ।

ठुनकाना—क्रि. स. [हिं. ठोकना] धीरे से ठोकना ।

ठुनठुन—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) धातु के टुकडे या बरतन बजने का शब्द। (२) बच्चो के रुक रुक कर रोने का शब्द ।

ठुमक—वि. [अनु.] (चाल) जो ठिठक या पटक की ध्वनि के साथ हो। (२) ठसक भरी (चाल) ।

ठुमक ठुमक—क्रि. वि. [अनु.] उमग से पैर पटकते, ठिठकते या धीरे-धीरे कूदते हुए ।

ठुमकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) उमग से पैर पटकते, ठिठकते या धीरे-धीरे कूदते हुए चलना। (२) पैर पटककर घुंघरू बजाते हुए नाचना ।

ठुमका—वि. [अनु.] छोटे डील-डौल का, नाटा ।

संज्ञा पुं. [अनु.] झटका, ठुमका (पतग) ।

ठुमकारना—क्रि. स. [अनु.] (पतग को) ठुमका देना ।

ठुमकी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) झटका, थपका(पतग) । (२) ठिठक, रुकावट । (३) छोटी खरी पूरी ।

वि. स्त्री.—छोटे डील-डौल की, नाटी ।

ठुमकि, ठुमुकि, ठुमक, ठुमुकु—क्रि. वि. [अनु. ठुमुक-ठुमुक] जल्दी-जल्दी (बच्चो का) पैर पटकते हुए या कूदते हुए चलना, ठुमुक ठुमुक कर चलना। उ.—(क) चलत देखि जसुमति सुख पावै। ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै—१०-१२६ । (ख) ललित आँगन खेलै, ठुमुकि ठुमुकि डोलै, झुनुक झुनुक बोलै पैजनी मृदु मुखर—१०-१५१ ।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) दो बोलों का छोटा गीत। (२) गप, अफवाह, उड़ती खबर।

ठुरियाना—क्रि. स. [हिं. ठिठुरना] सरदी से अकड़ना।

ठुर्री—संज्ञा स्त्री. [हि. ठड़ा=खड़ा] वह भुना हुआ दाना जो भूनने पर खिला-फूटा न हो, टोर्री।

ठुसकना—क्रि. अ. [हि. ठिनकना] ठसक से रोना।

ठुसना—क्रि. अ. [हिं. ठूँसना] (१) ठूँस-ठूँसकर या दबा-दबाकर भरा जाना। (२) कठिनता से दबना।

ठुसवाना—क्रि. स. [हि. ठूसने का प्रे.] कसकर भरवाना।

ठुसाना—क्रि. स. [हि. ठूँसना] (१) कसकर भर वाना। (२) खूब पेट भर खिलाना।

ठूँग, ठूँगा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चोच। (२) चोच से मारना। (३) उँगली की पिछली हड्डी की चोट।

ठूँठ—संज्ञा पुं. [सं. स्थाणु] (१) सूखा-साखा पेड़। (२) कटा हुआ हाथ, ुड। (३) एक कीड़ा।

ठूँठा—वि. [हि. ठूँठ] (१) सूखा-साखा (पेड़)। (२) विना हाथ का (मनुष्य), लूला।

ठूँठिया—वि. [हि. ठूँठ] (१) लूला। (२) नपुंसक।

ठूँठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठूँठ] पौधो का डंठल जो खेत कटने पर रह जाय, खूँटी।

ठूँसना, ठूसना—क्रि. स. [हिं. ठस, ठूसना] (१) दबा दबाकर मारना। (२) जोर से घुसेड़ना। (३) खूब खाना, छककर खाना।

ठूँसा—संज्ञा पुं. [हिं. ठोसा] अँगूठा, ठेंगा।

ठेंगना—वि. [हिं. ठिगना] नाटा, ठिगना।

ठेंगा—संज्ञा पुं. [हिं. अँगूठा] (१) अँगूठा।

मुहा.—ठेंगा दिखाना—(१) अँगूठा दिखाकर, धृष्टता के साथ किसी बात को अस्वीकार करना। (२) अँगूठा दिखाकर चिढ़ाना।

(२) चुंगी का कर। (३) सोटा, डंडा।

मुहा.—ठेंगा बजना—(१) मार पीट होना। (२) प्रयत्न करने पर भी कुछ काम न होना।

ठेंगुर—संज्ञा पुं. [हि. ठेंगा=सोंटा] लबी लकड़ी जो प्रायः नटखट चौपायो के गले में बांध दी जाती है।

ठेंगे—संज्ञा पुं. वहु. [हि. ठींगा] अँगूठे, सींगे।

मुहा—ठेंगे से—बला से, कुछ परवाह नहीं।

ठेंघा—संज्ञा पुं. [हिं. टेघा] चांड़, टेक, थूनी।

ठेंठ—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चने के दाने का कोश। (२) पोस्ते की ढोढी।

वि. [हिं. ठेठ] (१) निरा, बिलकुल। (२) खालिस। (३) निर्मल। (४) शुरू, आरंभ।

ठेंठी, ठेंपी—संज्ञा स्त्री. [देश. ठेठी] (१) कान का मैल। (२) रुई या कपड़ा जो कान का छेद मूंदने के लिए खोसा जाय।

मुहा.—कान में ठेठी लगना—न सुनना।

(३) शीशी-बोतल आदि की काग या डाट।

ठेक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकना] (१) सहारा। (२) टेक, चांड़। (३) पच्चड़। (४) पेंदा, तल। (५) छड़ी या लाठी की सामी।

ठेकना—क्रि. स. [हि. टेक] (१) सहारे या आश्रय की चीज। (२) टिकना, ठहरना।

ठेका—संज्ञा पु. [हिं. टिकना, टेक] (१) सहारे की चीज, टेक। (२) रुकने-ठहरने का स्थान। (३) बायें तबले का ताल। (४) बांयां तबला। (४) ठोकर, धक्का।

संज्ञा पुं. [हिं. ठीक] कुछ धन के बदले में काम करने का जिम्मा, ठीका। (२) आमदनी की चीज से आय वसूलने का पट्टा, इजारा।

ठेकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेक] (१) टेक, सहारा। (२) विश्राम के लिए बोझ को टिकाने की क्रिया।

ठेगड़ी—संज्ञा पुं. [देश.] कुत्ता।

ठेगना, ठेघना—क्रि. स. [हि. टेकना] (१) टेकना, सहारा लेना। (२) रोकना, बरजना, मना करना।

ठेगनी, ठेघनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठेगना] टेकने की लकड़ी।

ठेघा—संज्ञा पु. [हिं. टेक] सहारे की टेक, चांड़।

ठेघुना—संज्ञा पुं. [हिं. टेहुना] घुटना, टखना।

ठेठ—वि. [देश.] (१) निरा, बिलकुल। (२) जिसमें बाहरी या दूसरी चीजों का मेल न हो, खालिस। (३) निर्मल, शुद्ध। (४) आरंभ।

संज्ञा स्त्री.—सीधी-सादी अनगढ़ बोली।

ठेप संज्ञा पुं. [सं. दीप] दीपक, चिराग।

ठेपी—संज्ञा स्त्री. [देश.] बोतल की काग।
ठेलत—क्रि. स. [हि. ठेलना] ठेलते है, ढकेलते हैं।
उ.—इक कौं आनि ठेलत पाँच—१-१६६।
ठेलना—क्रि. स. [हि. टलना] ढकेलना, रेलना।
ठेलमठेल—क्रि. वि. [हि. ठेलना] ढकेलते हुए।
ठेला—संज्ञा पुं. [हि. ठेलना] (१) बगल से लगाया हुआ धक्का या आघात। (२) ढेल कर चलायी जानेवाली गाडी। (३) भीड का धक्कमधक्का।
ठेलाठेल—संज्ञा स्त्री [हि. ठेलना] रेल पेल, धक्कमधक्का।
ठेलै—क्रि. अ. [हिं. ठिलना] आगे बढ़े। उ.—आगे को रथ नेकु न ठेलै—३३८७।
क्रि. स. [हिं. ठेलना] आगे बढ़ाये।
ठेस—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठस] आघात, चोट, धक्का, ठोकर। उ.—कहयौ लकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ, कायर डरानौ—६-१११।
ठेसना—क्रि. स. [हिं. ठूसना] घुसेड़ना, भरना।
ठेहुना—संज्ञा पुं. [सं. अष्ठीवान] घुटना।
ठैन—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थान, हि. ठाँय] जगह, स्थान, ठौर। उ.—क्रीड़त सघन कुंज वृंदाबन बंसीवट जमुना की ठैन—२०८७।
ठैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. ठाई] (१) ठौर, स्थान। (२) तईं, प्रति। (३) निकट, पास, समीप।
ठैरना—क्रि. अ. [हि. ठहरना] रुकना, ठहरना।
ठैराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहराई] ठहरने की क्रिया।
ठैराना—क्रि. स. [हिं. ठहराना] रोकना, टिकाना।
ठोंक—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठोंकना] प्रहार, आघात।
क्रि. स.—थपेड़ा देकर, थपथपाकर।
मुहा.—ठोंक ठोंक कर लड़ना—डटकर या ताल ठोककर लड़ना, जबरदस्ती झगड़ा करना। ठोंक बजाकर—जाँच करके, परखकर।
ठोंकना—क्रि. स. [अनु. ठकठक] (१) जोर से चोट मारना, पीटना। (२) लात, घूंसे से मारना पीटना। (३) चोट या प्रहार करके गाड़ना। (४) (दावा, मालिश) दायर करना। (५) बेड़ियो से जकड़ना। (६) हाथ से थपथपाना।
मुहा.—ठोंकना बजाना—परीक्षा करना, परखना। पीठ ठोंकना—शाबाशी देना। रोटी (बाटी) ठोंकना। अपने हाथ से रोटी बनाना।
(७) हाथ से मारकर (बाजा आदि) बजाना। (८) जड़ना, लगाना, अटकाना। (९) 'खटाखट' शब्द करना, खटखटाना।
ठोंकि—क्रि. स. [हिं. ठोंकना] थपथपाकर, थपेड़ा देकर। उ.—कर सौं ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाई बैठे अतुराने—१०-१५७।
मुहा.—ठोंकि बजाय—अच्छी तरह परखकर, परीक्षा करके, जाँचकर। उ.—नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय। देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुल के राय—२७००।
ठोंकी—क्रि. स. [हिं. ठोंकना] ऊपर से चोट मारी, धँसाई, गाड़ दी। उ.—लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१।
ठोंग—संज्ञा स्त्री. [स. तुंड] (१) चोंच। (२) चोंच की चोट। (३) उँगली की पिछली हड्डी की ठोकर।
ठोंगना, ठोंचना—क्रि. स. [हि. ठोंग] (१) चोंच की चोट मारना, (२) उँगली की पिछली हड्डी से प्रहार करना।
ठोंठी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चने के दाने का कोश। (२) पोस्ते की ढोढी।
ठो—अव्य. [हि. ठौर] संख्या, अदद।
ठोकना—क्रि. स. [हि. ठोंकना] (१) ठोकर देना। (२) मारना। (३) गाड़ना। (४) थपथपाना। (५) जड़ना। (६) हाथ से बजाना।
ठोकर—संज्ञा स्त्री. [हि. ठोकना] (१) चोट जो किसी पड़ी या गाड़ी हुई चीज से टकराने पर लग जाय।
मुहा.—ठोकर उठाना—हानि या दुख सहना। ठोकर खाना—(१) किसी पड़ी हुई चीज से टकराना या टकराकर गिरना। (२) भूल से दुख या हानि सहना। (३) भूल-चूक करना। (४) इधर उधर मारे-मारे फिरना। ठोकर खाते फिरना—इधर-उधर मारे मारे फिरना। ठोकर लगना—(१) किसी पड़ी हुई चीज से टकराकर चोट खाना। (२) दुख या हानि पहुँचना। ठोकर लेना—किसी चीज से टकरा-

करे चोट खाना।

(२) रास्ते में पड़ा या गड़ा हुआ कंकड़- पत्थर जिससे पैर में चोट लगने का डर हो। (३) पैर का आघात या प्रहार।

मुहा.—ठोकर देना (जड़ना)—ठोकर मारना। ठोकर खाना—लात का आघात या प्रहार सहना। ठोकर पर पड़ा रहना—अपमान या तिरस्कार सहकर भी सेवा या निर्वाह करना।

(४) कड़ा आघात, धक्का।

ठोका—संज्ञा पुं. [देश.] कलाई का एक गहना।

ठोट—वि. [हिं. ठूँठ] (१) जड, मूर्ख, गावदी। उ.—पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट। तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कवि ठोट—१-१३२। (२) तत्व या साहीन।

ठोठरा—वि. [हिं. ठूँट] पोपला, खाली।

ठोड़ी, ठोढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] चिबुक, ठुड्डी। उ.—मैं बलि जाउँ ललित ठोढ़ी पर—६६४।

मुहा.—ठोढ़ी पर हाथ धरकर बैठना—चिंतित होना। ठोढ़ी पकड़ना (में हाथ देना)—(१) प्यार करना। (२) मीठी बातें कहकर क्रोध शांत करना। ठोढ़ी तारा—सुंदर ठुड्डी पर काला तिल।

ठोप—संज्ञा पुं. [अनु. टपटप] बूंद, बिंदु।

ठोर—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की मिठाई।

संज्ञा पुं. [सं. तुंड] चोंच, चंचु।

ठोला—संज्ञा पुं. [देश.] आदमी, मनुष्य।

संज्ञा पु. [देश.] रेशम बनाने का एक औजार।

ठोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठोली] हँसी-दिल्लगी।

संज्ञा स्त्री. [देश.] उपपत्नी।

ठोस—वि. [हिं. ठस] जो पोला या खोखला न हो। (२) दृढ़, मजबूत। (३) बहुत धनी।

ठोसनि—संज्ञा पुं. [हिं. ठोस+नि] कुढ़न, डाह। उ.—इक हरि के दरसन बिनु मरियत अरु कुबिजा के ठोसनि—१० उ. ८८।

ठोसा—संज्ञा पुं. [देश.] (हाथ का) अँगूठा।

मुहा.—ठोसा दिखाना—अँगूठा दिखाकर इनकार करना।

ठोसे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. ठोसा] अँगूठे, सींगे।

मुहा.—ठोसे से—बला से, कुछ परवाह नहीं।

ठोहना—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजना, ढूंढना।

ठोहर—संज्ञा पुं [हिं. निठोहर] अकाल, महँगी।

ठौनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठवन] खड़े होने की मुद्रा।

ठौर—संज्ञा पुं. [सं. स्थान, प्रा. ठान, हि. ठाँव+र] जगह, स्थान, ठिकाना। उ.—छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ। सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ—१-१३१।

यौ.—ठौर ठिकाना—(१) रहने या बसने का स्थान। (२) पता-ठिकाना।

मुहा.—आइ होइ इक ठौर—एक स्थान पर एकत्र हो। उ.—यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ होइ इक ठौर। अब कैं तौ आपुन लै आयौ, बेरे बहुर की और—१-१४६। कहूँ ठौर नहि—कहीं आश्रय नहीं है। उ.—कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहूँ दिसि धावै—१-२३३। ठौर न आना—पास न जाना। ठौर न आवै—समीप नहीं आता, पास नहीं फटकता। उ.—हरि को भजै सो हरि पद पावै। जन्म मरन तेहि ठौर न आवै। ठौर-कुठौर —(१) शरीर के कोमल-कठोर अंग। (२) भली-बुरी जगह। (३) बेमौका, बिना अवसर। ठौर रखना—(१) गुंजाइश रखना। (२) मार डालना। ठौर रहना—(१) गुंजाइश होना। (२) जहां का तहां रह जाना। (३) मर जाना। किसी के ठौर—किसी के समान या स्थानापन्न।

(२) मौका, घात, अवसर।

ठौर ठिकाना—संज्ञा पुं. [हि. ठौर+ठिकाना] (१) सुरक्षित स्थान। (२) (बात या निश्चय की) दृढ़ता।

ठ्यापा—वि. [देश.] उपद्रवी, शरारती।

ड

ड—टवर्ग का तीसरा और देवनागरी वर्णमाला का तेरहवाँ व्यंजन; इसका उच्चारण जिह्वामध्य को मूर्द्धा में स्पर्श करने से होता है।

डंक—संज्ञा पु. [सं. दंश] (१) बिच्छू, भिड आदि कीडो का जहरीला कांटा जिसे वे क्रोध में प्राणियो के शरीर में गडोते हैं। (२) कलम की जीभ। (३) डक लगा हुआ स्थान।

डंकना—क्रि. अ. [अनु.] जोर से गरजना।

डंका—संज्ञा पुं. [सं. ढक्का=दुंदुभि का शब्द] (१) एक बडा बाजा जो प्रायः युद्ध के अवसर पर बजाया जाता था।

मुहा.—डंका देना (पीटना, बजाना)—(१) सब पर प्रकट करना, घोषित करना। (२) डौंडी फेरना, मुनादी करना। किसी का डका बजना—किसी का शासन या अधिकार चजना। डंका बजाकर (डंके की चोट) कहना—सबको जता जताकर कहना।

डंकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाकिनी] पिशाची, डाइन।

डंकियाना—क्रि. स. [हिं. डंक+आना] डक मारना।

डंका—वि. [हि. डक] जिसके 'डक' हो, डकवाला।

डंकीला—वि. [हिं. डंक+ईला (प्रत्य.)] डकवाला।

डंकुर—सज्ञा पुं. [हि. डंका] एक पुराना बाजा।

डंकौरी—संज्ञा स्त्री [हिं. डंक+औरी (प्रत्य.)] भिड़, बर्र।

डंग—संज्ञा पु. [देश.] छुहारा जो अधपका हो।

डंगम—संज्ञा पु. [देश.] एक पहाड़ी वृक्ष।

डंगर—सज्ञा पुं. [देश.] चौपाया।

डंगरा—संज्ञा पुं. [स. दशागुल] खरबूजा।

डंगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डंगरा] लबी ककडी।

सज्ञा स्त्री. [हिं. डाँगर] चुडैल, डाइन।

संज्ञा स्त्री. [देश] एक पहाड़ी बेंत।

डंटैया—संज्ञा पुं. [हि. डाँटना] डाँटने-धमकानेवाला।

डंठरी, डंठी—सज्ञा स्त्री. [हि. डठल] छोटी टहनी।

डंठल—संज्ञा पु. [सं. दंड] छोटे पौधों की टहनी।

डंड, डंड़—सज्ञा पु. [सं. दंड] (१) डडा, सोंटा। (२) बाहुदड। उ.—कृष कटि सबल डड—१६६७। (३) व्यायाम की एक रीति। (४) दड, सजा। (५) जुरमाना। (६) घाटा हानि। (७) घडी, दड।

डंडक—संज्ञा पुं. [सं. दडक] (१) दड देनेवाला। (२) डडा। (३) दंडक नामक वन।

डंडपेल—संज्ञा पु. [हिं डंड+पेलना] (१) खूब डड पेलने या व्यायाम करनेवाला, कसरती। (२) बलवान आदमी।

डंडवत—सज्ञा पुं. [सं. दंडवत्] प्रणाम की एक रीति।

डंडवारा—संज्ञा पुं. [हिं. डाँड़+वार=किनारा] नीची दीवार या चारदीवारी।

सज्ञा पु. [हिं. दक्खिन+वायु] दक्षिणी वायु।

डंड़वी—संज्ञा पुं. [देश.] दड या कर देनेवाला।

डंडा—सज्ञा पुं. [सं. दंड] (१) लकडी का सीधा टुकड़ा, मोटी छड़ी। (२) बच्चो के खेलने की छोटी रगीन छडी। (३) नीची चारदीवारी।

डंडाकरन—संज्ञा पुं. [सं. दंडकारण्य] दंडकवन।

डंडाल—संज्ञा पुं. [हिं. डंडा] नगाड़ा, दुंदुभी।

डंड़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँड़ी=रेखा] (१) कुआँरी लडकियो की साडी जिसमें गोट टाँककर लकीरें बनी हो। उ.—(क) लाल चोली नील डंड़िया संग जुवतिन भीर। (ख) नख-सिख सजि सिंगार ब्रज जुवती तन डंड़िया कुसुमें बोरी की। (२) गेहूँ की लबी सींक जिसमें बाल लगती है।

संज्ञा पुं. [हिं. डाँड़=अर्थदड] कर वसूलनेवाला।

डंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डडा] (१) पतली छड़ी। (२) हथिया, मुठिया, दस्ता। (३) तराजू की डाँड़ी। (४) पौधे का लबा डंठल या नाल। (५) फूल का निचला भाग। (६) हरसिंगार का फूल। (७) आरसी नामक गहने का छल्ला। (८) डडे में बंधी झोली की पहाडी सवारी। (९) दडधारी संन्यासी।

वि.—[सं. द्वंद्व] झगड़ा करने या चुगली खानेवाला।

डंड़ीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँड़ी] सीधी लकीर।

डंडोर—क्रि. स. [अनु.] ढूँढ़ने-खोजने के लिए उलट

पलटकर। उ.—हरि सों हीरा खोइ कै हम रहीं समुद्र डँडोर।

डँडोरना—क्रि. स. [अनु.] उलट-पलटकर ढूँढ़ना।

डँडौत—संज्ञा पुं. [सं. दंडवत्] प्रणाम की एक रीति।

डंबर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आयोजन, धूमधाम। (२) विस्तार (३) विलास। (४) एक तरह का चँदोवा।

यौ.—अंबर-डंबर—सध्या की लाली जो आकाश में दिखायी देती है। मेघ डंबर—बड़ा शामियाना।

डँवाडोल—वि. [हिं. डाँव डाँव+डोलना] चचल, विचलित, डाँवाडोल, घबराया हुआ।

डंस—संज्ञा पुं. [सं. दंश] (१) जगली मच्छर, डाँस। (२) डंक चुभने का स्थान।

डँसना—क्रि. स. [हिं. डसनौं] डंक मारना।

डकइत—संज्ञा पुं. [हिं. डकैत] लुटेरा, डाकू।

डकराना—क्रि. अ. [अनु.] गाय-भैस आदि चौपायों का पीड़ा या कष्ट से चिल्लाना।

डकवाह—संज्ञा पुं. [हिं. डाक] डाकिया।

डकार—संज्ञा स्त्री. [अनु.] मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार जो प्रायः पेट भरने या भोजन पचने का सूचक माना जाता है।

मुहा.—(साँस) डकार न लेना—(१) चुपचाप दूसरे की धन-सपत्ति या माल हजम कर जाना। (२) काम का पता न देना।

(२) सिंह, बाघ आदि की गरज, दहाड़ या गुर्राहट।

डकारना—क्रि. अ. [हिं. डकार+ना (प्रत्य.)] (१) डकार लेना। (२) धन सपत्ति चुपचाप हजम कर लेना। (३) सिंह, बाघ आदि का गरजना या गुर्राना।

डकैत—संज्ञा पुं. [हि. डाका+ऐत (प्रत्य.)] लुटेरा, डाका डालनेवाला।

डकैती—संज्ञा स्त्री. [हिं. डकैत] लूट-मार, डाका।

डकौत—संज्ञा पुं. [देश.] ज्योतिषी आदि का ढोंग रचनेवाला, भड्डरी।

डग—संज्ञा पुं. [सं. दक्=चलना] चलने में आगे बढ़ने के उद्देश्य से पैर उठाकर पुनः रखने की क्रिया की समाप्ति, कदम। उ.—(क) ज्यों कोउ दूरि चलन कौ करै। क्रम क्रम करि डग डग पग धरै—३-१३। (ख) मुरि-मुरि चितवत नंद गली। डग न परत ब्रजनाथ साथ-बिनु बिरह-ब्यथा मचली। (ग) नित उठि जाइ प्रात लै बन सँग आगे-पाछे चलि न सकति सखी डग एकु—२८७१।

मुहा.—डग देना (भरना)—चलने में पैर आगे बढ़ाना। डग मारना (बढ़ाना)—लंबे लबे कदम बढ़ाना। (२) जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय, उन दोनो स्थानो की दूरी, पैंड़।

डगडगाना—क्रि. अ. [अनु.] हिलना-डोलना।

डगडोलना—क्रि. अ. [हिं. डग+डोलना] हिलना, काँपना।

डगडोलै—क्रि. अ. [हिं. डगडोलना] हिलती-काँपती है। उ.—भीषम, द्रोन करन सुनै कोउ मुखहु न बोलै। ए पांडव क्यों काढियै धरनी डगडोलै।

डगडौर—वि. [हिं. डग+डोलना] हिलती-डुलती, डाँवाडोल, काँपती हुई। उ.—स्याम को एक तुही जान्यो दुराचारनी और। जैसे घट पूरन न डोलै अध भरो डग डौर।

डगण—संज्ञा पुं. [सं.] चार मात्राओं का एक गण।

डगना—क्रि. अ. [हिं. डग] (१) खिसकना, जगह छोड़ना। (२) भूल-चूक करना, चूकना (३) विचलित होना।

डगमग—क्रि. अ. [हिं. डग+मग] हिलना-डुलना, स्थिर न रहना। उ.—बिहरत बिविध बालक संग। डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि, धूसर अंग—१०-१८४।

डगमगाइ—क्रि. अ. [हिं. डगमगाना] हिलडुलकर, थरथराकर, डगमग होकर। उ.—सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया—१०-११५।

डगमगात—क्रि. अ. [हिं. डगमगाना] हिलते-डुलते (है), थरथराते (है), स्थिर नहीं रहते। उ.—(क) चलन चहत पाइनि गोपाल। । डगमगात गिरि परत पानि परि, भुज भ्राजत नँदलाल—१०-११४। (ख) डगमगात डोलत आँगन मैं, निरखि बिनोद-मगन सुर-मुनि-नर—१०-१२४।

डगमगाना—क्रि. अ. [हिं. डग+मग] (१) हिलना-डोलना, थरथराना। (२) किसी बात पर दृढ़ न रहना।

डगमगी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. डग+मग] हिलने-डुलने लगी, स्थिर न रह सकी। उ.—भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहसफन सेस कौ सीस काँप्यौ—६-१०६।

डगमगे—वि. [हिं. डगमग] चंचल, डाँवाडोल, अस्थिर, काँपते हुए। उ.—सूर सों मनसा भई पाँगुरी निरखि डगमगे गोड़—१३८७।

डगर, डगरा, डगरिया, डगरी, डगरौ—संज्ञा पु. [हिं. डग, डगर] पथ, मार्ग, पैंड़ा। उ.—(क) भोरहिं नित प्रति ही उठि, मोसौं करत झगरौ। ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ—१०-३३६। (ख) आवत जात डगर नहिं पावत गोवर्धन पूजा संजोग—६१६।

मुहा.—डगर (डगरा, डगरी) बताना—(१) रास्ता बताना। (२) उपाय या तदबीर बताना।

डगरना—क्रि. स. [हिं. डगर] धीरे-धीरे चलना।

डगराना—क्रि. स. [हिं. डगरना] (१) ले चलना, चलाना। (२) हाँकना।

डगा—संज्ञा पुं. [हिं. डागा] डुग्गी या नगाड़ा बजाने की लकड़ी, चोब।

डटना—क्रि. अ. [सं. स्थातृ, हिं. ठाट या ठाढ] (१) अड़ना, जमकर खड़ा होना, ठहरना। (२) छू जाना, लगना।

क्रि. स. [सं. दृष्टि, हिं. डीठ] देखना, ताकना।

डटा—क्रि. अ. [हिं. डटना] अड़ा, ठहरा।

मुहा.—डटा रहना—शत्रु का सामना करने या कठिनाई झेलने से मुँह न मोड़ा।

डटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाटना] डाँटने की क्रिया।

डटाना—क्रि. स. [हिं. डटना] (१) सटाना, भिड़ाना। (२) ठेलना। (३) जमाकर खड़ा करना।

डगाना—क्रि. स. [हिं. डिगाना] विचलित करना।

डगै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. डग] डग या कदम को।

मुहा.—मारि डगै—लंबे-लंबे कदम बढ़ाकर। उ.—मारि डगै छ्वै फिरि चली सुंदर बेनि ढुरै सब अंग।

डग्गर—संज्ञा पुं. [सं. तरक्षु] एक मांसाहारी पशु।

डग्गर, डग्गा—संज्ञा पुं. [हिं. डग] दुबला-पतला घोड़ा।

डट—संज्ञा पुं. [देश.] निशाना।

क्रि. अ. [हिं. डटना] (१) जमकर। (२) तृप्त होकर, अघाकर, संतुष्ट होकर।

डट्टा—संज्ञा पु. [हिं. डाटना] (१) डाट, काग। (२) बड़ी मेख। (३) छींट छापने का ठप्पा या साँचा।

डड्ढार—वि. [हिं. डाढी] बड़ी दाढ़ीवाला।

वि. [सं. दृढ, हिं. डिढ] दृढ़ हृदय का, वीर।

डड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. डढना] जलन, ताप।

डढ़ना—क्रि. अ. [सं. दग्ध, प्रा. डड्ढ+ना (प्रत्य.)] जलना, बलना, सुलगना।

डढ़ार, डढ़ारा—वि. [हिं. डाढ] (१) जिसके दाढ़ हो। (२) जिसके डाढी हो, डाढीवाला।

डढ़ियल—वि. [हिं. डाढी] लंबी डाढ़ीवाला।

डढ़ै—क्रि. अ. [सं. दग्ध, प्रा. डड्ढ, हिं. डढना] जलती (है), जलाकर। उ.—अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढ़ै—१०-१७४।

डढ़ढना—क्रि. स. [हिं. डढना] जलाना, बलाना।

डढ़्यौरा—वि. [हिं. डाढ़ी] डाढ़ीवाला।

डपट—संज्ञा स्त्री. [सं. दर्प] डाँट, घुड़की।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रपट] तेज चाल या दौड़।

डपटना—क्रि. स. [हिं. डपट] डाँटना, घुड़कना।

क्रि. स. [हिं. रपटना] तेज दौड़ना।

डपोरसंख—संज्ञा पु. [अनु. डपोर=बड़ा + संख] (१) वह जो कहे तो बहुत-कुछ, परंतु करे कुछ नहीं। (२) वह जो देखने में तो बड़ी आयु का हो, पर बुद्धि में पिछड़ा हो।

डप्पू—वि. [देश.] बहुत बड़ा या मोटा।

डफ—संज्ञा पु. [अ. दफ] चमड़ा मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। उ.—(क) डफ-झाँझ मृदंग बजाइ, सब नंद-भवन गए—१०-२४। (ख) डिमिडिमी पटह ढोल डफ बीणा मृदंग उमंग चंग तार—२४४६।

डफला—संज्ञा पु. [अ. दफ] डफ नामक बाजा।

डफली—संज्ञा स्त्री. [अ. दफ] छोटा डफ, खँजरी।
मुहा.—अपनी अपनी डफली अपना अपना राग—जितने लोग उतनी ही राय, सब लोगों का अपनी अपनी बात पर जोर देना।

डफार—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चिल्लाहट, चिघाड़।

डफारना—क्रि. अ. [अनु.] जोर से रोना-चिल्लाना।

डफालची, डफाली—संज्ञा पु. [हिं. डफला] (१) डफला बजानेवाला। (२) डफला बजाकर भीख माँगनेवाला।

डफोरना—क्रि. अ. [अनु.] चिल्लाना, ललकारना।

डब—संज्ञा पु. [हिं. डब्बा] जेब, थैला।

डबकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) पीड़ा करना, दर्द होना। (२) लँगड़ाकर चलना।

डबकौहाँ, डबकौहे—वि. पुं. [अनु.] आँसू भरा हुआ, डबडबाया हुआ।

डबकौही—वि. स्त्री. [हिं. डबकौहाँ] आँसू भरी हुई।

डबडबाइ—क्रि. अ. [हिं. डबडबाना] आँसू भरकर, डबडबा कर। उ.—जब जब सुरति करत तब तब डबडबाई दोउ लोचन उमँगि भरत—२०३६।

डबडबाना—क्रि. अ [अनु.] आँसू भर आना।

डबरा—संज्ञा पुं. [सं. दभ्र=झील, समुद्र] कुंड, हौज।

डबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डबरा] छोटा गड्ढा या ताल।

डबला—संज्ञा पुं. [देश.] पुरवा, कुल्हड़, चुक्कड़।

डबा—संज्ञा पुं. [हिं. डिब्बा] संदुकची।

डबिया—संज्ञा स्त्री. [हि. डिब्बा] छोटी डिबिया।

डबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डिबिया] छोटी सदुकची।

डबुलिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] कुल्हिया, छोटा पुरवा।

डबोना—क्रि. स. [अनु. डबडब] (१) डुबाना, बोरना, गोता देना। (२) बिगाड़ना, चौपट करना।
मुहा.—नाम डबोना—नाम में धब्बा लगाना। वंश डबोना—कुल में धब्बा लगाना। लुटिया डबोना-(१) प्रतिष्ठा या मान खोना। (२) काम बिगाड़ना।

डब्बा—संज्ञा पुं. [तैलग। या सं. डिब=गोला] धातु का छोटा ढक्कनदार पात्र, संपुट।

डभकना—क्रि. अ. [अनु. डभडभ] डूबना-उतराना।

डभका—संज्ञा पु. [हिं. डभकना] कुएँ का ताजा पानी।
संज्ञा पु. [देश.] भुना हुआ साबुत अनाज।

डभकौरी—संज्ञा स्त्री. [हि. डभकना] उरद की पीठी की बरी जो कढ़ी में बिना तले ही डाली जाती है। उ.—पानौरा राइता पकौरी। डभकौरी मुँगछी सुठि सौरी।

डभकौहाँ—वि. [अनु.] आँसू भरा हुआ।

डम—संज्ञा पुं. [सं.] डोम, चाडाल।

डमर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भय से भागना, भगदड़। (२) हलचल, उपद्रव।

डमरु, डमरू—संज्ञा पुं. [सं. डमरु] (१) डमरू नाम का बाजा जो शिव जी को बहुत प्रिय माना गया है। उ.—खुनखुना कर हँसत हरि, हर हँसत डमरु बजाइ—१०-१७०। (२) डमरू के आकार की कोई चीज। (३) एक वृत्त।

डमरुआ—संज्ञा पुं. [सं. डमरु] गठिया रोग।

डमरुमध्य—संज्ञा पुं. [सं. डमरु + मध्य] धरती का पतला भाग जो दो बड़े भूखंडों को मिलाता है।

डयन—संज्ञा पुं. [सं.] उड़ने की क्रिया, उड़ान।

डर—संज्ञा पुं. [सं. दर] (१) भय, भीति, त्रास। (२) अनिष्ट की संभावना, आशंका।

डरई—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरता है, भयभीत होता है। उ.—उड़ु परिवार पिसुन सभा अपजसहि न डरई—२८६१।

डरत—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरते है, भयभीत होते हैं, आशंकित होकर। उ.—(क) ब्रह्म-रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू-भंग की आँची—१-१८। (ख) हरि सीता लै चल्यौ डरत जिय, मानौं रंक महानिधि पाई—६-५६।

डरति—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरती है, भयभीत होती है। उ.—ढीठ, निठुर, न डरति काहू, त्रिगुन हूँ समुहाइ—१-५६।

डरतौ—क्रि. अ. [हि. डरना] डरता, भयभीत होता। उ.—कबहुँक राज-मान-मद-पूरन, कालहु तैं नहिं डरतौ। मिथ्या वाद आप-जस सुनि सुनि, मूँछहिं पकरि अकरतौ—१-२०३।

डरना—क्रि. अ. [हिं. डर+ना (प्रत्य.)] (१) भयभीत होना, अनिष्ट के भय से शकित होना। (२) आशंका

फेरना, ग्रदेशा करना।

डरपत—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरता है, भयभीत होता है, आशंकित होता है। उ.—(क) चलि नहिं सकत गरुड़ मन डरपत, बुद्धि बल बलहिं बढावत—८-४। (ख) तोहिं देखि मेरौ जिय डरपत, नैननि आवत नीर—६-८६। (ग) राजहेतु डरपत मन माहीं—१२-५।

डरपना—क्रि. अ. [हिं. डर] भयभीत होना।

डरपाइ, डरपाई—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरकर, भयभीत होकर। उ.—(क) उठयौ अकुलाइ, डरपाइ तुरतहिं धाइ, गयौ पहुँचाइ तट आइ दीन्हौ—५८४। (ख) भूलीं कहा, कहौ सो हमसौं, कहति कहा डरपाई। सूरदास सुरपति की पूजा, तुम सबहिनि बिसराई—८१२।

क्रि. स.—डरा-धमकाकर, भयभीत करके। उ.—सूर स्याम है चोर तुम्हारे छाँड़ि देहु डरपाइ—१५१४।

डरपाउँ—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ। उ.—मोहिं नहीं जिय की डर नैंकहुँ, दोउ सुत कौं डरपाउँ—५२८।

डरपावत—क्रि. स. [हि. डरपाना] डराते हैं। उ.—जौ लायक तौ अपने घर को बन भीतर डरपावत—११०४।

डरपावन—संज्ञा पुं. [हिं. डर] डरानेवाले। उ.—तीनि भुवन-आनद, कंस-डरपावन रे—१०-२८।

क्रि. स. [हिं. डरपना, डरपाना] डराने (लगे), भय दिखाने (लगे)। उ.—श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौं नँद-आगे। गेंद लेहु, तुम आइ, मोहि डरपावन लागे—५८६।

डरपावहु—क्रि. स. [हि. डरपाना] डराओ, भयभीत करो। उ.—काली उरग रहै जमुना मैं, तहँ तैं कमल मँगावहु। दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर, नंदहिं अति डरपावहु—१०-५२२।

डरपावैं—क्रि. स. [हिं. डरपाना] भयभीत करते हैं, डराते है। उ.—मैं घर आवन कहौं, सखा सँग कोउ नहिं आवैं। देखत बन अति अगम डरौं, वै मोहिं डरपावैं—४३७।

डरपाहि—क्रि. स. [हिं. डरपना] डरते है, भयभीत होते है। उ.—सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिं। हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीं, डरपाहिं—१०-३२८।

डरपि—क्रि. अ. [हि. डरपना] डरकर, भयभीत होकर। उ.—ग्वाल डरपि हरि पैं कह्यौ आइ। सूर राखि अब त्रिभुवनराइ—६१४।

डरपी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. डरपना] डर गयी, भयभीत हुई। उ.—मो देखत वह परी धरनि गिरि, मैं डरपी अपनैं जिय भारी—६६७।

डरपे—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरे, भयभीत हुए। उ.—सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे, अब न उबरै स्याम—४२७।

डरपोक, डरपोकना—वि. [हिं. डरना + पोंकना] बहुत डरनेवाला, कायर, भीरु।

डरपौं—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ। उ.—हौं डरपौं, काँपौं अरु रौवौं, कोउ नहि धीर धराऊ—४८१।

डरपौ—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरो, भयभीत हो। उ.—मैं बरज्यौ जमुना-तट जात। सुधि रहि गई न्हात की तेरैं, जनि डरपौ मेरे तात—५१८।

डरप्यौ—क्रि. अ. [हिं. डरपना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—चरन की छबि देखि डरप्यौ अरुन, गगन छपाइ—१०-२३४।

डरवाई—क्रि. स. [हि. डरवाना] डराया, भयभीत किया। उ.—जाहु जाहु घर तुरत जुवति जन खिझत गुरुजन कहि डरवाई—१६६७।

डरवाए—क्रि. स. [हि. डरवाना] डराया, भयभीत किया। उ.—महर कह्यौ हम तुम डरवाए—१००५।

डरवाना—क्रि. स. [हिं. डराना] भयभीत करना।

क्रि. स. [हिं. डलवाना] डालने का काम कराना।

डराइ—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरकर, डर (गये)। उ.—सुर सब गये डराइ—३-११।

डराउँ, डराऊँ—क्रि. अ. [हि. डरना] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ, आशंकित हूँ। उ.—(क) भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ—

१-१६४ । (ख) साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम, नहिं प्रन लागि डराऊँ । सूरजदास भक्त दोऊ दिसि, कापर चक्र चलाऊँ—१-२७४ । (ग) रिच्छप तर्क बोलिहैं मोसौं, ताकौं बहुत डराउँ—६-७५ ।

डराडरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डर] **डर, भय, आशंका।**

डरात—क्रि. अ. [हिं. डरना] **डरता है, भयभीत होते हैं।** उ.—(क) कामना करि कोटि कबहूँ किए बहु पसु घात । सिंहसावक ज्यौं तजै गृह, इंद्र आदि डरात—१-१०६ । (ख) देखि री नंद-नंदन ओर । ...बार बार डरात तोकौं, बरन बदनहिं थोर—३६४।

डराति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. डरना] **डरती (है), भयभीत होती (है)।** उ.—(क) गृह कौ काज इनहूँ तैं प्यारौ, नैकहुँ नाहिं डराति—१०-७६ । (ख) ग्वालिनी डराति जियहिं, सुनै जनि जसोवै—१०-२८४ ।

डराना—क्रि. स. [हिं. डरना] **भयभीत करना।**

डरानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. डरना] **डर गयी, भयभीत हुई।** उ.—(क) लछिमन, धनुष देहु, कहि उठे हरि, जसुमति सूर डरानी—१०-१६६ । (ख) अब लौं सही तुम्हारी ढीठो, तुम यह कहत डरानी—१०४६ । (ग) मैं अपने कुल-कानि डरानी—१४६२ ।

डराने—क्रि. अ. [हिं. डरना] **डर गये, भयभीत हुए।** उ.—(क) भीतर देखत अति डराने दुहुँनि दीन्यौ रोइ—१० २८६ । (ख) हरि सब भाजन फोरि पराने । हाँक देत पैठे दै पेला, नैंकु न मनहि डराने—१०-३२८ । (ग) देखि तरु सब अति डराने, हैं बड़े बिस्तार—३८७ । (घ) पाती बाँचत नंद डराने—५२६ ।

डरानौ—वि. [हिं. डर] **डरा हुआ, भयभीत, आशंकित।** उ.—कह्यौ लंकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ़, कायर, डरानौ—६-१११ ।

डरान्यौ—क्रि. अ. [हिं. डरना] **डर गया, भयभीत हुआ।** उ.—(क) मथुरापति जिय अतिहिं डरान्यौ । सभा माँझ असुरनि के आगैं, सिर धुनि-धुनि पछितान्यौ—१०-६० । (ख) कहत स्याम मैं अतिहिं डरान्यौ । ऊखल तर मैं रह्यौ छपान्यौ—३६१ ।

डरायौ—क्रि. अ. [हिं. डराना] **डराया, भयभीत किया, आशंकित किया।** उ.—यह सुनत परजरयौ, बचन नहिं मन धरयौ, कह्यौ तैं राम सौं मोहि डरायौ—६ १२८ ।

डरावन—वि. [हिं. डरावना] **भयभीत करनेवाला, जिससे डर लगे, भयानक, भयकर।** उ.—सुनहु सूर ए मेघ डरावन—१०४८ ।

संज्ञा पुं. [हिं. डर] **डर, भय।** उ.—बलमोहन कौ नाम धरयौ कह्यौ पकरि मँगावन । तातैं अति भयौ सोच लगत सुनि मोहि डरावन—५८६ ।

डरावना—वि. [हिं. डर] **जिससे डर लगे, भयानक।**

डरावा—संज्ञा पुं. [हिं. डराना] **लकड़ी जो फलो को पक्षियो से रक्षा करने के लिए पेड़ो से बांधी जाती है; इसके खींचने से खटखट का शब्द होता है, खटखटा, धड़का।**

डराहुक—वि. [हिं. डरना] **डरपोक, कायर।**

डरि—क्रि. अ. [हिं. डरना] **(१) डरो, भय करो।** उ.—प्रहलाद-हित जिहिं असुर मारयौ, ताहि डरि डरि डरि—१-३०६ । (२) **डरकर।**

डरिपहु—क्रि. अ. [हिं. डरना] **(१) डरना, भयभीत होना।** उ.—डरिपहु जिनि तुम सघन कुंज महँ, तहँ के तरु हैं भारी—२६४२ । (२) **डरोगे, भयभीत होगे।**

डरियाँ, डरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डार, डाल] **डाल, शाखा।** उ.—(क) हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान—१-६७ । (ख) सीतल छहियाँ स्याम हैं बैठे, जानि भोजन की बिरियाँ । बाम भुजाहिं सखा अँस दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरियाँ—४७० ।

डरिहै—क्रि. अ. [हिं. डरना] **भयभीत होगा, सशंक होगा।** उ.—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहि भय दुरजन डरिहै—१-२६ ।

क्रि. स. [हिं. डालना] **डाल देगा।**

डरिहौं—क्रि. स. [हिं. डालना] **डाल दूँगा, फेंक दूँगा।** उ.—असुर कठोर जमुन लै डरिहौं—११६१ ।

डरी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. डरना] **भयभीत हुई, आशंकित हुई।** उ.—नृप कन्या सो देखत डरी—६-३ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डली] **छोटा टुकड़ा, डली।**

डरीला—वि. [हिं. डार] डाल-शाखा वाला ।

डरैंगे—क्रि. अ. [हिं. डरना] डर जायँगे, भयभीत होंगे । उ.—यह सुनि कै व्रज लोग डरैंगे, वै सुनिहैं यह बात—५२२ ।

डरै—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरता है, भयभीत होता है । उ.—अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै—१-३५ ।

डरैला—वि. [हिं. डर] डरावना, भयानक ।

डरैहौं—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरूँगा, भयभीत हूँगा । उ.—मैया हौं गाइ चरावन जैहौं । तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ौ भयौ न डरैहौं—४१२ ।

डर्‌यौ—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरा, भयभीत हुआ । उ.—(क) इहि अवसर कत बाँह छुड़ावत, इहिं डर अधिक डर्‌यौ—१-१५६ । (ख) जिय अति डर्‌यौ, मोहिं मत सापै, व्याकुल वचन कहंत—६-८३ ।

डल—संज्ञा पु. [हिं. डला = टुकड़ा] टुकड़ा, खंड ।

मुहा.—डल का डल—ढेर का ढेर, बहुत सा ।

संज्ञा स्त्री. [स. तल्ल] झील ।

डलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. डलिया] छोटा टोकरा ।

डलना—क्रि. अ. [हिं. डालना] डाला जाना, पड़ना ।

डलवा—संज्ञा पु. [हिं. डला] टोकरा ।

डलवाना—क्रि. स. [हिं. डालने का प्रे.] डालने देना ।

डला—संज्ञा पुं. [सं दल] टुकड़ा, खड ।

संज्ञा पुं. [स डलक] टोकरा, दौरा ।

डलिया, डली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डला] छोटा टोकरा ।

डली—संज्ञा स्त्री [हिं. डला] (१) छोटा टुकड़ा या खड, कंकड़ी । (२) सुपारी ।

डल्लक—संज्ञा पु. [सं.] डला, दौरा, टोकरा ।

डवँरू—संज्ञा पु. [हिं. डमरू] डमरू नामक बाजा ।

डस—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) एक तरह की शराब । (२) तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बँधते हैं, जोती ।

डसन—संज्ञा स्त्री. [स. दंशन] डसने की क्रिया, भाव या ढग । उ.—यह अपराध बड़ौ उन कीन्हो । तच्छक डसन साप मैं दीन्हौ—१-२६० ।

डसना—क्रि. स [सं. दशन] (१) किसी जहरीले कीड़े का दाँत से काटना । (२) डक मारना ।

संज्ञा पुं. [हिं. डासन] बिछौना, बिछावन ।

डसवाना—क्रि. स. [हिं. डसना का प्रे.] (१) जहरीले कीड़े से कटवाना । (२) डक मरवाना ।

डसा—संज्ञा पुं. [सं. दंश] डाढ़, चौभड़ ।

डसाइ—क्रि. स. [हिं. डासना] बिछाकर, बिछा (दो) । उ.—अपनी अपनी कंध कमरिया ग्वालन दई डसाइ—२३२४ ।

क्रि. स. [हिं. डसाना] दाँत से कटाकर ।

डसाए—क्रि. स. [हिं. डासना] बिछाये । उ.—(क) पाटंबर पाँवड़े डसाए—१००१ । (ख) एक दिवस वृंदावन भीतर कर करि पत्र डसाए—३०८३ ।

डसाना—क्रि. स. [हिं. डसना का प्रे.] (१) जहरीले कीड़े से कटवाना । (२) डक मरवाना ।

क्रि. स. [हिं. डासना] (बिस्तर) बिछाना ।

डसायौ—क्रि. स. [हिं. 'डसना' का प्रे.] दाँत से कटवाया । उ.—सूरदास भगवंत-भजन-बिनु, काल-व्याल पै आपु डसायौ—१-३२६ ।

डसावैं—क्रि. स. [हिं. डासना] बिछाते हैं, रखते हैं, धरते हैं । उ.—हा हा राम, लखन अरु सीता, फल भोजन जु डसावैं पात—६-३८ ।

डसिअत—क्रि. स. [हिं. डासना] (बिस्तर आदि) बिछाते हैं । उ.—ओढ़िअत हैं की डसिअत हैं कीधौं कहिअत कीधौं जु पतीजत—१४४१ ।

डसी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. डसना] जहरीले कीड़े ने काट लिया, (विषैले कीड़े द्वारा) काटी गयी है । उ.—(क) डसी री स्याम भुअगम कारे । मोहन-मुख-मुसुक्यानि मनहुँ विष, जात मैन सौं मारे—७४७ । (ख) ताहि कछू उपचार न लागत डसी कठिन अहि-मैन—७४६ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डसी] (१) कपड़े के छोर का सूत, छोर । (२) कपड़े या थान का पल्ला । (३) पता, चिन्ह, निशानी, सहदानी ।

डसै—क्रि. स. [हिं. डसना] विषैला कीड़ा काट ले । उ.—कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु । स्याम-रोमावली की छवि, सूर नाहिं निवाहु—६३६ ।

डस्यौ—क्रि. स. [हिं. डसना] (विषैले कीड़े ने) काटा, डस लिया। उ.—(क) सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान—१-९७। (ख) स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाइ—७४३। (ग) प्रात खरिकहिं गई, आइ बिह्वल भई, राधिका कुँवरि कहुँ डस्यौ कारौ—७५१।

डहकत—क्रि. अ. [हिं. डहकना] ठगते या धोखा देते हैं। उ.—डहकत फिरत आपने स्वारथ, पाखंड अग्र दये—३०९३।

डहकना—क्रि. स. [हिं. डाका] (१) छल करना, धोखा देना, ठगना। (२) कोई वस्तु दिखाकर या देने को कहकर मुकर जाना या न देना।

क्रि. अ. [हिं. दहाड़, धाड़] (१) बिलख बिलख कर रोना, विलाप करना। (२) हुकरना, दहाड़ना।

क्रि. अ. [देश.] फैलना, छिटकना।

डहकाना—क्रि. स. [हिं. डाका] गँवाना, नष्ट करना।

क्रि. अ.—ठगा जाना, धोखा खाना।

क्रि. स.—(१) धोखा देना, ठगना। (२) देने के लिए कोई चीज़ दिखाकर भी न देना।

डहकानौ—क्रि. स. [हिं. डहकना] धोखे में पड़ गया, छला गया। उ.—सुत-बित-बनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ। लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकानौ—१-३२९।

डहकायौ—क्रि. स. [हिं. डहकाना] ठगा गया, धोखा खाया, छला गया। उ.—धोखैं ही धोखैं डहकायौ। समुझि न परी, विषय रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ—१-३२५।

डहकावै—क्रि. स. [हिं. डहकाना] खोता है, व्यर्थ गँवाता है, नष्ट करता है। उ.—बाद-बिवाद, जज्ञ ब्रत-साधन, कितहूँ जाइ, जनम डहकावै—१-२३३।

क्रि. अ.—ठगा जाये, धोखा खाये। उ.—इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अजानी—३३४०।

डहकि—क्रि. स. [हिं. डाका, डहकना] किसी वस्तु से (दूसरों को) ललचाते हुए भी न देकर, देने को दिखाते हुए न देकर। उ.—स्याम सवनि मिलि खात हैं लै लै कौर छुड़ाइ। औरनि लेत बुलाइ ढिग, डहकि आपु मुख नाइ—४३७।

क्रि. अ. [हिं. दहाड़, धाड़, डहकना] बिलख-कर, विलाप करके। उ.—सूर गोपिन सब ऊधौ आगे डहकि दीन्हीं रोई—३२९६।

डहके—क्रि. स. [हिं. डाका, डहकना] छल किया, धोखा दिया, ठगा, जटा। उ.—इहिं विधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय-जेते (हो)—१-४४।

डहडह—क्रि. वि. [हिं. डहडहा] प्रफुल्लित होकर, प्रसन्नता से, आनंदित होकर। उ.—चलित कुंडल, गंड-मंडल, झलक ललित कपोल। सुधा-सर जनु मकर क्रीड़त, इंदु डहडह डोल—६२७।

वि.—प्रसन्न, प्रफुल्लित। उ.—हरष डहडह मुसुकि-फूले प्रेम फलनि लगाइ—१६६०।

डहडहत—क्रि. अ. [हिं. डहडहाना] लहलहाते हैं, खिलते हैं, हिलते हैं। उ.—दुर दमकत सुभग स्रवननि, जलज जुग डहडहत—१०-१८४।

डहडहा—वि. [अनु.] (१) हरा-भरा, लहलहाता हुआ। (२) प्रसन्न, प्रफुल्लित, आनंदित। (३) तुरंत का, ताजा।

डहडहाट—संज्ञा स्त्री. [हिं. डहडहा] (१) हरापन। (२) प्रफुल्लता, प्रसन्नता। (३) ताजगी।

डहडहाना—क्रि. अ. [हिं. डहडहा] (१) हरा-भरा होना, लहलहाना (२) प्रसन्न या आनंदित होना।

डहडहाव—संज्ञा पुं. [हिं. डहडहा] (१) हरापन। (२) आनंद, हर्ष। (३) ताजापन।

डहन—संज्ञा पुं. [सं. डयन = उड़ना] पंख, पर, डैना।

संज्ञा स्त्री. [सं. दहन] दाह, जलन।

डहना—संज्ञा पुं. [हिं. डहन] पंख, पर, डैना।

क्रि. अ. [सं. दहन] (१) जलना, भस्म होना। (२) कुढ़ना, चिढ़ना, द्वेष या ईर्ष्या करना।

क्रि. स.—(१) जलाना, भस्म करना। (२) कुढ़ाना, चिढ़ाना, सतप्त या दुखी करना।

डहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. डगर] (१) रास्ता, मार्ग, पथ। (२) आकाशगंगा।

डहरना—क्रि. अ. [हिं. डहर] चलना-फिरना।

डहराउ, डहराई—क्रि. स. [हिं. डहराना] चलायी,

दौड़ाकर, फिराकर। उ.—कोऊ निरखि रही भाल नंदन एक चित लाई। कोऊ निरखि विथुरी भृकुटि पर नैन डहराई।

डहराना—क्रि. स. [हिं. डहरना] घुमाना-फिराना।

डहरि—संज्ञा स्त्री. [देश. ढहरी] मिट्टी का वरतन, मटकी। उ.—हरषे नंद टेरत महरि। आइ सुत-मुख देखि आतुर, डारि दै दधि-डहरि—१०-६७।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डगर] रास्ता, पथ, मार्ग। उ.—(क) देखी उरहि बीचहीं खाई, माटी भई जहरि। सूर स्याम विषधर दहुँ खाई; यह कहि चली डहरि—७५० । (ख) जल भरन कोउ नहीं पावति रोकि राखत डहरि—८६० ।

डहार—संज्ञा पुं. [हिं. डाहना] दुखी करनेवाला।

डहु, डहू—संज्ञा पुं. [सं.] वड़हर का पेड़।

डाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. डा] डाकिनी, डाइन।

डाँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. दमक, दवँक] ताँबे जैसी धातु का बहुत पतला पत्तर।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँकना] कै, वमन, उलटी।

डाँकना—क्रि. स. [हिं. लाँघना] फाँदना, पार करना।

डाँग—संज्ञा पुं [सं. टंक = पहाड़ी किनारा और चोटी] (१) पहाड़ी चोटी। (२) पहाड़ के ऊपर का जंगल।

संज्ञा पु. [सं. दंक, हिं. डाँगा] लट्ठ, डंडा।

संज्ञा पुं. [हिं. डाँकना] कूद-फाँद।

डाँगर—वि. [देश.] (१) चौपाया, ढोर, पशु। (२) मरे हुए चौपाये की लाश। (३) एक नीच जाति।

वि.—(१) दुबला-पतला। (२) मूर्ख, गावदी।

डाँट—संज्ञा स्त्री. [सं. दांति = दमन, वश] (१) शासन। (२) वश, दबाव। (३) डाँटने-डपटने की क्रिया।

मुहा.—डाँट में रखना—वश में रखना, डपट से रखना। डाँट रखना—दबाव रखना, स्वच्छन्द न होने देना।

(४) डराने के लिए दी हुई घुड़की, डपट।

डाँट-डपट—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँटना+डपटना] क्रोध-पूर्वक और घुड़की के साथ कही जानेवाली बात।

डाँटत—क्रि. स. [हिं. डाँटना] घुड़कते या डपटते (रहो)। उ.—जैसे मीन किलकिला दरसत ऐसे रहो प्रभु डाँटत—१-१०७।

डाँटना—क्रि. स. [हिं. डाँट+ना] घुड़कना, डपटना।

डाँट-फटकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँट+फटकार] डाँट-डपट, घुड़की, दबाव।

डाँटी—क्रि. स. [हिं. डाँटना] डाँटा, घुड़का, डपटा। उ.—(क) बारौं कर जु कठिन अति, कोमल नयन जरहु जिनि डाँटी—१०-२५९। (ख) सूनैं घर बाबा नंद नाहीं, ऐसैं करि हरि डाँटी—३७५।

डाँटै—क्रि. स. [हिं. डाँटना] डाँटती है, डपटती है, घुड़कती है। उ.—जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै। सोई यहाँ जेंवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटै—३४६।

डाँट्यौ—क्रि. स. [हिं. डाँटना] घुड़का, डपटा। उ.—छाँड़ि देस मम यह कहि डाँट्यौ—१-२९०।

डाँठ—संज्ञा पु. [सं. दंड] डंठल।

डाँड़—संज्ञा पुं. [सं. दंड] (१) डंडा, लाठी। (२) 'गतका' खेलने का डंडा। (३) अंकुश की मूठ। (४) सीधी लकीर। (५) रीढ़ की हड्डी। (६) ऊँची मेंड़ जो सीमा या हद के लिए बनती है।

मुहा.—डाँड़ मारना—मेंड़ उठाना।

(७) छोटा टीला। (८) समुद्र का ढलुआ रेतीला किनारा। (९) सीमा, हद। (१०) अर्थदंड, जुरमाना। (११) नुकसान के बदले में लिया जानेवाला धन या वस्तु, हरजाना। (१२) नाव खेने का डंडा।

डाँड़ना—क्रि. अ. [हिं. डाँड़] जुरमाना करना।

डाँड़र—संज्ञा पुं. [हिं. डाँठ] बाजरे की खूँटी।

डाँड़ा—संज्ञा पु. [हिं. डाँड़] (१) डंडा। (२) 'गतका' खेलने का डंडा। (३) नाव खेने का डंडा। (४) समुद्र का ढलुआ रेतीला किनारा। (५) हद, सीमा, मेंड़।

मुहा.—होली का डाँड़ा—लकड़ी आदि का ढेर जो होली जलाने के लिए इकट्ठा किया जाता है।

डाँड़ामेंड़ा, डाँड़ामेंड़ी—संज्ञा पु. [हिं. डाँड़ + मेंड़] (१) एक ही मेंड़ का अंतर, लगाव। (२) अनबन, झगड़ा, नोकझोंक।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँड़] (१) लंबी पतली लकड़ी।

(२) किसी वस्तु की लंबी हत्थी जिसे पकड़कर काम किया जाता है, डंडी। उ.—हरि जू की आरती बनी। कच्छप अध आसन अनूप अति डाँड़ी सहस फनी—२-२८। (३) तराजू की डंडी जिसमें पलड़े लटकाये जाते हैं।

मुहा.—डाँड़ी मारना—कम सौदा तौलना।

(४) टहनी, पतली शाखा। (५) फूल या फल की नाल। (६) झूले की लकड़ियाँ या डोरियाँ जिनमें बैठने की पटरी फँसायी जाती है। उ.—पटुलो लगे नग नाग बहु रँग बनी डाँड़ी चारि। भौंरा भँवे भजि केलि भूले नवल नागर नारि। (७) डाँड़ खेने वाला (८) सुस्त आदमी। (९)लीक, मर्यादा। (१०) फूल का निचला पतला भाग। (११) पालकी का डंडा। (१२) पालकी। (१३) डंडे में बँधी झोलियों की सवारी, झप्पान।

डाँढ़री—संज्ञा स्त्री. [हि डाढा] मटर की भुनी फली।
डाँवरा—संज्ञा पुं. [स. डिंब] लडका, बेटा।
डाँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँवरा] लड़की, बेटी।
डाँवरू—संज्ञा पुं. [सं. डिंब] बाघ का बच्चा।
डाँवाडोल—वि. [हिं. डोलना] चंचल, हिलता हुआ।
डाँस—संज्ञा पुं. [सं. देश.] (१) बड़ा मच्छड़। (२) एक तरह की बडी मक्खी।
डाँसर—संज्ञा पुं. [देश.] इमली का बीज, चियाँ।
डाइन—संज्ञा स्त्री. [सं. डाकिनी] (१) भुतिनी, चुड़ैल। (२) कुरूपा या डरावनी स्त्री। (३) जादू टोना करनेवाली स्त्री।
डाक—संज्ञा पुं. [हि. डाँकना] (१) यात्रा की टिकानों में सवारी के जानवर बदलने का प्रबंध।

मुहा.—डाक बैठाना (लगाना)—सवारी के जानवर बदलने के लिए चौकी नियत करना।

(२) पत्र आने-जाने की व्यवस्था। (३) चिट्ठी-पत्री।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] वमन, उलटी, कै।

डाकना—क्रि. अ. [हि. डाक] वमन या कै करना।

क्रि. स. [हिं. डाक+ना] लाँघना, पार करना।

डाका—संज्ञा पुं. [हि. डाकना या सं. दस्यु] आक्रमण करके जबरदस्ती लूटना, बटमारी, लूट-मार।
डाकाजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाका+फा. ज़नी] डाका डालने या बटमारी करने का काम।
डाकिन, डाकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. डाकिनी] (१) एक पिशाची जो काली के गणों में मानी जाती है। (२) चुड़ैल, डाइन।
डाकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाक] वमन, कै, उलटी।

वि.—बहुत खानेवाला, पेटू।

वि.—सबल, प्रचंड।

डाकू—संज्ञा पुं. [हिं. डाकना] (१) लुटेरा, बटमार। (२) बहुत खाऊ, पेटू।
डाकोर—संज्ञा पुं. [सं. ठक्कुर, हिं. ठाकुर] (१) ठाकुरजी। (२) विष्णु भगवान।
डाख—संज्ञा पुं. [हि. ढाक] ढाक, पलाश।
डागरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. डगर] मार्ग, रास्ता।
डागा—संज्ञा पुं. [सं. दंडक] नगाड़ा आदि बाजे बजाने का डंडा, चोब।
डागुर—संज्ञा पुं. [देश.] जाटों की एक जाति।
डाट—संज्ञा स्त्री. [सं. दाँति] (१) टेक, रोक, चाँड़। (२) छेद बंद करने की चीज (३) काग, ठेंठी।

संज्ञा पुं. [हिं. डाँट] डाँट-डपट, घुड़की।

डाटत—क्रि. स. [हिं. डाँटना] घुड़कते या डपटते (रहो)। उ.—जैसैं मीन किलकिला दरसत, ऐसैं रहौ प्रभु डाटत—१-१०७।
डाटना—क्रि. स. [हिं. डाट] (१) दो चीजों को सटाकर दबाना। (२) टेकना, चाँड़ लगाना। (३) ठेंठी लगाकर छेद बंद करना। (४) कस कर घुसेड़ना। (५) खूब डट कर खाना। (६) ठाठ से गहना कपड़ा पहनना। (७) भिड़ाना, मिलाना।
डाटे—क्रि. अ. [हिं. डाटना] खूब डट कर खाया।

मुहा.—भोजन करि डाटे—भर पेट खाया, छक कर खाया। उ.—अगनित तरु-फल-सुगंध-मृदुल-मिष्ठ खाटे। मनसा करि प्रभुहि अर्पि, भोजन करि डाटे—९-९६।

डाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. डाँड़, डाँड़ी] हिंडोरे में लगी हुई चार सीधी लकड़ियाँ (या डोरियाँ) जिनसे

पटरियाँ लटकती रहती हैं। उ.—कंचन खंभ, मयारि, मरुवा-डाड़ी, खचि हीरा बिच लाल प्रवाल। रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा लाल—१०-८४।

डाढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रंष्टा, प्रा. डड्ढ] (१) चबाने के दाँत, चौभड़। (२) बट जैसे वृक्षों की जटाएँ।

डाढ़ना—क्रि. स. [सं. दग्ध, प्रा. डड्ढ+ना (प्रत्य.)] जलाना, भस्म करना।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढना] (१) आग, अग्नि। (२) वन की आग, दावाग्नि। (३) ताप, जलन।

वि. पुं.—जलाया हुआ, तप्त।

डाढ़ी—वि. स्त्री. [हिं. डाढना] जली हुई, दग्ध, तपाई हुई, तप्त। उ.—(क) सखी संग की निरखति यह छवि, भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी—७३६। (ख) नैन नींद न परै निसि दिन बिरह डाढ़ी देह—३२७५। (ग) कंधनि बाँह धरे चितवति द्रुम मनहु बेलि दव डाढ़ी—२५३५। (घ) ज्यों जलहीन दीन कुमुदिन वन रवि-प्रकास की डाढी—३४७७।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढ, दाढी] (१) ठोड़ी, चिबुक, ठुड्डी। (२) ठोड़ी और गाल के बाल, दाढ़ी।

मुहा.—डाढ़ी का एक एक बाल करना—(१) डाढ़ी उखाड़ लेना। (२) दुर्दशा करना। डाढ़ी को कलप लगाना—बूढ़े और भले आदमी को कलक लगाना। पेट में डाढी होना—बहुत काँइयाँ और चालाक होना। डाढी फटकारना—संतोष और हर्ष प्रकट करना।

डाब—संज्ञा स्त्री. [सं. दर्भ] (१) डाभ नामक घास। (२) कच्चा नारियल।

डाबक—वि. [हिं. डाभक] कुएं का ताजा पानी।

डाबर—संज्ञा पुं. [सं. दभ्र=समुद्र, झील] (१) नीची भूमि जहाँ पानी जमा रहे। (२) पोखरी, तलैया जिसमें बरसाती पानी हो। (३) हाथ धोने का पात्र। (४) मैला या गंदा पानी।

डाबा—संज्ञा पुं. [हिं. डब्बा] डिब्बा, संपुट।

डाभ—संज्ञा पुं. [सं. दर्भ] (१) एक घास। (२) कुश घास। (३) आम का बौर। (४) कच्चा नारियल।

डाभक—वि. [अनु. डभक] कुएं का ताजा पानी।

डामचा—संज्ञा पुं. [देश.] मचान, माचा।

डामर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तंत्र। (२) हलचल, धूम। (३) ठाटबाट, सजावट, (४) चमत्कार।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) गोंद। (२) राल नामक गोंद। (३) मक्खी जो राल बनाती है।

डामाडोल—वि. [हिं. डाँवाडोल] चंचल, अस्थिर।

डायँडायँ—क्रि. वि. [अनु.] व्यर्थ मारे मारे फिरना।

डायन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाइन] (१) पिशाचिनी, चुड़ैल, भुतिनी। (२) कुरूपा और भयानक स्त्री।

डार—संज्ञा स्त्री. [सं. दारु=लकड़ी] (१) डाल, शाखा। उ.—(क) धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागै डार—१-८८। (ख) रत्नजटित कंकन बाजूबंद गगन मुद्रिका सोहैं। डार-डार मनु मदन बिटप तरु बिकच देखि मन मोहै। (ग) जोइ जोइ आवत वा मथुरा ते एक डार के से तोरे—३०५६। (घ) इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यो—९-१६४। (२) बरगद जैसे पेड़ों की नयी डालियाँ जो पूजा के काम आती है, हरी पत्तियो से युक्त टहनियाँ। उ.—आजु बधायौ नंदराइ कैं, गावहु मंगलचार। आईं मंगल-कलस साजि कै, दधि-फल नूतन-डार—१०-२७।

संज्ञा स्त्री. [सं. डलक] डलिया, चँगेर।

क्रि. स. [हिं. डालना=फेंकना] फेंककर, डाल कर। उ.—डार सत्र सर-सैया सोये हरि चरनन चित लायौ—सारा. ७८६।

प्र.—दीन्हौ डार—फेंक दिया। उ.—सर्प-सर्प कह्यौ बारंबार। तब रिषि दीन्हौ ताकौं डार-६-७।

डारत—क्रि स. [हिं. डारना, डालना] डालता है। उ.—आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगट पानी मैं, बनचर लै लै डारत—९-१२३।

प्र.—डारत हति—(१) तोड़ डालता है। उ.—ज्यौं गज फटिक सिला मैं देखत दसननि डारत हति—१-३००। (२) मार डालता है।

डारति—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) डालती है।

प्र.—डारति वारी—वारती है, निछावर करती

है। उ.—दोउ माता निरखत आलस मुख, छबि पर तन-मन डारति वारी—१०-२२८।

(२) जादू-टोना आदि करती है। उ.—कौन मंत्र जानति तू प्यारी, पढ़ि डारति हरि गात—७२१।

डारना—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) गिराना। (२) छोड़ना। (३) घुसाना। (४) त्याग करना। (५) अंकित करना।

डारा—संज्ञा स्त्री. [हिं. डार, डाल] डाल, शाख, शाखा। उ.—(क) पौरि सब देखि सो असोक बन मैं गयौ, निरखि, सीता छप्यौ बृच्छ-डारा—९-७६। (ख) सबै समाने तरुवर डारा—७९९।

क्रि. स. भूत. [हिं. डालना, डाला] छोड़ा, डाला, त्याग दिया, गिरा दिया।

डारि—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) छोड़ कर, निकाल कर, अलग करके, फेंक कर। उ.—उमा कौं छाँड़ि अरु डारि मृगचर्म कौं जाइकै निकट रहे रुद्र जोई—८-१०।

प्र.—डारि देत—अलग कर देते हैं। उ.—रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६३। दीन्हें डारि—फेंक दिये, गिरा दिये। उ.—कागद दीन्हें डारि—१-१९७।

(२) (सिंहासन, चौकी आदि) बिछा कर। उ.—इंद्र एक दिन सभा मँझारि। बैठे हुते सिंहासन डारि—६-५। (३) जादू-टोना आदि करके। उ.—लहर उतारि राधिका सिर तैं दई तरुनिनि पै डारि—७६४। (४) त्याग करके। उ.—(क) स्याम हँसि बोले प्रभुता डारि—१७११। (ख) मनहुँ सूर दोउ सुभग सरोवर उमँगि चले मर्यादा डारि—२७६५। (५) फेंक कर, गिरा कर।

प्र.—डारि दिये—फेंक दिया, गिरा दिया। उ.—डारि न दिये कमल कर तें गिरि दबि रहतीं ब्रज-बाल—३१५६।

डारियास—संज्ञा पुं. [देश.] बंदर की एक जाति।

डारिहौं—क्रि. स. [हिं. डालना] डालूंगा।

प्र.—उपारि डारिहौं—उखाड़ डालूंगा। उ.—कंस उपारि डारिहौं भूतल, सूर सकल सुख पावत—९-१३३।

डारिहौ—क्रि. स. [हिं. डारना, डालना] डालोगे। उ.—सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै, डारिहौ कढ़िराइ—१-१०६।

डारी—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) डालकर, फेंककर, छोड़कर। उ.—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी। साक-पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी—१-१२२।

प्र.—रहत डारी—पड़ी रहती है। उ.—फलन माँझ ज्यों करुई तोमरि रहत घुरे पर डारी—२९३५। (२) डाल दी, छोड़ दी, रख दी, फेंक दी। उ.—पाडु कुमार पावन से डोलत, भीम गदा कर तैं महि डारी—१-२४८१। (३) भुला दी, विस्मृत कर दी। उ.—बन ही में बँचति फिरै घर की सुधि डारी—११६३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डाल] डाल, शाखा।

डारे—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) डाल दिये, छोड़ दिये, फेंक दिये। उ.—इन्द्रजित बलनिधि जब आयौ, ब्रह्म अस्त्र उन डारे—सारा. २८४।

प्र.—डारे धोई—धो डाले, दूर कर दिये। उ.—पतित अजामिल, दासी कुब्जा, तिनके कलिमल डारे धोई—१-६५।

(२) गिरा दिये, तोड़ दिये। उ.—ऊरध स्वाँस समीर तेज अति सुख अनेक द्रुम डारे—२७६१।

डारैं—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. डाल] डाल पर। उ.—बोलत मोर सैल द्रुम चढि चढि बन जु उड़त तरु डारैं—२८२०।

डारै—क्रि. स. [हिं. डालना] (१) डाल देने पर, छोड़ देने पर। उ.—जैसे मीन दूध में डारै जल बिनु सचु नहिं पावै हो—२८०४। (२) सपादित करता है, रचता है। उ.—बागर तैं सागर करि डारै चहूँ दिसि नीर भरै—१-१०५। (३) वमन करता है, उलटी करता है। उ.—वमनहिं खाइ, खाइ सो डारै, भाषा कहि कहि टेरा—१-१८६।

डारौं—क्रि. स. [हिं. डारना, डालना] डालूं, रखूं। उ.—होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट।

ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट—१-१४६।

डारौ—क्रि. स. [हिं. डारना, डालना] (१) सम्मिलित कर लो, मिला लो। उ.—गीध-व्याध-गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ। सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै, लै भक्तनि मैं डारौ—१-१७८। (२) डाल लो, पड़ा रहने दो। उ.—सूर क्रूर की याही विनती, लै चरननि मैं डारौ—१-१२८। (३) छोड़ो, डाल दो। उ.—नाम लेइ गम आहुति डारौ—४-११।

डारयौ—क्रि. स. [हिं. डारना, डालना] (१) डाला, रखा। उ.—पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भरयौ। हौं उनतैं न्यारौ करि डारयौ, इहिं दुख जात मरयौ—१-१५६। (२) किया, सपादित किया।

प्र.—बिताइ डारयौ—बिता दिया। उ.—या विधि डारयौ जनम बिताइ—५-३।

(३) डाल दिया, फेंक दिया, छोड़ दिया। उ.—सुत-दारा कौ मोह अँचै बिष, हरि अमृत-फल डारयौ—१-३३६।

डाल—संज्ञा स्त्री. [सं. दारु=लकड़ी, हिं. डार] (१) शाखा, डाली।

मुहा.—डाल का टूटा—(१) डाल से पककर गिरा हुआ ताजा फल। (२) बढ़िया, अनोखा। (३) नया (व्यक्ति)। डाल का पका—पेड़ की डाल में लगा रहकर पकनेवाला फल।

(२) तलवार का फल। (३) एक गहना।

संज्ञा स्त्री. [सं. डलक, हिं. डला] (१) डलिया। (२) फल-फूल की भेंट जो डलिया में सजा कर दी जाय।

क्रि. स. [हिं. डालना] गिराकर, छोड़कर।

मुहा.—डाल रखना—(१) किसी चीज को लेकर रख छोड़ना। (२) किसी काम को लेकर भी उसमें हाथ न लगाना।

डालना—क्रि. स. [सं. तलन=(नीचे) रखना] (किसी चीज को गिराना, फेंकना, छोड़ना। (२) एक चीज को दूसरी पर गिराना। (३) किसी चीज को दूसरी में मिलाने के लिए उसमें गिराना। (४) घुसेड़ना, भीतर करना। (५) खोज-खबर न लेना, भुला देना। (६) चिह्न लगाना, अंकित करना। (७) फैलाना, एक चीज को फैलाकर दूसरी को ढकना। (८) शरीर पर धारण करना, पहनना। (९) किसी के जिम्मे छोड़ देना। (१०) कै करना, उलटी करना। (११) किसी स्त्री को पत्नी की तरह रख लेना। (१२) लगाना, उपयोग करना।

डाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डला, डाल] (१) डलिया, चँगेरी। (२) फल फूल आदि से सजी डाली जो भेंट में दी जाय। (३) शाखा, डाल।

डावड़ा, डावरा—संज्ञा पुं. [सं. डिंब] पुत्र, बेटा।

डावड़ी, डावरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डावरी] बेटी, पुत्री।

डास—संज्ञा पुं. [देश.] चमड़ा साफ करने का औजार।

डासन—संज्ञा पुं. [सं. दर्भ+आसन] बिछावन, चटाई, बिछौना, बिस्तर।

डासना—क्रि. स. [हिं. डासन] (बिछौना) बिछाना। क्रि. स. [हिं. डसना] (जहरीले कीड़े का) काटना।

डासनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डासन] खाट, चारपाई।

डासि—क्रि. स. [हिं. डासन, डासना] बिछाकर, डाल कर, फैलाकर। उ.—इहिं विधि वन बसे रघुराइ। डासि कै तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ—९-६०।

डासी—क्रि. स. [हिं. डालना] डसी हुई। उ.—भूलि न उठत जसोदा जननी मनौ भुअंगम डासी—३४३९।

डाह—संज्ञा स्त्री. [सं. दाह] (१) जलन, ईर्ष्या, द्वेष। (२) बैर, पीछे। उ.—एते पर संतोष न मानत परे हमारे डाह—२८६८।

डाहति—क्रि. स. [हिं. डाहना] जलाती है। उ.—ए सब भई चित्र की पुतरी सून सरीरहिं डाहत—३०६५।

डाहन—संज्ञा स्त्री. [हिं डाहना] सताने की क्रिया। क्रि. स. [सं. दाहन] जलाने, सताने, तंग करने। उ.—काहे को मोहिं डाहन आए रैनि देत सुख वाकौ।

डाहना—क्रि. स. [सं. दाहन] जलाना, सताना।

डाहनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. डाह+नि (प्रत्य.)] डाह से, ईर्ष्या से। उ.—सूर डाहनि मरत गोपी कुँवरी के

झूरि—२६८२ ।

डाहीं—क्रि. स. [हि. डाहना] जलायीं, दग्ध कीं। उ.—मुरछयौ मदन तरुनि सब डाहीं—पृ. ३३८।

डाही—वि. [हि. डाह] ईर्ष्या करनेवाला।

डाहुक—संज्ञा पु. [देश] एक छोटा पक्षी।

डिंगर—संज्ञा पुं [सं] (१) मोटा आदमी। (२) दुष्ट, ठग। (३) दास। (४) नीच मनुष्य।

संज्ञा पुं. [देश.] वह मोटा डंडा जो नटखट चौपायो के गले में बाँधा जाता है, ठिंगुरा।

डिंगल—वि. [स डिंगर] नीच, दोषपूर्ण।

संज्ञा स्त्री.—राजपूताने की काव्य-भाषा।

डिंडिम, डिंडिमी—संज्ञा पु. [सं.] (१) चमड़ा मढ़ा एक प्राचीन बाजा, डुगडुगी। (२) करौंदा नामक फल।

डिंडिर—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्रफन।

डिंब—संज्ञा पुं [सं.] (१) लड़ाई-दंगा। (२) अंडा। (३) फेफडा। (४) कीड़े का छोटा बच्चा। (५) बच्चा।

डिंबाहव—संज्ञा पुं. [सं.] मामूली लड़ाई।

डिंबिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मदमाती स्त्री।

डिंभ—संज्ञा पुं [सं.] (१) छोटा बच्चा। उ.—गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलैं। कलबल-बचन तोतरे बोलैं—१० ११७। (२) मूर्ख व्यक्ति।

संज्ञा पुं. [सं. दंभ] (१) पाखंड, आडंबर। (२) घमंड, अभिमान।

डिंभक—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा बच्चा।

डिंभिया—वि. [सं. दंभ, हि. डिंभ] (१) पाखंडी, आडंबरप्रिय। (२) घमंडी, अभिमानी।

डिक्की—संज्ञा स्त्री [हिं. धक्का] धक्का, चपेट।

डिगना—क्रि. अ. [हिं. डग] (१) हटना, सरकना, जगह छोड़ना। (२) बात पर दृढ़ न रहना।

डिगवा—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का पक्षी।

डिगाना—क्रि. स. [हिं. डिगना] (१) सरकाना, खिसकाना। (२) बात या सिद्धांत से विचलित करना।

डिग्गी—संज्ञा स्त्री. [सं. दीर्घिका] तालाब, बावली।

डिठार—वि. [हिं. डीठ=नजर] आँखोंवाला।

डिठियारा—वि. [हिं. डीठि+आरा (प्रत्य.)] आँखोंवाला, जिसको अच्छी तरह सुझायी देता हो।

डिठोहरी—संज्ञा स्त्री. [हि. डीठि + हरना] एक जंगली फल के बीज जो नजर से बचाने के लिए बच्चों को पहनाये जाते हैं।

डिठौना, डिठौरा—संज्ञा पुं. [हिं. डीठ] काजल का टीका जो बच्चो को नजर से बचाने के लिए लगाया जाता है। उ.—सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-६४।

डिढ़—वि. [सं. दृढ़] पक्का, मजबूत।

डिढ़ाना—क्रि. स. [हि. दृढ] (१) पक्का या मजबूत करना। (२) सकल्प करना, निश्चय ठानना।

डिढया—संज्ञा स्त्री. [देश.] लालच, तृष्णा।

डित्थ—संज्ञा पुं. [स.] विशेष गुणवाला व्यक्ति।

डिबिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डिब्बा] छोटा डिब्बा।

डिब्बा—संज्ञा पुं. [हि. डब्बा] छोटा ढक्कनदार पात्र, सपुट।

डिभगना—क्रि. स. [देश.] मोहित करना।

डिम—संज्ञा पु. [सं.] नाटक का एक भेद।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री. [सं. डिंडिम] चमड़ा मढ़ा एक प्राचीन बाजा, डुगडुगी। उ.—डिमडिमी पटह ढोल डफ बीना मृदंग उपंग चंगतार।

डिल्ला—संज्ञा पुं. [स.] एक छद।

संज्ञा पु. [हिं. टीला] बैलो का कूबड।

डींग—संज्ञा स्त्री. [सं. डीन=उड़ान] खूब बढ़ बढ़कर कही हुई बात, शेखी।

मुहा.—डींग की लेना—शेखी बघारना।

डीकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. डिंवक] बेटी, पुत्री।

डीठ—संज्ञा स्त्री. [सं. दृष्टि, प्रा. दिट्ठि डिट्ठि] (१) दृष्टि, निगाह, नजर।

मुहा.—डीठ चुराना (छिपाना)—आँख न मिलाना, सामने न ताकना। डीठ जोड़ना—नजर मिलाना, सामने देखना। डीठ बाँधना—ऐसा जादू-टोना करना कि सामने की चीज भी ठीक ठीक न दिखायी दे। डीठ मारना—चितवन से मोह लेना। डीठ रखना—देख-रेख रखना। डीठ लगाना—नजर लगाना।

(२) देखने की शक्ति। (३) समझ, बुद्धि।

डीठना—क्रि. अ. [हिं. डीठ+ना] दिखायी देना।
डीठबंध—संज्ञा पुं [सं. दृष्टिबंध] (१) ऐसा जादू-टोना कि सामने की चीज भी साफ साफ न दिखायी दे। (२) ऐसा जादू टोना करनेवाला।
डीठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. डीठ] (१) नजर का कुप्रभाव। उ.—(क) बाहेर जिनि कबहूँ खैये सुत डीठि लगैगी काहू की—१०४। (ख) डीठि लगावति कान्ह को जरैं बरैं वे आँखि—१०-६६। (२) दृष्टि। (३) देखने की शक्ति। (४) समझ, बुद्धि।
डीठिमूठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. डीठि+मूठ] नजर, टोना।
डीन—संज्ञा स्त्री. [सं.] पक्षियो की उड़ान।
डीबुआ—संज्ञा पु. [देश.] पैसा।
डीमडाम—संज्ञा पुं. [सं. डिंब=धूमधाम] (१) ऐंठ, ठसक। (२) धूमधाम, ठाटबाट, आडंबर।
डील—संज्ञा पुं. [देश.] (१) शरीर की ऊँचाई या विस्तार, कद, उठान।
यौ.—डील डौल—(१) शरीर की लंबाई-चौड़ाई। (२) शरीर का ढांचा या आकृति, काठी।
(२) शरीर, देह। (३) प्राणी, मनुष्य।
डीह—संज्ञा पुं. [फा. देह] (१) गांव, आबादी। (२) उजडे हुए गांव का टीला। (३) ग्राम-देवता।
डुंग—संज्ञा पुं. [सं. तुंग=ऊँचा] (१) ढेर, अंबार। (२) टीला, भीटा, पहाड़ी।
डुंगरनि—संज्ञा पुं. [सं. तुंग=पहाड़ी, हिं. डूँगर] टीला, भीटा, दूह। उ.—वृंदा आदि सकल बन ढूढयौ, जहँ गाइनि की टेर। सूरदास प्रभु दुरत दुराए, डुँगरनि ओट सुमेर—४५८।
डुंड—संज्ञा पुं. [सं. दंड] पेड़ या उसकी डाल जिसमें पत्ते आदि न हों।
संज्ञा पुं. [हिं. डौंड़ी] डुगडुगी, डौंड़ी।
डुंड, डुडु, डुडुभ—संज्ञा पुं. [सं.] पानी का साँप।
डुंडुल—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा उल्लू।
डुक, डुक्का—संज्ञा पु. [अनु.] घूँसा, मुक्का।
डुकिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोकिया] काठ का कटोरा।
डुकियाना—क्रि. स. [हिं. डुंक] घूँसे मारना।
डुगडुगाना—क्रि. स. [अनु.] डुगडुगी बजाना।
डुगडुगी, डुग्गी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चमड़ा मढ़ा एक छोटा बाजा, डौंगी, डौंडी।
मुहा.—डुगडुगी पीटना—चारो ओर प्रकट करना।
डुडू—संज्ञा पुं. [सं. दादुर] मेढक।
डुपटना—क्रि. स. [हिं. दो+पट] (किसी वस्त्र आदि को) तहाना, चुनियाना, चुनना।
डुपट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. दुपट्टा] दो पाट की चादर।
डुबकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डूबना] (१) पानी में डूबने की क्रिया, गोता, बुडकी। (२) पीठी की बिना तली बड़ियाँ। (३) एक तरह की बटेर,
डुबवाना—क्रि. स. [हिं. डुबाना का प्रे.] पानी में डुबाने का काम दूसरे से करना।
डुबाना—क्रि.स.[हिं.डूबना](१) पानी या किसी द्रव पदार्थ में गोता देना, बोरना। (२) चौपट या नष्ट करना।
मुहा.—नाम डुबाना—नाम या यश को कलंकित करना, नाम या यश पर धब्बा लगाना। लुटिया डुबाना—(१) महत्व या बड़ाई खोना। (२) काम बिगाड़ना। वंश डुबाना—कुल की प्रतिष्ठा खोना।
डुबाव—संज्ञा पुं. [हिं. डूबना] पानी की इतनी गहराई जिसमें कोई प्राणी डूब जाय।
डुबोना—क्रि. स. [हिं. डबोना] डुबकी देना।
डुब्बी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डुबकी] गोता, डुब्बी।
डुभकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डुबकी+बरी] पीठी की बिना तली बड़ियाँ जो पीठी के झोल में पकायी जाती है।
डुलत—क्रि. अ. [हिं. डुलना, डोलना] हिलती है, चलायमान होती है। उ.—डुलत नहिं द्रुम-पत्र वेली, थकित मंद-समीर—६५८।
डुलति—क्रि. अ. [हिं. डोलना] हिलती-डुलती है, चलायमान होती है। उ.—डोलत तन सिर-अंचल उघरयौ, बेनी पीठि डुलति इहि भाइ—१०-२६८।
डुलना—क्रि. अ. [हिं. डोलना] हिलना-डोलना।
डुलाए—क्रि. स. [हिं. डोलना] हिलाया, चलायमान किया। उ.—लिखि लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलाए। भृगु रिषि आदि सुनत चक्रित भए, जम सुनि सीस डुलाए—१-१२५।

डुलाना—क्रि. स. [हिं. डोलना] (१) हिलाना, गति में लाना। (२) भगाना। (३) घुमाना, टहलाना।

डुलाय—क्रि. स. [हिं. डुलाना] घुमाकर। उ.—द्वारे पैठत कुंजर मारयौ डुलाय धरनी डारयौ—२६१८।

डुलावत—क्रि. स. [हिं. डुलाना] हिलाती-डुलाती है, चलायमान करती है। उ.—(क) दधि लै मथति ग्वालि गरबीली। रुनक-झुनक कर कंकन बाजै, बाँह डुलावत ढीली—१०-२६६। (ख) सूरदास मानहु करभा-कर बारंबार डुलावत—६३२। (ग) मानहुँ मूक मिठाई के गुन, कहि न सकत मुख, सीस डुलावत—६४८।

डुलावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. डुलाना] हिलाती-डुलाती है, चलायमान करती है। उ.—मुरली तऊ गुपालहिं भावति। ···· ।सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति—६५५।

डुलावन—क्रि. स. [हिं. डुलाना] चलाना-फिराना, घुमाना, टहलाना। उ.—जसुमति बाल-बिनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई। दोउ कर पकरि डुलावन लागी, घट मैं नहिं छवि पाई—१०-१५६।

डुलावै—क्रि. स. [हिं. डुलाना] (१) हिलाता है, चलायमान करता है। उ.—(क) बहत पवन, भरमत ससि - दिनकर, फनपति सिर न डुलावै—१-१६३। (ख) असुर-सुता तिहि ब्यजन डुलावै—६-१७४। (२) चंचल करता है, विचलित करता है। उ.—ऐसैं सूर कमल-लोचन तैं चित नहिं अनत डुलावै हो—२-१०।

डुलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा कछुआ, कछुई।

डुलै—क्रि. अ. [हिं. डुलना, डोलना] हिलता-डुलता है, चलायमान होता है। उ.—डुलै सुमेरु, शेष-सिर कंपै, पच्छिम उदै करै बासरपति—६-८२।

डूँगर—संज्ञा पुं. [सं. तुंग=पहाड़ी] (१) टीला, भीटा, ढूह। उ.—सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि कैसे दुरत दुराय कहौ धौं डूँगर ओट सुमेर। (२) छोटी पहाड़ी। उ.—छिन ही मैं ब्रज धोइ बहावै। डूँगर को वहुँ पार न पावै।

डूँगरी—संज्ञा पुं. [हिं. डूँगर] छोटी पहाड़ी।

डूँज—संज्ञा स्त्री. [देश.] आँधी, तेज हवा।

डूँडा—वि. [सं. त्रुटि, हि. टूटना] एक सींगवाला।

डूकना—क्रि. स. [सं. त्रुटि+करण] भूल करना।

डूब—क्रि. अ. [हिं. डूबना] पानी आदि में डूबकर।

मुहा.—(चुल्लू भर पानी में) डूब मरना—शर्म या लाज से मुँह छिपाना।

डूबता—वि. [हिं. डूबना] जो डूब रहा हो।

डूबते—वि. [हिं. डूबता] जो डूब रहे हों।

मुहा.—डूबते को तिनके का सहारा—विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति को जरा सी सहायता भी बहुत होती है।

डूबना—क्रि. अ. [अनु. डुबडुब] (१) पानी या अन्य द्रव पदार्थ के भीतर जाना, गोता खाना, बूड़ना।

मुहा.—डूबना-उतराना—(१) सोच या चिंता में पड़ जाना। (२) घबराना। जी डूबना—(१) जी घबराना। (२) बेहोशी होना।

(२) ग्रह-नक्षत्र आदि का अस्त होना। (३) चौपट, नष्ट या बरबाद होना।

मुहा.—नाम डूबना—मान-मर्यादा नष्ट होना।

(४) पूँजी नष्ट होना। (५) लड़की का बुरे घर व्याहा जाना। (६) विचार या ध्यान में लीन होना।

डेड़हा—संज्ञा पुं [सं. डुंडुभ] पानी का साँप।

डेढ़—वि. [सं. अध्यर्द्ध, प्रा. डिड्यढ] एक और आधा।

मुहा.—डेढ ईंट की जुदा मसजिद खड़ी करना (बनाना)—ऐंठ और अकड़ के कारण सबसे अलग काम करना। डेढ चावल की खिचड़ी पकाना—अपना मत या काम सबसे अलग रखना।

डेढ़ा—वि. [हि. डेढ] डेढ़ गुना, डेवढ़ा।

डेबरा—वि. [देश] बायें हाथ से काम करनेवाला।

डेर—संज्ञा पु [हिं. डर] भय, आशंका।

डेरा—संज्ञा पुं. [हिं. डालना या ठहराना] (१) टिकान, पड़ाव, ठहरने का काम या भाव।

मुहा.—डेरा दयो (दियो)—ठहरे, टिके, रह गये। उ.—(क) ता आस्रम सजात नृप गयौ। तहाँ जाइकै डेरा दयौ—६-३। (ख) लंकपुर आइ रघुराइ डेरा दियौ, तिया जाकी सिया मैं लै

आयौ—६-१४२ ।

(२) टिकने का सामान या आयोजन ।

यौ.—डेरा-डंडा—बोरिया-बँधना, माल असबाव।

मुहा.—डेरा डालना—टिकना, ठहरना, रुकना। डेरा पड़ना–टिकान होना, छावनी पड़ना। डेरा परे–छावनी छायी गयी, टिकने का आयोजन किया गया। उ.—भरि चौरासी कोस परे गोपन के डेरा। डेरा-डंडा उखाड़ना (हटाना)—टिकने या ठहरने का सामान समेटना।

(३) ठहरने का स्थान। (४) खेमा, तंबू। (५) नाचने-गानेवालों की मंडली। (६) घर, निवासस्थान।

वि. [सं. डहर] बायाँ।

संज्ञा पु. [देश.] एक छोटा जंगली पेड़।

डेराई—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरती है, भयभीत होती है। उ.—सुनहु सूर माता रिस देखत राधा सकुचि डेराई।

डेराऊँ—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरता हूँ। उ.—जब परतीति होइ या जुग की परमिति छुटत डेराऊँ—१२३१।

डेराना—क्रि. अ. [हिं. डरना] भयभीत होना।

डेरानी—क्रि. अ. [हिं. डेराना] डरी, भयभीत हुई। उ.—मैं कछू कपट सवन सौं कीन्हौ अपजस तैं न डेरानी—१००८।

डेराने—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरे, भयभीत हुए। उ.—देव भोग को रहत डेराने—१००८।

डेरानो—क्रि. अ. [हिं. डरना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—सूर सोच मुख देख डेरानो ऊरध लेत उसाँस—२४६५।

डेरे—संज्ञा पुं. [हिं. डेरा] डेरा, टिकान।

मुहा.—दए आनि डेरे—डेरा डाला, ठहरे, आकर टिके। उ.—सुनि अरे सठ, दसकंठ कौं कौन डर, राम तपसी दए आनि डेरे—६-१२६।

डेरो, डेरौ—संज्ञा पु. [हिं. डेरा] पड़ाव, जमाव, टिकान। उ.—(क) कहा भयौ जौ संपति बाढी, कियौ बहुत घर घेरौ। कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि-पूजा, कहुँ सतनि कौ डेरौ—१-२६६। (ख) कोटि छयानवे मेघ बुलाये आनि कियो ब्रज डेरो—६५६।

(२) टिकने का आयोजन या सामान।

मुहा.—डेरो परयो—टिके, छावनी डाली। उ.—डेरो परयौ कोस चौरासी—१०३६।

डेल—संज्ञा पुं. [सं. उडुल] उल्लू पक्षी।

संज्ञा पुं. [सं. दल, हिं. डला] पत्थर या ईंट का टुकड़ा, रोड़ा, ढेला। उ.—नार्हिन राम रसिक रस चाख्यौ तातें डेल सौं डारो।

डेला—संज्ञा पु. [सं. दल] आँख का कोया।

संज्ञा पुं [हिं. ठेलना] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बांधा जाता है, ठेंगुर।

डेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डला] बाँस की डलिया, झाँपी।

डेवढ़—वि. [हिं. डेवढा] डेढ गुना, ड्योढा।

डेवढ़ना—क्रि. स. [हिं डेवढा] (१) आँच पर रोटी फुलाना। (२) कपड़े तहाना।

डेवढ़ा—वि. [हिं डेढ] डेढ़ गुना।

डेवढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ड्योढी] दरवाजा, पौरी।

डेहरी, डेहल—संज्ञा स्त्री. [स. देहली] दहलीज।

डैना—संज्ञा पुं. [स. डयन=उड़ना] पख, पर, पक्ष।

डोंगर—संज्ञा पु. [सं. तुंग=पहाड़ी] पहाड़ी, टीला, भीटा। उ.—(क) एक फूँक विष ज्वाल के जल डोंगर जरि जाहि। (ख) डोंगर को बल उनहिं बताऊँ—१०४३। (ग) वै बरखत डोंगर वन धरनी सरिता कूप तड़ाग—पृ. ३३०।

डोंगरि, डोंगरी—संज्ञा स्त्री. अल्प. [हिं. डोंगर] छोटी पहाड़ी, टीला। उ.—वृंदावन ढूँढ्यौ जमुना तट देख्यौ वन डोंगरी मँझारी—१५७७।

डोंगा—संज्ञा पुं. [सं. द्रोण] बिना पाल की नाँव।

डोंगी—संज्ञा स्त्री. अल्प. [स. द्रोणी] छोटी नाँव।

डोंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] (१) बड़ी इलायची। (२) टोटा, कारतूस।

डोंड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] टोंटी।

संज्ञा स्त्री. [सं. द्रोणी] छोटी नाँव, डोंगी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डौंड़ी] ढिंढोरा।

डोक—संज्ञा पुं [देश.] पकी हुई खजूर।

डोकर, डोकरड़ो, डोकरा, डोकरो—संज्ञा पुं. [सं.

दुष्कर] (१) बूढ़ा या शक्तिहीन मनुष्य। (२) पिता, बाप।

डोकरिया, डोकरी—संज्ञा स्त्री. [हि. डोकरा] (१) बूढ़ी या शक्तिहीन स्त्री। (२) माता।

डोकिया, डोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रोणक=काठ का कटोरा] काठ की छोटी कटोरी।

डोगर—संज्ञा पुं. [हिं. डोंगर] पहाड़ी, टीला।

डोड़हथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँड़ा+हाथ] तलवार।

डोड़हा—संज्ञा पुं. [सं. डुंडुभ] पानी का साँप।

डोब, डोबा—संज्ञा पुं. [हि. डूबना] गोता, डुबकी।

डोभरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] ताजा महुआ।

डोम, डोमड़ा—संज्ञा पु [सं. डम] एक नीच जाति।

डोमनी, डोमिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोम] डोम स्त्री।

डोमा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का साँप।

डोर—संज्ञा स्त्री. [सं] डोरा, तागा, धागा, सूत। उ.—(क) रतन जटित वर पालनो रेसम लागी डोर, बलि हालरु रे—१०-४७। (ख) देत छवि अति गिरत उर पर अंबु-कन के जोर। ललित हिय जनु मुक्त-माला, गिरति टूटैं जोर—३५८। (ग) अलकावलि मुकुतावलि गूँथी डोर सुरंग बिराजै—सारा. १७३।

मुहा.—डोर पर लगाना—ठीक रास्ते या ढग पर लगाना। डोर मजबूत होना—जिंदगी बाकी होना। डोर होना—मोहित होना।

क्रि. स. [हि. डोलना] हिलता-डुलता (है), चलायमान होता (है)। उ.—सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसें डोर (ल)। रस भरे अंबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौंर—१७३।

डोरक—संज्ञा पुं. [सं.] डोरा, तागा, सूत।

डोरा—संज्ञा पुं. [सं. डोरक] (१) सूत, तागा, धागा। उ.—आसा करि-करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ। तोरि लयौ कटिहू कौ डोरा, तापर बदन जरायौ—२-३०। (२) धारी, लकीर। (३) आँखों की महीन लाल नसें। (४) तलवार की धार। (५) तपे हुए घी की धार ऊपर से डालना। (६) खड़े फल की कलछी। (७) प्रेम का बधन, लगन।

मुहा.—डोरा डालना—प्रेम में फँसाना। डोरा लगना—प्रेम में फँसना।

(८) किसी चीज के खोजने का पता या सुराग। (९) काजर या सुरमे की रेखा।

संज्ञा पुं. [हिं. ढोंढ़] पोस्ते आदि का डोडा।

डोरि, डोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. डोरा, डोरी] (१) डोरी, रस्सी। उ.—ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहटैं नचायौ—१-३२६। (२) पतला तागा या धागा, डोर। उ.—अति आधीन भई सँग डोलत ज्यों गुड्डी बस डोरि—पृ. ३३३। (३) मंगलसूत्र, सूत की बटी हुई डोरी। (४) पाश, बधन, बाँधने की डोरी। उ.—तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू जब कौसिल्या माता आवै—९-२५। (४) पाश, बंधन, बाँधने की डोरी। उ.—(क) जनम सिरानौ अटकैं-अटक। राज-काज, सुत-बित की डोरी, बिनु बिवेक फिरयौ भटकैं—१-२९२। (ख) मैं-मेरी करि जनम गँवावत जब लगि नाहि परति जम डोरी—१-३०३। (५) प्रेम का बधन, स्नेह-सूत्र। उ.—(क) बात कहौ तेरैं ढोटा की सब ब्रज बाँध्यौ प्रेम की डोरि—१०-३२७। (ख) काके भये कौन के ह्वैहैं बँधे कौन की डोरी—२८६३। (ग) काको मान परेखो कीजै बँधी प्रेम की डोरी—३१११।

डोरिया—संज्ञा पुं. [हिं. डोरा] मोटे सूत की धारियों वाला सूती कपड़ा।

डोरियाना—क्रि. स. [हिं. डोरी+आना (प्रत्य.)] पशुओं को डोरी से बाँधकर ले चलना।

डोरिहार—संज्ञा पुं [हिं. डोरी+हारा] रगीन सूतों से बिनने का काम करनेवाला, पटवा।

डोरिहारिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोरिहार] पटवे की स्त्री।

डोरे—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोर, डोरी] डोर, तागा। उ.—ज्यों डोरे बस गुडी देखियत डोलत संग अधीने—पृ. ३३५।

क्रि. वि.—साथ-साथ, सग-सग, एक साथ।

डोल—क्रि. स. [स. दोल, हिं. डोलना] हिलता-डुलता (है), चलायमान होता (है)।

वि.—[हिं. डोलना] चचल, हिलता हुआ।

संज्ञा स्त्री, [हिं, डोलना] हिलने-डुलने की क्रिया

या भाव, हिलना-डुलना । उ.—कीधौं मोर मुदित नाचत की वरहि मुकुट की डोल—१६२८ ।

संज्ञा पुं. [सं. डोल = झूलना, लटकना] (१) कुएँ से पानी भरने का लोहे का पात्र । (२) हिंडोला, झूला, पालना । उ.—सघन कुंज में डोल बनायो झूलत हैं पिय प्यारी । (३) डोली, पालकी, शिविका ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की काली मिट्टी ।

डोलक—संज्ञा पुं. [सं.] ताल देने का एक बाजा ।

डोलची—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोल] (प्रत्य.) (१) छोटा डोल । (२) डोल के आकार की बाँस की पिटारी ।

डोलडाल—संज्ञा पु. [हि. डोलना] चलना-फिरना ।

डोलत—क्रि. स. [हिं. डोलना] (१) घूमते-फिरते हैं । उ.—(क) भक्त-विरह-कातर करुनामय डोलत पाछैं लागे—१-८ । (ख) आनद मगन भए सब डोलत कछू न सोध सरीर—९-१८ । (२) चलता-फिरता है, सजीव है । उ.—जब लगि डोलत बोलत चितवत धन-दारा हैं तेरे—१-३१९ ।

डोलति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. डोलना] घूमती-फिरती है । उ.—दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै—१-४२ ।

डोलन—क्रि. स. [हिं. डोलना] हिलने-डुलने (लगे), चलायमान (हुए) । उ.—सेष सहस फन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ—१०-६४ ।

संज्ञा स्त्री.—घूमने-फिरने की क्रिया या भाव । उ. —सभा समय घोष की डोलन वह सुधि क्यौं बिसरै —२८०३ ।

डोलना—संज्ञा पुं. [सं. दोलन=लटकना, हिलना, हिं. डोला] बच्चों का पालना, ढोलना । उ.—अगरु चँदन कौ पालनौ (रँगि), इंगुर ढार सुढार । लै आयौ गढि डोलना (हो), विसकर्मा सुतहार—१०-४० ।

क्रि. स.—(१) हिलना, चलायमान होना । (२) चलना, फिरना, टहलना । (३) हटना, दूर होना । (४) चित्त विचलित होना या डिगना ।

डोलनि—संज्ञा पुं. [हिं. डोलना] डोलने या हिलने-डुलने की क्रिया । उ.—(क) बदन सरोज तिलक गोरोचन, लट लटकनि मधुकर गति डोलनि—१०-१२१ । (ख) सोभित अति कुंडल की डोलनि, मकराकृति श्री सरस बनाई—६३० ।

डोलरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोल] (१) पलँग, खाट, चारपाई । (२) झोली ।

डोला—संज्ञा पुं. [सं. दोल] (१) पालकी, शिविका ।

मुहा.—डोला लेना—भेंट में कन्या लेना ।

(२) झूले का झोका या पेंग ।

क्रि. स.—(१) हिला-डुला । (२) चचल हुआ ।

डोलाइ—क्रि. स. [हि. डोलना] हिला-डुलाकर, चला कर, गति देकर, पेंग या झोका देकर । उ.—कन्हैया हालरु रे । गढि-गुढि ल्यायौ बाढई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे—१०-४७ ।

डोलाना—क्रि. स. [हिं. डोलना] (१) हिलाना, चलाना, गति में करना । (२) दूर करना, भगाना ।

डोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोला] पालकी या शिविका की सवारी जिसमें प्राय: स्त्रियाँ बैठती हैं ।

क्रि. स. स्त्री. भूत.—(१) हिली-डुली । (२) हटी, सरकी । (३) विचलित या चचल हुई ।

डोले, डोलै—क्रि. स. भूत. [हि. डोलना] (१) घूमे-फिरे । उ.—पांडव-कुल के सहाय भये हरि जहँ तहँ संगहिं डोले—सारा. ७७३ । (२) हिले-डुले । उ.—डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई—९-७८ ।

डोलौ—क्रि. स. [हिं. डोलना] घूमते-फिरते हो । उ.—(क) भये त्रिया के बस निसि जागे सरबस भोर भए उठि आए भूले काहे डोलौ—२६५६ । (ख) सूर जोग लै वर घर डोलौ लेहु लेहु ज्यों सूप—३२२३ ।

डोहरा—संज्ञा पुं. [देश.] काठ का एक पात्र ।

डोही—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोकी] काठ की बड़ी कलछी ।

डौंड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. डिंडिम] (१) ढिंढोरा पीटने का ढोल या डुगडुगिया ।

मुहा.—डौंड़ी देना—(१) घोषणा करना, मुनादी करना । (२) सबसे कहते फिरना । डौंड़ी बजना—(१) घोषणा होना । (२) जयजयकार होना । डौंड़ी बाजी—दुहाई फिरी, जयजयकार हुई । उ.—

लौड़ी के घर डौड़ी बाजी जब बढ्यौ स्याम अनुराग —३०६५।

(२) जनता को दी जानेवाली सूचना, घोषणा।

डौरु, डौंरू—संज्ञा पुं. [हि. डमरू] डमरू। उ.—खुनखुना करि हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ।

डौआ—संज्ञा पुं. [देश.] काठ का चमचा या करछुल।

डौर, डौल—संज्ञा पुं. [हि. डोल] (१) ढाँचा, रूपरेखा।

मुहा.—डौल डालना—ढाँचा या रूपरेखा तैयार करना। डौल पर लाना—काट-छाँटकर ठीक करना।

(२) बनावट या रचना का ढंग।

मुहा.—डौल से लगाना—उचित क्रम से सजाना।

(३) तरह, प्रकार, भाँति। (४) उपाय, ब्योंत।

मुहा.—डौल पर लाना—राजी करना, साध लेना। डौल बाँधना (लगाना)—उपाय या युक्ति बैठाना, जुगत लगाना।

(५) रंग-ढंग, लक्षण। (६) आय का अनुमान, तखमीना।

संज्ञा स्त्री.—खेतों की मेड़, डाँड़।

डौलडाल—संज्ञा पुं. [हिं. डौल] उपाय, ब्योंत।

डौलदार—वि. [हिं. डौल+फा. दार] सुडौल, सुंदर।

डौलना—क्रि. स. [हिं. डौल] काटछाँट से ठीक करना, सुडौल बनाना।

डौलियाना—क्रि. स. [हि. डौल] (१) ढंग पर लाना, साध लेना। (२) काट-छाँट कर ठीक करना।

ड्यौढ़ा—वि. [हिं. डेढ] डेढ़गुना।

ड्यौढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. देहली] (१) चौखट, दरवाजा, फाटक। (२) बाहरी कमरा, दहलीज, पौरी।

ड्यौढ़ीदार—संज्ञा पुं. [हि. ड्योढी+फा. दार] द्वारपाल।

ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं. [हिं. ड्यौढ़ी + वान् (प्रत्य.)] ड्योढ़ी का सिपाही, द्वारपाल, दरवान।

ढ

ढ—देवनागरी वर्णमाला का चौदहवाँ और टवर्ग का चौथा व्यंजन; इसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है।

ढँकन—संज्ञा पुं. [हि. ढकन] ढकना, ढक्कन।

संज्ञा स्त्री.—ढँकने की क्रिया या भाव।

ढँकना—क्रि. स. [हि. ढकना] मूँदना, ढाँपना।

संज्ञा पुं.—मूँदने की चीज, ढक्कन।

ढँकुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढेकली] ढेंकी, ढेंकली।

ढंख—संज्ञा पु. [सं. आषाढक] ढाक, पलाश।

ढँग, ढंग—संज्ञा पु. [सं. तंग (तंगन)=चाल, गति] (१) ढब, रीति, तौर-तरीका। (२) प्रकार, भाँति, किस्म, तरह। (३) बनावट, गढ़न, ढाँचा। (४) युक्ति, उपाय, तदबीर।

मुहा.—ढंग पर चढना—काम निकलने या मतलब पूरा होने के अनुकूल होना। ढंग पर लाना—काम निकालने या मतलब पूरा करने के किसी को अनुकूल करना। ढंग का—कुशल, चतुर, उपयुक्त।

(५) चाल-ढाल, आचरण, व्यवहार, बर्ताव। उ.—(क) गज कौं कहा अन्हवाए सरिता बहुरि धरै वह ढंग—१-३३२। (ख) बारे तैं सुत ये रँग लाए मनहीं मनहिं सिहाति—१०-३२८। (ग) राधे ये ढँग हैं री तेरे—७१८। (घ) अबहीं तैं तू करति ये ढँग, तोहिं अबही होन—७१९। (ङ) लै करि चीर कदम पर बैठे, किन ऐसैं ढँग लाए—७६४। (च) ऊधौ हरि के अवरै ढग—३३२७।

मुहा.—ढंग बरतना—दिखावटी व्यवहार करना।

(६) धोखा देने का बहाना, हीला-बहाना, पाखंड। उ.—सुनहु सूर नृप यहि ढँग आयौ, बल-मोहन पर घात—५२७। (७) लक्षण, आभास, आसार।

यौ.—रंग-ढग—(१) आभास, लक्षण, आसार। (२) काम, करतूत, व्यवहार की रीति-नीति।

(८) दशा, अवस्था, स्थिति।

ढँगलाना—क्रि. स. [हिं. ढाल] लुढ़काना।

ढँगिया, ढंगी—वि. [हिं. ढंग] चालबाज, काँइयाँ।

ढँढरच—संज्ञा पुं. [हिं. ढंग + रचना] धोखा देने का

हीला या बहाना, पाखंड का आयोजन।

ढँढार—वि. [देश.] बड़ा और बेढगा।

ढँढोर—क्रि. स. [हिं. ढँढोरना] हाथ से टटोलकर, इधर-उधर ढूँढ़कर। उ.—हरि सों हीरा खोइकै, हौं रही समुद्र ढँढोर—३३८३।

संज्ञा पु. [अनु. धायँ धायँ] (१) आग की लौ, लपट या ज्वाला। (२) काले मुँह का बदर, लगूर।

ढँढोरची—संज्ञा पुं. [हिं. ढिंढोरा+फा. ची (प्रत्य.)] ढिंढोरा पीटनेवाला, मुनादी फेरनेवाला।

ढँढोरना—क्रि. स [हिं. ढूँढना] हाथ डाल कर टटोलना, हाथ से इधर-उधर ढूँढना या खोजना।

ढँढोरा—संज्ञा. पुं. [अनु. ढम + ढोल] (१) घोषणा करने का ढोल, डुग्गी, डौंडी।

मुहा.—ढँढोरा पीटना—डुग्गी पीट कर सबको सूचना देना, मुनादी फेरना।

(२) वह घोषणा जो डुग्गी पीटकर की जाय।

ढँढोरि—क्रि. स. [हिं. ढूँढना, ढँढोरना] टटोलकर, हाथ से (इधर-उधर) ढूँढ़कर। उ.—तेरैं लाल मेरौ माखन खायौ। दुपहर दिवस जानि घर सूनौ, ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयौ—१०-३३१।

ढँढोरिया—संज्ञा पुं [हिं. ढँढोरा] डुग्गी पीटनेवाला।

ढँपना—क्रि. अ. [हिं. ढँकना] किसी चीज के नीचे छिपना, किसी चीज की आड या ओट में होना।

सज्ञा पु.—ढकने की चीज, ढक्कन।

ढ—संज्ञा पुं [सं.] (१) बड़ा ढोल। (२) कुत्ता। (३) कुत्ते की पूँछ। (४) ध्वनि। (५) साँप।

ढई—सज्ञा स्त्री. [हिं. ढहना] देर तक रुकना।

मुहा.—ढई देना—धरना देना।

ढकई—वि. [हिं. ढाका] ढाके का।

ढकना—संज्ञा पु. [स. ढक = छिपना] ढक्कन।

क्रि. अ.—छिपना, ओट में होना।

ढकनियाँ, ढकनिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढक्नी] ढाँकने का छोटा या हल्का ढक्कन, ढकनी। उ.—सुभग ढकनियाँ ढाँपि बाँधि पट जतन राखि छीके समदायो—११७६।

ढकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढक्ना] (१) ढकने की छोटी चीज, ढक्कन। (२) हथेली के पीछे का गोदना।

ढका—संज्ञा पुं. [सं. ढक्का] बड़ा ढोल।

संज्ञा पु. [अनु.] धक्का, टक्कर।

ढकि—क्रि. अ. [हिं. ढकना] (१) ढककर, ओढ़ाकर।

प्र.—ढकि लइ—ढक लिया, ओढा कर छिपा लिया। उ.—पकरयौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डोलै। जाकैं मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै—१-१५६।

(२) छिपाकर, ओट या आड़ मे रखकर। उ.—तुम चुप करि रहौ ज्ञान ढकि राखो कत हो बिरह बढावत—३११५।

ढकिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढकेलना] धावा, आक्रमण।

ढकेलना—क्रि. स. [हिं. धक्का] (१) धक्के से गिराना। (२) ठेल कर हटाना या सरकाना।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री. [हि. ढकेलना] धक्कमधक्का।

ढकोसना—क्रि. स. [अनु. ढक्ढक] एक बार में ढेर का ढेर या बहुत सा पानी पीना।

ढकोसला—सज्ञा पु. [हिं. ढग + कौशल] धोखा देने या मतलब निकालने का कपट व्यवहार, पाखंड।

ढक्कन—संज्ञा पु. [सं.] ढाँकने की चीज।

ढक्का—संज्ञा स्त्री. [स.] ढोल, नगाड़ा, डंका।

ढक्की—सज्ञा स्त्री. [हिं. ढाल] पहाड़ी ढाल।

ढखनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढकना] ढक्कन।

ढगण—संज्ञा पुं. [स.] तीन मात्राओं का एक गण।

ढचर—संज्ञा पुं. [हिं. ढाँचा] (१) ढाँचा, आयोजन। (२) झगड़ा-बखेड़ा, जजाल। (३) कार-बार, धधा। (४) आडबर, पाखड, ढकोसला।

ढटींगड़, ढटींगड़ा, ढटींगर—वि. [सं. डिंगर = मोटा आदमी](१) बड़े डीलवाला। (२)मोटा-ताजा, मुस्तडा।

ढट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. डाढ] बड़ा साफा या मुरेठा।

संज्ञा पु. [हिं. डाट] छेद बद करने की डाट।

ढट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढ] डाढ़ी बाँधने की पट्टी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. डाट] छोटी डाट, ठेंपी।

ढड्ढा, ढड्ढा—वि. [देश.] बहुत बड़ा और बेढंगा।

संज्ञा पुं. [हिं. ठाट] (१) ढाँचा, ठटरी। (२) झूठा ठाट-बाट या आडबर।

ढड्ढो—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढड्ढा] (१) बहुत बुड्ढी और दुबली स्त्री। (२) बकवाद करनेवाली स्त्री।
वि.—(१) मूर्ख, उजड्ड। (२) ढीठ।

ढनमनाना—क्रि. अ. [अनु.] लुढकना, ढुलकना।

ढप—संज्ञा पुं. [हिं. डफ] चमड़ामढ़ा एक बाजा।

ढपना—संज्ञा पुं. [हि. ढाँपना] ढकने की चीज।
क्रि. अ.—ढक जाना, ओट में हो जाना।

ढपला—संज्ञा पुं. [हिं. डफला] डफ नामक बाजा।

ढपली—संज्ञा स्त्री. [हि. डफली] छोटा डफ, खँजरी।

ढप्पू - वि. [देश.] बहुत बड़ा और बेढंगा।

ढफ—संज्ञा पुं. [हि. डफ] डफ नामक बाजा। उ.—रुंज मुरज ढफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार।

ढब—संज्ञा पुं. [स. धव=चलना, गति] (१) रीति, तौर, तरीका। (२) प्रकार, भाँति, किस्म। (३) रचना, बनावट, गढ़न, ढाँचा। (४) युक्ति, उपाय।
मुहा—ढब पर चढना—मतलब निकलने के अनुकूल होना। ढब पर लगाना (लाना)—मतलब निकालने के लिए अनुकूल बनाना।
(५) गुण, स्वभाव, बान, आदत।
मुहा.—ढब डालना—(१) आदत डालना। (२) आचार-विचार की अच्छी बातें सिखाना।

ढबरा—वि. [हिं. ढाबर] मटमैला, गँदला।

ढबीला—वि. [हिं. ढब] (१) अच्छे ढंग का, अच्छी आदतोंवाला। (२) चतुर, चालाक, काँइयाँ।

ढबुआ—संज्ञा पु. [देश.] पैसा।

ढबैला—वि. [हिं. ढाबर] मटमैला, गँदला।

ढमढम—संज्ञा पुं. [अनु.] ढोल या नगाड़े का शब्द।

ढमलाना—क्रि. स. [देश.] लुढ़काना, ढुलकाना।

ढयना—क्रि. अ. [हिं. ढहना] गिरना, ध्वस्त होना।

ढरक—संज्ञा स्त्री. [हि. ढरकना (१) ढरकने की क्रिया या भाव। (२) दयालुता।

ढरकना—क्रि. अ. [हि. ढार या ढाल] (१) द्रव पदार्थ का गिर कर बहना। (२) नीचे लुढकना।
मुहा.—दिन ढरकना—सूर्यास्त होना।

ढरका—संज्ञा पुं. [हिं. ढरकना] बाँस की नली।

ढरकाइ—क्रि. स [हिं ढरकाना] ढरकाकर, घिसलाकर, लुढकाकर। उ.—चटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ—१०-२४४।

ढरकाए—क्रि. स. [हिं. ढरकाना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ) गिराये या बहाये। उ.—कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन-नीर ढरकाए—९-३१।

ढरकाना—क्रि. स. [हि. ढलकाना] (१) (पानी आदि द्रव पदार्थ) गिराकर बहाना। (२) लुढ़काना।

ढरकायो, ढरकायौ—क्रि. स. [हि. ढरकाना] गिराया, (गिराकर) बहाया। उ.—(क) खोलि किवार, पैठि मंदिर मैं, दूध-दही सब सखनि खवायौ। ऊखल चढि, सीकैं कौ लीन्हौ, अनभावत भुइ मैं ढरकायौ—१०-३३१। (ख) भली करी हरि माखन खायो। इहौ मानि लीनी अपने सिर, उबरो सो ढरकायो—११२८।

ढरकि—क्रि. अ. [हि. ढरकना] गिरकर, बहकर। उ.—व्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ—१०-१८२।

ढरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढरकना] जुलाहो का औजार।
क्रि. अ. भूत. स्त्री—गिरी, बही, लुढ़की।

ढरकौंहा—वि. [हि. ढरकना] ढरकनेवाला।

ढरकौ—क्रि. अ. [हि. ढरकना] ढरकता रहता है, पड़ा रहता है, बहा करता है। उ.—सूर स्याम कितनौ तुम खैहौ, दधि-माखन मेरैं जहँ-तहँ ढरकौ—१०-३३३।

ढरत, ढरतु—क्रि. अ. [हिं. ढलना] (१) बहता है। उ.—मोसों कहत होइ जिनि ऐसी, नैन ढरत नहि भरत हियौ—२६४७। (२) भर कर खाली होता है। उ.—बारंबार रहँट के घट ज्यौं भरि भरि लोचन ढरतु—२२५३।

ढरन—संज्ञा पुं. [हिं. ढरना] (१) दीनो पर द्रवीभूत होनेवाले, दयाशील, कृपालु। उ.—दूरि देखि सुदामा आवत, धाइ परस्यौ चरन। लच्छ सौं बहु-लच्छ दीन्हौ, दान-अवढर-ढरन—१-२०२। (२) गिरने या पड़ने की क्रिया, पतन। उ—छल कियौ पाडवनि कौरव, कपट-पासा ढरन—१-२०२।

ढरना—क्रि अ. [हिं. ढलना] (१) गिरकर बहना।

(२) बीतना, गुजरना। (३) लुढ़कना। (४) आकर्षित होना। (५) रीझना, प्रसन्न होना।

ढरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढरना] (१) गिरने या बहने की क्रिया या रीति। उ.—(क) ललित श्री गोपाल-लोचन लोल आँसू-ढरनि। —३५१। (ख) स्याम-सिंधु सरिता ललनागन जल की ढरनि ढरीं—३३६-(८२)। (२) हिलने-डोलने की क्रिया, गति। (३) चित्त की प्रवृत्ति, झुकाव। उ.—रिस अरु रुचि हौं समुझि देखिहौं वाके मन की ढरनि वाकी भावती बात चलाइहौं--२२०६। (४) द्रवीभूत होने की क्रिया या भाव, दयाशीलता, कृपालुता।

ढरहरना—क्रि. अ. [हिं. ढरना] खसकना, सरकना।

ढरहरा—वि. [हिं. ढरारा] ढालू, ढलुहा।

ढरहरि—संज्ञा स्त्री. [हिं ढरहरी] पकौड़ी।

क्रि. अ. [हिं. ढरहरना] सरककर, झुककर, चलकर। उ—दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि—१-३१२।

ढरहरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पकौड़ी। उ.—राय भोग लियो भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई—२३२१।

क्रि. अ. [हिं. ढरहरना] सरकी, खिसकी।

ढराइ—क्रि. स. [हिं. ढरकाना] गिराकर, बहाकर। उ.—अब देहौं ढराइ सब गोरस तबहिं दान तुम दैहौ—पृ. ३४१।

ढराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढलाई] ढालने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

क्रि. स. [हिं. ढरकाना] गिरायी, बहायी।

ढराना—क्रि. स. [हिं. ढहाना] ढालने का काम करने में दूसरे को प्रवृत्त करना।

क्रि. स. [हिं. ढरकाना] लुढ़काना, गिराना।

ढराने—क्रि. अ. [हिं ढलना] बहने लगे। उ.—यहै कहत दोउ नैन ढराने, नंद-घरनि दुख पाइ—५२६।

ढरायो—क्रि. अ. [हिं. ढरकना] ढरक गया, लुढ़क गया। उ.—सुनि मैया, दधि माट ढरायो—११७४।

ढरारा—वि. [हिं. ढार या ढाल] (१) गिरकर बहने वाला। (२) लुढ़कनेवाला। (३) शीघ्र ही आकर्षित या प्रवृत्त होनेवाला, चलायमान होनेवाला।

ढरारी—वि. स्त्री. [हिं. ढरारा] (१) बहनेवाली। (२) लुढ़कनेवाली। (३) शीघ्र ही आकर्षित होनेवाली।

ढरि—क्रि. अ. [हिं. ढलना] (१) बीतकर, समाप्त होकर। अ.—गई ढरि—समाप्त हो गयी, बीत गयी। उ.—काहु न प्रगट करी जदुपति सौं दुसह दुरासा गई अवधि ढरि—२८६३।

(२) गिरकर, सरककर, खिसककर। उ.—सिर तैं गई दोहनी ढरि कै, आपु रही मुरझाई—७४३।

ढरिआना—क्रि. अ. [हिं. ढारना] गिराना, बहाना।

ढरीं—क्रि. अ. [हिं. ढलना] बहीं, प्रवाहित हुईं, खिचीं। उ.—स्याम सिंधु सरिता ललनागन जल की ढरनि ढरीं—३३६। (८६)।

ढरी—क्रि. अ. [हिं. ढलना] (१) बही, प्रवाहित हुई। उ.—रुधिर धार रिपि आँखिनि ढरी—६-३। (२) ढीली पड़ी, रोष तज दिया, प्रसन्न हुई। उ.—पाती लिखि कछु स्याम पठायौ यह सुनि मनहिं ढरी—३०६२। (३) ढल गयी, अनुरूप हो गयी। उ.—जैसें नारि भजे परपुरुषहिं ताके रंग ढरी—पृ. ३२६।

ढरे—क्रि. स. [हिं. ढरना] (१) गिरे, बहे। उ.—निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनँद-आँसु ढरे—६-१७१। (२) द्रवित हुए, दया दिखायी। उ.—जिन जो जाँच्यो सोइ दीन अस नँदराइ ढरे—१०-२४।

ढरै—क्रि. अ. [हिं. ढाल, ढलना] (१) अनुकूल हो, प्रसन्न हो, रीझे, दया करे। उ.—उ.—(क) जापर दीनानाथ ढरै। सोइ कुलीन, बड़ो सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करे—१-३५। (ख) सूर पतित तरि जाय छिनक मैं, जौ प्रभु नैंकु ढरै—१-१०५। (२) रंग जाय, ढल जाय, अनुरक्त हो जाय, अनुरूप हो जाय। उ.—सूर स्याम के रस पुनि छाकति वैसे ही ढग बहुरि ढरै—११६५।

ढरैया—संज्ञा पु. [हिं. ढारना] ढालनेवाला।

ढर्रा—संज्ञा पुं. [हिं. ढरना] (१) मार्ग, रास्ता। (२) काम करने का ढंग। (३) युक्ति, उपाय, तदबीर। (४) चाल-चलन, व्यवहार।

ढलकना—क्रि. अ. [हिं. ढाल] (१) किसी द्रव पदार्थ का पात्र से नीचे गिरना। (२) लुढकना।

ढलकाना—क्रि. स. [हिं. ढलकना] (१) द्रव पदार्थ पात्र के बाहर गिराना। (२) लुढ़काना।

ढलकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढरकी] जुलाहों का औजार।

ढलना—क्रि. अ. [हिं. ढाल] (१) द्रव पदार्थ का गिर कर बहना। (२) बीतना, गुजरना, समाप्त हो जाना।

मुहा.—जवानी ढलना—युवावस्था समाप्त होने लगना। छाती ढलना—स्तन लटक जाना। जोवन ढलना—युवावस्था का उतार पर होना। दिन ढलना—संध्या होना। चाँद-सूरज ढलना—चाँद-सूरज का अस्त होना।

(३) द्रव का एक पात्र से दूसरे में उँडेला जाना।

मुहा—बोतल(शराब) ढलना—शराब पी जाना।

(४) लुढ़कना। (५) हिलना-डोलना, लहराना।

(६) किसी की ओर आकर्षित होना, अनुरक्त होना।

(७) अनुकूल होना रीझना। (८) ढाला जाना।

ढलवाँ—वि. [हिं. ढालना] ढाल कर बनाया हुआ।

ढलवाना—क्रि. स. [हिं. ढालना का प्रे.] ढालने का काम किसी दूसरे से कराना।

ढलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढालना] ढालने का काम, भाव या मजदूरी।

ढलाना—क्रि. स. [हिं. ढालना] ढलवाना।

ढलुवाँ—वि. [हिं. ढलवाँ] ढला हुआ।

ढले—क्रि. अ. [हिं. ढलना] बीते, समाप्त हुए।

मुहा.—दिन ढले—साँझ को।

ढलैत—संज्ञा पुं. [हिं. ढाल] ढाल रखनेवाला।

ढवरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] धुन, लौ, लगन, रट। उ.—हरि दरसन की ढवरी लागी—३४४२।

ढहना—क्रि. अ. [सं. ध्वसन] (१) गिरना, ध्वस्त होना। (२) नष्ट होना, मिट जाना।

ढहराना—क्रि. स. [हिं. ढाइ] लुढ़काना।

ढहरि, ढहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. देहली, हिं. ढहरी] देहली, दहलीज, डेहरी। उ.—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि—१०-९७।

संज्ञा स्त्री. [देश.] मिट्टी का गगरा, मटका। उ.—डगर न देत काहुहिं फोरि डारत ढहरि।

ढहवाना—क्रि. स. [हिं. ढहाना का प्रे.] गिरवाना।

ढहाई—क्रि. स. भूत. [हिं. ढहाना] ढा दिया, गिरा दिया, ध्वस्त कर दिया। उ.—एक ही बान को पाषान को कोट सब हुतो चहुँ ओर सो दिया ढहाई—१०३.३१।

ढहाना—क्रि. स. [सं. ध्वंसन] गिराना, ध्वस्त करना।

ढहायौ—क्रि. स. [हिं. ढहाना] ढा दिया, ध्वस किया। उ.—रे पिय, लंका बनचर आयौ। करि परपंच हरी तैं सीता, कंचन-कोट ढहायौ—९-११९।

ढहावत—क्रि. स. [हिं. ढहाना] गिराते हैं। उ.—महा प्रलय-जल गिरिहिं ढहावत—१०५४।

ढही—क्रि. अ. भूत. [हिं. ढहना] (१) गिर पड़ी। उ.—सोचति अति पछितानि राधिका मूर्छित धरनि ढही—२८९९। (२) मिट गयी, नष्ट हुई। उ.—अब सुनि सूल सहति सब सूरज कुल मरजाद ढही—३३७०।

ढहैहौं—क्रि. स. [हिं. ढहाना] ध्वस्त करूँगा, ढा दूँगा। उ.—छिन इक माहि गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं—९-११३।

ढाँकति—क्रि. स. [हिं. ढाँकना] ढकती है, मूँदती है। उ.—खन खोलत खन ढाँकति नागरि मुख रिसि मन मुसुकाइ—पृ. ३१८।

ढाँकना—क्रि. स. [सं. ढक=छिपाना] (१) ढक देना। (२) ऐसे फैलाना कि नीचे की चीज ढक जाय।

ढाँकि—क्रि. स. [हिं. ढाँकना] (कपड़े आदि से) ढककर, कपड़े के नीचे छिपाकर। उ.—अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति—१०-११०।

ढाँख—संज्ञा पुं. [हिं. ढाक] पलाश का पेड़।

ढाँग—वि. [देश.] ढालू, ढालुवाँ।

ढाँच, ढाँचा—संज्ञा पुं. [सं. स्थाता, हिं. ठाट, ढाँचा] (१) ठाट, टट्टर। (२) ठटरी, पजर। (३) चौखटा। (४) गढ़न, बनावट। (५) प्रकार, भाँति, तरह।

ढाँप—क्रि. स. [हिं. ढाँपना] ढककर, छिपाकर। उ.—यह उपदेस आपुनो ऊधौ राखो ढाँप सवारो—३२०५।

ढाँपना—क्रि. स. [हिं. ढाँकना] ढकना, छिपाना।

ढाँपि—क्रि. स. [हिं. ढाँपना] ढककर, छिपाकर।

उ.—सुभग ढकनियाँ ढाँपि बाँधि पट जतन राखि छीके समदायो—११७६।

ढाँप्यौ—क्रि. स. [हिं. ढाँकना] (१) ढक लिया, छिपा लिया, ओट में किया। उ.—स्रवन मूँदि, मुख आँचर ढाँप्यौ, अरे निसाचर चोर—९-८३। (२) किसी वस्तु के ऊपर दूसरी का इस तरह फैलकर आवरित कर लेना कि नीचेवाली छिप जाय। उ.—कटक अगिनित जुरयौ, लंक खरभर परयौ, सूर कौ तेज, धर-धूरि ढाँप्यौ—९-१०६।

ढाँस—संज्ञा स्त्री. [अनु] खांसी का ठसका।

ढाँसना—क्रि. अ. [हिं. ढाँस] सूखी खांसी खांसना।

ढाई—वि. [सं. अर्द्धद्वितीय, प्रा. अड्ढाइय, हिं. अढाई] दो और आधा।

ढाक—संज्ञा पुं. [सं. आषाढक = पलाश, हिं. ढाक] पलाश। उ.—सेमर-ढाकहिं काटि कें, बाँधौं तुम बेरौ—९-४२।

मुहा.—ढाक के तीन पात—सदा एक सा (निर्धन), ज्यो का त्यो (निर्धन)। ढाक तले की फूहड़ महुए तले की सुहड़—धनहीन मूर्ख और धनवान चतुर समझा जाता है।

संज्ञा पुं. [सं. ढक्का] लड़ाई का डंका या ढोल।

ढाकति—क्रि. स. [हिं. ढकना] ढकती है। उ.—ढाकति कहा प्रेम हित सुंदरि सारंग नेक उघारि—२२२०।

ढाकन—संज्ञा पुं. [हिं. ढकना] ढक्कन, ढकना।

ढाक्यो—क्रि. स. [हिं ढकना] ढक लिया, छिपा लिया। उ.—वारौं लाज भई मोको, वैरिनि मैं गँवारि मुख ढाक्यो—२५४६।

ढाड़—संज्ञा स्त्री. [अनु] चीख, चिल्लाहट।

ढाढ़—संज्ञा पुं. [हिं. ढाढी (देश.)] ढाढ़ियों का बाजा जिसको बजाकर वे बधाई गाते हैं। उ.—ढाढिन मेरी नाचै-गावै, हौंहूँ ढाढ बजाऊँ—१०-३७।

ढाढ़ना—क्रि. स. [हिं. दाढना] दुखी करना, जलाना।

ढाढ़स—संज्ञा पु. [सं. दृढ, प्रा. डिढ] (१) धैर्य, धीरज, शांति। (२) दृढ़ता, साहस, हिम्मत।

ढाढ़िन, ढाढ़िनि—संज्ञा स्त्री. [देश. पुं. ढाढी] नीची जाति की गानेवाली स्त्रियाँ जो प्रायः जन्म के अवसर पर बधाई गाती हैं। उ.—हँसि ढाढिनि ढाढी सों बोली, अब तू बरनि बधाई। ऐसौ दियौ न देहि सूर कोउ, जसुमति हौं पहिराई—१०-३७।

ढाढ़ी—संज्ञा पुं. [देश.] नीची जाति के गवैये जो प्राय जन्मोत्सव के अवसर पर बधाई के गीत गाने आते हैं। उ.—(क) ढाढी और ढाढिनि गावैं, ठाढ़े हुरके बजावैं, हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कैं—६४६। (ख) हौं तौ तेरे घर कौ ढाढी सूरदास मोहिं नाऊँ—१०-३५।

ढाना—क्रि. स. [सं. ध्वंसन, हिं. ढाहना] (१) तोड़-फोड़कर गिराना। (२) गिराकर जमीन पर डालना।

ढापना—क्रि. स [हिं. ढाँपना] ढकना।

ढाबर—वि. [देश.] मटमैला, गँदला।

ढाबा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) जाल। (२) रोटी की दूकान। (३) ओलती।

ढामक—संज्ञा पुं. [अनु] ढोल नगाड़े का शब्द।

ढार—संज्ञा पुं. [सं. धार] (१) ढाल, उतार। (२) पथ, मार्ग। (३) प्रकार, ढांचा, ढग, रचना, बनावट। उ.—आगरु चँदन कौ पालनौ (रँगि) ईंगुर ढार सुढार। लै आयौ गढि डोलना (हो), बिसकमा सुतहार—१०-४०।

संज्ञा स्त्री.—कान का एक गहना, बिरिया।

क्रि स. [हिं. धारना] धारण करना। उ.—राज्य दीन्हो उग्रसेनहिं चँवर निज कर ढार—३०७५।

ढारत—क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ) गिराकर बहाते है। उ.—हा सीता, सीता, कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि भरि ढारत—९-६२।

ढारति—क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ को) गिराती या बहाती है। उ.—उरग नारि आगैं भई ठाढी, नैननि ढारति नीर—५७५।

ढारना—क्रि. स. [हिं. ढार+ना (प्रत्य.)] (१) द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। (२) ऊपर से छोड़ना या डालना। (३) हिलाना-डुलाना।

ढारस—संज्ञा पुं. [हिं. ढाढस] (१) धैर्य। (२) साहस।

ढारि—क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ को) गिराया, बहाया। उ.—तृन-अनर दै दृष्टि तरौंधी, दियौ नयन जल ढारि—६-७६।

ढारे—क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी आदि द्रव पदार्थ) गिराकर बहाये। उ.—भरत गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे—६-५४।

क्रि. स. [हिं. धारना] धारण करे। उ.—छत्र सिर धराइ चमर निज कर ढारे—१०-३१६।

ढारै—क्रि. स. [हिं. ढारना] (किसी द्रव पदार्थ को) गिराता या बहाता है। उ.—रीतें भरै, भरै पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै—१-१०५।

ढारौं—क्रि. स. [हिं. धारना] धारण करूँ। उ.—उग्रसेन सिर छत्र चमर अपने कर ढारौं—११३८।

ढारौ—क्रि. स. [सं. धार, हिं. ढारना] (द्रव पदार्थ को) गिराकर बहाओ। उ.—(क) सूरदास भगवत भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ नयन जल ढारौ—१-८०। (ख) कहियो जाइ जसोदा आगे नैन नीर जिनि ढारौ—१०-३५३।

ढारयौ—क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी आदि द्रव पदार्थ को गिराकर बहाया। उ.—यह बिपरीत सुनी जब सबहीं, नैननि ढारयौ नीर—६-४४।

ढाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (तलवार आदि का) वार रोकने की फरी या चर्म, आड, फलक।

संज्ञा स्त्री. [सं. धार] (१) उतार। (२) ढंग, प्रकार, तौर-तरीका। (३) उगाही, चंदा।

ढालना—क्रि. स. [सं. धार] (१) द्रव पदार्थ गिराना, उँडेलना। (२) शराब पीना। (३) बेच देना। (४) सस्ता बेचना। (५) चंदा उगाहना। (६) साँचे में ढालकर बनाना।

ढालवाँ, ढालुआँ—वि. [हिं. ढाल] ढालू।

ढालिया—वि. [हिं. ढालना] ढालकर बनानेवाला।

ढालू—वि. [हिं. ढाल] ढाल या उतार का।

ढावना—क्रि. स. [देश.] गिराना, ढाना।

ढास—संज्ञा पुं. [सं. दस्यु] ठग, लुटेरा, डाकू।

ढासना—संज्ञा पुं. [सं. धारण+आसन] (१) सहारा, टेक। (२) सहारे का तकिया।

ढाहन—क्रि. स. [हिं. ढाहना] गिराना।

प्र.—ढाहन लग्यौ—गिराने या ढाने लगा। उ.—वृन्द बन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दीनो गिराई—१० उ. ५६।

ढाहना—क्रि. स. [हिं. ढाना] गिराना, ढाना।

ढाहा—संज्ञा पुं. [हिं. ढाहना] नदी का ऊँचा किनारा।

ढिंढोरना—क्रि. स. [अनु.] (१) मथना, बिलोना। (२) हाथ डालकर ढूँढ़ना, टटोलकर खोजना।

ढिंढोरा—संज्ञा पुं. [अनु. ढम + ढोल] (१) घोषणा करने का ढोल। (२) ढोल बजाकर जन-साधारण को दी जानेवाली सूचना।

ढिग—क्रि. वि. [सं. दिक् = ओर] पास, समीप, निकट। उ.—(क) तब नारद तिनकैं ढिग आइ। चारि स्लोक कहे समुझाइ—१-२३०। (ख) जैसें राहु नीच ढिग आएँ, चंद-किरन झकझोलै—१-२५६। (ग) मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के ढिग चलि आई (घ) चाहत हौं ताही पै चढ़ि क हरि जी के ढिग जाव—२७६८।

संज्ञा स्त्री.—(१) पास, सामीप्य। (२) तट, किनारा। (३) कपड़े का किनारा, पाड, कोर।

ढिगन, ढिगनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढिग = कपड़े का कोर + न, नि (प्रत्य.)] कपड़े का किनारा, पाड़, कोर। उ.—(क) पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी। यह तौ लाल ढिगनि की औरै, है काहू की सारी—६६३। (ख) लाल ढिगनि की सारी ताकौं पीत उढनियाँ कीन्हीं—६६४।

ढिठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीठ + आई (प्रत्य.)] (१) व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता, धृष्टता, गुस्ताखी। उ.—वासुदेव की बड़ी बड़ाई। जगत पिता, जगदीस, जगतगुरु, निज भक्तन की सहत ढिठाई—१-३। (ख) हमको अपराध छमहु करी हम ढिठाई—२६१६। (ग) पालागौं यह दोस बकसियो सनमुख करत ढिठाई—३३४३। (२) लोक लाज-हीनता, निर्लज्जता। (३) अनुचित साहस।

ढिठान—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीठ] ढीठता, ढिठाई, धृष्टता,

चपलता। उ.—हौं जु कहत, लै चली जानकी, छाँड़ौ सबै ढिठान। सनमुख होइ सूर के स्वामी, भक्तनि कृपानिधान—९-१३४।

ढिठौना—संज्ञा पुं. [हिं. ढोटा] दुलारा पुत्र। उ.—कहा कहत तू नंद ढिठौना—१०-३७।

ढिपुनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फल-पत्ते से जुड़ा टहनी का कोमल भाग। (२) कुच का अग्र भाग, बोंडी।

ढिमका—सर्व. [हिं. अमका का अनु.] अमुक, फलाना।

ढिलढिला—वि. [हिं. ढीला] ढीला ढाला।

ढिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीला] (१) ढीला होना, कसा न रहना। (२) *शिथिलता, सुस्ती, आलस्य*।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोलना] ढीला कराना।

ढिलाना—क्रि. स. [हिं. ढीलना का प्रे.] ढीला कराना।

क्रि. स.—(१) ढीला करना। (२) खोलना।

क्रि. अ.—(१) ढीला हो जाना। (२) खुल जाना।

ढिल्लड़—वि. [हिं. ढीला] सुस्त, आलसी, शिथिल।

ढिसरना—क्रि. अ. [सं. ध्वसन] (१) फिसल पड़ना, सरकना। (२) झुकना, प्रवृत्त होना। (३) फल का डाल में लगे लगे ही पकने लगना।

ढींगर—संज्ञा पुं. [सं. डिंगर] (१) बड़े डील-डौल का या मोटा-ताजा आदमी। (२) पति। (३) उपपति।

ढींढ़—संज्ञा पुं. [सं. ढुंढि = लंबोदर, गणेश] बड़ा पेट।

ढींगर—संज्ञा पुं. [सं. डिंगर] (१) हट्टा-कट्टा आदमी। (२) पति। (३) उपपति, प्रेमी।

ढींगे—क्रि. वि. [हिं. ढिंग] पास, समीप।

ढीट—संज्ञा स्त्री. [देश.] रेखा, लकीर।

ढीठ, ढीठक—वि. [सं. धृष्ट, हिं. ढीठ] (१) व्यवहार में अनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला, धृष्ट। उ.—(क) लंगर, ढीठ गुमानी ढूँडक, महा मसखरा रूखा—१-१८६। (ख) अहो ढीठ मतिमुग्ध निसिचरी बैठी सनमुख आई—९-७७। (२) अनुचित साहसी, न डरनेवाला। उ.—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी। (३) साहसी, हिम्मतवर।

ढीठता—संज्ञा स्त्री [सं. धृष्टता] ढिठाई।

ढीठा—वि. [हिं. ढीठ] (१) धृष्ट। (२) साहसी।

संज्ञा स्त्री.—ढिठाई, धृष्टता।

ढीठि, ढीठी—वि. स्त्री. [हिं. ढीठ] ढीठ, धृष्ट, बड़ों का सकोच या डर न रखनेवाली। उ.—(क) ब्रज की ढीठी गुआरि, हाट की बेचनहारि, सकुचै न देत गारि, झगरत हूँ—१०-२९५। (ख) (माई री) मुरली अति गर्व काहु बदति नाहिं आज।······ बैठत कर-पीठि ढीठ, अधर छत्र छाहिं। राजति अति चँवर चिकुर, सुरद सभा माँहिं—६५३।

ढीठो, ढीठौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीठ] धृष्टता, ढिठाई। उ.—(क) महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि। राधा बोलि उठी, बाबा कछु तुमसौं ढीठौ कीन्हौ—७०३। (ख) डारि बसन भूषन तब भागे। स्याम करन अब ढीठौ लागे—७६६। (ग) अब लौं सही तुम्हारी ढीठो तुम यह कहत डरानी—१०४६।

ढीठ्यौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढाठा] ढिठाई, धृष्टता।

ढीम, ढीमा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) पत्थर का बड़ा ढोका। (२) मिट्टी की बड़ी पिंडी।

ढीमड़ो—संज्ञा पुं. [देश.] कूप, कुआँ।

ढील—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीला] (१) उत्साहहीनता, *शिथिलता, अतत्परता, सुस्ती*। उ.—सत्य भक्तहिं तारिबे कौं, लीला विस्तारी। बेर मेरी क्यों ढील कीन्ही, सूर बलिहारी—१-१७६।

मुहा.—ढील देना—लापरवाही करना।

(२) बंधन ढीला करना, कड़ा बंधन न रखना।

मुहा.—ढील देना—(१) पतंग की डोर बढ़ाना। (२) मनमाना करने की पूरी स्वतंत्रता देना।

वि.—ढीला, जो कसा न हो।

संज्ञा पुं.—बालों में पड़नेवाली जूँ।

ढीलत—क्रि स. [हिं. ढीलना] *बंधन खोल देते हैं।* छोड़ देते हैं। उ.—ता पर सूर बछरुवन ढीलत बन-बन फिरति बही—१०-२९१।

ढीलना—क्रि. स. [हिं. ढीला] (१) ढीला करना, कसा न रखना। (२) बंधन मुक्त करना, छोड़ देना। (३) डोरी-रस्सी बढाना या डालना। (४) गाढ़ी चीज को पतला करना।

ढीला—वि. [सं. शिथिल, प्रा. सिढिल] (१) जो कसा,

तना या खिंचा हुआ न हो। (२) जो कस कर जमा, जड़ा या बैठा न हो। (३) जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो। (४) जो बहुत गाढा या कड़ा न हो। (५) जो अपने हठ या संकल्प पर अड़ा न रहे। (६) जिसका क्रोध शांत या कम हो जाय, नरम। (७) मंद, सुस्त, शिथिल, धीमा।

मुहा.—ढीली आँख—रस या मद आदि के कारण अधखुली आँख।

(८) आलसी। (९) जिसे काम की प्रेरणा न हो।

संज्ञा पु. [देश.] पत्थर, ईंट या मिट्टी का टुकड़ा।

ढीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. ढीला + पन (प्रत्य.)] ढीला होने का भाव, कसापन न रहने का भाव, शिथिलता।

ढीली—वि. [हिं. ढीला] बहुत हल्का, जो तेज न हो।

क्रि. वि—हल्के-हल्के, धीरे-धीरे। उ.—दधि लै मथति ग्वालि गरबीली। रुनक झुनक कर कंकन बाजे, बाँह डुलावति ढीली—१०-२९९।

क्रि. स. भूत. स्त्री. [हिं. ढीलना] बंधनमुक्त की, खोल दी। उ.—निसि भई छीन बोलि तमचुर खग ग्वालन ढीली गाई—२१२७।

ढीह—संज्ञा पु. [सं. दीर्घ, हिं. दीह] ऊँचा टीला, ढूह।

ढुंढ—संज्ञा पु. [हिं. ढूँढना] ठग, लुटेरा। उ.—चोर ढुंढ बटपार अन्यायी अपमारगी कहावैं जे।

ढुंढपाणि, ढुंढपानि—संज्ञा पुं. [सं. दंडपाणि] (१) शिव के एक गण। (२) दंडपाणि भैरव।

ढुंढवाना—क्रि. स. [हिं. ढूंढना का प्रे.] तलाश कराना।

ढुंढा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिरण्यकशिपु की बहिन होलिका जिसे वरदान था कि तू आग में न जलेगी।

ढुंढि—संज्ञा पु. [सं.] गणेश का एक नाम, क्योंकि सारे विषय इन्हीं के ढूंढ़े या अन्वेषित माने जाते हैं।

ढुंढी—संज्ञा स्त्री. [देश.] बाँह, भुजा।

मुहा.—ढुंढी चढाना—मुश्कें बाँधना।

ढुकना—क्रि. स. [देश.] (१) घुसना, प्रवेश करना। (२) टूट पड़ना, पिल पड़ना। (३) देखने सुनने के लिए आड़ में छिपना।

ढुकाइ—क्रि. अ. [हिं. ढुकाना] धावा करने को प्रेरित किया, पिल पड़ने को उत्साहित किया, टूट पड़ने का संकेत किया। उ.—बहुरौ दीन्हे नाग ढुकाइ। जिनकी ज्वाला गिरि जरि जाइ—७ २।

ढुकाना—क्रि. स. [हिं. ढुकना] घुसाना, छिपाना।

ढुकास—संज्ञा स्त्री. [अनु. ढुकढुक] जोर की प्यास।

ढुकि—क्रि. वि. [हिं. ढुकना] छेडकर, पिल पड़कर। उ.—दिन-दिन देन उरहनौ आवति ढुकि ढुकि करति लरैया—३७१।

ढुकी—क्रि. अ. [हिं. ढुकना] कोई बात देखने सुनने के लिए ओट या आड में लुकी या छिपी।

ढुक्का—संज्ञा पु. [हिं. ढूकना] किसी बात को देखने-सुनने के लिए ओट या आड़ में छिपाना।

ढुक्यौ—क्रि. अ. [हिं. ढुकना] घात में बैठा या छिपा था, टूट पड़ा। उ.—हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान। ताकै डर मैं भाज्यौ, ऊपर ढुक्यौ सचान—१-९७।

ढुच—संज्ञा पुं. [देश.] घूंसा, मुक्का।

ढुटोना—संज्ञा पु. [हिं. ढोटा] पुत्र, बेटा। उ.—(क) गृह-संपति द्वै तनक ढुटौना, इनहीं लौं सुख-भोग—५१९। (ख) अति सुंदर नँद महर-ढुटौना—६०१।

ढुनमुनिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठनमनाना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव। (२) एक मंडल में झूम झूमकर कलजी गाने का ढंग।

ढुरकना—क्रि. अ. [हिं. ढुलकना] (१) फिसलना, लुढ़कना, सरक कर गिरना। (२) झुकना।

ढुरकी—क्रि. अ. [हिं. ढुलकना] झुक झूमकर। उ.—हँसत नंद, गोपी सब बिहँसी, झमकि चली सब भीतर ढुरकी—१०-१८०।

ढुरति—क्रि. अ. [हिं. ढुरना] हिलती-डुलती है, लहराती है। उ.—देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढी। जोवन मदमाती इतराती, बेनि ढुरति कटि लौं, छबि बाढी—१०-३००।

ढुरना—क्रि. अ [हिं. ढार] (१) गिरकर बहना, टपकना। (२) लुढ़कना, सरकना। (३) इधर-उधर डोलना, डगमगाना। (४) हिलना, लहराना। (५) झुकना, प्रवृत्त होना। (६) अनुकूल या प्रसन्न होना।

ढुरहुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढुरना] (१) लुढ़कने या

फिसलने की क्रिया या भाव । (२) पगडंडी । (३) नथ में जड़ी सोने के दानों की पंक्ति ।
ढुराना—क्रि. स. [हिं. ढुरना] (१) गिराकर बहाना, टपकाना, लुढ़काना । (२) हिलाना, लहराना ।
ढुरावत—क्रि. स [हिं. ढुराना] (१) गिराकर बहाते हैं, टपकाते हैं । उ.—पलक न लावत रहत ध्यान धरि बारंबार ढुरावत (ढुरावति) पानी—३०३७ । (२) इधर उधर हिलाते-डुलाते हैं, लहराते हैं । उ.—आनद मगन सकल पुरवासी चमर ढुरावत श्रीब्रजराज—१०-२० ।
ढुरुआ—संज्ञा पु [हिं. ढुरना] गोल मटर ।
ढुर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढुरना] पगडंडी ।
ढुलकना—क्रि. अ. [हिं. ढाल] लुढ़कना, फिसलना ।
ढुलकाना—क्रि. स. [हिं. ढुलकाना] लुढ़काना, ढँगलाना ।
ढुलना—क्रि. अ. [हिं. ढाल] (१) गिरकर बहना, ढरकना । (२) फिसलना, लुढ़कना । (३) झुकना, प्रवृत्त होना । (४) अनुकूल या प्रसन्न होना । (५) इधर-उधर हिलना-डोलना । (६) लहराना ।
ढुलवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोना] ढोने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. ढुलना] ढुलाने की क्रिया, भाव, या मजदूरी ।
ढुलवाना—क्रि. स. [हिं.ढोने का प्रे.] बोझ आदि ढोने का काम कराना ।
क्रि. स. [हिं. ढुलाना का प्रे] ढुलाने का काम कराना ।
ढुलाना—क्रि. स. [हिं. ढाल] (१) गिराकर बहाना, ढरकाना । (२) नीचे गिराना । (३) लुढ़काना । (४) झुकाना, प्रवृत्त करना । (५) अनुकूल या प्रसन्न करना । (६) इधर-उधर हिलाना । (७) चलाना-फिराना । (८) फेरना, पोतना ।
क्रि. स. [हिं. ढोना] बोझ ढोने का काम करना ।
ढूकना—क्रि. अ. [हिं. ढुकना] (१) घुसना । (२) धावा करना । (३) देखने सुनने या भेद लेने को छिपना ।
ढूका—संज्ञा पुं. [हिं. ढुकना] देखने-सुनने या भेद लेने को ओट या आड़ में छिपने की क्रिया या भाव ।
ढूकी—क्रि. अ. [हिं. ढुकना] भेद लेने को ओट या आड़ में छिपी, घात में लुकी । उ.—ढूकी रहीं जहाँ तहँ गोरी—२४१७ ।
ढूँढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढूँढना] खोज, तलाश ।
यौ.—ढूँढ ढाँढ—खोज-तलाश, छान-बीन ।
ढूँढ़त—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजता है, पता लगाता है । उ.—ज्यों कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ—६-२३ ।
ढूँढ़ति—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजती है, पता लगाती है, ढूँढ़ती है । उ.—देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौं कहुँ हेरि । चकित भई ग्वालिनी मन अपन, ढूँढ़ति घर फिरि फेरि—१०-२७१ ।
ढूँढ़न—संज्ञा पुं. [हिं. ढूँढना] खोजने की क्रिया, ढूँढ़ना । उ.—संध्या समय निकट नहिं आयौ । ताके ढूँढन कौं उठि धायौ—५-३ ।
ढूँढ़ना—क्रि. स. [सं. ढुंढन] खोजना, तलाशना ।
यौ.—ढूँढना - ढाँढना—पता लगाना, खोजना, अन्वेषण करना ।
ढूढ़ला—संज्ञा स्त्री. [सं. ढुंढा] हिरण्यकशिपु की होलिका नामक बहन जिसे आग में न जलने का वरदान था ।
ढूँढ़ि—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजकर, पता लगाकर, तलाश करके । उ.—मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं । ... ढूँढि फिरे घर कोउ न बतायौ, स्वपच कोरिया लौं—१-१५१ ।
ढूँढ़ी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. ढूँढना] खोज की, पता लगाया, तलाश की । उ.—लंका पौरि पौरि मैं ढूँढ़ी अरु वन-उपवन जाइ—९-१०४ ।
ढूँढ़ैं—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजते हैं, पता लगाते हैं । उ.—बानर बीर चहूँ दिसि धाए, ढूँढैं गिरि-बन-झार—९-८३ ।
ढूँढ़ै—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] खोजता है, पता लगाता है । उ.—भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढै, जबहिं पावै बास—१-७० ।
ढूँढ़यौ—क्रि. स. [हिं. ढूँढना] ढूँढ़ा, खोजा, पता लगाया । उ.—वृंदा आदि सकल वन ढूँढ्यौ, जहँ गाइनि की टेर—४५८ ।

ढूह. ढूहा—संज्ञा पुं. [सं. स्तूप](१) ढेर, राशि, अटाला। (२) टीला, भीटा। (३) सीमा या हद सूचक दीवार।

ढेंक—संज्ञा स्त्री [स. ढेक] लबी चोचवाली एक चिड़िया।

ढेंकली, ढेंकी, ढेकुर, ढेकुली—संज्ञा स्त्री. [हि ढेंक] (१) कुएँ से पानी निकालने का लकड़ी का देशी यन्त्र। (२) धान कूटने का लकड़ी का यंत्र।

ढेंका—संज्ञा पुं. [हिं. ढेकली] बड़ी ढेंकली।

ढेढ़, ढेंढ़ा—संज्ञा पु. [देश.] (१) कौआ। (२) एक नीच जाति। (३) मूर्ख या उजड्ड मनुष्य।

संज्ञा पुं. [सं. तुड, हिं. ढोढ] कपास का डोडा।

ढेढ़वा—संज्ञा पुं. [देश.] काले मुँह का बंदर।

ढेंढ़ी—सज्ञा स्त्री. [हि. ढेंढ] (१) कपास या पोस्ते का डोडा। (२ कान का तरकी नामक गहना।

ढेंप, ढेंपी—सज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फल-पत्ते के साथ लगा टहनी का पतला भाग। (२) स्तन की घुडी।

ढेबुआ, ढेबुक, ढेबुवा—संज्ञा पु. [देश.] पैसा।

ढेऊ—सज्ञा पु. [देश.] पानी की लहर, तरंग।

ढेर—सज्ञा पुं. [हिं धारना] (१) अबार, राशि।

मुहा.—ढेर करना—मार कर गिराना। ढेर हो जाना—(१) मर कर गिरना। (२) ढह पड़ना।

वि.—बहुत, अधिक, ज्यादा।

ढेरि, ढेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढेर] राशि, समूह। उ.—(क) तऊ कहुँ त्रिपितात नाहीं रूप रस को ढेरि—पृ. ३३४। (ख) प्रानन के बदले न पाइयत सेंति बिकाय सुजस की ढेरी—२८३२।

ढेल, ढेला—संज्ञा पु. [सं. दल या हिं. डला] (१) ईंट, पत्थर का टुकड़ा। (२) टुकड़ा, खंड। (३) एक तरह का धान।

ढेलवाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढेला + सं. पाश] रस्सी का फंदा जिससे ढेला फेंका जाता है, गोफना।

ढैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढाई] (१) दो और आधा। (२) ढाई सेर का बाँट। (३) ढाई गुने का पहाडा।

ढोंकना—क्रि. स. [अनु.] पी जाना।

ढोंग—संज्ञा पु. [हि. ढग] ढकोसला, पाखड।

ढोंगी—वि. [हि. ढोंग] ढकोसलेबाज, पाखडी।

ढोंटा, ढोटा, ढोटौना—संज्ञा पु. [सं. दुहितृ = लड़की, हि. ढोटा] (१) पुत्र, बेटा। उ.—(क) कबहुँक बैठ्यौ रहसि-रहसि कै, ढोटा गोद खिलायौ। कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ, मूँछनि ताव दिवायौ—१-३०१। (ख) पूँछो जाइ कवन को ढोटा तब कह उत्तर देहैं—३४३६। (२) लड़का, बालक। उ.—(क) गोकुल के गवैंडे एक साँवरौ सौ ढोटा माई अँखियन के पैंड पैठि जी के पैंड़े परयौ है—८७२। (ख) स्याम बरन एक मिल्यो ढोटौना तेहि मोकों मोहनी लगाई।

ढोढ़—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] (१) डोडा। (२) फली।

ढोढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोंढ़ा] नाभि, तोंदी।

ढोटी—सज्ञा स्त्री. [स. दुहितृ] लड़की।

ढोड़—संज्ञा पु. [देश.] ऊँड।

ढोना—क्रि. स. [स. वोट = वहन करना] (१) बोझ ले चलना। (२) (सामान) उठा ले जाना।

ढोर, ढोरा—संज्ञा पु. [हिं. ढुरना] चौपाये, पालतू पशु। उ.—जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न ढोर—३०८४।

ढोरना—क्रि. स. [हिं. ढारना] (१) द्रव पदार्थ बहाना या ढरकाना। (२) लुढ़काना।

ढोरी—क्रि. स. [हि. ढोरना] (१) बही, गिरी, टपकी, ढरकी। (२) लुढ़की।

संज्ञा स्त्री.—(१) बहाने, गिराने या ढरकाने का भाव। उ.—कनक कलस-केसरि गहि ल्याइ डारि, दियो हरि पर ढोरी की। (२) रट, धुन, लौ, लगन। उ.—सूरदास गोपी बड़भागी। हरि दरसन की ढोरी लागी।

ढोरे—क्र. स. [हि. ढोरना] गिराये, बहाये। उ.—वै अक्रूर क्रूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरें—३१७६।

ढोरैं—क्रि. स. [हिं. ढोरना] (१) गिराते, बहाते या टपकाते हैं। उ.—अति ही सुंदर कुमार जसुमति रोहिनि बार बिलखति यह कहति सबै लोचन जल ढोरैं—२६०४। (२) हिलाती-डुलाती हैं।

ढोरै—क्रि. स. [हिं. ढोरना] (पानी सा द्रव पदार्थ) गिराता है, बहाता है, ढरकाता है। उ.—(क) जननी

अति रिस जानि बँधायो, निरखि वदन लोचन जल ढोरै—३४४। (ख) रीते भरै भरै पुनि ढोरै (ढारै` चाहै फेरि भरै—१-१०५।

ढोल—संज्ञा पु [सं.] (१) एक चमड़ा मढा बाजा।
यौ.—ढोल-ढक्का—गाना-बजाना, बाजा गाजा।
मुहा.—ढोल पीटना (बजाना)-घोषणा करना, सबको जताना। ढोल बजाइ—सबको जताकर, घोषणा करके, सब पर प्रकट करके, खुल्लमखुल्ला। उ.—जनु हीरा हरि लिए हाथ तें ढोल बजाइ ठगी—२७६०।
(२) कान की झिल्ली या परदा।

ढोलक, ढोलकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोल] छोटा ढोल जो प्रायः उत्सवो और मंगलकार्यों में स्त्रियाँ बजाती हैं।

ढोलकिया—संज्ञा स्त्री [हिं. ढोलक] (१) छोटी ढोलक। (२) ढोलक बजानेवाला।

ढोलन, ढोलना—संज्ञा पुं. [हिं. ढोल] ढोलक के आकार का छोटा जंतर जिसे तागे में पिरोकर बच्चे के गले में पहनाया जाता है। उ.—अनगढ सोना ढोलना (गढि) ल्याए चतुर सुनार। बीच-बीच हीरा लगे, (नद) लाल गरे कौ हार—१०-४०।
संज्ञा पुं. [सं. दोलन] बच्चो का झूला या पालना।
क्रि. स. [स. दोलन] (१) ढरकाना, ढालना। (२) इधर-उधर हिलाना-डुलाना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री. [सं. दोलन] बच्चों का झूला या पालना। उ.—लै आयो गढ़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुत धार।

ढोला—संज्ञा पुं. [हिं. ढोल] (१) एक कीड़ा। (२) हद या सीमा सूचित करने का चबूतरा। (३) गोल मेहराब बनाने की डाट। (४) शरीर। (५) पति, प्रियतम। (६) मूर्ख व्यक्ति। (७) एक गीत।

ढोलिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोलिया] ढोल बजानेवाली।

ढोलिया—संज्ञा पु [हिं. ढोल] ढोल बजानेवाला।

ढोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढोल] २०० पान की गड्डी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठोली, ठोली] हँसी-ठठोली। उ.—सूर प्रभु नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहिं करति ढोली—१२६८।

ढोव—संज्ञा पुं. [हिं. ढोवना] भेंट, उपहार।

ढोवना—क्रि. स. [हिं. ढोना] (१) भार या बोझ ले चलना। (२) धन संपत्ति उड़ा ले जाना।

ढोवहिं—क्रि. स. [हिं. ढोवना] भार आदि ले चलते हैं। उ—मेघ छ्यानवे कोटि सब जल ढोवहिं प्रति बार—११२८।

ढौंचा—संज्ञा पुं. [सं. अर्द्ध, प्रा. अड्ढ + हिं. चार] साढ़े चार का पहाड़ा।

ढौंसना—क्रि. अ. [हिं. धौंस से अनु.] आनंद-ध्वनि करना, किलकारी मारना।

ढौकन—संज्ञा पुं. [स.] घूस, रिश्वत।

ढौरि, ढौरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] रट, धुन, लौ, लगन। उ.—रसिक सिरमौर ढौरि लगावत गावत राधा राधा नाम।
संज्ञा स्त्री. [हिं. डुरीं] पगडंडी।

ण

ण—देवनागरी वर्णमाला का पन्द्रहवाँ और टवर्ग का पाँचवाँ व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है।

ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आभूषण। (२) निर्णय। (३) ज्ञान। (४) शिव का एक नाम। (५) दान।
वि.—गुणहीन, जिसमें विशेषता न हो।

णगण—संज्ञा पुं. [सं.] दो मात्राओं का एक गण।

त

त—देवनागरी वर्णमाला का सोलहवाँ और तवर्ग का पहला व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान दंत है।

तं—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) नाव। (२) पुण्य।

तँई—प्रत्य. [हिं. तई] से।

प्रत्य. [प्रा. हुतो] (१) प्रति, को। (२) से।

अव्य. [सं. तावत्] लिए, वास्ते।

तंक—संज्ञा पु. [स.] (१) भय, डर। उ.—जब रथ साजि चढ़ौं रन-सन्मुख, जीय न आनौं तंक। राघव सैन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पक—६-१३४।

(२) वियोग का दुख। (३) पत्थर काटने की टाँकी।

तंग—संज्ञा पु. [फा.] घोड़ों की पेटी या तस्मा।

वि.—(१) कसा। (२) हैरान। (३) कम चौड़ा।

मुहा. तंग आना (होना)—(१) घबरा जाना। (२) हैरान हो जाना। तंग करना—हैरान करना। हाथ तंग होना—पास में पैसा न होना।

तंगहाल—वि. [फा.] (१) गरीब। (२) दुखी।

तंगी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) सँकरा या कम चौड़ा होने का भाव। (२) दुख। (३) गरीबी। (४) कमी।

तंड—संज्ञा पु. [सं. ताडव] नाच, नृत्य।

तंडक—संज्ञा पु. [सं.] (१) खजन पक्षी। (२) समास-युक्त वाक्य। (३) बहुरूपिया, आडबरप्रिय।

तंडव—संज्ञा पुं. [सं. ताडव] एक तरह का नाच।

तंडुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चावल। (२) एक साग।

तंडुलजल—संज्ञा पुं. [सं.] चावल का पानी।

तंत—संज्ञा पुं. [स. तंतु] (१) सूत, तागा, रेशा। (२) संतान। (३) विस्तार, फैलाव। (४) ताँत।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरत] आतुरता, उतावली।

संज्ञा पुं. [सं. तत्व] (१) वास्तविकता। (२) जगत का मूल कारण। (३) पृथ्वी, जल, अग्नि, गगन, वायु—ये पाँच तत्व। (४) सार।

संज्ञा पुं [स. तंत्र] (१) तारवाला बाजा। (२) क्रिया। (३) तंत्रशास्त्र। (४) प्रबल इच्छा। (५) अधीनता।

वि.—जो तौल या वजन में ठीक हो।

तंतमंत—संज्ञा पुं. [हिं. तंत्र+मंत्र] जादू-टोना।

तंतरी—संज्ञा पुं. [सं. तंत्री] तारवाले बाजे बजानेवाला।

तति—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाय, गौ।

तंतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूत, डोरा, तागा, रेशा। (२) ग्राह। (३) संतान, संतति। (४) विस्तार। (५) वंश परंपरा। (६) ताँत। (७) मकड़ी का जाला।

तंतुक, तंतुकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाड़ी।

तंतुर, तंतुल—संज्ञा पुं. [सं.] कमल की जड या नाल।

तंतुवादक—संज्ञा पुं. [सं.] तारवाले बाजे, (जैसे बीन, सितार) बजानेवाला, तंत्री।

तंतुवाप, तंतुवाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कपड़ा बुननेवाला, ताँती। (२) मकड़ी।

तंत्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) ताँत। (२) सूत, डोरा। (३) जुलाहा। (४) कपड़ा। (५) परिवार का भरण-पोषण। (६) सिद्धांत। (७) प्रमाण। (८) दवा। (९) झाड़-फूँक। (१०) कार्य। (११) कारण। (१२) उपाय। (१३) राज्य-प्रबंध। (१४) सेना। (१५) अधिकार। (१६) समूह। (१७) प्रसन्नता। (१८) घर। (१९) धन। (२०) परवशता। (२१) वर्ग, श्रेणी। (२२) कुल, वंश। (२३) शपथ। (२४) उपासना-संबंधी एक शास्त्र।

तंत्रमंत्र—संज्ञा पु. [हिं. तंत्र+मंत्र] जादू-टोना। उ.—यह कछु तंत्र मंत्र जानत है अति हीं सुंदर कोमल गात—५५४।

तंत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बीन, सितार आदि तारवाले बाजे। (२) शरीर की नस। (३) रस्सी। (४) वीणा।

संज्ञा पु. [सं.] (१) वह जो तारवाले बाजे बजाता हो। (२) गवैया, गानेवाला। उ.—तंत्री (मंत्री) काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुबिधा दुंदुभि है निसि बासर उपजावति बिपरीति—१-१४१।

वि.—[सं.] (१) आलसी। (२) परवश।

तंद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. तंद्रा] ऊँघ, खुमारी।

तंदुरुस्त—वि. [फा.] स्वस्थ, नीरोग।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] स्वस्थता, नीरोगता।

तंदुल—संज्ञा पुं. [सं. तंदुल] चावल । उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढौ। जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के विभव तैं अधिक बाढौ—१-५ । (ख) तंदुल माँगि दै चिलाई सो दीन्हौं उपहार। फाटे बसन बाँधि कै द्विजवर अति दुर्बल तनहार—सारा ८०६ । (ग) तीनि लोक विभव दियो तंदुल के खाता—१-१२३ ।

तंदेही—संज्ञा स्त्री. [फा. तनदिही] (१) परिश्रम, मेहनत। (२) कोशिश, प्रयत्न। (३ ताकीद, चेतावनी।

तंद्रा, तंद्रि तंद्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऊँघने की अवस्था, उँघाई। (२) हलकी मूर्छा या बेहोशी।

तंद्रालु—वि. [सं.] जिसे ऊँघ लगती हो।

तंद्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१ ऊँघ। (२) भौंह।

तंबा—संज्ञा स्त्री [सं.] गाय।

संज्ञा पुं. फा तबान] चौड़ी मोहरी का पायजामा।

तंबीह—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) उपदेश। (२) दंड।

तंबू—संज्ञा पु [हिं. तनना] डेरा, शामियाना, शिविर।

तंबूर—संज्ञा पु. [फा.] एक तरह का छोटा ढोल।

तंबूरची—संज्ञा प. [फा. तंबूर+ची] तबूर बजानेवाला।

तंबूर, तंबूरा—संज्ञा पु. [हिं. तानपूरा] बीन की तरह का एक पुराना बाजा, तानपूरा।

तंबोल—संज्ञा पं. [सं. ताबूल] (१) पान का पत्ता। (२) पान का बीडा।

मुहा—लियौ तँबोल—बीडा लिया, काम करने को कटिबद्ध हुए। उ.—लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगु। गात—६-७४।

(३) वह धन जो बरात के मार्गव्यय के लिए कन्या पक्षवालों की ओर से भेजा जाता है।

तँबोलिन—संज्ञा स्त्री. [हिं तँबोली] तँबोली की स्त्री।

तँबोली—संज्ञा पुं. [हिं. तँबोल+ई] पान बेचनेवाला।

तंभ, तभन—संज्ञा प. [सं. स्तभ] शृंगार रस का स्तभ नामक सात्विक भाव।

तँवाई—संज्ञा स्त्री. [सं ताप, हिं. ताव] ताप, जलना।

तँवार, तँवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं तव] (१) सिर का चक्कर, घुमटा, घुमेर। (२) हरारत, ज्वर।

तः—प्रत्य. [सं.] एक संस्कृत प्रत्यय जो शब्दों के अंत में लगकर ये अर्थ बताता है—रूप से और के अनुसार।

त—संज्ञा पु. [सं.] (१) नाव। (२) पुण्य। (३) चोर। (४) झूठ। ५) गोद। (६) रत्न। (७ अमृत।

क्रि. वि. [स तद्, हिं. तो] तो

तई, तईं—प्रत्य. [हिं. ते] से।

प्रत्य. [प्रा. हुंतो] (१) प्रति, को। (२) से।

अव्य. [सं. तावत्] लिए, वास्ते।

तई—क्रि. अ. [हिं. तपना] सतप्त या दुखी हुई। उ.—(क) राधे कत रिस सरम तई—२२५५। (ख) ध्यान धरत (चरन हृदय) न टरत मूरत त्रिविध (तिहूं) ताप तई—३१०७ और ३१३१।

प्रत्य [प्रा. हुतो] प्रति, को, से। उ—कोऊ कहै हरि रीति सब तई।

तउ—अव्य [हिं. तऊ] तब भी, तिस पर भी, इतने पर भी। उ.—(क) अष्ट-दस-घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ—१-५६। (ख) खाय बिष गढ लाय दीन्हो, तउ न पाए जरन—१-२०२।

तऊ—अव्य. [हिं. तव+ऊ (प्रत्य.)] तो भी, तिस पर भी, तब भी। उ.—(क) देखत सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज—१-१०८। (ख) बेद पुरान रहत जस जाको तऊ न पावन पार—सारा. ६१३। (ग) निसि दिन रहत सूर के प्रभु बिनु मरिबो, तऊ न जात जियौ—२५४५।

तए—क्रि. अ. [हिं. तपना] तपे, सतप्त हुए, दुखी हुए। उ.—(क) बूड़ि गुए कै कहुँ उठि गए। जिनकैं सोच नृपति बहु तए—१-२८४। (ख) महादेव बैठे रहि गए। दच्छ देखि अतिसय दुख तए-४-५।

तक—अव्य. [सं. अंत+क] सीमा या अवधि सूचक विभक्ति, पर्यंत।

संज्ञा स्त्री. [सं. तर्कुटी] तराजू, तराजू का पलड़ा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टक] स्थिर दृष्टि।

तकति—क्रि. अ. [हिं. ताकना] देखती है, निहारती है। उ.—नरकिनो सबनि घर तोसी नहि कोउ निडर, चलति नभ चितै, नहि तकति धरनी-६६८।

तकदीर—संज्ञा स्त्री. [अ. तक़दीर] भाग्य, किस्मत।

तकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताकना] देखना, दृष्टि ।

तकना—क्रि. अ. [हिं. ताकना] (१) देखना, निहारना। (२) शरण या आश्रय लेना ।

तकरार—संज्ञा स्त्री. [अ.] लड़ाई-झगड़ा, हुज्जत ।

तकरीर—संज्ञा स्त्री. [अ. तक़रीर] (१) बातचीत, वार्तालाप । (२) वक्तृता, भाषण, व्याख्यान ।

तकला—संज्ञा पुं. [सं. तर्कु] सूत कातने का टेकुआ ।

तकली—संज्ञा स्त्री. [हिं. तकला] छोटा तकला ।

तकलीफ—संज्ञा स्त्री. [अ. तकलीफ] (१) कष्ट, दुख । (२) विपत्ति, मुसीबत ।

तकल्लुफ—संज्ञापु. [अ.तकल्लुफ] दिखावटी शिष्टाचार ।

तकवाना—क्रि. स. [हिं. ताकना] ताकने में लगाना ।

तकवाही,तकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताकना+ई (प्रत्य.)] ताकने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

तकसीम—संज्ञा स्त्री. [अ. तक़सीम] (१) बांटने की क्रिया या भाव । (२) भाग करने की क्रिया ।

तकाजा—संज्ञा पुं. [अ. तक़ाज़ा] (१) ऐसी चीज माँगना जिसके पाने का अधिकार हो । (२) वह काम करने को कहना जिसके लिए वचन मिल चुका हो । (३) उत्तेजना, प्रेरणा ।

तकान—संज्ञा स्त्री. [हिं. थकान] थकने का भाव ।

तकाना—क्रि. स. [हिं. ताकना का प्रे.] ताकने, देखने या निगरानी रखने में लगाना ।

क्रि. अ.—किसी ओर को भागना या जाना ।

तकावी—संज्ञा स्त्री. [अ. तक़ावी] वह धन जो किसानों को उनके व्यवसाय की उन्नति के लिए दिया जाय ।

तकि—क्रि. स. [हिं. ताकना] सोच-विचार कर, चाह-कर, देखकर । उ.—जे रघुनाथ-सरन तकि आए, तिनकी सकल आपदा टारी—१-३४ ।

तकिए—क्रि. स. [हि ताकना] ताकिए, देखिए, इच्छा कीजिए । उ —कैसो कठिन कर्म केसो बिन काकी सूर सरन तकिए—३०७३ ।

तकिया—संज्ञा पु. [फा.] (१)सिरहाने रखने का रुई या कपड़े से भरा थैला । (२) विश्राम का सहारा। (३) आश्रय, आसरा । (४) मुसलमान फकीर का निवास स्थान ।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं. [फ़ा. तकिया+कलाम] वह शब्द या पद जो अभ्यास वश बार-बार लोगों के मुख से निकलने लगता है ।

तकियो—क्रि. स. [हि. ताकना] देखना, आश्रय लेना । उ.—ठकुराई तकियो गिरिधर की सूरदास जन जानी—२५४८ ।

तकुआ—संज्ञा पुं. [हि. तकला] सूत कातने का टेकुआ । संज्ञा पुं. [हि. ताकना + उआ] ताकनेवाला ।

तकै—क्रि. अ. [हि. ताकना] देखता है, निहारता है, ताकता है । उ.—सूर अवगुन भरयौ, आइ द्वारैं परयौ, तकै गोपाल अब सरन तेरी—१-११० ।

तकैया—संज्ञा पुं. [हिं. ताकना+ऐया] ताकनेवाला ।

तकौं—क्रि. अ. [हि. ताकना] देखूँ, निहारूँ । उ.—करुनासिंधु कृपाल, कृपा बिनु काकी सरन तकौं—१-१५१ ।

तक्र—संज्ञा पुं [सं.] मठा, छाछ । उ.—छलकत तक्र उफनि अँग आवत नहिं जानति तेहिं कालहि सों ।

तक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कश्यप का पुत्र एक नाग जिसने राजा परीक्षित को काटा था । (२)साँप, सर्प । (३) विश्वकर्मा । (४)सूत्रधार । (५)दस वायुओं में एक, नागवायु । उ.—प्रान अपान व्यान उदान और कहियत प्रान समान । तक्षक धनंजय पुनि देवदत्त और पौंड्रक संख द्युमान—सारा. ६ ।

वि.—छेदनेवाला, छेदक ।

तक्षण,तक्षा—संज्ञा पुं. [सं. तक्षन्] बढ़ई ।

तखमीना—संज्ञा पुं. [अ. तख़मीना] अदाज, अनुमान ।

तखलिया—संज्ञा पुं. [अ. तख़लिया] एकांत स्थान ।

तख्त—संज्ञा पुं. [फा. तख्त:] (१) सिंहासन । (२) चौकी ।

तख्ता—संज्ञा पुं. [फा. तख्त.] (१) लकड़ी का बड़ा पटरा ।

मुहा.—तख्ता उलटना—(१) बना बनाया काम बिगड़ना । (२) प्रबंध नष्ट-भ्रष्ट होना । तख्ता हो जाना—ऐंठ या अकड़ जाना ।

(२) काठ की बड़ी चौकी । (३) अरथी, टिखटी ।

तख्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. तख्ता] (१) छोटा तख्ता ।(२) लिखने की पटिया । (३) छोटी पटरी ।

तगड़ा—वि. [हिं. तन+कड़ा] (१) बलवान, ताकतवर। (२) अच्छा और बड़ा।

तगड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तागड़ी] करधनी, तागड़ी।
वि. स्त्री. [हिं. तगड़ा] (१) बली। (२) बड़ी।

तगण—संज्ञा पुं [सं.] तीन वर्णों का एक गण।

तगा—संज्ञा पुं. [हिं. तागा] तागा, डोरा, सूत, धागा। उ.—(क) प्रफुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानी, झीनीयै झगुलि तामैं कंचन-तगा—१०-३६। (ख) जाकैं नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यौ (हो)। ताकौ नाल छीन ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सौं बाध्यौ (हो)—१०-१२८। (ग) अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी—३३३५।
संज्ञा पुं.— रुहेलखंड की एक ब्राह्मण जाति।

तगाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तागना] मोटी सिलाई करने का काम, भाव या मजदूरी।

तकादा, तगादा—संज्ञा पुं. [हिं. तकाजा] (१) प्राप्य धन अदा करने का तकाजा। (२) प्रेरणा।

तगाना—क्रि. स. [हिं. तागना] मोटी सिलाई कराना।

तगार, तगारी—संज्ञा स्त्री. [देश.] गड्ढा। नाँद।

तगियाना—क्रि. स. [हिं. तागना] मोटी सिलाई करना।

तगीर—संज्ञा पुं. [अ. तग़य्युर=परिवर्तन] परिवर्तन।

तगीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तगीर] बदली, परिवर्तन।

तचना—क्रि. अ. [हिं. तपना] तप्त होना, तपना।

तचा—संज्ञा स्त्री. [सं. त्वचा] चमड़ा, खाल।

तचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तचाना] जलाने की क्रिया।
क्रि. स. भूत.—जलायी, तपायी, तप्त की।

तचाना—क्रि. स. [हिं. तपाना] जलाना, तप्त करना।

तचिवौ—क्रि. अ. [हिं. तपना, तचना] जलना होगा, जलेगा। उ.—तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिवौ—१-५६।
संज्ञा पुं.—तचने की क्रिया या भाव।

तची—क्रि. अ. [हिं. तचना] तपी, जली, तप्त हुई। उ.—मानो विधि सब उलट रची री। जानत नहीं सखी काहे ते वही न तेज तजी री।

तच्छक—संज्ञा पुं. [सं. तक्षक] (१) तक्षक नाग। (२) साँप। (३) नागवायु। (४) विश्वकर्मा।

तच्छिन—क्रि. वि. [सं. तत्क्षण] उसी समय।

तच्यो—क्रि. अ. [हिं. तचना] तपा, तप्त हुआ।
क्रि. स. [हिं. तचाना] तपाया, तप्त किया।

तजकिरा—संज्ञा पुं. [अ. तज़किरा] चर्चा, जिक्र।

तजत—क्रि. स. [हिं. तजना] त्यागता है, छोड़ता है। उ.—(क) त्यौं सठ वृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत विषय-आधीन—१-१०२। (ख) कहा होत पय पान कराएँ, विष नहिं तजत भुजग—१-३३२। (ग) एते पर नहिं तजत अघोड़ी कपटी कंस कुचाली—२५६७।

तजतौ—क्रि. स. [हिं. तजना] त्यागता, छोड़ता।

तजन—संज्ञा पुं. [सं. त्यजन] त्याग, परित्याग।

तजना—क्रि. स. [सं. त्यजन] त्यागना, छोड़ना।

तजनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. तजना] तजने की क्रिया या भाव, त्याग। उ.—सूरदास-प्रभु-प्रेम-मगन भई ढिग न तजनि ब्रजबाल की—१०-१०५।

तजरबा—संज्ञा पुं. [अ.] अनुभव, तजुरबा।

तजवीज—संज्ञा स्त्री. [अ. तजवीज] (१) सम्मति, राय। (२) फैसला, निर्णय। (३) प्रबंध, आयोजन।

तजि—क्रि. स. [हिं. तजना] छोड़कर, त्यागकर। उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५।

तजी—क्रि. स. [हिं. तजना] त्याग दी। उ.—भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी—१-५।

तजे—क्रि. स. [हिं. तजना] छोड़ा, त्यागा। उ.—मम गृह तजे मुरारे—१-२४२।

तजैं—क्रि. स. [हिं. तजना] छोड़ता है, त्यागता है। उ.—सिंह-सावक ज्यौं तजैं गृह इंद्र आदि डरात—१-१०६।

तजै—क्रि स. [हिं. तजना] छोड़े, त्यागे। उ.—कैसैं कूल-मूल आश्रित कौं तजै आपु अकुलाइ—१-१८१।

तजौं—क्रि. स. [हिं. तजना] छोड़ दूँ, त्याग दूँ। उ.—तन दैवे तैं नाहिन भजौं। जोग धारना करि इहिं तजौं—६-५।

तजौंगी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. तजना] छोड़ूँगी, त्याग दूँगी। उ.—प्रान तजौंगी आपनो देखि असुर सिरमौर—३५०८।

तजौंगो—क्रि. स. [हिं. तजना] तज दूंगा, छोड़ दूंगा । उ.—मैं निज प्रान तजौंगो सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनिकै—९-१४६ ।

तजौ—क्रि. स. [हिं तजना] त्याग दो, छोड़ दो । उ.—(क) तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फेंट—१-१४५ । (ख) तजौ मन, हरि विमुखन कौ संग—१-३३२ ।

तज्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. तजना] त्याग दिया, छोड़ दिया । उ.—सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी—१-११८ ।

तज्ञ—वि. [सं.] (१) तत्व का ज्ञाता । (२) ज्ञानी ।

तटंक—संज्ञा पुं. [सं. ताटंक] कर्णफूल नामक कान का गहना । उ.—चलि चलि आवत स्रवने निकट अति सकुचि तंटक फँदा ते ।

तट—संज्ञा पु. [सं.] (१) तीर, किनारा, कूल । उ.—हारो जानि परी हरि मेरी । माया-जल बूड़त हौं, तकि तट चरन-सरन धरि तेरी—१-२१३ । (२) क्षेत्र, खेत । (३) शिव, महादेव ।

क्रि. वि.—समीप, पास, निकट ।

तटका—वि. [हिं. टटका] (१) हाल का, ताजा, तत्काल का । (२) नया, कोरा ।

तटकी—वि. स्त्री. [हिं. तटका] हाल की, तुरंत की । उ.—निसि के उनींदे नैन तैसे रहे टरि टरि । किधौं कहूँ प्यारी को तटकी लागी नजरि ।

तटके—क्रि. वि. [हि. तटका] तुरंत, शीघ्र । उ.—लीजो जोग सँभारि आपुनो जाहु तहीं तटके—३१०७ ।

तटग—संज्ञा पुं. [स.] तालाव, सरोवर, तडाग ।

तटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तटिनी] नदी, सरिता ।

तटस्थ—वि. [सं.] (१) तीर या किनारे पर रहनेवाला । (२) समीप या निकट रहनेवाला । (३) अलग रहनेवाला ।(४) जो किसी के पक्ष में न हो, उदासीन ।

तटस्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तटस्थ रहने या होने का कार्य या भाव, उदासीनता ।

तटस्थीकरण—संज्ञा पु. [सं. तटस्थ+करण] (१) तटस्थ करने की क्रिया या भाव । (२) किसी वस्तु का गुण हटाकर इसके प्रभाव को नष्ट करने की क्रिया ।

तटाक—संज्ञा पुं. [सं.] तालाब, सरोवर, तड़ाग ।

तटिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी, सरिता ।

तटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तीर, कूल, किनारा । (२) नदी, सरिता । उ.—सूर सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन-तटी—१-९८ । (३) तराई, घाटी ।

तड़—संज्ञा पुं. [सं. तट] विभाग, पक्ष ।

संज्ञा पुं. [अनु.] पटकने या पीटने का शब्द ।

यौ.—तड़ पड़—चटपट, तुरंत, तत्काल ।

तड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़कना] (१) तड़कने की क्रिया या भाव । (२) तड़कने या टूटने का चिह्न । (३) चटपटे पदार्थ, चाट ।

तड़कना—क्रि. अ. [अनु.] (१) तड़ शब्द के साथ टूटना । (२) सूखी चीज का फटना । (३) जोर का शब्द करना । (४) झुँझलाना, बिगड़ना । (५) उछलना-कूदना ।

क्रि. स.—छौंकना, बघारना, तड़का देना ।

तड़क-भड़क—संज्ञा स्त्री. [अनु.] ठाट-बाट ।

तड़का—संज्ञा पुं. [हिं. तड़कना] (१) सबेरा । (२) छौंक ।

तड़काना—क्रि. स. [हिं. तड़कना] (१) तड़ से तोड़ना । (२) सुखाकर फाड़ना । (३) जोर का शब्द करना । (४) खिजाना, क्रोध दिलाना ।

तड़कीला—वि. [हि. तड़कना + ईला (प्रत्य.)] (१) चमक भड़कवाला । (२) तड़कने, फटने या टूटनेवाला ।

तड़क्का—संज्ञा पुं. [हि. तड़का] सबेरा, प्रातःकाल ।

क्रि. वि. [हि. तड़ाका] चटपट, तुरंत ।

तड़तड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] तड़तड़ शब्द होना ।

क्रि. स.—तड़तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़ाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] तड़तड़ाने की क्रिया ।

तड़ता—संज्ञा स्त्री. [स. तड़ित] बिजली, विद्युत ।

तड़प—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़पना] (१) तड़पने की क्रिया या भाव । (२) चमक-दमक ।

तड़पदार—वि. [हि. तड़प+फा. दार] चमकीला ।

तड़पना, तड़फना—क्रि. अ. [अनु.] (१) कष्ट या वेदना से छटपटाना । (२)घोर शब्द करना, गरजना ।

तड़पाना, तड़फाना—क्रि. स. [हिं. तड़पना] (१) कष्ट या वेदना से पीड़ित करना (२) घोर शब्द करने को

बाध्य करना।

तड़ाक—संज्ञा पुं. [सं.] तालाब, सरोवर।
संज्ञा पु. [अनु.] तड़ाके का शब्द।
क्रि. वि.—(१) तड़ाक से। (२) चटपट, तुरंत।
यौ.—तड़ाक-फड़ाक—चटपट, तुरंत।

तड़ाका—संज्ञा पुं. [अनु.] तड़तड़ का शब्द।
क्रि. वि.—चटपट, तुरत, तत्काल।

तड़ाग, तड़ागा—संज्ञा पुं. [सं.] तालाब, सरोवर। उ.—एकबार ताकैं मन आई। न्हावन-काज तड़ाग सिधाई—९-१७४।

तड़ातड़—क्रि. वि. [अनु.] तड़तड़ शब्द के साथ।

तड़ाना—क्रि. स. [हिं. ताड़ना का प्रे.] किसी दूसरे को ताड़ने या भाँपने में प्रवृत्त करना।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़ाना = दिखाना] (१) ऊपरी या दिखावटी चमक-दमक। (२) धोखा, छल।

तड़ित, तड़िता—संज्ञा स्त्री. [सं. तड़ित्] बिजली, विद्युत।

तड़ित-वसन—संज्ञा पुं. [सं. तड़ित्+वसन] बिजली के समान उज्ज्वल या चमक-दमकवाले वस्त्र। उ.—तड़ित-बसन घन-स्याम सदृस तन तेज-पुंज तम कौं नासै—२-६९।

तड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़] (१) चपत। (२)बहाना।

तत—संज्ञा पुं. [स.] (१) वायु। (२) विस्तार, फैलाव। (३) पिता। (४) पुत्र। (५) तारवाला बाजा।
वि. [सं. तप्त] तपा हुआ, गरम।
संज्ञा पु. [स. तत्व] (१) पचतत्व। (२) सार।

ततकाल—क्रि. वि. [सं. तत्काल] तुरंत, उसी समय। उ.—(क) सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि, बसन-प्रवाह बढ़ायौ—१-१०९। (ख) ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबारयौ—१-१०९।

ततछन—क्रि. वि. [सं. तत्क्षण] उसी समय, तत्काल। उ.—(क) ब्रह्मा बाल बछरुआ हरि गयौ, सो तत-छन सारिखे सँवारी—१-२८। (ख) हति गज-सत्रु सूर के स्वामी ततछन सुख उपजाए—८-६।

ततपर—वि. [सं. तत्पर] तैयार, कटिबद्ध।

ततबाउ, ततबाऊ, ततवाय, ततुबाउ, ततुवाऊ—संज्ञा पुं. [सं. तंतुवाय] (१) जुलाहा। (२) मकड़ी।

ततबीर—संज्ञा स्त्री. [अ. तदबीर] युक्ति, उपाय। उ.—कोउ गई जल-पैंठि तरुनी और ठाढ़ी तीर। तिनहिं लई बोलाइ राधा करति सुख तदबीर।

ततसार—संज्ञा स्त्री. [सं. तप्तशाला] तपाने का स्थान।

तताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तत्ता] ताप, गरमी।

ततारना—क्रि. स. [हिं. तत्त] जल-धार से धोना।

तति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रेणी, पंक्ति, ताँता। (२) झुंड, समूह। (३) विस्तार, फैलाव।

ततिहर—संज्ञा पुं. [हिं. तत्ता + हँड़ी] जल गरमाने का पात्र। उ.—मोहन आउ, तुम्हैं अन्हवाऊँ। जमुना तैं जलभरि लै आऊँ, ततिहर तुरत चढ़ाऊँ-१०-१८५।

ततैया—संज्ञा स्त्री.[सं.तिक्त] (१) बर्रे। (२) कड़ुई मिर्च।
वि. [हिं. तीता] (१) फुरतीला। (२)चालाक।

तत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्म। (२) वायु।
सर्व.—उस।

तत्काल—क्रि. वि. [सं.] तुरत, उसी समय।

तत्कालीन—वि. [सं.] उसी समय का (की)।

तत्क्षण—क्रि. वि. [सं.] उसी क्षण, फौरन।

तत्त—संज्ञा पुं. [सं. तत्व] तत्व, सार।

तत्ता—वि. [सं. तप्त] जलता या तपता हुआ।

तत्व—संज्ञा पुं [सं.] (१)यथार्थता, वास्तविक स्थिति। (२) जगत के मूल कारण जो २५ माने गये हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व या बुद्धि, अहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक, वाक्, पाणि, वायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। सूरदास ने इनमें सत्, रज और तम तीनों गुणो को सम्मिलित करके २८ तत्व लिखे हैं। उ.—कीन्हें तत्व प्रकट तेही छन सबै अष्ट अरु बीस। तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुन सबके ईस। पृथिवी अप तेज वायु नभ संज्ञा शब्द परस अरु गंध। रस अरु रूप और मन बुधि चित अहंकार मतिअंध। प्रान अपान व्यान उदान अरु कहियत प्रान समान। तत्क धनंजय पुनि देवदत्त अरु पौंड्रक संख द्युमान। राजस तामस सात्विक तीनों जीव ब्रह्म सुखधाम। अट्ठाइस तत्व यह कहियत सो कवि सूरज नाम—सारा. ७, ८, ९, १०। (३)

पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश)। उ.—जाके उदर लोक-त्रय, जल-थल, पंच तत्व चौ-खानि—४८७ (४) परमात्मा। (५) सार, सारांश।

तत्वज्ञ, तत्वज्ञानी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईश्वर या ब्रह्म को जानेवाला, ब्रह्मज्ञानी। (२)दर्शनशास्त्र का ज्ञाता।

तत्वज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म, जीव और आत्मा का ज्ञान जिससे मनुष्य की मुक्ति हो जाय।

तत्वविद्, तत्ववेत्ता—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईश्वर या ब्रह्म का ज्ञान रखनेवाला। (२) दार्शनिक।

तत्वावधान—संज्ञा पुं. [सं.] निरीक्षण, देखभाल।

तत्त्वावधानक—संज्ञा पु. [सं.] निरीक्षक।

तत्थ—वि. [सं. तत्व] मुख्य, प्रधान।

संज्ञा पुं.—शक्ति, बल, सामर्थ्य।

तत्पद—संज्ञा पुं [सं.] परमपद, निर्वाण, मोक्ष।

तत्पर—वि. [सं.] (१) तैयार, मुस्तैद। (२) चतुर।

तत्परता—वि. [सं.] (१) मुस्तैदी। (२) चतुरता।

तत्पुरुप—संज्ञा पुं. [स.] (१) ईश्वर। (२) समास का एक भेद। (३) एक रुद्र का नाम।

तत्र—क्रि. वि. [सं.] उस जगह, वहाँ।

तत्रभवान—वि. [स.] माननीय, पूज्य, श्रेष्ठ।

तत्रापि—अव्य. [स.] तथापि, तो भी।

तत्सम—संज्ञा पुं. [स] (१) संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार हिंदी में उसके शुद्ध रूप में हो। (२) शब्द का शुद्ध या मूल रूप।

तथा—अव्य. [सं.] (१) और। (२) उसी तरह, ऐसे या वैसे ही। उ.—(क) कहयौ, कहौं इक नृप की कथा। उन जो कियो, करौ तुम तथा—४-१२। (ख) बहुरि कही अपनी सब कथा। हरि जो कह्यौ, कह्यौ पुनि तथा—६-५।

यौ.—तथास्तु—ऐसा ही हो।

संज्ञा पुं.—(१)सत्य। (२)सीमा (३) समानता।

संज्ञा स्त्री.—शक्ति, सामर्थ्य, क्षमता।

तथागत—संज्ञा पुं. [सं.] गौतम बुद्ध का एक नाम।

तथापि—अव्य. [सं.] तो भी, तिस पर भी, तब भी।

तथैव—अव्य. [सं.] वैसा ही, उसी प्रकार।

तथ्य—संज्ञा पु. [स.] (१) सच्चाई, यथार्थता। (२) सत्य घटना। (३) वह बात जिसका ज्ञान विशेष अवस्था या स्थिति में हुआ हो।

तथ्यभाषी, तथ्यवादी—वि. [स. तथ्य+हि. भाषी, वादी] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तदंतर—क्रि. वि. [सं.] इसके बाद या उपरात।

तदनंतर—क्रि. वि. [सं.] उसके बाद या उपरांत।

तदनु—क्रि. वि. [सं.] (१)उसके बाद। (२) उसी तरह।

तदनुरूप—वि [सं.] उसी के रूप रंग का।

तदनुसार—वि. [सं] उसी के अनुसार।

तदपि—अव्य. [सं.] तो भी, तिस पर भी, तथापि। उ.—तदपि सूर मैं भक्त बछल हौं, भक्तनि हाथ बिकानौ—१-२४३।

तदबीर—संज्ञा स्त्री. [अ.] युक्ति, उपाय, तरकीब।

तदा—क्रि वि. [सं.] उस समय, तब।

तदाकार—वि. [सं.] (१) वैसा ही। (२) लवलीन।

तदपि—सर्व. [सं.] उसका, उससे संबंधित।

तदुपरांत—क्रि. वि. [सं.] उसके पीछे या बाद।

तद्गत—वि [सं.] (१) उससे संबंधित। (२) उसमें व्याप्त।

तद्गुण—संज्ञा पुं. [सं.] एक अर्थालंकार जिसमें एक वस्तु का अपना गुण त्यागकर समीपवर्ती श्रेष्ठ वस्तु का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित हो।

तद्धित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर नया शब्द बनाते हैं। (२) इस प्रत्यय के लगने से बननेवाला नया शब्द।

तद्भव—संज्ञा पुं. [सं] तत्सम शब्द का विकृत, परिवर्तित या अपभ्रंश रूप।

तद्यपि—अव्य. [सं.] तथापि, तो भी।

तद्रूप—वि. [सं.] समान, वैसा ही, सदृश।

तद्रूपता—संज्ञा स्त्री. [स.] सादृश्य, समानता। उ.—जानि जुग नृप मैं भूप तद्रूपता बहुरि करिहैं कलुष भूमि भारी—१० उ. ५०।

तद्वत—वि. [सं.] उसके समान, ज्यों का त्यों।

तधी—क्रि. वि. [सं. तदा] तभी।

तन—संज्ञा पुं [सं. तनु] (१) शरीर, गात। उ.—(क) लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ्यौ

तन-चीर नहिं अन्त पायौ—१-५ । (ख) अब हीं देखे नवल किसोर । घर आवत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर—१३६४ । (२) योनि । उ.—काहू के कुल तन न विचारत । अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत—१-१२ ।

यौ.—तन ताप—(१) शारीरिक कष्ट । (२) भूख, क्षुधा ।

क्रि. वि.—तरफ, ओर । उ.—(क) तजि कुल-लाज सूर के प्रभु के मुख-तन फिरि फिरि चितवत—७३० । (ख) सुनत ठाढो भयो हाँक तिनका दयो दनुज कुल-दहन ता तन निहारे—२६११ । (ग) मधुवन तन तैं आवत सखी री देखहु नैन निहारि—३०५१ ।

तनक—वि. [हिं. तनिक] (१) थोड़ा, कम । उ.—कब धौं तनक तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै—१०-७६ । (२) छोटा । उ.—(क) तनक तनक सी दूध-दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आइ—१० ८२ । (ख) अब ही देखे नवल किसोर । घर आवत ही तनक भये ई ऐसे तन के चोर-१३६४ ।

तनकि—क्रि. अ. [हिं. तिनकना] रुठकर, खीजकर । उ.—तनक सी बात कहे, तनक तनकि रहै, तनक सौ रीझि रहै तनक से साधन—१०-१५० ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री. [अ.] जांच, खोज ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री. [फा. तनख्वाह] वेतन ।

तनगना—क्रि. अ. [हिं. तिनकना] चिढ़ना, झल्लाना ।

तनगि—क्रि. अ. [हिं. तिनकना] झल्लाकर, झुँझलाकर । उ.—सुनहु सूर पुनि तो कहि आवै तनगि गये ता पास ।

तन-चीर—संज्ञा पुं. [स. तनु + चीर] शरीर का वस्त्र, धोती, साडी । उ.—लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ्यौ तन-चीर नहिं अंत पायौ—१-५ ।

तनज्जुली—संज्ञा स्त्री. [फा.] अवनति ।

तनत—क्रि. स. [हिं. तानना] तानती है ।

मुहा.—भौंह तनत—गुस्सा दिखाती है । उ.—बार-बार बुझाइ हारी भौंह मो पर तनत--पृ० ३२६ ।

तनतना—संज्ञा पुं. [हिं. तनतनाना] (१) रोबदाब, दबदबा । (२) क्रोध, गुस्सा ।

तनतनाना—क्रि. अ. [हिं. तनना या अनु.] (१) रोब या शान दिखाना । (२) क्रोध या गुस्सा दिखाना ।

तनत्राण—संज्ञा पु. [सं. तनुत्राण] (१) वह चीज जो शरीर की रक्षा करे । (२) कवच ।

तनधर—संज्ञा पु. [सं. तनुधारी] शरीरधारी ।

तनना—क्रि. अ. [सं. तन या तनु] (१) खिचना । (२) कस जाना । (३) आकर्षित या प्रवृत्त होना । (४) ऐंठना, कष्ट होना ।

तनमय—वि. [सं. तन्मय] लीन, लवलीन, मग्न । उ.—(क) अपनो अपनो भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे । (ग) कबहुँ कहति कौन हरि को मैं तौ तनमय ह्वै जाहीं ।

तनमात्रा—संज्ञा स्त्री. [स. तन्मात्रा] पंचभूतों का आदि रूप ।

तनय—संज्ञा पुं. [स.] पुत्र, बेटा ।

तनया—संज्ञा स्त्री. [स.] बेटी, पुत्री ।

तनराग—संज्ञा पु. [सं. तनुराग] सुगंधित उबटन ।

तनरुह—संज्ञा पु. [सं. तनूरुह] (१) रोम, लोम, रोआं । (२) पक्षियों का पर या पंख । (३) पुत्र ।

तनवाना—क्रि.स. [हिं. तानना का प्रे.] तानने में लगाना ।

तनसुख—संज्ञा पुं. [हिं. तन + सुख] एक बढ़िया कपड़ा ।

तनहा—वि. [फा.] अकेला, एकाकी ।

तनहाई—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) अकेला होने की दशा या भाव । (२) एकांत स्थान ।

तना—संज्ञा पुं. [फा.] वृक्ष का निचला मोटा भाग ।

क्रि. वि. [हिं. तन] ओर, तरफ ।

तनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तनना] तनने का भाव, तनाव ।

तनाउ, तनाऊ—संज्ञा पु [हिं. तनना] तनने का भाव ।

तनाकु—क्रि. वि. [हिं. तनिक] जरा, टुक ।

तनाजा—संज्ञा पुं. [अ. तनाजा](१) झगड़ा ।(२) शत्रुता ।

तनाना—क्रि. स. [हिं. तानना] दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना या लगाना ।

तनायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. तनाया (प्रे.)] तनाया, (छत्र आदि) फैलाया । उ.—देखि रे, वह सारँग-धर आयौ । सागर-तीर भीर बानर की, सिर पर

छत्र तनायौ—६-१२५।

तनाव—संज्ञा पुं. [हिं. तनना] (१) तनने की क्रिया या भाव। (२) रज्जु, रस्सी।

संज्ञा पुं. [हि. तनना] रूठने या बुरा मानने का भाव।

तनि, तनिक, तनिकौ—क्रि. वि. [सं. तनु = अल्प, हिं. तनिक] जरा भी, टुक। उ.—भूख प्यास ताकौं नहिं ब्यापै। सुख दुख तनिकौ तिहिं न सँतापै—३-१३।

वि.—(१) थोडा, कम। (२) छोटा। उ.—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आइ छयौ।

तनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. तनी] (१) कछनी, जाँघिया। उ.—कनक-रतन-मनि-जटित-रचित कटि-किंकिनि कुनित पीत-पट तनियाँ—१०-१०६। (२) लँगोट, कौपीन। (३) चोली।

तनिष्ठ—वि. [सं.] दुबला-पतला, कमजोर।

तनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तनिका, हिं. तानना] (१) अँगरखे या चोली का बंद जो उस वस्त्र का पल्ला तानकर बाँधने के काम आता है। उ.—(क) सिर स्वेत पट कटि नील लहँगा लाल चोली विन तनी—१० उ. २४। (ख) कंचुकि ते कुचकलस प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी—१० उ. १२२। (२) बंधन, डोरी, फंदा। उ.—आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी—१-३६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तनिया] (१) लँगोट, कौपीन। (२) कछनी, जाँघिया। (३) चोली।

क्रि. वि. [हिं. तनिक] जरा, टुक, तनिक।

वि.—(१) थोडा, कम। (२) छोटा।

क्रि. अ. [हिं. तनना] अप्रसन्न हुई, रूठी।

तनु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शरीर, देह। उ.—(क) छैलनि कै संग यौं फिरै, जैसैं तनु सँग छाईं (हो)—१-४४। (ख) निरखि पतंग बान नहिं छाँड़त जदपि जोति तनु तावत—१-२१०। (ग) सूरदास अक्रूर कृपा तैं सही विपति तनु गाढी—२५३५। (२) चमडा, खाल। (३) स्त्री, औरत। (४) केंचुली।

वि.—[सं.] (१) दुबला-पतला। (२) थोड़ा, कम। (३) कोमल, नाजुक। (४) सुंदर।

तनुक—वि. [हि. तनिक] (१) थोड़ा। (२) छोटा।

क्रि. वि.—जरा, टुक, तनिक।

संज्ञा पुं.—(१) शरीर। (२) चमड़ा। (३) केंचुल।

तनुज—संज्ञा पुं. [सं.] पुत्र, बेटा।

तनुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पुत्री, बेटी।

तनुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छोटाई। (२) दुर्बलता।

तनुधारी—वि. [सं.] शरीर या देहधारी।

तनुभव—संज्ञा पुं. [स.] पुत्र, बेटा।

तनुराग—संज्ञा पुं. [सं.] सुगंधित उबटन।

तनुरुह—संज्ञा पुं. [सं.] रोम, लोम, रोआँ।

तनू—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुत्र। (२) शरीर।

तनूज—संज्ञा पुं. [स. तनुज] पुत्र, बेटा।

तनूजा—संज्ञा स्त्री. [सं. तनुजा] पुत्री, बेटी।

तनूरुह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोम, रोआँ, लोम। (२) पक्षियों का पंख या पर (३) पुत्र, बेटा।

तनेना, तनैना—वि. [हि. तनना + एना (प्रत्य.)] (१) खिंचा हुआ, टेढ़ा, तिरछा। (२) क्रुद्ध, अप्रसन्न।

तनेनी, तनैनी—वि. स्त्री. [तनेना] (१) टेढ़ी, तिरछी खिंची हुई। (२) अप्रसन्न, रूठी हुई, तनी हुई।

तनै—संज्ञा पुं. [सं. तनय] पुत्र, बेटा।

तनैया—संज्ञा स्त्री. [सं. तनया] पुत्री, बेटी।

तनोज—संज्ञा पु. [सं. तनूज] (१) रोआँ। (२) पुत्र।

तनोरुह—संज्ञा पुं. [तनूरुह] (१) रोआँ। (२) पुत्र।

तन्नाना—क्रि. अ. [हिं. तनना] ऐंठना, बिगड़ना।

तन्मय—वि. [स.] लीन, लवलीन, लिप्त। उ.—सूरदास गोपी तनु तजिकै तन्मय भई नँदलाल सौं—८०४।

तन्मयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] लिप्तता, लीनता, लगन।

तन्मयासक्ति—सज्ञा स्त्री. [सं.] भक्ति में अपने को भूलकर स्वय को भगवान समझना।

तन्मात्र, तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. तन्मात्र] पचभूतों का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप, रस और गंध। उ.—रजगुन तैं इंद्रिय बिस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी—३-१३।

तन्वि, तन्वी—वि. [सं. तन्वी] कोमल अंगवाली।

तप—संज्ञा पुं. [सं. तपस्] (१) चित्त-शुद्धि अथवा

मानसिक निग्रह के उद्देश्य से किये गये व्रत अथवा नियम, तपस्या। उ.—सुरपति विस्वरूप पै जाइ। दोउ कर जोरि कह्यौ सिर नाइ। कृपा करौ मम प्रोहित होहु। कियौ बृहस्पति मो पर कोहु। कह्यौ, पुरोहित होत न भलौ। बिनसि जात तेज-तप सकलौ—६-५। (२) मन, वचन आदि को वश में रखने का धर्म। (३) अग्नि।

संज्ञा पु.—(१) गरमी, ताप। (२) ग्रीष्म ऋतु। (३) ज्वर, हरारत।

तपकना—क्रि. अ. [हि. टपकना] धडकना, उछलना।

तपड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] छोटा टीला, ढूह।

तपत—वि. [हि. तप्त] तपता या जलता हुआ।

क्रि. अ. [हिं. तपना] कष्ट सहता है। उ.—सूर स्याम बिनु तपत रैनि दिन मिले भलेहिं सचु-पावहिं—३४२७।

तपति—संज्ञा पु. [सं. तपन] (१) ताप, जलन, दाह। उ.—(क) गहि बहियाँ हौं लैकै जैहौं, नैननि तपति बुझान दै—१०-२७४। (ख) लोचन तृप्त भए दरसन तैं, उर की तपति बुझानी—७७८। (२) ताप, गरमी। उ.—धन्य व्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि—७८३।

वि.—तप्त, तपे हुए। उ.—नैन सिथिल, सीतल नासापुट, अग तपति, कछु सुधि न रहाई—७४८।

क्रि. अ.—(१) तपती है। (२) कष्ट सहती है।

तपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ताप, जलन, दाह। (२) सूर्य। (३) ग्रीष्म, गरमी। (४) एक अग्नि।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तपना] तपने का भाव।

मुहा.—तपन का महीना—गरमी की ऋतु।

तपना—क्रि. अ. [स. तपन] (१) खूब गरम होना। (२) कष्ट सहना, मुसीबत झेलना। (३) तेज या गरमी फैलाना। (४) प्रताप या आतंक दिखाना। (५) तप-तपस्या करना।

तपनि—संज्ञा पुं. [स. तपन] ताप, जलन, दाह। उ.—को जानै हरि की चतुराई। नैन-सैन सभाषन कीन्हौ, प्यारी की उर-तपनि मिटाई—७०१।

तपनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तपना] (१) आग तापने का स्थान, कौड़ा, अलाव। (२) तप, तपस्या। उ.—मेरो कह्यौ करि मान ह्रदय धरि, छाँड़ि दे अति तपनी—१६६२।

तपभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं. तपोभूमि] तप करने का स्थान।

तपराशि—संज्ञा पु. [स. तपोराशि] बड़ा तपस्वी।

तपलोक—संज्ञा पुं. [स. तपोलोक] एक लोक जहाँ अपने कठिन तप से भगवान को प्रसन्न करनेवाले लोग भजे जाते हैं। यह लोक जनलोक और सत्यलोक के बीच में स्थित माना गया है। उ.—सत्यलोक जनलोक, तपलोक और महर निज लोक। जहँ राजत ध्रुवराज महानिधि निसि दिन रहत असोक—सारा. २२।

तपवाना—क्रि. स. [हिं. तपाना] गरम कराना।

तपवृद्ध—वि. [सं. तपोवृद्ध] तपस्वियों में श्रेष्ठ।

तपश्चरण—संज्ञा पुं. [सं.] तप, तपस्या।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री. [सं. तपश्चर्य्या] तपस्या।

तपस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) चंद्र।

संज्ञा स्त्री. [सं. तपन] ताप, तपन।

तपसा—संज्ञा स्त्री. [सं. तपस्या] तप, तपस्या।

तपसाली—संज्ञा पुं [सं. तप.शालिन्] तपस्वी।

तपसियनि—संज्ञा पुं. बहु. [सं. तपस्वी] तपस्वियों। उ—तपसियनि देखि कह्यौ, क्रोध इनमैं बहुत, ज्ञानियनि मैं न आचार पेखौं—८-८।

तपसी—संज्ञा पुं. [सं. तपस्वी] तपस्या करनेवाला, तपस्वी। उ.—(क) बहुतक तपसी पचि पचि मुए। पै तिन हरि-दरसन नहिं हुए—४-९। (ख) तपसी तुमकौं तप करि पावैं। मुनि भागवत गृही गुन गावैं। (ग) तीनि लोक तैं पकरि मँगाऊँ वै तपसी दोउ भाई—९ १४०।

तपस्या—संज्ञा स्त्री [सं.] तप, व्रतचर्या।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री. [स.] तपस्वी होने का भाव, स्थिति या अवस्था।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री. [स. (१) तप करनेवाली। (२) तपस्वी की स्त्री। (३) सती। (४) दीन स्त्री।

तपस्वी—संज्ञा पु. [सं. तपस्विन्] तप करनेवाला।

तपा—संज्ञा पुं. [हिं. तप] तपस्वी।

वि.—तप या तपस्या में लीन ।

तपाक—संज्ञा पुं. [फा.] (१) जोश । (२) तेजी ।

तपाकर—संज्ञा पुं. [सं. तप+आकर=खान] (१) सूर्य । (२) बहुत बड़ा तपस्वी ।

तपानल—संज्ञा पुं. [सं. तप+अनल] तप के कारण उत्पन्न तेज या प्रताप ।

तपाना—क्रि. स. [हि. तपना] (१) बहुत गरम करना । (२) कष्ट या दुख देना । (३) चिढ़ाना ।

तपावंत—संज्ञा पुं. [हि. तप+वंत] तपस्वी ।

तपाव—संज्ञा पुं. [हि. तपना+आव] ताप, तपन ।

तपित—वि. [सं. तप्त] तपा हुआ, गरम ।

तपिया—संज्ञा पुं. [सं. तपस्वी] तपस्वी ।

तपिश—संज्ञा स्त्री. [फा.] गरमी, आँच, ताव ।

तपी—संज्ञा पुं. [हि. तप+ई (प्रत्य.)] (१) तप करनेवाला तपस्वी । (२) सूर्य ।

तपु—संज्ञा पुं. [सं. तपुस्] (१) आग । (२) सूर्य । (३) शत्रु ।

वि.—(१) तपा हुआ, तप्त । (२) तपानेवाला ।

तपेदिक—संज्ञा पुं. [फ़ा. तप+अ. दिक] क्षयी रोग ।

तपै—क्रि. अ. [हि. तपना] तपती है, जलती है ।

उ.—माधो चलन कहत मधुवन को सुने तपै अति छाती—२४६६ ।

तपोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तपस्वी । (२) तप ।

तपोनिधि, तपोनिष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] तपस्वी ।

तपोबन—संज्ञा पुं. [सं. तपोवन] तपस्वियों का स्थान ।

तपोबल—संज्ञा पुं. [सं.] तप का प्रभाव ।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] तप का स्थान ।

तपोमय—संज्ञा पुं. [सं.] परमेश्वर ।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परमेश्वर । (२) तपस्वी ।

तपोराशि—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत बड़ा तपस्वी ।

तपोलोक—संज्ञा पुं. [सं.] जनलोक और सत्यलोक के बीच एक लोक जहाँ कठिन तपस्या से भगवान को संतुष्ट करनेवाले लोग जाते हैं ।

तपोवन—संज्ञा पुं. [सं.] तपस्वियों का स्थान ।

तपोवृद्ध—वि. [सं.] तपस्वियों में श्रेष्ठ ।

तपौनी—संज्ञा स्त्री [हिं. तपनी] तप, तपस्या ।

तप्त—वि. [सं.] (१) जलता हुआ, तापित, गरम, उष्ण ।

उ.—(क) जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै, सुखित समोइ करे—६-१७१ । (ख) भूलिहु जिनि आवहिं यहि गोकुल तप्त रैनि औ चंद—३४२० । (२) दुखित, पीड़ित ।

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] द्वारका के शंख-चक्र आदि के छापे जिन्हें वैष्णव लोग धार्मिक चिन्ह-रूप में भुजा आदि अंगों में दाग लेते हैं ।

तप्य—संज्ञा पुं. [हिं. तप] तपस्या ।

तप्य—वि. [सं.] जो तपने या तपाने योग्य हो ।

तफ़री, तफ़रीह—संज्ञा स्त्री. [अ. तफ़रीः] (१) खुशी, प्रसन्नता । (२) मनबहलाव । (३) सैर । (४) ताजापन ।

तफ़सील—संज्ञा स्त्री. [अ. तफ़सील] (१) विस्तृत विवरण । (२) टीका । (३) सूची । (४) ब्योरा ।

तब—अव्य. [सं. तदा] (१) उस समय । (२) इस कारण ।

तबदील—वि. [अ.] बदला हुआ, परिवर्तित ।

तबदीली—संज्ञा स्त्री. [अ.] बदली, परिवर्तन ।

तबर—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कुल्हाड़ी । (२) कुल्हाड़ी की तरह का एक हथियार ।

तबल—संज्ञा पुं. [फा.] ढोल, नगाड़ा, डंका ।

तबलची—संज्ञा पुं. [अ. तबल + ची (प्रत्य.)] तबला बजानेवाला, तबलिया ।

तबला—संज्ञा पुं. [अ. तबलः] ताल देने का चमड़ा मढ़ा एक बाजा ।

मुहा. तबला खनकना (ठनकना) (१) तबला बजना । (२) नाच-रंग होना ।

तबलिया—संज्ञा पुं. [हिं. तबला + इया] तबलची ।

तबादला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) चीजों का बदला जाना । (२) कर्मचारी का एक स्थान से दूसरे को भेजा जाना ।

तबाह—वि. [फा.] नष्ट, बरबाद चौपट ।

तबाही—संज्ञा स्त्री. [फा.] नाश, बरबादी ।

तबिअत, तबियत, तबीअत—संज्ञा स्त्री. [अ. तबीअत] (१) मन, चित्त, जी ।

मुहा.—तबियत आना—(१) प्रेम होना । (२) पाने की इच्छा होना । तबियत उछलना—जी

घबराना। तबियत फड़कना (फड़क उठना)—(१) जी में उमंग और उत्साह होना। (२) जी खुश होना। तबियत फिरना—जी हटना। तबियत भरना—(१) संतोष होना। (२) संतोष करना। (३) इच्छा या उमंग न रहना। तबियत लगना—(१) जी में इच्छा या उमंग पैदा होना, प्रेम होना। (२) ध्यान बना रहना। तबियत लगाना—(१) मन को किसी काम में लगाना। (२) प्रेम करना। तबियत होना—जी चाहना, इच्छा होना।

(२) बुद्धि, समझ, भाव।

मुहा.—तबियत पर जोर डालना (लड़ाना)—विशेष ध्यान देना, मन लगाना।

तबियतदार—वि. [अ. तबिअत + फा. दार] (१) समझदार, बुद्धिमान। (२) रसिक, भावुक।

तबै—अव्य. सवि. [सं. तदा, हिं. तब] उस समय ही, उसी वक्त। उ.—उचित अपनी कृपा करिहौ, तबै तौ बनि आइ—१-१२६।

तभी—अव्य. [हिं. तब + ही] (१) उसी समय, उसी घड़ी। (२) इसी कारण, इसी वजह से।

तमचा—संज्ञा पु. [फा.] छोटी बंदूक, पिस्तौल।

तम—संज्ञा पु. [सं. तमः, तमस्] (१) अंधकार, अँधेरा। (२) तमाल वृक्ष। (३) राहु। (४) पाप। (५) क्रोध। (६) अज्ञान। (७) कालिख। (८) नरक। (९) मोह। (१०) अविद्या। (११) प्रकृति का एक गुण जिसकी अधिकता होने पर काम, क्रोध, हिंसा आदि बातों में प्राणी अधिक रुचि लेने लगता है।

तमक—संज्ञा स्त्री. [हिं. तमकना] (१) जोश, आवेश। (२) तेजी, तीव्रता। (३) क्रोध, गुस्सा।

तमकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) क्रोध या आवेश में आना। (२) क्रोध से लाल होना। (३) चमकना।

तमकि—क्रि. अ. [हिं. तमकना] क्रोध या आवेश में भरकर। उ.—देखि नृप तमकि हरि चमकि तहाँई गये, दमकि लीन्हौं गिरह बाज जैसे—२६१५।

तमके—क्रि. अ [हिं. तमकना] क्रोध में भर गये। उ.—सूरदास यह सुनि घन तमके—१०४६।

तमगा—संज्ञा पु. [तु. तमगा] पदक।

तमगुन—संज्ञा पु [सं. तमोगुण] 'तम' नामक प्रकृति का गुण जिससे काम, क्रोध, हिंसा आदि बढ़ जाते हैं।

तमचुर, तमचोर—संज्ञा पुं. [सं. ताम्रचूड़] मुर्गा, कुक्कुट। उ. (क) आजु भोर तमचुर के रोल। गोकुल में आनंद होत है मंगल-धुनि महराने टोल—१०६४। (ख) जागिये, ब्रजराज कुँवर, कमल-कुसुम फूले। ... । तमचुर खग-रोर सुनहु, बोलत बन राइ—१०२०२। (ग) नखत गगन, तमचुरनि पुकार्यौ—१०-२३३।

तमतमाना—क्रि. अ. [सं. ताम्र] (१) धूप या क्रोध से चेहरा लाल होना। (२) चमकना।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री [हिं. तमतमाना] (१) धूप या क्रोध से चेहरा लाल होने का भाव। (२) चमकने का भाव।

तमता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) तम का भाव। (२) अँधेरा। (३) कालिमा। उ.—बोले तमचुर चारों यामको गजर मार्यौ पौन भयौ सीतल तम तमता गई—१६०८।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री [अ] कामना, इच्छा।

तमयी—संज्ञा स्त्री. [सं. तम+मयी] रात।

तमर—संज्ञा पु [सं तम] अँधेरा, अंधकार।

तमस—संज्ञा पुं [सं] (१) अंधकार। (२) अज्ञान का अंधकार। (३)पाप। (४)कूप कुआँ। (५)तमसा नदी।

तमसा—संज्ञा स्त्री. [सं] एक प्रसिद्ध नदी।

तमस्वनी, तमस्विनी—संज्ञा स्त्री [सं] रात।

तमस्वी—वि [सं तमस्विन्] अंधकारपूर्ण।

तमहर—संज्ञा पु. [सं. तमोहर] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य। (३) अग्नि, आग। (४) ज्ञान।

तमहाया—वि. [सं. तम+हाया (प्रत्य)] (१) अंधकार से युक्त। (२) तमोगुण युक्त।

तमा—संज्ञा पुं [सं तमाः, तमस्] राहु।

संज्ञा स्त्री.—रात, रात्रि।

संज्ञा स्त्री. [अ. तमअ](१) लोभ। (२) इच्छा।

तमाइ, तमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तम] अंधकार, कालिमा।

संज्ञा स्त्री [अ. तमअ] (१) लालच। (२) चाह।

तमाकू, तमाखू—संज्ञा पुं. [पुर्त. टबैको] एक पौधा जिसके पत्ते विषाक्त और नशीले होते हैं।

तमाचा—संज्ञा पुं. [फा. तवान्चः] थप्पड़।

तमाचारी—संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस, निशिचर।

तमाम—वि. [अ.] (१) कुल, सारा। (२) समाप्त।

मुहा.—(काम) तमाम होना—समाप्त होना, मर जाना।

तमारि—संज्ञा पुं. [हि. तम+अरि] सूर्य, रवि।

संज्ञा स्त्री. [हि. तँवार] सिर का चक्कर, घुमटा।

तमाल—संज्ञा पुं [सं.] (१) पौधा जिसके पत्ते गहरे हरे और फूल लाल रंग के होते हैं। उ.—सुरसरी कैं तीर मानौ लता स्याम तमाल-१-३०७। (२) तिलक का पेड। (३) एक तरह की तलवार।

तमाशगीर, तमाशबीन—संज्ञा पुं. [अ. तमाशाः+फा. गीर, बीन] (१) तमाशा देखनेवाला। (२) विलासी।

तमशा, तमासा, तमासौ—संज्ञा पु [अ. तमाशा] अद्भुत व्यापार, मनोरंजक दृश्य या खेल, अनोखी बात। उ.—मैया बहुत बुरौ बलदाऊ। कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ—४८१।

तमाशाई—संज्ञा पुं. [अ.] तमाशा देखनेवाला।

तमि—संज्ञा पुं [सं.](१) रात। (२) मोह, ममता।

तमिनाथ—संज्ञा पुं [सं.] चंद्रमा।

तमिस्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) अंधकार। (२) क्रोध।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री. [स.] अँधेरी रात।

तमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, रात्रि।

तमीचर—संज्ञा पु. [सं.] निशाचर, राक्षस।

तमीज—संज्ञा स्त्री. [अ. तमीज़] (१) विवक, बुद्धि। (२) जानकारी, परिचय। (३) अदब, कायदा।

तमीपति—संज्ञा पुं. [सं. तमी+पति] चंद्रमा।

तमीश—संज्ञा पुं. [सं. तमी+ईश] चंद्रमा।

तमु—संज्ञा पुं. [सं. तम] अंधकार, तम।

तमूरा—संज्ञा पुं. [हि. तंबूरा] तानपूरा नामक बाजा।

तमूल—संज्ञा पुं. [सं. ताबूल] पान।

तमोंध—वि. [सं. तम+अंध] (१) अज्ञानी। (२) क्रोधी।

तमोगुण, तमोगुन—संज्ञा पुं. [सं. तमस्] प्रकृति का 'तम' नामक गुण जिसकी अधिकता होने पर प्राणी क्रोधी, कामी, हिंसक आदि हो जाता है।

तमोगुणी, तमोगुनी—वि. [सं. तमोगुणी] अधम वृत्तिवाला, तामस प्रकृति का। उ.—तमोगुनी चाहै या भाइ। मम बैरी क्यौं हूँ मरि जाइ' ••• तमोगुनी रिपु मरिवौ चाहै—३-१३।

तमोघ्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्नि। (२) चंद्रमा। (३) सूर्य। (४) विष्णु। (५) ज्ञान। (६) दीपक।

वि.—जिससे अंधकार का नाश हो।

तमोमय—वि. [सं.] (१) जिसमें तमोगुण की अधिकता हो। (२) अज्ञानी। (३) क्रोधी।

संज्ञा पुं. [सं.] राहु।

तमोर—संज्ञा पुं. [सं. तांबूल] पान, पान का बीडा। उ.—(क) थार तमोर दूब दधि रोचन हरषि जसोदा लाई। (ख) कंचन थार दूब दधि रोचन सजि तमोर लै आई—१००१। (ग) अंजन अधर ललाट महाउर, नैन तमोर खवाए-१९७३। (घ) सोभित पीत बसन दोउ राते अधरन अंजन नैन तमोर—२०३१।

तमोरि—संज्ञा पु. [सं.] सूर्य।

तमोरी—संज्ञा पुं. [हि. तँबोली] पान बेचनेवाला।

तमोल—संज्ञा पुं. [सं. ताबूल, हि तंबोल] पान, पान का बीड़ा। उ.—(क) गोकुल मे आंनद होत है, मंगल-धुनि महराने टोल। फूले फिरत नंद अति सुख भयौ, हरषि मँगावत फूल-तमोल—१०-९४। (ख) तव तमोल रचि तुमहि खवावौं। सूरदास पनवारौ पावौं—१०-२११। (ग) तज्यो तेल तमोल भूषन अंग बसन मलीन—३४५१।

तमोलन, तमोलनि, तमोलिन—संज्ञा स्त्री. [हि. तँबोलिन] तंबोली की स्त्री। उ.—तमोलनि ह्वै जाउँ निरखि नैनन सुख देउँ—१७६१।

तमोली—संज्ञा पुं [हि. तँबोली] पान बेचनेवाला।

तमोहर, तमोहरि—संज्ञा पु. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य। (३) अग्नि, आग। (४) ज्ञान।

वि.—(१) अंधकार दूर करनेवाला। (२) अज्ञान दूर करनेवाला। (३) मोह दूर करनेवाला।

तय—वि. [अ.] (१) समाप्त। (२) निश्चित। (३) निर्णीत।

तयना—क्रि. अ. [सं. तपन] (१) तपना, बहुत गरम होना। (२) दुखी या पीड़ित होना।

तयार—वि. [हिं. तैयार] (१) ठीक। (२) प्रस्तुत। (३) उद्यत, मुस्तैद। (४) मोटा-ताजा।

तयारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तैयारी] (१) ठीक होने का भाव। (२) तत्परता। (३) मोटाई। (४) धूमधाम। (५) सजावट।

तयौ—क्रि अ. भूत. [हिं. तयना] संतप्त हुआ, दुखी हुआ, पीड़ित हुआ। उ.—(क) भरत मोह बस ताकैं भयौ। सब दिन बिरह-अगिनि अति तयौ—५-३। (ख) पै इंद्रहि संतोष न भयौ। ब्राह्मन-हत्या कैं दुख तयौ—६-५। (ग) ताकैं बिरह नृपति बहु तयौ। नगन पगन ता पाछैं धयौ—९-२।

तरंग—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लहर, हिलोर। उ.—(क) अंग-अंग-प्रति-छबि तरंग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै—१-६९। (ख) गयीं ब्रजनारि जमुना तीर देखि लहरि तरंग हरषीं रहति नहिं मन धीर—१२६१। (ग) या संसार समुद्र मोह-जल, तृष्ना-तरंग उठति अति भारी—१-२१२। (२) चित्त की उमंग, मन की मौज। उ.—सदा ब्रज कौ ध्यान मेरे रास-रंग-तरंग—३०१०। (३) संगीत में स्वर का उतार-चढ़ाव, स्वरलहरी। (४) वस्त्र, कपड़ा।

तरंगक—संज्ञा पु. [सं.] (१) पानी की लहर, हिलोर। (२) स्वर का उतार-चढ़ाव, स्वरलहरी।

तरंगवती, तरंगालि—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी।

तरंगिणी, तरंगिनि, तरंगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तरंगिणी] नदी, सरिता। उ.—मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यौ समायौ—१-६७।

वि.—जिसमें तरंगें हों, तरंगवाली।

तरंगित—वि. [सं.] लहराता हुआ, हिलोरें लेता हुआ।

तरंगी—वि. [सं. तरंगिन्] (१) जिसमें लहरें हों। (२) मनमौजी, जैसा मन में आवे वैसा करनेवाला।

तर—वि. [फ़ा.] (१) भीगा हुआ, गीला। (२) शीतल, ठंडा। (३) जो सूखा न हो, हरा। (४) मालदार।

संज्ञा पु. [सं.] (१) पार करने की क्रिया। (२) आग। (३) वृक्ष। (४) नाव की उतराई।

प्रत्य. [सं.] एक प्रत्यय जो दो चीजों में एक की विशेषता सूचित करने के लिए जोड़ा जाता है।

क्रि. वि. [सं. तल] तले, नीचे। उ.—(क) और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनी साज—१-९६। (ख) ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट—४-१०६। (ग) कामधेनु चिंतामनि दीन्हौं कलपवृच्छ-तर छाहैं—१-१६४। (घ) यहौ तौ परवत चाँपि चरन-तर नीर-खार मैं गारौं—९-१०७। (ङ) कर सिर तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सोभाँ—१०६५। (च) मानौ मनि-धर मनि उगिलि छाँड़्यौ फन तर रहत दुराए—६७५। (छ) मनौ जलधर तर बाल कलानिधि कबहुँ प्रगटि दुरि देत दरस—२१०८।

संज्ञा पु. [सं. तल] नीचे का भाग, तल।

तरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तारा] नक्षत्र, तारा।

तरक—संज्ञा स्त्री. [सं. तड़कना] तड़कने की क्रिया।

संज्ञा पु. [सं. तर्क] (१) सोच-विचार, उधेड़-बुन। (२) चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुरता की बात, चतुराई का वचन। उ.—(क) सुनत हँसि चले हरि सकुचि भारी। वह कह्यौ आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि करै, हम समुझि डारी—२१५५। (ख) प्यारी को मुख धोइ कै पट पोंछि सँवार्यौ। तरक बात बहुतइ कही कछु सुधि न सँवार्यौ। (३) व्यंग्य, ताना। उ.—ते सब तरक बोलिहैं मोसौं तासौं बहुत डेराऊँ।

संज्ञा पु. [सं. तर्क=सोच विचार] (१) बाधा, अड़चन। (२) भूल-चूक, क्रम का उलट-फेर।

तरकना—क्रि. अ. [हिं. तड़कना] (१) टूटना, चटकना। (२) जोर का शब्द करना। (३) कूदना, तड़पना।

क्रि. अ. [सं. तर्क] सोच-विचार करना, तर्क-वितर्क करना, अनुमानना।

तरकश, तरकस—संज्ञा पु. [फ़ा.] तीर रखने का चोंगा, भाथा, तूणीर।

तरकसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तरकश] छोटा तरकश।

तरका—संज्ञा पु. [हिं. तड़का] (१) सवेरा। (२) छौंक।

तरकारी—संज्ञा स्त्री. [फा. तरः = सब्ज़ी + कारी] शाक, भाजी, सब्जी।

तरकि—क्रि. अ. [हिं. तड़कना (अनु.)] (१) भड़ककर, उछल कूद कर। उ.—रवि मग तज्यौ, तरकि ताके हय उत्पथ लागे जान—९-२६। (२) तड़तड़ शब्द करके, तड़तड़ाकर। उ. झहरात वन-पात गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाई—५६४। (३) फट कर, मसक कर। उ.—सुनत सु वचन सखी के मुख ते पुलकित प्रेम तरकि गई चोली—१०उ. १०६।

तरकी—संज्ञा स्त्री. [सं० ताडकी] कान का एक गहना।

तरकीब—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) संयोग, मिलन। (२) बनावट, रचना। (३) युक्ति, उपाय। (४) रचना-प्रणाली, तौर-तरीका।

तरकुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाल+कुल] कान की तरकी।

तरक्की—संज्ञा स्त्री. [अ.] वृद्धि, बढ़ती, उन्नति।

तरखा—संज्ञा पु. [स. तरंग] पानी का तेज बहाव।

तरछाना—क्रि. अ. [हिं. तिरछा] तिरछी-आँख से देखकर इशारा करना।

तरज—संज्ञा पुं. [अ. तर्ज] (१) प्रकार, किस्म, तरह। (२) रीति, ढंग, ढब। (३) रचना-प्रणाली, तौर-तरीका।

तरजना—क्रि. अ. [सं. तर्जन] (१) डाँटना-डपटना, ताड़ना देना। (२) भला-बुरा कहना, बिगड़ना।

तरजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली।

संज्ञा स्त्री. [सं. तर्जन] भय, डर। उ.—अहो रे बिहगम बनवासी। तेरे बोल तरजनी बाढ़ति स्रवन सुनत नींदऊ नासी—१८४३।

तरजुमा—संज्ञा पुं. [अ.] अनुवाद, भाषांतर।

तरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नदी पार करना। (२) तख्ता, बेड़ा। (३) निस्तार, उद्धार। (४) स्वर्ग।

तरणि, तरणी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मदार। (३) किरण।

संज्ञा स्त्री. [सं. तरणी] नाव, नौका।

तरणिजा, तरणितनया, तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य-पुत्री जमुना नदी।

तरत—क्रि. अ. [हिं. तरना] तैरता है, (पानी पर) उतराता है। उ.—रामचंद्र-परताप दसौ दिसि, जल पर तरत पखानौ—१०-१२१।

तरतरात—क्रि. अ. [हिं. तड़तड़ाना] तड़तड़ शब्द करके। उ.—चहरात तरतरात गररात हहरात पर-रात झहरात माथ नाये।

तरतराना—क्रि. अ. [अनु.] तड़तड़ शब्द करना।

तरतीब—संज्ञा स्त्री. [अ.] क्रम, सिलसिला।

तरद्दुद—संज्ञा पुं. [अ.] सोच, चिंता।

तरन—संज्ञा स्त्री [सं. तरण] तरने के लिए, पार जाने के लिए। उ. (क) पतितपावन जानि सरन आयौ। उदधि-संसार सुभ नाम-नौका तरन अटल स्थान निजु निगम गायौ—१-११९। (ख) सूर-प्रभु कौ सुजस गावत, नाम-नौका तरन—१-२०२।

संज्ञा पु. [हिं. तरौना] (१) कान का तरकी नामक गहना। (२) कान का कर्णफूल नामक गहना।

तरनतार—संज्ञा पु. [सं. तरण] मोक्ष, मुक्ति।

तरनतारन—संज्ञा पु. [स. तरण. हि. तरना] (१) उद्धार, मोक्ष। (२) उद्धार करनेवाला।

तरना—क्रि स. [सं. तरण] पार करना।

क्रि. अ.—उद्धार होना।

क्रि. स. [हिं. तलना] घी-तेल में पकाना।

तरनि—संज्ञा पु. [स. तरणि] (१) सूर्य। उ.—दई असीस तरनि-सन्मुख ह्वै, चिरजीवौ दोउ भ्राता—९-८७। (२) मदार। (३) किरण। उ.—तिनकी नख सोभा देखत हौं तरनि-नाथ हूँ की मति भोरी—२३६३।

तरनिजा, तरनितनूजा—संज्ञा स्त्री. [सं. तरणि + जा, तनूजा] सूर्य की पुत्री जमुना नदी।

तरनि-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं. तरणि + सुता] सूर्य की पुत्री, यमुना नदी। उ.—जे तप व्रत किये तरनि-सुता-तट मन गहि पीठि न दीन्हौ—६५६।

तरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तरणी] नाव, नौका। उ.—ब्रज-जुवती सब देखि थकित भई, सुंदरता की सरनी। चिरजीवहु जसुदा कौ नंदन, सूरदास कौं तरनी—१०-१२३।

तरप—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़प] (१) तड़पने की क्रिया या भाव। (२) चमक-दमक।

तरपत—संज्ञा पु. [सं. तृप्ति] (१) आराम। (२) सुबीता।
क्रि. अ. [हिं. तड़पना] (१) छटपटाता है। (२) गरजता है।

तरपन—संज्ञा स्त्री. [स. तड़पन] तड़पने का भाव।
संज्ञा पु. [स. तर्पण] (१) तृप्त या संतुष्ट करना। (२) तपण करना।

तरपना—क्रि. अ. [हिं. तड़पना] (१) छटपटाना। (२) गरजना।

तरपर—क्रि. वि. [हिं. तर + पर] (१) ऊपर-नीचे। (२) एक के बाद दूसरा।

तरफ—संज्ञा स्त्री. [अ. तरफ] (१) ओर, दिशा। (२) किनारा, बगल। (३) पक्ष।

तरफत—क्रि. अ. [हिं तड़पना] तड़पता है, छटपटाता है। उ.—(क) चमकत, तरफत स्रानित मैं तन, नाहिं परत निहारौ—६-१४६। (ख) ज्यौं जल-हीन मीन तरफत ऐस विकल प्रान हमारो—२७३२।

तरफदार—वि. [हि. तरफ + फा. दार] पक्षपाती।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तरफदार] पक्षपात।

तरफरात—क्रि. अ. [हिं. तड़फड़ाना] छटपटाते हैं, तड़पते हैं। उ.—(नैन) स्याम सिंधु से बिछुरि परे हैं तरफरात ज्यौं मीन—२७६७।

तरफराना—क्रि. अ. [हि. तड़फड़ाना] छटपटाना।

तरबतर—वि. [फा] भीगा हुआ, खूब तर।

तरबूज, तरबूजा—संज्ञा पुं. [फा. तर्बुज, हिं. तरबूज] तरबूज। उ.—सफरी, सेव, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम—१०-२१२।

तरबूजिया—वि. [हिं. तरबूज] गहरे हरे रंग का।

तरमीम—संज्ञा स्त्री. [अ] संशोधन, सुधार।

तरराना—क्रि. अ. [अनु.] ऐंठना, ऐंड़ाना।

तरल—संज्ञा पु. [सं.] (१) हार के बीच का मणि। (२) हार। (३) हीरा। (४) लोहा। (५) तल, पेंदा। (६) घोड़ा।
वि. [सं.] (१) हिलता-डुलता, चलायमान, चल, चंचल। उ.—सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही—१०-२४। (२) अस्थिर, क्षण-भंगुर। (३) द्रव, बहनेवाला। (४) चमकदार, कांतिवान्। (५) खोखला, पोला।

तरलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंचलता। द्रवत्व।

तरलभाव—संज्ञा पु. [सं.] (१) पतलापन। (२) चंचलता।

तरलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. तरल + आई (प्रत्य.)] (१) चंचलता, चपलता। (२) बहने का भाव।

तरवन—संज्ञा पु [हिं. ताड़ + बनना] (१) तरकी। (२) कर्णफूल।

तरवर—संज्ञा पु. [सं. तरुवर] बड़ा पेड़, वृक्ष। उ.—फूलो फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी अँग अँग, फूले फरे तरवर आनंद लहर के—१०-३४।

तरवरिया, तरवरिहा. तरवारी—संज्ञा पु. [हि. तलवार+वार] (१) तलवार चलानेवाला। (२) तलवार चलाने में दक्ष या कुशल।

तरवा—संज्ञा पु. [हिं. तलवा] पैर का तलुआ।

तरवाना—क्रि. स. [हिं तारना] तारने की प्रेरणा देना।

तरवार, तरवारि—संज्ञा पुं. [सं.] खड्ग का एक भेद, तलवार। उ.—जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप, संग सजी अघ-सैनी। जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी—६-११।

तरस—संज्ञा पुं. [सं. त्रस = डरना] दया, रहम। उ.—सूर सखी बूझेहु न बोलते सो कहि धौं तोहि को न तरस—२००८।

तरसत—क्रि. अ. [हिं. तरसना] दुखी है आकुल है, तरसता है। उ.—(क) जसोदा कान्हहु तैं दधि प्यारौ। डारि देहि कर मथत मथानी, तरसत नंद-दुलारौ—३७८। (ख) हरि दरसन कों तरसत अँखियाँ—२७६६। (ग) तरसत रहे बसुदेव देवकी नहिं हितु मात-पिता को—३२४६।

तरसना—क्रि. अ. [सं. तर्षण = अभिलाषा] किसी चीज को पाने के लिए बेचैन या आकुल होना।

तरसनि—संज्ञा स्त्री. [हि तरसना] तरसने की क्रिया, (किसी वस्तु आदि के) अभाव की बेचैनी। उ.—कंचन-मनि-जटि-थार, रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिवे की तरसनि—१०-६६।

तरसाना—क्रि. स. [हिं. तरसना] (१) किसी चीज के अभाव का दुख या कष्ट देना। (२) बेकार ललचाना।

तरसायौ—क्रि. स. [हिं. तरसाना] पीड़ित किया, कुम्हला दिया। उ.—कान्ह-वदन अतिहीं कुम्हिलायौ। मानौ कमलहिं हिम तरसायौ—३६१।

तरसावति—क्रि. स. [हिं. तरसाना] दुख देती है, पीड़ित करती है। उ.—तब तैं बांधे ऊखल आनि। बाल-मुकुदहिं कत तरसावति, अति कोमल अग जानि—३६५।

तरसै—क्रि. स. [हिं तरसना] (१) बेचैन होता है, घबराता है, दुखी होता है। उ.—देखत सुतप्त जल तरसै। जसुदा के पाइनि परसै। (२) अभाव के कारण दुखी होता है। उ.—बिनु देखे ताके मन तरसै—१० उ. ११५।

तरसौहाँ—वि. [हिं. तरसना] तरसनेवाला।

तरह—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) भांति, प्रकार। (२) ढांचा, बनावट, रूप-रंग। (३) ढब, प्रणाली। (४) युक्ति।

मुहा.—तरह देना—(१) ख्याल न करना, जाने देना। (२) टालटूल करना।

(५) हाल, दशा, अवस्था।

तरहदार—वि. [फा.] (१) सुंदर बनावट का, अच्छी चाल का। (२) शौकीन, सज-धजवाला।

तरहदारी—वि. [फा] सजावट, सजधज।

तरहर, तरहुँड़—क्रि. वि [हिं. तर+हर] तले, नीचे।

वि.—(१) नीचे का, निचला। (२) बुरा, निकृष्ट।

तरहरना—क्रि स. [हिं तरह] ध्यान न देना, त्याग देना, तरह दे जाना, छोड़ देना।

तरहरि—क्रि. स. [हिं. तरहरना] त्यागकर, छोड़कर। उ.—चरन प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तरहरि—३ ३१२।

तरहेल—वि. [हिं. तर+हेर, हेल (प्रत्य.)] (१) अधीन। (२) जो वश में हो, पराजित।

क्रि. वि.—नीचे, तले।

तरा—संज्ञा पुं. [देश.] पटुआ, पटसन।

संज्ञा पु. [हिं. तला] नीचे का भाग, तलवा।

तराई—संज्ञा स्त्री, [हिं. तर=नीचे] (१) पहाड़ के नीचे की भूमि। (२) पहाड़ की घाटी।

संज्ञा स्त्री. [स. तारा] नक्षत्र, तारा।

तराकि—संज्ञा पु. [हिं. तड़ाक (अनु.)] तड़ाके का शब्द, तड़ाक से किसी चीज के टूटने का शब्द। उ.—झरहरात बन-पात, गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाइ—५६४।

तराजू—संज्ञा स्त्री., पुं. [फा.] तौलने की तुला।

तराटक—संज्ञा पु [सं. त्राटिका] योग का एक साधन।

तराना—संज्ञा पु [फा] अच्छा गीत।

तराप—संज्ञा स्त्री. [अनु.] तड़ाक का शब्द।

तरापा—संज्ञा पु. [अनु.] हाहाकार, कोहराम।

तराबोर—वि. [फा. तर+हिं. बोरना] खूब भीगा हुआ।

तरायला—वि. [हिं. तरल] (१) तरल। (२) चचल।

तरारा—संज्ञा पुं. [हिं तरतर से अनु.] (१) छलांग। (२) पानी की अटूट धार।

तरावट—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. तर+आवट (प्रत्य.)] (१) गीलापन, नमी। (२) ठंडक, शीतलता। (३) शरीर की गर्मी शांत करनेवाली चीज। (४) तरमाल, स्निग्ध या पुष्टिकारक भोजन।

तराश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) काटने का ढंग। (२) काट-छांट। (३) ढंग, तर्ज।

तराशना—क्रि. स. [फ़ा.] काटना, कुतरना।

तरास—संज्ञा पुं. [सं. त्रास] (१) डर। (२) कष्ट।

तरासना—क्रि. स. [सं. त्रसन] त्रास या कष्ट देना।

तराहि—अव्य. [स. त्राहि] रक्षा करो, बचाओ।

तराहीं—क्रि. वि. [हिं. तले] तले, नीचे।

तरि—संज्ञा स्त्री. [सं.] नौका, नाव।

क्रि. स. [हिं. तरना] पार होकर।

प्र.—गये तरि—तर गये, पार हो गये। उ.—गये तरि लै नाम केते पतित हरि-पुर-धरन—१-३०८। तरि सक्यौ—पार कर सका, पार जा सका। उ.—मन-कृत-दोष अथाह तरगिनि, तरि नहिं सक्यो समायौ—१-६७।

तरिक—संज्ञा पुं [सं.] मल्लाह, मांझी।

तरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाव, नौका।

संज्ञा स्त्री. [स. तड़ित] बिजली।

तरिकौ—संज्ञा पुं. [हिं. तरकी] कान का तरकी या तरौना नामक गहना। उ.—तैं कत तोरयौ हार

नौसरि कौ मोती बगरि रहे सब वन में गयो कान को तरिको—१०५३।

तरिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तर्जनी उँगली।

संज्ञा स्त्री. [सं. तडित्] बिजली।

तरिया—संज्ञा पुं. [हिं. तरना] तैरनेवाला।

तरियाना—क्रि. स. [हिं. तर, तरे=नीचे] (१) नीचे डाल देना। (२) छिपा देना, ढाँक देना।

क्रि. अ.—नीचे या तले बैठ जाना।

तरिवन, तरिवना—संज्ञा पुं. [हिं. ताड़] (१) कान का तरकी नामक गहना। उ.—(क) तारवन स्रवन फाँसि गर डारति कैसेहू नहीं सकत निरवारि—११६४। (ख) तरिवन स्रवन नैन दोउ आँजति नासा बेसरि साजत—२०८०। (ग) पीक कपालन तरिवन के ढिग झलमलात मोतिन छबि जोए—२०१२।(२) कर्णफूल नामक गहना।

तरिवर—संज्ञा पुं. [सं. तरुवर] (१) श्रेष्ठ वृक्ष। (२) कल्पवृक्ष।

तरिहँत—क्रि. वि. [हिं. तर+हत] नीचे, तले।

तरिहै—क्रि. अ. [हिं. तरना] तरेगा, मुक्त होगा, सद्गति को प्राप्त होगा। उ.—महादेव-हित जो तप करिहै। सोऊ भव-जल तैं नहिं तरिहै-४५।

तरी—क्रि अ. [हिं तरना] (१) पानी के ऊपर उतरायी। उ—सिला तरी जल माहिं सेत बाँधे, बलि वह चरन अहिल्या तारी—१-३४। (२) भव-सागर के पार हो गयी, मुक्त हो गयी। उ.—गौतम की नारि तरी नेकु परस लाता—१-१२३।

संज्ञा स्त्री [सं.] (१) नाव, नौका। (२) पिटारी। (३) धुआँ। (४) कपड़े का छोर, दामन।

संज्ञा स्त्री. [फा. तर] (१) गीलापन। (२) ठंडक, शीतलता। (३) तराई, तरहटी। (४) वह नीचा स्थान जहाँ पानी इकट्ठा रहे।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तर=नीचे] (१) जूते का तला। (२) पैर का तलवा। (३) तलछट, तरौंछ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ताड़] (१) तरकी। (२) कर्णफूल।

तरीका—संज्ञा पुं. [अ. तरीका] (१) ढंग, विधि, प्रकार। (२) चाल-व्यवहार। (३) युक्ति, उपाय।

तरीनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. तर=तले] पहाड़ के नीचे का भाग, तलहटी।

तरु—संज्ञा पुं. [सं.] वृक्ष, पेड़। उ.—तरु में बीज कि बीज माँह तरु, दुहुँ में एक न न्यारी री—१०-१३५।

तरुण, तरुन—वि. [सं. तरुण] (१) युवा, युवक। उ.—देख्यो भरत तरुन अति सुंदर—५-३१। (२) नया, नतन।

तरुणई, तरुणाई, तरुनई, तरुनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. तरुण+आई (प्रत्य.)] युवावस्था, जवानी। उ.—(क) देखहु री ये भाव कन्हाइ। कहाँ गवा तव की तरुनाई—७६६। (ख) तरुनाई तनु-आवन दीजे कित जिय होत बिहाला—१०३८।

तरुणाना, तरुनाना—क्रि. अ. [सं. तरुण + अ.ना (प्रत्य.] युवावस्था में प्रवेश करना।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] तरुण होने की दशा या भाव, तारुण्य, यौवन।

तरुणि, तरुणी—संज्ञा स्त्री [सं.] युवती।

तरुनापो—संज्ञा पुं [सं तरुण+आपा (प्रत्य.)] युवावस्था या जवानी में। उ.—बालापन खेलत ही खोयौ तरुनापै गरुवानौ।

तरुनापौ—संज्ञा पुं. [सं. तरुण] युवावस्था, जवानी। उ.—लघु सुत नृपति-बुढ़ापौ लयौ। अपनौ तरुनापौ तिहिं दयौ—९-१७४।

तरुनि, तरुनी—वि. स्त्री. [सं तरुणी] युवती, जवान (स्त्री)। उ—(क) लाल कुँअर मेरो कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर—१०-३१०। (ख) मैं तो वृद्ध भयो वह तरुनी सदा वयस इकसारी—१-१७३। (ग) इकटक रही निहारि कै तरुनी मन भाए—२५७९।

तरुबाँही—संज्ञा स्त्री [सं. तरु+हिं.+बाँह] पेड़ की शाखा।

तरुराज—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।

तरुवर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रेष्ठ वृक्ष। कल्प वृक्ष।

तरूट—संज्ञा पुं. [सं.] कमल की जड़, भसींड़।

तरेंदा—संज्ञा पुं. [सं. तरंड] (१) पानी का बेड़ा। (२) वह चीज जिसके सहारे पार हो सकें।

तरे—क्रि. वि. [सं. तल] नीचे, तले।

क्रि. स. [हिं. तलना] घी-तेल में पकाये।

क्रि. अ. [हिं. तरना] **तर गये, मुक्त हो गये।** उ.—ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माँहि तरे—१-१९८।

तरेटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तर] **तराई, तलहटी।**

तरेरना—क्रि. स. [सं. तर्ज=डाँटना + हिं. हेरना] **आँख के इशारे से असहमति या असंतोष प्रकट करना।**

तरैं—क्रि वि. [हिं तले] **नीचे, तले।** उ.—(क) सीत घाम घन विपति बहुत बिधि भार तरैं मरि जैहौ--१-३३१। (ख) लोह तरैं, मधि रूपा लायौ-७-७। (ग) कठुला कठ चिबुक तरैं मुख दसन विराजैं—१०-१७४।

क्रि. अ. [हिं. तरना] **तर जायें, मुक्त हो जायें।**

तरैयाँ—संज्ञा स्त्री [सं. तारा] **तारे, नक्षत्र।** उ.—तुम चाहति हौ गगन-तरैयाँ, माँगैं कैसैं पावहु—७७३।

तरै—क्रि. अ. [हिं. तरना] **भवसागर के पार हो जाय, सद्‌गति प्राप्त कर ले, मुक्त हो जाय।** उ.—सूरज-दास स्याम सेए पैं दुस्तर पार तरै—१-८२।

तरैआ, तरैया—सज्ञा पुं. [हिं. तारा] **तारा, नक्षत्र।** उ.—किन अकास तें तोरि तरैआ आनि धरी घर माई—३३४३।

तरोवर—संज्ञा पु. [स. तरुवर] **श्रेष्ठ वृक्ष, कल्पवृक्ष।** उ.—कल्प तरोवर तर वंसीबट राधा रतिगृह धाम--१७२४।

तरौं—क्रि. अ. [हिं. तरना] **मुक्त होऊँ, उद्धार पाऊँ, सद्‌गति प्राप्त करूँ।** उ.—काकैं बल हौं तरौं गुसाईं, कछु न भक्ति मो माँ—१-१५१।

तरौंछ—सज्ञा स्त्री. [हिं. तल+छट] **तल का मैल।**

तरौंधी—वि. स्त्री. [हिं. तिरछा] **तिरछी, टेढ़ी।** उ.—कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी, सकी न वचन सँभारि। तृन-अंतर दै दृष्टि तरौंधी, दियौ नयन जल ढारि—९-७९।

तरौंस—सज्ञा पु. [हिं. तर+औंस (प्रत्य.)] **तट, किनारा।**

तरौन, तरौना—सज्ञा पु. [हि. तरौना=ताड़+वनना] **तरकी या कर्णफूल नाम का आभूषण।** उ.—सुभ स्रवननि तरल तरौन, वेनी सिथिल गुही—१० २४।

तर्क—सज्ञा पुं. [सं] (१) **विवेचना, दलील, बहस।** (२) **चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात।** उ.—प्यारी को मुख धोइकै पट पोंछि सँवारयौ। तर्क बात बहुतै कही कछु सुधि न सँभारयौ। (३) **व्यंग्य, ताना।** उ.—ते सब तर्क बोलिहैं मोकौं तासौं बहुत डेराऊँ।

संज्ञा पुं. [अ.] **त्याग, छोड़ने का भाव।**

तर्कक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **तर्क करनेवाला।** (२) **याचक, माँगनेवाला, मँगता।**

तर्कणा, तर्कना—संज्ञा स्त्री. [सं. तर्कणा] (१) **विवेचना, सोच-विचार, ऊहा।** (२) **दलील, बहस।**

तर्कना—क्रि. अ. [सं. तर्क] **तर्क करना।**

तर्क-वितर्क—संज्ञा पु [सं.] (१) **सोचविचार, ऊहापोह।** (२) **वाद-विवाद, बहस।**

तर्कश—संज्ञा पु. [फा.] **तीर रखने का चोगा, तूणीर।**

तर्कसी—संज्ञा स्त्री. [फा तरकश] **छोटा तरकश।**

तर्की—संज्ञा पु. [स तर्किन] **तर्क करनेवाली।**

तर्कु—संज्ञा पु. [सं.] **तकला, टेकुआ।**

तर्कुटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **तकला, टेकुआ,**

तर्क्य—वि. [स.] **विचार के योग्य।**

तर्ज—संज्ञा पु. स्त्री. [अ.] (१) **प्रकार, किस्म।** (२) **रीति, ढग।** (३) **रचना-प्रणाली, बनावट।**

तर्जन—संज्ञा पुं. [सं. तर्जन] (१) **धमकाना।** (२) **क्रोध।** (३) **डाँट-डपट, तिरस्कार, फटकार।**

तर्जना—क्रि. अ [सं. तर्जन] **डाँटना, धमकाना।**

तर्जनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तर्जनी] **अँगूठे के पास की उँगली जो बिचली से छोटी होती है।**

तर्जुमा—सज्ञा पु. [अ.] **भाषांतर, अनुवाद।**

तर्पण, तर्पन—सज्ञा पु. [सं.] (१) **तृप्त या संतुष्ट करने की क्रिया।** (२) **पितरों को पानी देने की कर्मकाड की रीति।** उ.—कवहूं स्राद्ध करत पितरन कौ तर्पन करि बहु भाँति—सारा. ६७३।

सज्ञा स्त्री. [हि. तड़पना] **तड़पने की क्रिया।**

तर्पित—वि. [स.] **तृप्त या तुष्ट किया हुआ।**

तर्पी—वि. [स. तर्पिन्] (१) **तुष्ट या तृप्त करनेवाला।** (२) **तर्पण करनेवाला।**

तरयौ—क्रि. अ. [हिं. तरना] **सांसारिक क्लेशों से**

मुक्त हुए, सद्गति पायी। उ.—(क) को को न तरयौ हरि-नाम लिएँ—१-८६। (ख) सूरदास कहै, सब जग बूड़यौ, जुग जुग भक्त तरयौ—१-२६१।

क्रि. अ. [हिं. तैरना] उतराने लगे। उ.—नल अरु नील विस्वकर्मा-सुत छुवत पषान तरयौ—६-१२२।

तरयौना—संज्ञा पुं. [हि. तरौना] (१) तरकी नामक गहना। (२) कर्णफूल नामक गहना।

तर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिलाषा। (२) असंतोष। (३) बेड़ा। (४) समुद्र। (५) सूर्य।

तर्पण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्यास। (२) इच्छा।

तर्पित—वि. [सं.] (१) प्यासा। (२) इच्छुक।

तल—संज्ञा पुं. [सं. [(१) नीचे का भाग। (२) पेंदा, तला। (३) जल के नीचे की भूमि। (४) किसी चीज के नीचे की भूमि। (५) पैर का तला। (६) हथेली। (७) किसी वस्तु का बाहरी फैलाव, सतह। उ.—(क) कहै सूरदास देखि नैननि की मिटी प्यास, कृपा कीन्ही गोपीनाथ, आए भुव-तल मैं—८-५। (ख) पलटि धरौं नव खंड पुहुमि तल जौ बल भुजा सम्हारौं—६-१३२। (८) थप्पड़। (९) स्वभाव। (१०) जंगल, वन। (११) गड्ढा। (१२) घर की छत, पाटन। (१३) मुठिया। (१४) आधार।

तलक—अव्य. [हिं. तक] तक, पर्यंत।

तलछट—संज्ञा स्त्री. [हिं. तल+छँटना] तलौंछ।

तलना—क्रि. स. [स. तरण=तिराना] खौलते हुए घी-तेल में कुछ पकाना।

तलप—संज्ञा पु [हिं. तल्प] (१) पलंग। उ.—तजि वह जनक-राज-भोजन-सुख कत तृन-तलप विपिन फल खाहु—६-३४। (२) अटारी।

तलपट—वि. [देश.] नाश, बरबाद, चौपट।

तलफ—वि. [अ. तलफ] नष्ट, बर्बाद।

संज्ञा स्त्री—छटपटाहट, बेचैनी, पीड़ा। उ.—(क) मनु पर्यंक तें परी धरनि धुकि तरंग तलफ नित भारी—२७२८। (ख) दामिनि की दमकनि बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जीजियत माई है—२८२७।

तलफत—क्रि. अ. [हिं. तलफना (अनु.)] तड़पते हैं, व्याकुल होते हैं, बेचैन होते हैं। उ.—(क) हौं बलि गई, दास देखैं बिनु, तलफत हैं नैननि के तारे—१०-२६६। (ख) इते मान तन तलफत वहि ते जैसे मीन तट बिन पानी—२७८७। (ग) मृगमद मलय परस तनु तलफत जनु विष विषम पिए—३४४६।

वि.—तड़पता हुआ। उ.—तलफत छाँड़ि गये मधुवन को बहुरि न कीनी सार—२७१७।

तलफति—क्रि. अ. [हि. तलफना] छटपटाती है, बेचैन होती है। उ.—ज्यों जलहीन मीन तनु तलफति ऐसी गति ब्रजवालहि—२८००।

तलफना—क्रि. अ. [अनु.] छटपटाना, बेचैन होना।

तलफि—क्रि. अ. [हि. तलफना] छटपटाकर, तड़पकर। उ.—तलफि तलफि जिय ि वसन लागे पापी पीर न जानी—३०५६।

तलफी—संज्ञा स्त्री. [फा. तलफी] (१) खराबी, बुराई, दोष। (२) हानि, नुकसान।

तलब—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) खोज, तलाश। (२) चाह, इच्छा। (३) माँग, आवश्यकता। (४) बुलावा, बुलाहट। (५) वेतन, तनख्वाह।

तलबगार—वि. [फा.] चाहने या माँगनेवाला।

तलबी—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) बुलाहट। (२) माँग।

तलबेली—संज्ञा स्त्री. [हि. तलफना] आतुरता, बेचैनी, छटपटाहट, उत्कंठा। उ.—(क) कान्ह उठे अति प्रात ही तलबेली लागी। (ख) फिरि फिरि अजिरहि भवन ही तलबेली लागी—१५४१।

तलमल—संज्ञा पु. [सं.] तलछट, तरौंछ।

तलमलाना—क्रि. अ. [देश.] तड़पना, छटपटाना।

तलमलाहट संज्ञा स्त्री. [हिं तलमलाना] बेचैनी।

तलवा—संज्ञा पु. [स. तल] पैर का निचला भाग।

मुहा.—तलवा न टिकना (भरना)—एक जगह अधिक देर तक रहा न जाना।

तलवार—संज्ञा स्त्री. [स. तरवारि] खड्ग, असि।

मुहा.—तलवार का खेत—लड़ाई का मैदान। तलवार का घाट—तलवार की टेढ़ी धार। तलवार के घाट उतारना—तलवार से मार डालना। तलवार का पानी—तलवार की चमक जो उसके बढ़िया

होने का लक्षण है। तलवार का हाथ—तलवार का वार या आघात। तलवार की आँच—तलवार के वार का सामना। तलवार तौलना—वार करने के लिए तलवार सम्हालना। तलवार पर हाथ रखना—(१) तलवार निकालने को तैयार होना। (२) तलवार की कसम खाना। तलवार सौंतना—वार करने के लिए तलवार खींचना।

तलवे, तलवों—संज्ञा पुं. बहु. [हि. तलवा] दोनो पैरों के निचले भाग।

मुहा.—तलवे चाटना—बहुत खुशामद करना। तलवे छलनी होना—बहुत दौड़-धूप से पैर घिस जाना। तलवे तले आँखें मलना—(१) बहुत दीनता दिखाना। (२) बहुत प्रेम जताना। (३) कुचल कर नष्ट करना। तलवे धो धोकर पीना—बहुत श्रद्धा-भक्ति दिखाना, बहुत प्रेम जताना। तलवे सहलाना—(१) बहुत सेवा करना। (२) बहुत खुशामद करना। तलवों में आग लगना—बहुत क्रोध आना।

तलहटी—संज्ञा स्त्री. [सं. तल+घट्ट] पहाड़ की घाटी।

तला—संज्ञा पुं. [सं. तल] नीचे का भाग, पेंदा।

तलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताल] छोटा ताल, बावली। संज्ञा स्त्री. [हिं. तलना] तलने या तलाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

तलाउ—संज्ञा पुं. [हि. तालाव] सरोवर, तालाब।

तलाक—संज्ञा पुं. [अ. तलाक] पति-पत्नी का संबंध-त्याग।

तलातल—संज्ञा पुं [सं.] सात पातालों में एक का नाम। उ.—अतल वितल अरु सुतल तलातल और महातल जान। पाताल और रसातल मिलि सातों भुवन प्रमान—सारा. ३१।

तलावेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. तलबेली] बेचैनी, उत्कंठा।

तलाव—संज्ञा पुं. [सं. तल्ल] तालाब, ताल।

तलाश—संज्ञा स्त्री [फा.] (१) खोज। (२) चाह।

तलाशना—क्रि स. [फा. तलाश] ढूढ़ना, खोजना।

तलाशी—संज्ञा स्त्री. [फा.] खोयी या छिपाई हुई चीज के लिए पहने हुए कपड़ों, पास की चीजों या घर-बार की देखभाल।

तलि—क्रि. स. [हि. तलना] घी-तेल म तल कर। उ.—लोन लगाइ तुरत तलि लीने—२३२१।

तलित—वि. [हि. तलना] तला हुआ।

तलिन—वि. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) बिखरा हुआ। (३) थोड़ा, कम। (४) स्वच्छ, साफ। संज्ञा स्त्री. [सं.] शैया, सेज, पलँग।

तलिया, तली—संज्ञा स्त्री. [सं. तल] (१) निचला भाग, सतह। (२) तलछट, तलौंछ। (३) पैर की एड़ी।

तले—क्रि. वि. [सं. तल] नीचे, निचले भाग में।

मुहा.—तले ऊपर—(१) एक के ऊपर दूसरा। (२) उलट-पलट किया हुआ। तले ऊपर के—आगे पीछे के, एक के बाद का दूसरा। जी तले ऊपर होना—(१) जी मचलाना। (२) जी घबराना। तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह जाना—स्तब्ध या भौचक्का रह जाना। तले की दुनिया ऊपर होना—(१) बहुत उलट-फेर या परिवर्त्तन हो जाना। (२) असंभव बात संभव हो जाना। तले बच्चा होना—हाल ही का जन्मा बच्चा होना।

तलेटी—संज्ञा स्त्री. [सं. तल] (१) पेंदी। (२) तलहटी।

तलैया—संज्ञा स्त्री. [हि. ताल] छोटा ताल।

तलौछ—संज्ञा स्त्री. [सं. तल] तल का मैल।

तल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पलँग, सेज। (२) अटारी।

तल्ला—संज्ञा पुं. [सं. तल] (१) नीचे की परत, अस्तर। (२) नीचे का भाग। (३) पास, निकट।

तल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) युवती। (२) नौका।

तल्लीन—वि. [सं.] किसी विषय में लीन, निमग्न।

तव—सर्व. [सं.] तुम्हारा। उ.—फूटि गई तुव चारयौ—१-१०१।

तवज्जह—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) ध्यान। (२) कृपाभाव।

तवना—क्रि. अ. [स. तपन] (१) गरम होना। (२) ताप या दुख से पीड़ित (३) प्रताप, तेज या आतंक फैलना। (४) क्रोध या गुस्से से जलना।

तवा—संज्ञा पुं. [हि. तवना = जलना] (१) लोहे का छिछला पात्र जिस पर रोटी सेंकी जाती है।

मुहा.—तवा सा मुँह—बहुत काला, मल,

बहुत काला और विस्तीदार मुख। जैहै छनकि तवा ज्यों पानी—गरम तवे में पड़े पानी की तरह क्षण भर में छनछना कर खतम हो जायगा, प्रचंड शत्रु के क्रोध की तीव्रता के सामने बहुत जल्द ठंडा हो जायगा। उ.—अब नहिं बचै क्रोध नृप कीन्हो जैहै छनकि तवा ज्यों पानी—२४६६। तवा सिर से बाँधना—प्रहार या चोट सहने के लिए तैयार होना। तवा पर (तवे) की बूँद—(१) बहुत शीघ्र नष्ट हो जाने वाली। (२) जिससे जरा भी संतोष न हो।

(२) चिलम का छोटा ठिकरा।

तवाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ताव=ताप] (१) गरमी, ताप। (२) लू, गरम हवा।

तवाजा—संज्ञा स्त्री. [अ. तवाजा] (१) आदर, मान, आव-भगत। (२) खातिर, मेहमानदारी।

तवाना—क्रि. स. [हि. ताना] तप्त या गरम करना।

क्रि. स.—पात्र का मुँह बंद करना।

तवारा, तवारो—संज्ञा पु. [सं. ताप, हिं. ताव] जलन, दाह, ताप। उ.—तबतें इन सबहिन सचु पायौ। अब तैं हरि संदेस तुम्हारो, सुनत तवारो आयौ-३४८०

तवारीख—संज्ञा स्त्री. [अ. तवारीख] इतिहास।

तवालत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लंबाई, दीर्घता। (२) अधिकता (३) बखेड़ा, झंझट।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री. [अ. तशरीफ] बुजुर्गी, बड़प्पन।

मुहा.—तशरीफ रखना—आदर से बैठना। तशरीफ लाना—सादर आना। तशरीफ ले जाना—चला जाना।

तश्तरी—संज्ञा स्त्री. [फा.] छोटी थाली, रकाबी।

तष्ट—वि. [सं.] छिला या कुटा पिटा हुआ।

तष्टा—संज्ञा पुं. [सं.] छीलने या गढ़नेवाला।

तस—वि. [सं. तादृश, प्रा. तारिस, पु. हि. तइस] तैसा, वैसा।

क्रि. वि.—तैसा, वैसा।

तसकर—संज्ञा पु. [सं. तस्कर] चोर। उ.—ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकर्यौ—२-२६।

तसकीन—संज्ञा स्त्री. [अ.] तसल्ली, धीरज।

तसदीक—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सच्चाई। (२) सच्चाई का समर्थन या पुष्टि। (३) गवाही, साक्ष्य।

तसदीह—संज्ञा स्त्री. [अ. तसदीह] (१) सर दर्द। (२) तकलीफ, दुख, कष्ट।

तसनीफ—संज्ञा स्त्री. [अ. तसनीफ] ग्रंथ की रचना।

तसबीह—संज्ञा स्त्री. [अ.] माला, सुमिरनी।

तसला—संज्ञा पु. [फा. तश्त=छिछला पात्र+ला] लोहे-पीतल ताँबे का बड़ा लेकिन कम गहरा पात्र।

तसलीम—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) प्रणाम। (२) स्वीकृति।

तसल्ली—संज्ञा स्त्री. [अ.] धीरज, सांत्वना।

तसवीर—संज्ञा स्त्री. [अ.] चित्र।

वि.—चित्र सा सुंदर, मनोहर।

तस्कर—संज्ञा पु. [सं.] (१) चोर। उ.—गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यौं, अति आतुर मतिमंद—१-१०२। (२) श्रवण, कान।

तस्करता—संज्ञा स्त्री. [सं.] चोर का काम, चोरी।

तस्करी—संज्ञा स्त्री. [सं. तस्कर]। (१) चोरी। (२) चोर की स्त्री। (३) चोरी करनेवाली स्त्री।

तस्मात्—अव्य. [सं.] इसलिए, अतः।

तस्य—सर्व. [सं.] उसका।

तहँ, तहँवाँ—क्रि. वि. [हि. तहाँ] वहाँ, उस स्थान पर। उ.—जहाँ जहाँ सुमिरे हरि जिहिं विधि तहँ तैसैं उठि धाए (हो)—१-७।

तहँई—क्रि. वि. [हि. तहाँ+ही] उस ही स्थान पर, वहीं। उ.—(क) को इहँइ पिय को न बुलावै की तहँई चलि जाहीं—२१४५। (ख) इहिं अंतरि हरि आए तहँई—२६४३।

तह—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) मोटाई का फैलाव, परत।

मुहा—तह पर रखना—छिपाकर रखना, न निकालना। तह जमाना (बैठाना)—(१) परत के ऊपर परत रखना। (२) भोजन पर भोजन करना। तह तोड़ना—झगड़ा निबटाना। तह देना—(१) हलकी परत चढ़ाना। (२) हलका रंग चढ़ाना। (३) दृढ़ बनाने के लिए जमीन या आधार देना।

(२) नीचे का विस्तार, तल, पेंदा।

मुहा—तह की बात—गुप्त या छिपी हुई बात। तह को (तक) पहुँचना—असली बात जान लेना।

(३) पानी की थाह, तल । (४) महीन झिल्ली ।

तहकीक—संज्ञा स्त्री. [अ. तहकीक] (१) सत्य, वास्तविकता । (२) सच्चाई की जांच । (३) पूछ-ताछ ।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री. [हि. तहकीक] जांच, छान-बीन ।

तहखाना—संज्ञा पुं. [फा. तहखाना] तलगृह भुइँहरा ।

तहजीब—संज्ञा स्त्री. [अ. तहजीब] शिष्टता का व्यवहार ।

तहरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) पेठे की बरी और चावल की खिचड़ी । (२) मटर की खिचड़ी ।

तहरीर—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लिखावट । (२) लेखन-शैली । (३) लिखी हुई बात । (४) लिखा हुआ प्रमाण । (५) लिखने की मजदूरी ।

तहरीरी—वि. [फा.] लिखा हुआ, लिखित ।

तहलका—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मौत । (२) बरबादी, नाश (३) खलबली, हलचल ।

तहस नहस—वि. [देश.] नष्ट, बरबाद ।

तहसील—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) वसूली, उगाही । (२) वसूल किया हुआ धन । (३) कर या मालगुजारी जमा करने का कार्यालय ।

तहसीलदार—संज्ञा पुं. [हिं. तहसील + फा. दार](१) कर वसूल करनेवाला । (२) सरकारी मालगुजारी वसूल करनेवाला अधिकारी ।

तहसीलना—क्रि. स. [हि. तहसील] वसूल करना ।

तहाँ—क्रि. वि. [सं. तत । स. स्थान, प्रा थाण, थान] वहाँ, उस स्थान पर । उ.—हमता जहाँ, तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं—१-११ ।

तहाँई—क्रि. वि. [हि. तहाँ + ही] वहीं, उसी स्थान पर । उ.—मो सनमुख कत आए हो दहन पिय रसमसे नैन अटपटे बैननि तहाँई जाहु जाके रंग रए हो—१०८५ ।

तहाना—क्रि. स. [हिं. तह] तह करना, लपेटना ।

तहियाँ—क्रि. वि. [सं. तदाहि] तब, उस समय ।
क्रि. वि. [हि. तहाँ] वहाँ, उसी स्थान पर ।

तहियाना—क्रि. स. [फा. तह] तह लगाना, लपेटना ।

तहियो—अव्य. [स. तद्] तो भी, तब भी ।

तहीं—क्रि. वि. [हिं. तहाँ] वहीं, उसी स्थान पर । उ.—छाँड़ि तहीं सब राज-समाज । राजा गयौ अखेटक-काज—९-३ ।

ताँई—क्रि. वि. [हि. ताई] (१) तक, पर्यंत । (२) पास, निकट, समीप । (३) किसी के प्रति । (४) विषय में, लिए, वास्ते ।

ताँगी—संज्ञा स्त्री. [फा. तग = बद] किसी चीज को कसकर बाँधने की डोरी ।

तांडव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुरुषों का नृत्य । (२) उद्धत नृत्य जिसमें बहुत उछल-कूद हो । (३) शिव का नृत्य ।

तांत—वि. [सं.] (१) श्रांत, थका हुआ । (२) (शब्द) जिसके अंत में 'त्' हो ।

ताँत—संज्ञा स्त्री. [सं. तंतु] (१) भेंड़-बकरी की अंतड़ी या पुट्ठों को बटकर बनाया हुआ सूत । (२) धनुष की डोरी । (३) डोरी । (४) सारंगी आदि का तार ।
मुहा.—ताँत सा—बहुत दुबला-पतला पर चिमड़ा ।

ताँतड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँत] ताँत, सूत, डोरी ।

तांतव—वि. [सं.] जिससे तार निकल सके ।

ताँता—संज्ञा पुं. [सं. तति = श्रेणी] पंक्ति, कतार ।
मुहा.—ताँता बाँधना—(१) पंक्ति में खड़ा होना । (२)क्रम या सिलसिला न टूटना, बराबर चले आना ।

ताँति—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँत] बाजे का तार । उ.—तैसे सूर सुने जदुनंदन बजी एक रस ताँति—३३६८ ।

ताँतिया—वि. [हिं. ताँत] बहुत दुबला-पतला ।

ताँती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँता] (१) कतार । (२) बालबच्चे ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँत] बाजे का तार ।

तांत्रिक—वि. [सं.] तंत्र-संबंधी ।
संज्ञा पुं.—तंत्र-मंत्र या तंत्रशास्त्र जाननेवाला ।

ताँबा—संज्ञा पुं. [सं. ताम्र] लाल रंग की एक धातु ।

ताँबिया, ताँबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँबा] ताँबे का पात्र ।

तांबूल—संज्ञा पु. [सं.] (१) पान । (२) पान का बीड़ा ।

ताँबे, ताँबै—संज्ञा पु. [हि. ताँबा + ए (प्रत्य.)] ताँबे (नामक धातु) से । उ.—(क) तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं । ... । खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ी—१०-२४ । (ख) ताँबे रूपे सोने सजि राखी वै बनाइकै—२६२८ ।

ताँवर, ताँवरी—संज्ञा स्त्री [सं. ताप, हि. ताव] (१)

ज्वर, हरारत।(२) जूडी। (३) मूर्छा, पछाड, चक्कर।

तॉवरना—क्रि. अ. [हि. तॉवर] (१) गरम होना, तपना। (२) क्रोध के आवेश में आना।

तॉवरा, तॉवरो—सज्ञा पु. [हिं. तॉवर] (१) ज्वर, हरारत। (२) जूडी। (३) मूर्छा, पछाड़, घुमटा, चक्कर। उ.—ज्यों सुक सेमर सेव आस लगि, निसिवासर हठि चित्त लगायौ, रीतौ परयौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, तॉवरो आयौ—१-३२६।

तॉसना—क्रि स. [स. त्रास] (१) डांटना-घमकाना। (२) सताना, कष्ट देना।

ता-प्रत्य. [स.] एक भाववाचक प्रत्यय जो विशेषण और सज्ञा शब्दो के आगे लगता है।

अव्य. [फा.] (१) तक, पर्यंत। (२) वही, वैसा ही। उ—हय गय खोलि भँडार दिये सब, फेरि भरे ता भाँति—१०-३६।

सर्व० [सं. तद्] उस। उ—(क) सारँग इक सारँग ह्वै लोट्यौ, सारँग ही कै तीर। सारँग-पानि राय ता ऊपर, गए परीच्छत कीर—१-३३। (ख) मानहुँ नभ निर्मल तारागन ता मधि चद्र विराजत —१३२८।

वि.—उस। उ.—तब सिव उमा गये ता ठौर।

ताईं—अव्य. [सं. तावत् या फा. ता] (१) तक, पर्यंत। उ.—मोसौ पतित न और गुसाईं। अवगुन मोपैं अजहूँ न छूटत, बहुत पच्यौ अब ताईं—१ १४७। (२) पास, समीप, निकट। (३) किसी के प्रति, किसी को लक्ष्य करके। (४) लिए, वास्ते, निमित्त। उ.—दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी—१ ११५।

ताई—क्रि. स. [हि. ताना = ताव + ना (प्रत्य.)] (१) ताव देकर, ता कर, गरम करके। (२) पिघला कर।

सर्व. [हिं. ता+ई] उसे।

संज्ञा स्त्री [सं. ताप, हिं. ताय + ई (प्रत्य.)] (१) ताप, हरारत। (२) जूडी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ताऊ] ताऊ की पत्नी।

ताईद—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) पक्षपाती, तरफदारी। (२) समर्थन, पुष्टि।

ताउ—संज्ञा पुं. [हि. ताव] (१) ताव। (२) गुस्सा।

ताऊ—संज्ञा पुं. [सं. तात] बाप का बड़ा भाई।

मुहा.—बछिया के ताऊ। (१) बैल। (२) मूर्ख।

ताऊस—संज्ञा पु. [अ.] (१) मोर पक्षी। (२) एक बाजा।

ताक—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताकना] (१) देखने की क्रिया। (२) स्थिर दृष्टि, टकटकी। (३) मौका, घात।

मुहा.—ताक में रहना—मौका देखना, घात में रहना। (४) खोज, तलाश, फिराक।

संज्ञा पु [अ. ताक़] आला, ताख।

मुहा.—ताक पर धरना (रखना)—काम में न लाना। ताक पर रहना (होना)—काम में न आना, व्यर्थ पडा रहना।

वि.—(१) जो सम न हो। (२) अनुपम, अद्वितीय।

ताकझाँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताकना + झाँकना] (१) बार-बार देखना। (२) छिपकर देखना। (३) देख-भाल, निगरानी। (४) खोज।

ताकत—क्रि. स. [हिं. ताकना] एकटक दृष्टि से देखता है। उ.—धन-जोबन मद ऐंड़ौ ऐंड़ौ ताकत नारि पराई—१-३२८।

संज्ञा स्त्री. [अ. ताक़त] जोर, शक्ति, सामर्थ्य।

ताकतवर—वि. [हिं. ताकत + वर] बली, समर्थ।

ताकना—क्रि. स. [सं. तर्कण=विचारना] (१) सोचना-विचारना। (२) दृष्टि जमाकर या टकटकी लगाकर देखना। (३) ताड़ लेना, समझ जाना। (४) देखकर स्थिर करना। (५) रखवाली करना, देखते रहना।

ताकि—क्रि. स. [हिं ताकना] देखकर, दृष्टि गडा कर, अवलोकन करके। उ.—लकुट कै डर ताकि तोहि तब पीत पट लपटात—३६०।

अव्य. [फा.] जिससे, इसलिए कि।

ताकी—सर्व [हिं. ता + की (प्रत्य.] उसकी। उ.—कलि मैं नामा प्रगट ताकी छानि छवावै—१-४।

ताकीद—संज्ञा. स्त्री. [अ.] चेतावनी।

ताके, ताकैं—सर्व. [हि. ता + के, कै (प्रत्य.)] उसके। उ.—पट कुचैल, दुर्बल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)—१-७। (ख) ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास—१-७०।

ताको, ताकौं—सर्व [हिं. ता + को, कौं (प्रत्य)] उसे, उसको। उ.—रावन अरि कौ अनुज बिभीषन ताकौं मिले भरत की नाईं—१-३।

ताकौ—सर्व. [हिं. ता + कौ (प्रत्य.)] उसका, उसके लिए। उ.—निरभय देह, राज-गढ ताकौ, लोक मगन-उतसाहु—१-४०।

ताक्यो, ताक्यौ—क्रि. स [हिं. ताकना](१) देखा, अवलोका, निहारा। उ.—(क) सूरदास प्रभु ध्यान हृदय धरि गोकुल तन को ताक्यो—२४७६। (ख) उन कछु नेक चतुरई कीनी गेंद उछारि गगन मिस ताक्यौ—२५४६। (२) स्थिर किया, निश्चय किया, घात में लगा। उ.—गैयन भीतर आइ समान्यो कान्हहिं मारन ताक्यौ—२३७३।

ताख, ताखा—संज्ञा पु. [हिं. ताक] आला, ताक। उ.-सूरदास ऊधो की बतियों उडउड़ि बैठीं ताख-३३२१।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री. [स त्रि + हि. कड़ी] तराजू।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताग + कड़ी] (१) करधनी या किंकिणी नामक कमर का गहना। (२) कमर में पहनने का रगीन डोरा।

तागना—क्रि. स. [हिं. तागा] मोटी सिलाई करना।

तागा—संज्ञा पुं. [सं. तार्कव, प्रा. तग्गो, प. हिं. तागो या पहलवी—ताक = रेशा] रुई, रेशम आदि का सूत, डोरा, धागा।

ताछन—संज्ञा पुं. [सं तक्षण] शत्रु के आक्रमण से बचने और उस पर वार करने को बगल से बढ़ना, कावा।

ताछना—क्रि. अ. हिं. [ताछन] वार करने के लिए बगल से बढ़ना।

ताज—संज्ञा पुं. [फा.] (१) मुकुट, राजमुकुट। उ.—(क) कौरव-पति को पारयौ ताज-१-२४५ (ख) विकल मान खोयौ कौरवपति, पारेउ सिर कौ ताज-१-२५५। (२) कलगी। (३) मुर्गे आदि पक्षियों की शिखा। (४) दीवार की कँगनी। (५) आगरे का प्रसिद्ध ताजमहल।

ताजगी—संज्ञा स्त्री. [फा. ताजगी] (१) ताजा या हरापन। (२) प्रफुल्लता, स्वस्थता (३) नयापन।

ताज़ा- वि. [फा ताज़:] (१) हरा-भरा। (२) पेड़ से तुरंत टूटकर आया हुआ। (३) जो थका-माँदा न हो, नया दमदार। (४) तुरत का बना हुआ। (५) जो बहुत दिनों का या पुराना न हो।

ताजिया—संज्ञा पुं. [फा.] कागज आदि के बने मकबरे की आकृति के मंडप जो मुहर्रम में शिया मुसलमान दस दिन तक रखने के बाद गाडते हैं।

ताज़ी—संज्ञा पुं. [फा. ताजी] (१) अरबी घोड़ा। उ.-(क) बिडरे गज-जूथ सील, सैन लाज भाजी। घूँघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी—६८० । (ख) नव बादल बानैत पवन ताजी चढि चुटकि दिखायो—२८४० (२) शिकारी कुत्ता।

वि. [फा] अरब का, अरब संबंधी।

वि. स्त्री. [हिं. ताजा] (१) नया। (२) स्वस्थ।

ताज्जुब—संज्ञा पु. [अ. तअज्जुब] अचरज, आश्चर्य।

ताटंक, ताडंक—संज्ञा पुं [स.] कान का एक गहना, करनफूल, तरकी। उ.—(क) जिन स्रवनन ताटंक खुभी और करनफूल खुटिलाऊ—३२२१। (ख) कहुँ कवन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ ताटंक कहुँ नेत—३४५।

ताड़—संज्ञा पुं. [स.] (१) एक शाखारहित बड़ा पेड़। (२) ताड़ना, प्रहार। (३) शब्द, ध्वनि, धमाका। (४) हाथ का एक गहना।

ताड़का—संज्ञा स्त्री. [स ताड़का] एक राक्षसी जो सुकेतु नामक यक्ष की कन्या थी। इसमें हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। अगस्त्य के शाप से यह राक्षसी हो गयी थी। विश्वामित्र की आज्ञा से इसे श्री रामचद्र ने मार दिया था। उ.—मारग में ताड़का जु आई धाई वदन प ार। छिन में राम तुरत सो मारी नेक न लागी वार—सारा. २०३।

ताड़न—संज्ञा पु [सं] (१) मार, प्रहार। (२) डाट-डपट (३) शासन, दड।

ताड़ना—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) मार, आघात। (२) घुड़की, डाँट। (३) धमकी, सजा। (४)यातना, पीड़ा।

क्रि. स.—(१) मारना-पीटना (२) डाँटना, धमकाना। (३) दड देना। (४) यातना या पीड़ा देना।

क्रि. स. [सं. तर्कण = सोचना] (१) किसी गुप्त बात को अनुमान या बुद्धि से कुछ कुछ समझ

लेना, भाँपना। (२) मार-पीटकर भगाना, हाँकना।
ताड़नीय—वि. [सं.] दंड देने या डाँटने योग्य।
ताड़ित—वि. [सं.] (१) जो मारा-पीटा गया हो। (२) जो डाँटा-घुड़का गया हो। (३) दंडित, शासित। (४) उत्पीड़ित। उ.—काँपन लागी धरा, पाय तैं ताड़ित लखि जदुराई—२०७। (५) हँकाया हुआ।
ताड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ताड़ का छोटा वृक्ष। (२) एक आभूषण।
संज्ञा स्त्री. [हिं. ताड़ + ई (प्रत्य.)] ताड़ के डंठलों से निकाला हुआ एक प्रकार का नशीला रस।
ताड़का—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताड़का] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीराम ने मारा था।
ताड़े—क्रि. स. [सं. ताड़ना] मारे-पीटे, नष्ट किये। उ.—पवन-पूत दानव-दल ताड़े दिसि चारी- ६-६६।
तात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पिता। उ.—(क) कोपै तात प्रहलाद भगत कौ, नामहिं लेत जरै—१-८२। (ख) मुनि वसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी रचि-पचि लगन धरै। तात-मरन सिय-हरन राम बन-बपु धरि बिपति भरै—१-२६४। (२) पूज्य व्यक्ति, गुरु। (३) छोटों के लिए स्नेहसूचक संबोधन। (४) पुत्र, बेटा, लड़का। उ.—रजक धनुष गज मल्ल मारे तनक से नँद-तात—२६२७।
वि. [हिं. तत्ता] गरम, तप्त। उ.—(क) विष ज्वाला जल जरत जमुन कौ, याकैं तन लागत नहिं तात—५५४। (ख) एक फूँक कौं नाहिं तू विष-ज्वाला अति तात—५८६।
तातकाल—क्रि. वि. [सं. तत्काल] तुरत, उसी समय, उसी दम, तत्काल। उ.—अगिनि बिना जानैं जो गहै। तातकाल सो ताकौं दहै...... । हरि-पद सौं उन ध्यान लगायौ। तातकालै बैंकुंठ सिधायौ—६-४।
ताततु—संज्ञा पुं. [सं.] चाचा।
तातन—संज्ञा पुं. [सं.] खंजन पक्षी।
तातपर्य—संज्ञा पुं. [सं. तात्पर्य] आशय, अभिप्राय।
ताता—संज्ञा पुं. [सं. तात] (१) पिता, बाप। उ.—(क) राम जू कहाँ गए री माता? सूनौ भवन, सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता—९-४९। (ख) धन्य बानी गगन धरनि पाताल धनि धन्य हो, धन्य बसुदेव ताता—२६१५। (ग) अंतरजामी जानि नंद सौं पूँछत बाता। कहा करत हौ सोच, कहौ कछु मोसौं ताता—५८९। (२) पूज्य व्यक्ति। (३) पुत्र-शिष्य आदि के लिए स्नेह-सूचक संबोधन।
वि. [सं. तप्त, प्रा. तत्त] तपा हुआ, गरम।
ताताथेई—संज्ञा स्त्री. [अनु.] नृत्य का एक बोल, नृत्य में पैर गिरने का अनुकरण शब्द। उ.—होड़ा-होड़ी नृत्य करैं रीझि रीझि अंक भरैं तातायेई उघटत हैं हरषि मन—१७८१।
तातिं—संज्ञा पुं. [सं.] पुत्र, लड़का, बेटा।
ताती—वि. [हिं. तत्ता] (१) तपी हुई, गरम। उ.—(क) गोकुल बसत नंद नंदन कैं कबहुँ बयारि न लागी ताती—३०७७। (ख) नैन सजल कागद अति कोमल कर अँगुली ताती—३०८०। (२) कठिन, भयंकर। उ.—छाता लौं छाँह किए सोभित हरि-छाती। लागन नहिं देत कहूँ समर-आँच ताती—१-२३।
तातील—संज्ञा स्त्री. [अ.] छुट्टी या अवकाश का दिन।
ताते, तातैं—क्रि. वि. [हिं. ता + तैं (प्रत्य)] इस-लिए, इस कारण। उ.—(क) सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै—१-२। (ख) तातैं सेइयै श्री जदुराइ। संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ—१ २६५। (ग) सुनतहिं सुगम कहत नहि आवत बोलि जाइ नहिं तातैं—२७१३।
ताते—वि. [हिं. ताता] (१) तत्ते, गरम, गरमागरम। उ.—मीठे अति कोमल हैं नीके। ताते, तुरत चभोरे घी के—३९६। (२) बुरे, दुखदायी, कष्टदायक। उ.—समाचार ताते औ सीरे आगे जाय लहै-२९०५।
क्रि. वि. [हिं. ता + ते] इसलिए, इस कारण। उ.—नंद जसोदा के तुम बालक बिनती करति हौं ताते—२५२८।
तातो, तातौ—वि. [हिं. तत्ता] गरम, जलानेवाला, दुख-दायी। उ.—विषयासक्त रहत निसि बासर सुख सियरौ दुख तातौ—१-३०२।
तात्कालिक—वि. [सं.] तुरत का, उसी समय का।

तात्पर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आशय, अभिप्राय, मतलब। (२) तत्परता।

तात्विक—वि. [सं.] (१) तत्व से संबंधित। (२) तत्व के ज्ञान से युक्त। (३) यथार्थ, वास्तविक।

तादात्म्य—संज्ञा पु. [सं.] एक वस्तु का दूसरी से मिलकर उसी के रूप में हो जाना।

तादाद—संज्ञा स्त्री. [अ. तअदाद] संख्या, गिनती।

तादृश—वि. [सं.] उसके समान वैसा।

ताधा—संज्ञा स्त्री. [हि. ताताथेई] नृत्य में एक बोल। नाचने में पैर के गिरने का अनुकरण शब्द। उ.—भृकुटी धनुष नैन सर साधे बदन विकास अगाधा। चंचल चपल चारु अवलोकनि काम नचावति ताधा।

तान—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तानने का भाव, फैलाव। (२) सुर का खींचना, लय का विस्तार। उ.—काम-क्रोध-मद लोभ-मोह की तान-तरंगन गायौ—१-२०५।

मुहा.—तान उड़ाना (भरना, मारना, लेना)—राग अलापना, गीत गाना।

(३) ज्ञान या बोध का विषय। (४) एक पेड़।

क्रि. स. [हिं. तानना] (१) फैलाने को खींचकर।

मुहा.—तानकर—बलपूर्वक, जोर से।

(२) खींचने के लिए फैलाकर।

मुहा.—तान कर सोना—बेफिक्री से सोना।

तानत—क्रि. स. [हि. तानना] खींचने या तानने (से), तानता है। उ.—छुटि गये कुटिल कटाक्ष अलक मनो टूटि गये गुन तानत—पृ. ३३६।

तानना—क्रि. स. [हिं. तान=विस्तार] (१) फैलाने के लिए खींचना। (२) जोर से खींचकर फैलाना। (३) किसी परदे आदि को फैलाकर बांध देना। (४) एक तरफ से दूसरी तरफ तक डोरी आदि बांधना। (५) मारने के लिए हाथ या हथियार उठाना (६) चिट्ठी-पत्री या आवेदन-पत्र भेजना। (७) जेल भेजना।

तानपूरा—संज्ञा पु. [सं. तान+हिं. पूरा] सितार के आकार का बाजा जो सुर बांधने में सहारा देता है।

तानबान—संज्ञा पु. [हि. तानाबाना] कपड़ा बिनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाये हुए सूत।

तानसेन—संज्ञा पुं.—सम्राट अकबर का समकालीन एक प्रसिद्ध गवैया जिसका नाम त्रिलोचन मिश्र था।

ताना—संज्ञा पु. [हि. तानना] (१) कपड़ा बिनने में लंबाई के बल फैलाया हुआ सूत। (२) करघा।

क्रि. स. [हि. ताय+ना (प्रत्य.)] (१) गरम करना, तपाना। (२) पिघलाना। (३) तपाकर (धातुओं की) परीक्षा करना। (४) अजमाना।

क्रि. स. [हि. तावा तात्र] ढक्कन मूंदना।

संज्ञा पु. [अ.] चुभती हुई बात, व्यंग्य।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तान] तान, लय, सुर। उ.—सुन्यौ चाहौं स्रवन मधुर मुरली की ताना—१८१७।

तानाबाना—संज्ञा पु. [हिं. ताना+बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाये हुए सूत।

तानारीरी—संज्ञा स्त्री. [हि. तान+अनु. रीरी] राग।

ताना—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताना] कपड़ा बुनने में लंबाई के बल रहनेवाला सूत।

तानूर—संज्ञा पु. [सं.] पानी या वायु का भँवर।

तानै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. तान] तान को।

क्रि. स [हिं. तानना] तानता है। उ.—(क) नासा पुटनि संकोचति लोचति विकट भृकुटि धनु तानै—२०५३। (ख) जैसे मृगिअन ताकि बधिक दृग कर कोदंड गहि तानै—३१३६।

तान्यौ—क्रि. स. [हिं. तानना] ताना, पसारा, फैलाया। उ.—आसा के सिंहासन बैठ्यौ, दंभ-छत्र सिर तान्यौ—१-१४१।

तान्व—संज्ञा पुं [सं.] पुत्र, लड़का, बेटा।

ताप—संज्ञा पुं [सं.] (१ उष्णता, गरमी। उ.—जद्यपि मलय-वृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै। तउ सुभाव सीतल नहिं छाँड़ै, रिपु तन-ताप हरै—१-११७। (२) आंच, लपट। (३) ज्वर। (४) कष्ट, दुख, पीड़ा। उ.—(क) तातैं जानि भजे बनवारी। सरनागत की ताप निवारी—१-२८। (ख) नंद-हृदय भयौ सुनि ताप—४५। (ग) बहुत दिनन के ताप तवन के सुफलक-सुत सब मेटे—सारा. ५६२।

तापक—संज्ञा पु. [सं.] (१) ताप उत्पन्न करनेवाला।

(२) रजोगुण। (३) ज्वर।

तापती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूर्य की एक कन्या, तापी। (२) सतपुरा पहाड़ से निकलनेवाली एक नदी।

ताप-त्रय—संज्ञा पु. [सं. ताप+त्रय] तीन प्रकार के ताप आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक, इन्हें दैहिक, दैविक और भौतिक भी कहते हैं।

तापत्रय हरन—संज्ञा पु. [सं. ताप+त्रय+हरण] तीनो प्रकार के ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक—हरनवाला, ईश्वर। उ.—दीन जन क्यों करि आवै सरन ? भूल्यौ फिरत सकल जल-थल मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन—१ ४८।

तापन—संज्ञा पु. [सं.] (१) ताप देनेवाला। (२) सूर्य। ( ) कामदेव का बाण। (४) सूर्यकांत मणि। (५) मदार। (६) ढोल बाजा। (७) एक नरक।

तापना क्रि अ [सं तापन] आग से अपने आपको जाड़ा दूर करने के लिए गरमाना।

क्रि. स.—(१) जलाना। (२) नष्ट करना।

क्रि स.—तपाना, गरम करना।

ताप निवारन—संज्ञा पु. [सं. ताप + निवारण] (१) कष्ट दूर करनेवाले। (२) ईश्वर जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुखों से छुटकारा दिलाता है। उ.—तीन लोक के ताप निवारन, सूर स्याम सेवक सुखकारी—१-३०।

तापमान संज्ञा पु. [सं.] उष्णता की मात्रा।

तापस—संज्ञा पु [सं ताप] क्रोध, गुस्सा।

तापस—संज्ञा पु [सं] (१) तप करनेवाला, तपस्वी। उ—जती सती तापस आराधैं, चारौं वेद रटैं—१-२६३। (२) तमाल का वृक्ष।

तापसी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) तपस्वी की स्त्री। (२) तपस्या करनेवाली स्त्री, तपस्विनी।

तापित—वि [सं] (१) जो तपाया गया हो। (२) जिसने ताप या कष्ट सहा हो, दुखित, पीड़ित।

तापी—वि. [सं तापिन्] जिसमें ताप हो।

संज्ञा स्त्री.—(१) सूर्य की एक कन्या का नाम। (२) तापती नदी जो सतपुरा से निकलती है।

तापु—संज्ञा पु. [सं.] कष्ट, दुख, पीड़ा। उ.—सुंदर बदन दिखाइ कै हरौ नैन कौ तापु—४-३१।

तापेंदु—संज्ञा पु. [सं ताप + इंदु] सूर्य।

तापै—सव [हिं ता+पै (प्रत्य)] उस पर, उसके पास। उ.—(क) दुरवासा अंबरीष सतायौ, सो हरि सरन गयौ। परतिज्ञा राखी मन-मोहन, फिर तापै पठयौ—१-३८। (ख) भारत जुद्ध वितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ। अस्वत्थामा तापै जाइ। इहि भाँति कह्यौ समुझाइ—१-२८६।

ताप्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं तापती] तापती नदी।

ताफ्ता—संज्ञा पु [फा. ताफ्तः] धूप-छाँह का चमकदार रेशमी कपड़ा।

ताब—संज्ञा स्त्री [फा.] (१) गरमी। (२) चमक। (३) हिम्मत, मजाल। (४) सहनशक्ति।

ताबड़तोड़—क्रि. वि. [अनु.] लगातार बराबर।

ताबूत—संज्ञा पु [अ] संदूक जिसमें मुर्दा रखते हैं।

ताबे—वि. [अ. ताबअ] (१) वश में, अधीन। (२) आज्ञा माननेवाला, आज्ञाकारी।

ताबेदार—वि. [अ. ताबअ + फा दार] आज्ञाकारी। संज्ञा पु—नौकर, सेवक, दास।

ताबेदारी—संज्ञा स्त्री [हि. ताबेदार] (१) नौकरी, सेवकाई। (२) सेवा, टहल।

ताम—संज्ञा पु. [सं] (१) मनोविकार, चित्त का उद्वेग, व्याकुलता। उ—(क) मिस्यौ काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदनगोपाल। (ख) तरु तमाल तर तरुन कन्हाई दूरि करन जुवतिन तनु ताम—१३२७। (२) दुख, क्लेश, व्यथा, कष्ट। उ.—देखत पय पीवत बलराम। तातो लगत डारि तुम दीनो दावानल पीवत नहिं ताम—४६७। (३) दोष। (४) ग्लानि।

वि—(१) दुखी, व्याकुल। उ—अति सुकुमार मनोहर मूरति, ताहि करति तुम ताम। (२) भीषण, डरावना, भयानक आकृतिवाला।

संज्ञा पु. [सं तामस] (१) क्रोध, रोष, गुस्सा। उ—(क) सूर प्रभु जेहि सदन जात न सोइ करति तनु ताम। (ख) कंस को निर्वंस ह्वै है करत इन पर ताम—२५६१। (२) अंधकार, अँधेरा। उ.—(क) वहौं तौ सूरज उगन दउँ नाहिं, दिसि दिसि

बाढ़ै ताम—६-१४८ । (ख) जननि कहत उठहु स्याम । बिगत जानि रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमकौं कछु खैवैं ।

तामजान तामझाम संज्ञा पुं. [हिं थामना + सं. यान] एक खुली सवारी जो लबी कुरसी की सी होती है।

तामड़ा—वि. [हिं. ताँबा + ड़ा] ताँबे के रग का ।

सं ा पुं.—(१) ऊदा पत्थर । (२) गजी खोपड़ी । (३) साफ आकाश ।

तामरस—सज्ञा पु. [सं.] (१) कमल । (२) सोना । (३) ताँबा । (४) धतूरा ।

तामस—वि [सं.] तमोगुण युक्त । उ —ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी, सिव तामस अधिकारी ।

सज्ञा पु.—(१) क्रोध, गुस्सा । उ.—कहु तोकौं कैसै आवत है ससु पर तामस एत । (२) साँप । (३) खल दुष्ट । (४) उल्लू नामक पक्षी । (५) अधकार, अँधेरा । (६) अज्ञान, मोह ।

तामसी—वि. स्त्री. [सं.] तमोगुणवाली, जिसकी प्रकृति तमोगुणयुक्त हो । उ.—तिन वहु सृष्टि तामसी करी—३-७ ।

संज्ञा स्त्री.—(१) अँधेरी रात । (२) महाकाली ।

तामिल - सज्ञा स्त्री. [देश.] (१) द्राविड जाति की एक शाखा । (२) तामिल लोगों की भाषा ।

तामिस—सज्ञा पु. [सं.] (१) एक नरक का नाम । (२) क्रोध । (३) द्वेष । (४) एक अविद्या ।

तामील—संज्ञा स्त्री. [अ.] आज्ञा का पालन ।

तामैं—सर्व [हिं. ता + मैं (प्रत्य)] उसमें । उ.—नृप कन्या कौ व्रत प्रतिपारयौ, कपट वेष इक धारयौ । तामैं प्रगट भए श्रीपति जू अरि-जन गर्व प्रहारयौ—१-३१ ।

ताम्र ताम्रक—संज्ञा पुं. [सं.] ताँबा ।

ताम्रपत्र—सज्ञा पुं. [सं.] (१) ताँबे का पत्तर । (२) ताँबे का पत्तर जिस पर अक्षर आदि खुदे हो ।

ताम्र वर्ण—वि. [सं.] (१) ताँबे के रग का । (२ लाल ।

ताय—सज्ञा पुं. [सं. ताप, हि. ताव (१) ताप, गरमी । (२) जलन । (३) धूप ।

सर्व.—[हिं. ताहि] उसे, इसको । उ.—वाके आस्रम जो कोऊ बसत है माया लगत न ताय—सारा. १६६ ।

तायना—क्रि. स. [हिं. ताव] तपाना, गरम करना ।

ताया—संज्ञा पुं. [सं. तात] बाप का बड़ा भाई ।

क्रि. स. [हिं. ताना] गरम किया, पिघलाया ।

तार—संज्ञा पु. [सं.] (१) चाँदी । (२) सोने चाँदी आदि धातुओं का बहुत पतला सूत या डोरी ।

मुहा —तार-तार करना—बिनी या बटी हुई चीज की धज्जियाँ उडा देना । तार तार होना—बहुत फट जाना ।

(४) परपरा, चलता हुआ क्रम, सिलसिला ।

मुहा - तार टूटना—चलता हुआ काम या क्रम टूटना । तार बँधना—किसी काम या बात का सिलसिला शुरू होना । तार बँधाना (लगाना)—किसी बात या काम को बराबर करते जाना ।

(१) व्योत, सुबंता । (८) ठीक नाप । (९) युक्ति, उपाय, ढब । (१०) श्री राम की सेना का एक बदर । (११ नक्षत्र, तारा ।

संज्ञा पु. [सं. ताल] (१) ताली, ताल । उ.—मोहि देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार—१-१७५ । (२) ताल मजीरा । ३) करताल । उ.—डिमडिमी पटह ढोल डफ बीना मृदंग उपंग चग तार—२४४६ (१) ।

सज्ञा पु. [स. तल] तल, सतह ।

सज्ञा पु. [हिं. ताड़] कान का ताटक नामक गहना । उ.—स्रवनन पहिरे उलटे तार ।

वि. [सं.] (१) जिसमें से किरणें फूटी हो । (२) स्वच्छ, निर्मल ।

क्रि. स [हि. तारना] तार कर, उद्धार करके । उ.—इंद्रप्रस्थ हरि गये कृपा करि पाडव-कुल को तार—सारा. ६५४ ।

तारक सज्ञा पुं. [सं.] (१) राम का षडक्षर मत्र, 'ओ रामायनमः' का मंत्र । उ.—गोबिंद-भजन करौ इहिं बार । संकर पारबती उपदेसत तारक मत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार—२-३ । (२) नक्षत्र, तारा । (३) आँख । (४) आँख की पुतली । (५) एक असुर । (६) पार

करनेवाला। (७) मल्लाह, केवट। (८) उद्धारक।

तारका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नक्षत्र, तारा। (२) आँख की पुतली। (३) बालि की स्त्री तारा। उ.—सुग्रीव को तारका मिलाई बध्यौ बालि भयमत।

संज्ञा स्त्री [हिं. ताड़का] ताड़का नामक राक्षसी।

तारकजित्—संज्ञा पु. [सं.] तारकासुर का पुत्र।

तारकामय—संज्ञा पु. [सं.] शिव, महादेव।

तारकासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक असुर जिसे देव सेनापति कुमार कार्तिकेय ने मारा था।

तारकित, तारकी—वि. [सं. तारकित] तारों से युक्त।

तारकेश्वर—संज्ञा पु. [सं.] (१) शिव। (२) एक शिव-लिंग जो कलकत्ते के पास है।

तारख—संज्ञा पु. [सं. तार्क्ष्य] गरुड़।

तारखी—संज्ञा पु. [सं. तार्क्ष्य] घोड़ा।

तारघाट—संज्ञा पुं [हिं. तार + घात] मतलब गँठने या निकलने का दाँव, घात या आयोजन।

तारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पार करने की क्रिया। (२) उद्धार, निस्तार। (३) उद्धारक। (४) विष्णु।

तारत—क्रि. स. [हिं. तारना] (१) पार लगाते हैं। (२) उद्धार करते हैं, सद्गति देते हैं, तारते हो, मुक्त करते हो। उ—(क) काहू के कुल तन न विचारत। अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत—१-१२। (ख) सौंचे बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज—१-६६।

तारतम्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कम या ज्यादा का क्रम या संबंध। (२) कम-ज्यादा के अनुसार उत्तरोत्तर क्रम। (३) दो वस्तुओं के कम या ज्यादा गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान।

तार तार—वि. [हिं. तार] कटा-फटा, उघड़ा हुआ।

तारतोड़—संज्ञा पु. [हिं. तार + तोड़ना] कारचोबी या जरदोजी का काम।

तारन—क्रि. स. [हिं. तारना] उद्धार करने के लिए, तारने को, मुक्त करने को। उ.—मैं जु रह्यौ राजीव-नैन दुरि, पाप-पहार-दरी। पावहु मोहिं कहौं तारन कौं, गूढ़-गंभीर खरी—१-१३०।

संज्ञा पुं. [हिं. तर] छत या छाजन की ढाल।

तारना—क्रि. स. [सं. तारण] (१) पार लगाना। (२) संसार से उद्धार करना, मुक्ति देना।

तारनि—संज्ञा पु. बहु. [सं. तारे] आँख की पुतलियाँ। उ.—मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करवै री—१०-१३७।

तारल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) द्रवित होने का भाव या धर्म, द्रवता। (२) चंचलता, चपलता।

तारा—संज्ञा पु. [सं.] (१) नक्षत्र, सितारा।

मुहा.—तारा टूटना—उल्कापात होना। तारा डूबना—(१) किसी नक्षत्र का अस्त होना। (२) शुक्र का अस्त होना। तारा सी आँख हो जाना (होना) आँख का स्वच्छ या नीरोग होना। तारा हो जाना—(१) बहुत ऊँचाई पर पहुँच जाना। (२) बहुत अंतर या फासले पर होना।

(२) भाग्य, किस्मत, सितारा।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बृहस्पति की स्त्री। (२) आँख की पुतली। (३) एक महाविद्या। (४) बालि नामक वानर की स्त्री। (४) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कमला तारा विमला चंदा चंद्रावलि सुकुमारि—१५८०।

संज्ञा. पुं [हिं. ताला] ताला, कुलुफ।

ताराग्रह—संज्ञा पु. [सं.] पाँच ग्रहों—मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि—का समूह।

ताराज—संज्ञा पु [फा.] (१) लूटमार। (२) नाश।

ताराधिप, ताराधीश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) शिव। (३) बृहस्पति। (४) बालि। (५) सुग्रीव।

तारानाथ, तारापति—संज्ञा पु. [हिं. तारा + नाथ, पति] (१) चंद्रमा। (२) बृहस्पति। (३) बालि। (४) सुग्रीव।

तारापथ—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।

तारापीड़—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, रात्रि।

तारामंडल—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्रों का समूह या घेरा।

तारायण—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।

तारि—क्रि. स. [हिं. तारना] तार कर, मुक्त करके, उद्धार करके। उ.—छुद्र पतित तुम तारि रमापति,

अब न करौ जिय गारौ—१-१३१ ।

तारिक—संज्ञा स्त्री. [स] पार उतारने की मजदूरी ।

तारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] ताड़ी नामक मद्य ।

संज्ञा स्त्री. [हि. तारका] नक्षत्र, तारा । उ.—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, स्रवन भनक परी ललिता के तान की—१६०६ ।

तारिणी—वि. स्त्री. [स.] तारनेवाली ।

संज्ञा स्त्री. तारा देवी ।

तारिबे—क्रि. स. [हिं. तारना] उद्धार करन (को), मुक्त करने या सद्‌गति देने को । उ.—(क) और को है तारिबे कौं कहौ कृपा ताता—१-१२३ । (ख) सत्य भक्तहिं तारिबे कौं लीला विस्तारी—१-१७६ ।

तारिहौ—क्रि. स. [हि. तारना] तारोगे, मुक्त करोगे, उद्धारोगे, निस्तारोगे । उ.—तौ जानौं जो मोहि तारिहौ, सूर क्रूर कवि ढोट—१-१३२ ।

तारी—संज्ञा स्त्री. [हि. तारा = आँख की पुतली] (१) निद्रा । (२) ध्यान, समाधि । उ.—(क) सिव की लागी हरि-पदतारी । तातें नहिं उन आँखि उघारी—४-५ । (ख) बाँसुरी बजाइ आछे ढग से मुरारी । सुनि कै धुनि छूटि गई संकर की तारी—६४६ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ताड़ी] ताड़ी नामक मद्य ।

क्रि स. [हि. तारना] (१) पार लगा दी । उ.—अबर हरत सभा मैं कृष्णा सोक-सिंधु तैं तारी—१-२८२ । (२) उद्धार कर दिया, मुक्ति दी । उ.—गौतम की पतिनी तुम तारी, देव, देवानल कौं अँचयौ—१-२६ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ताली] ताली, करतल का परस्पर आघात । उ.—मोहिं देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार १-१७५ ।

तारीक—वि. [फा.] (१) काला । (२) धुंधला ।

तारीकी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) स्याही । (२) अँधेरा ।

तारीख—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) तिथि । (२) नियत तिथि ।

तारीफ—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) परिभाषा, लक्षण । (२) वर्णन, विवरण । (३) प्रशसा, बड़ाई । (४) गुण ।

तारु, तारू—संज्ञा पुं. [हिं. तालू] तालू ।

मुहा.—रसना तारू सों नाहिं लावत—चुपचाप नहीं रहता । उ.—चातक कै रट नेह सदा वह रितु अन-रितु नहिं हारत । रसना तारू सों नहिं लावत पीवै पीव पुकारत—पृ. ३३० ।

तारुण्य—संज्ञा पुं. [सं.] यौवन, जवानी ।

तारे—क्रि. स. [हि. तारना] (१) पार पहुँचाये, पार लगाये । (२) उद्धारे, मुक्त किये, सद्‌गति दी । उ.—(क) कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन-पद पर-तंगी—१-२१ । (ख) बन में जाय बहुत मुनि तारे दूरि करैं भुव-भार—सारा. २५२ । (ग) मारग में मुनिजन तारे अरु विराध रिपु मारे—सारा. २५५ ।

संज्ञा पुं. ब. [सं. तारा] (१) नक्षत्र सितारे ।

मुहा.—तारे गिनना—चिंता, दुख, आसरे या प्रतीक्षा म बेचैनी से रात काटना । तारे गनत—चिंता, दुख या प्रतीक्षा में बेचैनी से रात कटी । उ.—(क) सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु रैनि गनत गयी तारे—२७८१ । (ख) तारे गन तगगन के सजनी बीते चारौ जाम—२८२३ । तारे खिलना—तारों का चमकना । तारे छिटकना—स्वच्छ आकाश में तारे चमकना । तारे तोड़ लाना—(१) असभव काम कर दिखाना । (२) बड़ी चालाकी से काम करना । तारे दिखायी देना—कमजोरी के कारण आँखों के सामने तिरमिराहट होना ।

(२) आँख की पुतलियाँ । उ.—(क) बार बार इहै कहति भरि भरि दोउ तारे—२६०१ । (ख) बिन ही रितु बरसत निसि बासर सदा मलिन दोउ तारे—२७६१ । (ग) सुनि ऊधो के बचन रहीं नीचै कै तारे—३४४३ ।

तारैं—क्रि. स. [हि. तारना] तार दें, मुक्त कर देने से, उद्धारने से, उद्धार करें । उ.—(क) कहा भयौ गज-गनिका तारैं जो न तारौ जन ऐसौ—१ ११६ । (ख) सूर स्याम हौं पतित सिरोमनि, तारि सकै तौ तारैं—१-१८३ ।

तारै—क्रि. स. [हि. तैराना] (१) तैरावे, (पानी पर) उतरावे । उ.—तप बली, सत्य तापस बली, तप बिना बारि पर कौन पाषान तारै—६-१२६ । (२) पार लगा दे, तार दे । उ.—करौ भगवान कौ जस

गुनीजन सदा जो जगत-सिंधु तें पार तारै—४-११।

तारौं—क्रि. स. [हिं. तैराना] (पानी पर तैरा दूँ, पानी पर उतरा दूँ। उ.- कहा हौ तुव प्रताप श्री रघुवर, उदधि पखाननि तारौं—९-१०८।

तारौ—क्रि. स. [हिं. तारना] उद्धारो, मुक्त करो, तार दो। उ—(क) कहा भयौ गज गनिका तारैं जो न तारौ जन ऐसौं—१-१०६। (ख) जौ जानौ यह सूर पतित नहिं, तौ तारौ निज हेत—१-१५६।

संज्ञा पुं. [हिं. ताला] ताला कुल्फ। उ—(क) बड़े पतित पासँगहू नाहीं अजामिल कौन बिचारौ। भाजे नरक नाम सुनि मेरो, जम दीन्यौ हठि तारौ—१-१३१। (ख) देखन आ न सँच्यौ उर अतर, दै पलकनि कौ तारौ री—१०-१३५।

तार्किक—संज्ञा पुं. [स.] (१) तर्क करनेवाला। (२) तर्कशास्त्र का ज्ञाता। (३) दार्शनिक।

तारयौ—क्रि. स. [हिं. तारना] (१) पार लगाया। (२) सांसारिक क्लेशों से मुक्त किया, उद्धारा, सदगति दी। उ.—तौ तुम कोऊ तारयौ नहि जौ मार्सौं पतित न तारयौ—१-७३।

ताल—संज्ञा पुं. [स.] (१) हाथ का तल, हथेली। (२) करतल ध्वनि, ताली। (३) नाचने-गाने में काल और क्रिया का परिमाण जिसे बीच-बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते हैं।

मुहा.—ताल बेताल—(१) जिसका ताल ठीक न हो। (२) मौके-बे मौके। ताल से बेताल होना गाने बजाने में काल या क्रिया का परिमाण बिगड़ जाना।

(४) करताल या झाँझ नामक बाजा। उ—ताल-पखावज चले बजावत समधी सभा कौ—१-१५१। (५) ललकारने या चुनौती देने के लिए जाँघ या बाहु पर जोर से हथेली मारने से उत्पन्न शब्द।

ताल ठोंकना लड़ने के लिए ललकारना।

(६) ताड़ का पेड़ या फल। (७) हाथियों के कान फटफटाने का शब्द। (८) ताला। (९) तलवार की मूठ। (१०) एक नरक। (११) महादेव।

संज्ञा पुं. [सं. तल्ल] तालाब, पोखरा।

तालक—संज्ञा पुं. [हिं. ताल्लुक] संबंध, ताल्लुक।

तालकेतु, तालध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसकी पताका पर ताड़ का पेड़ अंकित हो। (२) भीष्म। (३) बलराम।

तालवन—संज्ञा पुं [सं. तालवन] वृन्दावन के समीप एक वन। उ—(क) सखा कहन लागे हरि सौं तब चलौ तालवन कौ जैऐ अब—४९९। (ख) तालबन इन बच्छ मारयौ—२५८२।

तालवेन—संज्ञा स्त्री. [सं ताल + वेणु] एक बाजा।

तालमेल—संज्ञा पुं. [हिं. ताल + मेल] (१) ताल सुर का मिलान। (२) मेल जोल। (३) उपयुक्त अवसर।

तालरस—संज्ञा पुं. [सं] ताल के पेड़ का मद्य, ताड़ी। उ.—तालरस बलराम चख्यो मन भयौ अनद। गोपसुत सब टेरि लन्हे सुधि भई नँदनद।

तालवन—संज्ञा पुं. [स.] (१) ताड़ के पेड़ों का वन। (२) ब्रजमडल के अतर्गत एक वन जहाँ बलराम ने धेनुक को मारा था।

तालवाहा—वि. [स.] ताल देने का बाजा।

तालवृंत—संज्ञा पुं. [सं.] ताड़ के पत्ते का पंखा।

तालव्य वि [सं.] (१) तालु से संबंधित। (२) तालु से उच्चरित वर्ण जैसे इ ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श।

ताला—संज्ञा पु. [स. तलक] कुल्फ, कुलफ, जदरा। उ—सहज कपाट उघरि गये ताला कूँचा टूटि—२६२५।

तालाब—संज्ञा पु. [हिं. ताल + फा. आब] सरोवर।

तालिका—संज्ञा स्त्री [स] (१) ताली। (२) सूची।

तालिब—वि [अ.] चाहने या ढूँढनेवाला।

तालिबइल्म—संज्ञा पु [अ.] विद्यार्थी।

तालम—संज्ञा स्त्री. [सं. तल्प] शय्या, विस्तर।

ताली—संज्ञा स्त्री [स.] (१) कुंजी, चाबी। (२) ताड़ी।

संज्ञा स्त्री [स] (१) हथेलियों का परस्पर आघात।

मुहा.—ताली पटना (बजाना)—हँसी उड़ाना। एक हाथ से ताली नहीं बजती—वैर या प्रीति एक ओर से नहीं होती।

(२) करतल-ध्वनि।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ताल = तालाब] तलैया।

संज्ञा स्त्री [देश.] पैर की पिछली उंगली का ऊपरी भाग।

तालीम—संज्ञा स्त्री. [अ.] शिक्षा।

तालु, तालू—संज्ञा पुं. [सं. तालु] मुँह की भीतरी ऊपरी छत।

मुहा.—तालू में दाँत जमना—बुरे दिन आना। तालू में जीभ न लगना—चुपचाप न रह सकना।

ताल्लुक—संज्ञा पुं. [अ. तअल्लुक] संबंध, लगाव।

ताव—संज्ञा पुं. [सं. ताप, प्रा.ताव] (१) गरमी जो किसी चीज को तपाने या पकाने के लिए पहुँचायी जाय। उ.—जठर अगिन को ब्यापै ताव—३-११।

मुहा.—ताव आना—जितना चाहिए उतना गरम होना। ताव खाना—आँच में गरम होना। ताव खा जाना—(१) आग की तेजी से जल-सा जाना। (२) किसी खौलायी हुई चीज का ज्यादा ठंडा हो जाना। ताव देना—(१) गरम करना। (२) तपाकर लाल करना। ताव बिगड़ना—आँच का कम या ज्यादा होना। मूँछों पर ताव देना—अभिमान या घमंड से मूँछें ऐंठना। मूँछनि ताव दिवायौ—गर्व या घमंड से मूँछों पर हाथ फेरा। उ.—कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ मूछनि ताव दियौ—१-३०१।

(२) घमंड की झोंक में क्रोध करना।

मुहा.—ताव दिखाना—अभिमान के कारण क्रोध दिखाना। ताव में आना—घमंड की झोंक में क्रोध में आ जाना।

(३) अहंकार का आवेश, शेखी की झोंक। (४) किसी बात के होने की इच्छा या उत्कंठा।

मुहा.—ताव चढ़ना—प्रबल इच्छा होना। ताव पर—जरूरत के मौके पर।

संज्ञा पुं. [फा. ता=मरतबा] कागज का तख्ता।

तावत—क्रि. स. [हि. ताव] जलाती है, भस्म करती है। उ.—निरखि पतंग बत नाहिं छाँड़त जदपि जोति तनु तावत—१-२१०।

तावत्—क्रि. वि. [सं.] (१) उतने समय तक। (२) उतनी दूर तक। (३) तक।

तावना—क्रि. स. [सं. तापन] (१) तपाना, गरम करना। (२) जलाना। (३) दुख या संताप पहुँचाना।

तावभाव—संज्ञा पुं. [हि. ताव+भाव] उपयुक्त अवसर।

वि.—थोड़ा सा, जरा सा, हलका सा।

तावर, तावरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ताव + री] (१) दाह, जलन। (२) धूप, घाम। (३) बुखार। (४) गर्मी का चक्कर, घुमटा।

तावरो—संज्ञा पुं. [हिं. तावर] (१) ताप, जलन। (२) धूप घाम। उ.—मैं जमुना-जल भरि घर आवति मो को लागो तावरो—२४३२। (३, गर्मी से आया हुआ चक्कर।

तावल—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताव] जल्दी, उतावली।

तावा—संज्ञा पुं [हिं. ताव] तवा।

तावान—संज्ञा पुं [फा.] हानि का डाँड।

ताविषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देव-कन्या। (२) नदी। (३) पृथ्वी, भूमि।

तावीज—संज्ञा पुं. [अ. तअवीज़] (१) गले या बाँह में पहनने का यंत्र, मंत्र या कवच। (२) संपुट जिसमें यंत्र-मंत्र रखकर बाँधा जाता है।

तालीष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ण। (२) समुद्र।

ताश—संज्ञा पुं. [अ. तास] (१) एक तरह का जरदोजी कपड़ा। (२) खेलने का पत्ता। (३) ताश का खेल।

ताशा, तासा—संज्ञा पुं [अ. तास] चमड़ा मढ़ा एक बाजा।

तासीर—संज्ञा स्त्री. [अ.] असर, प्रभाव, गुण।

तासु, तासू—सर्व. [हिं. ता + सु (प्रत्य.)] उसका।

तासों, तासौं—सर्व. [हिं. ता + सों, सौं (प्रत्य.)] उससे, उसे। उ.—या विधि कौ ब्यौपार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ—१-७६।

ताह—वि. [हिं ता] उनका, उसके। उ.—जब सुत भयो कहेउ ब्राह्मण ते अर्जुन गये गृह ताह—सारा. ८५१।

ताहम—अव्य. [फा.] तो भी, तिस पर भी।

ताहि—सर्व. [हिं. ता + हिं (प्रत्य.)] उसे, उसको। उ.—धाइ चक्र लै ताहि उबारयौ, मारयौ ग्राह बिहंगी—१-२१।

ताहीं—अव्य. [हिं ताईं] (१) तक, पर्यंत। (२) पास, समीप (३) किसी के प्रति। (४) संबंध में, लिए। प्रत्य. [हिं. तइँ] से।

ताही—सर्व. [हिं. ता + ही (प्रत्य.)] उसी, उस ही।

उ.—(क) कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत—१-१२ । (ख) मोसौं बात सकुच तजि कहियै । कत ब्रीड़त, कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियौ—१-११६ ।

ताहू—सर्व. [हिं. ता + हू (प्रत्य.)] उसे भी, उसमें भी । उ.—(क) सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ—१-४७ । (ख) चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं—१०-१४७ ।

तिंतिड, तिंतिड़िका, तिंतिड़ीक, तिंतिड़ीका, तिंतलिका, तिंतिली—संज्ञा स्त्री. [सं. तिंतिड़ी] इमली ।

तिंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रज का एक तीर्थ ।

तिआ—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिया] स्त्री ।

तिआह—संज्ञा पुं. [सं. त्रिविवाह] तीसरा विवाह ।

तिकड़म—संज्ञा पुं. [सं. त्रि + क्रम (?)] गुप्त युक्ति, उपाय या चाल ।

तिकड़मी—वि. [हिं. तिकड़म] चालबाज ।

तिकड़ी—वि. [हिं. तीन + कड़ी] तीन कड़ियोंवाला ।

तिकोन, तिकोना, तिकोनिया—वि. [सं. त्रिकोण, हिं. तिकोना] जिसमें तीन कोने हों ।

संज्ञा पुं.—(१) समोसा । (२) तिकोनी नक्काशी करने या बनाने की छेनी ।

तिक्ख—वि. [सं. तीक्ष्ण प्रा. तिक्ख] (१) तीखा, तेज । (२) तीव्र बुद्धिवाला, चालाक ।

तिक्त—वि. [सं.] तीता, कड़ुआ ।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तिताई, कड़ुआपन ।

तिच्छ—वि [सं. तीक्ष्ण] (१) तेज । (२) चोखा ।

तिच्छता—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीक्ष्णता] तेजी, चोखापन ।

तिखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीखा] तीक्ष्णता, तेजी ।

तिखारना—क्रि. अ. [सं. त्रि + हिं. आखर] बात को निश्चित करने के लिए तीन बार पूछना ।

तिखूँटा—वि. [हिं. तीन+खूँट] तीन कोने का, तिकोना ।

तिगना, तिगूचना—क्रि स. [देश] भाँपना, देखना ।

तिगुना—वि. [सं. त्रिगुण] तीन गुना ।

तिग्म—वि [सं.] तीक्ष्ण, खरा, तेज ।

तिग्मकर—संज्ञा पुं. [सं. तिग्म + कर] सूर्य ।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री. [सं. तिग्म] तीक्ष्णता, तेजी ।

तिच्छ, तिच्छन—वि. [सं. तीक्ष्ण] तीखा, तेज ।

तिजहरिया. तिजहरी—संज्ञा पुं. [हिं. तीन + पहर] दिन का तीसरा पहर ।

तिजारत—संज्ञा स्त्री [अ.] वाणिज्य, व्यापार ।

तिजारती—वि. [हिं. तिजारत] तिजारत संबंधी ।

तिजया—संज्ञा पुं [हिं. तीजा] तीसरा विवाह करनेवाला ।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री [देश.] धन-दौलत रखने के लिए लोहे का छोटा संदूक या अलमारी ।

तिड़ीबिड़ी—वि. [हिं. तीन.] तितर बितर, बिखरा हुआ ।

तित—क्रि. वि. [सं. तत्र] (१) वहाँ, तहाँ । उ.—जल-थल नभ-कानन घर-भीतर, जहँलौं दृष्टि पसारौं री । तित तित मेरे नैननि आगे निरतत नंद दुलारो री—१०-१३५ । (ख) थाकत जित-तित अमर मुनिगन नंदलाल निहारि—१०-१६६ ।(२) उधर, उस ओर । उ.—जित देखौ तित स्याममय है ।

तितना—क्रि. वि [हिं. उतना] उतना ।

तितनी—वि. [हिं तितना] उतनी,उस मात्रा की । उ.—जितनी लाज गुपालहि मेरी । तितनी नाहि वधू हौं जिनकी, अंबर हरत सबनि तन हेरी—१-२५२ ।

तितने—वि. [हिं. तितना] उतने, उतनी संख्या में । उ.—भुव की रज नभ के सब तारे तितने हैं अवतार—सारा. ६०६ ।

तितर बितर—वि. [हिं. तिधर + अनु.] (१) जो एकत्र न हो, बिखरा हुआ (२) जो क्रम से न हो, अस्तव्यस्त ।

तितली—संज्ञा स्त्री [हिं. तितर (?) पुं. हिं. तितली] (१) एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या पतिंगा । (२) एक घास । (३) सुंदर बनी-ठनी युवती ।

तितलौका—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीता+लौआ] कड़ुआ,कद्दू ।

तितहिं—क्रि. वि. [हिं. तित + हिं] तहाँ ही, वहाँ ही, वहीं । (२) उधर ही, उसी ओर । उ.—जित-जित मन अरजुन कौ तितहि रथ चलायौ—१-२३ ।

तितारा—संज्ञा पुं. [सं. त्रि+हिं. तार] तीन तार का बाजा ।

वि.—जिसमें तीन तार लगे हों, तीन तारवाला ।

तितिंबा—संज्ञा पुं [अ. तितिम्मा] (१) पाखंड, ढकोसला । (२) शेषांश । (३) पुस्तक को परिशिष्ट ।

तितिक्षु—वि. [सं.] सहनशील, क्षमाशील ।

तितिक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरदी, गरमी आदि सहने की शक्ति। (२) क्षमा, क्षमाशीलता।

तितिक्षु—वि. [सं.] क्षमाशील, सहिष्णु।

तितिम्मा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बचा हुआ भाग, शेषांश। (२) पुस्तक की परिशिष्ट।

तितीर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तैरने की इच्छा। (२) तर जाने की कामना।

तितीर्षु—वि. [सं.] (१) तैरने का इच्छुक। (२) तरने का अभिलाषी।

तिते—वि. [सं. तति] उतने (संख्यावाचक)। उ.—(क) पाप-मारग जिते, सब कीन्हे तिते, बच्यौ नहिं कोउ जहँ सुरति मेरी—१-११०। (ख) जीव जल-थल जिते, वेष धरि-धरि तिते अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०।

तितेक—वि. [हि. तिते + एक] उतना।

तितै—क्रि. वि. [हिं. तित + ऐ (प्रत्य.)] (१) वहीं, वहाँ ही। (२) वहाँ। (३) उधर।

तितो—वि. [सं. तति] उतना, उस मात्रा का।

क्रि. वि.—उतना।

तिथ—संज्ञा पु. [सं.] (१) अग्नि, आग। (२) कामदेव। (३) काल। (४) वर्षा ऋतु।

तिथि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंद्रकला के घटने-बढ़ने के अनुसार गिने जानेवाले महीने के दिन, मिति, तारीख। उ.—(क) सोइ तिथि-वार-नक्षत्र-लगन-ग्रह सोइ जिहि ठाट ठयौ—१-२६८। (ख) व्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरद सरस रितु नद—३३३२। (२) पंद्रह की संख्या।

तिथिक्षय—संज्ञा पु. [सं.] तिथि का गिनती में न आना।

तिथिपति—संज्ञा पु. [स.] तिथियो के देवता।

तिथिपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] पत्रा, पचांग, जंत्री।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं. [स.] चद्रमा।

तिदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीन+फ़ा. दर] तीन दरवाजो की कोठरी।

तिधर—क्रि. वि. [सं. तत्र] उधर, उस ओर।

तिन—सर्व. [सं. तेन] 'तिस' शब्द का बहुवचन। उ.—(क) तिन प्रभु प्रहलादहिं सुमिरत ह्वीं नरहरि-रूप जु कीन्हौ—१-१५। (ख) सुक सौं नृपति परीक्षित सुन्यौ। तिनि मुनि भली भाँति करि गुन्यौ—१-२३७।

संज्ञा पुं. [सं. तृण] तिनका, घास-फूस।

तिनउर—संज्ञा पुं. [स. तृण + उर या ओर] तिनकों का ढेर या समूह।

तिनकना—क्रि. अ. [हिं. चिनगारी, चिनगी या अनु.] चिड़चिड़ाना, चिढ़ना, झल्लाना, बिगड़ना।

तिनका—संज्ञा पुं. [सं. तृण] सूखी घास का टुकड़ा।

मुहा.—तिनका दाँतों में दबाना (पकड़ना, लेना)—क्षमा या कृपा के लिए विनती करना। तिनका तोड़ना—(१) संबंध तोड़ना। (२) (बच्चे को नजर से बचाने के लिए माता का तिनका तोड़कर) बलैया लेना। तिनका चुनना—पागल या बावला होना। तिनका चुनवाना—(१) पागल बना देना। (२) मोहित कर लेना। सिर से तिनका उतारना—(१) थोड़ा सा अहसान करना। (२) थोड़ा काम करके उपकारी बनना।

तिनकी—सर्व. [हि. तिन] 'तिसकी' शब्द का बहुवचन, उनकी। उ.—हरि-चरनारबिंद तजि लागत अनँत कहूँ तिनकी मति काँची—१-१८।

सज्ञा स्त्री. [हिं. तिनका का अल्प.] छोटा तिनका।

मुहा.—तिनकी तोड़ना—सबध तोड़ना। तिनकी तोर करहु जिनि हम सौं—हमसे संबंध मत तोड़ो, हमसे संबध बनाये रहो। उ.—तिनकी तोर करहु जिनि हम सों एक बीस की लाजनि बहिवो—३४१६।

तिनके—सर्व. [हि. तिनका = उनका] उनके।

संज्ञा पुं. बहु. [हिं. तिनका = तृण] घास के टुकड़े।

मुहा.—तिनके चुनना—पागल का सा काम करना। तिनके चुनवाना—(१) पागल या बावला बनाना। (२) मोहित करना। तिनके का सहारा—(१) थोड़ा सा सहारा। (२) ऐसी बात जिससे थोड़ा धीरज बँधे। तिनके को पहाड़ करना—छोटी सी बात को बहुत बड़ी कर देना। तिनके को पहाड़ कर दिखाना—जरा सी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहना। तिनके

की ओट पहाड़—छोटी सी बात में किसी बड़ी बात को छिपाना।

तिनकौं—सर्व. [हि. तिन + कौं (प्रत्य.)] 'तिस' सर्वनाम के बहुवचन 'तिन' का विभक्तियुक्त रूप; उनको। उ.—जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजा-राय कहैं—१-५३।

तिनगना—क्रि. अ. [हि. तिनका] बिगड़ना, झल्लाना।

तिनगरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक प्रकार का पकवान। उ.—पेठापाक जलेबी कौरी। मोंदपाक, तिनगरी, गिंदौरी—३९६।

तिनपहल, तिनपहला—वि. [हिं. तीन + पहल] जिसमें तीन पहल हो, तिपहला।

तिनि—[हिं. तिन] उन्होंने। उ.—जोइ जोइ माँग्यौ जिनि, सोइ सोइ पायौ तिनि, दीजै सूरदास दर्स भक्तनि बुलाइकै—६४९।

तिनुका—संज्ञा पुं. [हिं. तिनका] घास का टुकड़ा, तृण।

मुहा.—तिनुका तोरि—सबध विच्छेद करके, नाता तोड़कर। उ.—(क) कापर नैन चढ़ाए डोलति, ब्रज मैं तिनुका तोरि—१०-३१०। (ख)—भाई बंधु कुटुंब सहोदर सब मिलि यहै विचारयौ। जैसे कर्म, लहो फल तैसे, तिनुका तोरि उचारयौ—१-३३६। तिनका सौं तोरयौ—बड़ी सरलता से त्याग दिया। उ.—लोक-वेद तिनुका सौं तोरयौ—१२०१।

तिन्ह—सर्व. [हि. तिन] उनके। उ.—(क) सुत कुबेर के मत्त-मगन भए विषै-रस नैननि छाए (हो)। मुनि सराप तैं भए जमलतरु तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)—१-७। (ख) दुखित जानिकै सुत कुबेर के, तिन्ह लगि आपु बँधाए—१-१२२।

तिन्हैं—सर्व [हि. तिन] उन्हें, उनको। उ.—इनके पुत्र एक सौ मुए। तिन्हैं बिमारि सुखी ये हुए-१-२८४।

तिपति—संज्ञा स्त्री [स. तृप्ति] सतोष।

तिपल्ला—वि. [हिं. तीन + पल्ला] तीन पर्तों का।

तिपाई—संज्ञा स्त्री [हि. तीन+पाया] तीन पायो की चौकी।

तिपाड़—संज्ञा पु. [हि. तीन + पाट] (१) जो तीन पाट जोड़कर बनाया गया हो। उ.—दच्छिन चीर तिपाड़ को लहँगा। पहिरि विविध पट सोलन महँगा। (२) जिसमें तीन पल्ले हो। (३) जिसमें तीन किनारे हो।

तिबारा—वि. [हि. तीन + बार] तीसरी बार।

संज्ञा पुं [हिं. तीन+बार] तीन द्वार की कोठरी।

तिबासी—वि. [हिं. तीन+बासी] तीन दिन का बासी।

तिमंजिला वि. [हिं. तीन+अ. मञ्ज़िल] तीन खडों का।

तिम—संज्ञा पु. [टि. डिडिम] नगारा, डंका, दुदुभी।

तिमाना—क्रि. स. [देश] भिगोना, तर करना।

तिमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समुद्र का एक बड़ा जतु। (२) समुद्र। (३) रतौंधी नामक रोग।

अव्य.—[सं. तद् + इमि] उस प्रकार, वैसे।

तिमित—वि. [सं.] (१) निश्चल। (२) आर्द्र।

तिमिर—संज्ञा पु. [सं.] (१) अधकार। (२) रतौंधी नामक रोग। (३) एक पेड़।

तिमिरहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) दीपक।

तिमिरारि—संज्ञा पु [सं. तिमिर + अरि] (१) अधकार का शत्रु। (२) सूर्य। (३) दीपक।

तिमिरारी—संज्ञा स्त्री. [सं. तिमिराली] अँधेरा।

संज्ञा पुं. [सं. तिमिरारि] (१) सूर्य। (२) दीपक।

तिमिरावलि—संज्ञा स्त्री. [स.] अधकार का समूह।

तिय, तिया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री, हिं. तिय] स्त्री। (२) पत्नी, भार्या। उ.—अस्मय-तन गौतमतिया को साप नसावै—१४।

तियला—संज्ञा पुं.[हिं.तिय + ला]स्त्रियों का एक पहनावा।

क्रि. अ.—बाल सफेद होना।

तिरकना—क्रि. अ. [अनु.] तड़कना, फट जाना।

तिरकस—वि. [सं. तिरस] जो सीधा न हो, टेढ़ा।

तिरखा संज्ञा स्त्री. [स.तृषा] प्यास।

तिरखित—वि. [स. तृषित] प्यासा।

तिरखूँटा—वि. [हि. तिखूटा] तीन कोने का।

तिरगुन—संज्ञा पुं. [सं. त्रिगुण] प्रकृति के तीन गुण—सत्व, रज और तम।

तिरछई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिरछा] तिरछापन।

तिरछा—वि. [सं. तिरश्चीन] जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल आड़ा।

यौ.—बाँका तिरछा—छैल-छबीला।

मुहा.—तिरछा वाक्य या वचन—अप्रिय बात।

तिरछाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिरछा + ई] तिरछापन।

तिरछाना—क्रि. अ. [हिं. तिरछा] तिरछा होना।

क्रि. स.—तिरछा करना।

तिरछापन—संज्ञा पुं. [हिं. तिरछा + पन (प्रत्य.)] तिरछा होने का भाव।

तिरछी—वि. स्त्री. [हि. तिरछी] जो बिलकुल सीधा या आड़ा न हो। उ.—मनो एक सँग गंग जमुन नभ तिरछी धार बहावत—१३५०।

मुहा.—तिरछी चितवन (नजर)—टेढ़ी दृष्टि या निगाह, कटाक्ष। तिरछी बात—अप्रिय या कटु बात।

तिरछे—वि. [हिं. तिरछा] जो बिलकुल आडा या सीधा न हो। उ.—अब कैसे निकसत सुन ऊधौ तिरछे ह्वै जो अड़े—३१५१।

मुहा.—तिरछे हो जाना—सीधे या लाभदायक न रह जाना। तिरछे भये—खोटे, बुरे, दुखदायी या हानिकारक हो गये। उ.—तिरछे भये कर्म कृत पहिले विधि यह ठाठ बनायौ—२५१३।

तिरछैं—वि. [हिं. तिरछा] तिरछे होकर, टेढ़े-टेढ़े। उ.—पौढि रहे धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ—३५६।

तिरछो, तिरछौ—वि. [हिं. तिरछा] जो सीधा या आड़ा न हो, तिरछा।

मुहा.—तिरछो भयो—दुखदायी या हानिकारिक हो गया। उ.—तिरछो करम भयो पूरब को प्रीतम भयो पाइ की बेरी—८०७।

तिरछौहाँ—वि. पुं. [हिं. तिरछा + औहाँ (प्रत्य.)] जो कुछ-कुछ तिरछा हो।

तिरछौहीं—वि. स्त्री. [हिं. तिरछौहाँ] कुछ-कुछ तिरछी।

तिरछौहैं—क्रि. वि. [हिं. तिरछौहाँ] कुछ-कुछ तिरछेपन के साथ, तिरछापन लिये हुए, वक्रता से।

तिरतिराना—क्रि. अ. [अनु.] बूंद-बूंद टपकना।

तिरना—क्रि. अ. [सं. तरण] (१) पानी के ऊपर उतराना। (२) तैरना, पैरना। (३) पार होना। (४) तर जाना, मुक्त हो जाना।

तिरनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) नीवी, घँघरिया की डोरी। (२) स्त्रियों की घँघरिया या धोती का भाग जो नाभि के नीचे पड़ता है। उ.—बेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी। सूथन जघन बाँधि नाराबँद तिरनी पर छवि भारी।

तिरप—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रि] नृत्य में एक ताल। उ.—तिरप लेति चपला सी चमकति झमकति भूषन अंग।

तिरपट—वि. [देश.] (१) तिरछा। (२) कठिन।

तिरपटा—वि. [देश.] तिरछा ताकनेवाला, भेंगा।

तिरपन—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपंचाशत्, प्रा. तिपण्ण] पचास से तीन अधिक की सख्या।

तिरपाल—संज्ञा पुं. [सं. तृण + हिं पालना=बिछाना] फूस या सरकड़े के पूले जो छाजन में बिछाये जाते हैं।

तिरपित—वि. [सं. तृप्त] संतुष्ट।

तिरबेनी—संज्ञा पु. [सं. त्रिवेणी] गगा, यमुना और सरस्वती का संगम।

तिरमिरा—संज्ञा पु [सं. तिमिर] (१) दुर्बलता से दृष्टि के सामने चिनगारियाँ छूटना। (२) चकाचौंध।

संज्ञा पुं. [हि. तेल + मिलना] पानी आदि द्रवों पर घी-तेल के तैरनेवाले छींटे।

तिरमिराना—क्रि. अ. [हिं. तिरमिरा] (आँख का) झपना या चौंधियाना।

तिरलोक—संज्ञा पुं. [सं. त्रिलोक] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—ये तीनो लोक।

तिरलोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिलोकी] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—ये तीनो लोक।

तिरवराना—क्रि. अ. [हिं. तिरमिराना] चौंधियाना।

तिरवाह—संज्ञा पुं. [सं. तीर+वाह] नदी-तीर की भूमि।

तिरसठ—संज्ञा पु. [स. त्रिषष्ठि, प्रा. तिसट्ठि] वह सख्या जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो।

तिरसूल—सज्ञा पुं. [सं. त्रिशूल] तीन फाल का एक अस्त्र जो शिव जी को प्रिय माना गया है।

तिरस्कर—संज्ञा पु. [सं.] परदा करनेवाला।

तिरस्करी—संज्ञा पु. [सं. तिरस्करिन्] परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पु. [स.] (१) अनादर, अपमान। (२) डाँट-फटकार। (३) अनादर के साथ त्याग।

तिरस्कृत—वि. [सं.] (१) जिसका अनादर या तिरस्कार

किया गया हो, अपमानित । (२) जिसका अनादर पूर्वक त्याग किया गया हो । (३)परदे में छिपा हुआ ।

तिरस्क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अनादर । (२) वस्त्र ।

तिरानबे—संज्ञा पुं. [सं. त्रिनवति, प्रा. तिन्नवइ] वह संख्या जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो ।

तिराना—क्रि. स. [हिं. तिरना] (१) पानी पर ठहरना । (२) तैरना । (३) पार करना । (४) उबारना ।

तिरास—संज्ञा पुं. [सं. त्रास] (१) डर । (२) कष्ट ।

तिरासना—क्रि. स. [सं. त्रासन] डराना ।

तिरासी—संज्ञा पुं. [सं. त्र्यशीति, प्रा. तियासीति] वह संख्या जो गिनती में अस्सी से तीन ज्यादा हो ।

तिराहा—संज्ञा पुं. [हिं. तीन + राह] वह स्थान जहाँ से तीन ओर को रास्ते गये हों ।

तिरिन—संज्ञा पु. [सं. तृण] तिनका, तृन ।

तिरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री.] स्त्री, औरत ।

यौ.—तिरिया चरित्तर—स्त्रियों का रहस्य ।

तिरीछा, तिरछौ—वि. [हिं. तिरछा] तिरछा, टेढ़ा, आड़ा ।

मुहा.—तिरीछौ होई—आड़े आना, कठिनाई में सहायक होना, संकट के समय काम आना । उ.—हरि सौं मीत न देख्यौ कोई । विपति काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० ।

तिरोधान—संज्ञा पुं. [सं.] अतर्द्धान ।

तिरोधायक—संज्ञा पुं. [स.] छिपानेवाला ।

तिरोभाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अन्तर्भाव । (२) छिपाव ।

तिरोभूत—वि. [सं.] गुप्त, छिपा हुआ, अदृष्ट ।

तिरोहित—वि. [सं.] (१) अदृष्ट । (२) ढका हुआ ।

तिरौंछी—वि. [हि. तिरछा] तिरछी, टेढ़ी, आड़ी ।

उ.—कठिन वचन सुनि स्रवन जानकी सकी न वचन सम्हार । तृन अंतर दै दृष्टि तिरौंछी (तरौंधी) दई नैन जलधार—९-७६ ।

तिर्पित—वि. [सं. तृप्त] सतुष्ट, प्रसन्न ।

तिर्यक—वि. [सं.] तिरछा, आड़ा, टेढ़ा ।

तिर्यकता—संज्ञा स्त्री. [स.] तिरछापन, आड़ापन ।

तिल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक अनाज जो दो प्रकार का होता है-काला और सफेद । उ.-तिल चाँवरी, बतासे मेवा, दियौ कुँवरि की गोद—१०-७०४ ।

मुहा.—तिल की ओझल (ओट) पहाड़—छोटी बात के भीतर बड़ा रहस्य । तिल का ताड़ करना—छोटे से मामले को बहुत बढ़ा देना । तिल-भर-थोड़ा थोड़ा, जरा सा । तिल धरने की जगह न होना-जरा सी भी जगह खाली न होना । तिल न रहति चित चैन—जरा भी शांति नहीं मिलती । उ.—मृदु मुसुक्यानि हरयौ मन कौ मनि, तव तैं तिल न रहति चित चैन—७४२ । तिल भर—(१) जरा सा, थोड़ा सा । (२) क्षण भर, थोड़ी देर ।

(२) काले रग का छोटा सा दाग जो शरीर पर होता है । (३) गाल या ठोढी पर छोटा सा गोदना । (४) आँख की गोल बिंदी ।

तिलक—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंदन, केसर आदि का टीका । (२) राज्याभिषेक । (२) विवाह-सबध स्थिर करने की एक रीति जिसमें वर के टीका करके भेंट देते हैं । (४) माथे का एक गहना । (५) श्रेष्ठ व्यक्ति । उ.—सूर समुझि, रघुबंस-तिलक दोउ उतरे सागर तीर—९-११५ । (६) ग्रंथ की टीका ।

संज्ञा पुं. [तु. तिरलीक का संक्षि. रूप] (१) मुसलमान स्त्रियों का ढीला ढाला कुरता । (२) खिलअत ।

तिलकना—क्रि. अ. [हिं. तड़कना] मिट्टी की सतह का सूखकर दरकना ।

तिलक मुद्रा—संज्ञा स्त्री. [स.] चदन आदि का टीका या शंख-चक्र आदि की छाप जिसे भक्तजन लगाते हैं ।

तिलकहरू, तिलकहार—संज्ञा पुं. [हिं. तिलक + हार (प्रत्य.)] व्यक्ति जो वर को तिलक चढ़ाने जाय ।

तिलका—संज्ञा पुं. [स.] (१) कठ का एक गहना । (२) एक वृत्त ।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है ।

तिलकालक—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर पर तिल की तरह का काला चिह्न ।

तिलकुट—[हिं. तिल + कूटना] कूटे हुए तिल जो शकर या गुड़ में पकाये गये हो ।

तिलछना—क्रि. अ. [अनु.] बेचैन रहना ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिरमिर] चकाचौंध ।
तिलमिलाना—संज्ञा स्त्री. [हि. तिरमिराना] चौंधियाना ।
तिलरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिलड़ी] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है । उ.—कंठ-सिरी दुलरी तिलरी उर मानिक मोती हार रंग की—१०४२ ।
तिलहन—संज्ञा पुं. [हिं. तेल + धान्य] तिल, सरसों आदि के पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है ।
तिलांजलि, तिलांजली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक सस्कार जिसमें मृतक को फूंकने के पश्चात स्नान करके अँगुली भर जल में तिल डालकर उसके नाम पर छोड़ते है ।
मुहा.—तिलांजली देना—बिलकुल त्याग देना ।
तिलिस्म—संज्ञा पुं. [यू. टेलिस्मा] (१) जादू । (२) अद्भुत व्यापार या चमत्कार ।
तिलिस्मी—वि. [हिं. तिलिस्म] तिलिस्म से संबधित ।
तिलोक—संज्ञा पु. [सं. त्रिलोक] तीन लोक ।
तिलोकनाथ, तिलोकपति—संज्ञा पुं. [सं. त्रिलोक+नाथ, पति] (१) विष्णु । (२) परमेश्वर ।
तिलोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिलोकी] तीन लोक ।
तिलोचन—सज्ञा पुं. [सं. त्रिलोचन] शिव, महादेव ।
तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक परम रूपवती अप्सरा जिसकी रचना ब्रह्मा ने संसार के समस्त उत्तम पदार्थों का एक-एक तिल अंश लेकर की थी । इसे देखकर संद और उपसुद नामक दो दैत्य, जो हिरण्याक्ष के पुत्र थे और जिन्हें आपस में लड़कर ही मर सकने का वरदान था, परस्पर लड़कर मर मिटे थे ।
तिलोदक—संज्ञा पुं. [सं. तिल+उदक] तिलाजली ।
तिलौछना—क्रि. स. [हिं. तेल+औंछना] तेल लगाकर चिकना करना, चिकनाना ।
तिलौंछा—वि. [हि. तेल + औंछना] जिसमें तेल का मेल, स्वाद, गध या रंगत हो ।
तिलौरी, तिलौरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की मैना । संज्ञा स्त्री. [हिं. तिल + बरी] उर्द, मूंग और तिल की नमकीन बरी जो तलकर खायी जाती है ।
तिल्ला—सज्ञा पुं. [अ. तिला] (१) कलाबत्तू आदि का काम । (२) कपड़ा जिस पर कलाबत्तू का काम हो ।
तिल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं. तिलक] पेट का एक भीतरी अवयव । संज्ञा स्त्री. [सं. तिल] तिल या तेलहन ।
तिवई—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री.] स्त्री, तिय ।
तिवान—संज्ञा पुं. [देश.] चिंता, फिक्र ।
तिवारी—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपाठी] त्रिवेदी ।
तिवास—संज्ञा पुं. [सं. त्रिवासर] तीन दिन ।
तिष्टना—क्रि. स. [सं. सृष्टि] रचना, बनाना ।
तिष्ठना—क्रि. अ. [सं. तिष्ठ] ठहरना ।
तिष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुष्य नक्षत्र । (२) पूस का महीना । (३) कलियुग । (४) मगलकारी बात ।
तिष्पन—वि. [सं. तीक्ष्ण] तीखा, तेज ।
तिस—सर्व. [सं. तस्मिन्, पा. तिस्सं] 'ता' का विभक्ति-रहित एक रूप ।
मुहा.—तिस पर—(१) उसके बाद । (२) इतना होने पर भी ।
तिसना—संज्ञा स्त्री. [सं. तृष्णा] (१) लोभ । (२) प्यास ।
तिसरा—वि. [हिं. तीसरा] तीसरा ।
तिसराय—क्रि. वि. [हि. तीसरा] तीसरी बार ।
तिसाना—क्रि. अ. [सं. तृषा] प्यासा होना ।
तिहत्तर—संज्ञा पुं. [सं. त्रिसप्तति, पा. तिसत्तति, प्रा. तिहत्तरि] सत्तर से तीन अधिक की सख्या ।
तिहरा—वि. [हिं. तीन + हरा] तीन परत का ।
तिहराना—क्रि. स. [हिं. तेहरा] (किसी काम या बात को दो बार करने के बाद) तीसरी बार फिर करना ।
तिहरी—संज्ञा स्त्री. [हि.तीन + हार] तीन लड़ो की माला ।
तिहवार—सज्ञा पु. [हिं. त्योहार] उत्सव का दिन ।
तिहवारी—सज्ञा स्त्री. [हिं. त्योहारी] त्योहार के उपलक्ष में नौकरो या सेवको को दिया जानेवाला धन ।
तिहाई—सज्ञा स्त्री. [सं. त्रि+भाग] तीसरा भाग ।
तिहाउ—संज्ञा पुं. [हिं. तिहाव] (१) क्रोध । (२) वैर ।
तिहारा—सर्व. [हिं. तुम्हारा] तुम्हारा ।
तिहारी—सर्व. [हिं. तुम्हारी] तुम्हारी । उ.—(क) अब सिर परी ठगौरी देव । तातैं बिवस भयौ करुनामय, छाँड़ि तिहारी सेव—१-४६ । (ख) अब आयो हौं सरन तिहारी—१-१७८ ।
तिहारे—सर्व. [हिं. तुम्हारे] तुम्हारे । उ.—(क) कहा

गुन बरनौं स्याम, तिहारे—१-२५ । (ख) तिहारे आगैं बहुत नच्यौ—१-१७४ ।

तिहारैं—सर्व. [हि.तिहारा] तुम्हारे, तेरे । उ.--(क) महा-पतित कबहूँ नहि आयौ, नैंकु तिहारैं काज—१ १०८। (ख) अगनित गुन हरिनाम तिहारैं, अजौं अपुनपौ धारौ—१-१५७ ।

तिहारो, तिहारौ—सर्व. [हिं. तिहारा] तुम्हारा । उ.—अजामील तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास—१-१३२ ।

तिहाव—संज्ञा पु. [हिं. तेहा] (१) क्रोध । (२) बिगाड़ ।

तिहिं—सर्व. [हि. तेहि] उसे, उसको ।

वि.—उसके । उ.—सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ—१-१ ।

यौ —जिहिं तिहिं—किसी भी प्रकार से, कोई भी उपाय करके, कैसे भी । उ.—अब मैं उनको ज्ञान सुनाऊँ । जिहिं तिहि विधि बैराग्य उपाऊँ—१-२८४।

तिहीं— वि. [हि. तेहि] वैसे (ही), उसी (तरह) । उ.-सुक नृपति पाँहिं जिहिं विधि सुनाइ । सूरजनहूँ तिहिं भाँति गाई—८-११ ।

तिहुँ,तिहूँ—वि. [हिं. तीन+हुँ (प्रत्य.)] तीनो । उ.—(क) बलि बल देखि, अदिति-सुत कारन, त्रिपद ब्याज तिहुँ पुर फिरि आई—१-६ । (ख) अखिल ब्रह्मांड पति तिहुँ भुवनपति नीरपति पवनपति अगमबानी—१५२२ । (ग) कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा, कीरति तिहूं लोक मैं माँची—१-१८ ।

तिहैया—संज्ञा पु. [हिं. तिहाई] तीसरा भाग या अंश ।

ती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री] (१) स्त्री (२) पत्नी ।

तीअत—संज्ञा स्त्री. [सं. तृणात] शाक, भाजी, तरकारी ।

तीकरा—संज्ञा पु [देश.] अंकुर, अँखुआ ।

तीकुर—संज्ञा पु. [हिं. तीन+कूरा = अंश] तिहाई अंश ।

तीक्षण, तीच्छन, तीक्ष्ण—वि. [सं. तीक्ष्ण] (१) तेज नोक या धारवाला । (२) तेज, तीव्र, प्रखर । (३) उग्र, प्रचंड, तीखा । (४) तेज या चरपरे स्वाद का । (५) अप्रिय या कर्णकटु (वाक्य या बात) । (६) जिसे आलस्य न हो । (७) आत्मत्यागी । (८) जो सहा न जा सके, असह्य ।

संज्ञा पुं.—(१) गरमी । (२) विष । (३) युद्ध । (४) मृत्यु । (५) महामारी । (६) योगी ।

तीक्ष्णता—संज्ञा स्त्री.[सं.] तीक्ष्ण होने का भाव, तीव्रता ।

तीक्ष्णदृष्टि - वि. [सं] सूक्ष्म बातों को देखनेवाला ।

तीक्ष्णधार--वि. [सं.] जिसकी धारा बहुत तेज हो ।

संज्ञा पु.—तलवार ।

तीक्ष्णबुद्धि—वि. [सं.] बहुत बुद्धिमान ।

तीक्ष्णरश्मि, तीक्ष्णांशु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य ।

तीक्ष्णाग्र—वि. [सं.] तेज नोकवाला ।

तीख, तीखन, तीखा—वि. [सं. तीक्ष्ण] (१) तेज नोक या धारवाला । (२) तेज, तीव्र । (३) उग्र, प्रचंड । (४) उग्र स्वभाव का । (५) चरपरे स्वाद का । (६) अप्रिय या कटु (वाक्य या कथन) । (७) बढ़िया ।

तीखुर, तीखुल—संज्ञा पु [सं. तवक्षीर] एक पौधा जिसकी जड़ का सत बढ़िया मैदे की तरह का होता है ।

तीछन, तीछा—वि. [सं. तीक्ष्ण] (१) तेज । उ.—तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार-१-६८ । (२) प्रखर, तीव्र । (३) उग्र, प्रचंड । (४) कर्ण कटु, कठोर या अप्रिय ।

तीछनता—संज्ञा स्त्री. [सं. तीक्ष्णता] तीव्रता, तेजी ।

तीज—संज्ञा स्त्री. [सं. तृतीया] (१) प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । उ.—रंग महल मे जहँ नँदरानी खेलति सावनी तीज सुहाय—२२६० । (२) भादों सुदी की हरतालिका तृतीया ।

तीजा—संज्ञा पु. [हिं. तीज] मरने से तीसरा दिन ।

वि.—तीसरा, तृतीय ।

तीजे—संज्ञा पु. [हिं. तीज] तीसरा, तृतीय । उ.—(क) तिन्हैं कह्यौ संसार मैं असुर होहु अब जाइ । तीजे जनम विरोध करि मोकौं मिलिहौ आइ—३-११ । (ख) तीजे मास हस्त पग होहिं—३-१३ ।

तीत, तीता—वि. [सं. तिक्त, हिं. तीता] (१) चरपरे स्वाद का । (२) कड़ुआ, कटु ।

वि.—भीगा हुआ, आर्द्र, नम ।

तीतर, तीतुल—संज्ञा पु. [सं. तित्तिर] एक पक्षी ।

तीन—संज्ञा पु. [सं. त्रीणि] दो और चार के बीच की संख्या, दो में एक के जोड़ से बननेवाली संख्या ।

मुहा.—तीन-पाँच करना—हुज्जत या झगड़ा करना। तीन तेरह करना—तितिर-बितर करना। न तीन में न तेरह में—जिसे कोई भी न पूछता हो।

तीनलड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीन+लड़ी] तीन लड़ की माला।

तीनि—संज्ञा पुं. [हिं. तीन] तीन की संख्या।

तीनो, तीनौ—वि. [हिं. तीन] पूरे तीन। उ.—(क) तीनौ पनै ऐसैं हीं खोए—१-७३। (ख) तीनौ पन मैं भक्ति न कीन्हीं—१-१७८।

तीन्यौ—वि. [हिं. तीन] तीनो। उ.—तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, यहै स्वाँग कौं काछे—१-१३६।

तीमारदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] रोगी की सेवा।

तीय, तीया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री.] स्त्री, औरत।

तीरंदाज—संज्ञा पुं. [फा.] तीर चलानेवाला।

तीरंदाजी—संज्ञा स्त्री. [फा.] तीर चलाने की कला।

तीर—संज्ञा पुं. [सं] (१) नदी-सागर का किनारा, तट, कूल। उ.—(क) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ।…। अति गभीर, तीर नहि नियरैं, किहिं बिधि उतरयौ जात—१-१५। (ख) सागर-तीर भीर बनचर की—९-८४। (ग) जमुना तीर कियो रथ ठाढ़ो—२५५३। (२) निकट, समीप। उ.—(क) सारँग इक सारँग ह्वै लोच्यौ, सारँग ही कैं तीर—१-३३। (ख) तुम्है पहिचानति नाहीं वीर। इन नैननि कबहूँ नहि देख्यौ, रामचंद्र कै तीर—९-८६। (ग) झूलत जसोदा-जननी तीर—१०-१६१। (घ) हृदय रुचिर मोतिन की माला नख रेखा तेहिं तीर—२६६१।

संज्ञा पुं. [फा.] बाण, शर।

मुहा.—तीर चलाना (फेंकना)—युक्ति भिड़ना।

तीरथ—संज्ञा पुं. [सं. तीर्थ] (१) ऐसा पुण्य स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग जाते हों। उ.—(क) चल्यौ तीरथ कूँ मुड उघारी—१-२८४। (ख) जोग जज्ञ जप तप तीरथ-ब्रत कीजत है जहि लाभा—२५६६। (२) कोई पवित्र स्थान।

तीरवर्ती—वि. [सं.] (१) तट या किनारे पर रहनेवाला। (२) समीप रहनेवाला, पड़ोसी।

तीरस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नदी के तीर पर पहुँचा हुआ। (२) मरणासन्न व्यक्ति जिसे नदी के किनारे पहुँचा दिया गया हो।

तीरा—संज्ञा पुं. [हिं. तीर] (१) किनारा। (२) निकट।

तीर्ण—वि. [सं.] (१) जो पार हो गया हो। (२) जो सीमा को पार कर चुका हो। (३) भीगा हुआ।

तीर्थंकर—संज्ञा पुं. [सं.] जैनियो के चौबीस देवता।

तीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह पवित्र स्थान जहाँ भक्त-जन स्नान या दर्शन के लिए जाते हैं। (२) कोई पवित्र स्थान। (३) हाथ के कुछ विशिष्ट स्थान।

तीर्थक—वि. [सं.] (१) ब्राह्मण। (२) तीर्थंकर। (३) तीर्थों की यात्रा करनेवाला।

तीर्थपति—संज्ञा पुं [सं.] प्रयाग।

तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीर्थ स्नान को जाना।

तीर्थराज—संज्ञा पुं. [सं.] प्रयाग।

तीर्थराजी—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी जिसमें सब तीर्थ हैं।

तीर्थाटन—संज्ञा पुं. [सं.] तीर्थों की यात्रा।

तीली—संज्ञा स्त्री. [फा. तीर=बाण] (१) सींक। (२) किसी धातु की सींक। (३) सींकों की कूँची।

तीवन—संज्ञा पुं. [सं. तेमन=व्यंजन] (१) पकवान, व्यंजन। (२) रसेदार तरकारी।

तीवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समुद्र। (२) बहेलिया। (३) मछुआ। (४) एक वर्णसंकर अत्यज जाति।

तीव्र—वि. [सं.] (१) अत्यंत, अधिक। (२) तीक्ष्ण, तेज। (३) बहुत गरम। (४) बेहद, बहुत अधिक। (५) कड़ुआ। (६) जो सहा न जा सके (७) प्रचंड। (८) बहुत वेगवाला। (९) ऊँचा स्वर।

तीव्रगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] वायु, हवा।

तीव्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तेजी, तीखापन।

तीस—वि. [सं. त्रिंशत, पा. तीसा] जो दस का तिगुना हो। उ.—एकै चित एकै वह मूरति पलन लगैं दिन तीस—३१३०।

यौ.—तीस दिन—सदा। तीस मार खाँ—बड़ा बहादुर (व्यंग्य)।

संज्ञा पुं.—दस की तिगुनी संख्या।

तीसर, तीसरा—वि. [हिं. तीन+सरा (प्रत्य.)] (१) क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला। (२) जिसका प्रसंग से कोई संबंध न हो।

तीसरैं—वि. [हिं. तीसरा] तीसरा, जो दो के उपरांत हो। उ.—देवधामी करत, द्वार द्वारैं परत, पुत्र है, तीसरैं यहै बारी—६६६।

तीसवाँ—वि. [हिं. तीस + वाँ] जो क्रम में उनतीस के बाद पड़े, तीस के स्थान में पड़नेवाला।

तीसी—संज्ञा स्त्री. [सं. अतसी] अलसी नामक तेलहन।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तीस + ई] तीस चीजों का समूह।

तीहा—संज्ञा पु. [[सं. तुष्टि ?] तसल्ली, आश्वासन।

संज्ञा पु. [हि. तिहाई] तिहाई भाग।

तुंग—वि. [स. (१) उन्नत, ऊँचा। उ.-पीन भुजलीन जे लखि रंजित नील घन सीत तनु तुंग छाती—२६७०। (२) उग्र, प्रचड। (३) प्रधान, मुख्य।

संज्ञा पु.—(१) पहाड़। (२) नारियल। (३) कमल का केसर। (४) शिव। (५) बुधग्रह। (६) ग्रहों की उच्च राशि।

तुंगता—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऊँचाई।

तुंगनाथ—संज्ञा पु. [स.] हिमालय पर एक शिवलिंग।

तुंगारण्य, तुंगारन्न—संज्ञा पु. [सं.] बेतवा नदी का एक जगल जहाँ एक मदिर है और मेला लगता है।

तुंगी—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) रात। (२) वन तुलसी।

तुंगीपति—संज्ञा पु [स.] चंद्रमा।

तुंड—संज्ञा पुं. [स.] (१) मुँह। (२) चोच। (३) थूथन। (४) तलवार का अगला भाग। (५) शिव।

तुंडि—संज्ञा स्त्री [सं.] (१)मुँह। (२)चोच। (३) बिंबफल या उसकी ढोढ़ी (४) नाभि, तोंदी।

तुंडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टोंटी। (२) चोच।

तुंडिल—वि. [सं.] (१) तोंद या बड़े पेटवाला। (२) उभरी नाभिवाला। (३) बकवादी। (४) सूँडवाला।

तुंडी—वि. [स. तुण्डिन्] (१) मुँहवाला। (२) चोचवाला। (३) थूथनवाला। (४) सूँड़वाला।

संज्ञा पुं.—गणेश जी।

संज्ञा स्त्री.—नाभि, तोंदी, ढोंढ़ी।

तुंद—संज्ञा पुं. [सं] पेट, उदर।

वि. [फ़ा.] तेज, घोर, प्रचंड।

तुंदिक, तुंदिल—वि. [स.] तोंदवाला, तोंदियल।

तुंदैल, तुंदैला—वि. [सं. तुंदिल] तोंदियल।

तुंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लौकी। (२) सूखी लौकी।

तुंबा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कड़ुआ कद्दू। (२) कड़ुई लौकी। (३) सूखे कद्दू का पात्र।

तुंबी, तुंबिका—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंबी] (१) छोटा कड़ुआ कद्दू। (२) छोटी कड़ुई लौकी। (३) सूखी लौकी या कद्दू का पात्र, तूँबी।

तुंबुर, तुंबुरु—संज्ञा पुं. [सं. तुंबुरु] एक गधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं। ये विष्णु के प्रिय पार्श्वचर और संगीत विद्या में अति निपुण माने जाते हैं। उ.—रजनी-मुख आवत, गुन गावत, नारद तुंबुर नाऊँ—६-१७२।

तुअ—सर्व. [हिं. तुव] तुम्हारा।

तुअना—क्रि. अ. [हिं. चूना] (१) चूना, टपकना। (२) गिर पड़ना। (३) गर्भपात होना।

तुइ, तुई—सर्व. [हि. तू] तू, तुम।

तुक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टूक = टुकड़ा] (१) किसी पद्य या गीत का टुकडा। (२) पद्य की पंक्तियों के अंतिम अक्षर। (३) पद्य की पंक्तियों के अंतिम अक्षरों की मैत्री या सम स्वरता।

मुहा.—तुक जोड़ना—भद्दी कविता बनाना।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुक + फा. बंदी] (१) भद्दी कविता। (२) भद्दी कविता बनाने का काम।

तुकांत—संज्ञा पुं. [हिं. तुक+अंत] पद्य की दो पंक्तियों के अंतिम अक्षरों का मेल, अंत्यानुप्रास।

तुका—संज्ञा पुं. [फा.] बिना गाँसी का तीर।

तुकार, तुकारि, तुकारी—क्रि. वि. [हिं. तू + सं. कार = तुकार] 'तू तू' करके, क्षुद्रता या अशिष्टता सूचक ढंग से। उ.—वारौं हौं वे कर जिन हरि कौ बदन छुयौ, वारौं रसना सो जिहिं बोल्यौ है तुकारि—३६२।

तुकारना—क्रि. स. [हि. तुकार] तू-तू करके अपमानजनक रीति से संबो- धन करना।

संज्ञा पु. [हिं. तुक + अकड़] तुक जोड़ जोड़कर भद्दी कविता करनेवाला।

तुक्का—संज्ञा पुं. [फ़ा. तुक:] (१) बिना नोंक का तीर। (२) टीला। (३) सीधी खड़ी वस्तु।

मुहा.—तुक्का सा—सीधा खड़ा ठंठ सा ।
तुख—संज्ञा पुं. [सं. तुष] (१) भूसी, छिलका । (२) अंडे का छिलका ।
तुखार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन देश । (२) इस देश का निवासी । (३) इस देश का घोड़ा ।
संज्ञा पु. [सं. तुषार] बर्फ, पाला ।
तुख्म—संज्ञा पु. [अ. तुख़्म] बीज ।
तुच,तुचा—संज्ञा स्त्री. [स. त्वचा] चमड़ा । उ.—कानमुद्रा भस्म कथा मृग तुचा आसन उहै—२४६० ।
तुच्छ—वि. [सं.] (१) खोखला, क्षुद्र, निःसार । उ.—परम कुबुद्धि, तुच्छ रस-लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत—१-११४ । (२) हीन । (३) ओछा, खोटा । (४) अल्प, थोड़ा, कम । उ.—तुच्छ आयु परिश्रम करत—१२-३ ।
संज्ञा. पुं.— छिलका, भूसी ।
तुच्छता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हीनता, नीचता । (२) नीस्सारता, खोखलापन । (३)ओछापन । (४)अल्पता ।
तुच्छत्व—संज्ञा पु [सं.] (१) हीनपन । (२) ओछापन । (३) खोखलापन । (४) अल्पता, कमी ।
तुच्छातितुच्छ—वि. [सं.] बहुत हीन या क्षुद्र ।
तुजी—संज्ञा स्त्री [डिं.] कमान, धनुष ।
तुझ—सर्व. [सं. तुभ्यम्, प्रा. तुज्झ] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा और षष्ठी के अतिरिक्त और विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है ।
तुझे—सर्व. [हिं. तुझ] 'तू' का कर्म और सम्प्रदान रूप ।
तुट—वि. [सं. त्रुट=टूटना] टुकड़ा, जरा सा ।
तुट्ठना—क्रि. स. [सं. तुष्ट, प्रा. तुट्ठ] राजी करना ।
तुड़वाना—क्रि. स. [हिं. तोड़ना का प्रे.] दूसरे को तोड़ने में प्रवृत्त करना, तोडने देना ।
तुड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुड़ाना] तोड़ने या तुड़ाने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।
तुड़ाना—क्रि. स [हिं. तोड़ना का प्रे.] (१) तोड़ने का काम करना, तोडने देना । (२) बंधन छुड़ाना । (३) सबंध-विच्छेद करना । (४) रुपया आदि भुनाना । (५) दाम कम कराना ।
तुड़ुम—संज्ञा पुं. [सं. तूर] तुरही, बिगुल ।
तुतरा—वि. [हिं. तोतला] तुतलानेवाला ।
तुतराइ—क्रि. वि. [हि. तुतलाना] तुतलाकर, अस्पष्ट स्वर से । उ.—तनक मुख की तनक बतियाँ, बोलत हैं तुतराइ—१०-१६६ ।
तुतरात—क्रि. अ. [हिं. तुतलाना] तुतुलाकर, तुतलाते हैं, अस्पष्ट बोलते हैं । उ.—(क) स्रवन सुनन उत्कंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री—१०-१३६ । (ख) बलि-बलि जाउँ मुखारबिंद की अमिय बचन बोलौ तुतरात—१०-१५६ ।
तुतराना—क्रि. अ. [हिं. तुतलाना] साफसाफ न बोलना ।
तुतरानी— क्रि. अ. [हि. तुतलाना] तुतलाकर बोलती है, अस्पष्ट स्वर निकालती है । उ.— अचरज महरि तुम्हारे आगैं, अबै जीभ तुतरानी—१०-३११ ।
तुतरौहाँ—वि. [हि. तोतला] तुतलानेवाला ।
तुतरौही—वि. स्त्री. [हिं. तोतली] तोतली, अस्पष्ट स्वर वाली । उ.—बोलत हैं बतियाँ तुतरौहीं, चलि चरननि न सकात—१०-२९४ ।
तुतलाना—क्रि. अ. [हिं. तोता] रुक-रुककर अस्पष्ट स्वर में बोलना ।
तुतली—वि. स्त्री. [हि तोतली] तुतलानेवाली ।
तुतुई, तुतुही—संज्ञा स्त्री. [स. तुंड] टोंटीदार घंटी ।
तुदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कष्ट या पीडा देने की क्रिया । (२) पीड़ा, व्यथा ।
तुनक—वि. [फा.] (१) दुर्बल । (२) नाजुक ।
यौ.—तुनक मिजाज—जल्दी रूठनेवाला ।
तुनतुनी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) एक बाजा । (२) सारंगी ।
तुनीर—संज्ञा पुं. [सं. तूणीर] तूण, निषग, तरकश । उ.—अलख अनत अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तुनीर—९-२६ ।
तुन्न—वि. [सं] कटा-फटा, छिन्न-भिन्न ।
तुपक—संज्ञा स्त्री. [तु. तोप] छोटी तोप, बंदूक ।
तुफग—संज्ञा स्त्री. [तु तोप] (१) हवाई बदूक । (२) लबी नली जिसमें फूंक से गोलियां चलायी जाती है ।
तुफान—संज्ञा पुं. [अ. तूफान] आंधी, तूफान ।

तुमना—क्रि. अ. [सं. स्तोभन] स्तब्ध या ठक रह जाना, अचल हो जाना।

तुभी—क्रि. अ. [हिं. तुभना] स्तब्ध या ठक रह गयी। उ.—टरति न टारे वह छवि मन में चुभी। स्याम सघन पीतांबर दामिनि, अँखियाँ चातक ह्वै जाइ तुभी—१४४६।

तुम—सर्व [सं. त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। इसका प्रयोग शिष्टता की दृष्टि से एकवचन में भी होता है।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं तुंबिनी] (१) कड़ुए कद्दू का सूखा फल। (२) इस फल से बना पात्र जो प्रायः साधुओं के पास रहता है। (३) इस फल से बना सँपेरों का बाजा।

तुमरा—सर्व. [हि.तुम्हारा] तुम्हारा।

तुमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुमड़ी] (१) कड़ुआ कद्दू। (२) इससे बना पात्र। (३) इससे बना बाजा।

सर्व. [हिं तुम्हारी] तुम्हारी।

तुमरे—सर्व. [हि. तुम्हारा] तुम्हारे। उ.—तुमरे कुल कौं बेर न लागै, होत भस्म सघात—९-७७।

तुमरौ—सर्व. [हिं तुम्हारा] तुम्हारे। उ.—अहो महरि पालागन मेरौ, मैं तुमरौ सुत देखन आई—१०-५१।

तुमाना—क्रि. स [हि. तूमना का प्रे.] दबी हुई रुई को पुलपुली करके फैलाने के लिए नुचवाना।

तुमुर, तुमुल—संज्ञा पु. [स. तुमुल] (१) सेना की धूम या कोलाहल। (२) सेना की मुठभेड़ या भिड़त।

तुम्ह—सर्व. [हि तुम] तुम।

तुम्हरा, तुम्हारा—सर्व [हिं. तुम, तुम्हारा] 'तुम' का संबधकारक में प्रयुक्त होनेवाला रूप।

तुम्हरी तुम्हारी—सर्व. [हिं. तुम्हारा] 'तुम' के संबध-कारक स्त्रीलिंग रूप 'तुम्हारी' का व्रजभाषा तथा अवधी का मिश्रित प्रयोग। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मो दुख बिसरावै—१-४२।

तुम्हरे, तुम्हरो, तुम्हरौ, तुम्हारे, तुम्हारो, तुम्हारौ-सर्व. [हिं. तुम] 'तुम' के संबधकारक रूप 'तुम्हारे' का व्रजभाषा और अवधी का मिश्रित प्रयोग। उ.—सूर-दास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु, जैसें सूकर-स्वान-सियार —१ ४२।

तुम्हरैं—सर्व. [हिं. तुम] 'तुम' के संबंधकारक रूप 'तुम्हारे' का निश्चयार्थक व्रजभाषा प्रयोग, तुम्हारा ही। उ.—तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार। जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार—१-४१।

तुम्हे—सर्व. [हिं. तुम] 'तुम' का कर्म और सप्रदान में प्रयुक्त विभक्तियुक्त रूप।

तुरँग, तुरग, तुरगम, तुरगा—वि. [सं. तुरंग] जल्दी चलनेवाला, शीघ्रगामी।

संज्ञा पु. [स.] (१) घोड़ा। उ.—(क) सत जोजन मग एक दिवस में तुरँग जाइ पहुँचायौ—१०३-२७। (ख) चले नगर के लोग साजि रथ तरल तुरंगा—१० उ.-१०५। (ग) अंतरिच्छतें द्वै रथ उपजे आयुध तुरँग समेत—सारा. ५६६। (२) चित्त।

तुरंगशाला, तुरँगसाल, तुरगसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. तुरग + शाला] घोड़े बाँधने का स्थान, घुड़साल।

तुरत—क्रि. वि. [सं. तुर=वेग, जल्दी] झटपट।

तुर—क्रि. वि. [सं.] शीघ्र, जल्दी।

वि.—वेगवान्, शीघ्र चलनेवाला।

तुरई—संज्ञा स्त्री. [स. तूर=तुरही नामक बाजा] एक बेल जिसके लबे फलों की तरकारी बनती है।

मुहा.—तुरई का सा फूल—चटपट खर्च या समाप्त हो जानेवाली चीज।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरही] फूँककर बजाने का एक बाजा। उ.—तुरई बाजनि बीना ताजनि चपल चपला सेहरी—१० उ. २४।

तुरकान, तुरकाना—संज्ञा पुं. [फा. तुर्क] तुर्कों की बस्ती।

तुरग—वि. [सं.] तेज चलनेवाला।

संज्ञा पु.—(१) घोड़ा। उ.—रोवैं वृषभ, तुरंग अरु नाग—१-२८६। (२) चित्त।

तुरगदानव—संज्ञा पुं. [स.] केशी नामक दैत्य जो कंस की आज्ञा से घोड़े का रूप धर कर व्रज में आया था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

तुरगी—संज्ञा स्त्री. [स.] घोड़ी।

संज्ञा स्त्री. [स. तुरगिन्] घुड़सवार।

तुरत—अव्य. [सं. तुर] शीघ्र, चटपट, तत्क्षण। उ.—

सूर तुरत मधुवन पग धारे घरनी केहितकारी—२५३३।

तुरतुरा, तुरतुरियो—वि. [सं. त्वरा] (१) तेज, जल्दबाज। (२) जल्दी बोलने या बात करनेवाला।

तुरते, तुरतै—अव्य. [हिं. तुरत] शीघ्र ही, तत्क्षण। उ.—(क) भात पसाइ रोहिनी ल्याई। घृत सुगंधि तुरतै दै ताई—३६६। (ख) लै लै लकुट ग्वाल सब धाये करत सहाय उठे हैं तुरते—६६२।

तुरपई, तुरपन—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरपना] मोटी सिलाई।

तुरपना—क्रि. स. [हिं. तोपा] सिलाई करना।

तुरय—संज्ञा पुं. [सं. तुरग] घोड़ा। उ.—सायक चाप तुरय ब्रनि जाति हौ लिये सबै तुम जाहु।

तुरसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुलसी] तुलसी की पत्ती।

मुहा.—तुरसी की पत्ती मुँह में लेना—सच बोलने का प्रमाण देना। मुँह में लैहौ तुरसी—सच बोलकर उसको प्रमाणित करोगे। उ.—बातैं कहत सबै साँची सी मुँह मैं लेहौ तुरसी—३१६८।

तुरही—संज्ञा स्त्री. [सं. तूर] फूँक से बजाने का एक बाजा।

तुरा—संज्ञा स्त्री. [सं. त्वरा] जल्दी, शीघ्रता।

संज्ञा पु. [सं. तुरग] घोड़ा, तुरग।

तुराई—संज्ञा स्त्री. [सं. तूलिका=गद्दा] रुई भरा हुआ गद्दा, तोशक। उ.—दसरथ राज बाजि गज लैकै सबहीं सौंज तुराई—सारा. २२६।

क्रि. स. [हिं. तुड़ाना] तुड़ाकर, बंधन छुड़ाकर।

संज्ञा स्त्री. [सं. त्वरा] शीघ्रता, जल्दी।

तुराट—संज्ञा पु. [सं. तुरग] घोड़ा।

तुराना—क्रि. अ. [सं. तुर] घबराना, आतुर होना।

क्रि. स. [हिं. तुड़ाना] बंधन आदि छुड़ाना।

तुरावत्, तुरावान्—वि. [सं. त्वरावत्] वेगवाला।

तुरावती—वि. स्त्री. [सं. त्वरावती] झोंके के साथ बहनेवाली, वेगवती।

तुरित—वि. [सं. त्वरित] जल्दी चलनेवाला।

क्रि. वि.—शीघ्रतापूर्वक, जल्दी से।

तुरिया, तुरी, तुरीय—वि. [सं. तुरीय] चतुर्थ, चौथा।

संज्ञा स्त्री.—(१) वाणी की वह स्थिति जब वह मुँह से उच्चरित होती है। (२) चार अवस्थाओं में से अंतिम, मोक्ष।

संज्ञा पुं.—निर्गुण ब्रह्म।

तुरी—वि. स्त्री. [सं.] वेगवती, तेज।

संज्ञा स्त्री. [अ. तुरय] (१) घोड़ा। (२) लगाम।

संज्ञा पु.—घुड़सवार, अश्वारोही।

संज्ञा स्त्री. [अ. तुर्रा] मोती या फूल का गुच्छा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरही] तुरही नामक बाजा।

वि. [हिं. तोड़ना] तोड़नेवाला।

तुरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरई] तुरई नामक तरकारी।

तुर्क—संज्ञा पुं. [सं. तुरुष्क] मुसलमान, तुर्किस्तानी।

तुर्य—वि. [सं.] चौथा, चतुर्थ।

तुर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ज्ञान जिसमें मुक्ति हो जाती है।

तुर्याश्रम—संज्ञा पु. [सं.] चौथा सन्यासाश्रम।

तुर्रा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) घुँघराले बालों की लट। (२) पगड़ी में खोंसने का पर, फुँदना या बादले का गुच्छा।

मुहा.—तुर्रा यह कि—ऊपर से इतना और। किसी बात पर तुर्रा होना—सच्ची बात में कुछ और बात मिलाना।

(३) पक्षियों के सिर पर परों का गुच्छा या चोटी। (४) किनारा, हाशिया। (५) मकान का छज्जा।

वि. [फा.] अनोखा, अद्भुत।

तुर्श—वि. [फा.] खट्टा।

तुर्शाई, तुर्शी—संज्ञा स्त्री. [फा.] खटाई, खट्टापन।

तुर्शाना—क्रि. अ. [फा.] खट्टा हो जाना।

तुल—वि. [सं. तुल्य] समान, सदृश।

तुलत—क्रि. अ. [हिं. तुलना] तुल्य है, समान (होता) है। उ.—मोहि स्रम भयौ सखी उर अपनें, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री। जो गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताहू तैं अति भारौ री—१०-१३५।

तुलना—क्रि. अ. [सं. तुल] (१) तौला जाना। (२) तौल या मान में बराबर उतरना। (३) अस्त्र आदि का सधना। (४) उद्यत हो जाना। (५) भर जाना। (६) तैयार होना, उतारू होना।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मिलान। (२) समता, बराबरी। (३) उपमा। (४) तौल। (५) गणना।

तुलनात्मक—वि. [सं.] जिसमें अन्य किसी के साथ तुलना करते हुए विचार किया गया हो।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तौलना] तौलने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

तुलवाना—क्रि. स. [हि तौलना] तौल कराना ।

तुलसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक छोटा पौधा जिसे वैष्णव अत्यत पवित्र मानते हैं । उ.—(क) सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी क पाता—१-१२३ । (ख) बात करत तुलसी मुख मेलै नयन सयन दै मुख मटकी—१३०१ । (ग) तुलसी को कहा नीम प्रगट कियो मोही ते करि बोहनि—२०१४ ।

तुलसीदल—संज्ञा पुं. [सं.] तुलसीपत्र जिसे वैष्णव अत्यंत पवित्र मानते हैं ।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं. [हिं. तुलसी + दाना] एक गहना ।

तुलसीदास—संज्ञा पुं.— हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि ।

तुलसीपत्र—संज्ञा पु. [सं.] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीवन—संज्ञा पुं. [स.] वृंदावन ।

तुला—स्त्री. [सं.] (१) तुलना, मिलान । (२) तराजू, कांटा । उ.—तुला बिच लौ केस तौले गरुअ आनन गोर—१७०३ । (३) मान, तौल । (४) नापने का बरतन, भांड । (५) पांच मन की एक पुरानी तौल । (६) ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि जिसमें चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दड तथा स्वाती और विशाखा के आद्य ४५-४५ दड होते हैं । उ.—छठएँ सुक्र तुला के सुनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं—१०-८६ ।

तलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. तूल=रुई] दोहरा कपड़ा जिसमें रुई भरी हो, दुलाई ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तुलना] तौलने का काम, भाव या मजदूरी ।

तुलादान—संज्ञा पं [सं] मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान ।

तुलाधार—संज्ञा प [स] (१) तुला राशि (२) तराजू की रस्सी जिसमें पलडे बँधते हैं । (३) बनिया ।

वि —तुला या तराजू धारण करनेवाला ।

तुलाना—क्रि अ [हि तुलना=तौल मे बराबर होना] (१) निकट या समीप आना । (२) पूरा उतरना ।

क्रि. अ [सं. तुल्य] समान या बराबर होना ।

क्रि. स. [हिं. तुलवाना] तौलने का काम कराना ।

तलानी—क्रि. अ. [हिं. तुलाना] (१) बराबर हुई, पूर्ण हुई, समाप्त हुई । उ.—(क) रे दसकधर, अधमनि, तेरी आयु तुलानी आनि—९-७६ । (ख) सूर न मिटै भाल की रेखा, अल्प मृत्यु तुव आइ तुलानी—९-११६ । (२) समीप आयी, आ पहुँची । उ.—करुना करति मँदोदरि रानी ।" "" । चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तव आइ तुलानी—९-१६० ।

तुलानो, तुलानौ—क्रि. अ. [हिं. तुलाना] आ पहुँचा, समीप आया । उ.—(क) कह्यौ लकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ कायर, डरानौ । जानि असरन-सरन, सूर के प्रभु कौं, तुरत हीं आइ द्वारैं तुलानौ—९-१११ । (ख) अब जिनि होहि अधीर कंस जम आइ तुलानो—२६२५ ।

तुलामान—संज्ञा पु. [सं.] तौलने का बाँट ।

तुलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की कूँची ।

तुलित—वि. [स.] (१) तुला हुआ । (२) समान ।

तुल्य—वि. [सं.] (१) बराबर । (२) सदृश ।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बराबरी । (२) सादृश्य ।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक काव्यालंकार ।

तुव—सर्व. [सं. तव] तुम्हारा । उ.—(क) गिनती सुनौ दीन की चित दै,कैसें तुव गुन गाऊँ-१-४२। (ख)दान धर्म बहु कियो भानु-सुत सो तुव बिमुख कहायौ—२-१०४ । (ग) पोपे नहिं तुव दास प्रेम सों पोष्यौ अपनौ गात्र-१-२१६ । (घ) तुव प्रसाद मम ग्रह सुत होइ—५-४ ।

तुवर—वि. [सं.] बिना दाढी-मूछ वाला ।

तुष—संज्ञा पु. [सं.] (१) अनाज के ऊपर का छिलका, भूसी । (२) अडे के ऊपर का छिलका ।

तुषानल—संज्ञा पु [स] (१) घास फूस की आग । (२) इस आग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित के लिए की जाती है ।

तुषार—संज्ञा पु. [सं.] (१) जाड़ा, पाला, सरदी । उ.—(क) सलिल त सब निकास आवहु वृथा महति तुषार—७८६ । (ख) मघ-तुषार जुवति अकुलाहीं—७९९ । (२) हिम, बरफ । (३) एक तरह का कपूर । (४) हिमालय के उत्तर का एक देश जहां के घोड़े

प्रसिद्ध थे। (४) इस देश में बसनेवाली जाति।

वि.—छूने में बरफ की तरह ठंडा।

तुषारकर, तुषारमूर्ति, तुषाररश्मि, तुषारांशु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

तुषारपाषाण—संज्ञा पु. [सं.] (१) ओला। (२) बरफ।

तुषाराद्रि—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय पर्वत।

तुष्ट—वि. [सं.] (१) तृप्त। (२) प्रसन्न।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तुष्टि। (२) प्रसन्नता।

तुष्टना—क्रि. अ. [स. तुष्ट] प्रसन्न होना।

क्रि. स.—संतुष्ट या प्रसन्न करना।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) संतोष। (२) प्रसन्नता।

तुस—संज्ञा पुं [सं.] अन्न का छिलका, भूसी। उ.—जौ लौं मन कामना न छूटै। तौ कहा जोग-जग्य-व्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै—२-१६।

तुसार—संज्ञा पुं. [स. तुषार] (१) पाला। (२) हिम।

तुसी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुष] अन्न के ऊपर का छिलका, भूसी। उ.—ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूड़ पिरावै। झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न आवै—३२८७।

तुस्त—संज्ञा स्त्री. [सं.] धूल, गर्द।

तुहार—सर्व. [हिं. तुम्हारा] तुम्हारा।

तुहि, तुही—सर्व. [हिं. तू + हीं (प्रत्य.)] (१) तू ही, केवल तू। उ.—झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई। कंचन-हार दिएँ नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई—१०-१६। (२) तुझको।

तुहिन—संज्ञा पुं. [स.] (१) पाला, कोहरा। (२) हिम, बरफ। (३) चांदनी। (४) शीतलता, ठढक।

तुहे—सर्व. [हिं. तुम्हे] तुम्हें, तुमको।

तूँ—सर्व. [सं. त्वम्. हिं तू] मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम, तू। उ.—रे मन, छाँड़ि विषय कौ रँचिबौ। कत तू सुवा होत सेमर कौ, अंतहि कपट न बचिबौ—१५६।

तूँशी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) पृथ्वी। (२) नाव।

तूँबड़ा—संज्ञा पु [हिं. तूँबा] साधुओं का कमंडल।

तूँबना—क्रि. स. [हिं. तूनना] रुई उधड़कर पोली करना।

तूँबा—संज्ञा पु. [स. तुबक] (१) कड़ुआ गोल कद्दू या घीया। (२) इससे बना साधुओं का कमंडल।

तूँबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तूँबा] (१) कड़आ गोल कद्दू या घीया। (२) इससे बना छोटा कमंडल।

तू—सर्व. [सं. त्वम्] मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनाम।

मुहा.—तू तड़ाक (तू तकार या तू तू मैं-मैं) करना—कहा सुनी या गाली-गलौज करना।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] कुत्तों को बुलाने का शब्द।

तूख—संज्ञा पुं. [सं. तुष = तिनका] तिनका, सींक या खरका जिसे पत्ते में छेद कर 'दोना' बनाते हैं।

तूखना—क्रि. स. [स. तोषण] तुष्ट या प्रसन्न करना।

क्रि. अ.—तुष्ट या प्रसन्न होना।

तूटना—क्रि. अ. [हिं. टूटना] टूट जाना।

तूटी—क्रि. अ. [हिं. टूटना] टूटी, अलग हुई।

तूठना—क्रि. अ. [सं. तुष्ठ, प्रा. तुट्ठ] (१) संतुष्ट होना, अघाना। (२) प्रसन्न या राजी होना। (३) घमंड से फूलना।

तूठे—क्रि. अ. [हिं. तूठना] संतुष्ट या प्रसन्न हुए। उ.—लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटनि खोलत···। एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे—१-१७७।

तूण—संज्ञा पुं. [स.] तीर रखने का चोंगा, तरकश।

तूणक्ष्वेड़—संज्ञा पु. [सं.] बाण, तीर।

तूणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाण रखने का चोंगा, तरकश।

वि. [सं. तूणिन्] जो तरकश लिये हो।

तूणीर—संज्ञा पुं. [सं.] तूण, निषंग, तरकश।

तूती—संज्ञा स्त्री. [फा. (१) छोटी जाति का तोता। (२) एक छोटी सुंदर चिड़िया। (३) मटमैले रंग की चिड़िया जो प्यारी बोली के लिए पाली जाती है।

मुहा.—किसी का तूती बोलना—किसी की खूब चलना, किसी का प्रभाव जमना। नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है—(१) बहुत शोरगुल में एक आदमी की बात पर कोई ध्यान नहीं देता। (२) बड़ों के समाज में छोटों की बात पर कोई ध्यान नहीं देता।

(४) मुंह से बजाने का एक बाजा या खिलौना।

तूदा—संज्ञा पु. [फा.] (१) राशि। (२) हदबंदी।

तून—संज्ञा पुं. [सं. तूण] तरकश, तूणीर । उ.—कटि तट तून, हाथ सायक-धनु सीता-बंधु समेत—९-३९ ।
संज्ञा पुं. [सं. तृण] तिनका, सींक ।

तूना—क्रि अ [हिं. चूना] (१) चूना, टपकना । (२) खड़ा न रहना, गिरना ।

तूनीर—संज्ञा पु. [सं. तूणीर] तरकश, तूण । उ.—कटि तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर—९-४४ ।

तूफान—संज्ञा पु. [अ. तूफान] (१) बहुत बड़ी बाढ़ । (२) आँधी, अंधड़ । (३) आफत, आपत्ति । (४) हल्ला-गुल्ला । (५) झगड़ा-बखेड़ा । (६) झूठा कलंक जिससे आफत खड़ी हो जाय ।

तूफानी—वि. [फा. तूफान] (१) झगड़ालू, उपद्रवी । (२) झूठा कलंक लगानेवाला । (३) उग्र, प्रचंड ।

तूमड़ी, तूमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तूँबा + ड़ी (प्रत्य.)] (१) तूँबी, कमंडल । (२) सँपेरों का बाजा ।

तूमतड़ाक—संज्ञा स्त्री. [फा.] तड़क-भड़क, ठसक ।

तूमना—क्रि. स. [सं. स्तोम = ढेर + ना] (१) रुई को उधेड़कर पोला करना । (२) धज्जी उड़ाना । (३) मसलना । (४) भेद खोलना ।

तूमार—संज्ञा पुं. [अ.] बात का व्यर्थ बढ़ाना ।

तूर—संज्ञा पु. [सं.] एक प्रकार का बाजा । उ.—(क) जागी महरि, पुत्र मुख देख्यौ आनँद-तूर बजायौ—१०-४ । (ख) दसएँ मास मोहन भए (हो) आँगन बाजै तूर—१०-४० । (ग) चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ, उमँगि अँगनि आनंद सौं तूर बजायौ—१०-६५ ।
संज्ञा स्त्री. [सं. तुवरी] अरहर ।

तूरज—संज्ञा पु. [सं. तूर्य] तुरही नामक बाजा ।

तूरण, तूरन—क्रि. वि. [सं. तूर्ण] शीघ्र, जल्दी ।

तूरना—क्रि स. [हिं. तोड़ना] भंग करना ।
संज्ञा पु. [सं. तूर] तुरही नामक बाजा ।

तूरा—संज्ञा पु [सं. तूर] तुरही नामक बाजा ।

तूरी—संज्ञा स्त्री [सं] धतूरे का पेड़ ।

तूर्ण—क्रि. वि. [सं.] शीघ्र, तुरत, चटपट ।

तूर्त—क्रि. वि. [सं.] तुरंत, शीघ्र, तत्काल ।

तूर्य—संज्ञा पुं. [सं.] तुरही नामक बाजा ।

तूर्व—क्रि. वि. [सं.] तत्काल, तत्क्षण, तुरत ।

तूल—संज्ञा पु. [सं] (१) कपास या सेमर के ढोंढे के भीतर का घूआ, रुई । उ —(क) सेमर-फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खग-भूप । परसत चोंच तूल उधरत मुख परत दुःख कैं कूप—१-१०२।(ख) व्याकुल फिरत भवन वन जहँ तहँ तूल आक उधराइ । (२) रुई की बत्ती जो दीपक में जलती है । उ.—गृह दीपक, धन तेल, तूल तीय, सुत ज्वाला अति जोर । मैं मति-हीन मरम नहिं जान्यौ, पर्यौ अधिक करि दौर—१-४६। (३) शहतूत।(४)आकाश।
संज्ञा पुं [हिं तून = एक पेड़] (१) गहरा लाल रंग । (२) गहरे लाल रंग का सूती कपड़ा ।
वि. [सं. तुल्य]-तुल्य, समान । उ.—(क) मैं अपराधी ब्रज वधू सों कहे वचन विष तूल—१०उ.-१०४ । (ख) काम अवतार लीन्हों विदित बात यह तासु सम तूल नहिं रूप दोऊ—१० उ. ७६ ।

तूलता—संज्ञा स्त्री. [सं. तुल्यता] समानता, बराबरी ।

तूलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. तूल] रुई । उ.—वन-वन फिरे अर्क-तूलन ज्यों वास विराटहिं कीन्हों —सारा. ७७८ ।

तूलना—क्रि. स. [हिं. तुलना] पहिए की धुरी में तेल देना, चिकनाना ।

तूला—संज्ञा स्त्री. [सं.]कपास ।

तूलिका, तूली—संज्ञा स्त्री. [सं.] चित्रकारों की कूँची ।

तूलै—वि. [सं. तुल्य, हिं. तूल] तुल्य या समान होती है । उ.—स्रुति-कुंडल छवि रवि नहिं तूलै दसन-दमक-दुति दामिनि भूलै—७९ ।

तूवरक—संज्ञा पु. [सं](१)बिना सींग का बैल । (२) बिना दाढ़ी का मनुष्य ।

तूष्णी—वि. [सं. तूष्णीम् (अव्य.)] मौन, चुप ।
संज्ञा स्त्री.—मौन, खामोशी, चुप्पी ।

तूष्णीक—वि. [सं.] मौन साधनेवाला ।

तूस—संज्ञा पु [सं. तुष] भूसी, भूसा ।
संज्ञा पु. [तिब्बती-थ.स] एक तरह का ऊन ।

तूसना—क्रि. स. [सं. तुष्ट] (१) संतुष्ट या तृप्त

करना। (२) प्रसन्न या राजी करना।

तूसी—वि. [हिं. तूस] स्लेटी रंग का।

तूस्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धूल, रज। (२) अणु, कण। (३) जटा। (४) धनुष, चाप।

तृखा—संज्ञा स्त्री. [स. तृषा] प्यास।

तृजग—वि. [स. तिर्यक] तिरछा, आड़ा।

तृण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूब, कुश आदि घास। (२) तिनका, सूखी घास-फूस।

मुहा.—तृण गहना (पकड़ना)—हीनता दिखाना, गिड़गिड़ाना। तृण गहाना (पकड़ाना)—हीन बनाना, वश में करना। किसी वस्तु पर तृण टूटना—सुंदर चीज (पुत्र आदि) को नजर से बचाने के लिए टोटके के रूप में तिनका टूटना। तृण बराबर (तृणवत् या समान)-तिनके के बराबर, बहुत ही मामूली। तृण तोड़ना—(१) सुंदर चीज (पुत्र आदि) को नजर से बचाने के लिए टोटके के रूप में तिनका तोड़ना। (२) संबंध या नाता तोड़ना।

तृणचर—वि. [सं.] घास चरनेवाला (पशु)।

तृणमय—वि. [सं.] घास का बना हुआ।

तृणशय्या, तृणशैया—संज्ञा स्त्री. [सं.] चटाई, साथरी।

तृणावर्त्त—संज्ञा पु. [सं.] (१) बवडर, अवडं। (२) एक दैत्य जो कंस के भेजने पर बवडर-रूप में गोकुल आया और श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था।

तृतिय, तृतीय—वि. [सं तृतीय] तीसरा।

तृतीयांश—संज्ञा पु [सं. तृतीय + अंश] तीसरा भाग।

तृतीया—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन, तीज। (२) करणकारक (व्याकरण)।

तृतीयाश्रम—संज्ञा पु. [सं] वानप्रस्थ आश्रम।

तृन—संज्ञा पु. [स तृण] (१) कुश, मूंज, घास। उ.—(क) जन के उपजत दुख किन काटत ? जैसें प्रथम असाढ आँजु तृन, खेतिहर निरखि निपाटत—१-१०७। (ख) ज्यों सौरभ मृग-नारि बसत है द्रुम-तृन सूँघि फिरयौ—२-२६। (१) तिनका, सूखी घास। उ.—(क) कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै—१-१०५। (ख) दूखे पात और तृन खाइ—५-३।

मुहा.—तृन गहना (पकड़ना)—हीनता दिखाना, गिड़गिड़ाना। तृन गहाना (पकड़ाना)—नम्र करना, विनीत बनाना, वश में करना। तृन गहाय कै—नम्र करके, वश में करके। उ.—कहौ तौ ताकौं तृन गहाय कै जीवत पायन पारौं—६-१०८। (किसी) वस्तु पर तृन टूटना—(किसी सुंदर चीज जैसे पुत्र-पुत्री को) नजर लगने से बचाने के लिए टोटके-रूप में तिनका टूटना। तृन बराबर (वत् या समान)—तिनके के बराबर तुच्छ या हीन, बहुत ही साधारण, कुछ भी नहीं। (किसी वस्तु पर) तृन तोड़ना—(किसी सुदर चीज जैसे पुत्र-पुत्री को) नजर से बचाने के लिए टोटके-रूप में तिनका तोडना। डारत है तृन तोर—नजर से बचाने के लिए तिनका तोडते है। उ.—(क) सूर अंग त्रिभंग सुदर छवि निरखि तृन तोर—१३३५। (ख) पीवत देखि रोहिनी जसुमति डारत हैं तृन तोरे—सारा. ४४२। तृन तोड़ना—संबध या नाता तोड़ना। तोरि तृन—नाता तोड़कर। उ.—भुजा छुड़ाइ तोरि तृन ज्यौं हित करि प्रभु निठुर हियो। गयो तृन तोर—संबंध तोड़ गया। उ.—ऊधो नंद को गोपाल गिरिधर गयो तृन जो तोर—३३८३। बूड़त ज्यों तृन गहियत—डूबते को तिनके का सहारा होता है, बड़ी मुसीबत में पड़े व्यक्ति के लिए थोड़ी सहायता या सात्वना बहुत महत्व की होती है। उ.—फिरि फिरि बहइ अवधि अवलंबन बूड़त ज्यों तृन गहियत—३३००। तृन दंत गहि—दांत में तिनका दबाकर, नम्र होकर, अधीन होने की कामना लेकर। उ.—जाइ मिलि अंध दसकंध, गहि दंत तृन, तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं—९-१२६।

तृना, तृनावृत, तृनाव्रत, तृनावृत—संज्ञा पुं. [सं. तृणावर्त्त] एक राक्षस जो कंस की आज्ञा से बवडर-रूप में गोकुल आया था और श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था। उ.—(क) जिन हति सकट प्रलंब तृनावृत इंद्र प्रतिज्ञा टाली—२५६७। (ख) तृना केसी सकट बकी बक अघासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं

उबार्यौ—५६६ । (ग) बकी, बकासुर, सकट, तृनाव्रत, अघ, प्रलंब, वृषभास—४८७ ।

तृपति—संज्ञा स्त्री. [सं. तृप्ति] सतोष, प्रसन्नता ।

तृपित, तृप्त—वि. [स तृप्ति] सतुष्ट, प्रसन्न ।

तृपिता—सज्ञा स्त्री. [सं. तृप्ति] सतोष, तृप्ति । उ.—अँचवत आदर लोचन पुट दोउ मनु नहिं तृपिता पावै—२३६० ।

तृप्ति—सज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा पूरी होने पर शांति, आनद या सतोष । उ —(क) फिरत वृथा भाजन अवलोकत, सूनै सदन अजान । तिहिं लालच कबहूँ कैसैंहू, तृप्ति न पावत प्रान—१-१०३ । (ख) जन्म तैं एकटक लागि आसा रही, विषम-विष खात नहिं तृप्ति मानी—११० । (ग) सोभा कहत कही नाहे आवै । अँचवत अति आतुर लोचन-पुट मन न तृप्ति कौं पावै—४७८ ।

तृषा—सज्ञा स्त्री [स] (१) प्यास । उ.—भूखे भये भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय पट तन कौं—१-६ । (२) इच्छा, अभिलाषा । (३) लोभ, लालच ।

तृषालु—वि. [स] प्यासा, तृषित ।

तृषावत, तृषावान्—वि. [स॰ तृषावान् का बहु.] प्यासे । उ.—तृषावंत सुरभी बालकगन, कालीदह अँचयौ जल जाइ—५०१ ।

तृषित—वि [सं.] (१) अभिलाषी, इच्छुक । (२) प्यासा । उ —(क) तृषित हैं सब दास कारन चतुर चातक दास—१०-२१८ (ख) तृषित भए सब जानि मोहन सखनि टेरत वेनु । बोलि ल्यावहु सुरभि-गन, सब चलौ जमुन-जल-देनु—४२७ ।

तृष्ण—वि. [स.] (१) जिसे तृषा या प्यास हो, प्यासा । (२) अभिलाषा या कामना रखनेवाला ।

तृष्णा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) लोभ । (२) प्यास ।

तृष्णालु—वि. [स.] (१) लोभी । (२) प्यासा ।

तृष्ना—संज्ञा स्त्री [स तृष्णा] (१) प्राप्ति के लिए विकल करनेवाली इच्छा, लोभ । उ.—अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल । ·· । तृष्ना नाद करति घर भीतर नाना विधि दै ताल—१-१५३ ।

तें—प्रत्य. [स. तस् (प्रत्य.)] (१) से, द्वारा । (२) से, अधिक । उ.—(क) नैना तेरे जलज तें हैं खंजन तें अति नाचैं । (ख) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करौगी स्यामहिं । (३) किसी काल या स्थान से ।

तेतालिस, तेंतालीस—संज्ञा पु. [सं. त्रिचत्वारिंशत्, पा. तिचत्तालीस] चालीस से तीन अधिक की सख्या ।

तेतालीसवाँ—वि. [हिं. तेंतालीस+वाँ (प्रत्य.)] क्रम में तेंतालीस के स्थान पर पड़नेवाला ।

तेंतिस, तेंतीस—सज्ञा पु.—[सं. त्रयस्त्रिंशत्, पा. तितिंसति. प्रा. तितीसा] तीस से तीन अधिक की सख्या ।

तेंतीसवाँ—वि. [हिं. तेंतीस+वाँ (प्रत्य.)] जो क्रम में तेंतीस के स्थान पर पड़े ।

तेंदुआ—सज्ञा पु. [देश.] एक हिंसक पशु ।

ते—सर्व. [सं. ते] (१) वे, वे लोग । उ.—(क) जे जन सरन भजे बनवारी । ते ते राखि लिये जग-जीवन, जहँ जहँ विपति परी तहँ टारी—१-२२ । (ख) मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं । लै लै ते हथियार आपने, सान धराए त्यौं—१-१५१ । (ग) (२) उन्हें, उनको । उ.— अष्टसिद्धि बहुरौ तहँ आई । रिषभदेव ते मुँह न लगाई—५-२ ।

वि.—वे । उ.—ते बेली कैसैं दहियत हैं जे अपनैं रस भेइ—१-२६० ।

प्रत्य. [स. तस्, हि. तें] (१) से, द्वारा । उ.—सूरदास अक्रूर कृपा ते सही विपति तन गाढी—२५३ ।

तेइ—सर्व. [हिं. ते+ई] वे, उसे । उ.—अपुने कौं को न आदर देइ । ज्यौं बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेइ—१-२०० ।

तेई—सर्व. [हिं. ते+ई (प्रत्य.)] वे ही, वे लोग ही । उ.—(क) सूरदास तेई पद-पंकज त्रिविध-ताप-दुख-हरन हमारे—१ ६४ । (ख) जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं—१-८६ ।

तेईस—संज्ञा पु [स. त्रिविंशति, पा. तेवीसति, प्रा. तेवीस] बीस से तीन अधिक की सख्या ।

तेईसवाँ—वि. [हि. तेईस+वाँ (प्रत्य.)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला ।

तेउ—संज्ञा पुं. [हिं. तेज] (१) तेज । (२) अग्नि ।

तेउ, तेऊ—सर्व. [स. ते+हि. ऊ (प्रत्य.)] वे भी, वे लोग

भी। उ.—नेकु चाहत कृपा तुम्हारी जिनकैं बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी—१-१६३।

तेखना—क्रि. अ. [सं. तीक्ष्ण, हि. तेहा] नाराज होना।

तेखि—क्रि. अ. [हि. तेखना] अप्रसन्न या क्रुद्ध होकर।

तेखियो—क्रि. अ. [हि. तेखना] क्रुद्ध हो (आज्ञार्थक)।

तेखौ—क्रि. अ. [हि. तेखना] अप्रसन्न हो।

तेग—संज्ञा स्त्री. [अ. तेग़] तलवार, खडग।

तेगा—संज्ञा पुं. [अ. तेग़] (१) खांडा, खड्ग। (२) मेहराव के नीचे का भाग बंद करने का काम।

तेज—संज्ञा पुं. [सं. तेजस्] (१) दीप्ति, कांति, चमक, आभा। उ.—कह्यौ, पुरोहित होन न भलौ। बिनसि जात तेज-तप सकलौ—६-५। (२) पराक्रम, जोर, बल। (३) वीर्य। (४) सार, तत्व। (५) ताप, गर्मी। (६) तेजी, प्रचंडता। (७) प्रताप, रोब। (८) पांच तत्वों में से तीसरा, अग्नि। उ.—पृथ्वी अप तेज वायु नभ संज्ञा शब्द परस अरु गंध—सारा. ८।

वि. [फा. तेज] (१) पैनी धार का। (२) शीघ्र चलनेवाला। (३) फुरतीला। (४) तीखा, झालदार। (५) महँगा। (६) उग्र, प्रचंड। (७) असर या प्रभाववाला। (८) तीक्ष्ण बुद्धि का। (९) बहुत चपल या चंचल।

तेजधारी—वि. [सं. तेजोधारिन्] तेजस्वी, प्रतापी।

तेजन—संज्ञा पुं. [सं.] तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव।

तेजना—क्रि. स. [हिं. तजना] त्याग देना।

तेजनी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूर्वा। (२) तेजबल।

तेजपत्ता, तेजपत्र, तेजपात—संज्ञा पुं. [सं. तेजपत्र] एक पेड का पता जो बहुत सुगंधित होता है।

तेज-पुंज—संज्ञा पुं. [सं. तेजस् + पुंज = समूह।] दीप्ति-निधि, कांति निधि, आभापुंज। उ.—तड़ित-बसन घन-स्याम-सदृश तन, तेज पुंज तन कौ नासै—१-६९।

तेजन—संज्ञा पुं. [सं.] चातक, पपीहा।

तेजवंत, तेजवान—वि. [सं. तेजोवान्] (१) तेजयुक्त, तेजस्वी। (२) वीर्यवान। (३) बली, बलवान्। (४) चमकीला, चमकदार।

तेजस्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कांति, आभा। (२) वीर्य। (३) प्रताप, तेज।

तेजसी—वि. [हि. तेजस्वी] तेज से पूर्ण।

तेजस्कर—वि. [सं.] अपना तेज बढ़ानेवाला।

तेजस्वत्—वि. [सं.] तेजस्वी, तेज से युक्त।

तेजस्वी—वि. [सं. तेजस्विन्] (१) जिसमें तेज या कांति हो। (२) प्रतापी। (३) प्रभावशाली।

तेजा—संज्ञा पुं. [फा. तेज] महँगी, तेजी।

तेजाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. तेज़ाब] किसी क्षार पदार्थ का अम्लसार जो बहुत तेज होता है।

तेजायतन—संज्ञा पुं. [सं. तेज+आयतन] परम तेजस्वी।

तेजिष्ठ—वि. [सं.] तेजस्वी, तेजी से युक्त।

तेजी—संज्ञा स्त्री [फा. तेज़ी] (१) तेज होने का भाव। (२) प्रबलता। (३) उग्रता, प्रचंडता। (४) शीघ्रता। (५) महँगी।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, चंद्रमा आदि के चारो ओर का आकाश-मंडल।

तेजोमय—वि. [सं.] जिसमें खूब कांति या तेज हो।

तेजोरूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्म। (२) जो अग्नि-रूप हो।

तेजोहत—वि. [सं.] जिसका तेज नष्ट हो, श्रीहत।

तेज्यो—क्रि. स. [हि. तजना] त्याग दिया।

तेतना, तेता—वि. [हिं. तितना] उतना, उसके बराबर।

तेतिक—वि. स्त्री. [हि. तेता] उतना, उसके बराबर। उ—धर्म कहै सर-सयन गंग-सुत तेतिक नाहिं सँतोष—१-२११।

तेती—वि. स्त्री. [हि. तेता] उतनी, उसके बराबर। उ—(क) प्रभु जू यों कीन्हीं हम खेती। बंजर भूमि, गाउँ हर जात, अरु जेती की तेती—१-१८५। (ख) सेवा तुम जेती करी पुनि दैहौं तेती—२६१९।

तेते—वि. पुं. बहु. [हिं. तेता] उतने, उसी प्रमाण के। इहिं बिधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय जेते (हो)। चतुर-सिरोमनि नंद-सुत, कहौं कहाँ लगि तेते (हो)—१ ४४।

तेनो, तेनौ—वि. पुं. [हिं. तेता] उतना।

तेपि—पद [हिं. ते+अपि] वे भी।

तेमन—संज्ञा पुं. [सं.] पका हुआ भोजन, व्यंजन।

तेरवाँ, तरहवाँ—वि. [हि. तेरह + वाँ (प्रत्य.)] क्रम में तेरह के स्थान में पड़नेवाला ।

तेरस—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रयोदशी] पक्ष की तेहरवीं तिथि ।

तेरह—संज्ञा पुं. [स. त्रयोदश, प्रा. तेद्दह, अर्द्धमा. तेरस] दस और तीन की सख्या ।

तेरहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. तेरह] मृत्यु के दिन से तेहरवाँ दिन जब पिंडदान और ब्राह्मण-भोजन करके मृतक के घरवाले शुद्ध होते हैं ।

तेरा—सर्व. [सं. तव] तू का संबंधकारक-रूप ।

तेरिय—सर्व. [हि. तेरी + ही] तेरी ही । उ.—बैठत उठत चलत गउ चारत तेरिय लीला गावै—२०३२ ।

तेरी—सर्व. स्त्री. [हि. पु तेरा] तू का संबंधकारक स्त्रीलिंग रूप ।

मुहा.—तेरी सी—तेरे लाभ या मतलब की ।

तेरुस—संज्ञा पुं. [हिं. त्योरुस] (१) बीता हुआ तीसरा वर्ष । (२) आनेवाला तीसरा वर्ष ।

तेरे—वि. [हिं. तेरा] तुझसे सबधित । उ.—कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरे—१-२०६ ।

अव्य. [हि ते] से ।

तेरैं—वि. [हिं. तेरा] तुझसे सबधित । उ.—द्वार परयौ है तेरैं—१-२०६ ।

तेरौ, तेरयौ—वि. [हिं. तेरा] तेरा । उ.—(क) प्रभु तेरौ वचन भरोसौ साँचौ—१-३२ । (ख) मूँदन ते नैन कहत कौन ज्ञान तेरयौ—३०५७ ।

तेल—संज्ञा पुं. [स. तैल] (१) बीजों-बनस्पतियो से निकलनेवाला चिकना तरल पदार्थ, रोगन । (२) विवाह की एक रीति जिसमें वर को वधू का नाम लेकर तेल चढ़ाया जाता है । इसके पश्चात विवाह-सबंध पक्का समझा जाता है ।

मुहा.—तेल उठना (चढना)—तेल की रस्म होना । तेल उठाना (चढ़ाना)—तेल की रस्म पूरी करना ।

तेलवाई—संज्ञा पु. [हि. तेल + वाई (प्रत्य)] (१) शरीर में तेल लगाना या मलना । (२) विवाह में कन्या पक्षवालों की ओर से वर पक्ष वालों को तेल भेजने की रस्म । (३) वर,वधू को तेल चढ़ाये जाते समय नाई को दी जानेवाली निछावर ।

तेलहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. तेल] वे बीज (जैसे तिल, सरसों) जिनसे तेल निकलता है ।

तेलहा—वि. पुं. [हिं. तेल] (१) जिसमें से तेल निकले । (२) तेल सबधी । (३) जिसमें चिकनाहट हो ।

तेला—संज्ञा पुं. [हि.तीन+वेला] तीन दिन का उपवास ।

तेलिन—संज्ञा स्त्री. [हि. तेली] तेली की स्त्री ।

तेलिया—वि. [हिं. तेल] तेल सा चिकना-चमकीला ।

सज्ञा पु. [हिं. तेल+इया (प्रत्य.)] (१) काला, चिकना और चमकीला रंग । (२) इस रग का पशु, पक्षी या पदार्थ ।

तेली—संज्ञा पुं. [हिं. तेल + ई (प्रत्य)] एक शूद्र जाति जो प्रायः तेल पेरने का व्यवसाय करती है ।

मुहा.—तेली का वृष (बैल)—हर समय काम में जुटा रहनेवाला आदमी । उ.—महा मूढ अज्ञान तिमिर महँ, मगन होत सुख मानि । तेली के वृष लौं नित भरमत, भजत न सारँगपानि—१-१०२ ।

तेवन—सज्ञा पु. [स. अतेवन] (१) क्रीड़ा, केलि, विनोद । (२) क्रीड़ास्थल ।

तेवर—संज्ञा पुं. [सं. त्रिकुटी, पु. हिं. तेउरी] (१) क्रोध की दृष्टि ।

मुहा.—तेवर चढना—दृष्टि से क्रोध प्रकट होना । तेवर बदलना (बिगड़ना) (१) मुहब्बत न करना । (२) अप्रसन्न होना । (३) मृत्यु की छाया या चिह्न प्रकट होना । तेवर बुरे दिखायी देना (नजर आना)—प्रेम में अंतर पड़ना । तेवर मैले होना—दृष्टि से दुख, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना ।

(२) भौंह, भृकुटी ।

तेवराना—क्रि. अ. [हिं. तेवर + आना] (१) चिंता या संदेह में पड़ना । (२) चकित होना । (३) मूर्छित होना ।

तेवान—सज्ञा पु. [देश.] चिंता, सोच, विचार ।

तेवाना—क्रि. अ. [देश.] सोचना, चिंता करना ।

तेह—संज्ञा पु. [हिं. तेवर] (१) क्रोध, गुस्सा । (२) घमड, अहंकार । (३) तेजी, प्रचडता ।

तेहर—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रि + हार] तीन लड़ों की जंजीर ।

तेहरा—वि. पुं. [हिं. तीन + हरा] (१) तीन परत का । (२) एक साथ तीन तीन । (३) तीसरी बार

किया हुआ। (४) तिगुना।

तेहराना—क्रि. स. [हिं. तेहरा] (१) तीन परतों का। (२) तीसरी बार दोहराना।

तेहा—संज्ञा पु. [हिं. तेह] (१) क्रोध। (२) घमंड।

तेहि, तेही—सर्व. [सं. ते] उस, वे। उ.—असी सहस किंकर-दल तेहि के, दौरे मोहि निहारि—९-१०४।

तेही—संज्ञा पुं. [हिं. तेहा] (१) क्रोधी। (२) घमंडी।

तेहेदार, तेहेबाज—वि. [हिं. तेहा + फा. दार, बाज़] (१) गुस्सैल। (२) अभिमानी, शेखी बघारनेवाला।

तैं—क्रि. वि. [हिं. ते] से। उ.—(क) लच्छा-गृह तैं काढि कै पांडव गृह ल्यावै—१-४। (ख) भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ—१-५। (ग) ब्रह्म-अस्त्र तैं ताहि बचायौ। ... ...। तुव सराप तैं मरिहै सोइ—१-२९०।

सर्व. [सं. त्वं] तू, तूने। उ.—तैं अज्ञान करी सचाई। उनकी महिमा तैं नहि पाई—४-५।

तैंतिस, तैंतीस—वि. [हिं. तैंतीस] तीस और तीन, तैंतीस। उ.—तैंतीस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुमसौं क्यौं हारे—९-१०५।

तै—क्रि. वि. [सं. तत्] उतना, उस मात्रा का।

संज्ञा पु. [अ.] (१) निबटेरा, फैसला। (२) पूरा करना। (३) तह, परत।

वि.—(१) निबटाया हुआ। (२) समाप्त किया हुआ।

तैजास—संज्ञा पु. [सं.] (१) चमकीला पदार्थ। (२) घी। (३) वीर मनुष्य। (४) भगवान्। (५) राजस अवस्था में प्राप्त अहंकार।

वि.—तेज से उत्पन्न, तेज-संबंधी।

तैत्तिरि—संज्ञा पु. [सं.] एक ऋषि।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री. [सं.] कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा।

तैनात—वि. [अ तअय्युन] नियत, नियुक्त।

तैनाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. तैनात] नियुक्ति।

तैयार—वि [अ.] (१) ठीक या कामलायक।

मुहा.—तैयार होना—अभ्यास से मँज जाना।

(२) उद्यत, तत्पर, मुस्तैद। (३) उपस्थित, मौजूद। (४) मोटा-ताजा।

तैयारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तैयार] (१) ठीक या दुरुस्त होने की क्रिया या भाव। (२) तत्परता, मुस्तैदी। (३) मोटाई। (४) धूमधाम, सजावट।

तैयै—क्रि. अ. [हिं. तयना] संतप्त हुए, पीड़ित हुए। उ.—गौतम-रूप बिना जो जैयै। ताके साप अगिनि सौं तैयै—६-८।

तैयो—क्रि. वि. [हिं. तऊ] तो भी, तिस पर भी।

तैरना—क्रि. अ. [सं. तरण] (१) पानी पर ठहरना या उतराना। (२) हाथ-पैर चलाकर पानी में पैरना।

तैराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तैरना + आई (प्रत्य.)] तैरने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

तैराक—वि. [हिं. तैरना + आक (प्रत्य.)] तैरने में कुशल।

तैराना—क्रि. स. [हिं. तैरना का प्रे.] (१) तैराने में दूसरे को लगाना। (२) घुसाना, धँसाना।

तैर्थ—वि. [सं.] तीर्थ से संबंधित।

संज्ञा पुं.—वह कार्य जो तीर्थ में किया जाय।

तैलंग—संज्ञा पुं. [सं. त्रिकलिंग] दक्षिण भारतीय एक देश।

तैलंगी—संज्ञा पुं. [सं. तैलंग] तैलंग देश का निवासी।

संज्ञा स्त्री.—तैलंग देश की भाषा।

वि.—तैलंग देश से संबंधित।

तैलयंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] तेल पेरने का कोल्हू।

तैलिक—संज्ञा पुं. [सं.] तेली।

वि.—तेल-संबंधी।

तैलिक जंत्र (यंत्र)—संज्ञा पुं. [सं. तैलिक यंत्र] कोल्हू।

तैश—संज्ञा पुं. [अ.] क्रोधावेश, गुस्सा।

तैष—संज्ञा पु. [सं.] चांद्र पौष मास।

तैस, तैसा—वि. [सं तादृश, प्रा. ताइस] उस प्रकार का, 'वैसा' का पुराना रूप।

तैसि, तैसी—वि. [हिं. तैसा] तैसी, वैसी ही, उसी प्रकार की। उ.—देखियत नहिं भवन माँझ, जैसोइ तन, तैसि साँझि, छल सौं कछु करत फिरत महरि कौ जिठेरौ—१०-२७६।

तैसियै—वि. [हिं. तैसा] तैसी ही, उसी प्रकार की। उ.—(क) त्यौं-त्यौं मोहन नाचै ज्यों ज्यौं रई-घमर कौ होइ (री)। तैसियै किंकिनि-धुनि पग-नूपुर,

सहज मिले सुर दोइ (री)—१०-१४८। (ख) अरु तैसियै गाल मसूरी। जो खातहि सुख-दुख दूरी—१० १८३।

तैसे—क्रि. वि. [हि. तैसा] वैसे, उसी प्रकार से।

तैसेइ—क्रि. [हि. तैसा + ही] वैसे ही, वैसे ही। उ.—उ.—तैसेइ हरि, तैसेइ सब बालक, कर भौंरा-चकरिनि की डोरी—६६६।

तैसैं—क्रि. वि. [हि. तैसा] वैसे ही। उ.—जहाँ-जहाँ सुमिरे हरि जिहि विधि तहँ तैसैं उठि धाए (हो)—१-७।

तैसो—वि. [हि. तैसा] वैसा उसी प्रकार का। उ.—लूट लूट दधि खात सखन सँग वैसो स्वाद न पाई—८६४ सारा.।

तैसोइ—वि. [हि. तैसा + ही (प्रत्य.)] वैसा ही। उ.—जैसेइ बंइयै तैसोइ लुनिए, कर्मन भोग अभागे—१ ६१।

तों—क्रि. वि. [हि त्यों] त्यों।

तोंद—संज्ञा स्त्री. [स तुंड] पेट का बढ़ा हुआ फुलाव।

मुहा.—तोंद पचना-(१) पेट का फुलाव घटना, मोटापा दूर होना। (२)घमंड या शेखी निकल जाना।

तोंदल, तोंदिल—वि [हि. तोंद] तोंदवाला।

तोंदा—संज्ञा स्त्री. [स. तुंड] नाभी, ढोढ़ी।

तोंबो—संज्ञा स्त्री. [हि. तूंबो] (१) कडुआ कद्दू या घीया। (२) इससे बना साधुओं का पात्र।

तोंहका—सर्व. [हिं. तुम] तुम्हें।

तो—सर्व. [स. तव] तेरा, तुम्हारा।

वि.—तेरे। उ.—(क) कै अधर्म तो ऊपर होत—१ २६०। (ख) रे कपि, क्यों पितु-बैर बिसारयौ। त समतुल कन्या बिन उपजी, जो कुल-सत्रु न मारयौ—६-१३४।

अव्य.—[सं. तद्] तब, उस दशा में।

अव्य. [स. तु, एक अव्यय जिसका व्यवहार प्रायः किसी बात पर जोर देने के लिए किया जाता है।

सर्व [हि तू] 'तू' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है।

क्रि. अ. [हि. हतो] था।

तोइ—संज्ञा पुं. [सं. तोय] पानी।

तोई—संज्ञा स्त्री [देश.] (१) पट्टी, गोट। (२) नेफा।

तोक—संज्ञा पुं. [स.] (१) श्रीकृष्ण का एक सखा। (२) शिशु, संतान।

तोख—संज्ञा पु. [स तोष] संतोष।

तोटका—संज्ञा पु. [हिं. टोटका] टोना-टुटका।

तोड़—संज्ञा पु. [हिं. तोड़ना] (१) तोड़ने की क्रिया या भाव। (२) जल का तेज बहाव। (३) प्रभाव को नष्ट करने का पदार्थ या काम। (४) दही का पानी। (५) बार, दफा। (६) दांव, पेंच।

तोड़ना—क्रि. स. [हि. टूटना] (१) टुकड़े करना। (२) नोच कर अलग करना। (३) खंडित या भग करना। (४) सेंध लगाना। (५) बल, प्रभाव, महत्व आदि घटाना। (६) दाम कम करना। (७) संगठन या व्यवस्था नष्ट करना। (८) नियम या निश्चय स्थिर न रखना। (९) मिटा देना, बना न रहने देना। (१०) दृढ़ या कायम न रहने देना।

तोड़वाना—क्रि. स. [हि. तोड़ना का प्रे.] तोड़ने में लगाना, तुड़ाना।

तोड़ा—संज्ञा पुं [हि. तोड़ना] (१) सोने-चाँदी की जंजीर। (२) हजार रुपए की थैली। (३) नदी का किनारा। (४) घाटा, कमी।

संज्ञा पु. [स. तुंड या टोंटा] फलीता, पलीता।

तोण—संज्ञा पु [स. तूण] तरकश, तुणीर।

तोत—संज्ञा पु. [फा. ताद.] (१) समूह। (२) खेल।

तोतई—वि. [हिं. तोता + ई] तोते के रंग का।

संज्ञा पु.—तोते का सा धानी रंग।

तोतक—संज्ञा पु. [हि. तोता] पपीहा।

तोतर, तोतरा तोतल, तोतला—वि. [हिं. तोतला] (१) तुतलानेवाला। (२) अस्पष्ट स्वर या उच्चारण।

तोतराना, तोतलाना—क्रि अ [हि. तुतलाना] तुतलाकर बोलना अस्पष्ट स्वर में बोलना।

तोतरी—वि स्त्री [हि. तोतला, तुतली] अस्पष्ट, तुतली। उ.—(क) मन-मोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन हरनि सु हँसि मुसुकनियाँ—१०-१०६। (ख) बोलत स्याम तोतरी बतियाँ हँसि-हँसि दतियाँ

दूमैं—१०-१४७ ।

तोतरे—वि. [हिं. तुतले] (१) अस्पष्ट, तोतले । उ.—(क) कबहुँ तोतरे बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात—१०-१०० । (ख) कल-बल बचन तोतरे बोलैं—१० ११७ । (ग) गोद लिए ताकौं हलरावैं, तोतरे बैन बुलावैं—१० १३० । (घ) तब जो खिलायो गोद मैं बोलि तोतरे बैन—३४४३ । (२) तुतलानेवाले ।

तोतरैं—वि. [हिं. तोतला] अस्पष्ट, जो (वचन) स्पष्ट न हो । उ.—कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरैं—१०-७६ ।

तोता—संज्ञा पुं [फा.] (१) एक पक्षी, कीर, सुआ ।

मुहा.—तोता पालना—किसी दोष, रोग या दुर्व्यसन को जान बूझकर बढ़ाना ।

तोताचश्म, तोतेचसम—संज्ञा पुं. [फा. तोताचश्म] तोते की तरह आँख फेर लेनेवाला, बेमुरव्वत आदमी ।

तोताचशमी, तोतेचसमी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. तोताचश्म] बेमुरव्वती, बेवफाई ।

तोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. तोती] (१) तोते की मादा । (२) उपपत्नी, रखैल ।

तोते—संज्ञा पु. बहु [हिं तोता] कई तोते ।

मुहा.—हाथों के तोते उड़ जाना—सहसा किसी अनिष्ट के कारण बहुत घबरा जाना । तोते की तरह आँख फेरना (बदलना)—बहुत बेमुरव्वत होना ।

तोद्—संज्ञा पुं. [सं] व्यथा, पीड़ा ।

वि.—पीड़ा देनेवाला ।

तोदन—संज्ञा प. [स.] (१) कोड़ा । (२) कष्ट ।

तोप—संज्ञा स्त्री. [तु.] एक अस्त्र जिसमें पलीता लगाकर बड़े बड़े गोले चलाये जाते हैं ।

तोपची—संज्ञा पु. [अ. तोप + ची] तोप चलानेवाला ।

तोपना—क्रि स [स. छोपन] नीचे दबाना, गाड़ना ।

तोपवाना—क्रि. स. [हिं. तोपना का प्रे.] नीचे दबवाना, ढँकवाना, छिपवाना ।

तोपा—संज्ञा पु. [हिं. तुरपना] एक टाँके की सिलाई ।

तोपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तोपना] तोपने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

तोपाना—क्रि. स. [हिं. तोपना] नीचे दबवाना ।

तोफगी—संज्ञा स्त्री. [फा. तोहफा] खूबी, अच्छापन ।

तोफा—वि. [फा. तोहफा] बढ़िया ।

संज्ञा पुं.—भेंट, सौगात, उपहार ।

तोबड़ा—संज्ञा पुं. [फा तोबर] थैली या पात्र जिसमें दाना भर कर घोड़े के मुँह पर बाँध दिया जाता है ।

तोबा—संज्ञा स्त्री. [अ. तौब.] अनुचित कार्य भविष्य में पुन. न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा ।

तोम—संज्ञा पु [स स्तोम] समूह, ढेर ।

तोमड़ा. तोमरि, तोमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तूँबड़ा] कड़ुई घीया या लौकी । उ.—फलन माँझ ज्यों करुई तोमरि रहत घुरे पर डारी—३०३५ ।

तोमैं—सर्व. [हिं. तो + मैं (प्रत्य.)] तुझमें । उ.—जमुना तोहि बह्यौ क्यों भावै । तोमैं कृष्ण हेलुआ खेलै, सो सुरत्यो नहिं आवै—५६१

तोय—संज्ञा पु. [स] जल, पानी ।

तोयडिंब—संज्ञा पु. [सं.] ओला, पत्थर ।

तोयद्—संज्ञा पुं. [स] (१) मेघ, बादल । (२) घी । (३) जल-दान करनेवाला ।

वि.—जल देनेवाला ।

तोयधर, तोयधार—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

तोयधि, तोयनिधि—संज्ञा पु. [सं.] समुद्र, सागर ।

तोर—वि. [हिं. तेरा] तेरा । उ.—पावक परौं, सिंधु महँ बूड़ौं, नहिं मुख देखौं तोर—९-८३ ।

संज्ञा पुं. [हिं. तोड़] तोड़ने की क्रिया या भाव ।

क्रि. स. [हिं. तोड़ना] तोड़कर ।

संज्ञा पुं. [सं. तुवर] अरहर ।

तोरण—संज्ञा पु. [स.] (१) घर या नगर का मंडपाकार सजाया हुआ फाटक । (२) सजावट के लिए लटकायी गयी बदनवार । (३) गला, ग्रीवा । (४) शिवजी ।

तोरति—क्रि. स [हिं तोड़ना] तोड़ती है । उ.—प्रभु बरष गाँठि जोरति, वा छवि तर तृन तोरति, सूर अरस-परसनि—१० ६६ ।

तोरन, तोरना—संज्ञा पु [स तोरण] मालाएँ, बदनवार । उ.—(क) प्रति प्रति-गृह तोरन-ध्वजा-धूप । सजे सजल-कलस अरु कदलि-यूप—९-१६६ ।(ख) बाजन

बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि। मालिनि बाँधै तोरना (रे) आँगन रोपै केरि—१०-४०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तोड़ना] **तोड़ने की क्रिया या भाव, तोड़ने को।** उ.—अपने भुजबल तोलत तोरन धनुष पुरार—सारा. २१८।

तोरना—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] **भंग करना, तोड़ना।**

तोरा—सर्व. [हिं. तेरा] **तुम्हारा।**

क्रि. स. [हिं. तोड़ना] **तोड़ा, भंग किया।**

तोराना—क्रि. स. [हिं. तुड़ाना] **तोड़ने में लगाना।**

तोरावान्—वि. [सं. त्वरावत्] **वेगवान, तेज।**

तोरि—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] (१) **तोड़कर, अलग करके।** उ.—किन अकास तैं तोरि तरैया आन धरी घर माई—३३४३। (२) **संबंध विच्छेद करके।** उ.—कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी—१-३०३।

तोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरई] **तुरई की बेल या फल।**

क्रि. स. [हिं. तोड़ना] (१) **तोड़ दी, अलग की। टुकड़े टुकड़े की।** उ.—(क) कठिन जु गाँठि परी माया को तोरी जाति न झटकै—१-२६०। (ख) नवल छबीले लाल तनी चोली की तोरी—३२०८।

मुहा.—डारति तृन तोरी—**नजर से बचाने के लिए टोटके के रूप में तिनका तोड़ती है।** उ.—सूरदास प्रभु हँसि हँसि खेलत, ब्रज बनिता डारति तृन तोरी—६६६।

(२) **संबंध विच्छेद किया।** उ.—(क) कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी—१-३०३। (ख) सूरदास प्रभु प्रीति रीति कत ते तुम सब अब रहे तोरी—२८६०।

सर्व. [हिं. तेरा] **तेरी।** उ.—सूर-स्याम सौं कहति जसोदा, दूध पियहु बलि तोरी—७१२।

तोरे—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] **तोड़े, तोड़ दिये, तोड़ता है।** उ.—(क) देखि सरूप न रही कछू सुधि, तोरे तबहिं कंठ तैं दाम—१०-१५७। (ख) तोरे पात पलास, सरस दोना बहु ल्याए—४३७। (ग) अंचल चीरि अभूषन तोरे—७७१।

सर्व. [हिं. तेरा] **तेरे, तुम्हारे।**

वि.—**तोड़े हुए।**

मुहा.—एक डार के से तोरे—**एक ही गुण, प्रकृति या स्वभाव के, एक ही थैली के से चट्टे-बट्टे।** उ.—जोइ जोइ आवत वा मथुरा तें एक डार के से तोरे—३०५६।

तोरेउ—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] **तोड़ा, टुकड़े टुकड़े किया।** उ.—तब मुनि कहेउ धनुष क्यों तोरउ रुद्र परम गुरु मोरे—सारा. २३७।

तोरैं—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] **नष्ट-भ्रष्ट करें, तहस-नहस करें।** उ.—सूरदास प्रभु लंका तोरैं, फेरैं राम-दुहाई—९-११७।

तोरै—क्रि. स. [हिं. तोड़ना] (१) **दूर करे, मिटा दे, बना न रहने दे।** उ.—मन मैं डरी, कानि जिनि तोरै, मोहिं अबला जिय जानि। नख-सिख-बान सँभारि, सकुच गहिं पानि—९-७९। (२) **तोड़ता है, खंड खंड करता है।** उ.—हार तोरै चीर फारै नन चलै चुराइ—७८०

तोरौ—सर्व. [हिं. तेरा] **तेरा।** उ.—गनिका तरी आपनी करनी, भयौ नाम प्रभु तोरौ—१-१३२।

क्रि. स [हिं. तोड़ना] (१) **तोड़ा।** उ.—सूरदास प्रेम-फँद तोरौ नहिं जाइ—२८८०। (२) **तोड़ दिया।** उ.—कठिन निर्दय नंद के सुत जोरि तोरौ नेह—३२७५।

तोर्यौ—क्रि. स भूत. [हिं. तोड़ना] (१) **तोड़ दिया, खंड खंड किया।** (२) **मिटाया, नष्ट किया।** उ.—(क) पग सों चाँपि धींच बल तोर्यौ—५५७। (ख) लोक-वेद तिनुका सो तोर्यौ—१२०१।

तोल—संज्ञा स्त्री. [हिं. तौल] **भार, तौल।**

वि. [सं. तुल्य] **तुल्य, समान, बराबर।**

तोलत—क्रि. स. [हिं. तोलना] **तोलते है, अंदाज लगाते है।** उ.—अपने अपने भुजबल तोलत तोरन धनुष पुरारि—सारा. २१८।

तोलन—संज्ञा पुं. [सं] (१) **तोलने की क्रिया या भाव।** (२) **उठाने की क्रिया या भाव।**

संज्ञा स्त्री. [सं. उत्तोलन] **सहारे की लकड़ी, चाँड़।**

तोलना—क्रि. स. [हिं. तौलना] (१) **वजन करना।**

(२) लक्ष्य साधना। (३) मिलान करना। (४) पहिये में तेल देना, चिकनाना।

तोला—संज्ञा पुं. [स. तोलक] महँगी चीजें तौलने की बारह माशे की एक तौल।

तोले—क्रि. स. [हिं. तोलना] अंदाज लगाये, पता लगाये, छान-बीन किये, जाने। उ.—यह सुनि लछिमन भये क्रोध-जुत विषय वचन यों बोले। सूरज-वस नृपति भूतल पर जाके बल बिनु तोले—सारा.—२२३।

तोलैं—क्रि. स. [हिं. तौलना] तौलते है। उ.—कुबिजा भई स्याम-रँग राती, तातैं सोभा पाई। ताहि सबै कचन सम तोलैं अरु श्री निकट समाई—१-६३।

तोलै—क्रि. स. [हि तौलना] (१) तौलता है, वजन करता है। उ.—कंचन काँच कपूर कटु खरी एकहिं सँग क्यों तोलै—३२६४। (२) परखता है, जाँचता है। उ.—प्रीति पुरातन पोरी उनसों नेह कसौटी तोलै—३०६१। (३) लक्ष्य या निशाना साधता है। उ—लोचन मृग जुभग जोर राग-रूप भये भोर भौंह धनुष सर कटाच्छ सुरति व्याध तोलै री—१५५३।

तोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंसा। (२) हिंसक।

तोशक—संज्ञा स्त्री. [तु.] गुदगुदा बिछौना।

तोशल—संज्ञा पु. [सं] कस का एक मल्ल जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—और मल्ल मारे शल तोशल बहुत गये सब भाज—सारा. ५२३।

तोशा, तोसा—संज्ञा पुं. [फ़ा. तोशः] (१) खाने-पीने की चीज। (२) यात्रा के लिए भोजन, पाथेय।

संज्ञा पुं. [देश.] गंवारू स्त्रियो का एक गहना।

तोष, तोस—संज्ञा पुं. [सं. तोष] (१) सतोष, तुष्टि, तृप्ति। उ.—भयो तोष दसरथ के सुत कों, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ—६-१४१। (२) प्रसन्नता, आनंद। उ.—परम स्वादे सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै—१-२। (३) श्रीकृष्ण का एक सखा।

तोषक, तोसक—वि [स.] सतुष्ट करनेवाला।

तोषण, तोषन—संज्ञा पु. [स.] तृप्ति सतोष, आनंद।

तोषना—क्रि. स. [सं. तोष] सतुष्ट या प्रसन्न करना।

क्रि. अ.—संतुष्ट, तृप्त या प्रसन्न होना।

तोषल—संज्ञा पुं. [सं.] कंस का एक मल्ल जिसे धनुर्यज्ञ में श्रीकृष्ण ने मारा था।

तोषित—वि. [सं.] तृप्त, तुष्ट, संतुष्ट, प्रसन्न।

तोष्यौ—क्रि. स. [हिं. तोषना] संतुष्ट, तृप्त या प्रसन्न किया। उ.—वैसी आपदा तैं राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ, मुख-नासिका-नयन-स्रौन-पद-पानि-१-७७।

तोसी—सर्व. [हिं. तो + सी (प्रत्य.)] तेरे समान, तेरी सी। उ.—लरिकिनी सबनि घर, तोसी नहि कोउ निडर, चलति नभ चितै, नहिं तकति धरनी-६६८।

तोसौं—सर्व. [हिं. तो = तेरा + सौं (प्रत्य.)] तुझसे। उ.—सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन धन सँचिवौ—१-५६।

तोहफगी—संज्ञा स्त्री. [अ. तोहफा + फा. गी] भलापन।

तोहफा—संज्ञा पुं. [अ.] भेंट, उपहार, सौगात।

वि.—अच्छा, बढ़िया, उत्तम।

तोहमत—संज्ञा स्त्री. [अ.] झूठा कलक या दोष।

तोहार, तोहारा—सर्व. [हिं. तेरा] तेरा, तुम्हारा।

तोहिं, तोहीं—सर्व [हिं. तू या तैं] तुझे, तुझको। उ.—नर कौ नाम पारगामी हो, सो तोहिं स्याम दयौ—१-७८।

तौंस—संज्ञा स्त्री. [सं. ताप + हिं. ऊमस] वह प्यास जो धूप खा जाने पर लगती है और पानी पीने पर भी शांत नहीं होती।

तौंसना—क्रि. अ. [हि. तौंस] गरमी से झुलस जाना।

तौंसा—संज्ञा पु. [हिं. तौंस] कड़ी गरमी।

तौ—क्रि. वि. [सं. तद्, हिं. तो] उस दशा में, तब।

क्रि. वि. [सं. तु, हि. तो] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिए अथवा यो ही किया जाता है।

क्रि. अ. [पु. हिं. हतो] था।

वि. [सं. तव] तेरा, तुम्हारा।

तौऊ—क्रि. वि. [हि. तब + ऊ (प्रत्यय.)] तो भी, तिस पर भी, तब भी, तथापि। उ.—जैसैं जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै। तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै—१-११७।

तौक—संज्ञा पुं. [अ. तौक़] (१) हंसुली की तरह गले

का एक गहना। (२) इसी तरह की लोहे की बहुत भारी पटरी जो कैदियों के गले में पहनायी जाती है। (३) हँसुली की तरह का पक्षियों के गले का चिन्ह। (४) गोल घेरा।

तौचा—संज्ञा पु [देश] देहाती स्त्रियों का एक गहना।

तौतिक—संज्ञा पु. [स.] मोती, मोती की सीप।

तौन—सर्व. [स. ते] वह, सो। उ.—(क) रोकनहारो नदमहर सुत कान्ह नाम जाको है तौन—११७२। (ख) ननदी तौन दिये बिनु गारी नेकहू न रहति—१४६२।

तौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं तवा का अल्पा.] छोटा हल्का तवा। सर्व. स्त्री. [हिं. तौन] वह, सो।

तौर—संज्ञा पु. [अ.] (१) चालढाल, चाल-चलन। (२) दशा, अवस्था। (३) तर्ज, तरीका। (४) प्रकार, भांति। संज्ञा पु [देश.] मथानी मथने की रस्सी।

तौरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. तौंवरि] घुमेर, घुमरी, चक्कर।

तौर्य—संज्ञा पु [स] ढोल मंजीरा आदि बाजे।

तौल—संज्ञा पु [सं. तोलन] (१) तराजू। (२) तुला राशि। संज्ञा स्त्री.—(१) किसी चीज का भार, वजन। (२) तौलने की क्रिया या भाव।

तौलना—क्रि. स. [स. तोलन] (१) वजन करना। (२) लक्ष्य भेदने के लिए अस्त्र साधना। (३) तुलना या मिलान करना। (४) पहिये में तेल देना।

तौलवाई, तौलाई—संज्ञा. स्त्री. [हिं. तौलना+वाई, आई (प्रत्य.)] तौलाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

तौलवाना, तौलाना—क्रि. स. [हिं. तौलना का प्रे.] तौलने का काम दूसरे से कराना।

तौला—संज्ञा पु [हिं. तौलना] (१) दूध नापने का बड़ा बरतन। (२) अनाज तौलनेवाला मनुष्य।

तौली—संज्ञा स्त्री. [देश.] चौड़ मुँह का बरतन।

तौले—क्रि स. [हिं. तौलना] वजन करे। उ—तुला बिच लौ केस तौले गरुअ आनन गोर—१७०३।

तौलै—क्रि. स [हिं तौलना] लक्ष्य भेदने के लिए अस्त्र साधता है। उ.—लोचन मृग सुभग जोर राग-रूप भये भोर भौंह धनुष सर कटाछु सुरधि व्याध तौलै री।

तौलैया—संज्ञा पु [हिं. तौलना+ऐया] तौलनेवाला।

तौलौं—क्रि. वि. [हिं. तौ+लौं=तक] तब तक, उस समय तक। उ—(क) आमिष रुधिर-अस्थि अँग जौलौं, तौलौं कोमल चाम—१-७६। (ख) जब लगि जिय घट-अंतर मेरैं, को सरवरि करि पावै। चिरंजीव दुरजोधन तौलौं जियत न पकरयो आवै—१-२७५।

तौषार—संज्ञा पु. [सं] तुषार या पाले का जल।

तौसना—क्रि. अ. [हिं. तौंस] गरमी से व्याकुल होना। क्रि स.—गरमी पहुँचाकर व्याकुल करना।

तौहीन, तौहीनी—संज्ञा स्त्री. [अ. तौहीन] अपमान।

तौहू—क्रि. वि. [हिं. तौ+हू (प्रत्य.)] तिसपर भी। उ—खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मैं कछु मरम न लयौ—२-३७।

त्यक्त—वि. [सं.] त्यागा या छोड़ा हुआ।

त्यक्ता—वि. [स.] जिसने त्याग किया हो।

त्यजन—संज्ञा पु. [स.] त्यागने का काम या भाव।

त्यजनीय—वि. [सं.] जो त्यागने के योग्य हो।

त्यहि—वि. [हि. तेहि] उस। उ.—यह सुनि कैसे सवन को बंधन दीनों है त्यहि काल—सारा.४८८०।

त्याग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी पदार्थ या पद को अपने से अलग करने की क्रिया, उत्सर्ग। (२) किसी बात को छोड़ने की क्रिया। (३) संबंध न रखने की क्रिया। (४) ससार से विरक्त होकर विषयो को छोड़ने की क्रिया।

त्यागना—क्रि. स. [सं. त्याग] छोड़ना, तजना।

त्यागपत्र—संज्ञा पु. [स.] इस्तीफा।

त्यागवान्—वि. [सं.] जो त्याग करे, त्यागी।

त्यागि—क्रि. स. [हि. त्यागना] छोड़कर, तजकर। उ.—(क) ओसकर बहु रतन त्यागि कै, बिषहि कंठ धरि लेइ—१ २००। (ख) काल-अवधि पूरन भई जा दिन, तनहूँ त्यागि सिधारयौ—१-३३६।

त्यागी—वि. [सं. त्यागिन्] जिसने सर्वस्व त्याग दिया हो, विरक्त। क्रि. स स्त्री. भू. [हिं. त्यागना] त्याग दी।

त्यागूँ—क्रि. स. [हिं. त्यागना] छोड़ दूँ, संबंध न रखूँ। उ.—सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी तोकों कबहुँ न त्यागूँ—सारा. १३३।

त्यागे—क्रि. स. [हिं. त्यागना] त्याग दिये, छोड़ दिये, तजे। उ.—और देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे—१-१७० ।

त्यागै—क्रि. स. [हिं. त्यागना] (१) त्याग दे, छोड़ दे। उ.—सूर जो द्वै रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ—१-७० । (२) त्याग देता है, संबध नहीं रखता। उ.—सत्य पुरुष सो दीन गहत है, अभिमानी कौं त्यागै—१-२४४ ।

त्याग्यौ—क्रि. स. [हिं. त्यागना] त्याग दिया। उ.—करि संकल्प अन्न-जल त्याग्यौ-१-३३१ ।

त्याज—क्रि. स. [हिं. तजना] त्याग कर, छोड़कर। उ.—दुखिरा द्रौपदी जानि जगतपति आए खगपति त्याज—१-२६६ ।

त्याजन—क्रि. स. [हिं. त्यागना] त्याग करना।

त्याज्य—वि. [सं.] त्यागने या छोड़ने लायक।

त्यार—वि. [हिं. तैयार] प्रस्तुत, कटिबद्ध।

त्यूं, त्यों—क्रि. वि [सं. तत् + एवम्] (१) उसी प्रकार, उस तरह। (२) उसी समय, तत्काल।
संज्ञा पुं.—ओर, तरफ।
अव्य.—और, तथा।

त्योंही—क्रि. वि. [हिं. त्यों+ही (प्रत्य.)] उसी प्रकार, उसी तरह, उसी भाँति। उ.—जैसैं सुक नृप कौं समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ—१०-२ ।

त्योरस, त्योरुस—संज्ञा पुं. [हिं. ति (तीन) + बरस] (१) पिछला तीसरा वर्ष। (२) आगे का तीसरा वर्ष।

त्योराना—क्रि. अ. [हिं. ताँवर] सर में चक्कर आना।

त्योरी—संज्ञा स्त्री. [हिं त्रिकुटी] दृष्टि, निगाह।
मुहा—त्योरी चढ़ना (बदलना, में बल पड़ना)-क्रोध से आँखें लाल होना। त्योरी चढाना (बदलना, में बल डालना)—क्रोध से आँखें या भौंह चढ़ाना।

त्योहार—संज्ञा पुं. [सं. तिथि+वार] धार्मिक या जातीय उत्सव मनाने का दिन, पर्व।

त्योहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. त्योहार] त्योहार के उपलक्ष में नौकरो आदि को दिया जानेवाला धन या भोजन।

त्यौं—क्रि. वि. [हिं. त्यौ] (१) उस तरह। (२) उसी समय।

त्यौनार—संज्ञा पुं. [हि. तेवर] ढंग, तर्ज।

त्यौर—संज्ञा पुं. [हि. त्योरी] दृष्टि, नजर।

त्यौराना—क्रि. अ. [हि. ताँवर] सर में चक्कर आना।

त्र—'त' और 'र' से बना एक संयुक्ताक्षर जो शब्द के अंत में प्रत्यय-रूप में जुड़कर 'एक स्थान पर किया या लाया हुआ' का अर्थ देता है।

त्रपा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) लाज, शर्म। (२) दुराचारिणी स्त्री। (३) कीर्ति, यश।

त्रपा, त्रपित—वि. [सं.] लज्जित, शर्मिंदा।

त्रय—वि. [सं.] (१) तीन। उ.—दीन जन क्यौं करि आवै सरन ? भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन—१-४८। (२) तीसरा।

त्रयताप—संज्ञा पुं. [सं.] दैहिक, दैविक और भौतिक, तीन प्रकार के कष्ट।

त्रयताप-हरन—संज्ञा पुं. [सं. त्रयताप+हिं. हरना] तीनों प्रकार के—दैहिक, दैविक और भौतिक—कष्ट दूर करनेवाला, ईश्वर। उ.—सुनु त्रयताप-हरन करुनामय, संतत दीनदयालु—१-२०१ ।

त्रयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीन वस्तुओं का समूह।

त्रयोदश—वि. [सं.] तेरह।

त्रयोदशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पक्ष की तेरहवीं तिथि।

त्रष्टा—संज्ञा स्त्री. [सं. तष्टा] तश्तरी।

त्रस—संज्ञा पुं. [स.] (१) जंगल। (२) चर (जीव)।

त्रसत—क्रि. अ. [हिं. त्रसना] डरता है।

त्रसन- संज्ञा पु. [स.] (१) भय, डर। (२) आवेश।

त्रसना—क्रि. अ. [सं. त्रसना] भय से काँपना, डरना।

त्रसाना - क्रि. स. [हि. त्रसना] डराना, धमकाना।

त्रसायौ—क्रि. स. [हिं. त्रसाना] डराया, धमकाया, भय दिखाया। उ.—सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता डर तन अतिहिं त्रसायौ—३६६ ।

त्रसावत—क्रि. स [हि. त्रसाना] डराता-धमकाता है, भय-दिखाता है। उ.—गौरी-पति पूजति ब्रजनारि। ......। सरन र खि लीजै सिव संकर तनहिं त्रसावत मार—७६६ ।

त्रसावै—क्रि. स. [हि. त्रसाना] डराती(डराता) है। उ.—जाकौ सिव ध्यावत निसि बासर सहसानन-जेहि गावै

हौ। सो हरि राधा-बदन-चंद को नैन-चकोर त्रसावै हो—२५१०।

त्रसित—वि. [सं. त्रस्त] (१) डरा हुआ, भयभीत। (२) दुखी, पीड़ित, सताया हुआ।

त्रसुर—वि. [सं.] कायर, डरपोक, भीरु।

त्रसै—क्रि. अ. [हिं. त्रसना] डरता या भयभीत होता है। उ.—मदन त्रसै तुम आगे—१८६६।

त्रस्त—वि. [सं.] (१) भयभीत, डरा हुआ। (२) दुखित, पीड़ित। (३) चकित, विस्मित।

त्राटक—संज्ञा पुं. [सं.] योग का एक साधन जिसमें एकटक किसी बिंदु पर दृष्टि जमायी जाती है।

त्राण, त्रान—संज्ञा पुं. [सं.] रक्षा। रक्षा का साधन।

त्राणक—संज्ञा पुं. [सं.] रक्षक।

त्राता, त्रातार—संज्ञा पुं. [सं. त्रातृ] रक्षक, बचानेवाला। उ.—तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठौंव पकरैगौ—१-७५।

त्रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डर, भय। उ.—(क) कर्म लखि त्रास आवै—१-११०। (ख) कहा मल्ल चानूर कुवलिया अब जिय त्रास नहीं तिन नैकौ—२५५८। (२) कष्ट, तकलीफ। उ.—गरभ-बास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुध बिसरी—१-११६। (३) मणि का एक दोष।

त्रासक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डरानेवाला, भयभीत करनेवाला। (२) दूर करनेवाला, निवारक।

त्रासत—क्रि. स. [हिं. त्रासना] डराता है, भय दिखाता है। उ.—(क) कौर-कौर कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान। जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म, लकुट, पद-त्रान—१-१०३। (ख) गोप-गाई-गोसुत जल-त्रासत गोवर्धन कर धारयौ—१-१५८।

त्रसति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. त्रासना] डराती है, धमका कर, त्रास देकर। उ.—(क) सुनौ सूर ग्वालिनि की बातैं, त्रासति कान्ह जु मोर—१०-३२०। (ख) अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोख कै जायौ—३५६।

त्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] डराने की क्रिया का भाव।

त्रासना—क्रि. स. [सं. त्रास] डराना, भय दिखाना।

त्रासमान—वि. [सं. त्रास+मान] डरा हुआ, भयभीत।

त्रासित—वि. [सं.] (१) डरा हुआ, भयभीत। (२) दुखी, पीड़ित, त्रस्त।

त्रासी—वि. [सं.] दुखी, पीड़ित। उ.—(क) इतनौ सँदेसो कहियो ऊधौ कमल नैन बिनु त्रासी—३४२२। (ख) प्रेम न मिले धेनु दुर्बल भई स्याम विरह की त्रासी—३४३६।

त्रासै—क्रि. स. [हिं. त्रासना] भयभीत करता है, डराता है। उ.—तड़ित-बसन घन-स्याम-सदृस तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै—१-६६।

त्रास्यौ—क्रि. स. [हिं. त्रासना] डराया, भय दिखाया। उ.—काहे कौ कलह नाध्यौ, दारुण दाँवरि बाँधौ, कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया।

त्राहि—अव्य. [सं.] बचाओ, रक्षा करो।

मुहा.—त्राहि करी—हारी मान ली, परेशान हो गये। उ.—चित्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैं मेरे पातक भारि। तिनहूँ त्राहि करी सुनि औगुन कागद दीन्हे डारि—१-१६७। त्राहि-त्राहि करी—(पुकारी, भाख्यौ) दया या अभयदान के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की। उ.—(क) त्राहि त्राहि द्रौपदी पुकारी गई बैकुंठ अवाज खरी—१-२४६। (ख) त्राहि त्राहि कहि नंद पुकारयौ देखत ठौर गिरे भहराई—५४४। (ग) त्राहि त्राहि हरि सौं सब भाख्यो दूर करो सब सोक।

त्रिंश—वि. [सं.] तीसवाँ।

त्रिंशत—वि. [सं.] तीस।

त्रि—वि. [सं.] तीन।

त्रिए—संज्ञा स्त्री. [हिं. त्रिया] स्त्री, युवती। उ.—(क) सूरदास प्रभु नवल रसीले चोज नवल त्रिए—१७६६। (ख) सूर प्रभु रति रंग राँचे देख रीझी त्रिए—२०६६।

त्रिकंट, त्रिकंटक—संज्ञा पुं. [सं.] त्रिशूल।

वि.—जिसमें तीन नोकें या काँटे हों।

त्रिक—संज्ञा पुं. [सं.] तीन वस्तुओं का समूह।

त्रिककुद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्रिकूट पर्वत। (२) विष्णु।

त्रिकाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीनों समय-भूत, वर्तमान, (और) भविष्य। (२) तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न, सायं।

त्रिकालज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] भूत, वर्तमान और भविष्य

की बात जाननेवाला।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा पुं. [सं.] भूत, वर्तमान और भविष्य की बात जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदर्शक, त्रिकालदर्शी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूत, वर्तमान और भविष्य की बात जाननेवाला।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूत, वर्तमान और भविष्य की बात जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकुट—संज्ञा पुं. [सं. त्रिकूट] एक पर्वत।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिकूट] दोनों भौंहों के बीच के कुछ ऊपर त्रिकूट चक्र का स्थान। उ.—(क) त्रिकुटी संगम भ्रूभंग तराटक नैन लागि लागे—२२१४। (ख) त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिदि यों मिलिहैं बनमाली—२४६२।

त्रिकुल—संज्ञा पुं. [सं.] पितृ, मातृ और श्वसुर-कुल।

त्रिकूट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों। (२) वह पर्वत जिस पर लंका बसी थी और जहाँ भगवती निवास करती मानी गयी है। (३) एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु का पुत्र माना गया है और जिसकी तीन चोटियों में एक सोने की है और दूसरी चाँदी की। (४) एक पर्वत। सूरदास के अनुसार अगस्त्य के शाप से राजा इंद्रद्युम्न इस पर्वत के रूप में हो गये थे। कालांतर में वे गज हुए और ग्राह से युद्ध होने पर नारायण ने इनका उद्धार किया। उ.—राजा इंद्रद्युम्न कियौ ध्यान। आये अगस्त्य नहीं तिन जान। दियौ साप गजेंद्र तू होहि। कह्यौ नृप, दया करौ रिषि मोहिं।... भयौ त्रिकूट पर्वत गज सोइ—८-२। (५) योग में मस्तक के छः कल्पित चक्रों में पहला जो दोनों भौंहों के बीच कुछ ऊपर की ओर माना गया है। (६) सेंधा नमक।

त्रिकोण—संज्ञा पुं. [सं.] तीन कोने का क्षेत्र।

त्रिखा—संज्ञा स्त्री. [सं. तृषा] (१) प्यास। (२) इच्छा।

त्रिगुण, त्रिगुन—संज्ञा पुं. [सं. त्रिगुण] प्रकृति के सत्व, रज और तम नामक तीन गुण।

वि.—तीन गुना, तिगुना।

त्रिगुणात्मक—वि. [सं.] सत्व, रज और तम, तीनों गुणों से युक्त। उ.—माया कौं त्रिगुणात्मक जानौ। सत-रज-तम ताके गुन मानौ—३-१३।

त्रिचख्—संज्ञा पुं. [सं. त्रिचक्षुस्] महादेव, शिव।

त्रिजग—संज्ञा पुं. [सं. तिर्यक्] आड़ा चलनेवाला जीव।

संज्ञा पुं. [सं. त्रिजगत्] तीनों लोक।

त्रिजट—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

त्रिजटा, त्रिजटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] विभीषण की बहन जो सीता जी के पास अशोकवाटिका में रहती थी।

संज्ञा पुं. [सं. त्रिजट] शिव, महादेव।

त्रिजामा—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रियामा] रात, रात्रि।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] वृत्त का अर्द्ध व्यास।

त्रिण—संज्ञा पुं. [सं. तृण] तिनका, घासफूस।

त्रितय—संज्ञा पुं. [सं.] धर्म, अर्थ और काम।

त्रिताप—संज्ञा पुं. [सं. त्रि+ताप] दैहिक, दैविक और भौतिक ताप या कष्ट।

त्रिदश, त्रिदस—संज्ञा पुं. [सं. त्रिदश] देवता, सुर। उ.—(क) त्रिदस-नृपति, रिषि व्योम बिमाननि, देखत रह्यौ न धीर। त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर—६-१६। (ख) जानौं हौं बल तेरौ रावन।......। दारुन कीस सुभट बर सनमुख, लैहौं संग त्रिदस-बल पावन—६-१३२। (ग) निरखत बरखत कुसुम त्रिदसजन सूर सुमति मन फूल। (घ) त्रिदस कोटि अमरन कौ नायक जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ—६३२।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं. [सं.] देवगुरु, बृहस्पति।

त्रिदशनृपति—संज्ञा पु [सं.] देवराज, इंद्र।

त्रिदशपति, त्रिदसपति—संज्ञा पुं. [सं. त्रिदशपति] इंद्र। उ.—चतुर्मुख त्रिदसपति बिनय हरि सौं करी, बलि असुर सौं सुरनि दुःख पायौ—८-८।

त्रिदशवधू—संज्ञा स्त्री. [सं.] अप्सरा।

त्रिदशांकुश, त्रिदशायुध—संज्ञा पुं. [सं.] वज्र।

त्रिदशारि—संज्ञा पु. [सं. त्रिदश+अरि] असुर।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ग। (२) सुमेरु।

त्रिदिव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ग। (२) आकाश।

त्रिदृश—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

त्रिदेव—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विष्णु और महेश।

त्रिदोष—संज्ञा पुं. [सं.] (२) वात, पित्त और कफ के

दोष । (२) वात, पित्त और कफ-जनित रोग, सन्निपात । उ.—ज्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलति वचन न सूधो—३६१३ ।

त्रिदोषज—संज्ञा पुं. [सं.] सन्निपात रोग ।

त्रिदोषना—क्रि. अ. [सं. त्रिदोष] (१) वात, पित्त और कफ का दोष होना । (२) काम, क्रोध और लोभ के फेर में पड़ना ।

त्रिधा—क्रि. वि. [सं.] तीन प्रकार या तरह से ।

वि.—तीन प्रकार या तरह का ।

त्रिधातु—संज्ञा पुं. [सं.] सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधाम—संज्ञा पुं. [सं. त्रिधामन्] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) अग्नि । (४) मृत्यु । (५) स्वर्ग ।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पु. [सं.] परमेश्वर ।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री [सं.] स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में बहनेवाली गंगा नदी ।

त्रिन—संज्ञा पु. [सं. तृण] तिनका, घास-फूस ।

त्रिनयन, त्रिनेत्र—संज्ञा पुं [सं.] शिव, महादेव ।

त्रिपथ—संज्ञा पुं. [सं] कर्म, ज्ञान और उपासना ।

त्रिपथगा, त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री [सं.] स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल लोक में बहनेवाली गंगा ।

त्रिपद्—संज्ञा पु. [सं.] (१) तिपाई । (२) त्रिभुज । (३) वह जिसके तीन पद या चरण हो । (४) तीन कदम या पग ।

त्रिपद्व्याज—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपद+व्याज] तीन पग (नापने) के बहाने उ.—बलि बल देखि, अदिति सुत कारन त्रिपद्व्याज तिहुँ पुर फिरि आई—१-६ ।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीन वेदो का जाननेवाला। (२) ब्राह्मणों की एक जाति, त्रिवेदी ।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं. [सं.] श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिये गये पिंड ।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं. [सं.] गौतमबुद्ध के उपदेशो का संग्रह जो बौद्ध-धर्म का प्रधान ग्रंथ है ।

त्रिपितात—क्रि. अ. [हिं. तृप्ति+आना] तृप्त होता (होती) या अघाता (अघाती) है । उ.—जैसे तृषावंत जल अँचवत वह तौ पुनि ठहरात । यह आतुर छवि लै उर धारति नेकु नहीं त्रिपितात—१६६२ । (ख) जे पटरस सुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खातं । सुनो सूर लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात—पृ. ३३३ । (ग) तऊ कहूँ त्रिपितात नाहीं रूप-रस की ढेरि—पृ. ३३४ ।

त्रिपिताना—क्रि. अ. [सं. तृप्ति+हिं. आना (प्रत्य.)] तृप्त होना, अघाना ।

त्रिपुंड, त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपुंड्र] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव-शाक्त लगाते हैं ।

त्रिपुटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीन वस्तुओं का समूह ।

त्रिपुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीन नगर जो तारकासुर के तीन पुत्रों—तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली के लिए मयदानव ने बनाये थे । इनमें पहला सोने का स्वर्ग में था, दूसरा चांदी का अंतरिक्ष में था और तीसरा लोहे का मर्त्यलोक में । शिव जी ने एक ही बाण में इन तीनों को नष्ट कर दिया था । उ.—तब मय दीन्हौ कोट बनाई । लोह तरैं, मधि रूपा लायौ । ताके ऊपर कनक लगायौ । जहँ लै जाइ तहाँ वह जाइ । त्रिपुर नाम सो कोट कहाइ—७-७ । (२) बाणासुर का एक नाम । (३) तीनों लोक । (४) चंदेरी नगर ।

त्रिपुरघ्न, तिपुरदहन—संज्ञा पुं. [सं.] शिव ।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

त्रिफला—संज्ञा पुं. [सं.] हड़, बहेड़ा और आँवले का समूह या चूर्ण ।

त्रिबलि, त्रिबली—संज्ञा स्त्री. [सं.] पेट पर पड़नेवाले तीन बल जिनकी गणना स्त्री के सौंदर्य में होती है ।

त्रिबिध—वि. [सं. त्रिविध] तीन प्रकार का । उ.—उ.—सूरदास तेई पद-पंकज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे—१-६४ ।

त्रिबिक्रम—संज्ञा पुं. [सं. त्रिविक्रम] (१) विष्णु । (२) वामन का अवतार ।

त्रिबेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिवेणी] (१) तीन नदियों का संगम । (२) गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम ।

त्रिभंग—वि. [सं.] तीन जगह से टेढ़ा या बलदार । उ.—(क) तनु त्रिभंग, सुभग अंग, निरखि लजत अति अनंग, ग्वाल बाल लिए संग, प्रमुदित सब हियै—

४६० । (ख) तनु त्रिभंग, जुग जानु एक पग, ठाढ़े इक दरसाए—६३१ । (ग) ललित बर त्रिभंग सु तनु, बनमाला सोहै—६६२ ।

संज्ञा स्त्री.—टेढ़ापन लिये खड़े होने की मुद्रा ।

त्रिभंगी—वि. [सं.] तीन जगह से टेढ़ा, तीन मोड़ का, त्रिभग ।

संज्ञा स्त्री.—टेढ़ापन लिये खड़े होने की मुद्रा ।

संज्ञा पुं. [सं.] त्रिभग मुद्रा से खड़े होनेवाले श्रीकृष्ण । उ.—कहा कूबरी सील-रूप-गुन ? बस भए स्याम त्रिभंगी—१-२१ ।

त्रिभू—वि. [सं.] जिसमें तीन नक्षत्र हों ।

त्रिभुज—संज्ञा पुं. [स.] तीन रेखाओं से घिरा क्षेत्र ।

त्रिभुवन—संज्ञा पुं. [सं.] तीनो लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं. [सं.] त्रिलोक के स्वामी ।

त्रिभुवनराइ, त्रिभुवनराई, त्रिभुवनराय—संज्ञा पुं. [सं. त्रिभुवन + हि. राय] तीनो लोक के स्वामी । उ.—विप्रनि अस्तुति विविध सुनाई । पुनि कह्यौ सुनियै त्रिभुवनराई—५-२ ।

त्रिमद—संज्ञा पुं. [सं.] कुल, धन और विद्या का घमंड ।

त्रिमधु, त्रिमधुर—संज्ञा पुं. [सं.] घी, शहद और चीनी ।

त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।

त्रिय, त्रिया, त्रियो—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री.] स्त्री, औरत । उ.—(क) सुत-धन-धाम-त्रिया हित औरै लह्यौ बहुत बिधि भारौ—१-२१३ । (ख) ऐसी कृपा करी नहिं, जब त्रिय नगन समय पति राखी—५६६ । (ग) सूरदास प्रभु भौंह निहारत चलत त्रिया के रंग—१७७८ । (घ) सूरस्याम प्रभु के बहुनायक मोसी उनके कोटि त्रियो—१६४६ ।

त्रियाचरित्र—संज्ञा पुं. [हिं. त्रिया+सं. चरित्र] स्त्रियों का छल-कपट पूर्ण व्यवहार जिसे समझने में बड़े-बड़े बुद्धिमान प्रायः चूक जाते हैं ।

त्रियामक—संज्ञा पुं. [सं.] पाप ।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात । (२) यमुना नदी ।

त्रियुग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु । (२) वसंत, वर्षा और शरद ऋतुएँ । (३) सत्ययुग, त्रेता और द्वापर ।

त्रिरत्न—संज्ञा पुं. [सं.] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह ।

त्रिरेख—संज्ञा पुं. [सं.] शंख ।

वि.—जिसमें तीन रेखाएँ हों ।

त्रिलोक—संज्ञा पुं [सं.] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक ।

त्रिलोकनाथ, त्रिलोकपति, त्रिलोकीनाथ, त्रिलोकीपति—संज्ञा पुं. [सं.](१) तीनो लोको का स्वामी, ईश्वर । (२) राम । (३) कृष्ण । (४) विष्णु का कोई अवतार ।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. त्रिलोक] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक ।

त्रिलोचन—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

त्रिलोचना, त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा ।

त्रिवर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्थ, धर्म और काम । (२) वृद्धि, स्थिति और क्षय । (३) सत्व, रज और तम । (४) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ।

त्रिवलि, त्रिवलिका, त्रिवली—संज्ञा स्त्री. [स. त्रिवली] पेट पर पड़नेवाले तीन बल जो स्त्री के सौंदर्य में गिने जाते हैं ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वामन । (२) विष्णु ।

त्रिविद्—संज्ञा पुं. [सं.] तीनो वेदो का ज्ञाता ।

त्रिविध—वि. [सं.] तीन प्रकार या तरह का ।

क्रि. वि.—तीन प्रकार या तरह से ।

त्रिवृत्त—वि. [सं.] तीन गुना, तिगुना ।

त्रिवेणी, त्रिवेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिवेणी] (१) तीन नदियों या धाराओं का सगम । (२) गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों का संगम जो प्रयाग में है । उ.—सुभ कुरुक्षेत्र अजोध्या मिथिला प्राग त्रिवेनी न्हाये—सारा. ८२८ । (३) इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का संगम स्थान ।

त्रिवेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऋक्, यजु और सामवेद । (२) इन वेदो में वर्णित कर्म । (३) इन वेदो का ज्ञाता ।

त्रिवेदी—संज्ञा पुं. [सं. त्रिवेदिन्] (१) ऋक्, यजु और सामवेदो का ज्ञाता । (२) ब्राह्मणो की एक जाति ।

त्रिशंकु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक सूर्यवंशी राजा जो सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे; इंद्र ने उन्हें पृथ्वी की ओर ढकेला, परतु विश्वामित्र ने अपने तप-बल से रोक लिया । तबसे ये अधर में उलटे लटके माने जाते

हैं। (२) एक तारा जो त्रिशंकु के रूप में प्रसिद्ध है।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं. [सं.] त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूपी शक्तियाँ। (२) बुद्धितत्व।

त्रिशिर, त्रिशिरा—संज्ञा पुं. [सं. त्रिशिरस्] (१) रावण का एक भाई जो खरदूषण के साथ दंडकवन में रहता था। (२) एक राक्षस।

त्रिशूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महादेवजी का तीन फल का एक अस्त्र। (२) दैहिक, दैविक और भौतिक दुख।

त्रिशूली—संज्ञा पुं. [सं. त्रिशूलिन्] शिवजी।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्रिकूट पर्वत जिस पर लंका बसी थी। (२) तीन शृंगों का पर्वत। (३) त्रिकोण।

त्रिसंगम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल। (२) तीन धाराओं या नदियों का संगम। उ.—जय जय जय जय माधव वेनी।......
जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रम, धरि करि कोप उछैनी। मेरु मूठि, वरवारि पाल-छिति, बहुत वित्त की लैनी। सोभित अंग तरंग त्रिसंगम, धरी धार अति पैनी—९-११।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं. [सं.] प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल।

त्रिसर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] सत्व, रज और तम—इन तीनों गुणों से बनी सृष्टि।

त्रिस्रोता—संज्ञा पुं. [सं. त्रिस्रोतस्] गया तीर्थ।

त्रिसूल—संज्ञा पुं. [सं. त्रिशूल] शिव जी का अस्त्र।

त्रुटि, त्रुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रुटि] (१) कमी, कसर। (२) अभाव। (३) भूल-चूक। (४) वचन-भंग।

त्रुटित—वि. [सं.] (१) टूटा हुआ। (२) घायल।

त्रेता, त्रेतायुग—संज्ञा पुं. [सं.] चार युगों में से दूसरा जो १२९६००० वर्ष का माना जाता है।

त्रै—वि. [सं. त्रय] तीन।

त्रैकालिक—वि. [सं.] तीनों कालों में होनेवाला।

त्रैगुण्य—संज्ञा पुं. [सं.] सत्व, रज और तम—इन तीनों गुणों का भाव या धर्म।

त्रैपद—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपद] तीन पैरों में नापने की क्रिया या भाव। उ.—(क) जिहिं बल बलि बंदन करि पठयौ, बसुधा त्रैपद करी प्रमान—१०-३२७। (ख) कबहुँ करत बसुधा तब त्रैपद, कबहुँ देहरी उलँघि न जाइ—४९७।

त्रैमासिक—वि. [सं.] तीसरे महीने होनेवाला।

त्रैलोक, त्रैलक्य—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—ये तीनों लोक।

त्रैलोकनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] तीनों लोक के स्वामी श्रीकृष्ण। उ.—नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै—१०-१४६।

त्रैवार्षिक—वि. [सं.] तीन वर्षों में होनेवाला।

त्रैविक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वामन। (२) विष्णु।

त्रोटि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चोंच। (२) एक चिड़िया।

त्रोटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चोंच। (१) टोटी।

त्रोण—संज्ञा पुं. [सं.] तरकश, तूणीर।

त्र्यंबक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) एक रुद्र।

त्वक्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छिलका, छाल। (२) त्वचा, खाल। (३) एक ज्ञानेंद्री जो शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है, जिसके द्वारा गरम, ठंडे आदि का ज्ञान होता है और जिसका देवता वायु माना गया है।

त्वच, त्वचा—संज्ञा स्त्री. [सं. त्वचा] चमड़ा, त्वचा। उ.—(क) तन तैं त्वच भई न्यारी—१-११८। (ख) गड चटाइ, मम त्वचा उपारौ—९-५।

त्वदीय—सर्व. [सं.] तुम्हारा।

त्वरा, त्वरि—संज्ञा स्त्री. [सं. त्वरा] शीघ्रता, जल्दी।

त्वरावान—वि. [हिं. त्वरा] शीघ्रता करनेवाला।

त्वरित—वि. [सं.] तेज।
क्रि. वि.—शीघ्रता से।

त्वष्टा—संज्ञा पुं. [सं. त्वष्ट] (१) वृत्रासुर के पिता जिन्होंने विश्वरूप नामक पुत्र के मारे जाने पर क्रुद्ध होकर एक जटा से वृत्रासुर को उत्पन्न किया था। उ.—त्वष्टा विस्वरूप को बाप। दुखित भयो सुनि सुत-संताप—६-४। (२) विश्वकर्मा। (३) महादेव। (४) एक प्रजापति।

त्वाष्ट्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वृत्रासुर। (२) विश्वकर्मा का बनाया हुआ हथियार, वज्र। (३) चित्रा नक्षत्र।

त्वाष्ट्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] विश्वकर्मा की कन्या।

थ—देवनागरी वर्णमाला का सत्रहवाँ और तवर्ग का दूसरा व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान दंत है।
थंडिल—संज्ञा पुं. [सं. स्थंडिल] यज्ञ की वेदी।
थंब, थंभ—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ] (१) खभा। उ.—जोबन को कदली-सम जानै। अथवा कनक थंभ सम मानै। (२) सहारा, टेक।
थंबी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्तंभी] सहारे की बल्ली, चाँड़।
थंभन—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभन] (१) रुकावट। (२) तंत्र-मंत्र का प्रयोग जिसके द्वारा जल-प्रवाह, वर्षा आदि को रोक दिया जाय।
यौ.—जलथंभन—जल-प्रवाह आदि रोकने का मंत्र।
थंभित—वि. [सं. स्तंभित] (१) रुका या ठहरा हुआ। (२) अचल, स्थिर। (३) भय आदि से ठक या स्तब्ध।
थईं—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँव] (१) जगह। (२) ढेर।
थकत—क्रि. अ. [हिं. थकना] थकती है, क्लांत होती है, श्रांत होती है। उ.—नैकुहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी—३४८।
थकन, थकर—संज्ञा स्त्री. [हिं. थकना] थकावट।
थकना—क्रि. अ. [सं. स्था + कृ, प्रा. थिक्क] (१) परिश्रम से शिथिल या क्लांत होना। (२) ऊबना, हैरान हो जाना। (३) बुढ़ापे के कारण शक्तिहीन या शिथिल होना। (४) धीमा या मंद पड़ना। (५) मुग्ध या मोहित होकर ठक रह जाना।
थकाई—क्रि. अ. [हिं. थकना] मोहित हो गये, लुभा-कर अचल रह गये। उ.—मोहे थिर, चर, बिटप बिहगम, व्योम बिमान थकाई—६२६।
थकान—संज्ञा स्त्री. [हिं. थकना] थकावट, शिथिलता।
थकाना—क्रि. स. [हिं. थकना] (१) परिश्रम कराते-कराते शिथिल कर डालना। (२) हराना, परेशान या हलकान करना।
थकाने, थकाना—क्रि. अ. [हिं. थकना] थके, शिथिल हुए।
थका-माँदा—वि. [हिं. थकना + माँदा] बहुत शिथिल।
थकायो—क्रि अ. [हिं. थकना] आश्चर्य से स्तब्ध रह गया या अचल हो गया। उ.—मुनि-धुनि चचल पवन थकायो—१८६०।
थकार—संज्ञा पुं. [सं.] 'थ' अक्षर या इसकी ध्वनि।
थकाव—संज्ञा पुं. [हिं. थकना] थकावट, शिथिलता।
थकावट, थकाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. थकना] थकने का भाव, शिथिलता, क्लांतता।
थकि—क्रि. अ. [हिं. थकना] थककर, क्लांत या श्रांत होकर। उ.—गज बल करि कै थकि रह्यौ—८-२।
थकित—वि. [हिं. थकना] (१) थका हुआ, श्रांत, शिथिल। उ.—(क) ऐसे बीते बरस दिन, थकित भये बिधि पाइ—४६२। (२) उदास, खिन्न, अशक्त। उ.—अधोमुख रहति ऊरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी—३४२५। (३) मोहित, मुग्ध। उ.—(१) (क) थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत—१-२६। (ख) थकित भई गोपी लखि स्यामहि। (ग) बरनौ बाल-बेस मुरारि। थकित जित तित अमर मुनिजन नंद-लाल निहारि—१०-१६६।
थकिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. थक्का] गाढ़ी चीज की तह।
थके—क्रि. अ. [हिं. थकना] थक गये, हार गये। उ.—(क) नारदादि सुकदादि मुनिजन थके करत उपाइ—१-५६। (ख) थके किंकर जूथ जम के-१-१०६।
थकैनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थकावट] शिथिलता।
थकौहाँ—वि [हिं. थकना] थका-माँदा, शिथिल।
थकौहीं—वि स्त्री. [हिं. पुं थकौहाँ] थकी हुई।
थक्का—संज्ञा पुं. [स. स्था + कृ] गाढ़ी चीज की तह।
थक्यौ—क्रि. अ. [हिं. थकना] (१) थका, थक गया। उ.—(क) हिरनकसिपु परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै—१-३७। (ख) दुख-समुद्र जिहिं वार-पार नहिं तामैं नाव चलाई। केवट थक्यौ, रही अधबीचहिं कौन आपदा आई—६-१४६। (२) मुग्ध होकर अचल रह गया। उ—वैसेहि दसा भई जमुना की वैसे ह गति जति पवन थक्यौ—१८३३।
थगित—वि. [हिं. थकित] (१) ठहरा या रुका हुआ। (२) शिथिल, थका-माँदा। (३) मंद, धीमा।

थड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. थकित] बठक। चबूतरा।

थति—संज्ञा स्त्री. [हि. थाती] धरोहर।

थतिहार—संज्ञा पु. [हि. थाती+हार (प्रत्य.)] वह व्यक्ति जिसके पास धरोहर रखी जाय।

थत्ती—सज्ञा स्त्री. [हि. थाती] ढेर, राशि।

थन—संज्ञा पुं. [सं. स्तन] चौपायो के स्तन।

थनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थन] बकरियो के गले की थन की आकृति की थैलियाँ जिनमें दूध नहीं होता।

थनु—सज्ञा पु. [हि. थन] थन, चौपायो के स्तन। उ.—आनद-मगन धेनु सवैं थनु पय-फेनु, उमँग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के—१०-३०।

थपकना—क्रि. स. [अनु. थपथप] (१) प्यार या दुलार से धीरे-धीरे थपथपाना। (२) धीरे-धीरे ठोकना। (३) दिलासा देना, पुचकारना। (४) क्रोध आदि शात करना।

थपकी, थपथपी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थपकना] (१) प्यार-दुलार से थपथपाने की क्रिया या आघात (२) धीरे-धीरे ठोंकने की क्रिया। (३) थापी, मुँगरी।

थपड़ी—संज्ञा स्त्री. [अनु. थपथप] (१) हथेलियो से वजायी गयी ताली। (२) ताली का शब्द।

थपन—संज्ञा पुं. [सं. स्थापन] टिकाना, जमाना।

थपना—क्रि. स. [सं. स्थापन] (१) बैठाना, जमाना, ठहराना। (२) स्थापित या प्रतिष्ठित करना।

क्रि. अ.—जमना, गड़ना। प्रतिष्ठित होना।

थपरा—सज्ञा पु [हिं. थप्पड़]तमाचा, थप्पड़।

थपाना—क्रि. स. [हिं. थपना] स्थापित कराना।

थापि—क्रि. स. [हि. थपना] प्रतिष्ठित करके। उ.—सूर प्रभु मारि दसकध, थपि बंधु तिहिं, जानकी छोरि जस जगत लीजौ—९-१३६।

थापिहौं—क्रि. स. [हिं. थपना] प्रतिष्ठित करूँगा। उ.—जव लौं हों जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं। दधि-ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं—९-१६४।

थपुआ—संज्ञा पु. [हिं. थपना] चौड़ा-चिपटा खपड़ा।

थपेटा, थपेड़ा—संज्ञा पु. [अनु. थपथप] आघात, टक्कर।

थप्पड़—संज्ञा पुं. [अनु. थपथप] (१) तमाचा, झापड़, हथेली का थपेड़ा। (२) धक्का, टक्कर।

थम—संज्ञा पु. [सं. स्तंभ, प्रा. थंभ] (१) खंभा, स्तंभ, थूनी। (२) केलो की पेड़ी। (३) पूजा की सोहारी।

थमकारी—वि. [सं. स्तंभन] रोकनेवाला। उ.—मन बुधि चित अहंकार दरसै इंद्रिय प्रेरक थमकारी।

थमना—क्रि. अ. [सं. स्तंभन] (१) रुकना, ठहरना। (२) वद हो जाना, चालू न रहना। (३) धीरज धरना, उतावला न होना।

थर—संज्ञा स्त्री. [सं. स्तर] तह, परत।

संज्ञा पु. [सं. स्थल] (१) थल, जगह, ठिकाना। उ.—एहि थर वनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्तुति गाई—१-६। (२) बाघ की माँद।

थरकना—क्रि. अ. [अनु. थरथर+करना] कांपना।

थरकाना—क्रि. स. [हिं. थरकना] डर से कँपाना।

थरथर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] डर से कांपने की मुद्रा। उ.—मडपपुर देखे उर थरथर करै—१०३-१४।

क्रि. वि.—डर से कांपते हुए।

थरथरात—क्रि. अ. [हिं. थरथराना] कांपती है, थरथराती है। उ.—सँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात—१० ३४१।

थरथराना—क्रि. अ. [अनु. थरथर] (१) डर के कारण कांपना, थर्राना। (२) कांपना।

थरथराने—क्रि. अ. [हिं. थरथराना] डर से कांपने लगे। उ.—सैल से मल्ल वै धाइ आये सरन कोउ भूले लागे तव गोड़ पर थरथराने—२५९५।

थरथराय—क्रि. अ. [हिं. थरथराना] कांपकर। उ.—तव मैं थरथराय रिस काँप्यौ—१०६३।

थरथराहट, थरथरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थरथराना] कँपकँपी या कंपनी जो डर के कारण हो।

थरना—क्रि. स. [हिं. थुरना] चोट या आघात करना।

थरसना—क्रि. अ. [हिं. त्रसना] (१) पीड़ित होना, कष्ट भोगना। (२) वहुत डर जाना।

थरसि—क्रि. अ. [हिं. थरसना] वहुत भयभीत होकर। उ.—हौ डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहि धीर धराऊ। थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ—४८१।

थरिया - संज्ञा स्त्री [हिं थाली] थाली ।
थरी—संज्ञा स्त्री. [स स्थली] (१) मांद । (२) गुफा ।
थरु—संज्ञा पुं [सं. स्थल] जगह, स्थल ।
थर्राना—क्रि. अ. [अनु. थर थर] (१) डर से कांपना । (२) दहलना, भयभीत हो जाना ।
थल—संज्ञा पुं [सं स्थल] (१) स्थान, ठिकाना । (२) सूखी धरती । (३) थल का मार्ग । (४) रेगिस्तान । (५) बाघ की मांद ।
थलकना—क्रि अ [सं स्थूल] (१) झोल से हिलना-डोलना । (२) मोटापे से मांस का डिलना-डोलना ।
थलचर—संज्ञा पुं [सं. स्थलचर] पृथ्वी के जीव-जन्तु ।
थलचारी—वि. [स स्थलचारी] भूमि पर चलनेवाले ।
थलज—संज्ञा पुं [हिं. थल] (१) स्थल में उत्पन्न होनेवाला पेड़-पौधा आदि । (२) गुलाब ।
थलथल—वि [स. स्थूल] मोटापे या झोल के कारण हिलता-डोलता हुआ ।
थलथलाना—क्रि. अ [हि थलथल या थलकना] मोटापे के कारण शरीर के मांस का हिलना-डोलना ।
थलपति—सज्ञा पुं. [स. स्थल +पति] राजा ।
थलरुह—वि. [सं. स्थलरुह] पृथ्वी पर के पेड़-पौधे ।
थलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थली] थाली ।
थली—सज्ञा स्त्री. [सं स्थली] (१) स्थान, जगह । (२) जल के नीचे का तल । (३) बैठने का स्थान । (४) परती जमीन । (५) टीला ।
थवई—सज्ञा पुं [स. स्थपति, प्रा थवइ] मकान बनानेवाला, कारीगर, राज, मेमार ।
थसर—वि. [स शिथिल] शिथिल ।
थसरना—क्रि अ. [सं शिथिल] शिथिल होना ।
थहना—क्रि स. [हि थाह] थाह लगाना ।
थहरना—क्रि अ [अनु थरथर] कांपना, थर्राना ।
थहरात—क्रि स. [हि थहरान] थर्रा या कांप जाता है । उ —गगन मेघ घेहरात थहरात गात—६६० ।
थहराना—क्रि स. [हि ठहराना] (१) दुर्बलता से कांपना । (२) भय या डर से कांपना ।
थहाइ—क्रि स. [हिं. थहाना] गहराई का पता लगाकर, थाह लेकर । उ.—सूर कहै ऐसो को त्रिभुवन आवै सिंधु थहाइ—पृ. ३२८ ।
थहाना—क्रि. स. [हि. थाह] (१) थाह लेना, गहराई का पता लगाना । (२) किसी की योग्यता, कुशलता, विद्वता, बुद्धि आदि का पता लगाना ।
थहारना—क्रि. स [हि. ठहराना] जल में ठहराना ।
थाँग—संज्ञा स्त्री [सं. स्थान या हि. थान] (१) लुकने-छिपने का गुप्त स्थान । (२) खोयी हुई चीज की खोज, सुराग । (३) गुप्त भेद या पता ।
थाँगी—संज्ञा पुं [हिं थाँग] (१) चोरी का माल लेने या रखनेवाला । (२) चोरो का भेद जाननेवाला । (३) गुप्तचर, जासूस । (४) चोरों का नायक ।
थाँभ—संज्ञा पुं [सं स्तंभ] खंभा, थूनी, चांड़, टेक ।
थाँभना—क्रि. स. [हि. थामना] रोकना, लेना, थामना ।
थाँवला—संज्ञा पुं [हि. थाला] पौधे का थाला ।
था—क्रि अ. [सं. स्था] 'है' का भूतकाल, रहा ।
थाई—वि. [सं. स्थायिन्, स्थायी] स्थिर रहनेवाला ।
संज्ञा पुं.—(१) बैठक, अथाई । (२) गीत का स्थायी या ध्रुव पद जो गाने में बार-बार कहा जाता है ।
थाक—संज्ञा पुं. [सं. स्था] (१) सीमा । (२) ढेर ।
संज्ञा स्त्री [हि. थकना] थकने का भाव ।
थाकना—क्रि अ. [हि. थकना] थक जाना, शिथिल होना ।
थाकी—क्रि. अ. भूत. [हि. थकना] (१) थक गयी, शिथिल हो गयी । उ.—स्रवन न सुनत, चरन-गति थाकी, नैन भए जलधारी—१-११८ । (२) हार गयी, ऊब गयी, परेशान हो गयी । उ.—(क) बार-बार हा-हा करि थाकी मैं तट लिए हँकारी—११४१ । (ख) बुधि बल छल उपाइ करि थाकी नेक नहीं मटके—१८५२ ।
थाकु—संज्ञा पु. [हिं. थाक] ढेर, राशि, समूह, थोक ।
थाके—क्रि. अ भूत [हि थकना] (१) थक गये । उ —आँखिनि अंध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत—१-२६६ । (२) थिर या अचल हो गये । उ.—मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी । ''। चर थाके, अचल टरे—६२३ । (३) हार गये, सफल न हुए । उ.—सूर गारुड़ी गुन करि थके, मंत्र न लागत थर तैं—७४४ । (४) मंत्र-मुग्ध-से रह गये ।

उ.—धरनि जीव जल-थल के मोहे नभ-मंडल सुर थाके—१७५५।

थाकै—क्रि अ. [हि. थकना] थक जाय, थलात या श्रात हो जाय। उ.—अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरंजीवि सो मरई—६-७८।

थाकौ—क्रि. अ. [हि. थकना] थक गया। उ.—हा करुनामय कुंजर टेर्यौ, रह्यौ नहीं बल, थाकौ—१-११३।

थाक्यौ—क्रि. अ. भूत [हि थकना] (१) थक गया। उ—थाके हस्त, चरनगति थाकी, अरु थाक्यौ पुरुषारथ—१-२८७। (२) स्थिर या अचल हो गया। उ—रथ थाक्यो मानो मृग मोहे नाहिन कहूँ चंद को टरिबो—२८६०। (३) मुग्ध हो गये। उ—सुंदर बदन री सुख सदन स्याम को निरखि नैन मन थाक्यौ—२५४६।

थाट—संज्ञा पुं. [हि. ठाट] (१) ढाँचा, पंजर। (२) रचना, बनावट, शृंगार। (३) तड़क-भड़क।

थात—वि. [सं० स्थातृ, स्थाता] जो टिका या स्थित हो, ठहरा या बैठा हुआ। उ.—द्वै पिक बिंब बतीस वज्रकन एक जलज पर थात—१६८२।

थाति—संज्ञा स्त्री [हिं० थात] स्थिरता, ठहराव।

थाति, थाती—संज्ञा स्त्री. [हिं० थात=स्थित] (१) संचित धन, पूँजी, गथ। उ—पलित केस, कफ कंठ बिरुध्यौ, कल न परति दिन-राती। माया-मोह न छाँड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख-थाती—१-११८। (२) दूसरे के पास रखी गयी ऐसी वस्तु या सपत्ति जो माँगने पर मिल जाय, धरोहर। उ.—थाती प्रान तुम्हारी मोपै, जनमत हीं जौ दीन्ही। सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौं, देह जमानति कीन्ही—१-१६६। (३) कुसमय के लिए संचित वस्तु।

थान—संज्ञा पु० [सं० स्थान] (१) स्थान, ठौर-ठिकाना। उ०—(क) उहीँई प्रेम भक्ति को थान—२८०६। (२) रहने या ठहरने का स्थान, डेरा, निवासस्थान। उ—(क) कहियौ बच्छ सँदेसौ इतनौ जब हम वै इक थान। सोवत काग छुयौ तन मेरौ, बरहहिं कीनौ बान—६-८३। (ख) बिपुल बिभूति लई चतुरानन एक कमल करि थान—२१४०। (३) किसी देवी-देवता के रहने का स्थान (४) चौपायों के बाँधने का स्थान।

मुहा—थान का टर्रा—वह जो अपने घर या स्थान में ही बढ़-बढ़ कर बोले, बाहर कुछ न कर सके। थान में आना—(१) चौपाये का धूल में लोटकर प्रसन्न होना। (२) खुशी में आकर कुलाँचें मारना।

थानक—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] (१) स्थान, ठौर। (२) नगर (३) थाला, थाँवला। (४) फेन, झाग।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हिं० थान] (१) टिकने-बैठने का ठौर। (२) पुलिस की चौकी। (३) बाँस का समूह या उसकी कोठी।

थानी—संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] (१) स्थान का स्वामी या अधिकारी। (२) दिशाओं का स्वामी या रक्षक, दिक्पाल।

वि.—पूर्ण, सपूर्ण, अशेष।

थानु-सुत—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु+सुत] गणेश जी।

थानेत संज्ञा पुं. [हिं थानैत] स्थान का स्वामी।

थानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० थाना+फा. दार] थाने का प्रधान अधिकारी।

थानेदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थानेदार] थानेदार का पद या उसका कार्य और दायित्व।

थानैत—संज्ञा पुं. [हिं थाना+ऐत (प्रत्य)] (१) स्थान का स्वामी। (२) स्थान-विशेष का देवता।

संज्ञा पुं [सं० स्थान] ग्राम-देवता।

थानौ—संज्ञा पु [सं० स्थान, हिं. थान] टिकने या रहने का स्थान, वासस्थान। उ.—रघुकुल राघव कृस्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ १-११।

थाप—संज्ञा स्त्री [सं० स्थापन] (१) तबले आदि पर दी गयी थपकी या ठोक (२) पूरे हाथ या पंजे का आघात, थप्पड़। उ.—नारि बाँधे बीर चहुँघा देखत ही वज्र सम थाप बल बंभ दीन्हो २५६०। (३) चिन्ह, छाप, थापा। (४) स्थिति, जमाव। (५) प्रतिष्ठा, धाक। (६) मान, कदर। (७) शपथ।

मुहा—किसी की थाप देना—कसम खाना।

थपा—क्रि० स० [हिं. थोपना] स्थापित करता है।

थापन—संज्ञा स्त्री. [हि थाप] प्रतिष्ठित या स्थापित करने की क्रिया। उ.—(क) नाना वाक्य धर्म थापन को तिमिर हरन भुव भारन—सारा. ३१८। (ख) कर्मबंध थापन को प्रगटे पृश्नि गर्भ अवतार—सारा. ३२१।

थापना—क्रि. स. [सं० स्थापन] (१) बैठाकर, जमाकर या स्थापित करके रखना। (२) किसी गीली चीज को हाथ से पीट-पाट कर कोई आकार देना।

संज्ञा स्त्री. [सं स्थापना] (१) रखने का कार्य। (२) मूर्ति आदि की स्थापना। (३) नवरात्र में घट-स्थापना।

थापर—संज्ञा पुं. [हि. थप्पड़] तमाचा, झाँपड़।

थापरा—संज्ञा पुं. [देश] छोटी नाव, डोंगी।

थापा—संज्ञा पुं [हिं थाप] (१) गीले हाथ से दिया हुआ रोली, चंदन आदि का छापा या चिह्न। (२) देवी-देवता की पूजा का चढ़ा, पुजौरा। (३) अनाज के ढेर पर डाला गया चिह्न। (४) छापे का साँचा, छापा। (५) ढेर, राशि।

थापि—क्रि. स. [हि. थापना] प्रतिष्ठित या स्थापित करके।

थापिया, थापी—संज्ञा स्त्री [हिं. थापना] चिपटा और चौड़ा काठ का टुकड़ा।

थापी—वि [हि. थापना] लिपा हुआ, सना हुआ, लिप्त। उ.—कामी, विवस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा थापी—१—१४०।

संज्ञा पुं.—प्रतिष्ठित या स्थापित करनेवाला।

थापे—क्रि. स [हि. थापना] प्रतिष्ठित किया। उ.—परसुराम ह्वै के द्विज थापे दूर कियो भुवि भार—सारा. १३६।

संज्ञा पुं बहु. [हि. थापा] रोली-चंदन आदि के हाथ से लगाये गये छापे या चिह्न। उ.—घर-घर थापे दीजिए घर-घर मंगलचार—६३३।

थापै—क्रि. स. [हि. थापना] स्थापित करता है, जमाता है। उ.—ग्वालनि देखि मनहिं रिस काँपै। पुनि मन में भय अंकुर थापै—५८५।

थापैगे—क्रि. स. [हि. थापना] प्रतिष्ठित या स्थापित करेंगे। उ.—पुनि बलिराजहिं स्वर्गलोक में थापैंगे हरि राइ—सारा. ३४६।

थाप्यो, थाप्यौ—क्रि. स. [हि. थापना] प्रतिष्ठित या स्थापित किया। उ.—(क) जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी। थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी—१०-२४। (ख) जिहिं बल विप्र तिलक दै थाप्यौ, रच्छा करी आप विदमान—१०-१२७। (ग) इंद्रहिं मोहिं गोबर्धन थाप्यो उनकी पूजा कहा सरै—६५३। (घ) मारि म्लेच्छ धर्म फिरि थाप्यो—सारा. ३२०।

थाम—संज्ञा पुं. [सं०. स्तंभ, प्रा. थंभ] खंभ, स्तंभ।

संज्ञा स्त्री. [हि. थामना] थामने की क्रिया या ढंग।

थामना, थाम्हना—क्रि. स. [सं. स्तंभन, प्रा. थंभन = रोकना, हि. थामना] (१) चलती या गिरती हुई चीज को रोकना। (२) पकड़ना, ग्रहण करना। (३) सहारा या सहायता देना। (४) कार्य का भार लेना। (५) चौकसी या पहरे में रखना।

थायी—वि. [सं. स्थायी] सदा रहनेवाला।

थार, थारा—संज्ञा पुं. [सं. थाल] बड़ी थाली, थाल। उ.—कर कनक-थार तिय करहिं गान—६-१६६।

थारा—सर्व. [हि. तुम्हारा] तुम्हारा।

थारी—संज्ञा पु. [हि. थाली] थाली, बड़ी तश्तरी। उ.—उ.—माँगत कछु जूठन थारी—१०-१८३।

थारु, थारू, थाल, थाला—संज्ञा पुं. [हि थाली] बड़ी थाली, बड़ी तश्तरी।

थाला—संज्ञा पुं. [सं. स्थालक] (१) थाँवला, आल-वाल। (२) वृक्ष के चारो ओर बना चबूतरा।

थालिका—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थालिका] थाला, थाँवला।

संज्ञा स्त्री. [हि. थाली] थाली। उ.—झलमल दीप समीप सौंज भरि लेकर कंचन थालिका—८०६।

थाली—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थाली = बटलोई] काँसे-पीतल आदि धातुओं की बनी हुई बड़ी तश्तरी।

मुहा—थाली का बैंगन—वह व्यक्ति जो निश्चित सिद्धांत न रखता हो और थोड़े हानि-लाभ से विचलित होकर कभी एक पक्ष में हो जाय, कभी दूसरे। थाली बजाना—(१) साँप का विष उतारने के लिए थाली बजाकर मंत्र पढ़ना। (२) बच्चा होने पर थाली

बजाने की रीति करना जिससे उसको डर न लगे।

थाव—संज्ञा स्त्री [हिं. थाह] थाह, गहराई का अंत।

थावर, थावरु—वि. [सं. स्थावर] जो एक स्थान से दूसरे पर लाया न जा सके, अचल, जंगम का विपरीतार्थक। उ.—(क) थावर-जंगम, सुर-असुर, रचे सबै मैं आइ—२-३६। (ख) थावर-जंगम मैं मोहिं जानै। दयाशील, सबसौं हित मानै ३ १३।

थाह—संज्ञा स्त्री. [सं स्था, हिं. थाह] (१) जलाशयों का तल या थल भाग, गहराई का अंत। उ.—(क) ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारो। बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरु जन ओट अधारौ—१-२०६। (ख) बूड़त स्याम, थाह नहिं पावौं, दुस्साहस-दुख-सिंधु परी—१-२४६।

मुहा—थाह मिलना (लगना)—(१) गहरे पानी में थल का पता लगना। (२) किसी भेद का पता चलना। डूबते को थाह मिलना—संकट में पड़े हुए आश्रयहीन व्यक्ति को सहारा मिलना।

(२) कम गहरा पानी। (३) गहराई का पता।

मुहा—थाह लगाना—(१) गहराई का पता लगाना। (२) भेद का पता चलना। थाह लेना—(१) गहराई का पता लगाना। (२) भेद का पता चलाना।

(४) अंत, पार, सीमा। (५) परिमाण आदि का अनुमान। (६) भेद, रहस्य।

मुहा.—मन की थाह—गुप्त विचार का पता।

थाहना—क्रि. स. [हिं. थाह] (१) थाह या गहराई का पता लगाना। (२) पता लगाना, अनुमान करना।

थाहरा—वि. [हिं. थाह] छिछला, कम गहरा।

थाह्यौ—क्रि. स. [हिं. थाहना] थाह ली, गहराई का पता लगाया। उ.—सो बल कहा भयौ भगवान? जिहिं बल मीन-रूप जल थाह्यौ, लियौ निगम, हति असुर-परान—१०-१२७।

थिगली—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकली] चकती, पैबंद।

मुहा.—थिगली लगाना—जोड़ तोड़ भिड़ाना, युक्ति लड़ाना। बादल में थिगली लगाना—(१) बहुत कठिन काम करना। (२) असंभव बात कहना। रेशम में टाट की थिगली—बेमेल चीज।

थित—वि. [सं० स्थित] (१) ठहरा हुआ, स्थिर, स्थायी। (२) रखा हुआ, स्थापित।

थिति—संज्ञा स्त्री [सं. स्थिति] (१) ठहराव, स्थिरता। (२) ठहरने का स्थान (३) रहने-ठहरने का भाव। (४) बने रहने या रक्षित होने का भाव, रक्षा। उ.—तुमहीं करत त्रिगुन बिस्तार। उतपति, थिति, पुनि करत सँहार—७-२१ (५) अवस्था, दशा।

थिर—वि [सं स्थिर] (१) जो चलता हुआ या हिलता-डोलता न हो, ठहरा हुआ। (२) शांत, धीर, अचचल, अविचलित। (३) जो एक ही अवस्था में रहे, स्थायी, अविनाशी। उ.—(क) सूरदास कछु थिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ—१-३०२। (ख) जीवन जन्म अल्प सपनौ सौ, समुझि देखि मन माहीं। बादर-छाँह, धूम-धौराहर, जैसैं थिर न रहाहीं—१-३१६। (ग) मरन भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धारयौ—१-३३६। (घ) चेतन जीव सदा थिर मानौ—५-४। (च) नर-सेवा तैं जो सुख होइ; छनभंगुर थिर रहै न सोइ—७-२। (छ) असुर कौ राज थिर नाहिं देखौं—८-८।

थिरक—संज्ञा पुं. [हिं थिरकना] नाचते समय पैरों का हिलना-डोलना या उठना-गिरना।

थिरकना—क्रि अ [सं अस्थिर+करण] (१) नाचते समय पैरो को हिलाना-डुलाना या उठाना-गिराना। (२)मटक-मटक कर नाचना।

थिरकौंहाँ—वि. [हिं थिरकना] थिरकने या हिलनेवाला। वि० [हिं. स्थिर] ठहरा हुआ, स्थिर।

थिरजीह—संज्ञा पुं [सं स्थिर+जिह्वा] मछली।

थिरता, थिरताई—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थिरता] (१) ठहराव। (२) स्थायित्व। (३) शांति, अचलता।

थिरना—क्रि अ. [सं. स्थिर, हिं. थिर+ना (प्रत्य.)] (१) द्रवों का हिलना-डोलना बंद होना। (२) द्रवो के स्थिर होने पर उनमें घुली हुई चीज का तल में बैठना। (३) मैल बैठने पर जल, तेल आदि का स्वच्छ हो जाना।

थिरा—संज्ञा स्त्री. [सं स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना—क्रि. स. [हिं थिरना] (१) द्रवों का हिलना-डोलना बंद करना (२) द्रवों को स्थिर करके घुली हुई चीजो को तल में बैठालना।

थी—क्रि अ. [हिं. था] 'है' क्रिया का भूत. स्त्री रूप।

थीकरा—संज्ञ पुं. [स. स्थित + कर] रक्षा का भार।

थीता—संज्ञ पुं. [सं. स्थित, हिं. थित] (१) स्थिरता। (२) स्थायित्व। (३) अचंचल रहने का भाव।

थीथी—सज्ञा स्त्री [सं. स्थिति] (१) दृढ़ता, स्थिरता (२) दशा, अवस्था, स्थिति। (३) धीरज, धैर्य।

थीर, थीरा—वि. [स स्थिर, हिं थिर] स्थिर।

थुकवाना, थुकाना—क्रि. स. [हिं. थूकना का प्रे] (१) थूकने का कार्य दूसरे से कराना। (२) उगलवाना। (३) निंदा या तिरस्कार कराना।

थुकहाई—वि. स्त्री [हि थूक + हाई (प्रत्य.)] वह स्त्री जिसकी सब निंदा या बुराई करें।

थुकाई—संज्ञा. स्त्री. [हिं. थूकना] थूकने की क्रिया।

थुकायल, थुकेल, थुकैल, थुकैला—वि. [हिं.थूक+ आयल, एल, ऐल, ऐला] जिसकी सब निंदा करें।

थुक्का फजीहत—संज्ञा स्त्री. [हिं. थूक + अ. फजीहत] (१) निंदा और बुराई। (२) लड़ाई-झगड़ा।

थुड़ी—संज्ञा स्त्री. [अनु. थू थू = थूकने का शब्द] घृणा या धिक्कार-सूचक शब्द, लानत, फिटकार।

मुहा.—थुड़ी थुड़ी होना—निंदा या तिरस्कार होना।

थुथकार—सज्ञा स्त्री. [हिं थूक] थूकने की क्रिया, भाव या शब्द।

थुथकारना—क्रि अ. [हिं. थुथकार] घृणा दिखाना।

थुथना—संज्ञा पुं [हि थूथन] लंबा निकला हुआ मुँह।

थुथाना—क्रि. अ. [हिं. थूथन] नाराज होना।

थुनी, थुन्नी—संज्ञा स्त्री [स. स्थूण, हि. थूनी] थूनी, खंभा, चाँड़। उ.—अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी—१०-२४।

थुरना—क्रि स. [सं. थुर्वण = मारना] (१) मारना-पीटना। (२) कूटना-पीटना।

थुरहथ, थुरहथा—वि. [हिं. थोड़ा + हाथ] (१) छोटे-छोटे हाथोंवाला। (२) किफायत करनेवाला।

थुरहथी—वि. स्त्री. [हि थुरहथ] छोटे हाथवाली।

थुली—संज्ञा स्त्री [हि थूला] अनाज का दलिया।

थूँक, थूक—सज्ञा पुं [अनु. थू थू] गाढ़ा खखार।

मुहा.—थूक उछालना—बेकार बकना। थूक लगाकर रखना—कंजूसी से जोड़ जोड़कर रखना। थूक से (थूकों) सत्तू सानना - कंजूसी के मारे बहुत जरा सी चीज से बड़ा काम करने चलना।

थूँकना, थूकना—क्रि. अ. [हिं. थूक + ना (प्रत्य.)] मुँह से थूक निकाल कर फेंकना।

मुहा.—किसी (वस्तु या व्यक्ति) पर न थूकना—बहुत घृणा करना। थूकना और चाटना—(१) बात कहना और कहकर मुकर जाना। (२) वस्तु देकर फिर वापस कर लेना।

क्रि. स.—(१) मुँह की वस्तु उगलकर फेंकना। (२) निंदा या बुराई करना, धिक्कारना।

मुहा.—(क्रोध-आदि) थूकना (थूक देना)—गुस्सा दबा लेना या शांत करना।

थू—अव्य. [अनु.] (१) थूकने का शब्द। (२) घृणा या तिरस्कार सूचक शब्द, छिः।

मुहा.—थू थू करना—घृणा या तिरस्कार प्रकट करना। थू-थू होना—निंदा या तिरस्कार होना।

थूथन, थूथुन—संज्ञा पुं. [देश] नर पशुओ का लंबा मुँह।

थूथन फुलाना (सुजाना)—नाराज होना।

थूथनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थूथन] मादा पशुओं का लंबा मुँह।

मुहा.—थूथनी फैलाना—नाराज होना।

थूथरा—सज्ञा पुं [देश.] लंबा और भद्दा चेहरा।

थून, थूनि, थूनी—संज्ञा पुं स्त्री [स. स्थूण] खंभा।

थूरना—क्रि. स. [सं थुर्वण = मारना] (१) कुचलना। (२) मारना-पीटना। (३) ठूँस ठूँस कर भरना। (४) खूब डटकर खाना।

थूल, थूला—वि. [सं स्थूल] (१) मोटा, भारी-भरकम। उ.—देखौ भरत तरुन अति सुंदर। थूल सरीर रहित सब सुंदर—५-३। (२) मोटापे के कारण भद्दा, मोटा और थलथल।

थूली—वि. स्त्री. [हिं. थूला] मोटी-ताजी, भारी भरकम। संज्ञा स्त्री.—अनाज का मोटा दलिया।

थूवा—संज्ञा पुं [सं. स्तूप, प्रा. थूप, थूव] (१) टीला,

हूह। (२) मिट्टी का बड़ा लौंदा।

सज्ञा स्त्री [अनु. थू थू] घृणा का तिरस्कार सूचक शब्द।

थूहड़, थूहर—संज्ञा पुं [स स्थूण=थूनी] एक पेड़।

थूहा—संज्ञा पुं. [स स्तूर प्रा थूर, थूर] टीला।

थूही—संज्ञा स्त्री. [हिं थूहा] (१) मिट्टी की ढेरी। (२) मिट्टी के खंभे जिन पर गराड़ी की लकड़ी रखी जाती है।

थेथर—वि. [देश] थका-थकाया, सुस्त, परेशान।

थेइ-थेइ, थेई-थेई—संज्ञा स्त्री. [अनु०] (१) थिरक-थिरक कर नाचने की मुद्रा और ताल। उ.—(क) कालिनाग के फन पर निरतत, सकर्षन की वीर, लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गँभीर—५७५। (ख) छोड़ा-छोड़ी नृत्य करें रीझि रीझि अग भरें ताता थेई थेई उघटत हैं हरषि मन—१७८१। (२) नाच का बोल।

थेगली—संज्ञा स्त्री. [हि थिगली] पेबद, चकती।

थेथर—वि. [देश.] बहुत हारा-थका, परेशान।

थेथरई—संज्ञा स्त्री [हिं. थेथर] थकान, परेशानी।

थेवा संज्ञा पुं [देश.] (१) अँगूठी का घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है। (२) अँगूठी का नगीना। (३) धातु का पत्तर जिस पर मुहर खोदी जाती है।

थैला-संज्ञा पुं. [सं. स्थल=कपडे का घर] (१) कपड़े का बड़ा बटुआ। (२) रुपयों का थैला, तोड़ा।

थैली—संज्ञा स्त्री. [हिं. थैली] (१) छोटा थैला। (२) रुपयों से भरी हुई थैली, तोड़ा।

मुहा.—थैली खोलना—थैली से रुपया देना।

थोक—संज्ञा पुं. [सं. स्तोमक] (१) ढेर, राशि। (२) समूह, झुंड।

मुहा.—थोक करना—इकट्ठा या जमा करना। सकै थोक कई—इकट्ठा कर सके। उ.—द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्हा, गैयाँ दूरि गयीं।......। छाँड़ि खेल सब दूरि जात हैं बोलें जो सकै थोक कई। (३) इकट्ठा बेचने का माल।

थोड़ा.—वि. [सं. स्तोक, पा. थोअ+ड़ा (प्रत्य) कम, तनिक, जरा सा।

यौ-थोड़-बहुत—कुछ-कुछ किसी कदर।

मुहा.—थोड़ा थोड़ा होना—लज्जित होना। जो करे सो थोड़ा-बहुत-कुछ करना चाहिए।

क्रि वि.—कम मात्रा में, जरा, तनिक, टुक।

थोड़े वि. बहु. [हिं. थोड़ा] कुछ, कम सख्या में।

क्रि. वि.—थोड़े परिमाण या मात्रा में।

मुहा.—थोड़े ही—नहीं, बिलकुल नहीं।

थोथ—सज्ञा स्त्री. [हिं. थोथा] निस्सारता खोखलापन।

थोथरा—वि. [हिं. थोथा] (१) खोखला, खाली। (२) निस्सार, तत्वरहित। (३) बेकार।

थोथा—वि [देश.] (१) खाली, खोखला, पोला। (२) जिसकी धार तेज न हो, गुठला। (३) बिना दुम या पूंछ का। (४) भद्दा, बेढगा। (५) निकम्मा, बेकार।

थोपड़ी, थोपी—सज्ञा स्त्री. [हि थोपना] चपत, धौल।

थोपना—क्रि स. [स स्थापन, हि. थापन] (१) किसी गीली चीज को मोटी तह ऊपर जमाना, छोपना। (२) तवे पर गीला आटा फैलाना। (३) मोटा लेप चढ़ाना। (४) किसी के मत्थे मढ़ना या लगाना।

थोबड़ा-सज्ञा पु. [देश.] पशुओं का थूथन।

थोर—वि. [हिं थोड़ा] (१) थोड़ा, कम। उ—धनुष-बान सिधान, कैधौं गरुड़ वाहन खोर। चक्र काहु चलायो, कैधौं भुजनि-बल भयौ थोर—१-२५३।

मुहा. —जो कीजे सो थोर—इनके लिए जो कुछ किया जाय वह कम होगा। उ.—हरि का दोष कहा करि दीजै जो कीजे सो इनको थोर —पृ. ३३५ (४०)।

(२) छोटा, छोटा-सा। उ—बार-बार डरात तोकौ बरन बदनहि थोर—३६४।

सज्ञा पुं. [देश.] (१) केले की पेड़ी का बिचला भाग। (२) थूहर का पेड़।

थोरनो—वि [हिं. थोड़ा] कम, थोड़ा। उ.—जैसी ही हरी हरी भूमि हुलसावनी मोर मराल सुख होत न थोरनो—२२८०।

थोरा-वि. [हिं. थोड़ा] कम, थोड़ा, अल्प।

थोरि—वि. स्त्री. [हि. पुं थोड़ा] छोटी-सी, साधारण।

उ.—अधन अधरनि दसन झाईं कहौं उपमा थोरि। नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि-१०-२२५।

थोरिक—वि. [हिं. थोड़ा + एक] तनिक सा, थोड़ा-सा।

थोरी—वि. स्त्री. [हिं. थोड़ा] (१) थोड़ी, कम। उ.—राज-पाट सिंहासन बैठो, नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी। .... । इतनी देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मति है थोरी—१-३०३।

मुहा.—जो कछु कहा सो थोरी—(१) ऐसा (अनुचित) कार्य किया है कि चाहे जितना बुरा भला या उचित अनुचित कहा जाय, कम है। (२) बहुत-कुछ कहा जा सकता है। उ.—सूरदास प्रभु अतुलित महिमा जो कछु कह्यो सो थोरी—१० उ-५२। (२) मामूली, साधारण सी, तुच्छ। उ—चोट न लेहु सबै चाहत है, यहै बात है थोरी—१०-२६७।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक हीन अनार्य जाति।

थोरे—वि. [हिं. थोड़ा] थोड़े, कम। उ—(क) थोरे जीवन भयो तन भारौ—१-१५२। (ख) की यहि गाउँ बसत की अनतहिं दिननि बहुत की थोरे—१-१६०।

थोरेक—वि. [हिं. थोड़ा+एक] थोड़ा ही, तनिक सा। उ.—थोरेक ही बल सौं छिन भीतर दीनौ ताहि गिराइ—४१०।

थोरैं—वि सवि. [हिं. थोड़ा] थोड़े (के ही लिए), जरा से (के लिए)। उ.—सुनहु महरि ऐसी न बूझिए, सुत बाँधति माखन दधि थोरैं—३५४।

थोरो, थोरौ—वि [हिं. थोड़ा] थोड़े, कम, अल्प। उ—औगुन और बहुत हैं मो मैं, कह्यो सूर मैं थोरौ—१-१८६।

थौंद—संज्ञा स्त्री. [हिं तोंद] तोंद।

थ्यावस—संज्ञा पुं [सं. स्थैर्य] (१) ठहराव, स्थिरता। (२) स्थायित्व। (३) धैर्य, धीरता।

द

द—देवनागरी वर्णमाला का अठारहवां और तवर्ग का तीसरा व्यंजन; इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है।

दंग—वि. [फा.] चकित, विस्मित।

संज्ञा पुं—भय, डर, घबराहट। उ.—जब रथ साजि चढ़ौं रन सनमुख जीय न आनौं दंग। (तंक) राघव सैन समेत सँहारौं करौं रुधिरमय अंग—(पंक) —९-१३४।

दंगई—वि. [हिं. दंगा] (१) दंगा या झगड़ा करनेवाला, उपद्रवी। (२) उग्र, प्रचंड। (३) लंबा-चौड़ा।

संज्ञा स्त्री.—दंगा करने का भाव, उपद्रव।

दंगल—संज्ञा पुं [फा.] (१) पहलवानो की कुश्ती। (२) कुश्ती लड़ने का अखाड़ा।

मुहा—दंगल में उतरना—कुश्ती लड़ने को तैयार होना।

(३) समूह, दल, जमाव। (४) मोटा गद्दा या तोशक।

दंगली—वि. [फा. दंगल] (१) दंगल-संबंधी (२) बहुत बड़ा।

दंगा—संज्ञा पुं [फा. दंगल] (१) झगड़ा-फसाद, उपद्रव। (२) शोर-गुल, गुल-गपाड़ा।

दंगैत, दँगैत—वि. [हिं. दंगा + ऐत (प्रत्य.)] उपद्रवी।

दंड—संज्ञा पुं [सं.] (१) डंडा, सोंटा, लाठी। उ.—(क) जानु-जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन-दंड—१-३०७। (ख) पिनाकहु के दंड लौं तन लहत बल सतराइ—३-३। (ग) बहुआ झोरी दंड अधारा इतनेन को आराधै—१२८४।

मुहा —दंड ग्रहण करना—संन्यास लेना।

(२) दंड के आकार की कोई चीज। उ.—देखत कपि बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटै—९-९७। (३) व्यायाम का एक प्रकार। (४) भूमि पर गिरकर किया हुआ प्रणाम, दंडवत्। (५) एक तरह का व्यूह। (६) अपराध की सजा। (७) अर्थदंड, जुरमाना, डाँड़।

मुहा —दंड पड़ना—घाटा या हानि होना। दंड भरना—(सहना)—(१) जुरमाना देना। (२) दूसरे का घाटा स्वयं पूरा करना। दंड भुगतना (भोगना)-

(१) सजा भुगतना। (२) जान-बूझकर कष्ट सहना। (८) दमन-शमन। (६) ध्वजा या झंडे का बाँस। (१०) तराजू की डंडी। (११) मथानी। (१२) एक योग का नाम। (१३) चार हाथ की नाप। (१४) इक्ष्वाकु राजा का एक पुत्र। (१५) यम। (१६) एक घड़ी या चौबिस मिनट का समय। उ.—एक दंड द्वादशी सुनायी –१००१।

दंडक—संज्ञा पुं [सं] (१) डंडा। (२) दंड देनेवाला। (३) २६ से अधिक वर्णों का छंद। (४) इक्ष्वाकु राजा का एक पुत्र जो शुक्राचार्य का शिष्य था और गुरु कन्या का कौमार्य भंग करने के कारण जो अपने राज्य-सहित भस्म होगया था। (५) दंडकवन।

दंडक वन—संज्ञा पुं [सं दंडक वन] दंडकारण्य जहाँ श्रीरामचंद्र ने बसकर शूर्पणखा का नासिकोच्छेदन किया था। विंध्य पर्वत से गोदावरी नदी तक फैले हुए इस प्रदेश में पहले इक्ष्वाकु राजा के एक पुत्र का राज्य था। गुरु- कन्या का कौमार्य भंग करने के अपराध में शुक्राचार्य के शाप से राज्य सहित वह भस्म हो गया था। तभी से वह प्रदेश दंडकारण्य कहलाने लगा। उ.—तहँ ते चल दंडकवन को सुख निधि साँवल गात—सारा २५४।

दंडकारण्य—संज्ञा पुं [सं] दंडकवन।

दंडकी—संज्ञा स्त्री. [सं] ढोलक।

दंडघ्न—संज्ञा पुं [सं] (१) डंडे से मारनेवाला। (२) दिया हुआ दंड न माननेवाला।

दंडढक्का—संज्ञा पुं [सं] नगाड़ा, धौंसा, दमामा।

दंडत—क्रि स [हिं दंडना] दंड देते-देते, दंड देकर, शासित करके। उ.—मुसल मुदगर हनत, त्रिविध करमनि गनत, मोहिं दंडत धरम-दूत हारे—१-१२०।

दंडदाता—संज्ञा पुं [सं. दंडदाता] दंडविधायक, सर्व शासक। उ.—यह सुनि दूत चले खिसियाइ। कह्यौ तिन धर्मराज सौं जाइ। अबलौं हम तुमहीं कौं जानत। तुमहीं कौं दंड-दाता मानत—६-४।

दंडधर, दंडधार—वि [सं] जो डंडा बाँधे हो। संज्ञा पुं—(१) यम। (२) शासक (३) साधु।

दंडन—संज्ञा पुं. [सं.] दंड देने की क्रिया, शासन।

दंडना—क्रि स [सं. दंडन] सजा देना, शासित करना।

दंडनायक—संज्ञा पुं [सं] (१) सेनापति। (२) दंड-विधायक (३) शासक (४) यमराज।

दंडनीति - संज्ञा स्त्री [सं.] बल-प्रयोग की शासन-विधि।

दंडनीय—वि. [सं] दंड पाने योग्य (व्यक्ति-कार्य)।

दंडपाणि—संज्ञा पुं [सं] (१) यमराज। (२) शिव जी के वर से काशी में स्थापित भैरव की एक मूर्ति।

दंडपाल, दंडपालक—संज्ञा पुं [सं.] द्वारपाल।

दंडपाशक - संज्ञा पुं [सं.] घातक, जल्लाद।

दंडप्रणाम - संज्ञा पुं [सं.] भूमि पर गिरकर सादर प्रणाम करने की मुद्रा।

दंडमान् वि. [हिं दंड + मान्] दंडनीय।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) साधुओं के दो चिन्ह—दंड और मुद्रा। (२) तंत्र की एक मुद्रा।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चढाई। (२) वरयात्रा।

दंडयामा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यम। (२) दिन।

दंडवत, दंडवत् –संज्ञा पुं स्त्री. [सं. दंडवत्] पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ साष्टांग प्रणाम। उ.—छेम-कुसल अरु दीनता. दंडवत सुनाई। कर जोरे विनती करी, दुर्बल-सुखदाई—१-२३८।

दंडवासी—संज्ञा पुं [सं. दंडवासिन्] द्वारपाल, दरबान।

दंडारन—संज्ञा पुं [सं दंडकारण्य] दंडकवन।

दंडायमान—वि [सं] डंडे की तरह सीधा खड़ा।

दंडालय संज्ञा पुं [सं] स्थान जहाँ दंड दिया जाय।

दंडाहत—संज्ञा पुं [सं.] छाछ-मट्ठा।

दंडित—वि. [सं.] जिसे दंड मिला हो।

दंडी—संज्ञा पुं [सं. दंडिन्] (१) डंडा बाँधनेवाला। (२) यमराज। (३) शासक। (४) द्वारपाल। (५) दंड-कमंडल-धारी साधु। उ.—हरि कौ भेद पाय कै अर्जुन धरि दंडी कौ रूप—सारा. ८०४। (६) सूर्य का एक अनुचर। (७) शिव। (८) संस्कृत का एक प्रसिद्ध कवि।

दंडौत—संज्ञा पुं स्त्री [सं. दंडवत्] साष्टांग प्रणाम, पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ नमस्कार, दंडवत्। उ.—तातैं तुमकौं करत दंडौत। अरु सब नरहूँ कौ परिनौत—५-४।

दंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दाँत। उ.—पटक्यो भूमि फेरि नहिं मटक्यो लीन्हे दंत उपारी—२५६४।

मुहा—दंत तृन धरि कै– दया की विनती करके, गिड़गिड़ाकर, सविनय क्षमा माँगकर। उ.—सुनु सिख कंत, दंत तृन धरि कै, यौ परिवार सिधारौ—९-११५। अँगुरीनि दंत दै रह्यौ—दाँतों में उँगली दबा ली, बहुत चकित हुआ। उ.- मैं तो जे हरे हैं, ते तो सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनें आन, अँगुरीनि दंत दै रह्यौ—४८४।

(२) ३२ की संख्या। (३) पहाड़ की चोटी।

दंतक—संज्ञा पुं [सं.] (१) दाँत। (२) पर्वत की चोटी।

दंतकथा संज्ञा स्त्री. [सं.] सुनी सुनायी बात, जनश्रुति।

दंतताल – संज्ञा पुं [सं] ताल देने का एक बाजा।

दंतदर्शन - संज्ञा पुं. [सं] क्रोध में दाँत निकालना।

दंतधावन—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत साफ करने की क्रिया।

दंतपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] कान का एक गहना।

दंतवक्र—संज्ञा पुं. [सं. दंतवक्र] करुष देश का एक राजा।

दंतमूल –संज्ञा पुं [सं] दाँत उगने का स्थान।

दंतमूलीय—वि [सं] दंतमूल से उच्चरित होनेवाले (वर्ण जैसे त, थ)।

दंतवक्र—संज्ञा पुं [सं.] करुष देश का राजा जो वृद्ध शर्मा का पुत्र था और शिशुपाल का भाई लगता था। इसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—सूर प्रभु रहे ता ठौर दिन और कछु मारि दंतवक्र पुर गमन कीन्हो—१० उ. ५६।

दंतशूल—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत की पीड़ा।

दंतार, दंताल—संज्ञा पुं [हिं दाँत + आर (प्रत्य.)] हाथी।

वि.—जिसके दाँत बड़े-बड़े हों, बड़दंता।

दंतालिका, दंताली—संज्ञा स्त्री. [सं.] लगाम।

दंतावल, दंताहल—संज्ञा पुं. [सं. दंतावल] हाथी।

दँतियाँ—संज्ञा स्त्री [हिं. दाँत + इयाँ (प्रत्य.)] बच्चों के छोटे-छोटे दाँत। उ —(क) किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहि अवगाहत—१०-११०। (ख) बोलत स्याम तोतरी बतियाँ, हँसि-हँसि दतियाँ दूमैं—१०-१४७। (ग) बिहँसत उघरि गईं दँतियाँ, लै सूर स्याम उर लायौ—१०-२८८।

दंती संज्ञा स्त्री. [सं] एक पेड़।

संज्ञा पुं [सं. दंत] हाथी।

दंतुर—वि. [सं.] बड़े दाँतवाला।

संज्ञा पुं.—(१) हाथी। (२) जंगली सुअर।

दँतुरियाँ—संज्ञा स्त्री. [हि. दाँत+इया (प्रत्य.)] बच्चों के छोटे-छोटे दाँत। उ.—दमकति दूध दँतुरियाँ रूरी—१०-११७।

दंतुल, दँतुला—वि. [सं दंतुल] बड़े दाँत वाला।

दँतुलि, दँतुलिया, दँतुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाँत] बच्चों के छोटे-छोटे दाँत। उ.—(क) कबहिं दँतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि—१०-७४। (ख) माता दुखित जानि हरि बिहँसे, नान्ही दँतुलि दिखाइ—१०-८१। (ग) प्रगटति हँसत दँतुलि, मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलै री—१०-१३७। (घ) तनक-तनक सी दूध-दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई—१०-८२। (च) दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर—१०-९३। (छ) सरबस मैं पहिलै ही वार्यौ, नान्हीं-नान्हीं दँतुली दू पर—१०-९२। (ज) दुहुँघाँ द्वै दँतुली भईं, मुख अति छबि पावत—१०-१२२।

दंतोष्ठय—वि. [सं.] दाँत और ओठ से उच्चरित होनेवाले (वर्ण जैसे 'व')।

दंत्य—वि [सं](१) दाँत से सबंध रखनेवाला। (२) दाँत के लिए गुणकारी। (३) (त, थ आदि वर्ण) जिसका उच्चरण दाँत से हो।

दंद—संज्ञा पुं. [सं द्वंद्व] (१) कष्ट, दुख, पीड़ा। उ.—बोलि लीन्हीं कदम कैं तर, इहाँ आवहु नारि। प्रगट भए तहँ सबनि कौं हरि, काम-दंद निवारि—७६५। (२) लड़ाई, झगड़ा। (३) हल्ला गुल्ला।

संज्ञा स्त्री. [सं. दहन] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी।

दंदन—वि. [सं. द्वंद्व] दमन करनेवाला।

दंदह्यमान—वि. [सं] दहकता हुआ।

दंदा—संज्ञा पुं [सं द्वंद्व] झगड़ा, कलह, बखेड़ा। उ.—संत-उबारन, असुर सँहारन, दूरि करन दुख-दंदा—१०—१६२।

संज्ञा पुं. [देश.] ताल देने का एक बाजा।
दंदाना—क्रि. अ [हिं दंद] गरम लगना, गरमाना।
संज्ञा पुं. [फ़ा.] दांत की तरह उभरी हुई चीजों की कतार जैसी कघी या आरी में होती है।
दंदानेदार—वि. [हिं ददाना] जिसमें ददाने हों।
दंदारू—संज्ञा पुं. [हिं दंद+आरू] छाला, फफोला।
दंदी—वि. [हि. दंद] उपद्रवी, झगडालू।
दंपति, दंपती—संज्ञा पुं [सं. दंपति] पति-पत्नी।
दंपा—संज्ञा स्त्री. [हिं. दमकना] चमकना।
दंभ—संज्ञा पुं [सं] (१) झूठा आडंबर, ऊपरी दिखावट, पाखंड। (२) ठसक, अभिमान।
दंभक—संज्ञा पुं [सं] पाखंडी, ढकोसलेबाज।
दंभान—संज्ञा पुं [स. दंभ] (१) पाखंड। (२) ठसक।
दंभी—वि. [स. दंभिन्] (१) पाखंडी। (२) घमंडी।
दंभोलि—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र का अस्त्र, वज्र। उ.—मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछनी लाल गजमाल सोहै—२६०७।
दँवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. दमन, हिं. दौंवना] सूखे डंठलो से अनाज अलग करने को बैलो से रौंदवाने की क्रिया।
दँवारि—संज्ञा स्त्री [हि. दव+आगि] दावानल।
दंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दांत से काटने का घाव। (२) दांत से काटने की क्रिया। (३) सांप जैसे विषैले जंतु के काटने का घाव। (४) व्यंग्य, कटूक्ति। (५) वैर, द्वेष। (६) दांत। (७) विषैले जंतु का डंक। (८) मक्खी जिसके डंक विषैले हों। (९) एक असुर। (१०) कवच।
दंशक—संज्ञा पुं [सं.] (१) दांत से काटनेवाला। (२) डंक मारनेवाला जतु।
दंशन—संज्ञा पुं [सं.] (१) दांत से काटने, डंक मारने या डसने का कार्य। (२) कवच।
दंशना—क्रि स. [सं. दंशन] (१) दांत से काटना। (२) डक मारना (३) डसना।
दंशित—वि. [सं.] (१) दांत से काटा हुआ। (२) डसा हुआ। (३) कवच पहने हुआ।
दंशी—वि [स. दंशिन्] (१) दांत से काटने, डंक मारने या डसनेवाला। (२) कटूक्तियां या व्यंग्य वचन कहनेवाला। (३) वैर या द्वेष रखनेवाला।
दंस—संज्ञा पुं. [सं. दंश] दांत से काटने का घाव।
द—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहाड़, पर्वत। (२) दांत। (३) देनेवाला, दाता।
संज्ञा स्त्री—(१) पत्नी। (२) रक्षा। (३) खंडन।
दइ, दइउ—संज्ञा पुं. [सं. दैव] भाग्य, विधाता।
दइजा—संज्ञा पुं [हि. दायजा] दहेज।
दइमारा, दइमारो—वि. [हिं. दई+मारना] अभागा, भाग्यहीन। उ.—दूध दही नहिं लेव री, कहि कहि पचि हारी। कहति, सूर कोऊ घर नाहीं, कहँ गई दइमारी।
दई—क्रि स [हिं देना] (१) देना क्रिया के भूतकालिक रूप 'दिया' के स्त्रीलिंग 'दी' का व्रजभाषा-प्रयोग; दी। उ.—(क) बहुत सासना दई प्रहलादहिं, ताहिं निसंक कियौ—१-३८। (ख) दई न जाति खेवट उतराई चाहत चढ़्यौ जहाज—१-१०८। (२) ब्याह दी। उ.—(क) तनया तीनि सुनौ अब सोई। दच्छ प्रजापति कौं इक दई—३-१२। (ख) महादेव कौं सो तिन दई—४-४। (ग) जब तैं कन्या रिषि कौं दई—६-३।
संज्ञा पुं [सं. दैव] (१) ईश्वर, विधाता। उ—(क) अबधौं कैसी करिहै दई—१-२६१। (ख) अविगत-गति कछु समुझि परत नहिं जो कछु करत दई—१-२६६।
मुहा—दई का घाला (मारा, मार्‌यौ)-अभागा। अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्‌यौ—१-१०१। दई की घाली (मारी)-अभागी। उ— जननि कहति दई की घाली, काहे कौ इतराति। दई दई-(१) हे दैव, रक्षा के लिए ईश्वर को पुकारना। (२) अति विपत्ति में अपने दुर्भाग्य को कोसना।
(२) भाग्य, प्रारब्ध, दैव, संयोग।
दईमार, दईमारा, दईमारो—वि. [हिं दई+मारना] (१) जिस पर दैवी कोप हो। (२) अभागा, कंबख्त।
दउरना—क्रि. अ. [हि दौड़ना] भागना, दौड़ना।
दए—क्रि स. [हिं. देना] 'देना' क्रिया के भूतकालिक

रूप 'दिया' के बहुवचन' 'दिये' का ग्राम्य प्रयोग।
उ.—प्रगट खंभ तें दए दिखाई जद्यपि कुल कौ दानौं—१-११।

दक—संज्ञा पुं. [सं] जल, पानी।

दकन संज्ञा पुं. [स. दक्षिण] दक्षिण भारत।

दक्खिन- संज्ञा पुं [सं. दक्षिण] (१) उत्तर दिशा के सामने की दिशा, दक्षिण दिशा। (२) दक्षिण का प्रदेश। (३) भारत का दक्षिणी प्रदेश।
क्रि वि —दक्षिण दिशा में, दक्षिण की ओर।

दक्खिनी वि [हि दक्खिन] दक्षिण से संबंधित।
संज्ञा पुं.—दक्षिणी प्रदेश का निवासी।
संज्ञा स्त्री —दक्षिणी भू-भाग की भाषा।

दक्ष— वि. [स] (१) कुशल, चतुर (२) दाहना।
संज्ञा पुं.—(१) एक प्रजापति जो देवताओं के आदि पुरुष माने जाते हैं। (२) अत्रि ऋषि (३) शिव का बैल। (४) विष्णु। (५) बल, वीर्य।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं] सती जो शिव को ब्याही थी और पिता के यज्ञ में बिना बुलाये जाकर अपमानित होने पर भस्म हो गयी थी।

दक्षता—संज्ञा स्त्री [सं] कुशलता, निपुणता।

दक्षा—संज्ञा स्त्री [स] पृथ्वी, वसुधा।
वि. स्त्री.—कुशला, चतुरा, निपुणा।

दक्षिण, दक्षिन—वि [स दक्षिण] (१) दाहना, बायें का उलटा। (२) उत्तर दिशा के विपरीत। (३) अनुकूल। (४) कुशल, चतुर।
संज्ञा पुं —(१) उत्तर दिशा के सामने की दिशा। (२) वह नायक जो सब प्रेमिकाओं से समान प्रेम करे। (३) विष्णु। (४) एक प्रकार का आचार।

दक्षिणा, दक्षिना—संज्ञा स्त्री [स दक्षिणा] (१) दक्षिण दिशा। (२) यज्ञादि धर्म-कर्म या विद्या प्राप्ति के बाद पुरस्कार या भेंट रूप में दिया जानेवाला धन या दान। उ.—(क) गुरु दक्षिणा देन जब लागे गुरु पत्नी यह माँग्यौ-सारा ५३६। (ख) गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ दक्षिणा कहौ सो देउँ मँगाई—३००८। (३) वह नायिका जो नायक को अन्य स्त्रियों से प्रेम करते देखकर भी अपनी प्रीति पूर्ववत् बनाये रहे।

दक्षिणाचल—संज्ञा पुं [सं.] मलय पर्वत।

दक्षिणाचार - संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्ध आचरण। (२) वैदिक मार्ग से मिलता-जुलता एक आचार-मार्ग।

दक्षिणाचारी—वि. [सं.] सदाचारी, धर्मशील।

दक्षिणापथ संज्ञा पु. [सं.] विंध्य प्रदेश से दक्षिण वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत को मार्ग मिलता है।

दक्षिणायन – वि. [सं] भूमध्य रेखा के दक्षिण।
संज्ञा पुं.—(१)कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर सूर्य की गति। (२) छः महीने का वह समय (२१ जून से २२ दिसंबर तक) जब सूर्य कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर बढ़ता है।

दक्षिणावर्त—वि. [सं] दाहिनी ओर घूमा हुआ।

दक्षिणावह—संज्ञा स्त्री. [सं] दक्षिण से आनेवाली हवा।

दक्षिणी, दाहिनी—वि. [सं दक्षिण + हिं. ई (प्रत्य.)] दक्षिण प्रदेश का।
संज्ञा पुं —दक्षिण प्रदेश का निवासी।
संज्ञा स्त्री.—दाक्षिण प्रदेश की भाषा।

दक्षिणीय—वि. [सं.] (१) दक्षिण दिशा से संबंधित। (२) जो दक्षिणा का पात्र हो।

दखन, दखिन—संज्ञा पु. [सं दक्षिण] दक्षिण दिशा।

दखल—संज्ञा पुं [अ दख़ल] (१) अधिकार, कब्जा। (२) किसी काम में हाथ डालना, हस्तक्षेप। (३) पहुँच। प्रवेश।

दखिन—संज्ञा पुं. [सं. दक्षिण] दक्षिण।

दखिनहरा—संज्ञा पु. [हिं. दक्खिन+हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा।

दखिनहा—वि. [हि दक्खिन+हा (प्रत्य.)] दक्षिण का, दक्षिण दिशा से संबंध रखनेवाला।

दखील—वि. [अ. दख़ील] जिसका कब्जा हो।

दगड़, दगड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] बड़ा ढोल।

दगड़ना—क्रि. अ [देश.] किसी की सच्ची बात का भी अविश्वास करना।

दगदगा—संज्ञा पुं. [अ. दग़दग़ा] (१) डर, भय। (२) संदेह, शक। (३) एक तरह की कंडील।

दगदगाना—क्रि. अ. [हि. दगना] चमकना-दमकना।

क्रि. स.— चमक पैदा करना, चमकाना ।

दगदगाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. दगदगाना] चमक-दमक ।

दगध—वि. [स. दग्ध] जला-जलाया ।

दगधना—क्रि. अ. [सं. दग्ध+ना] जलना ।

क्रि. स.—(१) जलाना । (२) दुख देना ।

दगना—क्रि अ. [स. दग्ध+ना (प्रत्य)] (१) बंदूक आदि का छूटना (२) बंदूक आदि का दागा जाना । (३) जल जाना, जलना ।

क्रि स [हि. दागना] बंदूक आदि छोड़ना ।

दगर, दगरा, दगरो—संज्ञा पुं [हिं. डगर] (१) देर, विलंब । उ —अचल ऐंचि ऐंचि राखत हो जान अब देहु होत है दगरौ—१०३१ । (२) डगर, रास्ता ।

दगरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] दही जिस पर मलाई न हो ।

दगलफसल- संज्ञा पुं. [अ. दगल+अनु. फसल या हिं. फँसना] छल-कपट, जाल-फरेब ।

दगल, दगला—संज्ञा पुं. [देश.] रुईदार अँगरखा ।

दगवाना—क्रि. स. [हिं. दागना का प्रे०] दागने का काम करने को दूसरे को प्रेरणा देना ।

दगहा—वि. [हि दाग+हा (प्रत्य)] (१) दाग वाला । (२) जिसके सफद दाग हो ।

वि. [हि दागना हा] जिसने किसी के शव का दाह-कर्म किया हो ।

वि. [हिं दगना+हा] जो दग्ध किया गया हो ।

दगा, दगाई—संज्ञा स्त्री. [अ. दगा, हिं. दगा] धोखा, छल-कपट । उ —(क) सोवत कहा, चेत रे रावन, अब क्यों खात दगा—६-११४ । (ख) दै दै दगा, बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटति उरज-कठोरी—१०-३०५ । (ग) सूरदास याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दई—२५३७ । (घ) सुफलक-सुत लै गए दगा दै प्रानन ही के प्रीते—२८६३ । (च) आई उघरि कनक कलई सी दै निज गए दगाई—२७१८ ।

दगादार—वि. [हि. दगा+फा. दार] छली-कपटी ।

दगाबाज—वि. [फा. दगाबाज] छली, कपटी, धोखा देने वाला । उ —दगाबाज कुतवाल काम रिपु, सरबस लूटि लयौ—१-६४ ।

सज्ञा पुं.—छली मनुष्य, धोखा देनेवाला मनुष्य ।

दगाबाजी—सज्ञा स्त्री. [हिं दगाबाज] छल-कपट ।

दगैल—वि. [हिं दाग+ऐल(प्रत्य.)] (१) दागी, जो दागी हो । (२) जिसके दाग हो, दागदार । (३) जिसमें दोष हो ।

संज्ञा पुं. [हि ठगा] छली कपटी, दगाबाज ।

दग्ध—वि. स (१) जला या जलाया हुआ ।(२) दुखित, पीड़ित, सतप्त । उ.—साप दग्ध हैं सुत कुबेर के आनि भए तरु जुगल सुहाये—१८६ ।

दग्धा—सज्ञा स्त्री. [सं] सूर्यास्त की दिशा ।

दग्धाक्षर—संज्ञा पुं [स] झ, भ, र, ष और ह जिनसे छंद का आरंभ नहीं होना चाहिए ।

दग्धित—वि. [स दग्ध] (१) जला या जलाया हुआ । (२) जिसे कष्ट या दुख पहुँचा हो, पीड़ित ।

दचक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) धक्के से लगी हुई चोट । (२) धक्का, ठोकर । (३) दबाव ।

दचकना—क्रि अ. [अनु.] (१) ठोकर लगना । (२) दब जाना । (३) झटका खाना ।

क्रि. स.—(१) धक्का देना (२) दबना ।

दचना—क्रि अ [अनु.] गिरना-पड़ना ।

दच्छ—सज्ञा पुं. [स. दक्ष] एक प्रजापति जिनसे देवता उत्पन्न हुए थे ।

दच्छकुमारी—सज्ञा स्त्री. [सं. दक्ष+कुमारी] सती जो शिव जी को ब्याही थी ।

दच्छना—संज्ञा स्त्री. [सं दक्षिणा] भेंट, दान ।

दच्छसुता—संज्ञा स्त्री. [स. दक्ष+सुता] सती जो शिव जी को ब्याही थी ।

दच्छिन—वि. [स. दक्षिण] दाहना, दायाँ । उ.—(क) लेहु मातु, साहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ । सावधान ह्वै सोक निवारहु ओड़हु दच्छिन हाथ—६-८३ । (ख) बाम भुजहिं सखा अँस दीन्हे दच्छिन कर द्रुम-दरियाँ—४७० ।

संज्ञा पुं.—(१) दक्षिण दिशा । उ.—दच्छिन राज करन सो पठाये—६-२ ।

दच्छिनाइनि—सज्ञा पुं [सं. दक्षिणायन] छह महीने

का वह समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है।

दच्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं दचना (अनु.)] गिरा, गिर पड़ा। उ.—खेलत रह्यो घोष कैं बाहर, कोउ आयौ सिसु-रूप रच्यौ री। गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिं, आनि धरनि पर आप दच्यौ री— ६०६।

दछ—संज्ञा पुं [सं. दक्ष] एक प्रजापति जिनसे देवताओं की उत्पत्ति हुई थी। सती इन्हीं की पुत्री थीं। इनको शिवजी के गणो ने मारा था। उ.—दछ सिर काटि कुंड मैं डारि—४-५।

दछिन—वि. [सं. दक्षिण] दाहना, दायाँ। उ.—बहुरि जब रिषिनि भुज दछिन कीन्ही मथन, लच्छमी सहित पृथु दरस दीन्हौ—४-११।

दज्जाल—संज्ञा पुं. [अ. दज्जाल] झूठा, अन्यायी।

दड़ोकना—क्रि. अ. [अनु] गरजना, दहाड़ना।

दढ़ना—क्रि. अ. [सं. दहन] जलना, जल जाना।

दढ़ियल—वि. [हिं. दाढ़ी + इयल] जिसके दाढ़ी हो।

दढ़ी—क्रि. अ. [हिं. दढ़ना] जली, जल गयी। उ.—(क) भई देह जो खेह करम-बस, जनु तट गंगा अनल दढ़ी। सूरदास प्रभु दृष्टि सुधानिधि मानौ फेरि बनाइ गढ़ी—९-१७०। (ख) तन मन धन यौवन सुख संपति बिरहा-अनल दढ़ी—२७९४।

दणियर—संज्ञा पुं. [स दिनमणि] सूर्य।

दतना—क्रि. अ. [देश.] मग्न या लीन होना।

दतवन, दतवनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाँत + अवन (प्रत्य.)] दतुन, दातौन, दतौन। उ.—दतवनि लै दुहुँ करौ मुखारी, नैननि कौ आलस जु बिसारौ—४०७।

दतारा—वि. [हिं. दाँत+आरा] जिसमें दाँत हो।

दतिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाँत का अल्प.] छोटा दाँत।

दति—सुत-संज्ञा पुं. [स. दिति + सुत] राक्षस, असुर।

दतुअन, दतुवन, दतुवनि, दतौन, दतौनी—संज्ञा स्त्री [हिं. दाँत + अवन (प्रत्य.)] दतौन, दतुन, दातुन। उ.—(क) प्रातहिं तैं मैं दियौ जगाइ। दतुवनि करि जु गए दोउ भाइ—५४७। (ख) माता दुहुँनि दतौनी कर दैं, जलझारी भरि ल्याइ—६०६।

दत्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दत्तात्रेय। उ.—(क) ताकैं भयौ दत्त अवतार—४-२। (ख) भृगु कै दुर्बासा तुम होहु। कपिल कै दत्त, कह्यौ तुम मोहु—५-४। (२) दान। (३) दत्तक।

वि—दिया हुआ, भेंट किया हुआ।

दत्तक—संज्ञा पुं. [स.] गोद लिया हुआ लड़का।

दत्तचित्त—वि [स.] जिसने खूब ध्यान दिया हो।

दत्ता, दत्तात्रेय—संज्ञा पुं [स दत्तात्रेय] एक प्रसिद्ध ऋषि जो विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। इन्होने चौबीस पदार्थों को गुरु माना था।

दत्तात्मा—संज्ञा पुं [सं. दत्तात्मन्] त्यक्त-अनाथ पुत्र।

दत्ती—संज्ञा स्त्री. [सं.] सगाई पक्की होना।

दत्तेय—संज्ञा पुं [सं] इंद्र, देवराज।

दत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धन। (२) सोना, स्वर्ण।

ददन—संज्ञा पुं [स] दान देने की क्रिया।

ददरा—संज्ञा पुं [देश.] छानने का कपड़ा, छन्ना।

ददा—संज्ञा पुं. [हिं. दादा] बड़ा भाई। उ.—देखत यह बिनोद धरनीधर, मात पिता बलभद्र ददा रे—१०-१६०।

ददिऔर, ददिऔरा, ददियाल, ददिहाल—संज्ञा पुं [हिं. दादा+आलय] (१) दादा का कुल। (२) दादा का घर या स्थान।

ददोड़ा, ददोरा—संज्ञा पु. [हिं. दाद] चकत्ता।

दध, दधि—संज्ञा पुं [सं. दधि] (१) दही, जमाया हुआ दूध। (२) वस्त्र, कपड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. उदधि] समुद्र, सागर।

दधसार—संज्ञा पुं. [हिं. दधि + सार] मक्खन।

दधिकाँदौ—संज्ञा पुं. [सं. दधि + हिं. काँदौ = कीचड़] (१) जन्माष्टमी के समय का एक उत्सव जिसमें लोग परस्पर हल्दी मिला हुआ दही छिड़कते हैं। उ.—जसुमति भाग-सुहागिनी (जिनि) जायौ हरि सौ पूत। करहु ललन की आरती (री) अरु दधिकाँदौ सूत—१०-४०। (२) दही की कीचड़। उ.—सींके छोरि, मारि लरिकनि कौं, माखन-दधि सब खाइ। भवन मच्यौ दधिकाँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाइ—१०-३२८।

दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] फटे हुए दूध का सार

भाग जो पानी निकलने पर बचता है, छेना।

दधिचार—संज्ञा पुं. [सं.] मथानी।

दधिज, दधिजात—संज्ञा पुं. [सं.] मक्खन।

संज्ञा पुं. [सं. उदधि+ज, जात] चंद्रमा।

उ.—देखौ माई दधिसुत में दधिजात १०-१७२।

दधि-तिय—संज्ञा स्त्री. [सं. उदधि (=समुद्र)+स्त्री (समुद्र की स्त्री)] गंगा। उ.—दधि-सुत में दधि-तिय दीपति सी मृदु मुख तें मुसकात—सा. ६२।

दधियूप—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का पकवान।

दधिमंड—संज्ञा पुं [सं.] दही का पानी।

दधिमंडोद—संज्ञा पुं. [सं.] दही का समुद्र।

दधि-मुख—संज्ञा पुं. [सं.] एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था।

दधिसागर—संज्ञा पुं. [सं.] दही का समुद्र।

दधिसार—संज्ञा पुं. [सं.] मक्खन।

दधिसुत—संज्ञा पुं. [सं. उदधि+सुत] (१) कमल। उ—देखौ माई दधि-सुत मैं दधिजात—१०-१७२। (२) मुक्ता, मोती। उ—दधिसुत जामें नंद-दुवार १०-१७३। (३) चंद्रमा। उ—(क) मानिनि अजहूँ छाड़ो मान। तीन बिधि दधिसुत उतारत रामदल जुत सान-सा. ८१। (ख) दधि-सुत में दधि-तिय दीपति सी मृदु-मुख ते मुसकात-सा. ६२। (ग) राधा दधिसुत क्यों न दुरावति—सा. उ. ३६। (४) जालधर दैत्य। (५) विष, जहर। उ—नहिं विभूति दधि-सुत न कंठ दह मृगमद चंदन चरचित तन।

संज्ञा पुं. [सं.] मक्खन। उ—गिरि गिरि परत बदन तैं उर पर हैं दधि-सुत के बिंदु। मानहुँ सुभग सुधाकन बरसत प्रिय-जन आगम इंदु—१०-२८३।

दधिसुत—अरि-भष-सुत-सुभाव—संज्ञा स्त्री. [सं उदधि (=समुद्र)+सुत (समुद्र का पुत्र, चंद्रमा)+अरि (=चंद्रमा का शत्रु, राहु)+भष (=राहु का भक्षण, सूर्य)+सुत (=सूर्य का पुत्र, कर्ण)+सुभाव (=कर्ण का स्वभाव 'दानी' होना, उर्दू में 'दानी' का अर्थ होता है सखी)] सखी, सहेली। उ.—दधिसुत-अरि-भष-सुत-सुभाव चल तहाँ उताइल आई—सा. ८७।

दधिसुत-गृह—संज्ञा पुं [सं. दधि (उदधि=समुद्र)+सुत (=समुद्र का सुत, अमृत)+गृह (=अमृत का घर अर्थात् ओठ] अधर, ओठ। उ.—विप्र विचित्र रेख दधि-सुत गृह रेसम छद घन ऊपर आज—सा. ६६।

दधिसुत-(धर) धरन-रिपु—संज्ञा पुं. [सं. दधि (उदधि=समुद्र)+सुत (=समुद्र का पुत्र, चंद्रमा)+ धर (=चंद्रमा को धारण करनेवाला, महादेव)+ रिपु (=महादेव का शत्रु, कामदेव)] कामदेव, मदन। उ—(क) रजनिचरगुन जानि दधि-सुत-धरन रिपु हित चाव—सा. १। (ख) दधिसुत धर-रिपु सहे सिलीमुख सुख सब अंग नसायौ—सा. ४६।

दधिसुत-धर-रिपु-पिता—संज्ञा पुं [सं. दधि (उदधि=समुद्र) + सुत (समुद्र का पुत्र, चंद्रमा) + धर (=चंद्रमा को धारण करनेवाला, महादेव)+रिपु =महादेव का शत्रु, कामदेव)+पिता (=कामदेव के पिता श्रीकृष्ण क्योंकि कामदेव के अवतार प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के पुत्र थे)] श्रीकृष्ण। उ.—दधि सुत-धर-रिपु-पिता जानि मन पाछे आयो मोरे—सा. १००।

दधि-सुत-वाहन—संज्ञा पुं. [सं. दधि (=उदधि=समुद्र) +सुत (समुद्र का पुत्र, चंद्रमा) +वाहन (=चंद्रमा का वाहन=मृग) मृग। उ.—दधि-सुत-वाहन मेखला लेके बैठि अनईस गनोरी—सा. उ. ५२।

दधि सुत-सुत—संज्ञा पुं. [सं. दधि (=उदधि=समुद्र) +सुत (=समुद्र या जल का पुत्र, कमल)+सुत (=कमल का पुत्र, ब्रह्मा)] ब्रह्मा। उ.—आजु चरित नँद-नंदन सजनी देख। कीनो दधि-सुत-सुत से सजनी सुन्दर स्याम सुभेष—सा. ७८।

दधि-सुत-सुत-पतिनी—संज्ञा स्त्री.[सं. दधि(=उदधि=समुद्र)+सुत (समुद्र या जल का पुत्र। कमल)+सुत (कमल से उत्पन्न ब्रह्मा) + पत्नी (ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती=गिरा=वाणी)] वाणी, बोली, वचन। उ.—लखि बृजचंद्र चंद्र मुख राधे। दधि-सुत-सुत-पतनी न निकासत दिन-पति सुत पतिनी प्रिय बाधे-सा. ६।

दधि-सुत-सुत-वाहन—संज्ञा पुं. [सं दधि (=उदधि= समुद्र) +सुत (=समुद्र या जल से उत्पन्न कमल) + सुत (=कमल से उत्पन्न ब्रह्मा) + वाहन (=ब्रह्मा का वाहन, हंस)] हंस पक्षी। उ.—ठढी जलजा-सुत कर लीने। दधि-सुत-सुत बाहन हित सजनी भष बिचार चित दीने—सा. ७२।

दधि-सुत-सुत-सुत-सुत-अरि-भष-मुख—संज्ञा पुं. [सं. दधि (=उदधि=समुद्र)+सुत (समुद्र या जल का पुत्र, कमल)+सुत (कमल से उत्पन्न ब्रह्मा)+सुत (=ब्रह्मा का पुत्र, कश्यप) +सुत (=कश्यप का पुत्र, सूर्य) +अरि (= सूर्य का शत्रु, राहु)+ भष (=राहु का भक्ष्य, चंद्रमा=चंद्र) + मुख (= चंद्रमुख)] चंद्रमुख। उ.—दुरद मूल के आदि राधिका बैठी करत सिंगार। दधि-सुत-सुत-सुत-सुत-अरि-भष-मुख करे बिमुख दुख भार —सा. ३५।

दधि-सुत-सुत-हितकारी—संज्ञा पुं. [सं. दधि (=उदधि =समुद्र)+सुत (समुद्र या जल से उत्पन्न, कमल) +सुत (=कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा)+सुत (=ब्रह्मा का पुत्र, वशिष्ट) + हितकारी (=वशिष्ट का सहायक, अग्नि)] अग्नि। उ.—दधि-सुत-सुत-सुत के हितकारी सज-सज सेज बिछावै— सा. ६५।

दधि-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं. उदधि+सुता] सीप, सीपी। उ.—दधि-सुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि।

दधि-स्नेह—संज्ञा पुं. [सं.] दही की मलाई।

दधि-स्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] छाछ, मट्ठा।

दधीच, दधीचि—संज्ञा पुं. [सं. दधीचि] एक वैदिक ऋषि। इनके पिता का नाम किसी ने अथर्व लिखा है और किसी ने शुक्राचार्य। इन्होंने देवताओं की रक्षा के लिए वज्र बनाने के उद्देश्य से अपनी हड्डियाँ दान दे दी थीं।

दधीच्यस्थि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वज्र। (२) हीरा।

दनदनाना—क्रि अ [अनु.] (१) दनदन का शब्द करना। (२) खूब आनंद मनाना।

दनादन—क्रि. वि. [अनु.] दनदन शब्द के साथ।

दनु—संज्ञा स्त्री [सं.] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही थी और जिसके चालीस पुत्र हुए जो 'दानव' कहलाये।

दनुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दक्ष की कन्या दनु से उत्पन्न असुर, राक्षस। (२) हिरण्यकशिपु। उ.—भक्त वछल बपु धरि नर केहरि दनुज दह्यौ, उर दरि, सुरसाँई—१-६। (३) कंस। (४) रावण।

दनुजदलनी—संज्ञा स्त्री [सं.] दुर्गा।

दनुजपति-अनुज-प्यारी—संज्ञा स्त्री. [सं दनुज (=दैत्य) +पति (=राक्षसों का स्वामी, रावण)+अनुज (रावण का छोटा भाई, कुंभकरण) + प्यारी (कुंभकरण की प्रिय वस्तु, निद्रा) निद्रा, नींद। उ.—दनुजपति की अनुज प्यारी गई निपट बिसार —सा. २४।

दनुजराय—संज्ञा पुं. [सं दनुज+हि. राय] हिरण्यकशिपु। (२) कंस। (३) रावण।

दनुज-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पूतना। उ.—दनुज-सुता पहिले संहारी पयपीवत दिन सात—२४६३।

दनुजारि—संज्ञा पुं. [सं.] दानवों का शत्रु।

दनुजेंद्र, दनुजेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिरण्यकशिपु। (२) रावण। (३) कंस।

दनुनारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राक्षसी, पूतना। उ.—कागासुर सकटासुर मारयौ पय पीवत दनु-नारी ६८६।

दनुसंभव—संज्ञा पुं. [सं.] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनू—संज्ञा स्त्री. [सं. दनु.] दक्ष की कन्या, दनु।

संज्ञा पुं. [सं. दानव] दैत्य, राक्षस।

दन्न—संज्ञा पुं. [अनु.] तोप छूटने का शब्द।

दपट—संज्ञा स्त्री [हिं. डपट] डपट, घुड़की।

दपटना—क्रि स. [हिं. दपट] डाँटना, घुड़कना।

दपु—संज्ञा पुं [सं. दर्प] घमंड, अहंकार। उ.—सात दिवस गोवर्धन राख्यौ इन्द्र गयौ दपु छोड़ि।

दपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. दपट] डपट, घुड़की।

दपेटना—क्रि स. [हिं. दपटना] डाँटना-घुड़कना।

दफन—संज्ञा पुं [अ दफ्न] (१) गाड़ने की क्रिया। (२) मुरदा गाड़ने की क्रिया।

दफनाना—क्रि. स. [हिं. दफ़न+आना] (१) गाड़ना।

(२) जमीन में मुर्दा गाड़ना ।

दफा—संज्ञा स्त्री [अ. दफ़अः] (१) बार, बेर। (२) नियम की धारा।

वि [अ दफ़ा.] हटाया या दूर किया हुआ।

मुहा —रफा-दफा करना—झगड़ा निबटाना।

दफीना—संज्ञा पुं [अ.] गड़ा हुआ धन।

दफ्तर—संज्ञा पुं [फा दफ्तर] कार्यालय।

दफ्तरी—संज्ञा पुं [फा दफ्तरी] (१) कार्यालय का कर्मचारी। (२) जिल्दसाज।

दबंग—वि [हिं. दबाव] निडर, प्रभावशाली।

दबक—संज्ञा स्त्री. [हिं. दबकना] (१) छिपने की क्रिया या भाव। (२) सिकुड़न।

दबकना—क्रि अ [हिं दबाना] (१) डर के मारे छिपना। (२) लुकना, छिपना।

क्रि. स [सं दर्प] डाँटना-डपटना, घुड़कना।

दबका—संज्ञा पुं [हिं. दबकना] सुनहरा रुपहला तार।

दबकाना—क्रि स [हिं. दबकना का प्रे.] (१) छिपाना, आड़ में करना। (२) डाँटना।

दबकी—संज्ञा स्त्री [हिं दबकना] छिपना, दुबकना।

मुहा —दबकी मारना—छिप जाना।

दबगर—संज्ञा पुं. [देश] ढाल आदि बनानेवाला।

दबदबा—संज्ञा पुं [अ.] रोबदाब, आतंक।

दबना—क्रि. अ. [सं दमन] (१) भार या बोझ के नीचे पड़ना। (२) दाव में आ जाना। (३) हार मानकर पीछे हटना। (४) विवश होना। (५) तुलना में कम जँचना। (६) बात या विषय का अधिक फैल न सकना। (७) शांत रहना, बढ न पाना। (८) दूसरे के अधिकार में होना। (९) धीमा या मंद पड़ना। (१०) संकोच करना।

दबवाना—क्रि स [हिं दबना का प्रे.] दबाने का काम दूसरे से कराना।

दबाऊ—वि. [हिं. दबाना] (१) दबानेवाला। (२) दब्बू, बोझ से झुका हुआ।

दबाना—क्रि स [सं दमन] (१) बोझ के नीचे लाना। (२) दबाकर जोर पहुँचाना। (३) पीछे हटाना। (४) गाड़ना, दफनाना। (५) प्रभाव या दबाव से कुछ करने को विवश करना। (६) तुलना में एक चीज को मात कर देना। (७) किसी बात को फैलने न देना। (८) दमन या शांत करना। (९) अनुचित रूप से अधिकार कर लेना। (१०) किसी चीज को कस कर पकड़ना।

दबाव—संज्ञा पुं. [हिं. दबाना] (१) दबाने की क्रिया या भाव। (२) रोब-दाब, प्रभाव।

दबि—क्रि अ. [हिं दबना] भार या बोझ के नीचे दबकर। उ —डारि न दियो कमल-कर तैं गिरि दबि मरते ब्रजवासी—१६५०।

दबी—वि. [हिं दबना] धीमी, मंद।

मुहा —दबी आवाज—(१) बहुत मंद आवाज। (२) बिना जोर दिये कही हुई बात। दबी जबान से कहना—(१) भय आदि के कारण अस्पष्ट रूप से कुछ कहना। (२) बिना जोर दिये कहना।

दबीज—वि. [फा.] मोटे दल का।

दबे—वि. [हिं दबना] धीमें, मंद।

मुहा - दबे-दबाये रहना—चुपचाप रहना, अधीन रहना। दबे पाँव (पैर) चलना—ऐसे चलना कि आवाज न हो।

दबीर—संज्ञा पुं [फ़ा] लिखनेवाला, मुंशी।

दबैला—वि [हिं दबना+एला (प्रत्य)] दबा हुआ।

दबैल—वि [हिं. दबना+ऐल (प्रत्य)] दब्बू, डरपोक।

दबोचना—क्रि स. [हिं दबाना] (१) पकड़कर धर दबाना। (२) छिपाना।

दबोरना—क्रि स [हिं. दबाना] तुलना या लड़ाई में अपने सामने न ठहरने देना।

दबोस—संज्ञा पुं [देश.] चकमक पत्थर।

दबोसना—क्रि स [देश.] शराब पीना।

दभ्र—वि [सं] थोड़ा, कम, अल्प।

दमंकना—क्रि अ. [हिं. दमकना] चमकना।

दम—संज्ञा पुं [सं] (१) दमन, दंड, सजा। (२) इंद्रियों को वश में रखना, इंद्रिय-दमन। उ.—गो कह्यौ हरि बैकुंठ सिधारे। सम-दम उनहीं संग पधारे—१-२९०। (३) दबाव।

संज्ञा पुं [फा.] (१) साँस, श्वाँस।

मुहा—दम अटकना(उखड़ना, खिचना)—(मरते समय) सांस रुकना। दम उलटना—(१) जी घबराना। (२) सांस न लिया जा सकना। दम खाना (लेना)— सुस्ताना। दम खींचना—(१) चुप रहना। (२) सांस खींचना। दम घुटना—हवा की कमी से सांस न ले सकना। दम घोटना—(१) सांस न लेने देना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोटकर मारना—(१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना (फूलना)—(१) दौड़-धूप या मेंहनत से हाँफना। (२) दमे का दौरा होना। दम चुराना—जान बूझ कर सांस रोकना। दम टूटना—(१) प्राण निकलना। (२) इतना हाँफने लगना कि दौड़-धूप के काम ज्यादा न कर सकना। दम तोड़ना—प्राण निकलना। दम पचना—अधिक परिश्रम करने पर भी न हाँफना। दम भरना—(१) किसी के प्रति अधिक प्रेम या मित्रता रखने की साभिमान चर्चा करना। (२) मेंहनत या दौड़-धूप से थक जाना। दम मारना—(१) विश्राम करना। (२) बोलना। (३) बीच में दखल देना। दम साधना—(१) सांस रोकने का अभ्यास करना। (२) मौन रहना।

(२) सांस के साथ नशीली चीज का धुआँ खींचना।

मुहा—दम मारना (लगाना)—नशीली चीज का धुआँ सांस के साथ खींचना। दम लगना—नशीली चीज का धुआँ खींचा जाना।

(३) सांस खींचकर जोर से बाहर फूंकना।

मुहा—दम मारना—झाड़-फूंक करना।

(४) समय जो एक बार सांस लेने में लगे, पल।

मुहा—दम के दम—क्षण भर। दम पर दम—हरदम, बराबर।

(५) प्राण, जान, जी।

मुहा—दम उलझना—जी घबराना। दम खाना—परेशान करना। दम खुश्क होना (फना होना, सूखना)—बहुत भयभीत होना। दम चुराना—बहाने से जान बचाना। नाक में दम आना—बहुत परेशान होना। नाक में दम करना—बहुत तंग करना। दम निकलना—मृत्यु होना। दम पर आ बनना—आफत या हैरान होना। दम फड़क उठना (जाना)—रूप, रंग या गुण को देखकर चित्त बहुत प्रसन्न होना। दम फड़कना—बेचैनी होना। दम में दम आना—भय या घबराहट होना। दम में दम रहना(होना)—(१) शरीर में प्राण रहना। (२) हिम्मत बँधी होना।

(६) प्राण या जीवन-शक्ति। (७) व्यक्तित्व।

मुहा—(किसी का) दम गनीमत होना—(किसी के) जीवित रहने तक ही भले काम होना।

(८) संगीत में किसी स्वर का देर तक उच्चारण होना। (९) पकाने की एक क्रिया। (१०) धोखा।

यौ.—दम झाँसा—छल-कपट। दम दिलासा (पट्टी) (१) झूठी-आशा। (२) छल-कपट। दमबाज—धोखा देने या फुसलाने वाला।

मुहा.—दम देना—झाँसा देना। दम खाना—धोखा खाना।

(११) छुरी- तलवार आदि की धार।

दमक—संज्ञा स्त्री. [हिं. चमक का अनु.] चमक, चमचमाहट। उ.—मिटि गइ चमक-दमक अँग अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी—१-३०५।

संज्ञा पुं. [सं.] दमन या शांत करनेवाला।

दमकति—क्रि. अ. [हिं. दमकना] चमकती है, चमचमाती है। उ.—(क) दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर—१०-९३। (ख) दमकति दूध-दँतुरियाँ रूरी—१०-११६। (ग) दमकति दोउ दूध की दतियाँ, जगमग-जगमग होति री—१०-१३६।

दमकना—क्रि अ. [हिं. चमकना का अनु] चमचमाना।

दमकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं दमक] चमकने-दमकने का भाव या क्रिया। उ.—दामिनि की दमकनि बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जीजियत माई है—२८२७।

दमकि—क्रि. अ. [हिं दमकना] चमककर, चमचमाकर। उ.—प्रगटति हँसत दँतुलि, मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलै री—१०-१३७।

क्रि. स. [हिं. दपकाना] झपाटे से पकड़कर।

उ.—देखि नृप तमकि हरि चमकि तहाँई गये दमकि लीन्हों गिरहबाज जैसे—२६१५।

दमखम—संज्ञा पुं. [फ़ा. दमखम] (१) दृढ़ता, मजबूती। (२) जीवन या प्राण-शक्ति। (३) तलवार की धार का झुकाव।

दमड़ा—संज्ञा पुं [हिं. दाम+ड़ा (प्रत्य.)] रुपया-पैसा।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं द्रविण+धन] पैसे का चौथा या आठवां भाग।

मुहा—दमड़ी के तीन—इतना सस्ता कि कोई न खरीदे, इतना अधिक कि कोई न पूछे।

दमदमा—संज्ञा पुं [फ़ा.] किलेबंदी, मोरचा।

दमदार—वि. [फ़ा.] (१) जो जीवनी-शक्ति से पूर्ण हो। (२) दृढ, मजबूत। (३) जो (वस्तु या व्यक्ति) अधिक समय तक हवा या साँस रोक सके। (४) तेज धारवाला।

दमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दबाने की क्रिया। (२) दंड। (३) इंद्रिय-निग्रह। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) एक ऋषि जिनके यहाँ दमयंती जन्मी थी।

दमनक, दमनशील—वि. [सं.] दमन करनेवाला।

दमनी—संज्ञा स्त्री. [सं. दमन] संकोच, लज्जा।

दमनी, दमनीय—वि. [सं] (१) जो दमन करने योग्य हो। (२) जिसको दबाया जा सके।

दमबाज—वि. [फ़ा. दम+बाज़] बहानेबाज।

दमबाजी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. दम+बाज़ी] बहानेबाजी।

दमयती—संज्ञा स्त्री [स.] (१) विदर्भ देश के राजा भीमसेन की पुत्री जो नल को ब्याही थी। (२) बेला।

दमरी—संज्ञा स्त्री [हिं. दमड़ी] पैसे का आठवाँ भाग।

दमशील—वि [सं.] (१) इंद्रिय-निग्रही। (२) दमन करनेवाला, दमनशील।

दमसाज—संज्ञा पुं. [फ़ा दमसाज] गवैये के साथ स्वर साधनेवाला उसका सहायक।

दमा—संज्ञा पुं [फ़ा.] एक भयंकर श्वास रोग।

दमाद—संज्ञा पुं. [हिं दामाद] जमाई, जामाता।

दमादम—क्रि. वि. [अनु.] लगातार, बराबर।

दमानक—संज्ञा स्त्री [देश.] तोपों की बाढ़।

दमाम, दमामा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] नगाड़ा, डंका, धौंसा।

दमारि—संज्ञा पुं. [सं. दावानल] जंगल की आग।

दमावति—संज्ञा स्त्री. [स दमयंती] नल की पत्नी।

दमि—क्रि. स. [सं. दमन] दमन करके, नष्ट करके।

उ.—इमि दमि दुष्ट देव-द्विज मोचन, लंक बिभीषन, तुमकौं देहौं—६-१५७।

दमी—वि. [सं. दम] दमन करनेवाला।

वि. [फ़ा. दम] दम लगाने या कश लगानेवाला।

वि. [हि. दमा] जिसे दमे का रोग हो।

दमुना—सज्ञा पुं [देश] अग्नि, आग।

दमैया—वि. [हिं. दमन+ऐया] दमन करनेवाला।

दमोड़ा—संज्ञा पुं [हि. दाम+ओड़ा,] मूल्य, कीमत।

दमोदर—संज्ञा पुं [सं. दामोदर] विष्णु, श्रीकृष्ण।

दम्य—वि. [सं.] दमन करने के योग्य।

दयंत—संज्ञा पुं [स. दैत्य] दानव, राक्षस।

दय—सज्ञा पुं. [स.] दया, कृपा।

दयन—वि. [हिं देना] देनेवाला। उ.—(क) भी बृंदाबन कमलनयन। मनु आयौ है मदन गुन गुदर दयन—२४८४। (ख) त्रिविध पवन मन हरष दयन—२३८७।

दया—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) दुखी के प्रति करुणा या सहानुभूति का भाव। (२) दक्षप्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी।

दयाकरन—वि [स. दया+करण=करनेवाले] दयालु, दयावान। उ.—दीनबंधु, दयाकरन, असरन-सरन, मंत्र यह तिनहिं निज मुख सुनायौ—८-८,

दयाकूर्च—संज्ञा पु [सं] गौतम बुद्ध।

दयादृष्टि—संज्ञा स्त्री [स] किसी के प्रति कृपा, करुणा या सहानुभूति का भाव।

दयानत—संज्ञा स्त्री [अ] ईमान, सत्यनिष्ठा।

दयानतदार—वि. [अ. दयानत+फ़ा. दार] ईमानदार।

दयानतदारी—संज्ञा स्त्री. [अ. दयानत+फ़ा. दारी] सच्चाई, ईमानदारी।

दयाना—क्रि अ. [हिं. दया+ना (प्रत्य.)] दयालु होना।

दयानिधान—संज्ञा पु [सं] (१) बहुत दयालु व्यक्ति। (२) ईश्वर का एक नाम।

दयानिधि—संज्ञा पुं० [सं] (१) सदय, दयालु। (२)

ईश्वर का एक नाम। उ.—दयानिधि तेरी गति लखि न परै—१-१०४।

दयानी—क्रि. स. [हिं. दयाना] (दया) दिखायी। उ.—कहा रही अति क्रोध हिये धरि नेक न दया दयानी—२२७५।

दयापात्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह जिस पर दया करना उचित हो, जो वस्तु दया के योग्य हो।

दयामय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दयालु व्यक्ति। (२) ईश्वर का एक नाम।

दयार—संज्ञा पुं. [सं देवदार] देवदार का पेड़।

संज्ञा पुं [अ.] प्रांत, प्रदेश।

दयारत—क्रि. वि. [सं. दया+रत] दयावश, दयालु होकर। उ.—का न कियौ जनहित जदुराई। प्रथम कह्यौ जो बचन दयारत, तिहिं बस गोकुल गाय चराई—१-६।

वि.—दयालु दया-कार्य में लगे रहनेवाला।

दयार्द्र—वि. [सं.] दयापूर्ण, दया से पसीजा हुआ।

दयाल, दयालु—[सं. दयालु] बहुत दया करनेवाला।

दयालता, दयालुता—संज्ञा स्त्री. [स. दयालुता] दया करने का भाव, दयालु होने की प्रवृत्ति।

दयावत—वि. [सं. दयावान् का बहु.] दयालु।

दयावती—वि. स्त्री. [सं] दया करनेवाली।

दयावना, दयावने, दयावनो—वि. पुं. [हि. दया +आवना, आवने, आवनो] जो दीन हो और वस्तुत: दया का पात्र हो।

दयावनी—वि. स्त्री. [हिं. दयावना] दया की पात्री।

दयावान्—वि. पुं. [सं.] जो दयालु हो।

दयावीर—संज्ञा पु. [सं.] वीर-रस के अंतर्गत गिनाये गये चार प्रकार के वीरों में एक जो दया करने में अपने प्राण भी लगा दे।

दयाशील—वि. [सं.] दयालु, दयावान्।

दयासागर—संज्ञा पुं. [सं] (१) जो बहुत दयालु हो। (२) ईश्वर का एक नाम।

दयासील—वि. [सं. दयाशील] दयालु, कृपालु। उ.—थावर जंगम मैं मोहिं जानै। दयासील सब सौं हित मानै—३-११।

दयित—वि. [सं.] प्यारा, प्रिय पात्र।

संज्ञा पुं—पति।

दयिता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) प्रियतमा। (२) पत्नी।

दये—क्रि. स. [हिं. देना] दिये।

दयो, दयौ—क्रि. स. [हिं. देना] दिया। उ.—उग्रसेन कौं राज दयौ—१-२६।

दर—संज्ञा पुं [सं] (१) शंख। (२) गड्ढा, दरार। (३) गुफा। (४) फाड़ने की क्रिया। (५) डर।

संज्ञा पुं. [स. दल] सेना, समूह, दल।

संज्ञा पुं [हिं. थल या फा. दर] जगह, स्थान।

संज्ञा स्त्री—(१) भाव, मूल्य। (२) ठौर-ठिकाना। (३) प्रतिष्ठा, आदर, महिमा।

संज्ञा पुं. [फा] द्वार, दरवाजा। उ.—माया नटी लकुटि कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै। दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै (करावै)—१-४२।

मुहा—दर दर मारे मारे फिरना—विपत्ति या दुर्दिन में आश्रय या सहायता की आशा से द्वार-द्वार या स्थान-स्थान पर फिरना।

वि. [सं.] थोड़ा-सा, जरा-सा।

संज्ञा स्त्री. [सं दारु=लकड़ी] ईख, ऊख।

दरक—वि. [सं.] डरनेवाला, कायर, भीरु।

संज्ञा स्त्री [हि. दरकना] दरार, चीर।

दरकच—संज्ञा स्त्री [देश.] दबने कुचलने की चोट।

दरकचाना—क्रि. स. [हि.] थोड़ा-थोड़ा कुचलना।

दरकटी—संज्ञा स्त्री [हि दर=भाव+काटना] पहले से ही भाव का ठहराव।

दरकना—क्रि. अ. [स. दर=फाड़ना] फटना, चिरना।

दरका—संज्ञा पुं [हिं. दरकना] (१) दरार, फटने का चिन्ह। (२) चोट या आघात जिससे कोई चीज फट जाय या उसमें दरार पड़ जाय।

दरकाना—क्रि. स. [हिं. दरकना] फाड़ना।

क्रि. अ.—फट जाना।

दरकानी—क्रि. अ. [हिं. दरकना] फट गयी, मसक गयी। उ.—पुलकित अंग अँगिया दरकानी उर आनँद अंचल फहरात।

दरकार—वि. [फा.] आवश्यक, जरूरी।

दरकिनार—क्रि. वि. [फ़ा.] अलग, एक ओर, दूर।

दरकी—क्रि. अ. [हिं. दरकना] (दाव या जोर पड़ने से) फट गयी, मसक गयी, चिर गयी, विदीर्ण हुई। उ —(क) लिए लगाई कठिन कुच के बिच, गाढ़ैं चाँपि रही अपनैं कर। उमँगि अग अँगिया उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिं औसर—१०-३०१ (ख) प्रेम विवस सब ग्वालि भईं। ..., पुलक अंग अँगिया उर दरकी, हार तोरि कर आपु लईं —७०१।

दरकूच—क्रि. वि. [फ़ा.] यात्रा में बराबर बढ़ता हुआ।

दरखत, दरख़्त—संज्ञा पुं. [फ़ा दरख़्त] पेड़, वृक्ष।

दरखास्त, दरख़्वास्त—संज्ञा स्त्री [फ़ा दरख़्वास्त] (१) निवेदन, प्रार्थना। (२) प्रार्थना-पत्र।

दरगाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) चौखट, देहरी। (२) दरबार, कचहरी। (३) सिद्ध साधु का समाधि स्थान, मकबरा, मजार। (४) मठ, मंदिर।

दरगुजर—वि. [फ़ा.] (१) वचित। (२) क्षमाप्राप्त।
मुहा—दरगुजर करना—माफ करना, छोड़ देना।

दरगुजरना—क्रि. अ. [फ़ा.] (१) छोड़ना, बाज आना। (२) जाने देना, क्षमा कर देना।

दरज—संज्ञा स्त्री. [स दर=दरार] दरार, दराज।

दरजा—संज्ञा पु. [अ.दर्ज.] (१)श्रेणी, वर्ग। (२)कक्षा।

दरजिन—संज्ञा स्त्री [हि दरजी] दर्जी की पत्नी।

दरजी—संज्ञा पुं. [फ़ा. दर्ज़ी] (१) कपड़ा सीनेवाला। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिना तनु भयो ब्योंत, विरह भयौ दरजी—३१६२। (२) कपड़ा सीने का व्यवसाय करने वाली जाति का पुरुष।

दरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दलने-पीसने की क्रिया। (२) नाश, ध्वस।

दरद—संज्ञा पुं. [फ़ा. दर्द] (१) सहानुभूति, करुणा, दया, तर्स, रहम। उ.—(माई) नैंकुहूँ न दरद करति, हिलकिनि हरि रोवै। वज्रहुँ तैं कठिन हियौ, तेरौ है जसोवै—३४८। (२) पीड़ा, कष्ट,तकलीफ।
वि. [स] भयकारक, भयकर।
संज्ञा पुं—(१) काश्मीर प्रदेश और हिंदूकुश पर्वत के मध्यवर्ती भू-भाग का प्राचीन नाम। (२) एक प्राचीन म्लेच्छ जाति। (३) ईंगुर।

दर दर—क्रि वि [फ़ा दर=द्वार] द्वार-द्वार, जगह-जगह, ठौर-कुठौर। उ —(क) माया नटिनि लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै। दर-दर लोभ लागि लै डोलै नाना स्वाँग करावै। (ख) जीवत जाँचत कन-कन निर्धन दर-दर रहत विहाल—१-१५६।

दरदरा —वि. [सं. दरण=दलना] जो मोटा पिसा हुआ हो, जो महीन न पिसा हो।

दरदराना—क्रि स [स दरण] (१) मोटा-मोटा पीसना। (२) किटकिटाकर दाँत से काट लेना।

दरदरी—वि स्त्री [हिं. दरदरा] मोटे कण या रवे का।
संज्ञा स्त्री. [स धरित्री] पृथ्वी, धरती।

दरदवंत—वि [फ़ा दर्द+वंत (प्रत्य.)] (१) दया या सहानुभूति दिखानेवाला। (२) पीड़ित, दुखी।

दरद—संज्ञा पुं. [हि. दर्द] पीड़ा, कष्ट।

दरन—क्रि. स [हिं दरना, दलना] नष्ट करनेवाले, दूर करनेवाले। उ.—अरु जन-सँताप-दरन, हरन-सकल-सँताप—१-१८२।

दरना—क्रि. स. [हिं. दलना] (१) दलना, पीसना। (२) नष्ट या ध्वस्त करना।

दरप—संज्ञा पुं. [सं. दर्प] (१) घमड, अभिमान। (२) मान, रूठना। (३) अक्खड़पन। (४) दबाव, रोब।

दरपक—संज्ञा पुं [स. दर्पक] (१) अभिमानी, घमडी। (२) मान करने या रूठनेवाला। (३) कामदेव।

दरपन—संज्ञा पुं [सं. दर्पण] शीशा, आइना, दर्पण, आरसी। उ —(क) ज्यौं दरपन प्रतिबिंब, त्यौं सब सृष्टि करी—२-३६। (ख) इंद्र दिसि के आदि राखै आदि दरपन बरन—सा० ५७।

दरपना—क्रि स [स दर्प] (१) ताव दिखाना, क्रुद्ध होना। (२) घमड या अहंकार करना।

दरपनी—संज्ञा स्त्री. [हि. दरपन] छोटा दर्पण।

दरपेश—क्रि वि [फ़ा.] आगे, सामने।

दरब —संज्ञा पुं. [स. द्रव्य.] (१) धन। (२) धातु।

दरबर—वि. [सं दरण] मोटा पिसा, दरदरा।
संज्ञा स्त्री. [अनु.] उतावली, आतुरता।

दरबराना—क्रि. स. [हिं. दरबर] (१) किसी को इस

तरह घबरा देना कि वह मन की बात न कह सके। (२) दबाव डालना।

दरबा—संज्ञा पुं. [फ़ा. दर] (१) पक्षियों को बंद करने का काठ का खानेदार संदूक। (२) दीवार या पेड़ का कोटर या कोल जिसमें कोई पक्षी आदि रहता हो।

दरबान, दरबाना—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरबान] द्वारपाल।

दरबानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दरबान] द्वारपाल का काम।

दरबार—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) राजसभा। उ.—(क) जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति कैं दरबार—१-२३१। (ख) देखि दरबार, सब ग्वार नहिं पार कहुँ, कमल के भार सकटनि सजाए—५८४। (२) वह स्थान जहाँ नायक या राजा अपने सहकारियों के साथ बैठता हो। (३) वह स्थान जहाँ कोई पदाधिकारी अपने चाटुकारों के साथ बैठता हो (व्यंग्य)।

मुहा—दरबार करना—राज-सभा या बैठक में बैठना। दरबार खुलना—वहाँ जाने की आज्ञा होना। दरबार बंद होना—वहाँ जाने की मनाही होना। दरबार बाँधना—घूस या रिश्वत तय करना। दरबार लगना—सभासदों, सहकारियों या चाटुकारों का इकट्ठा होना।

(४) राजा, महाराजा। (५) अमृतसर में सिखों का मन्दिर जिसमें उनकी धार्मिक पुस्तक, ग्रंथ साहब रखी है। (६) द्वारा, दरवाजा। उ.—दधि मथि कै माखन बहु देहौं, सकल ग्वाल ठाढे दरबार—४०३।

दरबारदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं दरबार] (१) दरबार में उपस्थित होना। (२) किसी नायक या पदाधिकारी या बड़े आदमी के यहाँ नियमित रूप से बैठने और खुशामद करने का काम।

दरबारविलासी—संज्ञा. पुं. [हिं दरबार+स. विलासी] द्वारपाल।

दरबारी—संज्ञा पुं [हि. दरबार] राजसभा का सदस्य, सभासद। उ.—दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम दरबारी—१-१७६।

वि.—दरबार का, दरबार से संबंधित।

दरभ—संज्ञा पुं [स. दर्भ] (१) कुश। (२) बंदर।

दरमा—संज्ञा पुं. [स. दाड़िम] अनार।

दरमियान—संज्ञा पुं [फ़ा] मध्य, बीच।

क्रि वि.—मध्य में, बीच में।

दरमियानी—वि [फ़ा] बीच का, मध्य का।

संज्ञा पुं—बीच में पड़नेवाला, मध्यस्थ।

दररना—क्रि. स [हि. दरना] (१) पीसना। (२) नष्ट करना।

क्रि. स. [हिं दरेरना] (१) रगड़ना। (२) ठेलते या रगड़ते हुए धकियाना।

दरवाजा—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) द्वार। (२) किवाड़।

दरवान, दरवाना—संज्ञा पुं [फ़ा. दरबान] द्वारपाल, ड्योढ़ीदार। उ.—पौरि-पाट टूटि परे, भागे दरवाना—६-१३६।

दरवी—संज्ञा स्त्री.[सं दर्वी] (१) साँप का फन। (२) सँड़सी।

दरवेश, दरवेस—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरवेश] फकीर।

दरश, दरस—संज्ञा पुं. [सं दर्श] (१) दर्शन। उ—करुनासिंधु, दयाल, दरस दै सब संताप हर्यौ—१-१७। (२) भेंट, मुलाकात। (३) रूप, सुंदरता।

दरशन, दरसन—संज्ञा पुं. [सं. दर्शन] देखादेखी, अवलोकन, झलक। उ.—एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)—१-४४।

दरशाना, दरसाना—क्रि. अ [सं. दर्शन] देखने में आना।

क्रि. स.—देखना, लखना, अवलोकना।

दरसनीय—वि [सं. दर्शनीय] देखने के योग्य,।

दरसनी हुंडी—संज्ञा स्त्री [सं.दर्शन] (१) वह हुंडी जिसका भुगतान दस दिन के भीतर ही हो जाय। (२ वह वस्तु जिसे दिखाते ही काम की चीज मिल जाय।

संज्ञा स्त्री—दर्पण, आरसी।

दरस-परस—संज्ञा पुं [सं दर्श+स्पर्श] देखा-देखी, संग-साथ, भेंट-समागम। उ.—दीन बचन, संतनि-सँग दरस-परस कीजै—१-७२।

दरसाना, दरसावना—क्रि. स [सं. दर्शन] (१) दिखलाना। (२) प्रकट करना, समझाना।

क्रि. अ—दिखायी पडना, देखने में आना।

दरसायौ क्रि. अ भूत. [हि. दरसाना] दिखायी दिया, दृष्टिगोचर हुआ। उ.—ढूँढत ढूँढत बहु स्रम पायौ।

पै मृगछौना नहिं दरसायौ—५-३ ।
दरसावै—क्रि. अ. [हिं. दरसाना] प्रकट होना, स्पष्ट होना, समझ पड़ना । उ—तब आतम घट घट दरसावै । मगन होइ, तन-सुधि बिसरावै—३-१३ ।
दरसाहिं—क्रि. अ. [हिं. दरसाना] दिखायी पड़ता है, दृष्टिगोचर होता है । उ पै उनकौं कोउ देखे नाहिं । उनकौ सकल लोक दरसाहिं—६-२ ।
दरसै—क्रि अ [हिं. दरसना] दिखायी दे, दीख पड़े, मालूम हो, जान पड़े । उ—भय उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार—३-८८ ।
दरसैहौं—क्रि स. [हिं दरसाना] दिखाऊँगी । उ.—सूर कही राधा के आगे कैसे मुख दरसैहौं—१२६० ।
दरस्यो—क्रि. स. [हिं दरसना] देखा, दिखायी दिया । उ.—नैन चकोर चंद्र दरस्यौ री—२४८७ ।
दरांती—संज्ञा स्त्री [स.दात्र] (१) हँसिया । (२) चक्की ।
दराज—वि. [फा.] (१) बड़ा । (२) लंबा ।
क्रि. वि.—बहुत, अधिक, ज्यादा ।
संज्ञा स्त्री. [हिं.दरार] दरार, छेद, रंध्र, दरज ।
दरार—संज्ञा स्त्री [स दर] लकड़ी के तख्ते के फट जाने से या दो तख्तो के जोड़ के पास रह जानेवाली खाली जगह, शिगाफ, दराज ।
दरारना—क्रि.अ [हिं. दरार+ना(प्रत्य.)] फटना, चिरना ।
दरारा—संज्ञा पुं. [हिं दरना] धक्का, रगड़ा ।
दरिंदा—संज्ञा पु. [फा.] मांस-भक्षी पशु ।
दरि—क्रि. स [स दरण, हिं. दरना] (१) ध्वस्त करके, नाश करके । (२) फाड़ कर, चीर कर । उ.—भक्त-बछल बपु धरि नरकेहरि, दनुज दह्यौ, उर दरि सुरसाँई—१-६ ।
दरिद, दरिद्दर—संज्ञा पुं. [स. दारिद्र] निर्धनता, कंगाली ।
दरिद, दरिद्दर, दरिद्र—वि [सं. दरिद्र] निर्धन, गरीब ।
संज्ञा पुं.—निर्धन मनुष्य, कंगाल आदमी ।
दरिद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निर्धनता, गरीबी, कंगाली ।
दरिद्रनारायण—संज्ञा पुं. [सं.] दीन-दुखियों के रूप में मान्य ईश्वर ।
दरिद्री—वि. [हिं. दरिद्र] निर्धन ।
दरिद्री—वि. [सं. दरिद्र] निर्धन, कंगाल, गरीब ।

दरिया—संज्ञा पुं. [फा.] (१) नदी । (२) समुद्र ।
संज्ञा पुं. [हिं दरना] दला हुआ अनाज, दलिया ।
दरियाई—वि. [फा.] (१) नदी या समुद्र से संबंधित । (२) नदी या समुद्र में रहनेवाला । (३) नदी या समुद्र के निकट का ।
संज्ञा स्त्री. [फा. दाराई] एक रेशमी साटन ।
दरियादिल—वि. [फा.] बहुत उदार या दानी ।
दरियादिली—संज्ञा स्त्री. [फा.] उदारता, दानशीलता ।
दरियाफ्त—वि. [फा.] ज्ञात, जिसका पता लगा हो ।
दरियाव—संज्ञा पुं [फा दरिया] (१) नदी । (२) समुद्र ।
दरी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्तर, स्तरी] मोटे सूत का
संज्ञा स्त्री [स.] (१) गुफा, खोह, पहाड़ के बीच की आड़ । उ.—अधम समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी । मैं जु रह्यौं राजीवनैन दुरि, पाप-पहार-दरी—१-१३० । (२) पहाड़ी खड्ड जहाँ नदी बहती हो ।
वि. [सं. दरिन्] फाड़नेवाला ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. दर=द्वार] द्वार का ।
दरीखाना—संज्ञा पुं. [हिं. दरी+खाना] घर जिसमें बहुत से द्वार हों ।
दरीचा—संज्ञा पुं. [फा. दरीच.] (१) खिड़की । (२) खिड़की के पास बैठने की जगह । (२)चोर दरवाजा ।
दरीची—संज्ञा स्त्री [फा दरीचा] (१) झरोखा, खिड़की । (२) झरोखे के पास बैठने की जगह ।
दरीबा—संज्ञा पुं [?] (१)बाजार । (२) पान का बाजार।
दरीभृत—संज्ञा पुं. [सं.] पर्वत, पहाड़ ।
दरीमुख—संज्ञा पुं. [स.] (१) गुफा का द्वार । (२) श्रीराम की सेना का बंदर ।
दरेंती—संज्ञा स्त्री [स.दर+यंत्र] अनाज पीसने की चक्की।
दरेग—संज्ञा पुं. [अ. दरेग] कोर कसर, कमी ।
दरेर, दरेरा—संज्ञा पुं. [सं. दरण] (१) रगड़ा, धक्का । (२) मेंह का झोंका या झोला । उ.—अति दरेर की झरेर टपकत सब अँबराई—१५६५ । (३) बहाव का जोर, धारा का तोड़ ।
दरेरना—क्रि. स [सं. दरण] रगड़ना, पीसना (२) रगड़ते हुए धक्का देना, धकियाते हुए ले चलना ।

दरैया—संज्ञा पुं. [सं. दरण] (१) दलने-पीसने वाला। (२) घातक, विनाशक।
दरोग—संज्ञा पुं [अ.] झूठ, असत्य।
दरोगा—संज्ञा पुं. [फ़ा. दारोगा] थानेदार।
दर्ज—वि. [फ़ा.] कागज पर लिखा हुआ।
दर्जा—संज्ञा पुं. [अ.](१) श्रेणी। (२) कक्षा। (३) पद।
क्रि. वि.—गुना, गुणित।
दर्जिन—संज्ञा स्त्री. [हिं दर्जी] दर्जी जाति की स्त्री।
दर्जी—संज्ञा पुं [फ़ा. दर्जी] कपड़ा सीनेवाला।
मुहा—दर्जी की सुई—जो कई तरह के काम करे।
दर्द—संज्ञा पुं. [फ़ा] (१) पीड़ा, कष्ट।
मुहा—दर्द खाना—कष्ट सहन करना।
(२) दुख, तकलीफ। (३) दया, करुणा।
मुहा—दर्द खाना—तरस खाना, दया करना।
(४) धन की हानि का दुख या अफसोस।
दर्दमंद, दर्दी—वि [फ़ा] (१) जो दर्द से दुखी हो। (२) जो दूसरे का दुख-दर्द समझ सके, दयालु।
दर्दुर—संज्ञा पुं. [सं] (१) मेढक। (२) बादल। (३) मलय पर्वत के समीप एक पर्वत। (४) एक चमड़ामढ़ा बाजा।
दर्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घमंड, अहंकार, मद। (२) मान, मद मिश्रित कोप। (३) अक्खड़पन। (४) आतंक, रोब-दाब।
दर्पक—संज्ञा पुं [सं] (१) गर्व करनेवाला। (२) कामदेव, रति का पति।
दर्पण, दर्पन—संज्ञा पुं. [सं दर्पण] (१) आइना, आरसी। (२) आँख, दृग। (३) उद्दीपन, उत्तेजना।
दर्पित—वि [सं.] गर्व या मद से भरा हुआ।
दर्पी—वि. [सं. दर्पिन्] गर्व या मद करनेवाला।
दर्ब—संज्ञा पुं. [सं. द्रव्य] (१) धन। (२) सोना-चाँदी आदि।
दर्बान—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरबान] द्वारपाल।
दर्बानी—संज्ञा पुं [फ़ा. दरबानी] द्वारपाल का काम।
दर्बार—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरबार] सभा, राजसभा।
दर्बारी—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरबारी] राजसभा का सदस्य।
दर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुश, डाभ। (२) कुशासन।
दर्भट—संज्ञा पुं [सं.] भीतरी या गुप्त कोठरी।
दर्भासन—संज्ञा पुं [सं.] कुश का बना आसन।
दर्रा—संज्ञा पुं [फ़ा] सँकरा पहाड़ी मार्ग।
संज्ञा पुं. [सं. दरना] (१) मोटा आटा। (२) दरार, दरज।
दर्राना—क्रि. अ [अनु] बेधड़क चले जाना।
दर्व—संज्ञा पुं [सं.] (१) हिंसा में रुचि रखनेवाला। (२) राक्षस, दानव। (३) एक प्राचीन जाति जो पंजाब के उत्तर में बसती थी।
दर्वरीक—संज्ञा पुं. [सं] (१) इंद्र मघवा। (२) वायु, पवन। (३) एक तरह का प्राचीन बाजा।
दर्वा—संज्ञा स्त्री [सं] (१) राजा ऊशीनर की पत्नी का नाम। (२) राधा की एक सखी का नाम। उ—दर्वा रंभा, कृष्ना, ध्याना, मैना, नैना रूप-१५८०।
दर्विका—संज्ञा स्त्री. [सं.] घी का काजल।
दर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) कलछी। (२) साँप का फन।
दर्वीका—संज्ञा पुं [सं.] साँप जिसके फन हो।
दर्श—संज्ञा पुं. [सं] (१) दर्शन, साक्षात्कार। (२) द्वितीया तिथि। (३) अमावास्या। (४) अमावास्या को किया जानेवाला यज्ञ आदि।
दर्शक—संज्ञा पुं [सं.] (१) देखने या दर्शन करनेवाला। (२) दिखाने या बतानेवाला। (३) राजा के दर्शन करानेवाला। (४) निरीक्षण करनेवाला।
दर्शन—संज्ञा पुं [सं.] (१) देखने की क्रिया, साक्षात्कार, देखा-देखी। इस प्रकार के दर्शन के प्रायः चार रूप हैं—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण। (२) भेंट, मुलाकात। (३) वह विद्या या शास्त्र जिसमें पदार्थों के धर्म, कारण, संबंध आदि की विवेचना हो। (४) नेत्र, आँख। (५) स्वप्न। (६) बुद्धि। (७) धर्म। (८) दर्पण, आरसी। (९) रंग, वर्ण।
दर्शन शास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह शास्त्र जिसमें प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जीवन का लक्ष्य आदि का विवेचन होता है, तत्वज्ञान।
दर्शनीय—वि. [सं.] (१) देखने योग्य। (२) सुंदर।
दर्शाना—क्रि स. [हिं. दरसाना] (१) दिखाना। (२) समझाना।

दर्शित—वि. [सं.] दिखलाया या समझाया हुआ।

दर्शी—वि. [सं. दर्शिन्] (१) देखनेवाला। (२) जानने, समझने या विचार करनेवाला।

दल—संज्ञा पुं [सं.] (१) फूल की पंखड़ी (२) पौधे का पत्ता। उ.—अद्भुत राम नाम के अंक। धर्म-अंकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक—१-९०। (३) समूह, गिरोह। (४) पक्ष, गुट्ट, मंडली। (५) सेना। उ.—(क) कौरौ-दल नासि-नासि कीन्हौं जन-भायौ—१-२३। (ख) जा सहाइ पाँडव दल जीतौं—१-२६६। (६) किसी फल या समतल पदार्थ की मोटाई। (७) किसी अस्त्र का कोष म्यान। (८) धन।

दलक, दलकन—संज्ञा स्त्री [अ. दलक़] गुदड़ी

संज्ञा स्त्री [हिं. दलकना] (१) किसी धातु या बाजे पर किये गये आघात से उत्पन्न कंप, थरथराहट, धमक, झनझनाहट। (२) रह रहकर उठने वाली टीस।

दलकना—क्रि अ [सं दलन] (१) फट या चिर जाना। (२) काँपना, थर्राना। (३) चौंकना। (४) विकल होना।

क्रि स.—डराना, भयभीत करना, भय से कँपाना।

दलकि—क्रि स [हिं दलकना] भयभीत करके, डराकर। उ.—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्हीं दलकि सृगालहिं।

दलगंजन—वि [सं.] सेना का नाश करनेवाला वीर।

दलदल—संज्ञा स्त्री [सं दलाढ्य] (१) कीचड़, पंक। (२) जमीन जहाँ बहुत कीचड हो।

मुहा—दलदल में फँसना—(१) कीचड़ से लथपथ होना। (२) किसी मुसीबत या झंझट में फँस जाना। (३) किसी काम का उलझन या झगड़े में इस तरह फँस जाना कि फैसला न हो सके, खटाई में पड़ जाना।

दलदला—वि पुं. [हिं दलदल] जहाँ कीचड़ हो।

दलदली—वि. स्त्री [हिं दलदल] (धरती) जहाँ कीचड़ हो।

दलदार—वि. [हि. दल+फ़ा. दार] मोटे दल का।

दलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दलने, पीसने या चूर करने का काम (२) नाश, संहार।

दलना—क्रि. स [सं दलन] (१) रगड़ या पीसकर चूर चूर करना। (२) रौंदना, कुचलना, दबाना मीड़ना, मसलना (३) चक्की में डालकर अनाज आदि को मोटा मोटा पीसना। (४) नष्ट-ध्वस्त करना, जीत लेना। (५) तोडना, खंड खंड करना।

वि [सं. दलन] संहार करने वाले, दलन करने वाले। उ.—गोपी लै उठाई जसुमति कै दीन्यौ अखिल असुर के दलना—१०-५४।

दलनि—संज्ञा स्त्री [हिं दलना] पीसने-दलने की क्रिया।

दलनीय—वि. [सं दलन] दलने के योग्य।

दलप—संज्ञा पुं. [सं] (१) सेनानायक। (२) सोना।

दलपति—संज्ञा पुं [सं] अगुआ, मुखिया, सेनापति।

दल-बल—संज्ञा पुं [सं] लाव-लश्कर, फौज-फाँटा।

दल बादल—संज्ञा पुं [हिं दल+बादल] (१) बादलों का समूह। (२) भारी सेना, दल-बल। (३) बड़ा शामियाना।

दलमलना—क्रि स. [हिं. दलना+मलना] (१) रौंद डालना, कुचल देना, पीस डालना। (२) नाश करना, मार डालना।

दलवाना—क्रि स. [हिं दलना का प्रे] (१) दलने पीसने का काम कराना। (२) कुचलवाना, रौंदाना। (३) नष्ट कराना।

दलवाल—संज्ञा पुं [सं दलपाल] सेनापति, सेनानायक।

दलवैया—संज्ञा पुं. [हिं दलना] दलने-पीसनेवाला।

दलसूचि—संज्ञा पुं [सं] काँटा, पत्तो का काँटा।

दलसूसा—संज्ञा स्त्री [सं दलश्रमा] पत्तो की नस।

दलहन—संज्ञा पुं. [हिं दाल+अन्न] वह अनाज जिसकी दाल दली जाती हो।

दलहरा—संज्ञा पुं [हिं दाल+हारा] दाल बेचनेवाला।

दलहा—संज्ञा पुं [हिं. थाल्हा] थाला, आलवाल।

दलाना—क्रि स. [हिं. दलना का प्रे] दलवाना-पिसवाना।

दलारा—संज्ञा पुं. [देश.] झूलनेवाला विस्तर।

दलाल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) माल बेचने-खरीदने में कुछ धन लेकर सहायता करनेवाला। (२) स्त्री-

पुरुषों को अनाचार के लिए मिलानेवाला ।

दलाली—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) दलाल या मध्यस्थ का काम । (२) दलाल को मिलनेवाला धन । उ.—भक्ति-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि । काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू, सकल दलाली देहि—१-३१० ।

दलि—क्रि. स. [हि दलना] (१) रौंद या कुचल कर । उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ । .... । क्षुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ—१-५६ । (२) कुचली जाकर, कुचल जाने पर, पीड़ित होने पर । उ.—रसना द्विज दलि दुखित होति बहु तउ रिस कहा करै—१-११७ ।

दलि-मलि—क्रि. स. [हि. दलना + मलना] नाश करके, मारकर । उ.—धनि जननी जो सुभटहि जावै । भीर परै रिपु कौ दल दलि मलि कौतुक करि दिखरावै—६-१५२ ।

दलित—वि. [सं.] (१) जो मसला या मीड़ा गया हो । (२) रौंदा या कुचला हुआ । (३) खड-खंड किया हुआ । (४) नष्ट-विनष्ट, छिन्न भिन्न ।

दलिद्र—वि. [हि. दरिद्र] निर्धन, धनहीन ।

दलिया—सज्ञा पुं. [हि. दलना] मोटा पिसा अनाज ।

दली—क्रि. स. [हि दलना] रगड़ी, मसली, मीडी, कुचली । उ.—पग सौं चाँपी पूँछ, सबै अवसान भुलायौ । चरन मसकि धरनी दली, उरग गयौ अकुलाइ—५८६ ।

वि. [सं. दलिन्] (१) दल या मोटाईवाला । (२) पत्तो से युक्त ।

दलील—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) तर्क, युक्ति । (२) बहस ।

दले—क्रि. स. [हि. दलना] नष्ट किये, मार डाले । उ.—सूरदास चिरजीवहु जुग-जुग दुष्ट दले दोउ नददुलारे—२५६६ ।

दलेपञ्ज—वि. [हिं. ढलना+पंजा] ढलती उम्र का ।

दलैया—वि. [हिं. दलना] (१) दलने-पीसने वाला । (२) मीड़ने-मसलने वाला । (३) मारने या नाश करने वाला ।

दल्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोखा । (२) पाप ।

दवँगरा—संज्ञा पुं. [देश.] वर्षा ऋतु का पहला छींटा ।

दवँरी—संज्ञा स्त्री [हिं. दँवरी] अनाज के दानदार डंठलों को बैलो से रौंदवाने की क्रिया ।

दव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन, जगल । (२) आग जो वन में पेड़ो की रगड़ से सहसा लग जाती है । उ.—द्रुम मनहुँ बेलि दव डाढी—२५३५ । (३) आग, अग्नि । उ.—आजु अजुध्या जल नहि अँचवौं ना मुख देखौं माई । सूरदास राघव के बिछुरे मरौं भवन दव लाई—६-४७ (४) आग की लपट या तपन ।

दवथु—संज्ञा पुं [स.] (१) जलन । (२) दुख ।

दवन संज्ञा पुं [स. दमन] नाश ।

दवन, दवना—संज्ञा पुं [सं. दमनक] दौना नामक पौधा ।

दवना—क्रि स. [स दव] जलाना, भस्म करना ।

दवनी—संज्ञा स्त्री. [स दमन] अनाज के सूखे पौधो को बैलो से रौंदवाने की क्रिया, मँड़ाई, दँवरी ।

दवरिया—संज्ञा स्त्री. [स. दावाग्नि] जगल की आग ।

दवा—संज्ञा पुं. [सं दव] (१) आग जो वन में सहसा लग जाती है । उ.—(क) नारी-नर सब देखि चकित भए दवा लग्यौ चहुँ कोद—५९२ । (ख) नहि दामिनि, द्रुम दवा सैल चढ़ि फिरि बयारि उलटी भर लावति—३४८५ । (२) आग, अग्नि । उ.—कालीदह के पुहुप माँगि पठए हमसौं उनि । .... । जौ नहि पठइहुँ काल्हि तौ, गोकुल दवा लगाइ—५८६ । (३) आग की लपट या तपन । उ.—जोग-अगिनि की दवा देखियत—३०१८ ।

दवा, दवाई—संज्ञा स्त्री. [फा. दवा] (१) औषध ।

मुहा.—दवा को न मिलना—जरा भी न मिलना, दुर्लभ होना ।

(२) रोग दूर करने का उपाय । (३) (किसी भाव को) मिटाने का उपाय । (४) (किसी के) उपचार या सुधारने का उपाय ।

दवाखाना—संज्ञा पुं [फा] औषधालय ।

दवागि, दवागिन, दवागी, दवाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं. दवाग्नि] दव, वन में वृक्षो की रगड़ से सहसा लगने-वाली आग, दावानल ।

दवानल—संज्ञा पुं [सं. दव+अनल] वन की आग ।
दवामी—वि. [अ.] जो सदा बना रहे, स्थायी ।
दवारि, दवारी—संज्ञा स्त्री. [सं. दवाग्नि, हिं दवागि] वनाग्नि, दावानल । उ.—दारुन दुख दवारि ज्यों तृन-वन, नाहिंन बुझति बुझाई—६-५२ ।
दश—वि [सं] (१) जो गिनती में नौ से एक अधिक हो, दस । (२) कई, बहुत से ।
दशकंठ—संज्ञा पुं [सं] दस सिर वाला, रावण ।
दशकंठजहा—संज्ञा पु [सं] रावण को मारनेवाले श्रीराम ।
दशकंठारि—संज्ञा पुं [सं दशकंठ+अरि] श्रीराम ।
दशकंध—संज्ञा पुं [सं. दश+हिं. कंध] रावण ।
दशकंधर—संज्ञा पु. [सं] रावण । उ—दशकंधर की बेगि सँहारौ दूर करौ भुव-भार—सारा. २५६ ।
दशक—संज्ञा पुं. [सं] (१) लगभग दस वस्तुओं आदि का समूह । उ.—गाउँ दशक शिरदार कहाई—१००२ । (२) सन्, सवत् आदि में दस-दस वर्षों का समूह ।
दशकर्म—संज्ञा पुं [सं.] दस सस्कार—गर्भाधान, पुसवन, सीमंतोन्नयन, जातकरण निष्क्रामण, नामकरण, अन्न-प्राशन, चुड़ाकरण, उपनयन और विवाह ।
दशगात्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) शरीर के दस प्रधान अग । (२) मृतक-सबधी एक कर्म जो मरने के बाद दस दिन तक पिंड-दान-द्वारा किया जाता है ।
दशग्रीव—संज्ञा पुं. [सं] रावण ।
दशति—संज्ञा स्त्री. [सं] सौ, शत ।
दशधा—वि. [सं] दस प्रकार या ढग का ।
क्रि. वि.—दस प्रकार से ।
दशद्वार—संज्ञा पु. [सं] शरीर के दस छिद्र—दो कान, दो आंख, दो नथुने, मुख, गुदा, लिंग और ब्रह्माड ।
दशन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दांत । उ —ज्यों गजराज काज के औसर औरे दशन देखावत—२९६३ । (२) कवच । (३) शिखर ।
दशनच्छद—संज्ञा पुं. [सं] होठ ।
दशनबीज—संज्ञा पुं. [सं.] अनार, दाड़िम ।
दशनाम—संज्ञा पुं. [सं] संन्यासियों के दस भेद—तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती भारती, पुरी ।
दशनामी—संज्ञा पुं [सं. दश+हिं. नाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो शकराचार्य के शिष्यों से चला माना जाता है ।
वि.—दशनाम से सबंधित ।
दशबल—संज्ञा पुं [सं.] बुद्धदेव, जिन्हें दस बल प्राप्त थे—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान ।
दशभूमिग, दशभूमीश—संज्ञा पुं. [सं.] दस बलों को प्राप्त करनेवाले बुद्धदेव ।
दशम—वि. [सं] दसवां ।
दशम दशा—संज्ञा स्त्री [सं] मरण, मृत्यु ।
दशमलव—संज्ञा पुं. [सं] गणित में पूर्ण इकाई से कम और उसका अंश सूचित करने वाले अंक ।
दशमांश—संज्ञा पुं [सं.] दसवां अंश या भाग ।
दशमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चांद्र मास के शुक्ल और कृष्ण पक्षों की दसवीं तिथि । (२) विमुक्त अवस्था । (३) मरण अवस्था ।
दशमुख—संज्ञा पुं [सं.] दसमुख वाला, रावण ।
दशमूल—संज्ञा पुं. [सं.] दस पेड़ों की छाल या जड़ ।
दशमौलि—संज्ञा पुं. [सं.] रावण ।
दशरथ—संज्ञा पुं. [सं.] अयोध्या के राजा जो इक्ष्वाकु-वंशी थे और जिनके चार पुत्रों में श्रीराम बड़े थे ।
दसरथसुत—संज्ञा पु [सं.] श्रीरामचद्र ।
दशरात्र—संज्ञा पु. [सं] दस रातों में होनेवाला यज्ञ ।
दशवाजी—संज्ञा पुं. [सं. दशवाजिन्] चंद्रमा ।
दशवाहु—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी, महादेव ।
दशशिर—संज्ञा पु [सं दश+शिरस्] रावण ।
दशशीर्ष—संज्ञा पुं [सं] (१) रावण । (२) एक अस्त्र जो दूसरों के अस्त्रों को निष्फल करने के लिए चलाया जाता था ।
दशशीश—संज्ञा पुं. [सं दशशीर्ष] रावण ।
दशस्यंदन—संज्ञा पुं [सं.] राजा दशरथ ।
दशहरा—संज्ञापुं. [सं.] (१) ज्येष्ठ शुक्ला दशमी जो गंगा जी की जन्म-तिथि मानी जाती है । (२) विजयादशमी ।
दशांग—संज्ञा पुं [सं] सुगंधित धूप जो पूजन के समय जलायी जाती है ।

दशांत—संज्ञा पुं [सं.] बुढ़ापा।

दशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हालत, अवस्था, स्थिति। (२) मनुष्य के जीवन की दस अवस्थाओं—गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पोगंड, यौवन, स्थविर्य, जरा, प्राणरोध और नाश—में एक। (३) साहित्य में विरही की दस अवस्थाओं—अभिलाष, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण—में एक। (४) ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाल। (५) दीपक की बत्ती। (६) चित्त। (७) कपड़े का छोर या अचल।

दशाई—संज्ञा पुं [सं] (१) दीपक (२) अचल।

दशानन—संज्ञा पुं [सं दश + आनन = मुख] रावण।

दशाश्व—संज्ञा पुं. [सं. दश+अश्व] चंद्रमा।

दशाश्वमेध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काशी का एक तीर्थ जहाँ राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा का दस अश्वमेध करना प्रसिद्ध है। (२) प्रयाग का एक घाट जहाँ का जल कभी बिगड़ता नहीं माना जाता।

दशास्य—संज्ञा पुं. [सं.] दशमुख, रावण।

दशाह—संज्ञा पुं. [सं] (१) दस दिन। (२) मृतक-कर्मों का दसवाँ दिन।

दस—वि. [सं. दश] जो पाँच का दूना हो।

मुहा.—दस बीसक—कई, बहुत से। उ.—बेसन के दस-बीसक दोना—३९६।

संज्ञा पुं—पाँच की दूनी संख्या और उसका सूचक अंक।

दसएँ—वि. [हिं. दसवाँ] दसवाँ, दसवें। उ.—दसएँ मास मोहन भए (हो) आँगन बाजे तू.—१०-४०।

दसकंठ—संज्ञा पुं. [सं. दशकंठ] रावण।

दसकंध—संज्ञा पुं. [सं. दश+स्कंध = हिं. कंध] रावण। उ.—बहुरि बीर जब गयौ अवासहि, जहाँ बसै दसकंध—९-७५।

दसकंधर—संज्ञा पुं. [सं. दशकंधर] रावण। उ.—दसकंधर मारीच निसाचर यह सुनि कै अकुलाए—९-५७।

दसक—वि. [सं. दश + हिं. एक] लगभग दस। उ.—बर्ष व्यतीत दसक जब होइ। बहुरि किसोर होइ पुनि सोइ—३-१३।

दसठौन—संज्ञा पुं. [सं. दश+स्थान] प्रसूता स्त्री का दसवें दिन का स्नान जब वह सौरी से दूसरे स्थान को जाती है।

दसन—संज्ञा पुं. [सं. दशन] दाँत। उ.—ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत—२९९३।

मुहा.—तृन दसननि लै (धरि)—दाँत में तिनका लेकर, विनयपूर्वक क्षमा-याचना करके, गिड़गिड़ाते हुए। उ.—(क) तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठनि मेलि पगा—९ ११४। (ख) हा हा करि दसननि तृन धरि धरि लोचन जलनि ढराऊँरी—१६७३।

दसना—संज्ञा पुं. [सं. दशन] दाँत। उ.—सोभित सुक-कपोल-अधर, अलप-अलप दसना—१०-९०।

क्रि. अ [हिं. डासना] बिछाया जाना, फैलना।

क्रि. स.—(बिस्तर आदि) बिछाना।

संज्ञा पुं.—बिस्तर, बिछौना, बिछावन।

क्रि. स.—[हिं. डसना] डस लेना, डंक मारना।

दसम—वि. [सं. दशम] दसवाँ, दसवें। उ.—दसम मास पुनि बाहर आवै—३-१३।

दसमाथ—संज्ञा पुं. [हिं. दस+माथ] रावण।

दसमी—संज्ञा स्त्री [सं. दशमी] चांद्र मास के कृष्ण अथवा शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि। उ.—दसमी कौ संजम बिस्तरै—९-५।

दसमौलि—संज्ञा पुं. [सं. दश+मौलि = सिर] रावण।

दसरंग—संज्ञा पुं. [हिं. दस+रंग] एक कसरत।

दसरथ—संज्ञा पुं [सं. दशरथ] अयोध्या के राजा दशरथ। उ.—दसरथ नृपति अजोध्या राव—९-१५।

दसरथकुमार—संज्ञा पुं. [सं दशरथ+कुमार = पुत्र] राजा दशरथ के पुत्र।

दसवाँ—वि. [हिं. दस] जो नौ के एक बाद हो।

दससिर—संज्ञा पुं. [सं. दश + शिरस्] रावण।

दससीस—संज्ञा पुं [सं. दशशीर्ष] रावण।

दस-स्यंदन—संज्ञा पुं. [हिं. दस+स्यंदन = रथ] राजा दशरथ।

दसहिं—संज्ञा स्त्री सवि. [हिं. दशा + हिं] दशा, स्थिति या अवस्था को। उ.—अपने तन में भेद बहुत बिधि, रसना न जानै नैन की दसहिं—३०१७।

दसांग—संज्ञा पुं. [सं दशांग] धूप जो पूजा के अवसर पर जलायी जाती है।

दसा—संज्ञा स्त्री [सं. दशा] (१) हालत, अवस्था, स्थिति। (२) बुरी हालत, दुर्दशा। उ.—नैनन दसा करी यह मेरी। आपुन भये जाइ हरि चेरे मोहिं करत हैं चेरी—पृ ३३१ (६)।

दसानन—संज्ञा पुं [सं. दश+आनन] रावण।

दसाना—क्रि. स. [हिं डासना] बिछाना,

दसारी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

दसी—संज्ञा स्त्री. [स दशा] (१) कपड़े के छोर या किनारे का सूत,। (२) कपड़े का पल्ला या आँचल। (३) पता, निशाना, चिन्ह।

दसोतरा—वि. [सं दश+उत्तर] दस से अधिक। सज्ञा पुं.—सौ में दस।

दसौं—वि. [सं. दश, हिं. दस] कुल दस, दस में प्रत्येक, दसों। उ.—दसौं दिसि तें कर्म रोक्यौ, मीन कौं ज्यौं जार—२-४।

दसौंधी—सज्ञा पुं. [सं. दास=दानपात्र+बंदी=भाट] राजाओं की वंशावली या विरुदावली का गान करने वाला, भाट। उ.—देस देस तें ढाढ़ी आये मन-वाछित फल पायौ। को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबन मन भायौ—सारा ४०५।

दस्तअंदाजी—सज्ञा स्त्री [फा] किसी काम में दखल देने या हस्तक्षेप करने की क्रिया।

दस्त—संज्ञा पुं [फा] हाथ, हस्त।

दस्तक—संज्ञा स्त्री. [फा] (१) हाथ मारकर खट खटाने की क्रिया। (२) दरवाजा खट खटाना। मुहा—दस्तक देना—दरवाजा खटखटाना। (३) मालगुजारी वसूलने का हुक्मनामा। (४) कर, महसूल, टैक्स। उ.— मोहरिल पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीत। जिम्मैं उनके, माँगैं मोतैं, यह तौ बड़ी अनीति''''। बढ़ौ तुम्हार बरामद हूँ कौ लिखि कीनौ है साफ। सूरदास की यहै बीनती, दस्तक कीजै माफ—१-१४३। मुहा—दस्तक बाँधना (लगाना) —बेकार का खर्च अपने ऊपर डालना।

दस्तकार—संज्ञा पुं. [फा.] हाथ का कारीगर।

दस्तकारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] हाथ की कारीगरी।

दस्तखत—संज्ञा पुं [फा.] हस्ताक्षर।

दस्तखती—वि. [फा. दस्तखत] जिस पर हस्ताक्षर हों।

दस्तगीर—संज्ञा पुं. [फा.] सहारा देनेवाला सहायक।

दस्तयाब—वि [फा] मिला हुआ, प्राप्त।

दस्तरखान—संज्ञा पुं [फा दस्तरख्वान] चादर जिस पर मुसलमानों के यहाँ भोजन की थाली रखी जाती है।

दस्ता—सज्ञा पुं [फा' दस्त'] (१) हाथ में आनेवाली (चीज)। (२) मूठ, बेंट। (३) फूलों का गुच्छा, गुलदस्ता। (४) सिपाहियों की छोटी टुकड़ी। (५) चौबीस कागजों की गड्डी। (६) डंडा सोंटा।

दस्ताना—संज्ञा पुं. [फा. दस्तान'] हाथ का मोजा।

दस्तावेज—संज्ञा पुं [फा] वह पत्र पर जिस पर कुछ शर्तें तय करके दोनों पक्ष हस्ताक्षर करें।

दस्ती—वि [फा. दस्त=हाथ] हाथ का। संज्ञा स्त्री.—(१) मशाल। (२) छोटी मूठ। (३) विजयादशमी के दिन राजा द्वारा सरदारों में बाँटी जानेवाली सौगात।

दस्तूर—संज्ञा पुं. [फा] (१) रीति-रिवाज, रस्म, प्रथा। (२) नियम, कायदा।

दस्तूरी—संज्ञा स्त्री. [फा.] दूकानदारों द्वारा धनियों के नौकरों को खरीदारी करने पर दिया जानेवाला इनाम।

दस्यु—सज्ञा पुं [स.] (१) डाकू। (२) असुर।

दस्युता—संज्ञा स्त्री [सं] (१) लुटेरापन, डकैती। (२) क्रूरता, दुष्टता।

दस्युवृत्ति—सज्ञा स्त्री [सं] (१) डकैती, चोरी। (२) क्रूरता, दुष्टता। सज्ञा पुं [स] दस्युओं को मारनेवाले, इंद्र।

दस्र—वि [स] हिंसा करने वाला।

दह—सज्ञा पुं. [सं ह्रद] (१) नदी का भीतरी गड्ढा, पाल। उ.—लै बसुदेव धँसे दह सामुहिं तिहूँ लोक उजियारे हो। (२) कुंड, हौज। संज्ञा स्त्री. [सं. दहन] ज्वाला, लपट लौ। वि [फा] दस। उ—(क) भादौं घोर रात अँधियारी। द्वार कपाट कोट भट रोके दह दिसि कंस

भय भारी। (ख) गो-सुत गाइ फिरत हैं दह दिसि बने चरित्र न थोरे—२६६४।

दहिए—क्रि. स. [हि दहना] जलिए, भस्म होइए। उ.—कै दहिए दारुन दावानल जाइ जमुन धँसि लीजै—२८६४।

दहक—संज्ञा स्त्री. [सं. दहन] (१) आग की धधक। (२) ज्वाला, लपट। (३) शर्म, लज्जा।

दहकन—संज्ञा स्त्री.[हिं. दहकना] आग दहकने की क्रिया।

दहकना—क्रि. अ [सं. दहन] (१) लपट लौ या धधक के साथ जलना। (२) शरीर का तपना।

दहकाना—क्रि. स. [हिं दहकना] (१) लपट या धधक के साथ आग जलाना। (२) क्रोध दिलाना।

दहगी—संज्ञा स्त्री. [हि दाह+आग] ताप, गरमी।

दहड़-दहड़—क्रि. वि [अनु] धांय-धांयं करके या लपट के साथ (जलना)।

दहत—क्रि. स. पुं [हि दहना] जलाता या भस्म करता है। उ.—(क) उलटी गाढ परी दुर्वासैं, दहत सुदरसन जाकौं—१-११३। (ख) पावक जथा दहत सबही दल तूल-सुमेरु-समान—१-२६६।

दहति—क्रि. स. [हि दहना] क्रोध से संतप्त करती है, कुढाती है। उ.—कुँवरि सौं कहति वृषभानु घरनी। नैंकु नहिं घर रहति, तोहिं कितनौ कहति, रिसनि मोहि दहति, बन भई हरनी—६६८।

दहदल—संज्ञा स्त्री, [हि दलदल] कीचड़, दलदल।

दहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जलनें या भस्म होनें की क्रिया। (२) अग्नि, आग। (३) कृत्तिका नक्षत्र। (४) तीन की संख्या। (५) चीता पशु। (६) एक रुद्र।

दहनकेतन—संज्ञा पुं. [स०] धूम, धुआँ।

दहनशील—वि [सं.] जलनेवाला।

दहना—क्रि अ. [सं. दहन] (१) जलना, भस्म होना। (२) क्रोध से कुढना, झुँझलाना।

क्रि. स. (१) जलाना भस्म करना। (२) दुखी करना, कष्ट पहुँचाना। (३) कुढाना।

क्रि. अ. [हिं. दह] धँसना, नीचे बैठना।

वि. [हिं. दहिना] बायाँ का उलटा, दहिना।

दहनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. दहना] जलने की क्रिया।

दहनीय—वि. [सं.] जलने या जलाये जाने योग्य।

दहनोपल—संज्ञा पुं. [सं दहन+उपल] (१) सूर्यकांत मणि। (२) आतशी शीशा।

दहपट—वि. [फा. दह=दस, दसो दिशा+पट=समतल] (१) ध्वस्त, नष्टभ्रष्ट, ढाया हुआ। उ.—तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठन मेलि पगा। सूरदास प्रभु रघुपति आए, दहपट होई लंका ६-११४। (२) रौंदा या कुचला हुआ।

दहपटना- क्रि. स [हिं दहपट] (१) ढा देना, नष्ट या चौपट करना। (२) रौंदना, कुचलना।

दहपट्टे—क्रि स [हिं. दहपट] नष्ट किये, ध्वस्त कर दिये। उ.—तब बिलंब नहिं कियौ, सबै दानव दहपट्टे—१-१८०।

दहवासी—संज्ञा पुं [फा. दह=दस+वासी (प्रत्य.)] दस सैनिकों का नायक।

दहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटा चूहा। (२) छछूंदर। (३) भाई, भ्राता। (४) बालक। (५) नरक।

वि.—(१) छोटा। (२) सूक्ष्म। (३) दुर्बोध।

संज्ञा पुं [सं. ह्रद] (१) नदी का गहरा गड्ढा, दह। उ.—अति अचगरी करत मोहन पटकि गेंडुरी दहर। (२) कुंड, हौज।

क्रि. स [हिं. दहलाना] दहला कर, भयभीत करके। उ – सूर प्रभु आय गोकुल प्रगट भए संतन हैं हरख, दुष्ट जन मन दहर के।

दहर-दहर—क्रि वि [अनु०] धू-धू या धायँ-धायँ के साथ (जलते हुए)।

दहरना—क्रि अ [हि दहलना] भयभीत होना, डरना।

क्रि स—[हिं. दहलाना] भयभीत करना।

दहराकाश—संज्ञा पुं [स.] ईश्वर।

दहरौरा—संज्ञा पुं [हि दह+बड़ा] (१) दहीवड़ा। (२) गुलगुला-विशेष।

दहल—संज्ञा स्त्री [हि दहलना] डर से काँपने की क्रिया।

दहलना—क्रि अ. [स. दर=डर+हि. हलना=हिलना] डर से चौंकना या काँप उठना।

मुहा.—कलेजा (जी) दहलना—डर से छाती धक धक करना।

दहला—संज्ञा पुं. [फ़ा. दह=दस+ला (प्रत्य०)] ताश (खेल) का वह पत्ता जिसमें दस चिन्ह या बूटियाँ हों।

संज्ञा पुं. [स. थल] थाला, थाँवला।

दहलाना—क्रि. स. [हि. दहलना] भयभीत करना।

दहलीज—संज्ञा स्त्री. [फ़ा दहलाज] (१) बाहरी द्वार के चौखट की निचली लकड़ी, देहली, डेहरी। (२) बाहरी द्वार से मिला कोठा।

मुहा.—दहलीज का कुत्ता—हर समय पीछे लगा रहने वाला। दहलीज न झाँकना बैर या ईर्ष्या के कारण किसी के द्वारा पर न जाना। दहलीज की मिट्टी ले डालना—बार-बार किसी के दरवाजे पर जाना।

दहशत—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] डर, भय, शोक।

दहाई—संज्ञा स्त्री [फ़ा. दह=दस] (१) दस का मान या भाव। (२) दो अंकों की संख्या में बायाँ अंक जो दसगुने का बोधक होता है।

क्रि स. [हिं. दहाना] जलाकर, भस्म करके।

दहाड—संज्ञा स्त्री [अनु] (१) जोर की गरज, घोर गर्जन। (२) जोर से रोने-चिल्लाने की ध्वनि।

दहाड़ना—क्रि. अ. [अनु] (१) जोर से गरजना या चिल्लाना। (२) चिल्ला-चिल्ला कर रोना।

दहाना—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) चौड़ा मुँह या द्वार। (२) स्थान जहाँ एक नदी दूसरी से या समुद्र से मिलती है।

दहार—संज्ञा पुं [अ. दयार=प्रदेश] (१) प्रांत, प्रदेश (२) आसपास का प्रदेश।

दहिंगल—संज्ञा पुं [देश.] एक चिड़िया।

दहिजार—संज्ञा पुं [हि दाढ़ीजार] पुरुषों के लिए स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एक गाली।

दहिना—वि. [स दक्षिण] बायाँ का उलटा।

दहिनावत—वि [सं. दक्षिणावर्त] (१) जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो दाहिनी ओर घूमा हुआ।

संज्ञा पुं—दाहिनी ओर से चारो ओर घूमने की क्रिया या भाव। उ—दहिनावर्त देत ध्रुव तारे सकल नखत बहु बार—सारा. १७६।

दहिने—क्रि. वि. [हिं. दहिना] दाहिनी ओर को। उ.—दहिने देखि मृगन की मालहि—२४८३।

मुहा.—दहिने होना-अनुकूल होना, प्रसन्न होना। दहिने बायें- इधर-उधर, दोनों ओर।

दहिनैं—क्रि. वि. [हि दाहिना] दायीं ओर, दाहने हाथ की तरफ। उ.—देखें नद चले घर आवत। पैठत पौरि छींक भई बाँए, दहिनैं धाह सुनावत—५४१।

दहियो—संज्ञा पुं. [हि. दहना=जलना] जलने या भस्म होने का कार्य, भाव, प्रसंग, या स्थिति। उ.—देखे जात अपनी इन अँखियन या तन को दहियो-३४१४।

दहियक—संज्ञा पुं. [फ़ा. दह=दस] दसवाँ हिस्सा।

दहियत—क्रि. स. [हिं. दहना] (१ संतप्त करते हैं, दुख देते हैं। (२) जलाते हैं, भस्म करते हैं। उ—(क) ते बेली कैसैं दहियत हैं, जे अपनैं रस भेइ—१०००। (ख) चदन चद-किरनि पावक सम मिलि मिलि या तन दहियत—२३००। (ग) जरासंध पै जाय पुकारी महा क्रोध मन दहियत—सारा. ५६६।

दहियल—संज्ञा पुं. [हि. दहला] थाला, थाँवला।

दहियौ—संज्ञा पुं. [हिं. दही] दधि, दही। उ.—मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ—१०-३१३।

दही—संज्ञा पुं. [सं. दधि] खटाई डालकर जमाया हुआ दूध, दधि।

मुहा—दही दही करना—कोई चीज मोल लेने के लिए जगह-जगह लोगों से कहते फिरना।

क्रि. अ. [हि. दहना] जली संतप्त हुई। उ.—(क) चितवति रही ठगी सी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु, काम दही—३००४। (ख) अब इन जोग-सँदेसन सुनि-सुनि बिरहिनि बिरह दही—३३४४।

दहुँ, दहु—अव्य. [सं. अथवा] (१) या, अथवा। (२) कदाचित्।

दहेगर—संज्ञा पुं. [हि. दही+घड़ा] दही का घड़ा।

दहेंडी—संज्ञा स्त्री. [हि. दही+हंडी] दही की हंडी।

दहेज—संज्ञा पुं [अ. जहेज] विवाह में कन्या की ओर से वर-पक्ष को दिया जानेवाला धन और सामान, दायजा, यौतुक।

दहेला—वि. [हि. दहला+एला (प्रत्य.)] (१) जला हुआ। (२) दुखी, संतप्त।

वि. [हि. ठिठुरना] भीगा या ठिठुरा हुआ।

दहेली—वि. [हि. दहेला] दुखी, सतप्त। उ.—सुनि सजनी मैं रही अकेली विरह दहेली इत गुरु जन झहरैं—१६७१।

दहोतरसो—संज्ञा पुं. [सं. दशोत्तरशत] एक सौ दस।

दहै—क्रि. स. [सं. दहन, हि. दहना] (१) जलाती है, भस्म करती है। उ.—अगिनि बिना जानैं जो गहै। तातकाल सो ताकौं दहै—६-४। (२) संतप्त करे, दुख पहुँचाती है। उ.—(क) यह आसा पापिनी दहै। तजि सेवा बैकुठनाथ की, नीच नरनि कैं संग रहै—१-५३। (ख) देहऽभिमान ताहि नहिं दहै—३-१३। (३) क्रोध दिलाती है, कुढ़ाती है। (४) नष्ट करता या मिटाता है, क्षीण करता है। उ.—त्यौं जो हरि बिन जानैं कहै। सो सब अपने पापनि दहै-६-४।

दहो—क्रि. स. [हि. दहना] भस्म किया, जलाया। उ.—निगड़ तोरि मिलि मात-पिता को हरष अनल करि दुखहि दहो—२६४४।

दहौं—क्रि. अ. [हिं. दहना] जलता हूँ, बलता हूँ, भस्म होता हूँ। उ.—और इहाँउ बिवेक अगिनि के बिरह-बिदाक दहौं—३-२।

क्रि. स.—मिटाऊँ, नष्ट कर दूं। उ.—(क) तेरे सब सदेहैं दहौं—३-१३। (ख) तेरे सब संदेहनि दहौं—४-१२।

दहौंगौ—क्रि. स. [हि दहना] मिटा दूंगा, नष्ट कर दूंगा। उ.—सूर स्याम कहै कर गहि ल्याऊँ, ससि-तन-दाप दहौंगौ—१०-१६४।

दहौ—क्रि. स. [सं दहन, हि. दहना] नष्ट करो, दूर करो, भस्म कर दो। उ.-इहौं कपिल सो माता कह्यौ। प्रभु मेरौ अज्ञान तुम दहौ—३-१३।

दह्य—वि. [सं.] जो जल सकता हो।

दह्यो, दह्यौ—क्रि स. [हि. दहना] (१) जलाया, भस्म किया। (२) मारा, नाश किया। उ —भक्तबछल बपु धरि नरकेहरि, दनुज दह्यौ, उर दरि सुरसाँईं-१-६।

क्रि. अ.—जला, सतप्त हुआ। उ.—सुनि ताको अंतर्गत दह्यौ—१० उ-७।

संज्ञा पुं. [हि. दही] दही। उ.—(क) सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठो पय पीजै—१०-१६०। (ख) जाको राज-रोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४५। (ग) कृष्ण छाँड़ि गोकुल कत आये चाखन दूध दह्यौ—२६६७।

दाँ—संज्ञा पुं. [सं. दाम् (प्रत्य)] दफा, बार।

संज्ञा पुं. [फा] ज्ञाता, जानकार।

दाँई—वि. स्त्री [हि. दायाँ] दाहिनी ओर की।

संज्ञा स्त्री. [हि. दाई] बारी, बार, दफा।

दाँउ—संज्ञा पुं. [हि. दाँव] अवसर, मौका, दाउँ। उ.—यक ऐसेहि झकझोरति मोको पायौ नीकौ दाँउ—१६१३।

दाँक—संज्ञा स्त्री. [सं द्राव = चिल्लाना] दहाड़, गर्जन।

दाँकना—क्रि. अ. [हिं. दाँक + ना] गरजना, दहाड़ना।

दाँकै—क्रि. अ. [हि. दाँकना] गरज कर, दहाड़ कर। उ.—जैसे सिंह आपु मुख निरखै परै कूप में दाँकै हो।

दाँग—संज्ञा स्त्री. [फा.] दिशा, ओर।

संज्ञा पुं. [हि. डंका] नगाड़ा, डंका।

संज्ञा पुं. [हिं. डूँगर] (१) टीला। (२) शृंग।

दाँगर—संज्ञा पुं [हि. डाँगर] (१) पशु। (२) मूर्ख।

वि.—जो बहुत दुबला-पतला हो।

दाँज—संज्ञा स्त्री. [सं. उदाहार्य] बराबरी, समता।

दाँड़ना—क्रि. स. [सं. दंड] (१) दड देना। (२) अर्थ-दंड देना, जुरमाना करना।

दाँडाजिनिक—संज्ञा पुं. [सं.] साधु-वेश में (दड-आदि धारण करके) धोखा देनेवाला।

दाँडिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दंड देनेवाला। (२) जल्लाद।

दाँड़ी—संज्ञा पुं. [हि. डाँड़] (१) डंडा। (२) सीमा।

संज्ञा स्त्री—(१) डंडी (२) डंडे में बँधी झोली की सवारी, झप्पान।

दाँत—संज्ञा पुं. [सं. दंत] (१) दंत, रद, दशन।

यौ.—दाँत का चौका—सामने के चार दाँत।

मुहा.—दाँत उखाड़ना—कठिन दंड देना, मुँह तोड़ना। दाँतों (तले) उँगली काटना (दबाना)—(१) चकित होना, दंग रह जाना। (२) दुख या खेद प्रकट करना। (३) संकेत से मना करना।

दाँत काटी रोटी—बहुत घनिष्ठता, गहरी दोस्ती। दाँत काढ़ना (निकालना)—(१) खीसें बाना, व्यर्थ ही हँसना। (२) दीनता दिखाना, गिड़गिडाना। दाँत किटकिटाना (किचकिचाना, पीसना)—(१) बहुत जोर लगाना। (२) बहुत क्रोध करना। दाँत पीसि—बहुत क्रोध करके, बहुत झुंझला कर। उ.—सूर केस नहि टारि सकै कोउ दाँत पीसि जौ जग मरै—१·२३४। दाँत किरकिरे होना—हार मानना। दाँत कुरेदने को तिनका न रहना—सब कुछ चला जाना। दाँत खट्टे करना—(१) खूब हैरान करना। (२) बुरी तरह हराना। दाँत खट्टे होना—(१) हैरान होना। (२) हार जाना। (किसी पर) दाँत गड़ना (लगना)—(१) दाँत चुभने से घाव हो जाना। (२) लेने या पाने की बहुत इच्छा होना। (किसी के) दाँतों चढना—(१) किसी को खटकना या बुरा लगना। (२) किसी की टोक या हूँस लगना। (किसी को) दाँतों चढाना—(१) बुरी दृष्टि से देखना। (२) नजर लगाना। दाँत चबाना—क्रोध से दाँत पीसना। दाँत चबात—क्रोध से दाँत पीसते हुए। उ.—मेरी देह छुटत जम पठए जितक दूत घर मो। दाँत चबात चले जमपुर तैं धाम हमारे को—१-१५१। दाँत जमना—दाँत निकालना। दाँत झाड़ देना—बहुत दंड देना, मुह तोड़ना। दाँत गिरना (झड़ना, टूटना)—बुढ़ापा आना। दाँत तोड़ना—(१) हैरान करना। (२) कठिन दंड देना। दाँत दिखाना—(१) हँसना। (२) डराना। (३) अपना बड़प्पन दिखाना। दाँत देखना—दाँत गिनना, परखना। दाँतों धरती पकड़कर—बड़ी तकलीफ और किफायत से। दाँत न लगाना—बिना चबाये निगलना। किसी चीज का दाँत निकाल देना, निकासना—(दाँत काढना) फट जाना। दाँत निपोरना—(१) व्यर्थ ही हँसना। (२) गिड़गिड़ाना। दाँत पर न रखा जाना—बहुत ही खट्टा होना। दाँत पर मैल जमना—बहुत ही निर्धन होना। दाँत पर रखना—चखना। दाँतों पसीना आना—बहुत कठिन परिश्रम करना। दाँत बजना—सर्दी से दाँत बजना। दाँत मसमसाना (मीसना)—क्रोध से दाँत पीसना। दाँतों में जीभ-सा होना—बैरियो या शत्रुओ के बीच में रहना। दाँतों में तिनका लेना—बहुत गिड़गिड़ाना, विनती करना। (किसी चीज पर) दाँत रखना (लगना)—लेने या पाने की इच्छा रखना। (किसी व्यक्ति पर) दाँत रखना—बदला लेने या वैर निकालने की इच्छा रखना। दाँतों से उठाना—बड़ी कंजूसी से जुगा कर रखना। (किसी पर) दाँत होना—(१) प्राप्त करने की इच्छा होना। (२) बदला लेने की इच्छा रखना। (किसी के) तालू में दाँत जमना—शामत आना।

(२) दाँत या अंकुर की तरह किसी चीज का नुकीला भाग, दंदाना, दाँता।

दाँत—वि. [सं.] (१) दबाया हुआ, दमन किया हुआ। (२) जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। (३) दाँत से संबंध रखनेवाला।

दाँतना—क्रि. अ. [हिं. दाँत] (पशुओं आदि का) दाँत वाला होकर जवान होना।

दाँतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाट] काग, डाट।

दाँता—संज्ञा पुं. [हिं दाँत] दंदाना, नुकीला कँगूरा आदि।

दाँताकिटकिट, दाँताकिलकिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाँत+किटकिटाना] (१) कहा सुनी, झगड़ा। (२) गाली, गलौज।

दाँति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इंद्रियो का दमन, सहन-शक्ति। (२) अधीनता। (३) विनय, नम्रता।

दाँती—संज्ञा स्त्री [सं दात्री] हँसिया।

संज्ञा स्त्री. [हिं. दाँत] (१) दाँतों की पंक्ति, बत्तीसी। (२) सँकरा पहाड़ी मार्ग, दर्रा।

दांपत्य—वि. [सं.] पति पत्नी-संबंधी।

संज्ञा पुं.—पति-पत्नी का प्रेम-व्यवहार।

दांभिक—वि [सं.] (१) पाखंडी। (२) घमंडी।

संज्ञा पु.—बगला, बक।

दाँव, दाव—संज्ञा पु [हिं. दाँव] अवसर, दांव।

दाँवनी—संज्ञा स्त्री. [सं दामिनी] एक गहना, दामिनी।

दाँवरि, दाँवरी—संज्ञा. स्त्री. [सं दाम, हिं. दाँवरी] रस्सी, डोरी। उ—(क) दधि-मिस आपु बँधायौ

दौंवरि सुत कुबेर के तारे—१-२५। (ख) वेद-उपनिषद जासु कौं निरगुनहिं बतावैं। सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै - १-४।

दा—संज्ञा पुं. [अनु.] सितार का एक बोल।

प्रत्य० स्त्री०—देनेवाली, दात्री।

दाइँ दाइ—संज्ञा पुं. [हिं. दाँव] (१) बार, दफा। उ.—एक दाइँ मरिबो पै मरिबो नदनँदन के काजनि—२८७२। (२) दाँव।

दाइ—संज्ञा स्त्री. [हिं दाई] वह स्त्री जो स्त्रियों को बच्चा जनने में सहायता देती है, दाई। उ.—लाख टका अरु झूमका सारी दाइ कौ नेग—१०-४०।

दाइज, दाइजा, दाइजो—संज्ञा पुं. [सं. दाय] वह धन जो विवाह में वर-पक्ष को दिया जाय। उ.—(क) दसरथ चले अवध आनंदत। जनकराइ बहु दाइज दै करि, बार-बार पद वंदत—६-२७। (ख) कहूँ सुत-ब्याह कहूँ कन्या को देत दाइजो रोई।

दाईं—वि. स्त्री. [हिं. दायाँ] दाहिनी।

संज्ञा स्त्री. [सं दाच् (प्रत्य.), हिं. दाँ (प्रत्य.)] बार, दफा।

दाई—संज्ञा स्त्री. [सं. धात्री या फा. दाय:] (१) दूसरे के बच्चे को दूध पिला कर पालनेवाली, धाय। (२) बच्चे की देखभाल करनेवाली सेविका। (३) वह स्त्री जो बच्चा जनने में सहायता देती है। उ.—झगरिनि तैं मैं बहुत खिझाई। वचन-हार दिएँ नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई—१०-१६।

मुहा.—दाई से पेट छिपाना (दुराना)—जानने वाले से कोई भेद छिपाना। दाई आगे पेट दुरावति—रहस्य या भेद जाननेवाले से कोई बात छिपाती है। उ.—औरनि सौं दुराव जो करती तौ हम कहती भली सयानी। दाई आगे पेट दुरावति वाकी बुद्धि आज मैं जानी—१२६२।

संज्ञा स्त्री. [हिं दादी] (१) दादी। (२) बूढ़ी स्त्री।

वि. [हिं. दायी] देनेवाला।

दाँउ, दाउ—संज्ञा पुं. [हिं. दाँव (१) बार, दफा, मरतबा। (२) बारी, पारी। (३) मौका, उपयुक्त अवसर या संयोग। उ.—यक ऐसिहि झकझोरिति मोसौ पायौ नीवौ दाउँ—पृ. ३१३ (१३)।

मुहा.—दाँउ लेना—बुरे या अनुचित व्यवहार का बदला लेना। लैहौं दाउँ—पिछले अनुचित व्यवहार का बदला लूँगा। उ.—(क) असुर क्रोध ह्वै कह्यौ बहुत तुम असुर सँहारे। अब लैहौं वह दाँउ छाँड़िहौं नहिं बिन मारे—३-११। (ख) सूर स्याम सोइ सोइ हम करिहैं, जोइ जोइ तुम सब कैहौ। लैहैं दाँउ कबहुँ हम तुमसौं, बहुरि कहाँ तुम जैहौ—७९३। लेत दाँउ—बदला लेता है, जैसा व्यवहार किया गया था, वैसा ही उत्तर देता है। उ.—मारि भजत जो जाहि, ताहि सो मारत, लेत अपनौ दाँउ—५३३। लयौ दाउ—बदला ले लिया, प्रतिकार कर लिया। उ.—मेरे आगैं महरि जसोदा, तोवौं गारी दीन्ही। ""। तोसौं कहि पुनि कह्यौ बबा कौं, बड़ौ धूत वृषभान। तब मैं कह्यौ, ठग्यौ कब तुमकौं हँसि लागी लपटान। भली कही तू मेरी बेटी, लयौ आपनौ दाउ—७०६। दाँव लियौ—बदला लिया। उ.—और सकल नागरि नारिनि कौं दासी दाँउ लियौ—३०८७।

(४) मतलब गाँठने का उपाय, चाल या युक्ति। (५) कुश्ती जीतने का पेच या बंद। उ.—तब हरि मिले मल्लक्रीड़ा करि बहु बिधि दाँउ दिखाये—सारा. ५२१।

यौ०—दाँउ-घात—दाँव-पेच, जीत के उपाय, युक्ति। उ.—यह बालक धौं कौन को कीन्हौ जुद्ध बनाइ। दाँउ-घात बहुतैं कियौ, मरत नहीं जदुराइ—५८६।

(६) छल-कपट का व्यवहार। उ.—अब करति चतुराई जाने स्याम पढाये दाँउ १२८३। (७) खेलने की बारी या पारी, चाल। (८) जीत की कौड़ी या पाँसा। उ.—(क) दाउ बलराम को देखि उन छल कियो रुकम जीत्यौ कहन लगे सारे। देववानी भई, जीत भई राम की, ताहू पै मूढ़ नाहीं सँभारे—१० उ. ३३। (ख) दाँउ अबकैं परयौ पूरौ, कुमति पिछली हारि—१-३०६।

मुहा.—दाँउ देना—खेल में हारने पर दूसरे को खिलाना या नियत दंड भोगना। दाँउ देत नहिं—हारने पर भी दूसरे को खेलने नहीं देते। उ.—तुम्हरे संग कहो को खेलै दाउँ देत नहिं करत कन्हैया। दाँउ दियौ—स्वयं हारने के बाद जीतनेवाले को खिलाया। उ.—रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ। सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाँउ दियौ करि नंद-दुहैया—१०-२४५।

दाऊ—संज्ञा पुं. [सं. देव] (१) अवस्था में बड़ा भाई, बड़े भैया। (२) श्री कृष्ण के भाई, बलराम। उ.—(क) दाऊ जू, कहि स्याम पुकार्‌यौ—४८७। (ख) मैया री मोहिं दाऊ टेरत—४०४।

दाक्षायण—संज्ञा पुं [सं] (१) सोना, स्वर्ण। (२) स्वर्णमुद्रा। (३) दक्ष प्रजापति का किया हुआ एक यज्ञ।

वि.—(१) दक्ष से उत्पन्न। (२) दक्षसंबंधी।

दाक्षायणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दक्ष-कन्या। (२) दुर्गा।

वि. [सं. दाक्षायणिन] सोने का, स्वर्णमय।

दाक्षिण—वि. [सं.] (१) दक्षिण-संबंधी। (२) दक्षिणा-संबंधी।

दाक्षिणात्य—वि. [सं.] दक्षिण का दक्षिणी।

संज्ञा पुं—(१) भारत का दक्षिणी भाग। (२) इस भाग का निवासी। (३) नारियल।

दाक्षिण्य—संज्ञा पुं [सं.] (१) प्रसन्नता, अनुकूलता। (२) उदारता। (३) दूसरे को प्रसन्न करने का भाव।

वि.—(१) दक्षिण-संबंधी। (२) दक्षिणा-संबंधी।

दाक्षी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दक्ष की कन्या।

दाक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं] दक्षता, निपुणता, कौशल।

दाख—संज्ञा स्त्री. [सं द्राक्षा] (१) अंगूर। (२) मुनक्का-किशमिश। उ.—ऊधौ मन मान की बात। दाख-छुहारा छाँड़ि अमृत-फल विष-कीरा विष खात ४०२१।

दाखिल—वि [फा] (१) प्रविष्ट, घुसा हुआ। (२) मिला हुआ, सम्मिलित। (३) पहुँचा हुआ।

दाखिला—संज्ञा पुं. [फा] (१) प्रवेश, पैठ। (२) सम्मिलित किये जाने का कार्य।

दाखी—संज्ञा स्त्री. [सं. दाक्षी] दक्ष की कन्या।

दाग—संज्ञा पुं. [सं. दग्ध] (१) जलाने का काम, दाह। (२) मुर्दा जलाने का काम, दाह-कर्म। (३) जलन, जलने की वेदना। उ.—मिलिहै हृदय सिराइ स्त्रवन सुनि मेटि बिरह के दाग—२६४८। (४) जलने का चिह्न।

संज्ञा पुं [फा. दाग] (१) धब्बा, चित्ती। (२) निशान, चिह्न। उ.—(क) कुंडल मकर कपोलनि झलकत स्रम सीकर के दाग—१२१४। (ख) दसन-दाग नख-रेख बनी है—१६५६। (३) फल आदि के सड़ने का निशान। (४) कलंक, दोष।

दागदार—वि. [फा.] (१) दागी। (२) धब्बेदार।

दागना—क्रि स [हिं. दाग] (१) जलाना, दग्ध करना। (२) तपे हुए लोहे से चिह्न डालना। (३) धातु के तप्त साँचे से चिह्न डालना। (४) तेज दवा से फोड़े-फुंसी को जलाना। (५) बंदूक आदि में बत्ती देना या आग लगाना।

क्रि. स. [फा. दाग] रंग आदि से चिह्न अंकित करना।

दागबेल—संज्ञा स्त्री. [फा. दाग+हिं बेल] कच्ची भूमि पर सिधान के लिए फावड़े आदि से बनाये हुए चिह्न।

दागर—वि. [हिं. दागना ?] नष्ट करनेवाला, नाशक।

दागी—वि. [फा. दाग] (१) जिस पर दाग-धब्बा लगा हो। (२) जिस पर सड़ने का निशान हो। (३) जिसको कलंक लगाया गया हो, कलंकित। (४) जिसे दंड मिल चुका हो, दंडित।

क्रि स. [हिं. दागना] जलायी, भस्म की।

दागे—क्रि. स [फा. दाग] रंग आदि के चिन्ह अंकित किये। उ.—कबहुँक बैठि अंस भुज धरि कै पीक कपोलनि दागे।

दाग्यौ—क्रि स. [हिं. दागना] (१) दाग लगाया, जलाकर कोई चिन्ह बनाया, छाप, लगायी। उ.—तौ तुम कोऊ तार्‌यौ नहिं जो मोसौं पतित न दाग्यौ—१-७३। (२) रंग आदि से चिह्नित किया। उ.—

कबहुँक जावक कहुँ बने तमोर रँग कहुँ अंग रँगुर दाग्यौ—१६७२।

दाघ—संज्ञा पुं. [सं.] गरमी, ताप, दाह, जलन।

दाज, दाझ—संज्ञा पुं [सं. दाहन] (१) अँधेरा। (२) अँधेरी रात।

दाजन, दाझन—संज्ञा स्त्री. [सं. दहन] जलन।

दाजना, दाझना—क्रि. अ. [सं. दग्ध] जलना, ईर्ष्या करना, द्वेष रखना।

क्रि. स.-जलाना, संतप्त करना।

दाड़क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दाढ़, डाढ़। (२) दाँत।

दाड़िम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनार। उ.—दाड़िम दामिनि कुदकली मिलि बाढ़यौ बहुत बखान—सा. उ.—१५। (२) इलाइची।

दाड़िमप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] तोता, शुक।

दाड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. दाड़िम] अनार, दाड़िम।

दाढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. दंष्ट्र, प्रा. डड्ढा] दंत-पंक्तियों के दोनों छोर पर के चौड़े दाँत, चौभर।

मुहा.—दाढ़ गरम होना - भोजन मिलना।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) दहाड़, (२) चिल्लाहट।

मुहा.—दाढ़ मारकर रोना—चिल्लाकर रोना।

दाढ़ना—क्रि. स. [सं. दाहन] (१) आग में जलना या भस्म होना, (२) संतप्त या दुखी करना।

दाढ़ा—संज्ञा पुं. [हिं. दाह] (१) वन की आग। (२) आग। (३) दाह जलन।

मुहा.—दाढ़ा फूँकना - जलन पैदा करना।

दाढ़िक, दाढ़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. दाढ़] (१) ठोढ़ी, ठुड्डी। (२) गाल, दाढ़ और ठुड्डी के बाल।

दाढ़ीजार—संज्ञा पुं. [हिं.दाढ़ी+जलना] (१) वह जिसकी दाढ़ी जली हो। (२) मूर्ख पुरुषों केलिए झुँझलायी हुई स्त्रियों की एक गाली।

दात—संज्ञा पुं. [सं. दाता] देनेवाला। उ.—जाके सखा स्यामसुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दात-१०३.५६।

संज्ञा पुं. [सं. दातव्य] दान। उ.—गोकुल बजत सुनो बधाई लोगनि हियें सुहात। सूरदास आनंद नंद कैं देत बसन हय गज दात—१०-१२।

दातव्य—वि [सं.] देने योग्य।

संज्ञा पुं.-(१) दान देने की क्रिया। (२) उदारता।

दाता—संज्ञा पुं [सं.] (१) वह जो दान दे, दानी। (२) देनेवाला। (३) उदार।

दातापन—संज्ञा पुं [सं. दाता+हिं. पन] दानशीलता।

दातार—संज्ञा पुं [सं दाता का बहु.] देनेवाले, दाता। उ.—कासौं नाम बताऊँ तोकौं। दुखदायक अदृष्ट मम मोकौं। कहियत इतने दुख दातार—९-२६०।

दाती—संज्ञा स्त्री. [सं. दात्री] देनेवाली। उ.—पलित केस कफ कंठ बिरोध्यौ कल न परै दिन राती। माया-मोह न छाँडे तृष्ना ए दोऊ दुख-दाती।

दातुन, दतून, दातौन—संज्ञा स्त्री. [हिं. दतुवन] (१) दाँत साफ करने की क्रिया। (२) नीम, बबूल आदि की छोटी टहनी का एक बालिश्त के बराबर टुकड़ा, जिससे दाँत साफ किये जाते हैं।

दातृता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दानशीलता, उदारता।

दातृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] दानीपन, उदारता।

दात्र—संज्ञा पुं. [सं.] हँसिया, दाँती।

दात्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] देनेवाली।

संज्ञा स्त्री. [सं. दात्र] हँसिया, दाँती।

दाद—संज्ञा स्त्री. [सं. दद्रु] एक चर्मरोग।

संज्ञा स्त्री.—[फा.] इंसाफ, न्याय।

मुहा.—दाद चाहना—अन्याय या अत्याचार के विरोध या प्रतिकार की प्रार्थना करना। दाद देना—(१) न्याय या इंसाफ करना। (२) प्रशंसा या बड़ाई करना, सराहना।

दादनी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) रकम जो चुकानी हो। (२) रकम जो अग्रिम दी जाय।

दादर—संज्ञा पुं [हिं दादुर] मेढक, मंडूक। उ.—ज्यौं पावस रितु घन-प्रथम घोर। जल जीवक, दादर रटत मोर—६-१६६।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का चलता गाना।

दादरा—संज्ञा पुं [देश.] एक तरह का चलता गाना।

दादस—संज्ञा स्त्री [हिं. दादा+सास] सास की सास।

दादा—संज्ञा पुं [सं. तात] (१) पिता के पिता, पितामह। (२) बड़ा भाई। (३) बड़ों के लिए आदरसूचक शब्द।

दादि—संज्ञा स्त्री. [फा. दाद] न्याय, इंसाफ, प्रशंसा।

उ.—सदा सर्वदा राजाराम कौ सूर दादि तहँ पाई —९-१७।

दादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दादा] पिता की माता।

संज्ञा पुं.—[फा. दाद] न्याय चाहनेवाला।

दादु—संज्ञा स्त्री [सं. दद्रु] दाद नामक चर्मरोग।

दादुर, दादुल—संज्ञा पुं. [स. दर्दुर] मेढक। उ.—(क) मनु वरषत मास अषाढ़ दादुर मोर ररे—१०-२४। (ख) गर्जत गगन गयंद गुंजरत अरु दादुर किलकार—२८२०। (ग) दादुल जल बिन जियै पवन भख मीन तजै हठि प्रान—३३५७।

दादू—संज्ञा पु. [अनु. दादा] (१) दादा के लिए स्नेह-सूचक संबोधन। (२) आत्मीयता सूचक सामान्य संबोधन। (३) अकबर के समकालीन एक साधु जिनका पंथ प्रसिद्ध है।

दादूपंथी—संज्ञा पुं. [सं. दादू+पंथी] दादू या दादू-दयाल नामक साधु के अनुयायी, जिनके तीन वर्ग हैं—विरक्त या सन्यासी, नागा या सैनिक और बिस्तर धारी या गृहस्थ।

दाध—संज्ञा स्त्री. पुं. [स. दाद] जलन, दाह, ताप।

दाधना—क्रि. स. [सं. दग्ध] जलाना, भस्म करना।

दाधा—संज्ञा पुं. [सं. दग्ध, हिं दाध] जलन, दुख, दाह, ताप। उ.—निरखत विधि भ्रमि भूलि पर्यौ तब, मन-मन करत समाधा। सूरदास प्रभु और रच्यौ विधि, सोच भयौ तन दाधा—७०५। (ख) सूरदास प्रभु मिले कृपा करि गये तुरति दुख दाधा—१४३७।

वि—जला हुआ, जो जल गया हो।

दाधीचि—संज्ञा पुं. [सं] दधीचि का वंशज या गोत्रज।

दाधे—संज्ञा पुं [हिं. दाद, दग्ध] जला हुआ स्थान।

मुहा.—दाधे पर लोन लगावे—जले पर नमक लगाना, दुखी या पीड़ित को अप्रिय वाक्यों या कार्यों से और पीड़ा पहुँचाना। उ.—सूरदास प्रभु हमहिं निदरि दाधे पर लोन लगावे—३०८८।

क्रि. स.—जलाये, भस्म किये। उ.—बिछुरन भये छंद जो दाधे वारिज ज्यों जलमीन—२७६७।

दाधौ—वि. [हिं. दाध] जो जला हुआ हो। उ.—हरि-मुख पं रंग-संग दिये दाधौ फिरै जरै—२५८०।

दान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देने का काम। (२) धर्म-भाव से देने का काम। (३) वस्तु जो दान में दी जाय। (४) कर, चुंगी, महसूल। उ.—तुम समरथ की वाम कहा काहू को करिहौ। चोरी जातिं बेंचि दान सब दिन को भरिहौं। (५) राजनीति का एक उपाय जिसमें कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध सफलता पाने का प्रयत्न किया जाय। (६) हाथी का मद। (७) छेदन। (८) शुद्धि। (९) एक तरह का मधु।

दानक—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा दान।

दानकुल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथी का मद।

दानधर्म—संज्ञा पुं [स.] दान-पुण्य।

दानपति—संज्ञा पुं. [सं] (१) सदा दान देनेवाला। (२) अक्रूर का एक नाम जो उसे स्यमंतक मणि के प्रभाव से प्रति दिन प्रचुर दान देने के कारण दिया गया था।

दानपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह पत्र या लेख जिसमें संपत्ति-दान का लेखा हो।

दानपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] दान पाने का अधिकारी।

दानलीला—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) श्रीकृष्ण की एक लीला जिसमें उन्होंने गोपियों से गोरस का कर वसूल किया था। (२) वह ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन किया गया हो।

दानव—संज्ञा पुं [स.] 'दनु' नामक पत्नी से उत्पन्न कश्यप के पुत्र, दनुज, असुर, राक्षस।

दानवगुरु—संज्ञा पुं. [स.] शुक्राचार्य।

दानवप्रिया—संज्ञा स्त्री [स. दानव=दैत्य; यहाँ आशय कुंभकरण से है; कुंभकरण की प्रिया=नींद] नींद, निद्रा। उ.—दानव प्रिया सेर चार्लसी सुरभी रस गुड़ सींचो। तजत न स्वाद आपने तन को जो विधि दीनो नीचो—सा. ९०।

दानवारि—संज्ञा पुं [स. दानव+अरि=शत्रु] (१) विष्णु। (२) देवता। (३) इंद्र।

दान-वारि—संज्ञा. पुं. [सं.] हाथी का मद।

दानवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दानव की स्त्री। (२) दानवाकार भयानक आकृति और क्रूर प्रकृतिवाली स्त्री।

दानवी, दानवीय—वि [सं दानवीय] दानव-संबंधी।

दान-वीर—संज्ञा पुं. [सं.] अत्यंत दानी।

दानवेंद्र—संज्ञा पुं. [सं. दानव+इंद्र] राजा बलि।

दानशील—वि. [सं.] दान करनेवाला।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दान की वृत्ति, उदारता।

दानसागर—संज्ञा पुं. [सं] कई वस्तुओं का महादान।

दाना—संज्ञा—पुं. [फा. दानः] (१) अनाज का कण। (२) अनाज अन्न। (३) भुना अनाज, चबेना। (४) छोटे-छोटे बीज। (५) अनार आदि फलों के बीज। (६) छोटी गोल वस्तु जो प्रायः गूंथी जाय। (७) माला की एक मनका या गुरिया। (८) छोटी-छोटी गोल चीजों के लिए संख्या-सूचक शब्द। (९) रवा, कण। (१०) किसी चीज का हलका उभार। (१०) शरीर के चमड़े पर किसी कारण पड़ जानेवाला हल्का उभार।

वि. [फा. दाना] बुद्धिमान, अक्लमंद।

दानाई—संज्ञा स्त्री. [फा] अक्लमंदी, बुद्धिमानी।

दाना-चारा—संज्ञा पुं. [फा. दाना+हिं. चारा] भोजन।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं] दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी या सेवक।

दाना-पानी—संज्ञा पुं. [फा. दाना+हिं. पानी] (१) खान-पान, अन्न जल। (२) जीविका, रोजी।

मुहा.—दाना-पानी उठना—जीविका न रहना।

(३) कहीं रहने-बसने का संयोग।

दानि—वि. [हि. दानी] जो दान करे, उदार।

संज्ञा पुं.—(१) दान करनेवाला व्यक्ति, दाता। उ.—सकल सुख के दानि आनि उर, दृढ़ विश्वास भजौ नँदलालहिं—१-७४। (२) उदार। उ.—कृपा निधान दानि दामोदर सदा सँवारन काज—१-१०९।

दानिनी—संज्ञा स्त्री. [स.] दान करनेवाली स्त्री।

दानिया—संज्ञा पुं. [हि. दानी] उदार, दानी।

दानी—वि. [सं. दानिन्] जो दान करे, उदार।

संज्ञा पुं.—दान करनेवाला व्यक्ति, दाता।

संज्ञा पुं.—[स दानीय] (१) कर-संग्रह करने या दान लेनेवाला। उ.—(क) तुम जो कहति हौ मेरौ कन्हैया गंगा कैसौ पानी। बाहिर तरुन किसोर वयस वर बाट घाट का दानी—१०-३११। (ख) परसत ग्वारि ग्वार सब जेंवत मध्य कृष्ण सुखकारी। सूर स्याम दधि दानी कहि कहि आनँद घोष-कुमारी।

दानीय—वि. [सं.] दान करने योग्य।

दाने—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. दाना] अनाज के कण।

मुहा.—दाने दाने को तरसना—भोजन का बहुत कष्ट सहना। दाने दाने को मुहताज—बहुत दरिद्र।

दानेदार—वि [फा] जिसमें दाने या रवे हों।

दानो, दानौं—संज्ञा पुं. [हि. दानव] दैत्य, दनुज, दानव। उ.—हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं सो हमता क्यों मानो। प्रगट खंभ तें दए दिखाई जद्यपि कुल कौ दानो—१-११।

दान्हे—वि. [हि. दाहना] दाँया, दहना। उ—जल दान्हे कर आनि कहत मुख धोवहु नारी—३०९० ।

दाप—संज्ञा पुं. [सं. दर्प, प्रा दप्प] (१) जलन, ताप, दुख। उ.—(क) दियौ क्रोध करि विवहि सराप करौ कृपा जो मिटै यह दाप—४-५। (ख) हरि आगे कुबिजा अधिकारनि को जीवै इहि दाप—२९७९। (२) क्रोध। उ.—कच कौं प्रथम दियौ मैं साप। उनहूँ मोहि दियौ करि दाप—९-१७४। (३) अहंकार, घमंड, अभिमान। (४) शक्ति, बल, जोर। (५) उत्साह, उमंग। (६) रोब, आतंक।

दापक—संज्ञा पुं. [सं दर्पक] दबानेवाला। उ.—सो प्रभु हैं जल-थल सब व्यापक। जो है कंस दर्प को दापक—१००१।

दापना—क्रि. स. [हि. दाब] (१) दबाना। (२) रोकना।

दाब—संज्ञा स्त्री. [हि. दबना] (१) दबने-दबाने का भाव। (२) भार, बोझ।

मुहा—दाब में होना—वश या अधीन होना।

(३) आतंक, अधिकार, दबदबा, शासन।

मुहा—दाब दिखाना—अधिकार या हुकूमत जताना। दाब मानना—वश में या अधीन होना। दाब में रखना—वश या शासन में रखना। दाब में लाना—वश या शासन में करना। दाब में होना—वश या शासन में होना।

दाबदार—वि. [हिं. दाब+फा. दार] रोब-प्रभाव वाला।

दाबना—क्रि. स. [हिं. दबाना] (१) भार या बोझ के नीचे लाना। (२) शरीर के किसी अंग से जोर लगाना (३) पीछे हटाना। (४) गाड़ना या दफन करना। (५) प्रभाव या आतंक जमाना। (६) गुण या महत्व की अधिकता से दूसरे को हीन कर देना। (७) बात या चर्चा को फैलने न देना। (८ दमन करना। (९ अनुचित अधिकार करना। (१०) विवश कर देना।

दाभ—संज्ञा पुं [सं. दर्भ] एक तरह का कुश, डाभ।

दाम्य—संज्ञा पु [सं.] जो वश में आ सके।

दाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रस्सी, रज्जु। उ.—नंद पितु माता जसोदा बाँधे ऊखल दाम—२५८३। (२) माला, हार, लड़ी। उ.—(क) कहुँ क्रीड़त, कहुँ दाम बनावत, कहूँ करत सिंगार। (ख) निरखि कोमल चारु मूरति हृदय मुकुता दाम—२५६५। (३) समूह, राशि। (४) लोक, विश्व।

संज्ञा पु [फा.] जाल, फंदा, पाश। उ.—लोचन चोर बाँधे स्याम। जात ही उन तुरत पकरे कुटिल अलकनि दाम—पृ. ३२४ (२८)।

संज्ञा पु [हिं. दमड़ी] (१) एक दमड़ी का तीसरा भाग।

मुहा.—दाम दाम भर देना-लेना—कौड़ी-कौड़ी चुका देना-लेना।

(२) मूल्य, कीमत, मोल। उ.—हमसौं लीजै दान के दाम सबै परखाई—१०१७।

मुहा.—दाम उठना—कोई वस्तु बिक जाना। (किसी वस्तु का) दाम करना (चुकाना)—मोल-भाव करना। दाम खड़ा करना—मूल्य वसूलना। दाम भरना—नष्ट करने के कारण किसी चीज का मूल्य देने को विवश होना, डाँड़ देना। दाम भर पाना—सारा मूल्य पा जाना। (३) धन, रुपया-पैसा। उ.—(क) बालापन खेलत ही खोयौ, जोबन जोरत दाम—१-४७। (ख) कोउ कहै देहैं दाम नृपति जेतौ धन चाहै—५८६। (४) सिक्का, रुपया। उ.—हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकि झकि डारि दयौ—१-६४। (५) राजनीति में धन देकर शत्रु को वश में करने की चाल।

वि. [सं.] देनेवाला, दाता।

दामक—संज्ञा पुं [सं.] लगाम, बागडोर।

दामन—संज्ञा पुं [फा.] (१) अंगे, कुर्ते आदि का निचला भाग, पल्ला। (२) पहाड़ का निचला भाग।

संज्ञा पुं. बहु [सं.] मूल्य, कीमत, मोल, धन।

मुहा.—बिन दामन मोल हाथ बिकानी बिना मोल के वश में या अधीन हो गयी। उ.—धन्य धन्य दृढ़ नेम तुमारौ बिन दामन मो हाथ बिकानी—१७१६।

दामनगीर—वि [फा.] (१) पल्ला पकड़ने या पीछे पड़ जानेवाला, सिर हो जानेवाला। उ.—अपनो पिंड पोषिबै कारन कोटि सहस जिय मारे। इन पापनि तें क्यों उबरौंगे दामनगीर तुम्हारे—१-३३४।

मुहा—दामनगीर होना—पीछे पड़ना या लगना।

(२) दावा करने वाला, दावेदार।

दामनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रस्सी, रज्जु।

दामर, दामरि, दामरी - संज्ञा स्त्री. [सं. दाम] रस्सी।

दामा—संज्ञा स्त्री, [सं. दावा] दावानल।

संज्ञा स्त्री. [सं. दाम] राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायौ। ... प्रेमा दामा रूपा हंसा रंगा हरषा जाउ—१५८०।

दामाद—संज्ञा पुं [फा.] जवांई, जामाता।

दामिन, दामिनि, दामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. दामिनी] (१) बिजली, विद्युत्। उ.—(क) घन-दामिनि धरती लौं कौंधै, जमुना-जल सौं पागे—१०-४। (ख) नील बसन तनु, सजल जलद मनु, दामिनि बिवि भुज-दंड चलावति—१०-१४६। (२) स्त्रियों के सिर का एक गहना, बेंदी, बिंदिया, दावनी।

दामी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाम] कर, मालगुजारी।

वि.—अधिक दाम या मूल्यवाला।

दामोद—संज्ञा पुं [सं.] अथर्ववेद की एक शाखा।

दामोदर—संज्ञा पुं [सं. दाम=(१) रस्सी, (२) लोक + उदर) (दम अर्थात इंद्रिय-दमन में श्रेष्ठ)] (१) श्रीकृष्ण जो एक बार रस्सी से बाँधे गये थे। उ.—(क) तौलौं बँधे देव दामोदर जौ लौं यह कृत

कीनी—सारा. ४५२। (ख) जन-कारन भुज आपु बँधाए ग्रचन कियौ रिषि ताम। ताही दिन तैं प्रगट सूर प्रभु यह दामोदर नाम—३६१। (२) विष्णु जिनके उदर में सारा विश्व है। (३ जैनियो के एक तीथकर।

दायँ—संज्ञा पुं. [हिं. दावँ] (१) बार। (२ बारी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. दाईं] (१) बार। (२) बारी।
संज्ञा स्त्री. [सं. दमन] कटी हुई फसल को बैलों से रौंदवा कर दाना-भूसा अलग करने की क्रिया, दवँरी।
संज्ञा स्त्री [?] बराबरी, समानता।

दाय—संज्ञा पुं [सं.] किसी को दिया जानेवाला धन। (२) दान आदि में देने का धन। (३) उत्तराधिकारियों में बांटा जा सकनेवाला पैतृक धन। (४) दान।
संज्ञा पुं [स. दाव] जलन, ताप, दुख।

दायक—संज्ञा पुं [सं.] देनेवाला, दाता।

दायज, दायजा, दायजो—संज्ञा पुं [स. दाय] वह धन जो विवाह में वर-पक्ष को दिया जाय, दहेज, यौतुक। उ.—कहुँ सुत ब्याह कहूँ कन्या को देत दायजौ रोई—सारा. २३५।

दायभाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पैतृक धन का भाग। (२) पैतृक या संबंधी के धन के बटवारे की व्यवस्था।

दायर—वि. [फा.] (१) चलता हुआ। (२) जारी।
मुहा.—दायर होना—किसी के समक्ष पेश होना या उपस्थित किया जाना।

दायरा—संज्ञा पुं [अ.] (१) गोल घेरा। (२) वृत्त। (३) मडली। (४) खँजड़ी, डफली।

दायाँ—वि. [हिं. दाहिना] दाहिना।

दाया—संज्ञा स्त्री. [हिं. दया] दया-कृपा। उ.—दाया करि मोसौं यह कहिए अमर हहुँ जेहि भाँति—सारा. १५१।

दायागत—वि. [सं.] हिस्से में मिला हुआ।

दायाद—वि. [सं.] हिस्सा या दाय पाने का अधिकारी।
संज्ञा पुं.—(१) पुत्र। (२) सपिंड कुटुंबी।

दायादा, दायादी—संज्ञा स्त्री [सं.] कन्या।

दायित—वि. [सं] दान किया हुआ।

दायित्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देनदार होने का भाव। (२) जिम्मेदारी, जवाबदेही।

दायिनी—वि. स्त्री. [सं.] देनेवाली।

दायी—वि. [सं. दायिन्] देनेवाला।

दायें—क्रि. वि. [हिं दायाँ] दाहिनी ओर को।
मुहा—दायें होना—अनुकूल या प्रसन्न होना।

दार—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री, पत्नी, भार्या। उ.—नाम सुनीति बड़ी तिहि दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार—४-६।
संज्ञा पु [स. दारु] (१) काठ। (२) बढ़ई।

दारक—संज्ञा पुं [सं.] (१) लड़का। (२) पुत्र।
वि. [सं.] फाड़ने या विदीर्ण करनेवाला।

दारकर्म—संज्ञा पुं. [स] विवाह।

दारण—संज्ञा पुं [सं.] चीड़-फाड़ की क्रिया।

दारद—संज्ञा पुं [स] (१) एक तरह का विष। (२) पारा। (३) ईंगुर।

दारना—क्रि. स. [सं दारण] (१) चीरना-फाड़ना। (२) नष्ट करना।

दारपरिग्रह—संज्ञा पुं [स.] स्त्री का ग्रहण, विवाह।

दारमदार—संज्ञा पुं. [फा.] (१) आश्रय। (२) कार्यभार।

दारसंग्रह—संज्ञा पुं [सं] स्त्री का ग्रहण, विवाह।

दारा—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. दार] स्त्री, पत्नी। उ.—(क) सुत-संपत्ति दारा-सुत हय-गय झूठ सबै समुदाइ—१ ३१७। (ख) धन-दारा-सुत-बंधु-कुटुँब-कुल निरखि-निरखि बौरान्यौ—१-३१६।

दारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. दाल] दाल। उ.—बेसन दारि चनक करि बान्यौ—१००६।

दारिउँ—संज्ञा पुं [हि. दाड़िम] अनार।

दारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बालिका। (२) पुत्री।

दारित—वि. [सं.] चीरा-फाड़ा हुआ।

दारिद, दारिद्र, दारिद्र्य—संज्ञा पुं. [स. दारिद्र्य] दरिद्रता, निर्धनता। उ.—सुदामा दारिद्र भजे कूबरी तारो—१-१७६।

दारिम—संज्ञा पुं. [सं. दाड़िम] अनार।

दारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेवाई का रोग, दरखा।

संज्ञा स्त्री. [सं. दारिका] युद्ध में जीत कर लायी गयी दासी।

दारीजार—संज्ञा पुं [हिं. दारी+सं. जार] (१) दासी का पति (गाली)। (२) दासीपुत्र, गुलाम।

दारु—संज्ञा पुं. [सं] (१) काष्ठ, काठ, लकड़ी। उ.—जो यह वधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरे। छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करे—९-४१। (२) देवदार। (३) बढई। (४) पीतल।

वि.—(१) दानी, उदार। (२) टूटने फूटनेवाला।

दारुक—संज्ञा पुं. [सं] (१) देवदारु। (२) श्रीकृष्ण के सारथी का नाम जो इनके परम भक्त थे। (३) काठ का पुतला।

दारुका—संज्ञा स्त्री [सं] कठपुतली।

दारुकावन—संज्ञा पुं [सं] एक वन जो तीर्थ भी है।

दारुज—वि. [सं.] (१) काठ से पैदा होनेवाला, (२) काठ का बना हुआ।

दारुण—वि. [सं.] (१) भीषण, घोर। (२) कठिन, दुःसह। (३) फाड़नेवाला, विदारक।

संज्ञा पुं—(१) भयानक रस। (२) विष्णु। (३) शिव। (४) एक नरक। (५) राक्षस।

दारुणारि—संज्ञा पुं [सं दारुण=राक्षस+अरि] विष्णु।

दारुन—वि [सं. दारुण] (१) कठोर, भीषण, घोर, भयकर। उ.—(क) जहाँ न काहू कौ गम दुसह दारुन तम सकल विधि विषम खल मल खानि—१-७७। (ख) दुस्सासन अति दारुन रिस करि केसनि करि पकरी—१-२५४। काहे कौ कलह नाध्यौ दारुन दाँवरि बाँधौ कठिन लकुट लै तैं त्रास्यौ मेरैं भैया—३७२। (२) विकट, प्रचंड, दुसह। उ.—(क) दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन वन नाहिंन बुझति बुझाई—९-५२। (ख) नाहीं सही परति अब मापै दारुन त्रास निसाचर केरी—९ ६३।

दारुनटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कठपुतली।

दारुपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] काठ का बरतन।

दारुपुत्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं] कठपुतली।

दारुमय—संज्ञा पुं. [सं.] काठ का बना हुआ।

दारुमयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] काठ से निर्मित।

दारुयोषिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कठपुतली।

दारू—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दवा। (२) शराब। (३) बारूद।

दारूकार—संज्ञा पुं. [फ़ा. दारू+हिं. कार] शराब बनानेवाले।

दारूड़ा—संज्ञा पुं [फ़ा. दारू] शराब, मद्य।

दारो, दारौ—संज्ञा पुं. [सं. दाड़िम] अनार।

दारोगा—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) निरीक्षक। (२) थानेदार।

दार्ढ्य—संज्ञा पुं [सं] दृढ़ता।

दार्यो, दार्यौं—संज्ञा पुं [सं. दाडिम] अनार।

दार्वट—संज्ञा पुं. [सं] मोर, मयूर।

दार्शनिक—वि [सं] (१) दर्शन शास्त्र का ज्ञाता। (२) दर्शन शास्त्र से संबंध रखनेवाला।

संज्ञा पुं—दर्शन शास्त्र का ज्ञाता व्यक्ति, तत्ववेत्ता।

दार्ष्टांतिक—वि [सं.] दृष्टांत संबंधी।

दाल—संज्ञा स्त्री. [सं. दालि] (१) दलों में दला हुआ अरहर, चना, मूंग, आदि फलीदार अनाज जो उबाल कर खाया जाता है। (२) पानी में उबाला गया दला अन्न जिसे लोग रोटी-भात के साथ खाते हैं। उ.—दाल-भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान-सारा. १८७।

मुहा.—दाल गलना—दाल का अच्छी तरह पक जाना। (किसी की) दाल न गलना—(किसी का) मतलब पूरा न होना या काम सिद्ध न होना। दाल-दलिया—रूखा-सूखा भोजन। दाल में कुछ काला होना—किसी काम या बात में संदेह, शंका या रहस्य होना। दाल रोटी सादा भोजन। दाल-रोटी चलना—जीविका का निर्वाह होना। दाल-रोटी से खुश—अच्छी-खासी हैसियत का, खाता-पीता। जूतियों दाल बटना—बहुत झगड़ा या अनबन होना।

(३) दाल की बनावट की कोई चीज। (४) चेचक, फुंसी आदि की पपड़ी या खुरंड।

मुहा.—दाल छूटना—खुरंड अलग होना। दाल बँधना—खुरंड पड़ना।

संज्ञा पुं. [सं.] पेड के खोडरे का शहद।

दालक—वि. [हि. दलना] दूर करने वाले, दमन करने में समर्थ। उ.—सूरदास प्रभु असुर निकंदन ब्रज जन के दुख-दालक—२३६९।

दालमोठ—संज्ञा स्त्री. [हि. दाल + मोठ] एक नमकीन खाद्य।

दालान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] खुला कमरा, ओसारा।

दालि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दाल। (२) अनार

क्रि स [हिं दलना] दबाकर, दमन करके। उ.—अति घायल धीरज दुवाहिआ वेज दुर्जन दालि—२८२६।

दालिद्—संज्ञा पुं. [सं. दारिद्रय] दरिद्रता।

दालिम—संज्ञा पुं. [स. दाडिम] अनार।

दाली—क्रि. स. [हिं. दलना] दमन किया। उ.—जिनि पहिले पलना पौढे पय पीवत पूतना दाली—२५६७।

दाल्मि—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

दावँ—संज्ञा पुं. [सं. द्रव्य] (१) बार, दफा। (२) बारी, पारी। (३) उपयुक्त अवसर, अनुकूल संयोग।

मुहा—दाँव करना—घात लगाना। दाँव चूकना—अनुकूल सयोग पाकर भी कुछ लाभ न उठाना। दाँव ताकना (लगाना)—अनुकूल अवसर की ताक में रहना। दाँव लगना—अनुकूल अवसर मिलना। दाँव लेना—बुरे या अनुचित व्यवहार का बदला लेना। उ.—असुर कुपित ह्वै बह्यौ बहुत असुर सहारे। अब लैहौं वह दाँव छाँड़िहौं नहिं बिनु मारें।

(४) युक्ति, उपाय, चाल, ढग। उ.—सुनहु सूर याको इन पठऊँ यहै बनैगो दाँव—२९१२।

मुहा—दाँव पर आना (चढ़ना)—ऐसी स्थिति में पड़ जाना जिससे दूसरे का मतलब सिद्ध हो सके। दाँव पर चढ़ाना (लाना)—दूसरे को ऐसी स्थिति में डालना जिससे अपना मतलब सिद्ध हो सके।

(५) कुश्ती जीतने की चाल या पेच। उ.—तब हरि मिले मल्लक्रीड़ा करि बहु विधि दाँव दिखाये।

(६) कार्य-साधन का छल-कपट।

मुहा.—दाँव खेलना—चाल चलना, धोखा देना।

(७) खेलने की बारी या चाल।

मुहा—दाँव बदना (रखना, लगाना)—खेल या जुए में धन लगाकर हार-जीत होना।

(८) जीत का पाँसा या कौड़ी। उ.—दाँव बलराम को देखि उन छल कियौ रुक्म जीत्यौ कहन लगे सारे। देव-बानी भयी जीति भई राम की, ताहुँ पै मूढ़ नाहीं सँभारे।

मुहा—दाँव देना—खेल में हार जाने पर पूर्व-निश्चित दंड भोगना या श्रम करना। उ.—तुमरे संग कहौ को खेलै दाँव देत नहिं करत रुनैया। दाँव लेना—खेल में जीत जाने पर हारनेवाले से पूर्वनिश्चित श्रम कराना या दंड देना।

(९) स्थान, ठौर, जगह।

दावँना—क्रि. स. [सं. दमन] अनाज अलग करने के लिए फसल को बैलो से रौंदवाना।

दावँनी—संज्ञा स्त्री [सं दामिनी] स्त्रियो का माथे का एक गहना, बंदी।

दावँरी—सज्ञा स्त्री. [सं. दाम] रस्सी, रज्जु।

दाव—सज्ञा पुं. [सं.] (१) जगल, वन। (२) वन की आग। (३) आग। (४) जलन, तपन, ताप।

सज्ञा पुं. [देश.] (१) एक हथियार। (२) एक पेड़।

दावत—सज्ञा स्त्री. [अ. दअवत] (१) भोज, प्रीतिभोज, ज्योनार। (२) भोजन का निमंत्रण, न्योता।

दावदी—संज्ञा स्त्री [हि. गुलदाउदी] गुच्छेदार सुदर फूलो का एक पौधा।

दावन—सज्ञा पुं [स. दमन] (१) दमन, नाश। (२) नाश या दमन करनेवाले। उ.—(क) ब्रह्म लियौ अवतार, दुष्ट के दावन रे—१०-२८। (ख) हरि ब्रज-जन के दुख-बिसरावन। कहाँ कंस, कब कमल मँगाए, कहाँ दवानल-दावन—६०३। (३) हँसिया। (४) टेढ़ा छुरा, खुखड़ी।

सज्ञा पुं [सं० दामन] अंगे-कुर्ते का पल्ला।

दावना—क्रि स. [हि. दावँना] दाना-भूसा अलग करने के लिए डंठलों को बैलो से रौंदवाना, माँड़ना।

क्रि. स. [हिं. दावन] दमन या नष्ट करना।

दावनी—संज्ञा स्त्री. [हि. दावँनी] स्त्रियो के माथे का एक गहना, बदी, दामिनी।

दाँवा—संज्ञा स्त्री [सं. दाव] वन की आग, दावानल।
संज्ञा पुं. [अ.] (१) किसी वस्तु को अपनी कहना, किसी वस्तु पर अधिकार जताना। (२) स्वत्व, हक, अधिकार। (३) अधिकार या हक सिद्ध करने के लिए न्यायालय में दिया गया प्रार्थना-पत्र। (४) नालिश, अभियोग। (५) जोर, प्रताप। (६) वह दृढ़ता या साहस जो यथार्थ स्थिति के निश्चय के कारण व्यक्ति में आ जाता है। (७) दृढ़ता या साहसपूर्ण कथन।
दावागीर—संज्ञा पुं [अ. दावा+फा. गीर] दावा करने, हक जताने या अधिकार सिद्ध करनेवाला।
दावाग्नि—संज्ञा स्त्री. (सं) वन की आग, दावा।
दावात—संज्ञा स्त्री. [अ दवात] स्याही का पात्र।
दावादार—संज्ञा पुं. [अ. दावा+फा. दार] दावा करने या हक जतानेवाला।
दावानल—संज्ञा पुं [सं. दाव+अनल] वन की आग जो बांसो या पेड़ो की टहनियों के रगड़ने से उत्पन्न होकर दूर तक फैलती चली जाती है। उ – कबहूँ तुम नाहिन गहरु कियौ।...... । अघ-अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहि पियौ—१-१२१।
दाविनी—संज्ञा [सं. दामिनी] (१) बिजली, दामिनी। (२) स्त्रियो का माथे का एक गहना, बंदी।
दावेदार—संज्ञा पुं. [अ० दावा+फा० दार] दावा करने या अपना हक जतानेवाला।
दाश—संज्ञा पुं. [सं] (१) केवट, धीवर। (२) नौकर।
दाशरथ—वि. [सं] दशरथ संबंधी।
संज्ञा पुं—राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र।
दाशरथि—संज्ञा पुं. [सं.] दशरथ के पुत्र श्रीराम आदि।
दाश्त—संज्ञा स्त्री. [फा.] पालन-पोषण, लालन-पालन।
दाश्व—वि. [सं] देनेवाला।
दास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेवक, नौकर। (२) भक्त। (३) भक्त गज। उ.—ग्राह गहे गजपति मुकरायौ हाथ चक्र लै धायौ। तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट दास कैं आयौ—१-१० । (४) शूद्र। (५) धीवर। (६) दस्यु। (७) वृत्रासुर।
संज्ञा पुं. [हिं दासन, डासन] बिछौना।
दासक—संज्ञा पुं [सं.] दास, सेवक।
दासता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दास-कर्म, सेवावृत्ति।
दासत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दास-भाव (२) सेवावृत्ति।
दासन—संज्ञा पुं. [हिं डासन] बिछौना।
दासपन—संज्ञा पु. [सं. दास+पन (प्रत्य.)] दासत्व, सेवा कर्म। उ.—दासी-सुत तैं नारद भयौ। दोष दासपन कौ मिटि गयौ—१ २३०।
दासपनौ—संज्ञा पुं. [सं दास+हिं. पन (प्रत्य.)] दासत्व, सेवाक, दासभाव। उ.—बंदन दासपनौ सो करै। भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै—६-५।
दास-व्रत—संज्ञा पुं. [सं. दास+व्रत] (१) दास का व्रत, सेवक का प्रण। (२) भक्त का प्रण, भक्त का निश्चय। उ.—मुनि-मद मेटि दास-व्रत राख्यौ, अंबरीप-हितकारी—१-१७।
दासा—संज्ञा पुं [सं दश्न] हँसिया।
संज्ञा पुं. [सं. दास] सेवक, नौकर।
दासानुदास—संज्ञा पुं.[सं] सेवक का सेवक, तुच्छ सेवक। (नम्रता-सूचक प्रयोग)।
दासिका, दासी—संज्ञा स्त्री. [सं. दासी] (१) (सेविका)। (२) कुब्जा जो कंस की सेविका थी और जिसे श्रीकृष्ण ने, प्रसिद्धि के अनुसार, अपनाया था। उ.—सूरज स्याम सुध दासी की करो कही विधि वैसो—सा. १०४।
दासेय—वि. [सं.] दास से उत्पन्न।
संज्ञा पुं.— (१) दास। (२) धीवर।
दासेयी—संज्ञा स्त्री [सं] व्यास की माता सत्यवती।
दासेर—संज्ञा पुं [सं.] (१) दास। (२) धीवर। (३) ऊँट।
दासेरक—संज्ञा पुं [सं] (१) दासीपुत्र। (२) ऊँट।
दास्तान—संज्ञा स्त्री [फा] (१) हाल, वृत्तांत। (२) किस्सा, कथा-कहानी। (३) बयान, वर्णन।
दास्य—संज्ञा पुं [सं.] दासपन, सेवा, दासत्व।
दास्यमान—वि. [सं] जो दिया जानेवाला हो।
दाह—संज्ञा पुं [सं] (१) जलाने की क्रिया या भाव। (२) शव या मुर्दा जलाने की क्रिया। (३) ताप, जलन। उ.—अंतर-दाह जु मिट्यौ व्यास कौ, इक चित ह्वै भगवान किऐं—१-८६। (४) शोक, दुख, संताप। (५) डाह, ईर्ष्या। (६) एक रोग।

दाहक—वि. [सं.] (१) जलानेवाला। उ.—अहि मयंक मकरंद कंद हति दाहक गरल जिवाये—२८५४। (२) संतापकारी।

संज्ञा पुं.—(१) चित्रक वृक्ष। (२) आग, अग्नि।

दाहकता—संज्ञा स्त्री [सं.] जलाने का भाव या गुण।

दाहकत्व—संज्ञा पुं. [सं.] जलाने का भाव या गुण।

दाहकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] मुर्दा फूंकने का काम।

दाहक्रिया—संज्ञा पुं [सं.] मुर्दा जलाने की क्रिया।

दाहत—क्रि. स. [हिं. दाहना] जलाता है भस्म करता है। उ.—(क) जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि-नाम—१-९२। (ख) जैहै काहि समीप सूर नर कुटिल बचन-दव दाहत—१-२१०। (ग) सूरदास प्रभु हरि बिरहा-रिपु दाहत अंग दिखावत वास—सा. उ. २८।

दाहन—संज्ञा [सं] (१) जलाने का काम। (२) भस्म कराने या जलवाने का काम।

दाहना—क्रि.स. [सं. दाह] (१) जलाना, भस्म करना। (२) सताना, दुख देना।

वि. [हि. दाहिना] दायाँ, दाहिना।

दाहसर—संज्ञा पुं. [सं.] मुर्दा जलाने का स्थान।

दाहिन, दाहिना—वि. [स. दक्षिण, हिं. दाहिना] (१) दायाँ, बायाँ का उलटा, दक्षिण।

मुहा—दाहिना हाथ होना—(१) बहुत सहायक होना। (२) जो दाहने हाथ की ओर हो। (३) अनुकूल, प्रसन्न। उ.—बार-बार बिनवौं नँदलाला। मोपै दाहिन होउ कृपाला।

दाहिनावर्त—वि. [सं. दक्षिणावर्त] (१) दाहिनी ओर को घूमा हुआ। (२) जो घूमने में दाहिनी ओर से बढ़े।

संज्ञा पुं. (१) प्रदक्षिणा। (२) एक तरह का शंख।

दाहिनी—वि. स्त्री. [हिं. दाहिना] दायीं ओर की।

मुहा—दाहिनी देना (लाना)—परिक्रमा या प्रदक्षिणा करना। दाहिनी देहि-प्रदक्षिणा करके। उ'—जटा भस्म तनु दहै वृथा करि कर्म बँधावै। पुहुमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पावै।

दाहिने—क्रि. वि. [हिं. दाहिना] दायें हाथ की ओर।

मुहा.—दाहिने होना—अनुकूल या प्रसन्न होना।

दाहिनैं—क्रि. वि. [हि. दाहिना] दाहने हाथ की तरफ, दाहिनी ओर। उ.—बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर, ब्याकुल घर फिरि आई—५४०।

दाहिनौ—वि. [हिं. दाहिना] अनुकूल, प्रसन्न। उ.—भयौ दैव बिधि भयौ दाहिनौ, धनि जसुमति ऐसौ सुत जायौ—१०-२४८।

दाहीं—क्रि. स. [हिं. दाहना] जलायी गयीं। उ.—चंदन तजि अंग भस्म बतावत बिरह अनल अति दाहीं—३३१२।

दाही—वि. [सं. दाहिन] जलाने या भस्म करनेवाला।

दाहु—संज्ञा पुं. [सं. दाह] जलन, ताप। उ.—सुगति सँदेस सुनाइ मेटौ बल्लभिनि को दाहु—३०२०।

दाहे—वि. [हिं. दाह] जले हुए। उ.—पलक न परत चहूँ दिसि चितवत बिरहानल के दाहे—३०७८।

दाहै—क्रि. स. [हिं. दाह] जलाती है। उ.—घर बन कछु न सुहाइ रैनि दिन मनहु मृगी दौ दाहै—२८०१।

दाह्य—वि. [सं.] जलाने या भस्म करने योग्य।

दिंक—संज्ञा पुं. [सं.] जूँ नामक कीड़ा।

दिंड—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का नाच।

दिंडि, दिंडिर—संज्ञा पं. [सं. दिंडिर] एक पुराना बाजा।

दिंडी—संज्ञा पुं. [सं.] उन्नीस मात्राओं का एक छंद।

दिंडीर—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र-फेन।

दिअना—संज्ञा पुं. [सं. दीपक] दिया, दीपक।

दिअली—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिया] छोटा दिया।

दिआ—संज्ञा पुं [हिं. दिया] दिया, दीपक। उ.—तब फिरि जरनि भई नखसिख तें दिआ बाती जनु मिलकी—२७८६।

दिउली—संज्ञा स्त्री. [हिं दिया] (१) छोटा दिया (२) सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी, खुरंड दाल।

दिए—क्रि. स [हि. देना] 'देना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'दिया' का बहुवचन। उ—अघघात करि हैत दिए (दए)-१०-८५२। इसका प्रयोग संयोजक-क्रिया के रूप में भी होता है। उ.—गुरु सुत आनि दिए जमपुर तें—१-१८

वि.—लगाये हुए। उ.—चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए—१०-६६।

दिक—वि. [अ. दिक] (१) हैरान, तंग। (२) अस्वस्थ। संज्ञा पुं.—क्षय रोग, तपेदिक।

दिकदाह—संज्ञा पुं [सं दिग्दाह] सूर्यास्त के पश्चात् भी दिशाओं का जलती-सी दिखायी देना।

दिकाक—संज्ञा पुं [अ दक़ीक़ = बारीक] कतरन, धज्जी। वि [अ दक़ियानूस] बहुत चालाक, खुर्राट।

दिक्—संज्ञा स्त्री. [स.] दिशा, ओर, तरफ।

दिक्कि—संज्ञा पुं [सं] हाथी का बच्चा।

दिक्कत—संज्ञा स्त्री. [अ] (१) तगी, तकलीफ परेशानी। (२) कठिनता, मुश्किल।

दिक्कन्या—सज्ञा स्त्री [सं] दिशा-रूपी कन्याएँ जो ब्रह्मा की पुत्रियाँ मानी जाती हैं।

दिक्कर—संज्ञा पुं [स] शिव, महादेव।

दिक्करि, दिक्करी—सज्ञा पुं [स दिक्करिन्] दिशाओं के हाथी

दिक्कांता—संज्ञा स्त्री [स] दिशा-रूपी कन्या।

दिक्चक्र—संज्ञा पुं. [सं] आठ दिशाओं का समूह।

दिक्पति—संज्ञा पुं [स] (१, दिशाओं के स्वामी ग्रह, यथा - दक्षिण के स्वामी मगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, नैर्ऋत-कोण के राहु, वायुकोण के चद्रमा और ईशानकोण के बृहस्पति। (२) दसों दिशाओं के पालक देवता।

दिक्पाल—सज्ञा पुं [सं.] (१) दसो दिशाओं के पालन कर्त्ता देवता, यथा पूर्व के इद्र, अग्निकोण के अग्नि, नैर्ऋतकोण के नैर्ऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशानकोण के ईश, ऊर्द्ध दिशा के ब्रह्मा, और अधोदिशा के अनत। (२) चौबीस मात्राओं का एक छद।

दिक्शूल—सज्ञा पुं [स] विशिष्ट दिनो में, विशिष्ट दिशाओं में यात्रा न करने का योग; यथा-शुक्र और रविवार को पश्चिम की ओर, मगल और बुध को उत्तर की ओर, शनि और सोम को पूर्व की ओर और बृहस्पति को दक्षिण की ओर।

दिक्साधन—संज्ञा पुं. [सं.] दिशाओं के ज्ञान का उपाय।

दिक्सुन्दरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दिशारूपी सुदरी।

दिक्स्वामी—संज्ञा पुं [स.] दिक्पति।

दिखना—क्रि. अ. [हिं. देखना] दिखायी देना।

दिखराइहौं—क्रि. स. [हिं. दिखलाना] दिखलाऊँगा, दृष्टिगोचर कराऊँगा। उ.—हँसि कह्यौ तुम्हें दिखराइहौं रूप वह।

दिखराई—क्रि. स [हिं. देखना का प्रे. रूप, दिखलाना। दिखायी, दृष्टिगोचर करायी। उ.—कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—१-१५३।

दिखराऊँ—क्रि. स. [हिं. 'देखना' का प्रे. रूप दिखलाना] दिखलाऊँ, प्रदर्शित करूँ, दृष्टिगोचर कराऊँ। उ.—(क) बन बारानसि मुक्ति-छेत्र है, चलि तोकौं दिखराऊँ—१-३४०। (ख) कैसैं नायहिं मुख दिखराऊँ जौ बिनु देखे जाऊँ—६-७५। (ग) देखि तिया कैसौ बल करि तोहि दिखराऊँ—६-११८।

दिखराए—क्रि. स. [हिं. दिखलाना] दिखाये, दृष्टि-गोचर कराये। उ—मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँदरानियाँ—१०८३।

दिखराना—क्रि स. [हिं दिखलाना] (१) दृष्टिगोचर कराना। (२) अनुभव कराना, मालूम कराना।

दिखरायौ—क्रि. स. [हिं. दिखलाया] दिखाया, देखने को प्रवृत्त किया। उ.—(क) मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौं—१०-१८६। (ख) माटी कैं मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी—१०-२-५६।

दिखरावत—क्रि. स [हिं. दिखलाना] (१) दिखाते हैं। (२) जताते या अनुभव कराते हैं। उ.—सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे—६-५८।

दिखरावति—क्रि. स. [हिं. दिखलाना] (१) दिखलाती है। उ.—जसुमति तब नंद बुलावति, लाल लिए कनियाँ दिखरावति, लगन घरी आवति, यातैं न्हवाइ बनावौ—१०-६५। (ख) ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहिं लिए चंदा दिखरावति—१०-१८८। (२) अनुभव कराती है, मालूम कराती है, जताती है। उ.—हा हा लकुट त्रास दिखरावति—१०-३५६।

दिखरावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिखलाना] दिखलाने की क्रिया। उ—करिहौं नाम अचल पसुपति कौ, पूजा-विधि कौतुक दिखरावन—६-२३२।

दिखरावना—क्रि. स. [हिं दिखलाना] (१) दृष्टिगोचर

कराना। (२) अनुभव कराना, जताना।

दिखरावती—संज्ञा स्त्री. [हि. दिखलाना] दिखाने की क्रिया या भाव।

क्रि. स.—(१) दिखलाती (२) अनुभव कराती।

दिखरावहु—क्रि. स. [हि. दिखलाना] दिखलाओ, दर्शन कराओ। उ.—तबहुँ देहुँ जल बाहर आवहु। बाँह उठाइ अंग दिखरावहु—७९६।

दिखरावे—क्रि. स. [हिं 'देखना' का प्रे. रूप] दिखाता है, दृष्टिगोचर कराता है। उ.—ज्यौं बहु कला काछि दिखरावे, लोभ न छूटत नट कैं—१-२९२।

दिखरावौं—क्रि स [हिं. दिखलाना] दिखाऊँ, दृष्टि-गोचर कराऊँ। उ.—(क) मेरे कहैं नहीं तू मानति, दिखरावौं मुख बाइ—१०-२५५। (ख) व्रत-फल इनहिं प्रगट दिखरावौं। बसन हरौं लै कदम चढ़ावौं—७९९।

दिखरावौ—क्रि स. [हि. दिखलाना] दिखाओ, दृष्टि-गोचर कराओ। उ.—अछत-दूब दल बँधाइ, ललन की गँठि जुराइ, इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५।

दिखलवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं दिखलाना] (१) दिखलाने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो दिखाने के बदले में दिया या लिया जाय।

दिखलवाना—क्रि. स [हिं. दिखलाना का प्रे.] दूसरे को दिखाने में लगाना या प्रवृत्त करना।

दिखलवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं दिखलाना] (१) दिखलाने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो दिखाने के बदले में दिया या लिया जाय।

दिखलाना—क्रि स. [हिं. दिखाने का प्रे.] (१) दृष्टि-गोचर कराना। (२) अनुभव कराना, मालूम कराना।

दिखलावा—संज्ञा पुं. [हिं. दिखावा] झूठा ठाट-बाट।

दिखवैया—संज्ञा पुं [हिं. दिखाना+वैया (प्रत्य)] (१) दिखानेवाला। (२) देखनेवाला।

दिखहार—संज्ञा पुं. [हिं. देखना+हार] देखनेवाला।

दिखाइ—क्रि. स. [हि. दिखाना] दिखा कर। उ—सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै—१-४३।

दिखाई—क्रि अ. [हिं. देखना, दिखाना] दीख पड़ना, सामने आना, प्रत्यक्ष होना। उ.—प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ—१-११।

संज्ञा स्त्री. [हिं. दिखाना+आई (प्रत्य.)] (१) देखने की क्रिया या भाव। (२) दिखाने की क्रिया या भाव। (३) वह धन जो देखने के बदले में दिया जाय। (४) वह धन जो दिखाने के बदले में मिले।

दिखाऊ—वि. [हि. दिखाना या देखना+आऊ (प्रत्य.)] (१) देखने योग्य। (२) दिखाने योग्य। (३) जो सिर्फ देखने लायक हो, काम न आ सके। (२) सिर्फ दिखावटी या बनावटी।

दिखाए—क्रि. स. [हिं. दिखाना] पढ़ाये, अध्ययन कराये। उ—पहिले ही अति चतुर हुए अरु गुरु सब ग्रंथ दिखाए—३३७३।

दिखाना—क्रि. स. [हिं .दिखलाना] (१) दृष्टिगोचर कराना। (२) अनुभव कराना या जताना।

दिखायौ—क्रि. स. [हिं. दिखाना] दिखलाया, प्रदर्शित किया। उ.—सूर अनेक देह धरि भूतल, नाना भाव दिखायौ—१-२०५।

दिखाव—संज्ञा पुं. [हिं. देखना+आव (प्रत्य.)] (१) देखने का भाव या क्रिया। (२) दृश्य। (३) दूर और नीचे तक देखने का भाव।

दिखावट—संज्ञा स्त्री. [हि देखना+आवट (प्रत्य.)] (१) दिखाने का भाव या ढंग। (२) ऊपरी तड़क-भड़क या बनावट।

दिखावटी—वि. [हि. दिखावट+ई (प्रत्य.)] जो सिर्फ देखने के लिए हो, काम न आ सके, दिखौआ।

दिखावत—क्रि. स. [हि. दिखाना] दिखाते हैं या दिखलाते हुए। उ.—धर्म धुजा अंतर कछु नाहीं, लोक दिखावत फिरतौ—१-२०३।

दिखावति—क्रि स. [हिं. दिखलाना] दिखाती है, देखने को प्रवृत्त करती है। उ—कुम्हिलानौ मुख चंद दिखावति, देखौ धौं नँदरानि—३९५।

दिखावहिंगे—क्रि. स. [हि. दिखलाना] दिखलायेंगे, दृष्टिगोचर करायेंगे। उ.—तैसिए स्याम घटा घन-घोरनि बिच बगपाँति दिखावहिंगे—२८८९।

दिखावहु—क्रि. स. [हिं. दिखलाना] दिखलाओ। उ.—(क) अपनी भक्ति देहु भगवान। कोटि लालच जौ दिखावहु, नाहिनैं रुचि आन—१-१०६। (ख) अब की बार मेरे कुँवर कन्हैया नंदहि नाच दिखावहु—१०-१७६।

दिखावा—संज्ञा पुं. [हिं. देखना+आवा (प्रत्य.)] ऊपरी तड़क-भड़क, झूठा आडंबर, बनावटीपन।

दिखावै—क्रि. स. [हिं. दिखलाना] दिखलाती है, देखने को प्रेरित करती है। उ.—महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै। ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२।

दिखिअत—क्रि. स [हिं. दिखना] दिखायी देता है, जान पड़ता है। उ.—सूरदास गाहक नहि कोऊ दिखिअत गरे परी—३१०४।

दिखैया—संज्ञा पुं [हिं. देखना+ऐया] देखनेवाला।
संज्ञा पुं. [हिं दिखाना+ऐया] दिखानेवाला।

दिखैहै—क्रि. अ [हिं. देखना, दिखाना] दीख पड़ेगा, दिखायी देगा। उ.—कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै—१-८६।

दिखौआ, दिखौवा—वि [हिं. देखना+औआ (प्रत्य.)] जो देखने भर का हो, काम न आ सके; बनावटी।

दिगंत—संज्ञा पुं [सं] (१) दिशा का छोर या अंत। (२) आकाश का छोर, क्षितिज। (३) चारो दिशाएँ। (४) दसों दिशाएँ।
संज्ञा पुं [सं दृग्+अंत] आँख का कोना।

दिगंतर—संज्ञा पुं. [सं.] दिशाओं के बीच का स्थान।

दिगंबर—संज्ञा पुं. [सं] (१) शिव, महादेव। (२) जैन-यती जो नंगा रहता हो। (३) दिशाओं का वस्त्र, अंधकार।
वि.—दिशाओं का वस्त्र धारण करनेवाला, नंगा। उ.—कहँ अबला, कहँ दसा दिगंबर।

दिगंबरता—संज्ञा स्त्री. [सं] नंगा रहने का भाव, नग्नता।

दिगंबरपुर—संज्ञा पुं [सं] वह नगर या स्थान जहाँ दिगंबर रहनेवाले व्यक्ति बसते हों। उ.—सूरदास दिगंबरपुर ते रजक कहा ब्यौसाइ—३३३४।

दिगंबरी—संज्ञा स्त्री. [स.] दुर्गा।

दिगंश—संज्ञा पुं. [सं.] क्षितिज वृत्त का ३६०वाँ अंश।

दिग, दिग्—संज्ञा स्त्री. [सं. दिक्] दिशा, ओर, तरफ।

दिगज—संज्ञा पुं. [सं. दिग्गज=सिंदुर=(१) हाथी। (२) सिंदूर जिसकी बिंदी लगायी जाती है] सिंदूर नामक लाल चूर्ण जिसकी बिंदी लगायी जाती है। उ.—दिगज बिंदु बिजे छन बेनन भानु जुगल अन-रूप उँज्यारी—सा. ६८।

दिगदंती—संज्ञा पुं. [सं. दिक्+हिं. दंतार=दंत+आर (प्रत्य.)] आठ हाथी जो आठों दिशाओं की रक्षा के लिए स्थापित हैं। यथा—पूर्व में ऐरावत, पूर्व-दक्षिण में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिण पश्चिम में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर में पुष्पवंत, उत्तर में सार्वभौम, उत्तर-पूर्व में सप्तसीक। उ.—बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिगदंतीनि सकेलत—१०-६३।

दिगपति—संज्ञा पुं. [स दिक्पति, दिग्पति] दसों दिशाओं के पालक देवता, यथा—पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैर्ऋतकोण के नैर्ऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशानकोण के ईश, ऊर्द्ध दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के अनंत। उ.—बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिगदंतीनि सकेलत—१०-५३।

दिगविजय—संज्ञा स्त्री, [सं. दिग्विजय] अपना महत्व स्थापित करने के उद्देश्य से राजाओं का देश देशांतरों में ससैन्य जाकर विजय प्राप्त करने की प्राचीन प्रथा। उ.—(क) बहुरि राज ताकौ जब गयौ। मिस दिगविजय चहूँ दिसि गयौ—१-२९० । (ख) दिगविजय कौं जुवति-मंडल भूप परिहैं पाइ—३२२७

दिगविजयी—वि. पुं [स दिग्विजयी] सभी दिशाओं के राजाओं को जीतनेवाला। उ. राज-अहँकार चढ्यौ दिगविजयी, लोभ छत्र करि सीस। फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस—१-१४४।

दिगीश, दिगीश्वर, दिगेश—संज्ञा पुं. [स.] (१) दिक्पाल। (२) सूर्य चंद्र आदि ग्रह।

दिग्गज—संज्ञा पुं. [सं.] आठ हाथी आठो दिशाओं की रक्षा के लिए स्थापित है; यथा—पूर्व में ऐरावत,

पूर्व-दक्षिणकोण में पुंडरीक दक्षिण में वामन, दक्षिण-पश्चिमकोण में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर कोण में पुष्पदत, उत्तर में सार्वभौम और उत्तर-पूर्व कोण में सप्ततीक।

वि.—बहुत बड़ा या भारी।

दिग्गयंद—संज्ञा पुं. [सं] दिशाओं के हाथी, दिग्गज।

दिग्घ—वि. [सं. दीर्घ] (१) लंबा। (२) बड़ा।

दिग्जय—संज्ञा स्त्री. [सं. दिग्विजय] दिग्विजय।

दिग्ज्या—संज्ञा स्त्री. [सं] क्षितिज वृक्ष का ३६०वाँ भाग।

दिग्दर्शक—वि. [सं.] दिशाओं का ज्ञान करानेवाला।

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं [सं] (१) उदाहरण-रूप प्रस्तुत आदर्श या नमूना। (२) आदर्श या नमूना दिखाने का काम। (३) जानकारी।

दिग्दर्शनी—संज्ञा पुं. [सं.] दिशा-ज्ञान करानेवाली वस्तु।

दिग्दाह—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यास्त के पश्चात् भी दिशाओं का लाल और जलती हुई सी दिखायी देना।

दिग्देवता—संज्ञा पुं [सं. दिक्+देवता] दिक्पाल।

दिग्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष-बुझा बाण। (२) अग्नि।

वि.—(१) विष में बुझा हुआ। (२) लिप्त।

वि. [सं. दीर्घ] बड़ा, लंबा, दीर्घ।

दिग्पट—संज्ञा पुं. [सं. दिक्पट] दिशा-रूपी वस्त्र।

दिग्पति—संज्ञा पुं. [सं. दिक्+पति] दिक्पाल।

दिग्पाल—संज्ञा पुं. [सं. दिक्+पाल] दिक्पाल।

दिग्भ्रम—संज्ञा पुं. [सं.] दिशा का भूल जाना।

दिग्मंडल—संज्ञा पुं. [सं.] सब दिशाएँ।

दिग्राज—संज्ञा पुं. [सं. दिक्+राज] दिक्पाल।

दिग्वसन, दिग्वस्त्र—संज्ञा पुं. [सं. दिक्+वसन, वस्त्र] (१) शिव जी, (२) दिगंबर जैनी, (३) नग्न व्यक्ति।

दिग्वान्—संज्ञा पुं. [सं.] पहरेदार, चौकीदार।

दिग्वारण—संज्ञा पुं. [सं.] दिग्गज।

दिग्विजय—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजाओं का देश-देशांतरों में जाकर विजय करना और इस प्रकार अपना महत्व स्थापित करना। उ.—करि दिग्विजय विजय को जग में भक्त पच्छ करवायौ। (२) गुण, विद्वता आदि में दूसरों को पराजित करके स्व-प्रतिष्ठा स्थापित करना।

दिग्विजयी—वि. पुं [सं] दिग्विजय करनेवाला। उ. गज अहँकार चढ़यौ दिग्विजयी लोभ छत्र करि सीस।

दिग्विभाग—संज्ञा पुं. [सं.] दिशा, ओर, तरफ।

दिग्व्यापी—वि. [सं.] जो सर्वत्र व्याप्त हो।

दिग्शिखा—संज्ञा पुं [सं.] पूर्व दिशा।

दिग्सिंधुर—संज्ञा पुं. [सं.] दिग्गज।

दिङ्नाग—संज्ञा पुं. [सं.] दिग्गज।

दिङ्नारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बहुत से पुरुषों से प्रेम करनेवाली स्त्री।

दिङ्मातंग—संज्ञा पुं. [सं.] दिग्गज।

दिङ्मात्र—संज्ञा पुं. [सं.] सिर्फ नमूना भर।

दिङ्मूढ़—वि. [सं.] (१) जो दिशाभूला हो। (२) मूर्ख।

दिच्छित—वि. [सं. दीक्षित] जिसने दीक्षा ली हो।

दिज—संज्ञा पुं. [सं. द्विज] (१) ब्राह्मण। (२) पक्षी। (३) चंद्र।

दिजराज—संज्ञा पुं. [सं. द्विजराज] (१) ब्राह्मण। (२) चंद्रमा।

दिजोत्तम—संज्ञा पुं. [सं. द्विजोत्तम] श्रेष्ठ ब्राह्मण।

दिठवन—संज्ञा स्त्री [सं देवोत्थान] कार्तिक शुक्ल एकादशी को विष्णु का शेष-शैया से उठना।

दिठियार—वि. [हिं. दीठ=दृष्टि+इयार या आर (प्रत्य.)] जिसे दिखायी देता हो, देखनेवाला।

दिठौना—संज्ञा पुं. [हिं. दीठ=दृष्टि+औना (प्रत्य.)] नजर लगने से बचाने के लिए बच्चों के माथे पर लगाया गया काजल का बिंदु।

दिढ़—वि. [सं. दृढ़] (१) मजबूत, पक्का। (२) ध्रुव, पक्का।

दिढ़ता—संज्ञा स्त्री. [सं. दृढ़ता] (१) मजबूत होने का भाव। (२) विचार आदि पर दृढ़ रहने का भाव।

दिढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [सं. दृढ] (१) दृढ़ होने का भाव। (२) विचार या निश्चय पर दृढ़ रहने का भाव।

दिढ़ाना—क्रि. स. [सं. दृढ+आना (प्रत्य.)] (१) पक्का या मजबूत करना। (२) निश्चित करना।

दितवार—संज्ञा पुं. [सं. आदित्यवार] रविवार।

दिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कश्यप ऋषि की स्त्री जो दक्ष प्रजापति की कन्या और दैत्यों की माता थी। उ.—

कस्यप की दिति नारि, गर्भ ताकैं दोउ श्राए—३-११
(२) खडन। (३) दाता।
दितिकुल—सज्ञा पुं. [सं.] दैत्य वश।
दितिज—सज्ञा पुं. [सं] दिति से उत्पन्न, दैत्य।
दितिसुत—सज्ञा पुं. [स.] दैत्य, असुर।
दित्सा—सज्ञा स्त्री [स] दान की इच्छा।
दित्स्य—वि. [स.] जो दान किया जा सके।
दिदृक्षा—सज्ञा स्त्री. [सं.] देखने की इच्छा।
दिदृक्षु—वि. [सं.] जो देखना चाहता हो।
दिद्यु—संज्ञा पु [स.] (१) वज्र। (२) बाण।
दिधि—सज्ञा पुं. [स.] धैर्य।
दिन—संज्ञा पुं. [स] (१) सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय।

मुहा—दिन को तारे दिखाई देना—इतना मानसिक कष्ट होना कि बुद्धि ठिकाने न रहे। दिन को दिन रात को रात न जानना (समझना)—सुख या आराम की चिंता न करना। दिन चढ़ना—सूर्योदय के बाद समय बीतना। दिन छपना (डूबना, बूड़ना, मूँदना)—सध्या होना। दिन टलना—सूर्यास्त होने को होना। दिन दहाड़े या दिन दोपहर—ठीक दिन के समय। दिन दूना रात चौगुना बढ़ना (होना)—बहुत जल्दी उन्नति करना। दिन निकलना (होना)—सूर्योदय होना।

यौ.—दिन-रात—हर समय, सदा।

(२) आठ पहर या चौबीस घंटे का समय जिसमें पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम लेती है।

मुहा—चार दिन—बहुत थोड़ा समय। उ—चारि चारि दिन सबै सुहागिनि री ह्वै चुकी मैं स्वरूप अपनी—१७६२। दिन-दिन (दिन पर दिन)—हर रोज, सदा। उ—मैं दिन दिन उनमानी महाप्रलय की नीति—३४५७।

(३) समय, काल, वक्त।

मुहा—दिन काटना—कष्ट के दिन बिताना। दिन गँवाना—बेकार समय खोना। दिन पूरे करना—कष्ट का समय किसी तरह बिताना। दिन बिगड़ना—बुरे दिन आना। दिन भुगतना कष्ट के दिन काटना।

यौ.—पतले दिन—बुरे, खोटे या कष्ट के दिन।

(४) नियत निश्चित या उचित समय। उ.—सूर नंद सौं कहति जसोदा दिन आये अब करहु चँढ़ाई—११८।

मुहा—दिन आना—अत समय आना। दिन धरना—दिन निश्चित करना या ठहराना। दिन धराना (सुधाना)—दिन निश्चित करना या मुहूर्त निकलवाना। दिन धराइ (सुधाइ)—मुहूर्त निकलवाकर। उ.—पालनो आन्यौ सबहि अति मन मान्यौ नीको सो दिन धराइ (सुधाइ) सखिन मंगल गवाइ रंगमहल में पौढ़यौ है कन्हैया—१०-४१।

(५) विशेष घटना का काल या समय।

मुहा—दिन चढ़ना—किसी स्त्री का गर्भवती होना। दिन पड़ना—बुरा समय आना। दिन फिरना (बहुरना)—बुरे दिनो के बाद अच्छे दिन आना। दिन भरना—बुरे दिन बिताना। दिन उतरना—युवावस्था बीतना।

क्रि. वि.—सदा, सर्वदा, हमेशा।

दिनअर—संज्ञा पुं. [स. दिनकर] सूर्य।
दिनकत—सज्ञा पुं. [सं. दिन + हिं. कत (कांत) सूर्य।
दिनकर—सज्ञा पु [सं] (१) सूर्य। उ.—ज्यौं दिनकरहि उलूक न मानत, परि आई यह टेव—१-१००। (२) आक, मंदार।
दिनकर-कन्या—संज्ञा स्त्री. [स] यमुना जी।
दिनकर-सुत—सज्ञा पुं. [स.] (१) यम। (२) शनि। (३) सुग्रीव। (४) अश्विनीकुमार। (५) कर्ण।
दिनकर्त्ता, दिनकृत—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।
दिनकेशर—सज्ञा पुं [स] अँधेरा, अंधकार।
दिनचर—सज्ञा पुं. [स दिन + हिं चर] सूर्य।
दिनचर-सुत-सुत-सज्ञा पुं. [दिन (= हिं. वार) + चर (= वारचर = वारिचर = पानी में चलनेवाली मछली) + सुत (= मछली-सुत = व्यास) + सुत (व्यास के पुत्र शुकदेव = शुक = तोता)] शुक, तोता। उ.—दिनचर-सुत-सुत सरिस नासिका है कनौज श्री भाई—सा. १०३।

दिनचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] दिन भर का काम-धंधा।

दिनचारी—संज्ञा पुं. [सं. दिनचारिन्] दिन में चलने वाला, सूर्य।

दिन ज्योति—संज्ञा स्त्री. [सं. दिन ज्योतिस्] (१) दिन का प्रकाश। (२) धूप।

दिनदानी—संज्ञा पुं. [सं. दिन+हिं. दानी] सर्वंव दान करनेवाला।

दिनदीप—संज्ञा पुं [सं. दिन+दीप] सूर्य।

दिनदुखि, दिनदुखी—[सं.] चकवा पक्षी।

दिननाथ, दिननाह—संज्ञा पुं. [सं. दिननाथ] सूर्य।

दिननायक—संज्ञा पुं. [सं.] दिन का स्वामी, सूर्य।

दिनप, दिनपति—संज्ञा पुं. [सं. दिन+प, पति] (१) सूर्य। (२) मित्र ('मित्र' सूर्य का पर्यायवाची है। इसका दूसरा अर्थ सखा है। वही यहाँ लिया गया है।) उ.—दिनपति चले धौं कहा जात—सा. ८।

दिनपति-सुत-अरि-पिता-पुत्र-सुत—संज्ञा पुं. [सं. दिनपति (=सूर्य) +सुत (=सूर्य का पुत्र कर्ण)+अरि (कर्ण का अरि या शत्रु अर्जुन)+पिता (=अर्जुन के पिता इंद्र)+पुत्र (=इंद्र का पुत्र बालि)+पुत्र (=बालि का पुत्र अंगद)] अंगद या बाजूबंद नामक आभूषण। उ.—दिनपति-सुत-अरि-पिता-पुत्र-सुत सो निज करन सँभारे। मानहु कंज रिच्छ गहि तीजो कंचन भू पर धारे—सा. १३।

दिनपति-सुत-पतिनी प्रिय—संज्ञा पुं., स्त्री. [सं. दिनपति (=सूर्य) +सुत (सूर्य का पुत्र शनि)+पत्नी (=शनि की स्त्री कर्कशा)+प्रिय (=कर्कशा स्त्री का प्रिय कठोर वचन या वाणी)] क्रूर वचन या वाणी। उ.—लखि वृजचंद चंदमुख राधे। दधि सुतसुन पतिनी न निकासत दिनपति-सुत-पतिनी-प्रिय बाधे—सा. ६।

दिनपाल, दिनपालक—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

दिनबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मंदार।

दिनमणि, दिनमनि—संज्ञा पुं. [सं. दिनमणि] (१) सूर्य। उ.—(क) लै मुरली आँगन ह्वै देखौ, दिनमनि उदित भए द्विघरी—४०३। (ख) तूल दिनमनि कहा सारँग, नाहिं उपमा देत—७०६। (ग) विनय अंचल छोरि रवि सौं, करति हैं सब बाम। हमहिं होहु दयाल दिनमनि तुम विदित संसार—७६७। (२) आक, मंदार।

दिनमयूख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मंदार।

दिनमल—संज्ञा पुं. [सं.] मास, महीना।

दिनमान—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन की अवधि या उसका मान।

दिनमाली—संज्ञा पुं. [सं] सूर्य, रवि।

दिनमुख—संज्ञा पुं. [सं.] सवेरा, प्रभात।

दिनरत्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मंदार।

दिनराइ, दिनराई, दिनराउ, दिनराऊ, दिनराज, दिनराय—संज्ञा पुं. [सं. दिनराज] सूर्य, रवि।

दिनशेष—संज्ञा पुं. [सं.] संध्या, सायंकाल।

दिनांक—संज्ञा पुं. [सं. दिन+अंक] तारीख।

दिनांत—संज्ञा पुं. [सं. दिन+अंत] संध्या, सायंकाल।

दिनांतक—संज्ञा पुं [सं. दिन+अंतक] अंधकार।

दिनांध—संज्ञा पुं. [सं. दिन+अंध] वह जिसे दिन में दिखायी न दे।

दिनांश—संज्ञा पुं. [सं. दिन+अंश] (१) प्रात, मध्याह्न और सायं—दिन के तीन अंश या भाग। (२) दिन के पाँच अंश जिनमें प्रत्येक, सूर्योदय के पश्चात् तीन मुहूर्त का होता है; यथा प्रात, संगव, मध्याह्न, अपराह्न, और सायंकाल।

दिना—संज्ञा पुं. [सं. दिन] दिन। उ.—(क) जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति। विषय-बिष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति—१-१०६। (ख) एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरिषी नँदरानी—सारा. ४२१। (ग) अपनी दसा कहौं मैं कासौं बन-बन डोलति रैनि-दिना—१४६१। (घ) माई वै दिना यह देह अछत बिधना जो आनैरी—२६०४।

मु हा—चार दिना—थोड़ा समय। उ.—दिना चारि रहते जग ऊपर—१०५३।

दिनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. दिन+हिं. आना] ऐसी बिषैली वस्तु जिसके खाने से मृत्यु हो जाय। उ.—काके सिर पढि मंत्र दियौ हम वहीं हमारे पास दिनाई।

दिनागम—संज्ञा पुं. [सं. दिन+आगम] प्रभात।

दिनाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिन+आती] एक दिन का काम या उसकी मजदूरी।

दिनादि—संज्ञा पुं. [सं. दिन+आदि=शुरू] प्रभात।

दिनाधीश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मंदार।

दिनारु, दिनालु—वि. [सं. दिनालु] बहुत दिनों का, पुराना।

दिनार्द्ध—संज्ञा पुं [सं. दिन+अर्द्ध] आधा दिन, दोपहर।

दिनास्त—संज्ञा पुं. [सं.] संध्या, सायकाल।

दिनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक दिन की मजदूरी।

दिनियर—संज्ञा पुं. [सं. दिनकर] सूर्य।

दिनी—वि [हिं. दिन+ई (प्रत्य.)] (१) बहुत दिनों का, पुराना। (२) बूढ़ी। उ.—भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी। ज्यौं-ज्यौं दिनी भई त्यौं निपजी—३६१।

दिनेर—संज्ञा पुं. [सं. दिनकर, प्रा. दिनियर] सूर्य।

दिनेश—संज्ञा पुं. [सं. दिन+ईश] (१) सूर्य, रवि। (२) आक, मंदार। (३) दिन के स्वामी ग्रह।

दिनेशात्मज—संज्ञा पुं. [सं. दिन+ईश+आत्मज=पुत्र] (१) शनि। (२) यम। (३) कर्ण। (४) सुग्रीव। (५) अश्विनीकुमार।

दिनेश्वर—संज्ञा पुं. [सं. दिन+ईश्वर] सूर्य, रवि।

दिनेस—संज्ञा पुं [सं. दिनेश] सूर्य। उ—सिव बिरंचि सनकादि महामुनि सेष सुरेस दिनेस। इन सबहिनि मिलि पार न पायौ द्वारावती नरेस—सारा. ६८४।

दिनौंधी—संज्ञा स्त्री [हिं. दिन+अंध+ई (प्रत्य.)] आँख का एक रोग जिसमें दिन के प्रकाश में कम दिखायी देता है।

दिपत—क्रि. अ. [हिं. दिपना] चमकते हैं, शोभा पाते हैं। उ०—नीकन अधिक दिपत दुत तातें अतरिच्छ छवि भारी—सा ५१।

दिपति—संज्ञा स्त्री [सं दीप्ति] चमक, शोभा।
क्रि अ—चमकती है, शोभा पाती है।

दिपना—क्रि. अ. [सं. दीप्ति] चमकना, शोभा पाना।

दिव—संज्ञा पुं. [सं. दिव्य] वह परीक्षा जो सत्यता या निर्दोषता सिद्ध करने के लिए दी जाय।

दिमाक, दिमाग—संज्ञा पुं. [अ. दिमाग] (१) मस्तिष्क।
मुहा.—दिमाग खाना (चाटना)—बहुत बकवाद करके परेशान कर देना। दिमाग खाली करना—मगजपच्ची करना। दिमाग आसमान पर होना (चढ़ना)—बहुत घमण्ड होना। दिमाग न पाया जाना (मिलना)—बहुत घमण्ड होना। दिमाग में खलल होना—पागल-सा हो जाना।
(२) बुद्धि, समझ, मानसिक शक्ति।
मुहा.—दिमाग लड़ाना—सोच-विचार करना।
(३) अभिमान, गर्व, घमण्ड, शेखी।
मुहा.—दिमाग झड़ना—घमंड चूर होना।

दिमागदार—वि. [अ. दिमाग+फा. दार (प्रत्य.)] (१) बुद्धिमान या समझदार। (२) अभिमानी, घमंडी।

दिमागी—वि. [हिं. दिमाग] (१) दिमाग से संबंध रखनेवाला। (२) अभिमानी, घमंडी।

दिमात—वि. [सं. द्विमातृ] जिसके दो माताएँ हों।

दियत—संज्ञा स्त्री. [हिं. देना] किसी को मार डालने या घायल करने के बदले में आक्रमणकारी को दिया जानेवाला धन।

दियना, दियरा—संज्ञा पुं. [हिं. दीया] दीपक, चिराग।

दियरा—संज्ञा पुं. [हिं दीया] एक तरह का पकवान।

दियला, दियवा, दिया—संज्ञा पुं [हिं. दीया] दीपक।

दियाबती—संज्ञा स्त्री [हिं. दीया+बाती] (साँझ को) दिया जलाने का काम।

दियारा—संज्ञा पुं. [फा. दयार] (१) नदी-किनारे की भूमि, कछार। (२) प्रदेश, प्रांत।

दिये—क्रि. स. [हिं. देना] लगाये (हुए)। उ—(क) मूँड़यौ मूँड़ कंठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये—१-१७१। (ख) तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये—१०-२४।

दियो, दियौ—क्रि. स [सं. दान, हिं. देना] दिया। प्रदान किया। उ.—(क) करि बल बिगत उबारि दुष्ट तैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ—१-२६। (ख) मैं

यह ज्ञान छली ब्रज-बनिता दियो सु क्यों न लहौं—
१० उ. १०४।

दिर—संज्ञा पुं. [अनु.] सितार का एक बोल।

दिरद—संज्ञा पुं. [सं. द्विरद] हाथी।

वि.—दो दांत वाला।

दिरमान—संज्ञा पुं. [फ़ा. दरमान:] चिकित्सा।

दिरमानी—संज्ञा पुं. [हिं. दिरमान] वैद्य, चिकित्सक।

दिरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. देवरानी] देवर की स्त्री।

दिरिस—संज्ञा पुं. [सं. दृश्य] देखने की वस्तु, दृश्य।

दिल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) कलेजा।

मुहा.—दिल उछलना—(१) घबराहट होना। (२) प्रसन्नता होना। दिल उड़ना—बहुत घबराहट होना। दिल उलटना—(१) वमन करते-करते परेशान हो जाना। (२) होश हवास जाते रहना। दिल काँपना—डर लगना। दिल जलना—(१) कष्ट पहुँचना (२) बहुत बुरा लगना। दिल जलाना—दुख देना। दिल टूटना—हिम्मत न रह जाना, निराश हो जाना। दिल ठंढा करना—संतोष देना। दिल ठंढा होना—संतोष होना। दिल थाम कर बैठ (रह) जाना—रोक कर, वेग दबाकर या मन मसोस कर रह जाना। दिल धक-धक करना—डर से बहुत घबराना। दिल धड़कना—(१) डर से घबराना। (२) बहुत चिंतित होना, जी में खटका होना। दिल निकाल कर रख देना—सबसे प्रिय वस्तु या सर्वस्व दे देना। दिल पक जाना—बहुत तंग या परेशान हो जाना। दिल बैठना—हृदय की गति बहुत क्षीण हो जाना। दिल का बुलबुला बैठना—शोक या दुख के आघात से हृदय की गति रुक जाना।

(२) मन, चित्त, हृदय, जी।

मुहा.—दिल अटकना—मुग्ध होना, प्रेम होना। दिल आना—प्रेम करना। दिल उकताना, उचटना—जी उचाट होना, मन न लगना। दिल उठाना—(१) विरक्त होना। (२) इच्छा करना। दिल उमड़ना—चित्त में दुख या दया उमड़ना। दिल उलटना—(१) घबराहट होना। (२) मन न लगना। (३) घृणा होना। दिल उठाना—(१) मन फेर लेना। (२) इच्छा करना। दिल कड़ा करना—साहस या हिम्मत से काम लेना। दिल कड़ा होना—कठोर साहसी या हिम्मती होना। दिल कबाब होना—बहुत बुरा लगना, जी जल जाना। दिल करना—(१) साहस करना। (२) इच्छा करना। दिल का—जीवटवाला, हिम्मती, साहसी। दिल का कमल खिलना—बहुत प्रसन्नता होना। दिल का गवाही देना—किसी बात के करने या न करने अथवा उचित होने न होने का विचार मन में आना। दिल का गुबार (गुब्बार, बुखार) निकालना—क्रोध दुख या झुँझलाहट में खूब भली-बुरी सुनकर संतोष करना। दिल का बादशाह—(१) बहुत उदार। (२) मनमौजी। दिल का भरना (भर जाना)—(१) संतुष्ट होना, छक जाना, मन भर जाना। (२) इच्छा पूरी होना (३) रुचि या इच्छा के अनुकूल काम होना। (४) खटका या संदेह मिटना। (५) दिलजमई होना। दिल की दिल में रहना (रह जाना)—इच्छा पूरी न हो सकना। दिल की फाँस—मन का दुख या कष्ट। दिल कुढ़ना—मन में दुख या कष्ट होना, जी जलना। दिल कुढ़ाना—दुख या कष्ट देना, जी जलाना। दिल कुम्हलाना—मन का खिन्न या उदास होना। दिल के दरवाजे खुलना—जी का हाल या भेद मालूम होना। दिल के फफोले फूटना—मन के भाव या चित्त के उद्गार प्रकट होना। दिल के फफोले फोड़ना—भली-बुरी सुनाकर जी ठंढा करना। दिल को करार होना—जी को धैर्य, शांति या आशा होना। दिल मसोसना—शोक, क्रोध आदि को प्रकट न करके मन ही में दबाना। मन मसोस कर रह जाना—शोक, क्रोध आदि को कारणवश प्रकट न कर सकना। दिल को लगना—(१) किसी बात का मन पर बड़ा प्रभाव पड़ना। (२) बहुत लगन होना। दिल खट्टा होना—घृणा या विरक्ति होना। दिल को खटकना—(१) संदेह या चिंता होना। (२) जी हिचकिचाना। दिल खुलना—संकोच या

हिचक न रह जाना। दिल खिलना—चित्त बहुत प्रसन्न होना। दिल खोलकर—(१) बिना हिचक या संकोच के, बेधड़क। (२) मनमाना (३) बहुत चाव या उत्साह के साथ। दिल चलना—(१) इच्छा होना। (२) चित्त चंचल या विचलित होना। (३) मोहित या मुग्ध होना। दिल चुराना—किसी काम से भागना या टाल-टूल करना। दिल जमना—(१) किसी काम में मन या चित्त लगना। (२) किसी विषय या पदार्थ का रुचि के अनुकूल होना। दिल जमाना—किसी कार्य-व्यापार में ध्यान देना या मन लगाना। दिल जलना—(१) गुस्सा या झुँझलाहट लगना, कुढ़ना। (२) डाह या ईर्ष्या होना। दिल जलाना—(१) कुढ़ाना, चिढ़ाना। (२) सताना, दुखी करना। (३) डाह या ईर्ष्या पैदा करना। दिलजान से जुटना (लगना)—(१) खूब मन लगाना, बहुत ध्यान से काम करना। (२) कड़ी मेहनत करना। दिल टूट जाना, टूटना—निराशा या निरुत्साह होना। दिल ठिकाने होना—शान्ति, संतोष या धैर्य होना। दिल ठुकना—(१) चित्त स्थिर होना। (२) हिम्मत बाँधना। दिल ठोंकना—(१) जी पक्का करना। (२) हिम्मत बाँधना। दिल डूबना—(१) मूर्छित होना। (२) घबराहट होना। (३) निराशा होना। दिल तड़पना—अधिक प्रेम के कारण किसी के लिए जी में बेचैनी होना। दिल तोड़ना—हिम्मत या साहस भंग कर देना। दिल दहलना—बहुत भय लगना। दिल दुखना—कष्ट या दुख होना। दिल देखना—जी की थाह लेना। दिल देना—प्रेम करना। दिल दौड़ना—(१) बड़ी इच्छा होना। (२) जी इधर-उधर भटकना। दिल दौड़ाना—(१) इच्छा करना। (२) सोचना, ध्यान दौड़ाना। दिल धड़कना—(१) डर से जी काँपना। (२) चित में चिंता होना। दिल पक जाना—दुख सहते-सहते तंग आ जाना। दिल पकड़ लेना (कर बैठ जाना)—शोक या दुख के वेग को दबाकर रह जाना—प्रकट न कर पाना। दिल पकड़ा जाना—संदेह या खुटका पैदा होना। दिल पकड़े फिरना—मोह-ममता से प्रिय पात्र के लिए भटकते फिरना। दिल पर नक्श होना—जी में अच्छी तरह बैठ जाना। दिल पर मैल आना—किसी के प्रति पहले का सा प्रेम या सद्भाव न रह जाना। दिल पर साँप लोटना—किसी की बढ़ती या उन्नति देखकर ईर्ष्या से दुखी होना। दिल पर हाथ रखे फिरना—मोह-ममता से भटकना। दिल पसीजना (पिघलना)—दुखी या पीड़ित को देखकर जी में दया उमड़ना। दिल पाना—मन की थाह पा लेना। दिल पीछे पड़ना—दुख-शोक भूलकर मन बहलाना। दिल फटना (फट जाना)—(१) पहले-सा प्रेम या व्यवहार न रहना। (२) उत्साह भंग हो जाना। दिल फिरना (फिर जाना)—पहले सा प्रेम न रहकर अरुचि या विरक्ति उत्पन्न हो जाना। दिल फीका होना—घृणा या विरक्ति हो जाना। दिल बढ़ना—(१) उत्साहित होना। (२) हिम्मत बढ़ना। दिल बढ़ाना—(१) उत्साहित करना। (२) हिम्मत बढ़ाना। दिल बहलना—(१) आनंद या मनोरंजन होना। (२) दुख-चिंता भूलकर दूसरे काम में मन लगना। दिल बहलाना—(१) आनंद या मनोरजन करना। (२) दुख-चिंता भुलाने के लिए दूसरे काम में मन लगाना। दिल बुझना—मन में उत्साह या उमंग न रहना। दिल बुरा होना—(१) जी मचलाना। (२) घिन या अरुचि होना। (३) अस्वस्थ होना। (४) मन में दुर्भाव या कपट होना। दिल बेकल होना—बेचैनी या घबराहट होना। दिल बैठ जाना (बैठना)—(१) मूर्छा आना। (२) बहुत उदास या खिन्न होना। दिल बैठा जाना—(१) चित्त ठिकाने न रहना। (२) जरा भी उमंग न रह जाना। (३) मूर्छा आने लगना। दिल भटकना—चित्त का व्यग्र या चंचल होना। दिल भर आना—मन में दया उमड़ना। दिल भारी करना—चित्त खिन्न या दुखी करना। दिल मसोसना—शोक-दुख आदि का वेग दबाना। दिल मारना—(१) उमग या उत्साह को दबाना (२) संतोष करना। दिल मिलना—स्नेह या प्रेम होना। दिल में आना—(१) विचार उठना। (२)

इच्छा या इरादा होना। दिल में खुभना (गड़ना, चुभना)—(१) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (२) बराबर ध्यान बना रहना। दिल में गाँठ (गिरह) पड़ना—अनुचित कार्य-व्यवहार के कारण बुरा मानना। दिल में घर करना—(१) बराबर ध्यान बना रहना। (२) मन में बसना। दिल में चुटकियाँ (चुटकी) लेना—(१) हँसी उड़ाना (२) चुभती हुई बात करना। दिल में चोर बैठना—शका या सदेह होना। दिल में जगह करना -(१) बराबर ध्यान बना रहना। (२) मन में बसाना। दिल में फफोले पड़ना—मन में बहुत दुखी होना। दिल में फरक आना (बल पड़ना) - शंका या संदेह होना, सद्भाव न रह जाना। दिल में धरना (रखना)—(१) ध्यान रखना। (२) बुरा मानना। (३) बात गुप्त रखना, अप्रकट रखना। दिल मैला करना—चित्त में दुर्भाव उत्पन्न करना। दिल रुकना—(१) जी घबराना। (२) जी में सकोच होना। (किसी का) दिल रखना—(१) किसी की इच्छा पूरी कर देना। (२) प्रसन्न या सतुष्ट करना। दिल लगना—(१) मन का किसी काम में रम जाना। (२) मन बहलाना। (३) प्रेम होना। दिल लगाना - (१) मन बहलाना। (२) प्रेम करना। दिल ललचाना—(१) कुछ पाने की इच्छा या लालसा होना। (२) मन मोहित होना। दिल लेना—(१) अपने प्रेम में फँसाना। (२) मन की थाह लेना। दिल लोटना—मन छटपटाना। दिल से उतरना (गिरना)—स्नेह, श्रद्धा या आदर का पात्र न रह जाना। दिल से—(१) खूब जी लगाकर। (२) अपनी इच्छा से। दिल से उठना—स्वयं कोई काम करने की इच्छा होना। दिल से दूर करना—भुला देना। दिल हट जाना—अरुचि हो जाना। (किसी के) दिल को हाथ में रखना—दूसरे के मन को अपने वश में रखना। (किसी के) दिल को हाथ में लेना—किसी के दिल को अपने कार्य-व्यवहार से वश में कर लेना। दिल हिलना—बहुत भय लगना। दिल ही दिल में—चुपके-चुपके। दिल-जान से—(१) खूब मन लगाकर। (२) कड़ा परिश्रम करके।

(३) साहस, दम। (४) प्रवृत्ति, इच्छा।

दिलचला—वि. [फ़ा. दिल+चलना] (१) साहसी, हिम्मती। (२) वीर, बहादुर। (३) दानी, उदार।

दिलचस्प—वि. [फ़ा.] मनोरंजक, मनोहर।

दिलचस्पी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) मनोरंजन, (२) रुचि।

दिलजमई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. दिल+अ. जमअई] इतमीनान, तसल्ली, भरोसा, संतोष।

दिलजला—वि. [फ़ा. दिल+हिं. जलना] दुखी, पीड़ित।

दिलदरिया, दिलदरियाव—संज्ञा पुं. [फ़ा दरियादिल] (१) उदार या दानी व्यक्ति। (२) उदार या दानी होने का भाव।

दिलदार—वि. [फ़ा] (१) उदार, दाता, (२) रसिक। संज्ञा पुं.—वह जिससे प्रेम हो, प्रेम पात्र।

दिलदारी—सज्ञा स्त्री. [फ़ा. दिलदार+ई (प्रत्य)] (१) उदारता। (२) रसिकता।

दिलपसंद—वि. [फ़ा.] जो दिल को भला लगे।

दिलबर—वि. [फ़ा.] प्रिय, प्यारा।

दिलरुबा—सज्ञा पुं. [फ़ा.] प्रेम पात्र, प्रिय व्यक्ति।

दिलवाना—क्रि. स. [हिं. देना का प्रे] (१) देने का काम दूसरे से कराना। (२) प्राप्त कराना।

दिलवाला—वि. [फ़ा. दिल+हि. वाला (प्रत्य)] (१) देने के काम में उदार। (२) बहादुर, साहसी।

दिलवैया—वि. [हि. दिलवाना+ऐया] (१) दिलानेवाला—प्राप्त करानेवाला। (२) देनेवाला।

दिलाना—क्रि. स. [हिं. 'देना' का प्रे.] (१) देने का काम दूसरे से कराना। (२) प्राप्त कराना।

दिलावर—वि. [फ़ा.] बहादुर, साहसी, वीर।

दिलावरी—सज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बहादुरी, साहस।

दिलासा—संज्ञा पुं. [फ़ा. दिल+हि. आशा] तसल्ली, ढारस।

दिली—वि. [फ़ा. दिल] (१) हार्दिक (२) बहुत घनिष्ठ।

दिलीप—संज्ञा पुं [सं.] (१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा, 'रघुवंश के अनुसार जिनकी पत्नी सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु जन्मे थे। (२) एक चंद्रवंशी राजा।

दिलेर—वि. [फ़ा.] बहादुर, साहसी।

दिलेरी—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] बहादुरी, साहस।

दिल्लगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. दिल+हि. लगना] (१) दिल लगाने की क्रिया या भाव। (२) हँसी ठट्ठा, मजाक, मखौल, मसखरी।

मुहा.—दिल्लगी उड़ाना—हँसी में उड़ा देना। दिल्लगी में—हँसी में, हँसी मखौल के उद्देश्य से।

दिल्लगीबाज—संज्ञा पुं. [हिं. दिल्लगी+फ़ा. बाज़] मसखरा, मखौलिया, हँसोड, हँसी- ठिठोली करनेवाला।

दिल्लगीबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं दिल्लगी+फ़ा. बाज़ी] हँसी-ठठोली।

दिल्ली—संज्ञा स्त्री.—यमुना नदी के किनारे बसा हुआ भारत का प्रसिद्ध नगर जो प्राचीन काल से हिंदू-मुसलमान राजाओं की राजधानी होता आया है। सन् १८०३ में अंग्रेजों ने इस पर अधिकार किया था और नौ वर्ष बाद इसको अपनी राजधानी बनाया था। स्वतंत्र भारत की राजधानी के रूप में आज यह नगर संसार में प्रसिद्ध है।

दिल्लीवाल—वि. [हिं. दिल्ली+वाला (प्रत्य.)] (१) दिल्ली से संबंधित, दिल्ली का। (२) दिल्ली का रहनेवाला।

दिव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ग। उ.—नीलावती चौंवर दिव दुरलभ। भात परोस्यौ माता सुरलभ—३८६। (२) आकाश। (३) वन। (४) दिन।

दिवराज—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग का राजा, इन्द्र। उ.—सूरदास प्रभु कृपा करहिंगे सरन चलौ दिवराज।

दिवरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. देवरानी] देवर की पत्नी।

दिवस—संज्ञा पुं. [सं.] दिन, वासर, रोज। उ.—एक दिवस हौं द्वार नंद के नहीं रहति बिनु आई—२५३८।

दिवस-अंध—संज्ञा पुं. [सं. दिवस+हिं. अंधा] उल्लू।

दिवसकर—संज्ञा पुं. [सं] (१) सूर्य। (२) मंदार।

दिवसनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, दिनकर, रवि।

दिवसपति—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

दिवसपति नंदनि—संज्ञा स्त्री. [सं. दिवसपति (=सूर्य) +नंदिनी=पुत्री] (१) सूर्य की पुत्री। (२) यमुना।

दिवसपतिसुतमात—संज्ञा पुं. [सं. दिवसपति (=सूर्य) +सुत (=सूर्य का पुत्र कर्ण) +माता (=कर्ण की माता कुंती=कुंत=बर्छा)] बर्छा, भाला। उ.—दिवसपति सुतमात अवधि विचार प्रथम मिलाप—सा. ३२।

दिवसमणि, दिवसमनि—संज्ञा पुं [सं. दिवसमणि] सूर्य, रवि।

दिवसमुख—संज्ञा पुं. [सं.] सबेरा, प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक दिन का वेतन।

दिवसेश—संज्ञा पुं. [सं. दिवस+ईश] सूर्य, रवि।

दिवस्पति—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

दिवस्पृश्—संज्ञा पुं. [सं.] पैर से स्वर्ग को छूनेवाले वामनावतारी विष्णु।

दिवांध—वि. [सं.] जिसे दिन में दिखायी न दे।

संज्ञा पुं.—(१) दिनौंधी नामक रोग। (२) उल्लू।

दिवांधकी—सं. स्त्री. [सं.] छछूँदर।

दिवा—संज्ञा पुं.. [सं.] (१) दिन (२) एक वर्णवृत्त।

दिवाई—क्रि. स. [हिं दिलाना (प्रे.)] दिलायी, प्राप्त करायी। उ.—(क) सिव-बिरंचि नारद मुनि देखत, तिनहुँ न मोकौं सुरति दिवाई—७-४। (ख) कहा करौं, बलि जाउँ, छोरि तू तेरी सौंह दिवाई—३६३। (ग) काहू तौ मोहि सुधि न दिवाई—१०६४। (घ) जो भाई सो सौंह दिवाई तब सूखे मन मान्यौ—२२७५।

दिवाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) कौआ, काक। (३) मदार का वृक्ष या फूल। (४) एक फूल।

दिवाकीर्ति—संज्ञा पुं [सं.] (१) नाई। (२) चांडाल। (३) उल्लू नामक पक्षी।

दिवाचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी। (२) चांडाल।

दिवाटन—संज्ञा पुं. [सं.] कौआ, काक।

दिवातन—वि. [सं. दिवा+वेतन (?)] दिन भर का।

संज्ञा पुं.—एक दिन का वेतन या मजदूरी।

दिवान—संज्ञा पुं [अ. दीवान] मंत्री, वजीर।

दिवाना—वि. [हिं. दीवाना] पागल, मतवाला, बावला।

दिवानाथ—संज्ञा पुं. [सं] रवि। सूर्य।

दिवानी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पेड़।

संज्ञा स्त्री. [हिं. दीवाना] दीवान का पद।

वि. [हिं. दीवाना] पगली, मतवाली, बावली।

उ.—(क) तब तू कहति सबनि सौं हँसि-हँसि अब तू प्रगटहि भई दिवानी—११६०। (ख) सूरदास प्रभु मिलिकै बिछुरे ताते भई दिवानी—३३५६।

दिवापृष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

दिवाभिसारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो दिन में पति से मिलने के लिए जाय।

दिवाभीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चोर (२) उल्लू।

दिवामणि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मदार।

दिवामध्य—संज्ञा पु. [सं.] दोपहर, मध्याह्न।

दिवाय—क्रि. स. [हिं. दिलाना] दिलाकर।

संयु.—देहु दिवाय— दिला दो। उ.—फगुवा हमको देहु दिवाय—२४१०।

दिवायो, दिवायौ—क्रि. स. [हिं. देना का प्रे.] दिलाया, दिलवाया। उ.-(क) जय अरु बिजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्मसराप दिवायौ—१-१०४। (ख) दोइ लख धेनु दई तेहि अवसर बहुतहि दान दिवायो—सारा.३६२।

दिवार—संज्ञा स्त्री, [हिं. दीवार] दीवार, भीत।

दिवारी—संज्ञा स्त्री [हिं. दीवाली] दीपावली का त्योहार।

दिवाल—वि. [हिं. देना+वाल (प्रत्य.)] देनेवाला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. दीवार] दीवार, भीत।

दिवाला—संज्ञा पुं. [हिं. दीवा+बालना] (१) धन या पूंजी न रह जाने के कारण ऋण चुकाने की असमर्थता, टाट उलटना। (२) किसी पदार्थ का बिलकुल खत्म हो जाना।

दिवालिया—वि. [हिं. दिवाला+इया] जो दिवाला निकाल चुका हो।

दिवाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. दीवाली] दीपावली का त्योहार।

दिवावति—क्रि. स. [हि दिलाना] (१) दूसरे को देने के लिए प्रवृत्त करती है, दिलवाती है। (२) प्राप्त कराती है, (शपथ आदि) रखती है। उ—छाँड़ि देहु बहि जाइ मथानी। सौंह दिवावति छोरहु आनी—३६१। (३) भूत-प्रेत की बाधा रोकने के लिए (हाथ) फिरवाती है। उ.—(क) घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरै बघनियाँ—१०-८३। (ख) घर-घर हाथ दिवावति डोलति, गोद लिए गोपाल बिनानी—१०-२५८।

दिवि—संज्ञा पुं० [सं. दिव] (१) स्वर्ग। उ.—(क) सूर भयौ आनंद नृपति-मन दिवि दुंदुभी बजाए—६-२४। (२) आकाश। (उ) जै दिवि भूतल सोभा समान। जै जै सूर, न सब्द आन—६-१६६। (३) देव। उ.—पाटंबर दिवि-मंदिर छायौ-१००१।

संज्ञा पुं. [सं] नीलकंठ पक्षी।

दिविता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दीप्ति आभा, कांति।

दिविषत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ग-वासी। (२) देवता।

दिविष्टि—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ।

दिविष्ठि—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग में रहनेवाले, देवता।

दिवेश—संज्ञा पु. [सं] दिक्पाल।

दिवैया—वि. [हिं. देना+ऐया (प्रत्य.)] देने वाला।

दिवोका, दिवौका—संज्ञा पुं. [सं. दिवौकस्] (१) स्वर्ग में रहने वाला। (२) देवता। (३) चातक पक्षी।

दिवोल्का—संज्ञा स्त्री. [सं.] दिन में गिरनेवाली उल्का।

दिव्य—वि. [सं. दिव्य] स्वर्ग से संबंध रखनेवाला, स्वर्गीय। (२) आकाश से संबंध रखने वाला। (३) प्रकाशपूर्ण, चमकीला। उ.—आजु दीपति दिव्य दीप मालिका—१०—८०६। (४) बहुत बढ़िया।

संज्ञा पु. [सं.] (१) जौ नामक अन्न। (२) आँवला (३) एक प्रकार के केतु। (४) स्वर्गीय या अलौकिक नायक। (५) अपराधी या निरपराधी की परीक्षा की एक प्राचीन रीति। (६) शपथ।

दिव्यकवच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अलौकिक कवच। (२) वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से अंग-रक्षा हो

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं] व्यक्ति को अपराधी-निरपराधी सिद्ध करने की प्राचीन परीक्षा-प्रणाली।

दिव्यगायन— संज्ञा पुं [सं] स्वर्ग के गायक, गधर्व।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पुं. [सं दिव्यचक्षुस्] (१) ज्ञान-चक्षु अंतःदृष्टि, दिव्यदृष्टि (२)। अंधा।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) अलौकिक होने का भाव। (२) देव भाव। (३) उत्तमता, सुंदरता।

दिव्यदोहद—संज्ञा पुं [स] किसी इच्छा की सिद्धि के लिए देवता को अर्पित किया जानेवाला पदार्थ।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं] अंत:दृष्टि, अलौकिक दृष्टि।
दिव्यधर्मी—संज्ञा पुं. [सं.दिव्यधर्मिन्] सुशील व्यक्ति।
दिव्यनगरी—संज्ञा [सं.] ऐरावती नगरी।
दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाश गंगा।
दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री [सं.] अप्सरा।
दिव्यपुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] करवीर, कनेर।
दिव्य रथ—संज्ञा पुं [सं] देवताओं का विमान।
दिव्यवस्त्र—संज्ञा पुं [सं.] सूर्य का प्रकाश।
दिव्यवाक्य—संज्ञा पुं. [सं] देववाणी, आकाशवाणी।
दिव्य-सरिता—संज्ञा स्त्री [सं दिव्यसरित्] आकाश गंगा
दिव्यस्त्री, दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] देववधू अप्सरा।
दिव्यांशु—संज्ञा पुं. [सं] सूर्य, रवि।
दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) देवी। (२) अप्सरा।
दिव्या—संज्ञा स्त्री. [सं] (२) आंवला। (२) तीन प्रकार की नायिकों में एक, स्वर्गीय अथवा अलौकिक नायिका।
दिव्यादिव्य—संज्ञा पुं [सं.] तीन प्रकार के नायकों में एक, वह मनुष्य जिसमें देवगुण हो।
दिव्यादिव्या—संज्ञा पुं. [सं.] तीन प्रकार की नायिकाओं में एक, वह स्त्री जिसमें देवियों के गुण हो।
दिव्यास्त्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) वह अस्त्र जो देवो से मिला हो। (२) वह अस्त्र जो मंत्रों से चले।
दिव्योदिक—संज्ञा पुं. [सं] वर्षा का जल।
दिव्योपपादक—संज्ञा पुं [सं.] देवता जिनकी उत्पत्ति विना माता-पिता के मानी जाती है।
दिश—संज्ञा स्त्री [सं दिश्] दिशा, दिक्।
दिशा—संज्ञा स्त्री [सं] (१) ओर, तरफ। (२) क्षितिज-वृत्त के किये गये चार विभागों में से किसी एक की ओर का विस्तार। ये चार विभाग हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। इनके बीच के कोणों के नाम ये हे—पूर्व दक्षिण के बीच अग्निकोण, दक्षिण पश्चिम के बीच नैऋत्य कोण, पश्चिम-उत्तर के बीच वायव्य कोण और उत्तर-पूर्व के बीच ईशान कोण। इन आठ दिशाओं के सर के ऊपर की दिशा को 'ऊर्ध्व' और पैर के नीचे की दिशा को 'अध.' कहते हैं। (३) दस की संख्या।
दिशागज—संज्ञा पुं [सं.] दिग्गज।
दिशाजय—संज्ञा पुं. [सं.] दिग्विजय।
दिशापाल—संज्ञा पुं. [सं.] दिक्पाल।
दिशाभ्रम—संज्ञा पुं. [सं.] दिशा-संबंधी भ्रम।
दिशाशूल, दिशासूल—संज्ञा पुं. [सं. दिक्शूल] समय का वह योग जब विशेष दिशाओं में यात्रा करने का निषेध हो।
दिशि, दिसि—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिशा] (१) दिशा ओर।
दिशेभ—संज्ञा पुं. [सं. दिश्+इभ] दिग्गज।
दिश्य—वि. [सं.] दिशा-संबंधी।
दिष्ट—संज्ञा पुं. [सं] (१) भाग्य। (२, उपदेश। (३) काल।
दिष्टांत—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु, मौत।
दिष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] १) भाग्य। (२) उपदेश। (३) उत्सव। (४) प्रसन्नता।
संज्ञा स्त्री. [सं. दृष्टि] (१) देखने की शक्ति। (२) नजर।
दिसंतर—संज्ञा पुं [सं. देशांतर] विदेश, परदेश।
क्रि वि.—दिशाओं के अंत तक, बहुत दूर तक।
दिस—संज्ञा स्त्री. [सं दिशा] (१) दिशा। (२) ओर।
दिसना—क्रि. अ [हिं. दिखना] दिखायी पड़ना।
दिसा—संज्ञा स्त्री. [सं दिशा] (१) दिशा। (२) ओर।
संज्ञा स्त्री.—मल त्यागने की क्रिया।
दिसादाह—संज्ञा पुं [सं दिश्+दाह] सूर्यास्त के पश्चात् भी दिशाओं का जलती हुई सी दिखायी देना।
दिसावर—संज्ञा पुं. [सं. देशांतर] विदेश, परदेश।
मुहा.—दिसावर उतरना—विदेशों में भाव गिरना। दिसावर चढ़ना—विदेश में दाम बढ़ना।
दिसावरी—वि [हिं दिसावर+ई (प्रत्य)] विदेश या परदेश से आया हुआ, बाहरी, परदेशी।
दिसि—संज्ञा स्त्री. [सं दिशा] (१) ओर, तरफ।
उ.—(क) जापर कृपा करै करुनामय ता दिसि कौन निहारै—१-२५७। (ख) सूरदास भक्त दोऊ दिसि का पर चक्र चलाऊँ—१-२७४। (२) दिशाएँ जिनकी संख्या दस है।
दिसिटि—संज्ञा स्त्री. [सं दृष्टि] दृष्टि, नजर।

दिसिदुरद—संज्ञा पुं. [सं. दिशि + द्विरद] दिग्गज ।

दिसिनायक—संज्ञा पुं. [सं. दिशि + नायक] दिक्पाल ।

दिसिप, दिसिपति—संज्ञा पुं [सं. दिशा + प, पति = पालक स्वामी, रक्षक] दिक्पाल

दिसिराज—संज्ञा पुं. [सं. दिशा + राजा] दिक्पाल ।

दिसैया—वि. [हिं दिसना = दिखना + ऐया (प्रत्य.)] (१) देखनेवाला । (२) दिखानेवाला ।

दिस्सा—संज्ञा स्त्री. [सं दिशा] ओर, तरफ, दिशा ।

दिहंदा—वि. [फा.] दाता, देनेवाला ।

दिहरा—संज्ञा पुं [सं. देव + हिं. घर = देवहर] देव-मंदिर ।

दिहल—क्रि. स [पू हिं. में 'देना' क्रिया का भूत. रूप] दिया, प्रदान किया ।

दिहाड़ा—संज्ञा पुं [हिं. दिन + हार (प्रत्य.)] (१) दिन । (२) बुरी दशा, दुर्गति ।

दिहाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिहाड़ा + ई प्रत्य.] दिन भर की मजदूरी ।

दिहात—संज्ञा स्त्री. [हिं. देहात] (१) गाँव, देहात । (२) वह स्थान जो सभ्यतादि में पिछड़ा हो ।

दिहाती—वि. [हिं देहात] (१) गाँव का रहनेवाला । (२) असभ्य, गँवार, उजड्ड ।

दिहातीपन—संज्ञा पुं. [हिं. देहातीपन] (१) ग्रामीणता । (२) उजड्डता, गँवारूपन ।

दिहेज—संज्ञा पुं. [हिं दहेज] विवाह में कन्यापक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जानेवाला सामान आदि ।

दीअट—संज्ञा स्त्री. [हिं. दीवट] दीपक रखने का आधार ।

दीआ—संज्ञा पुं. [हि दीया] दीप, दीपक ।

दीए—क्रि. स. [हिं देना] दिये, प्रदान किये ।

संज्ञा पुं. बहु. [हिं. दीया] बहुत से दीपक ।

मुहा—दीए का हँसना-दीप की बत्ती से फूल झड़ना ।

दीक्षक—संज्ञा पुं [सं] दीक्षा देनेवाला, गुरु ।

दीक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] दीक्षा देने की क्रिया ।

दीक्षांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दीक्षा-संस्कार की समाप्ति पर किया जानेवाला यज्ञ । (२) महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का उपाधि-वितरणोत्सव ।

दीक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यजन, यज्ञकर्म । (२) मंत्र की शिक्षा, मंत्रोपदेश । (३) उपनयन-संस्कार जिसमें गायत्री मंत्र दिया जाता है । (४) गुरु-मंत्र, आचार्योपदेश (५) पूजन ।

दीक्षागुरु—संज्ञा पुं. [सं.] मंत्रोपदेशक आचार्य ।

दीक्षापति—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ का रक्षक, सोम ।

दीक्षित—वि. [सं.] (१) जो किसी यज्ञ में लगा हो । (२) जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो ।

संज्ञा पुं.—ब्राह्मणों का एक वर्ग ।

दीखति—क्रि. अ. [हिं. दीखना] (१) दिखायी देता है, दृष्टिगोचर होता है । (२) जान पड़ता है, मालूम होता है । उ.—दीखति है कछु होवनहारी -४-५ ।

दीखना—क्रि. अ. [हिं. देखना] दिखायी देना ।

दीघी—संज्ञा स्त्री. [सं. दीर्घिका] तालाब, पोखरा ।

दीच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. दीक्षा] मंत्रोपदेश ।

दीजियै—क्रि. स. [हिं. देना] प्रदान कीजिए । उ.—ताहिं कै हाथ निरमोल नग दीजिए—१-२२३ ।

दीजियौ—क्रि. स. [हिं. देना] देना, प्रदान करना ।

प्र.—अंक दीजियो—गले लगना । उ.—तुम लछिमन निज पुरहि सिधारौ ।·······। सूर सुमित्रा अंक दीजियौ, कौसिल्याहिं प्रनाम हमारौ- ९-३६ ।

दीजै—क्रि. स. [हिं. देना] दीजिए । उ.—नर-देही पाइ चित्त चरन-कमल दीजै—१-७२ ।

दीठ—संज्ञा स्त्री. [सं. दृष्टि] (१) देखने की शक्ति, दृष्टि । मुहा—दीठ मारी जाना—देखने की शक्ति न रहना ।

(२) देखने के लिए आँख की पुतली का घुमाव या स्थिति, अवलोकन, चितवन, नजर ।

मुहा—दीठ करना—देखना । दीठ चूकना—देख न पाना । दीठ फिरना—(१) किसी दूसरी ओर देखने लगना । (२) कृपादृष्टि न रह जाना । दीठ फेंकना—नजर डालना । दीठ फेरना—(१) दूसरी ओर देखना । (२) अप्रसन्न हो जाना, कृपादृष्टि न रखना । दीठ बचाना—(१) सामने न पड़ना या होना । (२) छिपाना, दूसरे को देखने न देना । दीठि बाँधना—ऐसा जादू करना कि कुछ का कुछ दिखायी दे । दीठि लगाना—ताकना ।

(३) ज्योति प्रसार जिससे रूप रंग का बोध हो।

मुहा.—दीठ पर चढ़ना—(१) अच्छा लगना, पसंद आना, निगाह में जँचना। (२) आँखों को बुरा लगना, नजरों में खटकना। दीठ बिछाना—(१) बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा करना। (२) बड़ी श्रद्धा और प्रीति से स्वागत करना। दीठ में आना(पड़ना)—दिखायी पड़ना। दीठ में समाना—भला या प्रिय लगने के कारण बराबर ध्यान में बना रहना। दीठि से उतरना (गिरना)—श्रद्धा, प्रीति या विश्वास के योग्य न रह जाना।

(४) किसी अच्छी चीज पर ऐसी कुदृष्टि पड़ना जिसका प्रभाव बहुत बुरा हो, कुदृष्टि, नजर।

मुहा.—दीठ उतारना (झाड़ना)—मंत्र द्वारा नजर या कुदृष्टि का बुरा प्रभाव दूर करना। दीठि खा जाना (चढ़ना, पर चढ़ना)—कुदृष्टि पड़ना, नजर लगना, हूँस में आना, टोंक लगना। दीठि जलाना—नजर या कुदृष्टि का प्रभाव दूर करन के लिए राई-नोन का उतारा करके जलाना।

(५) देखने के लिए खुली हुई आँख।

मुहा. दीठि उठाना—निगाह ऊपर करके देखना। दीठ गड़ाना (जमाना)—एकटक देखना या ताकना। दीठ चुराना—लज्जा, भय आदि से सामने न आना। दीठ जुड़ना (मिलना)—देखा देखी होना। दीठ जोड़ना (मिलाना)—देखा-देखी करना। दीठि फिसलना—आँख में चकाचौंध होना। दीठ भर देखना—जी भरकर या अच्छी तरह देखना। दीठ मारना—(१) आँख से संकेत करना। (२) आँख के संकेत से मना करना। दीठ लगना—देखा-देखी के बाद प्रेम होना। दीठ लड़ना—देखा देखी होना। दीठ लड़ाना—आँख के सामने आँख किये रहना, एकटक देखना।

(६) देख-भाल, निगरानी। (७) परख, पहचान। (८) कृपादृष्टि, भलाई का ध्यान। (९) आशा। (१०) ध्यान, विचार।

दीठबंद—संज्ञा पुं. [हिं. दीठ + सं. बंध] ऐसा जादू या इन्द्रजाल कि कुछ का कुछ दिखायी दे।

दीठबंदी—संज्ञा पुं. [हिं. दीठबंद] ऐसी माया या जादू कि कुछ का कुछ दिखायी दे।

दीठवंत—वि. [सं. दृष्टि+वंत] (१) जिसे दिखायी दे, जिसके आँखें हों। (२) ज्ञानी।

दीठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. दीठ] (१) नेत्र-ज्योति, दृष्टि। (२) अवलोकन, दृक्पात, चितवन। उ०—आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि—१-२७४। (३) कुदृष्टि, नजर। उ.—(क) लालन वारी या मुख ऊपर। माई मेरिहि दीठि न लागै, तातैं मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर—१०-६२। (ख) खेलत मैं कोउ दीठि लगाई, लै लै राई लौन उतारति—१०-२००। (ग) कुँवरि कौं कहुँ दीठि लागी, निरखि कै पछिताइ—६९६।

दीत—संज्ञा पुं. [सं. आदित्य] सूर्य, रवि।

दीदा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) दृष्टि। (२) देखादेखी।

संज्ञा पुं. [फा दीदः] (१) आँख, नेत्र।

मुहा.—दीदा लगना(जमना)—जी लगना, मन रमना। दीदे का पानी ढल (में पानी न रह) जाना—निर्लज्ज हो जाना। दीदा निकालना—(१) आँख फोड़ना। (२) क्रोध से देखना। दीदा पट्ट होना—(१) आँख फूटी होना। (२) अक्ल कुंद होना। दीदा फटना—निर्लज्ज हो जाना। दीदा फूटना—(१) अंधा होना। (२) अक्ल कुंद होना। दीदा फाड़कर देखना—विस्मय या आश्चर्य से एकटक निहारना। दीदा मटकाना—आँख चमकाना।

(२) ढिठाई, अनुचित साहस।

दीदाधोई—वि. स्त्री. [हिं. दीदा+धोना] बेशर्म, निर्लज्ज।

दीदाफटी—वि. स्त्री. [हिं. दीदा+फटना] बेशर्म, निर्लज्ज।

दीदार—संज्ञा पुं [फा] देखा-देखी, दर्शन।

दीदारु, दीदारू—वि. [हिं. दीदार] देखने योग्य।

दीदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दादा] बड़ी बहन।

दीधिति—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) सूर्य-चन्द्रमा आदि की किरण। (२) उँगली।

दीन—वि. [स] (१) दरिद्र, निर्धन। (२) दुखी, कातर, हीन दशावाला। उ.—(क) सूर दीन प्रभु-

प्रगट-बिरद सुनि अजहुँ दयाल पतत सिर नाई—१-६। (ख) सूरस्याम सुन्दर जौ सेवै क्यौं होवै गति दीन—१-४६। (ग) तुमहिं समान और नहिं दूजौ, काहि भजौं हौं दीन—१-१११। (३) उदास, खिन्न। (४) नम्र, विनीत।

क्रि. स. [हिं. देना] दी, दिया। उ.—(क) पानि-ग्रहन रघुबर बर कीन्ह्यौ जनक-सुता सुख दीन—९-२६। (ख) जिन जो जाँच्यौ सोई दीन अस नँदराइ ढरे—१०-२४। (ग) षंडामर्क जो पूछन लाग्यौ तब यह उत्तर दीन—सारा. ११२। (घ) दीन मुक्ति निज पुर की ताकौं—सारा. २७३।

संज्ञा पुं. [अ.] धर्म-विश्वास, मत।

दीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दरिद्रता, गरीबी। (२) कातरता, आर्तभाव। उ.—(क) उनकी मोसौं दीनता कोउ कहि न सुनावौ—१-२३७। (३) उदासी, खिन्नता। (४) अधीनता का भाव, विनीत भाव। उ.—कोमल बचन दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै—२-१८।

दीनताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. दीनता] (१) निर्धनता (२) कातरता।

दीनत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निर्धनता। (२) आर्तभाव।

दीनदयाल, दीनदयालु—वि. [स. दीनदयालु] दीनों पर दया करनेवाला।

संज्ञा पुं—ईश्वर का एक नाम।

दीनदार—वि. [अ. दीन+फा. दार] धार्मिक।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] धर्म का आचरण।

दीनदुनिया, दीनदुना—संज्ञा स्त्री. [अ. दीन+दुनिया] लोक-परलोक।

दीननाथ—संज्ञा पुं. [स.] (१) दीनों के स्वामी। (२) ईश्वर का एक नाम। उ.—दीननाथ अब बारि तुम्हारी—१-११८।

दीननि—वि. [स. दीन+हिं नि (प्रत्य.)] दीनों को, दीनों पर। उ.—जब जब दीननि कठिन परी। जानत हौं करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी—१-१६।

दीनबंधु—संज्ञा पुं. [स] (१) दुखियों का सहायक। उ.—दीन-बंधु हरि, भक्त-कृपानिधि, बेद-पुराननि गाए (हो)—१-७। (२) ईश्वर का एक नाम।

दीनहिं—वि. [हिं. दीन+हिं (प्रत्य.)] दीन-दरिद्र को। उ.—कह दाता जो द्रवै न दीनहिं, देखि दुखित ततकाल—१-१५६।

क्रि. स. [हिं. देना] दिया, प्रदान किया।

दीनानाथ—संज्ञा पुं. [स. दीन+नाथ] (१) दीनों का स्वामी या रक्षक, दुखियों का पालक और सहायक। (२ ईश्वर के लिए एक संबोधन। उ.—दीनानाथ दयाल मुरारि—७-२।

दीनार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने का गहना। (२, सोने की मोहर। (३) सोने का एक प्राचीन सिक्का।

दीनी—क्रि. स. [हिं. देना] दी, प्रदान की। उ.—(क) नर-देही दीनी सुमिरन कौं—१-११६। (ख) बकी जु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति दीनी—१-१२२। (ग) बिभीषण कौ लंक दीनी—१-१७६। (घ) तिल-चाँवरी गोद करि दीनी फरिया दई फारि नव सारी—७०८।

दीनौ—क्रि. स. [हिं. देना] दिया, प्रदान किया। उ.—पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ—१-२६।

प्र.—मन दीनौ— मन लगाया, चित्त रमाया। उ.—भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ—१-६५।

दीन्यौ—क्रि. स. [हिं. देना] (१) दिया, प्रदान किया। (२) बंद किया, लगाया, रोका। उ.—बड़े पतित पासगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारौ। भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यौ हठि तारौ—१-१३१।

दीन्हीं—क्रि. स. [हिं. देना] दी, प्रदान की। उ.—बिप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं १-३६।

दीन्ही—क्रि. स. [हिं. देना] (१) दी, प्रदान की। उ.—असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ—१-१०४। (२) डाली झोक दी। उ.—हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्ही—६६४।

दीन्हे—क्रि. स. [हिं देना] (१, दिये रहता है। (२) बंद (रखता है)। उ. न वे भरी नरकन ते मोसौं, दीन्हे रहत किवार—१-१४१।

दीन्हैं—क्रि. स. [हिं देना] **दिये, देने पर,** उ.—बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ-गुसाईं—१-३ ।

दीन्हौ—क्रि. स. [हिं देना] (१) **दिया, प्रदान किया।** उ.—(क) बारह बरस बसुदेव देवकिहिं कंस महा दुख दीन्हौ—१-१५ । (ख) निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ—१-१०४ । (२) **लगाया।** उ.—अंजन दोउ दृग भरि दीन्हौ—१०-१८३ ।

दीन्ह्यौ—क्रि. स. [हिं. देना] **दिया, प्रदान किया।** उ.—मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हे, मृतक विप्र-सुत दीन्ह्यौ—१-१७ ।

दीप—संज्ञा पु. [स.] (१) **दीपक, दीया।** उ—धूप-नैवेद्य साजि कै, मंगल करै बिचारि—३०—५० । (२) **एक छंद।**

संज्ञा पु. [स. द्वीप] **द्वीप, टापू।** उ.—कसहि कमल पठाइहै, काली पठवै दीप—५८६ ।

दीपक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दीया, चिराग। उ.—दीपक पीर न जानई (रे) पावक परत पतंग—१-३२५ । (२) **एक अर्थालङ्कार।** (३) **एक राग।** (४) **एक ताल।**

वि.—(१) **प्रकाश करने या फैलानेवाला।** उ.—बासुदेव जादव कुल दीपक बंदीजन बर भावत—२७२६ । (२) **वेग या उमंग लानेवाला।** (२) **बढ़ाने या वृद्धि करनेवाला।**

दीपकजात—संज्ञा पुं. [हिं दीपक+जात=उत्पन्न] **काजल।** उ.—अलिहता रँग मिट्यौ अधरन लग्यौ दीपकजात—२१३० ।

दीपकमाला—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **एक वर्णवृत्त।** (२) **दीपक अलकार का एक भेद।** (३) **दीपक-पंक्ति।**

दीपकलिका, दीपकली—संज्ञा स्त्री. [स. दीपकलिका] **दिये की लौ या टेम।**

दीपकवृक्ष—संज्ञा पु [स] (१) **बड़ी दीयट जिसमें कई दीपक रखे जा सकें।** (२) **झाड़।**

दीपकसुत—संज्ञा पु [स] **काजल, कज्जल।**

दीपकाल—संज्ञा पु [स] **संध्याकाल जब दीप जलता है।**

दीपकावृत्ति—संज्ञा पु. [स] **दीपक अलकार का एक भेद।**

दीपकिट्ट—संज्ञा पु. [स.] **काजल, कज्जल।**

दीपकूपी—संज्ञा पु [स] **दीए की बत्ती।**

दीपत—संज्ञा स्त्री [स दीप्ति] (१) **कांति, ज्योति।** उ.—दधि-सुत दीपत तन मुरझाना। दिनपति-सुत है भूषन हीन—सा. ६६ । (२) **छटा, शोभा।** उ.—भू-सुत-सत्रु गेह में काहू दीपत द्वार दई—सा. ३१ । (३) **कीर्ति।**

क्रि. अ. [हि. दीपना] (१) **प्रकाशित होता है, चमकता है।** (२) **शोभित है।** उ.—रामदूत दीपत नछत्र में पुरी धनद रचि रचि तमहारी—सा. ६८ ।

वि.—**चमकता हुआ, प्रकाश फैलाता हुआ।**

दीपति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. दीपना] **प्रकाशित होती है, चमकती है।** उ.—आज दीपति दिव्य दीपमालिका—८०६ ।

दीपदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पूजा का एक अंग जिसमें देवता के सामने दीपक जलाया जाता है।** (२) **कार्तिक में राधादामोदर के लिए दीपक जलाने का कृत्य।** (३) **एक क्रिया जिसमें मरणासन्न के अथवा मृत व्यक्ति के हाथ से आटे के जलते हुए दीप का संकल्प कराया जाता है।** उ.—भस्म अन तिल-अंजलि दीन्हीं देव बिमान चढायौं। दिन दस लौं जल कुंभ साजि सुचि, दीपदान करवायौं—६-५० ।

दीपदानी—संज्ञा स्त्री. [स. दीप+हि. दानी] **दीपक का समान—घी, बत्ती आदि—रखने की डिबिया।**

दीपध्वज—संज्ञा पु. [स.] **काजल, कज्जल।**

दीपन—संज्ञा पुं. [स.] (१) **प्रकाश के लिए जलाने की क्रिया।** (२) **बढ़ाने की क्रिया।** (३) **वेग या उमंग को उत्तेजित करने की क्रिया।**

वि.—**बढ़ाने या उत्तेजित करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—(१) **कुंकुम, केसर।** (२) **मंत्र-सिद्धि का एक संस्कार।**

दीपना—क्रि. अ. [सं. दीपन] **चमकना, जगमगाना।**

क्रि. स.—**चमकाना, प्रकाशित करना।**

दीपनीय—वि. [स.] (१) **प्रकाशन के योग्य।** (२) **उत्तेजन के योग्य।**

दीपपादप—संज्ञा पु. [स.] (१) **दीवट।** (२) **झाड़।**

दीपमाला—संज्ञा स्त्री. [स] (१) **जलते हुए दीपकों की पंक्ति।** (२) **जली हुई बत्तियों का समूह।**

दीपमालिका—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **दीपकों की पंक्ति या समूह।** (२) **दिवाली।** उ.—आज दीपति दिव्य दीपमालिका—८०६ । (३) **दीपदान**

या आरती के लिए जलायी गयी बत्तियों की पंक्ति। उ.—दीपमालिका रचि-रचि साजत। पुहुपमाल मंडली विराजत।

दीपमाली—संज्ञा स्त्री. [सं. दीपमालिका] दिवाली।

दीपवृक्ष—संज्ञा. पुं. [सं.] दीवट, दीपाधार।

दीपशत्रु—संज्ञा पु. [स.] पतंग जो दीप को बुझा दे।

दीपशिखा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) दीप की लौ या टेम। (२) दीपक का धुआँ या काजल।

दीपसुत—संज्ञा पुं. [स.] काजल, कज्जल।

दीपाग्नि—सज्ञा पु. [स.] दीप की लौ की आँच।

दीपान्वता—सज्ञा स्त्री. [स.] दिवाली।

दीपावलि, दीपावली—सज्ञा स्त्री [स. दीपावलि] दिवाली।

दीपिका—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) छोटा दीप। उ.—दोउ रूख लिये दीपिका मानो किये जात उजियारे—२१६०। (२) एक रागिनी जो प्रदोषकाल में गायी जाती है।

दीपित—वि. [स.] (१) प्रकाशित, जलता हुआ। (२) चमकता या जगमगाता हुआ। (३) उत्तेजित।

दीपै—क्रि. अ. [हि.दीपना] चमकता है।

संज्ञा पुं. सवि. [स.द्वीप, हि. दीप+ऐं (प्रत्य.)] द्वीपों में। उ.—तद्यपि भवन भाव नहि व्रज बिनु खोजौ दीपै सात—३३५१।

दीपोत्सव—सज्ञा पं. [सं.दीप+उत्सव] दिवाली।

दीप्त—वि. [स.] (१) जलता हुआ। (२) चमकता हुआ।

सज्ञा पु.—(१) सोना, स्वर्ण। (२) सिंह।

दीप्तक—सज्ञा पु. [स.] सोना, स्वर्ण।

दीप्तकिरण—सज्ञा पु. [स.] (१) सूर्य। (२) मदार।

दीप्तवर्ण—सज्ञा पु. [स.] कार्त्तिकेय।

वि.—जिसका शरीर कुंदन-सा चमकता हो।

दीप्तांग—सज्ञा पु. [स.दीप्त+अग] मोर, मयूर।

वि.—जिसका शरीर खूब चमकता हो।

दीप्तांशु—सज्ञा पुं. [स.] (१) सूर्य। (२) मदार।

दीप्ता—वि. स्त्री. [स.] (१) चमकती हुई, प्रकाशित। (२) सूर्य से प्रकाशित (दिशा)।

दीप्ताक्ष—सज्ञा पु. [स.] बिड़ाल, बिल्ली।

वि.—जिसकी आँखें खूब चमकती हो।

दीप्ताग्नि—वि. [सं.दीप्त+अग्नि] (१) जिसकी पाचन-शक्ति तीव्र हो। (२) जिसको बहुत भूख लगी हो।

संज्ञा पुं.—अगस्त्य मुनि जिन्होंने समुद्र पी डाला था और वातापि राक्षस को पचा डाला था।

दीप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उजाला, प्रकाश। (२) चमक, प्रभा, द्युति। (३) कांति, शोभा, छवि। (४) ज्ञान का प्रकाश।

दीप्तिमान, दीप्तिमान्—वि. [सं.दीप्तिमत्] (१) चमकता हुआ, प्रकाशित। (२) शोभा या कांति से युक्त।

सज्ञा पु.—सत्यभामा से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

दीप्तोपल—सज्ञा पु. [स.] सूर्यकान्त मणि।

दीप्य—वि. [स.] (१) जो जलाया जाने को हो। (२) जो जलाया जाने योग्य हो।

दीप्यमान—वि. [स.] चमकता हुआ।

दीप्र—वि. [स.] दीप्तिमान्, प्रकाशयुक्त।

दीबे—क्रि.स. [हिं.देना] देने (के लिए)। उ.—(क) मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी—१-१४४। (ख) या छवि की पटतर दीबे कौं सुकवि कहा टकटोहै—१०-१५८।

दीबो, दीबौ—क्रि. स. [हिं.देना] देना, प्रदान करना।

सज्ञा पु.—देने या प्रदान करने की क्रिया।

दीमक—सज्ञा स्त्री. [फा.] एक छोटा कीड़ा, वल्मीक।

दीयट—सज्ञा पुं. [हिं दीवट] दीपक का आधार।

दीयमान—वि. [स०] (१) जो देने योग्य हो। (२) जो दिया जाने को हो।

दीया—सज्ञा पुं. [स० दीपक, प्रा. दीअ] (१) दीप।

मुहा.—दीया जलना (जले)—संध्या होना (होने पर)। दीया जलाना—दिवाला निकालना। दीया ठंढा करना—दिया बुझाना। दिया ठंढा होना—दिया बुझना। किसी के घर का दीया ठंढा होना—किसी के वंश में पुत्र न रहने से घर में रौनक न रह जाना। दीया बढ़ाना—दीप बुझाना। दीया-बत्ती करना—रोशनी का सामान करना। दीया लेकर ढूंढ़ना—बहुत छानबीन करना।

(२) बत्ती जलाने का पात्र या बरतन।

दीयौ—क्रि. स. भूत. [सं. दान, हिं. देना] (१) दी, प्रदान की। (२) डाली, छोड़ी। उ.—नृप कह्यौ, इंद्रपुरी की न इच्छा हमैं, रिषिनि तब पूरनाहुती दीयौ—४-११।

दीरघ—वि. [स. दीर्घ] (१) लंबा, बड़ा। उ.—इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यौं, सखि, यह संसय मोर—६-२३। (२) गुरु या दीर्घ मात्रावाला। उ.—पाछिले कर पहिल दीरघ बहुरि लघुता बोर—सा.११०।

दीरघता—संज्ञा स्त्री [स. दीर्घता] लंबाई, बड़ापन, (लघु का विपरीतार्थक), अधिकता। उ—(क) तप अरु लघु-दीरघता सेवा, स्वामि-धर्म सब जगहिं सिखाए—६-१६८। (ख) लघु-दीरघता कछू न जानैं, कहुँ बछरा कहुँ धेनु चराए—१०-३०६।

दीर्घ—वि. [स.] (१) लंबा। (२) बड़ा। (३) दीर्घ या गुरु मात्रावाला।

संज्ञा पु—गुरु या द्विमात्रिक वर्ण।

दीर्घकंठ—वि. [स.] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं—(१) बगुला। (२) एक दानव।

दीर्घकंद—संज्ञा पु—[स.] मूली।

दीर्घकंधर—वि. [स.] लंबी गरदनवाला।

संज्ञा पुं.—बगुला पक्षी, बक।

दीर्घकर्ण—वि. [स.] बड़े कानवाला।

दीर्घकाय—वि. [स.] बड़े डील-डौल का।

दीर्घकेश—वि. [स.] लंबे लंबे बालवाला।

दीर्घगति—संज्ञा पु. [स] ऊँट (जो लंबे डग रखता है)।

दीर्घग्रीव—वि. [स] लंबी गरदनवाला।

संज्ञा पुं.—नील क्रौंच या सारस पक्षी।

दीर्घघाटिका—वि. [स.] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पु—ऊँट।

दीर्घच्छद—वि. [सं.] जिसके लंबे-लंबे पत्ते हो।

संज्ञा पुं.—ईख, ऊख।

दीर्घजंघ—वि [स.] लंबी-लंबी टाँगोवाला।

संज्ञा पुं.—(१) बक, बगुला। (२) ऊँट।

दीर्घजिह्व—वि. [स] लंबी जीभवाला।

संज्ञा. पुं.—(१) सर्प। (२) दानव।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा स्त्री. [स.] एक राक्षसी जो विरोचन की पुत्री थी और जिसे इंद्र ने मारा था।

दीर्घजीवी—वि. [सं. दीर्घजीविन्] बहुत दिन जीनेवाला।

दीर्घतपा—वि. [सं. दीर्घतपस्] बहुत दिन तप करनेवाला।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं. [सं० दीर्घतमस्] एक ऋषि जिनके रचे मंत्र ऋग्वेद के पहले मंडल में हैं।

दीर्घता—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) लंबाई। (२) लंबे होने की भावना।

दीर्घदर्शिता—संज्ञा स्त्री. [स.] दूर तक सोचने की क्रिया, भावना या क्षमता, दूरदर्शिता।

दीर्घदर्शी—वि. [स. दीर्घदर्शिन] (१) दूर तक की बात सोचनेवाला, दूरदर्शी। (२) विचारवान्।

दीर्घदृष्टि—वि. [स.] (१) जो दूर तक देख सके। (२) जो दूर तक सोच सके।

संज्ञा पु.—गीध, जो दूर तक देखता है।

दीर्घनाद—वि. [स.] जिससे जोर का शब्द निकले।

संज्ञा पुं.—शंख।

दीर्घनिद्रा—संज्ञा-स्त्री. [स.] मृत्यु, मौत।

दीर्घनिश्वास—संज्ञा पुं. [स.] लंबी साँस जो दुख-शोक में ली जाती है।

दीर्घपर्ण—वि. [स.] जिसके पत्ते लम्बे हों।

दीर्घपाद—वि. [स.] लम्बी टाँगोवाला।

संज्ञा पुं.—(१) कंक पक्षी (२) सारस

दीर्घपृष्ठ—संज्ञा पुं [स] सर्प, साँप।

दीर्घप्रज्ञ—वि. [स.] दूरदर्शी, दीर्घदर्शी।

दीर्घबाहु—वि. [स.] लम्बी भुजाओंवाला।

दीर्घमारुत—संज्ञा पु. [स.] हाथी।

दीर्घयज्ञ—वि. [स.] बहुत समय तक यज्ञ करनेवाला।

दीर्घरद—वि [स.] लंबे लंबे दाँतवाला।

संज्ञा पु.—सुअर, शूकर।

दीर्घरसन—संज्ञा पुं. [स] सर्प, साँप।

दीर्घरोमा—संज्ञा पुं. [स.] भालू, रीछ।

दीर्घलोचन—वि. [स.] बड़ी बड़ी आँखवाला।

दीर्घवक्त्र—वि. [स.] लम्बे मुँहवाला।

संज्ञा पुं.— हाथी, गज।

दीर्घश्रुत—वि. [स.] (१) जो दूर तक सुनायी दे।

(२) जिसका नाम दूर-दूर तक फैला हो।

दीर्घसूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहुत दिनों में समाप्त होनेवाला एक यज्ञ। (२) वह जो यह यज्ञ करे।

दीर्घसूत्रता—संज्ञा स्त्री. [स.] देर से काम करने का भाव।

दीर्घसूत्री—वि. [सं.दीर्घसूत्रिन्] देर से काम करनेवाला।

दीर्घायु—वि. [स.] बहुत दिन जीनेवाला।

पं.—(१) कौआ, काक। (२) मार्कंडेय।

दीर्घा —वि. [सं.] बड़े मुँहवाला।

सज्ञा पुं.—(१) हाथी। (२) शिव का एक अनुचर।

दीर्घाहन—सज्ञा पुं. [स.] ग्रीष्म ऋतु, जब दिन बड़े होते हैं।

दीर्घिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बावली, छोटा तालाब।

दीर्ण—वि. [सं.] फटा या दरका हुआ।

दीवट—संज्ञा स्त्री. [स. दीपस्थ, प्रा.दीवट्ठ] दीपकधार।

दीवला—संज्ञा पुं. [हिं. दीवा+ला (प्रत्य.)] दीया, दीप।

दीवा—सज्ञा पुं. [स. दीपक] दीया, दीप।

दीवान—संज्ञा पुं. [अ.] (१) राज्य-प्रबन्धकर्त्ता मंत्री, प्रधान। उ.—भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी, राम के दीवान—१-२३५। (२) राजसभा। (३) गजल-संग्रह।

दीवानआम—सज्ञा पुं. [अ.] (१) ऐसा दरबार जिसमें राजा से साधारण लोग भी मिल सकें। (२) ऐसे दरबार का स्थान।

दीवानखाना—संज्ञा पुं [फा.] बड़े आदमियों के घर की बैठक।

दीवानखास—सज्ञा पुं. [अ. दीवान+ फा. खास] (१) ऐसा दरबार जिसमें राजा चुने हुए व्यक्तियों के साथ बैठता हैं। (२) ऐसे दरबार का स्थान।

दीवाना—वि. [फ़ा.] पागल, सिड़ी।

मुहा.—किसी के पीछे दीवाना होना—उसकी प्राप्ति के लिए पागल या बेचैन होना।

दीवानापना, दीवानापना—सज्ञा पु. [फ़ा. दीवाना+हिं. पन (प्रत्य.)] पागलपन, सिड़ीपन।

दीवानी—संज्ञा स्त्री. [फा.दीवान] (१) दीवान का पद। (२) धन-व्यवहार-संबंधी न्यायालय।

। वि. स्त्री. [फ़ा.दीवाना] पगली, बावली।

दीवार, दीवाल—संज्ञा स्त्री. [फा] (१) पत्थर, ईंट आदि से बना ऊँचा परदा या घेरा, भीत। (२) किसी वस्तु का उठा हुआ घेरा।

दीवारगीर, दीवारगीरी—सज्ञा पुं. [फा] दिया आदि का आधार जो दीवार में लगाया जाता है।

दीवाली—संज्ञा स्त्री. [सं. दीपावली] कार्तिकी अमावास्या को मनाया जानेवाला हिंदुओं का एक उत्सव जिसमें लक्ष्मी का पूजन करके दीपक जलाये जाते हैं।

दीवि—सज्ञा पुं. [सं.] नीलकंठ नामक पक्षी।

दीवी—सज्ञा स्त्री. [हिं. दीया] दीवट दीपाधार।

दीस—संज्ञा स्त्री. [स. दिश] दिशा, ओर, तरफ। उ.—गरजत रहत मत गज चहुँ दिसि, छत्र-धुजा चहुँ दीस—६-७५।

क्रि. अ.—[हिं. दिखना], दिखायी पड़ता है।

दीसत—क्रि. स. [हिं. दीखना] दिखायी देते हैं। उ.—(क) जहाँ तहाँ दीसत कपि करत राम-आन—६-६६। (ख) उड़त धूरि, धुँआँ धुर दीसत सूल सकल जलधार—१० उ. २।

दीसति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. दीसना] (१) दिखायी देती है। उ.—(क) वै लखि आये राम रजा। जल कैं निकट आइ ठाढे भये दीसति बिमल ध्वजा—६-११४। (ख) उज्ज्वल अरुन असित दीसति हैं दुहुँ नैननि-कोर—३५६। (२) जान पड़ती है, मालूम होती है। उ.—राजा कह्यो, सत दिन माहि। सिद्धि होत कछु दीसति नाहिं—१-३४१।

दीसना—क्रि. अ. [स. दृश्=देखना] दिखायी देना।

दीह—वि. [स. दीर्घ] लम्बा, बड़ा।

दुंका—संज्ञा पु. [स. स्तोक] अन्न का दाना या कण।

दुंगरी—सज्ञा स्त्री. [देश.] एक मोटा कपड़ा।

दुंद—सज्ञा पुं. [सं. द्वन्द्व] (१) दो पक्षों में होनेवाला झगड़ा। (२) उपद्रव, ऊधम। उ.—कहा करौं हरिबहुत खिझाई।…… ।भोर होत उरहन लै आवहिं, ब्रज की बधू अनेक। फिरत जहाँ तहँ दुंद मचावत घर न रहत छन एक—३७७। (३) जोड़ा, युग्म।

। सज्ञा पुं. [सं.दुंदुभि] नगाड़ा।

दुंदर, दुंदरा—संज्ञा. पुं. [सं. द्वंद्व] उलझन, झंझट, जजाल । उ.—देख्यौ भरत तरुन अति सुन्दर। थूल सरीर रहित सब दुंदर—५-३ ।

दुंदरी—सज्ञा स्त्री. [हिं.दुंद] हलचल, उत्पात । उ.—जुरी ब्रज सुंदरी दसन छवि कुंदरी कामतनु दुंदरी करनहरी—१२६०।

दुंदुभ—सज्ञा पुं [स.] नगाड़ा, धौंसा ।

दुंदुभि—सज्ञा स्त्री. [स] (१) नगाड़ा, धौंसा । उ.—हरि कह्यौ, मम हृदय माहि तू रहि सदा, सुरनि मिलि देव-दुंदुभि बजाई—८-८ ।

सज्ञा पुं. [स.] (१) विष (२) वरुण। (३) एक राक्षस जिसे मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक देने पर बालि को वहाँ न जाने का शाप मिला था।

दुंदुभिक—सज्ञा पु. [सं.] एक तरह का कीड़ा ।

दुंदुभी—सज्ञा स्त्री [स दुंदुभि] नगाड़ा, धौंसा ।

दुंदुह—सज्ञा पुं. [स.डुंडुभ] पानी का साँप, डेंड़हा ।

दुंबुर—संज्ञा पुं. [स. उदुंबर] गूलर की जाति का एक पेड़।

दुःख—सज्ञा पु [स.] (१) कष्ट, क्लेश, तकलीफ। (२) सकट, विपत्ति, आपत्ति (३) मानसिक कष्ट, खेद। (४) पीड़ा, व्यथा। (५) रोग, बीमारी।

दुःखकर—वि. [स.] कष्ट पहुँचानेवाला ।

दुःखग्राम—सज्ञा पु. [स] ससार।

दुःखजीवी—वि. [सं.] कष्ट से जीवन वितानेवाला।

दुःखत्रय—सज्ञा पु. [स] तीन प्रकार के दुख।

दुःखद—वि [स.] कष्ट पहुँचानेवाला।

दुःखदग्ध—वि. [स.] दुख से पीड़ित, बहुत दुखी।

दुःखदाता—सज्ञा पुं. [स दुःखदातृ] दुख देनेवाला।

दुःखदायक—वि [स.] जिससे दुख मिले।

दुःखदायी—वि [स.दुःखदायिन्] दुख देनेवाला।

दुःखप्रद—सज्ञा पु [स.] कष्ट देनेवाला।

दुःखबहुल—वि. [स.] दुख या कष्ट से युक्त।

दुःखमय—वि. [स.] कष्ट-पूर्ण, क्लेश युक्त।

दुःखलभ्य—वि. [स.] जो कष्ट से प्राप्त हो सके।

दुःखलोक—सज्ञा पुं. [स.] ससार, जगत।

दुःखसाध्य—वि [स.] जिस (काम) का करना कठिन या मुश्किल हो।

दुःखांत वि. [सं.] (१) जिसके अंत में कष्ट मिले। (२) जिसके अंत में कष्ट या दुख का वर्णन हो।

संज्ञा पुं. (१) कष्ट का अंत। (२) बहुत कष्ट।

दुःखायतन—सज्ञा पुं. [स.] ससार, जगत।

दुःखार्त्त—वि. [सं.] कष्ट से व्याकुल।

दुःखित—वि. [स.] जिसे कष्ट या तकलीफ हो।

दुःखिनी—वि. [सं.] जिस (स्त्री) पर दुख पड़ा हो।

दुःखी—वि. पुं. [स.] जो कष्ट में हो।

दुःशकुन—सज्ञा पुं. [स.] ऐसा लक्षण या दर्शन जिसका फल बुरा समझा जाता हो।

दुःशला—सज्ञा स्त्री. [स.] धृतराष्ट्र की पुत्री जो जयद्रथ की ब्याही थी।

दुःशासन—वि. [स.] जो किसी का दबाव न माने।

संज्ञा पुं.— धृतराष्ट्र का एक पुत्र जो दुर्योधन का प्रिय पात्र और मत्री था।

दुःशील—वि [स.] बुरे स्वभाववाला।

दुःशीलता—संज्ञा स्त्री. [स.] बुरा स्वभाव।

—वि [स.] (१) जिस (व्यक्ति) का सुधार करना कठिन हो। (२) जिस (धातु आदि) का शोधना कठिन हो।

दुःश्रव—सज्ञा पुं. [स] काव्य का एक दोष जो उसमें कर्णकटु वर्ण आने से माना जाता है।

दुःषम—वि. [स.] निंदनीय।

दुःषेध—वि. [स.] जिसका दूर करना कठिन हो।

दुःसंकल्प—सज्ञा पुं. [स] खोटा या अनुचित विचार।

वि.— बुरा या अनुचित विचार रखनेवाला।

दुःसंग—सज्ञा पुं. [स.] बुरे लोगो का साथ, कुसग।

दुःसधान—सज्ञा पु [स] काव्य का एक रस जो बेमेल बातों को सुनकर होता है।

दुःसह—वि. [स] जो कष्ट से सहा जाय।

दुःसाधी—सज्ञा पु [स दुःसाधिन] द्वारपाल।

दुःसाध्य—वि. [स] (१) जो कष्ट से किया जा सके। (२) जिसका उपाय या उपचार करना कठिन हो।

दुःसाहस—सज्ञा पुं. [स] (१) व्यर्थ का या निरर्थक साहस जिससे कुछ लाभ न हो। (२) अनुचित साहस, ढिठाई, धृष्टता।

दुःसाहसिक—वि [सं.] जिस (कार्य) का करना निष्फल या अनुचित हो।

दुःसाहसी—वि [स.] निष्फल या अनुचित साहस के काम करनेवाला।

दुःस्थ—वि. [स] (१) जिसकी स्थिति अच्छी न हो, दुर्दशा में पड़ा हुआ। (२) दरिद्र, निर्धन (३) मूर्ख, बुद्धिहीन, मूढ़।

दुःस्थिति—सज्ञा स्त्री [स] बुरी या कष्ट की अवस्था।

दुःस्पर्श—वि [स] (१) जो छूने लायक न हो। (२) जिसका छूना या पाना कठिन हो।
सज्ञा स्त्री — आकाशगंगा।

दुःस्वप्न—सज्ञा पुं [स] ऐसा स्वप्न जिसका फल बुरा हो।

दुःस्वभाव—सज्ञा पु. [स] बुरा स्वभाव।
वि.—बुरे स्वभाववाला।

दु—वि. [हिं दो] 'दो' का सक्षिप्त रूप जो समास-रचना के काम आता है।

दुअन—सज्ञा पुं [हि. दुवन] (१) दुष्ट मनुष्य। (२) शत्रु। (३) राक्षस, दैत्य।

दुअरवा—सज्ञा पु [स द्वार] द्वार या दरवाजा।

दुअरिया—सज्ञा स्त्री [हि. द्वार] छोटा द्वार या दरवाजा।

दुआ—संज्ञा स्त्री [अ] (१) प्रार्थना। (२) आशीर्वाद।
सज्ञा. पुं [हि दो] गले का एक गहना।

दुआदस—सज्ञा पुं [सं. द्वादश] बारह।

दुआब, दुआबा—संज्ञा पु [फा दुआबा] दो नदियों के बीच का उपजाऊ भू-भाग।

दुआर, दुआरा—सज्ञा पु. [स. द्वार] द्वार, दरवाजा। उ-(क) मानिनि वार बसन उघार। सभु कोप दुआर आयो आद को तनु मार—सा. ८६। (ख) देखि बदन विथकित भईं बैठी है सिंह-दुआर—२४४३।

दुआर-बैरी—सज्ञा पुं. [स द्वार+हि बैरी] द्वार का शत्रु, कपाट या किवाड़। उ.-छूटे दिन दुआर के बैरी लटकत सो न सम्हार-सा ७३।

दुआरी—सज्ञा स्त्री [हिं. दुआर] छोटा दरवाजा।

दुइ, दुई—वि [हिं दो] दो। उ.—दुइ मृनाल मातुल उभे द्वै कदली खभ बिन पात-सा उ ३।
मुहा—दुइ नाव पाँव धरि-दो नावों पर पैर रखकर, दो ऐसे पक्षों का आश्रय लेकर जो साथ-साथ रह ही न सकें। उ.—दुई तरंग दुइ नाव पाँव धरि ते कहि कवन न मूठे।

दुइज—सज्ञा स्त्री. [स. द्वितीय, पा दुईज] दूज, द्वितीया।
सज्ञा पुं. [स द्विज] दूज का चाँद।

दुऔ—वि [हिं दोनों] दोनों।

दुकड़हा—वि [हिं दुकड़ा+हा (प्रत्य)] (१) जिसका मूल्य एक दुकड़ा हो। (२) बहुत मामूली या तुच्छ। (३) नीच, कमीना।

दुकड़ा—सज्ञा पु [स द्विक+ड़ा (प्रत्य.)] (१) दो का जोड़ा। (२) दो दमड़ी, छदाम।

दुकड़ी—वि स्त्री. [हि दुकड़ा] दो-दो (चीजों) का।
सज्ञा स्त्री —(१) ताश की दुग्गी। (२) दो घोड़ों की बग्घी या गाडी।
वि [हिं दो+कड़ी] जिसमें दो कड़ियाँ हों।

दुकना—क्रि. अ [देश] लुकना, छिपना।

दुकान—सज्ञा स्त्री [फा] माल बिकने की जगह, हट्ट।
मुहा.—दुकान उठाना—दूकान बद करना। दुकान करना—दूकान खोलना। दुकान चलना—कारबार बढना। दुकान बढाना—दूकान बंद करना। दुकान लगाना—(१) दूकान का सामान आकर्षक ढंग से सजाना। (२) बहुत सी चीजें इधर-उधर फैलाना।

दुकानदार—सज्ञा पु [फा] (१) दूकान का मालिक। (२) वह जो ढोंग या तिकड़म से पैसा बनाता हो।

दुकानदारी—सज्ञा स्त्री. [फा] (१) दूकान की बिक्री का काम। (२) तिकड़म से धन पैदा करने का काम।

दुकार—संज्ञा. पुं [हि दो+आकार] दो रेखाएँ। उ —परयौ जो रेख ललाट और मुख मेंटि दुकार बनायौ —३३७७।

दुकाल—सज्ञा पुं. [स दुष्काल] अकाल, दुर्भिक्ष।

दुकुल्ली—सज्ञा स्त्री [देश] चमड़ामढ़ा एक बाजा।

दुकूल—सज्ञा पुं [स] (१) सूत या तीसी के रेशे से बना कपड़ा। (२) महीन कपड़ा। (३) वस्त्र, कपड़ा।

दुकूल-कोट—संज्ञा पुं [स दुकुल+कोट] वस्त्र का समूह, कपड़े का ढेर। उ —रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी। बढ़े दुकूल-कोट अबर लौं

सभा माँझ पति राखी—१-२७।

दुकेला—वि. [हि. दुक्का+एला (प्रत्य.)] **जिसके साथ कोई दूसरा भी हो।**

यौ०—अकेला-दुकेला-**जिसके साथ कोई न हो या एक ही दो मामूली आदमी हो।**

दुकेले—क्रि. वि [हि. दुकेला] **किसी को साथ लिये हुए।**

यौ०—अकेले-दुकेले— **बिना किसी को साथ लिये या एक ही दो आदमियों के साथ।**

दुक्कड़—सज्ञा पु. [हिं दो+कूँड] **एक बाजा।**

दुक्का—वि [स. द्विक्] (१) **जो किसी (व्यक्ति) के साथ हो।** (२) **जो दो (वस्तुएँ) साथ हो।**

सज्ञा पु.—**ताश की दुग्गी।**

दुक्की—सज्ञा स्त्री. [हि. दुक्की] **ताश का एक पत्ता जिसमें दो बूटियाँ हो।**

दुखंडा—वि [हि. दो+खड] **जिसमें दो खंड हों।**

दुखंत—सज्ञा पुं [स. दुष्यत] **राजा दुष्यंत।**

दुख—सज्ञा पुं [स. दुःख] (१) **कष्ट, क्लेश।** उ.—वारह वरस वसुदेव-देवकहि कस महा दुख दीन्हौ—१-१५। (२) **संकट, आपत्ति, विपत्ति।** (३) **मानसिक कष्ट।** (४) **पीड़ा, व्यथा।** (५) **रोग।**

दुखड़ा—सज्ञा पुं [हिं दुख+ड़ा (प्रत्य)] (१) **दुख की कथा या चर्चा।**

मुहा.—दुखड़ा रोना— **दुख का हाल कहना।**

(२) **कष्ट, मुसीबत, विपत्ति।**

मुहा.—(स्त्री पर) दुखडा पड़ना— **(स्त्री का) विधवा हो जाना।** दुखड़ा पीटना (भरना)—**बहुत कष्ट भोगना।**

दुखता—वि [हिं दुख+ता]—**पीडित, दर्द करता हुआ।**

दुखती—वि स्त्री [हिं दुखता] (१) **दर्द करती हुई, पीड़ित।** (२) **उठी हुई (आँख)।**

दुखद—वि [स दुःख+द] **कष्ट देनेवाला।**

दुखदाइ, दुखदाई—वि [स दु.खदायिन्, हिं दुखदायी] **दुख देनेवाला, जिससे कष्ट मिले।** उ—(क) कह्यौ वृषभ सौं, को दुखदाइ ? तासु नाम मोहिं देहु बताइ—१-२९०। (ख) कोउ कहै सत्रु होइ दुखदाई—१-२९०

दुखदानि, दुखदानी—वि [स दु.ख+दान+ई (प्रत्य)] **दुखदाई, दुखद।** उ.—(क) भ्रम्यौ बहुत लघु धाम विलोकत छन-भगुर दुख दानी–१-८७। (ख)दरस-मलीन, दीन दुखल अति, तिनकौं मै दुख दानी। ऐसौ सूरदास जन हरि कौ, सब अधमनि मैं मानी—१-१२६।

दुखदाहक—सज्ञा. पुं [स दुःख+दाहक] **दुख दूर करनेवाले, क्लेश मिटानेवाले।** उ—सूरदास सठ तातैं हरि भजि, आरत के दुख-दाहक—१-१९।

दुखदुंद—सज्ञा पुं [स दुख+द्वद्व] **दुख और आपत्ति।** उ.—छन महँ सकल निसाचर मारे। हरे सकल दुख-दुद हमारे।

दुखना—क्रि अ. [स दुःख] **(किसी अग का) दर्दकरना।**

दुखनि—सज्ञा पु. सवि [स दुःख+नि (प्रत्य)] **दुखो से।** उ.—जिहिं जिहिं जोनि भ्रम्यो सकट-बस, सोइ-सोइ दुखनि भरी—१-७१।

दुखनी—वि [हि. दुख+नी] (१) **दुख माननेवाली।** (२) **बहुत दुखनेवाली।**

दुख-पुंज—संज्ञा पु [स. दुःख+पुज] **कष्ट-समूह, अनेक प्रकार के दुख, दुख की अधिकता, अधिक दुख।** उ—मै अज्ञान कछू नहि समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ—१-४६।

दुखरा—सज्ञा पु. हिं दुखड़ा] **दुख की कथा या चर्चा।**

दुखवना—क्रि स [हिं दुखना] **पीडा या कष्ट देना।**

दुख-सागर—सज्ञा पु [स दुःख+सागर] **दुख का समुद्र, अथाह समुद्र के समान महान दुख, महान क्लेश।**

दुखहाया—वि [हिं दुख+हाया (प्रत्य)] **बहुत दुखी।**

दुखाना—क्रि स [स दुःख] (१) **पीड़ा या कष्ट देना।**

मुहा.—जी दुखाना— **मानसिक कष्ट देना।**

(२) **किसी पीड़ित या पके हुए अंग को छू देना।**

दुखारा—वि [हिं दुख+आर (प्रत्य)] **दुखी, पीड़ित।**

दुखारि-दुखारी—वि [हिं दुखारी=दुख+आर (प्रत्य)] **दुखी, व्यथित, खिन्न।** उ—कुलिसहुँ तैं कठिन छतिया चितै री तेरी अजहूँ द्रवति जो न देखति दुखारि–३६१।

दुखारे, दुखारो—वि [हिं दुख+आर (प्रत्य)] **दुखी, पीड़ित।** उ—(क) सूरदास जम कठ गहे तैं, निकसत प्रान दुखारे—१-३३४। (ख) इती दूर स्रम कियो राज द्विज भए दुखारे—१० उ ८।

दुखित—वि. [सं. दुःखित] **पीड़ित, क्लेशित ।** उ.—(क) रसना द्विज दलि दुखित होत बहु, तउ रिस कहा करै —१-११७ । (ख) कुरुच्छेत्र मैं पुनि जब आयौ । गाइ वृषभ तहाँ दुखित पायौ—१-२९० । (ग) जननि दुखित करि इनहिं मैं लै चल्यौ भईं व्याकुल सबै घोष नारी—१५५१ ।

दुखिया—वि. [हिं दुख+इया (प्रत्य)] **दुखी, पीड़ित ।** उ —पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया, दुख कोखि जरी—१०-८० ।

दुखिआरा—वि [हिं दुखिया] (१) **जो दुख में पड़ा हो, दुखी ।** (२) **जिसे शारीरिक कष्ट हो, रोगी ।**

दुखिआरी—वि स्त्री [हिं दुखियारी] (१) **दुःखिनी ।** (२) **रोगिणी ।**

दुखी—वि [स दु.खिन, दुःखी] (१) **जो दुख या कष्ट में हो ।** (२) **जो खिन्न या उदास हो ।** (३) **रोगी ।**

दुखीला—वि [हि. दुख+ईला (प्रत्य)] **दुख अनुभव करने या माननेवाला (स्वभाव) ।**

दुखीली—वि. स्त्री. [हि दुखिला] **दुख, पीड़ा या कष्ट अनुभव करने की प्रकृति ।**

दुखौहाँ—वि. [हिं. दुख+औहाँ (प्रत्य] **दुख देनेवाला ।**

दुखौहीं—वि. स्त्री [हिं दुखौहाँ] **दुखदायिनी ।**

दुग—वि [स द्विक] **दो ।**

दुगई—सज्ञा स्त्री. [देश.] **ओसारा, बरामदा ।**

दुगदुगी—सज्ञा स्त्री [अनु धुकधुकी] (१) **धुकधुकी ।**
मुहा.—दुगदुगी मे दम—**मरने के समीप ।**
(२) **गले से छाती तक लटकनेवाला एक गहना ।**

दुगन, दुगना—वि. [स द्विगुण, हिं दुगना] **दूना ।**

दुगाड़ा—सज्ञा पुं [हिं. दो+गाड़] **दोहरी बदूक या गोली ।**

दुगासरा—सज्ञा पु [स दुर्ग+आश्रय] **दुर्ग के समीप या नीचे बसा हुआ गाँव ।**

दुगुण, दुगुन—वि [हि दुगना] **दूना, द्विगुण ।**

दुग्ग—सज्ञा पु [स. दुर्ग] **किला, दुर्ग, कोट ।**

दुग्ध—वि [स] (१) **दुहा हुआ ।** (२) **भरा हुआ ।** सज्ञा पुं —**दूध ।**

दुग्धकूपिका—सज्ञा स्त्री. [स] **एक पकवान ।**

दुग्धतालीय—संज्ञा पुं [स.] (१) **दूध का फेन ।** (२) **दूध की मलाई ।**

दुग्धफेन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूध का फेन ।** (२) **एक पौधा ।**

दुग्धबीजा—संज्ञा स्त्री [स.] **ज्वार, जुन्हरी ।**

दुग्धसागर, दुग्धसिंधु—सज्ञा पुं [स] **पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक, क्षीरसमुद्र, क्षीरसागर ।** उ—स्वास उदर उससित यों मानौ दुग्ध-सिंधु छवि पावै—१०-६५ ।

दुग्धाब्धि—संज्ञा पुं. [स.] **क्षीरसागर ।**

दुग्धाब्धितनया—सज्ञा स्त्री [स] **लक्ष्मी ।**

दुग्धी—वि [स दुग्धिन्] **जिसमें दूध हो ।**

दुघड़िया—वि [हिं दो+घड़ी] **दो घड़ी का ।**

दुघड़िया मुहूर्त्त—सज्ञा पु [हि. दो+घड़ी+स मुहूर्त्त] **दो दो घड़ियों का निकाला हुआ महूर्त ।**

दुघरी—सज्ञा स्त्री. [हिं दो+घड़ी] **दुघड़िया मुहूर्त ।**

दुचंद—वि. [फा दोचद] **दूना, दुगना ।**

दुचल्ला—सज्ञा पुं. [हिं दो+चाल] **छत जो दोनों ओर को ढालू हो ।**

दुचित—वि [हिं दो+चित्त] (१) **जो दुविधा में हो, अस्थिर चित्त ।** (२ **चिंतित, चिंता-ग्रसित ।**

दुचितई, दुचिताई—सज्ञा स्त्री [हि. दुचित] (१) **दुबिधा, चित्त की अस्थिरता ।** उ—साँची कहहु देख स्रवनन सुख छाँड़हु छिआ कुटिल दुचिताई—३११८ । (२) **खटका, आशंका, चिंता ।**

दुचित्ता—वि. [हिं दो+चित्त] (१) **जो दुबिधा में हो, अस्थिर चित्त ।** (२) **संदेह में पड़ा हुआ ।** (३) **चिंतित, जिसके मन में खटका हो ।**

दुछरण—सज्ञा पु [स. द्वेषण = शत्रु] **सिंह ।**

दुज—सज्ञा पु. [स द्विज] (१) **ब्राह्मण ।** (२) **चंद्र ।**

दुजड़, दुजड़ी—सज्ञा स्त्री. [देश.] **तलवार, कटार ।**

दुजन्मा—सज्ञा पु. [स. द्विजन्मा] (१) **ब्राह्मण ।** (२) **चन्द्र ।**

दुजपति—सज्ञा पु. [स.] (१) **चंद्रमा ।** (२) **गरुण ।** (३) **ब्राह्मण ।** (४) **कपूर ।**

दुजराज—संज्ञा पु [सं द्विजराज] (१) **श्रेष्ठ ब्राह्मण ।** (२) **चन्द्रमा ।** (३) **पक्षिराज गरुड़ ।** (४) **कपूर ।**

दुजाति—सज्ञा स्त्री. [स. द्विजाति] (१) **ब्राह्मण,**

क्षत्रिय और वैश्य जातियां जो यज्ञोपवीत संस्कार के बाद नया जन्म धारण करती मानी गयी हैं। (२) ब्राह्मण। (३) पक्षी।
दुजानू—क्रि. वि. [फा. दो+जानू] दोनों घुटनो के बल।
दुजीह—सज्ञा पु [सं. द्विजिह्व] सांप।
दुजेश—सज्ञा पु. [स. द्विजेश] (१) ब्राह्मण। (२) चद्र।
दुटूक—वि. [हिं. दो+टूक] दो टुकड़ो में तोड़ा हुआ। उ.—किया दुटूक चाप देखत ही रहे चकित सब ठाढे।
मुहा —दु टूक बात— साफ-साफ बात जिसमें घुमाव-फिराव, राजनीति या छल-कपट न हो।
दुत—अव्य. [अनु.] (१) तिरस्कार के साथ हटाने के लिए बोला जानेवाला शब्द। (२) घृणा-सूचक शब्द। (३) बच्चो के लिए स्नेह-सूचक शब्द।
दुतकार—सज्ञा स्त्री. [अनु०दुत+कार] धिक्कार, फटकार।
दुतकारना—क्रि. स. [हि दुतकार] (१) 'दुत' कहकर किसी को तिरस्कार के साथ हटाना। (२) धिक्कारना, फटकारना।
दुतर्फा—वि. [फा. दो+हि. तरफ] दोनो ओर का।
दुतारा—सज्ञा पु. [हि. दो+तार] दो तार का बाजा।
दुति—सज्ञा स्त्री. [स. द्युति] (१) चमक। (२) शोभा।
दुतिमान—वि. [स. द्युतिमान] चमक या प्रकाश-वाला।
दुतिय—वि. [स. द्वितीय] दूसरा।
दुतिया—सज्ञा स्त्री. [स द्वितीय] प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि, दूज, द्वितीया। उ. (क) वै देखौ रघुपति है आवत। दूरहि तैं दुतिया के ससि ज्यौं, व्योम बिमान महा छबि छावत—९-१६७। (ख) दुतिया के ससि लौं बाढै सिसु देखै जननि जसोइ—१०-५६।
दुतिवंत—वि. [स द्युति+हिं वत] (१) चमकीला, कांतिवान, आभायुक्त, प्रकाशवान्। (२) सुदर। शोभावाला।
दुती, दुतीय—वि [स. द्वितीय] दूसरा। उ —दुती लगन में है सिव-भूषन सो तन को सुखकारी—सा. ८१।
दुतीया—सज्ञा स्त्री. [स. द्वितीया] दूज, द्वितीया।
दुतीरास, दुतीरासि—सज्ञा स्त्री [स द्वितीय+राशि] दूसरी राशि, वृष राशि।
दुथन—सज्ञा पु. [देश] पत्नी, विवाहिता स्त्री।
दुदल—वि. [स. द्विदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर खड हो जायँ।
सज्ञा पुं.—(१) दाल। (२) एक पौधा।
दुदलाना—क्रि. स. [अनु.] दुतकारना, फटकारना।
दुदहँडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दूध+हडी] दूध की मटकी।
दुदामी—सज्ञा स्त्री. [हि. दो+दाम] एक सूती कपड़ा।
दुदिला—वि. [हिं. दो+फा. दिल] (१) दुविधा म पड़ा हुआ, दुचिता। (२) चिंतित, घबराया हुआ।
दुदुकारना— क्रि. स [अनु] दुतकारना, फटकारना।
दुद्धी—सज्ञा स्त्री. [हि दुविधा](१) दुविधा। (२) चिंता।
दुधपिठवा—संज्ञा पु. [हि. दूध+पीठा] एक पकवान।
दुधमुख—वि [हिं. दूध+मुख] (१) दूधपीता (बालक या शिशु)। (२) अनजान-अबोध।
दुधमुहाँ—वि. [हि. दूध+मुँह] (१) दूधपीता (बालक या शिशु) (२) अबोध, अनजान।
दुधहंडी, दुधाँडी—संज्ञा स्त्री. [हि दूध+हाँडी] दूध रखने की मटकी।
दुधार—वि. [हि. दूध+आर (प्रत्य.)] (१) दूध देने वाली। (२) जिसमें दूध हो।
दुधार, दुधारा—वि. [हिं. दो+धार] (तलवार, छुरी आदि) जिसमें दोनो ओर धार हो।
सज्ञा पु —चौड़ा, तेज खाँडा या तलवार।
दुधारी—वि. स्त्री [हिं. दूध+आर] दूध देनेवाली।
वि. स्त्री [हिं दो+धार] दोनो ओर धारवाली।
सज्ञा स्त्री.—कटारी जिसम दोनो ओर धार हो।
दुधारू—वि. [हि. दूध+आर] दूध देनेवाली।
दुधिया—वि. [हिं. दूध+इया] (१) जिसमें दूध पड़ा हो। (२) जो दूध से बना हो। (३) दूध सा सफेद।
सज्ञा पु —दूध से बनी एक मिठाई।
दुधैली—वि. [हिं. दूध+ऐल] बहुत दूध देनेवाली।
दुनया—सज्ञा पुं. [हिं. दो+स नदी, प्रा णई] वह स्थान जहां दो नदियो का सगम हो।
दुनरना,दुनवना—क्रि. अ. [हि. दो+नवना] झुककर दोहरा हो जाना।
क्रि. स —लचाकर या झुकाकर दोहरा कर देना।
दुनाली—वि. स्त्री. [हि. दो+नाल] दो नलोवाली।

दुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [अ. दुनिया] (१) संसार, इहलोक।
मुहा.—दुनियाँ के परदे पर—सारे संसार में।
दुनियाँ की हवा लगना—(१) सांसारिक अनुभव होना। (२) छल-कपट या चालाकी सीख जाना।
दुनियाँ भर का—(१) बहुत अधिक। (२) बहुतों का। दुनियाँ से उठ जाना (चल बसना)—मर जाना।
(२) संसार के लोग, जनता। (३) संसार का जाल या बंधन।

दुनियाँई—वि. [अ. दुनिया+हिं. ई (प्रत्य.)] सांसारिक।
संज्ञा स्त्री.—संसार, जगत, दुनियाँ।

दुनियाँदार—संज्ञा पु. [फा.] संसारी, गृहस्थ।
वि.—(१) व्यवहार-कुशल। (२) चालाकी से काम निकालनेवाला।

दुनियाँदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) दुनियाँ का कार-बार या व्यवहार। (२) दुनियाँ में काम निकालने की रीति-नीति। (३) दिखाऊ या बनावटी व्यवहार।
मुहा.—दुनियादारी की बात—मन का भाव छिपा कर की जानेवाली लल्लो-चप्पो की बात।

दुनियाँसाज—वि. [फा.] (१) मतलबी। (२) चापलूस।

दुनियाँसाजी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) मतलब निकालने की रीति-नीति। (२) चापलूसी, चाटुकारी।

दुनी—संज्ञा स्त्री. [हि. दुनियाँ] संसार, जगत।

दुपटा, दुपट्टा—संज्ञा पु. [हि. दो+पाट=दुपट्टा] (१) चादर, चद्दर।
मुहा.—दुपट्टा तान कर सोना—चिंतारहित होकर सोना। दुपट्टा बदलना—सखी या सहेली बनाना।
(२) कंधे या गले में डालने का लंबा कपड़ा।

दुपटी, दुपट्टी—संज्ञा स्त्री. [हि दुपट्टा] चादर, चद्दर।

दुपद—संज्ञा पुं. [हि दो+स. पद] दो पैरवाला, मनुष्य।
उ.—राजा, इक पंडित पौरि तुम्हारी। अपद-दुपद-पसु-भाषा बूझत, अविगत अल्प अहारी—८-१४।

दुपर्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दो+फा. पर्दा] बगलबंदी या मिर्जई जिसमें दोनो ओर पर्दे हों।

दुपहर—संज्ञा स्त्री [हि. दोपहर=दो+पहर] दोपहर, मध्याह्नकाल। उ.—दुपहर दिवस जानि घर सूनौ, ढूँढि-ढँढोरि आपही खायौ—१०-३३१।

दुपहरिया, दुपहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दोपहर] (१) मध्याह्नकाल, दोपहर का समय। (२) एक छोटा फूलदार पौधा।

दुपी—संज्ञा पुं. [स. द्विप] हाथी, गज।

दुफसली—वि. स्त्री. [हिं. दो+फसल] अनिश्चित।

दुबकना—वि. अ. [हि. दबकना] छिपना, लुकना।

दुबज्यौरा—संज्ञा पुं. [हि. दूध+जेवरा] गले का एक गहना।

दुबधा—संज्ञा स्त्री. [सं. द्विविधा] (१) अनिश्चय, चित्त की अस्थिरता। (२) संशय, संदेह (३) असमंजस, पसोपेश (खटका, चिंता)।

दुबरा—वि. [हि दुबला] दुबला पतला।

दुबराई—संज्ञा स्त्री. [हि. दुबरा+ई] (१) दुर्बलता, दुबलापन। (२) कमजोरी, शक्तिहीनता।

दुबराना—क्रि. अ. [हि दुबलाना] दुबला होना।

दुबला—वि. [स. दुर्बल] (१) हल्के और पतले शरीर का। (२) कमजोर, शक्तिहीन।

दुबलापन—संज्ञा पु. [हि. दुबला+पन] क्षीणता, कृशता।

दुबाइन—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुबे] दुबे की स्त्री।

दुबारा—क्रि वि. [हि. दो+बार] दूसरी बार।

दुबाला—वि. [फा.] दूना, दुगना।

दुबाहिया—संज्ञा पु. [स. द्विबाहु] दोनो हाथ से तलवार चलानेवाला।

दुबिद—संज्ञा पु. [स. द्विविद] राम की सेना का एक बंदर।

दुबिध, दुबिधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुबधा] (१) अनिश्चय चित्त की अस्थिरता। (२) संशय, संदेह। (३) असमजस, आगापीछा। उ.—(क) इक लोहा पूजा मैं राखत इक घर बधिक परौ। सो दुबिधा पारस नहि जानत, कंचन करत खरौ—१-२२०। (ख) को जानै दुबिधा-सँकोच मे तुम डर निकट न आवैं (४) खटका, चिंता।

दुबीचा—संज्ञा पु [हिं. दो+बीच] (१) दुबिधा, अनिश्चय। (२) संशय, संदेह। (३) असमंजस, आगा-पीछा। (४) खटका, चिंता।

दुभाखी, दुभाषिया, दुभाषी—संज्ञा पु. [स. द्विभाषित्, हि. दुभाषिया] दो भिन्न भाषाएँ बोलनेवालों का

मध्यस्थ वह व्यक्ति जो एक को दूसरे का तात्पर्य समझाने की योग्यता रखता हो।

दुम—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) पशुओं की पूँछ, पुच्छ।

मुहा.—दुम के पीछे फिरना। साथ लगे रहना। दुम बचाकर भागना—डरकर भाग जाना। दुम दबा जाना—(१) डर से भाग जाना। (२) डर से काम छोड़ बैठना। दुम मे घुसना—दूर हो जाना, छट जाना। दुम में घुसा रहना—खुशामद या लालच से साथ लगे रहना। दुम हिलाना—प्रसन्नता दिखाना।

(२) पूँछ की तरह पीछे लगी, बँधी या टँकी चीज। (३) पीछे-पीछे या साथ लगा रहनेवाला आदमी। (४) काम का शेषांश।

दुमची—संज्ञा स्त्री. [फा] (१) तसमा जो दुम के नीचे दबा रहता है। (२) पुट्ठों के बीच की हड्डी।

दुमदार—वि. [फा] (१) जिसके पूँछ हो। (२) जिसके पीछे दुम—जैसी कोई चीज बँधी या टँकी हो।

दुमन—वि. [स. दुर्मनस् , दुर्मना] अनमना, खिन्न।

दुमात—वि [स. दुर्मातृ] (१) बुरी माँ। (२) सौतेली माँ।

दुमाला—संज्ञा पु [हि दो+माला] पाश, फंदा।

दुमुहाँ—वि [हिं. दो+मुँह] दो मुँह वाला।

दुरंग, दुरंगा—वि. [हि. दो+रंग] (१) जिसमें दो रंग हों। (२) दो तरह का। (३) दोनो पक्षों से मेल—मुलाकात बनाये रखनेवाला।

दुरंगी—वि. [हि दुरंगा] (१) दो रंगवाली। (२) दो तरह की। (३) दोनो पक्षों से मिली हुई।

संज्ञा स्त्री.—कुछ बातें पक्ष की, कुछ विपक्ष की अपनाने की वृत्ति, दुवधा।

दुरंत—वि. [स] (१) जिसका अंत या पार पाना कठिन हो। (२) जिसे करना या पाना कठिन हो, दुर्गम, दुस्तर। उ —वह जु हुती प्रतिमा समीप की सुख-संपति दुरंत जई री—२७८६। (३) घोर, प्रचंड। (४) जिसका अंत या फल बुरा हो। (५) दुष्ट, नीच।

दुरंतक—संज्ञा पु. [स] शिव, महादेव।

दुरंधा—वि. [स द्विरध्र] (१) जिसमें दो छेद हों। (२) जो आरपार छिदा हुआ हो।

दुर—अव्य. [हिं. दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग किसी को अपमान के साथ हटाने के लिए किया जाता है।

मुहा.—दुर-दुर करना—तिरस्कार के साथ हटाना। दुर-दुर फिट-फिट—तिरस्कार और फटकार।

संज्ञा पुं. [फा.] (१) मोती। (२) मोती का लटकन जो नाक में स्त्रियाँ पहनती हैं। (३) छोटी बाली जो कान में पहनी जाती हैं। उ.—(क) कान्ह कुँवर को कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की। . । कंचन के द्वै दुर मंगाइ लिए, कहीं कहा छेदनि आतुर की—१०-१८०। (ख) दुर दमकत सुभग—स्रवननि १०-१८४।

दुरइये—क्रि अ. [हि दूर] छिपाइए, गुप्त रखिए, प्रकट न कीजिए। उ.—तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर, तुम तैं कहा दुरइयै—१-२३६।

दुरगम—वि [स.] जहाँ जाना या पहुँचना कठिन हो। उ.—जीव जल-थल जिते, वेद धर-धर तिते अछत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०।

दुरजन—संज्ञा पुं [स. दुर्जन] दुष्ट, खल, नीच। उ.—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहैं—२-२६।

दुरजोधन—संज्ञा पु [स दुर्योधन] धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन जिसे युधिष्ठिर 'सुयोधन' कहा करते थे।

दुरत—क्रि अ [हि दूर, दुरना] छिपता है, छिपाने से। उ.—(क) सूरदास प्रभु दुरत दुराए डुँगरनि ओट सुमेर—४५८। (ख) दुख अस हाँसी सुनौ सखी री, कान्ह अचानक आए। सूर स्याम कौ मिलन सखी अब, कैसे दुरत दुराए—७६४।

दुरति—क्रि अ स्त्री [हि दूर, दुरना] (१) छिपाती है, दिखायी नहीं देती। (२) ओट में हो जाती है, आँख के आगे से हट जाती है। उ.—दूध-दंत-दुति कहि न जाति कछु अद्भुत उपमा पाई। किलकत-हँसत दुरति प्रगटति मनु, घन मैं बिज्जु, छटाई—१०-१०८।

दुरतिक्रम—वि. [स] (१) जिसका उल्लघन या अतिक्रमण न हो सके। (२) ऐसा प्रबल कि जिसके बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके। (३) जिसका पार पाना बहुत कठिन हो।

दुरत्यय—वि. [सं.] (१) जिसका पार पाना कठिन हो। (२) जिसको लाँघा न जा सके, दुस्तर।

दुरद—संज्ञा पुं. [सं. द्विरद] हाथी, कुंजर। उ. (क) दुरद मूल के आदि राधिका बैठी करत सिंगार—सा. ३५। (ख) दुरद कौ दंत उपटाइ तुम लेत हौ वहै बल आजु काहैं न संभारौ—३०६६।

दुरदाम—वि. [सं. दुर्दम] कठिन, कष्टसाध्य। उ.—हरि राधा-राधा रटत जपत मंत्र दुरदाम। विरह विराग महाजोगी ज्यौं बीतत है सब जाम।

दुरदाल—संज्ञा पुं. [सं. द्विरद] हाथी, कुंजर।

दुरदुराना—क्रि. स. [हिं. दुर+दुर] बड़े अपमान या तिरस्कार के साथ हटाना या भगाना।

दुरदृष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभागा। (२) अभाग्य।

दुरधिगम—वि. [सं.] (१) जिसकी प्राप्ति संभव न हो। (२) जो समझ में न आ सके, दुर्बोध।

दुरध्व—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा मार्ग, कुपथ।

दुरना—क्रि. अ. [हिं. दूर] (१) आड़ या ओट में हो जाना। (२) छिपना, दिखायी न पड़ना।

दुरप—संज्ञा पुं. [सं. दर्प] गर्व, अभिमान। उ.—सूर प्रत्यच्छ निहारत भूपन सब दुख दुरप भुलानौ—सा.१००।

दुरपदी—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रौपदी] पांडवों की रानी द्रौपदी।

दुरबल—वि. [सं. दुर्बल] (१) अशक्त, बलहीन। (२) कृश, दुबला पतला। उ.—अति कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)—१-७।

दुरबास—संज्ञा पुं. [सं. दुर्वास] बुरी गंध, दुर्गंध।

दुरबासा—संज्ञा पुं. [सं. दुर्वासा] एक क्रोधी मुनि।

दुरबुद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं. दुः+बुद्धि] दुष्ट मति, मूर्खता। उ.—अब मोहिं कृपा कीजिए सोइ। फिरि ऐसी दुरबुद्धि न होई—४-५।

दुरभाव—संज्ञा पुं. [सं. दुर्भाव] बुरा भाव या विचार।

दुरभिग्रह—वि. [सं.] जो मुश्किल से पकड़ा जा सके।

दुरभिसंधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरे अभिप्राय से किया गया षड्यंत्र या रचा गया कुचक्र।

दुरभेव—संज्ञा पुं. [सं. दुर्भाव] (१) बुरा भाव। (२) मनमोटाव, मनोमालिन्य।

दुरमति—वि. [सं. दुर्मति] (१) दुर्बुद्धि, कम समझ। उ.—परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै—१-१६८। (२) खल, दुष्ट। उ.—भीषम, करन, द्रोन देखत, दुस्सासन बाहँ गही। पूरे चीर, अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही—१-२५८।

दुरमुट, दुरमुस—संज्ञा पुं. [सं. दुर (उप०)+मुस=कूटना] गच या फर्श कूटने का लोहे या पत्थर-जड़ा डंडा।

दुरलभ—वि. [सं. दुर्लभ] जो कठिनता से प्राप्त हो, दुर्लभ। उ.—अब सूरज दिन दरसन दुरलभ कलित कमल कर कंठ गहौ (हो)—९-३३।

दुरवस्थ—वि. [सं.] जो अच्छी दशा में न हो।

दुरवस्था—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी या हीन दशा।

दुरवाप्य—वि. [सं.] जो आसानी से न मिल सके।

दुरस—संज्ञा पुं. [हिं. दो+औरस] सगा भाई।

दुराइ—क्रि. स. [हिं. दुराना] छिपाकर। उ.—लै राखे ब्रज सखा नंदगृह बालक भेष दुराइ—२५८०।

दुराइयाँ—क्रि. वि. [हिं. दुराना] छिपाने से, प्रकट न करने से, गुप्त रखने से। उ.—(तुम) केरि बालक जुवा खेल्यौ, केरि दुरद दुराइयाँ—५७७।

दुराई—क्रि. स. स्त्री. पुं. [हिं. दुराना] (१) दूर किया, हटाया, अदृश्य कर लिया। उ.—(क) रुद्र को वीर्य खसि कै परयौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियो दुराई—८-१०। (२) छिपाया।

प्र.—नाहिंन परति दुराई—छिपायी नहीं जाती। उ.—जान देहु गोपाल बुलाई। उर की प्रीति प्रान कैं लालच नाहिन परति दुराई—८०१। (ख) लै मैया केवट, उतराई। महाराज रघुपति इत ठाढ़े कत नाव दुराई—९-४०।

दुराइए—क्रि. स. [हिं. दुराना] छिपाइए, गुप्त रखिए। उ.—तुम तौ तीन लोक के ठाकुर तुम तैं कहा दुराइए।

दुराउ—संज्ञा पुं. [हिं. दुराव] छिपाव, भेद-भाव। उ.—गोपी इहै करत चवाउ। देखौ धौं चतुराई वाकी हम सौं कियो दुराउ—११८३।

दुराए—क्रि. अ. हिं. दूर, दुराना] छिपाने से, अलक्षित रखने से, छिपाकर, आड़ में धरके। उ.—(क) सूरदास प्रभु दुरत दुराए कहुँ डुँगरनि ओट सुमेरु—४५८। (२) गुप्त रखने या प्रकट न करने से। उ.—सूर

स्याम कौ मिलन सखी अब, कैसे दुरत दुराए—७६४।

प्र.—छिपाये रखता है, आड़ में किये रहता है।

उ.—मानौ मनिधर मनि ज्यौं छाँड़यौ फन तर रहत दुराए—६७५।

दुरागमन, दुरागौन—संज्ञा पु. [स. द्विरागमन] वधू का दूसरी बार (गौना करके) ससुराल जाना।

मुहा.—दुरागौन देना—गौना करना। दुरागौन लाना—गौना लाना।

दुराग्रह—संज्ञा पु [स] (१) अनुचित हठ या जिद। (२) गलत बात पर भी अड़े रहने का भाव।

दुराग्रही—वि [स] (१) अनुचित हठ या जिद रखने-वाला। (२) गलत बात पर भी अड़नेवाला।

दुराचरण—संज्ञा पु. [स] बुरा चालचलन।

दुराचार—संज्ञा पुं. [स] बुरा चालचलन।

दुराचारी—संज्ञा पु. [हि. दुराचार] बुरे चालचलन का।

दुराज—संज्ञा पुं. [हिं. दुर्+राज्य] बुरा शासन।

संज्ञा पुं [हिं दो+राज्य] (१) एक ही राज्य में दो का शासन जिससे प्रजा दुखी रहे। (२) वह राज्य जहाँ दो शासक हों।

दुराजी—वि. [स द्विराज्य] दो शासकों से शासित।

संज्ञा पु.—दुराज, बुरा शासन।

दुराजैं—संज्ञा पु. सवि. [स दुर्+राज्य+एँ (प्रत्य.)] (१) बुरे राज्य को बुरे शासन को। उ.—मारि कंस-केसी मथुरा मैं मेट्यौ सबै दुराजैं—१-३६। (२) दो राजाओं के शासन में। उ -(क) कठुला कंठ। चिबुक तरैं मुख-दसन विराजैं—खंजन बिच सुक आनि कै मनु परयो दुराजैं १०-१३४। (ख) जोग-बिरह के बीच परम दुख परियत है यह दुसह दुराजैं—३२७३।

दुरात-क्रि. अ. [हिं दुराना] दूर होते हैं, भागते है। उ—जदपि सूर प्रताप स्याम को दानव दूरि दुरात-३३५१।

दुरात्मा—वि. [स दुरात्मन्] दुष्ट व्यक्ति।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं दुरना=छिपना] दुराव-छिपाव।

मुहा.—दुरादुरी करके—छिपे-छिपे, गुपचुप।

दुराधन—संज्ञा पु. [स.] धृतराष्ट्र के एक पुत्र।

दुराधर—संज्ञा पुं. [स] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर्ष—वि. [सं.] जिसको वश में करना कठिन हो।

दुराधर्षता—संज्ञा पुं. [स.] प्रबलता, प्रचण्डता।

दुराधार—संज्ञा पु. [सं] शिव जी, महादेव।

दुराना—क्रि अ. [हि. दूर] (१) दूर होना, हटना, भागना। (२) छिपना, आड़ में होना।

क्रि. स.—(१) दूर करना, हटाना, भगाना। (२) छोड़ना, त्यागना। (३) छिपाना, गुप्त रखना।

दुरानौ—क्रि. अ [हिं. दुरना] दूर हो गया। उ.—सूर प्रतच्छ निहारत भूपन सब दुख-दुरप दुरानौ—सा. १००।

दुराप—वि. [स.] जिसे पाना कठिन हो, दुष्प्राप्य।

दुरायो, दुरायौ—क्रि. स. [हिं. दूर] गुप्त रखा, प्रकट न किया। उ —कासौं कहौं सखी कोउ नाहिन, चाहति गर्भ दुरायौ—१०-४। (ख) मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ—१०-३३४।

क्रि.अ.—आड़ म कर दिया, सामने न रहने दिया, अलक्षित किया। उ.—(क) मनौ कुबिजा के कूवर माँह दुरायौ—३४४२। (ख)सूरदास ब्रजवासिन को हित हरि हिय माँझ दुरायौ—३४६४। (ग) इतने माँझ पुत्र लै भाज्यौ निधि मैं जाय दुरायौ—सारा. ६६२।

दुराराध्य—वि. [स] जिसकी आराधना कठिन हो।

संज्ञा पु—विष्णु।

दुरारोह—वि. [स.] जिस पर चढ़ना कठिन हो।

संज्ञा पु.—ताड़ का पेड़

दुरालभ, दुरालभ—वि. [स दुरालभ] जिसका मिलना या प्राप्त होना कठिन हो, दुष्प्राप्य।

दुरालाप—संज्ञा पु. [स.] (१) बुरा या कटु वचन। (२) गाली, अपशब्द।

दुरालापी—वि. [हि. दुरालाप] (१) कटु या बुरी बात कहनेवाला। (२) गाली बकनेवाला।

दुराव—संज्ञा पु. [हिं दुराना+आव (प्रत्य)] (१) छिपाव, भेद-भाव। उ.—(क) औरनि सौं दुराव जो करती तौ हम कहती भली सयानी—१२६२। (ख) मेरी प्रकृति भलै करि जानति मैं तो सौ करिहौं दुराव ही—१२३७। (ग) कछू दुराव नहीं हम राख्यौ निकट तुम्हारे आई—११६२। (२) छल-कपट।

दुरावत—क्रि. अ [हिं दूर, दुराना] छिपाते हैं, आड़ में

करते हैं, गुप्त रखते हो, प्रकट नहीं करते। उ.—(क) अखिल ब्रह्मंड खड की महिमा, सिसुता माहिं दुरावत—१०-१०२। (ख) स्याम कहा चाहत से डोलत ? पूँछे तैं तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत—१०-२७६। (ग) ब्रजहि कृष्ण-अवतार है, मै जानी प्रभु आज। बहुत किए फन-घात मैं, बदन दुरावत लाज—५८६। (घ) सगुन सुमेर प्रगट देखियत तुम तृन की ओट दुरावत—३१३५।

दुरावति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. दुराना] **छिपाती है, ओट में करती है।** उ.—(क) सूरदास-प्रभु होहु पराकृत, अस कहि भुज के चिन्ह दुरावति—१०-७। (ख) कबहुँ हरि कौं चितै चूमति, कबहुँ गावति गारि। कबहुँ लै पाछे दुरावति, ह्याँ नहीं बनवारि—१०-११८।

दुरावहु—क्रि. स. [हिं० दुराना] **दूर करो, हटाओ, अदृश्य करो।** उ.—महाराज, यह रूप दुरावहु। रूप चतुर्भुज मोहिं दिखावहु—७-२।

दुरावैगी—क्रि. स. [हि० दुराना] **छिपाएगी, गुप्त रखेगी।** उ.—अब तू कहा दुरावैगी—२०७७।

दुराश—वि. [स.] **जिसे अधिक आशा न हो।**

दुराशय—वि. [स] **जिसका उद्देश्य अच्छा न हो।**

संज्ञा पु०—(१) **बुरा आशय।** (२) **बुरे आशयवाला।**

दुराशा—संज्ञा स्त्री [स] **ऐसी आशा जो पूरी न हो सके, व्यर्थ की आशा।**

दुरास—वि. [सं. दुराश] **जिसे अधिक आशा न हो।**

दुरासद—वि. [स.] (१) **दुष्प्राप्य।** (२) **दुसाध्य।**

दुरासा—संज्ञा स्त्री [स. दुराशा] **ऐसी आशा जो पूरी न हो, व्यर्थ की आशा।** उ.—ऐसैं करत अनेक जनम गए, मन संतोष न पायौ। दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यो, सकल लोक भ्रमि आयौ—१-१५४।

दुरि—क्रि. अ. [हिं दुरना] **छिपकर, ओट में होकर, आड़ में जाकर।** उ.—(क) अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी। मैं जु रह्यौ राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार-दरी—१-१३०। (ख) सात देखत बधे एक ब्रज दुरि बच्यौ इत पर बाँधि हम पशु कीन्हो—२६२४।

प्र० रहे दुरि—**छिपे हैं।** उ.—सारँगरिपु की ओट रहे दुरि सुंदर सारँग चारि—सा० उ० १७।

दुरित—संज्ञा पु० [सं.] (१) **पाप, पातक।** (२) **कष्ट दुख।** उ.—मात-पिता दुरित क्यों हरते—११०२।

वि.—**पाप करनेवाला पापी, पातकी।**

वि. [हिं० दुरना] **छिपा हुआ, अप्रकट।** उ.—देवलोक देखत सब कौतुक, बाल-केलि अनुरागे। गावत सुनत सुजस सुखकरि मन, सूर दुरित दुख भागे—४१६।

दुरितदमनी—वि. स्त्री. [स] **पाप का नाश करनेवाली।**

दुरियाना—क्रि. स. [सं. दूर] **दूर करना, हटाना।**

क्रि स. [हिं० दुर] **दुरदुराना, अपमान से हटाना।**

दुरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं] (१) **पाप** (२) **एक यज्ञ।**

दुरिहै—क्रि. अ. [हिं. दुरना] **छिपेगी, प्रकट न होगी, दिखायी न देगी।** उ.—तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यौं दुरिहै ससि-बचन-उज्यारी—१०-११।

दुरी—क्रि. अ. [हिं दुरना] **आड़ में हो गयी, छिप गयी।** उ.—ज्ञान-विवेक विरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी। बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी—१-१७३।

दुरीषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **अहित या अकल्याण की कामना।** (२) **शाप।**

दुरुखा—वि. [हिं० दो+फा. रुख] (१) **जिसके दोनों ओर मुँह हो।** (२) **जिसकें दोनों ओर अलग-अलग रंग या उनकी छाया हो।**

दुरुत्तर—वि. [स.] **जिसका पार पाना कठिन हो।**

संज्ञा पुं०—**अनुचित या कटु उत्तर।**

दुरुपयोग—संज्ञा पुं. [स.] **अनुचित उपयोग।**

दुरुस्त—वि. [फा.] (१) **जो टूटा-फूटा या खराब न हो, ठीक।** (२) **जिसमें ऐब या दोष न हो।**

मुहा—दुरुस्त करना—(१) **सुधारना।** (२) **दंड देना।**

(३) **उचित, मुनासिब।** (४) **यथार्थ।**

दुरुस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **सुधार, संशोधन।** (२) **दंड, सजा, मरम्मत।**

दुरूह—वि. [स.] **जिसका समझना कठिन हो, गूढ़।**

दुरे—क्रि. अ. [हिं. दुरना] **छिप गये, ओट में हो गये,**

स्याम कौ मिलन सखी अब, कैसे दुरत दुराए—७६४ ।

प्र.—छिपाये रखता है, आड़ में किये रहता है ।

उ.—मानौ मनिधर मनि ज्यौं छाँड्यौ फन तर रहत दुराए—६७५ ।

दुरागमन, दुरागौन—सज्ञा पुं. [स. द्विरागमन] वधू का दूसरी बार (गौना करके) ससुराल जाना ।

मुहा.—दुरागौन देना—गौना करना । दुरागौन लाना—गौना लाना ।

दुराग्रह—सज्ञा पु. [स.] (१) अनुचित हठ या जिद । (२) गलत बात पर भी अड़े रहने का भाव ।

दुराग्रही—वि. [स.] (१) अनुचित हठ या जिद रखनेवाला । (२) गलत बात पर भी अड़नेवाला ।

दुराचरण—सज्ञा पु. [स.] बुरा चालचलन ।

दुराचार—सज्ञा पुं. [स.] बुरा चालचलन ।

दुराचारी—संज्ञा पु. [हि. दुराचार] बुरे चालचलन का ।

दुराज—सज्ञा पुं [हिं दुर्+राज्य] बुरा शासन ।

सज्ञा पुं. [हि दो+राज्य] (१) एक ही राज्य में दो का शासन जिससे प्रजा दुखी रहे । (२) वह राज्य जहाँ दो शासक हों ।

दुराजी—वि [स द्विराज्य] दो शासकों से शासित ।

सज्ञा पुं.—दुराज, बुरा शासन ।

दुराजैं—सज्ञा पुं. सवि. [स दुर्+राज्य+एँ (प्रत्य.)] (१) बुरे राज्य को बुरे शासन को । उ.—मारि कस-केसी मथुरा में मेट्यौ सबै दुराजें—१-३६ । (२) दो राजाओं के शासन में । उ.-(क) कठुला कठ । चिबुक तरें मुख-दसन बिराजैं—खजन बिच सुक आनि कै मनु परयौ दुराजैं १०-१३४ । (ख) जोग-बिरह के बीच परम दुख परियत है यह दुसह दुराजैं—३२७३ ।

दुरात-क्रि अ. [हिं. दुराना] दूर होते हैं, भागते हैं । उ.—जदपि सूर प्रताप स्याम को दानव दूरि दुरात-३३५१ ।

दुरात्मा—वि. [स दुरात्मन्] दुष्ट व्यक्ति ।

दुरादुरी—सज्ञा स्त्री. [हिं दुरना=छिपना] दुराव-छिपाव ।

मुहा.—दुरादुरी करके—छिपे-छिपे, गुपचुप ।

दुराधन—सज्ञा पु. [स] धृतराष्ट्र के एक पुत्र ।

दुराधर—सज्ञा पुं [स.] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुराधर्ष—वि. [स.] जिसको वश में करना कठिन हो ।

दुराधर्षता—संज्ञा पुं. [स.] प्रबलता, प्रचण्डता ।

दुराधार—सज्ञा पुं. [स.] शिव जी, महादेव ।

दुराना—क्रि अ. [हि. दूर] (१) दूर होना, हटना, भागना । (२) छिपना, आड़ में होना ।

क्रि. स.—(१) दूर करना, हटाना, भगाना । (२) छोड़ना, त्यागना । (३) छिपाना, गुप्त रखना ।

दुरानौ—क्रि. अ. [हि. दुरना] दूर हो गया । उ.—सूर प्रतच्छ निहारत भूपन गत दुख-दुरप दुरानौ—सा. १०० ।

दुराप—वि [स.] जिसे पाना कठिन हो, दुष्प्राप्य ।

दुरायो, दुरायौ—क्रि. स [हि. दूर] गुप्त रखा, प्रकट न किया । उ.—मार्गौ कहौं मार्गौ माड नाहिन, चाहति गर्भ दुरायौ—१०-८ । (ख) मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ—१०-२३४ ।

क्रि अ.—आड़ में कर दिया, सामने न रहने दिया, अलक्षित किया । उ.—(क) मनौ कुबिजा के कूबर माँहि दुरायौ—३४८२ । (ख)सूरदास ब्रजबासिन को हित हरि हिय माँझ दुरायौ—३४६४ । (ग) इतने माँझ पुत्र लै भाज्यौ निसि मे जाय दुरायौ—सारा. ६६२ ।

दुराराध्य—वि. [सं.] जिसकी आराधना कठिन हो ।

सज्ञा पु.—विष्णु ।

दुरारोह—वि. [स.] जिस पर चढ़ना कठिन हो ।

सज्ञा पु —ताड़ का पेड़

दुरालभ, दुरालभ—वि. [सं. दुरालभ] जिसका मिलना या प्राप्त होना कठिन हो, दुष्प्राप्य ।

दुरालाप—सज्ञा पुं. [स.] (१) बुरा या कटु वचन । (२) गाली, अपशब्द ।

दुरालापी—वि. [हि. दुरालाप] (१) कटु या बुरी बात कहनेवाला । (२) गाली बकनेवाला ।

दुराव—सज्ञा पु. [हिं. दुराना+आव (प्रत्य.)] (१) छिपाव, भेद-भाव । उ.—(क) औरनि सौं दुराव जो करती तौ हम कहती भली सयानी—१२६२ । (ख) मेरी प्रकृति भलै करि जानति मैं तो सौं करिहौं दुराव ही—१२३७ । (ग) कछू दुराव नहीं हम राख्यौ निकट तुम्हारे आई —११६२ । (२) छल-कपट ।

दुरावत—क्रि. अ. [हिं. दूर, दुराना] छिपाते हैं, आड़ में

करते हैं, गुप्त रखते हो, प्रकट नहीं करते। उ.—(क) अखिल ब्रह्मंड खंड की महिमा, सिसुता माहि दुरावत—१०-१०२। (ख) स्याम कहा चाहत से डोलत ? पूँछे तैं तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत—१०-२७६। (ग) ब्रजहिं कृष्ण-अवतार है, मैं जानी प्रभु आज। बहुत किए फन-घात मैं, बदन दुरावत लाज—५८६। (घ) सगुन सुमेर प्रगट देखियत तुम तृन की ओट दुरावत—३१३५।

दुरावति—क्रि अ. स्त्री. [हि. दुराना] **छिपाती है, ओट में करती है।** उ.—(क) सूरदास-प्रभु होहु पराकृत, अस कहि भुज के चिन्ह दुरावति—१०-७। (ख) कबहुँ हरि कौं चितै चूमति, कबहुँ गावति गारि। कबहुँ लै पाछे दुरावति, ह्याँ नहीं बनवारि—१०-११८।

दुरावहु—क्रि. स. [हिं० दुराना] **दूर करो, हटाओ, अदृश्य करो।** उ.—महाराज, यह रूप दुरावहु। रूप चतुर्भुज मोहिं दिखावहु—७-२।

दुरावैगी—क्रि. स. [हिं० दुराना] **छिपाएगी, गुप्त रखेगी।** उ.—अब तू कहा दुरावैगी—२०७७।

दुराश—वि. [स.] **जिसे अधिक आशा न हो।**

दुराशय—वि. [स.] **जिसका उद्देश्य अच्छा न हो।**

संज्ञा पु०—(१) **बुरा आशय।** (२) **बुरे आशयवाला।**

दुराशा—संज्ञा स्त्री [सं.] **ऐसी आशा जो पूरी न हो सके, व्यर्थ की आशा।**

दुरास—वि. [स. दुराश] **जिसे अधिक आशा न हो।**

दुरासद—वि. [स.] (१) **दुष्प्राप्य।** (२) **दुसाध्य।**

दुरासा—संज्ञा स्त्री [स दुराशा] **ऐसी आशा जो पूरी न हो, व्यर्थ की आशा।** उ.—ऐसैं करत अनेक जनम गए, मन संतोष न पायौ। दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यो, सकल लोक भ्रमि आयौ—१-१५४।

दुरि—क्रि. अ. [हि दुरना] **छिपकर, ओट में होकर, आड़ में जाकर।** उ.—(क) अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी। मैं जु रह्यौ राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार-दरी—१-१३०। (ख) सात देखत बचे एक ब्रज दुरि बच्यौ इत पर बाँधि हम पसु कीन्हो—२६२४।

प्र० रहे दुरि—**छिपे हैं।** उ.—सारँगरिपु की ओट रहे दुरि सुंदर सारँग चारि—सा० उ० १७।

दुरित—संज्ञा पुं० [सं.] (१) **पाप, पातक।** (२) **कष्ट दुख।** उ.—मात-पिता दुरित क्यों हरते—११०२।

वि.—**पाप करनेवाला पापी, पातकी।**

वि. [हिं० दुरना] **छिपा हुआ, अप्रकट।** उ.—देवलोक देखत सब कौतुक, बाल-केलि अनुरागे। गावत सुनत सुजस सुखकरि मन, सूर दुरित दुख भागे—४१६।

दुरितदमनी—वि. स्त्री. [स.] **पाप का नाश करनेवाली।**

दुरियाना—क्रि. स. [सं. दूर] **दूर करना, हटाना।**

क्रि. स. [हि० दुर] **दुरदुराना, अपमान से हटाना।**

दुरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं] (१) **पाप** (२) **एक यज्ञ।**

दुरिहै—क्रि. अ. [हिं. दुरना] **छिपेगी, प्रकट न होगी, दिखायी न देगी।** उ.—तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यौं दुरिहै ससि-बचन-उज्यारी—१०-११।

दुरी—क्रि. अ. [हिं दुरना] **आड़ में हो गयी, छिप गयी।** उ.—ज्ञान-बिबेक बिरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी। बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी—१-१७३।

दुरीषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **अहित या अकल्याण की कामना।** (२) **शाप।**

दुरुखा—वि. [हि० दो+फा. रुख] (१) **जिसके दोनो ओर मुँह हो।** (२) **जिसकें दोनों ओर अलग-अलग रंग या उनकी छाया हो।**

दुरुत्तर—वि. [सं.] **जिसका पार पाना कठिन हो।**

संज्ञा पुं०—**अनुचित या कटु उत्तर।**

दुरुपयोग—संज्ञा पुं. [स.] **अनुचित उपयोग।**

दुरुस्त—वि. [फा.] (१) **जो टूटा-फूटा या खराब न हो, ठीक।** (२) **जिसमें ऐब या दोष न हो।**

मुहा—दुरुस्त करना—(१) **सुधारना।** (२) **दंड देना।**

(३) **उचित, मुनासिब।** (४) **यथार्थ।**

दुरुस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **सुधार, संशोधन।** (२) **दंड, सजा, मरम्मत।**

दुरूह—वि [सं.] **जिसका समझना कठिन हो, गूढ़।**

दुरे—क्रि. अ. [हिं. दुरना] **छिप गये, ओट में हो गये,**

झाड़ में हो गये। उ.—(क) प्रगटति हँसत दँतुलि, मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलै री—१०-१३७। (ख) गोपाल दुरे हैं माखन खात—१०-२८३। (ग) अब कहा दुरे साँवरे ढोटा फगुआ देहु हमार—१४०४।

दुरेफ—संज्ञा पु. [स द्विरेफ] भ्रमर, भौंरा। उ—मुरली मुख-छवि पत्र-साखा दृग दुरेफ चढयौ—३३ ७

दुरैहौं—क्रि. स. [हिं. दुराना] छिपाऊँगी। उ.—मोसौं कही, कौन तो सी प्रिय, तोसों बात दुरैहौं—१२६०।

दुरैहौ—क्रि. स. [हिं. दूर] दूर करोगे, हटाओगे, बचाओगे। उ.—भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ। ... लादत, जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ—१-३३१।

दुरोदर—संज्ञा पु. [स.] (१) जुआ। (२) जुआरी।

दुरौंधा—संज्ञा पु. [स. द्वारार्द्ध] द्वार की ऊपरी लकड़ी।

दुर्—अव्य. या उप [स] (१) दूषण या दोष (बुरा अर्थ)। (२) निषेध, मना करना (३) दुख।

दुर्कुल—संज्ञा पुं [स. दुष्कुल] अप्रतिष्ठित कुल।

दुर्गंध—संज्ञा स्त्री [स.] बुरी गंध, कुवास, बदबू।

दुर्गंधता—संज्ञा स्त्री. [स] दुर्गंध का भाव।

दुर्ग—वि. [स.] जहाँ जाना कठिन हो, दुर्गम।

संज्ञा पु.—(१) गढ़, कोट, किला। (२) एक असुर जिसको मारने से देवी का नाम दुर्गा पड़ गया। (३) एक प्राचीन अस्त्र। उ—(क) तब चानूर गर्व मन लीन्हौ। दुर्ग प्रहार कृष्न पर कीन्हौ—३०७०।

दुर्गकारक—संज्ञा पुं. [स] किला बनानेवाला।

दुर्गत—वि [सं.] (१) जिसकी दशा बुरी या गिरी हो, दुर्दशाग्रस्त। (२) दरिद्र।

दुर्गति—संज्ञा स्त्री. [सं. दुः+गति] (१) दुर्दशा, बुरी गति, विपत्ति। उ.—ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी। अंबरीप की दुर्गति टारी—१-२८। (२) परलोक में होने वाली दुर्दशा, नरक-भोग।

दुर्गपाल—संज्ञा पुं [स.] किले का रक्षक।

दुर्गम—वि [स] (१) जहाँ जाना-पहुँचना कठिन हो। (२) जिसे समझना कठिन हो। (३) जिसका करना कठिन हो, दुस्तर।

संज्ञा पुं—(१) गढ़, किला। (२) वन। (३) संकट का स्थान। (४) एक असुर। (५) विष्णु।

दुर्गमता—संज्ञा स्त्री [स.] दुर्गम होने का भाव।

दुर्गमनीय, दुर्गम्य—वि [स.] (१) जहाँ जाना कठिन हो। (२) जिसे समझना कठिन हो। (३) जिसे पार करना कठिन हो।

दुर्गरक्षक—संज्ञा पु [स] दुर्गपाल, किलेदार।

दुर्गलंघन—संज्ञा पु [स] ऊँट।

दुर्गसंचर—संज्ञा पु. [स.] दुर्गम स्थान तक पहुँचने के साधन।

दुर्गा—संज्ञा पु. [स] (१) आदि शक्ति, देवी जिन्होंने महिषासुर, शुंभ, निशुंभ आदि को मारा था। (२) अपराजिता। (३) नौ वर्ष की कन्या।

दुर्गाधिकारी—संज्ञा पु [स] किले का स्वामी।

दुर्गाध्यक्ष—संज्ञा पुं [स] किले का स्वामी।

दुर्गानवमी—संज्ञा स्त्री [स.] कार्त्तिक, चैत्र और आश्विन के शुक्ल पक्ष की नवमी।

दुर्गाष्टमी—संज्ञा स्त्री. [स] चैत्र और आश्विन के शुक्ल पक्ष की अष्टमी।

दुर्गाह्य—वि [स.] जिसका समझना कठिन हो।

दुर्गुण—संज्ञा पु [स] दोष, ऐब, बुराई।

दुर्गेश—संज्ञा पु. [स.] दुर्ग का स्वामी या रक्षक।

दुर्गोत्सव—संज्ञा पु [स] दुर्गा पूजा का उत्सव।

दुर्ग्रह—वि [स.] (१) जो जल्दी पकड़ा न जा सके। (२) जो कठिनता से समझा जा सके।

दुर्घट—वि. [स.] जिसका होना कठिन हो।

दुर्घटना—संज्ञा स्त्री. [स] (१) अशुभ या हानिकारिणी घटना, बुरा संयोग। (२) विपत्ति।

दुर्घात—संज्ञा पु [स] (१) बुरा या भयानक घात या प्रहार। (२) बुरा छल-कपट।

दुर्घोष—वि [स] जो कटु या कर्कश ध्वनि करे।

दुर्जन—संज्ञा पु [स] दुष्ट जन, खोटा आदमी। उ.—(क) दुर्जन-बचन सुनत दुख जैसौ। बान लगैं दुख होइ न तैसौ—६-५। (ख) अति घायल धीरज दुवाहिआ तेज दुर्जन दालि—२८२६।

दुर्जनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुष्टता, खोटापन ।
दुर्जय—वि. [सं.] जो जल्दी जीता न जा सके ।
सज्ञा पु.—(१) एक राक्षस । (२) विष्णु ।
दुर्जर—वि. [सं.] जो कठिनता से पच सके ।
दुर्जति—वि. [स.] (१) जो बुरी रीति से जन्मा हो । (२) जिसका जन्म व्यर्थ ही हो । (३) नीच ।
सज्ञा—(१) व्यसन, दुर्व्यसन । (२) सकट ।
दुर्जाति—सज्ञा स्त्री. [स] बुरी या नीच जाति ।
वि.—(१) बुरे कुल का । (२) बिगड़ी जाति का ।
दुर्जीव—वि [स.] बुरी रीति से जीविका पानेवाला ।
दुर्जेय—वि. [स] जो सरलता से जीता न जा सके ।
दुर्जोधन, दुर्जोधना—सज्ञा पु [स दुर्योधन] धृतराष्ट्र का पुत्र जो चचेरे भाई पाडवो से वैर रखता था ।
दुर्ज्ञेय—वि [स.] जो कठिनता से समझ में आ सके ।
दुर्दम—वि. [स.] (१) जो सरलता से दबाया या जीता न जा सके । (२) प्रबल, प्रचड ।
सज्ञा पु.—रोहिणी और वसुदेव का एक पुत्र ।
दुर्दमन—वि. [स.] जिसको दबाना कठिन हो, प्रचंड ।
दुर्दमनीय—वि. [स.] जिसको दबाना कठिन हो प्रबल ।
दुर्दम्य—वि. [स. दुर्दम] जिसको दबाना कठिन हो ।
दुर्दश, दुर्दर्शन—वि [स] (१) जो जल्दी दिखायी न पड़े । (२) जो देखने में बड़ा भयंकर हो ।
दुर्दशा—सज्ञा स्त्री. [स.] बुरी दशा, दुर्गति ।
दुर्दांत—वि. [स.] जिसको दबाना कठिन हो प्रबल ।
दुर्दिन—सज्ञा पु [स] (१) बुरा दिन । (२) वह दिन जब घटा घिरी हो । (३) कष्ट के दिन ।
दुर्दैव—सज्ञा पुं० [स.] (१) दुर्भाग्य । (२) दिनोका फेर ।
दुर्द्धर—वि [स] (१) जिसको पकड़ना कठिन हो । (२) प्रबल, प्रचंड । (३) जिसको समझना कठिन हो ।
सज्ञा पुं०—(१) एक नरक । (२) महिषासुर का सेनापति । (३) धृतराष्ट्र का एक पुत्र । (४) रावण का एक सैनिक जो हनुमान द्वारा मारा गया था । (५) विष्णु ।
दुर्द्धर्ष—वि. [स] जिसका दमन करना कठिन हो, प्रचंड ।
सज्ञा पु.—(१) धृतराष्ट्र का एक पुत्र । (२) एक राक्षस का नाम ।

दुर्द्धी—वि. [सं.] मंद बुद्धिवाला ।
दुर्नय - सज्ञा पुं० [स] (१) बुरी चाल । (२) अन्याय ।
दुर्नाद—सज्ञा पुं० [स.] बुरा या अप्रिय शब्द ।
वि—कर्कश या अप्रिय ध्वनि करनेवाला ।
सज्ञा पु. [स.] राक्षस ।
दुर्द्धरूढ़—वि. [स.] गुरु की बात शीघ्र न माने ।
दुर्धर—सज्ञा पुं० [स. दुर्द्धर] रावण का एक सैनिक जो अशोक वाटिका उजाड़ते हुए हनुमान को पकड़ने आया था; परतु राम दूत द्वारा स्वयं मारा गया था । उ. —दुर्धर परहस्त सग आइ सैन भारी । पवन-पूत दानव दल ताड़े दिसि चारी - ६–६६ ।
दुर्नाम—सज्ञा पुं० [सं. दुर्नामन्] (१) बुरा नाम, बदनामी । (२) बुरा वचन, गाली ।
दुर्निमित्त—सज्ञा पु० [स.] बुरा सगुन ।
दुर्निरीक्ष, दुर्निरीक्ष्य—वि. [स.] (१) जो देखा न जा सके । (२) देखने में भयंकर । (३) कुरूप ।
दुर्निवार, दुर्निवार्य—वि. [स. दुर्निवार्य्य] (१) जो जल्दी रोका न जा सके । (२) जिसे जल्दी दूर न किया जा सके । (३) जो जल्दी टल न सके ।
दुर्नीति—सज्ञा स्त्री. [स.] कुचाल, अन्याय ।
दुर्वचन—सज्ञा पु० [स. दुर्वचन] (१) दुर्वाक्य, कटु वचन । उ —सुत-कलत्र दुर्वचन जो भाखैं । तिन्हैं मोहवस मन नाहि राखैं - ५–४ । (२) गाली ।
दुर्बल—वि. [सं.] कमजोर, दुबला पतला ।
दुर्बलता—सज्ञा स्त्री. [स.] कमजोरी, दुबलापन ।
दुर्वासा—सज्ञा पुं० [हि. दुर्वासा] एक क्रोधी मुनि जो अत्रि के पुत्र थे । इनकी पत्नी कदली थी ।
दुर्वासैं—सज्ञा पु सवि. [स दुर्वासा] दुर्वासा को, दुर्वासा पर । उ.—उलटी गाढ परी दुर्वासैं, दहत सुदरसन जाकौं—१–११३ ।
दुर्बुद्धी—वि. [स. दुर्बुद्धि] मूर्ख, मंदबुद्धि । उ.—निर्घिन, नीच, कुलज, दुर्बुद्धी, भौंदू, नित कौ रोऊ —१–१८६ ।
दुर्बोध—वि. [स.] जो जल्दी समझ में न आये, गूढ़ ।
दुर्भक्ष—वि. [स.] (१) जिसे खाना कठिन हो । (२) खाने में बुरा ।

संज्ञा पु०—अकाल, दुर्भिक्ष।
दुर्भग—वि. [स.] अभागा, भाग्यहीन।
दुर्भगा—वि. स्त्री. [स.] अभागिनी, भाग्यहीना।
संज्ञा स्त्री.—पति-प्रेम से वंचिता पत्नी।
दुर्भर—वि. [स.] भारी, वजनी।
दुर्भाग, दुर्भाग्य—संज्ञा पु० [स. दुर्भाग्य] बुरा भाग्य, अभाग्य।
दुर्भागी—वि. [स. दुर्भाग्य] मंद भाग्यवाला, अभागा।
दुर्भाव—संज्ञा पु० [स] (१) बुरा भाव (२) द्वेष।
दुर्भावना—संज्ञा स्त्री. [स] (१) बुरी भावना। (२) खटका, चिंता, अंदेशा।
दुर्भाव्य—वि [स] जो जल्दी ध्यान में न आ सके।
दुर्भिक्ष, दुर्भिच्छ—संज्ञा पु० [स. दुर्भिक्ष] अकाल का समय, अन्न के अभाव का काल।
दुर्भेद, दुर्भेद्य—वि. [स दुर्भेद] (१) जिसका भेदना या छेदना कठिन हो। (२) जिसे जल्दी पार न किया जा सके।
दुर्मति—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) नासमझी। (२) कुबुद्धि।
वि.—(१) जिसकी समझ ठीक न हो। (२) खल, दुष्ट नीच।
दुर्मद—वि. [स.] (१) नशे में चूर। (२) गर्व में चूर।
दुर्मना—वि. [स. दुर्मनस्] (१) बुरे चित्त या विचार का, दुष्ट। (२) उदास, खिन्न, अनमना।
दुर्मर—वि [स.] जिसकी मृत्यु बड़े कष्ट से हो।
दुर्मरण—संज्ञा पु० [स.] कष्ट से होनेवाली मृत्यु।
दुर्मर्ष—वि [स.] जिसको सहना कठिन हो, दु.सह।
दुर्मल्लिका, दुर्मल्ली—संज्ञा स्त्री [स. दुर्मल्लिका] उपरूपक का एक भेद जो हास्यरस प्रधान होता है।
दुर्मिल—संज्ञा पु० [स] एक मात्रिक और एक वर्णिक छंद।
दुर्मुख—संज्ञा पुं [स] (१) घोड़ा। (२) श्रीराम की सेना का एक बंदर। (३) श्रीराम का एक गुप्तचर। (४) शिव, महादेव।
वि —(१) जिसका मुख बुरा हो। (२) कटु-भाषी, कठोर बात कहनेवाला।
दुर्मुट, दुर्मुस—संज्ञा पु [स दुर्+मुस=कूटना] गच या फर्श कूटने का डंडा जिसके नीचे लोहा या पत्थर लगा होता है।
दुर्मूल्य - वि. [स.] जिसका दाम अधिक हो, महँगा।
दुर्मेध—वि [स. दुर्मेधस्] नासमझ, मंद बुद्धिवाला।
दुर्यश—संज्ञा पु० [स. दुर्यशस्] बुराई, बदनामी, अपयश।
दुर्योध—वि. [स.] कठिनाइयाँ सहकर भी युद्ध के मैदान में डटा रहनेवाला, विकट साहसी।
दुर्योधन—संज्ञा पु. [स] कुरुवंशीय राजा धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र जो चचेरे भाई पांडवों को अपना शत्रु समझता था और जिसे युधिष्ठिर 'सुयोधन' कहा करते थे। गदा चलाने में यह बड़ा निपुण था। धृतराष्ट्र की इच्छा युधिष्ठिर को ही युवराज बनाने की थी; परंतु दुर्योधन ने इसका विरोध किया और पांडवों को वन भेज दिया। लौटने पर युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाकर राजसूय यज्ञ किया। उनके अपार वैभव को देखकर वह जल उठा। पश्चात्, अपने मामा शकुनि के कौशल से युधिष्ठिर का राज्य और धन ही नहीं, द्रौपदी सहित उनके भाइयों को भी इसने जुए में जीत लिया। तब दु शासन द्रौपदी को सभा में घसीट लाया और दुर्योधन ने उसे अपनी जाँघ पर बैठने का संकेत किया। भीम का क्रोध यह देखकर भभक उठा और उन्होंने गदा से दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की। द्यूत के नियमानुसार पांडवों को बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ा। पश्चात् श्रीकृष्ण पांडवों के दूत होकर कौरव सभा में गये, परंतु दुर्योधन पूर्व निश्चय के अनुसार आधा राज्य तो क्या, पाँच गाँव देने को भी तैयार न हुआ। फलत कुरुक्षेत्र का भयानक युद्ध हुआ जिसमें सौ भाइयों सहित दुर्योधन मारा गया।
दुर्योनि—वि. [स] जो नीच कुल में जन्मा हो।
दुर्रा—संज्ञा पु [फा दुर्रः] कोड़ा, चाबुक।
दुर्लंघ्य—वि [स] जिसे लाँघना सरल न हो।
दुर्लक्ष्य—वि. [स] जो कठिनता से दिखायी पड़े।
संज्ञा पुं—बुरा उद्देश्य, लक्ष्य या स्वार्थ।
दुर्लभ—वि. [स] (१) जो कठिनता से मिल सके, जिसे प्राप्त करना सहज न हो, दुष्प्राप्य। उ.—सोइ

सारँग चतुरानन दुर्लभ सोइ सारँग संभु मुनि ध्यात–सा उ. २४(२) **अनोखा, बहुत बढ़िया**। उ.—दुर्लभ रूप देखिबे लायक—२४४४। (३) **प्रिय, रुचिकर**। उ.—जहाँ तहाँ तैं सबै धाईं सुनत दुर्लभ नाम—२६५५।

संज्ञा पुं.—**विष्णु**।

दुर्लेख्य—वि. [सं.] **जो बुरी लिखावट में लिखा हो**।

दुर्वच—वि. [सं.] (१) **जो दुख से कहा जा सके**। (२) **जो कठिनता से कहा जा सके**।

दुर्वच, दुर्वचन—संज्ञा पु [स] **गाली, कटुवचन**।

दुर्वह—वि [स.] **जिसे उठाकर ले चलना कठिन हो**।

दुर्वाच—संज्ञा पुं. [स.] **बुरा या कटुवचन**।

दुर्वाद—संज्ञा पु. [स] (१) **निंदा, बदनामी**। (२) **अप्रिय वाक्य**। (३) **अनुचित विवाद**।

दुर्वादी—वि. [स दुर्वादिन्] **तर्क-कुतर्क करनेवाला**।

दुर्वार, दुर्वार्य—वि. [सं.] **जो जल्दी रोका न जा सके**।

दुर्वासना—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **बुरी या अनुचित इच्छा**। (२) **इच्छा जो पूरी न हो सके**।

दुर्वासा—संज्ञा पुं. [स दुर्वासस्] **एक क्रोधी मुनि जो अत्रि के पुत्र थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कंदली से विवाह किया था। पत्नी से सौ बार क्रुद्ध होने पर इन्होंने उसे क्षमा कर दिया; पश्चात् किसी अपराध पर उसे शाप देकर भस्म कर दिया। इस पर इनके ससुर और्व मुनि ने शाप दिया—तुम्हारा गर्व चूर होगा। इसी कारण अंबरीष के प्रसग में इन्हें नीचा देखना पड़ा।**

दुर्विगाह—वि. [स] **जिसकी थाह जल्दी न मिले**।

दुर्विज्ञेय—वि. [स.] **जो जल्दी जाना न जा सके**।

दुर्विद—वि. [स.] **जिसे जानना कठिन हो**।

दुर्विदग्ध—वि. [स.] (१) **अधजला** (२) **अधपका**। (३) **घमडी, अहंकारी**।

दुर्विदग्धता—संज्ञा स्त्री. [स.] **पूर्ण निपुणता का अभाव**।

दुर्विध—वि. [स.] (१) **दरिद्र**। (२) **नीच**।

दुर्विधि—संज्ञा पुं० [स.] **दुर्भाग्य, अभाग्य**।
संज्ञा स्त्री—**बुरी विधि, अनीति, कुनीति**।

दुर्विनीत—वि. [स.] **अशिष्ट, उद्धत, अक्खड़**।

दुर्विपाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कुफल**। (२) **दुर्घटना**।

दुर्विभाव्य—वि. [स.] **जिसका अनुमान भी न हो सके**।

दुर्विलसित—संज्ञा पु० [सं.] **बुरा या अनुचित काम**।

दुर्विवाह—संज्ञा पुं० [स.] **बुरा या निंदित विवाह**।

दुर्विष—संज्ञा पुं० [स.] **महादेव जिन पर विष का कोई प्रभाव न हुआ**।

दुर्विषह—वि. [सं.] **जिसे सहना कठिन हो, दुःसह**।

दुर्वृत्त—वि. [सं.] **जिसका आचरण बुरा हो**।
संज्ञा पु० – **बुरा आचरण, या व्यवहार**।

दुर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] **बुरा काम या व्यवसाय**।

दुर्व्यवस्था - संज्ञा स्त्री. [स.] **कुप्रबध**।

दुर्व्यवहार - संज्ञा. पु० [स. **बुरा बर्ताव या आचरण**।

दुर्व्यसन - संज्ञा पु. [स.] **बुरी लत या आदत**।

दुर्व्यसनी—वि. [स.] **बुरी लत या आदतवाला**।

दुर्व्रत—संज्ञा पु० [स.] **बुरी इच्छा या निश्चय**।
वि.—**बुरी इच्छा रखनेवाला, नीचाशय**।

दुर्हृद—संज्ञा पु० [स.] **जो मित्र न हो, शत्रु**।

दुलकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दलकना] **घोड़े की एक चाल**।

दुलखना —क्रि. स. [हिं. दो+लक्षण] **बार-बार कहना**।

दुलड़ा—वि. [हिं. दो+लड़] **जिसमें दो लड़ हों**।
संज्ञा पु०—**दो लड़ों का हार**।

दुलड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुलड़ा] **दो लड़ों की माला**।

दुलत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. दो+लात] **पशुओं का पिछले पैर उठा कर मारना**।

दुलना—क्रि. अ. [हिं. डुलना] **हिलना-डोलना**।

दुलभ—वि. [हिं. दुर्लभ] (१) **दुष्प्राप्य**। (२) **बहुत सुंदर**।

दुलराई—क्रि. वि. [हि. दुलारना] **लाड़ प्यार करके, दुलार करके**। उ.—जसोदा हरि पालनैं झुलावै। हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै—१०-४३।

दुलराना - क्रि स [हिं. दुलारना] **लाड़-प्यार करना**।
क्रि. अ.—**दुलारे बच्चों का सा व्यवहार करना**।

दुलरावति—क्रि. स. [हिं. दुलारना] **दुलार-प्यार करती है, लाड़-प्यार दिखाती है**। उ.—(क) बैठी हुती जसोदा मंदिर, दुलरावति सुत कुँवर कन्हाई—१०–

११५० । (ख) कर सों ठांकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने—१०-१६७ ।

दुलरावन—संज्ञा [हिं. दुलारना] **दुलार करने का भाव।**

प्र.—लागी दुलरावन—**दुलार-प्यार का व्यवहार करने लगी।** उ.—अब लागी मोको दुलरावन प्रेम करति टरि ऐसी हो। सुनहु सूर तुमरे छिन छिन मति बड़ी प्रेम की गैसी हो।

दुलरावना—क्रि. स [हिं. दुलारना] **दुलार-प्यार करना।**

दुलरी—संज्ञा स्त्री. [हिं दो+लड़=दुलड़ी] **दो लड़ की माला।** उ.—(क) दुलरी कंठ नयन रतनारे मो मन चितै हर्यौ—८८३ । (ख) स्रुति मंडल मकराकृत कुंडल कंठ कनक दुलरी—३०२६ ।

वि.—**दो लड़ की।** उ.—अंग-अभूषन जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, लै केयूर भुज स्याम निहारति—५१२ ।

दुलरुवा—वि. [हिं. दुलारा] **प्यारा-दुलारा।**

दुलह, दुलहा—संज्ञा पु० [हिं. दूल्हा] **वर, दूल्हा।** उ. —श्री बलदेव कह्यो दुर्योधन नीको दुलह विचारो—सारा. ८०३ ।

दुलहन, दुलहिन, दुलहिनि, दुलहिनी, दुलहिया, दुलही,—संज्ञा स्त्री [हिं. दुलहन] **वधू, नयी बहू।** उ.—(क) आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं। हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया लैहौं—१०-१६३ । (ख) दुलहिनि कहत गौरि दीजहु द्विज पाती नंद के लालहिं—१०-३-२० ।

दुलही—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुलहन] **श्रीकृष्ण का गैया-विशेष के लिए दुलार का संबोधन।** उ.—अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इकठौरी। .. । दुलही, फुलही, भौरी, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती-४४५ ।

दुलहेटा—संज्ञा पु० [हिं. दुलारा+बेटा] **लाड़ला-दुलारा बेटा।**

दुलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुलाई, तुराई] **रुई भरी रजाई।**

दुलाना—क्रि. स. [हिं. डुलाना] **हिलाना-डुलाना।**

दुलार—संज्ञा पु० [हिं. दुलारना] **लाड़-प्यार।**

दुलारना—क्रि. स. [स. दुर्लालन, प्रा. दुल्लाडन] **लाड़-प्यार करना, लाड़ लडाना।**

दुलारा—वि. [हिं. दुलार, दुलारा] **प्यारा, लाड़ला।**

संज्ञा पुं.—**प्यारा और लाड़ला पुत्र।**

दुलारी—संज्ञा स्त्री, [हिं. पु. दुलारा] **लाड़ली बेटी, प्रिय कन्या।** उ.—यह सुनिकै वृषभानु मुदित चित, हँसि हँसि बूझति बात दुलारी—७०८ ।

वि. स्त्री.—**जिसका खूब दुलार-प्यार हो, लाड़ली।**

दुलारे—वि.[हिं. दुलार का बहु.] **जिनका बहुत लाड़-प्यार होता हो, लाड़ले, प्यारे।**

संज्ञा पु—**लाड़ला बेटा या बेटे।** उ.—कोमल कर गोवर्धन धारयो जब हुते नंद-दुलारे—१-२५ ।

दुलारो, दुलारौ—संज्ञा पु. [हिं दुलारा] **लाडला बेटा, प्रिय पुत्र।** उ.—मिटि जु गयो संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ—१०-१५ ।

दुलीचा, दुलैचा—संज्ञा पु [देश] **गलीचा, कालीन।**

दुलोही—संज्ञा स्त्री. [हिं दो+लोहा] **तलवार।**

दुर्ल्लभ—वि [स. दुर्लभ] (१) **दुष्प्राप्य।** (२) **बहुत सुंदर।**

दुल्हैया—संज्ञा स्त्री [हिं दुलहन] **नयी वधू।**

दुव—वि. [स. द्वि] **दो।**

दुवन—संज्ञा पु [स दुर्मनस्] (१) **दुष्ट प्रकृति का आदमी, दुर्जन।** (२) **शत्रु, वैरी।** (३) **राक्षस।**

वि—**बुरा, खराब।**

दुवाज—संज्ञा पु. [?] **एक तरह का घोड़ा।**

दुवादस—वि. [स. द्वादश] (१) **बारह।** (२) **बारहवाँ।**

दुवादस बानी—वि [स द्वादश=सूर्य+वर्ण] **सूर्य के समान चमक-दमक वाला, खरा, दमकता हुआ।**

दुवादसी—संज्ञा स्त्री. [स द्वादशी] **किसी पक्ष की बारहवीं तिथि।**

दुवार—संज्ञा पु [स. द्वार] **द्वार, दरवाजा, बाहर निकलने का पथ।** उ.—(क) आँखि, नाक, मुख, मूल दुवार—४-१२ । (ख) दधिसुत जामें नंद-दुवार—१०-१७३ । (ग) देहरि उलँघि सकत नाहिं, सो अब खेलत नंद-दुवार—४८७ । (ग) सब सुंदरि मिलि मंगल गावत कंचन कलस दुवार—सारा. १६३ ।

दुवारिका—संज्ञा स्त्री [स द्वारका] **द्वारकापुरी।**

दुवारे, दुवारैं—संज्ञा पु. मुनि [स द्वार] **द्वार पर।**

उ.—अर्थ काम दोउ रहैं दुवारें, धर्म-मोक्ष सिर नावैं-१-४० । (ख) हरि ठाढे रथ चढे दुवारे—१-२४० । (ग) देखि फिरि हरि ग्वाल दुवारे । तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँघि पिछवारैं—१०-२७७ ।

दुविद—संज्ञा पुं. [स. द्विविद] **श्रीराम का सेनानायक एक बंदर ।**

दुविधा—सज्ञा पुं. [हि. दुबधा] (१) **असमंजस । (२) खटका ।**

दुवो, दुवौ—वि. [हि. दव = दो+उ = ही] **दोनों ।**

दुशवार—वि. [फा.] (१) **कठिन । (२) दुसह ।**

दुशवारी—सज्ञा स्त्री. [फा.] **कठिनता**

दुशाला—संज्ञा पुं. [फा दोशाला] **बढ़िया चादर ।**

मुहा.—दुशाले मे लपेटकर—**छिपे-छिपे ।**

दुशासन—सज्ञा पुं. [स. दुःशासन] (१) **दुर्योधन का एक भाई । (२) बुरा या कष्टदायी शासन ।**

दुश्चर—वि. [सं.] **जिसका करना कठिन हो ।**

दुश्चरित—वि. [स] (१) **बुरे चरित्रवाला । (२) कठिन ।**

सज्ञा पु.—(१) **बुरा आचरण । (२) पाप ।**

दुश्चरित्र—वि. [स.] **बुरे चरित्रवाला ।**

सज्ञा पु.—**बुरा आचरण, दुराचार ।**

दुश्चलन—सज्ञा स्त्री. [स. दुः+हि. चलन] **दुराचार ।**

दुश्चिन्त्य—वि. [स.] **जो कठिनता से समझ में आवे ।**

दुश्चिकित्स्य—वि [स.] **जिसकी चिकित्सा न हो सके ।**

दुश्चित्—सज्ञा पु [सं.] (१) **खटका । (२) घबराहट ।**

दुश्चेष्टा—सज्ञा स्त्री [सं.] **बुरा काम, कुचेष्टा ।**

दुश्चेष्टित—सज्ञा पु. [स.] (१) **पाप । (२) नीच काम ।**

दुश्च्यवन—वि. [स] **जो जल्दी विचलित न हो ।**

सज्ञा पु.—**देवराज इंद्र ।**

दुश्च्याव—वि. [स] **जो जल्दी विचलित न हो ।**

संज्ञा पुं.—**शिव जी, महादेव ।**

दुश्मन—सज्ञा पु. [फा] **शत्रु, वैरी ।**

दुश्मनी—सज्ञा स्त्री. [फा] **वैर, शत्रुता, विरोध ।**

दुष्कर—वि [स] **जिसको करना कठिन हो (काम) ।**

सज्ञा पुं—**आकाश, गगन ।**

दुष्कर्म—सज्ञा पुं. [स. दुष्कर्मन्] **बुरा काम, पाप ।**

दुष्कर्मी, दुष्कमी—वि. [स. दुष्कर्मन्] **पापी ।**

दुष्काल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कुसमय । (२) अकाल ।**

दुष्कीर्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] **अपयश, बदनामी ।**

दुष्कुल—सज्ञा पुं. [स.] **नीच या बुरा कुल ।**

वि.—**नीच या अप्रतिष्ठित वंश का ।**

दुष्कुलीन—वि [स.] **तुच्छ या अप्रतिष्ठित घराने का ।**

दुष्कृति—संज्ञा स्त्री [स] **बुरा या नीच कर्म ।**

वि [स] **कुकर्मी, पापी ।**

दुष्कृती—वि. [स दुष्कृतिन्] **बुरा काम करनेवाला ।**

दुष्क्रीत—वि [स.] **अधिक मूल्य का, महँगा ।**

दुष्ट—वि. [स.] (१) **जिसमें दोष हो, दूषित । (२) खल, दुर्जन, खोटा ।**

दुष्टचारी—वि. [स दुष्टचरिन्] (१) **बुरा आचरण करनेवाला । (२) खल, दुर्जन, नीच ।**

दुष्टचेता—वि [स. दुष्टचेतस्] (१) **बुरे विचार का । (२) बुरा या अहित चाहनेवाला । (३) कपटी ।**

दुष्टता—सज्ञा स्त्री [स.] (१) **दोष, ऐब । (२) बुराई, खराबी । (३) खोटाई, दुर्जनता ।**

दुष्टत्व—सज्ञा पु [स] **दुष्टता, खोटापन, दुर्जनता ।**

दुष्टपना—सज्ञा पु [हिं दुष्ट+पन (प्रत्य.)] **खोटाई ।**

दुष्टमति—वि- [स.] **दुर्बुद्धि, दुराशय ।** उ—बालक लियौ उछंग दुष्टमति, हरषित अस्तन-पान कराई-१०-५०]

दुष्ट-सभा—सज्ञा स्त्री [स दुष्ट+सभा] (१) **दुष्टो का समूह । (२) दुराचारी कौरवो की राजसभा ।** उ—अबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी—१-२२ ।

दुष्टा—वि- स्त्री. [स] **दुष्ट या बुरे स्वभाव की ।**

दुष्टाचार—सज्ञा पु [स] **कुकर्म, खोटा या बुरा काम ।**

वि-—[स] **खोटा या बुरा काम करनेवाला ।**

दुष्टाचारी—वि-—[स] **बुरा काम करनेवाला, कुकर्मी ।**

दुष्टात्मा—वि [स] **खोटे या बुरे स्वभाव का ।**

दुष्टान्न—सज्ञा पु [स.] (१) **बासी या सड़ा अन्न । (२) अन्न जो पाप की कमाई हो । (३) नीच का अन्न ।**

दुष्टि—सज्ञा स्त्री [स.] **दोष, ऐब, पाप ।**

दुष्पच—वि [स.] **जो जल्दी न पच सके ।**

दुष्पद—वि. [स.] **जो सरलता से प्राप्त न हो सके ।**

दुष्पराजय—वि. [स.] **जिसको जीतना कठिन हो ।**

दुष्परिग्रह— वि [स.] जिसको पकड़ना कठिन हो।

दुष्पर्श—वि. [स.] (१) जिसको स्पर्श करना कठिन हो। (२) जिसको पकड़ना कठिन हो ।

दुष्पार—वि. [स.] जिसको पार करना कठिन हो।

दुष्पूर—वि. [स.] जिसको पूरा भरना कठिन हो।

दुष्प्रकृति—सज्ञा स्त्री [स.] बुरी या दुष्ट प्रकृति।
वि—खोटे या नीच स्वभाववाला।

दुष्प्रधर्ष—वि [स-] जो जल्दी पकडा न जा सके।

दुष्प्रवृत्ति—सज्ञा स्त्री. [स.] बुरी या खोटी प्रकृति।

दुष्प्राय, दुष्प्राप्य—वि [स. दुष्प्राप्य] जो आसानी से मिल न सके, जिसका मिलना कठिन हो।

दुष्प्रेक्ष, दुष्प्रेक्ष्य—वि [स दुष्प्रेक्ष्य] (१) जिसे देखना कठिन हो। (२) देखने में भीषण या भयानक।

दुष्मंत, दुष्यंत—सज्ञा पु० [स. दुष्यत] एक पुरुवशी राजा जिसने कण्व ऋषि की पोषिता कन्या शकुतला से विवाह किया था और जिनकी कथा लेकर कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक लिखा।

दुसराना—क्रि. स. [हिं. दूसरा] दुहराना।

दुसरिहा—वि [हि. दूसरा+हा (प्रत्य)] (१) साथ रहनेवाला, साथी-संगी। (२) प्रतिद्वद्वी, विरोधी।

दुसह—वि [स. दुःसह (१) जो सरलता से सहा न जा सके, असह्य, बहुत कष्टदायक। उ — (क) तुम बिनु ऐसो कौन नद-सुत यह दुख दुसह मिटावन लायक —६५४। (ख) अति ही दुसह सह्यौ नहि जाई—२६५०। (ग) चलते हरि धिक जु रहत ये प्रान कहँ वह सुख, अब सहौं दुसह दुख, उर करि कुलिस समान —२६८४। (२) कठोर, दृढ़, मजबूत। उ.—यह अति दुसह पिनाक पिता-प्रन राघव बयस किसोर —६-२३।

दुसही—वि [हि दुःसह+ई (प्रत्य.)] (१) जो कठिनता से सहन कर सके। (२) डाह रखनेवाला, डाही, ईर्ष्यालु।

दुसाखा—सज्ञा पु० [हिं दो+शाखा] (१) दो कनखे वाला शमादान। (२) लकड़ी जिसमें दो कनखे हों।

दुसाध—वि. [स दुःसाध्य] नीच, दुष्ट।

दुसार, दुसाल—सज्ञा पु० [हिं. दो+सालना] आर पार किया गया या होनेवाला छेद।
क्रि. वि.—एक पार से दूसरे पार तक।
वि. [स दुःशल्य] बहुत कष्ट देनेवाला।

दुसाला—सज्ञा पु० [हि. दुशाला] पश्मीने की चादर।

दुसासन—सज्ञा पु० [स. दुःशासन] धृतराष्ट्र का एक पुत्र जो भीम द्वारा मारा गया था।

दुसूती—सज्ञा स्त्री. [हि. दो+सूत] एक मोटा कपड़ा।

दुसेजा—संज्ञा पु० [हि. दो+सेज] बड़ी खाट, पलँग।

दुस्कर—वि. [सं. दुष्कर] जिसे करना कठिन हो।

दुस्तर—वि. [सं.] (१) जिसे पार करना कठिन हो। उ.—सूरजदास स्याम सेए तें दुस्तर पार तरै—१-८२। (२) दुर्घट, विकट, कठिन।

दुस्त्यज—वि. [सं. दुस्त्याज्य] जिसको त्यागना कठिन हो।

दुस्तर्क्य—वि. [स.] जिसे तर्क से सिद्ध करना कठिन हो।

दुस्सह—वि. [स. दुःसह] अत्यत कष्टदायक, घोर। उ.—हिरनकसिप दुस्सह तप कियौ—७-२।

दुस्सासन—संज्ञा पु० [सं. दुःशासन] धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक जो भीम द्वारा मारा गया था।

दुहत—क्रि. स. [हिं. दुहना] दुहते हैं, दुही जाती है। उ.—नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ौ नाम है नद महर कौ—१०-३३३।

दुहता—संज्ञा पु० [स. दौहित्र] लड़की का लड़का, नाती।

दुहती—सज्ञा स्त्री [हिं. दुहिता] पुत्री की पुत्री, नातिन।

दुहत्थड, दुहत्था—वि. [हि दो—हाथ] (१) दोनों हाथों से किया हुआ। (२) जिसमें दो हत्थे हों या मूठें हो।

दुहन—सज्ञा. स्त्री. [हिं दुहना] दुहने की क्रिया, (थन से) दूध निकालने की क्रिया। उ.—(क) काल्हि तुम्हें गो दुहन सिखावैं, दुही सबै अब गाइ—४००। (ख) मैं दुहिहौं, मोहि दुहन सिखावहु—४०१। (ग) बाबा मोकौं दुहन सिखायौ—६६७।

दुहना—क्रि. स. [स. दोहन] (१) थन से दूध निकालना। (२) सारा तत्व-भाग निचोड लेना। (३) धन हर लेना।

दुहनियाँ, दुहनी—सज्ञा स्त्री [स. दोहनी] वह पात्र जिसमें दूध दूहा जाय। उ.—डारि दियौ भरी दूध-दुहनियाँ, अबहीं नीकैं आई—७४१।

दुहरना, दुहराना—क्रि. स. [हि. दोहराना] (१) **किसी बात को बार-बार कहना । (२) किसी चीज को दोहरा करना ।**

दुहरा—वि. [हिं. दोहरा] (१) **दो तह का । (२) दुगना ।**

दुहरानी—वि. [हिं. दोहराना] **दुगने के लगभग ।** उ.—कहा करौं अपथि भई मिलि बड़ी व्यथा दुख दुहरानी—२८८७ ।

दुहहु—क्रि. स. [हिं. दुहना] **दुहो, (पशुओं के) थन से दूध निकालो ।** उ.—सूरदास नँद लेहु दोहिनी, दुहहु लाल की नाटी—१०-२५६ ।

दुहाइ—संज्ञा स्त्री [हि. दुहाई] **घोषणा, राजकीय सूचना ।**

मुहा.—फिरी दुहाइ—**विजय-घोषणा हुई, जयजयकार हुई, प्रभुत्व का डंका पिटा ।** उ.—कुंभकरन तन पक लगाई, लंक बिभीषन पाइ । अगस्त्यौ आइ लंकदल कवि की, फिरी रघुबीर दुहाइ—६-८३ ।

दुहाई—संज्ञा स्त्री [सं.द्वि=दो+आह्वान=पुकार] **घोषणा, पुकार, सूचना ।**

मुहा.—(किसी की) दुहाई फिरना—(१) **राजा के सिंहासनासीन होने की घोषणा ।** उ.—(क) बैठे राम राज-सिंहासन जग में फिरी दुहाई—सारा. ३०२ । (२) **प्रताप का डंका बजना, जयजयकार होना ।** उ.—बसी बनराज आज आई रन जीति ।··· ··। देत मदन मारुत मिलि दसों दिसि दुहाई—६५० ।

(२) **सहायता, बचाव या रक्षा के लिए पुकार ।**

मुहा.—दुहाई देना—**संकट पड़ने पर सहायता या रक्षा के लिए पुकारना ।**

(३) **शपथ, कसम, सौगंद ।** उ.—(क) अब मन मानि धौं राम दुहाई । मन-बच-क्रम हरिनाम हृदय धरि, ज्यों गुरु बेद बताई—१-३१८ । (ख) मोहिं कहत जुवती सब चोर ।·· ·· । जहाँ मोहि देखति तहँ टेरति, मैं नहिं जात दुहाई तोर—१३६८ । (ग) जब लगि एक दुहौगे तब लौं चारि दुहौंगो नंद दुहाई—६६८ ।

संज्ञा स्त्री [हिं. दुहना] (१) **गाय-भैंस आदि को दुहने की क्रिया । (२) दुहने की मजदूरी ।**

दुहाऊँ—क्रि. स. [हिं. दुहना का प्रे०] **दूध निकलवाऊँ ।** उ.—कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ—१-१६६ ।

दुहाग—संज्ञा पुं० [सं. दुर्भाग्य, प्रा. दुब्भाग] (१) **दुर्भाग्य, अभाग्य । (२) सोहाग की हानि, वैधव्य ।**

दुहागा—वि. [हिं. दुहाग] **अभागा, भाग्यहीन ।**

दुहागिन—वि. [हि दुहागी] (१) **विधवा** (२) **अभागी ।**

दुहागिल—वि. [वि. दुहाग+इल (प्रत्य.)] (१) **अभागा । (२) अनाथ, अनाश्रित । (३) सूना, खाली ।**

दुहागी—वि. [सं. दुर्भागिन] **अभाग, भाग्यहीन ।**

दुहाजू—वि. पुं. [सं द्विभार्य] **जो (पुरुष) पहली पत्नी के मर जाने पर दूसरा विवाह करे ।**

वि. स्त्री.—**वह स्त्री जो पति के मरने पर दूसरा विवाह करे ।**

दुहाना—क्रि. स. [हि दुहना प्रे.] **गाय-भैंस आदि को दुहने का काम दूसरे से कराना ।**

दुहाव—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुहाना] (१) **एक प्रथा जिसमें विशेष त्योहारों पर असामियों की गाय-भैंसों का दूध मालिक दुहा लेता है । (२) वह दूध जो इस प्रथा के अनुसार मालिक को मिले ।**

दुहावति—क्रि. स. स्त्री. [हि. दुहाना] **दुहाती है ।** उ.—सूरदास प्रभु पास दुहावति, धनि-धनि श्री वृषभानु-लली—७३६ ।

दुहावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. दुहाना] **दुहाने के उद्देश्य से या दुहाने (के लिए)** । उ —खरिक दुहावन जाति हौं, तुम्हरी सेवकाई—७१३ ।

दुहावनी—संज्ञा स्त्री [हि दुहाना] **दुहने की मजदूरी ।**

दुहावै—क्रि. स. [हि. दुहाना] **दुहने का काम करावे, दूध निकलवावे ।** उ.—सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै—१-१६८ ।

दुहि—क्रि स. [हिं दुहना] (१) **दूध दुहकर । (२) सार या तत्व निचोड़कर ।** उ —काढ़े पृथु को रूप हरि लीन्हें नाना रस दुहि काढे—सारा. २४ ।

दुहिती—संज्ञा स्त्री. [स. दुहितृ] **कन्या, पुत्री ।**

दुहितृपति—संज्ञा पु [स.] **दामाद, जामाता ।**

दुहिन—संज्ञा पुं. [स द्रुहण] **ब्रह्मा, विधाता ।**

दुहिनि—वि. [हिं. दुहूँ+नि] **दोनो के ।** उ.—अबहीं सुनि बसुदेव-देवकी हरषित ह्वै है दुहिनि हियौ—३०८६ ।

दुहियत—क्रि. स [हिं दुहना] **दुहते हैं, थन से दूध निकालते हैं।** उ.—(क) चहुँ ओर चतुरग लच्छमी, कोटिक दुहियत धेन री—१०-१३६ । (ख) साँझ कुतूहल होत है जहँ तहँ दुहियत गाइ—४६२ ।

दुहिहौं—क्रि. स [हिं. दुहना] **दुहूँगा, दूध निकालूँगा।** उ —मैं दुहिहौं मोहि दुहन सिखावहु—४०१ ।

दुहीं—वि. [हिं दुहना] **जो दुह ली गयी हो, जिनका दूध दुहा जा चुका हो।** उ.—काल्हि तुम्हैं गो-दुहन सिखावैं, दुहीं सबै अब गाइ—४०० ।

दुही—क्रि स [हिं दुहना] **दुह ली, (थन से) दूध निकाला।** उ —सूर स्याम सुरभी दुही, सतनि हितकारी—४०६ ।

दुहुँ—क्रि. वि [हिं दो+हूँ (प्रत्य)] **दोनों, दोनों ही।** उ.—मेरी पीर परम पुरुषोत्तम, दुख मेट्यौ दुहुँ घाँ कौ—१-११३ ।

वि [हिं दो] **दो, दोनों।** उ.— इत-उत देखत जनम गयौ। या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ—१-२६१ ।

दुहुँघा—क्रि वि [हिं दुहुँ=दो+घा=ओर] **दोनों ओर से।**

दुहुँन—वि [हिं दोनों] **एक और दूसरा, दोनों।** उ — टोऊ लगत दुहुन तैं सुदर भले अनोन्या आशु—सा-४५ ।

दुहुँनि—सर्व [हिं दो+नि (प्रत्य) **दोनों ही ने।** उ.—(क) दुहुँनि मनोरथ अपनौ भाष्यौ—१-२६८ । (ख) सुर-असुर बहुत ता ठौर ही मरि गए, दुहुँनि कौ गर्व यौं हरि नसायौ—८-८ ।

दुहूँ—वि. [हिं दो+हूँ (प्रत्य.)] **दोनों।**

दुहेनू—वि. [हिं. दुहना] **दूध देनेवाली।**

दुहेल—सज्ञा पु० [स. दुर्हेल] **दुख, विपत्ति।**

दुहेला—वि. [स. दुर्हेल] (१) **दुखद, कठिन, दु.साध्य।** (२) **दुखी, दुखिया।**

सज्ञा पु०—**विकट खेल, कठिन या दु साध्य कार्य।**

दुहेली—वि. स्त्री [हिं. दुहेला] (१) **दुखदायिनी।** (२) **दुखिया।**

दुहैंगे—क्रि. स. [हिं. दुहना] **दुहेंगे, दूध निकालेंगे।** उ. —सूर स्याम कह्यौ काल्हि दुहैंगे हमहूँ तुम मिलि हाइ लगाइ—६६८ ।

दुहैया—सज्ञा स्त्री [हिं. दुहाई] **शपथ, कसम, सौगंद।** उ.—(क) सूरदास प्रभु खेल्योइ चाहत, दाउँ दियौ करि नद-दुहैया—१०-२४५ । (ख) मानी हार सूर के प्रभु तब, बहुरि न करिहौं नँद दुहैया—७३५ । (ग) दोउ सींग बिच ह्वै हौं आयौ, जहाँ न कोउ हो रखवैया। तेरौ पुन्य सहाय भयौ है उबरयौ बाबा नद-दुहैया—१०-३३५ । (घ) दै री मैया दोहनी, दुहिहौं मैं गैया। माखन खाए बल भयौ, करौं नद-दुहैया—६६६ ।

सज्ञा पु० [हिं. दुहना] **दुहनेवाला।** उ. —अति रस काम की प्रीति जानिकै आवत खरिक दुहैया–७३३।

दुहोतरा—सज्ञा पुं. [स. दौहित्र] **पुत्री का पुत्र, नाती।**

वि. [स. द्वि, हिं. दो] **दो अधिक, दो ऊपर।**

दुहोतरी—सज्ञा स्त्री. [हिं दुहोतरा] **पुत्री की पुत्री।**

दुहौंगो—क्रि स [हिं. दुहना] **दुह लूँगा, (थन से) दूध निकालूँगा।** उ —जब लौं एक दुहौंगे तब लौं चारि दुहौंगो, नद दुहाई—६६८ ।

दुहौ—क्रि स [हिं. दुहना] **दुहो, (थन से) दूध निकालो।** उ.—(क) भोर दुहौ जनि नद-दुहाई, उनसौं कहत सुनाइ—४०० । (ख) ग्वाल एक दोहनि लै दीन्ही, दुहौ स्याम अति करौ चँडाई—७१७ ।

दुहौगे—क्रि स. [हिं. दुहना] **दुहोगे, थन से दूध निकालोगे।** उ —जब लौं एक दुहौगे तब लौं, चारि दुहौगे नद दुहाई–६६८ ।

दुह्य—वि [स] **दुहने योग्य।**

सज्ञा पुं. [स] **ययाति और शर्मिष्ठा का एक पुत्र जिसने पिता को अपनी युवावस्था देना अस्वीकार कर दिया था।**

दुह्या—वि. स्त्री [स दुह्य] **दुहने योग्य।**

दूँगड़ा, दूँगरा—सज्ञा पुं. [हिं दौंगरा] **गर्मी की तपन के बाद होनेवाली हलकी वर्षा।**

दूँद—सज्ञा पु [स द्वंद्व] (१) **उपद्रव।** (२) **घोर शब्द।**

दूँदना—क्रि अ [हिं. दूँद] (१) **उपद्रव करना, उधम मचाना।** (२) **घोर शब्द करना।**

दू—वि [हिं. दो] **दो।** उ —सरबस मैं पहिलैं ही वार्यौ नान्ही नान्ही दँतुली दू पर—१०-६२

दूआ—सज्ञा पु [देश] **कलाई का एक गहना, पछेली।**

दूआ—संज्ञा पुं. [हिं. दो+आ (प्रत्य.) **खेल की दुक्की ।**
संज्ञा स्त्री [हिं. दुआ] (१) **प्रार्थना । (२) आशीश ।**

दूइ—वि. [हिं. दो] **दो ।**

दूइज—संज्ञा स्त्री. [हिं. दूज] **दूज, द्वितीया ।**

दूई—वि. [हिं. दो] **दो ।**

दूक—वि. [सं. द्वैक] **दो एक, कुछ, थोड़े ।**

दूकान—संज्ञा पुं. [हिं दुकान] **दुकान ।**

दूख—संज्ञा पुं. [हिं दुख] **कष्ट, पीड़ा ।**

दूखन—संज्ञा पुं. [स. दूषण] **दोष, ऐब ।**

दूखना—क्रि. स. [स. दूषण+ना] **दोष लगाना ।**
क्रि. अ. [हि दुखना] **कष्ट होना ।**

दुखित—वि. [हिं. दूषित] **जिसमें दोष हो ।**
वि. [हिं दुखित] **जो दुखी हो, पीड़ित ।**

दूखी—वि. [हिं दुखी] **दुखी हुई ।** उ. इते मान इहि जोग सँदेसनि सुनि अकुलानी दूखी—३०२६ ।

दूगुन—वि. [स द्विगुण] **दूना, दुगना ।**

दूज—संज्ञा स्त्री [स द्वितीया, प्रा दुइय, दुइज] **किसी पक्ष की दूसरी तिथि, दुइज, द्वितीया ।**

मुहा —दूज का चाँद होना—(१) **कम दिखायी देनेवाला । (२) जो बहुत दिन बाद दिखायी दे ।**

दूजा—वि. [हिं. दो] **दूसरा, द्वितीय ।**

दूजी—वि [हिं दूजा] **दूसरे, दूसरी ।** उ —सूर स्याम की इहै परेखो इक दुख दूजी हाँसी—३४०५ ।

दूजे—वि. [हिं. दूजा] **दूसरे, अन्य ।** उ —दूजे करज दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवै—१-१४२ ।

दूजौ—वि. [हिं. दूजा] **दूसरा, द्वितीय, अन्य ।** उ –(क) ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ–१–६७ । (ख) तुमहिं समान और नहिं दूजौ, काहि भजौं हौं दीन—१-१११ । (ग) कौरव छाँड़ि भूमि पर कैसें दूजौ भूप कहावै—१-२७५ । (घ) सूरदास कारी कामरि पै, चढत न दूजौ रग—१-३३२ ।

दूत—संज्ञा पुं. [सं.] **संदेश ले जानेवाला मनुष्य, चर ।** उ.—पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाइ—९-४७ । (२) **प्रेमी-प्रेमिका का परस्पर संदेसा ले जाने वाला व्यक्ति ।**

दूतक—संज्ञा पं. [स.] (१) दूत । (२) **राजाज्ञा का प्रचार करनेवाला कर्मचारी ।**

दूतकत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **दूतक का काम ।**

दूतकर्म—संज्ञा पु. [स.] **दूत का काम ।**

दूतता—संज्ञा स्त्री [स] **दूत का काम ।**

दूतत्व—संज्ञा पुं [स.] **दूत का काम, दूतता ।** उ.—पाडव कौ दूतत्व कियौ पुनि उग्रसेन कौं राज दयौ—१-२६ ।

दूतपन—संज्ञा पुं [हिं दूत+पन] **दूत का काम ।**

दूतर—वि [स. दुस्तर] **कठिन, दुस्साध्य ।**

दूतावास—संज्ञा पुं. [स.] **विदेशी दूत का वास-स्थान ।**

दूति, दूतिका, दूती—संज्ञा स्त्री [स. दूती] **प्रेम-संदेसा ले जानेवाली स्त्री ।** उ.—(क) निदरि हमैं अधरनि रस पीवति, पढी दूतिका भाइ—६५६ । (ख) ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२ ।

दूत्य—संज्ञा पु. [स] **दूत का भाव या कार्य ।**

दूदुह—संज्ञा पुं. [स. डुंडुभ] **पानी का साँप, डेड़हा ।**

दूध—संज्ञा पुं० [स. दुग्ध] (१) **पय, दुग्ध ।**

मुहा.—दूध उतरना—**थन या स्तन में दूध भर जाना ।** दूध का दूध और पानी का पानी करना—**ठीक-ठीक और निष्पक्ष न्याय करना ।** उ.—हम जातहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सौं पानी—१२६२ । दूध का बच्चा—**बहुत छोटा बच्चा जो दूध पर ही निभर हो ।** दूध का सा उबाल - **शीघ्र ही शांत हो जानेवाला आवेग ।** दूध की मक्खी - **तुच्छ और तिरस्कृत वस्तु ।** दूध की मक्खी की तरह निकालना (निकालकर फेक देना)—**किसी को तुच्छ या तिरस्कार योग्य समझकर अलग कर देना ।** काढि डार्‌यौ ज्यों दूध माँझ तैं माखी—**दूध की मक्खी की तरह बेकार समझकर अलग कर दिया ।** उ —मनसा ज्यों बाचा कर्मना अब हम कहत नहीं कछु राखी । सूर काढि डार्‌यौ ब्रज तैं ज्यों दूध माँझ तें माखी—३४८९ । मुँह से दूध की गध (बू) आना —**अबोध और अनुभवहीन होना ।** दूध के दाँत(दँतियाँ दँतुलियाँ) **छोटी अवस्था के दाँत ।** उ.—(क) कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन करै—१०–७६ । (ख) हरषित देखि दूध की दँतियाँ ... तनक तनक सी दूध दँतुलिया—१०–८२ । दूध के

दाँत न टूटना—**ज्ञान और अनुभव का अभाव होना।** दूध चढना—(१) **स्तन में दूध कम हो जाना।** (२) **स्तन से अधिक दूध निकलना।** दूध चढाना—**गाय-भैंस का दूध इस तरह चढ़ा लेना कि कम दुहा जा सके और उसके बछड़े के लिए बच जाय।** छठी का दूध याद आना—**बहुत कष्ट या हैरानी होना।** दूध छुड़ाना—**बच्चे को दूध पीने की आदत छुड़ाना।** दूध पीता—(१) **गोदी का, बहुत छोटा।** (२) **अबोध और अनुभवहीन।** किसी चीज का दूध पीना—**किसी वस्तु का सुरक्षित रहना।** दूध बढाना **बच्चे को दूध पीने की आदत छुड़ाना।** दूध भर आना—**अधिक ममता के कारण स्तन में दूध उतर आना।**

(२) **अनाज के हरे-भरे बीजों का रस।**

मुहा.— दूध पड़ना—**अनाज का तैयारी पर होना।**

(३) **पौधों पत्तियों से निकलनेवाला सफेद पदार्थ।**

दूधचढ़ीं—वि. स्त्री [हिं दूध + चढना] **जिनका दूध पहले से अधिक बढ़ गया हो।** उ —गैयाँ गनी न जाहिं तरुनि सब बच्छ बढीं। ते चरहिं जमुन के तीर दूने दूध चढीं—१०–२४

दूधपिलाई—सज्ञा स्त्री [हिं दूध+पिलाना] (१) **दूध पिलानेवाली धाय।** (२) **ब्याह की रीति जिसमें माता वर को दूध पिलाने की सी मुद्रा बनाती है।** (३) **वह धन या नेग जो माता को इस रीति के बदले में मिलता है।**

दूधपूत—सज्ञा पु [हिं दूध+पूत] **धन और सतान।** उ —दूध-पूत की छाँड़ी आस।

दूधबहन—सज्ञा स्त्री [हिं दूध+बहन] **दूसरे की माता का दूध पीकर पलनेवाली लडकी जो उस स्त्री के पुत्र की 'दूध-बहन' कहलाती है।**

दूधभाई—सज्ञा पु [हिं दूध+भाई] **दूसरे की माता का दूध पीकर पलन वाला लड़का जो उस स्त्री के पुत्र-पुत्रियों का 'दूधभाई' कहलाता है।**

दूधमुहाँ, दूधमुख— वि [हिं दूध+मुँहा, मुख] (१) **दूध पीता बच्चा।** (२) **अबोध और अनुभवहीन (व्यक्ति)।**

दूधा—संज्ञा पुं [हिं दूध] (१) **एक तरह का धान।** (२) **अन्न के कच्चे दानों का रस।**

दूधाभाती—संज्ञा स्त्री [हिं दूध+भात] **विवाह की एक रीति जिसमें विवाह के चौथे दिन वर-कन्या एक दूसरे को दूध-भात खिलाते हैं।**

दूधिया—वि [हिं दूध+इया (प्रत्य.)] (१) **दूध का बना हुआ।** (२) **दूध के रंग का।** (३) **कच्चे होने के कारण जिसका दूध सूखा न हो।**

सज्ञा पुं —(१) **एक पत्थर।** (२) **एक मिठाई।**

दूधी—सज्ञा स्त्री [हिं दुद्धी] **एक तरह की घास।**

दूधो—सज्ञा पुं. [हिं दूध] **दूध।** उ.—ताको कहा परेखो कीजै माँगत छाँछ, न दूधो—३२७८।

दून—वि [हिं. दूना] **दुगुना, दूना।** उ — ललित लट छिटकाति मुख पर देति सोभा दून—१०-१८४।

सज्ञा स्त्री.—(१) **दूने का भाव।**

मुहा—दून की लेना (हाँकना)—**बहुत बढ़-बढ़कर बातें करना।** दून की सूझना—**बहुत बड़ी या असभव बात ध्यान म आना।**

(२) **साधारण समय से कुछ जल्दी गाना।**

संज्ञा पुं [देश] **पहाड़ों के बीच या नीचे की समतल भूमि, तराई।**

दूनर—वि [स. द्विनम] **लचक कर दोहरा होनेवाला।**

दूना—वि. [स. द्विगुण] **दुगना, दो बार उतना ही।**

मुहा—कलेजा (दिल) दूना होना—**मन में खूब उमंग या जोश होना।** दिन दूना रात चौगुना—**प्रति पल बढ़ती या उन्नति होना।**

दूनी—वि स्त्री [हिं. दूना] **दुगुनी, दो गुनी।** उ.—(क) वा तैं दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि—४३१। (ख) दिन प्रति लेत दान बृंदावन दूनी रीति चलाई—३२५२।

दूनैं, दूनौं, दूनौ—वि [हिं दूना] **दूना, दुगुना, बहुत अधिक।** उ० (क) उनके सिर लै गयौ उतारि। कह्यो, पाडवनि आयौ मारि। बिन देखैं तावौं सुख भयौ। देखे तें दूनौ दुख ठयौ—१-२८९। (ख) तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढी। जे चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढीं—१०-२४। (ग) यह सुख सूरदास कैं नैननि दिन दिन दूनौ होइ—१०-५६।

दूब—संज्ञा स्त्री. [सं. दूर्वा] **एक प्रकार की प्रसिद्ध घास जिसे हिंदू मंगल द्रव्य मानते हैं और जिसका व्यवहार वे पूजन में करते हैं।** उ.—दधि-दूब-हरद, फल-फूल-पान कर कनक-थार तिय करतिं गान—६-१६६।

दूबदू—क्रि. वि. [हि दो या फा. रूबरू] **सामने-सामने।**

दूबर, दूबरा, दूबरो, दूबला—वि. [हि. दुबला] (१) **दुबला-पतला, क्षीण, कृश।** उ.—तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहिं दोइ—५-४। (२) **कमजोर, निर्बल।** (३) **दीन, दबैल।**

दूबा—सज्ञा स्त्री. [हिं. दूब] **'दूब' नाम की घास।**

दूबिया—वि. [हिं दूब+इया] **हरी घास का सा रंग।**

दूबे—संज्ञा पुं. [स. द्विवेदी] **द्विवेदी ब्राह्मण।**

दूभर—वि. [स. दुर्भर=जिसका निबाहना कठिन हो] **जिस (काम) का करना बहुत कठिन हो।**

दूमना—क्रि. अ. [स. द्रुम] **हिलना-डोलना।**

दूरंदेश—वि. [फा.] **आगा पीछा सोचनेवाला, दूर की बात सोचनेवाला, दूरदर्शी।**

दूरंदेशी—वि. स्त्री [फा.] **दूरदर्शिता।**

दूर—क्रि. वि. [सं.] **समीप या निकट का उलटा।** उ.—(क) दूर देखि सुदामा आवत धाइ परस्यौ चरन—१-२०२। (ख) अब रथ देख परत न धूर। दूर बढ़ि गो स्याम सुंदर बृज सँजीवन मूर-सा. ३८।

मुहा—दूर करना—(१) **हटाना, अलग करना।** (२) **मिटाना, न रहने देना।** उ—जसुमति कोख आय हरि प्रगटे असुर-तिमिर कर दूर—सारा. ३६०। दूर क्यों जायँ (जाइए)—**दूर या अपरिचित की बात न करके निकट या परिचित का उदाहरण देना।** दूर भागना (रहना)—**बचे रहना, पास न जाना, संबंध न स्थापित करना।** दूर होना (१) **हट जाना, छूट जाना।** (२) **मिट जाना, नष्ट होना।** दूर पहुँचना—(१) **शक्ति या साधन के बाहर होना।** (२) **दूर की या महत्व की बात सोचना।** दूर की बात—(१) **महत्व की बात।** (२) **आगे होनेवाली बात।** (३) **दुःसाध्य बात।** दूर की कहना—**दूरदर्शिता की बात कहना।**

वि.—**जो निकट न हो, जो फासले पर हो।**

दूरगामी—वि. [सं.] **दूर तक चलने या जानेवाला।**

दूरता—संज्ञा स्त्री [सं.] **दूरी, अंतर, फासला।**

दूरत्व—संज्ञा पुं. [स.] **दूर होने का भाव, दूरी।**

दूरदर्शक—वि [स] **दूर तक देखनेवाला।**

संज्ञा पुं—**बुद्धिमान या विद्वान व्यक्ति।**

दूरदर्शन—संज्ञा पुं. [स.] (१) **गिद्ध।** (२) **विद्वान, पंडित।** (३) **समझदार, बुद्धिमान**

दूरदर्शिता—संज्ञा स्त्री. [स] **दूर या आगे की बात सोचने की योग्यता या विशेषता, दूरंदेशी।**

दूरदर्शी—सज्ञा पुं. [सं] (१) **गिद्ध।** (२) **पंडित।**

वि.—**दूर या आगे की बात सोचनेवाला।**

दूरदृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दूर या भविष्य का विचार।**

दूरबा—संज्ञा पुं. [स. दूर्वा] **दूब नाम की घास।**

दूरबीन—संज्ञा स्त्री. [फा.] **दूर की चीजें देखने का यंत्र।**

दूरवर्ती—वि. [स.] **दूर का, जो दूर हो।**

दूरवीक्षण—सज्ञा पुं. [सं] **दूरबीन।**

दूरस्थ—वि. [स. [**जो दूर हो, दूर का।**

दूरपात—सज्ञा पुं [सं.] **अस्त्र जो दूर से मारा जाय।**

दूरागत—वि. [स.] **दूर से आया हुआ।**

दूरि—क्रि. वि. [सं.] **अंतर पर, फासले पर, निकट नहीं।** उ.—(क) दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी—१-११५। (ख) जद्दपि सूर प्रताप स्याम को दानव दूरि दुरात—३३५१।

मुहा.—दूरि करन (करना) (१) **अलग करना, पास से हटाना।** (२) **मिटाना, नाश करना।** उ.—कलिमल दूरि करन के काजैं, तुम लीन्हौ जग मैं अवतार—१-४१। दूरि करौ—**मिटाओ, नाश करो।** उ.—सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल—१-१५३। दूरि धर्‌यौ—**छिपा कर या संचित करके रखा हुआ।** उ.—ठाढ़ी कृष्न कृष्न यौं बोलै। जैसैं कोऊ बिपति परे तैं, दूरि धर्‌यौ धन खोलै—१-२५६।

दूरिहिं—क्रि. वि. सवि. [हिं दूर] **बहुत अंतर पर ही, दूर से ही।** उ.—वै देखौ रघुपति हैं आवत। दूरिहिं तैं दुतिया के ससि ज्यौं, ब्योम बिमान महा छबि छावत—६-१६७।

दूरी—क्रि. स. [हिं. दूर] **दूर होता है, जाता रहता है।**

उ – अरु नैसियै गाल मसूरी। जो खातहि मुख-दुख दूरी—१०-१८३।

सज्ञा स्त्री [हि दूर+ई (प्रत्य)] **बीच का अंतर।**

दूरोह—सज्ञा पुं [स.] **सूर्यलोक जहाँ जाना असंभव है।**

दूरोहण—सज्ञा पुं [स] **सूर्य, रवि।**

दूर्वा—सज्ञा स्त्री [स] **'दूब' नाम की घास।**

दूर्वाष्टमी- सज्ञा स्त्री [स] **भादो सुदी अष्टमी।**

दूलन – सज्ञा पु० [स. दोलन] **झूला, हिंडोला।**

दूलभ - वि [स दुर्लभ] **जो कठिनता से मिले।**

दूलह, दूल्हा—सज्ञा पु० [स दुर्लभ, प्रा दुल्लह] **(१) वर, दुलहा, पति, स्वामी। (२) प्रिय, प्रियतम।**

उ —एकहिं एक परस्पर बूझतिजनु मोहन दूलह आए — २६५६।

दूश्य—सज्ञा पु [स] **तंबू, खेमा।**

दूषक—सज्ञा पुं [स] **(१) दोष लगानेवाला (मनुष्य)। (२) दोष उत्पन्न करनेवाला (पदार्थ)।**

दूषण—सज्ञा पुं [स.] **(१) रावण का एक भाई जो शूर्पणखा की नाक और कान कटने के पश्चात श्री रामचंद्र के हाथ से मारा गया। (२) दोष, ऐब, अवगुण। (३) दोष लगाने की क्रिया या भाव।**

दूषणारि—सज्ञा पु [स] **दूषण दैत्य के शत्रु राम।**

दूषणीय—वि [स] **दोष लगाने योग्य।**

दूषन—सज्ञा पुं. [स दूषण] **दोष, अपराध, पाप।**

उ —जो माँगौ सो देहुँ तुरत हीं, हीरा रतन-भँडारी। रहु-रहु राजा, यौं नहिं कहिए, दूषन लागै भारी—८-१४। (ख) तब हरि कह्यौ हत्यौ बिन दूषन हलधर भेद बतायौ।

दूषना—क्रि. स. [स दूषण] **दोष या कलंक लगाना।**

दूषि, दूषिका—संज्ञा स्त्री [स. दूषिका] **आँख का मैल।**

दूषित—वि. [स०] **जिसमें दोष हो, बुरा।**

दूष्य—वि. [स०] **(१) दोष लगाने योग्य। (२) निंदा के योग्य। (३) तुच्छ, हेय।**

संज्ञा पु.—**(१) वस्त्र, कपड़ा। (२) खेमा, तंबू।**

दूसर, दूसरा—वि [हिं दूसरा] **(१) दूसरा, भिन्न, अन्य।** उ०—आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर—२-३६। **(२) अन्य, और।**

दूसरे, दूसरैं—वि. [हिं. दो, दूसरा] **दूसरा, द्वितीय।**

उ.—दूसरैं कर बान न लैहौं। सुनि सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं—६-१५७।

दूहना—क्रि. स. [हिं. दुहना] **थन से दूध निकालना।**

दूहनी - संज्ञा स्त्री. [हि दोहनी] **दूध दुहने का पात्र।**

दूहा—संज्ञा पु [हिं. दोहा] **'दोहा' नामक छंद।**

दूहिया—सज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह का चूहा।**

दृक—सज्ञा पुं. [सं०] **छेद, छिद्र।**

सज्ञा पुं [सं. दृग्भू] **हीरा।**

दृक्कर्ण—सज्ञा पुं. [सं.] **साँप जो आँख से सुनता भी है।**

दृक्क्षेप—सज्ञा पुं. [स.] **देखना, अवलोकन।**

दृक्पथ—सज्ञा पुं. [स] **दृष्टि की पहुँच।**

मुहा.— दृक्पथ में आना—**दिखायी देना।**

दृक्पात—सज्ञा पुं. [स] **देखना, अवलोकन।**

दृक्श्रुति—संज्ञा पुं. [स.] **साँप जो आँख से सुनता है।**

दृगंचल—संज्ञा पु. [स.] **(१) पलक। (२) चितवन।**

दृग—संज्ञा पुं [स. दृक्] **नेत्र, आँख।** उ —इत-उत देखत जनम गयौ। या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ—१-२६१।

मुहा —दृग डालना (देना)—**देखना।** दृग फेरना-(१) **आँख हटा लेना, न देखना। (२) अप्रसन्न हो जाना।**

(२) देखने की शक्ति, दृष्टि। (३) दो की संख्या।

दृगमिचाव—सज्ञा पं. [हिं दृग+मीचना] **आँखमिचौनी नाम का खेल।**

दृग्गात—सज्ञा स्त्री [स.] **दृष्टि की गति या पहुँच।**

दृग्गोचर—वि. [स] **जो आँख से दिखायी दे।**

दृग्भू—सज्ञा पुं [स.] **(१) वज्र। (२) सूर्य। (३) साँप।**

दृग्वृत्त – सज्ञा पुं [स] **क्षितिज।**

दृढ़—वि [स.] **(१) कसकर बँधा या मिला हुआ। (२) कड़ा, जो जल्दी न टूटे। (३) बलवान, हृष्टपुष्ट। (४) जो जल्दी नष्ट या विचलित न हो। (५) निश्चित, ध्रुव। (६) निश्चय या सिद्धांत पर अटल, निडर, कड़े दिल का।** उ.—अब मैं हूं याकौं दृढ देखौं। लखि बिस्वास बहुरि उपदेसौं—४-६।

क्रि. वि दृढ़ता के साथ, अटल स्वर में। उ.—दुर्योधन से कह्यौ दूत ह्वै भक्त पच्छ दृढ बोले—सारा ७७३।

संज्ञा पुं.—(१) लोहा। (२) विष्णु। (३) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (४) गणित का वह अंक जो दूसरे अंक से पूरा विभाजित न हो सके; जैसे १, ३ आदि।

दृढ़कर्मा—वि [स दृढकर्मन्] धीरता और स्थिरता से अपने काम में लगा रहनेवाला।

दृढ़कारी—वि. [स. दृढकारिन्] (१) दृढ़ता और स्थिरता से काम करनेवाला। (२) मजबूत करनेवाला।

दृढ-चेता—वि. [सं.-चेतस्] दृढ़ विचारवाला।

दृढ़ताइ, दृढ़ताई—संज्ञा स्त्री [स. दृढता] (१) दृढ़ होने का भाव, उ.—(क) जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोक बिदित दृढताई। तौ क्यौं तजै नाथ अपनौं प्रन ? है प्रभु की प्रभुताई—१-२०७। (ख) दृढताई मैं प्रगट कन्हाई—७६६। (२) मजबूती। (३) स्थिरता। (४) पक्कापन।

दृढ़त्व—संज्ञा पुं. [स.] दृढ़ होने का भाव।

दृढ़धन्वा, दृढ़धन्वी—वि. [स दृढधन्वन्] (१) जो धनुष चलाने में दृढ़ हो। (२) जिसका धनुष दृढ़ हो।

दृढ़निश्चय—वि. [सं] जो निश्चय पर डटा रहे।

दृढ़नेमि—वि [स] जिसकी धूरी मजबूत हो।

दृढपाद—वि. [स] जो विचार का पक्का हो।

दृढ़प्रतिज्ञ—वि [स] जो निश्चय पर डटा रहे।

दृढ़भूमि—संज्ञा स्त्री [स] मन को स्थिर करने का अभ्यास।

दृढमुष्टि—वि. [स.] (१) जोर से या कसकर पकड़ने वाला। (२) कंजूस, कृपण।

दृढ़व्रत—वि. [स] जो निश्चय पर डटा रहे।

दृढ़संध—वि. [स.] जो संकल्प पर डटा रहे।

दृढांग—वि. [स.] जिसका अंग मजबूत हो, हृष्ट-पुष्ट।

दृढ़ाइ, दृढ़ाई—क्रि. स [हि. दृढाना] दृढ या पक्का करके।

प्र—दीन्हो दृढाइ—दृढ़ कर दिया। उ.-पाछे बिबिध ज्ञान जननी को दीन्हो कपिल दृढाइ। लेत दृढाइ—मजबूत या दृढ़ कर लेते हैं। उ.-सूर प्रभु सन और यह कहि प्रेम लेत दृढ़ाई—३०२२।

संज्ञा स्त्री [हि. दृढ] दृढ़ता, मजबूती।

दृढ़ाना—क्रि. स. [हिं दृढ+ना (प्रत्य.)] दृढ़, पक्का या मजबूत करना।

क्रि. अ—(१) कड़ा या पुष्ट होना। (२) स्थिर होना।

दृढानो—क्रि अ. [हिं. दृढाना] स्थिर या दृढ़ हुआ है। उ—पहिलो जोग कहा भयो ऊधो अब यह जोग दृढानो—३०५६।

दृढ़ाय—क्रि. स. [हिं. दृढ़ाना] दृढ़ या पक्का करके। उ.—(क) करि उपदेस ज्ञान हरि भक्तिहि अरु बैराग्य दृढाय—सारा. १३६। (ख) देखि चरित्र विनोद लाल के बिस्मित भे द्विजराय। अद्भुत केलि कृपा करि कीनी द्विज को ज्ञान दृढाय—८०१।

दृढायुध—वि. [सं.] अस्त्र ग्रहण करने में दृढ़।

दृढ़ायौ—क्रि. स. [हिं. दृढाना] दृढ़ या पक्का किया। उ.—सुन कटु बचन गये माता पै तब उन ज्ञान दृढायौ—सारा. ७३।

दृढ़ाव—संज्ञा पुं. [हिं. दृढना+आव] दृढ़ता।

दृढ़ावत—क्रि स. [हिं. दृढाना] दृढ़ या पक्का करते हैं। उ.—कहुँ उपदेस कहूँ जैवे को कहूँ दृढावत ज्ञान—सारा ६६६।

दृत—वि. [सं.] सम्मानित, आदृत।

दृता—वि. स्त्री. [सं. दृत] जो (स्त्री) सम्मान योग्य हो।

दृन्भू—संज्ञा पुं. [स] (१) वज्र। (२) सूर्य। (३) राजा।

दृप्त—वि. [स] (१) गर्व से ऐंठा या इतराया हुआ। (२) हर्ष से फूला या भरा हुआ।

दृप्ति—संज्ञा स्त्री [सं] (१) चमक, कांति। (२) प्रकाश। (३) तेज, तेजस्विता। (४) उग्रता। (५) गर्व।

दृप्र—वि [सं.] (१) प्रबल। (२) घमंडी, गर्वी।

दृब्ध—वि. [सं.] (१) गुँथा हुआ (२) डरा हुआ।

दृशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आँख।

दृशान संज्ञा पुं [सं.] प्रकाश, आभा।

दृशि, दृशी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) दृष्टि। (२) प्रकाश।

दृश्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देखना, दर्शन। (२) दिखानेवाला। (३) देखनेवाला।

संज्ञा स्त्री.—(१) दृष्टि। (२) आँख। (३) दो की संख्या।

दृश्य—वि [सं.] (१) जिसे देखा जा सके। (२) जो देखने योग्य हो, दर्शनीय। (३) सुंदर। (४) जानने योग्य।

संज्ञा पुं.—(१) देखने का पदार्थ या विषय। (२) मनोरंजक व्यापार, तमाशा। (३) नाटक।

दृश्यमान—वि [सं.] (१) जो दिखायी देता हो। (२) चमकीला, प्रकाशयुक्त। (३) सुंदर, मनोरम।

दृषत्, दृषद्—संज्ञा स्त्री [सं दृषत्] पत्थर शिला।

दृषद्वान—वि. [सं दृषद्वत्] पथरीला।

दृष्ट—वि. [सं.] (१) देखा हुआ। (२) जाना हुआ। (३) प्रत्यक्ष, प्रकट, दृश्य।

संज्ञा पुं.—(१) दर्शन। (२) साक्षात्कार।

दृष्टकूट—संज्ञा पुं० [सं.] (१) पहेली। (२) ऐसी कविता जिसका अर्थ शब्दों के साधारण अर्थ से स्पष्ट न हो, बल्कि प्रसंग या रूढ़ अर्थों से जाना जाय जो कवि को अभीष्ट हो। ऐसी कविता में एक ही शब्द का प्रयोग एक ही पद में विभिन्न अर्थों में किया जा सकता है। सूरदास की 'सहित्यलहरी' में ऐसे ही पद हैं।

दृष्टमान—वि.—[सं दृश्यमान] प्रकट, व्यक्त, प्रत्यक्ष। उ.—दृष्टमान नास सब होई। साची व्यापक नसै न माई।

दृष्टवत्—वि [सं.] (१) प्रत्यक्ष या व्यक्त के समान। (२) लौकिक, सांसारिक।

दृष्टवाद—संज्ञा पुं [सं] एक दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष को मानता है।

दृष्टव्य—वि. [सं] देखने योग्य,

दृष्टांत—संज्ञा पुं. [सं] (१) उदाहरण। (२) एक अर्थालंकार।

दृष्टार्थ—संज्ञा पुं. [सं] वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो।

दृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) देखने की शक्ति या वृत्ति।

मुहा.—दृष्टि मारी जाना—देखने की शक्ति न रह जाना।

(२) देखने के लिए नेत्रों की प्रवृत्ति, अवलोकन।

मुहा.—दृष्टि करना (चलाना, देना, फेंकना,)—नजर डालना, देखना। दृष्टि चूकना—नजर का इधर-उधर होना। दृष्टि फिरना—(१) नेत्रों का दूसरी ओर हो जाना। (२) पहले की तरह प्रेम या कृपा का भाव न रह जाना। दृष्टि फेरना—(१) दूसरी ओर देखना। (२) पहले की तरह प्रेम या कृपा का भाव न रखना। दृष्टि बचाना—(१) सामने न आना, सामना बचाना। (२) छिपाना, न दिखाना। दृष्टि बाँधना—ऐसा जादू करना कि कुछ का कुछ दिखायी दे। दृष्टि लगाना—(१) टकटकी बाँधकर देखना, ताकना। (२) नजर लगाना।

(३) नेत्र-ज्योति-प्रसार जिससे वस्तु के रूप-रंग आदि का बोध हो, दृक्पथ।

मुहा.—दृष्टि पड़ना—दिखाई देना। उ.—(क) नैंकु दृष्टि जहँ पर गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)—१-४४। (ख) मेरी दृष्टि परे जा दिन तैं ज्ञान-मान हरि लीनो री। दृष्टि पर चढ़ना—(१) देखने में सुंदर लगना, निगाह में जँचना। (२) आँखों को खटकना। दृष्टि बिछाना—अत्यंत प्रेम या श्रद्धा से प्रतीक्षा करना। (२) किसी के आने पर बहुत प्रेम या श्रद्धा दिखाना। दृष्टि में आना—दिखायी पड़ना। दृष्टि से उतरना (गिरना)—पहले की तरह प्रेम या श्रद्धा का पात्र न रह जाना।

(४) देखने के लिए खुली हुई आँख।

मुहा. दृष्टि उठाना—देखने के लिए आँख उठाना। दृष्टि गड़ाना (जमाना)—एकटक देखना। दृष्टि चुराना—सामने न पड़ना। दृष्टि जुड़ना (मिलना)—देखा देखी होना। दृष्टि जोड़ना (मिलाना)—देखा देखी करना। दृष्टि फिसलना—चमक-दमक के कारण नजर न ठहरना। दृष्टि भर देखना—जी भर कर निहारना। उ.—सूर श्रीगोपाल की छवि दृष्टि भरि

लखि लेहि। प्रानपति की निरखि सोभा पलक परन न देहि। दृष्टि मारना–(१) **आँख से इशारा करना। (२) आँख के इशारे से किसी काम के लिए मना करना।** दृष्टि में समाना–**अच्छा लगने के कारण ध्यान में बना रहना।** दृष्टि रखना–(१) **ध्यान रखना, निगरानी करना (२) देख-रेख में रखना, चौकसी रखना।** दृष्टि लगना–(१) **नजर का पड़ना, दिखायी देना। (२) देखादेखी के बाद प्रेम होना। (३) नजर लगना।** दृष्टि लगाना—(१) **टकटकी बाँधकर देखना। (२) ताकना। (३) प्रेम करना। (४) नजर लगाना।** दृष्टि लगाई—**टकटकी बाँधकर देखते रहे।** उ.–उनके मन की कह कहौं, ज्यौं दृष्टि लगाई। लैया नोई वृषभ सौं, गैया बिसराई—७१५। दृष्टि लड़ना—(१) **देखा-देखी होना। (२) प्रेम होना।** दृष्टि लड़ाना–(१) **खूब घूरना या ताकना।**

(५) परख, पहचान,। (६) कृपादृष्टि। (७) आशा। (८) अनुमान। (९) उद्देश्य।

दृष्टिकूट—संज्ञा पु. [हि. दृष्टकूट] (१) **पहेली। (२) दृष्टकूट, जिनका अर्थ सरलता से न खुले।**

दृष्टिकोण—संज्ञा पु. [सं.] (१) **वह अंग जिससे कोई बात सोची-समझी जाय। (२) किसी विषय में निश्चित मत। (३) नाटक का एक दृश्य।**

दृष्टिक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] **दृष्टिपात, देखना।**

दृष्टिगत—वि. [सं.] **जो दिखायी पड़ा हो।**

दृष्टिगोचर—वि. [सं.] **जो देखा जा सके।**

दृष्टिनिपात, दृष्टिपात—संज्ञा पुं. [सं.] **देखना।**

दृष्टिपूत—वि. [सं] (१) **जो देखने में शुद्ध जान पड़े। (२) जिसके देखने से आँखें पवित्र हों।**

दृष्टिबंध—संज्ञा पु. [सं.] (१) **वह जादू या क्रिया जिससे देखनेवाले को कुछ का कुछ दिखायी पड़े। (२) हाथ की सफाई।**

दृष्टिबंधु—संज्ञा पु. [सं.] **जुगनू, खद्योत।**

दृष्टिमान्—वि. [सं. दृष्टिमत्] **आँख या दृष्टिवाला।**

दृष्टिरोध—संज्ञा पु. [सं.] (१) **दृष्टि की रोक या रुकावट, देखने की बाधा। (२) आड़, ओट।**

दृष्टिवत—वि. [सं. दृष्टि+वत (प्रत्य.)] (१) **आँख या दृष्टिवाला। (२) ज्ञानी, ज्ञानवान्।**

दृश्यमान—वि. [सं. दृश्यमान] **जो दिखाई पड़ रहा हो।** उ.—दृस्यमान बिनास सब होइ। साच्छी व्यापक, नसै न सोइ—५-२।

दे—संज्ञा स्त्री. [सं. देवी] **स्त्रियों के लिए आदर सम्मान-सूचक शब्द, देवी।** उ.—यह छवि सूरदास सदा रहै बानी। नँदनंदन राजा राधिका दे रानी—१७६२।

देइ, देई—क्रि. स. [हि. देना] **देता है, प्रदान करता है।** उ.—तद्यपि हरि तिहिं निज पद देइ—६-४।

संज्ञा स्त्री [सं. देवी] (१) **देवी। (२) स्त्रियों के लिए आदर या सम्मान-सूचक शब्द।**

देउ—संज्ञा पु. [सं. देव] (१) **देव, देवता। (२) पुरुषों के लिए आदर या सम्मान-सूचक शब्द।**

देउर—संज्ञा पुं. [हि. देवर] **पति का छोटा भाई।**

देउरानी—संज्ञा स्त्री [हिं. देवरानी] **पति के छोटे भाई की पत्नी।**

देख—संज्ञा स्त्री [हिं. देखना] **देखने की क्रिया या भाव।**

मुहा.—देख में—**प्रत्यक्ष आँख के सामने।**

क्रि. स.—(१) **देखकर। (२) उपाय करके।**

मुहा.—देख लेंगे—**उपाय या प्रतिकार करेंगे, समझ लेंगे।**

देखई—क्रि. स. [हि. देखना] **देखता है।** उ.—परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढत अकास। तहँ चढि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास—१-३२५।

देखत—क्रि. स. [हिं. देखना] **देखने से, देखते ही, देखने में या पर।** उ.—(क) मोहन के मुख ऊपर वारी। देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार तातें बलिहारी—१-२६। (ख) काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढौ, देखत काहि सुहाउँ—१-२२८।

मुहा.—देखत-सुनत—**जानकारी प्राप्त करके, समझ-बूझ कर।**

प्र.—देखत ही रैहौ—**सिर्फ देखते या ताकते रह जाओगे, कुछ कर न सकोगे।** उ.—लैहौं छीनि दूध दधि माखन देखत ही तुम रैहौ—१०८९।

देखति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. देखना] **देखती है।**

मुहा.—देखति रहियौ—निगरानी रखना, नजर या ध्यान रखना। उ.—मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ। मेरे घर कौ द्वार सखी री तब लौं देखति रहियौ—१०-३१३।

देखते—क्रि स [हिं. देखना] (१) निहारते। (२) परखते।

मुहा —किसी के देखते—किसी की उपस्थिति में, किसी के सामने। देखते - देखते—(१) आंखों के सामने। (२) तुरंत, तत्काल। देखते रह जाना—हक्का-बक्का रह जाना, चकित हो जाना। हम भी देखते—हम समझ लेते, हम उपाय या प्रतिकार करते।

देखत्यौ—क्रि. स [हि. देखना] देखता, उपाय करता, प्रतिकार करता। उ.—हौं तौ न भयौ री घर देखत्यौ तेरी यौं अर, फोरतो बासन सब जानति बलैया-३७२।

देखन—सज्ञा स्त्री [हिं देखना] (१) देखने के उद्देश्य से, दृष्टिगोचर-हेतु। उ —सर-क्रीडा दिन देखन आवत, नारद, सुर तैंतीस—९-२०। (२) देखने की क्रिया, भाव या ढंग।

देखनहार, देखनहारा, देखनहारो, देखनहारौ—सज्ञा पु [हि देखना+हारा (प्रत्य)] देखनेवाला।

देखनहारी—सज्ञा स्त्री [हिं देखनहार] देखनेवाली।

देखना-क्रि. स [स दृश्, द्रक्ष्यति, प्रा. देक्खइ] (१) अवलोकन करना, निहारना, ताकना।

यौ —देखना-भालना—जांच या निरीक्षण करना।

मुहा —देखना-सुनना—पता लगाना, जानकारी प्राप्त करना। देखना चाहिए—कह नहीं सकते कि क्या होगा, फल की प्रतीक्षा करो। (२) जांच या निरीक्षण करना। (३) खोजना, ढूंढ़ना। (४) परखना, परीक्षा करना। (५) ध्यान या निगरानी रखना। (६) सोचना-विचारना। (७) भोगना, अनुभव करना। (८) पढ़ना, बांचना। (९) गुण-दोष का पता लगाना। (१०) सशोधन करना।

देखनि, देखनी—सज्ञा स्त्री [हिं देखना] (१) देखने की क्रिया या भाव। (२) देखने का ढग।

देखने—क्रि स [हिं देखना] ताकने, निहारने।

मुहा. देखने मे (१) ऊपरी या साधारण बात, व्यवहार या लक्षण में। (२) रूप-रंग या आकृति में।

देखभाल—सज्ञा स्त्री [हिं देखना+भालना] (१) जांच-पड़ताल, निगरानी। (२) देखा-देखी, दर्शन।

देखराई—सज्ञा स्त्री [हि. दिखलाई] (१) दर्शन।

प्र —देहु देखराई—दिखला दो, प्रत्यक्ष करा दो। उ.—ब्रज जाहु देहु गापिन देखराई - ३४४३।

(२) देखने का नेग, दिखाई।

देखराना—क्रि स. [हि. दिखलाना] प्रत्यक्ष कराना।

देखबी—क्रि. स. [हिं. देखना] देखेंगे। उ. सुदिन कब जब देखबी बन बहुत बाल बिसाल—१८२८।

देखरावत—क्रि स. [हि दिखलाना] दिखाते हैं, प्रत्यक्ष कराते हैं, समझाते हैं। उ. (क) तीर चलावत सिष्य सिखावत धर निसान देखरावत—सारा १९०। (ख) सूरदास प्रभु काम-सिरोमनि कोक-कला देखरावत—१९०८।

देखरावना—क्रि. स [हि. दिखलाना] प्रत्यक्ष करना।

देख-रेख—सज्ञा स्त्री [हिं देखना+स. प्रेक्षण] देखभाल, निगरानी, निरीक्षण।

देखहिंगे—क्रि स [हिं देखना] देखेंगे, परखेंगे। उ.—जब लौं एक दुहौगे तब लौं, चारि दुहौगो नद दुहाई। झूठहि करत दुहाई प्रातहिं, देखहिंगे तुम्हरी अधिकाई—६६८।

देखाई—सज्ञा स्त्री [हिं दिखाई] देखने का नेग।

देखाऊ—वि. [हिं. देखना] (१) झूठी तड़क भड़क वाला, जो देखने में ही सुदर लगे (काम का न हो)। (२) जो असली न हो, बनावटी।

देखा—क्रि. स [हिं देखना] निहारा, ताका, अवलोका।

मुहा.—देखा चाहिए—कह नहीं सकते कि आगे क्या होगा, फल की प्रतीक्षा करो। देखा जायगा—(१) फिर विचार किया जायगा। (२) पीछे जो कुछ करना होगा किया जायगा।

देखादेखी—सज्ञा स्त्री [हिं देखना] देखने की दशा या भाव, दर्शन, साक्षात्कार।

क्रि. वि.—दूसरो को देखकर, दूसरो के अनुसार।

देखाना—क्रि. स. [हिं दिखाना] **अवलोकन कराना।**

देखाभाली—संज्ञा स्त्री. [हि. देखभाल] (१) **जाँच-पड़ताल, निगरानी।** (२) **दर्शन, देखादेखी।**

देखाव—संज्ञा पु. [हिं. देखना] (१) **दृष्टि की सीमा।** (२) **रंग-रूप दिखाने का भाव, बनाव।** (३) **तड़क-भड़क, ठाट बाट।**

देखावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. दिखाना] (१) **रंग-रूप दिखाने की क्रिया या भाव।** (२) **ठाट-बाट।**

देखावना—क्रि स. [हिं दिखाना] **अवलोकन कराना।**

देखि—क्रि स. [हि देखना] **देखकर।** उ.—पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)। कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो)—१-४४।

देखिबो, देखिबौ—संज्ञा पुं. [हि. देखना] **देखना, देखने की क्रिया या भाव।** उ.—(क) पद-नौका की आस लगाए, बूड़त हौं बिनु छाँह। अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, बेगि गहौ किन बाँह—१-१७५। (ख) बहु रयौ देखिबो वहि भाँति—२६४५।

देखियत—क्रि. स. [हिं. देखना] **दिखायी देता है, दिखता है।** (क) गोबिंद चलत देखियत नीके—४३२। (ख) मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाए। अन्तर सून्य सदा देखियत है, निज कुल बंस भुलाए—६६१।

देखिये - क्रि. स [हिं. देखना] **देख लीजिए, निहारिए, दृष्टि डालिए।** उ.—सूरदास प्रभु समुझि देखियै, मैं बड़ तोहि करि दीन्हौ—१-१९१।

देखी क्रि स. [हि देखना] (१) **अवलोकन की।** (२) **पायी, अनुभव की।** उ.—जीवन-आस प्रबल लुति लेखी। साच्छात सो तुममैं देखी—१-२८४।

यौ.—देखी-सुनी— **न देखी है और न कभी सुनी है।** उ—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी-सुनी न बात—१०-१८६।

देखे—क्रि स [हिं. देखना] **दीखे, दिखायी दिये, देखने पर, देखने से।** उ.—(क) गरुड़ चढे देखे नँदनदन ध्यान चरन लपटानी—१-१५०। (ख) बिन देखें ताकौं सुख भयौ। देखे तें दूनौ दुख ठयौ—१-२८८।

मुहा. - देखे रहियौ—**खबरदारी रखना, ध्यान या निगरानी रखना।** उ.—(क) सूरदास बल सौं कहै जसुमति देखे रहियौ प्यारे—४१३। (ख) सूरस्याम कौं देखे रहियौ मारै जनि कोउ गाइ—६८०।

देखै—क्रि. स. [हिं. देखना] **देखे, देखने से, देखते हैं।** उ.—बिनु देखैं, बिनुही सुनैं, ठगत न कोऊ बाच्यौ (हो)—१-४४।

देखैंगे—क्रि. स. [हि. देखना] **देखेंगे, अवलोकन करेंगे।** उ.—नदनदन हमको देखैंगे, कैसैं करि जु अन्हैबौ—७७६।

देखौं—क्रि. स [हिं. देखना] **देखता हूँ।** उ.—कौन सुनै यह बात हमारी। समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी—१-१६०।

देखौ—क्रि. स. [हिं. 'देखना' का सबोधन रूप] **अवलोकन करो, देख कर ज्ञान प्राप्त करो।** उ—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति गंभीर उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ—२-८।

देखौआ—वि. [हिं. दिखाऊ] (१) **केवल ऊपरी या झूठी तड़क-भड़कवाला।** (२) **बनावटी, दिखावटी।**

देख्यौ—क्रि. स. भूत. [हि. 'देखना'] (१) **देखा।** उ—सुक नृप ओर कृपा करि देख्यौ—१-३४२। (२) **समझा, पाया, अनुभव किया।** उ.—हरि सौं मीत न देख्यौ कोई—१-१०।

देग—संज्ञा पु [फा.] **चौड़े मुँह का बड़ा बरतन।**

देगचा—संज्ञा पु [फा. देगच.] **छोटा देग।**

देत—क्रि स [हि. देना] **देते है, प्रदान करते हैं।** उ.—बिनु दीन्है ही देत सूर-प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं—१-३।

देति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. देना] **देती है।**

प्र.—भरमाइ देति-**भ्रम में डाल देती है।** उ.—हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ। कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ—१-४५।

देत्यौ—क्रि. स. [हि. देना] **देता, प्रदान करता।** उ.—सूर रोम प्रति लोचन देत्यौ, देखत बनत गुपाल—६४३।

देदीप्यमान—वि. [स.] **प्रकाशपूर्ण, चमकदार।**

देन—क्रि. स. [हि. देना] देने को । उ.—अबरीप कौं साप देन गयौ, बहुरि पठायौ ताकौं—१-११३ ।

मुहा—देने-लेने मे होना-सबध रखना । उ.—ये पाडव क्यौं गाड़िऐ, धरनीधर डोलैं । हम कछु लेन न देन मैं, ये बीर तिहारे—१-२३८ ।

सज्ञा स्त्री.—(१) देने की क्रिया या भाव । (२) दी हुई या प्रदान की हुई वस्तु या चीज ।

देनदार—सज्ञा पु [हिं देना+फा दार] ऋणी ।

देनदारी—सज्ञा स्त्री [हिं देनदार] ऋणी होनेकी स्थिति ।

देनलेन—सज्ञा पु. [हि. देना+लेना] (१) सामान्य व्यवहार । (२) व्याज पर रुपया उधार देना ।

देनहार, देनहारा, देनहारो, देनहारौ—वि. [हि देना+हार (प्रत्य.)] देनेवाला, दाता ।

देनहारी—वि. स्त्री. [हि. देनहारा] देनेवाली, दात्री ।

देना—क्रि. स. [स. दान] (१) प्रदान करना । (२) सौंपना, हवाले करना । (३) थमाना, हाथ में देना । (४) रखना, डालना, लगाना । (५) मारना, प्रहार करना । (६) भोगने को प्रवृत्त करना, अनुभव कराना । (७) निकालना, उत्पन्न करना । (८) बंद करना, उड़काना ।

सज्ञा पु.—ऋण जो चुकाना हो ।

देमान—सज्ञा पु. [फा. दीवान] मत्री, दीवान ।

देय—वि. [स.] देने या दान करने योग्य ।

देर, देरी—सज्ञा स्त्री. [फा. देर] (१) विलंब । (२) समय ।

देव—सज्ञा पु. [स] (१) स्वर्ग में रहनेवाले अमर प्राणी, देवता, सुर । (२) पूज्य व्यक्ति या सम्मानित व्यक्ति । (३) व्यक्ति जो बहुत तेजवान हो । (४) बड़ों के लिए सम्मानसूचक संबोधन । (५) राजा के लिए आदरसूचक संबोधन । (६) मेघ ।

संज्ञा पु [फा.] दैत्य, दानव, राक्षस ।

देवअंशी—वि [स देव+अशिन्] जो किसी देवता के अश से उत्पन्न हो या किसी देवता का अवतार हो ।

देवऋण—सज्ञा पु० [स] देवो के प्रति कर्तव्य, यज्ञादि ।

देवऋषि—सज्ञा पु. [स.] देवलोक के ऋषि, नारदादि ।

देवक—सज्ञा पं [स] देवता, सुर ।

देवकन्या—सज्ञा स्त्री [स.] देव-पुत्री, देवी ।

देवकर्म, देवकार्य—सज्ञा पु. [स.] देवताओ की प्रसन्नता के लिए किये गये यज्ञादि कर्म ।

देवकी—सज्ञा स्त्री [स.] कस की चचेरी बहन जो वसुदेव को व्याही थी । विवाह के बाद ही नारद के उकसाने पर कस ने पति-सहित इसे बंदी कर लिया और बड़ी क्रूरता से इसके छः बालक मार डाले । इसीके आठवें गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था ।

देवकीनदन—सज्ञा पु [स] श्रीकृष्ण ।

देवकीपुत्र—सज्ञा पु. [स] श्रीकृष्ण ।

देवकीमातृ—सज्ञा पु० [स.] श्रीकृष्ण, जिनकी माता देवकी थी ।

देवकीय—वि [स] देवता का, देवता-सबधी ।

देवकीसुत—सज्ञा पु [स.] श्रीकृष्ण ।

देवकुंड—सज्ञा पु. [स.] प्राकृतिक जलाशय ।

देवगज—सज्ञा पु. [स.] ऐरावत ।

देवगण—सज्ञा पु [स.] (१) देवताओ का वर्ग । (२) बहुत से देवताओ का समूह ।

देवगति—सज्ञा स्त्री. [स] (१) मृत्यु के बाद स्वर्ग-प्राप्ति । उ.—श्री रघुनाथ धनुष कर लीना लागत बान देवगति पाई । (२) मृत्यु के बाद देवयोनि की प्राप्ति ।

देवगन—सज्ञा पु [स. देवगण] देवताओ का वर्ग ।

देवगर्भ—सज्ञा पु [स] वह व्यक्ति जो देवता के वीर्य से उत्पन्न हुआ हो ।

देवगाधार—सज्ञा पु. [स] एक राग का नाम ।

देवगांधारी—सज्ञा स्त्री. [स] एक रागिनी ।

देवगायक, देवगायन—सज्ञा पु [स.] गधर्व ।

देवगिरा—सज्ञा स्त्री [स] देववाणी, सस्कृत भाषा ।

देवगिरी—सज्ञा पु [स] एक रागिनी ।

देवगुरु—सज्ञा पु [स.] (१) देवताओ के गुरु, बृहस्पति । (२) देवताओ के पिता, कश्यप ।

देवगुही—सज्ञा स्त्री. [स] सरस्वती ।

देवगृह—सज्ञा पु [स.] देवालय, मंदिर ।

देवचिकित्सक—सज्ञा पु [स] देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार । (२) दो की संख्या ।

देवज—वि. [स.] देवता से उत्पन्न ।

देवजुष्ट—वि. [सं.] देवता को चढ़ाया हुआ ।
देवट—संज्ञा पुं. [सं.] शिल्पी, कारीगर ।
देवठान—संज्ञा पुं. [सं. देवोत्थान] (१) विष्णु भगवान का सोकर उठना । (२) कार्तिक शुक्ला एकादशी जब भगवान विष्णु सोकर उठते हैं ।
देवढ़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. ड्योढ़ी] बाहरी द्वार, सिंहद्वार ।
देवतरु—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं के पाँच वृक्षों—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन—में एक ।
देवतर्पण—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के नाम ले-ले कर तर्पण करने (पानी देने) की क्रिया ।
देवता—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग के अमर प्राणी, सुर ।
देवताधिप—संज्ञा पुं. [सं.] देवराज इंद्र ।
देवतीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवपूजा का समय । (२) उँगलियों का अग्र भाग जिससे होकर तर्पण का जल गिरता है ।
देवत्रयी—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।
देवत्व—संज्ञा पुं. [सं.] देवता होने का भाव या धर्म ।
देवदत्त—वि. [सं.] (१) देवता का दिया हुआ, देवता से प्राप्त । (२) देवता के लिए अर्पित ।
संज्ञा पुं.— (१) देव-अर्पित वस्तु या संपत्ति । (२) शरीर की पाँच वायुओं में एक जिससे जँभाई आती है । (३) अर्जुन के शंख का नाम । (४) नागों का एक कुल ।
देवदर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] देवता का दर्शन ।
देवदार, देवदारु—संज्ञा पुं. [सं. देवदारु] एक वृक्ष ।
देवदासी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) वेश्या । (२) मंदिर को दान की हुई कन्या जो वहाँ नाचती-गाती है ।
देवदीप—संज्ञा पुं. [सं.] आँख, नेत्र ।
देवदुआरौ—संज्ञा पुं. [सं. देव+द्वार] देवमंदिर, देव-मंदिर का द्वार । उ.—टोना-टामनि जंत्र मंत्र करि, ध्यायौ देव-दुआरौ री—१०-१३५ ।
देवदूत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आग, (२) पैगंबर ।
देवदूती—संज्ञा स्त्री [सं.] स्वर्ग की अप्सरा ।
देवदेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा । (२) विष्णु । (३) महेश । (४) गणेश ।
देवद्रुम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन में एक । (२) देवदारु ।
देवधन—संज्ञा पुं. [सं.] देवता को अर्पित धन ।
देवघरा—संज्ञा पुं. [सं. देवगृह] देवालय, मंदिर ।
देवधाम—संज्ञा पुं. [सं.] तीर्थ-स्थान, देव-स्थान ।
मुहा.—देवधाम करना—तीर्थयात्रा करना ।
देवधामी—संज्ञा स्त्री [सं. देवधाम] तीर्थयात्रा । उ.—महरि वृषभानु की यह कुमारी । देवधामी करत, द्वार द्वारैं परत, पुत्र द्वै, तीसरैं यहै बारी—६६६ ।
देवधुनि—संज्ञा स्त्री [सं.] गंगा नदी ।
देवधेनु—संज्ञा स्त्री [सं.] कामधेनु ।
देवनंदी—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र का द्वारपाल ।
देवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यवहार । (२) दूसरे से बढ़ने की इच्छा, जिगीषा । (३) खेल । (४) बगीचा । (५) कमल । (६) शोक, खेद । (७) कांति । (८) स्तुति ।
देवनदी—संज्ञा स्त्री [सं.] गंगा या सरस्वती नदी ।
देवना—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेल, क्रीड़ा । (२) सेवा ।
देवनागरी—संज्ञा स्त्री [सं.] भारत की प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी आदि लिखी जाती हैं ।
देवनाथ, देवनाथा—संज्ञा पुं. [सं. देवनाथ] (१) शिव, महादेव । (२) विष्णु । (३) श्रीकृष्ण । उ.—निदरि तुरत (ताहि) मार्यौ देवनाथा—२६१८ ।
देवनायक—संज्ञा पुं. [सं.] देवराज इंद्र ।
देवनि—संज्ञा पुं. [सं. देव+हिं. नि (प्रत्य.)] देवताओं (को) । उ.—फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवनि की रीति—१-१७७ ।
देवनिकाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देव-समूह । (२) स्वर्ग ।
देवपति—संज्ञा पुं. [सं.] देवराज इन्द्र ।
देवपत्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवता की स्त्री ।
देवपथ—संज्ञा पुं. [सं.] छाया-पथ, आकाश ।
देवपद्मिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशगंगा ।
देवपर—संज्ञा पुं. [सं.] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर भी प्रयत्न न करे, भाग्य या दैव पर विश्वास किये बैठा रहे ।

देवपशु—संज्ञा पुं [स] (१) देवता के लिए अर्पित पशु । (२) देवता का उपासक ।
देवपात्र—सज्ञा पु [स] आग, अग्नि ।
देवपालित—वि [स] जहाँ वर्षाजल से ही खेती आदि का काम चल जाय ।
देवपुत्र—सज्ञा पु [स.] देवता का पुत्र ।
देवपुत्री—सज्ञा स्त्री [सं.] देवता की कन्या ।
देवपुर—सज्ञा पु [स] अमरलोक, अमरावती ।
देवपुरी—सज्ञा स्त्री. [स.] अमरपुरी, अमरावती ।
देवबानी—सज्ञा स्त्री [स. देववाणी] आकाशवाणी ।
उ.—देवबानी भई जीत भई राम की ताहू पै मूढ ... , नाहीं सँभारे ।
देवब्रह्म—सज्ञा पु [स देवब्रह्मन्] नारद ऋषि ।
देवब्राह्मण—सज्ञा पु [स] पुजारी, पंडा ।
देवभवन—सज्ञा पु [स.] (१) देवालय । (२) स्वर्ग ।
देवभाग—सज्ञा पु [स.] देवता के लिए निकला भाग ।
देवभाषा—सज्ञा स्त्री. [स] देववाणी, सस्कृत भाषा ।
देवभिषक—सज्ञा पु. [स. देवभिषज्] अश्विनीकुमार ।
देवभू, देवभूमि—सज्ञा पु. [स. देवभूमि] स्वर्ग ।
देवभूति—सज्ञा स्त्री [स.] देवताओं का ऐश्वर्य ।
देवभृत—सज्ञा पु. [स.] (१) इन्द्र । (२) विष्णु
देवभोज्य—सज्ञा पु [स] अमृत ।
देवमंजर—सज्ञा पु [स.] कौस्तुभ मणि ।
देवमंदिर—सज्ञा पु [स] देवालय, मंदिर ।
देवमणि, देवमनि—सज्ञा पु [स देव+मणि] (१) सभी देवों में श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण । उ.—तातैं कहत दयाल देवमनि, काहे सूर बिसारयौ—१-२०१ । (२) सूर्य । (३) कौस्तुभ मणि ।
देवमाता—सज्ञा स्त्री. [स] अदिति ।
देवमादन—सज्ञा पुं [सं.] देवताओं को मत्त या मतवाला करनेवाला, सोमरस ।
देवमानक—संज्ञा पु. [स] कौस्तुभ मणि ।
देवमाया—सज्ञा स्त्री [स] (१) देवताओं की माया । (२) ईश्वर की अविद्या माया जो जीवों को भ्रम या बंधन में डालती और नाच नचाती है ।
देवमास—सज्ञा पु. [स] (१) गर्भ का आठवाँ महीना । (२) देवताओं का एक महीना जो हमारे तीस वर्ष के बराबर होता है ।
देवमुनि—सज्ञा पु [स.] नारद मुनि ।
देवमूर्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] देवता की प्रतिमा या मूर्ति
देवयजन—सज्ञा पु [स] यज्ञ की वेदी ।
देवयजनी—सज्ञा स्त्री. [स.] पृथ्वी ।
देवयज्ञ—सज्ञा पु. [स] होम आदि कर्म ।
देवयात—वि. [स] देवत्व को प्राप्त (प्राणी) ।
देवयान—सज्ञा पु. [स] (१) जीवात्मा को ब्रह्मलोक ले जानेवाला मार्ग । (२) देवताओं का विमान ।
देवयानी—सज्ञा स्त्री [स.] शुक्राचार्य की कन्या जो राजा ययाति को ब्याही थी ।
देवयुग—सज्ञा पु [स.] सत्ययुग ।
देवयोनि—संज्ञा पुं [स.] स्वर्ग आदि लोकों में रहनेवाले जीव जो देवों के अन्तर्गत माने जाते हैं ।
देवर—संज्ञा पु [स] पति का छोटा भाई । उ.—कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारौ नाथ—९-४४ ।
देवरक्षित—वि [स] जिसकी देवता रक्षा करें ।
देवरथ—सज्ञा पु [स.] (१) देवताओं का विमान या रथ । (२) सूर्य का रथ ।
देवरा—सज्ञा पु [स देव] छोटा-मोटा देवता ।
सज्ञा पु. [हिं. देवर] पति का छोटा भाई ।
देवराज, देवराजा—सज्ञा पु [स देवराज] इन्द्र ।
देवराज्य—सज्ञा पु. [स.] स्वर्ग ।
देवरानी—सज्ञा स्त्री [हिं देवर] देवर की स्त्री ।
सज्ञा स्त्री. [हिं.देव+रानी] इन्द्र की पत्नी शची ।
देवराय, देवराया, देवरायो, देवरायौ—सज्ञा पु. [स. देवराज] (१) इन्द्र । (२) श्रीकृष्ण । उ.—अमर जय ध्वनि भई धाक त्रिभुवन गई कस मारयौ निदरि देवरायौ— २६१५ ।
देवरी—सज्ञा स्त्री [हिं देवरा] छोटी-मोटी देवी ।
देवर्षि—सज्ञा पु [स.] वह जो ऋषि होने पर भी देवता माना जाता हो ।
देवल—सज्ञा पु [स.] (१) एक ऋषि जिन्होंने जल में पैर पकड़ने पर एक गंधर्व को ग्राह हो जाने का शाप दिया था । (२) पुजारी, पंडा । (३) धार्मिक

व्यक्ति। (४) देवर। (५) नारद।
...सज्ञा पुं. [स. देवालय] देवमंदिर।
देवलक—संज्ञा पु. [स.] पुजारी, पंडा, देवल।
देवला—संज्ञा पुं [हिं दीवा] छोटा दिया।
देवली—सज्ञा स्त्री. [हि देउली] छोटा दिया।
देवलोक—सज्ञा पुं. [स.] स्वर्ग; भु, भुव आदि सात लोक। उ.—देवलोक देखत सब कौतुक बालकेलि अनुरागे—४१६।
देववक्त्र—संज्ञा पुं. [स.] देवताओं का मुँह, अग्नि।
देववधू—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवी। (२) अप्सरा।
देववर्त्म—सज्ञा पुं. [सं.] आकाश।
देववाणी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) संस्कृत भाषा। (२) आकाशवाणी।
देववाहन—संज्ञा पु. [सं] आग, अग्नि।
देवविहाग—संज्ञा पुं [सं. देवविभाग] एक राग।
देववृक्ष—संज्ञा पुं. [स.] (१) मदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन में एक वृक्ष। (२) देवदार।
देवव्रत—सज्ञा पुं [स.] भीष्मपितामह का नाम।
देवशत्रु—सज्ञा पु. [स.] असुर, राक्षस।
देवशिल्पी—संज्ञा पु. [स. देवशिल्पिन्] विश्वकर्मा।
देवश्रुत—सज्ञा पुं. [स.] (१) ईश्वर। (२) नारद। (३) शास्त्र।
देवसद—संज्ञा पुं [स.] देवस्थान।
देवसदन—सज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता का घर। (२) देवालय, देव-मंदिर। (३) स्वर्ग।
देवसभा, देवसमाज—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) देवताओं की सभा। (२) राजसभा। (३) युधिष्ठिर की 'सुधर्मा' अद्भुत नामक सभा जो मयदानव ने बनायी थी।
देवसरि—सज्ञा स्त्री. [स.] गंगानदी।
देवसृष्टा—सज्ञा स्त्री. [स.] मदिरा, मद्य।
देवसेना—सज्ञा स्त्री. [स.] देवताओं की सेना।
देवसेनापति—सज्ञा पु [स.] कुमार कार्तिकेय, स्कंद।
देवस्थान—संज्ञा पु. [स.] देवालय, देवमंदिर।
देवस्व—सज्ञा पु [स.] देव-अर्पित धन।
देवहरा—सज्ञा पुं. [हिं देव + घर] देवालय, मंदिर।
देवहा—संज्ञा स्त्री. [सं देवहा या देविका] सरयू नदी।
देवहू—संज्ञा स्त्री [स.] देवताओं का आह्वान।
देवहूति—सज्ञा स्त्री. [स.] स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कर्दम मुनि को ब्याही थी। इसके गर्भ से नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। सांख्य शास्त्र-कर्त्ता कपिल इन्हीं के पुत्र थे।
देवांगन, देवांगना—सज्ञा स्त्री. [स. देवांगना] (१) देवताओं की स्त्री। उ.—जय जयकार करति देवांगनें बरखत कुसुम अपार—सारा ७६४। (२) अप्सरा।
देवा—सज्ञा पुं [स. देव] देवता, सुर।
वि. [हिं देना] (१) देनेवाला। (२) देनदार, ऋणी।
देवाजीव—सज्ञा पु. [स.] पुजारी, पंडा।
देवातिदेव—सज्ञा पु. [सं.] विष्णु।
देवात्मा—सज्ञा पुं. [स. देवात्मन्] देव स्वरूप।
देवाधिप—सज्ञा पुं [स.] (१) इन्द्र। (२) परमेश्वर।
देवान—संज्ञा पु [फा. दीवान] (१) दरबार, राज सभा। (२) मंत्री, दीवान। (३) प्रबन्धक।
देवानप्रिय—संज्ञा पुं. [सं] देवताओं को प्रिय।
देवाना—वि [हिं. दीवाना] पागल, उन्मत्त।
क्रि. स. [हिं दिलाना] देने को प्रेरित करना।
देवानी—वि स्त्री. [हिं दिवानी] पागल, उन्मत्त। उ.—हमहूँ कौं अपराध लगावहि ऐऊ भई देवानी—पृ० ३२४ (८६)।
देवानीक—संज्ञा पु. [सं.] देवताओं की सेना।
देवानुचर—संज्ञा पु [स] विद्याधर आदि उपदेव जो देवताओं के साथ चलते हैं।
देवान्न—सज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ का हवि, चरु।
देवायु—संज्ञा स्त्री [सं.] देवताओं का दीर्घ जीवनकाल।
देवायुध—संज्ञा पु. [स.] (१) देवताओं का अस्त्र। (२) इंद्रधनुष।
देवाये—क्रि स [हिं. दिलाया] देने को प्रेरित किया, दिलाये। उ.—आप प्रभासु विप्र बहुजन को बहुतक दान देवाये—सारा. ८३६।
देवायो—क्रि. स. [हिं. दिलाना] दिलाया, देने को प्रेरित किया। उ.—(क) नौलख दान दयौ राजा नृग बहु-

तक दान देवायो—सारा ८२२। (ख) नाना विधि कीन्ही हरि क्रीड़ा जदुकुल साप देवायो—८४२।
देवारण्य—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं का उपवन।
देवारि—संज्ञा पुं [स.] देवताओं के शत्रु, राक्षस।
देवमणि—सज्ञा पु. [सं.] देवता के लिए दान।
देवाल—वि. [हिं. देना] देनेवाला, दाता।
देवालय—संज्ञा पु [सं] (१) स्वर्ग। (२) मंदिर।
देवाला—सज्ञा पु [हिं. दिवाला] दिवाला।
संज्ञा पु. [सं देवालय] (१) मंदिर। (२) स्वर्ग।
देवाली—सज्ञा स्त्री [हिं. दिवाली] दीपावली।
देवालेई—संज्ञा स्त्री [हिं. देना+लेना] लेनदेन।
देवावास—संज्ञा पु. [सं] (१) स्वर्ग। (२) देवता का मंदिर, देवालय (३) पीपल का पेड़।
देवाश्व—सज्ञा पुं [स] इन्द्र का घोड़ा, उच्चैश्रवा।
देवाहार—सज्ञा पु [स.] अमृत।
देविका—सज्ञा स्त्री [स.] घाघरा नदी।
देवी—सज्ञा स्त्री [स.] (१) देवता की स्त्री। (२) दुर्गा। (३) पटरानी। (४) सुन्दर गुणोवाली स्त्री।
देवीभागवत—सज्ञा पु [स] एक पुराण।
देवीभोया—सज्ञा पु. [हिं. देवी+भोयना = भुलाना] देवी का भक्त या माननेवाला, ओझा।
देवेन्द्र—वि [स.] देवराज, इन्द्र।
देवेश—सज्ञा पु. [स.] (१) देवराज इन्द्र। (२) परमेश्वर (३) शिव, महादेव। (४) विष्णु।
देवेशय—सज्ञा पु [स.] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु।
देवेशी—सज्ञा स्त्री. [स] (१) पार्वती। (२) देवी।
देवेष्ट—सज्ञा पु. [स.] देवताओं को प्रिय।
देवै—सज्ञा पु. [स देवकी] श्रीकृष्ण की माता देवकी। उ.—(क) जो प्रभु नर-देहीं नहि धरते। देवै गर्भ नहीं अवतरते—११८६। (ख) बारबार देवै कहै कबहूँ गोद खिलाए नाहि - २६२५।
देवैया—सज्ञा पु. [हिं देना+ऐया] देनेवाला, दाता।
देवोत्तर—सज्ञा पु. [स] देव अर्पित धन।
देवोत्थान—सज्ञा पु. [स.] कार्तिक शुक्ला एकादशी को विष्णु का शेष-शैया त्यागना।
देवोद्यान—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं का बगीचा।
देश—संज्ञा पुं. [स.] (१) स्थान। (२) जनपद। (३) राष्ट्र। (४) शरीर का भाग, अंग। (५) एक राग।
देशक—सज्ञा पु. [स.] उपदेश देनेवाला, उपदेशक।
देशगांधार—सज्ञा पु. [स.] एक राग।
देशज—वि. [स.] देश में उत्पन्न।
संज्ञा पुं.—वह शब्द जिसकी उत्पत्ति अज्ञात हो और जिसके मूल का पता न लगे।
देशज्ञ—सज्ञा पु [स.] देश की रीति-नीति जाननेवाला।
देशधर्म—सज्ञा पु [स.] देश का आचार-व्यवहार आदि।
देशना—सज्ञा स्त्री [स.] सीख, उपदेश।
देशनिकाला—सज्ञा स्त्री [हि देश+निकालना] देश से निकाले जाने का दंड।
देशभक्त—सज्ञा पु. [स] वह जो देश की उन्नति के लिए तन-मन-धन वार सके।
देशभाषा—सज्ञा स्त्री. [स] प्रान्त या प्रदेश की भाषा।
देशस्थ—वि. [स] देश में रहने वाला या स्थित।
देशान्तर—सज्ञा पु [स] (१) विदेश परदेश। (२) ध्रुवो की उत्तर-दक्षिणी मध्यरेखा से पूर्व या पश्चिम की दूरी।
देशांश—सज्ञा पु [स देशांतर] अन्य देश, परदेस।
सज्ञा पु [स. देश+अंश] देश का भाग।
देशाचार—सज्ञा पु. [स] देश का आचार व्यवहार।
देशाटन—सज्ञा पु [स] भ्रमण, यात्रा।
देशिक—सज्ञा पु [स.] पथिक, बटोही।
देशी, देशीय—वि. [स. देशीय] (१) देश का, देश से सबधित। (२) अपने देश का, स्वदेशी। (३) अपने देश में बना हुआ।
देश्य—वि [स] (१) देश का। (२) देशी।
देस—संज्ञा पुं [स. देश] (१) दिक्, स्थान। (२) पृथ्वी का प्राकृतिक विभाग, जनपद। (३) राष्ट्र, राज्य। उ.—(क) हरि, हौं सब पतितनि-पतितेस। और न सरि करिबैं कौ दूजौ, महामोह मम देस—१-१४१। (ख) हरीचद सो को जग दाता सो घर नीच भरै। जौ ग्रह छाँड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग

फिरै—१-२६४। (ग) छाँड़ि देस भय, यह कहि डाँट्यौ—१-२६०। (घ) उदै सारंग जान सारंग गयौ अपने देस—सा. ५६। (ङ) सकल देस ताकौं नृप दयौ—६-२।

देसनिकारा, देसनिकारौ—सज्ञा पुं. [स. देश+हिं. निकालना] **देश से निकाले जाने का दण्ड**। उ.—जो मेरैं लाल खिझावै। सो अपनौ कीनौ पावै। तिहि देहौं देस-निकारौ। ताकौं व्रज नाहिंन गारौ—१०-१८३।

देसवाल, देसवाला—वि. [हिं. देश+वाला] **अपने देश का, स्वदेशी**।

देसावर—सज्ञा पुं. [स. देश+अपर] **विदेश, परदेस**।

देसावरी—वि [हिं देसावर] **विदेश का, परदेसी**।

देसी—वि. [सं. देशीय] (१) **अपने देश का**। (२) **अपने देश में बना हुआ या उत्पन्न**।

देहंभर—वि. [स.] **अपने ही शरीर के भरण-भोषण में लगा रहनवाला**।

देह—सज्ञा स्त्री [सं] (१) **शरीर, तन**। उ—हरि के जन की अति ठकुराई। निरभय देह राज-गढ ताकौं, लोक मनन-उतसाहु। काम, क्रोध, मद लोभ, मोह ये भए चोर तैं साहु—१-४०।

मुहा.—देह छूटना—**मृत्यु होना**। देह छोड़ना—**मरना**। देह धरना—**जन्म लेना**। देह धरि—**जन्म या अवतार लेकर**। उ.—सूर देह धरि सुरनि उधारन, भूमि-भार येई हरिहैं—१०-१५। देह लेना—**जन्म लेना**। देह बिसारना—शरीर की सुध न रखना।

(२) **शरीर का कोई अग**। उ—लिंग-देह नृप कौं निज गेह। दस इंद्रिय दासी सौं नेह—४-१२। (३) **जीवन, जिंदगी**। (४) **विग्रह**। (५) **मूर्ति, चित्र**।

क्रि. स. [हि देना] **दो, प्रदान करो**। उ—बहुत दुखित है (यह) तेरैं नेह। एक बेर इहिं दरसन देह—६-२।

सज्ञा पु. [फा.] **गांव, खेड़ा, मौजा**।

देहकान—सज्ञा पु [फा. देहकान] (१) **किसान**। (२) **गँवार**।

देहकानी—वि. [हिं देहकान] **गँवारू, देहाती**।

देहत्याग—सज्ञा पु [स.] **मृत्यु, मौत**।

देहद—संज्ञा पुं. [स.] **पारा**।

देहधारक—सज्ञा पुं. [स.] (१) **शरीर धारण करनेवाला**। (२) **हाड़, हड्डियां**।

देह-धारण—सज्ञा पुं. [स.] (१) **शरीर का पालन-पोषण** (२) **जन्म**।

देहधारी—सज्ञा पुं [सं. देहधारिन्] **शरीर धारण करनेवाला, जन्म लेने वाला**।

देहधि—सज्ञा पुं. [स.] **चिड़ियों का पंख, पक्ष, डैना**।

देहपात—संज्ञा पुं. [स.] **मृत्यु, मौत**।

देहभृत—संज्ञा पुं. [सं.] **जीव, प्राणी**।

देहयात्रा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **मरण, मौत, मृत्यु**। (२) **भरण-पोषण, पालन**। (३) **भोजन**।

देहर—संज्ञा स्त्री. [सं देव+हृद] **नदी किनारे की निचली भूमि**।

देहरा—संज्ञा पुं. [हि. देव+घर] **देवालय, मंदिर**।

सज्ञा पुं. [हिं. देह] **शरीर, देह**। उ.—निसि के सुख कहे देत अधर नैना उर नख लागे छबि देहरा—२००१।

देहरि—संज्ञा स्त्री [हि. देहली] **देहली, दरवाजे के नीचे की चौखट**। उ.—(क) भीतर तैं बाहर लौं आवत। घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत—१०-१२५। (ख) देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिर-फिर इतहीं कौं आवै—१०-१२६। (ग) देहरि चढत परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहति जु मैया—१०-१३१।

देहरी—सज्ञा स्त्री. [हिं. देहर] **नदी किनारे की निचली भूमि**।

सज्ञा स्त्री. [हिं. देहली] **द्वार के चौखटे की नीची लकड़ी, देहली**। उ.—(क) बसुधा त्रिपद करत नहिं आलस, तिनहिं कठिन भयौ देहरी उलँघना—१०-२२३। (ख) सूरदास अब धाम-देहरी चढि न सकत प्रभु खरे अजान—१०-२२७।

देहला—सज्ञा स्त्री. [सं.] **मदिरा, शराब**।

देहली—सज्ञा स्त्री. [स.] **द्वार की निचली चौखट**।

देहली दीपक—सज्ञा पुं [स.] (१) **देहली का दीपक जो बाहर-भीतर दोनों ओर प्रकाश करता है**।

यौ.—देहली दीपक न्याय—**देहली दीपक के बाहर-भीतर फैले प्रकाश के समान दोनों ओर लगने-वाली बात।**

(२) **एक अर्थालंकार।**

देहवत—वि. [स. देहवान् का बहु] **जिसके शरीर हो।**

सज्ञा पु.—**वह जो शरीर धारण किये हो, प्राणी।**

देहवान्—वि [स.] **जो तनधारी हो।**

सज्ञा पु.—(१) **शरीरधारी, जीव या प्राणी।** (२) **सजीव प्राणी।**

देहसार—सज्ञा पु [स] **मज्जा, धातु।**

देहांत—सज्ञा पु. [स] **मौत, मृत्यु।**

देहांतर—सज्ञा पु [स.] (१) **दूसरा शरीर।** (२) **दूसरे शरीर की प्राप्ति, पुनर्जन्म।**

देहात—सज्ञा पु [फा] **गांव, ग्राम।**

देहाती—वि. [हि. देहात] (१) **गांव में रहनेवाला** (२) **गांव में होनेवाला।** (३) **गंवार, उजड्ड।**

देहातीत—वि. [स.] (१) **जो शरीर से परे या स्वतन्त्र हो।** (२) **जिसे शरीर का अभिमान न हो।**

देहात्मवादी—सज्ञा पु [स देहात्मवादिन्] **वह जो शरीर को ही आत्मा मानता हो।**

देहाध्यास—सज्ञा पु. [स] **देह को ही आत्मा मानने-समझने का भ्रम।**

देहिं—क्रि. स. [हिं. देना] **देते हैं।**

प्र.—पीठि देहिं—**मान-सम्मान नहीं देते, आदर-सत्कार नहीं करते। भजन-भाव नहीं करते, नहीं मानते।** उ.— भक्तविरह-कातर करुनामय डोलत पाछैं लागे। सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे—१-८।

देहिंगी—क्रि. स [हिं. देना] **देंगी, प्रदान करेंगी।**

प्र—फल देहिंगी—**बदला देंगी, परिणाम भुगता देंगी।** उ.—लालन हमहिं करे जे हाल उहै फल देहिंगी हो—२४१६।

देहि—क्रि. स. [हिं देना] **दो, प्रदान करो।**

देहीं—सज्ञा पु. सवि [हिं देह] **शरीर में।** उ.—देहीं लाइ तिलक केसरि कौ जोबन मद इतराति–१०-२६०।

क्रि. स [हि देना] **देते हैं, प्रदान करते हैं।**

देही—संज्ञा पुं. [सं. देहिन्] **जीवात्मा, आत्मा।**

सज्ञा पु [हिं. देह] (१) **शरीर, देह।** उ.—नर-देही दीनी सुमिरन कौं मो पापी तैं कछु न सरी—१-११६। (२) **शव।** उ—भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी। लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१।

वि.—**जिसके शरीर हो, शरीरी।**

देहुँ—क्रि. स. [हिं. देना] **दूं, प्रदान करूँ।** उ—मैं वर देहुँ तोहिं सो लेहि—१-२२६।

देहु—क्रि. स. [हिं देना] **दो, प्रदान करो।** उ (क) सुख सोऊँ सुनि वचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह—१-५१। (ख) तुम बिनु साँकरैं को काकौ। तुमहीं देहु बताइ देवमनि, नाम लेउँ धौं ताकौ—१-११३।

देहुगी—क्रि स [हिं देना] **दोगी, प्रदान करोगी।** उ—अबर जहाँ बताऊँ तुमको। तौ तुम कहा देहुगी हमको—७६६।

देहेश्वर—सज्ञा पु [सं] **देह में स्थित आत्मा।**

देहौं—क्रि. स. [हिं. देना] **दूंगा, समर्पित करूंगा।** उ—रुक्म कह्यौ सिसुपालहिं देहौं, नाहीं कृष्न सौं काम—सारा. ६२८।

दैं—अव्य० [अनु०] (**क्रिया या व्यापार-सूचक**) **से।**

दै—क्रि. स. [हिं देना] (१) **देकर।** उ—पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)। सपति दै ताकौ पतिनी कौं, मन अभिलाष पुराए (हो)-१-७। (२) **दे, प्रदान कर।** उ.—हलधर कहत, लाउ री मैया। मोकौं दै नहिं लेत कन्हैया—३६६। (३) **डालकर, मिलाकर, छोडकर।** उ.—भात पसारि रोहिनी ल्याई। घृत सुगंधि तुरतै दै ताई—३६६।

प्र.—दै तारी तार—**ताली और ताल बजाकर।** उ.—मोहि देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार—१-१७५। दै कान-**कान देकर, ध्यान लगाकर।** उ.–और उपाय नहीं रे बौरे, सुनि तू यह दै कान-१-३०४। दै लात—(१) **लात रखकर, खड़े होकर।** उ.—कैसैं कहति लियौ छीकें तैं ग्वाल कंध दै लात। (२) **लात मारकर, ठोकर देकर।** आगैं दै— **आगे करके।** उ.—आगे दै पुनि ल्यावत घर कौं—४२४।

दैअ—संज्ञा पुं. [सं. दैव] दैव ।
दैआ—संज्ञा स्त्री. [हिं. दैया] दैया ।
दैउ—संज्ञा पुं. [सं दैव] दैव ।
दैजा—संज्ञा पुं. [हिं. दायजा] दहेज ।
दैत—संज्ञा पुं [सं. दैत्य] दैत्य, दानव ।
दैतारि, दैतारी—संज्ञा पुं. [सं. दैत्यारि] विष्णु । उ.—(क) धन्य लियौ अवतार, कोखि धनि, जहँ दैतारी — ४३१ । (ख) चरन पखारि लियौ चरनोदक धनि धनि कहि दैतारि—३०५० ।
दैतेय—वि. [सं.] दिति से उत्पन्न ।
संज्ञा पुं—दिति से उत्पन्न दैत्य ।
दैत्य—संज्ञा पुं [सं] (१) कश्यप के दिति नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र, दैत्य । (२) बहुत लबे-चौड़े डील-डौल का मनुष्य । (३) किसी काम में अति या असाधारणता करनेवाला । (४) नीच, दुष्ट ।
दैत्यगुरु—संज्ञा पुं. [सं.] शुक्राचार्य ।
दैत्यदेव—संज्ञा पुं [सं.] (१) वरुण । (२) वायु ।
दैत्यपुरोधा—संज्ञा पुं. [सं.] शुक्राचार्य ।
दैत्यमाता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अदिति ।
दैत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दैत्य जाति की स्त्री । (२) दैत्य की पत्नी । (३) मदिरा ।
दैत्यारि, दैत्यारी—संज्ञा पुं. [सं. दैत्य+अरि] (१) दैत्यों के शत्रु । (२) विष्णु या उनके राम कृष्ण आदि अवतार । उ.—(क) चरन पखारि लियो चरनोदक धनि धनि कहि दैत्यारी—२५८७ । (ख) त्राहि-त्राहि श्रीपति दैत्यारी—२१५६ । (ग) भयौ पूरब फल सँपूरन लह्यौ सुत दैत्यारि—३०६१ । (३) इन्द्र । (४) सुर, देवता ।
दैत्याहोरात्र—संज्ञा पुं. [सं.] दैत्यों का एक रात-दिन जो मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है ।
दैत्येंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] दैत्यों का राजा ।
दैनंदिन—वि. [सं.] प्रति दिन का, नित्य का ।
क्रि. वि.—(१) प्रतिदिन । (२) दिनोदिन ।
दैनंदिनी—संज्ञा स्त्री [सं. दैनंदिन] दैनिकी, डायरी ।
दैन—वि. स्त्री [हिं. देना] देनेवाली, प्रदान करनेवाली । उ.—गंग-तरंग बिलोकत नैन । ... । परम पवित्र, मुक्ति की दाता, भागीरथहिं भव्य बर दैन—९-१२ ।
संज्ञा स्त्री [हिं. देन] (१) देने की क्रिया या भाव । (२) दी हुई वस्तु ।
मुहा.—लैन न दैन—न लेन में न देने में, किसी तरह के संबंध में नहीं । उ —ए गीधे नहि टरत वहाँ तें मोसौं लेन न दैन—पृ० ३१३-१८ ।
संज्ञा पुं. [सं.] दीन होने का भाव, दीनता ।
वि. [सं.] दिन संबंधी, दिन का ।
दैनिक—वि [सं.] (१) प्रति दिन का । (२) नित्य होनेवाला । (३) जो एक दिन में हो । (४) दिन संबंधी ।
संज्ञा पुं — एक दिन का वेतन ।
दैनिकी—संज्ञा स्त्री [सं. दैनिक] वह पुस्तिका जिसमें रोज के कार्य या विचार लिखें जायँ, डायरी ।
दैनी—संज्ञा स्त्री [हिं. देना] देनेवाली, प्रदान करनेवाली । उ.—जय, जय, जय, जय माधव बेनी । जग हित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौं गति दैनी—९-११ ।
दैनु—वि० [हिं देना (समास-वत् प्रयोग)] देनेवाला, प्रदान करनेवाला । उ —सूर-स्याम सतन-हित-कारन प्रगट भए सुख-दैनु—१०-५०२ ।
संज्ञा पुं —देना, देने का भाव ।
मुहा.—लैनु न दैनु—लेना न देना, काम काज, उद्देश्य-प्रयोग या संबंध न होना, व्यर्थ हो । उ —चलत कहाँ मन और पुरी तन जहाँ कछु लैन न दैनु—४९१ ।
दैन्य—संज्ञा पुं. [सं] (१) दीनता, दरिद्रता । (२) विनीत भाव, विनम्रता । (३) एक संचारी भाव, कातरता ।
दैबै—संज्ञा स्त्री [हिं. देना] देने या प्रदान करने की क्रिया या भाव । उ.—तन दैबै तैं नाहिन भजौं—६-५ ।
दैयत—क्रि. स. [हिं देना] देते हैं ।
प्र—दूरि करि दैयत—दूर कर देते हैं । उ.—दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तार्मे आवै—१-१४२ ।
संज्ञा पुं. [सं दैत्य] दानव, राक्षस । उ.—(क) मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल

दैयत को—६-८४ । (ख) दासी हुती असुर दैयत की अब कुल-बधू कहावै—३०८८

दैया—संज्ञा पु [हिं दैव] दई, ईश्वर, विधाता ।

मुहा.—दैया दैया—रक्षा के लिए ईश्वर की पुकार, हे दैव, हे दैव । उ —ब्यानी गाइ बछुरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया । यहै देखि मोकौं बिजुकानी, भाजि चल्यौ कहि दैया दैया—१०-३३५ ।

अव्य.—आश्चर्य, भय या दुख की अधिकता-सूचक, स्त्रियो के मुख से सहसा निकल पड़नेवाला एक शब्द, हे दैव, हे राम ।

संज्ञा स्त्री. [हि दाई] धाय, दाई ।

दैयागति—संज्ञा स्त्री [हिं दैवगति] भाग्य, कर्म ।

दैर्घ्य—संज्ञा पु [स.] दीर्घता, लबाई ।

दैव—वि. [स.] (१) देवता-संबधी (२) देवता के द्वारा होनेवाला । (३) देवता को अर्पित ।

संज्ञा पु —(१) भाग्य, होनी, प्रारब्ध । (२) ईश्वर, विधाता ।

मुहा.—दैव लगना—बुरे दिन आना, ईश्वरीय कोप होना ।

(३) आकाश, आसमान । (४) बादल, मेघ ।

मुहा —दैव बरसना—पानी बरसना ।

दैवकोविद्—संज्ञा पु [स.] (१) देवी-देवताओ के विषय का ज्ञाता । (२) ज्योतिषी ।

दैवगति—संज्ञा स्त्री. [स] (१) दैवी घटना । (२) भाग्य ।

दैवचिंतक—संज्ञा पु [स] ज्योतिषी ।

दैवज्ञ—संज्ञा पु [स] ज्योतिषी ।

दैवतंत्र—वि [स] जो भाग्य के अधीन हो ।

दैवत—वि [सं] देवता का, देवता-संबधी ।

संज्ञा पु —(१) देवता । (२) दैव प्रतिमा ।

दैवतपति—संज्ञा पु. [स.] इंद्र ।

दैवतीर्थ—संज्ञा पु [स] उँगलियो का अग्र भाग ।

दैवदुर्विपाक—संज्ञा पु. [स] भाग्य का खोटापन ।

दैवयोग—संज्ञा पु [स.] सयोग, इत्तिफाक ।

दैवलेखक—संज्ञा पु [स] ज्योतिषी ।

दैववश, दैववशात्—क्रि. वि. [सं.] सयोग से, अकस्मात ।

दैववाणी—संज्ञा पु. [स] आकाशवाणी ।

दैववादी—संज्ञा पु [स] (१) भाग्य के भरोसे रहकर परिश्रम न करनेवाला । (२) आलसी ।

दैवविद्—संज्ञा पु. [स.] ज्योतिषी ।

दैवविवाह—संज्ञा पु [स] आठ प्रकार के विवाहो में एक जिसमें यज्ञ करनेवाला व्यक्ति ऋत्विज या पुरोहित को कन्यादान कर देता था ।

दैवश्राद्ध —संज्ञा पु. [स.] श्राद्ध जो देवताओं के लिए हो ।

दैवसर्ग—संज्ञा पु. [स] देवताओ की सृष्टि ।

दैवाकरि—संज्ञा पु. [स.] सूर्य के पुत्र शनि और यम ।

दैवाकरी—संज्ञा स्त्री. [स.] सूर्य पुत्री यमुना नदी ।

दैवागत—वि [स.] (१) सहसा होनेवाला, आकस्मिक । (२) दैवी ।

दैवात् —क्रि. वि. [स.] अकस्मात, सयोग से ।

दैवात्यय—संज्ञा पु. [स] दैवी उत्पात ।

दैविक—वि [स] (१) देवता का, देवता-संबधी । (२) देवताओ का किया या रचा हुआ ।

दैवी—वि स्त्री [स.] (१) देवता से सबध रखनेवाली । (२) देवताओ की की हुई । (३) अकस्मात या संयोग से होनेवाली । (४) देवता अर्पित ।

संज्ञा स्त्री —दैव की विवाहिता पत्नी ।

दैवीगति—संज्ञा स्त्री [स] (१) दैव या ईश्वर-कृत बात या लीला । (२) भावी, होनहार ।

दैव्य—वि [स] देवता से सबंधित ।

संज्ञा पु —(१) दव । (२) भाग्य, प्रारब्ध ।

दैहिक—वि [स] (१) देह-सबधी, शारीरिक । (२) देह से उत्पन्न ।

दैशिक—वि [स.] देश या जनपद-संबंधी ।

दैहैं—क्रि स. [हि देना] देंगे, प्रदान करेंगे । उ.—पहिरावन जो पाइहैं सो तुमहूँ दैहैं—२५७६ ।

दैहै—क्रि स [हिं देना] देगी, प्रदान करेगी । उ.—अजहुँ उठाइ राखि री मैया, माँगे तै कह दैहै री । आवत ही लै जैहै राधा, पुनि पाछैं पछितैहै री—७११ ।

देहौं—क्रि. स [हिं. देना] **दूंगी, प्रदान करूंगी** । उ.—बरष सात बीतैं हौ देहौं । एक रात तोकौं सुख देहौ —६-२ ।

प्र.—जान देहौं (१) **जाने दूंगा, भेजने की व्यवस्था कर दूंगा** । उ —सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब प्रात जान मै देहौं–४२० । (२) **जान दे दूंगा, मर जाऊँगा** । तव सिर छत्र न देहौं—**तुझे राजा नहीं बना लूंगा । तुझे न पहना दूंगा** । उ —तब लगि हौ बैकुठ न जैहौ । सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी जब लगि तव सिर छत्र न देहौं—७-५ ।

दोकना—क्रि अ [देश.] **गुर्राना** ।

दोकी—सज्ञा स्त्री. [देश] **धौंकनी** ।

दोच, दोचन—सज्ञा स्त्री, [हिं. दोच] (१) **दुवधा** । (२) **कष्ट** । (३) **दवाव** ।

दोचना—क्रि. स [हिं दोचना] **दवाव में डालना** ।

दोंचि—क्रि. स [हिं. दोचना] **दवाव में डालकर** । उ.—तदुल मांगि दोंचि कलाई सो दीन्हो उपहार—सारा-८०६ ।

दोर—सज्ञा पु [देश.] **एक तरह का साँप** ।

दो - वि. [स. द्वि] **एक और एक** ।

मुहा —दो-एक—**कुछ, थोड़े** । दो-चार—**कुछ, थोड़े** । दो-चार होना—**मुलाकात होना** । दो दिन का **बहुत ही थोड़े समय का** । दो दाने को फिरना (भटकना)—**बहुत ही निर्धन दशा में भिक्षा मागते घूमना** । दो-दो बातें करना—(१) **थोड़ी बातचीत** । (२) **पूँछ ताँछ** । दो नावो पर पैर रखना—**दो साथ न रहनेवाले आश्रयो या पक्षो का सहारा लेना** । किसके दो सिर है—**किसमें इतना साहस या बल है जो मरने से नहीं डरता** ।

सज्ञा पु—**दो की संख्या** ।

सज्ञा पु [हिं दव] **वन की आग, दावानल** । उ.—घर बन कछु न सुहाइ रैनि-दिन मनहुँ मृगी दो दाहै—२८०१ ।

दोआब, दोआबा—सज्ञा पु. [फा. दोआब] **दो नदियो के बीच की भूमि जो उपजाऊ होती है** ।

दोई—वि. [हिं दो] (१) **दो** । (२) उ.—दोइ लख धेनु दई तेहि अवसर बहुतहिं दान दिवायो–सारा. ३६२ । (३) **भिन्न, अलग** । उ.—(क) ऊँच नीच हरि गनत न दोइ—१-२३६ । (ख) हरि हरि-भक्त एक, नहि दोइ—१-२६० । (ग) सत्रु-मित्र हरि गनत न दोइ—२-५ । (२) **दोनो** । उ—कुरुपति कह्यो अध हम दोइ । बन मैं भजन कौन बिधि होइ —१-२८४ ।

दोउ, दोऊ—वि. [हि दो] **दोनों** । उ —(क) उन दोउनि सौं भई लराई—१-२८६ । (ख) माया-मोह न छाँड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख-थाती—१-११८ ।

दोक—वि [हि दो+का] **दो वर्ष का** ।

दोकड़ा, दोकरा—सज्ञा पुं. [हि दुकड़ा] **जोड़ा** ।

दोकला—वि [हि दो+कल] **दो कल-पेंचवाला** ।

दोकोहा –वि. [हि दो+कोह=कूबर] **दो कूबरवाला** ।

सज्ञा पुं.—**दो कूबरवाला ऊँट** ।

दोख—सज्ञा पुं. [स. दोष] **बुराई, ऐब** ।

दोखना—क्रि. स. [हि. दोष+ना] **दोष लगाना** ।

दोखी—वि. [हिं. दोषी] (१) **जिसमें दोष या ऐब हो** । (२) **जो शत्रुता या वैर रखे** ।

दोगंग—सज्ञा स्त्री [हिं दो+गगा] **दो नदियो के बीच की भूमि** ।

दोगडी—वि [हि दो+गडी] **झगड़ालू, उपद्रवी** ।

दोगला—वि [फा दोगला] (१) **जो माता के वास्तविक पति से न पैदा हुआ हो, जारज** । (२) **जिसके माता-पिता भिन्न जाति के हों** ।

दोगुना—वि. [हिं दुगना] **दूना, दुगना** ।

दोचंद—वि [फा] **दूना, दुगना** ।

दोच—सज्ञा स्त्री [हिं. दबोच] (१) **दुवधा, असमंजस** । (२) **कष्ट, दुख** । उ —मनहिं यह परतीति आई दूरि हरिहौ दोच । (३) **दवाव, दबाने का भाव** ।

दोचन—सज्ञा स्त्री [हिं दबोचन] (१) **दुवधा, असमजस** । (२)**दवाव, दबाये जाने का भाव** । (३) **दुख, कष्ट** । उ.—ऐसी गति मेरी तुम आगे करत कहा जिय दोचन —१५१७ ।

दोचना—क्रि. स. [हिं दोच] **जोर या दवाव डालना** ।

दोचित्ता—वि [हि दो+चित्त] जिसका ध्यान दो कामो या वातो में बँटा हो, जो एकाग्र न हो ।

दोचित्ती—सज्ञा स्त्री [हि. दोचित्ता] ध्यान का दो कामो या वातों में बँटा रहना ।

दोज—सज्ञा स्त्री [हिं दो] दूज, दुइज ,द्वितीया ।

दोजख—संज्ञा पु [फा. दोजख] नरक ।

दोजखी—वि [हि दोजख] (१) दोजख का । (२) पापी ।

दोज—वि [हि दो] जिसका दूसरा विवाह हो ।

वि. [हिं दूजा] दूजा, दूसरा ।

दोजानू - क्रि वि [फा] दोनो घुटने टेककर ।

दोजिया—वि. [दो+जी, जीव] गर्भवती (स्त्री, मादा)

दोजीया—वि [हि दो+जीव] गर्भवती (स्त्री,मादा) ।

दोतरफा, दोतर्फा—वि [हि दो+तरफ] दोनो तरफ का, दोनो ओर से सवंधित ।

क्रि. वि —दोनों ओर या तरफ ।

दोतला, दोतल्ला—वि [हि दो+तल=दोतल्ला] दो खड का, जिसमें दो खड या मजिल हो ।

दोतही, दोता—संज्ञा स्त्री. [हि दो+तह] मोटी चादर ।

दोतारा—सज्ञा पु [हि दो+तार] एक तरह का दुशाला ।

सज्ञा पु [हि. दो+तार=धातु] एक वाजा ।

दोहरना—क्रि स. [हि (दोहराना)] कही हुई वात से मुकरना या इनकार करना ।

दोदल—सज्ञा पु० [हि द्विदल] चने की दाल ।

दोदिला—वि [हि दो+दिल] जिसका चित्त या ध्यान दो कामो या वातो में वँटा हो, दोचित्ता ।

दोदिली—वि [हि. दोदिल] दोचित्ती, दोचित्तापन ।

दोध—सज्ञा पु [स.] (१) ग्वाला । (२) गाय का बछड़ा । (३) कवि जो पुरस्कार के लोभ से कविता लिखे ।

दोधक—सज्ञा पु. [स.] एक वर्णवृत्त ।

दोधार—सज्ञा पु [हि दो+धार] भाला, वरछा ।

दोधारा—वि [हि दो+धार] दोनो ओर धार वाला ।

दोधी—सज्ञा स्त्री [हि दूध] एक पौष्टिक पेय ।

दोन—सज्ञा पु. [हि दो] दो पहाड़ो की विचली भूमि ।

सज्ञा पु. [हि दो+नद] (१) दो नदियों का संगम स्थल । (२) दो नदियों के वीच की भूमि । (३) दो वस्तुओं की सधि या मेल ।

दोनली—वि. [हिं दो+नाल] जिसमें दो नाल हों ।

दोना—सज्ञा पुं [स द्रोण] (१) पत्तों को मोड़कर वना हुआ गहरे कटोरे के आकार का पात्र । उ —दधि-ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं—६-१६४ । (२) दोने में रखे हुए व्यजन । उ.—वेसन के दस-बीसक दोना—३६७ ।

मुहा—दोना चढाना—समाधि पर फूल-मिठाई चढ़ाना । दोना खाना [चाटना]– वाजार की चाट-मिठाई खाना ।

दोनियाँ, दोनी—सज्ञा स्त्री [हि दोना का स्त्री अल्पा.] छोटा दोना । उ.—डारत, खात, लेत अपनैं कर, रुचि मानत दधि दोनियाँ – १०-२३८ ।

दोनो— वि. [हिं दो] एक और दूसरा, उभय ।

सज्ञा पु. [हि. दोना] पत्तो का वना पात्र । उ —दधि ओदन भरि दोनौं दैहौं अरु अचल की पाग—२६४८ ।

मुहा दोनों की चाट पडना—बाजारू चाट या मिठाई खाने का चस्का पड़ जाना ।

दोपट्टा—सज्ञा पु [हि दुपट्टा] चादर, दुपट्टा ।

दोपलिया, दोपल्ली—वि [हि दो+पल्ला+ई (प्रत्य)] जिसमें दो पल्ले हो ।

सज्ञा स्त्री—एक तरह की हल्की महीन टोपी ।

दोपहर, दोपहरिया, दोपहरी—सज्ञा स्त्री. [हिं. दो+पहर] मध्याह्नकाल ।

मुहा —दोपहर ढलना— दोपहर वीत जाना

दोपीठा—वि [हि दो+पीठ] दोनो ओर एक सा, दोरुखा ।

दोफसली—वि [हि दो+फसल] (१) दोनो फसलो से संवधित । (२) दोनो ओर काम देने योग्य ।

दोबल—सज्ञा पुं. [हिं. दुर्बल (?)] दोष, अपराव ।

उ —(क) दोवल कहा देति मोहि सजनी तू तो वड़ी सुजान । अपनी सी मैं वहुतै कीन्ही रहति न तेरी आन । (ख) दोवल देति सबै मोही को उन पठयो मैं आयो —११६६ ।

दोबारा – क्रि. वि [फा.] दूसरी वार या दफा ।

दोबाला - वि [फा.] दूना, दुगना ।
दोभाषिया —वि. [हिं. दो+भाषा] दो भिन्न भिन्न भाषाओं के जानकारों का मध्यस्थ जो एक को दूसरे का आशय समझा दे ।
दोमजिला—वि [फा] दो खंड का, दो खंडा ।
दोमट—संज्ञा स्त्री. [हिं दो+मिट्टी] बालू मिली भूमि ।
दोमहला—वि [हिं दो+महल] दो खंड या मंजिल का ।
दोमुँहा—वि [हिं. दो+मुँह] (१) जिसके दो मुँह हो । (२) दोहरी चाल चलने या बात करनेवाला ।
दोय—वि. [हिं. दो] दो । उ.—दोय खभ बिस्वकर्मा बनाए काम-कुंद चढाइ—२२७६ ।
वि. [हिं. दोनों] एक और दूसरा, दोनों ।
संज्ञा पु [हिं. दो] दो की संख्या
दोयम—वि. [फा.] दूसरा, दूसरे दर्जे का ।
दोयल—संज्ञा पु. [देश] बया पक्षी ।
दोरंगा—वि. [हिं दो+रंग] (१) जिसमें दो रंग हों । (२) दोहरी चाल चलने या दावँ करनेवाला, दोनों पक्षों में लगा रहनेवाला ।
दोरंगी—संज्ञा स्त्री [हिं. दो+रंग+ई (प्रत्य.)] (१) दोनों ओर चलने या लगने का भाव । (२) छल-कपट ।
दोर—संज्ञा स्त्री [हिं. दो] जमीन जो दो बार जोती जाय ।
दोरसा—वि [हिं दो+रस] जिसमें दो स्वाद हों ।
दोराहा—संज्ञा पु [हिं दो+राह] वह स्थान जहाँ से दो मार्ग भिन्न दिशाओं में जाते हों ।
दोरुखा—वि. [फ़ा. दोरुख] (१) दोनों ओर समान रूप-रंग का । (२) दोनों ओर भिन्न रूप-रंग का ।
दोर्दंड—संज्ञा पु [स] भुजदंड ।
दोल—संज्ञा पु [सं] (१) झूला । (२) डोली ।
दोलड़ा—वि. [हिं. दो+लड़] जिसमें दो लड़ हों ।
दोलड़ी—वि स्त्री. [हिं दोलड़] दो लड़वाली ।
दोला—संज्ञा स्त्री [स.] (१) झूला । (२) चंडोल ।
दोलायमान—वि. [स.] झूलता या हिलता हुआ ।
दोलायुद्ध—संज्ञा पुं [स.] युद्ध कभी जिसमें एक पक्ष की जीत हो, कभी दूसरे की, और निर्णय न हो सके ।
दोलिका—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) झूला । (२) डोली ।
दोलोही— संज्ञा स्त्री. [हिं दुलोही] वह तलवार जो लोहे के दो टुकडों को जोड़कर बनायी जाय ।
दोलोत्सव—संज्ञा पु [स] फागुन की पूर्णिमा को वैष्णवों द्वारा ठाकुर जी को फलों के हिंडोले पर झुलाये जाने का उत्सव ।
दोशाखा—संज्ञा पु [फा] दो बत्तियों का शमादान ।
दोशाला—संज्ञा पुं [हिं. दुशाला] बढ़िया शाल ।
दोष—संज्ञा पुं. संज्ञा [स] (१) बुरापन, अवगुण । उ.—सूरदास बिनती कहा बिनवै दोषनि देह भरी—१-१३१ ।
मुहा —दोष लगाना—बुराई बताना, बुराई का पता लगाना या बताना ।
(२) अभियोग, लांछन, कलंक ।
दोष देना (लगाना)—कलंक लगाना ।
यौ —दोषारोपण—दोष लेना या लगाना ।
(३) अपराध । (४) पाप, पातक । उ.—मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यौ, समायौ—१-६७ । (५) साहित्य में वे पाँच बातें जिनसे काव्य के गुण में कमी हो जाती है पद, पदांश, वाक्य, अर्थ और रस-दोष ।
(६) कुफल, बुरा परिणाम, अमंगल । उ.—(क) छींक सुनत कुसगुन कह्यौ कहा भयौ यह पाप । अजिर चली पछितात छींक कौ दोष निवारन—५८६ । (ख) आइ अजिर निकसी नंदरानी बहुरी दोष मिटाइ—५४० ।
संज्ञा पु. [स द्वेष] विरोध, शत्रुता, बैर ।
दोषक—संज्ञा पु [स.] गाय का बछड़ा ।
दोषग्राही—वि [सं. दोषग्राहिन्] दुष्ट, दुर्जन ।
दोषज्ञ—वि [स] दोष का ज्ञाता, पंडित ।
दोषता—संज्ञा स्त्री. [स] दोष होने का भाव ।
दोषत्व —संज्ञा पु [स] दोष होने का भाव ।
दोषन—संज्ञा पु [स दूषण] दोष, अपराध । उ —महरि तुमहिं कछु दोषन नाहीं ।
दोषना—क्रि स [स दूषण+ना] दोष लगाना ।
दोषपत्र—संज्ञा पु. [स] वह कागज जिस पर किसी के दोषों या अपराधों का विवरण लिखा हो ।

दोषल—संज्ञा पुं. [स] जिसमें दोष हो, दूषित।

दोषा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) रात, रात्रि। (२) साँझ, संध्या। (३) भुजा, बाहु।

दोषाकर—संज्ञा पु. [स.] चंद्रमा।

दोषाक्षर—संज्ञा पु. [स.] लगाया हुआ अपराध

दोषातिलक—संज्ञा पु [स] दीप, दीपक।

दोषारोपण—संज्ञा पु [स दोष+आरोपण] दोष लगाना।

दोषावह—वि. [स.] जिसमें दोष हो, दोषपूर्ण।

दोषिक—वि. [स दूषित] जिसमें दोष हो, दोषपूर्ण।
संज्ञा पु. [स] रोग, बीमारी।

दोषिन—वि स्त्री [हिं. दोषी] (१) अपराधिनी। (२) पाप करनेवाली।

दोषी—वि [हि.] (१) अपराधी। (२) पापी। (३) अभियुक्त। (४) जिसमें अवगुण या बुराई हो।

दोस—संज्ञा पु [स दोष] अपराध, अवगुण।

दोसदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.दोस्तदारी] मित्रता।

दोसरता—संज्ञा पु. [हिं. दूसरा+ता] गौना।

दोसा—संज्ञा स्त्री. [हि दोषा] (१) रात, रात्रि। (२) संध्या।

दोसाला—वि [हि दो+साल] दो वर्ष का।

दोसी संज्ञा पु [देश] दही।

दोसूती—संज्ञा स्त्री [हिं दो+सूत एक मोटा कपड़ा।

दोसो—संज्ञा पु [हि दोष] दोष बुराई। उ.—सूर स्याम दरसन बिन पाये नयन देत मोहिं दोसो——१२२१।

दोस्त—संज्ञा पु [फा.] मित्र, स्नेही।

दोस्ताना—वि [फा.] मित्रता-संबंधी।
संज्ञा पु.—मित्रता मित्रता का व्यवहार।

दोस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] मित्रता, स्नेह।

दोह—संज्ञा पुं [स. द्रोह] वैर, द्वेष।

दोहग, दोहगा—संज्ञा स्त्री [स दुर्भाग्य] वह स्त्री जिसको, पति के मरने पर दूसरे पुरुष ने रख लिया हो, उपपत्नी।

दोहज—संज्ञा पु [स.] दूध

दोहता—संज्ञा पु [स. दौहित्र] पुत्री का पुत्र, नाती।

दोहती—संज्ञा स्त्री. [हि दोहता] पुत्री की पुत्री।

दोहत्थड़—संज्ञा पुं [हिं. दो+हाथ] दोनों हाथों से मारा गया थप्पड़।

दोहत्था—क्रि वि. [हि दो+हाथ] दोनों हाथो से।
वि.—जो दोनो हाथो से ही या किया जाय।

दोहद—संज्ञा स्त्री [स] (१) गर्भवती की इच्छा, उकौना। (२) गर्भावस्था। (३) गर्भ। (४) एक प्राचीन कवि-श्रुति जिसके अनुसार सुंदर स्त्री के चरणाघात से अशोक, दृष्टिपात से तिलक, आलिंगन से कुर्वक, फूंक मारने से चंपा आदि वृक्ष फूलते हैं।

दोहदवती दोहदान्विता—संज्ञा स्त्री [स] गर्भवती।

दोहन—संज्ञा पु. [स] (१) दुहने मथने का कार्य। उ.—धनुष सौं टारि पर्वत किए एक दिसि, पृथी सम करि प्रजा सब बसाई। सुर-रिषिनि नृपति पुनि पृथी दोहन करी, आपनी जीविका सबनि पाई—४-११। (२) दुहने का पात्र।

दोहना—क्रि. स. [सं. दूषण] (१) दोष लगाना। (२) तुच्छ ठहराना।
क्रि स [हि. दुहना] (दूध) दुहना।

दोहनि, दोहनी—संज्ञा स्त्री [स. दोहन] (१) दूध दुहने की हाँडी, मिट्टी अथवा धातु का वह पात्र जिसमें दूध दुहते हैं। उ.—(क) मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु। कैसे गहत दोहनी घुटुवनि, कैसैं बछरा थन लै लावहु—४०१। (२) दूध दुहने की क्रिया।

दोहर—संज्ञा स्त्री [हि दो+धड़ी] दोहरी चादर।

दोहरना—क्रि अ [हिं दोहरी] (१) दो बार होना। (२) दो परतों का या दोहरा किया जाना।
क्रि. स.—दो परतो में या दोहरा करना।

दोहरफ—संज्ञा पु [फा.] धिक्कार, लानत।

दोहरा—वि. पु [हिं दो+हरा] (१) दो तह या परत का। (२) दुगना, दूना।
संज्ञा पु.—(१) सुपारी के टकड़े। (२) दोहा।

दोहराई—संज्ञा स्त्री [हिं. दोहराना] दोहराने की क्रिया, भाव या पारिश्रमिक।

दोहराना—क्रि. स. [हिं. दोहरना] (१) **किसी बात को बार-बार कहना । (२) किसी कपड़े, कागज आदि की दो तहें करना ।**

दोहल—संज्ञा पुं [स.] (१) **इच्छा । (२) गर्भ ।**

दोहलवती—संज्ञा स्त्री [स.] **गर्भवती स्त्री ।**

दोहला—वि. [हिं. दो+हल्ला] **दो बार की ब्याई ।**

दोहा—संज्ञा पु. [हि दो+हा] (१) **एक छंद । (२) एक राग ।**

दोहाई—संज्ञा स्त्री [हिं. दुहाई] (१) **घोषणा, सूचना ।** उ.—किसलै कुसुम नव नूत दसहुँ दिसि मधुकर मदन दोहाई—२७८४ ।

मुहा.—फिरत दोहाई—**घोषणा फिर रही है ।** उ.—बोलत बग निकेत गरजै अति मानो फिरत दोहाई —२८३६ ।

(२) **रक्षा, बचाव या सहायता के लिए पुकार । (३) शपथ, कसम ।** उ—आपु गई जसुमतिहिं सुनावन दै गई स्यामहिं नद दुहाई—७५७ ।

दोहाक, दोहाग—संज्ञा पुं [सं. दुर्भाग्य, हि दोहाग] **अभाग्य, दुर्भाग्य, भाग्यहीनता ।**

दोहागा—वि. [हिं दोहाग] **अभागा, भाग्यहीन ।**

दोहान—संज्ञा पु. [देश] **जवान बैल ।**

दोहित—संज्ञा पु [स दौहितृ] **बेटी का बेटा, नाती ।**

दोहिनि, दोहिनी—संज्ञा स्त्री [स. दोहनी] **दूध दुहने का बरतन ।** उ.—सूरदास नँद लेहु दोहिनी, दुहहु लाल की नाटी—१०-२५६ ।

दोही—संज्ञा पुं. [स दोहिन्] **दूध दुहनेवाला, ग्वाला ।**

दोह्य—वि. [स] **दुहने योग्य ।**

संज्ञा पु. (१) **दूध । (२) मादा पशु जो दुही जाती है, स्त्री जिसके दूध होता है ।**

दौं—अव्य [स अथवा] **या, अथवा ।**

संज्ञा पु. [हि दव, दावा] **आग, अग्नि ।** उ—बल मोहन रथ बैठे सुफलकसुत चढन चहत यह सुनि चकित भई बिरह दौं लगाई—२५२५ ।

दौंकना—क्रि. अ. [हि. दमकना] **चमकना-दमकना ।**

दौंगरा—संज्ञा पु. [हि. दौं=आग] **वर्षा का पहला छींटा ।**

दौंच—संज्ञा स्त्री. [हिं. दोच] (१) **दुबधा । (२) कष्ट । (३) दबाव ।**

दौंचना—क्रि स. [हि. दबोचना] (१) **किसी न किसी प्रकार दबाव डालकर लेना । (२) लेने को अड़ना ।**

दौंचि—क्रि. स [हिं. दौंचना] **लेने के लिए अड़कर या दबाव डालकर ।** उ.—तंदुल माँगि दौंचि कै लाई सो दीनो उपहार—सारा. ।

दौंजा—संज्ञा पु. [देश] **मचान, पाड़ ।**

दौंरी—संज्ञा स्त्री. [हि. दाँना] (१) **रस्सी । (२) रस्सी में बँधे बैलो की जोडी । (३) झुंड ।**

दौ—संज्ञा स्त्री [स. दव] (१) **आग ।** उ.—(क) पुनि जुरि दौ दीनी पुर लाइ । जरन लगे पुर लोग लुगाइ—४-१२ । (ख) मेरे हियरे दौ लागति है जारत तनु को चीर—२६८६ । (२) **ताप, जलन ।**

दौड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. दौड़ना] (१) **दौड़ने की क्रिया या भाव ।**

मुहा.—दौड़ पड़ना—**तेजी से चलने लगना ।** दौड़ दौड़ कर आना जाना—**जल्दी आना-जाना ।**

(२) **धावा, चढ़ाई । (३) उद्योग में इधर-उधर फिरना, प्रयत्न । (४) वेग, द्रुतगति, तेजी । (५) पहुँच, गति की सीमा । (६) उद्योग या प्रयत्न की सीमा या पहुँच । (७) लंबाई, विस्तार । (८) दल, समूह ।**

दौड़धपाड़, दौड़धूप—संज्ञा स्त्री [हिं दौड़+धूप] **किसी काम के लिए इधर-उधर दौड़ने की क्रिया या भाव, प्रयत्न, उद्योग, परिश्रम ।**

दौड़ना—क्रि. अ. [स धोरण] (१) **बहुत तेजी से चलना ।**

मुहा—चढ दौड़ना—**धावा या चढ़ाई करना ।**

(२) **सहसा प्रवृत्त हो जाना, जुट पड़ना । (३) प्रयत्न में इधर-उधर फिरना । (४) छा जाना ।**

दौडाई—संज्ञा स्त्री. [हिं दौड़ना] (१) **दौड़ने की क्रिया या भाव । (२) दौड़-धूप ।**

दौड़ादौड़—क्रि वि [हिं दौड+दौड] **बिना कहीं रुके ।**

दौड़ादौड़, दौड़ादौड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं दौड़ना] (१) **दौड़धूप । (२) बहुत से लोगो का एक साथ दौड़ना । (३) हड़बड़ी, आतुरता ।**

दौड़ान—संज्ञा स्त्री. [हिं. दौड़ना] (१) **दौड़ने की क्रिया या भाव।** (२) **वेग, झोंक।** (३) **सिलसिला।** (४) **बारी, पारी।**

दौड़ाना—क्रि. स. [हिं. दौड़ना का रुक.] (१) **दौड़ने में प्रवृत्त करना।** (२) **बार-बार आने-जाने को विवश करना।** (३) **हटाना।** (४) **फैलाना, पोतना।** (५) **फेरना, चलाना।**

दौत्य—संज्ञा पुं. [स.] **दूत का काम।**

दौन—संज्ञा पुं. [स. दमन] (१) **दबाना।** (२) **निग्रह, नियंत्रण।**

दौना—संज्ञा पुं. [स. दमनक] **एक पौधा।**

संज्ञा पुं. [हिं. दोना] (१) **पत्तों का दोना।** (२) **दोने में रखा खाने का सामान।** उ.—बोलत नहीं रहत वह मौना। दधि लै छीनि खात रह्यौ दौना।

संज्ञा पुं. [स. द्रौण] **एक पर्वत।**

क्रि. स. [सं. दमन] **दमन करना।**

दौनागिरि—संज्ञा पुं. [स द्रोणगिरि] **एक पर्वत जिस पर हनुमान जी लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर संजीवनी बूटी लेने गये थे।** उ.—(क) दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, बैद सुषेन बतायौ—६-१४६। (ख) दौनागिरि हनुमान सिधायौ—६-१५०।

दौर—संज्ञा पुं. [हिं. दौड़] **दौड़ने की क्रिया या भाव।**

प्र.—पर्यौ अधिक करि दौर—**प्राप्ति के लिए दौड़ पड़ा, दौड़कर उसे पा लिया या उसमें जा पड़ा।** उ.—माधौ जू मन माया बस कीन्हौ। लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं ज्यौं पतग तन दीन्हौ। गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर। मैं मतिहीन मरम नहिं जान्यौ, पर्यौ अधिक करि दौर—१-४६।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) **चक्कर, भ्रमण, फेरा।** (२) **दिनों का फेर।** (३) **उन्नति का समय।**

यौ.—दौरदौरा—**प्रधानता, प्रबलता, अधिकार।**

(४) **प्रभाव, प्रताप।** (५) **बारी, पारी।** (६) **बार, दफा।**

दौरत—क्रि अ [हिं दौड़ना] **दौड़ते हैं, दौड़ते (समय, में)** उ.—(क) दौरत कहा, चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे—१०-२२६। (ख) कहति रोहिनी सोवन देहु न, खेलत-दौरत हारि गए री—१०-२४७। (ग) मोहन मुसकि गही दौरत मैं छूटि तनी छँद रहित घाँघरी—२२६६। (घ) एक अँधेरो हिये की फूटी दौरत पहिर खराऊँ—३४६६।

दौरना—क्रि. अ. [हिं. दौड़ना] (१) **दौड़ना, दौड़ने में प्रवृत्त होना।** (२) **लगना, प्रवृत्त होना।**

दौरा—संज्ञा पुं [अ. दौर] (१) **चक्कर, भ्रमण।** (२) **फेरा, गश्त।** (३) **जाँच-पड़ताल के लिए घूमना।** (४) **सहसा आ जाना।** (५) **ऐसी बात होना जो समय-समय पर होती हो।** (६) **ऐसा रोग जो समय समय पर हो।**

संज्ञा पुं [स. द्रोण] **बड़ा टोकरा।**

दौरादौर—क्रि. वि [हिं दौड़ना] (१) **लगातार, बिना थके या विश्राम लिये।** (२) **धुन से, तेजी से।**

दौरात्म्य—संज्ञा पुं [स.] **दुरात्मा होने का भाव, दुष्टता।**

दौरान—संज्ञा पुं [फा] (१) **चक्र, फेरा।** (२) **दिनों का फेर।** (३) **बारी, पारी।** (४) **सिलसिला, झोंक।**

दौरि—क्रि. अ. [हिं. दौड़ना] **दौड़कर, लपककर।** उ.—(क) ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास। भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढै, जबहि पावै बास—१-७०। (ख) तुम हरि साँकरे के साथी। सुनत पुकार, परम आतुर ह्वै, दौरि छुड़ायौ हाथी—१-१११२।

दौरित—संज्ञा पुं. [सं.] **क्षति, हानि।**

दौरिबे—संज्ञा स्त्री. [हिं. दौड़ना] **दौड़ने की क्रिया या भाव।** उ.- यह सुनत रिस भरयौ दौरिबे को पर्यौ मुड़ि झटकत पटकि कूक पार्यौ—२४६२।

दौरी—संज्ञा स्त्री [हिं. दौरा] **टोकरी, डलिया, चँगेरी।**

क्रि. अ स्त्री. [हिं दौड़ना, दौड़ी] (१) **भागी, तेजी से चली।** उ.—सूर सुनत सभ्रम उठि दौरी प्रेम मगन तन दसा बिसारे—१-२४०। (२) **दौड़कर, लपककर।** उ.—सूर सुकुवरी चदन लीन्हें मिली स्याम को दौरी—२५८६।

मुहा.—फिरौगी दौरी दौरी—**परेशान और**

हैरान होकर मारी-मारी फिरोगी। उ.—सूर सुनहु लैहैं छँड़ाइ सब अबहिं फिरौगी दौरी दौरी—१११४।

दौरे—क्रि. अ. बहु. भूत. [हिं. दौड़ना] **दौड़ पड़े आये।** उ.—असी सहस किंकर-दल तेहिके दौरे मोहिं निहारि—९-१०४।

दौरैं—क्रि. अ. [हिं दौड़ना] **दौड़ते हैं।** उ.—महासिंह निज भाग लेत ज्यों पाछे दौरैं स्वान—सारा. ६३७।

दौर्ग—वि. [सं.] (१) **दुर्ग-सबंधी।** (२) **दुर्गा सबंधी।**

दौर्जन्य—सज्ञा पुं. [स.] **दुर्जनता, दुष्टता।**

दौर्बल्य—सज्ञा पु. [स.] **दुर्बलता, कमजोरी।**

दौर्भाग्य—सज्ञा पु. [स.] **दुर्भाग्य, अभागापन।**

दौर्मनस्य—सज्ञा पुं. [स.] **चित्त का खोटापन।**

दौर्य—सज्ञा पुं. [स.] **दूरी, अंतर।**

दौर्‍यौ—क्रि. वि. [हिं. दौड़ना] (१) **दौड़ता हुआ, भागता हुआ, द्रुत गति से चलता हुआ।** उ.—फिरि इत-उत जसुमति जो देखैं, दृष्टि न परै कन्हाई। जान्यौ जात ग्वाल सग दौर्‍यौ, टेरति जसुमति धाई—४१३। (२) **दौड़ा, भागा।**

दौर्हार्द—सज्ञा पु. [स.] (१) **दुष्टता।** (२) **दुर्भाव।**

दौलत—संज्ञा स्त्री. [अ.] **धन, संपत्ति।**

दौलतखाना—संज्ञा पुं [फ़ा.] **निवास-स्थान।**

दौलतमंद—वि. [फा] **धनी, संपन्न।**

दौलतमंदी—सज्ञा स्त्री. [फा.] **सपन्नता।**

दौलति—सज्ञा स्त्री [हिं दौलत] **धन, संपत्ति।**

दौलाई—क्रि. स [हि दव+लाना] **आग से जलायी।** उ.—हरि-सुत-वाहन-असन-सनेही मानहु अनल देह दौलाई—सा.-उ.—२१।

दौवारिक—सज्ञा. पुं [स] **द्वारपाल।**

दौष्यंत, दौष्यंति—सज्ञा पुं. [सं] **दुष्यंत का पुत्र भरत।**

दौहित्र—सज्ञा पुं. [स.] (१) **लड़की का लड़का, नाती।** (२) **तलवार।**

दौहित्रिक—वि. [स.] **दौहित्र से संबंधित।**

दौहृद—सज्ञा पुं. [स.] **गर्भिणी की इच्छा।**

दौहृदिनी—सज्ञा स्त्री. [स.] **गर्भवती स्त्री।**

द्याऊँ—क्रि. स. [हि दिलाना (प्र)] **दिलाऊँ, (दूसरे को) देने के लिए प्रवृत्त करूँ।** उ—मेरे संग राजा पै आउ। द्याऊँ तोहि राज-धन-गाउँ—४-९।

द्याना—क्रि. स [हिं. दिलाना] **दिलाना।**

द्याल—वि [स. दयालु] **जिसमें दया-भाव अधिक हो, दयावान, दयालु।** उ.—दीन के द्याल गोपाल, करुना मयी मातु सो सुनि, तुरत सरन आयौ—४-१०।

द्यावत—क्रि. स [हिं. दिलाना] **दिलवाते हैं।**

प्र.—गारी द्यावत—**गाली दिलवाते हैं।** उ.—सूरस्याम सर्वग्य कहावत मात-पिता सौं द्यावत गारी—११३७। दरस नहिं द्यावत - **दर्शन नहीं देते, दर्शन नहीं कराते।** उ—सूरस्याम कैसे तुम देखति मोहिं दरस नहिं द्यावत री—१६३४।

द्यावना—क्रि स. [हिं. दिलाना] **दिलाना।**

द्यु—सज्ञा पुं. [स.] (१) **दिन।** (२) **आकाश।** (३) **स्वर्ग।** (४) **अग्नि।** (५) **सूर्यलोक।**

द्युग—वि [सं.] **आकाश में चलनेवाला (पक्षी)।**

द्युचर—सज्ञा पुं. [सं.] (१) **ग्रह।** (२) **पक्षी।**

द्युत—वि. [स.] **प्रकाशवान।**

द्युति—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) **कांति, चमक।** (२) **शोभा, छवि।** (३) **लावण्य।** (४) **किरण, रश्मि।**

द्युतिकर—वि. [सं.] **चमकनेवाला।**

संज्ञा पुं.—**ध्रुव (नक्षत्र)।**

द्युतधर—वि [स.] **प्रकाश धारण करनेवाला।**

संज्ञा पं.—**विष्णु।**

द्युतिमत्र—वि. [हि द्युतिमान] **प्रकाशयुक्त।**

द्युतिमा—सज्ञा स्त्री. [स द्युति+मा (प्रत्य)] **प्रकाश।**

द्युतिमान्—वि. [स. द्युतिमत्] **चमकवाला।**

द्युत् सज्ञा पुं. [सं.] **किरण।**

द्युनिशा—संज्ञा प. [स.] **दिन-रात।**

द्युपति—संज्ञा पु. [सं.] (१) **सूर्य।** (२) **इन्द्र।**

द्युपथ—सज्ञा पुं [सं.] **आकाशमार्ग।**

द्युमणि—संज्ञा पुं. [स.] (१) **सूर्य।** (२) **मंदार।**

द्युमती—वि. स्त्री. [हिं. द्युमान्] **चमकीली।**

द्युमयी—सज्ञा स्त्री. [सं] **विश्वकर्मा की पुत्री जो सूर्य को ब्याही थी।**

द्युमान, द्युमान्—वि. [स. द्युमत्, हिं द्युमान] **प्रकाशपूर्ण,**

कातियुक्त । उ.—तच्छक धनजय पुनि देवदत्त अरु पौण्ड्र संख द्युमान्-सारा. ६ ।

द्युम्न—संज्ञा पु. [स.] (१) सूर्य । (२) अन्न ।

द्युलोक—संज्ञा पु. [स.] स्वर्ग लोक ।

द्युवन्—संज्ञा पु. [सं] (१) सूर्य । (२) स्वर्ग ।

द्युपद—संज्ञा पु [स] (१) देवता । (२) ग्रह-नक्षत्र ।

द्युसद्म—संज्ञा पु. [स द्युसद्मन्] स्वर्ग ।

द्युसरित्—संज्ञा स्त्री [स.] स्वर्ग की नदी, मदाकिनी ।

द्युसिंधु—संज्ञा पु. [स] स्वर्ग की नदी, मंदाकिनी ।

द्यू—वि [स.] जुआ खेलनेवाला, जुआरी ।

द्यूत—संज्ञा पु. [स] जुए का खेल ।

द्यूतकर, द्यतकार—वि. [स.] जुआरी ।

द्यूतक्रीड़ा—संज्ञा [स.] जुए का खेल ।

द्यौं—क्रि. स. [हिं देना] दूं, प्रदान करूं ।
प्र.—द्यौं समझाये—समझाये देता हूँ । उ.—जो कहै मोहि काहे तुम्ह ल्याये । ताको उत्तर द्यौं समुझाये —१०३-३२ ।

द्यौ—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) स्वर्ग । (२) आकाश ।

द्योकार—संज्ञा पु. [स] थवई, राजगीर ।

द्योत—संज्ञा पु [स] (१) प्रकाश । (२) धूप ।

द्योतक—वि [स.] (१) प्रकाश करनेवाला । (२) बतानेवाला । (३) सूचित करनेवाला ।

द्योतन—संज्ञा पु [स.] (१) बताने या दिखाने का काम । (२) प्रकाश करने या जलाने का काम । (३) दर्शन । (४) दीपक ।

द्योतित—वि. [स.] प्रकाशित ।

द्योतिरिंगण—संज्ञा पु. [स.] जुगनू, खद्योत ।

द्योभूमि—संज्ञा पुं [स] पक्षी ।

द्योपद्—संज्ञा पु [स] देवता ।

द्योहरा—संज्ञा पु [हि देवघरा] देवालय, मंदिर ।

द्यौं—क्रि. स [हिं देना] दूं, प्रदान करूं । उ.—(क) नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौं—१०-१६७ । (ख) सद दधि-माखन द्यौं आनी—१०-१८३ ।

द्यौ—क्रि स. [हि देना] दो, प्रदान करो ।
प्र.—द्यौ डारी—दे डालो, प्रदान कर दो । उ.—चोली हार तुम्हहि कौं दीन्हो, चीर हमहि द्यौ डारी—७८८ ।

द्यौस—संज्ञा पुं. [स. दिवस] दिन । उ.—(क) स्यार द्यौस, निसि बोलैं काग—१-२८६ । (ख) चलत चितवत द्यौस जागत सपन सोवत राति—३०७० ।

द्रगण—संज्ञा पु. [स.] एक तरह का बाजा, दगड़ा ।

द्रढिमा—संज्ञा स्त्री. [स. द्रढिमन्] दृढ़ता ।

द्रढिष्ठ—वि [सं] बहुत दृढ़ ।

द्रप—संज्ञा पु. [स. दर्प] गर्व, अभिमान । उ.—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयौ द्रप छांडि—२५१५ ।

द्रप्स, द्रप्स्य—संज्ञा पु [स.] (१) वह द्रव जो गाढ़ा न हो । (२) मट्ठा । (३) शुक्र । (४) रस ।

द्रवंती—संज्ञा स्त्री [स.] नदी ।

द्रव—संज्ञा पु. [सं.] (१) बहाव । (२) दौड़, भाग । (३) वेग । (४) मदिरा । (५) रस ।
वि.—(१) पानी की तरह तरल । (२) गीला । (३) पिघला हुआ ।

द्रवक—वि. [स.] (१) भागनेवाला । (२) बहनेवाला ।

द्रवज—संज्ञा पु. [स.] (१) रस से बनी वस्तु । (२) गुड़, राब आदि ।

द्रवण—संज्ञा पु. [स] (१) गमन, दौड़ । (२) बहाव । (३) पिघलने-पसीजने की क्रिया या भाव । (४) चित्त का द्रवित हो जाना ।

द्रवत—क्रि. अ. [हिं. द्रवना] दया करते हैं, पसीज जाते हैं । उ.—कहियत परम उदार कृपानिधि अंतर्यामी त्रिभुवन तात । द्रवत हैं आपु देत दास को रीझत है तुलसी के पात ।

द्रवता—संज्ञा स्त्री. [स] पिघलने-पसीजने का भाव ।

द्रवति—क्रि. अ. [हिं द्रवना] पसीजती है, दयार्द्र होती है, दया करती है । उ.—कुलिसहुँ तैं कठिन छतिया चितै री तेरी अजहुँ द्रवति जो न देखति दुखारि-३६२ ।

द्रवत्व—संज्ञा पु [स.] पिघलने-पसीजने का भाव ।

द्रवना—क्रि. अ [स द्रवण] (१) बहना (२) पिघलना । (३) पसीजना, दया करना ।

द्रविड़—संज्ञा पु. [स तिग्मिक] (१) दक्षिण भारत का एक देश । (२) इस देश का रहनेवाला ।

द्रविण—संज्ञा पुं. [स.] (१) धन। (२) कंचन। (३) बल।

द्रवित—वि. [हि. द्रवना] पुलकित, जो प्रेम से पसीज गया हो। उ.— मनौ धेनु तृन छाँडि बच्छ-हित, प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर—१०-१२४।

द्रवीभूत—वि [स] (१) जो पानी की तरह पतला या तरल हो गया हो। (२) गला या पिघला हुआ। (३) पसीजा हुआ, दया से युक्त।

द्रवै—क्रि. अ. [हिं द्रवना] पसीजे, दया दिखाये। उ.—कह दाता जो द्रवै न दीनहि देखि दुखित तत्काल। —१-१५६।

द्रव्य—संज्ञा पुं [स] (१) वस्तु, पदार्थ। (२) वह पदार्थ जो गुण अथवा गुण और क्रिया का आश्रय हो। (३) सामान, सामग्री। (४) धन-दौलत (५) औषध। (६) मद्य।

वि.—पेड़ का, पेड़ से संबंधित।

द्रव्यत्व—संज्ञा पु. [सं.] द्रव्य का भाव।

द्रव्यवती—वि. स्त्री. [हि द्रव्यवान्] धनी (स्त्री)।

द्रव्यवान्—वि [सं. द्रव्यवत्] धनी, धनवान।

द्रव्याधीश—संज्ञा पुं. [सं] कुबेर।

द्रष्टव्य—वि [सं.] (१) देखने योग्य। (२) जो दिखाया जाने को हो। (३) जिसे बताना-जताना हो। (४) प्रत्यक्ष कर्तव्य।

द्रष्टा—वि [स] (१) देखनेवाला। (२) भेंट या साक्षात् करनेवाला। (३) प्रकाशक।

द्रह—संज्ञा पुं [स] (१) ताल, झील। (२) स्थान जहां जल काफी गहरा हो, दह।

द्राक्षा—संज्ञा स्त्री. [स] दाख, अंगूर।

द्राघिमा—संज्ञा पुं [सं द्राघिमन्] दीर्घता।

द्राव—संज्ञा पु [स.] (१) गति। (२) बहाव। (३) बहने-पसीजने या गलने-पिघलने की क्रिया। (४) अनुताप।

द्रावक—वि [स.] (१) ठोस चीज को पिघलानेवाला। (२) बहाने या गलानेवाला। (३) चित्त को द्रवित कर देनेवाला। (४) चतुर। (५) चुरानेवाला। (६) हृदयग्राही।

द्रावण—संज्ञा पुं. [सं.] गलाने-पिघलाने का भाव।

द्राविड़—वि [सं] द्रविड़ देशवासी।

द्राविड़ी—संज्ञा स्त्री [सं द्रविड] द्रविड़ जाति की स्त्री।

वि.—द्रविड़ देश से संबंधित।

मुहा.—द्राविड़ी प्राणायाम - सीधी तरह होनेवाले काम को बहुत घुमा-फिरा कर करना।

द्रावित—वि. [स] पिघलाया या तरल किया हुआ।

द्रु—संज्ञा पुं. [सं] (१) वृक्ष। (२) शाखा।

द्रुघण—संज्ञा पुं [स] कुठार, कुल्हाड़ी।

द्रुण—संज्ञा पुं. [स] (१) धनुष। (२) खड्ग।

द्रुणा—संज्ञा स्त्री. [स.] धनुष की ज्या या डोरी।

द्रुत—वि [स.] (१) गला हुआ। (२) शीघ्र चलने वाला, तेज। (३) भागा हुआ।

द्रुतगति—वि [स.] तेज चलनेवाला।

संज्ञा स्त्री.—तेज चाल।

द्रुतगामी - वि [स] तेज चलनेवाला।

द्रुतपद—संज्ञा पुं. [स.] एक छंद।

द्रुतविलंबित—संज्ञा पुं. [स] एक वर्णवृत्त।

द्रुति—संज्ञा स्त्री [स] (१) द्रव। (२) गति।

द्रुनख - संज्ञा पुं. [स.] काँटा।

द्रुपद—संज्ञा पुं [स] (१) एक चंद्रवंशी राजा। द्रुपद की पुत्री द्रौपदी पांडवो को ब्याही थी। उसके पुत्र शिखंडी को आगे करके अर्जुन ने भीष्म को मारा था। महाभारत के युद्ध में द्रुपद भी मारा गया था। (२) खड़ाऊँ।

द्रुपद-तनया - संज्ञा स्त्री [स द्रुपद+तनया] राजा द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी।

द्रुपद-सुता—संज्ञा स्त्री [स द्रुपद+सुता] राजा द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी।

द्रुपदात्मज—संज्ञा पुं [स] (१) शिखंडी। (२) धृष्टद्युम्न।

द्रुपदी—संज्ञा स्त्री [स द्रौपदी] राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी जो पांडवो को ब्याही थी।

द्रुम—संज्ञा पुं [स] (१) वृक्ष। उ.—बोलत मोर सैल द्रुम चढ़ि-चढ़ि बग जु उड़त तरु डारैं—२८२०। (२) पारिजात। (३) कुबेर। (४) रुक्मिणी से उत्पन्न श्री कृष्ण के एक पुत्र का नाम।

द्रुम-डरिया—संज्ञा स्त्री [सं द्रुम+हिं डाली] पेड़ की डाल या शाखा। उ -अव कैं राखि लेहु भगवान। हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान—१-९७।

द्रुमनख—संज्ञा पु [सं] कांटा।

द्रुमशीर्ष—संज्ञा पु [सं] पेड़ का सिरा।

द्रुमसार—संज्ञा पु [सं] अनार, दाड़िम।

द्रुमारि—संज्ञा पु [सं] हाथी, गज।

द्रुमालय—संज्ञा पु [सं] जंगल।

द्रुमेश्वर—संज्ञा पु [सं] (१) चंद्रमा। (२) पारिजात।

द्रुह—संज्ञा पुं [सं] (१) पुत्र। (२) वृक्ष।

द्रू—संज्ञा पु [सं] सोना, कंचन।

द्रोण—संज्ञा पु [सं] (१) पत्तों का दोना। (२) नाव, डोंगा। (३) काला कौआ। (४) बिच्छू। (५) मेघों का एक नायक। (६) वृक्ष, पेड़। (७) एक पर्वत। (८) महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा द्रोणाचार्य।

द्रोण-काक—संज्ञा पु [सं] काला कौआ।

द्रोणगिरि—संज्ञा पु [सं] एक पर्वत जहाँ से हनुमान जी लक्ष्मण जी के लिए सजीवनी जड़ी लाये थे।

द्रोणाचल—संज्ञा पु [सं] द्रोणगिरि नामक पर्वत।

द्रोणाचार्य—संज्ञा पु [सं] महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा जो कौरवों-पांडवों के गुरु थे।

द्रौणि—संज्ञा पु. [सं] द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा।

द्रोणि, द्रोणी—संज्ञा स्त्री [सं] (१) डोंगी। (२) छोटा दोना। (३) काठ का प्याला। (४) दो पर्वतों की बिचली भूमि। (५) एक नदी। (६) द्रोणाचार्य की स्त्री, कृपी।

द्रोन—संज्ञा पु [सं द्रोण] द्रोणाचार्य।

द्रोह—संज्ञा पु [सं] वैर, द्वेष।

द्रोहाट—वि [सं] ऊपर से साधु भीतर से दोषी।

द्रोही—वि. [सं द्रोहिन] द्रोह या बुराई करनेवाला।
संज्ञा पु—वैरी, शत्रु।

द्रोहु—संज्ञा पु [सं द्रोह] द्रोह, वैर, द्वेष।

द्रौणायन, द्रौणायनि, द्रौणि—संज्ञा पु [सं] द्रोणाचार्य का पुत्र, अश्वत्थामा।

द्रौपद—संज्ञा पु [सं.] राजा द्रुपद का पुत्र।

द्रौपदि, द्रौपदी—संज्ञा स्त्री [सं द्रौपदी] राजा द्रुपद की कृष्णा नाम्नी कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी, परंतु माता की आज्ञा से जिसे अन्य चारों पांडवों ने भी स्वीकार किया था।

द्रौपदेय—संज्ञा पु [सं] द्रौपदी के पुत्र।

द्वंद—संज्ञा पु [सं] (१) जोड़ा, युग्म। (२) प्रतिद्वंद्वी। (३) द्वंद्व युद्ध। (४) झगड़ा-बखेड़ा, कलह। (५) दो परस्पर विरुद्ध चीजों का जोड़ा जैसे राग-द्वेष, सुख-दुख। (६) उलझन, जंजाल। (७) कष्ट, दुख। उ.—बोलि लीन्हीं कदम के तर इहाँ आवहु नारि। प्रगट भए तहाँ सबनि को हरि काम द्वंद निवारि। (८) उपद्रव, ऊधम। उ—भोर होत उरहन लै आवति ब्रज की बधू अनेक। फिरत जहाँ तहँ द्वंद मचावत घर न रहत छन एक। (९) रहस्य, भेद, गुप्त बात। (१०) भय, आशंका। उ—काम-क्रोध लोभहिं परिहरै। द्वंदरहित उद्यम नहिं करै—३-१३। (११) दुवधा, असमंजस।
संज्ञा स्त्री [सं दुंदुभी] दुंदुभी।

द्वंदज—वि [सं द्वंद्वज] द्वंद से उत्पन्न।

द्वंदर—वि [सं द्वंद्वालु] झगड़ालू।
संज्ञा पु [सं. द्वंद] द्वंद।

द्वंद्व—संज्ञा पु [सं.] (१) जोड़ा, युग्म। (२) नर-मादा का जोड़ा। (३) दो परस्पर विरोधी चीजों का जोड़ा (४) रहस्य, भेद की बात। (५) लड़ाई, झगड़ा। (६) कलह, बखेड़ा। (७) समास का एक भेद। (८) दुर्ग, किला।

द्वंद्वचर, द्वंद्वचारी—संज्ञा पु [सं.] चकवा, चक्रवाक।
वि—जोड़े के साथ रहनेवाला।

द्वंद्वज—वि [सं] सुख-दुख आदि द्वंद्वों से उत्पन्न (मनोवृत्ति)

द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पु [सं.] दो पुरुषों का युद्ध।

द्वय—वि [सं.] दो।

द्वयता—संज्ञा स्त्री [सं द्वय+ता (प्रत्य)] (१) 'दो' का भाव। (२) भेद-भाव।

द्वाज—संज्ञा पुं [सं] जारज संतान।

द्वादश—संज्ञा पु [सं.] बारह की संख्या या अंक।

द्वादशलोचन—संज्ञा पु. [सं.] स्वामी कार्त्तिकेय।

द्वादशांग—वि. [सं.] जिसके बारह अंग हों।

द्वादशांशु—संज्ञा पुं. [सं.] बृहस्पति।

द्वादशाक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] स्वामी कार्त्तिकेय।

द्वादशाक्षर—संज्ञा पुं. [सं] विष्णु का एक मंत्र—ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

द्वादशात्मा—संज्ञा पुं. [सं. द्वादशात्मन्] सूर्य, रवि।

द्वादशी—संज्ञा स्त्री [सं.] किसी पक्ष की बारहवीं तिथि।

द्वादस—वि. [सं. द्वादश] बारह, बारहवाँ।

संज्ञा पुं.—बारह की संख्या या अंक।

द्वादस अच्छर—संज्ञा पुं. [सं. द्वादशाक्षर] विष्णु का एक मंत्र—ओं नमो भगवते वासुदेवाय। उ.—द्वादस अच्छर मंत्र सुनायौ। और चतुरभुज रूप बतायौ —४-६।

द्वादसि, द्वादसी—संज्ञा स्त्री [सं द्वादशी] किसी पक्ष की बारहवीं तिथि। उ.—द्वादसि पोषै लै आहार। घटिका दोइ द्वादसी जान—६-५।

द्वापर—संज्ञा पुं. [सं] बारह युगों में तीसरा युग जो ८६४००० वर्ष का माना जाता है।

द्वार—संज्ञा पुं. [सं.] (१] मुख, मुहाना। (२) दरवाजा।

मुहा.—द्वार खुलना—मार्ग या उपाय निकलना। द्वार-द्वार फिरना—(१) बहुतों के यहाँ जाना। (२) घर-घर भीख माँगना। द्वार लगना—(१) दरवाजा बंद होना। (२) आस लगाये द्वार पर खड़े रहना (३) छिपकर आहट लेने के लिए द्वार पर खड़े होना। द्वारे लागे—आशा से द्वार पर खड़े रहे। उ.—यह जान्यौ जिय राधिका द्वारे हरि लागे। गर्व कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुरागे। द्वार लगाना—द्वार बंद करना।

(३) आँख, कान आदि इंद्रियों के छेद। (४) उपाय, साधन।

द्वारकंटक—संज्ञा पुं. [सं] किवाड़, कपाट।

द्वारका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पुरानी नगरी जो काठियावाड़, गुजरात में है और सात पुरियों में मानी गयी है। जरासंध के उपद्रवों से तंग आकर श्रीकृष्ण यहीं जाकर बसे थे।

द्वारकाधीश, द्वारकानाथ, द्वारकेश—संज्ञा पं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण। (२) श्रीकृष्ण की मूर्ति जो द्वारका में है।

द्वारचार—संज्ञा पुं. [सं. द्वार+चार=व्यवहार] विवाह की एक रीति जो लड़कीवाले के यहाँ बारात पहुँचने पर की जाती है।

द्वारछेंकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. द्वार+छेंकना] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वधू को साथ लेकर आते हुए वर का द्वार उसकी बहन रोकती है और कुछ नेग पाकर हट जाती है। (२) वह नेग जो इस रीति में बहन को दिया जाता है।

द्वारप—संज्ञा पुं. [सं] द्वारपाल।

द्वार-पट—संज्ञा पुं. [सं.] द्वार पर टाँगने का परदा।

द्वारपाल—संज्ञा पुं. [सं] ड्योढ़ीदार, दरबान, प्रतिहार।

द्वारपालक—संज्ञा पुं. [सं] द्वारपाल।

द्वारपिंडी—संज्ञा स्त्री. [सं.] ड्योढ़ी, दहलीज।

द्वारपूजा—संज्ञा स्त्री [सं] विवाह की एक रीति जिसमें कन्या पक्षवाले कलश आदि का पूजन करके वर का स्वागत करते हैं।

द्वारयंत्र—संज्ञा पुं [सं] ताला।

द्वारवती—संज्ञा स्त्री [सं.] द्वारावती, द्वारका।

द्वारस्थ—वि. [सं.] जो द्वार पर बैठा हो।

द्वारा—संज्ञा पुं. [सं द्वार] (१) द्वार, दरवाजा, फाटक। उ.—धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव विरंचि कैं द्वारा—१०-४।

यौ.—गृह-द्वारा—घर-द्वार, घर गृहस्थी। उ.—गृह-द्वारा कहुँ है की नाहीं पिता-मातु-पति-बंधु न भाई —१०८६।

(२) मार्ग, राह, पथ, रास्ता।

अव्य—[सं द्वारात्] हेतु से, जरिये से।

द्वारावति, द्वारावती—संज्ञा स्त्री. [सं द्वारावती] द्वारका जो काठियावाड़ गुजरात में स्थित है और जिसकी गणना चार धामों और सात पुरियों में है।

द्वारि—संज्ञा पुं [सं द्वार] द्वार, दरवाजा। उ.—याकौं ह्याँ तैं देहु निकारि। बहुरि न आवै मेरे द्वारि —१-२८४।

द्वारिक—संज्ञा पुं. [सं.] द्वारपाल।

द्वारिका—संज्ञा स्त्री [सं. द्वारका] **काठियावाड, गुजरात की एक प्राचीन नगरी जिसे श्रीकृष्ण ने, जरासंध के आक्रमणों से मथुरावासियों को बचाने के उद्देश्य से, अपनी राजधानीबनाया था ।**

द्वारिकाराइ—संज्ञा पु [स. द्वारका+राय] **द्वारकानाथ, श्रीकृष्णचन्द्र ।** उ -बन चलि भजौ द्वारिकाराय—१-२८४ ।

द्वारिकावासी—वि [हिं द्वारिका+वासी] **द्वारका में बसने वाले ।** उ —हा जदुनाथ द्वारिका वासी जुग जुग भक्त आपदा फेरी —१-२५१ ।

द्वारी—संज्ञा स्त्री [हिं द्वार+ई] **छोटा द्वार ।**

द्वारे—संज्ञा पुं [सं द्वार] **दरवाजा, द्वार ।** उ —छोरे निगड, सोआए पहरू, द्वारे को कपाट उघरयौ —१०-८ ।

द्वारैं—संज्ञा पु [स द्वार] **द्वार पर ।** उ.—सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हरि, बलि-द्वारैं दरवान भयौ—१-२६ ।

द्वारयौ—संज्ञा पु [स द्वार] **द्वार पर ।** उ —ताहि अपनी करी चले आगे हरी गये जहाँ कुवलिया मल्ल द्वारयौ - २५८८ ।

द्वारस्थ—संज्ञा पु. [स] **द्वारपाल ।**

द्वि—वि [स.] **दो ।**

द्विक—वि [स] (१) **दो अगों का ।** (२) **दोहरा ।** संज्ञा पु.—(१) **काक ।** (२) **चकवा, कोक ।**

द्विकर्मक—वि [स.] (**क्रिया**) **जिसके दो कर्म हो ।**

द्विकल—संज्ञा पु. [हिं द्वि+कला] **छदशास्त्र में दो मात्राओं का समूह ।**

द्विगु—संज्ञा पु. [स] **समास का एक भेद ।**

द्विगुण—वि [स] **दूना, दुगना ।**

द्विगुणित वि [स] (१) **दूना, दुगना ।** (२) **दूना या दुगना किया हुआ ।**

द्विज—संज्ञा पु. [सं] (१) **वह प्राणी जिसका जन्म दो बार हुआ हो ।** (२) **ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिनको यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है ।** (३) **ब्राह्मण ।** (४) **सुदामा ।** उ.—गेर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ चल्यो द्विज द्वारिका-द्वार ठाढौ—१-५ । (५) **दांत** (क) उ.—रसना द्विज दलि दुखित होत बहु तउ रिस कहा करै । छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै—१-११७ । (ख) सुभग चिबुक द्विज-अधर नासिका १०-१०४ । (६) **पक्षी ।** उ.—निकट बिटप मानो द्विज-कुल कूजत बय बल बटै अनग –१०६४ । (७) **चद्रमा ।**

द्विजदंपति—संज्ञा पु [स द्विज+दपती] **चाँदी का पत्तर जिस पर लक्ष्मीनारायण का युगल चित्र खुदा रहता है और जो मृतक स्त्रियो के दशाह में ब्राह्मण को दान में दिया जाता है ।**

द्विजन्मा—वि. [स द्विजन्मन्] **जो दो बार जन्मा हो ।**

द्विजपति—संज्ञा पु [स.] (१) **ब्राह्मण ।** (२) **चद्रमा ।** (३) **कपूर ।** (४) **गरुड ।**

द्विजबंधु—संज्ञा पु. [स.] **सस्कार या कर्महीन द्विज ।**

द्विजब्रुव—संज्ञा पु. [स.] **सस्कार या कर्महीन द्विज ।**

द्विजराज, द्विजराय— संज्ञा पु. [स. द्विजराज] (१) **ब्राह्मण ।** (२) **चन्द्रमा ।** (३) **कपूर ।** (४) **गरुड ।**

द्विजलिंगी—संज्ञा पु [स द्विजलिगिन्] **ब्राह्मण वेशधारी निम्न वर्ग का मनुष्य ।**

द्विजवाहन—संज्ञा पु [स] **विष्णु ।**

द्विजा—संज्ञा स्त्री [स.] **द्विज की स्त्री ।**

द्विजाग्रज—संज्ञा पु [सं] **ब्राह्मण ।**

द्विजाति · संज्ञा पु. [स] (१) **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जिन्हें यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है ।** (२) **पक्षी ।** (३) **दांत ।**

द्विजिह्व—वि [स] (१) **जिसके दो जीभें हो ।** (२) **इधर की उधर लगानेवाला, चुगलखोर ।** (३) **खल ।**

द्विजेंद्र, द्विजेश—संज्ञा पु. [स द्विज+इन्द्र, +ईश] (१) **चंद्रमा ।** (२) **ब्राह्मण ।** (३) **कपूर ।** (४) **गरुड़ ।**

द्विजोत्तम —संज्ञा पु. [स] **द्विजो में श्रेष्ठ, ब्राह्मण ।**

द्वितय—वि [स] (१) **जिसके दो अंश या भाग हों ।** (२) **दोहरा ।**

द्वितिय—वि [स द्वितीय] **दूसरा, द्वितीय ।** उ —प्रथम ज्ञान, विज्ञानक द्वितिय मत, तृतीय भक्ति कौ भाव—२-३८ ।

द्वितिया—वि. [सं. द्वितीया] दूसरा। उ.—(क) तब सिव-उमा गए ता ठौर, जहाँ नहीं द्वितिया कोउ और—१-२२६। (ख) कोउ कहै हरि-इच्छा दुख होइ। द्वितिया दुखदायक नहिं कोई—१-२६०।

द्वितीय—वि. [सं.] दूसरा।

संज्ञा पुं.—पुत्र, लड़का।

द्वितीयक—वि. [सं.] (१) दूसरे स्थान का। (२) अप्रधान।

द्वितीया—संज्ञा स्त्री. [सं.] पक्ष की दूसरी तिथि, दूज।

द्वितीयाश्रम—संज्ञा पुं. [सं.] गृहस्थाश्रम।

द्वित्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो का भाव (२) दोहरे होने का भाव।

द्विदल—वि. [सं.] (१) जिसमें दो दल हो। (२) जिसमें दो पत्ते हों। (३) जिसमें दो पंखुड़ियां हों।

संज्ञा पुं.—वह अन्न जिसमें दो दल हों।

द्विदेवता—वि. [सं.] दो देवताओं का।

द्विदेह—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

द्विधा—क्रि. वि. [सं.] (१) दो प्रकार या तरह से। (२) दो खंड या भागों में।

द्विधातु—वि. [सं.] दो धातुओं का बना हुआ।

द्विप—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी। उ. द्विप दंत कर कलित, भेष नटवर ललित मल्ल उर सल्ल तल ताल बाजैं—३०७७।

द्विपक्ष—वि. [सं.] जिसके दो पर या पक्ष हों।

संज्ञा पुं.—(१) पक्षी। (२) महीना।

द्विपथ—संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जहाँ दो पक्ष मिलते हों।

द्विपद—वि. [सं.] (१) जिसके दो पैर हो। (२) जिसमें दो पद या शब्द हो। (३) जिसमें दो चरण हों (गीत)।

संज्ञा पुं.—(१) दो पैर का प्राणी। (२) मनुष्य।

द्विपदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दो पदों का गीत।

द्विपाद—वि. [सं.] (१) दो पैरोंवाला। (२) दो पद या शब्दवाला। (३) दो चरणवाला (गीत)।

संज्ञा पुं. (१) दो पैरवाला प्राणी। (२) मनुष्य।

द्विपायी—संज्ञा पुं. [सं. द्विपायिन्] हाथी।

द्विपास्य—संज्ञा पुं. [सं.] गजमुख, गणेश।

द्विबाहु—वि. [सं.] दो भुजाओंवाला।

द्विभाव—संज्ञा वि. [सं.] दो भाव, दुराव, छिपाव।

वि.—दो भाव रखनेवाला।

द्विभाषी—वि. [हिं. दुभाषिन्] दो भाषाएँ जाननेवाला।

द्विभुज—वि. [सं.] जिसके दो हाथ हों।

द्विमातृ—संज्ञा पुं. [सं.] (दो माताओं से उत्पन्न) जरासंध।

द्विमातृज—संज्ञा पुं. [सं.] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न होनेवाला) (१) जरासंध। (२) गणेश।

द्विमात्र—संज्ञा पुं. [सं.] दीर्घ मात्रा का वर्ण।

द्विमुख—वि. [सं.] जिसके दो मुख हों।

संज्ञा पुं.—दो मुँहवाला साँप, गूँगी।

द्विमुखी—वि. स्त्री. [सं.] जिसके दो मुख हों।

द्विरद—वि. [सं.] दो दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं.—(१) हाथी। उ.—द्विरद को दंत उपटाय तुम लेते हे, वहै बल आजु काहे न सँभारौं।—२६०२। (२) दुर्योधन का एक भाई।

द्विरदाशन—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह।

द्विरसन—संज्ञा पुं. [सं.] साँप।

द्विरागमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूसरी बार आना। (२) वधू का पति के घर दूसरी बार आना, गौना, दोंगा।

द्विराय—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

द्विरुक्त—वि. [सं.] दो बार या दूसरी बार कहा हुआ।

द्विरुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] दो बार कथन।

द्विरूढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे से विवाह हो।

द्विरेफ—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर।

द्विबिंदु—संज्ञा पुं. [सं.] विसर्ग।

द्विविद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक बंदर जो रामचंद्र की सेना का सेनापति था। उ.—नल-नील-द्विविद, केसरि, गवच्छ। कपि कहे कछुक, हैं बहुत लच्छ—९-१६६। (२) एक बंदर जो नरकासुर का मित्र था और बलदेव जी द्वारा मारा गया था। उ.—राम दल मारि सो वृच्छ चुरकुट कियौ द्विविद सिर फट गयौ लगत ताके—१०३-४५।

द्विविध—वि. [सं.] दो प्रकार का।

क्रि. वि.—दो रीति या प्रकार से।

द्विविधा—संज्ञा पुं. [सं. द्विविध] दुबधा।

द्विवेद—वि. [सं.] **दो वेद पढ़नेवाला।**

द्विवेदी—संज्ञा पुं. [स. द्विवेदिन्] **ब्राह्मणों की उपजाति।**

द्विशिर—वि. [स.] **जिसके दो सिर हों।**

मुहा.—कौन द्विशिर है—**किसके दो सिर हैं? किसको मरने का डर नहीं है?**

द्विशीर्ष—वि. [स.] **जिसके दो सिर हों।**

द्विष, द्विषत्, द्विष्—वि. [स.] **द्वेष रखनेवाला।**

संज्ञा पुं.—**शत्रु, वैरी, विरोधी, द्वेषी।**

द्विष्ट—वि. [स.] **जिसमें द्वेष हो।**

द्वीप—संज्ञा पुं. [स.] (१) **थल का वह भाग जो चारों तरफ जल से घिरा हो।** (२) **पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग।** उ.—सातौ दीप राज ध्रुव कियौ। सीतल भयौ मातु कौ हियौ—४-६। (३) **आधार।**

द्वीपवती—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **एक नदी।** (२) **भूमि।**

द्वीपी—संज्ञा पुं. [स. द्वीपिन्] (१) **बाघ।** (२) **चीता।**

द्वीश—वि. [स.] (१) **जो दो का स्वामी हो।** (२) **जिसमें दो स्वामी हों।** (३) **जो दो स्वामियों या देवताओं के लिए हो।**

द्वेष—संज्ञा पुं. [स] **शत्रुता, वैर।** उ.—मिटि गए राग-द्वेष सब तिनके जिन हरि प्रीति लगाई—१-३१८।

द्वेषी—वि. [स द्वेषिन्] (१) **द्वेष या वैरभाव रखने या करनेवाला।** (२) **शत्रु।**

द्वेष्टा—वि. [स. द्वेष] (१) **द्वेषी।** (२) **शत्रु।**

द्वै—वि. [स. द्वय]। (१) **दो, दोनों, भेद।** उ.—सलिल लौं सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ। सूर जो द्वै रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ—१-७०। (२) **भिन्न, अलग।** उ.—सूरदास-सरबरि को करिहै, प्रभु पारथ द्वै नाहीं—१-२६६।

द्वैक—वि. [हिं. दो+एक] **दो-एक, एक आध, बहुत कम (संख्यावाचक)।** उ.—(क) जसुमति मन अभिलाष करै। कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै—१०-७६। (ख) पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावै—१०-११२। (ग) कबहुँ कान्ह-कर छाँड़ि नंद, पग द्वैक रिंगावत—१०-१२२। (घ) यह कहियौ मेरी कही, कमल पठाए कोटि। कोटि द्वैक जलहीं धरे, यह बिनती इक छोरि—१०-५८६। (ङ) द्वैक पग धारि हरि-सँमुख आयौ—३०७६।

द्वैगुणिका—वि. [सं.] **दूना सूद-ब्याज लेनेवाला।**

द्वैज—संज्ञा स्त्री. [स. द्वितीय, प्रा. दुइय] **द्वितीया, दूज।**

वि.—**द्वितीया का, दूज का।** उ.—(क) दीपक-माल स्याम उर सोहै, चित्र बग-नह छबि पावै री। मनौ द्वैज ससि नखत सहित है, उपमा कहत न आवै री—१०-१३६। (ख) गनहु द्वैज दिन सोधि कै हरि होरी—२८५५।

द्वैत—संज्ञा पुं. [स.] (१) **दो का भाव, युगल।** (२) **अपने-पराये का भेद-भाव।** (३) **दुवधा, भ्रम।** (४) **अज्ञान।** (५) **द्वैतवाद।**

द्वैतवन—संज्ञा पुं. [स.] **एक वन जिसमें युधिष्ठिर कुछ समय तक रहे थे।**

द्वैतवाद—संज्ञा पु. [स.] (१) **एक दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा परमात्मा या जीव ईश्वर को भिन्न माना जाता है।** (२) **एक दार्शनिक सिद्धांत जिसमें शरीर और आत्मा को भिन्न माना जाता है।**

द्वैध—संज्ञा पुं. [स] (१) **विरोधी।** (२) **कूटनीति।**

द्वैपद—वि. [स] **दो पैर वाले।** उ.—ए दपद वे द्वैपद चतुर्भुज काह भांति भेद नहिं प्रानिनि—३१७३।

द्वैपायन—संज्ञा पु [स.] (१) **वेदव्यास का नाम क्योंकि इनका जन्म जमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था।** (२) **वह तालाब जिसमें युद्ध से भागकर दुर्योधन छिपा था।**

द्वैमातुर—वि [स.] **जिसकी दो माताएँ हों।**

संज्ञा पुं.—(१) **गणेश।** (२) **जरासंध।**

द्वैवार्षिक—वि. [स] **जो प्रति दूसरे वर्ष हो।**

द्वैविध्य—संज्ञा पु. [स.] **दुवधा।**

द्वैहै—क्रि. स. [हि दुहना] **दुहेगा।** उ.—कहियहु बेगि पठवहि गह गाइनि को द्वैहै—२७०६।

द्वौ—वि. [हिं. दो + उ दोउ] **दोनो।**

संज्ञा पु. [स. दव] **दावा, दावाग्नि।**

ध

ध—**देवनागरी वर्णमाला का उन्नीसवां व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जो दंतमूल से उच्चरित होता है।**

धंगर—संज्ञा पु. [देश] **चरवाहा, ग्वाला।**

धंगा—संज्ञा पु. [देश.] **सांडी।**

धंदर—संज्ञा पुं [देश.] **एक धारीदार कपड़ा।**

धंधक, धंधरका—संज्ञा पु. [हि. धंधा] **काम-धंधे का झगड़ा, बखेड़ा या जंजाल।**

संज्ञा पुं. [अनु.] **एक तरह का ढोल।**

धंधकधोरी, धंधरकधोरी—वि. [हिं. धधक + धोरी] **जो हर समय काम के झगड़े में पड़ा रहे।**

धंधका—संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह का ढोल।**

धँधला—संज्ञा पु. [हिं. धधा] (१) **छल-कपट।** (२) **बहाना।**

धँधलाना—क्रि. अ. [हिं. धँधला] **छल-कपट करना।**

धंधा—संज्ञा पुं [सं. धन-धान्य] (१) **काम-काज।** (२) **कार-बार, व्यवसाय, रोजगार।**

धंधार—वि. [देश.] **अकेला, एकाकी।**

धंधारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धधा] **गोरखपंथी साधुओं के पास रहनेवाला 'गोरखधंधा'।**

संज्ञा स्त्री.—[हिं धधार] (१) **एकांत।** (२) **सन्नाटा।**

धंधाला—संज्ञा स्त्री. [हिं. धंधा] **कुटनी, दूती।**

धंधोर—संज्ञा पुं [अनु० धायँ धायँ] (१) **होली, होलिका।** (२) **आग की लपट, ज्वाला।**

धँस—संज्ञा पुं. [हिं. धँसना] **डुबकी, गोता।**

धँसन—संज्ञा स्त्री. [हि. धँसना] **धँसने की क्रिया, ढंग या गति।**

धँसना—क्रि. अ. [सं दशन] (१) **गड़ना, चुभना।**

मुहा.—जी (मन) में धँसना—(१) **मन पर प्रभाव डालना।** (२) **बराबर ध्यान पर चढ़ा रहना।**

(२) **जगह बनाकर बढ़ना या पैठना।** (३) **धीरे-धीरे नीचे जाना या उतरना।** (४) **नीचे की ओर दब या बैठ जाना।** (५) **गड़ी चीज का खड़ी न रह कर बैठ या दब जाना।**

क्रि. अ [स. ध्वसन] **नष्ट होना, मिटना।**

धँसनि—संज्ञा स्त्री [हिं. धसन] **घुसने पैठने की क्रिया, रीति या चाल।**

धँसान—संज्ञा स्त्री. [हिं. धँसना] (१) **धसने की क्रिया या ढग।** (२) **दलदल।** (३) **ढाल, उतार।**

धँसाना—क्रि. स. [हिं. धँसना] (१) **गड़ाना, चुभाना, घुसाना।** (२) **प्रवेश करना, पैठाना।** (३) **नीचे की ओर बैठाना।**

धँसायौ—क्रि. अ. [हि धँसना] **धँसा लिया, डुबा लिया, बूड़ गए।** उ.—हम सँग खेलत स्याम जाइ जल माँझ धँसायौ—५८६।

धँसाव—संज्ञा पुं. [हि. धँसना] (१) **धँसने की क्रिया या भाव।** (२) **दलदल।**

धँसि—क्रि. अ. [हि. धँसना] **धस-पैठकर, डूबकर।**

प्र.—धँसि लैहौं—**डूब जाऊँगी।** उ.—जो न सूर कान्ह आइहैं तौ जाइ जमुन धँसि लैहौं—२५५०।

धँसी—क्रि. अ. [हिं. धसना] (१) **गड़ गयी, चुभी।**

मुहा.—मन महँ धँसी—**हृदय में अंकित हो गयी, चित्त से न हट सकी।** उ.—मन महँ धँसी मनोहर मूरति टरति नही वह टारे।

(२) **नीचे उतरी, नीचे आयी।** उ.—पाँति पहिचानि धँसी मंदिर मैं सूर तिया अभिराम। आवहु कत लखहु हरि को हित पाँव धारिए धाम।

धँसे—क्रि. अ. [हिं. धँसना] **घुसे, गड़े, दब गये।** उ.—गयौ कूदि हनुमत जब सिंधु-पारा। सेष के सीस लागे कमठ पीठि सौं, धँसे गिरिवर सबै तासु भारा—६-७६।

धउरहर—संज्ञा पु. [हि. धौरहर] **ऊँची अटारी, बुर्ज।**

धक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) **दिल धड़कने का शब्द या भाव।**

मुहा.—जी धक-धक करना—**भय आदि से जी धड़कना।** जी धक हो जाना—(१) **डर से दहल जाना।** (२) **चौंक पड़ना।** जी धक (से) होना—(१) **घबराहट होना।** (२) **भय होना।**

(२) **उमग, चाव, चोप।**

क्रि. वि.—**अचानक, सहसा, एकबारगी।**

धकधकात—क्रि अ. [हिं. धकधकाना] **भय या घबराहट से (हृदय) धड़कता है।** उ.—(क) टटके चिन्ह पाछिले न्यारे धकधकात उर डोलत है—२११०। (ख) धकधकात उर नयन स्रवत जल सुत अँग परसन लागे—२४७३। (ग) सकसकात तन धकधकात उर अकबकात सब ठाढे—२६६६। (घ) धकधकात जिय बहुत सँभारै।

धकधकाना—क्रि. अ. [अनु धक्] (१) भय, घबराहट आदि से (हृदय का) जोर जोर धड़कना । (२) (आग का) लपट के साथ जलना ।

धकधकाहट—संज्ञा स्त्री [अनु. धक] (१) हृदय के धड़कने की क्रिया या भाव, धड़कन । (२) खटका, आशंका । (३) सोचविचार, आगा-पीछा ।

धकधकी—संज्ञा स्त्री [अनु धक] (१) हृदय के धड़कने की क्रिया या भाव, धड़कन । उ.— (क) आये हो सुरति किए ठाठ करख लिए सकसकी धकधकी हिये—२६०६ । (ख) आवत देख्यौ विप्र जोरि कर रुक्मिनि धाई । कहा कहैगौ आनि हिए धकधकी लगाई—१० उ ८ । (२) गले और छाती के बीच का गढ़ा जिसमें धड़कन मालूम होती है, धुकधुकी ।

मुहा.—धकधकी धड़कना—जी धकधक करना, खटका या आशंका होना ।

धकना—क्रि. अ. [हि. दहकना] दहक कर जलना ।

धकपक—संज्ञा स्त्री. [अनु०] जी की धड़कन, धकधकी ।

क्रि. वि.—डरते हुए या धड़कते जी से ।

धकपकाना—क्रि अ [अनु धक] डरना, भयभीत होना ।

धकपेल—संज्ञा स्त्री. [अनु. धक + पेलना] धक्कमधक्का ।

धका—संज्ञा पु [हिं धक्का] (१) टक्कर । (२) झोंका ।

धकाधकी—संज्ञा स्त्री [हिं धक्का] धक्कमधक्का ।

धकाधकी—संज्ञा स्त्री [हि धक्का] रेल-पेल ।

धकाना—क्रि स [हि दहकाना] जलाना, सुलगाना ।

धकार—संज्ञा पु [हिं ध + कार] 'ध' अक्षर ।

धकारा, धकारो—संज्ञा पु [अनु + धक] खटका, आशंका ।

उ—तुम तो लीला करत सुन्न मन परो धकारो ।

धकियाना—क्रि. स. [हिं धक्का] धक्का देना, ढकेलना ।

धकेलना—क्रि स. [हि धक्का] ठेलना, धक्का देना ।

धकेलू—वि [हिं. धकेलना] धक्का देनेवाला ।

धकैत—वि [हि. धक्का+ऐत] धक्कमधक्का करनेवाला ।

धकोना—क्रि स [हि धकियाना] धक्का देना ।

धक्क—संज्ञा स्त्री. [हि. धक] (जी) धड़कने का भाव ।

धक्कपक—संज्ञा स्त्री [हि धकपक] धड़कन, धकधकी ।

क्रि. वि —धड़कते हुए जी से, भयभीत होकर ।

धक्का—संज्ञा पु [स धम, हि धमक, धोक] (१) टक्कर, रेला । (२) ढकेलने की क्रिया, चपेट । (३) (भीड़ की) कसमकस । (४) दुख की चोट, संताप । (५) विपत्ति, दुर्घटना । (६) हानि, घाटा ।

धक्कामुक्की—संज्ञा स्त्री [हि धक्का + मुक्की] धक्के-घूँसे की मारपीट ।

धगड़, धगड़ा—संज्ञा पुं [स धव=पति] जार, उपपति ।

धगड़बाज—वि स्त्री [हि धग + फा बाज] उपपति से प्रेम करनेवाली, व्यभिचारिणी ।

धगड़ी—संज्ञा स्त्री [हि धगड़ा] व्यभिचारिणी ।

धगधगाना—क्रि अ [अनु] (जी का) धकधक करना ।

धगधग्यो, धगधग्यौ—क्रि अ [हिं धगधगाना] (जी) धड़कने लगा । उ —जब राजा तेहि मारन लाग्यौ । देवी काली मन धगधाग्यौ ।

धगरिन—संज्ञा स्त्री [हिं. धाँगर] धाँगर स्त्री जो बच्चों के जन्मने पर उनकी नाल काटती है ।

धगरी—वि [हिं. धगड़ी] (१) पति की दुलारी या मुँह-लगी । (२) व्यभिचारिणी, कुलटा ।

धगा—संज्ञा पु. [हिं. तागा, धागा] बटा हुआ सूत, डोरा, तागा । उ.—सूरदास कंचन अरु काँचहिं, एकहिं धगा पिरोयौ—१-४३ ।

धगुला—संज्ञा पु [देश] हाथ में पहनने का कड़ा ।

धंगड़—संज्ञा पु. [हिं. धगड़] जार, उपपति ।

धचकचाना—क्रि स [अनु] डराना, दहलाना ।

धचकना—क्रि. अ. [अनु] दलदल कीचड़ में फँसना ।

धचका—संज्ञा पु. [अनु] धक्का, झटका, आघात ।

धज—संज्ञा स्त्री [स. ध्वज=चिन्ह, पताका] (१) सजावट, बनाव । (२) सुंदर या आकर्षक ढंग । (३) बैठने-उठने की रीति, ठवन । (४) ठसक, नखरा । (५) रूप-रंग, शोभा । (६) डील-डौल, बनावट, आकृति ।

धजा—संज्ञा स्त्री [स. ध्वज] (१) ध्वजा, पताका । (२) कतरन, धज्जी । (३) रूपरंग, डील-डौल ।

धजी—संज्ञा स्त्री [हिं धज्जी] धज्जी ।

धजीला—वि [हि धज+ईला (प्रत्य)] सुंदर, सजीला ।

वि.—धज्जीधारी, जो फटे कपड़े पहने हो ।

धज्जियाँ—संज्ञा स्त्री. [स. धटी] (१) कपड़े कागज की लंबी कतरन । (२) लोहे-लकड़ी की कटी-फटी लंबी पट्टियाँ ।

मुहा.—धज्जियाँ उड़ना—(१) टुकड़े-टुकड़े या खील-खील होना । (२) (किसी के) दोषों का खूब भंडाफोड़ होना या दुर्गति होना । धज्जियाँ उड़ाना—(१) टुकड़े-टुकड़े या खील-खील करना । (२) (किसी के) दोषों का खूब भंडाफोड़ करना या दुर्गति करना । (३) मार-मार या काट-काट कर टुकड़े करना । धज्जियाँ लगना—कपड़ों का फटा-फटा होना, गरीबी आना । धज्जियाँ लगाना—फटे पुराने कपड़े पहनना ।

धज्जी—संज्ञा स्त्री [स धटी] कपड़े कागज या लोहे-लकड़ी की कटी-फटी पट्टी ।

मुहा.—धज्जी हो जाना—सूखकर बहुत दुबला-पतला या ठठरी हो जाना ।

धट—संज्ञा पु. [स] तुला, तराजू ।

धटिका—संज्ञा स्त्री [स] (१) वस्त्र । (२) कौपीन ।

धटी—संज्ञा स्त्री [स.] (१) चीर, वस्त्र । (२) कौपीन ।

वि. [स. घटिन्] तौलनेवाला ।

संज्ञा पु.—(१) तुला राशि । (२) शिव ।

धड़ंग—वि. [हिं. धड़+अंग] नंगा ।

धड़—संज्ञा पु. [स. धर=धारण करनेवाला] (१) शरीर का मध्य भाग । (२) पेड़ का तना, पेंड़ी ।

संज्ञा स्त्री [अनु] सहसा गिरने जैसा शब्द ।

धड़क—संज्ञा स्त्री [अनु धड़] (१) हृदय की धड़कन या स्पंदन । (२) हृदय के धड़कने का शब्द । (३) भय, आशंका आदि से जी का धकधक करना । (४) खटका, आशका । (५) साहस, हिम्मत ।

यौ.—बेधड़क–बिना किसी खटके या सकोच के ।

धड़कन—संज्ञा स्त्री [हि धड़क] हृदय का स्पंदन ।

धड़कना—क्रि. अ. [हिं. धड़क] (१) छाती का धकधक करना या काँपना ।

मुहा—छाती (जी, दिल) धड़कना—भय, खटके या आशंका से जी का दहलना या काँपना ।

(२) भारी चीज के गिरने का शब्द होना ।

धड़का—संज्ञा पु [अनु. धड़] (१) हृदय की धड़कन । (२) हृदय के स्पदन का शब्द । (३) भय, खटका । (४) सहसा गिरने का शब्द । (५) खेत का धोखा या नकली पुतला ।

धड़काना—क्रि. स. [हि. धड़क] (१) जी धकधक कराना । (२) डराना, दहलाना । (३) धड़धड़ शब्द कराना ।

धड़क्का—संज्ञा पुं. [हिं. धड़का] (१) धड़कन । (२) अंदेशा ।

धड़टूटा—वि [हि धड़+टूटना] (१) जिसकी कमर झुकी हुई हो । (२) कुबड़ा ।

धड़धड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] गिरने-छूटने का शब्द ।

क्रि. वि.—(१) धड़धड़ शब्द करके । (२) बेधड़क ।

धड़धड़ाना—क्रि. अ [अनु. धड़] धड़धड़ शब्द करना ।

धड़ल्ला—संज्ञा पुं. [अनु धड़] (१) धड़धड़ शब्द, धड़ाका ।

मुहा.—धड़ल्ले से—निडर होकर, बेधड़क ।

(१) भीड़भाड़, धूमधाम । (२) बड़ी भीड़ ।

धड़वाई—संज्ञा पु. [हिं. धड़ा] तौलनेवाला ।

धड़ा—संज्ञा पुं. [स. धट] (१) तराजू का बाट, बटखरा ।

मुहा.—धड़ा करना (बाँधना)—तौलने के पहले तराजू के दोनो पलड़ों को तौल में बराबर कर लेना । धड़ा बाँधना—कलंक या दोष लगाना ।

(२) एक तौल । (३) तराजू, तुला ।

संज्ञा पुं. [हि. धड़क्का] दल, झुंड, समूह ।

धड़ाक, धड़ाका—संज्ञा पुं. [अनु. धड़] धड़धड़ शब्द ।

मुहा.—धड़ाक (धड़ाके) से—चटपट, बेखटके ।

धड़ाधड़—क्रि. वि. [अनु. धड़] (१) धड़धड़ शब्द के साथ । (२) लगातार, जल्दी जल्दी, ताबड़तोड़ ।

धड़ेबंदी—संज्ञा स्त्री. [हि धड़ा+फा बंदी] (१) धड़ा बाँधना । (२) दोनों पक्षों का अपने को समान सबल बनाना ।

धड़ाम—संज्ञा पु. [अनु. धड़] कूदने-गिरने का शब्द ।

धड़ी—संज्ञा स्त्री. [स. धटिका, धटी] (१) एक तौल ।

मुहा—धड़ी भर (धड़ियों)—बहुत सा, ढेर का ढेर । धड़ी भरना—तौलना । धड़ीधड़ी करके लुटना—सब कुछ लुट जाना । धड़ी धड़ी करके लूटना—सब कुछ लूट लेना ।

(२) पाँच सौ की रकम (३) रेखा, लकीर ।

धत—संज्ञा स्त्री. [सं. रत, हि लत] (१) लत, बुरी बान, कुटेव । (२) जिद, रट, रटन ।

धतकारना—क्रि स [अनु. धत्] (१) तिरस्कार या अपमान के साथ हटाना । (२) धिक्कारना ।

धता—वि. [अनु. धत्] जो दूर हो गया हो ।

मुहा—धता बताना—(१) चलता करना, हटाना । (२) धोखा देकर टाल देना, टालटूल करना ।

धतिया—वि [हिं धत] (१) बुरी लतवाला । (२) जिद्दी हठी ।

धतींगड़, धतीगड़ा—सज्ञा पु [देश.] बेडौल, मुस्टंड ।

धतूर,—सज्ञा पु [अनु धू+स तूर] धूतू या नरसिहा नामक बाजा, तुरही । उ.—दसएँ मास मोहन भए मेरे आँगन बाजै धतूर ।

धतूर, धतूरा, धत्तूर—सज्ञा पुं [स. धुस्तूर, हि धतूरा] एक पौधा जिसके फल शिवजी पर चढ़ाये जाते हैं ।

मुहा—धतूरा खाये फिरना—पागल की तरह घूमना । उ.—सूरदास प्रभु दरसन कारन मानहुँ फिरत धतूरा खाये—३३०३ ।

धत्—अव्य. [अनु.] दुतकारने का शब्द ।

धधक—सज्ञा स्त्री. [अनु] (१) आग धधकने का भाव । (२) आँच, लपट ।

धधकना—क्रि अ [हि धधक] आग का दहकना या लपट के साथ जलना ।

धधकाना—क्रि. स [हिं धधकना] आग को दहकाना ।

धनंजय-वि [स] धन जीतने या प्राप्त करनेवाला ।

सज्ञा पु.—(१) अग्नि । (२) अर्जुन का एक नाम । (३) विष्णु । (४) शरीर की पांच वायुओं में एक ।

धन—सज्ञा पुं. [स.] सपत्ति, द्रव्य, दौलत ।

मुहा—धन उड़ाना—धन को चटपट खर्च कर डालना ।

(२) गैयों आदि का समूह । (३) अत्यत प्रिय पात्र, जीवन-सर्वस्व । उ—गिन की धन, सतनि कौ सरबस महिमा वेद-पुरान बखानत—१-११४ । (४) मूल, पूंजी । (५) कच्ची धातु ।

वि. [हि धन्य] (१) धन देनेवाला । (२) प्रशसापात्र ।

सज्ञा स्त्री [स. धनी] युवती, वधू । उ.—(क) गायौ गीध, अजामिल गनिका, गायौ पारथ-धन रे—१-६६ । (ख) सूरदास सोभा क्यौं पावै पिय विहीन धन मटके—१-२९२ । (ग) एकटक सिव धरे नैनन लागत स्याम सुता-सुत-धन आई—सा.-उ. ३० ।

धनक—सज्ञा पु. [स] धन की इच्छा ।

सज्ञा पु [स. धनु] धनुष, कमान ।

धनकुट्टी—सज्ञा स्त्री [हिं धान+कूटना] (१) धान कूटने की क्रिया । (२) धान कूटने की ओखली या मूसल ।

मुहा—धनकुट्टी करना—बहुत मारना-पीटना ।

धनकुबेर—सज्ञा पु. [स] बहुत धनी आदमी ।

धनकेलि—सज्ञा पु. [स.] कुबेर ।

धनतेरस—सज्ञा स्त्री [हि. धन+तेरस] कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी जब रात में लक्ष्मी जी की पूजा होती है ।

धनदंड—संज्ञा पु [स] जुरमाना ।

धनद—वि. [सं.] धन देनेवाला ।

सज्ञा पुं—(१) कुबेर । उ.—रामदूत दीपत नछत्र में पुरी धनद रुचि रुचि तम हारी—सा. ६८ । (२) अग्नि ।

धनदतीर्थ—सज्ञा पुं. [स.] व्रज के अंतर्गत एक तीर्थ ।

धनदा—वि स्त्री. [स.] धन देनेवाली, दात्री ।

सज्ञा स्त्री.—आश्विन कृष्ण एकादशी का नाम ।

धनदेव—सज्ञा पु. [स] कुबेर ।

धनधान्य—सज्ञा पु. [स.] धन-अन्न आदि ।

धनधाम—संज्ञा पु. [स.] घर-बार और रुपया पैसा ।

धननाथ—संज्ञा पु [स] कुबेर ।

धनपति—सज्ञा पु. [स.] (१) कुबेर । उ.—सुमना-सुत लै कमल सुमजित धनपति धाम को नाम सँवारे—सा. उ. १० । (२) एक वायु का नाम ।

धनपति-धाम—सज्ञा पु. [स] अलकापुरी ।

धनपत्र—सज्ञा पुं [स] बहीखाता ।

धनपात्र—सज्ञा पु [स.] धनी, धनवान् ।

धनपाल—वि. [स.] धन की रक्षा करनेवाला ।

संज्ञा पुं—कुबेर ।

धनमद—सज्ञा पुं. [स.] धन का अभिमान । उ.—धन-मद मूढनि अभिमानिनि मिलि लोभ लिए दुर्वचन सहै—१-५३ ।

धनवंत—वि. [हिं. धनवान्] धनी। उ.—आपुन रंक भई हरि-धन को हमहिं कहति धनवत—१३२४।

धनवंतरि—संज्ञा पुं. [सं. धन्वंतरि] देवताओं के वैद्य जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माने जाते हैं।

धनवती—वि. स्त्री. [सं.] जिसके पास खूब धन हो।

धनवा—संज्ञा पुं. [सं. धन्वा] धनुष, कमान।

धनवान, धनवान्—वि. [सं. धनवान्] धनी।

धनशाली—वि. [सं. धनशालिन्] धनी, धनवान।

धनस्यक—वि. [सं.] धन की इच्छा रखनेवाला।

धनस्वामी—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर।

धनहर—वि. [सं.] धन का हरण करनेवाला।

संज्ञा पुं.—चोर, लुटेरा। उ.—धनहर-हित-रिपु सुत-सुख पूरत नैनन मद्ध लगावै—सा -७६।

धनहीन—वि. [सं.] निर्धन, दरिद्र।

धना—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनि=स्त्री] युवती, वधू।

धनाढ्य—वि. [सं.] मालदार, धनवान्।

धनाधिप—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर।

धनाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खजांची। (२) कुबेर।

धनाना—क्रि. अ. [सं. धेनु] गाय का गाभिन होना।

धनार्थी—वि. [सं. धनार्थिन्] धन चाहनेवाला।

धनाश्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी जिसका प्रयोग वीर रस में विशेष होता है और जो दिन के दूसरे या तीसरे पहर में गायी जाती है।

धनि—संज्ञा स्त्री. [सं. धनी] युवती, वधू। उ.—सूरदास सोभा क्यों पावै, पिय-विहीन धनि मटकै—१-२६२।

वि. [सं. धन्य] पुण्यवान, सुकृती, प्रशंसनीय, कृतार्थ। उ.—(क) धनि मम गृह, धनि भाग हमारे, जौ तुम चरन कृपानिधि धारे—१-३४३। (ख) सूरदास धनि-धनि वह प्रानी जो हरि को व्रत लै निबह्यौ—२-८। (ग) गरुड़ त्रास तै जौ ह्याँ आयौ।····। धनि रिषि साप दियौ खगपति कौ ह्याँ तब रह्यौ छपाई—५७३।

धनिक—वि. [सं.] धनी, धनवान्।

संज्ञा पुं.—(१) धनी व्यक्ति। (२) पति। (३) महाजन।

धनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भली स्त्री। (२) युवती।

धनिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] धनी होने का भाव।

धनियाँ—वि. [सं. धनिक] (१) स्वामी, रक्षक, आश्रयवाला उ.—(क) निरखि निरखि मुख कहति लाल सौं मो निधनी के धनियाँ—१०-८१। (ख) नैंकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ—१०-१४५। (२) पति, प्रिय। (३) आढ्य, संपन्न। उ.—मिस्री, दधि, माखन मिस्रित करि, मुख नावत छबिधनियाँ—१०-२३८।

संज्ञा स्त्री. [सं. धनिका] युवती, वधू। उ.—सूर-स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ—१०-१४५।

संज्ञा पुं. [सं. धन्याक, धनिका] एक छोटा पौधा जिसके छोटे छोटे फल सुखाकर मसाले के काम में आते हैं।

धनियामाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनी + माला] गले का एक गहना।

धनिष्ट—वि. [सं.] धनी।

धनिष्ठा—संज्ञा स्त्री [सं.] तेईसवाँ नक्षत्र।

धनी—वि [सं. धनिन्] (१) धनवान। (२) दक्षता-संपन्न, गुणवान।

संज्ञा पुं.—(१) धनवान व्यक्ति। (२) अधिपति, स्वामी। (३) महाजन, पालक, रक्षक। उ.—कहा कमी जाके राम धनी—१-३६। (४) पति, स्वामी।

संज्ञा स्त्री. [सं.] युवती, वधू। उ.—(क) देखहु हरि जैसे पति आगम सजति सिंगार धनी—२४६१। (ख) बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी—१०-२४।

धनु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धनुष, कमान। उ.—मनु मदन धनु-सर सँधाने देखि घन-कोदंड—१-३०७। (२) एक राशि। (३) एक नाप जो चार हाथ की होती है।

धनुआ—संज्ञा पुं. [सं. धन्वा] धनुष।

धनुइ, धनुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनुष] छोटा धनुष।

धनुक—संज्ञा पुं. [सं धनुष] धनुष।

धनुर्गुण—संज्ञा पुं. [सं.] धनुष की डोरी।

धनुर्ग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धनुर्धर। (२) धनुर्विद्या।

धनुर्द्धर, धनुर्द्धारी—वि [सं.] धनुष चलानेवाला।

धनुर्यज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] एक यज्ञ जिसमें धनुष की पूजा और धनुर्विद्या की परीक्षा होती है।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] धनुष चलाने की विद्या।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] एक शास्त्र जिसमें धनुष चलाने की विद्या का वर्णन है।

धनुष, धनुस, धनुस्—संज्ञा पुं. [सं. धनुस्] (१) कमान। (२) एक राशि। (३) एक लग्न।

धनुष-टंकार—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'टन' का शब्द जो धनुष की डोरी को खींचकर छोड़ देने से होता है।

धनुषशाला—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनुष+शाला] वह स्थान जहाँ परीक्षा या यज्ञ का धनुष रखा हो। उ.—धनुषशाला चले नँदलाला—२५८४।

धनुहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनु + हाई] धनुष की लड़ाई।

धनुहियाँ, धनुहिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनुष] छोटा धनुष, छोटी कमान। उ.—(क) करतल-सोभित बान धनुहियाँ—९-१९। (ख) जैसे बधिक गँवहिते खेलत अत धनुहिया तानैं—३३६६।

धनुहीं, धनुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. धनुष] छोटी कमान। उ.-धनुही-बान लए कर डोलत—९-२०।

धनेश, धनेस—संज्ञा पुं. [सं. धनेश] (१) धन का स्वामी या रक्षक। (२) कुबेर।

धनेश्वर, धनेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. धनेश्वर] (१) धन का स्वामी। (२) कुबेर।

धनैषी—वि. [सं. धनैषिन्] धन चाहनेवाला।

धन्न—वि. [सं. धन्य] धन्य।

धन्नासेठ—संज्ञा पुं. [हिं. धन+सेठ] बहुत धनी।

धन्नी—संज्ञा स्त्री. [सं. (गो) धन] (१) गाय-बैलों की एक जाति। (२) घोड़े की एक जाति। (३) बेगार का आदमी।

धन्य—वि. [सं.] (१) पुण्यवान्, प्रशंसा करने या साधुवाद देने के योग्य। उ.—(क) धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए—१-३४१। (ख) धन्य-धनि कह्यौ पुनि लच्छमी सौं सबनि—८-८। (२) धन देनेवाला।

धन्यवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधुवाद, प्रशंसा। (२) उपकार के प्रत्युत्तर में कहा जानेवाला कृतज्ञता-सूचक शब्द।

धन्या—वि. स्त्री. [सं.] बड़ाई या प्रशंसा के योग्य।

संज्ञा स्त्री.—(१) उपमाता। (२) वनदेवी।

धन्वंतर—संज्ञा पुं. [सं.] चार हाथ की माप।

धन्वंतरि, धन्वत्रि—संज्ञा पुं. [सं. धन्वंतरि] देव-वैद्य जो चौदह रत्नों के साथ समुद्र से निकले थे। उ.—बहुरि धन्वत्रि आयौ समुद्र सौं निकसि तुरत अरु अमृत लिए रग लायौ—८-८।

धन्व—संज्ञा पुं. [सं.] धनुष, कमान।

धन्वा—संज्ञा पुं. [सं. धन्वन्] (१) धनुष। (२) रेगिस्तान। (३) सूखी जमीन। (४) आकाश, अंतरिक्ष।

धन्वाकार—वि. [सं.] धनुष की तरह गोलाई के साथ झुका हुआ।

धन्वायी—वि. [सं. धन्वायिन्] धनुर्द्धर।

धन्विन—वि. [सं.] सुअर, शूकर।

धन्वी—वि. [सं. धन्विन्] (१) धनुर्द्धर। (२) चतुर।

धप—संज्ञा स्त्री. [अनु.] भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द।

संज्ञा पुं.—धौल, थप्पड़, तमाचा।

धपना—क्रि. अ. [हिं. धाप] (१) दौड़ना। (२) लपकना।

धपाना—क्रि. स. [हिं. धपना] (१) दौड़ाना। (२) घुमाना।

धपि—क्रि. अ. [हिं. धपना] झपटकर, लपककर। उ.—सीला नाम ग्वालिनी तेहि गहे कृष्न धपि धाइ हो—२४४९।

धप्पा—संज्ञा पुं. [अनु. धप] (१) थप्पड़। (२) हानि, घाटा।

धप्पाड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. धप] दौड़।

धब—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द। (२) मोटे फसफस आदमी के पैर रखने का शब्द।

धबला—संज्ञा पुं. [देश.] स्त्रियों का लहँगा।

धब्बा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) दाग, निशान। (२) कलंक।

मुहा.—नाम में धब्बा लगना—कलंक लगना। नाम में धब्बा लगाना—कलंक या दोष लगाना।

धम—संज्ञा स्त्री. [अनु.] भारी चीज गिरने का शब्द।

धमक—संज्ञा स्त्री. [अनु. धम] (१) भारी चीज गिरने का शब्द। (२) जोर से पैर रखने का शब्द। (३) भारी चीज के चलने लुढ़कने से होनेवाला शब्द। (४) चोट, आघात। (५) भारी शब्द का हृदय पर

आघात, दहल।

संज्ञा पुं. [स.] (१) धौंकनेवाला (२) लोहार।

धमकना—क्रि. अ. [हिं. धमक] (१) धमाका करना।

मुहा.—आ धमकना—जोर-शोर से आना। जा धमकना—जोर-शोर से जा पहुँचना।

(२) रह रह कर दर्द करना, व्यथित होना।

धमकाना-क्रि. स. [हिं धमक] (१) डराना। (२) डाँटना।

धमकि—क्रि. अ. [हिं धमकना] धमाका करके। उ— धमकि मारयौ घाउ गमकि हृदय रह्यौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे- २६२१।

धमकी—संज्ञा स्त्री [हिं. धमकाना] डाँट-डपट, घुड़की।

मुहा—धमकी में आना—डरकर कोई काम करना।

धमक्का—सज्ञा पुं. [हिं. धमाका] (१) आघात। (२) घूँसा।

धमगजर, धमगज्जा—सज्ञा पुं [अनु धम+गर्जन] (१) उधम, उत्पात। (२) लड़ाई, युद्ध।

धमधमाना-क्रि अ [अनु धम] 'धम धम' शब्द करना।

धमधूसर—वि [अनु धम+स धूसर] मोटा और बेडौल।

धमन—सज्ञा पुं. [स] (१) हवा से फूँकने का काम। (२) फुँकनी, धौंकनी।

धमना—क्रि. स. [स धमन] धौंकना, फूँकना।

धमनि—सज्ञा स्त्री [स] (१) धमनी। (२) शब्द।

धमनी—सज्ञा स्त्री [स] शरीर की छोटी-बड़ी नाडी।

धमसा—सज्ञा पु [देश.] धौंसा, नगाड़ा।

धमाका—सज्ञा पु. [अनु] (१) भारी चीज गिरने का शब्द। (२) घूँसा (३) तोप-बन्दूक या पटाखे का शब्द। (४) आघात, धक्का।

धमाचौकड़ी—सज्ञा स्त्री [अनु धम+हिं चौकड़ी] (१) कूद-फाँद, उछल-कूद। (२) मार-पीट।

धमाधम—क्रि वि. [अनु] (१) 'धमधम' शब्द के साथ। (२) कई बार धमाके के साथ।

सज्ञा स्त्री.—(१) कई बार 'धमधम' शब्द। (२) मार-पीट।

धमाना—क्रि. स. [देश.] जोर से हवा करना, धौंकना।

धमार, धमारि, धमारी, धमाल—संज्ञा स्त्री. [अनु. हिं. धमार] (१) उछल-कूद, धमाचौकड़ी। (२) नटों की कलाबाजी।

संज्ञा पुं.—(१) होली में गाने का एक ताल। (२) होली में गाने का एक तरह का गीत। उ—(क) एक गावत है धमारि एक एकनि देति गारि गारी—२४२६। (ख) जुगल किसोर चरन रज माँगौं गाऊँ सास धमार—२४४७।

धमारिया, धमारी—[हिं. धमार] उपद्रवी, उत्पाती।

संज्ञा पुं.—(१) कलाबाज नट। (२) धमार का गायक।

धमूका—संज्ञा पुं. [अनु. धाम] (१) धमाका। (२) घूँसा।

धम्माल—संज्ञा स्त्री. [हिं. धम] (१) उछलकूद। (२) कलाबाजी।

धम्मिल—सज्ञा पुं. [स] बँधे हुए बाल, जूड़ा।

धर—वि. [सं.] (१) धारण करने या सँभालनेवाला। उ.—(क) रवि दो धर रिपु प्रथम विकासो।...... । पतनी लै सारँगधर सजनी सारँगधर मन खैंचो—सा. ४८। (ख) गिरिधर, व्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर, माधौ पीताम्बरधर—५७२। (२) ग्रहण करने या थामनेवाला।

सज्ञा पुं.—(१) पर्वत, पहाड़। (२) कच्छप जो धरा को धारण किये है। (३) विष्णु। (४) श्रीकृष्ण।

संज्ञा पुं. [हिं. धड़] शरीर का मध्य भाग, धड़। उ.—(क) राहु सिर, केतु धर कौ भयौ तबहि तैं, सूर-ससि कौं सदा दुःखदाई—८-८। (ख) राहु-सिर, केतु धर भयौ यह तबहि सूर-ससि दियौ ताकौं बताई—८-६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धरना] धरने-पकड़ने की क्रिया।

यौ.—धर-पकड़-बदी बनाने की क्रिया, गिरफ्तारी।

संज्ञा स्त्री [हिं. धरा] (१) धरती, पृथ्वी। उ.—(क) माधौ जू, यह मेरी इक गाइ।...... । व्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ—१-५५। (ख) धर बिधंसि नल करत किरषि हल बारि बीज बिथरै—१-११७। (ग) उबर्यौ स्याम महरि बड़-भागी। बहुत दूरि तैं आइ पर्यौ धर धौं कहुँ चोट न लागी—१०-७६। (घ) लोटत धर पर ग्यान गर्व गयौ—३४०६।

क्रि. स. [हिं धरना] (१) रखकर। उ.—सुचही-पति पितु प्रिया पाइ पर धर सिर आप मनावो—सा. ६। (२) पकड़कर, ग्रहण करके।

मुहा.—धर दबाना (दबोचना)—बलपूर्वक पकड़ कर अपने अधिकार में कर लेना। (२) तर्क या विवाद में हराना। धर-पकड़ कर—जबरदस्ती।

धरई—क्रि. स. [हिं. धरना] रखता है, धरता है।

मुहा.—नहिं चित्त धरई—ध्यान नहीं रखता है। उ.—बीज बोइये जोइ अत लोनिये सोइ समुझि यह बात नहि चित्त धरई—१० उ २१। गर्वे जिय धरई—मन में बहुत अभिमान रखता है। उ.—गगन सिखर उतर चढ़ै गर्वे जिय धरई—२८६८।

धरक—संज्ञा स्त्री. [हिं धड़क] (१) भय, आशंका। (२) साहस।

धरकना—क्रि. अ. [हि. धड़कना] (हृदय का) स्पदन करना।

धरकि—क्रि अ. [हिं धड़कना] स्पंदन करके।

प्र.—छतियाँ धरकि रही—आवेग आदि के कारण छाती धड़क रही है। उ.—सेज रचि पचि साज्यौ सघन कुज निकुज चित चरनन लाग्यौ छतियाँ धरकि रही—२२३६।

धरकी—संज्ञा स्त्री. [हि धडक] धडकन, धुकधुकी। उ. —कछु रिस कछु नागर जिय धरकी—पृ. ३१७ (६८)।

धरके—क्रि. अ [हिं धड़कना] भय से धड़कने या स्पदन करने लगे। उ.—सूरदास प्रभु आइ गोकुल प्रगट भए, मतनि हरष, दुष्ट-जन-मन धरके—१०-३०।

धरकौ—संज्ञा स्त्री. [हिं धड़क (अनु.)] (१) डर, भय। उ.—माखन खात पर घर कौ। बाँधत तोहि नैंकु नहिं धरकौ—३६१। (२) आशंका, खटका।

धरण—संज्ञा पु. [स] (१) रखने, थामने, धारण करने आदि की क्रिया। (२) पुल, बाँध। (३) संसार।

धरणि, धरणी—संज्ञा स्त्री [स धरणि] पृथ्वी। उ.—(क) सूर तुरत मधुवन पग धारे धरणी के हितकारि—२५३३। (ख) धरणि उमँगि न माति धर में यती योग बिसारि—पृ ३४७ (५४)।

धरणिधर, धरणीधर—संज्ञा पुं [स धरणि] (१) पृथ्वी को धारण करनेवाला। (२) कच्छप। (३) पर्वत। (४) विष्णु। (५) श्रीकृष्ण। (५) शिव। (६) शेषनाग।

धरणीपूर—संज्ञा पुं [स.] समुद्र, सागर।

धरणीसुत—संज्ञा पु. [स] (१) मगल। (२) नरकासुर।

धरणीसुता—संज्ञा स्त्री [सं] सीता जी।

धरत—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) धारण करता है। उ.—अविहित वाद-विवाद सकल मत इन लगि भेष धरत—१-५५। (२) रखता है। उ.—बान भीर सुजान निकसत धरत धरनी पाइ—सा. १८।

धरता—संज्ञा पुं. [हिं धरना] (१) देनदार, ऋणी। (२) धर्मार्थ की गयी कटौती। (३) कार्य-भार लेनेवाला।

यौ.—कर्ता-धरता—सब कुछ करने-धरनेवाला।

क्रि स भूत—(१) धारण करता। (२) पकड़ता।

धरति—क्रि. स. [हिं धरना] (१) आरोपित करती है, अगीकार करती है। (२) धारण करती है, स्थापित करती है। उ.—मन ही मन अभिलाप करति सब हृदय धरति यह ध्यान १०—२७२।

धरति—क्रि.स [हिं धरना] (१) रखती है, सहारा लेती है।

प्र.—धरति न धीर—धीरज नहीं रखती, धैर्य न रख सकी। उ.—पुत्र-कबध अक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर—१-२९।

(२) स्थित या स्थापित करती है। उ.—कमल पर वज्र धरति उर लाइ—२५५५। (३) पकड़ने का प्रयत्न करती हुई। उ.—रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर घर धरति—२६६९।

धरती—संज्ञा स्त्री [स. धरित्री] (१) धरती। (२) स्थावर संपत्ति, गाँव-गिराँव, धाम। उ.—जौवन-रूप-राज-धन-धरती जानि जलद की छाहीं—२-२३। (३) ससार, जगत।

क्रि. स भूत [हि. धरना] (१) धारण करती। (२) स्थिर या स्थापित करती। (३) पकड़ती, थामती।

धरते—क्रि. स [हिं. धरना] (१) आरोपित करते, अवलंबन करते, अंगीकार करते। उ.—सूर-स्याम तौ घोष कहातौ जो तुम इती निठुराई धरते—२७३८। (२) ग्रहण करते।

प्र.—देह धरते—**अवतार लेते** । उ.—जौ प्रभु नर-देही नहीं धरते । देवै गर्भ नहीं अवतरते—११८६ ।

धरतौ—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) **धरता, रखता ।**

मुहा.—पग धरतौ—**चलता, आगे बढ़ता ।** उ.—मुख मृदु-वचन जानि मति जानहु, सुद्ध पथ पग धरतौ —१-२०३ ।

(२) **पकड़ता, हथियाता, ग्रहण करता ।** उ.—जौ तू राम-नाम-धन धरतौ । अबकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ—१-२६७ ।

धरधर—संज्ञा पुं. [हिं धराधर] (१) **पृथ्वी को धारण करने वाले ।** (२) **शेषनाग ।** (३) **पर्वत ।** (४) **विष्णु ।**

संज्ञा स्त्री [अनु धड़धड़] **जलधारा के गिरने का शब्द ।** उ.—बाजत सब्द नीर को धरधर—१०५७ ।

धरधरा—संज्ञा पुं. [अनु.] **धड़कन, धकधकाहट ।**

धरधराना—क्रि. अ. [हिं. धड़धड़ाना] **'धड़धड़' शब्द होना ।**

क्रि. स.—**'धड़धड़' शब्द करना ।**

धरन—क्रि. स. [हिं धरना] **धर, रख ।** उ.—पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार—१-९९ ।

प्र.—देह धरन—**अवतार धारण करने की क्रिया या भाव, अवतार धारण करनेवाला ।** उ.—भक्त हते देह धरन पुहुमी कौ भार हरन जनम-जनम मुक्तावन—१०-१५१ ।

संज्ञा स्त्री [हिं धरना] (१) **धारण करने या उठानेवाला उसकी क्रिया या भाव ।** उ—(क) बूड़तहि ब्रज राखि लीन्हौं, नरहिं गिरिवर धरन—१-२०२ । (ख) परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर धर-धरन । ... जासु महिमा प्रगट केवट, धोइ पग सिर धरन—१-३०८ ।

(२) **रखने या स्थित करने की क्रिया या भाव ।** उ—मुरली अधर धरन सीखत हैं वनमाला पीताम्बर काछे—५०७ । (३) **लकड़ी-लोहे की कड़ी, धरनी ।** (४) **गर्भाशय को जकड़नेवाली नस ।** (५) **गर्भाशय ।** (६) **टेक, हठ, जिद ।**

संज्ञा स्त्री [स. धरणि] **धरती, जमीन ।**

धरना—क्रि स [सं धारण] (१) **पकड़ना, थामना, ग्रहण करना ।** (२) **रखना, स्थित या स्थापित करना ।** (३) **पास या रक्षा में रखना ।** (४) **पहनना, धारण करना ।** (५) **आरोपित करना, अवलंबन करना ।** (६) **आश्रय ग्रहण करना, सहायता के लिए घेरना ।** (७) **किसी स्त्री को रखेली की तरह रखना ।** (८) **गिरवीं या रेहन रखना ।**

संज्ञा पु.—**कोई बात पूरी कराने के लिए अड़कर या हठ करके बैठना ।**

धरनि—संज्ञा स्त्री. [स. धरणी] **पृथ्वी ।** उ.—(क) धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिर न लागैं डार—१-८८ । (ख) कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि जल-सायर मसि घोरै —१-१२५ । (ग) चलत पद-प्रतिबिंब मनि आँगन घुटरुवनि करनि । जलज-संपुट सुभग छबि भरि लेति उर जनु धरनि—१०-१०९ ।

संज्ञा स्त्री [हिं. धरन] **टेक, हठ, अड़, जिद ।** उ.—(क) एक अधार साधु संगति कौ रचि-पचि मति सँचरी । याहू सौंज संचि नहिं राखी अपनी धरनि धरी—१-१३० । (ख) सूर जबहि आवतिं हम तेरैं तब तब ऐसी धरनि धरी री—१६२४ । (ग) ज्यों चातक स्वातिहिं रट लावै तैसिय धरनि धरी-पृ ३२९ (८२) । (घ) ज्यों अहि डसत उदर नहि पूरत ऐसी धरनि धरी — ३०१० ।

धरनिधर—संज्ञा पुं [सं धरणि] (१) **पृथ्वी को धारण करनेवाला ।** (२) **कच्छप ।** (३) **शेषनाग ।** (४) **पर्वत ।**

धरनिपति—संज्ञा पु [स धरणि+पति] **पृथ्वी के स्वामी ।** उ.—रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, वोकपति धरनिपति गगनपति, अगमबानी—१५२२ ।

धरनी—संज्ञा स्त्री. [स. धरणी] **पृथ्वी, धरती ।** उ.—बान भरि सुजान निकसत धरत धरनी पाइ—सा. ३८ ।

क्रि. स. [हिं. धरना] **धरना, रखना ।** उ—मेरी कैती बिनती करनी । पहिलै करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाथ हाथ लै धरनी—९-१०१ ।

धरनीधर—संज्ञा पु. [सं. धरणिधर] (१) **पृथ्वी को धारण करनवाले ।** (२) **कच्छप ।** (३) **शेषनाग ।** (४) **पर्वत ।** (५) **विष्णु या उनके अवतार ।** उ.—गिरिधर, बज्रधर, मुरलीधर, धरनीधर, माधौ, पीताम्बरधर-५७२ ।

धरनैत, धरनैत—सज्ञा पु [हि धरना+एत, ऐत (प्रत्य.)] अड़ने या धरना देनेवाला ।

धर-पकड़—सज्ञा स्त्री [हिं धरना+पकड़ना] **अपराधी या शत्रु वर्ग के व्यक्ति को पकड़ने की क्रिया या भाव ।**

धरम—सज्ञा पु. [स. धर्म] (१) **धर्म, कर्तव्य ।** (२) **धर्मराज, यमराज ।** उ.—(क) जीव, जल-थल जिते, वेष धरि धरि तिते अटत दुरगम अगम अचल भारे । मुसल मुदगर हनत, त्रिविध करमनि गनत, मोहि दडत धरम-दूत हारे—१-१२० । (ख) आज रन कोपो भीम कुमार । कहत सबै समुझाय सुनो सुत-धरम आदि चित धार—सा. ७४ । (३) **धर्मात्मा, धर्म की गति समझनेवाला ।**

धरमसार—सज्ञा स्त्री. [स. धर्मशाला] (१) **धर्मशाला ।** (२) **सदाव्रत ।**

धरमसुत—संज्ञा पु. [स. धर्मसुत] **धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ।** उ—रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैं धरमसुत धरनी हारी—१-२४८ ।

धरमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. धर्म+आई (प्रत्य.)] **धार्मिकता ।**

धरमी—वि. [स. धर्मिन्] (१) **धर्माचरण करनेवाला, धर्मात्मा ।** (२) **किसी धर्म में विश्वास रखनेवाला ।**

धरवाना—क्रि. स [हिं. धरना का प्रे] (१) **पकड़ाना ।** (२) **रखवाना ।**

धरवायौ—क्रि. स. [हि. धरवाना] **धराया, रखाया, अंगीकार कराया, अवलंबन दिया**—उ —माता कौ परमोधि, दुहुँनि धीरज धरवायौ—५८६ ।

धरषना—क्रि. स. [स धर्षण] **दबाना, मल डालना ।**

धरसना—क्रि. अ. [स धर्षण] **डर जाना, दब जाना ।**
क्रि. स —**अपमानित करना ।**

धरसनी—संज्ञा स्त्री [स. धर्षणी] **कुलटा स्त्री ।**

धरहर—सज्ञा स्त्री [हि धरना+हर] (१) **धर-पकड़, गिरफ्तारी ।** (२) **बीच-बचाव ।** (३) **रक्षा, बचाव ।** (४) **धैर्य, धीरज ।**

धरहरना—क्रि. अ —[अनु.] **'धड़ धड' शब्द करना ।**

धरहरा—सज्ञा पु.—[स. धवलगृह] **मीनार, धौरहर ।**

धरहरि—सज्ञा स्त्री. [हि धरना+हर (प्रत्य)=धरहर] (१) **धरपकड़, गिरफ्तारी ।** (२) **बीच-बचाव, लड़नेवालों को रोकने का काम ।** (३) **बचाने का काम, रक्षा ।** उ.—(क) भीषम, द्रोन, करन, अस्थामा, सकुनि सहित काहू न सरी । महापुरुष सब बैठे देखत, केस गहत धरहरि न करी—१-२४९ । (ख) कहा भीम के गदा धरैं कर, कहा धनुष धरैं पारथ । काहु न धरहरि करी हमारी, कोउ न आयौ स्वारथ—१-२५९ । (ग) जब जमजाल पसार परैगौ हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि —१-३१२ ।

धरहरिया—सज्ञा पुं. [हिं. धरहरि] (१) **बीच-बचाव करनेवाला ।** (२) **बचाव या रक्षा करनेवाला ।**

धरहु—क्रि. स [हिं. धरना] **धरो, रखो ।** उ —उर ते सखी दूरि करु हारहि ककन धरहु उतारि—२६८२ ।

धरा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) **पृथ्वी, धरती ।** उ.—काँपन लागी धरा, पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई—१-२०७ । (२) **ससार, जगत ।** (३) **गर्भाशय ।** (४) **नाड़ी ।**

धराइ—क्रि. स. [हिं धरना] **धर कर, धारण करके ।** उ. —रक चलै सिर छत्र धराइ—१-१ । (२) **शोध कराकर ।** उ —मेरे कहैं विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ—१०-९५ ।

धराई—सज्ञा स्त्री. [हिं. धरा+ई (प्रत्य)] **पृथ्वी पर ।** उ.—सुरपति पूजा मेटि धराई—१०१७ ।
क्रि स. [हिं. धराना] **रखायी, स्थापित की ।**

धराउर—सज्ञा पु. [हिं. धरोहर] **थाती, अमानत ।**

धराऊ—सज्ञा पु. [हिं. धराना] **स्थित करानेवाला, रखानेवाला, देनेवाला ।** उ.—भागि चलौ, कहि गयौ उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ । हौ डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ—४८१ ।
वि [हिं. धरना+आऊ (प्रत्य)] **मामूली से बहुत अच्छा, बहुमूल्य ।**

धराए—क्रि. स [हिं 'धरना' का प्रे] (१) **स्थित कराये ।** (२) **रखाये ।** उ.—मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं । लै लै ते हथियार आपने, सान धराए त्यौं —१-१५१ ।

धराक, धराका—सज्ञा पु. [हिं. धड़ाका] **'धड़धड़' शब्द ।**

धरातल—सज्ञा प. [स] (१) **पृथ्वी ।** (२) **सतह ।** (३) **लबाई चौड़ाई का गुणनफल ।**

धरात्मज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मंगल।** (२) **नरकासुर।**

धरात्मजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सीता जी।**

धराधर, धराधरन—संज्ञा पुं. [सं. धराधर] (१) **शेषनाग जो पृथ्वी को धारण करता है।** उ.—उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ—१०-६४। (२) **विष्णु या उनके श्रीकृष्ण आदि अवतार।** उ.—सूर स्याम गिरिधर धराधर हलधर यह छवि सदा थिर रहौ मेरैं जियतौ—३७३।

धराधरन-धर-रिपु—संज्ञा पुं. [सं. धरा (=पृथ्वी)+धरन (=धारण करनेवाला, शेषनाग)+धर (शेषनाग को धारण करनेवाला, शिवजी)+रिपु (शिवजी का शत्रु काम)] **कामदेव।** उ.—धराधरनधर-रिपु तन लीनो कहो उदधि-सुत बात—सा. ८।

धराधार—संज्ञा पुं. [सं.] **शेषनाग।**

धराधारधारी—संज्ञा पुं. [सं.] **शिव जी।**

धराधिपति—संज्ञा पुं. [सं. धरा+अधिपति] **राजा।**

धराधीश—संज्ञा पुं. [सं.] **राजा।**

धराना—क्रि. स. [हिं. 'धरना' का प्रे.] (१) **पकड़ाना, थमाना।** (२) **रखाना, स्थित कराना।** (३) **ठहराना, निश्चित कराना।**

धरापुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] **मंगल ग्रह।**

धरापुत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सीता जी।**

धराये—क्रि. स. [हिं. धराना] **रखवाये, स्थापित कराये।** उ.—मंगल कलश धराये द्वारे वंदनवार बँधाई—सारा. २६६।

धरायो,धरायौ—क्रि. स. [हिं धराना] (१) **धराया, रखाया, निर्धारित कराया।** उ.—(क) बहुरौ एक पुत्र तिन जायौ। नाम पुररुवा ताहि धरायौ—६-२। (ख) पहिलो पुत्र रुक्मिनी जायौ, प्रद्युम्न नाम धरायौ—सारा. ६८६। (२) **रखवाया, धारण कराया।** उ.—गरुड़-त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ। तौ प्रभु-चरन-कमल फन-फन प्रति अपनैं सीस धरायौ—५७३।

धरावत—क्रि. स. [हिं. धरावना] **रखाते हैं, निर्धारित कराते हैं।** उ.—जो परि कृष्ण कूबरिहिं रीझे तो सोइ किन नाम धरावत—२२६३।

धरावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. धरावना] (१) **धराने या रखाने की क्रिया या भाव।** (२) **धराने-रखाने वाले।**

प्र.—देह-धरावन—**अवतार लेनेवाले।** उ.—दीन-बन्धु असरन के सरन, सुखनि जसुमति के कारन देह धरावन—१०-२५१।

धरावना—क्रि. स. [हिं. धराना] (१) **पकड़ाना, थमाना।** (२) **स्थित कराना, रखाना।** (३) **ठहराना, निश्चित करना।**

धराशायी - वि. [सं. धराशायिन्] **जमीन पर गिरा या पड़ा हुआ।**

धरासुत—संज्ञा पुं. [सं.] **मंगल ग्रह।**

धरासुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सीताजी।**

धरासुर—संज्ञा पुं. [सं.] **ब्राह्मण (देवता)।**

धरास्त्र—संज्ञा. पुं. [सं.] **एक तरह का अस्त्र।**

धराहर संज्ञा. पुं. [हिं. धुर+धर] **मीनार, धौराहर।**

धराहिं—क्रि. स. [हिं. धरना] **धरें, रखें।** उ.—यह लालसा अधिक मेरैं जिय जो जगदीस कराहिं। मो देखत कान्हर इहि आँगन, पग द्वै धरनि धराहिं—१०-७५।

धराहीं—क्रि. स. [हिं. धरना] **आरोपित करें, अवलंबन करें।** उ.—अबला सार ज्ञान कहा जानैं कैसैं ध्यान धराहीं—३३१२।

धरि—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) **धारण करके, (रूप) धर कर, रख कर।** उ.—(क) भक्तबछल बपु धरि नरकेहरि, दनुज दह्यौ, उर दरि, सुर-साँई—१-६। (ख) रहि न सके नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछार्यौ—१-१०६। (२) **जबरदस्ती पकड़ कर।** उ.—जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देख घिनैहै। घर के कहत सबारे काढौ, भूत होहि धरि खैहै—१-८६। (ख) बालक-बच्छ लै गयौ धरि—४८५। (३) **स्थापित करके, जमाकर, ठहराकर।** उ.—सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि जिन भ्रम सकल निवार्यौ—१-३३६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धरन] **टेक, आश्रय, सहारा, रक्षा का उपाय।** उ.—अब मोकौं धरि रही न कोऊ तातैं जाति मरी—१-२५४।

धरिऐ—क्रि. स. [हिं. धरना] **अंगीकार कीजिए, अवलंबन**

कीजिए। उ.—सरन आए की प्रभु, लाज धरिऐ—१-११०।

धरित्री—संज्ञा स्त्री. [सं] **धरती, पृथ्वी।**

धरिवो—संज्ञा स्त्री. [हिं. धरना] **लेने या रखने की क्रिया या भाव।** उ.—दूरि न करहि बीन धरिवो—२८६०।

धरिया—क्रि स [हिं धरना] **धरना, रखना, स्थित करना।** उ—नवल किसोर नवल नागरिया। अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उर धरिया—६८८।

धरिहैं—क्रि. स [हिं धरना] (१) **स्त्री को रखेली की भाँति रखेंगे।** उ—राधा को तजिहैं मनमोहन कहा कस दासी धरिहैं—२६५७। (२) **लेंगे, धारण करेंगे।** उ.—कनक-दंड आपुन कर धरिहैं—११६१।

धरिहै—क्रि. स [हिं. धरना] (१) **अंगीकार करे, सुने, स्वीकार करे, माने।** उ—भए अपमान उहाँ तू मरिहै। जौ मम वचन हृदय नहिं धरिहै—४-५। (२) **धारण करेगा, ग्रहण करेगा।** उ.—भएँ अस्पर्स देव-तन धरिहै—८-२।

धरिहौ—क्रि. स. [हिं. धरना] **धरोगे, स्थापित करोगे, रखोगे।** उ.—या विधि जौ हरि-पद उर धरिहौ। निस्संदेह सूर तौं तरिहौ—१-३४२।

धरी—क्रि. स. [हिं धरना] (१) **धारण की, स्थिर की, रखी।** उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं—१-५। (ख) सदा सहाइ करी दासनि की जो उर धरी सोइ प्रति-पारी—१-१६०। (२) **बसायी, स्थापित की।** उ.—मनसा-बाचा कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी—१-११५। (३) **ठहरायी, स्थिर की।** उ.—तब रिषि कृपा ताहि पर धरी—६-३।

प्र.—आनि धरी—**पकड़ लाया, आकर पकड़ा।** उ.—सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी—१-१६। मौन धरी—**चुप्पी साधी, विरोध नहीं किया।** उ—अर्जुन भीम महाबल जोधा इनहूँ मौन धरी—१-२५४। मन धरी—**विचार किया, निश्चय किया, इच्छा की।** उ.—कृपा तुम करी मैं भेट कौं मन धरी नहीं कछु बस्तु ऐसी हमारैं—४-११। देह धरी—(१) **अवतार लिया।** (२) **शरीर बढ़ाया।** उ.—नैंन बह देह धरी जोजन लौं—१०-५३।

संज्ञा स्त्री [हिं. धरना] **रखैल, रखेली स्त्री।**

संज्ञा स्त्री. [हिं ढार] **कान का एक गहना।**

धरे—क्रि स [हिं. धरना] (१) **धारण किये हुए, रखे हुए, पकड़े हुए।** उ.—चक्र धरे बैकुंठ तैं धाए, वाकी पैज सरै—१-८२। (ख) खड्ग धरे आवै तुम देखत, अपनै कर छिन माहँ पछारै—१०-१०। (२) **पकड़े हुए, पकड कर।** उ.—वह देवता कस मारैगो केस धरे धरनी घिसियाइ—५३१।

प्र.—मन धरे-**ध्यान लगाये, चित्त रमाये।** उ.—(क) विषयी भजे, विरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे—१-१६८। (ख) सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैं मन न धरे—४८३। वेष धरे—**वेश बनाये, सजे सजाये।** उ.—सुन्दर वेष धरे गोपाल—४७४। दोष धरे—**दोष लगाये**—उ—सूरदास गथ खोटो काहे पारखि दोष धरे—पृ० ३३१ (५)। देह धरे को—**जन्म लेने का।** उ.—देह धरे को यह फल प्यारी—१२२६।

धरेल, धरेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. धरना] **रखैल, रखेली।**

धरेला—संज्ञा पुं. [हिं धरना] **वह प्रेमी जिसे बिना विवाह के ही पति-रूप में ग्रहण कर लिया गया हो।**

धरैं—क्रि. स. [हिं. धरना] **धरने से, पकड़ने या ग्रहण करने से।** उ.—कहा भीम के गदा धरैं कर, कहा धनुष धरैं पारथ—१-२५६। (२) **धारण करते हैं।** (३) **रखते हैं।** उ.—इक दधि गोरोचन-दूब सबकैं सीस धरैं—१०-२४।

धरै—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) **धरता है, रखता है।** उ.—कौन बिभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै—१-३५। (२) **धारण करता है, आरोपित करता है, अंगीकार करता है।** उ—(क) ब्रज-जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै—१-३७। (३) **ध्यान लगाये।** उ—जो घट अंदर हरि सुमिरै। ताकौ काल रूठि,का करिहै, जो चित चरन धरै—१०-८२।

धरैगौ—क्रि. स. [हिं. धरना] **धरेगा, रखेगा, धारण करेगा।** उ—जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगौ। तौ को अस त्राता जु अपन करि, कर कुठावँ पकरैगौ—१-७५।

धरैया—संज्ञा पुं. [हिं. धरना] **धरनेवाला, रखनेवाला**। उ.—भक्ति-हेत जसुदा के आगैं, धरनी चरन धरैया—१०-१३१।

संज्ञा पुं.—**पकड़नेवाला**।

धरैहौ—क्रि. स. [हिं. धरना] **रखोगे, धरोगे**।

मुहा.—नाम धरैहौ—**बदनामी कराओगी**। उ.—तुम हौ बड़े महर की बेटी कुल जनि नाम धरैहौ—१४६८।

धरो—क्रि. स. [हिं धरना] (१) **रखो**। (२) **पकड़ो**।

धरोड़, धरोहर—संज्ञा स्त्री. [हि धरना, धरोहर] **थाती, अमानत**।

धरौं—क्रि. स. [हिं. धरना] **धरता हूँ, रखता हूँ, रखूँ**। उ.—छहौं रस जौ धरौं आगैं, तऊ न गध सुहाइ—१-५६।

प्र.—भरि धरौं अँकवारि—**छाती से लगाकर रखूँ, पकड़कर छाती से लगा लूँ**। उ.—कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवारि—१०-२७३।

धरौ—क्रि. स. [हिं धरना] (१) **पकड़ो**। उ.—भरत पथ पर देख्यौ खरौ। वाकैं बदले ताकौं धरौ—५-४। (२) **धरो, रखो, अपनाओ**।

प्र.—चित धरौ (१) **विचारो, सोचो**। उ.—(क) हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ—१-२२०। (२) **ध्यान करो**। उ.—हरि-चरनारविंद उर धरौ—१-२२४। मेरी इच्छा धरौ—**मेरी चाहना रखते हो, मुझे पाना चाहते हो**। उ—जौ तुम मेरी इच्छा धरौ। गंधर्वनि कै हित तप करौ—६-२।

(३) **स्त्री को बिना विवाह के पत्नी की तरह रख लो**। उ.—ब्याहौ बीस धरौ दस कुबजा अतहु स्याम हमारे—३३४२।

धरौवा—संज्ञा पु [हि. धरना] **बिना विवाह के स्त्री रख लेने की चाल या रीति**।

धर्त्ता—संज्ञा पुं [सं. धर्तृ] (१) **धारण करनेवाला**। (२) **कोई काम या दायित्व अपने ऊपर लेनेवाला**।

धर्त्ती—संज्ञा स्त्री. [हि धरती] (१) **पृथ्वी**। (२) **संसार**।

धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वह जो धारण किया जाय, प्रकृति, स्वभाव**। (२) **पारलौकिक सुख के लिए किया गया शुभ कर्म**। (३) **उचित व्यवहार या कर्म कर्तव्य**। (४) **सुकृत, सदाचार, सत्कर्म, पुण्य**।

मुहा.—धर्म खाना—**धर्म की शपथ खाना**। (१) **धर्म के विरुद्ध व्यवहार करना**। (२) **स्त्री का सतीत्व नष्ट करना**। धर्म लगती (से) कहना—**सत्य-सत्य बात कहना**।

(५ **ईश्वर, परलोक आदि के संबंध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की प्रणाली-विशेष, मत, संप्रदाय, पंथ**। उ.—धर्म-कर्म अधिकारिनि सौं कछु नाहिन तुम्हरौ काज—१-२१५। (६) **नीति, न्याय व्यवस्था, कानून**। (७) **उचित-अनुचित का विभेद करनेवाली न्यायबुद्धि, विवेक, ईमान**। उ—कहत्यौ तुम चोटि पर हमैं विस्वास है, देहु चोटि जो धर्म होई—८-८। (८) **धर्मराज, यमराज**। (९) **धर्म-शास्त्र**। उ.—धर्म कहै, सर-सयन गंग-सुत तेतिक नाहि संतोष—१-२१५। (१०) **वह गुण या वृत्ति जो उपमेय और उपमान में समान हो (अलंकारशास्त्र)**।

धर्म-अँकुर—संज्ञा पुं. [सं. धर्म+अंकुर] **धर्म रूपी अँखुआ या कल्ला**। उ.—अदभुत राम नाम के अंक। धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक—१-९०।

धर्म-कर्म—संज्ञा पुं. [सं.] **वह कर्म जिसका करना आवश्यक कहा गया हो**।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कुरुक्षेत्र**। (२) **भारतवर्ष**।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पुं [सं.] **वह पुस्तक जिसमें आचार-व्यवहार और पूजा-उपासना आदि विषयों की शिक्षा या चर्चा हो**।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **धर्म का समूह**। (२) **गौतम बुद्ध की धर्म-शिक्षा**। (३) **बुद्ध देव**।

धर्मचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] **धर्म का आचार व्यवहार**।

धर्मचारी—वि. [सं. धर्मचारिन्] **धर्म-कर्म करनेवाला**।

धर्मचिंतन—संज्ञा पुं. [सं.] **धर्म संबंधी विचार**।

धर्मज—वि. [सं.] **धर्म से उत्पन्न**।

संज्ञा पु.—(१) **धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम पुत्र**। (२) **धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर**। (३) **नर नारायण**।

धर्मजीवन—संज्ञा पुं. [सं.] **धर्म कर्म कराकर जीविका अर्जित करनेवाला ब्राह्मण**।

धर्मज्ञ—वि. [सं.] धर्म का तत्व समझनेवाला।
धर्मतः—अव्य [स] धर्म का ध्यान रखते हुए।
धर्मदान—सज्ञा पु. [स.] शुद्ध धर्मबुद्धि से निस्वार्थ दिया जानेवाला दान।
धर्मदार, धर्मदारा—संज्ञा स्त्री [स] धर्मपत्नी।
धर्मद्रवी—सज्ञा स्त्री [स.] गगा नदी।
धर्मधक्का—सज्ञा पुं. [हिं धर्म+हि धक्का] (१) धर्म के लिए सहा गया कष्ट। (२) व्यर्थ का कष्ट।
धर्मध्वज—सज्ञा पुं. [स] धार्मिकों सा वेश बनाकर ठगने वाला, पाखडी।
धर्मनाम—सज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।
धर्मनिष्ठ—वि [सं] धर्म में श्रद्धा रखनेवाला।
धर्मनिष्ठा—सज्ञा स्त्री. [स] धर्म में श्रद्धा या आस्था।
धर्मपति—सज्ञा पुं [स.] धर्मात्मा। (२ वरुण।
धर्मपत्नी—सज्ञा स्त्री [स] विवाहिता स्त्री।
धर्मपत्र—संज्ञा पु. [स] गूलर का वृक्ष।
धर्मपरिणाम—सज्ञा पु. [स] एक धर्म के पश्चात् दूसरे निश्चित धर्म की प्राप्ति।
धर्मपाल—सज्ञा पु [स.] धर्म का पालन करनेवाला।
धर्मपीठ—सज्ञा पु [स.] (१) धर्म का मुख्य स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिल सके। (२) काशी।
धर्मपीडा—सज्ञा स्त्री [स.] धर्म के विरुद्ध आचरण।
धर्मपुत्र—सज्ञा पुं [स] (१) राजा पाडु की पत्नी कुंती के गर्भ से उत्पन्न धर्मदेव के पुत्र युधिष्ठिर। उ.—धर्मपुत्र, तू देखि विचार—१-२६१। (२) नर-नारायण। (३) वह पुत्र जिसे धर्मानुसार ग्रहण किया गया हो।
धर्मपुरी—सज्ञा स्त्री [सं] (१) यमलोक। (२) न्यायालय।
धर्मप्राण—वि. [स.] धर्म को प्राण से भी प्रिय समझने वाला, बहुत धर्मात्मा।
धर्मबुद्धि सज्ञा स्त्री [स] भले-बुरे का विचार।
धर्मभाणक—सज्ञा पु. [सं] कथा सुनानेवाला।
धर्मभिक्षुक—सज्ञा पु. [स] वह जिसने केवल धर्म-पालन के लिए भिक्षा लेना प्रारंभ किया हो।
धर्मभीरु—वि [स] जो अधर्म से डरे।
धर्मयुग—सज्ञा पुं. [स.] सतयुग।
धर्मयुद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१)वह युद्ध जिसमें किसी तरह का अन्याय या नियम-भंग न हो। (२) धर्म की रक्षा के लिए किया जानेवाला युद्ध।
धर्मराइ—सज्ञा पुं. [स धर्म+हिं. राय] धर्मराज, यमराज।
उ—विदुर सु धर्मराइ अवतार—३-५।
धर्मराज, धर्मराय—सज्ञा पुं [सं. धर्मराज] (१) धर्म-पालक, राजा। (२) युधिष्ठिर। (३) यमराज।
धर्मलुप्तोपमा—सज्ञा स्त्री [स] वह उपमा जिसमें उप-मेय-उपमान के समान गुण का कथन न हो।
धर्मवाहन—संज्ञा पुं. [स.] धमराज का वाहन, भैंसा।
धर्मविवेचन—संज्ञा पु. [स] (१) धर्म-संबंधी विचार। (२) धर्म-अधर्म का विचार।
धर्मवीर—सज्ञा पुं [स.]वह जो धर्म करने में साहसी हो।
धर्मशाला—संज्ञा स्त्री [स] (१) वह मकान जो यात्रियों के निःशुल्क रहने के लिए बनवाया गया हो। (२) न्यायालय।
धर्मशास्त्र—सज्ञा पुं [स] वह ग्रथ जिसमें मानव-समाज-विशेष के आचार-व्यवहारो का उल्लेख हो।
धर्मशास्त्री—सज्ञा पु [स] धर्मशास्त्र का पडित।
धर्मशील—वि. [स] धर्मानुसार कर्म करनेवाला।
धर्मशीलता—सज्ञा स्त्री [स.] धर्माचरण का भाव।
धर्मसंकट—सज्ञा पुं. [स] ऐसी स्थिति जिसमें हर तरह से कुछ न कुछ हानि या सकट हो।
धर्मसभा—सज्ञा स्त्री [स] (१) वह सभा जिसमें धर्म-सबधी विचार हो। (२) न्यायालय।
धर्मसार:—सज्ञा स्त्री [स धर्मशाला] धर्मशाला। उ.—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।·····। हूँठ पैंड दै बसुधा हमकौं तहाँ रचौं धर्मसारी (ध्रमसारी)—८-१४।
धर्मसुत—सज्ञा पु [स] धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर।
धर्म-सुधन—सज्ञा पु. [स] धर्म रूपी सपत्ति या निधि।
उ.—पाप उजीर कह्यो सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुट्यौ—१-६४।
धर्मसुवन—संज्ञा पुं [स] धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर।
उ.—सूरस्याम मिलि धर्मसुवन-रिपुता अवतारहिं सलिल बहावै—सा. उ. २१।
धर्मसेतु—सज्ञा पुं. [सं.] सेतु की तरह धर्म को धारण—

धर्म का निर्वाह—करनेवाला । उ.— धर्मसेतु ह्वै धर्म बढायौ श्रुति को धारण कीन्हौ—सारा. ३४६ ।

धर्मस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] न्यायकर्त्ता, न्यायाधीश ।

धर्मांध—वि. [सं.] जो धर्म के नाम पर उचित अनुचित सभी कार्य करने को तत्पर हो ।

धर्मा—संज्ञा पुं. [सं.] धर्म, नीति । उ.— जब बरत बैरोचन को सुत, वेद-विहित-विधि-कर्मा । सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि धर्मा — १-१०४ ।

धर्माचार्य—संज्ञा पुं. [सं.] धर्म-शिक्षक ।

धर्मात्मा—वि. [सं. धर्मात्मन] धर्म करनेवाला ।

धर्माधिकरण—संज्ञा पुं. [सं.] न्यायालय ।

धर्माधिकारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धर्म-अधर्म का निर्णायक । (२) दान का प्रबंधक या अध्यक्ष ।

धर्माध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] धर्माधिकारी ।

धर्मारण्य—संज्ञा पुं. [सं.] तपोवन ।

धर्मार्थ—क्रि. वि. [सं.] धर्म या परोपकार के लिए ।

धर्मावतार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहुत धर्मात्मा । (२) धर्म-अधर्म का निर्णायक । (३) युधिष्ठिर ।

धर्मासन—संज्ञा पुं. [सं.] न्यायाधीश का आसन ।

धर्मिणी—वि. [सं.] धर्म करनेवाली ।

धर्मिष्ठ—वि. [सं.] धर्म में श्रद्धा रखनेवाला ।

धर्मी—वि. [सं. धर्मिन्] (१) जिसमें धर्म हो । (२) धार्मिक, धर्म करनेवाला । (३) धर्म का अनुयायी ।

संज्ञा पुं.—(१) धर्म का आधार । (२) धर्मात्मा ।

धर्मीपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का अभिनेता ।

धर्मीले—वि. [हिं. धर्मी] धर्मात्मा, पुण्यात्मा । उ.— मधुबन के सब कृतज्ञ धर्मीले—३०५५ ।

धर्मोन्मत्त—वि. [हि. धर्म+उन्मत] जो धर्म के नाम पर उचित-अनुचित, सभी कुछ कर सके ।

धर्मोपदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धर्म की शिक्षा या उपदेश । (२) धर्म की व्यवस्था ।

धर्मोपदेशक—संज्ञा पुं. [सं.] धर्म की शिक्षा देनेवाला ।

धर्मोपाध्याय—संज्ञा पुं. [सं.] पुरोहित ।

धर्म्य—वि. [सं.] जो धर्म के अनुसार हो ।

धरयौ—क्रि. स. [हि. धरना] (१) धारण किया, उठाया । उ.—ग्वालनि हेत धरयौ गोवर्धन, प्रगट [illegible] प्रहारयौ—१-१४ । (२) रखा, निश्चित किया । उ.— (क) पतित-पावन हरि बिरद तुम्हारौ कौनै नाम धरयौ— १-१३३ । (ख) नाम सुग्रुम्न ताहि रिषि धरयौ—६-२ । (ग) गोपिन नावँ धरयौ नवरगी—२६७५ । (३) रखा, स्थापित किया । उ.—दस-सीस जो कुंड मैं जरयौ । ताके बदलै अज-सिर धरयौ—४-५ । (४) निर्धारित या निश्चित किया । उ.—विप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ रासि सोधि इक सुदिन धरयौ—१०-८८ । (५) पकड़ा, थामा, रोका । उ.—आगैं हरि पाछे श्रीदामा, धरयौ स्याम हँकारि—१०-२१३ ।

प्र.—धरयौ रहे—रखा रहता है । उ.—मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसेहि धरयौ रहै—२७११ । धरयौ रहि जैहै—रखा रह जायगा, पड़ा रह जायगा । उ.—यह व्यापार तुम्हारौ ऊधौ ऐसेहि धरयौ रहि जैहै —३००५ ।

धर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अविनय, धृष्टता । (२) असहनशीलता । (३) अधीरता । (४) अशीलता । (५) दबाव, बंधन, रोक । (६) हिंसा । (७) अपमान ।

धर्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दमन करनेवाला । (२) अपमान करनेवाला । (३) सतीत्व हरण करनेवाला । (४) अभिनय करनेवाला ।

धर्षकारी—वि. [सं. धर्षकारिन्] (१) दमन करनेवाला । (२) अपमान या तिरस्कार करनेवाला ।

धर्षकारिणी—वि. [सं.] व्यभिचारिणी ।

धर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपमान । (२) असहनशीलता ।

धर्षित—वि. [सं.] (१) अपमानित । (२) पराजित ।

धर्षी—वि. [सं. धर्षिन्] (१) अपमान करनेवाला । (२) हरानेवाला । (३) नीचा दिखानेवाला ।

धव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पति, स्वामी । (२) पुरुष ।

धवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. धवनी] पत्नी, भार्या ।

धवर—वि. [सं. धवल] सफेद, उजला ।

धवरहर—संज्ञा पुं. [हिं. धुरहर] मीनार, धौरहर ।

धवरा—वि. [सं. धवल] उजला, सफेद ।

धवराहर—संज्ञा पुं. [हिं. धुरहर] मीनार, धौरहर ।

धवरी—वि. स्त्री. [हिं. धवरा] सफेद उजली । उ.— [illegible] —२३२४ ।

[illegible] —सफेद रंग की गाय ।

धवल—वि. [सं] (१) **सफेद, उज्ज्वल।** उ. धवल बसन मिल रहे अग में सूर न जानो जात—सा ७६।
(२) **निर्मल, स्वच्छ।** (३) **सुंदर।**
धवलगिरि—संज्ञा पु. [स] **हिमालय की एक चोटी।**
धवलता—संज्ञा स्त्री [स] **सफेदी, उजलापन।**
धवलत्व—संज्ञा पुं. [स] **सफेदी, उज्ज्वलता।**
धवलना—क्रि स [स धवल] **उजालना, उज्ज्वल करना, चमकाना, निखारना।**
धवलपक्ष—संज्ञा पुं [सं.] (१) **शुक्ल पक्ष।** (२) **हंस।**
धवलांग—संज्ञा पुं. [स] **हंस।**
धवला—वि. स्त्री [सं. धवल] **सफेद, उजली।**
संज्ञा स्त्री —**सफेद रंग की गाय।**
संज्ञा पुं. —**सफेद रंग का बैल।**
धवलाई—संज्ञा स्त्री. [स धवल+आई] **सफेदी।**
धवलागिरि—संज्ञा पु. [स. धवल+गिरि] **हिमालय की एक प्रसिद्ध चोटी।**
धवलित—वि. [सं.] **जो साफ किया गया हो।**
धवलिया—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **उज्ज्वलता।** (२) **सफेदी।**
धवली—संज्ञा स्त्री [स] **सफेद गाय।**
धवलीकृत—वि. [स.] **जो सफेद किया गया हो।**
धवलीभूत—वि. [स.] **जो सफेद हुआ हो।**
धवलोत्पल—संज्ञा पुं [स] **कुमुद।**
धवा—संज्ञा पु [स. धव] (१) **पति।** (२) **पुरुष।**
धवाए—क्रि स. [हिं धवाना] **दौड़ाए।** उ.—तिनके काज अहीर पठाए। बिलम करहु जिनि तुरत धवाए—१० २१।
धवाणक—संज्ञा पुं [स.] **वायु।**
धवाना—क्रि. स [हिं. धाना का प्रे.] **दौड़ाना।**
धस—संज्ञा पु. [हिं. धँसना] **डुबकी, गोता।**
धसक—संज्ञा स्त्री [हिं धसकना] **डाह, ईर्ष्या।**
धसकना—क्रि अ. [हि धँसना] (१) **नीचे को धसक जाना।** (२) **डाह या ईर्ष्या करना।**
धसका—संज्ञा पु. [हि. धसक] **शोक आदि का आघात।**
धसना—क्रि. अ. [स. ध्वसन] **नष्ट होना, मिटना।**
क्रि. अ. [हि. धँसना] **नीचे खसकना या दबना।**
धसनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. धँसन] **धँसने की क्रिया या ढग।**

धसमसाना—क्रि. अ. [हि. धसना] **धरती में धँसना।**
धसाऊ—संज्ञा [हि धँसना] **धँसने की क्रिया, भाव या ढंग।** उ. मथि समुद्र सुर असुरनि कैं हित मदर जलधि धसाऊ—१०-२२१।
धसान—संज्ञा स्त्री [हि. धँसान] **धँसने की क्रिया या ढंग।**
धसाना—क्रि. स [हि धँसना] (१) **गड़ाना, चुभाना।** (२) **प्रवेश कराना।** (३) **नीचे की ओर बैठाना।**
धसाव—संज्ञा पुं. [हिं धँसाव] **धँसने की क्रिया या भाव।**
धसि—क्रि. अ [हि. धँसना] **डूबकर, गोता मारकर।**
प्र.—धसि लीजै—**डूब मरिए** उ.—कै दहिए दारुन दावानल जाइ जमुन धसि लीजै—२८६४।
धसी—क्रि. अ. [हिं धसना] **जल में प्रविष्ट हुई।**
धाँधना—क्रि. स. [देश.] (१) **बंद करना, उड़काना, भेड़ना।** (२) **बहुत ज्यादा खा लेना।**
धाँधल—संज्ञा स्त्री. [अनु] (१) **उधम, उपद्रव।** (२) **छल कपट, धोखा।** (३) **बहुत जल्दी, उतावली।**
धाँधलपन—संज्ञा पुं [हि धाँधल+पन] (१) **शरारत।** (२) **धोखेबाजी।**
धाँधली—संज्ञा स्त्री [हिं धाँधल+ई] **बेइमानी, गड़बड़।**
धाँस—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **मिर्च, तंबाकू आदि की गंध।**
धा—संज्ञा पु. [स.] (१) **ब्रह्मा।** (२) **बृहस्पति।**
वि.—**धारण करनेवाला।**
प्रत्य.—**तरह, भाँति, प्रकार।**
संज्ञा पुं. [अनु.] **तबले का एक बोल।**
संज्ञा स्त्री. [हिं. धाय] **धाय, दाई।**
संज्ञा. पुं [हि. धव] (१) **पति, स्वामी।** (२) **पुरुष।**
धाइ—क्रि. अ. [हिं धाना] **दौड़कर, भाग कर।** उ.—(क) धाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी—१-१६। (ख) जोग को अभिमान करिहै ब्रजहिं जैहै धाइ—२६१४।
संज्ञा स्त्री. [हिं धाय] **धाय, दाई।**
धाई—क्रि. अ. [हि. धाना] **दौड़ पड़ी, चल दी।** उ.—इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचन नीर—१-२६।
अव्य.—**दौड़कर।** उ —पहुँचे आइ निकट रघुबर कैं, सुग्रीव आयौ धाई—६-१०२।
संज्ञा स्त्री. [हि. धाय] **धाय, दाई।**

धाउ—क्रि. अ. [हि. धाना] **धाओ, दौड़ो, जल्दी करो।** उ.—सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, विविध चौकी बनाउ, धाउ रे बनैया—१०-४१।

संज्ञा पुं. [सं. धाव] **नाच का एक प्रकार।**

धाऊँ—क्रि. अ. [हि. धाना] **दौड़ूँ, चलूँ, भागूँ, घूमूँ।** उ.—(क) हय-गयद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ। ....। अंब सुफल छाँड़ि, कहा समर कौं धाऊँ—१-१६६। (ख) जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहाँ तहाँ उठि धाऊँ—१-२४४। (२) **आक्रमण करूँ।** उ.—स्यदन खडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ। पांडव-दल-सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता-रुधिर बहाऊँ—१-२७०।

धाऊ—संज्ञा पुं. [सं. धावन] **हरकारा।**

धाए—क्रि. अ. भूत. [हिं. धाना] **दौड़े, भागे।** उ.—सिव-विरंचि मारन कौं धाए यह गति काहू देव न पाई—१-३।

धाक—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) **भोजन।** (२) **अनाज।**

संज्ञा स्त्री. (१) **प्रसिद्धि, शोर।** उ.—(क) अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ तहँ फेनि पिराक। सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक—४६४। (ख) अमर जय ध्वनि भई धाक त्रिभुवन गई कंस मार्यौ निदरि देवरायौ—२६१५। (२) **रोब, दबदबा, आतंक।**

संज्ञा. पुं. [हि. ढाक] **पलाश।**

धाकड़—संज्ञा पुं. [हि. धाक] (१) **जिसकी खूब धाक हो।** (२) **बहुत बली या प्रभावशाली।**

धाकना—क्रि. अ. [हिं. धाक] **धाक या रोब जमाना।**

धाखा—संज्ञा पुं. [देश.] **पलाश का पेड़।**

धागा—संज्ञा पुं. [हि. तागा] **डोरा, तागा।**

धाड़—संज्ञा स्त्री. [हि. दहाड़] **जोर का शब्द।**

संज्ञा स्त्री. [हि. धार] (१) **आक्रमण, चढ़ाई।**

मुहा.—धाड़ पड़ना—**बहुत जल्दी होना।**

(२) **झुंड, समूह, जत्था।**

धाड़ना—क्रि. अ. [हिं. दहाड़ना] **जोर से चिल्लाना।**

धाड़ी—संज्ञा पुं. [हि. धाड़] **लुटेरा, डाकू।**

धातवीय—वि. [सं.] **धातु का, धातु-संबंधी।**

धाता—संज्ञा पुं. [सं. धातृ] (१) **ब्रह्मा।** (२) **महेश।** (३) **शिव।** (४) **शेषनाग।**

वि.—(१) **पालक।** (२) **रक्षक।** उ.—सुर प्रभु सुनि हँसत प्रीति उर मे दमन दुष्ट की करन हरि जगत धाता—६५५। (३) **धारण करनेवाला।**

धातु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **गेरू, खड़िया आदि पदार्थ जो प्रायः उपरस कहलाते हैं। पूर्वकाल में इनका चित्रकारी में भी उपयोग किया जाता था।** उ.—(क) बनमाला तुमकौं पहिरावहि, धातु-चित्र तनु-रंगहिं—४२६। (ख) मुकुट उतारि धर्यौ लै मंदिर, पोछति है अंग धातु—५११। (२) **एक खनिज पदार्थ।** (३) **शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य।** (४) **शुक्र, वीर्य।**

संज्ञा पुं.—(१) **भूत, तत्व।** उ.—आठ आठव नचत नाना विधि गात अपना-अपनी। सूरदास सब प्रकृति धातुमय अति विचित्र सजनी। (२) **शब्द का मूल।** (३) **परमात्मा।**

धातुराग—संज्ञा पुं. [सं.] **धातु से निकले हिंगुर आदि रंग।**

धातुवाद—संज्ञा पुं. [सं.] **रसायन बनाने का काम।**

धातुवादी—संज्ञा पुं. [सं.] **रसायनी, कीमियागर।**

धातू—संज्ञा पुं. [सं. धातु] **धातु।**

धात्र—संज्ञा पुं. [सं.] **पात्र, बरतन।**

धात्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आंवला।**

धात्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **माता।** (२) **धाय, दाई।** (३) **भगवती, गायत्री।** (४) **गंगा।** (५) **पृथ्वी।** (६) **सेना।** (७) **गाय।**

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **धाय, दाई।**

धात्वर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] **(शब्द का) धातु से ज्ञात अर्थ।**

धाधना—क्रि. स. [देश.] **देखना।**

धाधे—क्रि. स. [हि. धाधना] **देखने लगे।** उ.—सुन्दर श्याम लख धीर रूप कर नन्द नन्दन कर धाधे—सा ६।

धान—संज्ञा पुं. [सं. धान्य] (१) **चावल।** (२) **अन्न।** उ.—सकपनि कर्यौ धान सब पार। अनुशासन की करन सहाइ—१-२८४।

धानक—संज्ञा पुं. [सं.] **धनिया।**

संज्ञा पुं. [सं. धानुष्क] (१) **धनुष चलानेवाला, कमनैत, धनुर्धारी।** (२) **रुई धुननेवाला, धुनिया।**

धानकी—संज्ञा पुं. [हिं. धानुक] (१) **धनुर्धारी।** (२) **कामदेव।**

धानपान—संज्ञा पुं. [हिं. धान+पान] विवाह की एक रीति जिसमें वर-पक्ष की ओर से कन्या के घर धान, हल्दी आदि भेजी जाती है।

धानमाली—संज्ञा पु. [सं.] दूसरे के चलाये अस्त्र को रोकने की एक क्रिया।

धाना—संज्ञा स्त्री. [हिं. धान] (१) धान। (२) अनाज। (३) भुना हुआ धान या जौ। (४) सत्तू। (५) धनिया।

क्रि. अ. [हिं. धावन] (१) दौड़ना, भागना। (२) प्रयत्न करना।

धानाचूर्ण—संज्ञा पु. [सं.] सत्तू।

धानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्थान, जगह। (२) वह जिसमें कोई चीज या वस्तु रखी जाय। (३) धनिया।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धान+ई] हलका हरा रंग।

वि.—धान की पत्ती-सा हलके हरे रंग का।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धान्य] (१) धान। (२) अन्न। (३) धनिया।

धानुक—संज्ञा पुं. [सं. धानुष्क] धनुष चलानेवाला।

धानुष्क—संज्ञा पु. [सं.] धनुर्धारी, धनुर्धर, कमनैत।

धान्य, धान्यक—संज्ञा पु. [सं.] (१) धान। (२) अन्न।

धान्यवर्ति—संज्ञा पु. [सं.] (१) चावल। (२) जौ।

धान्यराज—संज्ञा पु. [सं.] जौ।

धान्याकृत—संज्ञा पु. [सं.] किसान, खेतिहर, कृषक।

धान्यारि—संज्ञा पु. [सं.] चूहा, मूषक।

धाप—संज्ञा पु. [हिं. टप्पा] लंबा-चौड़ा मैदान।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धापना] तृप्ति, संतोष, छकना।

धापना—क्रि. अ. [सं. तर्पण] तृप्त होना, अघाना।

क्रि. स.—तृप्त या संतुष्ट करना।

क्रि. अ. [सं. धावन] दौड़ना, भागना।

धापहु—क्रि. स. [हिं. धापना=दौड़ना] दौड़ो, भागो। उ.—सुमन सेज सर सरस एकान्त मधुर सुनावहु बैन। [illegible] मनोहर कठिन काट मग रैन।

धापी—वि. स्त्री. [सं. तर्पण] संतुष्ट या तृप्त हुई, अघाकर। उ.—(क) [illegible] अशन पान करि, [illegible] मनसा धापी—१-१४०। (ख) इतनु कहौ बड़ौ यह पापी। इन तौ पाप किए हैं धापी—६-४।

धाबा—संज्ञा पु. [देश.] मकान की अटारी।

धाभाई—संज्ञा पु [हिं. धा=धाय+भाई] दूधभाई।

धाम—संज्ञा पुं. [सं. धामन] (१) गृह, घर, स्थान। उ.—(क) धाम धुआँ के कहौ कौन पै बैठी कहाँ अथाई। (ख) अरध बीच दै गये धाम को हरि अहार चलि जात—सा २३। (२) देवस्थान, पुण्यस्थान। उ.—तौ लगि यह संसार सगौ है जौ लगि लेहि न नाम। इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याही धाम—१-७६। (३) निधि, आलय, आकर। उ.—बैकुंठनाथ सकल सुखदाता, सूरदास सुखधाम—१-६२। (४) देह, शरीर, तन। (५) शोभा। (६) प्रभाव। (७) ब्रह्म। (८) परलोक। (९) स्वर्ग। (१०) अवस्था, गति।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्रकार के देवता। (२) विष्णु।

धामन—संज्ञा पु. [देश.] एक तरह का बाँस।

संज्ञा स्त्री. [हिं. धामिन] एक तरह का साँप।

संज्ञा पु. बहु [हिं. धाम] घरो-मकानों पर। उ.—अति संभ्रम अचल चंचल गति धामन ध्वजा विराजत—२५६१।

धामा—संज्ञा पु. [हिं. धाम] भोजन का निमंत्रण।

धामिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. धाना] एक तरह का साँप।

धामिया—संज्ञा पु. [हिं. धाम] एक पंथ।

धामीनिधि—संज्ञा पु. [सं.] सूर्य।

धायँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] तोप-बंदूक पटाखा आदि छूटने का शब्द।

धाय—संज्ञा स्त्री. [सं. धात्री] दाई, धात्री।

क्रि. अ. [हिं. धाना] दौड़कर।

धाया—क्रि. अ. [हिं. धाना] दौड़ा, भागा। उ.—सुनत सकट तुरतहि उठि धाया—४९९।

धायी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धाय] दाई, धात्री।

धायौ—क्रि. अ. [हिं. धाना] (१) दौड़ा, भागा। उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५। (२) दौड़-धूप की। उ.—

छलबल करि जित-तित हरि पर-धन धायौ सब दिन रात —१-२१६ । (३) चाल चला । उ.—टेढी चाल, पाग सिर टेढी टेढें टेढें धायौ—१-३०१ ।

धाय्य—संज्ञा पुं. [सं.] पुरोहित ।

धार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तेज वर्षा । उ.—सलिल अखंड धार धर टूटत कियौ इंद्र मन सादर—९४९ । (२) वर्षा का इकट्ठा किया हुआ जल । (३) ऋण । (४) प्रदेश ।

वि [सं.] गहरा, गभीर ।

संज्ञा स्त्री. [सं. धारा] (१) (जल आदि) द्रव पदार्थ के गिरने या बहने का तार । उ.—(क) रुधिर-धार रिपि औखिन ढरी—६-३ । (ख) विविध सस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार—सारा. २६ । (ग) मनहुँ सुरसरी धार सरस्वति-जमुना मध्य बिराजै—सारा. १७३ । (घ) एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहें प्यारी ठाढी । (ङ) माया-लोभ-मोह हैं चाँड़े काल-नदी की धार—१-८४ ।

मुहा.—धार चढाना—किसी देवी-देवता, नदी, वृक्ष आदि पर दूध, जल आदि चढ़ाना । पय धार चढावो—दूध चढ़ाओ । उ.—सुर-समूह पय धार परम हित आपत अमल चढावो—सा. ६ । धार टूटना—धार का प्रवाह खंडित हो जाना । धार देना—(१) दूध देना । (२) उपयोगी काम करना । धार निकालना —दूध दुहना । धार बँधना—धार बँधकर गिरना ।

(२) पानी का सोता या स्रोत । (३) तलवार, चाकू आदि की बाढ़ । उ.—निकट आयुध बधिक धारे, करत तीच्छन धार । अजानायक मगन क्रीडत चरत बारंबार—१-३२१ ।

मुहा.—धार बँधना—मंत्र आदि के बल से हथियार की धार का बेकार हो जाना । धार बाँधना—मंत्र आदि के बल से हथियार की धार को बेकार कर देना ।

(४) किनारा, छोर, सिरा । (५) सेना । (६) डाका, आक्रमण । (७) ओर, तरफ, दिशा । उ.—(क) विविध खिलौना भाँति के (बहु) गज-मुक्ता चहुँ धार—१०-४२ । (ग) महर पैठत सदन भीतर छींक बाईं धार—५२४ । (८) सीमा, निधि, राशि । उ.—दरसन को तरसत हरि लोचन तू सोभा की धार—२२१२ ।

क्रि. स. [हिं. धरना] (१) धरकर, रखकर ।

प्र.—चित धार—ध्यान लगाकर । उ.—(क) करौं, सुनौं सो अब चित धार—१-२३० । (ग) गजा. सुनौ ताहि चितधार—८-५ ।

(२) धारण करके । उ.—दत्तात्रेय ऽरु पृथु बहुरि, जज्ञपुरुष वपु धार—२-३६ ।

धारक—वि. [सं.] (१) धारण करनेवाला । (२) रोकनेवाला । (३) ऋण लेनेवाला ।

संज्ञा पुं. [सं.] कलश, घड़ा ।

धारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी पदार्थ को अपने ऊपर लेने, रखने या थामने की क्रिया या भाव । (२) पहनने की क्रिया या भाव । (३) सेवन करने की क्रिया या भाव । (४) ग्रहण या अंगीकार करने की क्रिया या भाव । (५) ऋण लेने की क्रिया या भाव । (६) शिव जी का एक नाम ।

धारणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धारण करने की क्रिया या भाव । (२) बुद्धि, समझ । (३) दृढ़ सम्मति या निश्चय । (४) मर्यादा । (५) स्मृति, याद । (६) योग का एक अंग जिसमें मन में केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है ।

धारणाशाली—वि. [सं.] तीव्र धारणा-शक्तिवाला ।

धारणिक—संज्ञा पुं. [सं.] ऋणी ।

धारणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाड़ी । (२) पंक्ति, श्रेणी । (३) पृथ्वी । (४) सीधी रेखा ।

धारणीय—वि. [सं.] धारण करने के योग्य ।

धारत—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) धरते हैं, रखते हैं ।

प्र.—पग धारत—पैर रखते हैं, जाते हैं । उ.—कौन जानि ग्रह पोरि बिदुर की, ताही कैं पग धारत—१-१२ । ध्यान धारत—ध्यान लगाते हैं । उ.—सनक संकर ध्यान धारत निगम ... —१-३०८ ।

धारति—क्रि. स. [हिं. धारना] (१) धारण करती है, रखती है, अपनाती है । उ.—(क) ... ... —१०-२०० । (ग) ... —१०-२०४ ।

धारन—संज्ञा पुं. [स. धारण] धारण करनेवाला। उ.—सभु-पत्नी-पिता धारन वक विदारन वीर—सा ९३।

धारना—संज्ञा स्त्री [स धारणा] धारणा योग, के आठ अंगों में से एक, मन की वह स्थिति जिसमें केवल ब्रह्म का चिंतन रहता है। उ—(क) प्रत्याहार-धारना-ध्यान। करै जु छाँड़ि वासना आन—२-२१। (ख) जोग धारना करि तनु त्याग्यौ। सिव-पद-कमल हृदय अनुराग्यो—४-५। (ग) तन देवे ते नाहिंन भज्यो। जोग धारना करि इहि तज्यो—६-५। (घ) आसन बैसन ध्यान धारना मन आरोहण कीजै—२८६१।

संज्ञा पु—धारण करने की क्रिया, ग्रहण, अपने ऊपर लेना। उ—तब गंगा जू दरसन दियौ। कह्यौ, मनोरथ तेरौ करौं। पै मै जब अकास तैं परौं। मोकौं कौन धारना करै? नृप कह्यौ, सकर तुमकौं धरै—९-१०।

धारयित—संज्ञा पु [स धारयितृ] धारण करनेवाला।

धारयित्री—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) धारण करनेवाली। (२) पृथ्वी।

धाराग—संज्ञा पु [सं] खड्ग, तलवार।

धारा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) लकीर, रेखा। उ.—(क) राजति राम राजी रेख। नील घन मनु धूम-धारा, रही सूक्ष्म सेष—६३५। (ख) रोमावली-रेख अति राजति। सूक्ष्म वेष धूम की धारा नव घन ऊपर भ्राजति—६३८। (२) अखंड प्रवाह, धार। उ—उर-कलिंद तें धँसि जल-धारा, उदर-धरनि परवाह—६३८। (३) हथियार की धार या बाढ़। (४) सोता, झरना, स्रोत। (५) बहुत अधिक वर्षा। (६) झुंड, समूह। (७) सेना या उसका अगला भाग। (८) उन्नति। (९) यश, कीर्ति। (१०) पहाड़ की चोटी। (११) घोड़े की चाल।

क्रि. स. [हिं. धारना] धारण किया। उ.—चारि भुज मन आतुर धारा—१० उ० ४४।

धाराट—संज्ञा पु. [स] (१) चातक। (२) मेघ। (३) तेज चालवाला घोड़ा। (४) मस्त हाथी।

धाराधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बादल। (२) तलवार।

धारा प्रवाह—वि [सं.] जो धारा की तरह बराबर चलता रहे।

धारायंत्र—संज्ञा पुं. [स.] फुहारा।

धाराल—वि. [स.] तेज धारवाला।

धाराली—संज्ञा स्त्री [स. धाराल] (१) तलवार। (२) कटार।

धारावनि—संज्ञा पुं [स.] वायु, हवा।

धारावर—संज्ञा पु [स] मेघ, बादल।

धारावाहिक, धारावाही—वि. [स.] धारा के समान बराबर बढ़नेवाला।

धारासार—वि [स.] बराबर पानी बरसना।

धारि—क्रि. स. [हिं. धारना] (१) धारण करके, उठाकर। उ.—गिरि कर धारि इंद्र-मद मर्द्यौ, दासनि सुख उपजाए—१-२७। (२) पहनकर। उ—जीरन पट कुपीन]तन धारि। चल्यौ सुरसरी सीस उघारि—१-३४१।

प्र.—देह (वपु) धारि—शरीर धारण करके, जन्म लेकर। उ.—(क) नर-वपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहै—१-८६। (ख) कहत प्रहलाद के धारि नरसिंह वपु निकसि आये तुरत खंभ फारी—७-६। (ग) सूरदास प्रभु भक्त-हेत ही देह धारि कै आयौ—३४६। चित धारि—चित्त में सोचकर, ठहराकर। उ.—परयौ भव-जलधि मैं, हाथ धरि काढि मम दोष जनि धारि चित काम-कामी—१-२१४।

संज्ञा स्त्री [स. धारा] समूह, झुंड।

धारिणी—वि. [स.] धारण करनेवाली।

संज्ञा स्त्री. (१) धरती, पृथ्वी। (२) प्रमुख देवताओं की स्त्रियाँ।

धारी—क्रि. स. [हिं. धारना] (१) धारण करके, उठाकर। उ.—राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोवर्धन धारी—१-२२।

(२) निश्चित की, सोची, विचारी। उ—महाराज दसरथ मन धारी। अवधपुरी कौ राज राम दै, लीजै व्रत बनचारी - ९-३०।

प्र.—दियौ धारी—रख दिया, धारण करा दिया। उ.—मथी हलाहल प्रगट प्रथम ही मथत जब, रुद्र कै कंठ दियौ ताहि धारी—८-८।

वि. [स. धारिन्] (१) धारण करनेवाले। उ.—

महा सुभट रनजीत पवनसुत, निडर बज्र-बपु-धारी—९-११५। (२) ग्रंथ का तात्पर्य समझनेवाला। (३) **ऋण लेनेवाला।**

संज्ञा स्त्री. [स धारा] (१) **सेना**। (२) **समूह**। (३) **रेखा।**

धारीदार—वि. [हिं. धारी+फ़ा. दार] **जिसमें रेखाएँ हों।**

धारे—क्रि. स. [हिं. धारना] **धारण किये, हाथ में लिये।** उ.—(क) निकट आयुध बधिक धारे करत तीच्छन धार १-३३१। (ख) ते सब ठाढे सस्त्रनि धारे—४-१२।

प्र.—पग धारे—**पधारे, गये**। उ.—(क) गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे—१-२५। (ख) ध्रुव निज पुर कौं पुनि पग धारे—४-९। (ग) सूर तुरत मधुबन पग धारे धरनी के हितकारि—२५३३। बपु धारे—**शरीर धारण किये, जन्म लिये।** उ.—जब जब प्रगट भयौ जल थल मैं, तब तब बहुबपु धारे—१-२७। ब्रत धारे—**व्रत किये**। उ.—ब्याध, गीध, गौतम की नारी, कहौ कौन ब्रत धारे—१-१५८।

संज्ञा पुं. बहु. [हिं. धारा] **अनेक प्रवाह**। उ.—सुमिरि सुमिरि गर्जत जल छाँडत अस्रु सलिल के धारे—२७६१।

धारैं—क्रि. स. [हिं धारना] **ग्रहण करें, लावें, अपनावें।** उ.—(क) हरि हरि नाम सदा उच्चारैं। त्रिया और न मन मैं धारैं—७-२। (ख) बिनु अपराध पुरुष हम मारैं। माया-मोह न मन मैं धारैं—९-२।

धारै—क्रि. स. [हि. धारना] **धारण करे**। उ.—अबरन, बरन सुरति नहिं धारै। गोपिनि के सो बदन निहारै—१०-३।

धारोष्ण—संज्ञा पुं. [सं.] **थन से निकला ताजा दूध जो कुछ देर तक गरम रहता है।**

धारौं—क्रि. स. [हिं. धारना] **धारण करूँगा, पहनूँगा।** उ.—राज-छत्र नाहीं सिर धारौं—१-२६१।

धारौ—क्रि. स. [हिं. धरना] (१) **ग्रहण करो, अपनाओ।** उ.—सूर सुमारग फेरि चलैगौ वेद बचन उर धारौ—१-१९२। (२) **ग्रहण किया, अपनाया**। उ.—उन यह बचन हृदय नहिं धारौ—३-६। (३) **उठाया, धारण किया**। उ.—भक्त बछल प्रभु नाम तुम्हारौ। जल संकट तैं राखि लियौ गज ग्वालनि हित गोबर्धन धारौ—१-१७२। (४) **रखो, दूसरे को पहनाओ**। उ.—चौदह वर्ष रहै बन राघव, छत्र भरत सिर धारौ—९-३०।

धार्म—वि. [सं.] **धर्म-संबंधी।**

धार्मिक—वि. [सं.] (१) **धर्म संबंधी**। (२) **धर्मात्मा।**

धार्मिकता—संज्ञा स्त्री [स] **धार्मिक होने का भाव**।

धार्मिक्य—संज्ञा पुं. [स.] **धार्मिक होने का भाव**।

धार्य—संज्ञा पुं. [स.] **वस्त्र, कपड़ा**।

वि. [सं.] **धारण करने योग्य, धारणीय**।

धार्यौ—क्रि. स. [हि. धारना] (१) **धारण किया, उठाया।** उ.—कोमल कर गोबर्धन धार्यौ जब हुते नंद-दुलारे—१-२५। (२) **लिया, ग्रहण किया**।

प्र.—जन्म धार्यौ—**जन्म लिया, शरीर धारण किया**। उ.—जिहिं-जिहिं जोनि जन्म धार्यौ, बहु जोर्यौ अघ कौ भार—१-९८। पग धार्यौ—**आया, गया**। उ.—जहाँ मल्ल तहँ को पग धार्यौ—२६४३। (३) **अपनाया, ठाना**। उ.—(क) मन चातक जल तज्यौ स्वाति-हित, एक रूप ब्रत धार्यौ—१-२१०। (ख) मरन भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धार्यौ—१-३३६।

धावक—संज्ञा पुं. [स] (१) **हरकारा**। (२) **धोबी।**

धावण—संज्ञा पुं. [स. धावन] **दूत, हरकारा**।

धावत—क्रि अ. [हि धाना] **भागते हैं, दौड़ पड़ते हैं**। उ.—(क) संकट परैं तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं—१-९। (ख) धावत कनक-मृगा कैं पाछैं राजिवलोचन परम उदारी—१०-१९८।

धावति—क्रि. अ. स्त्री [हि. धाना] **धाती है, दौड़ती है, भागती है**। उ.—(क) सखि री, काहैं गहरु लगावति। सब कोऊ ऐसौ सुख सुनिकै क्यौं नाहिंन उठि धावति—१०-२३। (ख) निठुर भए सुत आजु, तात की छोह न आवति। यह कहि कहि अकुलाइ, बहुरि जल भीतर धावति—५८९।

धावन—संज्ञा पुं. [स] (१) **बहुत शीघ्र जाने की क्रिया, दौड़कर जाना**। उ.—गजहित धावन, जन-मुकरावन,

बेद बिमल जस गावत—८-४ । (२) दूत, हरकारा, संदेशवाहक । उ.—(क) दससिर बोलि निकट बैठायौ, कहि धावन मनि भाउ । उद्यम कहा होत लंका कौं, कौंनैं कियौ उपाउ—९-१२१ । (ख) द्विविद कपि कोप हरि पुरी आयौ । नृप सुदच्छिन जरयौ जरी बारानसी धाय धावन जबहि यह सुनायौ—१०३-८५ । (३) धोने या साफ करने का काम । (४) वह चीज जिससे गंदी वस्तु को साफ किया जाय ।

धावना—क्रि. अ. [सं. धावन] दौड़ना, भागना ।

धावनि—संज्ञा स्त्री. [सं. धावन=गमन] (१) जल्दी चलने की क्रिया, दौड़ । उ.—वा पट पीत की फहरानि । कर धरि चक्र, चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बानि—१-२७९ । (२) धावा, चढ़ाई ।

धावरा—वि. [सं. धवल] उज्ज्वल, सफेद ।

धावरी—संज्ञा स्त्री. [सं. धवल] सफेद गाय, धौरी ।

वि.—सफेद, उजली, उज्ज्वल ।

धावहिंगे—क्रि. अ. [हिं. धावना] दौड़ पड़ेंगे । उ.—अब के चलत जानि सूर प्रभु सब पहिले उठि धावहिंगे—२७८९ ।

धावहिं—क्रि. अ. [हिं. धाना] दौड़ते हैं । उ.—बाल बिलख मुख गौ न चरति तृन बछ पय पियन न धावहि—३५२७ ।

धावहु—क्रि. अ. [सं. धावन] दौड़ो, भागो, तेजी से जाओ । उ.—अस्त्र देखि कह्यौ, धावहु-धावहु । भागि जाहि मनि, बिलँब न लावहु—९-९ ।

धावा—संज्ञा पुं. [सं. धावन] (१) आक्रमण, चढ़ाई । (२) किसी काम के लिए जल्दी से जाना ।

मुहा.—धावा मारना—जल्दी-जल्दी घूम आना ।

क्रि. अ. भूत. [हिं. धाना] दौड़ा, भागा, लपका ।

धावैं—क्रि. अ. [हिं. धाना] दौड़ते हैं, भागते हैं । उ.—औरनि कौं जम कैं अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं । सुनि मेरी अपराध अधमई, कोऊ निकट न आवै—१-१९७ ।

धावै—क्रि. अ. [हिं. धाना] (१) दौड़े, जाय । उ.—(क) रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै—१-२ । (२) दौड़ता है, मारा मारा फिरता है । उ.—कहूँ ठौर नहि चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहूँ दिसि धावै—१-२३३ ।

धाह—संज्ञा स्त्री. [सं. अनु.] जोर से चिल्लाकर रोना, धाड़ । उ.—देखे नंद चले घर आवत । पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनें धाह सुनावत—५४१ ।

धाही—संज्ञा स्त्री [हिं. धाय] दाई, धात्री ।

धिंग—संज्ञा स्त्री [अनु. धींगा] ऊधम, उपद्रव ।

धिंगरा—संज्ञा पुं [हिं. धींगरा] मोटा ताजा, मुस्तंडा ।

धिंगा—वि. [सं. दृढांग] (१) दुष्ट । (२) निर्लज्ज ।

धिंगाई—संज्ञा स्त्री. [सं. दृढांगी] (१) शरारत, दुष्टता । उ.—जानि बूझि इन करी धिंगाई । मेरी बलि पर्वतहिं चढ़ाई । (२) निर्लज्जता ।

धिंगाना—क्रि. स. [हिं. धिंगा] ऊधम मचाना ।

धिंगी—वि. [हिं. धिंगा] दुष्ट या निर्लज्ज (स्त्री) ।

धिआ—संज्ञा स्त्री. [सं. दुहिता, प्रा. धीआ] बेटी, कन्या ।

धिआन, धिआना—संज्ञा पुं. [सं. ध्यान] ध्यान ।

धिआना—क्रि. स. [हिं. ध्यावना] ध्यान लगाना ।

धिक—अव्य. [सं. धिक्] धिक्, लानत । उ.—(क) प्रभु जू, बिपदा भली बिचारी । धिक यह राज बिमुख चरननि तैं, कहति पांडु की नारी—१-२८२ । (ख) धिक तुम, धिक या कहिबे ऊपर । जीवित रहिहौ कौ लौं भू पर—१-२८४ ।

धिकना—क्रि. अ. [हिं. दहकना] खूब गरम होना ।

धिकाना—क्रि. स. [हिं. दहकाना] खूब गरम करना ।

धिक्—अव्य. [सं.] (१) तिरस्कार सूचक शब्द । (२) निंदा, शिकायत ।

धिक्कार—संज्ञा स्त्री. [सं.] तिरस्कार या घृणा सूचक शब्द, लानत, फटकार ।

धिक्कारना—क्रि. स. [सं. धिक्] बहुत बुरा भला कहना ।

धिक्कृत—वि. [सं.] जो धिक्कारा जाय ।

धिग—अव्य. [सं. धिक्] धिक्, धिक्कार, लानत । उ.—धिग धिग मेरी बुद्धि, श्याम सौं बैर बढ़ायौ—४८२ । (ख) धिग धिग मोहिं तोहिं सुन सजनी धिग जेहि हेति बोलाई—सा. ८७ ।

धिय, धिया—संज्ञा स्त्री. [सं. दुहिता, प्रा. धीआ] (१) कन्या, बेटी । (२) लड़की, बालिका ।

धिरकार—संज्ञा स्त्री [सं धिक्कार] **घृणा या तिरस्कार-सूचक शब्द।**

धिरना—क्रि. स. [हि. धिरवना] **डाँटना, धमकाना।**

धिरयौ—क्रि. स. भूत. [हिं धिरना] **डाँटा, धमकाना।** उ.—सूर नंद बलरामहि धिरयौ तब मन हरष कन्हैया—१०-२१७।

धिरवति—क्रि. स. [हि. धिरवना] **धमकाती हैं।** उ.—मुख झगरति आनँद उर धिरवति है घर जाहु—१०२६।

धिरवना—क्रि. स. [सं. धर्षण] **डराना धमकाना।**

धिराना—क्रि. स. [हि. धिरवना] **भय दिखाना।**

धिरावति—क्रि. स. [हिं. धिरवना] **डराती-धमकाती हैं।** उ.—जाति-पाँति सौं कहा अचगरी यह कहि सुतहि धिरावति।

क्रि. अ [सं. धीर] (१) **धीमा होना।** (२) **स्थिर होना।**

धिरावै—क्रि. स. [हि. धिराना] **डराता धमकाता है।** उ.—भ्राता मारन मोहिं धिरावै देखे मोहिं न भावत।

धिषणा—संज्ञा पुं. [स] (१) **बृहस्पति।** (२) **शिक्षक।**

वि—**बुद्धिमान, समझदार।**

धिषणा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) **बुद्धि।** (२) **वाक्शक्ति।** (३) **स्तुति।**

धींग—वि. [सं. दृढाग] (१) **हट्टा-कट्टा।** (२) **ढीठ, धृष्ट, उपद्रवी,।** उ.—धींग तुम्हारी पूत धींगरी हमकौ कीन्हीं—१८७०। (३) **कुमार्गी, पापी।**

संज्ञा पुं.—**हट्टा-कट्टा मनुष्य।** उ.—धींगरी धींग चाचरि करै मोहि बुलावत साखि।

धींगधुकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं धींग] **शरारत, पाजीपन।**

धींगड़ा; धींगरा—संज्ञा पुं [सं. डिंगर] (१) **हट्टा-कट्टा।** (२) **दुष्ट।**

धींगरी—संज्ञा स्त्री. [हि. धींगरा] **दुष्टा, उपद्रव करने वाली।** उ—धींग तुम्हरौ पूत धींगरी हमकौ कीनी—१०७०।

धींगा—संज्ञा पुं [सं. डिंगर] **पाजी, उपद्रवी।**

धींगाधींगी—संज्ञा स्त्री. [हिं धींग] (१) **दुष्टता, पाजीपन।** (२) **जबरदस्ती।**

धींगामुश्ती—संज्ञा स्त्री [हि धींगा+मस्ती] (१) **दुष्टता, पाजीपन।** (२) **जबरदस्ती लड़ना या हाथाबाँही करना।**

धींद्रिय—संज्ञा स्त्री [स] **आँख, कान आदि इंद्रियाँ जिनसे किसी बात का ज्ञान प्राप्त किया जाय।**

धीवर—संज्ञा पु. [हिं धीवर] **केवट, मल्लाह।**

धी—संज्ञा स्त्री. [सं. दुहिता, प्रा. धीआ] **पुत्री, बेटी।** उ.—पुर कौं देखि परम सुख लह्यौ। रानी सौं मिलाप तहँ भयौ। तिन पूछ्यौ तू काकी धी है? उन कह्यौ नहिं सुमिरन मम ही है—४-१२।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बुद्धि** (२) **मन।** (३) **कर्म।**

धीआ—संज्ञा स्त्री. [सं. दुहिता] **पुत्री, बेटी।**

धीजना—क्रि. स. [स. धृ, धैर्य] (१) **ग्रहण या स्वीकार करना।** (२) **धीरज रखना।** (३) **प्रसन्न या संतुष्ट होना।**

धीत—वि. [सं.] (१) **जो पिया गया हो।** (२) **जिसका तिरस्कार हुआ हो।** (३) **जिसकी पूजा-आराधना की जाय।**

धीदा—संज्ञा स्त्री. [सं. दुहिता] (१) **कन्या।** (२) **पुत्री।**

धीपति—संज्ञा स्त्री. [सं] **बृहस्पति।**

धीम—वि. [हिं. धीमा] (१) **सुस्त।** (२) **हलका, धीमा।**

धीमर—संज्ञा पुं. [स धीवर] **केवट, मल्लाह।**

धीमा—वि. [स मध्यम] **जिसकी चाल तेज न हो।** (२) **जो तीव्र या उग्र न हो, हलका।** (३) **जो ऊँचा या तेज न हो।** (४) **जिसका जोर कम हो गया हो।**

धीमान, धीमान्—संज्ञा पुं. [स धीमत्] (१) **बृहस्पति।** (२) **बुद्धिमान, समझदार।**

धीय—संज्ञा स्त्री [हि धी] **पुत्री, कन्या।**

संज्ञा पुं.—**जमाई, दामाद, जामाता।**

धीया—संज्ञा स्त्री. [हिं. धी] **लड़की, बेटी।**

धीर—वि. [सं] (१) **दृढ और शात चित्तवाला।** उ.—उ.—इत भगदत्त, द्रोन, भूरिश्रव तुम सेनापति धीर—१-२६६। (२) **बली, शक्तिशाली।** (३) **विनीत, नम्र।** (४) **गभीर।** (५) **सुंदर, मनोहर।** (६) **मद।**

संज्ञा पुं. [स. धैर्य] (१) **धीरज।** (२) **संतोष।**

धीरक—संज्ञा पुं. [सं. धैर्य] **धीरज, ढारस।** उ.—राज-

रवनि गाई व्याकुल है, दै दै तिनकौं धीरक। मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक—१-११२।

धीरज—संज्ञा पु. [सं. धैर्य] (१) **धैर्य, धीरता, चित्त की स्थिरता।** उ.—(क) सूर पतित जब सुन्यौ बिरद यह, तब धीरज मन आयौ—१-१२५। (ख) जननि कैसे धरयौ धीरज कहति सब पुर बाम—२५६५। (२) **उतावली न होने का भाव, सब्र, संतोष।** (३) **आशा, सांत्वना।** उ.—इतनेहि धीरज दियौ सबन कौं अवधि गए दै आस—२५३४।

धीरजमान—संज्ञा पुं. [सं. धीर] **धैर्यवान, धीर।**

धीरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **चित्त की दृढ़ता या स्थिरता, धैर्य।** (२) **संतोष।**

धीरत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **धीर होने का भाव।**

धीरना—क्रि. अ. [हिं. धीर] **धीरज रखना।**

क्रि. स.—**धीरज बँधाना, धीरज रखाना।**

धीरललित—संज्ञा पुं. [सं.] **वह नायक जो सदा सजा-सजाया और प्रसन्न रहे।**

धीर शांत—संज्ञा पुं. [सं.] **वह नायक जो शील, दया, गुण और पुण्यवान हो।**

धीरा—संज्ञा स्त्री [सं.] **वह नायिका जो नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर ताने से अपना क्रोध प्रकट करे।**

वि [सं. धीर] **मंद, धीमा।**

संज्ञा पु. [सं. धैर्य] **धीरज, धैर्य।**

धीराधीरा—संज्ञा स्त्री [सं.] **वह नायिका जो नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जता दे।**

धीरे—क्रि. वि. [हिं. धीर] (१) **धीमी चाल या गति से।** (२) **चुपके से जिससे किसी को पता न चले।**

धीरोदात्त—संज्ञा पु. [सं.] (१) **वह नायक जिसमें दया, क्षमा, धीरता, धीरता आदि सद्गुण हों।** (२) **वीर-रस-प्रधान नाटक का नायक।**

धीरोद्धत—संज्ञा पु [सं.] **वह प्रबल शक्तिवाला नायक जो दूसरे का गर्व न सहकर अपने ही गुणों का बखान किया करे।**

धीर्य—संज्ञा पु [सं. धैर्य] **धीरज, धीरता।**

धीवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मल्लाह, मछुआ, केवट** उ.—बार-बार श्रीपति कहै, धीवर नहिं मानै—९-४२। (२) **सेवक।**

धीवरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **मल्लाह या केवट की स्त्री।** (२) **मछली पकड़ने की कँटिया।**

धुंकार—संज्ञा स्त्री. [सं. ध्वनि+कार] **गरज, गड़गड़ाहट।**

धुँगार—संज्ञा स्त्री [सं.धूम्र+आधार] **बघार, तड़का, छौंक।**

धुँगारना—क्रि. स. [हिं. धुँगार] **छौंकना, बघारना।**

क्रि. स. [अनु.] **मारना, पीटना।**

धुँगारी—क्रि. स. [हिं. धुँगारना] **छौंक या बघारकर।** उ.—छाँछ छबीली धरी धुँगारी। झहरै उठत झार की न्यारी।

धुँज, धुंजैं—वि. [हिं धुंध] **धुँधली या मंद वृष्टि।** उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को मग जोवत अँखियाँ भइ धुजैं—२७२१।

धुँद—संज्ञा स्त्री [हिं. धुंध] **आँधी से होनेवाला अँधेरा।**

धुँदा—वि. [हिं. धुंध] **अंधा।**

धुँध, धुँधक—संज्ञा स्त्री [सं. धूम्र+अंध] (१) **हवा में उड़ती हुई धूल।** (२) **इस धूल से होनेवाला अँधेरा।** (३) **मंद वृष्टि का रोग।**

धुँधका—संज्ञा पु. [हिं धुआँ] **धुआँ निकलने का छेद।**

धुँधकार—संज्ञा पु [हिं. धुँकार] (१) **गरज गड़गड़ाहट।** (२) **अँधेरा, अंधकार।**

धुँधर—संज्ञा स्त्री [हिं. धुंध] (१) **गर्द, गुबार।** (२) **धूल के उड़ने से होनेवाला अँधेरा।** उ.—तृनावर्त बिपरीत महाखल सो नृपराय पठायौ। चक्रवात ह्वै सकल घोष मैं रज धुंधर ह्वै छायौ—सारा ४२८।

धुँधराना—क्रि. अ. [हिं धुँधलाना] **धुँधला पड़ना।**

धुँधलका—वि. [हिं. धुँधला] **धुएँ के रंग का।**

धुँधला—वि. [हिं धुंध+ला] (१) **धुएँ की तरह हलका काला।** (२) **जो साफ न दिखायी दे।** (३) **कुछ-कुछ अँधेरा।**

धुँधलाई—संज्ञा स्त्री [हिं धुँधला+ई] **धुँधलापन।**

धुँधलाना—क्रि. अ. [हिं धुँधला] **धुँधला पड़ना।**

धुँधलापन—संज्ञा पु. [हिं धुँधला+पन] (१) **अस्पष्ट होने का भाव।** (२) **कम दिखायी देने का भाव।** (३) **हलका अंधकार होने का भाव।**

धुँधली—संज्ञा स्त्री [हिं. धुंध] मंद ज्योति।

धुँधाना—क्रि. अ. [हिं धुंध+आना (प्रत्य)] (१) धुआँ देते हुए जलना। (२) धुंधला होना।

क्रि. स.—किसी चीज में धुआँ लगाना।

धुंधार—वि.—[हिं. धुआँधार=धुआँ+धार] धुएँ से भरा हुआ, धूममय। उ.—अति अगिनि-झार, भभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ—५९६।

धुंधि—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुंध] धुंधलापन, हलका अंधकार। उ.—धुरवा धुंधि बढ़ी दसहूँ दिसि गर्जि निसान बजायौ —२८१९।

धुंधु—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जो कुवलयाश्व द्वारा मारा गया था।

धुंधुकार—संज्ञा पु [हिं. धुंधु+कार] (१) अँधेरा। (२) धुंधलापन। (३) नगाड़े की गड़गड़ाहट। (४) गरज।

धुंधुरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुंध] गर्द-गुबार, धूल या आँधी के कारण होनेवाला अंधकार।

धुंधुरित—वि. [हिं. धुंधुरि] (१) धुंधला किया हुआ। (२) धुंधली या मंद दृष्टिवाला।

धुंधुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. धुंधुरि] (१) आँधी से होनेवाला अँधेरा। (२) धुंधलापन। (३) दृष्टि मंद होने या कम दिखायी देने का रोग।

धुँधुवाना—क्रि. अ. [हिं धुआँ] धुआँ करना।

धुँधेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुंधुरि] अँधेरा, धुंधलापन।

धुँधेला—वि [हिं धुंध+एला] (१) दुष्ट। (२) छली।

धुँरवा—संज्ञा पु. [हिं. धुरवा] बादल, मेघ। उ.—उड़त धूरि धुँरवा धुर दीसत सूल सकल जलधार—१० उ. २।

धुआँ—संज्ञा पु. [सं. धूम्र] (१) धूम। उ.—धाम धुआँ के कहौ कवन कै कवनै धाम उठाई ३३४३।

मुहा.—धुआँ देना—(१) धुआँ निकालना। (२) धुआँ पहुँचाना। धुआँ काढ़ना (निकालना)—बढ़बढ़-कर बातें करना, शेखी हाँकना। धुआँ रमना—धुएँ का छाया रहना। मुँह धुआँ होना—चेहरा फीका पड़ जाना। (किसी चीज का) धुँआ होना—उस चीज का काला पड़ जाना।

(१) भारी समूह। (२) धुर्रा, धज्जी।

धुआँदाना—संज्ञा पुं. [हिं धुआँ+दान] धुआँ घर से बाहर निकालने का छेद।

धुआँधार—वि. [हिं धुआँ+धार] (१) धुएँ से भरा हुआ। (२) तड़क-भड़कदार, भड़कीला। (३) धुएँ के से रंग का, काला। (४) बड़े जोर का, प्रचंड, घोर, बहुत प्रभावशाली।

धुआँना—क्रि अ. [हिं. धुआँ+आना] धुएँ की गंध आ जाने से स्वाद बिगड़ जाना।

धुआँयँध—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुआँ+गंध] (१) धुएँ की सी गंध। (२) बदहज्मी की डकार, धूम।

धुआँरा - संज्ञा पुं [हिं. धुआँ] धुँआ बाहर जाने का छेद।

धुआँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुवाँस] उरद का आटा जिससे पापड़ या कचौड़ी बनती है।

धुआँसा—संज्ञा पु. [हिं धुआँ] धुएँ की कालिख।

वि.—धुएँ की सी गंधवाला।

धुआवत—क्रि. स. [हिं. धुलाना] धुलाती है। उ.—हरि स्रम-जल अंतर तनु भीजे ता लालच न धुआवत सारी—३४२५।

धुईं—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूनी] धूनी। उ.—मनहुँ धुई निर्धूम अगिनि पर तप बैठे त्रिपुरारे—१६८६।

धुएँ—संज्ञा पुं. [हिं. धुआँ] 'धुआँ' का विभक्ति के संयोग के उपयुक्त रूप।

मुहा.—धुएँ का धौरहर—थोड़े समय में नष्ट हो जानेवाली चीज। धुएँ के बादल उड़ाना—गढ़-गढ़ कर बातें बनाना, गप हाँकना। धुएँ उड़ाना (बिखेरना)—टुकड़े-टुकड़े करना, नाश करना।

धुकड़पुकड़—संज्ञा पु. [अनु.] (१) घबराहट। (२) आगा-पीछा, पसोपेश।

धुकड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] छोटी थैली, बटुआ।

धुकत—क्रि. अ. [हिं. झुकना, धुकना] झुकता है, नीचे की ओर ढलता है, नवता है। उ.—डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल। जनु सिर पर ससि जानि अधोमुख, धुकत नलिनि नमि नाल—१०-१४४।

धुकधुकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धुकधुक (अनु)] (१) पेट और छाती के बीच का भाग। (२) कलेजा, हृदय। (३) कलेजे की धड़कन, कंप। उ.—(क) बिधि बिहँसत,

हरि हँसत हेरि हेरि, जसुमति की धुकधुकी सु उर की—१०-१८० । (ख) तनु अति कँपति विरह अति व्याकुल उर धुकधुकी स्वेद कीन्ही—३४४६ । (४) डर, भय । (५) छाती का एक गहना, पदिक, जुगनू ।

धुकना—क्रि अ. [हि झुकना] (१) झुकना, नवाना । (२) गिर पड़ना । (३) झपटना, वेग से टूट पडना ।

धुकरना—क्रि अ. [अनु] शब्द करना ।

धुकान—सज्ञा स्त्री [हि. धमकाना] गर्जना, घोर शब्द ।

धुकाना—क्रि स [हिं धुकना] (१) झुकाना, नवाना । (२) गिराना । (३) पटकना, हराना ।

क्रि स. [स. धूमकरण] धूनी देना ।

धुकार, धुकारी—सज्ञा स्त्री ['धु' से अनु.] नगाड़े का शब्द ।

धुकि—क्रि. अ. [हि झुकना] चक्कर खाकर गिरता है, गिरकर । उ —(क) लेति उसास नयन जल भरि भरि, धुकि सो परै धरि धरनी—९-७३ । (ख) रुड पर रुड धुकि परे धरि धरणि पर गिरत ज्यो सँग कर वज्र मारे —१० उ. २१ ।

धुक्कन—सज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घोर शब्द । (२) नगाड़े का घोर शब्द ।

धुक्कना—क्रि अ. [हि. धुकना] (१) झुकना । (२) गिरना ।

धुक्कारना—क्रि स. [हिं. धुकाना] (१) झुकाना । (२) गिराना ।

धुगधुगी—सज्ञा स्त्री [हि धुकधुकी] धड़कन, स्पदन ।

धुज—सज्ञा पु. [स. ध्वजा] पताका । उ.—हुमासन धुज जात उन्नत बह्यौ हर दिसि वाउ—सा. उ ४० ।

धुजा—सज्ञा स्त्री. [हिं ध्वजा] पताका, झंडा । उ —(क) धर्म-धुजा अंतर कछु नाही, लोक दिखावत फिरतौ —१-२०३ । (ख) गरजत रहत मत्त गज चहुँ दिसि छत्र-धुजा चहुँ टीस—९-७५ ।

धुजानी—सज्ञा स्त्री. [स ध्वजा] सेना ।

धुजिनी—सज्ञा स्त्री. [स ध्वजा] सेना, फौज ।

धुड़ग, धुडगा—वि. [हि धूर+अग] नंगा ।

धुत—अव्य [हि दुत] (१) घृणा या तिरस्कार-सूचक शब्द । (२) घृणा या तिरस्कार से हटाने का शब्द ।

धुतकार—सज्ञा स्त्री [हि. दुतकार] तिरस्कार, फटकार ।

धुतकारना—क्रि. स [हि. दुतकारना] (१) घृणा या तिरस्कार से हटाना । (२) धिक्कारना ।

धुताई—सज्ञा स्त्री. [स धूर्त्तता] वंचकता, चालबाजी, ठगपना, चालाकी । उ —तोमैं कहा धुताई करिहौं । जहाँ करी तहँ देखी नाहीं, कह तोसौ मैं लरिहौं—५३७ ।

धुतू—सज्ञा पु. [हिं धूतू] 'तुरही' नामक बाजा ।

धुतूरा—सज्ञा पु. [हिं. धतूरा] धतूरे का पेड ।

धुत्ता—सज्ञा पु [स धूर्त्तता] छल कपट, दुष्टता ।

धुधकार, धुधुकारी धुधुकी—सज्ञा स्त्री. ['धुधु' से अनु] (१) 'धू धू' की ध्वनि । (२) गरज, गड़गड़ाहट ।

धुन—सज्ञा पु. [स.] कांपने की क्रिया या भाव, कपन ।

सज्ञा स्त्री. [हिं धुनना] (१) लगन, तीव्र इच्छा ।

यौ.—धुन का पक्का—सच्ची लगनवाला जो किसी काम को शुरू करके किसी भी दशा में अधूरा न छोड़े ।

(२) मन की मौज, तरंग (३) सोच-विचार, चिंता ।

संज्ञा स्त्री. [स ध्वनि] (१) गाने का तर्ज या ढंग । (२) एक राग । (३) ध्वनि ।

धुनकना—क्रि स. [हिं धुनना] (१) धुनकी से रुई साफ करना । (२) खूब मराना-पीटना ।

धुनकी—सज्ञा स्त्री [स धनुस्] (१) रुई साफ करने का धनुष की तरह का एक औजार, पिंजा, फटका । (२) छोटा धनुष ।

धुनति—क्रि स. [हि. धुनना] मारती-पीटती है ।

मुहा —सिर धुनति—शोक या पश्चाताप की अधिकता से सिर पीटती है । उ —बारबार सिर धुनति बिसूरति बिरह ग्राह जनु भखियाँ—२७६६ ।

धुनना—क्रि. स [हि धुनकी] (१) धुनकी से रुई साफ करना । (२) खूब मारना-पीटना ।

मुहा.—सिर धुनना—शोक या पश्चाताप की अधिकता से सिर पीटकर रोना या विलाप करना ।

(३) बार बार कहते जाना । (४) बराबर काम करते जाना ।

धुनवाना—क्रि स. [हि धुनना] धुनने का काम दूसरे से कराना ।

धुनकी—संज्ञा स्त्री. [हि धुनकी] **धुनकी।**
धुना—संज्ञा पुं. [हि. धुनना] **रुई धुननेवाला।**
धुनि—संज्ञा स्त्री. [स. ध्वनि] । **ध्वनि, शब्द।**
सज्ञा स्त्री. [स.] **नदी।**
क्रि. स. [हिं. धुनना] **धुनकर, पीटकर।**
मुहा.—माथौ (सिर) धुनि—**शोक या पश्चात्ताप से माथा या सिर पीटकर, पछताकर।** उ.—(क) पटकि पूँछ माथौ धुनि लौटै लखी न राघव नारि—९-७५। (ख) हरि बिन को पुरवै मो स्वारथ ? मीडत हाथ, सीस धुनि ढोरत, रुदन करत नृप, पारथ—१-२८७। (ग) इतनौ बचन सुनत सिर धुनि कै बोली सिया रिसाइ—९-७७। (घ) सभा माँझ असुरनि के आगैं सिर धुनि धुनि पछितायौ—१०-६०। (ङ) रोहिनि चितै रही जसुमति तन सिर धुनि धुनि पछितानी—३९५।
धुनियत—क्रि. स. [हि धुनना] **पीटते हैं।**
मुहा.—सिर धुनियत—**शोक या पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं।** उ.—ह्वाँऊ जाई अकाज करैंगे गुन गुनि गुनि सिर धुनियत—पृ. ३२६ (५८)।
धुनियाँ—संज्ञा पुं. [हि. धुनना] **रुई धुनकनेवाला।**
धुनी—संज्ञा स्त्री. [स. ध्वनि] **ध्वनि, शब्द।** उ.—ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्ही वेद-धुनी—१०-२४।
संज्ञा स्त्री. [सं.] **नदी।**
धुनीनाथ—सज्ञा पुं. [स.] **सागर, समुद्र।**
धुनेहा—सज्ञा पुं. [हिं. धुनियाँ] **रुई धुननेवाला।**
धुनै—क्रि. स. [हि. धुनना] **धुनता है, पीटता है।**
मुहा.—सीस धुनै—**शोक या पश्चात्ताप से सिर धुनता है।** उ.—नगन न होति चकित भयौ राजा सीस धुनै कर मारै—१-२५७।
धुपधुप—वि. [हि धूप] **(१) साफ। (२) चमकीला।**
धुपना—क्रि. अ. [हिं. धुलना] **धोया जाना, धुलना।**
धुपाना—क्रि स. [हि धूप=एक सुगंधित पदार्थ] **धूप के धुएँ से सुगंधित करना।**
क्रि. स [हिं धूप=सूर्य का ताप] **धप दिखाकर सुखाना या तपाना।**

धुपेना—सज्ञा पुं. [हिं. धूप+एना (प्रत्य.)] **'धूप' नामक सुगंधित पदार्थ सुलगाने का पात्र, धूपदानी।**
धुप्पस—संज्ञा स्त्री [देश] **बनावटी धौंस।**
धुबला—सज्ञा पु. [स.] **लहँगा, घाघरा।**
धुमई—वि [स. धूम्र+ई (प्रत्य.)] **धुएँ के रंग का।**
सज्ञा पुं.—**धुएँ के से रंग का बैल।**
धुमरा—वि. [हिं. धूमिल] **(१) धुएँ की तरह लाली लिये हल्के काले रंग का। (२) धुँधला।**
धुमला—सज्ञा पुं. [स. धूम्र+ला] **अंधा।**
धुमलाई—सज्ञा स्त्री. [हि धूमिल+आई (प्रत्य.)] **(१) धूमिल होने का भाव। (२) अँधेरा, अंधकार।**
धुमारा—वि. [सं. धूम्र+आरा] **धुएँ के रंग का।**
धुमिला—वि. [हि धूमिल] **(१) धुँधला। (२) धुएँ के रंग का।**
धुमिलाना—क्रि. अ. [हि. धूमिल] **धूमिल या काला होना।**
धुरंधर—वि. [सं.] **(१) भारी, बड़ा। (२) श्रेष्ठ।**
सज्ञा पुं.—**बोझ ढोनेवाला।**
धुर—संज्ञा पु. [स. धुर] **(१) गाड़ी का धुरा। (२) मुख्य स्थान। (३) भार, बोझ। (४) बैलों के कंधे का जुआ। (५) आरभ।** उ.—धुर ही ते खोटो खायौ है लिए फिरत सिर भारी—३३४०।
मुहा.—धुर सिरे से—**बिलकुल नये सिरे से।**
अव्य.—**(१) बिलकुल सीधा, न इधर का न उधर का। (२) बहुत दूर, एकदम छोर या सीमा पर।** उ.—उड़त धूरि धुरवा धुर दीसत सूल सकल जलधार—३४९५।
वि. [स. ध्रुव] **दृढ़, पक्का।**
धुरजटी—सज्ञा पुं. [स. धूर्जटी] **शिव, महादेव।**
धुरना—क्रि. स. [स. धूर्वण] **(१) मारना-पीटना। (२) बजाना।**
धुरपद—सज्ञा पुं. [स. ध्रुपद] **एक प्रकार का गीत।** उ.—ध्रुवा छंद धुरपद जस हरि को हरि ही गाय सुनावत—१०७२।
धुरवा—सज्ञा पु [स धुर+वाह] **बादल, मेघ।** उ.—(क) उड़त धूरि धुरवा धुर दीसत सूल सकल जलधार—३४९५। (ख) धुरवा धुधि बढी दसहूँ दिसि गर्जि निसान

बजायौ—२८१६ । (ग) कारी घटा देखि धुरवा जनु बिरह लयौ करता जनु—२८७२ ।

धुरा—सज्ञा पु [स धुर] पहिये, गाड़ी आदि के बीचोंबीच का डडा, अक्ष ।

सज्ञा पु [स] भार, बोझ ।

धुरियाधुरग—वि [देश] (१) जिस गाने के साथ बाजे की जरूरत न हो । (२) अकेला ।

धुरियाना—क्रि स [हि धूर] (१) धूल डालना । (२) दोष दबाना ।

क्रि. अ — (१) धूल का डाला जाना । (२) दोष का दबाया जाना ।

धुरियामलार सज्ञा पु [देश] एक राग ।

धुरी—सज्ञा स्त्री [हिं धुरा] छोटा धुरा ।

धरीण, धुरीन—वि [स धनुण] (१) बोझ या भार सँभालनेवाला । (२) मुख्य, प्रधान । (३) भारी ।

धुरेंडी—सज्ञा स्त्री [हिं धुलेंडी] होली जलने के दूसरे दिन मनाया जानेवाला एक त्योहार ।

धुरे—क्रि स [हिं. धुरना] बजाये । उ.—पहुँचे जाइ राजगिरि द्वारे धुरे निसान सुदेस—१० उ. ४८ ।

धुरेटना—क्रि स [हिं धुर+एटना] धूल लगाना ।

धुर्—सज्ञा स्त्री. [स] (१) पशुओं के कधे पर रखा जानेवाला जुआ (२) बोझ, भार । (३) पहिए का धुरा । (४) धन-संपत्ति ।

धुर्य—वि [स] (१) धुरधर । (२) श्रेष्ठ ।

धुर्रा—सज्ञा पु [हि धूर] कण, रजकण ।

धुर्रे—सज्ञा पु बहु [हि धुर्रा] छोटे-छोटे कण ।

मुहा.—धुर्रे उड़ाना [उडा देना]—(१) नष्ट-भ्रष्ट कर डालना । (२) बहुत अधिक मारना-पीटना ।

धुलना—क्रि अ. (हि धोना) धोया जाना ।

धुलवाना—क्रि स. [हि धुलना का प्रे] धोने का काम दूसरे से कराना ।

धुलाई—सज्ञा स्त्री [हि धोना] धोने का काम, भाव या मजदूरी ।

धुलाना—क्रि स [स धवल] धोने का काम कराना ।

धुलेंडी—सज्ञा स्त्री [हिं धूल+उडाना] (१) होली जलने के दूसरे दिन मनाया जानेवाला एक त्योहार जिस दिन खूब रग चलता है । (२) उक्त त्योहार का दिन ।

धुव—सज्ञा पु. [सं. ध्रुव] (१) ध्रुवतारा । (२) ध्रुव ।

सज्ञा पु [हि] कोप, क्रोध, गुस्सा ।

धुवका— सज्ञा पु. [स. ध्रुवक] गीत की टेक ।

धुवन—सज्ञा पु. [स] आग ।

वि. – चलाने, कँपाने या हिलानेवाला ।

धुवाँ -सज्ञा पु [हिं. धुआँ] धूम, धुआँ ।

धुवाँधज—सज्ञा पु [सं. धूम्र+ध्वज] अग्नि ।

धुवाँरा सज्ञा पु. [हिं. धुआँ+द्वार] धुआँ निकलने का छेद ।

धुवाँस—सज्ञा स्त्री [हिं धूर+माष] उरद का आटा जिससे पापड़ या कचौड़ी बनती है ।

धुवाए—क्रि स. [हिं धुलाना] धुलाए, (जल से) पखराए ।

उ —कनक-थार मैं हाथ धुवाए—३६६ ।

धुवाना—क्रि स [हिं. धुलाना] धुलवाना ।

धुस्तूर—सज्ञा पुं [स] धतूरा ।

धुस्स—सज्ञा पु. [स. ध्वस] (१) ढेर, टीला । (२) बाँध ।

धुँध, धुँधि –सज्ञा स्त्री [हिं धुंध] धूलभरी आँधी के कारण होनेवाला अँधेरा । उ.—धूम धुंध छाई धर अबर चमकत बिच बिच ज्वाल—६१५ ।

धूँधर—वि [स. धुध] धुँधला ।

सज्ञा स्त्री.– हवा में छाई हुई धूल । (२) इस धूल के कारण होनेवाला अँधेरा ।

धूँमना—क्रि. अ. [देश.] जोर का शब्द करना ।

धूँसा - सज्ञा पुं. [हिं धौंसा] बड़ा नगाड़ा, डका ।

धू—वि. [सं ध्रुव] स्थिर, अचल ।

सज्ञा पु —(१) ध्रुव तारा । (२) भक्त ध्रुव । (३) धुरी ।

धूई—सज्ञा स्त्री [हिं धुआँ] धूनी ।

धूक—सज्ञा पु. [स] (१) वायु । (२) काल ।

धूजट—सज्ञा पु [हिं धूर्जटी] शिव, महादेव ।

धूत—वि [स.] (१) हिलता या काँपता हुआ । (२) जो डाँटा गया हो । (३) छोड़ा हुआ, त्यागा हुआ ।

वि [स धूर्त] (१) धूर्त, काइयाँ । उ.—(क) लपट, धूत, पूत दमरी कौ, विषय-जाप कौ जापी—१-१४० ।(ख) ऐसेई जन धूत कहावत । (ग) सूरस्याम दीन्हे ही बनिहै बहुत कहावत धूत—५३६ । (घ) धूत धौल लंपट जैसे हरि तैसे और न जानैं—३३६६ ।

(२) मायावी, छली, कपटी। उ.—भए पाडवनि के हरि दूत। गए जहाँ कौरवपति धूत—१-२३७।

धूतना—क्रि. स. [हिं. धूर्त] धोखा देना।

धूतपाप—वि. [सं.] जिसके पाप दूर हो गये हों।

धूतपापा—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी की एक प्राचीन नदी जो अब सूख गयी है।

धूता—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्नी, भार्या।

धूति—क्रि. स. [हिं. धूतना] धूर्तता करके, धोखा देकर, ठगकर। उ.—हौं तव संग जरौंगी, यौं कहि, तिया धूति धन खायौ—२-३०।

धूती—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

धूतो—वि. [सं. धूर्त्त] धोखा देनेवाला, धूर्त्त।

धूत्यौ—संज्ञा स्त्री. [सं. धूर्त्तता] वचकता, चालबाजी, ठगपना। उ.—तुमसौं धूत्यौ कहा करौं, धूत्यौ नहिं देख्यौ—५८६।

धू धू—संज्ञा पुं. [अनु.] आग की लपट उठने का शब्द।

धून—वि. [सं.] कंपित।

धूनक—संज्ञा पुं. [सं.] हिलाने-डुलानेवाला।

धूनना—क्रि. स. [हिं. धूनी] जलाकर धूनी देना।

क्रि. स. [हिं. धुनना] (१) रुई साफ करना। (२) मारना-पीटना।

धूनियत—क्रि स. [हिं. धुनना] धूनी देते हैं।

धूनी—संज्ञा स्त्री. [हिं धुआँ] (१) किसी सुगंधित द्रव्य या साधारण वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ।

मुहा.—धूनी देना—जलाकर धुआँ उठाना और उससे सेंकना।

(२) वह आग जिसे तापने या शरीर को तपाने के लिए साधु चारों ओर जलाये रहते हैं।

मुहा.—धूनी जगना (लगना)—(साधुओं के तापने की) आग जलना। धूनी जगाना (लगाना)—(१) साधुओं का अपने सामने आग जलाना। (२) शरीर तपाना। (३) साधु या विरक्त होना। धूनी रमाना—(१) आग से शरीर को तपाना। (२) साधु या विरक्त होना।

धूप—संज्ञा पुं. [सं] सुगंधित पदार्थों का धुआँ। उ.—प्रति-प्रति गृह तोरन ध्वजा धूप। सजे सजल कलस अरु कदलि यूप—६-१६६।

संज्ञा स्त्री.—(१) वह द्रव्य जिसका धुआँ सुगंधित हो। (२) सूर्य का प्रकाश और ताप, घाम।

मुहा.—धूप खाना—धूप में खड़े होना, धूप में तपना। धूप खिलाना—धूप में तपाना। धूप चढना—(१) धूप फैलना। (२) ज्यादा समय बीतना। धूप दिखाना—धूप में रखना या तपाना। धूप में बाल सफेद करना—बूढ़ा होना, पर जीवन का अनुभव न होना। धूप लेना—धूप में खड़े होना।

धूपघड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूप+घडी] धूप में छाया से समय जानने का यंत्र।

धूपछाँह—संज्ञा स्त्री [हिं धूप+छाँह] एक कपड़ा जिसमें एक स्थान पर कभी एक रंग जान पड़ता है, कभी दूसरा।

धूपदान—संज्ञा पुं. [सं.धूप+आधान] 'धूप' नामक सुगंधित द्रव रखने या जलाने का पात्र।

धूपदानी—संज्ञा स्त्री [हिं. धूपदान] 'धूप' नामक सुगंधित द्रव्य रखने या जलाने का छोटा पात्र।

धूपन—संज्ञा पुं. [सं] धूप देने की क्रिया।

धूपना—क्रि. अ [सं. धूपन] सुगंधित द्रव्य जलने से धुआँ उठना।

क्रि. स.—गंध-द्रव्य जलाकर उसके धुएँ से वातावरण को सुगंधित करना।

क्रि. स. [सं. धूपन] दौड़ना, हैरान होना।

धूपपात्र—संज्ञा पु. [सं.] धूप जलाने का पात्र।

धूपबत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूप+बत्ती] गंध द्रव्य लगी सींक या बत्ती जिसको जलाने से वातावरण सुगन्धित हो जाता है।

धूपवास—संज्ञा पु. [सं.] स्नान के पीछे सुगंधित धुएँ में कुछ काल तक रहकर शरीर को बसाने की प्राचीन प्रथा।

धूपायित, धूपित—वि [सं.] (१) धूप या सुगंधित धुएँ से बसाया हुआ। (२) हैरान या थका हुआ, श्रांत।

धूम—संज्ञा पु. [सं] (१) धुआँ, धुआँ। उ.—बादर-छाहँ, धूम-धौराहर, जैसैं थिर न रहाही—१-३१६।

मुहा.—धूम के हाथी—तुरंत नष्ट हो जाने या किसी उपयोग में न आनेवाली वस्तु। उ.—देखत

भले काज को जैसे होत धूम के हाथी—३३२० ।
(२) अजीर्ण की डकार । (३) विशेष पदार्थों का धुआँ जो रोगियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है । (४) धूमकेतु । ५) उल्कापात ।
संज्ञा स्त्री — (१) रेलपेल, हलचल । (२) उपद्रव, उत्पात । (३) भीड-भाड़, ठाटबाट, सजधज । (४) शोरगुल, कोलाहल (५) प्रसिद्ध, जनरव ।
धूमक—संज्ञा पु. [स.] धुआँ, धूम ।
धूमधैया—सज्ञा स्त्री [हिं. धूम] (१) उपद्रव, उत्पात । (२) मार-पीट । (३) कूटना-पीटना ।
धूमकेतन—सज्ञा पुं. [स] (१) अग्नि । (२) केतु ग्रह ।
धूमकेतु—सज्ञा पुं [स.] (१) अग्नि । (२) केतु ग्रह, पुच्छल तारा । (३) शिव । ४) घोडा जिसकी पूँछ में भवँरी हो । (५) रावण की सेना का एक राक्षस ।
धूमग्रह—सज्ञा पु [स] राहु ग्रह ।
धूमज—सज्ञा पु [सं] धुएँ से बनावा दल ।
धूमदर्शी—वि [स. धूमदर्शिन्] जिसे धुँधला दिखायी दे ।
धूमधर—सज्ञा पु [स] अग्नि, आग ।
धूमधाम—सज्ञा स्त्री [हि धूम+धाम (अनु.)] ठाट-बाट, साज-बाज और तैयारी, समारोह ।
धूमधामी—वि [हिं धूमधाम] जो खूब धूमधाम से हो ।
वि [हिं धूम] नटखट, उपद्रवी ।
धूमध्वज—सज्ञा पु. [स] आग, अग्नि ।
धूमपथ—सज्ञा पु [स] धुआँ निकलने का रास्ता ।
धूमप्रभा—सज्ञा स्त्री. [स] एक नरक जहाँ सदा धुआँ भरा रहता है ।
धूमयोनि—सज्ञा पुं [सं] धुएँ से बना बादल ।
धूमर—वि [हिं धूमल] धुएँ के रग का ।
सज्ञा स्त्री.—धूमैले रंग की गाय । उ—धौरी धूमर काजर कारी कहि कहि नाम बुलावै-१-७६ ।
धूमरज—सज्ञा पु [स] धुएँ की कालिख ।
धूमरा—वि. [स. धूम] धुएँ के रग का ।
धूमरि, धूमरी—वि स्त्री. [स. धूमल] धुएँ के रंग की, लालिमा युक्त काले रग की । उ.—(क) अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इकठौरी । धौरी धूमरि, राती, रौंछी, बोल बुलाइ चिन्हौरी ।।(ख) आपुस मैं सब करत कुलाहल, धौरी, धूमरि, धेनु बुलाए—४८७ ।
धूमल—वि. [स.] धुएँ के रंग का ।
धूमला—वि [स. धूमल] (१) धुएँ के रंग का । (२) धुँधले रंग का, जो चटक न हो । (३) मलिन कांतिवाला, जिसकी कांति फीकी पड़ गयी हो ।
धूमवान—वि. [स. धूमवत्] धुएँ से युक्त ।
धूमसी—संज्ञा स्त्री. [स.] उरद का आटा, धुआँस ।
धूमांग—वि. [सं.] धुएँ के से अंगवाला ।
धूमाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं.] आग जिसमें लपट न हो ।
धूमाभ—वि [सं.] धुएँ के रंग का ।
धूमावती—सज्ञा स्त्री [स.] दस महाविद्याओं में एक ।
धूमित—वि.—[सं.] जिसमें धुआँ लगा हो ।
धूमिता—सज्ञा स्त्री. [स] दिशा जिसमें सूर्य जाने को हो ।
धूमिल—वि. [स. धूमल] (१) धुएँ के रंग का । (२) धुँधला । उ. —मुख अरविंद धार मिलि सोभित धूमिल नील अगाध । मनहुँ बाल-रवि रस समीर सकित तिमिर कूट हैं आध ।
धूमी—वि [स. धूमिन्] धुएँ से भरा हुआ ।
धूमोत्थ—वि. [स] धुएँ से निकला हुआ ।
धूम्र—वि [स] धुएँ के रंग का ।
संज्ञा पुं.—(१) ललाई लिए काला रंग, धुएँ का रंग । (२) शिव जी । (३) श्रीराम की सेना का एक भालू ।
धूम्रक—संज्ञा पुं [स] ऊँट ।
धूम्रलोचन—सज्ञा पु. [स] कबूतर ।
धूम्रवर्ण—वि [स.] धुएँ के रग का ।
सज्ञा पुं—ललाई लिये काला रग ।
धूम्रवर्णा—सज्ञा स्त्री. [स] अग्नि की एक जिह्वा ।
धूम्राक्ष—वि [सं] जिसकी आँखें धुँधले रंग की हों ।
धूर—संज्ञा स्त्री [हि धूल] धूल, रेणु, रज ।
अव्य. [हिं धुर] सीधा, न इधर न उधर ।
धूरजटी—संज्ञा पु [स धूर्जटि] शिवजी, महादेव ।
धूरडांगर—संज्ञा पु [देश] सींगवाला चौपाया ।
धूरत—वि. [स. धूर्त] (१) धोखा देनेवाला । (२) छली ।
धूरधान—सज्ञा पु [हिं धूल+धान] गर्द का ढेर ।

धूरधानी—संज्ञा स्त्री [हिं. धूरधान] (१) गर्द की ढेरी। (२) नाश।

धूरसभा—संज्ञा स्त्री. [सं धूलि+संध्या] संध्या।

धूरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूल] धूल, गर्द, चूरा, रज।

मुहा.—धूरा देना—अपने अनुकूल करना।

धूरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूल] धूल, रज, गर्द। उ.—(क) ससि सन्मुख जो धूरि उड़ावै उलटि ताहि कैं मुख परै —१-२३४। (ख) हरि की माया कोउ न जानै, आँखि धूरि सी दीन्ही—६६४।

मुहा.—धूरि बटोरत—व्यर्थ का काम करना, बेमतलब का काम करना। उ.—मग-मग धूरि बटोरत —व्यर्थ ही मारा मारा घूमता हूँ। उ.—कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत, भोजन कौ बिलखात—२-२२।

धूर्जटि—संज्ञा पुं. [सं.] शिवजी, महादेव।

धूर्त—वि. [सं] (१) छली। (२) धोखेबाज।

संज्ञा पुं.—(१) एक प्रकार का शठ नायक (साहित्य)। (२) धतूरा। (३) जुआरी। (४) कांइयाँ।

धूर्तक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुआरी। (२) गीदड़।

धूर्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] चालाकी, ठगपना।

धुरंधर—वि. [सं.] बोझ ढोनेवाला, भारवाही।

धूर्य—संज्ञा पुं. [सं] विष्णु।

धूल—संज्ञा स्त्री [सं. धूलि] रज, गर्द, रेणु।

मुहा.—(कहीं) धूल उड़ना—(१) तबाही आना। (२) चहल पहल न रहना। (किसी की) धूल उड़ना—(१) बुराइयों का प्रकट किया जाना। (२) उपहास होना। (किसी की) धूल उड़ाना—(१) दोषों को प्रकट करना। (२) हँसी उड़ाना। धूल उड़ाते फिरना—(१) मारे-मारे घूमना। (२) दीन दशा में परेशान घूमना। धूल की रस्सी बटना—बेकार का परिश्रम करना। धूल चाटना—(१) बहुत विनती करना। (२) बहुत नम्रता दिखाना। धूल छानना—मारे-मारे घूमना। धूल झड़ना—मार पड़ना, पिटना। धूल झाड़ना—(१) मारना-पीटना। (२) खुशामद करना। धूल डालना—(१) (किसी बात को) दबाना या फैलने न देना। (२) ध्यान देना। धूल फाँकना—(१) मारे-मारे फिरना। (२) सरासर झूठ बोलना। धूल बरसना—चहल-पहल या रौनक न रहना। धूल में मिलना—नष्ट हो जाना। धूल में मिलाना—नष्ट करना। (कहीं की) धूल ले डालना—(कहीं पर) बहुत बार पहुँचना। पैर की धूल—बहुत तुच्छ चीज। धूल सिर पर डालना—बहुत पछताना।

(२) धूल के बराबर तुच्छ चीज।

मुहा.—धूल समझना—कुछ न गिनना।

धूलक—संज्ञा पुं. [सं.] जहर, विष।

धूलधानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धूल+धान] नाश, विनाश।

धूला—संज्ञा पुं. [देश] टुकड़ा, खंड।

धूलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] धूल, गर्द, रज।

धूलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कणों की झड़ी। (२) कुहरा।

धूलिध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] वायु।

धूसना—क्रि. स. [सं. ध्वंसन] (१) मसलना। (२) ठूसना।

धूसर—वि. [सं.] (१) धूल से सना हुआ, धूल से भरा हुआ, जिसके धूल लगी हो। उ.—(क) हौं बलि जाउँ छबीले लाल की। धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि, बोलनि बचन रसाल की—१०-१०५। (ख) सखि री, नंदनदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु—१०-१७०। (ग) बिहरत बिबिध बालक संग। डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि-धूसर अंग—१०-१८४।

यौ.—धूल-धौसर—धूल से सना या भरा हुआ।

(२) धूल के रंग का, मटमैला, मटीला।

संज्ञा पुं.—(१) मटमैला या मटीला रंग। (२) गधा। (३) ऊँट।

धूसरा—वि [सं. धूसर] (१) मटमैला, मटीला। (२) जिसमें धूल लगी हो, धूल से भरा हुआ।

धूसरित—वि [सं.] (१) जो धूल से मटमैला हो गया हो। (२) जिसमें धूल लगी हो।

धूसरे, धूसरो, धूसल, धूसला, धूसलो—वि [सं. धूसर] (१) मटीला। (२) धूल भरा।

धृक, धृग अव्य [सं धिक्, पु हिं धृक] धिक्, लानत, धिक्कार। उ.—(क) धृग तव जन्म, जियन धृग तेरौ,

कही कपट-मुख बाता—६-४६ । (ख) तुमहिं बिना मन धृक अरु धृक घर । तुमहि बिना धृक धृक माता पितु धृक धृक कुल की कान लाज डर—१२६६ । (ग) धृग मोको धृग मेरी करनी तब हीं क्यों न मर्यो—२५५२ । (घ) मार मार कहि गारि दै धृग गाइ चरैया—२५७५ । (ग) मारि डारै कहा बदि को जीवन धृग मीच हमको नहीं मनन भूल्यौ—२६२४ ।

धृत—वि. [स.] (१) **पकड़ा हुआ । (२) ग्रहण या धारण किया हुआ । (३) स्थिर या निश्चित किया हुआ । (४) पतित, पापी ।**

धृतराष्ट्र—सज्ञा पुं. [स.] **दुर्योधन के पिता जो विचित्रवीर्य के पुत्र थे ।**

धृतराष्ट्री—सज्ञा स्त्री. [स.] **धृतराष्ट्र की स्त्री ।**

धृतव्रत—सज्ञा पुं [स.] **व्रत करनेवाला ।**

धृतात्मा—वि [सं. धृतात्मन्] **धीर, धैर्यवान् ।** सज्ञा पुं —(१) **धीर व्यक्ति । (२) विष्णु ।**

धृति—सज्ञा स्त्री [स] (१) **धरने पकड़नेवाला । (२) स्थिर रहने की क्रिया या भाव । (३) धैर्य, धीरता ।**

धृती—वि [स धृतिन्] **धीर, धैर्यवान् ।**

धृष्ट—वि. [स.] (१) **निर्लज्ज । (२) अनुचित साहस करनेवाला, ढीठ, उद्धत ।**

धृष्टता—सज्ञा स्त्री [स] (१) **ढिठाई । (२) निर्लज्जता ।**

धृष्टद्युम्न—सज्ञा पु [सं.] **राजा द्रुपद का पुत्र जो पांडवों की सेना का नायक था ।**

धृष्णता—सज्ञा स्त्री. [स] **धृष्टता ।**

धृष्णत्व—सज्ञा पु [स] **धृष्टता ।**

धृष्णि—सज्ञा पुं [स] **किरण ।**

धृष्णु—वि [स] (१) **ढीठ, उद्धत । (२) प्रगल्भ ।**

धेन—सज्ञा पु [स] (१) **नद । (२) समुद्र ।**

धेन, धेनु—सज्ञा स्त्री [स] (१) **हाल की बच्चाजनी गाय, सवत्सा गाय । (२) गाय ।** उ —कदली कटक, साधु असाधुहिं, केहरि कैं सँग धेनु बँधाने । यह बिपरीत जानि तुम जन की, अंतर दै बिच रहे लुकाने—१-२१७ ।

धेनुक—सज्ञा पुं [स.] (१) **एक राक्षस जिसे बलदेव जी ने मारा था ।** उ —धेनुक असुर तहाँ रखवारी । ... पकरि पाइँ बलभद्र फिरायौ । मारि ताहि तरु माहिं गिरायौ—४६६ । (२) **एक तीर्थ ।**

धेनुमती—सज्ञा स्त्री. [स] **गोमती नदी ।**

धेनुमुख—सज्ञा पुं. [स] **गोमुख नामक बाजा ।**

धेनुष्या—सज्ञा स्त्री. [स] **गाय जो बधक रखी हो ।**

धेय—वि [सं.] (१) **धारण करने योग्य । (२) लालन-पालन करने योग्य । (३) पीने योग्य ।**

धेयना—क्रि. अ [स. ध्यान] **ध्यान करना ।**

धेरा—वि. [देश.] **भेंगा ।**

धेलचा, धेला—सज्ञा पु. [हिं. अधेला] **आधा पैसा**

धेली—सज्ञा स्त्री. [हिं. अधेल] **आधा रुपया ।**

धैंताल—वि [अनु. धैं+हिं. ताल] (१) **चपल, चंचल । (२) उजड्ड, गँवार ।**

धैन—सज्ञा स्त्री [स. धेनु] **गाय, धेनु ।** उ —चहुँ ओर चतुरग लच्छमी, कोटिक दुहियत धैन री—१०-१३६ ।

धैनव—वि. [स.] **गाय से उत्पन्न ।** सज्ञा पु.—**गाय का बछड़ा ।**

धैना—सज्ञा स्त्री [हि. धरना या धंधा] (१) **आदत, स्वभाव । (२) काम-धंधा ।**

धैनु—सज्ञा स्त्री. [स धेनु] **गाय, धेनु ।** उ.—बार-बार हरि कहत मनहिं मन, अबहिं रहे सँग चारत धेनु—५०१ ।

धैबो—सज्ञा स्त्री. [हिं. धाना] **धाने या दौड़ने की क्रिया ।** उ.—कैसे हार तोरि मेरो डार्यौ बिसरत नाहीं रिसकर धैबो—१०५२ ।

धैया—सज्ञा पु [हिं धाय] **धाय, दाई, दूध पिलाकर पालनेवाली ।** उ —धन्य जसोमति त्रिभुवनपति धैया—२६३१ ।

धैर्य—सज्ञा पु [स] (१) **धीरज, धीरता, चित्त की स्थिरता । (२) उतावली या हड़बड़ी न करने का भाव, संतोष । (३) चित्त में आवेश या उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव ।**

धैवत—सज्ञा पु [स] **सगीत का छठा स्वर ।**

धैहौं—क्रि अ. [हिं धाना] **धाऊँगा, दौड़ूँगा, तेजी से जाऊँगा ।** उ.—(क) करिहौं नहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख ह्वै धैहौं—६-१५७ । (ख) देखि

स्वरूप रहि न सकिहौं रथ तैं धैहौं धर धाइ—२४८५।

धोंधा—संज्ञा पुं. [स. ढुंढि] (१) **बेडौल पिंड, लोदा।** (२) **भद्दा और बेडौल शरीर।**

मुहा.—मिट्टी का लोंदा—(१) **मूर्ख।** (२) **निकम्मा।**

धो—क्रि. स. [हिं. धोना] (१) **पानी से साफ करो, पखारो।** (२) **दूर करो, हटाओ, मिटाओ, मिटा दो।**

मुहा.—धो बहाओ—**मिटा दो, न रहने दो।**

धोइ—क्रि. स. [हिं. धोना] **धोकर।** उ.—चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं—१-२३९। (२) **बहाकर, मिटाकर।** उ.—मेघ परस्पर यहै कहत है धोइ करहु गिरि खादर—९४९।

प्र.—धोइ डारै—**दूर कर दिये, हटाये, मिटा दिये।** उ.—पतित अजामिल, दासी कुब्जा, तिनके कलिमल डारे धोइ—१-६५। धोइ डारौं—**मिटा दूं, बहा दूं।** उ.—जल बरषि ब्रज धोइ डारौ लोग देउँ बहाइ—९४३।

धोइऐ—क्रि. स. [हिं. धोना] **धो डालो।** उ.—लाल उठौ मुख धोइऐ, लागी बदन उघारन—४३९।

धोई—क्रि स. [हिं. धोना] (१) **धो लेना, छुड़ा सकना।** उ.—सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई। कारौ अपनौ रग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३। (२) **धोकर।** उ—पहिले ही चढि रह्यौ स्याम रँग छूटत नहि देख्यौ धोई—३१४८।

वि.—(१) **धोकर साफ की हुई।** (२) **जो धो डाली गयी हो, स्वच्छ।** (३) **धोकर छिलका उतारी हुई (दाल)।**

संज्ञा स्त्री—**धुली हुई उरद या मूँग की दाल।**

संज्ञा पु.—[हिं. थवई] **राजगीर, कारीगर।**

धोए—क्रि. स. [हिं. धोना] **पखारे।** उ—तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए—१-५२।

धोक—संज्ञा पु. [हिं धोखा] **छल-कपट, धोखा।**

धोकड़—वि. [देश.] **हट्टा-कट्टा, मोटा-ताजा।**

धोकर—क्रि. स. [हिं. धोना] **पानी से पखारकर।**

मुहा.—हाथ धोकर पीछे पड़ना—**सब काम छोड़-छाड़कर पीछे लग जाना, पूरी शक्ति से या सब ओर से निश्चित होकर परेशान करने में प्रवृत्त होना।**

धोख, धोखा—संज्ञा पु. [स. धूकत=धूर्तता, हिं धोखा] (१) **छल, धूर्तता, दगा।** (२) **भ्रम, भुलावा।** उ. आजु सखी अरुनोदय मेरे नैनन धोख भयौ। की हरि आजु पथ यहि गौने कीधौं स्याम जलद उनयौ—१६६६।

मुहा.—धोखा खाना—**ठगा जाना।** धोखा देना—(१) **भ्रम या भुलावे में डालना, छलना।** (२) **विश्वासघात करना।** (३) **वियोग या मृत्यु द्वारा दुख देना।**

(३) **भ्रम, भ्रांति, भूल, मिथ्या प्रतीति।**

मुहा.—धोखा खाना—**कुछ का कुछ समझना।** धोखा पड़ना—**भूल-चूक या भ्रम होना।**

(४) **भ्रम में डालने की असत् या मायामय वस्तु।**

मुहा.—धोखा खड़ा करना (रचना)—**भ्रम में डालने या भुलावा देने के लिए माया का आडंबर खड़ा करना।**

(५) **जानकारी का अभाव, अज्ञान।** (६) **हानि या अनिष्ट की संभावना।**

मुहा.—धोखा उठाना—**भ्रम या असावधानी से हानि उठाना या कष्ट सहना।**

(७) **संशय, कुछ का कुछ होने की आशंका।**

मुहा.—धोखा पड़ना—**सोचा कुछ हो, पर होना कुछ और।**

(८) **भूल-चूक, कसर, त्रुटि।**

मुहा.—धोखा लगना—**कमी या कसर होना।** धोखा लगाना—**कमी या कसर करना।**

(९) **खेत म पक्षियों को डराने-भगाने के लिए खड़ा किया जानेवाला पुतला।** (१०) **फल-वाले पेड़ों पर रस्सी से बांधी गयी लकड़ी जिससे 'खटखट' शब्द करके चिड़ियों को भगाया जाता है, खटखटा।** (११) **बेसन का एक पकवान।**

धोखे—संज्ञा पुं. [हिं धोखा] (१) **'धोखा' का विभक्ति-संयोग के उपयुक्त रूप।** (२) **भ्रम में डालनेवाली चीज।**

मुहा.—धोखे की टट्टी—(१) **वह परदा या ओट**

जिसके पीछे छिपकर शिकार खेला जाता है। (२) भ्रम में डालनेवाली चीज। (३) निरर्थक या सारहीन वस्तु।

(२) भ्रम, भ्रांति, असत् धारणा। उ.—आसन देइ बहुत करि बिनती सुत धोखे तव बुद्धि हेराई—१० उ. ११३। (२) जानकारी के अभाव या अज्ञान में।

धोखेबाज—वि. [हिं. धोखा+फा. बाज] छली-कपटी।

धोखेबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. धोखेबाज] छल-कपट।

धोखैं—संज्ञा पु. सवि. [हिं. धोखा] (१) भ्रम, मिथ्या प्रतीति। उ.—नील पाट पिरोइ मनि गन फनिग धोखे जाइ—१०-१७०। (२) अज्ञान या जानकारी के अभाव में।

मुहा.—धोखें ही धोखें—अज्ञानता की स्थिति में, भ्रम या असावधानी की दशा में। उ.—धोखें ही धोखें डहकायौ। समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ—१-३२६।

(३) भूल-चूक में, प्रमाद में। उ.—लियो न नाम कबहुँ धोखैं हूँ सूरदास पछितायौ—२-३०।

धोखो, धोखौ—संज्ञा पु. [हिं. धोखा] (१) छल-कपट। (२) भ्रम।

धोड़—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का साँप।

धोतर—संज्ञा पु. [सं. अधोवस्त्र] एक मोटा कपड़ा।

धोती—संज्ञा स्त्री. [सं. अधोवस्त्र] एक वस्त्र जो पुरुष कमर के नीचे का अंग और स्त्रियाँ सारा शरीर ढकने के लिए पहनती हैं।

मुहा.—धोती बाँधना—(१) धोती पहनना। (२) कमर कसकर तैयार होना। धोती ढीली करना—डरकर भागना। धोती ढीली होना—भयभीत होना।

संज्ञा स्त्री. [सं. धौती] योग की एक क्रिया जिसमें कपड़े की एक लंबी धज्जी मुँह से निगलते हैं।

धोना—क्रि. स. [सं. धावन] (१) पानी से साफ करना, पखारना।

मुहा.—(किसी चीज से) हाथ धोना—(उस चीज को) गँवा बैठना।

यौ.—धोना-धाना—धोकर सफाई करने की क्रिया।

धोप—संज्ञा स्त्री. [सं. धूर्वा या धर्वन] खड्ग, तलवार।

धोब—संज्ञा पु. [हिं. धोना] धोये जाने की क्रिया।

मुहा.—धोब पड़ना—धोया जाना।

धोबइन, धोबन, धोबिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. धोबी] (१) कपड़ा धोनेवाली स्त्री। (२) धोबी की स्त्री।

धोबिघटा—संज्ञा पु. [हिं. धोबी+घाट] वह घाट जहाँ धोबी कपड़े धोते हों।

धोबी—संज्ञा पु. [हिं. धोना] कपड़े धोनेवाला।

मुहा.—धोबी का कुत्ता—निकम्मा या व्यर्थ का व्यक्ति, व्यर्थ इधर-उधर घूमनेवाला व्यक्ति। धोबी का छैला—(१) मँगनी की या पराई चीज पहनने वाला। (२) मँगनी की या पराई चीज पर घमंड करने या इतरानेवाला।

धोय—क्रि. स. [हिं. धोना] (१) धोकर, पखारकर। उ. सूरदास हरि कृपा-बारि सों कलिमल धोय बहावै। (२) दूर करके, मिटाकर। उ.—साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल यह सब डारौं धोय। जो कछु लिखि राखी नंदनंदन मेटि सकै नहिं कोय।

धोयौ—क्रि. स. [हिं. धोना] धोया। उ.—धोयौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ—१-१६४।

धोर—संज्ञा पु. [सं. धर=किनारा] (१) निकटता, समीपता। (२) किनारा, धार, बाढ़।

धोरण—संज्ञा पु. [सं.] (१) सवारी। (२) दौड़।

धोरणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रेणी, परंपरा।

धोरी—संज्ञा पु. [सं. धौरेय] (१) भार उठानेवाला। (२) बैल। (३) प्रधान, मुखिया। (४) बड़ा, श्रेष्ठ या महान व्यक्ति।

धोरे, धोरै—क्रि. वि. [सं. धर=किनारा] पास, निकट, समीप। उ.—अपराधी मतिहीन नाथ हौं चूक परी निज धोरैं।

यौ.—धोरे-धोरे—आस-पास।

धोवत—क्रि. स. [हिं. धोना] धोता है, (पानी से) स्वच्छ करता है, पखारता है। उ.—(क) त्रियाचरित मतिमंत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत—६-२१। (ख) नृपति रजक अंबर नृप धोवत—२५७४।

धोवती—संज्ञा स्त्री. [सं. अधोवस्त्र] धोती।

क्रि. स. [हिं. धोना] धोती, पखारती।

धोवन—संज्ञा पुं [हि धोना] (१) **धोने का भाव** । (२) **वह पानी जिससे कोई चीज धोयी गयी हो** ।

धोवना—क्रि. स. [हि. धोना] **धोना** ।

धोवा—संज्ञा पुं [हि. धोना] (१) **धोवन** । (२) **जल** ।

धोवाना—क्रि. स. [हि. धोना] **धुलाना** ।

क्रि. अ.- **धुलना, धोया जाना** ।

धोवै—क्रि. स. [हिं. धोना] **धोता है, पखारता है, प्रक्षालन करता है** । उ.—इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै—३४७ ।

धोसा—संज्ञा पुं. [हि टोस] **गुड की भेली** ।

धौं—अव्य. [स. अथवा, हिं. दॆव, दहुं] (१) **संशयात्मक प्रश्नों के साथ प्रायः प्रयुक्त एक अव्यय, न जाने, कौन जाने, कह नहीं सकते** । उ —(क) कलानिधान सकल गुन सागर गुरु धौं कहा पढाए हो ? —१-७ । (ख) काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ —६-४५ । (२) **कि, किधौं, या, अथवा** । उ.—गुनत सुदामा जात मनहिं मन चीन्हैंगे धौं नाहीं । (३) **तो, भला, कहो** । उ.- (क) भुवन चोदह खुरनि खूँदति. सु धौं कहाँ समाइ—१-५६ । (ख) यह गति भई सूर की ऐसी स्याम मिलै धौं कैसे—१-२६३ । (ग) कहत बनाइ दीप की बतियाँ कैसैं धौं हम नासत—२-२५ । (४) **कि** । (५) **'तो' (जोर देने के लिए)** । उ.-(क) को करि सकै बराबरि मेरी सो धौं मोहि बताउ-१-१४५ (ख) अब धौं कहो, कौन दर जाऊ-१-१६५ । (ग) कहि धौं सुक्र, कहा अब कीजै, आपुन भए भिखारि —८-१४ ।

धौंक—स. स्त्री. [हि धौंकना] (१) **आग सुलगाने के लिए भाथी से निकाला गया हवा का झोंका** । (२) **गरम हवा का झोंका, लू** ।

धौंकना—क्रि. स. [सं. धम] (१) **आग बढ़ाने के लिए भाथी से हवा का झोंका पहुँचाना** । (२) **(किसी के ऊपर) भार डालना** । (३) **किसी पर दंड लगाना** ।

धौंकनी—संज्ञा स्त्री. [हि. धौंकना] **आग फूंकने की नली या भाथी** ।

मुहा.—धौंकनी लगना—**साँस फूलना** ।

धौंका—संज्ञा पुं. [हिं. धौंकना] **लू का झोंका** ।

धौंकिया—संज्ञा पु [हि धौंकना] **आग फूंकनेवाला** ।

धौंकी—संज्ञा स्त्री. [हि धौंकना] **धौंकनी** ।

धौंज, धौंजा—संज्ञा स्त्री. [हि धौंजना] (१) **दौड़-धूप** । (२) **घबराहट, हैरानी, व्याकुलता** ।

धौंजना—क्रि. अ [स. ध्वजन] **दौड़ना-धूपना** ।

क्रि स. **रौंदना, मसलना** ।

धौंताल, धौंताली—वि [हि धुन+ताल] (१) **धुनी, धुन में लगा हुआ** । (२) **चुस्त, चालाक** । (३) **साहसी, हिम्मती** । (४) **मजबूत** । (५) **तेज, पटु** । (६) **उपद्रवी, उधमी** ।

धौंधौंमार—संज्ञा स्त्री [अनु धमधम+हि मार] **उतावली** ।

धौंर—संज्ञा स्त्री [स. धवल] **सफेद ईख** ।

धौंस—संज्ञा स्त्री. [सं द] (१) **धमकी, घुड़की** । (२) **धाक, रोबदाब** । (३) **भुलावा, झाँसापट्टी** ।

धौंसना—क्रि स [हि धौंस] (१) **दबाना, दमन करना** । (२) **धमकी या घुड़की देना** । (३) **मारना पीटना** ।

धौंसपट्टी—संज्ञा स्त्री. [हि. धौंस+पट्टी] **भुलावा, झाँसा** ।

मुहा.—धौंसपट्टी मे आना—**भुलावे में आना** ।

धौंसा—संज्ञा पु. [हि धौंसना] (१) **बड़ा नगाड़ा, डंका** ।

मुहा —धौंसा देना (बजाना) । **चढ़ाई का डंका बजाना या घोषणा करना** ।

(२) **शक्ति, सामर्थ, क्षमता** ।

धौंसि—क्रि. स. [हिं धौंसना] **धमकी या घुड़की देने के लिए, डराने-धमकाने के लिए** । उ.—राजा बड़े, बात यह समझी, तुमको हम पै धौंसि पठायौ ।

धौंसिया—संज्ञा पु. [हि धौंसना] (१) **धौंस जमानेवाला** । (२) **झाँसापट्टी या धोखा देनेवाला** । (३) **नगाड़ा बजानेवाला** ।

धौत—वि. [स.] (१) **सना हुआ, भरा हुआ, नहाया हुआ** । उ.—(क) धूरि धौत तन, अंजन नैननि, चलत लटपटी चाल—१०-११४ । (ख) धूसरि धूरि धौत तनु मंडित मानि जसोदा लेत उछंगना । (२) **धोया हुआ, साफ** । (३) **उजला, सफेद** ।

संज्ञा पुं.—**रूपा, चाँदी** ।

धौतशिला—संज्ञा स्त्री. [स.] **स्फटिक, बिल्लौर** ।

धौतात्मा—वि. [स. धौतात्मन्] **पवित्रात्मा** ।

धौति - संज्ञा स्त्री. [स] (१) शुद्धि । (२) योग में शरीर को भीतर बाहर से शुद्ध करने की क्रिया ।
धौम्य—संज्ञा पु [स.] पांडवों के पुरोहित ।
धौंर—संज्ञा पु [हि. धवल) एक सफेद चिड़िया ।
धौरहर—संज्ञा पु [हिं. धौराहर] बुर्ज, मीनार ।
धौरा—वि [स धवल] (१) सफेद, उजला। (२) सफेद रंग का बैल । (३) एक तरह का पंडुक नामक पक्षी ।
धौरादित्य—संज्ञा पु [स] एक तीर्थ का नाम ।
धौराहर—संज्ञा पु [हिं धुर=ऊपर+घर] भवन का खंभे-सा ऊँचा भाग जिस पर भीतरी सीढ़ियों द्वारा चढ़ते हैं, ऊँची अटारी, धरहरा, बुर्ज, मीनार । उ.—जीवन जन्म अल्प सपनौ सौ, समुझि देखि मन माहीं। बादर-छाँह, धूम-धौराहर, जैसें थिर न रहाहीं—१-३१९ ।
धौरिय—संज्ञा पु. [स धौरेय] बैल ।
धौरी—संज्ञा स्त्री [हिं पु. धौरा] सफेद रंग की गाय, कपिला । उ.—(क) बाँह उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत—१०-११७ । (ख) बाँह उचाइ कालिह की नाईं धौरी धेनु बुलावहु—१०-१७६ ।
वि.—सफेद, उजली, धवल ।
धौरे—क्रि. वि [हिं. धोरे] निकट, पास, समीप ।
धौरेय - वि [स] रथ आदि खींचनेवाला ।
संज्ञा पु.—रथ या गाड़ी खींचनेवाला बैल ।
धौर्त्य—संज्ञा पु [स] धूर्तता ।
धौल—संज्ञा स्त्री. [अनु] (१) चाँटा, थप्पड़। (२) हानि ।
संज्ञा स्त्री. [स. धवल] सफेद ईख ।
वि.—उजला, सफेद, श्वेत ।
मुहा.—धौल धूत—पक्का धूर्त या काँइयाँ । उ.—धूत धौल लपट जैसे हरि तैसे और न जानै—३४६६ ।
संज्ञा पु [हिं धौराहर] धरहरा, बुर्ज, मीनार ।
धौल-धक्कड़, धौल-धक्का, धौल-धप्पड़, धौल-धप्पा—संज्ञा पु. [हिं धौल+धक्का] (१) मारपीट, दंगा । (२) आघात, चपेट ।
धौलहर, धौलहरा—संज्ञा पु [हि धौराहर] बुर्ज, मीनार ।
धौला—वि. [स धवल] सफेद, उजला ।
संज्ञा पु.—सफेद रंग का बैल ।
धौलाई—संज्ञा स्त्री [हि. धौल+आई] सफेदी ।
धौलागिरि—संज्ञा पु. [स. धवलगिरि] एक पर्वत । उ.—धौलागिरि मानौ धातु चली बहि—२४१६ ।
धौली—संज्ञा पु [सं. धवलगिरि] उड़ीसा का एक पर्वत ।
ध्याइ—क्रि. स [हिं ध्याना] (१) ध्यान करके । (२) स्मरण करके, सुमिरकर । उ.—जातैं ये परगट भए आइ। ताकौं तू मन मैं निज ध्याइ—४-५ ।
ध्याई - क्रि स. [हिं. ध्याना] ध्यान लगाकर, स्मरण करके । उ.—द्रुपद-सुता समेत सब भाई । उत्तर दिसा गए हरि ध्याई—१-२८८ ।
ध्याऊँ—क्रि स [हिं. ध्याना] ध्यान करूँ, स्मरण करूँ, कामना करूँ, ध्यान में लाऊँ । उ.—स्याम-बल-राम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ । यहै जप, यहै तप, यहै मम नेम-व्रत, यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ—१-१६७ ।
ध्याए—क्रि. स. [हिं. ध्याना] (१) ध्यान किया। (२) स्मरण किया। उ.—जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कौं उर ध्याए (हो)—१-७ ।
ध्यात—वि. [स.] ध्यान किया या विचारा हुआ ।
ध्याता—वि. [स. ध्यातृ] (१) ध्यान करनेवाला । (२) विचार करनेवाला ।
ध्यान—संज्ञा पु. [स] (१) अंतःकरण में किसी वस्तु या व्यक्ति को उपस्थित करने की क्रिया या भाव ।
मुहा.—ध्यान में डूबना (मग्न होना)—इतनी एकाग्रता से ध्यान करना कि अन्य विषयों का बोध न रहे । ध्यान धरना—रूप आदि का स्मरण करना । ध्यान में लगना—स्मरण करके मग्न हो जाना ।
(२) सोच-विचार, चिंतन, मनन । (३) भावना, प्रत्यय, विचार ।
मुहा.—ध्यान आना—विचार उत्पन्न होना । ध्यान जमना—विचार स्थिर होना । ध्यान बँधना—विचार का बहुत देर तक बना रहना । ध्यान रखना—न भूलना । ध्यान लगाना—बराबर ख्याल बना रहना । (४) चित्त, मन ।
मुहा.—ध्यान में न लाना—(१) चिंता या परवाह न करना । (२) सोच-विचार न करना ।

(५) चेतना की प्रवृत्ति, चेत।

मुहा.—ध्यान जमना—**चित्त का एकाग्र होना**। ध्यान जाना—**बोध होना**। ध्यान दिलाना—**दिखाना, बताना या सुझाना**। ध्यान देना—**ख्याल करना, गौर करना**। ध्यान पर चढना—**चित्त से न हटना**। ध्यान बँटना—**चित्त का एकाग्र न रहना**। ध्यान बँटाना—(४) **चित्त को एकाग्र न रहने देना**। ध्यान बँधना—**चित्त एकाग्र होना**। ध्यान लगना—**चित्त एकाग्र होना**। ध्यान लगाना—**चित एकाग्र करना**।

(६) **समझ, बुद्धि**।

मुहा —ध्यान पर चढना (में आना)—**समझ म आना**। ध्यान मे जमना—**विश्वास के रूप में मन में स्थिर होना**।

(७) **धारणा, स्मृति, याद**।

मुहा —ध्यान आना—**याद होना**। ध्यान दिलाना—**याद दिलाना**। ध्यान पर चढना—**याद होना**, ध्यान रखना—**याद रखना**। ध्यान रहना—**याद रहना**। ध्यान से उतरना—**याद न रहना, भूल जाना**।

(८) **चित्त को एकाग्र करके किसी ओर लगाना**।

मुहा.—ध्यान छूटना—**चित्त की एकाग्रता न रहना**। उ.—देखन लग्यौ सुत मृतक जान। रुदन करत छूट्यौ रिषि ध्यान। ध्यान धरना—**चित्त को एकाग्र करके आराध्य की ओर लगाना**।

ध्यानना—क्रि. स. [हिं. ध्यान] **ध्यान करना**।

ध्यानयोग—सज्ञा पु [स] **योग जिसका प्रधान अंग ध्यान हो**।

ध्याना—क्रि. स. [सं. ध्यान] (१) **ध्यान करना** (२) **सुमरना, स्मरण करना**।

सज्ञा स्त्री.—**राधा की एक सखी का नाम**। उ.—दर्वा रभा कृष्णा ध्याना मैना नैना रूप—१५८०।

ध्यानिक—वि. [स.] **जिसकी प्राप्ति ध्यान से हो**।

ध्यानी—वि. [स. ध्यानिन्] **जो ध्यान में हो**।

ध्याम—वि [स] **सांवला, श्यामल**।

ध्याय—क्रि. स. [हिं ध्याना] **ध्यान लगाकर**।

ध्यायो, ध्यायौ—क्रि. स [हिं. ध्यान] (१) **ध्यान किया**। उ.—सूर प्रभु-चरन चित चेति चेतुन करत, ब्रह्म-सिव-सेस-सुक-सनक ध्यायौ—१-११६। (ख) मैं तो एक पुरुष कौं ध्यायौ। अरु एकहिं सौं चित्त लगायौ—४-३। (ग) तैं गोविन्द चरन नहिं ध्यायौ—४-६। (२) **स्मरण किया, सुमरा**। उ—हरिहिं मित्र-बिदा चित ध्यायौ। हरि तहँ जाइ बिलंब न लायौ।

ध्यावत—क्रि. स. [हि ध्याना] **ध्यान करते हैं**। उ.—(क) नारदादि सनकादि महामुनि, सुमिरत मन-बच ध्यावत—६-११३। (ख) सनक सकर जाहि ध्यावत निगम अबरन बरन।

ध्यावै—क्रि. स. [हि. ध्याना] **ध्यान करे**। उ.—कमल-नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव कौ ध्यावै १-१६८ (२) **ध्यान लगाता है**। उ.—एक निरंतर ध्यावै ज्ञानी। पुरुष पुरातन सो निर्बानी—१०-३।

ध्येय—वि. [सं.] (१) **ध्यान करने योग्य**। (२) **जिसका ध्यान या स्मरण किया जाय**।

ध्रमसारी—सज्ञा स्त्री [स. धर्मशाला] **धर्मशाला**। उ.—तीन पैग बसुधा दै मोकौं, तहाँ रचौं ध्रमसारी—८-१४।

ध्रुपद—सज्ञा पु. [सं. ध्रुवपद] **एक प्रकार का गीत**।

ध्रुव—वि. [स.] (१) **एक ही स्थान पर अचल या स्थिर रहनेवाला**। (२) **सदा एक ही अवस्था में रहनेवाला**। (३) **निश्चित, पक्का**।

सज्ञा पुं (१) **आकाश**। (२) **पर्वत**। (३) **खंभा**। (४) **बरगद का वृक्ष**। (५) **विष्णु**। (६) **हर**। (७) **ध्रुवतारा**। (८) **राजा उत्तानपाद का सुनीति के गर्भ से उत्पन्न पुत्र जो छोटी ही अवस्था में विमाता सुरुचि द्वारा तिरस्कृत होकर तप करने चला गया था। बालक की इस दृढ़ता से भगवान शीघ्र ही प्रसन्न हुए और उन्होंने वर दिया—सब लोको और नक्षत्रो से ऊपर तुम सदा अचल भाव से स्थित रहोगे**। उ—ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी—१-२८। (६) **पृथ्वी के वे दोनों सिरे जिनसे अक्षरेखा जाती मानी गयी है**।

ध्रुवता—सज्ञा स्त्री. [सं] (१) **स्थिरता, अचलता**। (२) **दृढ़ता**। (३) **दृढ़ निश्चयता**।

ध्रुवतारा—सज्ञा पुं [सं ध्रुव+हिं तारा] **एक तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है**।

ध्रुवदर्शक—संज्ञा पु. [स.] (१) सप्तर्षि मंडल। (२) कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं. [स.] विवाह की एक प्रथा जिसमें वर-वधू के सबंध की दीर्घता की कामना से ध्रुवतारा दिखाया जाता है।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं. [स.] नंद जी के एक भाई का नाम।

ध्रुवपद—संज्ञा पु. [सं.] ध्रुपद गीत।

ध्रुवलोक-संज्ञा पु [स.] वह लोक जिसमें ध्रुव स्थित है।

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) ध्रुपद गीत। (२) सती।

ध्रुवीय—वि. [स.] (१) ध्रुव-सबंधी। (२) ध्रुव प्रदेश का।

ध्वंस—संज्ञा पु. [स.] नाश, हानि, क्षय।

ध्वंसक—वि. [स.] नाश करनेवाला।

ध्वंसन—संज्ञा पु. [स.] नाश करने की क्रिया या भाव।

ध्वंसित—वि. [स.] नष्ट किया हुआ।

ध्वंसी—वि [स ध्वंसिन्] नाश करनेवाला।

ध्वज—संज्ञा पु [स.] (१) चिह्न, (२) निशान, झंडा। (३) ध्वजा लेकर चलनेवाला। (४) दर्प, गर्व।

ध्वजवान—वि [स.] (१) जो ध्वजा लिये हो। (२) चिह्नवाला।

ध्वजा—संज्ञा स्त्री. [स. ध्वज] (१) पताका, झंडा, निशान। उ.—(क) द्रुपदकुमार होइ रथ आगें धनुष गही तुम बान। ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजै प्रभु हाँकें रथ यान—१-२७५। (ख) प्रति-प्रति गृह तोरन ध्वजा धूप—९-१६६। (ग) उड़त ध्वजा तनु सुरति बिसारे अंचल नहीं सँभारति—२५६२।

ध्वजिक—वि. [स.] पाखंडी, आडंबरी।

ध्वजी—वि [स ध्वजिन्] (१) ध्वजवाला, चिह्नवाला। संज्ञा पुं — (१) संग्राम, रण। (२) ध्वजा लेकर चलनेवाला।

ध्वनि, ध्वनी—संज्ञा स्त्री [स ध्वनि] (१) शब्द, नाद, आवाज। उ.-(क) किंकिनि सब्द चलत ध्वनि रुनझुन ठुमुक-ठुमक गृह आवै—२५४९। (ख) गाये जु गीत पुनीत बहु बिधि बेद रवि सुंदर ध्वनी-१७०३। (२) आवाज, गूंज। (३) वह काव्य जिसमें व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो। (४) आशय, गूढ़ार्थ।

ध्वनिग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] कान।

ध्वनित—वि [स.] (१) प्रकट किया हुआ। (२) बजाया हुआ। (३) व्यंजित।

संज्ञा पु.—मृदंग जैसा एक बाजा।

ध्वन्य—संज्ञा पु. [सं.] व्यंग्यार्थ।

ध्वन्यात्मक—वि. [स.] (१) ध्वनिमय। (२) काव्य जिसमें व्यंग्य की प्रधानता हो।

ध्वन्यार्थ—संज्ञा पुं. [ध्वन्यर्थ] वह अर्थ जिसका बोध शब्द की अभिधा शक्ति से न होकर व्यंजना से हो।

ध्वस्त—वि. [स.] (१) गिरा हुआ, च्युत। (२) टूटा फूटा, भग्न। (३) नष्ट-भ्रष्ट। (४) पराजित।

ध्वस्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] नाश, विनाश।

ध्वांत—संज्ञा पुं. [स.] (१) अंधकार। (२) एक नरक।

ध्वांतचर—संज्ञा पुं. [स.] निशाचर, राक्षस।

ध्वांतचित्त—संज्ञा पु. [स.] जुगनूँ, खद्योत।

ध्वांतशत्रु—संज्ञा पु. [सं.] (१) सूर्य। (२) अग्नि।

ध्वान—संज्ञा पु. [स.] शब्द।

न

न—देवनागरी वर्णमाला का बीसवाँ और तवर्ग का पाँचवाँ व्यंजन वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंत है।

नंग—संज्ञा पु. [हि नंगा] (१) नंगापन। (२) गुप्तांग। वि.—लुच्चा, बदमाश और बेहया।

नंगता—वि. [हि. नंगा] (१) वस्त्रहीन। (२) निर्लज्ज।

नंग-धड़ंग—वि [हिं नंगा+अनु धड़ंग] बिलकुल नंगा।

नँगपैरा—वि [हि. नंगा+पैर] जो नंगे पैर हो।

नंगा—वि. [सं. नग्न] (१) जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। (२) निर्लज्ज, बेहया। (३) लुच्चा (४) जो ढका हुआ न हो, खुला हुआ।

संज्ञा पु.—(१) शिव, महादेव। (२) एक पर्वत।

नंगाझोरी, नंगाझोली—संज्ञा स्त्री. [हि नंगा+झोरना] कपड़े खुलवाकर ली जानेवाली तलाशी।

नंगाबुंगा—वि [हिं नंगा+बुंगा (अनु.)] (१) वस्त्र हीन। (२) खुला हुआ।

नंगाबुचा, नंगाबूचा—वि [हि नंगा+बूचा] बहुत निर्धन।

नंगालुचा—वि. [हिं. नंगा+लुच्चा] बेहया और नीच।

नँगियाना, नँग्याना—क्रि. स. [हिं. नंगा] (१) **नंगा करना। (२) सब कुछ छीन लेना।**

नँगियावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. नँगियाना] (१) **नंगा करने की क्रिया। (२) सब कुछ ले लेने की क्रिया।**

नंगी—वि. [हिं. नंगा] **वस्त्रहीन** उ.—पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बाढ्यौ बसन उमंगी—१-२१।

नंदंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुत्र। (२) राजा। (३) मित्र।**

नंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हर्ष, आनंद। (२) नौ निधियों में एक। (३) धृतराष्ट्र का एक पुत्र (४) वसुदेव का मदिरा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र। (५) विष्णु। (६) एक तरह का मृदंग। (७) बाँसुरी का एक भेद। (८) एक राग।(९) लड़का, पुत्र। (१०) गोकुल में बसने वाले गोपों के नायक जिनके यहाँ श्रीकृष्ण का बाल्यकाल बीता था। यशोदा इनकी स्त्री थी। बालक कृष्ण को ये पुत्रवत् मानते थे और स्वभावतः उनके प्रति इनके हृदय में अगाध वात्सल्य था।**

नंदक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्रीकृष्ण की तलवार। (२) राजा नंद जिन्होंने श्रीकृष्ण का पालन किया था।**

वि.—(१) **आनंददायक। (२) कुल-पालक।**

नंदकिशोर, नंदकिसोर—संज्ञा पुं. [सं. नंद+किशोर] **श्रीकृष्ण।**

नंदकुँवर, नंदकुमार—संज्ञा पुं. [सं. नंद+कुमार] **नंद जी के पुत्र, श्रीकृष्ण।**

नंदगाँव, नंदग्राम—संज्ञा पुं. [सं. नंदिग्राम] (१) **वृंदावन के निकट एक गाँव जहाँ नंद आदि गोप रहते थे।** उ.—हिलिमिलि चले सकल ब्रजवासी नंदगाँव फिरि आयो—सारा० ५३३। (२) **अयोध्या के निकट एक गाँव जहाँ चित्रकूट से लौटकर भरत चौदह वर्ष रहे थे।**

नंदद—संज्ञा पुं. [सं.] **आनंद देनेवाला, पुत्र।**

नंददुलारे—संज्ञा पुं. [सं. नंद+हिं. दुलारे] **नंद के प्यारे नंदजी के प्यारे-दुलारे पुत्र, नंदजी के यहाँ रहते समय का श्रीकृष्ण का बाल-रूप।** उ.—कोमल कर गोबर्धन धार्यौ जब हुते नंददुलारे—१-२५।

नंदनंद, नंदनंद, नंद-नंदन, नंदनंदन—संज्ञा पुं [सं. नंद.+ नंदन] **नंदजी द्वारा पुत्र के समान पाले जानेवाले बालक श्रीकृष्ण।**

नंदनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नंदजी की कन्या, योगमाया।**

नंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुत्र।** उ.—पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन ल्याए—१-२९। (२) **इंद्र का उपवन। (३) कामाख्या देश का एक पर्वत। (४) शिवजी। (५) विष्णु। (६) केसर। (७) चंदन। (८) एक अस्त्र। (९) मेघ, बादल।**

वि.—**आनंद या संतोष देनेवाला।**

नंदनप्रधान—संज्ञा पुं [सं.] **नंदन वन के स्वामी, इंद्र।**

नंदनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक तरह की माला जो श्रीकृष्ण को विशेष प्रिय थी।**

नंदनवन—संज्ञा पुं. [सं.] **इंद्र की वाटिका।**

नंदना—क्रि. अ. [सं. नंद] **प्रसन्न या संतुष्ट होना।**

संज्ञा स्त्री. [सं. नंद=बेटा] **पुत्री, लड़की।**

नंदनायक—संज्ञा पुं. [सं.] **गोपपति नंद।** उ.—साँचैहिं सुत भयौ नँदनायक कै हौं नाहीं बौरावति—१०-२३।

नंदनी—संज्ञा स्त्री. [सं. नंदिनी] **कन्या, पुत्री।** उ.—मित्र-विंदा यक नृपति नंदनी ताकौ माधव ल्याये—सारा. ६५५।

नँदरनियाँ, नँदरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं नंदरानी] **यशोदा।**

उ. नंद जू के बारे कान्ह छाँड़ि दै मथनियाँ। बार बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ—१०-१४५।

नँदरैया—संज्ञा पुं. [सं. नंद + हिं. राय] (१) **नंदराय, श्रीकृष्ण। (२) नंद जी।** उ.—(क) देखत प्रगट धर्यौ गोवर्धन चकित भए नँदरैया—९६५। (ख) लकुटनि टेकि सबन मिलि राख्यौ अरु बाबा नँदरैया—१०७१।

नंदलाल—संज्ञा पुं. [सं नंद+हिं. लाल] **श्रीकृष्ण।**

नंदसुत—संज्ञा पुं. [सं.] **श्रीकृष्ण।**

नंदा—संज्ञा पुं. [सं नंद] (१) **पुत्र, बेटा।** उ.—आँगन खेलैं नंद के नंदा—१०-११७। (२) **बरवा छंद का एक नाम।**

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **दुर्गा, योगमाया। (२) गौरी। (३) एक तरह की कामधेनु। (४) प्रतिपदा,**

षष्ठी या एकादशी तिथि। (५) संपत्ति। (६) एक अप्सरा। (७) पति की बहन, ननद। (८) एक तीर्थ। (९) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। · · ····। सुखमा सीला अवधा नंदा वृंदा जमुना सारि—१५८०।

नंदातीर्थ—संज्ञा पु [स.] हेमकूट पर्वत का एक तीर्थ।

नंदात्मज—संज्ञा पुं [स] श्रीकृष्ण।

नंदात्मजा—संज्ञा स्त्री. [स] योगमाया।

नंदादेवी—संज्ञा स्त्री [स] हिमालय की एक चोटी।

नंदि—संज्ञा पु. [स] (१) आनंद। (२) आनंदमय ब्रह्म।

नंदिक—संज्ञा पु [स] आनंद, हर्ष।

नंदिका—संज्ञा पु. [स] शिव, महादेव।

नंदिका—संज्ञा स्त्री. [स] (१) इंद्र की नंदनवाटिका। (२) प्रतिपदा, षष्ठी या एकादशी तिथि।

नंदिकेश, नंदिकेश्वर—संज्ञा पु [स.] शिव के द्वारपाल।

नंदिग्राम—संज्ञा पुं [स] अयोध्या के निकट एक गाँव जहाँ श्रीराम के वनवास की अवधि भर भरत जी तप करते रहे।

नंदिघोष—संज्ञा पु [स] (१) अर्जुन का रथ जो उन्हें अग्निदेव से मिला था। (२) शुभ घोषणा।

नंदित—वि [स] सुखी, प्रसन्न।

वि [हिं नादना] बजता हुआ।

नंदितूर्य—संज्ञा पु. [सं] एक प्राचीन बाजा।

नंदिन—संज्ञा स्त्री [स. नंदिनी] पुत्री, बेटी।

नंदिनी—संज्ञा स्त्री [स] (१) पुत्री, बेटी। (२) उमा। (३) गंगा का एक नाम। (४) दुर्गा का एक नाम। (५) ननद। (६) वसिष्ठ की कामधेनु जिसकी राजा दिलीप ने सेवा की थी। (७) पत्नी।

नंदिमुख—संज्ञा पु [स] शिवजी का एक नाम।

नंदिरुद्र—संज्ञा पु [स] शिवजी का एक नाम।

नंदिवर्द्धन—संज्ञा पु. [स] (१) शिव, महादेव। (२) पुत्र, बेटा। (३) मित्र।

वि.—आनंद या हर्ष बढ़ानेवाला।

नंदी—संज्ञा पु. [स. नंदिन्] (१) शिव के एक प्रकार के गण। इनके तीन वर्ग हैं—कनकनंदी, गिरिनंदी और शिवनंदी। उ.—दच्छ देखि अतिसय दुख तए। ··जज्ञ भाग याकौं नहिं दीजै।·· ····। नंदी-हृदय भयौ मुनि ताप। दियौ ब्राह्मननि कौं तिन साप—४-५। (२) शिव का द्वारपाल। (३) विष्णु।

वि.—हर्ष या आनंद बढ़ानेवाला।

नंदीपति—संज्ञा पु. [स.] शिवजी, महादेव।

नंदीमुख—संज्ञा पु. [स. नंदिमुख] शिवजी का एक नाम।

संज्ञा पुं. [स. नांदीमुख] एक प्रकार का श्राद्ध।

नंदीश, नंदीश्वर—संज्ञा पु. [स.] शिवजी।

नंदेउ, ननदेऊ, ननदोई—संज्ञा पुं. [हिं ननदोई] ननद के पति

न—संज्ञा पु.[स.] (१) उपमा। (२) रत्न। (३) सोना।

अव्य—(१) नहीं, मत। उ.—(क) इहि राजस को को न बिगोयौ—१-५४। (ख) पवन न भई पताका अंबर भई न रथ के अंग—२५४०। (२) कि नहीं, या नहीं (प्रश्नवाचक वाक्य-प्रयोग)।

नइयो—क्रि. स. [हिं नवाना] नवाइयो, झुकाइयो। उ.—ताको पूजि बहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम—सारा. ५५३।

नइहर—संज्ञा पुं. [हिं. नैहर] माता का घर, पीहर।

नई—वि. [स. नय] नीतिज्ञ, नीतिवान्।

वि.—स्त्री. [हिं नया] नवीन, नव। उ.—(क) मातु-पिता भैया मिले नई रुचि नई पहिचानि—१-३२५। (ख) सूर के प्रभु की नित्य लीला नई सकै कहि कौन यह कछुक गाई—८-१६।

संज्ञा स्त्री.—नयी बात, नवीन घटना। उ.—नई न करन कहत प्रभु तुम हौ सदा गरीब-निवाज—१-१०८।

संज्ञा स्त्री [हिं नदी] नदी, सरिता।

नउँजी—संज्ञा स्त्री [हिं. लीची] लीची नामक फल।

नउ—वि. [सं नव] (१) नया, नवीन। (२) नौ (संख्या)।

नउआ—संज्ञा पु [हिं नाऊ] नाऊ, नाई। उ.—दियौ तुरत नउआ (नौआ) को बुरकी—७-१८०।

नउका—संज्ञा स्त्री. [स नौका] नाव, नौका।

नउत—वि. [हिं. नवना] नीचे को झुका हुआ।

नउरग—संज्ञा स्त्री [हिं नारंगी] नारंगी।

नउर—संज्ञा पुं [हिं नेवला] नेवला।

नउलि—वि. [स नवल] नया, नवीन।

नए—वि. [हि नया] नवीन, नूतन। उ.—(क) इहाँ अपसगुन होत नित नए—१-२८६। (ख) सिर दधि-माखन के माट गावत गीत नए—१०-२४। (ग) चाड़ सरै पहिचानत नाहीं प्रीतम करत नए—२६६३। (घ) इहाँ अटक अति प्रेम पुरातन वहाँ अति नेह नए—३१४१।

क्रि. अ [हि. नवना] झुके। उ.—ह्वै आधीन पच ते न्यारे कुल लज्जा न नए री—पृ. ३३५ (४३)।

नएपंज—सज्ञा पु [देश] जवान घोड़ा।

नओढ़—सज्ञा स्त्री. [हिं नवोढा] वह नायिका जो लज्जा या भय से नायक के पास न जाना चाहती हो।

नककटा—वि [हि नाक+कटना] (१) कटी नाकवाला। (२) जिसकी दुर्दशा या अप्रतिष्ठा हुई हो। (३) निर्लज्ज बेहया।

नककटी—सज्ञा स्त्री [हि. नाक+कटना] (१) नाक कटने की क्रिया। (२) अप्रतिष्ठा, दुर्दशा।

वि स्त्री.—(१) जिसकी नाक कटी हो। (२) जिसकी दुर्दशा या अप्रतिष्ठा हुई हो। (३) निर्लज्ज।

नकघिसनी—सज्ञा स्त्री. [हिं नाक+घिसना] (१) जमीन पर नाक रगड़ने की क्रिया। (२) बहुत अधिक दीनता।

नकचढ़ा वि. [हिं नाक+ चढना] चिड़चिड़े मिजाज का।

नकटा—वि. [हिं नाक+कटना] (१) जिसकी नाक कटी हो। (२) जिसकी अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो। (३) निर्लज्ज, बेहया।

संज्ञा पु —(१) वह जिसकी नाक कटी हो। (२) एक तरह का गीत। (३) उक्त गीत गाने का अवसर।

नकटी—सज्ञा स्त्री. [हि. नकटा] वह जिसकी नाक कटी हो। उ - कच खुवि आँधरे काजर नकटी पहिरै बेसरि—३०२६।

नकतोड़ा—संज्ञा पुं. [हि नाक+तोड=गति] नाक-भौं चढ़ाकर बात करना।

नकतोड़े—संज्ञा पुं बहु [हिं. नकतोडा] नखरे।

मुहा —नकतोड़े उठाना—नखरे सहना। नकतोड़े तोड़ना—बहुत ज्यादा नखरे दिखाना या मनखना कर काम करना।

नकद—सज्ञा पु [अ. नक़द] तैयार रुपया-पैसा।

वि.—(१) (रुपया-पैसा) जो तैयार हो और तुरंत काम में लाया जा सके। (२) खास, तुरत, तैयार।

क्रि. वि.—तुरत रुपया-पैसा देकर या लेकर।

नकदी—सज्ञा स्त्री. [हि. नकद] रुपया-पैसा, रोकड़।

नकना—क्रि. स. [हि नाकना] (१) लांघना, फांदना, उल्लंघन करना। (२) चलना। (३) छोड़ना।

क्रि. अ. [हि नकियाना] नाक में दम होना।

क्रि स.—नाक में दम करना।

नकफूल—सज्ञा पु [हि. नाक+फूल] नाक में पहनने का फूल या कील नामक गहना।

नकब—सज्ञा पुं. [अ नकब] दीवार में चोरी के उद्देश्य से लगाई गयी सेंध।

नकबानी—सज्ञा स्त्री. [हि नाक+बानी (?)] नाक में दम, हैरानी, परेशानी। उ —उतै देखि धावै, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक एक ह्वै रह्यौ। विवस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकबानी, देखि गोप-मडली कमडली चितै रह्यौ—४८४।

नकबेसर—सज्ञा स्त्री. [हि नाक+बेसर] नाक में पहनने की बेसर या छोटी नथ।

नकमोती—सज्ञा पु [हि नाक+मोती] नाक में पहनने का लटकना या मोती।

नकल—सज्ञा स्त्री [अ. नक़ल] (१) सच्चे या खरे की अनुकृति। (२) असली के अनुरूप वस्तु बनाने की क्रिया। (३) प्रतिलिपि। (४) वेश, हाव-भाव का अनुकरण। (५) हास्यास्पद, धजा या आकृति। (६) हास्यपूर्ण बातचीत या चुटकुला।

नकलनवीस—सज्ञा पु [हि नकल+फा नवीस] लेख आदि की नकल करके जीविका कमानेवाला।

नकलनवीसी—सज्ञा स्त्री. [हि. नकल नवीस] नकल-नवीस का काम या पद।

नकली—वि [अ.] (१) कृत्रिम, बनावटी। उ.—मानुष-जनम पोत नकली ज्यौं, मानत भजन-बिना बिस्तार—१-४१। (२) खोटा जाली, झूठा।

नकसीर—संज्ञा स्त्री [हि. नाक+स क्षीर=जल] नाक से रक्त बहना ।

नकयाना—क्रि. अ. [हि नकियाना] बहुत परेशान होना ।
क्रि. स.—नाक में दम करना, बहुत परेशान करना ।

नकाब—संज्ञा स्त्री. [अ नकाब] (१) चेहरा छिपाने का कपड़ा या जाली । (२) घूंघट ।

नकार—संज्ञा पु. [स] (१) 'न' या 'नहीं' का बोधक शब्द या वाक्य । (२) अस्वीकृति, इनकार । (३) 'न' अक्षर ।

नकारना—क्रि अ [हि. न+करना] इनकार करना ।

नकारा—वि [हिं. न+कार्य] बुरा, खराब ।

नकारात्मक—वि [स नकार+आत्मक] (१) अस्वीकृति-सूचक (उत्तर या कथन) । (२) जिसमें 'नहीं' हो ।

नकाशना—क्रि स [अ नक्काशी] नक्काशी बनाना ।

नकियाना—क्रि. अ [हि नाक] (१) नाक से बोलना या उच्चारण करना । (२) दुखी या हैरान होना ।
क्रि. स.—दुखी, परेशान या तंग करना ।

नकीब—संज्ञा पु. [अ. नकाब] (१) बादशाही दरबारी चारण जो किसी को उपाधि या पद मिलने या किसी के आने की घोषणा करते हैं । उ —आसा कैं सिंहासन बैठ्यौ, -छत्रदभ सिर तान्यौ । अपजस अति नकीब कहि टेरयौ, सब सिर आयसु मान्यौ—१-१४१ । (२) कड़खा गानेवाला पुरुष, कड़खैत ।

नकुट—संज्ञा पुं. [स.] नाक, नासिका ।

नकुडा, नकुरा—संज्ञा पु [स. नक्र+पुट, प्रा नक्कुडड़] नथना । (२) नाक का अगला भाग ।

नकुल—संज्ञा पु [स] (१) राजा पांडु के चौथे पुत्र जो उनकी पत्नी माद्री के गर्भ से अश्विनीकुमारो द्वारा उत्पन्न हुए थे । इनका नाम तंत्रिपाल भी था । ये बहुत सुदर थे । पशु-चिकित्सा का इन्हें अच्छा ज्ञान था । इनका विवाह चेदिराज की कन्या करेणुमती से हुआ था जिससे इनके निरमित्र नामक पुत्र था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इन्होंने पश्चिम प्रदेशो पर विजय पायी थी । (२) नेवला नामक जंतु । (३) बेटा, पुत्र । (४) शिव, महादेव । (५) एक प्राचीन बाजा ।
वि — जिसका कुल-परिवार न हो ।

नकुलक—संज्ञा पु. [स] (१) एक प्राचीन गहना । (२) थैली ।

नकुला—संज्ञा स्त्री. [स.] गौरी, पार्वती ।
संज्ञा पु. [सं नकुल] नेवला ।

नकुली—संज्ञा स्त्री. [स] (१) केसर । (२) नेवले की मादा । (३) रुपया-पैसा रखने की थैली ।

नकुवा—संज्ञा पु. [हिं. नाक+उवा (प्रत्य.)] (१) नाक, नासिका । (२) तराजू की डंडी का छेद ।

नकेल—संज्ञा स्त्री [हि नाक] भालू या ऊँट की नाक में बँधी रस्सी या लगाम ।
मुहा —किसी की नकेल हाथ मे होना—किसी की कोर दबी होने या स्वार्थ अटका रहने के कारण वश या अधिकार में होना ।

नक्कना—क्रि. स [स. लंघन] लांघना, नांघना ।

नक्का—संज्ञा पु [हि. नाक] (१) सुई का छेद । (२) कौड़ी ।

नक्कार—संज्ञा पु. [स] तिरस्कार, अवज्ञा ।

नक्कारखाना—संज्ञा पु. [फा.] नौबत बजने की जगह ।
मुहा —नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है—(१) बहुत शोरगुल या भीड़-भाड़ में कही हुई बात कौन सुनता है ? (२) बड़े लोगो के बीच में छोटो की बात कौन सुनता है ?

नक्कारची—संज्ञा पु. [फा.] नगाड़ा बजानेवाला ।

नक्कारा—संज्ञा पु. [फा.] नगाड़ा, नौबत, डंका ।
मुहा.—नक्कारा बजाते फिरना—(किसी बात को) चारो ओर कहते फिरना । नक्कारा बजाकर—खुल्लम-खुल्ला, डंके की चोट पर । नक्कारा हो जाना – बहुत फूल जाना, फूलकर नगाड़ा हो जाना ।

नक्काल—वि [अ.] (१) नकल करनेवाला । (२) बहुरूपिया ।

नक्काली—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) नकल करने का काम । (२) बहुरूपियापन ।

नक्काश—संज्ञा पु [अ] नक्काशी करनेवाला ।

नक्काशी—संज्ञा स्त्री [अ] (१) धातु, पत्थर आदि पर बेल-बूटे बनाना । (२) बेल-बूटे ।

नक्काशीदार—वि. [अ नक्काशी + फा दार] जिस पर बेलबूटे का या कारीगरी का काम किया गया हो।

नक्कू—वि. [हि. नाक] (१) बड़ी नाकवाला। (२) अपनी प्रतिष्ठा का बहुत अधिक ध्यान करनेवाला। (३) सबसे अलग और उलटा काम करनेवाला।

नक्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संध्याकाल। (२) रात। (३) एक व्रत।

वि.—लज्जित, शरमाया हुआ।

नक्तचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रात को घूमनेवाला। (२) राक्षस।

नक्तचारी—वि [सं. नक्तचारिन] रात में घूमनेवाला।

नक्तांध वि [सं] जिसे रात में दिखायी न दे।

नक्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) ग्राह नामक जल-जंतु। उ.—नीरहू तैं न्यारै कीनौ चक्र नक्र सीस दीनौं, देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं—८-५। (२) घड़ियाल। (३) नाक, नासिका।

नक्र- संज्ञा पु [सं] घड़ियाल, ग्राह, मगर।

नक्श—वि. [अ. नक्श] अंकित, चित्रित, खचित।

मुहा.—मन में नक्श करना—किसी बात का निश्चय करना। मन में नक्श कराना—कोई बात मन में बैठाना। नक्श होना—पूरा पूरा निश्चय हो जाना।

संज्ञा पु. [अ] (१) चित्र, तसवीर (२) कलम-कूची आदि से बनाया गया बेल बूटे, फूल पत्ती आदि का काम। (२) मोहर, छापा। (३) जादू-टोना।

नक्शा—संज्ञा पुं. [अ. नक्शा] (१) चित्र, तसवीर। (२) बनावट-आकृति। (३) वस्तु या पदार्थ का स्वरूप। (४) चाल-ढाल। (५) दशा, अवस्था। (६) ढांचा। (७) मानचित्र।

नक्षत्र—संज्ञा पु. [सं.] तारा या तारों का समूह जो चंद्रमा के पथ में पड़ता हो। इनकी संख्या हमारे यहाँ सत्ताइस मानी गयी है; यथा—अश्विनी, भरणी। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती। इनके अतिरिक्त एक 'अभिजित' नक्षत्र और था जो अब 'पूर्वाषाढ़ा' के ही अंतर्गत माना जाता है।

नक्षत्रदर्शी—संज्ञा पु. [सं] (१) नक्षत्रों को देखनेवाला। (२) ज्योतिषी।

नक्षत्रदान—संज्ञा पु [सं] भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में अलग-अलग पदार्थों का दान।

नक्षत्रनाथ—संज्ञा पुं [सं.] चंद्रमा।

नक्षत्रप, नक्षत्रपति—संज्ञा पुं. [सं] चंद्रमा।

नक्षत्रपथ—संज्ञा पुं [सं] नक्षत्रों के चलने का मार्ग।

नक्षत्रमाला- संज्ञा स्त्री [सं] २७ मोतियों की माला।

नक्षत्रराज—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्रों का स्वामी, चंद्रमा।

नक्षत्रलोक—संज्ञा पु. [सं] चंद्रलोक से ऊपर का लोक जिसमें नक्षत्र हैं।

नक्षत्रवृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] तारा टूटना।

नक्षत्रसाधक—संज्ञा पुं. [सं] शिवजी, महादेव।

नक्षत्री—संज्ञा पु. [सं नक्षत्रिन्] (१) चंद्र। (२) विष्णु।

वि [सं नक्षत्र+ई] भाग्यशाली, जो अच्छे नक्षत्र में जन्मा हो।

नक्षत्रेश, नक्षत्रेश्वर—संज्ञा पु. [सं] चंद्रमा।

नख—संज्ञा पुं [सं] (१) नाखून। (२) एक गंधद्रव्य। (३) खंड।

संज्ञा स्त्री. [फा नख] बटा हुआ तागा, डोर।

नखक्षत—संज्ञा पुं [सं.] (१) नाखून गड़ने से बन जाने वाला चिह्न। (२) स्त्री के शरीर पर का चिह्न जो पुरुष के नाखून से बन जाय।

नखचारी—वि [सं नखचारिन] पंजे के बल चलनेवाला।

नखच्छत—संज्ञा पुं. [सं.नखक्षत] नाखून गड़ाने का चिह्न।

नखत—संज्ञा पुं. [सं. नक्षत्र] नक्षत्र। उ.—नखत उत्तरा आप विचारेउ काल कस को आयउ—सारा. ५२५।

नखतर—संज्ञा पु [सं. नक्षत्र] तारा, नक्षत्र।

नखतराज, नखतराय—संज्ञा पु [सं. नक्षत्र] चंद्रमा।

नखन—संज्ञा पु. बहु [हिं नख] नाखून। उ.—कर कपोल भुज धरि जघा पर लेखनि भाई नखन की रेखनि—२७२२।

नखना—क्रि. अ. [हिं. नाखना] लाँघ जाना।

क्रि स.—**लांघना, पार करना।**

क्रि. स. [स नष्ट] **नष्ट करना।**

नखनि —संज्ञा पु. [स नख+नि (प्रत्य)] **नखों से।** उ.—नरहरि रूप धरयौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ—१-१४।

नख-प्रकास—संज्ञा पु. [सं. नख+प्रकाश]—**नाखून की छटा, सुंदरता या ज्योति।** उ.—सूर स्याम-पद-नख-प्रकास बिनु, क्यौं करि तिमिर नसावै—१-४८।

नखरा—संज्ञा पु [फा.] (१) **नाज, चोचला, हाव-भाव।** (२) **चुलबुलापन।** (३) **बनावटी इनकार।**

नखरीला—वि. [फा. नखरा+ईला] **नखरा करनेवाला।**

नखरेखा—संज्ञा स्त्री. [स नख+रेख] (१) **नख गडने का चिह्न।** (२) **कश्यप की एक पत्नी जो बादलों की माता थी।**

नखरेबाज—वि. [फा] **बहुत नखरा करनेवाला।**

नखरेबाजी—संज्ञा स्त्री. [फा नखरा+बाजी] **नखरा करने की क्रिया या भाव।**

नखरेट, नखरौटा—संज्ञा स्त्री [स नख+हिं खरोट] **नाखून की खरोट, नाखून गड़ने का चिह्न।**

नखबिंदु—संज्ञा पु [स] **नाखूनों पर मेंहदी या महावर से बनाया जानेवाला गोल या चंद्राकार चिह्न।**

नखविष—वि [स] **जिसके नाखूनों में विष हो।**

नखशिख, नखसिख—संज्ञा पु. [सं नख+शिख] **पैर के नख से सिर तक, शरीर के सारे अंग।**

मुहा—नखशिख से—(१) **सिर से पैर तक।** (२) **बहुत बुरी तरह से, फूट-फूटकर, रोम-रोम से।** उ.—(क) मनसिज मन हरन हँसि साँवरो सुकुमार रासि नखसिख अंग-अंग निरखि सोभा की सींव नखीरी—२४६२। (ख) सकर कौ मन हर्यौ कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ। चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-शिख तैं रोयौ—१-४३।

नखहि—संज्ञा पु [स नख+हि (प्रत्य)] **हाथ के नखो पर।** उ —बूड़तहि ब्रज राखि लीन्हौ, नखहिं गिरिवर धरन—१-२०२।

नखांक—संज्ञा पु [स] **नाखून गड़ने का चिह्न।**

नखास—संज्ञा पु [अ नख्खास] **कबाड़ी बाजार।**

नखायुध—संज्ञा पु. [सं.] (१) **नखों से शरीर फाड़ डालनेवाले हिंसक पशु।** (२) **नृसिंह।**

नखियाना—क्रि. स. [हि नख+इयाना] **नाखून गड़ाना।**

नखी—वि. [स. नखिन्] **नाखून से चीरने-फाड़नेवाला।**

नखोटना—क्रि. स [स. नख+ओटना (अनु.)] **नाखून से नोचना या खरोचना।**

नखोटै—क्रि. स [हिं. नखोटना] **नखो से नोचता है।** उ.—कान्ह बलि जाऊँ, ऐसी आरि न कीजै।''' । धरत धरनि पर लोटै, माता को चीर नखोटै—१०-१८३।

नख्खास—संज्ञा पुं. [अ नख्खास] **कबाड़ी बाजार।**

नाग -वि. [स] **न चलनेवाला, अचल, स्थिर।**

संज्ञा पु.—(१) **पहाड़, पर्वत।** उ.—सुंदर आखर नग पै नगपति धन कहि लजत न गात—सा. ६२। (२) **पेड़, वृक्ष।** (३) **सांप।** (४) **सूर्य, रवि।** (५) **सात की सख्या।**

संज्ञा पुं [फा. नगीना] (१) **पत्थर या शीशे का रंगीन टुकड़ा, नगीना।** उ.—इते मान यह सूर महा सठ, हरि-नग बदलि, बिषय-बिष आनत—१-११४। (२) **संख्या।**

नगज - वि [स. नग+ज] **जो पर्वत से उत्पन्न हो।**

नगजा—वि. [सं नगज] **पर्वत से उत्पन्न होनेवाली।**

संज्ञा स्त्री.—(**हिमालय-कन्या**) **पार्वती।**

नगण—संज्ञा पु. [स.] **पिंगल शास्त्र का एक 'गण' जिसमें तीनो अक्षर लघु होते है, जैसे 'कमल'।**

नगण्य—वि. [स] **साधारण, तुच्छ, गया बीता।**

नगदंती—संज्ञा स्त्री [स] **विभीषण की स्त्री।**

नगद—संज्ञा पु [हि नकद] **तैयार रुपया-पैसा।**

नगदी—संज्ञा स्त्री. [हि नकद] **तैयार रुपया-पैसा।**

नगधर, नगधरन—संज्ञा पु [स. नग+हिं धरना] **(गोवर्द्धन) पर्वत को उठानेवाले श्रीकृष्ण।**

नगनंदनी—संज्ञा स्त्री [स] **हिमालय-कन्या पार्वती।**

नगन—वि. [सं. नग्न] (१) **वस्त्रहीन।** उ —दुस्सासन गहि केस द्रौपदी, नगन करन कौ ल्यायौ-१-१०६ (२) **जिसके ऊपर आवरण न हो।**

नगनी—संज्ञा स्त्री [स नग्ना] (१) **छोटी आयु की बालिका।** (२) **पुत्री, बेटी।** उ —रवि तनया, कह्यौ

मोहि बिवाहि। कत कह्यौ तू गुरु नगनी आहि। (३) **वस्त्रहीन स्त्री।**

नगपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सुमेरु।** उ.—चतुरानन बल सँभारि मेघनाद आयौ। मानौ घन पावस मैं नगपति है छायौ—९-९६। (२) **हिमालय पर्वत।** (३) **चंद्रमा।** (४) **कैलाश के स्वामी शिवजी।** उ.—सुंदर आखर नग पै नगपति घन कहि लजत न गात—सा. ६२।

नगभिद्—संज्ञा पुं. [सं.] **(पर्वतों के पंख काटनेवाले) इंद्र।**

नगभू—वि. [सं.] **जो पर्वत से उत्पन्न हुआ हो।**

नगर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शहर।** उ.—(क) जनम साहिबी करत गयौ। काया-नगर बड़ी गुंजाइस नाहिन कछु बढ़यौ—१-६४। (ख) नगर नीक औ काम बीच ते गोग्रह अत भए—सा. ८०। (२) **संसार।**

नगरनायिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वेश्या।**

नगरनारि, नगरनारी—संज्ञा स्त्री [सं.] **वेश्या।**

नगरपाल—संज्ञा पुं. [सं.] **नगर-रक्षक अधिकारी।**

नगर मार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] **नगर का राजमार्ग।**

नगरवासी—संज्ञा पुं. [सं.] **नगर का रहनेवाला।**

नगर विवाद—संज्ञा पुं. [सं.] **दुनिया के झगड़े टंटे।**

नगरहा—वि. [हिं. नगर+हा] **शहर में रहनेवाला।**

नगराई—संज्ञा स्त्री [हिं. नगर+आई (प्रत्य.)] (१) **नागरिकता, नागरिकों की शिष्टता-विशिष्टता।** (२) **चतुराई, चालाकी।** उ.—चारौं नैन भए इक ठाहर, मन हीं मन दुहुँ रुचि उपजाई। सूरदास स्वामी रति-नागर, नागरि देखि गई नगराई—७२०।

नगराध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] **नगर-रक्षक अधिकारी।**

नगरी—संज्ञा स्त्री [सं.] **नगर, शहर।** उ.—मथुरा नगरी कृष्ण राजा, सूर मनहिं बधावना—५७७।

संज्ञा पुं. [सं. नगरिन्] **नगर में रहनेवाला।**

नगाड़ा, नगारा—संज्ञा पुं. [फा. नक्कारा] **डंका, धौंसा।**

नगाधिप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हिमालय पर्वत।** (२) **सुमेरु पर्वत।**

नगारि—संज्ञा पुं. [सं. नग=पर्वत+अरि] **इन्द्र जिन्होंने पर्वतों के पंख काट डाले थे।**

नगी—संज्ञा स्त्री. [सं. नग=पर्वत+ई (प्रत्य.)] (१) **रत्न, नग, नगीना।** (२) **पर्वत-पुत्री पार्वती।** (३) **पहाड़िन।**

नगीच—क्रि. वि. [हिं. नजदीक] **निकट, पास।**

नगीना—संज्ञा पुं. [फा.] **रत्न, मणि।**

मुहा.—नगीना सा—**बहुत छोटा और सुन्दर।**

नगेंद्र, नगेश—संज्ञा पुं. [सं.] **पर्वतराज, हिमालय।**

नगौक—संज्ञा पुं. [सं. नगौकस्] (१) **पक्षी।** (२) **कौआ।**

नग्न—वि. [सं.] (१) **जिसके शरीर पर वस्त्र न हो।** (२) **जिसके ऊपर आवरण न हो।**

नग्नता—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) **नंगे होने का भाव।** (२) **नीचता, निर्लज्जता, दुष्टता।**

नघना—क्रि. स. [सं. लघन] **लाँघना, नाँघना।**

नघाना—क्रि. स. [सं. लघन] **लाँघना, फाँदना।**

नघावत—क्रि. स. [हिं. नाँघना] **नाँघने में, आरपार जाने में, लाँघते हैं।** उ.—घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत। गिरि गिरि परत, जात नहिं उलँघी, अति स्रम होत नघावत—१०-१२५।

नचत—क्रि. अ. [हिं. नाचना] **नाचते (हैं)।** उ.—नचत है सारग सुंदर करत सब्द अनेक—सा. ६४।

नचना—क्रि. अ. [हिं. नाचना] **नृत्य करना, नाचना।**

वि.—(१) **नाचनेवाला।** (२) **चक्कर खानेवाला।**

नचनि—संज्ञा स्त्री [हिं. नाचना] **नाच, नृत्य।**

नचनियाँ—संज्ञा पुं. [हिं. नाचना] **नाचनेवाला।**

नचनी—वि. स्त्री. [हिं. नचना] (१) **नाचनेवाली।** (२) **चक्कर खानेवाली।**

नचवैया—संज्ञा पुं. [हिं. नाच] **नाचनेवाला।**

नचाइ—क्रि. स. [हिं. नाचना का प्रे.] **नचाना।** उ.—प्रेम सहित पग बाँधि घूँघरू, सक्यौ न अंग नचाइ—१-१५५।

नचाई—क्रि. स. [हिं. नचाना] **नाचने को प्रवृत्त किया, दूसरे को नचाया।** उ.—सो मूरति तैं अपनैं आँगन, चुटकी दै दै जु नचाई—३६३।

नचाना—क्रि. स. [हिं. नाचना का प्रे.] (१) **दूसरे को नाचने में प्रवृत्त करना।** (२) **किसी से बार-बार उठने बैठने या इधर-उधर जाने का काम कराना।**

मुहा —नाच नचाना—(१) **बार-बार उठने बैठने का काम कराना। (२) उठा बैठा कर या दौड़ा-घुमाकर परेशान करना।**

(३) **चक्कर खिलाना, घुमाना।**

मुहा.– आँखें (नयन, नेत्र) नचाना—**चंचलता के साथ इधर उधर बार-बार देखना।**

(४) **इधर-उधर दौड़ा-फिराकर हैरान करना।**

नचावई—क्रि स [हिं नचाना] **नचाती है, नाचने को प्रेरित करती है।** उ.—जसुमति सुतहिं नचावई छवि देखति जिय तैं—१०-१३४।

नचावत—क्रि स. [स. नृत्य, हिं. नाच] (१) **नचाते हैं।** उ —चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात —१०-२१५। (२) **घुमाती हुई।** उ.—हाथ नचावत आवति ग्वारिनि जीभ करै किन थोरी—१०-२९३। (३) **घुमाते हैं, चक्कर खिलाते हैं, दौड़ाते फिराते हैं।** उ.—कबहूँ सबै अस्व चढि आपुन नाना भाँति नचावत—सारा १९०।

नचावहीं—क्रि. स [हिं. नचाना] **नचाती है, नाचने को प्रेरित करती है।** उ —चुटकी देतिं नचावहीं सुत जानि नन्हैया—१०-११६।

नचावहुगे—क्रि. स.[हिं नचाना]**नाचने को प्रेरित करोगे।**

मुहा —नाच नचावहुगे—**हैरान परेशान करोगे।** उ —तब चरित्र हमहीं देखैंगी जैसे नाच नचावहुगे —१९७८।

नचावै—क्रि. स [हि नचाना] **नाचने को प्रेरित करे।**

मुहा.—नाच नचावै—**हैरान-परेशान करनेवाले काम करावे।** उ.—माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै—१-४२।

नचिकेता—संज्ञा प [सं. नचिकेतस्] (१) **वाजश्रवा ऋषि का पुत्र जिसने मृत्यु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।** (२) **अग्नि।**

नचिबौ—सज्ञा पु [हिं नाचना] **नाचने की क्रिया या भाव।** उ —सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिबौ—१-५९।

नचीला—वि. [हिं नाच] **घुमक्कड़, चंचल।**

नचौहाँ—वि. [हिं. नाचना+औहाँ (प्रत्य.] (१) **नाचने-वाला।** (२) **चंचल, अस्थिर।**

नच्यौ—क्रि. अ. [हिं. नाच](१) **नाचना, नाच करना।**

प्र —उघरि नच्यौ चाहत हौं—**नंगे नाचना चाहता हूँ, निर्लज्जता का व्यवहार करना चाहता हूँ।** उ.—हौं तौ पतित सात पीढिनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं। अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हें बिरद बिन करिहौं —१-१३४।

(२) **स्थिर न रहा, चंचलता दिखायी।** उ.—तिहारे आगे बहुत नच्यौ। निसि दिन दीनदयाल, देवमनि, बहु बिधि रूप रच्यौ—१-१७४।

नछत्र—सज्ञा पुं [स. नक्षत्र] **चन्द्रमा के पथ में पड़नेवाले तारे जिनके विभिन्न नाम रखे गये हैं।** उ.—रामदूत दीपत नछत्र में पुरी धनद रुचि रुचि तम हारी—सा. ९८।

नछत्री—वि [स. नक्षत्र+ई [प्रत्य)] **जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो, भाग्यवान।**

नजदीक- क्रि वि. [फा नजदीक] **निकट, पास।**

नजदीकी—वि [हि नजदीक] **निकट या पास का।**

नजम—सज्ञा स्त्री [अ नज्म] **कविता, पद्य।**

नजर—संज्ञा स्त्री [अ] (१) **दृष्टि, चितवन।**

मुहा.—नजर आना–**दिखायी देना।** नजर करना–**देखना।** नजर पर चढना—**अच्छा लगना, भा जाना।** नजर पड़ना—**दिखायी पड़ना।** नजर फेंकना–(१) **दूर तक देखना। (२) सरसरी तौर से देखना।** नजर बाँधना—**जादू-टोने से कुछ का कुछ दिखाना।**

(२) **कृपा दृष्टि, दया-दृष्टि।**

मुहा —नजर रखना—**दया दृष्टि बनाये रखना।**

(३) **निगरानी, देखरेख।** (४) **ध्यान, ख्याल।** (५) **परख, पहचान।** (६) **कुदृष्टि जो किसी सुंदर वस्तु या प्राणी पर पड़कर उसको हानि पहुँचा सके।**

मुहा —नजर उतारना–**टोना-टुटका करके कुदृष्टि का कुप्रभाव दूर करना।** नजर खाना (खा जाना)—**कुदृष्टि का कुफल भुगतना।** नजर जलाना (झाड़ना) —**कुदृष्टि का कुप्रभाव दूर करना।** नजर लगाना—**कुदृष्टि डालकर हानि पहुँचाना।**

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) भेंट, उपहार। (२) अधीनस्थ कर्मचारी या प्रजावर्ग की ओर से भेंट में दिया जानेवाला धन आदि।

नजरना—क्रि. अ. [अ. नजर + हिं. ना (प्रत्य.)] (१) देखना। (२) कुदृष्टि डालना (३) कुदृष्टि लग जाना।

नजरबंद—वि. [अ. नजर + फा. बंद] (१) जिस पर कड़ी निगरानी रखी जाय। (२) जो ऐसे स्थान पर निगरानी में रखा जाय जहाँ कोई आ-जा न सके।

संज्ञा पुं.—जादू-टोने से दृष्टि बाँधकर किया जानेवाला खेल।

नजरबंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नजरबंद] (१) किसी पर कड़ी निगरानी रखने का भाव। (२) कड़ी निगरानी का दंड। (३) जादूगरी, बाजीगरी।

नजरानना—क्रि. स. [हिं. नजर+आनना (प्रत्य.)] (१) भेंट-उपहार में देना। (२) नजर लगाना, कुदृष्टि डालना।

नजराना—क्रि. अ. [हिं. नजर] नजर लग जाना, कुदृष्टि के कुप्रभाव में आ जाना।

क्रि. स.—नजर लगाना।

संज्ञा पुं.—(१) भेंट, उपहार। (२) भेंट या उपहार-स्वरूप दी जानेवाली वस्तु।

नजरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. नजर] (१) दृष्टि, चितवन। (२) दया दृष्टि। (३) निगरानी। (४) ध्यान, ख्याल। (५) परख। (६) कुदृष्टि जो किसी सुंदर वस्तु या प्राणी को हानि पहुँचा सके।

नजला—संज्ञा पुं. [अ. नज्लः] जुकाम, सरदी।

नजाकत—संज्ञा स्त्री. [फा. नजाकत] सुकुमारता।

नजात—संज्ञा स्त्री. [अ.] छुटकारा, मुक्ति।

नजारा—संज्ञा पुं. [अ. नजारा] (१) दृष्टि। (२) दृश्य।

नजिकाई—क्रि. अ. [हि. नजिकाना] निकट आना। उ.—मरन अवस्था जब नजिकाई।

नजिकाना—क्रि. अ. [हि. नजदीक+आना (प्रत्य.)] निकट आना, नजदीक पहुँचना।

नजीक—क्रि. वि. [फा. नजदीक] निकट, पास।

नजीर—संज्ञा स्त्री. [अ. नजीर] उदाहरण, मिसाल।

नजूम—संज्ञा पुं. [अ.] ज्योतिष विद्या।

नजूमी—संज्ञा पुं. [अ.] ज्योतिषी।

नट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाटक का अभिनेता। (२) एक जाति जिसका काम गाना-बजाना है। (३) एक नीच जाति जो रस्सी और बाँस पर खेल-तमाशे और कसरत करके पेट पालती है। उ.—मन मेरैं नट के नायक ज्यौं नितहीं नाच नचायौ—१-२०५। (४) एक राग। (५) अशोकवृक्ष।

नटई—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) गला। (२) गले की घंटी।

नटकनि—संज्ञा स्त्री. [सं. नट] नट की कला, नृत्य, नाच। उ.—लज्जित मनमथ निरखि बिमल छबि, रसिक रंग भौंहनि की मटकनि। मोहनलाल, छबीलौ गिरिधर, सूरदास बलि नागर नटकनि—६१८।

नटखट—वि. [हिं. नट+अनु. खट] उपद्रवी, ऊधमी।

नटखटी—संज्ञा स्त्री [हिं. नटखट] शरारत, ऊधम।

नटचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] अभिनय।

नटता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नट की क्रिया या भाव।

नटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नृत्य। (२) अभिनय।

नटना—क्रि. अ. [सं. नट] (१) अभिनय करना। (२) नाचना। (३) कहकर मुकर जाना।

क्रि. स. [सं. नष्ट] नष्ट करना।

क्रि. अ.—नष्ट हो जाना।

नटनागर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण। उ.—नटनागर पट पै तब ही ते लटक रह्यौ मन मेरौ—सा. ४२।

नटनारायण—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।

नटनि—संज्ञा स्त्री [सं. नर्तन] नृत्य, नाच।

संज्ञा स्त्री. [हिं. नटना] मुकरने की क्रिया या भाव, अस्वीकृति।

संज्ञा स्त्री. [हिं. नटनी] नट जाति की स्त्री।

नटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. नट+नी (प्रत्य.)] (१) नट की स्त्री। (२) नट जाति की स्त्री। उ.—त्यों नटनी कर लिए लकुटिया कपि ज्यौं नाच नचावै—३०८८।

नटमल—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।

नटमल्लार—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।

नटराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महादेव। (२) श्रीकृष्ण।

नटवति—क्रि. स. [हिं. नटवना] अभिनय करती है, स्वाँग भरती है। उ.—एक ग्वालि नटवति बहु लीला एक कर्म गुन गावति।

नटवना—क्रि. स. [सं. नटन] **अभिनय या स्वाँग करना।**

नटवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नाट्य कला में बहुत दक्ष व्यक्ति।** उ.—कटि तट पट पियरो नटवर बपु साधे सुख रुख जीके—सा १००। (२) **मुख्य नट।** (३) **श्रीकृष्ण जो नाट्य कला के आचार्य विख्यात हैं।**

वि.—(१) **नाट्यकला में दक्ष।** उ.—सूरदास प्रभु मुरलि बजावत, ब्रज आवत नटवर गोपाल—४७२। (२) **बहुत चतुर, चालाक।**

नटवा—संज्ञा पु. [सं. नट] **नट।** उ.—वेष धरि-धरि हर्‌यौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ। जैसैं नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ—१-४५।

वि. [हिं. नाटा] **नाटे कद का।**

नटसार, नटसारा—संज्ञा स्त्री. [सं. नाट्यशाला] **वह स्थान जहाँ नाटक का अभिनय हो।**

नटसाल—संज्ञा स्त्री. [सं. नट+हिं. सालना] (१) **चुभे हुए काँटे का वह भाग जो टूटकर शरीर में ही रह गया हो।** (२) **वाण की गाँसी जो टूटकर शरीर में रह जाय।** (३) **बहुत छोटी फाँस जो निकल न सके।** (४) **कसक, पीड़ा।**

नटांतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **लज्जा, लाज, शर्म।**

नटिन, नटिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नटनी] **नट की स्त्री।**

नटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **नट जाति की स्त्री।** (२) **नाचनेवाली, नर्तकी।** (३) **अभिनय करनेवाली।** (४) **नचानेवाली।** उ.—माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै—१-४२ (५) **वेश्या।**

नटुआ, नटुवा—संज्ञा पु. [हिं. नट] **नट।**

संज्ञा—स्त्री. [हिं. नटई] (१) **गला।** (२) **गले की घंटी।**

नटेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **महादेव।** (२) **श्रीकृष्ण।**

नट्ट—संज्ञा पु. [सं. नट] **नट।**

नट्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक रागिनी।**

नठना—क्रि. अ. [सं. नष्ट] **नष्ट होना।**

क्रि. स.—**नष्ट करना।**

नड़—संज्ञा पुं. [सं.] **नरसल, नरकट।**

नढ़ना—क्रि. स. [हिं. नाथना] (१) **गूँथना।** (२) **बाँधना।**

नत—वि. [सं.] (१) **झुका हुआ।** (२) **विनीत।**

नतन—संज्ञा पुं. [सं.] **नत होने की क्रिया या भाव।**

नतपाल—संज्ञा पुं. [सं. नत+पालक] **प्रणाम करनेवाले का पालक, प्रणतपाल, शरणपाल।**

नतमस्तक—वि. [सं.] **(लज्जा, संकोच, विनय आदि से) जिसका मस्तक झुका हुआ हो।**

नत-माथ—वि. [सं. नत+हिं माथा] **(लज्जा, संकोच, विनय आदि से) जिसका मस्तक झुका हुआ हो।**

नतर, नतरक, नतरु, नतरुक—क्रि. वि. [हिं. न+तो] **नहीं तो, अन्यथा।** उ.—तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ—१-५६।

नति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **झुकाव, उतार।** (२) **प्रणाम।** (३) **विनय।** (४) **नम्रता।**

नतिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाती] **लड़की की लड़की।**

नतीजा—संज्ञा पुं. [फा.] **परिणाम, फल।**

नतु—क्रि. वि. [हिं. न+तो] **नहीं तो।**

नतैत—संज्ञा पुं. [हिं. नाता] **संबंधी, नातेदार।**

नत्थ, नथ—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाथना, नथ] **नथ नामक गहना जो नाक में पहना जाता है और हिंदुओं में सौभाग्य का चिन्ह समझा जाता है।** उ.—(क) नासा नथ मुकुता की सोभा रह्यौ अधर तट जाइ—१०७६। (ख) भाल तिलक अंजन चख नासा बेसरि नथ में फूली—३२२१।

नथना, नथुना—संज्ञा पुं. [सं. नस्त] (१) **नाक का छेद।** (२) **नाक का अगला भाग।**

मुहा.—नथना फुलाना—**क्रोध करना।** नथना फूलना—**क्रोध आना।**

क्रि. अ.—[हिं. नाथना] **नाथा जाना, एक सूत्र में बँधना।** (२) **छिदना, छेदा जाना।**

नथनी, नथिया, नथुनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नथ] (१) **नाक में पहनने की छोटी नथ।** उ.—(क) मोतिनि सहित नासिका नथुनी कंठ-कमल-दल-माल की—१०-१०५। (ख) सारँग-सुत-छवि बिन नथुनी रस-बिंदु बिना अधिकात—सा ५२। (२) **बुलाक।** (३) **तलवार की मूठ का छल्ला।** (४) **नथ-जैसी गोल चीज।**

नद—संज्ञा पु. [सं.] **पुल्लिंगवाची नामवाली नदी।**

नदन—संज्ञा पु. [सं.] **शब्द करना।**

नद-नदी-पति—संज्ञा पुं. [स.] **समुद्र, सिंधु।**

नदना—क्रि. अ [स. नदन] (१) **पशुओं का रँभाना या बँबाना। (२) बजना, शब्द करना।**

नदनु- सज्ञा पु. [स.] (१) **मेघ। (२) शब्द। (३) सिंह।**

नदराज—सज्ञा पुं [स.] **सागर, समुद्र।**

नदान—वि. [फ़ा. नादान] (१) **नासमझ, अनजान। (२) बहुत छोटी अवस्था का जब संसार का ज्ञान न हो।**

नदारद—वि. [फा] **गायब, लुप्त।**

नदि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **स्तुति।**

नदि, नदिया, नदी—सज्ञा स्त्री. [सं. नदी] (१) **सरिता, तटिनी।** उ.—इक नदिया इक नार कहावत मैलौ नीर भरौ। जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम पर्यौ—१-२२०।

मुहा—नदी-नाव-संयोग—**ऐसा संयोग जो संयोग से ही हो जाय और बार-बार न हो।**

(२) **किसी बहनेवाली चीज का प्रवाह।**

नदीकांत—संज्ञा पुं. [स.] **समुद्र, सागर।**

नदीज—वि. [सं.] **जो नदी से जन्मा हो।**

नदीपति—सज्ञा पुं. [सं.] (१) **समुद्र।** (२) **वरुण।**

नदीमुख—सज्ञा पु. [स.] **नदी का मुहाना।**

नदीश—सज्ञा पु. [स.] **समुद्र।**

नधना—क्रि. अ. [स. नद्ध=बँधा हुआ+हिं. ना (प्रत्य.)] (१) **गाड़ी आदि में जुतना।**

मुहा.—काम में नधना—**काम में जुतना।**

(२) **जुड़ना। (३) काम का ठन जाना।**

ननकहा, ननका—वि. [हिं. नन्हा] **छोटा।**

ननकारना—क्रि. अ. [हिं. न+करना] **मंजूर न करना, इनकार करना।**

ननँद, ननद, ननदी—संज्ञा स्त्री. [सं. ननद] **पति की बहिन।** उ—(क) ननदी तौ न दियै बिनु गारी नैंकहु रहति—१४६२। (ख) जिय परी ग्रथ कौन छोरै निकट ननँद न सास—पृ. ३४५ (५७)।

ननदोइ, ननदोई—सज्ञा पुं. [हिं. ननद+ओई (प्रत्य.)] **ननद का पति।**

ननसार, ननसाल—सज्ञा स्त्री. [हिं. नाना+शाला] **नाना का घर, ननिहाल।** उ.—असुरनि बिस्वरूप सौं कह्यौ। भली भई तू सुर गुरु भयौ। तुव ननसालै माहिं हम आहिं। आहुति हमैं देत क्यौं नाहिं—६-५।

नना—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **माता।** (२) **कन्या।**

ननिहाल—संज्ञा पुं. [हिं. नाना+आलय] **नाना का घर।**

नन्ना—सज्ञा पुं. [हिं. नाना] **नाना।**

वि. [हिं. नन्हा] **छोटा, नन्हा।**

नन्हा—वि. [सं. न्यच] **छोटा।**

मुहा.—नन्हा सा—**बहुत छोटा।**

नन्हाइ, नन्हाई—सज्ञा स्त्री. [हि नन्हा+ई (प्रत्य.)] (१) **छोटापन।** (२) **हेठी, बदनामी।** उ.—(क) ब्रज-परगन-सिकदार महर तू ताकी करत नन्हाई—१०-३२६। (ख) नद महर की करै नन्हाई—३६१।

नन्हैया—वि. [हिं. नन्हा+ऐया (प्रत्य.)] **बहुत छोटा।** उ.—(क) चुटकी देहि नचावहीं सुत जानि नन्हैया—१०-११६। (ख) पाँच बरस कौ मेरौ नन्हैया अचरज तेरी बात—१०-२५७। (ग) तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया—४२८।

नपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाप+आई (प्रत्य.)] **नापने का काम, भाव या वेतन।**

नपुंसक—संज्ञा पु. [सं.] (१) **पुरुषत्वहीन व्यक्ति। (२) वह जो न स्त्री हो न पुरुष, क्लीव। (२) कायर।**

नपुंसकता—संज्ञा स्त्री. [स.] **नपुंसक होने का भाव।**

नपुंसकत्व—सज्ञा पुं. [स.] **नपुंसक होने का भाव।**

नपुआ—संज्ञा पुं. [हिं नाप+उआ (प्रत्य.)] **कोई वस्तु नापने का पात्र।**

नफर—सज्ञा पुं. [फा.] **दास, सेवक।**

नफरत संज्ञा स्त्री. [अ. नफ़रत] **घिन, घृणा।**

नफरी—संज्ञा स्त्री. [फा] **मजदूर का एक दिन का काम या वेतन।**

नफा—संज्ञा पुं. [अ. नफ़ा] **लाभ, फायदा।** उ.—(क) होतौ नफा साधु की सगति मूल गाँठि नहिं टरतौ—१-२६७। (ख) सुनहु सूर हमसौं हठ माँड़ति कौन नफा करि लैहौ—१११८। (ग) गुप्त प्रीति काहे न करी हरि सौं प्रगट किए कछु नफा बढ़ै है—११६२। (घ) लै आए हौ नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी—३१०४। (ङ) प्रेम बनिज कीन्हौं हुतौ नेह नफा जिय जानी—३१४६।

नफासत—संज्ञा स्त्री [अ नफासत] बढ़ियापन ।
नफीरी—संज्ञा स्त्री. [फा. नफीरी] तुरही, शहनाई ।
नफीस—वि [अ. नफस] बढ़िया, सुंदर ।
नफो—संज्ञा पु. [अ. नफा] लाभ, नफा । उ —तहाँ दीजै मुर परैना नफो तुम कछु खाहु—३००३ ।
नबी—संज्ञा पुं. [अ] ईश्वरीय दूत, पैगंबर ।
नबेड़ना—क्रि. स. [हिं. निपटाना] (१) निपटाना, तय करना । (२) चुन लेना, छाँट लेना ।
नब्ज—संज्ञा स्त्री. [अ. नब्ज] नाड़ी ।
मुहा.—नब्ज चलना—शरीर में प्राण होना । नब्ज छूटना (न रहना)—शरीर में प्राण न रहना ।
नब्बे—संज्ञा पु. [स. नवति] संख्या जो सौ से दस कम हो ।
नभ केतन—संज्ञा पुं. [स] सूर्य ।
नभःसरित—संज्ञा स्त्री. [स.] आकाशगंगा ।
नभ सुत—संज्ञा पु [स] पवन, हवा ।
नभ—संज्ञा पु [स नभस्] (१) आकाश नामक तत्व । (२) आकाश । उ —चलति नभ चितै नहि तकति धरनी—६६८ । (३) शून्य । (४) सावन मास । (५) भादो मास । (६) आश्रय, आधार । (७) निकट, पास । (८) शिव, महादेव । (९) जल । (१०) मेघ, बादल । (११) वर्षा ।
नभग—संज्ञा पु. [स] (१) पक्षी । (२) हवा । (३) बादल ।
वि.—आकाश में विचरनेवाला, आकाशगामी ।
नभगनाथ—संज्ञा पु. [स] गरुड़ ।
नभगामी—संज्ञा पु. [स नभोगामिन्] (१) चंद्र । (२) सूर्य । (३) तारा । (४) पक्षी । (५) देवता । (६) हवा । (७) बादल ।
नभगेश—संज्ञा पु [स.] गरुड़ ।
नभचर—संज्ञा पु [स. नभश्चर] (१) पक्षी । (२) बादल । (३) हवा । (४) सूर्य, चंद्र आदि ग्रह । (५) देवता ।
नभधुज, नभध्वज—संज्ञा पुं [स नभध्वज] बादल ।
नभश्चक्षु—संज्ञा पु [स नभश्चक्षुस्] सूर्य ।
नभश्चर—संज्ञा पु [स] (१) पक्षी । (२) बादल । (३) हवा । (४) सूर्य, चंद्र आदि ग्रह । (५) देवता ।
नभस्थल—संज्ञा पु [स] (१) आकाश । (२) शिव ।
नभस्थित—वि. [स] आकाश में ठहरा हुआ ।
नभोगति—संज्ञा पु. [स.] (१) पक्षी । (२) बादल । (३) हवा । (४) सूर्य, चंद्र आदि ग्रह । (५) देवता ।
नम—वि [फा.] गीला, तर, आर्द्र ।
संज्ञा पुं [स नमस्] नमस्कार, प्रणाम ।
नमक संज्ञा पु. [फा] (१) नोन, लवण ।
मुहा.- नमक अदा करना—स्वामी के उपकार का बदला चुकाना । (किसी का) नमक खाना—(किसी का) दिया खाना । नमक मिर्च मिलाना (लगाना)—(बात को) बढ़ा-घटाकर कहना । नमक फूट कर निकलना—उपकार न मानने का दैवी दंड मिलना । नमक से अदा होना—स्वामी के उपकार से उऋण होना । कटे पर नमक छिड़कना दुखी को और जलाना । नमक का सहारा—(१) बहुत थोड़ी सहायता । (२) बहुत थोड़ा लाभ ।
(२) सलोनापन, लावण्य ।
नमकहराम—वि [फा नमक+अ हराम] जो किसी का अन्न खाकर उसी को हानि पहुँचावे, कृतघ्न ।
नमकहरामी—संज्ञा स्त्री [हिं. नमक हराम+ई (प्रत्य)] नमकहराम होने का भाव, कृतघ्नता ।
नमकहलाल—वि [फा. नमक+अ हलाल] जो किसी का नमक खाकर बदले में उसका भला भी करे ।
नमकहलाली—संज्ञा स्त्री. [हि नमकहलाल] नमकहलाल होने का भाव, स्वामिभक्ति ।
नमकीन—वि [हि॰ नमक] (१) नमक के स्वादवाला । (२) जिसमें नमक पड़ा हो । (३) सलोना ।
संज्ञा पुं —नमकीन पकवान ।
नमत—वि [स.] नम्र, जो झुकता हो, विनयी ।
संज्ञा पुं — स्वामी, प्रभु, मालिक ।
नमदा—संज्ञा पु [फा.] जमाया हुआ ऊनी कंबल ।
नमन—संज्ञा पु. [स.] (१) प्रणाम, नमस्कार । उ.—पर्वत बहुत नमनि करि पूजा यह विनती करवाये—सारा ६१७ । (२) झुकाव ।
नमना—क्रि. अ [स नमन] (१) झुकना । (२) प्रणाम या नमस्कार करना, नम्रता दिखाना ।
नमनीय—वि. [स.] (१) नमस्कार या प्रणाम करने

के उपयुक्त। (२) जो भुक सके या भुकाया जा सके।

नमनीयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'नमनीय' होने का भाव।

नमस्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भुकना। (२) प्रणाम।

नमसकार, नमस्कार—संज्ञा पुं. [सं. नमस्कार] प्रणाम, अभिवादन। उ.—नमसकार मेरो जदुपति सौं कहियौ गहिकै पाय—३४६४।

नमस्कार्य—वि. [सं.] (१) जो नमस्कार के योग्य हो, पूज्य। (२) जिसे नमस्कार किया जाय।

नमस्ते—वाक्य [सं.] आपको नमस्कार है। उ.—नमो नमस्ते बारबार—१० उ०-१३०।

नमाइ—क्रि. स. [हिं नमाना] भुकाकर, नम्रता प्रदर्शित करके। उ.—हरष अक्रूर हृदय नमाइ—२५५६।

नमाज—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. नमाज़] मुसलमानी प्रार्थना।

नमाजी—वि. [हिं. नमाज] नमाज पढ़नेवाला।

नमाना—क्रि. स. [सं. नमन] (१) भुकाना, नम्रता दिखाना (२) दबाकर वश में करना।

नमामि—वाक्य [सं.] मैं नमस्कार करता हूँ।

नमि—क्रि. अ. [हिं. नमना] भुकाकर, नीची करके। उ.—जनु सिर पर ससि जानि अधोमुख, धुकत नलिनि नमि नाल—१०-११४।

नमित—वि. [सं.] भुका हुआ। उ.—(क) भू भृत सीस नमित जो गर्वगत, सींच्यौ नीर—६-२६। (ख) नमित मुख इमि अधर सूचत, सकुच मैं कछु रोष—३५०।

नमी—संज्ञा स्त्री. [फा.] गीलापन, तरी, आर्द्रता।

नमुचि—संज्ञा पु. [सं.] कामदेव।

नमूना—संज्ञा पु. [फा.] (१) बानगी। (२) आदर्श। (३) ढाँचा।

नमो—संज्ञा पु [सं. नमस्] नमस्कार है, प्रणाम करता हूँ, नमता हूँ। उ.—(क) नमो नमो हे कृपानिधान—२-३२। (ख) नमो-नमो भक्तनि-भयहारी—७-२। (ग) हरि-हर संकर नमो-नमो -१०-१७१।

नम्य—वि. [सं.] जो भुकाया जा सके।

नम्र—वि. [सं.] (१) विनीत। (२) भुका हुआ।

नम्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नम्र होने का भाव।

नय—संज्ञा पु. [सं.] (१) नीति। (२) नम्रता।

संज्ञा स्त्री. [सं. नद] नदी। उ.—(क) रंभापति-सुत-सत्रु-पिता ज्यं नयौ अहि अत न तोलै—सा ४३। (ख) सुछ बसन नय उर के रस सें मिले लाल मुख पोछो—सा. ८३।

नयकारी—संज्ञा पुं [सं. नृत्यकारी] (१) नर्तकों का नायक या मुखिया। (२) नाचनेवाला, नचनिया।

नयन—संज्ञा पु [सं.] (१) नेत्र, आँख। उ.—(क) नयन ठहरात नहिं वहत अति तेज सी—१४८७। (ख) काहे को लेति नयन जल भरि भरि नयन भर ते कैसे सूल टरैगो—२८७०।

मुहा.—निरखि नयन भरि— भली भाँति देख ले, नेत्रों में छवि भर ले। उ.–निरखि सरूप विवेक-नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब—१-६६।

(२) ले जाना।

नयनगोचर—वि [सं] दिखायी पड़नेवाला।

नयनपट—संज्ञा पु. [सं.] आँख का पलक।

नयना—क्रि. अ. [सं. नमन] (१) नम्र होना। (२) भुकना, लटकना।

संज्ञा पु.—नेत्र, आँख।

नय-नागर—वि. [सं.] नीति में बहुत चतुर।

नयनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आँख की पुतली।

वि. स्त्री —आँखवाली।

नयनूँ—संज्ञा पु [सं नवनीत] मक्खन।

नयर—संज्ञा पु. [सं. नगर] नगर, शहर, पुर।

नयशील—वि. [सं] (१) नीतिज्ञ। (२) विनीत।

नया—वि [सं नव] (१) नवीन, नूतन।

मुहा.—नया लिखना—पुराना हिसाब साफ करके नया चालू करना।

यौ०—नया-नवेला—नवयुवक, नौजवान।

(२) जो थोड़े ही समय से ज्ञात हुआ हो। (३) जो पहले व्यवहार में न आया हो, कोरा। (४) जिसका आरंभ फिर से या हाल ही में हुआ हो।

नयापन—संज्ञा पु [हिं नया+पन (प्रत्य)] नवीनता।

नयौ—वि. [हिं नया] नवीन, नूतन।

मुहा.—लिखत नयौ—पुराना हिसाब साफ या बद करके नया चालू करना। उ.—बरस दिवस करि होत पुरातन फिरि फिरि लिखत नयौ—१-२६८।

-क्रि. अ. [हिं नयना] झुक गया, मिट गया, जाता रहा। उ.—अंबर हरत द्रौपदी राखी, ब्रह्म-इन्द्र को मान नयौ—१-२६।

नर—संज्ञा पु [स.] (१) विष्णु (२) शिवजी। (३) अर्जुन। (४) पुरुष। उ.—सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए पथचलत नर वाम-९-४४।

वि.—जो पुरुष वर्ग का प्राणी हो।

संज्ञा पु [हिं नल] पानी आदि का नल।

नर-अवतार—संज्ञा पु [स नर+अवतार] मनुष्य-जन्म-मनुष्य-योनि। उ.—नहिं अस जनम बारबार। पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर-अवतार—१-८८।

नरई—संज्ञा स्त्री. [देशज] गेहूँ आदि की बाल का डंठल।

नरकत—संज्ञा पु. [सं नरकांत] राजा, नृप।

नरक—संज्ञा पुं [स.] (१) वह स्थान जहाँ पापी पाप का फल भोगने जाता है। (२) बहुत गंदा स्थान। (३) कष्टदायी स्थान। (४) एक असुर।

नरकगति—संज्ञा स्त्री. [स.] पाप जिससे नरक भोगना हो।

नरकगामी—वि. [स.] नरक में जानेवाली।

नरक चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री [स.] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी जब घर का सारा कूड़ा-करकट साफ किया जाता है।

नरकट—संज्ञा पु. [सं. नलकट] एक पौधा।

नरकपति—संज्ञा पु. [स] यमराज। उ—गढवै भयौ नरकपति मोसौं दीन्हे रहत किवार—१-१४१।

नरकारि—संज्ञा प. [स.] विष्णु या उनके अवतार।

नरकासुर—संज्ञा पु. [स.] एक दैत्य जो बाराह भगवान के पृथ्वी के साथ गमन करने पर जन्मा था। जब यह प्राग्ज्योतिषपुर का राजा बना तब इसने बहुत अत्याचार किया। अंत में श्रीकृष्ण ने इसको मारकर सोलह हजार बंदिनी युवतियों का उद्धार किया था। उ.—नरकासुर को मारि स्यामघन सोरह सहस त्रिय लाये—सारा. ६५८।

नरकी—वि. [हि. नारकी] नरक भोगनेवाला, पापी।

नरकुल—संज्ञा पुं. [सं नल] नरकट का पौधा।

नरकेशरी, नरकेसरी—संज्ञा पु. [स] नृसिंह भगवान।

नरकेहरि, नरकेहरी—संज्ञा पु. [सं नरकेसरी] नृसिंह।

नरगिस—संज्ञा पुं. [फा] एक पौधा जिसके फूल के साथ कवि आँख की उपमा देते हैं।

नरगिसी—संज्ञा पुं [फा] (१) नरगिस के सफेद फूल के रंग का। (२) नरगिस-संबंधी।

नरतात—संज्ञा पु. [स.] राजा, नृप, नृपति।

नरत्व—संज्ञा पु. [स] नर के गुण-युक्त होने का भाव।

नरद—संज्ञा स्त्री. [फा. नर्द] चौसर खेलने की गोटी।

संज्ञा स्त्री. [स. नर्द] शब्द, ध्वनि, नाद।

नरदन—संज्ञा स्त्री. [स नर्दन] गरजना, शब्द करना।

नरदारा—संज्ञा पु. [स. नर+दारा] (१) नपुंसक। (२) कायर। (३) जो पुरुष स्त्रियों सा कार्य करे।

नरदेव—संज्ञा पुं [स.] (१) राजा। (२) ब्राह्मण।

नरनाथ—संज्ञा पु [स] राजा, नृपति, भूपाल।

नरनायक—संज्ञा पुं [स.] राजा, नृप, नृपाल।

नर-नारायण—संज्ञा पु [स] नर-नारायण नामक दो ऋषि जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

नर-नारि—संज्ञा स्त्री [स] अर्जुन की स्त्री द्रौपदी।

नरनाह—संज्ञा पुं. [स. नर+नाथ=स्वामी] नरपति, राजा, नृप, नृपाल। उ.—ब्रह्मा कह्यो, सुनौ नर-नाह। तुमसौं नृप जग मैं अब नाह—९-४।

नरनाहर—संज्ञा पु [सं. नर+हिं. नाहर] नृसिंह।

नरपति—संज्ञा पुं [स.] राजा, नृपति, भूप। उ.—(क) नरपति एक पुरुरवा भयौ—९-२। (ख) नरपति ब्रह्म-अस सुख रूप—४१२।

नरपशु—संज्ञा पु [स] (१) नृसिंह भगवान। (२) वह जो मनुष्य होकर भी पशु का आचरण करे।

नरपाल—संज्ञा पु [स. नृपाल] राजा, नृप।

नरपिशाच—संज्ञा पु [स.] बड़ा दुष्ट और नीच।

नर-बपु—संज्ञा पु [स. नर+वपु] मनुष्य शरीर, मनुष्य-जन्म, मनुष्य-योनि। उ—नर-बपु धारि नाहि जन हरि कौं, जम की मार सो खैहै—१-८६।

नरभक्षी—वि. [स. नरभक्षिन्] मनुष्यों को खानेवाला।

संज्ञा पुं—(१) हिंसक पशु। (२) राक्षस, दैत्य।

नरम—वि. [फा. नर्म] मुलायम।

नरमा—संज्ञा स्त्री [हिं नरम] (१) सेमर की रुई। (२) कान का निचला भाग, लौल।

नरमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. नरम] **मुलायमियत** ।

नरमाना—क्रि. स. [हिं. नरम+आना (प्रत्य)] **(१) नरम करना । (२) शान्त या धीमा करना ।**

क्रि. अ.—**(१) नरम होना । (२) शांत होना ।**

नरमी—संज्ञा स्त्री. [हिं नरम] **मुलायमियत, कोमलता ।**

नरमे—वि. [हिं. नरम] **मुलायम, कोमल ।** उ.—माथ नाइ करि-जोरि दोउ कर रहे बोलि लीन्हों निकट बचन नरमे—२४६६ ।

नरमेध—संज्ञा पुं. [सं.] **एक यज्ञ जिसमें मनुष्य के मांस की आहुति दी जाती थी ।**

नरलोक—संज्ञा पुं. [सं.] **संसार, मृत्युलोक ।**

नरवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. नरई] **गेहूँ की बाल का डंठल ।** उ.—बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लुनै —३१५८ ।

नरवाह, नरवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] **सवारी जिसे मनुष्य खींचता या ढोता हो ।**

नरव्याघ्र—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) मनुष्यों में श्रेष्ठ । (२) एक जल-जंतु जिसका निचला शरीर मनुष्य-सा और ऊपरी बाघ सा होता है ।**

नरशक्र—संज्ञा पुं. [सं. नर+शक्र] **राजा, नरेंद्र ।**

नरसल—संज्ञा पुं. [हिं नरकट] **नरकट का पौधा ।**

नरसिंगा, नरसिंघा—संज्ञा पुं. [हिं. नर=बड़ा+सिंघा= सींग का बाजा] **तुरही की तरह का एक बाजा जो फूंककर बजाया जाता है ।**

नरसिंघ, नरसिंह—संज्ञा पुं. [सं. नृसिंह] **नृसिंह ।**

नरसों—क्रि. वि. [हिं. अतरसों] **पिछले परसों के पहले और अगले परसों के बाद का दिन ।**

नरहरि, नरहरी—संज्ञा पुं [सं. नरहरि] **नृसिंह भगवान ।** उ.—फटि तब खंभ भयौ द्वै फारि। निकसे हरि नरहरि—वपु धारि—७-२ ।

संज्ञा पुं. [सं. नरहरी] **१६ मात्राओं का एक छंद ।**

नरहरिरूप—संज्ञा पुं. [सं. नर+हरि+रूप] **विष्णु का चौथा अवतार जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था ।**

नरांतक—संज्ञा पुं [सं.] **रावण का एक पुत्र जो अंगद के हाथ से मारा गया था ।**

नराच—संज्ञा पुं. [सं. नाराच] **(१) बाण । (२) एक छंद ।**

नराचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक छंद ।**

नराज—वि. [हिं. नाराज] **रुष्ट, अप्रसन्न ।**

नराजना—क्रि. स. [हिं. नाराज] **अप्रसन्न करना ।**

क्रि. अ.—**नाराज या अप्रसन्न होना ।**

नराट—संज्ञा पुं. [सं. नरराट्] **राजा, नृप ।**

नराधिप—संज्ञा पुं. [सं.] **राजा, नृपाल ।**

नरायन—संज्ञा पुं. [सं. नारायण] **विष्णु, भगवान् ।**

नरिंद, नरिंद्र—संज्ञा पुं. [सं. नरेंद्र] **राजा ।**

नरिअर, नरियर—संज्ञा पुं. [हिं. नारियल] **नारियल ।**

नरियाना—क्रि. अ. [सं. नर्दन] **शब्द करना, चिल्लाना ।**

नरी—संज्ञा स्त्री. [सं. नलिका] **नली, पुपली ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. नर] **स्त्री, नारी ।**

नरु—संज्ञा पुं. [हिं. नर] **मनुष्य, नर ।**

नरुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. नली] **छोटी नली ।**

नरेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] **राजा, नरपति, नरेश ।**

नरेश, नरेस—संज्ञा पुं. [सं.] **राजा, नरपति, नरेंद्र ।**

नरों—क्रि. वि. [हिं. नरसों] **पिछले परसों के पहले और अगले परसों के बाद का दिन ।**

नरोत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) ईश्वर । (२) श्रेष्ठ नर ।**

नर्क—संज्ञा पुं. [सं. नरक] **नरक ।**

नर्कुटक—संज्ञा पुं. [सं.] **नाक, नासिका ।**

नर्त्त—संज्ञा पुं. [सं.] **नाचनेवाला ।**

नर्त्तक—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) नाचनेवाला, नट । (२) चारण, बंदीजन । (३) शिव जी का एक नाम ।**

नर्त्तकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) नाचनेवाली । (२) वेश्या ।**

नर्त्तन—संज्ञा पुं [सं.] **नाच, नृत्य ।**

नर्त्तनशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नाचघर ।**

नर्दन—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नाद, गरजन ।**

नर्म—संज्ञा पुं. [सं. नर्मन्] **(१) परिहास, हँसी-ठट्ठा । (२) हँसोड़ या विनोदी मित्र ।**

नर्मट—संज्ञा पुं. [सं.] **रवि, सूर्य ।**

नर्मठ—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) विनोदी । (२) उपपति ।**

नर्मदा—संज्ञा पुं [सं.] **मध्यदेश की एक नदी ।**

नर्मदेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] **नर्मदा नदी से निकले हुए अंडाकार शिवलिंग ।**

नर्मसचिव, नर्मसुहृद, नर्मसहचर—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का मित्र, विदूषक।

नल—संज्ञा पु. [सं.] (१) रामचंद्र जी की सेना का एक बंदर जो विश्वकर्मा का पुत्र माना जाता है और जो ऋतुध्वज ऋषि के शाप-वश घृताची के गर्भ से जन्मा था। प्रसिद्धि है कि नील की सहायता से समुद्र पर पुल इसी ने बाँधा था। (२) निषध देश के राजा वीरसेन का पुत्र जिसका विवाह दमयंती से हुआ था।

संज्ञा पुं [सं. नाल] लंबी पोली छड़।

नलक—संज्ञा पुं. [स.] लंबी पोली हड्डी।

नलिका—संज्ञा स्त्री [स. नलिका] नली, नाल।

नलकूबर—संज्ञा पु. [स] कुबेर का पुत्र, जिसे नारद ने उस समय अर्जुन वृक्ष हो जाने का शाप दिया था जब वह मदमाता होकर गंगा में स्त्रियों के साथ विहार कर रहा था। रामायण के अनुसार, एक बार रंभा अप्सरा को नलकूबेर के यहाँ जाते देखकर, रावण उठा ले गया था। इस पर रावण को उसने शाप दिया कि किसी भी स्त्री के साथ बलात्कार करने पर तू तुरत मर जायगा। सूरदास ने भी इसी कथा की ओर संकेत किया है। उ—त्रिजटी सीता पै चलि आई। मन मैं सोच न करि तू माता, यह कहि कै समुझाइ। नलकूबर को साप रावनहिं, तो पर बल न बसाई—६-८०।

नलद—संज्ञा पु. [सं.] (१) मकरंद। (२) खस।

नलसेतु—संज्ञा पु. [स] रामेश्वर के निकटवर्ती समुद्र पर बना पुल जो श्री राम ने नल-नील से बनवाया था।

नलिका—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) नली। (२) 'नाल' या 'नालक' नामक एक प्राचीन अस्त्र। (३) तीर रखने का तर्कश।

नलिन—संज्ञा पु. [सं] (१) कमल। (२) जल, पानी।

नलिनी—संज्ञा स्त्री. [स] (१) कमलिनी। (२) वह स्थान जहाँ कमल अधिक हों। (३) नदी।

नलिनीरुह—संज्ञा पु [स.] कमल की नाल।

नली—संज्ञा स्त्री. [हिं नल] पतला नल।

नव—संज्ञा पु. [सं.] स्तोत्र, स्तव।

वि. [स.] नया, नूतन, नवीन।

वि. [सं. नवन्] दस से एक कम। उ.—आँखि, नाक, मुख, मूल दुवार। मूत्र, स्रौन नव पुर को द्वार—४-१२।

नवकुमारी—संज्ञा स्त्री [स.] नौ-रात्र में पूजनीय नौ देवियाँ—कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंद्रिका, शांभवी दुर्गा और सुभद्रा।

नवखँड, नवखंड—संज्ञा पु [स नवखंड] भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश। उ—तिनमैं नव नवखँड अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म विचारी—५-२।

नवग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ग्रह।

नवछावरि—संज्ञा स्त्री. [हिं न्योछावर] निछावर। उ—लेति बलाइ करति नवछावरि वलि भुजदंड कनक अति त्रासी।

नवजात—वि [स] हाल का जनमा हुआ।

नवजोवनियाँ—संज्ञा स्त्री [स नव+यौवन] नवयुवती। उ.—बहुरि गोकुल काहे को आवत भावत नवजोवनिया—२८७६।

नवतन—वि [स. नवीन] नया, ताजा नवीन।

नवता—संज्ञा स्त्री. [स] नयापन, नवीनता।

नवति—वि. [स] नब्बे।

नवदंड—संज्ञा पुं [स.] राजा के तीन क्षत्रों में एक।

नवदल—संज्ञा पु [स] कमल का पत्ता जो उसके केसर के पास होता है।

नवदुर्गा—संज्ञा पु. [स.] नौ दुर्गाएँ जिनकी नवरात्र में नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है, यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कूष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, और सिद्धिदा

नवद्वार—संज्ञा पु. [स.] शरीर के नौ द्वार, यथा—दो नेत्र, दो कान, दो नथुने, मुख, गुदा, लिंग या भग।

नवद्वीप—संज्ञा पु. [स.] बंगाल का एक नगर।

नवधा अंग—संज्ञा पु. [स] शरीर के नौ अंग; यथा—दो नेत्र, दो कान, दो हाथ, दो पैर, और एक नाक।

नवधाभक्ति—संज्ञा स्त्री. [स.] नौ प्रकार की भक्ति;

यथा—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन ।

नवन—संज्ञा पु [स नमन] (१) **प्रणाम** । (२) **झुकाव** ।

नवना—क्रि. अ. [स. नमन] (१) **झुकना** । (२) **नम्र या विनीत होना** ।

नवनि—सज्ञा स्त्री. [हि. नवना] (१) **झुकने की क्रिया या भाव** । (२) **नम्रता, दीनता** ।

नवनिधि—सज्ञा स्त्री. [सं.] **कुबेर के नौ प्रकार के रत्न—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद नील और खर्च** ।

नवनी—सज्ञा स्त्री. [सं.] **मक्खन, नवनीत** ।

नवनीत, नवनीति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मक्खन** । उ.—अतिहिं ए बाल है भोजन नवनीति के जानि तिन्हे लीन्हे जात दनुज पासा—२५५१ । (२) **श्रीकृष्ण** ।

नवनीतक—सज्ञा पुं. [स.] (१) **घी** । (२) **मक्खन** ।

नवप्रसूत—वि. [सं] **हाल का जनमा हुआ** ।

नवप्राशन—सज्ञा पुं. [स.] **नया अन्न-फल खाना** ।

नवम—वि [स.] **नवाँ** । उ.—नवम मास पुनि विनती करै—३-१३ ।

नवमल्लिका—संज्ञा स्त्री. [स] (१) **चमेली** । (२) **नेवारी** ।

नवमी—सज्ञा स्त्री. [स] **किसी पक्ष की नवीं तिथि** ।

नवयुवक, नवयुवा—सज्ञा पुं. [स.] **तरुण, जवान** ।

नवयुवती, नवयौवना—सज्ञा स्त्री. [सं.] **तरुणी** ।

नवरंग—वि. स्त्री, पु. [स. नव+हिं. रग] (१) **सुंदर, रूपवान्** । उ.—सूरदास जुग भरि बीतत छिनु । हरि नवरग कुरग पीव विनु । (२) **नये ढंग की, नवेली, नयी शोभावाली** । उ.—आज वनी नवरग किसोरी ।

नवरंगी—वि स्त्री, पु [हि. नवरग+ई (प्रत्य.)] (१) **रँगीली, हँसमुख** । उ.—नाइनि बोलहु नवरगी (हो), ल्याउ महावर वेग । लाख टका अरु झूमका (देहु), सारी दाइ कौ नेग—१०-४० । (२) **नित्य नये आनद करनेवाला, रँगीला** । उ —(क) ऐसे है त्रिभंगी नवरगी सुखदाई री—१४६४ । (ख) गोपिन नाम धर्यौ नवरगी—३६७५ ।

नवरत्न—सज्ञा पुं [स] (१) **मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूँगा, लहसुनिया, पद्मराग या पुखराज और नीलम** । (२) **गले का हार जिसमें नौ तरह के रत्न हो** । (३) **एक तरह की चटनी** ।

नवरस—संज्ञा पु. [स.] **काव्य के नौ रस—शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत** ।

नवरात्र—सज्ञा पुं. [स.] (१) **नौ दिन तक होनेवाला एक यज्ञ** । (२) **नवदुर्गा का व्रत, घटस्थापन और पूजन जो चैत्र शुक्ला और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक, वर्ष में दो बार होता है** ।

नवल—वि. [स] (१) **युवा, युवती, जवान** । उ—प्रात भयौ जागौ गोपाल । नवल सुदरी आईं, बोलत तुमहिं सबै ब्रजबाल—१०-२०६ । (२) **कांति-युक्त, सुंदर** । उ —(क) ना जानौं करिहौ ऽब कहा तुम नागर नवल हरी—१-१३० । (ख) नागर नवल कुँवर बर सुदर, मारग जात लेत मन जोइ—१०-२१० ।(३) **नया, नवीन, ताजा** । उ.—(क) पवन सधावन भवन छोड़ावन नवल रिसाल पठायौ—२९९९-। (ख) एकादस लैं मिलौ बेगहूँ जानहु नवल रसाल—सा० २९ । (४) **शुद्ध, स्वच्छ** ।

नवलकिशोर, नवलकिसोर—सज्ञा पुं. [स] **श्रीकृष्ण** ।

नवला—सज्ञा स्त्री. [स] (१) **तरुणी, नवयुवती** । उ.—नित नवला नवसत साजि कै अरु वह भावक राखी —२८७६ । (२) **राधा की एक सखी का नाम** । उ —स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमदा सुमदा नारि —१५८० ।

नवविंश—वि. [स] **उनतीसवाँ** ।

नवविंशति—वि. [स] **उनतीस** ।

नवविष—सज्ञा पु. [स] **नौ प्रकार के विष—वत्सनाभ, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृंगक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र** ।

नवशक्ति—सज्ञा स्त्री [स.] **नौ शक्तियाँ—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नदिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा** ।

नवशिक्षित—वि. [स] (१) **जिसने नयी तरह की शिक्षा पायी हो** । (२) **जो हाल ही में शिक्षा पा चुका हो** ।

नवशोभा—वि [स] **नयी शोभावाला, युवक** ।

नवसंगम—सज्ञा पु [सं.] **प्रथम समागम** ।

नवसत—संज्ञा पुं. [सं. नव+हिं. सत=सप्त, सात] **नौ और सात, सोलह शृंगार।** उ.—(क) नवसत साजि भई सब ठाढी को छबि सकै बखानी—पृ ३४३ (२३)। (ख) नित नवला नवसत साजि कै अरु वह भावक राखी—२८७६।

वि.—**सोलह, षोडश।**

नवसप्त—संज्ञा पु [स] **नौ और सात, सोलह शृंगार।**

वि—**सोलह, षोडश।**

नवसर—वि. [हिं नौ+स सृक] **नौ लड़ों का (हार)।** उ—कठसिरी दुलरी तिलरी को और हार इक नवसर।

वि [स. नव+वत्सर] **नयी उम्रवाला, नव वयस्क।** उ.—सूर स्याम स्यामा नवसर मिलि रीझे नदकुमार।

नवससि—संज्ञा पुं. [स नवशशि] **दूज का चाँद।**

नवाँ—वि [स. नवम] **जो गिनती में नौ के स्थान पर हो, नौवाँ, नवम्।**

नवा—वि. [हिं नया] **नया, नूतन।**

नवाई—क्रि. स. [हिं. नाना, नवाना] **झुकायी, नम्रता दिखायी।** उ—काया हरि कैं काम न आई ....। चरन-कमल सुदर जहँ हरि के, क्यौंहुँ न जाति नवाई—१-२९५।

संज्ञा स्त्री [हि नवना] **विनीत होने का भाव।**

वि—**नया, नवीन।** उ.—यह मति आप कहाँ धौं पाई। आजु सुनी यह बात नवाई।

नवाए—क्रि. स बहु. [हिं. नवाना] **झुकाये, विनय दिखायी, अधीनता स्वीकार की।** उ.—पुनि प्रहलाद राज बैठाए। सब असुरनि मिलि सीस नवाए—७-२।

नवागत—वि [स] **नया आया हुआ, जो अभी ही आया हो, नवागतुक।**

नवाज—वि [फा] **दया दिखानेवाला।**

नवाजना—क्रि. स [फा नवाज] **दया दिखाना।**

नवाजिश—संज्ञा स्त्री [फा] **कृपा, दया।**

नवाडा—संज्ञा पु. [देश.] **एक तरह की नाव।**

नवाना—क्रि स. [स नवन] **झुकाना।**

नवान्न—संज्ञा प. [स] (१) **नयी फसल का अनाज।** (२) **ताजा पका अन्न।** (३) **एक तरह का श्राद्ध।**

नवाब—संज्ञा पुं. [अ. नव्वाब] (१) **बादशाह का प्रतिनिधि शासक।** (२) **प्रतिनिधि शासकों की उपाधि।**

वि.—(१) **बहुत ठाट बाट से रहनेवाला।** (२) **ठसक लापरवाही दिखाने में ही शान समझनेवाला।**

नवाबी—संज्ञा स्त्री. [हिं नवाब+ई (प्रत्य)] (१) **नवाब का पद, काम या भाव।** (२) **नवाबों का राज्य-काल।** (३) **नवाब का शासन या अधिकार।** (४) **अमीरो का तत्व-हीन ठाठ-बाट।**

नवायौ—क्रि. स [हि. नवाना] **नवाया, झुकाया।** उ.—(क) राजा उठि कै सीस नवायौ १-३४३। (ख) उठि कै सबहिनि माथ नवायौ—४-५।

नवासा—संज्ञा पु. [फा.] **बेटी का बेटा।**

नवासी—वि. [स नवाशीति] **एक कम नब्बे।**

संज्ञा स्त्री [फा नवासा] **बेटी की बेटी।**

नवावति—क्रि. स. [हिं. नवाना] **नवाती हैं, झुकाती हैं।** उ.—मुरली तऊ गुपालहिं भावति। .... । अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति—६५४।

नवावै—क्रि. स [हि नवाना] (१) **झुकाता है, नवाता है।** (२) **अधीन करता है, नीचा दिखाता है, (गर्व) चूर करता है।** उ—बालक-बच्छ ब्रह्म हरि लै गयौ, ताकौ गर्व नवावै—४८२।

नवीन—वि. [स] (१) **ताजा, नया, नूतन।** (२) **विचित्र, अपूर्व।** (३) **युवक, तरुण।**

नवीनता—संज्ञा स्त्री [स. नवीन] **नूतनता, नयापन।**

नवीस—संज्ञा पु [फा] **लिखनेवाला, लेखक।**

नवीसी—संज्ञा स्त्री. [फा] **लिखने की क्रिया या भाव।**

नवेद—संज्ञा स्त्री [स निवेदन] (१) **न्योता, निमंत्रण।** (२) **निमत्रणपत्र।**

नवेला—वि [स नवल] (१) **नवीन।** (२) **तरुण।**

नवेली—वि. [स नवल] (१) **नयी।** (२) **तरुणी।**

संज्ञा स्त्री—**नयी स्त्री, नवयुवती।** उ.—नवल आपुन बनी नवेली नगर रही खेलाइ—२६७६।

नवै—क्रि. अ. [हिं नवना] **झुके।** उ—तिनको ध्यान धरैं निसिबासर औरहिं नवै न सीस—३१३०।

नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री. [स] (१) **नवविवाहिता स्त्री,**

नवबधू । (२) नवयौवना । (३) वह नायिका जो लज्जा-भय से नायक के पास न जाना चाहती हो ।
नवोत्थान—सज्ञा पुं. [स] (१) नये सिरे से होनेवाली उन्नति, पुनः उत्थान । (२) नवजागृति ।
नवोत्थित वि [स. नवजाग्रत, नवोन्नत ।
नवोदित—वि. [सं] हाल में ही अस्तित्व में आया हुआ, जिसने हाल ही में उन्नति की हो ।
नवौ—वि. [स. नव] कुल नौ, नव में से सव । उ.—नव सुत नवौ खड नृप भए—५-२ ।
नव्य—वि. [स.] (१) नया । (२) स्तुति-योग्य ।
नशना—क्रि अ [हिं नाश] नष्ट या बर्बाद होना ।
नशा—सज्ञा पु [फा या अ नशः] (१) मादक द्रव्य पान की स्थिति ।

मुहा—नशा उतरना—नशे का प्रभाव न रह जाना । नशा किरकिरा हो जाना—किसी अप्रिय बात या घटना के कारण नशे का आनंद न उठा सकना । नशा चढना— मादक द्रव्य सेवन से नशा होना । (आँखों) मे नशा छाना—नशे की मस्ती होना । नशा जमना—खूब नशा होना । नशा टूटना —नशा उतरना । नशा हिरन होना—किसी असभावित घटना या प्रसग से नशा जमने के पहले ही उतर जाना ।

(२) मादक द्रव्य जिसके सेवन से नशा हो ।

यौ.—नशा-पानी— मादक द्रव्य-सेवन का आयोजन या प्रवध, नशे का सामान ।

(३) धन, विद्या, रूप आदि का गर्व या घमड ।

मुहा.—नशा उतारना—घमंड दूर करना, गर्व चूर करना ।

नशाई—क्रि. स. [हि नशाना] नष्ट होना । उ. – (क) जाति महति पति जाइ न मेरी अरु परलोक नशाई री —१२०३ । (ख) प्रात के समै ज्यो भानु के उदय तें भलै उदय होइ जात उडगन नशाई – १०३० ।
नशाना—क्रि स. [सं नशा] नष्ट या बरबाद करना । क्रि अ.—खो जाना ।
नशानी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. नशाना] नष्ट हो गयी । उ. —दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति इतनहिं कला नशानी —१३२१ ।
नशावतै—क्रि. स [हि. नशावना] (१) नष्ट करते । (२) मिटाते, दूर करते । उ - आगम सुख उपचार विरह ज्वर वासर ताप नशावतै—२७३५ ।
नशावन—वि. [स नाश] नाश करनेवाला ।
नशीन—वि. [फा.] बैठनेवाला ।
नशीनी—सज्ञा स्त्री [फा] बैठने की क्रिया या भाव ।
नशीला—वि [फा. नशा+ईला (प्रत्य.)] (१) नशा लानेवाला । (२) जिस पर नशे का प्रभाव हो ।
नशेबाज—सज्ञा पुं. [फा. नशेबाज] जिसे नशीला द्रव्य सेवन करने की आदत हो ।
नशोहर—वि· [स नाश+ओहर] नाश करनवाला ।
नश्तर—सज्ञा पु. [फा.] (१) छोटा तेज चाकू जो चीर फाड़ के काम आता है । (२) फोड़ा आदि चीरने-फाड़ने की क्रिया या भाव ।
नश्वर वि. [स] नष्ट हो जानेवाला ।
नश्वरता—वि. [स.] नश्वर होने का भाव ।
नष—सज्ञा पु [स. नख] नख, नाखून ।
नषत—सज्ञा पुं. [स. नक्षत्र] नक्षत्र, तारा ।
नष-शिष—सज्ञा पु [सं. नखशिख] (१) नख से शिख तक अंग । (२) इन अंगो का वर्णन ।
नष्ट—वि. [स.] (१) जो दिखायी न दे । (२) जिसका नाश हो गया हो । (३) नीच, अधम । (४) व्यर्थ, निष्फल । (५) धनहीन ।
नष्टता—सज्ञा पु. [सं] नष्ट होने का भाव ।
नष्ट-भ्रष्ट—वि. [स] टूटा-फूटा और नष्ट ।
नष्टा—संज्ञा स्त्री [स] दुराचारिणी, वेश्या ।
नष्टात्मा—वि [स] दुष्ट, नीच, अधम ।
नष्टार्थ—वि. [स] धनहीन, दरिद्र ।
नष्टि—संज्ञा स्त्री. [स.] नाश, विनाश ।
नसंक—वि. [सं निःशंक] निडर, निर्भय ।
नस—सज्ञा स्त्री [स. स्नायु] शरीर-तंतु, शरीर की रक्तवाहिनी नलियो का लच्छा ।

मुहा.—नस चढना (भड़कना)—नस का अपने स्थान से इधर-उधर हटकर पीड़ा करना । नस-नस ढीली होना—(१) थकावट आना । (२) पस्त होना ।

नस नस में—सारे शरीर में। नस-नस फड़क उठना—बहुत प्रसन्नता या उमंग होना।
(२) पत्ते-पत्तियों का रेशा या तंतु।

नसतरंग—संज्ञा पु. [हिं नस+तरंग] एक बाजा।

नसन—क्रि अ [स नशन] (१) नष्ट या बरबाद होना। (२) खराब होना।

नसर—संज्ञा स्त्री [अ] गद्य, 'प्रोज' (अँग्रेजी)।

नसल—संज्ञा स्त्री. [अ.] वंश, कुल।

नसहा—वि. [हिं नस+हा] जिसमें नसें हों।

नसा—संज्ञा स्त्री [स] नाक, नासा, नासिका।
संज्ञा पु. [फा. नशा] नशा, मद।

नसाइ—क्रि. स. [हिं नसाना] नष्ट हो जाय। उ—सूर हरि को भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ—१-३१५।

नसाई—क्रि. स [हिं नसाना] (१) नाश किया।
प्र—देउँ नसाई—नाश कर दूँ। उ.—अग याको मैं टेउँ नसाई—१०-५७।
(२) दूर कर दी। उ—सूर धन्य ब्रज जन्म लियौ हरि, धरनी की आपदा नसाई—३८३।

नसाना—क्रि अ. [हिं. नसना का प्रे०] (१) नष्ट या बरबाद हो जाना। (२) बिगड़ना, खराब होना।

नसानी—क्रि. अ. [हिं. नसाना] नाश की, दूर की, नष्ट की। उ.—जानत नाहिं जगतगुरु माधौ, इहिं आए आपदा नसानी—१०-२५८।

नसायौ—क्रि स [हिं नासना] नष्ट किया, दूर किया। उ.—सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ—१-२०।

नसावत—क्रि स. [हिं नसाना] मिटाते हो, नष्ट करते या कराते हो, दूर करते-कराते हो। उ.—(क) कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा। सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा—१-१३४। (ख) सूर स्याम नागर नारिनि कौं बासर-बिरह नसावत—४७६।

नसावन—वि [हिं. नसाना] दूर या नाश करनेवाला।

नसावना—क्रि. अ [हिं नसाना] नष्ट होना।

नसावहु—क्रि स [हिं नसाना] नाश करो, नष्ट करो, दूर करो। उ—मोकौं मुख दिखराइ कै, त्रय ताप नसावहु—१०-२३२।

नसावै—क्रि अ [हिं. नसाना] दूर करे या करता है, नसता है। उ.—(क) असमय-तन गौतम तिया कौ साप नसावै—१-४। (ख) सूर स्याम-पद-नख-प्रकाश बिनु, क्यौं करि तिमिर नसावै—१-४८।

नसाहिं—क्रि. अ. [हिं. नसाना] नष्ट होते हैं, नसाते हैं। उ.—अतिहिं मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिं। पदुम-बास सुगंध-सीतल, लेत पाप नसाहिं—१-३३८।

नसीठ—संज्ञा पुं [देश.] असगुन, बुरा शकुन।

नसीनी—संज्ञा स्त्री. [स निःश्रेणी] सीढ़ी, जीना।

नसीब—संज्ञा पुं [अ.] भाग्य, किस्मत, तकदीर।

नसीबजला वि. [अ नसीब+हिं जलना] अभागा।

नसीबवर—वि. [अ] भाग्यवान्।

नसीबा—संज्ञा पुं [अ नसीब] भाग्य।

नसीला—वि [हिं. नस+ईला] नसदार।

नसीहत—संज्ञा स्त्री. [अ] सीख, उपदेश।

नसेनी—संज्ञा स्त्री. [स. श्रेणी] सीढ़ी।

नसै—क्रि. अ. [हिं. नसना] नष्ट हो, बरबाद हो। उ.—(क) क्रम क्रम करि सबकी गति होइ। मेरौ भक्त नसै नहिं कोइ—३-१३। (ख) दृस्यमान बिनास सब होइ। साच्छी व्यापक, नसै न सोइ—५-२।

नस्य—संज्ञा पुं. [स.] नास, सुँघनी।

नहँ—संज्ञा पुं [हिं. नख] नख, नाखून। उ.—सीपज माल स्याम-उर सोहै, बिच बघ-नह छबि पावै री—१०-१३६।

नहछू—संज्ञा पु [स. नखक्षौर] विवाह की एक रीति जिसमें वर के नाखून-बाल कटाकर मेंहदी आदि लगायी जाती है।

नहन—संज्ञा पु. [देश] पुरवट खींचने की मोटी रस्सी।

नहना—क्रि [हिं. बाँधना] काम में लगाना, जोतना।

नहर—संज्ञा स्त्री [फा] (१) सिंचाई आदि के लिए बनाया गया जलमार्ग। उ.—राम अरु जादवन सुभट ताके हते रुधिर के नहर सरिता बहाई।

नहरुआ, नहरुवा, नहरू—संज्ञा पु. [देश.] एक रोग।

नहला—संज्ञा पु [हिं नौ] नौ बिंदी का ताश।

नहलाई—संज्ञा स्त्री [हिं नहलाना+ई] (१) नहलाने की क्रिया या भाव। (२) नहलाने से प्राप्त धन।

नहलाना, नहवाना—क्रि. स. [हिं 'नहाना' का सक०] **स्नान कराना, स्नान करने को प्रवृत्त करना।**

नहसुत—क्रि. स [सं नखसुत] **नख की रेखा या निशान। नखाग्र भाग।** उ—नहसुत कील कपाट सुलछन दै दृग द्वार अगोट—२२१८।

नहँ—संज्ञा पुं [हिं नख] **नख, नहँ, नाखून।** उ—उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार, बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर—१०-१५१।

नहाए—क्रि. अ बहु [हिं. नहाना] **स्नान किया।** उ—दुहुँ तब तीरथ माहि नहाए—३-१३।

नहान—संज्ञा पुं. [सं स्नान] (१) **नहाने की क्रिया।** (२) **पर्व जब स्नान का महत्व हो।**

नहाना—क्रि अ [स. स्नान, प्रा हारण, बु० हनाना] (१) **स्नान करना।** (२) **तर या शराबोर हो जाना।**

नहार—वि. [फा.] **निराहार, बासी मुँह।**

नहारी—संज्ञा स्त्री. [फा. नहार] **जलपान, नाश्ता।**

नहाहीं—क्रि. अ [हिं. नहाना] **नहाती हैं, स्नान करती हैं।** उ.—प्रातहि तैं इक जाम नहाहीं। नेम धर्म हीं मैं दिन जाहीं—७६६।

नहि—अव्य. [हिं. नहीं] **नहीं।**

नहिअन, नहियाँ—संज्ञा पु [हिं नह = नख] **पैर की छोटी उँगली का एक गहना।**

नहीं—अव्य. [स नहिं] **अस्वीकृति या निषेध-सूचक एक अव्यय।**

नहुष—संज्ञा पुं. [स.] **अयोध्या का इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जो अंबरीष का पुत्र और ययाति का पिता था। एक बार इंद्रासन मिलने पर यह इंद्राणी पर मोहित हो गया। बुलाने पर इंद्राणी ने कहलाया-सप्तर्षियों से पालकी उठवाकर हमारे यहाँ आओ तो तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है। पालकी लेकर सप्तर्षि धीरे-धीरे चल रहे थे। नहुष ने अधीर होकर 'सर्प सर्प' (जल्दी चलने को) कहा। अगस्त्य मुनि ने इस पर नहुष को सर्प हो जाने का शाप दे दिया। युधिष्ठिर ने इस योनि से उसका उद्धार किया।**

नहैहौं—क्रि. अ. [हि. नहाना] **नहाऊँगा, स्नान करूँगा।** उ.—(क) गहि तन हिरनकसिप कौ चीरौं, फारि उदर तिहिं रुधिर नहैहौं—७-५। (ख) सूरदास है साखि जमुन-जल सौंह देहु जु नहैहौं—४१२।

नहूसत—संज्ञा पु. [अ.] (१) **खिन्नता, मनहूसी, उदासीनता।** (२) **अशुभ लक्षण।**

नाउँ—संज्ञा पुं. [हि नाम] **नाम।** उ.—अब झूठौ अभिमान करति है, झुकति जो उनकैं नाउँ—६-७७।

नाँगा—वि. [हिं. नगा] **नग्न, वस्त्रहीन।**

नाँगी—वि. स्त्री. [हिं. नगा] **नंगी, नग्न, वस्त्ररहित।** उ.—(क) तुम यह बात अचंभौ भाषत, नाँगी आवहु नारी—७८८। (ख) जल भीतर जुवती सब नाँगी ७६६।

नाँगे—वि. [हि नगा] (१) **नंगा, नग्न, वस्त्रहीन।** (२) **आवरणरहित, खुला हुआ, जो ढका न हो।** उ.—(क) सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करै—४५३। (ख) सूरदास प्रभु नाँगे पायँन दिनप्रति गैया चारीं—३४१२।

नाँगौ—वि. [हिं नंगा] **नंगा, वस्त्ररहित।** उ—अर्द्ध-निसा नृप नाँगौ धायौ—६-२।

नाँघना—क्रि. स. [हिं. लाँघना] **उछलकर पार जाना।**

नाँचौ—क्रि. अ. [हिं नाचना] (१) **हर्ष के मारे स्थिर न रहो, हृदयोल्लास के कारण अंगो को गति दो।** उ.—सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ जौ, तौ आनँद करिकै नाँचौ—१८३।

नाँठना—क्रि. अ [सं. नष्ट] **नष्ट हो जाना।**

नाँद—संज्ञा स्त्री. [स॰ नंदक] **बड़ा और चौड़ा पात्र।**

नाँदना—क्रि. अ. [स. नाद] (१) **शब्द या शोर करना।** (२) **छींकना।**

क्रि. अ. [स. नदन] **प्रसन्न या आनंदित होना।**

नांदी—संज्ञा स्त्री. [स] **आशीर्वादात्मक पद्य जो नाटकाभिनय के आरंभ में सूत्रधार कहता है।**

नांदीमुख—संज्ञा पुं. [स.] **एक श्राद्ध (वृद्धिश्राद्ध) जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है।** उ.—तब न्हाइ नंद भए ठाढे अरु कुस हाथ धरे। नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे—१०-२४।

नांदीमुखी—संज्ञा स्त्री [सं] **एक वर्णवृत्त।**

नाँयँ—अव्य [हिं नहीं] **नहीं।**

नाँव—संज्ञा पु [हि नाम] **नाम, संज्ञा।** उ.—कुमति तासु रानी कौ नाँव—४-१२।

नाँह—वाक्य [हि. न+आइ=है] **नहीं है।** उ.—मेरो मन पिय-जीव बसत है, पिय को जीव मो मैं नाँह—१६७४।

ना—अव्य [स] **न, नहीं।** उ.—(क) बयरोचन-सुत को सुभाव सग देखि परत ना मिन—सा. ८६। (ख) ना जानौं करिहौं अब कहा तुम—१-१३०। (ग) जसुमति बिकल भई छिन कल ना—१०५४।

नाइ—क्रि स [हिं नवाना, नाना] (१) **नवाकर, नम्र होकर।** उ.— सुकदेव हरि चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोलौ या भाइ—२-१। (२) **नीचा करके, नीचे झुकाकर।** उ —गहि असुर धाइ, पुनि नाइ निज जघ पर, नखनि सौं उदर डारयौ बिदारी—७-६। (३) **डालकर।** उ —कनक थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ—१०-८६।

संज्ञा पु. [हिं. नाव] **नाव, नौका।** उ.—तुम बिनु ब्रजबासी ऐसे जीवैं ज्यौं करिया बिन नाइ—२८४४।

नाइक—सज्ञा पु [स नायक] **नायक।**

नाइन—सज्ञा स्त्री [हिं पु नाई] (१) **नाई जाति की स्त्री** (२) **नाई की पत्नी।**

नाइहौ, नाइहौ—क्रि स [हि. नवाना, नाना] **झुकाओगे।** उ.—करि करि समाधान नीकी विधि मोहि को माथौ नाइहौ—२९४२।

नाई—सज्ञा स्त्री. [स. न्याय] **समान दशा, एक सी स्थिति।**

वि —**समान, तुल्य, तरह।** उ.— (क) रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई—१-३। (ख) स्रम करत स्वान की नाई—१-१०३। (ग) भ्रमि आयौ कपि गुंजा की नाई—१-१४७। (घ) बादत बड़े सूर की नाई—२५६०।

नाई—सज्ञा पु [स. नापित] **नाऊ, हज्जाम।**

वि [हिं नाई] **समान, तुल्य, तरह।** उ.—आत अति बोल झोल तनु डारयौ अनल भँवर की नाई—३१७७।

क्रि. स. [हि. नवाना, नाना] (१) **झुकाकर, नम्र होकर।** उ.—सूर दीन प्रभु प्रगट-बिरद सुनि अजहुँ दयाल पतत सिर नाई—१-६। (२) **घुसेड़कर, ठूँस कर।** उ.—मुख चुम्यौ, गहि कंठ लगायौ, विष लपट्यौ अस्तन मुख नाई—१०-५१। (३) **छोड़कर, ऊपर से डालकर, मिलाकर।** उ.—अति प्यौसर सरस बनाई। तिहि सोंठ-मिरिचि रुचि नाई—१०-१८३।

नाउँ—सज्ञा पु [हि नाम] (१) **नाम।** उ.–तुम कृपालु, करुनानिधि, केसव, अधम उधारन नाउँ—१-१२८। (२) **चिह्न, नाम निशान।** उ —इंद्रहि पेलि करी गिरि पूजा सलिल बरषि ब्रज नाउँ मिटावहि —९४७।

नाउ—सज्ञा पु [हि. नाम] **नाम, संज्ञा।** उ —पतित-उधारन है हरि-नाउ—६-३।

सज्ञा पु [हि. नाव] **नाव, नौका।** उ.—दीरघ नाउ कागर की को देखौ चढि जात—३२८२।

नाउत—सज्ञा पु [देश] **झाड़-फूंक करनेवाला।**

नाउन—सज्ञा स्त्री [हि पुं नाऊ] (१) **नाऊ जाति की स्त्री।** (२) **नाऊ की पत्नी।**

नाउम्मेद—वि. [फा] **निराश।**

नाउम्मेदी—सज्ञा स्त्री. [फा.] **निराशा।**

नाऊँ—क्रि. स. [हिं नाना, नवाना] **नवाता हूँ, झुकाता हूँ।** उ —हरि, हरि-भक्तनि कौं सिर नाऊँ—१-२९०।

सज्ञा पु [हि नाम] **नाम।** उ —जानि लई मेरे जिय की उन गर्व-प्रहारन उनको नाऊँ—१६५४।

नाऊ—सज्ञा पु [स. नापित] **नाई, हज्जाम।**

नाए—क्रि. स [स. नवाना] (१) **झुकाये।** (२) **डाले।**

मुहा.—मुख नाए—**मुख में डाले, खाये।** उ.—गोबिंद गाढे दिन के मीत। ... । लाखा गृह पाडवनि उबारे, साक-पत्र मुख नाए—१-१३१।

नाक—सज्ञा स्त्री [स नक, पा. नक्क] (१) नासिका।

मुहा—नाक कटना—**अप्रतिष्ठा होना।** नाक कटाना—**अप्रतिष्ठा कराना।** नाक का बाल—**बहुत घनिष्ठ मित्र या सहायक।** नाक घिसना—**बहुत बिनती करना।** नाक चढना—**क्रोध आना।** नाक

चढाना-(१) **क्रोध करना।** (२) **अरुचि दिखाना।** नाकों चने चबवाना—**खूब तंग या हैरान करना।** नाक तक खाना—**ठूंस-ठूंसकर खाना।** नाक न दी जाना—**बहुत दुर्गंध आना।** नाक पकड़ते दम निकलना—**बहुत ही दुबला होना।** नाक पर गुस्सा रहना—**बहुत जल्दी गुस्सा आना।** नाक पर मक्खी न बैठने देना-(१) **बहुत साफ तबियत का आदमी होना, बहुत साफ हिसाब किताब रखनेवाला।** (२) **बहुत साफ-सुथरा रहना।** (३) **दूसरे का जरा भी अहसान न लेना।** (किसी की) नाक पर सुपारी तोड़ना—**बहुत तंग या हैरान करना।** नाक-भौं चढाना (सिकोड़ना)-(१) **अरुचि या अप्रसन्नता दिखाना।** (२) **चिढ़ना और घिनाना।** नाक में दम रखना-**बहुत तंग या हैरान करना।** नाक रगड़ना-**बहुत बिनती करना।** नाक रगड़े का बच्चा—**वह पुत्र जो देवताओं की बहुत पूजा-सेवा और मनौती करने पर हुआ हो।** नाकों आना-**बहुत तंग या हैरान होना।** नाक में बोलना—**नकियाना, बहुत महीन आवाज में बोलना।** नाक लगाकर बैठना-**बड़ी इज्जतवाला बनना।** नाक सिकोड़ना—**अरुचि दिखाना, घिनाना।**

(२) **नाक का मल।** (३) **प्रतिष्ठा या शोभा की वस्तु।** (४) **मान, प्रतिष्ठा।**

मुहा.—नाक रख लेना-**मान की रक्षा करना।**

संज्ञा स्त्री. [सं. नक्र] **एक जलजंतु।**

संज्ञा पुं [स.] (१) **आकाश।** (२) **स्वर्ग।** उ.—नाक निरै सुख-दुःख सूर नहिं, जिहि की भजन प्रतीति—२-१२।

नाकनटी—संज्ञा स्त्री. [स.] **स्वर्गीय नर्तकी, अप्सरा।**

नाकना—क्रि स. [सं लंघन, हिं. लाँघना, नाँघना] (१) **उछलकर पार करना, लांघना, डांकना।** (२) **बढ़ जाना, मात कर देना।**

नाकबुद्धि—वि. [हिं. नाक+बुद्धि] **तुच्छ बुद्धि, ओछी समझ का।** उ.—अपनो पेट दियो तैं उनको नाकबुद्धि तिय सबै कहै री।

नाका—संज्ञा पु. [हिं. नाकना] (१) **मुहाना, प्रवेशद्वार।** (२) **मुख्य स्थान।** (३) **नगर का प्रवेशद्वार।** (४) **चौकी।** (५) **सुई का छेद।**

संज्ञा पुं [स. नक्र] **एक जलजतु।**

नाकाबिल—वि. [फा. ना+अ. काबिल] **अयोग्य।**

नाकी—संज्ञा पुं. [सं. नाकिन्] **देवता।**

नाकु—संज्ञा पुं. [स.] (१) **दीमक का ढूह, वल्मीक।** (२) **टीला, भीटा।** (३) **पर्वत।**

नाकुल—वि [स] **नेवला-संबंधी।**

संज्ञा पुं—**नकुल की सतति।**

नाकुली—वि [स. नकुल] **नकुल का बनाया हुआ।**

नाकेश—संज्ञा पु [स] **स्वर्ग का स्वामी, इन्द्र।**

नाक्षत्र—वि. [स] **नक्षत्र संबंधी।**

नाखत—क्रि. स. [हिं नाखना] **नाश या नष्ट करते हैं।** उ—जे नखचंद्र भजन खल नाखत रमा हृदय जेहि परसत—१३४२।

नाखना—क्रि. स. [सं. नष्ट] (१) **नाश या नष्ट करना।** (२) **फेंकना, गिराना, डालना।**

क्रि. स. [हिं. नाकना] **लांघना, उल्लंघन करना।**

नाखि—क्रि. स. [हि. नाखना] **नष्ट करके।**

प्र.—डारै नाखि—**नष्ट कर दिये।** उ.—प्रथम ऊधौ आनि दै हम सगुन डारै नाखि—३०४८।

नाखी—क्रि. स. [हिं नाखना] **फेंकी, गिरायी, डाली।**

प्र—दियो नाखी—**गिरा दिया, फेंक दिया, डाल दिया।** उ.—जब सुरपति ब्रज बोरन लीनो दियो क्यों न गिरि नाखी—२७३६।

क्रि. स. [हि नाकना] **लांघी, पार की।** उ—पाछे तै सीय हरी बिधि मरजाद राखी। जो पै दसकध बली रेख क्यों न नाखी।

नाखुश—संज्ञा स्त्री. [फा] **नाराज, अप्रसन्न।**

नाखुशी—संज्ञा स्त्री [फा] **नाराजी, अप्रसन्नता।**

नाखून—संज्ञा पु. [फा. नाखुन] **नख, नहँ।**

नाखै—क्रि. स. [हि. नाखना] **नष्ट कर दे, मिटा दे।** उ.—जो हरि-चरित ध्यान उर राखै। आनँद सदा दुखित-दुख नाखै—३६१।

नाख्यो, नाख्यौ—क्रि. स [हि नाखना] (१) **हटा दिया,**

तोड़ दिया, दूर कर दिया, टाल दिया, मिटा दिया। उ.—भारत में मेरौ प्रन राख्यौ। अपनौ कह्यौ दूरि करि नाख्यौ—१-२७७। (२) नष्ट कर दिया, नाश कर दिया। उ.—(क) आये स्याम महल ताही के नृपति महल सब नाख्यो—२६३४। (ख) मात-पिता हित प्रीति निगम पथ तजि दुख सुख भ्रम नाख्यौ—३०१४।

नाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सर्प, साँप। (२) कद्रू से उत्पन्न कश्यप की संतान जो पाताल में रहती है। (३) एक ऐतिहासिक जाति। (४) हाथी। उ.—रोवैं वृषभ, तुरग अरु नाग—१-२८६। (५) कंस का कुवलयापीड़ हाथी जिसे बलराम और श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—सूरदास प्रभु सुर सुखदायक मारयौ नाग पछारी—२५६४। (६) पान, तांबूल। (७) बादल। (८) आठ की संख्या। (९) दुष्ट और क्रूर मनुष्य।

नाग-कन्या—संज्ञा स्त्री [सं.] नाग-जाति की युवती जो बहुत सुन्दर मानी जाती है।

नागचूड़—संज्ञा पुं. [सं.] शिव महादेव।

नागजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाग कन्या।

नागफाग—संज्ञा पुं. [हिं. नाग+फाग] अफीम।

नागधर—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

नागध्वनि—संज्ञा स्त्री [सं.] एक संकर रागिनी।

नागनक्षत्र—संज्ञा पुं. [सं.] अश्लेषा नक्षत्र।

नागनग—संज्ञा पुं. [सं.] गजमुक्ता।

नागपंचमी—संज्ञा स्त्री [सं.] सावन सुदी पचमी जब नाग पूजन होता है।

नागपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सर्पराज वासुकि। (२) हस्तिराज ऐरावत।

नागपाश—संज्ञा पुं. [सं.] वरुण का एक अस्त्र।

नागपुर—संज्ञा पुं. [सं.] सर्प नगरी भोगवती जो पाताल लोक में है।

नागफनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाग-फन] (१) एक कटीला पौधा। (२) एक बाजा। (३) कान का एक गहना। (४) नागा साधु का कौपीन।

नागबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल का पेड़।

नागबेल—संज्ञा स्त्री. [सं.] पान की बेल।

नाग-यज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] जनमेजय का यज्ञ जिसमें नागों की आहुतियाँ देकर नाग जाति का विनाश किया गया था।

नागरंग—संज्ञा पुं. [सं.] नारंगी।

नागर—वि. [सं.] (१) नगर में रहनेवाला। (२) नगर से संबंध रखनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) नगर में रहनेवाला मनुष्य। (२) चतुर, सभ्य और सज्जन व्यक्ति। (३) देवर (४) गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

नागरक्त—संज्ञा पुं. [सं.] सिंदूर।

नागरता, नागरताई—संज्ञा स्त्री [सं. नागरता] (१) नागरिकता। (२) नगर का सभ्य और शिष्ट व्यवहार। उ.—नागरता की रासि किसोरी—२३१०। (३) चतुरता। उ.—नवनागर तबहीं पहिचाने नागरि नागरिताई - २२७५।

नागरबेल—संज्ञा स्त्री [सं. नागवल्ली] पान की बेल।

नागराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सर्पों का राजा वासुकि। (२) शेषनाग। (३) हस्तिराज ऐरावत।

नागरि—वि [सं. नागरी] (१) नगर की रहनेवाली। (२) सुन्दर, चतुर। उ.—काम क्रोध<रु लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि नारि—१-३०६।

संज्ञा स्त्री.—(१) नगर की रहनेवाली स्त्री। (२) चतुर नारी।

नागरिक—वि [सं.] (१) नगर-संबंधी। (२) नगर में रहनेवाला। (३) चतुर। (४) सभ्य।

संज्ञा पुं.—(१) नगर निवासी। (२) सभ्य और सज्जन व्यक्ति।

नागरिकता—संज्ञा स्त्री [सं.] 'नागरिक' होने का भाव।

नागरिया—संज्ञा स्त्री [सं. नागरी] युवती, नागरी। उ.—नवल किसोर नवल नागरिया। अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपनैं उर धरिया—६८८।

नागरी—संज्ञा स्त्री [सं. पुं. नागर] (१) चतुर और शिष्ट स्त्री। उ.—नैननि भृकुटी सु मन मैं हँसी नागरी, उरहनौ देत रुचि अधिक बाढ़ी—१०-३०७। (२) नगर में रहनेवाली स्त्री। (३) देवनागरी लिपि।

वि.—**चतुर और शिष्ट**—उ.—श्री मदन मोहन लाल सँग नागरी ब्रजबाल—६२३।

नागरीट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **लंपट**। (२) **जार**।

नागरेणु—संज्ञा पुं. [सं.] **सिंदूर**।

नागलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पान की लता, पान**।

नागलोक—संज्ञा पुं. [सं. नाग+लोक] **पाताल जहाँ कद्रू से उत्पन्न कश्यप के 'नाग' नामक पुत्र रहते हैं।**

नागवल्लरी, नागवल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पान**।

नागवार—वि. [फा.] **जो अच्छा न लगे, अप्रिय**।

नागांतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पक्षिराज गरुड़**। (२) **मयूर, मोर**। (३) **सिंह, केहरी**।

नागा—संज्ञा पुं. [सं. नग्न] **एक संप्रदाय के साधु जो नंगे रहते हैं।**

संज्ञा पुं. [अ० नागः] **कार्यक्रम-भंग, अन्तर**।

नागार्जुन—संज्ञा पुं. [सं.] **एक प्राचीन बौद्ध महात्मा**।

नागाशन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पक्षिराज गरुड़**। (२) **मोर, मयूर**। (३) **सिंह**।

नागिन, नागिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाग] **नाग की मादा**।

नागेंद्र, नागेश, नागेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शेषनाग**। (२) **वासुकि**। (३) **ऐरावत**।

नाघ्यौ—क्रि. स. [हिं. लाँघना, नाँघना] **लाँघा, पार किया**। उ.—जान्यौ नहीं निसाचर कौ छल, नाघ्यौ धनुष-प्रकार—९-८२।

नाच—संज्ञा पुं. [सं. नृत्य, प्रा. णाच्च, अथवा सं. नाट्य] (१) **उमंग या उल्लास के कारण सामान्य उछल-कूद अथवा संगीत के ताल-स्वर के अनुसार अंगों की गति**।

मुहा.—नाच काछना—**नाचने को तैयार होना**। उ.—मैं अपनौ मन हरि सौं जोरयौ। ……। नाच कछ्यौ घूँघट छोरयौ तब लोक-लाज सब फटकि पछोरयौ। नाच दिखाना—(१) **किसी के सामने नाचना**। (२) **उछलना-कूदना**। (३) **विचित्र व्यवहार करना**। नाच नचाना—(१) **मनचाहा काम करा लेना**। (२) **तंग, हैरान या परेशान करना**। नाच नचायौ—**तंग या हैरान किया**। उ.— इक कौ आनि ठेलत पाँच। करुनामय कित जाउँ कृपानिधि, बहुत नचायौ नाच—१-१९६। नाच नचावैं—**मनचाहा आचरण या व्यवहार करने पर विवश करें**। उ.—इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच। नर कौं सदा नचावैं नाच—५-४। नाच नचावै—**मनचाहा काम करने को विवश करती है**। उ.—(क) माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै—१-४२। (ख) जो कछु कुबिजा के मन भावै सोई नाच नचावै—३४४१।

(२) **खेल, क्रीड़ा**। (३) **काम-धंधा**।

नाच-कूद—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाच+कूद] (१) **नाच तमाशा**। (२) **प्रयत्न करने को हाथ-पैर मारना**। (३) **क्रोध में उछलना-कूदना**।

नाचघर—संज्ञा पुं. [हिं. नाच+घर] **नृत्यशाला**।

नाचत—क्रि. अ. [हिं. नाचना] (१) **नाचते हैं**। (२) **इधर से उधर फिरते हैं, स्थिर नहीं रहते**। उ.—ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति नाचत फिरत महा रस भोयौ—१—५४।

नाचना—क्रि. अ. [हिं. नाच] (१) **उमंग या उल्लास से अंगों को गति देना**। (२) **थिरकना, नृत्य करना**। (३) **चक्कर काटना, घूमना-फिरना**।

मुहा.—सिर पर नाचना—(१) **घेरना, ग्रसना, प्रभाव डालना**। (२) **पास या निकट आना**। आँख के सामने नाचना—**ध्यान में ज्यों का त्यों बना रहना**।

(४) **दौड़ना-धूपना, घूमना फिरना**। (५) **थर्राना, काँपना**। (६) **क्रोध में उछलना कूदना और हाथ पैर पटकना**।

नाचमहल—संज्ञा पुं. [हिं नाच+महल] **नाचघर**।

नाच-रंग—संज्ञा पुं. [हिं.नाच+रंग] **आमोद-प्रमोद**।

नाचार—वि. [फा.] (१) **लाचार**। (२) **व्यर्थ**।

क्रि. वि.—**विवश होकर, हारकर, लाचारी से**।

नाची—क्रि. अ. [हिं नाचना] (१) **उमंग या उल्लास में अंगों को गति दी**। (२) **नृत्य करने या थिरकने लगी**। (३) **चक्कर मारने या घूमने लगी**।

मुहा.—सीस पर नाची—(१) **ग्रस लिया, आक्रांत कर लिया, प्रभावित किया**। उ.—रावन सौं नृप जात न जान्यौ, माया विषम सीस पर नाची—१-१८।

नाचीज—वि. [फा. नाचीज] तुच्छ, निकम्मा।

नाचे—क्रि. अ बहु [हिं नाचना] (१) इधर-उधर दौड़ते-घूमते फिरे; जैसा कहा, वैसा किया। उ.—प्रीति के वचन बाँचे विरह अनल आँचे अपनी गरज को तुम एक पाइँ नाचे—२००३।

यौ०—नाचे-गाए—आमोद-प्रमोद से। उ—ना जानौं अब भलो मानिहै ऊधौ नाचे-गाए—३४०३।

नाचै—क्रि. अ. [हि. नाचना] (१) इधर-उधर भटकना, स्थिर न रहना। (२) जन्म लेकर सांसारिक झगड़ों में पड़कर दौड़-धूप करे। उ—जाइ समाइ सूर वा निधि में, बहुरि जगत नहिं नाचै—१-८१।

नाच्यौ—क्रि. अ. [हि नाचना] नाचा, नृत्य किया। उ.—अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल—१-१५३।

नाज—सज्ञा पुं [हिं अनाज] (१) अनाज। (२) भोजन।
संज्ञा पु. [फा नाज] (१) ठसक, नखरा, चोंचला।
यौ—नाज-अदा या नाज-नखरा—(१) नखरा, चोंचला, हाव-भाव। (२) चटक मटक।
मुहा.—नाज उठाना—नखरे या चोचले सहना। नाज से पालना—बड़े लाड-प्यार से पालना।
(२) गर्व, घमड, अभिमान, गरूर।

नाजनी—सज्ञा स्त्री. [फा नाजनी] सुंदर स्त्री।

नाजायज—वि [अ. नाजायज] अनुचित, नियम विरुद्ध।

नाजु—सज्ञा पु [हि अनाज] भोजन, खाना, खाद्य पदार्थ। उ.—राखौ रोकि पाइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाजु—७८।

नाज़ुक—वि. [फा नाज़ुक] (१) कोमल, सुकुमार। (२) महीन, बारीक (३) सूक्ष्म। (४) जरा सी ठेस से ही टूट जानेवाली। (५) जिसमें हानि होने का डर हो।

नाजो—वि स्त्री [हिं. नाज] (१) दुलारी। (२) कोमलांगी।

नाट—सज्ञा पु. [स.] (१) नृत्य, नाच। (२) नकल, स्वाँग। उ.—यह व्यवहार आजु लौं है ब्रज कपट नाट छल ठानत—२७०३। (३) एक राग।

नाटक—संज्ञा पुं. [स.] (१) प्रदर्शन, अभिनय। उ.—बदन उघारि दिखायौ अपनी नाटक की परिपाटी—१०-२५४। (२) अभिनय करनेवाला। (३) वह ग्रंथ जिसका अभिनय किया जा सके।

नाटकशाला—सज्ञा स्त्री. [स] स्थान जहाँ अभिनय हो।

नाटकावतार—संज्ञा पुं. [स.] एक नाटक के बीच दूसरे नाटक का अभिनय।

नाटकी—सज्ञा पुं. [हिं. नाटक] नाटक करनेवाला।

नाटकीय—वि. [स.] नाटक-संबंधी।

नाटना—क्रि. अ. [स. नाट्य = बहाना] वचन देकर फिर मुकर जाना, वादे से इनकार करना।

नाटवसंत—सज्ञा पु. [स] एक राग।

नाटा—वि. [स. नत] छोटे कद का।

नाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक होते हैं। (२) एक रागिनी।

नाटित—वि. [स.] जिसका अभिनय हुआ हो।

नाटी—वि. स्त्री [हिं पुं. नाटा] छोटी, जो ऊँची न हो।
सज्ञा स्त्री.—छोटे डील की गाय। उ—सूरदास नँद लेहु दोहिनी, दुहहु लाल की नाटी—१०-२५६।

नाट्य—सज्ञा पुं. [स.] (१) नटों का काम। (२) अभिनय। (३) स्वाँग, नकल।

नाट्यकार—सज्ञा पुं. [स.] नाटक करनेवाला, नट।

नाट्यरासक—सज्ञा पु. [स] एक अंक का उपरूपक।

नाटकशाला—सज्ञा स्त्री [स.] स्थान जहाँ नाटक हो।

नाठ—सज्ञा पुं [स नष्ट, प्रा नट्ठ] नाश, ध्वंस।

नाठना—क्रि. स. [स नष्ट, प्रा. नट्ठ] नष्ट करना।
क्रि. अ.—नष्ट या ध्वस्त होना।
क्रि. अ [हि नाटना] हट जाना, भागना।

नाड़ा—सज्ञा पु [स. नाड़] इजारबंद, नीवी।

नाडिया—संज्ञा पु. [स. नाड़ी] नाड़ी पकड़नेवाला, वैद्य।

नाड़ी—सज्ञा स्त्री [स] (१) नली। (२) धमनी।
मुहा.—नाड़ी चलना—कलाई की नाड़ी में गति होना जो जीवन का लक्षण है। नाड़ी छूटना—(१) नाड़ी न चलना। (२) मूर्च्छा आना। (३) मृत्यु होना।
(३) ज्ञान, शक्ति और श्वास वाहिनी नलियाँ। (४) वर-वधू की गणना बैठाने में कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्र-समूह।

नात—संज्ञा पु. [सं. ज्ञाति, प्रा० णाति] (१) **नातेदार, संबंधी**। (२) **नाता, सबंध**। उ.—(क) राखो मोहि नात जननी को मदनगुपाल लाल मुख फेरो—२५३२। (ख) होहु बिदा घर जाहु गुसाईं माने रहियौ नात—२६५७। (ग) सूर प्रभु यह सुनहु मोसों एकहीं सों नात—२६१७।

नातरि, नातरु—अव्य. [हि. न+तो+अरु] **और नहीं तो, अन्यथा**। उ.—(क) गाइ लेहु मेरे गोपालहि। नातरु काल-व्याल लेतैं है, छाँडि देहु तुम सब जंजालहिं—१-७४। (ख) जा सहाइ पाडव-दल जीतौं, अर्जुन कौ रथ लीजै। नातरु कुटुंब सकल संहरि कै, कौन काज अब जीजै—१-२६९। (ग) कोउ खवावै तो कछु खाहिं। नातरु बैठे ही रहि जाहिं—५-२।

नातवाँ—वि. [फा.] **निर्बल, दुर्बल, अशक्त**।

नाता—सज्ञा पु. [हि नात] (१) **सबध, रिश्ता**। (२) **संबध, लगाव**। उ.—(क) अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता—१-१२३। (ख) सूरदास श्री रामचंद्र बिनु कहा अजोध्या नाता—९-४९।

नातिन—संज्ञा स्त्री. [हि. नाती] **लड़की की लड़की**।

नाती—सज्ञा पुं. [स. नप्तृ, प्रा. नत्ति] **लड़की का लड़का**। उ.—सुत के सुत नाती पतिनी की महिमा कहिय न जाई—८३९।

नाते—क्रि. वि. [हिं. नाता] (१) **संबध से**। उ.—मिलि किन जाहु बटाऊ नाते—२५२८। (२) **हेतु, वास्ते, लिए**। उ.—दूध-दही के नाते बनवत बातें बहुत गुपाल।

सज्ञा पुं बहु.—**बहुत से सबंध या रिश्ते**। उ.—झूठे नाते जगत के सुत-कलत्र-परिवार—२-२९।

नातेदार—वि. [हिं नाता+दार] **सगे-सबधी**।

नातै—क्रि. वि. [हिं. नाता] **सबंध से, संबध के कारण**। उ.—(क) पुनि पुनि तुमहिं कहत कत आवै कछुक सकुच है नातै—३०२४। (ख) उग्रसेन बैठारि सिंहासन लोग कहत कुल नातै—३३२४।

नातौ—सज्ञा पुं. [हिं. नात] (१) **कौटुंबिक घनिष्ठता, जाति-संबध, रिश्ता**। उ.—(क) जग मैं जीवन ही कौ नातौ—१-३०२। (ख) रघुपति चित्त विचार कर्यौ। नातौ मानि सगरं सागर सौं, कुस-साथरी पर्यौ—९-१२२। (ग) हमहि तुमहि सुत-तात को नातौ और पर्यौ है आइ—२६५१। (२) **लगाव, सबंध**। उ.—तब तें ग्रह सौं नातौ टूट्यौ जैसे काँचो सूत री—१०-१३६।

नात्र—सज्ञा पुं. [स.] **शिव**।

नाथ—संज्ञा पु [स.] (१) **प्रभु, स्वामी**। उ.—तहँ सुख मानि बिसारि नाथ पद अपनें रग बिहरतौ—१-२०३। (२) **पति**। उ०—कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारो नाथ—९-४४। (३) **गोरखपथियो की उपाधि या पदवी जो उनके नामो से मिली रहती है**। (४) **पशुओ को नाथने की रस्सी**।

सज्ञा स्त्री. [हिं नथ] **नाक में पहनने की नथ**।

नाथत—क्रि. स. [हिं. नाथ, नाथना] **नाक छेदकर वश में करते हु, नाथते हैं**। उ—नाथत व्याल बिलंब न कीन्हौ—५५७।

नाथता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रभुता, स्वामीपन**।

नाथत्व—सज्ञा पुं. [स.] **प्रभुत्व, स्वामित्व**।

नाथन—सज्ञा पुं. [सं.] **नाथने की क्रिया या भाव**। उ.—सात बैल नाथन के कारन आप अजोध्या आये—सारा. ६५५।

नाथना—क्रि. स. [हि. नाथ] (१) **पशुओं को वश में रखने के लिए नाक छेदकर उसमें रस्सी डालना**।

मुहा.—नाक पकड़कर नाथना—**बल से वश में करना**।

(२) **वस्तु को छेदकर तागा डालना, नत्थी करना**।

नाथद्वारा—सज्ञा पु. [स. नाथद्वार] **उदयपुर में वल्लभ-संप्रदायी वैष्णवो का मदिर जहाँ श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित है**।

नाथा—सज्ञा पुं. [सं. नाथ] **नाथ, स्वामी**। उ.—वानर बन बिघन कियौ, निसिचर कुल नाथा—९-९६।

नाथि—क्रि. स. [हि. नाथना] **नाथकर, नाक छेदकर, वश में करके**। उ—(क) नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८९। (ख) काली ल्याए नाथि, कमल ताही पर ल्याए—५८९।

नाथियाँ—क्रि. स [हिं नाथना] **नाथ लिया, नाक छेदकर वश में कर लिया।** उ—(तब) धाइ धायौ, अहि जगायौ, मनौं छूटे हाथियाँ। सहस फन फुफुकार छाँडे, जाइ काली नाथियाँ—५७७।

नाथे—क्रि वि [हि. नाथना] **नाथे हुए, वश में किये हुए।** उ—आवत उरग नाथे स्याम—१०-५६३।

नाथैं—सज्ञा पु. [स नाथ] **नाथ, स्वामी।** उ.—कहि कुसलाते साँची बात आवन कह्यौ हरिनाथैं—३४४१।

नाद—सज्ञा पुं. [सं] (१) **शब्द, ध्वनि।** उ.—तृना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल—१-१५३। (२) **वर्णों का अव्यक्त मूल रूप।** (३) **सानुनासिक स्वर।** (४) **सगीत।**

नादना—क्रि. स. [हि. नाद] **बजाना, ध्वनि निकालना।**
क्रि. अ.—(१) **बजना।** (२) **चिल्लाना, गरजना।**
क्रि. अ. [स. नदन] **प्रफुल्लित होना, लहलहाना।**

नादान—वि. [फा.] **अनजान, नासमझ।**

नादानी—सज्ञा स्त्री [हि नादान] **नासमझी।**

नादार—वि. [फा] **निर्धन, कंगाल।**

नादारी—सज्ञा स्त्री. [फा] **गरीबी, निर्धनता।**

नादित—वि [सं] **शब्द करता या बजाया हुआ।**

नादिया—संज्ञा पु [स.] **बैल, नंदी।**

नादिर—वि. [फा.] **अनोखा, अद्भुत।**

नादिहद—वि. [फा] **न देनेवाला।**

नादी—वि. [स. नादिन] **शब्द करने या बजनेवाला।**

नादेय—वि [स] **नदी में होनेवाला।**

नाधना—क्रि. स [हि. नाथना] (१) **रस्सी आदि से पशु को गाडी में जोतना या बांधना।** (२) **जोड़ना, सबद्ध करना।** (३) **गूंथना, पिरोना।** (४) **काम आरम्भ करना।**

नाधे—क्रि स. [हि नाधना] **ठाना है, आरंभ किया है।** उ—मेरी कही न मानत राधे। ये अपनी मति समुझत नाहीं, कुमति कहा पन नाधे।

नाधौ—क्रि. स. [हि नाधना] **ठाना (है), आरंभ किया (है)।** उ—नैनन नाधो है झर—२७६४।

नाध्यौ—क्रि. स. [हि नाधना] **आरंभ किया, (किसी काम को) ठाना या अनुष्ठित किया।** उ.—काहे कौ कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ, कठिन लकुट लै तै त्रास्यौ मेरें भैया—३७२।

नानक—सज्ञा पुं. [स] **पंजाब के एक प्रसिद्ध महात्मा जो सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे।**

नानस—सज्ञा स्त्री. [हिं ननिया सास] **सास की मां।**

नानसरा—सज्ञा पु [हि. ननिया ससुर] **पति या पत्नी का नाना।**

नाना—वि. [स.] (१) **अनेक प्रकार के, विविध।** उ.—सखा लिए सग प्रभु रग नाना करत देव नर कोउ न लखहि करत ब्याला—२५८८। (२) **अनेक, बहुत (सख्यावाचक)।** उ.—सूरदास-प्रभु अपने जन के नाना त्रास निवारे—१-१०। (३) **अधिक, बहुत (परिमाणवाचक)।** उ.—पाडु-सुत बिपति-मोचन महादास लखि, द्रौपदी-चीर नाना बढ़ायौ—१-११६।
संज्ञा पुं. [देश.] **माता का पिता, मातामह।**
क्रि स. [स. नमन] (१) **झुकाना।** (२) **नीचा करना।** (३) **डालना, छोड़ना।** (४) **घुसाना।**
सज्ञा पु. [अ.] **पुदीना।**

नानी—संज्ञा स्त्री. [हिं नाना] **माता की मां, मातामही।** उ—कहा कथन मोसी के आगे जानत नानी नानन—३३२६।

मुहा—नानी मर जाना (याद आना)—**प्राण सूख जाना, मुसीबत आ जाना, सकट पड़ जाना।**

ना-नुकर—सज्ञा पुं. [हि न+करना] **नाहीं, इनकार।**

नान्ह—वि. [हिं. नन्हा] (१) **छोटा, थोडी उम्र का।** उ.—चले बन धेनु चारन कान्ह। गोप-बालक कछु सयाने नद के सुत नान्ह—६१०। (२) **नीच, क्षुद्र।** (३) **महीन, सूक्ष्म।**

मुहा.—नान्ह कातना—(१) **महीन काम करना।** (२) **कठिन या दुष्कर कार्य करना।**

नान्हरिया—वि. [हिं नान्ह] **छोटा, नन्हा।** उ.—नान्हरिया गोपाल लाल तू बेगि बड़ौ किन होहि—१०-७४।

नान्हा—वि. [हि नन्हा] (१) **छोटा, लघु।** (२) **पतला, महीन।** (३) **नीच, क्षुद्र।**

यौ०—नान्हा बारा—**छोटा बालक।**

नान्हि, नान्हीं, नान्ही—वि स्त्री. [हिं. नान्ह] **नन्ही, छोटी** । उ.—(क) माता दुखित जानि हरि बिहँसे, नान्हीं दँतुलि दिखाइ—१०-८१ । (ख) ठाढे हरि हँसत नान्हि दँतियन छबि छाजै—१०-१४६ । (ग) नान्ही एड़ियनि-अरुनता फलबिंब न पूजै - १०-१३४।

नान्हे—वि. [हि. नन्हा] (१) **छोटे, नन्हे** । उ.—हौं वारी नान्हे पाइनि की दौरि दिखावहु चाल—१०-२२३ ।

मुहा.—नान्हे-नून्हे—छोटे मोटे, बहुत साधारण । उ - अवलौं नान्हे-नून्हे तारे, ते सब बृथा अकाज । साँचै विरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज—१ ९६ ।

(२) **नीच, क्षुद्र** । उ.—खेलत खात रहे ब्रज भीतर । नान्हे लोग तनक धन ईतर—१०४२ ।

नान्हो—वि. [हिं. नन्हा] **तुच्छ, साधारण** । उ.—सत्रु नान्हो जानि रहे अब लौं बैठि जन आपने को मारि डारौं—२६०२ ।

नाप—संज्ञा स्त्री. [हिं. माप] (१) **माप, परिमाण** । (२) **नापने का काम** । (३) **मान** । (४) **नपना, पैमाना** ।

नापना—क्रि. स.[हि. मापना](१) **मापना** ,(२) **अंदाजना** ।

नापसंद—वि. [फ़ा.] **अप्रिय, अरुचिकर** ।

नापाक—वि. [फ़ा.] (१) **अपवित्र** । (२) **गंदा** ।

नापाकी—सज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **अपवित्रता** । (२) **गंदगी** ।

नापित—सज्ञा पु [स.] **नाऊ, नाई, हज्जाम** ।

नापी—क्रि. स. [हिं. नापना] **थाह ली, अनुमान किया** । उ.—जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम, तिनकी गति मैं नापी—१-१४० ।

नाबालिग—वि. [अ.+फा.] **छोटी अवस्था का** ।

नाबूद—वि. [फा.] **जिसका अस्तित्व न रहा हो** ।

नाभ—सज्ञा स्त्री. [सं. नाभि (समासात रूप)] **नाभि** ।

नाभा—सज्ञा पुं.—**'भक्तमाल' के रचयिता** ।

नाभाग—सज्ञा पुं [सं.] **राजा ययाति के पुत्र जो राजा दशरथ के पितामह थे** ।

नाभि—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **ढोढी, तुंदी, तोदी** । उ.—नाभि-ह्रद, रोमावली-अलि, चले सहज सुभाव—१-३०७ (२) **कस्तूरी** ।

संज्ञा पुं —(१) **प्रधान व्यक्ति** । (२) **महादेव** । (३) **आग्नीध्र राजा का पुत्र जिसकी पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव का जन्म हुआ था जो विष्णु के चौबीस अवतारो में माने जाते हैं** । उ - प्रियव्रत कैं अग्नीध्र सु भयौ । नाभि जन्म ताही तैं लयौ—५-२ ।

नाभिकमल सज्ञा पु [सं] **प्रलयोपरांत वट-शायी बाल-रूप नारायण की नाभि से उत्पन्न कमल जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति मानी जाती है** । उ —नाभि-कमल तैं ब्रह्मा भयौ—६-२ ।

नाभिज सज्ञा पु. [सं] **नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा** ।

नाभी—सज्ञा स्त्री. [स.] **तोदी, ढोढी** ।

नाभ्य—वि. [स.] **नाभि का, नाभि-सबंधी** ।

नामंजूर—वि. [फा+अ.] **अस्वीकृत** ।

नाम—संज्ञा पु. [सं. नामन] (१) **वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान आदि का बोध हो, संज्ञा** । उ.—नाम सुनीति बड़ी तिहि दार—४-९ ।

मुहा —नाम उछलना—निंदा या बदनामी होना । नाम उछालना—**निंदा या बदनामी कराना** । नाम उठ जाना (उठना)—**चर्चा या स्मरण तक न होना, चिह्न भी न रहना** । नाम करना—**पुकारने का नाम निश्चित करना** । (किसी का) नाम करना—**दूसरे के नाम पर दोष लगाना** । (किसी बात का) नाम करना—**दिखाने या उलाहना छुड़ाने के लिए अथवा कहने भर को कुछ कर देना** । नाम का—(१) **नामधारी** । (२) **कहने-सुनने भर को** । नाम के लिए (को) (१) **कहने-सुनने भर को** (२) **उपयोग या व्यवहार के लिए नहीं** । (३) **बहुत थोड़ा** । नाम चढना **किसी सूची आदि में नाम लिखा जाना** । नाम चढाना—**नाम लिखाना** । नाम चमकाना—**अच्छा नाम या यश होना** । नाम चलना—(१) **याद बनी रहना** । (२) **वंश के लोग जीवित रहना** । नाम चार को— (१) **कहने-सुनने भर को** । (२) **बहुत थोड़ा** । नाम जगाना—(१) **ऐसा काम करना कि लोग चर्चा करने लगें** । (२) **ऐसा काम करना कि लोगो में याद बनी रहे** । नाम जगायौ—**ऐसा काम किया कि चारो ओर चर्चा होने लगी** । उ.—त्रिभुवन मैं अति

नाम जगायौ फिरत स्याम सग ही—पृ. ३२२ । (८) नाम जपना—**बार-बार नाम लेना** । नाम देना—**नाम रखना** । नाम धरता — **नामकरण करनेवाला** । नाम धरति हैं— **दोष लगाती है, बदनाम करती है** । उ — ब्रज-बनिता सब चोर कहति तोहि लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ । आजु मोहि बलराम कहत हे, झूठहि नाम धरति है तेरौ—३९९ । (किसी का) नाम धरना —(१) **नामकरण करना** । (२) **बदनामी करना, दोष लगाना** । (३) **वस्तु का दाम स्थिर करना** । नाम धराना—(१) **नामकरण कराना** । (२) **निंदा या बदनामी कराना** । नाम धरायौ— **निंदा या बदनामी करायी** । उ.— गोपराइ के गेह पुत्र ह्वै नाम धरायौ—११३५ । नाम धरावत— **नामकरण कराते हैं, नाम रखाते है** । उ.—जो परि कृष्ण कुबरिहिं रीझे तो सोई किन नाम धरावत—३०९३ । नाम धरै—**निंदा या बदनामी करे** । उ.— रिषि कह्यौ ताहि, दान-रति देहि । मैं वर देहुँ तोहि सो लेहि । तू कुमारिका बहुरौ होइ । तोकौ नाम धरै नहि कोई—१-२२९ । नाम धरैहौ—**बदनामी या निंदा करायेगी** । उ.—तुम हौ बड़े महर की बेटी कुल जनि नाम धरैहौ—१४९८ । नाम धर्यौ—(१) **नामकरण किया** । उ. - पतित पावन-हरि बिरद तुम्हारौ, कौनैं नाम धर्यौ—१-१३३ । (२) **नाम लगाया, दोषारोपण किया** । **दोषी ठहराया** । उ. - बल मोहन कौ नाम धर्यौ, कह्यौ पकरि मँगावन—५८९ । नाम न लेना - (१) **अरुचि, घृणा या क्रोध से चर्चा तक न करना** । (२) **लज्जा संकोच से नामोच्चार न करना** । तो मेरा नाम नहीं—**तो मुझे तुच्छ समझना** । नाम निकल जाना (निकलना) - (१) **किसी बुरी-भली बात के कर्त्ता या सहयागी के रूप में बदनाम हो जाना** । (२) **नाम का प्रकाशित होना** । नाम निकलवाना—(१) **बदनामी कराना** । (२) **तन्त्र-मंत्र से अपराधी का पता लगवाना** । (३) **किसी नामावली से नाम कटवा देना** । (४) **नाम प्रकाशित करा देना** । नाम पड़ना—**नाम रख जाना, नाम निश्चित हो जाना** । (किसी के) नाम—(१) **किसी के लिए निश्चय या कानून द्वारा सुरक्षित** । (२) **किसी के संबंध में** । (३) **किसी को संबोधन करके** । किसी के नाम पर— (१) **किसी के स्मारक रूप में** । (२) **पुण्य-दान के लिए किसी देवी-देवता आदि के तोष के लिए** । किसी के नाम पड़ना—(१) **किसी के लिए निश्चित या निर्धारित किया जाना, किसी के नाम लिखा जाना** । (२) **किसी को सौंपा जाना** । किसी के नाम डालना—(१) **किसी के लिए निश्चित या निर्धारित करना** । (२) **किसी को सौंपना** । (किसी के) नाम पर मरना (मिटना)—(**किसी के प्रति इतना प्रेम होना कि अपने हानि-लाभ की जरा भी चिंता न करना** । (किसी के) नाम पर बैठना—(१) **किसी की सहायता या दया के भरोसे पर संतोष करना** । (२) **किसी के आसरे पर जरूरी काम भी न करना** । (बड़ा) बड़ौ नाम—**बहुत प्रसिद्ध या विख्यात होना** । उ.— नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ौ नाम है नंद महर कौ—१०-३३३ । नाम बद (बदनाम) करना— **बदनामी कराना, कलंक लगाना** । नाम बाकी रहना—(१) **कहीं चले जाने या मरने के बाद भी लोगों को नाम का स्मरण रहना** । (२) **सब-कुछ मिट जाना, केवल नाम भर रह जाना** । नाम बिकना—(१) **नाम प्रसिद्ध हो जाने के कारण ही उससे संबंधित वस्तु का आदर होना** । (२) **किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम पर वस्तु-विशेष का नाम रखकर उसे बेचना** । नाम बिगाड़ना—(१) **बुरा काम करके बदनाम होना** (२) **दोष या कलंक लगाना** । नाम मिटना—(१) **नाम का स्मरण भी न रह जाना** । (२) **चिह्न तक मिट जाना** । नाम मात्र को—**बहुत ही थोड़ा** । नाम भयौ— **नाम हुआ, श्रेय मिला** । उ.— गनिका तरी आपनी करनी नाम भयौ प्रभु तेरौ—१-१३२ । नाम रखना—(१) **नामकरण करना** । (२) **अच्छा काम करके यश बनाये रखना** । (३) **बदनामी करना** । नाम लगना - **दोष, बुराई या अपराध के सिलसिले में नाम लिया जाना** । नाम लगाना — **दोष, बुराई या अपराध का जिम्मेवार ठहराना, दोष मढ़ना** । नाम लेकर—(१) **नाम के प्रभाव से** । (२)

नाम का स्मरण करके। नाम लेना—(१) **नाम का उच्चारण करना।** (२) **जपना या स्मरण करना।** (३) **गुण गाना, प्रशंसा करना।** (४) **जिक्र या चर्चा करना।** (५) **दोष या अपराध लगाना।** नाम लीन्हौ—**भय या आतंक दिखाने के लिए नाम का उच्चारण किया।** उ.—यह कह्यौ नट, नृप बंदि, अहि-इन्द्र पै गयौ मेरौ नद, तुव नाम लीन्हौ - ५८४। नाम-निशान—**चिह्न, पता, खोज।** नाम-निशान मिट जाना (मिटना)—**ऐसा चिह्न तक न रह जाना जिससे कुछ पता चल सके।** नाम-निशान न होना—**ऐसा कोई चिह्न न होना जिससे पता चलाया जा सके।** नाम से—(१) **चर्चा या जिक्र से।** (२) **संबंध बताकर।** (३) **स्वामी या मालिक मानकर।** (४) **नाम के प्रभाव से।** (५) **नाम सुनते ही।** नाम से कॉपना—**नाम सुनते ही डर जाना।** नाम होना—(१) **दोष या कलंक लगना।** (२) **नाम प्रसिद्ध होना।** (३) **कार्य संपादन का श्रेय मिलना।**

(२) **सुनाम, कीर्ति, यश, ख्याति।**

मुहा.—नाम कमाना (करना)—**प्रसिद्ध होना।** नाम को मरना—(१) **यश या बड़ाई पाने के लिए जी-जान से कोशिश करना।** (२) **यश या कीर्ति बनाये रखने के लिए जी-जान से कोशिश करना।** नाम चलना—**यश या कीर्ति बनी रहना।** नाम जगना—**यश या कीर्ति फैलना।** नाम जगाना—**यश या कीर्ति फैलना।** नाम डुबाना—**यश या कीर्ति मिटाना।** नाम डूबना—**यश या कीर्ति न रह जाना।** नाम पाना—**यश या कीर्ति मिलना।** नाम रह जाना—**यश या कीर्ति की चर्चा होना।** नाम से पुजना—**यश या कीर्ति के कारण ही आदर होना।** नाम से बिकना—**यश या कीर्ति के कारण ही बिकना।** नाम ही नाम रह जाना—**पिछले यश की चर्चा भर रह जाना, वास्तविक काम या मूल्य न रह जाना।**

(३) **ईश्वर या इष्टदेव का नाम।** उ.—पतित पावन जानि सरन आयौ। उदधि-ससार सुभ नाम-नौका तरन अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११६।

मुहा.—नाम आना—**ईश्वर का नाम मुख से उच्चरित होना।** नाम आयौ—**ईश्वर का नाम मुख से उच्चरित हुआ।** उ.—ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यो पाताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ—१-५। नाम जपना—(१) **भक्ति या प्रेम से ईश्वर का बार-बार नाम लेना।** (२) **जाप करना, माला फेरना।** नाम देना—**इष्टदेव का या सांप्रदायिक मंत्र देना।** नाम न लेना—**ईश्वर का स्मरण न करना।** नाम (पर)—**ईश्वर के निमित्त।** नाम पर बैठना—**ईश्वर के सहारे रहकर संतोष करना।** नाम पुकारना—**ईश्वर का नाम जोर से लेना।** नाम लेकर—**देवी-देवता, इष्टदेव या ईश्वर का स्मरण करके।** नाम लेना—(१) **देवी-देवता या ईश्वर का स्मरण करना।** (२) **जाप करना, माला फेरना।** (३) **कीर्तन या ईश्वर-चर्चा करना।** नाम से—(१) **ईश्वर की कथा-वार्ता, कीर्तन-चर्चा से।** (२) **ईश्वर का नाम लेकर।** (३) **देवी-देवता के उपयोग या सेवा के लिए।** (४) **ईश्वर के नाम के प्रभाव से।** (५) **ईश्वर के नाम का उच्चारण करते ही।** नाम लीजै—**ईश्वर का स्मरण या जाप कीजिए।** उ.—(सनकादि) कह्यौ, यह ज्ञान, यह ध्यान, सुमिरन यहै, निरखि हरि रूप मुख नाम लीजै—४-११।

नामक—वि. [सं.] **नाम धारण करनेवाला।**

नामकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नाम रखने का काम।** (२) **हिंदुओं के सोलह संस्कारों में पाँचवाँ जब बच्चे का नाम रखा जाता है।**

नाम-कीर्तन—संज्ञा पुं. [सं.] **ईश्वर का जप-भजन।**

नाम-ग्राम—संज्ञा पुं. [सं.] **नाम और पता।**

नामज़द—वि. [फा नामज़द] (१) **जिसका नाम किसी पद के लिए प्रस्तावित हुआ हो।** (२) **प्रसिद्ध।**

नामदेव—संज्ञा पुं. [सं] (१) **कृष्णोपासक वामदेव जी के नाती जिनकी कथा भक्तमाल में है। बचपन से ही कृष्ण में इनकी सच्ची भक्ति थी। एक बार बाहर जाते समय वामदेव जी अपने इस छोटे दौहित्र से भगवान श्रीकृष्ण को प्रतिदिन दूध चढ़ाने को कहते गए। नामदेव ने दूसरे दिन दूध सामने रखकर प्रतिमा से पीने की प्रार्थना की और उसके न पीने**

पर वे आत्महत्या करने को तैयार हुए। भक्त की रक्षा के लिए भगवान ने प्रकट होकर दूध पी लिया। लौटने पर नाना वामदेव यह अद्भुत व्यापार देख बड़े चकित हुए। धीरे-धीरे इनकी प्रसिद्धि चारो ओर हो गयी। (२) महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध कवि।

नामनंद—संज्ञा पुं [सं] एक संकर राग।

नाम-धराई—संज्ञा स्त्री [हिं. नाम+धरना] निंदा।

नाम-धाम—संज्ञा पु [हिं. नाम+धाम] पता-ठिकाना।

नामधारी—वि. [सं] नाम धारण करनेवाला।

नाम-निशान—संज्ञा पु [हिं. नाम+फा. निशान] चिह्न, पता-ठिकाना।

नाम बोला—संज्ञा पुं [हिं नाम+बोलना] विनयपूर्वक नाम जपने या स्मरण करनेवाला।

नाम-राशि, नामरासि, नामारासी—संज्ञा पु. [सं. नाम-राशि] एक ही नाम और विचारवाले व्यक्ति।

नामर्द—वि [फा] (१) नपुंसक। कायर।

नामर्दी—संज्ञा स्त्री [फा.] (१) नपुंसकता। (२) कायरता।

नामलेवा—संज्ञा पु. [हिं नाम+लेना] (१) नाम लेने या स्मरण करनेवाला। (२) उत्तराधिकारी।

नामवर—वि [फा.] नामी, प्रसिद्ध।

नामवरी—संज्ञा स्त्री [फा.] कीर्ति, प्रसिद्धि।

नामशेष—वि [सं] जिसका केवल नाम ही रह गया हो, नष्ट। (२) मृत, गत।

नामांकित—वि [सं] जिस पर नाम पड़ा हो।

नामा—वि [सं] नामवाला, नामधारी।

संज्ञा पु—नाई जाति का एक भक्त जिसका छप्पर भगवान ने छाया था। उ—कलि मैं नामा प्रगट ताकी छानि छवावै—१-४

नामाकूल—वि [फा. ना+अ माकूल] (१) नालायक, अयोग्य। (२) अनुचित।

नामावली—संज्ञा स्त्री [सं.] नाम-सूची।

नामिक—वि. [सं] नाम संबंधी, नाम का।

नामित—वि [सं.] झुकाया हुआ।

नामी—वि. [हिं नाम+ई (प्रत्य)] (१) नामक, नामधारी। (२) प्रसिद्ध, विख्यात। उ—(क) पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी—१-१४८। (ख) सुत कुबेर के ये दोउ नामी—३९१। (ग) एक कुबलिया त्रिभुवनगामी। ऐसे और कितिक हैं नामी—२४५९।

नामी-गिरामी—वि. [फा.] प्रसिद्ध, विख्यात।

नामुनासिब—वि. [फा.] अनुचित, अयोग्य।

नामुमकिन—वि. [फा. ना+अ. मुमकिन] असंभव।

नाम्ना—वि. [सं] नामधारी, नामवाली।

नायँ—संज्ञा पुं [हिं. नाम] नाम।

अव्य. [हिं नहीं] नहीं।

नाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नीति। (२) उपाय।

नायक—संज्ञा पुं [सं] (१) सरदार, नेता, अगुआ। उ.—(क) हरि, हौं सब पतितनि को नायक—१-१४६। (ख) मन मेरैं नट के नायक ज्यौं नितही नाच नचायौ—१-२०५। (२) अधिपति, स्वामी। उ.—तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक—१-१७७। (३) श्रेष्ठ व्यक्ति। (४) किसी ग्रंथ का सर्वप्रमुख पुरुष पात्र। (५) शृंगार का आलंबन या साधक। (६) कलावंत। (७) एक वर्णवृत्त। (८) एक राग।

नायका—संज्ञा स्त्री [सं. नायिका] कुटनी, दूती।

नायकी—संज्ञा पुं. [सं] एक राग का नाम।

नायकी कान्हड़ा—संज्ञा पु.—एक राग का नाम।

नायकी मल्लार—संज्ञा पुं. [सं नायक+मल्लार] एक राग।

वि.—दयालु दया कार्य में रहनेवाले।

नायन—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाई] नाई की स्त्री।

नायब—संज्ञा पु. [अ] (१) मुख्तार। (२) सहकारी।

नायबी—संज्ञा स्त्री. [अ नायब+ई (प्रत्य.)] (१) नायब का पद। (२) नायक का काम।

नायिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रूप गुणवती स्त्री। (२) श्रेष्ठ स्त्री। (३) ग्रंथ की सर्वप्रमुख स्त्री पात्री।

नायो, नायौ—क्रि. स [हिं. नाना] (१) झुकाया, नवाया। उ—अबल प्रह्लाद, बलि दैत्य सुखहीं भजत, दास ध्रुव चरन चित-सीस नायौ १-११९। (२) डाला, छोड़ा। उ—(क) सुत-तनया-बनिता-बिनोद-रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ। मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ—१-१५४। (ख) तामैं मिश्रित

मिश्री करि दै कपूर पुट जावन नायो—११७६। (ख) (३) **पड़ा हुआ, फेंका हुआ** । उ.—दै करि साप पिता पहँ आयौ । देख्यौ सर्प पिता-गर नायौ—१-२६०।

नारंग—संज्ञा पुं. [सं] (१) **नारंगी** । (२) **गाजर** ।

नारंगी—संज्ञा स्त्री. [स. नारग, या अ. नारज] (१) **नीबू की जाति का एक फल** । (२) **पीलापन लिये लाल रंग** ।

वि.—**पीलापन लिये लाल रंगवाला** ।

नार—संज्ञा पुं. [स. नाल] **उल्व नाल, आँवल, नाल** । उ.—(क) जसुदा नार न छेदन दैहौं—१०-१५। (ख) वेगहिं नार छेदि बालक कौ, जाति बयारि भराई—१०-१६ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. नाल, नाड] (१) **जुलाहों की ढरकी नाल** । (२) **गला, गरदन, ग्रीवा** ।

मुहा.—नार नवाना (नीची करना) (१) **सिर या गरदन झुकाना** । (२) **लज्जा, संकोच या मान से दृष्टि नीची करना** । नार नावति—**लज्जा या संकोच से दृष्टि नीचे करती है** । उ.—समुझि निज अपराध करनी नार नावति नीचि । नार नीची करि—**लाज, संकोच या मान से दृष्टि नीची करके** । उ. मान मनायो राधा प्यारी । ···· । कत ह्वै रही नार नीची करि देखत लोचन भूले ।

सज्ञा पु. [स] (१) **नर-समूह** । (२) **हाल का जन्मा बछड़ा** (३) **जल, पानी** ।

वि.—(१) **नर सबधी** । (२) **नारायण-संबंधी** ।

सज्ञा पु [हि. नाला] (१) **नाला** । उ.—इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो । जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ–१-२१० । (२) **नारा, नाला, इजारबन्द, नीवी** ।

सज्ञा स्त्री [स नारी] (१) **स्त्री** । (२) **पत्नी** । उ.-(क) धर्मपुत्र कौं जुआ खिलाए। तिन हारयौ सब भूमि-भँडार। हारी बहुरि द्रौपदी नार—१-२४६ । (ख) नाम सुनीति बड़ी तिहि दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार—४-६।

नारक—संज्ञा पु. [स] (१) **नरक** । (२) **वह प्राणी जो नरक में रहता हो** ।

नारकी—वि. [सं. नारकिन्] (१) **नरक-संबंधी** । (२) **नरक भोगनेवाला प्राणी, पापी** ।

नारकीट—संज्ञा पुं. [सं.] **वह जो आशा देकर निराश करे** ।

नारति—क्रि. स. [हि. नारना] **थाह लगाती है, भाँपती है** । उ.—राधा मन मैं यहै बिचारति ।······ मोहू ते ये चतुर कहावति ये मन ही मन मोको नारति।

नारद—संज्ञा पुं. [स.] **एक देवर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। नाना लोकों में विचरना और एक का संवाद दूसरे तक पहुँचाना, इनका कार्य बताया गया है। ये बड़े हरिभक्त माने जाते हैं। कहीं कहीं कलह कराने में भी इनका हाथ रहना कहा गया है। इसी से इधर की उधर लगाने वाले को 'नारद' कहते हैं।**

नारना—क्रि. स. [स. ज्ञान, प्रा णाण+हि ना] **थाह का पता लगाना, भाँपना, ताड़ जाना, अंदाजना** ।

नारबेवार—संज्ञा पुं. [हि. नार + सं. विवार=फैलाव] **आँवल नाल, नाल और खेड़ी आदि** ।

नारांतक—संज्ञा पुं [स.] **रावण का एक पुत्र** ।

नारा—संज्ञा पुं. [स. नाल, हि. नार] (१) **नाला, इजारबंद, नीवी** । उ—नारा सूथन जघन बाँधि नारा बँद तिरनी पर छवि भारी—पृ. ३४५ (४०)। (२) **लाल रँगा सूत, मौली** । (३) **नाला जिसमें पानी बहता है** ।

नाराइन—सज्ञा पुं. [स. नारायण] **नारायण, विष्णु** ।

नाराच—सज्ञा पुं. [स] (१) **लोहे का तीर जिसमें पाँच पंख होते हैं और जिसका चलाना कठिन होता है** । (२) **वह दुर्दिन जब अंधड़ आदि चले** । (३) **एक वर्णवृत्त** ।

नाराज—वि. [फा.] **रुष्ट, अप्रसन्न** ।

नाराजगी, नाराजी—सज्ञा स्त्री [फा] **अप्रसन्नता** ।

नारायण—सज्ञा पुं [सं] (१) **विष्णु, ईश्वर** । (२) **पूस का महीना** । (३) **एक अस्त्र का नाम** । (४) **अजामिल के पुत्र का नाम** ।

नारायणी—संज्ञा स्त्री [सं] (१) **दुर्गा** । (२) **लक्ष्मी** । (३) **गंगा** । (४) **श्रीकृष्ण की सेना का नाम** ।

नारायणीय—वि [स.] **नारायण संबंधी** ।

नारायन—संज्ञा पुं. [स. नारायण] (१) **ईश्वर, विष्णु** ।

(२) अजामिल के पुत्र के नाम। उ.—सुतहित नाम लियौ नारायन, सो बैकुंठ पठायौ—१-१०४।

नारायन-बानी—संज्ञा स्त्री. [सं नारायण+वाणी] 'नारायण' नाम का उच्चारण। उ.—अजामील द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै। सुत-सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परैं—१-८२।

नारि—संज्ञा स्त्री [हि. नारी] स्त्री, नारी।

नारिकेर, नारिकेल—संज्ञा पुं. [सं. नारिकेल] नारियल।

नारि-पर—संज्ञा स्त्री. [सं. नारी-पर] दूसरे की स्त्री। उ.—पंजा पच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि सारी—१-६०।

नारियल—संज्ञा पुं. [सं. नारिकेल] एक प्रसिद्ध पेड़।

नारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री।

संज्ञा स्त्री. [हि नार] हल बाँधने की रस्सी।

संज्ञा स्त्री [हि नाड़ी] हठयोग में ज्ञान, शक्ति और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नालियाँ। उ — इंगला पिंगला सुषमना नारी—३३०८।

नारौ—संज्ञा पु [सं नाल, हिं नाला] बरसाती या गंदा पानी बहने का प्राकृतिक मार्ग, नाला। उ.—गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहूँ न उतारौ—१-२०६।

नालंदा—संज्ञा पु. [सं] विहार का एक प्राचीन क्षेत्र जहाँ प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था।

नाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमल, कुमुद आदि फूलों की पोली, लंबी डंडी, डाँड़ी। उ—(क) ब्रह्मा यौं नारद सौं कह्यौ। जब मैं नाभि-कमल मैं रह्यौ। खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मैं कछु मरम न लयौ—२-३७। (ख) जाकैं नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग-ब्रत साध्यौ हो—१०-१२८। (२) पौधे का डंठल। (३) गेहूँ, जौ आदि की पतली डंडी। (४) नली।

संज्ञा पु.—(१) आँवल नाल, उल्व नाल।

मुहा.—नाल काटनेवाली—चड़ी-बूढ़ी। कहीं नाल गड़ना—(१) उस स्थान पर जन्मभूमि-जैसा इतना प्रेम होना कि वहाँ से जल्दी न हटना। (२) उस स्थान पर दावा या अधिकार होना।

संज्ञा पु. [अ] (१) लोहे का अर्द्धचंद्राकार टुकड़ा जो पशुओं के खुरों या टापों में जड़ा जाता है। (२) पत्थर का भारी टुकड़ा जिसमें दस्ता लगा हो। (३) रुपया जो जुआरियों से अड्डेवाला लेता है।

नालकी—संज्ञा स्त्री. [सं नाल = डंडा] खुली हुई पालकी जिसमें दूल्हा बैठकर ब्याहने जाता है।

नाला—संज्ञा पुं [सं. नाल] (१) प्राकृतिक या गंदे पानी के बहने का छोटा जलमार्ग। (२) नाड़ा, नीबी।

नालायक—वि. [फा ना+अ लायक] निकम्मा, मूर्ख।

नालिश—संज्ञा स्त्री [फा] अभियोग, फरियाद।

नाली—संज्ञा स्त्री. [हिं नाला] प्राकृतिक या गंदा जल बहने का पतला मार्ग, मोरी।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाड़ी। (२) कमल।

नालौट—वि. [हिं. न+लौटना] बात कहकर या वादा करके मुकर जानेवाला।

नाव—संज्ञा स्त्री. [सं. नौका] नौका, किश्ती। उ.—(क) लै मैया केवट, उतराई। महाराज रघुपति इत ठाढे, तैं कत नाव दुराई—९-४०। (ख) दुई तरंग दुइ नाव-पाँव धरि ते कहि कवननि मूठे—३२८०।

मुहा.—बालू में नाव चलाना—बालू में नाव चलाने जैसा व्यर्थ और मूर्खता का प्रयत्न करना! सिकता (=सिकता=बालू) हठि नाव चलावहु—मूर्खता का और निष्फल प्रयत्न कर रहे हो। उ.—सूर सिकत हठि नाव चलावहु ये सरिता है सूखी। सूखे में नाव नहीं चलती—बिना खर्च किये या उदारता दिखाये नाम नहीं होता। नाव में धूल उड़ाना—(१) सरासर झूठ बोलना। (२) झूठा अपराध लगाना।

संज्ञा पुं [हिं नाम] नाम। उ.—(क) गोपिनि नाव धरयौ नवरंगी—२६७५। (ख) यह सुख सखी निकसि तजि जइए जहाँ सुनीय नाव न—२८६६।

नावक—संज्ञा पु [फा.] (१) एक तरह का छोटा बाण या तीर। (२) मधुमक्खी का डंक।

संज्ञा पु [सं. नाविक] (१) केवट, मल्लाह। (२) मल्लाह जिसने श्रीराम को नाव पर चढ़ाकर गंगा पार किया था। उ.—पुनि गौतम घरनी जानत है, नावक सबरी जान—सारा. ६८६।

नावत—क्रि. स. [हिं. नाना] (१) **(किसी छिद्र आदि में) डालता है, छोड़ता है।** उ.– (क) माखन तनक आपनैं कर लै, तनक वदन मैं नावत—१०-१७७। (ख) जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपनैं मुख मैं नावत—४६८। (२) **झुकाते या नवाते हैं।** उ.—सूर सीस नीचे क्यों नावत अब काहे नहिं बोलत—३१२१।

नावति—क्रि. स. [हि. नाना] **देती है, डालती है, घुसाती है।** उ.—भरयौ चुरु मुख धोइ तुरत हीं पीरे पान-बिरी मुख नावति—५१४।

नावना—क्रि. स. [सं. नामन] (१) **झुकाना, नवाना।** (२) **डालना, फेंकना।** (३) **घुसाना, प्रविष्ट कराना।**

नावर, नावरि—सज्ञा स्त्री. [हिं. नाव] (१) **नाव, नौका।** (२) **नाव-क्रीड़ा जिसमें नाव को जल में चक्कर खिलाते हैं।**

नावाकिफ—वि. [फा. ना+अ वाकिफ] **अनजान।**

नाविक—सज्ञा पुं. [सं.] **केवट, माँझी, मल्लाह।**

नावैं—क्रि. स. [हिं. नाना] **डालते हैं, घुसाते हैं, प्रविष्ट कराते हैं।** उ.—जल-पुट आनि धरनि पर राख्यौ, गहि आन्यौ वह चंद दिखावै। सूरदास प्रभु हँसि मुसुक्याने, बारम्बार दोऊ कर नावैं—१०-१६१।

नावै—क्रि. स. [हिं नाना] (१) **नवाता है, झुकाता है, नम्रतापूर्वक वंदना करता है।** उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि-सुनि बिलखावै; कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै १-४। (२) **डालता है, छोड़ता है।** उ.—महामूढ सो मूल तजि, साखा जल नावै—२-६।

नाश—संज्ञा पुं. [स.] **ध्वंस, बरबादी।**

नाशक—वि. [सं.] (१) **नाश करनेवाला।** (२) **मारने वाला।** (३) **दूर कर देनेवाला।**

नाशकारी—वि. [स. नाशकारिन्] **नाश करनेवाला।**

नाशन—वि. [स.] **नाश करनेवाला।**

संज्ञा पुं.– **नाश करने की क्रिया या भाव।**

नाशना—क्रि. स. [सं. नाश] **नाश करना।**

नाशपाती—संज्ञा स्त्री [तु] **एक प्रसिद्ध फल।**

नाशवान्– वि. [स.] **जो नष्ट हो जाय, नश्वर।**

नाशित—वि. [सं.] **जिसका नाश किया गया हो।**

नाशी—वि. [सं.] (१) **नाश करनेवाला, नाशक।** (२) **नष्ट होनेवाला, नश्वर।**

क्रि. स. [हि. नाशना] **नष्ट हो गयी, दूर हो गयी।** उ.– ता दिन ते नींदौ पुनि नाशी चौंकि परति अधिकारे—३०४५।

नाश्ता—संज्ञा पुं. [फा.] **कलेवा, जलपान।**

नाश्य—वि [स.] **जो नाश के योग्य हो।**

नास—संज्ञा स्त्री. [स. नासा] **सुँघनी।**

सज्ञा पुं. [स. नाश] **नाश।** उ —जिनके दरस-परस करुना ते दुख-दरिद्र के नास—सारा ८०८।

नासत—क्रि. स. [हिं नासना] **नाश करते हैं।** उ.—भगत-बिरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्ब-बल नासत—१-३१।

नासना—क्रि. स. [हिं. नाश] (१) **नष्ट करना, नाश करना।** (२) **मार डालना, वध करना।**

नासमझ—वि. [फा. ना+समझ] **मूर्ख, बुद्धिहीन।**

नासमझी—सज्ञा स्त्री. [हि. नासमझ] **मर्खता।**

नासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **नाक, नासिका।** उ.—जलचर-जा-सुत-सुत सम नासा धरे अनासा हार—सा.३५। (२) **नाक का छेद, नथना।**

नासाग्र—सज्ञा पुं. [सं.] **नाक की नोक।**

नासापुट—सज्ञा पुं. [स.] **नाक का परदा।** उ. हम पर रिस करि करि अवलोकत नासापुट फरकावत।

नासावेध—सज्ञा पु. [स] **नथुने का छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है।**

नासि—क्रि. स. [हिं. नासना] **नष्ट करके, मारकर।** उ.—कौरौ-दल-नासि-नासि कीन्हौं जन-भायौ—१-२३।

नासिका—सज्ञा स्त्री. [स.] **नाक, नासा।**

वि.—**श्रेष्ठ, मुख्य, प्रधान।**

नासी—क्रि. स. [हिं. नासना] **नाश कर दी, बरबाद कर दी।** उ. इहाँ आइ सब नासी—१-१६२।

नासीर—सज्ञा पुं. [स.] **सेनानायक के आगे चलनेवाला सैन्यदल।**

नासूर—संज्ञा पुं. [अ.] **एक भयानक रोग।**

नासै—क्रि. स [हिं नासना] **नाश करता है, दूर करता है।** उ.—(क) उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम

कौं नासै—१-६६। (ख) कोटि ब्रह्मांड छनहिं में नासै, छनहीं में उपजावै—४८२।

नास्तिक—संज्ञा पु. [सं.] **ईश्वर को न माननेवाला।**

नास्तिकता—संज्ञा पु. [सं.] **ईश्वर को न मानने का भाव, नास्तिक होने की बुद्धि।**

नास्तिवाद—संज्ञा पु. [सं.] **नास्तिकों का तर्क।**

नास्य—वि. [सं.] **नासिका का, नासिका-संबंधी।**

नास्यौ—क्रि. स. [हिं. नासना] (१) **नष्ट कर दिया।** उ.—जिहिं कुल राज द्वारिका कीन्हौ, सो कुल साप तैं नास्यौ—१-१५। (२) **फेंका, बरबाद किया।** उ.—मेरैं भैया कितनौ गोरस नास्यौ—३७५।

नाह—क्रि. अ. [हिं. न+आह=है] **नहीं है, न है।** उ.—आज्ञा कह्यौ, सुनो नर-नाह। तुम सौं नृप नग मैं अब नाह—६-४।

संज्ञा पु. [सं. नाथ] (१) **नाथ, स्वामी, मालिक।** (२) **पति।** उ.—जाहु नाह, तुम पुरी द्वारिका कृष्ण-चन्द्र के पास—सारा ८०८।

संज्ञा पु. [सं. नाभ] **पहिए का छेद।**

संज्ञा पु. [सं.] (१) **बंधन।** (२) **फंदा।**

नाहक—क्रि. वि. [फा. ना+अ. हक] **वृथा, व्यर्थ, निष्प्रयोजन।** उ.—(क) सूरदास भगवत-भजन बिनु, नाहक जनम गँवायौ—१-७६। (ख) ऐसौ को अपने ठाकुर कौं इहि बिधि महत घटावै। नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी—१-१६२।

नाहट—वि. [देश.] **बुरा, नटखट।**

नाहनूह—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाहीं] **इनकार।**

नाहर, नाहरू—संज्ञा पु. [सं. नरहरि] (१) **सिंह, शेर।** उ.—तुमहिं दूर जानत नर नाहर—१० उ.-१२६। (२) **बाघ।**

नाहिं—अव्य. [हिं. नहीं] **निषेध या अस्वीकृति सूचक अव्यय, न, नहीं।** उ.—ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ—१-६७।

नाहिन, नाहिनैं, नाहिनै—वाक्य [हिं. नाहीं] **नहीं है, नहीं।** उ.—(क) नाहिनैं जगाइ सकति सुनि सुबात सजनी—८१६। (ख) नाहिन नैन लगे निसि इहि डर—३०७३। (ग) नाहिन तेरौ अति हठ नीकौ—३३५६। (घ) नाहिनैं अब ब्रज नंदकुमार—४००४।

नाहीं—अव्य. [सं. नहि, हिं. नहीं] (१) **निषेध या अस्वीकृति-सूचक अव्यय।** उ.—हाँ नाहीं नहिं कहत हौ मेरी सौं काहे—२६३८। (२) **उपस्थित न होना, नहीं है।** उ.—हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं—१-११।

नाहुष—संज्ञा पु. [सं.] **नहुष का पुत्र ययाति।**

निंद—संज्ञा स्त्री. [सं. निद्रा] **निद्रा, नींद।** उ.—(क) तुरत जाइ पौढे दोउ भैया, सोवत आई निंद—१०-२३०। (ख) पौढे जाय दोउ सैया पर सोवत आई निंद—सारा० ५०७।

वि. [सं. निंद्य] **निंदा योग्य, निंदनीय।**

निंदक—संज्ञा पु. [सं. निंदक] **निंदा करनेवाला।** उ.—साधु-निंदक, स्वाद-लंपट, कपटी, गुरु-द्रोही। जेते अपराध जगत, लागत सब मोहीं—१-१२४।

निंदत—क्रि. स. [हिं. निंदना] **निंदा करता है, बुरा कहते हैं।** उ.—(क) निंदत मूढ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै—२-१३। (ख) हरि सबके मन यह उपजाई। सुरपति निंदत, गिरिहिं बड़ाई।

निंदति—क्रि. स. [हिं. निंदना] **निंदा करती है, बुरा कहती है।** उ.—ललना लै लै उछंग, अधिक लोभ लागैं। निरखतिं निंदति निमेष करत ओट आगैं—१०-६०।

निंदन—संज्ञा पु. [सं.] **निंदा करने का काम।**

निंदना—क्रि. स. [सं. निंदन] **निंदा करना, बुरा कहना, बदनाम करना।**

निंदनीय—वि. [सं.] **बुरा, निंदा-योग्य।**

निंदरना—क्रि. स. [सं. निंदना] **निंदा करना, निंदना।**

निंदरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. नींद] **निद्रा, नींद।** उ.—(क) मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै—१०-४३। (ख) सूर स्याम कछु कहत-कहत ही बस कर लीन्हे आइ निंदरिया—१०-२४६।

निंदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **दोष-कथन, अपवाद।** उ.—निंदा जग उपहास करत, मग बंदीगन जस गावत—१-१४१। (२) **बदनामी, कुख्याति।**

निंदासा—वि [हिं. नींद] जिसे नींद आ रही हो, जो उनींदा हो।

निंदास्तुति—संज्ञा स्त्री. [स] निंदा के बहाने स्तुति।

निंदि क्रि. स. [हि. निंदना] निंदा करके। उ.—(क) मोकौं निंदि परम्रतहि बंदत—१०४२। (ख) जाकौं निंदि वंदियै सो पुनि वह ताको निंदरै - ११५६।

निंदित—वि. [सं.] जिसे बुरा कहा गया हो।

निंदिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. नींद] नींद, ऊंघ।

निंद्य—वि. [सं.] (१) बुरा। (२) निंदनीय।

संज्ञा स्त्री. [हिं निंदा] बदनामी, बुराई। उ.—कहा भए जो आप स्वारथी नैननि अपनी निंद्य कराई—पृ. ३३१ (१)।

निंब—संज्ञा स्त्री [सं.] नीम का पेड़।

निंबरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. नीम+बारी] बारी जिसमें सब या अधिकांश पेड़ नीम के ही हों।

निंबादित्य, निंबार्क—संज्ञा पुं. [स.] निंबार्क सम्प्रदाय के आदि आचार्य जिनकी गद्दी वृन्दावन के पास 'ध्रुव' पहाड़ी पर है।

निंबू—संज्ञा पु. [स.] नीबू।

निः—अव्य. [सं. निस्] (१) नहीं। (२) रहित।

निःक्षोभ—वि. [सं.] जिसको क्षोभ न हो।

निःशंक—वि [स.] निर्भय, निडर।

निःशब्द—वि. [स.] शब्दरहित।

निःशुल्क—वि. [सं.] बिना शुल्क का।

निःशेष—वि. [स.] (१) सब। (२) समाप्त।

निःशोक—वि. [हि. निः+शोक] शोकरहित, अशोक। उ.—ताको दर्शन देखि भयौ व्रज सब बातन निःशोक—सारा. १३।

निःश्रेयस—संज्ञा स्त्री [स.] (१) मुक्ति, मोक्ष। (२) मंगल, कल्याण। (३) भक्ति। (४) विज्ञान।

निःश्वास—संज्ञा पु. [स] साँस।

निःसंकल्प—वि. [सं.] इच्छा-रहित।

निःसंकोच—क्रि. वि. [स] बिना संकोच के, बेधड़क।

निःसंग—वि. [स.] (१) निर्लिप्त। (२) जो लगाव या मेल न रखता हो।

निःसंतान—वि. [स.] जिसके संतान न हो।

निःसंदेह—वि. [स.] जिसे या जिसमें संदेह न हो।

निःसंशय—वि [स.] शंका या संशय-रहित।

निःसत्व—वि [सं.] (१) जिसकी कुछ असलियत न हो। (२) तत्व या सार-रहित।

निःसार—वि. [स.] (१) जिसमें सार या तत्व न हो। (२) जिसकी कुछ असलियत न हो। (३) महत्वहीन।

निःसीम—वि. [स.] जिसकी सीमा न हो, असीम।

निःसृत—वि. [स] निकला हुआ।

निस्पंद—वि. [स.] स्पंदनरहित, निश्चल।

निःस्पृह—वि. [स] (१) इच्छारहित। (२) निर्लोभ।

निःस्व—वि. [स.] धनहीन, दरिद्र।

निःस्वार्थ—वि [स.] (१) जो लाभ, सुख या सुविधा का ध्यान न रखता हो। (२) जो (कार्य-व्यापार) लाभ, सुख या सुविधा के लिए न किया गया हो।

नि—अव्य० [स] एक उपसर्ग जो अनेक अर्थों का द्योतक है; यथा—(१) समूह। (२) अत्यन्त। (३) नित्य। (४) अंतर्भाव। (५) समीप।

संज्ञा पु—निषाद स्वर का संकेत।

निअर—अव्य. [सं निकट, प्रा. निअड] समीप, पास।

निअराना—क्रि. स. [हि. निअर] समीप पहुँचना।

क्रि अ.—निकट या पास आना।

निअरानी—क्रि स स्त्री. [हिं निअराना] निकट आ गयी। उ.—ताकी मृत्यु आइ निअरानी—१०३०-४४।

निअरे—अव्य. [हिं निअर] निकट, समीप। उ.—वै तो भूपन परखन लागी तब लगि निअरे आए—३४४१।

निआउ—संज्ञा पुं. [स. न्याय] नीति, न्याय।

निआर्थी—वि. [स निः+अर्थी] निर्धन, गरीब।

संज्ञा स्त्री.—निर्धनता, गरीबी।

निआन—संज्ञा पु. [स. निदान] अंत, परिणाम।

अव्य.—अंत में।

निआमत—संज्ञा स्त्री. [अ.] अलभ्य पदार्थ।

निआरा—वि. [हि न्यारा] अद्भुत, न्यारा।

निकंटक—वि. [सं. निष्कंटक] कंटकरहित।

निकंदन—संज्ञा पु. [सं. नि+कंदन=नाश, वध] नाश करनेवाले। उ.—(क) सूरदास प्रभु कंस निकंदन

देवनि करन सनाथ २५३४। (ख) सूरदास प्रभु दुष्ट-निकंदन धरनी भार उतारनकारी—२५८९।

निकंदना—क्रि. स. [हिं निकदन] **नष्ट करना।**

निकंदा—वि [स. नि+कदन=नाश, वध] **नाश करने वाले, वध करनेवाले।** उ—सूरदास बलि गई जसोदा, उपज्यौ कस-निकदा—१०-१९२।

निकट—क्रि. वि [सं] **समीप, पास।** उ.-बसीबट के निकट आजु हो नेक स्याम मुख हेरो–सा० ४२।

वि—(१) **पास का।** (२) **जिसमें अंतर न हो।**

निकटता—सज्ञा स्त्री [स.] **समीपता, सामीप्य।**

निकटपना—सज्ञा पु [स निकट+हिं पना] **निकटता, सामीप्य।**

निकटवर्ती—वि [हिं निकट] **पासवाला।**

निकटस्थ—वि [स] **निकट या पास का।**

निकम्मा—वि [स. निष्कर्म, प्रा निकम्म,] **जो कुछ न करे-धरे, जो कुछ करने-धरने योग्य न हो।** उ.—बड़ौ कृतघ्नी, और निकम्मा, बेधन, रॉकौ-फीकौ-१-१८६।

निकर—सज्ञा पु [स.] (१) **समूह।** उ.—भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोर—सा०उ० १६। (२) **राशि।**

निकरई—क्रि. अ. [हिं. निकारना] **निकलती है।** उ.-किरनि सकति भुज भरि हनै उर तें न निकरई—२८९१।

निकरना—क्रि. अ. [हि. निकलना] **बाहर आना।**

निकरि—क्रि अ. [हि निकलना] **निकलकर।** उ—मानौ निकरि तरनि रश्रनि तैं उपजी है अति आगि—९-१५८।

निकरी—क्रि अ. [हिं. निकरना] **निकली।**

प्र०—जात निकरी-**निकले जाते हैं।** उ.—सूरदास प्रभु वेगि मिलहु किनि नातरु प्रान जात निकरी—३१८८।

निकरै—क्रि. अ [हिं. निकलना] (१) **निकलता है।** (२) **जाकर बसता है।** उ—अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ वन निकरै—१-२६४।

निकर्मा—वि. [स. निष्कर्मा] **जो काम न करे, आलसी।**

निकलंक—वि. [स. निष्कलक] **दोषरहित, निर्दोष।** उ—आनन रही ललित पय छींटैं, छाजति छवि तृन तोरे। मनौ निकसे निकलंक कलानिधि दुग्धसिंधु मधि थोरे—७३२।

निकलंकी—सज्ञा पुं [स. निष्कलक] **विष्णु का दसवाँ अवतार जो कलि के अंत में होगा, कल्कि अवतार।**

वि.—**कलकरहित, निर्दोष।**

निकलना—क्रि. अ. [हिं निकालना] (१) **बाहर आना।**

मुहा—निकल जाना-(१) **बहुत आगे बढ़ जाना।** (२) **नष्ट हो जाना, ले लिया जाना।** (३) **कम हो जाना।** (४) **न पकड़ा जाना।** (स्त्री का) निकल जाना—**स्त्री का घर छोडकर किसी पुरुष के साथ चले जाना।**

(२) **व्याप्त या लगी हुई चीज का अलग होना।** (३) **आर-पार होना।** (४) **कक्षा आदि में उत्तीर्ण होना।** (५) **जाना, गुजरना।** (६) **उदय होना।** (७) **उत्पन्न होना।** (८) **दिखायी पड़ना।** (९) **किसी ओर को बढ़ा हुआ होना।** (१०) **ठहराया जाना, निश्चित होना।** (११) **प्रकट या स्पष्ट होना।** (१२) **अलग होना।** (१३) **आरंभ होना।** (१४) **प्राप्त या सिद्ध होना।** (१५) **प्रश्न या समस्या का हल होना।** (१६) **फैलाव होना।** (१७) **प्रचलित होना।** (१८) **प्रकाशित होना।** (१९) **छूट जाना।** (२०) **नयी बात ज्ञात होना।** (२१) **प्रमाणित होना।** (२२) **सबंध न रखना।** (२३) **अपने को बचा जाना।** (२४) **मुकरना, नटना।** (२५) **शरीर से उत्पन्न होना।** (२६) **बिक जाना।** (२७) **हिसाब बाकी होना।** (२८) **टूट या फटकर अलग होना।** (२९) **दूर होना, मिट जाना।** (३०, **बीतना, गुजरना।**

निकलवाना, निकलाना—क्रि स [हिं निकालना का प्रे] **निकालने का काम दूसरे से कराना।**

निकषा—सज्ञा पु [स] (१) **कसौटी।** (२) **सान चढ़ाने का पत्थर।**

निकषण सज्ञा पु. [स.] **सान या कसौटी पर चढ़ाना।**

निकषा—सज्ञा स्त्री [स.] **सुमालि की पुत्री और विश्रवा की पत्नी जिसके गर्भ से रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण जन्मे थे।**

निकसत—क्रि. अ. [हिं. निकलना] (१) **निकलते ही, निकलते हैं** । उ.—(क) जब लगि डोलत, बोलत, चितवत, धन-दारा हैं तेरे । निकसत हंस, प्रेत कहि तजिहैं, कोउ न आवै नेरे—१-३१६ । (ख) सूरदास जम कंठ गहे तैं, निकसत प्रान दुखारे—१-३३४ । (२) **उधार निकलते है, उधार बाकी है** । उ.—लेखौ करत लाख ही निकसत को गनि सकत अपार—१-१९६ ।

निकसन—संज्ञा स्त्री [हिं निकलना, निकसना] **निकलने, छुटकारा पाने, बचने** । उ.—अब भ्रम-भँवर परयौ ब्रजनायक, निकसन की सब विधि की—१-२१३ ।

क्रि. अ.— **निकलने** । उ.—तलफि तलफि जिय निकसन लागे पापी पीर न जानी—३०५६ ।

निकसना—क्रि. अ. [हिं. निकलना] **निकलना** ।

निकसवी—क्रि अ [हिं. निकलना] **निकलूँ** । उ.—निकसबी हम कौन मग हो कहै वारी वैस - सा० १७ ।

निकसि—क्रि. अ. [हिं. निकसना] । (१) **प्रकट होकर, अवतरित होकर** । उ.— बहुत सासना दई प्रहलादहिं, ताहि निसंक कियौ । निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ—१-३८ । (२) **निकलकर, बाहर आकर** । उ.—रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, सुभट सामुहैं आए । ज्यौं कंदर तैं निकसि सिंह, झुकि, गज-जूथनि पर धाए—१-२७४ ।

निकसिहैं— क्रि. अ. [हिं. निकलना, निकसना] **निकलेंगे** ।

प्र.—आइ निकसिहै—**आ निकलेंगे, आ जायँगे, उपस्थित हो जायँगे** । उ.— अबहिं निबछरौ समय, सुचित ह्वै, हम तौ निधरक कीजै । औरौ आइ निकसिहै तातैं, आगैं है सो लीजै—१-१९१ ।

निकसे—क्रि. अ [हिं निकलना] (१) **प्रकट हुए, आविर्भूत हुए** । उ.—निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ—१-१०४ । (२) **निकले, बाहर आए** । उ.—आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल । ... । भुज गहि लियौ कान्ह इक बालक, निकसे ब्रज की खोरि—१०-२७० । (३) **गये, प्रस्थान किया** । उ.—बारक इन बीथिन ह्वै निकसे मैं दूरि झरोखनि झाँक्यो—२५४६ ।

निकसैं—क्रि. अ. [हिं. निकलना] **जन्म लेने पर, उत्पन्न होने पर** । उ.—जैसैं जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै । तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै—१-११७ ।

निकस्यौ—क्रि. अ. [हिं. निकलना, निकसना] **निकला, बाहर आया** । उ —रथ तैं उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि । मानौ सिंह सैल तैं निकस्यौ, महा मत्त गज जानि—१-२७९ ।

निकाई—संज्ञा स्त्री [हिं. नीक+आई (प्रत्य.)] (१) **सुन्दरता, सौंदर्य** । उ —(क) सुन्दर स्याम निकाई कौ सुख, नैना ही पै जानैं – ७३० । (ख) अरुन अधर नासिका निकाई बदत परस्पर होड़—१३५७ । (२) **भलाई, अच्छापन** ।

निकाज—वि [हिं. नि+काज] **निकम्मा, बेकाम, अकर्मण्य** । उ.—ताहू सकुच सरन आए की होत जु निपट निकाज—१-१८१ ।

निकाम— क्रि. वि [हिं. नि+काम] **व्यर्थ, निष्प्रयोजन** ।

वि.—(१) **निकम्मा** । (२) **बुरा, खराब** ।

वि. [सं.] (१) **अभिलषित** । (२) **पर्याप्त** ।

निकाय— संज्ञा पु. [सं.] (१) **समूह** । (२) **राशि** । (३) **निलय, वासस्थान** । (४) **ईश्वर** ।

निकार संज्ञा पु [सं.] **हार** । (२) **अपमान** । (३) **अपमान, मानहानि** । (४) **तिरस्कार** ।

संज्ञा पुं [हिं निकालना] (१) **निकालने का काम** । (२) **निकलने का द्वार, निकास** ।

क्रि. स.—**निकालकर, निष्कासित करके** ।

निकारण—संज्ञा पुं. [सं] **वध, मारण** ।

निकारना—क्रि. स. [हिं. निकालना] **निकालना** ।

निकारि—क्रि स. [सं. निष्कासन, हिं. निकालना, निकासना, निकारना] **निकाल, निकालकर** । उ.—याकौं ह्याँ तैं देहु निकारि । बहुरि न आवै मेरे द्वारि—१-२८४ ।

निकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. निकालना] **निकालने की क्रिया, निकालना, निष्कासन** । उ.—अपने सुत कौं राज दिवायौ, हमकौं देस निकारी—९-४४ ।

निकारौ—क्रि. स. [हिं. निकालना] **निकालो, भीतर से**

बाहर लाग्रो। असुर सौं हेत करि, करौ सागर मथन तहाँ तैं अमृत कौं पुनि निकारौ—८-८।

निकारयौ—क्रि स [हिं निकालना, निकासना] निकाला, निकाल दिया। उ —काल-अवधि पूरन भई जा दिन, तनहूँ त्यागि सिधारयौ। प्रेत-प्रेत तेरौ नाम परयौ, जब जेंवरि बाँधि निकारयौ—१-३३६।

निकालना—क्रि स [स निष्कासन, हि निकासना] (१) भीतर से बाहर लाना। (२) व्याप्त या ओतप्रोत वस्तु को अलग करना। (३) एक ओर से दूसरी ओर ले जाना। (४) ले जाना। (५) किसी ओर को बढ़ा देना (६) निश्चित करना, ठहराना। (७) उपस्थित करना। (८) स्पष्ट या प्रकट करना। (९) चलाना, आरंभ करना। (१०) सबके सामने लाना। (११) घटना, कम करना। (१२) जुड़ा या लगा न रहने देना। (१३) समूह से अलग करना। (१४) काम से अलग करना। (१५) पास न रखना। (१६) बेंचना, खपाना। (१७) सिद्ध करना। (१८) निर्वाह करना। (१९) प्रश्न या समस्या का हल करना। (२०) फैलाना। (२१) प्रचलित करना। (२२) नयी बात प्रकट करना। (२३) उद्धार करना। (२४) प्रकाशित करना। (२५) रकम जिम्मे ठहराना। (२६) बरामद करना। (२७) दूर करना (२८) दूसरे से अपनी वस्तु ले लेना। (२९) सुई से काढ़ना। (३०) सिखाना, शिक्षा देना।

निकाला—संज्ञा पुं [हिं निकालना] (१) निकालने का काम। (२) निकाले जाने का दंड, निष्कासन, निर्वासन।

निकाश—संज्ञा पु. [सं.] (१) आकृति। (२) समानता।

निकास—क्रि. स. [हिं निकासना] निकालना।

प्र.—देहु निकास—निकाल दो, बाहर कर दो, हटा दो। उ.—भृगु कह्यो, करत जज्ञ ये नास। इनकौं ह्याँ तैं देहु निकास—४-५।

संज्ञा पु —(१) निकालने की क्रिया या भाव। (२) वह स्थान या छिद्र जहाँ से कुछ निकले। (३) द्वार, दरवाजा। (४) खुला स्थान, मैदान। उ.—(क) खेलत बनै घोष निकास—१०-२४४। (ख) खेलन चले कुँवर कन्हाई। कहत घोष-निकास जैये, तहाँ खेलैं धाइ—५३२। (५) उद्गम, मूल स्थान। (६) वंश का मूल। (७) बचाव का मार्ग या उपाय। (८) निर्वाह का ढंग या सिलसिला। (९) आय का मार्ग या साधन। (१०) आय, आमदनी।

निकासत—क्रि. स [हिं निकासना] निकालता है।

निकासना—क्रि. स. [हिं. निकालना] निकालना।

निकासी—संज्ञा स्त्री [हि निकास] (१) प्रस्थान, रवानगी। (२) लाभ का धन। (३) आय। (४) बिक्री, खपत।

निकाह—संज्ञा पु. [अ] विवाह (मुसलमान)।

निकियाना—क्रि स. [देश.] धज्जियाँ अलग करना।

निकिष्ट—वि [स. निकृष्ट] बुरा, नीच, अधम।

निकुंज—संज्ञा पुं [स.] लतागृह, लता-मंडप। उ.—सघन निकुंज सुरत संगम मिलि मोहन कंठ लगायौ—सारा. ७१८।

निकुंजविहारी—संज्ञा पु [स. निकुंजविहारी] शीतल निकुंजों में विहार करनेवाले, श्रीकृष्ण। उ.—तुम अविगत, अनाथ के स्वामी, दीन दयाल, निकुंज विहारी—१—१६०।

निकुंभ—संज्ञा पु [सं] (१) कुंभकर्ण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने मारा था। (२) एक राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। (३) महादेव का एक गण।

निकुंभिला—संज्ञा स्त्री [सं] मेघनाद की आराध्या देवी।

निकृत—वि [स.] (१) बहिष्कृत, निष्कासित। (२) तिरस्कृत। (३) नीच। (४) वंचित।

निकृति—वि [स] (१) निष्कासन। (२) तिरस्कार। (३) नीचता। (४) वचकता।

निकृती—वि. [स. निकृतिन्] नीच, दुष्ट।

निकृष्ट—वि. [स.] बुरा, नीच, अधम।

निकृष्टता—संज्ञा स्त्री. [स] बुराई, नीचता।

निकेत, निकेतन—संज्ञा पु [स.] घर, मकान, स्थान। उ.—(क) गुरु-ब्राह्मन अरु संत-सुजन के, जात न कबहुँ निकेत—२-१५। (ख) बहुरौ ब्रह्मा सुरनि समेत। नरहरि जू के जाइ निकेत—७-२।

निकोसना—क्रि. स [स. निस्+कोश] (१) दाँत निकालना। (२) दाँत पीसना, किटकिटाना।

निकौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. निराना] (१) निराने का काम। (२) निराने की मजदूरी।
निक्त—वि. [स न्यक्त=नत] छोटा रूप में।
निक्षिप्त—वि. [स.] (१) फेंका हुआ। (२) डाला या छोड़ा हुआ। (२) धरोहर रखा हुआ।
निक्षेप—संज्ञा पुं. [स.] (१) फेंकने डालने की क्रिया या भाव। (२) चलाने की क्रिया या भाव। (३) पोंछने की क्रिया या भाव। (४) धरोहर, अमानत।
निक्षेपण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फेंकना, डालना। (२) छोड़ना, चलाना। (३) त्यागना।
निक्षेपी—वि. [सं. निक्षेपिन्] (१) फेंकने, छोड़ने या त्यागनेवाला। (२) धरोहर रखनेवाला।
निक्षेप्य—वि. [स] फेंकने, छोड़ने या त्यागने योग्य।
निखंग—संज्ञा पुं. [स. निषग] तरकश, तूणीर।
निखंगी—वि [हिं निषंगी] तीर चलानेवाला।
निखंड—वि [सं. निस्+खड] ठीक, बीचोबीच।
निखट्टर-वि [हिं. नि+कट्टर] (१) कड़े या कठोर जी का। (२) निर्दय, निष्ठुर।
निखट्टू—वि. [हिं. नि+खटना] निकम्मा, आलसी।
निखनन—संज्ञा पु. [स.] (१) खोदना। (२) गाड़ना।
निखरना—क्रि. अ. [सं निक्षरण] (१) निर्मल, स्वच्छ या झकाझक होना। (२) रंगत खुलना।
निखरवाना—क्रि स. [हि निखारना] स्वच्छ कराना।
निखरी—संज्ञा स्त्री. [हि निखरना] पक्की रसोई।
वि—साफ, स्वच्छ, झकाझक।
क्रि. अ.—(१) झकाझक हुई। (२) रंगत खुली।
निखर्व—वि [सं] दस हजार करोड़।
निखवख—वि [स. न्यक्ष=सारा] सब, सारा।
निखाद—संज्ञा पु. [हिं निषाद] एक अनार्य जाति।
निखार—संज्ञा पु.[हिं निखरना](१)निर्मलपन, स्वच्छता। (२) सजाव, शृंगार, रंगत।
निखारना—क्रि स. [हि. निखरना] (१) स्वच्छ करना। (२) पावन या पवित्र करना।
निखालिस—वि. [हि. नि+अ. खालिस] विशुद्ध।
निखिल—वि. [स.] सब, सारा, संपूर्ण।
निखेध—संज्ञा पुं. [हिं. निषेध] वर्जन, मनाही।
निखेधना—क्रि. स. [हि. निषेध] मना करना।
निखोट—वि. [हिं. नि+खोट] (१) निर्दोष। (२) जिसमें झगड़ा-टंटा न हो, साफ।
क्रि. वि—बिना संकोच के, बेधड़क।
निखोटना—क्रि. स. [हि. नख] नोचना-खसोटना।
निखोटै—क्रि. स. [हि निखोटना] नोचता खसोटता है, खींचता है। उ.—बरजत बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहि अकुलाने। कर धरत धरनि पर लोटै। माता कौ चीर निखोटै—१०-१८३।
निखोड़ा—वि. [देश.] कठोर, निर्दय।
निखोरना—क्रि. स. [हिं. नि+खोदना] नोचना।
निगंध—वि. [सं. निर्गंध] गंधहीन।
निगड़—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बेड़ी। उ.—(क) छोरे निगड़ सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघरयौ—१०-८। (ख) निगड़ तोरि मिलि मात-पिता को हरष अनल करि दुखहि दहो—२६४४। (२) जजीर।
निगति—संज्ञा पुं. [हिं. नि+गति] पापी जिसे अच्छी गति न मिल सके।
संज्ञा स्त्री.—(१) दुर्दशा, कुदशा (२) बुरी गति।
निगद—संज्ञा पुं. [सं.] भाषण, कथन।
निगदित—वि. [स] कहा हुआ, कथित।
निगम—संज्ञा पुं. [स] (१) मार्ग (२) वेद। उ.—सूर पूरन ब्रह्म निगम नाही गम्य तिनहिं अक्रूर मन यह बिचारै—२५५१। (३) हाट-बाजार। (४) मेला। (५) व्यापार। (६) कायस्थो का एक भेद।
निगम-ऐन—संज्ञा पु. [स निगम+अयन] वेद का बताया हुआ धर्म-पथ, वेद वर्णित धर्म-मार्ग, निर्वाण। उ.—दीन जन क्यौं करि आवै सरन ?...... । परम अनाथ, बिवेक-नैन बिनु, निगम-ऐन क्यौं पावै—१-४८।
निगम-द्रुम—संज्ञा पु. [स. निगम+द्रुम] वेद रूपी वृक्ष। उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।........। छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ—१-५६।
निगमन—संज्ञा पु [स] सिद्ध की जानेवाली बात को सिद्ध करके परिणामस्वरूप उसको दोहराना।
निगमनि—संज्ञा पु [स. निगम+नि (प्रत्य.)] वेदो में, धर्म-शास्त्रों में। उ.—तातैं बिपति-उधारन गायौ।

स्रवननि साखि सुनी भक्तनि मुख, निगमनि भेद बतायौ—१-१८८ ।

निगमनिवासी—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु, नारायण ।

निगमागम—संज्ञा पुं. [सं.] वेद-शास्त्र ।

निगर—संज्ञा पुं. [सं.] भोजन ।

वि. [सं. निकर] सब, सारा ।

संज्ञा पुं.—(१) समूह । (२) राशि । (३) निधि ।

निगरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भक्षण । (२) गला ।

निगराँ—संज्ञा पुं. [फा.] (१) रक्षक । (२) निरीक्षक ।

निगरा—वि. [हिं. नि+सं. गरण] विशुद्ध ।

निगराना—क्रि. स. [सं. नय+करण] (१) निर्णय करना । (२) अलग करना । (३) स्पष्ट करना ।

निगरानी—संज्ञा स्त्री. [फा.] देख-रेख, निरीक्षण ।

निगरू—वि. [सं. नि+गुरु] जो भारी न हो ।

निगलना—क्रि. स. [सं. निगरण] (१) लीलना, गटकना । (२) खाना । (३) दूसरे का धन मारकर पचा जाना ।

निगाली—संज्ञा स्त्री. [देश.] हुक्के की नली ।

निगाह—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) दृष्टि, नजर । (२) देखने की रीति या क्रिया, चितवन । (३) कृपादृष्टि । (४) ध्यान, विचार । (५) परख, पहचान ।

निगिम—वि. [सं. निगुह्य] अत्यंत प्रिय ।

निगुंफ—संज्ञा पुं. [सं.] गुच्छा, समूह ।

निगुण, निगुन—वि. [सं. निर्गुण] (१) जो सत्व, रज और तम, तीनों गुणों से परे हो । (२) जिसमें कोई गुण न हो ।

निगुनी—वि. [हिं. नि+गुनी] (१) जो गुणी न हो, गुणहीन । (२) जो सत, रज, तम से परे हो ।

निगुरा—वि. [हिं. नि+गुरु] जिसने गुरु-मंत्र न लिया हो ।

निगूढ़—वि. [सं.] अत्यंत गुप्त, अगम ।

निगूढ़ार्थ—वि. [सं.] जिसका अर्थ छिपा हो ।

निगूहन—संज्ञा पुं. [सं.] गोपन, छिपाव ।

निगृहीत—वि. [सं.] (१) जो पकड़ा या घेरा गया हो । (२) जिस पर आक्रमण हुआ हो । (३) पीड़ित, दुखी । (४) दंडित ।

निगोड़ा—वि. [हिं. निगुंण] (१) जिसके ऊपर कोई न हो । (२) जिसके आगे-पीछे कोई न हो । (३) दुष्ट, नीच । गाली (स्त्री.) उ.—मूढ़, निंद, निगोड़ा, भौंड़ा, कायर, काम बनावै—१-१८६ ।

निग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोक, रुकावट । (२) दमन । (३) चिकित्सा, (४) दंड । (५) पीड़ा देने की क्रिया या भाव । (६) बंधन । (७) डाँट-फटकार ।

निग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोकने-थामने का काम । (२) दंड देने या सताने का काम ।

निग्रहना—क्रि. स. [सं. निग्रहण] (१) पकड़ना, थामना, गहना । (२) रोकना । (३) दंड देना । (४) सताना ।

निग्रही—वि. [सं. निग्रहिन्] (१) रोकने, दबाने या वश में रखनेवाला । (२) दंड देने या दमन करनेवाला ।

निग्रहौं, निग्रहौं—क्रि. स. [हिं. निग्रहना] पकड़ूँ, थाम लूँ, गहूँ । उ.—कंस केस निग्रहौं पुहुमि को भार उतारौं—११३८ ।

निग्रह्यौ, निग्रह्यौ—क्रि. स. [हिं. निग्रहना] पकड़ा, थामा, गहा । उ.—तब न कंस निग्रह्यौ पुहुमि को भार उतारयौ—११३६ ।

निघंटु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वैदिक शब्द-कोश । (२) विषय-विशेष के शब्दों का संग्रह मात्र ।

निघटत—क्रि. अ. [हिं. निघटना] घटता है । उ.—भरे रहत अति, नीर न निघटत, जानत नहिं दिन-रैन—२७६८ ।

निघटति—क्रि. अ. [हिं. निघटना] घटती है । उ.—सँदेसनि क्यों निघटति दिन-राति—३१८५ ।

निघटना—क्रि. अ. [हिं. नि+घटना] घटना, कम होना ।

निघटी—क्रि. अ. [हिं. निघटना] घटी, समाप्त हुई, व्यतीत हुई । उ.—(क) निसि निघटी रवि-रथ रुचि साजी । चंद मलिन चकई रति-राजी—१०-२३३ । (ख) जागहु जागहु नंदकुमार । रवि बहु चढ़यौ रैनि सब निघटी, उचटे सकल किवार—४०८ ।

निघरघट—वि. [हिं. नि+घर+घाट] (१) जो घर-घाट का न हो, जिसका ठौर-ठिकाना न हो । (२) निर्लज्ज ।

मुहा.—निघरघट देना—पकड़े और लज्जित किये जाने पर झूठी बातें बनाना ।

निघरा—वि. [हिं. नि+घर] (१) जिसके घर-द्वार या ठौर-ठिकाना न हो । (२) नीच, दुष्ट, निगोड़ा ।

निघर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] **घिसना, रगड़ना।**

निघात—संज्ञा पुं [स.] (१) **प्रहार।** (२) **अनुदात्त स्वर।**

निघाति—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **लोहदंड।** (२) **निहाई।**

निघ्न—वि. [स.] (१) **वशीभूत।** (२) **आश्रित।**

निचय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **समूह।** (२) **निश्चय, दृढ़ विचार।** (३) **सचय, संग्रह।**

निचल—वि. [सं. निश्चल] **अचल, निश्चल।**

निचला—वि. [हिं. नीचा+ला (प्रत्य.)] **नीचे का।**

वि. [स. निश्चल] (१) **अचल।** (२) **स्थिर।**

निचाई—संज्ञा स्त्री [हिं. नीच+आई (प्रत्य.)] (१) **नीचा होने का भाव, नीचापन।** (२) **नीचे का विस्तार।** (३) **नीच होने का भाव, नीचता, ओछापन।**

निचान—संज्ञा स्त्री [हिं. नीचा] (१) **नीचे की ओर दूरी या विस्तार।** (२) **ढाल, ढलान।**

निचिंत—वि [स. निश्चिंत] **चितारहित।**

निचित—वि. [स] (१) **संचित।** (२) **निर्मित।**

निचुड़ना—क्रि. अ [स. नि+च्यवन=चूना](१) **भीगी या रसीली चीज का इस प्रकार दबना कि पानी या रस छूटकर या टपककर निकल जाय।** (२) **रस या सार-रहित होना।** (३) **(शरीर का) तेज या शक्ति से रहित होना।**

निचै—संज्ञा पुं [सं. निचय] (१) **समूह।** (२) **निश्चय, दृढ़ विचार।** (२) **सचय।**

निचोई—वि. [हिं. निचोना, निचोड़ना] **जिसमें रस आदि निचोड़ा गया हो।** उ.—चौराई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआनि निचोई—३९६।

निचोड़, निचोर—संज्ञा पु. [हिं. निचोड़ना] (१) **(जल, रस आदि) वस्तु जो निचोड़ने से निकले।** (२) **सार, सत।** (३) **कथन का तात्पर्य या सारांश।**

निचोड़ना, निचोना, निचोरना—क्रि स. [हिं. निचुड़ना] (१) **भीगी या रसीली चीज को दबाकर पानी या रस टपकाना।** (२) **किसी वस्तु का सार ले लेना।** (३) **सर्वस्व हर लेना।**

निचोयो—क्रि. स. [हिं निचोना] **निचोड़ने से।** उ.—सूरदास क्यों नीर चुवत है नीरस बसन निचोयो-३४८२।

निचोरौं—क्रि. स. [हिं. निचोड़ना] **निचोड़ लूं, रस-पदार्थ निकाल लूं।** उ.—कहौ तौ चंद्रहिं लै अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं—९-१४८।

निचोल—संज्ञा पुं. [स.] (१) **ढीला ढाला कुरता, अंगा।** उ.—(क) सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-९४। (ख) ओढे पीरी पावरी हो पहिरे लाल निचोल—८९३। (२) **ढकने का कपड़ा।** (३) **स्त्री की ओढ़नी।** (४) **लहँगा, घाघरा।** (५) **अधोवस्त्र।** (६) **वस्त्र।**

निचोलक—संज्ञा पु. [स.] (१) **अंगा।** (२) **कवच।**

निचोवना—क्रि. स. [हिं. निचोना] **निचोड़ना।**

निचौहाँ—वि. [हिं. नीचा+औहाँ (प्रत्य.)] **नीचे को झुका हुआ, नमित।**

निचौहीं—वि. स्त्री. [हिं. निचौहाँ] **नीचे की ओर झुकी हुई।** उ.—सखिनि मध्य करि दीठि निचौहीं राधा सकुच भरी।

निचौहैं—क्रि. वि [हिं. निचौहाँ] **नीचे की ओर।**

निछत्र—वि. [सं. निः+छत्र] (१) **जो छत्रहीन हो।** (२) **बिना राज्य या राज्यचिह्न का।**

वि. [सं. निः+क्षत्र] **क्षत्रियों से हीन, क्षत्रियरहित।** उ.—मारयौ मुनि बिनहीं अपराधहिं, कामधेनु लै आऊ। इकइस बार निछत्र करी छिति, तहाँ न देखे हाऊ—१०-२२१।

निछनियाँ—क्रि. वि. [हिं निछान (नि=नहीं+छान=जो छानने से निकले)] **एकदम, पूर्ण रूप से, बिलकुल।** उ.—जसुमति दौरि लिए हरि कनियाँ। आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन, हौं बलि जाउँ निछनियाँ—४१८।

निछल—वि. [सं. निश्छल] **छल-कपटरहित।**

निछला—वि. [हिं निछल] **एकमात्र, केवल।**

निछान—क्रि. वि. [हिं नि+छान] **एकदम, बिलकुल।**

वि.—(१) **विशुद्ध, खालिस।** (२) **एकमात्र, केवल।**

निछावर, निछावरि—संज्ञा स्त्री. [सं न्यास+अवर्त्त=न्यासावर्त्त, हिं. निछावर] (१) **वारफेरा, उतारा।** उ.—अब कहा करौं निछावरि, सूरज सोचति अपनैं लालन जू पर—१०-९२।

मुहा.—निछावर करना—**छोड़ देना, त्यागना।**

निछावर होना—(१) त्याग दिया जाना। (२) प्राण त्यागना, मर जाना।

(२) वह धन या वस्तु जो उतारा या वाराफेरा करके दी जाय। (३) इनाम, नेग।

निछोह, निछोही—वि [हि नि+छोह] (१) जिसे प्रेम न हो, प्रेम-रहित। (२) निष्ठुर, निर्दय।

निज—वि [स] (१) अपना, स्वकीय। उ.—वासुदेव की बड़ी बड़ाई। जगत-पिता, जगदीस, जगतगुरु, निज भक्तनि की सहत ढिटाई—१-३। (२) मुख्य, प्रधान। उ—परम चतुर निज दास स्याम के सतत निकट रहत हौ। (३) ठीक, सही, वास्तविक।

अव्य—(१) ठीक ठीक। (२) विशेष रूप से।

निजकाना—क्रि. अ [फा नजदीक] समीप आना।

निजी—वि. [हि निज] निज का, खास अपना।

निजु—अव्य [स. निज] (१) निश्चय, ठीक-ठीक, सही-सही। (२) विशेष करके, मुख्यतः, खास करके। उ.—(क) पतित पावन जानि सरन आयौ। उदधि-ससार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११६। (ख) उ—गान बरषा सुरसरी-सुवन रनभूमि आए। ·· ·· । क्यौं करि कोप प्रभु अब प्रतिज्ञा तजौ, नहीं तौ जुद्ध निजु हम हराए—१-२७१।

निजू—वि [हि निज] निज का, निजी।

निजोर—वि [हिं नि+फा जोर] निर्बल।

निझरना—क्रि अ [हि नि+झरना] (१) टूटकर गिरना। (२) सार-वस्तु से रहित हो जाना। (३) अपने को दोष से बचा जाना।

निझरि—क्रि अ. [हि. निझरना] (१) निचुड़ गये, (बरस-बरस कर) खाली हो गये। उ—भुव पर एक बूँद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह—६७१। (२) अपने को निर्दोष प्रमाणित करके। उ.—सदा चतुराई फवती नाहीं अति ही निझरि रही हो—१५२७।

निझाना—क्रि. अ [देश.] आड से छिपकर देखना।

निझोटना—क्रि स. [देश] खींच या झपटकर छीनना।

निटर—वि. [देश] जो (खेत) उपजाऊ न रहा हो, जिसकी उर्वरा शक्ति चुक गयी हो।

निटोल—सज्ञा पु. [हिं. नि+टोला] टोला, मोहल्ला। उ.—किंकिरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करो निटोल—३४७५।

निठल्ला—वि. [हि नि+टहल] (१) जिसके पास काम-धंधा न हो। (२) बेरोजगार। (३) निकम्मा।

निठल्लू—वि. [हिं निठल्ला] निकम्मा।

निठुर—वि. [स निष्ठुर] निर्दय, कठोर। उ.—(क) बड़ी निठुर विधना यह देख्यो—६४३। (ग) तनक हँस मन दै जुवतिनि को निठुर ठगोरी लाइ—२५३३।

निठुरई—सज्ञा स्त्री. [हि. निठुरता] निर्दयता।

निठुरता—सज्ञा स्त्री [स निष्ठुरता] निर्दयता।

निठुराई—सज्ञा स्त्री. [हि निठुर] निठुरता, क्रूरता, निर्दयता। उ—(क) हठ करि रहे, चरन नहिं छाँड़े, नाथ तजौ निठुराई—६-५३। (ख) अब अपने घर के लरिका सौं इती करति निठुराई—३६३। (ग) ऐसे मैं न सूल्यौ करैं अति निठुराई धरैं उनैं उनैं बदा देखो पावस की आई है—२८२७।

निठराउ, निठराऊ, निठराव—सज्ञा पु. [हि. निठराव] निठुरता, क्रूरता, निर्दयता। उ.—सोऊ तो बूझे ते बोलत इनमें इह निठराउ—पृ. ३३२ (१६)।

निठोर, निठौर—सज्ञा पुं. [हि. नि+ठौर] (१) बुरा स्थान, कुठौर। (२) बुरा दाँव, बुरी दशा।

मुहा—निठोर पड़ा—बुरी दशा या स्थिति में पड़ना। परी निठोर—बुरी दशा या स्थिति में पड़ गयी। उ.—चतुरि बन बोलन लागे मोर। · । जिनको पिय परदेस सिधारो सो तिय परी निठोर—२१३७।

निडर—वि. [हिं. उप नि+डर] (१) जिसे डर न हो, निशंक, निर्भय। (२) साहसी। (३) धृष्ट, ढीठ। उ.—तुम प्रताप-बल बदत न काहू, निडर भए घर चेरे—१-१७०।

निडरता—सज्ञा स्त्री [हि निडर] निर्भयता, निर्भीकता।

निडरपन, निडरपना—संज्ञा पु. [हिं. निडर+पन (प्रत्य)] निडर होने का भाव, निर्भयता।

निढाल—वि [हिं. नि+ढाल=गिरा हुआ] (१) थकामाँदा, शिथिल, पस्त। (२) उत्साहहीन।

निढिल—वि [हिं. नी+ढीला] (१) जो ढीला न हो, कसा या तना हुआ। (२) कड़ा।

नितंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कमर का पिछला उभरा हुआ भाग।** (२) **कंधा।** (३) **तट, तीर।**

नितंबिनि, नितंबिनी—संज्ञा स्त्री. [स नितंब] **सुंदर स्त्री।** उ. निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सार-सुता की ओर—१६१८।

नित—अव्य. [स. नित्य] (१) **प्रति दिन।** (२) **सदा।**

नितल—संज्ञा पु. [स.] **सात पातालो में एक।**

नितांत—वि [बंगाली] (१) **बहुत अधिक।** (२) **निपट।**

निति, नित्त - अव्य [स नित्य] **प्रति दिन, नित्य।** उ.—मुख कटु बचन, नित्त पर-निंदा, संगति-सुजस न लेत—२-१५।

नित्य—वि० [स] (१) **जो सदा बना रहे, अविनाशी।** (२) **प्रति दिन का, रोज का।**

अव्य०—(१) **प्रतिदिन।** (२) **सदा, सर्वदा।**

नित्यकर्म—संज्ञा पु [सं] (१) **प्रति दिन का काम।** (२) **प्रति दिन किया जानेवाला धर्म-कर्म।**

नित्यता—संज्ञा स्त्री. [स] **अनश्वरता।**

नित्यदा—अव्य. [स.] **सदा, सर्वदा।**

नित्यप्रति—अव्य० [सं] **प्रति दिन, हर रोज।**

नित्ययौवना—संज्ञा. स्त्री [स.] **द्रौपदी।**

वि.—**जिसका यौवन सदा बना रहे।**

नित्यशः—अव्य [स] (१) **प्रति दिन।** (२) **सदा।**

निथंभ—संज्ञा पुं [हि नि+स स्तंभ] **खभा, स्तंभ।**

निथरना—क्रि अ [हिं नि+थिरना] **थिरकर साफ होना।**

निथार—संज्ञा पु. [हिं. निथरना] (१) **घुली चीज जो तल पर बैठ जाय।** (२) **घुली चीज के तल पर बैठ जाने से साफ हो जानेवाला जल।**

निथारना—क्रि स [हि निथरना] **थिराकर साफ करना।**

निदई—वि. [स. निर्दय] **कठोर, क्रूर।**

निदरना—क्रि. स. [स निरादर] (१) **अपमान करना।** (२) **त्याग करना।** (२) **तुच्छ ठहराना, बढ़ जाना।**

निदरि—क्रि स. [हि. निदरना] (१) **निरादर करके, अपमान करके।** (२) **मात करके, पराजित करके, तुच्छ ठहराकर।** उ—चरन की छबि देखि डरयौ अरुन गगन छपाइ। जानु करभा की सबै छबि निदरि लई छँड़ाइ—१०-२३४। (३) **तिरस्कार करके, त्याग कर।** उ—(क) निदरि चले गोपाल आगे बकासुर कै पास—४२७। (ख) निदरि हमैं अधरनि रस पीवति पढी दूतिका भाइ—६५६।

निदरिहौं—क्रि. स. [हि. निदरना] **निरादर करूँगा।** उ.—लोग कुटुंब जग के जे कहियत पेला सबै निदरिहौं—१५१८।

निदरी—क्रि स. [हि] निदरना **तिरस्कार किया, उपेक्षा की, चिंता नहीं की।** उ—सूर स्याम मिलि लोक-बेद की मर्यादा निदरी—पृ० ३३६ (५०)।

निदरे—क्रि स. [हि निदरना] **निरादर या तिरस्कार किया।** उ—ऐसे ढीठ भए तुम डोलत निदरे ब्रज की नारि—१५०७।

निदरौगे—क्रि. स. [हि. निदरना] **निरादर करोगे।** उ.—सूर स्याम मोहू निदरौगे देत प्रेम की गारि—१५०७।

निदर्शन—संज्ञा पु [स] (१) **दिखाने या प्रदर्शित करने का कार्य।** (२) **उदाहरण।**

निदर्शना—संज्ञा स्त्री [स] **एक अर्थालंकार।**

निदहना—क्रि स [स निदहन] **जलाना।**

निदाघ—संज्ञा पुं [स.] (१) **ताप।** (२) **धूप, घाम।** (३) **ग्रीष्मकाल।**

निदान—अव्य [स] **अंत में, आखिर।** उ—बहुरौ नृप करिकै मख्यान। दीनौं ताकौं छाँड़ि निदान—६-१३।

वि—**बहुत ही गया-बीता, निकृष्ट।**

संज्ञा पु [स.] (१) **कारण।** (२) **आदि कारण।** (३) **रोग का लक्षण।** (४) **अंत।**

निदेश, निदेस—संज्ञा पु [स निदेश] (१) **शासन।** (२) **आज्ञा।** (३) **कथन।**

निदेशी—वि [हि निदेश] **आज्ञा देनेवाला।**

निदोष—वि [स निर्दोष] **दोषरहित।**

निद्र—संज्ञा पुं [स] **एक अस्त्र।**

निद्रा—संज्ञा स्त्री [स] **नींद।**

निद्रायमान—वि [स] **सोता हुआ।**

निद्रालु—वि [स] **सोनेवाला।**

निद्रित—वि [स] **सोया हुआ, सुप्त।**

निधड़क—क्रि वि [हि नि+धड़क] (१) **बेरोक-टोक।** (२) **बिना संकोच या भय के।**

निधन—वि. [हिं नि+धन] **निर्धन, धनहीन, दरिद्र**। उ.—परम उदार, चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधन कौं—१-६।
  संज्ञा पुं [सं] (१) **नाश**। (२) **मरण**।
निधनपति—संज्ञा पु [सं] **प्रलयकर्त्ता, शिवजी**।
निधनियाँ—वि. स्त्री. [सं. निर्धन] **निर्धन स्त्री, गरीब, कंगाल**। उ.—आरि जनि करौ, बलि-बलि जाउँ हौं निधनियाँ—१०-१४५।
निधनी—वि स्त्री. [सं निर्धन] **धनहीन, गरीब, दरिद्र, कगाल**।। उ - (क) जननी देखि छबि, बलि जाति। जैसें निधनी धनहि पाएँ, हरष दिन अरु राति—१०-७१। (ख) मो निधनी कौ धन रहै, किलकत मनमोहन —१०-७२।
निधरक—क्रि. वि. [हिं. निधड़क] (१) **बेरोक, बिना रुकावट**। (२) **बिना संकोच के, बिना आगा-पीछा सोचे**। (३) **निश्चिंत, निशंक**। उ —(क) निधरक रहौ सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि। मन-ममता रुचि सौं रखवारी, पहिलैं लेहु निबेरि—१-५१। (ख) निधरक भए पांडु-सुत डोलत, हुतौ नहीं डर काकौ —१-११३। (ग) अबहिं निबछरौ समय, सुचित ह्वै, हम तौ निधरक कीजै—१-१६१।
निधरके—क्रि वि [हि निधड़क] **निशंक, निश्चित**। उ —मैं जानत हम सरि को त्रिभुवन ऐसे रहत निधरके री—पृ ३२२ (११)।
निधान, निधानी—संज्ञा पु [सं निधान] (१) **आधार**। (२) **निधि**। उ —सखा हँसत मन ही मन कहि कहि ऐसे गुननि निधानी—१५५८।
निधि—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) **धन, संपत्ति**। (२) **कुबेर की नौ निधियाँ—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और वर्च्च**। (३) **आधार, घर**। (४) **विष्णु, परमात्मा**। उ —जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि जगत नहिं नाचै—१-८१। (५) **नौ की संख्या**।
निधिनाथ, निधिप, निधिपति, निधिपाल, निधीश्वर—संज्ञा पु [सं] **निधियों के नाथ, कुबेर**।
निनय—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नम्रता**।
निनरा, निनरे—वि. [सं. नि+निकट, प्रा० निनिअड़] **न्यारा, अलग**। उ —मानहु बिबर गए चलि कारे तजि केंचुल भए निनरे री।
निनाद—संज्ञा पुं [सं] **शब्द, आवाज**।
निनादना—क्रि अ [सं निनाद] **शब्द करना**।
निनादित—वि [सं] **ध्वनित, शब्दित**।
निनादी—वि [सं निनादिन] **शब्द करनेवाला**।
निनान—संज्ञा पु. [सं. निदान] (१) **अंत**। (२) **लक्षण**।
  क्रि वि —**अंत में, आखिर**।
  वि —(१) **बुरा**। (२) **बिलकुल, एकदम**।
निनाना—क्रि स. [हि. नवाना] **झुकाना, नवाना**।
निनार, निनारा—वि [सं निः+निकट, प्रा. निनिअड़, हिं निनर] (१) **भिन्न, न्यारा** (२) **हटा हुआ**। (३) **अनोखा**।
निनारी—वि. स्त्री. [हि. निनारा] (१) **अनोखी, विलक्षण**। उ —साझे भाग नहीं काहू को हरि की कृपा निनारी—२६३५। (२) **विशेष, विशिष्ट**। उ.—जैसी मोपै स्याम करत है तैसी तुम करहु कृपा निनारी—१० उ०-४२।
निनारे—वि. [हिं. निनारा] **अलग रहकर, दूर रहकर**। उ.—वै जलहर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे-१० उ०-८३।
निनावँ—संज्ञा स्त्री [हि नि=बुरा+नावँ=नाम] (१) **वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ समझा जाय**। (२) **चुड़ैल, भुतनी**।
निनौरा—संज्ञा पुं [हिं नानी+औरा] **ननिहाल**।
निन्यानबे—वि [सं नवनवति, प्रा० नवनवइ] **सौ से एक कम**। उ —बहुरि नृप जज्ञ निन्यानवे करि, सतम जज्ञ कौं जबहिं आरंभ कीन्हौ—४-११।
  मुहा —निन्यानवे के फेर में पड़ना—**धन बढ़ाने की चिंता या उपाय में लगे रहना**।
निन्हियाना—क्रि अ [अनु. नी नी] **दीनता दिखाना**।
निपंक, निपंग—वि [सं. नि+पंगु] **अपाहिज, पंगु**।
निपजना—क्रि अ [सं निष्पद्यते, प्रा० निपज्जइ] (१) **उगना, उत्पन्न होना**। (२) **पकना, बढ़ना, पुष्ट होना**। (३) **बनना, तैयार होना**।

निपजी—क्रि. अ. [हिं. निपजना] **बढ़ी, पुष्ट हुई, परिपक्व हुई।** उ.—भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी। ज्यौं ज्यौं दिनी भई त्यौं निपजी—१०-३६१।

संज्ञा स्त्री [हिं. निपजना] (१) **लाभ।** (२) **उपज।**

निपत्र—वि. [सं. निष्पत्र] **जिसमें पत्ते न हों, ठूँठ।**

निपट—अव्य. [हिं. नि+पट] (१) **निरा, विशुद्ध, केवल, एकमात्र।** (२) **सरासर, नितांत, बहुत अधिक, पूर्ण, बिलकुल।** उ.—(क) सूरदास जो चरन-सरन रह्यो, सो जन निपट नींद भरि सोयौ—१-५४। (ख) करि हरिसौं सनेह मन साँचौ। निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौ ?—१-८३। (ग) नैनन निपट कठिन व्रत ठानी—३०३७।

निपटना—क्रि. अ. [सं. निवर्त्तन] (१) **छुट्टी पाना।** (२) **समाप्त होना।** (३) **खत्म होना।** (४) **शौचादि से छुट्टी पाना।**

निपटाना—क्रि. स. [हिं. निपटना] (१) **समाप्त करना।** (२) **चुकाना।** (३) **तय करना।**

निपतन—संज्ञा पुं. [सं.] **गिरना, अधःपतन।**

निपतित—वि [सं.] **गिरा हुआ, पतित।**

निपंगुर—वि. [हिं नि+पंगु] **अपाहिज, पंगु।**

निपात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नाश, विनाश।** उ.—और नैंकु छ्वै देखै स्यामहिं, ताकौं करौं निपात—३७५। (२) **मृत्यु, क्षय।** उ.—कंस निपात करौगे तुमहीं हम जानी यह बात सही परि-४२६। (३) **पतन, गिराव।** (४) **वह शब्द जो सामान्य व्याकरणिक नियमों के अनुसार न हो।**

निपातन—संज्ञा पुं. [सं.] **गिराने, नाश करने या मार डालने का काम।**

निपातना—क्रि. स. [हिं निपातन] (१) **गिराना।** (२) **नष्ट करना।** (३) **वध करना।**

निपातहु—क्रि स. [हिं. निपातना] **वध करो।** उ.—सूरदास प्रभु कंस निपातहु—२५५८।

निपाता—संज्ञा पुं. [सं. निपात] **वध, नाश।** उ.—जैसौ दुख हमको एहि दीन्हो तैसे याको होत निपाता-१४२७।

निपाती—वि. [सं. निपातिन्] (१) **गिराने या चलानेवाला।** (२) **मारने या घात करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—**शिव, महादेव।**

वि. [हिं. नि+पाती] **बिना पत्ती का, ठूँठ।**

क्रि. स. [हिं. निपातना] **मारा, वध किया, मार गिराया।** उ.—(क) पय पीवत पूतना निपाती, तृनावर्त इहि भाँत—५०८। (ख) कपटरूप की त्रिया निपाती, तबहि रह्यौ अति छौना—६०१। (ग) केसी अघ पूतना निपाती लीला गुननि अगाध—२५८०। (घ) सूपनखा ताड़का निपाती सूरदास यह बानि—३२३८।

निपात्यो—क्रि. स. [हिं निपातना] **मारा, वध किया।** उ.—वत्सासुर को इहाँ निपात्यो—३४०६।

निपान—संज्ञा पुं. [सं.] **तालाब।**

निपीड़क—वि. [सं.] (१) **पीड़ा देनेवाला।** (२) **मलने-दलनेवाला।** (३) **पेरने-निचोड़नेवाला।**

निपीड़न—संज्ञा पुं [सं] (१) **पीड़ा देना।** (२) **मलना-दलना।** (३) **पेरना-निचोड़ना।**

निपीड़ना—क्रि. स [सं. निपीडन] (१) **मलना-दलना, दबाना।** (२) **पीड़ा या कष्ट देना।**

निपीडित—वि [सं] (१) **पीड़ित।** (२) **दलित, दला-मला।** (३) **पेरा या निचोड़ा हुआ।**

निपुण—वि. [सं] **दक्ष, कुशल, चतुर।**

निपुणता—संज्ञा स्त्री [सं] **दक्षता, कुशलता।**

निपुणाई—संज्ञा स्त्री. [हिं निपुण+आई] **दक्षता।**

निपुत्री—वि [हिं नि+पुत्री] **संतानरहित।**

निपुन—वि [सं निपुण] **चतुर, कुशल।**

निपुनइ, निपुनई, निपुनता, निपुनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. निपुण] **निपुणता, दक्षता।**

निपूत, निपूता—वि [सं. निष्पुत्र] **पुत्रहीन।**

निपूती—वि स्त्री [हिं निपूता] **स्त्री जिसके पुत्र न हो, पुत्रहीना स्त्री।**

निपोड़ना, निपोरना—क्रि. स [सं. निष्पुट, प्रा. निप्पुड+ना (प्रत्य)] **खोलना, उघारना।**

मुहा—खीस (दाँत) निपोरना—(१) **व्यर्थ हँसना।** (२) **निर्लज्जता से हँसना।**

निफन—वि [सं. निष्पन्न, पा निप्फन्न] **पूरा, संपूर्ण।**

क्रि. वि—**अच्छी तरह, पूर्ण रूप से।**

निफरना—क्रि. अ. [हिं निफारना] **छिदकर, चुभकर या धँसकर आरपार होना।**

क्रि. अ. [स नि+स्फुट] **प्रकट या स्पष्ट होना।**

निफल—वि [स निष्फल, प्रा. निप्फल] **व्यर्थ, निरर्थक।** उ —राख्यौ सुफल सँवारि, सान दै, कैसै निफल करौं वा बानहिं—६-६५।

निफाक—संज्ञा पुं [अ. निफाक] **(१) विरोध, द्रोह। (२) बिगाड, अनबन।**

निफारना—क्रि स [हि नि+फाड़ना] **वेध या छेदकर आरपार करना।**

क्रि स [स. नि+स्फुट] **प्रकट या स्पष्ट करना।**

निफालन—सज्ञा पुं. [स] **दृष्टि।**

निफोर—वि [स नि+स्फुट] **साफ, प्रकट, स्पष्ट।**

निबंध—सज्ञा पुं [स.] **(१) बंधन। (२) लेख, प्रबंध। (३) गीत। (४) वह वस्तु जिसे देने को वचनबद्ध हो।**

निबंधन—सज्ञा पु [स] **(१) बंधन। (२) कर्त्तव्य। (३) कारण। (४) व्यवस्था, नियम। (५) गाँठ। (६) वीणा या सितार की खूँटी।**

निबंधनी—सज्ञा स्त्री [स] **(१) बंधन। (२) बेड़ी।**

निबकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नीम, नीम+कौड़ी] **नीम का फल या बीज, निबौली, निबौरी।**

निबटना—क्रि अ [स निवर्त्तन, प्रा. निवट्टना] **(१) छुट्टी पाना, निवृत्त होना। (२) पूरा या समाप्त होना। (३) तै या निर्णय होना। (४) चुकना, अदा होना। (५) शौच से निवृत्त होना।**

निबटाना—क्रि स. [हिं निबटना] **(१) छुट्टी दिलाना, निवृत्त कराना। (२) पूरा या समाप्त करना। (३) तै या निर्णय करना। (४) खत्म करना। (५) चुकाना, अदा करना।**

निबटाव, निबटेरा—सज्ञा पुं [हिं निबहना] **(१) निबटने का भाव या क्रिया। (२) निर्णय, फैसला।**

निबड़ना—क्रि अ [हिं. निबटना] **समाप्त या खत्म होना।**

निबद्ध—वि [स] **(१) बंधा हुआ। (२) रुका हुआ। (३) गुथा हुआ। (४) जड़ा हुआ।**

सज्ञा पु.—**गीत जिसमें गति समय, ताल, गमक आदि का पूरा ध्यान रखा जाय।**

निबर—वि. [सं निर्बल] **बल या शक्तिहीन।**

निबरना—क्रि. अ. [सं. निवृत्त, प्रा निविट्ठ] **(१) बँधी-टँकी चीज का छूटकर अलग होना। (२) मुक्ति या उद्धार पाना। (३) छुट्टी या अवकाश पाना। (४) (काम) पूरा या समाप्त होना। (५) फैसला या निर्णय होना। (६) उलझन या अड़चन दूर होना। (७) दूर होना, रह न जाना।**

निबरी—क्रि अ [हिं. निबरना] **(१) (काम) पूरा हो जायगा, निवृत्ति मिल जायगी**—उ —सूरदास विनती कह विनवै, दोषनि देह भरी। अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामै सब निबरी—१-१३०। **(२) खत्म हो जाना, रह न जाना।** उ. —अब नीकै कै समुझि परी। जिन लगि हती बहुत उर आसा सोऊ बात निबरी। **(३) मुक्त हो गयी।**

निबेरैं—क्रि अ. [हिं निबरना] **मिली-जुली वस्तुओं को अलग करने से।** उ —नैना भए पराए चेरे। ·· ··। त्यौं मिलि गए दूध पानी ज्यौं निबरत नहीं निबेरैं—२३६५।

निबेरैंगे—क्रि अ [हिं निबरना] **मुक्त होंगे, बचे रहेंगे, पार पायँगे।** उ —कबलौं कहौं पूजि निबरैंगे बचिहैं बैर हमारे।

निबल—वि [स निर्बल] **बल या शक्तिहीन।**

निबहत—क्रि अ. [हिं निबहना] **निभ सकता है।** उ —कैसे है निबहत अबलनि पै कठिन जोग को साजु—३२३५।

निबहन—सज्ञा पु. [हिं निबहना] **निभने की क्रिया या भाव।**

प्र०—निबहन पैहौ—**छुटकारा मिल सकेगा, बचा जा सकेगा।** उ —स्याम गए देखे जनि कोई। सखियनि सौं निबहन किमि पैहौ इन आगे राखौ रस गोई। निबहन पैहौ—**छुटकारा पा सकोगे, बच सकोगे।** उ —मेरे हठ क्यों निबहन पैहौ। अब तौ रोकि सबनि कौ राख्यौ कैसे कै तुम जैहौ।

निबहना—क्रि अ [हि निबाहना] **(१) मुक्ति या पार पाना, बच निकलना। (२) निर्वाह, पालन या रक्षा होना। (३) (काम) पूरा होना या निभना। (४) (बात या वचन का) पालन होना।**